योगवाशिष्ठकी अनुक्रमणिका।

द्वितीय मुमुक्षुप्रकरण॥

तृतीय उत्पत्तिप्रकरण॥

चतुर्थ स्थितिप्रकरण॥

निर्वाणप्रकरणउत्तरार्द्ध ॥

इति॥

श्रीपरमात्मने नमः ॥

भूमिका ॥

उस ईश्वर सच्चिदानन्दघन परमात्माका धन्यवाद है कि, जिसने संसारको उत्पन्न करके अपने प्रकाश के लिये वेदान्त आदि विद्या बनाई जिनमें अनेक प्रकारके शास्त्र और मत प्रकट किये हैं और जो अनेकप्रकार की वार्तायें संयुक्त हैं। कोई तो कर्मकी प्रधानता मानते हैं कोई ज्ञानको श्रेष्ठ जानते हैं और कोई कहते हैं कि उपासनाही मुक्ति का हेतु है परन्तु; इस पुस्तक में कर्म और ज्ञान दोनों की प्रधानता लीगई है। श्री अगस्त्यजी महाराज ने श्रीमुख से वर्णन किया है कि, न केवल कर्मही मोक्ष का कारण है और न केवल ज्ञानहीसे मोक्ष होता है बल्कि दोनों मिलकर मोक्षसिद्धि होती है क्योंकि; अन्तःकरण निर्मलहुये विना केवल ज्ञानसेही मुक्ति नहीं होती। कर्म करके प्रथम अन्तःकरण शुद्धहोताहै फिर ज्ञान उत्पन्न होता तब मुक्ति होती–जैसे पक्षी आकाश में दोनों परोंसे उड़ता है तैसेही मोक्ष साधनके लिये कर्म और ज्ञान दोनोंही आवश्यक हैं। इस पुस्तक में विशेष करके ज्ञानवार्त्ता विषयक श्रीपरमात्मारूप दशरथकुमार आनन्दकन्द श्रीरामचन्द्र और जगतगुरु श्रीवशिष्ठजी का संवाद है। इसके धारण करने से मुक्ति होतीही है मोक्षमार्ग्ग के दिखाने को यह पुस्तक दीपकरूप है और ज्ञान और योग की तो स्वरूपही है। इसके प्रतिवाक्य और प्रतिपद से बोध होकर अन्तःकरण शुद्ध होजाता है। कलियुगवासियों के उद्धार के निमित्त आदिकवि विद्वच्छिरोमणि बाल्मीकिजी ने इसको संस्कृतपद्य में निर्माण किया और इसके द्वारा संसारसागर के तरने के निमित्त आत्मज्ञानरूप परमात्मा को लखाया यह बातें इस पुस्तक के पढ़ने पढ़ाने से विदित होती हैं ॥

इस पुस्तक में छः प्रकरण हैं १ वैराग्य, २ मुमुक्षु, ३ उत्पत्ति, ४ स्थिति, ५ उपशम और ६ निर्वाण। जिनमें नाम सदृशही विषय भी हैं ॥

अब इसके भाषान्तर होनेका हाल वर्णन किया जाता है। अनुमान डेढ़सौवर्ष के व्यतीत हुये कि, पटियाला नगरनरेश श्रीयुतसाहबसिंहजी वीरेशकी दो बहिनें विधवा होगई थीं इसलिये; उन्होंने साधुरामप्रसादजी निरंजनी से कहा कि; श्री योगवाशिष्ठ

जो अतिज्ञानामृत है सुनाओ तो अच्छीबात हो ! निदान उन्हों ने योगवाशिष्ठ की कथा सुनाना स्वीकार किया और उन दोनों बहिनोंने दो गुप्तलेखक बैठा दिये ज्यों ज्यों पण्डितजी कथा कहते थे वे प्रत्यक्षर लिखते जाते थे, जब इसी तरह कुछ समय में कथा पूर्ण हुई तो यह ग्रन्थभी तय्यार होगया। जोकि इस में कथाकी रीति थी कुछ उल्थे का प्रकार न था और पंजाबी शब्दमिलेहुये थे प्रथम यह ग्रन्थऐसाही मुम्बई नगर में अगहन संवत् १९२२ में छपा। जब इसका इस भांति प्रचार हुआ और ज्ञानियों को कुछ इसका सुख प्राप्तहुआ तो चारों ओर से यह इच्छा हुई कि, यदि पंजाबी बोलियां और इबारत सुधारकर यह पुस्तक छापीजावे तो अति उत्तम हो। तथाच श्रीमान् मुंशी नवलकिशोरजीने वैकुण्ठबासी प्यारेलालशर्म्मा कश्मीरी को आज्ञादी और उन्होंने बोलियां बदलकर और जहां तहांकी इबारत सुधारकर उनकी आज्ञाका प्रतिपालन किया–आशा है कि, पाठकगण इसे देखकर बहुत प्रसन्नहोंगे॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

प्रथमवैराग्यप्रकरणप्रारम्भः ॥

उस सत्‌चित्-आनन्दरूप आत्मा को नमस्कार है जिससे सब भासते हैं और जिसमें सब लीन और स्थित होतेहैं एवम् जिससे ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य; और कर्त्ता, कारण, क्रिया सिद्ध होतेहैं; जिस आनन्दके समुद्रके कण से सम्पूर्ण विश्व आनन्दवान् हैं और जिस आनन्द से सबजीव जीते हैं। अगस्त्यजी के शिष्य सुतीक्ष्ण के मनमें एक संशय उत्पन्नहुआ तब वह उसके निवृत्ति करने के अर्थ अगस्त्यमुनि के आश्रम को जा विधिसंयुक्त प्रणामकरके स्थितहुआ और नम्रतापूर्वक प्रश्नकिया कि हे भगवन्! आप सर्वतत्त्वज्ञ और सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हो एकसंशय मुझको है सो कृपाकरके निवृत्तकरो। मोक्षका कारण कर्म है या ज्ञान? वा दोनों? इतना सुन अगस्त्यजी बोले कि हे ब्रह्मण्य! केवल कर्म मोक्ष का कारण नहीं और केवल ज्ञान से भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता; मोक्ष की प्राप्ति दोनों से होती है। कर्मकरके अन्तःकरण शुद्ध होता है मोक्ष नहीं होता और अन्तःकरणकी शुद्धि विना केवल ज्ञानसेभी मुक्ति नहीं होती; इससे दोनों से मोक्ष की सिद्धि होती है। कर्म करके प्रथम अन्तःकरण शुद्ध होता, फिर ज्ञान उपजता है, और तब मोक्ष सिद्धहोताहै। जैसे दोनों पङ्खों से पक्षी आकाशमार्ग में सुखसे उड़ताहै तैसेही कर्म और ज्ञान दोनों से मोक्ष की सिद्धता होती है। हे ब्रह्मण्य! इसी आशय के अनुसार एक पुरातन इतिहास है वह तुम सुनो। अग्निवेष का पुत्र कारुणनाम ब्राह्मणगुरु के निकट जा षट्‌अङ्गों सहित चारोंवेद अध्ययन करके गृहमें आया और कर्म से रहित होकर तूष्णीहो स्थितरहा अर्थात् संशययुक्त हो कर्मों से, रहितहुआ जब उसके पिताने देखा कि यह कर्मों से रहित होकर स्थितभया है तो उससे कहा कि, हे पुत्र! कर्म की पालना क्यों नहीं करते? तुम कर्म के न करनेसे सिद्धताको कैसे प्राप्तहोगे? जिस कारण तुम कर्म से रहितहुये हो वह कारण कहो? कारुण बोला हे पितः! मुझको एकसंशय उत्पन्नहुआ है उससे मैं कर्मसे तूष्णी हुआ हूं कि वेद में एकठौर तो कहाहै कि, जबतक जीतारहै तबतक कर्म अर्थात् अग्निहोत्रादिक करताहीरहे और एकठौर कहाहै कि न धन से मोक्ष होता, न कर्म से मोक्ष होताहै, न पुत्रादिक से मोक्ष होताहै और न केवल त्यागसेही मोक्ष होताहै। इनदोनों

में क्या कर्त्तव्यहै मुझको यही संशयहै सो आप कृपाकरके निवृत्तकरो और बतलाओ कि, क्या कर्त्तव्य है। अगस्त्यजी बोले हे सुतीक्ष्ण! ऐसे जब कारणने पितासे कहा तब अग्निवेष बोले कि, हे पुत्र! एककथा जो पहिले हुई है उसको सुनकर हृदयमें धारण कर फिर जो तेरी इच्छा होगी सो करना। एककाल में सुरुचिनामक अप्सरा, जो सम्पूर्ण अप्सराओं में उत्तम थी, हिमालय पर्वत के सुन्दरशिखर पर जहांकि देवता और किन्नरगण, जिनके हृदय कामनासे तृप्तथे, अप्सरों के साथ क्रीड़ाकरते थे और जहां गङ्गाजी के पवित्र जलका प्रवाह लहर लेरहाथा, बैठीथी। उसने इन्द्रका एकदूत अन्तरिक्षसे चलाआता देखा और जब निकट आया तो उससे पूछा; अहो सौभाग्य, देवदूत! तुम देवगणों में श्रेष्ठहो; कहांसे आये और अब कहां जाओगे सो कृपाकरके कहो? देवदूत बोले, हे सुभद्रे! अरिष्टनेमिनामक एक धर्मात्माराजर्षिने अपने पुत्रको राज्यदेकर वैराग्यलिया और सम्पूर्ण विषयोंकी अभिलाषा त्याग करके गन्धमादन पर्वतमें जा तप करनेलगाहै उसी के साथ मेरा एक कार्यथा और उस कार्य के लिये मैं उसके पास गयाथा अब इन्द्रके पास जिसका मैं दूतहूं सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करनेको जाताहूं। अप्सराने पूछा हे भगवन्! वह वृत्तान्त कौनसा है मुझसे कहो? मुझको तुम अतिप्रिय हो यह जानकर पूछती हूं और महापुरुषों से जो कोई प्रश्नकरताहै तो उद्वेगरहित होकर वे उत्तर देतेहैं। देवदूत बोले हे भद्रे! वह वृत्तान्त मैं विस्तारपूर्वक तुमसे कहताहूं मनलगाकर सुनो जब उस राजाने गन्धमादनपर्वत में बड़ा तपकिया तब देवताओं के राजा इन्द्रने मुझको बुलाकर आज्ञादी कि, हे दूत! तुम गन्धमादन पर्वतमें, जो नानाप्रकारकी लतावृक्षों से पूर्ण है, विमान, अप्सरा और नानाप्रकारकी सामग्री एवम् गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, किन्नर, ताल, मृदङ्गादि वादित्र संगले जाकर राजा को विमान पर बैठाके यहां लेआओ। तब मैं विमान और सामग्रीसहित जहां राजा था आया और राजा से कहा; हे राजन्! तुम्हारे कारण विमान ले आया हूं; इसपर आरूढ़ होकर तुम स्वर्ग को चलो और देवताओं के भोग भोगो? इतनासुन राजाने कहा कि; हे देवदूत! प्रथम तुम स्वर्ग का वृत्तान्त मुझको सुनाओ कि, तुम्हारे स्वर्ग में क्या २ दोष और गुणहैं तो उनको सुनके मैं हृदयमें विचारूं पीछे जो मेरी इच्छा होगी तो चलूंगा मैंने कहा कि; हे राजन्! स्वर्गमें बड़े २ दिव्य भोग हैं। वह स्वर्ग जीव बड़े पुण्यसे पाताहै। जो बड़े पुण्यवाले होते हैं वे स्वर्ग के उत्तम सुखको पातेहैं; जो मध्यम पुण्यवाले हैं वे स्वर्ग के मध्यमसुखको पाते हैं और जो कनिष्ठ पुण्यवाले हैं वे स्वर्ग के कनिष्ठ सुख को पातेहैं। ये तो गुण स्वर्ग में हैं वे तो तुमसे कहे—और अब स्वर्गके जो दोषहैं वेभी सुनो। हे राजन्! जो आपसे ऊंचे बैठे दृष्टआतेहैं और उत्तम सुख भोगते हैं उनको देखके तापकी उत्पत्ति होती है क्योंकि; उनकी उत्कृष्टता सही

नहीं जाती जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं उनको देखके क्रोध उपजता है कि ये मेरे समान क्यों बैठे हैं और जो आपसे नीचे बैठेहैं उनको देखके अभिमान उपजता है कि, मैं इनसे श्रेष्ठहूं । एक और भी दोष है कि, जब पुण्य क्षीण होते हैं तब जीवको उसीकाल में मृत्युलोक में गिरादेते हैं एक क्षणभी नहीं रहनेदेते । यही स्वर्ग के गुणों का दोषहै । हे भद्रे ! जब इसप्रकार मैंने राजासे कहा तो राजा बोला कि हे देवदूत ! इस स्वर्ग के योग्य हम नहीं और हमको उसकी इच्छाभी नहीं । जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानके त्याग करता है तैसेही हम उग्रतप करके यह देह त्याग कर देंगे । हे देवदूत ! तुम अपने विमानको जहां से लाये हो वहीं लेजाओ, हमारा नमस्कार है । हे देवी ! जब इसप्रकार राजाने मुझसे कहा तब विमान अप्सरा आदिक सबको लेके मैं स्वर्ग में गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त इन्द्र से कहा । इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और सुन्दर वाणी से मुझसे बोला कि हे दूत ! तुम फिर जहां राजाहै वहां जाओ । वह संसारसे उपरान्त हुआ है । उसको अब आत्मपदकी इच्छा हुई है इसलिये तुम उसको अपने साथ बाल्मीकिजीके पास, जिसने आत्मतत्त्वको आत्माकर जाना है, लेजाकर मेरा यह सन्देशा देना कि, हे महाऋषे ! इस राजाको तत्त्वबोध का उपदेश करना क्योंकि, यह बोधका अधिकारी है । इसको स्वर्ग तथा और पदार्थोंकीभी इच्छा नहीं इससे तुम इसको तत्त्वबोध का उपदेश करो कि, तत्त्वबोधको पाके संसारदुःख से मुक्तहो । हे सुभद्रे ! जब इसप्रकार देवराजने मुझसे कहा तब मैं वहां से चलकर राजा के निकट आया और उस से कहा कि; हे राजन् ! तुम संसारसमुद्र से मोक्ष होने के निमित्त बाल्मीकिजी के पास चलो; वे तुमको उपदेश करेंगे । उसको साथलेकर मैं बाल्मीकिजी के स्थानपर आया औ उस स्थानमें राजाको बैठा और प्रणामकर इन्द्र का सन्देशा दिया । तब बाल्मीकिजीने कहा हे राजन् ! कुशलताहै ? राजा बोले; हे भगवन् ! आप परमतत्त्वज्ञ, और वेदान्त जाननेवालों में श्रेष्ठ हैं मैं आपके दर्शन करके कृतार्थ हुआ और अब मुझ को कुशल प्राप्त हुई है । मैं आप से पूछताहूं कृपाकरके उत्तरदीजिये कि;संसारबन्धन से कैसे मुक्तहो ? इतना सुन बाल्मीकिजी बोले; हे राजन् ! महारामायण औषध तुम से कहताहूं उसको सुनके उसका तात्पर्य हृदय में धारनेका यत्न करना । जब तात्पर्य हृदय में धरोगे तब जीवन्मुक्त होकर बिचरोगे । हे राजन् ! वह वशिष्ठजी और रामचन्द्रजीका संवादहै और उसमें मोक्षका उपाय कहाहै । उस को सुनके जैसे रामचन्द्रजी अपने स्वभाव में स्थितहुये और जीवन्मुक्त होके बिचरे हैं तैसेही तुमभी बिचरोगे । राजा बोले, हे भगवन् ! रामचन्द्रजी कौन थे, कैसे थे और कैसे होकर बिचरे सो कृपाकरके कहो ? बाल्मीकिजी बोले, हे राजन् ! शापके वशसे सच्चिदानन्द विष्णुजीने, जो अद्वैत ज्ञानसे सम्पन्नहैं, अज्ञानको अङ्गीकारकरके मनुष्य

का शरीर धारणकिया। इतना सुन राजाने पूछा, हे भगवन्! चिदानन्द हरिको शाप किस कारण हुआ और किसने दिया सो कहो? वाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! एक कालमें सनत्कुमार, जो निष्कामहैं ब्रह्मपुरीमें बैठेथे और त्रिलोकके पति विष्णुभगवान् भी वैकुण्ठ से उतरके ब्रह्मपुरी में आये। तब ब्रह्मासहित सर्वसभा उठके खड़ी हुई और श्रीभगवान् का पूजन किया पर सनत्कुमारने पूजन नहीं किया। इस बातको देख कर विष्णुभगवान् बोले कि, हे सनत्कुमार! तुमको निष्कामता का अभिमानहै इससे तुम काम से आतुरहोगे और स्वामिकार्त्तिक तुम्हारा नाम होगा! सनत्कुमार बोले हे विष्णो! सर्वज्ञता का अभिमान तुमकोभी है इसलिये कुछकाल के लिये तुम्हारी सर्वज्ञता निवृत्त होकर अज्ञानता प्राप्त होगी। हे राजन्! एकतो यह शाप हुआ और एक शाप और भीहै। सुनो एककालमें भृगुकीस्त्री जातीरहीथी। उसके वियोगसे वह ऋषी क्रोधित हुआथा उसको देखके विष्णुजी हँसे तब भृगुब्राह्मणने शापदिया कि, हे विष्णो! मेरी तुमने हँसी की है सो मेरी नाईं तुमभी स्त्री के वियोग से आतुरहोगे और एक दिवस देवशर्मा ब्राह्मणने नरसिंह भगवान् को शापदिया था सो भी सुनिये। एक दिन नरसिंह भगवान् गंगाके तीर पर गये और वहां देवशर्मा ब्राह्मणकी स्त्री को देखके नरसिंहजी भयानकरूप देखाके हँसे। निदान उनको देखके ऋषिकी स्त्रीने भयपाय प्राण छोड़दिया। तब देवशर्मा ने शापदिया कि, तुमने मेरीस्त्रीका वियोग किया इससे तुम भी स्त्रीका वियोग पावोगे! हे राजन्! सनत्कुमार, भृगु और देवशर्मा के शापसे विष्णु भगवान्ने मनुष्यका शरीर धारण किया और राजादशरथ के घरमें प्रकटे। हे राजन्! यह जो शरीर धारणकिया और आगे जो वृत्तान्त हुआ सो सावधान होकर सुनो। अनुभवात्मक मेरा आत्मा जो त्रिलोकी अर्थात् देव स्वर्ग और पाताल लोकों का प्रकाशकर्त्ता और भीतर बाहर आत्मतत्त्व से पूर्ण है उस सर्वात्माको नमस्कारहै। हे राजन्! यह शास्त्र जो आरम्भ कियाहै इसका विषय, और प्रयोजन और सम्बन्ध क्या है और अधिकारी कौन है सो सुनो। यह शास्त्र-सत-चित् आनन्दरूप और अचिन्त्य-चिन्मात्र आत्माको जताताहै यह तो विषयहै, परमानन्द आत्माकी प्राप्ति और अनात्म अभिमान दुःखकी निवृत्ति प्रयोजनहै और ब्रह्मविद्या और मोक्ष उपाय से आत्मपद प्रतिपादन सम्बन्ध है। जिसको यह निश्चय है कि, मैं अद्वैत-ब्रह्म अनात्मदेहसे बांधाहुआहूं सो किसीप्रकार छूटूं-वह न अति ज्ञानवान् है न मूर्ख है-ऐसा विकृति आत्मा यहां अधिकारी है। इस शास्त्रका मोक्षउपाय परमानन्दकी प्राप्ति करने वाला है। जो पुरुष इसको विचारेगा वह ज्ञानवान् होकर फिर जन्म मृत्युरूप संसार में न आवेगा। हे राजन्! यह महारामायण पावन है। श्रवणमात्रसे ही सब पाप का नाशकर्त्ता है जिसमें रामकथा है। यह मैंने प्रथम अपने शिष्य भारद्वाज को सुनाई थी

एकसमय भारद्वाज चित्तको एकाग्र करके मेरेपास आया और मैंने उसको उपदेश किया था वह। उसको सुनके वचनरूपी समुद्रसे साररूपी रत्न निकाल और हृदयमें धरके एक समय सुमेरुपर्वत परगया। वहां ब्रह्माजी बैठेथे, उसने उनको प्रणाम किया और उनके पास बैठकर यह कथा सुनाई। तब ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उससे कहा हे पुत्र! कुछ वर मांग; मैं तुझपर प्रसन्न हुआहूं! भारद्वाजने, जिसका उदार आशयथा, उनसे कहा; हे भूत; भविष्य के ईश्वर! जो तुम प्रसन्नहुये हो, तो यह वरदो कि, सम्पूर्ण जीव संसार दुःखसे मुक्तहों और परमपदपावें और उसीका उपायभी कहो! ब्रह्माजी ने कहा हे पुत्र! तुम अपने गुरु बाल्मीकिजीके पास जाओ! उसने आत्मबोध महारामायण शास्त्रका जो परमपावन और संसारसमुद्र के तरनेका पुलहै आरम्भ किया है। उसको सुनकर जीव महामोह संसारसमुद्र से तरेंगे। निदान परमेष्ठी ब्रह्मा जिनकी सर्वभूतों के हित में प्रीति है आपही भारद्वाजको साथ लेकर मेरे आश्रम में आये और मैंने भले प्रकार से उनका पूजन किया। उन्होंने मुझसे कहा, हे मुनियों में श्रेष्ठ बाल्मीकि! यह जो तुमने राम के स्वभाव के कथन का आरम्भ किया है इस उद्यमका त्याग न करना; इसकी आदिसे अन्तपर्यन्त समाप्तिकरना क्योंकि; यह मोक्षउपाय संसाररूपी समुद्रके पार करने को जहाज है और इससे सब जीव कृतार्थ होंगे! इतना कहकर ब्रह्माजी, जैसे समुद्रसे चक्र एकमुहूर्त्त पर्यन्त उठके फिर लीन होजावे तैसेही अन्तर्द्धान होगये। तब मैंने भारद्वाजसे कहा, हे पुत्र! ब्रह्माजीने क्या कहा? भारद्वाज बोले हे भगवन्! ब्रह्माजीने तुमसे यह कहा कि, हे मुनियोंमें श्रेष्ठ! यह जो तुमने रामके स्वभावके कथनका उद्यमकियाहै उसका त्याग न करना; इसे अन्तपर्यन्त समाप्ति करना क्योंकि; संसारसमुद्र के पार करनेको यह कथा जहाजहै और इससे अनेकजीव कृतार्थ होकर संसार संकटसे मुक्तहोंगे। इतना कहकर फिर बाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने मुझसे कहा तब उनकी आज्ञानुसार मैंने ग्रन्थ बनाकर भारद्वाजको सुनाया। हे पुत्र! वशिष्ठजीके उपदेशको पाकर जिसप्रकार रामजी निश्शंक हो बिचरे हैं तैसेही तुमभी बिचरो। तब उसने प्रश्नकिया कि हे भगवन्! जिसप्रकार रामचन्द्रजी जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं वह आदिसे क्रम करके मुझसे कहिये? बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौशल्या, सुमित्रा और दशरथ ये आठ तो जीवन्मुक्त हुयेहैं और आठ मन्त्री, अष्टगुण, और वशिष्ठ वामदेवसे आदि अष्टविंशति जीवन्मुक्तहो बिचरे हैं उनके नाम सुनो। रामजीसे लेकर दशरथ पर्यन्त आठ तो ये कृतार्थ होकर अबिरोध परम बोधवान् हुयेहैं और १ कुन्तभासी, २ शतवर्धन, ३ सुखधाम, ४ बिभीषण, ५ इन्द्रजित्, ६ हनुमान्, ७ वशिष्ठ, और ८ वामदेव ये अष्टमन्त्री निश्शङ्कहो चेष्टा करते भये और सदा अद्वैतनिष्ठ हुयेहैं। इनको

कदाचित् स्वरूपसे द्वैतभाव नहीं फुराहै ॥ ये अनामय पद की स्थिति में तृप्त रहकर केवल चिन्मात्र शुद्धपद परमपावनता को प्राप्त हुये हैं ॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्य-कथारम्भवर्णनोनामप्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

भारद्वाजने पूछा हे भगवन्! जीवममुक्तकी स्थिति कैसी है और रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुये हैं वह आदिसे अन्त पर्यन्त सबकहो? वालमीकिजी बोले, हे पुत्र! यह जगत् जो भासता है सो वास्तविक कुछ नहीं उत्पन्नहुआ; अविचार करके भासता है और विचार कियेसे निवृत्त होजाताहै। जैसे आकाशमें नीलता भासती है सो भ्रमसेही है यदि विचार करके देखिये तो नीलताकी प्रतीति दूर होजाती है तैसे हरि अविचारसे जगत् भासताहै और विचारसे लीन होजाताहै। हे शिष्य! जबतक सृष्टिका अत्यन्त अभाव नहीं होता तबतक परमपदकी प्राप्ति नहीं होती। जब दृश्य का अत्यन्त अभाव होजावे तब शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासेगी। कोई इस दृश्यको महाप्रलयमें कदाचित् अभाव कहतेहैं परन्तु मैं तुमको तीनोंकालका अभाव कहताहूं। जब इस शास्त्रको श्रद्धासंयुक्त आदिसे अन्ततक सुनकर धारणकरे तब भ्रान्तिनिवृत्ति होजावे और अव्याकृत पदकी प्राप्तिहो। हे शिष्य! संसार भ्रममात्र सिद्धहै। इसको भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना यही मुक्तिहै। इसके बन्धनका कारण वासनाहै और वासनासेही भटकता फिरताहै। जब वासनाका क्षय होजाय तब परमपदकी प्राप्तिहो। वासना का एक पुतलाहै उसका नाम मनहै। जैसे जल शरदीकी दृढ़जड़ता पाके बरफ होजाता है और फिर सूर्य के तापसे पिघलकर जलहोताहै तो केवल शुद्धजलही रहता है तैसेही आत्मारूपी जलहै, उस में संसारकी सत्यतारूपी जड़ता शीतलता है और उस से मनरूपी बरफका पुतलाहुआहै। जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होगा तब संसारकी सत्यतारूपी जड़ता और शीतलता निवृत्त होजावेगी। जब संसारकी सत्यता और वासना निवृत्तहुई तब मन नष्ट होजावेगा और जब मन नष्टहुआ तो परमकल्याणहुआ। इससे इसके बन्धनका कारण वासनाही है और वासनाके क्षय होनेसे मुक्ति है। वह वासना दो प्रकारकी है-एक शुद्ध और दूसरी अशुद्ध। अशुद्ध वासना से अपने वास्तविक स्वरूपके अज्ञानसे अनात्मा जो देहादिकहैं उनमें अहंकार करताहै और जब अनात्ममें आत्म अभिमान हुआ, तब नानाप्रकारकी वासना उपजती हैं जिससे घटीयंत्रकी नाईं भ्रमतारहता है। हे साधो! यह जो पञ्चभूत का शरीर तुम देखतेहो सो सब वासनारूपहै और वासनासेही खड़ाहै। जैसे माला के दाने धागेके आश्रयसे गुंधे होते हैं और जब धागा टूटजाताहै तब न्यारे २ होजाते हैं और नहीं ठहरते तैसेही वासना के क्षय हुये पञ्चभूतका शरीर नहीं रहता। इस से सब अनर्थों का कारण वासनाही है शुद्ध वासनामें जगत्का अत्यन्त अभाव निश्चय होताहै। हे शिष्य! अज्ञानीका वासनासे

फिर निश्चयजन्मका कारण होजाताहै और ज्ञानीकी वासना फिर जन्मके कारणसे नहीं होती है ॥ जैसे कच्चा बीज फिर उगताहै और जो दग्ध हुआहै सो फिर नहीं उगता तैसेही अज्ञानी की वासना रससहितहै इससे जन्म का कारणहै और ज्ञानीकी वासना रसरहितहै सो जन्म का कारण नहीं । ज्ञानी की चेष्टा स्वाभाविकगुण से होती है । वह किसी गुणसे मिलके अपने में चेष्टा नहीं देखता । वह खाता, पीता, लेता, देता, बोलता, चलता एवम् और २ व्यवहार करताहै पर अन्तःकरण में सदा अद्वैत निश्चय को धरता है कदाचित् द्वैत भावना उसको नहीं फुरती । वह अपने स्वभाव में स्थित है इससे निर्गुण और अरूप की चेष्टाभी उसे जन्म का कारण नहीं है । जैसे कुम्हारके चक्र को जबतक घुमावे तबतक फिरताहै और जब घुमाना छोड़दिया तब स्थीयमान गति से उतरते २ स्थिर रहजाता है तैसेही जबतक अहङ्कार सहित वासना होती है तबतक जन्म पाताहै और जब अहङ्कारसे रहित हुआ तब फिर जन्म नहीं पाता । हे साधो ! इस अज्ञानरूपी वासनाके नाशकरने को एक ब्रह्मविद्याही श्रेष्ठ उपायहै जो मोक्ष उपायक शास्त्र है । यदि इसे छांड़ और शास्त्ररूपी गर्त्त में गिरेगा तो कल्पपर्यन्त भी अकृत्रिम पदको न पावेगा और जो ब्रह्म विद्या का आश्रय करेगा वह सुखसे आत्मपद को प्राप्तहोगा । हे भारद्वाज ! यह मोक्षउपाय रामजी और वशिष्ठ जी का संवाद है, यह विचारने योग्यहै और बोधका परमकारण है । इसे आदि से अन्तपर्यन्त सुनो और जैसे रामजी जीवन्मुक्तहो विचरे हैं सोभी सुनो । एक दिन रामजी अध्ययनशालासे विद्या पढ़के अपने गृह में आये और सम्पूर्ण दिन विचार सहित व्यतीत किया । फिर मन में तीर्थ ठाकुरद्वारे का संकल्प धरकर अपने पिता दशरथके पास, जो अतिप्रजापालक थे, आये और जैसे हंस सुन्दर कमलको ग्रहण करे तैसेही उन्होंने उनका चरण पकड़ा । जैसे कमलके फूलके नीचे कोमल तरैयां होतीहैं और उन तरैयों सहित कमल को हंस पकड़ताहै तैसेही दशरथजीकी अंगुलियों को उन्होंने ग्रहणकिया और बोले हे पितः ! मेरा चित्त तीर्थ और ठाकुरद्वारा के दर्शन को चाहताहै । आप आज्ञा कीजिये तो मैं दर्शनकर आऊं । मैं तुम्हारा पुत्रहूं, मुझे तुम्हारी सेवा करनी योग्यहै पर आगे मैंने कभी नहीं कहा यह प्रार्थना अब की है इससे यह वचन मेरा न फेरना क्योंकि, ऐसा त्रिलोकी में कोई नहीं है कि, जिसका मनोरथ इस घरसे सिद्ध न हुआ, इससे मुझको भी कृपाकर आज्ञादीजिये । इतना कहकर बाल्मीकि जी बोले, हे भारद्वाज ! जिससमय इसप्रकार रामजीने कहा तब वशिष्ठजी पास बैठेथे उन्होंनेभी दशरथसे कहा, हे राजन् ! इनका चित्त उठाहै रामजीको आज्ञादो कि, तीर्थ करआवें और इनके साथ सेना, धन, मन्त्री और ब्राह्मणभी दीजे कि, विधिपूर्वक दर्शन करें तब महाराजदशरथने शुभमुहूर्त्त देखाकर रामजीको आज्ञादी ॥ जब वे

चलनेलगे तो पिता और माता के चरणों पड़े और सबको कण्ठ लगाकर रुदन करनेलगे। इस प्रकार सबसे मिलकर लक्ष्मण आदि भाई, मन्त्री और वशिष्ठ आदि ब्राह्मण जो विधि जाननेवाले थे और बहुत सा धन और सेना साथ ली और दान पुण्य करते हुये गृह के बाहर निकले। उससमय वहांके लोगों और स्त्रियोंने रामजीके ऊपर फूलों और कलियोंकी मालाकी, जैसे बरफ बरसतीहै, तैसीही वर्षा की और रामजीकी मूर्त्ति हृदय में धरली। इसीप्रकार रामजी वहांसे ब्राह्मणों और निर्धनों को दान देते गङ्गा, यमुना, सरस्वतीआदि तीर्थों में विधिपूर्वक स्नानकर पृथ्वी के चारोंओर पर्यटन करतेरहे उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में दान किया और चारों ओर समुद्र के स्नान किये। सुमेरु और हिमालय पर्वतपरभी गये और शालग्राम, बद्री, केदार आदि में स्नान और दर्शन किये। ऐसेही सब तीर्थ स्नान, दान, तप, ध्यान और विधिसंयुक्त यात्राकरते २ एकवर्ष में अपने नगरमें आये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यतीर्थयात्रावर्णनंनामद्वितीयस्सर्गः॥ २॥

वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जब रामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यापुरी में आये तो नगरवासी पुरुष और स्त्रियोंने फूल और कलीकी वर्षाकी, जयजयशब्द मुख से उच्चारने लगे और बड़े उत्साह को प्राप्तभये जैसे इन्द्रका पुत्र अपने स्वर्गमें आता है तैसेही रामचन्द्रजी अपने घरमें आये। रामजीने पहिले राजा दशरथ और फिर वशिष्ठजी को प्रणाम किया और सब सभाके लोगों से यथायोग्य मिलके अन्तःपुर में आ कौशल्याआदि माताओंको यथायोग्य नमस्कार किया और भाई, बान्धव कुटुम्बसे मिले। हे भारद्वाज! इसप्रकार रामजीके आनेका उत्साह सात दिन पर्यन्त होता रहा। उस अन्तर में कोई मिलने आवे उससे मिलते और जो कोई कुछ लेने आवे उनको दान पुण्य करते थे अनेक बाजे बजतेथे और भाटआदि बन्दीजन स्तुति करते थे, तदनन्तर रामजी का यह आचरण हुआ कि, प्रातःकाल उठके स्नान सन्ध्यादिक सत्कर्म कर भोजन करते और फिर भाई बन्धुओं को मिल अपने तीर्थकी कथा और देवद्वार के दर्शनकी वार्त्ता करतेथे निदान इसीप्रकार उत्साह से दिनरात बिताते थे एकदिन रामजी प्रातःकाल उठके अपने पिता राजादशरथ के निकट कि जिनका तेज चन्द्रमा के समान था, गये। उससमय वशिष्ठादिक की सभा बैठी थी वहां वशिष्ठजीके साथ कथा वार्त्ताकी और राजादशरथने उनसे कहा कि, हे रामजी! तुम शिकार खेलने जायाकरो। उससमय रामजी की अवस्था सोलह वर्ष से कई महीने कमथी। लक्ष्मण और शत्रुघ्न भाई साथ थे पर भरतजी नहानेको गये थे। निदान उन्हीं के साथ नितचर्चा हुलासकर और स्नान, सन्ध्यादिक नित्यकर्म करके भोजन और शिकार खेलने जातेथे। वहां जो जीवोंको दुःख देनेवाले जानवर देखते उनको

मारते और और लोगों को प्रसन्न करतेथे। दिनको शिकार खेलनेजाते और रात्रि को बाजे निशानसहित अपने घरमें आतेथे इसीप्रकार बहुतदिन बीते एक दिन रामजी बाहर से अपने अन्तःपुर में आके शोकसहित स्थित भये। हे भारद्वाज! राजकुमार अपनी सब चेष्टा और रससंयुक्त इन्द्रियों के विषयोंको त्याग बैठे और उनका शरीर दुर्बल होकर मुखकी कान्ति घटगई। जैसे कमल सूखके पीत वर्ण होजाता है तैसेही रामजीका मुख पीला होगया और जैसे सूखे कमल पर भँवरे बैठते हैं तैसेहीं सूखे मुखकमलपर नेत्ररूपी भँवरे भासने लगे। जैसे शरत्काल में ताल निर्मल होता है तैसेही इच्छारूपी मलसे रहित उनका चित्तरूपी ताल निर्मल होगया और दिन पर दिन शरीर निर्बल होतागया वह जहां बैठें तहांही चिन्तासंयुक्त बैठेरहजावें और हाथ पर चिबुक धरके बैठें। जब टहलुवे मन्त्री बहुत कहैं कि, हे प्रभो! यह स्नान सन्ध्या का समय हुआ है अब उठो तब उठकर स्नानादिक करैं अर्थात् जो कुछ खाने, पीने, बोलने, चलने और पहिरनेकी क्रियाथी सो सब उन्हें विरसहोगई। तब लक्ष्मण और शत्रुघ्नभी रामजीको संशय युक्त देखके उसीप्रकारहो बैठे और राजा दशरथ यह वार्त्ता सुनके राम जी के पास आये तो क्या देखा कि रामजी महाकृश होगये हैं। राजाने इस चिन्तासे आतुर हो कि, हाय २ इनकी यह क्या दशाहुई रामजीको गोदमें बैठाया और कोमल सुन्दर शब्दसे पूछनेलगे कि, हे पुत्र! तुमको क्या दुःख प्राप्तहुआहै जिससे तुम शोकवान् हुये हो? रामजीने कहा कि, हे पितः! हमको तो कोई दुःख नहीं है! और ऐसे कहके चुपहोरहे। जब इसीप्रकार कुछदिन बीते तो राजा और सब स्त्रियां बड़ी शोकवान् हुईं। राजा राजमन्त्रियोंसे मिलके विचारकरनेलगे कि, पुत्रका किसीठौर विवाहकरना चाहिये और यहभी विचार किया कि, क्या कारणहै जो, मेरेपुत्र शोकवान् रहते हैं। तब उन्होंने वशिष्ठजीसे पूछा कि, हे मुनीश्वर! मेरे पुत्र शोक में क्यों रहते हैं? वशिष्ठजीने कहा हे राजन्! जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश महाभूत अल्पकार्यमें विकारवान् नहीं होते जब जगत् उत्पन्न और प्रलय होताहै तब विकारवान् होतेहैं तैसेही महापुरुष भी अल्पकार्य में विकारवान् नहीं होते। हे राजन्! तुम शोक मतकरो। रामजी किसी अर्थके निमित्त शोकवान् हुये होंगे; पीछेसे इनको सुखमिलेगा। इतना कह वाल्मीकि जी बोले हे भारद्वाज! ऐसेही वशिष्ठजी और राजा दशरथ विचार करतेथे कि, उसी कालमें विश्वामित्र ने अपने यज्ञके अर्थ राजा दशरथके गृहपर आकर द्वारपाल से कहा कि, राजा दशरथ से कहो कि, "गाधि के पुत्र विश्वामित्र बाहर खड़ेहैं"। द्वारपाल ने आकर राजासे कहा कि, हे स्वामिन्! एक बड़े तपस्वी द्वारपर खड़ेहैं और उन्हों ने कहाहै कि, राजा दशरथके पास जाके कहो कि, विश्वामित्र आयेहैं। हे भारद्वाज! जब इसप्रकार द्वारपालने आकर कहा तब राजा, जो मण्डलेश्वरों सहित बैठा था और

बड़ा तेजवान् था सुवर्ण के सिंहासनसे उठ खड़ाहुआ और पैदल चला। राजाकी एक ओर वशिष्ठजी और दूसरी ओर वामदेवजी और सुभट की नाईं मण्डलेश्वर स्तुति करते चले और जहांसे विश्वामित्र दृष्टिआये वहांसेही प्रणाम करने लगे। पृथ्वी पर जहां राजा का शीश लगताथा वहां पृथ्वी हीरे और मोतीकी सुन्दर होजातीथी। इसी प्रकार शीश नवाते राजा चले। विश्वामित्रजी कांधेपर बड़ी २ जटा धारणकिये और अग्निके समान प्रकाशमान परम शान्तस्वरूप हाथमें बांसकी तन्द्रीलिये हुये थे। उनके चरण कमलोंपर राजा इसभांति गिरा जैसे सूर्यपदा शिवजी के चरणारविन्द में गिरे। और कहा हे प्रभो! मेरे बड़े भाग्यहैं जो आपका दर्शन हुआ आज मुझे ऐसा आनन्द हुआ जो आदि अन्त और मध्यसे रहित अविनाशी है। हे भगवन्! आज मेरे भाग्य उदयहुये कि, मैंभी धर्मात्माओंमें गिनाजाऊंगा क्योंकि आप मेरे कुशल निमित्त आये हैं हे भगवन्! आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दिया। आप सबसे उत्कृष्ट दृष्टि आते हैं क्योंकि; आप में दोगुण हैं—एकतो यह कि, आप क्षत्रिय हैं पर ब्राह्मण का स्वभाव आप में है और दूसरे यह कि शुभगुणों से परिपूर्ण हो। हे मुनीश्वर! ऐसी किसीकी सामर्थ्य नहीं कि, क्षत्रियसे ब्राह्मण हो। आपके दर्शन से मुझे अति लाभ हुआ। फिर वशिष्ठजी विश्वामित्रजी के कण्ठ लगके मिले और मण्डलेश्वरों ने बहुत प्रणाम किये। तदनन्तर राजादशरथ विश्वामित्रजी को भीतर लेगये और सुन्दर सिंहासन पर बैठाकर विधिपूर्वक पूजाकी और अर्घ्यपादार्चन करके प्रदक्षिणाकी। फिर वशिष्ठजीने भी विश्वामित्रजीका पूजन किया और विश्वामित्रजीने उनका पूजनकिया इसी प्रकार अन्योन्यं पूजनकर यथायोग्य अपने २ स्थानोंपर बैठे तब राजा दशरथ बोले हे भगवन्! हमारे बड़े भाग्य हुये जो आपका दर्शन हुआ। जैसे किसीको अमृत प्राप्त हो वा किसीका मराहुआ बान्धव विमानपर चढ़के आकाश से आवे और उस को मिलनेका आनन्द हो वैसा आनन्द मुझे हुआ। हे मुनीश्वर! जिस अर्थके लिये आप आयेहैं वह कृपा करके कहिये और अपना वह अर्थ पूर्णहुआ जानिये। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मुझको देना कठिन है, मेरे यहां सब कुछ विद्यमान है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेविश्वामित्रागमनवर्णनंनामतृतीयस्सर्गः॥ ३॥

वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जब इसप्रकार राजाने कहा तो मुनियों में शार्दूल विश्वामित्रजी ऐसे प्रसन्नहुये जैसे चन्द्रमाको देखकर क्षीरसागर प्रसन्न होताहै। उनके रोम खड़ेहोआये और कहनेलगे हे राजशार्दूल! तुम धन्य हो! ऐसे तुम क्यों न कहो। तुम्हारेमें दो गुणहैं—एकतो यह कि, तुम रघुवंशीहो और दूसरे यह कि वशिष्ठजी ऐसे तुम्हारे गुरुहैं जिनकी आज्ञामें चलतेहो। अब जो कुछ मेरा प्रयोजन है वह प्रकट करताहूं। मैंने दशगात्र यज्ञका आरम्भ किया है; जब यज्ञ करने लगताहूं तब

खर और दूषण निशाचर आकर ध्वंस करजातेहैं और मांस, हाड़ और रुधिर डालजातेहैं जिससे वह स्थान यज्ञकरने योग्य नहीं रहता और जब मैं और जगह जाताहूं तो वहांभी वे उसीप्रकार अपवित्र कर जातेहैं इसलिये उनके नाश करने के लिये मैं तुम्हारे पास आयाहूं। कदाचित् यह कहिये कि, तुमभी तो समर्थ हो, तो हे राजन्! मैंने जिस यज्ञका आरम्भ कियाहै उसका अङ्ग क्षमा है। जो मैं उनको शापदूं तो वह भस्महो जावें पर शाप क्रोध बिन नहीं होता। जो मैं क्रोध करूं तो यज्ञ निष्फल होताहै और जो चुपकररहूं तो राक्षस अपवित्र वस्तु डालजातेहैं। इससे अब मैं आपकी शरण आया हूं। हे राजन्! अपने पुत्र रामजीको मेरे साथ दो कि, वह राक्षसोंको भी मारें और यज्ञभी सुफल हो। यह चिन्ता तुम न करना कि, मेरा पुत्र अभी बालकहै। यह तो महा इन्द्र के समान शूरवीर है। जैसे सिंहके सन्मुख मृगका बच्चा नहीं ठहरसक्ता तैसेही इसके सन्मुख राक्षस न ठहर सकेंगे। इसको मेरे साथ देनेसे तुम्हारा यश और धर्म दोनों रहेंगे और मेरा कार्य होगा इसमें सन्देह नहीं। हे राजन्! ऐसा कार्य त्रिलोकीमें कोई नहींजो रामजी न करसकें इसीलिये मैं तुम्हारे पुत्रको लिये जाताहूं यह मेरे हाथ से रक्षितरहेगा और कोई विघ्न न होने दूंगा। जैसे तुम्हारे पुत्रहैं मैं और वशिष्ठजी जानतेहैं किन्तु और ज्ञानवान्भी जो त्रिकालदर्शी हों जानेंगे पर किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इनको जानें। हे राजन्! जो समयपर कार्य होताहै वह थोड़ेही परिश्रम से सिद्ध होताहै और समयविना बहुत परिश्रम कियेसेभी नहीं होता। खर और दूषण बड़ेदैत्य हैं और मेरे यज्ञको खण्डित करतेहैं। जब रामजी जावेंगे तब वह भागजावेंगे इनके आगे खड़े न रहसकेंगे जैसे सूर्यके तेजसे तारागणका प्रकाश क्षीण होजाताहै तैसेही रामजी के दर्शनसे वे स्थित न रहेंगे। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जब विश्वामित्रजीने ऐसे कहा तब राजा दशरथ चुपहोकर गिरपड़े और एकमुहूर्त्त पर्यन्त पड़े रहे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेदशरथविषादोनामचतुर्थस्सर्गः ॥ ४ ॥

बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! एकमुहूर्त्त उपरान्त राजा उठे और अधैर्य होकर बोले हे मुनीश्वर! आपने क्या कहा? रामजी तो अभी कुमारहैं। अभी तो उन्हों ने शस्त्र और अस्त्रविद्या नहीं सीखी बल्कि फूलोंकी शय्यापर शयन करनेवाले; अन्तःपुर में स्त्रियों के पास बैठनेवाले और बालकों के साथ खेलनेवाले हैं। उन्होंने कभी भी रणभूमि नहीं देखी और न भृकुटी चढ़ाके कभी युद्धही किया वह दैत्योंसे क्या युद्ध करेंगे? कभी पत्थर और कमलकाभी युद्ध हुआहै? हे मुनीश्वर! मैं तो बहुत वर्षका हुआहूं। इस वृद्धावस्थामें मेरे घरमें चार पुत्र हुयेहैं; उनचारों में रामजी अभी सोलह वर्षके हुये हैं और मेरे प्राणहैं। उन विना मैं एकक्षणभी नहीं रहसक्ता, जो तुम उन

को लेजावोगे तो मेरे प्राण निकलजावेंगे! हे मुनीश्वर! केवल मुझेही उनका इतना स्नेह नहीं किन्तु लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत और माताओंकेभी प्राण हैं। जो तुम उनको लेजावोगे तो सबही मरजावेंगे। जो तुम हमको रामजीके वियोगसे मारनेआयेहो तो लेजावो! हे मुनीश्वर! मेरे चित्तमें तो रामजी पूर्ण होरहेहैं उनको मैं आपके साथकैसे दूं? मैं तो उनको देखदेख प्रसन्न होताहूं रामजीके वियोग से मेरेप्राण कैसे बचेंगे? हे मुनीश्वर! ऐसी प्रीति मुझे स्त्री, धन तथा और पदार्थोंकी भी नहीं जैसी रामजी की है। मैं आपके वचन सुनकर अति शोकवान् हुआहूं। मेरे बड़े अभाग्य उदयहुये जो आप इस निमित्त आये! मैं रामजीको कदापि नहीं देसक्ता। जो आप कहिये तो मैं एकअक्षौहिणी सेना, जो अति शूरवीर और शस्त्र अस्त्र विद्यासे सम्पन्नहैं साथले कर चलूं और उनको मारूं पर जो कुबेरका भाई और विश्रवाका पुत्र रावणहो तो उससे मैं युद्धनहीं करसक्ता। पहिले मैं बड़ापराक्रमी था; ऐसा कोई त्रिलोकीमें न था जो मेरे सामने आता पर अब वृद्धावस्था प्राप्तहोकर देह जर्जर होगई है। हे मुनीश्वर! मेरे बड़े अभाग्यहैं जो आप आये। मैं तो रावणसे कांपताहूं और केवल मेंहीं नहीं वरन इन्द्रआदि देवताभी उससे कांपते और भय पातेहैं और किसीकी सामर्थ्यहै जो उससे युद्धकरे। इस कालमें वह बड़ा शूरवीरहै। जो मेरीही उसके साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य नहीं तो राजकुमार रामजीकी क्या सामर्थ्यहै? जिन रामजी को तुम लेनेआयेहो वह तो रोगीपड़ेहैं। उनको ऐसी चिन्ता लगीहै जिससे महाकृश होगयेहैं और अन्तःपुर में एकान्त बैठे रहतेहैं। खाना पीना इत्यादि जो राजकुमारोंकी चेष्टाहैं वह भी सब उनको बिसरगईहैं और मैं नहीं जानता कि, उनको क्या दुःख हुआ। जैसे पीतवर्ण कमल होताहै तैसेही उनका मुख होगयाहै। उनको युद्धकी सामर्थ्य कहांहै? उन्होंने तो अपने स्थान से बाहरकी पृथ्वीभी नहीं देखी है। हमारे प्राण वहीहैं उनके वियोगसे हम नहीं जीसक्ते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेदशरथोक्तिवर्णनन्नामपञ्चमस्सर्गः॥ ५॥

वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार दशरथजीने महादीन और अधैर्य होकर कहा तो विश्वामित्रजी क्रोधकरके कहनेलगे कि, हे राजन्! तुम अपने धर्मको स्मरण करो। तुमने कहाथा कि, तुम्हारा अर्थ सिद्ध करूंगा पर अब तुम अपने धर्म को त्यागतेहो। जो तुम सिंहोंके समान होकर मृगोंकी नाईं भागते हो तो भागो पर आगे रघुवंशी कुलमें ऐसा कोई नहीं हुआ कि, जिसने वचन फेराहो। जो तुम करतेहो सो करो हम चले जावेंगे परन्तु यह तुमको योग्य नथा क्योंकि; शून्य गृहसे शून्यही होकर जाताहै। तुम बसते रहो और राज्यकरते रहो जैसा कुछ होगा हम समझलेंगे। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोलेकि, जब इसप्रकार विश्वामित्रजी को क्रोध उत्पन्न हुआ तो

पचासकोटि योजन पृथ्वी कांपनेलगी और इन्द्रादिक देवता भयवान् हुये कि, यह क्याहुआ ? तब वशिष्ठजी बोले हे राजन् ! इक्ष्वाकुकुल में सब परमार्थी हुयेहैं और तुम अपनाधर्म क्यों त्यागतेहो ? मेरेसामने तुमने विश्वामित्रजी से कहाहै कि, तुम्हारा अर्थ पूरा करूंगा पर अब क्यों भागतेहो । रामजी को तुम इनके साथ करदो; यह तुम्हारे पुत्रकी रक्षाकरेंगे । इसपुरुष के सामने किसीका बल नहीं चलता यह साक्षात् ही कालकी मूर्तिहैं जो तपस्वी कहिये तोभी इनके समान दूसरा नहीं है और शस्त्र और अस्त्रविद्याभी इनके सदृश कोई नहीं जानता क्योंकि; दक्षप्रजापति ने अपनी दो पुत्रियां जिनका नाम जय और सुभगा था विश्वामित्रजीको दीथीं जिन्होंने पांच २ सौ पुत्र दैत्योंके मारनेकेलिये प्रकटकिये । वे दोनों इनके सन्मुख मूर्त्ति धारके स्थित होती हैं इससे इनको कौन जीत सक्ताहै ? जिसके साथी विश्वामित्रजीहों उसको किसीका भय नहीं । आप इनके साथ अपना पुत्र निस्संशय होकर दो किसीकी सामर्थ्य नहीं कि, इनके होते तुम्हारे पुत्रको कुछ कहसके । जैसे सूर्य्यके उदयसे अन्धकार का अभाव होजाता है तैसेही इनकी दृष्टिके देखने से दुःखका अभाव होजाताहै । हे राजन् ! इनके साथ तुम्हारे पुत्रको कोई खेद न होगा । तुम इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न हुये हो और दशरथ तुम्हारा नामहै; जो तुम ऐसे जब अपने धर्ममें स्थित न रहे तो और जीवोंसे धर्मकी पालना कैसे होगी ? जो कुछ श्रेष्ठपुरुष चेष्टा करतेहैं उनके अनुसार और जीव भी करतेहैं । जो तुम अपने ऐसे वचनोंकी पालना न करोगे तो और किसी से क्या होगा ? तुम्हारे कुलमें अपने वचनसे कोई नहीं फिरा इससे अपनेधर्मका त्यागनायोग्यनहीं । जो तुम दैत्योंके भयसे शोकवान्हो तोभी न मत करना । कदाचित् मूर्त्तिधारी काल आकर स्थितहो तौभी विश्वामित्रके होते तुम्हारेपुत्रको कुछ नहोगा । तुम शोक मत करो और अपने पुत्रको इनके साथ करदो । जो तुम अपने पुत्र न दोगे तो तुम्हारा दो प्रकारका धन नष्टहोगा-एक धन यह कि, कूप, बावली और ताल जो बन रहेहैं उनका पुण्य नष्ट होजावेगा और दूसरे यह कि तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नानादिक क्रिया का फलभी नष्ट होकर तुम्हारा गृह निरर्थ होजावेगा । इससे मोह और शोकको छोड़ और धर्मको स्मरणकरके रामजीको इनके साथ करदो तो तुम्हारे सबकार्य्य सुफलहोंगे। हे राजन् ! इसप्रकार जो तुम्हें करनाथा तो प्रथमही विचारकर कहते क्योंकि; विचार विना काम करनेका परिणाम दुःख होताहै । इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तो राजादशरथ धैर्यवान् हुये और भृत्योंमें जो श्रेष्ठ भृत्यथा उसको बुलाकरकहा हे महाबाहो ! रामजीको लेआवो । उनके साथ जो चाकर बाहर आनेजानेवाला और छलसे रहित था राजाकी आज्ञा लेकर रामजी के निकटगया और एकमुहूर्त्त पीछे आकर कहनेलगा हे देव ! रामजी तो बड़ीचिन्ता में

बैठेहैं। जब मैंने रामजीसे वारंवार कहा कि चलिये तब वे कहनेलगे कि, चलतेहैं। ऐसेही कह२ चुप हो रहते हैं। दूतका यह वचन सुन राजाने कहाकि, रामजीके मन्त्री और सब नौकरों को बुलावो और जब वे सब निकट आये तो राजाने आदर और युक्तिपूर्वक कोमल और सुन्दर वचन मन्त्री से इस भांति कहा कि हे रामजीके प्यारे! रामजी की क्या दशा है और ऐसी दशा क्योंकर हुई है सो सब क्रमसे कहो? मन्त्री बोला हे देव! हम क्या कहें? हम अतिचिन्तासे केवल आकार और प्राणमात्र दीखते हैं किन्तु मृतकसमान हैं क्योंकि; हमारे स्वामी रामजी बड़ी चिन्तामें हैं। हे राजन्! जिसदिनसे रघुनाथजी तीर्थ करके आयेहैं उसदिनसे चिन्ताको प्राप्तभयेहैं। जब हम उत्तम भोजन और पान करने और पहिरने और देखनेके पदार्थ लेजातेहैं तो उनको देखके वे किसीप्रकार प्रसन्न नहींहोते। वे तो ऐसी चिन्तामें लीनहैं कि, देखते भी नहीं और जो देखतेहैं तो क्रोधकरके सुखदायी पदार्थों का निरादर करतेहैं। अन्तःपुर में उनकी माता नानाप्रकारके हीरे और मणिके भूषण देतीहैं तो उनको भी डालदेते हैं अथवा किसी निर्द्धन को देदेतेहैं; प्रसन्न किसी पदार्थ में नहीं होते। सुन्दर स्त्रियां नाना प्रकारके भूषणों सहित महामोह करनेवाली निकट आकर उनकी प्रसन्नताके निमित्त लीला और कटाक्ष करती हैं वे उनको भी विषवत् जानते हैं वरन जैसे पपीहा और जलको देखते भी नहीं तैसेही वे भी जब अन्तःपुर में जाते हैं तब उनको देखकर क्रोधवान् होते हैं। हे राजन्! उनको कुछ भलानहीं लगता वे तो किसी बड़ी चिन्तामें मग्न हैं। तृप्तवत् होकर भोजन नहीं करते क्षुधावन्त रहते हैं उन्हें न कुछ पहिरने और खाने पीने की इच्छा है, न राज्यकी इच्छाहै और न किसी इन्द्रियोंके सुखकी इच्छाहै वे तो महाउन्मत्तकीनाईं बैठेरहतेहैं और जब हम कोई सुखदायी पदार्थ फूलादिक लेजाते हैं तब क्रोधकरते हैं। हम नहीं जानते कि, क्या चिन्ता उनको हुई है जो एककोठरी में पद्मासन लगाय हाथपर मुखधरे बैठेरहते हैं। जो कोई बड़ामन्त्री आके पूछता है तो उससे कहतेहैं कि, "तुम जिसको सम्पदा मानतेहो वह आपदाहै और जिसको आपदा जानतेहो वह आपदा नहीं है। संसारके नानाप्रकारके पदार्थ जो रमणीय जानतेहो वे सबझूठे हैं पर इसी में सबडूबे हैं। ये सब मृगतृष्णा के जलवत् हैं; इन को सत्यजान मूर्ख हिरण दौड़ते और दुःखपाते हैं"। हे राजन्! वे कदाचित् बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं और कुछ उनको सुखदायी नहीं भासता। जो हम हँसीकी वार्त्ता करते हैं तो वे हँसते भी नहीं। जिसपदार्थ को प्रीतिसंयुक्त लेतेथे उसपदार्थ को अब डालदेते हैं और दिनपरादिन दुर्बल होतेजाते हैं। जैसे मेघकी बुन्दसे पर्वत चलायमान नहीं होते तैसेही वे भी चलायमान नहीं होते हैं और जो बोलते हैं तो ऐसे कहते हैं कि, न राज्य सत्यहै, न भोग सत्यहै, न यह जगत् सत्यहै, न भ्राता सत्यहैं

और न मित्र सत्यहैं । मिथ्या पदार्थों के निमित्त मूर्ख यत्न करते हैं । जिनको सब सत्य और सुखदायक जानते हैं वे बन्धनके कारण हैं। जो कोई राजा अथवा पण्डित इनके पास जाता है तो उनको देखकर कहते हैं कि, ये " पशु हैं-आशारूपी फांसी से बँधेहुये हैं "। हे राजन्! जो कुछ भोग्य पदार्थ हैं उनको देखकर उनका चित्त प्रसन्न नहीं होता बल्कि देखके क्रोधवान् होते हैं। जैसे पपीहा मारवाड़में भी जावे तो मेघोंकी बुन्दोंको नहीं देखता और खेदवान् होता है तैसेही रामजी विषयोंसे खेदवान् होते हैं। इससे हम जानते हैं कि, उनको परमपद पानेकी इच्छा है परन्तु कदाचित् उनके मुखसे नहीं सुना। त्यागका भी अभिमान उन्हें कदाचित् नहीं है क्योंकि कभी गाते हैं और बोलते हैं तो कहते हैं " हाय! हाय! मैं अनाथ मारागया! अरे मूर्खो! तुम संसारसमुद्रमें क्यों डूबते हो ? यह संसार परम अनर्थ का कारण है। इसमें सुख कदापि नहीं है इससे छूटनेका उपाय करो"। वह किसीके साथ बोलते नहीं और न हँसते हैं; किसी परमचिन्ता में मग्न हैं। वह किसी पदार्थ से आश्चर्यवान् भी नहीं होते। जो कोई कहे कि, आकाशमें बाग लगा है और उसमें फूल फूले हैंउनको मैं ले आया; तो उसको सुनकर भी आश्चर्यवान् नहीं होते सब भ्रममात्र समझते हैं। उनको न किसी पदार्थसे हर्ष होता न किसीसे शोक होता है; किसी बड़ी चिन्ता में मग्न हैं पर उस चिन्ताके निवारण करनेकी किसी में सामर्थ्य नहीं देखते। हे राजन्! हमको यह चिन्ता लगरही है कि, रामजीको खाने, पहिरने, बोलने और देखने की इच्छा नहीं रही है और न किसी कर्म्मकी उनको इच्छा है ऐसा न हो कि, कहीं मृतक होजावें ? जो कोई कहता है कि, तुम चक्रवर्ती राजा हो; तुम्हारी बड़ी आयुर्बल हो और बड़ा सुख पावो तो उसके वचन सुनकर कठोर बोलते हैं। हे राजन्! केवल रामजीकोही ऐसी चिन्ता नहीं बरन लक्ष्मण और शत्रुघ्न को भी ऐसीही चिन्ता लगरही है। उनको देख कर जो कोई उनकी चिन्ता दूरकरनेवाला हो तो करे, नहीं तो बड़ी चिन्तामें डूबेरहेंगे। हे राजन्! अब क्या कहतेहो ? तुम्हारे पुत्र सबसे विरक्त हो एकवस्त्र ओढ़े बैठे हैं। इस से अब तुम वही उपाय करो जिससे उनकी चिन्ता निवृत्त हो। इतना सुन विश्वामित्र जी बोले हे साधो! जो रामजी ऐसेहैं तो हमारे पासलावो, हम उनका दुःख निवृत्त करेंगे। हे राजन्, दशरथ! तुम धन्यहो; जिनका पुत्र विवेक और वैराग्यको प्राप्तहुआ है। हम तुम्हारे पुत्रको परमपदवी प्राप्तकरेंगे और अभी उनके सब दुःख मिटजावेंगे। हम और वशिष्ठादि एकयुक्ति से उपदेश करेंगे उससे उनको आत्मपदकी प्राप्ति होगी। तब वह दशा तुम्हारे पुत्रकी होगी कि, वह लोष्ट पत्थर और सुवर्णको समान जानेंगे। जो कुछ तुम्हारी क्षत्रियों की प्रकृतिका आचार है सो वह करेंगे और हृदयमें प्रेमसे उदासी होंगे और इससे तुम्हारा कुल कृतकृत्य रहेगा। तुम रामजी को शीघ्र बुलावो! इतना

कहकर बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! ऐसे मुनीन्द्रके वचन सुनके राजादशरथ ने मन्त्री और नौकरों से कहा कि, राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको साथ लेआवो! जब मन्त्री और भृत्यों ने रामजी के पासजाके कहा तो रामजी आये और राजादशरथ, वशिष्ठजी और विश्वामित्र को देखा कि, तीनोंपर चमर होरहे हैं और बड़े बड़े मण्डलेश्वर बैठे हैं। सबने रामजीको देखा कि, उनका शरीर कृश होरहाहै। जैसे महादेवजी स्वामिकार्त्तिकको आते देखें तैसेही राजादशरथने रामजी को आतेदेखा। रामजीने वहां आकर राजा दशरथजी के चरण पर मस्तकलगा नमस्कार किया और तैसेही वशिष्ठ जी, विश्वामित्र और सभा में जो बड़े बड़े ब्राह्मण बैठेथे उनको भी नमस्कार किया। जो बड़े बड़े मण्डलेश्वर बैठेथे उन्होंने उठकर रामजी को प्रणाम किया। राजा दशरथ ने रामजीको गोद में बैठाकर मस्तक चूमा और बहुत प्रेमसे पुलकित हो रामजीसे कहा हे पुत्र! केवल विरक्तता से परमपदकी प्राप्ति नहीं होती। गुरु वशिष्ठजीके उपदेशकी युक्तिसे परमपद की प्राप्तिहोगी। वशिष्ठजी बोले हे रामजी! तुम धन्य हो और बड़े शूर हो कि विषयरूपी शत्रु तुमने जीतेहैं। विश्वामित्रजी बोले हे कमलनयन राम! अपने अन्तःकरण की चपलता को त्यागके जो कुछ तुम्हारा आशय हो प्रकट कर कहो कि, तुम को मोह कैसे हुआ, किस कारण हुआ है और कितना है एवं? अब जो कुछ तुमको वाञ्छितहो सोभी कहो हम तुमको उसी पद में प्राप्त करेंगे जिस में कदाचित् दुःख न हो। जैसे आकाशको चूहा नहीं काटसक्ता तैसेही तुमको कदाचित् पीड़ा न होगी। हे रामजी! हम तुम्हारे सम्पूर्ण दुःखनाश करदेंगे। तुम संशय मत करो जो कुछ तुम्हारा वृत्तान्त हो सो हम से कहो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जैसे मेघको देखके मोर प्रसन्न होता है तैसेही विश्वामित्रके वचन सुनकर रामजी प्रसन्न हुये और अपने हृदयमें निश्चय किया कि, अब मुझको अभीष्टपद की प्राप्ति होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेरामसमाजवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

श्रीरामजी बोले हे भगवन्! जो वृत्तान्त है सो तुम्हारे सन्मुख क्रम से कहता हूं। मैं राजा दशरथके घरमें उत्पन्न होकर क्रमसे बड़ा हुआ और चारो वेद पढ़कर ब्रह्मचर्यादि व्रत धारण किये; तदनन्तर घरमें आया तो मेरे हृदय में विचार हुआ कि तीर्थाटन करूं और देवद्वारोंमें जाके देवोंके दर्शन करूं। निदान मैं पिताकी आज्ञा लेकर तीर्थों में गया और गङ्गा आदि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान और शालग्राम और केदार आदि ठाकुरोंके विधिसंयुक्त दर्शन करके यहां आया। फिर उत्साह हुआ तब यह विचार आया कि, प्रातःकाल उठके स्नान सन्ध्यादिक कर्म करके भोजन करता। जब इसप्रकार से कुछ दिन व्यतीत हुये तब मेरे हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ जो मेरे हृदयको खैंच लेगया। जैसे नदी के तटपर तृण वल्ली होती है उसको नदीका प्रवाह

खींच लेजाता है तैसेही मेरे हृदयमें जो कुछ जगत्की आस्थारूपी बल्लीथी उसको विचाररूपी प्रवाह खींचलेगया। तब मैंने जाना कि; राज्य करके क्या है, भोग से क्या है और जगत् क्या है—सब भ्रममात्र हैं—इसकी वासना मूर्ख रखते हैं; यह स्थावर जङ्गम जगत् सब मिथ्याहै। हे मुनीश्वर! जितने कुछ पदार्थ हैं वह सब मनसे उत्पन्नहैं। सो मन भी भ्रममात्रहै अनहोता मन दुःखदायी हुआहै। मन जो पदार्थोंको सत्यजानकर दौड़ता है और सुखदायक जानता है सो मृगतृष्णा के जलवत् है जैसे मृगतृष्णा के जलको देखकर मृग दौड़ते हैं और दौड़ते २ थकके गिरपड़ते हैं तौभी उनको जल प्राप्त नहीं होता तैसेही मूर्ख जीव पदार्थोंको सुखदायी जानकर भोगनेका यत्न करते हैं और शान्ति नहीं पाते। हे मुनीश्वर! इन्द्रियों के भोग सर्पवत् हैं जिनका माराहुआ जन्म मरण और जन्मसे जन्मान्तर पाता है। भोग और जगत् सब भ्रममात्र हैं उनमें जो आस्था करते हैं वह महामूर्ख हैं मैं विचार करके ऐसा जानताहूं कि सब आगमापायी हैं अर्थात् आते भी हैं और जातेभी हैं। इससे जिस पदार्थ का नाश न हो वही पदार्थ पाने योग्य है और इसीकारण मैंने भोगों का त्याग किया है। हे मुनीश्वर! जितने सम्पदारूप पदार्थ भासते हैं वह सब आपदा हैं; इनमें रञ्चकभी सुख नहीं। जब इनका वियोग होता है तब कण्टककी नाईं मनमें चुभते हैं। जब इन्द्रियों को भोग प्राप्त होते हैं तब जीव राग द्वेषसे जलता है और जब नहीं प्राप्तहोते तब तृष्णा से जलता है—इससे भोग दुःखरूपही है जैसे पत्थरकी शिलामें छिद्र नहीं होता तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रञ्चकभी सुखरूपी छिद्र नहीं होता। हे मुनीश्वर! मैं विषयकी तृष्णा में बहुतकालसे जलता हूं। जैसे हरे वृक्षके छिद्रमें रञ्चक अग्नि धरीहो तो धुवां हो थोड़ा २ जलता रहता है तैसेही भोगरूपी अग्निसे मन जलता रहता है। विषय में कुछभी सुख नहीं है और दुःख बहुत है इससे इनकी इच्छा करनी मूर्खता है। जैसे खाईंके ऊपर तृण और पान होते हैं और उससे खाईं आच्छादित होजाती है उसको देख हरिण कूदके दुःख पाता है तैसेही मूर्ख भोगको सुखरूप जानके भोगनेकी इच्छा करता है और जब भोगता है तब जन्मसे जन्मान्तररूपी खाईंमें जापड़ता है और दुःख पाताहै। हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर अज्ञानरूपी रात्रि में आत्मारूपी धन लूट लेजाताहै पर उसके वियोग से जीव महादीन रहता है। जिसभोगके निमित्त यह यत्न करताहै वह दुःखरूप है उनसे शान्ति प्राप्त नहीं होती और जिस शरीर का अभिमान करके यह यत्न करता है वह शरीर क्षणभङ्ग और असार है। जिस पुरुषको सदा भोगकी इच्छा रहती है वह मूर्ख और जड़ है। उसका बोलना और चलना भी ऐसा है जैसे सूखे बांसके छिद्रमें पवन जाता है और उसके वेगसे शब्द होता है जैसे थकाहुआ मनुष्य मारवाड़के मार्गकी इच्छा नहीं करता तैसेही दुःख जानकर मैं भोगकी इच्छा नहीं करता। लक्ष्मीभी परम

अनर्थकारीहै जब तक इसकी प्राप्ति नहीं होती तबतक उसके पाने का यत्न होताहै और यह अनर्थ करके प्राप्त होती है। जब लक्ष्मी प्राप्तहुई तब सब सद्गुण अर्थात् शीतलता, सन्तोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार दयादिकका नाशकरदेतीहै। जब ऐसे गुणों का नाश हुआ तब सुख कहांसे हो तब तो परमआपदाही प्राप्त होती है। इसको परमदुःखका कारण जानकर मैंने त्याग किया है। हे मुनीश्वर! इसजीव में गुण तबतक है जबतक लक्ष्मी नहीं प्राप्त हुई। जब लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई तब सब गुण नाश होजाते हैं। जैसे वसन्तऋतुकी मञ्जरी तबतक हरीरहती है जबतक ज्येष्ठ आषाढ़ नहीं आता और जब ज्येष्ठ आषाढ़ आया तब मञ्जरी जलजाती है तैसेही जब लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई तब शुभगुण जलजाते हैं। मधुरवचन तभी तक बोलता है जबतक लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं है और जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहुई तब कोमलता का अभावही कठोर होजाता है। जैसे जल पतला तबतक रहता है जबतक शीतलता का संयोग नहीं हुआ और जब शीतलता का संयोग होता है तब बरफ होकर कठोर दुःखदायक होजाता है; तैसे यह जीव लक्ष्मीसे जड़ होजाताहै। हे मुनीश्वर! जो कुछ सम्पदा है वह आपदा का मूल है क्योंकि; जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तब बड़े २ सुख भोगता है और जब उसका अभाव होता है तब तृष्णासे जलता है और जन्म से जन्मान्तर पाता है। लक्ष्मीकी इच्छाही मूर्खता है। यह तो क्षणभङ्ग है, इससे भोग उपजते और नाश होते हैं। जैसे जल से तरङ्ग उपजते और मिटजाते हैं और जैसे बिजली स्थिर नहीं होती तैसेही भोगभी स्थिर नहीं रहते। पुरुष में शुभगुण तबतक हैं जबतक तृष्णा का स्पर्श नहीं और जब तृष्णा हुई तब शुभगुणों का अभाव होजाता है। जैसे दूध में मधुरता तबतक है जबतक उसे सर्प ने स्पर्श नहीं किया और जब सर्प ने स्पर्श किया तब वही दूध विषरूप होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेरामेणवैराग्यवर्णनन्नामसप्तमस्सर्गः॥ ७॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! लक्ष्मी देखनेमात्रही सुन्दर है। जब इसकी प्राप्ति होती है तब सद्गुणों का नाश करदेती है। जैसे विषकी वल्ली देखनेमात्रही सुन्दर होती है और स्पर्श कियेसे मारडालती है तैसेही लक्ष्मीकी प्राप्तिहुये से जीव आत्मपदसे मृतकहो महादीन होजाता है। जैसे किसी के घरमें चिन्तामणि दबीहो तो उस को जबतक खोद कर यह नहीं लेता तबतक दरिद्री रहता है तैसेही अज्ञानसे ज्ञान बिना महादीन होरहता है और आत्मानन्द को नहीं पासक्ता। आत्मानन्द पानेकी नाशकरनेवाली लक्ष्मी है। इसकी प्राप्ति से जीव महाअन्ध होजाता है। हे मुनीश्वर! जब दीपक प्रज्वलित होता है तब उसका बड़ाप्रकाश दृष्टि आता है और जब बुझ जाताहै तब प्रकाश का अभाव होजाता है पर काजलकी समक्षता रहजाती है; तैसेही

जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तब बड़े भोग भुगाती है और तृष्णारूपी काजल उससे उपजतारहता है और जब लक्ष्मीका अभाव होता है तब तृष्णाकी वासना समक्षता छोड़जाती है । उस वासना तृष्णा से अनेक जन्म और मरण पाता है कदाचित् शान्ति नहीं पाता । हे मुनीश्वर ! जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तब शान्तिके उपजाने वाले गुणों का नाश करती है । जैसे जबतक पवन नहीं चलता तबतक मेघ रहता है और जब पवन चलता है तो मेघका अभाव होजाता है तैसेही लक्ष्मीजी की प्राप्ति हुये गुणोंका अभाव होता है और गर्बकी उत्पत्ति होती है । हे मुनीश्वर ! जो शूर होके अपने मुखसे अपनी बड़ाई न करै सो दुर्लभ है और सामर्थ्य भर किसीकी अवज्ञा न करे सबमें समबुद्धि राखे सोभी दुर्लभ है तैसेही लक्ष्मीवान् होकर शुभगुणसंयुक्त होय सोभी दुर्लभ है। हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी सर्पके विषके बढ़ाने को लक्ष्मीरूपी दूध है उसे पीते पवनरूपी भोग के आहार करते कभी नहीं अघाता और महामोहरूपी उन्मत्त हस्ती है उसके फिरनेका स्थान पर्वत की अटवीरूपी लक्ष्मी है और गुणरूपी सूर्यमुखी कमलकी लक्ष्मीरूपी रात्रि है और भोगरूपी चन्द्रमुखी कमलोंका लक्ष्मीरूपी चन्द्रमा है और बैराग्यरूप कमलिनीका नाश करनेवाला लक्ष्मीरूपी बरफ है । और ज्ञानरूपी चन्द्रमाका आच्छादनकरनेवाली लक्ष्मीरूपी राहु है और मोहरूपी उलूककी लक्ष्मीरूपी रात्रि है । दुःखरूपी बिजलीको लक्ष्मी आकाश है और तृणरूपी बल्लीको बढ़ानेवाली लक्ष्मी मेघ है । तृष्णारूपी तरङ्गको लक्ष्मी समुद्र है, तृष्णारूपी भँवरको लक्ष्मी कमलिनी है और जन्मके दुःखरूपी जलका यह लक्ष्मी खड्ढा है । हे मुनीश्वर ! देखनेमात्र यह सुन्दर लगती है यह दुःखका कारण है । जैसे खड्गकी धारा देखनेमात्र सुन्दर होती है और स्पर्श कियेसे नाश करती है तैसेही यह लक्ष्मी विचाररूपी मेघका नाश करनेमें वायुसी है । हे मुनीश्वर ! यह मैंने विचार देखा है कि, इसमें कुछभी सुख नहीं सन्तोषरूपी मेघका नाशकरनेवाली लक्ष्मी शरत्काल है । इस मनुष्यमें गुण तब तक दृष्टि आतेहैं जबतक लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं होती जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब शुभ गुण नाश होजाते हैं । हे मुनीश्वर ! लक्ष्मी को ऐसी दुःखदायक जानकर इसकी इच्छा मैंने त्यागदी है । यह भोग मिथ्यारूपी है जैसे बिजली प्रकट होके छिपजाती है तैसही लक्ष्मी भी प्रकट होके छिपजाती है । जैसे जल है सो हिम है तैसेही लक्ष्मीकी ज्योति है सो मूर्ख जड़के आश्रयसे है । इसको छलरूप जानकर मैंने त्यागकिया है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेलक्ष्मीनैराश्यवर्णनन्नामाष्टमस्सर्गः ॥ ८ ॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर ! जैसे पत्रके ऊपर जलकी बुन्द नहीं रहती तैसेही लक्ष्मीभी क्षणभङ्गुर है जैसे जलके तरङ्ग होके नाश होते हैं तैसेही लक्ष्मी होके नाश होती है । हे मुनीश्वर ! पवनको रोकना कठिन है पर वह भी कोई रोकता है और आकाशका चूर्ण

करना अति कठिन है वहभी कोई चूर्ण करडारता है और बिजली का रोंकना अति कठिन है सोभी कोई रोंकता है परन्तु लक्ष्मीको कोई स्थिर नहीं रख सक्ता जैसे शश की सींगों से कोई मार नहीं सक्ता और आरसी के ऊपर जैसे मोती नहीं ठहरता है जैसे तरङ्गकी गांठ नहीं पड़ती तैसेही लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती है लक्ष्मी बिजली की चमकसी है सो होती है और मिटभी जाती है और जो लक्ष्मी पाके अमर हुआ चहा उसे महामूर्ख जानना और लक्ष्मी पाकर जो भोगकी वाञ्छा करता है वह महा आपदा का पात्र है उसका जीनेसे मरना श्रेष्ठ है जीनेकी आशा मूर्ख करते हैं जैसे स्त्री गर्भ की इच्छा अपने नाशनिमित्त करती है तैसेही जीनेकी आशा पुरुष अपने नाशनिमित्त करते हैं और ज्ञानवान् पुरुष जिनकी परमपदमें स्थिति है और उससे तृप्त हुये हैं उनका जीना सुखके निमित्त है उनके जीनेसे औरके कार्य भी सिद्ध होते हैं और उनका जीना चिन्तामणिकी नाईं श्रेष्ठ है और जिनको सदा भोगकी इच्छा रहती है और आत्मपदसे विमुख हैं उनका जीना किसी सुखके निमित्त नहीं है वह मनुष्य नहीं गर्दभ है जैसे वृक्ष पक्षी पशु का जीना है तैसे उनकाभी जीना है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र पढ़ताहै और उसने अपने योग्यपद नहीं पाया तो शास्त्र उसको भाररूप है। जैसे और भार होता है तैसेही पढ़नेकाभी भार है और जो पढ़के विचार-चर्चा करते हैं और तिसके सारको नहीं ग्रहण करते तो यह विचार-चर्चा भी भार है। हे मुनीश्वर! यह मन आकाशरूप है। जो मनमें शान्ति न आई तो मनभी उसको भार है और जो मनुष्यशरीरको पाकर उसका अभिमान नहीं त्यागता तो यह शरीरभी उसको भार ही है। इस शरीरका जीना तभी श्रेष्ठ है जब आत्मपदको पावै अन्यथा जीना व्यर्थ है। आत्मपदकी प्राप्ति अभ्याससे होती है। जैसे जल पृथ्वी खोदनेसे निकलताहै तैसे ही आत्मपदकी प्राप्तिभी अभ्याससे होती है। जो आत्मपदसे विमुख हो आशा की फाँसीमें फँसेहैं वे संसारमें भटकते रहतेहैं। हे मुनीश्वर! जैसे संसारके तरङ्ग अनेककाल से उत्पन्न होके नष्ट होजाताहै तैसेही यह लक्ष्मी भी क्षणभङ्गहै। इसको पाके जो अभिमान करताहै सो मूर्खहै। जैसे बिल्ली चूहेको पकड़नेके लिये पड़ीरहती है तैसेही लक्ष्मी उनको नरकमें डालनेके लिये घरमें पड़ीरहती है। जैसे अञ्जलीमें जल नहीं ठहरता तैसेही लक्ष्मीभी नहीं ठहरती। ऐसी क्षणभङ्ग लक्ष्मी और शरीरको पाके जो भोगकी तृष्णा करताहै वह महामूर्ख है। वह मृत्युके मुखमें पड़ाहुआ जीनेकी आशा करताहै। जैसे सर्पके मुखमें मूर्ख मेंडुक पड़के मच्छर खाने की इच्छाकरता है तैसेही जो जीव मृत्युके मुखमें पड़ाहुआ भोगकी वाञ्छाकरताहै वह महामूर्खहै। जब युवाअवस्था नदी के प्रवाहकीनाईं चलीजाती है तब वृद्धावस्था आती है। उसमें महादुःख प्रकट होते हैं और शरीर जर्जर होजाताहै और मरताहै। निदान एक क्षणभी मृत्यु इसको नहीं

विसारती । जैसे महाकामी पुरुषको सुन्दर स्त्री मिलती है तो उसके देखनेका त्याग नहीं करता तैसेही मृत्यु मनुष्यको देखे विना नहीं रहता । हे मुनीश्वर ! मूर्ख पुरुष का जीना दुःखके निमित्तहै । जैसे वृद्ध मनुष्यका जीना दुःखका कारण है तैसेही ज्ञानीका जीना दुःखका कारण है । उसके बहुत जीनेसे मरना श्रेष्ठहै । जिस पुरुषने मनुष्यशरीर पाके आत्मपद पानेका यत्न नहीं किया उसने अपना आप नाश किया और वह आत्म-हत्यारा है । हे मुनीश्वर ! यह माया बहुत सुन्दर भासतीहै पर अन्तमें नाश होजाती है । जैसे काष्ठको भीतरसे घुन खाजाता है और बाहरसे बहुत सुन्दर दिखाताहै तैसे ही यह जीव बाहरसे सुन्दर दृष्टि आता है और भीतरसे उसको तृष्णा खाजाती है। जो मनुष्य पदार्थको सत्य और सुखरूप जानकर सुखके निमित्त आश्रय करता है वह सुखी नहीं होता है । जैसे कोई नदीमें सर्पको पकड़के पार उतराचाहे तो पार नहीं उतरता मूर्खतासे डूबेहीगा तैसेही जो संसारके पदार्थों को सुखरूप जानकर आश्रय करता है सो सुख नहीं पाता संसारसमुद्र में डूबजाता है । हे मुनीश्वर ! यह संसार इन्द्रधनुषकी नाईं है । जैसे इन्द्रधनुष बहुत रङ्गका दृष्टिमें आता है पर उससे अर्थ कुछ सिद्ध नहीं होता तैसेही यह संसार भ्रममात्र है इसमें सुखकी इच्छा रखनी व्यर्थ है। इसप्रकार जगत्को मैंने असत्रूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा की है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसंसारसुखनिषेधवर्णनन्नामनवमस्सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! अहङ्कार अज्ञान से उदय हुआ है । यह महादुष्ट है और यही परम शत्रु है । इसने मुझको दबाडाला है पर मिथ्या है और सब दुःखोंकी खानि है । जबतक अहङ्कार है तबतक पीड़ाकी उत्पत्ति का अभाव कदाचित् नहीं होता । हे मुनीश्वर ! जो कुछ मैंने अहङ्कार से भजन और पुण्य किया, जो कुछ लिया दिया और जो कुछ किया वह सब व्यर्थ है । इससे परमार्थ की कुछ सिद्धि नहीं है । जैसे राखमें आहुति धरी व्यर्थ होजाती है तैसेही मैं इसे जानता हूं । जितने दुःख हैं उनका वीज अहङ्कारहै । जब इसका नाश हो तब कल्याण हो । इससे आप इस के निवृत्ति का उपाय कहिये । हे मुनीश्वर ! जो वस्तु सत्य है उसके त्याग करनेमें दुःख होता है और जो वस्तु नाशवान् है और भ्रम से दिखती है उसके त्याग करनेमें आनन्द है । शान्तिरूप चन्द्रमाके आच्छादन करनेको अहङ्काररूपी राहु है जब राहु चन्द्रमा को ग्रहणकरताहै तो उसकी शीतलता और प्रकाश ढपजाता है । तैसेही जब अहङ्कार ढपजाताहै तब समता ढपजाती है । जब अहङ्काररूपी मेघ गरजके वर्षताहै तब तृष्णारूपी कण्टकमञ्जरी बढ़जाती है और कदाचित् नहीं घटती । जब अहङ्कार का नाश हो तब तृष्णा का अभाव हो । जैसे जबतक मेघ है तबतक बिजली है; जब विवेकरूपी पवन चले तब अहङ्काररूपी मेघका अभाव होके तृष्णारूपी बिजली

नाश होजाती है और जैसे जबतक तेल और बाती है तबतक दीपक का प्रकाश है जब तेलबाती का नाश होता तब दीपकका प्रकाश भी नाश होजाता है तैसेही जब अहङ्कार का नाश हो तब तृष्णा का भी नाश होता है। हे मुनीश्वर! परम दुःखका कारण अहङ्कार है। जब अहङ्कारका नाश हो तब दुःखका भी नाश होजाय। हे मुनीश्वर! यह जो मैं राम हूं सो नहीं और इच्छा भी कुछ नहीं क्योंकि; मैं नहीं तो इच्छा किसको हो? और इच्छा हो तो यही हो कि, अहङ्कारके रहित पदकी प्राप्ति हो। जैसे जनेन्द्र को अहङ्कार का उत्थान नहीं हुआ तैसा मैं होऊं ऐसी मुझको इच्छा है। हे मुनीश्वर! जैसे कमलको बरफ नाश करता है तैसेही अहङ्कार ज्ञान का नाश करता है। जैसे व्याधा जाल से पक्षी को फँसाता है और उससे पक्षी दीन होजाते हैं तैसेही अहङ्काररूपी व्याधाने तृष्णारूपी जाल डालके जीवको फँसाया है उससे वह महादीन होगये हैं जैसे पक्षी अन्नके दाने सुखरूप जानकर चुगने आता है फिर चुगते २ जालमें फँस बन्धन से दीन होजाता है तैसेही यह जीव विषयभोग की इच्छा किये से तृष्णारूपी जालमें फँसकर महादीन होजाता। इससे हे मुनीश्वर! मुझसे वही उपाय कहिये जिससे अहङ्कार का नाश हो जब अहङ्कार का नाश होगा तब मैं परमसुखी हूंगा। जैसे विन्ध्याचल पर्वत के आश्रयसे उन्मत्त हस्ती गर्जते हैं तैसेही अहङ्काररूपी विन्ध्याचल पर्वतके आश्रयसे मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकार के सङ्कल्प विकल्परूपी शब्द करता है इससे आप वही उपाय कहिये जिससे अहङ्कार का नाश हो जो अकल्याण का मलहै। जैसे मेघका नाश करनेवाला शरत्काल है तैसेही वैराग्य का नाश करनेवाला अहङ्कार है। मोहादिक विकाररूप सर्पों के रहने का अहङ्काररूपी बिल है और वह कामी पुरुषों की नाईं है। जैसे कामीपुरुष काम को भोगता है और फूलकी माला गले में डालके प्रसन्न होता है तैसेही तृष्णारूपी तागा है और मनरूपी फूल हैं सो तृष्णारूपी तागे के साथ गुहे हैं सो अहङ्काररूपी कामी पुरुष उनको गले में डालता है और प्रसन्न होता है। हे मुनीश्वर! आत्मारूपी सूर्य है उसका आवरण करनेवाला मेघरूपी अहङ्कारहै। जब ज्ञानरूपी शरत्काल आता है तब अहङ्काररूपी मेघ का नाश होजाता है और तृष्णारूपी तुषारका भी नाश होता है। हे मुनीश्वर! यह निश्चय कर मैंने देखा है कि जहां अहङ्कार है वहां सब आपदा आ प्राप्त होती हैं। जैसे समुद्र में सब नदी आके प्राप्त होती हैं तैसेही अहङ्कार में सब आपदा की प्राप्ति है। इससे आप वही उपाय कहिये जिस से अहङ्कार का नाश हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेअहङ्कारदुराशावर्णनन्नामदशमस्सर्गः॥ १०॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! मेरा चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक

ःख से जर्जरीभूत होगया है और महापुरुषों के गुण जो वैराग्य, विचार, धैर्य्य और सन्तोष हैं उनकी ओर नहीं जाता—सर्वदा विषय की गरदमें उड़ता है। जैसे मोरका पंख पवनके लगे नहीं ठहरता तैसेही यह चित्त सर्वदा भटकता फिरताहै पर कुछ लाभ नहीं प्राप्त होता। जैसे श्वान द्वार द्वार पर भटकता फिरता है तैसेही यह चित्त पदार्थों के पाने के निमित्त भटकता फिरता है पर प्राप्त कुछ नहीं होता और जो कुछ प्राप्त होताहै उससे तृप्त नहीं होता बल्कि अन्तःकरण में तृष्णा बनी रहती है। जैसे पिटारे में जल भरिये तो वह पूर्ण नहीं होता क्योंकि; छिद्रसे जल निकल जाता है और पिटारा शून्यका शून्य रहताहै तैसेही चित्त भोग और पदार्थोंसे संतुष्ट नहीं होता सदा तृष्णाही रहती है। हे मुनीश्वर! यह चित्तरूपी महामोह का समुद्रहै; उसमें तृष्णारूपी तरङ्ग उठतीही रहती हैं और कदाचित् स्थिर नहीं होतीं। जैसे समुद्रमें तीक्ष्ण तरङ्ग से तटके वृक्ष बहजाते हैं तैसेही चित्तरूपी समुद्रमें विषय बहजाताहै। वासनारूपी तरङ्ग के वेग से मेरा अचल स्वभाव चलायमान होगया है; इसलिये इस चित्त से मैं महा दीन हुआ हूँ। जैसे जलमें पड़ाहुआ पक्षी दीन होजाता है तैसेही चित्त धींवरके वासनारूपी जालमें बँधाहुआ मैं दीन होगयाहूँ। जैसे मृगके समूह से भूली मृगी अकेली खेदवान् होती है तैसेही मैं आत्मपदसे भूलाहुआ चित्तमें खेदवान् हुआ हूँ। हे मुनीश्वर! यह चित्त सदा क्षोभवान् रहताहै कदाचित् स्थिर नहीं होता। जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचल से क्षोभवान् हुआथा तैसेही यह चित्त सङ्कल्प विकल्पसे खेद पाता है। जैसे पिंजरेमें आया सिंह पिंजरेही में फिरताहै तैसे वासना में आया चित्त स्थिर नहीं होता। हे मुनीश्वर! जैसे भारी पवन से सूखा तृण दूरसे दूर जापड़ता है तैसेही इस चित्तरूपी पवन ने मुझको आत्मानन्दसे दूर फेंकाहै। जैसे सूखे तृणको अग्नि जलाती है तैसेही मुझको चित्त जलाता है। जैसे अग्निसे धूम निकलता है तैसेही चित्तरूपी अग्निसे तृष्णारूपी धूम निकलता है उससे मैं परमदुःख पाताहूँ। यह चित्त हंस नहीं बनता। जैसे राजहंस मिले दूध और जल को भिन्न भिन्न करता है उसकी नाईं मैं अनात्मासे अज्ञानके कारण एकसा होगयाहूं उसको भिन्न नहीं कर सक्ता और जब आत्मपद पानेका यत्न करता हूं तब अज्ञान उसे प्राप्त नहीं करने देता। जैसे नदीका प्रवाह समुद्र में जाताहै उसको पहाड़ सूधे नहीं चलनेदेता और समुद्रकी ओर नहीं जाने देता तैसेही मुझको चित्त आत्माकी ओरसे रोकताहै—वह परम शत्रु है। हे मुनीश्वर! वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी शत्रुका नाश हो। जैसे मृतक शरीरको श्वान और श्वाननी भोजन करतेहैं तैसेही तृष्णा मेरा भोजन करती रहतीहै। आत्माके ज्ञान विना मैं मृतकसमानहूं। जैसे बालक अपनी परछाहीं को वैताल मानकर भय पाताहै और जब विचार करके समर्थ होताहै तब वैतालका

भय नहीं होता तैसेही चित्तरूपी वैतालने मेरा स्पर्श कियाहै उससे मैं भय पाता हूं। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी वैताल नष्ट होजावे। हे मुनीश्वर! अज्ञानसे मिथ्या वैताल चित्तमें दृढ़ होरहा है उसके नाश करने को मैं समर्थ नहीं हो सक्ताहूं। अग्नि में बैठना बड़े पर्वतके ऊपर जाना और बड़े वज्रका चूर्ण करना मैं सुगम मानताहूं परन्तु चित्त का जीतना महाकठिनहै। चित्त सदाही चलायमान स्वभाववालाहै। जैसे थम्भ में बांधाहुआ वानर कदाचित् स्थिर हो नहीं बैठता तैसेही चित्त वासनाके मारे कदाचित् स्थिर नहीं होता। हे मुनीश्वर! बड़े समुद्र का पान करजाना, अग्निका भक्षण करना और सुमेरुका उल्लङ्घन करना सुगम है परन्तु चित्तका जीतना महाकठिन है जो सदा चलरूप है। जैसे समुद्र अपना द्रवी स्वभाव कदाचित् नहीं त्याग करता, महाद्रवीभूत रहता है और उससे नानाप्रकारके तरङ्ग उठते हैं तैसेही चित्त भी चञ्चलस्वभाव कभी नहीं त्यागता और नानाप्रकार की वासना उपजती रहतीहैं। चित्त बालक की नाईं चञ्चल है, सदा विषयकी ओर धाता है; कहीं २ पदार्थ की प्राप्ति होती है परन्तु भीतर सदा चञ्चल रहता है। जैसे सूर्यके उदयहुये दिन होता है और अस्तहुये से दिन नाश होता है, तैसेही चित्तके उदयहुये त्रिलोकीकी उत्पत्ति है और चित्त के लीनहुये से जगत्भी लीन होजाता है। हे मुनीश्वर! चित्तरूपी समुद्र है और वासनारूपी जल है, उसमें छलरूपी सर्प है, जब जीव उसके निकट जाता है तब भोगरूपी सर्प उसको काटता है और तृष्णारूपी विष स्पर्श करता है उससे मरता है। हे मुनीश्वर! भोगको सुखरूप जानकर चित्त दौड़ता है पर वह भोग दुःखरूप है। जैसे तृण से आच्छादित खाईं को देखकर मूर्ख मृग खाने दौड़ता है तो खाईं में गिरकर दुःख पाता है तैसेही चित्तरूपी मृग भोगको सुख जानकर भोगने लगता है तब तृणरूपी खाईंमें गिरपड़ता है और जन्मजन्मान्तर दुःख भोगता रहता है। हे मुनीश्वर! यह चित्त कभी २ बड़ा गम्भीरभी हो बैठता है। जैसे चीलपक्षी आकाश में ऊँचे फिरताहै पर जब पृथ्वीपर मांस देखताहै तो वहांसे पृथ्वीपर आके मांस लेताहै तैसेही यह चित्त तबतक उदारहै जबतक भोग नहीं देखता और जब विषय देखता है तब आसक्त हो विषय में गिरजाता है। यह चित्त वासनारूपी शय्यामें सोयारहता है और आत्मपद की ओर नहीं जागता इस चित्तके जालमें मैं पड़गयाहूं। वह कैसा जालहै कि उसमें वासनारूपी सूत है, संसारकी सत्यतारूपी गांठ है और भोगरूपी चून है जिसको देखके मैं फँसाहूं और कभी पाताल में और कभी आकाश में वासनारूपी रस्सीसे बँधा घटीयन्त्रकी नाईं फिरताहूं इससे हे मुनीश्वर! तुम वही उपाय कहो जिससे चित्तरूपी शत्रुको जीतूं। अब मुझ को किसी भोगकी इच्छा नहीं और जगत्की लक्ष्मी मुझको विरस भासती है। जैसे चन्द्रमा बादलकी इच्छा नहीं करता पर चतुर-

ासमें आच्छादित होजाता है तैसेही मैं भोगकी इच्छा नहीं करता और जगत्की
क्ष्मीभी नहीं चाहता पर मेरा चित्तही मेरा परमशत्रु है। महापुरुष जब इसके जी-
ने का यत्नकरते हैं तब परमपद पाते हैं, इससे मुझे वही उपाय कहो जिससे मन
ो जीतूं। जैसे पर्वतपरके वन पर्वत के आश्रय से रहते हैं तैसेही सब दुःख इस के
ाश्रय से रहते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेचित्तदौरात्म्यवर्णनन्नामैकादशस्सर्गः॥ ११॥

श्रीरामजी बोले कि, हे ब्राह्मण! चेतनरूपी आकाश में तृष्णारूपी रात्रि आईहै और
समें काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक उल्लू बिचरते हैं। जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय हो
ब तृष्णारूपी रात्रि का अभाव होजावे और जब रात्रि नष्ट हो तब मोहादिक उलूक
ी नष्ट हों जैसे जब सूर्यका उदय होता है तब बरफ उष्णहो पिघल जाता है तैसेही
न्तोषरूपी रसको तृष्णारूपी उष्णता पिघलाजाती है। आत्मपद से शून्यचित्त
यानक वन है, उसमें तृष्णारूपी पिशाचिनी मोहादिक परिवार अपने साथ लिये
फिरती रहती है और प्रसन्न होती है हे मुनीश्वर! चित्तरूपी पर्वत है उसके आश्रय
ा तृष्णारूपी नदी का प्रवाह चलता है और नानाप्रकारके सङ्कल्परूपी तरङ्गको
लजाता है। जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्न होता है तैसेही तृष्णारूपी मोर भोगरूपी
घको देखकर प्रसन्न होता है इससे परमदुःखका मूल तृष्णाहै। जब मैं किसी सन्तो-
ादि गुणका आश्रय करताहूं तब तृष्णा उसको नाश करदेती है। जैसे सुन्दर सारङ्गी
ो चूहा काटडालता है तैसेही सन्तोषादि गुणको तृष्णा नाशकरतीहै। हे मुनीश्वर!
बसे उत्कृष्ट पदमें विराजनेका मैं यत्न करताहूं पर तृष्णा मुझे विराजने नहीं देती।
से जालमें फँसाहुआ पक्षी आकाश में उड़नेका यत्न करता है परन्तु उड़ नहीं सक्ता
सेही अनात्मपदसे आत्मपद को प्राप्त नहीं होसक्ता। स्त्री, पुरुष, पुत्र और कुटुम्ब
ा उसने जाल बिछाया है उसमें फँसाहूं निकल नहीं सक्ता। और आशारूपी फांसी
ं बँधाहुआ कभी ऊर्ध्व को जाताहूं और कभी अधःपात होताहूं, घटीयन्त्रकी नाईं
री गतिहै। जैसे इन्द्रका धनुष मलिन मेघ में बड़ा और बहुत रङ्गों से भरा होता
परन्तु मध्य में शून्य है तैसेही तृष्णा मलिनअन्तःकरण होतीहै सो बड़ी है और
ुणरूपी धागेसे रहितहै। यह ऊपरसेही देखनेमात्र सुन्दर है परन्तु इस से कुछ
ार्य नहीं सिद्ध होता। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी मेघ है उससे दुःखरूपी बूंद निकलते
हैं और तृष्णारूपी काली नागिन है उसका स्पर्श तो कोमल है परन्तु विषसे पूर्ण
है उसके डसेसे मृतक होजाता है तृष्णारूपी बादल है सो आत्मरूपी सूर्यके आगे
आवरण करता है। जब ज्ञानरूपी पवन चले तब तृष्णारूपी बादलका नाश होकर
आत्मपदका साक्षात्कार हो। ज्ञानरूपी कमलको सङ्कोच करनेवाली तृष्णारूपी

निशा है। उस तृष्णारूपी महाभयानक कालीरात्रि में बड़े धीरवान्‌भी भयभीत होते हैं और नयनवालोंको भी अन्धा करडालती है। जब यह आती है तब वैराग्य और अभ्यासरूपी नेत्रको अन्धा करडालती है। अर्थात् सत्य असत्य विचारने नहीं देती। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी डाकिनी है वह सन्तोषादिक पुत्रोंको मारडालती है। तृष्णारूपी कन्दराहै उसमें मोहरूपी उन्मत्त हाथी गर्जते हैं। तृष्णारूपी समुद्र है उसमें आपदारूपी नदी आय प्रवेश करती है इससे वही उपाय मुझसे कहिये जिससे तृष्णारूपी दुःखसे छूटूं। हे मुनीश्वर! अग्नि और खड्गके प्रहार और इन्द्र के वज्रसे भी ऐसा दुःख नहीं होता जैसा दुःख तृष्णासे होताहै सो तृष्णाके प्रहार से घायल हुआ मैं बड़े दुःखको पाता हूं और तृष्णारूपी दीपक जलता है उसमें सन्तोषादिक पतङ्ग जलजाते हैं जैसे जलमें मछली रहती है सो जलमें कंकड़ रेत आदिको देख मांस जानकर मुखमें लेतीहै उससे उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता तैसे तृष्णा भी जो कुछ पदार्थ देखती है उसके पास उड़ती है और तृप्ति किसीसे नहीं होती तृष्णारूपी एक पक्षिणीहै सो इधर उधर उड़जाती है और स्थिर कभी नहीं होती तृष्णारूपी वानरहै वह कभी किसी वृक्षपर और कभी किसीके ऊपर जाताहै स्थिर कभी नहीं होताहै। जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता उसके निमित्त यत्न करताहै और भोग से तृप्त कदाचित् नहीं होता जैसे घृतकी आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होती तैसेही जो पदार्थ प्राप्तयोग्य नहींहै उसकी ओरभी तृष्णा दौड़ती है शान्ति नहीं पाती। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी उन्मत्त नदीहै वह बहेहुये पुरुषको कहांसे कहां लेजाती है कभी तो पहाड़के बाजूमें लेजाती और कभी दिशामें लेजाती है और तृष्णारूपी नदीहै उसमें वासनारूपी अनेक तरङ्ग उठते हैं कदाचित् मिटते नहीं तृष्णारूपी नटिनी है और जगत्‌रूपी अखाड़ा उसने लगाया है उसको शिर ऊंचा कर देखती है और मूर्ख बड़े प्रसन्न होते हैं जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिलके ऊंचा होताहै तैसेही मूर्ख भी तृष्णाको देखकर प्रसन्न होताहै तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है जो पुरुष इसका त्याग करता है तो उसके पीछे लगी फिरतीही है, कभी उसका त्याग नहीं करती तृष्णारूपी डोर है उसके साथ जीवरूपी पशु बँधेहुये भ्रमते फिरते हैं। तृष्णा दुष्टिनी है जब शुभगुण देखती है तब उसको मारडालती है उसके संयोग से मैं दीन होताहूं जैसे पपीहा मेघको देखकर प्रसन्न होता है और बूंद ग्रहण करनेलगताहै और मेघको जब पवन लेजाता है तब पपीहा दीन होजाता है तैसेही तृष्णा जब शुभगुणों का नाश करती है तब मैं दीन होजाताहूं हे मुनीश्वर! जैसे सूखे तृणको पवन उड़ाकर दूरसे दूर डालता है तैसेही तृष्णारूपी पवनने मुझको दूरसे दूर डालदिया है और आत्मपदसे दूर पड़ाहूं हे मुनीश्वर! जैसे भवँरा कमल के ऊपर और कभी नीचे बैठता

है और कभी आसपास फिरताहै स्थिर नहीं होता तैसेही तृष्णारूपी भवँरा संसार-रूपी कमलके नीचे ऊपर फिरताहै कदाचित् नहीं ठहरता । जैसे मोती के बांससे अनेक मोती निकलतेहैं तैसेही तृष्णारूपी बांससे जगत्‌रूपी अनेक मोती निकलते हैं उससे लोभीका मन पूर्ण नहीं होता । तृष्णारूपी डब्बे में अनेक दुःखरूपी रत्नभरे हैं इससे आप वही उपाय कहिये जिससे तृष्णा निवृत्त हो । हे मुनीश्वर ! यह विराग से निवृत्त होती है और किसी उपायसे नहीं निवृत्त होती । जैसे अन्धकारका प्रकाश से नाशहोताहै और किसी उपाय से नहीं होता तैसेही तृष्णा का नाश और उपाय से नहीं होता । तृष्णारूपी हल गुणरूपी पृथ्वीको खोदडालता है और तृष्णारूपी बेलि गुणरूपी रसको पीती है । तृष्णारूपी धुर है वह अन्तःकरणरूपी जल में उछलके मलीन करती है । हे मुनीश्वर ! जैसे बर्षाकाल में नदी बढ़ती है और फिर घट जाती है तैसेही जब इष्टभोगरूपी जल प्राप्त होता है तब हर्षसे बढ़ती है और जब वह जल घटजाता है तब सूखके क्षीण होजाती है । हे मुनीश्वर ! इस तृष्णा ने मुझको दीन किया है । जैसे सूखे तृणको पवन उड़ालेजाता है तैसेही मुझको भी तृष्णा उड़ाती है इससे आप वही उपाय कहिये जिससे तृष्णाका नाश होकर आत्म-पदकी प्राप्तिहो और दुःखों का नाश होकर आनन्द हो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेतृष्णागारुडीवर्णनन्नामद्वादशस्सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! यह अमङ्गलरूप शरीर, जो जगत् में उत्पन्न हुआ है, बड़ा अभाग्यरूप है और सदा विकारवान् मांस मज्जासे पूर्ण और अपवित्र है। इससे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता इसलिये इस विकाररूप शरीर की मैं इच्छा नहीं रखता । यह शरीर न अज्ञहै और न तज्ञहै—अर्थात् न जड़है और न चैतन्यहै । जैसे अग्निके संयोगसे लोहा अग्निवत् होताहै सो जलताभी है परन्तु आप नहीं जलता; तैसेही यह देह न जड़है न चैतन्य है । जड़ इसकारण नहीं है कि, इससे कार्यभी होता है और चैतन्य इसकारण नहीं कि, इसको आपसे कुछ ज्ञान नहीं होता । इसलिये मध्यमभाव में है क्योंकि; चैतन्य आत्मा इसमें व्यापरहा है पर आप तो अपवित्ररूप अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र और विष्ठा से पूर्ण और विकारवान् है । ऐसी देह दुःखका स्थान है । इष्ट के पायेसे हर्षवान् और अनिष्ट के पायेसे शोकवान् होती है इससे ऐसे शरीर की मुझको इच्छा नहीं । यह अज्ञानसे उपजती है । हे मुनीश्वर ! ऐसे अमङ्गल-रूपी शरीर में जो अहंपन फुरता है सो दुःखका कारण है । यह संसारमें स्थित होकर नानाप्रकार के शब्दकरता है । जैसे कोठरी में बैठाहुआ बिलाव नानाप्रकार के शब्द करता है तैसेही अहंकाररूपी बिलाव देह में बैठाहुआ अहं अहं करता है चुप कदा-चित् नहीं रहता । हे मुनीश्वर ! जो किसी के निमित्त शब्दहो सोही सुन्दर है अन्यथा

सब शब्द व्यर्थ हैं। जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुन्दर होता है तैसेही अहंकार से रहित जो पदहै सोही शोभनीक है और सब व्यर्थ हैं। शरीररूपी नौका भोगरूपी रेत में पड़ी है इसलिये इसका पारहोना कठिन है। जब वैराग्यरूपी जल बढ़े और प्रवाह हो और अभ्यासरूपी पतवार का बललगे तब संसार के पाररूपी किनारे पर पहुंचे। शरीररूपी बेड़ा है जो संसाररूपी समुद्र और तृष्णारूपी जल में पड़ाहै जिस का बड़ा प्रवाह है और भोगरूपी उसमें मगरहैं सो शरीररूपी बेड़े को पार नहीं लगनेदेते; जब शरीररूपी बेड़े को वैराग्यरूपी वायु और अभ्यासरूपी पतवार का बल लगे तब शरीररूपी बेड़ापारहो। हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने उपाय करके ऐसे बेड़ेको संसारसमुद्र से पार कियाहै वही सुखी हुआ है और जिसने नहीं किया वह परम आपदा को प्राप्त होता है—वह उस बेड़ेसे उलटा डूबेगा क्योंकि उस शरीररूपी बेड़े का तृष्णारूपी छिद्र है उससे संसारसमुद्र में डूबजाता है और भोगरूपी मगर इसको खालेता है। यही आश्चर्य है कि, बेड़ा अपने निकट नहीं भासता और मनुष्य मूर्खता करके आपको बेड़ा मानताहै और तृष्णारूपी छिद्रकरके दुःख पाताहै। शरीररूपी वृक्षहै उसमें भुजारूपी शाखा, उँगली पत्र, जङ्घास्तम्भ, मांसरूपी अन्दर का भोगवासना उसकी जड़ और सुख दुःख इसके फूलहैं। तृष्णारूपी घुन उस शरीररूपी वृक्षको खातारहता है। जब उसमें श्वेत फूललगे तो नाशका समय आता है अर्थात् मृत्युके निकटवर्ती होताहै। शरीररूपी वृक्षकी भुजारूपी शाखा हैं और हाथ पांव पत्र हैं। पखने इसके गुच्छे और दांत फूलहैं; जंघा स्तम्भ हैं और कर्मजल से बढ़ जाताहै। जैसे वृक्षसे जल चिकटा निकलता है तैसेही जल शरीर के द्वार निकलता रहता है। इसमें तृष्णारूपी विषसे पूर्ण सर्पिणी रहती है जो कामना के लिये इस वृक्ष का आश्रय लेताहै तो तृष्णारूपी सर्पिणी उसको डसती है और उस विष से वह मरजाता है। हे मुनीश्वर! ऐसे अमङ्गलरूपी शरीर वृक्षकी इच्छा मुझको नहीं है। यह परम दुःख का कारण है। जब यह पुरुष अपने परिवार अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और इनमें जो अहंभाव है इसका त्यागकरे तब मुक्ति हो अन्यथा मुक्ति नहीं होती। हे मुनीश्वर! जो श्रेष्ठ पुरुषहैं वे पवित्र स्थानमेंहीं रहतेहैं अपवित्र में नहीं रहते। वह अपवित्र स्थान यह देह है और इसमें रहनेवाला भी अपवित्र है। अस्थिरूपी इस घर में ईंटें हैं, रुधिर, मूत्र और विष्ठा का गारा लगा है और मांस की कहगिल की है। अहंकाररूपी इस में श्वपच रहता है, तृष्णारूपी श्वपचिनी उस की स्त्री और काम, क्रोध, मोह और लोभ इसके पुत्रहैं और आंतों और विष्ठादि से भराहुआ है। ऐसे अपवित्र स्थान अमङ्गलरूपी शरीर को मैं अङ्गीकार नहीं करता यह शरीर रहे चाहे न रहे इसके साथ अब मुझे कुछ प्रयोजन नहीं। हे मुनीश्वर!

शरीररूपी बड़ा गृह है और उस में इन्द्रियरूपी पशु हैं। जब कोई उस गृहमें पैठता है तब बड़ी आपदा को प्राप्त होताहै—तात्पर्य यह कि जो इस में अहंभाव करता है तो इन्द्रियरूपी पशु विषयरूपी सींगों से मारते हैं और तृष्णारूपी धूलि उसको मलीन करती है हे मुनीश्वर! ऐसे शरीर को मैं अङ्गीकार नहीं करता जिसमें सदा कलह पड़ी रहती है और ज्ञानरूपी सम्पदा प्रवेश नहीं होती। शरीररूपी गृहमें तृष्णारूपी चण्डी स्त्री रहती है; वह इन्द्रियरूपी द्वारसे देखती रहती और सदा कल्पना करती रहती है। उससे शम दमादिरूप सम्पदा का प्रवेश नहीं होता। उस घरमें एक सुषुप्तिरूप शय्या है जब उसके ऊपर वह विश्राम करता है तब वह कुछ सुख पाता है परन्तु तृष्णाका परिवार अर्थात् काम, क्रोधादिक विश्राम नहीं करने देते हे मुनीश्वर! ऐसे दुःख के मूल शरीररूपी गृह की इच्छा मैंने त्यागदी है। यह परम दुःख देनेवाला है, इसकी इच्छा मुझको नहीं। हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्ष है उसमें तृष्णारूपी काकिनी आस्थित हुई है। जैसे काकिनी नीच पदार्थ के पास उड़ती है तैसेही तृष्णाभोग आदिक मलिन पदार्थोंके पास उड़ती है। तृष्णा बन्दरी की नाईं शरीररूपी वृक्षको हिलाती है नहीं स्थिर होने देती और जैसे उन्मत्त हाथी कीच में फँसजाता है तब निकल नहीं सक्ता और खेदवान् होता है तैसेही अज्ञानरूपी मद से उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फँसाहै सो निकल नहीं सक्ता है पड़ाहुआ दुःख पाताहै। ऐसा दुःख पानेवाला शरीर है उसको मैं अङ्गीकार नहीं करता। हे मुनीश्वर! यह शरीर अस्थि मांस रुधिरसे पूर्ण अपवित्र है। जैसे हाथीके कान सदा हिलते हैं तैसेही मृत्यु इसको हिलाता है। कुछकाल का विलम्ब है मृत्यु उसका ग्रासकरलेवेगा; इससे मैं इस शरीरको अङ्गीकार नहीं करताहूं। यह शरीर कृतघ्न है। भोग भुगतता है और बड़े ऐश्वर्यको प्राप्तकरता है परन्तु मृत्यु इससे सखापन नहीं करता। जीव इस को अकेला छोड़कर परलोक जाता है। जीव इसके सुखके निमित्त अनेक यत्नकरता है परन्तु संगमें सदा नहीं रहता। ऐसे कृतघ्न शरीर को मैंने मनसे त्याग दिया है। हे मुनीश्वर! और आश्चर्य देखिये कि, यह उसीकाभोग करताहै पर उसके साथ नहीं चलता। जैसे धूलिसे मार्ग नहीं भासता तैसेही यह जीव जब चलने लगताहै तब शरीर से क्षोभवान् होता और वासनारूपी धूलिसंयुक्त चलताहै परन्तु दीखता नहीं कि कहां गया। जब परलोक जाताहै तब बड़ाकष्ट होताहै क्योंकि; शरीरके साथ इसने स्पर्शकियाहै। हे मुनीश्वर! जैसे जलकी बूंद पत्रके ऊपर क्षणमात्र रहती है तैसेही शरीर भी क्षणभङ्गहै। ऐसेशरीरमें आस्थाकरनी मूर्खताहै और ऐसे शरीरके ऊपर उपकारकरना भी दुःखके निमित्तहै सुखकुछनहीं। धनाढ्य इसशरीरसे बड़ेभोग भोगते हैं और निर्द्धन थोड़ेभोग भोगतेहैं परन्तु जराअवस्था और मृत्यु दोनोंको होती हैं इसमें

विशेषता कुछ नहीं शरीरका उपकार करना और भोग भुगतना तृष्णाके कारण उलटा दुःखका कारणहै। जैसे कोई नागिनिको घरमें रखके दूध पिलावे तो अन्तमें वह उसे काटके मारेगी तैसेही जिसजीवने तृष्णारूपी नागिनीके साथ मित्रता की है वह मरेगा क्योंकि नाशवन्तहै। इसके निमित्त भोग भुगतनेका यत्नकरना मूर्खताहै। जैसे पवन का वेग आता और जाता है तैसेही यह शरीरभी आता और जाताहै इससे प्रीति करनी दुःखका कारण है। जैसे कोई विरलामृग मरुस्थल की आस्था त्यागताहै और सब पड़े भ्रमते हैं तैसेही सब जीव इसकी आस्थामें बाँधेहुयेहैं इसका त्याग कोई विरलेहीने कियाहै। हे मुनीश्वर! बिजली और दीपकका प्रकाशभी आताजाता दीखताहै परन्तु इस शरीरका आदि अन्त नहीं दीखता कि कहांसे आताहै और कहांजाताहै। जैसे समुद्र में बुदबुदे उपजते और मिटजाते हैं उसकी आस्था करने से कुछ लाभ नहीं तैसेही यह शरीर है इसकी आस्थाकरनी योग्य नहीं। यह अत्यन्त नाशरूपहै स्थिर कदाचित् नहीं होता है। जैसे बिजली स्थिरनहीं होती तैसेही शरीरभी स्थिरनहीं रहता इसलिये इसकी मैं आस्था नहीं करता। इसका अभिमान मैंने त्यागदिया है जैसे कोई सूखेतृण को त्यागदेता है तैसे मैंने अहंममता त्यागी है। हे मुनीश्वर! ऐसे शरीर को पुष्टकरना दुःखका निमित्त है। यह शरीर किसी अर्थ नहींआता जलाने योग्यहै। जैसे लकड़ी जलानेके सिवाय और काममें नहींआती तैसेही यह शरीरभी जड़ और गूंगा जलाने के अर्थहै। हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने काष्ठरूपी शरीरको ज्ञानाग्निसे जलायाहै उसका परमअर्थ सिद्ध हुआहै और जिसने नहीं जलाया उसने परमदुःख पाया है। हे मुनीश्वर! न मैं शरीर हूं, न मेरा शरीर है; न इसका मैंहूं, न यह मेरा है; अब मुझको कामना कोई नहीं मैं निराशी पुरुषहूं और शरीरसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं। इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे मैं परमपद पाऊं। हे मुनीश्वर! जिसपुरुषने शरीरका अभिमान त्यागा है वह परमानन्दरूप है और जिसको देहका अभिमान है वह परम दुःखी है। जितने दुःखहैं वे शरीरके संयोगसे होतेहैं। मान–अपमान, जरा–मृत्यु; दम्भ–भ्रान्ति; मोह–शोक आदि सर्व विकार देहके संयोगसे होते हैं। जिनको देह में अभिमान है उनको धिक्कार है और सब आपदाभी उन्हींको प्राप्तहोतीहैं। जैसे समुद्र में नदी प्रवेश करतीहै तैसेही देहाभिमानमें सर्वआपदा प्रवेशकरती हैं। जिसको देहका अभिमान नहींहै वह मनुष्योंमें उत्तम और वन्दना करनेके योग्यहै ऐसेको मेराभी नमस्कार है और सर्व सम्पदाभी उसीको प्राप्तहोतीहैं। जैसे मानसरोवरमें सब हंसआय रहतेहैं तैसेही जहां देहाभिमान नहीं रहा वहां सर्व सम्पदा आ रहतीहैं। हे मुनीश्वर! जैसे अपनी छाया में बालक वैताल कल्पता है और उससे भयपाताहै पर जब उसको विचारकी प्राप्तिहोती है तब वैतालका अभाव होजाता है तैसेही अज्ञानसे मुझको

अहङ्काररूपी पिशाचने शरीरमें दृढ़आस्था बताईहै। इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे अहङ्काररूपी पिशाचका नाशहो और आस्थारूपी फाँसीटूटे। हे मुनीश्वर! प्रथम मुझको अज्ञान से अहङ्काररूपी पिशाचका संयोगथा; उसके अनन्तर शरीरमें आस्था उपजी। जैसे बीजसे प्रथम अंकुर होताहै-फिर अंकुर से वृक्षहोताहै तैसेही अहङ्कारसे शरीरकी आस्था होतीहै। हे मुनीश्वर! जैसे बालक छायामें वैताल देखकर दीनताको प्राप्तहोताहै तैसेही अहङ्काररूपी पिशाच ने मुझको दीनकिया है। वह अहङ्काररूपी पिशाच अविचारसे सिद्धहै। जैसे प्रकाशसे अन्धकार नाश होजाता है तैसे ही विचार कियेसे अहङ्कारनाश होजाताहै। हे मुनीश्वर! जिसशरीरमें आस्थारक्खीहै वह जलके प्रवाहकी नाईहै स्थिरनहीं होता जैसे बिजली का चमकना स्थिरनहीं और गन्धर्व नगरी की आस्थाव्यर्थहै तैसेही शरीरकीआस्थाकरनी व्यर्थ है। हे मुनीश्वर! जो शरीरकी आस्थाकरके अहङ्कारकरते हैं और जगत्के पदार्थों के निमित्तयत्नकरते हैं वे महामूर्ख हैं। जैसे स्वप्न मिथ्याहै तैसेही यह जगत् मिथ्याहै। जो उसको सत्यजानताहै वह अपने बन्धनके निमित्त यत्नकरताहै। जैसे घुरान अर्थात् कुसवारी अपने बन्धन के निमित्त गुफाबनाती है और पतङ्ग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करता है तैसेही अज्ञानी को अपने देहका अभिमान और भोग की इच्छा अपनेही नाशके निमित्तहै। हे मुनीश्वर! मैंतो इस शरीर को अङ्गीकार नहींकरता। इस शरीरका अभिमान परम दुःख देनेवाला है। जिसको देहका अभिमान नहींरहा उसको भोगकी इच्छाभी न रहैगी। इससे मैं निराशहूं और मुझे परमपदकी इच्छा है जिसके पाये से फिर संसार समुद्रकी प्राप्ति न हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेदेहनैराश्यवर्णनन्नामत्रयोदशस्सर्गः ॥ १३॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! इसजीवको संसारसमुद्रमें जन्म पाकर प्रथम बाल अवस्था प्राप्त होती है वहभी परम दुःखका मूलहै। उससे वह परमदीन होजाताहै और इतने अवगुण इसमें आ प्रवेशकरतेहैं अर्थात् अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता, दुःख, संताप इतने विकार इसको प्राप्तहोते हैं। यह बाल्यावस्था महाविकारवान् है। बालक पदार्थकी ओर धाताहै और एक वस्तुका ग्रहणकर दूसरीको चाहता है स्थिर नहीं रहता फिर और में लगजाताहै। जैसे वानर स्थिर नहीं बैठता और जो किसीपर क्रोधकरताहै तो भीतरसे जलताहै। वह बड़ीबड़ी इच्छाकरताहै पर उसकी प्राप्ति नहीं होती सदा तृष्णामें रहताहै और क्षणमें भयभीत होजाताहै शान्ति प्राप्त नहीं होती और जैसे कदलीवनका हाथी जँजीरसे बँधाहुआ दीन होजाताहै तैसेही यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्था से दीन होजाताहै वह जो कुछ, इच्छा करताहै सो विचारविनाहै उससे दुःखपाताहै। यह मूढ़ गूंगी अवस्थाहै उससे कुछ सिद्धि नहीं

होती और जो किसी पदार्थ की प्राप्ति होती है तो उसमें क्षणमात्र सुखीरहताहै फिर तपने लगताहै। जैसे तपती पृथ्वीपर जलडालिये तो एकक्षण शीतल होतीहै फिरउसी प्रकारसे तपती है तैसेही वहभी तपतारहताहै। जैसे रात्रिके अन्तमें सूर्यउदय होता है उससे उलूकादि कष्टवान् होतेहैं तैसेही इसजीवको स्वरूप के अज्ञानसे बाल्यावस्था में कष्ट होता है । हे मुनीश्वर ! जो बालकअवस्थाकी सङ्गति करता है वहभी मूर्ख है क्योंकि; यह विवेकरहित अवस्थाहै और सदा अपवित्रहै और सदापदार्थकी ओर धावती है। ऐसी मूढ़ और दीन अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं इसमें जिस पदार्थको देखताहै उसकी ओर धाताहै। जैसे कुत्ता क्षणक्षणमें द्वारकी ओर जाताहै और अपमान पाताहै तैसेही बालक अपमान पाताहै। बालकको माता, पिता, बान्धव और आपसे बड़े बालक और पशु पक्षीकाभी भय रहताहै । हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखरूप अवस्थाकी मुझको इच्छानहीं। जैसे स्त्रीके नयन और नदीका प्रवाह चञ्चलहै उससे भी मन और बालक चञ्चलहैं और सब चञ्चलता बालकसे कनिष्ठहैं। हे मुनीश्वर! जैसे वेश्या का चित्त एक पुरुष में नहीं ठहरता तैसेही बालक का चित्त एक पदार्थमें नहीं ठहरता और उसको यह विचारभी नहीं होता कि, इस पदार्थ से मेरा नाशहोगा वा कल्याण होगा बालक ऐसेही व्यर्थ चेष्टा करताहै, सदा दीन रहता है और सुख दुःख की इच्छासे तपायमान रहताहै। जैसे ज्येष्ठ आषाढ़में पृथ्वी तपायमान होतीहै तैसेही बालक तपतारहताहै शान्ति कदाचित् नहीं पाता। वह जब विद्यापढ़ने लगता है तब गुरुसे ऐसे भयभीत होताहै जैसे कोई यमको देखके भयपावे और जैसे गरुड़को देख के सर्पडरे। जब शरीर में कोई कष्ट प्राप्तहोता है तबभी वह बड़े दुःखको प्राप्तहोता है और उस दुःख को निवारण नहीं करसक्ता और सहनेकीभी सामर्थ्य नहीं होती; भीतरही भीतर जलताहै और मुखसे कुछ बोल नहीं सक्ता। जैसे वृक्ष कुछ नहीं बोलसक्ता और जैसे तिर्यक् योनि दुःखपाती हैं, न कुछ कहसक्ती हैं न दुःखका निवारण करसक्ती हैं और न संहारही करसक्तीं भीतरही भीतर जलती हैं तैसेही बालकभी गूंगा और मूढ़ हुआ दुःख पाता है। हे मुनीश्वर! ऐसी बालक अवस्था की स्तुति करनेवाला मूर्ख है। यह तो परम दुःखरूप अवस्था है। इसमें विवेक और विचारभी कुछ नहीं होता। बालक खानेको पाता है और रुदनकरता है। ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती। जैसे बिजली और जलके बुद्बुदे स्थिर नहीं रहते तैसेही बालकभी कदाचित् स्थिर नहीं रहता। हे मुनीश्वर! यह महामूर्ख अवस्था है। इसमें कभी कहता है कि हे पितः! मुझको बरफका टुकड़ाभूनदे और कभी कहता है कि मुझको चन्द्रमा उतारदे। ये सब मूर्खताके वचन हैं इससे ऐसी मूर्खावस्थाको मैं अङ्गीकार नहीं करता। जैसे दुःखका अनुभव बालकको होताहै वह हमारे स्वप्नमें भी नहीं आया। यह बाल्या-

वस्था अवगुण का भूषण है और अवगुणसे शोभित है । ऐसी नीच अवस्थाको मैं अङ्गीकार नहीं करता। इसमें गुणकोई भी नहीं है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यबाल्यावस्थावर्णनन्नामचतुर्दशस्सर्गः ॥ १४ ॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर ! दुःखरूप बाल्यावस्था के अनन्तर युवावस्था आती है सो नीचेसे ऊंचे चढ़तीहै वहभी उत्तम नहीं अधिक दुःखदायक है । जब युवावस्था आतीहै तब कामरूपी पिशाच आ लगताहै । वह कामरूपी पिशाच युवावस्थारूपी गढ़ेमें आ स्थितहोता है, चित्तको फिराताहै और इच्छा पसारता है। जैसे सूर्यके उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिल आताहै और पंखुरियों को पसारता है तैसेही युवावस्था रूपी सूर्य उदयहोकर चित्तरूपी कमल और इच्छारूपी पंखुरीको पसारता है । फिर जैसे किसीको अग्निकेकुण्डमें डालदियाहो और वह दुःखपावे तैसेही कामकेवशहुआ दुःखपाता है । हे मुनीश्वर ! जो कुछ विकार हैं सो सब युवावस्था में प्राप्त होते हैं । जैसे धनवान् को देखके सब निर्द्धन धनकी आशाकरते हैं तैसेही युवावस्था देखकर सब दोष इकट्ठे होते हैं । जो भोगको सुखरूप जानकर भोगकी इच्छाकरता है वह परम दुःखका कारणहै । जैसे मद्यका घट भराहुआ देखनेमात्र सुन्दर लगताहै परन्तु जब उस को पानकरै तब उन्मत्त होकर दीनहोजाता है और निरादर पाताहै तैसेही भोग देखने मात्र सुन्दर भासते हैं परन्तु जब इनको भोगताहै तब तृष्णासे उन्मत्त और पराधीन होजाता है। हे मुनीश्वर! यह काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार आदि सब चोर युवारूपी रात्रिको देखकर लूटने लगते हैं और आत्मज्ञानरूपी धन को लेजाते हैं उस से जीव दीनहोता है। आत्मानन्दके वियोगसेही जब दीनहुआहै। हे मुनीश्वर! ऐसी दुःख देनेवाली युवावस्था का मैं अङ्गीकार नहीं करता। शान्ति चित्त के स्थिरकरने के लिये है पर युवावस्था में चित विषयकी ओर धावता है। जैसे बाण लक्षकी ओर जाता है तब उसको विषयका संयोग होताहै और वही विषयकी तृष्णा निवृत्त नहीं होती और तृष्णाके मारे जन्मसे जन्मान्तररूप दुःखपाताहै। हे मुनीश्वर! ऐसीदुःखदायक युवावस्था की मुझको इच्छानहीं है। हे मुनीश्वर! जैसे प्रलयकालमें सबदुःख आन स्थित होतेहैं तैसेहीकाम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, चपलता इत्यादिक सब दुःख युवावस्था में स्थिरहोते हैं जो सब बिजलीकी चमकसेहैं होके मिटजातेहैं। जैसे समुद्रमें तरङ्ग होकर मिटजाते हैं तैसेही यह क्षण भङ्ग है और तैसेही युवावस्थाहोके मिटजातीहै। जैसे स्वप्नमें कोई स्त्री विकारसे छलजातीहै तैसेही अज्ञान से युवावस्था छलजाती है। हे मुनीश्वर! युवावस्था जीवकी परमशत्रु है। जे पुरुष इस शत्रुके शस्त्रसे बचेहैं वही धन्यहैं। इसके शस्त्र काम और क्रोधहैं जो इनसे छुटा वह बज्रके प्रहारसे भी न छेदाजावेगा और जो इनसे बंधाहुआहै वह पशुहै। हे मुनीश्वर!

युवावस्था देखनेमें तो सुन्दर है परन्तु भीतरसे तृष्णासे जर्जरीभूत है। जैसे वृक्ष देखनेमें तो सुन्दर हो पर भीतरसे घुन लगा हुआहो तैसेही युवावस्थाहै जो भोगोंके निमित्त यत्नकरतीहै वे भोग आपातरमणीय हैं कारण यह कि, जबतक इन्द्रियों और विषयका संयोगहै तबतक अविचार से भला लगताहै और जब वियोग होताहै तब दुःख होताहै। इसलिये भोगकरके मूर्ख प्रसन्न और उन्मत्त होतेहैं उनको शान्ति नहीं होती भीतर सदा तृष्णा रहती है और स्त्री में चित्तकी आसक्ति रहतीहै जब इष्टवनिताका वियोग होताहै तब उसको स्मरणकरके जलताहै जैसे वनका वृक्ष अग्निसे जलताहै तैसेही युवावस्था में इष्टवियोगसे जीव जलताहै। जैसे उन्मत्त हस्ती जँजीर से बँधता तो स्थिर होताहै कहीं जा नहींसक्ता तैसेही कामरूपी हस्तीको जंजीररूपी युवावस्था बन्धनकरतीहै। युवावस्थारूपी नदी है उसमें इच्छारूपी तरङ्ग उठतेहैं वे कदाचित् शान्ति नहीं पाते। हे मुनीश्वर! यह युवावस्था बड़ीदुष्टहै। बड़े बुद्धिमान्, निर्मल और प्रसन्न पुरुषकी बुद्धिकोभी मलिनकरडालतीहै। जैसे निर्मलजलकी बड़ी नदी वर्षाकाल में मलिन होजाती है तैसेही युवावस्था में बुद्धि मलिन होजाती है। हेमुनीश्वर! शरीररूपी वृक्षहै उसमें युवावस्थारूपी वल्ली प्रकट होती है सो पुष्टहोतीजाती है तब चित्तरूपी भँवरा आबैठता है और तृष्णारूपी उसकी सुगन्धसे उन्मत्त होताहै और सब विचार भूलजाताहै। जैसे जब प्रबलपवन चलताहै तब सूखेपत्रोंको उड़ालेजाताहै तैसेही युवावस्था वैराग्य, सन्तोषादिक गुणोंका अभाव करतीहै दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्य है उसके उदयसे सब दुःख प्रफुल्लित होआते हैं। इससे सब दुःखोंका मूल युवावस्था है। जैसे सूर्यके उदयसे सूर्यमुखी कमल खिलआते हैं तैसेही चित्त रूपी कमल संसार रूपी पँखुरी और सत्यतारूपी सुगन्धसे खिलआताहै और तृष्णारूपी भँवरा उसपर आ बैठता और विषयकी सुगन्ध लेता है। हे मुनीश्वर! संसाररूपी रात्रिहै उसमें युवावस्थारूपी तारागण प्रकाशतेहैं अर्थात् शरीर युवावस्थासे सुशोभित होताहै। जैसे धानके छोटे वृक्ष हरे तबतक रहते हैं जबतक उसमें फल नहीं आया। जब फूल आताहै तब वृक्ष सूखने लगते हैं और अन्नके कण परिपक्क होतेहैं वृक्षकी हरियाली नहीं रहसक्ती तैसेही जबतक जवानी नहीं आई तबतक शरीर सुन्दर कोमल रहताहै जब जवानी आई तब शरीर क्रूर होजाताहै और फिर परिपक्क होकर क्षीण और वृद्ध होताहै। इससे हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवावस्थाकी मुझको इच्छा नहीं। जैसे समुद्र बड़े जलसे तरङ्गों को पसारता और उछालताहै तोभी मर्यादा नहीं त्यागकरता क्योंकि; ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामें रहनेकीहै और युवावस्था तो ऐसीहै कि शास्त्र और लोककी मर्यादा मेटके चलतीहै और उसको अपना विचार नहीं रहता। जैसे अन्धकार में पदार्थका ज्ञान

नहीं होता तैसेही युवावस्थामें शुभाशुभ का त्याग नहीं होता। जिसको विचार नहीं रहा उसको शान्ति कहांसे हो; वह सदा व्याधि तापमें जलता रहताहै। जैसे जल विना मच्छको शान्ति नहीं होती तैसेही विचारविना पुरुष सदा जलतारहता है। जब युवावस्थारूप रात्रि आती है तब काम पिशाच आके गर्जता है और यही सङ्कल्प उठते हैं कि, कोई कामी पुरुष आवे तो उसके साथ मैं यही चर्चा करूं कि हे मित्र! यह स्त्री कैसी सुन्दर है और उसके कैसे कटाक्ष हैं। वह किसप्रकार मुझको प्राप्तहो? हे मुनीश्वर! इस इच्छा से वह सदा जलताही रहता है। जैसे मरुस्थलकी नदीको देख मृग दौड़ताहै और जल की अप्राप्तिसे जलताहै तैसेही कामीपुरुष विषयकी बासनासे जलताहै और शान्ति नहीं पाता। हे मुनीश्वर! मनुष्य जन्म उत्तमहै परन्तु जिनके अभाग्य हैं उनको विषयसे आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती। जैसे किसी को चिन्तामणि प्राप्तहो और वह उसका निरादर करे उसका गुन न जानकर डाल दे तैसेही जिस पुरुष ने मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया वह बड़ा अभागी है और मूर्खतासे अपने जन्मको व्यर्थ खोडालताहै वह युवावस्थामें परमदुःखका क्षेत्र अपनेनिमित्त बोताहै और मान, मोह, मद इत्यादि विकारोंसे पुरुषार्थका नाश करता है। हे मुनीश्वर! युवावस्था ऐसे बड़े विकारोंको प्राप्तकरती है। जैसे नदी वायु से अनेक तरङ्ग पसारतीहै तैसेही युवावस्था चित्तके अनेककामोंको उठाती है। जैसे पक्षी पंखसे बहुत उड़ताहै और जैसे सिंह भुजाके बलसे पशुको मारने दौड़ता है तैसेही चित्तयुवावस्था से विक्षेपकी ओर धाता है। हे मुनीश्वर! समुद्रका तरना कठिन है क्योंकि; उसमें जल अथाहहै, उसका विस्तारभी बड़ाहै और उसमें कच्छ मच्छ मगर भी बड़े देहधारी जीव रहते हैं पर मैं उसका तरनाभी सुगम मानता हूं परन्तु युवावस्थाका तरना महाकठिन है अर्थात् युवावस्था में निर्दोष रहना कठिन है। ऐसी सङ्कटवाली युवावस्थामें जो चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्य हैं और बन्दना करने योग्यहैं। हे मुनीश्वर! यह युवावस्था चित्तको मलीन कर डालती है। जैसे जल की बावली के निकट राख और कांटे हों और पवन चलनेसे सब आ बावली में गिरें तैसेही पवनरूपी युवावस्था दोषरूपी धूर और कांटों को चित्तरूपी बावली में डालके मलीनकरदेतीहै। ऐसे अवगुणोंसे पूर्ण युवावस्थाकी इच्छा मुझको नहीं है। युवावस्था मुझपर यही कृपाकर कि तेरा दर्शन न हो। तेरा आना मैं दुःखका कारण मानता हूं। जैसे पुत्रके मरण का सङ्कट पिता नहीं सहसक्ता और सुखका निमित्त नहीं देखता तैसेही तेरा आना मैं सुखका निमित्त नहीं देखता। इससे मुझपर दयाकर कि, अपना दर्शन न दे। हे मुनीश्वर! युवावस्था का तरना महा कठिन है। यौवनवान् नम्रता संयुक्त नहीं होते और शास्त्र के गुण वैराग्य, विचार, संतोष और शान्ति

इनसे भी सम्पन्न नहीं हैं। जैसे आकाशमें वन होना आश्चर्य्य है तैसेही युवावस्था में वैराग्य, विचार, शान्ति और संतोष होनाभी बड़ा आश्चर्य्य है। इससे आप मुझ से वही उपाय कहिये जिससे युवावस्था के दुःखकी मुक्ति होकर आत्मपद की प्राप्ति हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेयुवागारुढ़ीवर्णनन्नामपञ्चदशस्सर्गः॥ १५॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! जिस कामविलास के निमित्त पुरुष स्त्री की वाञ्छा करता है वह स्त्री अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र और विष्ठासे पूर्णहै और इन्हीं की पुतली बनीहुई है। जैसे यन्त्रीकी बनी पुतली तागे के द्वारा अनेक चेष्टा करती है वैसेही यह अस्थि, मांसादिक की पुतलीमें कुछ और नहीं है। जो विचार से नहीं देखता उसको रमणीक दिखती है। जैसे पर्वतके शिखर दूरसे सुन्दर और गङ्गमाला सहित भासते हैं और निकटसे असार हैं—पत्थरही पत्थर दिखते हैं तैसेही स्त्री वस्त्र और भूषण से सुन्दर भासती है और जो अङ्गको भिन्न भिन्न विचारकर देखो तो सार कुछ नहीं। जैसे नागिनिके अङ्ग बहुत कोमल होते हैं परन्तु उसका स्पर्शकरे तो काटके मारडालती है तैसेही जो कोई स्त्रीको स्पर्शकरते हैं उनको वह नाशकरडालती है। जैसे विषकी बेल देखनेमात्र सुन्दर लगती है परन्तु स्पर्श किये से मारडालती है और जैसे हाथी को जंजीर से बांधे तो जिस द्वारपै रहताहै वहांहीं स्थिर रहता है तैसेही अज्ञानी का चित्तरूपी हाथी कामरूपी जंजीरसे बँधाहुआ स्त्रीरूपी एक स्थान में स्थिर रहता है वहांसे कहीं जा नहीं सक्ता। जबहाथी को महावत अंकुशका प्रहार करता है तबभी वह बन्धन को तोड़के निकलजाताहै तैसेही इस चित्तरूपी मूर्ख हाथीको जब महावत-रूपी गुरु उपदेशरूपी अंकुशका बारम्बार प्रहारकरताहै तब निर्बन्ध होजाताहै। हे मुनीश्वर! कामी पुरुष स्त्रीकी वाञ्छा अपने नाशके निमित्त करताहै। जैसे कदलीवन का हाथी कागद की हथिनी देखकर और छलपाके बन्धन में आता है और उससे परम दुःख पाताहै तैसेही परमदुःखका मूल स्त्रीका सङ्गहै। हे मुनीश्वर! जैसे बनके दाह की अग्नि बनको जलाती है तैसेही स्त्रीरूपी अग्नि उससेभी अधिक है क्योंकि; उस अग्निके स्पर्श कियेसे तप्त होतीहै और स्त्रीरूपी अग्नि तो स्मरणमात्रसेही जलाती है। जो सुख रमणीय दिखता है वह आपातरमणीय है; जब स्त्री सुखका वियोगहोता है तब मुरदेकी नाईं होजाताहै—हे मुनीश्वर! यह तो अस्थि, मांस और रुधिर का पिंजराहै सो अग्निमें भस्म होजायगा अथवा पशु पक्षीके खाने का आहार होगा और प्राण आकाशमें लीन होजावेंगे—इस से इस स्त्रीकी इच्छाकरनी मूर्खताहै। जैसे अग्निकी ज्वालाके ऊपर श्यामता होती है तैसेही स्त्रीके शीशके ऊपर श्याम केशहैं और जैसे अग्निके स्पर्श कियेसे जलताहै तैसेही स्त्रीके स्पर्श करनेसे पुरुष जलताहै इससे जलना दोनोंमें तुल्यहै। हे मुनीश्वर! युवावस्था को नाश करनेवाली स्त्रीरूपी

अग्निहै । जो स्त्री की इच्छा करते हैं वह महामूर्ख और अज्ञानी हैं । वह स्त्री की इच्छा अपने नाश के निमित्त करते हैं । जैसे पतङ्ग अपने नाश के निमित्त दीपककी इच्छाकरताहै तैसेही कामी पुरुष अपने नाश के निमित्त स्त्री की इच्छा करता है । हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी विषकी वल्ली है, हाथ पांवके अग्रभाग उस के पत्र हैं, भुजा डाली हैं, अस्थिरूप गुच्छे हैं और नेत्र आदिक इन्द्रियां फूलहैं उसपर कामी पुरुषरूपी भँवरे आ बैठते हैं । कामरूपी धीवरने स्त्री रूपी जाल पसारा है उसपर कामी पुरुषरूपी पक्षी आफँसते हैं । कामरूपी धीवर उनको फँसाकर परमकष्ट देता है । ऐसे दुःखको देनेवाली स्त्रीकी जो वाञ्छा करते हैं वह महामूर्ख हैं । हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी सर्पिणी है जब उसका फूत्कार निकलता है तब वैराग्यरूपी कमल जल जाते हैं और जब सर्पिणी डसती है तब विष चढ़ताहै । स्त्रीरूपी सर्पिणीका चिन्तन करतेही भीतर से आपही विष चढ़जाता है । हे मुनीश्वर ! जैसे व्याधा छलकर मछली को फँसाता है तैसेही कामीपुरुष छली के सदृश सुन्दर स्त्रीरूपी जाल देख के फँसता है और स्नेहरूपी तागे से बन्धन पा खैंचा चला जाता है, तब तृष्णारूपी छुरी से काम उसे मारडालता है । हे मुनीश्वर ! ऐसे दुःख के देनेवाली स्त्री की मुझको इच्छा नहीं । कामरूपी व्याध रागरूपी इन्द्रियों से जाल बिछा कामीपुरुषरूपी मृगों को आसक्त कर डालता है । स्त्री की स्नेहरूपी डोरी है उससे कामीपुरुषरूप बैल बँधा है और स्त्री का मुखरूपी चन्द्रमा देखकर कामी पुरुषरूपी कमलिनी खिल आती हैं । जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न होते हैं और सूर्यमुखी नहीं होते तैसेही कामीपुरुष भोगसे प्रसन्न होते हैं और ज्ञानवान् प्रसन्न नहीं होते । जैसे नेवला सर्प को बिल से निकाल के मारता है तैसेही कामीपुरुष को स्त्री आत्मानन्द में से निकाल के मारडालती है । पुरुष जब स्त्री के निकट जाता है तब वह उसको भस्म करडालती है । जैसे सूखे तृण और घृतको अग्नि भस्म करडालती है तैसेही कामी पुरुषको स्त्रीरूपी नागिनि भस्म कर डालती है । हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी रात्रि का स्नेहरूपी अन्धकार है और काम, क्रोधादिक उसमें उलूक और पिशाचहैं । हे मुनीश्वर ! जो स्त्रीरूपी खड्गके प्रहार से युवारूपी संग्राम में बचा है वह पुरुष धन्य है; उसको मेरा नमस्कार है । स्त्री का संयोग परमदुःख का कारण है इस से मुझको इसकी इच्छा नहीं । हे मुनीश्वर ! जो रोग होता है उसी के अनुसार जो औषध करता है तो रोग निवृत्त होता है और कुपथ्य से उसका प्रलय होता है और रोग बढ़जाता है इस से मेरे रोगके अनुसार औषध करो । मेरा रोग सुनिये कि, जरा और मृत्यु मुझको बड़ा रोग है । उसके नाशकी औषध मुझको दीजिये स्त्री आदिक सब भोग तो रोगके वृद्धिकर्त्ता हैं । जैसे अग्निमें घृत डालिये तो बढ़जाती है तैसेही भोगसे जरा मृत्यु

आदि रोग बढ़ते हैं। इससे इस रोग के निवृत्ति की औषध करो नहीं तो सब का त्याग कर मैं वन में जा रहूंगा। हे मुनीश्वर! जिसके स्त्री है उसको भोगकी इच्छा भी होती है और जिसके स्त्री नहीं होती उसको स्त्रीकी इच्छा भी नहीं। जिसने स्त्री का त्याग किया है उसने संसार का भी त्याग किया है और वही सुखी है। संसार का बीज स्त्री है इससे मुझको स्त्री की इच्छा नहीं। मुझको वही औषध दीजिये जिससे जरा मृत्यु आदि रोग की निवृत्ति हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेस्त्रीदुराशावर्णननामषोड़शस्सर्गः॥ १६॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! बालक अवस्था तो महाजड़ और अशक्त है। जब युवावस्था आती है तब बाल्यावस्था का ग्रहण करलेती है और उसके अनन्तर जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है और बुद्धि क्षीण होजाती है फिर मृत्युपाता है। हे मुनीश्वर! इसप्रकार अज्ञानी का जीना व्यर्थ है कुछ अर्थ की सिद्धि नहीं। जैसे नदी के तटपर के वृक्ष जल के प्रवाहसे जर्जरीभूत होजाते हैं तैसेही वृद्धावस्था में शरीर जर्जरीभूत होजाता है जैसे पवन से पत्र उड़जाते हैं तैसेही वृद्धावस्था में शरीर नाशपाता है। जितने कुछ रोग हैं वह सब वृद्धावस्था में आ प्राप्त होते हैं और शरीर कृश होजाता है उस समय स्त्री, पुत्रादिकभी सब वृद्धका त्याग करदेते हैं। जैसे पक्के फलको वृक्ष त्याग देता है तैसेही वृद्धको कुटुम्ब त्याग देताहै और जैसे बावले को देख के सब हँसके बोलते हैं कि, इसकी बुद्धि जातीरही तैसेही इसको भी देखके हँसते हैं जैसे कमल का फूल बरफ पड़ने से जर्जरीभूत होजाता है तैसेही जरावस्था में पुरुष जर्जरीभाव को प्राप्त होता है, शरीर कुबड़ा होजाता है; केश श्वेत होजाते हैं और शक्ति क्षीण होजाती है। जैसे चिरकाल के बड़े वृक्षमें घुन लगताहै तैसेही इसमें कुछ शक्ति नहीं रहती। हे मुनीश्वर! और भी सब कृत्य क्षीण होजाती हैं परन्तु एक आसक्तिमात्र रहती है। जैसे बड़े वृक्षपर उलूक आ रहते हैं तैसेही इस में क्रोधशक्ति आरहती है और सब शक्ति क्षीण होजाती हैं। हे मुनीश्वर! जरावस्था दुःख का घरहै। जब जरावस्था आती है तब सब दुःख इकट्ठे होते हैं उनसे पुरुष महादीन होजाते हैं। युवाअवस्था का जो काम का बल रहता है सोभी जरामें क्षीण होजाता है, इन्द्रियोंकी आसक्ति घटजाती है और उनकी चपलता का अभाव होजाता है। जैसे पिता के निर्द्धन हुये पुत्र दीन होजाता है तैसेही शरीर के निर्बलहुये इन्द्रियां भी निर्बल होजाती हैं केवल एक तृष्णा उन्मत्त हो बढ़जाती है। हे मुनीश्वर! जब जरारूपी रात्रि आती है तब खांसीरूपी स्यार आ शब्द करते हैं और आधिव्याधिरूपी उलूक आनिवास करते हैं। हे मुनीश्वर! ऐसी नीच वृद्धावस्थाकी मुझको इच्छा नहीं जैसे पक्के फलसे वृक्ष झुकजाता है तैसेही जराके आने से देह कुबड़ी होजाती है

युवावस्थामें स्त्री पुत्रादिक चाहते और उसकी टहल करते थे पर वही सब उसको वृद्धावस्था में जैसे वृद्धबैलको बैलवाला त्याग देता है तैसेही त्याग देते हैं, देख के हँसते हैं और अपमान करते हैं। उनको वह तब ऊंटकी नाईं भासता है। हे मुनीश्वर! ऐसी नीच अवस्था की मुझको इच्छा नहीं। अब जो कुछ कर्त्तव्य हो मुझसे कहिये मैं करूं? इस शरीरकी तीनों अवस्था में कोई सुखदायी नहीं क्योंकि; बाल्यावस्था महामूढ़ है, युवावस्था महाविकारवान् है और जरावस्था महादुःख का पात्र है। बाल्यावस्था को युवावस्था ग्रास करलेती है; युवावस्था को जरावस्था ग्रास कर लेती है और जरावस्था को मृत्यु ग्रास करलेती है। यह अवस्था सब अल्पकालकी हैं इनके आश्रयसे मुझको क्या सुख होगा? इस से आप मुझे वही उपाय बताइये जिससे इस दुःख से मुक्त होजाऊं। हे मुनीश्वर! जब जरावस्था आती है तब मरना भी निकट आता है। जैसे सन्ध्याके आये रात्रि तत्काल आजाती है और जो सन्ध्याके आये दिनकी इच्छा करते हैं वह मूर्ख हैं तैसेही जराके आये जीनेकी आशा रखनी महामूर्खता है। हे मुनीश्वर! जैसे बिल्ली चिन्तन करती है कि, चूहा आवे तो पकड़ लूं तैसेही मृत्यु भी चितवती है कि, जरावस्था आवे तो मैं इसका ग्रहणकरलूं। हे मुनीश्वर! यह परम नीच अवस्था है। यह जब आती है तब शरीर को जर्जरीभूत करदेती है; कँपनी लगती है और शरीर को निर्बल और क्रूर करदेती है। जैसे कमल पर बरफ की वर्षा हो और वह जर्जरीभूत होजाय तैसेही यह शरीर को जर्जरीभूत कर डालती है। जैसे वन में बाघ आके शब्द करते हैं और मृग का नाश करते हैं तैसेही खांसीरूपी बाघ आ मृगरूपी बल का नाश करते हैं। हे मुनीश्वर! जब जरा आती है तब जैसे चन्द्रमा के उदय से कमलिनी खिल आती है तैसेही मृत्यु प्रसन्न होती है। यह जरावस्था बड़ी दुष्टा है; इसने बड़े बड़े योधों को भी दीन करदिया है। यद्यपि बड़े २ शूर संग्राम में शत्रुओं को जीते हैं पर उनको भी जरा ने जीतलिया है। जो बड़े २ पर्वतों को चूर्णकर डालते हैं उनको भी जरा पिशाचिनी ने महादीन करदिया है। इस जरारूपी राक्षसी ने सबको दीन करदिया है। यह सबको जीतनेवालीहै। हे मुनीश्वर! जैसे वृक्ष में अग्नि लगती और उसमें से धूम निकलताहै। तैसेही शरीररूपी वृक्षमें से जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धुवां निकलता है। जैसे डिब्बे में बड़े रत्न रहते हैं। तैसेही जरारूपी डिब्बे में दुःखरूपी अनेक रत्न रहते हैं। जरारूपी वसन्तऋतु है; उससे शरीररूपी वृक्ष दुःखरूपी रस से होता है। जैसे हाथी जंजीर से बँधाहुआ दीन होजाता है तैसेही जरारूपी जंजीरसे बँधा पुरुष दीन होजाता है, उसके अङ्ग सब शिथिल होजाते हैं, बलक्षीण होजाता; इन्द्रियां भी निर्बल होजाती हैं और शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होताहै परन्तु तृष्णा नहीं घटती वह तो नित्य बढ़तीही चली

जाती है। जैसे रात्रि आतीहै तब सूर्यवंशी कमल सब मुंदजाते हैं और पिशाचिनी आ विचरने लगती है और प्रसन्न होती है तैसेही जरारूपी रात्रि के आयेसे सब शक्तिरूप कमल मुंदजाते हैं और तृष्णारूपी पिशाचिनी प्रसन्न होती है। हे मुनीश्वर! जैसे गङ्गातट के वृक्ष गङ्गाजल के वेग से जर्जरीभूत होजाते हैं तैसेही जो यह आयुरूपी प्रवाह चलता है उसके वेग से शरीर जर्जरीभूत होजाता है। जैसे मांसके टुकड़े को देख आकाश से उड़ती चील नीचे आ लेजाती है तैसेही जरावस्था में शरीररूपी मांस को काल लेजाता है। हे मुनीश्वर! यह तो काल का ग्रास बना हुआ है। जैसे वृक्ष को हाथी खाजाता है तैसे जरावाले शरीर को काल देखके खाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेजरावस्थानिरूपणंनामसप्तदशस्सर्गः॥ १७॥

रामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! संसाररूपी गढ़ा है उसमें अज्ञानी गिरा है पर संसाररूपी गढ़ा तो अल्प है और अज्ञानी बड़ा होगया है। संकल्प, विकल्प की आधिक्यता से बढ़ा है। जो ज्ञानवान् पुरुष है वह संसार को मिथ्या जानता है और संसाररूपी जाल में नहीं फँसता और जो अज्ञानी पुरुष है वह संसार को सत्य जान कर उसकी आस्थारूपी जाल में फँसता है और भोग की वाञ्छा करता है वह भौंरा ऐसे है जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब देखकर बालक पकड़ने की इच्छा करता है तैसे अज्ञानी संसार को सत्य जानकर जगत् के पदार्थ की वाञ्छा करता है कि, यह मुझे प्राप्त हो और यह न हो। यह सब सुख नाशात्मक हैं अभिप्राय यह कि, आते हैं और जाते हैं स्थिर नहीं रहते; इनको काल ग्रास करताहै जैसे पक्के अनार को चूहा खाजाता है तैसेही सब पदार्थों को काल खाता है। हे मुनीश्वर! यह सब पदार्थ कालग्रसित हैं जैसे नेवला सर्प को भक्षण करजाताहै तैसेही बड़े बड़े बली सुमेरु ऐसे गम्भीर पुरुषों को कालने ग्रसित कियाहै। जगत्रूपी एकगूलर का फल है; उसमें मच्छर ब्रह्मादिक हैं और इसका वन ब्रह्मरूप है। उस ब्रह्मरूप वन में जितने वन हैं सो सब इसका आहार हैं। यह काल सबको भक्षण करजाता है। हे मुनीश्वर! यह काल बड़ा बलिष्ठहै; जो कुछ देखने में आता है सो सब इसने ग्रास करलियाहै तो और का क्या कहना है और हमारे जो बड़े ब्रह्मादिक हैं उनकाभी काल ग्रास करजाता है। जैसे मृगका ग्रास सिंह करलेता है काल किसी से जाना नहींजाता क्षण, घरी, प्रहर, दिन, मास और वर्षादिक में जानिये सोई काल है और काल की मूर्ति प्रकट नहीं है। यह किसी को स्थित नहीं होने देता। एक बेलि काल ने पसारी है उसकी त्वचा रात्रि है और रूप दिन है और जीवरूपी भौंरे उसपर आ बैठते हैं। हे मुनीश्वर! जगत्रूपी गूलर का फूल है उसमें जीवरूपी बहुत मच्छर रहते हैं। जैसे तोता अनार का भक्षण करता है तैसेही काल उस फूल का भक्षण करता है। जगत्रूपी वृक्षहै; जीवरूपी उसके

पत्र हैं और कालरूपी हस्ती उसका भक्षण करजाता है। शुभ अशुभरूपी भैंसे को कालरूपी सिंह छेद छेदके खाता है। हे मुनीश्वर! यह काल महाक्रूर है; किसीपर दया नहीं करता; सबका भोजन करजाता है। जैसे मृग सब कमलों को खायजाता है उससे कोई नहींबचता तैसेही काल भी सबको खाता है परन्तु एककमल बचा है। उस कमल के शान्ति और मैत्री अंकुर हैं और चेतनामात्र प्रकाश है इसकारण वह बचा है काल रूपी मृग इसतक नहीं पहुँचसक्ता बल्कि इसमें प्राप्त हुआ कालभी लीन होजाताहै। जो कुछ प्रपञ्चहैं सो सब काल के मुख में हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुबेर आदि सब मूर्त्ति काल की धरीहुई हैं। यह उनको भी अन्तर्द्धान करदेता है। हे मुनीश्वर! उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सबकाल से होते हैं। अनेक बेर इसने महाकल्पकाभी ग्रास किया है और अनेकबेर करेगा। कालको भोजनकिये से तृप्ति कदाचित् नहीं होती और कदाचित् होनेवालीभी नहीं। जैसे अग्नि घृत की आहुति से तृप्त नहीं होता तैसेही जगत् और सब ब्रह्माण्ड का भोजनकरके भी काल तृप्त नहीं होता। इसका ऐसा स्वभाव है कि, इन्द्र को दरिद्री करदेता है और दरिद्री को इन्द्र करदेता है; सुमेरु को राई बनाता है और राईको सुमेरु करताहै, सबसे बड़े ऐश्वर्य्यवान् को नीचकरडालताहै और सबसे नीच को ऊंच करडालता और बूंदको समुद्र करडालताहै और समुद्र को बूंद करताहै। ऐसी शक्ति काल में है। यहजीवरूपी मच्छरों को शुभाशुभ कर्मरूपी छुरेसे छेदता रहता है। कालकूपका चक्र जीवरूपी हँड़िया को शुभ अशुभ कर्मरूपी रस्सीसे बांधकर फिराताहै और जीवरूपी वृक्षको रात्रि और दिनरूपी कुल्हाड़े से छेदता है। हे मुनीश्वर! जितना कुछ जगत् विलास भासता है काल सबका ग्रहण करलेगा। जीवरूपी रत्न का काल डब्बा है सो सबको अपने उदर में डालता जाताहै। काल यों खेलकरता है कि चन्द्र, सूर्यरूपी गेंदों को कभी ऊर्ध्व को उछालता है और कभी नीचे डालता है। जो महापुरुष है वह उत्पत्ति और प्रलय के पदार्थों में से किसी के साथ स्नेह नहीं करता और उसका कालभी नाश नहीं करसक्ता। जैसे मुण्ड की माला महादेवजी गले में धारे हैं तैसेही यहभी जीवों की माला गले में डालता है। हे मुनीश्वर! जो बड़े बड़े बलिष्ठ हैं उनका भी काल ग्रहण करलेता है। जैसे समुद्र बड़ा है उसको वड़वानल पान करलेता है और जैसे पवन भोजपत्र को उड़ाता है वैसाही कालका भी बल है, किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थित रहे। हे मुनीश्वर! शान्तिगुण प्रधान देवता, रजोगुणप्रधान बड़े राजा और तमोगुणप्रधान दैत्य औरराक्षसहैं उन में किसी को सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थितहों। जैसे तौली में अन्न और जल भरके अग्नि पर चढ़ादेने से अन्न उछलता है और वह अन्न के दाने करछी से कभी ऊपर और कभी नीचे फिरजाते हैं तैसेही जीवरूपी अन्न के दाने जगत्‌रूपी तौली

में पड़ेहुये रागद्वेषरूपी अग्निपर चढ़े हैं और कर्मरूपी करछी से कभी ऊपर जाते हैं और कभी नीचे आते हैं। हे मुनीश्वर! यह काल किसी को स्थिर नहीं होने देता यह महाकठोर है दया किसी पर नहीं करता। इसका भय मुझ को रहता है इस से वही उपाय मुझसे कहिये जिससे मैं कालसे निर्भय होजाऊं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालनिरूपणन्नामाष्टादशस्सर्गः॥ १८॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! यह काल बड़ाबलिष्ठ है। जैसे राजाके पुत्र शिकार खेलने जाते हैं तो वन में बड़े पशु पक्षी उनसे खेद पाते हैं तैसेही यह संसाररूपी वन है उस में प्राणीमात्र पशु पक्षी हैं। जब कालरूपी राजपुत्र उसमें शिकार खेलने आता है तब सब जीव भय पाते हैं और जर्जरीभूत होते हैं और वह उनको मारता है। हे मुनीश्वर! यह काल महाभैरव है सबका ग्रास करलेता है। प्रलय में सबका प्रलय करडालता है और इसकी जो चण्डिका शक्ति है उसका बड़ा उदर है। वह कालिका सबका ग्रास करके पीछे नृत्य करती है। जैसे वनके मृग को सिंह और सिंहनी भोजन करके नृत्य करते हैं तैसेही जगत्रूपी वन में जीवरूपी मृग को भोजन करके काल और कालिका नृत्य करते हैं। फिर इन्हींसे जगत् का प्रादुर्भाव होता है। नानाप्रकार के पदार्थों को रचते हैं और पृथ्वी, बगीचे, बावली आदि सब पदार्थ इनहीं से उत्पन्न होते हैं। सुन्दर जीवों की उत्पत्ति भी इनसे होती है और एक समय में उनका नाश भी करदेती है। सुन्दर समुद्र रचके फिर उनमें अग्नि लगा देती है और सुन्दर कमल को बनाके फिर उसके ऊपर बरफकी वर्षा करती है। जहां बड़े बड़े स्थान बसते हैं उनको उजाड़ डालती है और फिर उजाड़ में बस्ती करतीहै और नाश भी करती है; स्थिर रहने किसी को नहीं देती। जैसे बाग में वानर आके वृक्षको ठहरने नहीं देता तैसेही कालरूपी वानर किसी पदार्थ को स्थिर रहने नहीं देता। हे मुनीश्वर! इसप्रकार से सब पदार्थ कालसे जर्जरीभूत होते हैं। उनका आश्रय मैं किस रीति से करूं? मुझको तो यह सब नाशरूप भासता है इससे अब मुझ को किसी जगत् के पदार्थकी इच्छा नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालविलासवर्णनन्नामैकोनविंशतितमस्सर्गः॥ १९॥

रामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! इसकाल का महापराक्रम है। इसके तेजके सन्मुख कोई नहीं रहसक्ता यह क्षणमें ऊंचको नीच और नीचको ऊंच करडालता है। उस का निवारण कोई नहीं करसक्ता सब उसी के भय से कँपते हैं। यह महाभैरव है सब विश्व का ग्रास करलेता है। इसकी चण्डिकारूप शक्ति है वह अति बलवान् है और नदीरूप है उसका उल्लङ्घन कोई नहीं करसक्ता। महाकालरूप काली है उसका बड़ा भयानक आकार है। कालरूप जो रुद्र है उससे अभिन्नरूपी कालिका है वह सबका

पान करके पीछे भैरव और भैरवी नृत्य करते हैं । उसकाल और कालिका का बड़ा आकार है । उसका आकाश शीश, पाताल में चरण हैं और दशों दिशा भुजा हैं । सप्त समुद्र उसके हाथ में कङ्कण हैं; सम्पूर्ण पृथ्वीरूप उसके हाथ में पात्र है; और उसपर जो जीव हैं वह भोजन योग्य हैं । हिमालय और सुमेरु पर्वत दोनों कानों में कुण्डल हैं; चन्द्रमा और सूर्य उसके दोनों लोचन हैं और सब तारागण उसके मस्तक में बिन्दु हैं । काल के हाथ में त्रिशूल और मूसल आदि शस्त्रहैं और कालिका के हाथ में तन्द्रारूपी फांसी है उससे जीवों को मारती है । ऐसी कालिका देवी सब जीवों का ग्रासकरके महाभैरवके आगे नृत्यकरती है, अट्टाट्टशब्द करती है और जीवों को भोजन करके उनकी मुण्डमाला गले में धारण करती है । भैरव जिनके सन्मुख रहने की किसी में शक्ति नहीं जहां उजाड़ है वहां क्षण में बस्ती करडालता है और जहां बस्ती है वहां क्षण में उजाड़ करता है । इसी से उसका नाम देव कहतेहैं । वह बड़े बड़े पदार्थोंका उत्पन्न और नाश करता है स्थिर किसी को रहने नहीं देता इससे इसका नाम कृतान्त है और नित्य रूप भी यही है क्योंकि; परिणाम जिसका अनित्यरूप है इसीसे इसका नाम कर्म है । जब अभावरूपी धनुष हाथ में धरता है तो उस से राग द्वेषरूपी बाण चलाता है और उस बाण से जर्जरीभूत करके नाश करता है । जैसे बालक मृत्तिका की सेना बनाता है और उठाकर नाशभी करदेता है तैसेही कालको उपजाने और नाश करने में कुछ यत्न नहीं करनापड़ता । हे मुनीश्वर! कालरूपी धीवर है और उसने क्रिया रूपीजाल पसारा है । उसमें जीवरूपी पक्षी फँसते हैं सो फँसेहुये शान्ति नहीं पाते । हे मुनीश्वर! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं इनमें आश्रय किसका करूं कि जिसमें सुख हो । यह तो स्थावर जङ्गम जगत् सब काल के मुख में है यह सब नाशरूप मुझको दृष्टि आवे हैं इससे जो निर्भय पद होय सो मुझको कहिये ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालजुगुप्सावर्णनन्नामविंशतितमस्सर्गः ॥ २० ॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! जितने पदार्थ भासते हैं वह सब नाशरूप हैं तो मैं किसकी इच्छाकरूं और किसका आश्रयकरूं? इनकी इच्छाकरनी मूर्खता है । जितनी चेष्टा अज्ञानी करताहै वह सब दुःखके निमित्त है और जीने में अर्थ की सिद्धि कुछ नहीं है क्योंकि; बालक अवस्था में मूढ़ता रहतीहै, कुछ विचार नहीं रहता । जब युवावस्था आती है तब मूर्खता से विषय को सेवता है और मानमोहादि विकारों से मोहाजाता है-उसमेंभी कुछ विचार नहीं होता और स्थिरभी नहीं रहता दीन का दीन रहके विषय की तृष्णाकरता है-शान्ति नहीं पाता । हे मुनीश्वर! आयुष्य महाचञ्चलहै और मृत्युतो निकट है उसमें अन्यथा भाव नहीं होता । हे मुनीश्वर! जितने भोग हैं

वे रोगहैं, जिसको सम्पदा जानते हैं वह आपदा है, जिसको सत्य कहते हैं वह असत्य रूप है, जिन स्त्री, पुत्रादिकों को मित्र जानते हैं वह सब बन्धन के कर्ता हैं और इन्द्रियां महाशत्रुरूप हैं। वह सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं, यह देह विकाररूप है, मन महाचञ्चल और सदा अशान्तरूप है और अहङ्कार महानीच है इसनेही दीनता को प्राप्त कियाहै। इससे जितनेपदार्थ इसको सुखदायक भासते हैं वह सब दुःखके देनेवाले हैं इससे कदाचित् शान्ति नहीं होती। इससे मुझको इनकी इच्छानहीं। यद्यपि यह देखनेमात्र सुन्दर भासते हैं पर इनमें सुख कुछ नहीं और स्थिर न रहेंगे। जैसे समुद्र में नाना प्रकारके तरङ्गभासते हैं पर वह सब बड़वाग्नि से नाशहोते हैं तैसेही यह पदार्थभी नाश होजाते हैं। मैं अपनी आयुमें कैसे आस्था करूं? हे मुनीश्वर! बड़े समुद्र, सुमेरु, राक्षस, दैत्य, देवता, सिद्ध, गन्धर्व, पृथ्वी, अग्नि, पवन, यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र, ध्रुव चन्द्रमा और बड़ेईश्वर जगत्के कर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और काल जो सबको भक्षणकरता है, कालकीस्त्री, सबका आधार आकाश और जितना जगत् है यह सब नष्ट होजावेंगे तो हमारी कौनगिनती है। हम किसकी आस्थाकरें और किसका आश्रय करें? यह सब जगत् भ्रममात्र है; अज्ञानी की इसमें आस्था होती है और हमारी नहीं कि, जगत् भ्रम कैसे उत्पन्नहुआ है। मैं इतना जानताहूं कि, संसार में जीव को इतना दुःखी अहङ्कार ने कियाहै। हे मुनीश्वर! यह जीव अपने परमशत्रु अहङ्कार से भटकता फिरता है। जैसे रस्सी से बँधे हुये पतङ्ग कभी ऊर्ध्व और कभी नीचे जातेहैं स्थिर कभी नहींरहते-तैसेही जीव अहङ्कारसे कभी ऊर्ध्व और कभी अधो जाता है स्थिर कभी नहीं होता। जैसे अश्वसे आरूढ़ रथके ऊपर बैठके सूर्य आकाशमार्ग में भ्रमते हैं तैसेही यह जीव भ्रमता है स्थिर कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! यह जीव परमार्थ सत्य स्वरूप से भूला हुआ भटकता है, अज्ञान से संसार में आस्था करता है और भोग को सुखरूप जानकर उसमें तृष्णा करताहै। पर जिसको सुखरूप जानता है वह रोगसमानहै और विषसे पूर्ण सर्प जीवका नाशकरनेवाला है जिसको सत्य जानताहै वह असत्य है सबकाल के मुख में ग्रसे हुये हैं। हे मुनीश्वर! विचार बिना जीव अपना नाश आपही करता है क्योंकि; इसका कल्याण करनेवाला बोध है। जब सत्य विचार बोध के शरण जाय तो कल्याण हो। जितने पदार्थ हैं वह स्थिर नहीं रहते। इनको सत्य जानना दुःख के निमित्तहै। हे मुनीश्वर! जब तृष्णा आती है तब आनन्द और धैर्यको नाश करदेती है। जैसे वायु मेघ का नाश करडालता है तैसे ही तृष्णा ज्ञान का नाश करडालती है। इससे मुझे वही उपाय कहिये जिससे जगत् का भ्रम मिटजाय और अविनाशी पद की प्राप्ति हो। इस भ्रमरूप जगत् की आस्था में नहीं इतना इसमें जनी इच्छाहो वैसाकरे परन्तु जो सुखदुःख इसको होते हैं वह

अवश्यहोंगे कभी न मिटेंगे। चाहे पहाड़ की कन्दरा में बैठे चाहे कोट में परन्तु जो होने को है वह अवश्यहोगा । इस निमित्त यत्नकरना मूर्खता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालविलासवर्णनन्नामैकविंशतितमस्सर्गः ॥ २१ ॥

रामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! यह जो नानाप्रकार के सुन्दर पदार्थ भासते हैं वह सब नाशरूप हैं इनकी आस्था मूर्ख करते हैं। यह तो मनकी कल्पनासे रचे हुये हैं उनमें से मैं किसकी आस्था करूं? हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीव का जीना व्यर्थ है क्योंकि; जीने से उनका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जब कुमार अवस्था होतीहै तब बुद्धि मूढ़ होतीहै उसमें कुछ विचार नहीं होता। जब युवावस्था आती है तब काम क्रोधादिक विकार उत्पन्नहोते हैं ये सदा ढांपे रहते हैं। जैसे जाल में पक्षी बँधजाता है और आकाशमार्ग को देखभी नहीं सक्ता तैसेही काम क्रोधादिकसे ढँपाहुआ जीव विचारमार्ग को नहीं देखसक्ता। जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत और महादीन होजाता है और शरीर को भी त्याग देता है। जैसे कमल के ऊपर बरफ पड़ता है तब उसको भँवरा त्याग करता है तैसेही जब शरीररूपी कमल को जरा का स्पर्श होता है तब जीवरूपी भँवरा त्यागकर देता है। हे मुनीश्वर! यह शरीर तबतक सुन्दर है जबतक वृद्धावस्था नहीं प्राप्तहोती। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश जबतक राहु दैत्य ने आवरण नहीं किया तबतक रहता है; जब राहु दैत्य आवरण करताहै तब प्रकाश नहीं रहता; तैसेही जरावस्था के आये युवावस्था की सुन्दरता जाती रहती है। हे मुनीश्वर! जरा के आने से शरीर कृश होजाता है जैसे वर्षाकाल में नदी बढ़जाती हैं तैसेही जरावस्था में तृष्णा बढ़जाती है और जिस पदार्थ की तृष्णा करता है वह पदार्थ भी दुःखरूप है इसलिये तृष्णा करके आपही दुःख पाता है। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी समुद्र में चित्तरूपी बेड़ा पड़ा है और रागद्वेषरूपी मच्छों से कभी ऊर्ध्व को जाता है और कभी नीचे आता है स्थिर कदाचित् नहीं रहता। हे मुनीश्वर! कामरूपी वृक्ष में तृष्णारूप लता और विषयरूपी फूलहैं; जब जीवरूपी भँवरा उसके ऊपर बैठता है तब विषयरूपी वेल से मृतक होजाताहै। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी एक बड़ी नदी है उसमें राग द्वेषादिक बड़े २ मच्छ रहते हैं। उस नदी में पड़ेहुये जीव दुःख पाते हैं और जो संसार की इच्छा करता है वह नाशरूप है हे मुनीश्वर! उन्मत्त हाथी और तरङ्गों के समूह के रणरूपी समुद्र को तरजानेवाले को भी मैं शूर नहीं मानता परन्तु जो इन्द्रियरूपी समुद्र में मनोवृत्तिरूपी तरङ्ग उठते हैं उस समुद्र के तरजानेवाले को मैं शूर मानताहूं ऐसी क्रिया अज्ञानी जीव आरम्भ करते हैं कि, जिसके परिणाम में दुःख हो। जिसके परिणाम में सुख है उसका आरम्भ वे नहीं करते और कामके अर्थकी धारणा करते हैं। ऐसे आरम्भ किये से शरीर की शान्ति के पीछे भी सुख की प्राप्ति

नहीं होती। वे कामना करके सदा जलते रहते हैं। जो अनात्मपदार्थ की तृष्णा करते हैं उनको शान्ति कैसे प्राप्त हो? हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी नदी में बड़ा प्रवाह है; उस के किनारे पर वैराग्य और संतोष दो वृक्ष खड़ेहैं सो तृष्णा नदी के प्रवाहसे दोनों का नाश होता है। हे मुनीश्वर! तृष्णा बड़ी चञ्चल है किसी को स्थिर नहीं होने देती। मोहरूपी एक वृक्ष है उसके चारों ओर स्त्रीरूपी वल्ली है सो विषसे पूर्ण है;। उसपर चित्तरूपी भँवरा आ बैठता है तब स्पर्शमात्र से नाशहोता है। जैसे मोर का पुच्छ हिलता रहता है तैसेही अज्ञानी का चित्त चञ्चल रहता है इसलिये वह मनुष्य पशु के समान है। जैसे पशु दिनको जंगल में जा आहार करते और चलते फिरते हैं और रात्रि को घर में आय खूंटे से बाँधेजाते हैं तैसेही मूर्ख मनुष्य भी दिन को घर छोड़ के व्यवहार में फिरते हैं और रात्रि को आ अपने घरमें स्थिर होते हैं पर इस से परमार्थकी कुछ सिद्धि नहीं होती वे अपना जीवन वृथा गँवाते हैं बाल्यावस्था में तो शून्य रहता है और युवावस्था में काम से उन्मत्त होता है उस काम से चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कन्दरा में जा स्थित होता है पर वहभी क्षणभङ्गुर है। फिर वृद्धावस्था आती है उससे शरीर कृश होजाता है। जैसे बरफ से कमल जर्जरीभाव को प्राप्त होता है तैसेही जरासे शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता और सब अङ्ग क्षीण होजाते हैं पर एक तृष्णा बढ़ जाती है। हे मुनीश्वर! यह जीव मनुष्यरूपी पर्वत पर आ आकाश के फूलरूपी जगत् के पदार्थों की इच्छा करता है सो नीचे गिर राग द्वेषरूपी कण्टक के वृक्ष में जापड़ेगा। हे मुनीश्वर! जितने जगत् के पदार्थ हैं वह सब आकाश के फूल की नाईं नाशवान् हैं। इन में आस्था करनी मूर्खता है यह तो शब्दमात्र हैं। इनसे अर्थ कुछ सिद्ध नहीं होता। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको विषय भोग की इच्छा नहीं रहती क्योंकि; आत्मा के प्रकाश से वे इनको मिथ्या जानते हैं। हे मुनीश्वर! ऐसे ज्ञानवान् दुर्विज्ञेय पुरुष हमको तो स्वप्न में भी नहीं भासते। ऐसे विरक्तात्मा दुर्लभ हैं कि, जिनको भोग की इच्छा नहीं और सर्वदा ब्रह्मकी स्थिति में भासते हैं। ऐसे पुरुषों को संसार की कुछ इच्छा नहीं रहती क्योंकि; यह पदार्थ नाश रूप हैं। हे मुनीश्वर! जैसे पर्वत को जिस ओर देखिये पत्थरों से; पृथ्वी मृत्तिका से; वन काष्ठ से और समुद्र जल से पूर्ण दृष्टि आते हैं तैसेही शरीर अस्थि मांस से पूर्ण भासता है। ये सब पदार्थ पञ्चतत्त्व से पूर्ण और नाशरूप हैं। ऐसा जानके ज्ञानी किसी की इच्छा नहीं करता। हे मुनीश्वर! यह जगत् सब नाशरूप है; देखतेही देखते नाश होजाता है उस में से किसका आश्रय करके सुख पाऊं? जब युगों की सहस्र चौकड़ी व्यतीत होती हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। उस दिन के क्षय हुये से सब जगत् का प्रलय होता है और ब्रह्मा भी काल पाकर नाश होजाता है। ब्रह्मा भी जितने हो-

गये हैं उनकी संख्या नहीं होसक्ती; असंख्य ब्रह्मा नाश होगये हैं तो हम सारिखोंकी क्या वार्त्ता है । हम किसी भोग की वासना नहीं करते क्योंकि; सब चलरूप हैं; स्थिर रहने के नहीं, सब नाशरूप हैं इसलिये इनकी आस्था मूर्ख करते हैं, इनके साथ हमको कुछ प्रयोजन नहीं । जैसे मरुथल को देख मृग जलपान करने को दौड़ता और शान्ति नहीं पाता तैसेही मूर्खजीव जगत् के पदार्थों को सत्य मानकर तृष्णाकरता है परन्तु शान्ति नहीं पाता क्योंकि;सब असाररूप हैं । स्त्री, पुत्र, और कलत्र जबतक शरीर नष्ट नहीं होता तभीतक भासते हैं; जब शरीर नष्ट होजायगा तो जाना न जावेगा कि कहांगये और कहांसे आये थे । जैसे तेल और बत्ती से दीपक बड़ा प्रकाशवान् दृष्टि आता है; जब बुझ जाता है तब जाना नहीं जाता कि, कहांगया तैसेही बत्तीरूप बान्धव हैं और उसमें स्नेहरूपी तेल है उससे जो शरीर भासता है सो प्रकाश है । जब शरीररूपी दीपका प्रकाश बुझजाता है तब जाना नहीं जाता कि कहां गया । हे मुनीश्वर ! बन्धु का मिलाप ऐसा है जैसे कोई तीर्थयात्रा को सङ्ग चलाजाता हो सो सब एक क्षण वृक्ष की छाया के नीचे बैठते हैं फिर न्यारे न्यारे होजाते हैं । जैसे उस यात्रा में स्नेह करना मूर्खता है तैसेही इनमें भी स्नेह करना मूर्खता है । हे मुनीश्वर ! अहंममता की रस्सी के साथ बांधेहुये घटीयन्त्र की नाईं सब जीव भ्रमते फिरते हैं उनको शान्ति कदाचित् नहीं होती यह देखनेमात्र तो चेतनदृष्टि आता है परन्तु पशु और बन्दर इनसे श्रेष्ठहैं जिनकी सम्मति देह और इन्द्रियों के साथही बँधीहुई है और आगमापायी हैं उनको आत्मपद की प्राप्तिहोनी कठिन है । जैसे पवनसे वृक्ष के पात टूटके उड़जाते हैं फिर उन को वृक्ष के साथ लगना कठिन है तैसेही जो देहादिक से बँधेहुये हैं उनको आत्मपद का पाना कठिन है । हे मुनीश्वर ! जब आत्मपदसे विमुख होताहै तब जगत् के भ्रम देखता है और जब आत्मपद की ओर आताहै तब संसार इसको बड़ा विरस लगता है । ऐसा पदार्थ जगत् में कोई नहीं जो स्थिर रहै, जो कुछ पदार्थ हैं सो नाश को प्राप्त होते हैं । इससे मैं किसकी आस्था करूं और किसका आश्रयकरूं सब तो नाशवन्त भासते हैं ? वह पदार्थ मुझसे कहिये जिसका नाश न हो ॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसर्वपदार्थाभाववर्णनन्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः॥२२॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर ! जितना स्थावर–जङ्गम जगत् दिखता है वह सब नाशरूप है कुछभी स्थिर न रहेगा । जो खाईं थी वह जलसे पूर्ण होगई है और जो बड़े जल से भरेहुये समुद्र दिखते थे वे खाईंरूप होगये; जो सुन्दर बड़े बागीचेथे वे आकाश की नाईं शून्य होगये और जो शून्यस्थान थे वे सुन्दर वृक्ष हुये बन में दृष्टि आते हैं जहां बस्ती थी वहां उजाड़ होगई और जहां उजाड़ थी वहां बस्ती होगई; जहां गढ़े थे वहां पर्वत होगये और जहां बड़े पर्वतथे वहां समान पृथ्वी होगई । हे मुनीश्वर !

इसप्रकार पदार्थ देखते देखते विपर्यय होजाते हैं स्थिर नहीं रहते तो फिर मैं किसका आश्रयकरूं और किसके पाने का यत्नकरूं? ये पदार्थ तो सब नाशरूप हैं। जो बड़ेबड़े ऐश्वर्य्य से सम्पन्न और बड़े कर्त्तव्य करते और बड़े वीर्यवान् तेजवान् हुये हैं वे भी मरणमात्र होगये हैं तो हम सारिखोंकी क्या वार्त्ता है? सब नाश होते हैं तो हमें भी घड़ी पल में चलाजाना है। हे मुनीश्वर! ये पदार्थ बड़े चञ्चलरूप हैं; एकरस कदाचित् नहीं रहते। एकक्षण में कुछ होजाते और दूसरे क्षण में कुछ होजाते हैं; एकक्षण में दरिद्री होजाते और दूसरेक्षण में सम्पदावान् होजाते हैं, एकक्षण में जीते दृष्टिआते हैं और दूसरे क्षणमें मरजाते हैं; और एकक्षणमें फिर वेभी जी उठते हैं। इस संसार की स्थिरता कभी नहीं होती। ज्ञानवान् इसकी आस्था नहीं करते एकक्षण में समुद्र के प्रवाह के ठिकाने मरुथल होजाते और मरुथल में जल के प्रवाह होजातेहैं। हे मुनीश्वर! इस जगत् का आभास स्थिर नहीं रहता—जैसे बालक का चित्त स्थिर नहीं रहता तैसेही जगत् का पदार्थ एकभी स्थिर नहीं रहता। जैसे नट नानाप्रकार के स्वांग धरता है तैसेही जगत् के पदार्थ और लक्ष्मी एकरस नहीं रहती। कभी पुरुष स्त्री होजाता और कभी स्त्री पुरुष होजातीहै; कभी मनुष्य पशु होजाता और कभी पशु मनुष्य होजाताहै, स्थावर का जङ्गम होजाताहै और जङ्गम का स्थावर होजाता है, मनुष्य का देवता होजाता और देवता का मनुष्य होजाता है। इसीप्रकार घटीयन्त्रकी नाईं जगत् की लक्ष्मी स्थिर नहींरहती कभी ऊर्ध्व को जाती है और कभी अध को जाती है स्थिर कभी नहीं रहती—सदा भटकतीरहतीहै। हे मुनीश्वर! जितने कुछ पदार्थ दृष्टि आतेहैं वे सब नष्ट होजावेंगे; किसी भांति स्थिर न रहेंगे। ये सब नदियां बड़वाग्नि में लय होजावेंगी और जितने पदार्थ हैं वे सब अभावरूपी बड़वाग्नि को प्राप्तहोंगे। बड़े २ बलिष्ठभी मेरे देखतेही देखते लीन होगये हैं। जो बड़े २ सुन्दर स्थानथे वे शून्य होगये और सुन्दर ताल और बगीचे जो मनुष्यों से परिपूर्ण थे शून्य होगये। मरुथल की भूमि सुन्दर होगई और घट के पट होगयेहैं। वर के शाप होजाते हैं। और शाप के वर होजाते हैं। इसीप्रकार हे विप्र! जो जगत् दृष्टिआता है वह कभी सम्पत्तिमान् और कभी आपत्तिमान् दृष्टि में आता है और महाचपल है। हे मुनीश्वर! ऐसे सब अस्थिररूप पदार्थोंका विचार विना मैं कैसे आश्रयकरूं और किसकी इच्छा करूं सबतो नाशरूप हैं? ये जो सूर्य प्रकाशयुक्त दृष्टि आते हैं वे भी अन्धकाररूप होजावेंगे, अमृत से पूर्ण चन्द्रमाभी शून्य होजायगा और सुमेरु आदिक पर्वत, सबलोक, मनुष्य, देवता, यक्ष और राक्षस सब नाशहोंगे। इससे हे मुनीश्वर! और किसी का क्या कहना है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जगत् के ईश्वरभी शून्य होजायँगे। जो कुछ जगत् दृष्टि आता है और स्त्री, पुत्र, बान्धव, ऐश्वर्य, वीर्य्य और तेज से युक्त नानाप्रकारके

जो जीव भासते हैं वे सब नाशरूप हैं फिर मैं किसपदार्थका आश्रय करूं और किसकी इच्छाकरूं ? हे मुनीश्वर ! जो पुरुष दीर्घदर्शी है उसको तो सब पदार्थ विरस होगये; वह किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता क्योंकि; उसे तो सब पदार्थ नाशरूप भासतेहैं और वह अपनी आयुष्य को बिजली के चमत्कारवत् देखता है । जिसको अपनी आयुष्य की प्रतीति होतीहै सो किसीकी इच्छा नहीं करता जैसे किसी को बलिदान के अर्थ पालते हैं तो वह खाने पीने और भोगने की इच्छा नहीं करता तैसेही जिसको अपना मरना सन्मुख भासता है उसको भी किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती । ये सब पदार्थ आपही नाशरूप हैं तो हम किसका आश्रयकरके सुखीहों । जैसे कोई पुरुष समुद्र में मच्छ का आश्रय करके कहे कि, मैं इसपर बैठके समुद्र के पार जाऊंगा और सुखी होऊंगा तो वह मूर्खता से डूबही मरेगा; तैसेही जिस पुरुषने इन पदार्थोंका आश्रय लिया है और उन्हें अपने सुखके निमित्त जानताहै वह नाश होगा । हे मुनीश्वर ! जो पुरुष जगत्को विचारता रहताहै उसको यह जगत् रमणीय भासताहै और जो रमणीय जानके नानाप्रकारके कर्म करताहै और नानाप्रकारके सङ्कल्प करके जगत्में भटकता है । उसीको यह भटकाता है । जैसे पवनसे धूर कभी ऊंचे और कभी नीचे आती है स्थिर नहीं रहती तैसेही यह जीव भटकता फिरता है स्थिर कभी नहीं रहता और जिस पदार्थकी इच्छा करताहै वह सब काल का ग्रासरूप है । इन्धनरूपी जगत् वनमें कालरूपी अग्नि लगी है उसने सबको ग्रासलिया है । जो इन पदार्थोंकी इच्छा करते हैं वे महामूर्ख हैं । जिनको आत्मविचार की प्राप्ति है उनको यह जगत् भ्रमरूप भासता है और जिसको आत्मविचार की प्राप्ति नहीं है उसको यह जगत् रमणीय भासताहै । जगत् तो देखतेही देखते नाश होजाता है इस स्वप्न पुरीकी नाईं संसार की मैं कैसे इच्छा करूं; यह तो दुःख का निमित्त है ? जैसे बिष मिली मिठाई के भोजन करनेवाले मृत्यु पाते हैं तैसेही विषय भोगनेवाले नाश होते हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेजगद्विपर्ययवर्णनन्नामत्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥ २३ ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! इस संसार में भोगरूपी अग्नि लगी है उससे सब जलतेहैं । जैसे तालमें हाथी के पांव से कमल का चूर्ण होजाताहै तैसेही भोगसे मनुष्य दीन होजाते हैं । जैसे वायुसे मेघ नष्ट होजाता है तैसेही काम, क्रोध और दुराचारसे शुभगुण नष्टहोजाते हैं । जैसे भटकटैया के पत्ते और फलमें कांटे होजाते हैं तैसेही विषय की वासनारूपी कण्टक आलगते हैं । हे मुनीश्वर ! यह सब जगत् नाशरूप है, कोई पदार्थ स्थिर नहीं । वासनारूपी जल और इन्द्रियरूपी गांठ है उसमें पुरुष काल से फँसाहै वह बड़े दुःख पावेगा । हे मुनीश्वर ! वासनारूपी सूत में जीवरूपी मोती पिरोये हुये हैं और मनरूपी नट आय पिरोय कर चैतन्यरूपी आत्मा के गले

में डालता है जब वासनारूपी तागा टूटपड़ताहै तब यह सब भ्रम भी निवृत्त होजाता है। हे मुनीश्वर! इस जीवको भोग की इच्छाहीं बन्धन का कारण है उसीसे यह भटकता है और शान्ति नहीं पाता। इससे मुझको किसी भोग की इच्छा नहीं; न राज्य की हीं इच्छाहै और न घर की न वन की इच्छा है; न मरने का दुःख ही मानताहूं और न जीने का सुख मानता हूं। मुझे किसी पदार्थ का सुख नहीं; सुख तो आत्मज्ञान से होताहै अन्यथा किसी पदार्थ से नहीं होता। जैसे सूर्यके उदय हुये विना अन्धकार का नाश नहीं होता तैसेहीं आत्मज्ञान विना संसार के दुःख का नाश नहीं होता। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे मोह का नाश हो और मैं सुखी होऊं हे मुनीश्वर! भोग के भोगनेवाले अहङ्कार को मैंने त्यागदिया फिर भोग की इच्छा कैसे हो? हे मुनीश्वर! विषयरूप सर्पने जिसका स्पर्श किया उसका नाश होजाता है। सर्प जिसको काटता है वह एकही बेर उसको मारडालता है पर विषयरूपी सर्प जिसको काटताहै वह अनेक जन्मपर्यन्त मारताही चलाजाताहै। इससे परमदुःख का कारण विषय भोगही है और परमविष है। हे मुनीश्वर! आरेसे अङ्ग का कटाना और वज्रसे शरीर का चूर्ण होना मैं सहूंगा परन्तु विषय का भोगना मुझ से किसीप्रकार सहा नहीं जाता। यह तो मुझको दुःखदायक ही दृष्टि आताहै। इससे वही मुझसे कहिये जिससे मेरे हृदय से अज्ञानरूपी अन्धकार का नाशहो और जो न कहोगे तो मैं अपनी छाती पर धैर्य्यरूपी शिला धरके बैठारहूंगा परन्तु भोगकी इच्छा न करूंगा। हे मुनीश्वर! जितने पदार्थ हैं वे सब नाशरूप हैं। जैसे बिजली का चमत्कार होके छिपजाताहै और अञ्जलि में जल नहीं ठहरता तैसेही विषयभोग और आयुष्य नाश होजाते हैं-ठहरते नहीं। जैसे कण्ठीसे मछली दुःख पातीहै तैसेही भोग की तृष्णासे जीव दुःख पातेहैं। इससे मुझे किसीपदार्थ की इच्छा नहीं। जैसे कोई मरीचिका के जल को सत्यजान जलपान की इच्छा करे और दौड़े पर जल नहीं पाता है। इससे मैं किसीपदार्थ की इच्छा नहीं करता हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसर्वान्तप्रतिपादनन्नामचतुर्विंशतितमस्सर्गः॥२४॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! संसाररूपी गढ़े और मोहरूपी कीच में मूर्ख का मन गिरजाता है उससे वह दुःखही पाता है शान्तिवान् कभी नहीं होता। जब जरावस्था आती है तब जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवनसे हिलते हैं तैसेही अङ्ग हिलते हैं और तृष्णा बढ़ जाती है। जैसे नीम का वृक्ष ज्यों २ वृद्ध होता है त्यों २ कटुता बढ़ती है तैसेही तृष्णा बढ़ती है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने देह इन्द्रियादिकों का आश्रय अपने सुखनिमित्त लिया है वह मूर्ख संसाररूपी अन्धकूप में गिरता है और निकल नहीं सका। अज्ञानी का चित्त भोगका त्याग कदाचित् नहीं करता। हे मुनी-

श्वर ! जगत् के पदार्थों से मेरी बुद्धि मलीन होगई है । जैसे वर्षाकाल में नदी मलीन होतीहै। और जैसे मार्गशीर्ष मासमें मञ्जरी सूख जातीहै तैसेही जगत्की शोभा देखते२ मेरी बुद्धि विरस होजाती है । जैसे जगत् का पदार्थ मूर्ख को रमणीय भासता है और जैसे पानी का गढ़ा तृण से आच्छादित होता है और मृग का बालक उस तृण को रमणीय जानकर खाने जाता तो गिरजाता है तैसेही यह मूर्खजीव भोग को रमणीय जान भोगके गिरपड़ता है फिर महादुःख पाता है । हे मुनीश्वर ! जगत् के पदार्थों से मेरी बुद्धि चञ्चल होगई है इससे वही उपाय कहिये जिससे मेरी बुद्धि पर्वत की नाईं निश्चल हो और परमानन्द जो निर्भय निराकार है और जिसके पाये से किसी पद की इच्छा नहीं रहती पाऊं। हे मुनीश्वर ! ऐसे पद से मेरी बुद्धि शून्य है इससे मैं शान्ति-मान् नहीं होता । यह संसार और संसार के कर्म मोहरूप हैं इसमें पड़ेहुये शान्ति नहीं पाते। जनकादिक और शान्तिमान् संसार में रहेहुये कमल की नाईं निर्लेप रहते हैं । उनकी क्या समझ है कृपा करके कहिये और आप ऐसे सन्त जन विषय भोगते दृष्टि आते और जगत् की सब चेष्टा करते हैं पर निर्लेप कैसे रहते हैं वह युक्ति क-हिये। यह बुद्धि जैसे ताल में हाथी प्रवेश करता है और पानी मलीन होजाता है तैसेही मोह से मलीन होजाती है । इससे वही उपाय कहिये जिससे बुद्धि निर्मल हो। यह सन्तोष बुद्धि स्थिर कभी नहीं रहती । जैसे कुल्हाड़े का कटा वृक्ष मूल से स्थिर नहीं होता तैसेही वासना से कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती। हे मुनीश्वर! संसाररूपी विसू-चिका मुझको लगी है इससे वही उपाय कहिये जिससे दृश्य का नाश हो—इसने मुझ को बड़ा दुःख दिया । आत्मज्ञान कब प्रकाश होगा जिसके उदय हुये मोहरूपी अ-न्धकार का नाश हो ? हे मुनीश्वर ! जैसे बादल से चन्द्रमा आच्छादित होजाता है तैसेही बुद्धि की मलीनता से मैं आच्छादित हुआहूं । इससे वही उपाय कहिये जिससे आवरण दूरहो और आत्मानन्द जो नित्य है प्राप्त हो। इसके पाये से फिर कुछ पाने की आवश्यकता नहीं रहती और इससे सम्पूर्ण दुःख नाश होजाते हैं और अन्तःकरण शीतल होजाता है । ऐसे पद की प्राप्तिका उपाय मुझसे कहिये। हे मुनीश्वर ! आत्म-ज्ञानरूपी चन्द्रमा की मुझको इच्छा है; जिसके प्रकाश से बुद्धिरूपी कमलिनी खिल आती है और जिसकी अमृतरूपी किरणों से तृप्तवृत्ति होती है। हे मुनीश्वर ! अब मुझको गृह में रहने की इच्छा नहीं और वनमें जाने की भी इच्छा नहीं। मुझको तो उसी पद की इच्छाहै जिसके पायेसे अन्तःकरण शान्त होजाय ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेवैराग्यप्रयोजनवर्णनन्नामपञ्चविंशतितमस्सर्गः २५॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर ! जो जीनेकी आस्था करते हैं वे मूर्ख हैं। जैसे पत्रपर जल की बूंद नहीं ठहरती तैसेही आयुष्यभी क्षणभंगुरहै । जैसे वर्षाकाल में

दादुर बोलते हैं और उनका कंठ चञ्चल सदा फड़कता रहताहै तैसेही आयुर्दा क्षण २ में चञ्चल होजाती है। जैसे शिवजी के कपाल में चन्द्रमा की रेखा छोटी सी है तैसेही यह शरीर है हे मुनीश्वर! जिसको इसमें आस्था है वह महामूर्ख है—यह तो काल का ग्रास है। जैसे बिल्ली चूहे को पकड़लेती है तैसेही सबको काल पकड़ लेता है। जैसे बिल्ली चूहे को सँभलने नहीं देती तैसेही काल सबको अचानक ग्रहण कर लेताहै और किसीको नहीं भासता। हे मुनीश्वर! जब अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होके नृत्य करताहै। जब अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करता है तब दुःखरूपी मञ्जरी बढ़ने लगती है, लोभरूपी बिजली क्षण २ में हो हो नष्ट होजाती है और तृष्णारूपी जाल में फँसे हुये जीवरूपी पक्षी पड़े दुःख पाते हैं—शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती। हे मुनीश्वर! यह जगतरूपी बड़ा रोग लगा है उसके निवारण करने का कौन सा पदार्थ है? जो पानेयोग्य है और जिससे भ्रमरूपी रोग निवृत्त हो वही उपाय कहिये। यह जगत् मूर्ख को रमणीय दिखता है। ऐसे पदार्थ पृथ्वी, आकाश, देवलोक और पाताल में भी नहीं जो ज्ञानवान् को रमणीय दीखें। ज्ञानवान् को सब भ्रमरूप भासता है और अज्ञानी जगत्में आस्था करताहै। हे मुनीश्वर! चन्द्रमा में जो कलङ्क है उससे शोभा सुन्दर नहीं लगती। जब कलङ्क दूर होजाय तब सुन्दर लगे तैसेही मेरे चित्तरूपी चन्द्रमामें कामरूपी कलङ्क लगाहै इससे वह उज्ज्वल नहीं भासता। आप वही उपाय कहिये जिससे कलङ्क दूरहो। हे मुनीश्वर! यह चित्त बहुत चञ्चल है स्थिर कदाचित् नहीं होता। जैसे अग्नि में डालदिया पारा उड़ जाता है तैसेही चित्त भी स्थिर नहीं होता विषय की ओर सदा धावताहै। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे चित्त स्थिरहो। संसाररूपी वन में भोगरूपी सर्प रहते हैं और जीव को काटते हैं उनसे बचने का उपाय कहिये। जितनी क्रिया हैं वे राग द्वेष के साथ मिली हुई हैं; इससे वही उपाय कहिये जिससे राग द्वेष का प्रवेश न हो और संसारसमुद्र में पड़के तृष्णारूपी जल का स्पर्श न हो। और ऐसा उपाय भी कहिये जिससे राग द्वेष का स्पर्श न हो। मन में जो मननरूपी सत्ता है वह युक्ति से दूर होती है—अन्यथा दूर नहीं होती। उसकी निवृत्ति के अर्थ आप मुझसे युक्ति कहिये और आगे जिसको जिसप्रकार निवृत्ति हुई है और जिसप्रकार आपके अन्तःकरण में शीतलता हुई है वह कहिये। हे मुनीश्वर! जैसे आप जानतेहैं सो कहिये और जो आपनेही वह युक्ति नहीं पाई तब मैं तो कुछ नहीं जानता। मैं सब त्यागकर निरहंकार होरहूँगा और जबतक वह युक्ति मुझको न प्राप्त होगी तबतक मैं भोजन, जलपान और स्नानादिक क्रिया और किसी सम्पदा और आपदा का कार्य न करूँगा—निरहंकार होऊँगा। यह न मेरी देह है, न मैं देह हूं; सब त्यागकरके बैठा रहूंगा।

जैसे कागज के ऊपर मूर्त्ति चित्रित होती है तैसेही होरहूंगा। श्वास आते जाते आपही क्षीण होजायँगे। जैसे तेल विना दीपक बुझजाता है तैसेही अनर्थवान् देह निर्वाण हो जायगा तब महाशान्ति पाऊंगा। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! ऐसे कहकर रामजी चुप होरहे। जैसे बड़े मेघ को देखके मोर शब्द करके चुप होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेअनन्यत्यागदर्शनन्नामषड्विंशतितमस्सर्गः॥ २६॥

इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले; हे पुत्र! जब इसप्रकार रघुवंशरूपी आकाश के रामचन्द्ररूपी चन्द्रमा बोले तब सब मौन होगये और सबके रोम खड़े होगये—मानो रोमभी खड़े होकर रामजीके वचन सुनते हैं और सभामें जितने बैठे थे वे सब निर्वासनारूपी अमृतके समुद्र में मग्न होगये। वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र आदि जो मुनीश्वर थे और दृष्टि आदिक मन्त्री, राजा दशरथ और मण्डलेश्वर, चाकर, नौकर और माता कौशल्याआदिक सब मौन होगये—अर्थात् अचल होगये। पिंजड़े में जो तोते और बगीचे में पशु आदिथे; जो पक्षी आलय में बैठे थे वे भी सुनकर मौन होगये आकाश के पक्षी जो निकट थे वे भी स्थिर होगये और आकाशमें देव, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरभी आके सुनने और फूलोंकी वर्षा करने तथा सब धन्य धन्य शब्द करनेलगे। उससमय फूलोंकी ऐसी वर्षा भई मानो बरफ की वर्षा होती है और क्षीरसमुद्रके तरङ्ग उछलते आतेथे मानो मोती के माला की वृष्टि होनेलगी। जैसे माखनके पिण्ड उड़तेहों इसप्रकार आधी घड़ी पर्यन्त फूलों की वर्षा हुई और बड़ी सुगन्ध फैली। फूलोंपर भँवरे फिरनेलगे और बड़ा विलास उस काल में हुआ। सब "नमोनमः" शब्द करनेलगे और देव बोले हे कमलनयन! रघुवंशी आकाश में चन्द्रमारूप तुम धन्य हो। तुमने बड़े श्रेष्ठस्थान देखे हैं और बहुत प्रकार के वचन सुने हैं। जैसे तुमने वचन कहेहैं वैसे हमने कभी नहीं सुने। यह वचन सुनके हमारा जो देवतोंका अभिमान था सो सब निवृत्त होगया और अमृतरूपी वचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्ण होगई है। हे रामजी! जैसे वचन तुमने कहे हैं ऐसे बृहस्पति भी नहीं कहसके। तुम्हारे वचन परमानन्दके करनेवाले हैं इससे तुम धन्य हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसिद्धसमाजवर्णनन्नामसप्तविंशतितमस्सर्गः॥ २७॥

बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! सिद्ध ऐसे वचन कहके विचारनेलगे कि, रघुवंश का कुल पूजने योग्य है जिसमें रामजी ने बड़े उदार वचन मुनीश्वरके सन्मुख कहे हैं। अब जो मुनीश्वर उत्तर देंगे वहभी सुनाचाहिये। जैसे फूल के ऊपर भँवरा स्थिर होताहै तैसेही व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्यआदि सब साधु सभामें स्थित हुये तब वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठखड़ेहुये और उनकी पूजा करनेलगे। पहिले राजादशरथ ने पूजा की और फिर नानाप्रकार से सबने उनकी पूजा की और

यथायोग्य आसन के ऊपर बैठे। उनमें नारदजी हाथमें बहुत सुन्दर वीणा लिये और श्याममूर्त्ति व्यासजी नानाप्रकारके रंगसे रञ्जित वस्त्र पहिनेहुये मानो तारागणों में महाश्यामघटा आई है विराजमान थे। ऐसेही दुर्वासा, वामदेव, पुलह, पुलस्त्य, बृहस्पति के पिता अङ्गिरा भृगु और मैं भी वहाँ था और ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, देवता, मुनीश्वर सब आके उस सभा में स्थित हुये। किसीकी बड़ी जटा, कोई मुकुट पहिरे, कोई रुद्राक्ष की माला और कोई मोती की माला पहिने थे, किसीके कण्ठ में रत्न की माला और हाथ में कमण्डलु और मृगछाला, किसी के महासुन्दर वस्त्र, किसीकी कटिपै कोपीन और किसीकी कटिपै सुवर्णकी जंजीर थी ऐसे बड़े बड़े तपस्वी जो वहां आके बैठे थे उनमें कोई राजसी और कोई सात्त्विकी स्वभावके थे और सब विद्वान् वेदपढ़नेवाले प्राप्तहुये। कोई सूर्यवत्; कोई चन्द्रमावत्; कोई तारावत्; कोई रत्नवत् प्रकाशमान और पुरुषार्थपर यत्न करनेवाले यथायोग्य आसनपर स्थित हुये। मोहनीमूर्ति और दीनस्वभाववाले रामजी भी हाथ जोड़के सभा में बैठे और उनकी सब पूजाकर कहनेलगे कि, हे रामजी! तुम धन्य हो। नारद सबके सन्मुख कहनेलगे कि, हे रामजी! तुमने बड़े विवेक और वैराग्य के वचन कहे जो सबको प्यारे लगे और सबके कल्याणकरनेवाले और परम बोध के कारण हैं। हे रामजी! तुम बड़े बुद्धिमान् और उदारात्मा दृष्टि आते हो और महावाक्य का अर्थ तुम से प्रकट होता है। ऐसे उज्ज्वलपात्र साधु और अनन्त तपस्वियों में कोई बिरला होताहै। जितने मनुष्य हैं वे सब पशू से दृष्टि आते हैं क्योंकि; जिसको संसारसमुद्र के पार होने की इच्छा है और जो पुरुषार्थपर यत्न करता है वही मनुष्य है। हे साधो! वृक्ष तो बहुत होते हैं परन्तु चन्दन का वृक्ष कोई होताहै; तैसेही शरीरधारी बहुत हैं परन्तु ऐसा कोई होताहै और सब अस्थि मांस रुधिर के पुतलेसे मिले हुये भटकते फिरते हैं। वे जैसे यन्त्र की पुतली होती हैं तैसेही अज्ञानी जीव हैं। हाथी तो बहुतहैं परन्तु बिरले के मस्तकसे मोती निकलता है तैसेही मनुष्य तो बहुत हैं परन्तु पुरुषार्थपर यत्न करनेवाला कोई बिरलाही होता है। जैसे वृक्ष बहुतेरे हैं परन्तु लवङ्ग का वृक्ष कोई बिरलाही होता है तैसेही मनुष्य बहुत हैं परन्तु ऐसा कोई बिरलाही होता है ऐसे पात्र से थोड़ा अर्थ कहाभी बहुत होजाताहै। जैसे तेलकी बुंद थोड़ीही जल में डालिये तो फैलजाती है तैसेही थोड़े वचन तुम्हारे हिये में बहुत होते हैं। तुम्हारी बुद्धि बहुत विशेष है और दीपकसी प्रकाशवाली और बोध का परम पात्र है। कहनेमात्र से ही तुमको शीघ्र ज्ञान होवेगा और जो हमारे सामने तुमको ज्ञान न हो तो जानना कि हम सब मूर्ख बैठे हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेमुनिसमाजवर्णनन्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः॥ २८॥

समाप्तमिदं वैराग्यप्रकरणम्॥

श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

द्वितीयमुमुक्षुप्रकरणप्रारम्भः ॥

बाल्मीकिजी बोले हे साधो ! ये वचन परमानन्दरूप हैं और कल्याण के कर्ता हैं। इनमें सुनने की प्रीति तब उपजती है जब अनेक जन्म के बड़े पुण्य इकट्ठे होते हैं। जैसे कल्पवृक्ष के फल को बड़े पुण्य से पाते हैं तैसेही जिसके बड़े पुण्यकर्म इकट्ठे होते हैं उसकी प्रीति इन वचनों के सुनने में होती है–अन्यथा नहीं होती। ये वचन परमबोध के कारण हैं। वैराग्यप्रकरण के एकसहस्र पांचसौ श्लोक हैं। हे भारद्वाज ! इसप्रकार जब नारदजी ने कहा तब विश्वामित्र बोले कि, हे ज्ञानवानों में श्रेष्ठ, रामजी ! जितना कुछ जानने योग्य था सो तुममें है इससे अब तुम्हें जानना और नहीं रहा पर उसमें विश्राम पाने के लिये कुछ मार्जन करना है। जैसे अशुद्ध आदर्श की मलिनता दूर करने से मुख स्पष्ट भासता है तैसेही कुछ उपदेश की तुम को अपेक्षा है। हे रामजी ! आपही के सदृश भगवान् व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी भी हुये हैं। वह भी बड़े बुद्धिमान् थे; उन्होंने जो जानने योग्य था सो जाना था पर विश्राम के निमित्त उनको भी अपेक्षा थी सो विश्राम को पाकर शान्तिमान् भये। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! शुकजी कैसे बुद्धिमान् और ज्ञानवान् थे और कैसी विश्राम की अपेक्षा उनको थी और फिर कैसे उन्होंने विश्राम पाया सो कृपा करके कहो ? विश्वामित्रजी बोले; हे रामजी ! अञ्जन के पर्वत के समान और सूर्य के सदृश प्रकाशवान् भगवान् व्यासजी स्वर्ण के सिंहासन पर राजा दशरथ के यहां बैठेथे। उनके पुत्र शुकजी सब शास्त्रों के वेत्ता थे। और सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानते थे। उन्होंने शान्ति और परमानन्दरूप आत्मा में विश्राम न पाया तब उनको विकल्प उठा कि, जिसको मैंने जाना है सो न होगा क्योंकि; मुझको आनन्द नहीं भासता। यह संशय करके एककाल में व्यासजी जो सुमेरु पर्वत की कन्दरा में बैठे थे तिनके निकट आकर कहने लगे; हे भगवन् ! यह संसार सब भ्रमात्मक कहां से भया है; इसकी निवृत्ति कैसे होगी और आगे कभी इसकी निवृत्ति भई है सो कहो ? हे रामजी ! जब इसप्रकार शुकजी ने कहा तब विद्वद्वृन्दशिरोमणि वेदव्यासजी ने तत्काल उपदेश किया। शुकजी ने कहा; हे भगवन् ! जो कुछ तुम कहते हो वह तो मैं आगेसेही जानता हूं; इससे मुझको शान्ति नहीं होती। हे रामजी !

तब सर्वज्ञ वेदव्यासजी विचार करने लगे कि, इसको मेरे वचन से शान्ति प्राप्त न होगी क्योंकि; पिता पुत्र का सम्बन्ध है। ऐसा विचार करके व्यासजी कहने लगे, हे पुत्र! मैं सर्वतत्त्वज्ञ नहीं तुम राजा जनक के निकट जाओ; वे सर्वतत्त्वज्ञ और शान्तात्मा हैं उनसे तुम्हारा मोह निवृत्त होगा। तब शुकदेवजी वहां से चलकर मिथिला नगरी में आये और राजा जनक के द्वारपर स्थित भये। द्वारपाल ने जाकर जनकजी से कहा कि, व्यासजी के पुत्र शुकजी खड़े हैं। राजा ने जाना कि, इनको जिज्ञासा है। इसलिये कहा खड़े रहने दो इसीप्रकार द्वारप ने जा कहा और सातदिन उन्हें खड़ेही बीतगये। तब राजा ने फिर पूछा कि, शुकजी खड़े हैं कि, चलेगये हैं द्वारपाल ने कहा, खड़े हैं। राजा ने कहा आगे लेआओ। तब वे उनको आगे ले आये। उस दरवाजे पर भी वे सातदिन खड़ेरहे। फिर राजा ने पूछा कि, शुकजी हैं? द्वारप ने कहा कि, हां खड़े हैं। राजा ने कहा कि, अन्तःपुर में लेआओ और नाना प्रकार के भोग भुगताओ। तब वे उन्हें अन्तःपुरमें लेगये। वहां स्त्रियों के पास भी वे सातदिनतक खड़ेरहे। फिर राजा ने द्वारप से पूछा कि, उसकी अब कैसी दशा है और आगे कैसी दशा थी? द्वारप ने कहा कि, आगे वे निरादर से न शोकवान् हुये थे और न अब भोग से प्रसन्न हुये; वे तो इष्ट अनिष्ट में समान हैं। जैसे मन्दपवन से मेरु चलायमान नहीं होता तैसेही यह बड़े भोग के निरादर से चलायमान नहीं हुये। जैसे पपीहे को मेघके जलबिना नदी और तालआदिके जलकी इच्छा नहीं होती तैसेही उसको भी किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है तब राजा ने कहा उन्हें यहां लेआओ और जब शुकजी आये तब राजा जनक ने उठके खड़ेहो प्रणाम किया। फिर जब दोनों बैठगये तब राजा ने कहा कि, हे मुनीश्वर! तुम किस निमित्त आये हो; तुमको क्या वाञ्छा है सो कहो कि उसकी प्राप्ति मैं करदेऊं? श्रीशुकजी बोले हे गुरो! यह संसार का आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे शान्त होगा सो तुम कहो? इतना कह विश्वामित्रजी बोले हे रामजी! जब इसप्रकार शुकदेवजी ने कहा तब जनक ने यथाशास्त्र उपदेश जो कुछ व्यास ने कहा था सोई कहा। यह सुन शुकजी ने कहा कि, भगवन्! जो कुछ तुम कहते हो सोई मेरे पिता भी कहते थे; सोई शास्त्र भी कहता है और विचारसे मैं भी ऐसाही जानता हूं कि; यह संसार अपने चित्तमें उत्पन्न होता है और चित्तके निर्वेद हुये भ्रमकी निवृत्ति होती है पर मुझको विश्राम नहीं प्राप्त होता है? जनकजी बोले; हे मुनीश्वर! जो कुछ मैंने कहा और जो तुम जानते हो इससे पृथक् उपाय न जानना और न कहनाही है। यह संसार चित्त के संवेदन से हुआ है; जब चित्त फुरने से रहित होता है तब भ्रम निवृत्त होजाना है। आत्मतत्त्व नित्यशुद्ध, परमानन्दस्वरूप केवल चैतन्य है; जब उसका

अभ्यास करोगे तब तुम विश्राम पावोगे। तुम मुक्तिस्वरूप हो क्योंकि; तुम्हारा यत्न आत्मा की ओर है; दृश्य की ओर नहीं; इससे तुम बड़े उदारात्मा हो। हे मुनीश्वर! तुम मुझको व्यासजी से अधिक जान मेरे पास आये हो पर तुम मुझसेभी अधिक हो क्योंकि; हमारी चेष्टा तो बाहर से दृष्टि आती है और तुम्हारी चेष्टा बाहर से कुछ भी नहीं पर भीतर से हमारी भी इच्छा नहीं है। इतना कह विश्वामित्रजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार राजा जनक ने कहा तब शुकजी ने निःसङ्ग निष्प्रयत्न और निर्भय होकर सुमेरु पर्वत की कन्दरा में जाय दशसहस्र वर्षतक निर्विकल्पक समाधि की। जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही वेभी निर्वाण होगये। जैसे समुद्र में बुन्द लीन होजाती है और जैसे सूर्यका प्रकाश सन्ध्याकाल में सूर्य के पास लीन होजाता है तैसेही कलनारूप कलङ्क को त्याग कर वे ब्रह्मपद को प्राप्तहुये ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेमुनिशुकनिर्वाणवर्णनन्नामप्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

विश्वामित्रजी बोले; हे राजन्, दशरथ! जैसे शुकजी शुद्धबुद्धिवाले थे तैसेही रामजी भी हैं। जैसे शान्ति के निमित्त उनको कुछ मार्जन कर्त्तव्य था तैसेही रामजी को भी विश्राम के निमित्त कुछ मार्जन चाहिये क्योंकि; आवरण करनेवाले जो भोग हैं उनसे इनकी इच्छा निवृत्त भई है और जो कुछ जानने योग्य था सो जाना है। अब हम कोई ऐसी युक्ति करेंगे जिससे इनको विश्राम होगा जैसे शुकजी को थोड़े से मार्जन से शान्ति की प्राप्तिहुई थी तैसेही इनको भी होवेगी। हे राजन्! जैसे ज्ञानवान् को आध्यात्मिक आदि दुःख स्पर्श नहीं करते तैसेही रामजी कोभी भोग की इच्छा नहीं स्पर्श करती। भोग की इच्छा सबको दीन करती है इसकाही नाम बन्धन है और भोग की वासना का क्षय करना इसका ही नाम मोक्ष है। ज्यों ज्यों भोग की इच्छा करता है त्यों त्यों लघु होताजाता है और ज्यों ज्यों भोग की वासना क्षय होती है त्यों त्यों गरिष्ठ होता है। जबतक आत्मानन्द प्रकाश नहीं होता तबतक विषय की वासना दूर नहीं होती और जब आत्मानन्द प्राप्तहोता है तब विषयवासना कोई नहीं रहती। जैसे मरुथल में बल्ली नहीं उत्पन्न होती तैसेही ज्ञानवान् को विषयवासना की उत्पत्ति नहीं होती। हे साधो! ज्ञानवान् किसी फलकी इच्छा से विषयभोग का त्याग नहीं करता स्वभाव सेही उसकी विषयवासना चली जाती है। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार का अभाव होजाता है तैसेही रामजी को अब किसी भोग पदार्थ की इच्छा नहीं रही। अब तो वे विदितवेद हुये हैं आपही विश्राम की इच्छा रखते हैं इससे जो कहो वही करूं जिससे वे विश्रामवान् हों। हे राजन्! भगवान् वशिष्ठजी की युक्तिसे ये शान्त होंगे और आगेसे वही रघुवंशकुल के गुरु हैं। इनके उपदेश द्वारा आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् भये हैं। ये सर्वज्ञ और साक्षिरूप हैं और त्रिकाल

और ज्ञान के सूर्य हैं । इनके उपदेश से रामजी आत्मपद को प्राप्तहोंगे । हे वशिष्ठजी! जब हमारा तुम्हारा विरोध हुआ था और ब्रह्माजी ने मन्दराचल पर्वत पर, जो ऋषीश्वरों और अनेक वृक्षों से पूर्ण था, संसारवासना के नाश, हमारे तुम्हारे विरोध की शान्ति और और जीवों के कल्याणनिमित्त जो उपदेश किया था वह तुमको स्मरण है ? अब वही उपदेश तुम रामजी को करो क्योंकि, ये भी निर्मल ज्ञानपात्र हैं । ज्ञान विज्ञान और निर्मलयुक्ति वही है जो शुद्धपात्रमें अर्पण हो और पात्र विना उपदेश नहीं सोहता । जिसमें शिष्यभाव और विरक्तता न हो ऐसे अपात्र मूर्ख को उपदेश करना व्यर्थ है । कदाचित् विरक्त हो और शिष्यभावना नहीं तोभी उपदेश न करना चाहिये । दोनों से सम्पन्न को ही उपदेश करना चाहिये । पात्र विना उपदेश व्यर्थ है अर्थात् अपवित्र होजाता है । जैसे गऊ का दूध महापवित्र है पर श्वान की त्वचा में डारिये तो अपवित्र होजाता है तैसेही अपात्र को उपदेश करना व्यर्थ है । हे मुनीश्वर! जो शिष्य वैराग्य से सम्पन्न और उदारआत्मा है वह तुम्हारे उपदेश के योग्य है और तुम वीतराग और भय क्रोध से रहित परमशान्तरूप हो, इसलिये तुम्हारे उपदेश के पात्र रामजी हैं। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले; कि, जब इसप्रकार विश्वामित्रजी ने कहा तब नारद और व्यासादिक ने साधु साधु कहा अर्थात् भला भला कहा कि ऐसेही यथार्थ है उससमय राजा दशरथ के पास बहुत प्रकार के साधु बैठेहुये थे । ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठजी ने कहा कि, हे मुनीश्वर ! जो कुछ तुमने आज्ञा की है वह हमने मानी । ऐसी किसी की सामर्थ्य नहीं कि, सन्त की आज्ञा निवारण करे । हे साधो ! राजादशरथ के जितने पुत्र हैं उन सब के हृदय में जो अज्ञानरूपी तम है वह मैं ज्ञानरूपी सूर्य से ऐसे निवारणकरूंगा जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार दूरहोता है । हे मुनीश्वर ! जो कुछ ब्रह्माजीने उपदेश किया था वह मुझको अखण्ड स्मरण है मैं वही उपदेश करूंगा जिससे रामजी निःसंशयपन को प्राप्तहोंगे । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले; कि, इसप्रकार वशिष्ठजी विश्वामित्र से कह रामजी से मोक्ष का उपाय कहनेलगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुनिविश्वामित्रोपदेशोनामद्वितीयस्सर्गः ॥ २ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ब्रह्माजी ने मुझको जीवोंके कल्याण के निमित्त उपदेश किया था वह मुझे भले प्रकार स्मरण है और वही अब मैं तुम से कहता हूं । इतना सुन श्रीरामजी ने पूछा; हे भगवन् ! कुछ प्रश्न करने का अवसर आया है । एक संशय मुझको है सो दूरकरो । मोक्ष उपाय जो संहिता कहते हो सो तो तुम सब कहोगे परन्तु यह जो तुमने कहा कि, शुकदेवजी विदेहमुक्त होगये तो भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञ थे सो विदेहमुक्त क्यों न हुये ! वशिष्ठजी बोले कि, हे रामजी ! जैसे सूर्य के किरण के साथ

त्रसरेणु उड़ती देखपड़ती हैं और उनकी संख्या कुछ नहीं होती तैसेही परमसूर्य के संवेदनरूपी किरण में त्रिलोकीरूपी असंख्य त्रसरेणु हैं अनन्त होकर मिटजाते हैं और अनन्त होते हैं। अनन्त त्रिलोकी ब्रह्म समुद्र में हैं उनकी संख्या कुछ नहीं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! पीछे जो व्यतीत होगये हैं और आगे जो होवेंगे उनकी कितनी संख्या है? वर्त्तमान को तो मैं जानताहूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनन्त कोटि त्रिलोकी के गण उपजे हैं और मिटगये हैं। कितनेई होते हैं और कितनेई होवेंगे इनकी कुछ संख्या नहीं है क्योंकि; जीव असंख्य हैं और जीवप्रति अपनी २ सृष्टि है। जब ये जीव मृतक होजाते हैं तब उसी स्थान में अपने अन्तवाहक संकल्प रूपी पुर में इनका बन्ध भासताहै और उसी स्थान में परलोक भास आता है। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश पञ्चभूत भासता है और नानाप्रकार की वासना के अनुसार अपनी २ सृष्टि भासआती है। फिर जब वहां से मृतक होता है तब भी वही सृष्टि भास आती है। नाम रूप संयुक्त वही जाग्रत् सत्य होकर भास आती है। फिर जब वहां से मरता है तब इस पञ्चभूत सृष्टि का अभाव होजाता है। और २ भासती है और वहां के जो जीव होते हैं उनको भी इसीप्रकार अनुभव होता है। इसीप्रकार एक २ जीवकी सृष्टि होती है और मिटजाती है उसकी संख्या कुछ नहीं। तब ब्रह्मा की सृष्टि की संख्या कैसे हो? जैसे मनुष्य घूमता है और उसको सर्व पदार्थ भ्रमसे दृष्टि आते हैं; जैसे नौका में बैठेहुये नदी के वृक्ष चलते दृष्टि आते हैं; जैसे नेत्र के दोष से आकाश में मोती की माला दृष्टि आती है और जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है तैसेही जीव को भ्रम से यह लोक परलोक भासता है; वास्तव में जगत् कुछ उपजा ही नहीं, एक अद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आप में स्थित है तिसमें द्वैतभ्रम अविद्या से भासता है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल भासता है और भय पाता है तैसेही अज्ञानी को अपनी कल्पना जगत्रूप होकर भासती है। हे रामजी! व्यास जी को बत्तीस आकार से मैंने देखा है। उनमें दश एक आकार और क्रिया और निश्चयरूप हैं; दश सम समान हुये हैं और बारह आकार क्रिया और चेष्टामें विलक्षण हुये हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग होती हैं तो उनमें कई सम और कई विलक्षण उपजती हैं तैसेही व्यास हुये हैं। सम जो दश हुये हैं उनमें दश व्यास यही हैं और आगेभी आठ बेर यही होंगे और महाभारत कहेंगे। नवीं बेर ब्रह्मा होकर विदेहमुक्त होंगे। हम और बाल्मीकि, भृगु और बृहस्पति का पिता अङ्गिरा इत्यादि भी मुक्त होवेंगे। हे रामजी! एक सम होते हैं और एक विलक्षण होते हैं। मनुष्य, देवता, तिर्य्यगादिक जीव कई बेर समान होते और कितने बेर विलक्षण होते हैं। कितने जीव समान आकार आगे से कुलक्रिया सहित होते हैं और कितने संकल्प से उड़ते

फिरते हैं। आना, जाना, जीना, मरना स्वप्नभ्रम की भांति दीखता है पर वास्तव में न कोई आता है, न जाता है, न जन्मता है, न मरता है। यह भ्रम अज्ञान से भासता है विचार किये से कुछ नहीं भासता। जैसे कदली का खंभ बड़ा पुष्ट दीखताहै पर यदि खोदके देखो तो कुछ सार नहीं निकलता तैसेही जगत्भ्रम अविचार से सिद्धहै; विचार किये से कुछ नहीं भासता। हे रामजी! जो पुरुष आत्मसत्ता में जगा है उसको द्वैतभ्रम नहीं भासता। वह आत्मदर्शी, सदा शान्त आत्मा परमानन्दस्वरूप और इच्छा से रहित है। जैसे जीवन्मुक्त को कोई चला नहीं सक्ता तैसेही व्यासदेव जी को सदेहमुक्ति और विदेहमुक्ति की कुछ इच्छा नहीं वे तो सदा अद्वैतरूप हैं। हे रामजी! जीवन्मुक्त को सर्वत्र सर्वात्मा पूर्ण भासता है और स्वस्वरूप है। वह तो स्वरूप, सार, शान्तिरूप अमृत से पूर्ण और निर्वाण में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेअसंख्यसृष्टिप्रतिपादनन्नामतृतीयस्सर्गः॥ ३॥

इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति में कुछ भेद नहीं है। जैसे जल स्थिर है तौ भी जल है और तरङ्ग है तौ भी जल है तैसेही जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति में कुछ भेद नहीं है। हे रामजी! जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का अनुभव तुमको प्रत्यक्ष नहीं भासता क्योंकि; स्वसंवेद है और उनमें जो भेद भासता है सो असम्यक्दर्शी को भासता है ज्ञानवान् को कुछ भेद नहीं भासता है। हे मननकारियों में श्रेष्ठ रामजी! जैसे वायु स्पन्दरूप होती है तौभी वायु है और निस्स्पन्दरूप होती है तौभी वायु है निश्चय करके कुछ भेद नहीं पर और जीव को स्पन्द होती है तो भासती और निस्स्पन्द होती है तो नहीं भासती; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष को जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति में कुछ भेद नहीं--वह सदा अद्वैत और इच्छा से रहित है। जब जीव को उसका शरीर भासता है तब जीवन्मुक्ति कहते हैं और जब शरीर अदृश्य होता है तब विदेहमुक्ति कहते हैं पर उसको दोनों तुल्य हैं। हे रामजी! अब प्रकृत प्रसंग को जो श्रवण का भूषण है सुनिये। जो कुछ सिद्ध होता है। सो अपने पुरुषार्थ से सिद्ध होता है। पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता। लोग जो कहते हैं कि, दैव करेगा सो होगा यह मूर्खता है। चन्द्रमा जो हृदय को शीतल और उल्लासकर्त्ता भासता है इसमें यह शीतलता पुरुषार्थ से हुई है। हे रामजी! जिस अर्थ की प्रार्थना और यत्नकरे और उससे फिरे नहीं तो अविस्मयकर जरूर पाता है। पुरुषप्रयत्न किसका नाम है सो सुनिये। सन्तजन और सत्यशास्त्र के उपदेशरूप उपाय से उसके अनुसार चित्त का विचरना पुरुषार्थप्रयत्न है और उससे इतर जो चेष्टा है। उसका नाम उन्मत्त चेष्टा है। जिस निमित्त यत्न करता है सोई पाता है। एक जीव पुरुषार्थप्रयत्न करके इन्द्र की पदवी पाकर त्रिलोकी का पति हो सिंहासनपर

आरूढ़ हुआ। हे रामचन्द्र! आत्मतत्त्व में जो चैतन्य सम्पत्ति है सो सम्पद्रूप हो कर फुरती है और सोई अपने पुरुषार्थ से ब्रह्मा के पद को प्राप्तभई है। तिसे देख जिसको कुछ सिद्धता प्राप्तहुई है सो अपने पुरुषार्थ से ही हुई है। केवल चैतन्य आत्मतत्त्व है उसमें चित्तसंवेदन स्पन्दरूप है यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ से गरुड़ पर आरूढ़ होकर विष्णुरूप होता है और पुरुषोत्तम कहाता है और यही चैतन्यसंवेदन अपने पुरुषार्थ से रुद्ररूप हो अर्द्धाङ्ग में पार्वती, मस्तक में चन्द्रमा और नीलकण्ठ परमशान्तिरूप को धारण करता है इससे जो कुछ सिद्ध होता है सो पुरुषार्थ से ही होता है। हे रामजी! पुरुषार्थ से सुमेरु का चूर्ण किया चाहे तो वह भी करसक्ता है। यदि पूर्व दिन में दुष्कृत किया हो और अगले दिनमें सुकृत करे तो दुष्कृत दूर होजाता है। जो अपने हाथ से चरणामृत भी ले नहीं सक्ता वह यदि पुरुषार्थ करे तो वही पृथ्वी को खण्ड खण्ड करने को समर्थ होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थोपक्रमोनामचतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चित्त जो कुछ वाञ्छा करता है और शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता सो सुख न पावेगा क्योंकि उसकी उन्मत्त चेष्टा है। पुरुषार्थ भी दो प्रकार के हैं—एक शास्त्र के अनुसार और दूसरा शास्त्रविरुद्ध है। जो शास्त्र को त्याग करके अपनी इच्छा के अनुसार विचरता है सो सिद्धता न पावेगा और जो शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करेगा वह सिद्धता को प्राप्त होगा कदाचित् दुःख न पावेगा। अनुभव से स्मरण होता है और स्मरण से अनुभव होता है यह दोनों इसही से होते हैं। दैव तो कुछ न हुआ। हे रामजी! और दैव कोई नहीं; इसका किया ही इसी को प्राप्त होता है परन्तु जो बलिष्ठ होता है उसीके अनुसार विचरता है। जिसके पूर्वके संस्कार बली होते हैं उसीकी जय होती है और जो विद्यमान पुरुषार्थ बली होता है तब उसको जीत लेते हैं। जैसे एक पुरुष के दो पुत्र हैं तो वह उन दोनों को लड़ाता है पर दोनों में से जो बली होता है उसी की जय होती है परन्तु दोनों उसीके हैं तैसेही दोनों कर्म इसके हैं जिसका पूर्व का संस्कार बली होता है उसी की जय होती है। हे रामजी! यह जीव जो सत्संग करता है और सत्शास्त्र को भी विचारता है पर फिर भी पक्षी के समान जो संसार वृक्ष की ओर उड़ता है तो पूर्वका संस्कार बली है उससे स्थिर नहीं होसक्ता। ऐसा जानकर पुरुष प्रयत्न का त्याग न करै। पूर्वके संस्कार से अन्यथा नहीं होता परन्तु पूर्व का संस्कार बली भी हो। और सत्संग करे और सत्शास्त्र का भी दृढ़ अभ्यास हो तो पूर्व के संस्कार को पुरुषप्रयत्न से जीतलेता है। जैसे पूर्व के संस्कार में दुष्कृत किया है और आगे सुकृत करे तो अगले का अभाव होजाता है सो पुरुष प्रयत्न सेही होता है। पुरुषार्थ क्या है और उससे क्या सिद्ध होता है सो

श्रवण करिये। ज्ञानवान् जो सन्त हैं और सत्शास्त्र जो ब्रह्मविद्या है उसके अनुसार प्रयत्न करने का नाम पुरुषार्थ है और पुरुषार्थ से पानेयोग्य आत्मा है जिससे संसार-समुद्र से पार होता है। हे रामजी! जो कुछ सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ सेही सिद्ध होता है—दूसरा कोई दैव नहीं। जो शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ को त्यागकर कहता है कि, जो कुछ करेगा सो दैव करेगा वह मनुष्यों में गर्दभ है उसका संगकरना दुःखका कारण है। मनुष्य को प्रथम तो यह करना चाहिये कि, अपने वर्णाश्रम के शुभआ-चारों को ग्रहणकरै और अशुभ का त्यागकरे। फिर सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का विचारना और उनको विचारकर अपने गुण दोष को भी विचार करना चाहिये कि, दिन और रात्रि में क्या शुभ अशुभ किया है। आगे फिर गुण और दोषों का भी साक्षीभूत होकर जो सन्तोष, धैर्य्य, विराग, विचार और अभ्यास आदि गुण हैं उनको बढ़ावे और जो दोष विपरीत हैं उनका त्याग करे। जब ऐसे पुरुषार्थ को अ-ङ्गीकार करेगा तब परमानन्दरूप आत्मतत्त्वको पावैगा। इससे हे रामजी! जैसे वन का घायल हुआ मृग घास, तृण और पत्तों को रसीला जानके खाता है तैसेही स्त्री, पुत्र, बान्धव, धनादि में मग्न न होना चाहिये। इनसे विरक्तहोना और दांतों से दांतों को चबाकर संसारसमुद्र के पारहोने का यत्न करना चाहिये। जैसे केशरी सिंह बल करके पिंजरेमें से निकलजाता है तैसेही निकलजाना इसी का नाम पुरुषार्थ है। हे रामजी! जिसको कुछ सिद्धता की प्राप्तिहुई है उसे पुरुषार्थ सेही हुई है, पुरुषार्थ विना नहीं होती। जैसे प्रकाश विना किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होता। जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ त्यागदिया है और दैवके आश्रय हो यह समझता है कि, हमारा दैव कल्याण करेगा वह कभी सिद्ध न होगा। जैसे पत्थरसे तेल निकाला चाहे तो नहीं निकलता तैसेही उसका कल्याण दैवसे न होगा। इसलिये हे रामजी! तुम दैव का आश्रय त्यागकर अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो। जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागा है उसको सुन्दर कान्ति और लक्ष्मी त्यागजाती है। जैसे वसन्त ऋतु की मञ्जरी वसन्त ऋतु के गयेसे विरस होजाती है तैसेही उनकी कान्ति लघु होजाती है। जिस पुरुष ने ऐसा निश्चय किया है कि, हमारा पालनेवाला दैव है वह पुरुष ऐसा है जैसे कोई अपनी भुजा को सर्प जान भय खाके दौड़ता है और भय पाता है और पुरुषार्थ यह है कि, सन्त का संग और सत्शास्त्रों का विचार करके उनके अनुसार विचरे। जो उनको त्यागके अपनी इच्छा के अनुसार विचरते हैं सो सुख और सिद्धता न पावैंगे और जो शास्त्र के अनुसार विचरते हैं वह इस लोक और परलोक में सुख और सिद्धता पावैंगे। इससे संसाररूपी जाल में न गिरनाचाहिये पुरुषार्थ वही है कि, सन्त जनों का संगकरना और बोधरूपी कलम और विचाररूपी स्याही से सत्शास्त्रोंके

अर्थ हृदयरूपी पत्रपै लिखना जब ऐसे पुरुषार्थ करके लिखोगे तब संसाररूपी जाल में न गिरोगे। हे रामजी! जैसे यह पहले नियतहुआहै कि, जो पट है सो पट है; जो घट है सो घटही है; जो घट है सो पटनहीं और जो पट है सो घट नहीं तैसेही यह भी नियत हुआ है कि, अपने पुरुषार्थ विना परमपदकी प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी! जो सन्तों की संगति करता है और सत्शास्त्रभी विचारता है पर उनके अर्थ में पुरुषार्थ नहीं करता उसको सिद्धता नहीं प्राप्त होती। जैसे कोई अमृत के निकट बैठा हो तो पानकिये विना अमर नहीं होता तैसेही अभ्यास किये विना अमर नहीं होता और सिद्धताभी प्राप्त नहीं होती। हे रामजी! अज्ञानी जीव अपना जन्म व्यर्थ खोतेहैं। जब बालक होते तब मूढ़ अवस्था में लीनरहते; युवावस्था में विकार को सेवतेहैं और जरा में जर्जरीभूत होते हैं। इसीप्रकार जीना व्यर्थ खोते हैं। और जो अपना पुरुषार्थ त्यागकरके दैव का आश्रय लेतेहैं सो अपने हन्ता होते हैं वह सुख न पावेंगे। हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार और परमार्थ में आलसी होके और परमार्थ को त्यागके मूढ़ होरहे हैं सो दीन होकर पशुओं के सदृश दुःख को प्राप्तहुये हैं। यह मैंने विचार करके देखा है। इससे तुम पुरुषार्थ का आश्रयकरो और सत्संग और सत्शास्त्ररूपी आदर्श के द्वारा अपने गुण कर और दोष को देखके दोष का त्यागकरो और शास्त्रों के सिद्धान्तों पर अभ्यासकरो। जब दृढ़ अभ्यास करोगे तब शीघ्रही आनन्दवान् होगे। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सायंकाल का समयहुआ तो सब सभा स्नान के निमित्त उठके खड़ीहुई और परस्पर नमस्कार करके अपने २ घर को गये और सूर्य की किरण के निकलतेही सब आ फिर स्थिरभये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थवर्णनन्नामपञ्चमस्सर्गः॥ ५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसका जो पूर्व का किया पुरुषार्थ है उसीका नाम दैव है और दैव कोई नहीं। जब यह सत्संग और सत्शास्त्र का विचार पुरुषार्थ से करे तब पूर्व के संस्कार को जीतलेता है। जिस इष्ट पुरुष के पाने का यह शास्त्रद्वारा यत्न करेगा उसको अवश्यमेव अपने पुरुषार्थ से पावेगा अन्यथा कुछ नहीं होता, न हुआ है और न होगा। पूर्व जो कोई पाप किया होता है उसका जब फल दुःखपाता है तो मूर्ख कहता है कि, हा दैव! हा दैव! हा कष्ट! हा कष्ट! हे रामजी! इसका जो पूर्व का पुरुषार्थ है उसी का नाम दैव है और दैव कोई नहीं। जो कोई दैव कल्पते हैं सो मूर्खहैं। जो पूर्व के जन्म में सुकृतकर आया है वही सुकृत सुख होके दिखाईदेता है और जिसका पूर्व का सुकृत बली होता है उसही की जय होतीहै। जो पूर्वका दुष्कृत बली होता है और शुभ का पुरुषार्थ करता है और सत्संग और सत्शास्त्र को भी विचारता, सुनता और करता है तो पूर्व के संस्कार को जीतलेता है। जैसे पहिले

दिन पाप किया हो और दूसरे दिन बड़ा पुण्य करे तो पूर्वका पाप निवृत्त होजाता है तैसेही जब यहां दृढ़ पुरुषार्थ करे तो पूर्व के संस्कार को जीतलेता है। इससे जो कुछ सिद्ध होता है सो पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है। एकत्रभाव से प्रयत्न करने का नाम पुरुषार्थ है। जो एकत्रभाव से यत्न करेगा उसको अवश्यमेव प्राप्त होगा और जो पुरुष और दैव को जानके अपना पुरुषार्थ त्याग बैठेगा सो दुःख पाकर शान्तिमान् कभी न होगा। हे रामजी! मिथ्या दैव के अर्थ को त्यागके तुम अपने पुरुषार्थ को अङ्गीकार करो। सन्तजनों और सत्शास्त्रों के वचनों और युक्तिसहित यत्न और अभ्यास करके आत्मपद को प्राप्त होना इसीका नाम पुरुषार्थ है। जैसे प्रकाश से पदार्थ का ज्ञान होता है तैसेही पुरुषार्थ से आत्मपद की प्राप्ति होती है। जो पूर्वकर्मानुसार बड़ापापी होता है तो यहां दृढ़ पुरुषार्थ करने से उसको जीतलेता है। जैसे बड़े मेघ को पवन नाश करती है और जैसे वर्ष दिन के पके खेत को बरफ नाशकरदेती है तैसेही पुरुष का पूर्वसंस्कार प्रयत्न से नाश होता है। हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि को तीक्ष्ण करके संसारसमुद्र तरने का पुरुषार्थ किया है। जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं की और पुरुषार्थ को त्यागबैठा है वह पुरुष नीच से नीचगति को पावेगा जे श्रेष्ठपुरुष हैं वे अपने पुरुषार्थ से परमानन्द पद को पावेंगे; जिसके पाने से फिर दुःखी न होंगे। जो देखने में दीन होता है वह भी सत्संगति और सत्शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करता है तो उत्तमपदवी को प्राप्त होता दीखता है। हे रामजी! जिस पुरुष ने पुरुषप्रयत्न किया है उसको सब सम्पदा आ प्राप्त होती हैं और परमानन्द से पूर्णरहता है। जैसे समुद्र रत्न से पूर्ण है तैसेही वह भी परमानन्द से पूर्ण होता है। इससे जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे अपने पुरुषार्थ द्वारा संसार के बन्धन से निकलजाते हैं—जैसे केसरीसिंह अपने बलसे पिंजरेमें से निकल जाता है। हे रामजी! यह पुरुष और कुछ न करे तो यह तो अवश्य करे कि, अपने वर्णाश्रम के अनुसार विचरे और सार पुरुषार्थ करे। जब सन्त और सत्यशास्त्र के आश्रय होके उसके अनुसार पुरुषार्थ करेगा तब सब बन्धन से मुक्त होगा। जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है और किसी और देवको मानके कहता कि, वह मेरा कल्याण करेगा सो जन्म मरण को प्राप्तहोकर शान्तिमान् कभी न होगा हे रामजी! इस जीव को संसाररूपी विसूचिकारोग लगा है। उसको दूरकरने का उपाय मैं कहता हूं। सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अर्थ में दृढ़ भावना करके जो कुछ सुना है उसका वारंवार अभ्यास करके और सब कल्पना त्यागके एकान्त होकर उसका चिन्तन करे तब परमपद की प्राप्तिहोगी और द्वैतभ्रम निवृत्त होकर अद्वैतरूप भासेगा इसी का नाम पुरुषार्थ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! पुरुषार्थ से इसको आध्यात्मिक आदि ताप आ प्राप्त होते हैं उससे शान्ति नहीं पाता । तुमभी रोगी न होना अपने पुरुषार्थ द्वारा जन्म मरण के बन्धन से मुक्तहोना और कोई दैव मुक्ति नहीं करेगा; अपने पुरुषार्थही द्वारा संसारबन्धन से मुक्त होता है । जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया हैं और किसी और देवको मानकर उसमें परायण हुआ है उसका धर्म, अर्थ और काम सभी नष्ट होजाता है और नीच से नीचगति को प्राप्त होता है । हे रामजी ! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आप और वास्तवरूप है उसके आश्रय जो आदि चित्त संवेदन स्फूर्ति है सो अहं ममत्व संवेदन होके फुरने लगती है । इन्द्रियां भी अहंस्फूर्ति हैं जब यह स्फुरना सन्तों और शास्त्रोंके अनुसार हो तब पुरुष परम शुद्धता को प्राप्त होताहै और जो शास्त्र के अनुसार न हो तो वासना के अनुसार भाव अभावरूप भ्रमजाल में पड़ा घटीयन्त्र की नाईं भटककर शान्तिमान् कभी नहीं होता । हे रामजी ! जिस किसी को सिद्धता प्राप्तहुई है अपने पुरुषार्थ से ही हुई है । विना पुरुषार्थ सिद्धता को प्राप्त न होगा । जब किसी पदार्थ को ग्रहण करना होता है तो भुजा पसारे से ही ग्रहण करना होता है और जो किसी देश को जानाचाहै तो चलने से ही पहुँचता है अन्यथा नहीं । इससे पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता । जो कहता है कि, जो दैव करेगा सो होगा वह मूर्ख है । हे रामजी ! और दैव कोई नहीं है । इस पुरुषार्थ काही नाम दैव है । यह दैव शब्द मूर्खों का प्रचार किया हुआ है कि, जब किसी कष्ट से दुःख पाते हैं तो कहते हैं कि दैव का किया है । पर कोई दैव नहीं है । हे रामचन्द्रजी ! जो अपना पुरुषार्थ त्यागके दैव के आश्रय होरहेगा वह कभी सिद्धता को न प्राप्तहोगा क्योंकि; अपने पुरुषार्थ विना सिद्धता किसी को प्राप्त नहीं होती । जब बृहस्पति ने दृढ़ पुरुषार्थ किया तब सर्वदेवताओंके राजा इन्द्र के गुरु हुये और शुक्रजी अपने पुरुषार्थ द्वारा सब दैत्यों के गुरु हुये हैं एवम् और और जो समान जीव हैं उनमें जिस पुरुष ने प्रयत्न किया है सो पुरुष उत्तम हुआ है । जिसको जितनी सिद्धता प्राप्त हुई है अपने पुरुषार्थ से ही हुई है और जिस पुरुष ने सन्तों और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया उसका बड़ा राज्य, प्रजा, धन और विभूति मेरे देखतेही देखते क्षीण होगई और नरक में जला । जिससे कुछ अर्थ सिद्ध हो उसका नाम पुरुषार्थ है और जिससे अनर्थ की प्राप्ति हो उसका नाम अपुरुषार्थ है । हे रामजी ! मनुष्य को सत्शास्त्रों और सन्तसंग से शुभगुणों को पुष्ट करके दया, धैर्य्य, सन्तोष और वैराग्य का अभ्यास करना चाहिये । जैसे बड़े तालसे मेघ पुष्ट होता है और फिर वर्षा करके ताल को पुष्ट करता है तैसेही शुभगुणों से बुद्धि पुष्ट होती है और पुष्टबुद्धि से शुभगुण पुष्ट होते हैं । हे रामजी ! जो बालक अवस्था से अभ्यास किये होता है उसको शुद्धता

प्राप्तहोती है अर्थात् दृढ़ अभ्यास विना शुद्धता प्राप्त नहीं होती। जो किसी देश अथवा तीर्थ को जाना चाहे तो मार्ग में निरालस होके चलाजावे तभी जा पहुँचेगा, जब भोजनकरेगा तभी क्षुधा निवृत्त होगी-अन्यथा न होगी और जब मुख में जिह्वा शुद्ध होगी तभी पाठ स्पष्ट होगा-गूंगे से पाठ नहीं होता। इसलिये जो कुछ कार्य सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है; चुप होरहने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। यहां सब गुरु बैठे हैं इनसे पूछदेखो; आगे जो तुम्हारी इच्छा है सो करो और जो मुझसे पूछो तो मैं सब शास्त्रों का सिद्धान्त कहताहूं जिससे सिद्धता को प्राप्त होगे। हे रामजी! सन्तों अर्थात् ज्ञानवान् पुरुषों और सत्शास्त्रों अर्थात् ब्रह्मविद्या के अनुसार संवेदन, मन और इन्द्रियों का विचार रखना और जो इनसे विरुद्ध हों उन को न करना। इससे तुमको संसार का राग द्वेष स्पर्श न करेगा और सब से निर्लेप रहोगे-जैसे जल से कमल निर्लेप रहता है तैसेही तुमभी निर्लेप रहोगे। हे रामजी! जिस पुरुष से शान्ति प्राप्ति हो उसकी भलीप्रकार सेवा करनी चाहिये क्योंकि; उसका बड़ा उपकार है कि, संसारसमुद्र से निकाल लेता है। हे रामजी! सन्तजन और सत्शास्त्रभी वही हैं जिनके विचार और संगति से संसार से चित्त उसकी ओर हो और मोक्ष का उपाय वही है जिससे और सब कल्पना को त्यागके अपने पुरुषार्थ को अङ्गीकार करे जिससे जन्म-मरण का भय निवृत्त होजावे। हे रामजी! जिस वस्तु की जीव वाञ्छा करता है और उसके निमित्त दृढ़ पुरुषार्थ करता तो अवश्यमेव वह उसको पाता है। बड़े तेज और विभूति से सम्पन्न जो तुमको दृष्टि आता और सुना जाता है वह अपने पुरुषार्थ से ही भया है और जो महानष्ट सर्प, कीट आदिक तुमको दृष्टिआते हैं उन्होंने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है तभी ऐसे हुये हैं। हे रामजी! अपने पुरुषार्थ का आश्रयकरो नहीं तो सर्प, कीटादिक नीचयोनि को प्राप्त होगे। जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ त्यागा और किसी दैवका आश्रय लिया है वह महामूर्ख है क्योंकि; यह वार्ता व्यवहारमें भी प्रसिद्ध है कि, अपने उद्यम किये विना किसी पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती तो परमार्थ की प्राप्ति कैसे हो। इससे परमपद पाने के निमित्त दैव को त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार यत्नकरो तब जे दुःख हैं ते मुक्तहोवेंगे। हे रामजी! जनार्दन विष्णुजी अवतार धारणकरके दैत्यों को मारते हैं और २ चेष्टा भी करते हैं परन्तु उनको पाप का स्पर्श नहीं होता क्योंकि; वे अपने पुरुषार्थ से ही अक्षयपद को प्राप्त हुये हैं। इससे तुमभी पुरुषार्थ का आश्रय करो और संसारसमुद्र को तरजावो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थोपमावर्णनन्नामसप्तमस्सर्गः॥ ७॥

वशिष्ठजी बोले: हे रामजी! यह जो शब्द है कि "दैव हमारी रक्षाकरेगा" सो

किसी मूर्ख की कल्पना है । हमको तो दैव का आकार कोई दृष्टि नहीं आता और न कोई दैव का काल ही जान पड़ता है और न दैव कुछ करताही है । मूर्खलोग दैव दैव कहते हैं पर दैव कोई नहीं है इसका पूर्वका कर्मही दैव है । हे रामजी ! जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है और दैवपरायण हुआ है कि, वह हमारा कल्याण करेगा वह मूर्ख है क्योंकि; अग्नि में जापड़े और दैव निकालले तब जानिये कि, कोई दैव भी है, पर सो तो नहीं होता और स्नान दान भोजन आदिक त्यागकरके चुपहो बैठे और आपही दैव करजावे सो भी किये विना नहीं होता इससे और दैव कोई नहीं; अपना पुरुषार्थ ही कल्याणकर्त्ता है । हे रामजी ! जीव का किया कुछ नहीं होता और दैवही करनेवाला होता तो शास्त्र और गुरुका उपदेश भी न होता । इससे स्पष्ट है कि, सत्शास्त्र के उपदेश से अपने पुरुषार्थ द्वारा इसको वाञ्छितपदवी प्राप्त होती है । इससे और जो कोई दैव शब्द है सो व्यर्थ है । इस भ्रमको त्याग करके सन्तों और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ करे तब दुःख से मुक्त होगा । हे रामजी ! और दैव कोई नहीं है; इसका पुरुषार्थ जो स्पन्द है सोई दैव है । हे रामजी ! जो कोई और दैव करनेवाला होता तो जब जीव शरीर को त्यागता है और शरीर नाश होजाता है—कुछ क्रिया नहीं होती क्योंकि; चेष्टा करनेवाला त्याग जाता है तो सभी शरीर से चेष्टा कराता सो तो चेष्टा कुछ नहीं होती; इससे जाना जाता है कि, दैव शब्द व्यर्थ है । हे रामजी ! पुरुषार्थ की वार्त्ता अज्ञानी जीव को भी प्रत्यक्ष है कि, अपने पुरुषार्थ विना कुछ नहीं होता । गोपाल भी जानता है कि, मैं गौओं को न चराऊं तो भूखीही रहेंगी । इससे वह और दैव के आश्रय नहीं बैठ रहता आपही चरा लेआता है । हे रामजी ! दैव की कल्पना भ्रम से करते हैं । हमको तो दैव कोई दृष्टि नहीं आता और हाथ, पांव, शरीर भी दैव का कोई दृष्टि नहीं आता—अपने पुरुषार्थ से ही सिद्धता दृष्टि आती है और जो कोई आकार से रहित दैव कल्पिये तो भी नहीं बनता क्योंकि; निराकार और साकार का संयोग कैसे हो । हे रामजी ! और दैव कोई नहीं है केवल अपना पुरुषार्थही दैवरूप है । जो राजा ऋद्धि—सिद्धिसंयुक्त भासता है सो भी अपने पुरुषार्थ से हुआ है । हे रामजी ! ये जो विश्वामित्र हैं; इन्होंने दैवशब्द दूरहीसे त्याग दिया है । ये भी अपने पुरुषार्थ से ही क्षत्री से ब्राह्मण हुये हैं और और जो बड़े २ विभूतिमान् हुयेहैं सो भी अपने पुरुषार्थ से ही दृष्टि आते हैं । हे रामजी ! जो दैव पढ़े विना पण्डित करे तो जानिये कि, दैव ने किया; पर पढ़े विना तो पण्डित नहीं होता और जो अज्ञानी से ज्ञानवान् होते हैं सो भी अपने पुरुषार्थ से ही होते हैं । इससे और दैव कोई नहीं । मिथ्याभ्रम को त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार संसारसमुद्र तरने का प्रयत्नकरो । तुम्हारे पुरुषार्थ विना और दैव कोई नहीं । जो और दैव होता

तो बहुत बेर क्रिया बल भी अपनी क्रियाको त्यागके सो रहता कि, आप दैवही करेगा पर ऐसे तो कोई नहीं करता। इससे अपने पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता और जो कुछ इसका किया न होता तो पाप करनेवाले नरक न जाते और पुण्य करनेवाले स्वर्ग न जाते; परन्तु पाप करनेवाले नरक में जाते और पुण्य करनेवाले स्वर्ग में जाते हैं; इससे जो कुछ प्राप्त होता है सो अपने पुरुषार्थ से ही होता है। हे रामजी! जो कोई ऐसा कहे कि, और कोई दैव करता है तो उसका शिर काटिये जो वह दैव के आश्रय जीतारहे तो जानिये कि, कोई दैव है; पर सो तो जीता कोई भी नहीं। इस से दैवशब्द को मिथ्याभ्रम जानके सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार अपने पुरुषार्थ से आत्मपद में स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनंनामाष्टमस्सर्गः॥ ८॥

इतना सुनकर रामजी ने पूछा; हे भगवन्, सर्वधर्म के वेत्ता! आप कहते हैं कि, और दैव कोई नहीं परन्तु इस लोक में प्रसिद्ध है कि; ब्राह्मणभी दैव है और दैव का किया सब कुछ होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं तुमको इसलिये कहता हूं कि, तुम्हारा भ्रम निवृत्त होजावे। अपनेही किये हुये शुभ अथवा अशुभकर्म का फल अवश्यमेव भोगना होता है; उसे दैव कहो वा पुरुषार्थ कहो और दैव कोई नहीं। कर्त्ता, क्रिया, कर्म आदिक में तो दैव कोई नहीं और न कोई दैव का स्थानही है और न रूपही है तो और दैव क्या कहिये। हे रामजी! मूर्खों के परचाने के निमित्त दैवशब्द कहा है। जैसे आकाश शून्य है तैसे दैव भी शून्य है। फिर रामजी बोले, हे भगवन्, सर्वधर्म के वेत्ता! तुम कहते हो कि, और दैव कोई नहीं और आकाश की नाईं शून्य है सो तुम्हारे कहने से भी दैव सिद्ध होता है। तुम कहते हो कि, इसके पुरुषार्थ का नाम दैव है और जगत्में भी दैवशब्द प्रसिद्ध है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं इसलिये तुमको कहताहूं कि, जिससे दैवशब्द तुम्हारे हृदय से उठजावे। दैव नाम अपने पुरुषार्थ का है, पुरुषार्थ कर्म का नाम है और कर्म नाम वासना का है। वासना मन से होती है और मनरूपी पुरुष जिसकी वासना करता है सोई उस को प्राप्तहोता है। जो गांव के प्राप्तहोने की वासना करता है सो गांव को प्राप्तहोता है और जो पत्तन की वासना करता सो पत्तन को प्राप्तहोता है। इससे और दैव कोई नहीं। पूर्व का जो शुभ अथवा अशुभ दृढ़ पुरुषार्थ किया है उसका परिणाम सुख दुःख अवश्य होता है और उसकाही नाम दैव है। हे रामजी! तुम विचार करके देखो कि, अपना पुरुषार्थ कर्म से भिन्न नहीं है तो सुख दुःख देनेवाला और लेनेवाला कोई दैव नहीं हुआ। जीव जो पाप की वासना और शास्त्रविरुद्ध कर्म करता है सो क्यों करता है? पूर्व के दृढ़पुरुषार्थ कर्म से ही पाप करता है। जो पूर्व का पुण्यकर्म किया होता

है तो शुभमार्ग में विचरता । फिर रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो पूर्व की दृढ़वासना के अनुसार यह विचरता है तो मैं क्या करूं ? मुझको पूर्व की वासना ने दीन किया है अब मुझको क्या करना चाहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो कुछ पूर्व की वासना दृढ़ होरही है उसके अनुसार जीव विचारता है पर जो श्रेष्ठ मनुष्य है सो अपने पुरुषार्थ से पूर्व के मलिनसंस्कारों को शुद्ध करता है तो उसके मल दूरहोजाते हैं । जब तुम सत्शास्त्रों और ज्ञानवानों के वचनों के अनुसार दृढ़पुरुषार्थ करोगे तब मलिनवासना दूर होजावेगी । हे रामजी ! पूर्व के मलिन और शुभसंस्कारों को कैसे जानिये सो सुनो । जो चित्त विषय और शास्त्रविरुद्ध मार्ग की ओर जावे और शुभकी ओर न जावे तो जानिये कि; कोई पूर्व का कर्म मलीन है और जो सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार चेष्टाकरे और संसारमार्ग से विरक्त हो तो जानिये कि, पूर्वका शुद्धकर्म है । इससे हे रामजी ! तुमको दोनों से सिद्धता है कि, पूर्व का संस्कार शुद्ध है इससे तुम्हारा चित्त सत्संग और सत्शास्त्रोंके वचनोंको ग्रहणकरके शीघ्रही आत्मपदको प्राप्तहोगा और जो तुम्हारा चित्त शुभमार्ग में स्थिर नहीं होसक्ता तो दृढ़ पुरुषार्थ करके संसार समुद्र से पार हो । हे रामजी ! तुम चैतन्य हो; जड़ तो नहीं हो; अपने पुरुषार्थ का आश्रयकरो और मेरा भी यही आशीर्वाद है कि तुम्हारा चित्त शीघ्रही शुद्धआचरण और ब्रह्मविद्या के सिद्धान्तसार में स्थित हो । हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुषभी वही है जिसका पूर्वका संस्कार यद्यपि मलीन भी था परन्तु सन्तों और सत्शास्त्रों के अनुसार दृढ़ पुरुषार्थ करके सिद्धता को प्राप्त हुआ है और मूर्ख जीव वह है जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागदिया है जिससे संसार से मुक्त नहीं होता । पूर्व का जो कोई पापकर्म किया होता है उसकी मलिनता से पापमें धावता है और अपने पुरुषार्थ के त्यागने से अन्धा होजाता और विशेषकर और भी धावता है । जो श्रेष्ठ पुरुष है उसको यह करना चाहिये कि, प्रथम तो पांचों इन्द्रियों को वशकरे; फिर शास्त्र के अनुसार उनको बर्त्तावे और शुभवासना दृढ़करे, अशुभ का त्यागकरे । यद्यपि त्यागनीय दोनों वासना हैं पर प्रथम शुभवासना को इकट्ठीकरे फिर अशुभ का त्यागकरे । जब शुद्धवासना करके कषाय परिपक्व होगा अर्थात् अन्तःकरण जब शुद्ध होगा तब सन्तों और सत्शास्त्रों के सिद्धान्त का विचार उत्पन्न होगा और उस से तुमको आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी । उस ज्ञानके द्वारा आत्मसाक्षात्कार होगा फिर, क्रिया और ज्ञान का भी त्याग होजावेगा और केवल शुद्ध अद्वैतरूप अपना आप शेष भासेगा । इससे, हे रामजी ! और सब कल्पना का त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ करो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनंनामनवमस्सर्गः ॥ ९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मेरे वचन का ग्रहणकरो। यह वचन बान्धव के समान है अर्थात् तुम्हारे परममित्र होंगे और दुःखसे तुम्हारी रक्षाकरेंगे। हे रामजी! यह जो मोक्ष उपाय तुमसे कहता हूं उसके अनुसार तुम पुरुषार्थ करो तब तुम्हारा परम अर्थ सिद्ध होगा। यह चित्त जो संसार के भोग की ओर जाता है उस भोगरूपी खांड़ में चित्त को गिरने मतदो। भोग के बिसरजाने के त्याग दो हैं। वह त्याग तुम्हारा परममित्र होगा और त्याग भी ऐसा करो कि, फिर उसका ग्रहण न हो। हे रामजी! यह मोक्ष उपाय संहिता है इसको चित्त को एकाग्र करके सुनो; इससे परमानन्द की प्राप्ति होगी। प्रथम शम और दम को धारणकरो सम्पूर्ण संसार की वासना त्याग करके उदारतासे तृप्त रहने का नाम शम है और बाह्यइन्द्रियों के वशकरने को दम कहते हैं जब प्रथम इनको धारणकरोगे तब परमतत्त्व का विचार आपही उत्पन्नहोगा और विचार से विवेकद्वारा परमपद की प्राप्ति होगी। जिस पदको पाकर फिर कदाचित् दुःख न होगा और अविनाशी सुख तुमको प्राप्त होगा। इसलिये इस मोक्षउपाय संहिता के अनुसार पुरुषार्थ करो तब आत्मपद को प्राप्तहोगे। पूर्व जो कुछ ब्रह्माजी ने हमको उपदेश किया है सो मैं तुमसे कहताहूं। इतना सुनकर रामजी बोले; हे मुनीश्वर! आपको जो ब्रह्माजी ने उपदेश किया था सो किसकारण किया था और कैसे तुमने धारण किया था सो कहो? वशिष्ठजी बोले हे रामचन्द्रजी! शुद्ध चिदाकाश एक है और अनन्त, अविनाशी, परमानन्दरूप, चिदानन्द–स्वरूप, ब्रह्म है तिसमें संवेदन स्पन्दरूप होता है सोही विष्णु होकर स्थित भया है। वे विष्णुजी स्पन्द और निस्स्पन्द में एकरस हैं कदाचित् अन्यथाभाव को नहीं प्राप्त होते। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं तैसेही शुद्ध चिदाकाश से स्पन्दकरके विष्णु उत्पन्नहुये हैं। उन विष्णुजी के स्वर्णवत् कीर्णनाभि कमल से ब्रह्माजी प्रकटभये; उन ब्रह्माजी ने ऋषि और मुनीश्वरों सहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्न की और उस मनोराज से जगत् को उत्पन्न किया। उस जगत् के कोण में जो जम्बूद्वीप भरतखण्ड है उसमें मनुष्य को दुःख से आतुर देख उनके करुणा उपजी जैसे पुत्रको देखकर पिता के करुणा उपजती है। तब उनके सुखके निमित्त तप उत्पन्न किया कि, वे सुखी हों और आज्ञा की कि, तप करो! तब वे तप करनेलगे और उस तप करनेसे स्वर्गादिक को प्राप्त होनेलगे। पर उन सुखों को भोगकर वे फिर गिरे और दुःखी हुये तब ब्रह्माजी ने ऐसे देखकर सत्यवाक् धर्मको प्रतिपादन किया और उनके सुखके निमित्त आज्ञाकी। उस धर्मके प्रतिपादन से भी लोगों को सुख प्राप्त होने लगा और वहांभी कुछ काल सुख भोगकर फिर गिरे और दुःखी के दुःखी रहे। फिर ब्रह्माजी ने दान, तीर्थादिक पुण्य क्रिया उत्पन्न करके उनको आज्ञादी कि, इनके सेवने से तुम सुखी रहोगे। जब वे जीव मनको सेवने लगे तब

बड़े पुण्यलोक में प्राप्त होकर उनके सुख भोगनेलगे और फिर कुछ काल अपने कर्म के अनुसार भोग भोगकर गिरे। तब उन्होंने तृष्णा की कि, बहुत सुख दुःखभये और दुःखकर आतुर हुये। उससमय ब्रह्माजी ने देखा कि, यह जीवन और मरण के दुःख से महादीन होते हैं इससे वह उपाय कीजिये जिससे उनका दुःख निवृत्त हो। हे रामचन्द्रजी! ब्रह्माजी ने विचारा कि,इनका दुःख आत्मज्ञान विना निवृत्त नहीं होगा इससे आत्मज्ञान को उत्पन्न कीजिये जिससे ये सुखी होवें। इस प्रकार विचार कर वे आत्मतत्त्व का ध्यान करने लगे। उस ध्यान के करने से शुद्ध तत्त्वज्ञान की मूर्त्ति होकर मैं प्रकटहुआ। मैंभी ब्रह्माजी के समानहूं। जैसे उनके हाथ में कमण्डलु है तैसे मेरे हाथ में भी है; जैसे उनके कण्ठ में रुद्राक्ष की माला है तैसे मेरे कण्ठ मेंभी है और जैसे उनके ऊपर मृगछाला है तैसेही मेरे ऊपर भीहै। मेरा शुद्धज्ञानस्वरूप है। और मुझको जगत् कुछ नहीं भासता और भासता है तो सुषुप्ति की नाईं भासता है। तब ब्रह्माजी ने विचार किया कि, इसको मैंने जीवों के कल्याण के निमित्त उत्पन्न किया है पर यह तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है और अज्ञानमार्ग का उपदेश तब हो जब कुछ प्रश्नोत्तर हो और तभी मिथ्या का विचार होवे। हे रामजी! तब जीवों के कल्याण के निमित्त ब्रह्माजी ने मुझको गोद में बैठाया और शीशपर हाथफेरा। तब तो जैसे चन्द्रमा की किरण से शीतलता होती है तैसेही मैं उससे शीतल होगया। फिर ब्रह्माजी ने मुझ को जैसे हंसको हंस कहे तैसे कहा; हे पुत्र! जीवों के कल्याण के निमित्त तुम एक मुहूर्त्त पर्य्यन्त अज्ञान को अङ्गीकार करो। जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो औरों के निमित्तभी अङ्गीकार करते आये हैं। जैसे चन्द्रमा बहुत निर्मल है परन्तु श्यामता को अङ्गीकार किये है तैसेही तुमभी एक मुहूर्त्त अज्ञान को अङ्गीकार करो। हे रामजी! इसप्रकार मुझको कहकर ब्रह्माजी ने शापदिया कि, तू अज्ञानी होगा। तब मैंने ब्रह्माजी की आज्ञा मानी औ शाप को अङ्गीकार किया और मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व अपना आप था सो अन्य की नाईं होगया। मेरी स्वभावसत्ता मुझको विस्मरण होगई और मेरा मन जाग आया। तब भाव अभावरूप जगत् मुझ को भासने लगा और अपने को मैं वशिष्ठ और ब्रह्माजी का पुत्र जाननेलगा और नानाप्रकार के पदार्थ सहित जगत् जानकर उनकी ओर चञ्चल होनेलगा। फिर मैंने संसारजाल को दुःखरूप जानकर ब्रह्माजी से पूछा; हे भगवन्! यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? और कैसे लीन होता है? हे रामजी! जब मैंने इसप्रकार पिता ब्रह्माजी से प्रश्नकिया तो उन्हों ने भलीप्रकार मुझको उपदेश किया तिससे मेरा अज्ञान नष्ट होगया। जैसे सूर्य के उदय होने से तम निवृत्त होजाता है और जैसे आदर्श को मार्जन करनेसे शुद्ध होजाता है तैसेही मैंभी शुद्ध हुआ। हे रामजी! उस उपदेश से मैं ब्रह्माजी से भी अधिक होगया।

उससमय मुझको परमेष्ठी ब्रह्माजीने आज्ञाकी कि, हे पुत्र ! जम्बूद्वीप भरतखण्ड में तुमको अष्टप्रजापति का अधिकार है वहां जाकर जीवों को उपदेश करो । जिसको संसार के सुख की इच्छा हो उसको कर्ममार्ग का उपदेश करना जिससे वे स्वर्गादिक सुख भोगें और जो संसार से विरक्त हो और आत्मपद की इच्छा रखता हो उसको ज्ञान उपदेश करना । हे रामजी ! इसप्रकार मेरा उपदेश और और उत्पत्ति हुई और इसप्रकार मेरा आना हुआ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेवशिष्ठोपदेशगमनन्नामदशमस्सर्गः ॥ १० ॥

इतना सुनकर रामजी बोले, हे भगवन् ! उस ज्ञान की उत्पत्ति से अनन्तजीवों की शुद्धि कैसे भई सो कृपाकर कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो शुद्ध आत्म-तत्त्व है उसका स्वभावरूप संवेदन—स्फूर्त्ति है; वह ब्रह्मारूप होकर स्थित भई है । जैसे समुद्र अपनी द्रवतासे तरङ्गरूप होता है तैसेही ब्रह्माजी हुये हैं । उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करके तीनों काल उत्पन्न किये । जब कुछ काल व्यतीत हुआ तो कलियुग आया उससे जीवों की बुद्धि मलीन होगई और पापमें विचर कर शास्त्र वेद की आज्ञा उल्लङ्घन करने लगे । जब इसप्रकार धर्मकी मर्य्यादा छिपगई और पाप प्रकट भया तो जितनी कुछ राजधर्म की मर्य्यादा थी सोभी सब नष्ट होगई और अपनी इच्छा के अनुसार जीव विचर कर कष्ट पाने लगे । उनको देखकर ब्रह्माजी के करुणा उपजी और दया करके मुझसे, सनत्कुमार से और नारद से बोले कि, हे पुत्रो ! तुम भूलोक में जाकर जीवों को शुद्ध उपदेशकर धर्मकी मर्य्यादा स्थापनकरो । जिस जीव को भोग की इच्छा हो उसको कर्मकाण्ड और जप, तप, स्नान, संध्या, यज्ञादिक का उपदेश करना और जो संसारसे विरक्त हुये हों और मुमुक्षु हों और जिन्हें परमपद पानेकी इच्छा हो उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना । यह आज्ञा देकर हमको भूमिलोक में भेजा । तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकर विचारने लगे कि, जगत् की मर्य्यादा किसप्रकार हो और जीव शुभमार्ग में कैसे विचरैं ? तब हमने यह विचार किया कि, प्रथम राज्य का स्थापन करो कि, उसकी आज्ञानुसार जीव विचरैं । निदान प्रथम दण्डकर्त्ता राज्य स्थापन किया । जिन राजों के बड़े वीर्य्यवान्, तेज-वान् और उदार आत्मा थे उनको भी हमने अध्यात्मविद्या का उपदेश किया जिससे वे परमपदको प्राप्तभये और परमानन्दरूप अविनाशीपद ब्रह्मविद्याके उपदेश से उन को हुआ तबवे सुखीहुये । इसकारण ब्रह्मविद्या का नाम राजविद्या है । तब हमने वेद, शास्त्र, श्रुति और पुराणों से धर्मकी मर्य्यादा स्थापनकर जप, तप, यज्ञ, दान, स्नान आदिक क्रिया प्रकटकी और उपदेश किया कि, जीव इसके सेवन से सुखी होगा । तब सब फल को पाकर उसको सेवने लगे पर उन में कोई विरले निरहङ्कार हृदय

की शुद्धता के निमित्त सेवन करते थे। हे रामजी! जो मूर्ख थे सो कामना के निमित्त मन में फूल के कर्मकरते थे और घटीयन्त्र की नाईं भटककर कभी ऊर्ध्व और कभी नीचे को जाते थे और जो निष्काम कर्म करते थे उनका हृदय शुद्ध होता था और ब्रह्मविद्या के अधिकारी होते थे। उस उपदेश द्वारा आत्मपद की प्राप्ति कर कितने तो जीवन्मुक्त हुये और कई राजा विदितवेद सिद्धहुये सो राज्य की परम्परा चलाय हमारे उपदेश द्वारा ज्ञानी हुये। राजा दशरथ भी ज्ञानवान् हुये और तुमभी इसीदशा को प्राप्तहुये हो। जैसे तुम विरक्त हुयेहो वैसेही आगेभी स्वाभाविक विरक्तहुये हैं सो स्वभाव से ही देह शुद्ध है इसीकारण तुम श्रेष्ठहो। जो कोई अनिष्ट दुःख प्राप्त होता है तिससे विरक्तता उपजती है सो तुमको नहीं हुई तुम्हें तो सब इन्द्रियों के विषय विद्यमान होने पर वैराग्य हुआ है; इससे तुम श्रेष्ठ हो। हे रामजी! मसान आदिक कष्ट के स्थानों को देखके तो सबको वैराग्य उपजता है कि, कुछ नहीं; मरजाना है पर उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष होता है सो वैराग्य को दृढ़रखता है और मूर्ख है सो फिर विषयमें आसक्त होता है। इससे जिनको अकारण वैराग्य उपजता है सो श्रेष्ठ हैं। हे रामजी! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने वैराग्य और अभ्यास के बलसे संसारबन्धन से मुक्त होजाते हैं—जैसे हस्ती बन्धन को तोड़के अपनेबलसे निकलजाता है और सुखी होता है तैसेही वैराग्य अभ्यास के बलसे बन्धनसे ज्ञानी मुक्त होते हैं। हे रामजी! यह संसार बड़ा अनर्थरूप है। जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ से इस बन्धन को नहीं तोड़ा उसको राग—द्वेषरूपी अग्नि जलाती है और जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ से शास्त्र और गुरुके प्रमाण से ज्ञानसाधन किया है वह उस पद को प्राप्त हुआ है। जैसे वर्षाकाल में बहुत वर्षा के होनेसे वनको दावानल नहीं जलासक्ता तैसेही ज्ञानी को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप कष्ट नहीं देसक्ते। हे रामजी! जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने संसार को विरस जानकर त्यागदिया है उनको संसार के पदार्थ गिरा नहीं सक्ते और जो मूर्ख हैं तिनको गिरादेते हैं। जैसे तीक्ष्ण पवन के वेगसे वृक्ष गिरजाते हैं परन्तु कल्पवृक्ष नहीं गिरता तैसेही हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही है जो संसारको विरस जानकर केवल आत्मतत्त्व की इच्छा करके परायण हो। उसको ही ब्रह्मविद्या का अधिकार है और वही उत्तमपुरुष है। हे राम जी! तुमभी वैसेही उज्ज्वल पात्र हो। जैसे कोमल पृथ्वीमें बीज बोते हैं तैसेही तुमको मैं उपदेश करताहूं। जिसको भोग की इच्छा है और संसार की ओर यत्नकरता है सो पशुवत् है। श्रेष्ठपुरुष वही है जिसको संसारतरने का पुरुषार्थ होता है। हे रामजी! प्रश्न उससे कीजिये जिससे जानिये कि, यह प्रश्न के उत्तरदेने में समर्थ है और जिस को उत्तर देने की सामर्थ्य न हो उससे कदाचित् प्रश्न न करना। उत्तरदेने को समर्थ हो

और उसके वचन में भावना न हो तब भी प्रश्न न करे क्योंकि; दम्भसे प्रश्नकरने में पाप होता है। गुरुभी उन्हीं को उपदेश करता है जो संसार से विरक्त हों और जिनको केवल आत्मपरायण होने की श्रद्धा और आस्तिकभाव हो। हे रामजी! जो गुरु और शिष्य दोनों उत्तम होते हैं तो वचन शोभते हैं। तुम उपदेश के शुद्धपात्र हो। जितने शिष्य के गुणशास्त्र में वर्णन किये हैं सो सब तुममें पायेजाते हैं और मैंभी उपदेश करने में समर्थ हूं इससेकार्य शीघ्रहोगा। हे रामजी! शुभगुणों से तुम्हारी बुद्धि निर्मल होरही है इसलिये मेरा सिद्धान्त का सार वचन तुम्हारे हृदय में प्रवेश करेगा। जैसे उज्ज्वल वस्त्र में केशर का रङ्ग शीघ्र चढ़जाता है तैसेही तुम्हारे निर्मल चित्त को उपदेशका रङ्ग लगेगा। जैसे सूर्यके उदय से सूर्यमुखी कमल खिलता है तैसेही तुम्हारी बुद्धि शुभगुण से खिल आई है। हे रामजी! जो कुछ शास्त्रका सिद्धान्त आत्मतत्त्व में तुमसे कहता हूं उसमें तुम्हारी बुद्धि शीघ्रही प्रवेश करेगी। जैसे निर्मल जल में सूर्यकी कान्ति प्रवेश करती है तैसेही तुम्हारी बुद्धि आत्मतत्त्व में शुद्धता से प्रवेशकरेगी। हे रामजी! मैं तुम्हारे आगे हाथ जोड़के प्रार्थनाकरताहूं कि, जो कुछ मैं तुमको उपदेश करताहूं उसमें ऐसी आस्तिकभावना कीजियेगा कि, इनवचनों से मेरा कल्याण होगा। जो तुमको धारणा न हो तो प्रश्न मतकरना। जिस शिष्य को गुरु के वचन में आस्तिकभावना होती है उसका शीघ्रही कल्याण होता है। अब जिससे तुमको आत्मपद प्राप्तहो सो मैं कहताहूं। प्रथम जो अज्ञानी जीव में असत्य बुद्धि है उसका संग त्यागकरो और मोक्ष द्वार के चारों द्वारपालों से मित्रभावना करो। जब उनसे मित्रभाव होगा तब वह मोक्षद्वार में पहुंचादेंगे और तभी तुमको आत्म-दर्शन होवेगा। उन द्वारपालों के नाम सुनो—शम, सन्तोष, विचार और सत्सङ्ग यह चारों द्वारपाल हैं जिसपुरुष ने इनको वश कियाहै उसको यह शीघ्रही मोक्षरूपी द्वार के अन्दर करदेते हैं। हे रामजी! जो चारों वश न हों तो तीन कोही वश करो अ-थवा दोहीं को वशकरलो अथवा एकको वश करो। जो एकभी वश होगा तो चारों ही वश हो जायँगे। इन चारोंका परस्पर स्नेह है। जहां एक आताहै तहां चारों आके रहते हैं। जिन पुरुषों ने इनसे स्नेह किया है सो सुखी हुये हैं और जिसने इसका त्याग कियाहै सो दुःखी हैं। हे रामजी! यदि प्राण का त्याग हो तौभी एक साधनता यत्नसे वश करना चाहिये एकके वश कियेसे चारोंही वशीभूत होंगे तुम्हारी बुद्धिमें शुभगुणों ने आके निवास किया है जैसे सूर्यमें सब प्रकाश आजाते हैं तैसेही सन्तों और शास्त्रों ने जो निर्मल गुण कहेहैं सो सब तुममें पायेजाते हैं। हे रामजी! तुम मेरे वचनों के सुनने अधिकारी हुये हो जैसे तन्त्रीके सुननेको अंदोरा अधिकारी होताहै। चन्द्रमा के उदयमें जैसे चन्द्रवंशी कमल खिल आते हैं तैसेही शुभगुणोंसे तुम्हारी

बुद्धि खिलआई है। हे रामजी! सत्सङ्ग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धिको तीक्ष्णकरने से शीघ्रही आत्मतत्त्व में प्रवेश होता है। इससे श्रेष्ठ पुरुष वहीहै जिसने संसार को विरस जानके त्यागदियाहै और सन्तों और सत्शास्त्रों के वचनों द्वारा आत्मपदपाने का यत्नकरता है। वह अविनाशी पदको प्राप्तहोता है जो शुभ मार्ग त्यागकरके संसार की ओर लगाहै वह महामूर्ख जड़ है जैसे शीतलतासे जल बर्फ होजाताहै तैसेही अज्ञानी मूर्खता से दृढ़ आत्ममार्ग से जड़ होजाता है। हे रामजी! अज्ञानी के हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहता है इससे वह कदाचित् शान्ति नहीं पाता और कभी आनन्द से प्रफुल्लित नहीं होता वह तैसेही आशासे सदा संकुचित रहता है जैसे अग्नि में मांस सकुचजाताहै। हे रामजी! आत्मपद के साक्षात्कार में विशेष आवरण आशाहीहै। जैसे सूर्य के आगे मेघ का आवरण होताहै तैसेही आत्मतत्त्व के आगे दुराशा आवरण है। जब आशारूपी आवरण दूर हो तब आत्मपद का साक्षात्कार होवे। हे रामजी! आशा तब दूरहो जब सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों का विचार हो हे रामजी! संसाररूपी एक बड़ा वृक्ष है सो, बोधरूपी खड्ग से छेदा जासक्ता है। जब सत्संग और सत्शास्त्र से बुद्धिरूपी खड्ग तीक्ष्ण हो तब संसाररूपी भ्रम का वृक्ष नष्ट होजाता है। जब शुभगुण होते हैं तब आत्मज्ञान आके विराजता है। जहां कमल होते हैं तहां भौंरे भी आके स्थित होते हैं। शुभगुणों में आत्मज्ञान रहता है। हे रामजी! शुभगुणरूप पवन से जब इच्छारूपी मेघ निवृत्त होता है तब आत्मारूपी चन्द्रमा का साक्षात्कार होता है। जैसे चन्द्रमा के उदय हुये आकाश शोभा देता है तैसेही आत्मा के साक्षात्कार हुयेसे तुम्हारी बुद्धि खिलेगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेवशिष्ठोपदेशोनामैकादशस्सर्गः ॥ ११ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अब तुम मेरे वचन के अधिकारी हो। मूर्ख मेरे वचन के अधिकारी नहीं क्योंकि; जप, तप, वैराग्य, विचार, सन्तोष आदि जिज्ञासु के शुभ गुण जो शास्त्रों और सन्तजनों ने कहे हैं उनसे तुम सम्पन्न हो और जितने गुरु के गुण शास्त्रमें वर्णनकिये हैं सो सब मुझमें हैं। जैसे रत्नसे समुद्र सम्पन्न है तैसेही गुणों से मैं सम्पन्न हूं। इससे तुम मेरे वचनको रजो और तमो आदि गुणों को त्याग कर शुद्ध सात्त्विकवान् होकर सुनो। हे रामजी! जैसे चन्द्रमा के उदय होनेसे चन्द्रकान्तमणि द्रवीभूत होता है और उसमें से अमृत निकलता है पर पत्थर की शिलामें से नहीं निकलता तैसेही जो जिज्ञासु होताहै उसीको परमार्थ वचन लगता है; अज्ञानी को नहीं लगता। जैसे निर्मल चन्द्रमुखी कमलिनी हो पर चन्द्रमा न हो तो वह प्रफुल्लित नहीं होती तैसेही जो शिष्य शुद्धपात्र हो और उपदेश करनेवाला ज्ञानवान् न हो तो उसको आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। इसलिये तुम मोक्ष के

पात्र हो और मैंभी परमगुरु हूं। मेरे उपदेश से तुम्हारा अज्ञान नष्ट होजावेगा। अब मैं मोक्ष का उपाय कहता हूं; यदि तुम उसको भले प्रकार विचारोगे तो जैसे महाप्रलय के सूर्य से मन्दराचल पर्वत जलजाता है तैसेही तुम्हारे मलीन मन की वृत्ति का अभाव होजावेगा। इससे हे रामजी! वैराग्य और अभ्यास के बल से इस मनको अपनेमें लीनकर शान्तात्मा हो। तुमने बाल्यावस्था से अभ्यास कर रक्खा है इससे मन उपशम पाके आत्मपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! जिन्होंने सतसङ्ग और सत्शास्त्रों द्वारा आत्मपद पाया है सो सुखी भये हैं, फिर उनको दुःख नहीं लगा क्योंकि; दुःख देहाभिमान से होता है सो देहका अभिमान तो तुमने त्यागही दियाहै। जिसने देह का अभिमान त्याग दिया है और देह का आत्मता से फिर ग्रहण नहीं करता सो सुखी रहताहै। हे रामजी! जिसने आत्मा का बल धरके विचार द्वारा आत्मपद प्राप्त कियाहै वह लोक अकृत्रिम आनन्द से सदा पूर्ण है और सब जगत् उसको आनन्दरूप भासता है। जो असम्यग्दर्शी हैं उनको जगत् अनर्थरूप भासता है। हे रामजी! यह संसाररूप सर्प अज्ञानियों के हृदय में दृढ़ होगया है वह योगरूपी गारुड़ मन्त्र करके नष्ट होजाता है, अन्यथा नहीं नष्ट होता। सर्प के विष से एकजन्म में मरता है और संसरणरूपी विषसे अनेक जन्म पाकर मरता चला जाता है—कदाचित् शान्तिमान् नहीं होता। हे रामजी! जिस पुरुष ने सत्सङ्ग और सत्शास्त्र के वचन द्वारा आत्मपद को पाया है वह आनन्दित हुआ है उसको भीतर बाहर सब जगत् आनन्दरूप भासता है और सब क्रिया करने में उसे आनन्द विलास है। जिसने सत्सङ्ग औ सत्शास्त्रों का विचार त्यागा है और संसार के सन्मुख है उसको संसार अनर्थरूप दुःखदेता है। कोई सर्पके दंश से दुःखी होते हैं, कोई शस्त्र से घायल होतेहैं, कितने अग्नि में पड़ेकी नाईं जलते हैं कितने रस्सी के साथ बँधे होते हैं और कितने अन्धकूपमें गिरके कष्ट पाते हैं। हे रामजी! जिन पुरुषोंने सत्सङ्ग और सत्शास्त्रोंद्वारा आत्मपद को नहीं पाया उनको नरकरूप अग्नि में जलना, चक्की में पीसाजाना; पाषाण की वर्षा से चूर्ण होना; कोल्हू में पेरा जाना और शस्त्र से काटाजाना इत्यादिक जो बड़े २ कष्ट हैं प्राप्त होते हैं। हे रामजी! ऐसा दुःख कोई नहीं जो इस जीव को प्राप्त नहीं होता; आत्मा के प्रमाद से सब दुःख होते हैं। जिन पदार्थों को यह रमणीक जानता है सो चक्रकी नाईं चञ्चल हैं; कभी स्थिर नहीं रहते। सत्मार्ग को त्यागकर जो इनकी इच्छाकरतेहैं सो महादुःख को प्राप्त होते हैं और उनका दुःख इस लिये नष्ट नहीं होता कि, वह ज्ञान के निमित्त पुरुपार्थ नहीं करते। जो पुरुष संसार को निरस जानकर पुरुषार्थ की ओर दृढ़ हुआहै उसको आत्मपद की प्राप्ति होती है। हे रामजी! जिस पुरुष को आत्मपद की प्राप्ति भई है उसको फिर दुःख

नहीं होता। अज्ञानी को संसार दुःखरूप है और ज्ञानी को सब जगत् आनन्दरूप है-उसको कुछ भ्रम नहीं रहता। हे रामजी! ज्ञानवान् में नानाप्रकार की चेष्टा भी दृष्टि आती हैं तौभी वह सदा शान्त और आनन्दरूप है। संसारका दुःख उसको स्पर्श नहीं करसक्ता क्योंकि; उसने ज्ञानरूपी कवच पहिना है। हे रामजी! ज्ञानवान् कोभी दुःख होता है बड़े २ ब्रह्मर्षि और राजर्षि बहुत ज्ञानवान् भये हैं। वेभी दुःख को प्राप्त होतेरहे हैं परन्तु वे दुःख से आतुर नहीं होतेथे वे सदा आनन्दरूपहैं। जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि नानाप्रकार की चेष्टा करते जीव की दृष्टि आते हैं पर अन्तर से वे सदा शान्तरूप हैं; उनको कर्त्ता का कुछ अभिमान नहीं। हे रामजी! अज्ञानरूपी मेघसे उत्पन्न मोहरूपी कुहड़ों का वृक्ष ज्ञानरूपी शरत्काल से नष्ट होजाता है। इससे स्वसत्ता को प्राप्त होताहै और सदा आनन्दसे पूर्ण रहता है। वह जो कुछ क्रिया करते हैं सो तिनको विलासरूपहै सब जगत् आनन्दरूप है। शरीररूपी रथ और इन्द्रियरूपी अश्व हैं। मनरूपी रस्से से उन अश्वों को खींचते हैं। बुद्धिरूपी रथभी वही है जिस रथमें वह पुरुष बैठा है और इन्द्रियरूपी अश्व उसको खोटे मार्ग में डालते हैं। ज्ञानवान् के इन्द्रियरूपी अश्व ऐसे हैं कि, जहां जाते हैं वहां आनन्दरूप हैं; किसी ठौर में खेद नहीं पाते सब क्रियामें उनको विलास है और सर्वदा आनन्द से तृप्त रहते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेतत्त्वज्ञमाहात्म्यंनामद्वादशस्सर्गः॥ १२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसी दृष्टिका आश्रय करो कि, तुम्हारा हृदय पुष्ट हो फिर संसारके इष्ट अनिष्टसे चलायमान न होगा। जिस पुरुष को इसप्रकार आत्मपद की प्राप्तिहुई है सो आनन्दित हुआ है। वह न शोक करता है, न यांचा करता है और हेयोपादेय सेभी रहित परम शान्तिरूप, अमृतसे पूर्णहोरहा है। वह पुरुष नानाप्रकार की चेष्टाकरते दृष्टिआताहै परन्तु वास्तव में कुछ नहीं करता। जहां उसके मनकी वृत्ति जातीहै वहां आत्मसत्ता भासती है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृतसे पूर्ण रहता है तैसेही ज्ञानवान् परमानन्द से पूर्णरहता है। हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे अमृत-रूपी वृत्ति कहीहै इसको तब जानोगे जब तुमको साक्षात्कार होगा। जैसे चन्द्रमा के मण्डल में ताप नहीं होता तैसेहीं आत्मज्ञान की प्राप्ति होनेसे सब दुःख नष्ट होजाते हैं। अज्ञानी को कभी शान्ति नहीं होती; वह जो कुछ क्रियाकरता है उसमें दुःखपाता है जैसे कक्करके वृक्षमें कण्टककी ही उत्पत्ति होती है तैसेही अज्ञानी को दुःख की ही उत्पत्ति होती। हे रामजी! इस जीवको मूर्खता और अज्ञानता से बड़े २ अद्भुत दुःख प्राप्त होते हैं जिनके समान और दुःख नहीं। यदि आत्मतत्त्व की जिज्ञासा में हाथमें ठीकराले चाण्डालके घरकी भिक्षाग्रहण करे वहभी और ऐश्वर्यों से श्रेष्ठ है

पर मूर्खता से जीना व्यर्थ है। उस मूर्खता के दूरकरने का मैं मोक्ष उपाय कहताहूं। यह मोक्ष उपाय परमबोधका कारण है। इसके लिये कुछ संस्कृतबुद्धि भी होनी चाहिये जिससे पद पदार्थ का बोधहो और मोक्षउपाय शास्त्र को विचारे तो उसकी मूर्खता नष्ट होकर आत्मपदकी प्राप्ति होगी। नानाप्रकार के दृष्टान्तों सहित जैसा आत्मबोध का कारण यह शास्त्र है वैसा कोई शास्त्र त्रिलोकी में नहीं। इसे जब विचारोगे तब परमानन्द को पावोगे॥ यह शास्त्र अज्ञान तिमिर के नाशकरने को ज्ञानरूपी शलाका है। जैसे अन्धकार को सूर्य नाशकरता है तैसेही अज्ञानको इस शास्त्रका विचार नाशकरता है। हे रामजी! जिसप्रकार इस जीवका कल्याण है सो सुनिये। जब ज्ञानवान् गुरु सत्शास्त्रों का उपदेश करे और शिष्य अपने अनुभव से ज्ञानपावे अर्थात् गुरु अनुभव और शास्त्र जब ये तीनों इकट्ठे मिलैं तब कल्याण होताहै। जब तक अकृत्रिम आनन्द न मिले तबतक दृढ़ अभ्यास करे। उस अकृत्रिम आनन्द को प्राप्त करनेवाला मैं गुरु हूं। जीवमात्र का मैं परममित्र हूं। हमारी संगति जीव को आनन्द प्राप्त करानेवाली है। इसलिये जो कुछ मैं कहताहूं सो तुम करो। संसारके क्षणमात्र के भोगों को त्यागकरो। क्योंकि, विषयके परिणाम में अनन्तदुःख हैं और हमसे ज्ञानवानों का संगकरो। हमारे वचनों के विचार से तुम्हारे सब दुःख नष्ट होजावेंगे। जिस पुरुष ने हमारे साथ प्रीति की है उसको हमने आनन्द की प्राप्ति, जिससे ब्रह्मादिक आनन्दितभये हैं; करादी है। ज्ञानवान् आनन्दित हुये हैं और निर्दुःख पद को प्राप्तहुये हैं। हे रामजी! आत्मा का प्रमाद जीव को दीन करताहै। जिसने सन्तों और शास्त्रों के विचारद्वारा दृश्य को अदृश्य जानाहै वह निर्भयहुआ है। अज्ञानी का हृदयकमल तबतक सकुचा रहताहै जबतक तृष्णारूपी रात्रि नष्ट नहीं होजाती है और हृदयकमल आनन्द से नहीं खिलआता। हे रामजी! जिसपुरुष ने परमार्थमार्ग त्यागदिया है और संसार के खान पान आदि भोग में मग्नहुआ है उस को तुम मेंडुका जानो, जो कीच में पड़ा शब्दकरताहै। हे रामजी! यह संसार बड़ा आपदा का समुद्रहै। इसमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है वह सत्संग और सत्शास्त्र के विचार से इस समुद्र को उलंघजाता है और परमानन्द निर्भयपद को जो आदि, अन्त और मध्य से रहित है प्राप्तहोता है और जो संसार समुद्रके सन्मुख हुआ है वह दुःख से दुःखरूपपद को प्राप्त होता है और कष्टसे कष्ट नरक को प्राप्तहोता है; जैसे विष को विष जान उसका पानकरता है और वह विष उसको नाशकरता है तैसेही जो पुरुष संसार को असत्य जानकर फिर संसार की ओर यत्न करता है सो मृत्यु को प्राप्तहोता है। हे रामजी! जो पुरुष आत्मपद से विमुख है पर उसे कल्याणरूप जानता है और उसके अभ्यास का त्यागकर संसार की ओर धावता है वह वैसेही नाश

होगा और जन्म मरण को पावेगा जैसे किसी के घर में अग्नि लगे और वह तृण के घर और तृणही की शय्या में शयन करे तो वह नाशको पावे। जो संसार के पदार्थ देख कर राग द्वेषवान् हुये हैं वे सुख बिजुली की चमक से हैं जो होके मिट जाते हैं–स्थिर नहीं रहते। संसार का दुःख आगमापायी है। हे रामजी! यह संसार अविचार से भासता है और विचार किये से लीन होजाता है। यदि विचार किये से लीन न होता तो तुमको उपदेश करने का काम नहीं था। इसीकारण पुरुषार्थ चाहिये–जैसे हाथ में दीपक हो और अन्धा होकर कूप में गिरे सो मूर्खता है तैसेही संसार भ्रम के निवारणवाले गुरु शास्त्र विद्यमान हैं जो उनकी शरण न आवे वह मूर्ख है। हे रामजी! जिस पुरुष ने सन्त की संगति और सत्शास्त्र के विचार द्वारा आत्मपद को पाया है सो पुरुष केवल कैवल्यभाव को प्राप्त हुआ है अर्थात् शुद्ध चैतन्य को प्राप्त हुआ है और संसार भ्रम उनका निवृत्त होगया है। हे रामजी! यह संसार मन के संसरने से उपजा है जीव का कल्याण बान्धव, धन, प्रजा, तीर्थ, देवद्वार और ऐश्वर्य से नहीं होता केवल एकमन के जीतने से कल्याण होता है। हे रामजी! जिसको ज्ञान परमपद रसायन कहते हैं; जिसके पाये से जीव का नाश न हो और जिसमें सर्वसुख की पूर्णता हो इसीका साधन समता और संतोष है। इनसे ज्ञान उत्पन्न होता है। आत्मज्ञानरूपी एक वृक्ष है उसका फूल शान्ति है और स्थिति फल है जिस पुरुष को यह ज्ञान प्राप्त हुआ है सो शान्तिमान् होकर निर्लेप रहता है। उसको संसार का भावाभावरूप स्पर्श नहीं है जैसे आकाश में सूर्य उदय होने से जगत् की क्रिया होती है और जब वह अदृश्य होता है तब जगत् की क्रिया भी लीन होजाती है; और जैसे उस क्रिया के होने और न होने में आकाश ज्यों का त्यों है तैसेही ज्ञानवान् सदा निर्लेप है उस आत्मज्ञान की उत्पत्ति का उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है। हे रामजी! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्र को श्रद्धासंयुक्त पढ़े अथवा सुने तो उसी दिन से वह मोक्षका भागी हो। मोक्ष के चार द्वारपाल हैं सो मैं तुमसे कहता हूं। जब इनमें से एक भी अपने वश हो तब मोक्षद्वार में शीघ्रही प्रवेश होगा उन चारों का नाम सुनिये; हे रामजी! शम जीव के परम विश्राम का कारण है। यह संसार जो दिखता है सो मरुस्थल की नदीवत् है इसको देखकर मूर्ख अज्ञानी सुखरूप जल जान कर मृग के समान दौड़ता है और शान्ति को नहीं प्राप्त होता। जब शमरूपी मेघ की वर्षा हो तब सुखी हो। हे रामजी! शम ही परमआनन्द, परमपद और शिवपद है। जिस पुरुष ने शम पाया है सो संसारसमुद्र से पार हुआ है। उसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। हे रामजी! जैसे चन्द्र उदय होता है तब अमृत की कणा फूटती हैं और शीतलता होती है तैसेही जिसके हृदय में शमरूपी चन्द्रमा उदय होता है उसके सब

ताप मिटजाते हैं और परम शान्तिमान् होता है। हे रामजी! शम देवता के अमृत समान कोई अमृत नहीं शम से परमशोभा की प्राप्ति होती है। जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की क़ान्ति परम उज्ज्वल होती है तैसेही शम को पाके जीवकी उज्ज्वल कान्ति होती है। जैसे विष्णु के दो हृदय हैं—एक तो अपने शरीर में और दूसरा सन्तों में हैं तैसेही जीव के भी दो हृदय होते हैं एक अपने शरीर में और दूसरा शम में। जैसा आनन्द शमवान् को होता है तैसा अमृत के पिये से भी नहीं होता। हे रामजी! कोई प्राण से प्रिय अन्तर्द्धान होकर फिर प्राप्त हो तो जैसा आनन्द होता है उस आनन्द से भी अधिक आनन्द शमवान् को होताहै। उसके दर्शन से भी जैसा आनन्द होता है ऐसा आनन्द राजा, मन्त्री और सुन्दर स्त्री को भी नहीं। हे रामजी! जिस पुरुष को शमकी प्राप्ति हुईहै वह वन्दना करने और पूजने योग्य है। जिसको शमकी प्राप्ति हुई है तिसको उद्वेग नहीं आता और और लोगों से भी उद्वेग नहीं पाता। उस की क्रिया और वचन अमृत की नाईं मीठे और चन्द्रमा की किरण समान शीतल और सब को हृदयाराम हैं। हे रामजी! जैसे बालक माता को पाके आनन्दित होता है तैसेही जिसको शम की प्राप्ति भई है उसके संगसे जीव अधिक आनन्दवान् होता है। जैसे किसीका बान्धव मुवाहुआ फिर आवे और उसको आनन्द प्राप्त हो उससे भी अधिक आनन्द शमसम्पन्न पुरुष को होता है। हे रामजी! ऐसा आनन्द चक्रवर्ती और त्रिलोकी के राज्य पाये से भी नहीं होता। जिसको शम की प्राप्ति हुई है उसके शत्रुभी मित्र होजाते हैं; उसको सर्प और सिंह का भयभी नहीं रहता बल्कि किसीका भी भय नहीं रहता वह सदा निर्भय शान्तरूप रहता है। हे रामजी! जो कोई कष्ट प्राप्त हो और काल की अग्निभी आलगे तौभी वह चलायमान नहीं होता—सदा शान्तरूप रहता। जैसे शीतल चांदनी चन्द्रमा में स्थित है तैसेही जो कुछ शुभ गुण और संपदा है सब शमवान् के हृदय में आस्थित होती हैं। हे रामजी! जो पुरुष आध्यात्मिकादि ताप से जलता है उसके हृदय में कदाचित् शम की प्राप्ति हो तो सब ताप मिटजाते हैं। जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा से शीतल होजाती है तैसे ही उसका हृदय शीतल होजाता है। जिसको शमकी प्राप्ति हुई है सो सब क्रिया में आनन्दरूप है—उसको कोई दुःख नहीं स्पर्श करता। जैसे वज्र और शिला को बाण नहीं वेध सक्ता तैसेही जिस पुरुष ने शमरूपी कवच पहिना है उसको आध्यात्मिकादि ताप वेध नहीं सक्ते—वह सर्वदा शीतलरूप रहता है। हे रामजी! तपस्वी, पण्डित, याज्ञिक और धनाढ्य पूजामें मान करने योग्य हैं परन्तु जिसको शम की प्राप्ति हुई है सो सब से उत्तम और सबके पूजने योग्य है। उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्व को ग्रहण करती है और सब क्रिया में सोहती है। जिस पुरुष को शब्द, स्पर्श, रूप, रस

और गन्ध क्रिया के विषयों के इष्ट अनिष्ट में राग द्वेष नहीं होता उसको शान्तात्मा कहते हैं। हे रामजी! जो संसार के रमणीय पदार्थ में बध्यमान नहीं होता और आत्मानन्द से पूर्ण है उसको शान्तिमान् कहते हैं। उसको संसार के शुभ अशुभ का मलिनपना नहीं लगता वह तो सदा निर्लेप रहता है। जैसे आकाश सब पदार्थों से निर्लेप है तैसेही शान्तिमान् सदा निर्लेप रहता है। हे रामजी! ऐसा पुरुष इष्ट विषय की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् नहीं होता। वह अन्तःकरण से सदा शान्त रहता है और उसको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता; वह अपने आपमें सदा परमानन्दरूप रहताहै। जैसे सूर्य के उदय होतेही अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही शान्ति के पाये सब दुःख नष्ट होकर सदा निर्विकार रहता है। हे रामजी! वह पुरुष सब चेष्टा करते दृष्टि आता है परन्तु सदा निर्गुणरूप है; कोई क्रिया उसको स्पर्श नहीं करती। जैसे जल में कमल निर्लेप रहता है तैसेही शान्तिमान् सदा निर्लेप रहता है। हे रामजी! जो पुरुष बड़ी राज्य-सम्पदा और बड़ी आपदा को पाकर ज्यों का त्यों अलग रहता है उसे शान्तिमान् कहिये। हे राम जी! जो पुरुष शान्ति से रहित है उसका चित्त क्षण क्षण राग द्वेष से तपता है और जिसको शान्ति की प्राप्ति भई है सो भीतर बाहर शीतल और सदा एकरस है। जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है तैसेही वह सदा शीतल रहता है। उसके मुखकी कान्ति बहुत सुन्दर होजाती है। जैसे निष्कलङ्क चन्द्रमा है तैसेही शान्तिमान् निष्कलङ्क रहताहै। हे रामजी! जिसको शान्ति प्राप्त भई है सो परम आनन्दित हुआ है और उसीको परमलाभ प्राप्त होता है। ज्ञानी इसीको परमपद कहते हैं। जिसको पुरुषार्थ करना है उसको शान्ति की प्राप्ति करनी चाहिये। हे रामजी! जैसे मैंने कहा है उस क्रम से शान्ति का ग्रहण करो तब संसारसमुद्रके पार पहुंचोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेशमनिरूपणंनामत्रयोदशस्सर्गः॥ १३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अब विचारका निरूपण सुनिये। जब हृदय शुद्ध होता है तब विचार होता है और शास्त्रार्थ के विचारद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होतीहै। हे रामजी! अज्ञानवन में आपदारूपी बेलि की उत्पत्ति होती है उसको विचाररूपी खड्ग से जब काटोगे तब शान्तआत्मा होगे। मोहरूपी हस्ती जीव के हृदयकमल का खण्ड खण्ड करडालता है—अभिप्राय यह है कि, इष्ट अनिष्ट पदार्थ में राग द्वेष से छेदाजाता है। जब विचाररूपी सिंह प्रकटे तब मोहरूपी हस्ती का नाशकर शान्तात्मा हो। हे रामजी! जिसको कुछ सिद्धता प्राप्त हुई है उसे विचार और पुरुषार्थ से ही हुई है। जब प्रथम राजा विचारकर पुरुषार्थ करता है तब उसीसे राज्य को प्राप्त होता है। प्रथम बल, दूसरे बुद्धि, तीसरे तेज, चतुर्थ पदार्थ का आगमन और पञ्चम पदार्थ

की प्राप्ति इन पांचों की प्राप्ति विचार से होती है अर्थात् इन्द्रियों का जीतना, बुद्धि आत्माव्यापिनी और तेज पदार्थ का आगमन इनकी प्राप्ति विचार से होती है। हे रामजी! जिस पुरुष ने विचार का आश्रय लिया है वह विचार की दृढ़ता से जिस की वाञ्छा करता है उसको पाता है। इससे विचार इसका परममित्र है। विचारवान् पुरुष आपदा में नहीं मग्न होता जैसे तुम्बी जल में नहीं डूबती तैसेही वह आपदा में नहीं डूबता। हे रामजी! वह जो कुछ करता है विचारसंयुक्त करताहै और विचार-संयुक्त ही देता लेता है। उसकी सब क्रिया सिद्धता का कारणरूप होती हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष विचार की दृढ़ता से ही सिद्ध होते हैं। विचाररूपी कल्पवृक्ष में जिसका अभ्यास होता है सोई पदार्थों की सिद्धि को पाता है। हे रामजी! शुद्ध ब्रह्म का विचार ग्रहण करके आत्मज्ञान को प्राप्त होजाओ। जैसे दीपक से पदार्थ का ज्ञान होता है तैसेही पुरुष विचारसे सत्य असत्य को जानता है। जो असत्य को त्यागकर सत्य की ओर यत्न करता है उसेही विचारवान् कहते हैं। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र में आपदा की तरङ्गें उठती हैं। विचारवान् पुरुष उनके भाव अभाव में कष्टवान् नहीं होता। जो कुछ क्रिया विचारसंयुक्त होती है उसका परिणाम सुख है और जो विचार विना चेष्टा होती है उससे दुःख प्राप्त होता है। हे रामजी! अविचाररूप कण्टक के वृक्ष से दुःख के बड़े कण्टक उत्पन्न होते हैं। अविचाररूपी रात्रि में तृष्णारूपी पिशाचिनी विचरती है और जब विचाररूपी सूर्य उदय होता है तब अविचाररूपी रात्रि और तृष्णारूपी पिशाचिनी नष्ट होजाती हैं। हे रामजी! हमारा यही आशीर्वाद है कि, तुम्हारे हृदय से अविचाररूपी रात्रि नष्ट होजाय। विचाररूपी सूर्य से अविचारित संसार दुःख का नाश होता है। जैसे बालक अविचारसे अपनी परछाहीं को वैताल कल्पके भय पाता है और विचार किये से भय नष्ट होजाता है तैसेही अविचारसे संसार दुःख देताहै और सत्‌शास्त्र द्वारा युक्तिकर विचार कियेसे संसार का भय नष्ट होजाता है। हे रामजी! जहां विचार है तहां दुःख नहीं है। जैसे जहां प्रकाश है तहां अन्धकार नहीं होता और जहां प्रकाश नहीं तहां अन्धकार रहता है; तैसेही जहां विचारहै वहां संसारभय नहीं है और जहां विचार नहीं तहां संसार-भय रहता है। जहां आत्मविचार उत्पन्न होताहै वहां सुख के देनेवाले शुभगुण स्थित होते हैं। जैसे मानसरोवर में कमल की उत्पत्ति होती है तैसेही विचार में शुभ गुणों की उत्पत्ति होती है। जहां विचार नहीं है तहांही दुःख का आगमन होता है। हे रामजी! जो कुछ अविचार से क्रिया करते हैं सो दुःख का कारण होती है। जैसे चूहा बिलको खोदके मृत्तिका निकालता है वह जहां इकट्ठी होती है वहां बिल की उत्पत्ति होती है तैसेही अविचार से जीव मृत्तिकारूपी पाप क्रिया को इकट्ठी करता है

और उससे आपदारूपी बिल उत्पन्न होती है। अविचाररूपी घुनके खाये सूखे वृक्षसे सुखरूपी फल नहीं निकलते हैं। अविचार उसका नाम है जिसमें शुभ और शास्त्रानुसार क्रिया न हो। हे रामजी! विवेकरूपी राजा है और विचाररूपी उसकी ध्वजा है जहां विवेकरूपी राजा आता है वहां विचाररूपी ध्वजा भी उसके साथ फिरती है और जहां विचाररूपी ध्वजा आती है वहां विवेकरूपी राजा भी आता है। जो पुरुष विचार से सम्पन्न है सो पूजने योग्य है। जैसे द्वितीया के चन्द्रमा को सब नमस्कार करते हैं तैसेही विचारवान् को सब नमस्कार करते हैं। हे रामजी! हमारे देखते देखते अल्पबुद्धि भी विचार की दृढ़ता से मोक्षपद को प्राप्त हुये हैं। इससे विचार सबका परम मित्र है। जैसे हिमालय पर्वत भीतर बाहर से शीतल रहता है तैसेही वह भी शीतल रहता है। देखो विचार से जीव ऐसे पद को प्राप्त होता है जो नित्य, स्वच्छ, अनन्त और परमानन्दरूप है। उसको पाकर फिर उसके त्याग की इच्छा नहीं होती और न और के ग्रहण कीही इच्छा होती है उसको इष्ट अनिष्ट सब समान हैं जैसे तरङ्ग के होने और लीन होने में समुद्र समान रहता है तैसेही विवेकी पुरुष को इष्ट अनिष्ट की समता रहती है और संसार भ्रम मिटजाता है। आधाराधेय से रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्त होताहै। हे रामजी! यह जगत् अपने मनके मोह से उपजता है और अविचारसे दुःखदायी दीखताहै। जैसे अविचारसे बालक को वैताल भासता है तैसेही इसको जगत् भासता है। जब ब्रह्मविचारकी प्राप्ति हो तब जगत् का भ्रम नष्टहोजावे। हे रामजी! जिसके हृदय में विचार होताहै उसके समता की उत्पत्ति होतीहै। जैसे बीज से अंकुर निकल आताहै तैसेही विचारसे समता हो आती है और विचारवान् पुरुष जिसकी ओर देखता है उस ओर आनन्द दृष्टआता है; दुःख नहीं भासता। जैसे सूर्यको अन्धकार नहीं दृष्टि आता तैसेही विचारवान् को दुःख नहीं दृष्ट आता। जहाँ अविचारहै वहां दुःखहै; जहां विचारहै वहां सुख है। जैसे अन्धकार के अभावहुये वैतालके भय का अभाव होजाता है तैसेही विचार किये से दुःख का अभाव होजाताहै। हे रामजी! संसाररूपी दीर्घरोग के नाश करने को विचार बड़ी औषध है। जैसी पौर्णमासी के चन्द्रमा की उज्ज्वल कान्ति होतीहै तैसेही विचारवान् के मुखकी उज्ज्वल कान्ति होतीहै। हे रामजी! विचारसेही परमपद की प्राप्ति होतीहै। जिससे अर्थ सिद्ध हो उसका नाम विचार है और जिससे अनर्थ सिद्धहो उसका नाम अविचारहै। जो अविचाररूपी मदिराको पान करताहै सो उन्मत्त होजाताहै उससे शुभविचार कोई नहीं होता और शास्त्र के अनुसार क्रिया भी उस से नहीं होतीहै। हे रामजी! इच्छारूपी रोग विचाररूपी औषध से निवृत्त होता है। जिस पुरुष ने विचार द्वारा परमार्थ सत्ता का आश्रय लिया है सो परम शान्ति हो

जाता है और हेयोपादेयबुद्धि उसकी नहीं रहती वह सब दृश्य को साक्षीभूत होकर देखता है और संसार के भाव अभाव में ज्यों का त्यों रहताहै। वह उदय अस्त से रहित निस्संगरूप है। जैसे समुद्र जल से पूर्णहै तैसेही विचारवान् आत्मतत्त्व से पूर्णहै। जैसे अन्धे कूप में पड़ाहुआ हाथ के बल से निकलता है तैसेही संसाररूपी अन्धकूप में गिराहुआ विचारके आश्रय होकर विचारवान्ही निकलने को समर्थ होताहै। हे रामजी! राजा को जो कोई कष्ट प्राप्त होताहै तो वह विचार करके यत्न करता है तब कष्ट निवृत्तहोजाता है; इससे तुम विचारकर देखो कि जो किसीको कष्ट प्राप्त होताहै तो विचारसेही मिटता है। तुमभी विचारका आश्रय करके सिद्धि को प्राप्तहो। वह विचार इस प्रकार प्राप्त होताहै कि, वेद और वेदान्त के सिद्धान्त को श्रवणकर पाठकरे और भले प्रकार विचारे तब विचारकी दृढ़ता से आत्मतत्त्व को प्राप्तहोगा। जैसे प्रकाश से पदार्थ का ज्ञानहोताहै तैसेही गुरु और शास्त्र के वचनों से तत्त्वज्ञान होताहै जैसे प्रकाशमें अन्धे को पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती तैसेही गुरु, शास्त्र और विचार से जो शून्य हो उसको आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी! जो विचाररूपी नेत्र से सम्पन्न हैं सोई देखते हैं और जो विचाररूपी नेत्र से रहितहैं वे अन्धे हैं। हे रामजी! ऐसा विचार करे कि, "मैं कौनहूँ"? "यह जगत् क्या है"? "इसकी उत्पत्ति कैसे हुई है" और "लीन कैसे होताहै"? इस प्रकार सन्तों और शास्त्रों के अनुसार विचार करके सत्य को सत्य औ असत्य को असत्य जान जिस को असत्य जाने उसका त्यागकरे और सत्य में स्थित हो। इसीका नाम विचारहै। इस विचार से आत्मपद की प्राप्ति होतीहै। हे रामजी! विचाररूपी दिव्यदृष्टि जिस को प्राप्त हुईहै उसको सब पदार्थों का ज्ञानहोता है और विचारसेही आत्मपद की प्राप्ति होतीहै, जिसके पाये से परिपूर्ण होजाताहै और फिर शुभ अशुभ संसार में चलायमान नहींहोता—ज्योंका त्यों रहता है। जबतक प्रारब्ध का वेग होताहै तबतक शरीर की चेष्टा होतीहै और जबतक अपनी इच्छा होतीहै तबतक शरीर की चेष्टा करता है फिर शरीर को त्यागकर केवल शुद्धरूप होजाताहै। इससे; हे रामजी! ब्रह्मविचार का आश्रय करके संसार समुद्र को तरजाओ। इतना रुदन रोगी और कष्टवान् पुरुष भी नहीं करता जितना विचाररहित पुरुष करता है। हे रामजी! जो पुरुष विचारसे शून्य है उसको सब आपदा आ प्राप्त होती हैं। जैसे सब नदी स्वभाव-से ही समुद्र में प्रवेश करती हैं तैसेही अविचारसे सब आपदा प्रवेशकरतीहैं। हे रामजी! कीच का कीट, गर्त्त का कण्टक और अँधेरे बिल में सर्प होना भला है परन्तु विचारसे रहितहोना तुच्छहै। जो पुरुष विचारसे रहित होकर भोग में दौड़ता है वह श्वानहै। हे रामजी! विचार से रहित पुरुष बड़ा कष्टपाताहै। इससे एकक्षण

भी विचार रहित नहीं रहना। विचारसे दृढ़ होकर निर्भय रहना। "मैं कौनहूं" और दृश्य क्याहै? ऐसा विचार करके और सत्यरूप आत्मा को जानकर दृश्य का त्याग करना। हे रामजी! जो पुरुष विचारवान् है सो संसार के भोग में नहीं गिरता सत्यमें ही स्थित होताहै। जब विचार स्थित होताहै तब तत्त्वज्ञान होताहै और जब तत्त्वज्ञान से विश्राम होताहै तब विश्राम से चित्त का उपशम होकर दुःखनाश होताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेविचारनिरूपणन्नामचतुर्दशस्सर्गः॥ १४॥

वशिष्ठजी बोले; हे अविचार शत्रुके नाशकर्त्तः, रामजी! जिस पुरुष को सन्तोष प्राप्तहुआहै वह परमानन्दित होकर त्रिलोकी के ऐश्वर्यको तृणकी नाईं तुच्छ जानता है। हे रामजी! जो आनन्द अमृत के पानकिये और त्रिलोक के राज्य से नहीं होता वह आनन्द सन्तोषवान् को होताहै। हे रामजी! इच्छारूपी रात्रि हृदयरूपी कमल को सकुचा देती है; जब सन्तोषसूर्य उदय होताहै तब इच्छारात्रिका अभाव होजाता है जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वलता से शोभायमान है तैसेही संतोषवान् की कान्ति सुशोभित होतीहै। हे रामजी! त्रिलोकी के राजाकी भी इच्छा निवृत्त न भई तो वह दरिद्री है और जो निर्द्धन सन्तोषवान् है सो सबका ईश्वर है। सन्तोष उसका ही नाम है जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करे और प्राप्तभी हो तो इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष न धरै। सन्तोषवान् सदा आनन्द पुरुष है और आत्मस्थिति से तृप्त हुआ है उसको और इच्छा कुछ नहीं। संतुष्टता से उसका हृदय प्रफुल्लित हुआ है जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होताहै तैसेही संतोषवान् प्रफुल्लित होजाता है जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा नहीं करता और जो अनिच्छित प्राप्तहुई को यथाशास्त्र क्रमसे ग्रहण करता है उसका नाम संतोषवान् है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से पूर्णहोता है तैसेही संतोषवान् का हृदय संतुष्टता से पूर्ण होता है। जो सन्तोष से रहित है उसके हृदयरूपी वन में सदा दुःख और चिन्तारूपी फूल फल उत्पन्नहोतेहैं। हे रामजी! जिसका चित्त सन्तोष से रहित है उसको नानाप्रकार की इच्छा समुद्र की नानाप्रकार की तरंगों के समान उपजतीहैं। सन्तुष्टात्मा परमआनन्दित है। उसको जगत् के पदार्थों में हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती। हे रामजी! जैसा आनन्द संतोषवान् को होताहै वैसा आनन्द अष्टसिद्धिके ऐश्वर्य और अमृत के पानकियेसे भी नहीं होता। संतोषवान् सदा शान्तरूप और निर्मल रहताहै। इच्छारूपी धूर सर्वदा उड़तीरहती है सो सन्तोषरूपी वर्षा से शान्त होजाती है इस कारण सन्तोषवान् निर्मल है। हे रामजी! जैसे आंबका परिपक्व फल सुन्दर होताहै और सबको प्यारा लगता है तैसेही संतोषवान् पुरुष सबको प्यारा लगता है और स्तुतिकरने के योग्य है। जिस पुरुष को सन्तोष प्राप्तभया है उसको परमलाभ भया है। हे रामजी! जहां सन्तोष

है वहां इच्छा नहीं रहती और सन्तोषवान् भोग में दीन होकर नहीं रहता। वह उदारात्मा सर्वदा आनन्द से तृप्त रहता है। जैसे मेघ पवन के आयेसे नष्ट होजाताहै तैसेही सन्तोष के आये से इच्छा नष्ट होजाती है। जो सन्तोषवान् पुरुष है उसको देवता और ऋषीश्वर सब नमस्कार करते और धन्यधन्य कहते हैं। हे रामजी! जब इस सन्तोष को धरोगे तब परमशोभा पावोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेसंतोषनिरूपणन्नामपञ्चदशस्सर्गः॥ १५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितने दान और तीर्थादिक साधन हैं उनसे आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती; आत्मपद की प्राप्ति साधुसङ्गसेही होती है। साधुसङ्गरूपी एक वृक्ष है और उसका फूल आत्मज्ञान है। जिसपुरुष ने फूल की इच्छा की है सो अनुभवरूपी फल को पाता है। जो पुरुष आत्मानन्द से रहित है सो सत्सङ्ग करके आत्मानन्द से पूर्णहोता है, जो अज्ञान से मृत्यु पाताहै सो सन्त के सङ्गसे ज्ञान पाकर अमर होता है और जो आपदा से दुःखी है सो सन्त के सङ्गसे सम्पदा पाता है। आपदारूपी कमल का नाश करनेवाली सत्सङ्गरूपी बरफ की वर्षाहै। सत्सङ्गसेही आत्मबुद्धि प्राप्तहोती है जिससे मृत्यु नहीं होती और सब दुःखों से छूटकर परमानन्द को प्राप्तहोता है। हे रामजी! सन्त की संगति से हृदय में ज्ञानरूपी दीपक जलता है जिससे अज्ञानरूपी तम नष्टहोजाता और बड़े २ ऐश्वर्य को प्राप्तहोता है। फिर उसे किसी भोग्यपदार्थ की इच्छा नहीं रहती और बोधवान् हो के सबसे उत्तमपद में विराजता है जैसे कल्पवृक्ष के निकटगये से वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है तैसेही संसारसमुद्र के पार उतारनेवाले सन्तजन हैं। जैसे धीवर नौकासे पारलगाता है तैसेही सन्तजन युक्ति से संसारसमुद्रसे पारकरते हैं। हे रामजी! मोहमेघ का नाशकरनेवाला सन्तका सङ्ग पवन है। जिसको अनात्म देहादिक से स्नेह नष्टभया है और शुद्ध आत्मा में जिसकी स्थिति है वह उससे तृप्तभया है। फिर संसार के इष्ट अनिष्ट में उसकी बुद्धि चलायमान नहीं होती; वह सदा समताभाव में स्थितरहता है। सन्तजन संसारसमुद्र के पार उतारने में पुल के समानहैं और आपदारूपी बेलिको जड़समेत नाश करनेवाले हैं। हे रामजी! सन्तजन प्रकाशरूप हैं; उनके सङ्गसे पदार्थोंकी प्राप्तिहोती है। जो अपने पुरुषार्थरूपी नेत्रसे हीनहुये हैं उनको पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती। जिनपुरुष ने सत्सङ्ग का त्यागकियाहै वह नरकरूपी अग्नि में लकड़ी की नाईं जरैगा और जिस पुरुष ने सत्सङ्गकिया है उसको नरक की अग्निका नाशकरनेवाला सत्सङ्गरूपी मेघहै। हे रामजी! जिसने सत्सङ्गरूपी गङ्गाका स्नानकिया है उसको फिर तप दान आदिक साधनों का प्रयोजन नहीं। वह सत्सङ्गसेही परमगति को प्राप्तहोगा इससे और सब उपायों को त्यागकर सत्सङ्गको ही खोजना चाहिये जैसे निर्द्धन मनुष्य

चिन्तामणि आदिक धन को खोजताहै तैसेही मुमुक्षु सत्सङ्गको खोजताहै। जो अध्यात्मकादि तीनों तापसे जलता है उसको शीतल करनेवाला सत्सङ्गहीहै। जैसे तपीहुई पृथ्वी मेघसे शीतल होतीहै तैसेही हृदय सत्सङ्गसे शीतल होताहै। हे रामजी! मोहरूपी वृक्षका नाश करनेवाला सत्सङ्गरूपी कुल्हाड़ाहै। सत्सङ्गसेही मनुष्य अविनाशी पद को प्राप्तहोताहै; जिसपदके पायेसे और कुछ पानेकी इच्छा नहीं रहती। इससे सबसे उत्तम सत्सङ्गहीहै। जैसे सब अप्सराओं से लक्ष्मी उत्तमहैं तैसेही सत्सङ्गकर्त्ता सबसे उत्तम है। इससे अपने कल्याण के निमित्त सत्सङ्गकरनाही तुमको योग्यहै। हे रामजी! ये जो चारों मोक्ष के द्वारपालहैं उनका वृत्तान्त तुमसे कहा। जिसपुरुषने इनके साथ प्रीति कीहै वह शीघ्र आत्मपद को प्राप्तहोगा और जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षको न प्राप्तहोंगे। हे रामजी! इनचारोंमेंसे एकभी जहां आताहै वहां तीनों औरभी आजाते हैं। जैसे जहां समुद्र रहताहै वहां सब नदी आजातीहैं तैसेही जहां शम आताहै वहां सन्तोष, विचार और सत्सङ्ग ये तीनोंभी आजातेहैं और जहां साधुसङ्गम होताहै वहां सन्तोष, विचार और शम ये तीनों आजातेहैं। जहां कल्पवृक्ष रहताहै वहां सब पदार्थ स्थित होतेहैं। जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में गुण कला सब इकट्ठी होजातीहैं तैसेही जहां सन्तोष आता है वहां और तीनोंभी आतेहैं और जहां विचार आता है वहां सन्तोष, उपशम और सत्सङ्गभी आरहते हैं। जैसे श्रेष्ठ मन्त्रीसे राज्यलक्ष्मी आस्थित होतीहै तैसेही जहां विचार होताहै वहां औरभी तीनों आतेहैं। इससे हे रामजी! जहां ये चारों इकट्ठे होतेहैं उसे परम श्रेष्ठ जानना। हे रामजी! यदि ये चारों न हों तो एकका तो अवश्य आश्रय करना। जब एक आवेगा तब चारों आ स्थित होंगे। मोक्षकी प्राप्ति होनेके ये चार परम साधनहैं। और उपायसे मुक्ति न होगी। श्लोक "सन्तोषः परमो लाभः सत्सङ्गः परमंधनम्। विचारः परमंज्ञानं शमं च परमंसुखम् ७" हे रामजी! ये परम कल्याणकर्त्ता हैं। जो इन चारोंसे सम्पन्नहै उसकी ब्रह्मादिक स्तुतिकरते हैं। इससे दन्तको दन्त लगा इनका आश्रयकरके मनको वशीभूतकरो। हे रामजी! मनरूपी हस्ती विचाररूपी अंकुशसे वश होताहै। मनरूपी वनमें वासनारूपी नदी चलतीहै उसके शुभ अशुभ दो किनारेहैं। पुरुषार्थ करना यहहै कि, अशुभकी ओरसे मनको रोकके शुभकी ओर चलाना। जब अन्तर्मुख आत्मा के सम्मुख वृत्ति का प्रवाह होगा तब तुम परमपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! प्रथम तो पुरुषार्थ करना यही है कि, अविचाररूपी उँचाई को दूर करे। जब अविचाररूपी बेंट दूर होगा तब आपही प्रवाह चलेगा। हे रामजी! दृश्य की ओर जो प्रवाह चलताहै सो बन्धन का कारण है। जब आत्मा की ओर अन्तर्मुख प्रवाह हो तब मोक्ष का कारण होजाय। आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेसाधुसङ्गनिरूपणंनामषोड़शस्सर्गः ॥ १६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ये मेरे वचन परम पावन हैं। विचारवान् शुद्ध अधिकारी को ये परम बोध के कारण हैं। शुद्ध पात्र पुरुष इन वचनों को पाके सोहते हैं और वचन भी उनको पाके शोभा पाते हैं। जैसे शरद् कालमें मेघ के अभाव से चन्द्रमा और आकाश शोभा देते हैं तैसेही शुद्धपात्रमें ये वचन शोभते हैं और जिज्ञासु निर्मल वचनों की महिमा सुनके प्रसन्न होता है। हे रामजी! तुम परम पात्र हो और मेरे वचन अति उत्तम हैं। यह महारामायण मोक्षोपायकशास्त्र आत्मबोध का परम कारण है। इसमें परम पावन वाक्य की सिद्धता और युक्तियुक्तार्थवाक्य हैं और नाना प्रकार के दृष्टान्त कहे हैं। जिसके बहुत जन्म के पुण्य इकट्ठे होते हैं उसको कल्पवृक्ष मिलता है और फल से झुकपड़ता है तब उसको यह शास्त्र श्रवण होताहै। नीच को इसका श्रवण प्राप्त नहीं होता और न उसकी वृत्ति इसके श्रवण में आतीहै। जैसे धर्मात्मा राजा की इच्छा न्यायशास्त्र के सुनने में होती है और पापात्मा की नहीं होती तैसेही पुण्यवान् की इच्छा इसके सुनने में होती है और अधर्म की इच्छा नहीं होती। जो कोई इस मोक्षोपायक रामायण का आदि से अन्तपर्यन्त अध्ययन करेगा अथवा निष्कामसन्त के मुख से श्रद्धायुक्त सुनकर एकत्र भाव होकर विचारेगा उसका संसार भ्रम निवृत्त होजावेगा। जैसे रस्सी के जानने से सर्पका भ्रम दूरहोजाता है तैसेही अद्वैतात्मा तत्त्व के जानने से उसका संसारभ्रम नष्टहोजावेगा। इस मोक्षोपायक शास्त्र के बत्तीससहस्र श्लोक और षट्प्रकरण हैं। पहिला वैराग्य प्रकरण वैराग्य का परमकारण है। हे रामजी! जैसे मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता और कदाचित् बड़ी वर्षाहो तो वहांभी वृक्ष होताहै तैसेही अज्ञानी का हृदय मरुस्थल की नाईं है उसमें वैराग्यवृक्ष नहीं होता पर जो इस शास्त्र की बड़ीवर्षा हो तो वैराग्यवृक्ष उसमें उत्पन्नहोताहै। इस वैराग्यप्रकरण के एकसहस्र पांच सौ श्लोकहैं। उसके अनन्तर मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण है; उसके परम निर्मल वचन हैं। जैसे मलीनमणि मार्जन किये से उज्ज्वल होजाती है तैसेही इन वचनों से ज्ञानी का हृदय निर्मल होता है और विचारके बल से आत्मपद पाने को समर्थ होताहै। इसके एक सहस्र श्लोक हैं। इसके अनन्तर उत्पत्ति प्रकरण के पांच सहस्र श्लोक हैं। उसमें बड़ी सुन्दर कथा दृष्टान्तों सहित कही है जिसके विचारसे जगत् की उत्पत्ति का भाव मनसे चलायमान रहताहै-अर्थात् इस जगत् का अत्यन्त अभाव जान पड़ता है। हे रामजी! इस जगत् में जो मनुष्य, देवता, दैत्य, पर्वत, नदी आदि और स्वर्गलोक, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश आदि स्थावर जङ्गम अज्ञान से भासते हैं इनकी उत्पत्ति कैसे हुई? जैसे रस्सी में सर्प; सीप में रूपा; सूर्यकी किरणों में जल, आकाश में तारे और दूसरा चन्द्रमा; गन्धर्वनगर और मनोराज की सृष्टि भासती है और जैसे समुद्र में तरङ्ग; आकाशमें नीलता और नौका में

बैठने से किनारे के वृक्ष और पर्वत चलते दृष्टि आते हैं एवम् जैसे बादलके चलनेसे चन्द्रमा धावता दीखता है, स्तम्भ में पुतली भासती हैं और भविष्यत् नगर से आदि ले असत्य पदार्थ सत्य भासते हैं तैसेही सब जगत् है। अज्ञान से अर्थाकार भासता है और अज्ञान सेही इसकी उत्पत्ति दीखतीहै और ज्ञानसे लीन होजाताहै। जैसे निद्रामें स्वप्नसृष्टि की उत्पत्ति होती है और जागेसे निवृत्त होजाती है तैसेही अविद्या से जगत् की उत्पत्ति होतीहै और सम्यक्ज्ञान से निवृत्त होजाती है वह अविद्या कुछ वस्तुही नहीं है। सर्वब्रह्म, जो चिदाकाशरूप शुद्ध, अनन्त और परमानन्द स्वरूप है उससे न जगत् उपजताहै और न लीनहोताहै-ज्योंका त्यों आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। उसमें जगत् ऐसा है जैसे भीत में चित्र होता है वा जैसे स्तम्भ में पुतलियां होती हैं जो हुये विना भासती हैं तैसेही यह सृष्टि मन में है बास्तव में कुछ बनी नहीं—सब आकाशरूप है जब चित्त संवेदन स्पन्दरूप, होताहै तब नानाप्रकार का जगत् होके भासताहै और जब निस्स्पन्द होता है तब मिट जाताहै। इस प्रकार से जगत् की उत्पत्ति कहीहै। उसके अनन्तर स्थिति प्रकरण है; उसमें जगत् की स्थिति कही है। जैसे इन्द्र के धनुष में अविचार से रङ्ग है और जैसे सूर्य की किरणों में जल और रस्सी में सर्प भासता है और वह सब सम्यक् दृष्टि से निवृत्त होता है तैसेही अज्ञान से जगत् की प्रतीति होती है। केवल मनोराज से जगत् रचलेता है-कुछ उत्पन्न नहीं हुआहै। यह जगत् संकल्पमात्रहै जैसे जबतक मनोराज है तबतक वह नगर होताहै जब मनोराज का अभाव हुआ तब नगरका भी अभाव होजाताहै तैसेही जबतक अज्ञान होता है तबतक जगत्की उत्पत्ति होती है जब संकल्प का लय होता है तब जगत् काभी अभाव होजाता है। जैसे ब्रह्माजी के दशपुत्रों की सृष्टि संकल्प से स्थित भई थी तैसेही यह जगत् भी है। कोई पदार्थ अर्थरूप नहीं। हे रामजी! इस प्रकार स्थितिप्रकरण कहा है। उसके तीन सहस्र श्लोक हैं; तिनके विचार से जगत् की सत्यता जाती रहती है। उस के अनन्तर उपशम प्रकरण है उसके पांचसहस्र श्लोक हैं। जैसे स्वप्न से जागे से वासना जाती रहती है तैसेही इसके विचार कियेसे अहं त्वमादिक वासना लीनहोजाती हैं क्योंकि; उसके निश्चय में जगत् नहीं रहता। जैसे एक पुरुष सोया है उसको स्वप्नेमें जगत् भासताहै और उसके निकट जो जाग्रतपुरुषहै उसके स्वप्न का जगत् आकाशरूप है तो जब आकाशरूप हुआ तब वासना कैसेरहै और जब वासना नष्टहुई तब मन का उपशम होजाताहै। तब देखनेमात्र उसकी सब चेष्टाहोतीहै और मनमें अर्थरूप इच्छा नहीं होती। जैसे अग्नि कीमूर्त्ति देखनेमात्र होतीहै-अर्थाकार नहीं होती-तैसेही उसकी चेष्टाहोतीहै। हे रामजी! जैसे तेलसे रहित दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही इच्छा से रहित मन निर्वाण होता है। उसके अनन्तर निर्वाण प्रकरण है।

उसमें परमनिर्वाण वचन कहेहैं। अज्ञान से चित्त और चित्त का सम्बन्ध है; विचार किये से निर्वाण होजाता है। जैसे शरद्काल में मेघ के अभाव से शुद्ध आकाश होता है तैसेही विचार से जीव निर्मल होताहै। हे रामजी! अहंकार पिशाच विचार से नष्टहोता है और जितनी कुछ इच्छा फुरती है सो निर्वाण होजाती है। जैसे पत्थर की शिला फोरने से रहित होती है तैसेही ज्ञानवान् इच्छा से रहित होताहै। तब जितनी कुछ उसकी जगत् की यात्रा है सो होचुकती है और जो कुछकरना है सो कर चुकता है। हे रामजी! शरीर होतेही वह पुरुष अशरीरी होजाता है। नानाप्रकार का जगत् उसको नहीं भासता; जगत्की नेतिसे वह रहित होता है और अहं त्वमादिक तमरूप जगत् उसको नहीं भासता। जैसे सूर्यको अन्धकार दृष्टि नहीं आता तैसेही उसको जगत् दृष्टि में नहीं आता और बड़े पद को प्राप्तहोता है। जैसे सुमेरुपर्वत के किसी कोने में कमल होता है और उसपर भँवरे स्थितरहते हैं तैसेही ब्रह्म के किसी कोने में जगत् तुषाररूप है और जीवरूपी भँवरे उसपर स्थित हैं। वह पुरुष अचिन्त्य चिन्मात्र है; रूप, अवलोकन और मन उसका आकाशरूप होजाता है। वह उसपद को प्राप्तहोता है जिसपद की उपमा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी नहीं कहसक्ते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेषट्प्रकरणविवरणन्नामसप्तदशस्सर्गः॥ १७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ये परम उत्तम वाक्य हैं। इनको विचारनेवाला उत्तम पद को प्राप्तहोता है। जैसे उत्तमखेत में उत्तम बीजबोये से उत्तमफल की उत्पत्ति होती है तैसेही इनका विचारनेवाला उत्तमपद को प्राप्तहोता है। ये वाक्य युक्तिपूर्वक हैं; कदाचित् युक्ति से रहित वाक्यार्थ भी हों तो उनका त्यागकरना चाहिये और युक्ति-पूर्वक वाक्य अङ्गीकार करनाही चाहिये। हे रामजी! जो ब्रह्माके भी वचन युक्तिसे रहित हों तो उनको भी सूखे तृणसमान त्यागकरना चाहिये और यदि बालक के वचन युक्तिपूर्वक हों तो उनको अङ्गीकार करना चाहिये। जैसे पिता के कूप का खारी जल हो तो उसे त्यागकर निकटके मिष्ठकूप के जलको पान करते हैं तैसेही बड़े और छोटे का विचार न करके युक्तिपूर्वक वचन का अङ्गीकार करना चाहिये। हे रामजी! मेरे वचन सब युक्तिपूर्वक और बोधके परमकारण हैं। जो पुरुष एकाग्र होके इसशास्त्र को आदि से अन्तपर्यन्त पढ़ेगा अथवा पण्डित से श्रवण करके विचारेगा तब उसकी बुद्धि संस्कारित होगी। जब पहिले वैराग्यप्रकरणको विचारोगे तब वैराग्य उपजेगा। जितने जगत् के रमणीय भोगपदार्थ हैं उनको बिरस जानकर किसी पदार्थ की वाञ्छा न करोगे। जब भोग में वैराग्य होता है तब शान्तिरूप आत्मतत्त्व में प्रतीत होती है और जब विचार से बुद्धि संस्कारित होगी तब शास्त्र का सिद्धान्त बुद्धि में स्थित होगा। जैसे शरद्काल में बादल के अभाव हुये से आकाश सब ओरसे स्वच्छ

होजाता है तैसेही संसार के विकार छूटकर बुद्धि निर्मल होगी और फिर आधिव्याधि की पीड़ा न होगी। हे रामजी! ज्यों २ विचार दृढ़होगा त्यों त्यों शान्तात्मा होगा। इससे जितने संसार के यत्न हैं उनको त्याग इस शास्त्र के वारंवार विचार से चैतन्य सत्ता उदयहोगी और त्योंहीं त्यों लोभ, मोहादिक विकार की सत्ता नष्ट होगी। जैसे ज्यों २ सूर्य उदय होता है त्यों २ अन्धकार नष्ट होता है तैसेही विकार नष्टहोगा। तब उस पद की प्राप्ति होगी जिसके पायेसे संसार के क्षोभ मिटजायँगे। जैसे शरद्-काल में मेघ नष्टहोजाता है तैसेही संसार के क्षोभ मिटजाते हैं। हे रामजी! जिस पुरुष ने कवच पहना हो उसको बाण नहीं बेध सक्ने; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष को संसार के राग द्वेष नहीं बेध सक्ने। उसको भोग की भी इच्छा नहीं रहती और जब विषय भोग आते हैं तब उनको विषयभूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अन्तःपुर से बाहर नहीं निकलती तैसेही उसकी बुद्धि भीतर से बाहर नहीं निकलती। हे रामजी! बाहरसे तो वहभी प्रकृति जन्मके समान दृष्टिआते हैं और जो कुछ अनिच्छित प्राप्त होते हैं उनको भुगतता हुआ दृष्टि में आता है पर अन्तर से उसको राग द्वेष नहीं फुरता। हे रामजी! जो कुछ जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का क्षोभ है वह ज्ञानवान् को नष्टनहीं करसक्ना। जैसे चित्र की बेलि को आंधी नहीं चला सक्नी तैसेही उसको जगत् का दुःख नहीं चला सक्ना। वह संसार की ओरसे जड़ होजाताहै और वृक्षके समान गम्भीर पर्वत की नाईं स्थिर और चन्द्रमाके सदृश शीतल होजाता है। हे रामजी! वह आत्मज्ञानसे ऐसे पद को प्राप्त होता है जिसके पाये से और कुछ पानेयोग्य नहीं रहता। आत्मज्ञान का कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है। इसमें नाना प्रकार के दृष्टान्त कहे हैं। जो वस्तु अपरिच्छिन्न हो और देखने में न आवे और उसका न्याय देखने में हो तो उसको उपमा से विधिपूर्वक समझाने का नाम दृष्टान्त है। हे रामजी! यह जगत्कार्य कारण से रहित है तो आत्मा जगत् की एकता कैसे हो इससे मैं जो दृष्टान्त कहूंगा उसका एक अंश अङ्गीकारकरना सबदेश अङ्गीकार न करना। हे रामजी! कार्य कारण की कल्पना मूर्खों ने की है। उसके मिटनेके लिये मैं स्वप्नदृष्टान्त कहताहूं उसके समझने से तेरे मन का संशय नष्ट होजावेगा। दृग और दृश्य का भेद मूर्ख को भासता है। उसके दूरकरनेके अर्थ मैं स्वप्नदृष्टान्त कहूंगा जिसके विचारने से मिथ्याविभाग कल्पना का अभाव होताहै। हे रामजी! ऐसी कल्पना का नाशकर्त्ता यह मेरा मोक्षउपाय शास्त्र है। जो पुरुष आदिसे अन्तपर्यन्त इसे विचारेगा सो संस्कारी होगा। जो पद पदार्थ को जाननेवाला हो और दृश्य को वारंवार विचारे तो उसका दृश्यभ्रम नाशहोगा इस शास्त्र के विचार में किसी तीर्थ, तप, दान आदिक की अपेक्षा नहींहै। जहां स्थान हो वहां बैठे और

जैसा भोजन गृह में हो वैसाकरे और वारंवार इसका विचारकरे तो अज्ञान नष्ट होकर आत्मपद की प्राप्तिहोवेगी। हे रामजी! यह शास्त्र प्रकाशरूप है। जैसे अन्धकार में पदार्थ नहीं दीखता और दीपक के प्रकाश से चक्षुसहित दीखता है तैसे शास्त्ररूपी दीपक विचाररूपी नेत्रसहित हो तो आत्मपद की प्राप्तिहो। हे रामजी! आत्मज्ञान विचार विना बर और शाप से प्राप्त नहीं होता। जब विचार करके दृढ़ अभ्यास कीजिये तब प्राप्तहोता है। इससे इस मोक्षपावन शास्त्रके विचारसे जगद्भ्रम नष्ट हो-जावेगा और जगत् को देखते २ जगत् भाव मिटजावेगा। जैसे लिखीहुई सर्प की मूर्त्ति से विना विचार भ्रम होता है और जब विचारकर देखिये तब सर्पभ्रम मिटजाता है तैसेही यह जगद्भ्रम विचार कियेसे नष्ट होजाता और जन्म मरण का भय भी नहीं रहता। हे रामजी! जन्म मरण का भयभी बड़ा दुःखहै परन्तु इस शास्त्रके विचार से वहभी नष्ट होजाता है। जिन्हों ने इसका विचार त्यागा है वह माता के गर्भ में कीट होकर भी कष्टसे न छूटेंगे और विचारवान् पुरुष आत्मपद को प्राप्तहोंगे। जो श्रेष्ठ ज्ञानी है उसको अनन्त सृष्टि अपनाही रूप भासता है; कोई पदार्थ आत्मासे भिन्न नहीं भासता। जैसे जिसको जल का ज्ञान है उसको लहर और आवर्त्त सब जलरूप ही भासती है तैसेही ज्ञानवान् को सब आत्मरूपही भासता है और वह इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में इच्छा द्वेष नहीं करता-सदा एकरस मनके संकल्पते रहित शान्तरूप होताहै जैसे मन्दराचल पर्वतके निकलनेसे क्षीरसमुद्र शान्त हुआ है तैसेही संकल्प विकल्प रहित मनुष्य शान्तिरूप होताहै। हे रामजी! और तेज दाहक होताहै परन्तु ज्ञानका तेज जिस घट में उदय होता है सो शीतल और शान्तिरूप हो-जाताहै और फिर उसमें संसार का विकार कोई नहीं रहता। जैसे कलियुग में शिखा-वाला तारा उदय होताहै और कलियुग के अभाव हुये नहीं उदय होता तैसेही ज्ञान-वान् के चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता। हे रामजी! संसार भ्रम आत्मा के प्रमाद से उत्पन्न होता है पर आत्मज्ञान के प्राप्तहुये वह यत्न विनाही शान्त हो जाताहै। फूल और पत्र के काटनेमें भी कुछ यत्न होताहै परन्तु आत्मा के पानेमें कुछ यत्न नहीं होता क्योंकि; बोधरूपी बोधही से जानता है। हे रामजी! जो जाननेमात्र ज्ञानस्वरूप है उसमें स्थित होने का क्या यत्नहै। आत्माशुद्ध और अद्वैतरूप है और जगद्भ्रममात्र है। जिसकी सत्यता पूर्वापर विचार कियेसे न पाइये उसको भ्रममात्र जानिये और जिसका पूर्वापर विचारकिये से सत्य हो उसका सत्यरूप जानिये। सो इस जगत् की सत्यता आदि अन्त में नहीं है। इससे स्वप्नवत् है। जैसे स्वप्न आदि अन्त में कुछनहीं होता तैसेही जाग्रत् भी आदि अन्त में नहीं है इससे जाग्रत् और स्वप्न दोनों तुल्यहैं। हे रामजी! यह वार्त्ता बालकभी जानताहै कि, जिसकी आदि अन्तमें सत्यता न पाइये सो

स्वप्नवत्है। जिसका आदिभी न हो और अन्तभी न रहे उसका मध्यभी असत्यजानिये। उसका दृष्टान्त यहहै कि, संकल्पपुरीवत्; ध्यान नगरकी नाईं; स्वप्नपुरीकी नाईं; वर और शापसे जो उपजताहै उसकीनाईं और औषधीसे उपजकी नाईं। इनपदार्थोंकी सत्यता न आदिमें होती है और न अन्तमें होतीहै और मध्यमें जो भासताहै सोभी भ्रममात्रहै। तैसेही यह जगत् अकारणहै और कार्यकारण भाव सम्बन्धमें भासताहै तो कार्यकारण जगत् हुआ पर आत्मसत्ता अकारणहै। जगत् साकार और आत्मा निराकार है। इस जगत्का दृष्टान्त जो आत्मामें देंगे उसका तुमको एकअंश ग्रहणकरना चाहिये। जैसे स्वप्नकी सृष्टिका पूर्व अपरभाव आत्मतत्त्वमें मिलताहै क्योंकि; अकारणहै और मध्यभावका दृष्टान्त नहीं मिलता क्योंकि; उपमेय अकारणहै तो उसका इसकेसमान दृष्टान्त क्योंकर हो। इससे अपने बोधके अर्थ दृष्टान्तका एकअंश ग्रहणकरना। हे रामजी! जो विचारवान् पुरुषहैं सो गुरु और शास्त्रके वचन सुनके सुखबोधके अर्थ दृष्टान्तका एक२ अंश ग्रहण करतेहैं तो उनको आत्मतत्त्वकी प्राप्तिहोती है क्योंकि; वे सारग्राहक होते हैं और जो अपने बोध के अर्थ दृष्टान्तका एकअंश ग्रहण नहीं करते और बाद करते हैं उनको आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं होतीहै। इससे दृष्टान्त का एकअंश सारभूत ग्रहण करके दृष्टान्त के सर्वभाव से न मिलना चाहिये और पृथक् को देखकर तर्क न करना चाहिये। जैसे अन्धकार में पदार्थ पड़ाहो तो दीपकके प्रकाश से देखलेतेहैं क्योंकि; दीपकके साथ प्रयोजन है; ऐसे नहीं कहते कि, दीपक किसकाहै और तेलबत्ती कैसी है और किस स्थानकी है। तैसेही दृष्टान्तका एकअंश आत्मबोधके निमित्त अङ्गीकार करना। हे रामजी! जिससे वाक् अर्थ सिद्ध हो और जो अनुभव को प्रकटकरे वह वचन अङ्गीकार करना और जिससे वाक्यार्थ सिद्ध न हो उसका त्यागकरना। जो पुरुष अपने बोध के निमित्त वचन को ग्रहणकरता है वही श्रेष्ठ है और जो बाद के निमित्त ग्रहण करताहै वह मूर्ख है। जो कोई अभिमान को लेकर ग्रहण करताहै वह हस्ती के समान अपने शिरपर मट्टी डालता है—उसका अर्थ सिद्ध नहीं होता और जो अपने बोध के निमित्त वचन को ग्रहण करके बिचारपूर्वक उसका अभ्यास करता है उसका आत्मा शान्त होताहै। हे रामजी! आत्मपद पानेके निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चाहिये। जब शम, विचार, संतोष और सन्तसमागम से बोध को प्राप्तहो तब परमपद को पाताहै। हे रामजी! जो कोई दृष्टान्तदेताहै वह एकदेश लेकर कहता है; सर्वमुख कहनेसे अखण्डता का अभाव होजाताहै। सर्वमुख दृष्टान्त मुख्य को जानिये वह सत्यरूप होता है। ऐसे तो नहीं होता कि, आत्मा तो सत्यरूप, कार्य कारण से रहित, शुद्ध और चैतन्यहै उसके बतानेके लिये कार्य कारण जगत् का दृष्टान्त कैसे दीजिये जो कोई जगत् का दृष्टान्त देताहै वह केवल एक अंश लेके कहताहै और

बुद्धिमान् भी दृष्टान्त के एक अंश को ग्रहणकरते हैं। श्रेष्ठ पुरुष अपने बोध के निमित्त सार कोही ग्रहणकरते हैं। जैसे क्षुधार्थी को चावलपाक प्राप्तहो तो भोजन करने का प्रयोजनहै तैसेही जिज्ञासुको भी यही चाहिये कि, अपने बोध के निमित्त सार को ग्रहण करके वाद न करे क्योंकि, उसकी उत्पत्ति और स्थिति का वाद करना व्यर्थ है। हे रामजी! वाक्य वही है जो अनुभव को प्रकटकरे और जो अनुभव को प्रकट न करे उसका त्याग करना चाहिये। कदाचित स्त्री का वाक्य आत्मअनुभव को प्रत्यक्ष करने वालाहो तो उसका भी ग्रहणकरना चाहिये और जो परमगुरु के वेदवाक्य हों और अनुभव को प्रकट न करे तो उसका त्यागकरना चाहिये। जबतक विश्राम को न पावे तबतक विचारकरना चाहिये। विश्राम का नाम तूर्यपद है। जैसे मन्दराचल पर्वतके क्षोभसे क्षीरसमुद्र शान्तहुआ था तैसेही विश्रामकी प्राप्तिहोनेसे अक्षयशान्ति होतीहै। हे रामजी! तूर्यपदसंयुक्त पुरुष को श्रुति-स्मृति उक्त कर्मों के करने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और न करने से कुछ प्रत्यवाय नहीं होता। वह सदेहहो चाहे विदेहहो गृहस्थ हो चाहे विरक्तहो उसको कुछ नहीं करना है। वह पुरुष संसारसमुद्र से पारही है। हे रामजी! उपमेय की उपमा एकअंश से ग्रहणकर जानता है तब बोध की प्राप्ति होती है और बोध के विना मुक्तिको प्राप्त नहीं होता वह केवल व्यर्थ वादकरता है। हे रामजी! जिसके घट में शुद्ध स्वरूप आत्मसत्ता विराजमानहै वह जो उसको त्याग कर और विकल्प उठाताहै तो वह योग भ्रष्ट और मूर्ख है। हे रामजी! प्रत्यक्षप्रमाण मानने योग्य है क्योंकि, अनुमान और अर्थापत्ति आदि प्रमाणों से उसकी सत्ता प्रत्यक्ष की होतीहै। जैसे सब नदियोंका अधिष्ठान समुद्र है तैसेही सब प्रमाणों का अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाण है। वह प्रत्यक्ष क्या है सो सुनिये। हे रामजी! चक्षुरूपी ज्ञान सम्मत संवेदन है; जो उस चक्षु से विद्यमान होताहै उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन प्रमाणों को विषय करनेवाला जीवहै। अपने वास्तवस्वरूप के अज्ञानसे अनात्मारूपी दृश्य बना है। उसमें अहंकृति से अभिमान हुआ है और अभिमान सब दृश्य है उससे हेयोपादेय बुद्धि होतीहै जिससे राग-द्वेष करके जलताहै और आपको कर्त्ता मान कर बहिर्मुख हुआ भटकता है। हे रामजी! जब विचारकरके संवेदन अन्तर्मुखी हो तब आत्मपद प्रत्यक्ष होकर निजभाव को प्राप्त होता है और फिर प्रच्छिन्नभाव नहीं रहता शुद्ध शान्ति को प्राप्त होता है। जैसे स्वप्नसे जगकर स्वप्न का शरीर और दृश्यभ्रम नष्ट होजाता है तैसेही आत्मा के प्रत्यक्ष हुये से सब भ्रम मिटजाताहै और शुद्ध आत्मसत्ता भासती है। हे रामजी! यह दृश्य और द्रष्टा मिथ्या है। जो द्रष्टा है सो दृश्य होता और जो दृश्यहै सो द्रष्टा होताहै—यह भ्रम मिथ्या आकाशरूपहै। जैसे पवनमें स्पन्दशक्ति रहतीहै तैसेही आत्मामें संवेदन रहतीहै। जब संवेदन स्पन्दरूप

होती है तब दृश्यरूपहोके स्थित होती है । जैसे स्वप्नमें अनुभवसत्ता दृश्यरूप होके स्थितहोती है तैसेही यह दृश्यहै । सब आत्मसत्ताहीहै ऐसे विचारकरके आत्मपदको प्राप्तहोजावो और जो ऐसे विचारकरके आत्मपदको प्राप्त न होसको तो अहङ्कार जो उल्लेख फुरताहै उसका अभावकरो। पीछे जो शेष रहेगा सो शुद्ध बोध आत्मसत्ताहै। जब तुम शुद्धबोधको प्राप्तहोगे तब ऐसी चेष्टा होगी जैसे जंत्रीकी पुतली संवेदन विना चेष्टा करतीहै तैसेही देहरूपी पुतलीका चलानेवाला मनरूपी संवेदनहै उस विना पड़ी रहेगी और अहंकृत का अभाव होगा । इससे यत्न करके उस पदके पाने का अभ्यासकरो जो नित्य, शुद्ध और शान्तरूपहै। हे रामजी! "दैव" शब्दको त्यागकर अपना पुरुषार्थ करो और आत्मपद को प्राप्तहो। जो कोई पुरुषार्थमें शूरमाहै सो आत्मपद को प्राप्त होताहै और जो नीचपुरुषार्थ का आश्रय करताहै सो संसारसमुद्र में डूबता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेदृष्टान्तप्रमाणंनामाष्टादशस्सर्गः ॥ १८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब सतसङ्ग करके मनुष्य शुद्धबुद्धिकरै तब आत्मपद पानेको समर्थहोता है। प्रथम सतसङ्ग यह है कि, जिसकी चेष्टा शास्त्रके अनुसार हो उसका संगकरे और उसके गुणों को हृदय में धरे। फिर महापुरुषों के शम और संतोषादिकगुणों का आश्रयकरे। शम संतोषादिक से ज्ञान उपजता है। जैसे मेघ से अन्न उपजता है; अन्नसे जगत् होता है और जगत् से मेघ होता है तैसेही शम, संतोष और शमादिकगुण और आत्मज्ञान परस्पर होते हैं। शमादिक गुणों से ज्ञान उपजता है और आत्मज्ञान करने से शमादिकगुण स्थित होते हैं। जैसे बड़े ताल से मेघ और मेघ से ताल पुष्ट होता है तैसेही शमादिक गुणों से आत्मज्ञान होता और आत्मज्ञान से शमादिगुण पुष्टहोते हैं । ऐसे विचार करके शम सन्तोषादिक गुणोंका अभ्यासकरो तब शीघ्रही आत्मतत्त्वको प्राप्त होगे। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषको शमादिक गुण स्वाभाविक प्राप्त होते और जिज्ञासुको अभ्यासकरके प्राप्तहोते हैं। जैसे धान्यकी पालना जब स्त्रीकरतीहै और ऊँचेशब्द से पक्षियों को उड़ाती है तब फल को पातीहै और उससे पुष्टहोतीहै, तैसेही शम संतोषादिक के पालने से आत्मतत्त्व की प्राप्तिहोतीहै। हे रामजी! इस मोक्ष उपाय शास्त्र को आदि से लेकर अन्त पर्यन्त विचारे तो भ्रान्ति निवृत्तिहोके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पुरुषार्थ से सिद्धहोते हैं। यह शास्त्र मोक्षउपाय का परमकारण है। जो शुद्धबुद्धिमान् पुरुष इसको विचारेगा उसको शीघ्रही आत्मपद की प्राप्तिहोगी। इससे इस मोक्षउपाय शास्त्र का भलीप्रकार अभ्यासकरो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेआत्मप्राप्तिवर्णनन्नामैकोनविंशतितमस्सर्गः ॥ १९ ॥

समाप्तमिदं मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयम् ॥

श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

तृतीयउत्पत्तिप्रकरणप्रारम्भः ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ब्रह्म और ब्रह्मवेत्तामें "तुम" "इदं" "सः" इत्यादिक सर्व शब्दआत्मसत्ता के आश्रय से स्फुरते हैं। जैसे स्वप्न में सब अनुभव सत्ता में शब्द होतेहैं तैसेही यहभी जानो और जो उसमें यह विकल्पहोतेहैं कि, "जगत् क्या है" "कैसे उत्पन्न हुआहै" "और किसका है" इत्यादिक चोगचञ्चु हैं। हे रामजी! यह सबजगत् ब्रह्मरूप है यहां स्वप्न का दृष्टान्त विचारलेनाचाहिये। इसके पहिले मुमुक्षुप्रकरण मैंने तुमसे कहा है अब क्रमसे उत्पत्ति प्रकरण कहताहूं सो सुनिये-जो ज्ञानवस्तुस्वभाव है। हे रामजी! जो पदार्थ उपजता है वही बढ़ता, घटता, बन्ध, मोक्ष और नीच-ऊंच होताहै और जो उपजता न हो उसका बढ़ना, घटना, बन्ध, मोक्ष और नीच, ऊंचहोनाभी नहीं होता। हे रामजी! स्थावर-जंगम जो कुछ जगत् दीखता है सो सब आकाशरूप है। द्रष्टा का जो दृश्य के साथ संयोग है इसीका नाम बन्धन है। और उसीसंयोग के निवृत्तहोने का नाम मोक्ष है। उस निवृत्त का उपाय मैं कहताहूं। देहरूपी जगत् चिन्मात्ररूप है और कुछ उपजा नहीं और जो उपजा भासता है सो ऐसेहै जैसे सुषुप्ति में स्वप्न। जैसे स्वप्न में सुषुप्ति होतीहै तैसेही जगत् का प्रलय होताहै और जो प्रलय में शेष रहताहै उसकी संज्ञा व्यवहार के निमित्त रखता है। नित्य, सत्य, ब्रह्म, आत्मा, सच्चिदानन्द इत्यादिक जिसके नाम रक्खे हैं वह सबका अपना आपरूप है। चेतनता से उसका नाम जीव हुआहै और शब्द अर्थों का ग्रहण करनेलगा है। हे रामजी! चेतन में जो स्पन्दता हुई है सो संकल्प विकल्परूपी मन होकर स्थितहुआ है। उसके संसरनेसे देश, काल, नदियां, पर्वत, स्थावर और जंगमरूप जगत् हुआहै। जैसे सुषुप्ति से स्वप्न हो तैसेही जगत् हुआहै। उसको कोई अविद्या; कोई जगत्; कोई माया; कोई सङ्कल्प और कोई दृश्य कहते हैं; वास्तव में सब ब्रह्मस्वरूपहै-इतर कुछ नहीं। जैसे स्वर्ण से भूषण बनता है तो भूषण स्वर्णरूप है; स्वर्ण से इतरभूषण कुछ वस्तु नहीं है; तैसेही जगत् और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है। भेद तो तब हो जब जगत् उपजाहो; जो उपजाही नहीं तो भेद कैसे भासे और जो भेद भासता है सो मृगतृष्णा के जलवत् है-अर्थात् जैसे मृग-

तृष्णा की नदी के तरङ्ग भासते हैं पर वहां सूर्यकी किरणेंही जलके समान भासती हैं; जल का नामभी नहीं; तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। चेतन के अणु अणु प्रति सृष्टि आभासरूप है कुछ उपजी नहीं। अद्वैतसत्ता सर्वदा अपने आपमें स्थित है फिर उसमें जन्म, मरण और बन्ध मुक्त कैसे हो? जितनी कल्पना बन्धमुक्त आदिक भासती हैं सो वास्तविक कुछ नहीं हैं आत्मा के अज्ञान से भासती हैं। हे रामजी! जगत् कोई नहीं उपजा; अपनी कल्पनाही जगत्रूप होकर भासती है और प्रमाद से सत होरही है निवृत्त होना कठिन है। अनियत और नियत शब्द जो कहे हैं सो भाव्यर्थ हैं ऐसे वचनोंसे तो जगत् दूर नहीं होता। हे रामजी! अर्थयुक्त वचनों विना दृश्यभ्रम नहीं निवृत्त होता। जो तर्कों करके और तप, तीर्थ, दान, स्नान, ध्यानादिक करके जगत् के भ्रम को निवृत्त किया चाहे वह मूर्ख है। इस प्रकार से तो औरभी दृढ़ होताहै। क्योंकि, जहां जावेगा वहां देश, काल और क्रियासहित नित पञ्चभौतिक सृष्टिही दृष्टि आवेगी और कुछ दृष्टि न आवेगा इससे इसका नाश न होगा और जो जगत्से उपरान्त होकर समाधि लगा के बैठेगा तबभी चिरकाल में उतरेगा और फिर भी जगत् का शब्द और अर्थ भास आवेगा। जो फिर भी अनर्थ-रूप संसार भासा तो समाधि का क्या सुख हुआ? क्योंकि। जबतक समाधि में रहेगा तभीतक वह सुख रहेगा। निदान इन उपायों से जगत् निवृत्त नहीं होता। जैसे कमल के डोड़े में बीज होता है और जबतक उस बीज का नाश नहीं होता तबतक फिर उत्पन्न होता रहता है और जैसे वृक्ष के पात तोड़िये तो भी बीज का नाश नहीं होता तैसेही तप, दानादिकों से जगत् निवृत्त नहीं होता और तभीतक अज्ञानरूपी बीज भी नष्ट नहीं होता। जब अज्ञानरूपी बीज नष्ट होगा तब जगत्रूपी वृक्ष का अभाव होजावेगा। और उपाय करना मानों पत्तों का तोड़ना है। इन उपायों से अक्षयपद और अक्षयसमाधि नहीं प्राप्त होती। हे रामजी! ऐसी समाधि तो किसी को नहीं प्राप्त होती कि, शिला के समान होजावे। मैं सब स्थान देख रहाहूं कदाचित् ऐसे भी समाधी हों तो भी संसार सत्ता निवृत्त न होगी क्योंकि, अज्ञानरूपी बीज निवृत्त नहीं हुआ। समाधि ऐसी है जैसे जाग्रत से स्वप्न होता है क्योंकि, अज्ञानरूपी वासना के कारण सुषुप्ति से फिर जाग्रत आती है; तैसेही अज्ञानरूपी वासना से समाधि में भी जाग आता है क्योंकि उसको वासना खैंच लेआतीहै। हे रामजी! तप, समाधि आदिकों से संसार भ्रम निवृत्त नहीं होता। जैसे कांजी से क्षुधा किसी की निवृत्त नहीं होती तैसेही तप और समाधि से चित्त की वृत्ति एकाग्र होती है परन्तु संसार निवृत्त नहीं होता। जबतक चित्त समाधि में लगा रहताहै तबतक सुख होता है और जब उच्चाट होता है तब फिर नानाप्रकार की शब्द और अर्थसंयुक्त

संसार भासता है। हे रामजी! अज्ञान से जगत् भासता है और विचारकिये से निवृत्त होताहै। जैसे बालक को अपनी अज्ञानता से परछाहीं में वैताल की कल्पना होती है और ज्ञानसे निवृत्त होती है तैसेही यह जगत् अविचार से भासता है और विचारसे निवृत्त होता है। हे रामजी! वास्तवमें जगत् उपजा नहीं–असतरूप है। जो स्वरूपसे उपजा होता तो निवृत्त न होता पर यह तो विचार से निवृत्त होता है इससे जाना जाताहै कि, कुछ नहीं बना। जो वस्तु सत्य होती है उसकी निवृत्ति नहीं होती और जो असत् है सो थिर नहीं रहती। हे रामजी! सत्स्वरूप आत्मा का अभाव कदाचित् नहीं होता और असतरूप जगत् स्थिर नहीं होता। जगत् आत्मा में आभासरूप है आरम्भ और परिणाम से कुछ उपजा नहीं। जहां चेतन नहीं होताहै वहां सृष्टिभी नहीं होती क्योंकि; आभासरूप है आत्मारूप आदर्श है उसमें अनन्त सृष्टि प्रतिबिम्बित होती है। और आदर्श में प्रतिबिम्ब भी तब होताहै जब दूसरा निकट होताहै पर आत्मा के निकट दूसरा कोई नहीं और प्रतिबिम्ब होताहै क्योंकि; आभासरूपहै। एकही आत्मसत्ता चैत्यता से द्वैतकी नाईं होकर भासती है पर कुछ बना नहीं। जैसे फूल में सुगन्ध होतीहै तिलों में तेल होताहै और अग्नि में उष्णता होती और जैसे मनोराज की सृष्टि होती है; तैसेही आत्मा में जगत् है। जैसे मनोराज से मनोराज की सृष्टि भिन्न नहीं होती तैसेही यह जगत् आत्मा से भिन्न नहीं बना॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबोधहेतुवर्णनन्नामप्रथमस्सर्गः॥ १॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! एक आकाशज आख्यान जो श्रवण का भूषण और बोध का कारण है उसको सुनिये। आकाशज नामक एकब्राह्मण शुद्धचिदंश से उत्पन्न हुये। वह धर्मनिष्ठ सदा आत्मा में स्थित रहते थे, भले प्रकार प्रजा की पालना करते थे और चिरंजीवी थे। तब मृत्यु विचारकरनेलगी कि, मैं अविनाशीहूं और जो जीव उपजतेहैं उनको मारती हूं परन्तु इस ब्राह्मणको मैं नहीं भोजन करसकी। जैसे खड्गकी धार पत्थरपर चलाये से कुण्ठित होजाती है तैसेही मेरी शक्ति इस ब्राह्मण पर कुण्ठित होगई है। हे रामजी! ऐसे विचारके मृत्यु ब्राह्मण के भोजन करनेके निमित्त उठी और जैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने आचार कर्म को नहीं त्याग करते तैसेही मृत्युभी अपने कर्मोंको विचारकर चली। जब ब्राह्मण के गृह में मृत्यु ने प्रवेशकिया तो जैसे प्रलयकाल में महातेजसंयुक्त अग्नि सबपदार्थों को जलानेलगती है तैसेही अग्नि इसके जलानेको उठी और आगे दौड़ के जहां ब्राह्मण बैठा था अन्तःपुर में जाकर पकड़नेलगी पर जैसे बड़ावलवान् पुरुषभी औरके संकल्परूप पुरुष को नहीं पकड़सका तैसेही मृत्यु ब्राह्मण को न पकड़सकी। तब उसने धर्मराज के

गृह में जाकर कहा; हे भगवन्! जो कोई उपजा है उसको मैं अवश्य भोजन करती हूं परन्तु एक ब्राह्मण जो आकाश से उपजा है उसको मैं वश नहीं करसकी। यह क्या कारण है? यम बोले; हे मृत्यो! तुम किसीको नहीं मारसक्ती; जो कोई मरता है वह अपने कर्मोंसे मरता है। जो कोई कर्मों का कर्त्ता है उसके मारने को तुमभी समर्थ हो पर जिसका कोई कर्म नहीं उसके मारनेको तुम समर्थ नहीं हो। इससे तुम जाकर उस ब्राह्मण के कर्म खोजो; जब कर्म पावोगी तब उसके मारने को समर्थ होगी-अन्यथा समर्थ न होगी। हे रामजी! जब इस प्रकार यमने कहा तब कर्म खोजने के निमित्त मृत्यु चली। कर्म वासना का नाम है। वहां जाके ब्राह्मण के कर्मों को ढूंढ़ने लगी और दशों दिशा में ताल, समुद्र, बगीचे और द्वीपसे द्वीपान्तर इत्यादिक सब स्थान देखते फिरी परन्तु ब्राह्मणके कर्मों की प्रतिमा कहीं न पाई। हे रामजी! मृत्यु बड़ी बलवन्त है परन्तु उस ब्राह्मण के कर्मों को उसने न पाया तब फिर धर्मराज के पासगई-जो सम्पूर्ण संशयों को नाश करने वाले और ज्ञानस्वरूप हैं-और उन से कहने लगी; हे संशयों के नाशकर्त्तः! इस ब्राह्मण के कर्म मुझको कहीं नहीं दृष्टि आते मैंने बहुत प्रकार से ढूंढ़ा। जो शरीरधारी हैं सो सब कर्म संयुक्त हैं पर इसका तो कर्म कोई भी नहीं है इसका क्या कारण है? यम बोले; हे मृत्यो! इस ब्राह्मण की उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाश से हुई है जहां कोई कारण न था। जो कारण विना पदार्थ में भासता है सो ईश्वररूप है। हे मृत्यो! शुद्ध आकाश से जो इसका होना हुआहै तो यह भी वही रूप है। यह ब्राह्मण भी शुद्ध चिदाकाशरूप है और इसका चेतनही वपु है। इसका कर्म कोई नहीं और न कोई क्रिया है। अपने स्वरूप से आपही इसका होनाहुआ है इस कारण इसका नाम स्वयम्भू है और सदा अपने आप में स्थित है। इसको जगत् कुछ नहीं भासता-सदा अद्वैतरूप है। मृत्यु बोली; हे भगवन्! जो यह आकाश स्वरूप है तो साकाररूप क्यों दृष्टि आता है? यमजी बोले; हे मृत्यो! यह सदा निराकार चैतन्य वपु है और इसके साथ आकार और अहंभाव भी नहीं है इससे इसका नाश कैसेहो। यह तो अहं त्वं जानताही नहीं और जगत् का निश्चय भी इसको नहीं है। यह ब्राह्मण अचेत चिन्मात्र है जिसके मन में पदार्थों का सद्भाव होताहै उसका नाश भी होताहै और जिसको जगत् भासताही नहीं उसका नाश कैसेहो? हे मृत्यो! जो बड़ा कोई बलिष्ठभी हो और सैकड़ों जंजीरें भी हों तौभी आकाश को बांध न सकेगा तैसेही ब्राह्मण आकाशरूप है इसका नाश कैसेहो? इससे इसके नाश करने का उद्यम त्याग कर देहधारियों को जाकर मारो-यह तुमसे न मरेगा। हे रामजी! यह सुनकर मृत्यु आश्चर्यवत् हो अपने गृह लौटआई। रामजी बोले; हे भगवन्! यह तो हमारे बड़े पितामह ब्रह्माकी वार्त्ता तुमने

कही है। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह वार्त्ता तो मैंने ब्रह्माकी कहीहै परन्तु मृत्यु और यमके विवाद निमित्त यह कथा मैंने तुमको सुनाई है। इस प्रकार जब बहुतकाल व्यतीत होकर कल्पका अन्तपात हुआ तब मृत्यु सर्व भूतों को भोजन कर फिर ब्रह्माको भोजन करने गई। जैसे किसी का काम हो और यदि एक वार सिद्ध न भया तौ यह उसे छोड़ नहीं देता फिर उद्यमकरता है तैसेही मृत्यु भी ब्रह्मा के सम्मुखगई। तब धर्मराज ने कहा; हे मृत्यो! यह ब्रह्मा है। यह आकाशरूप है और आकाशही इसका शरीर है। आकाश के पकड़ने को तुम कैसे समर्थ होगी? यह तो पञ्चभूतके शरीरसे रहितहै। जैसे संकल्प पुरुष होताहै तो उसका आकाश ही वपु होताहै तैसेही यह आकाशरूप आदि, अन्त, मध्य और अहं त्वं के उल्लेख से रहित और अचेत चिन्मात्र है इसके मारने को तू कैसे समर्थ होगी? यह जो इसका वपु भासता है सो ऐसे है जैसे शिल्पी केमन में थम्भकी पुतली होती है पर वह कुछ हुई नहीं तैसेही स्वरूप से इतर इसका होना नहीं है यह तो ब्रह्मस्वरूप है हमारे तुम्हारे मनमें इसकी प्रतिमा हुई है यह तो निर्वपु है। जो पुरुष देहवन्त होताहै उसको ग्रहण करना सुगम होता है और बन्ध्याके पुत्रके ग्रहण में श्रम होता है क्योंकि निर्वपु है तैसे यह भी निर्वपुहै; इसके मारने की कल्पना को त्याग देहधारियों को जाकर मारो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेप्रथमसृष्टिवर्णनन्नामद्वितीयस्सर्गः॥ २॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र सत्ता ऐसी सूक्ष्म है कि उसमें आकाश भी पर्वत के समान स्थूल है। उस चित्त में जो अहंअस्मि चैत्योन्मुखत्व हुआ है उससे अपने साथ देह को देखा। पर वह देह भी आकाशरूप है। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में चैत्यका उल्लेख किसीकारण से नहींहुआ स्वतः स्वाभाविकही ऐसे उल्लेख आय फुरा है उसीका नाम स्वयम्भू ब्रह्मा है। उस ब्रह्मा को सदा ब्रह्मही का निश्चय है। ब्रह्मा और ब्रह्म में कुछ भेद नहींहै। जैसे समुद्र और तरङ्गमें; आकाश और शून्यता में और फूल और गन्ध में कुछ भेद नहीं होता तैसेही ब्रह्मा और ब्रह्म में भेद नहीं। जैसे जल द्रवता के कारण तरङ्गरूप होकर भासता है तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यता से ब्रह्मा होकर भासती है। ब्रह्मा दूसरी वस्तु कुछ नहीं है सदा चैतन्य आकाश है और पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है। हे रामजी! न कोई इसका कारण है और न कोई कर्म है। रामजी बोले; हे भगवन्! आपने कहा कि, ब्रह्माजी का वपु पृथ्वी आदि तत्त्वों से रहित है और सङ्कल्पमात्र है तो इसका कारण स्मृति का संस्कार क्यों न हुआ। जैसे हमको और २ जीवों की स्मृति है तैसेही ब्रह्मा को भी होनी चाहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! स्मृति संस्कार उसीका कारण होताहै जो आगेभी देहवान् हो। जो पदार्थ आगे देखा होता है उसकी स्मृति संस्कारसे होती है और जो देखा

नहीं होता उसकी स्मृति संस्कारसे भी नहीं होती। ब्रह्माजी अद्वैत, अज और आदि, मध्य, अन्त से रहित हैं; इनकी स्मृति कारण कैसे हो? वह तो शुद्ध बोधरूप है और आत्मतत्त्व ब्रह्मारूप होकर स्थितहुये हैं। अपने आपसे जो इसका होनाहुआ है इसी से इसका नाम स्वयम्भू है। शुद्धबोधमें चैत्य उल्लेख हुआ है–अर्थात् चित्चैतन्य स्वरूप का नाम है। अपना चित् संवित्ही कारण है और दूसरा कोई कारण नहीं–सदा निराकार और संकल्परूप इसका शरीर है और पृथ्वी आदिक भूतों से शुद्ध अन्तवाहक वपु है। रामजी बोले; हे मुनीश्वर! जितने जीव हैं तिनकेदो दो शरीर हैं-एक अन्तवाहक और दूसरा आधिभौतिक। ब्रह्माका एकही अन्तवाहकशरीर कैसेहै, यह वार्त्ता स्पष्टकर कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो सकारणरूप जीव हैं उनके दो दो शरीर हैं पर ब्रह्माजी अकारण हैं इसकारण उनका एक अन्तवाहकही शरीर है। हे रामजी! सुनिये; जीवोंका कारण ब्रह्मा हैं इस कारण यह जीव दोनों देहों को धरते हैं और ब्रह्माजी का कारण कोई नहीं यह अपने आपसेही उपजे हैं–इनका नाम स्वयम्भू है। आदि जो इसका प्रादुर्भाव हुआ है सो अन्तवाहकशरीर है। इनको अपने स्वरूप का विस्मरण नहीं हुआ सदा अपने वास्तवस्वरूप में स्थित हैं इससे अन्तवाहक हैं और दृश्य को अपना संकल्पमात्र जानते हैं। जिनको दृश्य में दृढ़ प्रतीति हुई है उनको अधिभूत कहते हैं। जैसे जड़ता से जल की बरफ होती है तैसेही दृश्य की दृढ़ता से आधिभौतिक होते हैं। हे रामजी! जितना जगत् तुमको दृष्टि आता है सो सब आकाश-रूप है, किसी पृथ्वी आदिक भूतों से नहीं हुआ केवल भ्रम से आधिभौतिक भासते हैं। जैसे स्वप्ननगर आकाशरूप होता है किसीकारण से नहीं उपजता और न किसी पृथ्वी आदिक तत्त्वों से उपजता है केवल आकाशरूप है और निद्रादोष से आधिभौ-तिक होकर भासता है; तैसेही यह जाग्रत् जगत्भी अज्ञान से आधिभौतिक आकाश भासताहै। जैसे अज्ञान से स्वप्न अर्थाकार भासताहै तैसेही जगत् अज्ञानसे अर्थाकार भासता है। हे रामजी! यह सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र है और कुछ बना नहीं। जैसे मनोराज के पर्वत आकाशरूप होते हैं; तैसेही जगत्भी आकाशरूप है। वास्तव में कुछ बना नहीं सब पुरुष के संकल्प हैं और मनसे उपजे हैं। जैसे बीज से देशकालके संयोग से अंकुर निकलताहै; तैसेही सब दृश्य मनसे उपजता है। वह मनरूपी ब्रह्मा है और ब्रह्मादि मनरूप हैं। उनके संकल्प में जो सम्पूर्ण जगत् स्थित है वह सब आकाशरूप है–आधिभौतिक कोई नहीं। हे रामजी! आधिभौतिक जो आत्मा में भासता है सो भ्रान्तिमात्रहै। जैसे बालकको परछाहीं में वैताल भासता है; तैसेही अज्ञानी को जो आधिभौतिक भासते हैं सो भ्रान्तिमात्रहै–वास्तव कुछ नहीं है। हे रामजी! जितने जीव हैं वे सब अन्तवाहक हैं परन्तु अज्ञानी को अन्तवाहकता

निवृत्त होकर आधिभौतिकता दृढ़ होगई है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो अन्तवाहकरूपही हैं। हे रामजी! जिन पुरुषों को प्रमाद नहीं हुआ वे सदा आत्मा में स्थित और अन्तवाहकरूप हैं और सब जगत् आकाशरूप है। जैसे संकल्प पुरुष, गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर होते हैं तैसेही यह जगत् है जैसे शिल्पी कल्पता है कि, इस थम्भमें इतनी पुतलियां हैं सो पुतलियां उपजी नहीं थम्भा ज्योंका त्यों स्थितहै पुतलीका सद्भाव केवल शिल्पीके मन में होताहै; तैसेही सब विश्व मनमें स्थितहै उसका स्वरूप कुछ नहीं बना। जैसे तरङ्गही जलरूप और जलही तरङ्गरूप है तैसेही दृश्य भी मनरूप है और मनही दृश्यरूप है। हे रामजी! जबतक मनका सद्भाव है तबतक दृश्य है–दृश्य का बीज मन है, जैसे कमल के डोड़े का सद्भाव उसके बीज में होता है और उससे कमल के डोड़े की उत्पत्ति होती है तैसेही जगत् का बीज मन है–सब जगत् मनसे उत्पन्न होता है। हे रामजी! जब तुमको स्वप्न आता है तब तुम्हाराही चित्त दृश्य को चेतता जाता है और तो कोई कारण नहीं होता तैसेही यह जगत् भी जानना। यह तुम्हारे अनुभव की वार्त्ता कही है क्योंकि; यह तुमको नित अनुभव होता है। हे रामजी! मनहीं जगत् का कारण है और कोई नहीं। जब मन उपशम होगा तब दृश्यभ्रम मिट जावेगा। जबतक मन उपशम नहीं होता तबतक दृश्य भ्रमभी निवृत्त नहीं होता और जबतक दृश्य निवृत्त नहीं होता तबतक शुद्ध बोध नहीं होता एवम् जबतक शुद्धबोध नहीं होता तबतक आत्मानन्द भी नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबोधहेतुवर्णनन्नामतृतीयस्सर्गः॥ ३॥

इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार मुनि शार्दूल वशिष्ठजी कहकर तूष्णी हुये और सर्व श्रोता वशिष्ठजी के वचनों को सुन के और उनके अर्थ में स्थित हो इन्द्रियों की चपलता को त्याग वृत्ति को स्थित करते भये तरङ्गों के वेग स्थिर होगये; पिंजरों में जो तोते थे सो भी सुनकर तूष्णी होगये; ललना जो चपल थीं सो भी उस काल में अपनी चपलता को त्याग करती भई और वन के पशु पक्षी जो निकट थे सो भी सुनकर तूष्णी हुये। निदान मध्याह्न का समय हुआ तब राजा के बड़े भृत्यों ने कहा; हे राजन्! अब स्नान सन्ध्या का समय हुआ उठकर स्नान सन्ध्या कीजिये। तब वशिष्ठजी बोले; हे राजन्! अब जो कुछ कहना था सो हम कह चुके, कल फिर कुछ कहेंगे। राजाने कहा बहुत अच्छा और उठकर अर्घ्य पाद्य नैवेद्य से वशिष्ठजी का पूजन किया और और जो ब्रह्मर्षि थे उनकी भी यथायोग्य पूजा की। तब वशिष्ठजी उठ खड़े हुये और परस्पर नमस्कार कर अपने २ स्थानों को चले। आकाशचारी आकाश को, पृथ्वी पर रहनेवाले ब्रह्मर्षि और राजर्षि पृथ्वीपर, पातालवासी पाताल को और सूर्य भगवान् दिन रात्रि की कल्पना को त्यागकर स्थिर हो रहे

और मन्दमन्द पवन सुगन्ध सहित चलने लगी मानों पवन भी कृतार्थ होने आया है। इतने में सूर्य अस्त होकर और ठौर में प्रकाशने लगे क्योंकि; सन्त जन सब ठौर में प्रकाशते हैं। इतने में रात्रि हुई तो तारागण प्रकट होगये और अमृत की किरणों को धारण किये चन्द्रमा उदय हुआ। उस समय अन्धकार का अभाव होगया और राजा का द्वार भी चन्द्रमा की किरणों से शीतल होगया—मानों वशिष्ठजी के वचनों को सुनकर इनकी तप्तता मिट गई। निदान सब श्रोताओं ने विचारपूर्वक रात्रि को व्यतीत किया; जब सूर्य की किरण निकली तो अन्धकार नष्ट होगया—जैसे सन्तोंके वचनों से अज्ञानी के हृदय का तम नष्ट होता है—और सब जगत् की क्रिया प्रकट हो आई तब खेचर, भूचर और पाताल के वासी सब श्रोता स्नान सन्ध्याकर अपने२ स्थानों में आये और परस्पर नमस्कार कर पूर्वक प्रसंग को उठाकर रामजी सहित बोले; हे भगवन्! ऐसे मन का रूप क्या है? जिससे कि, संसाररूपी दुःखों की मञ्जरी बढ़ती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस मनका रूप कुछ देखने में नहीं आता। यह मन नाममात्र है। वास्तव में इसका रूप कुछ नहीं है और आकाश की नाईं शून्य है। हे रामजी! मन आत्मा में कुछ नहीं उपजा। जैसे सूर्य में तेज; वायु में स्पन्द; जल में तरङ्ग; सुवर्ण में भूषण; मरीचिका जल है और आकाश में दूसरा चन्द्रमा है तैसेही मन भी आत्मा में कुछ वास्तव नहीं है। हे रामजी! यह आश्चर्य है कि, वास्तव में कुछ उपजा नहीं पर आकाश की नाईं सब घटों में वर्त्तता है और सम्पूर्ण जगत् मन से भासता है। असत्‌रूपी जगत् जिससे भासता है उसीका नाम मन है। हे रामजी! आत्मा शुद्ध और अद्वैत है; द्वैतरूप जगत् जिसमें भासता है उसका नाम मन है और संकल्प विकल्प जो फुरता है वह मन का रूप है। जहां२ संकल्प फुरता है वहां२ मन है जैसे जहां२ तरङ्ग फुरते हैं तहां२ जल है तैसेही जहां२ संकल्प फुरता है वहां२ मन है मन के और भी नाम हैं—स्मृति, अविद्या, मलीनता और तम ये सब इसीके नाम ज्ञानवान् पुरुष जानते हैं। हे रामजी! जितना जगत् जाल भासता है सो सब मन से उत्पन्न हुआ है और सब दृश्य मनरूप हैं क्योंकि; मन का रचाहुआ है वास्तव में कुछ नहीं है। हे रामजी! मनरूपी देह का नाम अन्तवाहक शरीर है वह संकल्परूप सब जीवों का आदि वपु है। उस संकल्प में जो दृढ़ आभास हुआ है उस से आधिभौतिक भासने लगा है और आदिस्वरूप का प्रमाद हुआ है। हे रामजी! यह जगत् सब संकल्परूप है और स्वरूप के प्रमाद से पिण्डाकार भासता है। जैसे स्वप्न देह का आकार आकाशरूप है उसमें पृथ्वी आदितत्त्वों का अभाव होता है परन्तु अज्ञान से आधिभौतिकता भासती है सो मनहीं का संसरना है तैसेही यह जगत् है; मनके फुरने से भासता है। हे रामजी!

जहां मन है वहां दृश्य है और जहां दृश्य है वहां मन है। जब मन नष्ट हो तब दृश्य भी नष्ट हो। शुद्ध बोधमात्र में जो दृश्य भासता है सोई मन है। जबतक दृश्य भासता है तबतक मुक्त न होगा; जब दृश्य भ्रम नष्टहोगा तब शुद्धबोध प्राप्तहोगा हे रामजी! "द्रष्टा, दर्शन, दृश्य" यह त्रिपुटी मन से भासती है। जैसे स्वप्न में त्रिपुटी भासती है और जब जाग उठा तब त्रिपुटी का अभाव होजाता है और आपही भासता है तैसेही आत्मसत्ता में जागेहुये को अपना आप अद्वैतही भासता है। जबतक शुद्ध बोध नहीं प्राप्त हुआ तबतक दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता। वह बाह्य देखता है तो भी सृष्टिही दृष्टि आतीहै; अन्तर देखेगा तौभी सृष्टि ही दृष्टि आती है और उसको सत्य जान कर राग द्वेष कल्पना उठती है। जब मन आत्मपद को प्राप्त होता है तब दृश्यभ्रम निवृत्त होजाताहै। जैसे जब वायु की स्पन्दता मिटी तब वृक्ष के पत्रों का हलना भी मिट जाता है। इससे मनरूपी दृश्य ही बन्धन का कारणहै; रामजी बोले; हे भगवन्! यह दृश्यरूपी विसूचिका रोग है उसकी निवृत्ति कैसे हो सो कृपा करके कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! संसाररूपी वैताल जिसको लगाहै उसकी निवृत्ति अकस्मात् होतीहै। प्रथम तो विचार करके जगत् का स्वरूप जानो; उसके अनन्तर जब आत्मपद में विश्रान्त होंगे तब तुम सर्व आत्मा होगे। हे रामजी! दृश्यभ्रम जो तुमको भासता है उसको मैं उत्तर ग्रन्थ से निवृत्त करूंगा; इसमें सन्देह नहीं। सुनिये, यह दृश्य मन से उपजा है और इसका सद्भाव मनमें ही हुआहै। जैसे कमल के डोड़े का उपजना कमल के डोड़े के बीज में है तैसेही संसार का उपजना स्मृति से होता है। वह स्मृति अनुभव आकाश में होती है। हे रामजी! स्मृति उस पदार्थको होतीहै जिसका अनुभव सद्भावरूप ग्रहण होता है। जितना कुछ जगत् तुमको भासता है सो संकल्प रूप है—कोई पदार्थ सत्रूप नहीं। जो वस्तु असत्रूप है उसकी स्थिरता नहीं होती और जो वस्तु सत्रूप है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता। जितना कुछ प्रपञ्च भासताहै सो असत्रूप है मनके चिन्तन से उत्पन्नहुआहै। जब मन फुरने से रहित हो तब जगत् भ्रम निवृत्त होताहै। हे रामजी! पृथ्वी, पर्वत आदिक जगत् असत्रूप न होते तो मुक्त भी कोई न होता। मुक्त तो दृश्यभ्रम से होता है: जो दृश्यभ्रम नष्ट न होता तो मुक्त भी कोई न होता; पर ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवता इत्यादिक बहुतेरे मुक्त हुयेहैं इस कारण कहताहूं कि, दृश्य असत्यरूप मनके संकल्प में स्थित है। हे रामजी! एक मनको स्थिरकर देखो फिर अहं त्वं आदिक जगत् तुम को कुछ न भासेगा। चित्तरूपी आदर्श में संकल्परूपी दृश्य मलीनता है। जब मलीनता दूर होगी तब आत्मा का साक्षात्कार होगा। हे रामजी! यह दृश्यभ्रम मिथ्या उदय हुआहै। जैसे गन्धर्व नगर और स्वप्नपुर तैसेही यह जगत् भी है। जैसे शुद्ध

आदर्श में पर्वत का प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही चित्तरूपी आदर्श में यह दृश्य प्रतिबिम्ब है। मुकुर में जो पर्वतका प्रतिबिम्ब होताहै सो आकाशरूप है उसमें कुछ पर्वत का सद्भाव नहीं तैसेही आत्मा में जगत् का सद्भाव नहीं। जैसे बालक को भ्रम से परछाहीं में पिशाच बुद्धि होतीहै तैसेही अज्ञानी को जगत् भासता है-वास्तव में जगत् कुछ नहीं है। हे रामजी ! न कुछ मन उपजा है और न कुछ जगत उपजा है-दोनों असत्रूप हैं। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। जैसे आकाश अपनी शून्यता और समुद्र जल से पूर्ण है तैसेही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित और पूर्ण है और उसमें जगत्का अत्यन्त अभाव है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! यह तुम्हारे वचन ऐसे हैं जैसे कहिये कि, बन्ध्या के पुत्रने पर्वत चूर्णकिया; शशे के शृङ्ग अतिसुन्दर हैं, रेतमें तेल निकलता है और पत्थर की शिला नृत्य करती वा मूर्त्ति का मेघ गर्जता और पत्थर की पुतलियां गान करती हैं। तुम कहते हो कि, दृश्य कुछ उपजाही नहीं और हैही नहीं और मुझको ये, जरा मृत्यु आदिक विकारों सहित प्रत्यक्ष भासते हैं इससे मेरे मन में तुम्हारे वचनों का सद्भाव नहीं स्थित होता। कदाचित् तुम्हारे निश्चय में इसी प्रकार है तो अपना निश्चय मुझको भी बतलाइये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! हमारे वचन यथार्थ हैं। हमने असत् कदाचित् नहीं कहा ! तुम विचार के देखो यह जगत् आडम्बर विना कारण है। जब महाप्रलय होता है तब शुद्धचैतन्य संवित् रहजाता है और उसमें कार्य-कारण कोई कल्पना नहीं रहती हैं- उसमें फिर यह जगत् कारण विना फुरता है। जैसे सुषुप्ति में स्वप्न सृष्टि फुरआती है और जैसे स्वप्न सृष्टि अकारण है तैसेही यह सृष्टि भी अकारण है। हे रामजी ! जिसका समवायकारण और निमित्त कारण न हो और प्रत्यक्ष भासे उसे जानिये कि, भ्रान्तिरूप है। जैसे तुमको नित्य स्वप्न का अनुभव होताहै और उसमें नाना प्रकार के पदार्थ कार्य कारण सहित भासतेहैं पर कारण विना हैं तैसेही यह जगत् भी कारण विना है। इससे आदि कारण विनाही जगत् उपजा है। जैसे गन्धर्वनगर, संकल्पपुर और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासताहै; तैसेही यह जगत् भासता है-कोई पदार्थ सत् नहीं। जैसे स्वप्न में राजपति और नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो किसी कारण से तो नहीं उपजे केवल आकाशरूप मन के संसरने से सब भासते हैं; तैसेही यह जगत् चित्त के संसरने से भासता है। जैसे स्वप्न में और स्वप्न भासता है और फिर उसमें और स्वप्न भासता है तैसे यह जगत् भासताहै और तैसेही जाग्रत जगत्जाल मनकी कल्पना से भासता है। हे रामजी ! चलना, दौड़ना, देना, लेना, बोलना, सुनना, सूंघना इत्यादिक विषय और रागद्वेषादिक विकार सब मनके फुरने से होते हैं-आत्मा में कोई विकार

नहीं जब मन उपशम होता है तब सब कल्पना निवृत्त होजाती हैं इससे संसार का कारण मनही है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबोधहेतुवर्णनन्नामचतुर्थस्सर्गः ॥ ४ ॥

रामजी बोले; हे भगवन्! मनका रूप क्या है ? वह तो मायामय है इसका होना जिससे है सो कौन पद है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है तब सब जगत् का अभाव होजाता है और पीछे जो शेष रहताहै सो सत्रूप है। आदि सर्ग का भी सत्रूप होता है उसका नाश कदाचित् नहीं होता वह सदा प्रकाशरूप, परमदेव, शुद्ध, परमात्मतत्त्व, अज, अविनाशी और अद्वैत है। उसको वाणी नहीं कहसक्ती। वह पद जीवन्मुक्त पाताहै। हे रामजी ! आत्म आदिक शब्द उद्देश में कल्पित हैं; स्वाभाविक कोई शब्द नहीं प्रवर्तता। शिष्य को बतानेके लिये शास्त्र-कारों ने देव के बहुत नाम कल्पे हैं मुख्य तो देवको "पुरुष" कहते हैं। वेदान्तवादी उसी को "ब्रह्म" कहते और विज्ञानवादी उसीको विज्ञान से "बोध" कहते। कोई कहते हैं कि "निर्मलरूप" है, शून्यवादी कहते हैं "शून्य" ही शेष रहताहै; कोई कहते हैं "प्रकाशरूप" है जिसके प्रकाश से सूर्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसको "वक्ता" कहते कि, आदिवेद का "वक्ता" वही है और स्मृतिकर्त्ता कहते कि, सब कुछ वह स्मृतिसे करनेवाला है और सब कुछ उसकी इच्छा से हुआ है इससे सबका कर्त्ता सर्व "आत्मा" है। हे रामजी ! इसी तरह अनेक नाम शास्त्रकारों ने कहे हैं। इन सबका अधिष्ठान परमदेव है और अस्तिआदि षट्विकारों से रहित शुद्ध, चैतन्य और सूर्यवत् प्रकाशरूप है। वही देव सब जगत्में पूर्ण होरहाहै। हे रामजी ! आत्मारूपी सूर्य है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक उसकी किरणें हैं। ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग बुद्बुदे उत्पन्न होकर लीन होते हैं और सब पदार्थ उस आत्मा के प्रकाश से प्रकाशते हैं। जैसे दीपक अपने आपसे प्रकाशता है और औरों को भी प्रकाश देताहै तैसेही आत्मा अपने प्रकाश से प्रकाशता है और सबको सत्ता देने वाला है। हे रामजी ! वृक्ष आत्मसत्ता से उपजता है, आकाश में शून्यता उसीकी की है और अग्नि में उष्णता, जलमें द्रवता और पवन में स्पर्श उसीकी की है। निदान सब पदार्थों की सत्ता वही है। मोरों के पङ्खों में रङ्ग आत्मसत्ता से ही हुआहै; पत्थर में मूंगा और पत्थरों में जड़ता उसी की की है। और स्थावर-जङ्गम जगत् का अधिष्ठानरूप वही ब्रह्म है। हे रामजी ! आत्मरूपी चन्द्रमा की किरणोंसे ब्रह्माण्ड-रूपी त्रसरेणु उत्पन्न होती हैं। वह चन्द्रमा शीतलता और अमृतसे पूर्णहै। ब्रह्मरूपी मेघहै उसमें जीवरूपी बूँदियां टपकती हैं। जैसे बिजली का प्रकाश होता है और छिपजाना है तैसेही जगत् प्रकट होता है और छिपजाता है। सबका अधिष्ठान

आत्मसत्ता और वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध और परमानन्दरूप है । सब सत्य असत्यरूप पदार्थ उसी आत्मसत्ता से होते हैं । हे रामजी ! उस देवकी सत्ता सें जड़पुर्यष्टक चैतन्य होकर चेष्टा करती है । जैसे चुम्बक पत्थरकी सत्तासे लोहा चेष्टा करता है तैसे ही चैतन्यरूपी चुम्बक मणि से देह चेष्टा करती है । वह आत्मा नित्य चैतन्य और सबका कर्त्ता है; उसका कर्त्ता और कोई नहीं वह सब से अभेदरूप समानसत्ता है और उदय अस्तसे रहित है। हे रामजी! जो पुरुष उसदेव को साक्षात् करता है उसकी सब क्रिया नष्ट होजाती हैं और चिद्जड़ ग्रन्थि छिदजातीं हैं और केवल बोधरूप होते हैं । जब स्वभावसत्ता में मन स्थित होताहै तब मृत्यु को सम्मुख देखकर भी विह्वल नहीं होता । इतना कहकर फिर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! वह देव किसी स्थान में नहीं रहता और कहीं दूर भी नहीं है वह तो अपने आपही में स्थित है। हे रामजी ! घट घट में वह देव है पर अज्ञानी को दूरभासता है । स्नान, दान, तप आदि से वह प्राप्त नहीं होता केवल ज्ञानसेही प्राप्त होताहै—कर्त्तव्य से प्राप्त नहीं होता । जैसे मृगतृष्णा की नदी भासती है वह कर्त्तव्यता से निवृत्त नहीं होती केवल ज्ञातव्यसेही निवृत्त होतीहै तैसेही जगत् की निवृत्ति आत्मज्ञानसेही होतीहै । हे रामजी! कर्त्तव्य भी वहीहै जो प्राप्तहोने का ज्ञातव्यरूपहै-अर्थात् यह कि जिससे ज्ञातव्यस्वरूप की प्राप्ति होतीहै । रामजी बोले; हे भगवन्! जिस देव केजानने से पुरुष फिर जन्म मरण को नहीं प्राप्त होता वह कहां रहता है और किस तप और क्लेश से उसकी प्राप्ति होतीहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! किसी तपसे उस देवकी प्राप्ति नहीं होती केवल अपने पुरुष प्रयत्नसेही उसकी प्राप्ति होती है । जितना कुछ राग, द्वेष, काम, क्रोध, मत्सर और अभिमान सहित तप है वह निष्फलदम्भ है । इनसे आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती । हे रामजी! इसकी परम औषध सत्संग और सत्शास्त्रों का विचारहै जिससे दृश्यरूपी विसूचिका निवृत्त होती है । प्रथम इसका आचार भी शास्त्र और लौकिक अविरुद्ध हो अर्थात् शास्त्रों के अनुसार हो और भोगरूपी गढ़े में न गिरे । दूसरे संतोष संयुक्त यथालाभ संतुष्ट होकर अनिच्छित भोगों को प्राप्त हो और जो शास्त्र अविरुद्ध हो उसको ग्रहण करे और विरुद्ध हो उसका त्याग करे—इनसे दीन न हो । ऐसे उदारात्मा को शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होती है । हे रामजी! आत्मपद पाने का कारण सत्संग और सत्शास्त्र है । सन्त वहहै जिसको सबलोग भला साधु कहते हैं और सत्शास्त्र वही है जिसमें ब्रह्म निरूपण हो । जब ऐसे सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का विचारहो तो शीघ्रही आतमपद की प्राप्ति होतीहै । जब मनुष्य श्रुति विचारद्वारा अपने परमस्वभाव में स्थित होता है तब ब्रह्मा विष्णु और रुद्र भी उसपर दया चाहतेहैं और कहते हैं कि यह पुरुष परब्रह्म हुआ है । हे रामजी ! सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का विचार

निर्मल करता और दृश्यरूप मैल को नाशकरताहै। जैसे निर्मलीरेत से जल का मैल दूर होताहै तैसेही यह पुरुष निर्मल और चैतन्य होताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेप्रयत्नोपदेशोनामपञ्चमस्सर्गः ॥ ५ ॥

इतना सुन, रामजीनेपूछा; हे भगवन्! वह देव जो तुमने कहा कि, जिसके जानने से संसारबन्धन से मुक्त होता है कहां स्थित है और किस प्रकार मनुष्य उसको पाताहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह देव दूर नहीं शरीर में हीं स्थित है। नित्य, चिन्मात्र सब में पूर्ण और सर्व विश्व से रहित है। चन्द्रमा को मस्तक में धरनेवाले सदाशिव, ब्रह्माजी और विष्णु और इन्द्रादिक सब चिन्मात्ररूप हैं। बलिक सब जगत् चिन्मात्ररूप है रामजी बोले; हे भगवन्! यह तो अज्ञान बालक भी कहतेहैं कि, आत्मा चिन्मात्र है; तुम्हारे उपदेश से क्या सिद्धहुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस विश्व के चिन्मात्र जानने से तुम संसारसमुद्र को नहीं लंघ सक्के इस चैतन्य का नाम संसार है। यह चैतन्य जीव पशु है; संसार नामरूप है इससे जरामरणरूप तरङ्ग उत्पन्नहोते हैं क्योंकि, हेयरूप दुःख पाताहै। हे रामजी! चैतन्य होकर जो चैतन्यता है सो अनर्थ का कारण है और चैतन्य से रहित जो चैतन्य है वह परमात्मा है। उस परमात्मा को जानकर मुक्ति होती है तब चैतन्यता मिटजाती है। हे रामजी! परमात्मा के जानने से हृदय की चिद्‌जड़ ग्रन्थि टूट पड़ती है अर्थात् अहं मम नष्ट होजाता है, सब संशय छेदेजाते हैं और सब कर्म क्षीणहोजाते हैं। रामजीने पूछा; हे भगवन्! चित्त चैतन्योन्मुख होता है तब आगे दृश्य स्पष्ट भासताहै; इसके होते चित्तके रोकने को क्योंकर समर्थ होता है और दृश्य किस प्रकार निवृत्त होताहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दृश्यसंयोगी चेतन जीवहै, वह जन्मरूपी जङ्गल में भटकता २ थकजाता है। इस चेतन को जो चेतन अर्थात् चिदाभास जीव प्रकाशी कहते हैं सो पण्डित भी मूर्ख हैं। यह तो संसारी जीवहै इसके जानेसे कैसे मुक्ति हो। मुक्ति परमात्मा के जानने में होती है और सर्वदुःख नाशहोते हैं। जैसे विसूचिका रोग उत्तम औषधसेही निवृत्त होता है तैसेही परमात्मा के जाननेसे मुक्त होताहै। रामजीने यह पूछा, हे भगवन्! परमात्माका क्यारूप है कि, जिसके जाननेसे जीव मोहरूपी समुद्रको तरताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देश से देशान्तर को दूर जो संवित् निमेष में जाताहै उसके मध्य जो ज्ञानसंवित् है सो परमात्मा का रूपहै और जहां संसारका अत्यन्त अभाव होताहै उसके पीछे जो बोधमात्र शेष रहता वह परमात्मा का रूपहै। हे रामजी! ऐसा आकाश जहां द्रष्टा दर्शन दृश्य का अभाव होताहै वह भी परमात्मा का रूपहै और जो अशून्य है और शून्य की नाईं स्थित है और जिसमें सृष्टिका समूह शून्यहै ऐसी चेतन सत्ता परमात्मा का रूप है हे रामजी! महाचेतनरूप बड़े पर्वतकी नाईं जो

स्थित है और अजड़ है पर जड़ के समान स्थित है वह परमात्मा का रूप है और जो सबके भीतर बाहर स्थित है और सबको प्रकाशता है सो परमात्मा का रूप है। हे रामजी! जैसे सूर्य प्रकाशरूप और आकाश शून्यरूप है तैसेही यह जगत् आत्म-रूप है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जो सब परमात्माही है तो क्यों नहीं भासता और जो सबजगत् भासता है इसका निर्वाण कैसेहो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् भ्रम से उत्पन्नहुआ है—वास्तव में कुछ नहीं है। जैसे आकाश में नीलता भा-सती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। जब जगत् का अत्यन्त अभाव जानोगे तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा और किसी उपाय से न होगा। जब दृश्य का अत्यन्त अभाव करोगे तब दृश्य उसी प्रकार स्थित रहेगा पर तुमको परमार्थ सत्ताही भासेगी। हे रामजी! चित्तरूपी आदर्श दृश्यके प्रतिबिम्ब विना कदाचित् नहीं रहता। जबतक दृश्यका अत्यन्त अभाव नहीं होता तबतक परमबोध का साक्षात्कार नहीं होता इतना सुनकर रामजी ने फिर पूछा कि, हे भगवन्! यह दृश्यजाल आडम्बर मन में कैसे स्थितहुआहै ? जैसे सरसों के दानोंमें सुमेरुका आना आश्चर्य है तैसेही जगत् का मन में आनाभी आश्चर्यहै वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एकदिन तुमवेद-धर्म की प्रवृत्तिसहित सकाम यज्ञ योगादिक त्रिगुण से रहित होकर स्थितहो और सत्संगति और सत्शास्त्र परायणहो तब मैं एकही क्षण में दृश्यरूपी मैल दूरकरूंगा। जैसे सूर्यकी किरणों के जानेसे जलका अभाव होजाताहै तैसेही तुम्हारे भ्रम का अ-भाव होजावेगा। जब दृश्य का अभाव हुआ तब द्रष्टा भी शान्त होवेगा और जब दोनों का अभाव हुआ तब पीछे शुद्ध आत्मसत्ताही भासेगी। हे रामजी! जबतक द्रष्टा है तबतक दृश्य है और जबतक दृश्य है तबतक द्रष्टाहै जैसे एककी अपेक्षा से दो होते हैं—दोहैं तो एक है और एकहै तब दोभीहैं—एक न हो तब दो कहां से हों—तैसेही एकके अभाव हुये दोनों का अभाव होता है। द्रष्टाकी अपेक्षासेही दृश्य की अपेक्षा करके द्रष्टा है। एकके अभाव से दोनों का अभाव होजाता है। हे रामजी! अहन्ता से आदि लेकर जो दृश्यहै सो सब दूरकरूंगा। हे रामजी! अनात्मा से आदि-लेके जो दृश्य है वही मैल है। इससे रहित होकर चित्तरूपी दर्पण निर्मल होगा। जो पदार्थ असत् है उसका कदाचित् सत् नहीं होता और जो पदार्थ सत् है सो असत नहीं होगा। जो वास्तव सत् न हो उसका मार्जन करना क्या बात है; हे रामजी! यह जगत् आदि से उत्पन्न नहीं हुआ। जो कुछ दृश्य भासता है वह भ्रान्तिमात्र है। सर्व निर्मल ब्रह्म चैतन्य है। जैसे सुवर्ण से भूषण होता है तो वह सुवर्ण भूषण से भिन्न नहीं तैसेही जगत् और ब्रह्म में कुछभेद नहीं। हे रामजी! दृश्यरूपी मलके मा-र्जन के लिये मैं बहुत प्रकार की युक्ति तुमसे विस्तारपूर्वक कहूंगा उससे तुमको

अद्वैत सत्ता का भासहोगा। यह जगत् जो तुमको भासता है वह किसी के द्वारा नहीं उपजा। जैसे मरुस्थल की नदी भासती है और आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही यह जगत् विना कारण भासता है। जैसे मरुस्थलमें जल नहीं; जैसे वन्ध्याका पुत्र नहीं और जैसे आकाश में वृक्ष नहीं तैसेही यह जगत् है। जो कुछ देखतेहो वह निरामय ब्रह्म है। यह वाक्य तुमको केवल वाणीमात्र नहीं कहे किन्तु युक्तिपूर्वक कहे हैं। हे रामजी! गुरुकी कही युक्तिको जे मूर्खता से त्याग करते हैं उनको सिद्धान्त नहीं प्राप्तहोता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेदृश्यअसत्यप्रतिपादनंनामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

इतना सुन रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! वह युक्ति कौनहै और कैसे प्राप्त होती है जिसके धारणकिये से पुरुष आत्मपद को प्राप्तहोता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मिथ्या ज्ञानसे जो विसूचिकारूपी जगत् बहुत काल का दृढ़ होरहाहै वह विचाररूपी मन्त्रसे शान्त होता है। हे रामजी! बोधकी सिद्धता के लिये मैं तुमसे एक आख्यान कहताहूं उसको सुनके तुम मुक्तात्माहोगे और जो अर्द्धप्रबुद्ध होकर तुम उठजावोगे तब तिर्य्यगादिक धर्मको प्राप्तहोगे। हेरामजी! जिस अर्थके पानेकी जीव इच्छाकरताहै उसके पानेके अनुसार यत्न भी करे और थककर फिरे नहीं तो अवश्य उसको पाता है इस से सत्सङ्गति और सत्शास्त्र परायण हो जब तुम इनके अर्थ में दृढ़ अभ्यास करोगे तब कुछ दिनों में परमपद पावोगे। फिर रामजी ने पूछा; हे भगवन्! आत्मबोध का कारण कौन शास्त्र है और शास्त्रों में श्रेष्ठ कौन है कि, उसके जानने से शोक न रहे? वशिष्ठजी बोले; हे महामते, रामजी! महाबोध का कारण शास्त्रों में परमशास्त्र महारामायण है। उसमें बड़े २ इतिहास हैं जिनसे परमबोध की प्राप्ति होती है। हे रामजी! सब इतिहासों का सार मैं तुम से कहताहूं जिसको समझकर जीवन्मुक्त हो तुमको जगत् न भासेगा, जैसे स्वप्न में जागेहुये को स्वप्न के पदार्थ भासते हैं। जो कुछ सिद्धान्त हैं उन सबका सिद्धान्त इसमें है और जो इसमें नहीं वह और में भी नहीं है इस को बुद्धिमान् सब शास्त्र विज्ञान भण्डार जानते हैं। हे रामजी! जो पुरुष श्रद्धासंयुक्त इसको सुने और नित्य सुनके विचारेगा उसकी बुद्धि उदार होकर परमबोध को प्राप्त होगी—इसमें संशय नहीं। जिसको इस शास्त्र में रुचि नहीं है वह पापात्मा है। उस को चाहिये कि, प्रथम और शास्त्रों को विचारे उसके अनन्तर इसको विचारे तो जीवन्मुक्त होगा। जैसे उत्तम औषध से रोग शीघ्रही निवृत्त होता है तैसेही इस शास्त्र के सुनने और विचारने से शीघ्रही अज्ञान नष्ट होकर आत्मपद को प्राप्त होगा। हे रामजी! आत्मपद की प्राप्ति वर और शाप से नहीं होती जब विचार से अभ्यास करे तो आत्मज्ञान प्राप्त होताहै। हे रामजी! दानदेने, तपस्या करने और वेदके पढ़ने से

भी आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती केवल आत्म विचार से ही होती है। संसारभ्रम भी अन्यथा नष्ट नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसच्छास्त्रनिर्णयोनामसप्तमस्सर्गः ॥ ७ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिस पुरुष के चित्त और प्राणों की चेष्टा और परस्पर बोध आत्मा का है और जो आत्मा को कहता भी है; आत्मा से तोषवान् भी है और आत्माही में रमताभी है ऐसा ज्ञाननिष्ठ जीवन्मुक्त होकर फिर विदेहमुक्त होता है। रामजी बोले; हे मुनीश्वर! जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त का क्या लक्षण है कि, उस दृष्टि को लेकर मैं भी वैसेही विचरूं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष सब जगत् के व्यवहार करता है और जिसके हृदय में अद्वैतभ्रम शान्तहुआ है वह जीवन्मुक्त है; जो शुभक्रिया करता है और हृदय से आकाश की नाईं निर्लेप रहता है वह जीवन्मुक्त है; जो पुरुष संसार की दशा से सुषुप्त होकर स्वरूप में जाग्रत् हुआ है और जिसका जगत्भ्रम निवृत्त हुआ है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी! इष्ट की प्राप्ति में जिसके मुख की क्रान्ति नहीं बढ़ती और अनिष्टकी प्राप्तिमें न्यून नहीं होती वह पुरुष जीवन्मुक्त है और जो पुरुष सब व्यवहार करता है और हृदय से द्वेषरहित शीतल रहता है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी! जो पुरुष रागद्वेषादिक संयुक्त दृष्टि आता है; इष्ट में रागवान् दिखता है और अनिष्ट में द्वेषवान् दृष्टि आता है पर हृदय से सदा शान्तरूप है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुष को अहं ममता का अभाव है और जिस की बुद्धि किसी में लेपायमान नहीं होती वह कर्म्म करे अथवा न करे परन्तु जीवन्मुक्त है। हे रामजी! जिस पुरुष को मान, अपमान, भय और क्रोध में कोई विकार नहीं उपजता और आकाश की नाईं शून्य होगया है वह जीवन्मुक्त है। जो पुरुष भोक्ता भी पर हृदय से अभोक्ता है और संचित दृष्टिआता है पर अचित है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुष से कोई दुःखी नहीं होता और लोगों से वह दुःखी नहीं और राग, द्वेष, भय और क्रोध से रहित है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी! जो पुरुष चित्त के फुरने से जगत् की उत्पत्ति जानता है और चित्तके अफुर हुये जगत् का प्रलय जानता है और सबमें समबुद्धि है वह जीवन्मुक्त है। जो पुरुष भोगों से जीता दृष्टि आता है और मृतक की नाईं स्थित और चेष्टा करता दृष्टि आता है पर पर्वत के सदृश अचलहै वह जीवन्मुक्तहै। हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार करता दृष्टिआताहै और जिसके चित्त में इष्ट अनिष्ट विकार कोई नहीं है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुष को सब जगत् आकाशरूप दीखता है और जिसकी निर्वासनिक बुद्धि भई है वह जीवन्मुक्त है क्योंकि वह सदा आत्मस्वभाव में स्थित है और सब जगत् को ब्रह्मस्वरूप जानता है। इतना सुनकर रामजी बोले; हे भगवन्! जीवन्मुक्तकी तो तुमने कठिन गति कही। इष्ट अनिष्ट में

सम और शीतलबुद्धि कैसे होती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इष्ट अनिष्टरूपी जगत् अज्ञानी को भासता है और ज्ञानी को सब आकाशरूप भासता है उसे राग द्वेष किसी में नहीं होता। और की दृष्टि में वह चेष्टा करता दृष्टि आताहै परन्तु जगत् की वार्त्ता से सुषुप्त है। हे रामजी ! जीवन्मुक्त कुछ काल रहकर जब शरीर को त्यागता है तब ब्रह्मपद को प्राप्त होता है। जैसे पवन स्पन्द को त्यागकर निस्पन्द होता है तैसेही वह जीवन्मुक्तपद को त्यागकर विदेहमुक्त होता है । तब वह सूर्य होकर तपता है; ब्रह्मा होकर सृष्टि उत्पन्न करता है; विष्णु होकर प्रतिपालन करता है; रुद्रहोके संहार करता है; पृथ्वी होके सब भूतों को धरता और ओषधि अन्नादिकों को उत्पन्न करताहै, पर्वत होके पृथ्वी को रखता है; जलहोके द्रवता रस देता है, अग्नि होके उष्णता को धारता है, पवन होके पदार्थों को सुखाता है; चन्द्रमा होके ओषधियों को पुष्टकरता है, आकाश होके सब पदार्थों को ठौर देताहै, मेघ होके वर्षा करता है और स्थावर जङ्गम जितना कुछ जगत् है सबमें आत्मा होके स्थित होताहै। रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! विदेहमुक्त शरीर के धारण से क्षोभवान् होकर जगत् में आता है तो त्रैलोकी का भ्रम क्यों नहीं मिटता ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जगत् आडम्बर अज्ञानी के हृदय में स्थित है और ज्ञानवान् को सब चिदाकाशरूप है। विदेहमुक्त वही रूप होताहै जहां उदय अस्त की कल्पना कोई नहीं केवल शुद्ध बोधमात्र है। हे रामजी ! यह जगत् आदि से उपजा नहीं केवल अज्ञान से भासता है । मैं तुम और सबजगत् आकाशरूप हैं। जैसे आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासते हैं। और जैसे मरुस्थल में जल भासता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। हेराम जी ! जैसे स्वर्ण में भूषण कुछ उपजा नहीं और जैसे समुद्र में तरङ्ग होती है तैसेही आत्मा में जगत् उपजा नहीं। यह सब जगत्जाल मन के फुरने से भासता है स्वरूप से कुछ नहीं बना। ज्ञानी को सदा यही निश्चय रहता है फिर जगत् का क्षोभ उसको कैसे भासे ? हे रामजी ! यह भी मैंने तुम्हारे जाननेमात्र को कहाहै; नहीं तो जगत् कहां है जगत् का तो अत्यन्त अभाव है। इतना सुन रामजीने पूछा; हे भगवन् ! जगत् के अत्यन्त अभाव हुये विना आत्मबोध की प्राप्ति नहीं होती। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! दृश्य द्रष्टा का मिथ्याभ्रम उदयहुआ है। जब दोनोंमें से एक का अभाव हो तब दोनोंका अभाव हो और जब दोनों का अभाव हो तब शुद्ध बोधमात्र शेषरहे । जिस प्रकार जगत् का अत्यन्त अभाव हो वह युक्ति में तुमसे कहताहूं। हे रामजी ! चिरकाल का जो जगत् दृढ़ होरहा है वह मिथ्याज्ञान विसूचिका है। वह विचाररूपी मन्त्र से निवृत्त होता है। जैसे पर्वत पर चढ़ना और उतरना शनैः२ होताहै तैसेही अविद्यकभ्रम चिरकाल का दृढ़ होरहाहै विचार करके अनुक्रम से उसकी निवृत्ति होतीहै। जगत्

के अत्यन्त अभाव हुये विना आत्मबोध नहीं होता। उसके अत्यन्त अभाव के निमित्त मैं युक्ति कहता हूं उसके समझने से जगत्भ्रम नष्ट होगा और जीवन्मुक्त होकर तुम विचरोगे। हे रामजी! बन्धन से वही बँधता है जो उपजा हो और मुक्त भी वही होताहै जो उपजा हो। यह जगत् जो तुमको भासता है वह उपजा नहीं। जैसे मरुस्थल में नदी भासती है वहभी उपजी नहीं है भ्रम से भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है पर उपजा नहीं। जैसे अर्द्ध मीलित नेत्र पुरुष को आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसेही भ्रम से जगत् भासता है। हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब स्थावर, जङ्गम, देवता, किन्नर, दैत्य, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जगत् का अभाव होता है। इसके अनन्तर जो रहता है सो इन्द्रियग्राहक सत्ता नहीं और असत्यभी नहीं और न शून्य, न प्रकाश, न अन्धकार, न द्रष्टा, न दृश्य, न केवल, न अकेवल, न चेतन, न जड़, न ज्ञान, न अज्ञान, न साकार, न निराकार, न किञ्चन और न अकिञ्चन ही है। वह तो सर्वशब्दों से रहित है उसमें वाणी की गम नहीं और जो है तो चैतन्य से रहित चेतन आत्मतत्त्वमात्र है जिसमें अहं त्वं की कोई कल्पना नहीं। ऐसे शेष रहताहै और पूर्ण, अपूर्ण, आदि, मध्य, अन्तसे रहित है। सोई सत्ता जगत्रूप होकर भासती है और कुछ जगत् बना नहीं। जैसे मरीचिका में जल भासता तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै। हे रामजी! जब चित्तशक्ति स्पन्दरूप हो भासती है तब जगदाकार भासताहै और जब निस्पन्द होती है तब जगत् का अभाव होताहै पर आत्मसत्ता सदा एक रस रहती है। जैसे वायु स्पन्दरूप होताहै तो भासता है। और निस्पन्दरूप नहीं भासता परन्तु वायु एकही है तैसेही जब चित्त संवेदन स्पन्दरूप होताहै तब जगत्रूप होकर भासता है और जब निस्पन्दरूप होता है तब जगत् मिट जाता है। हे रामजी! चेतन तब जानाजाता है जब संवेदन स्पन्दरूप होताहै। जैसे सुगन्ध का ग्रहण आधारभूतसे होताहै और आधारभूत द्रव्य विना सुगन्ध का ग्रहण नहीं होता। जैसे वस्त्र श्वेत होताहै तब रङ्ग को ग्रहण करता है अन्यथा रङ्ग नहा चढ़ता तैसेही आत्मा का जानना स्पन्द से होता है; स्पन्द विना जानने की कल्पना भी नहीं होती। जैसे आकाशमें शून्यता और अग्नि में उष्णता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासताहै—वह अनन्यरूपहै। जैसे जल द्रवता से तरङ्गरूप होके भासताहै तैसेही अत्मसत्ता जगत्रूप होके भासती है। वह आकाशवत् शुद्ध है और श्रवण, चक्षु, नासिका, त्वचा, देह और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से रहित है और सब ओर से श्रवण करता, बोलता, सूंघता, स्पर्शकरता और रसलेता भी आपही है। आत्मरूपी सूर्यकी किरणों में जलरूपी त्रिलोकी फुरती भासती है। जैसे जल में चक्र आवृत फुरते भासते सो जल से इतर कुछ नहीं, जलरूप ही हैं तैसेही

जगत् आत्मा से भिन्न नहीं आत्मरूप ही है। आत्म ही जगत्रूप होकर भासताहै। रसना नहीं पर बोलता है; अभोक्ता है पर भोक्ता होके भासता है; अफुर है पर फुरता भासता है; अद्वैत है पर द्वैतरूप होकर भासता है और निराकार है पर साकाररूप होके भासता है। हे रामजी! आत्मसत्ता सब शब्दों से अतीतहै पर वही सब शब्दों को धारती है और अनद्रष्टा होके भासती है, इतर कुछ है नहीं। कई सृष्टि समान होतीहैं और कई विलक्षण होतीहैं परन्तु स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं सदा आत्मरूप हैं। जैसे सुवर्ण में भूषण समान आकारभी होते और विलक्षणभी होते हैं और कङ्कण से आदि लेके जो भूषण हैं सो सुवर्ण से इतर नहीं होते-सुवर्णरूपी ही हैं तैसेही जगत् आत्मस्वरूप है और शुद्ध आकाश से भी निर्मल बोधमात्र है। हे रामजी! जब तुम उसमें स्थित होगे तब जगत्भ्रम मिट जावेगा। जगत् वास्तव में कुछ नहीं है सदा ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है; और केवल मन के फुरने से ही जगत् भासता है मनके फुरनेसे रहित हुये सब कल्पना मिटजाती हैं और आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों भासती है। वह सत्ता ज्योंकी त्योंही है और सबका अधिष्ठानरूप है। यह सब जगत् उसीसे हुआ है और वही रूपहै। सब का कारण आत्मसत्ता है और उसका कारण कोई नहीं। अकारण, अद्वैत, अजर, अमर और सब कल्पनासे रहित शुद्ध चिन्मात्ररूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमकारणवर्णनन्नामाष्टमस्सर्गः ॥ ८ ॥

इतना सुनकर रामजीने पूछा; हे भगवन्! जब महाप्रलय होताहै और सब पदार्थ नष्ट होजातेहैं उसके पीछे जो रहता है उसे शून्य कहिये वा प्रकाश कहिये क्योंकि तम तो है नहीं; चेतनहै अथवा जीव है; मनहै वा बुद्धि है; सत्, असत्; किञ्चन, अकिञ्चन, इनमें कोई तो होवेगा; आप कैसे कहते हैं कि, वाणी की गम नहीं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह तुमने बड़ा प्रश्न किया है। इस भ्रम को मैं विना यत्न नाश करूंगा। जैसे सूर्यके उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही तुम्हारे संशय का नाशहोगा। हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब सम्पूर्ण दृश्य का अभाव होजाता है पीछे जो शेष रहताहै सो शून्य नहीं क्योंकि; दृश्याभास उसमें सदा रहता है और वास्तव में कुछ हुआ नहीं। जैसे थम्भ में शिल्पी पुतलियां कल्पताहै कि, इतनी पुतलियां इस थम्भ से निकलेंगी सो उस थम्भ में ही शिल्पी कल्पता है जो थम्भ न हो तो शिल्पी पुतलियां किसमें कल्पता? तैसेही आत्मरूपी थम्भे में मनरूपी शिल्पी जगत्रूपी पुतलियां कल्पता है; जो आत्मा न हो तो पुतलियां किसमें कल्पे। जैसे थम्भे में पुतलियां थम्भारूप हैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मरूप है-ब्रह्मसे इतर जगत् का होना नहीं। जैसे पुतलियों का सद्भाव और असद्भाव थम्भ

में है क्योंकि, अधिष्ठानरूप थम्भा है-थम्भे विना पुतलियां नहीं होतीं; तैसेही जगत् आत्मा विना नहीं होता। हे रामजी! सद्भाव होजाता है वह सत् से होता है असत् से नहीं और असद्भाव सिद्ध होताहै वह सत्‌ही में होताहै असत् में नहीं होता। इस से सत् शून्य नहीं जो शून्य होता तो किसमें भासता जैसे सोम जल में तरङ्ग का सद्भाव और असद्भाव भी होताहै। असद्भाव इस कारण होताहै कि तरङ्ग भिन्न कुछ नहीं और सद्भाव इस कारण से होताहै कि, जलही में तरङ्ग होताहै; तैसेही जगत् का सद्भाव असद्भाव आत्मा में होताहै शून्य में नहीं। जैसे सोम जल में कहनेमात्र को तरङ्ग हैं नहीं तो जलही है; तैसेही जगत् कहनेमात्र को है; हुआ कुछ नहीं-एक सत्ताही है। और शून्य और अशून्यभी नहीं क्योंकि; शून्य और अशून्य ये दोनों शब्द उसमें कल्पित हैं। शून्य उसको कहते हैं जो सद्भाव से रहित अभावरूप हो और अशून्य उसको कहते जो विद्यमान हो। पर सत्ता से इन दोनों से रहितहै अ-शून्यभी शून्य का प्रतियोगी है; जो शून्य नहीं तो अशून्य कहां से हो। ये दोनोंही अभावमात्र हैं। हे रामजी! यह सूर्य, तारा, दीपक आदिक भौतिक प्रकाश भी वहां नहीं क्योंकि; प्रकाश अन्धकार का विरोधी है। जो यह प्रकाश होता तो अन्धकार सिद्ध न होता। इससे वहां प्रकाश भी नहीं है और तम भी नहीं है क्योंकि; सूर्या-दिक जिससे प्रकाशते हैं वह तम कैसे हो? आत्मा के प्रकाश विना सूर्यादिक भी तमरूपहैं। इससे वह न शून्यहै; न अशून्यहै; न प्रकाशहै; न तम है; केवल आत्म-तत्त्वमात्र है। जैसे थम्भ में पुतलियां कुछ हैं नहीं तैसेही आत्मा में जगत् कुछ हुआ नहीं। जैसे बिल्ली और बिल्लीकी मज्जा में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं और जैसे जल और तरङ्ग में, और मृत्तिका और घट में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं; नाममात्र भेद है। हे रामजी! जल और मृत्तिका का जो दृष्टान्त दिया है ऐसे भी आत्मा में नहीं। जैसे जल में तरङ्ग होताहै और मृत्तिका में घट होताहै सोभी परिणामरूप होताहै। आत्मा में जगत् भान नहीं है और जो मानासिक है तो आकाशरूप है। इससे जगत् कुछ भिन्न नहीं है रूप, अवलोकन, मनसा, कार्यता जो कुछ भासता है वह सब आकाशरूप है। आत्मसत्ता ही चित्तके फुरनेसे जगत्‌रूप हो भासती है-जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं है जैसे सूर्यकी किरणों में जलाभास होताहै तैसेही आत्मामें जगत् भासता है। हे रामजी! थम्भे में जो शिल्पाकार पुतलियां कल्पता है सोभी नहीं होती और यहां कल्पनेवाला भी बीच की पुतली है वहभी होने विना भासती है। हे रामजी! जिस से यह जगत् भासता है उसको शून्य कैसे कहिये और जो कहिये कि, चैतन्य है तो भी नहीं क्योंकि; चैतन्यभी तब जानना होता है जब चित्‌कला फुरती है; जहां फुरना

न हो वहां चेतनता कैसेरहे ? जैसे जब कोई मिरच को खाताहै तब उसकी तिखाई भासतीहै खाने विना नहीं भासती; तैसेही चैतन्य जानना भी स्पन्दकला में होता है आत्मा में जानना भी नहीं होता चैतन्यता से रहित चिन्मात्र अक्षय सुषुप्तिरूप है उसको जो तुरीय कहता है वह ज्ञेय ज्ञानवान् से गम्य है। हे रामजी! जो पुरुष उस में स्थित हुआ है उसको संसाररूपी सर्प नहीं डससक्ता; वह अचैत्य चिन्मात्र होता है। और जिसकी आत्मा में स्थित नहीं होती उसको दृश्यरूपी सर्प डसता है। आत्मसत्ता में तो कुछ द्वैत नहीं हुआ आत्मसत्ता तो आकाश से भी स्वच्छ है। इनका द्रष्टा, दर्शन, दृश्य स्वतः अनुभवसत्ता आत्मा का रूपहै और वह अभ्यास करने से प्राप्त होती है। हे रामजी ! उसमें द्वैतकल्पना कुछ नहीं है। वह अद्वैतमात्र है वह न द्रष्टा है न जीवहै न कोई विकार और न स्थूल, न सूक्ष्म है-एक शुद्ध अद्वैतरूप अपने आपमें स्थितहै जो यह चैत्यका फुरनाही आदि में नहीं हुआ तो चेतनकला का जीव कैसेहो और जो जीवही नहीं तो बुद्धि कैसेहो ? जो बुद्धिहीन हो तो मन और इन्द्रियां कैसेहों; जो इन्द्रियां नहीं तो देह कैसे हो और जो देह न हो तो जगत् कैसे हो ? हे रामजी ! आत्मसत्ता में सब कल्पना मिटजाती हैं; उसमें कुछ कहना नहीं बनता वह तो पूर्ण, अपूर्ण, सत्, असत् से न्यारा है भाव और अभाव का कभी उसमें कोई विचार नहीं; आदि, मध्य, अन्तकी कल्पना भी कोई नहीं वह तो अजर, अमर, आनन्द, अनन्त, चित्स्वरूप, अचैत्य, चिन्मात्र और अवाक्यपद है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म आकाश से भी अधिक शून्य और स्थूल से भी स्थूल एक अद्वैत और अनन्त चिद्रूप है। इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! यह अचिन्त्य, चिन्मात्र और परमार्थसत्ता जो आपने कही उसका रूप बोध के निमित्त मुझसे फिर कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब महाप्रलय होताहै तब सब जगत् नष्ट होजाता है पर ब्रह्मसत्ता शेष रहती है उसका रूप मैं कहताहूं। मनरूपी ब्रह्मा है मन की वृत्ति जो क्षीण होती है वह एक प्रमाण; दूसरी विपर्यय; तीसरी विकल्प; चौथी अभाव और पांचवीं स्मरण है। प्रमाणवृत्ति तीन प्रकार की हैं—एक प्रत्यक्ष; दूसरी अनुमान जैसे धुवांसे अग्नि जानना और तीसरी शब्दरूप ये तीनों प्रमाणवृत्ति आगमिका हैं। द्वितीय विपर्यय वृत्ति है—हाव और भाव से तृतीय विकल्पवृत्ति है। जिससे शब्दज्ञान और अर्थज्ञान होता है। जैसे चेतनपुरुष कहा तो इससे यह ज्ञान हुआ कि, जो एकपुरुषहो और उसका द्वितीय चैतन्य स्वरूपहो तो यह चैतन्य पुरुष कहाजाता है। चेतन ईश्वररूप है और साक्षी पुरुषरूप है अर्थात् जैसे सीप पड़ी हो और उसमें संशय वृत्ति चांदीकी होकर साक्षी सीपी भासे तो उसका नाम विकल्प है। चतुर्थ निद्रा—अभाव वृत्ति है और पञ्चम स्मरणवृत्ति है। यही पांचो वृत्ति हैं और

इनका अभिमानी मन है जब तीनों शरीरों का अभिमानी अहंकार नाश हो तब पीछे जो रहता है सो निश्चलसत्ता अनन्त आत्मा है। मैं असत् नहीं कहताहूं। हे रामजी! जाग्रत् के अभाव हुये पर जबतक सुषुप्ति नहीं आती वह रूप परमात्मा का है। अंगुष्ठ को जो शीत उष्ण का स्पर्श होताहै उसको अनुभव करनेवाला परमात्मासत्ता है जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य उपजता है और फिर लीन होताहै वह परमात्मा का रूप है। उस सत्ता में चैतन्यता भी नहीं है। हे रामजी! जिसमें चेतन अर्थात् जीव और जड़ अर्थात् देहादिक दोनों नहीं हैं वह अचेत चिन्मात्र परमात्मरूप है। जो सब व्यवहार होताहै और जिसके अन्तर आकाशरूप है-कोई क्षोभ नहीं ऐसी सत्ता परमात्मा का रूपहै। वह शून्यहै परन्तु शून्यतासे रहितहै। हे रामजी! जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों प्रतिबिम्बित हैं और आकार है-ऐसी सत्ता परमात्मा का रूपहै। जो स्थावर में स्थावरभाव और चेतन में चेतनभाव से व्यापरहा है और मन बुद्धि। इन्द्रियां जिसको नहीं पासक्तीं ऐसी सत्ता परमात्मा का रूपहै। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका जहां अभाव होजाता है उसके पीछे जो शेष रहताहै और जिसमें कोई विकल्प नहीं ऐसी अचेत चिन्मात्रसत्ता परमात्मा का रूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमात्मस्वरूपवर्णनन्नामनवमस्सर्गः ॥ ९ ॥

इतना सुन रामजी बोले; हे भगवन्! यह दृश्य जो स्पष्टभासता है सो महाप्रलय में कहाजाताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बन्ध्या स्त्री का पुत्र कहांसे आताहै और कहां जाता है और आकाश का वन कहां से आता-और कहां जाता है? जैसे आकाश का वन है तैसेही यह जगत् है। फिर रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! बन्ध्या का पुत्र और आकाश का वन तो तीनों कालमें नहीं होता, शब्दमात्र है और उपजा कुछ नहीं पर यह जगत् तो स्पष्ट भासता है बन्ध्या के पुत्र के समान कैसेहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसे बन्ध्या का पुत्र और आकाश का वन उपजा नहीं तैसेही यह जगत् भी उपजा नहीं। जैसे सङ्कल्पपुर होताहै और जैसे स्वप्न नगर प्रत्यक्ष भासता है और आकाशरूप है; इनमें से कोई पदार्थ सत् नहीं तैसेही यह जगत् भी आकाशरूप है और कुछ उपजा नहीं। जैसे जल और तरङ्ग में; काजल और श्यामता में; अग्नि और उष्णता में; चन्द्रमा और शीतलता में; वायु और स्पन्दमें और आकाश और शून्यता में भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं-सदा अपने स्वभाव में स्थित है। हे रामजी! जगत् कुछ बना नहीं, आत्मसत्ताही अपने आप में स्थित है और उसमें अज्ञान से जगत् भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा, मरुस्थल में जल और आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में अज्ञान से जगत् भासताहै। इतना सुन फिर रामजी ने पूछा; हे भगवन्! दृश्यके अत्यन्त अभाव बिना

बोध की प्राप्ति नहीं होती और जगत् स्पष्टरूप भासता है। द्रष्टा और दृश्य जो मनसे उदयहुये हैं सो भ्रमसे हुये हैं। जो एकभी है तो दोनों बन्ध हुये हैं और जब दोनों में एक का अभाव हो तो दोनों मुक्त हों क्योंकि; जहां द्रष्टाहै वहां दृश्य भी है और जहां दृश्य है वहां द्रष्टाभी है। जैसे शुद्ध आदर्श विना प्रतिबिम्ब नहीं होता तैसेही द्रष्टाभी दृश्य विना नहीं रहता और दृश्य द्रष्टा विना नहीं। हे मुनीश्वर! दोनों में एक नष्ट हो तो दोनों निर्वाण हों इससे वही युक्ति कहो जिससे दृश्य का अत्यन्त अभाव होकर आत्मबोध प्राप्तहो। कोई ऐसेभी कहतेहैं कि, दृश्य आगे था अब नाश हुआ है तो उसको भी संसारभाव देखावेगा और जिसको विद्यमान नहीं भासता और उसका अन्त सद्भाव है तो फिर संसार देखेगा। जैसे सूक्ष्मबीज में वृक्ष का सद्भाव होताहै तैसेही स्मृति फिर संसार को देखावेगी और आप कहते हैं कि, जगत् का अत्यन्त अभाव होता है और जगत् का कारण कोई नहीं-आभासमात्रहै-और उपजा कुछ नहीं! हे मुनीश्वर! जिसका अत्यन्त अभाव होता है वह वस्तु वास्तव में नहीं होती और जो हैही नहीं तो बन्धन किसको हुआ तब तो सब मुक्तस्वरूप हुये पर जगत् तो प्रत्यक्ष भासताहै? इससे आप वही युक्ति कहो जिससे जगत् का अत्यन्त अभाव हो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दृश्य के अत्यन्त अभाव के निमित्त मैं एक कथा सुनाताहूं; जिसके अर्थ निश्चयकर समझने से दृश्य शान्त होकर फिर संसार कदाचित् न उपजेगा। जैसे समुद्र में धूर नहीं उड़ती तैसेही तुम्हारे हृदय में संसार न रहेगा। हे रामजी! यह जगत् जो तुमको भासता है सो अकारणरूप है; इसका कारण कोई नहीं। हे रामजी! जिसका कारण कोई न हो और भासे उसको जानिये कि, भ्रममात्र है- उपजा कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है वह किसी कारण से नहीं उपजी केवल संवित्रूप है तैसेही सर्ग आदि कारण से नहीं उपजा केवल आभासरूप है–परमात्मा का कुछ नहीं। हे रामजी! जो पदार्थ कारण विना भासे तो जिसमें वह भासता है वही वस्तु उसका अधिष्ठानरूप है। जैसे तुमको स्वप्ने में स्वप्न का नगर होकर भासता है पर वहां तो कोई पदार्थ नहीं केवल आभासरूपहै और संवित् ज्ञान ही चैतन्यता से नगर होकर भासताहै, तैसेही विश्व अकारण आभास आत्मसत्ता से होके भासताहै। जैसे जलमें द्रवता; वायुमें स्पन्द; जलमें रस और तेजमें प्रकाश है तैसेही आत्मा में चित्तसंवेदन है। जब चित्तसंवेदन स्पन्दरूप होताहै तब जगत्रूपहोकर भासता है-जगत् कोई वस्तु नहीं है। हे रामजी! जैसे और तत्त्वों के अणु और ठौरभी पायेजाते हैं और आकाश के अणु और ठौर नहीं पायेजाते क्योंकि; आकाश शून्यरूप है; तैसेही आत्मा से इतर इस जगत् का भाव कहीं नहीं पाते क्योंकि, यह आभासरूप है और किसी कारण से नहीं उपजा

कदाचित् कहो कि, पृथ्वी आदिक तत्त्वों से जगत् उपजा है तो ऐसे कहनाभी असम्भव है। जैसे छाया से धूप नहीं उपजती तैसेही तत्त्वों से जगत् नहीं उपजता क्योंकि; आदि आपही नहीं उपजे तो कारण किसका हो ? इससे ब्रह्मसत्ता सर्वदा अपने आप में स्थित है। हे रामजी ! आत्मसत्ता जगत् का कारण नहीं क्योंकि; वह अभूत और अजड़रूप है सो भौतिक और जड़का कारण कैसेहो ? जैसे धूप परछाहीं का कारण नहीं तैसेही आत्मसत्ता जगत् का कारण नहीं । इससे जगत् कुछ हुआ नहीं वही सत्ता जगत्रूपहोकर भासती है। जैसे स्वर्ण भूषणरूप होताहै और भूषण कुछ उपजा नहीं तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होकर भासती है। जैसे अनुभव संवित् स्वप्न नगररूप हो भासता है तैसेही यह सृष्टि किञ्चनरूप है दूसरी वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और जितना कुछ जगत् स्थावर जंगमरूप भासता है वह आकाशरूप है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमार्थरूपवर्णनंनामदशमस्सर्गः ॥ १० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! आत्मसत्ता नित्य, शुद्ध, अजर, अमर और सदा अपने आप में स्थित है। उसमें जिस प्रकार सृष्टि उदय हुई है वह सुनिये। उसके जानेसे जगत्कल्पना मिट जावेगी। हे रामजी ! भाव-अभाव; ग्रहण-त्याग; स्थूल-सूक्ष्म; जन्म-मरण आदि पदार्थों से जीव छेदाजाता है उससे तुम मुक्तहोगे । जैसे चूहे सुमेरु पर्वत को चूर्ण नहीं करसक्ते तैसेही तुमको संसार के भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न करसकेंगे। हे रामजी ! आदि शुद्ध-देव अचेत चिन्मात्र है; उसमें चैत्यभाव सदा रहता है क्योंकि; वह चैतन्यरूप है। जैसे वायु में स्पन्दशक्ति सदा रहती है तैसेही चिन्मात्र में चैत्य का फुरना रहकर "अहमस्मि" भाव को प्राप्तहुआहै। इस कारण उसका नाम चैतन्य है। हे रामजी ! जबतक चैतन्य-संवित् अपने स्वरूप की ठौर नहीं आता तबतक इसका नाम जीव है और सङ्कल्प का नाम बीज चित्-संवित् है उसीसे सर्वभूतजाति उत्पन्न हुई है। इससे सबका जीव चित्-संवित् है । जब जीव संवित् चैत्य को चेतता है तब प्रथम शून्य होकर उसमें शब्दगुण होता है । उस आदि शब्दतन्मात्रा से पद, वाक्य और प्रमाणसहित वेद उत्पन्न हुये। जितना कुछ जगत्में शब्द है उसका बीज तन्मात्रा है जिससे सर्ववायु अरस्परस होता है । फिर रूपतन्मात्रा हुई; तिससे सूर्य, अग्नि आदिक प्रकाश हुये । फिर रसतन्मात्रा हुई जिससे जलहुआ और सब जलोंका बीज वही है। फिर गन्ध तन्मात्राहुई जिससे पूर्ण पृथ्वी हुई और सब पृथ्वी का बीज वही है। हे रामजी ! इसीप्रकार पांचो भूत हुये हैं फिर पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश से जगत् हुआ है सो भूत पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत है। यह भूत शुद्ध चिदाकाशरूप नहीं क्योंकि; सङ्कल्प मैलयुक्त हुये हैं।

इस प्रकार चिदणु में सृष्टि भासी है। जैसे वटबीज में से वटका विस्तार होता है तैसेही चिदणु में सृष्टि है। कहीं क्षण में युग और कहीं युगमें क्षण भासता है। चिदणु में अनन्तसृष्टि फुरती हैं। जब चित् संवित् चैत्योन्मुख होताहै तब अनेक सृष्टि होकर भासती हैं और जब चित् संवित् आत्मा की ठौर आता है तब आत्मा के साक्षात्कार होनेसे सब सृष्टि पिण्डाकार होकर जाती है-अर्थात् सब आत्मरूप होतीहै। इससे इसजगत् का बीज सूक्ष्मभूत है और इनका बीज चिदणु है। हे रामजी! जैसा बीज होताहै तैसाही वृक्ष होताहै। इससे सब जगत् चिदाकाशरूप है। संकल्प से यह जगत् आडम्बर होताहै और संकल्पके मिटेसे सब चिदाकाश होताहै। जैसे संकल्प आकाशरूप है तैसेही जगत् भी आकाशरूप हैं; जो सब आत्म अनुभव आकाशरूप है और जिससे क्षण में एकरूप होताहै। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर होता तैसेही यह जगत् हैं। हे रामजी! इस जगत् का मूल पञ्चभूत हैं जिसका बीज संवित् और स्वरूप चिदाकाश है। इसीसे सब जगत् चिदाकाश है; द्वैत और कछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजगदुत्पत्तिवर्णनन्नामैकादशस्सर्गः॥ ११॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! परब्रह्म सम, शान्त, स्वच्छ, अनन्त, चिन्मात्र और सर्वदाकाल अपने आप में स्थित है। उसमें सम–असमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है। सम अर्थात् सजातीयरूप और असम अर्थात् भेदरूप कैसे हुये सो भी सुनिये। प्रथम तो उसमें चैत्य का फुरना हुआ है; उसका नाम जीव हुआ और उसने दृश्यको चेता उससे तन्मात्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उपजे। उन्हींसे पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश पञ्चभूतरूपी वृक्ष हुआ और उस वृक्षमें ब्रह्माण्डरूपी फल लगा। इससे जगत्का कारण पञ्चतन्मात्राहुई हैं और तन्मात्राका बीज आदि संवित् आकाश है और इसीसे सर्व जगत् ब्रह्मरूप हुआ। हे रामजी! जैसा बीज होताहै वैसाही फल होताहै। इसका बीज परब्रह्म है तो यह भी परब्रह्म हुआ। जो आदि अचेत चिन्मात्र स्वरूप परमाकाश है और जिस चैतन्य संवित् में जगत् भासता है वह जीवाकाश है। वह भी शुद्ध निर्मल है क्योंकि; वह पृथ्वी आदिक भूतों से रहित है। हे रामजी! यह जगत् जो तुमको भासताहै सो सब चिदाकाशरूप है और वास्तव में द्वैत कुछ नहीं बना। यह मैंने तुमसे ब्रह्माकाश और जीवाकाश कहा। अब जिससे इसको शरीर ग्रहण हुआ सो सुनिये। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्योन्मुखत्व "अहं अस्मि" हुआ और उस अहंभाव से आपको जीव अणु जाननेलगा। आप वास्तव स्वरूप अन्य भावकी नाईं होकर जीव अणु में जो अंहभाव दृढ़ हुआ उसीका नाम अहंकार हुआ। उस अहंकार की दृढ़ता से निश्चयात्मक बुद्धि हुई और उससे

सङ्कल्परूपी मन हुआ । जब मन इसकी ओर संसरनेलगा तब सुनने की इच्छा की इससे श्रवण इन्द्रिय प्रकट हुई; जब रूप देखने की इच्छा की तब चक्षु इन्द्रिय प्रकट हुई; जब स्पर्श की इच्छा की तो त्वचा इन्द्रियप्रकट हुई और जब रसलेने की इच्छा की तो जिह्वा इन्द्रिय प्रकटहुई । इसी प्रकारसे देहइन्द्रिय चेतता से भासीं और उनमें यह जीव अहंप्रतीति करने लगा । हे रामजी ! जैसे दर्पण में पर्वतका प्रतिबिम्बहोता है वह पर्वत से बाह्य है तैसेही देह और इन्द्रियां बाह्य दृश्य हैं पर अपने में भासी हैं इससे उनमें अहंप्रतीति होती है । जैसे कूप में मनुष्य आपको देखे तैसेही देह में आपको देखता है जैसे डब्बे में रत्न होता है तैसेही देह में आपको देखताहै । वही चिदूअणु देह के साथ मिलकर दृश्य को रचता है । उस अहं से रूप में क्रिया भासनेलगी । जैसे स्वप्ने में दौड़े और जैसे स्थित में स्पन्द होती है तैसेही आत्मा में जो स्पन्दक्रियां हुई वह चित्त संवितसेही हुई है और उसीका नाम स्वयम्भू ब्रह्मा हुआ । जैसे संकल्प से दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही मनोमय जगत् भासताहै । जैसे शशेके शृङ्ग होतेहैं तैसाही यह जगत् है । कुछ उपजा नहीं केवल चित्त के स्पन्द में जगत् फुरता है । जैसे २ चित्त फुरता तैसे २ देश, काल, द्रव्य, स्थावर, जङ्गम, जगत् की मर्यादा हुई हैं । इससे सब जगत् संकल्परूप है; संकल्प से इतर जगत् का आकार कुछ नहीं । जब संकल्प फुरता है तब आगे जगत् दृश्य भासता है और जब संकल्प निस्पन्द होताहै तब दृश्य का अभाव होताहै । हे रामजी ! इस प्रकार से यह ब्रह्मा निर्वाण हो फिर और उपजते हैं इससे सब संकल्पमात्र ही हैं । जैसे नटवा नानाप्रकार के पटके स्वांग करके बाहर निकलआता है तैसेही देखो यह सब मायामात्र है । हे रामजी ! जब चित्त की ओर संसरता है तब दृश्य का अन्त नहीं आता और जब अन्तर्मुख होता है तब सब जगत् आत्मरूप होताहै । चित्त के निस्पन्द होने से एक क्षण में जगत् निवृत्त होताहै क्योंकि; संकल्परूपही है इससे यह जगत् आकाशरूप है उपजा कुछ नहीं और आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आप में स्थित है । जैसे स्वप्ने में पर्वत और नदियां भ्रम से दिखते हैं तैसेही यह जगत् भी भ्रमसे भासताहै । जैसे स्वप्ने में आपको मुआ देखताहै सो भ्रममात्र है तैसेही यह जगत् भ्रममात्र है । हे रामजी ! यह स्थावर, जङ्गम, जगत् सब चिदाकाश है । हमको तो सदा चिदाकाशही भासता है । आदि त्रिराट्रूप में ब्रह्माभी वास्तव में कुछ उपजे नहीं तो जगत् कैसे उपजा । जैसे स्वप्ने में नानाप्रकार के देश काल और व्यवहार दृष्टि आते हैं सो अकारणरूप हैं; उपजे कुछ नहीं और आभासमात्र हैं; तैसेही यह जगत् आभासमात्र है । कार्य कारण भासते हैं तोभी अकारण है । हे रामजी ! हमको जगत् ऐसा भासता है जैसे स्वप्नसे जागे मनुष्य को भासताहै । जो वस्तु अकारण

भासी है सो भ्रान्तिमात्र है। जो किसीकारण द्वारा जगत् नहीं उपजा तो स्वप्नवत् है। जैसे संकल्पपुर और गन्धर्वनगर भासते हैं तैसेही यह जगत्भी जानो। आदि विराट आत्मा अन्तवाहकरूप है और वह पृथ्वी आदितत्त्वों से रहित आकाशरूपहै तो यह जगत् अधिभूत से कैसे हो। सब आकाशरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेस्वयम्भूउत्पत्तिवर्णनन्नामद्वादशस्सर्गः॥ १२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह दृश्य मिथ्या असत्रूप है। जो है सो निरामय ब्रह्म है। वह ब्रह्म आकाशजीवकी नाईं हुआहै। जैसे समुद्र द्रवतासे तरङ्गरूप होता है तैसेही ब्रह्म जीवरूप होताहै आदिसंवित स्पन्दरूप ब्रह्मा हुआहै और उस ब्रह्मासे आगे जीव हुये हैं जैसे एकदीपक से बहुतदीपक होते और जैसे एकसंकल्पके बहुत संकल्प होतेहैं तैसेही एक आदिजीवसे बहुत जीव हुये हैं। जैसे थम्भे में शिल्पी पुतलियां कल्पताहै पर वह पुतलियां शिल्पीके मनमें होतीहैं, थम्भा ज्योंका त्योंही स्थितहै; तैसेही सब पदार्थ आत्मा में मन कल्पेहै; वास्तव में आत्मा ज्योंका त्यों ब्रह्म है। उन पुतलियों में बड़ी पुतली ब्रह्मा है और छोटी पुतली जीव है। जैसे वास्तव में थम्भा है, पुतली कोई नहीं उपजी; तैसेही वास्तव में आत्मसत्ता है जगत् कुछ उपजा नहीं; संकल्प से भासता है और संकल्प के मिटे से जगत् कल्पना मिट जाती है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! एक जीव से जो बहुतजीव हुये हैं तो क्या वे पर्वत में पाषाणकी नाईं उपजते हैं वा कोई जीवों की खान है? कि, इस प्रकार इतने जीव उत्पन्न हो आतेहैं; अथवा मेघकी बूंदों वा अग्नि से विस्फुलिङ्गों की नाईं उपजतेहैं सो कृपा कर कहिये? और एक जीव कौनहै जिससे सम्पूर्णजीव उपजते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! न एकजीव है और न अनेक हैं। तेरे ये वचन ऐसे हैं जैसे कोई कहे कि, मैंने शशेके शृङ्ग उड़ते देखे हैं। एक जीव भी तो नहीं उपजा मैं अनेक कैसे कहूं? शुद्ध और अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। वह अनन्त आत्मा है; उसमें भेद की कोई कल्पना नहीं है। हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमको भासताहै सो सब आकाशरूप है कोई पदार्थ उपजा नहीं, केवल संकल्प के फुरनेही से जगत् भासता है। जीवशब्द और उसका अर्थ आत्मा में कोई नहीं उपजा यह कल्पना भ्रमसे भासती है। आत्मसत्ताही जगत् की नाईं भासतीहै; उसमें न एक जीव है और न अनेकजीव हैं। हे रामजी! आदि विराट् आत्मा आकाशरूप है, तिससे और जगत् उपजा है। मैं तुमको क्या कहूं? जगत् विराट्रूप है, विराट् जीवरूप है और जीव आकाशरूप है, फिर और जगत् क्या रहा और जीव क्या हुआ? सब चिदाकाशरूप है। ये जितने जीव भासते हैं वे सब ब्रह्मस्वरूप हैं, द्वैत कुछ नहीं और न इनमें कुछ भेद है। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आप कहते

हैं कि, आदिजीव कोई नहीं; तो इनजीवों का पालनेवाला कौन है? वह नियामक कौन है जिसकी आज्ञा में ये विचरते हैं? जो कोई हुआही नहीं तो ये सर्वज्ञ और अल्पज्ञ क्योंकर होते हैं और एक में कैसे हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिसको तुम आदि जीव कहते हो वह ब्रह्मरूप है। वह नित्य, शुद्ध और अनन्त शक्तिमान् अपने आप में स्थित है और उसमें जगत् कल्पना कोई नहीं। हे रामजी! जो शुद्ध चिदाकाश अनन्तशक्ति में आदिचित्त किञ्चन हुआ है वही शुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ता जीव की नाईं भासने लगी है। स्पन्दद्वारा हुये की नाईं भासती है पर अपने स्वरूप से इतर कुछ हुआ नहीं चैतन्य संवित्आदि स्पन्द से विराट् आत्मा ब्रह्मारूप होकर स्थित हुआ है और उस से संकल्प करके जगत् रचा है। उसी में शुभ अशुभ कर्म रचे हैं और उनसे नीति रची है-अर्थात् यह शुभ है और यह अशुभ है; वही आदिनीति महाप्रलय पर्यन्त ज्योंकी त्यों चली जाती है। हे रामजी! वह अनन्त शक्तिमान् देव जिससे आदि फुरना हुआ है वैसेही स्थित है। जो आदि सबशक्ति फुरी है वह तैसेही है-जो अल्पज्ञ फुरा है सो अल्पज्ञही है। हे रामजी! संसार के पदार्थों में नीतिशक्ति प्रधान है; उसके लंघने को कोईभी समर्थ नहीं है। जैसे रची है तैसेही महाप्रलयपर्यन्त रहती है। हे रामजी! आदि-नित्य-विराट्पुरुष अन्तवाहकरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है और यह जगत् भी अन्तवाहकरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से नहीं उपजा-सब संकल्परूप है। जैसे मनोराज का नगर शून्य होताहै तैसेही यह जगत् शून्य है। हे रामजी! इससर्गका निमित्त कारण और समवाय कारण कोई नहीं। जो पदार्थ निमित्त कारण और समवाय कारण विना दृष्टि आवे उसे भ्रममात्र जानिये; वह उपजा नहीं। जो पदार्थ उपजताहै वह इन्हीं दोनों कारणों से उपजता है पर वह जगत् का कारण इनमें से कोई नहीं। ब्रह्मसत्ता नित्य, शुद्ध और अद्वैत सत्ता है उस में कार्य कारण की कल्पना कैसेहो? हे रामजी! यह जगत् अकारण है केवल भ्रान्ति से भासता है। जब तुमको आत्मविचार उपजेगा तब दृश्य भ्रम मिटजावेगा। जैसे दीपक हाथ में लेकर अन्धकार को देखिये तो कुछ दृष्टि आता तैसेही जो विचार करके देखोगे तो जगत्भ्रम मिटजावेगा। जगत्भ्रम मन के फुरनेसेही उदय हुआ है; इससे संकल्पमात्र है। इसको अधिष्ठान ब्रह्म है, सब नामरूप उस ब्रह्मसत्ता में कलिपत है और षट्विकार भी उसी ब्रह्मसत्ता में फुरे हैं पर सबसे रहित और शुद्ध चिदाकाशरूप है और जगत् भी वही रूप है। जैसे समुद्र में द्रवता से तरङ्ग, बुद्बुदे और फेन भासते हैं तैसेही आत्मसत्ता में चित्तके फुरने से जगत् भासता है। जैसे आदिचित्त में पदार्थसत्ता दृढ़ हुई है, तैसेही स्थित है और आत्मा के साथ अभेद है, इतर कुछ नहीं; सब चिदाकाश है। इच्छा, देवता, समुद्र,

पर्वत ये सब आकाशरूप हैं। हे रामजी! हमको सदा चिदाकाशरूप ही भासता है और आत्मसत्ताही मन, बुद्धि, पर्वत, कन्दरा, सबजगत् होकर भासता है। जब चैत्योन्मुखत्व होताहै तब जगत् भासता है। जैसे वायु स्पन्दरूप होताहै तो भासता है और निस्पन्दरूप होताहै तो नहीं भासता, तैसेही जब चित्तसंवेदन स्पन्दरूप होता है तो जगत् भासता है और जब चित्त संवेदन स्फुरणरूप होता है तो जगत् कल्पना मिटजाती है। हे रामजी! चिन्मात्र में जो चैत्यभाव हुआहै इसीका नाम जगत् है; जब चैत्यसे रहित हुआ तो जगत् मिटजाता है। जब जगतही न रहा तो भेदकल्पना रही सो भेदकल्पना आत्मा में कैसेहो? इससे न कोई कार्य है, न कारण है और न जगत् है—सब भ्रममात्र कल्पना है। शुद्ध चिन्मात्र अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में चित्त सदा किञ्चन रहता है। जैसे मिरचों के बीज में तीक्ष्णता सदा रहती है परन्तु जब कोई खाता है तब तीक्ष्णता भासती है, अन्यथा नहीं भासती; तैसेही जब चित्त संवेदन चैत्योन्मुखत्व होताहै तब जीवको जगत् चेतन्य भासता है और संवेदन से रहित जीव को जगत् कल्पना नहीं भासती। हे रामजी! जब संवेदन के साथ परिच्छिन्न संकल्प मिलता है तब जीव होताहै और जब इससे रहित होता है तो शुद्धचिदात्मा ब्रह्म होता है। जिस पुरुष की अशेष कल्पना मिटगई है और जिसको शुद्ध निर्विकार ब्रह्मसत्ता का साक्षात्कार हुआ है वह पुरुष संसारभ्रम से मुक्त हुआ है। हे रामजी! यह सब जगत् आत्मा का आभासरूप है। वह आत्मा अछेद्य, अदाह्य; अक्लेद्य, नित्य, शुद्ध, सर्वगत स्थान की नाईं अचल अहंरूप है और सब जगत् चिदाकाशरूप है। हमको तो सदा ऐसेही भासताहै पर अज्ञानी वाद विवाद किया करते हैं। हमको वाद विवाद कोई नहीं क्योंकि, हमारा सब भ्रम नष्ट होगयाहै। हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है और द्वैत कुछ नहीं। जिसको यह निश्चय भयाहै उसके सब अङ्ग अपना स्वरूपहीहै तो निराकार और निर्वपुसत्ता के अंग अपना स्वरूप क्यों न हो। ये सब प्रपञ्च चिदाकाशरूप हैं परन्तु अज्ञानी को भिन्न २ और जन्म मरण आदि विकार भासते हैं और ज्ञानवान् को सब आत्मरूपही भासते हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश सब आत्मा के आश्रय फुरते हैं और चित्तशक्तिही ऐसे होकर भासती है। जैसे वसन्तऋतु आती है तो रसाशक्ति से वृक्ष और बेलैं सब प्रफुल्लित होकर भासती हैं तैसेही चित्तशक्ति-स्पन्दता ही जगत्रूप होकर भासती है। हे रामजी! जैसे वायु स्पन्दतासे भासताहै तैसेही जगत् फुरने में भासताहै और तैसेही चित्तसंवित् जगत्रूप होकर भासताहै। इस फुरनेसेही जगत्है और कोई वस्तु नहींहै; इसीसे जगत् कुछ नहींहै। जैसे समुद्र तरङ्गरूपहो भासताहै, तैसेही आत्मा जगत्रूपहो भासताहै। इससे जगत् दृश्यभावसे

भासताहै पर संवितसे कुछ नहीं। वायु,जड़है और आत्मा चैतन्यहै और जलभी परिणामसे तरङ्गरूप होताहै; आत्माच्युत और निराकार है। हे रामजी! चैतन्यरूप रत्नहै और जगत् उसका चमत्कार है अथवा चैतन्यरूपी अग्नि में जगत्रूपी उष्णता है। हे रामजी! यह चैतन्य प्रकाशही भौतिक प्रकाशरूप होकर भासताहै, इससे जगत् है; और वस्तु से नहीं। चैतन्य सत्ताही शून्य आकाशरूप होकर भासताहै। इस भाव से जगत् है वास्तव नहीं हुआ। इससे जगत् कुछ नहीं चेतनसत्ताही पृथ्वीरूप होकर भासती है, दृश्य में आता है इससे जगत् है पर आत्मसत्ता से इतर कुछ नहीं हुआ। चैतन्य बिन घन अन्धकार में जगतरूपी कृष्णता है; अथवा चैतन्यरूपी काजल का पहाड़ है और जगत्रूपी उसका प्रमाण भ्रम है और चैतन्यरूपी सूर्यमें जगत्रूपी दिन है; आत्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग है; आत्मरूपी कुसुम में जगत्रूपी सुगन्ध है आत्मरूपी बरफ में शुक्लता और शीतलतारूपी जगत् है; आत्मरूपी बेलि में जगत्रूपी फूल है; आत्मरूपी स्वर्ण में जगत्रूपी भूषण है; आत्मरूपी पर्वत में जगत्रूपी जड़ सघनता है; आत्मरूपी अग्नि में जगत्रूपी प्रकाश है; आत्मरूपी आकाश में जगत्रूपी शून्यता है; आत्मरूपी ईख में जगत्रूपी मधुरता है; आत्मरूपी दूध में जगत्रूपी घृतहै, आत्मरूपी मधु में जगत्रूपी मधुरताहै अथवा आत्मरूपी सूर्य में जगत्रूपी जलाभास है और नहीं है हे रामजी! इस प्रकार देखो कि जो सर्व, ब्रह्म, नित्य, शुद्ध, परमानन्दस्वरूप है वह सर्वदा अपने आपमें स्थितहै—भेद कल्पना कोई नहीं। जैसे जल द्रवता से तरङ्गरूप होके भासताहै; तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होके भासती है। न कोई उपजता है और न कोई नष्ट होता है। हे रामजी! आदि जो चित्तशक्ति स्पन्दरूप है वह विराट्रूप ब्रह्महै और चिदाकाशरूपहै; आत्मसत्ता से इतरभावको नहीं प्राप्तहुआ। जैसे पत्रके ऊपर लकीरें होती हैं सो पत्रसे भिन्न वस्तु नहीं पत्ररूपही हैं तैसेही ब्रह्म में जगत् है कुछ इतर नहीं है बल्कि; पत्र के ऊपर लकीरें तो आकार हैं पर ब्रह्म में जगत् कोई आकार नहीं! सब आकाशरूप मनमें फुरताहै; जगत् कुछ हुआ नहीं। जैसे शिलामें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै तैसेही आत्मा में मनने जगत् कल्पना की है। वास्तव में कुछ हुआ नहीं शिलावज्र की नाईं पीन है और सब जगत्को धरि रहीहै और आकाश की नाईं विस्ताररूप होकर शान्तरूपहै। निदान हुआ कुछ नहीं जो कुछ है सो परब्रह्मरूप है और जो ब्रह्मही है तो कल्पना कैसेहो? इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनिशार्दूल वशिष्ठजीने कहा तब सायंकाल का समय हुआ और सबसभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ आश्रमको गई। फिर सूर्यकी किरणों के निकलतेही सब अपने २ स्थानोंपर आबैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनन्नामत्रयोदशस्सर्गः॥ १३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आत्मा में कुछ उपजा नहीं भ्रम से भासरहा है। जैसे आकाश में भ्रम से तरवरे और मुक्तमाला भासती हैं तैसेही अज्ञान से आत्मा में जगत् भासताहै। जैसे थम्भे की पुतलियां शिल्पी के मनमें भासती हैं कि, इतनी पुतलियां इस थम्भेमें हैं सो पुतलियां कोई नहीं क्योंकि, किसीकारण से नहीं उपजीं; तैसेही चेतनरूपी थम्भेमें मनरूपी शिल्पी त्रिलोकीरूपी पुतलियां कल्पता है परन्तु किसी कारण से नहीं उपजीं—ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्योंही स्थित है। जैसे सोमजल में त्रिकाल तरङ्गोंका सद्भाव होताहै। वास्तव में जगत्का होना कुछ नहीं चित्त के फुरने से ही जगत् भासता है। जैसे सूर्य की किरणें झरोखों में आती हैं और उसमें सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं उनसे भी चिद्अणु सूक्ष्महैं जैसे त्रसरेणुसे सुमेरु पर्वतस्थूलहै तैसेही चिद्अणुसे त्रसरेणु स्थूल है। ऐसे सूक्ष्म चिद्अणु से यह जगत् फुरता है सो वह आकाशरूप है; कुछ उपजा नहीं और फुरनेसे भासता है। हे रामजी! आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक जो कुछ जगत् भासता है सो कुछ उपजा नहीं तो और पदार्थ कहां उपजा हो? निदान सब आकाशरूप है वास्तवमें कुछ उपजा नहीं और जो कुछ अनुभव में होताहै वहभी असत् है। जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभव से होती है वह उपजी नहीं, असतरूप है? तैसेही यह जगत् भी असतरूप है। शुद्ध निर्विकार सत्ता अपने आप में स्थित है; उससत्ता को त्याग करके जो अवयव अवयवी के विकल्प उठाते हैं उनको धिक्कार है। यह सब जगत् आकाशरूप है और अधिभौतिक जगत् जो भासता है सो गन्धर्बनगर और स्वप्नसृष्टिवत् है। हे रामजी! पर्वतों सहित जो यह जगत् भासताहै सो रत्तीमात्र भी नहीं। जैसे स्वप्न के पर्वत जाग्रत्की रत्तीभरभी नहीं होते क्योंकि, कुछ हुये नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मरूप है और भ्रान्ति करके भासता है। जैसे संकल्प का मेघ सूक्ष्म होताहै तैसेही यह जगत् आत्मा में तुच्छ है। जैसे शशे के शृङ्ग असत् होतेहैं तैसेही यह जगत् असत् है और जैसे मृगतृष्णा की नदी असत् होती है तैसेही यह जगत् असत् है; असम्यक् ज्ञानसेही भासता है और विचार कियेसे शान्ति होजाती है। जब शुद्ध चैतन्यसत्ता में चित्तसंवेदन होताहै तब वही संवेदन जगत्रूप होकर भासता है परन्तु जगत् हुआ कुछ नहीं। जैसे समुद्र अपनी द्रवता के स्वभाव से तरङ्गरूप हो भासता है परन्तु तरङ्ग कुछ और वस्तु नहीं है जलरूप ही है तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होकर फुरतीहै। सो जगत् कोई भिन्न-पदार्थ नहीं है ब्रह्मसत्ताही किञ्चन द्वारा ऐसे भासती है। जैसा बीज होताहै तैसाही अंकुर निकलता है इसलिये; जैसी आत्मसत्ताहै तैसेही जगत्है दूसरी वस्तु कोई नहीं आत्म-सत्ता अपने आपमेंही स्थित है पर चित्तसंवेदनके स्पन्द से जगत्रूप होता है। हे रामजी! इसीपर एक आख्यान तुमको सुनाताहूं, वह श्रवण का भूषण है और उसके

समझने से सब संशय मिटजावेंगे और विश्राम प्राप्तहोगा। इतना सुन रामजी बोले, हे भगवन्! मेरे बोध की वृद्धि के निमित्त मण्डपाख्यान जिस विधि से हुआहै सो संक्षेप से कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस पृथ्वी में एक महातेजवान् राजा पद्म हुआथा। वह लक्ष्मीवान्, सन्तानवान्, मर्यादाके धारनेवाला, अतिसतोगुणी और दोषों का नाशकर्त्ता एवं प्रजापालक, शत्रुनाशक और मित्रप्रिय था और सम्पूर्ण राजसी और सात्त्विकी गुणोंसे सम्पन्न मानो कुलका भूषणथा। लीला नाम उसकी स्त्री बहुत सुन्दर और पतिव्रता थी। मानो लक्ष्मीने अवतार लिया था। उसके साथ राजा कभी बागों और तालों और कभी कदम्बवृक्षों और कल्पवृक्षोंमें जाया करता था, कभी सुन्दर २ स्थानों में जाके क्रीड़ाकरता था; कभी बरफ का मन्दिर बनवाके उसमें रहता था और कभी रत्नमणि के जड़ेहुये स्थानों में शय्या बिछवाके विश्राम करता था। निदान इसी प्रकार दोनों दूर और निकट के ठाकुरद्वारों और तीर्थों में जाके क्रीड़ाकरते और राजसी और सात्त्विकी स्थानों में विचरतेथे वे दोनों परस्पर श्लोक भी बनाते थे एकपद कहे दूसरा उसको श्लोक करके उत्तर दे और श्लोक भी ऐसे पढ़ें कि पढ़नेमें तो भाषा और अर्थ में संस्कृत हों। इसीप्रकार दोनोंका परस्पर अतिस्नेह था। एकसमय रानी ने विचार किया कि, राजा मुझको अपने प्राणोंकी नाईं प्यारे और बहुत सुन्दर हैं इसलिये कोई ऐसा यत्न, यज्ञ वा तप-दान करूं कि, किसी प्रकार इसकी सदा युवावस्था रहे और अजर अमर हो इसका और मेरा कदाचित् वियोग न हो। ऐसे विचार कर उसने ब्राह्मणों ऋषीश्वरों और मुनीश्वरों से पूछा कि, हे विप्रो! नर किस प्रकार अजर-अमर होताहै? जिसप्रकार होता हो सो हमसे कहो? विप्र बोले, हे देवि! जप, तप आदि से सिद्धता प्राप्त होतीहै परन्तु अमर नहीं होता। सब जगत् नाशरूप है इस शरीर से कोई स्थिर नहीं रहता। हे रामजी! इस प्रकार ब्राह्मणोंसे सुन और भर्त्ता के वियोग से डरकर रानी विचार करनेलगी कि, भर्त्ता से मैं प्रथम मरूं तो मेरे बड़ेभाग हों और सुखवानहोऊं और जो यह प्रथम मृतक हो तो वही उपायकरूं जिससे राजा का जीव मेरे अन्तःकरणमेंही रहे—बाह्य न जावे—और मैं दर्शन करतीरहूं। इससे मैं सरस्वती की सेवा करूं। हे रामजी! ऐसा विचारकर शास्त्रानुसार तपरूप सरस्वती का पूजन करनेलगी। निदान त्रिरात्र और दिनपर्यन्त निराहार रह चतुर्थदिन में व्रतपारणाकरे और देवतों, ब्राह्मणों, पण्डितों, गुरू और ज्ञानियोंकी पूजाकर, स्नान, दान, तप, ध्यान नित्यप्रति कीर्त्तन करे पर जिस प्रकार आगे रहतीथी उसीप्रकार रहि भर्त्ता को न दिखावे। इसी प्रकार नेमसंयुक्त क्लेश से रहित तप करनेलगी। जब तीनसौ दिन व्यतीत हुये तब प्रीतियुक्त हो सरस्वती की पूजा की और वागीश्वरी ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा; हे पुत्रि! तूने भर्त्ता के निमित्त निरन्तर तप किया है,

इसमे मैं प्रसन्नहुई; जो वर तुझे अभीष्ट हो सो मांग। लीला बोली, हे देवि ! तेरी जय हो ! मैं अनाथ तेरी शरण हूं, मेरी रक्षा कर। इस जन्म को जरारूपी अग्नि जो बहुत प्रकार से जलाती है उसके शान्त करने को तुम चन्द्रमा हो और हृदय के तम नाश करने को तुम सूर्य हो। हे माता ! मुझको दो वर दो–एक यह कि, जब मेरा भर्त्ता मृतक हो तब उसका पुर्यष्टक वपु बाह्य न जावे अन्तःपुरही में रहे और दूसरा यह कि, जब मेरी इच्छा तुम्हारे दर्शन की हो तब तुम दर्शनदो। सरस्वती ने कहा ऐसेही होगा। हे रामजी ! ऐसा वरदान देकर; जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजके लीन होते हैं; तैसेही देवी अन्तर्द्धान होगई और लीला वरदान पाकर बहुत प्रसन्नभई। कालरूपी चक्र में क्षणरूपी अारे लगेहुये हैं और उसकी तीनसौ साठ कीलें हैं वह चक्र वर्षपर्यन्त फिरकर फिर उसी ठौर आता है। ऐसे कालचक्र के वेग से राजा पद्म रणभूमिका से विषयरूपी घर में पड़ाहुआ मृतक हो ऐसा होगया जैसे सूखे पत्र से रस निर्मल होजाताहै। पुर्यष्टक के निकलने से राजा का शरीर कुम्हिला गया और रानी उसके मरने से बहुत शोकवान् भई। जैसे कमलिनी जल बिना कुम्हिला जाती है तैसेही उसके मुख की कान्ति दूर होगई और विलाप करनेलगी। कभी ऊँचेस्वर से रुदनकरे और कभी चुप रहजावे। जैसे चकवेके वियोग से चकवी शोकवान् होती है और जैसे सर्प की फुत्कार लगेसे कोई मूर्च्छित होताहै तैसे ही राजा के वियोग से लीला मूर्च्छित होगई और व्याकुल होके प्राण त्यागने लगी। तब सरस्वतीजी ने दया करके आकाशवाणी की कि, हे सुन्दरि ! यह जो तेरा भर्त्ता मृतकभयाहै इसको तू सर्वओरसे फूलोंसे ढांपकर रख; तुझको फिर भर्त्ता की प्राप्ति होवेगी और यह फूल न कुम्हिलावेंगे। तेरे भर्त्ता की ऐसी अवस्था है जैसे आकाश की निर्मल कान्तिहै और वह तेरेही मन्दिर में है कहीं गया नहीं। हे रामजी ! इस प्रकार कृपा करके जब देवीने वचन कहे तो जैसे जल बिना मछली तड़पती हुई मेघ की वर्षा से कुछ शान्तिमान् होतीहै; तैसे ही लीला कुछ शान्तिमान् हुई। फिर जैसे धन हो और कृपणता से धनका सुख न होवे तैसेही वचनोंसे उसे शान्तिहुई और भर्त्ताके दर्शन बिना जब शान्ति न हुई तब उसने ऊपर नीचे फूलों से भर्त्ता को ढांपा और उसके पास आप शोकवान् होकर बैठी रुदनकरने लगी। फिर देवी की आराधना की तो अर्द्धरात्रिके समय देवीजी आ प्राप्तहुई और कहा; हे सुन्दरि ! तैंने मेरा स्मरण किस २ निमित्त कियाहै और तू शोक किस कारण करती है? यह तो सब जगत् भ्रान्तिमात्र है, जैसे मृगतृष्णा की नदी होती है; तैसेही यह जगत् है। अहं त्वं इदं से ले आदिक जो जगत् भासता है सो सब कल्पनामात्र है और भ्रम करके भासता है। आत्मा में हुआ कुछ नहीं तुम किसका शोक करती हो। लीला बोली, हे परमेश्वरि ! मेरा भर्त्ता कहां स्थितहै और उसने क्या रूप धारणकिया है? उसको

मुझे मिलाओ; उस बिना मैं अपना जीना नहीं देखसक्ती। देवी बोली, हे लीले! आकाश तीन हैं—एक भूताकाश, दूसरा चित्ताकाश और तीसरा चिदाकाश। भूताकाश चित्ताकाश के आश्रय है और चित्ताकाश चिदाकाश के आश्रय है तेरा भर्त्ता अब भूताकाश को त्यागकर प्रत्यक्ष चिदाकाश को गया है। चित्ताकाश चिदाकाश के आश्रयस्थित है इससे जब तू चिदाकाश में स्थित होगी तब सब ब्रह्माण्ड तुझको भासेगा। सब उसी में प्रतिबिम्बित होतेहैं वहां तुझको भर्त्ता का और जगत् का दर्शन होगा। हे लीले! देशसे क्षण में संवित् देशान्तर को जाता है उसके मध्य जो अनुभव आकाश है वह चिदाकाश है। जब तू संकल्प को त्यागदे तो उससे जो शेष रहेगा सो चिदाकाश है। हे लीले! यहां जो जीव विचरते हैं सो पृथ्वी के आश्रय हैं और पृथ्वी आकाश के आश्रय है, इससे ये सब जीव जो विचरते हैं सो भूताकाश के आश्रय विचरते हैं और चित्त जिसके आश्रय से एक क्षण में देश देशान्तर भटकता है सो चित्ताकाश है। हे लीले! जब दृश्य का अत्यन्त अभाव होता है तब परमपद की प्राप्ति होती हैं सो चिरकाल के अभ्यास से होती है और मेरा यह वर है कि, तुझको शीघ्रही प्राप्तहो। हे रामजी! जब इस प्रकार कहकर ईश्वरी अन्तर्द्धान होगई तब लीला रानी निर्विकल्प समाधि में स्थित भई और चितसहित देहका अहङ्कार त्यागकर पक्षी समान अपने गृह से उड़कर एकक्षण में आकाश को पहुंची जो नित्यशुद्ध, अनन्त, आत्मा, परमशान्तिरूप और सर्वका अधिष्ठान है उस में जाकर भर्त्ता को देखा। रानी स्पन्दकल्पना लेगई थी उससे अपने भर्त्ता को वहां देखा और बहुत मण्डलेश्वरभी सिंहासनों पर बैठे देखे। एक बड़े सिंहासन पर बैठे अपने भर्त्ता को भी देखा जिसके चारों ओर जय जय शब्द होताथा। उसने वहां बड़े सुन्दर मन्दिर देखे और देखा कि, राजा के पूर्वदिशा में अनेक ब्राह्मण, ऋषीश्वर और मुनीश्वर बैठे हैं और बड़ी ध्वनि से पाठ करते हैं; दक्षिणदिशा में अनेक सुन्दरी स्त्रियां नाना प्रकार के भूषणों सहित बैठी हुई हैं उत्तरदिशा में हस्ती, घोड़े, रथ, प्यादे और चारों प्रकार की अनन्तसेना देखी और पश्चिम में मण्डलेश्वर देखे। चारों दिशामें मण्डलेश्वर उसके जीव के आश्रय विराजते देखके आश्चर्यमें हुई। फिर नगर और प्रजा देखी कि, सब अपने व्यवहार में स्थित हैं और राजा की सभा में जा बैठी पर रानी सबको देखतीथी और रानी को कोई न देखता था। जैसे और के संकल्पपुर को और नहीं देखसक्ता तैसेही रानी को कोई देख न सके। तब रानी ने उसका अन्तःपुर देखा जहां ठाकुरद्वारे बने हुये देवताओं की पूजा होती थी। वहां की गन्धधूप और पवन त्रिलोकी को मग्नकरती थी और राजा का यश चन्द्रमा की नाईं प्रकाशित था। इतने में पूर्वदिशा से हरकारेने आके कहा कि, हे राजन्! पूर्व दिशा में और किसी

राजा का क्षोभ हुआ है; फिर उत्तर दिशा से हरकारेने आकहा कि, हे राजन्! उत्तर दिशा में और राजा का क्षोभ हुआहै और तुम्हारे मण्डलेश्वर युद्ध करते हैं। इसी प्रकार दक्षिण दिशा की ओरसेभी हरकारा आया और उसनेभी कहा कि, और राजा का क्षोभ हुआहै और पश्चिमदिशा से हरकारा आया उसने कहा कि, पश्चिमदिशा में भी क्षोभ हुआहै। एक और हरकारा आया उसने कहा कि, सुमेरु पर्वतपर जो देवतों और सिद्धों के रहनेके स्थान हैं वहां क्षोभ हुआ है और अस्ताचल पर्वत क्षोभ हुआहै। तब जैसे बड़े मेघ आवें तैसेही राजाकी आज्ञासे बहुतसी सेना आई। रानी ने बहुतसे मन्त्री, नन्द आदिक टहलुये, ऋषीश्वर और मुनीश्वर वहां देखे। जितने भृत्य थे वे सब सुन्दर और वर्षासे रहित श्वेतबादरों की नाईं श्वेतवस्त्र पहिने देखे और बड़े वेदपाठी ब्राह्मण देखे जिनके शब्द से नगारे के शब्दभी सूक्ष्म भासते थे। हे रामजी! इस प्रकार ऋषीश्वर मन्त्री, टहलुये और बालक उसमें देखेसो पूर्व और अपूर्व दोनों देखती भई और आश्चर्यवान् हो चित्त में यह शङ्का उपजी कि, मेरा भर्त्ता ही मुआ है वा सम्पूर्ण नगर मृतक भया है जो ये सब परलोक में आये हैं। तब क्या देखा कि, मध्याह्न का सूर्य शीशपर उदित है और राजा सुन्दर षोड़श वर्ष का प्रथम की जरावस्था को त्यागकर नूतन शरीर को धारे बैठा है। ऐसे आश्चर्य को देखके रानी फिर अपने गृह में आई उस समय आधीरात्रि का समय था अपनी सहेलियों को सोई हुई देख जगाया और कहा जिस सिंहासन पर मेरा भर्त्ता बैठता था उसको साफ़ करो मैं उसके ऊपर बैठूंगी और जिस प्रकार उसके निकट मन्त्री और भृत्य आनबैठते थे उसी प्रकार आवें। इतना सुनकर सहेलियों ने जा बड़े मन्त्री से कहा और मन्त्री ने सबको जगाय और सिंहासन झड़वाकर मेघ की नाईं जलकी वर्षा की। सिंहासन पर और उसके आस पास वस्त्र बिछाये और मशालें जगाकर बड़ा प्रकाश किया। जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्र को पान कियाथा तैसेही अन्धकार को प्रकाश ले जब पान करलिया तब मन्त्री, टहलुये, पण्डित, ऋषीश्वर, ज्ञानवान् जितने कुछ राजा के पास आते थे वे सब सिंहासन के निकट आकर बैठे और इतने लोग आये मानो प्रलयकाल में समुद्र का क्षोभ हुआ है और जल से पूर्ण प्रलय हुई सृष्टि मानो अनन्त उत्पन्न भई है। लीला इस प्रकार मन्त्री टहलुये, पण्डित और बालकों को भर्त्ता बिना देख बड़े आश्चर्य को प्राप्त भई कि, एक आदर्श को अन्तरबाहर दोनों ओर देखती है। इस प्रकार देखके हृदय की वार्त्ता किसी को न बताई और भीतर आकर कहने लगी कि, बड़ा आश्चर्य है; ईश्वर की माया जानी नहीं जाती कि. यह क्या है। इस प्रकार आश्चर्यमान होकर उसने सरस्वती जी की आराधना की और सरस्वती कुमारी कन्या का रूप धरके आन प्राप्त भई।

तब लीलाने कहा; हे भगवति ! मैं बारम्बार पूछती हूं तुम उद्वेगवान् न होना; बड़ों का यह स्वभाव होताहै कि जो शिष्य बारम्बार पूछे तौभी खेदवान् नहीं होते । अब मैं पूछ-तीहूं कि, यह जगत् क्या है और वह जगत् क्या है ? दोनों में कृत्रिम कौन है और अकृत्रिम कौनहै ? देवी बोली; हे लीले ! तूने पूछा कि, कृत्रिम, कौनहै और अकृत्रिम, कौन है सो मैं पीछे तुझसे कहूंगी । लीला बोली; हे देवि ! जहां तुम हम बैठेहैं वह अकृत्रिम है और वह जो मेरे भर्त्ता का स्वर्ग है सो कृत्रिम है क्योंकि; सूर्यस्थान में वह सृष्टि हुई है । देवी बोली; हे लीले ! जैसा कारण होता है तैसाही कार्य होता है । जो कारण सत् होता है तो कार्य भीसत् होता है और सत् से असत् नहीं होता और असत् से सत् भी नहीं होता और न कारण से अन्यकार्य होता है । इससे जैसे यह जगत् है तैसाही वह जगत् भी है । इतना सुन फिर लीला ने पूछा; हे देवि ! कारण से अन्यकार्यसत्ता होतीहै क्योंकि; मृत्तिका जल के उठाने में समर्थ नहीं और जब मृत्तिका का घट बनता है तब जल को उठाता है तो कारण से अन्यकार्य की भी सत्ता हुई । देवी बोली; हे लीले ! कारण से अन्यकार्य की सत्ता तब होती है जब सहायकारी भिन्न २ होते हैं । जहां सहायकारी नहीं होता वहां कारण से अन्यकार्य की सत्ता नहीं होती । तेरे भर्त्ता की सृष्टि भी कारण विना भासी है। उसका जीव पुर्यष्टक आकाशरूप था, वहां न कोई समवायकारण था और न निमित्तकारण था इससे उसको कृत्रिम कैसे कहिये ? जो किसीका किया हो तो कृत्रिम हो पर वह तो आकाश-रूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है । जो समवायकारणही न हो तो उसका निमित्त-कारण कैसेहो। इस से तेरे भर्त्ता का सर्ग अकारण है । लीला ने पूछा; हे देवि ! उस सर्ग की जो स्मृति संस्कार है सो कारण क्यों न हो ? देवी बोली; हे लीले ! स्मृति तो कोई वस्तु नहींहै । स्मृति आकाशरूप है । स्मृति संकल्प का नाम है सो वह भी संकल्प आकाशरूपहै और कोई वस्तु नहीं वह मनोराजरूप है इससे उसकी सत्ता भी कुछ नहीं है केवल आभासरूप है लीला बोली; हे महेश्वरि ! जो वह संकल्पमात्र आकाशरूप है तौ भी आकाशरूप है और जहां हम तुम बैठे हैं वहभी वही है तो दोनों तुल्यहैं देवी बोली; हे लीले ! जैसे तुम कहती हो तैसेही है । अहं, त्वं, इदं, यह, वह सम्पूर्ण जगत् आकाशरूप है और भ्रान्तिमात्र भासता है । उपजा कुछ नहीं सब आकाशमात्र है और स्वरूप से इनका कुछ सद्भाव नहीं होता जो पदार्थ सत्य न हो उसकी स्मृति कैसे सत् हो? लीला बोली; हे देवि! अमूर्त्तिवत् मेरा भर्त्ता था सो मूर्त्ति-वत् हुआ और उसको जगत् भासनेलगा सो कैसे भासा ? उसका स्मृति कारण है वा किसी और प्रकार से यह मेरे दृश्यभ्रम निवृत्ति के निमित्त मुझको वहीरूपक हुआ है । देवी बोली, हे लीले! यह और वह सर्ग दोनों भ्रमरूप हैं। जो यह सत् हो तो

इसकी स्मृति भी सत् हो पर यह जगत् असत्‌रूप है। जैसे यह भ्रम तुमको भासा है सो सुनो। एक महाचिदाकाश है जिसका किञ्चन चिद्‌अणु है और उसके किसी अंश में जगत्‌रूपी वृक्ष हैं। सुमेरु उस वृक्ष के थम्भ हैं सप्तलोक डाली हैं; आकाश शिखा हैं सप्तसमुद्र उसमें रस हैं और तीनों लोक फल हैं। सिद्ध, गन्धर्व, देवता, मनुष्य और दैत्यरूप मच्छर उसमें रहते हैं और तारागण उसके फूल हैं। उसी वृक्ष के किसी छिद्र में एकदेश है और उस में एक पर्वत है जिसके नीचे एक नगर वसता है। वहां एक नदी का प्रवाह चलता है और वशिष्ठ नाम एक ब्राह्मण जो बड़ा धार्मिक है वहां सदा अग्निहोत्र करता है धन, विद्या, पराक्रम और कर्मों में वशिष्ठजी ऋषीश्वरों के समान था परन्तु ज्ञान में भेद था। जो खेचर वशिष्ठ का ज्ञान है तैसा भूचर वशिष्ठ का ज्ञान न था। उसकी स्त्री का भी नाम अरुन्धती था। वह पतिव्रता और चन्द्रमा के समान सुन्दर थी और उसी अरुन्धती के समान विद्या, कर्म, कान्ति, धन, चेष्टा और पराक्रम उसका भी था और चैतन्यता अर्थात् ज्ञान और सब लक्षण एकसमान थे। वह आकाश की अरुन्धती थी और यह भूमि की अरुन्धती थी। एक काल में वशिष्ठ ब्राह्मण पर्वत के शिखरपर बैठाथा। वह स्थान सुन्दर हरे तृणों से शोभायमान था एक दिन एक अतिसुन्दर राजा नाना प्रकार के भूषणोंसे भूषित परिवारसहित उस पर्वतकेनिकट शिकार खेलने के निमित्त चला जाता था। उसके शीशपर दिव्य चमर होता ऐसा शोभा देताथा मानो चन्द्रमा की किरणें प्रसर रहीहैं और शिरपर अनेकप्रकार के छत्रों की छाया मानो रूपे का आकाश विदित होता था। रत्नमणि के भूषण पहिरेहुये मण्डलेश्वर उसके साथ थे और हस्ती, घोड़े, रथ और पैदल चारों प्रकार की सेना जो आगे चली जाती थी उनकी धूर वादल होकर स्थितभई। निदान नौबत नगारे बजतेहुये राजाकी सवारी जाती देखके वशिष्ठ ब्राह्मण मन में चिन्तवन करनेलगा कि, राजाको बड़ा सुख प्राप्त होता है क्योंकि, सब सौभाग्य से राजा सम्पन्न होता है। इस प्रकार राज्य मुझको भी प्राप्तहो। तब तो वह यह वांछा करने लगा कि, मैं कब दिशाओं को जीतूंगा और मेरे यश से कब दशोंदिशा पूर्ण होंगी। ऐसे छत्र मेरे शिरपर कब ढरेंगे और चारों प्रकार की सेना मेरेआगे कब चलेगी। सुन्दर मन्दिरों में सुन्दरी स्त्रियों के साथ मैं कब विलास करूंगा और मन्द २ शीतल पवन सुगन्धता के साथ कब परसहोगा। हे लीले! जब इस प्रकार ब्राह्मण ने संकल्प को धारण किया और जो अपने स्वकर्म थे सोभी करता रहा कि, इतनेही में उसको जरावस्था प्राप्तहुई; जैसे कमल के ऊपर बरफ पड़ता है तो कुम्हिलाजाता है तैसेही ब्राह्मण का शरीर कुम्हिला गया और मृत्यु का समय निकट आया। जब उस की स्त्री भर्त्ता की मृत्यु निकट देखके कष्टवान् हुई तो उसने मेरी आराधना, जैसे तूने

की है, की और भर्त्ता की अजर अमरता को दुर्लभ जानके मुझसे वर मांगा कि; हे देवि ! मुझको यह वरदे कि, जब मेरा भर्त्ता मृतकहो तब इसका जीव बाह्य न जावे। तब मैंने कहा ऐसेही होगा। हे लीले! जब बहुत काल व्यतीत हुआ तो ब्राह्मण मृतक हुआ पर उसका जीव मन्दिर में ही रहा। जैसे मन्दिर में आकाशही रहता है, तैसेही मन्दिर में रहा। हे लीले ! जब वह आकाशरूप होगया तब उसकी पुर्यष्टक में जो राजा का दृढ़ संकल्पथा इसलिये जैसे बीज से अंकुर निकल आता है तैसेही वह संकल्प आनफुरा और उससे वह अपने को त्रिलोकी का राजा और परमसौभाग्य सम्पन्न देखने लगा कि, दशों दिशा मेरे यशसे पूर्णहो रहीहैं; मानो यशरूपी चन्द्रमा की यह पूर्णमासी है। जैसे प्रकाश अन्धकार को नाश करता है तैसेही शत्रुरूपी अन्धकार का नाशकर्त्ता प्रकाशहुआ और ब्राह्मणों के चरणों का सिंहासन हुआ अर्थात् ब्राह्मणों को बहुत पूजनेलगा। निदान अर्थियों को कल्पवृक्ष और स्त्रियों को कामदेव इत्यादिक जो सात्त्विकी और राजसी गुण हैं उनसे सम्पन्नहुआ। पर उसकी स्त्री उसको मृतक देख के बहुत शोकवान् हुई। जैसे जेठ आषाढ़ की मञ्जरी सूख जाती है तैसेही वह सूखगई और शरीर को छोड़के अन्तबाहक शरीर से अपने भर्त्ता को वैसेही जामिली जैसे नदी समुद्रको जामिलती हैं और ब्राह्मण के पुत्र धनसंयुक्त अपने गृह में रहे। उस ब्राह्मण को मृतक हुये अब आठ दिन हुये हैं कि, वही वशिष्ठ ब्राह्मण तेरा भर्त्ता राजा पद्म हुआ अरुन्धती उसकी स्त्री तू लीला हुई। जितना कुछ आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी और त्रिलोकी है सो वशिष्ठ ब्राह्मण के अन्तःपुरमें एक खुर्ण में स्थित है। वहां तुमको आठ दिन व्यतीत भये हैं और अभी सूतक भी नहीं गया पर यहां तुमने साठसहस्र वर्ष राज्य करके नाना प्रकार के सुन्दर भोग भोगे हैं। हे लीले ! जिस प्रकार तूने जन्मलिया है सो मैंने सब कहा है। पर वह क्या है ? सब भ्रममात्र है। जितना कुछ जगत् तुझको भासता है सो आभासमात्र है संकल्प से फुरता है वस्तुगत कुछ नहीं है। हे लीले ! जो यह जगत् सत् न हुआ तो इसकी स्मृति कैसे सत्यहो। तुम हम और सब उसी ब्राह्मण के मन्दिर में स्थित हैं। लीला बोली; हे देवि ! तुम्हारे वचन को मैं असत् कैसे कहूं ? पर जो तुम कहती हो कि उस ब्राह्मण का जीव अपने गृह में ही रहा; वहां हम तुम बैठे हैं और देश देशान्तर, पर्वत, समुद्र लोक और लोकपालक सब जगत् उसीही गृह में हैं तो वह उसमें समाते कैसे हैं ? ये वचन तुम्हारे ऐसेहैं जैसे कोई कहै कि, सरसों के दाने में उन्मत्त हाथी बांधेहुयेहैं; सिंहों के साथ मच्छर युद्ध करतेहैं; कमल के डोड़े में सुमेरु पर्वत आया है; कमल पर बैठकर भ्रमर रस पानकर गया और स्वप्ने में मेघ गर्जता है, चित्रामणि के मोर नाचते हैं और जाग्रत् की मूर्त्ति के ऊपर लिखाहुआ मोर मेघ को गर्जता देखके नृत्य

करता है। जैसे ये सब असम्भव वार्त्ता हैं तैसेही तुम्हारा कहना मुझको असम्भव भासता है। देवी बोली; हे लीले! यह मैंने तुझसे झूठ नहीं कहा। हमारा कहना कदाचित् असत् नहीं क्योंकि; यह आदि परमात्मा की नीति है कि, महापुरुष असत् नहीं कहते। हम तो धर्म के प्रतिपादन करनेवाली हैं; जहां धर्म की हानि होती है वहां हम प्रतिपादन करती हैं और जो हम धर्म का प्रतिपादन न करें तो धर्म को और कैसे मानें। हे लीले! जैसे सोयेहुये के स्वप्नमें त्रिलोकी भास आती है सो अन्तःकरण में ही होती है और स्वप्न से जाग्रत् होती है तैसेही मरना भी जान। जब जहां मृतक होता है तहांही जीव पुर्यष्टक आकाशरूप होजाताहै और फिर वासना के अनुसार उसको जगत् भासि आता है। जैसे स्वप्न में जगत् भासआताहै वह क्या रूप है? आकासरूपही है तैसेही इसको भी जान। हे लीले! यह सब जगत् तेरे उसी अन्तःपुर में है क्योंकि; जगत् चित्ताकाश में स्थित है। जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही चित्तमें जगत् है और आकाशरूप है इससे जो चित्त अन्तःपुर में हुआ तो जगत्भी हुआ। हे लीले! यह जगत् जो तुझको भासताहै सो आकाशरूप है। जैसे स्वप्न और संकल्पनगर और कथा के अर्थ भासते हैं तैसेही यह जगत् भी है और जैसे मृगतृष्णा का जल भासता है तैसेही यह जगत् भी जान। हे लीले! वास्तव में कोई पदार्थ उपजा नहीं भ्रमसे सब भासते हैं। जैसे स्वप्न में स्वप्नान्तर फिर उससे और स्वप्ना दिखाता है तैसेही तुमको भी यह सृष्टि भ्रम भासितहै। हे लीले! यह जगत् आत्मरूप है। जहां चिद्अणु है वहां जगत्भी है परन्तु क्या रूप है; आभासरूप है। जैसे वह आकाशरूप है तैसेही यह जगत् भी आकाशरूप है। जिस प्रकार यह चैत्यता है उस प्रकारहो भासता है इससे संकल्पमात्र है। जैसे स्वप्नपुर भासता है और जैसे संकल्पनगर होताहै तैसेही यह जगत् है। जैसे मरुस्थल की नदी के तरङ्ग भासते हैं तैसेही यह जगत् भासता है। इससे इसकी कल्पना त्यागके रहो। इतना सुन फिर लीला ने पूछा; हे देवि! उस वशिष्ठ ब्राह्मणको मरे आठ दिन बीते हैं और हमको ये साठ सहस्र वर्ष बीतेहैं यह वार्त्ता कैसे सत् जानिये? थोड़े काल में बड़ा काल कैसे हुआ? देवी बोली; हे लीले! जैसे थोड़े देश में बहुत देश आते हैं तैसेही थोड़े काल में बहुत काल भी आता है। अहन्ता ममता आदिक जितना कुछ जगत् है सो आभासमात्र है उसे क्रमसे सुन। जब जीव मृतक होता है तब मूर्च्छा होती है और फिर मूर्च्छा से चैतन्यता फिर आती है; उसमें यह भासता है कि, यह आधार है तो यह आधेय है; यह मेरा हाथ; यह मेरा शरीर है; यह मेरा पिता है; इसका मैं पुत्र हूं; अब इतने वर्ष का मैं हुआ; ये मेरे बान्धव हैं; इनके साथमें स्नेह करता हूं; यह मेरा गृह है और यह मेरा कुल चिरकाल का चलाआताहै।

मरने के अनन्तर इतने क्रम को देखता है। हे लीले! जिस प्रकार वह देखता है तैसेही यह भी जान। एक क्षण में और का और भासने लगता है। यह जगत् चैतन्य का किञ्चन है। जैसे चेतन संवित् में चैत्यता होती हैं तैसेही यह जगत् भी भासताहै और जैसे स्वप्ने में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों भासते हैं; तैसेही आत्मसत्ता में यह जगत् किञ्चन होताहै और भ्रम से भासता है, वास्तव में नानात्व कुछ हुआ नहीं। जैसे स्वप्ने में कारण विना नाना प्रकार का जगत् भासताहै तैसेही परलोक में नाना प्रकार का जगत् कारण विनाही भासता है सो आकाशरूप है और मन के भ्रम से भासता है तैसेही यह जगत् भी मनके भ्रम से भासता है। स्वप्न जगत्; परलोक जगत् और जाग्रत् जगत् में भेद कुछ नहीं। जैसे वह भ्रममात्र है तैसेही यहभी भ्रममात्र है—वास्तव में कुछ उपजा नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग कुछ वास्तव नहीं तैसेही आत्मा में जगत् कुछ वास्तव नहीं; असतही सत् की नाईं भासताहै। किसी कारण से उपजा नहीं इस कारण से अविनाशी है। हे लीले! जैसे चैत्योन्मुखत्व हुये चेतन आकाशभासता है तैसेही चैत्यता में चेतन आकाशहै क्योंकि; कुछ हुआ नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग होताहै तो वह तरङ्ग कुछ जल से इतर है नहीं, जलही है; तैसेही आत्मा में जगत् कुछ इतर नहीं बल्कि; जल में तरङ्ग की नाईं भी आत्मा में जगत् नहीं। जैसे शशे के शृङ्ग असत्हैं तैसेही जगत् असत् है—कुछ उपजा नहीं। हे लीले! जब जीव मृतक होताहै तब उसको देश, काल, क्रिया, उत्पत्ति, नाश, कुटुम्ब, शरीर, वर्ष आदिक नानारूप भासते हैं पर वे सब आभासरूप हैं। जिस प्रकार क्षण २ में इतने भासआते हैं तैसेही कारण विना यह जगत् भासित है तो दृश्य और द्रष्टा भी कोई न हुआ। देश, काल, क्रिया, द्रव्य, इन्द्रियां, प्राण, मन और बुद्धि सब भ्रम से भासते हैं। आत्मा उपाधि से रहित आकाशरूप है और उसके प्रमाद से जगत् भ्रम उदय हुआ है। हे लीले! भ्रम में क्या नहीं होता? जैसे एक रात्रि में हरिश्चन्द्र को द्वादशवर्ष भ्रम से भासे थे तैसेही यहां भी थोड़े काल में बहुत काल भासा है। दो अवस्था में और का और भासताहै। स्वप्ने में और का और भासता है और उन्मत्तता से भी और का और भासता है। अभोक्ता आपको भोक्ता मानता है और भ्रम से उत्साह और शोक को इकट्ठा देखता है। किसी को उत्साह होता है और स्वप्ने में मृतकभाव शोक को देखता है। बिछुड़ाहुआ स्वप्ने में मिला देखताहै और जो मिलाहै सो आपको बिछुड़ा जानताहै। काल है। और भ्रम करके और काल देखता है। इससे देखो यह सब भ्रमरूप है। जैसे भ्रम से यह भासता है तैसेही यह जगत् भी भ्रमसे भासता है परन्तु ब्रह्मसे इतर कुछ नहीं। इससे न बन्ध है और न मोक्ष है। जैसे मिरच में तीक्ष्णता है तैसेही आत्मा में जगत्है; जैसे

थम्भे में पुतलियां होती हैं तैसेही आत्मा में जगत् है और जैसे थम्भे में पुतलियां कुछ हुई नहीं ज्योंका त्यों है और शिल्पी के मन में पुतलियां हैं तैसेही ब्रह्म में जगत् है नहीं पर मनरूपी शिल्पी ने जगत्‌रूपी पुतलियां कल्पी हैं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों नित्य, शुद्ध, अज, अमर अपने आपमें स्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमण्डपाख्यानेपरमार्थप्रतिपादनंनाम चतुर्दशस्सर्गः ॥ १४ ॥

देवी बोली; हे लीले ! जब जीव को मृत्यु से मूर्च्छा होतीहै तब शीघ्रही उसको फिर कुछ जन्म और देश, काल, क्रिया, द्रव्य और अपना परिवार आदि नाना प्रकार का जगत् भास आताहै पर वास्तव कुछ नहीं- स्मृति भी असत् है। एक स्मृति अनुभव से होती है और एक स्मृति अनुभव विना भी होतीहै पर दोनों स्मृति मिथ्या हैं। जैसे स्वप्न में अपना देह देखता है तो वह अनुभव असत् है क्योंकि, वह कुछ अपने मरने की स्मृति से नहीं भासा और उस मन की स्मृति भी असत् है। स्वप्न में कोई पदार्थ देखा तो जाग्रत् में उसको स्मरण करना भी असत् है क्योंकि, वास्तव में कुछ हुआ नहीं। इससे यह जगत् अकारणरूप है और जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूप है। न कुछ विदूरथ की सृष्टि सत् है और न यह सृष्टि सत् है--सब संकल्पमात्र है। इतना सुन लीला ने पूछा; हे देवि ! जो यह सृष्टि भ्रममात्र है तो वह जो विदूरथ की सृष्टि है सो इस सृष्टि के संस्कार से हुई है और यह सृष्टि उस ब्राह्मण और ब्राह्मण की स्मृतिसंस्कार से हुई है तो ब्राह्मण और ब्राह्मणी की सृष्टि किसकी स्मृति में हुई है। देवी बोली; हे लीले ! वह जो वशिष्ठ ब्राह्मणी की सृष्टि है सो ब्राह्मण के संकल्प में हुई है और ब्रह्मा ब्राह्मण में फुरा है परन्तु वास्तव में ब्रह्मा भी कुछ नहीं हुआ तो उसकी सृष्टि क्या कहों। यह जितनी कुछ सृष्टि है सो उसी ब्राह्मण के मन्दिर में है; वास्तव में कुछ हुई नहीं सब संकल्परूप है। और मन के फुरने से भासती है। जैसे जैसे संकल्प फुरताहै तैसेही तैसे होकर भासता है। यह सृष्टि जो तेरे भर्त्ता को भासि आई है वह दृढ़ संकल्प के भाव से भासि आई है। थोड़े काल में वहुतभ्रम होकर भासता है। लीलाने पूछा; हे देवि! जहां ब्राह्मण को मृतक हुये आठ दिन व्यतीत भये हैं उस सृष्टि को हम किस प्रकार देखें ? देवी बोली; हे लीले ! जब तू योगाभ्यास करे तब देखे। अभ्यास विना देखनेकी सामर्थ्य न होगी क्योंकि, वह सृष्टि चिदाकाश में फुरती है। जब तू चिदाकाश में अभ्यास करके प्राप्त होगी तब तुझको सब सृष्टि भासिआवेगी। वह जो सृष्टि है सो और के संकल्प में है जब उसके संकल्प में प्रवेशकरे तो उसकी सृष्टि भासे; अन्यथा नहीं भासती। जैसे एक के स्वप्न को दूसरा नहीं जानसक्ता तैसेही और की सृष्टि नहीं भासती। जब तू

अन्तवाहकरूप हो तब वह सृष्टि देखे । जबतक आधिभौतिक स्थूल पञ्चतत्त्वों के शरीर में अभ्यास है तबतक उसको न देखसकेगी क्योंकि, निराकार को निराकार ग्रहणकरताहै आकार नहीं ग्रहण करसक्ता । इससे यह आधिभौतिक देह भ्रम है; इसको त्यागकर चिदाकाश सत्ता में स्थितहो । जैसे पक्षी आलय को त्यागकर आकाश में उड़ता है और जहां इच्छा होती है वहां चलाजाता है; तैसेही चित्त को एकाग्र करके स्थूल शरीर को त्यागदे और योग अभ्यासकर आत्मसत्तामें स्थित हो । जब आधिभौतिक को त्यागकर अभ्यास के बलसे चिदाकाश में स्थितहोगी तब आवरण से रहित होगी और फिर जहां इच्छा करेगी वहां चलीजावेगी और जो कुछ देखाचाहेगी वह देखेगी । हे लीले ! हम सदा उस चिदाकाश में स्थित हैं । हमारा वपु चिदाकाश है इस कारण हमको कोई आवरण रोंक नहीं सक्ता हमसे उदारों की सदा स्वरूप में स्थिति है और हम सदा निरावरण हैं कोई कार्य हमको आवरण नहीं करसक्ता; हम स्वइच्छित हैं-जहां जायाचाहें वहां जातेहैं और सदा अन्तवाहकरूप हैं । तू जबतक आधिभौतिकरूप है तबतक वह सृष्टि तुझको नहीं भासती और तू वहां जा भी नहीं सक्ती । हे लीले ! अपनाही संकल्प मनोराज होताहै । उसमें जबतक चित्त की वृत्ति लगी है उसकाल में यह अपना शरीर नहीं भासता तो और का कैसे भासे ? जब तुझको अन्तवाहकता का दृढ़ अभ्यास हो और आधिभौतिकस्थूल शरीर की ओर से वैराग्य हो तब आधिभौतिकता मिटजावेगी क्योंकि; आगे ही सबसृष्टि अन्तवाहकरूप है पर संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक भासती है । जैसे जल दृढ़शीतलता से बरफरूप होजाता है तैसेही अन्तवाहकता से आधिभौतिक होजाते हैं-प्रमादरूप संकल्प वास्तव में कुछ हुआ नहीं । जब वही संकल्प उलटकर सूक्ष्म अन्तवाहक की ओर आताहै तब आधिभौतिकता मिटजाती है और अन्तवाहकता आ उदय होतीहै । जब इस प्रकार तुझको निरावरणरूप उदय होगा तब देखनेमात्र और जानने में कुछ यत्न न होगा । साकार से निराकार को ग्रहण नहीं करसक्ता । निराकार की एकता निराकार के साथही होतीहै-अन्यथा नहीं होती । जब तू अन्तवाहकरूप होगी तब उसकी संकल्प सृष्टि में तेरा प्रवेश होगा । हे लीले! यह जगत् संकल्प भ्रममात्र है, वास्तव में कुछ हुआ नहीं; एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और द्वैतकुछ है नहीं । लीला बोली; हे देवि ! जो एक अद्वैत आत्मसत्ता है तो कलना यह दूसरी वस्तु क्या है सो कहो ? देवी बोली; हे लीले ! जैसे स्वर्ण में भूषण कुछ वस्तु नहीं; जैसे सीपी में रूपा दूसरी वस्तु कुछ नहीं और जैसे रस्सी में सर्प दूसरी वस्तु नहीं तैसेही कलना भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं है एक अद्वैत आत्मसत्ता सहज ज्योंकी त्यों स्थित है; उसमें नानात्व भासता है पर वह

भ्रममात्र है—वास्तव में अपना आप एक अनुभवसत्ता है इतना सुन फिर लीला ने पूछा; हे देवि ! जो एक अनुभवसत्ता और मेरा अपना आप है तो मैं इतनाकाल क्या भ्रमतीरही ? देवी बोली; हे लीले ! तू अविचार भ्रमसे भ्रमतीरही है। विचार कियेसे भ्रम शान्त होजाता है भ्रम और विचार भी दोनों तेरेही स्वरूप हैं और तुझ से ही उपजे हैं। जब तुझको अपना विचार होगा तब भ्रम निवृत्त होजावेगा। जैसे दीपक के प्रकाशसे अन्धकार नष्ट होजाताहै तैसेही विचार से द्वैतभ्रम नष्ट होजावेगा और जैसे रस्सी के जाने से सर्पभ्रम नष्ट होजाता है और सीपके जानेसे रूपे का भ्रम नष्ट होजाताहै तैसेही आत्मा के जानेसे आधिभौतिक भ्रम शान्त होजावेगा। जब दृश्य की अत्यन्ताभाव जानके दृढ़ वैराग्य करिये और आत्मस्वरूप का दृढ़ अभ्यास हो तब आत्मा का साक्षात्कार होकर भ्रम शान्तहोजाता है और इसीसे कल्याण होताहै। हे लीले ! जब दृश्य जगत् से वैराग्य होताहै तब वासना क्षय होजाती है और शान्ति प्राप्त होती है। हे लीले ! तू आत्मसत्ता का अभ्यासकर तो तेरा जगत् भ्रम शान्त होजावेगा। भ्रम भी कुछ वस्तु नहीं है क्योंकि; देह आदिक भ्रम भी कुछ हुआ नहीं जैसे रस्सी के जाने से सांप का अभाव विदित होता है तैसेही आत्मा के जाने से देहादिकों का अत्यन्त अभाव होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविश्रान्तिवर्णनन्नामपञ्चदशस्सर्गः॥ १५॥

देवी बोली; हे लीले ! जितने कुछ शरीर तुझको भासते हैं सो सब स्वप्नपुर की नाईं हैं। जैसे स्वप्न में शरीर भासता है पर जब निज स्वरूप में स्मृति होती है तब स्वप्न का शरीर वास्तव नहीं भासता। जैसे संकल्प के त्यागसे संकल्प शरीर नहीं भासता तैसेही बोधकाल में यह शरीर भी नहीं भासता और जैसे मनोराज के त्यागसे मनोराज का शरीर नहीं भासता तैसेही यह शरीर भी नहीं भासता। जब स्वरूप का ज्ञान होगा तब यह भी वास्तव न भासेगा। जैसे स्वरूप के स्मरण हुये स्वप्न शरीर शान्त होताहै तैसेही वासना के शान्त हुये जाग्रत् शरीर भी शान्त होजाता है। जैसे स्वप्न का देह अभावज्ञान से असत् होताहै तैसेही जाग्रत् शरीर की भावना त्यागेसे यह भी असत् भासता है इसके नष्ट हुये अन्तवाहक देह उदय होवेगा। जैसे निद्रा में स्वप्न में राग द्वेष होताहै और जब पदार्थों की वासना बोधसे निर्बीज होती है तब उनमें मुक्त होताहै तैसेही जिस पुरुष की वासना जाग्रत् पदार्थों में नष्ट हुई है सो पुरुष जीवनमुक्त पदको प्राप्त होताहै। और यदि उसमें फिरभी वासना दृष्ट आवे तो वह वासना भी निर्वासनाहै। जो सर्वकल्पनाओं से रहित है तिसका नाम सत्तासामान्य है। हे लीले ! जिसपुरुष ने वासना रोकी है और ज्ञाननिद्रा से आवर्याहुआ है उसका सुषुप्तिरूप जान उसकी वासना सुषुप्ति है और जिसकी वासना प्रकट है

और जाग्रत्‌रूप से विचरताहै उसको अधिक मोहसे आवर्या जानिये। जो पुरुष चेष्टा करता दृष्टि आताहै और जिसकी अन्तःकरणकी वासना नष्ट भईहै उसको तुरीया जान। हे लीले! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करताहै और अन्तःकरणकी वासनासे रहितहै वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुषका चित्त सत्पदको प्राप्त भया है उसको जगत्‌ की वासना नष्ट हो जाती है और जो वासना फुरती भासती है तौभी सत्यजानके नहीं फुरती। जब शरीरकी वासना नष्ट होतीहै तब आधिभौतिकता नष्ट होजातीहै और अन्तवाहकता आन प्राप्त होतीहै। जैसे बरफकी पुतली सूर्यके तेज लगेसे जलरूप होजातीहै तैसेही आधिभौतिकता क्षीण होकर अन्तवाहकता प्राप्त होतीहै। जब अन्तवाहकता प्राप्त होतीहै तब शरीर अभासमय चित्तरूप होता है और अपने जन्मान्तरों, व्यतीत सृष्टि और सर्वज्ञान होआता है। तब वह जहां जानेकी इच्छा करताहै वहां जा प्राप्त होता है और यदि किसी सिद्ध के मिलने अथवा किसीके देखनेकी इच्छाकरे सो सब कुछ सिद्धहोता है; परन्तु अन्तवाहक विना शक्ति नहीं होती। जब इस देहसे तेरा अहंभाव उठेगा तब सब जगत्‌ तुझको प्रत्यक्ष भासेगा। हे लीले! जब आधिभौतिक शरीर की वासना नष्ट होती है तब अन्तवाहक देह होती है और जब अन्तवाहक में वृत्ति स्थित होती है तब और के संकल्प की सृष्टि भासती है। इससे तू वासना घटाने का यत्न कर। जब वासना नष्टहोगी तब तू जीवन्मुक्त पदको प्राप्तहोगी। हे लीले! जबतक तुझको पूर्ण बोध नहीं प्राप्त होता तबतक तू अपनी इस देह को यहां स्थापनकर वह सृष्टि चल कर देख जैसे अन्तवाहक शरीर से मांसमय स्थूल देह का व्यवहार नहीं सिद्ध होता तैसेही स्थूल देह से सूक्ष्मकार्य नहीं होता। इससे तू अन्तवाहक शरीर का अभ्यास कर; जब अभ्यास करेगी तब वह सृष्टि देखने को समर्थ होगी। हे लीले! जैसे अनुभव में संस्थिति होती है सो मैंने तुझसे कही। यह वार्त्ता बालक भी जानते हैं कि यह वर और शाप की नाईं नहीं है। जब अपना आपही अभ्यास करेगी तब बोधकी प्राप्ति होगी। हे लीले! सब जगत्‌ अन्तवाहकरूप है अर्थात्‌ संकल्परूप और अबोधरूप है। संकल्पके अभ्यास से आधिभौतिक उत्पन्न हुआ है; इससे संसार की वासना दृढ़भई है और जन्ममरण आदिक विकार चित्त में भासते हैं। जीव न मरता है और न जन्मता है। जैसे स्वप्न में जन्म मरण भासते हैं और जैसे संकल्प से भ्रम भासताहै तैसेही जन्म-मरण भ्रम से भासता है। जब तुम आत्मपद का अभ्यास करोगी तब यह विकार मिटजावेगा और आत्मपद की प्राप्तिहोगी लीला ने पूछा; हे देवि! तुमने मुझसे परमनिर्मल उपदेश कहाहै जिसके जानने से दृश्य विसूचिका निवृत्ति होतीहै; पर वह अभ्यास क्या है; बोध का साधन कैसे होताहै; अभ्यास पुष्ट कैसे होताहै और पुष्टहोने से फल क्या होताहै? देवी बोली; हे लीले! जो

कुछ कोई करताहै सो अभ्यास विना सिद्ध नहीं होता। सबका साधक अभ्यास है। इ-सासे तू ब्रह्म अभ्यासकर। हे लीले! चित्त में आत्मपद की चिन्तना; कथन; परस्पर-बोध; प्राणोंकी चेष्टा और आत्मपद के मनन का नाम ब्रह्माभ्यास कहते हैं। बुद्धिमान् चिन्तना किसको कहते हैं सोभी सुन। शास्त्र और गुरु से जो महावाक्य श्रवणकिये हैं उनको युक्तिपूर्वक विचारना और कथन करना चिन्तना कहताहै। शिष्य को अ-न्योन्य उपदेश करना; परस्पर बोध करना और समान धर्म चर्चा और निर्णय निश्च-यकर करना; इन तीनों के परायण रहने को बुद्धिमान् ब्रह्मअभ्यास कहतेहैं। जिन पु-रुषों के पाप अन्त को प्राप्तभये हैं और पुण्य बचेहैं वे रागद्वेष से मुक्तहुये हैं; उनको तू ब्रह्मसेवक जान। हे लीले! जिन पुरुषों को रात्रिदिन अध्यात्म शास्त्र के चिन्तन में व्यतीत होतेहैं और वासनाको नहीं प्राप्त होते उनको ब्रह्माभ्यासी जान—वे ब्रह्माभ्यास में स्थित हैं। हे लीले! जिनकी भोगवासना क्षीण हुई है और संसार के अभाव की भावना करते हैं वे विरक्तचित्त महात्मा पुरुष भव्यमूर्ति शीघ्रही आत्मपद को प्राप्त होते हैं और जिनकी बुद्धि वैराग्यरूपी रङ्ग से रँगी है और आत्मानन्द की ओर वृत्ति धाती है ऐसे उदार आत्माओं को ब्रह्माभ्यासी कहते हैं। हे लीले! जिन पुरुषों ने जगत् का अत्यन्त अभाव जाना है कि, यह आदि से उत्पन्न नहीं हुआ और दृश्य को असत् जानके त्यागते हैं; परमतत्त्व को सत्य जानते हैं और इस युक्ति में अभ्यास करते हैं वे ब्रह्माभ्यासी कहातेहैं। जिस पुरुषको असम्भव दृश्य का बोधहुआ है और रागद्वेषसे रहित है-वह जगत्में ही है—इस बुद्धिका भी जो अभाव करके परमात्मपदमें प्राप्ति करते हैं सो ब्रह्माभ्यासी कहातेहैं हे लीले! दृश्यके अभाव जाने विना राग और द्वेष निवृत्त नहीं होते। रागद्वेष बुद्धि इस लोक में दुःखों को प्राप्त करती है और जिसको दृश्य की असम्भव बुद्धि प्राप्तभई है उसको ज्ञेय अर्थात् परमात्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त होता है। जब उस पद में दृढ़ अभ्यास होता है तब परमानन्द निर्वाण पद को प्राप्त होता है और जो इस निमित्त यत्न करता है वह प्राकृत है। हे लीले! बोध का साधन अभ्यास है; अभ्यास शास्त्र से होता है; प्रयत्न से पुष्ट होताहै और पुष्ट हुये से आत्म-तत्त्व की प्राप्ति होती है। हे लीले! जिनका नाम ब्रह्माभ्यासी वा ब्रह्म के सेवक कहते हैं वे तीनप्रकारके हैं-एक उत्तम, दूसरे मध्यम और तीसरे प्राकृत। उत्तम अभ्यासी वह है जिसको बोधकला उत्पन्न हुई है और दृश्य का असम्भव बोध हुआहै। जिसको दृश्य का असम्भव बोधहुआहै पर बोधकला नहीं उपजी और वह उसके अभ्यास में है वह मध्यम है। जिसको दृश्य का असम्भव बोध नहीं हुआ और सदा यही हृदय में रखता है कि, दृश्य का असम्भव हो यह प्राकृतहै। इससे जिस प्रकार मैंने तुझको अभ्यास कहा है तैसही अभ्यास किये से तू परमपद को प्राप्तहोगी। इतना कह

कर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसे अज्ञानरूपी निद्रा में जीव शयन कररहाहै तिस से जगत् को नाना प्रकार का देखताहै तैसेही अविद्यारूपी निद्रा में विवेकरूपी वचनों के जल की वर्षा करके जब देवीने लीला को जगाया तब उसकी अज्ञानरूपी निद्रा ऐसे नष्ट होगई जैसे शरत्काल में मेघ की कुहड़ नष्ट होजातीहै। बाल्मीकिजी बोले, जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तो सायंकाल का समय हुआ और सर्व सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई और जब सूर्य की किरणें उदय हुईं तब फिर सब आस्थितभये ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविज्ञानाभ्यासवर्णनन्नामषोडशस्सर्गः ॥ १६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार अर्द्धरात्रि के समय देवी और लीला का संवाद हुआ। उस समय सबलोग और सहेलियां बाहर पड़ी सोतीथीं और लीला का भर्त्ता फूलों में दबा हुआ था उसके पास दिव्यवस्त्र पहिरेहुये चन्द्रमा की कान्तिके समान सुन्दर देवियां सर्वकलनाओं को त्यागके और अङ्गों को संकोचकर ऐसी समाधि में स्थित भईं मानों रत्न के थम्भे से पुतलियां उत्कीर्ण किये स्थित हैं। अन्तःपुर भी उनके प्रकाश से प्रकाशमान भया और वे ऐसी शोभा देतीथीं मानों कागज़ के ऊपर मूर्त्तियां लिखी हैं। इस प्रकार सब दृश्य कलना को त्यागके वे निर्विकल्प समाधि में स्थितभईं जैसे कल्पवृक्ष की लता दूसरी ऋतु के आयेसे अगले रस को त्यागके दूसरी ऋतु के रस को अङ्गीकार करती है तैसेही वे सब दृश्यभ्रम को त्यागके आत्मतत्त्व में स्थितहुईं और अहंसत्ता से आदि लेकर उनका दृश्यभ्रम शान्तहोगया। दृश्यरूपी पिशाच के शान्तहुये, जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होताहै; तैसेही वे निर्मलभाव को प्राप्त भईं। हे रामजी! यह जगत् शशेके शृङ्गकी नाईं असत् है। जो आदि न हो; अन्तभी न रहे और वर्त्तमान में दृष्टि आवे वहभी असत् जानिये। जैसे मृगतृष्णा का जल असत्यहै तैसेही यह जगत् भी असत्य है। ऐसे जब स्वभावसत्ता उनके हृदय चिदाकाश में स्थित भईं तब अन्य सृष्टि के देखने का जो संकल्प था सो आन फुरा। उस फुरने से वे आकाशरूप देह से चिदाकाश में उड़ीं और सूर्य और चन्द्रमा के मण्डलों को लंघकर दूरसे दूर जाकर अनन्त योजन पर्यन्त स्थान लांघे। फिर भूतों की सृष्टि देखी उसमें प्रवेश किया ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनन्नाम सप्तदशस्सर्गः ॥ १७ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार परस्पर हाथ पकड़कर वे दूरसे दूर गईं; मानों एकही आसन पर दोनों चलीजाती हैं। जहां मेघों के स्थान और अग्नि और पवन के वेग नदियों की नाईं चलतेथे और जहां निर्मल आकाश था वहांसे भी आगे

गई। कहीं चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाशही न था और कहीं चन्द्रमा और सूर्य प्रकाशमान थे; कहीं देवता विमानों पर आरूढ़ थे; कहीं सिद्ध उड़ते थे और कहीं विद्याधर, किन्नर और गन्धर्व गानकरतेथे। कहीं सृष्टि उत्पन्न होती; कहीं प्रलय होती और कहीं शिखाधारी तारे उपद्रव करते उदयहुयेथे। कहीं प्राणी अपने व्यवहार में लगेहुये; कहीं अनेक महापुरुष ध्यान में स्थित; कहीं हस्ति, पशु-पक्षी और दैत्य-डाकिनी विचरते और योगिनियां लीला करती थीं। कहीं अन्धे गूंगे रहते थे, कहीं गीध पक्षी; सिंह और घोड़ेके मुखवालेगण विचरते और कहीं वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमादिक लोकपाल बैठे थे। कहीं बड़े पर्वत सुमेरु, मन्दराचल आदिक स्थित; कहीं अनेक योजनों पर्यन्त वृक्षही चलेजाते; कहीं अनेक योजन पर्यन्त अविनाशी प्रकाश; कहीं अनेक योजन पर्यन्त अविनाशी अन्धकार; कहीं जलसे पूर्ण स्थान; कहीं सुन्दर पर्वतोंपर गङ्गाके प्रवाह चलेजाते और कहीं सुन्दर बगीचे, बावड़ी, ताल और उनमें कमल लगेहुये थे। कहीं भूत भविष्यत् होता; कहीं कल्पवृक्षों के वन; कहीं अनन्त चिन्तामणि; कहीं शून्यस्थान; कहीं देवता और दैत्योंके बड़े युद्ध होते और नक्षत्रचक्र पड़े फिरते और कहीं प्रलय होताथा। कहीं देवता विमानों में फिरते; कहीं स्वामिकार्त्तिक के रक्खे हुये मोरों के समूह विचरते; कहीं कुक्कुट, मोर आदिक पक्षी विद्याधरों के वाहन विचरते और कहीं यमके वाहन महिषों के समूह विचरते थे। कहीं पाषाण संयुक्त पर्वत; कहीं भैरव के गण नृत्य करते; कहीं विद्युत् चमकती; कहीं कल्पतरु; कहीं मन्द २ शीतल पवन सुगन्ध समेत चलता और कहीं पर्वत रत्न और मणि शोभतेथे निदान इसी प्रकार अनेक जगतों की जाल उन देवियों ने देखी। जीवरूपी मच्छड़ त्रिलोकरूपी गूलरों के अनन्त वृक्षों में देखे। इसके अनन्तर उन्होंने भूमण्डल को देखके महीतल में प्रवेश किया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेआकाशगमन वर्णनन्नामाष्टादशस्सर्गः ॥ १८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तब देवियों ने भूतल ग्राम में आकर ब्रह्माण्ड खप्पर में प्रवेशकिया। वह ब्रह्माण्ड त्रिलोकिरूपी कमल है और उसकी अष्ट पखुड़ियां हैं। उस में पर्वतरूपी डोड़ाहै; चेतनता सुगन्ध है और नदियां समुद्र अम्बुकण हैं। जब रात्रिरूपी भँवरे उसपर आन विराजते हैं तब वे कमल सकुचाय जाते हैं। वे पातालरूपी कीचड़ में लगे हैं; पत्ररूपी मनुष्य देवता हैं; दैत्य राक्षस उसके कण्टक हैं और नाल उनकी शेषनाग है। जब वह हिलताहै तब भूचालन होताहै और दिनकर से प्रकाशताहै। इसका विस्तार इस प्रकार है कि, एक लाख योजन जम्बूद्वीप है और उसके पर दूना खारा समुद्र है। जैसे हाथ का कङ्कण होताहै तैसेही उस जलसे वह

द्वीप आवरण किया है। उससे आगे दुगुना शाकद्वीप है और उससे दुगुने क्षीर-समुद्रसे वेष्टित है उसके आगे उससे दुगुनी पृथ्वी है जिसका नाम कुशद्वीप है और उससे दूने घृत के समुद्र से वेष्टित है। उसके आगे उससे दूनी पृथ्वी का नाम क्रौंच-द्वीप है वह अपने से दूने दधि के समुद्र से वेष्टित है। फिर शाल्मलीद्वीप है और उससे दूना मधु का समुद्र उसके चारों ओर है। फिर प्लक्षद्वीप है तिससे दूना इक्षुरस का समुद्र है। फिर उससे दूना पुष्करद्वीप है और उससे दूना मीठे जलका समुद्र उसे घेरे है इस प्रकार सप्त समुद्र हैं। उससे परे दशकोटि योजन कञ्चन की पृथ्वी प्रकाशवान् है और उससे आगे लोकालोक पर्वत हैं और उनपर बड़ा शून्य वन है। उससे परे एक बड़ा समुद्र है समुद्र से परे दशगुणी अग्नि है; अग्नि से परे दशगुणी वायु है; वायुसे परे दशगुणा आकाश है और आकाश से परे लक्ष योजन पर्यन्त घनरूप ब्रह्माण्ड का कन्ध है। उसको देख के दोनों फिर आईं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेभूलोकगमनवर्णन न्नामैकोनविंशस्सर्गः ॥ १९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वहां से फिरके उन्होंने वशिष्ठ ब्राह्मण और अरुन्धती का मण्डल, ग्राम और नगर को देखा कि शोभाजाती रही है। जैसे कमलों पर धूल की वर्षा हो और कमल की शोभा जातीरहै; जैसे वन को अग्नि लगे और वन की लक्ष्मी जाती रही है; जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्र को पान करलिया और समुद्र की शोभा जाती रही थी; जैसे तेल और बाती के पूर्ण भये से दीपक का प्रकाश अभाव होजाता है और जैसे वायु के चलने से मेघ का अभाव होता है तैसेही ग्राम की शोभा का अभाव देखा जो कुछ प्रथम शोभा थी सो सब नष्ट होगईथी और दासियां रुदन करती थीं। तब लीला रानी को, जिसने चिरकाल तप और ज्ञान का अभ्यास किया था, यह इच्छा उपजी कि; मुझे और देवी को मेरे बान्धव देखें। तब लीला के सत संकल्प से उसके बान्धवों ने उनको देखकर कहा कि; यह वनदेवी गौरी और लक्ष्मी आईं हैं इनको नमस्कार करना चाहिये। वशिष्ठ के बड़े पुत्र ज्येष्ठशर्मा ने फूलों से दोनों के चरण पूजे और कहा; हे देवि! तुम्हारी जय हो। यहां मेरे पिता और माता थे वह अब दोनों काल के वश स्वर्ग को गये हैं इससे हम बहुत शोकवान् भये हैं। हमको त्रैलोक शून्य भासते हैं और हम सबही रुदन करते हैं। वृक्षों पर जो पक्षी रहते थे सो भी उनको मृतक देख के वन को चले गये; पर्वत की कन्दरा से पवन मानों रुदन करता आता है; और नदी जो वेग से आती है और तरङ्ग उछलते हैं मानों वह भी रुदन करते हैं। कमलों पर जो जल के कण हैं मानों कमलों के नयनों से रुदन करके जल चलता है और दिशा से जो उष्ण पवन आता है मानों

दिशा भी उष्ण श्वासें छोड़ती है। हे देवियो! हम सबही शोक को प्राप्त भये हैं। तुम कृपा करके हमारा शोक निवृत्त करो क्योंकि; महापुरुषों का समागम निष्फल नहीं होता और उनका शरीर परोपकार के निमित्त है। हे रामजी! जब इस प्रकार ज्येष्ठ शर्मा ने कहा तब लीला ने कृपा करके उसके शिर पर हाथ रक्खा और उसके हाथ रखतेही उसका सब ताप नष्ट होगया। और जैसे ज्येष्ठ—आषाढ़ के दिनों में तपीहुई पृथ्वी मेघ की वर्षा होने से शीतल होजाती है तैसेही उसका अन्तःकरण शीतल हुआ जो वहां के निर्धन थे वह उनके दर्शन करने से लक्ष्मीवान् होकर शान्ति को प्राप्त भये और शोक नष्ट होगया और सूखे वृक्ष सफल होगये। इतना सुन रामजी बोले; हे भगवन्! लीला ने अपने ज्येष्ठशर्मा को मातारूप होकर दर्शन क्यों न दिया इसका कारण मुझको कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ता में जो स्पन्द संवेदन हुई है सो संवेदन भूतों का पिण्डाकार हो भासती है और वास्तव में आकाशरूप है भ्रान्ति से पृथ्वीआदिक भूत भासते हैं। जैसे बालक को छाया में भ्रम से वैताल भासता है तैसेही संवेदन के फुरने से पृथिव्यादिक भूत भासते हैं। जैसे स्वप्ने में भ्रम से पिण्डाकार भासते हैं और जागे से आकाशरूप भासते हैं तैसेही भ्रम के नष्ट हुये पृथ्वी आदिक भूत आकाशरूप भासते हैं। जैसे स्वप्नेके नगर स्वप्नकाल में अर्थाकार भासते हैं और अग्नि जलाती है पर जागे से सब शून्य होजाती है; तैसे ही अज्ञान के निवृत्त हुये से यह जगत् आकाशरूप होजाता है। जैसे मूर्छा में नाना प्रकार के नगर; परलोक जगत्; आकाश में तरवरे और मुक्तमाला और नौकापर बैठे तटके वृक्ष चलते भासते हैं तैसेही यह जगत् भ्रमसे अज्ञानी को भासता है और ज्ञानवान् को सब चिदाकाश भासता है—जगत् की कल्पना कोई नहीं फुरती। इससे लीला उसको पुत्रभाव और आप को माताभाव कैसे देखती। उसका अहं और मम भाव नष्ट होगया था। जैसे सूर्य के उदयहुये अन्धकार नष्ट होता है तैसेही लीला का अज्ञानभ्रम नष्ट होगया था और सब जगत् उसको चिदाकाश भासता था। इस कारण यह आपको माताभाव न जानती भई। जो उसमें कुछ ममत्व होता तो उसको माताभाव से देखती परन्तु उसको यह अहंममभाव न था इस कारण माताभाव और देवीरूप में दिखाया और शिर पर हाथ इसलिये रक्खा कि, सन्तों का दयालु स्वभाव है। माता पुत्र की कल्पना उसमें कुछ न थी इस कारण उसके शिरपर हाथ रक्खा। और कल्पना कुछ न थी—केवल आत्मारूप जगत् उसको भासता था॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेसिद्धदर्शनहेतुकथनन्नामविंशतितमस्सर्गः॥ २०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर वहां से देवी और लीला दोनों अन्तर्धान होगईं। तब वहां के लोग कहनेलगे कि, वनदेवियों ने हमारे ऊपर बड़ी कृपा करके हमारे दुःख नाशकिये और अन्तर्धान होगईं। हे रामजी! तब दोनों आकाश में आकाश-रूप अन्तर्धान भईं और परस्पर संवाद करने लगीं। जैसे स्वप्ने में संवाद होता है तैसेही उनका परस्पर संवाद हुआ। देवी ने कहा; हे लीले! जो कुछ जानना था सो तूने जाना और जो कुछ देखना था सो भी देखा—यह सब ब्रह्म की शक्ति है। और जो कुछ पूछना हो सो पूछो। लीला बोली; हे देवि! मैं अपने भर्त्ता विदूरथ के पास गई तो उसने मुझे क्यों न देखा और मेरी इच्छा से ज्येष्ठशर्मा आदि ने मुझे क्यों देखा इसका कारण कहो? देवी बोली; हे लीले! तब तेरा द्वैत भ्रम नष्ट हुआ न था और अभ्यास करके अद्वैत को न प्राप्त भई थी। जैसे धूप में छाया का सुख नहीं अनुभव होता तैसेही तुझ को अद्वैत का अनुभव न था। हे लीले! जैसे ऋतु का फल मधुर होता है। जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ विदित हो और वर्षा नहीं आई तैसेही तू थी—अर्थात् यह कि; संसार मार्ग को लंघी थी पर अद्वैत तत्त्व को न प्राप्त भई थी इससे आत्मशक्ति तुझको न प्रत्यक्ष भई थी। आगे तेरा सत्संकल्प न था और अब तू सत्संकल्प हुई है। अब तैंने सत्संकल्प किया है कि, तुझ को ज्येष्ठशर्मा ने देखा और इसीसे वे सब तुझ को देखते भये। अब तू विदूरथ के निकट जा तो पूर्ववत् तेरे साथ व्यवहार हो। लीला बोली; हे देवि! इस मण्डप आकाश में मेरा भर्त्ता वशिष्ठ ब्राह्मणहुआ और फिर जब मृतक हुआ तब इसीलोक मण्डपआकाश में उसको पृथ्वी लोक फुरिआया जिससे पद्मराजा हो उसने चिरकाल पर्यन्त चारों द्वीपों का राज्य किया और जब फिर मृतक हुआ तब इसी मण्डप आकाश में उसको जगत् भासित होकर पृथ्वीपति हुआ तिसका नाम विदूरथ हुआ। हे देवि! इसी मण्डप आकाश में जर्जरीभाव और जन्म मरण हुआ और अनन्त ब्रह्माण्ड इसमें स्थित हैं। जैसे सम्पुट में सरसों के अनेक दाने होते हैं तैसेही इस में सब ब्रह्माण्ड मुझ को समीपही भासते हैं और भर्त्ता की सृष्टि भी मुझ को अब अन-न्तर भासती है अब जो कुछ तुम आज्ञा करो सो मैं करूं? देवी बोली; हे भूतल अरुन्धती! तेरे जन्म तो बहुत भये हैं और अनेक तेरे भर्त्ता हुये हैं पर उन सब में यह भर्त्ता इस मण्डप में है। एक वशिष्ठ ब्राह्मण था सो मृतक हो उसका शरीर तो भस्म होगया है और फिर पद्मराजा हुआ उसका शव तेरे मण्डप में पड़ाहै और ती-सरा भर्त्ता संसारमण्डप में बसुधापति हुआ वह संसार समुद्र में भोगरूपी कलोलकर व्याकुल है। वह राजमें चतुर हुआ है पर आत्मपद से विमुख हुआ है। आज्ञा से जानताथा कि, मैं ईश्वर हूं; मेरी आज्ञा सबके ऊपर चलती है और मैं बड़े भोगों का

भोगनेवाला और सिद्ध बलवान् हूं। हे लीले ! वह संकल्प विकल्परूपी रस्सी से बांधाहुआ है। अब तू किस भर्त्ता के पास चलती है। जहां तेरी इच्छा हो वहां मैं तुझको लेजाऊँ। जैसे सुगन्ध को वायु लेजाता है तैसेही मैं तुझको लेजाऊँगी। हे लीले ! जिस संसारमण्डलको तू समीप कहती है सो वह चिदाकाश की अपेक्षा से समीप भासता है और सृष्टि की अपेक्षासे अनन्तकोटि योजनों का भेद है। इसका वपु आकाशरूप है। ऐसी अनन्त सृष्टि पड़ी फुरती है। समुद्र और मन्दराचल पर्वत आदिक अनन्त हैं उनके परमाणु में अनन्तसृष्टि चिदाकाश के आश्रय फुरती है। चिद्‌अणु में रुचि के अनुसार सृष्टि बड़े आरम्भ से दृष्टि आती है और बड़े स्थूल गिरि पृथ्वी दृष्टि आते हैं पर विचारकर तौलिये तो एकचावल के समान भी नहीं होते। हे लीले ! नाना प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण पर्वत भी दृष्टि आतेहैं पर आकाशरूप हैं। जैसे स्वप्न में चेतनका किञ्चन नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आता है तैसेही यह जगत् चेतनका किञ्चन है। पृथ्वी आदिक तत्त्वों से कुछ उपजा नहीं। हे लीले ! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपमें स्थित है। जैसे नदी में नाना प्रकार के तरङ्ग उपजते हैं और लीनभी होतेहैं तैसेही आत्मा में जगत् जाल उपजता और नष्टभी होजाताहै पर आत्मसत्ता इनके उपजने और लीन होनेमें एक रस है। यह सब केवल आभासरूप है वास्तव कुछ नहीं। लीला बोली; हे मातः ! अब पूर्वकी मुझको सब स्मृति हुई है। प्रथम मैंने ब्रह्मा से राजसी जन्म पाया और उससे आदि लेकर नाना प्रकार के जो अष्टशत जन्म पाये हैं वे सब मुझको प्रत्यक्ष भासते हैं प्रथम जो चिदाकाश से मेरा जन्म हुआ उसमें मैं विद्याधर की स्त्री भई और उस जन्म के कर्म से भूतल में आकर मैं दुःखी हुई। फिर पक्षिणी भई और जाल में फँसी और उसके अनन्तर भीलनी होकर कदम्बवन में विचरनेलगी। फिर वनलता भई; वहां गुच्छे मेरे स्तन और पत्र मेरे हाथ थे। जिसकी पर्णकुटी में मैं लताथी वह ऋषीश्वर मुझको हाथमे स्पर्श किया करता था इससे मैं मृतक होकर उसके गृह में पुत्री भई। वहां जो मुझसे कर्म हो सो पुरुषही का कर्म हो इससे मैं बड़ी लक्ष्मी से सम्पन्न राजा भई। वहां मुझमे दुष्टकर्म हुये इससे मैं कुष्ठरोग ग्रसित बन्दरी होकर आठवर्ष वहां रही। फिर मैं बैलहुई; मुझको किसी दुष्ट ने खेती के हल में जोड़ा और उससे मैंने दुःख पाया। फिर मैं भ्रमरी भई और कमलोंपर जाकर सुगन्ध लेतीथी। फिर मृगी होकर चिर पर्यन्त वनमें विचरी। फिर एक देश का राजाभई और सौ वर्ष पर्यन्त वहां सुख भोग और फिर कछुये का जन्म लेकर; राजा हंस का जन्म लिया। इसी प्रकार मैंने अनेक जन्मों को धारण करके बड़े कष्ट पाये हे देवि ! आठसौ जन्म पाकर मैं संसार समुद्र में वासना से घटीयन्त्र की नाईं भ्रमी हूं। अब मैंने निश्चय किया है कि,

आत्मज्ञान विना जन्मों का अन्त कदाचित् नहीं होता सो तुम्हारी कृपा से अब मैंने निःसंकल्प पद को पाया ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेजन्मान्तरवर्णनन्नाम एकविंशतितमस्सर्गः ॥ २१ ॥

इतनी कथा सुन रामजीने पूछा; हे भगवन्! वज्रसारकी नाईं वह ब्रह्माण्ड खप्पर जिसका अनन्त कोटि योजनों पर्यन्त विस्तार था उसे ये दोनों कैसे लंघती गईं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वज्रसार ब्रह्माण्ड खप्पर कहांहै और वहांतक कौन गया है? न कोई वज्रसार ब्रह्माण्ड है और न कोई लांघगया है सब आकाशरूप है। उसी पर्वत के ग्राममें जिसमें वशिष्ठ ब्राह्मण का गृह था उसी मण्डप आकाशरूप वह सृष्टि का अनुभव करता भया। हे रामजी! जब वशिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया तब उसी मण्डपाकाश के कोनेमें आपको चारों ओर समुद्रों पर्यन्त पृथ्वी का राजा जाननेलगा कि, मैं राजा पद्म हूं और अरुन्धतीको लीला करके देखा कि, यह मेरी स्त्री है। फिर वह मृतक हुआ तो उसको उसी आकाशमण्डप में और जगत् का अनुभवभया और उसने आप को राजा विदूरथ जाना इससे तुम देखो कि, कहांगया और क्या रूप है? उसी मण्डप आकाशमें तो उसको सृष्टिका अनुभवहुआ; इससे जो सृष्टिहै वह उसीवशिष्ठके चित्त में स्थितहै। तब ज्ञप्तिरूप देवी की कृपा से अपनेही देहाकाश में लीला अन्तवाहक देह से जो आकाशरूप है, उड़ी और ब्रह्माण्ड को लांघ के फिर उसी गृह में आई। जैसे स्वप्ने से स्वप्नान्तर को प्राप्तहो तैसेही देख आई। पर वह गई कहां और आई कहां? एकही स्थान में होके एकसृष्टि से अन्य सृष्टि को देखा। इनको ब्रह्माण्ड के लंघजाने में कुछ यत्न नहीं क्योंकि; उनका शरीर अन्तवाहकरूप है। हे रामजी! जैसे मनसे जहां लंघना चाहे वहां लंघजाताहै तैसेही वह प्रत्यक्ष लंघी है। वह सत्यसंकलपरूप है और वस्तु से कहे तो कुछ नहीं। हे रामजी! जैसे स्वप्ने की सृष्टि नाना प्रकार के व्यवहारों सहित बड़ी गम्भीर भासती है पर आभासमात्र है तैसेही यह जगत् देखतेहैं पर न कोई ब्रह्माण्ड है न कोई जगत् है और न कोई कुण्ड है केवल चैतन्यमात्र का किञ्चन है और बना कुछ नहीं। जैसे चित्तसंवेदन फुरता है तैसेही आभासहो भासता है। केवल वासनामात्र ही जगत् है; पृथ्वीआदिक भूत कोई उपजा नहीं-निरावरण ज्ञान आकाश अनन्तरूप स्थित है। जैसे स्पन्द और निस्पन्द दोनों रूप पवनहीं हैं तैसेही स्फुर और अफुररूप आत्माही है कि, वनमें भी ज्योंका त्यों है और शान्त और सर्वरूप चिदाकाश है। जब चित्त किञ्चन होता है तब आपही जगत्रूप हो भासताहै-दूसरा कुछ नहीं। जिन पुरुषों ने आत्मा को जानाहै उनको जगत् आकाश से भी शून्य भासता है और जिन्होंने नहीं जाना उनको जगत् वज्रसार की नाईं दृढ़ भासता है। जैसे

स्वप्न में नगर भासते; तैसेही यह जगत् है। जैसे मरुस्थल में जल और सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी! इस प्रकार देवी और लीला ने संकल्प से नाना प्रकार के स्थानों को देखा जहां झरनों से जल चला आता था; बावली और सुन्दर ताल और बगीचे देखे जहां पक्षी शब्द करते थे और सुन्दर मेघ पवनसंयुक्त देखे मानों स्वर्ग यहांही था॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेगिरिग्रामवर्णन न्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः॥ २२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार देखके वे दोनों शीतलचित्त ग्राम में वास करती भईं और चिरकाल जो आत्म अभ्यास किया था उससे शुद्ध ज्ञानरूप और त्रिकालज्ञान से सम्पन्नहुईं। उससे उन्हें पूर्व की स्मृति हुई और जो कुछ अरुन्धती के शरीर से कियाथा सो देवी से कहा कि, हे देवि! तुम्हारी कृपा से अब मुझको पूर्व की स्मृति भई। जो कुछ इस देशमें मैंने किया था सो प्रकट भासता है कि; यहां एक ब्राह्मणी थी; उसका शरीर; वृद्ध था और नाड़ियां दीखती थीं और भर्त्ता को बहुत प्यारी और पुत्रों की माता थी वह मैंही हूं। हे देवि! मैं यहां देवतों और ब्राह्मणों की पूजा करती थी, यहां दूध रखती, यहां अन्नादिकों के बासन रखती थी यहां मेरे पुत्र, पुत्रियां, दामाद और दुहिते बैठतेथे; यहां मैं बैठतीथी और भृत्यों को कहती थी कि, शीघ्रही कार्य करो। हे देवि! यहां मैं रसोईं करतीथी और भर्त्ता मेरा शाक और गोबर लेआता था और सर्व मर्यादा कहता था। ये वृक्ष मेरे लगायेहुये हैं; कुछ फल मैंने इनमे लिये हैं और कुछ रहेहैं वो ये हैं। यहां मैं जलपान करती थी। हे देवि! मेरा भर्त्ता सब कर्मोंमें शुद्ध था पर आत्मस्वरूप से शून्य था। सबकर्म मुझको स्मरण होते हैं। यहां मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृह में रुदन करता है यह बेल मेरे गृह में विस्तरी है और सुन्दर फूल लगे हैं। इनके गुच्छे छत्रों की नाईं हैं और झरोखे बेलसे आवरे हुये हैं। यह मेरा मण्डप आकाश है; इसमें मेरे भर्त्ता का जीव आकाश है। देवी बोलीं; हे लीले! इस शरीर के नाभिकमल से दश अंगुल ऊर्ध्व हृदयाकाश है और सो अंगुष्ठमात्र हृदय है; उसमें उसका संवित् आकाश है। उसमें जो राजसी वासना थी उससे उसको चारों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राज्य फुरआया कि, "मैं राजा हूं,"। यहां उसे आठ दिन मृतक हुये बीते हैं और यहां चिरकाल राज्य का अनुभव करता है। हे देवि! इस प्रकार थोड़े काल में बहुत काल अनुभव होता है और हमारेही मण्डप में वह सब पड़ाहै। उसकी पुर्यष्टक में जगत् फुरता है उसमें आपका राजा स्थित है। इस राज्य के संकल्प से उसकी संवित् इसी मण्डप आकाश में स्थित है।

जैसे आकाश में गन्ध को लेके पवन स्थितहो तैसेही उसकी चेतन संवित् संकल्प को लेकर इसी मण्डपाकाश में स्थित है । उसकी संवित् इस मण्डप आकाश में है उस राजा की सृष्टि मुझको कोटि योजनों पर्यन्त भासती है । यदि मैं पर्वत और मेघ अनेक योजनों पर्यन्त लंघती जाऊं तब भर्त्ता के निकट प्राप्त होऊं और चिदाकाश की अपेक्षासे अपने पासही भासता है । अब व्यवहार दृष्टि से वह कोटि योजनों पर्यन्त है इससे चलो जहां मेरा भर्त्ता राजा विदूरथ है वह स्थान दूर है तो भी निश्चय है । इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार कहकर वे दोनों; जैसे खड्ग की धारा श्याम होतीहै; जैसे विष्णुजी का अङ्ग श्याम है; जैसे काजर श्याम होता और जैसे भ्रमरे की पीठ श्याम होती है तैसेही श्याम मण्डपाकाश में पखेरू के समान अन्तवाहक शरीर से उड़ीं और मेघों और बड़े वायु के स्थान; सूर्य, चन्द्रमा और ब्रह्मलोक पर्यन्त देवतों के स्थानों को लंघकर इस प्रकार दूर से दूर गईं और शून्य आकाश में ऊर्ध्व जाके ऊर्ध्व को देखती भईं कि, सूर्य और चन्द्रमा आदिक कोई नहीं भासता । तब लीला ने कहा; हे देवि ! इतना सूर्य आदिक का प्रकाश था वह कहां गया ? यहां तो महा अन्धकार है; ऐसा अन्धकार है कि; मानों सृष्टिमें ग्रहण होताहै । देवी बोली; हे लीले ! हम महाआकाश में आई हैं । यहां अन्धकार का स्थान है सूर्य आदिक कैसे भासें ? जैसे अन्धकूप में त्रसरेणु नहीं भासते तैसेही यहां सूर्य चन्द्रमा नहीं भासते हम बहुत ऊर्ध्व को आये हैं । लीला ने पूछा; हे देवि ! बड़ा आश्चर्य है कि; हम दूरसे दूर आये हैं जहां सूर्यादिकों का प्रकाश भी नहीं भासता इससे आगे अब कहां जाना है ? देवी बोली; हे लीले ! इसके आगे ब्रह्माण्ड कपाट आवेगा । वह बड़ा वज्रसार है और अनन्त कोटि योजनों पर्यन्त उसका विस्तार है और उसकी धूरकी कणिका भी इन्द्र के वज्रसमान हैं । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार देवी कहतीही थी कि, आगे महावज्रसार ब्रह्माण्ड कपाट आया और अनन्त कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार देखकर उसको भी वे लांघ गईं पर उन्हें कुछभी क्लेश न भया क्योंकि; जैसा किसी को निश्चय होता है वैसाही अनुभव होताहै । वह निरावरण आकाशरूप देवियां ब्रह्माण्ड कपाटको लांघगईं । उसके परे दशगुणा जलका आवरण; उसके परे दशगुणा अग्नितत्त्व; उसके परे दशगुणा वायु; उसके परे दशगुणा आकाश और उसके परे परमाकाश है । उमका आदि, मध्य और अन्त कोई नहीं । जैसे बन्ध्या के पुत्र की कथा की चेष्टा का आदि अन्त कोई नहीं होता तैसेही परम आकाश है वह नित्य, शुद्ध और अनन्तरूप है और अपने आपमें स्थित है । उसका अन्त लेनेको यदि सदाशिव मनरूपी वेगसे और विष्णुजी गरुड़ पर आरूढ़ होके कल्प पर्यन्त धावें तौभी उसका अन्त न पावें और पवन अन्त लिया चाहे

तो न यह भी पावे। वह तो आदि, मध्य और अन्तकलना से रहित बोधमात्र है॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपुनराकाशवर्णनन्नामत्रयोविंशतितमस्सर्गः॥ २३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब ये पृथ्वी, अप, तेज आदिक आवरणों को लांघ गईं तब परमाणु से रहित परमआकाश उनको भासित हुआ उसमें उनको धूर की कणिका और सूर्यके त्रसरेणु के समान ब्रह्माण्ड भासे। वह महाशून्यको धारनेवाला परम आकाश है और आप कणचिद् अणु सृष्टि जिसमें फुरती है वह ऐसा महासमुद्र है कि, कोई उसमें अध को जाताहै और कोई ऊर्ध्व को जाता और कोई तिर्यक् गति को जाता है। हे रामजी! चित् संवित् में जैसा २ स्पन्द फुरता है तैसाही तैसा आकार हो भासता है; वास्तव में न कोई अध है, न कोई ऊर्ध्व है, न कोई आता है और न कोई जाता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें ज्योंकी त्यों स्थित है। फुरने से जगत् भासता है और उत्पत्ति हो फिर नष्ट होता है। जैसे बाल का संकल्प उपज के नष्ट होजाता है तैसही चेतन संवित् में जगत् फुरके नष्ट होजाता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अध और ऊर्ध्व क्या होते हैं तिर्यक् क्या भासते हैं और यहां क्या स्थित है सो मुझसे कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! परमाकाश सत्ता आवरण से रहित शुद्ध बोधरूप है। उसमें जगत् ऐसे भासता है जैसे आकाश में भ्रान्ति से तरुवरे भासते हैं। उसमें अध और ऊर्ध्व कल्पनामात्र है। जैसे हलों के बेटेके चौगिर्द चींटियां फिरती हैं और उनको मन में अध ऊर्ध्व भासता है सो उनके मन में अध ऊर्ध्व की कल्पना हुई है। हे रामजी! यह जगत् आत्मा का आभासरूप है। जैसे मन्दराचल पर्वत के ऊपर हस्तियों के समूह विचरते हैं तैसेही आत्मा में अनेक जगत् फुरते हैं जैसे मन्दराचल पर्वतके आगे हस्ती हो तैसेही ब्रह्मके आगे जगत् है और वास्तव में सर्व ब्रह्मरूप है। कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण सर्व ब्रह्मही हैं और ये जगत् ब्रह्मसमुद्र के तरङ्ग हैं। उन जगत् ब्रह्माण्डों को देवियों ने देखा। जैसे ब्रह्माण्ड उन्होंने देखे हैं वे सुनिये। कई सृष्टि तो उन्होंने उत्पन्न होती देखीं और कई प्रलय होती देखीं। कितनों के उपजने का आरम्भ देखा जैसे नूतन अंकुर निकलता है; कहीं जलही जल है कहीं अन्धकारही है—प्रकाश नहीं; कहीं सर्व व्यवहार संयुक्त हैं और कहीं वेदशास्त्र के अपूर्व कर्म हैं। कहीं आदि ईश्वर ब्रह्मा हैं उनसे सब सृष्टि हुई हैं; कहीं आदि ईश्वर विष्णु हैं उनसे सब सृष्टि हुई हैं और कहीं आदि ईश्वर सदाशिव हैं। इसी प्रकार कहीं और प्रजापति से उपजते हैं; कहीं नाथको कोई नहीं मानते सब अनीश्वर वादी हैं; कहीं तिर्यक् ही जीव रहते हैं; कहीं देवता ही रहते हैं और कहीं मनुष्य ही रहते हैं। कहीं बड़े आरम्भ करके सम्पन्न हैं और कहीं शून्यरूप हैं। हे रामजी! इसी प्रकार उन्होंने अनेक सृष्टि चिदाकाश

में उत्पन्न होती देखीं जिन की संख्या करने को कोई समर्थ नहीं चिदात्मा के आभा-सरूप फुरती हैं और जैसी फुरना होती हैं उसके अनुसार फुरती हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेब्रह्माण्डवर्णनन्नामचतुर्विंशतितमस्सर्गः ॥ २४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार दोनों देवियां राजा के जगत् में आकर अपने मण्डप स्थानों को देखती भईं। जैसे सोया हुआ जागके देखता है तैसेही जब अपने मण्डप में उन्होंने प्रवेश किया तब क्या देखा कि; राजा का शव फूलों में ढांपा हुआ पड़ा है। अर्द्धरात्रि का समय है; सब लोग गृह में सोये पड़े हैं और राजापद्म के शव के पास लीला का शरीर पड़ा है। और अन्तःपुर में धूप, चन्दन, कपूर और अगर की सुगन्ध भरी है। तब वे विचारनेलगीं कि. वहां चलें जहां राजा राज्य करता है। उसकी पुर्यष्टक में विदूरथ का अनुभव हुआ था उस संकल्प के अनुसार विदूरथ की सृष्टि देखने को देवी के साथ लीला चली और अन्तवाहक शरीर से आकाश-मार्ग को उड़ीं। जाते जाते ब्रह्माण्ड की बाट को लांघगईं तब विदूरथ के संकल्प में जगत् को देखा। जैसे तालाब में सेवार होती है तैसेही उन्होंने जगत् को देखा। सप्त-द्वीप, नवखण्ड, सुमेरुपर्वत, द्वीपादिक सब रचना देखीं और उसमें जम्बूद्वीप और भरतखण्ड और उसमें विदूरथ राजा का मण्डपस्थान देखती भईं। वहां उन्होंने राजा सिंध को भी देखा कि, राजा विदूरथ की पृथ्वी की कुछ हद उस के भाइयों ने दबाई थी और उस के लिये सेना भेजी राजा विदूरथ ने भी सुन के सेना भेजी और दोनों सेना मिलके युद्ध करने लगीं। फिर उन्होने देखा कि, त्रिलोकी युद्ध का कौतुक देखने को आई है; देवता विमानों पर आरूढ़ और सिद्ध, चारण, गन्धर्व और विद्याधर शास्त्रों को छोड़के देखनेको स्थित भये हैं। विद्याधरी और अप्सरा भी आई हैं कि, जो शूरमा युद्ध में प्राणोंको त्यागेंगे हम उनको स्वर्ग में लेजावेंगी। रक्त और मांसभोजन करने को भूत, राक्षस, पिशाच, योगिनियां भी आन स्थित भई हैं। हे रामजी ! शूर पुरुष तो स्वर्ग के भूषण हैं और अक्षयस्वर्ग को भोगेंगे और जिनका मरना धर्मपक्ष से संग्राम में होगा वह भी स्वर्ग को जावेंगे। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! शूरमा किसको कहतेहैं और जो युद्ध करके स्वर्गको नहीं प्राप्तहोते वे कौनहैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो शास्त्रयुक्त युद्ध नहीं करते और अनर्थरूपी अर्थ के निमित्त युद्ध करते हैं सो नरक को प्राप्त होतेहैं और जो धर्म, गौ, ब्राह्मण, मित्र, शरणागत और प्रजाकी पालना के निमित्त युद्धकरते हैं वे स्वर्ग के भूषण हैं। वेही शूरमा कहाते हैं और मरके स्वर्ग में जाते हैं और स्वर्ग में उनका यश बहुत होताहै। जो पुरुष धर्म के अर्थ युद्ध करते हैं वे अवश्य स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं और जो अधर्म से युद्ध करते हैं वे मृतक हो नरकको प्राप्त होतेहैं। हे रामजी !

जो पुरुष कहतेहैं कि, संग्राम में मरे सब स्वर्ग को प्राप्त होते हैं वे मूर्ख हैं। स्वर्ग को वही जाते हैं जिनका मरना धर्म के अर्थ हुआ है। जो किसी भोग के अर्थ युद्ध करते हैं सो नरक को ही प्राप्त होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेगगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णनन्नाम पञ्चविंशातितमस्सर्गः॥ २५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दोनों देवियों ने रणसंग्राम में क्या देखा कि, एक महाशून्य वन है उसमें जैसे दो बड़े समुद्र उछलकर परस्पर मिलने लगें तैसेही दोनों सेना जुड़ी हैं। तब उन्होंने क्या देखा कि, सब योधा आन स्थित हुये हैं और मच्छव्यूह गरुड़व्यूह और चक्रव्यूह भिन्न २ भाग करके दोनों सेना के योधा एक २ होकर युद्ध करने लगे हैं। प्रथम परस्पर देख एकने कहा कि, यह बाण चलावे और दूसरे ने कहा कि, नहीं तू चला; उसने कहा नहीं तुही प्रथम चला। निदान दोषदृष्टि करके सब स्थिर होरहे-मानों चित्र लिख छोड़े हैं। इसके अनन्तर दोनों सेनाके और योधा आये मानों प्रलयकाल के मेघ उछले हैं उनके आनेसे एक २ योधा की मर्यादा दूर होगई सब इकट्ठे युद्ध करनेलगे और बड़ेशस्त्रों के प्रवाह के प्रहार करने लगे। कहीं खड्गों के प्रहार चलतेथे और कहीं कुल्हाड़े, त्रिशूल, भाले, बरछियां, कटारी, छूरी, चक्र, गदादिक शस्त्र बड़े शब्द करके चलाने लगे। जैसे वर्षाकाल में मेघ वर्षा करते हैं तैसे ही शस्त्रों की वर्षा होने लगी। हे रामजी! प्रलयकाल के जितने उपद्रव थे सो सब इकट्ठे हुये। योधा युद्ध की ओर आये और कायर भागगये। निदान ऐसा संग्राम हुआ कि, अनेकों योधाओं के शिर कटगये और उनके हस्ती घोड़े मृत्यु को प्राप्त भये। जैसे कमल के फूल काटे जाते हैं तैसेही उनके शीश काटे जातेथे। तब दोनों सेनाओंके राजा चिन्ता करने लगे कि, क्या होगा। हे रामजी! इस युद्ध में रुधिर की नदियां चलीं; उनमें प्राणी बहते जातेथे और बड़े शब्द करते थे जिनके आगे मेघोंके शब्द भी तुच्छ भासतेथे। हे रामजी! दोनों देवियां संकल्पके विमान कल्पके आकाश में स्थित हुईं तो क्या देखा कि, ऐसा युद्ध हुआहै जैसे महाप्रलय में समुद्र एकरूप होजाते हैं। और बिजली की नाईं शस्त्रों का चमत्कार होताथा। जो शूरवीर हैं उनके रक्त की जो बूंदियां पृथ्वीपर पड़ती हैं उन बूंदों में जितने मृत्तिका के कणके लगे होते हैं उतनेही वर्ष वे स्वर्गको भोगेंगे। जो २ शूरमा युद्ध में मृतक होतेथे उनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजातीथीं और देवगण स्तुति करतेथे कि, ये शूरमा स्वर्ग को प्राप्त भये हैं और अक्षय अर्थात् चिरकाल स्वर्ग भोगेंगे। हे रामजी! स्वर्गलोकके भोग मन में चिन्तन करके शूरमा हर्षवान् होतेथे और युद्धमें नाना प्रकार के शस्त्र चलाते और सहन करतेथे और फिर युद्ध के सम्मुख धीरज धरके स्थित होते थे। जैसे सुमेरु

पर्वत धैर्यवान् और अचल स्थित है उससेभी अधिक वे धैर्यवान् थे। संग्राम में योधा ऐसे चूरण होतेथे जैसे कोई वस्तु उखली में चूरण होतीहै परन्तु फिर सम्मुखहोते और बड़े हाहाकार शब्द करतेथे। हस्तीसे हस्तीपर परस्पर युद्धकरते शब्द करते थे। हे रामजी! इसी प्रकार अनेक जीव नाशको प्राप्त भये। जो २ शूरमा मरतेथे तिनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजाती थीं। निदान परस्पर बड़े युद्धहुये खड्गवाले खड्गवाले से और त्रिशूलवाले त्रिशूलवाले से युद्धकरते थे। जैसा २ शस्त्र किसीके पासहो तैसेही उसके साथ युद्ध करें और जब शस्त्र पूर्णहोजावें तो मुष्टि के साथ युद्धकरें। इसीप्रकार दशोंदिशा युद्धसे परिपूर्ण हुईं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेरणभूमिवर्णनन्नामषड्विंशतितमस्सर्गः॥ २६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार बड़ा युद्ध हुआ तो गङ्गाजी के समान शूरमों के रुधिर का तीक्षण प्रवाह चला और उस प्रवाह में हस्ती, घोड़े, मनुष्य, रथ सब बहेजातेथे और सेना सृष्टि नाश को प्राप्त होती जाती थी। हे रामजी! उस समय बड़ा क्षोभ उदय हुआ और राक्षस, पिशाचादिक तामसी जीव मांस भोजन करते और रुधिर पान करते उत्साहक्रिया प्राप्तभई। जैसे मन्दराचल पर्वत से क्षीरसमुद्र को क्षोभ हुआथा तैसेही युद्ध संग्राम में योद्धाओं का क्षोभ हुआ और रुधिर का समुद्र चला उस में हस्ती, घोड़े, रथ और शूरमा तरङ्गों की नाईं उछलते दृष्टिआते थे। रथवालों से रथवाले; घोड़ेवालों से घोड़वाले; हस्तीवाले से हस्तीवाले और प्यादेसे प्यादे युद्धकरते थे। हे रामजी! जैसे प्रलयकाल की अग्नि में जीवजलते हैं तैसेही जो योद्धा रणभूमि में आवें सो नाशको प्राप्तहों। जैसे दीपक में पतङ्ग प्रवेश करताहै और जैसे समुद्रमें नदियां प्रवेश करतीहैं तैसेही रणभूमिमें दशोंदिशा केयोद्धा प्रवेशकरतेथे। किसीका शीश काटाजावे और धड़ युद्ध करे; किसीकी भुजा काटीजावें और किसीके ऊपर रथ चले जावें और हस्ती, घोड़े, उलट २ पड़ें और नाशहोजावें। हे रामजी! दोनों राजाओं की सहायता के निमित्त पूर्वदिशा, काशी, मद्रास, भीला, मालव, सकला, कवटा, किरात, म्लेच्छ, पारसी, काश्मीर, तुरक, पञ्जाब, हिमालयपर्वत, सुमेरुपर्वत इत्यादि के अनेक देशपाल, जिनके बड़े भुजदण्ड, बड़े केश और बड़े भयानकरूप थे, युद्ध के निमित्त आये। बड़ी ग्रीवावाले, एकटँगे, एकाचल, एकाक्ष, घोड़के मुखवाले, श्वान के मुखवाले और सुमेरु और कैलास के राजा और जितने कुछ पृथ्वी के राजा थे सो सबही आये। जैसे महाप्रलय के समुद्र उछलते हैं और दिशा स्थान जल से पूर्ण होतेहैं तैसेही सेना से सब स्थान पूर्णभये और दोनों ओर से युद्ध करने लगे। चक्रवाले चक्रवाले से और खड्ग, कुल्हाड़े, त्रिशूल, छुरी, कटारी, बरछी, गदा, बाणादिक शस्त्रों से परस्पर युद्ध करने लगे। एक कहै कि, प्रथम मैं जाताहूं,

दूसरा कहे कि, मैं प्रथम जाताहूं। हे रामजी! उसकाल में ऐसा युद्ध होनेलगा कि, कहनेमें नहीं आता। दौड़ दौड़के योद्धा रण में जावें और मृत्यु को प्राप्तहों। जैसे अग्नि में घृत की आहुति भस्म होतीहै तैसेही रण में योद्धा नाश को प्राप्तहोते थे। ऐसा युद्ध हुआ कि, रुधिर का समुद्र चला उसमें हस्ती, घोड़े, रथ और मनुष्य तृणों की नाईं बहतेथे और सम्पूर्ण पृथ्वी रक्तमय होगई। जैसे आंधीसे फल, फूल और वृक्ष गिरतेहैं तैसेही पृथ्वी पर कट २ शब्द करते शिर गिरते थे। हे रामजी! जो उस काल में युद्ध हुआ वह कहा नहीं जाता। सहस्रमुख शेषनाग भी उस युद्ध के कर्मों को सम्पूर्ण वर्णन न करसकेंगे तब और कौन कहेगा। मैंने वह संक्षेप से कुछ सुनाया है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेद्वन्द्वयुद्धवर्णनन्नामसप्तविंशतितमस्सर्गः॥२७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार युद्ध हुआतोसूर्य अस्त हुआ मानों उसकी किरणें भी शस्त्रों के प्रहारसे अस्तता को प्राप्तहुईं। तब विदूरथ ने सेनापति और मन्त्री को बुलाकर कहा कि, हे मन्त्रियो! अब युद्ध को शान्त करो क्योंकि; सूर्य अस्त भयाहै और योद्धा भी सब युद्ध करके थकेहैं। रात्रि को सब आराम करें दिन को फिर युद्ध करेंगे। इससे आज्ञा फेरो कि, अब युद्ध शान्त हो। तब मन्त्री ने दोनों सेना के मध्य में ऊंचे चढ़के वस्त्र फेरा कि, अब युद्ध को शान्तकरो; दिनको फिर युद्ध करेंगे। निदान दोनों सेनाओंने युद्ध का त्याग किया और अपनी २ सेना में नौबत नगारे बजाने लगे और राजा विदूरथ भी अपने गृह में आ स्थितभया। जैसे शरद-काल में मेघों से रहित आकाश निर्मल होताहै तैसेही रणमें संग्राम शान्त हुआ। रात्रि को राक्षस, पिशाच, गीदड़, भेड़िये और डाकिनी मांस का भोजन करने और रुधिर पान करने लगे। कितनों के शिर और अङ्ग कटगये पर जीतेथे और पड़े हाय २ करते थे वे निशाचरों को देखके डरने लगे और कितने लोगों ने भाई और मित्रों को देखा। हे रामजी! तब राजा विदूरथ ने स्वर्णके मन्दिर में जो फूलों सहित चन्द्रमा की नाईं शीतल और सुन्दर शय्या पर सब किवाड़ चढ़ाके विश्राम किया और मन्त्रियों के साथ विचार किया कि, प्रातःकाल उठके ऐसे करेंगे। ऐसे विचार करके राजा ने शयन किया पर एक मुहूर्त्त पर्यन्त सोया और फिर चिन्ता से जग उठा इधर इन दोनों देवियों ने आकाश से उतरके; जैसे सन्ध्याकाल में कमल के मुख मुंदते हैं और उनमें वायु प्रवेश करजाता है तैसेही मन्दिरों में सूक्ष्म परमाणु के मार्ग से प्रवेश किया। इतना सुन रामजीने पूछा; हे भगवन्! शरीर से परमाणु के रन्ध्र में देवियोंने कैसे प्रवेश किया वह तो कमल के तन्तु और बाल के अग्रसेभी सूक्ष्म होते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! भ्रान्तिसे जो आधिभौतिक शरीर हुआ है उस

अधिभौतिक शरीर से आपसे सूक्ष्मरन्ध्र में प्रवेश कोई नहीं करसक्ताहै परन्तु मन-रूपी शरीरको कोई नहीं रोकसक्ता । हे रामजी ! देवी और लीला का अन्तवाहक शरीर था उस से सूक्ष्म परमाणु के मार्गसे उनको प्रवेश करने में कुछ विचार न हुआ। जो उनका अधिभौतिक शरीर होता तो यत्नभी होता। जहां अधिभौतिक न हो वहां यत्न की शङ्का कैसे हो ? हे रामजी ! और भी सब शरीर चित्तरूपी हैं पर जैसा निश्चय अनुभव संवित् में होताहै तैसेही सिद्धता होतीहै अन्यथा नहीं होती। जिसके निश्चय में ये शरीरादिक आकाशरूप है उसको अधिभौतिकता का अनुभव नहीं होता और जिसके निश्चय में अधिभौतिकता दृढ़ होरही है उसको अन्तवाहकता का अनुभव नहीं होता। जिस पुरुष को पूर्वार्धका अनुभव नहीं उसको उत्तरार्ध में गमन नहीं होता—जैसे वायु का चलना ऊर्ध्व को नहीं होता, तिरछा स्पर्श होताहै; अग्नि का चलना अध को नहीं होता और जल का ऊर्ध्वको नहीं होता। जैसे आदि चेतन संवित् में प्रवृत्ति भईहै तैसेही अबतक स्थितहै। इससे जिसको अन्तवाहक शक्ति उदय भईहै उसको अधिभौतिकता नहीं रहती और जिसको अधिभौतिकता दृढ़ है उसको अन्तवाहक शक्ति उदय नहीं होती। हे रामजी ! जो पुरुष छाया में बैठाहो उसको धूप का अनुभव नहीं होता और जो धूपमें बैठाहै उसको छाया का अनुभव नहीं होता। अनुभव उसीको होताहै जिसके चित्त में दृढ़ता होती है अन्यथा किसी को कदाचित् नहीं होता। हे रामजी ! जैसा प्रमाण चित्तसंवित् में होता है तो जबतक और प्रतीति नहीं होती तबतक तैसेही सिद्धता होतीहै। जैसे रस्सी में भ्रमसे सर्प भासता है और मनुष्य भय से कंपायमान होता है; सो कंपना भी तबतक है जब-तक सर्प का अनुभव अन्यथा नहीं होता; जब रस्सी का अनुभव उदय होताहै तब सर्पभ्रम नष्ट होताहै; तैसेही जैसा अनुभव चित्त संवित् में दृढ़ होताहै उसीका अनु-भव होता है । यह वार्त्ता बालक भी जानता है कि, जैसी जैसी चित्तकी भावना होती है तैसाही रूप भासता है । निश्चय और हो और अनुभव और प्रकार हो ऐसा कदाचित नहीं होता । हे रामजी ! जिनको ये आकार स्वप्न संकल्पपुर की नाईं हुये हैं सो आकाशरूप हैं। जिनकोऐसा निश्चयहो उनको कोई रोक नहीं सक्ता। औरोंका भी चित्तमात्र शरीर है पर जैसा जैसा संवेदन दृढ़भया है तैसाही तैसा आपको जानताहै। हे रामजी ! आदि में सब कुछ आत्मा से स्वाभाविक उपजा है सो अकारणरूप है और पीछेसे प्रमाद से द्वैतकार्य अकारणरूप होके स्थित भया है। हे रामजी ! आकाश तीनहैं—एक चिदाकाश; दूसरा चित्ताकाश और तीसरा भूताकाश है। उनमें वास्तव एक चिदाकाश है और भावना करके भिन्न २ कल्पना हुई हैं। आदि शुद्ध अचेत, चिन्मात्र चिदाकाश में जो संवेदन फुरा है उसका नाम

चित्ताकाश है और उसीमें यह सम्पूर्ण जगत् हुआहै। हे रामजी! चित्तरूपी शरीर सर्वगत होकर स्थितभया है। जैसा जैसा उसमें स्पन्द होताहै तैसाही तैसा होके भासता है। जितने कुछ पदार्थ हैं उन सबों में व्यापरहा है; त्रसरेणु के अन्तर भी सूक्ष्मभाव से स्थितभया और आकाश के अन्तर भी व्यापरहाहै। पत्र फल उसीसे होते हैं; जल में तरङ्ग होके स्थितभयाहै; पर्वत के भीतर यही फुरता, मेघ होके भी यही वर्षता और जलसे बरफ भी यह चित्तही होताहै। अनन्त आकाश परमाणुरूप भीतर बाहर सर्वजगत् में यही है। जितना जगत्है वह चित्तरूपहीहै और वास्तव में आत्मा से अनन्यरूप है। जैसे समुद्र और तरङ्ग में कुछभेद नहीं तैसेही आत्मा और चित्त में कुछभेद नहीं। जिस पुरुष को ऐसे अखण्डसत्ता आत्मा का अनुभव हुआहै और जिसका सर्ग के आदि में चित्तही शरीर है और अधिभौतिकता को नहीं प्राप्तभया वह महाआकाशरूप है उसको पूर्व का स्वभाव स्मरणरहाहै इस कारण उसका अन्तवाहक शरीरहै। हे रामजी! जिस पुरुष को अन्तवाहकता में अहंप्रत्यय है उसको सब जगत् संकल्पमात्र भासता है वह जहां जाने की इच्छाकरताहै वहां जाताहै और उसको कोई आवरण नहीं रोकसक्ता। जिसको अधिभौतिकता में निश्चय है उसको अन्तवाहक शक्ति नहीं होती। हे रामजी! सबही अन्तवाहकरूप हैं और भ्रम से अनहोता अधिभौतिक देखतेहैं। जैसे मरुस्थल में जलभासता है और जैसे स्वप्न में बन्ध्याके पुत्रका सद्भाव होताहै तैसेही अधिभौतिक जगत् भासता है। जैसे जल शीतलता से बरफ होजाताहै तैसेही जीव प्रमाद से अन्तवाहक से अधिभौतिक शरीर होता है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! चित्तमें क्या है; कैसे होताहै और कैसे नहीं होता; यह जगत् कैसे चित्तरूप है और क्षणमें अन्यथा कैसे होजाता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! एक २ जीवप्रति चित्त होताहै। जैसा जैसा चित्त है तैसे ही तैसी शक्ति है। चित्त में जगत् भ्रम होताहै क्षण में कल्प और सम्पूर्ण जगत् उदय होआता है और क्षण में सम्पूर्ण लय होताहै। किसीको निमेष में कल्प होआता है और किसीको क्रमसे भासताहै सो मन लगाकर सुनिये। हे रामजी! जब मरनेकी मूर्च्छा होतीहै तो उस महाप्रलयरूप मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर नाना प्रकार का जगत् फुर आता है जैसे स्वप्न में सृष्टि फुरआती है और जैसे संकल्प का पुर भासताहै तैसे ही मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर सृष्टि भासती है जैसे महाप्रलय के अनन्तर आदि विराट्रूप ब्रह्मा होताहै तैसेही मृत्यु के अनन्तर इसको अनुभव होता है यह भी विराट् होता है क्योंकि; इसका मनरूपी शरीर होता है। रामजी बोले; हे भगवन्! मृत्यु के अनन्तर जो सृष्टि होती है वह स्मृति से होती है; स्मृति विना नहीं होती इसलिये मृत्यु के अनन्तर जो सृष्टि हुई तो सकारणरूप हुई? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी!

जब महाप्रलय होता है तब हरिहरादिक सबही विदेहमुक्त होते हैं। फिर स्मृति का सम्भव कैसेहो? हमसे आदि ले जो बोध आत्मा हैं जब विदेहमुक्त हुये हैं तब स्मृति कैसे सम्भव हो? अब के जो जीव हैं उनका जन्म मरण स्मृति कारण से होता है क्योंकि; मोक्ष नहीं होता-मोक्ष का उनको अभाव है। हे रामजी! जब जीव मरते हैं तब उन्हें मृत्यु मूर्च्छा होतीहै पर कैवल्यभाव में स्थित नहीं होते; मूर्च्छा से उनका संवित् आकाशरूप होताहै तिससे फिर चित्तसंवेदन फुर आताहै। तब उन्हें क्रम करके जगत् फुर आता है पर जब बोध होताहै तब तन्मात्रा और काल, क्रिया, भाव, अभाव स्थावर-जङ्गम जगत् सब आकाशरूप होजाताहै। जिसका संवेदन दृश्य की ओर धावता है उनको मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर अज्ञान संवेदन फुरता है उससे उन्हें शरीर और इन्द्रियां भासआती हैं। वह अन्तवाहक शरीर है परन्तु चिरकाल की प्राप्ति करके अधिभौतिक हो भासता है। तब देश, काल, क्रिया, आधार, आधेय उदय होकर स्थित होते हैं। जैसे वायु स्पन्द और निस्पन्दरूप है पर जब स्पन्द होता है तब भासता है और निस्पन्द हुयेसे नहीं भासता; तैसेही संवेदनसे जब जगत् भासता है तब जानता है कि, मैं यहां उपजाहूं। जैसे स्वप्न में अङ्गना के स्पर्श का अनुभव होताहै वह मिथ्या है तैसेही भ्रमसे जो आपको उपजा देखना है वहभी मिथ्या है। हे रामजी! जहां यह जीव मृतक होताहै वहीं जगत्भ्रम देखता है। वास्तव में जीवभी आकाशरूप है और जगत् भी आकाशरूप है। अज्ञान से जीव आपको उपजा मानता है और नाना जगत्भ्रम देखता है कि, यह नगर है; यह पर्वत है, ये सूर्य और चन्द्रमा हैं; ये तारागण हैं और जरा-मरण, आधि-व्याधि सङ्कट से व्याकुल होता है। वह भाव-अभाव, भय, स्थूल, सूक्ष्म, चर-अचर, पृथ्वी, नदियां, पर्वत, भूत-भविष्य-वर्त्तमान; क्षय-अक्षय और भूमि को भी देखता है और समझता है कि, मैं उपजाहूं, मैं अमुक का पुत्रहूं, यह मेरा कुल है; यह मेरी माता है; ये मेरे बांधव हैं; इतना धन हमको प्राप्तभया है इत्यादि अनेक वासनाजालों में दुःखी होता है और कहता है कि; यह सुकृत है और यह देहाकृत है; प्रथम मैं बालक था; अब मेरी यह अवस्था हुई और यह मेरा वर्ण है इत्यादिक अनेक जगत् कल्पना हरएक जीवको उदय होती है। हे रामजी! संसाररूपी एक वृक्ष उगा है; चित्तरूपी उसका बीज है; तारागण उसके फूल हैं और चञ्चल मेघ पत्र हैं। जङ्गम जीव, मनुष्य, देवता, दैत्यादिक पक्षी उसपर बैठनेवाले हैं और रात्रि उसके ऊपर धूर है; समुद्र उसकी तलावड़ी है; पर्वत उसमें शिलवट्ट हैं और अनुभवरूप अंकुर हैं। जहां जीव मरता है तहीं क्षण में ये सब देखता है। इसी प्रकार एक २ जीव को अनेक जगत् भासते हैं। हे रामजी! कितने कोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, पवन और

सूर्यादिक हुये हैं। जहां सृष्टि है वहीं ये होते हैं इससे चिद्अणु में अनेकसृष्टि हैं जीव भी अनन्त हुये हैं और उन्हों में सुमेरु, मण्डल, द्वीप और लोकभी बहुतेरे हुये हैं। जो चिद्अणु में ही सृष्टिका अन्त नहीं तो परब्रह्म में अन्त कहां से आवे? वास्तव में है नहीं; जैसे पर्वत की दीवार में शिल्पी पुतलियां कल्पे तो कुछ है नहीं तैसेही जगत् चिदाकाश में नहीं है केवल मनोमात्रही है। हे रामजी! मनन और स्मरण भी चिदाकाशरूप है और चिदाकाश में मनन और स्मरण है। जैसे तरङ्ग भी जलरूप हैं और जलही में होते हैं; जलसे इतर तरङ्ग कुछ वस्तु नहीं हैं; तैसेही मनन और स्मरण भी चिदाकाशरूप जानो। हे रामजी! दृश्य कुछ भिन्न वस्तु नहीं है; द्रष्टा ही दृश्य की नाईं होकर भासता है। जैसे मनाकाश नाना प्रकार हो भासता है; तैसेही चिदाकाश का प्रकाश नाना प्रकार जगत् होकर भासता है। यह विश्व सब चिदाकाशरूप है; हम को तो ऐसेही भासता है पर तुमको अर्थाकाररूप भासता है इसी कारण कहा है कि; लीला और सरस्वती आकाशरूप, सर्वज्ञ स्वच्छरूप और निराकार थीं। वे जहां चाहती थीं तहां जाय प्राप्त होती थीं और जैसी इच्छा करती थीं तैसी सिद्धि होतीथी क्योंकि; जिसको चिदाकाश का अनुभव हुआ है उसको कोई रोक नहीं सकता है। सर्वरूप होके जो स्थितहुआ उसे गृह में प्रवेश करना क्या आश्चर्य है। वह तो अन्तवाहकरूप हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेस्मृत्यनुभववर्णनन्नामाष्टा-विंशतितमस्सर्गः॥ २८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब दोनों देवियां जिनकी चन्द्रमा के समान कान्ति थी राजा के अन्तःपुर में संकल्प से प्रवेशकर सिंहासन पर स्थित भईं तो बड़ा प्रकाश अन्तःपुर में हुआ और शीतलता से व्याधि ताप शान्त हुआ। जैसे नन्दनवन होता है तैसेही अन्तःपुर होगया और जैसे प्रातःकाल में सूर्य का प्रकाश होता है तैसेही देवियों के प्रकाश से अन्तःपुर पूर्णभया; मानों देवियों के प्रकाश से राजा पर अमृत की सींचना हुई तब राजा ने देखा कि मानों सुमेरु के शृङ्ग से दो चन्द्रमा उदय हुये हैं। ऐसे देखके वह विस्मय को प्राप्तहुआ और चिन्तना की कि, ये देवियां हैं। इस-लिये; जैसे शेषनाग की शय्या से विष्णु भगवान् उठते हैं तैसेही उसने उठके और वस्त्रों को एक ओर करके हाथों में पुष्प लिये और हाथ जोड़के देवियों के चरणों पर चढ़ाये और माथा टेकके पद्मासन बांध पृथ्वीपर बैठगया और कहनेलगा; हे देवियो! तुम्हारी जय हो। तुम जन्म दुःख तप के शान्तकरनेवाले चन्द्रमा हो और अपूर्व सूर्य हो—अर्थात् पूर्व सूर्य के प्रकाश से बाह्यतम नष्ट होता है और तुम्हारे प्रकाश से अन्तर अज्ञानतम भी नष्ट होताहै; इससे अपूर्व सूर्य हो। इसके अनन्तर देवीने मन्त्री को जो

राजा के पास नदी के तट के फलों के वृक्षों के समान सोया था जन्म और कुल के कहा-वने के निमित्त संकल्प से जगाया और मन्त्री उठके फलों से देवियों का पूजन कर राजा के समीप जा बैठगया। तब सरस्वती कहनेलगीं; हे राजन्! तू कौन है; किसका पुत्र है और कबका तूने जन्म लिया है ? हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने पूछा तब मन्त्री, जो निकट बैठाथा, बोला; हे देवि! तुम्हारी कृपा से राजा का जन्म और कुल मैं कहताहूं । इक्ष्वाकुकुल में एक राजा हुआ था जिसके कमल की नाईं नेत्र थे और वह श्रीमान् था उसका नाम कुन्दरथ था। निदान उसका पुत्र बुधरथहुआ; बुधरथ के सिन्धु-रथ हुआ; उसका पुत्र महारथ हुआ; महारथ का पुत्र विष्णुरथ हुआ; उसका पुत्र कलारथ हुआ; कलारथ का पुत्र सयरथ हुआ; सयरथ का पुत्र नभरथ हुआ और उस नभरथ के बड़े पुण्य करके यह विदूरथ पुत्र हुआ। जैसे क्षीर समुद्र से चन्द्रमा निकला है तैसेही सुमित्रा माता से यह उपजा है। जैसे गौरीजी से स्वामिकार्त्तिक उत्पन्न भये हैं तैसेही यह सुमित्रा से उत्पन्न हुये हैं। हे देवि! इस प्रकार तो हमारे राजा का जन्म हुआ है। जब यह दश वर्ष का भया तब पिता इसको राज्य देकर आप वनको चला गया और उस दिन से इसने धर्म की मर्यादा से पृथ्वी की पालना की और बड़े पुण्य किये हैं। उन्हीं पुण्यों का फल तुम्हारा दर्शन अब इसको भया है। हे देवि ! जो तुम्हारे दर्शनके निमित्त बहुत वर्षों तप करते हैं उनको भी तुम्हारा दर्शन पाना कठिन है; इससे इसके बड़े पुण्य हैं कि, तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ। हे रामजी! इस प्रकार कहके जब मन्त्री तूष्णी हुआ तब देवीजी ने कृपा करके राजा विदूरथ के शीश पर हाथ रखकर कहा; हे राजन्! तुम अपने पूर्वजन्मको विवेकदृष्टि करके देखो कि, तुम कौन हो ? देवी के हाथ रखने से राजा के हृदय का अज्ञानतम निवृत्त होगया; हृदय प्रफुल्लित हुआ और देवी के प्रसाद से राजाको पूर्वकी स्मृति फुरआई। लीला और पद्म का सम्पूर्ण वृत्तान्त स्मरण करके कहने लगा हे देवि! बड़ा अचरज है कि, यह जगत् मन से रचा है। यह मैंने तुम्हारे प्रसाद से जाना कि, मैं राजा पद्म था और लीला मेरी स्त्री थी । मुझको मृतक हुये एक दिन ऐसे में भासा और यहां मैं सौ वर्ष का भया हूं सो अबतक भ्रम से मैंने नहीं जाना; अब प्रत्यक्ष जानता हूं । सौ वर्षोंमें जो अनेक कार्य मैंने किये हैं वह सब मुझको स्मरण होते हैं और अपने प्रपितामह और अपनी बाल्यावस्था व यौवन अवस्था, मित्र और बान्धव भी स्मरण आते हैं—यह बड़ा आश्चर्य हुआहै। सरस्वती बोली; हे राजन्! जब जीव मृतक होते हैं तब उनको बड़ी मूर्च्छा होती है। उस मूर्च्छा के अनन्तर और २ लोक भास आते हैं और एक मुहूर्त्त में वर्षों का अनुभव होता है। जैसे स्वप्न में एक मुहूर्त्त में अनेक वर्षों का अनुभव होताहै तैसेही तुझको मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर यह

लोक भ्रम भासा है। हे राजन्! जहां तुम पद्मराजा थे उस गृह में मृतक हुये तुमको एकमुहूर्त्त बीता है और यहां तुमको वहुतेरे वर्षों का अनुभव हुआहै। इससे भी जो पिछला वृत्तान्त है वह सुनिये। हे राजन्! पहाड़ के ऊपर एक ग्राम था उसमें एक वशिष्ठ ब्राह्मण रहता था और अरुन्धती उसकी स्त्री थी। वह दोनों मन्दिर में रहते थे। अरुन्धती ने मुझसे वर लिया कि, जब मेरा भर्त्ता मृतक हो तब उसका जीव इसही मण्डपाकाश में रहे। निदान जब वह मृतक हुआ तब उसकी पुर्यष्टक उसही मन्दिर में रही पर उसके संवित् में राजा की दृढ़वासना थी इसलिये उस मण्डपाकाश में उसको पद्मराजा की सृष्टि फुरआई और अरुन्धती उसकी स्त्री लीला होकर उसको प्राप्तभई। राजा पद्मका मण्डप उस ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित हुआ और फिर उस मण्डप में जब तू राजा पद्म मृतक हुआ तब तेरे संवित् में नाना प्रकार के आरम्भसंयुक्त यह जगत् फुर आया। हे राजन्! यह तेरा जगत् पद्मराजा के हृदय में फुर आया है और पद्मराजा के मण्डपाकाश में स्थित है पद्मराजा का जगत् उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है और वही वशिष्ठ ब्राह्मण तुम विदूरथ राजा हुये हो। हे राजन्! यह सब जगत् प्रतिभामात्र है और मनकी कल्पना से भासता है—उपजा कुछ नहीं। इतना सुन विदूरथ बोले, बड़ा आश्चर्य है कि, जैसे मेरा यह जन्म भ्रमरूप हुआ तैसेही इक्ष्वाकु का कुल और मेरे माता पिता सब भ्रमरूप हुये हैं तिसमें मैं जन्म लेके बालक हुआ और जब दशवर्ष का था तब पिताने मुझको राज्य देके वनवास लिया। फिर मैंने दिग्विजय करके प्रजा की पालना की और शतवर्षों का मुझ को अनुभव होता है। फिर मुझको दारुण अवस्था युद्धकी इच्छा हुई है और युद्ध करके रात्रिको मैं गृहमें आया। अब तुम दोनों देवियां मेरे गृह में आईं और मैंने तुम्हारी पूजाकी तब तुम दोनों में से एक देवी ने कृपा करके मेरे शीश पर हाथ रक्खा है उसी से मुझको ज्ञान प्रकाश भया है। जैसे सूर्य के प्रकाश से कमल प्रफुल्लित होता है तैसेही मेरा हृदय देवी के प्रकाश से प्रफुल्लित भया है। इनकी कृपासे मैं कृतकृत्य हुआ और अब मेरा सब सन्ताप नष्ट होकर निर्वाण, समता, सुख और निर्मलपद को प्राप्त हुआहूं। सरस्वती बोली; हे राजन्! जो कुछ तुझको भासा है वह भ्रममात्र है और नाना प्रकार के व्यवहार और लोकान्तर भी भ्रममात्र हैं क्योंकि; वहां तुझको मृतक हुये अभी एकमुहूर्त्त व्यतीत हुआ है और इसी अनन्तर में उसी मण्डपआकाश में तुझको यह जगत् भासा। पद्मराजा की यह सृष्टि ब्राह्मण के मण्डप में स्थित है और यहां तुझको नदियां, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत सम्पूर्ण जगत् भासि आये हैं। हे राजन्! मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर कभी यही जगत भासता है, कभी और प्रकार भासता है और कभी पूर्व—

अपूर्व भी भासता है । यह केवल मनकी कल्पना है पर वास्तव में असत्‌रूप है और अज्ञान से सत् की नाईं भासता है । जैसे एकमुहूर्त्त शयन करके स्वप्न में बहुतेरे वर्षों का क्रम देखता है; तैसेही जगत् का अनुभव होता है । जैसे संकल्पपुर में अपना जीना, मरना और गन्धर्वनगर भ्रममात्र होता है; जैसे नौका में बैठेहुये मनुष्य को तटके वृक्ष चलतेहुये भासते हैं भ्रमण करने से पर्वत, पृथ्वी और मन्दिर भ्रमते भासते हैं और स्वप्न में अपना शिर कटा भासताहै तैसेही यह जगत् भ्रम से भासता है । हे राजन्! अज्ञान से तुझको मिथ्या कल्पना उपजी है; वास्तव में न तू मृतक हुआ और न तूने जन्मलिया तेरा अपना आप जो शुद्ध विज्ञान शान्तिरूप आत्मपद है उसी में स्थित है । नाना प्रकार का जगत् अज्ञान से भासता है और सम्यक्‌ज्ञान से सर्वात्मसत्ता भासती है । आत्मसत्ताही-जगत् की नाईं भासती है । जैसे बड़ी मणि की किरच नाना प्रकार हो भासती है सो वह मणि से भिन्न नहीं; तैसेही आत्मसत्ता का किञ्चन आकाशरूप जगत् भासता है । गिरि और ग्राम और किञ्चनरूप हो जितना जगत् विस्तार तुमको भासताहै वह लीला और पद्मराजा के मण्डपाकाश में स्थित है और लीला और पद्म की राजधानी उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थितहै । हे राजन्! यह जगत् वशिष्ठ ब्राह्मण के हृदय मण्डपाकाशमें फुरताहै । वह मण्डपाकाश जो आकाश में स्थित है उसमें न पृथ्वी है न पर्वत हैं । न मेघ हैं; न समुद्रहैं और न कोई मुमुक्षु है । केवल शून्य शून्यस्थित है और न कोई जगत् है, न कोई देखनेवाला है—यह सब भ्रान्तिमात्र है । हे राजन्! यह सब तेरे उस मण्डपाकाश में फुरते हैं । विदूरथ बोले; हे देवि ! जो ऐसे हैं तो यह मेरे भृत्य भी अपने आत्म में सत् हैं वा असत् हैं कृपा कर कहिये ? देवी बोली, हे राजन् ! विदित वेद जो पुरुष है वह शुद्ध बोधरूप है । उसको कुछ भी जगत् सत्यरूप नहीं भासता; सब चिदाकाशरूपही भासता है । जैसे भ्रम निवृत्त हुये रस्सी में सर्प नहीं भासता; तैसेही जिन पुरुषों को आत्मबोध हुआ है और जिनका जगत् भ्रम निवृत्त हुआ है उनको जगत् सत् नहीं भासता जैसे सूर्य की किरणों में जलको असत् जाने तो फिर जल-सत्ता नहीं भासती; तैसेही जिनको आत्मबोध हुआ है और जगत् को असत् जानते हैं उनको सत् नहीं भासता । हे राजन् ! जैसे स्वप्न में कोई भ्रम से अपना शीश कटा देखे और जागे से स्वप्न का मरना नहीं देखता तैसेही ज्ञानवान् को जगत् सत् नहीं भासता । जैसे स्वप्न का मरना भ्रम से देखता है तैसेही अज्ञानी को जगत् सत् भासता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं शुद्ध बोध में जगत् भ्रम भासता है । जैसे शरत्काल में मेघ से रहित शुद्ध आकाश होता है तैसेही शुद्धबोधवालों को अहंत्वं आदिक व्यर्थशब्द का अभाव होताहै । हे राजन् ! तुम और तुम्हारे भृत्य इत्यादिक

जो यह सृष्टि है वह सब आत्मा में फुरे हैं और वास्तव में कुछ नहीं हुआ। केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और भ्रम से और कुछ भासता है पर शुद्धविज्ञान घनरूप ही उसका शेष रहता है। इतना कहकर बाल्मीकि जी बोले कि इसप्रकार जब देवी और विदूरथ का संवाद वशिष्ठजी ने रामजी से कहा तब सूर्य अस्त होकर सायंकाल का समय हुआ और सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई जब रात्रि बीतगई सूर्य की किरणों के निकलतेही सब अपने २ स्थानों पर आके बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेभ्रान्तिविचारोनामैकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष अबोध हैं अर्थात् परमपद में स्थित नहीं हुये उनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ़ है। जैसे मूर्ख बालक को अपनी परछाहीं में बैताल भासताहै तैसेही अज्ञानी को असत्‌रूप जगत् सत् हो भासताहै और जैसे मरुस्थल में मृग को असत्‌रूप जलाभास सत्यहो भासता है; स्वप्ने में क्रिया अर्थभ्रम करके भासती है; जिसको सुवर्णबुद्धि नहीं होती उसको भूषणबुद्धि सत् भासती है और जैसे नेत्र दूषणसे आकाश में मुक्तमाला भासती हैं तैसेही असम्यक्‌दर्शी को असत्‌रूप जगत् सत् हो भासता है। हे रामजी! यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्ना है; अहन्ता से दृढ़ जाग्रत्‌रूप हो भासताहै और वास्तव में कुछ उपजा नहीं परमचिदाकाश सर्वदा शान्ति और अचिन्त्य चिन्मात्रस्वरूप सर्वशक्ति सर्व आत्माही है; जहां जैसा स्पन्द फुरता है वैसाही जगत् होकर भासता है। जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है वह स्वप्नभ्रम चिदाकाश में स्थित है। उस चिदाकाश में एक स्वप्नपुर फुरता है और वही द्रष्टा हो दृश्य को देखता है। वह द्रष्टा और दृश्य दोनों चेतन संवित् में आभासरूप हैं तैसेही यह जगत् भी आभासरूप है। हे रामजी! सर्ग की आदि जो शुद्ध आत्मसत्ता थी उसमें आदि संवेदन स्पन्द हुआहै—वही ब्रह्माजी हैं और उसी के संकल्प में यह संपूर्ण जगत् स्थित है। यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्न की नाईं है; उस स्वप्नरूप में तुम्हारा सद्भाव हुआ है। जैसे तुम हो तैसेही और भी हैं। जैसे स्वप्ने में स्वप्ननर को और स्वप्ना हो और जैसे स्वप्ननगर वास्तव सत् नहीं होता तैसेही यह जगत् भी जो दृष्टि आता है भ्रममात्र है। जैसे स्वप्ने में असत्‌ही सत होके भासता है तैसेही यह भी अहंत्वं आदिक भासते हैं और जैसे स्वप्ने में सब कर्म होते हैं तैसेही यहभी जानों। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! स्वप्न से जब मनुष्य जागताहै तब स्वप्न के पदार्थ उसे असत्‌रूप हो भासते हैं पर ये तो ज्योंके त्यों रहते हैं और जब देखिये तब ऐसेही हैं; फिर आप जाग्रत् और स्वप्न को कैसे समान कहते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसा स्वप्न है वैसेही जाग्रत् है; स्वप्न और जाग्रत् में कुछ भेद नहीं। स्वप्न को भी असत् तब जानता है जब जागता है; जबतक जागा नहीं तबतक असत् नहीं

जानता; तैसेही मनुष्य भी जबतक आत्मपद में नहीं जागता तबतक असत् नहीं भासता और जब आत्मपदमें जागताहै तब यह जगत्भी असत्रूप भासताहै। हे रामजी! यह जगत् असत्रूप है और भ्रम से सत् की नाईं भासता है । जैसे स्वप्ने की स्त्री असत्रूप होती है और उसको पुरुष सत्रूप जानता है; तैसेही यह जगत् भी असत्रूप सत् हो दिखाई देताहै। केवल आभासरूप जगत्है और आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदा अद्वैतरूप है, जहां जैसा चिन्तता है वहां वैसेही होके भासता है। जैसे डिब्बे में अनेक रत्न होते हैं उसमें जिसको चाहता है लेता है; तैसेही सर्वगत चिदाकाश है जहां जैसा चिन्तता है वहां वैसा हो भासता है। हे रामजी! अब पूर्व का प्रसङ्ग सुनो जब देवी ने विदूरथ पर अमृत के समान ज्ञानवचनों की वर्षा की तब उसके हृदय में विवेकरूप सुन्दर अंकुर उत्पन्न हुआ तब सरस्वतीने कहा; हे राजन्! जो कुछ कहना था वह मैं तुमसे कहचुकी। अब तुम रणसंग्राम में मृतक होगे—यह मैं जानती हूं। अब हम जाती हैं; लीलादि को देखाने के लिये हम आईथीं सो सब दिखाचुकीं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार मधुरवाणी से सरस्वती ने कहा तब बुद्धिमान् राजा विदूरथ बोला। हे देवि! बड़ेका दर्शन निरर्थक नहीं होता वह तो महाफल देनेवाला है। हे देवि! जो अर्थी मेरे पास आताहै उसे मैं निरर्थक नहीं जानेदेता और सब का अर्थ पूरा करता हूं। तुम तो साक्षात् ईश्वरी हो इसलिये मुझे यह वर दो कि, देहको त्यागकर मैं लोकान्तर में पद्म केशव में प्राप्त होऊं और मेरे मन्त्री और लीला भी मेरे साथ हों। हे देवि! जो भक्त शरण में प्राप्त होता है उसको बड़े लोग त्याग नहीं करते बल्कि उसके सर्व अर्थ सिद्ध करते हैं। सरस्वती बोली हे राजन्! ऐसेही होगा। तू पद्मराजा के शरीर में प्राप्त होगा और बोधसहित निश्शङ्क होकर राज्य करेगा। हमारी आराधना किसीको व्यर्थ नहीं होती जैसी कामना करके कोई हमको सेवताहै तैसेही फलको प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेस्वप्नपुरुषसत्यता वर्णनं नामत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३०॥

सरस्वती बोली; हे राजन्! अब तुम रण में मृतक होके पूर्वके पद्मराजा के शरीर में प्राप्त होगे और यह तुम्हारी भार्या और मन्त्रीभी तुम्हें वहां प्राप्त होंगे। हे राजन्! तुम ऐसे चले जावोगे जैसे वायु चलीजाती है। जैसे अश्व और खर; मृग और ऊंट हाथी का संग नहीं करते तैसेही तुम्हारा हमारा क्या संग है—इससे हम जाती हैं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार देवीने कहा तब एक पुरुष ने आकर कहा; हे राजन्! जैसे प्रलयकाल में मन्दराचल और अस्ताचल आदिक पर्वत वायु से उड़ते हैं तैसेही शत्रु चले आते हैं और चक्र गदा आदिक

शस्त्रों की वर्षा करते हैं। जैसे महाप्रलय में सब स्थान जलसे पूर्ण होजाते हैं तैसेही सेनासे सब स्थान पूर्ण हुये हैं और उन्होंने अग्नि भी लगाई है उससे स्थान जलने लगे हैं। वे शब्द करते हैं और नदी के प्रवाह की नाईं बाण चले आते हैं। अग्नि ऐसी लगी है जैसे महाप्रलय की बड़वाग्नि समुद्र को सोखती है। तब दोनों देवियां और राजा और मन्त्री ऊंचे चढ़के और झरोखे में बैठके क्या देखने लगे कि, जैसे प्रलयकाल में मेघ चले आते हैं तैसेही सेना चली आती है और जैसे प्रलय की अग्नि से दिशा पूर्ण होती हैं तैसेही अग्नि की ज्वाला से सब दिशा पूर्ण हुई हैं और उससे ऐसी चिनगारियां उड़ती हैं मानों तारागण गिरते हैं और अङ्गारों की वर्षा होती है उससे जीव जलते हैं सुन्दर स्त्रियां जो नाना प्रकार के भूषणों से पूर्ण थीं वह तृणों की अग्नि में जलती हैं और पुरुषों की देह और वस्त्रभी जलते हैं। सब हाय२ शब्द करते हैं और जलते २ बांधव, पुत्र और स्त्रियों को ढूंढ़ते हैं। हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि, ऐसे स्नेहसे जीव बांधे हुये हैं कि, मृत्युकाल में भी स्नेह नहीं त्याग सके पर सेना के लोग दूसरे लोगों को मारके स्त्रियों को लेजाते हैं। हे रामजी! उस काल रणभूमि का में चहुँओर शब्द छागया; कोई कहता था हाय पिता; कोई कहता था हाय माता; हाय भाई, हाय पुत्र, हाय स्त्री। घोड़े, गौ, बैल, ऊंट आदिक पशु इकट्ठे मिलगये और अग्नि की ज्वाला वृद्धि होतीजाती है और बड़ा क्षोभ उदय हुआ। जैसे महाप्रलय की अग्नि होती है तैसेही सब स्थान अग्नि से पूर्ण हुये और उनमें अनेक जीव और स्थान दग्ध होने लगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेअग्निदाहवर्णनंनामैक-
त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार राजा नगर को देखताथा कि, लीला सहेलियों सहित अपने दूसरे स्थान से जहां राजा विदूरथ था आई; उसके महासुन्दर भूषण कुछ टूटे हुये और कुछ शिथिल थे। एक सहेलीने कहा; हे राजन्! तुम्हारे अन्तःपुर में जो स्त्रियां थीं उन्हें शत्रु ले गये हैं पर इस लीलारानी को हम बड़े यत्न से चुराकर लेआई हैं; और दूसरे लोगों को उन शत्रुओंने बड़ा कष्ट दिया है। तुम्हारे द्वार पर जो सेना बैठी है उसको भी वह चूर्ण करते हैं और समस्त नगर को जलाकर लूटलियाहै। हे रामजी! जब इस प्रकार सहेली ने राजासे कहा तब राजाने सरस्वती जी से कहा; हे देवी जी! यह लीला तुम्हारी शरण आई है और तुम्हारे चरणकमलों की भ्रमरी है; इसकी रक्षा करो और मैं अब युद्ध करने जाताहूं। जब इस प्रकार कहकर राजा क्रोधसंयुक्त युद्ध करने को रण की ओर मत्तहाथी के समान चला तब देवी के साथ जो प्रथम लीला थी उसने क्या देखा कि, उस लीला का अपनीही मूर्त्ति

सा सुन्दर आकार है। जैसे आरसी में प्रतिबिम्ब होता है तैसेही देखके कहने लगी; हे देवि! इसमें मैं क्योंकर प्राप्त हुई? जब मैं प्रथम आई थी तब तो मुझको मन्त्री, टहलुये और अनेक पुरवासी दीखते थे और वह संशय मैंने तुम से निवृत्त कियाथा; फिर अब मैं इस प्रकार कैसे आन स्थित हुई? यह दृश्यरूप कैसा आदर्श है जिस के भीतर बाहर प्रतिबिम्ब होताहै? यह मन्त्री और टहलुये और मेरा यह स्वरूप क्या है और दृश्यभाव हो क्योंकर भासता है? मेरा यह संशय दूर करो। देवी बोली; हे लीले! जैसे चित्त संवित् में स्पन्द फुरताहै तैसेही ततकाल सिद्ध होताहै। जिस अर्थ को चिन्तन करनेवाला चित्तसंवित् शरीर को त्यागताहै उसी अर्थ को प्राप्तहोता है और उसी क्षण में देश, काल और पदार्थ की दीर्घता होती है। जैसे स्वप्न सृष्टि फुर आती है तैसेही परलोक सृष्टि भासआती है। हे लीले! जब तेरा भर्त्ता मृतक होनेलगा था तब तुझ में और मन्त्रियों में इसका बहुत स्नेह था इससे वही रूप सत्होकर अपनी वासना के अनुसार उसे भासा है जैसे सङ्कल्पपुर और स्वप्नसेना भासती है तैसेही यह "देश, काल और पदार्थ" भासे हैं। हे लीले! जो कोई असत् पदार्थ सत् रूप होकर भासते हैं वह अज्ञानकाल में ही भासते हैं, ज्ञानकाल में सब तुल्य होजाते हैं, न्यूनाधिक कोई नहीं रहता; जाग्रत् में स्वप्न मिथ्या भासता और स्वप्न में जाग्रत् का अभाव होजाता है। जाग्रत् शरीर मृतक में नाश होजाता है; मृतकजन्म में असत् होजाताहै और मृतक में जन्म असत् होजाता है। हे लीले! जब इस प्रकार इनको विचारकर देखिये तो सब अवस्था भ्रान्तिमात्र हैं; वास्तव में कोई सत्य नहीं। हे लीले! सर्ग से आदि महाप्रलयपर्यन्त कुछ नहीं हुआ। सदा ज्यों की त्यों ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है; जगत् कल्पना आभासमात्र है और अज्ञान से भासता है जैसे आ-काश में तरुवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भ्रम से भासता है और वास्तव में कुछभी नहीं है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर लीन होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् उपजकर लीन होतेहैं। इससे 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्द भ्रान्तिमात्र हैं। हे लीले! यह जगत् मृगतृष्णा के जलवत् है। इसमें आस्था करनी अज्ञानता है और भ्रान्ति भी कुछ नहीं। जैसे घनतम में यक्ष भासताहै पर वह यक्ष कोई वस्तु नहीं है; ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है; तैसेही भ्रान्तिभी कुछ वस्तु नहीं। जन्म मृत्यु और मोह सब असत्-रूप हैं। 'अहं' 'त्वं' आदिक जितने शब्द हैं उनका महाप्रलयमें अभाव होजाताहै; उसके पीछे जो शुद्ध शान्तरूप है अबभी वही जान कि, ज्यों की त्यों ब्रह्मसत्ता है। हे लीले! यह जो पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं सोभी संवित्रूप हैं क्योंकि; जब चित्त संवित् स्पन्दरूप होता है तब यह जगत् होके भासता है और इसीकारण संवित्रूप है। हे लीले! जीवरूपी समुद्रमें जगत्रूप तरङ्ग उत्पन्न होते हैं और लीन

भी होते हैं पर वास्तव में जलरूप हैं; और कुछ नहीं। जैसे अग्नि में उष्णता होती है तैसेही जीव में सर्ग है। जो ज्ञानवान् है उसको सर्वात्मा भासता है और अज्ञानी को भिन्न २ कल्पना होती है। हे लीले ! जैसे सूर्य की किरणों में त्रसरेणु भासते हैं पवन में स्पन्द होता है और उसमें सुगन्ध होती है सो सब निराकार हैं; तैसेही जगत् भी आत्मा में निर्वपु है। भाव-अभाव; ग्रहण-त्याग; सूक्ष्म-स्थूल; चर-अचर इत्यादिक सब ब्रह्म के अवयव हैं। हे लीले ! यह जगत् जो साकाररूप भासता है सो आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे वृक्ष के अङ्ग पत्र, फल, टासरूप हो भासते हैं; तैसेही ब्रह्मसत्ताही जगत्रूप होकर भासती है और कुछ नहीं। जैसे चेतन संवित् में जैसा स्पन्द फुरता है तैसेही होकर भासता है पर वह आकाशरूप संवित् ज्योंकी त्यों है उस में और कल्पना भ्रममात्र है। हे लीले ! यह तो जगत् भासता है वह न सत् है और न असत् है। जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प भासता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। जिसको असम्यक्ज्ञान होता है उसको रस्सी में सर्प भासता है तो वह असत् न हुआ और जिसको सम्यक् बोध होता है उसको सर्प सत् नहीं। ऐसेही अज्ञान से जगत् असत् नहीं भासता और आत्मज्ञान हुये सत् नहीं भासता क्योंकि; कुछ वस्तु नहीं है। हे लीले ! जैसे जिस के अन्तःकरण में स्पन्द फुरता है उसका वह अनुभव करता है। जब यह जीव मृतक होता है तब इसको एक क्षण में जगत् फुर आता है किसी को अपूर्वरूप फुर आता है; किसी को पूर्वरूप फुरआताहै और किसी को पूर्व-अपूर्व मिश्रित फुर आता है। इस कारण तेरे भर्त्ताको भी वही मन्त्री, स्त्री और सभा वासना के अनुसार फुरआये हैं क्योंकि; आत्मा सर्वत्ररूपहै; जैसा २ इसमें तीव्र स्पन्द फुरता है तैसाही होकर भासता है। हे लीले ! जैसे अपने मनोराज में जो प्रतिभा उदय हो आती है वह सत्रूप हो भासती है; तैसेही यह जो लीला तेरे सन्मुख बैठी है सो यही हुई है और तेरे भर्त्ता की जो तेरे में तीव्रवासना थी इससे उसको तेरा प्रतिबिम्बरूप होकर यह लीला प्राप्त हुई और तेरासा शील, आचार, कुल, वपु इस को प्रतिबिम्बित हुआहै। हे लीले ! सर्वगत संवित् आकाशहै। जैसा २ उसमें फुरना होता है तैसाही २ चिद्रूप आदर्श में प्रतिबिम्ब भासता है। इस सब जगत् का चेतन दर्पण में प्रतिबिम्ब होता है; वास्तव में तू और मैं, जगत्, आकाश, भवन, पृथ्वी, राजा आदिक सब आत्मरूप हैं। आत्माही जगत्रूप हो भासता है। जैसे बिल्लीसे मज्जा भिन्न नहीं तैसेही यह जगत् ब्रह्मस्वरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेअग्निदाहवर्णनंनाम द्वात्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३२॥

देवी बोली, हे लीले ! तेरा भर्त्ता राजा विदूरथ रणमें संग्राम करके शरीर त्यागेगा

और उसी अन्तःपुरमें प्राप्तहोकर राज्यकरेगा। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हेरामजी! जब इस प्रकार देवीने कहा तब विदूरथ के पुरवाली लीला ने हाथ जोड़ के देवी को प्रणाम किया और कहा; हे देवि! भगवति! मैंने ज्ञप्तिरूप का नित्य पूजन किया और उसने स्वप्न में मुझको दर्शन दिया। जैसे वह ईश्वरी थी तैसेही तुमभी मुझको दृष्टि आती हो। इससे मुझपर कृपा करके मनवाञ्छित फलदो। तब देवी अपनेभक्त पर प्रसन्न होकर बोली; हे लीले! तू ने अनन्य होकर मेरी भक्ति की है और उससे तेरा शरीर भी जीर्ण होगया है; अब मैं तुझपर प्रसन्न हूं जो कुछ तुझको वाञ्छितहो वह वर मांग! लीला बोली; हे भगवति! जब मेरा भर्त्ता रणमें देहत्यागदे तो मैंइसी शरीर से उसकी भार्या होऊं! देवी बोली तूने भावनासहित भली प्रकार पुण्यादिकों से निर्विघ्न मेरी सेवा की है इससे ऐसाही होगा। तब पूर्व लीला ने कहा हे देवि! तुम तो सत्यसंकल्प, सत्यकाम और ब्रह्मस्वरूपहो, मुझको उसी शरीर से तुम विदूरथ के गृह में वशिष्ठ ब्राह्मण की सृष्टि में मुझे क्यों न लेगईं? देवी बोली, हे लीले! मैं किसी का कुछ नहीं करती। सब जीवों के संकल्पमात्र देह हैं और मैं ज्ञप्तिरूप हूं। एक एक जीव के अन्तर चेतनमात्र देवता होकर मैं स्थित हूं; जो जो जीव जैसी२ भावना करता है तैसीही तैसी उसको सिद्धता होती है। हे लीले! जब तूने मेरा आराधन किया था तब तूने यह प्रार्थना की थी कि, मेरे भर्त्ता का जीव इसी आकाशमण्डप में रहे और मुझको ज्ञान की भी प्राप्ति हो। उसीके अनुसार मैंने तुझको ज्ञान का उपदेश दिया और तुझको ज्ञानप्राप्त भया। इसी निमित्त तूने पूजनकिया था इससे तुझको यही प्राप्तहुआ है कि, देहसहित भर्त्ता के साथ जावेगी। जैसा२ चित्त संवित् में स्पन्द दृढ़ होता है तैसीही तैसी सिद्धता होती है। हे लीले! जो तप करते हैं उनकी दृढ़ता से चिदात्माही देवतारूप होके फलको देतेहैं। जैसे २ संकल्पकी तीव्रता किसीको होतीहै चेतनसंवित् से उसको वैसाही फल होता है। चित्तसंवित् से भिन्न किसी से किसीको कदाचित् कुछ फल नहीं प्राप्त होता। आत्मा सर्वगत और सर्वके अन्तःकरण में स्थित है। जैसे उसमें चैत्यता का यत्न होता है उसको वैसाही शुभाशुभ भाव प्राप्तहोता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसत्यकामसंकल्पवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशस्सर्गः॥३३॥

रामजी बोले, हे भगवन्! राजा विदूरथ जब देवीसे कहकर संग्राम में गया तो उस ने वहां क्या किया? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब राजा गृह से निकला तो तारों में चन्द्रमा के सदृश सम्पूर्ण सेनासे सुशोभित हुआ और रथपर आरूढ़ होकर सभा-सहित संग्राममें आया। वह रथ मोती और माणिकों से पूर्ण था और उसमें आठ घोड़े लगे थे जो वायुसे भी तीक्ष्ण चलते थे और उसमें पांच ध्वजा थीं। उस रथपर आरूढ़ हो राजा इसभांति संग्राम में आया जैसे सुमेरु पर्वत पक्षों से समुद्र में जा

पड़े। तब जैसे प्रलयकाल में समुद्र इकट्ठे होजाते हैं वैसेही दोनों सेना इकट्ठी हो गईं और बड़ा युद्ध होने लगा और मेघों की नाईं योधों के शब्द होने लगे। जैसे मेघ से बूंदों की वर्षा होती है और अग्नि से चिनगारियां निकलती हैं तैसेही शस्त्रों की वर्षा होने लगी। जैसे प्रलयकाल की बड़वानल अग्नि होती है तैसेही शस्त्रों से अग्नि निकलती थी और उन शस्त्रों से अनेक जीव मरे। इसप्रकार जब बड़ा युद्ध होनेलगा तब विदूरथ की सेना कुछ निर्बल हुई और ऊर्ध्व में जो दोनों लीला देवी की दिव्य दृष्टि से देखती थीं उन्होंने कहा; हे देवि! तुमतो सर्व शक्तिमान् हो और हमारे पर तुम्हारी दया भी है हमारे भर्त्ता की जय क्यों नहीं होती इसका कारण कहो? देवी बोली; हे लीले! विदूरथ के शत्रु राजा सिद्ध ने जयके निमित्त चिरकाल पर्यन्त मेरी पूजा की है और तुम्हारे भर्त्ता ने जयके निमित्त पूजा नहीं की मोक्ष के निमित्त की है इससे जीत सिद्धराजा की होगी और तेरे भर्त्ता को मोक्ष की प्राप्ति होगी। हे लीले! जिस २ निमित्त कोई हमारी सेवा करता है हम उसको वैसाही फल देतीहैं। इससे राजा सिद्ध विदूरथ को जीतकर राज्य करेगा। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! फिर सेना को सब देखनेलगीं और दोनों राजों का परस्पर तीव्र युद्ध होनेलगा दोनों राजों ने ऐसे बाण चलाये मानों दोनों विष्णु हो खड़े हैं। विदूरथ ने एकबाण चलाया उस के सहस्र होगये और उसके आगे जाकर लाख होगये और परस्पर युद्धकरते २ टुकड़े टुकड़े होके गिरपड़े। ऐसे दूरसे दूर बाण चले जातेथे कि, जैसे निर्वाण किया दीपक नहीं भासता। तब राजा सिद्धने मोहरूपी अस्त्र चलाया और उसके आनेसे विदूरथ के सिवा सब सेना मोहित हुई। जैसे उन्मत्तता से कुछ सुधि नहीं रहती तैसेही उनको कुछ सुधि न रही और परस्पर देखतेही रहगये मानो चित्र लिखे हैं। तब राजा विदूरथ को भी मोह का आवेश होने लगा तो उसने प्रबोधरूपी शस्त्रचलाया उससे सब का मोह छूटगया और जैसे सूर्य के उदयहुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं तैसेही सब के हृदय प्रफुल्लित होगये। तब सिद्ध राजा ने नागास्त्र बाण चलाया उससे अनेक ऐसे नाग निकल आये मानों पर्वत उड़े आते हैं। निदान सबदिशा नागों से पूर्ण होगईं और उनके मुखसे विष और अग्नि की ज्वाला निकली जिससे विदूरथ की सेना ने बहुत कष्ट पाया तब राजा विदूरथ ने गरुड़ास्त्र चलाया उससे अनेक गरुड़ प्रकट हुये और जैसे सूर्य के उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही सर्प नष्टहुये और नागों को नष्ट करके गरुड़ भी अन्तर्द्धान होगये। जैसे संकल्पके त्यागे से संकल्प सृष्टि का अभाव होजाताहै तैसेही गरुड़ अन्तर्द्धान होगये और जैसे स्वप्ने से जागेहुये को स्वप्ननगर का अभाव होजाता है तैसेही गरुड़ों का अभाव होगया फिर जब कोई बाण सिद्ध चलावे तो विदूरथ उसको नष्टकरे-जैसे सूर्यतम को नाशकरे

और उसने बड़ी बाणों की वर्षा की उससे सिद्ध भी क्षोभको प्राप्तहुआ। तबपिछली लीला ने झरोखे से देखके देवीजी से कहा; हे देवि ! अब मेरे भर्त्ता की जय होती है । देवी सुनके मुसकराईं पर मुखसे कुछ न कह हृदय में बिचारा कि, जीवका चित्त बहुत चञ्चलहै । ऐसे देखतेही थे कि सूर्यउदय हुये-मानों सूर्य भी युद्ध का कौतुक देखने आये हैं-और सिद्ध ने तमरूप अस्त्र चलाया जिससे सर्वदिशा श्याम होगईं और कुछभी न भासित होताथा-मानों काजल की समष्टिता इकट्ठीहुई है । तब विदूरथ ने सूर्यसा प्रकाशरूपी अस्त्र चलाया जिससे सर्वतम नष्ट होगया । जैसे शरद्काल में सब घटा नाश होजाती हैं केवल शुद्ध आकाशही रहताहै; जैसे आत्मज्ञानसे लोभादिक का ज्ञानी को अभाव होजाता और जैसे लोभरूपी कज्जल के निवृत्तहुये ज्ञानवान् की बुद्धि निर्मल होती है तैसे प्रकाश से तम नष्ट होगया और सर्वदिशा निर्मल हुईं । जैसे अगस्त्यमुनि समुद्र को पानकरगये थे तैसेही प्रकाश तम का पानकरगया। तब सिद्धने वैतालरूपी अस्त्रचलाया जिससे विदूरथ की सेना मोहितहोगई और उस में से महाविकराल और परछाहीं समान मूर्ति धारण किये ऐसे श्यामरूप वैताल भासनेलगे; जो ग्रहण न किये जावें और जीवके भीतर प्रवेश करजावें और जिनके रहनेका स्थान शून्य मन्दिर, कीचड़ और पर्वत हैं शस्त्र से निकलकर विदूरथ की सेना को दुःख देनेलगे। पिशाच वह होते हैं जिनकी शास्त्रोक्त क्रिया नहीं होती और जो मरके भूत, पिशाच और वैताल होते हैं और राग, द्वेष, तृष्णा और भूख से जलते रहतेहैं । उनका कोई बड़ा सरदार विदूरथ के निकट आनेलगा तब विदूरथ ने रूपका नामक अस्त्र चलाया और उससे महा भयानक रूप बड़े नख, केश, जिह्वा, उदर और होठ सहित नग्नरूप भैरव प्रकट होकर वैतालों को भोजनकरने और खप्पर में रक्त भरकर पीने और नृत्य करने लगे और सबों को दुःख देनेलगे । तब सिद्ध ने क्रोध करके राक्षसरूपी अस्त्र चलाया जिससे एक कोटि भयानकरूप और काले राक्षस पाताल और दिशाओं से निकले जिनकी जिह्वा निकली हुई और ऐसा चमत्कार करतेथे जैसे श्याम मेघ में बिजली चमत्कार करती है । वे जिसको देखें उसको मुख में डालके लेजावें और उनको देखके विदूरथ की सेना बहुत डरगई क्योंकि, जिस के सन्मुख वे हँसके देखैं वह भय से मरजावे । तब राजा विदूरथ ने अपनी सेना को कष्टवान् देख विष्णु अस्त्र चलाया जिससे सब राक्षस नष्ट होगये । फिर राजा सिद्ध ने अग्निनामक अस्त्र चलाया जिससे सम्पूर्ण दिशाओं में अग्नि फैलगई और लोग जलने लगे; तब राजा विदूरथ ने वरुणरूपी बाण चलाया जिससे, जैसे सन्तों के सङ्ग से अज्ञानी के तीनों ताप मिटजाते हैं तैसेही अग्नि का ताप मिट गया । जल से सब स्थान पूर्ण होगये और सिद्ध की बहुत सेना जल में बहगई ।

तब सिद्ध ने शोषणमय अस्त्र चलाया जिससे सब जल सूखगया पर कहीं २ कीचड़ रहगई इससे उसने फिर तेजोमय बाण चलाया जिससे कीचड़भी सूखगई और विदूरथ की सेना गरमी से ब्याकुल होकर ऐसी तपनेलगी जैसे मूर्ख का हृदय क्रोध से जलता है। तब विदूरथ ने मेघनामक अस्त्र चलाया जिससे मेघ वर्षनेलगे और शीतल मन्द २ वायु चलनेलगा। जैसे आत्मा की ओर आये जीव का संसरना घटता जाताहै तैसेही विदूरथ की सेना शीतल हुई। फिर सिद्ध ने वायुरूपी अस्त्र चलाया जिससे सूखेपत्र की नाईं विदूरथ फिरने लगा। तब विदूरथ ने पहाड़रूपी अस्त्र चलाया जिससे पहाड़ों की वर्षा होनेलगी और वायु का मार्ग रुकगया और वायुके क्षोभ मिट जानेसे सब पदार्थ स्थिरभूत होगये। जैसे संवेदन से रहित चित्त शान्त होताहै तैसे ही सब शान्त होगये। जब पहाड़ उड़ २ के सिद्ध की सेनापर पड़े तब सिद्ध ने वज्ररूप अस्त्र चलाया जिससे पर्वत नष्ट हुये। जब इस प्रकार वज्र वर्षे तब विदूरथने ब्रह्म अस्त्र चलाया जिससे वज्र नष्ट हुये और ब्रह्म अस्त्र अन्तर्द्धान होगये। हे रामजी! इस प्रकार परस्पर इनका युद्ध होताथा। जो अस्त्र सिद्ध चलावे उसको विदूरथ विदारणकरे और जो विदूरथ चलावे उसको सिद्ध विदारण करडाले। निदान विदूरथ राजा ने एक ऐसा अस्त्रचलाया कि राजा सिद्ध का रथ चूर्ण होगया और घोड़ेभी सब चौपटकर डाले। तब सिद्ध राजा ने रथसे उतर ऐसा अस्त्र चलाया कि, विदूरथ का रथ और घोड़े नष्टहुये और दोनों ढाल और तरवार लेकर युद्धकरने लगे। फिर दोनों के रथवाहक और रथ ले आये उसके ऊपर दोनों आरूढ़ होकर युद्धकरने लगे। विदूरथ ने सिद्ध पर एक बरछी चलाई जो उसके हृदय में लगी और रुधिर चला। तब उस को देख लीला ने देवीसे कहा; हे देवि! मेरे भर्त्ता की जय हुई है। हे रामजी! इस प्रकार लीला कहतीही थी कि सिद्ध ने बरछी चलाई सो विदूरथके हृदयमें लगी और उसको देखके विदूरथ की लीला शोकवान् होकर कहनेलगी; हे देवि! मेरा भर्त्ता मरता है; सिद्ध दुष्ट ने बड़ा कष्ट दियाहै। हे रामजी! फिर सिद्ध ने एक ऐसा खड्ग चलाया कि जिससे विदूरथ के पांव कटगये और घोड़ेभी काटेगये पर तौभी विदूरथ युद्धकरता रहा। फिर सिद्ध ने विदूरथ के शिरपर खड्गका प्रहारकिया तो वह मूर्च्छा खाके गिरपड़ा। ऐसे देखके उसके सारथी रथ को गृह में लेआनेलगे तो सिद्ध उसके पीछे दौड़ा कि, शीश मैं इसका ले आऊं परन्तु पकड़ न सका। जैसे अग्नि में मच्छर प्रवेश नहीं कर सकता तैसेही देवी के प्रभाव से विदूरथ को वह न पकड़ सका॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविदूरथमरणवर्णनंचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तब सारथी राजा को गृह में लेआया तो स्त्रियां, मन्त्री, बान्धव और कुटुम्बी रुदन करनेलगे और बड़े शब्द होनेलगे। सिद्धकी सेना लूटने

लगी और हाथी, घोड़े, स्वामी विना फिरतेथे फिर ढिंढोरा फिरायागया कि, राजा सिद्ध की जय है। निदान सर्व ओर से शान्ति हुई सिद्धराजा के ऊपर छत्र होनेलगा और सब पृथ्वी का राजा वही हुआ। जैसे क्षीरसमुद्र से मन्दराचल निकलके शान्त हुआ तैसेही सर्वओर शान्ति हुई। हे रामजी! जब राजा विदूरथ गृह में आया तब उसकी और दूसरी लीला को देखके प्रबुधलीला कहनेलगी; हे देवि! यह लीला इस शरीर से वहां क्योंकर जा प्राप्तहोगी? यह तो भर्त्ता को ऐसे देखके मृतकरूप होगई है और राजाभी मृत्यु के निकट पड़ाहै केवल कुछ श्वास आते जातेहैं। देवी बोली, हेलीले! यह जितने आरम्भ तू देखती है कि, युद्ध हुआ और नाना प्रकार का जगत् है सो सब भ्रान्तिमात्र है और तेरा भर्त्ता जो पद्म था उसका हृदय जो मण्डपाकाश में था वहीं यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है। पद्मका मण्डपाकाश वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थितहै और वशिष्ठ ब्राह्मण का मण्डपाकाश चिदाकाश के आश्रय स्थित है। हे लीले! यह सम्पूर्ण जगत् वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश की पुर्यष्टक में स्थितहै सो आकाश में ही आकाश स्थित है। किञ्चन है इससे सम्पूर्ण जगत् फुरता है पर वास्तव में किञ्चनभी कुछ वस्तु नहीं आत्मसत्ताही अपने आप में स्थित है। उस आत्मसत्ता में 'अहं, 'त्वं, जगत् भ्रमसे भासता है; कुछ उपजा नहीं। हे लीले! उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में नाना प्रकार के स्थान हैं और उनमें प्राणी आते जाते और नाना व्यवहार करते भासते हैं। जैसे स्वप्नसृष्टि में नाना प्रकारके आरम्भ भासते हैं सो असत्रूप हैं तैसेही यह जगत् भी असत्रूप है। हे लीले! न यह द्रष्टा है और न आगे दृश्य है; सब भ्रमरूप हैं। द्रष्टा, दर्शन, दृश्यत्रिपुटी पदार्थों में है। जो दृश्य नहीं तो द्रष्टा कैसेहो? सब असत्रूप है। इनसे रहित जो परमपद है वह उदय-अस्त से रहित, नित्य, अज, शुद्ध अविनाशी और अद्वैतरूप अपने आपमें स्थित है। जब उसको जानता है तब दृश्यभ्रम नष्ट होजाता है। हे लीले! दृश्य भ्रम से भासता है। वास्तव में न कुछ उपजा है और न उपजेगा। जितने सुमेरु आदिक पर्वत जाल और पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं वे सब आकाशरूप हैं जैसे स्वप्न सृष्टि प्रत्यक्ष भासती है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं तैसेही इस जगत् को भी जानो। हे लीले! जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि है परन्तु उसमें सार कुछ नहीं। जैसे केलेके थम्भे में सार कुछ नहीं निकलता तैसेही इस सृष्टि में विचार कियेसे सार कुछ नहीं निकलता-चित्तसंवेदन के फुरनेसे भासतीहै। हे लीले! तेरे भर्त्ता पद्म की जो सृष्टि है सो वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है अर्थात् विदूरथ का जगत् पद्म के हृदय में स्थित है वहां तेरा शरीर पड़ाहै और राजा पद्मकाभी शव पड़ा है। हे लीले! तेरे भर्त्ता पद्म की सृष्टि हमको प्रादेशमात्र है। उस प्रादेशमात्र में अंगुष्ठ

प्रमाण हृदयकमल है; उसमें तेरे भर्त्ता का जीवाकाश है और उसी में यह जगत् फुरता है सो प्रादेशमात्र भी है और दूर से दूर कोटि योजनों पर्यन्त है। मार्ग में वज्रसार की नाईं तत्त्वों का आवरण है उसको लांघ के तेरे भर्त्ता की सृष्टि है। जहां वह शव पड़ा है उसके पास यह लीला जाय प्राप्तहुई है। लीला ने पूछा; हे देवि! ऐसे मार्ग को लांघके वह क्षण में कैसे प्राप्तहुई और जिस शरीर से जाना था वह शरीर तो यहांहीं पड़ा है वह किसरूप से वहां गई और वहांके लोगोंने उसको देखके कैसे जाना है सो संक्षेपमात्रसे कहो? देवी बोली; हे लीले! इस लीला के वृत्तान्तकी महिमा ऐसी है जिसके धारे से यह जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। उसे मैं संक्षेपमात्रसे कहती हूं। हे लीले! जो कुछ जगत् भासता है वह सब भ्रममात्रहै। यह भ्रमरूप जगत् पद्म के हृदय में फुरता है। उसमें विदूरथ का जन्मभी भ्रममात्र है; लीलाका प्राप्तहोनाभी भ्रम है; संग्रामभी भ्रमरूप है; विदूरथ का मरनाभी भ्रमरूपहै और उसके भ्रमरूप जगत् में तुम हम बैठे हैं। लीला तूभी और राजाभी भ्रमरूप है और मैं सर्वात्माहूं– मुझ को सदा यही निश्चय रहताहै। हे लीले! जब तेरा भर्त्ता मृतक होनेलगाथा तब तुझसे उसका स्नेह बहुत था इसलिये तू महासुन्दर भूषण पहिनेहुये वासनाके अनुसार उसको प्राप्तहुई। हे लीले! जब जीव मृतक होताहै तब प्रथम उसका अन्तवाहक शरीर होता है; फिर वासना से आधिभौतिक होताहै। उसीके अनुसार तेरा भर्त्ता जब मृतकहुआ तब प्रथम उसका अन्तवाहक शरीरथा; उससे आधिभौतिक होगया और जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्मभी हुआ और मरणभी हुआ। जब तेरा भर्त्ता मृतक हुआ तब उसको अपना जन्म और कुललीलाका जन्म, माता, पिता और लीला के साथ बिवाह भास आये। जैसे तू पद्मको भासी आई थी तैसेही वह सब विदूरथ को भास आये। हे लीले! ब्रह्म सर्वात्माहै; जैसा २ उसमें तीव्र स्पन्द होताहै तैसेही सिद्ध होताहै। मैं ज्ञप्तिरूप चेतन शक्तिहूं मुझको जैसी इच्छा धरके लोग पूजते हैं तैसेही फलकी प्राप्तिहोती है। हे लीले! जैसी२ इच्छाधरके कोई हमको पूजताहै उसको वैसेही सिद्धता प्राप्तहोती है। लीलाने जो मुझसे वर मांगाथा कि, मैं विधवा न होऊं और इसी शरीरसे भर्त्ताके निकट जाऊं और मैंने कहाथा कि, ऐसेही होगा इसलिये मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर उसको अपना शरीर भासआया और अपने शरीरसहित जहां तेरे भर्त्ता पद्मका शव पड़ाथा वहां मण्डपमें वैसेही शरीरसे उसके निकट तूभी जा प्राप्तहुई है, हे लीले! उसको यह निश्चय रहा कि, मैं उसी शरीरसे आई हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेमृत्युमूर्च्छानन्तरप्रतिमावर्णनं नामपञ्चत्रिंशतितमस्सर्गः॥ ३५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिस प्रकार वह लीला पद्मराजा के मण्डप में जा

प्राप्तहुई है वह सुनिये । जब वह लीला मृतक मूर्च्छा को प्राप्तहुई तो उसके अनन्तर उसको पूर्वके शरीर की नाईं वासना के अनुसार अपना शरीर भास आया और उसने जाना कि, मैं देवीका वर पाके उसही शरीर से आईहूं। वह अन्तवाहक शरीर से आकाश में पक्षी की नाईं उड़ती जाती थी तब उसको अपने आगे एक कन्या दृष्टि आई उससे लीलाने कहा; हे देवि ! तू कौन है ? देवीने कहा मैं ज्ञप्ति देवी की पुत्रीहूं और तुझे पहुँचाने के लिये आई हूं। लीलाने कहा; हे देवीजी ! मुझे मेरे भर्त्ता के पास लेचलो । हेरामजी ! तब वह कन्या आगे और लीला पीछेहो दोनों आकाश में उड़ीं और चिरकाल पर्यन्त आकाश में उड़ती गईं । पहले मेघों के स्थान मिले; फिर वायुके स्थान मिले; फिर सूर्य का मण्डल और तारामण्डल मिला; फिर और लोकपालों के स्थान; ब्रह्मा विष्णु और रुद्र के लोक आये । इन सबको लांघ महा वज्रसार की नाईं ब्रह्माण्ड कपाट आया उसको भी लांघ गईं। जैसे कुम्भ में बरफ डालिये तो उसकी शीतलता बाहर प्रकट होती है तैसेही वह ब्रह्माण्ड से बाह्य निकल गईं । उस ब्रह्माण्ड से दशगुणा जल तत्त्व आया; इसी प्रकार वह अग्नि, वायु और आकाशतत्त्व आवरण को भी लांघगईं । उसके आगे महाचैतन्य आकाश आया उसका अन्त कहीं नहीं—वह आदि, अन्त और मध्य से रहित है । हेरामजी ! जो कोटि कल्प पर्यन्त गरुड़ उड़ते जावें तौभी उसका अन्त न पावें; ऐसे परमाकाश में वह गईं और वहां इनको कोटि ब्रह्माण्ड दृष्टि आये । जैसे वन में अनेक वृक्षों के फल होते हैं और परस्पर नहीं जानते तैसेही वह सृष्टि आपको न जानती थी फिर एक ब्रह्माण्डरूपी फल में दोनों प्रवेशकरगईं जैसे फलको मुखमार्ग में प्रवेश करजाती हैं। उसमें फिर उन्हों ने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित त्रिलोकी देखी उनके भी लोक लांघगईं और उनके नीचे और लोकपालोंके स्थान लांघे । फिर वे चन्द्रमा, तारा, वायु और मेघमण्डलों को लांघके उतरीं और राजा के नगर और उस मण्डपाकाश में जहां पद्मराजा का शव फूलों से ढँपा पड़ाथा प्रवेश करगईं । इसके अनन्तर वह कुमारी इसभांति अन्तर्द्धान होगई जैसे कोई मायावी पदार्थ हो और अन्तर्द्धान होजावे । लीला पद्मके पास बैठगई और मनमें विचारनेलगी कि; यह मेरा भर्त्ताहै । वहां इसने संग्राम कियाथा, अब शूरमाकी गतिको प्राप्त भयाहै और इस परलोक में आयके सोयाहै ।उसके पास मैंभी अपने शरीरसे देवीजी के वरसे आनप्राप्त हुईहूं । मेरे ऐसा अब कोई नहीं और मैं बड़े आनन्द को प्राप्तहुई हूं । हे रामजी ! ऐसे विचारके पास एक चमर पड़ाथा उसको हाथ में लेके भर्त्ता के हिलानेलगी।जैसे चन्द्रमा किरणोंसहित शोभा पाताहै तैसेही उसके उठानेसे वह चमर शोभा पानेलगा । देवी से लीला ने पूछा; हे देवि ! यह राजा तो अब मृतक होता है।

इसके श्वास अब थोड़े से रहे हैं जब यहां से मृतक होके पद्म के शरीर में जावेगा तब राजा के जागेहुये मन्त्री और नौकर कैसे जानेंगे ? देवी बोली; हे लीले ! तब मन्त्री और नौकर जो होवेंगे उनको द्वैतकलना कुछ न भासेगी कि, यह क्या आश्चर्य हुआहै। इस वृत्तान्त को तू, मैं और पूर्व लीला जानेगी और कोई न जानेगा क्योंकि; इसके संकल्पको और कोई कैसे जाने ? लीला ने फिर पूछा; हेदेवि ! पूर्व लीला जो वहां जाय प्राप्त हुई थी उसका शरीर तो यहाँ पड़ाहै और तुम्हारा उसको वर भी था तो फिर इस देह के साथ वह क्यों न प्राप्तहुई ? देवी बोली; हे लीले ! छाया भी कदाचित् धूप में गई हो और सच झूठभी कदाचित् इकट्ठा हुआ हो, यह आदि नीति है। जैसे जैसे आदि नीति हुई है तैसेही होताहै-अन्यथा नहीं होता। हे लीले ! जो परछाहींमें वैताल कल्पना मिटी तो परछाहीं और वैताल इकट्ठे नहींहोते तैसेही भ्रमरूप जगत् का शरीर उस जगत् में नहीं जाता और दूसरे के संकल्पमें दूसरा अपने शरीर से नहीं जासक्ता क्योंकि; वह और शरीर है और यह और शरीर है; तैसेही राजा के जगत् दर्पण में लीला के संकल्पका शरीर नहीं प्राप्तहुआ मेरे वरसे तब उस देहसे प्राप्त होई कि, जब उसको मृत्यु मूर्च्छा प्राप्तभई तब उसको उसकासाही अपना शरीर भी भास आया। उसका शरीर संकल्प में स्थित था सो अपना संकल्प वह साथ लेगई है इससे अपने उसी शरीरसे वह गई है उसने आपको ऐसे जाना कि मैं वही लीला हूं। हे लीले ! आत्मसत्ता सर्वात्मरूपहै। जैसी २ भावना उसमें दृढ़ होती है वैसाही वैसारूप होजाताहै। जिसको यह निश्चयहुआहै कि, मैं पञ्चभौतिकरूप हूं उसको ऐसेही दृढ़ होताहै कि, मैं उड़ नहीं सक्ता। हेलीले ! यह लीला तो अविदित वेद न थी अर्थात् अज्ञानसहित थी और उसका आधिभौतिक भ्रम नहीं निवृत्तहुआ था परन्तु मेरा वर था इसकारणसे उसको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर भास आया कि, मैं देवीके वरसे चलीजाऊंगी। इस वासनाकी दृढ़ता से वह प्राप्तहुई है। हे लीले ! यह जगत् भ्रान्तिमात्र है। जैसे भ्रमसे जेवरीमें सर्प भासताहै तैसेही आत्मामेंभी भ्रमसे जगत् भासताहै। सब जगत् आत्मा में आभासरूपहै। सर्वका अधिष्ठान आत्मसत्ता अपनेही अज्ञानसे दूर भासता है। हे लीले ! ज्ञानवान् पुरुष सदा शान्तरूप और आत्मानन्द से तृप्तरहते हैं पर अज्ञानी शान्ति कैसे पावें ? जैसे जिसको तप चढ़ा होता है उसका अन्तःकरण जलता है और तृषाभी बहुत लगती है; तैसेही जिसको अज्ञानरूपी तप चढ़ाहुआ है उसका अन्तरराग द्वेषसे जलता है और विषयों की तृष्णारूपी तृषाभी बहुत होतीहै। जिसका अज्ञानरूपी तम नष्ट हुआहै उसका अन्तर राग द्वेषादिकसे नहीं जलता और उसकी विषय की तृष्णारूपी तृष्णाभी नष्टहुईहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमण्डपाकाशगमनवर्णनन्नामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३६ ॥

देवी बोली; हे लीले ! जो पुरुष अविदितवेद है अर्थात् जिसने जानने योग्य पद नहीं जाना वह बड़ा पुण्यवान्भी हो तौभी उसको अन्तवाहकता नहीं प्राप्त होती। अन्तवाहक शरीर भी झूठ है क्योंकि; संकल्परूप है। इससे जितना जगत् तुझको भासता है वह कुछ उपजा नहीं; शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपने आप में स्थित है। फिर लीला ने पूछा; हे देवि ! जो यह सब जगत् संकल्पमात्र है तो भाव और अभावरूप पदार्थ कैसे होते हैं ? अग्नि उष्णरूप है; पृथ्वी स्थिररूप है; बरफ शीतल है; आकाश की सत्ता है; काल की सत्ता है; कोई स्थूल है; कोई सूक्ष्म पदार्थ है; ग्रहण, त्याग, जन्म, मरण होता है; और मृतक हुआ फिर जन्मता है इत्यादिक सत्ता कैसे भासती हैं ? देवी बोली हे लीले ! जब महाप्रलय होताहै तब सर्व पदार्थ अभाव को प्राप्त होतेहैं और काल की सत्ताभी नष्ट होजाती है। उसके पीछे अनन्त चिदाकाश; सब कलनाओं से रहित और बोधमात्र ब्रह्मसत्ता ही रहती है। उस चेतनमात्रसत्ता से जब चित्संवित चैत्यता होती है तब चेतन संवित् में आपको तेज अणु जानता है। जैसे स्वप्न में कोई आपको पक्षीरूप उड़ता देखे तैसे ही देखताहै। उससे स्थूलता होती है; वही स्थूलता ब्रह्माण्डरूप होतीहै उससे तेज अणु आप को ब्रह्मारूप जानता है। फिर ब्रह्मारूप होकर जगत् को रचता है। जैसे २ ब्रह्मा चेतता जाता है तैसेही तैसे स्थिरतारूप होता जाता है। आदि रचना से जैसा निश्चय धारण किया है कि 'यह ऐसे हो, और 'इतने काल रहे, उसका नाम नीति है। जैसे आदि रचना नियत की है वह ज्योंकी त्यों होती है; उसके निवारण करने को किसीकी सामर्थ्य नहीं वास्तव में आदि ब्रह्मा भी अकारणरूप है अर्थात् कुछ उपजा नहीं तो जगत् का उपजना मैं कैसे कहूं ? हे लीले ! कोई स्वरूप नहीं उपजा परन्तु चेतन संवेदन के फुरने में जगत् आकार होके भासताहै। उसमें जैसे निश्चय है तैसेही स्थित है। अग्नि उष्णही है; बर्फ शीतलही है और पृथ्वी स्थितरूपही है। जैसे उपजे हैं तैसेही स्थित हैं। हे लीले ! जो चेतन है उसपर भी नीति है कि, वह उपदेश का अधिकारी है और जो जड़ है उसमें वही स्वभाव है। जो आदि चित् संवित्में आकाश का फुरना हुआ तो आकाशरूप होकरही स्थित हुआ। जब काल का स्पन्द फुरता है तब वही चेतन संवित् कालरूप होकर स्थित होताहै; जब वायु की चैतन्यता होती है तब वही संवित् वायुरूप होकर स्थित होता है। इसी प्रकार अग्नि, जल, पृथ्वी नानारूप होकर स्थित हुये हैं। स्थूल, सूक्ष्मरूप होकर चेतन संवित्ही स्थित होरहा है। जैसे स्वप्न में चेतन संवित्ही पर्वत वृक्षरूप होकर स्थित होता है तैसेही चेतन संवित् जगत्रूप होकर भी स्थित हुआ है। हे लीले ! जैसे आदि नीति में पदार्थों के संकल्परूप धरे हैं तैसेही स्थित हैं उसके

निवारण करने की किसी की सामर्थ्य नहीं क्योंकि; चेतन का तीव्र अभ्यास कियाहै। जब वही संवित् उलटाकर और प्रकार स्पन्द हो तब औरही प्रकार हो; अन्यथा नहीं होता। हे लीले! यह जगत् सत् नहीं। जैसे संकल्पनगर भ्रमसिद्धहै और जैसे स्वप्नपुरुष और ध्याननगर असत्‌रूप होता है; तैसेही यह जगत्‌भी असत्‌रूप है और अज्ञान से सत् की नाईं भासता है। जैसे स्वप्न सृष्टि के आदि में सन्मात्र सत्ता होती है और उस सन्मात्रसत्ता का आभास किंचित् स्वप्नसृष्टि का कारण होता है; तैसेही यह जाग्रत् जगत् के आदि सन्मात्रसत्ता होती है और उससे किञ्चन अकारणरूप यह जगत् होता है। हे लीले! यह जगत् वास्तव में कुछ उपजा नहीं; असत्‌ही सत् की नाईं होकर भासता है। जैसे स्वप्ने की अग्नि स्वप्नेमें असत्‌ही सत्‌रूप हो भासती है; तैसेही अज्ञान से यह असत् जगत् सत् भासता है और जन्म, मृत्यु और कर्मों का फल होताहै सो तू श्रवण कर। हे लीले! बड़ा और छोटा जो होता है सो देश काल और द्रव्य होता है। एक बाल्यावस्था में मृतक होते हैं और एक यौवन अवस्था में मृतक होते हैं जिसकी देश काल और द्रव्य की क्रिया चेष्टा यथाशास्त्र होती है उसकी क्रिया भी शास्त्र के अनुसार होती है और जो चेष्टा शास्त्र के विरुद्ध होतीहै तो आयुर्बल भी वैसीही होती है। एक क्रिया ऐसी है जिससे आयु वृद्धि होती है और एक क्रिया से घटजाती है। इसी प्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयु के घटाने बढ़ाने वाली हैं उन्हों में जीवों के शरीर बड़ी सूक्ष्म अवस्था में सोये हैं। यह आदि नीति रची है। युगों की मर्यादा जैसे है तैसेही है। एक सौ दिव्य वर्ष कलियुग के; दोसौ दिव्य वर्ष द्वापर के; तीनसौ त्रेताके और चार सौ सतयुग के—यह दिव्य वर्ष हैं। लौकिक वर्षों के अनुसार चारलाख बत्तीस हजार वर्ष कलियुग है; आठलाख चौंसठ हजार वर्ष द्वापरयुग है; बारहलाख छानबे हजार वर्ष त्रेता है और सत्रहलाख अट्ठाइस हजार वर्ष सतयुग है। इस प्रकार युगों की मर्यादा है जिनमें जीव अपने कर्मों के फलसे आयु भोगते हैं। हे लीले! जो पाप करनेवाले हैं वह मृतक होतेहैं और उनको मृत्युकाल में भी बड़ा कष्ट होताहै। फिर लीला ने पूछा; हे देवि! मृतक हुये सुख और दुःख कैसे होते हैं और कैसे उन्हें भोगते हैं? देवी बोली, हे लीले! जीवकी तीन प्रकार की मृत्यु होती है एक मूर्ख की दूसरी धारणाभ्यासी की और तीसरी ज्ञानवान् की। उनका भिन्न २ वृत्तान्त सुनो। हे लीले! जो धारणाभ्यासी हैं वह मूर्ख भी नहीं और ज्ञानवान् भी नहीं; वह जिस इष्टदेवता की धारणा करते हैं शरीर को त्यागके उसही देवता के लोक को प्राप्तहोते हैं और जो धारणाभ्यासी हैं पर उनको पूर्णदशा नहीं प्राप्तहुई उनका सुख से शरीर छूटता है। जैसे सुषुप्ति होजाती है तैसेही धारणाभ्यासी शरीर त्यागता है और फिर सुखभोगकर

आत्मतत्त्व को प्राप्तहोता है। ज्ञानवान् का शरीर भी सुख से छूटता है; उसको भी यत्न कुछ नहीं होता और उस ज्ञानी के प्राणभी वहांहीं लीन होते हैं और यह विदेह-मुक्त होता है। जब मूर्खकी मृत्यु होने लगती है तो उसे बड़ाकष्ट होता है। मूर्ख वही है जिसकी अज्ञानियों की संगति है; जो शास्त्रों के अनुसार नहीं विचरता और सदा विषयोंकी ओर धावता और पापाचार करता है। ऐसे पुरुष को शरीर त्यागने में बड़ा कष्ट होताहै। हे लीले ! जब मनुष्य मृतक होने लगता है तब पदार्थों से आवरण अर्थ बुद्धि जो सम्बन्धी थी उससे वियोग होने लगता है और कण्ठ रुकजाता है; नेत्र फटजाते हैं और शरीर की कान्ति ऐसी विरूप होजाती है जैसे कमल का फूल कटाहुआ कुम्हिलाजाता है। अङ्ग टूटने लगते हैं और प्राण नाड़ियों से निकलते हैं। जिन अङ्गों से तदात्म सम्बन्ध हुआ था और पदार्थों में बहुत स्नेह था उनसे वियोग होने लगता है इससे बड़ा कष्ट होता है। जैसे किसी को अग्नि के कुण्ड में डालने से कष्ट होता है तैसेही उसको भी कष्ट होता है। सब पदार्थ भ्रम से भासते हैं; पृथ्वी आकाशरूप और आकाश पृथ्वीरूप भासतेहैं। निदान महाविपर्यय दशा में प्राप्तहोता है और चित्तकी चेतनता घटती जाती है। ज्यों ज्यों चित्त की चेतनता घटती जाती है त्यों २ पदार्थ के ज्ञान से अन्धा होजाता है। जैसे सायंकाल में सूर्य अस्त होताहै तो भ्रान्तिमान् नेत्र को दिशाका ज्ञान नहीं रहता तैसेही इसको पदार्थों का ज्ञान नहीं रहता और कष्टका अनुभव करताहै। जैसे आकाश से गिरता है और पाषाणमें पीसाजाताहै, जैसे अन्धकूप में गिरता है और कोल्हू में पेराजाताहै जैसे रथ से गिरताहै और गलेमें फांसी डालके खींचा जाताहै; और जैसे वायु से तरङ्ग में उछलता और बड़वाग्नि में जलता कष्ट पाता है; तैसेही मूर्ख मृत्युकाल में कष्ट पाताहै। जब पुर्यष्टक का वियोग होता है तब मूर्च्छा से जड़सा होजाता है और शरीर अखण्डित पड़ा रहता है। लीला ने पूछा; हे देवि ! जब जीव मृतक होनेलगता है तब इसको मूर्च्छा कैसे होती है? शरीर तो अखण्डित पड़ारहता है कष्ट कैसे पाता है ? देवी बोली; हे लीले ! जो कुछ जीवने अहंकारभावको लेकर कर्म कियेहैं वे सब इकट्ठे होतेजाते हैं और समय पाके प्रकट होते हैं जैसे बोया बीज समय पाके फल देता है तैसेही उसको कर्मवासनासहित फल आन प्रकट होता है। जब इस प्रकार शरीर छूटने लगता है तब शरीर को तादात्म्यता और पदार्थों के स्नेह के वियोग से इस को कष्ट होता है। प्राण अपान की जो कला है और जिसके आश्रय शरीर होता है सो टूटनेलगता है। जिन स्थानों में प्राण फुरते थे उन स्थानों और नाड़ियों से निकल जाते हैं और जिन स्थानों से निकलते हैं वहां फिर प्रवेश नहीं करते। जब नाड़ियां जर्जरीभूत होजाती हैं और सब स्थानों को प्राण त्यागजाते हैं तब

यह पुर्यष्टक शरीरको त्याग निर्वाण होताहै। जैसे दीपक निर्वाण होजाता और पत्थर की शिला जड़ीभूत होती है तैसेही पुर्यष्टक शरीर को त्यागकर जड़ीभूत होजाती है और प्राण अपान की कला टूटपड़ती है। हे लीले! मरना और जन्म भी भ्रान्ति से भासता है—आत्मा में कोई नहीं। संवित्मात्र में जो संवेदन फुरता है सो अन्यस्वभाव में सत्ता की नाईं होकर स्थित होता है और मरण और जन्म उसमें भासते हैं और जैसी २ वासना होती है उसके अनुसार सुखदुःख का अनुभव करता है। जैसे कोई पुरुष नदी में प्रवेशकरता है तो उसमें कहीं बहुत जल और कहीं थोड़ा होता है कहीं बड़े तरङ्ग होते हैं और कहीं सोमजल होताहै पर वे सब सोमजल में होते हैं; तैसेही जैसी वासना होती है उसीके अनुसार सुखदुःख का अनुभव होता है और अध, ऊर्ध्व, मध्य, वासनारूपी गढ़े में गिरतेहैं। शुद्ध चेतनमात्र में कोई कल्पना नहीं अनेक शरीर नष्ट होजाते हैं और चेतनसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है। जो चेतनसत्ता भी मृतक हो तो एक के नष्टहुये सब नष्ट होजावें पर ऐसे तो नहीं होता चैतन्यसत्ता सब कुछ सिद्ध होती है; जो वह न हो तो कोई किसी को न जाने। हे लीले! चेतनसत्ता न जन्मती है और न मरती है; वह तो सर्व कल्पना से रहित केवल चिन्मात्र है उसका किसी कालमें कैसे नाशहो? जन्ममरण की कल्पना संवेदन में होती है अचेत चिन्मात्र में कुछ नहींहुआ। हे लीले! मरता वही है जिसके निश्चय में मृत्युका सद्भाव होताहै। जिसके निश्चय में मृत्यु का सद्भाव नहीं वह कैसे मरे? जब जीवको दृश्य का अत्यन्त अभाव हो तब बन्धनों से मुक्तहो वासना ही इसके बन्धनका कारणहै; जब वासना से मुक्तहोता है तब बन्धन कोई नहीं रहता। हे लीले! आत्मविचार से ज्ञान होता है और ज्ञान से दृश्य का अत्यन्ताभाव होता है। जब दृश्य का अत्यन्ताभाव हुआ तब सब वासना नष्ट होजाती हैं यह जगत् उदय हुआ नहीं परन्तु उदयहुये की नाईं वासना से भासता है। इससे वासना का त्यागकरो! जब वासना निवृत्त होगी तब बन्धन कोई न रहेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमृत्युविचारवर्णनन्नामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३७॥

लीला ने पूछा; हे देवि! यह जीव मृतक कैसे होताहै और जन्म कैसे लेताहै, मेरे बोध की दृढ़ता के निमित्त फिर कहो? देवी बोली; हे लीले! इसके अनन्तर पान अपान की कला के आश्रय यह शरीर रहताहै और जब मृतक होने लगताहै तब प्राणवायु अपने स्थान को त्यागताहै और जिस २ स्थान की नाड़ी से वह निकलता है वह स्थान शिथिल होजाता है। जब पुर्यष्टकशरीर से निकलता है तब प्राणकला टूटपड़ती है और चैतन्यता जड़ीभूत होजातीहै। तब परिवारवाले लोग उसको प्रेत कहते हैं। हे लीले! तब चित्तकी चैतन्यता जड़ीभूत होजाती है और केवल चैतन्य जो ब्रह्मसत्ता

है सो ज्योंकी त्यों रहती है जो स्थावर–जङ्गम सर्व जगत् और आकाश, पहाड़, वृक्ष, अग्नि, वायु आदिक सर्व पदार्थों में व्यापरहाहै और उदयअस्त से रहित है । हे लीले ! जब मृत्यु मूर्च्छा होती है तब प्राणपवन आकाश में लीन होते हैं। उस प्राण में चैतन्यता होती है और चैतन्यता में वासना होतीहै। ऐसी जो प्राण और चैतन्य-सत्ता है सो वासनाको लेकर आकाश में आकाशरूप स्थित होतीहै। जैसे गन्ध को लेकर आकाश में वायु स्थित होता है तैसेही वासना को लेकर चैतन्यता स्थित होती है। हे लीले ! उस अपनी वासना के अनुसार उसे देवस्थान सहित फिर जगत् फुर आताहै उससे वह देश, काल क्रिया और द्रव्य करके देखता है। मृत्यु भी दो प्रकारकी है एक पापात्मा की और दूसरी पुण्यात्मा की। पापी तीन प्रकारके हैं एक महापापी; दूसरे मध्यमपापी और तीसरे अल्पपापी । ऐसेही पुण्यवान्भी तीन प्रकारके हैं–एक महापुण्यवान्; दूसरा मध्यम पुण्यवान् है और तीसरा अल्प पुण्यवान्। प्रथम पापियों की मृत्यु सुनिये । जब बड़ा पापी मृतक होताहै तब वह जर्जरीभूत होजाताहै और घन पाषाण की नाईं सहस्रों वर्षोंतक मूर्च्छा में पड़ारहता है। कितने ऐसे जीव हैं जिनको उस मूर्च्छामें भी दुःख होता है । जैसे बाहर इन्द्रियों को दुःख होता है तब उसके रागद्वेष को लेकर चित्त की वृत्ति हृदय में स्थित होती है तैसेही पापवासनाका दुःख हृदय में होताहै और भीतर से जलताहै। इस प्रकार जड़ीभूत मूर्च्छा में रहता है। इसके अनन्तर उसको फिर चैतन्यता फुरआती है तब अपने साथ शरीर देखता है। फिर नरक भोगताहै और चिरकाल पर्यन्त नरक भोगके बहुतेरे जन्म पशु आदिकों के लेताहै और महानीच और दरिद्री निर्धनों के गृह में जन्म लेकर वहांभी दुःखों से तप्त रहताहै। हे लीले ! यह महापापियों की मृत्यु तुमसे कही। अब मध्यम पापी की मृत्यु सुन। जब मध्यमपापी की मृत्यु होती है तब वहभी वृक्ष की नाईं मूर्च्छा से जड़ीभूत होजाताहै और भीतर दुःख से जलता है। जड़ीभूतसे थोड़ेकाल में फिर चेतनता पाता है । फिर नरक भुगतता है और नरक भोगके तिर्यगादिक योनि भुगतता है। तिसके पीछे वासना के अनुसार मनुष्य शरीरपाता है। अब अल्पपापी की मृत्यु सुनो। हे लीले ! जब अल्पपापी मृतक होताहै तब मूर्च्छित होजाता है और कुछकाल में उसको चेतनता फुरती है । फिर नरक जाकर भुगतताहै; फिर कर्मों के अनुसार और जन्मों को भुगतता है और फिर मनुष्य शरीर धारता है। हे लीले ! यह पापात्मा की मृत्यु कही अब धर्मात्मा की मृत्यु सुन। जो महाधर्मात्माहै वह जब मृतक होता है तब उसके निमित्त विमान आतेहैं उनपर आरूढ़ कराके उसे स्वर्ग में लेजाते हैं। जिस इष्टदेवता की वासना उसके हृदय में होतीहै उसके लोकमें उसे लेजाते हैं और वहां वह कर्मानुसार स्वर्गसुख भुगतताहै। स्वर्गसुख जो गन्धर्व,

विद्याधर, अप्सरा आदिक भोगहैं तिनको भोगके फिर गिरता है और किसी फल में स्थित होता है। जब उस फल को मनुष्य भोजन करताहैं तब वीर्य में जा स्थित होता है और उस वीर्य से माता के गर्भ में स्थित होता है। वहांसे वासना के अनुसार फिर जन्म लेताहै; जो भोग की कामना होती है तो श्रीमान् धर्मात्मा के गृह में जन्म होता है और जो भोगसे निष्काम होताहै तब सन्तजनों के गृह में जन्म लेता है। अब मध्यम धर्मात्मा की मृत्यु सुनो। हे लीले! जो मध्यम धर्मात्मा मृतक होता है उसको शीघ्रही चैतन्यता फुर आती है और वह स्वर्ग में जाकर अपने पुण्य के अनुसार स्वर्ग भोग के फिर गिरकर किसी फल में स्थित होताहै। जब फिर उस फल को कोई पुरुष भोजन करताहै तब पिता के वीर्यद्वारा माता के गर्भ में आताहै और वासना के अनुसार जन्म लेताहै। अल्पधर्मात्मा जब मृतक होताहै तब उसको यह फुरआताहै कि, मैं मृतक हुआहूं; मेरे बान्धवों और पुत्रों ने मेरी पिण्डक्रिया की है और मैं पितरलोक को चला जाताहूं। वहां वह पितरलोक का अनुभव करताहै और वहांके सुख भोगके गिरता है तब धान्य में स्थित होताहै। जब उस धान्य को पुरुष भोजन करता है तब वीर्यरूप होके स्थित होताहै। फिर उस वीर्यद्वारा माता के गर्भ में आता है और वासना के अनुसार जन्म लेताहै। हे लीले! जब पापी मृतक होता है तब उसको महाक्रूरमार्ग भासताहै और उस मार्ग पर चलता है जिसमें चरणों में कण्टक चुभतेहैं; शीशपर सूर्य तपता है और धूप से शरीर कष्टवान् होताहै। जो पुण्यवान् होताहै उसको सुन्दर छाया का अनुभव होताहै और बावली और सुन्दर स्थानों के मार्ग से यमदूत उसको धर्मराज के पास ले जातेहैं। धर्मराज चित्रगुप्त से पूछते हैं तो चित्रगुप्त पुण्यवानों के पुण्य और पापियों के पाप प्रकट करतेहैं और वह कर्मों के अनुसार स्वर्ग और नरक को भुगतताहै फिर वहांसे गिरके धान्य अथवा और किसी फल में आन स्थित होताहै। जब उस अन्न को पुरुष भोजन करताहै तब वह स्वप्नवासना को लेकर वीर्य में आन स्थित होता है। जब पुरुष का स्त्री के साथ संयोग होताहै तब वीर्यद्वारा माता के गर्भ में आताहै। वहांभी अपने कर्मों के अनुसार माता के गर्भ को प्राप्तहोताहै और उस माता के गर्भ में इसको अनेकजन्मों का स्मरण होताहै। फिर बाहर निकल के महामूढ़ बालअवस्था धारणकरताहै; तब उसे पछिली स्मृति विस्मरण होजाती है और परमार्थ की कुछ सुध नहीं होती केवल क्रीड़ा में मग्न होताहै। उससे आगे यौवन अवस्था आतीहै तो कामादिक विकारोंमें अन्धा होजाता है और कुछ विचार नहीं रहता। फिर वृद्ध अवस्था आतीहै तो शरीर महा कृश होजाताहै बहुत रोग उपजते हैं और शरीर कुरूप होजाताहै। जैसे कमलों पर बरफ पड़ती और वे कुम्हिला जातेहैं तैसेही वृद्ध अवस्था में शरीर कुम्हिला जाताहै

और सब शक्ति घटकर तृष्णा बढ़ती जाती है। फिर कष्टवान् होकर मृतक होताहै तब वासना के अनुसार स्वर्ग नरक के भोगों को प्राप्तहोताहै । इस प्रकार संसारचक्र में वासना के अनुसार घटीयन्त्र की नाईं भ्रमता है—स्थिर कदाचित् नहीं होता। हे लीले ! इस प्रकार जीव आत्मपदके प्रमाद से जन्म मरण पाताहै और फिर माता के गर्भ में आके बाल, यौवन, वृद्ध और मृतक अवस्था को प्राप्त होताहै । फिर वासना के अनुसार परलोक देखताहै और जाग्रत् स्वप्न की नाईं भ्रमसे फिर देखता है। जैसे स्वप्न में स्वप्नान्तर देखताहै तैसेही अपनी कल्पनासे जगत्भ्रम फुरताहै ।स्वरूप में किसीको कुछ भ्रम नहीं; आकाशरूप आकाशमें स्थितहै भ्रमसे विकार भासते हैं लीलाने पूछा; हेदेवी ! परब्रह्ममें यह जगत् भ्रमसे कैसे हुआहै? मेरे बोध की दृढ़ताके निमित्त कहो। देवी बोली; हे लीले!सब आत्मरूप हैं;पहाड़,वृक्ष,पृथ्वी,आकाशादिक स्थावर–जङ्गम जो कुछ जगत् है वह सब परमार्थ घन है और परमार्थ सत्ताही सर्व आत्मा है । हे लीले ! उस सत्ता संवित् आकाश में जब संवेदन आभास फुरताहै तब जगत् भ्रम भासताहै। आदि संवेदन जो संवित्मात्रमें हुआहै सो ब्रह्मरूपहोकर स्थित हुआहै और जैसे वह चेततागया है उसी प्रकार स्थावर जङ्गम जगत् होकर स्थित हुआहै । हे लीले ! शरीर के भीतर नाड़ी है नाड़ीमें छिद्रहैं और उन छिद्रों में स्पन्दरूप होकर प्राण विचरता है उसको जीव कहते हैं । जब वह जीव निकलजाता है तब शरीर मृतक होताहै । हे लीले ! जैसे २ आदि संवित्मात्र में संवेदन फुराहै तैसेही तैसे अबतक स्थितहै । जब उसने चेता कि, मैं जड़ होऊं तब वह जड़रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, वृक्षादिक स्थित भये और जब चेतनकी भावनाकी तब चेतनरूप होकर स्थित हुआ । हे लीले ! जिसमें प्राणक्रिया होतीहै वह जङ्गमरूप बोलते चलते हैं और जिसमें प्राण स्पन्द क्रिया नहीं पाई जाती सो स्थावररूपहैं पर आत्मसत्ता में दोनों तुल्यहैं; जैसे जङ्गम हैं तैसेही स्थावरहैं और दोनों चैतन्य हैं जैसेजङ्गम में चैतन्यता है तैसेही स्थावर में चैतन्यता है। यदि तू कहे कि, स्थावर में चेतनता क्यों नहीं भासती तो उसका उत्तर यह है कि; जैसे उत्तर दिशाके समुद्रवाले मनुष्यकी बोलीको दक्षिणदिशाके समुद्रवाले नहीं जानते और दक्षिणदिशाकेसमुद्रवाले की बोली उत्तर दिशाके समुद्रवाले नहीं समझसक्ते; तैसेही स्थावरों की बोली जङ्गम नहीं समझसक्ते और जङ्गमों की बोली स्थावर नहीं समझसक्ते परन्तु परस्पर अपनी २ जाति में सब चेतन हैं—उसका ज्ञान उसको होता है और उसका ज्ञान उसको होना है । जैसे एक कूप का दर्दुर और कूप के दर्दुर को नहीं जानता और और कूप का दर्दुर उस कूप के दर्दुर को नहीं जानता तैसेही जङ्गमों की बोली स्थावर नहीं जानसक्ते । और स्थावरों की बोली जङ्गम नहीं जानसक्ते । हे लीले ! जो आदि संवित् में संवेदन फुरा है वैसा

ही रूप होकर महाप्रलय पर्यन्त स्थित है–अन्यथा नहीं होता। जब उस संवित में अवकाश का संवेदन फुरता है तब आकाशरूप होकर स्थित होता है; जब स्पन्दता को चेतता है तब वायुरूप होकर स्थित होता है; जब उष्णता को चेतता है तब अग्निरूप होकर स्थित होता है; जब द्रवता को चेतता है तब जलरूप होकर स्थित होता है और जब गन्ध की चिन्तवना करता है तब पृथ्वीरूप होकर स्थित होता है इसी प्रकार जिस जिसको चेतता है सो सो पदार्थ प्रकट होते हैं। आत्मसत्ता में सब प्रतिबिम्बित है। वास्तव में न कोई स्थावर है न जङ्गम है केवल ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थित है और उसमें भ्रम से जगत् भासते हैं और दूसरी कुछ वस्तु नहीं। हे लीले! अब राजा विदूरथ को देख कि, मृतक होता है? लीला ने पूछा; हे देवी! यह राजा पद्म शव शरीरवाले मण्डप में किस मार्गसे जावेगा और इसके पीछे हम किस मार्ग से जावेंगे? देवी बोली; हे लीले! यह अपनी वासना के अनुसार मनुष्यमार्ग के राह जावेगा। है तो यह चिदाकाशरूप परन्तु अज्ञानके वश इसको दूर स्थान भासेगा और हम भी इसहीके मार्ग इसके संकल्प के साथ अपना संकल्प मिलाके जावेंगे। जबतक संकल्प से संकल्प नहीं मिलता तबतक एकत्वभाव नहीं होता। इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार देवीजी ने लीला को परमबोध का कारण उपदेश किया कि, इतने में राजा जर्जरीभूत होनेलगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेसंसारभ्रमवर्णनोनामाष्ट-
त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार देवी और लीला देखतीं थीं कि, राजा के नेत्र फटगये और शरीर निरस हो गिरपड़ा और श्वास नासिका के मार्ग से निकल गया। तब जैसे रस से रहित पत्र और कटाहुआ कमल विरस होजाता है तैसेही राजा का शरीर निरस होगया; जो कुछ चित्त की चैतन्यता थी वह जर्जरीभूत होगई; मृत्यु मूर्च्छारूपी अन्धकूप में जा पड़ा और चेतना और वासनासंयुक्त प्राण आकाशमें जा स्थित हुये। प्राणों में जो चेतना थी और चेतना में वासनाथी उस चेतना और वासना सहित प्राण जैसे वायु गन्ध को लेकर स्थित होताहै आकाश में जा स्थितहुआ। हे रामजी! राजा की पुर्यष्टक तो जर्जरीभूत होगई परन्तु दोनों देवियां उसको दिव्य दृष्टि से ऐसे देखती थीं जैसे भ्रमरी गन्ध को देखती है। राजा एक मुहूर्त्तपर्यन्त तो मूर्च्छा में रहा फिर उसको चेतनता फुरआई और अपने साथ शरीर देखनेलगा उस ने जाना कि मेरे बान्धवों ने मेरी पिण्डक्रिया की है उससे मेरा शरीर भया है और धर्मराज के स्थान को मुझे दूत लेचले हैं हे रामजी! इस प्रकार अनुभव करता वह धर्मराजके स्थानको चला और उसके पीछे देवी, जैसे वायुके पीछे गन्ध चलीजातीहै,

चली जैसे गन्ध के पीछे भ्रमरी जाती हैं तैसेही राजा विदूरथ धर्मराज के पास पहुँच गया। धर्मराज ने चित्रगुप्त से कहा कि, इसके कर्म विचार के कहो! चित्रगुप्त ने कहा; हे भगवन्! इसने कोई अपकर्म नहीं किया बल्कि बड़े २ पुण्यकिये हैं और भगवती सरस्वती का इसको वर है। इसका शव फूलों से ढपा हुआ है; उस शरीर में यह भगवती के वर से जाकर प्रवेश करेगा। इससे अब और कुछ कहना पूछना नहीं; यह तो देवीजी के वर से बँधा है। हे रामजी! ऐसे कहकर यमराज ने राजा को अपने स्थान से चलादिया तब राजा आगे चले और उसके पीछे दोनों देवियां चलीं। राजा को यह देवियां देखतीं थीं पर राजा इनको न देख सकता था। तब तीनों उस ब्रह्माण्ड को लांघ जिसका राज्य विदूरथ ने किया था दूसरे ब्रह्माण्ड में आये और उसको भी लांघ के पद्मराजा के देश में आकर उसके मन्दिर में जहां फूलसे ढपा शव था आये। जैसे मेघ से वायु आन मिलता है तैसेही एक क्षण में देवियां आन मिलीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! वह राजा तो मृतक हुआ था; मृतक होकर उसने उस मार्ग को कैसे पहिचाना? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह विदूरथ जो मृतक हुआ था उसकी वासना नष्ट न हुई थी। अपनी उस वासना से यह अपने स्थानको प्राप्त हुआ। हे रामजी! चिद् अणु जीव के उदर में भ्रान्तिमात्र जगत् है—जैसे वट के बीज में अनन्त वट वृक्ष होते हैं तैसेही चिद् अणु में अनन्त जगत् हैं—जो अपने भीतर स्थित है उसको क्यों न देखे? जैसे जीव अपने जीवत्व का अंकुर देखता है तैसेही स्वाभाविक चिद् अणु त्रिलोकी को देखता है। जैसे कोई पुरुष किसी स्थान में धन दबारक्खे और आप दूरदेश में जावे तो धन की वासना से देखता है तैसेही वासना की दृढ़ता से विदूरथ ने देखा और जैसे कोई जीव स्वप्न भ्रम से किसी बड़े धनवान् के गृह में जा उपजता है और भ्रम के शान्त हुये उसका अभाव देखता है तैसेही उस को अनुभव हुआ। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जिसकी वासना पिण्डदान क्रिया की नहीं होती वह मृतक हुये अपने साथ कैसे देह को देखता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पुरुष जो माता पिताके पिण्ड करता है उनकी वासना हृदय में होती है और वही फलरूप होकर भासती है कि, मेरा शरीर है; मेरे पीछे मेरे बान्धवों ने पिण्डदान किया है उससे मेरा शरीर हुआ है। हे रामजी! सदेह हो अथवा विदेह अपनी वासना ही के अनुसार अनुभव होता है—भावना से भिन्न अनुभव नहीं होता। चित्तमय पुरुष है; चित्त में जो पिण्ड की वासना दृढ़ होती है तो आपको पिण्डवान् ही जानता है और भावना के वश से असत् भी सत् होजाता है। इससे पदार्थों का कारण भावना ही है; कारण विना कार्यका उदय नहीं होता। महाप्रलय पर्यन्त कारण विना कार्य होता नहीं देखा और सुना भी नहीं। इससे कहा है कि, जैसी वासना होती है तैसा

ही अनुभव होता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जिस पुरुष को अपने पिण्डदान आदिक कर्मों की वासना नहीं वह जब मृतक होता है तब क्या प्रेतवासना संयुक्त होता है कि, मैं पापी और प्रेत हूं? अथवा पीछे उसके बान्धव जो उसके निमित्त क्रिया-कर्म करते हैं और जो बान्धवों ने पिण्डक्रिया की है उससे उसे यह भावना होती है कि, मेरा शरीर हुआ है वह क्रिया उसको प्राप्त होती है वा नहीं होती? अथवा उस के बान्धवों के मन में यह दृढ़ भावना हुई कि इसको सब क्रिया प्राप्तहोगी और वह अपने मन में धन अथवा पुत्रादिकों के अभाव से निराश है और किसी प्रभाव से किसी ने पिण्डादिक क्रिया की वह उसको प्राप्त होती है अथवा नहीं होती? आप तो कहते हैं कि, भावना के वश से असत् भी सत् होजाता है—यह क्याहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! भावना; देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा इन पांचोंसे होती है। जैसी भावना होतीहै वैसीही सिद्ध होतीहै; जिसकी कर्त्तव्यता बली होतीहै उसकी जय होती है। पुत्र, दारादिक बान्धव सब वासनारूप हैं। जो धर्म की वासना होतीहै तो बुद्धि में प्रसन्नता उपजआतीहै और पुण्यकर्मों से पूर्व भावना नष्टहो शुभगति को प्राप्त होतीहै। जो अतिबली वासना होती है उसकी जय होती है। इससे अपने कल्याणके निमित्त शुभ का अभ्यास कियाचाहिये। रामजी बोले; हे भगवन्! जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा इन पांचोंसे वासना होती है तो महाप्रलय सर्ग की आदि में देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहीं होती तो जहां पांचों कारण नहीं होते और उनकी वासना भी नहीं होती उस अद्वैत से जगत् भ्रम फिर कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! महाप्रलय और सर्ग की आदि में देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहीं रहती और निमित्तकारण और समवायकारण का अभाव होता है। चिदात्म में जगत् कुछ उपजा नहीं और है भी नहीं; वास्तव में दृश्य का अत्यन्त अभाव है और जो कुछ भासता है वह ब्रह्म का किञ्चन है। वह ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै। ऐसेही अनेक युक्तियों से मैं तुमसे कहूंगा अब तुम पूर्वकथा सुनो। हे रामजी! जब वे दोनों देवियां उसमन्दिर में पहुँचीं तो क्या देखा कि, फूलों से सुन्दर शीतल स्थान बनेहुये हैं—जैसे वसन्त ऋतु में वनभूमिका होतीहै—और प्रातः-काल का समय है; सुवर्ण के मङ्गलरूपी कुम्भ जल से भरे रक्खे हैं; दीपकों की प्रभा मिटगई है; किवाड़ चढ़ेहुये हैं, मन्दिरों में लोग सोयेहुये मनुष्यों के श्वास आते जाते हैं और महासुन्दर झरोखे हैं। ऐसे बनेहुये स्थान शोभादेते हैं जैसे सम्पूर्ण कला से चन्द्रमा शोभता है और जैसे इन्द्र के स्थान सुन्दर हैं। जिससुन्दर कमल से ब्रह्माजी उपजे हैं तैसेही वे कमल सुन्दर हैं॥

इति श्रीयो० उ० मरणानन्तरावस्थावर्णनंनामैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ३९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तब दोनों देवियों ने उस शवके पास विदूरथ की लीला को देखा कि, वह उसकी मृत्युसे पहले वहां पहुँचीहै और पूर्वकेसे वस्त्र भूषण पहिरेहुये; पूर्वकासा आचार किये; पूर्वकीसी सुन्दर है और पूर्वकासाही उसका शरीरहै। एवम् उसका सुन्दर मुख चन्द्रमा की नाईं प्रकाशता है और महासुन्दरफूलों की भूमिपर बैठी है। निदान लक्ष्मीके समान लीला और विष्णु के समान राजाको देखा पर जैसे दिन के समय चन्द्रमा की प्रभा मध्यम होती है तैसे उन्हों ने लीलाको कुछ चिन्तासहित राजा की बाईं ओर एकहाथ चिबुक हाथपर रक्खे और दूसरे हाथसे राजा को चमर करती देखा। लीला ने इनको न देखा क्योंकि; ये दोनों प्रबुध आत्मा और सत् संकल्प थीं और लीला इनके समान प्रबुध न थी। रामजीने पूछा; हे भगवन् ! उस मण्डप में पूर्वलीला जो देह को स्थापन कर और ध्यान में विदूरथ की सृष्टि देखने को सरस्वती के साथ गई थी उस देह का आपने कुछ वर्णन न किया कि; उसकी क्या दशा हुई और कहां गई ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! लीला कहां थी, लीला का शरीर कहां था और उसकी सत्ता कहां थी ? वह तो अरुन्धती के मन में लीला के शरीर को भ्रान्तिप्रतिभा हुई थी। जैसे मरुस्थलमें जल की प्रतिभा होती है तैसेही लीला के शरीर की प्रतिभा उसे हुई थी। हे रामजी ! यह आधिभौतिक अज्ञानसे भासता है और बोधसे निवृत्त होजाता है। जब उस लीला को बोधमें परिणाम हुआ तब उसका आधिभौतिक शरीर निवृत्त होगया—जैसे सूर्य के तेजसे बरफ का पुतला गलजाता है—और अन्तवाहकता उदय हुई। हे रामजी ! जो कुछ जगत् है वह सब आकाशरूप है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रमसे भासताहै तैसेही अन्तवाहकता में आधिभौतिकता भ्रम से भासती है। आदि शरीर अन्तवाहकहै अर्थात् संकल्पमात्रहै उसमें दृढ़भावना होगई उससे पृथ्वी आदि तत्त्वोंका शरीर भासनेलगा। वास्तव में न कोई भूत आदिक तत्त्व है और न कोई तत्त्वों का शरीरहै। उसका शव शशे की शृङ्गोंकी नाईं असत् है। हे रामजी ! आत्मा में अज्ञानसे आधिभौतिक भासे हैं। जब आत्मा का बोध होता है तब आधिभौतिक नष्ट होजाते हैं। जैसे किसी पुरुष ने स्वप्नमें आपको हरिण देखा और जब जाग उठा तब हरिण का शरीर दृष्टि नहीं आया तैसेही अज्ञान से आधिभौतिकता दृष्टि आई है और आत्मबोध हुये आधिभौतिकता दृष्टि नहीं आती। जब सत्य का ज्ञान उदय होता तब असत् का ज्ञान लीन होजाता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है और रस्सी के ज्ञान से सर्पका ज्ञान लीन होता है तैसेही सम्पूर्ण जगत् मनसे उदय हुआ है और अज्ञान से आधिभौतिकता को प्राप्त हुआहै। जैसे स्वप्न में जगत् आधिभौतिकहो भासताहै और जागेसे स्वप्नशरीर नहीं भासता तैसेही आत्मज्ञान से आधिभौतिकता निवृत्त होजाती है और अन्तवाहक

शरीर भासता है। रामजी बोले; हे भगवन्! योगीश्वर जो अन्तवाहक शरीर से ब्रह्मलोक पर्यन्त आतेजाते हैं उनके शरीर कैसे भासते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अन्तवाहक शरीर ऐसे हैं जैसे कोई पुरुष स्वप्न में हो उसको पूर्व के जाग्रत् शरीरका स्मरण हो तब स्वप्न शरीर दृष्टि भी आता है पर उसको आकाशरूप जानता है; तैसेही आधिभौतिकता बोध से नष्ट होजाती है। जैसे शरत्काल का मेघ देखनेमात्र होता है तैसेही ज्ञानवान् योगीश्वरों का शरीर देखनेमात्र होताहै और अदृश्यरूप है; और को शरीर भासता है पर उसको आकाशरूपही भासताहै। हे रामजी! यह देहादिक आत्मा में भ्रान्ति से दृष्टिआते हैं और आत्मज्ञान से निवृत्त होजाते हैं। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है; जब रस्सी का सम्यक्ज्ञान होताहै तब सर्पभाव उसका नहीं रहता तैसेही तत्त्वबोध के हुये देह कहांहो और देहकी सत्ता कहां रहे दोनोंका अभावही हो केवल अद्वैत ब्रह्मसत्ता भासती है। रामजी बोले; हे भगवन्! अन्तवाहक से आधिभौतिकरूप होता है वा आधिभौतिक से अन्तवाहकरूप होता है यह मुझसे कहिये! वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मैंने तुमको बहुत बेर कहा है तुम मेरे कहे को धारण क्यों नहीं करते? मैंने आगे भी कहा है कि, जो कुछ जीव हैं वह सब अन्तवाहक हैं आधिभौतिक कोई नहीं। आदि में जो शुद्ध संवित्मात्र से संवेदन आभास उठा है उससे इस जीव का संकल्परूप अन्तवाहक आदि शरीर हुआ। जब उसमें दृढ़ अभ्यास होता है तब वह संकल्परूपी शरीर आधिभौतिक होकर भासने लगता है। जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफरूप होजाता है तैसेही प्रमाद से संकल्प के अभ्यास से आधिभौतिकरूप होजाता है। उस आधिभौतिक के तीन लक्षण होते हैं भारी शरीर होता है; कठोरभाव होता है और शिथिल होता है उससे अहंप्रतीत होती है इस कारण आधिभौतिक कहाता है। जब तत्त्व का बोध होताहै तब आधिभौतिकता आकाशरूप होजाती है। जैसे स्वप्ने में देह से आदि लेकर जगत् बड़ा स्पष्टरूप भासता है और जब स्वप्ने में स्वप्न का ज्ञान होता है कि, यह स्वप्ना है तब वह स्वप्ने का शरीर लघु होजाता है अर्थात् संकल्परूप होजाता है; तैसेही परमात्मा के बोध से आधिभौतिक शरीर निवृत्त होजाता है और संकल्परूप भासता है। हे रामजी! आधिभौतिकता अबोध के अभ्यास से प्राप्त होती है। जब उलट के उसीही अभ्यास का बोध हो तब आधिभौतिकता नष्ट होजावे और अन्तवाहकता उदय हो। हे रामजी! जीव एक शरीर को त्यागके दूसरे का अङ्गीकार करता है—जैसे स्वप्ने में स्वप्नान्तर प्राप्त होता है और जब बोध होता है तब शरीर और कुछ वस्तु नहीं रही आधिभौतिक शरीर शान्त होजाता है जैसे स्वप्नेसे जाग के स्वप्नशरीर शान्त होजाता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् तुम को भासता है वह सब भ्रममात्र है

अज्ञानसे सत् की नाईं भासता है। जब आत्मबोध होगा तब सब आकाशरूप होगा॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्ननिरूपणोनामचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब वह दोनों देवियां अन्तःपुर में गईं तब प्रबुधलीला कहनेलगी; हे देवीजी! समाधि में लगे मुझको कितनाकाल व्यतीत हुआ? मैं ध्यान से भूपाल की सृष्टि में गई थी और मेरा शरीर यहां पड़ा था वह कहां गया? देवी बोली; हे लीले! तुझको समाधि में लगे इकतीस दिन व्यतीतहुये हैं। जब तू ध्यान में लगी तब तेरा पुर्यष्टक विदूरथ की सृष्टि में बिचरता फिरा जब इस शरीर की वासना तेरी निवृत्त होगई तब जैसे रससे रहित पत्र सूखजाता है तैसेही तेरा शरीर निर्जीव होकर गिरपड़ा और जैसे काष्ठ पाषाण होता है तैसेही हो बरफ की नाईं शीतल होगया। तब देखके सबने बिचार किया कि, यह मरगई इसको जलाइये और चन्दन और घृत से लपेट के जलादिया। बान्धवजन रुदन करने लगे और पुत्रोंने पिण्डक्रिया की। हे लीले! जो तू ध्यान से उतरती तो तुझको देखके लोग आश्चर्यमान होते और अबभी देखके सब आश्चर्यमान होवेंगे कि, रानी परलोक से फिर आई है। हे लीले! अब तुझको बोध उदय हुआ है इससे इस शरीर की वासना नष्ट होगई और अन्तवाहक में दृढ़ निश्चय हुआ इस कारण वह शरीर जीवितहुआ। अब जो उसके समान तेरा शरीर हुआ है वह इस कारण है कि, तुझको लीला की वासना में बोध हुआ है कि, मैं लीला हूं इस कारण तेरा शरीर तैसाही रहा। यह लीला शरीर की तेरी वासना नष्ट न हुई थी इस कारण तू निर्वाण न हुई नहीं तो विदेहमुक्त हो जाती। अब तू सतसंकल्प हुई है जैसे तेरी इच्छा होगी तैसेही अनुभव होगा। हे लीले! जैसी वासना जिसको होती है उसके अनुसार उसको प्राप्त होता है। जैसे बालक को अन्धकार में जैसी भावना होतीहै तैसाही भान होताहै-जो वैताल की भावना होती है तो वैताल हो भासताहै परन्तु वास्तव में वैताल कोई नहीं। तैसे जितनी आधिभौतिक [illegible] भासती है वह भ्रममात्र है। सब जीवों का आदि शरीर अन्तवाहकहै सो प्रमाद से आधिभौतिक भासता है। हे लीले! एक लिङ्गशरीर है; एक अन्तवाहक शरीरहै-यह दोनों संकल्पमात्र हैं और इनमें इतना भेद है कि, लिङ्गशरीर संकल्परूपी मन है उसमें जिसको आधिभौतिकता का अभिमान होता है उसको गौरत्व और कठोररूप और वर्णाश्रमका अभिमान होताहै। जिसपुरुषको ऐसे अनात्मा में आत्माभिमान हुआ है जिसकी आधिभौतिक लिङ्गदेह है उसकी चिन्तना सत्य नहीं होती। जिसको आधिभौतिक का अभिमान नहीं होता वह अन्तवाहक शरीर है। वह जैसा चिन्तवन करता है वैसीही सिद्धि होती है। हे लीले! तू अब अन्तवाहकमें दृढ़ स्थित

हुई है इसकारण तेरा फिर वैसाही शरीर हुआ है। तेरी आधिभौतिक बुद्धि नष्ट होगई और वह स्थूल शरीर शव होकर गिरपड़ा है जैसे जल से रहित मेघ हो और जैसे सुगन्ध से रहित फूल हो तैसेही तेरा शरीर होगया है और अब तू सत्यसंकल्प हुई है। जैसी चिन्तवन कर तैसाही होगा। हे लीले! यह कमलनयनी लीला तेरे भर्त्ताके पास बैठी है और उसको इस अन्तःपुरके लोग और सहेलियां जान नहीं सक्तीं क्योंकि; मैंने इनको निद्रा में मोहित कियाथा। जबतक मेरा दर्शन इसको न होवेगा तबतक इसको और कोई न जानसकेगा अब यह हमको देखेगी। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ऐसे विचारके देवी उसको अपने संकल्प से ध्यान करनेलगी तब उस लीला ने देखा कि, अन्तःपुरमें बहुत से सूर्योंका प्रकाश इकट्ठाहुआहै और चन्द्रमा की नाईं शीतल प्रकाश है। ऐसे दोनों देवियों को देखके उसने नमस्कारकर मस्तक नवाया और दोनों को स्वर्ण के सिंहासन पर बैठाके कहनेलगी; हे जीव की दाता! तुम्हारी जय हो! तुमने मुझपर बड़ी कृपा की। तुम्हारेही प्रसाद से मैं यहां आई। देवी बोली; हे पुत्री! तू यहां कैसे आई और क्या वृत्तान्त तूने देखा सो कह? विदूरथ की लीला बोली; हे देवि! जब मेरा भर्त्ता संग्राम में घायल हुआ तब उसको देखके मैं मूर्च्छित हो गिरपड़ी परन्तु मृतक न भई। इसके अनन्तर फिर मुझको चेतना फुरी तो मैंने अपना वही शरीर देखा और उस शरीर से मैं आकाशमार्ग को उड़ी। जैसे वायु गन्ध लेकर उड़ता है तैसेही एक कुमारी मुझे उड़ाकर परलोक में भर्त्ताके पास बैठा आप अन्तर्द्धान होगई। मेरा भर्त्ता जो संग्राम में थका था वह आके सोरहा है और मैं सँभालती देखती मार्ग में आई हूं परन्तु मुझको तुम दृष्टि कहीं न आई। यहां कृपाकर तुमने दर्शन दिया है। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले हे रामजी! इस प्रकार सुनके देवी ने प्रबुध लीला से कहा कि; अब मैं राजा की जीवकला को छोड़ती हूं। ऐसे कहके देवीने नासिका के मार्ग से जीवकला को छोड़दिया और जैसे कमल के भीतर वायु प्रवेश करजावे अथवा शरीर में वायु प्रवेश करजावे तैसेही शरीर में जीवकला प्रवेश करगई। जैसे समुद्र जल से पूर्ण होता है तैसेही पुर्यष्टक वासना से पूर्ण थी। शरीर की कान्ति उज्ज्वल होगई और जैसे वसन्तऋतु में फूल और वृक्षों में रस फैलता है अङ्गों में प्राणवायु फैलगई। तब सब इन्द्रियां खिलआईं जैसे वसन्तऋतु में फूल खिलआते हैं। तब राजा फूलों की शय्या से इस भांति उठ खड़ा हुआ जैसे शंकाहुआ विन्ध्याचल पर्वत उठआवे। तब दोनों लीला राजा के सन्मुख आ खड़ी हुईं और राजा ने कहा मेरे आगे तुम कौन खड़ी हो? प्रबुध लीला ने कहा; हे स्वामी! मैं तुम्हारी पूर्व पटरानी लीला हूं; जैसे शब्द के सङ्ग अर्थ रहता है तैसे सदा तुम्हारे सङ्ग रहीहूं! जब तुम यहां शरीर त्यागके परलोक में गये थे तब मुझ में तुम्हारा अति

स्नेह था इससे मेरा प्रतिबिम्ब यह लीला तुमको भासी थी। अब जो और कथा का वृत्तान्त है सो मैं तुम से कहती हूं। हे राजन्! हमारे ऊपर इस देवी ने कृपा की है जो हमारे शीशपर स्वर्ण के सिंहासन पर बैठी है। यह सरस्वती सर्वकी जननी है; इसने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की है और परलोक से तुम्हें ले आई है। हे रामजी! ऐसे सुन के राजा प्रसन्न हो उठखड़ाहुआ और सरस्वती के चरणों पर मस्तक नवाकर बोला; हे सरस्वति! तुमको मेरा नमस्कार है। तुम सबकी हितकारिणी हो और तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है। अब कृपा करके मुझको यह वर दो कि, मेरी आयुर्बल बड़ी हो; निष्कण्टक राज्य करूं; लक्ष्मी बहुतहो; रोग कष्ट न हो और आत्मज्ञान से सम्पन्न होऊं अर्थात् भोग और मोक्ष दोनों दो। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार राजा ने कहा तब देवी ने उसके शीश पर हाथ धरके आशीर्वाददिया कि, हे राजन्! ऐसेही होगा। तेरी आयुर्बल बड़ी होगी; तेरा शत्रु भी कोई न होगा; निष्कण्टक राज्य करेगा; आपदा तुझको न होगी; लक्ष्मीसंपदासे सम्पन्न होगा; तेरी प्रजा भी बहुत सुखीरहकर तुझको देखके प्रसन्न होगी; तेरी प्रजा में आपदा किसी को न होगी और तू आत्मानन्द से भी पूर्ण होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजीवजीवन्वर्णनंनामैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहके देवी तो अन्तर्द्धान होगई और प्रातःकाल का समय हुआ; सब लोग जाग उठे; सूर्य भी उदय हुआ और सूर्यमुखी कमल खिलआये। राजा दोनों लीला को कण्ठ लगा प्रसन्न और आश्चर्यमान हुआ मन्दिर में नगारे बजने लगे और नाना शब्द होनेलगे मन्दिर में बड़ा हुलास और आनन्द हुआ अनेक अङ्गना नृत्य करने लगीं और बड़ा उत्साह हुआ। विद्याधर सिद्ध देवता, फूलों की वर्षा करनेलगे औरलोग बड़े आश्चर्यमान हुये कि, लीला परलोक से फिर आई है और अपने भर्त्ता और एक आपसी दूसरी लीला ले आई है। हे रामजी! यह कथा देश से देशान्तर चली गई और सबलोग सुनके आश्चर्यमान हुये। जब इस प्रकार यह कथा प्रसिद्धहुई तब राजाने भी सुना कि, मैं मर के फिर जियाहूं और बिचारा कि, फिर मेरा अभिषेक हो निदान मन्त्री और मण्डलेश्वरों ने उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों ओर से सब समुद्र और सर्व तीर्थों का जल मँगा राजा को राजका अभिषेक किया और चारों समुद्रों पर्यन्त राजा निष्कण्टक राज्य करने लगा। राजा और लीला यह पूर्व की कथा को विचारते और आश्चर्यमान होते थे। सरस्वती के उपदेश और प्रसाद से अपना पुरुषार्थ पाके राजा और दोनों लीलाने इस भांति सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवन्मुक्त होके राज किया और मन सहित षट् इन्द्रियों को वश करके यथालाभ संतुष्ट रहे और दृश्यभ्रम उनका नष्ट हो

जगत् तुम देखते हो सो संवेदन फुरनेमें स्थित है। जब संवेदन स्थित होता है तब न दिन भासता है; न राति भासती है; न कोई पदार्थ भासते हैं और न अपना शरीर भासता है केवल आत्मतत्त्वमात्र सत्ता रहती है। इससे तुम देखो कि; सब जगत् मनके फुरने में होता है। जैसा २ मन फुरता है तैसा २ रूप हो भासताहै। कडुवे में जिसको मीठे की भावना होती है तो कडुवा उसको मीठा होजाता है और मीठेमें जिस को कटुक भावना होती है तब मधुर भी उसको कटुकरूप होजाता है। स्वप्ने और शून्य स्थान में नानाप्रकार के व्यवहार होते भासतेहैं और स्थिर पड़ा स्वप्नेमें दौड़ता फिरता है। इससे जैसा फुरना मन में होता तैसाही होभासता है। हे रामजी! नौकामें बैठे हुये पुरुषको नदी के तट वृक्षों सहित दौड़ते भासते हैं। जो विचारवान् हैं वे चलते भासने में उन्हें स्थिरही जानतेहैं। और जो पुरुष थमता है उसको स्थिरभूत मन्दिर भ्रमते भासतेहैं और जो विचार में दृढ़है उसको भ्रमते भासने में भी अचलबुद्धि होती है। इससे जैसा २ निश्चय होता है तैसाही तैसा हो भासता है। हे रामजी! जिसके नेत्र में दूषण होता है उसको श्वेत पदार्थ भी पीतवर्ण भासता है और जिसके शरीर में वात, पित्त, कफ का क्षोभ होता है उसको सब पदार्थ विपर्यय भासते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी आकाशरूप भासती है और आकाश पृथ्वीरूप हो भासता है; चल पदार्थ अचलरूप भासता है और अचलपदार्थ चलता भासता है। हे रामजी! जैसे स्वप्ने में अङ्गना असत्‌रूप होती है परन्तु भ्रान्ति से उसको स्पर्श करके प्रसन्न होता है तो उसकाल में प्रत्यक्षही भासती है और जैसे बालक को परछाहीं में वैताल भासता है सो असत्‌ही सत्‌रूप हो भासता है। हे रामजी! शत्रु में जो मित्रभावना होती है तो वह शत्रुभी मित्र सुहृद् हो भासता है और जो मित्रमें शत्रुभाव होता है तो वह सुहृद् शत्रुरूप हो भासता है। जैसे रस्सी में सर्पहै नहीं परन्तु भ्रम से सर्प भासता है और भय देता है तैसेही बान्धवों में जो बान्धव की भावना न करे तो बान्धव भी अबान्धव हो भासता है और अबान्धव भी भावना के अभाव से बान्धव होजाते हैं। हे रामजी! शून्यस्थान में और स्वप्ने में बड़े क्षोभ भासते हैं और निकटवर्त्ती को जागे से कुछ नहीं भासता। स्वप्नेवाले को सुनने का अनुभव होता है और जाग्रत्‌वाले को जाग्रत् का अनुभव होता है इत्यादिक पदार्थ विपर्यय भ्रमसे भासते हैं। जब मन फुरता है तबहीं भासता है। तैसेही लीला के भर्त्ता को भी ऐसी सृष्टि का अनुभव हुआ। जैसे जाग्रत् की एक मुहूर्त्ति का स्वप्ने में बहुतकाल का अनुभव होता है तैसेही लीला के भर्त्ता को भी हुआ था। जैसी २ मन की स्फूर्ति होती है तैसाही तैसा रूप चैतन्य संवित् में भासता है। हमको सदा ब्रह्म का निश्चय है इससे हमको सब जगत् ब्रह्मस्वरूप ही भासता है और जिसको जगत् भ्रम दृढ़ है उसको जगत्‌ही भासता है। हे रामजी!

जो कुछ जगत् भासता है सो कुछ आदि से उपजा नहीं—सब आकाशरूप है। रोकनेवाली कोई भीति नहीं है बड़े विस्तार से जगत् है परन्तु स्वप्नवत् है। जैसे थम्भे में बनाने विना पुतली शिल्पी के मन में भासती है और थम्भे में कुछ बनी नहीं तैसेही आत्मारूपी थम्भा है उसमें जगत्‌रूपी पुतलियों को संवेदन रचता है परन्तु वह कुछ पदार्थ नहीं है आत्मसत्ता ही ज्यों की त्योंहै। हे रामजी! जैसे एकस्थान में दो पुरुष लेटे हों और उनमें एक जागता हो और दूसरा स्वप्ने में हो तो जो स्वप्ने में है उसको बड़े युद्ध होते भासतेहैं और जागे हुये को आकाशरूप है तैसेही जो प्रबोध आत्मज्ञानवान् है उसको जगत् का सुषुप्ति की नाईं अभाव है और जो अज्ञानी है उसको नाना प्रकार के व्यवहारों सहित स्पष्ट भासता है। जैसे वसन्तऋतु में पत्र, फल और गुच्छे रससहित भासते हैं तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यता से जगत्‌रूप भासतीहै। जैसे स्वर्ण में द्रवता सदा रहतीहै परन्तु जब अग्नि का संयोग होताहै तभी भासतीहै। हे रामजी! आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे अवयवी और अवयवों में और पृथ्वी और गन्ध में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। ब्रह्मसत्ता ही संवेदन से जगत्‌रूप होकर भासती है और दूसरी कोई वस्तु नहीं। जब महाप्रलय होता है और सर्ग नहीं होता तब कार्यकारण की कल्पना कोई नहीं होती केवल चिन्मात्र सत्ता होती है और उसमें फिर चिदाकाश जगत् भासता है तो वही रूप हुआ। जो तुम कहो कि, इस जगत् का कारण स्मृति है तो सुनो; जब महाप्रलय होता है तब ब्रह्माजी तो विदेहमुक्त होते हैं फिर वह जगत् के कारण कैसे हों और जो तुम स्मृति का कारण मानो तो स्मृति भी अनुभव में होती है जो स्मृतिसे जगत् हुआ तौभी अनुभवरूप हुआ। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! पद्मराजा के मन्त्री, नौकर और सबलोग विदूरथ को कैसे जाकर मिले? यह वार्त्ता फिर कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! केवल चेतनसंवित् सबका अपना आप है उस संवित् के आश्रय से जैसा संवेदन फुरता है तैसाही रूप हो भासता है। हे रामजी! जब राजा विदूरथ मृतक होनेलगा तब उसकी वासना उनमें थी और मन्त्री, नौकर आदिक राजा के अङ्गहैं इस कारण वैसेही मन्त्री और नौकर राजा को मिले। हे रामजी! जैसी भावना संवेदन में दृढ़ होती है तैसाही रूप हो भासता है। एक चल पदार्थ होते हैं और एक अचल होते हैं जो अचल पदार्थ हैं उनका प्रतिबिम्ब आदर्श में भासता है और चल पदार्थ रहता नहीं भासता इससे उसका प्रतिबिम्ब नहीं भासता। तैसेही जिस पदार्थ की तीव्र संवेगभावना होती है उसीका प्रतिबिम्ब चेतनदर्पण में भासता है अन्यथा नहीं भासता। जैसे तीव्र वेगवान् बड़ा नद समुद्र में शीघ्रही जामिलता है और दूसरे नहीं प्राप्त होसक्ते तैसेही जिसकी दृढ़ वासना होती है वह

उसके अनुसार शीघ्र जाकर पाता है। हे रामजी! जिसके हृदय में अनेक वासना होती हैं और अच्छी तीव्रता होती है उसीकी जय होती है। जैसे समुद्र में अनेक तरङ्ग होते हैं तो कोई उपजता है और कोई नष्ट होजाता; कोई सदृश होता है कोई विपर्यय होता है उसके सदृश मन्त्री और नौकर भी हुये। हे रामजी! एक २ चिद् अणु में अनेक सृष्टि स्थित होती हैं पर वास्तव में कुछ नहीं केवल चिदाकाशही चिदाकाश में स्थित है। यह जो जगत् भासता है सो आकाशही रूप है जो जाग्रत्रूप होकर असत्‌ही सत्‌रूप की नाईं भासता है। जैसे पत्र, फल, फूल सब वृक्षरूप हैं और वृक्षही ऐसे रूप होकर स्थित हैं तैसेही अनन्तशक्ति परमात्मा अनेकरूप होकर भासता है। हे रामजी! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, त्रिपुटीज्ञानी को अजन्मापद भासता है और अज्ञानी को द्वैतरूप जगत् होकर भासता है। कहीं शून्य भासता है; कहीं तम भासता है और कहीं प्रकाश भासता है। देश, काल, क्रिया, द्रव्य आदिक सब जगत् आदि, अन्त और मध्य से रहित स्वच्छ आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है जैसे सोमजल में जो तरङ्ग होते हैं सो जलही रूप हैं तैसेही अहं, त्वं आदिक जगत् भी बोधरूप है और सदा अपने आपमें स्थित है-उसमें द्वैतकल्पना का अभाव है॥

इति श्रीयो०उत्पत्तिप्रकरणेलीलोपा०प्रयोजनवर्णनन्नामत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४३॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अहं त्वं आदिक दृश्य भ्रान्ति कारण विना परमात्मा से कैसे उदय हुई है? जिस प्रकार मैं समझूं उसी प्रकार मुझको फिर समझाइये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ कारण कार्य जगत् भासता है वह परमात्मा से उदय हुआ है अर्थात् संवेदन के फुरने से इकट्ठे हो पदार्थ भास आये हैं और सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वात्मा, अजरूप अपने आप में स्थित है। हे रामजी! यह सर्व शब्द और अर्थरूप कलना जो भासी है सो ब्रह्मरूप है; ब्रह्म से कुछ भिन्न नहीं और ब्रह्मसत्ता सर्वशब्द अर्थ की कलना से रहित अपने आप में स्थित है। जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं और तरङ्ग जल से भिन्न नहीं तैसेही ब्रह्म से भिन्न जगत् नहीं—ब्रह्मस्वरूपही है। हे रामजी! ईश्वर जो आत्मा है सो जगत्‌रूप है जगत् ईश्वररूप है। जैसे सुवर्ण भूषणरूप है और भूषण स्वर्णरूप है अर्थात् सुवर्ण में भूषण शब्द और अर्थ कल्पित हैं—वास्तव नहीं— तैसेही जगत् आत्मा का आभासरूप है—वास्तव में कुछ नहीं। हे रामजी! जो कुछ जगत् है सो ब्रह्मरूप है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जैसे अवयव अवयवी से भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से जो कुछ अवयवी जगत् है सो भिन्न नहीं। आत्मा में संवेदन के फुरने से तन्मात्रा फुरी है और आत्मामें ही इनका उपजना सम हुआ है; पीछे विभाग कल्पना हुई है इसलिये उनसे जो भूत हुये हैं वे आत्मा से अन्य नहीं। जैसे शिला में चितेरा भिन्न २ पुतली कल्पता है सो शिला-

रूपही हैं; भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहंत्वं आदिक जगत् चिद्घन आत्मा में मनरूपी चितेरे ने कल्पा है सो चिद्घनरूप ही है कुछ भिन्न नहीं। जैसे जल में तरङ्ग स्थित होते हैं सो जलरूपही हैं; तरङ्गों का शब्द और अर्थ जल में कोई नहीं; तैसेही आत्मा जगत् स्थित है पर जगत् के शब्द और अर्थ से रहित है। हे रामजी! जगत् परमपद से भिन्न नहीं और परमपद जगत् विना नहीं; केवल चिद्रूप अपने आप में स्थित है। जैसे वायु और स्पन्द में कुछ भेद नहीं है स्पन्द और निस्स्पन्द दोनों रूप वायुकेही हैं। जब स्पन्दरूप होता है तब स्पर्शरूप होकर भासता है और निस्स्पन्द हुये स्पर्श नहीं भासता; तैसेही जगत् और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं; जब संवेदन किंचित्रूप होता है तब जगत्रूप हो भासता है और संवेदन के निस्स्पन्द हुये से जगत् नहीं भासता पर आत्मसत्ता सदा एकरूप है। हे रामजी! जब संवेदन फुरने से रहित होकर आत्मपद में स्थित हो तब यदि संकल्परूप जगत् फिर भी भासे तो आत्मरूप ही भासे। जैसे वायु के स्पन्द और निस्स्पन्द दोनों रूप अपने आपही भासते हैं तैसे ही इसको भी भासता है। जैसे वायु में स्पन्दता वायुरूप स्थित है तैसेही आत्मा में जगत् आत्मरूप से स्थित है। जैसे तेज अणु का प्रकाश जब मन्दिर में होता है तब बाहर भी प्रगट होता है तैसेही जब केवल संवित्मात्र में संवेदन स्थित होता है तब फुरने में भी संवित्मात्रही भासता है। हे रामजी! जैसे रसतन्मात्रा में जल स्थित होता है तैसेही आत्मा में जगत् स्थित है। जैसे गन्धतन्मात्रा के भीतर सम्पूर्ण पृथ्वी स्थित है तैसेही किञ्चनरूप जगत् आत्मा में स्थित है। वह निराकार और चिन्मात्ररूप आत्मसत्ता उदय और अस्त से रहित अपने आपमें स्थित है; प्रपञ्चभ्रम उसमें कोई नहीं। हे रामजी! जे ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको दृढ़ीभूत जगत् भी आकाशरूप भासता है और जे अज्ञानी हैं उनको असत्रूप जगत् भी सत्रूप हो भासताहै। हे रामजी! जैसा जैसा संवेदन चित्तसंवित् में फुरता है तैसाही तैसा रूप जगत् हो भासता है। ये जितने तत्त्व और तन्मात्रा हैं वे सब चित्तसंवेदन के फुरने से स्थित हुये हैं; जैसी २ उससे स्फूर्त्ति होती है तैसी २ होकर भासती है क्योंकि; आत्मा सर्वशक्तिमान्‌है इस लिये जिस २ पदार्थ का फुरना फुरता है वही अनुभव में सत्रूप होकर भासता है। पञ्चज्ञानेन्द्रिय और छठे मनका जो कुछ विषय होता है वह सब असत्रूप है और आत्मसत्ता इनसे अतीत है। विश्वभी क्या रूप है; जैसे समुद्र में तरङ्ग होते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् स्थित है। जैसे तेज और प्रकाश अनन्यरूप हैं तैसेही आत्मा और जगत् अनन्यरूप हैं। जैसे थम्भे में शिल्पी पुतलियां देखताहै; जैसे मृत्तिकाके पिण्डमें कुम्हार बर्तन देखताहै और जैसे भीतपर चितेरा रङ्ग की मूरतें लिखता है सो अनन्यरूप हैं तैसेही परमात्मा में सृष्टि अनन्यरूप है। हे रामजी! जैसे मरुस्थल

में मृगतृष्णा का जल और तरङ्गें असत् हैं पर सत्रूप हो भासती हैं; तैसेही आत्मा में असत्रूप जगत् त्रिलोकी भासती है। जब चित्तसंवित् में संवेदन फुरताहै तब जगत् भासता है और जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत् भी नहीं भासता। जगत् कुछ ब्रह्म से भिन्न नहीं। जैसे बीज और वृक्ष में; चीर और मधुरता में; मिरच और तीक्ष्णता में; समुद्र और तरङ्गमें और वायु और स्पन्द में कुछ भेद नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे अग्नि में उष्णता स्वाभाविक स्थित है तैसेही निराकार आत्मा में सृष्टि स्वाभाविकही स्थित है। हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मरूपी रत्न का किञ्चन है; जैसा २ किञ्चन होता है तैसाही तैसा होकर भासता है। अकारणपदार्थ अकारणही होताहै और जिस अधिष्ठान में भासताहै उससे अनन्यरूप होताहै; अधिष्ठान से भिन्न उसकी सत्ता नहीं होती; तैसेही यह जगत् आत्मा में अनन्यरूप होताहै कुछ उपजा नहीं परन्तु संवेदन फुरने से भासताहै। जितने जगत् और वासना हैं उनका बीज संवेदन है इससे वे भ्रम हैं। इसलिये संवेदन के अभाव का पुरुषार्थ करो; जब संवेदन का अभाव होगा तब जगत्भ्रम नष्टहोगा। वास्तव में कुछ न उपजाहै और न कुछ नष्टहोताहै; सर्व शान्तरूप चिद्घन ब्रह्मशिलाघन की नाईं अपने आप में स्थित है। हे रामजी! चित् परमाणु में चैत्यता से अनेकसृष्टि भासती हैं। उन सृष्टियों में जो परमाणु हैं उन परमाणुओं के भीतर और सृष्टि स्थित हैं उनकी कुछ संख्या नहीं। जैसे जल में अनेक तरङ्ग होते हैं उन में से कोई गुप्त और कोई प्रकट होते हैं पर वे सब जल की शक्तिरूप हैं और जैसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था जीवों के भीतर स्थित हैं पर कोई गुप्त है कोई प्रकटरूप है। हे रामजी! जबतक संवेदन द्वैत के साथमिलाहुआ है तबतक सृष्टि का अन्त नहीं। जब चित्त उपशम होगा तब जगत्भ्रम मिटजावेगा। जब भोगोंमें कुछ भी वृत्ति न उपजे तब जानिये कि, आत्मपद प्राप्तहोगा। यह श्रुति का निश्चय है। हे रामजी! ज्यों २ ममत्व दूर होता है त्यों २ बन्धनों से मुक्त होताहै। जब अहंभाव अर्थात् जीवत्वभाव निर्वाण होताहै तब जन्मोंकी संपदा नष्टहोजाती हैं केवल शुद्धरूपही होताहै और तब स्थावर जङ्गमरूप जगत् सब आत्मरूप प्रतीत होताहै। जैसे समुद्रको तरङ्ग और बुद्बुदे सब अपने आपरूप भासते हैं तैसेही ज्ञानवान् को सबजगत् आत्मरूपभासता है। हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ता में जो संवेदन फुराहै उसने आपको ब्रह्मरूप जाना और भावना करके संकल्परूप नाना प्रकार का जगत् रचा है पर उसको अन्तर अनुभव असत्यरूप किया। उसमें कहीं निमेषमें अनेक युगों का अन्त भासताहै और कहीं अनेक युगों में एक निमेष का अनुभव होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजगत्किञ्चनवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चिद्परमाणुमें जो एक निमेष होताहै उसके लाखवें भाग में जगतों के अनेक कल्प फुरते हैं । और उन सृष्टियों में जो परमाणु हैं उनमें सृष्टि फुरती हैं । जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं सो जलरूपही हैं तरङ्ग शब्द और उस का अर्थ भ्रमरूप है—तैसेही आत्मा में भ्रमरूप अनेक सृष्टि फुरती हैं । जैसे मरुथल में मृगतृष्णा की नदी चलती दृष्टि आती है तैसेही आत्मामें यह जगत् भासता है । जैसे स्वप्नसृष्टि और गन्धर्वनगर भासते हैं; जैसे कथा के अर्थचित्त में फुरते हैं और संकल्पपुर भासता है; तैसेही जगत् असत्रूप सत्‌हो भासताहै । इतना सुन रामजीने पूछा; हे ज्ञानवानों में श्रेष्ठ ! जिस पुरुष को विचार द्वारा सम्यक् ज्ञान हुआ और निर्विकल्प आत्मपद की प्राप्ति हुई है उसको अपने साथ देह कैसे भासती है; उसकी देह कैसे रहती है और देह प्रारब्ध से उसका शरीर कैसे रहताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मशक्ति में संवेदन फुरा है उसका नाम नीति हुआहै । उसमें जो संभावना की है कि, यह पदार्थ ऐसे होगा; इससे होगा और इतने काल रहेगा वैसेही अनेक कल्पपर्यन्त होता है । जितना काल उसने धाराहै उतने काल का नाम नीति है । महासत् भी उसीको कहते हैं और महाचेतना भी उसीको कहते हैं । महा शक्ति भी उसीका नाम है और महाअदृष्ट वा महाकृपा भी वही है और महाउद्भव भी उसीको कहते हैं । अर्थ यह कि, वह नीति अनन्त ब्रह्माण्डों की उपजानेवाली है । जैसा फुरना दृढ़ हुआ है तैसाही रूप होकर स्थित है । यह स्थावररूप है यह जङ्गम है; यह दैत्य है; यह देवता है; यह नाग है; यह नागिनी है; ब्रह्मासे तृणपर्यन्त जैसी उसमें अभ्यास है उसी प्रकार स्थित है । स्वरूप से ब्रह्मसत्ताका व्यभिचार कदाचित् नहीं हुआ वह तो सदा अपने आपमें स्थित है । जो ज्ञानवान् पुरुषहै उसको सब ब्रह्म-स्वरूप भासता है और जो अज्ञानी है उसको जगत् और नीति भी भिन्न भासती है । ज्ञानवान् को सब अचल ब्रह्मसत्ताही भासती है और अज्ञानियों को चलनरूप जगत् भासता है । वह जगत् ऐसा है जैसे कि; आकाश में वृक्ष भासते हैं और शिला के उदर में मूर्ति होती है । जो ज्ञानवान् हैं उनको सर्ग और निमित्त सब ज्ञानरूप ही भासतेहैं। जैसे अवयवी के अवयव अपनाही रूप होते हैं तैसेही ब्रह्मसत्ता के अवयव ब्रह्म नित्य सर्गादिक अपनाही रूप हैं । हे रामजी ! उसी नीति को दैवभी कहतेहैं । जो कुछ किसी को प्राप्त होताहै वह उसी दैव की आज्ञा से प्राप्त होताहै क्योंकि; आदि से यही निश्चय धरा है कि, इस साधन से यह फल प्राप्त होगा । जैसा साधन होता है तैसाही फल अवश्य सबको उस दैवसे प्राप्तहोता है । इस कारण नीति को दैव कहते हैं और दैव को नीति कहते हैं । हे रामजी ! पुरुष जो कुछ पुरुषार्थ करताहै उसके अनुसार फल प्राप्त होता है । इसी कारण इसका नाम नीति है और इसीका नाम पुरुषार्थहै। तुमने

जो मुझसे दैव और पुरुषों का निर्णय पूछा और मैंने कहा उसीकी तुम पालना करो। इसीका नाम पुरुषार्थ है और इसका जो फल तुमको प्राप्तहो उसका नाम दैव है। हे रामजी! जो पुरुष ऐसा दैवपरायण हुआहै कि; मुझको जो कुछ दैव भोजन करावेगा सोही करूंगा और मौनधारी होके अक्रिय हो बैठे उसको जो आय प्राप्तहो सोभी नीति है और जो पुरुष भोगों के निमित्त पुरुषार्थ करता है वह भोगों को भोगकर मोक्षपर्यन्त अनेकशरीरों को धारेगा; यहभी नीतिहै। हे रामजी! जो आदि संवित् में संवेदन फुरकर भवितव्यता धरी है उसही प्रकार स्थित है उसका नामभी नीति है। उसनीति को ब्रह्मा विष्णु और रुद्रभी उल्लङ्घन नहीं करसके तो और कैसे उल्लङ्घि सके। हे रामजी! जो पुरुष पुरुषार्थ को त्याग बैठेहैं उनको फल नहीं प्राप्तहोता-यह भी नीति है और जो पुरुष फल के निमित्त पुरुषार्थ करता है उसको फल प्राप्तहोता है-यहभी नीति है। जो पुरुष प्रयत्न को त्यागकर निष्क्रिय हो बैठे हैं और मन से विषयों की चित्त में वासना करते हैं वे निष्फलही रहते हैं और जो पुरुष कर्तृत्व को त्यागकर चित्तकी वृत्ति से शून्य दैवपरायण होरहेहैं और विषयों की चित्तमें वासना नहीं करते उनको सफलताही होती है क्योंकि; फुरनेसे रहितहोना भी पुरुषार्थ है। यहभी नीति है कि, अर्थ चिन्तवन करनेवाले को प्राप्त नहीं होती और अयाचक को प्राप्तहोती है। हे रामजी! पुरुषार्थ सफलभी नहीं है जो आत्मबोध के निमित्त न हो। जब ब्रह्मसत्ता की ओर तीव्रअभ्यास होताहै तब परम पद की अवश्य प्राप्ति होती है और जब परमपद पाया तब सब जगत् चिदाकाशरूप हो भासता है। नीति आदिक जो विस्तार कहे हैं सो सर्व भ्रमरूप हैं केवल ब्रह्मसत्ता ही ऐसे हो भासती है। जैसे पृथ्वी में रस सत्ता है और वह तृणवत्, गुच्छे और फूल रूप होकर स्थित हैं तैसेही नीति आदिक सब जगत् होकर ब्रह्मही स्थित है; और कुछ वस्तु नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेदैवशब्दार्थविचारोनामपञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ तुमको भासता है सो सर्व प्रकार, सर्वदा और सर्व ओरसे ब्रह्मतत्त्व ही सर्वात्मा होकर स्थित हुआ है। वह अनन्त आत्मा है; जब उसमें चित्तशक्ति प्रकट होती है अर्थात् शुद्ध चैतन्यमात्र में अहंस्फूर्त्ति होती है तब जगत् भासता है; कहीं उपजता है; कहीं नष्ट होताहै; कहीं हुलास करताहै; कहीं चित्त भासता है; कहीं किञ्चनहै; कहीं प्रकट है और कहीं अप्रकट भासता है। निदान नाना प्रकार का जगत् है जहां जैसा तीव्र अभ्यास होताहै वहां वैसा होकर भासता है क्योंकि; आत्मा सर्व शक्ति और सर्वरूप है; जैसा २ फुरना उसमें दृढ़ होता है वही रूप होकर भासता है। हे रामजी! ये जो नाना प्रकार की शक्तियां कही हैं सो वास्तव में आत्मा से कुछ भिन्न नहीं; बुद्धिमानोंने समझाने के निमित्त नाना

प्रकार के विकल्प जाल कहे हैं आत्मा में विकल्प जाल कोई नहीं । जैसे जल और उसकी तरङ्ग में; सुवर्ण और भूषणों में और अवयवों में और अवयव में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और शक्ति में कुछ भेद नहीं । हे रामजी ! एक संवित् है और एक संवेदन है; संवित् वास्तव है और संवेदन कल्पना है । जब संवित् में चिन्मात्र संवेदन फुरता है तो वह जैसे चेतता जाता है तैसेही होकर स्थित होता है । शुद्धचिन्मात्र संवित् में भीतर और बाहर कल्पना कोई नहीं । जब स्वभाव से किञ्चनरूप संवेदन होताहै तब आगे कुछ देखताहै और उस देखनेसे नाना प्रकार के आकार भासते हैं पर वह और कुछ नहीं सर्व ब्रह्मही है । हे रामजी ! शक्ति और शक्तिमान् में भेद अज्ञानी देखते हैं और अवयवी और अवयव भेद भी कल्पते हैं । परमार्थ में कुछ भेद नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है उसके आश्रय संकल्प आभास होता है । जब संकल्प की तीव्रता होती है तब वह सत् हो अथवा असत् परन्तु उसही का भान होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबीजावतारोनामषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जो सर्वगत देव, परमात्मा महेश्वर है यह स्वच्छ अनुभव, परमानन्दरूप और आदिअन्त से रहित है । उस शुद्धचिन्मात्र परमानन्द से प्रथम जीव उपजा; उससे चित्त उपजा और चित्त से जगत् उपजा है । रामजीने पूछा; हे भगवन् ! अनुभव परिणाम से जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व; सर्वव्यापी, द्वैत से रहित स्थित है उसमें तुच्छरूप जीव कैसे सत्यता को पाताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ब्रह्म सदा भास है अर्थात् असतरूप जगत् उससे सत् भासता है और स्वच्छ है अर्थात् आभासरूपी जगत्से भी रहित है । बृहत् है अर्थात् बड़ा है बड़ाभी दो प्रकार का है; अविद्याकृत जगत् से जो बड़ा है सो अविद्या की बड़ाई मिथ्याहै । ब्रह्म बड़ाई सर्वात्मकरूप है सो सर्वदेश, सर्वकाल और सर्ववस्तु से पूर्ण है और अविद्याकृत बड़ाई देश, काल वस्तु से रहित निराकार है सो ज्ञानी का विषय है इससे बृहत् है और परम चेतन है । भैरवहै अर्थात् जिसके भयसे चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि वायु और जल अपनी मर्यादा में चलते हैं । परमानन्द है, अविनाशी है सर्वओर से पूर्ण है; सम है; शुद्ध है और अचिन्त्य है अर्थात् वाणी से नहीं कहाजाता और क्षोभसे रहित चिन्मात्र है ऐसी आत्मसत्ता ब्रह्म का जो स्वभाव सम्पत्है उसीका नाम जीवहै अर्थात् जो शुद्ध चिन्मात्र में अहंफुरना है उसीका नाम जीवहै । उस अनुभवरूपी दर्पणमें अहंरूपी प्रतिबिम्ब फुरने को जीव कहतेहैं । जीव अपने शान्तपद को त्यागेकी नाईं स्थित होता है सो चिदात्माही फुरने के द्वारा आपको जीवरूप जानताहै । जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्गरूप होताहै पर समुद्र और तरङ्गमें कुछ भेद नहीं; तैसेही ब्रह्मही जीवरूपहै ।

जैसे वायु और स्पन्द और बरफ और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जीव में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! चित्तरूपी आत्मतत्त्व को ही अपने स्वभाववश से माया करके संवेदन सहित जीवरूप कहतेहैं वह जीव आगे फुरने से बड़े विस्तार धारण करताहै। जैसे इन्धन से अग्नि के बहुत अणु होतेहैं और बड़े प्रकाश को प्राप्त होताहै तैसेही जीव फुरने से जगत्‌रूप को प्राप्त होता है। जैसे आकाश में नीलताभासती है सो नीलता कुछ भिन्न वस्तु नहीं है तैसेही अहंभाव ते ब्रह्ममें जीव-रूप भासता है और अहंकृत को अङ्गीकार करके कल्पितरूप की नाईं स्थित होता है। जैसे घन की शून्यता से आकाश में नीलता भासती है तैसेही स्वरूपके प्रमाद से देश, काल वस्तु के परिच्छेदसहित अहंकाररूपी जीव भासते हैं पर वास्तव में चिदाकाश ही चिदाकाश में स्थित है। जैसे वायु से समुद्र तरङ्गरूप होता है तैसेही संवेदन फुरने से आत्मसत्ता जीवरूप होती है। जीवकी चैत्योन्मुखत्वता के कारण इतनी संज्ञा हैं-चित्त, जीव, मन, बुद्धि, अहंकार मायाप्रकृति सहित ये सब उसही के नाम हैं। उसजीव ने संकल्पसे पञ्चभूत तन्मात्रा को चेता तो उन पञ्चतन्मात्रा के आकारसे अणुरूप होकर स्थित हुआ; उससे अणु अनउपजेही उपजेकी नाईं स्थित हुये और भासने लगे। फिर उसी चित्तसंवेदन ने अणु अङ्गीकार करके जगत् को रचा और जैसे बीज से सत्‌अंकुर वृक्ष होता है तैसेही संवेदन ने विस्तार पाया। प्रथम वह एकअण्डरूपी होकर स्थित हुआ और फिर उसने अण्डको फोड़ा। जैसे गन्धर्वनगर और स्वप्नसृष्टि भासती है तैसेही उसमें जगत् भासनेलगा। फिर उस में भिन्न २ देह और भिन्न २ नाम कल्पे। जैसे बालक मृत्तिका की सेना कल्पता है और उनका भिन्न २ नाम रखताहै तैसेही स्थावर, जङ्गम आदिकनाम। कल्पना की पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश है—इन पांचों भूतों की सृष्टि संकल्प से उपजी है। हे रामजी! आदि ब्रह्म से जो जीव फुरा है उसका नाम ब्रह्मा है। वह ब्रह्मा आत्मा में आत्मरूप होकर स्थित है और उससे क्रम करके जगत् हुआ है। जैसे वह चेतता है तैसेही होकर स्थित होताहै। जैसे समुद्र में द्रवता से तरङ्ग होते हैं तैसेही ब्रह्म में चित्तस्वभाव से जीव होताहै। वह जीव जब प्रमाद से अनात्मभाव को धारणकरता है तब कर्मों से बन्धवान् होता है। जैसे जल जब दृढ़ जड़ता को अङ्गीकार करता है तब बरफरूप होकर पत्थर के समान होजाता है; तैसे जीव जब अनात्म में अभिमान करता है तब कर्मों के बन्धन में आता है। हे रामजी! कर्मों का बीज संकल्पहै और संकल्प जीव से फुरता है। जीवत्वभाव तब होताहै जब शुद्धचेतनमात्र स्वरूप से उत्थान होताहै। उत्थान के अर्थ ये हैं कि, जब प्रमाद होताहै तब जीवत्वभाव होता है और जब जीवत्वभाव होता है तब अनेक

संकल्प कल्पना फुरती हैं । उन संकल्प कल्पनाओं से कर्म होते हैं; और कर्मों से जन्म, मरण आदिक नाना प्रकार के विकार होते हैं । जैसे बीज से अंकुर और पत्र होते हैं; फिर आगे फूल, फल और टास होतेजाते हैं तैसेही संकल्प कर्मोंसे नाना प्रकारके विकार होते हैं । जैसे २ कर्म जीव करता है उनके अनुसार जन्म, मरण और अध-ऊर्ध्व को प्राप्त होता है । हे रामजी ! मन के फुरने का कर्मनाम है; फुरनेका ही नाम चित्त है; फुरनेका ही नाम कर्म है और फुरनेका ही नाम दैव है । उसही से जीव को शुभ अशुभ जगत् प्राप्त होताहै । सबका आदि कारण ब्रह्म है; उससे प्रथम मन उत्पन्न हुआ फिर उस मनही ने सम्पूर्ण जगत् की रचना की है । जैसे बीज से प्रथम अंकुर होता है और फिर पत्र, फूल, फल और टास होते हैं तैसेही ब्रह्म से मन और जगत् उपजा है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबीजांकुरवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आदि कारण ब्रह्म से मन उत्पन्न हुआ है । वह मन संकल्परूप है और मन से ही सम्पूर्ण जगत् हुआ है । वह मन आत्मा में मनत्वभाव से स्थित है और उस मननेही भाव अभावरूपी जगत् कल्पा है । जैसे गन्धर्व की इच्छा से गन्धर्वनगर होता है तैसेही मन से जगत् होता है । हे रामजी ! आत्मा में द्वैतभेद की कुछ कल्पना नहीं । इस मन से ही ऐसी संज्ञा हुई है । ब्रह्म, जीव, मन, माया, कर्म, जगत् और द्रष्टा आदि सब भेद मन से हुये हैं; आत्मामें कोई भेद नहीं । जैसे समुद्र में तरङ्ग उछलते और बड़े विस्तार धारण करते हैं तैसेही चित्तरूपी समुद्र में संवेदन से जो नाना प्रकार जगत् विस्तार पाता है सो असत्रूपी है क्योंकि; स्थित नहीं रहता और सदा चलरूप है और जो अधिष्ठान स्वरूपभाव से देखिये तो सत्रूप है । इससे द्वैत कुछ न हुआ । जैसे स्वप्ने का जगत् सत् असत्रूप चित्त से भासता है तैसेही सत् असत्रूप यह जगत् भासता है । वास्तव में कुछ उपजा नहीं चित्तके भ्रमसे भासता है । जैसे इन्द्रजाली की बाजीमें जो नाना प्रकारके वृक्ष और औषध भासते हैं सो भ्रममात्र हैं तैसे यह जगत् भ्रममात्र है । हे रामजी ! यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्न है और मन के भ्रमसे सत् होकर भासता है । जैसे बालक भ्रम से परछाहीं में भूत कल्पता है और भय पाता है तैसेही यह पुरुष चित्तके संयोग से द्वैत कल्प के भय पाता है । जैसे विचार किये से वैताल का भय नष्ट होता है तैसेही आत्मज्ञान से भयआदिक विकार नष्ट होजाते हैं । हे रामजी ! आत्मा, अनादि, दिव्य स्वरूप और अंशांशीभाव से रहित, शुद्ध चैतन्यरूप है । जब वह चेतन संवित् चैत्योन्मुखत्व होता है तब चित्त अर्थात् जो चेतनताका लक्षणहै उससे जीव कल्पना होती है । उस जीव में जब अहंभाव होता है कि, 'मैं हूं' तब उससे चित्त फुरता है;

चित्त से इन्द्रियां होती हैं; उन इन्द्रियों से देहभाव होता है और उस देह भ्रम से मलिन हुआ नरक स्वर्ग,बन्ध, मोक्ष आदिकी कल्पना होती है जैसे बीजसे अंकुर,पत्र, फूल, फल और टास होते हैं तैसेही अहंभाव से जगत् विस्तार होता है। हे रामजी! जैसे देह और कर्मोंमें कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और चित्त में कुछ भेद नहीं। जैसे चित्त और जीवमें कुछ भेद नहीं तैसेही चित्त और देहमें कुछ भेद नहीं। जैसे देह और कर्मों में कुछ भेद नहीं तैसेही जीव और ईश्वर में कुछ भेद नहीं और तैसेही ईश्वर और आत्मा में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! सर्व ब्रह्मस्वरूप है; द्वैत कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजीवविचारोनामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो नानात्व भासता है सो वास्तव एक ब्रह्मस्वरूप है, चैत्यतासे एक का अनेकरूप हो भासता है। जैसे एक दीपसे अनेकदीप होते हैं तैसेही एक परब्रह्म से अनेकरूप हो भासते हैं। हे रामजी! यह असत्‌रूपी जगत् जिस में आभास है उस आत्मतत्त्व का जब पदार्थ ज्ञान होताहै तब चित्तमें जो अहंभाव है सो नष्ट होजाता है और उस अहंभाव के नष्ट हुये सब शोक नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! जीव चित्तरूपी है और चित्तमें जगत् हुआहै। जब चित्त नष्टहो तब जगत् भ्रम भी नष्ट होजावेगा। जैसे अपने चरणमें चर्म की जूती पहनते हैं तो सर्व पृथ्वी चर्मसे लपेटी प्रतीत होती है और तापकण्टक नहीं लगते हैं तैसेही जब चित्तमें शान्ति होती है तब सर्व जगत् शान्तिरूप होताहै। जैसे केलेके थम्भमें पत्रोंके सिवाय अन्य कुछ सार नहीं निकलता तैसेही सब जगत् भ्रममात्र है और इससे सार कुछ नहीं निकलताहै। हेरामजी! इतना भ्रम चित्तसे होताहै। बाल्यावस्थामें क्रीड़ा करता फिरता है; यौवनअवस्था धारणकरके विषयोंको सेवताहै और वृद्धावस्थामें चिन्तासे जर्जरीभूत होता है फिर मृतक होकर कर्मों के अनुसार नरक स्वर्गमें चलाजाताहै। हे रामजी! यह सब मनका नृत्य है। मनहीं भ्रमता है जैसे नेत्रदूषण से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही अज्ञान से जगत्भ्रम भासताहै। जैसे मद्यपान करके वृक्ष भ्रमते भासते हैं तैसेही चित्त के संयोग से भ्रम करके जगत्द्वैत भासते हैं। जैसे बालक लीला करके भ्रमसे जगत् को चक्र की नाईं भ्रमता देखताहै तैसेही चित्त के भ्रमसे जीव जगत्भ्रम देखता है। हे रामजी! जब चित्त द्वैत नहीं चेतता तब यह द्वैतभ्रम मिटजाताहै। जबतक चित्तसत्ता फुरतीहै तबतक नाना प्रकार का जगत् भासता है और शान्ति नहीं पाता और जब घन चेतनता पाताहै तब शान्ति पाकर जगत्भ्रम मिटजाताहै। जैसे पपीहा बकता है और शान्तिमान् नहीं होता पर घनवर्षा से तृप्त होकर शान्त होताहै तैसेही जब जीव महाचैतन्य घनता को प्राप्त होता है तब शान्तिमान्

होताहै तब वह चाहे व्यवहार में हो अथवा तूष्णी रहे सदा शान्तिमान् होता है। हे रामजी ! जब चित्त की चैतन्यता फुरती है तब जगत्भ्रम से नाना प्रकारके विकार देखताहै और भ्रमसेही ऐसे देखता है कि, मैं उपजा हूं, अब बड़ा हुआहूं और अब मैं मरूंगा। पर वास्तव में जीव चेतनब्रह्म से अनन्यस्वरूप है। जैसे वायु और स्पन्द में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और चैतन्यता में कुछ भेद नहीं जैसे वायु सदा रहताहै पर जब स्पन्दरूप होताहै तब स्पर्शकरता भासता है तैसेही चैतन्यता मिटती नहीं। ब्रह्म की चेतना हो तब जगत्भ्रम मिटजाता है और केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्पभ्रम होताहै और रस्सीके यथार्थ जानेसे सर्प भ्रम मिटजाताहै तो रस्सी ही भासती है; तैसेही ब्रह्म के अज्ञान से जगत्भ्रम भासताहै और जब चित्त से दृढ़ चैत्यता भासती है तब भ्रम पदार्थ का ज्ञान होता है और तभी जगतभ्रम भी मिटजाताहै केवल ब्रह्मसत्ता ही भासतीहै। हे रामजी ! दृश्यरूपी व्याधि-रोग लगाहै और उस रोग का नाशकर्त्ता संवित्मात्र है जबतक चित्त बहिर्मुख होकर दृश्य को चेतताहै तबतक शान्त नहीं होता और जब सर्व वासना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित अन्तर्मुख होगा तब उसही काल में मुक्तिरूप शान्त होगा—इसमें कुछ संशय नहीं। जैसे रस्सी दूरके देखनेसे सर्प भासती है और जब निकट होकर देखे तब सर्पभ्रम मिटजाता है रस्सीही भासती है; तैसेही आत्मा का निवृत्तरूप जगत् है; जब बहिर्मुख होके देखताहै तब जगत्ही भासता है और जब अन्तर्मुख होके देखताहै तब जगत्भ्रम मिटकर आत्माही भासता है। हे रामजी ! जिसमें अभिलाषा हो उसको त्याग दे। ऐसे निश्चय से मुक्ति प्राप्त होती है त्याग का यत्न कुछ नहीं। महात्मा पुरुष प्राणों को तृण की नाईं त्याग देते हैं और बड़े दुःख को सह रहतेहैं। तुमको अभिलाषा त्यागने में क्या कठिनताहै ? हे रामजी ! आत्मा के आगे अभिलाषा ही आवरण है। अभिलाषा के होते आत्मा नहीं भासताहै। जैसे बादलों के आवरण से सूर्य नहीं भासता और जब बादलोंका आवरण नाशहोताहै तब सूर्य भासता है; तैसेही अभिलाषा के निवृत्तहुये आत्मा भासताहै। इससे जो कुछ अभिलाषा उठे उसको त्यागो और निरभिलाषा होकर आत्मपद में स्थित हो। प्रकृत आचार देह और इन्द्रियों में ग्रहणकरो और जो कुछ त्याग करनाहो उसको त्याग करो पर देह में ग्रहणत्याग की बुद्धि न हो। हे रामजी ! जो तुम सम्पूर्ण दृश्यकी इच्छा त्यागोगे तो जैसे हाथ में बेलफल प्रत्यक्ष होताहै और जैसे नेत्रों के आगे प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष भासता है तैसेही अभिलाषा के त्याग से आत्मपद तुमको प्रत्यक्ष भासेगा और सब जगत्भी आत्मरूप ही भासेगा। जैसे महाप्रलय में सब जगत् जल में भासताहै और कुछ दृष्टि ही नहीं आता तैसेही आत्मपद से भिन्न तुमको कुछ न

भासेगा। आत्मतत्त्व को न जानने का ही नाम बन्धन है और आत्मपद का जाननाही मोक्ष है और मोक्ष कोई नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसंश्रितउपशमयोगोनामैकोन पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ४६॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! मन क्योंकर उत्पन्न हुआ है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ब्रह्म अनन्तशक्ति है और उसमें अनेक प्रकार का किंचन होताहै। जहां२ जैसी २ शक्ति फुरतीहै तहां २ तैसाही तैसारूप होकर भासताहै। जब शुद्ध चिन्मात्र सत्ता चेतन में फुरती है कि, 'अहंअस्मि, तब उस फुरनेसे जीव कहाता है। वही चित्तशक्ति संकल्प का कारण भासती है। जब वह दृश्य की ओर फुरती है तब जगत्-दृश्य होकर भासता है और नाना प्रकार के कार्य-कारण हो भासते हैं। रामजीने फिर पूछा कि, हे मुनियों में श्रेष्ठ! जो इस प्रकार है तो देव किसका नाम है; कर्म क्या है और कारण किसको कहतेहैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फुरना अफुरना दोनों चिन्मात्रसत्ता के स्वभाव हैं। जैसे फुरना अफुरना दोनों वायुके स्वभावहैं परन्तु जब फुरताहै तब आकाश में स्पर्श होकर भासता है और जब चलनेसे रहित होताहै तब शान्त होजाता है; तैसेही शुद्ध चिन्मात्रमें जब चैत्यताका लक्षण, अहंअस्मि, अर्थात् 'मैं हूं' होता है तब उसका नाम 'स्पन्द बुद्धीश्वर' कहते हैं। उससे जगत् दृश्यरूपहो भासताहै। उस जगत् दृश्यसे रहित होनेको निस्पन्द कहतेहैं। चित्तके फुरनेसे नाना प्रकार जगत् हो भासताहै और चित्तके अफुर हुये जगत्भ्रम मिटजाताहै और नित्य शान्त ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है। हे रामजी! जीव, कर्म और कारण ये सब चित्त-स्पन्द के नाम हैं और चित्तस्पन्द में भिन्न अनुभव नहीं, अनुभव ही चित्तस्पन्दहुये की नाईं भासताहै। जीव, कर्म और कारणका बीजरूप चित्तस्पन्दही है। चित्तस्पन्द से दृश्य होकर भासताहै, फिर चिदाभासद्वारा देह में अहंप्रतीति होती है और उस देह में स्थित होकर चित्तसंवेदन दृश्य की ओर संसरता है। संसरना दो प्रकार का है—एक बड़ा और दूसरा अल्प। कितनों को संसरने में अनेकजन्म व्यतीत होते हैं और कितनों को एकजन्म होता है। आदिही फुरकर जो स्वरूप में स्थित हैं उनको प्रथमजन्म होताहै और जो आदि उपजकर प्रमादी हुयेहैं सो फुरकर दृश्यकी ओर चलेजातेहैं और उनके बहुतेरे जन्म होते हैं। चित्तके फिरनेसे ऐसा अनुभव करते हैं। पुण्यक्रिया करके स्वर्ग में जातेहैं और पापक्रिया करके नरकमें जातेहैं। इस प्रकार दृश्यभ्रम देखतेहैं और अज्ञान से बन्धन में रहतेहैं। जब ज्ञानकी प्राप्तिहोती है तब मोक्ष का अनुभव करते हैं सो बड़ा संसरना है और जो एकही जन्म पाकर आत्मा की ओर आतेहैं वह अल्पसंसरना है। हे रामजी! जैसे स्वर्ण ही भूषणरूप

धारणकरता है तैसेही संवेदनही काष्ठलोष्ट आदिकरूप होके भासताहै। इस चित्तके संयोगसेही अज और अविनाशी पुरुषको नाना प्रकार के देह प्राप्तहोते हैं और जानताहै कि, मैं अब उपजा, अब जीताहूं फिर मरजाऊंगा। जैसे नौकामें बैठे भ्रमसे तटके वृक्ष भ्रमते दीखतेहैं तैसेही भ्रम से अपनेमें जन्मादि अवस्था भासतीहैं। आत्मा के अज्ञान से जीवको 'अहं' आदि कल्पना फुरती हैं। जैसे मथुराके राजा लवण को स्वप्ने में चाण्डाल का भ्रम हुआ था तैसेही चित्त के फुरनेसे जीव जगत् भ्रम देखतेहैं। हे रामजी! यह सबजगत् मनके भ्रम से भासता है। शिव जो परम तत्त्व है सो चिन्मात्र है; उसमें जब चैत्योन्मुखत्व होता है कि, 'मैंहूं' उसकाही नाम जीव है। जैसे सोमजल में द्रवता होताहै, इससे उसमें चक्र फुरतेहैं और तरङ्गहोते हैं; तैसेही ब्रह्मरूपी सोमजल में जीवरूपी चक्र फुरतेहैं और चित्तरूपी तरङ्ग उदय होते हैं और सृष्टिरूपी बुद्बुदे उपजकर लीन होजाते हैं। हे रामजी! चेतन स्फूर्ति-द्वारा जीव की नाईं भासताहै। जैसे समुद्रही द्रवता से तरङ्ग रूप हो भासताहै; तैसेही चित्त चैत्यके संयोगसे जीव कहाता है। उस जीव में जब संकल्प का फुरना होताहै तब मन कहाताहै; जब संकल्प निश्चयरूप होताहै तब बुद्धि होकर स्थित होताहै और जब अहंभाव होता है तब अहंप्रतिकार कहाता है। उस अहंभाव को पाकर तन्मात्रा की कल्पना होतीहै और पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये सूक्ष्म भूत होते हैं--उनके पीछे जगत् होता है। हे रामजी! असत्रूपी चित्त के संसरने से ही जगत्रूप हो भासताहै। जैसे नेत्रदूषण से आकाश में मुक्तमाला; भ्रममात्र गन्धर्व-नगर और स्वप्नभ्रम से स्वप्न जगत् भासते हैं तैसेही चित्तके संसरने से जगत्भ्रम भासताहै। हे रामजी! शुद्धआत्मा नित्य, तृप्त, शान्तरूप, सम और अपने आपही में स्थित है। उसमें चित्तसंवेदन ने जगत् रचाहै और उसको भ्रमसे सत्य की नाईं देखताहै। जैसे स्वप्नसृष्टि को मनुष्य भ्रम से देखता है; तैसेही यह जगत् फुरनेसे सत्य भासता है। हे रामजी! मनके संसरने का नाम जाग्रत् है; अहंकार का नाम स्वप्न है; चित्त जो सजातीयरूप चेतनेवाला है उसका नाम सुषुप्ति है और चिन्मात्र का नाम तुरीयपद है। जब शुद्ध चिन्मात्र में अत्यन्त परिणाम हो तब उसका नाम तुर्यातीत पद है। उसमें स्थित हुआ फिर शोकवान् कदाचित् नहीं होता। उसी ब्रह्म-सत्तासे सब उदय होते हैं और उसही में सब लीन होते हैं और वास्तव में न कोई उपजा है और न कोई लीन होताहै; चित्त के फुरनेसेही सब भ्रम भासता है। जैसे नेत्रदूषण से आकाश में मुक्तमाला भासती हैं तैसेही चित्त के फुरनेसे यह जगत् भा-सता है। हे रामजी! जैसे वृक्षके बढ़ने को आकाश ठौर देताहै कि, जितना बीजका सत्ता हो उतनाही आकाश में बढ़ता जावे तैसेही सबको आत्मा ठौर देताहै। अकर्त्ता-

रूप भी संवेदन से कर्त्ता भासताहै। हे रामजी! जैसे निर्मल कियाहुआ लोहा आरसी की नाईं प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है तैसेही आत्मा में संवेदन से जगत् का प्रतिबिम्ब होता है पर वास्तव में जगत्भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं है। जैसे एकही बीज, पत्र, फूल, फल और टास हो भासता है तैसेही आत्मा संवेदन से नानारूप जगत् हो भासता है। जैसे पत्र और फूल वृक्ष से भिन्न नहीं होते तैसेही अबोधरूप जगत्भी बोधरूप आत्मा से भिन्न नहीं। जो ज्ञानवान् है उसको अखण्डसत्ता ही भासती है। जैसे समुद्र ही तरङ्ग और बुद्बुदे होकर और बीजही पत्र, फूल, फल और टास होकर भासतेहैं; तैसेही अज्ञानी को भिन्न २ नामरूपसत्ता भासती है। 'मूर्ख' जो देखता है तो उनके नामरूप सत मानता है और ज्ञानवान् देखके एकरूपही जानताहै। ज्ञानवान् को एक ब्रह्मसत्ता ही अनन्त भासती है और जगत्भ्रम उनको कोई नहीं भासताहै। इतना सुन रामजीने कहा; बड़ा आश्चर्य है कि; असत्रूपी जगत् सत् होकर बड़ेविस्तार से स्पष्टभासता है। यह जगत् ब्रह्मका आभास है; अनेकतन्मात्रा उसके जल और बूँदों की नाईं हैं और अविद्या करके फुरती हैं। ऐसाभी मैंने सुना है। हे मुनीश्वर! यह स्फूर्त्ति बहिर्मुख कैसे होती हैं और अन्तर्मुख कैसे होतीहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार दृश्य का अत्यन्त अभाव है। अनहोते दृश्य के फुरनेसे अनुभव होताहै। शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मसत्ता में फुरनेसे जो जीवत्व हुआ है वह जीवत्व असत् है और सत् की नाईं होताहै। जीव ब्रह्मसे अभिन्न है पर फुरनेसे भिन्न की नाईं स्थित होता है। उस जीव में जब संकलपकलना होती है तब मनरूप होके स्थित होता है; स्मरण करके चित्त होता है, निश्चय करके बुद्धि होती है और अहंभाव करके अहंकार होता है। फिर काकताली की नाईं चिद्अणु में तन्मात्रा फुर आती हैं। जब शब्द सुनने की इच्छा हुई तब श्रवण इन्द्रिय प्रकट हुई; जब देखने की इच्छा हुई तब नेत्र इन्द्रिय प्रकटहुई; गन्ध लेने की इच्छा से नासिका इन्द्रिय प्रकट हुई; स्पर्श की इच्छा से त्वचा इन्द्रिय प्रकट हुई और रसलेने की इच्छा से रसना इन्द्रिय प्रकट हुई। इस प्रकार पाँचों इन्द्रियां प्रकट हुई हैं और भावना से सत्ही असत् की नाईं भासने लगीं। हे रामजी! इस प्रकार आदि जीव हुये हैं और उसकी भावनासे अन्तवाहक शरीर हो आये हैं। चलते भासते हैं पर अचलरूप हैं, इससे जो कुछ जगत् भासता है वह सब ब्रह्मस्वरूप है भिन्न कुछ नहीं। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय ब्रह्म है और संवेदन ब्रह्म से ही अनेकरूप नाना प्रकार के भासते हैं। जैसा २ संवेदन फुरता है तैसा २ रूप होकर भासता है। जब दृश्य को चेतता है तब नाना प्रकार का दृश्य भासता है और जब अन्तर्मुख ब्रह्म चेतता है तब ब्रह्मरूप होकर भासता है। हे रामजी! दृश्य कुछ उपजा नहीं, आत्मा

सदा अपने आप में स्थित है। जब दृश्य असंभव हुआ तब बन्धन और मोक्ष किस को कहिये और विचार किसका कीजिये? सर्वकल्पना का अभाव है। यह जो तुम्हारा प्रश्न है उसका उत्तर सिद्धान्तकाल में होगा यहां न बनेगा। जैसे कमल के फूलों की माला अपने काल में बनती हैं और विनासमय शोभा नहीं देती तैसेही तुम्हारा प्रश्न सिद्धान्तकाल में शोभा पावेगा समय विना सार्थक शब्दभी निरर्थक होता है। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ हैं उनका फलभी समय पाके होताहै; समय विना नहीं होता इससे अब पूर्वप्रसङ्ग सुनो। हे रामजी! ब्रह्म में चैत्योन्मुखत्व से आदि जीव ने आप को पिता माता जाना। जैसे स्वप्ने में आपको कोई देखे तैसेही ब्रह्माजी ने आपको जाना उन ब्रह्मा ने प्रथम 'ॐ' शब्द उच्चारण किया; उस शब्द तन्मात्रा से चारों वेद देखे और उसके अनन्तर मनोराज से सृष्टि रची। तब असत्‌रूप सृष्टि भावना से सत्य होकर भासने लगी। जैसे स्वप्ने में सर्प और गन्धर्वनगर भासते हैं तैसेही असत्यरूप सृष्टि सत्य भासने लगी। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता में जैसे ब्रह्माआदिक उपजे हैं तैसेही और जीव, कीट आदिभी उत्पन्न हुये। जगत् का कारण संवेदन है। संवेदन भ्रम से जीवों का जगत् भासता है। उनको भौतिक शरीर में जो अहंप्रतीति हुई है उससे अपने निश्चय के अनुसार शक्ति हुई। ब्रह्मा में ब्रह्मा की शक्ति का निश्चय हुआ और चींटी में चींटी की शक्ति का निश्चय हुआ। हे रामजी! जैसी २ वासना संवित् में होती है उसके अनुसारही अनुभव होताहै। शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्योन्मुखत्व हुआ उसीका नाम जीव हुआ। उसमें जो ज्ञानरूप सत्ताहै सोई पुरुषहै और जो फुरना है सोई कर्म है। जैसे २ फुरता है तैसेही तैसे भासताहै। हे रामजी! आत्मसत्तामें जो अहं हुआ है उसीका नाम चित्त है। उससे जो जगत् रचा है वहभी अविचारसिद्ध है; विचार कियेसे नष्ट होजाता है। जैसे अविचार से अपनी परछाहीं में भूत पिशाच कल्पताहै और उससे भय उत्पन्न होताहै पर विचार कियेसे पिशाच और भय दोनों नष्ट होजातेहैं; तैसेही हे रामजी! आत्मविचार से चित्त और जगत् दोनों नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है; उसमें चित्त कल्पना कोई नहीं और प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, भी ब्रह्म से भिन्न नहीं तो द्वैत की कल्पना कैसेहो? जैसे शशेके शृङ्ग असत् हैं; तैसे आत्मा में द्वैतकल्पना असत्य है। हे रामजी! यह ब्रह्माण्ड भावनामात्र है। जिसको सत्य भासता है उसको बन्धन का कारण है। जैसे घुरान अर्थात् कुशवारी अपना गृह अपने बन्धन का कारण बनाती है और उसमें फँस मरती है; तैसेही जो जगत् को सत्य मानते हैं उनको अपना माननाही बन्धन करताहै और उससे जन्म मरण देखते हैं। जिसको जगत् का असत्य निश्चय हुआहै उसको बन्धन नहीं होता—उसको उल्लास है। हे रामजी! अनुभवसत्ता सबका अपना

आपहै। उसमें जो जैसा निश्चय किया उसको अपने अनुभव के अनुसार पदार्थ भासते हैं। वास्तव में तो जगत् उपजाही नहीं। जगत् का उपजनाभी मिथ्या है; बढ़ना भी मिथ्या है; रसभी मिथ्या है और रसलेनेवाला भी मिथ्याहै। शुद्धब्रह्म सर्वगत, नित्य और अद्वैत सदा अपने आप में स्थितहै परन्तु अज्ञान से शुद्धभी अशुद्ध भासता है; सर्व जगत् भी परिच्छिन्न भासताहै; ब्रह्मभी अब्रह्म भासता है; नित्य भी अनित्य भासता है और अद्वैत भी द्वैतसहित भासता है। हे रामजी! अज्ञान से ऐसा भासता है। जैसे जल और तरङ्गमें मूर्ख भेद मानतेहैं परन्तु भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद अज्ञानी देखते हैं। जैसे सुवर्ण में भूषण और रस्सी में सर्प मूर्ख देखतेहैं; तैसेही ब्रह्म में नानात्व मूर्ख देखतेहैं; ज्ञानीको सब चिदाकाश हैं। हे रामजी! जब आत्मसत्ता में अनात्मरूप दृश्य की चैत्यता होती है तब कल्पना उत्पन्न होती है और मनरूप होके स्थित होतीहै। उसके अनन्तर अहंभाव होताहै और फिर तन्मात्रकी कल्पना होकर शब्दअर्थ की कल्पना होतीहै। इसी प्रकार चित्सत्ता में जैसी २ चैत्यता फुरती है तैसाही तैसारूप भासनेलगताहै। सत् असत् पदार्थ वासना के वश फुरआतेहैं। जैसे स्वप्नसृष्टि फुर आती है सो अनुभवरूपही होतीहै तैसेही यह जगत् फुर आया है सो अनुभवरूप है। इससे सृष्टिमें भी चिन्मात्र है और चिन्मात्र ही में सृष्टि है। सबको सत्तारूपी भीतर बाहर ऊर्ध्व अध चिन्मात्रही है। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय सबपद चिन्मात्रही में धारे हैं नित्य उपशान्तरूप है सम सत् जगत् की सत्ता उसही से होतीहै सो एकही सम है और तुरीया अतीतपद नितही स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसत्योपदेशोनामपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रसङ्गपर एक पुरातन इतिहास है और उसमें महा प्रश्नों का समूह है सो सुनो। काजल के पर्वत की नाईं कर्कटीनाम एक महाश्याम राक्षसी हिमालय पर्वत के शिखरपर हुई। विसूचिका भी उसका नाम था। अस्थिर बिजली की नाईं उसके नेत्र और अग्नि की नाईं बड़ी जिह्वा चमत्कार करती थी और उसके बड़े नख और ऊंचा शरीरथा। जैसे बड़वाग्नि तृप्त नहींहोता तैसेही वहभी भोजन से तृप्त न होती थी। उसकेमन में विचार उपजा कि जम्बूद्वीप के सम्पूर्णजीवों को भोजन करूं तो तृप्त होऊं अन्यथा मेरी तृप्ति नहीं होती। आपदा उद्यम किये से दूर होतीहै इस से मैं अखण्डचित्त होकर तप करूं। हे रामजी! ऐसा विचारकर वह एकान्त हिमालय पर्वतकी कन्दरा में एक टांगसे स्थितहुई और दोनों भुजाओंको उठाके नेत्र आकाश की ओर किये मानो मेघको पकड़तीहै। शरीर और प्राणोंको स्थितकरके मूर्त्ति की नाईं होगई। शीत और उष्ण के क्षोभ से रहित हुई और पवन से शरीर जर्जरीभाव हुआ। जब इस प्रकार सहस्रवर्ष दारुण तपकिया तब ब्रह्माजी आये। और राक्षसीने उन्हें देखके

मनस नमस्कार किया और मनमें बिचारा कि, मेरे वर देनेके निमित्त यह आये हैं। तब ब्रह्माजीने कहा, हे पुत्री ! तूने बड़ा तपकिया। अब उठ खड़ीहो और जो कुछ चाहतीहै वह वरमांग। कर्कटी बोली, हे भगवन्! मैं लोहेकी नाईं वज्रसूचिका होऊं जिससे जीवों के हृदय में प्रवेश करजाऊं। हे रामजी! जब ऐसे उस मूर्ख राक्षसी ने वर मांगा तब ब्रह्माजीने कहा ऐसेहीहो। तेरा नामभी प्रसिद्ध विसूचिका होगा।हे राक्षसी! जो दुराचारी जीव होंगे उनके हृदय में तू प्राणवायु के मार्ग से प्रवेश करेगी और जो गुणवान् तेरे निवृत्त करने के निमित्त 'ॐ' मन्त्र पढ़ेंगे और यह पढ़ेंगे कि, हिमालय के उत्तर शिखर में कर्कटीनाम राक्षसी विसूचिका है सो दूरहो और विसूचिका का दुःखी चन्द्रमा के मण्डल में चितवे कि, अमृत के कुण्डमें बैठाहै और राक्षसी हिमालयके शिखर को गई तब तू उनको त्याग जाना। उनमें तू प्रवेश न करसकेगी। हे रामजी! इसप्रकार कहके ब्रह्माजी आकाशको उड़े और इन्द्र और सिद्धोंके मार्गसे गये और वही मन्त्र उनको भी सुनाया। जब उन्होंने उस मन्त्रको प्रसिद्धकिया तब कर्कटी का शरीर सूक्ष्म होनेलगा। जैसे संकल्प का पहाड़ संकल्प के क्षीणहुये से क्षीण होजाताहै तैसेही क्रम से प्रथम जो उसका मेघवत् आकार था सो घटकर वृक्षवत् होगया। फिर वह पुरुषरूप होगई; फिर हस्तमात्र; फिर प्रादेशमात्र और फिर लोहेकी सुईकी नाईं सूक्ष्म होगई। हे रामजी! ऐसे रूप को कर्कटीने धारा जिसको देख मूर्ख अविचारी पुरुष तृण की नाईं शरीर को त्यागते हैं। जो पुरुष परस्पर की बिचारते हैं सो पीछेसे कष्ट नहीं पाते और जो पूर्वापर विचारसे रहित हैं सो पीछे कष्ट पातेहैं और अनर्थ करके औरों को कष्टदेते हैं। वे एक पदार्थको केवल भला जानके उसके निमित्त यत्न करतेहैं; न धर्म की ओर देखते हैं और न सुख की ओर देखते हैं। इस प्रकार मूर्ख राक्षसी ने भोजन के निमित्त बड़े गम्भीर शरीर को त्यागकर तुच्छ शरीर को अङ्गीकार किया। उसके एकशरीर तो सूक्ष्म हुआ और दूसरा पुर्यष्टक हुआ। कहीं तो सूक्ष्म शरीर से जिसको इन्द्रियां भी न ग्रहण करसकें प्रवेशकरे और कहीं पुर्यष्टक से जा प्रवेशकरे। कहीं प्राणवायु के साथ प्रवेश करके दुःखदे और कहीं प्राणों को विपर्ययकरे तब प्राणी कष्ट पावें और कहीं रक्त आदिक रसों का पानकर एकबूंद से उदर पूर्ण होजावे परन्तु तृष्णा निवृत्त न हो। शरीरसे बाहर निकले तबभी कष्ट पावे और वायु चले उससे गढ़े और कीचड़ में गिरे और चरणों के तले आवे। निदान कभी देशोंमें रहे और कभी घास और तृणोंमें रह जो नीच पापी जीव हैं उनको कष्टदे और जो गुणवान् हों उनको कष्ट न देसके। मन्त्र पढ़ने से निवृत्त होजावे। जो आप किसी छिद्रमें भी गिरे तो जाने कि मैं बड़े कूपमें गिरी। हे रामजी! मूर्खता से उसने इतने कष्ट पाये। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजीने कहा तब सूर्य अस्त होकर

सायंकाल का समय हुआ तब सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई और विचारसंयुक्त रात्रि व्यतीत करके सूर्य की किरणों के निकलतेही फिर आ स्थित हुई॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविसूचिकाव्यवहारवर्णन-
न्नामैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार प्राणियों को मारते उसे कुछ वर्ष बीते तब उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि, बड़ा कष्ट है! बड़ा कष्ट!! यह विसूचिका शरीर मुझको कैसे प्राप्त हुआ है!!! मैंने मूर्खता से यह वर ब्रह्माजीसे मांगाथा। मूर्खता बड़े दुःखको प्राप्त करती है! कैसा मेघकी नाईं मेरा शरीर था कि, सूर्यादिक को ढांक लेती थी। हाय मन्दराचल पर्वत की नाईं मेरा उदर और बड़वाग्नि की नाईं मेरी जीभ कहां गई? जैसे कोई अभागी पुरुष चिन्तामणि को त्याग दे और कांच अङ्गीकार करे तैसेही मैंने बड़े शरीर को त्याग के तुच्छ शरीर का अङ्गीकार किया जो एक बूंद से ही तृप्त होजाता है परन्तु तृष्णा पूरी नहीं होती। उस शरीर से मैं निर्भय विचरती थी यह शरीर पृथ्वी के कण से भी दब जाता है। अब तो मैं बड़े कष्ट पाती हूं यदि मैं मृतक होजाऊं तो छुटूं; परन्तु मांगी हुई मृत्यु भी हाथ नहीं आती इससे मैं फिर शरीर के निमित्त तप करूं। वह कौन पदार्थ है जो उद्यम किये से हाथ न आवे। हे रामजी! ऐसे विचारकर वह फिर हिमालय पर्वतके निर्ज्जनस्थान वनमें जा एकटांग से खड़ी हुई और ऊर्ध्वमुख करके तप करने लगी। हे रामजी! जब पवन चले तो उस के मुखमें फल, मांस और जल के कणके पड़ें परन्तु वह न खाय बल्कि मुख मूंदले। पवन यह दशा देख के आश्चर्यवान् हुआ कि, मैंने सुमेरु आदिको भी चलायमान किया है परन्तु इसका निश्चय चलायमान नहीं होता। निदान मेघकी वर्षासे वह कीचड़में दबगई परन्तु ज्यों की त्योंही रही और मेघके बड़े शब्द से भी चलायमान हुई। हे रामजी! इस प्रकार जब सहस्र वर्ष उसको तपकरते बीते तब दृढ़ वैराग्यसे उसका चित्त निर्मलहुआ और सब संकल्पों के त्याग से उसको परमपद की प्राप्ति हुई; बड़े ज्ञानका प्रकाश उदय हुआ और परब्रह्म का उसको साक्षात्कार हुआ उससे परमपावनरूप होकर चित्तसूची हुई अर्थात् चेतन में एकत्वभाव हुआ। जब उसके तपसे सातों लोक तपायमान हुये तब इन्द्रने नारदजी से प्रश्न किया कि, ऐसा तप किसने किया है जिस से लोक जलने लगे हैं? तब नारदजी ने कहा; हे इन्द्र! कर्कटी नाम राक्षसी ने सात हजार वर्ष बड़ा कठिन तप किया। जिससे वह सूचिका हुई। वह शरीर पा उसने बहुत कष्ट पाया और लोगों को भी कष्ट दिया जैसे विराट् आत्मा और चित्तशक्ति सबमें प्रवेश करजाती है तैसेही वह भी सबकी देहमें प्रवेश करजाती थी। जो मन्त्र जाप न करें उनके भीतर प्रवेश करके रक्तमांस भोजन करे परन्तु तृप्त न हो मन में तृष्णारहे

और सूक्ष्मशरीर धूड़ में दबजावे। इस प्रकार उसने बहुतकष्ट पाके विचार किया कि, उद्यम से सब कुछ प्राप्त होताहै इससे पूर्व शरीर के निमित्त फिर एकान्त स्थान में जाकर तप करूं इतने में एक गीध पक्षी वहां आकर कुछ भोजन करनेलगा कि, उसकी चोंच के मार्ग से विसूचिका भीतर चलीगई। जब वह पक्षी कष्ट पाके उड़ा तो वह विसूचिका उसकी पुर्यष्टक से मिलके और उसको प्रेरके हिमालय पर्वत की ओर इस भांति लेचली जैसे वायु मेघ को लेजाताहै। उस गीध ने वहां पहुँचकर वमन करके विसूचिका को त्यागदिया और आप सुखी होकर उड़गया। तब उसी शरीर से विसूचिका वहां तप करने लगी। हे रामजी! इस प्रकार इन्द्र ने सुनकर उसके देखने के निमित्त पवन चलाया। तब पवन आकाश छोड़ के भूतल में उतरा और लोकालोक पर्वत, स्वर्ण की पृथ्वी, समुद्रों और द्वीपों को लांघके क्रमसे हिमालय के वनमें सूक्ष्म शरीर से आया और क्या देखा कि, पवन चलरहा है और सूर्य तपरहे हैं परन्तु वह चलायमान नहीं होती और प्राणवायु का भी भोजन नहीं करती तब पवनने भी आश्चर्यमान होके कहा। हे तपस्विनी! तू किस लिये तप करतीहै? पर विसूचिका तब भी न बोली। पवन ने फिर कहा भगवती विसूचिका ने बड़ा तप किया है अब इसको कोई कामना नहीं रही ऐसे कहके पवन उड़ा और क्रमसे इन्द्र के पास गया। इन्द्र विसूचिका के दर्शन के माहात्म्य से पवनको कण्ठ लगाय मिले और बड़ा आदर किया कि, तू बड़े पुण्यवान् का दर्शन करके आया है। पवन ने भी सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा, हे राजन्! उसके तप के तेजसे हिमालय की शीतलता दब गई है। आप ब्रह्माजी के पास चलिये नहीं तो उसके तप से सब जगत् जलेगा। तब इन्द्र पवन और देवतागणों सहित ब्रह्माजी के पास आये और प्रणाम कर के बैठे। ब्रह्माजी ने कहा तुम्हारी जो अभिलाषा है वह मैंने जानी। इस प्रकार इन्द्र से कहकर ब्रह्माजी विसूचिका के पास जिसका नाम सूची था आये और उसको देख के आश्चर्यमानहुये कि, तृण की नाईं विसूचिकाने सुमेरु से भी अधिक धैर्य धारणकिया है जैसे मध्याह्नका सूर्य तेजवान् होताहै तैसेही इसका तप से तेज हुआहै और परब्रह्म में स्थित हुई है। अब इसका जगत्भ्रम शान्तहोगया है इससे बन्दना करने योग्य है। हे रामजी! फिर आकाश में स्थित होकर ब्रह्माजीने कहा; हे पुत्री! तू अब वरले तब विसूचिका विचारकर कहनेलगी कि, जो कुछ जानने योग्य था सो मैंने जाना और शान्तरूप हुईहूं सम्पूर्ण संशय मेरे नष्ट हुये अब वरसे मुझे क्या प्रयोजन है? यह जगत् अपने संकल्प से उपजा है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल बुद्धि होतीहै और उससे भय पाता है तैसेही मैं स्वरूप के प्रसाद से भटकती फिरी। अब इष्ट अनिष्ट जगत् की मुझको कुछ इच्छा नहीं। अब

मैं निर्विकार शान्ति में स्थित हूं। हे रामजी! ऐसे कहकर जब सूची तूष्णी होरही तब बीतराग और प्रसन्नबुद्धि ब्रह्माजी उसके भावको देखके कहनेलगे; हे कर्कटी! तू कुछ वरले क्योंकि; कुछकाल तुझे भूतलमें बिचरनाहै। भोगोंको भोग के तू विदेहमुक्त होगी। अब तू जीवन्मुक्त होकर बिचरेगी। नीतिके निश्चय को कोई नहीं लांघसक्ता। जब तू तपकरनेलगी थी तब पूर्वदेहके पानेका संकल्पकिया था। तेरा वह संकल्प अब सफल हुआहै। जैसे बीजमें वृक्ष का सद्भाव होताहै सो काल पाकर होताहै तैसेही तेरेमें पूर्व शरीर का जो संकल्प था सो अब प्राप्तहोवेगा अर्थात् वैसाही शरीर पाके तू हिमालय के वनमें बिचरेगी। हे पुत्री! तुझे तो अनिच्छित योग हुआ है। जैसे कोई छायाके निमित्त आंबके वृक्षके निकट आनबैठे और उसे छाया और फल दोनों प्राप्तहों तैसेही तूने शरीर की वृद्धि के लिये यत्न किया था वह तुझे तृप्ति करनेवाला हुआहै और ब्रह्मतत्त्व भी प्राप्तहुआ। हे पुत्री! राक्षसी शरीरमें जीवन्मुक्त होके तू बिचरेगी और दूसरा जन्म तुझको न होगा। इसजन्ममें तू परमशान्त रहेगी और शरत्कालके आकाशकी नाईं निर्मलहोगी। जब तेरी वृत्ति बहिर्मुख फुरेगी तब सब जगत् तुझ को आत्मरूप भासेगा; व्यवहार में समाधि रहेगी और समाधि में भी समाधि रहेगी। पापीजीवों को तू भोजन करेगी; न्यायबान्धव तेरा नाम होगा और विवेकपालक तेरी देहहोगी। इससे पूर्व के शरीरको अङ्गीकार कर। इतना कह फिर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ऐसे कहकर जब ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये तब सूचीने कहा ऐसेही हमको दोनों तुल्य हैं। तब जैसे बीज से वृक्ष होताहै तैसेही क्रम से शरीर बढ़गया। प्रथम प्रादेशमात्र हुआ, फिर हस्तमात्र हुआ; फिर वृक्षमात्र हुआ और फिर योजनमात्र होगया। जैसे संकल्पक वृक्ष एक क्षण में बढ़जाताहै तैसे उसका शरीर बढ़गया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसूचीशरीरलाभोनामद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे वर्षाकाल का बादल सूक्ष्म से स्थूल होजाता है तैसे सूची सूक्ष्मशरीर से फिर कर्कटीराक्षसी होगई। जैसे सर्प कञ्चकी त्याग के फिर ग्रहण नहीं करता तैसेही राक्षसीने आत्मतत्त्वके कारण शरीर न ग्रहण किया। छःमहीने तक पहाड़के शिखरकी नाईं खड़ीरही और फिर पद्मासन बांध संवित्सत्ता और निर्विकल्पपद में स्थितहुई। जब प्रारब्ध के वेगसे जागी तब वृत्ति बहिर्मुखहुई और क्षुधा लगी क्योंकि; शरीरके स्वभाव शरीरपर्यन्त रहतेहैं। तब बिचारनेलगी कि, जो विवेकी हैं उनका मैं भोजन न करूंगी; उनके भोजनसे मेरा मरना श्रेष्ठ है पर जो न्यायसे भोजन करने योग्य है उसको खाऊंगी और जो शरीर भी नष्टहो तौभी न्याय विना भोजन न करूंगी। देहादिक सब संकल्पमात्र हैं; मुझे न मरनेकी इच्छा है और न जीनेकी। हे रामजी! जब ऐसे बिचारकर सूची तूष्णी हो बैठी और राक्षसीस्वभाव का त्यागकिया

तब सूर्य भगवान्‌ने आकाशवाणीसे कहा; हे कर्कटी ! तू जाके मूढ़जीवोंका भोजनकर। जब तू उनका भोजन करेगी तब उनका कल्याणहोगा। मूढ़ोंका उद्धार करनाभी सन्तों का स्वभाव है। जो विवेकी पुरुष हैं उनको न खाना और जो तेरे उपदेश से ज्ञान पावें उनको भी मारना जो उपदेशसेभी बोधात्मा न हों उनका भोजनकरना यह न्याय है। तब राक्षसी ने कहा, हे भगवन् ! तुमने अनुग्रह करके जो कहाहै वही मुझसे ब्रह्माजी ने भी कहाथा। ऐसे कहकर सूची हिमालय के शिखर से उतरी और जहां किरातदेश था और बहुत मृग और पशु रहतेथे उनमें बिचरनेलगी। रात्रि में श्यामराक्षसी और श्यामही तमालवृक्षभी महाअन्धकार भासतेथे—मानों कज्जल का मेघ स्थितभया है। ऐसी श्यामता में किरातीदेश के राजा मन्त्री और वीरोंसहित यात्रा को निकले तो उनको आतेदेख राक्षसी ने बिचारा कि; मुझे भोजन मिला। यह मूढ़ अज्ञानी हैं और इनको देहाभिमान है; इन मूर्खों के जीनेसे न यह लोक न परलोक कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। ऐसे जीवों का जीना दुःखके निमित्त है इसलिये इनको यत्नकरके भी मारनायोग्य है और इनका पालना अनर्थ के निमित्त है क्योंकि, यह पाप को उदय करतेहैं। ब्रह्माकी आदि नीति है कि, पापी मारने योग्य हैं और गुणवान् मारने योग्य नहीं। कदाचित् ये गुणवान् हों तो मैं इन्हें न मारूंगी। गुणवान् भी दो प्रकार के होतेहैं। जो अमानी, अदम्भी, अहिंसक, शान्तिमान् और पुण्यकर्म करनेवाले हैं वेभी गुणवान् हैं पर महागुणवान् तो ब्रह्मवेत्ता हैं जिनके जीनेसे बहुतोंके कार्य सिद्ध होतेहैं इसलिये जो मेरा शरीर भोजन विना नष्टभी होजावे तौभी मैं गुणवान् को न मारूंगी जो उदार पुरुष है वह पृथ्वी का चन्द्रमा है; उसकी संगति से स्वर्ग और मोक्ष होता है। जैसे संजीवनी बूटीसे मृतकभी जीताहै तैसेही सन्तों के संग से अमृत होताहै। इससे मैं प्रश्न करके इनकी परीक्षा लूं; कदाचित् यह भी गुणवान् हों। यह कमलनयन ज्ञानवान् भासते हैं; यदि यथार्थ ज्ञानवान् पुरुष हैं तो पूजने योग्यहैं और जो मूर्खहैं तो दण्ड देने योग्यहैं और मैं उनको अवश्य भोजन करूंगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीविचारोनामत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! तब वह राक्षसी उनको देखके मेघ की नाईं गरजने लगी और कहा; अरे आकाश के चन्द्रमा और सूर्य ! तुम कौन हो ? बुद्धिमान् हो अथवा दुर्बुद्धि हो ? कहांसे आयेहो और तुम्हारा क्या आचार है ? तुम तो मुझको ग्रास की नाईं आन प्राप्त हुयेहो इससे अब मैं तुमको भोजन करूंगी। राजा बोले; अरी ! इस भौतिक तुच्छ शरीर को पाकर तू कहां रहती है ? हमको देखके जो तू गरजती है सो तेरा शब्द हमको भ्रमरीके शब्दवत् भासताहै; हमको कुछ भय नहीं। हे राक्षसी ! यह शरीर तेरा मायामात्र है इसलिये इस तुच्छ स्वभाव को त्याग के जो

कुछ तेरा अर्थ है वह कह हम पूर्णकरदेंगे। तब राक्षसी ने उनके डराने को ग्रीवा और भुजा को ऊंचे करके प्रलयकाल के मेघों की नाईं फिर बड़ाशब्द किया कि, जिसके नाद से पहाड़भी चूर्ण होजावें। निदान सबदिशा शब्द से भरगईं और वह बिजली की नाईं नेत्रों को चमकाने लगी। उसकी मूर्त्ति देख राक्षस और पिशाचभी शङ्कायमान हों पर ऐसे भयानक स्वरूप को देखके भी उन दोनों ने धीरज रक्खा। मन्त्रीने कहा; अरी राक्षसी! ऐसे शब्द तू व्यर्थ करती है। इससे तो तेरा कुछ प्रयोजन न सिद्धहोगा इसलिये इस आरम्भ को त्यागके अपना अर्थ कह। बुद्धिमान् पुरुष उस अर्थ को ग्रहण करते हैं जो अपना विषयभूत होता है और जो अपना विषयभूत नहीं होता उसके निमित्त वे यत्न नहीं करते हम तेरा विषयभूत नहीं तुझ ऐसे तो हज़ारों हमने मारडाले हैं। हे राक्षसी! हमारे धैर्यरूपी पवन से तुझ ऐसी अनन्त मक्खियां तृणवत् उड़ती फिरती हैं। इससे अपने नीचस्वभाव को त्याग स्वस्थचित्त होके जो कुछ तेरा प्रयोजन हो सो कह। बुद्धिमान् स्वस्थचित्त होके व्यवहार करते हैं; स्वस्थ हुये विना व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता; यह आदि नीति है। हमारे पास से स्वप्न में भी कोई-अर्थी व्यर्थ नहीं गया। हम सबका अर्थ पूर्णकरते हैं इसलिये तूभी हमसे अपना प्रयोजन कहदे। तब राक्षसी समझी कि, यह कोई बड़े उदार आत्मा और उज्ज्वल आचारवान् हैं और जीवों के समान नहीं। यह बड़े प्रकाशवान् और धैर्यवान् जानपड़ते हैं उदारता कैसे इनके वचन ज्ञानवानों से मिलते हैं। अब मैंने इनको जाना है और इन्होंने मुझको जाना है इससे मुझसे इनका नाश भी न होगा। अविनाशी पुरुष ब्रह्मसत्ता में स्थित हैं इससे ज्ञानवान् हैं। ऐसा निश्चय ज्ञानविना किसी को नहीं होता परन्तु कदाचित् अज्ञानी हो तो फिर सन्देह को अङ्गीकार करके पूछता हूं। जो संदेहवान् होकर बोधवान् से नहीं पूछते वे भी नीचबुद्धि हैं। हे रामजी! ऐसे मनमें विचार फिर उसने पूछा; तुम कौनहो और तुम्हारा आचार क्या है? निष्पाप महापुरुषों को देखके मित्रभाव उपज आताहै! मन्त्री बोला; किरातदेश का यह राजा है और मैं इसका मन्त्री हूं। रात्रि में तुमसे दुष्टों के मारने के निमित्त उठे हैं। रात्रिदिन में हमारा यही आचार है कि, जो जीव धर्म की मर्यादा त्यागनेवाले हैं। उनका हम नाश करते हैं। जैसे अग्नि ईंधन का नाशकरता है। राक्षसी बोली; हे राजन्! यह तेरा दुष्टमन्त्रीहै। जिस राजा का मन्त्री भला नहीं होता वह राजाभी भला नहीं होता और जिस राजा का मन्त्री भला होता है उसकी प्रजा भी शान्तिमान् होती है। भला मन्त्री वह कहाता है जो राजा को न्याय और विवेक में लगावे। जो राजा विवेकी होताहै वह शान्तात्मा होता है और जो राजा शान्तिमान् हुआ तब प्रजा भी शान्तिमान् होती है। सब गुणों से जो उत्तमगुण है वह

आत्मज्ञान है । जो आत्मा को जानता है वही राजा और जिसमें प्रभुता और समदृष्टि हो वही मन्त्री है जो प्रभुता और समदृष्टि से रहित है वह न राजा है न मन्त्री है। हे राजन्! जो तुम आत्मज्ञानवान् पुरुष हो तो तुम कल्याणरूप हो। जो ज्ञानसे रहित होताहै उसको मैं भोजन करतीहूं । तुम्हारे छूटनेका उपाय यही है कि, जो मैं प्रश्नों का समूह पूछतीहूं उसका उत्तर दो । जो तुमने प्रश्नों का उत्तर दिया तो मेरे पूजने योग्य हो और जो मेरा अर्थ होगा सो कहूंगी तुम पूर्णकरना और जो तुमने प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुम्हारा भोजन करूंगी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीविचारोनामचतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इस प्रकार राक्षसी ने कहा तब राजा बोला तू प्रश्नकर हम तुझको उत्तरदेंगे। राक्षसी बोली, हे राजन्! वह एक कौन अणु है जिससे अनेक प्रकार हुये हैं और एकके अनेक नाम हैं और वह कौन अणु है जिसमें अनेक ब्रह्माण्ड होते हैं और लीन होजाते हैं ? जैसे समुद्र में अनेक बुद्बुदे उपजकर लीन होते हैं। वह कौन आकाश है जो पोलसे रहित है और वह कौन अणु है जो न किञ्चित् है न अकिञ्चित् है ? वह कौन अणु है जिसमें तेरा और मेरा अहं फुरता है और वह कौन है जो अहं त्वं एकमें जानता है ? वह कौन है जो चला जाता है और कदाचित् नहीं चलता और वह कौन है जो तिष्ठितभी है और प्रतिष्ठित भी है ? वह कौन है जो पाषाणवत् है और वह कौन है जिसने आकाश में चित्र किये हैं ? वह कौन अग्नि है जो दाहक शक्ति से रहित है और अग्निरूप है और वह अग्नि कौन है जिससे अग्नि उपजी है ? वह कौन अणु है जो सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा और तारों के प्रकाश से रहित और अविनाशी है और वह कौन है जो नेत्रों से देखा नहीं जाता और सब प्रकाशों को उत्पन्न करता है ? वह कौन ज्योति है जो फूल, फल और बेल को प्रकाशती है और जन्मान्ध को भी प्रकाशती है ? वह कौन अणु है जो आकाशादिक भूतोंको उपजाता है और वह कौन अणु है जो स्वाभाविक प्रकाशमान है ? वह भण्डार कौन है जिससे ब्रह्माण्डरूपी रत्न उपजते हैं ? वह कौन अणु है जिसमें प्रकाश और तम इकट्ठे रहते हैं और वह कौन अणु है जिसमें सत् असत् दोनों इकट्ठे रहते हैं ? वह कौन अणु है जो दूर है परन्तु दूर नहीं और वह कौन अणु है जिसमें सुमेरु आदिक पर्वत भी समाय रहे हैं ? वह कौन अणुहै जिसमें निमेष में कल्प और कल्प में निमेष है और वह कौन है जो प्रत्यक्ष और असद्रूप है ? वह कौन है जो सत् और अप्रत्यक्षरूप है? वहकौन चैतन है जो अचैतन है और वह कौन वायुहै जो अवायुरूप है ? वह कौन है जो अशब्दरूप है और वह कौन है जोसर्व और निष्किञ्चित् है ? वह कौन अणु है जिसमें अहं नहीं है ? वह कौन है जिसको अनेकजन्मोंके यत्न से पाता है और

पाके कहता है कि, कुछ नहीं पाया और सब कुछ पाया ? वह कौन अणु है जिसमें सुमेरु आदिक तीनों भुवन तृणसमान हैं और वह कौन अणु है जो अनेक योजनों को पूर्णकरता है ? वह कौन अणु है जिसके देखनेसे जगत् फुर आता है और वह कौन अणु है जो अणुता को त्यागे विना सुमेरु आदिक स्थूल आकार को प्राप्त होता है ? वह कौन अणु है जो बालका सौवांभाग और सुमेरुसे भी ऊंचा हुआहै ? वह कौन अणु है जिसमें सब अनुभव स्थित है और वह कौन अणु है जो अत्यन्तनिस्वाद है और आपही सब स्वाद होता है ? वह कौन अणु है जिसको अपने ढांपने की सामर्थ्य नहीं और सबको ढांप रहा है और वह कौन अणु है जिससे सब जीते हैं ? वह कौन अणु है जिसका अवयव कोई नहीं और सब अवयव को धारण कर रहा है ? वह कौन निमेष है जिसमें बहुतेरे कल्प स्थित हैं ? वह कौन अणु है जिसमें अनन्त जगत् स्थित है जैसे बीज में वृक्ष होताहै ? वह कौन अणुहै जिसमें बीजसे आदि फल पर्यन्त अनउदय हुये भी भासते हैं ? वह कौन है जो प्रयोजन और कर्तृत्वसे रहित है और प्रयोजनवान् और कर्तृत्ववान् की नाईं स्थित है ? वह कौन द्रष्टा है जो दृश्य से मिलकर दृश्य होता है और वह कौन है जो दृश्य के नष्टहुये भी आपको अखण्ड देखता है ? वह कौन है जिसके जाने से द्रष्टा—दर्शन—दृश्य तीनों लयहोजाते हैं; जैसे सोनेके जानेसे भूषण भाव लीन होजाते हैं और वह कौन है जिससे भिन्न कुछ नहीं; जैसे जल से भिन्न तरङ्गों का अभाव है ? वह एकही कौन है जो देश, काल, वस्तुके परिच्छेद से रहित सत् असत्की नाईं स्थितहै और वह कौन अद्वैत है जिससे द्वैतभी भिन्न नहीं—जैसे समुद्र से तरङ्ग भिन्न नहीं ? वह कौन है जिसके देखेसे सत्ता असत्ता सब लीन होता है और वह कौनहै जिसमें भ्रमरूपी अनन्त जगत् स्थितहै—जैसे बीज में वृक्ष होता है ? वह कौन है जो सबके भीतर है—जैसे वृक्ष में बीज होते हैं और वह कौन है जो सत्ता असत्तारूपी आपही हुआहै—जैसे बीज वृक्षरूपहै और वृक्ष बीजरूप है ? वह अणु कौन है जिसमें तांतभी सुमेरु की नाईं स्थूल है और जिसके भीतर कोटि ब्रह्माण्ड हैं ? हे राजन् ! उस अणु को देखाहो तो कहो ? यही मुझको संशय है इसको तुम अपने मुखसे दूरकरो। जिससे संशय निवृत्त न हो उसको पण्डित न कहना चाहिये। जो ज्ञानवान् हैं उनको इन प्रश्नों का उत्तर कहना सुगम है। इन संशयों को वह शीघ्रही निवृत्त करदेतेहैं। जो अज्ञानी हैं उनको उत्तरदेना कठिन है। हे राजन् ! जो तुमने मेरे प्रश्नों का उत्तरदिया तो तुम मेरे पूजने योग्य हो और जो मूर्खता से प्रश्नों का उत्तर न दोगे और प्रश्नों के विपर्यय जानोगे तो तुम दोनोंको भोजनकरजाऊंगी और फिर तुम्हारी सब प्रजाको ग्रासकरलूंगी क्योंकि; मूर्ख पापियों का मारना श्रेष्ठ है कि, आगेको पाप करनेसे छूटेंगे। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले;

हे रामजी ! इस प्रकार राक्षसी कहकर और शुद्ध आशय को लेकर तूष्णी हुई और जैसे शरत्काल में मेघमण्डल निर्मल होता है तैसे निर्मल हुई ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीप्रश्नवर्णनन्नामपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अर्द्धरात्रि के समय महाशून्य वन में जब उस राक्षसी ने ये महाप्रश्न किये तब महामन्त्री ने उससे कहा; हे राक्षसी ! ये जो तुमने संशय प्रश्न किये हैं उनका मैं क्रमसे उत्तर देताहूं। जैसे उन्मत्तहाथीको केसरीसिंह नष्टकरता है तैसे मैं तेरे संशयों को निवृत्त करताहूं। तूने सब प्रश्न परमात्माही के विषय किये हैं इससे तेरे सब प्रश्नों का एकही प्रश्न है परन्तु तूने अनेक प्रकार से किये हैं सो ब्रह्मवेत्ता के योग्य हैं। हे राक्षसी ! जो अनामाख्य है अर्थात् सर्व इन्द्रियों का बिषय नहीं और अगम है और मन की चिन्तना से रहित है ऐसी सत्ता चिन्मात्र है और उसका आकार भी सूक्ष्महै इस कारण सूक्ष्म कहाताहै। सूक्ष्मतासेही उसकी अणु संज्ञा है। उस अणुमें सत् असत् की नाईं जगत् स्थितहै और उसही चिद्अणुमें जब कुछ संवेदन फुरता है। वही संवेदन सत्य असत्य जगत् की नाईं भासता है इस से उसे चित्त कहतेहैं। सृष्टि से पूर्व उसमें कुछ न था इससे निष्किञ्चन कहाता है। और इन्द्रियोंका बिषय नहीं इससे न किञ्चित है। उसी चिद्अणु में सबका आत्मा है इससे वह अनन्तभोक्ता पुरुष किञ्चनहै और उससे कुछ भिन्न नहीं इससे किञ्चन नहीं। वही चिद्अणु सबका आत्मा है और एकही अभाससे अनेकरूप भासताहै- जैसे सुवर्ण से नाना प्रकार के भूषण भासते हैं। वही चिद्अणु परमाकाशरूपहै जो आकाशसे भी सूक्ष्म और मन वाणी से अतीतहै। वह सर्वात्मा है शून्य कैसेहो? सत् को जो शून्य कहते हैं वह उन्मत्त हैं क्योंकि; असत्भी सत् विना सिद्ध नहीं होता। जिसके आश्रय असत् भी सिद्ध होता है सो सत् है। वह चिद्अणु पञ्चकोशोंमें नहीं छिपता। जैसे कपूर की गन्ध नहीं छिपती तैसेही पञ्चकोश में आत्मा नहीं छिपता अनुभवरूप है। वही चिन्मात्र सर्वरूप से किञ्चितहै और अचेतन चिन्मात्र है इससे अकिञ्चित् इन्द्रियों से रहित और निर्मलहै। उसही चिद्अणु में फुरनेसे अनेक जगत् स्थित हैं। जैसे समुद्र में फुरनेसे तरङ्ग उपजते हैं और फिर लीन होतेहैं तैसेही चिद्अणु में फुरने से अनेक जगत् उपज के लीन होते हैं वह मन और इन्द्रियों से अतीतहै इससे शून्य कहाता है और अपने आपही प्रकाशताहै इससे अशून्य है। हे राक्षसी ! मेरा और तेरा अहं एकही आत्माहै। अहंकी अपेक्षासे त्वं है और त्वं की अपेक्षा से मैं परिच्छिन्न हूं परन्तु दोनों का उत्थान एक आत्मतत्त्वसे ही है। उसही चिद्अणु के बोध से ब्रह्मरूप होता है और उसही बोध में अहं त्वं सब लीन होते हैं अथवा सर्व आपही होता है। त्रिपुटिरूप भी वही है। वही चिद्अणु अनेक

योजनों पर्यन्त जाता है और कदाचित् चलायमान नहीं होता क्योंकि; संवित् अनन्त-रूप है। योजनों के समूह उसके भीतर हैं वास्तव में न कोई आता है और न जाता है, अपने आकाशकोश में सब देश काल स्थित है। जिसमें सब कुछ हो उसकी प्राप्ति वास्तव में क्या होय? यह जितना जगत् है वह तो आत्मा में है फिर आत्मा कहां जावे? जैसे माता की गोद में पुत्र हो तो फिर वह उस निमित्त कहां जावे तैसेही आत्मा में यह जगत् स्थित है फिर आत्मा कहां जाय; देह की अपेक्षा से चलता भासता है वह कदाचित् चला नहीं। जैसे आकाश में घटादिक स्थित हैं तैसेही चिद्अणु में देश काल स्थित है। जैसे घट एकदेश से देशान्तर को जावे तो घट जाता है आकाश नहीं जाता पर घट की अपेक्षा से आकाश जाता भासता है वास्तव में घटाकाश कहीं नहींगया क्योंकि; आकाश में सब देश स्थित हैं यह कहांजावे; तैसेही आत्मा भी जाता है और नहीं जाता। उसही चिन्मात्र परमात्मा में संवेदन आकार रचे हैं और आदि अन्तसे रहित विचित्ररूपी जगत् रचा है। वही चिद्अणु अग्नि की नाईं प्रकाशरूप है और जलानेसे रहित है। ज्ञानअग्नि से प्रकाशमान है; अग्नि भी उससे उपजी है और सर्वगत वही है। द्रव्यों को पचाताभी वही है; प्रलय में सबभूत उसमें ही लीन होते हैं और पुष्कल मेघ इकट्ठाहो तो भी उसको आवरण नहीं करसकते। वह सदा प्रकाश और ज्ञानरूप है; आकाशसेभी निर्मलहै और अग्नि भी उससे उत्पन्न होती है। सबको सत्तादेनेवाला वही है और सूर्यादिक भी उसके प्रकाश से प्रकाशतेहैं वह अनुभवरूप है और नेत्रों विना भासता है। ऐसा हृदयरूपी मन्दिर का दीपक आत्मा अनन्त और परमप्रकाशरूप है और मन और इन्द्रियों का विषय नहीं। वह लता, फूल, फल आदिक सबको आत्मत्व से प्रकाशता है सबका अनुभवकर्त्ता वही है और काल, आकाश, क्रिया आदिक पदार्थों को सत्ता देनेवाला भी वही चिद् अणु है। सबका स्वामी कर्त्ता वही है; सबका पिता भोक्ता भी वही है; और सदा अकर्त्ता अभोक्तारूप है। जैसे स्वप्न में कर्त्ता भोक्ता भासता है पर अकर्त्ता अभोक्ता है; उससे भिन्न नहीं; इस कारण किञ्चनरूप है और जगत् को धारण करनेवाला है। स्वरूप से मातृ, मान, मेय जिससे प्रकाशते हैं और कुछ उपजा नहीं। चिदात्मा का किञ्चन है; किञ्चन से जगत् की नाईं भासता है। तूने जो पूछाथा कि, 'दूर और निकट कौन है' सो अलखभाव से दूरभी वही है और चिद्रूपभाव से निकट भी वही है अथवा ज्ञानसे निकट है और अज्ञान से दूरसे दूर है। अज्ञान से तमरूप है और ज्ञानसे प्रकाशरूप भी वही है और उसही चिद्अणु में संवेदन से सुमेरु आदिक स्थित हैं। हे राक्षसी! जो कुछ जगत् भासता है वह सब संवेदनरूप है। सुमेरु आदिक पदार्थ कुछ उपजे नहीं, चिद्सत्ता ज्यों की त्यों स्थित है; उसमें जैसा

संवेदन फुरता है तैसा आकार होभासता है । जहां निमेष का संवेदन फुरताहै वहां निमेष कहाता है और जहां कल्प का संवेदन फुरताहै वहां उसे कल्प कहते हैं। कल्प, क्रिया आदिक जगत् विलास सब निमेषमें फुरआये हैं। जैसे मन के फुरने से बहुत योजनों पर्यन्त पुरुष देखआता है और जैसे छोटे शीशे में बड़े विस्तार नगर का प्रतिबिम्ब समाजाताहै तैसेही एक निमेष के फुरने में सब जगत् फुरआता है । एक निमेष में कल्प, समुद्र, पुर इत्यादिक अनन्तयोजनों का विस्तार चिद् अणु में स्थित है और एक दो के भ्रम से रहित है। हे राक्षसी ! इस जगत् का स्वरूप कुछ नहीं, संवेदनसे भासताहै; जैसा २ संवेदनमें दृढ़ प्रतीत होताहै तैसाही तैसा अनुभव होताहै । देख कि, क्षण के स्वप्न में सत् असत् जगत् फुरआताहै और बहुत काल का अनुभव होता है । जो दुःखी होते हैं उनको थोड़े कालमें बहुत काल भासता और सुखी जनों को बहुतकाल में थोड़ा काल भासता है । जैसे हरिश्चन्द्र को एक रात्रि में द्वादश वर्ष का अनुभव हुआ था । इससे जितना २ संवेदन दृढ़ होता है उतने देश काल हो भासते हैं और सत्‌भी असत् की नाईं भासता है । जैसे सुवर्ण में भूषणबुद्धि होती है तो भूषण भासते हैं और समुद्रमें तरङ्गों की दृढ़ता से तरङ्ग भिन्न भासते हैं; तैसेही निमेष में कल्प भासते हैं पर वास्तवमें न निमेष है; न कल्प है;न दूर है और न निकट है; चिद्‌अणु आत्मा का सब आभास है । हे राक्षसी ! प्रकाश और तम; दूर और निकट सब चैतन सम्पुट में रत्नों की नाईं है और वास्तव में अनन्यरूप हैं; भेदाभेद कुछ नहीं । हे राक्षसी ! जबतक दृश्य का सद्‌भाव दृढ़ होता है तबतक द्रष्टा नहीं भासता–जैसे जबतक भूषणबुद्धि होती है तबतक स्वर्ण नहीं भासता और जब स्वर्ण जानागया तब भूषणबुद्धि नहीं रहती स्वर्ण ही भासता है; तैसेही जबतक दृश्यका स्पन्दभाव होताहै तबतक द्रष्टा नहीं भासता और जब आत्मज्ञान होता है तब केवल ब्रह्मसत्ताही निर्मल हो सद्रूप से सर्वत्र भासती है । दुर्लक्षता अर्थात् मन और इन्द्रियों के अविषय से असत्‌रूप कहते हैं; चैत्यना से उसको चैतन कहते हैं और चैत्य के अभावसे अचैतनरूप कहते हैं अर्थात् चैत्य के अभाव से अचैत्य चिन्मात्र कहतेहैं । चैतन चमत्कार से जगत्‌की नाईं हो भासताहै । हे राक्षसी ! और जगत् उससे कोई नहीं–जैसे वायु का गोला वृक्षाकार हो भासता है और सघनधूप से मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसेही एक अद्वैत चैतनघन चैतन्यता से जगत् की नाईं हो भासताहै । जैसे सघन शून्यता से आकाश में नीलता भासती है तैसेही दृढ़सघन चैतनता से जगत् भासता है । जैसे सूर्यकी सूक्ष्म किरणों का किंचन मृगतृष्णा का जल होता है; उस नदी का प्रमाण कुछ नहीं तैसेही इस जगत् की आस्था भासती है पर सब आकाशरूपहै । जैसे भ्रमसे धूलिके कण में स्वर्णकी नाईं

चमत्कार होताहै तैसेही जगत्कल्पना चित्तके फुरनेसे भासती है। जैसे स्वप्नपुर और गन्धर्बनगर आकारसहित भासते हैं सो न सत् हैं न असत् हैं तैसेही यह जगत् दीर्घस्वप्ना है; न सत् है और न असत् है। हे राक्षसी! जब आत्मा में अभ्यास हो तब यह कुण्डादिक ऐसेही रहें और आकाशरूप हो भासें। कुण्डादिकभी आकाशरूप हैं; आकाश और कुण्डादिकों में भेद कुछ नहीं मूढ़ता से भेद भासता है। ज्ञानी को सब चिदाकाशरूप भासता है। हे राक्षसी! ब्रह्मा से तृण पर्यन्त के संवेदन में जैसी कल्पना दृढ़ होरही है तैसेही भासती है और वास्तव में वही चिदाकाश प्रकाशता है। घन चेतनता से वही चिदाकाश आकारों की नाईं प्रकाशता है और उसी का यह प्रकाश है। जैसे बीज और वृक्ष अनन्यरूप हैं तैसेही असंख्यरूप जगत् जो ब्रह्मसत्ता में स्थित है वह अनन्यरूप है। जैसे बीज में वृक्ष का भाव स्थित है सो आकाशरूप है तैसेही ब्रह्म में जगत् स्थित है सो अक्षोभरूप है—अन्यभाव को नहीं प्राप्तहुये। ब्रह्मसत्ता सब ओर से शान्तरूप, अज, एक और आदि—मध्य अन्त से रहित है। उसमें एक और द्वैत की कल्पना नहीं। वह अनउदय ही उदय हुआ है और निर्मल स्वप्रकाश आत्मा है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीप्रश्नभेदोनामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५६॥

वशिष्ठजी बोले; बड़ा आश्चर्य है २ कि मन्त्री ने तो यह परमपावन परमार्थवचन कहे और कमलनयन राजानेभी कहा; हे राक्षसी! यह जो जाग्रत् जगत् की प्रतीति होती है इसका जब अभाव हो तब आत्मप्रतीति होती है। जब सब संकल्प की चैत्यता का नाश हो तब आत्मा का साक्षात्कार हो। उस आत्मसत्ता में संवेदन फुरने से जगत् भासता है और संवेदन के संकोच से सृष्टि का प्रलय होताहै। सबका अधिष्ठानरूप वही आत्मसत्ता है तिसको वेदान्तवाक्य जतावने के अर्थ कुछ कहते हैं क्योंकि; वाणी से अतीतपद है। हे राक्षसी! यह जो द्रष्टा, दर्शन और दृश्य है इसके अन्तर जो अनुभवसत्ता है सो परमात्मा है। वह परमात्मा ही द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप होकर भासता है। उसी में यह सब जगत् लीलाहै; नानात्वभाव से भी वह कुछ खण्डितभाव को नहीं प्राप्त हुआ; अखण्डही है। उसी सन्मात्रसत्ताको ब्रह्म कहते हैं। हे भद्रे! वही चिद्अणु संवेदनसे वायुरूप हुआ है और वायु उसमें अत्यन्त भ्रान्तिमात्र है क्योंकि; केवल शुद्ध चिन्मात्र है। जब उस में शब्द का संवेदन फुरता है तब शब्दरूप हो भासता है और शब्दरूप उसमें भ्रान्तिमात्र है। उसमें शब्द और शब्द का अर्थ देखना दूरसे दूर है क्योंकि; केवल चिन्मात्र है। उसमें अहं त्वं कुछ नहीं। वह निष्किञ्चन है ऐसे रूप होकर भासता है क्योंकि; शक्तिरूप है। उसमें जैसी प्रतिभा फुरती है तैसाही होकर भासता है इससे फुरनाही इस जगत् का कारण है। जो अनेक

यत्नों से मिलता है सो भी आत्मसत्ता है। जब उसको कोई पाता है तब उसने कुछ नहीं पाया और सब कुछ पाया है। पाया तो इस कारण नहीं कि, आगे भी अपना आप था और सब कुछ इस कारण पाया कि, आत्माको पाये से कुछ और पाना नहीं रहता। हे राक्षसी! अज्ञानरूपी वसन्तऋतु में जन्मों की परम्परा बेलि तबतक बढ़ती जाती है जबतक इसके काटनेवाला बोधरूपी खड्ग नहीं प्राप्त हुआ। जब बोधरूपी खड्ग प्राप्त होता है तब जन्मरूपी बेलि को काटता है। हे राक्षसी! चिद्अणु संवेदन द्वारा आपको दृश्य में प्रीति करताहै—जैसे किरणों का चमत्कार जलरूप होकर स्थित होताहै—सो शुद्धही आपको संवेदन द्वारा फुरता देखता है। चिद्अणु द्वारा जो जगत हुआहै सो मेरुसे आदि लेकर तीनों भुवनों में किरणों की नाई स्थित होताहै और वास्तव में सब मायामात्र हैं भ्रमसे भासते हैं। जैसे स्वप्ने में रागी को स्वप्न स्त्री का आलिङ्गन होता है तैसेही यह जगत् मन के फुरने से भासता है सो भ्रममात्र है। हे राक्षसी! सर्वशक्तिरूप आत्मा में जैसे सृष्टि का आदि फुरना हुआ है तैसाही रूप होकर भासने लगा है। और जैसे संकल्प किया है तैसेही स्थित हुआ है। इससे सब जगत् संकल्पमात्र है। जैसे जिसमें बालक का मन लगता है तैसाही रूप उसका हो भासता है; तैसेही संवित् के आश्रय जैसा संवेदन फुरता है तैसाही रूप हो भासता है। हे राक्षसी! चिद्अणु परमाणु से भी सूक्ष्म है और उसनेही सब जगत् को पूर्ण किया है और सब जगत् अनन्तरूप आत्मा है उसमें संवेदन से जगत् की रचना हुई है। जैसे नटनायक जैसे २ बालक को नेत्रों से जताता है तैसेही तैसे वह नृत्य करता है और जब वह ठहर जाता तब यह भी ठहरजाता है; तैसेही चित्त के अवलोकन से सुमेरु से तृण पर्यन्त जगत् नृत्य करता है। जैसे चित्त संवेदन अनन्तशक्ति आत्मा में फुरता है तैसेही तैसे हो भासता है। हे राक्षसी! देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से आत्मसत्ता रहित है, इस कारण सुमेरु आदिक से भी स्थूल है; उसके सामने सुमेरु आदिक तृण के समान हैं और बाल के अग्र के सहस्रवें भाग से भी सूक्ष्म है। अल्पता से ऐसा सूक्ष्म नहीं जिसमें सरसों का दाना भी सुमेरुवत् स्थूल है। माया की कला बहुत सूक्ष्म है उससे भी चिद्अणु सूक्ष्म है क्योंकि; निर्मायिकपद परमात्मा है। जैसे सुवर्ण और भूषणकी शोभा समान नहीं अर्थात् स्वर्ण में भूषण कल्पित है समान कैसेहो; तैसेही माया परमात्मा के समान नहीं क्योंकि; कल्पित है। हे राक्षसी! जैसे कुछ सूर्य आदिक सब अनुभव से प्रकाशते हैं इनका सद्भाव कुछ न था उस सत्ता से ही इनका प्रकट होना हुआ है और फिर जर्जरीभूत होते हैं शुद्ध चिन्मात्र सत्ता प्रकाशरूप है और वह सदा अपने आपमें स्थितहै उस चिद्अणु के भीतर बाहर प्रकाश है और यह जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्निआदिक प्रकाश हैं सो तम से मिले

हुये हैं अर्थात् भेदरूप हैं। ये भी तमरूप हैं क्योंकि; प्रकाश की अपेक्षा रखते हैं। इनमें इतना भेद है कि, प्रकाश शुक्लरूप है और तम कृष्णरूप है इससे रङ्गका भेद है प्रकाशरूप कोई नहीं। जैसे मेघ का कोहिरा श्याम होता है और बरफ का शुक्ल होता है पर दोनों कुहिरे हैं; तैसेही तम और प्रकाश दोनों तुल्य हैं और आत्मसत्ता दोनों को प्रकाशती है इससे दोनों का आश्रयभूत आत्मसत्ताही है। हे राक्षसी! रात्रि, दिन, भीतर, बाहर, नदियां, पहाड़ आदिक सबलोक आत्मसत्ता के प्रकाश से प्रकाशते हैं–जैसे कमल और नीलोत्पल दोनों को सूर्य प्रकाशता है। कमल श्वेत है और नीलोत्पल श्याम है; जहां श्वेतकमल है वहां नीलोत्पल का अभाव है और जहां नीलकमल है तहां श्वेतकमल का अभाव है पर दोनों का प्रकाशक सूर्य है; तैसेही तम और प्रकाश दोनों का प्रकाशक चिदात्मा है। जैसे रात्रि और दिन दोनों सूर्य से सिद्ध होते हैं तैसेही तम और प्रकाश दोनों आत्मा से सिद्ध होते हैं। जैसे दिन तब कहाता है जब सूर्य उदय होता है और जब सूर्य अस्त होता है तब रात्रि होती है आत्मा तैसे भी नहीं। आत्मप्रकाश सदा उदयरूप है और उदय अस्त से रहित भी है। उस बिना कुछ सिद्ध नहीं होता सब का प्रकाशक चिद् अणुही है। हे राक्षसी! उस अणु के भीतर विचित्र अनुभव अणु है। जैसे वसन्तऋतु के भीतर पत्र, फूल, फल और टास होते हैं तैसेही चिद्अणु में सब अनुभव अणु होते हैं। जैसे एक बीज से अनेक वृक्ष क्रम से होजाते हैं तैसेही एक चिद्अणु से अनेक अनुभव अणु होते हैं। कई व्यतीत हुये हैं; कई वर्त्तमान हैं और कई होंगे। जैसे समुद्रमें तरङ्ग होते हैं सो कोई अब वर्त्तते हैं और कई आगे होंगे; तैसेही आत्मामें तीनों काल की सृष्टि वर्त्तती है। हे राक्षसी! चिद्अणु आत्मा उदासीन है और आसीन की नाईं स्थित होता है। सब का कर्त्ता भी है और भोक्ता भी है और स्पर्श किसी से नहीं किया जाता। जगत् की सत्यता उसीसे उदय होती है इस कारण यह सबका कर्त्ता है और सब का अपना आप है इससे सबको भोगता है। वास्तव में न कुछ उपजा है और न लीन होता है। चिन्मात्रसत्ता ज्यों की त्यों सदा अपने आपमें स्थित है और अखण्ड और सूक्ष्म है इस कारण किसीसे स्पर्श नहीं किया जाता। हे राक्षसी! जो कुछ जगत दीखता है वह सब आत्मरूप है; आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। आत्मा और जगत् कहनेमात्र को दोनों नाम हैं वास्तव में एक आत्माही है। आत्मा का चमत्कारही जगतरूप हो भासता है वास्तव में जगत् कुछ बना नहीं, चिन्मात्रसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और जो कुछ कहना है वह उपदेश के निमित्त है वास्तव में दूसरी कुछ वस्तु नहीं बनी-तीनों जगत् चिदाकाशरूप हैं। हे राक्षसी! द्रष्टा जब दृश्यपदको प्राप्त होता है तब स्वाभाविकही अपने भाव को नहीं देखता। जैसे नेत्र

जब घट को देखता है तब घटही भासता है अपना नेत्रत्वभाव नहीं दृष्टि आता; तैसे ही दृश्य के होते द्रष्टा नहीं भासता और जब दृश्य नष्ट होता है तब द्रष्टा भी अवास्तव है क्योंकि; द्रष्टा भी दृश्य के सम्बन्ध से कहते हैं । जब दृश्य नष्ट होजावे तब द्रष्टा किसका कहिये । दृश्यविषयभूत वह होता है जो अदृश्य है; वह विषयभूत किसी का नहीं इस कारण उसमें और कोई कल्पना नहीं बनती और यह जगत्भी उसका ही आभास है । हे राक्षसी ! जैसे भोक्ता विना भोग नहीं होते; तैसेही द्रष्टा विना दृश्य नहीं होता । जैसे पिता विना पुत्र नहीं होता; तैसेही एक विना द्वैत नहीं होते । हे राक्षसी! द्रष्टा को दृश्य उपजाने की सामर्थ्य है परन्तु दृश्य को द्रष्टा उपजाने की सामर्थ्य नहीं क्योंकि; दृश्य जड़ है । जैसे सुवर्ण से भूषण बनताहै पर भूषण से स्वर्ण नहीं बनता; तैसे ही द्रष्टा से दृश्य होता है; दृश्य से द्रष्टा नहीं होता । हे राक्षसी! सुवर्ण में जैसे भूषण है तैसे ही द्रष्टा में जो दृश्य है । वह भ्रमरूप है-इसीसे जड़रूप है । जब द्रष्टा दृश्य को देखता है तब दृश्य भासता है-दृष्टत्वभाव नहीं भासता और जब द्रष्टा अपने स्वभाव में स्थितहोता है तब दृश्य नहीं भासता । जैसे जबतक भूषणबुद्धि होती है तबतक सुवर्ण नहीं भासता-भूषणही भासताहै और जब सुवर्णका ज्ञानहोताहै तबसुवर्णही भासता है-भूषण नहीं भासता । एक सत्ता में दोनों नहीं सिद्ध होते । जैसे अन्धकार में किसी पुरुष को देखकर उसमें पशुत्वभ्रम हो तो जबतक पशुबुद्धि होती है तबतक पुरुष का निश्चय नहीं होता और जब निश्चय करके पुरुष जाना तब फिर पशुबुद्धि नहीं रहती; तैसेही जब द्रष्टा दृश्य को देखताहै तब द्रष्टाभाव नहीं दीखता दृश्यही भासता है । जैसे रस्सी के ज्ञान से सर्पका अभाव होजाताहै तैसेही बोध करके दृश्य का अभाव होताहै तब एकही परमात्मसत्ता भासती है-द्रष्टासंज्ञा भी नहीं रहती । जैसे दूसरेकी अपेक्षा से एक कहाता है और दूसरेके अभाव हुये एक २ नहीं कहसक्के; तैसेही दृश्य के अभाव हुये द्रष्टा कहना नहीं रहता केवल शुद्ध संविन्मात्र पद शेष रहता जिसमें वाणी की गम नहीं । जैसे दीपक पदार्थों को प्रकाशता है तैसेही द्रष्टा, दर्शन और दृश्य को प्रकाशता है और बोध से मातृ, मान और मेय त्रिपुटी लीन होजाती है । जैसे सुवर्णके जाननेसे भूषण की कल्पना का अभाव होजाताहै तैसेही ज्ञान से त्रिपुटी का अभाव होजाताहै केवल शुद्ध अद्वैतरूप रहताहै । हे राक्षसी ! परमअणु जो अत्यन्त निस्वादरूप है वह सर्व स्वादों को उपजाता है । जहां रससहित होताहै वहां चिद् अणु करके होताहै । जैसे आदर्शविना प्रतिबिम्ब नहीं होता तैसेही सब स्वाद चिद् अणु विना नहीं होते । सबको रस देनेवाला चिद् अणुही है । आतमभाव से सबका अधिष्ठान है और सूक्ष्मसे सूक्ष्म है इससे निस्वाद है । वह चिद्अणु आपको छिपा नहीं सक्ता । सब जगत् को उसने ढांपरक्खा है और आप किसीसे ढांपा नहींजाता ।

वह चिदाकाशरूपहै; सब पदार्थोंको सत्तादेनेवालाहै और सबका आश्रयभूत है। जैसे घास के वन में हाथी नहीं छिपता तैसेही आत्मा किसीपदार्थ से नहीं छिपता। हे राक्षसी! जिससे सबपदार्थ सिद्धहोतेहैं और जो सदाप्रकाशरूपहै वह मूर्खोंको नहीं भासता-यह बड़ा आश्चर्य है। वह सदा अभनुवरूप है और यह सब जगत् उसहीसे जीताहै। जैसे वसन्तऋतु से फूल, फल, टास और पत्र फूलतेहैं तैसेही सब जगत् आत्मा से फूलता है। वही चिदात्मा जगत्‌रूप होके भासता है और सर्वात्मभाव से सब उसकेही अवयव हैं। परमार्थ निरवयव और निराकाररूप है उसमें कुछ उदय नहीं हुआ। हे राक्षसी! एकनिमेष के अबोध से चिद्‌अणु में अनेककल्पों का अनुभव होताहै। जैसे एक क्षण के स्वप्ने में पहले आपको बालक और फिर वृद्ध अवस्था देखने लगता है। उन कल्पों में जो निमेषहै उसमें अनेक कल्प व्यतीत होतेहैं क्योंकि; अधिष्ठान सर्व शक्तिमान् है जैसा संवेदन जहां फुरताहै वैसा रूप हो भासता है। जैसे स्वप्ने में अभोक्ता को भोक्तृत्व का अनुभव होताहै। तैसेही निमेष में कल्प का अनुभव होता है। वासनासे आवेष्टित अभोक्ताही आपको भोक्ता देखता है जैसे स्वप्ने में मनुष्य अपना मरण प्रत्यक्ष देखता है तैसेही यह जगत् भ्रम से भासता है। जैसी जहां स्फूर्ति दृढ़ होती है वैसेही होकर वहां भासता है। हे राक्षसी! जो कुछ आकार भासते हैं वे भ्रान्तिमात्र हैं। जैसे निर्मल आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में विश्व भासता है। आत्मा सर्वगत और सबका अनुभवरूप है। हे राक्षसी! उसमें व्याप्य-व्यापकभाव भी नहीं क्योंकि; सर्व आत्मा है और सर्वरूपभी वही है। जब शुद्धचित्त संवित् में संवेदन फुरता है तब पृथक् २ भाव चेतता है। इच्छासे जिस पदार्थ की उपलब्धि होती है उसमें व्याप्य व्यापकभाव की कल्पना होती है—वास्तव में जो इच्छा है वही पदार्थ है। जैसे जल में द्रवता होतीहै और उससे तरङ्ग, फेन और बुद्‌बुदे होतेहैं सो सब जलरूप हैं, जल से भिन्न नहीं; तैसेही इच्छा से उपजे पदार्थ आत्मारूप हैं उससे भिन्न नहीं। आत्मा देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है; केवल शुद्ध चिन्मात्र और सर्वरूप होकर स्थित हुआ है और सबका अनुभव भी उसी में हुआ है। वह तो शुद्ध सत्तामात्र है उसमें द्वैतकल्पना कैसे कहिये? हे राक्षसी! जब कुछ द्वैत होता है तब एकभी होता है; जो द्वैतही नहीं तो एक कैसे कहिये? जैसे धूप की अपेक्षा से छाया है और छाया की अपेक्षा से धूप है; तैसेही एककी अपेक्षा से द्वैत कहाता है। इस कल्पना से जो रहित है वही चिन्मात्ररूप है और जगत भी उससे व्यतिरिक्त नहीं। जैसे जल और द्रवतामें कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। हे राक्षसी! नाना प्रकार के आरम्भ उसमें दृष्टि आते हैं तौभी आत्मसत्ता सम है। हे राक्षसी! जब सम्यक्‌बोध होताहै तब द्वैतभी

अद्वैतरूप भासताहै क्योंकि; अज्ञानसे द्वैत कल्पना होती है। वास्तव में द्वैत कुछ नहीं; अज्ञानके अभावसे द्वैतका भी अभाव होजाताहै ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे जल और द्रवता; वायु और स्पन्दता और आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। हे राक्षसी! द्वैत और अद्वैत जानना दुःख का कारणहै। द्वैत और अद्वैतकी कल्पना से रहित होनेको ही परमपद कहते हैं। द्रष्टारूप जो जगत् है वह चिद् परमाणुमें स्थितहै और उसमें सुमेरु आदिक स्थित हैं बड़ा आश्चर्य है कि, मायासे चिद् परमाणु में त्रिलोकियोंकी परम्परा स्थित हैं इसीसे असंभवरूप और मायामय है। जैसे बीज में वृक्ष स्थितहै तैसेही चिद् अणु में जगत् स्थितहै। जैसे शाखा, पत्र, फूल और फलसे बीज अपना बीजत्व नहीं त्यागता और अखण्ड रहताहै तैसेही चिद्अणुके भीतर जगत्का विस्तारहै और अणुत्वभाव नहीं त्यागता--अखण्डही रहताहै। हे राक्षसी! जैसे बीज परिणामसे वृक्षभावमें प्राप्तहोता है तैसेही चिद् अणु भी परिणामसे जगत्रूप होताहै। सब चिद्अणुका किञ्चनरूपहै इससे ऐसे दिखाई देता है; वास्तव में न द्वैत है; न अद्वैत है; न बीजहै- न अंकुर है; न स्थूल है- न सूक्ष्म है; न कुछ उपजाहै- न नष्ट होताहै; न अस्ति है- न नास्ति है; न सम है-न असम है और न जगत् है- न अजगतहै; केवल चिदानन्द आत्मसत्ता अचिन्त्यचिन्मात्र अपने आपमें स्थित है जैसी २ भावना होती है तैसीही तैसी हो भासती है। हे राक्षसी! यह अनउदयही संवेदन के वश से उदय होकर भासता है। जैसे बीज से वृक्ष अनन्यरूप अनेक हो भासताहै तैसेही एक आत्मा अनेकरूप हो भासताहै। न कुछ उदय हुआहै और न मिटता है। हे राक्षसी! उस चिद्अणु में कमल के डंडी की तांत सुमेरु की नाईं स्थूल है। जैसे कमल की डंडी की तांत से सुमेरु स्थूल है तैसेही चिद्अणु से कमल की डंडी स्थूलहै और दृश्यरूपहै पर चिद् अणु दृश्य और मन सहित षड् इन्द्रियों का विषय नहीं इस कारण तांतसे भी सूक्ष्म है उस चिद्अणु में अनन्त सुमेरु आदिक स्थित हैं सो क्या रूप है; जैसे आकाश में शून्यता होती है तैसेही आत्मा में जगत् है। हे राक्षसी! जिसको आत्मा का बोध हुआ है उसको जगत् सुषुप्ति की नाईं भासता है। वह आत्मसत्ता सदा अद्वैतरूप और परिणाम से रहित है उसमें मुक्त पुरुष सदा स्थितहै। परमार्थ से जगत्भी ब्रह्म-रूप है भिन्नभाव कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्युपाख्याने परमार्थनिरूपणन्नाम सप्त-पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार राजा के मुख से सुनकर कर्कटीने बन के मर्कटीरूप जीवोंके मारनेकी चपलता त्याग की और भीतरसे शीतल होकर विश्राम

पाया। जैसे वर्षाकाल में मोरनी प्रसन्न होती है, चन्द्रमाको देखके चन्द्रवंशी कमल प्रफुल्लित होतेहैं और मेघ के शब्द से बगली गर्भवान् होतीहै तैसेही राजाके वचन सुनके कर्कटी परमानन्द हुई और बोली; बड़ा आश्चर्य है । बड़ा आश्चर्य है !। हे राजन्! तुम ने महा पावन वचन कहे। इससे मैंने तुम्हारा विमल बोध देखा और अमृतसार और समरस से पूर्ण, शुद्ध और रागद्वेष आदिकमल से रहित है। जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा शीतल; अमृत से पूर्ण और शुद्ध होताहै तैसेही तुम्हारा बोध है विवेकी जगत् में पूज्य है। जैसे चन्द्रमा को देखकेकमलिनी प्रफुल्लित होतीहै; फूलों से मिल के वायु सुगन्धवान् होती है और सूर्यके उदयहुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होआते हैं; तैसेही सन्तों की सङ्गति से बुद्धि सुखपाती है । हे राजन्! वह कौनहै जो दीपक हाथ में लेकर गढ़े में गिरै और वह कौनहै जो दीपक हाथ में लेकर तम देखे? तैसेही वह कौन है जो सन्तों की संगति करे और दुःखीरहे। सन्तोंकी संगति से सभी दुःख नष्ट होते हैं। हे राजन्! तुम इस वनमें किस प्रयोजन से आये हो! तुम तो पूजने योग्य हो ! राजा बोले, हे राक्षसी ! मेरे नगर में जो मनुष्य रहते हैं उनको एक विसूचिका व्याधिरोग लगा है और उससे वे बहुत कष्ट पाते हैं। औषध भी हम बहुत कररहेहैं पर दुःख दूर नहीं होता। हमने सुना है कि, एक राक्षसी जीवों को कष्ट देतीहै और उसका एक मन्त्र भी है उस मन्त्र के पढ़ेसे निवृत्त होजाती है। इस लिये उस तुमसी राक्षसियों के मारने के निमित्त मैं रात्रि को वीरयात्रा करने निकलाहूं। जो वह राक्षसी तूहीहै तो हमारा तेरा संवाद भी होचुकाहै उसको अङ्गीकार करके प्राणियों की हिंसा करना छोड़ और किसी को कष्ट न दे । राक्षसी बोली; हे राजन्! तुमने सत्य कहा। अब मैंने हिंसा धर्मका त्याग किया और अब किसी जीव को न मारूंगी। राजा बोले, हे राक्षसी! तूने तो कहा कि, मैं अब किसी जीवको न मारूंगी पर तेरा आहार तो जीव हैं जीवों को मारे विना तेरे शरीर का निर्वाह कैसे होगा? राक्षसी बोली; हेराजन्! हजारवर्ष मैं समाधिमें स्थितरही और जब समाधि खुली तब मुझे क्षुधा लगी। अब मैं फिर हिमालय पर्वत की कन्दरा में जाकर निश्चल समाधि में; जैसे मूर्त्ति लिखी होतीहै तैसेही स्थित हूंगी और जब समाधि से उतरूंगी तब अमृत की धारणा में विश्राम करूंगी। जब उससे उतरूंगी तब शरीर का त्याग करूंगी परन्तु हिंसा न करूंगी। हे राजन्! जिस प्रकार मैंने हिंसाधर्म को अङ्गीकार किया था वह सुन। मुझको जब बड़ी क्षुधा लगी तब उसके निवारण के अर्थ मैं हिमालय पर्वत के उत्तर शिखरपर वन में एक सोने की शिला के पास लोहे के थम्भ की नाईं जीवों के नाश के निमित्त तप करनेलगी और जब बहुत वर्ष व्यतीत हुये तब ब्रह्माजी ने मनोवांछित वर मुझको दिया। तब मेरे दो शरीरहुये—एक

आधारभूत सूर्य की नाईं और दूसरा पुर्यष्टक और मैं विसूचिका नाम राक्षसी हुई। उस शरीरसे मैं अनेक जीवों के भीतरजाकर उनको भोजन करतीरही परन्तु ब्रह्माजी ने मुझसे कहाथा कि, जो गुणवान् होंगे और जो 'ॐ' मन्त्र पढ़ेंगे उनपर तेरा बल न चलेगा तू निवृत्त होजावेगी। हे राजन्! उसीमन्त्र का उपदेश अब तुम भी अङ्गीकार करो। उस मन्त्र के पाठ से सबके रोग नष्ट होंगे। ब्रह्माजी का जो उपदेश है उस को तुम नदी के तटपर जाकर और पवित्र होकर शीघ्रही ग्रहणकरो। उसके पाठ से तुम्हारी प्रजा का दुःख नष्ट होजावेगा। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार जब अर्द्धरात्र के समय राक्षसी ने कहा तब राजा, मन्त्री और राक्षसी तीनों निकट नदी के तीरपर गये और अनन्य व्यतिरेक करके आपस में सुहृदहुये। जब तीनों पवित्र होकर बैठे तब जो मन्त्र राक्षसी को ब्रह्माजी ने उपदेश कियाथा वही मन्त्र विसूचिका ने प्रीतिसंयुक्त राजा को उपदेश किया और वहां से चलने लगी तब राजा ने कहा; हे महादेवी! तू हमारी गुरु है इससे हम कुछ प्रार्थना करते हैं उसे अङ्गीकार कर। जो महापुरुष हैं उनका सुन्दर सुहृदपना बढ़ता जाता है और तुम्हारा शरीर भी इच्छाचारी है। इससे मनके हरनेवाले भूषण-वस्त्र संयुक्त स्त्री का सा लघु शरीर धरके कुछ काल हमारे नगर में निवास करो। राक्षसी बोली; हे राजन्! मैं तो लघु आकार भी धरूंगी परन्तु तुम मुझे भोजन न देसकोगे। जो लघु स्त्री का शरीर धरूंगी तो भी मेरा स्वभाव राक्षसीकाहै इसको तृप्त करना समान जनों की नाईं तो नहीं। जैसा कुछ शरीर का स्वभाव है सो सृष्टि पर्यन्त तैसाही रहता है-अन्यथा नहीं होता। राजा बोले; हे कल्याणरूपी! तू स्त्री समान शरीर धरके हमारे नगर में चलकर रह; जो चोर पापी मेरे मण्डल में आवेंगे वे हम तुझे देंगे और तू उन्हें स्त्रीरूप को त्याग करके राक्षसी शरीर से एकान्त ठौर लेजाकर अथवा हिमालय की कन्दरा में जाके भोजन करना क्योंकि; बड़े भोजन करनेवाले को एकान्त में खाना सुखरूप है। जब उनको भोजन करके तृप्त होना तब सो रहना; जब निद्रा से जागना तब समाधि में स्थित होना और जब समाधि से उतरना तब फिर हमारे पास आना हम तेरे निमित्त बन्दीजन इकट्ठे कर रक्खेंगे उनको लेजाकर भोजन करना। जो धर्म के निमित्त हिंसा है वह हिंसा पापरूप नहीं और जिसकी हिंसा करता है उसका मरण भी नहीं बल्कि उस पर दया है क्योंकि; वह पाप करने से छूटता है। राक्षसी बोली; हे राजन्! तुमने युक्ति सहित वचन कहे हैं इससे मैं स्त्री का शरीर धरके तुम्हारे साथ चलती हूं। युक्तिपूर्वक वचन को सब कोई मानते हैं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार कहकर राक्षसी ने महासुन्दर स्त्री का शरीर धारण किया और बहुत कङ्कण आदिक नाना प्रकार के भूषण और

वस्त्र पहिनकर राजाके चली। निदान राजा और मन्त्री आगे चले और स्त्री पीछे चली। राजा उसको अपने ठाम में लेआया और एकान्तस्थान में तीनों बैठ रात्रि को परस्पर चर्चा करते रहे। जब प्रातःकाल हुआ तब सौभाग्यवती स्त्रीरूप राक्षसी राजा के अन्तःपुर में जा बैठी और जो कुछ स्त्रियों का व्यवहार है वह करती रही और राजा और मन्त्री अपने व्यवहारमें लगे। इसीप्रकार जब छःदिन व्यतीत हुए तब राजा के मण्डल में जो तीनसहस्र चोर बँधेहुये थे उन्हें सबको उसने कर्कटी को देदिया और उसने राक्षसी का शरीर धारके उनको भजा मण्डल में ले जैसे मेघ बूंदों को धारता है; हिमालय के शिखर को चली। जैसे किसी दरिद्री को सुवर्ण पाने से प्रसन्नता होती है तैसे वह प्रसन्नहुई और वहां जा तृप्त होके भोजन किया और सुखी होके सोरही। दो दिनपर्यन्त सोई रही उसके उपरान्त जागके पांचवर्ष पर्यन्त समाधि में लगीरही और जब समाधि खुली तब फिर राजा के पास आई। इसी प्रकार जब वह आवे तब राजा उसकी पूजा करे और जितने दुष्ट जन इकट्ठे कियेहों उसको देदे। वह उन्हें लेजाकर हिमालय की कन्दरा में भोजन करके फिर ध्यान में लगे और जब ध्यान से उतरे तब फिर वहां आवे और फिर लेजावे। हे रामजी! इसी प्रकार जीवन्मुक्त होकर वह राक्षसी प्रकृत स्वभाव को करतीरही और अनेक वर्ष व्यतीत हुये तब राजा विदेहमुक्त हुआ। फिर जो कोई उस मण्डल का राजा हो उससे भी राक्षसी की सुहृदता हो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीसुहृदतावर्णनंनामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! निदान जब राक्षसी आवे तब किरातदेश का राजा पूर्व की नाईं उसकी पूजाकरे और जो कुछ विसूचिका अथवा दूसरा कोई रोग उनकी प्रजा में हो उसे वह राक्षसी निवृत्तकरदे। इसी प्रकार अनेक वर्ष व्यतीत हुये। एकबार उस को ध्यानमें लगे बहुत वर्ष व्यतीत होगये तब किरातदेश के राजाने दुःखके निवृत्तिके लिये ऊंचे स्थानपर उसकी प्रतिमा स्थापन की और उसप्रतिमाका एकनाम कन्दरादेवी और दूसरा नाम मङ्गलादेवी रक्खा। उसका ध्यान करके सब पूजा करने लगे और उसी से उसका कार्य सिद्ध होनेलगा। हे रामजी! उस प्रतिमामें उस देवीने आप निवासकिया। जो कोई जिस फलके निमित्त उस प्रतिमाकी पूजा करे उसका कार्य सिद्ध हो और न पूजे तो दुःखित हो। इससे जो कोई कुछ कार्य करने लगे वह प्रथम मङ्गलादेवी की पूजाकरे तो उनका कार्य सिद्ध होवे और जो विधिकरके उसकी पूजाकरे उससे वह बहुत प्रसन्नहो। हे रामजी! अबतक वह प्रतिमा किरातदेश में स्थित है। जिस २ फलके निमित्त उसकी कोई सेवा करताहै तैसा तैसा फल उसको वह देतीहै॥

इतिश्रीयोगवा०उत्पत्तिप्रकरणेसूच्याख्यानसमाप्तिवर्णनंनामैकोनषष्टितमस्सर्गः॥५९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह आनन्दित कर्कटी का आख्यान जैसे पूर्व हुआ है तैसेही मैंने तुमसे कहा है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! राक्षसी का कृष्णवपु किस निमित्त था और कर्कटी इसका नाम क्यों था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह राक्षसों के कुलकी कन्या थी राक्षसों का वपु शुक्ल भी होताहै; कृष्ण भी होताहै और रक्त, पीत आदि भी होताहै। हे रामजी! कर्कटी नाम एक जलजन्तु भी होताहै और उसका श्याम आकार होताहै; उसीके समान कर्कट नाम एक राक्षस था उसके समान उसकी यह पुत्री हुई; इसकारण इसका नाम कर्कटी हुआ। हे रामजी! यहां कर्कटीका और कुछ प्रयोजन न था; अध्यात्मप्रसंग और शुद्ध चेतनके निरूपणके निमित्त मैंने तुमसे यह व्याख्यान कहाहै। यह आश्चर्य है कि, असत्रूप जगत्के पदार्थ सत्रूप होकर भासते हैं और जो आत्मसत्ता सदा सम्पन्नरूप है वह अविद्यमान की नाईं भासती है। हे रामजी! वास्तव में तो एक अनादि, अनन्त और परम कारण आत्मसत्ता स्थित है; भावना के वश से उसमें जगत्रूप भासताहै और अनन्यरूपहै। जैसे जल और तरङ्गें कुछ भिन्नता नहीं होती तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछ भिन्नता नहीं। आत्मामें जगत् कुछ द्वैतरूप नहीं हुआ आत्मसत्ता सदा अपने आपही में स्थित है और उसमें जैसा २ चित्तस्पन्द दृढ़ होताहै तैसाही तैसा रूप होकर भासता है। जैसे वानर रेत को इकट्ठाकरके उसमें अग्नि की भावना करते हैं और तापते हैं तो उनका शीत उसीसे निवृत्त होता है तैसेही सम, स्थिर और शान्तरूप आत्मा में जब जगत् की भावना फुरती है तब नाना प्रकार का भासताहै! जैसे थम्भे में पुतलियां अनउदयही शिल्पी के मनमें उदय की नाईं भासती हैं तैसेही भावना के वश से आत्मा ही जगत् हो भासताहै। जैसे बीज में पत्र, फूल, टहनी और वृक्ष अनन्यरूप होते हैं तैसेही ब्रह्म में जगत् अनन्यरूप है। जैसे बीज और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं; अविचार से भेद भासता है और विचार किये से जगत् भेद नष्ट होजाता है। हे रामजी! अब यह विचार न करना कि, कैसे उपजा है; कहां से आया है और कबका हुआहै? जैसे हुआ तैसे हुआ अब इसकी निवृत्ति का उपाय करना चाहिये। जब तुम यह जानोगे तब हृदय की चिद्जड़ ग्रन्थि टूटजावेगी। शब्द और अर्थ की जो कुछ कल्पना उठती है सो मेरे वचनों और स्वरूप में स्थित भये से नष्ट होजावेगी। हे रामजी! यह सब जगत् अनर्थरूप चित्त से उपजा है और मेरे वचनों के सुनने से शान्त होजावेगा। इस में संशय नहीं कि, सब जगत् ब्रह्मसे उपजा है और सब ब्रह्मस्वरूपही है पर जब तुम ज्ञान में जागोगे तब ज्योंका त्योंही जानोगे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो जिसमें होताहै वह उससे व्यतिरेक होताहै; जैसे कुलाल से घट भिन्नरूप होताहै; तो आप कैसे कहते हैं कि;

सब जगत् ब्रह्म से उपजा है और ब्रह्मस्वरूप ही है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् ब्रह्म से ही उपजाहै। जितने कुछ प्रतियोगी शब्द शास्त्रोंने कहे हैं सो दृश्य में हैं। शास्त्र ने उपदेश जताने के निमित्त कहे हैं वास्तव में यह शब्द कोई नहीं। जैसे किसी बालक को परछाहीं में वैताल भासता है तो पूछते हैं कि, किसभाग में स्थित होकर वैताल ने भयदियाहै और वह कहता है कि, अमुक ठौर में वैतालने भयदिया है सो वह व्यवहार के निमित्त कहता है पर वैताल तो वहां कोईभी न था; तैसेही आत्मा में उपदेशके निमित्त भेदकलपना करी है वास्तव में उसमें द्वैतकल्पना कोई नहीं। हे रामजी! ब्रह्म से जगत् हुआ है यह अर्थ केवल व्यतिरेक में नहीं होता। कुलाल जो दण्ड से घट उपजाता है सो व्यतिरेक के अर्थ है। स्वामी का टहलुआ यह भिन्न के अर्थ है और ये अभिन्नरूप भी होते हैं। जैसे अवयवी के अवयव हैं; सुवर्ण से भूषण हुये हैं और मृत्तिका से घट हुये हैं तैसेही यह अभिन्न और अवयवी को स्वरूप है। जैसे भूषण स्वर्णरूप है और घट मृत्तिकारूप है तैसेही ब्रह्मसे उपजा जगत् ब्रह्मरूपही है। वास्तव में भिन्न–अभिन्न; कारण–परिणाम; भाव–विकार; अविद्या और विद्या; सुख–दुःख आदिक मिथ्याकल्पना अज्ञान से उठती हैं। हे रामजी! अबोध से भेदकलपना होती है और ज्ञानसे सब कल्पना शान्त होजाती हैं। केवल अशब्दपद शेष रहता है। जब तुम ज्ञानयोग होगे तब ऐसे जानोगे कि, आदि–मध्य–अन्तसे रहित; अविभाग और अखण्डरूप एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है। अज्ञान से अथवा जिज्ञासी को उपदेश के निमित्त द्वैतवाद कल्पना है; बोध हुये से द्वैतभेद कुछ नहीं रहता। हे रामजी! वाच्य-वाचकभाव द्वैत विना सिद्ध नहीं होता। जब बोध होताहै तब वाच्य का मौन होताहै। इससे महावाक्य के अर्थ में निष्ठा करो और जो कुछ भेदकल्पना मनने रची है उसकी निवृत्ति के अर्थ मेरे वचन सुनो। हे रामजी! यह मन ऐसे उपजा है जैसे गन्धर्वनगर होताहै और उसी ने जगत् की रचना की है मैंने जैसे देखाहै तैसे तुमसे दृष्टान्त में कहताहूं; जिसके जानेसे सब जगत् तुमको भ्रांन्तिमात्र भासेगा। वह निश्चय धारण करके तुम जगत् की वासना दूरसे त्याग दोगे और बोधसे सब जगत् तुमको मन का मननरूप भासेगा। तब तुम आत्मरूपहोकर अपने आपमें निवास करोगे अर्थात् जगत् की कल्पना त्यागकरके अपने स्वभावसत्ता में स्थित होगे। इसलिये इसको सावधान होकर सुनो। हे रामजी! यह मनरूपी बड़ारोग है इसलिये विवेकरूपी औषध से उसको शान्तकरना चाहिये। सब जगत चित्त की कल्पना है। वह वास्तव में शरीर आदिक कुछ नहीं। जैसे रेतसे तेल नहीं निकलता; तैसेही जगत् से वास्तव में कुछ नहीं निकलता–चित्तद्वारा भासताहै। यह चित्तरूपी संसार स्वप्नकीनाई है और राग द्वेष

आदिक संकल्पों मे युक्त है। उससे रहित होताहै वही संसारसमुद्र के पार जाता है। इसलिये शुभ गुणोंसे चित्तकी शुद्धता करो। जो विवेकी हैं वे शुभकार्यकरतेहैं अशुभ नहीं करते हैं और आहार व्यवहार भी विचारके करते हैं। उन्हीं आर्यों की नाईं तुमभी शास्त्रों के अनुसार सचेष्टा करो। जब तुमको ऐसा अभ्यास होगा तब तुम शीघ्रही ज्ञानवान् होगे और ज्ञानके प्राप्त हुये से सब कल्पना मिटजावेंगी और आत्मस्थिति होगी। चित्तने सब जगत्‌रूपी चित्र मन में ही रचे हैं। जैसे मोर का अण्डा काल पाकर अनेक रङ्ग धारण करता है तैसेही मन अनेक प्रकार के जगत् धारण करता है वह मन जड़ और अजड़रूप है। उसमें जो चेतनभाग है वह सब अर्थों का बीजरूप है अर्थात् सबका उपादान है और जड़भाग जगत्‌रूप है। हे रामजी! सर्गके आदि में पृथ्वी आदिक तत्त्व न थे। जैसें स्वप्न में जगत् विद्यमान की नाईं भासता है तैसेही ब्रह्मा ने विद्यमान की नाईं उसको देखा। जड़संवेदन से पहाड़ आदिक जगत् देखा और चेतनसंवेदन से जङ्गमरूप देखा। वह सब जगत् दीर्घ वेदना है। वास्तवमें देहादिक सब शून्यरूपहैं और आत्मामें व्यापे हुये हैं। आत्मा का कोई शरीर नहीं। अपने से जो दृश्यरूप मन चेता है वही आत्मा का शरीर है। वह आत्मा विस्तररूप है और निर्मल स्थित है और मन उसका आभासरूप है। जैसे सूर्यकी किरणों से जलाभास होता है तैसेही आत्मा का आभास मन है। वह मनरूपी बालक अज्ञान से जगत्‌रूपी पिशाच को देखता है और ज्ञानसे परमात्मपद शान्तरूप निरामय को देखता है। हे रामजी! जब आत्मा चैत्यता को प्राप्त होता है तब वही चित्तरूप दृश्य एक ब्रह्म को द्वैत देखता है। उसकी निवृत्ति के लिये मैं तुमसे एक कथा कहताहूं गुरुके वचन जो दृष्टान्तसहित होते हैं और वाणी भी मधुर और स्पष्ट होती है तो श्रोताके हृदय में वह अपरोक्ष जैसे जल में तेल की बूंद फैलजाती है तैसेही, फैलजाते हैं और जो दृष्टान्तसे रहित होते और अर्थ स्पष्ट नहीं होता तो वह क्षोभसंयुक्त वचन कहाता है और अक्षर पूर्ण नहीं होते; इसलिये वे वचन श्रोता के हृदय में नहीं ठहरते और उपदेष्टा के निष्फल होजाते हैं। मैं तुमसे एक आख्यान नाना प्रकार के दृष्टान्तों सहित, मधुरवाणी में स्पष्ट करके कहताहूं। जैसे चन्द्रमा की किरणें अपने गृहपर उदय हों और मन्दिर शीतल होजावे तैसेही मेरे स्पष्ट वचन और प्रकाशरूप अर्थ सुनेसे तुम्हारा भ्रम निवृत्त होजावेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमनअंकुरोत्पत्तिकथनन्नामषष्टितमस्सर्गः॥ ६०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पूर्व जो मुझसे ब्रह्माजीने सर्ग का वृत्तान्त कहा है वह मैं तुमसे कहता हूं। एक समय मैंने ब्रह्माजी के पास जाकर पूछा कि, हे भगवन्! ये जगत् गण कहांसे आये और कैसे उत्पन्न हुये? तब पितामहजी ने मुझसे इन्दु

ब्राह्मणका आख्यान इस भांति कहा वे बोले; हे मुनीश्वर! यह सब जगत् मनसे उपजा है और मनसेही भासता है। जैसे जल में द्रवता के कारण नाना प्रकार के तरङ्ग और चक्र फुरतेहैं तैसेही मनके फुरनेसे सब जगत् फुरतेहैं और मनरूपही हैं। हे मुनीश्वर! पूर्व कल्प में मैंने एक वृत्तान्त देखा है उसे सुनो। एक समय जब दिन का क्षय हुआ तब मैं सम्पूर्णसृष्टि को संहार करके एकाग्रभाव हो रात्रि को स्वस्थभाव होकर रहा जब मेरी रात्रि व्यतीत हुई और मैं जागा तब मैंने उठकर विधिसंयुक्त सन्ध्यादिक कर्म किये और बड़े आकाश की ओर देखा कि, तम और प्रकाश से रहित; शून्यरूप और इतरसे रहित व्यापित है। चिदाकाश में चित्तको मिलाके जब मैंने सर्ग के उपजाने का संकल्प चित्त में धारण किया तब मुझको शुद्ध सूक्ष्म चिदाकाश में सृष्टि दृष्टि आई। वह सृष्टि मुझे बड़े विस्तार सहित और परस्पर अदृष्टरूप दृष्ट आई है और हर सृष्टि में-ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-तीनों देवताभी थे। देवता, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य; सुमेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत; पृथ्वी, नदियां, सातो समुद्रादिक सब सृष्टिके विस्तार हैं। वे दश सृष्टि हैं। उनमें जो दश ब्रह्मा देखे वे मानों मेरेही प्रतिबिम्ब कमल से उत्पन्न हुये हैं और राजहंस के ऊपर आरूढ़ हैं। उनकी भिन्न २ सृष्टि है। उनमें नदीके बड़े प्रवाह चलते हैं; वायु आकाश में चलता है; सूर्य और चन्द्रमा उदय होतेहैं; देवता स्वर्ग में क्रीड़ा करते हैं; मनुष्य पृथ्वी में फिरतेहैं; दैत्य और नाग पाताल में भोग भोगते हैं और कालचक्र फिरता है। बारह मास उसकी बारह कीलें हैं और वसन्तादिक षट्ऋतु हैं। वासनाके अनुसार शुभाशुभ आचार करके लोग नरक स्वर्ग भोगते हैं और मोक्षफल पातेहैं। हर सृष्टि में सप्तद्वीप हैं; उत्पत्ति और प्रलय कल्प होते हैं और गङ्गाजी का प्रवाह जगत् के गलेमें यज्ञोपवीत है। कहीं ऐसे सृष्टि स्थित है; कहीं सदा प्रकाश रहताहै और कहीं अहंकार से स्थावर-जङ्गम प्रजा हैं। बिजली की नाईं सृष्टि उपजती और मिटजाती है। जैसे वृक्ष के पत्र उपजते हैं और नष्ट होजाते हैं वैसेही और गन्धर्वनगरवत् सृष्टि देखी। एक२ ब्रह्माण्डमें स्थावर जङ्गम ऐसी प्रजा देखी जैसे गूलर के फलमें अनेक मच्छर होते हैं। आत्मा में कालका भी अभाव है। क्षण, लव दिन, मास और वर्षों का प्रवाह चलाजाता है। हे मुनीश्वर! अन्तवाहक दृष्टि से मैंने उन सृष्टियों को देखा। जब मैं चर्मदृष्टि से देखूं तब कुछ न भासे और दिव्यदृष्टि से देखूं तो सब कुछ भासे। चिरकालपर्यन्त मैं यह चरित्र देखता रहा कि कदाचित् चित्तभ्रम हो तो स्पष्ट हो भासे। तब एक सृष्टि के सूर्य को देखके मैंने आवाहन किया और जब वह मेरे निकट आया तो मैंने उससे कहा; हे देवदेवेश, भास्कर! तुम कुशल से तो हो? ऐसे कहकर मैंने फिर कहा कि; हे सूर्य! तुम कौन हो और यह सृष्टि कहां से उपजी है?

यह एक जगत् है व ऐसे अनेक जगत् हैं; जैसे तुम जानते हो कहो ? तब वह सूर्य भी जो त्रिकालज्ञान रखताथा मुझको जानके प्रणाम कर आनन्दितवाणी से बोला; हे ईश्वर ! इस दृश्यरूपी पिशाचके आपही नित्य कारण होते हैं। आप तो सब जानते ही हैं तो मुझसे क्यों पूछते हैं ? यदि लीलाके अर्थ पूछते हो। तो जैसे वृत्तान्त हुआ है तैसे मैं आपके सन्मुख निवेदन करताहूं। हे भगवन् ! यह जो सत् असतरूपी नाना प्रकारों के व्यवहारों संयुक्त जगत् भासता है वह सब मन के फुरनेमें स्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेआदित्यसमागमनन्नामैकषष्टितमस्सर्गः ॥ ६१ ॥

भानु बोले; हे भगवन् ! आपका जो कल्पका दिन व्यतीत भयाहै उसमें जो जम्बूद्वीप था उसके एक कोने में कैलास पर्वत था और उसकी कन्दरा में सुवर्णज्येष्ठ नाम आपका एक पुत्र रहता था। उसने वहां एक कुटी रची जिसमें साधुजन निवास करते थे इन्दुनाम ब्राह्मण वेद का वेत्ता शान्तरूप कश्यपऋषि के कुल में उत्पन्न हो स्त्री सहित उस कुटी में जाके निवास किया और उस स्त्री से प्राणों की नाईं स्नेह करताथा। जैसे मरुथल में घास नहीं उपजती तैसेही उससे सन्तान न उपजे। और जैसे शरदकालकी बेलि बहुत सुन्दर होतीहै परन्तु फलसे शून्य होतीहै तैसेही वह स्त्री थी। तब दोनों स्त्री पुरुष पुत्रके निमित्त कैलासके निकट निर्जनस्थान और कुञ्ज में एक वृक्ष के ऊपर चढ़ बैठे और तप करनेलगे। कुछ दिनतक वे केवल जल पानकर भोजन कुछ न करें और रात्रि दिन व्यतीत करें। फिर कुछ समयतक एकही अञ्जली जल पान करनेलगे और फिर उसका भी त्यागकर और फुरने से रहित हो वृक्षकी नाईं बैठे रहे। निदान जब उनको तप करते त्रेता और द्वापरयुग बीते तब शशिकलाधरी भवानीशंकर तुष्टमन होकर आये और क्या देखा कि, स्त्री पुरुष दोनों वृक्षपर बैठे हैं। तब उन्होंने शिवजी को देखके प्रणाम किया तो जैसे दिनकी तपन से सकुचीहुई चन्द्रमुखी कमलिनी चन्द्रमा के उदयहुये प्रफुल्लित हो आती है तैसेही महाहिमकी नाईं शिवजी को देखकर वे प्रफुल्लित हुये—मानो आकाश और पृथ्वी दोनों रूप धरके आन खड़े हुये हैं। ऐसे भवानीशंकर ने उस ब्राह्मण से कहा; हे ब्राह्मण ! मैं तुझ पर तुष्ट हुआ; जो कुछ तुझको वाञ्छित वर है सो तू मांग। हे ब्रह्माजी ! जब ऐसे शिवजी ने कहा तब ब्राह्मण प्रफुल्लित होकर कहने लगा; हे भगवन् ! देवदेवेश ! मेरे गृह में दश पुत्र बड़े बुद्धिमान् और कल्याणमूर्त्ति हों जिससे मुझको फिर शोक कदाचित् न हो। तब ईश्वर ने कहा ऐसेही होगा। ऐसे कहकर जब शिवजी समुद्र के तरङ्गवत् अन्तर्द्धान हुये तब वे स्त्री पुरुष दोनों शिव के चरणों को ग्रहण करके प्रसन्न हुये और जैसे सदाशिव और भवानी की मूर्त्तिहै तैसेही प्रसन्न होकर वे अपने गृहमें आये। निदान ब्राह्मणी गर्भवती हुई और समय पाके उसके दश पुत्र हुये। जैसे द्वितीयाके

चन्द्रमा की शोभा होती है तैसेही उसकी शोभा हुई और षोड़शवर्ष के आकार की नाईं ब्राह्मणी का आकार रहा वृद्ध न हुई। वे बालक दशों संस्कारों को ले उपजे और जैसे वर्षाकाल की बदली थोड़ी भी शीघ्र बड़ी होजाती है तैसेही वे थोड़ेही काल में बड़े होगये। जब सात वर्षों के हुये तब वे सब वाणी के वेत्ता हुये और उनके माता और पिता दोनों शरीर त्यागके अपनी गति में प्राप्त हुये। वे दशो ब्राह्मण माता पिता से रहित हो गृहको त्यागके कैलास के शिखर पर जा चढ़े और परस्पर विचार करनेलगे कि, वह कौन ईश्वर है जो परमेश्वररूप है और वह कौन ईश्वरपद है जिस के पायेसे फिर दुःखी भी न हो और नाश भी न हो और सबका ईश्वर हो। तब एक भाई ने कहा कि, सबसे बड़ा ऐश्वर्य मण्डलेश्वर का है। क्योंकि सब पर उसकी आज्ञा चलती है। दूसरे भाई ने कहा कि, मण्डलेश्वर की विभूति भी कुछ नहीं क्योंकि; वह भी राजा के आधीन होता है; इससे राजा का पद बड़ा है। तीसरे ने कहा राजा की विभूति भी कुछ नहीं क्योंकि; राजा चक्रवर्त्ती के आधीन होता है। इसलिये चक्रवर्त्ती का पद बड़ा है चौथे ने कहा चक्रवर्त्ती भी कुछ नहीं क्योंकि, वह भी यम के आधीन होता है, इससे यम का पद बड़ा है। पांचवें ने कहा कि, इन्द्र के आगे यमकी विभूति कुछ नहीं इससे इन्द्रका पद बड़ा है। छठे ने कहा कि, इन्द्र की विभूति भी कुछ नहीं ब्रह्मा के एक मुहूर्त्त में इन्द्र नष्ट होजाता है। तब सब से बड़े भाई ने जो बड़ा बुद्धिमान् था गम्भीर वचन से कहा कि, जो कुछ विभूति है सो सब ब्रह्मा के कल्प में नष्ट होजाती है–इससे बड़ा ऐश्वर्य ब्रह्माजी का है उससे बड़ा और कोई नहीं। हे भगवन्! इस प्रकार जब बड़े भाई ने कहा तब सब ने कहा भली कही! भली कही! फिर सब ने बड़े भाई से कहा, हे तात! जो सबका दुःखनाशकर्त्ता और जगतपूज्य ब्राह्मपद है तो उसको हम कैसे प्राप्त हों? जिस उपाय से हम प्राप्त हों वह उपाय कहो। उसने कहा, हे भाइयो! और सब भावनाओं को त्याग करो और यह निश्चय करो कि, हम ब्रह्मा हैं और पद्मासन पर बैठे हैं। सब सृष्टि के कर्त्ता और सब की पालना और संहारकर्त्ता हमही हैं और जो कुछ जगत्जाल है उसका आश्रयभूत हम नहीं। सब सृष्टि हमारे अङ्ग में स्थित है जब हम ऐसा निश्चय और सजातिभावना धरकेबैठेंगे तब हमको ब्रह्मा का पद प्राप्त होगा। हे भगवन्! जब इस प्रकार बड़े भाई ने कहा तब छोटे भाइयों ने कहा, हे तात! तुमने यथार्थ कहा है जैसे तुमने कहा है तैसेही हम करते हैं। ऐसा कहकर सब ध्यान में स्थित हुये और जैसे कागज़ पर मूर्त्ति लिखी होती है तैसेही दशो ध्यान में स्थित हुये। मन में हरएक ने यही चिन्तवन किया कि, मैं ब्रह्मा हूं; कमल मेरा आसन है, मैं सृष्टिकर्त्ता और भोक्ता हूं और महेश्वर भी मैंही हूँ। साङ्गोपाङ्ग जगत् कर्म मैंनेही रचे हैं; सरस्वती और गायत्री सहित वेद मेरे

आगे आखड़े हैं और इस लोकपाल और सिद्धों के मण्डलों को पालनेवाला भी मैं ही हूँ । स्वर्ग, भूमि, पाताल, पहाड़, नदियां और समुद्र सब मैंनेही रचे हैं और महाबाहु वज्र के धारनेवाला और यज्ञों का भोक्ता इन्द्र मैंनेही रचा है । सूर्य मेरेही आज्ञा से तपता है और जगत् की मर्यादा के निमित्त सब लोकपाल मैंनेही रचे हैं जैसे गौको गोपाल पालता है तैसेही लोकपाल मेरी आज्ञा पाकर जीवों को पालते हैं और जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और मिटजाते हैं तैसेही जगत् मुझसे उपजा है और फिर मुझमेंही लीन होता है। क्षण, दिन, मास, वर्ष, युग आदिक काल मेरे ही रचेहुये हैं और मैंनेही सब काल के नाम रक्खे हैं। मैंही दिन को उत्पन्न करता हूं और रात्रि को लीन करलेता हूं; सदा आत्मपद में स्थित हूं और पूर्ण परमेश्वर मैंहीहूं । हे ब्रह्मा:जी ! इस प्रकार वे दशो भाई भावना धारण कर बैठरहे—मानो कागज़ पर मूर्त्ति लिख छोड़ी है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेऐंदवसमाधिवर्णनंनामद्विषष्टितमस्सर्गः॥ ६२॥

भानु बोले; हे भगवन्! इस प्रकार इन्द्रके दशो पुत्र पितामहकी भावना धारण करके बैठे और जैसे जेठ-आषाढ़ में कमल के पत्र सूखकर गिरपड़तेहैं तैसेही उनकी देह धूप और पवन से सूखकर गिरपड़ी । तब वनचर उनके शरीरों को आपस में खैंचकर भक्षण करगये । जैसे वानर फल पकड़ते हैं और विदारण करते हैं तैसेही इनके देह वे विदारने लगे तौ भी उनकी वृत्ति ध्यान से छूटके बाह्यदेहादिक अभ्यास में न आई ब्रह्माकी भावनामेंही लगीरही। इस प्रकार जब चारों युग का अन्त हुआ और तुम्हारे कल्प दिनका क्षय होनेलगा तब द्वादशसूर्य तपनेलगे; पुष्कल मेघ गरजके वर्षनेलगे; बड़ा भौचाल आया; वायु चलनेलगा; समुद्र उछलनेलगे; सब जलही जल होगया और सब भूत क्षय होगये । जब सबको संहार करके रात्रि को वे आत्मपद में स्थित हुये तब उनके शरीरभी नष्ट होगये और पुर्यष्टक आकाश में आकाशरूप होके ब्रह्मा के संकल्प को लेकर तीव्रभावना के वश से दशों सृष्टि सहित भिन्न२ अपनी २ सृष्टिके दश ब्रह्मा हुये। फिर जागकर देखते हैं कि, आकाश में फुरते हैं। हे भगवन्! उन दशों ब्राह्मणों के चित्त आकाशमेंही सब सृष्टि स्थित हैं। उन दश सृष्टियोंमें से एक सृष्टि का सूर्य मैं हूं। आकाश में मेरा मन्दिर है और क्षण, दिन, पक्ष, मास और युग मुझही से होते हैं—इस क्रिया में मुझको उन्होंने लगाया है। हे भगवन्! इस प्रकार मैंने आपसे दशों ब्रह्मा और उनकी दशों सृष्टि कहीं वे सृष्टि सब मनोमात्र हैं। अब जैसी आपकी इच्छा हो तैसी कीजिये। भिन्न२ जगत्जाल कल्पना जो इन्द्रजाल की नाईं विस्तृत हुई हैं वे चित्त के भ्रम से भासती हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजगद्रचनानिर्वाणवर्णनन्नामत्रिषष्टितमस्सर्गः॥६३॥

इतना कहकर ब्रह्मा बोले; हे ब्राह्मण ! ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! इस प्रकार ब्रह्मा के सूर्य ब्रह्मासे कहकर जब तूष्णी हुये तब उसके वचनों को बिचारकर मैंने कहा; हे भानु ! तुमने सृष्टि दश कहीं अब मैं क्या रचूं ? यह तो दश सृष्टि हुई हैं और दशही ब्रह्मा हैं अब मेरे रचनेसे क्या सिद्ध होगा ? हे मुनीश्वर ! जब इस प्रकार मैंने कहा तब सूर्य विचारकर बोले; हे प्रभो ! आप तो निरिच्छित हैं, आपको सृष्टि रचने में कुछ इच्छा नहीं सृष्टिका रचना आपको विनोदमात्र है किसी कामना के निमित्त नहीं रचते। आप निष्कामरूप हैं। जैसे जल में सूर्यका प्रतिबिम्ब होता है और जल विना प्रतिबिम्ब की कल्पना नहीं होती तैसेही संवेदन करके आपसे सृष्टि की रचना होती है। अज्ञानी को आप सृष्टिकर्त्ता भासते हैं पर आप तो सदा ज्योंके त्यों निष्क्रियरूप हैं। हे भगवन् ! आपको शरीर आदिक की प्राप्ति और त्याग में कुछ द्वेष नहीं और उत्पत्ति और संहार की आपको कल्पना नहीं-लीलामात्र आपसे सृष्टि होती है। जैसे सूर्य से दिन होता है और सूर्य के अस्त होनेसे दिन लय होजाताहै पर सूर्य असंसक्त-रूप हैं तैसेही आपमें संवेदन के फुरनेसे सृष्टि होती है और संवेदन के अस्फुर हुये सृष्टिका लय होता है पर आप सदा आसक्त हैं। जगत् की रचना आपका नित्यकर्म है और उस कर्म के त्याग कियेसे आपको कुछ अपूर्व वस्तु भी नहीं प्राप्त होती इससे जो कुछ आपका नित्यकर्म है उसे कीजिये। हे जगत्पति ! जैसे निष्कलङ्क दर्पण प्रति-विम्ब अङ्गीकार करता है तैसेही महापुरुष यथाप्राप्तकर्म को असंसक्त होकर अङ्गीकार करते हैं। जैसे ज्ञानवान् को कर्म करने में कुछ प्रयोजन नहीं तैसेही उसको करने में और न करने में कुछ प्रयोजन नहीं; करना न करना दोनों उसको सम हैं। इस कारण दोनों में आप सुषुप्तिरूप हैं। हे भगवन् ! आप तो सदा सुषुप्तिरूप हैं और उत्थान किसी प्रकार नहीं। इससे आप सुषुप्तिप्रबोध होकर अपने प्रकृत आचार कीजिये। जो इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों की सृष्टि देखो तब भी विरुद्ध कुछ नहीं। जो ज्ञानदृष्टि से देखो तो एकही अद्वैत ब्रह्म है और कुछ नहीं बना और जो चित्तदृष्टि से देखो तो सं-कल्परूप अनेक सृष्टि फुरती हैं। उनमें आस्था करनी क्या है ?। जो चर्मदृष्टि से देखो तो आपको सृष्टि भासतीही नहीं। उनके साथ आपको क्या है; उनकी सृष्टि उनहीं के चित्तमें स्थित है और उनकी सृष्टि आप नाश भी न करसकोगे क्योंकि जो इन्द्रियों मे कर्म होताहै वह नाश होसक्ता है परन्तु मनके निश्चय को कोई नाश नहीं करसक्ता। हे भगवन् ! जो निश्चय जिसके चित्त में दृढ़ होगया है उसको वही निवृत्त करे तो निवृत्त होता है और कोई निवृत्त नहीं करसक्ता। देह नष्ट हो परन्तु निश्चय नहीं नष्ट होता। जो चिरकाल का निश्चय दृढ़ होरहा है उसका स्वरूपसे नाश नहीं होता। हे भगवन् ! जो मनमें दृढ़ निश्चय होरहाहै वही पुरुष का रूप है; उसका निश्चय और

किसीसे नहीं होता । जैसे जल सींचने से पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही चित्त का निश्चय और से चलायमान नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेऐंद्रवनिश्चयकथनन्नामचतुःषष्टितमस्सर्गः ॥६४॥

भानु बोले, हे देवेश ! इसपर एक पूर्व इतिहास है वह आप सुनिये। इन्द्रद्रुम नाम एक राजा था और उसकी कमलनयनी अहल्या रानी थी। उसके नगर में इन्द्रनामक एक ब्राह्मण का पुत्र बहुत सुन्दर और बलवान् रहता था। एक समय उस रानीने पूर्व की अहल्या गौतम की स्त्री और इन्द्र की कथा सुनी तब एक सहेलीने कहा; हे रानी ! जैसे पूर्व अहल्याथी तैसेही तुमभी हो और जैसा वह इन्द्र सुन्दर था तैसेही तुम्हारे नगरमें भी एक इन्द्र ब्राह्मणहै । हे भगवन् ! जब इस प्रकार रानीने सुना तब उस इन्द्र में रानी का अनुराग हुआ परन्तु वह रानी को न मिले और रानी का शरीर इसी कारण दिन पर दिन सूखताजावे। निदान राजा ने सुना कि, इसको गरमी का कुछ रोग है इस कारण उसकी निवृत्तिके लिये केलेके पत्र और शीतल औषध उस को दिलवाये परन्तु उसको वाञ्छित पदार्थ कोई दृष्टि न आये और खाना, पीना, शय्यादिक जो कुछ इन्द्रियों के वाञ्छित पदार्थ हैं वह उसको कोई सुखरूप न भासे। वह दिन दिन पीतवर्ण होती जावे और इन्द्र के वियोगसे जैसे जल विना मछली मरु-स्थल में तड़फे तैसे वह तड़फतीरहे और कहे हा इन्द्र ! हा इन्द्र ! निदान जब उसने लोकलाज त्यागदी और इन्द्र में उसका बहुत स्नेह बढ़गया तब विचारकर एक सखी ने कहा, हे रानी ! मैं इन्द्रब्राह्मण को ले आतीहूं यह सुन रानी सावधान हुई और जैसे चन्द्रमा को देखके कमलिनी खिलआती है तैसे वह खिलआई। वह सखी रानी से कहके ब्राह्मण के घर गई और उस इन्द्र को प्रबोध करके रात्रिके समय अहल्या के पास लेआई। जब वह गोप्यस्थान में इकट्ठे हुये तो परस्पर लीला करनेलगे और दोनों का चित्त परस्पर स्नेहसे बँधगया और बहुत प्रसन्न हुये। जैसे चकवी-चकवे और रति और कामदेव का स्नेह होताहै तैसेही उनका स्नेह हुआ और एक दूसरे विना एक क्षण भी रह न सकें। निदान सब क्रिया उनकी निवृत्त होगई और लज्जा भी दूर होगई। जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमुखी कमल प्रसन्न हों तैसेही एक दूसरे को देखके वे प्रसन्न होवें। हे भगवन् ! उस रानी का भर्त्ताभी बड़ा गुणवान् था परन्तु रानी ने भर्त्ता का त्याग किया और इन्द्र से उसका स्नेह किया। जब राजा ने उनका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना तो उनको दण्ड देनेलगा परन्तु उनको कुछ खेद न हो और जब कीचड़ में डालें तब कमल की नाईं ऊपरही रहें कुछ कष्ट न हो। फिर जब बरफ में उनको डाला तौभी खेदवान् न हुये। तब राजाने कहा, हे दुर्मतियो ! तुमको दुःख क्यों नहीं होता ? उन्होंने कहा हमको दुःख कैसे हो; हम तो अपने आपको भी नहीं

जानते ? तब अहल्या ने कहा मुझको सब इन्द्रही भासता है; भिन्न दुःख क्या हो ! इन्द्र ने कहा मुझको सब अहल्याही भासती है भिन्न दुःख कहां हो ? तेरे दण्ड देने से हमको कुछ दुःख नहीं होता हम परस्पर हर्षवान् हैं। तब राजा ने उनको बांधकर अग्नि में डालदिया तौभी वह न जले और फिर हाथी के चरणों तले डलवादियेगये तौभी उनको कुछ कष्ट न हुआ। तब राजा ने कहा, रे पापियो ! तुमको अग्नि आदिकमें दुःख क्यों नहीं होता ? तब इन्द्र ने कहा; हे राजन् ! जो कुछ जगत्जालहै वह मन में स्थित है। जैसा मन है तैसा पुरुषरूप है। जैसा निश्चय मनमें दृढ़ होता है उसको कोई दूर नहीं करसक्ता। चाहे कोई हमको दण्ड दे परन्तु हमको कुछ दुःख न होगा क्योंकि, हमारे हृदय में परस्पर प्रतिभा होरही है। जो कोई अनिष्ट हमको हो तो दुःख भी हो; हमको अनिष्ट तो कोई नहीं तब दुःख कैसे हो ? हे राजन् ! जो कुछ मन में दृढ़ीभूत होता है वही भासताहै उसका निश्चय कोई दूर नहीं करसक्ता। शरीर नष्ट होजाताहै परन्तु मनका निश्चय नाश नहीं होता हे राजन् ! जो मनमें तीव्रसंवेग होता है सो वर और शापसे भी दूर नहीं होता। जैसे सुमेरु पर्वत को मन्द मन्द वायु नहीं चलासक्ता तैसेही मन के निश्चयको कोई नहीं चलासक्ता। मेरे हृदय में इसकी मूर्त्ति स्थिरीभूतहै और इसके हृदयमें मेरी मूर्त्ति स्थिरीभूत है। इसको सब जगत् मैं हीं भासताहूं और मुझको सब जगत् यही भासती है। जो कुछ दूसरा भासे तो दुःख भी हो। जैसे लोहेके कोटमें कोई दुःख नहीं देसक्ता तैसेही मुझको कोई दुःख नहीं मैं जहां जाता हूं वहां सब ओर से अहल्याही भासती है। जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ की वर्षा में पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही हमको दुःख नहीं होता। हे राजन् ! मन काही नाम अहल्या और इन्द्र है और मनही ने सब जगत् रचा है। जैसा २ मन में दृढ़ निश्चय होताहै तैसाही भासताहै और सुमेरुकी नाईं स्थिर होजाताहै कदापि नष्ट नहीं होता। जैसे पत्र, फल, फूल और टहनीके काटे से वृक्ष नहीं नष्ट होता; जब बीजही नष्ट हो तब वृक्ष नष्ट होता है तैसेही शरीर के नष्ट हुये से मन का निश्चय नहीं नष्ट होता। जब मन का निश्चयही उलटपड़े तब हीं दूर होता है। एक शरीर जब नष्ट होता है तब जीव और शरीर धरलेताहै। जैसे स्वप्न में यह शरीर रहताहै और २ शरीर धरके चेष्टा करता है तो शरीर के ही आधीन हुआ; तैसेही शरीर के नष्ट हुये मन का निश्चय दूर नहीं होता। जब मन नष्ट होताहै तब शरीरके होते भी कुछ क्रिया सिद्ध नहीं होती। इससे सबका बीज मनही है। जैसे पत्र, टहनी, फल और फूलका कारण जल है; तैसेही सब पदार्थों का कारण मन है। जैसा चित्त है तैसा रूप पुरुषका है। इससे जहां मेरा चित्त जाता है वहां सब ओरसे रानीही भासतीहै। मुझको दुःख कैसे हो ?

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेकृत्रिमइन्द्रवाक्यंनामपञ्चषष्टितमस्सर्गः॥ ६५ ॥

भानु बोले; हे भगवन् ! इसप्रकार जब इन्द्र ब्राह्मण ने कहा तब कमलनयन राजा ने भरत नाम ऋषीश्वर से जो समीप बैठेथे कहा, हे सर्वधर्मोंके वेत्ता भरत मुनीश्वर ! तुम देखो कि यह कैसा ढीठ पापात्मा है। जैसा इनका पाप है उसके अनुसार इनको शाप दो कि, यह मरजावें । जो मारने योग्य न हो और उसको राजा मारे तो उसको पाप होता है; तैसेही पापीके न मारनेसे भी पाप होता है । इससे इन पापियों को शापदो कि यह नष्ट होजावें। भरत मुनि ने उनका पाप विचार के कहा, अरे पापियो! तुम मरजावो तब उस इन्द्र ब्राह्मणने कहा, रे दुष्टो ! तुमने जो शाप दिया उससे हमारा क्या होगा ? केवल हमारा शरीर नष्ट होगा मन तो नष्ट होनेका नहीं । तुम चाहे लाख यत्नकरो उस मनसे हम और शरीर धारण करेंगे–हमारे मन के नष्ट हुये विना विपर्यय दशा न होगी । ऐसा कहकर दोनों पृथ्वी पर इसभांति गिरपड़े जैसे मूल के काटेसे वृक्ष गिर पड़ता है और वासना संयोगसे दोनों मृग हुये वहां भी परस्पर स्नेह में रहे और फिर उस जन्म को भी त्यागकर पक्षी हुये । कुछ दिन के पश्चात् उन्होंने उस देह को भी त्यागकिया और अब हमारीसृष्टि में तपकर्त्ता पुण्यवान् ब्राह्मण और ब्राह्मणी हुये हैं । इससे तुम देखो कि, भरतमुनि ने शापदिया तो उनके शरीर नष्टहुये परन्तु मनका जो कुछ निश्चय था सो नष्ट न हुआ। वे जहां शरीर पावें वहां दोनों इकट्ठेही अकृत्रिम प्रेमवान् रहें और किसीसे आनन्दमान न हों॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेअहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनन्नामषट्षष्टितमस्सर्गः ॥ ६६ ॥

भानु बोले; हे नाथ ! आप देखें कि, जैसा मन का निश्चय होता है उसके अनुसार आगे भासता है । इन्द्र के पुत्र की सृष्टिवत् मनके निश्चय को कोई दूर नहीं करसक्ता। हे जगत् के पति ! मनही जगत् का कर्त्ता और मनही पुरुष है । मन का किया सब कुछ होता है और शरीर का किया कोई कार्य नहीं होता । जो मन में दृढ़ निश्चय होता है वह किसी औषध से दूर नहीं होता। जैसे मणि में प्रतिबिम्ब मणि के उठाये विना नहीं दूर होता तैसेही मन का निश्चय भी किसी और से दूर नहीं होता जब मनही उलटे तबहीं दूर हो। इसीसे कहा है कि, अनेकसृष्टि के भ्रम चित्त में स्थित हैं। इससे, हे ब्रह्माजी ! आप भी चिदाकाशमें सृष्टि रचो। हे नाथ ! तीन आकाश हैं– एक भूताकाश; दूसरा चित्ताकाश और तीसरा चिदाकाश । ये तीनों अनन्त हैं; इन का अन्त कहीं नहीं । भूताकाश चित्ताकाश के आश्रय स्थित है और चित्ताकाश चिदाकाश के आश्रय है। भूताकाश और चित्ताकाश ये दोनों चिदाकाश के आश्रय प्रकाशित हैं। इससे चिदाकाश के आश्रय जितनी आपकी इच्छा हो उतनी सृष्टि आपभी रचिये। चिदाकाश अनन्त रूप है। इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों ने आपका क्या लिया

है? अपना नित्य कर्म आपभी कीजिये! ब्रह्मा बोले; हे वशिष्ठजी! इस प्रकार जब सूर्य ने मुझसे कहा तो मैंने विचार करके कहा; हे भानु! तुमने युक्त वचन कहे हैं कि; एक भूताकाश है; दूसरा चित्ताकाश है और तीसरा चिदाकाश है, वे तीनों अनन्त हैं परन्तु भूताकाश और चित्ताकाश दोनों चिदाकाश के आश्रय फुरते हैं। इससे हमभी अपने नित्यकर्म करते हैं और जो कुछ मैं तुमको कहताहूं वह तुम भी मानो। मेरी सृष्टि के तुम मनु प्रजापति हो और जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसे रचो। सूर्य ने मेरी आज्ञा मानके अपने दो शरीर किये–एक तो पूर्व के सूर्य से उस सृष्टि का सूर्य हुआ और दूसरा शरीर स्वायम्भुवमनु का किया। और मेरी आज्ञा के अनुसार उसने सृष्टि रची। इससे मैंने तुमसे कहा है कि, यह जगत् सब मनका रचाहुआ है। जो मनमें दृढ़ निश्चय होताहै वही सफल होता है। जैसे इन्द्र ब्राह्मण की सृष्टि हुई। हे मुनीश्वर! देह के नष्ट हुये भी मनका निश्चय दूर नहीं होता; चित्तमें फिरभी वही भास आता है। वह चित्त आत्मा का किञ्चनरूप है। जैसे उसमें स्फूर्त्ति होती है तैसेही होकर भासताहै। प्रथम जो शुद्ध संवित्रूप में उत्थान हुआ है वह अन्तवाहक शरीर है और फिर जो उसमें दृढ़अभ्यास और स्वरूप का प्रमाद हुआ तो आधिभौतिक शरीर हुये और जब आधिभौतिक का अभिमानी हुआ तब उसका नामी जीव हुआ। देहाभिमान से नाना प्रकार की वासना होती है और उनके अनुसार घटी यन्त्रकी नाईं भटकता है। जब फिर आत्मा का बोध होता है तब देह से आदि लेकर दृश्य शान्त होजाता है। हे मुनीश्वर! यह सब दृश्यभ्रम से भासता है; वास्तव में न कोई उपजा है और न कोई जगत् है। यह सब भ्रम चित्तने रचा है उसके अनुसार घटीयन्त्र की नाईं भटकता है। जब फिर आत्मा का बोध होता है तब देह से आदि ले सब प्रपञ्च शान्त होजाते हैं। हे मुनीश्वर! जो कुछ दृश्य भासता है वह मनसे भासता है। वास्तव में न कोई माया है और न कोई जगत् है–यह सब भ्रम भासता है। हे वशिष्ठजी! और द्वैत कुछ नहीं; चित्तके फुरनेसेही अहं त्वं आदिक भ्रम भासते हैं। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र मन के निश्चय से ब्रह्मारूप होगये तैसेही मैं ब्रह्मा हूं। शुद्ध आत्मा में जो चैत्यता होती है वही ब्रह्मारूप होकर स्थित है और शुद्ध आत्मा में जो चैत्यता होती है वही मनरूप है। उस मनके संयोग से चेतन को जीव कहते हैं। जब इसमें जीवत्व होता है तब अपनी देह देखता है और फिर नाना प्रकार के जगत्भ्रम देखता है। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों को सृष्टि भासी और जैसे भ्रम से आकाश में दूसरा चन्द्रमा और रस्सी में सर्प भासताहै तैसेही जगत् सत्यभी नहीं और असत्यभी नहीं। प्रत्यक्ष देखनेसे सत्य भासता है और नाशभावसे असत्य है और यह सब मनमें फुरता है। मन के दो रूप हैं–एक जड़ और दूसरा चेतन।

जड़रूप मन का दृश्यरूप है और चेतनरूप ब्रह्म है। जब दृश्य की ओर फुरता है तब दृश्यरूप होता है और जब चेतनभाव की ओर स्थितहोता है तब जैसे सुवर्ण के जाने से भूषणभाव नष्ट होजाता है तैसेही दृश्यरूप जड़भाव नष्ट होजाता है। जब जड़भाव में फुरता है तब नाना प्रकार के जगत् देखता है। वास्तव में ब्रह्मादि तृणपर्यन्त सब ही चेतनरूप हैं। जड़ उसको कहना चाहिये जिसमें चित्त का अभाव हो। जैसे लकड़ी में चित्त नहीं भासता और प्राणधारियों में चित्त भासता है परन्तु स्वरूप में दोनों तुल्य हैं क्योंकि; सर्व परमात्माद्वारा प्रकाशते हैं। हे वशिष्ठजी! सब चेतनस्वरूप हैं, जो चेतनस्वरूप न हों तो क्यों भासें। चेतनतासे उपलब्धरूप होते हैं। जड़ और चेतन का विभाग अवाच्य ब्रह्म में नहीं पायाजाता; प्रमाद दोष से है वास्तव में नहीं। जैसे स्वप्ने में जो दो प्रकार के जड़ और चेतन भूत भासते हैं उन का प्रमाद होता है तब उस चेतन भूत प्राणी को जड़ चेतन विभाग भासता है और स्वरूपदर्शी को सब एकस्वरूप है। हे मुनीश्वर! ब्रह्मा में जो चैत्यता हुई वही मनहुआ उस मन में जो चेतनभाग है वही ब्रह्मा है और जड़भाग अबोध है। जब अबोधभाव होता है तब दृश्यभ्रम देखता है और जब चेतनभाव में स्थित होजाता है तब शुद्ध रूप होता है। हे मुनीश्वर! चेतनमात्र में अहंकार का उत्थान दृश्य है और परमार्थ में कुछ भेद नहीं। जैसे तरङ्ग जल से भिन्न नहीं तैसेही अहं चेतनमात्र से भिन्न नहीं होता। सबकी प्रतीत ब्रह्मही में होती है वह परमपद है और सब दुःखों से रहित है वही शुद्धचित्त जीव जब चैत्यभावको चेतता है तब जड़भावको देखताहै जैसे स्वप्नेमें कोई अपना मरना देखता है तैसेही वह चित्त जड़भावको देखताहै। आत्मा सर्वशक्तिमान् है; कर्त्ता है तौ भी कुछ नहीं कर्त्ता और उसके समान और कोई नहीं। हे मुनीश्वर! यह जगत् कुछ वास्तव में उपजा नहीं चित्तके फुरनेसे भासता है। जब चित्तकी स्फूर्त्ति होती है तब जगत्जाल भासता है और जब चैतन आत्मा में स्थित होता है तब मन का जड़भाव नहीं रहता। जैसे पारसमणि के मिलाप से तांबा सुवर्ण होजाता है और फिर उसका तांबा भाव नहीं रहता तैसेही जब मन आत्मा में स्थित होता है तब उसकी जड़ता दृश्यभाव नहीं रहती। जैसे सुवर्ण को शोधन किये से उसका मैल जलजाता है और शुद्धही शेष रहताहै तैसेही चित्त जब आत्मा में स्थित होता है तब उसका जड़भाव जलजाता है और शुद्ध चैतनमात्र शेष रहता है। वास्तव में पूछो तो शुद्ध भी द्वैत में होता है; आत्मा में द्वैत नहीं इससे शुद्ध कैसेहो? जैसे आकाश के फूल और वृक्ष वास्तवमें कुछ नहीं होते तैसेही शोधनभी वास्तव में कुछ नहीं। हे मुनीश्वर! जबतक आत्मा का अज्ञान है तबतक नाना प्रकार का जगत् भासता है और जब आत्मा का बोध होता है तब जगत् भ्रम नष्ट होजाता है। यह जगत्भ्रम चित्त में है;

जैसा निश्चय चित्त में होताहै तैसाही हो भासता है। इसीपर अहल्या और इन्द्र का दृष्टान्त कहा है। इससे जैसी भावना दृढ़होती है तैसा हो भासता है। हे वशिष्ठजी! जिसको यही भावना दृढ़ है कि, मैं देह हूं वह पुरुष देह के निमित्त सब चेष्टा करता है और इसी कारण बहुत काल पर्यन्त कष्ट पाता है। जैसे बालक वैतालकी कल्पना से भय पाता है तैसेही देहमें अभिमान से जीव कष्ट पाताहै। जिसकी भावना देहसे निवृत्त होकर शुद्ध चैतनभाव में प्राप्त होती है उसको देहादिक जगत्भ्रम शान्त होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजीवक्रमोपदेशोनामसप्तषष्टितमस्सर्गः॥ ६७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इसप्रकार ब्रह्माजी ने मुझसे कहा तब मैंने फिर प्रश्न किया कि, हे भगवन्! आपने कहा है कि; शाप में मन्त्रादिकों का बल होताहै। वह शापभी अचलरूप है मिटता नहीं। मैंने ऐसे भी देखा है कि; शाप से मन, बुद्धि और इन्द्रियां भी जड़ीभूत होजाती हैं पर ऐसी तो नहीं है कि, देहको शाप हो और मनको न हो। हे भगवन्! मन और देह तो अनन्यरूपहैं। जैसे वायु और स्पन्दमें और घृत और चिकनाई में भेद नहीं होता तैसेही मन और जगत् में भेद नहीं। यदि कहिये कि, देह कुछ वस्तु नहीं चैतन्यही चित्त है और देह भी चित्त में कल्पित है—जैसे स्वप्न देह; मृगतृष्णा का जल और दूसरा चन्द्रमा भासता है सो एक के नष्ट हुये दोनों क्यों नहीं नष्ट होते तैसे देह के शापसे चाहिये कि, मनको भी शाप लग-जावे तो मैंने देखा है कि, शापसेभी जड़ीभूत होगये हैं और आप कहते हैं कि; देह का कर्म मनको नहीं लगता। यह कैसे जानिये? ब्रह्मा बोले; हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ जगत् में कोई नहीं जो सब कर्मोंको त्यागकर पुण्यरूप पुरुषार्थ कियेसे सिद्ध न हो। पुरुषार्थ कियेसे सब कुछ होता है। ब्रह्मासे चींटी पर्यन्त जिस जिसकी भावना होती है तैसाही रूप हो भासता है। सब जगत् के दो शरीर हैं—एक मनरूपी जो चञ्चल-रूप है और दूसरा आधिभौतिक मांसमय शरीर है। उसका किया कार्य निष्फल होता है और मनसे जो चेष्टा होती है वह सुफल होती है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष को मांसमय शरीर में अहंभाव है उसको आधिव्याधि और शापभी अवश्य लगता है और मांसमय शरीर जो गूंगे; दीन और क्षणनाशी हैं उनके साथ जिसका संयोग है वह दीन रहता है। चित्तरूपी शरीर चञ्चल है वह किसीके वश नहीं होता अर्थात् उसका वश करना महा कठिन है। जब दृढ़ वैराग्य और अभ्यास हो तब वह वश हो—अन्यथा नहीं होता। मन महा चञ्चल है और यह जगत् मन में है। जैसा २ मन में निश्चय है सो दूर नहीं होता। मांसमय शरीर का किया कुछ सुफल नहीं होता और जो मन का निश्चय है सो दूर नहीं होता। हे मुनीश्वर! जिन पुरुषों ने

चित्त को आत्मपद में स्थित किया है उनको अग्नि में भी डालिये तौभी दुःख कुछ नहीं होता और जल में भी उनको दुःख नहीं होता क्योंकि; उनका चित्त शरीरादिकभाव ग्रहण नहीं करता केवल आत्मा में स्थित होता है । हे मुनीश्वर ! सब भावों को त्यागकर मनका निश्चय जिसमें दृढ़ होता है वही भासता है । जहां मन दृढ़ीभूत होकर चलता है उसको वही भासता है और किसी संसार के कष्ट और शापसे चलायमान नहीं होता । जो किसी दुःख शापसे मन विपर्ययभाव में प्राप्त होजावे तो जानिये कि, यह दृढ़ लगा न था—अभ्यास की शिथिलता थी । हे मुनीश्वर ! मन की तीव्रता के हिलाने में किसी पदार्थ की शक्ति नहीं क्योंकि; सृष्टि मानसी है । इससे मन में मन को समाय चित्त को परमपद में लगावो । जब चित्त आत्मा में दृढ़ होता है तब जगत् के पदार्थों से चलायमान नहीं होता । माण्डव्य ऋषीश्वर को जिनका चित्त आत्मा में लगाहुआ था शूलीपर भी खेद न हुआ । हे मुनीश्वर ! जिसमें मन दृढ़ होकर लगता है उसको कोई चला नहीं सक्ता । जैसे इन्द्र ब्राह्मण चलायमान न हुआ तैसेही आत्मा में स्थिरहुआ मन चलायमान नहीं होता । हे मुनीश्वर ! जैसा २ मन में तीव्रभाव होता है उसीकी सिद्धता होती है । दीर्घतपा एक ऋषि था वह किसीप्रकार अन्धेकूप में गिर पड़ा और उस कूप में मनको दृढ़कर यज्ञ करनेलगा । उस यज्ञ से मन में देवता होकर इन्द्रपुरी में फल भोगने लगा और जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र मनुष्यों के समान थे और उनके मन में जो ब्रह्मा की भावना थी उससे वे दशों ब्रह्मा हुये और दशों ने अपनी २ सृष्टि रची और वह सृष्टि मुझसेभी नहीं खण्डित होती । इससे जो कुछ दृढ़ अभ्यास होता है वह नष्ट नहीं होता । देवता और महाऋषि आदि जो धैर्यवान् हुये हैं और जिनकी एक क्षणमात्र भी वृत्ति चलायमान नहीं होती थी उनको संसार का आधि—व्याधि ताप, शाप, मन्त्र और पाप कर्म से लेकर संसार के जो क्षोभ और दुःख हैं नहीं स्पर्श करतेथे । जैसे कमल फूल का प्रहार शिला नहीं फोड़ सक्ता तैसेही धैर्यवान्को संसारका ताप नहीं खण्डन करसक्ता । जिसको आधि व्याधि दुःख देते हैं उसे जानिये कि, वह परमार्थ दर्शनसे शून्य है । हे मुनीश्वर ! जो पुरुष स्वरूप में सावधान हुये हैं उनको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता और स्वप्नेमें भी उनको दुःख का अनुभव नहीं होता क्योंकि; उनका चित्त सावधान है । इससे तुमभी दृढ़ पुरुषार्थ करके मनसे मनको मारो तो जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा । हे मुनीश्वर ! जिसको स्वरूप का प्रमाद होता है उसको क्षण में जगत् भ्रम दृढ़ होजाता है । जैसे बालक को क्षणमें वैताल भासि आता है तैसेही प्रमाद से जगत् भासता है । हे मुनीश्वर ! मनरूपी कुलाल है और वृत्तिरूपी मृत्तिका है; उस मनसे वृत्तिक्षण में अनेक आकार धरती है । जैसे मृत्तिका कुलाल द्वारा घटादिक

अनेक आकार को धरतीहै तैसेही निश्चयके अनुसार वृत्ति अनेक आकारों को पाती है। जैसे सूर्य में उलूकादिक अपनी भावना से अन्धकार देखते हैं; कितनों को चन्द्रमा की किरणें भी भावना से अग्निरूप भासती हैं और कितनों को विष में अमृत की भावना होती है तो उनको विषभी अमृतरूप होभासता है। इसी प्रकार कटुक आमल और लवण भी भावना के अनुसार भासते हैं। जैसा मन में निश्चय होताहै तैसेही भासता है। मनरूपी बाजीगर जैसी रचना चाहता है तैसीही रचलेता है और मनका रचा जगत् सत्य नहीं और असत्यभी नहीं। प्रत्यक्ष सुनेसे सत्य है असत्य नहीं और नष्टभाव से असत्य है सत्य नहीं और सत्य असत्य भी मनसे भासता है वास्तव में कुछ नहीं॥

इति श्री योगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोमाहात्म्यवर्णनन्नामाष्टषष्टितमस्सर्गः॥ ६८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार प्रथम ब्रह्माजी ने जो मुझसे कहाथा वह मैंने अब तुमसे कहा है। प्रथम ब्रह्म जो अहंशब्द पद में स्थित था उसमें चित्तहुआ अर्थात् अहंअस्मि चेतनता का लक्षण हुआ और उसकी जब दृढ़ताहुई तब मन हुआ; उस मनने पञ्चतन्मात्रा की कल्पना की वह तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाता है। हे रामजी! वह ब्रह्माजी मनरूप हैं और मनही ब्रह्मारूप है। उसका रूप संकल्प है जैसा संकल्प करता है तैसाही होताहै। उस ब्रह्माने एक अविद्याशक्ति कल्पी है। अनात्मा में आत्माभिमान करनेका नाम अविद्या है। फिर अविद्या की निवृत्ति विद्या कल्पी। इसी प्रकार पहाड़, तृण, जल, समुद्र, स्थावर–जङ्गम सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न किया। इस प्रकार ब्रह्मा हुआ और इस प्रकार जगत् हुआ। तुमने जो कहा कि, जगत् कैसे उपजता है और कैसे मिटता है सो सुनो। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और समुद्रही में लीन होते हैं तैसेही सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म में उपजता है और ब्रह्मही में लीन होताहै। हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ता में जो अहं का उल्लेख हुआ है सो मन है और वही ब्रह्मा है; उसीने नाना प्रकार का जो जगत् रचा है वही सर्वचित्त शक्ति फैली है और चित्तके फुरनेहीसे नानात्व भासता है। हे रामजी! जो कुछ जीव हैं उन सबमें आत्मसत्ता स्थित है परन्तु अपने स्वरूप के प्रमाद से भटकते हैं। जैसे वायु से वनके कुञ्जोंमें सूखे पात भटकते हैं तैसेही कर्मरूपी वायु से जीव भटकते हैं और अधः और ऊर्ध्व में घटी यन्त्रकी नाईं अनेक जन्म धरते हैं। जब काकतालीवत् सत्सङ्ग की प्राप्ति हो और अपना पुरुषार्थ करे तब मुक्त हो। इसकी जबतक प्राप्ति नहीं होती तबतक कर्मरूपी रस्सी से बांधे हुये अनेक जन्म भटकते हैं और जब ज्ञान की प्राप्ति होगी तभी दृश्यभ्रम से छूटेंगे अन्यथा न छूटेंगे। हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्मासे जीव उपजते और मिटते हैं। अनन्त सङ्कटों की कारण वासनाही है जो

नाना प्रकारके भ्रम दिखाती है और जगत्‌रूपी मनकी जन्मरूपी बैताल बल वासना जलसे बढ़ती है। जब सम्यक् ज्ञान प्राप्तहो तब उसी कुठारसे काटो जब मनमें वासना का क्षोभ मिटे तब शरीररूपी अंकुर मनरूपी बीजसे न उपजे जैसे भुने बीजमें अंकुर नहीं उपजता तैसेही वासना से रहित मन शरीर को नहीं धारण करता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणेवासनात्यागवर्णनंनामैकोनसप्ततितमस्सर्गः ॥६९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जितनी भूतजाति हैं वह ब्रह्मसे उपजी हैं । जैसे समुद्र में जो तरङ्ग और बुद्‌बुदे कोई बड़े, कोई छोटे और कोई मध्यभाव के होते हैं वे सब जल हैं तैसेही यह जीव ब्रह्मसे उपजे हैं और ब्रह्मरूप हैं। जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासता है अग्निसे चिनगारे उपजत हैं तैसेही ब्रह्मसे जीव उपजते हैं। जैसे कल्पवृक्ष की मञ्जरी नानारूप धरती है तैसेही ब्रह्म से जीवहुये हैं। जैसे चन्द्रमा से किरणों का विस्तार होता है और वृक्षसे पत्र, फल और फूलआदिक होते हैं तैसेही ब्रह्मसे जीव होते हैं । जैसे सुवर्ण से अनेक भूषण होते हैं तैसेही ब्रह्मसे जगत्‌होते हैं। जैसे झरनोंसे जल के कण उपजते हैं तैसेही परमात्मा से भूत उपजते हैं। जैसे आकाश एकही है पर उससे घट मठ की उपाधि से घटाकाश और मठाकाश कहाता है तैसेही संवेदन के फुरने से जीव कल्पना होती है जैसे जलही द्रवतासे तरङ्ग और आवृतरूप हो भासता है तैसेही ब्रह्मही संवेदन से जगत्‌रूप हो भासता है। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य सब ब्रह्मसेही उपजे हैं। जैसे सूर्यके तेजसे मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसे संवेदन से ब्रह्म में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य त्रिपुटी भासती है पर वास्तव में द्रष्टा, दर्शन और दृश्य कोई कल्पना नहीं जैसे चन्द्रमा और शीतलता में और सूर्य और प्रकाश में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और समुद्रमें ही लीन होते हैं तैसेही जीव ब्रह्महीसे उपजते हैं और ब्रह्मही में लीनहोते हैं। कोई सहस्र जन्मोंके अनन्तर प्राप्तहोते और कोई थोड़े ही जन्मों में प्राप्त होते हैं। हे रामजी ! इस प्रकार जगत् परमात्मा से हुआ है और उसहीकी इच्छाअनुसार सब व्यवहार करते हैं। वही व्यवहार की नाईं हो भासते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनामसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! कर्ता और कर्म अभिन्नरूप हैं और इकट्ठे ही ब्रह्म से उत्पन्नहुये हैं। जैसे फूल और सुगन्ध वृक्षसे इकट्ठेही उत्पन्न होते हैं तैसेही कर्त्ता और कर्म इकट्ठे उत्पन्न हुये हैं । जब जीव सब सङ्कल्प कलना को त्यागता है तब निर्मल ब्रह्म होता है । जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् कल्पना फुरती है पर आत्मा अद्वैत सदा अपने आप में स्थित है। यह भी अज्ञानी के बोधके लिये कहता हूं कि, जीव ब्रह्म से उपजे हैं । इस प्रकार सात्त्विक, राजस

और तामस गुणों के भेद स्थित हैं। जो ज्ञानवान् हैं उनके प्रति यह कहना भी नहीं बनता कि, ब्रह्मसे सब उपजे हैं; तौभी दूसरा कुछ नहीं पर दूसरेको अङ्गीकार करके उपदेश करताहूं वास्तव में ब्रह्मसत्ता में कोई कल्पना नहीं; वह तो सदा अपने स्वभाव में स्थित है। जो ज्ञानवान् हैं उनको सदा ऐसेही प्रत्यक्ष भासता है और अज्ञानी दूर से दूर चलाजाता है—उसको सुमेरु और मन्दराचल की नाईं आत्मा और जीवका अन्तर भासता है। जैसे वसन्तऋतु में नानाप्रकार के नूतन अंकुर उपजते हैं और उसके अभाव हुये नष्ट होते हैं तैसेही चित्त के फुरने से जीव राशि उपजते हैं और चित्त के अफुर हुये नष्ट होते हैं। मन और कर्म में कुछ भेद नहीं; मन और कर्म इकट्ठे ही उत्पन्न होते हैं। जैसे वृक्षसे फल और सुगन्ध इकट्ठे उपजते हैं तैसेही आत्मा से मन और कर्म इकट्ठेही उपजते हैं और फिर आत्मा में लीन होते हैं। हे रामजी! दैत्य, नाग, मनुष्य, देवता आदिक जो कुछ जीव तुमको भासते हैं वे आत्मासे उपजे हैं और फिर आत्माही में लीन होते हैं। इनका उत्पत्ति कारण अज्ञान है; आत्माके अज्ञान से भटकतेहैं और जब आत्मज्ञान उपजता है तब संसारभ्रम निवृत्त होजाता है। रामजी बोले, हे भगवन्! जो पदार्थ शास्त्रप्रमाण से सिद्ध है वही सत्य है और शास्त्रप्रमाण वही है जिसमें राग द्वेषसे रहित निर्णय है और अमानित्व अदम्भित्व आदिक गुण प्रतिपादन किये हैं। उस दृष्टिसे जो उपदेश किया है सोही प्रमाण है और उसके अनुसार जो जीव विचरते हैं सो उत्तमगति को प्राप्त होते हैं और जो शास्त्रप्रमाण से विपरीत वर्तते हैं वह अशुभगति में प्राप्त होते हैं। लोकमें भी प्रसिद्ध है कि; कर्मों के अनुसार जीव उपजते हैं—जैसा २ बीज होता है तैसाही तैसा उससे अंकुर उपजता है; तैसेही जैसा कर्म होता है तैसी गति को जीव प्राप्त होता है। कर्त्ता से कर्म होता है इस कारण यह परस्पर अभिन्न हैं इनका इकट्ठा होना क्योंकर हो? कर्त्ता से कर्म होते हैं और कर्म से गति प्राप्ति होती है पर आप कहते हैं कि, मन और कर्म ब्रह्मसे इकट्ठेही उत्पन्न हुयेहैं इससे तो शास्त्र और लोगों के वचन अप्रमाण होते हैं। हे देवताओं में श्रेष्ठ! इस संशयके दूर करने को तुमही योग्य हो। जैसे सत्यहो तैसे ही कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह प्रश्न तुमने अच्छा कियाहै इसका उत्तर मैं तुमको देताहूं जिसके सुनने से तुमको ज्ञान होगा। हे रामजी! शुद्ध संवित्मात्र आत्मतत्त्व में जो संवेदन फुरा है सोही कर्मका बीज मन हुआ और सोही सबका कर्मरूप है इसलिये उसी बीज से सबफल होते हैं—कर्म और मन में कुछ भेद नहीं। जैसे सुगन्ध और कमल में कुछ भेद नहीं तैसेही मन और कर्म में कुछ भेद नहीं। मन में संकल्प होता और उससे कर्म अंकुर ज्ञानवान् कहते हैं। हे रामजी! पूर्व देह मनही है और उस मनरूपी शरीर से कर्म होते हैं। वह फल पर्यन्त सिद्ध

होता है। मन में जो स्फूर्ति होती है वही क्रिया है और वही कर्म है। उस मनसे किया कर्म अवश्य सिद्ध होताहै अन्यथा नहीं होता। ऐसा पर्वत और आकाशलोक कोई नहीं जिसको प्राप्तहोकर कर्मों से छूटे; जो कुछ मन के संकल्प से किया है वह अवश्यमेव सिद्ध होता है। पूर्व जो पुरुषार्थ प्रयत्न कुछ किया है वह निष्फल नहीं होता अवश्यमेव उसकी प्राप्तिहोती है। हे रामजी! ब्रह्म में जो चैत्यता हुई है वही मन है और कर्मरूप है और सब लोकों का बीज है कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी! जब कोई देश से देशान्तर जाने लगता है तब जानेका संकल्पही उसे लेजाता है; वह चलना कर्म है इससे स्फूर्तिरूप कर्म हुआ और स्फूर्तिरूप मनका भी है इससे मन और कर्म में कुछ भेद नहीं। अक्षोभ समुद्ररूपी ब्रह्म है इसमें द्रवतारूपी चैत्यता है। वह चैत्यता जीवरूप है और उसही का नाम मन है। मन कर्मरूप है इसलिये जैसे मन फुरता है और जो कुछ मन से कार्य करता है वही सिद्ध होता है शरीर से चेष्टा नहीं सिद्ध होती। इस कारण कहा है कि, मन और कर्म में कुछ भेद नहीं पर भिन्न २ जो भासता है सो मिथ्या कल्पना है। मिथ्या कल्पना मूर्ख करते हैं बुद्धिमान् नहीं करते जैसे समुद्र और तरङ्गों में भेद मूर्ख मानते हैं, बुद्धिमान् को भेद कुछ नहीं भासता। प्रथम परमात्मा से मन और कर्म इकट्ठेही उपजे हैं। जैसे समुद्र से द्रवता से तरङ्ग उपजते हैं तैसेही चित्त फुरने से आत्मा से कर्म उपजते हैं। जैसे तरङ्ग समुद्र में लीन होते हैं तैसेही मन और कर्म परमात्मा ही में लीन होते हैं। जैसे जो पदार्थ दर्पणके निकट होताहै उसीका प्रतिबिम्ब भासता है। तैसेही जो कुछ मनका कर्म होताहै सो आत्मारूपी दर्पण में प्रतिबिम्ब भासता है। जैसे बरफ का रूप शीतल है—शीतलता विना बरफ नहीं होती तैसेही चित्तकर्म है—कर्मों विना चित्त नहीं होता। जब चित्तसे स्पन्दता मिटजाती है तब चित्तभी नष्ट होजाता है चित्तके नष्ट हुये कर्म भी नष्ट होजाते हैं और कर्म के नाशहुये मन का नाशहोता है। जो पुरुष मनसे मुक्तहुआ है वही मुक्त है और जो मनसे मुक्त नहीं हुआ वही बन्धन में है। एक के नाशहुये दोनों का नाश होताहै। जैसे अग्नि के नाशहुये उष्णता भी नाश होती है और जब उष्णता नाश होती है तब अग्नि भी नाश होता है तैसेही मनके नष्ट हुये कर्म भी नाशहोते हैं और कर्मनाश हुये मनभी नष्ट होता है। एकके अभाव हुये दोनों का अभाव होता है। कर्मरूपी चित्त है और चित्तरूपी कर्म है इससे परस्पर अभेदरूप हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्र०कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनंनामैकसप्ततितमस्सर्गः७१

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मन भावनामात्र है। भावना फुरनेका नाम है और फुरना क्रियारूप है। उस फुरने क्रिया से सर्वफल की प्राप्ति होती है। रामजी बोले, हे ब्राह्मण! इस मनका रूप जो जड़-अजड़ है वह विस्तारपूर्वक कहिये। वशिष्ठजी

बोले; हे रामजी ! आत्मतत्त्व अनन्तरूप और सर्वशक्तिमान् है। जब उसमें संकल्प शक्ति फुरती है तब उसको मन कहते हैं जड़ अजड़ के मध्यमें जो डोलायमान होता है उस मिश्रितरूप का नाम मन है। हे रामजी ! भावरूप जो पदार्थ हैं उनके मध्यमें जो सत्य असत्य का निश्चय करता है उसका नाम मन है। उसमें जो यह निश्चय देह से मिलकर फुरता है कि, मैं चिदानन्दरूप नहीं; कृपण हूं सो मनका रूप है। कल्पना से रहित मन नहीं होता। जैसे गुणों विना गुणी नहीं रहता तैसेही कर्म कल्पना विना मन नहीं रहता। जैसे उष्णताकी सत्ता अग्नि से भिन्न नहीं होती तैसेही कर्मों की सत्ता मनसे भिन्न नहीं होती और मन और आत्मा में कुछ भेद नहीं। हे रामजी ! मनरूपी बीज से संकल्परूपी नानाप्रकार के फूल होते हैं; उनमें नानाप्रकार के शरीरों से संपूर्ण जगत् देखता है और जैसी २ मन में वासना होती है उसके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है। इससे मन का फुरनाही कर्मों का बीजहै और उससे जो भिन्न क्रिया होती हैं सो उस वृक्षकी शाखा और नानाप्रकार के विचित्र फल हैं। हे रामजी! जिस ओर मनका निश्चय होताहै उसी ओर कर्म इन्द्रियां भी प्रवर्त्तित होतीहैं और जो कर्म है वही मनका फुरना है और मनही स्फूर्तिरूप है। इसीकारण कहाहै कि, मन कर्मरूप है। उस मनकी इतनी संज्ञा कही हैं मन, बुद्धि, अहंकार, कर्मकल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, प्रकृति, माया इत्यादिक। कल्पनाही संसार के कारण हैं। चित्तको जब चैत्य का संयोग होताहै तब संसारभ्रम होताहै और ये जितनी संज्ञा तुमसे कहीहैं सो चित्तके फुरने से काकतालीयवत् अकस्मात् फुरी हैं। रामजी बोले; हे भगवन्! अद्वैत तत्त्व परमसंवित् आकाश में इतनी कलना कैसे हुई और उनमें अर्थरूप दृढ़ता कैसे हुई ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! शुद्ध संवित्मात्र सत्ता फुरनेकी नाईं जो स्थित हुई उसका नाम मन है। जब वह वृत्ति निश्चयरूप हुई तो भाव अभावपदार्थों को निश्चय करने लगी कि, यह पदार्थ ऐसाहै; यह पदार्थ ऐसाहै—उस वृत्तिका नाम बुद्धि है। जब अनात्मामें आत्मभाव परिच्छिन्नरूप मिथ्या अभिमान दृढ़ हुआ तब उसका रूप अहंकार हुआ। वही मिथ्या अहंवृत्ति संसार बन्धन का कारण है; किसी पदार्थ को धावती करती है और किसीको त्याग करती है और बालक की नाईं विचार से रहित ग्रहण है उसका नाम चित्त है। वृत्तिका धर्म फुरना है उस फुरने में फलको आरोप करके उसकी ओर धावना और कर्त्तव्य का अभिमान फुरना कर्म है। पूर्व जो कार्य किये हैं उनको त्याग उनका संस्कार चित्तमें धरकर स्मरण करने का नाम स्मृति है अथवा पूर्व जिसका अनुभव नहीं हुआ और हृदय में फुरे कि, पूर्व मैंने यह कियाथा इसका नाम भी स्मृति है। जिस पदार्थ का अनुभव हो और जिसका संस्कार हृदय में दृढ़ होवे उसके अनुसार जो चित्त फुरे उसका नाम वासना है। हे रामजी ! आत्मतत्त्व

अद्वैत है; उसमें अविद्यमान द्वैत विद्यमान हो भासता है इससे उसका नाम अविद्या है और अपने स्वरूप को भुलाकर अपने नाश के निमित्त स्पन्द चेष्टा करने और शुद्ध आत्मा में विकल्प उठने का नाम मूल अविद्या है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध-इन पाँचों इन्द्रियों को दिखानेवाला परमात्मा है और अद्वैततत्त्व आत्मा में जिस दृढ़ जालको रचा है उस स्पन्दकलना का नाम प्रकृति है और जो असत्य को सत्य और सत्यको असत्य की नाईं दिखाती है वह माया कहाती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का अनुभव करना कर्म है और जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध होते हैं वह कर्त्ता, कार्य कारण कहाता है। शुद्ध चेतन चैत्य को कलना की नाईं प्राप्त होता है; उस फुरन वृत्ति को विपर्यय कहते हैं। उससे जब संकल्प जाल उठता है तब उसको जीव कहते हैं; मन भी इसीका नाम है; चित्तभी इसी का नाम है और बन्धभी इसी का नाम है। हे रामजी! परमार्थ शुद्ध चित्तही चैत्य के संयोग से और स्वरूप से बरफ की नाईं स्थित हुआ है। रामजी बोले; हे भगवन्! यह मन जड़ है किंवा चेतन है; एकरूप मुझसे कहिये कि; मेरे हृदय में स्थितहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मन जड़ नहीं और चेतनभी नहीं। जड़ चेतन की गाँठ के मध्यभाव का नाम मन है और संकल्प विकल्प में कल्पितरूप मन है। उस मन से यह जगत् उत्पन्न हुआ है और जड़ और चेतन दोनों भावों में डोलायमान है अर्थात् कभी जड़भाव की ओर आता है और कभी चेतनभाव की ओर आता है। शुद्धचेतनमात्र में जो फुरना हुआ उसी का नाम मन है और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीवादिक अनेक संज्ञा उसी मनकी हैं। जैसे एक नट अनेक स्वांगों से अनेकसंज्ञा पाता है–जिसका स्वांग धरता है उसी नाम से कहाता है तैसेही संकल्पसे मन अनेकसंज्ञा पाता है। जैसे पुरुष विचित्र कर्मों से अनेकसंज्ञा पाता है–पाठ से पाठक; और रसोई से रसोइयां कहाता है तैसेही मन अनेकसंकल्पों से अनेकसंज्ञा पाता है। हे रामजी! ये जो मैंने तुमसे चित्त की अनेकसंज्ञा कही हैं उनके अन्य अन्य बहुत प्रकार बादियोंने नाम रक्खे हैं; जैसा जैसा मतहै तैसाही तैसा स्वभाव लेकर मन, बुद्धि और इन्द्रियों को मानते हैं। कोई मनको जड़ मानते हैं; कोई मनसे भिन्न मानते हैं और कोई अहंकार को भिन्न मानते हैं वे सब मिथ्याकल्पना हैं। नैयायिक कहते हैं कि, सृष्टितत्त्वों के सूक्ष्मपरमाणुओं से उपजती हैं। जब प्रलय होता है तब स्थूलतत्त्व प्रलय होजाते हैं और उनके सूक्ष्म परमाणु रहते हैं और फिर उत्पत्तिकाल में वही सूक्ष्मपरमाणु दूने तिगुने आदिक होकर स्थूल होते हैं; उनही पाँचों तत्त्वों से सृष्टि होती है। सांख्य मतवाले कहते हैं कि, प्रकृत और माया के परिणाम से सृष्टि होती है और चार्वाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारोंतत्त्वों के इकट्ठे होने से

सृष्टि उपजती मानते हैं और चारोंतत्त्वों के शरीर को पुरुष मानते हैं और कहते हैं कि, जब तत्त्व अपने आपसे बिछुर जाते हैं तब प्रलय होते हैं। आर्हत औरही प्रकार मानते हैं और बौद्ध और वैशेषिक आदिक और और प्रकार से मानते हैं। पञ्चरात्रिक और प्रकारही मानते हैं परन्तु सबही का सिद्धान्त एकही ब्रह्म आत्मतत्त्व है। जैसे एकही स्थान के अनेक मार्ग हों तो उन अनेक मार्गों से उसी स्थान को पहुँचता है तैसेही अनेक मतों का अधिष्ठान आत्मसत्ता है और सबका सिद्धान्त एक ही है उसमें कोई वाद प्रवेश नहीं करता। हे रामजी! जितने मतवाले हैं वे अपने२ मतको मानते हैं और दूसरे का अपमान करते हैं। जैसे मार्ग के चलनेवाले अपने २ मार्ग की उपमा करते हैं—दूसरेकी नहीं करते तैसेही मनके भिन्न २ रूपसे अनेक प्रकार जगत् को कहतेहैं। एक मनकी अनेकसंज्ञा हुई हैं। जैसे एक पुरुष को अनेक प्रकार से कहते हैं; स्नान करने से स्नानकर्त्ता; दान करने से दानकर्त्ता; तप करने से तपस्वी इत्यादि क्रिया करके अनेकसंज्ञा होती हैं तैसेही अनेकशक्ति मनकी कही हैं। मनही का नाम जीव; वासना और कर्म है। हे रामजी! चित्तही के फुरनेसे सम्पूर्ण जगत् हुआ है और मनही के फुरने से भासता है। जब वह पुरुष चैत्य के फुरनेसे रहित होता है तब देखता है तौ भी कुछ नहीं देखता। यह प्रसिद्ध जानिये कि, जिस पुरुष को इन्द्रियों के विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इष्ट अनिष्ट में हर्ष शोक देताहै उसका नाम जीव है। मनही से सब सिद्ध होता है और सब अर्थों का कारण मन ही है। जो पुरुष चैत्य से छूटता है वह मुक्तरूपहै और जिसको चैत्य का संयोग है वह बन्धन में बँधा है। हे रामजी! जो पुरुष मनको केवल जड़ मानते हैं उनको अत्यन्त जड़ जानो और जो पुरुष मन को केवल चेतन मानतेहैं वे भी जड़ हैं। यह मन केवल जड़ नहीं और न केवल चेतन ही है जो मन का एकही रूप हो तो सुख दुःख आदिक विचित्रता न हों और जगत् की लीनता भी नहीं! जो केवल चैतन्यही रूप हो तो जगत् का कारण नहीं होसक्ता और जो केवल जड़रूपहो तौभी जगत् का कारण नहीं क्योंकि; केवल जड़ पाषाणरूप होता। जैसे पाषाण से कुछ क्रिया उत्पन्न नहीं होतीं तैसेही केवल जड़ मन जगत् का कारण नहीं होता। मन केवल चैतन्य भी नहीं; केवल चैतन्य तो आत्मा है जिसमें कर्तृत्व आदि कल्पना नहीं होतीं इससे मन केवल चैतन्यभी नहीं और केवल जड़ भी नहीं। चैतन्य और जड़ का मध्यभाव ही जगत् का कारण है। हे रामजी! जैसे प्रकाश सब पदार्थों के प्रकाश का कारण है तैसेही मन सब अर्थों का कारण है जबतक चित्त है तबतक चैत्य भासता है और जब चित्त अचित्त होता है तब सर्वभूतजात लीन हो जाते हैं। जैसे एकही जलरस से अनेकरूप हो भासता है तैसेही एकही मन अनेक

पदार्थरूप होकर भासता है और अनेकसंज्ञा इसकी शास्त्रों के मतवालों ने कल्पी हैं। सबका कारण मनही है और परमदेव परमात्मा की सर्व शक्तियोंमें से एकशक्ति है। उसी परमात्मा से यह फुरी है और जड़भाव फुरकर फिर उसही में लीन होती है। जैसे मकड़ी अपने मुखसे जाला निकाल कर फैलाती है और फिर आपही में लीन करलेती है तैसेही परमात्मा से यह जड़भाव उपजता है। हे रामजी! नित्य शुद्ध और बोधरूप ब्रह्म है; वह जब प्रकृतभाव को प्राप्तहोता है तब अविद्या के वश से नानाप्रकार के जगत् को धारता है और उसही के सर्व पर्याय हैं। जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार इत्यादिक संज्ञा मलीन चित्तकी होती हैं। ये संज्ञा भिन्नभिन्न मतवादियोंने कल्पी हैं पर हमको संज्ञा से क्या प्रयोजन है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्र०मनःसंज्ञाविचारोनामद्विसप्ततितमस्सर्गः॥ ७२॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! यह सब जगत् आडम्बर मनही ने रचा है और सब मनरूप है और मनही कर्मरूप है—यह आपके कहने से मैंने निश्चय किया है परन्तु इसका अनुभव कैसेहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह मन भावनामात्र है। जैसे प्रचण्ड सूर्यकी धूप मरुस्थल में जल हो भासती है तैसेही आत्मा का आभासरूप मन होता है। उस मन से जो कुछ जगत् भासता है वह सब मनरूप है; कहीं मनुष्य; कहीं देवता; कहीं दैत्य; कहीं पक्षी; कहीं गन्धर्व; कहीं नागपुर आदिक जो कुछ रूप भासते हैं वे सबही मनसे विस्तार को प्राप्तहुये हैं पर वे तृण और काष्ठ के तुल्य हैं। उनके विचारने से क्या है? यह सब मनकी रचना है और मन अविचार से सिद्ध है विचार कियेसे नष्ट होजाता है। मनके नष्ट हुये परमात्माही शेष रहता है जो सबका साक्षीभूत सर्वपद से अतीत; सर्वव्यापी और सबका आश्रयभूत है। उसके प्रमाद से मन जगत् को रचसक्ता है इस कारण कहा है कि; मन और कर्म एकरूप हैं और शरीरों के कारण हैं हे रामजी! जन्म मरण आदिक जो कुछ विकार हैं वे मनसेही भासते हैं और मन अविचारसे सिद्ध है विचार कियेसे लीन होजाता है। जब मन लीन होता है तब कर्म आदिक भ्रमभी सब नष्ट होजाते हैं। जो इस भ्रम से छुटा है वही मुक्त है और वह पुरुष फिर जन्म और मरण में नहीं आता उसका सब भ्रम नष्ट होजाता है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! आपने सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकार के जीव कहे हैं और उनका प्रथम कारण सत्य असत्यरूपी मन कहाता वह मन अशुद्धरूप शुद्ध चिन्मात्र तत्त्व से उपजकर बड़े विस्ताररूपी विचित्र जगत् को कैसे प्राप्तहुआ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आकाश तीन हैं एक चिदाकाश; दूसरा चित्ताकाश और तीसरा भूताकाश भावसे वे समानरूप हैं और आप अपनी सत्ता है। जो चित्ताकाश से नित्य उपलब्धरूप

और चेतनमात्र सबके भीतर बाहर स्थित है अनुमाता; बोधरूप और सर्वभूतों में समव्याप रहा है वह चिदाकाश है । जो सर्वभूतों का कारणरूप है और आप विकल्परूप है और सब जगत् को जिसने विस्तारा है वह चित्ताकाश कहाता है। दश दिशाओं को विस्तारकर जिसका वपु प्रच्छेद को नहीं प्राप्तहोता, शून्यस्वरूप है और पवनआदिक भूतों के आश्रयभूत है वह भूताकाश कहाता है। हे रामजी! चित्ताकाश और भूताकाश दोनों चिदाकाश से उपजे हैं और सबके कारण हैं । जैसे दिनसे सब कार्य होते हैं तैसेही चित्त से सबपदार्थ प्रगट होते हैं। वह चित्त जड़भी नहीं और चैतन्यभी नहीं आकाशभी उसीसे उपजता है। हे रामजी ! ये तीनों आकाश भी अप्रबोधक के बिषय हैं ज्ञानीके बिषय नहीं। ज्ञानवान् तीन आकाश अज्ञानीके उपदेश के निमित्त कहतेहैं। ज्ञानवान् को एक परब्रह्म पूर्ण सर्वकल्पना से रहित भासता है। द्वैत; अद्वैत और शब्द भी उपदेश के निमित्त हैं प्रबोध का विषय कोई नहीं। हे रामजी ! जबतक तुम प्रबोध आत्मा नहीं हुये तबतक मैं तीन आकाश कहताहूं— वास्तव में कोई कल्पना नहीं । जैसे दावाग्नि लगे से वन जलकर शून्य भासता है तैसेही ज्ञानाग्नि से जले हुये चित्ताकाश और भूताकाश चिदाकाश में शून्यकल्पना भासते हैं। मलीन चैतन्य जो चैत्यता को प्राप्तहोता है इससे यह जगत् भासता है। जैसे इन्द्रजाल की बाजी होती है तैसेही यह जगत् है । बोधहीन को यह जगत् भासता है। जैसे असम्यक्दर्शी को सीपी में रूपा भासता है तैसेही अज्ञानी को जगत् भासता है—आत्मतत्त्व नहीं भासता जब दृश्यभ्रम नष्ट होजावे तब मुक्तरूप हो ॥
इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्रकरणेचिदाकाशमाहात्म्यवर्णनन्नामत्रिसप्ततितमस्सर्गः ७३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जो कुछ उपजा है इसे तुम चित्त से उपजा जानों यह जैसे उपजा है तैसे उपजाहै अब तुम इसकी निवृत्ति के लिये यत्नकरके आत्मपद में चित्तलगाओ तब यह जगत् भ्रम नष्ट होजावेगा। हे रामजी ! इस चित्तपर एक-चित्ताख्यान जो पूर्वहुआ है उसे सुनो; जैसे मैंने देखा है तैसेही तुमसे कहताहूं। एक महाशून्य वन था और उसके किसी कोने में यह आकाश स्थित था उस उजाड़ में मैंने एक ऐसा पुरुष देखा जिसके सहस्र हाथ और सहस्रलोचन थे और चञ्चल और व्याकुलरूप था। उसका बड़ा आकार था और सहस्र भुजाओं से अपने शरीर के मारे आपही कष्टमान हो अनेक योजनों तक भागता चलाजाता था। जब दौड़ता २ थकजाय और अङ्ग चूर्ण होजायँ तो एक कृष्ण रात्रि की नाईं भयानकरूप कूप में जा पड़े और जब कुछ काल बीते तब वहां से भी निकलकर कञ्जके वन में जापड़े और जब वहां कण्टक चुभें तो कष्टपावे। जैसे पतङ्ग दीपकको सुखरूप जानके उसमें प्रवेश करे और नाश हो तैसेही वह जहां सुखरूप जानके प्रवेशकरे वहांही कष्ट पावे और

फिर उसी वन में जापड़े । फिर वहांसे निकलकर आपको अपनेही हाथों से मारे और कष्टमान हो और फिर दौड़ता२ कूपमें जापड़े । वहांसे निकल फिर कदलीके वनमें जावे और उससे निकलकर फिर आपको मारे जब कदलीवन में जावे तब कुछ शान्तिमान् और प्रसन्न हो दौड़े और आपको मारे और कष्टमान होके दूर से दूर जापड़े इसी प्रकार वह अपना किया आपही कष्ट भोगे और भटकता फिरे । तब मैंने उसको पकड़-के पूछा कि, अरे तू कौन है; यह क्या करता है और किस निमित्त करता है तेरा नाम क्या है और यहां क्यों मिथ्या जगत् में मोहको प्राप्तहुआ है ? तब उसने मुझसे कहा कि; न मैं कुछ हूं; न यह कुछ है और न मैं कुछ करता हूं । तू तो मेरा शत्रु है; तेरे देखने से मैं नाश होताहूं । इस प्रकार कहकर वह अपने अङ्गों को देखने और रुदन करने लगा । एक क्षणमें उसका वपु नाश होनेलगा और प्रथम उसके शीश, फिर भुजा, फिर वक्षस्थल और फिर उदर क्रमसे गिरपड़े । जैसे स्वप्न से जागे स्वप्न का शरीर नष्ट होताहै । तब मैं नीति शक्ति को विचारके आगे गया तो और एक पुरुष इसी भांति का देखा । वह भी इसी प्रकार आपको आपही प्रहार करे; कष्टमान हो और पूर्वोक्त क्रियाकरे । जब उसने मुझको देखा तब प्रसन्न होकर हँसा और मैंने उसको रोकके उसी प्रकार पूछा तो उसनेभी मेरे देखते २ अपने अङ्गोंको त्याग दिया और कष्टवान् और हर्षवान् भी हुआ । फिर मैं आगे गया तो एक और पुरुष देखा वहभी इसी प्र-कार करे कि, अपने हाथों से आपको मारके बड़े अन्धे कुवें में जापड़े । चिरकालप-र्यन्त मैं उसको देखता रहा और जब वह कूपसे निकला तब मैंने उसपर प्रसन्न होकर जैसे दूसरे से पूछा था पूछा पर वह मूर्ख मुझको न जानके दूरसे त्याग गया और जो कुछ अपना व्यवहार था उसमें जालगा । इसके अनन्तर चिरकालपर्यन्त मैं उस वन में विचरतारहा तो उसी प्रकार मैंने फिर एक पुरुष देखा कि, वह आपही आपको नाश करता था । निदान जिसको मैं पूछूं और जो मेरे पास आवे उसको मैं कष्ट से छुड़ादूं और आनन्द को प्राप्तकरूं और जो मेरे निकटही न आवे और मुझको त्याग जावे तो उस वन में उसका वही हाल हो और वही व्यवहार करे । हे रामजी ! वह वन तुमने भी देखा है परन्तु तुमने वह व्यवहार नहीं किया और उस अटवी में जाने योग्य भी तुम नहीं । तुम बालक हो और वह अटवी महाभयानक है उसमें प्राप्तहुये कष्टसे कष्ट पाता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तोपाख्यानंनामचतुःसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७४ ॥

रामजी बोले; हे ब्राह्मण ! वह कौन अटवी है; मैंने कब देखी है और कहां है और वे पुरुष अपने नाश के निमित्त क्या उद्यम करते थे सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! वह अटवी दूर नहीं और वह पुरुष भी दूर नहीं । यह जो गम्भीर बड़ा

आकाररूप संसार है वही शून्य अटवी है और विकारों से पूर्ण है। यह अटवी भी आत्मासे सिद्ध होतीहै। उसमें जो पुरुष रहतेहैं वे सब मन हैं और दुःखरूपी चेष्टा करते हैं। विवेक ज्ञानरूपी मैं उनको पकड़ताथा। जो मेरे निकट आते थे वे तो जैसे सूर्यके प्रकाश से सूर्यमुखी कमल खिलआते हैं तैसे मेरे प्रबोधसे प्रफुल्लित होकर महामती होते थे और चित्तसे उपशम होकर परमपद को प्राप्त होते थे और जो मेरे निकट न आये और अविवेक से मोहेहुये मेरा निरादर करतेथे वे मोह और कष्टही में रहे। अब उनके अङ्ग; प्रहार; कूप; कञ्ज और केलेके वनका उपमान सुनो। हे रामजी! जो कुछ विषय अभिलाषा हैं वे उस मन के अङ्ग हैं। हाथों से प्रहार करना यह है कि, सकाम कर्म करतेहैं और उनसे फटेहुये दूरसे दूर दौड़ते और मृतक होते हैं। अन्धकूप में गिरना यही विवेक का त्याग करना है। इस प्रकार वह पुरुष आपको आपही प्रहारकरते भटकते फिरते हैं और अभिलाषारूपी सहस्र अङ्गों से घिरेहुये मृतक होकर नरकरूपी कूप में पड़ते हैं। जब उस कूप से बाहर निकलते हैं तब पुण्यकर्मों से स्वर्ग में जाते हैं वही कदली के वन समान है वहां कुछ सुख पाते हैं स्त्री, पुत्र, कलत्र आदिक कुटुम्ब कञ्जके वन हैं और कञ्जमें कण्टक होते हैं सो पुत्र, धन और लोकों की कामना हैं उनसे कष्ट पाते हैं। जब महा पापकर्म करते हैं तब नरकरूपी अन्धकूप में पड़ते हैं और जब पुण्यकर्म करते हैं तब कदलीवन की नाईं स्वर्गको प्राप्त होते हैं तो कुछ उल्लास को भी प्राप्त होतेहैं। हे रामजी! गृहस्थाश्रम महादुःखरूप कञ्जवन की नाईं है ये मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि, अपने नाश के निमित्तही दुःखरूप कर्म करते हैं। उनमें जो विहित करके विवेक के निकट आते हैं वे शुभ अशुभ कर्मों के बन्धन से मुक्त होकर परम पद को प्राप्तहोते हैं और जो विवेक से हित नहीं करते वे दूरसे दूर भटकते हैं। हे रामजी! जो पुरुष भोग भोगने के निमित्त तप आदिक पुण्य कर्म करते हैं वे उत्तम शरीर धर के स्वर्ग सुख भोगते हैं। वे जो मनरूपी पुरुष मुझको देखके कहतेथे कि, तू हमारा शत्रु है तुझसे हम नष्ट होते हैं और रुदन करते थे वे विषयभोग त्यागने के निमित्त मूर्खचित्त मनुष्य कष्ट पाते थे क्योंकि; मूर्खों की प्रीति विषय में होती है और उसके त्यागने से वे कष्टमान होते हैं और विवेक को देखके रुदन करने लगते हैं कि ये अर्द्धप्रबुद्ध हैं। जिनको परमपद की प्राप्ति नहीं हुई वे भोगों को त्यागेसे कष्टवान् होते हैं और रुदन करते हैं। जब अर्द्धप्रबोध मूर्खचित्त अभिलाषारूपी अङ्गोंसे तपायमान हुआ अज्ञान को त्याग करता है और विवेक को प्राप्त होता है तब परम तुष्टिमान हो हँसने लगता है। इससे तुम भी विवेक को प्राप्त होकर संसार की वासना को त्यागो तब आनन्दमान होगे। पूर्वके सुभाव और नीच चेष्टा को त्यागकर वह इसलिये हँसताहै कि, मैं मिथ्या चेष्टा करता था और चिरकाल

पर्यन्त मूर्खता से कष्ट पातारहा । हे रामजी! जब इस प्रकार विवेक को प्राप्तहोकर चित्त परमपद में विश्राम पाताहै तब पूर्व की दीन चेष्टा को स्मरणकरके हँसता है। हे रामजी ! जब मैं उस मनरूपी पुरुष को रोककर पूछताथा और वह अपने अङ्गों को त्यागता जाताथा वहभी सुनो । मैं विवेकरूप हूं । जब मैं उस चित्तरूपी पुरुष को मिला तब उसके सहस्र हाथ और सहस्र लोचनरूपी अभिलाषाओं का त्यागहुआ और वह अपने प्रहार करनेसे भी रहगया और जब उस पुरुष का शीश और परिच्छिन्नदेह अभिमानी गिरपड़ा तब दुर्वासनारूपी अङ्गों को उसने त्याग दिया। उनको त्यागकर वह आपभी नष्ट होगया सो अहंकार ने अपनी निर्वाणता को देखा अर्थात् परब्रह्म में लीन होगया । हे रामजी ! पुरुषको बन्धन का कारण वासना है। जैसे बालक विचार से रहित चञ्चलरूपी चेष्टा करताहै और कष्ट पाताहै और जैसे कुसवारी कीट आपही अपने बैठनेकी गुफा बनाके फँस मरती है तैसेही मनुष्य अपनी वासना मे आपही बन्धन में पड़ताहै । जैसे मर्कट लकड़ी में हाथ डालके कील को निकालने लगताहै और लीला करताहै तो उसका हाथ फँसजाताहै और कष्ट पाताहै तैसेही अज्ञानी को अपनी चेष्टाही बन्धन करती है क्योंकि, विचार विना करता है । इससे हे रामजी ! तुम चित्तसे शास्त्र और सन्तोंके गणों में चिर पर्यन्त चलो और जो कुछ अर्थशास्त्र में प्रतिपाद्य है उसकी दृढ़भावना करो । जब अभ्यास से तुम्हारा चित्त स्वस्थ होगा तब तुमको कोई शोक न होगा । हे रामजी ! जब चित्त आत्मपद में स्थित होगा तब राग और द्वेष से चलायमान न होगा और जो कुछ देहादिकों से परिछिन्न अहंकार है सो नष्ट होगा । जैसे सूर्य के उदय हुयेसे बरफ गलजाती है तैसेही तुच्छ अहंकार नष्ट होजावेगा और सर्व आत्माही भासेगा । हे रामजी! जबतक आत्मज्ञान नहीं होता तबतक शास्त्रों के अनुसार आनन्दित आचारमें विचरे; शास्त्रों के अर्थ में अभ्यास करे और मनको रागद्वेषादिक से मौनकरे तब पानेयोग्य, अजन्मा शुद्ध और शान्तरूप पद को प्राप्तहोताहै और सब शोकों से तरके शान्तरूप होताहै । हे रामजी ! जबतक आत्मतत्त्व का प्रमाद है तबतक अनेक दुःख वृद्ध होते जाते हैं शान्ति नहीं होती और जब आत्मपद की प्राप्तिहोती है तब सब दुःख नष्ट होजाते हैं ॥

इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्र० चित्तोपाख्यानमभाप्तिवर्णनंनामपञ्चसप्ततितमस्सर्गः ७५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह चित्त परब्रह्म से उपजाहै सो आत्मरूप है और आत्मरूप भी नहीं । जैसे समुद्र से तरङ्ग तन्मय और भिन्न होते तैसेही चित्त है। जो ज्ञानवान् हैं उनको चित्त ब्रह्मरूपही है कुछ भिन्न नहीं। जैसे जिसको जल का ज्ञान है उसको तरङ्ग भी जलरूप भासते हैं और जो ज्ञानसे रहित हैं उनको मन संसार भ्रम का कारण है । जैसे जिसको जल का ज्ञान नहीं उसको भिन्न भिन्न तरङ्ग भासते हैं

तैसेही अज्ञानी को भिन्न २ जगत् भासता है और ज्ञानवान् को केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है। हे रामजी! ज्ञानवान् अज्ञानी के उपदेशके निमित्त भेद कल्पते हैं; अपनी दृष्टि में उनको सर्व ब्रह्मही भासता है। मन आदिक भी जो तुमको भासते हैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं अनन्य और शक्तिरूप हैं। उससे अन्य कोई पदार्थ नहीं; सर्वशक्ति परब्रह्म नित्य और सर्वओर से पूर्ण अविनाशी है और सबही ब्रह्मसत्ता में है सर्व शक्तिमान् आत्मा है। जैसी उसको रुचि है वही शक्ति प्रत्यक्ष होती है और सर्व शक्तिरूप होकर फैलाहै। जीवों में चैतनशक्ति ज्ञान; वायमें स्पन्दता; पत्थरमें जड़ता; जल में द्रवता; अग्निमें तेज; आकाश में शून्यता; स्वर्ग में भाव; कालमें नाश; शोक में शोक; मुदिता में आनन्द; वीरों में वीर; सर्गके उपजाने में उत्पत्ति और कल्प के अन्त में नाश शक्ति आदि जो कुछ भाव अभाव शक्ति है सो सब ब्रह्मही की है। जैसे फूल, फल, बेल, पत्र, शाखा, वृक्ष विस्तार बीजके अन्दर होताहै तैसेही सब जगत् ब्रह्म में स्थित होताहै और जीव, चित्त और मन आदिक भी ब्रह्मही में स्थित हैं। हे रामजी! जैसे वसन्त ऋतुमें एकही रस नाना प्रकार के फूल, फल, टहनियों सहित बहुत रूपों को धरता है तैसेही एकही आकाश ब्रह्म चैत्यता से जगत्‌रूपहो भासता है और उसमें देशकालादिक कोई विचित्रता नहीं सम्पूर्ण जगत् वही रूप है। वह ब्रह्मात्मा सर्वज्ञ, नित्य उदित और बृहद्रूप है। हे रामचन्द्र! उसीकी मनन कलना मन कहाती है। जैसे आकाश में आंख से तरवरे और सूर्यकी किरणों में जल भासता है तैसेही आत्मा में मन है। हे रामजी! ब्रह्म में चित्त मन का रूप है और वह मन ब्रह्म की शक्तिरूप है; इसीकारण ब्रह्म से भिन्न नहीं ब्रह्मही है—ब्रह्मसे भिन्न कल्पना करनी अज्ञानताहै। ब्रह्ममें मैं ऐसा उत्थान हुआहै इसका नाम मन है और जड़ अजड़रूप मन से जगत् हुआहै। प्रतियोगी और व्यवच्छेदक संख्यारूप सब मन के कल्पे हैं। प्रतियोगी और व्यवच्छेदक संख्या का भेद यह है कि, प्रतियोगी विरोधी को कहते हैं; जैसे चेतन का प्रतियोगी जड़ और व्यवच्छेद इसे कहते हैं कि, जैसे घट अविच्छिन्न पट। ऐसे अनेकरूप दृश्य सब मन के कल्पे हैं। जैसे २ ब्रह्ममें इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों की नाईं मन दृढ़ होताहै तैसेही तैसे भासता है। जैसे समुद्रमें द्रवता से तरङ्गचक्रहो भासते हैं तैसेही शुद्ध चिन्मात्र में जीव फुरनेसे नाना प्रकार का जगत्‌हो भासता है परन्तु कुछ हुआ नहीं ब्रह्मही अपने आप में स्थित है। जैसे तरङ्गों के होने और मिटने में जल एकही रस रहताहै तैसेही जगत् के उपजने और मिटने से ब्रह्म ज्योंका त्यों है। जैसे सूर्यकी किरणों में दृढ़ तेजसे जल भासता है तैसेही आत्मतत्त्व में विचित्रता भासती है परन्तु सदा अपने आप में स्थितहै। हे रामजी! कारण, कर्म और कर्ता; जन्म; मरणादिक जो कुछ भासते हैं सो सब ब्रह्मरूप हैं ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं

और आत्मा शुद्धरूप है उसमें न लोभ है; न मोह है और न तृष्णा है क्योंकि; अद्वैत-रूप और सर्वात्मा है । जैसे सुवर्ण से नाना प्रकार के भूषण हो भासतेहैं तैसेही ब्रह्म से जगत् हो भासता है । जो ज्ञानवान् पुरुष है उस को सदा ऐसेही भासता है और जो अज्ञानी है उसको भिन्न २ कल्पना भासती है । जैसे किसीका बान्धव दूरदेशसे चिरकाल पीछे आवे तो वह देशकाल के व्यवधान से बान्धव को भी अबान्धव जानता है तैसेही अज्ञान के व्यवधान से जीव अभिन्नरूप आत्मा को भिन्नरूप जानता है । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है तैसेही सत्य असत्यरूप मन आत्मा में भासता है । उस मन ने शब्द–अर्थ–रूप भिन्न २ कल्पना रचीहैं पर आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें बन्ध मोक्ष कल्पना का अभाव है । इतना सुन रामजीने पूछा; हे भगवन् ! मन में जो निश्चय होता है वही होता है अन्यथा नहीं होता पर मन में जो बन्धका निश्चय होता है सो बन्ध कैसे सत्य है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बन्ध की कल्पना मूर्ख करते हैं इससे वह मिथ्या है और जो बन्ध की कल्पना मिथ्या हुई तो बन्ध की अपेक्षा से मोक्ष भी मिथ्या है–वास्तव में न बन्ध है और न मोक्ष है । हे महामते रामजी ! अज्ञान से अवस्तु भी वस्तुरूप हो भासती है–जैसे रस्सी में सर्प भासता है पर ज्ञानवान् को अवस्तु सत्य नहीं भासती । जैसे रस्सी के ज्ञान से सर्प नहीं भासता तैसेही बन्ध–मोक्ष कल्पना मूर्खों को भासती है; ज्ञानवान् को बन्ध मोक्ष कल्पना कोई नहीं । हे रामजी ! आदि परमात्मा से मन उपजा है उसनेही बन्ध और मोक्ष मोह से कल्पा है और फिर दृश्य प्रपञ्च को रचा है । वह प्रपञ्च कल्पनामात्र है और बालक की कथावत् मूर्खों को रुचता है अर्थात् जो विचार से रहित हैं उन को यह जगत् सत्य भासता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणेचित्तचिकित्सावर्णनन्नामषट्सप्ततितमस्सर्गः ॥७६॥

रामजी बोले; हे मुनियों में श्रेष्ठ ! बालक की कथा क्या है वह क्रमसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र ! एक मूर्खबालक ने दाईसे कहा कि, कोई अपूर्व कथा जो आगे न हुईहो मुझसे कह तब उसके विनोद निमित्त महाबुद्धिमान् धात्री एक कथा कहने लगी । वह बोली हे पुत्र ! सुन; एकबड़ा शून्यनगर था और उसका एक राजा था । उस राजा के शुभ आचारवान् और बड़े सुन्दर तेजवान् तीन पुत्र थे । उनमेंसे दो तो उपजे नथे और एक गर्भमें ही आया न था । वे तीनों शुभ आचारवान् और शुभ क्रियाकर्त्ता द्रव्यके अर्थ जीतने को चले और शून्य नगरसे बाहर जा निर्मार्गरूप नगर में ते निर्बुध और शोकसहित इकट्ठे ऐसे चले जैसे बुध, शुक्र और शनैश्चर । इकट्ठे चलने का दृष्टान्त शुक्र, शनैश्चर और बुध का नहीं है निर्बुध और शोकका ग्रहणरूप दृष्टान्त है । सरसों के फूलों की नाईं उनके अङ्ग कोमलथे इसलिये वे मार्गमें थकगये और

ऊपरसे सूर्यकी धूप तपने लगी। जैसे ज्येष्ठ—आषाढ़ की धूपसे कमल कुम्हिलाजाते हैं तसेही वे भी कुम्हिलागय और तप्तचरणों से तपनेलगे और महाशोक को प्राप्त हुये। चरणों में डाभ के कण्टक लगे; मुख धूरसे धूसल होगये और तीनोंकष्टवान्हुये आगे चलकर उन्होंने तीन वृक्ष देखे जिनमें से दो तो उपजे नहीं और तीसरेका बीज भी नहीं बोयागया। उन तीनों ने एक२ वृक्षके नीचे आकर विश्राम किया—जैसे स्वर्ग में कल्पवृक्ष के नीचे इन्द्र और यम आ बैठें—और उनके फल भक्षण किये; फलोंको काटके रस पानकिया; उनके फूलों की माला गलेमें पहिरी और चिरकालपर्यन्त वहां विश्रामकर फिर दूरसे दूर चलेगये। इतनेमें मध्याह्न का समय हुआ उससे वे तपाय-मानहुये। आगे उन्होंने तीन नदियां देखीं और उनके निकटगये जो तरङ्गोंसे लीलाय-मान थीं। उन मेंसे दोमें तो कुछभी जल न था और तीसरी सूखी पड़ी थी। उनमें वे चिरकालपर्यन्त क्रीड़ा करते रहे—जैसे स्वर्गकी गङ्गामें ब्रह्मा,विष्णु और रुद्र कलोल करते हैं और जलपान किया। फिर जब दिन अस्तहोने लगा तब वहां से चले तो एक भविष्यत् नगरदेखा जो बड़ी ध्वजाओंसे सम्पन्न और रत्न मणि और सुवर्ण से जड़ा मानों सुमेरु का शिखर था। उसमें उन्होंने हीरे और माणिकों से जड़ाहुआ एक मन्दिर देखा जो निराकाररूप था। उसमें वे घुसगये तो वहां बहुत अङ्गना देखीं और फिर विचारकिया कि, रसोई कीजिये और ब्राह्मण को भोजन खवाइये। तब उन्होंने कञ्चन की तीन बटलोइयां मँगवाईं जिनमेंसे दोका करनेवाला तो उपजा नहीं अर्थात् आधार से रहित थीं और तीसरी चूर्णरूप थी। उस चूर्णरूप बटलोई में उन्हों ने सोलहसेर रसोई चढ़ाई और ब्रह्मा आदि विदेहरूप और निर्मुख ऋषियों ने भोजन किया। उससे उन्होंने सैकड़ों ब्राह्मणोंको भोजन कराय आपभी भोजन किया। इस प्रकार वह राजपुत्र आजतक सुखसे स्थित हैं। हे पुत्र! यह रमणीककथा मैंने तुझको सुनाई है। यदि तू इसको हृदय में धारेगा तो पण्डितहोगा। हे रामजी! इस प्रकार धात्री ने जब बालक को कथा सुनाई तब बालक के मनमें सच प्रतीति हुई। जैसे उस कथा का रूप संकल्प से भिन्न कुछ न था तैसेही यह जगत् सब संकल्पमात्रहै; अज्ञान से हृदय में स्थिर होरहाहै; भ्रमसे इसमें आस्था हुईहै और बन्ध, मोक्ष भी कल्पना-मात्रहै; संकल्प से भिन्न इसका स्वरूप नहीं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा निष्किञ्चनरूप है पर संकल्प के वशसे किञ्चनरूप हो भासताहै। पृथ्वी, वायु, आकाश, नदियां; देश आदिक जो पञ्चभौतिक सृष्टि हैं सो सब संकल्पमात्र हैं जैसे स्वप्नेमें नाना प्रकार की सृष्टि भासतीहै और कुछ नहीं उपजी तैसेही इस जगत् को जानो। जैसे कल्पित राजपुत्र भविष्यत् नगर में स्थितहुये थे और वह रचना संकल्प बालक को स्थिरीभूत हुई थी तैसेही यह जगत् संकल्पमात्र मनके फुरने से दृढ़ हुआहै। जैसे द्रवता से जो

जल में तरङ्ग होते हैं वह जलही जलहै तैसेही आत्माही आत्मा में स्थित है । यह सब जगत् संकल्प से उपजता है और बड़े विस्तार को प्राप्त होताहै जैसे दिन होने से सब व्यवहार विस्तार को प्राप्तहोते हैं तैसेही संकल्प से उपजा जगत् विस्तार को प्राप्तहोता है और चित्त का विलास है; चित्त के फुरनेही से भासता है । इससे; हे रामजी ! सङ्कल्परूपी मैल को त्याग करके निर्विकल्प आत्मतत्त्व का आश्रयकरो। जब उस पदमें स्थित होगे तब परम शान्ति की प्राप्तिहोगी ॥

इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्रकरणेबालकाख्यायिकावर्णनन्नामसप्तसप्ततितमस्सर्गः ७७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! मूढ़ अज्ञानी पुरुष अपने संकल्प से आपही मोह को प्राप्त होताहै और जो पण्डित है वह मोह को नहीं प्राप्त होता । जैसे मूर्ख बालक अपनी परिछाहीं में पिशाच कल्पकर भयपाताहै तैसेही मूर्ख अपनी कल्पना से दुःखी होताहै । रामजी बोले; हे भगवन् ! ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! वह संकल्प क्या है और छाया क्या है जो असत्यही सत्यरूप पिशाच की नाईं दीखती है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! पञ्चभौतिक शरीर परछाहींकी नाईं है क्योंकि; अपनी कल्पनासे रचाहै और अहंकाररूपी पिशाच है । जैसे मिथ्या परछाहीं में पिशाच को देखके मनुष्य भयवान् होता है तैसेही देहमें अहंकार को देखके खेद प्राप्त होताहै । हे रामजी ! एक परम आत्मा सर्वमें स्थितहै तब अहंकार कैसेहो ? वास्तवमें अहंकार कोई नहीं परमात्माही अभेदरूप है और उसमें अहंबुद्धि भ्रम से भासती है । जैसे मिथ्यादर्शी को मरुस्थल में जल भासताहै तैसेही मिथ्याज्ञान से अहंकार कल्पना होती है । जैसे मणि का प्रकाश मणिपर पड़ताहै सो मणिसे भिन्न नहीं, मणिरूपही है; तैसेही आत्मामें जगत् भासता है सो आत्मा ही में स्थितहै । जैसे जल में द्रवतासे चक्र और तरङ्ग हो भासते हैं सो जलरूपही हैं; तैसेही आत्मा में चित्तसे जो नानात्व हो भासता है सो आत्मा से भिन्न नहीं; असम्यक् दर्शन से नानात्व भासताहै । इससे असम्यक् दृष्टि को त्याग के आनन्दरूपका आश्रय करो और मोहके आरम्भको त्यागकर शुद्ध बुद्धि सहित विचारो और विचारसे सत्य ग्रहणकरो; असत्य का त्यागकरो । हे रामजी ! तुम मोहका माहात्म्य देखो कि, स्थूलरूप देह जो नाशवन्तहै उसके रखनेका उपाय करताहै पर वह रहता नहीं और जिस मनरूपी शरीरके नाशहुये कल्याण होताहै उसको पुष्ट करताहै । हे रामजी ! सब मोहके आरम्भ मिथ्या भ्रमसे दृढ़ हुयेहैं, अनन्त आत्मतत्त्व में कोई कल्पना नहीं; कौन किसको कहे । जो कुछ नानात्व भासता है वह है नहीं और जीव ब्रह्म से अभिन्न है । उस ब्रह्मतत्त्व में किसे बन्ध कहिये और किसे मोक्ष कहिये; वास्तव में न कोई बन्धहै न मोक्ष है क्योंकि; आत्मसत्ता अनन्तरूपहै । हे रामजी ! वास्तव में द्वैतकल्पना कोई नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें है । जो आत्मतत्त्व अनन्त

है वही अज्ञान से अन्यकी नाईं भासता है। जब जीव अनात्म में आत्माभिमान करता है तब परिच्छिन्न कल्पना होती है और शरीर को अच्छेदरूप जानके कष्टवान् होता है पर आत्मपद में भेद अभेद विकार कोई नहीं क्योंकि; वह तो नित्य, शुद्ध, बोध और अविनाशी पुरुष है। हे रामजी! आत्मा में न कोई विकार है; न बन्धनहै और न मोक्ष है क्योंकि; आत्मतत्त्व अनन्तरूप; निर्विकार, अछेद, निराकार और अद्वैतरूप है। उसको बन्ध विकार कल्पना कैसे हो? हे रामजी! देहके नष्ट हुये आत्मा नष्ट नहीं होता। जैसे चमड़ी में आकाश होताहै तो वह चमड़ी के नाशहुये नाश नहीं होता तैसेही देह के नाशहुये आत्मा नाश नहीं होता। जैसे फूल के नाश हुये गन्ध आकाश में लीन होती है; जैसे कमल पर बरफ पड़ता है तो कमल नष्ट होजाता है भ्रमर नाश नहीं होता और जैसे मेघ के नाश हुये पवन का नाश नहीं होता; तैसेही देह के नाशहुये आत्मा का नाश नहीं होता। हे रामजी! सबका शरीर मन है और वह आत्मा की शक्ति है; उसमें यह शरीर आदिक जगत् रचा है। उस मनका ज्ञान विना नाश नहीं होता तो फिर शरीर आदिके नष्ट हुये आत्मा का नाश कैसेहो? हे रामजी! शरीर के नष्ट हुये तुम्हारा नाश नहीं होगा, तुम क्यों मिथ्या शोकवान् होते हो? तुमतो नित्य, शुद्ध और शान्तरूप आत्माहो। हे रामजी! जैसे मेघ के क्षीणहुये पवन क्षीण नहीं होता और कमलों के सूखे से भ्रमर नष्ट नहीं होता तैसेही देहके नष्टहुये आत्मा नहीं नष्ट होता। संसार में क्रीड़ाकर्त्ता जो मनहै उसको संसार में नाश नहीं होता तो आत्मा का नाश कैसेहो? जैसे घट के नाश हुये घटाकाश नाश नहीं होता। हे रामजी! जैसे जलके कुण्ड में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है और उस कुण्ड के नाशहुये प्रतिबिम्ब नाश नहीं होता; यदि उस जल को और ठौर लेजायँ तो प्रतिबिम्ब भी चलता भासता है तैसेही देहमें जो आत्मा स्थित है सो देह के चलने से चलता भासता है। जैसे घटके फूटेसे घटाकाश महाकाश में स्थित होताहै तैसेही देह के नाश हुये आत्मा निरामयपद में स्थित होता है। हे रामजी! सब जीवों का देह मनरूपी है। जब वह मृतक होता है तब कुछ कालपर्यन्त देश, काल और पदार्थ का अभाव होजाता है और इसके अनन्तर फिर पदार्थ भासते हैं; उस मूर्च्छा का नाम मृतक है। आत्मा का नाश तो नहीं होता चित्तकी मूर्च्छा से देश, काल और पदार्थों के अभाव होने का नाम मृतक है। हे रामजी! संसार भ्रम के रचनेवाला जो मन है उसका ज्ञानरूपी अग्नि से नाश होता है; आत्मतत्त्व का नाश कैसेहो? हे रामजी! देश, काल और वस्तुमे मन का निश्चय विपर्ययभाव को प्राप्त होताहै; चाहो अनेक यत्नकरे परन्तु ज्ञान विना नष्ट नहीं होता। हे रामजी! कल्पित-रूप जन्म का नाश नहीं होता तो जगत् के पदार्थों से आत्मसत्ता का नाश कैसेहो?

इस लिये शोक किसी का न करना। हे महाबाहो! तुमतो नित्यशुद्ध अविनाशी पुरुष हो। यह जो संकल्प वासनासे तुममें जन्म मरण आदिक भासते हैं सो भ्रममात्र हैं। इससे इस वासनाको त्याग के तुम शुद्ध चिदाकाश में स्थित होजाओ। जैसे गरुड़ पक्षी अण्डा त्याग के आकाश को उड़ता है तैसेही वासना को त्याग करके तुम चिदाकाशमें स्थित होजाओ। हे रामजी! शुद्ध आत्मा में जो मनन फुरता है वही मन है; वह मननशक्ति इष्ट अनिष्ट से बन्धन का कारण है और वह मन मिथ्या भ्रान्ति से उदय हुआ है। जैसे स्वप्न द्रष्टा भ्रान्तिमात्र होता है तैसेही जाग्रत् सृष्टि भ्रान्तिमात्र है। हे रामजी! यह जगत् अविद्या से बन्धनमय और दुःख का कारण है और उस अविद्या को तरना कठिन है। अविचार से अविद्या सिद्ध है; विचार किये से नष्ट होती है। उसी अविद्या ने जगत् विस्तारा है। यह जगत् बरफ की दीवार है जब ज्ञानरूपी अग्निका तेज होगा तब निवृत्त होजावेगी। हे रामजी! यह जगत् आकाशरूप है; अविद्या भ्रान्ति दृष्टि से आकार हो भासता है और असत्य अविद्या से बड़े विस्तार को प्राप्त होता है। यह दीर्घस्वप्ना है; विचार किये से निवृत्त होजाता है। हे रामजी! यह जगत् भावनामात्र है; वास्तव में कुछ उपजा नहीं। जैसे आकाश में भ्रान्ति से मोर के पुच्छ की नाईं तरवरे भासते हैं तैसेही भ्रान्ति से जगत् भासता है। जैसे बरफ की शिला तप्तकरने से लीन होजाती है तैसेही आत्मविचार से जगत् लीन होजाता है। हे रामजी! यह जगत् अविद्या से बँधा है सो अनर्थ का कारण है। जैसे २ चित्त फुरता है तैसेही तैसे हो भासता है। जैसे इन्द्रजाली सुवर्ण की वर्षा आदिक माया रचता है तैसेही चित्त जैसा फुरता है तैसाही हो भासता है। आत्माके प्रमाद से जो कुछ चेष्टा मन करता है वह अपनेही नाश के कारण होती है। जैसे घुरान अर्थात् कुसवारी की चेष्टा अपनेही बन्धन का कारण होती है तैसेही मनकी चेष्टा अपने नाश के निमित्त होती है और जैसे नटवा अपनी क्रिया से नानाप्रकारके रूप धारता है तैसेही मन अपने संकल्प को विकल्प करके नानाप्रकार के भावरूपों को धारता है। जब चित्त अपने संकल्प विकल्प को त्यागकर आत्मा की ओर देखताहै तब चित्त नष्ट होजाता है और जबतक आत्मा की ओर नहीं देखता तबतक जगत् को फैलाता है सो दुःख का कारण होता है। हे रामजी! संकल्प आवरण को दूर करो तब आत्मतत्त्व प्रकाशेगा। संकल्प विकल्पही आत्मा में आवरण है। जब दृश्य को त्यागोगे तब आत्मबोध प्रकाशेगा। हे रामजी! मनके नाश में बड़ा आनन्द उदय होता है और मन के उदय हुये बड़ा अनर्थ होता है इससे मनके नाश करने का यत्न करो। मनके बढ़ाने का यत्न मत करो। हे रामजी! मनरूपी किसानने जगत्रूपी वन रचा है; उसमें सुखदुःखरूपी वृक्ष हैं और मनरूपी सर्प रहता है। जो विवेक से

रहित पुरुष हैं उनको वह भोजन करताहै। हे रामजी! यह मन परमदुःखका कारणहै; इससे तुम इस मनरूपी शत्रु को वैराग और अभ्यासरूपी खड्ग से मारो तब आत्मपद को प्राप्त होगे। इतना कहकर बालमीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सायंकाल का समय हुआ और सब श्रोता परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थान को गये और फिर सूर्यकी किरणों के उदय हुये अपने २ स्थान पर आबैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमननिर्वाणोपदेशवर्णन
न्नामाष्टसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह चित्तभी परमात्मा से उठे हैं। जैसे समुद्रमें लीला से जल कणिका होती हैं तैसेही परमात्मा से मन हुआ है। उस मनने बड़े विस्तार का जगत् रचा है जो कि, छोटेको बड़ा कर लेता है और बड़े को छोटा करता है; जो अपना आप रूप है उसको अन्य की नाईं दिखाता है और जो अन्यरूप है उसको अपना रूप दिखाता है अर्थात् आत्मा को अनात्मभाव प्राप्त करताहै और अनात्मा को आत्मभाव प्राप्त करता है। ऐसा भ्रान्तिरूप मन निकट वस्तु को दूर दिखाता और दूर वस्तुको निकट दिखाता है—जैसे स्वप्न में निकट वस्तु दूर भासती है और दूर वस्तु निकट भासती है। हे रामजी! मन एक निमेष में संसार को उत्पन्न करता और एक निमेष में ही लीन करलेना है। जो कुछ स्थावर—जङ्गमरूप जगत् भासताहै वह सब मनही से उपजा है और देश, काल, क्रिया और द्रव्य अनेक शक्ति विपर्ययरूप मनही दिखाता है और अपने फुरने से नाना प्रकार के भाव अभाव को प्राप्त होता है। जैसे नट लीला करके नाना प्रकार के स्वांग रचता और सच को झूठ और झूठ को सच दिखाता है तैसेही मनमें जैसा फुरना दृढ़ होता है तैसेही भासता है। जैसा २ निश्चय चञ्चल मन में होता है उनके अनुसार इन्द्रियां भी विचरती हैं। हे रामजी! जो मन से चेष्टा होती है वही सफल होती है, शरीर की चेष्टा मन विना सफल नहीं होती। जैसे जैसा बेल का बीज होता है वैसाही उसका फल होता है और प्रकार नहीं होता तैसेही जो कुछ मन में निश्चय होता है वही सफल होता है। जैसे बालक मृत्तिका की सेना बनाता है और नाना प्रकार के उसके नाम रखता है तैसेही मनभी संकल्प से जगत् रच लेता है। जैसे मट्टी की सेना मट्टी से भिन्न नहीं तैसेही आत्मा में जो नाना प्रकार का जगत् कल्पा है वह आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे संकल्प में मन नाना प्रकार अर्थों को कल्पता है तैसेही जाग्रत् जगत् भी भ्रम से कल्पा है। हे रामजी! एक गोपदमें मन अनेक योजन रचलेता है और कल्प का क्षण और क्षणका कल्प रच लेता है। जैसा कुछ मन में तीव्र संवेग होता है तैसाही होकर

भासता है, उसको रचनेमें विलम्ब नहीं लगता; जो कुछ देशकाल पदार्थ है वह मन से उपजे हैं और सब का कारणरूप मनही है । जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी वृक्ष से उपजे हैं वे वृक्षरूप हैं; जैसे समुद्र में लहरें होती हैं वे जलरूप हैं और जैसे अग्नि उष्णतारूप है, तैसेही नाना प्रकार के स्वभाव मन से उपजे दृष्ट आते हैं और सब मनरूप हैं । हे रामजी ! कर्त्ता-कर्म-क्रिया; द्रष्टा-दर्शन-दृश्य सब मन ही का फैलावाहै । जैसे सुवर्ण से नाना प्रकार के भूषण भासते हैं और जब सुवर्ण का ज्ञान हुआ तब सब भूषण एक सुवर्णही भासता है, भूषणभाव नहीं भासता तैसे ही; जब-तक आत्मा का प्रमाद है तबतक द्वैतरूप जगत् भासता है और जब आत्मज्ञान होताहै तब सब भ्रम मिटजाता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तमाहात्म्यवर्णनन्नामै
कोनाशीतितमस्सर्गः ॥ ७९ ॥

वशिष्ठजीबोले; हेरामजी ! अब एक वृत्तान्त जो पूर्वकाल में हुआहै तुमको सुनाता हूं । यह जगत् इन्द्रजालवत् है । जैसे मनरूपी इन्द्रजाल में यह जगत् स्थित है तैसे तुम सुनो । इस पृथ्वी में एक उत्तरपाद नाम देश था, उसमें एक बड़ा वन था और वहां नानाप्रकार के वृक्ष, फूल, फल और ताल थे जिन पर मोर आदिक अनेक प्रकार के पक्षी शब्द करतेथे । फूलों से सुगन्धें निकलती थीं और विद्याधर, सिद्धगण और देवता आनकर विश्राम करतेथे, किन्नर गान करते थे और मन्द२ पवन चलता था । निदान उस स्थान में महासुन्दर रचना बनी थी और स्वर्णवत् महाकल्प वृक्ष लगेथे । उस देश का लवण नाम राजा अति तेजवान् और धर्मात्मा राजा हरिश्चन्द्र के कुल में उपजा । उसका ऐसा तेजहुआ कि शत्रु उसका नाम स्मरणकरे तो उसको ताप चढ़ जावे और वह श्रेष्ठ पुरुषों की पालनाकरे । उस राजा के यशसे सम्पूर्ण पृथ्वी पूर्ण होगई और स्वर्ग में देवता और विद्याधर यश गाते थे । उस राजा में लोभ और कुटिलता न थी और वह बड़ा बुद्धिमान् और उदारथा । एक दिन सभा में बड़े ऊंचे सिंहासन पर वह बैठाथा और सुन्दर स्त्रियों का नृत्य होता था; अति-सुन्दर बाजे बजते थे और मधुरध्वनि होती थी । राजा के शीशपर चमर झुलताथा और मन्त्री और मण्डलेश्वरों की-सेना आगे खड़ी राजा को देशमण्डल की वार्त्ता सुनाती थी । इतिहास और कथा की पुस्तकें ढांपके उठारक्खी थीं और भाट स्तुति करते थे । केवल दो मुहूर्त्त दिन रहगया था कि, उस कालमें एक इन्द्रजाली बाजीगर आडम्बर संयुक्त सभा में आया और राजा से कहने लगा; हे राजन् ! आप मेरा एक कौतुक देखिये । इतना कहकर उसने अपना पिटारा खोला और उसमें से एक मोर की पूछ निकालकर घुमाने लगा । उससे राजा को नाना प्रकार की रचना भासने

लगी—मानो परमात्मा की माया है और नाना प्रकार के रङ्ग राजा ने देखे। उसीक्षण में किसी मण्डलेश्वर का दूत एक घोड़ा लेकर राजा के निकट आया और बोला; हे राजन्! यह महाबलवान् घोड़ा राजा ने आपको दियाहै। जैसे उच्चैःश्रवा इन्द्र का घोड़ा समुद्रमथने से निकला है तैसाही यह है और इसका पवन के सदृश वेग है। मेरे स्वामी ने कहाहै कि, जो उत्तम पदार्थ है वह बड़ेको देना चाहिये और यह आपके योग्य है इससे आप इसे ग्रहण कीजिये। तब इन्द्रजाली बोला; हे राजन्! आप इस घोड़े पर आरूढ़हों; इसपर चढ़कर आप शोभा पावैंगे। इतना सुन राजा घोड़े की ओर देख मूर्च्छित होगया और भयसे मन्त्रीभी उसे न जगावें और उसके हाथ पांव भी कुछ न हिलें। जैसे कीचड़में कमल अचल होता है तैसेही राजा अचल होगया और दो मुहूर्त्तपर्यन्त मूर्च्छित रहा। भाट और कवि जो स्तुति करतेथे वे सब चुप होरहे और मन्त्री और नौकर भय और संशयके समुद्रमें डूबगये और उन्होंने जाना; राजा के मनमें कोई बड़ी चिन्ता उपजी है और सब के सब अति आश्चर्यवान् थे॥

इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्रकरणे इन्द्रजालोपाख्यानेनृपमोहोनामाशीतितमस्सर्गः ८०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दोमुहूर्त्त के उपरान्त राजा चैतन्य हुआ और उसका अङ्ग हिलकर सिंहासन से गिरनेलगा, तब राजा के मन्त्री और २ नौकरों ने उसकी भुजा पकड़ के थांभा परन्तु राजा की बुद्धि व्याकुल होगई और बोले कि, यह नगर किस का है, यह सभा किसकी है और इसका कौन राजा है? जब इस प्रकार का वचन मन्त्रियों ने सुना तो शान्त हुये और प्रसन्न होकर कहने लगे; हे राजन्! आप क्यों व्याकुल हुये हैं? आपका मन तो निर्मल है और आप उदारात्मा हैं। जिन पुरुषों की प्रीति पदार्थों में होती है और आपातरमणीय भोगों में चित्तहै उनका मन मोह में भरजाता है और जो सन्तजन उदार हैं उनका चित्त निर्मल होता है। उनका मन मोह में कैसे पड़े? हे देव! जिनका चित्त भोगों की तृष्णा में बँधा है उनका मन मोह जाता और जो महापुरुष सन्तजन हैं उनका मन मोह में नहीं डूबता। जिनका चित्त पूर्ण आत्मतत्त्व में स्थित हुआ है और बड़ेगुणों से सम्पन्न हैं उनको शरीर के रहने और नष्ट होने में कुछ मोह नहीं उपजता; और जिनको आत्मतत्त्व का अभ्यास नहीं प्राप्तहुआ है और जो अविवेकी हैं उनका चित्त देश, काल, मंत्र और औषध के वश से मोह को प्राप्तहोता है। आपका चित्त तो विवेकभाव को ग्रहण करता है क्योंकि, आप नित्यही नूतन कथा और शब्द सुनतेहो। अब आप कैसे मोहसे चलायमान हुये हो? जैसे वायु से पर्वत चलायमान हो तैसेही आप चलायमान हुये हैं—यह आश्चर्य है! आप अपनी उदारता स्मरण कीजिये। इतना सुन कर राजा सावधान हुआ और उसके मुख की कान्ति उज्ज्वल हुई—जैसे

शरत्काल की सूखी हुई मञ्जरी वसन्त ऋतु में प्रफुल्लित होती है तैसेही, राजा नेत्रों को खोलकर देखने लगा और जैसे सूर्य राहु की ओर और सर्प नेवले की ओर देखता है तैसेही इन्द्रजाली की ओर देखकर बोला, हे दुष्ट इन्द्रजाली ! तूने यह क्या कर्म किया ? राजा से भी कोई ऐसा कर्म करता है ? जैसे जलविना मछली कष्ट पाके फिर जल में प्रसन्नहो तैसेही मैं हुआहूं । बड़ा आश्चर्य है परमात्मा की अनन्त शक्ति हैं और अनेक प्रकार के पदार्थ फुरतेहैं । मैंने दो मुहूर्त्त में क्याही भ्रम देखा । मेरा मन सदा ज्ञान के अभ्यास में था सोतो मोहगया तो प्राकृतजीवों का क्या कहनाहै ? मैंने बड़ा आश्चर्य भ्रम देखा है ! यह इन्द्रजाली मानों सम्बरदैत्य है कि, उसने दो मुहूर्त्त में मुझको अनेक देश, काल और पदार्थ दिखाये । जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्त्त में नाना प्रकार के पदार्थ रचलेवें तैसेही एक मुहूर्त्त में इसने मुझको अनेक भ्रम दिखाये हैं । मैं वह सब तुम्हारे आगे कहताहूं—मानों सारीसृष्टि इसके पिटारे में है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराजाप्रबोधोनामैकाशीतितमस्सर्गः ॥ ८१ ॥

राजा बोला; हे साधो ! मैं इस पृथ्वी का राजाहूं और सब पृथ्वी में मेरी आज्ञा चलती है और मैं इन्द्रजाली की नाईं सिंहासनपर बैठताहूं जैसे स्वर्ग में इन्द्र के आगे देवता होते हैं तैसेही मेरे आगे भृत्य और मन्त्री हैं । ऐसी उदारता से मैं सम्पन्न हूं पर मैंने बड़ा भ्रम देखा । हे साधो ! जब इस इन्द्रजाली ने पिटारे से मोर की पूंछ निकाल कर घुमाई तो वह मुझको सूर्य की किरणों की नाईं भासी और जैसे बड़ा मेघ गरज के शान्त होजाता है और पीछे इन्द्रधनुष दीखता है तैसेही वह विचित्ररूप पूंछ मुझको दीखी । फिर एक दूत घोड़ा लेकर आया उसपर मैं आरूढ़ हुआ और वह चित्तही से मुझको दूरसे दूर लेगया । जैसे भोगों की वासना से मूर्ख घरही बैठे दूरसे दूर भटकते फिरते हैं तैसेही मुझको वह घोड़ा दूरसे दूर लेगया । फिर वह मुझे एक महाभयानक निर्जन देश में लेगया जैसे प्रलयकाल के जले हुए स्थानों के समान था । वहां मानों दूसरा आकाश था और सातसमुद्र थे और उनके समान एक आठवां समुद्र था । चारोंदिशा के जो चार समुद्र वर्णन किये हैं उनके समान वह मानों पांचवां समुद्र था निदान वह मुझे महाभयानक स्थानों और देशों को लांघकर एक महावन में लेआया । जैसे ज्ञानी का चित्त आकाशवत् होता है और जैसे अज्ञानी का चित्त कठोर और शून्य होता है तैसेही स्थान में मुझे लेगया; जहां घास, वृक्ष, जीव, मनुष्य कोई भी दृष्टि न आता था वहां मैं महाकष्ट और दीनता को प्राप्त हुआ । जैसे धन और बान्धवों से और देश और बल से रहित पुरुष कष्ट पाता है तैसेही मैं कष्टवान् हुआ । तब दिन का अन्त होगया और वहां उजाड़ में कष्ट से मैंने रात बिताई और पृथ्वीपर सोया परन्तु निद्रा न आई

और दुःख से कल्पसमान रात्रि होगई। जब सूर्य उदय हुआ तब मैं वहां से चला और आगे गया तो पक्षियों का शब्द सुना और वृक्ष देखे परन्तु खाने पीने को कुछ न पाया। उन वृक्षों को देखके मैं प्रसन्न हुआ-जैसे मृत्यु से छुटा पुरुष रोग से भी प्रसन्नहो-और एक जामुन के वृक्ष के नीचे बैठ गया-जैसे मार्कण्डेय ऋषिने प्रलय के समुद्रमें भ्रमकर वटका आश्रय लियाथा। तब वह घोड़ा मुझको छोड़के चलागया और सूर्य अस्तहुआ तो मैंने वहां रात्रि बिताई परन्तु न कुछ भोजन किया और न जलपान किया और न स्नानही किया। इससे मैं महादीन हुआ। जैसे कोई बिका मनुष्य दीन होजाता है और जैसे अन्धकूप में गिरा मनुष्य कष्टवान् होता है तैसेही मैं कष्टवान् हुआ और कल्पके समान रात्रि बीती। जब वहां अन्नपानी कुछ दृष्टि न आया तब मैं आगे गया जहां पक्षी शब्द करते थे। उस समय आधा पहर दिन रहगया था तब एक कन्या मुझे दिखाई दी जो अपने हाथ में मृत्तिकाकी एक मटकी में पकेहुये चावल और जांबू के रसका भराहुआ पात्र लिये जातीथी मैं उसके सन्मुख आया-जैसे रात्रि के सन्मुख चन्द्रमा आता है और कहा कि, हे बाले! मुझको भोजनदे, मैं क्षुधा से आतुरहूं! जो कोई दीन आर्त्त को अन्न देता है वह बड़ी सम्पदा पाता है। हे साधो! जब मैंने बारम्बार कहा तब उसने कहा तुमतो कोई राजा भासते हो कि, नाना प्रकार के भूषण वस्त्र पहिने हुयेहो, मैं तुमको भोजन न दूंगी। ऐसे कह के वह आगे चली और मैंभी उसके पीछे जैसे छाया जावे तैसे चला। मैं कहता जाता था कि, हे बाले! मुझे भोजन दे कि, मेरी क्षुधा शान्त हो और वह कहती, हे राजन्! हम नीचलोग हैं अपने प्रयोजनविना किसीको भोजन नहीं देते; जो तुम मेरे भर्त्ताहो तो मैं तुमको यह अन्न जो अपने पिता के निमित्त लेचली हूं दूं। मेरा पिता मशान में वैताल की नाईं अवधूत हो बैठा है और धूरसे अङ्ग भरे हैं, जो तुम मेरे भर्त्ता बनो तो मैं देतीहूं क्योंकि; भर्त्ता प्राणोंसे भी प्यारा होताहै पिता से क्षमा करालूंगी। मैंने कहा अच्छा मैं तुझसे विवाह करूंगा पर मुझे भोजन दे। हे साधो! ऐसा कौन है जो ऐसी आपदा में अपने वर्णाश्रम के धर्म को दृढ़ रक्खे! उसने मुझ को आधा भोजन और आधा जांबूका रसदिया, उसे भोजनकर मैं कुछ शान्तिमान् हुआ परन्तु मेरा मोह निवृत्त न हुआ। तब उसने मेरे दोनों हाथ पकड़के मुझको आगे कर लिया और अपने पिता के निकट लेगई-जैसे पापी को यमदूत लेजाते हैं-और कहा, हे पिता! यह मैंने भर्त्ता किया है। उसके पिता ने कहा अच्छा किया और ऐसे कहकर चावल और जांबू के रस का भोजन किया। फिर उसके पिता ने कहा, हे पुत्री! इसको अपने घरलेजा। तब वह मुझको अपने घर लेगई और जब अपने घरके निकट गई तब मैंने देखा कि, वहां अस्थि, मांस और

रुधिर है और कुत्ते, गर्दभ, हस्ति आदिक जीवों की खालें पड़ी हैं। उनको लांघ कर वह मुझे अपने घर में लेगई-जैसे पापी को नरक में यमदूत लेजाते हैं। वहांसे एक बगीचा था उसमें जाकर वह अपनी माता के पास मुझे लेगई और कहा; हे माता! यह तेरा जामातृ हुआहै। माता ने कहा अच्छी बात है। निदान उनके घर हमने विश्रामकिया और उस चाण्डाली ने मुझको जो भोजन दिया उसको मैंने भोजन किया-मानों अनेक जन्मों के पाप भोगे। फिर विवाह का दिन नियत कियागया और उसदिन मैंने विवाह किया। चाण्डाल हँसते थे और नृत्य करते थे मानों मेरे पाप नृत्य करते थे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचाण्डालीविवाहवर्णनन्नामद्व्यशीतितमस्सर्गः ८२

राजा बोले हे साधो! बहुत क्या कहूं सात दिनतक विवाह का उत्साहरहा और फिर वहां मैं एक बड़ा चाण्डाल हुआ। आठमहीने वहां रहके फिर मैं और स्थानों में रहा। निदान वह चाण्डाली गर्भवती हुई और उससे एक कन्या उत्पन्नहुई जो शीघ्रही बढ़गई। तीन वर्ष पीछे एकबालक उत्पन्न हुआ और फिर एक पुत्र और एक कन्या और भी उपजी। इसी प्रकार उसके तीन पुत्र और तीन कन्या उत्पन्न हुईं और मैं एक बड़ा परिवारवान् चाण्डाल हुआ। उस चाण्डाली सहित मैं चिरकाल पर्यन्त चाण्डालों में विचरता रहा और जैसे जालमें पक्षी बँधजाताहै तैसे मैं उनमें बन्धवान् हुआ। हे साधो! उनमें मैंने बड़े कष्ट पाये, प्रथम जिस शिर में पटका भी चुभता था उसपर मैं भार उठाऊं; नीचे नंगे चरण जलें और शिरपर सूर्य तपें। रात्रि को मैं कांटों पर सोऊं; कोई वस्त्र न मिले और जीव जन्तुओं के लोहूसे भरेहुये और गीले पुराने कपड़े शिरहाने रक्खूं। कुक्कुट, हस्ती आदिक अशुचि पदार्थों का भोजन करूं और उनके रुधिर का पानकरूं। ऐसी मेरी चेष्टा होगई कि,जालसे पक्षी मारूं; कण्डी से मच्छ कच्छ आदिक पकड़ूं; अनेक प्रकार के क्रूर नीच कर्म करूं और जैसी कैसी वस्तु मिले उसे भोजन करूं; निदान ऐसी व्यवस्था होगई कि अस्थि मांसके निमित्त हम आपस में लड़े और शीतकाल में शीत से; उष्णकाल में उष्णता से कष्टवान् हों। इससे मेरा शरीर बहुत कृश होगया और अवस्था भी वृद्ध हुई; मशानों में हमारा बहुत काल व्यतीत हुआ और मांस और रक्त पान करते रहे। जो वैताल जन आवें उनको हम मारें-जैसे चण्डिका ने दैत्यों को माराथा और उनकी अंतड़े और चमड़े तले बिछाके सोवें और शिरके शिरहाने रक्खें। ऐसेही चिरकाल पर्यन्त हम चेष्टा करते रहे और बन्धुओं में बहुत स्नेह बढ़गया पर वर्षाकाल की नदीकी नाईं हमारी तृष्णा बढ़ती जाती थी जिन मृत्तिका के पात्रों में चाण्डाल भोजन करजाते थे उन्हीं वासनोंमें हमभी भोजन करते थे कालवशात् वर्षा बन्द होगई और कालपड़ा;

अन्तर्द्धान होगया और सभामें जो मन्त्री आदि बैठेथे सब आश्चर्यवान् हुये और परस्पर देखके कहनेलगे; बड़ा आश्चर्य है ! बड़ा आश्चर्य है ! भगवान् की माया विचित्ररूपहै। यह साम्बरी माया नहींहै क्योंकि; साम्बरी अपने लोभके निमित्त तमाशा दिखाताहै पीछे यत्न से धनआदिक पदार्थ मांगताहै पर यह लिये विनाही अन्तर्द्धान होगया । यह ईश्वर की माया है जिससे ऐसा विवेकवान् राजा मोहगया। जो ऐसा बड़ा तेजवान् और शूरमा राजा मोहित हुआ तो सामान्य जीवों की क्यावार्त्ताहै? हे रामजी! ऐसे संदेहवान् होकर सब स्थितहुये और मैंभी उससभा में बैठा था। यह वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखाहै किसीके मुखसे सुनके नहीं कहा । हे रामजी ! यह जो अणुरूप मन है सो महामोह और अविद्या है । इसके फुरनेसे अनेक प्रकारोंका मोह दीखताहै। जब यह मन उपशम हो तभी कल्याण है । इससे इस मनको जो बहुत कल्पना उठती हैं उनको त्यागकर आत्मपद में स्थितकरो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसाम्बरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनन्नाम चतुरशीतितमस्सर्गः ॥ ८४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! आदि जो शुद्ध परमात्मा से चित्त संवेदन फुरा है वह कलनारूप होके स्थित हुआहै; उसीसे दृश्य सत्य हो भासता है । आत्मा के प्रमाद से मोह में प्राप्तहुआहै और चित्त के फुरने से चिरपर्यन्त जगत् में मग्न होरहाहै। वह मन असत्यरूप है और उस मननेही सम्पूर्ण जगत विस्तारा है जिससे अनेक दुःखों को प्राप्त हुआहै । जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर आपही भयवान् होताहै । वही मन जब संसार की वासना को त्यागकर आत्मपद में स्थित होताहै; तब जैसेसूर्य की किरणोंसे अन्धकार नष्ट होजाताहै; तैसेही एकक्षण में सब दुःख नष्ट होजाते हैं । हे रामजी ! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो अभ्यास कियेसे प्राप्त न हो । इससे जब आत्मपद का अभ्यास कीजियेगा तब वह प्राप्तहोगा । आत्मपद के अभ्यास कियेसे आत्मा निकट भासताहै और संसार दूर भासता; और जब जगत्का अभ्यास दृढ़ होताहै तब जगत निकट भासताहै और आत्मा दूरभासताहै। हे रामजी! जो मूर्ख मनुष्य है उसको अभयपद में भय होता है। जैसे पथिकको दूरसे वृक्ष में वैतालकल्पना होती है और भय पाताहै तैसेही चित्तकी वासनासे जीव भय पाता है। हे रामजी ! वासना सहित मलीन मन में नाना प्रकार संसारभ्रम उठता है और जब आत्मपद में स्थित होता है तब भ्रम मिटजाता है । जैसा मन में निश्चय होता है तैसाही हो भासता है; यदि मित्र में शत्रु बुद्धि होती है तो निश्चय करके वह शत्रु होजाताहै और मद से उन्मत्त को सम्पूर्ण पृथ्वी भ्रमती दीखतीहै और व्याकुल होता है; तो चन्द्रमाभी श्यामसा भासता है । जो अमृत में विष की भावना होती है तो

अमृतभी विषकी नाईं भासताहै। यह जाग्रत् पदार्थ देश, काल और क्रिया मनसे भासते हैं। हे रामजी! संसार का कारण मोह है; उससे जीव भटकता है। इस लिये ज्ञानरूपी कुल्हाड़े से वासनारूपी मलीनता को काटो; आत्मपद पाने में वासनाही आवरण है। हे रामजी! वासनारूपी जाल में मनुष्यरूपी हरिण फँसकर संसाररूपी वन में भटकता है। जिस पुरुष ने विचारकरके वासना नष्ट की है उसको परमात्मा का प्रकाश भासता है। जैसे बादल से रहित सूर्य प्रकाशित होता है तैसेही वासना रहित चित्त में आत्मा प्रकाशता है। हे रामजी! मनही को तुम मनुष्य जानो; देह को मनुष्य न जानना क्योंकि; देह जड़ है और मन जड़ और चेतनसे विलक्षण है। मनसे कियाहुआ कार्य सफल होताहै। जो मनसे दिया और जो मनसे लिया है वही दिया और लियाहै और जो देहसे किया है वहभी मन ने ही किया है। हे रामजी! यह सम्पूर्ण जगत् मनरूप है। मनही पर्वत, आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी है सूर्यादिकों का प्रकाश मनही से होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सब मनही से ग्रहण होते हैं और नाना प्रकार की वासनाओं से नाना-प्रकार के रूप मनही धरता है। जैसे नटवा नाना प्रकार के स्वांग धारता है तैसेही नाना प्रकार के रूप मनही धरता है लघु पदार्थ को मनही दीर्घ करता है। सत्य को असत्य की नाईं और असत्य जगत् के पदार्थ को सत्य की नाईं मनही करता है; और मनही मित्र को शत्रु और शत्रुको मित्र करताहै। हे रामजी! जैसी वृत्ति मनकी दृढ़ होती है वही सत्य हो भासती है। हरिश्चन्द्र को एक रात्रि में बारह वर्ष का अनुभव हुआ था और इन्द्रको एक मुहूर्त्त में युगोंका अनुभव हुआ था और मनही के दृढ़ निश्चय से इन्द्र ब्राह्मण के दशोंपुत्र ब्रह्मपद को प्राप्त हुयेथे। हे रामजी! जो सुख से बैठेहुये को मनमें कोई चिन्ता आन लगी तो सुखही में उसको रौरव नरक हो जाताहै और जो दुःखमें बैठाहै और मनमें शान्त है तो दुःखभी सुख होताहै। इससे जैसा निश्चय मन में होताहै वैसाही हो भासता है और जिस ओर मन का निश्चय होताहै उसी ओर इन्द्रियों का समूह विचरता है। इन्द्रियों का आधारभूत मन है; जो मन टूटपड़ता है तो इन्द्रियां भिन्न २ होजातीहैं। जैसे तागेके टूटेसे माला के दाने भिन्न २ होजाते हैं तैसेही मनसे रहित इन्द्रियां अर्थोंसे रहित भिन्न होती हैं; वास्तव में आत्मतत्त्व सब में अधिष्ठान स्थित है और स्वच्छ, निर्विकार, सूक्ष्म, समभाव नित्य और सबका साक्षीभूत और सब पदार्थों का ज्ञाताहै। वह देहसेभी अधिकसूक्ष्म-रूप है अर्थात् अहंभाव के उत्थान से रहित चिन्मात्र है; उसमें मनके फुरनेसे संसार भासता है, वास्तव में द्वैतभ्रमसे रहित है। सब जगत् आत्मा का किञ्चिनमय रचा है और सब में चैतन शक्ति व्यापी है। वायु में स्पन्द; पृथ्वी में कठोरता; सूर्य और

अग्नि आदिक में प्रकाश; जल में द्रवता; और आकाश में शून्यता वही है और सब पदार्थों में वही चैतनशक्ति व्यापरही है। वास्तव में उसमें अनेकता नहीं है, मनसे भासती है; शुक्लपदार्थ को कृष्ण और देश, काल पदार्थ, क्रिया और द्रव्यको मनही विपर्यय करताहै। हे रामजी! जैसे निश्चय मन में दृढ़ होता है वही सिद्ध होता है और मन विना किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होता। हे रामजी! जिह्वा से नाना प्रकार के भोजन करता है परन्तु मन और ठौर होता है तो उसका कुछ स्वाद नहीं आता और नेत्रों से चित्त सहित देखता है तो रूप का ज्ञान होता है; इसकारण मन विना किसी इन्द्रिय का विषय सिद्ध नहीं होता और अन्धकार और प्रकाश भी मन विना नहीं भासते। हे रामजी! सब पदार्थ मनसे भासते हैं। जैसे नेत्रों में प्रकाश नहीं होता तो कुछ नहीं भासता तैसेही विद्यमान पदार्थ भी मन विना नहीं भासते। हे रामजी! इन्द्रियों से मन नहीं उपजा परन्तु मन से इन्द्रियां उपजी हैं और जो कुछ इन्द्रियों का विषय दृश्य जाल है वह सब मन से उपजा है। जिन पुरुषों ने मन वश किया है वही महात्मा पुरुष पण्डित हैं और उनको नमस्कार है। हे रामजी! यदि नाना प्रकार के भूषण और फूल पहिरे हुये स्त्री प्रीति से कण्ठ लगे पर जो चित्त आत्मपद में स्थित है तो वह मृतक के समान है अर्थात् उसको इष्ट अनिष्ट का राग द्वेष कुछ नहीं उपजता। इष्ट अनिष्ट में राग द्वेष मनही उपजाताहै; मन के स्थित हुये राग द्वेष कुछ नहीं उपजता। हे रामजी! एक बीतराग ब्राह्मण ध्यानस्थित वन में बैठाथा और उसके हाथ को कोई वनचर जीव तोड़लेगया परन्तु उसको कुछ कष्ट न हुआ क्योंकि; मन उसका स्थित था। यही मन फुरनेसे सुखको भी दुःख करताहै और अपने में स्थित हुये दुःखको भी सुख करताहै। हे रामजी! कथा के सुननेमें जो मन किसी और चिन्तवन में जाताहै तो कथा के अर्थ समझ में नहीं आते और जो अपने गृह में बैठाहै और मन के संकल्पसे पहाड़पर दौड़ता२ गिरपड़ताहै तो उसको प्रत्यक्ष अनुभव होताहै सो मनकाही भ्रम है। जैसी फुरना मन में फुरतीहै वही भासतीहै। जैसे स्वप्ने में एक क्षण में नदी पहाड़ आकाशादिक पदार्थ भासने लगतेहैं तैसेही यह पदार्थ भी भासते हैं। हे रामजी! अपने अन्तःकरण में सृष्टिभी मनके भ्रम से भासती है। जैसे जल के भीतर अनेक तरङ्ग होतेहैं और वृक्ष में पत्र, फूल, फल, टास होते हैं तैसेही एकमन के भीतर जाग्रत्, स्वप्न आदिक भ्रम होते हैं। जैसे सुवर्ण से भूषण अन्य नहीं होते तैसेही जाग्रत् और स्वप्न अवस्था भिन्न नहीं। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे जल से भिन्न नहीं और जैसे नटवा नाना प्रकार के स्वांगों को लेकर अनेकरूप धरता है तैसेही मन वासना से अनेकरूप धारता है। हे रामजी! जैसा स्पन्द में दृढ़ होता है तैसाही अनुभव होताहै। जैसे लवणराजा को भ्रमसे चाण्डाली का अनुभव हुआ था

तैसेही यह जगत् का अनुभव मनोमात्रहै; चित्त के भ्रम से भासता है। हे रामजी! जैसी२ प्रतिभा मन में होतीहै तैसाही तैसा अनुभव होताहै और यह सम्पूर्ण जगत् मनमात्र है। अब जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसे करो। जैसा २ फुरना मनमें होताहै तैसा २ हो भासताहै। मन के फुरने से देवता दैत्य और दैत्य देवता होजाते हैं और मनुष्य; नाग और वृक्ष होजाते हैं, जैसे लवणराजा ने आपदा का अनुभव कियाथा। हे रामजी! मन के फुरनेसेही मरना और जन्म होताहै और संकल्पसेही पुरुष से स्त्री और स्त्री से पुरुष होजाता; पिता; पुत्र होजाताहै और पुत्र; पिता होजाता है। जैसे नटवा शीघ्रही अपने स्वांग से अनेकरूप धरताहै; तैसेही अपने संकल्प से मन भी अनेकरूप धरता है। हे रामजी! जीव निराकार है पर मन से आकार की नाईं भासता है। उस मनमें जो मनन है वही मूढ़ताहै; उस मूढ़ता से जो वासना हुई है उस वासनारूपी पवन से यह जीवरूपी पत्र भटकताहै और संकल्प के वश हुआ सुख दुःख और भय को प्राप्त होता है। जैसे तेल तिलोंमें रहताहै; तैसेही सुख दुःख मनमें रहतेहैं। जैसे तिलोंको कोल्हूमें पेरनेसे तेल निकलता है तैसेही मनको मनके संयोग से सुख दुःख प्रकट भासते हैं। संकल्पदेश में काल-क्रिया से घनत्व होता है और देश काल आदिक भी मन में स्थित होते हैं। जिनका मन फुरताहै उनको नानाप्रकार का क्षोभवान् जगत् भासता है। हे रामजी! जिनका मन आत्मपदमें स्थितहै उनको क्षोभ भी दृष्ट आताहै परन्तु मन आत्मपद से चलायमान नहीं होता। जैसे घोड़े का सवार रण में जा पड़ता है तौभी घोड़ा उसके वश रहताहै; तैसेही उसका मन जो विस्तार की ओर जाताहै तौभी अपने वशही रहताहै। हे रामजी! जब मन की चपलता वैरागसे दूर होती है तब मन वश होजाताहै। जैसे बन्धनोंसे हस्ती वश होताहै तैसेही जिस पुरुषका मन वश होता है और संसारकी ओरसे निवृत्त होकर आत्मपदमें स्थित होताहै वह श्रेष्ठ महापुरुष कहाताहै। जिसका मन संसारकी ओर धावताहै वह दलदल का कीट है और जिस का मन अब पल है और शास्त्रके अर्थरूपी संग और संसारकी ओरसे निवृत्त होकर एकाग्रभाव में स्थित हुआ है और आत्मपद के ध्यानमें लगा हुआ है वह संसार के बन्धन से मुक्तहोता है। हे रामजी! जब मन से मनन दूर होताहै तब शान्ति प्राप्तहोती है-जैसे क्षीरसमुद्र से मन्दराचल निकला तो शान्त हुआ था। जिस पुरुष का मन भोगों की ओर प्रवृत्त होता है वह पुरुष संसाररूपी विषय के वृक्ष का बीज होताहै। हे रामजी! जिसका चित्त स्वरूपसे मूढ़हुआहै और संसारके भोगोंमें लगाहै वह बड़े कष्ट पाताहै। जैसे जलके चक्रमें आया तृण क्षोभवान् होताहै तैसेही यह जीव मनभाव को प्राप्तहुआ भ्रम पाताहै। इससे तुम इस मन को स्थित करो कि, शान्तात्मा हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तवर्णनन्नामपञ्चाशीतितमस्सर्गः॥ ८५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह चित्तरूपी महाव्याधि है, उसकी निवृत्ति के अर्थ मैं तुमको एक श्रेष्ठ औषध कहता हूं वह तुम सुनो कि; जिसमें यत्नभी अपना हो; साध्य भी आपही हो और औषधभी आप हो और सब पुरुषार्थ आपही से सिद्ध होता है। इस यत्नसे चित्तरूपी वैताल को नष्टकरो। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ तुमको रससंयुक्त दृष्टि आवें उनको त्याग करो। जबवाञ्छित पदार्थों का त्याग करोगे तब मनको जीत लोगे और अचलपद को प्राप्तहोगे। जैसे लोहे से लोहा कटताहै तैसेही मन से मन को काटो और यत्न करके शुभगुणों से चित्तरूपी वैताल को दूर करो। देहादिक अवस्तु में जो वस्तुकी भावना है और वस्तु आत्मतत्त्व में जो देहादिककी भावना है उनका त्यागकर आत्मतत्त्व में भावना लगाओ। हे रामजी! जैसे चित्त में पदार्थों की चिन्तना होती है तैसेही आत्मपद पानेकी चिन्तना से सत्यकर्म की शुद्धता लेकर चित्त को यत्न करके चैतन संवित् की ओर लगाओ और सब वासना को त्यागके एकाग्रता करो तब परमपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी ! जिन पुरुषों को अपनी इच्छा त्यागनी कठिन है वे विषयों के कीट हैं क्योंकि; अशुभ पदार्थ मूढ़ता से रमणीय भासते हैं। उस अशुभ को अशुभ और शुभ को शुभ जानना यही पुरुषार्थ है। हे रामजी! शुभ अशुभ दोनों पहलवान हैं; उन दोनों में जो बली होता है उसकी जय होती है। इससे शीघ्रही पुरुष प्रयत्न करके अपनें चित्त को जीतो। जब तुम अचित्त होगे तब यत्न विना आत्मपद को प्राप्त होगे। जैसे बादलों के अभाव हुये यत्न विना सूर्य भासता है तैसेही आत्मपद के आगे चित्त का फुरना जो बादलवत् आवरण है उसका जब अभाव होगा तब अयत्नसिद्ध आत्मपद भासेगा सो चित्त के स्थित करने का मन्त्र भी आप से होता है। जिसको अपने चित्त वश करने की भी शक्ति नहीं उसको धिक्कार है वह मनुष्यों में गर्दभ है। अपने पुरुषार्थ से मन का वश करना अपने साथ परम मित्रता करनी है और अपने मन के वश किये विना अपना आपही शत्रु है अर्थात् मन के उपशम किये विना घटी यन्त्र की नाईं संसारचक्र में भटकता है। जिन मनुष्यों ने मन को उपशम किया है उनको परमलाभ हुआ है। हे रामजी ! मन के मारने का मन्त्र यही है कि, दृश्यकी ओर से चित्तको निवृत्त करे और आत्मचेतन संवित् में लगावे; आत्मचिन्तना करके चित्त को मारना सुखरूप है। हे रामजी! इच्छा से मन पुष्ट रहता है। जब भीतर से इच्छा निवृत्त होती है तब मन उपशम होता है और जब मन उपशम; होता है तब गुरु और शास्त्रोंके उपदेश और मन्त्र आदिकोंकी अपेक्षा नहीं रहती। हे रामजी! जब पुरुष असंकल्परूपी औषध करके चित्तरूपी रोग काटे तब उस पद को प्राप्त हो जो सर्व और सर्वगत शान्तरूप है। इस देह को निश्चय करके मूढ़ मन ने

कल्पा है। इससे पुरुषार्थ करके चित्त को अचित्त करो तब इस बन्धन से छुटोगे। हे रामजी! शुद्ध चित्त आकाश में यत्न करके चित्तको लगाओ। जब चिरकाल पर्यन्त मन का तीव्र संवेग आत्मा की ओर होगा तब चैतन चित्त का भक्षण करलेगा और जब चित्तका चिन्तत्व निवृत्त होजावेगा तब केवल चैतनमात्रही शेष रहेगा। हे रामजी! जब जगत् की भावना से तुम मुक्त होगे तब तुम्हारी बुद्धि परमार्थतत्त्व में लगेगी अर्थात् बोधरूप होजावेगी। इससे इस चित्तको चित्तसे ग्रास करलो; जब तुम परम पुरुषार्थ करके चित्त को अचित्त करोगे तब महा अद्वैतपदको प्राप्तहोगे। हे रामजी! मनके जीतनेमें तुम को और कुछ यत्न नहीं केवल एक संवेदनका प्रवाह उलटनाहै कि; दृश्य की ओरसे निवृत्त करके आत्मा की ओर लगाओ; इसीसे चित्त अचित्त होजावेगा। चित्त के क्षोभ से रहित होना परमकल्याण है; इससे क्षोभ से रहित हो जाओ। जिसने मनको जीताहै उसको त्रिलोकी का जीतना तृणसमानहै। हे रामजी! ऐसे शूरमा हैं जोकि, शस्त्रों के प्रहार सहते हैं; अग्नि में जलना भी सहते हैं और शत्रुको मारते हैं तब स्वाभाविक फुरने के सहने में क्या कृपणता है? हे रामजी! जिनको अपने चित्त के उलटाने की सामर्थ्य नहीं वे नरों में अधमहैं। जिनको यह अनुभव होता है कि, मैं जन्माहूं; मैं मरूंगा और मैं जीवहूं; उनको वह असत्यरूप प्रमाद चपलता से भासता है। जैसे कोई किसी स्थान में बैठाहो और मनके फुरने से और देश में कार्य करनेलगे तो वह भ्रमरूप है; तैसेही आपको जन्म मरण भ्रम से मानता है। हे रामजी! मनुष्य मनरूपी शरीरसे इस लोक और परलोकमें मोक्ष होने पर्यन्त चित्तमें भटकता है। जो चित्तभी मोक्ष पर्यन्त नाश नहीं होता तो तुम को मृत्यु का भय कैसे होता है? तुम्हारा स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध और सर्व विकार से रहित है। यह लोक आदिक भ्रम चित्त में मन के फुरने से उपजा है; मन से भिन्न चित्त का कुछ रूप नहीं। पुत्र, भाई, नौकर आदिक जो स्नेह के स्थान हैं और उन के क्लेशसे आपको क्लेशित मानते हैं वह भी चित्तसे मानते हैं। जब चित्त अचित्त होजावे तब सर्व बन्धनसे मुक्तहो। हे रामजी! मैंने अध ऊर्ध्व सर्वस्थान देखे हैं; सब शास्त्र भी देखेहैं और उनको एकान्त में बैठकर बारम्बार विचाराभी है; शान्त होनेका और कोई उपाय नहीं; चित्त का उपशम करनाही उपाय है। जबतक चित्त दृश्य को देखता है तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती और जब चित्त उपशम होता है तब उसपद में विश्राम होताहै जो नित्य, शुद्ध, सर्वात्मा और सब के हृदय में चैतन आकाश परम शान्तरूपहै। हे रामजी! हृदयाकाश में जो चैतन चक्र है अर्थात् जो ब्रह्माकार वृत्ति है उसकी ओर जब मन का तीव्र संवेगहो तब सबही दुःखों का अभाव होजावे। मन का मननभाव उसी ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्रसे नष्ट होताहै। हे रामजी! संसारके भोग

जो मन से रमणीय भासते हैं वे जब रमणीय न भासें तब जानिये कि, मन के अङ्ग कटे। जो कुछ अहं और त्वं आदि शब्दार्थ भासतेहैं वे सब मनोमात्र हैं । जब दृढ़ विचार करके इनकी अभावना हो तब मनकी वासना नष्ट हो । जैसे हँसियेसे खेती कट जाती है तैसेही वासना नष्ट होनेसे परमतत्त्व शुद्ध भासता है। जैसे घंटाके अभावहुये से शरद् काल का आकाश निर्मल भासता है तैसेही वासना से रहित मन शुद्ध भासेगा। हे रामजी! मनही जीव का परमशत्रु है और इच्छा संकल्प करके पुष्ट होजाता है। जब इच्छा कोई न उपजे तब आपही निवृत्त होजावेगा। जैसे अग्नि में काष्ठ डालिये तो बढ़जाती है और यदि न डालिये तो आपही नष्ट होजाती है। हे रामजी! इस मन में जो संकल्प कल्पना उठती है उसका त्यागकरो तब तुम्हारा मन स्वतः नष्ट होगा। जहां शस्त्र चलते हैं और अग्नि लगती है वहां शूरमा निर्भय होके जापड़ते हैं और शत्रुको मारते हैं; प्राणजाने का भय नहीं रखते तो तुमको संकल्प त्यागने में क्या भय होताहै? हे रामजी! चित्त के फैलाने से अनर्थ होताहै और चित्त के अस्फुरण हुये से कल्याण होताहै—यह वार्त्ता बालकभी जानता है । जैसे पिता बालक को अनुग्रह करके कहताहै, तैसेही मैंभी तुमको समझाताहूं कि; मनरूपी शत्रु ने भय दिया है और संकल्प कलना से जितनी आपदा हैं वे मनसे उपजती हैं। जैसे सूर्य की किरणों से मृगतृष्णा का जल दीखता है; तैसेही सब आपदा मनसे दीखती हैं। जिसका मन स्थिर हुआहै उसको कोई क्षोभ नहीं होता। हे रामजी! प्रलयकाल का पवन चले; सप्त समुद्र मर्यादा त्यागके इकट्ठे होजावें और द्वादश सूर्य इकट्ठे होके तपें तौभी मन से रहित पुरुष को कोई विघ्न नहीं होता—वह सदा शान्तरूप है। हे रामजी! मनरूपी बीज है, उससे संसारवृक्ष उपजा है; सातलोक उसके पत्र हैं और शुभ अशुभ सुख दुःख उसके फल हैं । वह मन संकल्प से रहित नष्ट होजाता है और संकल्प के बढ़ने से अनर्थ का कारण होता है । इससे संकल्पसे रहित उस चक्रवर्ती राजपद में आरूढ़ हुआ परमपद को प्राप्तहोगा जिस पद में स्थितहुये चक्रवर्ती राजा तृणवत् भासता है। हे रामजी! मनकेक्षीण होनेसे जीव उत्तम परमानन्द पद को प्राप्त होता है। हे रामजी! सन्तोष से जब मन वश होता है तब नित्य, उदयरूप, निरीह, परमपावन, निर्मल, सम, अनन्त और सर्वविकार विकल्पसे रहित जो आत्मपद शेष रहता है वह तुमको प्राप्तहोगा ॥

इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्र० मनशक्तिरूपप्रतिपादनन्नामषडशीतितमस्सर्गः ॥८६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिसके मनमें तीव्र संवेग होताहै उसको मन देखताहै। अज्ञान से जो दृश्य का तीव्र संवेग हुआहै उससे चित्त जन्म मरणादिक विकार देखता है और जिसका निश्चय मन में दृढ़होताहै उसीका अनुभव करता है; जैसा मन का

फुरना फुरता है तैसाही रूप होजाता है। जैसे बरफ का शीतल और शुक्लरूप है और काजल का कृष्णरूप है; तैसेही मन का चञ्चलरूप है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे ब्रह्मन्! यह मन जो वेग अवेग का कारण चञ्चलरूप है उस मनकी चपलता कैसे निवृत्त हो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तुम सत्य कहते हो; चञ्चलता से रहित मन कहीं नहीं दीखता क्योंकि; मन का चञ्चल स्वभावही है। हे रामजी! मन में जो चञ्चलता फुरना मानसी शक्ति है वही जगत् आडम्बर का कारणरूपहै। जैसे वायु का स्पन्दरूपहै तैसेही मन का चञ्चलरूप है। जिसका मन चञ्चलतासे रहित है। उसको मृतक कहतेहैं। हे रामजी! तप और शास्त्र का जो सिद्धान्त है वह यही है कि; मन के मृतकरूपको मोक्ष कहते हैं; उसके क्षीण हुये सब दुःख नष्ट होजाते हैं। जब चित्त-रूपी राक्षस उठताहै तब बड़े दुःख को प्राप्त होताहै और चित्तके लय हुये अनन्त सुखभोग प्राप्तहोते हैं अर्थात् परमानन्दस्वरूप आत्मपद प्राप्त होताहै। हे रामजी! मन में चञ्चलता अविचार से सिद्ध है और विचारसे नष्ट होजातीहै। चित्त की चञ्च-लतारूप जो वासना भीतर स्थित है जब वह नष्ट हो तब परमसार की प्राप्ति हो; इससे यत्न करके चपलतारूपी अविद्या का त्यागकरो। जब चपलता निवृत्त होगी तब मन शान्त होगा। सत्य, असत्य और जड़, चैतन के मध्य जो डोलाय शक्ति है उसका नाम मन है। जब यह तीव्रता से जड़ की ओर लगता है तब आत्मा के प्र-माद से जड़रूप होजाता है; अर्थात् अनात्म में आत्म प्रतीति होती है और जब विवेक विचारमें लगता है तब उस अभ्यास से जड़ता निवृत्त होजाती है। और केवल चैतन आत्मतत्त्व भासता है। जैसा अभ्यास दृढ़ होताहै तैसाही अनुभव इसको होताहै और जैसे पदार्थ की एकता चित्त में होती है अभ्यास के वश से तैसा ही रूप चित्त होजाता है। हे रामजी! जिस पद के निमित्त मन पुरुष प्रयत्न करताहै उस पदको प्राप्त होताहै और अभ्यासकी तीव्रतासे भावितरूप होजाता है। इसीका-रण तुम से कहताहूं कि, चित्त को चित्त से स्थिरकरो और अशोकपद का आश्रय करो। जो कुछ भाव अभावरूप संसार के पदार्थ हैं वे सब मन से उपजे हैं; इससे मनके उपशम करने का प्रयत्न करो; मनके उपशम विना छूटनेका और कोई उपाय नहीं और मन को मनही निग्रह करताहै और कोई नहीं करसक्ता। जैसे राजा से राजाही युद्धकरताहै और कोई नहीं करसक्ता; तैसेही मनसे मनही युद्धकरताहै। इससे तुम मनहीसे मन को मारो कि; शान्ति को प्राप्तहो। हे रामजी! मनुष्य बड़े संसार समुद्र में पड़ा है जिसमें तृष्णारूपी सिवार ने इसको घेरलिया है; इस कारण अधः को चलाजाताहै और राग, द्वेषरूपी भवँर में कष्ट पाताहै। उससे तरने के निमित्त मनरूपी नाव है, जब शुद्ध मनरूपी नावपर आरूढ़ हो तब संसार समुद्र के पार

उतरे; अन्यथा कष्ट को प्राप्त होताहै । हे रामजी ! अपना मनही बन्धनका कारणहै, उस मन को मनहीसे छेदनकरो और दृश्य की ओर जो सदा धाता है उससे वैराग्य करके आत्मतत्त्व का अभ्यास करो तब छुटोगे; और उपाय छूटने का नहीं । जहां जैसी वासना से मन आशा करके उठे उसको वहांही बोध करके त्यागेसे तुम्हारी अविद्या नष्ट होजावेगी । हे रामजी ! जब प्रथम भोगों की वासनाका त्याग करोगे तब यत्न विनाही जगत् की वासना छूट जावेगी । जब भाव अभावरूप जगत् का त्याग किया तब निर्विकल्प सुखरूप होगा । जब सब दृश्यभाव पदार्थों का अभाव होताहै तब भावना करनेवाला मन भी नष्ट होताहै । हे रामजी ! जो कुछ संवेदन फुरता है उस संवेदन का होनाही जगत् है और असंवेदन होनेका नाम निर्वाण है संवेदन होनेसे दुःखहै, इससे प्रयत्न करके संवेदन का अभावही कर्त्तव्य है । जब भावना की अभावना हो तब कल्याण हो । जो कुछ भाव अभाव पदार्थों का राग द्वेष उठता है वह मन के अबोध से होताहै पर वे पदार्थ मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या हैं । इससे इनकी आस्था को त्यागकरो, ये सब अवस्तुरूप हैं और तुम्हारा स्वरूप नित्य तृप्त अपने आपमें स्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसुखोपदेशवर्णनन्नामसप्ताशीतितमस्सर्गः ॥ ८७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह वासना भ्रान्ति से उठी है । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रान्ति से भासताहै तैसेही आत्मा में जगत् भ्रान्ति से भासताहै-इसकी वासना दूरसे त्यागकरो । हे रामजी ! जो ज्ञानवान् हैं उनको जगत् नहीं भासता और जो अज्ञानी हैं उनको अविद्यमान ही विद्यमान भासताहै और संसार नाम से संसार को अङ्गीकार करता है । ज्ञानवान् सम्यक्दर्शी को आत्मतत्त्व से भिन्न सब अवस्तुरूप भासता है । जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्ग और बुद्बुदे होके भासता है परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं तैसेही अपनेही विकल्प से भाव अभावरूप जगत् देखताहै; जो वास्तवमें असत्यरूप है क्योंकि, आत्मतत्त्वही अपने स्वरूप में स्थितहै जो नित्य, शुद्ध सम और अद्वैत तुम्हारा अपना आप है न तुम कर्त्ता हो, न अकर्त्ता हो; कर्त्ता, अकर्त्ता; ग्रहण, त्याग; भेद को लेकर कहाता है । तुम दोनों विकल्पों को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो और जो कुछ क्रिया आचार आप्राप्त हों उनको करो पर भीतर से अनासक्त हो अर्थात् अपनेको कर्त्ता और भोक्ता मत मानो क्योंकि; कर्त्तव्य आदिक तब होतेहैं जब कुछ ग्रहण वा त्यागकरना होताहै और ग्रहण त्याग तब होताहै जब पदार्थ सत्य भासता है पर ये सब पदार्थ तो मिथ्या इन्द्रजाल की मायावत् हैं । हे रामजी ! मिथ्या पदार्थों में आस्था करनी और उसमें ग्रहण और त्याग

करना क्या है ? सब संसार का बीज अविद्या है और वह अविद्या स्वरूप के प्रमाद से अविद्यमान ही सत्य की नाईं हो भासतीहै। हे रामजी ! चित्त में चैत्यमय वासना फुरतीहै सोही मोहका कारण है। संसाररूपी वासना का चक्र है; जैसे कुम्हार चक्रपर चढ़ाके मृत्तिका से अनेक प्रकारके घटआदिक बरतन रचता है तैसेही चित्त से जो चैत्यमय वासना फुरतीहै वह संसार के पदार्थों को उत्पन्न करतीहै। यह अविद्यारूपी संसार देखनेमात्र बड़ासुन्दर भासताहै पर जैसे बांस बड़े विस्तार को प्राप्त होताहै और भीतर से शून्य है तैसेही यहभी भीतर से शून्य है और जैसे केले का वृक्ष देखने को विस्तार सहित भासता है और उसके भीतर सार कुछ नहीं होता तैसेही संसार असाररूप है। जैसे नदी का प्रवाह चलाजाता है तैसेही संसार नाशरूप है हे रामजी ! इस अविद्या को पकड़िये तो कुछ ग्रहण नहीं होता; कोमल भासती है पर अत्यन्त क्षीणरूप है और प्रकट आकार भी दृष्टि आते हैं पर मृगतृष्णा के जलसमान असत्यरूप है। अविद्या-माया जिससे यह जगत् उपजता है, कहीं विकार है; कहीं स्पष्ट है और कहीं दीर्घरूप भासती है और आत्मा से व्यतिरेक भाव को प्राप्त होती है। जड़ है परन्तु आत्मा की सत्ता पाके चैतन होती है और चैतनरूप भासती है तौभी असत्यरूप है। एकनिमेष के भूलने से वह बड़े भ्रम को दिखाती है। जहां निर्मल प्रकाशरूप आत्मा है उस में तम दिखाती कि, मैं आत्मा नहीं जानता। जैसे उलूक को सूर्य में अन्धकार भासता है तैसेही मूर्खों को अनुभवरूप आत्मा नहीं भासता, जगत् भासता है जो असत्यरूप है। जैसे मृगतृष्णा की नदी विस्तार सहित भासती है तैसेही अविद्या नानारङ्ग, विलास, विकार, विषम, सूक्ष्म, कोमल और कठिनरूप है और स्त्री की नाईं चञ्चल और क्षोभरूप सर्पिणी है; जो तृष्णारूपी जिह्वासे मारडालती है। वह दीपक की शिखावत् प्रकाशमान है। जैसे जबतक स्नेह होता है तबतक दीपशिखा प्रज्वलित होती और जब तेल चुकजाता है तब निर्वाण होजाती है तैसेही जबतक भोगों में प्रीति है तबतक अविद्या वृद्ध है और जब भोगों में स्नेह क्षीण होताहै तब नष्ट होजाती है। रागरूपी अविद्या तृष्णा विना नहीं रहती और भोगरूप प्रकाश बिजली की नाईं चमत्कार करती है। इनके आश्रय में जो कार्य करो तो नहींहोता, क्षणभंगुररूप हैं। जैसे बिजली मेघ के आश्रय है तैसेही अविद्या मूर्खों के आश्रय रहती है और तृष्णा देनेवाली है। भोग पदार्थ बड़े यत्न से प्राप्त होते हैं और जब प्राप्त हुये तब अनर्थ उत्पन्न करते हैं। जो भोगों के निमित्त यत्न करते हैं उनको धिक्कार है क्योंकि; भोग बड़े यत्न से प्राप्त होते हैं और फिर स्थिर भी नहीं रहते बल्कि अनर्थ उत्पन्न करते हैं। उनकी तृष्णा करके जो भटकते हैं वे महामूर्ख हैं। हे रामजी ! ज्यों २ इनका

स्मरण होता है त्यों २ अनर्थ होते हैं और ज्यों २ इनका विस्मरण होता है त्यों २ सुख होता है। इसकारण अत्यन्त सुख का निमित्त इनका विस्मरण है और स्मरण दुःख का निमित्त है। जैसे किसी को क्रूर स्वप्न आता है तो उसके स्मरणमें कष्टवान् होता है और जैसे और किसी उपद्रव प्राप्त होने की स्मृति में अनर्थ जानता है; तैसेही अविद्या जगत् के स्मरण में अनर्थ कष्ट होता है। अविद्या एक मुहूर्त्त में त्रिलोकी रचिलेती है और एकक्षण में ग्रासकरलेती है। हे रामजी! स्त्रीके वियोगी और रोगी पुरुष को रात्रि कल्प की नाईं व्यतीत होती है और जो बहुत सुखी होता है उस को रात्रि क्षण की नाईं व्यतीत होजाती है। काल भी अविद्या प्रमाद से विपर्ययरूप होजाता है। हे रामजी! ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो अविद्या से विपर्यय न हो। शुद्ध, निर्विकार, निराकार, अद्वैततत्त्व में इसके कर्तृत्व भोक्तृत्वका स्पन्द फुरता है। हे रामजी! यह सब जगत्जाल तुमको अविद्या से भासता है। जैसे दीपक का प्रकाश चक्षु इन्द्रियों को रूप दिखाता है तैसेही अविद्या जिन पदार्थों को दिखाती है वह सब असत्यरूप हैं जैसे नानाप्रकार की सृष्टि मनोराज में है और जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है और उनमें अनेक शाखासंयुक्त वृक्ष भासते हैं वे सब असत्यरूप हैं तैसेही यह जगत् असत्यरूप है जैसे मृगतृष्णा की नदी बड़े आडम्बरसहित भासती है तैसेही यह जगत् भी है। जैसे मृगतृष्णा की नदी को देखके मूर्ख मृगजाय पान के निमित्त दौड़ते हैं और कष्टवान् होते हैं, तैसेही जगत् के पदार्थों को देखकर अज्ञानी दौड़के यत्न करते हैं और ज्ञानवान् तृष्णा के लिये यत्न नहीं करते। ज्यों २ मूर्ख मृग दौड़ते हैं त्यों २ कष्टपाते हैं, शान्ति नहीं पाते; तैसेही अज्ञानी जगत् के भोगों की तृष्णा करते हैं परन्तु शान्ति नहीं पाते। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे सुन्दर भासते हैं परन्तु ग्रहण किये से कुछ नहीं निकलते तैसेही शान्ति का कारण जगत् में सार पदार्थ कोई नहीं निकलता। जड़रूप अविद्या चिदाकार हुईहै, वह चैतनसे अभिन्नरूप है परन्तु भिन्न की नाईं स्थित हुई है। जैसे मकड़ी अपनी तन्तु फैलाकर फिर अपने में लीनकरलेती है, वह उससे अभिन्नरूप है परन्तु भिन्न की नाईं भासती है और जैसे अग्नि से धूम निकलकर बादल का आकार हो रस खैंचता है और मेघ होकर वर्षा करता है तैसेही अविद्या आत्मा से उपजकर और आत्मा की सत्ता पाकर जगत् रचती है उस जगत् में यह जीव घटीयन्त्र की नाईं भटकता है। जैसे रस्सी से बँधीहुई टीड़ी ऊपर नीचे भटकती है तैसेही तीनों गुणों की वासना से बँधा हुआ जीव भटकता है। जैसे कीचड़ से कमल की जड़ उपजती है और उसके भीतर छिद्र होते हैं तैसेही अविद्यारूपी कीचड़ से यह जगत् उपजा है और विकाररूपी दृश्य इसमें छिद्र हैं—सारभूत इसमें कुछ नहीं। जैसे अग्नि; घृत और ईंधन के संयोग से

बढ़ती जाती है तैसेही अविद्या विषयों की तृष्णा से बढ़ती जाती है। जैसे घृत और ईंधन से रहित अग्नि शान्त होजाती है तैसेही तृष्णा से रहित अविद्या शान्त हो-जाती है। जब विवेकरूपी जल पड़े और तृष्णारूपी घृत न पड़े तब अग्निरूपी अ-विद्या नष्ट होजाती है—अन्यथा नहीं नष्ट होती। हे रामजी! यह अविद्या दीपक की शिखा तुल्य है और तृष्णारूपी तेल से अधिक प्रकाशवान् होती है। जब तृष्णारूपी तेल से रहित हो और विवेकरूपी वायु चले तब दीपक शिखारूप निर्वाण होजावेगी और न जानियेगा कि, कहां गई अविद्या कुहिरे की नाईं आवरण करती भासती है परन्तु ग्रहण करिये तो कुछ हाथ नहीं आती; देखनेमात्र स्पष्ट दृष्टि आती है परन्तु विचार किये से अणुमात्र भी नहीं रहती। जैसे रात्रि को बड़ा अन्धकार भासता है परन्तु जब दीपक लेकर देखिये तब अणुमात्र भी अन्धकार नहीं दीखता तैसेही विचार किये से अविद्या नहीं रहती। जैसे भ्रान्ति से आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है; जैसे स्वप्न की सृष्टि भासती है, जैसे नावपर चढ़े से तट के वृक्ष चलते भासते हैं और जैसे मृगतृष्णा की नदी, सीपी में रूपा और रस्सी सर्प भ्रम से भासते हैं तैसेही अविद्यारूपी जगत् अज्ञानी को सत्य भासता है। हे रामजी! यह जाग्रत् जगत्भी दीर्घकाल का स्वप्ना है। जैसे सूर्य की किरणों में जलबुद्धि मृग के चित्त में आती है तैसेही जगत् की सत्यता मूर्ख के चित्तमें रहती है। हे रामजी! जिन पुरुषों को पदार्थों में रति होरही है, उनकी भावना से उनका चित्त खिंचता है और उन पदार्थों को अङ्गीकार करके बड़े कष्ट पाता है। जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है पर दाने में उसकी प्रीति होती है उससे चुगने के निमित्त पृथ्वीपर आता है और सुखरूप जानके चुगने लगता है तो जाल में फँसता है और कष्टवान् होता है। जैसे कण की तृष्णा पक्षी को दुःख देती है तैसेही जीवों को भोगों की तृष्णा दुःख देती है। हे रामजी! ये भोग प्रथम तो अमृत की नाईं सुखरूप भासते हैं परन्तु परिणाम में विष की नाईं होते हैं; मूर्ख अज्ञानी को ये सुन्दर भासते हैं। जैसे मूर्खपतङ्ग दीपक को सुखरूप जानके वाञ्छा करता है परन्तु जब दीपक से स्पर्श करता है तब नाश को प्राप्त होताहै तैसेही भोगों के स्पर्श से ये जीव नाश होते हैं। जैसे संध्याकाल आकाश में लाली भासती है तैसेही अविद्या से जगत् भासता है। जैसे भ्रम से दूर वस्तु नि-कट भासती है और निकटवस्तु दूर भासती है; और स्वप्ने में बहुतकाल में थोड़ा और थोड़ेकाल में बहुत भासता है तैसेही यह सब जगत्जाल अविद्या हो भासता है। वह अविद्या आत्मज्ञान से नष्ट होती है इससे यत्न करके मन के प्रवाह को रोको। हे रामजी! जो कुछ दृश्यमानजगत् है वह सब तुच्छरूप है, बड़ा आश्चर्य है कि; मिथ्याभावना करके जगत अन्ध हुआ है। हे रामजी! अविद्या निराकार और शून्य

है; उसने सत्य होकर जगत् को अन्धाकियाहै अर्थात् संसारीलोग असत्रूप पदार्थों को सत् जानके यत्न करतेहैं। जैसे सूर्य के प्रकाश में उल्लू को अन्धकार भासताहै और भ्रान्ति से सूर्य उसको नहीं भासता। तैसेही चिदानन्द आत्मा सदा अनुभव से प्रकाशता है और अविद्या से नहीं भासता। असत्यरूप अविद्या ने जगत् को अन्धा किया है; जो विकर्मों को कराती है और विचार किये से नहीं रहती, उससे अपना आप नहीं भासता और बड़ा आश्चर्य है कि, धैर्य्यवान् धर्मात्मा को भी अपने वश करके समर्थ होने नहीं देती। अविचार सिद्ध अविद्यारूपी स्त्री ने पुरुषों को अन्धा किया है और अनन्त दुःखों का विस्तार फैलाती है; यह उत्पत्ति और नाश, सुख और दुःख को कराती है, आत्मा को भ्रमाती है, अनन्त दुःख अज्ञान से दिखाती है; बोध से हीन करती है और काम, क्रोध उपजाती है और मनमें वासना से यही भावना वृद्धि करती है। हे रामजी! यह अविद्या निराकाररूप है और इसने जीव को बांधा है। जैसे स्वप्न में कोई आपको बँधा देखे तैसीही अविद्या है। स्वरूप के प्रमाद का ही नाम अविद्या है और कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेअविद्यावर्णनन्नामाष्टाशीतितमस्सर्गः॥ ८८॥

इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो कुछ जगत् दीखता है वह सब यदि अविद्या से उपजा है तो वह निवृत्त किस भांति होतीहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बरफ की पुतली सूर्य के तेजसे क्षण में नष्ट होजाती है तैसेही आत्मा के प्रकाश से अविद्या नष्ट होजाती है। जबतक आत्मा का दर्शन नहीं होता तबतक अविद्या मनुष्य को भ्रम दिखाती है और नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्तकरती है पर जब आत्मा के दर्शन की इच्छा होती है तब वही इच्छा मोहका नाश करती है। जैसे धूप से छाया क्षीण होजातीहै तैसेही आत्मपदकी इच्छासे अविद्या क्षीण होजाती है और सर्वगत देव आत्मा के साक्षात्कार हुयेसे नष्ट होजाती है। हे रामजी! दृश्यपदार्थों में इच्छा उपजनेका नाम अविद्या है और उस इच्छा के नाश का नाम विद्या है। उस विद्या ही का नाम मोक्ष है। अविद्या का नाश संकल्पमात्र है। जितने दृश्य पदार्थ हैं उनकी इच्छा न उपजे और केवल चिन्मात्र में चित्त की वृत्ति स्थितहो—यही अविद्या के नाश का उपाय है। जब सब वासना निवृत्त हों तब आत्मतत्त्व का प्रकाश आवे। जैसे रात्रि के क्षय हुये सूर्य प्रकाशता है तैसेही वासना के क्षय हुये आत्मा प्रकाशता है। जैसे सूर्य के उदयहुयेसे नहीं विदित होता कि, रात्रि कहां गई तैसेही विवेकके उपजे नहीं विदित होता कि, अविद्या कहां गई। हे रामजी! मनुष्य संसार की दृढ़ वासना में बँधा है। और जैसे संध्याकाल में मूर्ख बालक परछाहीं में वैताल कल्पकर भयवान् होता है तैसेही अपनी वासना से भय पाता है। रामजी ने पूछा;

हे भगवन्! यह सब दृश्य अविद्यासे हुआ है और अविद्या आत्मभावसे नाश होती है तो वह आत्मा कैसा है? वशिष्ठजी बोले; चैत्योन्मुखत्व से रहित और सर्वगत समान और अनुभवरूप जो अशब्दरूप चेतन तत्त्व है वह आत्मा परमेश्वर है। हे रामजी! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जगत् सब आत्मा है और अविद्या कुछ नहीं। हे रामजी! सब देहों में नित्य चेतनघन अविनाशी पुरुष स्थित हैं; उसमें मनो नाम्नी कल्पना अन्य की नाईं आभास होकर भासती है पर आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! कोई न जन्मता है, न मरता है और न कोई विकार है; केवल आत्मतत्त्व प्रकाश सत्तासमान, अविनाशी, चैत्य से रहित, शुद्ध, चिन्मात्रतत्त्व अपने आप में स्थित है और नित्य, सर्वगत, शुद्ध, चिन्मात्र, निरुपद्रव, शान्तरूप, सत्तासमान, निर्विकार अद्वैत आत्मा है। हे रामजी! उस एक सर्वगत देव, सर्वशक्ति महात्मा की जब विभागकलना शक्ति प्रकट होती है तो उसका नाम मन होता है। जैसे समुद्र में द्रवतासे लहरें होती हैं तैसेही शुद्धचिन्मात्र में जो चैत्यता होती है उसका नाम मन है। वही संकल्पकलना से दृश्य की नाईं भासता है और उसी संकल्प कल्पना का नाम अविद्याहै। संकल्पही से वह उपजी है और संकल्पसेही नाशहोजाती है। जैसे वायु से अग्नि उपजती है और वायुसेही लीन होती है तैसेही संकल्प से अविद्यारूपी जगत् उपजता है और संकल्पहीसे नष्ट होजाता है। जब चित्त की वृत्ति दृश्य की ओर फुरती है तब अविद्या बढ़ती है और जब दृश्य की वृत्ति नष्ट हो और स्वरूप की ओर आवे तब अविद्या नष्ट होजाती है। हे रामजी! जब यह संकल्प करता है कि, मैं 'ब्रह्म नहीं हूं' तब मन दृढ़ बन्धमय होता है और जब यही संकल्प दृढ़ करता है कि 'सब ब्रह्म है' तब मुक्त होता है। जब अनात्म में अहंअभिमान का संकल्प दृढ़ करता है तब बन्धन होता है और सर्वब्रह्म के संकल्प से मुक्त होता है। दृश्य का संकल्प बन्ध है और असंकल्पही मोक्ष है; आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसे करो। जैसे बालक आकाशमें सुवर्ण के कमलों की कल्पनाकरे कि, सूर्यवत् प्रकाशित और सुगन्ध से पूर्ण हैं तो वे भावनामात्र होते हैं; तैसे अविद्या भावनामात्र है। अज्ञानी जो जानता है कि, मैं कृश, अतिदुःखी और वृद्ध हूं और मेरे हाथ, पांव और इन्द्रिय हैं तो ऐसे व्यवहार से बन्धवान् होता है और यदि ऐसे जाने कि, मैं दुःखी नहीं न मेरी देह है; न मेरे बन्धन हैं; न मैं मांसहूं और न मेरे अस्थि हैं मैं तो देह से अन्यसाक्षी हूं; ऐसे निश्चयवान् को मुक्त कहना चाहिये। जैसे सूर्य में और मणि के प्रकाश में अन्धकार नहीं होता तैसेही आत्मा में अविद्या नहीं। जैसे पृथ्वीपर स्थित पुरुष आकाश में नीलता कल्पता है तैसेही अज्ञानी आत्मा में अविद्या कल्पता है—वास्तव में कुछ नहीं। फिर रामजी ने पूछा;

हे भगवन्! सुमेरु की छाया आकाशमें पड़ती है अथवा तम की प्रभा है व और कुछ है; आकाशमें नीलता कैसे भासती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आकाश में नीलता नहीं है; न सुमेरु की छायाही है और न तम है, आकाश पोलमात्र है यह शून्यता गुण है । हे रामजी! यह ब्रह्माण्ड तेजरूप है, इसका प्रकाशही स्वरूप है; तम का स्वभाव नहीं । तम ब्रह्माण्ड के बाह्य है, भीतर नहीं; ब्रह्माण्ड का प्रकाश स्वभाव है और दृढ़ शून्यता से आकाश में नीलता भासती है और कुछ नहीं । जिसकी मन्द-दृष्टि है उसको नीलता भासती है और जिसकी दिव्यदृष्टि है उसको नीलता नहीं भासती–पोल भासता है । जैसे मन्ददृष्टि को आकाश में नीलता भासती है, तैसेही अज्ञानी को अविद्या सत्य भासती है । जैसे दिव्यदृष्टिवाले को नीलता नहीं भासती, तैसेही ज्ञानवान् को अविद्या नहीं भासती–ब्रह्मसत्ता ही भासती है । हे रामजी! जहां-तक इसके नेत्रोंकी दृष्टि जातीहै वहांतक आकाश भासताहै और जहां वृत्ति कुण्ठित होती है वहां नीलता भासनी है । हे रामजी! जैसे जिसकी दृष्टि क्षय होती है उसको नीलता भासती है तैसेही जिस जीव की आत्मदृष्टि क्षय होती है, उसको अविद्या-रूपी सृष्टि भासने लगती है–वही दुःखरूप है । हे रामजी! चेतन को छोड़के जो कुछ स्मरण करता है उसका नाम अविद्या है और जब चित्त अबल होता है तब अविद्या नष्ट होजाती है–असंकल्प होनेसेही अविद्या नष्ट होती है । जैसे आकाश के फूल हैं तैसेही अविद्याहै । यह भ्रमरूप जगत् मूर्खों को सत्य भासता है, वास्तव में कुछ नहीं है । मन जब फुरने से रहित हो तब जगत् भावनामात्र है । उसी भावना का नाम अविद्या है और वह मोह का कारण है । जब वही भावना उलटकर आत्मा की ओर आवे तब अविद्या का नाश हो । बारम्बार चिन्तना करने का नाम भावना है । जब भावना आत्मा की ओर वृद्धि होती है तब आत्मा की प्राप्ति होती है और अविद्या नष्ट होजाती है । मनके संसरने का नाम अविद्या है । जब आत्मा की ओर संसरना होता है तब अविद्या नष्ट होजाती है । हे रामजी! जैसे राजा के आगे मन्त्री और टहलुये कार्य करतेहैं; तैसेही मन के आगे इन्द्रियां कार्य करती हैं । हे रामजी! बाह्य के विषय पदार्थों की भावना छोड़के तुम भीतर आत्मा की भावनाकरो तब आत्मपद को प्राप्त होगे । जिन पुरुषों ने अन्तःकरण में आत्मा की भावना का यत्न किया है वे शान्तिको प्राप्त हुये हैं । हे रामजी! जो पदार्थ आदि में नहीं होता, वह अन्त में भी नहीं रहता; इससे जो कुछ भासता है वह सब ब्रह्मसत्ता है । उससे कुछ भिन्न नहीं और जो भिन्न भासता है वह मनमात्र है । तुम्हारा स्वरूप निर्विकार और आदि अन्त से रहित ब्रह्मतत्त्व है । तुम क्यों शोक करते हो? अपना पुरुषार्थ करके संसार की भोगवासना चित्तके मूलसे उखाड़ो और आत्मपद का अभ्यास करो तो दृश्य भ्रम मिटजावे ।

हे रामजी ! इस संसारकी वासना का उदय होना जरा मरण और मोह देनेवाला है। जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब जीव को यह कल्पना उठती है और आकाशरूपी अनन्त फाँसियों से बन्धवान् होता है। तब वासना और भी वृद्धि होजाती है और कहता है कि ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरा धन है, ये मेरे बान्धव हैं; यह मैं हूं; वह और है। हे रामजी ! जिस शरीर से मिलकर यह कल्पना करता है वह शरीर शून्यरूप है। जैसे वायु गोलेके साथ तृण उड़ते हैं; तैसे अविद्यारूपी वासना से शरीर उड़ते हैं अहं त्वं आदिक जगत् अज्ञानी को भासता है और ज्ञानवान् को केवल सत्यब्रह्म भासता है। जैसे रस्सी के न जानने से सर्प भासता है और रस्सी के सम्यक् ज्ञान से सर्पभ्रम नष्ट होजाता है, तैसेही आत्मा के अज्ञान से जगत् भासता है और आत्माके सम्यक् ज्ञान हुयेसे जगत् भ्रम नष्ट होजाताहै। इससे तुम आत्मा की भावनाकरो। हे रामजी ! रस्सी में दो विकल्प होते हैं एक रस्सी का और दूसरा सर्प का; वे दोनों विकल्प अज्ञानी को होते हैं ज्ञानी को नहीं होते। जो जिज्ञासी होताहै उसकी वृत्ति सत्य और असत्य में डोलायमान होती है और जो ज्ञानवान् है उसको विचार से रहित ब्रह्म तत्त्वही भासता है। इससे तुम अज्ञानी मत होना, ज्ञानवान् होना; जो कुछ जगत् की वासना है उन सबका त्यागकरो तब शान्तिमान होगे। हे रामजी ! संसारभोग की वासना भी तब होतीहै जब अनात्मा में आत्माभिमान होताहै; तुम इसके साथ काहेको अभिमान करते हो ? यह देह तो मूक जड़ है और अस्थि मांस की थैली है। ऐसी देह तुम क्यों होतेहो ? जबतक देह में अभिमान होता है तबतक सुख और दुःख भोगता है और इच्छा करता है। जैसे काष्ठ और लाख; और घट और आकाश का संयोग होता है तैसेही देह अभिमान और देही का संयोग होता है। जैसे झिल्ली के अन्तर आकाश होता है सो उसके नष्ट हुये आकाश नहीं नष्ट होता और जैसे घट के नष्ट हुये घटाकाश नहीं नष्ट होता; तैसेही देह के नष्ट हुये आत्मा नहीं नाश होता। हे रामजी ! जैसे मृगतृष्णा की नदी भ्रान्ति से भासती है तैसेही अज्ञान से सुख दुःख की कल्पना होती है। इससे तुम सुख दुःख की कल्पना को त्यागके अपने स्वभावसत्ता में स्थित हो। बड़ा आश्चर्य है कि; ब्रह्मतत्त्व सत्यस्वरूप है पर मनुष्य उसे भूलगया है और जो असत्य अविद्या है उसको बारम्बार स्मरण करता है। ऐसी अविद्याको तुम मत प्राप्तहो। हे रामजी ! मनका मननही अविद्या है और अनर्थ का कारण है; इससे जीव अनेक भ्रम देखता है। मनके फुरने से अमृत से पूर्ण चन्द्रमा का बिम्ब भी नरकको अग्निसमान भासता है और बड़ी लहरों; तरङ्गों और कमलों से संयुक्त जल भी मरुस्थल की नदीसमान भासता है। जैसे स्वप्न में मनके फुरने से नानाप्रकार के सुख और दुःख का अनुभव होता है तैसेही यह सब जगत् भ्रम चित्त को वासनासे

भासता है। जाग्रत् और स्वप्ने में यह जीव मनके फुरने से विचित्ररचना देखता है। जैसे स्वर्ग में बैठेहुये को भी स्वप्ने में नरकों का अनुभव होता है तैसेही आनन्दरूप आत्मा में प्रमाद से दुःख का अनुभव होता है। हे रामजी! अज्ञानी मन के फुरनेसे शून्य अणु में भी सम्पूर्ण जगत् भ्रम दीखता है; जैसे राजालवणको सिंहासन पर बैठे चाण्डाल की अवस्था का अनुभव हुआ था। इससे संसार की वासना को तुम चित्त से त्यागदो। यह संसार वासना बन्धन का कारण है। सब भावों में बर्त्तो परन्तु राग किसी में न हो। जैसे स्फटिकमणि सब प्रतिबिम्बों को लेता है परन्तु रङ्ग किसी का नहीं लेता तैसेही तुम सब कार्य करो परन्तु द्वेष किसी में न रक्खो। ऐसा पुरुष निर्बन्धन है उसको शास्त्र के उपदेश की आवश्यकता नहीं; वह तो निजरूप है हे रामजी! जो कुछ प्रकृत आचार तुमको प्राप्तहो तो देना, लेना, बोलना, चालना आदिक सब कार्य करो परन्तु भीतर से अभिमान कुछ न करो; निरभिमान होकर कार्य करो—यह ज्ञान सब से श्रेष्ठ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेयथाकथितदोषपरिहारोपदेशो नामनवाशीतितमस्सर्गः॥ ८९॥

इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि; इस प्रकार जब महात्मा वशिष्ठजी ने कहा तब कमलनयन रामजी ने वशिष्ठजी की ओर देखा और उनका अन्तःकरण रात्रि के मुँदेहुये कमल की नाईं प्रफुल्लित हो आया। तब रामजी बोले कि; बड़ा आश्चर्य है! पद्म की तांत के साथ पर्वत बांधा है। अविद्यमान अविद्या ने सम्पूर्ण जगत् वश किया है और अविद्यमान जगत् को वज्रसारवत् दृढ़ किया है। यह सब जगत् असत्यरूप है और सत्य की नाईं स्थित किया है। हे भगवन्! इस संसार की नटनी माया का क्या रूप है; महापुण्यवान् लवणराजा ऐसी बड़ी आपदा में कैसे प्राप्त हुआ और इन्द्रजाली जिसने भ्रम दिखाया था वह कौन था कि, उसको अपना अर्थ कुछ न था? वह कहां गया और इस देही और देहका कैसे सम्बन्ध हुआ और शुभ अशुभ कर्मों के फल कैसे भोगता है? इतने प्रश्नों का उत्तर मेरे बोध के निमित्त दीजिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह देह काष्ठ मट्टी के समान है। जैसे स्वप्ने में चित्तके फुरने से देह भासता है तैसेही यह देह भी चित्तका कल्पित है और चित्तही चैत्य सम्बन्ध से जीवपद को प्राप्त हुआ है। वह जीव चित्तसत्ता से शोभायमान है; उस चित्तके फुरने से संसार उपजा है; वह वानरके बालक के समान चञ्चल है और अपने फुरनेरूप कर्मोंसे नानाप्रकार के शरीर धरता है। उसी चित्तके नाम अहङ्कार, मन और जीव हैं। वह चित्त ही अज्ञान से सुख दुःख भोगता है; शरीर नहीं भोगता। जो प्रबोधचित्त है वह शान्तरूप है। जबतक मन अप्रबोध है और अविद्यारूपी

निद्रा में सोया है तबतक स्वप्नरूप अनेक सृष्टि देखता है और जब अविद्या निद्रा से जागता है तब नहीं देखता। हे रामजी! जबतक जीव अविद्या से मलिन है तब-तक संसारभ्रम देखता है और जब बोधवान् होता है तब संसार भ्रम निवृत्त होजाता है। जैसे रात्रि होने से कमल मुंदजाते हैं और सूर्य के उदय हुये खिलआतेहैं तैसेही अविद्या से जगत् भ्रम देखता है और बोधसे अद्वैतरूप होता है। इससे अ-ज्ञान ही दुःख का कारण है। अविवेक से पञ्चकोश देहमें अभिमानी होकर जैसे कर्म करता है तैसेही भोगता है; शुभ करता है तो सुख भोगता है और अशुभ से दुःख भोगता है जैसे नटवा अपनी क्रियासे अनेक स्वाँग धरताहै तैसेही मन अपने फुरने से अनेक शरीर धरता है। जो कुछ इष्ट—अनिष्ट सुख दुःख हैं वे एक मन के फुरने में हैं और शरीर में स्थित होकर मनहीं करता है। जैसे रथपर आरूढ़ होकर सारथी चेष्टा करता है और बाँबी में बैठके सर्प चेष्टा करता है तैसेही शरीर में स्थित होकर मन चेष्टा करताहै। हे रामजी! अचलरूप शरीर को मन चञ्चल करता है। जैसे वृक्ष को वायु चञ्चल करता है तैसे जड़ शरीरको मन चञ्चल करताहै। जो कुछ सुख दुःख की कलनाहै वह मनहीं करताहै और वही भोगता और वही मनुष्यहै। हे रामजी! अब लवण का वृत्तान्त सुनो। लवणराजा मनके भ्रमने से चाण्डाल हुआ। जो कुछ मनसे करता है वही सफल होताहै। हे रामजी! एक कालमें हरिश्चन्द्रके कुलमें उपजा राजा लवण एकान्त बगीचे में बैठ के विचारने लगा कि; मेरा पितामह बड़ा राजा हुआ है और मेरे बड़ोंने राजसूय यज्ञ किये हैं। मैंभी उनके कुलमें उत्पन्न हुआहूं इससे मैं भी राजसूय यज्ञ करूं। इसप्रकार चिन्तना करके लवणने मानसी यज्ञ आरम्भ किया और देवता, ऋषि, सुर, मुनीश्वर, अग्नि, पवन आदिक देवताओं की मनसे पूजा की और मन्त्र और सामग्री जो कुछ राजसूय यज्ञका कर्म है सो संपूर्ण करके मनसे दक्षिणा दीं। सवावर्ष पर्यन्त उसने यह यज्ञकिया और मनहीं से उसका फल भोगा। इससे हे रामजी! मनहीं मे सब कर्म होता है और मनहीं भोगता है। जैसा चित्त है तैसाही पुरुष है, पूर्णचित्त से पूर्ण होताहै और नष्ट चित्तसे नष्ट होता है अर्थात् जिसका चित्त आत्म-तत्त्वसे पूर्ण है सो पूर्ण है और जो आत्मतत्त्वसे नष्टचित्तहै वह नष्टपुरुषहै। हे रामजी! जिसको यह निश्चय है कि; मैं देह हूँ वह नीचबुद्धि है और अनेक दुःखों को प्राप्त होगा और जिसका चित्त पूर्ण विवेकमें जागाहै उसको सब दुःखोंका अभाव होजाता है। जैसे सूर्यके उदयहुये कमलों का सकुचना दूर होजाता है और वे खिल आते हैं, तैसेही विवेकरूपी सूर्य के प्रकाश से रहित पुरुष दुःखों में संकुचित रहते हैं। जो विवेकरूपी सूर्यके प्रकाश से प्रफुल्लित हुये हैं वे संसार के दुःखों से तरजाते हैं॥

इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्र० सुखदुःखभोक्तव्योपदेशकथनन्नामनवतितमस्सर्गः॥९०॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! राजा लवण ने राजसूय यज्ञ मन से किया और मन हीं से उसका फल भोगा परन्तु ऐसा साम्बर कौन था जिसने उसको भ्रम दिखाया। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब वह सांबरी लवणराजा की सभा में आया तब मैं वहां था। मुझसे लवण और उसके मन्त्री ने पूछा कि, यह कौन है? तब मैंने उनसे जो कुछ कहाथा वह तुमसे भी कहताहूं। हे रामजी! जो पुरुष राजसूय यज्ञ करता है उसको द्वादश वर्ष की आपदा प्राप्त होती है उस द्वादश वर्ष में वह अनेक दुःख देखता है। राजा लवण ने जो मनसे यज्ञ किया इसलिये उसको आपदा भी मनसेही प्राप्तहुई। स्वर्ग से इन्द्रने अपना दूत आपदा भुगवाने के निमित्त भेजा। वह साम्बरी का रूप होकर आया और राजा को चाण्डाल की आपदा भुगताकर फिर स्वर्ग में चलागया। हे रामजी! जो कुछ मैंने प्रत्यक्ष देखा था वह तुमसे कहा। इससे मनहीं करता है और मनहीं भोगता है। जैसा २ दृढ़ संकल्प मन में फुरता है उसके अनुसार उसको सुख दुःख का अनुभव होता है। हे रामजी! जबतक चित्त फुरताहै तबतक आपदा प्राप्त होती है जैसे ज्यों २ कीकर का वृक्ष बढ़ता है त्यों २ कण्टक बढ़ते जाते हैं; तैसेही मन के फुरने से आपदा बढ़ती जाती हैं। जब मन स्थिर होताहै तब आपदा मिटजाती हैं। इससे, हे रामजी! इस चित्तरूपी बरफ को विवेकरूपी तपन से पिघलाओ तब परमसार की प्राप्ति होगी। यह चित्तही सकल जगत् आडम्बर का कारण है; उसको तुम अविद्या जानो। जैसे वृक्ष, विटप और तरु एकही वस्तु के नाम हैं; तैसेही अविद्या, जीव, बुद्धि, अहंकार सब फुरनेके नाम हैं। इसको विवेक से लीनकरो। हे रामजी! जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही देखता है। हे रामजी! वह कौन पदार्थ है जो यत्न किये से सिद्ध न हो? जो हठसे न फिरे तो सब कुछ सिद्ध होता है। जैसे बरफ के वासनों को जल में डालिये तो जल की एकता ही होजातीहै तैसेही आत्मबोध से सब पदार्थों की एकता होजाती है। रामजी ने फिर पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, सुख दुःख सब मनहींमें स्थितहैं और मन की वृत्ति नष्ट हुये सब नष्ट होजाती हैं सो चपल वृत्ति कैसे क्षय हो? वशिष्ठजी बोले, हे रघुकुल में श्रेष्ठ और आकाश के चन्द्रमा! मैं तुमसे मनके उपशम की युक्ति कहता हूँ। जैसे सवार के वश घोड़ा होता है तैसेही मन तुम्हारे वश रहेगा। हे रामजी! सब भूत ब्रह्मही से उपजे हैं। उनकी उत्पत्ति तीन प्रकार की है– एक सात्त्विकी; दूसरी राजसी और तीसरी तामसी। प्रथम शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्म में जो कलना उठीहै उसी बाह्यमुखी फुरने का नाम मन हुआ है। वही ब्रह्मारूपहै, उस ब्रह्माने जैसा संकल्प किया तैसाही आगे देखा; उसने यह भुवन आडम्बर और उसमें जन्म मरण और सुख, दुःख, मोह आदिक संसरना कल्पा। इसी प्रकार अपने आरम्भसंयुक्त, जैसे बरफ का कणका

समुद्र से उपजकर सूर्य के तेज से लीन होजावे; तैसेही आरम्भ से निर्वाण होगया, संकल्प के वश से फिर उपजा और फिर लीन होगया। इसी प्रकार कई अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड ब्रह्मा से उपज २ कर लीन होगये हैं और कितने होंगे और कितने वर्त्तमान हैं। अब जैसे मुक्त होते हैं सो सुनो। हे रामजी! शुद्ध ब्रह्मतत्त्व से प्रथम मनसत्ता उपजी; उसने जब आकाश चेता तब आकाश हुआ, उस के उपरान्त पवन हुआ, फिर अग्नि और जल हुआ और उसकी दृढ़ता से पृथ्वी हुई। तब चित्तशक्ति दृढ़ संकल्पसे पांच भूतों को प्राप्तहुई और अन्तःकरण जो सूक्ष्म प्रकृति है सो पृथ्वी, तेज और वायुसे मिलकर धान्य में प्राप्त हुआ। उसको जब पुरुष भोजन करते हैं तब वह परिणाम होकर वीर्य और रुधिररूप होके गर्भ में निवास करता है; जिसमे पुरुष उपजता है। वह पुरुष जन्ममात्र से वेद पढ़ने लगता है; फिर गुरू के निकट जाता और क्रमसे उसकी बुद्धि विवेकद्वारा चमत्कारवान् होजाती है तब उसको ग्रहण और त्याग और शुभ अशुभ में विचार उपजताहै। और निर्मल अन्तःकरण सहित स्थित होता है और क्रम से सप्तभूमिका चन्द्रमा की नाईं उसके चित्त में प्रकाशती हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसात्त्विकजन्मावतारोनामैकनवतितमस्सर्गः॥ ६१॥

रामजी बोले, हे सर्वशास्त्रों के तत्त्ववेत्ता, भगवन्! ज्ञानकी वे सप्तभूमिका कैसे निवास करनेवाली हैं संक्षेप में मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञान की सप्तभूमिका हैं और ज्ञानकी सप्तभूमिका हैं और उनकेअन्तर्गत और बहुत अवस्था हैं कि, उनकी कुछ संख्या नहीं परन्तु वे सब इन्हीं सप्त के अन्तर्गत हैं। हे रामचन्द्र! आत्मरूपी वृक्ष है और अपना पुरुषार्थरूपी वसन्तऋतु है; उससे दो प्रकारकी बेलें उत्पन्न होती हैं—एक शुभ और दूसरी अशुभ। पुरुषार्थरूपी रसके बढ़ने से फलकी प्राप्तिहोती है। अब ज्ञान किसको कहते हैं सो सुनो। शुद्धचिन्मात्रमें चैत्यदृश्य फुरने से रहित होकर स्थित होनेका नाम ज्ञानहै और शुद्ध चिन्मात्र अद्वैत में अहं संवेदना उठती है सो स्वरूप से गिरना है; वही अज्ञानदशा है। हे रामचन्द्र! यह मैंने तुमसे संक्षेप से ज्ञान और अज्ञान का लक्षण कहा है। शुद्ध चिन्मात्र में जिनकी निष्ठा है; सत्यस्वरूप से चलायमान नहीं होते और राग द्वेष किसी से नहीं रखते, वे ज्ञानी हैं और ऐसे शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप से जो गिरे हैं वे अज्ञानी हैं। और जो जगत् के पदार्थों में मग्न हैं वे अज्ञानी हैं। इससे परममोह और कोई नहीं—यही परममोह है। स्वरूपस्थित इसका नाम है कि, एक अर्थको छोड़के जो संवित् और अर्थको प्राप्त होता है। जैसे जाग्रत्को त्यागकर सुषुप्ति प्राप्त होती है और उसके मध्य में जो निर्मननरूप सत्ता है उसमें स्थितहोना स्वरूप स्थिति कहाता है। हे रामचन्द्र! भली प्रकार सर्व संकल्प जिसके शान्त हुये हैं और जो शिला के अन्तरवत् शून्य है वह

स्वरूपस्थिति है। अहं त्वं आदिक फुरने से और भेदविकार और जड़ से रहित अचैत्य चिन्मात्र है सो आत्मस्वरूप कहाता है। उस तत्त्व में फिरकर जो जीवों की अवस्था हुई है वह सुनो। हे रामचन्द्र! १ बीज जाग्रत् है; २ जाग्रत्; ३ महाजाग्रत्; ४ जाग्रत् स्वप्न; ५ स्वप्न; ६ स्वप्न जाग्रत् और ७ सुषुप्ति ये सात प्रकार की मोहकी अवस्था हैं। इनके अन्तर्गत और भी अनेक अवस्था हैं पर मुख्य ये सातही हैं अब इनके लक्षण सुनो। हे रामजी! आदि जो शुद्ध चिन्मात्र अशब्दपद तत्त्व से चैतनता का अहं है उसका भविष्यत् नाम जीव होता है। आदि वह सर्व पदार्थों का बीजरूप है और उसीका नाम बीज जाग्रत् है। उसके अनन्तर जो अहं और यह मेरा इत्यादिक प्रतीति दृढ़ हो और जन्मान्तरों में भासे उसका नाम जाग्रत् है। यह है, मैं हूं इत्यादिक शब्दों से तन्मय होना और जन्मान्तर में बैठे हुये जो मन फुरता है मनोराज में वह फुरना दृढ़ हो भासना जाग्रत् स्वप्न कहाता है और दूसरा चन्द्रमा, सीपी में रूपा, मृगतृष्णा का जल इत्यादिक विपर्यय भासना भी जाग्रत् स्वप्न है। निद्रा में जब मन फुरने लगता है और उससे नाना पदार्थ भासने लगते हैं तो जब जाग उठता है तब कहता है कि, मैंने अल्प काल में अनेक पदार्थ देखे और निद्राकाल में जो पदार्थ देखे थे उनको असत्यरूप जाग्रत् में जानने लगता है। उस निद्राकाल में मनके फुरने का नाम स्वप्ना है। स्वप्न आवे और उसमें यह दृढ़ प्रतीति होजावे कि, दीर्घकाल बीतगया उसका नाम महा जाग्रत् है और महाजाग्रत्में अपना बड़ा वपु देखा और उसमें अहं, ममभाव दृढ़हुआ और आपको सत्य जानकर जन्म मरण आदिक देखे, देह रहे अथवा न रहे; उसका नाम स्वप्न जाग्रत् है। वह स्वप्ना महाजाग्रत्रूप को प्राप्त होता है। इन छः अवस्थाओं का जहां अभाव हो; जड़रूप और भविष्यत् हो उसका नाम सुषुप्ति है। उस अवस्था में घास, पत्थर, वृक्षादिक स्थित हैं। हे रामजी! यह अज्ञान की सप्तभूमिका कही; उस में एक २ में अवस्था भेद है। हे रामचन्द्र! स्वप्न चिरकालसे जाग्रत्रूप होजाताहै; उस के अन्तर्गत और स्वप्न जाग्रत् है और उस के अन्तर और है। इस प्रकार एक २ के अन्तर अनेक हैं। यह मोह की घनता है और उस से जीव भ्रमते हैं। जैसे जल नीचे से नीचे चला जाता है, तैसेही जीव मोह के अनन्तर मोह पाते हैं। हे रामजी! यह तुम से अज्ञान की अवस्था कही जिस में नाना प्रकार के मोह और भ्रमविकार हैं। इनसे तुम विचारकर मुक्तहो तब तुम महात्मा पुरुष और आत्मविचार करके निर्मल बोधवान् होगे और तभी इस भ्रम से तरजावोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेअज्ञानभूमिकावर्णनन्नामाद्विनवतितमस्सर्गः॥६२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र! अब तुम ज्ञानकी सप्तभूमिका सुनो। भूमिका चित्त

की अवस्था को कहते हैं। ज्ञान की भूमिका जानने से जीव फिर मोहरूपी कीचड़ में नहीं डूबता। हे रामचन्द्र! और मतवाले भूमिका को बहुत प्रकार से कहते हैं पर मेरा अभिमत पूछो तो यह है कि, इससे सुगम और निर्मल बोध प्राप्तहोताहै। स्वरूप में जागने का नाम ज्ञान है; उस ज्ञान की सप्तभूमिका हैं और जो मुक्त इन सप्तभूमिकाओं के परे हैं वे विदेहमुक्त हैं वे ये हैं–१ शुभेच्छा, २ विचारना, ३ तनुमानसा, ४ सत्त्वापत्ति, ५ असंशक्ति, ६ पदार्थाभावनी और ७ तुरीया। इनके सार को प्राप्तहुआ फिर शोक नहीं करता। अब इसका अर्थ सुनो। जिसको यह विचार फुरआवे कि, मैं महामूढ़ हूं; मेरी बुद्धि सत्य में नहीं है संसार की ओर लगी है और ऐसे विचारके वैराग्यपूर्वक सत्शास्त्र और सन्तजनों की संगति की इच्छाकरे तो इस का नाम शुभेच्छा है। सत्शास्त्रों को विचारना; सन्तों की संगति; विषयों से वैराग्य और सत्यमार्ग का अभ्यास करना; इनके सहित सत्यआचार में प्रवर्त्तना और सत्य को सत्य और असत्यको असत्य जानकर त्याग करना इसका नाम विचार है। विचार और शुभेच्छा सहित तत्त्व का अभ्यास करना और इन्द्रियों के विषयोंसे वैरागकरना यह तीसरी भूमिका तनुमानसा है। इन तीन भूमिकाओं का अभ्यास करना; इन्द्रियों के विषय और जगत् से वैरागकरना और श्रवण, मनन और निदिध्यासन से सत्य आत्मा में स्थित होने का नाम सत्त्वापत्तिहै। इसमें सत्य आत्माका अभ्यास होता है। ये चार भूमि का संयम का फल जो शुद्ध विभूति है उस में असंशक्त रहने का नाम असंशक्ति है। दृश्यका विस्मरण और भीतर बाहरसे नाना प्रकारके पदार्थों के तुच्छ भासनेका नाम पदार्थाभावनी है; यह छठी भूमिकाहै। हे रामचन्द्र! चिरपर्यन्त छठी भूमिका के अभ्याससे भेद कलना का अभाव होजाताहै और स्वरूप में दृढ़ परिणाम होता है। छः भूमिका जहां एकता को प्राप्तहों उसका नाम तुरीया है। यह जीवन्मुक्त की अवस्था है। जीवन्मुक्त तुरीयापद में स्थित है। तीन भूमिका जगत् की जाग्रत् अवस्था में हैं; चौथी तत्त्वज्ञानी की है; पांचवीं और छठी जीवन्मुक्त की अवस्था है और तुरीयातीतपद में विदेहमुक्त स्थित होता है। हे रामचन्द्र! जो पुरुष महाभाग्यवान् है वह सप्त भूमिका में स्थित होता है और वही आत्मारामी महापुरुष परमपद को प्राप्त होता है। हे रामचन्द्र! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं वे सुख दुःख में मग्न नहीं होते और शान्तरूप होके अपने प्रकृत आचार को करते हैं; अथवा नहीं करते तो भी उनको कुछ बन्धन नहीं; उनको क्रिया का बोध कुछ नहीं रहता। जैसे सुषुप्ति पुरुष के निकट जाके कोई क्रियाकरे तो उसे कुछ बोध नहीं होता तैसेही उसको भी क्रियाबोध कुछ नहीं होता; वह तो सुषुप्तिवत् उन्मीलितलोचन है। हे रामचन्द्र! जैसे सुषुप्त पुरुष को रूप, इन्द्रिय और उनका अभाव होजाता है; तैसेही सप्तभूमिका में

अभाव होजाता है। यह ज्ञान की सप्तभूमिका ज्ञानवान् का विषय है; पशु, वृक्ष, म्लेच्छ, मूर्ख और पापाचारियोंके चित्त में इनका अधिकार नहीं होता। जिसका मन निर्मल है उसको इन भूमिकाओं में अधिकारहै; कदाचित् पशु, म्लेच्छ आदिको भी इनका अभ्यास हो तो वह भी मुक्त होजाता है; इसमें कुछ संशय नहीं। हे रामचन्द्र! आत्मज्ञान से जिनके हृदय की गांठ टूट गई है उनको संसार मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या भासता है और वे मुक्तरूप हैं और जो संसार से विरक्त होकर इन भूमिकाओं में आये हैं और मोहरूपी समुद्र से नहीं तरे और पूर्णपदको भी नहीं प्राप्त हुये और सप्तभूमिका में से किसी भूमिकामें लगे हैं वेभी आत्मपदको पाकर पूर्ण आत्मा होंगे हे रामचन्द्र ! कोई तो सप्तभूमिकाओं को प्राप्त हुयेहैं; कोई पहलीही भूमिका में; कोई दूसरी और कोई तीसरी को प्राप्त हुयेहैं। कोई चौथी को; कोई पञ्चम; कोई छठी को और कोई अर्द्धभूमिकाकोही प्राप्त हुयेहैं। कोई गृह में कोई वन में हैं; कोई तपसी हैं और कोई अतीत हैं। इससे आदि लेकर वे पुरुष धन्य और बड़े शूरमाहैं कि, जिन्हों ने इन्द्रियरूपीशत्रु को जीता है। जिस पुरुष ने एक भूमिका को भी जीताहै सो वन्दना करने योग्य है; उसको चक्रवर्ती राजा जानना बल्कि, उसके सामने राज्य और बड़ा ऐश्वर्य विभूति भी तृणवत् है। वह परमपद को प्राप्त हुआ है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेज्ञानभूमिकोपदेशोनामत्रिनवतितमस्सर्गः ॥ ९३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसे सोने में भूषण फुरे और अपना सुवर्णभाव भूल के कहै मैं भूषण हूं तैसेही चित्तसंवेदन जिस स्वरूप से फुरा है उससे भूलकर अहंवेदना हुई है उस से अहंकाररूप धरा है कि, मैं यह कुछ हूं । रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! सोने में जो भूषण होते हैं वे मैं जानताहूं परन्तु आत्मा में अहंभाव कैसे होता है वह कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र ! अहंकार आदिकों का होना असत्यरूप आगमापाईहै। इसका कुछ भिन्नरूप नहीं है; यह आत्माका चमत्कारहै—वास्तव में द्वैत कुछ नहीं। जैसे समुद्र में अध ऊर्ध्व जलही जल है और कुछ नहीं; तैसेही परमतत्त्व में और विभाग कल्पना कोई नहीं—शान्तरूप है। जैसे समुद्र में द्रवता से तरङ्ग आदिक भासते हैं तैसेही संवेदना से जगत् भ्रम भासते हैं। आत्मा में नाना प्रकार का भ्रम भासता है परन्तु और कुछ नहीं। जैसे सुवर्ण में भूषण; जल में द्रवता और वायु में स्पन्द भासतेहैं तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। फुरने से रहित शान्तरूप केवल परमपद है। हे रामजी ! जैसे मृत्तिका की सेना में जो हाथी, घोड़ा, पशु होते हैं वे सब मृत्तिकारूपहैं कुछ भिन्न नहीं तैसेही सब जगत् आत्मरूप है, भ्रमसे नानातत्त्व भासता है; वास्तवमें आत्माही पूर्णरूप आप में स्थित है। जैसे आकाश में आकाश स्थित है, तैसेही ब्रह्म में ब्रह्म स्थित है और सत्य में सत्य स्थित

है। जैसे दर्प्पणमें प्रतिबिम्ब होता है तैसेही आत्मा में जगत् है; जैसे स्वप्न में दूर पदार्थ निकट भासतेहैं और निकट दूर भासते हैं सो भ्रममात्र हैं तैसेही आत्मा में विपर्ययदृष्टि से जगत् भासता है। हे रामजी! असत्य जगत् भ्रमसे सत्रूप भासता है; वास्तव में असत्यरूप है। जैसे दर्प्पण में नगर का प्रतिबिम्ब; जैसे मृगतृष्णा का जल और आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासता; तैसेही यह जगत् आत्मा में भासता है। जैसे इन्द्रजाल के योगसे आकाश में नगर भासता है तैसेही यह असत्यरूप जगत् अज्ञान से सत्य भासता है। जबतक आत्मविचाररूपी अग्निसे अविद्यारूपी वल्ली को तू न जलावेगा तबतक जगत्रूपी बेल निवृत्त न होगी बल्कि, अनेक प्रकार के सुख दुःख दिखावेगी। जब तू विचार करके मूल सहित इसको जलावेगा तब शान्तपद को प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेयुक्तोपदेशोनामचतुर्श्चवतितमस्सर्गः॥९४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र! जैसे सुवर्ण में भूषण मिथ्यारूप हैं तैसेही आत्मा में 'अहं' 'त्वं' आदिक अविद्यारूप हैं। लवण की कथा जो तुमने सुनी है उसे अब फिर सुनो। लवणराजा दूसरे दिन विचार करनेलगा कि, यह मुझको भ्रमसे भासा है परन्तु सत्यरूप होकर देखा है। देश, नगर, मनुष्यादिक पदार्थ मुझको प्रत्यक्ष दृष्टि आये हैं इससे अब तो वहां जाकर देखूं कि, कैसी वार्त्ता है। ऐसे विचार से दिग्विजयका मन करके मन्त्री और सेना को साथ लेकर दक्षिण दिशाकी ओर चला। देशों को लांघता २ विन्ध्याचल पर्वत में पहुँचा और पूर्व और दक्षिण के समुद्र के मध्य में मार्ग को भ्रमता भ्रमता किरातदेश में जा पहुँचा जो वृत्तान्त और देश ग्राम आदिक भ्रम में देखेथे सो प्रत्यक्ष देखे और अति विस्मित हो विचार करने लगा कि: हे देव! यह क्या है? जो कुछ मैंने भ्रम में देखा था वह अब भी मुझको प्रत्यक्ष भासता है। यह बड़ा आश्चर्य है! ऐसे विचारके आगे गया तो क्या देखा कि, अग्नि से वृक्ष जलेहैं और अकाल पड़ाहै। अपने सम्बन्धियों की चेष्टा के स्थान देखे और उनकी कथा सुनी। इस प्रकार देखते २ आगे गया तो क्या देखा कि, चाण्डाल शरीर की सासु बैठी रुदन करती है कि; हे दैव! मेरा पुत्र कहांगया! हे पुत्र! तुम कहां गये, जिनका चन्द्रमा की नाईं मुख था? मेरी मृगनयनी कन्या जीर्णदेह होगई है-और पौत्र, पौत्रियां दुर्भिक्षतासे मरजाते रहे। उनके यह खानेके पदार्थहैं और ये चेष्टाके स्थानहैं। जो गनिका की माला कण्ठ में डाले जीवों के मांस खाते और रुधिर पान करते थे वह कहां गये? इसी प्रकार पुत्र, पुत्री, भर्त्ता, दामाद आदिका नाम लेकर वह रुदन करती थी और और लोग जो आ बैठते थे वहभी रुदन करते थे। तब राजा उनका रोना

बन्द कराके वृत्तान्त पूछने लगा कि, तू किस निमित्त रुदन करती है ? किससे तेरा वियोग हुआ है ? ॥

इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्रकरणे चाण्डालीशोचनवर्णनन्नामपञ्चनवतितमस्सर्गः ॥ ९५ ॥

चाण्डाली बोली, हे राजन् ! एक समय वर्षा न होनेसे काल पड़ा और सब जीवों को बड़ा दुःख हुआ । उस समय मेरे पुत्र, पौत्र, पौत्रियां, जामात, भर्त्ता आदिक बांधव यहांसे निकलगये और कहीं कष्ट पाके मरगये । उनके वियोग से मैं दुःखी होकर रुदन करतीहूं और उनके विना मैं शून्य होगईहूं ! जैसे बिछुरी हुई हथिनी अकुलाती है तैसेही मैं कुरलातीहूं । हे रामचन्द्र ! जब इस प्रकार चाण्डाली ने कहा तब राजा अति विस्मित हुआ और मन्त्री के मुख की ओर ऐसे देखनेलगा जैसे काग़ज़ पर पुतली होती है । निदान राजा विचारे और आश्चर्यवान्हो; उस चाण्डाली से बार-म्बार पूछे और वह फिर कहे और राजा आश्चर्यवान् होवे । तब राजा उसको यथायोग्य धन देकर चिरपर्यन्त वहां रहा और फिर अपने राजमन्दिरमें आया । जब प्रातःकाल हुआ तब सभा में आकर मुझ से पूछनेलगा; हे मुनीश्वर ! यह स्वप्न मुझ को प्रत्यक्ष कैसे हुआ ? इसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआहूं ! तब मैंने प्रश्नानुसार उसको युक्ति से उत्तर दिया और उसके चित्तका संशय ऐसे दूरकरदिया जैसे मेघ को वायु दूरकरे; वही तुमसे कहताहूं । हे रामजी ! अविद्या ऐसीहै कि, असत्य को शीघ्रही सत्य और सत्य को असत्य कर दिखाती है और बड़ा भ्रम दिखानेवाली है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! स्वप्न कैसे सत्य हुआ; यह मेरे चित्त में बड़ा संशय स्थित हुआहै । उसको दूर कीजिये । वशिष्ठजी बोले ; हे रामजी ! इसमें क्या आश्चर्य है ? अविद्यासे सब कुछ बनताहै । स्वप्नमें तुम प्रत्यक्ष देखतेहो कि, घटसे पट और पटसे घट होजाता है । स्वप्न और मृत्यु में मूर्च्छा के अनन्तर बुद्धि विपर्यय होजाती है । जिनका चित्त वासनासे वेष्टितहै उनको जैसा संवेदन फुरताहै तैसेही भासता है । हे रामजी ! जि-नका चित्त स्वरूप से गिराहै उनको अविद्या अनेक भ्रम दिखाती है । जैसे मद्यपान और विष पीनेवाला भ्रम को प्राप्त होता है तैसेही अविद्या से जीव भ्रम को प्राप्त होताहै । एक और राजा था उसकी भी वही व्यवस्था हुईथी जो लवण राजाके चित्त में फुर आईथी । जैसे उसकी चेष्टा हुई थी तैसेही इसको भी फुरआई तब उसने जाना कि, मैंने यह क्रिया की है । जैसे अभोक्ता पुरुष आप को स्वप्नमें भोक्ता देखताहै कि, मैं राजा हुआहूं; मैं तृप्तहूं, अथवा भूखा सोयाहूं; और यह क्रिया मैंने करी है; तैसेही लवण को फुर आया था सो प्रतिभास है । सभामें बैठे चाण्डाली चेष्टा लवण की फुरआई अथवा विन्ध्याचल पर्वतके चाण्डालों की प्रतिमा लवण की फुरी सो लवण के चित्त का भ्रम उसको दृढ़ होगया । एकही सदृश भ्रम अनेकों को फुर आताहै

और स्वप्न भी सदृश होताहै जैसे एकही रस्सी में अनेकों को सर्प भासताहै। इसी प्रकार अनेक जीवों को एक भ्रम अनेक हो भासताहै। हे रामजी! जितने पदार्थ भासते हैं उनकी सत्तारूप संवेदन है। जैसे उनमें संकल्प दृढ़ होता है तैसेही होकर भासताहै। जो पदार्थ सत्यरूप हो भासताहै वह सत्य होताहै और जो असत्यरूप हो भासता है वह असत्य हो जाताहै। सबही पदार्थ संवेदनरूप हैं और तीनों काल भी संवेदन से उपजे हैं। इनका बीज संवेदन है। सब पदार्थ अविद्यारूप हैं और जैसे रेतमें तेल है तैसेही आत्मा में अविद्याहै। आत्मा से अविद्या का सम्बन्ध कदाचित् नहीं क्योंकि; सम्बन्ध समरूप का होताहै। जैसे काष्ठ और लाख का सम्बन्ध होता है सो आकारसहित है और जो आकार से रहितहो उसका सम्बन्ध कैसेहो? जैसे प्रकाश और तम का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही चैतनसे चैतन का सम्बन्ध होता है और विजातीय का सम्बन्ध नहीं। इससे अविद्यारूप देह को आत्मा से सम्बन्ध नहीं। जो जड़ से आत्मा का सम्बन्ध हो तो आत्मा जड़ हो पर आत्मा तो सदा चैतनरूप है और सर्वदा अनुभव से प्रकाशता है; उसको जड़ कैसे कहिये? जैसे स्वाद को जिह्वा ग्रहण करती है और अङ्ग नहीं करते; तैसेही चैतनसे चैतन की, जड़से जड़ की, जल से जल की, माटी से माटी की, अग्नि से अग्नि की, प्रकाश से प्रकाश की, तम से तम की, इसी प्रकार सब पदार्थों की सजातीय पदार्थों से एकता होती है; विजातीय से नहीं होती। इससे सब चैतन्याकाश है और पाषाणादिक दृश्यवर्ग कोई नहीं; भ्रम से इनके आकार भासते हैं। जैसे सुवर्ण बुद्धि को त्यागकर नाना प्रकार के भूषण भासते हैं तैसेही जब अहंवेदना आत्मा में फुरती है तब अनेकरूप होकर विश्व भासता है। जैसे सुवर्ण की ओर देखिये तब सब भूषण स्वर्णरूप भासते हैं तैसेही जब ब्रह्मसत्ता की ओर देखिये तब सब जगत् ब्रह्मरूप ही भासता है। जैसे मृत्तिका की सेना बालकों को अनेकरूप भासती है और बुद्धिमान् को एक मृत्तिकारूप है; तैसेही अज्ञानी को यह जगत् नानारूप भासता है, ज्ञानवान् को एक ब्रह्मसत्ता हो भासती है। वह कौन ब्रह्म है जिस में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य फुरे हैं? इनके मध्य और इनसे रहित जो सत्ता है। वह ब्रह्मसत्ता है। हे रामचन्द्र! जो सत्ता चैतन्यरूप और शिला के कोशवत् निर्विकल्प तन्मयरूप है उसमें जब स्थित हो और समाधि में रहो अथवा उत्पन्न न हो तब तुमको सब वही रूप भासेगा। हे रामचन्द्र! जो पुरुष निरमनसत्ता में स्थित भयाहै वह शरीर के इष्ट में हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट में शोकवान् नहीं होता; वह निर्मलरूप होकर स्थित होता है। जैसे भविष्यत नगर में जो अनेक चिन्तायुक्त जीव बसते हैं वह सब उसके चित्त में स्थित होते हैं। जैसे पुरुष को देशान्तर जाते अनेक पदार्थ मार्ग में इष्ट अनिष्टरूप

भासते हैं परन्तु जहां जाना है उसकी ओर वृत्ति रहती है; मार्ग के पदार्थों में उसको रागद्वेष नहीं होता; तैसेही तुम होजावो । जैसे पत्थर से जल और जलसे अग्नि नहीं निकलती, तैसेही आत्मामें चित्त नहीं, अविचार भ्रमसे चित्त जानताहै, विचार से नहीं पाता। जैसे भ्रम से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसेही आत्मा में चित्त भासता है; वास्तव में कुछ नहीं। वह सत्ता नित्य, शुद्ध, परमानन्दस्वरूप अपने आप में स्थित और अनुभवरूप है; उसके विस्मरण करने से दुःखप्राप्त होताहै और अमृतरूपी चन्द्रमा में अग्नि प्राप्त होती है। इससे हे रामचन्द्र! तुम सावधान हो! यह जो फुरना उठताहै इसीका नाम चित्त है और चित्त कोई नहीं। इस चित्त को दूरसे त्याग करो जो तुमहो वही स्थित हो। हे रामचन्द्र! असत्यरूप चित्त ही संसार है, जो उसको असत्य जानके त्याग नहीं करता वह आकाश के वन में विचरता है; उसको धिक्कार है। जिसका मननभाव नष्ट हुआ है वह महापुरुष संसार से पार होकर परमपद निश्चितरूप में प्राप्त हुआ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचिताभावप्रतिपादनन्नामषण्णवतितमस्सर्गः॥९६॥

वाशिष्ठजी बोले. हे रामजी! मनुष्य जिस प्रकार भूमिका को प्राप्त होताहै उसका क्रम सुनो। प्रथम जन्म से पुरुष को कुछ बोध होता है और फिर क्रमसे बड़ा होकर सन्तों की संगति करता है। सदा सदशरूप जो संसार का प्रवाह है उसके तरने को सत्य शास्त्र और सन्तजनों की संगति विना समर्थ नहीं होता। जब सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का विचार करने लगता है तब उसको ग्रहण और त्याग की बुद्धि उपजती है कि, यह कर्त्तव्य है और यह त्यागने योग्य है। इस विचार का नाम शुभेच्छाहै। जब यह इच्छा हुई तब शास्त्रद्वारा यह विचार उपजताहै कि, यह शुभहै और यह अशुभ है; शुभ को ग्रहण करना और अशुभ को त्याग करना और यथाशास्त्र विचारना इसका नाम विचार है। जब सम्यक् विचार दृढ़ होता है तब मिथ्यारूप संसार की वासना त्यागता है और सत्य में स्थित होता है—इसका नाम तनुमानसा है। जब संसार की वासना क्षीण होती है और सत्य का दृढ़ अभ्यास होता है तब उस वैराग्य और अभ्यास से सम्यक् ज्ञान उपजता और आत्मा का साक्षात्कार होता है—उसका नाम सत्त्वापत्ति है। मन से वासना नष्ट होके सिद्धि आदिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, इनकी प्राप्ति में भी संसक्त नहीं होता; स्वरूप में सदा सावधान रहता है। सिद्धि आदिक पदार्थ प्रारब्ध से प्राप्त होतेहैं उनको स्वप्नरूप जान कर्मोंके फल में बन्धवान् नहीं होता—इसका नाम असंसक्तहै। इसके अनन्तर जब मन की तनुता होगई है और स्वरूप की ओर चित्त का परिणाम हुआ तब दृढ़ परिणाम से व्यवहार का भी अभाव होजाता है जो पल पल में कर्म प्रारब्धवेग से करता है, बल्कि;

उसके चित्त में फुरना भी नहीं फुरता और वह मन क्षीणभाव में प्राप्तहोता है। वह कर्त्ता हुआ भी वह कुछ नहीं करता और देखता है पर नहीं देखता अर्द्धसुषुप्तिवत् होता है; उसे कर्त्तव्य की भावना नहीं फुरती और मन भी नहीं फुरता–इसका नाम पदार्थाभावनी योगभूमिका है। इसमें चित्तलीन होजाता है। इस अवस्था में जब स्वाभाविक चित्त का कुछ काल इस अभ्यास में व्यतीत होता है और भीतर से सब पदार्थों का अभाव दृढ़ होजाता है तब तुरीयारूप होताहै और जीवन्मुक्त कहाताहै। तब वह इष्टको पाके हर्षवान् नहीं होता और उसकी निवृत्ति में शोकवान् नहीं होता; केवल विगतसन्देह हो उत्तमपद को प्राप्त होता है। हे रामचन्द्र! तुम भी अब ज्ञात ज्ञेय हुये हो। जो कुछ जानने के योग्य है सो तुमने ज्यों का त्यों जाना है और सब तुम्हारी पदार्थों की भावना तनुता को प्राप्त हुई है। अब तुम्हारे साथ शरीर रहे अथवा न रहे तुम हर्ष शोक से रहित निरामय आत्मा हो और स्वच्छ आत्मतत्त्व में स्थित सर्वगत सदा उद्योतरूप जन्म, मरण, जरा, सुख, दुःखसे रहित आत्म और बोधरूप शोकसे रहितहो और अद्वैतरूप अपने आपमें स्थितहो। देह उदय भी होताहै और लीन भी होजाता है पर देश, काल, वस्तुके भेदसे रहितजो आत्माहै वह उदय और अस्त कैसे हो? हे रामचन्द्र! तुम अविनाशी हो; आपको नाशरूप जानकर शोक काहे कोकरते हो तुम अमृत स्वच्छरूपहो। जैसे घटके फूटनेसे घटाकाश नाश नहीं होता, तैसेही शरीर के नाश हुये तुम नाश नहीं होते। जैसे सूर्यकी किरणोंके जाने से मृगतृष्णाके जल का नाश होजाताहै, किरणों का नाश नहीं होता। हे रामचन्द्र! जो कुछ जगत्के पदार्थ भासते हैं सो असत्यरूप हैं और उनकी वासना भ्रान्तिसे होती है पर तुमतो अद्वैतरूप हो और यह सब तुम्हारी छायामात्र है। तुम किसकी वाञ्छा करतेहो? शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह जो पांचो विषयरूप दृश्य हैं सो तुमसे रञ्चकमात्र भी भिन्न नहीं; सब तुम्हारा स्वरूप है। तुम भ्रम मतकरो। हे रामजी! आत्मा सर्वशक्ति है; वही आभास करके अनेकरूप हो भासता है। जैसे आकाश में शून्यता शक्ति आकाश से भिन्न नहीं, तैसेही आत्मामें सर्वशक्ति है। जो जगत् द्वैतरूप होकर भासता है वही चित्त से दृढ़ हुआ है सो क्रम से तीन प्रकार का त्रैलोक्य जगत् जीव को भ्रम हुआ है–एक सात्त्विक, दूसरा राजस और तीसरा तामस। जब इन तीनों का उपशम हो तब कल्याण होताहै। जब वासना क्षयहो तब उसके वे कर्म भी क्षय होजाते हैं–उससे भी भ्रम नाश होजाता है। चित्त के संसरने का नाम वासना है कर्म संसार मायामात्र है; उनके नष्ट हुये सब शान्त होजाते हैं। हे रामजी! यह संसार घटीयन्त्र की नाईं है और जीववासना से बँधेहुये भ्रमते हैं। तुम आत्मविचाररूपी शस्त्र से यत्न करके इसको काटो। जबतक अविद्या को जीव नहीं जानता

तबतक यह बड़े मोह और भ्रम दिखाती है और जब इसको जानताहै तब बड़े सुख को प्राप्त करती है अर्थात् जबतक अविद्या को वास्तव में नहीं जानता तबतक संसार सत्य भासताहै और उसमें अनेक भ्रम भासते हैं और जब इसका स्वरूप जाना कि, कुछ वस्तु नहीं, भ्रमरूप है तब संसार वृत्तित्याग करता है और स्वरूप को प्राप्त होता है। यह संसार भ्रम से उपजा है और उसीसे भोग भोगता और लीला करता है और फिर ब्रह्म में लीन होजाता है। हे रामचन्द्र! शिवतत्त्व अनन्तरूप अप्रमेय और निर्दुःखरूप है; सब उसी भूततत्त्वसे उपजते हैं। जैसे जलसे तरङ्ग और अग्नि से उष्णता होती है तैसेही ब्रह्म से जगत् होता है; उसी में स्थित है और वही रूप है। वह सबका आत्मा है और वही आत्मा ब्रह्म कहाता है। उसके जानने से जगत् जानता है पर तीनों लोकों को जानने से उसको नहीं जानता वह जो अव्यक्त और निर्वाणरूप है; उसके जानने के निमित्त शास्त्रकारों ने ब्रह्म, आत्मा आदिक नाम कल्पे हैं; वास्तव में कोई नाम संज्ञा नहीं। हे रामचन्द्र! वह पुरुष राग द्वेषसे रहित है और इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों के संयोग वियोग में द्वेषको नहीं प्राप्त होता। वह तो एक, चैतन, शुद्ध संवित्, अनुभवरूप, अविनाशी और आकाश से भी स्वच्छ निर्मल है। उसमें जगत् ऐसे स्थित है जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब अन्तर्बाह्यरूप होकर स्थित है—उससे द्वैतरूप कुछ नहीं। हे रामचन्द्र! देह से रहित निर्विकल्प चैतन तुम्हारा आकार है। लज्जा, मोह आदिक विकार तुमको कहां हैं? तुम आदि-रूप हो, और लज्जा, हर्ष, भयादिकअसत्यरूपहैं। तुमक्यों दुर्बुद्धि मूर्ख की नाईं वि-कल्प जाल को प्राप्त होते हो? तुम चैतन आत्मा अखण्डरूप हो; देह के खण्डितहुये आत्मा का अभाव नहीं होता। असम्यक्‌दर्शी भी ऐसे मानते हैं तो बोधवानों का क्या कहना है। हे रामचन्द्र! जो चित्त संवेदन जानता है उसके अनुभव करनेवाली सत्ता सूर्य के मार्ग से भी नहीं रोकीजाती, उसी को तुम चित्सत्ता जानो; वही पुरुष है, शरीर पुरुषरूप नहीं। हे रामचन्द्र! शरीर सत्य हो अथवा असत्य पर पुरुष तो शरीर नहीं। देह के रहने और नष्ट होने से आत्मा ज्यों का त्योंहीं है। ये जो सुख दुःख ग्रहण करते हैं वे देह इन्द्रियादिक चिदात्मा को नहीं ग्रहण करते। जिन पुरुषों को अज्ञान से देह में अभिमान हुआ है उनको सुख दुःख का अभिमान होता है ज्ञानवान् को नहीं होता। आत्मा को दुःख स्पर्श नहीं करता; वह तो सबविकारों से रहित मन के मार्ग से अतीत शून्य की नाईं स्थित है; उसको सुख दुःख कैसे हो? और देह से मिला हुआ जो भासता है सो स्वरूप को त्यागकर दृश्य के चेतने से देहादिक भ्रम भासते हैं और वासना के अनुसार देह से सम्बन्ध होताहै। जैसे भ्र-मर और कमलों का संयोग होताहै। देह पिंजर के नाश हुये आत्मा का नाश तो

नहीं होता। जैसे कमल के नाश हुये भ्रमर का नाश नहीं होता। इससे तुम क्यों वृथा शोक करते हो? हे रामजी! जगत् को असत्य जानकर अभावना करो। मन निरीक्षित हो साक्षीभूत, सम, स्वच्छ, निर्विकल्प चिदात्मा में जगत् हो भासता है। जैसे मणि प्रकाशरूप हो भासता है तो फिर जगत् और आत्मा का सम्बन्ध कैसेहो। जैसे अनिच्छित दर्पण में प्रतिबिम्ब आ प्राप्त होता है, तैसेही आत्मा को जगत् का सम्बन्ध भासता है जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब द्वैतरूप होता है, तैसेही आत्मा में जगत् भेद भी अभेदरूप है। जैसे सूर्य के उदय होने से सब जीवों की क्रिया होती है और दीपक से पदार्थों का ग्रहण होता है तैसेही आत्मसत्ता से जगत् के पदार्थों का अनुभव होता है। यह जगत् चैतन्य तत्त्व के स्वभाव से उपजा है। प्रथम आत्मा से मन उपजा है और उससे यह जगत्जाल रचाहै—वास्तव में आत्मसत्ता में आत्मसत्ता स्थित है। जैसे शून्याकाश शून्यता में स्थित है और उसमें जगत् भासता है सो ऐसे है जैसे आकाश में नीलता और इन्द्रधनुष है परन्तु वह शून्यस्वरूप है। हे रामचन्द्र! यह जगत् चित्तमें स्थित है और चित्त संकल्परूप है। जब संकल्प क्षय होता है तब चित्त नष्ट होजाता है और जब चित्त नष्ट हुआ तब संसाररूपी कुहिरा नष्ट होजाता है और निर्मल शरत्काल के आकाशवत् आत्मसता प्रकाशती है। वह चैतनमात्र सत्ता एक, अज, आदि-मध्य-अन्त से रहित है; उसीसे जो स्पन्द फुरा है वह संकल्परूप ब्रह्मा होकर स्थित हुआ है और उसने नाना प्रकार का जगत् रचाहै। वह शून्यरूप है मूर्खबालक को सत्यरूप भासता है। जैसे बालक को परछाहीं में वैताल भासता है और जैसे जीवों को अज्ञान से देहाभिमान होता है, तैसेही असत्यरूपही सत्यरूप होकर भासताहै। जब सम्यक्ज्ञान होता है तब लीन होजाताहै। जैसे समुद्र से तरङ्ग उपजकर समुद्र में लीन होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् उपजकर आत्मा में ही लीन होता है॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठेआर्षेमहारामायणेशतसाहस्र्यांसंहितायामुत्पत्तिप्रकरणे मोक्षोपायेपरमार्थनिरूपणं नामसप्तनवतितमस्सर्गः॥ ९७॥

समाप्तमिदं श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणं तृतीयम्॥ ३॥

ॐसच्चिदानन्दाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

स्थितिप्रकरणं चतुर्थं प्रारभ्यते ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब स्थितिप्रकरण सुनिये जिसके सुनने से जगत् निर्वाणता को प्राप्त हो। कैसा जगत् है कि, जिसके आदि अहन्ता है। ऐसा जो दृश्यरूप जगत् है सो भ्रान्तिमात्र है। जैसे आकाश में नाना प्रकार के रङ्गों सहित इन्द्रधनुष असत्रूप है, तैसेही यह जगत् है। जैसे द्रष्टा विना अनुभव होताहै और निद्रा विना स्वप्न और भविष्यत् नगर भासता है तैसेही भ्रम से चित्त में जगत् स्थित हुआ है। जैसे वानर रेत इकट्ठी करके अग्नि की कल्पना करते हैं पर उस से शीत निवृत्ति नहीं होती; भावनामात्र अग्नि होती है, तैसेही यह जगत् भावनामात्र है। जैसे आकाश में रत्न मणि का प्रकाश और गन्धर्बनगर भासता है और जैसे मृगतृष्णा की नदी भासती है; तैसेही यह असत्रूप जगत् भ्रम से सत्रूप हो भासता है। जैसे दृढ़ अनुभव से संकल्प भासता है पर वह असत्रूप है और जैसे कथा के अर्थ चित्त में भासते हैं; तैसेही निःसाररूप जगत् चित्त में साररूप हो भासता है। जैसे स्वप्ने में पहाड़ और नदियां भासआती हैं, तैसेही सब भूत बड़े भी भासते हैं पर आकाशवत् शून्यरूप हैं। जैसे स्वप्ने में अङ्गना से प्रेम करता अर्थ से रहित और असत्रूप है और जैसे मूर्ति के लिखे अग्नि और सूर्य होते हैं परन्तु उनसे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता है; तैसेही यह जगत् भी प्रत्यक्ष भासता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं अर्थ से रहित है। जैसे चित्र की लिखी कमलिनी सुगन्ध से रहित होतीहै; तैसेही यह जगत् शून्यरूप है। जैसे आकाशमें इन्द्रधनुष और केलेका थम्भ सुन्दर भासता है परन्तु उसमें कुछ सार नहीं निकलता, तैसेही यह जगत् देखने में रमणीय भासता है परन्तु अत्यन्त असत्रूप है; इसमें सार कुछ नहीं निकलता। देखने में प्रत्यक्ष अनुभव होता है परन्तु मृगतृष्णा की नदीवत् असत्रूप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्व संशयों के नाशकर्त्ता! जब महाकल्प क्षय होता है तब दृश्यमान सब जगत् आत्मरूप बीज में लीन होता है। जैसे बीज में अंकुर रहता है, उससे उपजता है, उसीमें स्थित होता है और फिर उसीमें लीन होता है। यह बुद्धि ज्ञान की है अथवा अज्ञान की? सर्व संशयों से निवृत्ति के अर्थ मुझसे स्पष्ट करके कहिये।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार महाकल्पके क्षयहुये बीजरूप आत्मामें जगत् स्थित होता है। जो ऐसे कहते हैं। वह परम अज्ञानी और महामूर्ख बालक हैं जो ब्रह्म को जगत् का कारण बीज से अंकुर की नाईं कहते हैं वह मूर्ख हैं। बीज तो दृश्यरूप इन्द्रिय का विषय होताहै। जैसे वट बीजसे अंकुर होताहै और फिर विस्तार पाताहै सो इन्द्रियों का विषय है और जो मन सहित षट् इन्द्रियों से अतीत है, अर्थात् इन्द्रियों का विषय नहीं, आकाश से भी अधिक निर्मल है; उसको जगत् का बीज कैसे कहिये? जो आकाश से भी अधिक सूक्ष्म, परम उत्तम, अनुभव से उपलब्ध और नित्य प्राप्त है उसको बीज भाव कहना नहीं बनता। हे रामजी! जो कि, शान्त सूक्ष्म, सदा प्रकाश सत्ता है और जिसमें दृश्य जगत् अस्तरूप है उसको बीजरूप कैसे कहिये? और जब बीजरूप कहना नहीं बनता तब उसे जगत् कैसे कहिये। आकाश से भी अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपद में सुमेरु, समुद्र, आकाश आदिक जगत् नहीं बनता। जो किञ्चन और अकिञ्चन है और निराकार, सूक्ष्मसत्ता है उसमें विद्यमान जगत् कैसे हो वह महासूक्ष्मरूप है और दृश्य उसमें विरुद्धरूप है। जैसे धूप में छाया नहीं, जैसे सूर्यमें अन्धकार नहीं; जैसे अग्नि में बरफ़ नहीं, और जैसे अणुमें सुमेरु नहीं होता; तैसेही आत्मा में जगत् नहीं होता। सत्यरूप आत्मा में असत्यरूप जगत् कैसे हो? वट का बीजभी साकाररूप होताहै और निराकाररूप आत्मा में साकाररूप जगत् होना अयुक्तहै। हे रामजी! कारण दो प्रकार का होताहै— एक समवायकारण और दूसरा निमित्तकारण; आत्मा दोनों कारण भावों से रहित है। निमित्तकारण तब होता है जब कार्य से कर्त्ता भिन्न हो पर आत्मा तो अद्वैत है; उसके निकट दूसरी वस्तु नहीं है वह कर्त्ता कैसे हो और किसका हो; सहकारी भी नहीं जिससे कार्य करे, वह तो मन और इन्द्रियों से रहित निराकार अविकृतरूपहै। और समवायकारण भी परिणाम से होताहै। जैसे वट बीज परिणाम से वृक्ष होताहै; पर आत्मा तो अच्युतरूप है, परिणाम को कदाचित् नहीं प्राप्त होता तो समवाय कारण कैसेहो। जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, क्षीयते, नश्यति; इन षट् विकारों से रहित निर्विकार आत्मा जगत् का कारण कैसे हो? इससे यह जगत् अकारणरूप भ्रान्तिसे भासता है। जैसे आकाश में नीलता; सीप में रूपा और निद्रादोष से स्वप्न दृष्टि भासतेहैं तैसेही यह जगत् भ्रान्तिसे भासता है। और जब स्वरूप में जागे तब जगत् भ्रम मिट जाता है। इससे कारणकार्यभ्रम को त्याग कर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो। दुर्बोधसे संकल्परचना हुई है उसको त्याग करो और आदि; मध्य और अन्त से रहित जो सत्ता है उसीमें स्थित हो तब जगत् भ्रम मिट जावेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजगतनिराकरणन्नामप्रथमस्सर्गः॥ १॥

वशिष्ठजी बोले, हे देवताओं में श्रेष्ठ, रामजी! बीज से अंकुरवत् आत्मा से जगत् का होना अङ्गीकार कीजिये तोभी नहीं बनता क्योंकि आत्मा सर्वकल्पनाओं से रहित महाचैतन्य और निर्मल आकाशवत् है; उसको जगत् का बीज कैसे मानिये? बीज के परिणाम में अंकुर होताहै; और कारण समवायों से होताहै; आत्मा में समवाय और निमित्त सहकारी कदाचित् नहीं बनते। जैसे बन्ध्या स्त्री का सन्तान किसी ने नहीं देखा तैसेही आत्मा से जगत् नहीं होता। जो समवाय और निमित्तकारण विना सहकारी पदार्थ भासे तो जानिये कि यह है नहीं भ्रान्तिमात्र भासता है। आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है। और सृष्टि, स्थिति, प्रलय से ब्रह्मसत्ताही अपने आप में स्थित है। जो इ। प्रकार स्थित है तो कारण कार्य का क्रम कैसे हो और जो कारण-कार्यभाव न हुआ तो पृथ्वी आदिक भूत कहांसे उपजे? और जो कारण कार्य मानिये तो पूर्व जो विकार कहे हैं उनका दूषण आताहै। इससे न कोई कारण है और न कार्य है; कारण-कार्य विना जो पदार्थ भासे उसको सत्‌रूप जाने। वह मूर्ख बालक और विवेकसे रहित है जो उसे कार्य कारण मानताहै—इससे यह जगत् न आगे था; न अब है और न पीछे होगा—स्वच्छ चिदाकाशसत्ता अपने आप में स्थितहै। जब जगत् का अत्यन्त अभाव होताहै तब सम्पूर्ण ब्रह्म ही दृष्टि आताहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग भासते हैं तैसेही आत्मामें जगत् भासता है—अन्यथा कारण कार्यभाव कोई नहीं और न प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अन्योन्याभाव ही है। प्रागभाव उसे कहते हैं कि, जो प्रथम न हो; जैसे प्रथम पुत्र नहीं होता और पीछे उत्पन्न होताहै और जैसे मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है। प्रध्वंसाभाव वह है जो प्रथम होकर नष्ट होजाता है; जैसे घट था और नष्ट होगया। अन्योन्याभाव वह है; जैसे घट में पटका अभाव है और पट में घट का अभाव है। ये तीन प्रकार के भाव जिसके हृदय में हैं उसको जगत् दृढ़ होताहै और उसको शान्ति नहीं होती। जब जगत् का अत्यन्ताभाव दीखता है तब चित्त शान्तिमान् होताहै। जगत्‌के अत्यन्ताभाव के सिवाय और कोई उपाय नहीं और अशेष जगत् की निवृत्ति विना मुक्ति नहीं। सूर्य से आदि लेकर जो कुछ प्रकाश पृथ्वी आदिक तत्त्व; क्षण, वर्ष, कल्प आदिक काल और मैं, यह; रूप, अवलोक, मन, संस्कार इत्यादिक जगत् सब संकल्पमात्रहै और कल्प, कल्पक, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र से कीट आदि पर्यन्त जो कुछ जगत्‌जाल है वह उपज उपजकर अन्तर्द्धान होजाता है। महाचैतन्य परम आकाश में अनन्त वृत्ति उठती है। जैसे जगत् के पूर्व शान्त सत्ता थी तैसेही तुम अबभी जानो और कुछ नहीं हुआ। परमाणु के सहस्रांश की नाईं सूक्ष्म चित्तकला है, उस चित्तकला में अनन्त कोटि सृष्टियां स्थित हैं; वही चित्तसत्ता फुरनेसे जगत्-

रूप हो भासती है और प्रकाशरूप और निराकार शान्तरूप है; न उदय होता है; न अस्त होता है; न आता है और न जाता है। जैसे शिला में रेखा होती है तैसे आत्मा में जगत् है। जैसे आकाश में आकाशसत्ता फुरती है तैसेही आत्मामें जगत् फुरता है और आत्माहीमें स्थितहै। निराकार, निर्विकाररूप विज्ञान घनसत्ता अपने आप में स्थित और उदय और अस्त से रहित, विस्तृतरूप है। हे रामजी! जो सहकारी कारण कोई न हुआ तो जगत् शून्य हुआ। ऐसे जाननेसे सर्वकलङ्क कलना शान्त होजाती है। हे रामजी! तुम दीर्घनिद्रा में सोये हो, उस निद्राका अभाव करके ज्ञान-भूमिका को प्राप्त होजाओ। जागेसे निःशोक पद प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणेस्मृतिबीजोपन्यासोनामद्वितीयस्सर्गः॥ २॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! महाप्रलय के अन्त और सृष्टि के आदि में जो प्रजापति होता है वह जगत् को पूर्व की स्मृति से उसीभांति रचता है तो ये जगत् स्मृतिरूप क्यों न होवे? वशिष्ठजी बोले कि, हे रामजी! महाप्रलय के आदि में प्रजापति स्मरण करके पूर्व की नाईं जगत् रचता है जो ऐसे मानिये तो नहीं बनता क्योंकि; महाप्रलय में प्रजापति कहां रहताहै? जो आपही न रहे उसकी स्मृति कैसे मानिये? जैसे आकाश में वृक्ष नहीं होता तैसेही महाप्रलय में प्रजापति नहीं होता। फिर रामजीने पूछा, हे ब्रह्मण्य! जगत्के आदिमें जो ब्रह्माथा उसने जगत् रचा; महाप्रलय में उसकी स्मृतिका नाश तो नहीं होता; वह तो फिर स्मृतिसे जगत् रचताहै आप कैसे कहते हैं कि, नहीं बनता? वशिष्ठजी बोले, हे शुभव्रत, रामजी! महाप्रलय के पूर्व जो ब्रह्मादिक होते हैं वह महाप्रलय में सब निर्वाण होजाते हैं अर्थात् विदेहमुक्त होते हैं। जो स्मृति करनेवाले अन्तर्द्धान होगये तो स्मृति कहां रही और जो स्मृति निर्मूलहुई तो उसको जगत् का कारण कैसे कहिये? महाप्रलय उसका नाम है जहां सर्व शब्द अर्थ सहित निर्मूल होजाते हैं; जहां सर्व अन्तर्द्धान होगये तहां स्मृति किसकी कहिये और जो स्मृति का अभाव हुआ तो कारण किसका किसकी नाईं कहिये? इससे सर्व जगत् चित्त के फुरनेमात्र हैं। जब महाप्रलय होता है तब सब यत्न विनाही मोक्षभागी होते हैं और जो आत्मज्ञान हो तो जगत् के होते भी मोक्षभागी होतेहैं पर जो आत्मज्ञान नहीं होता तो जगत् दृढ़ होता है; निवृत्त नहीं होता। जब दृश्य जगत् का अभाव होता है तब स्वच्छ चैतन्य सत्ता जो आदि अन्त से रहित है प्रकाशती है और सब जगत् भी वही रूप भासता है सर्व में अनादि सिद्ध ब्रह्मतत्त्व प्रकाशित है, उसमें जो आदि संवेदन फुरताहै वह ब्रह्मरूप है और अन्तवाहक देह विराट् जगत् हो भासता है। उसका एकप्रमाणरूप यह तीनोंजगत् हैं, उसमें देश, काल, क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्रि क्रम हुआ है। उसके अणु में जो

जगत् फुरते हैं सो क्या है ? सब संकल्परूप है और ब्रह्मसत्ता का प्रकाश है। जो प्रबुध आत्मज्ञानी है उसको सब जगत् एक ब्रह्मरूपही भासता है और जो अज्ञानी है उसके चित्त में अनेकप्रकार जगत् की भावना होती है। द्वैत भावना से यह भ्रमता है। जैसे इस ब्रह्माण्ड के अनेक जीव परमाणु हैं; उनके भीतर अनन्त सृष्टियां हैं और उनके अन्तर और अनन्त सृष्टि हैं तैसेही और जो अनन्त सृष्टि हैं उनके अन्तर और अनन्त सृष्टियां फुरती हैं सो सब ब्रह्मतत्त्व का ही प्रकाश है। ब्रह्मरूपी महासुमेरु है, उसके भीतर अनेक जगत्‌रूपी परमाणु हैं सो सब अभिन्नरूप हैं। हे रामजी! सूर्यकी किरणों के समूह में जो सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं उनकी संख्या कदाचित् कोई करभीसके परन्तु आदि अन्त से रहित जो आत्मरूपी सूर्य है उसकी त्रिलोकीरूपी परमाणुओं की संख्या कोई नहीं करसक्ता। जैसे समुद्र में जल और पृथ्वी में धूरके असंख्य परमाणु हैं; तैसेही आत्मा में असंख्य परमाणु सृष्टि हैं। जैसे आकाश शून्यरूप है तैसेही आत्मा चिदाकाश जगत्‌रूप है; यह जो मैंने उसकी सृष्टि कही है जो इनको तुम जगत् शब्द से जानोगे तो अज्ञानबुद्धि है और दुःख और भ्रम देखोगे और जो इनको ब्रह्मशब्द का अर्थ जानोगे तो इस बुद्धि से परमसार को प्राप्तहोगे। सर्व विश्व ब्रह्मसे फुरताहै और विज्ञानघन ब्रह्मरूपही है; द्वैत नहीं। जब जागोगे तब तुमको ऐसेही भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजगदनन्तवर्णनन्नामतृतीयस्सर्गः॥३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इन्द्रियोंका जीतना मोक्ष का कारण है और किसी क्रम तथा उपाय से संसारसमुद्र नहीं तराजाता। सन्तों के संग और सत्‌शास्त्रों के विचार से जब आत्मतत्त्व का बोध होता है तब इन्द्रियां जीतीजाती हैं और जगत् का अत्यन्त अभाव होता है। जबतक संसार का अत्यन्त अभाव नहीं होता तबतक आत्मबोध नहीं होता। यह मैंने तुमसे क्रम कहा है सो संसारसमुद्र तरने का उपाय है। बहुत कहने से क्या है, सबकर्मों का बीज मन है; मन के छेदेसेही सब जगत् का छेदन होता है। जब मनरूपी बीज नष्ट होता है तब जगत्‌रूपी अंकुर भी नष्टहोजाता है। सर्व जगत् मन का रूप है, इसके अभाव का उपाय करो। मलीन मन से अनेक जन्म के समूह उत्पन्न होते हैं और इसके जीतने से सब लोकों में जय होती है। सब जगत् मन से हुआहै, मन के रहित हुये से देह भी नहीं भासती; जब मन से दृश्य का अभाव होता है तब मनभी मृतक होजाता है, इसके सिवाय कोई उपाय नहीं। हे रामजी! मनरूपी पिशाच का नाश और किसी उपाय से नहीं होता। अनेककल्प बीतगये हैं और बीतजायँगे तब भी मन का नाश न होगा। इससे जबतक जगत् दृश्यमान है तबतक इसका उपायकरे। जगत्‌का अत्यन्त अभाव चिन्तना और स्वरूप

आत्मा का अभ्यास करना यही परम औषध है । इस उपाय से मनरूपी द्रष्टा नष्ट होता है जबतक मन नष्ट नहीं होता तबतक मनके मोह से जन्म मरण होताहै और जब ईश्वर परमात्मा की प्रसन्नता होती है तब मन बन्धन से मुक्त होताहै । संपूर्ण जगत् मनके फुरनेमे भासताहै; जैसे आकाश में शून्यता और गन्धर्वनगर भासते हैं, तैसेही संपूर्ण जगत् मन में भासता है । जैसे पुष्प में सुगन्ध; तिलों में तेल; गुणी में गुण और धर्मी में धर्म रहतेहैं तैसेही यह सत्, असत्; स्थूल, सूक्ष्म; कारण, कार्य-रूप जगत् मन में रहताहै जैसे समुद्रमें तरङ्ग; आकाश में दूसरा चन्द्रमा और मरुस्थल में मृगतृष्णा का जल फुरताहै तैसेही चित्त में जगत् फुरताहै । जैसे सूर्य में किरणें; तेज में प्रकाश और अग्नि में उष्णता है; तैसेही मन में जगत् है । जैसे बरफ़ में शीतलता; आकाश में शून्यता और पवन में स्पन्दता है तैसेही मन में जगत् है । संपूर्ण जगत् मनरूप है, मन जगत्रूप है और परस्पर एकरूप हैं; दोनों में से एक नष्ट हो तब दोनों नष्ट होजाते हैं । जब जगत् नष्ट हो तब मनभी नष्ट होजाता है । जैसे वृक्ष के नष्ट हुये पत्र, टास, फूल, फल नष्ट होजाते हैं और इनके नष्ट हुये वृक्ष नष्ट नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेअंकुरवर्णनन्नामचतुर्थस्सर्गः ॥ ४ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! आप सर्वधर्मों के वेत्ता और पूर्व अपर के ज्ञाता हैं; मन के फुरने में जगत् कैसे फुरता है और कैसे हुआ है ? दृष्टान्त सहित मुझसे कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों की दश सृष्टि हुई और दश ही ब्रह्मा हुये सो मन के फुरनेसेही उपजकर मनके फुरने में स्थित हुये और जैसे लवण राजा को इन्द्रजाल की माया से चाण्डाल की प्रतिमा दृढ़होकर भासी, तैसेही यह जगत् मनमें स्थित हुआ है । जैसे शुक्र मनके फुरने से चिरकाल स्वर्ग को भोगते रहे और अनेक भ्रम देखे, तैसेही यह जगत् मनके भ्रममें स्थित हुआहै । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! भृगु ऋषीश्वर के पुत्र ने मनके भ्रमसे कैसे स्वर्गसुख भोगे; वह कैसे भोग का अधिपति हुआ है और कैसे संसारी होकर भ्रम देखा ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! भृगुके पुत्र का वृत्तान्त सुनो । भृगु और काल का संवाद मन्दराचल पर्वत में हुआ है । एक समय भृगु मन्दराचल पर्वत में जहां कल्पवृक्ष और मन्दारवृक्ष आदिक वृक्ष, बहुत सुन्दर स्थान और दिव्यमूर्ति हैं तपकरते थे और शुक्रजी उनकी टहल करते थे जब भृगुजी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुये तब निर्मल मूर्ति शुक्र एकान्त जा बैठे । वे कण्ठ में मन्दार और कल्पवृक्षों के फूलों की माला पहरेहुये विद्या और अविद्या के मध्य में स्थितथे । जैसे त्रिशंकु राजा चाण्डाल था पर विश्वामित्र के वरको पाकर जब स्वर्ग में गया, तब देवताओं ने अनादरकर उसे स्वर्ग से गिरादिया और

विश्वामित्र ने देखके कहा कि; वहांहीं खड़ारह इससे वह भूमि और आकाश के मध्य में स्थितरहा; तैसेही शुक्र बैठे तो क्या देखा कि, एक महासुन्दर अप्सरा उसके ऊर्ध्व स्वर्गकी ओर चलीजाती है। जैसे लक्ष्मी की ओर विष्णुजी देखें तैसेही अप्सरा को शुक्र ने देखा कि, महासुन्दर और अनेक प्रकार के भूषण और वस्त्र पहिनेहुये महासुगन्धित है और महासुन्दर आकाशमार्ग भी उससे सुगन्धित हुआ है। पवन भी उसको स्पर्श करके सुगन्ध पसारती है और महामद से उसके घूर्णे नेत्र हैं। ऐसी अप्सरा को देखके शुक्र का मन क्षोभायमान हुआ और जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा को देखके क्षीरसमुद्र क्षोभित होता है तैसेही उसकी वृत्ति मार्ग से रहित होकर अप्सरा में जा स्थितहुई और कामदेव का बाण आलगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवसंविद्भ्रमनंनामपञ्चमस्सर्गः॥ ५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उसने अप्सरा को देखके नेत्र मूंदे और मनोराज को फैलाकर चिन्तनेलगा कि, यह मृगनयनी ललना जो स्वर्ग को गई है मैं भी उसके निकट पहुँचूं! ऐसे विचार के वह उसके पीछे चला और जाते जाते मन से स्वर्ग में पहुँचा। वहां सुगन्ध सहित मन्दार और कल्पतरु; द्रव स्वर्ण की नाईं देवताओं के शरीर और हास विलास संयुक्त स्त्रियां जिनके हरिण की नाईं नेत्र हैं देखे। मणियोंके समूह कि, परस्पर उनमें प्रतिबिम्ब पड़तेहैं और विश्वरूप की उपमा स्वर्गलोक में देखी। मन्द २ पवन चलती है, मन्दार वृक्षों में मञ्जरी प्रफुल्लित हैं और अप्सरागण विचरती हैं। इन्द्रभाग में आगे गया तो देखा कि, ऐरावत हस्ती जिसने युद्ध में दांतों से दैत्य चूर्ण किये हैं बड़ेमद से खड़ा है, देवताओं के आगे अप्सरा गान करती हैं; सुवर्ण के कमल लगेहुयेहैं। ब्रह्मा के हंस और सारस पक्षी विचरते हैं और देवताओं के नायक विश्राम करते हैं। फिर लोकपाल, यम, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, वायु और अग्नि के स्थान देखे जिनका महाज्वालावत् प्रकाश है। ऐरावत के दांतों में दैत्यों की पंक्तिदेखी, देवता देखे जो विमाननपर आरूढ़ भूषण पहिनेहुये फिरते हैं और उनके हार मणियों से जड़ेहुये हैं। कहीं सुन्दर विमानों की पंक्ति विचरती हैं; कहीं मन्दारवृक्ष हैं, कहीं कल्पवृक्ष हैं, उनमें सुन्दर लता हैं; कहीं गङ्गाका प्रवाह चलताहै, उसपर अप्सरागण बैठी हैं; कहीं सुगन्धता सहित पवन चलता है; कहीं झरने में से जल चलता है; कहीं सुन्दर नन्दन वन है; कहीं अप्सरा बैठी हैं कहीं नारद आदिक बैठे हैं और कहीं जिनलोगों ने पुण्य किये हैं वे बैठे सुख भोगते हैं और विमानों पर आरूढ़ हुये फिरते हैं। कहीं इन्द्र की अप्सरा कामदेव से मस्त हैं और जैसे कल्पवृक्ष में पक्के फल लगते हैं तैसेही रत्न और चिन्तामणि लगे हैं; और कहीं चन्द्रकान्तिमणि स्रवती है। इस प्रकार शुक्र ने मन से स्वर्ग की

रचना देखी, मानों त्रिलोक की रचना यहांहीं है। शुक्र को देखके इन्द्र उठखड़ा हुआ कि, दूसरा भृगु आया है और बड़ेप्रकाश संयुक्त शुक्र की मूर्ति को प्रणाम किया और हाथ पकड़के अपने पास बैठाके बोला, हे शुक्रजी! आज हमारे धन्यभाग्य हैं जो तुम आये। आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आनेसे सफल, शोभित और निर्मल हुआहै। अब तुम चिर पर्यन्त यहांहीं रहो। जब ऐसे इन्द्र ने कहा तब शुक्रजी शोभित हुये और उसको देखके सुरोंके समूह ने प्रणामकिया कि, भृगु के पुत्र शुक्रजी आये हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवमनोराजवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार शुक्रजी इन्द्र के पास जा बैठे तब अपना जो निजभाव था उसको भुलादिया। वह जो मन्दराचल पर्वतपर अपना शरीर था सो भूलगया और वासना से मनोराज का शरीर दृढ़ होगया। एक मुहूर्त पर्यन्त इन्द्र के पास बैठे रहे परन्तु चित्त उस अप्सरा में रहा। इसके अनन्तर उठ खड़े हुये और स्वर्गको देखनेलगे तब देवताओं ने कहा कि, चलो स्वर्गकी रचना देखो। तब शुक्रजी देखते २ जहां वह अप्सरा थी वहां गये। बहुतसी अप्सरों में वह भी बैठीथी, उसको शुक्रजी ने इसभांति देखा जैसे चन्द्रमा चांदनी को देखे। उसे देख के शुक्र का शरीर द्रवीभूत होकर प्रस्वेद से पूर्ण हुआ, जैसे चन्द्रमा को देखके चन्द्र-कान्तिमणि द्रवीभूत होती है; और कामदेव के बाण उसके हृदय में आलगे उससे व्याकुल होगया। शुक्र को देखके उसका चित्त भी मोहित होगया—जैसे वर्षाकाल की नदी जल से पूर्ण होती है तैसेही परस्पर स्नेह बढ़ा। तब शुक्रजी ने मन से तम रचा उससे सब स्थानों में तम होगया जैसे लोकालोक पर्वत के तटमें तम होता है तैसेही सूर्यका अभाव होगया। तब भूतजात सब अपने २ स्थानों में गये जैसे दिन के अभावहुये पशु पक्षी अपने २ गृह को जाते हैं और वह अप्सरा शुक्र के निकट आई। शुक्रजी श्वेत आसनपर बैठगये और अप्सरा भी जो सुन्दर वस्त्र और भूषण पहिने हुयेथी चरणों के निकट बैठी और स्नेहसे दोनों कामवश हुये; तब अप्सरा ने मधुर-वाणी से कहा, हे नाथ! मैं निर्बल होकर तुम्हारी शरण आई हूं मुझको कामदेव दहन करताहै, तुम रक्षा करो; मैं इससे पूर्ण होगई हूं। स्नेहरूपी रस को वही जानता है जिसको प्राप्त हुआहै, जिसको रस का स्वाद नहीं आया वह क्या जाने। हे साधो! ऐसा सुख त्रिलोकी में और कोई नहीं जैसा सुख परस्परस्नेहसे होताहै। अब तुम्हारे चरणों को पाके में आनन्दवान् हुईहूं और जैसे चन्द्रमा को पाके कमलिनी और चन्द्रमा की किरणों को पाके चकोर आनन्दवान् होतेहैं तैसेही मुझको स्पर्श करके आप आनन्द होंगे। जब इस प्रकार अप्सरा ने कहा तब दोनों काम के वश होकर क्रीड़ा करनेलगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवसंगमोनामसप्तमस्सर्गः॥ ७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार उसको पाके शुक्र ने आपको आनन्दवान् मान, मन्दार और कल्पवृक्ष के नीचे क्रीड़ा की और दिव्यवस्त्र, भूषण और फूलों की माला पहिनकर वन, बगीचे और किनारों में क्रीड़ा करते और चन्द्रमा की किरणों के मार्ग से अमृत पान करते रहे। फिर विद्याधरों के गणों के साथ रह उनके स्थानों और नन्दनवन इत्यादिक में क्रीड़ा करते कैलासपर्वत पर गये और अप्सरा सहित वन कुञ्ज में फिरते रहे । फिर लोकालोक पर्वतपर क्रीड़ा की, फिर मन्दराचलपर्वत के कुञ्ज में विचर अर्धशतयुगपर्यन्त श्वेतद्वीप में रहे; फिर गन्धर्वों के नगरों में रहे और फिर इन्द्र के वन में रहे । इसी प्रकार बत्तीस युग पर्यन्त स्वर्ग में रहे; जब पुण्य क्षीण हुआ तब भूमिलोक में गिरादियेगये और गिरते २ उनका शरीर टूटगया । जैसे झरनेमें से जल बन्द हो तैसेही शरीर अन्तर्धान होगया । तब उनकी चिन्तासंयुक्त पुर्यष्टक आकाश में निराधार होरही और वासनारूप दोनों चन्द्रमा की किरणों में जा स्थित हुये। फिर शुक्र ने तो किरणों के द्वारा धान्य में आ निवासकिया और उस धान्य को दशारण्य नाम ब्राह्मण ने भोजन किया तो वीर्य होकर ब्राह्मणी के गर्भ में जा रहा और उस धान्य को मालवदेश के राजा ने भी भोजन किया उसके वीर्यद्वारा वह अप्सरा उसकी स्त्री के उदर में जा स्थित हुई निदान दशारण्य ब्राह्मण के गृह में शुक्रपुत्र हुआ और मालवदेश के राजा के यहां अप्सरा पुत्री हुई । क्रम से जब षोड़शवर्ष की हुई तो महादेव की पूजाकर यह प्रार्थना की कि, हे देव ! मुझको पूर्व के भर्ता की प्राप्ति हो इस प्रकार वह नित्य पूजन करे और वर मांगे; निदान वहां वह यौवनवान् हुआ यहां यह यौवनवती हुई तब राजा ने यज्ञ का आरम्भ किया और उसमें सब राजा और ब्राह्मण आये । दशारण्य ब्राह्मण भी पुत्रसहित वहां आया तब उस पूर्वजन्म के भर्ता को देखकर स्नेह से राजपुत्री के नेत्रों से जल चलने लगा और उसके कण्ठ में फूलकी माला डालके उसे अपना भर्ता किया । राजा यह देखके आश्चर्यमान हुआ और निश्चय किया कि, भला हुआ । फिर क्रमसे विवाह किया और पुत्री और जामातृ को राज्य देके आप वनमें तपकरनेकेलिये चलागया । यहां ये पुरुष और स्त्री मालवदेश का राज्य करनेलगे और चिरकालतक राज्य करते रहे । निदान दोनों वृद्ध हुये और उनका शरीर जर्जरीभूत होगया तब उसको वैराग्य हुआ कि, स्त्री महादुःख स्वरूप है पर उसे सामान्य वैराग्य हुआ था इससे जर्जरीभूत अङ्ग में सेवने से तो अशक्त हुआ परन्तु तृष्णा निवृत्ति न हुई । निदान मृतक हुआ और बान्धवों ने जलादिया तब ज्ञान की प्राप्ति विना महाअन्धकूप मोह में जा पड़े । हे रामजी ! मृत्यु मूर्च्छा के अन्तर उसको परलोक भासिआया और वहां कर्म के अनुसार सुखदुःख भोगके अङ्ग बङ्ग देश में धीवर हुआ और अपने धीवरकर्म

करता रहा। फिर जब वृद्ध अवस्था आई तब शरीर में वैराग्य हुआ कि, यह संसार महादुःख रूप है। ऐसे जानके सूर्य भगवान् का तप करनेलगा और जब मृतक हुआ तब तप के वश से सूर्यवंश में राजा होकर भावना के वश से कुछ ज्ञानवान् हुआ। इस जन्म में वह योगकरने और वेद पढ़नेलगा और योग की भावना से जब शरीर छूटा तब बड़ागुरु हुआ और सबको उपदेश करनेलगा, मन्त्र सिद्धकिया और वेद में बहुत परिपक्क हुआ। मन्त्र के वश मे वह विद्याधर हुआ और एककल्पपर्यन्त विद्याधर रहा जब कल्प का अन्तहुआ तब शरीर अन्तर्धान होगया और पवनरूपी शरीर वासना सहित होरहा। जब ब्रह्मा की रात्रि क्षय हुई; दिन हुआ और ब्रह्मा ने सृष्टि रची तब वह एक मुनीश्वरके गृह में पुत्र हुआ और वहां उसने बड़ा तपकिया। वह सुमेरु पर्वतपर जाकर स्थित हुआ और एक मन्वन्तर पर्यन्त वहां रहा। जब इकहत्तर चौयुगी बीतीं तब वह भोगों के वश हरिणी का पुत्र हुआ और मनुष्य के आकार से वहां रहा और पुत्र के स्नेह से मोह को प्राप्तहो निरन्तर यही चिन्तना करनेलगा कि, मेरे पुत्र को बहुत धन, गुण, आयुर्दा, बल हो। इसकारण तपके भ्रष्ट होनेसे अपने धर्म से विरक्तहुआ; आयुष्य क्षीणहुई और मृत्युरूप सर्प ने ग्रासलिया और तप की अभिलाषा से शरीर छूटा इसकारण भोग की चिन्तासंयुक्त मद्रदेश के राजा के गृह में उत्पन्न हुआ; फिर उस देश का राजा हुआ और चिरपर्यन्त राज्य भोग के वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ और शरीर जर्जरीभूत होगया। वहां तप की अभिलाषा में उसका शरीर छूटा उससे तपेश्वर के गृह में पुत्रहुआ और सन्ताप से रहित होकर गङ्गाजी के किनारे पर तप करनेलगा। हे रामजी! इसप्रकार मन के फुरने से शुक्र ने अनेक शरीर भोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवोपाख्यानेविविधजन्मवर्णनन्नाम अष्टमस्सर्गः॥ ८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार शुक्र मन से भ्रमता फिरा। भृगु के पास जो उसका शरीर पड़ा था सो निर्जीव हुआ; पुर्यष्टक निकलगई थी और पवन और धूप से शरीर जर्जरीभूत होगया जैसे मूल से काटा वृक्ष गिरपड़ता है, तैसे शरीर गिरपड़ा। चञ्चल मन भोग की तृष्णा से वहां गयाथा। जैसे हरिण वन में भ्रमता है और चक्रपर चढ़ा बासन भ्रमता है; तैसेही उसने भ्रम से भ्रमान्तर देखा पर जब मुनीश्वर के गृह में जन्मलिया तब चित्त में विश्राम हुआ और गङ्गा के तटपर तप करनेलगा। निदान मन्दराचल पर्वतवाला शरीर निरस होगया; अस्थि चर्ममात्र शेष रहगया और लोहू सूखगया। जब शरीर के रन्ध्रमार्ग से पवनचले तब बांसुरीवत् शब्द हो; मानों चेष्टा को त्यागके शरीर आनन्दवान् हुआ है। जब बड़ा

पवनचले तब भूमि में लोटनेलगे; नेत्र आदिक जो रन्ध्र थे सो गर्तवत् होगये और मुख फैलगया—मानों अपने पूर्वस्वभाव को देखके हँसता है। जब वर्षाकाल आवे तब वह शरीर जल से पूर्ण होजावे और जल उसमें प्रवेश करके रन्ध्रों के मार्ग से निकले—जैसे झरने से निकलता है और जब उष्णकाल आवे तब महाकाष्ठ की नाईं धूप से सूखजावे निदान वह शरीर वन में मौनरूप होकर स्थितरहा। और पशु पक्षियों ने भी उस शरीर को नाश न किया। उसका एकतो यह कारण था कि, राग द्वेष से रहित पुण्य आश्रम था—और दूसरे भृगु जी महातपस्वी तेजवान् के निकट कोई आ न सक्ता था। इस कारण उस देह को कोई नष्ट न करसका। यहां तो शरीर की यह दशा हुई और वहां शुक्र पवन के शरीर से चेष्टा करतारहा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवकलेवरवर्णनंनामनवमस्सर्गः ॥ ९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सहस्र वर्ष अर्थात् भूमिलोक के तीनलाख और साठ सहस्र वर्ष बीते तब भगवान् भृगुजी समाधि से उतरे तो उन्हें शुक्र का शरीर दृष्टि न आया। जब भलेप्रकार नेत्र फैलाकर देखा तब मालूम हुआ कि, उसका शरीर कृश होके गिरपड़ा है। यह दशा देख उन्होंने जाना कि,काल ने इसको भक्षण कियाहै और धूप, वायु और मेघ से शरीर जर्जरीभूत होगयाहै, नेत्र गढ़ेरूप होगये हैं; शरीर में कीड़े पड़गयेहैं और जीवों ने उसमें आलय बनाये हैं। घुराण अर्थात् कुसवारी और मक्खियां उसमें आतीजाती हैं; श्वेत दांत निकलआये हैं—मानों शरीर की दशा को देखके हँसते हैं और मुख और ग्रीवा महाभयानकरूप, खपर श्वेत और नासिका और श्रवणस्थान सब जर्जरीभूत होगये हैं। उस शरीर की यह दशा देखके भृगुजी उठ खड़े हुये और क्रोधवान् होकर कहनेलगे कि, काल ने क्या समझा जो मेरे पुत्र को मारा। शुक्र परमतपस्वी और सृष्टि पर्यन्त रहनेवाला था सो विना काल काल ने मेरे पुत्र को क्यों मारा,यह कौन रीति है? मैं काल को शाप देकर भस्म करूंगा। तब कालका रूप काल अद्भुत शरीर धरकर आया। उसके षट्मुख, षट्भुजा; हाथ में खड्ग, त्रिशूल और फांसी और कानों में मोती पहिने हुये; मुखसे ज्वाला निकलती थीं; महाश्याम शरीर, अग्निवत् जिह्वा और त्रिशूल के अग्र से अग्नि की लाटें निकलती थीं। जैसे प्रलयकाल की अग्नि से धूम निकलता है तैसेही उसका श्याम शरीर और बड़े पहाड़ की नाईं उग्ररूप था और जहां वह चरण रखता था वहां पृथ्वी और पहाड़ कांपने लगते थे। निदान भृगुजी महाप्रलय के समुद्रवत् क्रोध से पूर्ण थे उनसे कहने लगा; हे मुनीश्वर! जो मर्यादा और परावर परमात्मा के वेत्ता हैं वे क्रोध नहीं करते और जो कोई क्रोधकरे तौभी वे मोहके वश होकर क्रोधवान् नहीं होते। तुम कारण विना क्यों मोहित हो क्रोध को प्राप्त हुये हो ? तुम ब्रह्मतनय

तपस्वी हो और हम नीति के पालक हैं। तुम हमारे पूजने योग्य हो—यही नीति की इच्छा है और तपके बलसे तुम क्षोभ मतकरो, तुम्हारे शाप से मैं भस्मभी नहीं होता। प्रलयकाल की अग्नि भी मुझको दग्ध नहीं करसक्की तो तुम्हारे शाप से मैं कब भस्म होसक्काहूं। हे मुनीश्वर! मैं तो अनेक ब्रह्माण्ड भक्षण करगयाहूं; और कई कोटि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र मैंने ग्रास लिये हैं; तुम्हारा शाप मुझको क्या करसक्का है? जैसे आदि नीति ईश्वर ने रची है तैसेही स्थित है। हम सबके भोक्ता हुये हैं और तुमसे ऋषि हमारे भोगहुये हैं, यही आदि नीति है। हे मुनीश्वर! अग्नि स्वभाव से ऊर्ध्व को जाता है और जल स्वभाव से अधको जाता है; भोक्ता को भोग प्राप्त होताहै और सब सृष्टि काल के मुख में प्राप्त होती है। आदि परमात्मा की नीति ऐसेही हुई है और जैसे रची है तैसेही स्थित है पर जो निष्कलङ्क ज्ञानदृष्टि से देखिये तो न कोई कर्ता है, न भोक्ताहै, न कारणहै, न कार्य है एक अद्वैतसत्ताही है और जो अज्ञान कलङ्क दृष्टि से देखिये तो कर्ता भोक्ता अनेक प्रकार के भ्रम भासते हैं। हे ब्राह्मण! कर्ता भोक्ता आदिक भ्रम असम्यक् ज्ञान से होता है; जब सम्यक् ज्ञान होताहै तब कर्ता, कार्य और भोक्ता कोई नहीं रहता। जैसे वृक्ष में पुष्प स्वभाव से उपज आतेहैं और स्वभाव से ही नष्ट होजाते हैं; तैसेही भूत प्राणी सृष्टि में स्वाभाविक फुर आतेहैं और फिर स्वाभाविक रीति से ही नष्ट होजाते हैं। ब्रह्मा उत्पन्न करताहै और फिर नष्ट भी करता है। जैसे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जलके हिलने से हिलता भासता है और ठहरने से ठहरा भासताहै तैसेही मन के फुरने से आत्मा में कर्तव्य भोक्तव्य भासता है वास्तव में कुछ नहीं; सब मिथ्या है जैसे रस्सी में सर्प भ्रम से भासताहै तैसेही आत्मामें कर्तव्य भोक्तव्य भ्रमसे भासताहै। इससे क्रोध मत करो; यह दुष्टकर्म आपदा का कारण है। हे मुनीश्वर! मैं तुमको यह वचन अपनी विभूति और अभिमान से नहीं कहता। यह स्वतः ईश्वर की नीति है और हम उसमें स्थित हैं। जो बोधवान् पुरुष हैं वे अपने प्रकृति आचार में विचरते हैं और अभिमान नहीं करते। जो कर्तव्य के वेत्ता हैं वे बाहर से प्रकृत आचार करते हैं और हृदय से सुषुप्ति की नाईं स्थित रहते हैं। वह ज्ञान दृष्टि, धैर्य और उदार दृष्टि कहांगई जो शास्त्र में प्रसिद्ध है? तुम क्यों अन्धे की नाईं मोहमार्ग में मोहित होतेहो? हे साधो! तुमतो त्रिकालदर्शी हो, अविचार से मूर्ख की नाईं जगत् यन्त्र में क्यों मोहको प्राप्त होतेहो? तुम्हारा पुत्र अपने कर्मोंके फल को प्राप्त हुआहै और तुम मूर्ख की नाईं मुझको शापदिया चाहते हो। हे मुनीश्वर! इस लोक में सब जीवों के दो २ शरीर हैं—एक मनरूप और दूसरा आधिभूतरूप। आधिभूतरूप जड़ और अत्यन्त विनाशी है और जहां इसको मन प्रेरता है वहां चलाजाता है—आपसे कुछ कर नहीं सक्का। जैसे सारथी

भला होता है तो रथ को भले स्थान को लेजाता है और जो सारथी भला नहीं होता तो रथको दुःख के स्थान में लेजाता है; तैसेही यदि जो मन भला होता है तो उत्तम लोक में जाता है और जो दुष्ट होता है तो नीच स्थान में जाता है। जिसको मन असत् करता है सो असत् भासता है और जिसको मन सत् करताहै वह सत्भासता है। जैसे मिट्टी की सेना बालक बनाते और फिर भङ्ग करते हैं; कभी सत् करते, कभी असत् करते हैं और जैसे करते हैं तैसेही देखते हैं; तैसेही मन की कल्पना है। हे साधो! चित्तरूपी पुरुषहै; जो चित्त करताहै वह होता है और जो चित्त नहीं करता वह नहीं होता। यह जो फुरना है कि, यह देह है, ये नेत्रहैं, ये अङ्गहैं इत्यादिक सब मनरूप हैं। जीवभी मन का नाम है और मन का जीना जीव है। वही मन की वृत्ति जब निश्चयरूप होती है तब उसका नाम बुद्धि होता है; जब अहंरूप धारती है तब उसका नाम अहंकार होता है और जब देह को स्मरण करती है तब उसका नाम चित्त होता है। इससे पृथ्वीरूपी शरीर कोई नहीं; मनही दृढ़ भावना से शरीररूप होता है और वही आधिभौतिक हो भासता है और जब शरीर की भावना को त्यागता है तब चित्त परमपद को प्राप्त होता है। जो कुछ जगत् है वह मन के फुरने में स्थित है; जैसा मनफुरता है तैसाही रूप हो भासता है। तुम्हारे पुत्र शुक्र ने भी मन के फुरने से अनेक स्थान देखे हैं। जब तुम समाधि में स्थित थे तब वह विश्वाची अप्सरा के पीछे मन से चला गया और स्वर्ग में जापहुँचा। फिर देवता होकर मन्दारवृक्षों में अप्सरा के साथ विचरने लगा और फिर पारिजात तमाल आदि वृक्ष और नन्दन वन में विचरता रहा। इसी प्रकार बत्तीस युग पर्यन्त विश्वाची अप्सरा के साथ लोकपालों के स्थान इत्यादि में विचरता रहा और जैसे भँवरा कमल को सेवता है तैसेही तीव्र संवेग से भोग भोगता रहा। जब पुण्य क्षीण हुआ तब वहांसे इस भाँति गिरा जैसे पक्काफल वृक्ष से गिरता है। तब देवता का शरीर आकाशमार्ग में अन्तर्धान होगया और भूमिलोक में आपड़ा। फिर धान में आकर ब्राह्मण के वीर्यद्वारा ब्राह्मणी का पुत्र हुआ; फिर मालवदेश का राज्यकिया और फिर धीवर का जन्म पाया। फिर सूर्यवंशी राजाहुआ, फिर विद्याधरहुआ और कल्पपर्यन्त विद्याधरों में विद्यमान रहा और फिर विन्ध्याचल पर्वतमें गैबहोकर क्रान्तदेश में धीवर हुआ। फिर तरङ्गीत देश में राजा हुआ, फिर क्रान्तदेश में हरिण हुआ और वन में विचरा और फिर विद्यावान् गुरु हुआ। निदान श्रीमान् विद्याधर हुआ और कुण्डलादिक भूषणों से संपन्न बड़ा ऐश्वर्यवान् गन्धर्वों का मुनिनायक हुआ और कल्पपर्यन्त वहां रहा। जब प्रलय होनेलगा तब पूर्व के सबलोक भस्म होगये—जैसे अग्नि में पतङ्ग भस्महोते हैं—तब तुम्हारा पुत्र निराधार और निराकार वासना से

आकाशमार्ग में भ्रमतारहा। जैसे आलय विना पक्षी रहता है तैसेही वह रहा और जब ब्रह्मा की राति व्यतीत हुई और सृष्टि की रचना बनी तब वह सतयुग में ब्राह्मण का बालक वसुदेवनाम हो गङ्गा के तटपर तप करनेलगा। अब उसे आठसौ वर्ष तप करते बीते हैं; जो तुम भी ज्ञानदृष्टि से देखोगे तो सब वृत्तान्त तुमको भास आवेगा। इससे देखो कि, इसीप्रकार है अथवा किसी और प्रकार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकालवाक्यन्नामदशमस्सर्गः॥ १०॥

काल बोले, हे मुनीश्वर! ऐसी गङ्गा के तटपर जिसमें महातरङ्ग उछलते और झनकार शब्द होते हैं तुम्हारा पुत्र तप करता है। शिरपर उसके बड़ी जटा हैं और सर्व इन्द्रियों के भ्रम को उसने जीता है। जो तुमको उसके मन के विस्तार देखने की इच्छाहै तो इननेत्रों को मूंदकर ज्ञान के नेत्रों से देखो। हे रामजी! जब इस प्रकार जगत् के ईश्वर काल ने, जिसकी समदृष्टि है, कहा; तब मुनीश्वर ने नेत्रों को मूंद-कर, जैसे कोई अपनी बुद्धि में प्रतिबिम्ब देखे ज्ञाननेत्रों से एक मुहूर्त में अपने पुत्र का सब वृत्तान्त देखा और फिर मन्दराचल पर्वत पर जो भृगुशरीर पड़ाथा उसमें प्रवेशकर अन्तवाहक शरीर से अपने अग्रभाग में काल भगवान् को देखकर पुत्र को गङ्गा के तट पर देखा। यह दशा देख वह आश्चर्य को प्राप्तहुआ और विकार-दृष्टि को त्यागकर निर्मलभाव से वचन कहे। हे भगवन्! तीनोंकालके ज्ञाताईश्वर! हम बालक हैं; इसीसे निर्दोष हैं। तुम सरीखे बुद्धिमान् और तीन काल अमलदर्शी हैं। हे भगवन्! ईश्वर की माया महाआश्चर्यरूप है जो जीवों को अनेक भ्रम दि-खाती है और बुद्धिमान् को भी मोह करती है तो मूर्खों की क्या बात है? तुम सब कुछ जानतेहो; जीवों की सब वार्त्ता तुम्हारे अन्तर्गतहै। जैसी जीवों के मन की वृत्ति होती है उसके अनुसार वे भ्रमते हैं। वह मन की वृत्ति सब तुम्हारे अन्तर्गत फुरती है। जैसे इन्द्रजाली अपनी बाजी का वेत्ता होताहै तैसेही तुम इनसबों के वेत्ता हो। हे भगवन्! मैंने भ्रम को प्राप्त होकर क्रोध इसकारण से किया कि, मेरे पुत्र की मृत्यु न थी, वह चिरञ्जीवी था और उसको मैं मृतक हुआ देखके भ्रम को प्राप्तहुआ। हमारा क्रोध आपदा का कारण नहीं था क्योंकि, जब मैंने पुत्रका शरीर निर्जीव देखा तब कहा कि, अकारण मृतक हुआ इस कारण क्रोध हुआ। क्रोध भी नीतिरूप है अर्थात् जो क्रोध का स्थान हो वहां क्रोध चाहिये। मैंने संसार की गति विचारके क्रोध नहीं किया; अर्थात् पुत्र की अवस्था देखके क्रोध नहीं किया; निर्जीव शरीर को देखके क्रोध किया; इसीसे यह क्रोध आपदा का कारण नहीं। अयुक्ति कारण से जो क्रोध होताहै वह आपदा का कारण है और युक्ति से जो क्रोध है वह सम्पदा का कारण है यह कर्त्तव्य संसार की सत्ता में स्थित है। यह नीति है कि, जबतक

जीव है तबतक जगत् क्रम है । जैसे जबतक अग्नि है तबतक उष्णताभी है । जो कर्त्तव्य है वह करना है और जो त्यागने योग्य है वह त्यागना है । यह नीति जगत् में स्थित है । जो हेयोपादेय नहीं जानता उसको त्यागना योग्य है । इससे मैंने पुत्र का अकालमृत्यु देखके क्रोध किया था परन्तु विचार करके जब तुमने स्मरण कराया तब मैंने विचार करके देखा कि, मेरा पुत्र अनेक भ्रम पाकर अब गङ्गा के तटपर तप करता है । हे भगवन्! तुमने तो कहा कि, सब जीवों के दो २ शरीर हैं—एक मनोमय और दूसरा आधिभौतिक; पर मैं तो यह मानताहूं कि, केवल मनहीं एक शरीर है; दूसरा कोई नहीं । मनहीं का किया सफल होताहै; शरीर का नहीं होता । काल बोले; हे मुनीश्वर ! तुमने यथार्थ कहा; शरीर एक मनहीं है । जैसे घट को कुलाल रचता है, तैसेही मन देह रचता है । जो मन शरीर से रहित निराकार होता है तो क्षण में आकार को रच लेता है । जैसे बालक परछाहीं में वैताल को भ्रम से रचता है । मन में जो फुरनसत्ता है वह स्वप्नभ्रम दिखाती है और उसमें बड़े आकार और गन्धर्व नगर भासिआते हैं पर वह मनहीं की सत्ताहै स्थूलदृष्टि से जीवोंको दो शरीर भासते हैं बोधवान् को तीनों जगत् मनरूप भासते हैं और सब मन से रचेहैं । जब भेदवासना होती है तब असत्‌रूप जगत् नाना प्रकारहो भासताहै । जैसे असम्यक् दृष्टि से दो चन्द्रमा भासते हैं तैसेही सम्यक्‌दर्शी को एक चन्द्रमावत् सब शान्तरूप आत्मा ही भासता है और भेदभावना से घट पट आदिक अनेक पदार्थ भासते हैं कि, मैं दुर्बल हूं व मोटा हूं; सुखी हूं व दुःखी हूं; यह जगत् है, यह काल है, इत्यादिक सो संसार वासनामात्र है । जब मन शरीर की वासना को त्यागकर परमार्थ की ओर आता है तब भ्रम को नहीं प्राप्त होता । हे मुनीश्वर ! समुद्र से तरङ्ग उठकर ऊर्ध्व को जाताहै, जो वह जाने मैं तरङ्ग होता हूं तो मूर्ख है—यही अज्ञानदृष्टि है । ऊर्ध्व को जावेगा तब जानेगा मैं ऊर्ध्व को गयाहूं, नीचे जावेगा तब जानेगा मैं पाताल को गयाहूं, यह कल्पनाही अज्ञान है, वास्तव नहीं । वास्तव दृष्टि यह है जो अधहो अथवा ऊर्ध्व हो परन्तु आपको जलरूप जाने । तैसेही जो पुरुष परिच्छिन्न देहादिक में अहं प्रतीत करताहै सो अनेक भ्रम, देखताहै; सम्यक्‌दर्शी सब आत्मरूप जानता है । सर्व जीव आत्मरूप समुद्रके तरङ्गहैं, अज्ञान से भिन्न हैं और ज्ञानसे वहीरूप है । आत्मरूपी समुद्र सम, स्वच्छ, शुद्धआदि रूप, शीतल, अविनाशी और विस्तृत अपनी महिमा में स्थित है और सदा आनन्दरूप है । जैसे कोई जल में स्थित हो और तटपर पहाड़ में अग्नि लगीहो तो उस अग्नि का प्रतिबिम्ब जल में देख वह कहे कि, मैं दग्ध होताहूं । जैसे भ्रम से उसको ज्वलनता भासती है तैसेही जीव को आभासरूप जगत् दुःखदायक भासता है । जैसे तट के वृक्ष, पर्वतादि पदार्थ जल में नाना प्रकार

प्रतिबिम्बवत् भासते हैं तैसेही आभासरूप जगत् को जीव नानारूप मानते हैं। जैसे एक समुद्र में नाना तरङ्ग भासते हैं तैसेही आत्मा में अनेक आकार जगत्भासता है; वास्तव में द्वैत कुछ नहीं सर्व शक्तिरूप ब्रह्मसत्ताही है उसीसे विचित्ररूप चञ्चल भासता है पर वह एकरूप अपने आप में स्थित है। ब्रह्म में जगत् फुरता है और उसीमें लीन होताहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और फिर उसीमें लीन होते हैं, कुछ भेद नहीं, पूर्ण में पूर्ण ही स्थित है। जैसे जल से तरङ्ग और ईश्वर से जगत् और पत्र, डाल, फूल, फल, वृक्षरूप हैं तैसेही सब जगत् आत्मारूप है और वह आत्मा अनेक शक्तिरूप है। जैसे एक पुरुष अनेक कर्म का कर्त्ता होता है और जैसा कर्म करता है तैसेही संग को पाता है अर्थात् पाठ करने से पाठक और पाक करने से पाचक और जाप करने से जापक आदिक अनेकनाम धारता है; तैसेही एक आत्मा अनेक शक्ति धारता है। जैसे जिस आकार की परछाहीं पड़ती है तैसाही आकार भासता है और एक मेघ में अनेक रङ्गसहित इन्द्रधनुष भासता है; तैसेही यह अनेक भ्रम पाता है। हे साधो! सब जगत् ब्रह्म से फुरा है और जो जड़भासते हैं वे भी चैतन्य सत्तासे फुरे हैं। जैसे मकड़ी अपने मुख से जाला निकालकर आपही ग्रास लेती है तैसेही चैतन्य से जड़ उत्पन्न होके फिर लीन होजाते हैं। चैतन्य जीव से सुषुप्ति जड़ता उपजती है और फिर उसी में निवृत्त होती है। इससे अपनी इच्छा से यह पुरुष बन्धवान् होताहै और अपनी इच्छासेही मुक्त होताहै। जब बहिर्मुख देहादिक अभिमानसे मिलताहै तब आपको बन्धवान् करता है—जैसे घुरान आपही गृह रचके बन्धवान् होती है और जब पुरुषार्थ करके अन्तर्मुख होताहै तब मुक्तिपाता है। जैसे अपने हाथके बलसे बन्धन को तोड़के कोई बली निकल जाता है। हे साधो! ईश्वरकी विचित्ररूप शक्तिहै; जैसी शक्ति फुरती है तैसाही रूप देखाती है। जैसे ओस आकाश में उपजती है और उसी को ढांपलेती है तैसेही आत्मा में जो इच्छाशक्ति उपजतीहै वही आवरण करलेतीहै और उसीमें तन्मयरूप होजातीहै। वास्तव में जीव को बन्धन और मोक्ष नहीं है; बन्ध और मोक्ष दोनों शब्द भ्रान्तिमात्र हैं। मैं नहीं जानता कि, बन्ध और मोक्ष लोक में कहांसे आये हैं। आत्मा को न बन्धन है और न मोक्ष है; ऐसे मतरूप को असत्यरूप ने ग्रास कर लिया है जो कहताहै कि, मैं दुःखी व सुखी हूं; दुबला हूं व मोटा हूं इत्यादिक माया महाआश्चर्यरूप हैं जिसने जगत् को मोहित कियाहै। हे मुनीश्वर! जब चित्तसंवित् कलनारूप होताहै अर्थात् दृश्य में मिलके स्फूर्तिरूप होताहै तब कुसवारी की नाईं आपही आप को बन्धन करता है और जब दृश्य से रहित अन्तर्मुख होताहै तब शुद्ध मोक्षरूप भासता है। बन्ध और मुक्ति दोनों मनकी शक्ति हैं; जैसा २ मन फुरताहै तैसा २ रूप भासताहै। अनेक शक्ति

आत्मासे अनन्यरूप है, सब आत्मा से उपजाहै और आत्मामें ही स्थितहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और उसी में स्थित होकर लीन होजाते हैं और चन्द्रमा से किरणें उदय होकर भिन्न भासतीं पर फिर उसीमें लीन होतीं हैं; तैसेही जीव उपजकर लीन होजाते हैं। परमात्मारूपी महासमुद्रहै, चेतनतारूपी उसमें जलहै जिससे जीवरूपी अनेक तरङ्ग उपजते हैं और उसी में स्थित होकर फिर लीन होजाते हैं। कोई तरङ्ग ब्रह्मारूप, कोई विष्णु, कोई रुद्र होकर प्रकाशते हैं और कोई लहर प्रमादसे रहित यम, कुबेर, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, मनुष्य, देवता, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होकर उपजते हैं और फिर लीन होजाते हैं। कोई स्थित होकर चिरकाल पर्यन्त रहते हैं–जैसे ब्रह्मादिक; कोई उपजकर और कुछ काल रहकर विध्वंस होजाते हैं–जैसे देवता, मनुष्यादिक और कोई कीट, सर्प आदिक फुरते हैं और चिरकाल भी रहते हैं और अल्पकाल में भी नष्ट होजाते हैं। कोई ब्रह्मादिक उपजकर अप्रमादी रहते हैं और कोई प्रमादी होजाते हैं और तुच्छ शरीर होते हैं यह संसार स्वप्न आरम्भ है और दृढ़ होकर भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसंसारावर्त्तवर्णनन्नामैकादशस्सर्गः॥ ११॥

काल बोले, हे मुनीश्वर! देवता, दैत्य, मनुष्यादिक आकार ब्रह्म से अभिन्नरूप हैं और यह सत् है। जब मिथ्या संकल्प से जीव कलङ्कित होता है तब जानता है कि, "मैं ब्रह्म नहीं"। इस निश्चय को पाके मोहित होताहै और मोहित हुआ अधो को चला जाता है। यद्यपि वह ब्रह्म से अभिन्नरूप है और उसमें स्थित है तो भी भावना के वश से आपको भिन्न जानके मोह को प्राप्त होता है। शुद्ध ब्रह्म में जो संवित् का उल्लेख होता है वही कलङ्कितरूप कर्म का बीज है; उससे आगे विस्तार को पावता है जैसे जल जिस २ बीज से मिलता है उसी रस को प्राप्त होता है तैसेही संवित् का फुरना जैसे कर्म से मिलता है तैसी गति को प्राप्त होता है। संकल्प से कलङ्कित हुआ अनेक दुःख पाता है। यह प्रमादरूप कर्म कञ्जके बीजसा है जिसको जो मुट्ठीभरभर बोता है सो अपने दुःख का कारण है और यह जगत् आत्मरूप समुद्र की लहर है जो विस्तार से फुरती है और कोई ऊर्ध्व को जाती है और कोई अध को जाती है फिर लीन होजाती हैं। ब्रह्मा आदि तृण पर्यन्त इन सब का यही धर्म है। जैसे पवन का स्पन्द धर्म है तैसेही इनका भी है पर उनमें कोई निर्मल पूजनेयोग्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं कुछ मोह संयुक्त हैं–जैसे देवता, मनुष्य, सर्प कोई अनन्त मोह में स्थित हैं–जैसे पर्वत, वृक्षादिक; कोई अज्ञान से मूढ़हैं–जैसे कृमि, कीटादिक योनि ये दूरसे दूर चलेगये हैं। जैसे जल के प्रवाह से तृण चलाजाता है तैसेही देवता, मनुष्य, सर्पादिक कितने भ्रमवान् भी होते हैं और कोई तट

के निकट आके फिर बहजाते हैं अर्थात् सत्सङ्ग और सत्शास्त्रों को पाके फिर माया के व्यवहार में बहजातेहैं। और यमरूप चूहा उनको काटता है। एक अल्प मोह को प्राप्त होकर फिर ब्रह्मसमुद्र में लीन हुये हैं; कोई अन्तर्गत ब्रह्म समुद्रको जानके स्थित हुये हैं और तम अज्ञान से तरे हैं; कोई अनेक कोटिजन्म में प्राप्त होते हैं और कोई अध से ऊर्ध्व को चलेजाते हैं। और फिर ऊर्ध्व से अध को चलेआतेहैं। इसी प्रकार प्रमाद से जीव अनेकयोनि दुःख भोगते हैं। जब आत्मज्ञान होता है तब आपदा से छूट के शान्तिमान् होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेउत्पत्तिविस्तारवर्णनन्नामद्वादशस्सर्गः॥ १२॥

काल बोले, हे साधो! ये जितने जगत् भूतजाति विस्तार हैं वे सब आत्मरूप समुद्र के तरङ्ग हैं—एकही अनेक विचित्र विस्तार को प्राप्त हुआ है। जैसे वसन्त ऋतु में एकही रस अनेक प्रकार के फल फूलों को धारता है। इन जीवों में जिसने मन को जीतकर सर्वात्मा ब्रह्म का दर्शन किया है वह जीवन्मुक्त हुआ है। मनुष्य, देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्वादिक सब भ्रमते हैं; इनसे इतर स्थावर मूढ़ अवस्था में हैं उनकी क्या बात करनी है। लोकों में तीन प्रकार के जीव हैं—एक अज्ञानी जो महामूढ़ हैं; दूसरे जिज्ञासी हैं और तीसरे ज्ञानवान्। जो मूढ़ हैं उनको शास्त्र के श्रवण और विचार में कुछ रुचि नहीं होती और जो जिज्ञासी हैं उनके निमित्त ज्ञानवानों ने शास्त्र रचे हैं। जिस २ मार्ग से वे प्रबुध आत्मा हुये हैं उस२ प्रकारके उन्हों ने शास्त्र रचे हैं और उससे और जीव भी मोक्षभागी होते हैं। हे मुनीश्वर! सत्शास्त्र जो ज्ञानवानों ने रचे हैं उनको जब निष्पाप पुरुष विचारता है तब उसको निर्मल बोध उपजकर मोह निवृत्त होता है और जब निर्मलबुद्धि होती है तब जैसे सूर्य के प्रकाश से तम नष्ट होता है तैसेही सत्शास्त्र के अभ्यास से मोह नष्ट होता है। जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे आत्मा के प्रमाद और विषय की तृष्णा से मोह को प्राप्त होते हैं। जैसे अँधेरी रात्रि हो और ऊपर से कुहिरा भी गिरता हो तब तमसे तम होता है; तैसेही मूढ़ मोह से मोह को प्राप्त होते हैं और अपने संकल्प से आपही दुःखी होते हैं। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर आपही दुःखी होता है। इससे जितने भूतजात हैं उन सबके सुख दुःख का कारण मनरूपी शरीर है; जैसे वह फुरता है तैसी गति को प्राप्त होताहै। मांसमय शरीर का किया कुछ सफल नहीं होता और असत् मांस आदिक का मिला हुआ जो आधिभौतिक शरीर है वह मनके संकल्प से रचा है—वास्तव में कुछ नहीं। संकल्प की दृढ़ता से जो आधिभौतिक भासने लगा है वह स्वप्न शरीरकी नाईं है। मनरूपी शरीरसे जो तेरे पुत्र ने किया है उसीगति को वह प्राप्तहुआ है। इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं है।

हे मुनीश्वर ! अपनी वासनाके अनुसार जैसा कोई कर्म करताहै तैसेही फल को प्राप्त होताहै । मांस शरीर से कुछ नहीं होता । जैसी २ तीव्र भावना से तेरे पुत्र का मन फुरता गया है तैसी २ गति वह पाता गया है । बहुत कहने से क्या है, उठो अब वहीं चलो जहां वह ब्राह्मण का पुत्र होकर गङ्गाके तट पर तप करने लगा है । इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब काल भगवान्‌ने कहा तब दोनों जगत्‌की गति को हँसके उठ खड़ेहुये और हाथ से हाथ पकड़के कहने लगे कि, ईश्वर की नीति आश्चर्यरूप है जो जीवों को बड़े भ्रम दिखाती है । जैसे उदयाचल पर्वत से सूर्य उदय होकर आकाशमार्ग में चलता है तैसे ही प्रकाश की निधि उदार आत्मा दोनों चले । इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने रामजीसे कहा तब सूर्य अस्तहुआ और सर्व सभा अपने २ स्थानको गई । दिनहुये फिर अपने २ आसनपर आन बैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणे भृगुआसनन्नामत्रयोदशस्सर्गः ॥ १३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! काल और भृगुजी दोनों मन्दराचल पर्वत से भूमि पर उतरे और देवताओं के महासुन्दर स्थानों को लांघते २ वहां गये जहां ब्राह्मण शरीर से गङ्गा के किनारे शुक्र समाधि में लगा था । उसका मनरूपी मृग अचल होकर विश्राम को प्राप्त हुआ था । जैसे चिरकाल का थका चिरकाल पर्यन्त विश्राम करता है तैसेही उसने विश्राम पाया । वह अनेक जन्मों की चिन्तना में भटकता २ अब तप में लगाथा और राग द्वेष से रहित होकर परमानन्दपद में स्थित था । उसको देख के काल ने बड़े शब्द से कहा, हे भृगो ! देख यह समाधि में स्थित है अब इस जगाइये । तब उसकी कलना फुरनेसे और बाहर शब्द से; जैसे मेघ के शब्द से मोर जागे; तैसेही शुक्रजी जागे और अर्धोन्मीलित नेत्र खोल के काल और भृगु को अपने आगे देखा पर पहिंचाना नहीं । उसने देखा कि, दोनों के श्याम आकार और बड़े प्रकाशरूप हैं—मानों साक्षात् विष्णु और सदाशिवजी हैं । उन्हें देख वह उठ खड़ाहुआ और प्रीतिपूर्वक चरणवन्दना और नम्रतासहित आदर करके कहा कि, मेरे बड़े भाग्य हैं जो प्रभु के चरण इस स्थान में आये वहां एक शिला पड़ी थी उस पर वे दोनों बैठगये तब वसुदेव नाम शुक्र, जिसका तप के संयोग से पीछे सातातपनाम हुआ था उस शान्त हृदय तपसी ने अगम वचन काल और भृगु से कहे, वह बोला, हे प्रभो ! मैं तुम्हारे दर्शन से शान्तिमान् हुआहूं । तुम सूर्य और चन्द्रमा इकट्ठे मेरे आश्रम में आयेहो और तुम्हारे आने से मेरे मन का मोह नष्ट होगया जो शास्त्रों और तपसे भी निवृत्त होना कठिनहै । हे साधो ! जैसा सुख महापुरुषों के दर्शन से होताहै वैसा किसी ऐश्वर्य और अमृत की वर्षा से भी नहीं होता । तुम ज्ञान के सूर्य और चन्द्रमा हो । हे ऋषीश्वरो ! तुमने हमारा स्थान पवित्र किया और

मैं शान्तात्मा हुआ। तुम कौन हो जो प्रकाशरूप, उदार आत्मा मेरे स्थानपर आये हो ? जब इस प्रकार जन्मान्तर के पुत्र ने भृगुजी मे पूछा तब भृगुजी ने कहा; हे साधो ! तू आप को स्मरणकर कि, कौन है ? अज्ञानी तो नहीं तू तो प्रबोध आत्मा है। जब इस प्रकार भृगुजी ने कहा तब नेत्र मूंद कर शुक्र ध्यान में लगा और एक मुहूर्त्त में अपना सब वृत्तान्त देखके नेत्र खोले और विस्मय होकर कहने लगा कि, ईश्वर की गति विचित्ररूप है; इसके वश होकर मैंने बड़े भ्रम देखे हैं और जगत्-रूपी चक्रपर आरूढ़ हुआ मैं अनन्तजन्म भ्रमा हूं। उन सबको स्मरण करके मैं आश्चर्यवान् होताहूं कि, मैंने बहुत दुःख और अनेक अवस्था भोगी हैं। स्वर्ग और मन्दार, कल्पवृक्ष, सुमेरु, कैलास आदिक वनकुञ्जों में मैं रहा और ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मैंने नहीं पाया; ऐसा कोई कार्य नहीं जो मैंने नहीं किया और ऐसा कोई इष्ट अनिष्ट नरक-स्वर्ग नहीं जो मैंने नहीं देखा। जो कुछ जाननेयोग्य है वह क्या है ? अब मैं आत्मतत्त्व में विश्रामवान् हुआहूं और संकल्प भ्रम मेरा नष्ट होगया है। अब आप वहां चलिये जहां मन्दराचलपर्वत पर मेरा शरीर पड़ाहै। हे भगवन्! अब मुझको कुछ इच्छा नहीं है। यद्यपि हेयोपादेय मुझको कुछ नहीं रहा तथापि नीति की रचना देखके कहताहूं। जो बोधवान् हैं वह प्रकृत आचार में विचरते हैं, आगे जैसी इच्छा हो तैसे कीजिये। बोधवान् उसी आचार को अङ्गीकार करते हैं। इससे अपने प्रकृत आचार को ग्रहण करके व्यवहार में विचरे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवजन्मान्तरवर्णनन्नामचतुर्दशस्सर्गः ॥ १४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार विचार करके तीनों आकाशमार्ग को चले और शीघ्रही मेघमण्डल को उल्लंघ के सिद्धों के मार्ग से मन्दराचल पर्वत पर स्वर्ण की कन्दरा में पहुँचे और पूर्व शरीर को देख शुक्र ने कहा; हे तात ! मेरे पूर्व शरीर को देखो, जिसे तुमने बहुत पालन किया था। जो शरीर कपूरसुगन्ध से शोभित था और फूलों की शय्यापर शयन करता था, वह अब माटी में लपटा पड़ा है और सूख गया है। जिस शरीर को देख के देवस्त्रियां मोहित होती थीं और कण्ठ में मुक्तमाला ऐसी शोभित थीं मानों तारों की पंक्ति हैं वह शरीर अब पृथ्वी पर गिरपड़ा है। नन्दन वन में इसने अनेकभोग भोगे हैं और आत्मरूप जान के इसको मैं पुष्ट करता था वह अब मुझको भयानक भासता है। जो शरीर देवाङ्गनाओं से मिलता और रागवान् होता था वह अब उनकी चिन्ता में सूखगया है। जिन २ विलासों को चाहता था उनको वह करता था और अब वही चिंता से रहित महाअभागी हुआ धूप से सूखगया है और महाविकराल भयानक सा भासता है। जिसको मैं आत्मरूप जानता था; जिसमें अहंकार के विलास करताथा और जिसमें फूल कमल पड़ते और

तारागण प्रकाशतेथे उसमें अब चींटियां फिरती हैं। जो शरीर द्रव स्वर्णवत् सुन्दर प्रकाशरूप था वह अब धूप से सूखा भयानक भासता है और सब गुण इसको छोड़ गये हैं--मानों विरक्त आत्मा हुआ और विषय से मुक्त निर्विकल्पसमाधि में स्थित हुआ है। हे शरीर! तू अदृष्टि तन को प्राप्तहुआ है; अब तेरे में कोई क्षोभ नहीं रहा। अब चित्तरूपी वैताल तेरेमें शान्त होगया है और आने जाने से रहित विश्रामवान् हुआ है; सब कलपना तेरी नष्ट हुई हैं और सुख से सोया है। चित्तरूपी मर्कट से रहित शरीररूपी वृक्ष ठहर गया है और सब अनर्थ से रहित पहाड़ की नाईं अचल हुआ है। यह देह अब सर्व दुःख से रहित परमानन्द में स्थित है। हे साधो! सब अनर्थों का कारण चित्त है। जबतक चित्त शान्तिमान् नहीं होता तबतक जीव को आनन्द नहीं मिलता। जब अमन शक्तिपद को प्राप्त होता है तब महाआधि व्याधि जगत् के दुःखों को तरके विगत परमानन्द को प्राप्त होताहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्व धर्मों के वेत्ता भृगु का जो शुक्र पुत्र था उसने तो अनेक शरीर धरे थे और फिर २ भोग भोगेथे तो भृगु से जोशरीर उत्पन्न था तिसको देख बहुत शोच क्यों किया और देहों का चिन्तन क्यों न किया? इसका क्या कारण है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुक्र की संवेदन कलना जो जीवभाव को प्राप्त हुई थी सो कर्मात्मक होकर भृगु से उपजी। सुनो; आदि परमात्मतत्त्व से चित्तकला फुरकर भूताकाश को प्राप्त हुई और वही वातकला में स्थित होकर प्राण, अपान के मार्ग से भृगु के हृदय में प्रवेश करगई और वीर्य के स्थान को प्राप्त होकर गर्भमार्ग से उत्पन्नहो क्रम करके बड़ी हुई जिससे विद्या और गुण सम्पन्न शुक्र का शरीर हुआ। उस शरीर को जो उसने चिरकाल सेवन किया था इससे उसका शोच किया। यद्यपि वह वीतराग और निरिच्छित था तौ भी चिरकाल जो अभ्यास किया था वही फुर आया। हे रामजी! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी व्यवहार दोनों का तुल्य होताहै परन्तु शक्ति अशक्ति का भेद है। ज्ञानवान् असंसक्त निर्लेप रहता है और अज्ञानी क्रियामें बन्धवान् होता है। ज्ञानवान् मोक्षरूप है और अज्ञानी दरिद्री है। जैसे वन में जाल से पक्षी फँसता है तैसेही अज्ञानी लोकव्यवहार में बन्धवान् होताहै। व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है तैसेही अज्ञानी करता है। जो वासनारहित है वह निर्बन्ध है; वासना सहित बन्ध है इससे वासनामात्र भेद है। जबतक शरीर है तबतक सुख दुःख भी होताहै परन्तु ज्ञानवान् दोनों में शान्तबुद्धि रहता है और अज्ञानी हर्ष शोक से तपायमान होता है। जैसे थम्भे का प्रतिबिम्ब हिलनेसे जल में हिलता भासता है परन्तु स्वरूप में स्थितही है तैसेही अज्ञान में सुख दुःख से सुखी दुःखी भासताहै परन्तु स्वरूप ज्यों का त्यों है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल के हिलनेसे हिलता भासता है परन्तु स्वरूप से ज्यों का

त्यों है तैसेही ज्ञानवान् इन्द्रियों से सुखी दुःखी भासता है पर स्वरूप में ज्यों का त्यों है। अज्ञानी बाहर से क्रिया का त्याग करता है तौ भी बन्ध रहता है और ज्ञानवान् क्रिया करता है तौ भी मोक्षरूप है। अन्तःकरण में जो अनात्मधर्म में बन्धवान् है वह बाहर कर्मइन्द्रिय से मुक्त है तौ भी बन्धन में है और जो अन्तःकरण से मुक्त है वह कर्मइन्द्रिय से बन्धन भासता है तौ भी मुक्तरूप है। जो सब क्रीड़ा को त्याग बैठा है और हृदय में जगत् की सत्यता रखता है वह चाहे कुछ करे वा न करे तौ भी बन्धन में है और जो बाहर चाहे जैसा व्यवहार करता है पर हृदय से अद्वैत ज्ञान में है तो वह मुक्तरूप है—उसको कर्मबन्धन नहीं करता। इससे, हे रामजी ! सबकार्य करो पर अन्तःकरण से शून्य रहकर सर्व एषणा से रहित आत्मपद में स्थित होजाओ और अपने प्रकृतव्यवहार को करो। यह संसाररूपी समुद्र है जिसमें आधि व्याधि और अहं ममतारूपी गढ़ा है जो उसमें गिरताहै वह ऊर्ध्व से अधको जाताहै। इससे संसार के भाव में मतस्थित हो और शुद्ध बुद्ध आत्मस्वभाव में स्थित हो। जो ब्रह्मशुद्ध, सर्वात्मा, निर्विकार, निराकार आत्मपद में स्थित हैं उनको नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेशुक्रप्रथमजीवननामपञ्चदशस्सर्गः॥ १५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार जब शुक्र ने शरीर का वर्णन किया और विकरालरूप देखके उसमें त्याग बुद्धि की तब काल भगवान् शुक्र के वचन को न मान के गम्भीर वाणी से बोले; हे शुक्र ! तू इस तपरूपी शरीर को त्यागकर भृगु के पुत्र का जो शरीर है उसको अङ्गीकार कर। जैसे राजा देशदेशान्तर को भ्रमता २ अपने नगर में आता है तैसेही तू भी इस शरीर में प्रवेशकर क्योंकि; भार्गवतन से तुझे असुरों का गुरु होनाहै। यह आदि परमात्मा की नीति है; महाकल्पपर्यन्त तेरी आयुर्बल है। जब महाकल्पका अन्त होगा तब भार्गवतन नष्ट होगा और फिर तुझको शरीर का ग्रहण न होगा। जैसे रस सूखे से पुष्प गिरपड़ता है तैसेही प्रारब्ध वेगके पूर्ण हुयेसे तेरा शरीर गिर पड़ेगा और शरीर के होते जीवन्मुक्त पद को प्राप्त हुआ प्राकृत आचार में विचरेगा। इससे इस शरीर को त्यागकर भार्गव शरीर में प्रवेशकर। अब हम जाते हैं, तुम दोनों का कल्याण हो और तुमको वाञ्छित फल मिलें। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! काल भगवान् ऐसे कहकर और दोनों पर पुष्प डालकर अन्तर्द्धान होगये। तब वह तपसी नीति को विचारनेलगा कि; क्या होनाहै। विचारकर देखा तो विदित हुआ कि,जैसे काल भगवान् ने कहाहै तैसेही होना है। ऐसे विचार के महाकृशरूप जो शरीर था उसमें प्रवेश किया और तपस्वी ब्राह्मण का देह त्याग दिया। तब उस शरीर की शोभा जाती रही और कम्पकम्पके पृथ्वीपर

गिरपड़ा । जैसे मूल के काटेसे बेलि गिर पड़तीहै तैसेही वह देह गिरा और शुक्रदेह-जीव कला संयुक्त हो आया । तब भृगुजी उस कृश देह को जीवकला संयुक्त देखके उठखड़े हुये और हाथ में जल का कमण्डलु ले मन्त्रविद्यासे जो पुष्टिशक्ति है पाठकर पुत्र के शरीर पर जल डाला और उसके पड़ने से शरीर की सब नाड़ियां पुष्ट होगईं। जैसे वसन्तऋतु में कमलिनी प्रफुल्लित होती हैं तैसेही उसका शरीर प्रफुल्लित हो आया और श्वास आने जाने लगे । तब शुक्र पिता के सन्मुख गया और जैसे मेघ जल से पूर्ण होकर पर्वत के आगे नमता है तैसेही विधिसंयुक्त नमस्कारकरके शिर नवाया और स्नेहसे नेत्रों में जल चलनेलगा । तब पुत्र को देखके भृगुजी ने उसे कण्ठ लगाया कि, यह मेरा पुत्र है । ऐसे स्नेह से पूर्ण होगया । हे रामजी ! जबतक देह है तबतक देह के धर्म फुरआते हैं। इसी प्रकार भृगु ज्ञानी को भी ममता स्नेह फुर आया तो और की क्या बात है ? पिता और पुत्र दोनों बैठगये और एकमुहूर्त्त पर्यन्त कथा वार्ता करते रहे । फिर उठकर उन्हों ने उस तपस्वी शरीर को जलाया क्योंकि, बुद्धिमान् शास्त्राचार में स्थित होते हैं । इसके अनन्तर जिनका वपु तपसे प्रकाशता है और जिनकी श्यामकान्ति है ऐसे जीवन्मुक्त उदारात्मा होकर वहां रहे और समय पाकरके शुक्रजी दैत्यों का गुरु होगा और भृगुजी समाधि में स्थित होंगे । इससे जो सब विकार से रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगत् गुरु हैं वह सबके पूजने योग्य हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवजन्मान्तरवर्णनंनामषोड़शस्सर्गः ॥१६॥

रामजी बोले, हे भगवन् ! जैसे भृगु के पुत्र को यह प्रतिमा फुरती गई और सिद्ध होती गई तैसीही और जीवों को क्यों नहीं सिद्धहोती ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! शुक्र का जो ब्रह्मतत्त्व से फुरना हुआ वही भार्गव जन्म हुआ और जन्म से कलङ्कित नहीं हुआ और वह सर्व एषणासे रहित शुद्ध चैतन्य था । निर्मलहृदय को जैसी स्फूर्त्ति होती है तैसेही सिद्धि होजाती है और मलिन हृदयवान् का संकल्प शीघ्रही सिद्ध नहीं होता । जैसे भृगु के पुत्र को मनोराज हुआ और भ्रमता फिरा तैसेही सबही स्वरूप के प्रमाद से भ्रमते हैं । जबतक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती । यह मैंने भृगु के पुत्र का वृत्तान्त मनोराज की दृढ़ता के लिये तुमको सुनाया है । जैसे बीजही अंकुर फूल, फल अनेकभाव को प्राप्त होता है तैसेही सब भूतजात को मन का भ्रमना अनेक भ्रम को प्राप्त करता है । जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह सब मनके फुरनेका रूप है; मिथ्याभ्रम से नानात्व भासता है और कुछ नहीं है । एक एक प्रति ऐसा भ्रम है और सब संकल्पमात्र है; न कुछ उदय होता है और न अस्त होता; सब मिथ्यारूप मायामात्र है । जैसे स्वप्नपुर

और संकल्पनगर भासता है तैसेही परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं पर कुछ नहीं है और तैसेही यह जाग्रत् भ्रमभी अज्ञान से दृष्टि आता है। भूत, पिशाच आदिक जितने जीव हैं उनका भी संकल्पमात्र शरीर है; जैसे उनको सुख दुःखों का भोग होता है तैसेही तुम हम को भी होता है। जैसे यह जगत् है तैसेही अनन्त जगत् भ्रमते हैं और एक दूसरे को नहीं जानता। जैसे एकस्थान में बहुत पुरुष शयन करते हों तो उनको मनोराज और स्वप्नभ्रम परस्पर अज्ञात होता है तैसेही यह जगत् है पर वास्तव में कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। जो इस जगत् को सत् जानता है उसका पुरुषार्थ नष्ट होता है जो वस्तु भ्रान्ति से भासती है उसका सम्यक्ज्ञान से अभाव होजाता है। यह जाग्रत् जगत् भी दीर्घ स्वप्ना है। चित्तरूपी हस्ती को बन्धन है और चित्तसत्ता से जगत् सत् भासताहै और जगत् सत्तासे चित्त है। एक के नाशहुये से दोनों का नाश होजाता है। जो जगत् का सतभाव नष्ट होता है तब चित्त नहीं रहता और जब चित्त उपशम होता है तब जगत् शान्त होता है। इस प्रकार एक के नाश हुये दोनों का नाश होता है। दोनों का नाश आत्मविचार से होता है। जैसे उज्ज्वल वस्त्रपर केशर का रङ्ग शीघ्रही चढ़जाताहै, मलीन वस्त्रपर नहीं चढ़ता; तैसेही जिसका निर्मलहृदय होता है उसको विचार उपजता है। हृदय तब निर्मल होता है जब शास्त्र के अनुसार क्रिया करता है। हे रामजी ! एक एक जीव के हृदय में अपनी २ सृष्टि है। पर मलीन चित्त से एकको दूसरा नहीं जानता; जब चित्त शुद्ध होता है तब और की सृष्टि को भी जान लेता है। जैसे शुद्ध धातु परस्पर मिलजाती है। जब दृढ़ अभ्यास होता है तब चिरपर्यन्त सब कुछ भासने लगताहै क्योंकि; सबका अधिष्ठाता एक आत्माहै उसमें स्थित होने से सबका ज्ञान होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! शुक्र को प्रतिभामात्र आभास हुआ था उस में देश, काल, क्रिया, द्रव्य उसको दृढ़ होकर कैसे भासे? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! शुक्र ने अपने अनुभवरूपी भण्डार में मन से जगत् देखा। जैसे मोर के अण्डे में अनेकरङ्ग निकलते हैं तैसेही उसको अपने हृदय में भ्रम भासित हुआ। जैसे बीजसे पत्र, टास, फूल, फल निकलते हैं तैसेही जीव जीव को अपने २ अनुभव में संसार खण्ड फुरते हैं। यहां स्वप्न दृष्टान्त प्रत्यक्ष है। जैसे एक एक के स्वप्ने में जगत् होता है तैसेही यह जगत् है। दीर्घ स्वप्ना जाग्रत् हो भासता है और जैसा दृढ़ होता है तैसाही भासनेलगता है। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सृष्टि के समूह परस्पर मिलते कैसे हैं और नहीं कैसे मिलते? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मलीन चित्त परस्पर नहीं मिलता; शुद्ध मिलता है—जैसे शुद्ध धातु मिलजाती है। सुषुप्तिरूप आत्मा में सब फुरते हैं सो तन्मयरूप हैं; जिसको उसमें विश्राम होता है सो

ज्ञानदृष्टि से सबसे मिलजाता है । जैसे जल से जल मिलजाता है तैसेही वह सबसे मिलकर सबको जानता है; और नहीं जानता ॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमनोराजसम्मीलनवर्णनंनामसप्तदशस्सर्गः ॥१७॥
वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ संसारखण्ड हैं उन सबका बीजरूप आत्मा है और सब आत्माही का आभास है । आभास के उदय-अस्त होने में आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है; अपने स्वभाव के त्याग से रहित है; सर्व जीवों का अपना आप वास्तवरूपहै और सुषुप्तिकी नाईं स्फूर्ण है । उसी सत्तामें जीव फुरते हैं तब स्वप्नवत् जगत् भ्रम देखते हैं । जीव जीवप्रति अपनी२ सृष्टि स्थितहै; जो पुरुष उलटके आत्मपरायण होता है वह आत्मपद में प्राप्त होता है । जिस पुरुष को आत्मब्रह्म से एकता हुई है उस को परस्पर और की सृष्टि भासती है । अन्तःकरण में सृष्टि होती है सो उसका अन्तःकरण मिलता है और उस अन्तःकरण जीवकला के मिलेसे परस्पर सृष्टि भास आती है सबका अपना आप सन्मात्र सत्ताहै, उसमें सब सृष्टि स्थित होती है । जैसे कपूर का पर्वत हो तो उसके अणु २ में सुगन्ध होती है और सर्व अणु सुगन्धपर्वत में एकता होती है; तैसेही सब जीवों का अधिष्ठान आत्मसत्ता है । जैसे सब नदियों के जल का अधिष्ठान समुद्र है तैसेही सब जीवों का अधिष्ठान आत्मा है । सृष्टि कहीं परस्पर मिलती है और कहीं भिन्न २ स्थित है । जहां चेतनमात्र सत्ता से एकताहै वहां चित्त की वृत्ति जिसके साथ मिलनीचाहे उसको मिलजाती है पर मलीन चित्तवाला नहीं मिलसक्ता । एकएक जीव में सहस्रों सृष्टि परस्पर गुप्तरूप होती हैं । जहां जैसा फुरना दृढ़ होताहै वहां वैसाही भासता है; जहां मनका फुरना कोमल होता है सो सफल नहीं होता और जहां दृढ़ होता है सो भासने लगता है । हे रामजी ! जब देह की भावना मिटजाती है तो प्राण पवनही स्थित करनेसे चित्त की वृत्ति स्वभाव में स्थित होतीहै और तब और के चित्त की चेष्टा अपने चित्त में फुरआती है और जबतक चित्त मलीन होताहै और देहकी भावनाको नहीं त्यागता तबतक किसी पदार्थ से एकता नहीं होती । जिसका चित्त निर्मल होता है उसको जैसे और के चित्त का ज्ञान हो आता है तैसेही और सृष्टि में मिलने की भी शक्ति होती है; अशुद्ध को नहीं होती । सर्वजीवों की तीन अवस्था होती हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति । यह तीनोंही अवस्था आत्मा में जीवित का लक्षण है । जैसे मृगतृष्णा की नदी के तरङ्ग सूर्य की किरणों में हैं वास्तव में उनका अभाव है तैसेही जीव को आत्मा में प्रमाद है उससे तीनों अवस्थाओं में भटकता है । जब चित्तकला तुरिया में स्थित होतीहै तब जीवन्मुक्त होता है । आत्मसत्ता स्वभाव में स्थितहुये से आत्मा से एकता को प्राप्त होताहै और सबजीव से सुहृद्भाव होताहै । जब अज्ञानी पुरुष

सुषुप्ति आत्मसत्ता से जागता है अर्थात् संसार को चितवता है तब संसार को प्राप्त होता है वह संसार में और संसार उसमें, इस प्रकार प्रमाद करके अनेक सृष्टि देखताहै। जैसे केलेके थम्भसे पत्र का समूह निकल आताहै तैसेही वह सृष्टिसे सृष्टिको देखताहै, शान्ति नहीं पाता और जब उलटके अपने स्वभावमें स्थित होता है तब नानात्वभाव मिटजाता और शान्तरूप होताहै—जैसे केलेके भीतर शीतल होता है। हे रामजी! जगत् के समूह भासते हैं तौभी आत्मा से द्वैत नहीं। जैसे केलेके भीतर पत्र से भिन्न कुछ नहीं निकलता तैसेही आत्मा से जगत् भिन्न नहीं। जैसें बीजही फूलभाव को प्राप्त होता है और फूलसे फिर बीज होता है तैसेही ब्रह्म से मन होता है और बुद्धि से ब्रह्म होता है। जीव का कारण रस है आत्मा में कारण–कार्यभाव कुछ नहीं बनता वह तो अद्वैत अचिन्त्यरूप है। आदि परमात्मा अकारणरूप हैं, वही विचारने योग्य है और से क्या प्रयोजन है? बीज जब अपनेभाव को त्यागता है तब फूलभाव को प्राप्त होता है और ब्रह्मसत्ता अपने स्वभाव को कदाचित् नहीं त्यागती। बीजपरिणाम से आकाशरूप है आत्मा अकृत्रिम, निराकार और अच्युतरूप है; इस कारण आत्मा बीज की नाईं भी नहीं कहाजासक्ता। आकाश से आकाश नहीं उपजता और अभिन्नरूप है; न कोई उपजा है, न किसी को उपजाया है केवल ब्रह्म आकाश अपने आपमें स्थित है। जब द्रष्टा पुरुष को देखताहै तब आपको नहीं देखसक्ता क्योंकि, जब मनोराज का परिणाम जगत् में जाता है तब विद्यमान वस्तु की सँभाल नहींरहती। देहादिक में आत्म अभिमान होताहै। जो पुरुष आत्मसत्ता को देखता है उसको जगत्भाव नहीं रहता और जो जगत् को देखताहै उसको आत्मसत्ता नहीं भासती। जैसे जो मृगतृष्णा की नदी को झूठ जानता है उसको जलभाव नहीं रहता और जो जल जानता है उसको असत्बुद्धि नहीं होती। आकाश की नाईं पूर्ण पुरुष द्रष्टा है वह जब इस दृश्य की ओर जाताहै तब आपको नहीं देखसक्ता। आकाश की नाईं ब्रह्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है सो अज्ञानी को नहीं भासती, उसे जो दृश्य का अत्यन्त भाव है वही भासता है, अनुभव का भासना दूर होगया है। हे रामजी! स्थूलपदार्थ के आगे पटल आता है तब वह नहीं भासता तो जो सूक्ष्म निराकार द्रष्टा पुरुष है उसके आगे आवरण आवे तब वह कैसे भासे? जो द्रष्टा पुरुष है वह अपनेही भाव में स्थित है दृश्यभाव को नहीं प्राप्त होता, दृश्य भासता है तब द्रष्टा नहीं दीखता और दृश्य कुछ वस्तु है नहीं। इससे द्रष्टा एक परमात्मा ही अपने आपमें स्थित है, जो आत्मरूप सर्वशक्तिमान् देव है। जैसा फुरना उसमें होता है वैसाही शीघ्र भास आता है। जैसे वसन्तऋतु में एकरस अनेकरूपों को धरताहै और उससे टास, फूल, फल होते हैं तैसेही एक आत्मसत्ता अनेकजीव

देह होके भासती है । जैसे अपनेही भीतर अनेक स्वप्नभ्रम देखता है तैसेही अहं-आदिक जगत् दृश्य भ्रम को अनुभव प्राप्तही होताहै और स्वरूप से और कुछ नहीं हुआ । जैसे एक बीज के भीतर पत्र, टास, फूल, फल अनेक होते हैं और उसमें और बीज होताहै; बीज के भीतर और वृक्ष और उसके भीतर और बीज होता है इसीप्रकार एक बीज के भीतर अनेक वृक्ष होते हैं; तैसेही एक आत्मा में और अनेक चिद्अणु फुरते हैं; उनके भीतर सृष्टि होती है और फिर उन सृष्टियों के भीतर चिद्अणु, फिर चिद् अणु के भीतर सृष्टि इसी प्रकार अनेक सृष्टि ब्रह्माण्ड हैं उनकी संख्या कुछ कही नहीं जाती व सब अपने आपसे फुरते हैं और आपही स्वाद लेताहै । जैसे तिल में तेल है तैसेही चिद् अणु में आकाश, पवन आदिक अनेक सृष्टि स्थित हैं । आकाश में पवन, अग्नि में जल, सर्व भूतों में पृथ्वी सृष्टि स्थित हैं । ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो चित्त से सत्ता रहित हो; जहां चित्त है वहां उसका आभासरूप द्रष्टा भी स्थित है । जैसे डब्बे में लौंग होते हैं तो उनके नष्ट हुये डब्बा नहीं होता । जैसा २ उसमें फुरना होता है तैसाही तैसा स्थित होता है । सबका अधिष्ठानरूप आत्मा है; जैसे कमल को पूर्ण करनेवाला जल है उससे सब विस्फूर्जित होते और प्रकाशते हैं तैसेही सब नष्टों को सत्ता देनेवाला और आश्रयरूप आत्मतत्त्व है । यह जगत् दीर्घस्वप्नरूप अपने अनुभव से उदय हुआ है सो बाह्यरूप होकर भासताहै; उस स्वप्नेसे और स्वप्नान्तर होताहै उसके आगे और स्वप्न होताहै इसी प्रकार सृष्टि की स्थितिहुई है । जैसे एक बीज से अनेक वृक्ष होते हैं तैसेही एक चिद्अणु में अनेक सृष्टि स्थिति हैं । जैसे जल में अनेक तरङ्ग भासते हैं तैसेही आत्म अनुभव में अनेक जगत् भासतेहैं और अभिन्नरूप हैं । इससे द्वैतभ्रम को तुम त्यागदो; न कोई देश है, न कालक्रिया है केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मसत्ता अपने आप में स्थितहै । ब्रह्मा से कीटपर्यन्त जो जगत् भासता है सो एक परमात्मा ही अपने आपमें किंचनरूप होताहै । जैसे एकरस सत्ताही कहीं फल और सुगन्ध सहित भासतीहै और कहीं काष्ठरूप को प्राप्त होतीहै तैसेही एक परमात्मसत्ता कहीं चैतन्य और कहीं जड़रूप होकर दिखाई देतीहै । जो सर्वगत अविनाशी आत्मा है वही सब का बीजरूप है और उसीके भीतर सब जगत् स्थित है । पर जिसको आत्मा का प्रमाद है उसको नानारूप भासता है । जैसे कोई जल में डूबे और फिर निकले; फिर डूबे, फिर निकले और जैसे स्वप्न में और स्वप्न होताहै; तैसेही प्रमाददोष से भ्रम से भ्रमान्तर नाना प्रकार के जगत् जीव देखता है । जगत् और आत्मा में कुछ भेद नहीं है क्योंकि; जगत् कुछ है नहीं आत्मा ही जगत्सा हो भासता है । जैसे विचाररहित को

सुवर्ण में भूषणबुद्धि होती है और विचार किये से भूषणबुद्धि नष्ट होजाती है, सुवर्णही भासताहै; तैसेही जो विचारसे रहित है उसको यह जगत् पदार्थ भासतेहैं कि; यह मैंहूं, यह जगत् है, यह उपजा है और यह लीन होताहै; और जिसको सत्सङ्ग और शास्त्र के संयोग से विचार उपजाहै उसको दिनदिनप्रति भोग की तृष्णा घटती जातीहै और आत्मविचार दृढ़ होताजाताहै। जैसे किसीको तप आता हो तो औषध करके निवृत्त होजाता है और दो लक्षण उसमें प्रत्यक्ष होतेहैं; एकतो जो तृषा निवृत्त होजातीहै, दूसरे शरीर से तपन निवृत्त होजातीहै और शीतलता प्रकट होतीहै तैसेही ज्यों २ विवेक दृढ़ होताहै त्यों २ इन्द्रियों को जीतताहै; सन्तोष से हृदय शीतल होता है और सर्व आत्मा ही भासता है। यह विवेक का फल है। हे रामजी! जैसे अग्नि के लिखे चित्र से कुछ कार्य नहीं सिद्ध होता तैसेही निश्चय से रहित वचन का विवेक दुःख को निवृत्त नहीं करता और शान्ति प्राप्त नहीं होती। जैसे जब पवन चलताहै तब पत्र और वृक्ष हिलते हैं और उसका लक्षण भासता है पर वाणीसे कहिये तो नहीं हिलते तैसेही जब विवेक हृदय में आता है तब भोग की तृष्णा घट जाती है; मुख के कहनेसे तृष्णा घटती नहीं। जैसे अमृत का लिखा चित्र पान करनेसे अमर होनेका कार्य नहीं करता; चित्र की लिखी अग्नि शीत नहीं निवृत्त करती और स्त्री के चित्र के स्पर्श से सन्तान उपजनेका कार्य नहीं होता; तैसेही मुख का विवेक वाणीविलास है और भोग की तृष्णा को निवृत्त करके शान्ति को नहीं प्राप्त करता। जैसे चित्र देखनेमात्र ही होताहै तैसेही वह विवेक वाग्विलास है। हे रामजी! प्रथम जब विवेक आता है तब राग द्वेष को नाश करताहै और ब्रह्मलोकपर्यन्त जो कुछ विषय भोगरूप है उनसे तृष्णा और वैरभाव को नष्ट करताहै। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होता है तैसेही विवेक उदय हुये अज्ञान नष्ट होजाता है और पावनपद की प्राप्ति होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजीवपदवर्णनन्नामअष्टादशस्सर्गः॥ १८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्वजीवों का बीज परमात्मा है। और वह सर्व ओर से आकाश की नाईं स्थित है। उसके फुरने का नाम जीव है और उस जीव के भीतर जगत् है। उसके आगे और नाना प्रकार की रचनाहै पर वास्तव में चिद्घन जीव के रूप से भीतर स्थित हुआहै इससे सब जीव चिद्घनरूप है। जैसे केलेके थम्भ में पत्र होते हैं तैसेही आत्मसत्ता के भीतर जीव स्थित हैं। जैसे शरीर के भीतर कीट होते हैं तैसेही आत्मा के भीतर जीवराशि हैं और जैसे प्रस्वेद से जूं और लीख आदिक जीव उपजते हैं और दूसरे पदार्थ में कीट उपजआतेहैं तैसेही आत्मा में चित्तकला के फुरने से जीव के समूह फुरआतेहैं। फिर जीव जैसी २ सिद्धि के निमित्त यत्न उपासना करते हैं तैसी २ गति पाते हैं। जो देवता की उपासना करते हैं वह देवता को

प्राप्त होते हैं और यज्ञ के उपासक यज्ञ को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जिसकी जो उपासना करते हैं उसीको वे प्राप्त होतेहैं। ब्रह्म के उपासक ब्रह्मकोही प्राप्त होते हैं। इससे जो अतुच्छपद है उस महत्पद का तुम आश्रय करो। जैसे शुक जब दृश्य के ओर लगा तब उसने अनेक प्रकार के दृश्य भ्रमको देखा और जब शुद्धबुद्धि की ओर आया तब निर्मलबोधको प्राप्त हुआ तैसेही जिसकी कोई उपासना करता है उसीको वह प्राप्त होता है; अन्य को नहीं प्राप्त होता। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत् और स्वप्नका भेद कहिये कि, जाग्रत् क्या है और स्वप्न क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्थिर प्रतीति का नाम जाग्रत् है अस्थिर प्रतीति का नाम स्वप्न है। जो चिरकाल रहता है उसका नाम स्थिर है और जो अल्पकाल रहे उसका नाम अस्थिर है अर्थात् दीर्घकाल प्रतीति का नाम जाग्रत् है और अल्पकाल का नाम स्वप्न है। इनमें कोई विशेष भेद नहीं है, दोनोंका अनुभव सम होताहै। शरीरके भीतर स्थित होकर जो शरीर को जिवाता है उसका नाम जीव है। वह तेज और बीजरूप है। जीव धातु है यह सब उसके नाम हैं। जब जीवधातु स्पन्दरूप होता है तब वह जीवित के रन्ध्रों में फैलता है; मन, वाणी और देह से सब व्यवहार होता है और रन्ध्र खुल जाते हैं तब उस को जाग्रत् कहते हैं। जब चित्तकला जाग्रत् व्यवहार में स्पष्टरूप होतीहै और भीतर होकर फुरती है तब उसके भीतर जगत् भ्रम भासने लगता है, वह स्वप्ना कहाता है। अब सुषुप्ति का क्रम सुनो। मन, वाणी और शरीर से जहां कोई क्षोभ नहीं और स्वच्छवृत्ति जीवधातु भीतर स्थित है; हृदयकोश में प्राणवायु से क्षोभ नहीं होता और नाड़ी रस से पूर्ण होती हैं उस मार्ग से प्राण आनेजाने से रहित होते हैं और क्षोभ से रहित सम वायु चलता है उसका नाम सुषुप्तिहै। जैसे वायु से रहित एकान्त गृह में दीपक उज्ज्वल प्रकाशता है तैसेही वहां संवित्सत्ता अपने आपका अनुभव लेती है। जैसे तिलों में तेल स्थित होताहै तैसेही जीव संवित् कलना से जो कल्पता है सो उस काल में अपने आप में स्थित होता है। जैसे बरफ़ में शीतलता और घृत में चिकनाई होती है तैसेही वहां संवित्सत्ता स्थित होती है; उसका नाम सुषुप्ति अवस्था है जड़रूप उस सुषुप्ति अवस्था से जागकर दृश्यभाव को न प्राप्त हो और निर्विकल्प प्रकाश में स्थित हो सो ज्ञानरूप तुरीया है। तब वह व्यवहार करे तोभी जीवन्मुक्त है; वह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति में बन्धवान् नहीं होता। हे रामजी! आत्मसत्ता से फुरना होकर स्वरूप विस्मरण होजाता है और फुरना दृढ़ होकर स्थित होता है इसी का नाम जाग्रत् है। स्वरूप से प्रमाद दोष करके फुरे और जो जगत् भासे उसको सत्‌रूप जाने और यह प्रतीति थोड़े काल रहकर फिर निवृत्त होजावे इसका नाम स्वप्न है। दृश्य के फुरने का अभाव होजावे और अज्ञातवृत्ति

जड़तारूप रहै उसका नाम सुषुप्ति है। अनुभव में ज्ञान स्थित रहै और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति का व्यवहार हो पर निश्चय में इनका सद्भाव रञ्चक भी न हो केवल ज्ञान में अहं प्रतीति हो और वृत्ति उससे चलायमान न हो उसका नाम तुरीयापद है। उसमें स्थित हुआ जीवन्मुक्त होता है। जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में जीव स्थित होते हैं। जब नाड़ी अन्न के रस से पूर्ण होजाती हैं और प्राणवायु हृदयनाम्नी नाड़ी में नहीं आता तब चित्तसंवित् अक्षोभरूप सुषुप्ति होता है। जब अन्न उस नाड़ी से पचता है और प्राणवायु चलने लगता है तब चित्तसंवित् क्षोभरूप फुरने लगता है और उस फुरने से अपने भीतर हो बड़े जगत् भ्रम देखता है; जैसे बीज से वृक्ष होता है। जब वायु का रस नाड़ी में बहुत होताहै तब चित्त सत्ता आकाश में उड़ना, वायु, अँधेरी आदिक पदार्थों को देखता है; जब कफ का रस नाड़ी में अधिक होता है तब फूल, बेल, बावलियां, जल, मेघ, बगीचे आदिक पदार्थ भासते हैं और जब पित्त की अधिकता होती है तब उष्णरूप अग्नि, रक्त, वस्त्र आदिक भासनेलगते हैं। इस प्रकार वासना के अनुसार जगत्भ्रम देखता है और जैसी २ भावना दृढ़ होती है तैसाही पदार्थ दृढ़ हो भासता है। जब पवन क्षोभायमान होता है तब चित्तसंवित् नेत्र आदिक द्वारके बाहर निकलकर रूपादिक का अनुभव करता है। चिरपर्यन्त सत् जानने का नाम जाग्रत् है। वासना के अनुसार मनरूपी शरीर से जीव नेत्र, जिह्वादिक विना जो रूप रसादिक का अनुभव होता है उसका नाम स्वप्न है पर स्वरूप से न कोई स्वप्ना है, न जाग्रत् है और न सुषुप्ति है; केवल सत्ता अपने आप में स्थित है; उसीके फुरने का नाम जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति है। चिरकाल फुरने का नाम जाग्रत् है और अल्पकाल फुरने का नाम स्वप्ना है सो केवल प्रतीति का भेद है वास्तव में कुछ भेद नहीं और जो वास्तव में भेद न हुआ तो जगत् स्वप्नरूप हुआ। इससे यही भावना दृढ़करो कि, जगत् असत्रूप स्वप्नवत् है इस में सत्भावना करनी दुःख का कारण है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्ति, तुरीयारूप वर्णननामैकोनविंशतितमस्सर्गः॥ १९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह मैंने तुमको मन का रूप निरूपण करके दिखाया है और अवस्थाओं का निरूपण भी इसी निमित्त किया है; और प्रयोजन कुछ नहीं। इससे जैसा निश्चय चित्त में होता है तैसाही हो भासता है। जैसे अग्नि में लोहा डालिये तो अग्निरूप होजाता है तैसेही मन जिस पदार्थ से लगता है उसीका रूप होजाताहै। भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मनहीं से होते हैं; न कोई सत् है, न असत् है केवल मन की चपलता से सब फुरते हैं। मनके मोहसे ही जगत् भासता

है और मन के नष्ट हुये से नष्ट होजाता है। जो मलीन मन है सो अपने फुरने से जगत् को रचता है। यह मनहीं पुरुष है इसको तुम अशुभमार्ग में न लगाना। जब मन को जीतोगे तब सब जगत् में तुम्हारी जय होगी। मन के जीते से सब जगत् जीताजाता है और तब बड़ी विभूति प्राप्त होती है। जो शरीर का नाम पुरुष होता तो शुक्र का शरीर पड़ा था, वह दूसरा शरीर न रचता पर उसका शरीर तो वहां पड़ारहा और मन और शरीरों को रचता फिरा; इससे शरीर का नाम पुरुष नहीं मनहीं का नाम पुरुष है। शरीर चित्त का किया होता है, शरीर का किया चित्त नहीं होता। जिस ओर चित्त जा लगता है उसी पदार्थ की प्राप्ति होती है; इसमें संशय नहीं। इससे यह अतितुच्छ पद है। आत्मसत्ता का चित्तमें सदा अभ्यास करो और भ्रम को त्यागदो। जब मन दृश्य की ओर संसरता है तब अनेक जन्म के दुःखों को प्राप्तहोता है और जब आत्मा की ओर इसका प्रवाह होताहै तब परमपद को प्राप्त होता है। इससे दृश्यभ्रम को त्याग के आत्मपद में स्थित करो॥

इति श्रीयोगवा०स्थितिप्रकरणेभार्गवोपा०समाप्तिवर्णनन्नामविंशतितमस्सर्गः ॥२०॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! सर्व धर्मोंके वेत्ता! जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजके फैल जाताहै तैसेही मेरे हृदय में एक बड़ा संशय उत्पन्न होकर फैलगया है कि, देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित नित्य, निर्मल, विस्तृत और निरामय आत्मसत्ता में मलीन संवित् मननामक कहांसे आया और कैसे स्थित हुआ? जिस से भिन्न कुछ वस्तु नहींहै और न आगे होगी उसमें कलङ्कता कहांसे आई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमने भला प्रश्न किया। अब तुम्हारी बुद्धि मोक्षभागी हुई है जैसे नन्दन-वन के कल्पवृक्ष में कल्पमञ्जरी लगती है तैसेही तुम्हारी बुद्धि पूर्व अपर के विचार से जागी है। अब तुम उस पद को प्राप्तहोगे जिस पदको शुक्र आदिक प्राप्तहुये हैं। तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मैं सिद्धान्तकाल में दूंगा और उस काल में तुमको आत्म-पद हस्तामलकवत् भासेगा। हे रामजी! सिद्धान्त का प्रश्नोत्तर सिद्धान्तकाल में सोहता है और जिज्ञासु का प्रश्नोत्तर जिज्ञासुकाल में सोहता है। जैसे वर्षाकाल में मोर की वाणी शोभती है और शरद्कालमें हंस की वाणी शोभती है और जैसे वर्षा काल के नष्टहुये स्वाभाविकही आकाश की नीलता भासती है और वर्षाकाल में मेघ की घटा शोभती है तैसेही प्रश्नोत्तरभी हैं। जैसा समय हो तैसाही शोभता है। हे रामजी! मैं तुमको मन का स्वरूप अनेक प्रकार के दृष्टान्तों और युक्तियों से कहूंगा और जिस प्रकार यह निवृत्त होता है वह भी क्रमसे बहुत प्रकार कहूंगा। मनकी शान्तिके उपाय जो वेदों ने निर्णय किये हैं और शास्त्रकारों ने कहे हैं उनके लक्षण तुम सुनो। चञ्चल मन जैसा जैसा भाव अङ्गीकार करताहै तैसाही तैसा रूप

होकर भासनेलगता है। जैसे पवन जैसी सुगन्ध से मिलता है तैसाही उसका स्वभाव होजाता है और जैसे जल जिस रङ्गसे मिलता है तैसाही रूप हो भासता है तैसेही मन जिस पदार्थ से मिलता है उसका रूप होजाताहै। मनसे रहित जो शरीर से क्रिया करता है उसका फल कुछ नहीं होता और मन से करताहै उसका पूर्ण फल होताहै। जिस ओर मन जाताहै उसी ओर शरीर भी लगजाता है। बुद्धि इन्द्रिय जो मनरूपहैं वे यदि क्षोभ को प्राप्त हों और देह इन्द्रिय स्थिर हों तौभी कार्य होता है परयदि मन क्षोभित न हो और कर्मेन्द्रिय क्षोभ न हों तो कार्य नहीं होता। जैसे धूल क्षोभायमान हो तो पवन विना आकाश को उड़ नहीं सक्ती और पवन क्षोभायमान हो तो चाहे जैसी धूल स्थित हो उसको उड़ा लेजातीहै; तैसेही देह पड़ारहताहै मन अपने फुरनेसे स्वप्ने में अनेक अवस्था को प्राप्त होता है और जाग्रत्में भी जिस ओर मन फुरताहै देह को भी वहांही लेजाता है। इससे सब कार्यों का बीज मनहीं है और मनसेही सब कर्म होते हैं। मन और कर्म परस्पर अभिन्नरूप हैं। जैसे फूल और सुगन्ध अभिन्नरूप हैं तैसेहीं मन और कर्म हैं। जिस कर्म का अभ्यास मन में दृढ़ होता है उसीकी शाखा फैलती हैं; उसी फल को प्राप्त होता है और उसी स्वाद का अनुभव करता है। जिस २ भाव को चित्त ग्रहण करता है उसी २ भाव को प्राप्त होता है और उसीको कल्पनारूप मानता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पदार्थ हैं; उनमें जिस की दृढ़भावना मन करता है उसीको सिद्ध करता है। कपिलदेव ने सब शास्त्र अपने मन की सत्ताही से बनाये हैं। उसने निर्णय किया है कि, प्रकृत अर्थात् माया के दो स्वभाव हैं—एक अनुलोमपरिणाम और दूसरा प्रतिलोमपरिणाम। जब प्रतिलोम परिणाम होता है तब दृश्यभाव प्राप्त होताहै और अनुलोमपरिणाम से अन्तर्मुख आत्मा की ओर आता है। आत्मा शुद्धरूप है इससे आत्मा की ओर अनुलोम परिणाम ही मोक्षका कारण है और कोई उपाय नहीं। वेदान्तवादियों ने यह निश्चय किया है कि, यह सर्व ब्रह्मही है। शम, दम आदिक से जब मन सम्पन्न होता है तब यह निश्चय धारण होता है कि; सर्व ब्रह्म है। उनके चित्त में यही निश्चय है। ब्रह्मज्ञान के सिवा और किसी यत्न से मोक्ष नहीं होती विज्ञानवादी कहते हैं कि, जबतक बुद्धि फुरती है तबतक संसार है और जब यह अपने स्वभाव में फुरती है तब उस काल में स्वरूप स्थित होताहै। जब वह काल आवेगा तब मोक्ष की प्राप्ति होगी। अर्हन्तजी से बड़े हैं उनको अपने निश्चयानुसार भासता है। मीमांसा, पातञ्जल, वैशेषिक और न्यायादिक शास्त्रकार अपनी २ बुद्धि से जैसा२ निश्चय धरते हैं तैसाही तैसा उनको भासता है; स्वरूपमें न कोई मत है और न शास्त्र है। सबका कारण मन है, मनको हीं अङ्गीकार करके सब मत डूबे हैं। न नींब कडुआ है, न मधु मीठाहै; न

अग्नि उष्ण है और न चन्द्रमा शीतल है; जैसा २ जिसके मन में निश्चय होता है तैसाही तैसा उसको भासताहै। किसीको नींब प्यारी होतीहै और मधु कटु लगता है। नींब के कीट को मधु नहीं रुचता तो क्या मधु कटुक होगया? विरहिणी स्त्री को चन्द्रमा अग्निवत् भासताहै और चकोर अग्नि को भक्षण करलेताहै निदान जैसी२ भावना पदार्थ में होती है तैसाही तैसा हो भासता है। सब जगत् भावनामात्र है; जिस पुरुष को दृश्य में भावना है वह अनेक दुःख और भ्रम देखताहै और जिसको शम दमादिक साधन से अकृत्रिमपद की प्राप्ति होती है और मन तदाकार हुआ है वह शान्तिमान् होता है दूसरा उस सुख को नहीं प्राप्त होता है। हे रामजी! यह जगत् दृश्य तुम्हारे मन के स्मरण में स्थित हुआ है सो तुच्छरूप है। इसको मन से त्यागकरो। ये सुख दुःख आदिक महाभ्रम देनेवाले हैं और यह संसार अपवित्र और असत् तथा मोहरूप महाभय का कारण है। आभास मायामात्र और अविद्यारूप है। इसकी भावना भय का कारण है। जब जगत् के साथ संवित् की तन्मयता होती है तब उसका नाम कर्म बुद्धीश्वर कहते हैं। जब द्रष्टा को दृश्य से संयोग होता हैं तब बड़े मोह को प्राप्त होता है; दृश्य से मिलके भ्रम से अनात्म में आत्माभिमान करता है और देहादिक को अपनाआप जानताहै। संसाररूप मद से जीव उन्मत्त होजाता है और स्वरूप की सँभाल इसको नहीं रहती—इसी का नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं। जो दृश्य से मिला है उसका कल्याण नहीं होता और जिसके आगे मन का पटलहै उसको स्वरूपका भान नहीं होता। जैसे सूर्यके आगे जब मेघ का आवरण आता है तब वह नहीं भासता; तैसेही मन के आवरण से आत्मा नहीं भासता। इससे मनरूपी आवरण को दूर करो। मन का रूप फुरना है; उसको संकल्प कहते हैं। जो जो संकल्प फुरें उनको त्यागकरो; असंकल्प होनेसे मन नष्ट होजावेगा। हे रामजी! जब तुम सर्वभाव और सर्वपदार्थों में असङ्ग होगे तब द्रष्टा पुरुष प्रसन्न होगा और उससे तुमको निर्विकल्प चिदात्मा की प्राप्ति होगी जहां न जगत् की सत्ता है, न सुख है और न दुःख है केवल केवलीभाव है जो अपने आप में प्रकाशता है। जब संसार की भावना तुम्हारे हृदय से उठजावेगी तब तुम निर्मल स्वरूप में स्थित होगे और तब दृश्यभ्रम निवृत्त होजावेगा। जैसे रस्सी के सम्यक् ज्ञान से सर्पभ्रम नष्ट होजाता है तैसेही चिदात्मा के सम्यक्ज्ञान से जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा। इससे तुम दृश्यभावना को त्याग के चिदात्मा की भावना करो; जैसी भावना होती है तैसे हो भासता है। यदि प्रथम भावना को त्यागके और भावना करता है तो प्रथम का अभाव होजाताहै। जैसे दिन हुयेसे रात्रि का अभाव होजाता है तैसेही आत्मभावना से दृश्यभावना का अभाव होजाता है। जैसे लोह

को लोहा काटता है तैसेही भावना को भावना काटती है। इससे अतुच्छ निरुपाधि और निःसंशय पद का आश्रय करो। जब उसकी भावना दृढ़ होगी तब तुम भ्रम से रहित सिद्धपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! तुम्हारा आत्मस्वरूप है; तुम बुद्धि आदिक की कल्पना मत करो। जैसे बालकसे कहिये कि, शून्यमें सिंह है तो वह भयवान् होताहै तैसेही जब शून्यशरीरादिकों में विचारसे बुद्धि नहीं आती और यह मैं हूं, 'यह और है' इत्यादिक जो कल्पना होती हैं सो ऐसी हैं जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल कल्पना होती है। जोकि अपनी कल्पना के वशसे भाव, अभाव, शुभ, अशुभ क्षण २ प्राप्तहोतेहैं और कोई सत्रूप कोई असत्रूप, भासते हैं। जैसी २ भावना होती है तैसाही तैसा भासता है; परस्त्री में जब कामबुद्धि होती है तब स्पर्श से स्त्रीवत् आनन्ददायक होतीहै और जो उसी स्त्री में माता की भावना करता है तो उससे कामबुद्धि जाती रहती है। इससे देखो जैसी २ भावना होती है तैसाही तैसा हो भासताहै। भावना के अनुसार फल होता है और तत्काल उसी आकार को देखता है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो सत् नहीं और ऐसा कोई नहीं जो असत् नहीं। जैसा २ किसी का निर्णय किया है तैसाही तैसा उसको भासता है। इससे इस संसार की भावना को त्यागके स्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! मणि में जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको मणि दूर नहीं करसक्ती पर तुम तो मणिवत् जड़ नहीं हो; तुम चैतन्यरूप आत्मा हो, तुम्हारे में जो दृश्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है तुम उसको त्यागकरो। जो संकल्प दृश्य का उठे उसको असत्रूप जानके त्यागदो और प्रकृत व्यवहार जो प्राप्त हों उनको करो और मणि की नाईं भीतर से रञ्जतसे रहित होरहो। जैसे मणि में प्रतिबिम्ब बहिर्दृष्टि आता है और भीतर रङ्ग नहीं चढ़ता तैसेही बहिर्दृष्टि व्यवहार तुम्हारे में भासे पर हृदय में राग द्वेष स्पर्श न करे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेविज्ञानवादोनामैकविंशतितमस्सर्गः॥ २१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब जीव को सन्तोंके संग और सत्शास्त्रों के विचार से विचार उपजता है तब दूसरी ओर से वृत्ति निवृत्त होती है और संसार का मनन भी निवृत्त होजाताहै तब विवेकरूपी बुद्धि उदय होतीहै और संसार दृश्य की त्याग बुद्धि होती है। तथा द्रष्टा आत्मा में अङ्गीकार बुद्धि होती है। द्रष्टा पुरुष प्रकट होता है और दृश्य अदृश्यता को प्राप्त होताहै अर्थात् द्रष्टा के लक्षसे दृश्य को असत्रूप जानता है। जब यह पुरुष ज्ञान ज्ञेय होता है तब परमतत्त्व में जागता है और संसार की ओर से घन सुषुप्ति, मृतक की नाईं होजाताहै और संसार की ओर से वैराग्य, भोग में अभोग और रस में निरसबुद्धि उपजती है। जब ऐसी बुद्धि होती है तब मन अपनी सत्ता को त्यागकर आत्मरूप होताहै। जैसे बरफ़ का पुतला सूर्य

के तेज से जलरूप होजाताहै तैसेही जब मन में संसार की सत्यता होती है तब उस फुरने से जड़भागी होता है। जब विवेकरूपी सूर्य उदय होताहै तब मन गलके आत्मरूप होजाता है जैसे जबतक मरुस्थल में धूप होती है तबतक वहांसे मृगतृष्णा की नदी नष्ट नहीं होती और जब वर्षा होती है तब नष्ट होजाती है तैसेही जबतक संसार की सत्यता होतीहै तबतक मन नष्ट नहीं होता और जब ज्ञान की वर्षा होती है तब दृश्यसहित मन नष्ट होजाता है। हे रामजी ! संसाररूपी वासना के जाल में जीवरूपी पक्षी फँसे हैं; जब वैराग्यरूपी चूहा इसको कतरे तब जीव निर्बन्ध हो। जैसे मलीनजल निर्मल होता है तैसेही वैराग्यके वशसे जीवका स्वभाव निर्मल होजाता है। जब जीव निराग निरुपाधि के संग और राग, द्वेष और मोहसे रहित होता है तब जैसे पिंजरे के टूटे पक्षी निर्बन्ध होता है तैसेही जीव निर्बन्ध होजाता है सन्देह दुर्मति शान्त होजाती है जगत्भ्रम नष्ट होजाता है और हृदय पूर्ण होजाताहै। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसेही ज्ञानवान् शोभता है, सब से उत्तम सौन्दर्यता को प्राप्त होता है और उसका उदय अस्त रागद्वेष नष्ट होजाता है; सर्व समताभाव वर्त्तताहै और न्यूनता और विशेषताभाव नष्ट होजाता है। जैसे पवन से रहित सोमसमुद्र अचल होताहै तैसेही असङ्ग पुरुष मूकजड़ अन्धकर्म की वासना से रहित अचल होजाता है और वह सब चेतन प्रकाश देखताहै; उसकी बुद्धि विवेक से प्रफुल्लित होजाती है। जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होआते हैं तैसेही वह पुरुष पूर्णिमा के चन्द्रमावत् परम लक्ष्मी से शोभता है। बहुत कहने से क्या है ज्ञान ज्ञेय पुरुष आकाशवत् होजाता है; वह न उदय होता है और न अस्त होता है। विचार करके जिसने आत्मतत्त्व को जानाहै वह उस पद को प्राप्त होता है जहां ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं और सबही उसपर प्रसन्न होते हैं। प्रकट आकार उसका भासता है पर हृदय अहंकार से रहित है और विकल्प के समूह उस को नहीं खींचसक्के-जैसे जल के अभाव जाननेवाले को मृगतृष्णा की नदी नहीं खींचसक्की। हे रामजी ! आविर्भाव और तिरोभावरूप जो संसार है उसको रमणीयरूप जानके ज्ञानवान् खेद नहीं पाता, देह के नाश में वह अपना नाश नहीं मानता और उपजने में उपजना नहीं मानता। जैसे घट उपजे से आकाश नहीं उपजता क्योंकि, आगे सिद्ध है और घट के अभाव से आकाश का अभाव नहीं होता, तैसेही देह के उपजेसे आत्मा नहीं उपजता और देह के नष्ट हुये नष्ट नहीं होता। जब ऐसा विवेक उदय होताहै तब वासना का जल नष्ट होजाता है और कोई भ्रम नहीं रहता। जैसे मृगतृष्णा की नदी का ज्ञानसे अभाव होजाता है। जबतक जीव को यह विचार नहीं उपजता कि मैं कौनहूं, और जगत् क्या है, तबतक संसाररूपी अन्धकार

रहताहै। जो पुरुष ऐसे जानता है कि, 'संसार भ्रम मिथ्या उदय हुआहै' और 'परम आपदा का कारण देह अनात्मरूप है' आत्मा से यह जगत् भिन्न नहीं और सब आत्मसत्ता करके स्थित है वही यथार्थ देखता है। सब चैतन्यसत्ता है; मैं अनन्त चिदाकाशरूप हूं और देश, काल, वस्तुके परिच्छेद से रहितहूं और आधि, व्याधि, भय, उद्वेग, जरा, मरण, जन्म आदिक संयुक्त देश में नहीं; ऐसे जो देखता है, वही यथार्थ देखता है। बाल के अग्र का लक्षभाग करिये और फिर एकभाग के कोटिभाग करिये ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापी है; ऐसे जो देखता है; वही यथार्थ देखता है। मैं सर्व-शक्तिमान् अनन्त आत्मा हूं; सर्वपदार्थों में स्थित और अद्वैत चिदादित्य हूं; ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है। अध ऊर्ध्व मध्य और सब में मैं व्यापा हूं, मुझसे भिन्न द्वैत कुछ नहीं; ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है। जैसे तागेमें माला के दाने पिरोये होते हैं तैसेही सब मुझसे पिरोये हैं, ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है। न मैं हूं, न यह जगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है; सत् असत् के मध्य में जो एकदेव प्रकाशक है और त्रिलोकी में जो एक है वही मैं एक अविनाशी पुरुष हूं। जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं और लीन होजाते हैं तैसेही मेरेमें जगत् फुरते हैं और लीन होते हैं। अथवा प्रथम अहं है, तब दृश्य जगत् होता है; सो न मैं हूं, न जगत् है केवल एक आत्मसत्ताहै। अहं और मम उसमें कोई नहीं ऐसे जो देखताहै सो यथार्थ देखता है। दृश्यसे रहित मैं चैतन्यरूप भैरव अपार हूं और मैंही जगत्जाल को पूर्णकर रहाहूं। जो पुरुष ज्ञानवान्हैं वे सुख दुःख और भाव–अभाव में चलाय-मान नहीं होते, वे केवल ब्रह्मरूप में स्थित हैं और जगत् के भाव–अभाव से रहित अनाभास सन्मात्ररूप हैं। जो हेयोपादेयबुद्धि से रहित आकाशवत् सर्वात्मभाव में स्थित हुआ है उसको जगत् का कोई पदार्थ अपने वश नहीं करसक्ता; वह महात्मा पुरुष महेश्वर, तमप्रकाश से रहित, सब कल्पनाओं से मुक्त, सम और स्वच्छरूप है और उदय अस्त से रहित समवृत्त है। जो ऐसी परमबोध अनन्त सत्ता में स्थित है उसको मेरा नमस्कार है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेअनुत्तमविश्रामवर्णनन्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः॥२२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसने उत्तम पद का आश्रय कियाहै ऐसे जीवन्मुक्त पुरुष का कुम्हार के चक्र की नाईं प्रारब्ध शेष रहा है। वह पुरुष शरीररूपी नगर में राज्य करता है और लेपायमान नहीं होता। उसको भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं। जैसे इन्द्र का वन सुखरूप है तैसेही उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होता है। शरीर के सुख से वह सुखी नहीं होता और दुःख से दुःखी नहीं होता, अपने स्वरूप में स्थित रहता है। रामजी ने पूछा, हे महामुनीश्वर! शरीररूपी नगर कैसा है; उस में

रहके योगीराज क्या करताहै और सुख कैसे भोगताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानी का शरीररूपी नगर रमणीय होताहै और सर्वगुणसंयुक्त ज्ञानवानों को अनन्त आनन्द विलास दिखाता है; जैसे सूर्य प्रकाश को उदय करता है। उस शरीररूपी नगर में गांठें ईंटें हैं; रुधिर और मांस गारा है; अस्थि थम्भे हैं; किवाट पट हैं; रोम वनस्पति हैं उदर खाईं है; छाती चौक है; नव द्वार हैं और उन में नेत्र झरोखे हैं; उन द्वारों से त्रिलोकी का प्रकाश होता है; हाथ गली हैं, जिनसे लेतादेता है; मुख बड़ी कन्दरा है; ग्रीवा और शीश बड़े मन्दिर हैं और रेखा माला हैं जो भिन्न २ लगी हुई हैं; नाड़ी विभाग करने के स्थान हैं और प्राण वायु आदिक से नाड़ी में जीव विचरते हैं; चिन्तामणिरूपी आत्मा में श्रेष्ठ बुद्धिरूपी स्त्री रहती है जिसने इन्द्रिय-रूपी वानर बांध रक्खे हैं; और जिसके हास्य में महासुन्दर फूल हैं। ऐसा शरीर-रूपी पुर ज्ञानवान् को महासुख का निमित्त है और सौभाग्य सुन्दररूप है। उस शरीर के सुखदुःख से ज्ञानवान् सुखी दुःखी नहीं होता। हे रामजी! जो अज्ञानी हैं उनको शरीररूपी नगर अनन्त दुःख का भण्डार है क्योंकि, अज्ञानसे वे शरीर के नष्ट हुये आपको नष्ट हुआ मानते हैं और ज्ञानवान् इसके नाश हुए अपना नाश नहीं मानते। वे जबतक रहते हैं तबतक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनको ग्रहण करते हैं; वे इष्टरूप होके भासते हैं और शरीररूपी नगर में भ्रमसे रहित निष्कण्टक राज्य करते हैं। वे लोभसे रहित हैं इस कारण शत्रु कुछ नहीं लेते और उनको अपने स्थान में आने नहीं देते। वे शत्रु काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देशहैं, उनमें वे आप प्रवेश नहीं करते और अपने देश में उनको आने नहीं देते; सावधानही रहते हैं। उनके देश उदारता, धीरज, सन्तोष, वैराग्य, समता, मैत्रता, मुदिता और उ-पेक्षा हैं; उनमें अज्ञान नहीं प्रवेश करने पाता और आप ध्यानरूपी नगर में रहता है; सत्यता और एकता दोनों स्त्रियों को साथ रखता है और उनसे सदा शोभाय-मान रहता है। जैसे चन्द्रमा चित्रा और विशाखा दोनों स्त्रियों से शोभताहै तैसेही ज्ञानवान् सत्यता और एकतासे शोभताहै। वह मनरूपी घोड़े पर आरूढ़ होके और विचाररूपी लगाम उसके लगाकर जीवब्रह्मकी एकतारूपी सङ्गम तीर्थ में स्नान करने जाताहै जिससे सदा आनन्दवान् रहता है और भोग और मोक्ष दोनोंसे सम्पन्न होता है। जैसे इन्द्र अपने पुर में शोभताहै तैसेही ज्ञानवान् देह में शोभताहै और जैसे घट के फूटसे आकाश की कुछ न्यूनता नहीं होती तैसेही देहके नाश हुये ज्ञानी की कुछ हानि नहीं होती वह ज्योंका त्योंहीं रहताहै। यद्यपि उसके देह होतीहै तौभी वह उ-ससे स्पर्श नहीं करता—जैसे घट से आकाश स्पर्श नहीं करता और सर्व क्रिया को कर्त्ता भोक्ता है परन्तु किसीमें लिप्त नहीं होता, सदा एकरस भगवान् आत्मदेव में

रहताहै। जब वह विमान पर आरूढ़ होके शरीररूपी नगर में विचरता है तब मैत्री-रूपी नेत्रों से सबको देखता है; मैत्रीभाव उसमें सदा रहता है और सत्यता और एकता सदा उसके पास है उससे शोभता है और सदा आनन्दवान् विचरता है। वह जीवों को दुःखरूपी आरे से कटते देखता है जैसे कोई पहाड़ पर चढ़के पृथ्वी में लोगों को जलता देखे और आप आनन्दवान् हो; तैसे वह ज्ञानवान् जीवों को दुःखी देखता है और आप आनन्दवान् है। उसकी दृष्टि में तो सदा अद्वैतरूप है और आत्मानन्द की अपेक्षा से अनात्म धर्म को दुःखी देखता है उसके निश्चय में जगत् जीव कोई नहीं और वह चारों प्रयोजन—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पूर्णता को प्राप्त होताहै। किसी ओर से उसको न्यूनता नहीं; वह सर्व सम्पदा सम्पन्न विराजमान होताहै। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा न्यूनता से रहित विराजता है तैसेही यद्यपि वह भोगों को सेवताहै तौभी उसको वे दुःखदायक नहीं होते। जैसे कालकूट विष को सदाशिव ने पानकिया था परन्तु उनको वह दुःखदायक न हुआ; तैसेही वहभी समर्थ है। जैसे चोरको जानके जब उसे अपने वशवर्ती किया तब मित्रभाव होजाताहै तैसेही भोग उसको दुःख नहीं देते। जब जीव भोगों को जानताहै कि, ये कुछ वस्तु नहीं हैं तब वे सुखके कारण होतेहैं और जबतक इनको सत् जानके आसक्त होता है तबतक दुःखके कारण होते हैं। हे रामजी! जैसे यात्रामें अनेक स्त्री, पुरुष मिलते हैं और परस्पर इकट्ठे बैठते और चलते फिरते हैं परन्तु आपस में आसक्त नहीं होते—आगे पीछे चले जाते हैं—तैसेही ज्ञानवान् संसार के पदार्थोंमें चित्त को नहीं लगाते। जैसे कोई कासिद किसी देश में जाताहै और मार्ग में कोई सुन्दर रमणीय स्थान दृष्टि आते और कोई मलीन कष्ट के स्थान भासते हैं परन्तु वह राग द्वेष किसी में नहीं करता, जैसे तैसे देखता चलाजाता है, तैसेही ज्ञानवान् भोगक्रिया में राग द्वेष से बन्धवान् नहीं होता। उसके सर्वसंशय सम्यक्ज्ञानसे शान्त होजाते हैं, कोई आश्चर्य पदार्थ उसको नहीं देखाईदेते; उसके वासना के समूह नष्ट होजाते हैं, चक्रवर्ती राजा की नाईं शोभताहै और परिपूर्ण होके स्थित होताहै। जैसे क्षीर समुद्र अपने आप में पूर्ण नहीं समाता तैसेही ज्ञानी अपने आप में पूर्ण नहीं समाता। हे रामजी! इन जीवों को भोग की इच्छाही दीन करती है जिससे वे आत्मपद से गिरते हैं और अनात्म में प्राप्तहो कृपण होजाते हैं। उनको देखके उत्तम आत्मपद आलम्बी हँसते हैं कि, ये मिथ्या दीनभाव को प्राप्तहुये हैं। जैसे कोई स्वामी होकर स्त्रीके वश हो और स्त्री स्वामी की नाईं हो तो उसको देखके लोग हँसते हैं; तैसेही ज्ञानवान् भोग की तृष्णावाले को दीन देखके हँसते हैं। चञ्चल मनहीं परमसिद्धान्त सुख से जीवों को गिराता है; इससे तुम मनरूपी हस्ती को विचाररूपी कुन्देसे वश करो तब सिद्ध पद को प्राप्त होगे।

जिसका मन विषयों की ओर धावताहै वह संसाररूपी विष का बीज बोता है। इससे प्रथम इस मनको ताड़न करो तब शान्तिकी प्राप्ति होगी। जो मानी होताहै और कोई उसका मान करताहै तो वह उपकार कुछ नहीं मानता पर जब प्रथम उसको ताड़न करके थोड़ेही उपकार कियेसे प्रसन्न होताहै। जैसे धान्य जलसे पूर्ण होतेहैं तब जलके सींचनेसे उनमें उपकार नहीं होता और जो ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप से तप्त होते हैं तो थोड़ा जल सींचनेसेभी उनको अमृतवत् होता है, तैसेही जो प्रथम मनका सन्मान करिये तो मित्रभाव नहीं होता और यदि ताड़न करके पीछे सन्मान कीजिये तो उपकार मानके मित्रभाव रक्खेगा। ताड़न करना विषय से संयम करनाहै जब संयम करके निर्वाण हो तब यह सन्मान करना चाहिये कि, संसार के पदार्थों में बर्त्तना। तब वह शत्रुभाव को त्यागके मित्र होजाना है, जैसे वर्षाकाल में जब नदी जलसे पूर्ण होती है तब उसमें जलका उपकार नहीं होता पर शरद्काल में जलका उपकार होताहै। जैसे राजा को और देशका राज्य प्राप्तहो तो वह कुछ प्रसन्न नहीं होता पर यदि प्रथम उसे बन्दीखाने में डालिये और फिर थोड़ा ग्रास दीजिये तो उससेभी प्रसन्न होताहै; तैसेही जब प्रथम मन को ताड़न कीजिये तब थोड़े सन्मान से भी सुखदायक होताहै। इससे तुम हाथ से हाथ दबा के; दांतों से दांत मिलाके और अंग से अंग रोकके इन्द्रियों को जीतलो। मनुष्य के हृदय में मनरूपी सर्प कुण्डल मारके बैठाहै और कल्पनारूपी विषसे पूर्ण है। जिसने उसको मर्दनकिया है उसको मेरा नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेशरीरनगरवर्णनंनामत्रयोविंशतितमस्सर्गः॥ २३॥

वशिष्ठजी बोले कि; हे रामजी! अज्ञानी जीव महानरक को प्राप्त होता है। आशारूपी बाण की शलाका उसको लगतीहै और इन्द्रियरूपी शत्रु मारतेहैं। इन्द्रियां दुष्ट बड़ी कृतघ्न हैं; जिस देहके आश्रय रहती हैं उसको शोक और इच्छा से पूर्ण करती हैं। ये महादुष्ट और दुःखदायक भण्डार हैं; इनको तुम जीतो। इन्द्रियां और मनरूपी चील पक्षी हैं, जब इनको विषयभोग नहीं होते तब ऊर्ध्व को उड़ते हैं और जब विषय प्राप्त होते हैं तब नीचे को आ गिरते हैं। जिस पुरुष ने विवेकरूपी जाल से इनको बांधा है उसको ये भोजन नहीं करसक्के जैसे—पाषाण के कमल को हाथी भोजन नहीं कर सक्का। हे रामजी! ये भोग आपातरमणीय और अत्यन्त विरसहैं; जो पुरुष इनमें रमण करता है वह नरक को प्राप्तहोगा और जो पुरुष ज्ञान के धन से सम्पन्न है और देहरूपी देश में रहताहै वह परम शोभा पाताहै और आनन्दवान् होताहै क्योंकि; बड़े ऐश्वर्य से उसने इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं। हे रामजी! सुवर्ण के मन्दिर में रहने से ऐसा सुख नहीं मिलता जैसा निरवासनिक ज्ञानवान् को होता है। जिसपुरुष ने

इन्द्रियों और असत्‌रूपी शत्रुको जीताहै वह परमशोभा से शोभताहै—जैसे हिमऋतु को जीत के वसन्तऋतु में मञ्जरी शोभतीहैं। जिस पुरुष के चित्त का गर्व नष्ट हुआहै और जिसने इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं उसकी भोगवासना नष्ट होजाती हैं-जैसे शीतकाल में पद्मनियां नष्ट होजाती हैं। हे रामजी! वासनारूपी वैताल निशाचर तबतक विचरते हैं जबतक एकतत्त्व का दृढ़ अभ्यास करके मन को नहीं जीतते; जब विवेकरूपी सूर्य उदय होताहै तब अन्धकार नष्ट होजाताहै। जब विवेक से मनुष्य मन को वश करता है तब इन्द्रियां भृत्य (टहलुये) होजाती हैं, मनरूपी सब मित्र होजाते हैं और आप राजा होके स्वरूपराज को भोगताहै। हे रामजी! विवेकी की इन्द्रियां पतिव्रता स्त्रीवत् होजातीहैं; मन सीताकी नाईं पालना करनेवाला होताहै और चित्त सुहृद् होजाताहै। जब निश्चयवान् पुरुष सत्‌शास्त्र को विचारताहै तब परमसिद्धान्तको प्राप्त होताहै और मन अपने मननभाव को त्यागके शान्तरूप पितावत् प्रतिपालक होजाताहै। इससे तुम मनको विवेक से वशकरो। मनरूपी मणि को आत्मविचार शिला से घिसो; वैराग जल से उज्ज्वल करो और अभ्यासरूपी छेद करके विवेकरूपी तागेसे पिरोय कण्ठ में पहिनो तो शोभा देतीहै। जन्मरूपी वृक्षको विवेकरूपी कुदाड़ा काट डालताहै और मनरूपी शत्रु को विवेकरूपी मित्र नष्ट करताहै और सदा शुभकर्म कराता है और विषय के परिणामिक दुःख को निकट नहीं आनेदेता। इससे मनको वश करनाही आनन्द का कारणहै। जबतक मन वश नहीं होता तबतक दुःख देताहै और जब वश होताहै तब सुखदायक होताहै। हे रामजी! मनरूपी मणि भोग की तृष्णा से कलङ्कित हुई है; जब विवेकरूपी जल से इसको शुद्धकरे तब शोभायमान् होगी। यह संसार महाभय का देनेवालाहै। अल्प विवेकवान् पुरुष भी मायारूपी संसार में गिरपड़ते हैं; तुम और जीवों की नाईं इसमें मत गिरो। यह संसार मायारूप है और अनेक अर्थों की ज़ंजीरसंयुक्त है। महामोहरूपी कुहिरे से जीव अन्धे होगये हैं; इससे तुम विवेकपद का आश्रय करके बोध से सत् का अवलोकन करो और इन्द्रियों से वैरागरूपी नौका से संसारसमुद्र को तरजावो। शरीरभी असत् है और इसमें सुख और दुःखभी असत् हैं। तुम दाम, व्याल और कटकी नाईं मत हो पर भीम, भास और दृढकी स्थिति को ग्रहण करके विशोक हो। 'अहं' 'ममादिक' निश्चय वृथा है; उसको त्यागके तत्पद का आश्रय करो। चलते, बैठते, खाते, पीते, मनमें मनन का अभाव हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमनस्विसत्यताप्रतिपादनं नामचतुर्विंशतितमस्सर्गः॥ २४॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! आप संसारताप के दूर करनेवाले हैं। यह आपने

क्या कहा ? इसको खोलकर कहो कि, दाम, व्याल और कट की नाईं कैसे और भीम, भास, दृट की स्थिति कैसेहै ? जैसे वर्षाकाल के मेघ तपन को दूर करते हैं और मोर को शब्द करके जगाते हैं तैसेही तुम अपनी कृपा से जगावो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! प्रथम इसकी नाईं स्थित हो, पीछे जो इष्ट हो उसमें विचरना। पाताल में सम्बरनाम एक दैत्यराजा माया और सर्व आश्चर्यरूप मन के मोहनेवाला था । उस दैत्य ने अपनी माया से आकाश में एक नगर रचा और उस में बाग, दैत्यों के मन्दिर, सूर्य, चन्द्रमा और अनन्त ऐश्वर्य से सम्पन्न दैत्य और रत्नों की स्त्रियां रचीं; जो गान करती थीं और जिन्हों ने देवताओं की स्त्रियां भी जीतीं । उसने वृक्ष बनाये जिनमें चन्द्रवत् फल लगे और श्वेत पीत रत्नों की कमलिनी और सुवर्णके हंस सारस और कमल सुवर्ण के वृक्षों की बड़ी शाखोंपर बैठेहुये बनाये और कञ्जके वृक्ष जिनमें कमल वृक्ष के फूल लगाये और रत्नों से जड़ेहुये सुन्दर स्थान, बरफ़ की नाईं शीतल बगीचे, वनस्थान चन्दन के रचे। इन्द्रका नन्दनवन किन्तु उससे विशेष और सर्वऋतु के फूल लगाये; उनमें दैत्यों की स्त्रियां क्रीड़ा करती थीं और बड़े ऐश्वर्य रचे थे । विष्णु और सदाशिव के सदृश ऐश्वर्य संयुक्त उसने अपना नगर किया और बड़े प्रकाश संयुक्त रत्न के तारागण रचे। जब रात्रि हो तब वे चन्द्रमा के साथ उदय हों और पुतलियां गान करें। माया के हाथी ऐसे रचे जो इन्द्रके ऐरावत को जीतलेवें। इसी प्रकार त्रिलोकी की विभूति से उत्तम विभूति उसने रची और भीतर बाहर सर्व सम्पदाओं से पूर्ण किया। सब दैत्य मण्डलेश्वर वन्दना करतेथे, आप सब दैत्यों का राजा शासन करनेवालाहुआ और सब उस की आज्ञा में चलतेथे। बड़ी भुजावाले दैत्य उस नगर में विश्राम करते थे निदान जब सम्बर दैत्य शयनकरे अथवा देशान्तर में जाय तब अवकाश देखके देवताओं के नायक उसकी सेना को मारजावें और नगर लूटलेजावें । तब सम्बर ने रक्षाकरनेवाले सेनापति रचे पर समय देखके देवता उनको भी मारगये। सम्बर ने यह सुनके बड़ा कोप किया और जीमें ठाना कि, इनको मारूं। ऐसे विचारके वह अमरापुरी पर चढ़ गया और देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वत में भवानीशंकर के पास अथवा वन कुञ्ज और समुद्र में जाछिपे। जैसे प्रलयकाल में सब दिशा शून्य होजाती हैं तैसेही स्वर्ग शून्य होगया। तब दैत्यराज अमरपुरी को शून्य देखके और भी कोपवान् हुआ और उस में अग्नि लगाकर लोकपालों के सब पुर जला दिये और देवताओं को ढूंढ़ता रहा परन्तु वे कहीं न दीखे–जैसे पापी पुण्य को देखें और वे कहीं दृष्ट न आवें तैसेही उसे देवता कहीं दृष्ट न आये। तब सम्बर ने कुपित होके ऐसे बड़े बली तीन राक्षस सेना की रक्षा के निमित्त माया से रचे कि वे मानों काल की मूर्त्ति थे और उनके बड़े

आकार ऐसे हिलते थे मानों पंखों से संयुक्त पर्वत हिलते हैं—उन्हीं के नाम दाम, व्याल, कट हैं वे अपने हाथों में कल्पवृक्ष की नाईं बड़े २ शस्त्र और भुजा लिये यथाप्राप्त कर्म में लगे रहें। उन को धर्म और कर्म का अभाव था क्योंकि; पूर्व वासना कर्म उनको न था और निर्विकल्प चिन्मात्र उनका स्वरूप था। वे अपने स्थूल शरीर के स्वभाव सत्ता में स्थित न थे और अनात्मभाव को भी नहीं प्राप्तभये थे। एक स्पन्दमात्र कर्मरूप चेतना उनमें थी वही कर्म का बीज चित्त कलना स्पन्दरूप हुई थी। वे मननात्मकशस्त्रप्रहार को रचे थे और उसी को बड़े करते परन्तु हृदय में स्पष्टवासना उनको कोई न फुरती थी केवल अवकाशमात्र स्वभावसे उनकी क्रिया हो। जैसे अर्धसुषुप्त बालक अपने अङ्ग को स्वाभाविक हिलाताहै तैसेही वह वासना विना चेष्टाकरें। वे गिरना और गिराना कुछ न जानते थे और न यही जानतेथे कि, हम किसी को मारते हैं अथवा हमीं मरते हैं॥ वे न भागना जानें और न जानें कि, हम जीते हैं व मरते हैं। जीतहार को भी वे कुछ न जानें केवल शस्त्र का प्रहारकरें। जैसे यन्त्री की पुतली तागेपर चेष्टा विना संवेदन करती है तैसेही दाम, व्याल और कट चेष्टाकरें। वे ऐसे महाबली थे कि, जिनके प्रहार से पहाड़ भी चूर्ण हो जावें। उनको देखके सम्बर प्रसन्नहुआ कि, ये सेना की रक्षा को बड़े बली हैं और इन का नाश भी उनसे न होगा क्योंकि; इनको इष्ट—अनिष्ट कुछ नहीं है। जिनको इष्ट अनिष्ट का ज्ञान और वासना नहीं है उनका नाश कैसे हो और वे कैसे भागें जैसे देवता के हाथी बड़े बली होके भी सुमेरु को नहीं उखाड़ सक्के तैसेही देवता बड़े बली भी हैं परन्तु इनको न मारसकेंगे। ये बड़े बली रक्षक हैं॥

इति श्रीयोगवा०स्थितिप्र०दाम,व्याल,कटउत्पत्तिवर्णनन्नामपञ्चविंशतितमस्सर्गः२५

वशिष्ठजी बोले कि; हे रामजी! इस प्रकार जब निर्णय करके सम्बर ने दाम, व्याल, कट स्थापनाकिये तो जब देवताओं की सेना भूतल में आतीथी और सम्बर चढ़ता था तब वे भागजाते थे। निदान सम्बर की सेना को देखके देवता भी समुद्र और पहाड़ से उछल के निकल दोनों बड़ीसेनासहित युद्ध करनेलगे। जैसे प्रलयकाल के समुद्र क्षोभते हैं और सब जलमय होजाता है तैसेही देवता और दैत्य सब ओर से पूर्ण होगये और बड़े बाणों से युद्ध करनेलगे। शंखध्वनि करके जो शस्त्र चलते थे उनसे शब्द हों और अग्नि निकले और तारों की नाईं चमत्कार हो। शरीरों से शिर कटें और धड़ कांप २ के गिरपड़ें और दोनों ओरसे शस्त्र चलें पर दाम, व्याल, कट न भागें, मारतेही जावें; जिनके प्रहार से पहाड़ चूर्ण हों। सब दिशाओं में शस्त्र पूर्ण होगये और रुधिर के ऐसे प्रवाह चले कि, उनमें देवता दैत्य मरेहुये बहतेजावें और महाप्रलय की नाईं भय उदय हुआ। एक २ अस्त्र ऐसा चले जिस

से शस्त्रों की नदियां निकल पड़ें। कोई अग्निरूप; कोई मेघरूप और कोई तमरूप अस्त्र चलावें; दूसरे प्रकाशरूप; कोई निद्रारूप; कोई प्रबोधरूप; कोई सर्परूप और कोई गरुड़रूप अस्त्र चलावे। इस प्रकार वे परस्पर युद्ध करें और ब्रह्मास्त्र चलावें और शिला की वर्षा करें। सब पृथ्वी रक्त और मांस से पूर्ण होगई और अनेक जीवों के धड़ और शीश गिरपड़े। जैसे वृक्षसे फल गिरते हैं तैसेही देवता और दैत्य गिरे और बड़ा घोर युद्ध हुआ। बहुत से गन्धर्व, किन्नर और देवता नष्ट हुये और दैत्य भी बहुत मारेगये परन्तु दैत्यों की ही कुछ जीतरही। इस प्रकार मायावी सम्बर की सेना और देवताओं का युद्ध हुआ। जैसे वर्षाकाल में आकाश में मेघघटा पूर्ण होजाती है तैसेही देवता और दैत्यों की सेना इकट्ठी होगई और दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण होगये॥

इति श्रीयोगवा०स्थितिप्र०दाम,व्याल,कटसंग्रामवर्णननामषड्विंशतितमस्सर्गः२६

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार घोरसंग्राम हुआ कि, देवता और दैत्यों के शरीर ऐसे गिरे जैसे पंखटूटेसे पर्वत गिरते हैं। रुधिर के प्रवाह चलते थे और बड़े शब्द होतेथे जिससे आकाश और पृथ्वी पूर्ण होगई। दामने देवताओं के समूहों को घेरलिया और व्याल ने पकड़के पहाड़ में पीस डाला। कटने देवताओं के समूह चूर्ण किये; उनके स्थान तोड़डाले और बड़ा क्रूर संग्राम किया। देवताओं का हाथी जो मद से मस्त था वह ताड़नसे क्षीण होगया तो वहांसे भयभीतहोकर भागा और देवता भी भागे। जैसे मध्याह्न के सूर्य का बड़ा प्रकाश होता है तैसेही दैत्य प्रकाशवान् हुये और जैसे बाँधके टूटने से जल का प्रवाह तीक्ष्ण वेगसे चलता है तैसेही देवता तीक्ष्ण वेग से भागे। जल के प्रवाहवत् मर्यादा छूट गई और दाम, व्याल, कटकी सेना जीतगई। तब तो वे देवताओं के पीछे लगके मारतेजावें। निदान जैसे काष्ठ से रहित अग्नि अन्तर्द्धान होजाती है तैसेही बलवान् देवता बल से हीन होकर अन्तर्द्धान होगये और दैत्य उनको ढूंढ़ते फिरे परन्तु जैसे जाल से निकले पक्षी और बन्धन से छूटे मृग हाथ नहीं आते तैसेही देवता भी हाथ न आये तब दाम, व्याल, कट तीनों सेनासहित पाताल में अपने स्वामी सम्बर के पास उसकी प्रसन्नता के लिये आये। जब देवताओंने सुना कि, दैत्य पाताल में गये हैं तब वे विचार करनेलगे कि, किसीप्रकार इनसे ईश्वर हमारी रक्षाकरे। ऐसी चिन्ता से आतुर हुये देवताओं को देख ब्रह्माजी जिनका अमिततेज है और सुन्दर रक्त वस्त्र पहिने हैं देवताओं के निकट आये और जैसे संध्याकाल में रक्त वर्ण बादल में चन्द्रमा शोभता है तैसेही प्रकाशवान् ब्रह्माजी को देखके इन्द्रादिक देवताओं ने प्रणाम किया और सम्बर दैत्यकी शत्रुता से कहा कि, हे त्रिलोकी के ईश्वर! हम आपकी

शरण आये हैं; हमारी रक्षा करो। सम्बर दैत्य ने हमको बहुत दुःख दियाहै और उसके सेनापति दाम, व्याल, कट जो बड़े दैत्य हैं किसी प्रकार हमसे नहीं मारेजाते। उन्होंने हमारी सेना बहुत चूर्ण की है इसनिमित्त आप इनके मारने का उपाय हमसे कहिये। तब संपूर्ण जगत् पर दया करनेवाले ब्रह्माजीने शान्तिके कारण वचन कहे। हे अमरेश! ये दैत्य अभी तो नष्ट न होंगे जब इनको अहंकार उपजेगा तब ये मरेंगे और तुमहीं इनको जीतोगे। मैंने इनकी भविष्यत् देखी हैं; ये दैत्य युद्ध में भागना नहीं जानते और मरने, मारने का ज्ञानभी इनको नहीं है ये सम्बर दैत्य की माया से रचे हैं इनका नाश कैसेहो। जिसको 'अहं' 'मम' का अभिमान हो उसीका नाश भी होताहै पर ये तो 'अहं' 'ममादिक' शत्रुओं को जानतेही नहीं इनका नाश कदाचित् न होगा। जब इनको अहंकार उपजेगा तब इनका नाश होगा इसलिये अहंकार उपजाने का उपाय मैं तुम से कहताहूं। तुम उनके साथ युद्ध करतेरहो और इस प्रकार युद्ध करो कि, कभी उनके सम्मुखरहो, कभी दाहिने रहो, कभी बायें रहो और कभी भागजावो। इस प्रकार जब तुम बारम्बार करोगे तब उनके युद्धके अभ्यासवश से अहंकार का अंकुर उपजेगा और जब अहंकार का चमत्कार हृदय में उपजा तब उसका प्रतिबिम्ब भी देखेंगे जिससे यह वासनाभी फुर आवेगी कि; हम यह हैं, हमको यह कर्त्तव्य है, यह ग्रहण करने योग्यहै और यह त्यागने योग्यहै। तब वे आपको दाम, व्याल, कट जानेंगे और तुम उनको वश करलोगे और तुम्हारी जय होगी। जैसे जाल में फँसाहुआ पक्षी वश होताहै तैसेही वे भी अहंकार-करके वश होंगे अभी वश नहीं होते। वे तो सुखदुःखसे रहित बड़े धैर्यवान् हैं अभी उनका जीतना कठिनहै। हे सधो! जो पुरुष वासना की तांत से बँधे हुये हैं और कीट के कार्यके वश हैं वे इस लोक में वश होजाते हैं और जो बुद्धिमान् पुरुष निर्वासनिक हैं और जिनकी सर्वत्र असंशक्त बुद्धि है, जो किसी में बन्धवान् नहीं होते और इष्ट अनिष्ट में समभाव रहते हैं वे किसीसे जीते नहीं जाते। जिनके हृदयमें वासना है वे इसी रस्सीसे बँधेहुयेहैं। जिनकी देह में अभिमान् है वे चाहो सर्वशास्त्रोंके वेत्ताभी हों तोभी उनको एक बालक भी जीतलेवे सब आपदाओं के पात्र हैं। यह देहमात्र परिच्छिन्नरूप है, जो पुरुष उसे अपना जानताहै और उसमें भावती भावना करताहै वह कदाचित् सर्वज्ञ हो तौभी कृपणता को प्राप्त होताहै—उसमें उदारता कहांहै। सबका अपना स्वरूप अनन्त आत्मा अप्रमेय है; जिसको देहादिक में आत्माभिमान हुआहै उस ने आपको आपही दीन किया है। जबतक आत्मतत्त्वसे भिन्न त्रिलोकी में कुछ भी सत् भासताहै तबतक उपादेय बुद्धि होती है और भावना से बँधा रहताहै। संसार में सत् भावना करनी अनन्त दुःख का कारणहै और संसार में असत्बुद्धि सुख का कारणहै। हे साधो!

जबतक दाम, व्याल, कट को जगत् के पदार्थों में आस्थाभाव नहीं होती तबतक तुम उनको, जैसे मक्खी वायु को नहीं जीतसक्ती तैसेही न जीत सकोगे। जिसको देह में अहंभावना और जगत् में सतबुद्धि होती है वह जीव है और वही दीनता को प्राप्त होताहै। वह चाहे कैसा बली हो उसको जीतना सुगमहै क्योंकि, वह तो तुच्छ कृपण है। जिसके अन्तःकरण में वासना नहीं है और माक्षिकावत् है तौभी सुमेरु की नाईं गरिष्ठ होजाताहै। हे देवताओ! जो वासना संयुक्तहै वह परमकृपणता को प्राप्त होता है--वही गुणी गुणों से बँधजाताहै। जैसे माला के दाने में छिद्र होता है तो तागेसे पिरोयाजाताहै और जो छिद्र से रहित है वह पिरोया नहीं जाता तैसेही जिसका हृदय वासनासे बिंधगयाहै उसके हृदय में गुण अवगुण प्रवेश करते हैं और जो निर्वेध है उसके भीतर प्रवेश नहीं करते। इससे जिसप्रकार 'अहं' 'इदं' आदिक वासना दाम, व्याल, कटके भीतर उपजे वही उपाय करो तब तुम्हारी जय होगी। जिस २ इष्ट अनिष्ट के भाव अभाव को जीव प्राप्त होते हैं वही तृष्णारूपी कञ्ज का वृक्ष है, उसी से आपदा को प्राप्त होते हैं। इससे रहित आपदा का अभाव होजाताहै। जो वासनारूपी तांत से बँधेहुये हैं वह अनेक जन्म दुःख पावेंगे; जो बलवान् और सर्वज्ञ कुल का बड़ा है वहभी जो तृष्णासंयुक्त है तो बांधा है। जैसे सिंह जंजीर से पिंजड़े में बँधाहै तो उसका बल और बड़ाई किसी काम नहीं आती तैसेही जो तृष्णा से बँधाहै सो तुच्छ है। जिसको देहमात्र में अहंभाव है और जिसके हृदय में तृष्णा उत्पन्न होती है वह पुरुष ऐसाहै जैसा पंख तागे से बँधा हो और उसको बालकभी खींचले। यमभी उसीको वशकरता और जो निर्वासनिक पुरुष है उसको कोई नहीं मारसक्ता-जैसे आकाश में उड़ते पक्षी को कोई नहीं पकड़सक्ता। इससे शस्त्रयुद्धको त्यागो और उनको वासना उपजाओ, तब वे वश होंगे। हे इन्द्र! जिसको 'अहं' 'मम' 'इदं' आदिक वासना नहीं है और रागद्वेष से जिसका अन्तःकरण क्षोभवान् नहीं होता उसको शस्त्र और अस्त्र से कोई नहीं जीतसक्ता। इससे दाम, व्याल, कटको और किसी उपाय से न जीत सकोगे। युद्ध के अभ्यासमे जब उनको अहंकार उपजाओगे तब वह तुम्हारे वश होंगे। हे साधो! ये तो सम्बर दैत्य के रचेहुये यन्त्रपुरुष हैं, इनके हृदय में कोई वासना नहीं है, जैसे उसने रचे हैं तैसेही ये निर्वासनिक पुरुष हैं। जब इनको युद्ध का अभ्यास कराओगे तब इनको अहंकार वासना उपज आवेगी। यह तुमको मैंने वश करनेकी परमयुक्ति कही है। जबतक उनके अन्तःकरण में वासना नहीं फुरती तबतक तुमसे वे अजीत हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदामोपाख्यानेब्रह्मवाक्य
वर्णनन्नामसप्तविंशतितमस्सर्गः॥ २७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजके और शब्द करके लीन होताहै तैसेही ब्रह्मा कहके जब अन्तर्द्धान होगये तब देवता अपनी वाञ्छित दिशाओं को गये और कईदिन अपने स्थान में रहे। फिर अपने कल्याण के निमित्त उनके नाश करने को उठके युद्धको चले, प्रथम उन्हों ने शंख बजाये जिनसे प्रलयकाल के मेघों के गर्जने के समान शब्द से सब स्थान पूर्ण होगये निदान पाताल छिद्र से शब्द सुनके दैत्य निकले और आकाशमार्ग से देवता आये और युद्ध होनेलगा। बरछी, बाण, मुद्गर, मुसल, गदा, चक्र, वज्र, पहाड़, वृक्ष, सर्प, अग्नि आदिक शस्त्र अस्त्र परस्पर चलने लगे और ऐसे शस्त्र अस्त्र के प्रवाह चले कि, देशप्रदेश में पहाड़ों और वृक्षोंकी नदियां चलीं। चक्र, मुसल, त्रिशूल आदिक शस्त्र ऐसे चले जैसे गङ्गा का प्रवाह चलताहै। देवताओं और दैत्यों के समूह नष्ट होगये अङ्ग फटगये, शीश भुजा कटगये और जैसे समुद्र के उछलने से पृथ्वी जल से पूर्ण होजाती है तैसेही रुधिर से पृथ्वी पूर्ण होगई और आकाश दिशा में अग्नि का तेज ऐसा बढ़गया जैसे प्रलयकाल में द्वादशसूर्यका तेज होताहै। बड़े पहाड़ों की वर्षा होनेलगी और रुधिर के प्रवाह में पहाड़ ऐसे भ्रमते फिरते थे जैसे समुद्र में तरङ्ग और भँवर फिरते हैं। हे रामजी! ऐसा युद्ध हुआ कि, क्षण में पहाड़ और शस्त्र के प्रवाह; क्षण में सर्प; क्षण में गरुड़ दीखें और अप्सरागण अन्तरिक्ष में भासें; क्षण में जलमय होजावें; क्षण में सब स्थान अग्नि से पूर्ण होजावें, क्षणमें सूर्यका प्रकाश भासे और क्षण में सर्व ओर से अन्धकार भासे। निदान महाभयानक युद्ध होनेलगा। दैत्य आकाश में उड़ २ के युद्ध करें और देवता वज्र आदिक शस्त्र चलावें और जैसे पंख से रहित पहाड़ गिरते हैं तैसेही दैत्यों के अनेक समूह गिरके भूमिलोक में आपड़े और उनमें किसीका शिर, किसीकी भुजा और किसीके हाथ पैर कटेहैं। वृक्षों और पहाड़ों के समान उनके शरीर गिर२ पड़े और अनेक संकट को देवता और दैत्य प्राप्तहुये॥

इति श्रीयोगवा०स्थितिप्रकरणेसुरासुरयुद्धवर्णनन्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः॥ २८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवताओं का धैर्य नष्ट होगया और युद्ध त्यागके अन्तर्द्धान हुये और पैंतीस वर्षके उपरान्त फिर युद्ध करनेलगे। कभी पांच वा सात; कभी आठ दिन के उपरान्त युद्ध करते थे और फिर छिपजातेथे ऐसे विचारकर छल से वे उन से युद्ध करें, कभी दाम, व्याल, कटके निकट जावें; कभी दाहिने, कभी बायें कभी आगे और कभी पीछे दौड़ने लगे और इधर उधर देखके मारनेलगे। इस प्रकार जब देवताओंने बहुत उपाय किया तब युद्ध के अभ्यास से दाम, व्याल, कट भी देवताओं के पीछे दौड़ने लगे और इधर उधर देखने लगे और अपने देहादिक में उनको अहंकार फुरआया। हे रामजी! जैसे निकटता से दर्पण में प्रतिबिम्ब

पड़ता है दूर का नहीं पड़ता, तैसेही अतिशय अभ्यास से अहंकार फुरआता है अन्यथा नहीं फुरता। जब अहंकार उनको फुरा तब पदार्थ की वासना भी फुरआई और फिर यह फुरा कि, हम दाम, व्याल, कट हैं, किसी प्रकार जीते रहें; इस इच्छा से वे दीनभाव को प्राप्तहुये और भय पाने लगे कि, इस प्रकार हमारा नाश होगा; इस प्रकार हमारी रक्षा होगी; वही उपाय करें जिससे हम जीते रहें। इस प्रकार आशा की फांसमें बँधे हुये वे दीनभाव को प्राप्तहुये और आपको देहमात्रमें आस्था करनेलगे कि, देहरूपी लता हमारी स्थिररहे; हम सुखी हों, इस वासना संयुक्त हो और पूर्वका धैर्य त्यागके वे जाननेलगे कि, यह हमारे शत्रु नाशकर्त्ता हैं, इनसे किसीप्रकार बचें। उनका धैर्य नष्ट होगया और जैसे जल विना कमल की शोभा जाती रहती है तैसेही इनकी शोभा जाती रही; खाने पीने की वासना फुरआई और संसार की भयानक गति को प्राप्तहुये। तब वे आश्रय लेकर युद्ध करने लगे और ढाल आदिक आगे रक्खें। वे अहंकारसे ऐसे भयभीत हुये कि, ये हमको मारते हैं, हम इनको मारते हैं। इस चिन्तामें इन सबके हृदय फँसगये और शनैः शनैः युद्ध करनेलगे। जब देवता शस्त्र चलावें तब वे बचजावें और भयभीत होकर भागें। अहंकार के उदय होनेसे उनके मस्तकपर आपदा ने चरण रक्खा और वे महादीन होगये और ऐसे होगये कि, यदि कोई उनके आगे पड़े तौभी उसको न मारसकें। जैसे काष्ठ से रहित अग्नि क्षीर को नहीं भक्षण करती तैसेही वे निर्बल होगये। उनके अङ्ग काटे जावें तो वे भाग जावें और जैसे समान शूर युद्ध करते हैं तैसेही युद्ध करनेलगे। हे रामजी! कहांतक कहूं वे मरने से डरनेलगे और युद्ध न करसके तब देवता वज्र आदिक से उनको प्रहार करनेलगे जिनसे वे चूर्ण होगये और भयभीत होकर भागे। निदान दैत्यों की सब सेना भागी और जो २ देश देशान्तर से आये थे वहभी सब भागे; कोई किसी देश को, कोई किसी देश को, पहाड़, कन्दरा और जल में चले गये और जहां २ स्थान देखा वहां २ चलेगये। निदान जब दैत्य भयभीत होकर हारे और देवताओं की जीतहुई तो दैत्य भाग के पाताल में जा छिपे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल,कटोपाख्यानेऽसुरहननन्नाम एकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ २९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब देवता प्रसन्न हुये और देवताओं का भय पाके दाम, व्याल, कट पाताल में गये और सम्बर से भी डरे। सम्बर प्रलयकाल की प्रज्वलित अग्नि का रूप था उसका भय कर दाम, व्याल, कट सातवें पाताल में गये और दैत्यों के मण्डल को छेद के जहां यमकिंकर रहते हैं उसमें कुकुहानाम होकर जारहे। नरकरूपी समुद्र के आपालक यमकिंकरों ने दया करके इनको बैठाया और

जैसे पापी को चिन्ता प्राप्त होती है तैसेही इनको स्त्रियां प्राप्त हुईं उनके साथ सातवें पाताल में रहे। फिर इनके पुत्रपौत्रादिक बड़ी सन्तान हुईं और उन्होंने सहस्र वर्ष वहां व्यतीत किये। वहां उनको यह वासना दृढ़ होगई कि, 'यह मैंहूं' 'यह मेरी स्त्री है' और पुत्र कलत्र बांधवों में बहुत स्नेह होगया। एक काल में वहां अपनी इच्छा से धर्मराज नरक के कुछ काम के लिये आया और उसको देख के सब किंकर उठ खड़े हुये और प्रणामकिया पर दाम, व्याल, कटने जो उसकी बड़ाई न जानते थे उसे किंकर समान जानके प्रणाम न किया। तब यमराज ने क्रोध किया और समझा कि, ये दुष्ट मानी हैं इनको शासना देनी चाहिये। इस प्रकार विचार करके यमने किंकर को सैन की कि, इनको परिवार संयुक्त अग्नि की खाईं में डालदो यह सुन वे रुदन करने और पुकारने लगे पर इनको उन्हों ने डालदिया और परिवार संयुक्त नरक की अग्नि में वे ऐसे जले जैसे दावाग्निमें पत्र, टास, फूल, फल संयुक्त वृक्ष जलजाता है। तब मलीन वासना से वे क्रान्तदेश के राजा के धीवर हुये और जीवोंकी हिंसा करते रहे। जब धीवर का शरीर छूटा तब हाथी हुये; फिर चील हुये; फिर बगुले हुये; फिर तिरगत देश में धीवर हुये और फिर बर्बरदेशमें मच्छर हुये और मगध देश में कीट हुये। हे रामजी! इस प्रकार दाम, व्याल, कट; तीनों ने वासना से अनेक जन्म पाये और फिर काश्मीरदेश में एक ताल है उसमें तीनों मच्छर हुयेहैं। वनमें अग्नि लगी थी इस लिये उसका जलभी सूखगया है, अल्पजल उष्णरहा है उस में रहते हैं और वही जल पान करते हैं; मरते हैं, न जीते हैं, जिनकी जो सम्पदा है उसको भी नहीं भोगते—चिन्ता से जलते हैं। हे रामजी! अज्ञानसे जीव अनेकबार जन्मते मरते हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और मिटतेहैं और जलके भँवर में तृण भ्रमता है तैसेही वासना से भ्रमसे वे फिरें। अबतक उनको शान्ति नहीं प्राप्त हुई। अहंकारवासना महादुःख का कारणहै; इसके त्यागसे सुखहै अन्यथा सुख कदाचित् नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम, व्याल, कटजन्मान्तर वर्णनन्नामत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रबोध के निमित्त मैंने तुमको दाम, व्याल, कटका न्याय कहा है; उनकी नाईं तुम मत होना। अविवेकी का निश्चय ऐसाहै कि, अनेक आपदा को प्राप्त करता है और अनन्त दुःख भुगाताहै; कहां सम्बर दैत्य की सेना के नाथ और देवतों के नाशकर्त्ता और कहां तप्तजल के मच्छ हो जर्जरीभाव को प्राप्त हुये; कहां वह धैर्य और बल जिससे देवताओं को नाशकरना और भगाना और आप चलायमान न होना और कहां क्रान्तदेश के राजा के किंकर धीवर होना! कहां वह निरहंकारचित्त, शान्ति, उदारता और धैर्य और कहां वासना से मिथ्या

अहंकार से संयुक्त होना। इतने दुःख और आपदा केवल अहंकारसे हुये। अहंकार से संसाररूपी विष की मंजरी शाखा प्रतिशाखा बढ़ती है। संसाररूपी वृक्ष का बीज अहंकार है। जबतक अहंकार है तबतक अनेक दुःख और आपदा प्राप्त होती हैं; इससे तुम अहंकार को यत्न करके मार्जनकरो। मार्जन करना यह है कि, अहंवृत्ति को असत्‌रूप जानो कि, 'मैं कुछ नहीं'। इस मार्जन से सुखी होगे। हे रामजी! आत्मरूपी अमृत का चन्दमा है और शीतल और शान्तरूप उसका अंग है; अहंकाररूपी मेघ से वह अदृष्ट हुआ नहीं भासता। जब विवेकरूपी पवन चले तब अहंकार बादल नष्ट हो और आत्मारूपी चन्द्रमा प्रत्यक्ष भासे। जब अहंकाररूपी पिशाच उपजा तब तो दाम, व्याल, कट तीनों मायारूप दानव सत् होके अनेक आपदाओं को भोगते हैं। अबतक वे काश्मीर के ताल में मच्छरूप से पड़े हैं और सिवालके भोजन करने को यत्न करते हैं; जो अहंकार न होता तो इतनी आपदा क्यों पाते? रामजी बोले, हे भगवन्! सत्‌का अभाव नहीं होता और असत्‌का भाव नहीं होता। असत् दाम, व्याल, कट सत् कैसे हुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार है कि, जो सत् नहीं सो किसी को कभी कुछ भान नहीं होता परन्तु कोई सत् असत् को प्राप्त हुआ देखता है और कोई असत् को नहीं हुआ देखता है-जो स्थित हुआ है। इसी तुम्हारे कहने से मैं युक्तिसे तुमको प्रबोध करूंगा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! हम, तुम जो ये सब हैं वे सत्यरूपहैं और दामादिक मायामात्र असत्‌रूप थे वे सत् कैसे हुये, यह कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे दामादिक मायारूप मृगतृष्णा के जलवत् असत् मे स्थित हुये थे तैसेही तुम, हम, देवता, दानव सम्पूर्ण संसार असत् मायामात्र सत् होके भासता है वास्तव में कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में जो अपना मरना भासता है वह असत्‌रूप है तैसेही हम, तुम आदिक यह जगत् असत्‌रूप है। जैसे स्वप्ने में जो अपने मरे बान्धव आन मिलते हैं और प्रत्यक्ष चर्चा करते भासते हैं वे असत्‌रूप होते हैं; तैसेही यह जगत् भी असत्‌रूप है। हे रामजी! ये मेरे वचन मूढ़ को विषयभूत नहीं, उनको नहीं शोभते क्योंकि; उनके हृदय में संसार का सद्भाव दृढ़ होगया है और अभ्यास विना इस निश्चय का अभाव नहीं होता। जैसा निश्चय किसीके हृदय में दृढ़ होरहाहै वह दृढ़ अभ्यास के यत्न विना कदाचित् दूर नहीं होता। जिसको यह निश्चय है कि, जगत् सत् है वह मूर्ख उन्मत्त है और जिसके हृदय में जगत् का सद्भाव नहीं होता वह ज्ञानवान् है, उसे केवल ब्रह्मसत्ता का भाव होताहै और अज्ञानी को जगत् सत् भासता है अज्ञानी के निश्चय को ज्ञानी नहीं जानता और ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता। जैसे मदमत्त के निश्चय को अमत्त नहीं जानता

और अमत्त के निश्चय को मत्त नहीं जानता तैसेही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय इकट्ठा नहीं होता। जैसे प्रकाश और अन्धकार और धूप और छाया इकट्ठी नहीं होतीं हैसेही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय इकट्ठा नहीं होता। जिसके चित्त में जो निश्चय है उसको जब वही अभ्यास और यत्न करके दूर करे तब दूर होताहै अन्यथा नहीं होता। ज्ञानी भी अज्ञानी के निश्चय को दूर नहीं करसक्ता; जैसे मृतक की जीवकला को मनुष्य ग्रहण नहीं करसक्के कि, उसके निश्चय में क्या है? जो ज्ञानवान् है उसके निश्चयमें सर्व ब्रह्म का भान होता है और उसे जगत् द्वैत नहीं भासता और उसी को मेरे वचन शोभते हैं। आत्मअनुभव सर्वदा सत्रूप है और सब असत् पदार्थ हैं। ये वचन प्रबुध के विषय हैं और उसीको शोभते हैं। अज्ञानी को जगत् सत् भासता है इससे ब्रह्मवाणी उसको शोभा नहीं देती। ज्ञानी को यह निश्चय होता है कि, जगत् रञ्चकमात्र भी सत्य नहीं, एक ब्रह्मही परमसत्तास्वरूप है। यह अनुभव बोधवान् का है, उस के निश्चय को कोई दूर नहीं करसक्ता कि, परमात्मा से व्यतिरेक कुछ नहीं। जैसे सुवर्ण में भूषणभाव नहीं तैसेही आत्मा में सृष्टिभाव नहीं। अज्ञानी को पञ्चभूतसे व्यतिरेक कुछ नहीं भासता, जैसे सुवर्ण में भूषण नाममात्र है तैसेही वह आपको नाममात्र जानता है। सम्यक्दर्शी को इससे विपरीत भासता है। जो पुरुष होके कहे, 'मैं घट हूं' तो जैसे यह निश्चय उन्मत्तहै तैसेही हम तुम आदिक भी असतरूप हैं; सत् वही है जो शुद्ध, संवित्बोध, आकाश, निरञ्जन, सर्वगत, शान्तरूप, उदय व अस्त से रहितहै। जैसे नेत्र दूषणवाले को आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही अज्ञानी को जगत् सत्रूप भासता है। आत्मसत्ता में जैसा जैसा किसीको निश्चय होगया है तैसाही तत्काल हो भासता है, वास्तव में जैसे दामादिक थे तैसेही तुम हम आदिक जगत् हैं और अनन्त चेतन आकाश सर्वगत निराकार में स्फूर्ति है वही देहाकार हो भासती है। जैसे संवित् का किंचन दामादिक निश्चय से आकारवान् हो भासे तैसेही हम तुम भी फुरनेमात्र हैं और संवेदन के फुरनेहीसे स्थितहुये हैं। जैसे स्वप्ननगर और मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसेही हम तुम आदिक जगत् आत्मरूप भासते हैं। प्रबुध को सब चिदाकाश ही भासताहै और सब मृगतृष्णा और स्वप्ननगरवत् भासता है। जो आत्मा की ओर जागे हैं और जगत् की ओर सोये हैं वे मोक्षरूप हैं; और जो आत्मा की ओर से सोये और जगत् की ओर जागे हैं वे अज्ञानी बन्धरूप हैं पर वास्तव में न कोई सोये हैं, न जागे हैं, न बँधे हैं, न मोक्ष हैं, केवल चिदाकाश जगत्रूप होके भासता है। निर्वाणसत्ता ही जगत् लक्ष्मी होकर स्थित हुई है और जगत् निर्वाणरूप है-दोनों एक वस्तु के पर्याय हैं। जैसे तरु और विटप एकही वस्तु के दो नामहैं

तैसेही ब्रह्म और जगत् एकही वस्तु के पर्याय हैं। जैसे आकाश में तरवरे भासते हैं और हैं नहीं केवल आकाशहीहै तैसेही अज्ञानी को ब्रह्म में जो जगत् भासते हैं वे हैं नहीं ब्रह्महीं है। जैसे नेत्र में तिमिररोगवाले को जो तरवरे भासते हैं वे तरवरे नेत्ररोग से भिन्न नहीं तैसेही अज्ञानी को अपना आपही अन्यत्‌रूप चिदाकाश स्थान में भासताहै वह चिदाकाश सर्व ओर व्यापकरूप है और उससे भिन्न जगत् असत् है। सत्यरूप, एक, विस्तृत आकार, महाशिलावत्, घनस्वच्छ, निस्पन्द, उदय अस्त से रहित वही सत्ता है इस लिये सर्व कलना को त्यागकर उसी अपने आप में स्थितहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेनिर्वाणोपदेशोनामएकत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३१॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! असत् सत् की नाईं होके जो स्थित हुआ है वह बालक को अपनी परछाही में वेतालवत् भासता है सो जैसे हुआ तैसे हुआ, अब आप यह कहिये कि; दाम, व्याल, कट के दुःख का अन्त कैसे होगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब उनको यमराज ने अग्नि में भस्म कराया तब यमराज से किंकरों ने पूछा कि, हे प्रभो! इन का उद्धार कब होगा? तब यमराज ने कहा, हे किंकरो! जब ये तीनों आपसमें बिछुर जावेंगे और अपनी संपूर्ण कथा सुनेंगे तब निःसंदेह होके मुक्त होंगे यही नीति है। रामजी ने फिर पूछा, हे भगवन्! वह वृत्तान्त कहां सुनेंगे, कब सुनेंगे और कौन निरूपण करेगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! काश्मीरदेश में कमलों से पूर्ण एक बड़ा ताल है और उसके निकट एक छोटा ताल है उसमें वे चिरपर्यन्त बारम्बार मच्छ होंगे और मच्छ का शरीर त्याग करके सारस पक्षी होके कमलों के तालपर रहकर कमल, कमलिनी और उत्पलादिक फूलों में विचरेंगे और सुगन्ध को लेते चिरकाल व्यतीत करेंगे। दैवसंयोग से उन के पाप नष्ट होंगे और बुद्धि निर्मल हो आवेगी तब तीनों आपस में बिछुर जावेंगे और युक्ति से मुक्ति पावेंगे। जैसे राजस, तामस, सात्त्विक गुण आप में स्वेच्छित बिछुर जाते हैं तैसेही वे भी स्वेच्छित बिछुर जावेंगे। काश्मीरदेश में एक पहाड़ है उसके शिखर पर एक नगर बसेगा तिसका नाम प्रद्युम्न होगा और उस शिखरपर कमलों से पूर्ण एक ताल होगा जहां राजा का एक स्थान होगा और ईशान कोण की ओर उसका मन्दिर होगा। उस मन्दिरके छिद्रमें व्यालनामक दैत्य आलय बना चिड़िया होकर रहेगा और निरर्थक शब्द करेगा। उसकाल में श्रीशंकर नाम राजा गुण और भूति से सम्पन्न मानों दूसरा इन्द्र होगा और उसके मन्दिरकी छति की कड़ीके छिद्रमें दाम नाम दैत्य मच्छर होकर भूंभूं शब्द करता विचरेगा। कट नामदैत्यवहां क्रीड़ाका पक्षी होगा और रत्नोंसे जड़े हुये पिंजड़ेमें रहेगा। उसराजाका नरसिंहनाम मन्त्री बड़ा

बुद्धिमान् होगा। जैसे हाथ में आंवला होताहै तैसेही उस मन्त्री को बन्ध और मुक्ति का ज्ञान प्रसिद्ध होगा। वह मन्त्री राजा के आगे दाम, व्याल, कटकी कथा श्लोक बांधकर कहेगा तब वह करकर नाम पक्षी अर्थात् कट दैत्य को पिंजड़े में सुननेसे अपना वृत्तान्त सब स्मरण होगा और उसको विचारेगा तब उसका मिथ्या अहंकार शान्त होगा और वह परम निर्वाण सत्ता को प्राप्त होगा। इसी प्रकार राजा के मन्दिर में चिड़िया हुआ व्यालनाम दैत्यभी सुनकर परमनिर्वाण सत्ता को प्राप्त होगा और लकड़ी के छिद्र में मच्छर हुआ दाम नाम दैत्यभी मुक्त होगा। हे रामजी! यह सम्पूर्ण क्रम मैंने तुमसे कहाहै। यह संसारभ्रम मायामय है और अत्यन्त भास्वर प्रकाशरूप भासताहै परमहाशून्य और अविचार सिद्धहै विचारकरके ज्ञानहुयेसे शान्त होजाता है-जैसे मृगतृष्णा का जल भलीप्रकार देखेसे शान्त होजाताहै। यद्यपि अज्ञानी बड़े पद को प्राप्त होताहै तौ भी मोहसे अधो से अधो चलाजाता है-जैसे दाम, व्याल, कट महाजाल में पड़े थे। कहां तो वह बल कि, भौंह टेढ़ीकरनेसे सुमेरु और मन्दराचल से पर्वत गिरजावें और कहां राजा के गृह में काष्ठ के छिद्र में मच्छर हुये; कहां वह बल जिसके हाथ की चपेट से सूर्य और चन्द्रमा गिर पड़ें और कहां प्रद्युम्न पहाड़ के गृह छिद्र में चिड़िया होना; कहां वह बल जो सुमेरु पर्वत को पीले फूल की नाईं लीला करके उठालेना और कहां पहाड़ के शिखरपर गृह में पक्षी होना। एक अज्ञानरूपी अहंकार से इतनी लघुता को जीव प्राप्त होते हैं और अज्ञान से रञ्जित हुये मिथ्याभ्रम देखते हैं। प्रकाशरूप चिदाकाश सत् विना इनको भासताहै और अपनी वासना की कल्पना से जगत् सत्रूप भासता है। जैसे मृगतृष्णा का जल भ्रम से सत् भासता है तैसेही अपनी कल्पना से जगत् सत् भासता है। इस संसारसमुद्र को कोई नहीं तरसक्ता जो पुरुष शास्त्र के विचारद्वारा निर्वासनिक हुआ है और जो संसार निरूपण शास्त्र का, जिसका प्रकाशरूप शब्दहै, आश्रय करताहै यह संसार के पदार्थों को शुभरूप जानताहै; इससे नीचे गिरताहै-जैसे कोई गढ़े को जलरूप जानके स्नान के निमित्त जावे और गिरपड़े। हे रामजी! अपने अनुभवरूपी प्रसिद्धमार्ग में जो प्राप्त हुये हैं उनका नाश नहीं होता वे सुख से स्वच्छन्द चलेजातेहैं-जैसे पथिक सूधेमार्ग में चलाजाताहै। ब्रह्मनिरूपकशास्त्र निर्वेदमार्ग है और संसारनिरूपक शास्त्र दुःखदायक मार्ग हैं। यह जगत् असत्रूप और भ्रान्तिमात्रहै; जिसकी बुद्धि इसीमें है कि, ये पदार्थ और ये सुख मुझको प्राप्त हों वे इस प्रकार संसार के विषय की तृष्णा करते हैं और वे अभागी हैं और जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् घास और तृण की नाईं तुच्छ भासता है। जिस पुरुष के हृदय में परमात्मा का चमत्कार हुआहै वह इस ब्रह्माण्ड खण्डलोक और लोकपालों को तृणवत् देखताहै। जैसे जीव आपदाको

त्यागता है तैसेही उसके हृदय में ऐश्वर्यभी आपदारूप त्यागने योग्य है। इससे हृदय से निश्चयात्मक तत्त्व में रहो और बाहर जैसा अपना आचार है तैसा करो। आचार का व्यतिक्रम न करना क्योंकि व्यतिक्रम करनेसे शुभ कार्य भी अशुभ हो-जाता है—जैसे राहु दैत्य ने अमृत पान करने का यत्न कियाथा पर व्यतिक्रमसे शरीर कटा। इससे शास्त्रानुसार चेष्टा करनी कल्याण का कारण है। सन्तजनों की सङ्गति और सत्शास्त्रों के बिचार से बड़ा प्रकाश प्राप्त होता है। जो पुरुष इनको सेवता है वह मोह अन्धकूप में नहीं गिरता। हे रामजी! वैराग्य, धैर्य, सन्तोष, उदारता आदिक गुण जिसके हृदय में प्रवेश करते हैं वह पुरुष परमसम्पदावान् होता है और आपदा को नष्ट करता है। जो पुरुष शुभगुणों से सन्तुष्ट है और सत् शास्त्र के श्रवण राग में राग है और जिसे सत् की वासना है वही पुरुष है; और सब पशु हैं। जिसमें वैराग्य, सन्तोष, धैर्य आदि गुणों से चांदनी फैलती है और हृदयरूपी आकाश में विवेकरूपी चन्द्रमा प्रकाशता है वह पुरुष शरीर नहीं मानों क्षीरसमुद्र है; उसके हृदय में विष्णु विराजते हैं। जो कुछ उसको भोगना था वह उसने भोगा और जो कुछ देखना था वह देखा फिर उसे भोगने और देखने की तृष्णा नहीं रहती। जिस पुरुष का यथाक्रम और यथाशास्त्र आचार और निश्चय है उस को भोग की तृष्णा निवृत्त होजाती है और उस पुरुष के गुण आकाश में सिद्ध, देवता और अप्सरा गान करते हैं और वही मृत्यु से तरताहै भोग के तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते। हे रामजी! जिन पुरुषों के गुण चन्द्रमा की नाईं शीतल हैं और सिद्ध और अप्सरा जिनका गान करते हैं वेही पुरुष जीते हैं और सब मृतक हैं। इससे तुम परम पुरुषार्थ का आश्रय करो तब परमसिद्धता को प्राप्त होगे। वह कौन वस्तु है जो शास्त्र अनुसार अनुद्वेग होकर पुरुषार्थ किये से प्राप्त न हो? कोई वस्तु क्यों न हो अवश्यमेव प्राप्त होतीहै यदि चिरकाल व्यतीत होजावे और सिद्धि न हो तौ भी उद्वेग न करे तो वह फल परिपक्क होकर प्राप्त होगा—जैसे वृक्ष से जब परिपक्क होके फल उतरता है तब अधिक मिष्ट और सुखदायक होता है। यथा शास्त्रव्यवहार करनेवाला उस पद को प्राप्त होता है जहां शोक, भय और यत्न सब नष्ट होजाते हैं और शान्तिमान् होताहै। हे रामजी! मूर्खजीवों की नाईं संसारकूप में मत गिरो! यह संसार मिथ्या है। तुम उदार आत्मा हो; उठखड़े हो और अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो और इस शास्त्र को विचारो। जैसे शूर रण में प्राण निकलनेलगे तो भी नहीं भागता और शस्त्र को पकड़ के युद्ध करता है कि, अमरपद प्राप्त हो; तैसेही संसाररूपी रण में शस्त्र पुरुषार्थ है; यही पुरुषार्थ करो और शास्त्र को विचारो कि, कर्त्तव्य क्या है। जो विचार से रहित है वह दुर्भागी दीनता और अशुभ को प्राप्त

करनेवालाहै। महामोहरूपी घननिद्रा को त्याग करके जागो और पुरुषार्थको अङ्गीकार करो जो जरा-मृत के शान्तिका कारण है और जो कुछ अर्थ है वह सब अनर्थरूप है; भोग सब रोग के समान हैं और सम्पदा सब आपदारूप हैं ये सब त्यागने योग्य हैं। इस लिये सत्मार्ग को अङ्गीकार करके अपने प्राकृत आचार में विचरो और शास्त्र और लोकमर्यादा के अनुसार व्यवहार करो क्योंकि, शास्त्र के अनुसार कर्म का करना सुखदायक होता है। जिस पुरुष का शास्त्र के अनुसार व्यवहार है उसका संसार दुःख नष्ट होजाता है और आयुर्बल, यश, गुण और लक्ष्मी की वृद्धि होती है। जैसे वसन्तऋतुकी मञ्जरी प्रफुल्लित होतीहै तैसेही वह प्रफुल्लित होताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल, कटोपाख्याने देशाचारवर्णनन्नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वदुःखका देनेवाला और सर्व सुख का फल, सब ठौर, सब काल में, सब को अपने कर्म के अनुसार होताहै। एक दिन नन्दीगण ने एक सरोवर पर जाके सदाशिव का आराधनकिया और सदाशिव प्रसन्न हुये तो उसने मृत्यु को जीता, प्रथम नन्दी था सो नन्दीगण नाम हुआ और मित्र, बांधव सबको सुख देनेवाला अपने स्वभाव से यत्न करके हुआ। शास्त्र के अनुसार यत्न करने से दैत्य क्रम से देवताओं को जो सबते उत्कृष्ट हैं मारते हैं। मरुत राजा के यज्ञ में संवृत नामक एक महाऋषि आया और उसने देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि अपने पुरुषार्थ से रची-मानों दूसरा ब्रह्मा था और विश्वामित्र ने वारम्वार तप किया और तप की अधिकता और अपनेही शुद्धाचार से राजर्षि से ब्रह्मर्षिहुये। हे रामजी! उपमन्युनाम एक दुर्भागी ब्राह्मण था और उसको अपने गृह में भोजन की सामान प्राप्ति होती। निदान एकदिन उसने एक गृहस्थ के घर पितासंयुक्तदूध, चावल और शर्करा सहित भोजन किया और अपने गृह में आ पिता से कहनेलगा मुझको वही भोजन दो जो खायाथा। पिता ने सांवेंके चावल और आटे का दूध घोलके दिया और जब उसने भोजनकिया तब वैसा स्वाद न लगा; तो फिर पिता से बोला कि, मुझको वही भोजन दो जो वहां खायाथा। पिता ने कहा, हे पुत्र! वह भोजन हमारे पास नहीं, सदाशिव के पास है; जो वे देवें तो हम खावें। तब वह ब्राह्मण सदाशिव की उपासना करनेलगा और ऐसा तप किया कि, शरीर अस्थिमात्र होरहा और रक्त मांस सब सूख गया। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर दर्शनदिया और कहा, हे ब्राह्मण! जो तुमको इच्छाहै वह वर मांगो। ब्राह्मण ने कहा दूध और चावल दो? तब सदाशिव ने कहा दूध और चावल क्या कुछ और मांग पर जो तूने कहाहै तो यही भोजन कियाकर। तब उसको वही भोजन प्राप्त-

हुआ और शिवजी ने कहा जब तू चिन्तन करेगा तब मैं दर्शनदूंगा। हे रामजी! यहभी अपना पुरुषार्थ हुआ। त्रिलोकी की पालना करनेवाले विष्णु को भी काल तृण की नाईं मर्दन करताहै पर उस काल को श्वेत ने उद्यम करके जीताहै और सावित्री का भर्त्ता मृतक हुआथा पर वह पतिव्रता थी उसने स्तुति और नमस्कार करके यम को प्रसन्नकिया और भर्त्ता को परलोक से ले आई-यहभी अपनाही पुरुषार्थ है। श्वेतनाम एक ऋषीश्वर था उसने अपने पुरुषार्थ से काल को जीतके मृत्युञ्जय नाम पाया। इससे ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो यथाशास्त्र उद्यमकिये से प्राप्त न हो। अपने पुरुष प्रयत्न का त्याग करना न चाहिये; इससे सुख, फल और सर्वकी प्राप्ति होती है। जो अविनाशी सुखकी इच्छा हो तो आत्मबोध का अभ्यासकरो। और जो कुछ संसार के सुख हैं वे दुःखसे मिलेहुये हैं और आत्मसुख सब दुःख का नाशकर्त्ता है किसी दुःख से नहीं मिला वास्तव कहिये तो सम असम सर्व ब्रह्महीं है पर तौभी सम परम कल्याण का कर्त्ता है। इससे अभिमान का त्याग करके सम का आश्रय करो और निरन्तर बुद्धि से विचारकरो। जब यत्न करके सन्तों का संग करोगे तब परमपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! संसारसमुद्र के पार करने को ऐसा समर्थ कोई तप नहीं और न तीर्थ है। सामान्यशास्त्रोंसे भी नहीं तरसक्ता, केवल सन्तजनों के सेवने से भवसागर से सुख से तरता है। जिस पुरुष के लोभ, मोह, क्रोध आदिक विकार दिन २ प्रति क्षीण होते जातेहैं और यथाशास्त्र जिसके कर्म हैं ऐसे पुरुष को सन्त और आचार्य कहते हैं। उसकी संगति संसार के पापकर्मोंसे निवृत्त करती है और शुभ में लगाती है। आत्मवेत्ता पुरुष की संगति से बुद्धि में संसार का अत्यन्त अभाव होजाताहै। जब दृश्यका अत्यन्त अभाव हुआ तब आत्मा शेषरहता है। इस क्रम से जीव का जीवनभाव निवृत्त होजाता है और बोधतत्त्व शेष रहता है। जगत् न उपजताहै, न आगे होगा और न अब वर्त्तमान में है। इस प्रकार मैंने तुमसे अनन्त युक्तिसे कहाहै और कहूंगा। ज्ञानवान्को सर्वदा ऐसाही मन होता है। अचल चिदात्मा में चञ्चलचित्त फुरा है और उसीने जगत् आभास रचा है। जैसे २ वह फुरताहै तैसेही तैसे भासताहै और वास्तवमें कुछ नहीं। जैसे सूर्य और किरणोंमें कुछ भेद नहीं। तैसेही जगत् और आत्मामें कुछ भेद नहीं। अहंरूप आत्मा में आपको न जाननाही आत्माकाश में मेघरूपी मलीनता है। जब परमार्थ में अहंभाव को जानेगा तब अनात्म में अहंभाव लीन होजावेगा और तभी चिदाकाश से जीवकी अत्यन्त एकता होती है। जैसे घट के फूटेसे घटाकाशकी महाकाश से एकता होती है। निश्चय करके जानो कि, अहंआदिक दृश्य वास्तव में कुछ नहीं है विचार किये से नहीं रहता। जैसे बालककी परछाहीं में पिशाच भासताहै सो भ्रान्तिमात्र

होताहै तैसेही यह जगत् भ्रान्ति सिद्ध है, अपनी कल्पना से भासता है और दुःख-दायक होताहै पर विचार कियेसे नष्ट होजाता है। हे रामजी ! आत्मरूपी चन्द्रमा सदा प्रकाशित है और अहंकाररूपी बादल उसके आगे आता है उससे परमार्थ बुद्धिरूपी कमलिनी विकाश को नहीं प्राप्त होती; इससे विवेकरूपी वायु से उसको नष्टकरो। नरक, स्वर्ग, बन्ध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण, त्याग आदिक सब अहंकार से फुरते हैं। हृदयरूपी आकाश में अहंकाररूपी मेघ जबतक गरजता और वर्षा करता है तबतक तृष्णारूपी कण्टक मञ्जरी बढ़तीजाती है। जबतक अहंकाररूपी बादल आत्मरूपी सूर्यको आक्रमण करता है तबतक जड़ता और अन्धकार है और प्रकाश उदय नहीं होता। अहंकार वृक्ष की अनन्तशाखा फैलती हैं। 'अहं' 'मम' आदिक विस्तार अनेक अर्थों को प्राप्त करताहै। जो कुछ संसार में सुख दुःख आदिक प्राप्त होता है वह सब अहंकार से प्राप्त होता है। संसाररूपी चक्र की अहंकार नाभि है जिससे भ्रमता है और 'अहं' 'मम' रूपी बीज से अनेक जन्मरूपी वृक्षकी परंपरा उदय और क्षय होती है और कभी नष्ट नहीं होती। इससे यत्न करके इसका नाश करो। जबतक अहंकाररूपी अन्धकार है तबतक चिन्तारूपी पिशाचिनी विचरती है और अहंकाररूपी पिशाच ने जिसको ग्रहण किया है उस नीचपुरुष को मन्त्र तन्त्र भी दीनतासे छुड़ा नहींसक्के। रामजीने पूछा, हे भगवन्! निर्मल चिन्मात्र आत्मसत्ता जो अपने आप में स्थित है उसमें अहंकाररूपी मलीनता कहां से प्रतिबिम्बित हुई? वशिष्ठजी बोले, हे राघव! अहंकार चमत्कार जो भासता है वह वास्तव धर्म नहीं, मिथ्या है, वासना भ्रम से हुआ है और पुरुष प्रयत्न करके नष्ट होजाताहै। न मैं हूं, न मेरा कोई है, 'अहं' 'मम' में कुछ सार नहीं। जब अहंकार शान्तहोगा तब दुःखभी कोई न रहैगा। जब ऐसी भावना का निश्चय दृढ़ होगा तब अहंकार नष्ट होजावेगा। आत्मा में अहं कोई नहीं, दृश्य में सारे हैं। इस प्रकार जब फुरना शान्त हुआ तब अहंकार भी नष्ट होजावेगा और जब अहंकार नष्ट हुआ तब हेयोपादेय बुद्धि भी शान्त होजावेगी और समता आदिक प्रसन्नता उदयहोगी। अहंकार की प्रवृत्तिही दुःख का कारण है। रामजी ने पूछा, हे प्रभो! अहंकार का रूप क्या है; त्याग कैसे होता है; शरीरसे रहित कब होता है और इसके त्यागसे क्या फल होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अहंकार तीनप्रकार का है। दो प्रकार का श्रेष्ठ अहंकार अङ्गीकार करने योग्य है और तीसरा त्यागने योग्य है। इसका त्याग शरीर सहित होता है। 'यह सब दृश्य मैंहींहूं और परमात्मा अद्वैतरूप हूं मुझसे भिन्न कुछ नहीं;' यह निश्चय परमअहंकार का है और मोक्षदेनेवाला है—बन्धन का कारण नहीं; इसमें जीवन्मुक्त विचरतेहैं। यह अहंकारभी मैंने तुमको उपदेश के निमित्त कल्पके कहाहै

वास्तव में यहभी नहीं है केवल अचेत चिन्मात्रसत्ता है। दूसरा अहंकार यह है कि 'मैं सबसे व्यतिरेकहूं और बाल के अग्रभाग का सौवांभाग सूक्ष्महूं'; ऐसा निश्चय भी जीवन्मुक्ति का है और मोक्षदायक है—बन्धन का कारण नहीं। यह अहंकार भी मैंने तुमसे कल्पके कहाहै, वास्तव में यह कहनाभी नहीं है। तीसरा अहंकार यह है कि, हाथ, पांवआदि इतनामात्र आपको जानना; इसमें जिसका निश्चय है वह तुच्छ है और अपने बन्धन का कारण है। इसको त्यागकरो, यह दुष्टरूप परम शत्रु है; इसमें जो जीव मरते हैं वे परमार्थ की ओर नहीं आते। यह अहंकाररूपी चतुर शत्रु बड़ाबली है और नाना प्रकार के जन्म और मानसी दुःख-काम, क्रोध, राग, द्वेष आदिक का देनेवाला है। यह सब जीवों को नीच करता है और संकट में डालता है। इस दुष्ट अहंकारके त्यागके पीछे जो शेष रहताहै वह आत्मभगवान् मुक्तरूप सत्ता है। हे रामजी! लोक में जो वपु की अहंकार भावना है कि, 'मैं यह हूं'; 'इतनाहूं'; यही दुःख का कारण है। इसको महापुरुषों ने त्यागकिया है; वे जानते हैं कि, हम देह नहीं हैं; शुद्ध चिदानन्दस्वरूप हैं। प्रथम जो दो अहंकार मैंने तुमको कहे हैं वह अङ्गीकार करने योग्य और मोक्षदायक हैं और तीसरा अहंकार त्यागने योग्यहै क्योंकि; दुःख का कारण है। इसी अहंकार को ग्रहण करके दाम, व्याल, कट आपदा को प्राप्तहुये जो महाभयदायक है और कहनेमें नहीं आती और जिन्हों ने भोगी है उनको क्या कहना है; वह जानतेही हैं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! तीसरा अहंकार जो आपने कहा है उसका त्यागकिये से पुरुष का क्या भाव रहता है और उसको क्या विशेषता प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब जीव अनात्मा के अहंकार को त्यागकरताहै तब परमपद को प्राप्तहोता। जितना २ वह त्याग करता है उतनाही उतना दुःख से मुक्त होता है; इससे इसको त्याग करके आनन्दवान् हो। इसको त्यागके महापुरुष शोभताहै। जब तुम इसको त्यागोगे तब ऊंचे पद को प्राप्तहोगे। सर्वकाल सर्वयत्नकरके दुष्ट अहंकार को नष्ट करो; परमानन्द बोधके आगे आवरण यही है, इसके त्यागसे बोधवान् होतेहैं। जब यह अहंकार निवृत्त होताहै तब शरीर पुण्यरूपी होजाता है और परमसार के आश्रय को प्राप्त होता है। यही परमपद है। जब मनुष्य स्थूल अहंकार का त्याग करताहै तब सर्व व्यवहार चेष्टा में आनन्दवान् होताहै। जिस पुरुष का अहंकार शान्तहुआ है उसको भोग और रोग दोनों स्वाद नहीं देते—जैसे अमृत से जो तृप्तहुआ है उसको खट्टा और मीठा दोनों स्वाद नहीं देते अर्थात् रागद्वेष से चलायमान नहीं होता एकरस रहता है। जिसका अनात्मा में अहंभाव नष्टहुआ है उसको भोगों में राग नहीं होता और तृष्णा, राग, द्वेष नष्ट होजाता है। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है

तैसे ही अपने दृढ़ पुरुषार्थ से जिसके हृदय से अहंकार का अनुसंधान नष्ट होता है वह संसारसमुद्र को तरजाता है। इससे यही निश्चय धारणकरो कि, 'न मैंहूं न कोई मेरा है' अथवा, सर्व मैंहीं हूं' 'मुझसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं' यह निश्चय जब दृढ़ होगा तब संसार की द्वैतभावना मिटजावेगी और केवल आत्मतत्त्व का सर्वदा भान होगा॥

इति श्रीयोगवा० स्थितिप्र० दाम, व्याल, कटोपाख्यानंनामत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥३३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब दाम, व्याल, कट युद्ध करते २ भागगये तब सम्बरके नगर की जो अवस्था हुई सो सुनो। पहाड़ के समान नगर में जब सम्बर की जितनी कुछ सेनाथी वह सब नष्ट होगई तब देवता जीतकर अपने २ स्थानों में जाबैठे और सम्बरभी क्षोभ को पाके बैठरहा। जब कुछ वर्ष व्यतीत हुये तब देवताओं के मारने के निमित्त सम्बर फिर युक्ति विचारनेलगा कि, दामादिक जो माया से रचेथे सो मूर्ख और बलवान् थे परन्तु मिथ्या अहंकार का बीज अज्ञान उनको था इससे उनको मिथ्या अहंकार आनफुरा जिससे वे नष्ट हुये और भागे। अब मैं ऐसे योद्धा रचूं जो आत्मवेत्ता ज्ञानवान् और निरहंकार हों और जिनको कदाचित् अहंकार न उत्पन्न हो तो उनको कोई जीतभी न सकेगा और वे सब देवताओं की सेना मारेंगे। हे रामजी! इस प्रकार चिन्तन करके सम्बर ने माया से इसभांति दैत्य रचे जैसे समुद्र अपने बुद्बुदे रचलेवे सर्वज्ञ, विद्या के वेत्ता और बीतराग आत्मा थे और यथाप्राप्त काम करतेथे। उनको आत्मभाव का निश्चय था और आत्मरूप उत्तमपुरुष उपजे। भीम, भास और दृट उनके नाम थे। वे तीनों सम्पूर्ण जगत् को तृणवत् जानते थे और परम पवित्र उनके हृदय थे। वे गरजने और महाबल से शब्द करनेलगे जिससे आकाश पूर्ण होगया। तब इन्द्रादिक देवता स्वर्ग में शब्द सुन के बड़ीसेना संग लेकर आये और यह बड़ेबलीभी बिजलीवत् चमत्कार करनेलगे। दोनों ओरसे युद्ध होनेलगे और शस्त्रों की नदियोंका प्रवाहचला पर भीम, भास, दृट धैर्यसे खड़ेरहे। कभी कोई शस्त्र का प्रहार लगे तब युद्धके अभ्यास से देह का मोह आनफुरे पर फिर विचारमें सावधान हों कि, हम तो अशरीर हैं और चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूप हैं; हमारे संग शरीर कहां है। जब जब मोहआवे तबतब ऐसेविचार करें और जरा मरण उनको कुछ न भासे वे निर्भय होकर वासना की जाल से मुक्तहुये शत्रु को मारते और युद्ध कार्य करतेथे और हेयोपादेय से रहित समदृष्टि हो युद्धकार्य को करतेरहे निदान दृढ़युद्ध हुआ तब देवताओं की सेना भागि गई और जो कुछ शेषरहे सो भीम, भास, दृटके भय से भागे। जैसे जल पर्वतसे उतरताहै और तीक्ष्ण वेगसे चलताहै तैसेही देवता तीक्ष्ण वेगसे भागे

और क्षीरसमुद्र में विष्णु भगवान् की शरण में गये । उनको देखके विष्णु भगवान् ने कहा कि,तुम यहां ठहरो मैं उनको युद्ध करके मार आताहूं । ऐसे कहकर विष्णु भगवान् सुदर्शदचक्र लेकर सम्बर की ओर आये और उसका सम्बर का बड़ा युद्ध-हुआ–मानो अकाल प्रलय आया है । बड़े बड़े पर्वत उछलनेलगे और युद्ध होने-लगा तब सम्बर भागा और महाप्रकाशरूप सुदर्शनचक्र से विष्णुजीने उसको मार-लिया । सम्बर शरीर को त्यागके विष्णुपुरी को प्राप्त हुआ और विष्णुभगवान् ने भीम, भास, दट के अन्तःपुर्यष्टक में प्रवेशकिया और उनकी चित्तकला जो प्राणसे मिश्रित थी उसको असत् किया । जैसे पवनदीपकको निर्वाण करता है तैसेही उन की पुर्यष्टक फुरने से निर्वाण हुई । आगे वे जीवन्मुक्त थे सो अब विदेहमुक्त हुये । हे रामजी ! वे भीम, भास, दट निर्वासनिक थे इस कारण दीपकवत् निर्वाणहोगये । जो वासना संयुक्त है वह बन्धवान् जो निर्वासनिक है वह मुक्तरूप है । तुमभी विवेकसे निर्वासनिक हो । जब यह निश्चय होताहै कि, सब जगत् असत्रूप है तब वासना नहीं फुरती; इससे यथार्थ देखना कि, किसी जगत् के पदार्थ में आशक्त बुद्धि न हो । वासना और चित्त एकही वस्तुके नाम हैं; सर्वपदार्थों के शब्द और अर्थचित्त में स्थित हैं । जब सत् का अवलोकन सम्यक्ज्ञान होगा तब यह लय होजावेगा और परमपद शेष रहेगा । जो चित्त वासना संयुक्त है उसमें अनेक पदार्थ की तृष्णा होती है । जो मुक्त है उसेही मुक्त कहते हैं और नाना प्रकार के घट पटादिक आ-कार चित्तफुरनेसे अनेकता को प्राप्त होते हैं । जैसे परछाहीं से वैतालभ्रम होताहै तैसेही नानात्वभ्रम चित्त में भासताहै । हे रामजी ! जैसी २ वासनाको लेकर चित्त स्थित होता है तैसाही आकार निश्चय होकर भासताहै । दाम, व्याल, कट का रूप चित्तके परिणाम से विपर्यय होगयाथा तुमको भीम, भास, दट का निश्चय हो; । दाम, व्याल, कट का निश्चय न हो । हे रामजी ! यह वृत्तान्त मुझ से पूर्व में ब्रह्माजी ने कहाथा वही मैंने अब तुमसे कहा है । इस संसार में कोई बिरला सुखी है; दुःख-दशा में अनेक हैं जब तुम इस संसार की भावना त्यागोगे तब देहादिक में बन्ध-वान् न होगे और व्यवहारमें भी आशक्तता न होगी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम, व्याल, कटोपाख्यान समाप्तिवर्णनन्नामचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अविद्या से संसार की ओर जो मन सम्मुख हुआ है उसको जिस पुरुष ने जीता है वही सुखी और शूरमा है और उसही की जय है । यह संसार सर्व उपद्रव का देनेवाला है । इसका उपाय यही है कि अपने मन को वशकरे । यह मेरा शास्त्र सर्वज्ञान से युक्त है; इसको सुनके आप को विचारे । कि, यह जगत्

क्या है ? ऐसे विचारकर भोग से उपरान्त होना और सतस्वरूप आत्मा का अभ्यास करना । जो कुछ भोग इच्छा है वह बन्धन का कारण है, इसके त्यागने का नाम मोक्ष कहतेहैं और सर्वशास्त्र का विस्तार है । जो विषय भोग हैं उनको विष और अग्नि की नाईं जाने । जैसे विष और अग्नि नाश का कारण हैं तैसेही विषयभोग भी नाश का कारण हैं । ऐसे जानके इनका त्यागकरे और बारम्बार यही विचारकरे कि, विषय-भोग विषकी नाईं है । ऐसे विचारके जब विषयोंको चित्तसे त्यागेगो तब सेवते हुये भी ये दुःखदायक न होंगे । जैसे मन्त्रशक्तिसम्पन्न को सर्प दुःखदायक नहीं होता तैसेही त्यागी को भोग दुःखदायक नहीं होते । इससे संसार को सत् जानके वासना फुरती है सो दुःख का कारण है—जैसे पृथ्वी में जो बीज बोयाजाता है सोही उगता है; कटुकसे कटुक उपजता है, मिष्ट से मिष्ट उपजताहै; तैसेही जिसकी बुद्धि में संसार के भोग वासनारूपी बीज है उससे दुःख की परम्परा उत्पन्न होती है और जिसकी बुद्धि में शान्ति की शुभ वासना गर्भित होती है उससे शुभगुण वैराग्य धैर्य, उदारता और शान्तिरूप उत्पन्न होते हैं । जब शुभवासना का अनुसन्धान होगा तब मन बुद्धि निर्मलभाव को प्राप्त होगी और जब मन निर्मल हुआ तब शनैः शनैः अज्ञान नष्ट होजावेगा और सज्जनता वृद्धि होगी । जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कला बढ़तीजाती है । जब इन शुभगुणोंकी परम्परा स्थित होती है तब विवेक उत्पन्न होता है और उसके प्रकाश से हृदय का मोहरूपी तम नष्ट होजाताहै तब धैर्य और उदारता वृद्धि होती है । जब सत्संग और सत्शास्त्र के अभ्यासद्वारा शुभगुण उदय होते हैं तब महाआनन्दका कारण शीतल शान्तरूप प्रकट होताहै । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की कान्ति आनन्ददायक शीतलता फैलती है तैसेही सत्संगरूपी वृक्ष का फल प्राप्त होताहै । हे रामजी ! सत्संगरूपी वृक्ष से विवेकरूपी फल उत्पन्न होताहै और उस विवेकरूपी फलमें समतारूपी अमृत स्रवता है, उससे मन निर्द्वन्द्व और सर्वकामना से रहित निरुपद्रव होता है । मनकी चपलता शोक और अनर्थ का कारण है, मन के अचल हुये सब शान्त होजाता है । शास्त्रके अर्थ धारने से सन्देह नष्ट होजातेहैं और नाना प्रकार की कल्पना जाल शान्त होजाती है । इस से जीवन्मुक्त अलेप होता है; संसार का कोई क्षोभ उस को स्पर्श नहीं करता और वह निरीच्छित, निरुपस्थित, निर्लेप, निर्दुःख होताहै । शोकसे रहित हुआ चित्त जड़ग्रन्थि से मुक्त और परमानन्दरूप होता है । तृष्णारूपी सूत्र के जाल से जो पुरुष निकलगया है वही शूरमा है और जिस पुरुष ने तृष्णा नष्ट नहीं की वह अनेक जन्म दुःख में भ्रमता है । जब तृष्णा घटती है तब मनभी सूक्ष्म होजाता है और जब भोग की तृष्णा नष्ट होती है तब मनभी नष्ट होजाता है । हे रामजी ! जैसे भले नौकर स्वामी के निमित्त रण में

शरीर को तृणवत् त्यागते हैं और उससे स्वामी की जय होती है पर जो दुष्ट हैं वे नहीं त्यागते उससे दुःख होते हैं; तैसेही मन का उदय होना जीवों को दुःख का कारण है और मन का नष्ट होना सुखदायक है। ज्ञानवान् का मन नष्टहोजाता है; अज्ञानी का मन वृद्ध होताहै। सम्पूर्ण जगत् चक्र मनोमात्र है; यह पर्वत, मण्डल, स्थावर, जङ्गमरूप जो कुछ जगत् है वह सब मनरूप है। मन किसको कहतेहैं सो सुनो चिन्मात्र शुद्धकला में जो चित्तकला का फुरना हुआ है वही संवेदन संकल्प विकल्प से मिलकर मलीन हुआहै और स्वरूप विस्मरण होगया है; उसीका नाम मन है। वही मन वासना से संसारभागी होताहै। जब चित्त संवेदन दृश्य से मिलता है तब उससे तन्मय होकर चित् संवित् का नाम जीव होताहै और वही जीव दृश्य वर्ग से मिलके संसारदशा में चला जाताहै और अनेक विस्तारको प्राप्त होताहै आत्मपुरुष परब्रह्म संसारी नहीं; वह न रुधिरहै, न मांस है और न शरीरहै। शरीरादिक सर्वजड़रूपहैं, आत्मा चेतन आकाशवत् अलेप है। यदि शरीर को भिन्न भिन्नकर देखिये तो रुधिर, मांस, अस्थि से भिन्न कुछ नहीं निकलता। जैसे केलेके वृक्षको खोलकर देखिये तो पत्र से भिन्न कुछ नहीं तैसेही मनही जीवहै और जीवही मनहै; मनसे भिन्न आकार कोई नहीं वही सर्वविकार भावको प्राप्त होताहै। हे रामजी! जीवके बन्धनका कारण अपनी कल्पना है। जैसे कुसवारी अपने यत्न से आपही बन्धन को प्राप्त होती है तैसेही मनुष्य अपनी वासना से आपही संसार बन्धनमें फँसता है। इस से तुम भोग की वासना मनसे दूर करो; संसार का बीज वासनाहीहै। जिस वासना संयुक्त दिनमें विचरता है तैसाही स्वप्न भी होता है जैसी जैसी वासना होती है तैसाही पुण्य पाप के अनुसार परलोक भासता है अपनेही वासना से जगत् भास आताहै। जैसे अन्न जिस द्रव्य से मिलता है तैसाही भासता है अर्थात् मिष्ट से मिष्ट; खट्टे से खट्टा; कटुक से कटुक होताहै तैसेही जैसी वासना जिसके हृदय में दृढ़ होती है तैसेही हो भासता है। जैसे बड़े पुण्यवान् को स्वप्न में अपनी मूर्ति इन्द्रकी भासती है; नीचको नीचही भासती है और भूतके सङ्गीको भूतादिक भासआतेहैं तैसेही वासनाके अनुसार परलोक भासआताहै। जब मनमें निर्मलभाव स्थित होताहै तब मन की कल्पना और पापवासना मिटजातीहै और जब मन में मलीन वासना बढ़ती है तब निर्मलता नहीं भासती वही रूप फल प्राप्त होता है। इससे तुम दुर्वासना कलङ्क को त्यागके पूर्णमासी के चन्द्रमावत् विराजमान हो। यह संसार भ्रान्तिमात्र है सत्रूप नहीं। अज्ञान करके भेद विकार भासते हैं; वास्तव में न कोई बन्ध है, न मोक्ष है और न कोई बन्ध करनेवालाहै; सब इन्द्रजाली की नाईं मिथ्या भ्रम भासते हैं। जैसे गन्धर्व नगर; मृगतृष्णा का जल और आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासताहै वह असत्रूप है;

तैसेही यह जगत् असत्‌रूपहै। जीवोंको अज्ञानसे ऐसा निश्चय होरहा कि,मैं अनन्त आत्मा नहीं हूं–नीचहूं–जब इस निश्चयका अभाव हो और निश्चय करके आपको अनन्त आत्मा जाने प्रथम इसका अभ्यासकरे–तब हृदयमें स्थिति हो। इस निश्चय से उस नीच निश्चय का अभाव होजाताहै। सर्व जगत् स्वच्छ निर्मल आत्मा है, उससे अतिरिक्त जिसको देहादिक भावना हुई है उसको लोक में बन्धन होताहै और अपने संकल्प से आपही शुक्र की नाईं बन्धन में आताहै। जिसको स्वरूप में भावना होतीहै उसको मोक्ष भासता है। आत्मसत्ता मोक्ष और बन्ध दोनों से रहित है। एक और अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। जब मन निर्मल होता है तब इस प्रकार भासताहै और किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं होता और जब मन इसभावसे रहित अमन होताहै तब ब्रह्मसत्ता को देखताहै अन्यथा नहीं देखता। जब वैराग्य और अभ्यासरूपी जल से मन को निर्मलभाव होताहै तब ब्रह्मज्ञानरूपी रङ्ग चढ़ताहै और सर्व आत्माही भासता है और जब सर्वात्मभावना होती है तब ग्रहण और त्याग की वृत्ति नष्ट होजाती है और बन्धमोक्ष भी नहीं रहता। जब मन के कषाय परिपक्व होतेहैं अर्थात् भोग की सूक्ष्म वासना से मुक्त होता है और सत्‌शास्त्र के विचार से क्रम से बुद्धि में वैराग्य उपजता है तब परमबोध को प्राप्त होताहै और कमल की नाईं बुद्धि खिल आतीहै। मनसेही सर्व पदार्थ रचेहैं जब उससे मिलकर तद्रूप होजाता है उसका नाम असम्यक्‌ज्ञान है और जब सम्यक् दृष्टि होती है तब उसका तत्काल नाश करताहै जब भीतर बाहर दृश्य को त्याग करताहै और मन सत्‌भाव में स्थित होता है तब परमपद को प्राप्तहुआ कहाताहै। हे रामजी! ये द्रष्टा और दृश्य जो स्पष्ट भासते हैं वे असत्‌हैं। उन असत् के साथ तन्मय होजाना यह मन का रूप है जो पदार्थ आदि अन्तमें न हो और मध्य में भासे उसको असत्‌रूप जानिये; सो यह दृश्य आदि में भी नहीं उपजा और अन्त में भी नहीं रहता, मध्य में जो भासता है वह असत्‌रूप है। अज्ञान से जिनको यह सत् भासता है उनको दुःख की प्राप्ति है। आत्मभावना विना दुःख निवृत्त नहीं होता। जब दृश्य में आत्मभावना होती है तब दृश्यभी मोक्षदायक होजाताहै। जल और है, तरङ्ग और है; यह अज्ञानी का निश्चय है। जल और तरङ्ग एकही रूप है; यह ज्ञानी का निश्चय है। नाना रूप जगत् अज्ञानी को भासताहै उससे दुःख पाताहै और ग्रहण और त्याग की बुद्धि में भटकता है। ज्ञानी को सर्व आत्मा भासता है और भेदभावनासे रहित अन्तर्मुख सुखी होता है। हे रामजी! नानात्व मनके फुरने से रचाहै और मनका रूप है। अपने संकल्प बल का नाम मन है सो असत्‌रूप है। जो असत् विनाशीरूप है उसको सत् मानने से क्लेश होताहै। जैसे किसी का बान्धव परदेश से आता है और उसको वह नहीं

पहिंचानता दृष्टि आताहै और उसमें राग नहीं होता पर जब उसमें अपनेकी भावना करताहै तब रागभी होताहै; तैसेही जब आत्मा में अहं प्रतीति होतीहै और देहादिक में नहीं होती तब देहादिक सुख दुःख स्पर्श नहीं करते और जब देहादिक में भावना होती है तब स्पर्श करतेहैं। हे रामजी! जब शिवतत्त्व का ज्ञान हो तब कोई दुःख नहीं रहता वह शिव द्रष्टा और दृश्य के मध्यमें व्यापक है, उसमें स्थित होकर मन शान्त होजाता है। जैसे वायु से रहित धूल नहीं उड़ती तैसेही मनके शान्तहुये धूलरूपी देह होजाती है और फिर संसाररूपी कुहिरा नहीं रहता। जब वर्षाऋतुरूपी वासना क्षीण होजाती है तब जाना नहीं जाता कि, जड़तारूपी बेल कहां गई। जब अज्ञानरूपी मेघ शान्त होता है तब तृष्णारूपी बेल सूखजाती है और हृदयरूपी पवन से मोह-रूपी कुहिरा नष्ट होजाता है। जैसे प्रातःकाल हुये रात्रि नष्ट होजाती है। अज्ञान-रूपी मेघ के क्षीण हुये देहाभिमानरूपी जड़ता जानी नहीं जाती कि, कहां गई। जब तक अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तबतक संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं और जब अहंकाररूपी मेघ नष्टहोजाता है तब परम निर्मल चिदाकाश आत्मारूपी सूर्य स्वच्छ प्रकाशता है। जब मोहरूपी वर्षाकाल का अभाव होताहै तब ज्ञानरूपी शरत्काल में दिशा निर्मल होजाती हैं और आत्मारूपी चन्द्रमा शीतल चांदनी से प्रकाशताहै जो सर्व सम्पदा का देने और परमानन्द की प्राप्ति करनेवाला है। जब प्रथम शुभगुणों से विवेकरूपी बीज संचित होताहै तब शुभ मन सर्व सम्पदा का देनेवाला परमानन्द अतिसफल भूमि को प्राप्त होताहै। उस विवेकी पुरुष को वन, पर्वत, चतुर्दशभुवन सर्व आत्माही भासता है और वह निर्मल से निर्मल और शीतल से शीतल भावना में भासता है हृदयरूपी तालाब अति विस्तारवान् है और फटिकमणिवत् उज्ज्वल स्वच्छ जल से पूर्ण है; उसमें धैर्य और उदारतारूपी कमल विराजतेहैं और उस हृदयकमल पर अहंकाररूपी भँवरा विचरताहै वह जब नष्ट होजाता है तो फिर नहीं उपजता। वह पुरुष निरपेक्ष, सर्वश्रेष्ठ, निर्वासनिक, शान्तमन अपने देहरूपी नगर में विराजमान ईश्वर होताहै। जिसको आत्मप्रकाश उदय हुआहै उस बोधवान् का मन अत्यन्त गल जाताहै, भय आदिक विकार नष्ट होजातेहैं और देहरूपी नगर में विगतज्वर होके विराजमान् होताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेउपशमरूपवर्णनंनामपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३५॥

रामजी बोले, हे भगवन्! आत्मा तो चेतनरूप विश्व से अतीतहै, उस चिदात्मा में विश्व कैसे उत्पन्न हुआ? बोधकी वृद्धि के निमित्त फिर मुझसे कहिये। वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! जैसे सोम जलमें तरङ्ग अव्यक्तरूप होतेहैं परन्तु त्रिकालदर्शी को उनका सद्भाव नहीं भासता और उनका रूप दृष्टमात्र होताहै तैसेही आत्मा में जगत्

संकल्पमात्र होता है। जैसे आकाश सर्वगत है परन्तु सूक्ष्मभाव से नहीं दीखता तैसे ही आत्मा निरंश, निराकार, सर्वगत और सर्वव्यापक है परन्तु लखा नहीं जाता अव्यक्त और अच्युतरूप है; उस आत्मा में जगत् ऐसेहै जैसे कोई थम्भमणिरूपहो और उसमें शिल्पी कल्पनाकरे कि इतनी पुतलियां इसमें हैं। सो वह क्या हैं; कुछ नहीं केवल शिल्पी के मन में फुरती हैं तैसेही यह जगत् आत्मा में मनरूपी शिल्पी ने कल्पा है सो आत्माके आधार है और आत्माके आश्रय आत्मा में स्थित है और आत्मा कदाचित् उससे स्पर्श नहीं करता। जैसे मेघ आकाशके आश्रय आकाश में स्थितहै परन्तु आकाश उससे स्पर्श नहीं करता तैसेही आत्मास्पर्श है और सर्वत्र पूर्ण है परन्तु पुर्यष्टकरूप हृदय में भासता है। जैसे सूर्य का प्रकाश सब ठौर व्यापक है। परन्तु जल में प्रतिबिम्बित होताहै और पृथ्वी, काष्ठ इत्यादि में प्रतिबिम्बित नहीं होता तैसेही आत्मा का देह इन्द्रिय और प्राण में प्रतिबिम्बित नहीं होता हृदय पुर्यष्टक में भासता है। वह आत्मा सर्व संकल्प और संग से रहित स्वरूप है, उसको ज्ञानवान् पुरुष उपदेश के निमित्त चैतन्य अविनाशी, आत्मा, ब्रह्मादिक कहते हैं पर आकाश से भी सूक्ष्म निर्मल है। आत्मा आभास से जगत्रूप हो भासता है, जगत् कुछ और वस्तु नहीं है। जैसे जल द्रवता से तरङ्गरूप हो भासता है परन्तु तरङ्ग कुछ भिन्न वस्तु नहीं है; तैसेही आत्मा से व्यतिरेक जगत् नहीं; चेतन सत्ताही चैत्यता फुरनेसे जगत्रूप हो भासती है। जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको तो एक आत्मा ही भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार जगत् भासता है। जगत् कुछ वस्तु नहीं है केवल आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थितहै; अनुभव स्वभाव से प्रकाशता है और सूर्यादिक सबको प्रकाशनेवाला है। सब स्वादोंका स्वाद वही है और सबभाव उसी से सिद्धही हैं। वह सत्ता उदय, अस्त और चलने, न चलनेसे रहितहै; वह न लेता है, न देता है, अपने आपमें स्थित है। जैसे अग्नि का समूह लाटरूप और जलका समूह तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है और जीव अपने संवेदन फुरनेसे नाना प्रकारके संकलपसे विपर्ययरूप देखता है कि; यह पदार्थ है, यह मैं हूं; यह और है इत्यादिक पर जब अपने आपको जानता है तब अज्ञान भ्रम नष्ट होजाता है। जैसे वृक्ष में बीजसत्ता परिणामसे आकारके आश्रयसे बढ़ता-जाता है, तैसेही आत्मसत्तामें चित्त संवेदन फुरताहै। फुरना जो आत्मसत्ताके आश्रय विस्तार को प्राप्त होता है सो संकल्परूप है और उसमें जगत् की दृढ़ता है; जैसे संवेदन फुरता है तैसेही स्थित होताहै। उसमें नीति है कि, जो पदार्थ जिसप्रकारहो सो तैसेही स्थित है अन्यथा नहीं होता। जैसे वसन्तऋतु में रस अति विस्तार पाता है; कार्तिकमें धान उपजते हैं; हिमऋतुमें जल पाषाणरूप होजाताहै; अग्नि उष्णहै;

बरफ शीतल है इत्यादिक जितने पदार्थ रचे हैं वैसेही वे सब महाप्रलय पर्यन्त स्थित हैं; अन्यथा भाव को नहीं प्राप्त होते। जगत् में चतुर्दश प्रकार के भूतजात हैं पर उनमें जिनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है वेही शान्तरूप आत्मा पाके आनन्दमान होते हैं और जिनको प्रमाद है वे भटकते और जन्म मरण को प्राप्त होते हैं। जैसे२ कर्म वे करते हैं तैसी २ गति पाते हैं और आवागमन में भटकते २ यम के मुख में जापड़ते हैं। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजकर लय होजाते हैं तैसेही जन्म जन्म उपजते हैं मरते जाते हैं। उन्मत्त की नाईं प्रमादी भ्रमते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेचिदात्मरूपवर्णनंनामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार जगत् की स्थिति है सो सर्व चञ्चल आकार और विपरिणामरूप है। जैसे समुद्र में तरङ्ग चञ्चलरूप हैं तैसेही जगत् की गति चञ्चल है आत्मा से जगत् स्वतः उपजता है, किसी कारण से नहीं होता; और पीछे कारण कार्यभाव होजाता है और वही चित्त में दृढ़ हो भासता है; आत्मा में यह कोई नहीं। जैसे जल से तरङ्ग स्वाभाविक उठकर लय होजाते हैं, तैसेही आत्मा से स्वाभाविक जगत् उपजके लय होते हैं। जैसे ग्रीष्मऋतु में तपनसे मरुस्थल जलकी नाईं स्पष्ट भासता है पर जल कुछभी नहीं है और जैसे मद से मत्त पुरुष आपको और का और जानता है, तैसेही ये पुरुष आत्मरूप हैं चित्तसे आपको देवता, मनुष्य आदिक शरीर जानते और कहते हैं। हे रामजी! यह जगत् आत्मा में न सत् है, न असत् है; जैसे सुवर्ण में भूषण हैं तैसेही मूढ़जीव आपको आकार मानते हैं। इससे तुम दृश्य को त्यागके द्रष्टा में स्थित हो और जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक सबको जानता है उसीको आत्मब्रह्म जानो; वह सर्व में पूर्णस्थित, स्वच्छ और निर्मल है। आत्मसत्ता में एकद्वैत कल्पना कुछ नहीं। जबतक आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु भासती है तबतक वासना उसकी ओर धावती है। हे रामजी! आत्मा से व्यतिरेक कुछ सिद्ध नहीं होता तो किसकी वाञ्छाकरे; किसका अनुसन्धान करे और किसका ग्रहण, त्याग करे? आत्मा को ईप्सित, अनीप्सित, इष्ट, अनिष्ट आदिक कोई विकार विकल्प स्पर्श नहीं करता और कर्त्ता, कारण, कर्म तीनों की एकता है न कोई आधार है, न आधेय है; द्वैत कल्पना का असंभव है और अहं-त्वं आदिक कुछ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है। ऐसे जानके सर्वदा निर्द्वन्द्व होकर सर्व सन्ताप से रहित कार्य में प्रवृत्त होजाओ। पूर्व जो तुमने कुछकिया और नहीं किया उस करने और न करने से तुमको क्या सिद्धहुआ और पाने योग्य कौन पद पाया और भूत की गिनतीमें क्या बात है? तुम आपको हृदय में अकर्त्ता भावना करो और बाहर से इन्द्रियों से जगत् के कार्यकरो; जब स्थिरतारूपी समुद्र में तुम्हारी वृत्ति

धैर्यवान् होगी तब शान्तात्मा होगे पर दृश्य जगत् में तो दूर से दूरभी गये हृदय में शान्ति नहीं होती। जहां चाहे वहां जावे और चाहे जैसे पदार्थ पानेका यत्नकरे पर उसके पायेसेभी शान्ति प्राप्त न होगी। जगत् के सर्व दृश्यपदार्थ त्यागकर जो शेष अपना स्वरूप रहता है वही चिदात्मा है। उसमें स्थितहुये से शान्ति प्राप्त होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेशान्त्युपदेशकरणंनामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः॥३७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जो ज्ञानी पुरुष हैं उनमें कर्तव्य भाव भी दृष्टि आता है और हिंसादिक तामसी कर्मभी करते हैं तौभी स्वरूप के ज्ञानसे वे अकर्ताहीहैं उन्हों ने कदाचित् कुछ नहीं किया और जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे जैसा कर्म करतेहैं वैसाही फल भोगते हैं। मनमें सत्य जानके जिस पदार्थ के ग्रहण की इच्छाकरता है सो फुरना वासनारूप होता है उसी सद्भाव फुरने का नाम कर्तव्य है और उसी चेष्टा से फल की प्राप्ति होतीहै। जिस पदार्थ को सत् जानके वासना फुरती है उसका अनुभव होताहै; शरीर करे अथवा न करे पर जैसी वासना मन में दृढ़ होती है वह शुभ हो अथवा अशुभ उसीके अनुसार दृश्य भासि आता है। शुभ से स्वर्ग भासता है और अशुभ से नरक भासता है। जिस पुरुष को आत्माका अज्ञान है यद्यपि वह प्रत्यक्ष अकर्ता है तौभी अनेक कर्म के फलको अनुभव करताहै और जो ज्ञानवान् हैं उनके हृदय में पदार्थों का सद्भाव और वासना दोनों नहीं होतीं क्योंकि उन में कर्तव्य का अभाव है। यद्यपि वे करते हैं तौभी कर्तव्य के फल को नहीं प्राप्त होते। और संसार को असत्य जानते हैं; केवल शरीर का स्पन्दमात्र उनका कर्म है, हृदय में बन्धवान् नहीं होते। पूर्व के प्रारब्ध से सुख दुःख फल उनको प्राप्त भी होता है परन्तु वे आत्मा से भिन्न उसको नहीं जानते; वे सर्व ब्रह्मही देखते हैं और जो अज्ञानी हैं वे अवयव के स्पन्द में आपको कर्ता मानते हैं और उसके अनुसार सुख दुःख भोगते और मोह को प्राप्त होते हैं। जिनका मन अनात्मभाव में मग्न है वे अकर्ताहुये भी कर्ता होते हैं और मन से रहित केवल शरीर से किया कर्म कियाभी न किया है। इससे मन हीं कर्ता है शरीर कुछ नहीं करता। यह जब जगत् मन से उपजा है, मनरूप है और मनहीं में स्थित है जिसका मन अमनभाव को प्राप्तहुआ है उसको सब शान्तरूप है। जैसे तीक्ष्ण धूप से मृगतृष्णा की नदी भासती है और जब वर्षा होती है तब शान्त होजाती है; तैसेही जब आत्मज्ञान होताहै तब यह सब जगत् शान्त होजाता है और संसार के सुख दुःख स्पर्श नहीं करते। न वह चञ्चल है, न सत्य है और न असत्य है, सर्व विकार से रहित शान्तरूप है। वह संसार की वासना में नहीं डूबता पर अज्ञानी डूबता है क्योंकि उसका मन संसारभ्रम में मग्न रहता और सदा पदार्थों की तृष्णा करता है। ज्ञानी नहीं

करता। हे रामजी! और दृष्टान्त सुनो कि, अज्ञानी के अकर्तव्य में भी कर्तव्य है और ज्ञानी के कर्तव्य में भी अकर्तव्य है। जैसे कोई पुरुष शय्यापर सोया हो और स्वप्न में गिरके दुःख पावे तो वह अकर्तव्य में कर्तव्य हुआ और जैसे समाधि में स्थित होकर गढ़े में गिरा है पर उसको सर्व शान्तरूप है, यह कर्तव्य में भी अकर्तव्य हुआ क्योंकि; शय्यापर सोया था उसका मन चलता था इससे अकर्तव्य में उसको कर्तव्य हुआ और दुःख का अनुभव करनेलगा और दूसरे को सुख का अनुभव हुआ। इससे यह निश्चय हुआ कि, जैसा मन होता है तैसीही सिद्धता प्राप्त होती है। तुमभी असंसक्त होकर कर्मकरो तब अकर्ता हो रहोगे। जो कुछ जगत् भासता है वह आत्मा से व्यतिरेक नहीं। जिसको यह निश्चय होता है उस ज्ञानवान् को सुख दुःख स्पर्श नहीं करते; उसे आधार, आधेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इच्छा, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता जब ऐसे निश्चय होता है कि, 'मैं देह नहीं, सब पदार्थों से व्यतिरेक और बाल के अग्रके सौवें भाग से भी सूक्ष्म हूं अथवा जो कुछ दृश्य जगत् है सो सर्व मैंहीं हूं, सर्व तत्त्व का प्रकाशक और सर्वव्यापी हूं; इस निश्चय से उसको सुख दुःख का क्षोभ नहीं होता और विगतज्वर होकर स्थित होता है। यद्यपि दुःख और संकट ज्ञानवान् को भी आ प्राप्त होते हैं तौ भी उसको नहीं भासता; वह परमानन्द से आनन्दवान् लीलामात्र विचरता है। जैसे चन्द्रमा की चांदनी शीतल प्रकाशित होती है तैसेही वह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होताहै; उसको न चिन्ता होती है, न कोई दुःख है। वह शान्तरूप कर्म को कर्ता भी है पर अकर्ता है क्योंकि, मन से सदा अलेप रहता है। हे रामजी! हस्त, पादादिक इन्द्रियों से करनेका नाम कर्म नहीं, मन के करनेका नाम कर्म है। मनहीं सब कर्मों का कर्ता है। अहं त्वं सब भाव सब लोकों का बीज, सर्व गत मन है। जब मन नाश हो तब सब कर्म नष्ट होजाते हैं और सब दुःख मिटजाते हैं। जैसे बालक मन से नगर रचे और फिर लीन करले तो उसको उपजाने और लीनकरने में हर्ष शोक कुछ नहीं होता तैसेही परमार्थदर्शी को किसी कर्म का लेप नहीं होता; वह करता हुआ भी कुछ नहीं करता और उसमें कर्तव्य, भोक्तव्य, सुख, दुःख, अज्ञानी मोह से अध्यारोप करते हैं और कुछ नहीं। ज्ञानवान् को बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख, कुछ नहीं भासता क्योंकि, वह तो असंसक्त मन है। जिसका मन आसक्त है उसको नाना दृश्य भासता है और ज्ञानवान् को केवल आत्मसत्ता जो एक द्वैत कलना से रहित है भासती है। जैसे जल से तरङ्ग भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से जगत् भिन्न नहीं। न कोई बन्ध है, न कोई मोक्ष है और न कोई बाँधने योग्य है; अज्ञानदृष्टि से दुःख है, बोध से लीन होजाते हैं। बन्ध और मोक्ष संकल्प से कल्पित मिथ्यारूप हैं। तुम

इस मिथ्या कल्पना अनात्म अहंकार को त्यागके आत्मा में निश्चय करो और धीरज बुद्धिमान् होकर प्रकृत आचार को करो। तब तुम्हें कुछ स्पर्श न करेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमोक्षोपदेशोनामअष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३८॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सच्चिदानन्द, अद्वैत, निर्विकारादिक गुणों से सम्पन्न ब्रह्मतत्त्व में अविद्यमान विचित्र जगत् अविद्या कहां से आया? वशिष्ठजी बोले, हे राजपुत्र! यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूपहै और ब्रह्मसत्ता सर्व शक्ति है; इस कारण दृश्यरूप हो रहा है और सत्य, असत्य, एक, अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है जैसे जल में जल उल्लासरूप नाना प्रकार के तरङ्ग, बुदबुदे, आवृत्त आकार हो भासता है तैसेही चिद्घन में चिद्घन सर्व शक्ति और सर्वरूप होकर फुरता है। कहीं कर्मरूप, कहीं वाणीरूप, कहीं गुह्यरूप, कहीं मनरूप और कहीं भरण, पोषण और नाश का कारण होता है। सब पदार्थों का बीज उत्पन्नकर्ता ब्रह्मसत्ता है; जैसे समुद्र से तरङ्ग उपजकर उसीमें लय होजाते हैं तैसेही सबपदार्थ उपजकर ब्रह्म में लय होतेहैं। रामजीने फिर पूछा कि, हे भगवन्! आपके वचनका उच्चार प्रकटहै तौ भी कठिन और अति गम्भीर है; इनका तोल नहीं पाया जाता और इनका यथार्थ-भाव मैं पा नहीं सक्ता। कहां मन संयुक्त षट्इन्द्रियों की वृत्तियों से और सब पदार्थ की रचना से रहित स्वरूप और कहां जगत्? जो पदार्थ जिससे उपजता है वह उसी का रूप होता है। जैसे दीपक से उपजा दीपक, मनुष्य से मनुष्य और अग्नि से अग्नि होताहै; इसी प्रकार कारण से जो कार्य उपजता है सो भी उसी के सदृश होता है। तैसेही जो निर्विकार आत्मा से जगत् उपजा है वह भी निर्विकार होना चाहिये पर वह तो ऐसे नहीं; आत्मा निर्विकार और शान्तरूप है और जगत् विकारी और दुःखरूप है; उससे कलङ्करूप जगत् कैसे उपजा? इतना कह बाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब ब्रह्मऋषि वशिष्ठजी बोले कि, हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूपहै पर नाना प्रकार मलीनरूप जो भासताहै सो मलीनता नहीं है। जैसे तरङ्गके समूह समुद्र में फुरते हैं सो मलीनता धूल नहीं हैं, वही रूप है; तैसेही आत्मा में जगत् कुछ कलङ्क नहीं है वही रूप है। जैसे अग्नि में उष्णता अग्निरूप है तैसेही आत्मा में जगत् आत्मारूप है, भिन्न नहीं। रामजी ने फिर पूछा कि, हे ब्रह्मन्! निर्दुःख और निर्धर्म से जो यह दुःखरूप जगत् उपजाहै यही कलङ्क है। आपके वचन आकाशरूप हैं और मुझे स्पष्ट नहीं भासते। मैं इसको नहीं जान-सक्ता। तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी ने विचारा कि, परम प्रकाश को अभी इसकी बुद्धि नहीं प्राप्तहुई; कुछ निर्मल हुई है और पदार्थ भूमिका को जानता है परन्तु परमार्थ वेत्ता नहीं हुआ। जिसको परमार्थ बोध प्राप्त होताहै और जिसका मन शान्त होताहै;

वह ज्ञाता ज्ञेय पुरुष मोक्ष उपाय की वाणी के पार प्राप्त होता है और संसाररूपी अविद्या मल उसको नहीं भासता। वह केवल अद्वैत सत्ता देखता है। जबतक मैं और उपदेश रामजी को न करूंगा तबतक इसको विश्राम न होगा। जो अर्द्ध प्रबुद्ध है उसको सब ब्रह्म ही कहना नहीं शोभता क्योंकि, उसका चित्त भोगों से सर्वथा व्यतिरेक नहीं हुआ। सर्व ब्रह्मके वचन सुनके वह भोगों में आसक्त होगा जो नाशका कारण है। जिसको परमदृष्टि प्राप्त हुई है उसको भोग की इच्छा नहीं उपजती। इससे सर्वब्रह्म का कहना रामजी को सिद्धान्त काल में शोभेगा। गुरु को शिष्य के प्रति प्रथम सर्वब्रह्म कहना नहीं बनता। प्रथम शम दम आदिक गुणों से शिष्य को शुद्ध करे, फिर सर्वब्रह्म शुद्ध तू है ऐसे उपदेश करै तो उससे वह जग उठता है। जो अज्ञानी अर्द्धप्रबुद्ध है उसको ऐसा उपदेश करनेवाला गुरु उसको महानरकमें डालता है। जो प्रबुद्ध है उसको भोगकी इच्छा क्षीण होजाती है और वह निष्काम पुरुष है इससे उसको अविद्यारूपी मल नहीं रहता और उसको उपदेश करने की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार विचार कर अज्ञानरूपी तम के नाशकर्ता और ज्ञान के सूर्य भगवान् वशिष्ठजी ने रामजी के प्रति कहा। वशिष्ठजी बोले, हे राघव! कलनारूप कलङ्क ब्रह्ममें है वा नहींहै, यह मैं तुमसे सिद्धान्तकाल में कहूंगा अथवा तुम आपही जानोगे। ब्रह्मसत्ता सब शक्तिरूप, सर्वव्यापक और सर्वगतहै और सब उसी में रचे हैं। जैसे इन्द्रजाली विचित्र शक्ति से अनेकरूप रचता है और सत्य को असत्य और असत्य को सत्यकर दिखाताहै तैसेही आत्मा मायावी परम इन्द्रजाली अघटन घटना है अर्थात् जो न बने उसको भी बनाताहै। वह अपनी शक्ति से पहाड़ को गढ़ा करता है; बल्ली में पाषाण लगाताहै और पाषाण में बेल लगाताहै। वनकी पृथ्वी को आकाश करताहै और आकाश को पृथ्वी करताहै; और आकाश में वन लगाता है—जैसे आकाश में गन्धर्व नगर भासता है, वन को आकाश करता है—जैसे पुरुष की छाया आकाश होजाती है और आकाश को पृथ्वीभाव प्राप्त करता है—जैसे रत्न की कन्दरा पृथ्वी पर हो और उसमें आकाश का प्रतिबिम्ब पड़े। हे रामजी! यह विचित्ररूप दृश्य जो तुमसे कहाहै सो शुद्ध व्यक्ततत्त्व—अचैत्य—चिन्मात्रमें जो चेतनता का लक्षण जानना है उसीसे रचाहै और कैसा रचाहै कि, वही चित्त संवेदन फुरनेसे जगत्‌रूप हो भासता है। उसमें सबप्रकार और सर्वरूप वही है जो एकरूप अविद्यमान है तो हर्ष, शोक और आश्चर्य किसका मानिये? यह अन्यथा कोई नहीं, सब एकरूप है। इसी कारण हमको समता भाव रहता है और हर्ष, शोक, आश्चर्य और मोह नहीं प्राप्त होता। ममता और चपलता आदिक विकार हमको कोई नहीं होता और ऐसे हम कदाचित् जानतेही नहीं। देश, काल, वस्तु जगत्

अवसान को प्राप्त हो भासते हैं और उनका विपर्यय होना भी भासता है पर वह अपने स्वभाव में स्थित है क्योंकि; यह दृश्य उनको अपने स्वरूप का आभास फुरता भासता है। जो कुछ दृश्य प्रपञ्च है वह सत्य चित्त संवित् की स्पन्द कला से फुरता है और नाना प्रकार देश, काल, क्रिया और द्रव्य होकर भासता है। उसको आत्मसत्ता किसी यत्न से नहीं रचती बल्कि स्वाभाविकही फुरने से फुरते हैं। जैसे समुद्र तरङ्गों को किसी यत्न से नहीं उपजाता और लीन करता स्वाभाविकही चमत्कार फुरता और लीन होता है; तैसेही आत्मा में स्वाभाविकही सृष्टि फुरती है और लय होती है। जैसे समुद्र और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत्में कुछ भेद नहीं–वही रूप है। जैसे दूध घृतरूप है घट पृथ्वीरूप है और रेशम तांतरूप है तैसेही जगत् आत्मरूप है। जैसे वट धान्य वृक्षरूप हो भासता है और समुद्र तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही आत्मा जगत्रूप हो भासता है। हे रामजी! इन दृष्टान्तों का एकअङ्ग लेना; कारण कार्य भाव न लेना क्योंकि, आत्मा में न कोई करता है, न कोई भोक्ता है और न कोई विनाश होताहै केवल आत्मतत्त्व, साक्षी, निरामय और अद्भुत अपने आप स्वभावसत्ता में स्थित है। यह जगत् आत्मा का प्रकाश है; जैसे दीपक और सूर्यका प्रकाश। जैसे पुष्प का स्वभाव सुगन्ध है तैसेही आत्मा का स्वभाव जगत् है; किसी कारण कार्य से नहीं हुआ। जगत् आत्मा का स्वभाव आभासरूप है और आत्मा से कुछ भिन्न नहीं हुआ। जैसे पवन का स्वभाव स्पन्दरूपहै और जब निस्पन्द होताहै तब नहीं भासता तैसेही आत्मामें संवेदन फुरता है तब जगत् हो भासता है और जब लय होताहै तब जगत् नहीं भासता। जगत् कुछ नहीं है न सत्है और न असत् है। कहीं प्रकट भासता है और कहीं अप्रकट भासताहै और नाना प्रकार का विचित्ररूप भासता है। जैसे वन में पुष्प का रस होताहै पर उनके उपजने और नष्ट होनेसे न वन उपजता है और न नष्ट होता है तैसेही आत्मसत्ता जगत् के उपजने और नष्ट होनेसे रहित है वास्तव में उपजा कुछ नहीं इससे आत्माही अपने आप में स्थित है पर असम्यक्ज्ञानसे जगत् भासता है और अनन्त शाखाओं से फैल रहाहै इसलिये इसको ज्ञानरूपी कुठार से काटो तब सुखी होगे। जगत्रूपी वृक्ष का असम्यक्ज्ञान बीज है, शुभ अशुभरूपी फूल हैं और आशारूपी बल्ली से वेष्टित है; दुःखरूपी उसकी शाखा हैं, भोग और जरारूपी फल हैं और तृष्णारूपी लता से घिरे हुये भासते हैं। ऐसे संसाररूपी वृक्ष को आत्मविवेकरूपी कुठारसे यत्न करके काटकर मुक्त हो। जैसे गजपति अपने बलसे बन्धन तोड़के सुखचित्त विचरता है तैसेही तुमभी निर्बन्ध होकर विचरो॥

इति श्रीयोगवा०स्थितिप्र०सर्वैकताप्रतिपादनन्नामएकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥३९॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये जो जीव हैं वे ब्रह्म से कैसे उत्पन्नहुये और कितने हुये हैं, मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो! जैसी विचित्रता से ये उपजते, नाश होते, बढ़ते और स्थित होते हैं वह क्रम सुनो। हे निष्पाप राम! शुद्ध ब्रह्मतत्त्व की वृत्ति जो चेतन शक्ति है सो निर्मल है; जब वह स्फुरणरूप होती है तब कलनारूप घनभाव को प्राप्त होती है और संकल्परूप धारणकरती है; और फिर तन्मय होकर मनरूप होती है। वह मन संकल्पमात्र से जगत् को रचता है और विस्तारभाव को प्राप्त करता है। जैसे गन्धर्बनगर विस्तार को प्राप्त होता है तैसेही मन से जगत् विस्तार होताहै। ब्रह्म दृष्टि को त्याग के जो जगत् रचता है सो सब आत्मसत्ता का चमत्कार है। हमको तो सब आकाशरूप भासता है पर दूरदर्शी को जगत् भासता है। जैसे चित्त संवित् में संकल्प फुरता है तैसाही रूप होता है। प्रथम ब्रह्मा का संकल्प फुरा है इसलिये उस चित्त संवित् ने आपको ब्रह्मारूप देखा और ब्रह्मारूप होकर जब जगत् को कल्पा तब प्रजापति होकर चतुर्दश प्रकार के भूत जात उत्पन्न किये; वास्तव में सब ज्ञप्तिरूप हैं। उसके फुरने से जो जगत् भासता है सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूप है। वास्तव में शरीर कुछ नहीं संकल्पमात्र है स्वप्न नगरवत् भ्रान्तिसे भासते हैं। उस भ्रान्तिरूप जगत् में जो जीव हुये हैं और कोई मोह से संयुक्त है, कोई अज्ञानी है, कोई मध्यस्थित है और कोई ज्ञानी उपदेष्टा है जो कुछ भूतजात हैं वे सब आधिव्याधि दुःख से दीन हुये हैं। उनमें कोई ज्ञानवान् सात्त्विकी हैं और कोई राजसी सात्त्विकी हैं। जो शान्तात्मा पुरुष हैं उनको संसार के दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करते वे सदा ब्रह्म में स्थित हैं। हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे भूतजात कहेहैं सो ब्रह्म, शान्त, अमृतरूप, सर्वव्यापी, निरामय, चैतन्यस्वरूप, अनन्तात्मा और आधिव्याधि दुःखसे रहित निर्भ्रम है। जैसे अनन्त सोमजल के किसी स्थान में तरङ्ग फुरते हैं तैसेही परमब्रह्म सत्ता के किसी स्थान में जगत् प्रपञ्च फुरता है। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ब्रह्मतत्त्व तो अनन्त, निराकार, निरवयवरूप है उस का एक अंश एक स्थान कैसे हुआ? निरवयव में अवयवक्रम कैसे होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस करके उपजे हैं अथवा उससे उपजे हैं यह जो कारण और उपादान है वह भ्रान्तिमात्र है। यह शास्त्ररचना व्यवहार के निमित्त कही है परमार्थ में कुछ नहीं है अवयव से जो देशादिक कल्पना है वह क्रम से नहीं उपजी; उदय और अस्त पर्यन्त दृष्टिमात्र भी होती है पर कल्पनामात्र है। वह कल्पना भी आत्मरूप है। आत्मा से रहित कल्पना भी न कुछ वस्तु है न हुई है और न कुछ होगी। उसमें जो शब्द, अर्थ आदिक युक्ति है वह व्यवहार के निमित्त है परमार्थ में कुछ नहीं शब्द अर्थमात्र जगत्कलना उसकरके उपजी है

और उससे उपजी है यह द्वितीय कल्पनाभी नहीं यह तो तन्मय शान्तरूप आत्माही और कुछ नहीं। जैसे अग्नि से अग्नि की लाटें फुरती हैं सो अग्निरूप हैं; और 'उससे उपजी' और 'उस करके उपजी' यह कल्पना अग्नि में कोई नहीं, अग्निही अग्नि है; तैसेही जन और जनक अर्थात् कार्य और कारणभेद आत्मा में कोई नहीं। कार्य कारणभाव कल्पनामात्र है; जहा अधिकता और ऊनता होती है वहां कारण कार्यभाव होताहै कि, यह अधिककारण है और वह कार्य है। भिन्न २ कारण कार्य शब्द बनता भी है और जहां भेद होताहै वहां भेद कल्पना भी हो पर एक अद्वैत में शब्द कैसे हो और शब्द का अर्थ कैसे हो? जैसे अग्नि और अग्नि की शिखा में भेद नहीं होता तैसेही कारण कार्यभाव आत्मा में कोई नहीं--शब्दअर्थ कल्पनामात्र है। जहां प्रतियोगी, व्यवच्छेद और संख्या भ्रम होता है वहां द्वैत और नानात्व होता है। जैसे चैतन का प्रतियोगी जड़ और जड़ का प्रतियोगी चैतन है; व्यवच्छेद अर्थात् परिच्छिन्न वह है जैसे घट में आकाश होता है और संख्या यह है कि जैसे जीव और ईश्वर। यह शब्द अर्थ द्वैतकल्पना में होते हैं और जहां एक-अद्वैत आत्माही है वहां शब्द अर्थ कोई नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग बुदबुदे सबही जल हैं और जलसे कुछ भिन्न नहीं, तैसेही शब्द और अर्थकल्पना ब्रह्म है। जो बोधवान् पुरुष हैं उनको सब ब्रह्मही भासताहै; चित्त भी ब्रह्महै, मनभी ब्रह्महै और ज्ञान, शब्द, अर्थ ब्रह्म ही है, ब्रह्म से कुछ भिन्न नहीं और उससे जो भिन्न भासता है वह मिथ्याज्ञान का विकल्प है जैसे अग्नि और अग्नि की लाटों की कल्पना भ्रान्तिमात्र है तैसेही आत्मा में जगत् की भिन्नकल्पना असत्‌रूप है। जो ज्ञान से रहित है उसकी दृष्टिदोष से सत्य हो भासती है। इससे सर्वब्रह्महै, ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। निश्चय करके परमार्थब्रह्म से सबब्रह्महीहै। सिद्धान्तकाल में तुमको यही दृष्टि उपजेगी। यह जो सिद्धान्त पिञ्जर मैंने तुमसे कहा है उसपर उदाहरण कहूंगा कि, यह क्रम अविद्या का कुछभी नहीं; अज्ञान के नाश हुये अत्यन्त असत् जानोगे। जैसे तमसे रस्सी में सर्प भासता है और जब प्रकाश उदय होता है तब ज्योंका त्यों भासताहै और सर्पभ्रम नष्ट होजाताहै; तैसेही अज्ञान दृष्टि से जगत् भासता है। जब शुद्धविचारसे भ्रान्ति नष्ट होगी तब निर्मलप्रकाश सत्ता तुमको भासेगी इसमें संशय नहीं। यह निश्चितार्थ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेब्रह्मप्रातिपादनन्नाम चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४०॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपके ये वचन क्षीरसमुद्र के तरङ्गवत् उज्ज्वल; तीनों तापों के नाशकर्ता; हृदय के मल दूर करने को निर्मलरूप और अज्ञानरूपी तम के नाशकर्ता प्रकाशरूप हैं और गम्भीर हैं; मैं उनकी तोल नहीं पासक्ता एकक्षण में मैं

संशय से अन्धकार को प्राप्तहोता हूं और एकक्षण में निःसंशयरूप प्रकाश को प्राप्त होताहूं जैसे चपलरूप मेघ से सूर्यका प्रकाश कभी भासता और कभी घिरजाता है। इससे मेरा संशय दूर करो कि, अप्रमेयरूप आत्मानन्द सत्ता प्रकाशरूप और असत्यभाव से रहित साररूप है तो उस अद्वैततत्त्व में कल्पना कहां से आई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ मैंने तुमसे कहाहै वह यथार्थ है और जैसे कहा है तैसेही है। यह वचन असमर्थ भी नहीं क्योंकि, जिसके हृदय में ठहरें उसको आत्मपदमें प्राप्त करें; विरूपभी नहीं है क्योंकि, इनका रूपफल प्रकटहै जिसके धारण से संसार के सब दुःख मिटजाते हैं और पूर्वापर विरोध भी नहीं है कि, प्रथम कुछ और कहा और पीछे कुछ और कहा। जो कुछ मैंने कहाहै सो यथार्थ कहा है परन्तु ज्ञानदृष्टि से जब तुम्हारा हृदय निर्मल होगा और विस्तृत बोधसत्ता हृदयमें प्रकाशेगी तब तुम मेरे वचन के तात्पर्यको हृदय में जानोगे। तुमको जो मैं उपदेश करताहूं सो वाच्य वाचक शास्त्र के सम्बन्ध जतानेके निमित्त करताहूं। जब इन युक्त वचनों से तुम जानोगे तब तुम्हें अद्वैतसत्ता निर्मल भासेगी और जो कुछ वाच्य–वाचक शब्द अर्थरचना है उसको त्याग करोगे। ज्ञानवान् को सदा परमार्थ अद्वैत सत्ता भासतीहै। आत्मा में इच्छादिक कल्पना कुछ नहीं; निर्दुःख निर्द्वन्द्व है और जगत्‌रूप होकर स्थित हुआ है। इस प्रकार मैं तुमको विचित्र युक्तिसे कहूंगा। जबतक सिद्धान्त उपदेश का आकाश है तबतक आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती। जब आत्मबोध होगा तब आपही जानोगे। अज्ञानरूपी तम वाक्‌विस्तार विना शान्त नहीं होता। इस कारण मैं तुमको अनेक युक्ति से कहूंगा। तबतक सिद्धान्त उपदेश का अवकाशहै। हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ता के आश्रय जो संवेदना भास फुरता है उसी का नाम अविद्या है। वह दो रूप रखती है–एक उत्तम और दूसरा मलीन। जो स्पन्दकला अविद्या के नाश निमित्त प्रवर्त्तती है वह उत्तमहै और विद्याभी उसीका नाम है और सब दुःख नाश करती है और जो संसार की ओर फुरती है वह अविद्या है अर्थात् आत्मा की ओर फुरती है सो विद्या है और दृश्यकी ओर जो फुरती है वह अविद्या है पर दोनों स्पंदरूप हैं। इससे अविद्या से अविद्या का नाशकरो। जैसे ब्रह्मअस्त्रसे ब्रह्मअस्त्र शान्त होताहै; विषको विष नाश करताहै और शत्रु को शत्रु मारताहै; तैसेही अविद्या से अविद्या नाश होतीहै। इसीप्रकार तुमभी इसको नाशकरो तब सुखदायक होगे। विचार से जब इसका नाश होताहै तब जानी नहीं जाती कि, कहां गई; जैसे दीपक से अन्धकार देखिये तो नहीं दीखता कि, कहां गया। बड़ा आश्चर्य है कि, जीव का ज्ञान इसने ढांपलियाहै आत्मसत्ता सदा अनुभव और उदयरूप है पर अज्ञानी जीव को नहीं भासती। जबतक अविद्या नहीं जानी तबतक फुरती है और जब जानी

तब नहीं जानता कि, कहां गई इससे भ्रममात्र सिद्ध है। बड़ा आश्चर्य है कि, माया ने संसार को बांध रक्खा है और सत्य की नाईं प्राप्त हुई है पर असत्य है। बुद्धिमानों को भी यह नाशकर छोड़ती है तो और जीवों का क्या कहना है। निरन्तर अभेदरूप आत्मा में अविद्याभेद कल्पना कोई नहीं; जिस पुरुष ने संसार माया को ज्यों का त्यों जाना है वही पुरुषोत्तम है। जिसको यह भावना हुई है कि अविद्या परमार्थ से कुछ नहीं असत्यरूप है सो ज्ञानवान्है। जो कुछ जानने योग्य है वह उसने जानाहै–इसमें संशय नहीं। जबतक तुम स्वरूपमें न जागो तबतक मेरेवचन में आसक्तबुद्धि करो और निश्चय धारो कि, अविद्या नाशरूप है और है नहीं। जो कुछ जगत् दृश्य भासता है वह मन का मनन असतरूप है जिसको यह निश्चय हुआ है वही पुरुष मोक्षभागी है। यह जो मनका फुरनारूप जगत् दृश्यभाव को प्राप्त हुआ है वह सब ब्रह्मरूप है। जिसके हृदय में यह निश्चय स्थितहै वही पुरुष मोक्षभागी है और जिसको चराचर जगत् में दृढ़ भावना है वह बन्धभागी है–जैसे पक्षी जाल में बन्धायमान होता है। हे रामजी! संपूर्ण जीव इस संसारकी सत्यदृष्टि से बांधे हुयेहैं। सब जगत् स्वप्न भ्रान्तिरूप है पर उसमें जिसको असत् बुद्धि है अथवा सत्ब्रह्म बुद्धि है वह अशक्त होकर संसारदुःख में नहीं डूबता और जिसको अनात्मधर्म देहादिक में भावना है और स्वरूप में आत्मबोध नहीं वह हर्ष-शोक आपदा को प्राप्त होताहै जिसको स्वरूप में स्वरूप बोध है और अनात्म धर्मका त्याग है उसको संसार अविद्या नहीं रहती और दुःख विकार स्पर्श नहीं करसक्ता। जैसे जल में धूल नहीं उड़ती तैसेही उस महात्मा पुरुष के चित्त में दुःख उदय नहीं होते। ज्ञानवान् पुरुषके हृदय में जगत् के शब्द अर्थ का रङ्ग नहीं चढ़ता। जैसे सूत विना वस्त्र नहीं होता–पटतन्तुही रूप है तैसेही आत्मा विना जगत् नहीं होता-जगत् आत्मारूप है। जैसे जानके जो व्यवहार में वर्त्तताहै वह पुरुष मानसी दुःख को नहीं प्राप्त होता और जो अविद्या से संसार में भटकता है वह आत्मतत्व को नहीं पासक्ता और विद्यमान भी उसको नहीं भासता। केवल आत्मज्ञान से अविद्या का नाश होता है; जिसको आत्मज्ञान हुआ है वह अविद्यारूपी नदी को तरजाता है। आत्मसत्ता के प्राप्त हुये अविद्या क्षीण होजाती है; जिनको अविद्यारूपी संसार के पदार्थ की इच्छा उदय होती है वे अविद्यारूपी नदी में बहजाते हैं। हे रामजी! यह अविद्या बड़े मोह और भ्रम देती है। जब यह दृढ़ होकर स्थित होती है तब तत्पद को घेरलेती है; इससे तुम यह न विचारो कि, अविद्या कहां से उपजी है और कौन इसका कारण है यही विचारो कि, यह नाश कैसे होती है। इसके क्षय का उद्यम करो; जब यह नष्ट होगी तब इसकी उत्पत्ति भी जानलोगे कि, इस प्रकार उपजी है और यह इसका स्वरूप

है; यह कारण है और यह कार्य है। हे रामजी! अविद्या वास्तव में कुछ है नहीं, अविचार सिद्ध है और विचारदृष्टि से नष्ट होजाती है, तब जानी नहीं जाती कि कहां गई पर जब स्वरूप विस्मरण होताहै तब उपजकर दृढ़ होतीहै और फिर दुःख देती है। इससे बल करके इसका नाशकरो। बड़े २ शूरमा हुये हैं पर उनको भी अविद्या ने व्याकुल कियाहै: ऐसा बुद्धिमान् कोई नहीं जिसको अविद्या ने व्याकुल नहीं किया। अविद्या सर्वरोगों का मूल है; यत्न करके इसकी औषध करो कि, जिससे जन्म दुःख कुहिरा न प्राप्त हो। जो कुछ आपदा है उसकी यह अधिष्ठाता सखी है; अज्ञानरूपी वृक्ष की बेलि है और अनर्थरूपी अर्थ की जननी है। ऐसी अविद्यारूपी मलीनता को दूर करो जो मोह, भय, आपदा और दुःख की देनेवाली है और हृदय में मोह उपजाकर जीवों को व्याकुल करती है। अज्ञान चेष्टा से इसकी वृद्धि होती है जब अविद्यारूपी संसार समुद्र से पार होगे तब शान्ति होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेअविद्याकथनंनामएकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अविद्यारूपी रोग को काटकर जब शान्तरूप स्थित होते हैं और विचाररूपी नेत्र से देखते हैं तब यह नष्ट होजाती है। इस विस्तृत व्याधि की औषध सुनो, जीव जगत् का विस्तार मैं तुमसे कहताहूं। सात्त्विक, राजस आदिक मनकी वृत्ति विचारने के लिये मैं प्रवर्त्तता था। जो तत्त्व अमृत और ब्रह्मस्वरूप है वह सर्वव्यापी, निरामय, चैतन्यप्रकाश, अनन्त और आदि अन्त से रहित निर्भ्रम है। जब वह चैतन्यप्रकाश स्पन्दरूप हो फुरता है तब दीपकवत् तेज प्रकाश चेतनरूप चित्तकला जगत् को चेतने लगता है–तब जगत् फुरताहै। जैसे सोमजल समुद्र में द्रवता से तरङ्ग होता है सो जल से भिन्न नहीं है तैसेही सर्वात्मा से भिन्न किसी कलाका रूप कुछ नहीं–यह स्पन्दरूप भी अभेद है। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मा में चित्तशक्ति है; जैसे नदी में वायु के संयोग से तरङ्ग उठते हैं तैसेही आत्मा में चित्तकला दृश्य जगत् होताहै बल्कि, ऐसे भी नहीं; आत्मा अद्वैत है, स्वतः उसमें चित्तकला होआती है। जैसे वायु में स्वाभाविक स्पन्द होताहै। स्पन्द और निस्पन्द दोनों वायु के रूप हैं पर जब स्पन्द होता है तब भासता है। और निस्पन्द होता है तब अलक्ष होजाता है तैसेही चित्तकला फुरती है तब लक्ष में आती है और निस्पन्द हुई अलक्ष होती है तब शब्द को गम नहीं होती। स्पन्द से जगत्भाव को प्राप्त होती है। जैसे समुद्र में तरङ्ग और चक्र फुरते हैं तैसेही चेतन में चित्तकला फुरती है। जैसे आकाश में मुक्तमाल भासती है सो है नहीं तैसेही आत्मा में वास्तव कुछ है नहीं पर स्पन्दभाव से कुछ भूषित दूषित हो भासती है। आत्मा से भिन्न कुछ नहीं परन्तु भिन्नकी नाईं भासती है। जैसे प्रकाशकी लक्ष्मी

कोटि रविसम स्थित होती है तैसेही आत्मा में चित्तशक्ति है और देश, काल, क्रिया और द्रव्य को जैसे जैसे चेतती है तैसेही तैसे हो भासती है। फिर नामसंज्ञा होती है और अपने स्वरूप को विस्मरण करके दृश्य से तन्मय होती है तो भी स्वरूप से व्यतिरेक नहीं होती परन्तु व्यतिरेक की नाईं भावना होती है। जैसे समुद्र से तरङ्ग और सुवर्ण से भूषण भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से चित्तशक्ति भिन्न नहीं; परन्तु अपने अनन्त सुभाव को विस्मरण करके देश, काल, क्रिया, द्रव्य को नहीं मानती, संकल्पके धारनेसेही कल्पना भाव को प्राप्त होती है और विकल्प कलना से क्षेत्रज्ञरूप होती है। शरीर का नाम क्षेत्र है और शरीर को भीतर बाहर जानने से क्षेत्रज्ञनाम होता है। वह क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभाव की वासना करती है और उस अहंकार से आत्मा से भिन्नरूप धरती है। फिर अहंकार में निश्चय कलना होती है उसका नाम बुद्धि होता है। अहंभाव से जब निश्चय संकल्प कलना होती है उसका नाम मन होता है; वही चित्कला मनभाव को प्राप्त होती है। जब मन में घन विकल्प उठते हैं तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की भावना से इन्द्रियां फुर आती हैं और फिर हाथ, पांव, प्राण संयुक्त देह भासि आता है। इस प्रकार जगत् से देह को पाकर जीव जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है; वासना में बँधा हुआ दुःख के समूह को पाता है; कर्मसे चिन्ता में दीन रहता है और जैसे कर्म करता है तैसेही आकार धरता है। जैसे समय पाके फल परिपक्वता को प्राप्त होता है तैसेही स्वरूप के प्रमाद से जीव दृश्यभाव को प्राप्तहोता है; आपको कारण, कार्यमानके अहंभाव को प्राप्त होताहै; निश्चय वृत्ति से बुद्धिभाव को प्राप्त होताहै और संकल्प संयुक्त मनभावको प्राप्त होताहै। वही मन तब देह और इन्द्रियांरूप होकर स्थित होताहै और अपना अनन्तरूप भूल जाताहै और परिच्छिन्नभाव को ग्रहण करके प्रतियोग और व्यवच्छेदभाव भासता है और तभी इच्छा, मोहादिक शक्ति को प्राप्त होता है। जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करतीं हैं तैसेही सब आपदा और दुःख आय प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अहंकार अपनी रचना से आपही बन्धवान् होताहै; जैसे कुसवारी अपने स्थान को रचकर आपही बन्धवान् होतीहै। बड़ा खेद है कि, मन आपही संकल्पसे दृश्य को रचता है और फिर उसी देह में आस्था करताहै, जिससे आपही दुःखी होता है; भीतर से तपता रहता है और आपको बन्धायमानकर संसार जङ्गल में अविद्यारूप आशाको लेके फिरता है। अपनेही संकल्पकलना से तन्मात्रा देह हुईहै और उस में अहंप्रतीत होतीहै। जैसे जलमें तरङ्गहोते हैं तैसेही देहादिक उदय हुये हैं और उनसे बँधा हुआ जीव दुःखित होताहै; जैसे सिंह ज़ंजीर से बांधा जावे। एकस्वरूप है वही फुरनेके वशसे नानाभाव को प्राप्त हुआहै; कहीं

मन, कहीं बुद्धि, कहीं अहंकार, कहीं ज्ञान, कहीं क्रिया, कहीं पुर्यष्टक, कहीं प्रकृति, कहीं माया, कहीं कर्म, कहीं विद्या, कहीं अविद्या और कहीं इच्छा कहाता है। हे रामजी! इसी प्रकार जीव अपने चित्त से भ्रम में प्राप्त हुआ है और तृष्णारूपी शोकरोग से दुःख पाताहै। तुम यत्नकरके इससे तरो। जरा मरण आदिक विकार और संसार की भावनाही जीव को नष्ट करतीहै। यह भला है ग्रहण कीजिये; यह बुरा है, त्यागकरने योग्य है; इसीसंकल्प-विकल्प में ग्रसा अविद्याके रङ्गसे रञ्जितहुआ है; इच्छा करने से इसका रूप सकुचगया है और कर्मरूपी अंकुर से संसाररूपी वृक्ष बढ़गया है जिससे अपना वास्तवस्वरूप विस्मरण हुआहै और कलना से आपको मलीन जान कर अविद्या के संयोग से नरक भोगताहै और संसार भावनारूपी पर्वत के नीचे दबकर आत्मपद की ओर नहीं उठसक्ता। संसाररूपी विषका वृक्ष जरा मरण-रूपी शाखा से बढ़गया है और आशारूपी फांस से बांधे हुये जीव भटककर चिन्ता-रूपी अग्नि में जलते हैं और क्रोधरूपी सर्प ने जीवों का चर्बण किया है जिससे अपनी वास्तवता विस्मरण होगईहै। जैसे अपने यूथसमूह से भूला हरिण शोक से दुःखी होता है; पतङ्ग दीपक की शिखा में जल मरता है और मूल से काटा कमल विरूप होताहै तैसेही आशा से क्षुद्रहुआ मूर्ख बड़ा दुःख पाताहै। जैसे कोई मूढ़ विष को सुखरूप जानके भक्षण करे तो दुःख पाताहै तैसेही इसको भोग में मित्रबुद्धि हुई है परन्तु वह इसका परमशत्रु है, इसको उन्मत्त करके मूर्च्छा करता और बड़ादुःख देता है। जैसे बांधा हुआ पक्षी पिंजरे में दुःख पाता है तैसेही यह दुःख पाता है। इ-ससे इसको काटो। यह जगत्जाल असत् और गन्धर्बनगरवत् शून्य है और इसकी इच्छा अनर्थ का कारण है; तुम इस संसार समुद्रमें मत डूबो। जैसे हाथी कीचड़ से अपने बलसे निकलताहै तैसेही अपना उद्धार करो। संसाररूपी गढ़ेमें मनरूपी बेल गिराहै जिससे अङ्गजीर्ण होगये हैं। अभ्यास और वैराग्य के बल से इसको निकाल के अपना उद्धारकरो। जिस पुरुष को अपने मनपर भी दया नहीं उपजती कि, संसार दुःख से निकले; वह मनुष्य का आकार है परन्तु राक्षस है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजीवतत्त्ववर्णनन्नामद्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जो जीव परमात्मा से फुरकर संसारभावना करतेहैं उनकी संख्या कुछ नहीं कही जाती; कोई पूर्व उपजे हैं, कोई अपूर्व उपजेहैं और कोई अबतक उपजतेहैं। जैसे फुरनेमे जलके कण के प्रकट होतेहैं तैसेही ब्रह्म-सत्तासे जीव फुरते हैं पर अपनी वासना से बांधे हुये भटकते हैं और विवश होकर नाना प्रकार की दशा को प्राप्त होतेहैं; चिन्ता से दीन होजातेहैं और दशों दिशा जल थल में भ्रमतेहैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजतेहैं और नष्ट होतेहैं तैसेही जीव जन्म

और मरण पातेहैं। किसी का प्रथम जन्म हुआ है, किसीके सौ जन्म होचुकेहैं; कोई असंख्यजन्म पाचुके हैं; कोई आगे होंगे कोई होकर मिटगये हैं और कोई अनेक कल्पपर्यन्त अज्ञान से भटकेंगे। कोई अब जरा में स्थित हैं; कोई यौवन में स्थित हैं; कोई मोहसे नष्ट हुये हैं; कोई अल्पवय होकर स्थित हैं; कोई अनन्त आनन्दी हुये हैं; कोई सूर्यवत् उदितरूप हैं; कोई किन्नर हैं कोई विद्याधर हैं; और कोई सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, कुवेर, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, यक्ष, वैताल और सर्पहैं। कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण कहातेहैं और कोई क्रान्त, चाण्डाल आदिक हैं। कोई तृण, औषध, पत्र, फूल, मूल को प्राप्त हुये हैं और कोई लता, गुच्छे, पाषाण, शिखर हुये हैं। कोई कदम्बवृक्ष, ताल और तमाल हैं और कोई मण्डलेश्वर चक्रवर्त्ती हुये भ्रमते हैं। कोई मुनीश्वर मौनपद में स्थित हैं; कोई कृमि, कीट, पिपीलिका आदिक रूप हैं। कोई सिंह, मृग, घोड़े, खच्चर, गर्दभ, बैल आदिक पशुयोनिमें हैं और कोई सारस, चक्रवाक, कोकिला, बगुलादिक पक्षी हैं। कोई कमल कली, कुमुद, सुगन्धादिक हैं और कोई आपदा से दुःखी हैं। कोई सम्पदावान् हैं, कोई स्वर्ग और कोई नरक में स्थित हैं। कोई नक्षत्र चक्र हैं, कोई आकाश में वायु हैं, कोई सूर्य की किरणों में और कोई चन्द्रमा की किरणों में रस लेते हैं। कोई जीवन्मुक्त हैं, कोई अज्ञान से भ्रमते हैं; कोई कल्याणभागी चिरपर्यन्त भोग को भोगते हैं; कोई परमात्मा में प्रणामीगयेहैं। कोई अल्पकाल और कोई शीघ्रही आत्मतत्त्वमें लय हुये हैं; कोई चिरकाल में जीवन्मुक्त होवेंगे; कोई मूढ़ दुर्भावना करते अनात्मा में भ्रमते हैं; कोई मृतक होकर इस जगत् में जन्मते हैं; कोई और जगत् में जा स्थित होते हैं और कोई न यहां और न वहां उपजते हैं केवल आत्मतत्त्व में लय होते हैं। कोई मन्दराचल, सुमेरु आदि पर्वत होकर स्थित होते हैं; कोई क्षीरसमुद्र, घृतसमुद्र, इक्षुरस, जल आदिक समुद्रहुये हैं। कोई नदियां, तड़ाग, बापिकादि भये हैं; कोई स्त्रियां, कोई पुरुष और कोई नपुंसकरूप हुये हैं। कोई मूढ़, कोई प्रबुध, कोई अत्यन्त मूढ़ हुये हैं; कोई ज्ञानी, कोई अज्ञानी, कोई विषयतप्त और कोई समाधि में स्थित हैं। इसी प्रकार जीव अपनी वासनासे बांधे हुये भ्रमतेहैं और संसारभावना से जगत् में कभी अध और कभी ऊर्ध्व को जाकर काम, क्रोधादिक दुःख की पीड़ा पाते हैं। वे कर्म और आशारूपी फांसी से बांधेहुये हैं और अनेक देह को उठाये फिरते हैं। जैसे भारवाही भार को उठातेहैं तैसेही कोई मनुष्य शरीरसे फिर मनुष्य शरीर को धारते हैं; कोई वृक्षसे वृक्ष होते हैं और कोई और से और शरीर धारते हैं। इसी प्रकार आत्मरूप को भुलाकर जो देहसे मिलेहुये वासनारूप कर्म करतेहैं वे उनके अनुसार अध ऊर्ध्वपन्थ में भ्रमते हैं। जिनको आत्मबोध हुआहै वे पुरुष

कल्याणरूप हैं और सब दुःखी मायारूप संसार में मोहित हुयेहैं। यह संसार रचना इन्द्रजाल की नाईं है; जबतक जीव अपने आनन्द स्वरूपको नहीं पाता और साक्षात्कार नहीं होता तबतक संसारभ्रम में भ्रमता है और जिस पुरुष ने अपने स्वरूप को जाना है और जीवकी नाईं त्याग नहीं किया और बारम्बार संसारकेपदार्थों से रहित आत्मा की ओर धावता है वह समय पाकर आत्मपद को प्राप्तहोगा और फिर जन्म न पावेगा। कोई जीव अनेक जन्म भोगके ज्ञानसे अथवा तप से ब्रह्मा के लोक को प्राप्त होते हैं तब परमपद पाते हैं; कोई सहस्र जन्म भोग भोगकर फिर संसार में प्राप्त होतेहैं; कोई बुद्धिमान् विवेक को भी प्राप्त होतेहैं और फिर संसार में गिरते हैं अर्थात् मोक्षज्ञान को पाके फिर संसारी होते हैं; कोई इन्द्रपद पाकर तुच्छ बुद्धि से फिर तिर्यक् पशुयोनि पाते हैं और फिर मनुष्याकार धारते हैं; कोई महा-बुद्धिमान् ब्रह्मपद से उपजकर उसी जन्म में ब्रह्मपदको प्राप्तहोते हैं; कोई अनेक जन्ममें और कोई थोड़े जन्म में प्राप्त होते हैं। कितने एक जन्म से और ब्रह्माण्ड को प्राप्त होते हैं; कोई इसी में देवता से पशु जन्म पाते हैं; कोई पशु से देवता होजाते हैं और कोई नागहोजाते हैं। निदान जैसी २ वासना होती है तैसाही रूप होजाता है। जैसे यह जगत् विस्ताररूप है तैसेही अनेक जगत् हैं; कोई समानरूप है, कोई विलक्षण आकार है; कोई हुये हैं, कोई होवेंगे; विचित्ररूप सृष्टि उपजती है और मिटती है और कोई गन्धर्व भाव, कोई यक्ष, देवता आदिक भाव को प्राप्तहुये हैं। जैसे जीव इस जगत् में व्यवहार करते हैं तैसेही और जगतों में भी व्यवहार करते हैं पर आकार विलक्षण हैं और अपने स्वभाव के वश हुये जन्म मरण पाते हैं। जैसे समुद्रसे तरङ्ग उपजतेहैं और मिटजातेहैं तैसेही सृष्टि की प्रवृत्ति, उत्पत्ति और लय होतीहै। जब संवित् स्पन्द होतेहैं तब उपजते हैं और जब निस्पन्द होतेहैं तब लय होतेहैं। जैसे दीपक का प्रकाश लय होता है; सूर्यसे किरणें निकलती हैं तप्त लोहे और अग्नि से चिनगारी निकलती हैं; काल में ऋतु निकलती हैं; पुष्प से सुगन्ध प्रकट होती है और समुद्र से तरङ्ग उपजते और फिर लय होते हैं तैसेही आत्मसत्ता से जीव उपजते हैं और लय होते हैं। जितने जीव हैं वे सब समय पाके अपने पद में लय होंगे और स्वरूप में इनका उपजना, स्थित, बन्धन नष्ट होना मिथ्या है। त्रिलोकीरूप महामाया के मोह से उपजते हैं और समुद्र के तरङ्ग की नाईं नाश होते हैं॥

इति श्रीयोगवा०स्थितिप्र०जीवबीजसंस्थावर्णनन्नामत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४३॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जीव इस क्रमसे आत्मस्वरूप में स्थितहै फिर अस्थि, मांससे पूर्ण देह पिंजर इनको कैसे प्राप्त हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैंने

प्रथम तुमको अनेकप्रकार से कहाहै पर तुम अबतक जाग्रत् नहीं हुये। पूर्वापरके विचार करनेवाली तुम्हारी बुद्धि कहांगई? जो कुछ शरीरादिक स्थावर-जङ्गम जगत् दृष्टि आता है वह सब आभासमात्र है और स्वप्ने की नाईं उठा है पर दीर्घ स्वप्न है और मिथ्याभ्रम से भासता है। जैसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्रहै और भ्रमने से पर्वत भ्रमते भासते हैं; तैसेही जगत् अज्ञानसे भासता है। जिन पुरुषोंकी अज्ञान निद्रा नष्ट हुई है और निश्चयसे संसार वासना लगगई है वे प्रबुद्धचित्त हैं। संसारको वे स्वप्नरूप देखते हैं और स्वरूपभाव से कुछ नहीं देखते अपनेही स्वभाव में संसार कल्पित है। जीव संसार मोक्ष से प्रथम सर्वदा सत्रूप देखते हैं और उनकी संसार भावना असत् नहीं होती। वे जगत् आकार सर्वदा अपने भीतर कल्पते हैं और जीव के अनेक आकार चपलरूप क्षणभङ्ग होते हैं। जैसे जल में तरङ्ग चञ्चलरूप होते हैं, वीज में अंकुर रहता है और उसी के भीतर पत्र, फूल और फल होते हैं तैसेही कल्पनारूपी देह मनके फुरने में रहती है। हे रामजी! देह न हो परन्तु जहां मन फुरता है वहां हीं देह रच लेताहै। जैसे स्वप्ने में मनोराज देह रच लेताहै तैसेही यह देह और जगत् भी भ्रम से रचा हुआ है। जैसे चक्रपर चढ़ाया मृत्तिका का पिण्ड घटरूप होजाताहै तैसेही मन के फुरने से देह बनताहै। सब देह मन के फुरने में स्थित है और जो कुछ जगत् भासता है वह सब संकल्पमात्र है। जैसे मृगतृष्णा का जल असत्रूप होता है तैसेही यह जगत् असत्य है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल भासता है तैसेही जीव को अपने फुरने से देहादिक भासते हैं। हे रामजी! सृष्टि के आदि में जो शरीर उत्पन्नहुये हैं वे आभासमात्र संकल्प से उपजे हैं। प्रथम ब्रह्मा पद्म में स्थित हुये और उन्होंने संकल्प के क्रमसे संकलपपुर की नाईं विस्तार किया सो सब मायामात्र है। माया की घनता से यह जगत् भासता है—स्वरूप में कुछ नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आदि जीव जो मनरूप फुरने को पाकर ब्रह्मपद को प्राप्तहुआ वह ब्रह्मा कैसे हुआ है और कैसे स्थित है वह मुझसे क्रमसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहु, रामजी! प्रथम जिस प्रकार ब्रह्मा ने शरीर को पाकर ग्रहण कियाहै उसको सुनकर स्थिति भी जानोगे। देश काल आदिक के परिच्छेदसे रहित आत्मतत्त्व अपने आप में स्थित है। वह अपनी लीलाशक्ति से देश, काल, क्रिया कल्पितरूप हुआ है और उससे जीव के इतने नाम हुये हैं वासना से तद्रूप हुई चित्तकला चपलरूप मन हुआ और वह दृश्यकलना के सन्मुख हुई। प्रथम उसी चित्तकला ने मानसी शक्ति होकर आकाश की भावना की और स्वच्छ बीजरूप जो शब्द है उसके सन्मुख हुई। जैसे नूतन बालक प्रकट होता है तैसेही आकाश पोलरूप फुरआया। फिर स्पर्श बीज के सन्मुख हुई तब पवन

फुर आया । जब शब्द स्पर्श, आकाश और पवन का संघर्षण हुआ तब मन के तन्मय होनेसे अग्नि उपजा और बड़ा प्रकाश हुआ । फिर रस तन्मात्रा की भावना की तब शीतलभावना से जल फुर आया जैसे अति उष्णता से स्वेद निकलआता है । फिर गन्ध तन्मात्रा की भावना की उससे घ्राण इन्द्री निकली; स्थूल की भावना से जल चक्र पृथ्वी होकर स्थित हुये और आकाश में बड़ा प्रकाश हुआ । अहंकार की कला से युक्त और बुद्धिरूपी बीजसे समुचितरूपहुई और अष्टम जीवसत्ता हुई । इन अष्टका नाम पुर्यष्टक हुआ और वही देहरूपी कमल का भँवरा हुआ । उस आत्मसत्ता में तीव्रभावना करके उस चित्तसत्ताने बड़ास्थूल वपु देखा । जैसे बीजसे वृक्ष फूल होनेसे रस प्रणमता है तैसेही निर्मल आकाश में वृत्तिस्पन्द अस्पन्दरूप हुई है । जैसे भूषण बनाने के निमित्त सांचे में स्वर्ण आदिक धातु डालते हैं तो वह भूषणरूप होजाती है तैसेही ब्रह्माजी ने अपनी चैतन्य संवेदन मनरूपी संवित् में तीव्र भावना की उससे स्थूलता को प्राप्त हुये । स्वतः यह दृश्य का रूप फुरना क्रम से हुआ कि, ऊर्ध्व शीश है, मध्य उदर है, अधः पाद है, चारों दिशा हाथ हैं और मध्य में उदर धर्म है । जैसे नूतन बालक प्रकट होता है और महा उज्ज्वल प्रकाश ज्वाला की लाटों के समान उसके अङ्ग होते हैं तैसेही ब्रह्मा का शरीर उत्पन्न हुआ है । इस प्रकार वासना और कल्पित मन से शरीर उत्पन्न करलिया है । आदि ब्रह्मा का प्रकाश ही शरीर हुआ है जो सदा ज्ञानरूप, सम्पूर्ण ऐश्वर्य, शक्ति, तेज और उदारता से सम्पन्न स्थित है । इस प्रकार ब्रह्माजी सब जीवों का अधिपतिद्रव स्वर्णवत् कान्ति परम आकाश से उपजकर आकाररूप स्थित हुआ और अपनी लीला के निमित्त अपने निवास का गृह रचा । हे रामजी ! कभी ब्रह्माजी परम आकाश में रहते हैं; कभी कल्पान्तर महाभास्कर अग्नि में रहते हैं और कभी विष्णुजी के नाभिकमल में रहते हैं । इसी भांति अनेकप्रकारके आसन रचकर कभी कहीं, कभी कहीं स्थित होते हैं और लीला करते हैं । जब परमतत्त्व से प्रथम वह इस प्रकार फुरते हैं तब अपने साथ शरीर देखते हैं; जैसे बालक निद्रा से जागकर अपने साथ शरीर देखते हैं—जिस में बाण के प्रवाहसदृश प्राण अपान जाते आते हैं—तब पञ्चतत्त्व जो द्रव्य हैं उनको रचते हैं । इस शरीरमें बत्तीस दांत, तीन थम्भ; पांच देवता-अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, नवद्वार; दो जङ्घस्थल दो पांव; दो भुजा; बीस अँगुली; बीस नख, एक मुख और दो नेत्र हैं । कभी अपनी इच्छा से अनेक भुजा और अनेक नेत्र करलेता है और मांस कहगिल की है । ऐसा शरीर चित्तरूपी पक्षी का घर है; कामदेव भोगने का स्थान है; वासनारूपी पिशाचिनी का गृह है; जीवरूपी सिंह की कन्दरा है और अभिमानरूपी हस्ती का वन है । इस प्रकार

ब्रह्माजी ने शरीर को देखा और बड़े उत्तम कान्तिमान् शरीर को देखकर ब्रह्माजी जो त्रिकालदर्शी हैं चिन्तवन करनेलगे कि, इसके आदि क्या हुआ है और अब हमें क्या करना है, तो उन्हों ने क्या देखा कि, जो आगे भूत का सर्ग वेदसंयुक्त व्यतीत हुआ है ऐसे अनेक सर्ग हुये हैं। उनके सब धर्म स्मरण करके देखा और वाङ्मय भगवती और वेद का स्मरण किया और सर्वसृष्टि के धर्म, गुण, विकार, उत्पत्ति, स्थित, बढ़ना, परिणाम, क्षीण और नाश को स्मृतिशक्ति में देखा जैसे योगेश्वर ने अपना और और का अनुभव करता है और चित्तशक्ति में स्थित होकर स्मृतिशक्ति से देख लेता है तैसेही ब्रह्माजी ने दिव्यनेत्र से अनुभव किया। फिर इच्छा हुई कि; विचित्ररूप प्रजा को उत्पन्न करूं। ऐसे विचारकर प्रजा को उत्पन्न किया और जैसे गन्धर्वनगर तत्काल होजाता है तैसेही सृष्टि होगई है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ उनके साधन रचे और फिर उनमें विधि निषेध रचे कि, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है; उनके अनुसार फल की रचना की और शुभ अशुभ विचित्रता रची। हे रामजी! इस प्रकार फुरने से सृष्टि हुई है और फुरने की दृढ़ता से ही स्थित है। उस में तीन काल, क्रिया, द्रव्य, कर्म धर्म रचेहैं। जैसे नीति रची है तैसे ही स्थित है। जैसे वसन्तऋतु में पुष्प उत्पन्न होते हैं तैसेही ब्रह्मा के मन ने सृष्टि रची है। यह विचित्ररूप रचना का विलास चित्ररूप ब्रह्मा के चित्त में कल्पितहै; काल में उत्पन्न हुई है औरकालही से स्थितहै। स्वरूपमें न कुछ उपजा है और न कुछ नष्ट होताहै। जैसे स्वप्नसृष्टि होतीहै तैसेही यह संसाररचना है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसंसारप्रतिपादनंनामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जो उपजा है वह कुछ नहीं उपजा और न स्थित है—शून्य आकाशरूप है और मन के फुरनेसे सृष्टि भासती है। बड़े देश, काल क्रिया संयुक्त जो ब्रह्माण्ड दृष्टि आता है उसने परमार्थ में कुछ भी स्थान नहीं रोका, स्वप्न पुरवत् संकल्पमात्र है और आधार विना चित्र है। जैसे मूर्ति का चित्र आधार विना मिथ्या होता है तैसेही यह जगत् बड़ा भासता है पर मिथ्या है, असत्य तमरूप है और आकाश में चित्र की नाईं है। जैसे स्वप्ने में भासरूप जगत् भासता है वह असत्‌रूप है तैसेही यह शरीरादिक जगत् मन के फुरनेसे भासता है—मन का फुरनाही इसका कारण है। जैसे नेत्र का कारण प्रकाश है तैसेही जगत् का कारण चित्त है। सब जगत् आकाशमात्र है और घट, पट, गढ़ाआदिक क्रमसहित भी असत्‌रूप है। जैसे जल में जो चक्रावर्त्त भासतेहैं वे असत्यरूपहैं तैसेही पर्वतादिक जगत् असत्यरूप हैं; अपने निवास के निमित्त मनने यह शरीर रचाहै। जैसे कुसवारी अपने निवास के निमित्त गृह रचती है और आपही बन्धन में आती

है तैसेही मन शरीरादिक को रचकर आपही दुःखी होताहै। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो संकल्प से रहित सिद्ध हो और मन के यत्न से सिद्ध न हो, कठिन क्रूर पदार्थ भी मन से सिद्ध होताहै। परमात्मा जो देव है वह सर्वशक्तिमान् है, मनभी उसीकी शक्ति है, वह कौन पदार्थ है जो मन से सिद्ध न हो; मन से सब कुछ बन जाताहै क्योंकि; जो कुछ पदार्थ हैं उनमें सत्ता परमात्मा की है—उससे कुछ भिन्न नहीं। इससे परमात्मा देव में सबकुछ सम्भव है। आदि चित्तकला ब्रह्मारूप होकर उदय हुई है। उस भावना के अनुसार उसने आपको ब्रह्मा का शरीर देखा और उसने कलनारूप देवता; दैत्य, मनुष्य, स्थावर, जङ्गमरूप जगत् रचा है और संकल्प में स्थित है। जबतक उसका संकल्प है तबतक तैसेही स्थित है। जब संकल्प मिटजावेगा तब सृष्टि भी नष्ट होजावेगी। जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण होजाताहै तैसेही जगत् भी होजावेगा क्योंकि, आकाशवत् सबही कलनामात्र है और दीर्घ स्वप्नवत् स्थित है। वास्तव में न कोई उपजा है, न मरता है। परमार्थ से तो ऐसे हैं और अज्ञान से सब पदार्थ विकार संयुक्त भासते हैं। न कोई वृद्धि है, न कोई नष्ट होताहै उसमें और विकार कैसे मानिये? जैसे पत्र की रेखाके उपजने और नाश होनेमें वन को कुछ अधिकता और न्यूनता नहीं होती तैसेही शरीर के उपजने और नष्ट होनेमें आत्मा को लाभ हानि कुछ नहीं। सब जगत् दृश्य भ्रान्ति से भासता है। ज्ञानदृष्टि से देखो अज्ञानीवत् क्यों मोहित होतेहो? जैसे मृगतृष्णा का जल प्रत्यक्ष भासता है तौ भी मिथ्या भ्रममात्र होता है तैसेही ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सब भ्रान्तिमात्र है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही मिथ्या ज्ञान से जगत् भासता है। जैसे नौका पर बैठेको तट के वृक्ष स्थान चलते दृष्टि आते हैं तैसेही भ्रमदृष्टि से जगत् भासता है। इस जगत् को तुम इन्द्रजालवत् जानो; यह देह पिंजर है और मन के मनन से असत्यरूपही सत्य की नाईं स्थित हुआ है। जगत् द्वैत नहीं है माया से रची ब्रह्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों स्थितहै और शरीरादिक कैसे किसकी नाईं स्थित कहिये। पर्वत तृणादिक जो जगत् आडम्बर है वह भ्रान्तिमात्र मनकी भावनासे दृढ़ हो भासता है और असत्यही सत्यरूप हो स्थित हुआ है। हे रामजी! यह प्रपञ्च नाना प्रकार की रचना संयुक्त भासताहै पर भीतर से तुच्छ है। इसकी तृष्णा त्याग के सुखी हो; जैसे स्वप्नेमें बड़े आडम्बर भासतेहैं सो भ्रान्तिमात्र असत्यरूप हैं वास्तव में कुछ नहीं तैसेही यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्ना है, चित्तसे कल्पित है और देखनेमें बड़ा विस्ताररूप भासता है विचार करके ग्रहण करिये तो कुछ हाथ नहीं आता। जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में कुछ नहीं मिलती और कुसवारी को अपना रचा गृह बन्धन करता है तैसेही अपना रचा जगत् मन को दुःख देता है; इससे इसको

त्यागकरो। जिस पुरुष ने इसको असत्य जाना है वह जगत् की भावना फिर नहीं करता। जैसे मृगतृष्णा के जल को जिसने असत्य जानाहै वह पान के निमित्त नहीं धावता और जैसे अपने मन की कल्पी स्त्री से बुद्धिमान् राग नहीं करता; तैसेही ज्ञानवान् जगत् के पदार्थों में राग नहीं करता और जो अज्ञानी है वह राग करके बन्धायमान होता है। जैसे स्वप्ने में असत्य स्त्री से चेष्टा करता है तैसेही अज्ञानी असत्य जगत् को सत्य जानके चेष्टा करता है; बुद्धिमान् सत्य मानकर नहीं करता। जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही मन के मोह से जगत् भासताहै और भयदायक होता है पर सब भावनामात्र है। जैसे जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब चञ्चल भासता है और उसके ग्रहण की इच्छा बालक करता है, बुद्धिमान् नहीं करता है; तैसेही जगत् के पदार्थों की इच्छा अज्ञानी करतेहैं ज्ञानवान् नहीं करते। हे रामजी! यह मैंने परमगुणों का समूह तुमको उपदेश किया है। इसकी भावना करके तुम सुखी होगे। जो मूर्ख इन वचनों को त्याग के दृश्य की ओर सुखरूप जानके लगते हैं वे ऐसे हैं जैसे कोई शीत से दुःखी हो और प्रत्यक्ष अग्नि को त्यागकर जल में प्रतिबिम्बित अग्नि का आश्रय करे और उससे जाड़ा निवृत्त किया चाहे तो वह मूढ़है। तैसेही आत्मविचार को त्यागके जो जगत् के पदार्थों की सुख के निमित्त इच्छा करते हैं वे मूढ़ हैं। सब जगत् असत्यरूप है और मन के मनन से रचा है। जैसे स्वप्ने में चित्त से नगर भासता है तो यदि वह नगर जलता भासे तो पुरुष कदाचित् नहीं जलता तैसेही जगत् के नाश हुये आत्मा नाश नहीं होता। वह उपजने, बढ़ने, घटने और नाश होने से रहित है। जैसे बालक अपनी क्रीड़ा के निमित्त हाथी घोड़ा नगर रच लेताहै और समेट छोड़ता है तो वह उपजने मिटने में ज्योंका त्यों है और जैसे बाजीगर बाजी को फैलाता है और फिर लय करता है तो उत्पत्तिलय में बाजीगर ज्योंका त्यों है तैसेही आत्मा जगत् की उत्पत्तिलय में ज्योंका त्यों है उसका कुछ कदाचित् नष्ट नहीं होता। जो सब सत्य है तो किसीका कुछ नाश नहीं होता इसकारण जगत् में हर्ष शोक करना योग्य नहीं और जो सब असत् है तौभी नाश किसीका न हुआ और दुःख भी किसीको न हुआ। सत्य असत्य दोनों प्रकार हर्ष शोक नहीं होता। स्वरूप में किसीका नाश नहीं और सब जगत् ब्रह्मरूप है तो दुःख सुख कहां है? ब्रह्मसत्ता में कुछ द्वैत जगत् बना नहीं, सब जगत् प्रत्यक्ष जो अनन्वय होता है तौभी असत्रूप है। उस असत्रूप संसार में ज्ञानवान् को ग्रहण करने योग्य कोई पदार्थ नहीं और सब जगत् में ब्रह्मतत्त्व है—कुछ भिन्न नहीं तो त्रिलोकी में तो इसी पदार्थके ग्रहण त्याग की इच्छा कीजिये। जगत् सत्यरूप हो अथवा असत्य ज्ञानवान् को सुख दुःख कोई नहीं। तृतीय भ्रान्तिदृष्टि अज्ञानी को दुःखदायक

होती है। जो वस्तु आदि अन्त में असत्य है उसे मध्य में भी असत्य जानिये और उसके पीछे जो शेष रहता है वह सत्यरूप है जिससे असत्य भी सिद्ध होता है। जिन की बालबुद्धि मोहसे आवृत है वे जगत् के पदार्थों की इच्छा करते हैं—बुद्धिमान् नहीं करते। बालक को जगत् विस्ताररूप भासता है; उससे वे अपना प्रयोजन चाहते हैं और सुखदुःख भोगते हैं। तुम बालक मत हो, जगत् अनित्य है, इसकी आस्था त्यागकर सत्यात्मा में स्थित हो। जो आप संयुक्त सम्पूर्ण जगत् असत्रूप जानो तौभी विषाद कुछ नहीं और जो आप संयुक्त सब सत्य जानो तौ भी इस दृष्टिसे हर्ष शोक नहीं। ये दोनों निश्चय सुखदायक हैं। आप संयुक्त सब असत्यरूप जानोगे तो दुःख न होगा बाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सूर्य अस्त हुआ और सब सभा नमस्कार करके अपने २ स्थान को गई और सूर्य की किरणों के निकलतेही फिर अपने अपने आसन पर आबैठे ॥

इति श्रीयोगवा० स्थितिप्रकरणेयथार्थउपदेशयोगोनामपञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो धन, स्त्री आदि नष्ट होजावें तो इन्द्रजालकी बाजीवत् देखिये। इससेभी शोक का अवसर नहीं होता। जो क्षण में दृष्टि आये और फिर नष्ट होगये उनका शोक करना व्यर्थ है। जैसे गन्धर्बनगर जो रत्नमणिसे भूषित किया हो अथवा दुःखसे दूषित किया हो उसमें हर्ष शोक का स्थान कहां है; तैसेही अविद्या से रचे पुत्र, स्त्री, धनादिक के सुखदुःख का क्रम कहांहै? जो पुत्र, धनादिक बढ़े तौभी हर्ष करना व्यर्थ है क्योंकि, मृगतृष्णा का जल बढ़ाभी अर्थ सिद्ध नहीं करता; तैसेही धन, दारादिक बढ़े तो हर्ष कहां है; शोकवानही रहता है? वह कौन पुरुष है जो मोह माया के बढ़े शान्तिमान्हो? वह तो दुःखदायकही है। जो मूढ़हैं वे भोगों को देखके हर्षवान् होते हैं और अधिक से अधिक चाहतेहैं और बुद्धिमानों को उन भोगों से वैराग्य उपजता है। जिनको आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ और भोगों को अन्तवन्त नहीं जानते उनको भोग की तृष्णा बढ़ती है और जो बुद्धिमान् हैं वे भोगों को आदि से अन्तवन्त जानते हैं और दुःखरूप जानकर उसकी इच्छा नहीं करते। इस से हे राघव! ज्ञानवान् की नाईं व्यवहारों में बिचरो। जो नष्ट हो सो हो और जो प्राप्त हो सो हो उसमें हर्ष शोक न करना। उसको यथाशास्त्र हर्ष शोक से रहित भोगो और जो न प्राप्त हो उसकी इच्छा न करो। यह पण्डितों का लक्षण है। हे रामजी! यह संसार दुःखरूप भोग से आया है, इसमें मोह को प्राप्त न होना; जैसे ज्ञानवान् बिचरते हैं तैसेही बिचरना मूढ़वत् नहीं बिचरना। यह संसार आडम्बर अज्ञान से रचा है; जो इसको ज्योंकात्यों नहीं देखते वे कुबुद्धि नष्ट होतेहैं संसार के जिन २ पदार्थों की इच्छा होती है वे सब बन्धन के कारण हैं और उनमें जीव डूबजाताहै। जो बुद्धिमान्

हैं वे जगत् के पदार्थों में प्रीति नहीं करते और जिसने निश्चय से जगत् को असत्यरूप जाना है वह किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं होता; अविद्यारूप पदार्थ उस को खेद नहीं देते और वस्तुबुद्धि से वह खैंच नहीं सक्ताहै। जिसकी बुद्धि में यह निश्चय हुआ कि, सर्व मैं हूं वह किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता। हे रामजी! शुद्धतत्त्व जो सत्य असत्य जगत् के मध्यभाव में है उसका हृदय से आश्रयकरो और जो भीतर बाहर जगत् दृश्य पदार्थ हैं उनको मत ग्रहण करो। इनकी आस्था त्यागकरके परमपद को प्राप्त होकर अतिविस्तृत स्वच्छरूप आत्मा में स्थित हो और रागद्वेष से रहित सब कार्य करो। जैसे आकाश सब पदार्थों में व्यापक और निर्लेप है तैसेही सब कार्यकरते भी निर्लेप हो। जिस पुरुष को पदार्थों में न इच्छा है, न अनिच्छा है और जो कर्मोंमें स्वाभाविक स्थित है उसको कर्म का स्पर्श नहीं होता वह कमलवत् सदा निर्लेप रहता है। देखना, सुनना आदिक व्यवहार इन्द्रियों से होताहै; इससे तुम इन्द्रियों से व्यवहार करो अथवा न करो परन्तु इनमें निरिच्छित रहो और अभिमान् से रहित होकर आत्मतत्त्व में स्थित हो। इन्द्रियों के अर्थ का सार जो अहंकार है जब यह हृदय में न फुरेगा तब तुम योग्यपद को प्राप्त होगे और राग द्वेष से रहित संसारसमुद्र को तरजावोगे। जब इन्द्रियों के राग द्वेष से रहित हो तब मुक्ति की इच्छा न करे तौ भी मुक्तिरूप है। हे रामजी! इसदेह से आपको व्यतिरेक जानकर जो उत्तम आत्मपद है उसमें स्थित होजावो तब तुम्हारा ऐसा परमयश होगा जैसे पुष्पसे सुगन्ध प्रकट होती है। इस संसाररूपी समुद्र में वासनारूपी जलहै उसमें जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी नावपर चढ़तेहैं वे तरजाते हैं और जो नहीं चढ़ते वे डूबजाते हैं। यह बोध मैंने तुम से क्षुरधारकी नाईं तीक्ष्ण कहा है। यह अविद्याका काटनेवालाहै इसको विचारकर आत्मतत्त्व में स्थित हो। जैसे तत्त्ववेत्ता आत्मतत्त्व को जानकर व्यवहार में विचरते हैं तैसेही तुमभी विचरो, अज्ञानी की नाईं न विचरना। जैसे जीवन्मुक्त पुरुष का नित्य तृप्त का आचार है उसको तुमभी अङ्गीकार करना, भोग में दीन न होना और मूढ़ के आचारवत् आचार न करना। जो परावर परमात्मवेत्ता पुरुष हैं वे न कुछ ग्रहण करते, न त्याग करते हैं और न किसी की वाञ्छा करते हैं। वे जैसा व्यवहार प्रारब्धवेग से प्राप्त होता है उसी में विचरते हैं और राग द्वेष किसी में नहीं करते। बड़ा ऐश्वर्य हो; बड़े गुण हों; लक्ष्मी आदिक बड़ी विभूति हो तौ भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहीं करते। महाशून्य वन में वे खेदवान् नहीं होते और देवता का सुन्दर वन विद्यमान हो तो उससे हर्षवान् नहीं होते उन्हें न किसी से इच्छा है, न त्याग है; जैसी अवस्था आन प्राप्तहो रागद्वेष से रहित उसी में विचरते हैं। जैसे सूर्य समभाव से लीन विचरता है तैसेही वे अभिमान से रहित

देहरूपी पृथ्वी में बिचरते हैं । अब तुमभी विवेक को प्राप्त होजावो, बोधके बल में स्थित हो और किसी पदार्थ की ओर दृष्टि न करो । निर्वैर, निर्मन दृष्टिको ले बिचरो और समभाव में सम उत्तमभाव पृथ्वी में स्थित होकर संसार की इच्छा दूर से त्यागकर यथाव्यवहार में बिचरो और परमशान्तरूप रहो । बाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार निर्मल वाणी से वशिष्ठजीने कहा तब रामजी का निर्मलचित्त अमृत से शीतल और पूर्ण हुआ । जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृतसे शीतल पूर्ण होता है तैसेही रामजी शान्त होकर पूर्ण हुये ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेयथाभूतार्थबोधयोगोनाम
षट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४६ ॥

रामजी बोले, हे भगवन् ! आप सर्वधर्म और वेदवेदान्तके पारज्ञ हैं; आपके शुद्ध, उदार, विरक्तरूप, कोमल और उचित वचनोंसे मैं स्वस्थ हुआ हूं और उन अमृतरूपी वचनों को पानकर मैं तृप्त नहीं होता । हे भगवन् ! आप राजस–सात्विक जगत् कहनेलगेथे सो कुछ संक्षेप से कहा था कि, उसमें अवकाश पाकर आप ने ब्रह्माजी की उत्पत्ति कही उसमें मुझको यह संदेह उत्पन्नहुआ कि, कहीं ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल से कही है कहीं आकाश से कही, कहीं अण्डेसे कही और कहीं जल से कही है सो विचित्ररूप शास्त्र ने कैसे कहा । आप सब संशय के नाशकर्ता हैं कृपा करके शीघ्र मुझको उत्तर दीजिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! कईलक्ष ब्रह्मा और अनेक विष्णु और रुद्र हुयेहैं और अब भी अनेक ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार के व्यवहार संयुक्त प्रस्तुत हैं । कितने तुल्य होते हैं; कितने बड़े छोटे काल के स्वप्न जगत् की नाईं उत्पन्न होते हैं; कितने बीते हैं और कितने आगे होंगे उनमें से तुमने एक ब्रह्मा की उत्पत्ति पूछी है सो सुनो यहभी अनेक प्रकार के होतेहैं; कभी सृष्टि सदाशिव से उत्पन्न होतीहै, कभी ब्रह्मा से; कभी विष्णु से और कभी मुनीश्वर रचलेते हैं । कभी ब्रह्मा कमल से उपजते हैं; कभी जल से; कभी पवन से और कभी अण्डे से उपजे हैं । कभी किसी ब्रह्माण्ड में इन्द्र त्रिनेत्र होते; कभी विष्णु होते हैं और कभी सदाशिव होते हैं । कभी सृष्टि में पर्वत उपजतेहैं और कभी मनुष्यों से और कभी वृक्षों से पूर्ण होती है । सृष्टि की उत्पत्ति भी अनेक प्रकार होती है, किसी ब्रह्माण्ड में मृत्यु का भय होता है, कभी पाषाणमय होती है, कभी मांसमय होती है और कभी सुवर्णमय होती है । कई सृष्टियों में चतुर्दश लोक हैं; किसी सृष्टि में कई लोक हुये हैं और किसी सृष्टि में ब्रह्मा नहीं हुये । इसी प्रकार अनेक सृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्त्व से फुरी हैं और फिर लय हुई हैं । जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर लय होते हैं तैसेही आत्मा में अनेक सृष्टि उपजकर लय होजाती हैं । जैसे मरुस्थल में

मृगतृष्णा की नदी भासतीहै और पुष्प में सुगन्ध होतीहै तैसेही परमात्मा में जगत् है। जैसे सूर्यकी किरणों में त्रसरेणु भासते हैं और उनकी संख्या नहीं कहीजाती यदि कोई ऐसा समर्थ भी हो कि, उनकी संख्या करे परन्तु ब्रह्मतत्त्व में जो सृष्टि फुरती हैं उनकी संख्या वह भी न करसकेगा। जैसे वर्षाऋतु में गनिये के क्षेत्र में मच्छर होते हैं और नष्ट होजाते हैं तैसेही आत्मा में सृष्टि उपजकर नष्ट होजाती है। वह काल नहीं जानाजाता जिस काल में सृष्टि का उपजना हुआहै। आत्मतत्त्व में नित्य ही सृष्टि का उपजना और लय होना है। जैसे समुद्र में पूर्वापर तरङ्ग फुरते हैं उनका अन्त नहीं इसी प्रकार सृष्टि का आदि और अन्त कुछ नहीं जानाजाता। देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक कितने उपजकर लय हुयेहैं और कितने आगे होंगे। जैसे यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मासे रचागया है तैसेही अनेक ब्रह्माण्ड होगये हैं और जैसे अनेक घटिका एक वर्षमें व्यतीत होती हैं तैसे बीते हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग होते हैं तैसेही ब्रह्मतत्त्व में असंख्य जगत् होते हैं। कितनी सृष्टि हो बीती हैं, कितनी अब हैं और कितनी आगे होंगी जैसे मृत्तिका में घट होता है; वृक्ष में अनेक पत्र होते हैं फिर मिटजाते हैं और जैसे जबतक समुद्र में जल है तबतक तरङ्ग—आवर्त्त निवृत्त नहीं होते उपजते और लय होते हैं तैसेही ब्रह्म चिदाकाश है। त्रिलोकी जगत् उपज २ कर उसी में लय होते हैं। जबतक अपने स्वरूप का प्रमाद है तबतक विकारसंयुक्त जगत् है और बड़े विस्तार से भासता है। जब आत्मस्वरूप देखोगे तब कोई विकार न भासेगा। जबतक आत्मदृष्टि से नहीं देखा तबतक आभास गति में उपजते और मिटते हैं पर न सत्य कहे जासक्के हैं। और न असत्य कहे जासक्के हैं। वास्तव में ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, समुद्र में तरङ्ग की नाईं अभेद है; अविद्या से भिन्न होकर भासते हैं और विचार किये से निवृत्त होजाते हैं। चर अचररूप जगत् जो नाना प्रकार की चेष्टासंयुक्त अनन्त सर्वेश्वर आत्मा में फुरते हैं सो उससे भिन्न नहीं जैसे शाखा और फूल, फल वृक्ष से भिन्न नहीं और भिन्न भासते हैं तौभी अभिन्न हैं; तैसेही आत्मा से जगत् भिन्न भासते हैं तौभी भिन्न नहीं आत्मरूप हैं। हे रामजी! मैंने जो तुमसे चतुर्दशभुवनसंयुक्त सृष्टि कही हैं उनमें कोई अल्प कनिष्ठरूप है और कोई बड़ी है पर सब परमात्मा आकाश में उपजती हैं और वही रूप है। ब्रह्मतत्त्व से कभी प्रथम ब्रह्म आकाश उपजता है और प्रतिष्ठा पाता है फिर उससे ब्रह्मा उपजता है और उसका नाम आकाशजा होता है। कभी प्रथम पवन उपजता है और प्रतिष्ठित होता है फिर उससे ब्रह्मा उपजता सो वायुजा कहाता है। कभी प्रथम जल उत्पन्न होताहै उससे ब्रह्मा उपज कर जलजा नाम होताहै और कभी प्रथम पृथ्वी उत्पन्न होके विस्तारभाव को प्राप्त

होती है और उससे ब्रह्मा उपजताहै और पार्थिवजा उसका नाम होता है एवम् अग्नि से उपजताहै तब अग्निजा नाम पाताहै। हे रामजी! यह पञ्चभूत से जो ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई वह तुमसे कही। जब चारतत्त्व पूर्ण होतेहैं और पञ्चमतत्त्व सब से बढ़ताहै तब उससे प्रजापति उपजकर अपने जगत् को रचताहै और कभी ब्रह्म-तत्त्व से आपही फुरआता है। जैसे पुष्पसे सुगन्ध फुरआती है तैसेही ब्रह्माजी उपज कर पुरुषभावना से पुरुषरूप स्थित होताहै और उसका नाम स्वयंभू होता है। कभी पुरुष जो विष्णुदेव है उसकी पीठिसे उपजता है; कभी नेत्र से प्रकट होता है और कभी नाभि से उत्पन्न होता है तब प्रजापति, नेत्रजा, पद्मजा नाम होताहै। वास्तव में सब मायामात्र है और स्वप्नवत् मिथ्यारूप हो सत्य हो भासताहै। जैसे मनोराजकी सृष्टि भासआती है तैसेही यह जगत् है और जैसे नदी में तरङ्ग अभिन्नरूप फुरते हैं तैसेही आत्मा में अभेद जगत् फुरताहै वास्तव में दूसरा कुछ नहीं है जब शुद्धसत्ता का आभास संवेदन फुरता है तब वही जगत्रूप हो भासताहै। जैसे बालक के मनो-राज में सृष्टि फुरती है सो वास्तव में कुछ नहीं होती तैसेही यह है। कभी शुद्ध आकाश में मननकला फुरती है उससे सुवर्ण का अण्ड उपजता है और अण्ड से ब्रह्मा उपजआता है और कभी पुरुष विष्णुदेव जल में वीर्य डालता है उससे पद्म उपजताहै और उसी पद्म से ब्रह्मा प्रकट होतेहैं और कभी सूर्यसे फुर आतेहैं। इसी प्रकार विचित्ररूप रचना ब्रह्मपद से उपजतीहै और फिर लय होजातीहै। तुम्हारे दि-खाने के निमित्त मैंने अनेक प्रकार की उत्पत्ति कहीहै पर वह सब मनके फुरनेमात्रहै और कुछ नहीं। हे रामजी! तुम्हारे प्रबोध के निमित्त मैंने सृष्टि का क्रम कहाहै पर इसका रूप मनोमात्र है, उपज २ कर लय होजाता है। फिर २ दुःख, सुख; अज्ञान, ज्ञान; बन्ध-मोक्ष होतेहैं और मिटजाते हैं। जैसे दीपक का प्रकाश उपजकर नष्ट होजाताहै तैसेही देह उपजकर नष्ट होजातेहैं। काल की ऊनता और विशेषता यहीहै कि, कोई चिरकाल पर्यन्त रहताहै और कोई शीघ्रही नष्ट होजाता है परन्तु सबही विनाशरूप हैं ब्रह्मा से आदि कीट पर्यन्त जो कुछ आकार भासता है वह काल के भेद को त्यागकर देखो कि, सब नाशरूप हैं। कभी सत्ययुग, कभी त्रेतायुग, कभी द्वापर और कभी कलियुग फिर फिर आते और जाते हैं। इसी प्रकार काल का चक्र भ्रमताहै। मन्वन्तर का आरम्भ होताहै और कालकी परम्परा व्यतीत होतीहै। जैसे प्रातःकाल में फिर प्रातःकाल आता है तैसेही जगत् की वही २ गति है अन्धकार से प्रकाश होताहै और जगत् ब्रह्मतत्त्व से स्फुरणरूप होकर फिर लीन होताहै। जैसे तप्त लोहे से चिनगारें उड़ती हैं सो लोहे में ही होती हैं तैसेही यह सब भाव चिदाकाश से उपजताहै और चिदाकाशमेंही स्थित है। कभी अव्यक्त रूप होताहै और कभी प्रकट

होताहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग और वृक्ष में पत्र होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् है और जैसे नेत्रदूषण से आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं तैसेही चित्त के फुरनेसे आत्मा में जगत् भासते हैं और उसी में स्थित और लय होते हैं। जैसे चन्द्रमा की किरणें उत्पन्न और स्थित होकर लय होतीहैं तैसेही आत्मा में जगत् है सो स्वरूप से कहीं आरम्भ नहीं हुआ मनके फुरनेसे भासता है। हे रामजी! आत्मा सर्वशक्ति है जो शक्ति उससे फुरती है वह उसीका रूप हो भासती है। सबजगत् असत्यरूप है जिसके चित्त में महाप्रलय की नाईं असत्य का निश्चय है वह पुरुष फिर संसारी नहीं होता। स्वरूप में लगारहताहै। ऐसे महामती ज्ञानवान् की दृष्टि में सर्वब्रह्म का निश्चय होता है। हमको यही निश्चय है कि, संसार नहीं सर्व ब्रह्मतत्त्वही है और सदा विद्यमान है। अज्ञानकी दृष्टि में जगत् निरन्तर सत्यरूप है और संसार उसको विद्यमानहै सो फिर २ उपजकर नष्ट होताहै। स्वरूप उपजने विनशनेसेभी नष्ट नहीं होता परन्तु अज्ञानी जगत् को असत्य नहीं जानते सदा स्थित जानते हैं उससे नष्ट होतेहैं। जगत् के सब पदार्थ विनाशरूप हैं परन्तु दृश्यसे जगत् असत्य नहीं भासता। जिन पदार्थों की सत्यता दृढ़ होगईहै वे नाशरूप हैं–कुछ न रहेगा। कोई पदार्थ सत्य भासता है, कोई असत्य भासताहै, इस जगत् में ऐसा कौन पदार्थ है जो कलनारूप करनेसे विस्ताररूप ब्रह्म में न बने। यह जगत् महाप्रलय में नष्ट होजाताहै और फिर उत्पन्न होताहै। जन्म और मरण होताहै और सुख, दुःख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत सब फिर २ उपज आते हैं। जैसे सूर्यकी प्रभा उदय अस्त को प्राप्त होती रहती है तैसेही सृष्टि उदय अस्त होती भासती है। देवता और दैत्य लोकान्तर क्रम होते हैं और स्वर्ग, मोक्ष, इन्द्र, चन्द्रमा, नारायण, देव, पर्वत, सूर्य, वरुण, अग्नि आदिक लोकपाल फिर २ होते हैं। सुमेरु आदिक स्थान फुर आते हैं और तमरूप हस्ति के भेदने को सूर्यरूप केशरीसिंह उपज आतेहैं। स्वर्ग, इन्द्र, अप्सरागण अमृत से होआते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, क्रिया, कर्म, शुभ, अशुभरूप होआते हैं और यज्ञ, दान, होम आदिक सर्व क्रियासंयुक्त संसारी जीव होते हैं। शुभ कर्म करनेवाले स्वर्ग में विचरते हैं और सुख भोगते हैं पर पुण्य के क्षीण हुये गिरादिये जाते हैं और मृत्युलोक में आते हैं। इस प्रकार कर्म करने, उपजते और नष्ट होते हैं। स्वर्गरूपी कमल में इन्द्ररूपी भँवरे हैं जो स्वर्ग कमल की सुगन्ध को लेनेआते हैं। जितना पुण्यकर्म किया होती है उतने काल सुख भोगकर नष्ट होजाते हैं और सत्ययुग आदिक युग और सर्व देश, काल, क्रिया, द्रव्य, जीव उपजआते हैं। जैसे कुलाल चक्र में बासन बनाता है तैसेही चित्तकला फुरनेसे जगत् के अनेक पदार्थ उत्पन्न करतीहै। जीवसंयुक्त सुन्दर स्थान होतेहैं और फिर नष्टहोजाते हैं। असत्यमात्र

जगत्जाल जीव से रहित शून्य मसान होजाता है और कुलाचल पर्वत के आकारवत् मेघ जल की वर्षा करतेहैं उसमें जीव बुद्बुदेरूप होकर स्थित होते हैं द्वादश सूर्याग्नि उदय होते हैं, शेषनागके मुखसे अग्नि निकलती है उससे सब जगत् दग्ध होजाता है और फिर अग्नि की ज्वाला शान्त होजाती है एक शून्य आकाश ही शेष रहता है। और रात्रि होजाती है। जब रात्रि का भोग होचुकता है तब फिर जीव जीर्ण देह से संयुक्त मनरूप ब्रह्मा रच लेता है । इस प्रकार शून्य आकाश में मन जगत् को रचता है। जैसे शून्य स्थान में गन्धर्व माया से नगर रचलेता है तैसे ही जगत् को मन रचलेता है और फिर प्रलय होजाता है । इस प्रकार जगत्गण उपजकर महाप्रलय में नष्ट होते हैं और ब्रह्मा के दिन क्षय हुये फिर जब ब्रह्मा का दिन होना है तब फिर रचलेता है फिर महाप्रलय में ब्रह्मादिक सब अन्तर्धान हो जाते हैं । इसी प्रकार प्रलय, महाप्रलय होके अनेक जगत् गण व्यतीत होते हैं और महादीर्घ मायारूपी कालचक्र फिरता है उसमें मैं तुमको सत्य और असत्य क्या कहूं ? सब भ्रान्तरूप दासुर के आख्यानवत् है और कल्पनामात्र रचित चक्र वास्तव में शून्य आकाशरूप है और बड़े आरम्भ संयुक्त विस्ताररूप भासता है पर असत्यरूपहै। जैसे भ्रम से दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही यह जगत् मूढ़के हृदयमें सत्य भासताहै। तुम मूढ़ न होना, ज्ञानवान्वत् विचारकर जगत् को असत्य जानना॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजगत्सत्यासत्यनिर्णयोनाम सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिनका भोग और ऐश्वर्य में चित्त खिंचाहै वे नाना प्रकार के राजस, तामस और सात्विक कर्म बड़े आरम्भ से करते हैं । पर वे मूढ़ आत्मा शान्ति नहीं पाते, जब वे भोग की तृष्णा से रहित हों तब आत्मा को देखें। जिस पुरुष को इन्द्रियां वश नहीं करसक्कीं वह आत्मा को हाथ में बेलफलवत् प्रत्यक्ष देखता है और जिस पुरुष ने विचार करके अहंकाररूपी मलीन शरीर का त्याग किया है उसका शरीर जगत्रूप होजाता है। जैसे सर्प कञ्चुकी को त्यागताहै और नवतन पाता है तैसेही मिथ्या शरीर को त्यागकर आत्मविचार से वह आत्मशरीर को पाता है। ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं वे जगत् के पदार्थों में आसक्त भासते हैं पर जन्म मरण नहीं पाते। जैसे अग्नि से भूना बीज खेत में नहीं उपजता तैसेही ज्ञानवान् फिर जन्म नहीं पाता। जिस अज्ञानी की भोगों में आसक्त बुद्धि है वह मन और शरीर के दुःख से दुःखी होकर बारम्बार जन्म और मरण पाता है। जैसे दिन होता है और फिर रात्रि होती है तैसेही वह जन्म मरण पाता है । इससे तुम अज्ञानी की नाईं न होना। व्यवहार चेष्टा जैसे अज्ञानी की होती है तैसेही करो

परन्तु हृदय से भोगादिक की ओर चित्त न लगाकर आत्मपरायण हो। रामजीने पूछा, हे भगवन्! आप ने जो कहा कि, संसारचक्र दासुरके आख्यानवत् है, कल्पना करके रचित है और उसका आकार वास्तव में शून्यहै यह आपने क्या कहा? इस को प्रकट करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मायारूप जगत् मैंने वर्णन के निमित्त तुमसे कहा है और दासुरके प्रसंग से कुछ प्रयोजन न था परन्तु तुमने पूछा है तो अब सुनो। हे रामजी! इस सृष्टि में मगधनाम एक देश है जो बड़े २ कदम्बों, वनस्पतियों और तालों से विचित्ररूप पंखों सहित मनके मोहनेवाला अनेक वृक्षों और फूलों फलों से पूर्ण है जिनपर कोकिला आदिक पक्षी शब्द करते हैं। उस नगर में एक परमधर्मात्मा तपसी दासुरनाम हुआ जो वनमें जाकर कदम्बवृक्षपर बैठ के तप करताथा। रामजीने पूछा, हे भगवन्! वह ऋषीश्वर तपसी वनमें किस निमित्त आयाथा और कदम्ब वृक्षपर किस निमित्त बैठा वह कारण कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सरलोमा नाम ऋषीश्वर उसका पिता मानो दूसरा ब्रह्मा उस पर्वत पर रहताथा। उसके गृह में दासुर नाम पुत्र हुआ—जैसे बृहस्पतिके गृह में कच हो निदान दासुरसंयुक्त उसने वन में चिरकाल व्यतीत किया और युग के क्षीण हुये देह का त्यागकर स्वर्गलोक में गया—जैसे पक्षी आलय को त्यागकर आकाश में उड़ता है। तब उस वन में दासुर अकेला रहगया और पिता के वियोग से ऐसे रुदन करनेलगा जैसे हथिनी वियोग से कुरलाती है और जैसे हिम ऋतु में कमलकी शोभा नष्ट होजाती है तैसेही दीन होगया। वहां अदृष्ट शरीर वनदेवीथी उसने दया करके आकाशवाणी की कि, हे ऋषिपुत्र! अज्ञानी की नाईं क्या रुदन करता है? यह सर्व संसार असत्‌रूप है। तू इस संसार को देखता नहीं कि, यह नाशरूप और महाचञ्चल है; सब काल उत्पन्न और विनाश होता है और कोई पदार्थ स्थित नहीं रहता। ब्रह्मा से आदि कीट पर्यन्त जो कुछ जगत् तुझको भासता है वह सब नाशरूप है—इसमें कुछ संदेह नहीं। इससे तू पिता के मरने का विलाप मतकर। यह बात अवश्य इसी प्रकार है कि, जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होगा, स्थिर कोई न रहेगा—जैसे सूर्य उदय होकर अस्त होताहै। हे रामजी! जब इसी प्रकार शरीरदेवी की वाणी दासुरने सुनी तो धैर्यवान् हुआ और जैसे मेघका शब्द सुनकर मोर प्रसन्न होता है तैसे शान्तिमान् होकर यथाशास्त्र पिता की सब क्रिया की। इसके अनन्तर सिद्धता के निमित्त तत्पद का उद्यम किया परन्तु अज्ञातहृदय था। ऐसा श्रोत्रिय होकर तप के निमित्त उठ विचार किया कि, कोई पवित्रस्थान हो वहां जाकर तप करूं। निदान देखता २ पृथ्वीके किसी स्थान में चित्त विश्रान्तवान् न हुआ सब पृथ्वी उसको अशुद्धही दीखी कहीं कोई विघ्न भासे और कहीं कोई विघ्न दृष्टिगोचर हो।

निदान उसने विचार किया कि, और स्थान तो सब अशुद्ध हैं परन्तु वृक्ष की शाखा पर बैठकर तप करूं। ऐसा कोई उपाय हो जो वृक्ष की शाखा के अग्रभाग में मैं स्थिति पाऊं। ऐसी चिन्तना करके उसने अग्नि जलाई और अपने मुखका मांस काट२ कर होमनेलगा। तब देवता का मुख जो अग्नि है उसने विचारा कि, ब्राह्मण का मांस मेरे मुख में न आवे और बड़े प्रकाश से देह धरकर ब्राह्मण के निकट आया और कहा, हे ब्राह्मणकुमार! जो कुछ तुझको वाञ्छित वर है वह मांग। जैसे कोई भण्डार को खोलकर मणि लेता है तैसेही तू मुझसे वरले तब दासुर ने पुष्प, धूप, सुगन्ध आदिक से अग्नि का पूजनकिया और प्रसन्न होकर कहा, हेभगवन्! प्राणाहुती के पवन शरीर से मैंने तप करने के निमित्त उद्यम किया है सो और कोई शुद्ध स्थान मुझको नहीं भासता है इस लिये मैं चाहता हूं कि, इस वृक्ष की अग्र शिखा में स्थित होने की मुझको शक्ति हो और यहां बैठकर मैं तप करूं। यही वर मुझ को दो तब अग्निदेव ने कहा ऐसेही हो। इस प्रकार कहकर अग्नि अन्तर्धान होगया जैसे सन्ध्याकाल के मेघ अन्तर्धान हो जाते हैं। तब वर पाके ब्राह्मणकुमार ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा पूर्ण कलाओं से प्रसन्न होना है और जैसे चन्द्रमा के प्रकाश को पाकर कमलिनी शोभित होती है तैसे ही वर पाके वह शोभितहुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानेवनोपरुदनंनामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वर को पाकर दासुर कदम्बवृक्ष की टास पर जो अद्भुत और बड़ा सुन्दर था और जिसका पत्र आकाश में लगता था जा बैठा तो उसने दिशा का चञ्चलरूप कौतुक देखा कि, दृश्यरूप मानों चञ्चल पुतली है, श्याम आकाश उसका शीश है, श्यामकेशही प्रकाशरूप है, पाताल उसके चरण हैं, मेघरूपी वस्त्र है और पुष्पवत् गौर अङ्ग है। ऐसी दृश्यरूपी एक स्त्री है, समुद्र कैलास जिसके भूषण हैं, प्राणरूपी फुरने से चलती है, मोहरूपी शरीर है, वनस्पति रोम हैं, सूर्य चन्द्रमा उसके कुण्डल हैं, पर्वत कड़े हैं, पवन प्राणवायु है, दिशा हस्त हैं, समुद्र आरसी है, सूर्यादिक उष्णता उसका पित्त है और चन्द्रमा कफ है। ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानेअवलोकनंनामैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस वृक्ष के ऊपर स्थित होकर वह तप करनेलगा उसका नाम कदम्ब तपासुर हुआ। एक क्षण उसने दिशा को देख वहां से वृत्ति को

खींचा और पद्मासन बांधकर मन को एकाग्र किया। दासुर परमार्थपद से अज्ञात था इसलिये फल की कृपणता से कर्मान्तर में स्थित था और फल की ओर उसका मन था। मन में उसने यज्ञ का आरम्भ किया और जो कुछ सामग्री की विधि थी वह सब यथाशास्त्र मनसेही की और दशवर्ष मन में व्यतीत किये। उसने सब देवताओं का पूजन किया और गोमेध, अश्वमेध, नरमेध सब यथाविधिसंयुक्त मन से किये और ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी। इस प्रकार समय पाकर उसका अन्तःकरण शुद्ध हुआ और विस्तीर्ण निर्मलचित्त में स्थित हुआ। जो बलात्कार से उसके हृदय में ज्ञान प्रकाशित होकर आत्मा के आगे मलीन वासना का जो आवरण था सो नष्ट होगया और जैसे शरत्काल में तड़ाग निर्मल होता है तैसेही उस मुनीश्वर का चित्त संकल्प से रहित हुआ। एक दिन उसने एक वनदेवी को जिसके बड़े विशाल नेत्र, चपलरूप, पुष्पों की नाईं दांत और रति के समान महासुन्दर शरीर था कामके मद सेपूर्ण मन के हरनेवाली अग्रभाग में देखी कि, नम्र होकर देखती है मुनीश्वर ने उससे कहा, हे कमलनयनि! तू कौन है? कैसी तू शोभितरूप है और इन पुष्पों से संयुक्तलता में किस निमित्त आई है? तब कामदेव के मोहनेवाली गौरी बोली, हे मुनीश्वर! जो पदार्थ इस पृथ्वी में बड़े कष्टसे प्राप्त होता है वह महापुरुषों की कृपा से सुगमता से मिलता है। हम इस वनके देवता लीला करते फिरतेहैं और जिस निमित्त मैं तुम्हारे आगे आई हूं वह सुनो। हे मुनीश्वर! पिछले दिन चैत्रशुक्ल त्रयोदशी थी, उस दिन इन्द्र के नन्दनवन में उत्साह हुआ था। सब वनदेवियां एकत्र होकर त्रिलोकी से आईं और सब पुत्रों संयुक्त पुष्पों से बड़े विलास क्रीड़ा करती थीं पर मैं अपुत्र थी इस कारण मैं दुःखित हुई और उस दुःख के दूर करने के लिये तुम्हारे पास आई हूं तुम अर्थ के सिद्धकर्ता हो और बड़े वृक्ष पर स्थित हो। मैं अनाथ पुत्र की वाञ्छाकर तुम्हारे निकट आई हूं, इस से मुझ को पुत्र दो और जो न दोगे तो मैं अग्नि जलाकर जल मरूंगी और इस प्रकार पुत्र का दुःख दाह निवृत्त करूंगी हे रामजी! जब इस प्रकार वनदेवी ने कहा तब मुनीश्वर हँसे और दया कर के हाथ में पुष्प दिया और कहा, हे सुन्दरि! जा तेरे एक मास के उपरान्त पूजने योग्य और महासुन्दर पुत्र होगा परन्तु तूने जो इच्छाधारी थी कि, जो पुत्र न प्राप्त होगा तो जल मरूंगी, इससे अज्ञानी पुत्र होगा पर यत्न से उसको ज्ञान प्राप्त होगा। जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब प्रसन्न होकर वनदेवीने कहा, हे मुनीश्वर! मैं यहां रहकर तुम्हारी टहल करूंगी। परन्तु मुनीश्वर ने उसका त्यागकिया और कहा, हे सुन्दरि! तू अपने स्थान में जा रह। तब वह वनदेवियों में जारही और समय पाके उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह दशवर्ष का बालक हुआ

तब वह उसे मुनीश्वर के निकट लेआई और पुत्रसंयुक्त प्रणाम करके पुत्र को मुनीश्वर के आगे रखकर कहा, हे भगवन्! यह कल्याणमूर्त्ति बालक तुम हम दोनों का पुत्र है। इसको मैंने सम्पूर्णविद्या सिखाकर परिपक्क कियाहै और अब वह सर्वका वेत्ता हुआ है परन्तु केवल ज्ञान इसे प्राप्त नहीं हुआ जिससे इस संसारयन्त्र में फिर दुःख पावेगा इसलिये आप कृपा करके इसको ज्ञान उपदेश करो। हे प्रभो! ऐसा कौन कुलीन है जो अपने पुत्र को मूर्ख रखना चाहे। हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब मुनीश्वर बोले तुम उसको यहां छोड़जावो। तब वह देवी उसको छोड़कर चलीगई, बालक पिता के पासरहा और बड़े यत्नसे उसको ज्ञानकी प्राप्ति हुई। मुनीश्वर ने नाना प्रकार के उक्त आख्यान, इतिहास और अपने दृष्टान्त कल्पकर चिरपर्यन्त पुत्रको जगाया और वेद वेदान्तका निश्चय अनुद्वेग होकर उपदेश किया। विस्तारपूर्वक कथा के क्रम जो अनुभव और बड़े गूढ़अर्थ हैं वेभी कहे और जो अपने अनुभव वश से प्रत्यक्ष था सोभी बल करके उपदेश किया कि, जिससे वह जगा और शान्त आत्मा हुआ। तब तो जैसे मेघ के शब्द से मोर प्रसन्न होताहै तैसेही वह बालक प्रसन्न हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरसुतबोधनन्नामपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उसी समय मैंभी कैलासवाहिनी गङ्गाजी के स्नान के निमित्त अदृष्ट शरीरसंयुक्त आकाश की बीथी में सप्तर्षियों के मण्डल से चलाजाता था जिस वृक्षपर वह बैठाथा जब उसके पीछे मैं आया तो कुछ शब्द सुना कि, उस वृक्ष के ऊपर छिद्र से शब्द होता है। मूंदे कमल से भँवरे के शब्दवत् कोई इस प्रकार कहता है कि, हे पुत्र! सुन। मैं तुझसे वस्तु के निरूपण के निमित्त एक आश्चर्यमय आख्यान कहता हूं। महापराक्रमी और त्रिलोक में प्रसिद्ध स्वेतथनामी एक राजा है जो बड़ालक्ष्मीवान् जगत् की रचनाक्रम करता है। सब मुनि जो जगत् में बड़े नायक हैं वेभी उत्तम चूड़ामणि करके उसको शीश में धरते हैं और वह असंख्य कर्म और नाना प्रकार के आश्चर्य व्यवहार करता है। उस महात्मा पुरुष को त्रिलोकी में किसी ने वश नहीं किया; सहस्रों उसके आरम्भ हैं और सुख और दुःख देनेवाला है। उसके आरम्भ की संख्या कुछ नहीं कही जाती—जैसे समुद्रके कलोल तरङ्गोंकी कुछ संख्या नहीं कही जाती तैसेही उसके आरम्भ हैं—और उसका पराक्रम किसी शस्त्र, अस्त्र और अग्नि से नष्ट नहीं होता। जैसे आकाश को मुष्टि प्रहार से तोड़ नहीं सक्ती तैसेही वह है। उसकी विस्तृत भुजा हैं और लीला करके आरम्भ रचता है। उसके आरम्भको कोई दूर नहीं करसक्ता; इन्द्र, विष्णु और सदाशिव भी समर्थ नहींहैं। हे महाबाहो! उसके तीन देह हैं जो दिशाको भररहे हैं। उन तीनों देहों से वह जगत् में उत्तम, अधम, मध्यम करके फैल रहाहै और बड़े विस्ताररूपी आकाश से उत्पन्न हुआ है

और वहांहीं शरीर में स्थित हुआहै। जैसे आकाश का पक्षी आकाश में रहताहै और जैसे पवन आकाश में है ऐसेही वह पुरुष जगत् में फैलरहाहै। उस परम आकाश में उसने बगीचे संयुक्त एकस्थान अपनी क्रीड़ा के निमित्त रचाहै और पर्वतके शिखर में मोती की बेलें रची हैं। उसमें सात बावलियों से वह स्थान शोभता है और दो दीपक उसमें रचे हैं जो तेल और बाती विना प्रकाशते हैं और शीत और उष्णरूप हैं, कभी अध को और कभी ऊर्ध्व को नगर में भ्रमते हैं। उसने मूर्खवराङ्ग गण भी रचे हैं, कोई ऊर्ध्व में स्थित है कोई मध्यम और कोई अध में स्थितहै। कोई दीर्घकाल में नष्ट होते हैं, कोई शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं, कोई वस्त्रों से आच्छादित हैं और कोई वस्त्र-रहित हैं। उस नगर में उसने नवद्वार स्थान किये हैं और उसमें निरन्तर बहुत से वृक्ष रोपे हैं। उसने पञ्चद्वीप देखने निमित्त किये हैं और तीन स्तम्भ रचना कियेहैं, जिनमें और छोटे स्तम्भ भी हैं। मूल में के स्तम्भों पर लेपन कियाहै और पादतल से संकुल किये हैं निदान महामाया से उस राजा ने वह नगर रचाहै और नगर की रक्षा निमित्त सेना रची है। एक नीति देखने वाले यक्ष हैं, विवरकगण से वे चलते नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं। उन शरीरों से वह सब ठौरोंमें बिचरताहै; यक्ष सब ठौरों में समीप रहता है और लीला करके एक स्थान को त्याग कर और स्थान में जाकर चेष्टा करताहै। कभी इच्छा होती है तब चञ्चल चित्तसे भविष्यत् पुरको रचकर उसमें स्थित होताहै और कभी भय से वेष्टित हुआ वहांसे उठआता है और वेग करके गन्धर्वनगर रचता फिरता है। जब इच्छाकरता है कि, मैं उपजूं तब उपज आताहै और जब इच्छा करताहै कि, मैं मरजाऊं तब मरजाता है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और फिर लय होजाते हैं उसी प्रकार वह राजा बड़े व्यवहार करता है और बारम्बार रचना करके कभी आपही रुदन करने लगता है कि, मैं क्या करूं; मैं अज्ञानी दुःखी हूं; और चित्त से आतुर होताहै और कभी ऐसे विचार करके उदय होकर बड़ा स्थूल होजाताहै—जैसे वर्षाकाल की नदी बढ़ती है तैसेही बढ़कर आपको सुखी मानताहै और विस्तार पाकर चलता फिरता है और बड़े प्रकाश से प्रकाशताहै उस महीपति की बड़ी महिमा है और उचितरूप होकर नगर में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेस्वेतथवैभववर्णनन्नामैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५१॥

हे रामजी! जब इस प्रकार दासुर ने कहा तब पुत्र ने प्रश्न किया कि, हे भगवन्! वह स्वेतथ राजा कौन है कि, जगत्में जिसकी कीर्ति प्रसिद्ध है और उसने कौन नगर रचा है जो भविष्यत्नगर में रहता है? रहना तो वर्त्तमान में होता है भविष्यत् में कैसे रहता है? यह विरुद्ध अर्थ कैसे है? इन वचनों से मेरी बुद्धि मोहित हुई है। दासुर बोले, हे पुत्र! मैं तुमसे यथार्थ कहताहूं तू सुन; जिसके जानेसे संसारचक्र

को ज्योंका त्यों देखेगा कि, यह वास्तवमें क्या है। यह संसार आरम्भ सत्य विस्तार संयुक्त भासता है तो भी असत्यरूप है कुछ हुआ नहीं। जैसे यह संसार स्थित है तैसे मैं तुझ से कहताहूं। यह आख्यान मैंने तुमसे जगत् निरूपण के निमित्त कहा है। हे पुत्र! जो शुद्ध अचैत्य चिन्मात्र चिदाकाश है उससे जो संकल्प उठाहै उस संकल्प का नाम स्वेतथ है। वह आपही उपजता है और आपही लीन होजाता है। सब जगत् उसका रूप है जो बड़े विस्तार संयुक्त भासता है और उसके उपजने से जगत् उपजता और नष्ट होनेसे नष्ट होताहै। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक सब उसके अवयव हैं। जैसे वृक्ष के अङ्कटास होते हैं और पर्वत के अङ्ग शिखर होते हैं तैसेही उसके अङ्ग शून्य आकाश में हैं उससे यह जगत्रूपी नगर रचाहै। प्रतिभास के अनुसन्धान से वही चित्तकला विरञ्चिपद को प्राप्त हुई है। चतुर्दश स्थान जो कहे हैं वे विस्तार संयुक्त चतुर्दश लोक हैं और वन, बगीचे, उपवन संयुक्त पर्वत महाचल, मन्दराचल, सुमेरु आदिक क्रीड़ा के स्थान हैं। उष्ण शीत जो दो दीपक तेलबाती विना कहे हैं वे सूर्य और चन्द्रमा हैं जो जगत्रूपी नगर में अध ऊर्ध्व को प्रकाशते हैं। सूर्य की किरणों का जो प्रकाश है वही मानों मोती के तरङ्ग फुरते हैं और क्षीर जल आदि जो सात समुद्र हैं वे बावलियां हैं। उसमें जीव व्यवहार करते, लेते, देते अध—ऊर्ध्व को जाते हैं—पुण्य से स्वर्गलोक में जाते हैं और पाप से नरक में चले जाते हैं। जगत् में संकल्प से जो क्रीड़ा के निमित्त उसने विवरगण रचे हैं वे देह हैं; कोई देवता होकर ऊर्ध्व स्वर्ग में रहते हैं, कोई मनुष्य होकर मध्यलोक में रहते हैं और कोई दैत्य होकर नागलोक आदिक पातालमें रहते हैं। पवनरूपी प्रवाह से समस्त यन्त्र चलते फिरते हैं, अस्थिरूपी उनमें लकड़ियां हैं और रक्त-मांस से लेपन किये हैं। कोई दीर्घकाल में और कोई शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं। शीशपर केश श्याम वस्त्र हैं और कर्ण, नासिका, नेत्र, जिह्वा और मूत्र पुरीष के स्थान, लिङ्गइन्द्रिय और गुदा ये नवद्वार हैं जिनसे निरन्तर पवन चलता है। शीत उष्णरूप पान अपान हैं, नासिका आदिक उसके झरोखे हैं; भुजारूप गलियां हैं; और पञ्चदीपक पञ्च इन्द्रियां हैं। हे महाबुद्धिमन्! ये सर्वसंकल्परूपी माया से रचे हैं; अहंकाररूपी यक्ष है; महाभय का स्थान यह अहंकार से होता है और देहरूपी विवरगण अहंकाररूपी यक्षसंयुक्त बिचरतेहैं वे असत्यरूप हैं परन्तु सत्य होकर इसके साथ क्रीड़ा करते हैं। जैसे भाण्ड में बिलाव, बांबी में सर्प और बांस में मोती हैं तैसेही देह में अहंकार है जो क्षण में उदय होताहै और क्षण में शान्त होजाताहै। दीपकवत् देहरूपी गृह में संकल्प उठता है, जैसे समुद्र में तरङ्ग उठतेहैं और भविष्यत् नगर भासताहै। सुन, अपना जो कोई स्वार्थ चितवताहै कि,

यह कार्य इस प्रकार करूंगा और फलाने दिन इस देश में जाऊंगा तो जैसे चितवता है तैसेही भासिआता है और उसमें जा प्राप्त होताहै । जबतक दुर्वासना है तबतक अनेक दुःख होतेहैं और यह दुष्ट मन अहंकार से स्थूल होजाताहै और संकल्प से रहित हुये शीघ्रही इसका नाश होता है। जब तू संकल्प नाश करेगा तब शीघ्रही कल्याण पावेगा। अपना संकल्प उठकर आपहीको दुःखदायक होता है-जैसे बालक को अपनी परछाही में वैतालकल्पना होती है और आपही भय पाताहै तैसेही अपना संकल्प अनन्त दुःखदायक होताहै, उससे सुख कोई नहीं पाता। सम्पूर्णजगत् विस्तार संकल्प से होता है और आत्मा की सत्ता से बढ़ता और फिर नष्ट होजाताहै-विचार कियेसे नहीं रहता। जैसे सायंकाल में धूप का अभाव होजाता है और प्रकाश उदय हुये तम का अभाव होजाताहै तैसेही विचार से संकल्प आपही नष्ट होजाते हैं। मन आपही क्रिया करता है और आपही दुःख पाताहै और रुदन करने लगताहै-जैसे वानर काष्ठ के यन्त्र की कील को हिलाकर फँसताहै और दुःख पाता है; तैसेही अपनाही संकल्प आपको दुःखदायक होता है। संकल्प से कल्पित विषय का आनन्द जब जीवको प्राप्त होताहै तब वह ऊंची ग्रीवा करके हर्षवान् होताहै-जैसे किसी वृक्ष के फल ऊंट के मुख में आलगें और वह ऊंची ग्रीवा करके विचरे तैसेही अज्ञानी जीव विषयकी प्राप्ति में ऊंचीग्रीवा करके हर्षवान् होते हैं। क्षण में जीव को विषय की प्राप्ति उपजतीहै और विशेषकरके इष्टकी-प्राप्ति में बढ़ते हैं पर जब कोई दुःख होताहै तब वह प्रीति की प्रसन्नता उठजातीहै और क्षण में बिकारी होताहै और क्षण में प्रसन्न होकर वस्तुगुण की प्राप्ति में हर्षवान् होता है। शुभसंकल्पसे शुभको देखता और अशुभसंकल्पसे अशुभको देखताहै । शुभसे निर्मल होताहै और अशुभ से मलीन होता है; आगे जैसे तेरी इच्छा हो तैसेकर। स्वेतथ के जो मैंने तुमसे तीन शरीर कहेथे-उत्तम, मध्यम और अधम वे सात्त्विक, राजस, तामस यही तीनगुण तीन देह हैं। येही सबके कारण जगत् में स्थित हैं; जब तामसीसंकल्प से मिलता है तब नीचरूप पापचेष्टा कर्म करके महाकृपणता को प्राप्त होताहै और मृतक होकर कृमि और कीट योनि जन्म पाता है । जब राजसी संकल्प से मिलता है तब लोकव्यवहार अर्थात् स्त्री, पुत्रादिकके रागसे रञ्जित होता है और पापकर्म नहीं करता तो मृतक होकर संसार में मनुष्य शरीर पाता है जब सात्त्विकीभाव में स्थित होता है तब धर्म ज्ञान परायण होता है; मोक्षपद की उसको अन्तर्भावना होती है और धर्मज्ञान पाकर चक्रवर्त्ती राजा की नाईं स्थित होताहै। जब उन भावों को त्याग करताहै तब संकल्पभाव नष्ट होजाताहै और अक्षय परमपद शेष रहताहै। इससे संसारदृष्टि को त्याग करके और मन से मनको वश

करके भीतर बाहर हो जो दृश्य का अर्थ चित्त में स्थित है उस संस्कार को निवृत्त करके शान्तात्मा हो। हे पुत्र! इस विना और उपाय नहीं। जो तू सहस्र वर्ष दारुण तपकरे अथवा लीलावत् आपको शिलासम चूर्ण करे; समुद्र में प्रवेश करे, बड़वाग्नि में प्रवेश करे; गढ़े में गिरे; खड्गधारा के सन्मुख युद्धकरे अथवा सदाशिव, ब्रह्मा, विष्णु वा बृहस्पति दया करके तुझे उपदेशकरें और पाताल, पृथ्वी, स्वर्ग इत्यादिक और स्थानों में जावे तौभी और उपाय कल्याण के निमित्त कोई नहीं। जैसे संकल्पका उपशम करना उपाय है तैसे जो अनादि, अविनाशी, अविकारी, परमपावन सुखहै वह संकल्प के उपशमसे पाता है। इससे यत्न से संकल्प को उपशम करो। जो कुछ भावपदार्थ हैं वे सब संकल्परूपी तत्त्व से पिरोये हुये हैं। जब संकल्परूपी तांत टूटता है तब नहीं जाना जाता कि, पदार्थ कहां गये। सत्य असत्य सब पदार्थ संकल्पमात्र हैं। जबतक संकल्प है तबतक ये भासते हैं और संकल्प के निवृत्त हुये असत्य होजाते हैं। संकल्प से जैसी २ चिन्तना करताहै क्षण में तैसेही होजाताहै। संसार भ्रम संकल्प से उदय हुआहै और संकल्प निवृत्तकिये से चित्त अद्वैत के सन्मुख होता है। सर्वजगत् असत्यरूप है और माया से रचा है; जब संकल्पको त्यागकर यथाप्राप्ति में बिचरेगा तब तुझको खेद कुछ न होगा। असत्यरूप जगत् के कार्यमें दुःखित होना व्यर्थ है; जब आप संयुक्त जगत् को असत्य जानोगे तब दुःखी भी न होगे जबतक जगत् का सद्भान भासताहै तबतक दुःख होताहै और जब असत्यजाना तब दुःखभी नहीं रहता। बोधवान् को कोई दुःखभी नहीं भासता; इससे जो नित्यप्राप्त सत्तारूपहै उसमें स्थित होकर विकल्प के बड़े समूहों को त्यागकरो और अद्वैत आत्मा में विश्राम सुखको प्राप्त होकर सुषुप्तिरूप चित्तवृत्ति को धारके बिचरो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसंसारविचारोनामद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५२॥

इतना सुन पुत्र ने पूछा; हे भगवन्! संकल्प कैसाहै और वह उत्पन्न, वृद्ध और नाश कैसे होताहै? दासुर बोले, हे पुत्र! अनन्त जो आत्मतत्त्व है वह सत्तासमानरूप है; जब वह चैतनसत्ता द्वैत के सन्मुखहोतीहै तब चैतनता का लक्षण जो ज्ञानरूपहै वही बीजरूप संवित् उल्लासमात्र सत्ता को पाकर घनभाव को प्राप्त होता है; फुरनाकर आकाश को चेतताहै और आकाश को पूर्ण करता है। जैसे जल से मेघ स्पष्ट होता है तैसेही फुरनेकी दृढ़ता से आकाश होताहै। अपना स्वरूप आत्मसत्तासे भिन्न भासता है-यह भावना चित्त में भावित होजाती है। जैसे बीज अंकुरभाव को प्राप्त होता है तैसेही चित्त संवित् संकल्पभाव को प्राप्त होता है। संकल्पही से संकल्प उपजता है और आपही बढ़ता है जिससे सुखी दुःखी होता है। जब अचलरूपसे चित्त संवेदन दृश्य की ओर फुरता है तब उस फुरने का नाम संकल्प होताहै और स्वरूप से भूल-

कर जब दृश्य की ओर फुरता है तब संकल्प वृद्ध होता है जो जगत्जाल रचता है। जो कुछ प्रपञ्च है वह संकल्प का रचा संकल्पमात्र है—जैसे समुद्र जलमात्र होता है, जलसे भिन्न नहीं; तैसेही जगत्भी संकल्प से भिन्न नहीं। आकाशमात्र से भ्रान्तिरूप जगत् फुर आया है—जैसे मृगतृष्णा का जल और आकाश में द्वितीय चन्द्रमा भासता है तैसेही तुम्हारा उपजना और बढ़ना भ्रममात्र है। जैसे तम का चमत्कार होता है तैसेही यह जगत् मिथ्या संकल्प से उदय हुआ तुझको भासताहै। हे पुत्र! तेरा उपजना भी असत्य है और बढ़ना भी असत्य है; जब तू इस प्रकार जानेगा तब इसकी आस्था लीन होजावेगी। 'यह पुरुष है' 'वह है' 'मैंहूं' ये सब भाव दुःखसुखसे संयुक्त पदार्थ अज्ञान से व्यर्थ भासते हैं। और इनमें आस्था करके हृदयसे तपता रहता है। 'अहं, 'त्वं, आदिक दृश्य सब असत्यरूप हैं—जब यह भावना करेगा तब तू पृथ्वी में कल्याणरूप होकर बिचरेगा और फिर संसार को प्राप्त न होगा। अहं त्वं से आदि लेकर जब सब दृश्य की भावना हृदयसे जावेगी तब इसका अभाव होजावेगा। हे पुत्र! फल को तोड़कर मर्दन करनेमें भी कुछ यत्न होताहै परन्तु आपसे सिद्ध और भावमात्र संकल्प के त्यागकरने में कुछ यत्न नहीं; फूल के ग्रहणकरने में भी यत्नहै क्योंकि हाथ का स्पन्द होताहै पर इसमें जो कुछ भावरूप है वह है नहीं तो उसके त्यागने में क्या यत्नहै? इससे कुछहै नहीं इसदृश्य प्रपञ्चसे विपर्यय भावकरना कि, "न मैंहूं,' 'न जगत् है,' जिसपुरुष ने इस दृश्य जगत् का सद्भाव संकल्प नाश कियाहै वह शान्तिरूप होताहै। यह संकल्प तो एक निमेषमें लीलासे जीतलेताहै। भावरूप जो आत्मसत्ता है उसमें जब अपना आप उपशम करे तब स्वस्तिक होताहै। जो अपने मनके संकल्प से मन संकल्प को छेदेगा वह आत्मतत्त्व में स्थित होगा, इसमें क्या यत्न है। संकल्प के उपशम हुये जगत् उपशम होताहै और संसार के सब दुःख मूल से नाश होजाते हैं। संकल्प, मन, बुद्धि, जीव अहंकार आदिक जो सबनामहैं सो भेद कहनेमात्र हैं, इनके अर्थरूप में कुछ भेद नहीं। जो कुछ दृश्य प्रपञ्चजाल है वह सब संकल्पमात्र है; संकल्प के अभाव हुये कुछ नहीं रहता। इससे संकल्प को हृदय से काटो—आकाश की नाईं जगत् शून्य है; जैसे आकाश में नीलता भ्रान्ति से भासती है तैसेही यह जगत् असत्य विकल्प से उठा है। संकल्प और जगत् दोनों असत्य हैं इससे सब असत्यरूप है। असत्यरूप संकल्प ने यह सब सिद्धकिया है इसकी भावना में आस्था करनी मिथ्या है। जब ऐसे जाना तब इष्टरूप किसको जाने; वासना किसकी करे और अनिष्ट किसको जाने; तब सब वासना नष्ट हो जाती है और वासना के नष्ट हुये सिद्धि प्राप्तहोती है। हे पुत्र! जो यह जगत् सत्य होता तो विचार कियेसे भी दृष्टि आता सो तो विचार कियेसे इसका शेष कुछ नहीं

रहता । जैसे प्रकाश के देखेसे तम दृष्टि नहीं आता तैसेही विचार कर देखेसे जगत् सत्य नहीं भासता । इससे यह अविचार से सिद्ध है; असत्यरूप है और बुद्धि की चपलता से भासता है । जिस पुरुष को जगत् भावना उठगई है उसको जगत् के सुख दुःख स्पर्श नहीं करते। निर्णयसे जो असत्यरूप जाना उसमें फिर आस्था नहीं उदय होती और जब आस्था गई तब भाव अभाव बुद्धि भी नहीं रहती। संसार के सुख दुःख सब मिथ्या मन के फुरनेसे रचे हैं और मनोराज के नगरवत् स्थित हुये हैं । भूत, भविष्य, वर्त्तमान जगत् मन की वासना से फुरता है और मानसी शक्ति में स्थित है । वह मन क्षण में बड़ा दीर्घ आकार करता है और क्षण में ऐसा सूक्ष्म आकार धरताहै कि, ग्रहण करिये तो ग्रहण नहीं कियाजाता। जैसे समुद्र की लहर को ग्रहण करिये तो पकड़ी नहीं जाती तैसेही मन है । यद्यपि बड़े आकार संयुक्त जगत् भासता है तौ भी कुछ वस्तु नहीं है; क्षणभंगुर है और असार वासना से भासता है और वासना के क्षय हुये शान्त होजाता है । जब तुझको वासना फुरे, तब उसी काल में उसको शीघ्रही त्यागकर ऐसी भावनाकर कि, यह दृश्यप्रपञ्च कुछ है नहीं, असत्यरूप है तो वासना नष्ट होजावेगी– इसमें कुछ संदेह नहीं । जो यह संकल्परूप जगत् हो तो इसके त्याग करनेमें यत्न भी हो पर यह तो असत्य भूत प्रपञ्च है इसका अनर्थ चिकित्सा से तुझको खेद कुछ न देगा । जो है ही नहीं तो उसके त्याग में क्या यत्न है ? जो यह संसार मूल सत्य होता तो इस के नाश निमित्त कोई न प्रवर्त्तता पर यह तो सब असत्यरूप है और विचार किये से कुछ नहीं पाया जाता। इससे असत्य अहंकाररूप दृश्य को त्यागकर सत्य आत्मा का अङ्गीकार करो । जैसे धान से भूसी निकाल कर चावल को अङ्गीकार करते हैं तैसेही यत्न करके सर्व दृश्य को त्यागके आत्मपद में प्राप्त हो। यह परमपुरुषार्थ है और क्रिया किस निमित्त करता है ? मलरूप संसार का नाशकर और युक्ति करके जान कि, संसार असत्य कृत्रिमरूप है तो उसके नाश में क्या यत्न है ? जैसे तांबेसे युक्तिपूर्वक मल दूर होताहै तब निर्मल भासताहै; तैसेही युक्ति से दृश्य मल जब दूर हो तब बोध स्वरूप प्राप्त हो इस कारण उद्यमवान् हो । हे पुत्र ! यह संसार संकल्प विकल्प से उत्पन्न हुआ है और विचारकर अल्पयत्न सेही निवृत्त होजाताहै । देख कि, वह कौन है जो सदा स्थिर रहताहै ? सब पदार्थ असत्यरूप हैं और देखते २ नष्ट होजाते हैं–जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धकार का अभाव होजाता है और भ्रान्ति दृष्टि से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है और स्वच्छदृष्टि से अभाव होजाता है तैसेही विचारकरके जगत् भ्रम नष्ट होता है । न यह जगत् तेरा है; न तू इसका है; यह केवल भ्रम से भासता है इससे भ्रम को त्यागकर देख कि, असत्यरूपहै । अपनी गुरुत्वता का बड़ा ऐश्वर्य

प्रकाश का बिलास है सो तेरे हृदय में मतहो । यह मिथ्या भ्रमरूपहै हृदय से उठे तो आपको और जगत् को भी असत्यजान । आत्मतत्त्व से कुछ भिन्न नहीं । जब ऐसे निश्चय करेगा तब जगत् भावना नष्ट होजावेगी और सर्वात्मा प्रकाश भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानेजगत्चिकित्सा वर्णनंनामत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रघुकुलरूपी आकाश के चन्द्रमा रामजी ! जब इस प्रकार दासुर ने पुत्र को उपदेश किया तब मैं उसके पीछे आकाश में स्थित था सो कदम्ब-वृक्ष के अग्रभाग में जा स्थित हुआ—जैसे मेघ वर्षा से रहित तूष्णी होकर पर्वत के शिखर पर जा स्थित होताहै तैसेही मैं भी जा स्थित हुआ । दासुर शूरमा ने जो अज्ञानरूपी शत्रुका नाश कर्ता और परम शक्ति से प्रकाशवान् था; तपसे उसकी देह ऐसी होगई थी मानो सुवर्ण का चमत्कार है; मुझको अपने आगे देखा कि, वशिष्ठ मुनि आये हैं । ऐसे जानकर उसने उठके अर्घ पाद्य से पूजन किया और फिर हम दोनों वृक्ष के पत्र पर बैठगये । उसने फिर पूजन किया और जब पूजन करचुका तब हम दोनों कथाका प्रसंग चलाने लगे । और उस चर्चा के वचनों से उसके पुत्र को संसारसमुद्र के पार करनेके निमित्त जगाया । फिर मैंने वृक्षकी ओर देखा जो महा-सुन्दर फूलों और फलों से शोभायमान था और दासुर की इच्छाद्वारा मृग और पक्षी उसके आश्रय रहते थे । उसके पुत्र को हमने विज्ञान दृष्टिसे रमणीय दृष्टान्त और युक्त सहित उपदेश किया और नानाप्रकार के विचित्र इतिहासों से उस बालक को जगाया । रात्रिको हम सिद्धान्त कथा में लगे रहे और हमको एक मुहूर्त्तवत् रात्रि व्यतीत हुई; जब प्रातःकाल हुआ तब मैं उठखड़ा हुआ और दासुर अपने पुत्र संयुक्त मेरे साथ चला । जहांतक कदम्ब का आकाशतल था वहांतक वे मेरे संग आये पर मैंने बहुत करके उनको ठहराया और मैं गङ्गाजी की ओर चला और स्नान करके सप्तर्षि के मण्डल में जाय स्थित हुआ । हे रघुनन्दन ! यह दासुर का आख्यान मैंने तुमसे कहा है । यह जगत् प्रतिबिम्ब आभास के सदृश है; प्रत्यक्ष भासता है तो भी असत्यरूप है । जगत् के निरूपण निमित्त मैंने यह आख्यान तुम-को सुनायाहै। यह जगत् असत्यरूप है, कुछ वस्तु नहीं बुद्धि से तुझको राग मत हो । जब इस कथा का सिद्धान्त हृदय में धारणकर विचारोगे तब संसाररूपी मल तुमको स्पर्श न करेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! 'यह प्रपञ्च हैही नहीं' ऐसे जानके सब पदार्थों से

निराग हो। जो वस्तु होही नहीं उसकी आस्था करनी क्या है? इस प्रपञ्च के भासने,
न भासने से तुमको क्या है? तुम निर्विघ्न होकर आत्मतत्त्व में स्थित हो और ऐसे
जानो कि, जगत् है भी और नहीं भी है। इस निश्चयसे भी तुम असंग हो जाओ।
इस चल अचल दृष्टि आनेमें तुमको क्या खेद है? हे रामजी! यह जगत् न आदि
है, न अनादि हैं; केवल स्वेतथका जो चित्त संवित् मनरूप था उसके फुरनेसे इस
प्रकार भासता है; वास्तव में कुछ नहीं। यह जगत् किसी कर्ताने नहीं किया और न
किसी अकर्ताने किया है केवल आभासरूप है और आभास में कर्ता अकर्ता पद को
प्राप्त हुआ है पर अकृत्रिमरूप है और किसी का किया नहीं इससे तुमको इससे स-
म्बन्ध न हो। यह भावना हृदय में धारो कि, कुछ नहीं है क्योंकि; किसी कर्तासे नहीं
उत्पन्न हुआ आत्मा सर्वइन्द्रियों से अतीत जड़की नाईं अकर्तारूप है उसको कर्ता
कैसे कहिये। यह कहना नहीं बनता। यह जो जगत्जाल अकस्मात् फुर आयाहै सो
आभासरूप है उसमें आसक्त होना क्या है? यह असत् भ्रान्तिरूपहै इसमें आस्था
मूढ़बालक करतेहैं बुद्धिमान् तो नहीं करते? स्वरूप में जगत् उपजा नहीं और नाश
भी नहीं होता; निरन्तर दृष्टि में आता है और अज्ञान से बारम्बार भावना होती है
तौ भी कुछ है नहीं असत्रूप है और निरन्तर प्रत्यक्ष नष्ट होता जाताहै। तुम वि-
चार करके देखो कि, अवस्था और स्थान कहांजाते हैं और कहांगये हैं? इससे तुम
सब इन्द्रियों से अतीत जो आत्मतत्त्व अकर्तारूपहै उसमें स्थित होकर विगतज्वर हो-
जाओ। वास्तव में जगत् कुछ बना नहीं पर आभाससत्ता में बना भासताहै। तुम
आभाससत्ता में नित्य दृढ़ होजाओ। जैसे हुआहै, तैसेहै; भाव अभाव दुःखदशा है।
आदर्शरूपी आभास में दीर्घरूप दृश्य स्थित हुआ जैसे हुआ है तैसेही है; विपर्यय
नहीं होता। हे रामजी! दृश्यधर्म में अपराजितकाल है सो अनन्त है; दृश्य पदार्थ
का कुछ अन्त नहीं। जो आत्मविचार से देखिये तो स्वप्नवत् है कुछ है नहीं। जो
वास्तव में ऐसेहो तो उस में आस्था करके यत्न करना व्यर्थ है। जगत् के पदार्थ नाश-
रूप हैं इनमें आस्था नहीं बनती क्योंकि; आत्मा सत्है और जगत् असत् है इससे
अन्योन्य विलक्षण स्वभाव है–जड़ और चैतन्य का संयोग कुछ नहीं बनता। जगत्के
पदार्थ यदि स्थिर मानिये तो नहीं रहते; इसकारण आस्था शोभा नहीं पाती। जैसे
जल के तरङ्गका आश्रय लेकर कोई पार हुआ चाहे तो दुःखपाता है, तैसेही जगत् के
पदार्थों का आश्रय कियेसे जीव दुःखी होताहै। जगत् की आस्था करनाही बन्धन है
और नाशरूप है। तुम स्थिररूप हो इससे आस्था नहीं संभवती। कहीं जल के
तरङ्ग और पर्वत का सम्बन्ध हुआहै? जो तुमने जगत् को असत्य और आपको सत्य
जाना तौभी जगत् के पदार्थों की वाञ्छा नहीं बनती क्योंकि, सत्य की असत्य की

वाञ्छा नहीं होसक्ती और असत्यकी असत्यमें भावना करनी क्याहै ? जो आपसंयुक्त जगत् सत्यजानते हो तौभी वाञ्छानहीं होसक्ती क्योंकि, सत्य अद्वैत आत्माहै उसके समीप कुछ द्वैत वस्तु नहीं। तुमतो एक अद्वैत हो वाञ्छा किसकी करतेहो ? इससे तुमको किसी पदार्थ की इच्छा अनिच्छा नहीं बनती हेयोपादेयसे रहित केवल स्वस्थ होकर अपने आपमें स्थित होजाओ। वह आत्मतत्त्व है जो सबका कर्ता और सर्वदा अकर्ता है कदाचित् कुछ नहीं करता और उदासीनकी नाईं स्थित है। जैसे दीपक सब पदार्थों को प्रकाश करताहै और किसीकी इच्छा अपने अर्थके सिद्धकरने के निमित्त नहीं करता—स्वाभाविकही प्रकाशरूप है; तैसेही आत्मतत्त्व सबका कर्ता है और उस का कर्ता कोई नहीं। जैसे सूर्य सबकी क्रिया को सिद्धकरताहै और आप किसी क्रिया के आश्रय नहीं क्योंकि; आपही प्रकाशरूप है; चलता है और कदाचित् चलायमान नहीं होता और जो सूर्य का प्रतिबिम्ब चलता भासता है सो प्रतिबिम्ब का चलना सूर्य में नहीं है; तैसेही तुम्हारा स्वरूप आत्मा सदा अकर्ता अचल है उसमें स्थित हो। जितना कुछ जगत् भासता है उसमें विचरो परन्तु भावना करके उसमें बन्धायमान मत हो, यह असत्रूप है। हे रामजी ! यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से जगत् सत् भासता है तौभी है नहीं। स्वतः चित्त होकर आपको विचारो और आप में स्थित हो तब जगत् कुछ न भासेगा। जो प्रत्यक्ष बड़े तेज, बल और वीर्य से सम्पन्न भासताहै और अन्तर्धान होगया तो सत्य कैसे कहिये ? इस विचार से भी तुमको जगत् की भावना नहीं बनती। जैसे चक्रपर आरूढ़ हुयेसे सब स्थान भ्रमते दृष्टि आतेहैं और स्वप्न-नगर भ्रम से भासता है सो किसी कारण कार्यसे नहीं होता—आभासरूप मन के फुरनेसे उपज आताहै। जैसे कोई जीव अकस्मात् आनिकलता है तो वह मित्रता का भागी नहीं होता और विचार किये विना बुद्धिमान् उसमें रुचि नहीं करते, न वह सुहृदता का पात्र होता है; तैसेही भ्रम से जो जगत् भासाहै वह आस्था करके भावना बांधने योग्य नहीं। जैसे चन्द्रमा से उष्णता, सूर्य में शीतलता और मृगतृष्णा की नदी में जल की भावना करनी अयोग्य है तैसेही जगत्में सत्यभावना अयोग्य है। यह संकल्पपुर, स्वप्ननगर, द्वितीय चन्द्रमावत् असत्य है; भ्रम करके सत्य भासताहै। हे रामजी ! हृदय से भाव पदार्थ की आस्था लक्ष्मी को त्यागकरो और बाहर लीला करते विचरो पर हृदय से अकर्ता पद में स्थितरहो और सबभावपदार्थों में स्थित पर सब से अतीत हो। आत्मा सब पदार्थों में सर्वदाकाल स्थित है और सबसे अतीत है; उस की सत्ता से जगत् नीति में स्थित है। जैसे दीपक से सब पदार्थ प्रकाशवान् होते हैं पर दीपक इच्छासे रहित प्रकाशता है—उससे सबकी क्रिया सिद्ध होती है और जैसे सूर्य आकाश में उदय होताहै और उसके प्रकाश से जगत् का व्यवहार होता है; तैसेही

अनिच्छित आत्मा की प्रकाशसत्ता से सब जगत् प्रकाशता है। जैसे इच्छासे रहित रत्न का प्रकाश होता है और स्थान में फैलजाता है; तैसेही आत्मदेव की सत्ता से जगत्गण प्रवर्त्तते हैं । वह कर्ता है पर सबइन्द्रियों के विषय से अतीत है इस कारण अकर्ता-अभोक्ताहै; सब इन्द्रियों के अन्तर्गत स्थित है इस कारण कर्ता भोक्ता वही है। इस प्रकार दोनों आत्मा में बनते हैं-कर्ता भोक्ता होसक्ता है और अकर्ता अभोक्ता भी है; जिसमें तुम अपना कल्याण जानो उसमें स्थित होजाओ। हे रामजी ! इस प्रकार निश्चय करो कि, सब मैंहीं हूं और अकर्ता-अभोक्ता हूं। ऐसी दृढ़भावना से जगत् के कार्यको करते भी कुछ बन्धन न होगा और सब आत्मा कर्तव्य भोक्तव्य से रहित है इस प्रकार निश्चय कियेसे भोग की वासना निवृत्त होजावेगी और तब चैतनभोग की ओर फिर न चित्त आवेगा। जिसको यह निश्चय है कि, मैंने कदाचित् कुछ किया नहीं और सदा अक्रियरूप हूं, वह भोग के समूहों की कामना किस निमित्त करेगा और त्याग किसका करेगा? इससे तुम यही निश्चय धरो कि, मैं नित्य अकर्तारूप हूं। जब यह बुद्धि दृढ़ होगी तब परम अमृतरूप समानसत्ता शेष रहेगी। अथवा यही निश्चय धरो कि, सबका कर्ता मैंहीं हूं; मैं महाकर्ता हूं और सब के हृदय में स्थित होकर सब कार्य करता हूं। हे रामजी ! यह दोनों निश्चय तुमको कहे हैं जिसमें तुम्हारी इच्छाहो उसमें स्थितहो। जहां यह निश्चय होता है कि, सबका कर्ता मैं हूं और सब जगत् भ्रमभी मैंहूं तबइन पदार्थों के भाव अभाव में राग द्वेष न होगा। जो सब आपही हुआ तो राग द्वेष किसका करे ? उसको यह निश्चय होता है कि, यह शरीर मेरा दग्धहोताहै, वह शरीर सुगन्धादिक से लीला करता है उसको खेद और उल्लास किसका हो । इससे तुमको जगत् के क्षोभ, उल्लास, उदय, अस्त में सुख दुःख न हो सबका कर्ता मैं हूं तो खेद उल्लास भी मैं करताहूं और जब आत्मा और कर्तव्यकी एकताहुई तब खेद उल्लास सब आपही लय होजाता है और सत्ता समान शेष रहता है। वही सत्ता भाव पदार्थ में अनस्यूत होकर स्थित है और उसमें जब चित्त की इच्छा स्थित होती है तब फिर दुःख नहीं पाता। हे रामजी ! सबका कर्ता आपको जानो कि, कर्ता पुरुष मैं हूं व अकर्ता जानो कि, मैं कुछ नहीं करता अथवा दोनों निश्चय त्यागकर निस्संकल्प निर्मन होजाओ तो तुम्हारा जो स्वरूपहै वही सत्ता शेष रहेगी। यह जगतहै, यह मैं हूं, यह मेरा है, इस कुत्सितभावना को त्यागकरो। इस अभिमान में स्थित न होना; इस देह में अहंकार कालसूत्र नाम करके नरककी प्राप्तिका कारण है, नरक का जाल है; शस्त्रकी वर्षा होती है; इन दुःखोंसे देह अभिमान दुःख स्थान है अर्थात् अनन्त दुःखदायक है। इससे पुरुष प्रयत्न करके इसका त्यागकरो, यह सबके नाश में स्थित

है। भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुष है वह इससे स्पर्श नहीं करते—जैसे चाण्डाली की गोद में श्वान का मांस हो तो उसके साथ श्रेष्ठपुरुष सङ्ग नहीं करते तैसेही देहाभिमान से स्पर्श न करना—यह महानीच है। यह अहंकाररूपी बादल नेत्रों के आगे पटल है इससे आत्मा नहीं भासता। जब विचार करके इसपटल को दूरकरोगे तब आत्मसत्ता का प्रकाश उदय होगा। जैसे मेघघटा के दूर हुये चन्द्रमा प्रकाशित होता है तैसेही अहंकार के अभाव से आत्मा प्रकाशता है। जब तुम इन निश्चयों में कोई निश्चय धारोगे तब सब दुःखों से रहित शान्तपद को प्राप्त होगे। यह निर्णय सब से उत्तम है और उत्तमपुरुष इस निश्चय में सदा स्थितहैं। अब तुम भी विधि अथवा निषेध दोनों में कोई निश्चय धारणकरो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकर्तव्यविचारोनामपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५५॥

रामजी ने पूछा; हे ब्रह्मन्! जो कुछ तुमने सुन्दर वचन कहे हैं वह सत्य हैं। अकर्तारूप, आत्मा, कर्ता, अभोक्ता, सबका भोक्ता, भूतों को धारनेवाला, सबका आश्रयभूत और सर्वगत व्यापक, चिन्मात्र, निर्मलपद, अनुभवरूप देव सर्वभूतों के भीतर स्थित है। हे प्रभो! ऐसा जो ब्रह्मतत्त्व है वह मेरे हृदय में रमरहा है और आप के वचनों से प्रकाशनेलगा है। आपके वचन शीतल और शान्तरूप हैं; तप्तता को मिटाते हैं और जैसे वर्षा से पृथ्वी शीतल होती है तैसेही मेरा हृदय शीतल हुआ है। आत्मा उदासीन की नाईं अनिच्छित स्थित है कर्तव्य—भोक्तव्यसे रहित है, सब जगत् को प्रकाशता है और सब क्रिया उससे सिद्ध होती हैं। इस कारण कर्ता भी वही है और भोक्ता भी वही है परन्तु मुझको कुछ संशय है उसको अपनी वाणी से निवृत्तकरो। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश तम को नाश करता है तैसेही आप मेरे संशय को दूर करो। यह सत्य है; यह असत्य है; यह मैं हूं; वह और है इत्यादिक द्वैतकलपना एक अद्वैत विस्तृत शान्तरूप में कहांसे स्थित हुई है? निर्मल में मल कैसे हुआहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं सिद्धान्तकाल में कहूंगा अथवा तुम आपही जानलोगे। इस मोक्ष उपाय शास्त्र का सिद्धान्त जब भली प्रकार तुम्हारे हृदय में स्थित होगा तब तुम इस प्रश्नके पात्र होगे अन्यथा योग्य न होगे—उस अवस्था में अन्यथा प्राप्त नहीं होते। हे रामजी! जैसे सुन्दर स्त्रियों की सुन्दरवाणी से सुन्दर गीत होता है और उसके अधिकारी यौवनवान् पुरुष होतेहैं तैसेही सिद्धान्तअवस्था में मेरे वचन के तुम अधिकारी होगे। जैसे रागमयी कथा बालक के आगे कहनी व्यर्थ होती है तैसेही बोध समय विना उदार कथा कहानी व्यर्थ होती है। जैसे शरदकाल में वृक्ष पत्रसंयुक्त और वसन्तऋतु में पुष्पसे शोभता है तैसाही जैसी अवस्था पुरुष की होती है

तैसाही उपदेश कहना शोभता है और उपदेश भी तब दृढ़ लगता है जब बुद्धि शुद्ध होती है—मलीन बुद्धि में दृढ़ नहीं होता । जैसे निर्मलवस्त्र पर केसरका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाताहै और मलीन वस्त्र पर नहीं चढ़ता; तैसेही प्राप्तरूप जो आत्मा है उसका विज्ञान उसदेश सिद्धान्त अवस्थावाले को लगता है जिसको बोधसत्ता प्राप्त होती है। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैंने संक्षेपमात्र कहा भी है—विस्तारसे नहीं कहा पर जो तुम नहीं जानते तो भी प्रत्यक्ष है। जब तुम आपसे आपको प्राप्त होगे तब आपही इस प्रश्न के उत्तर को जानलोगे—इसमें कुछ संदेह नहीं। सिद्धान्तकाल में जब तुम बोधको प्राप्त होकर स्थित होगे तब मैं भी इस प्रश्न का उत्तर विस्तार से कहूंगा। जब आपसे अपना आप निर्मल करोगे तब अपने आपको जानलोगे। हे रामजी! कर्त्ता और कर्म का विचार जो मैंने तुमको कहा है उसको विचारकर वासनाका त्यागकरो। जबतक संसार की वासना इस हृदय में होतीहै तबतक बन्धवान् है और जब वासना दूर होती है तब मुक्ति होती है; इससे तुम वासना को त्यागो और मोक्ष के अर्थ जो वासना है उसका भी त्यागकरो तब सुखी होगे। इस क्रम से वासना को त्यागकर प्रथम शास्त्रविरुद्ध तामसी वासना का त्यागकरो; फिर विषय की वासना का त्यागकरो और मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इस निर्मल वासना को अङ्गीकार करो। मैत्री के अर्थ यह हैं कि, सब में ब्रह्मभाव से द्रोह किसी का न करना। दुःखीपर दया करनी करुणा कहलाती है; धर्मात्मा पुरुष को देखके प्रसन्न होनेका नाम मुदिता है और पापी को देखके उदासीन रहना पर निन्दा न करना उपेक्षा कहलाता है। इन चारों प्रकार की वासनाओं से संपन्न हो हृदय से इनका भी त्याग करके इनका अभिमान न रखना चाहिये यदि बाहर से इनका व्यवहार हो पर हृदय से दृश्य में गुण की वासना त्यागकर चिन्मात्र वासना रखनी चाहिये और पीछे इसको भी मन बुद्धि के साथ मिश्रित त्यागकरना तब जिससे वासना त्यागी हैं वह शेष रहेगा तो उसकोभी त्याग करना। हे रामजी! चिन्मात्रतत्त्व से कल्पना करके देह, इन्द्रियां, प्राण, तम, प्रकाश, वासनादिक भ्रममात्र भासिआये हैं। जब मूल अर्थात् अहंकारसंयुक्त इनको त्याग करोगे तब आकाशवत् सम स्वच्छ होगे। इस प्रकार सबको त्यागकर पीछे जो तुम्हारा स्वरूप है वह तुष्ट होगा जो हृदय से इस प्रकार त्यागकर स्थित होता है वह पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है; चाहे वह समाधिमें रहे; अथवा कर्मकरे वा न करे। जिसके हृदय से सब अर्थों की आस्था नष्ट हुई है वह मुक्त और उत्तम उदारचित्त है। उसको करने, न करने में कुछ हानि लाभ नहीं और न समाधि करने में अर्थ है, न तपसे है क्योंकि; उसका मन वासना से रहित हुआ है। हे रामजी! मैंने चिरकाल पर्यन्त अनेकशास्त्र विचारे

हैं और उत्तम २ पुरुषों से चर्चा की है परन्तु परस्पर यही निश्चय किया है कि, भली प्रकार वासना का त्याग करे। इससे उत्तम और पद पानेयोग्य नहीं। जो कुछ देखने योग्य है वह मैंने सब देखा है और दशों दिशाओं में भ्रमा हूं; कई जन यथार्थ-दर्शी दृष्ट आये हैं और कितने हेयोपादेयसंयुक्त देखे पर सब यही यत्न करते हैं और इससे भिन्न कुछ नहीं करते। सब ब्रह्माण्ड का राज्य करे अथवा अग्नि और जल में प्रवेशकरे पर ऐसे ऐश्वर्य से संपन्न होकर भी आत्मलाभ विना शान्ति नहीं प्राप्त होती। बड़े बुद्धिमान् और शान्ति भी वही हैं जिन्होंने अपनी इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं और वही शूरमे हैं उनको जरा, जन्म और मृत्यु का अभाव है—वह पुरुष उपासना करने योग्य है। हे रामजी! ज्ञानवान् को किसी दृश्य पदार्थ में प्रीति नहीं होती क्योंकि; पृथ्वी आदिक पञ्चभूत ही सब ठौर मिलते हैं—त्रिलोकी में इनसे भिन्न और कोई पदार्थ नहीं तो प्रीति किस विधि हो। युक्ति से ज्ञानवान् संसारसमुद्र को गोपदवत् तरजाते हैं पर जिन्होंने युक्ति का त्याग किया है उनको सप्तसमुद्र की नाईं संसार होजाता है। जो पुरुष उदारचित्त हैं उनको यह सम्पूर्ण जगत् कदम्बवृक्ष के गालवत् होजाता है; उसमें वे त्याग किसका करें और भोग किसका करें। हेयोपादेय से रहित पुरुष को जगत् तुच्छसा भासता है इसकारण जगत् के पदार्थों के निमित्त वह यत्न नहीं करता और जो दुर्बुद्धिजीव होते हैं वे तुच्छ ब्रह्माण्डरूप पृथ्वी पर युद्ध करते हैं, अनेकजीवों का घात करते हैं और ममता में बन्धायमान हैं यह जगत् संकल्पमात्र में नष्ट होजाता है क्षण क्षण में आस्था से यत्न करना बड़ी मूढ़ता है। सब जगत् आत्मा के एक अंश से कल्पित है; इसकी उपमा तृण समान भी नहीं। इस प्रकार तुच्छरूप त्रिलोकी को जानकर आत्मवेत्ता किसी पदार्थ के हर्ष शोक में बन्धायमान नहीं होते और ग्रहण और त्याग से रहित हैं। सदाशिव के लोक आदि पाताल पर्यन्त जल, रस, देह, राजस, सात्त्विक, तामस संयुक्त जगत् के पदार्थ ज्ञान-वान् को प्रसन्न नहीं करसक्के और उसकी इच्छा किसी में नहीं होती क्योंकि, वह तो एक अद्वितीयात्मभाव को प्राप्तहुआ है; आकाशवत् व्यापक उसकी बुद्धि होती है; अपने आपमें स्थित है और चित्त दृश्य से रहित, अचेतन चिन्मात्र है। शरीर-रूपी जाल जो भयानक कुहिरा है और जिससे जगत् धूसर होरहा है सो तिस पुरुष का शान्त होजाता है और द्वितीय वस्तु का अभाव होता है ब्रह्मरूपी बड़ा समुद्र है उसके झाग के बोयेवत् कुलाचल पर्वत हैं; चैतनरूपी सूर्य में मृगतृष्णा की नदीरूप जगत् की लक्ष्मी है और ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग उड़ते और लय होते हैं; ऐसे जाननेवाला जो ज्ञानवान् है उसको यह जगत् आनन्ददायक कैसे हो? सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि जो तुमको प्रकाशरूप भासते हैं वे भी घट, काष्ठ आदिकवत् जड़रूप हैं

और जिससे यह प्रकाशते हैं वह सबको सिद्धकर्ता आत्मसत्ताहै और कोई नहीं। देह जो रुधिर, मांस और अस्थिसे बनीहै और इन्द्रियोंसे वेष्टित है; उस देहरूपी डब्बेमें चैतनजीवरूपी रत्न बिराजताहै; चैतनविना जड़ मुग्धरूपहै। हे रामजी! यह जो स्त्रीका देह भासताहै सो चर्मकी पुतली बनीहै; उसको देखके मूढ़ प्रसन्न होताहै। जैसे वायुके चलनेसे पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् संसारकेपदार्थों से प्रसन्न नहीं होता। ज्ञानवान् उस उत्तमपदमें बिराजताहै जिसकी अपेक्षा से चन्द्रमा और सूर्य पाताल में भासते हैं अर्थात् इनका बड़ाप्रकाश भी तुच्छ भासताहै। ज्ञानवान् परम उत्तमपद में बिराजतेहैं। ये संसारी मूढ़ जीव संसारसमुद्र में सर्पकी नाईं बहेजातेहैं। जैसे ये हम को भासतेहैं तैसे कहतेहैं। इस जगत् में ऐसा भाव पदार्थ कोई नहीं जो ज्ञानवान् को रागसे रञ्जितकरे। जैसे राजाके गृहमें महासुन्दर विचित्ररूप रानियां हों तो उसको ग्रामकी मूढ़ नीचस्त्रियां प्रसन्न नहीं करसक्तीं; तैसेही ये जगत् के भावपदार्थ तत्त्ववेत्ता को प्रसन्न नहीं करसक्ते और उसके चित्तमें प्रवेश नहीं करते। जैसे आकाश में मेघ रहतेहैं परन्तु आकाशको स्पर्श नहीं करसक्ते तैसेही वे निर्लेपरहतेहैं। जैसे सदाशिव महासुन्दर गौरीके नृत्य देखनेवाले और गौरी संयुक्त हैं उनको वानरी का नृत्य हर्ष-दायक नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान् को जगत् के पदार्थ हर्षदायक नहीं होते। जैसे जलसे पूर्ण कुम्भमें रत्नका प्रतिबिम्ब देखके बुद्धिमान्का चित्त उसे ग्रहण नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् का चित्त जगत् के पदार्थों को नहीं चाहता। यह संसारचक्र जो बड़ा विस्ताररूप भासता है सो असत्यरूपहै; उसको देखके ज्ञानवान् कैसे इच्छाकरे क्योंकि, यह तो चन्द्रमा के प्रतिबिम्बवत् है। शरीर भी असत्य है; इसकी इच्छा मूढ़ करते हैं—जैसे सेवार को मच्छ भोजन करतेहैं और राजहंस नहीं करते तैसेही संसार के विषयों की इच्छा अज्ञानी करते हैं—ज्ञानी नहीं करते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेपूर्णस्वरूपवर्णनन्नामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सिद्धान्त जो परम उचित वस्तु है उसकी गाथा बृहस्पति के पुत्र कचने गाई थी—वह परमपावनरूप है। एक काल में सुमेरु पर्वत के किसी गहन स्थान में देवगुरु का पुत्र कच जाबैठा। अभ्यास के वश से कदाचित् उसको आत्मतत्त्व में विश्रान्ति हुई; उसका अन्तःकरण सम्यक् ज्ञानरूपी अमृत से पूर्ण हुआ; पञ्चभौतिक जो मलीन दृश्य हैं उनसे विरक्त हुआ और ब्रह्मभाव में अ-स्फुर होकर रमने लगा। तब उसे ऐसा भासा कि, निराभास आत्मतत्त्व से कुछ भिन्न नहीं—एक अद्वैत ही है; ऐसे देखता हुआ गद्गद वाणी से बोला कि, मैं क्या करूं; कहां जाऊं; क्या ग्रहण करूं और किसका त्याग करूं सब विश्व एक आत्मा से पूर्ण होरहा है? जैसे महाकल्प में सब ओरसे जल पूर्ण होजाता है तैसेही दुःख भी आत्मा

है सुखभी आत्मा है और आकाश, दशोदिशा और अहं त्वं आदि सब जगत् आत्मा ही है। बड़ा कष्ट है कि, मैं अपने आप में नष्ट हुआ बन्धवान् था। देहके भीतर-बाहर, अध-ऊर्ध्व, यहां-वहां सब आत्माही है, आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। सब ओर से एक आत्मा ही स्थित है और सब आत्मा में स्थितहै; यह सब मैं हूं और अपने आपमें स्थित हूं। अपने आपमें मैं नहीं समाता अर्थात् आदि अन्त से रहित अनन्त आत्मा हूं। अग्नि, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी मैंहीं हूं; जो पदार्थ मैं नहीं वह हैही नहीं और जो कुछ है वह सब विस्तृतरूप मैंहीं हूं। एक पूर्ण परम आकाश भैरव अर्थात् भररहाहूं; सब जगत्भी अज्ञानरूप है और समुद्रवत् एक पूर्ण आत्मा स्थित है। वह कल्याणमूर्ति इस प्रकार भावना करताहुआ स्वर्णके पर्वत के कुञ्जमें स्थित हुआ और ओंकार का उच्चार बड़े स्वरसे करनेलगा। ओंकार की जो अर्द्धकला है; जिसको अर्द्धमात्राभी कहते हैं; वह फूल से भी कोमल है उसमें वह स्थित हुआ। वह अर्द्धमात्रा कैसीहै कि, न अन्तःस्थित है और न बाहर है; हृदयमें भावना करताहुआ उसमें स्थित हुआ और कलनारूपी जो मल था उससे रहित होकर निर्मल हुआ और उसकी चित्त की वृत्ति निरन्तर लीन होगई। जैसे मेघ के नष्ट हुये शरत्काल का आकाश निर्मल होता है, तैसेही कलङ्कित कलना के दूर हुये से वह निर्मलहुआ। जैसे पर्वत की पुतली अचलरूप होतीहै तैसेही कच समाधि में स्थित अचलहुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकचगाथावर्णनंनामसप्तपंचाशत्तमस्सर्गः ॥५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अङ्गनाओं के शरीरादिक भोग और जगत् के पदार्थों में कुछ सुख नहीं। ज्ञानवानों को ये पदार्थ तुच्छ भासते हैं, वे इनमें आस्था नहीं करते तो फिर किस पदार्थ की इच्छा करें। इन भोग ऐश्वर्य पदार्थों से मूढ़ असाधु संतोष पाते हैं पर जो ज्ञानवान् साधु हैं वे इनमें प्रीति नहीं करते जो कृपण अज्ञानी हैं उन को भोगही सरस है पर भोग आदि अन्त और मध्य में दुःखरूप है। जो पुरुष इनमें आस्था करते हैं वे गर्दभ और नीच पशु हैं। हे रामजी! स्त्री रक्त, मांस और अस्थि आदि से पूर्णहै; जो इनको पाकर तोषित होते हैं वे सियार हैं—मनुष्य नहीं। जो ज्ञान-वान्हैं वे जगत् के पदार्थों में प्रीति नहीं करते। पृथ्वी सर्वमृत्तिका; वृक्षकाष्ठ; देह मांस, और पर्वत पाषाणरूप हैं। पाताल अधहै और आकाश ऊर्ध्व है सो दिशाओं से व्याप्त है सर्वविश्व पञ्चभौतिकरूप है इसमें तो अपूर्व सुख कोई नहीं जिसमें ज्ञानवान् प्रीति करें। इन्द्रियों के पञ्चविषय मोक्ष के हरनेवाले और विवेकमार्ग के रोकनेवाले हैं और जो कुछ जगत्जाल की सम्पूर्ण विभूति है वह सब दुःखरूप है। प्रथम इनका प्रकाश भासता है पर पीछे कलङ्क को प्राप्त करते हैं। जैसे दीपक प्रथम प्रकाश को दिखाता है और फिर काजल कलङ्कको देताहै, तैसेही इन्द्रियों के विषय आगमा-

पायी हैं–इनसे शान्ति नहीं होती। अज्ञानी को स्त्रीआदिक पदार्थ रमणीय भासते हैं पर ज्ञानवान् की वृत्ति इनकी ओर नहीं फुरती। अज्ञानी को ये स्थिररूप भासते हैं, स्वाद देते और तुष्ट करते हैं पर ज्ञानवान् को असत्य और चलरूप भासते हैं और तुष्टता के कारण नहीं होते। ये विषमभोगहैं विषकी नाईं हैं और स्मरणमात्र से भी विषवत् मूर्च्छा करते हैं और सत्यविचार भूलजाता है। इससे तुम इनको त्यागकरके अपने स्वभावमें स्थित होजाओ और ज्ञानवानों की नाईं बिचरो। हे रामजी! जब इस जीव को अनात्म में आत्माभिमान होताहै तब असङ्गरूप जगत्जाल भी सत्य हो भासता है। ब्रह्मा को भी वासना के वश से कल्प देह का संयोग होता है। जैसे सुवर्ण का प्रतिबिम्ब जल में पड़ताहै और उसकी झलक कन्धेपर पड़तीहै पर कन्धेसे सुवर्ण का कुछ संयोग नहीं होता तैसेही ब्रह्मा का संयोग देह से बास्तव कुछ नहीं–कल्पनामात्र देह है। रामजी ने पूछा, हे महामते! आत्मा विरञ्चि के पद को प्राप्त होकर फिर यह सघनरूप जगत् कैसे रचते हैं वह क्रम से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब प्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुये तब जैसे गर्भ से बालक उपजताहै तैसेही उपजकर बारम्बार इस शब्दका उच्चार किया कि, 'ब्रह्म'! 'ब्रह्म'! इसकारण उसको ब्रह्मा कहते हैं। फिर संकल्प जालरूप और कल्पित आकार मन होआया; उस मन ने संकल्पलक्ष्मी फैलाई। प्रथम संकल्प से माया उपजती है; फिर तेज अग्नि के चक्रवत् फुरनेलगा और उससे बड़ा आकार होगया। फिर वह ज्वाला की नाईं, सुवर्ण लतारूप, बड़ीजटा संयुक्त, प्रकाश को धारे और शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूप होकर स्थितहुआ और अपने समान आकार बड़े प्रकाशसंयुक्त कल्पा और ज्वालाका मण्डल आकाशके मध्य स्थितहुआ–अग्निरूप और जिसके अग्निही अङ्ग हैं। हे महाबुद्धिमन्, रामजी! इस प्रकार तो ब्रह्मा से सूर्य हुये हैं और दूसरी जो तेज किरणें फुरती हैं वे आकाशमें तारागण विम्ब पर आरूढ़ फिरते हैं। फिर ज्यों ज्यों वह संकल्प करतागया त्यों त्यों तत्कालही सिद्ध होकर भासनेलगा। इसीप्रकार आगे जगत् रचा। जिसप्रकार इस सृष्टिमें ब्रह्मा रचता है उसी प्रकार और सृष्टि में रचते हैं। प्रथम प्रजापति, फिर कालकलना, नक्षत्र और तारागण; फिर देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, गन्धर्व, यक्ष, नदियां, समुद्र, पर्वत सब इसीप्रकार कल्पे और जैसे समुद्र में तरङ्ग कल्पित होतेहैं तैसेही सिद्ध रचके उनके कर्म रचे। वेभी शुभसंकल्परूप हैं जैसा संकल्प करें वही सिद्ध होकर भासने लगे। इसी प्रकार फिर भूत और तारागण उत्पन्न किये और उन्होंने और उत्पन्नकिये। तब ब्रह्माजी ने वेद उत्पन्नकिया और जीवों के नाम, आचार, कर्मवृत्ति बनाये और जगत् मर्यादा के लिये नीतिरूप स्त्रीको रचा। इसी प्रकार ब्रह्म की माया ब्रह्मारूप से बड़े शरीर धररही है। आगे सृष्टि का विस्तार है, लोक और लोकपालोंके क्रम कियेहें और

सुमेरु और पृथ्वी के मध्य दशोंदिशा रचकर सुख, मृत्यु, राग, द्वेष प्रकट किये। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् त्रिगुणरूप ब्रह्माजी ने रचा और जैसे उसने रचाहै तैसेही स्थित है। यह जो कुछ सम्पूर्ण दृश्य भासता है वह सब मायामात्र है। हे रामजी! इस प्रकार जगत् का क्रम हुआ है। संकल्परूप संसार बड़ा स्थित होकर अज्ञान से भासता है। यह तो संकल्प से रचाहै, संकल्प के वश से जगत् की क्रिया फैलाताहै; संकल्प वशसे दैवनीति होकर स्थित हुआहै और सब ब्रह्मा के संकल्प में स्थित है। जब उसका संकल्प निर्वाण होता है तब जगत्‌भी लय होजाता है। एकसमय ब्रह्माजी पद्मासन धर बैठेथे और विचारने लगे कि, यह जगत्‌जाल मन के संकल्प फुरनेमात्र है, मन के फुरने से उपज आताहै और नाना प्रकार के विकारसंयुक्त व्यवहार, इन्द्र, उपेन्द्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वी से लेकर सर्व जगत्‌जाल मायामात्र और बड़ा फैलरहाहै इस लिये अब मैं इससे निवृत्त होऊं। ऐसे विचार उन्हों ने अनर्थरूप संकल्प को दूर करके, आदि-अन्त रहित अनादिमत परम ब्रह्मस्फार आत्मारूप आत्मतत्त्व में मन लय किया और आनन्दरूप आत्मा होकर अपने आपसे स्थित होकर निर्मल निरहंकार परमतत्त्व को प्राप्त हुये। जैसे कोई व्यवहार से थका हुआ विश्राम करता है तैसेही वह अपने आपसे आत्मतत्त्व में स्थित हुये। जैसे समुद्र अक्षोभ होताहै तैसेही वह अक्षोभ हुये और ध्यान में लगे और फिर जब ध्यान से जगे तो जैसे द्रवता से समुद्र से तरङ्ग फुरआवें तैसेही चित्तके वश से ब्रह्माजी फुरनरूप होगये तब जगत् को देखके फिर चिन्तन करनेलगे कि, संसार दुःख, सुखसे संयुक्त अनन्त फांसी से बन्धायमान है और राग, द्वेष, भय, मोहसे दूषित है। हे रामजी! इस प्रकार जीवों को देखके ब्रह्माजी को दया उपजी तो अध्यात्मज्ञान से सम्पन्न वेद उपनिषद् और वेदान्त प्रकट किये और बड़े अर्थसंयुक्त नाना प्रकार के शास्त्र रचे। फिर जीवों की मुक्ति के निमित्त पुराण रचे और परमपद जो आपदा से रहितहै उसमें स्थित हुआ। जैसे मन्दराचल पर्वत के निकले से क्षीरसमुद्र शान्त होता है तैसेही शान्तरूप होकर स्थित हुआ और फिर उसीप्रकार जागके जगत् को देख मर्यादा में लगाया फिर कमलपीठ में स्थित होकर आत्मतत्त्व के ध्यानपरायण हुआ। इसीप्रकार जो कुछ अपने शरीर की मर्यादा ब्रह्माजी ने की है उसी प्रकार नीति के संस्कारपर्यन्त क्रीड़ा करते हैं और कुलाल के चक्रवत नीति के अनुसार विचरते हैं। जैसे ताड़ना और भावना से रहित चक्र फिरता है तैसेही वह जन्म मरण से रहित हैं। उसको शरीर के रखने और त्यागनेकी कुछ इच्छा नहीं और न कुछ जगत् की स्थिति और न अनस्थिति में इच्छा है। वह किसी पदार्थ के ग्रहण और त्याग की भावना में आसक्त नहीं होता और सबमें समबुद्धि परिपूर्ण समुद्रवत् स्थितहै। कभी सब संकल्पसे रहित

शान्तरूप होरहते हैं और कभी अपनी इच्छा से जगत् रचते हैं परन्तु उनको जगत् के रचने में कुछ भेद नहीं—सर्व पदार्थों की अवस्था में तुलता है। हे रामजी! यह मैंने तुमसे ब्रह्माजी की स्थिति कहीहै यह परमदशा औरभा किसी देवता को उपजे तो उस को समता जानिये क्योंकि, वह शुद्ध सात्त्विकरूप है। सृष्टिके आदिजो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व में चित्तकला फुरी है वही मन कला ब्रह्मारूप होकर स्थित हुई है। जब फिर जगत्के स्थिति क्रम में कलना उत्पन्न होती है तब वही ब्रह्मारूप आकाश, पवन को आश्रय लेकर औषध और पत्रों में प्रवेश करती है। कहीं देवताभाव को, कहीं मनुष्यभाव को; कहीं पशुपक्षी तिर्यगादिक भाव में प्राप्त होती है और कहीं चन्द्रमा की किरणद्वारा अन्नादिक औषध में प्राप्त होती है। जैसे भाव को लेकर चित्तकला फुरती है तैसाही भाव शीघ्र उत्पन्न होआता है। कोई उपजकर संसार के संसर्गबश से उसी जन्म के बन्धनसे मुक्त होजाते हैं क्योंकि, उन्हें अपने स्वरूप का चमत्कार होता है; कोई अनेक जन्मसे मुक्त होते हैं और कोई थोड़े जन्मसे मुक्त होते हैं। हे रामजी! इस प्रकार जगत् का क्रम है। कोई प्रत्यक्ष, संकट, कर्म, बन्ध, मोक्षरूप उपजते हैं और कोई मिटजाते हैं। इस प्रकार संसार बन्धमोक्षसे पूर्ण है। जब यह कलनामल नष्ट होताहै तब संसार से मुक्त होता है और जबतक कलनामल है तबतक संसार भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकमलजाव्यवहारोनामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५८॥

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो, रामजी! इस प्रकार ब्रह्माजी ने निर्मलपद में स्थित होकर सर्ग फैलाया। संसाररूपी कूप में जीव भ्रमते हैं और जीवरूपी टीड़ी तृष्णारूपी रस्सी से बँधे हुये कभी अध और कभी ऊर्ध्व को जाते हैं। जब वासनारूपी रस्सी टूट पड़ती है तब ब्रह्मतत्त्व से उठे ब्रह्मतत्त्व में एकत्र होजाते हैं। ब्रह्मसत्ता से जीव उपजते हैं और फिर ब्रह्मसत्ता मेंही लय होते हैं। जैसे समुद्र से मेघजल कण के धूम्रद्वारा उपजते हैं और फिर बर्षा से उसी में प्रवेश करते हैं; तैसेही जब तन्मात्रा मण्डल से चित्तकला निकलती है तब उसी के साथ जीव एकरूप होजाते हैं। जैसे मन्दार वृक्ष के पुष्प की सुगन्ध वायुसे मिलकर एकरूप होजाती है तैसेही चित्तकला जीवतन्मात्रा से मिलकर प्राणनाम पाती है। इस प्रकार प्राणवायु से आदि तन्मात्रा जीवकला को खैंचने लगता है जैसे बड़े प्रचण्ड दैत्य के समूह देवताओं को खैंचें तैसेही खैंचाहुआ जीव तन्मात्रा से एकरूप होजाता है। जैसे गन्ध और वायु तन्मय होते हैं तैसेही वह प्राण तन्मात्रा जीव के शरीर में वीर्य स्थान में जा प्राप्त होता है और जगत् में उपजकर प्राण प्रत्यक्ष होते हैं। कई धूम्रमार्ग से देहवान् के शरीर में प्रवेश करते हैं और कई मेघ में प्रवेश कर बुन्द मार्ग से औषध में रसरूप होकर स्थित होते हैं और उसको भोजन करनेवाले के भीतर वीर्यरूप

होकर स्थित होते हैं। कई और प्राणवायु द्वारा प्रकट होते हैं और चर स्थावररूप होते हैं, कई पवनमार्ग से धान के खेत में चावलरूप स्थित होते हैं और उनको जीव भोजन करते हैं तो वीर्य में प्राप्त होते हैं और नाना प्रकार के रङ्गभेद से प्राण धर्म उपजते हैं और कोई उपजनेमात्र से जीव की परम्परा तन्मात्रा से वेष्टित जब-तक चन्द्रमा उदय नहीं हुआ आकाश में स्थित होते हैं और जब चन्द्रमा उदय होता है तब उसका रस जो शीतल किरणों और श्वेत क्षीरसमुद्रवत् है उसमें जा प्राप्त होते हैं और उसके अन्तर्गत होकर पत्र औषध में स्थित होतेहैं। जैसे कमल पर भँवरे आ स्थित होते हैं तैसेही औषध में जाकर जीव स्थित होतेहैं और फल में स्वादरूप होकर स्थित होतेहैं। जैसे घुना रस से पूर्ण होता है तैसेही जीव से औषध और फल पूर्ण होजातेहैं। जैसे दूध से स्तन पूर्ण होते हैं तैसेही जीवसे फल पूर्ण होते हैं। जब वे फल परिपक्क होते हैं तो उनको देहधारी भक्षण करते हैं और उसमें जीव वीर्य और जड़ात्मकरूप होकर स्थित होते हैं। वह सुषुप्ति वासना से वेष्टित हुये गर्भ पिंजरे में जा पड़ते हैं। हे रामजी! जैसे मृत्तिका में घटादिक, काष्ठ में अग्नि और दूध में घृत सदा रहता है तैसेही वीर्य में जीव रहता है इस प्रकार परमात्मा महेशरूप से जीव की परम्परा उपजती है। वायु, धूम्र, मेघ, औषध, प्राण, चन्द्रमा की किरणें इत्यादिक अनेक मार्गोंसे जीव उपजते हैं जो उपजने से आत्मसत्ता से अप्रमादी रहते हैं और जिनको अपना स्वरूप विस्मरण नहीं होता वे शुद्ध सात्त्विकी हैं और महाउदार व्यवहारवान् होते हैं और जिनको उपजना विस्मरण होजाता है और फिर उसी शरीर में आत्मा का साक्षात्कार होता है वह सात्त्विकीरूप है और जो उपजकर नाना प्रकार के व्यवहार करते हैं और जिनको स्वरूप विस्मरण होजाता है जन्मकी परम्परा पाकर स्वरूप का साक्षात्कार होता है वे राजस सात्त्विकी कहाते हैं। जिनको अन्तका जन्म आरहता है उनको जिस प्रकार मोक्ष होता है वह क्रम अब तुम से कहता हूं। हे रामजी! उपजनेमात्र से जो अप्रमादी हुये हैं वे शुद्ध सात्त्विकी हैं और वेही ब्रह्मादिक हैं और जो प्रथम जन्म से बोधवान् हुये हैं वे सात्त्विकी हैं और जो कभी किसी जन्म मोक्ष हुये हैं वे राजसी सात्त्विकी हैं। इससे भिन्न नाना प्रकार के मूढ़, जड़ और तमसंयुक्त स्थाव-रादिक अनेक हैं। जिनको आत्मपद प्राप्त हुआ है उनको जो मिलते हैं उनको अन्त का जन्म है। ऐसे पुरुष विचारते हैं कि, मैं कौनहूं और यह जगत् क्या है और इस विचार के क्रम से मोक्षभागी होते हैं वे राजस से सात्त्विकी होते हैं॥

इति श्रीयोगवा॰स्थितिप्रकरणेविचारपुरुषनिर्णयोनामएकोनषष्टितमस्सर्गः॥५९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो राजस से सात्त्विकी होते हैं वे पृथ्वीपर महागुणों

से शोभायमान होते हैं और सदा उदितरूप रहते हैं । जैसे आकाश में चन्द्रमा रहता है । वे पुरुष खेद नहीं पाते—जैसे आकाश को मलीनता नहीं स्पर्श करती तैसेही उनको आपदा स्पर्श नहीं करती। जैसे रात्रि के आये से सुवर्ण के कमल नहीं मुंदते; जो कुछ प्रकृति आचार है उसके अनुसार चेष्टा करते हैं और जैसे सूर्य अपने आचार में बिचरताहै और आचार नहीं करता; तैसेही वे सत्यमार्ग में बिचरते हैं और हृदय से पूर्ण शान्तरूप हैं । जैसे चन्द्रमा की कला क्षीण होती है तौ भी वह अपनी शीतलता नहीं त्यागता; तैसेही ज्ञानवान् आपदा के प्राप्त हुये भी मलीनता को नहीं प्राप्त होते । वे सर्वदाकाल मैत्री आदिक गुणों से सम्पन्न रहते हैं, और सदा उनसे शोभते हैं । समतारूप जो समरस है उससे वे पूर्ण और शान्तरूप हैं और निरन्तर शुद्ध समुद्रवत् अपनी मर्यादा में स्थित रहते हैं । हे रामजी ! तुम भी महापुरुषों के मार्ग में सदा चलो और जो मार्ग परमपावन, आपदासे रहित और सात्त्विकी है उसके अनुसार चलो तब आपदा के समुद्र में न डूबोगे । जैसे वे खेद से रहित जगत् में बिचरते हैं तैसेही बिचरो । जिस क्रमसे राजससे सात्त्विकी मोक्षभागी होता है सो सुनो । प्रथम आर्यभाव को प्राप्त होना अर्थात् यथाशास्त्र सद्व्यवहार करना तो उससे अन्तःकरण शुद्ध होता है । उस आर्यपद को पाकर सन्तों के साथ मिलकर बारम्बार सत्शास्त्रों को बिचारना और जो संसार के अनित्य पदार्थ हैं उनमें प्रीति न करनी । विरक्तता उपजानी और जो त्रिलोकी के पदार्थों के उपजने विनशने में सत्यरूप है बारम्बार उसकी भावना करनी और दूसरी भावना शीघ्रही मिथ्या जानकर त्यागनी । जो कुछ दृश्य जगत् भासता है उसे असम्यक् दृश्य है । निष्फल, नाशरूप और व्यर्थ जानकर भावना त्यागनी और सम्यक्ज्ञानको स्मरण करना । सन्तजन और सत्शास्त्र जो ज्ञान के सहायक हैं उनके साथ मिलके विचार करना कि, मैं कौनहूं और जगत् क्या है ? । भलीप्रकार प्रयत्न करके विवेक संयुक्त सदा अध्यात्मशास्त्र का विचार करना और सत्य व्यवहार और सात्त्विकी कर्म करना और अवज्ञा करके मृत्यु को विस्मरण न करना । जो मृत्यु विस्मरण करके संसार कार्य में लगजाता है वह डूबता है; इससे स्मरण करके सन्मार्ग में लगना और जिस पद में महाउदार और शीतलचित्त ज्ञानी पुरुष स्थित है उस पदके मार्ग और दर्शन में सदा इच्छा रखनी । जैसे मोर को मेघ की इच्छा रहती है । हे रामजी ! अहंकार जो देह में स्थित है यह देह संसार में उपजी है; इसको भली प्रकार विचार करके नाशकरो । यह सांसारिक देह, रुधिर, मांस, मज्जा आदिक की बनावट है । जितने भूतजात हैं वे सब चेतनरूपी तागे में मोती परोये हैं; उन भूतों को त्याग करके चिन्मात्रतत्त्व को देखो । चेतनसत्ता सत्य, नित्य और विस्मृतरूपहै और शुद्ध, सर्वगत

और सर्वभाव उसमें है। वह त्रिलोकी का भूषण आश्रयभूत है जो चेतनआकाश सूर्य में है। वही चेतन पृथ्वी के छिद्र में कीट है जैसे घटाकाश और महाकाश में भेद कुछ नहीं तैसेही शरीर और चेतन में भेद नहीं। जैसे सब मिरचों में तीक्ष्णता एकही है तैसेही सर्वभूतों में चेतनता एकही अनुस्यूत है—अनुभव से जानता है। उस एक चिन्मात्र में भिन्नता कहांसे हो? एकसत्यसत्ता जो निरन्तर चिन्मात्र वस्तुरूप है उसमें जन्म मरण आदिक अज्ञान से भासता है; बास्तव में न कोई उपजा है और न मरता है, एक आत्मतत्त्व सदा ज्यों का त्यों स्थितहै। और उसमें जगत् विकार आभासमात्र है; न सत्य है न असत्य है। चित्त के फुरने से भासता है और चित्त के शान्त हुये शान्त होजाताहै। जो जगत् को सत्य मानिये तो अनादि हुआ इससे भी शोक किसी का नहीं बनता और जो जगत् असत्य मानिये तो भी शोक का स्थान नहीं बनता। इससे दृढ़ विचार करके स्थित हो और शोक को त्यागो। तुमको न जन्म है और न मरण है—आकाशवत् निर्मल सम शान्तरूप होजावो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमोक्षविचारोनामषष्टितमस्सर्गः॥ ६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो धैर्यवान् पुरुष बुद्धिमान् हैं वे सत्शास्त्र को विचारें; सन्तजनों का संग करके उनका आचार ग्रहण करें और जो जो दुःखकी नाशकर्त्ता श्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि हैं उनको यत्नकरके अङ्गीकार करें तब सन्तजनता प्राप्त होगी। सन्तजन जो विरक्तात्मा हैं उन से मिलकर जब सत्शास्त्र को बिचारे तब परमपद मिलता है। हे रामजी! जो पुरुष सत्शास्त्र का विचारनेवाला है और सन्तजनों का संग तथा वैराग्य अभ्यास आदरसंयुक्त करता है वह तुम्हारी नाईं विज्ञान का पात्र है। तुम तो उदारात्मा हो और धैर्यवान् के जो गुण शुभाचार हैं उनके समुद्र हो निर्दुःख होकर स्थित हो। अब राजसी सात्त्विकी और मननशील हुये हो फिर ऐसे दग्धरूप संसार में दुःख के पात्र न होगे। यह तुम्हारा अन्त का जन्म है जो अपने स्वभाव की ओर धावते हो, अन्तर्मुख यत्न करते हो, निर्मल दृष्टि तुमको प्रकट हुई है और भूत जगत् वस्तु को जानते हो। जैसे सूर्य के प्रकाश से यथार्थ वस्तु का ज्ञान होता है। अब मेरे वचनों की पंक्ति से सर्वमल दूर होजावेंगे—जैसे अग्नि से धातु का मल जलजाता है तैसेही तुम्हारा मल जलजावेगा और निर्मलता से शोभायमान होगे। जैसे मेघ के नष्ट हुये शरत्काल का आकाश शोभता है तैसेही संसार की भावना से मुक्त होकर चिन्ता से रहित निर्मलभाव से शोभोगे। अहं, ममादि कल्पना से मुक्त हुये ही मुक्त है इसमें कुछ संशय नहीं। हे रामजी! तुम्हारा जो यह अनुभव उत्तम व्यवहार है उसके अनुसार विचरोगे तो तुम अशोकपद पावोगे। और कोई इस व्यवहार को बर्तेगा वह भी संसार समुद्र को अनुभवरूपी बेड़े से तर

जावेगा । तुम्हारे तुल्य जिसकी मति होगी वह समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्य है । जैसे सर्व कान्तिमान् सुन्दरता का पात्र पूर्णमासी का चन्द्रमा होता है । तुम तो अशोकदशा को प्राप्त हुये हो और यथा प्राप्ति में बर्तते हो । जबतक देह है तबतक राग द्वेष से रहित स्थितबुद्धि रहो और यथाशास्त्र जो उचित आचार हैं उन्हें बर्त्तो करो पर हृदय में सर्वकल्पना से रहित शीतल चित्त हो—जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शीतल होता है । हे रामजी ! इन सात्त्विक और राजस से—सात्त्विक से भिन्न जो तामसी जीव हैं उनका विचार यहां न करना; ये मूढ़ सियार हैं और मद्यादिक के पीनेवाले हैं, उनके विचार से क्या प्रयोजन है ? जो मैंने तुमसे सात्त्विकी जन कहे हैं उनके सेवन से बुद्धिअन्त के जन्म की होती है और जो तामसी हैं उनको सेवे तो उनकी बुद्धि भी उदार होजाती है । जिस जिस जाति में जीव उपजताहै उस जाति के गुण से शीघ्रही संयुक्त होजाताहै । पूर्व जो कोई भाव होता है वह जाति के वश से वहां जाता रहता है और जिस जाति में वह जन्मता है उसके गुणों को जीतने का पुरुषार्थ करताहै, तब यत्न से पूर्वके स्वभाव को जीतलेताहै । जैसे धैर्यवान् शूरमा शत्रु को जीत लेता है । जो पूर्व संस्कार मलीन है तो धैर्य करके मलीन बुद्धिका उद्धार करे—जैसे मुग्ध पशु गढ़े में फँसजावे और उसको काढ़ लेवे तैसेही बुद्धि को मलीन संस्कार से काढ़िले । हे रामजी ! जो तामस—राजसी जाति है उसको भी जन्म और कर्म के संस्कारवश से सात्त्विक प्राप्त होताहै और वहभी अपने विचार द्वारा सात्त्विक जातिको प्राप्त होता है । पुरुष के भीतर अनुभवरूपी चिन्तामणि है उसमें जो कुछ निवेदन करता है वही रूप होजाता है । इससे पुरुषार्थ करके अपना उद्धारकरो । पुरुष प्रयत्न से पुरुष बड़े गुणों से संपन्न हो मोक्ष पाता है और उसके अन्त का जन्म होता है, फिर जन्म नहीं पाता और अशुभ जाति के कर्म निवृत्त होजाते हैं । ऐसा पदार्थ पृथ्वी, आकाश और देवलोक में कोई नहींजो यथाशास्त्र प्रयत्न करके न पाइये । हे रामजी ! तुमतो बड़े गुणों से संपन्न हो और धैर्य उत्तम वैराग और दृढ़बुद्धि से संयुक्त हो और उसके पाने को धर्मबुद्धि से वीतशोक रूप हो । तुम्हारे क्रम को जो कोई जीव ग्रहण करेगा वह मूढ़ता से रहित होकर अशोक पद को प्राप्तहोगा । अब तुम्हारा अन्त का जन्म है, और बड़े विवेक से संयुक्त हो तुम्हारी बुद्धि में शान्ति के गुण फैल गये हैं और उनसे तुम शोभते हो । सात्त्विक गुण क्रम से सब में रमरहे हो और संसार की बुद्धि, मोह और चिन्ता तुमको मिथ्या है—तुम अपने स्वस्थस्वरूप में स्थित हो ॥

इति श्रीयोगवा० महारामायणेस्थितिप्र० मोक्षोपायवर्णननामैकषष्टितमस्सर्गः ॥ ६१ ॥

इति ॥

ॐसच्चिदानन्दाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

उपशमप्रकरणं पञ्चमं प्रारभ्यते ॥

इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले, हे साधो ! अब स्थितिप्रकरण के अनन्तर उपशमप्रकरण कहता हूं जिसके जानने से निर्वाणता पावोगे। जब वशिष्ठजी ने इस प्रकार वचन कहे तब सब सभा ऐसी शोभित हुई जैसे शरत्काल के आकाशमें तारागण शोभते हैं। वशिष्ठजी के वचन परमानन्दके कारणहैं। ऐसे पावन वचन सुनके सब मौन होगये और जैसे कमल की पंक्ति कमल की खानि में स्थित हो तैसेही सभा के लोग और राजा स्थित हुये। स्त्रियां जो झरोखों में बैठी थीं उनके महाविलास की चञ्चलता शान्त होगई और घड़ियालों के शब्द जो गृह में होतेथे वे भी शान्त होगये। शीश पर चमर करने वाले भी मूर्तिवत् अचल होगये और राजा से आदि लेकर जो लोग थे वे कथा के सन्मुख हुये। रामजी बड़े विकाश को प्राप्त हुये–जैसे प्रातःकाल में कमल विकाशमान होता है और वशिष्ठजी की कही वाणी से राजा दशरथ ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे मेघ की वर्षा से मोर प्रसन्न होता है। सब के चञ्चल वानररूपी मन विषय भोगसे रहितही स्थित हुये और मन्त्री भी सुनके स्थित होरहे और अपने स्वरूप को जाननेलगे। जैसे चन्द्रमा की कला प्रकाशती है तैसेही आत्मकला प्रकाशित हुई और लक्ष्मण ने अपने लक्षस्वरूप को देखके तीव्रबुद्धि से वशिष्ठजी के उपदेश को जाना। शत्रुघ्न जो शत्रुओं को मारनेवालेथे उनका चित्त अतिआनन्द से पूर्ण हुआ और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा स्थित होताहै तैसे मन्त्रियों के हृदय में मित्रता होगई और मन शीतल और हृदय प्रफुल्लित हुआ। जैसे सूर्य के उदय हुये कमल तत्काल विकाशमान होता है। और और जो मुनि, राजा और ब्राह्मण स्थित थे उनके रत्नरूपी चित्त स्वच्छ और निर्मल होगये। जब मध्याह्न काल का समय हुआ और बाजे बजकर उनके ऐसे शब्द हुये जैसे प्रलयकाल में मेघों के शब्द होतेहैं और उन बड़े शब्दों से मुनीश्वरोंका शब्द आच्छादित होगया– जैसे मेघ के शब्द से कोकिला का शब्द दबजाता है। तब वशिष्ठजी चुप होगये और एक मुहूर्त्तपर्यन्त शब्द होतारहा। जब घनशब्द शान्त हुआ तब मुनीश्वरने रामजी से कहा, हे रामजी ! जो कुछ आज मुझे कहना था वह मैं कहचुका अब कल फिर कहूंगा। यह सुन सर्वसभा के लोग अपने २ स्थानों को गये और वशिष्ठजी ने

राजा से लेकर रामजी आदि से कहा कि, तुमभी अपने २ घर में जावो । सबने चरणवन्दना और नमस्कार किया और जो नभचारी, वनचारी और जलचारी थे उन सबको बिदाकर आप भी अपने २ स्थानों को गये और ब्राह्मण की सुन्दरबाणी को विचारते और अपने २ अधिकार की क्रिया दिनको करतेरहे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेपूर्वदिनवर्णनंनामप्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

इतना कहकर फिर वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! इस प्रकार अपने २ स्थानों में सब यथा उचित क्रिया करने लगे। वशिष्ठ, राजा, राघव, मुनि और ब्राह्मणों ने अपने २ स्थानों में स्नान आदिक क्रिया की और गौ, सुवर्ण, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, भोजन आदिक ब्राह्मणों को यथायोग्य पात्रदान दिये । सुवर्ण और रत्नों से जड़े स्थानों में आकर राजा ने देवताओं का पूजन किया और कोई विष्णु का, और सदाशिव का, कोई अग्नि का और किसी ने सूर्य आदिक का पूजन किया। तदनन्तर पुत्र, पौत्र, सुहृद्, मित्र, बान्धवसंयुक्त नाना प्रकार के उचित भोजन किये । इतनेमें दिन का तीसरा पहर आया तब सबने अपने सम्बन्धियों संयुक्त और २ क्रिया की और जब सांझ हुई और सूर्य अस्त हुआ तब सायंकाल की विधि की और अघमर्षण गायत्री आदिक का जाप किया और पाठश्रोत्र और पुनरपि मनोहर कथा मुनीश्वरों की कही। फिर रात्रि हुई तब स्त्रियों ने शय्या बिछाई और उनपर वे बिराजे पर रामजी विना सबको रात्रि एकमुहूर्तवत् व्यतीत हुई रामजी स्थित होकर वशिष्ठजी के वचन की पंक्तियों को विचारनेलगे कि, जिसका नाम संसार है इसमें भ्रमणे का पात्र कौन है; नाना प्रकार के भूतजात कहां से आते हैं; कहा जाते हैं; मनका स्वरूप क्या है; शान्ति कैसे होतीहै; यह माया कहांसे उठी है, और कैसे निवृत्त होती है; निवृत्त हुये विशेषता क्या होती है, नष्ट किसकी होतीहै; अनन्तरूप जो विस्तृत आत्माहै उसमें अहंकार कैसे होता है; मनके क्षय होने और इन्द्रियों के जीतने में मुनीश्वरों ने क्या कहाहै और आत्मा के पावने में क्या युक्ति कहीहै ? जीव, चित्त, मन और माया सब ही एकरूप है; विस्ताररूप संसार इसनेही रचाहै और जैसे तेंदुये ने हाथी को बाधा था और वह कष्ट पाता था तैसेही असत्‌रूप संसार में बँधकर जो जीव कष्ट पातेहैं उस दुःख के नाश करनेके निमित्त कौन औषध है । भोगरूपी मेघमाला में मोहित हुई मेरी बुद्धि · लित होगई है; इसको मैं किस प्रकार भिन्नकरूं । यह तो भोगके साथ तन्मय होगई है और मुझको भोगों के त्यागने की सामर्थ्य भी नहीं; भोगों के त्यागने के विना बड़ी आपदा है और उनके संहारने की भी सामर्थ्य नहीं। बड़ा आश्चर्य है और हमको बड़ा कष्ट प्राप्त हुआहै । आत्मपद की प्राप्ति मनके जीतने से होती है और वेद शास्त्र के कहने का प्रयोजन भी यही है । गुरु के वचनों से भ्रम

नष्ट होजाता है–जैसे बालक को परछाहीं में वैताल भासता है–उस भ्रमको जैसे बुद्धिमान् दूर करताहै तैसेही मनरूपी भ्रम को गुरु दूर करते हैं। वह कौन समय होगा कि, मैं शान्ति पाऊंगा और संसार भ्रम नष्ट होजावेगा। जैसे यौवनवान् स्त्री भर्त्तार को पाके सुख से बिश्राम करती है; तैसेही मेरी बुद्धि आत्मा को पाके कब विश्रामवान् होगी। नाना प्रकार के संसार के आरम्भ मेरे कब शान्त होंगे और कब मैं आदि अन्त से रहित पद में विश्रान्तवान् होऊंगा। मेरा मन कब पावनरूप होगा और पूर्णमासी के चन्द्रमावत् सम्पूर्ण कला से सम्पन्न होकर स्वच्छ, शीतल और प्रकाशरूप पद में कब स्थित होऊंगा। मैं कब जगत् देखके हँसूंगा और कब मलीन कलना को त्यागके आत्मपद में स्थित होऊंगा। कब मैं मन को संकल्प विकल्प से रहित शान्तरूप देखूंगा–जैसे तरङ्ग से रहित नदी शान्तरूप दीखतीहै। तृष्णारूपी तरङ्ग से व्याकुल जो संसारसमुद्र है वह मायाजाल से पूर्ण है और राग द्वेषरूपी मच्छों से संयुक्त है, उसको त्यागके मैं वीतज्वर कब होऊंगा। उस उपशम सिद्धिपद को मैं कब पाऊंगा जो बुद्धिमानों ने मूढ़ता को त्यागके पाया है। मैं कब निर्दोष और समदर्शी होऊंगा और अज्ञानरूपी ताप मेरा कब नाश होगा जिससे सम्पूर्ण अङ्ग मेरे तपते हैं। सब धातु क्षोभरूप होगई हैं और उनसे बड़ा दीर्घ ज्वर हुआहै इससे कब मेराचित्त शान्तवान् होगा–जैसे वायु विना दीपक शान्त होताहै। कब मैं भ्रम त्यागके प्रकाशवान् हूंगा और कब मैं लीला करके इन्द्रियों के दुःखों को तरजाऊंगा। दुर्गन्धरूप देहसे मैं कब न्यारा होऊंगा और 'अहं, त्वं' आदिक मिथ्याभ्रम का नाश मैं कब देखूंगा। जिस पद के आगे इन्द्रादिकों का सुख ऐश्वर्य मन्दारादिक वृक्षों की सुगन्ध और नाना प्रकार के भोग तृणवत् भासतेहैं वह आत्मसुख हमको कब प्राप्त होगा। बीतराग मुनीश्वर ने जो हमसे ज्ञान की निर्मल दृष्टि कहीहै उसको पाके मन विश्रामवान् होताहै। संसार तो दुःखरूप है मन तू किसका पद पाके विश्रामवान् हुआहै। माता, पिता, पुत्रादिक जो सम्बन्धीहैं उनका पात्र मैं नहीं हूं; इनका पात्र भोगी होताहै। बुद्धि तू मेरी बहनहै, तू मेरा शीघ्रही अर्थ भ्रातृवत् पूर्णकर कि, तुम हम दोनों दुःख से मुक्त हों। मुनीश्वर के वचनों को विचार के हमारी आपदा नाश होगी; हम भी परमपद को प्राप्त होंगे और तुझको भी शान्ति होगी। हे मेरी बुद्धि! तू ज्योंका त्यों स्मरण कर कि, वशिष्ठ जी ने क्या कहाहै। प्रथम तो वैराग्य कहा है, फिर मोक्षव्यवहार कहाहै; फिर उत्पत्ति प्रकरण कहाहै कि, संसार की उत्पत्ति इस क्रम से हुई है और फिर स्थिति प्रकरण कहाहै कि, ईश्वर से जगत् की स्थिति है और नाना प्रकार के दृष्टान्तों से उसे निरूपण कियाहै। निदान जितने प्रकरण कहे हैं वे ज्ञान विज्ञानसंयुक्त हैं। हे बुद्धे! जिस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा है तैसे तू स्मरणकर और अनेक बार विचार कर। बुद्धि में

निश्चय न हो तो वह क्रिया भी निष्फल है। जैसे शरत्काल का मेघ बड़ा घन भी दृष्टि आता है परन्तु वर्षा से रहित निष्फल होता है तैसेही बुद्धि में अनुसंधान से रहित विचार किया निष्फल होता है। जो बुद्धि में अनुसन्धान कीजिये वह विचार सफल होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउपदेशानुसारवर्णनंनामद्वितीयस्सर्गः॥२॥

बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जब इस प्रकार बड़े उदार आत्मा रामजीने चित्त संयुक्त रात्रि व्यतीत की तो कुछ तमसंयुक्त तारागण हुये और दिशा भासने लगीं। प्रातःकाल के नगारे नौबत बजने लगे तब रामजी ऐसे उठे जैसे कमलों की खानि से कमल उठे और भाइयों के साथ प्रातःकाल के सन्ध्यादिक कर्म कर कुछ मनुष्यों के संयुक्त वशिष्ठजी के आश्रम में आये। वशिष्ठजी एकान्तसमाधि में स्थित थे उन को दूर से देख रामजी ने नमस्कार सहित चरणवन्दना की और प्रणाम करके हाथ बांध खड़ेरहे। जब दिशा का तम नष्ट हुआ तब राजा और राजपुत्र, ऋषि, ब्राह्मण जैसे ब्रह्मलोक में देवता आवें तैसे आये। वशिष्ठजी का आश्रम जनों से पूर्ण होगया और हाथी, घोड़े, रथ, प्यादा चार प्रकार की सेना से स्थान शोभित हुआ। तब तत्काल वशिष्ठजी समाधि से उतरे और सर्वलोगों ने प्रणाम किया। वशिष्ठजी ने उनसबका प्रणाम आचारपूर्वक यथायोग्य ग्रहण किया और विश्वामित्र को संग लेकर सबसे आगे चले बाहर निकलकर रथपर आरूढ़ हुये–जैसे पद्म में ब्रह्मा बैठे और दशरथ के गृह को चले। जैसे ब्रह्माजी देवताओं से वेष्टित इन्द्रपुरी को आते हैं तैसेही वशिष्ठजी बड़ीसेना से वेष्टित दशरथ के गृह आये और जो विस्तृत रमणीय सभा थी उसमें प्रवेश किया जैसे हंसवेष्टित राजहंस कमलोंमें प्रवेशकरे। तब राजा दशरथ ने जो बड़े सिंहासन पर बैठे थे उठकर आगे आ चरणवन्दना की और नम्र होकर चरण चूंबे। वशिष्ठजी सर्वके अग्र होकर शोभित हुये और अनेक मुनि, ऋषि और ब्राह्मण आये। दशरथ से लेकर राजा सर्व मन्त्री और बन्दीजन और रामजी से आदि लेकर राजपुत्र, मण्डलेश्वर; जगत्के अधिष्ठाता और मालवआदि सर्वभृत्य और टहलुये आ यथायोग्य अपने २ आसन पर बैठे और सबकी दृष्टि वशिष्ठजी की ओर हुई। बन्दीजन जो स्तुति करतेथे और सर्व लोक जो शब्द करते थे चुप होगये निदान सूर्य उदय हुआ और किरणों ने झुककर झरोखों से प्रवेश किया; कमल खिल आये; पुष्पों से स्थान पूर्ण होगये और उनकी महासुगन्ध फैली झरोखे में स्त्रियां अपनी अपनी चञ्चलता त्यागकर मौन हो बैठीं और चमर करने वाली मौन होकर शीशपर चमर करने लगीं और सब वशिष्ठजी की महासुन्दर कोमल मधुरवाणी को स्मरणकर आपस में आश्चर्यवान् होने लगे। तब आकाश से

राजऋषि, सिद्ध, विद्याधर और मुनि आये और वशिष्ठजी को प्रणाम किया पर गम्भीरता से मुख से न बोले और यथायोग्य आसनपर बैठगये। पुष्पों की सुगन्ध युक्त वायु चली और अगर चन्दनादि की सभा में बड़ी सुगन्ध फैलगई। भँवरे शब्द करते फिरते थे और कमलों को देखकर प्रसन्न होते थे। रत्न मणि भूषण जो राजा और राजपुत्रों ने पहिने थे उनपर सूर्यकी किरणें पड़ने से बड़ा प्रकाश होताथा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसभास्थानवर्णनन्नामतृतीयस्सर्गः॥ ३॥

बाल्मीकिजी बोले कि, उस समय दशरथजी ने वशिष्ठजी से कहा, हे भगवन्! कल के श्रमसे आप श्रमित हैं और आपका शरीर गरमी से अति कृश सा होगया है इस निमित्त आपसे कहा है। हे मुनीश्वर! आपने जो आनन्द वचन कहे हैं वे प्रकटरूप हैं और वचनरूपी अमृत की वर्षासे हम आनन्दवान् हुये हैं। हमारे हृदय का तम दूर होकर शीतल चित्त हुआहै—जैसे चन्द्रमा की किरणों से तम और तपन दोनों निवृत्त होते हैं तैसेही आपके वचनों से हम अज्ञानरूपी तम और तपन से रहित हुये हैं। आप के वचन अमृतवत् अपूर्व रस आनन्द देते हैं और ज्यों २ ग्रहणकरिये त्यों २ विशेषरस आनन्द आता है। ये वचन शोकरूपी तप्त को दूर करनेवाले और अमृत की वर्षारूप हैं। आत्मारूपी रत्न को दिखानेवाले परमार्थरूपी दीपक हैं; सन्तजनरूपी वृक्षकी बेलि है; और दुरिच्छा और दुष्ट आचरण के नाश करने वाले हैं। जैसे तम को दूर करने और शीतलता करने को शान्तरूप चन्द्रमा है तैसेही सन्तजनरूपी चन्द्रमा को। किरणरूपी वचनों से अज्ञानरूपी तम का नाश होता है। हे मुनीश्वर! तृष्णा और लोभादिक विकार आपकी वाणी से ऐसे नष्ट होगये हैं जैसे शरत्काल का पवन मेघको नष्ट करता है और आपके वचनों से हम निष्पाप हुये हैं। आत्मदर्शन के निमित्त हम प्रवर्त्ततेहैं। आपने हमको परम अञ्जन दिया है उससे हम सचक्षु हुये हैं और संसाररूपी कुहिरा हमारा निवृत्त हुआ है। जैसे कल्पवृक्ष की लता और अमृत का स्नान आनन्द देता है तैसेही उदारबुद्धि की वाणी आनन्ददायक होती है। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, ऐसे वशिष्ठजी से कहकर रामजी की ओर मुख करके दशरथजी ने कहा; हे राघव! जो काल सन्तों की संगति में व्यतीत होताहै वही सफल होताहै और जो दिन सत्संग विना व्यतीत होताहै वह वृथा जाताहै। हे कमलनयन, रामजी! तुम फिर वशिष्ठजीसे कुछ पूछो तो वे फिर उपदेश करें—वे हमारा कल्याण चाहतेहैं। बाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार राजादशरथ ने कहा तब रामजी की ओर मुखकर के उदार आत्मा वशिष्ठ भगवान् बोले कि, हे राघव! अपने कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा! मैंने जो वचन कहेथेवे तुमको स्मरण आतेहैं? उन वाक्यों का अर्थ स्मरण

में है और पूर्व और अपरका कुछ विचार किया है ? हे महाबोधवन्, महाबाहो! और अज्ञानरूपी शत्रु के नाशकर्त्तः! सात्त्विक, राजस और तामस गुणों के भेद की उत्पत्ति जो विचित्ररूप है वह मैंने कहीहै। तुम्हारे चित्त में है सर्वभी वही है, असर्वभी वही है सत्यभी वही है और असत्य भी वही है और सदा शान्त अद्वैत-रूप है। यह परमात्मा देव का विस्मृतरूप स्मरण है। जैसे विश्व ईश्वर से उदय हुआ है वह स्मरण है; यह जो देववाणी है इसका पात्र शुद्धचित्त है; अशुद्ध नहीं। हे सत्यबुद्धे, रामजी! अविद्या जो विस्मृतरूप भासती है उसका रूप स्मरण है? अर्थ से शून्य, क्षणभंगुररूप, सम्यक् दर्शन से रहित, निर्जीव है। यह जो लवण के विचार द्वारा मैंने प्रतिपादन किया है वह भलीभांति स्मरण है? और वाक्यों का समूह जो मैंने तुमसे कहाहै उनका रात्रि में विचारके हृदय में धारा है? जब पुरुष बारम्बार बिचारते हैं और तात्पर्य हृदय में धारते हैं तब बड़ा फल पातेहैं और जो अवज्ञा से अर्थ का विस्मरण करते हैं तो फल नहीं पाते। हे रामजी! तुमतो इन व-चनों के पात्र हो जैसे उत्तम बांस में मोती फलीभूत होते हैं और में नहीं उपजते; तैसेही जो विवेकी उदार आत्मचित्त पुरुष हैं उनके हृदय में ये वचन फलीभूत होते हैं। बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठजीने कहा तब महा-ओजवान् गम्भीर रामजीअवकाशपाके बोले; हे भगवन्! सब धर्मों के वेत्ता आपने जो परमउदार वचन कहे हैं उनसे मैं बोधवान् हुआहूं और जैसे आप कहते हैं तैसेही सत्य है, अन्यथा नहीं। हे भगवन्! मैंने समस्त रात्रि आपके वाक्यों के वि-चार में व्यतीत की है। आपतो हृदय के अज्ञानरूपी तम को नाशकर्ता पृथ्वीपर सूर्य-रूप बिचरते हैं। हे भगवन्! आपने जो व्यतीत दिनमें आनन्ददायक, प्रकाशरूपी, रमणीय और पवित्रवचन कहेथे वे मैंने सब अपने हृदय में भलीप्रकार धरे हैं। जैसे समुद्र से नाना प्रकार के रत्न निकलतेहैं तैसेही आपके वचन कल्याणकर्त्ता और बोधवान् हैं अर्थात् सबके सहायक और हृदयगम्य आनन्द का कारण हैं। वह कौन है जो आपकी आज्ञा शिरपर न धरे? जो मुमुक्षु जीव हैं वे सब आपकी आज्ञा शीश पर धरते हैं और अपने कल्याण के निमित्त जानते हैं। हे मुनीश्वर! आपके वचनों से मेरे संशय निवृत्त हुये हैं—जैसे शरत्काल में मेघ और कुहिरा नष्ट होजाता है और निर्मल आकाश भासता है। यह संसार आपातरमणीय हो भासता है; जब-तक पदार्थों का अभाव नहीं होता तबतक सुखदायक भासते हैं और जब विषय पदार्थ इन्द्रियों से दूर होतेहैं तब दुःखदायक होजाते हैं आपके वचन ऐसे हैं कि जिनके आदि में भी यत्न कुछनहीं, सुगम मधुर आरम्भ है; मध्य में सौभाग्य करते हैं अर्थात् कल्याण करताहै और पीछे से अनुत्तमपद को प्राप्त करते हैं जिसकेमध्य

और कोई पद नहीं। यह आपके पुण्यरूप वचनों का फल है और आपके वचन-रूपी पुष्प सदा कमल समान खिले हुये निर्मल आनन्द के देनेवाले हैं और उदित फूल हैं, उनका फल हमको प्राप्त होगा। सब शास्त्रों में जो पुण्यरूपी जलहै उसका यह समुद्रहै, अब मैं निष्पाप हुआहूं मुझको उपदेश करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेराघववचनंनामचतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

वशिष्ठजी बोले, हे सुन्दरमूर्ते, रामजी! यह उत्तम सिद्धान्त जो उपशमप्रकरण है उसे सुनो, तुम्हारे कल्याण के निमित्त मैं कहताहूं। यह संसार महादीर्घरूप है और जैसे दृढ़थम्भ के आश्रय गृह होताहै तैसेही राजसी जीवों का आश्रय संसार मायारूप है। तुम सारिखे जो सात्त्विक में स्थित हैं वे शूरमे हैं; जो वैराग, विवेक आदिक गुणों से सम्पन्न हैं वे लीला करके यत्न विनाही संसार माया को त्याग देते हैं और जो बुद्धिमान् सात्त्विक जागे हुये हैं और जो राजस और सात्त्विक हैं वे भी उत्तमपुरुष हैं। वे पुरुष जगत् के पूर्व अपूर्व को बिचारतेहैं। जो सन्तजन और सत्शास्त्रों का संग करता है उसके आचरणपूर्वक वे बिचरते हैं और उससे ईश्वर परमात्मा के देखने की उन्हें बुद्धि उपजतीहै और दीपकवत् ज्ञान प्रकाश उपजता है। हे रामजी! जबतक मनुष्य अपने विचार से अपना स्वरूप नहीं पहिंचानता तबतक उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जो उत्तमकुल, निष्पाप, सात्त्विक–राजसी जीव हैं उन्हीं को विचार उपजता है और उस विचार से वे अपने आपसे आपको पाते हैं। वे दीर्घदर्शी संसार के जो नानाप्रकार के आरम्भ हैं उन को बिचारते हैं और विचार द्वारा आत्मपद पाते हैं और परमानन्द सुखमें प्राप्त होते हैं। इससे तुम इसी संसार को विचारो कि, सत्य क्या है और असत्य क्या है? ऐसे विचार से असत्य का त्याग करो और सत्य का आश्रय करो। जो पदार्थ आदि में न हो और अन्त में भी न रहे उसे मध्यमें भी असत्य जानिये। जोआदि, अन्त एकरसहै उसको सत्यजानिये और जो आदि अन्त में नाशरूप है उसमें जिसको प्रीति है और उसके रागसे जो रञ्जितहै वह मूढ़ पशु है;उसको विवेक का रङ्ग नहीं लगता। मनहीं उपजताहै और मनहीं बढ़ता है; सम्यक् ज्ञान के उदय हुये मन निर्वाण होजाताहै। मनरूपी संसार है और आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है। रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो कुछ आप कहते हैं वह मैंने जाना कि, यह संसार सर्वभावना में मनरूप है और जरा मरण आदिक विकार का पात्र भी मनहीं है। उसके तरनेका उपाय निश्चय करके कहो। हम सब रघुवंशियों के कुल के अज्ञानरूपी तम को हृदय से दूर करनेको आप ज्ञानके सूर्य हैं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम तो जीवको विचारपूर्वक वैराग करना है कि, सन्तजनों का संग और सत्शास्त्रों से मन को निर्मल करे। जब मनको

निर्मल करेगा तब स्वजनता से सम्पन्न होगा और वैराग उपजेगा। जब वैराग प्राप्त होगा तब ज्ञानवान् गुरु के निकट जावेगा और जब वह उपदेश करेंगे तब ध्यान, अर्चनादि के क्रम से परमपद को प्राप्त होगा। जब निर्मल विचार उपजता है तब अपने आपको आपसे देखता है–जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने बिम्ब को आपसे देखता है। जबतक विचाररूपी तट का आश्रय नहीं लिया तबतक संसार में तृणवत् भ्रमता है और जब विचार करके ज्यों की त्यों वस्तु जानता है तब सब दुःख मनसे नष्ट होजाते हैं। जैसे सोमजल के नीचे रेत जा रहती है तैसेही आधी पीड़ा उसकी रहजातीहै फिर उत्पन्न नहीं होता। जैसे जबतक सुवर्ण और राख मिली हुई है तबतक सोनार संशय में रहताहै और जब सुवर्ण और राख भिन्न हो-जाती है तब संशय रहित सुवर्ण को प्रत्यक्ष देखता है और तभी निःसंशय होता है; तैसेही अज्ञान से जीवों को मोह उत्पन्न होताहै और देह इन्द्रियों से मिला हुआ संशय में रहताहै। जब विचार से भिन्न २ जाने तब मोह नष्ट हो और तभी संशय से रहित शुद्ध अविनाशी रूप आत्मा को देखता है। विचार कियेसे मोह का अवसर नहीं रहता–जैसे अज्ञान पुरुष चिन्तामणि की क़ीमत नहीं जानसक्ता, जब उसको ज्ञान प्राप्त होता है तब ज्योंका त्यों जानताहै और मोह संशय निवृत्त होजाता है; तैसेही जीव जबतक आत्मतत्त्व को नहीं जानता तबतक दुःख का भोगी रहता है और जब ज्यों का त्यों जानता है तब शुद्ध शान्ति को प्राप्त होताहै। हे रामजी! आत्मा देह से मिश्रित भासता है पर वास्तव में कुछ मिश्रित नहीं; इससे अपने स्वरूप में शीघ्रही स्थित होजावो। निर्मल स्वरूप जो आत्मा है उसको रञ्चकमात्र भी देह से सम्बन्ध नहीं––जैसे सुवर्ण कीच में मिश्रित भासता है तौभी सुवर्ण को कीचका लेप नहीं–निर्लेप रहता है तैसेही जीव को देहमे कुछ सम्बन्ध नहीं निर्लेपही रहताहै–आत्मा भिन्न है; देह भिन्नहै। जैसे जल और कमल भिन्न रहते हैं। मैं ऊंची भुजा करके पुकारता हूं, मेरा कहा कोई नहीं मानता कि, संकल्पसे रहित होना परमकल्याण है। यही भावना हृदय में क्यों नहीं करते? जबतक जड़ धर्म है अर्थात् विषय भोगों में आस्था करता है और आत्मतत्त्व से शून्य रहता है तबतक मूढ़ रहता है; जबतक स्वरूप का प्रमाद है तबतक हृदयसे संसार का तम और किसी प्रकार दूर नहीं होता। चन्द्रमा उदय हो और अग्नि का समूह हो वा द्वादश सूर्य इकट्ठे उदय हों तौभी हृदय तम रञ्चकमात्र भी दूर नहीं होता और जब स्वरूप को जानकर आत्मा में स्थित हो तब हृदय का तम नष्ट होजावेगा। जैसे सूर्य के उदय हुये जगत् का अन्धकार नष्ट होता है। जबतक आत्मपद का बोध नहीं होता और भोगों में मन तद्रूप है तबतक संसार समुद्र में बहे जावोगे और दुःख का अन्त न आवेगा। जैसे आकाश में धूलि

भासती है परन्तु आकाश को धूलि का सम्बन्ध कुछ नहीं और जैसे जल में कमल भासता है परन्तु जल से स्पर्श नहीं करता, सदा निर्लेप रहता है; तैसेही आत्मा देह से मिश्रित भासता है परन्तु देह से आत्मा का कुछ स्पर्श नहीं, सदा विलक्षण रहता है, जैसे सुवर्ण कीच और मल से अलेप रहता है। देह जड़ है; आत्मा उससे भिन्न है और सुख दुःख का अभिमान आत्मा में भासता है वह भ्रममात्र असत्यरूप है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा और नीलता असत्यरूप है तैसेही आत्मा में सुख दुःखादि असत्यरूप हैं। सुख दुःख देह को होता है; सबसे अतीत आत्मा में सुख दुःख का अभाव है। यह अज्ञान करके कल्पित है, देह के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता; इससे सुख दुःख भी आत्मा में कोई नहीं, सर्वात्मामय शान्तरूप हैं। यह जो विस्तृतरूप जगत् दृष्टि आता है वह मायामय है; जैसे जल में तरङ्ग और आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में जो जगत् भासता है सो आत्माही है; न एक है, न दो हैं; सब आभासमात्र हैं और मिथ्यादृष्टि आकार भासता है। जैसे मणि का प्रकाश मणिसे भिन्न नहीं और जैसे अपनी छाया दृष्टि आती है तैसेही आत्मा का प्रकाशरूप जो जगत् भासता है वह सब ब्रह्मरूप है। मैं और हूं, यह जगत् और है; इस भ्रम को त्याग करो; विस्तृतरूप ब्रह्मघनसत्ता में और कोई कल्पना नहीं। जैसे जल में तरङ्ग कुछ भिन्न वस्तु नहीं जलरूपही है; तैसेही सर्वरूप आत्मा एकरूप है, उसमें द्वितीय कल्पना कोई नहीं। जैसे अग्नि में बरफ़ के कणके नहीं होते; तैसेही ब्रह्म में दूसरी वस्तु कुछ नहीं। इससे अपने स्वरूप की आपही भावना करो कि, 'मैं चिन्मात्ररूप हूं' "जगत्जाल सब मेराही स्वरूप है" और मैंहीं विस्तृतरूप हूं,। जो कुछ है वह देवही है; न शोक है, न मोह है, न जन्म है, न देह है । ऐसे जानके विगतज्वर होजावो; तुम्हारी स्थिरबुद्धि है और तुम शान्तरूप, श्रेष्ठ, मणिवत् निर्मल हो। हे राघव! तुम निर्द्वन्द्व होकर नित्यस्वरूप में निर्योगक्षेम, आत्मवान्, विशोक होकर स्थित होजावो और सत्यसंकल्प, धैर्यवान्, यथाप्राप्ति में बर्तो। तुम वीतराग, निर्यत्न, निर्मल, वातकल्मष हो; न देते हो, न लेते हो; ग्रहण त्याग से रहित शान्तरूप हो। विश्वसे अतीत जो पद है उसमें प्राप्त होकर जो पाने योग्य पद है उसको पाकर परिपूर्ण समुद्रवत् अक्षोभरूप, सन्ताप से रहित बिचरो। हे रामजी! संकल्पजाल से मुक्त और मायाजाल से रहित अपने आपसे तृप्त और विगतज्वर होजावो। आत्मवेत्ता का शरीर अनन्त है और तुमभी आदि अन्तसे रहित पर्वत के शिखरवत् विगतज्वर हो। हे रामजी! तुम अपने आपसे उदार होकर अपने आप आनन्द से आनन्दी होवो। जैसे समुद्र और पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने आनन्द से आनन्दवान् हैं तैसेही तुम भी आनन्दवान् हो। यह जो प्रपञ्चरचना भासती है सो असत्य

है; जो ज्ञानवान् हैं वे असत्य जानकर इसकी ओर नहीं धावते। तुम तो ज्ञानवान् हो असत्य कल्पना त्याग करके दुःखते रहितहो और नित्य, उदित, शान्तरूप, शुभगुण संयुक्त उपदेश द्वारा चक्रवर्ती होकर पृथ्वी का राज्यकरो, प्रजा की पालना करो और समदृष्टि से बिचरो। बाहर से यथाशास्त्र करो शुभचेष्टा और राज्य की मर्यादा रक्खो पर हृदय से निर्लेप रहना। तुमको त्याग और ग्रहण से कुछ प्रयोजन नहीं और ग्रहण त्याग से समबुद्धि समभाव से राज्य करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रथमउपदेशोनामपञ्चमस्सर्गः॥ ५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसकी हृदय से वासना नष्ट हुई है वह पुरुष जो कार्यों में बर्तता है तौभी मुक्त है। हमारे मत में बन्धन का कारण वासना है; जिस की वासना क्षय हुई है वह मुक्तस्वरूप है और जिसकी वासना पदार्थों में सत्य है वह बन्ध में है। कोई पुरुष अपने पुरुषार्थों का आश्रयकर कर्तव्य भी करते हैं और प्रीति करके प्रवर्तते हैं तो वे अपनी वासना से स्वर्ग में जाते हैं और फिर स्वर्ग को त्यागकर दुःख और नरक भोगते हैं। वे अपनी वासना से बांधे हुये पशु आदिक स्थावरयोनि को प्राप्त होते हैं और कोई आत्मवेत्ता पुण्यवान् पुरुष मन की दशा को बिचारते हैं और तृष्णारूपी बन्धन को काटकर निर्मल आत्मपद को प्राप्त होते हैं। जो पुरुष पूर्वजन्म को भोगकर इस जन्म में मुक्त होते हैं वे राजस–सात्त्विकी होते हैं। जिनका यह जन्म अन्त का होता है वे क्रम करके परिपूर्ण पद को प्राप्त होते हैं–जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा क्रम से पूर्णमासी का होताहै और सबकलाओं से पूर्ण होता है। जैसे वर्षाकाल में कण्टक वृक्ष की मञ्जरी बढ़जाती है तैसेही सौ-भाग्य और लक्ष्मी उनको बढ़तीजाती है। हे रामजी! जिनका यह जन्म अन्त का होता है उनमें निर्मल गुण जो वेद ने कहे हैं अर्थात् मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता और आर्यता प्रवेश करते हैं। सब जीवोंपर दया करनी मैत्री है; हृदय में सदा समताभाव रहना और कोई क्षोभ न उठना मुक्तता कहाना है; सदा प्रसन्न रहना सौम्यता है; यथाशास्त्र आचार करना आर्यता है और ज्ञान का नाम ज्ञातव्यता है। जैसे राजा के अन्तःपुर में श्रेष्ठ अङ्गना आ प्रवेश करती हैं तैसेही जिस को अन्त का यही जन्म है सो राजस–सात्त्विकी है और उसके हृदय में मैत्री आ-दिक सर्वगुण आ प्रवेश करते हैं। संसारी पुरुष सब कार्यों को करता है परन्तु उस के हृदय में लाभ अलाभ का राग द्वेष नहीं होता और सर्वदा काल समभाव रहता है। वह न तोषवान् होता है और न शोकवान् होता है। जैसे सूर्य के उदय हुये तम नष्ट होजाता है तैसेही आत्मभाव से राग द्वेष नष्ट होजाते हैं और सर्वगुण सिद्धता को प्राप्त होते हैं। जैसे शरत्काल का आकाश शुद्ध होताहै तैसेही वह कोमल और

सुन्दर होता है और उसका मधुर आचार होता है; सर्वजीव उसके आचार की वाञ्छा करते हैं और उसको देखके मोहित होजाते हैं। जैसे मेघकी ध्वनिसे बगुले आ प्रवेश करते हैं तैसेही उस पुरुष में सबगुण प्रवेश करते हैं और गुणों से पूर्ण होकर वह गुरु की शरण जाता है। तब वह उसे विवेक का उपदेश करता है और उस विवेक से वह परमपद में स्थित होता है। हे रामजी! जो वैराग्य और विचार से सम्पन्नचित्त है वह आत्मदेव को देखता है, उसको दुःख स्पर्श नहीं करता; वह यथार्थ एक आत्मरूप को देखता है। तुम विचार का आश्रय करके मनको जगावो; जिसमें मन नहीं मथन है अर्थात् सदा प्रपञ्च दृश्य का मननभाव करता है जो अन्त का जन्मवान् पुरुष है वह मनरूपी मृग को जगाता है। प्रथम तो गुणज्ञानसे जगाता है; फिर बड़े गुणों से जगाता है और फिर जानके सेवन का यत्न करता है उससे जगाता है। वह निर्मलबुद्धि से चित्तरूपी रत्नों को विचार करता है; उस विचार से जगत् को आत्मरूप देखता है और आत्मा के प्रकाश विचार से अविद्या मल नष्ट होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेक्रमोपदेशवर्णनंनामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तुमसे मैंने क्रम कहा सो वह सब जीवों को समान है इससे जो विशेष है वह तुम सुनो। इस जगत् के आरम्भ में जो देहधारी जीव हैं उन जीवों का प्रकाश से मोक्ष होताहै। एक उत्तम क्रम है और एक समान क्रम है। जो गुरु के निकटजावे और वह उपदेश करे तो उस उपदेश के धारण से शनैश्शनैः एक जन्म से अथवा अनेकजन्मों से सिद्धता प्राप्त होती है और दूसरा क्रम यही है जो अपने आप से वह उत्पन्न होता है अर्थात् समझ लेता है। जैसे वृक्ष से फल गिरे और किसी को आ प्राप्तहो तैसेही ज्ञान प्राप्त होता है। इसीपर पूर्व का वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूं सो तुम सुनो। वह महापुरुषों का वृत्तान्त है शुभ अशुभ गुणों के समूह जिनके नष्ट हुये हैं और अकस्मात् फल जिनको प्राप्त हुआ है उनका निर्मल क्रम सुनो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेक्रमसूचनानामसप्तमस्सर्गः॥ ७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसकी सब सम्पदा उदय हुई थी और सब आपदा नष्ट हुई थीं; ऐसा एक उदारबुद्धि विदेहनगर का राजा जनक हुआहै। वह बड़ा धैर्यवान् था, अर्थी का अर्थ कल्पवृक्षकी नाईं पूर्णकरे; मित्ररूपी कमलों को सूर्यवत् प्रफुल्लितकरे; बान्धवरूपी पुष्पों को बसन्तऋतुवत् और स्त्रियों को कामदेववत् था। ब्रह्मरूपी चन्द्रमुखी कमलका वह शीतल चन्द्रमा था, दुष्टरूपी तम का नाशकर्ता सूर्य था और स्वजनरूपी रत्नों का समुद्र पृथ्वीमें मानो विष्णुसूर्य स्थित हुआ था ऐसा राजा जनक

एकसमय लीला करके अपने बाग में जिस में मीठे फल लगे थे और नानाप्रकार के सुन्दर बेलों पर कोकिला शब्द करती थीं इसभांति गया जैसे नन्दनवन में इन्द्र प्रवेश करे। उस सुन्दरवन में पुष्पों से सुगन्ध फैलरही है। राजा अपने संगके अनुचरों को दूर त्यागकर आप अकेला कुञ्जों में विचरने लगा। वहां शाल्मलीनामक एकवृक्ष था उसके नीचे राजा ने शब्द सुना कि, अदृष्टसिद्ध जो विरक्तचित्त और नित्य पर्वतों में बिचरनेवाले हैं आत्मगीता का उच्चार करते हैं जिससे आत्मबोध प्राप्त होता है। उस गीता को राजा ने सुना कि, पहला सिद्ध बोला; यह द्रष्टा जो पुरुष है और दृश्य जो जगत् है उस द्रष्टा और दृश्य के मिलाप में जो बुद्धि में निश्चित आनन्द होताहै और इष्टके संयोग और अनिष्टके वियोग का जो आनन्द चित्तमें दृढ़ होताहै वह आनन्द आत्मा तत्त्व से उदय होताहै। स्पन्दरूप जिस आत्मा आनन्द से लव उठताहै उस की हम उपासना करतेहैं। दूसरा सिद्ध बोला कि, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य को वासना सहित त्याग करो। जो दर्शन से प्रथम प्रकाशरूप है और जिसके प्रकाशते यह तीनों प्रकाशते हैं उस आत्मा की हम उपासना करते हैं। तीसरा सिद्धबोला जो निराभास, निर्मल और आभासरूप है; जिसमें मनन के भाव का अभाव है; द्वितीय कल्पना का अभाव है और अद्वैतरूप है उसकी हम उपासना करते हैं। चौथा सिद्ध बोला कि, जो दोनों के मध्य में है और अस्ति नास्ति दोनों के पक्षों से रहित प्रकाशरूप सत्ता है और सब सूर्य आदिक को भी प्रकाशता है उस आत्मा की हम उपासना करते हैं। पञ्चमसिद्ध बोला कि, जो ईश्वर सकार और हकारहै अर्थात् सकार जिसके आदिमें है और हकार जिसके अन्त में है सो अन्त से रहित, आनन्द, अनन्त शिव परमात्मा सर्वजीवों के हृदय में स्थितहै और निरन्तर जो अहंरूप होकर उचार होता है उस आत्मा की हम उपासना करते हैं। छठासिद्ध बोला कि, हृदय में स्थित जो ईश्वर है उसको त्यागकर जो और देवके पानेकी यत्न करते हैं वे पुरुष हाथमें कौस्तुभ-मणि को त्यागकर और रत्नों की वाञ्छा करते हैं। सातवां सिद्ध बोला कि, जो सब आशा त्यागता है उसको फल प्राप्त होताहै और आशारूपी विषकी बेल वह मूल सं-युक्त नष्ट होजाती है अर्थात् जन्म मरण आदिक दुःख नष्ट होजातेहैं और फिर नहीं उपजते। जो पदार्थोंको अत्यन्त विरसरूप जानता है और फिर उनमें आशा बांधता है वह दुर्बुद्धि गर्दभ है—मनुष्य नहीं। जहां जहां विषयोंकी ओर दृष्टि उठतीहै उनको विवेक से नष्टकरो—जैसे इन्द्र ने वज्रसे पर्वतों को नष्ट कियाथा। जब इस प्रकार शुद्ध आचरण करोगे तब समभाव को प्राप्त होगे और उससे मन उपशम आत्मपद को प्राप्त होकर अक्षय अविनाशी पद पावेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसिद्धगीतावर्णनन्नामअष्टमस्सर्गः ॥ ८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! महीपति इस प्रकार सिद्धों की गीता सुनकर जैसे संग्राम में कायर विषाद को प्राप्त होताहै तैसेही विषाद को प्राप्त हुआ और सेना संयुक्त अपने गृह में आया। नौकर और सबलोग किनारे खड़ेरहे और राजा उनको छोड़कर चौखण्डे पर गया और झरोखेमें संसारकी चञ्चल गतिको इधर उधर देखकर विलाप करनेलगा कि, बड़ा कष्ट है कि; मैंभी संसार में लोगों की चञ्चल दशा से आस्था बांध रहा हूं। ये तो सबजीव जड़रूप हैं,चैतन्य कोई नहीं; जैसे और जीव पाषाणरूप हैं तैसेही मैंभी इनमें पाषाण होरहाहूं। काल अन्त से रहित अनन्त है और उसके कुछ अंशमें मेरा जीना है—इस जीने में मैं आस्था कररहाहूं। मुझको धिक्कार है कि, मैं अधम चेतन हूं। ये मेरे मन्त्री और राज्य और जीना सब क्षणभंगुर हैं। ये जो सुख हैं वे दुःखरूप हैं; इनसे रहित मैं किस प्रकार स्थित होऊं—जैसे महापुरुष बुद्धिमान् स्थित होते हैं जीवन आदि अन्त में तुच्छरूप हैं और मध्य में पेलवरूप हैं उनमें मैंने क्या मिथ्या आस्था बांधी है—जैसे बालक चित्र के चन्द्रमा को देख चन्द्रमा मानकर आस्था बांधे। यह प्रपञ्च रचना इन्द्रजाल की बाजीवत् है; बड़ा कष्ट है इसमें मैं क्यों मोहित हुआ हूं? जो वस्तु उचित, रमणीय, उदार और अकृत्रिम है वह इस संसार में रञ्चक भी नहीं; मेरी बुद्धि क्यों नष्ट हुई है। जो पदार्थ दूर हो और उसके पानेका मेरे मनमें यत्न हो तो वह निकटही है यह निर्णयकरो अथवा अर्थाकार जो संसार के पदार्थ हैं उनकी आस्था मैं त्यागताहूं। ये लोग सब आगमापायी हैं अर्थात् उदय होते और मिटजाते हैं और जल के तरङ्गों के सदृश सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं। जितने सुख दृष्टि आतेहैं वे दुःखसे मिश्रित हैं उनसे मैंने क्या आस्था बांधी है। सुख कदाचित् दिन, पक्ष, मास, वर्षादिक में आते हैं और दुःख बारम्बार आते हैं; मैं किस सुख से जीनेकी आस्था बांधूं? जो बड़ेबड़े हुये हैं वे सब नष्ट होगये हैं और स्थिर कोई न रहेगा। मैं बारम्बार विचार कर देखताहूं इससे मैंने जानाहै कि, इस जगत् में सत्य पदार्थ कोई नहीं—सब नाशरूप हैं। ऐसा कौन पदार्थ है कि, जिसमें आस्था बांधे? जो अब बड़े ऐश्वर्यवान् विराजते हैं सो कुछ दिन पीछे नीचे गिरपड़ेंगे। हे चित्त! बड़ा खेद है तूने किस बड़ाई में आस्था बांधी है। आयुर्बल से बांधा हुआ मैं किस विना कलङ्कित हुआहूं? ऊंचेपद में स्थिति होके भी मैं अध को गिराहूं। बड़ा कष्ट है कि, मैं आत्मा हूं और नाश को प्राप्त होताहूं। किस कारण अकस्मात् मुझको मोह आया है और मेरी बुद्धि को इसने उपहतकिया है—जैसे सूर्य के आगे मेघ आता है और सूर्य नहीं भासता तैसेही मुझे आत्मा नहीं भासता। भोगों से मेरा क्याहै और बांधवों से मेरा क्या है? इनमें मैं क्यों मोहित हुआहूं? देह अभिमान से जीव आपही बन्धायमान होताहै। देह में अहंकारही जरा मरणादिक

विकारों का कारण होताहै; इससे इनसे मेरा क्या प्रयोजन है। इन अर्थोंमें क्या बड़ाई है और राज्य में मैं क्यों धैर्य धरके बैठाहूं । ये सब पदार्थ क्षोभ के कारण हैं और ये ज्यों के त्यों रहते हैं । इनमें न मुझको ममता है न संग है-ये सर्व असत्यरूप हैं। संसारके सुख विषरूप हैं और इनमें आस्था करनी मिथ्या है; जो बड़े २ ऐश्वर्यवान् और बड़े पराक्रमी गुणवान् हुये हैं वे सब परिवारसंयुक्त मरगये हैं तो वर्तमान में क्या धैर्य करना है। कहां वह धन और राज और कहां उस ब्रह्मा का जगत् ? कई पुरुषों की पंक्ति वीतगई है हमको उनसे क्या विश्वासहै। देवताओं के नायक अनेक इन्द्र नष्ट होगये हैं-जैसे जल में बुद्बुदे उपजकर नष्ट होजाते हैं-तो मैं क्या इस संसार में आस्था बांधकर जीऊंगा। सन्तजन मुझको हँसेंगे; कई ब्रह्मा होगये हैं, कई पर्वत होगये हैं और कई धूल की कणिकावत् राजा होगये हैं तो मुझको इसजीने में क्या धैर्यहै ? संसाररूपी रात्रि में देहरूपी शून्यदृष्टि स्वप्ना है; उस भ्रमरूप में जो मैंने आस्था बांधी है इससे मुझको धिक्कार है। यह, वह और मैं इत्यादिक भ्रम आत्मा में मिथ्या कल्पना उठी है और अज्ञानियों की नाईं मैं स्थित हुआ हूं। अहंकाररूपी पिशाच करके क्षण क्षण में आयुर्बल व्यतीत होती है; देखते हुये भी नहीं दीखती। कालकी सूक्ष्मगति है जो सबको चरण के नीचे धरे है; सदाशिव और विष्णु को जिसने खेलने का गेंद किया है और वह सबको भोजन करताहै। इससे मुझको जीने में क्या आस्था बांधनी है ? जितने पदार्थ हैं वे निरन्तर नाश होते हैं; कोई दिनमें, कोई पक्ष में और कोई वर्ष में नाश होजाताहै। जो अविनाशी वस्तु है वह अबतक नहीं देखी वर्षों व्यतीत होगये हैं जीवों की चित्तरूपी नदी में भोगों की तृष्णारूपी तरङ्ग उछलती है; शान्त कदाचित् नहीं होती-जैसे वायु से नदी में तरङ्ग उछलते हैं और सोमता से रहित होजाते हैं। जिनको चित्त में भोगों की अभिलाषा है उनको अतुच्छपद दृष्टि नहीं आता और वे कष्ट से कष्ट को प्राप्त होतेहैं और उन्हें दुःख से दुःखान्तर प्राप्त होताहै। अबतक मैं विरक्त नहीं हुआ इससे मुझको धिक्कार है। जिसका अन्तःकरण नीच है उसने जिस२ वस्तु में कल्याणरूप जानके आस्था बांधी है वह २ नष्ट होती दीखती है। यह शरीर अस्थि-मांस से बनाहै और आदि अन्त संयुक्त इसका आकार है; मध्य में कुछ रमणीय भासता है परन्तु सब अपवित्र पदार्थों से रचा विना स्वरूप है; स्पर्श करनेके भी योग्य नहीं, उससे मुझको क्या प्रयोजन है। जिस २ पदार्थ से लोग आस्था बांधते हैं उस २ में मैं दुःखही देखता हूं और ये जीव ऐसे जड़ मूढ़ हैं कि, सदा इस में लगे रहतेहैं कि, कल यह पदार्थ मुझको प्राप्त होगा, अगले दिन यह मिलेगा। दिन दिन पाप करते और खेद पाते हैं तौभी त्याग नहीं करते । बालक अग्नि में पूर्ण मूढ़ता से बिचरते हैं; यौवन

अवस्था कामादि विकार से मिश्रित है और शेष जो वृद्धावस्था है उस में चित्त से दुःखी होताहै तो यह जड़ मूर्ख परमार्थकार्यको किसकाल में साधेगा। ये सब जगत् के पदार्थ आगमापायी विरस हैं और विषमदशा से दूषित हैं अर्थात् एक भावमें नहीं रहते। सर्व जगत् असाररूप है और सत्यबुद्धि से रहित असत्यरूप है; सार पदार्थ इसमें कोई नहीं। जो राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञ करते हैं वेमहाकल्प के किसी अंशकाल में स्वर्गपाते हैं अधिक तो नहीं भोगते? जो अश्वमेध यज्ञ करता है वह इन्द्र होताहै पर जो ब्रह्मा का एकदिन होताहै उसमें चतुर्दश इन्द्र राज्य भोगकर नष्ट होजाते हैं। जब सहस्र चौकड़ी युगों की व्यतीत होतीहैं तब ब्रह्मा का एकदिन होताहै ऐसे तीसदिनों का एकमास और द्वादश मास का एक वर्ष होताहै। सौवर्ष ब्रह्मा की आयुर्बलहै उस आयुर्बल को भोगकर ब्रह्माजी भी अन्तर्धान होजातेहैं उसका नाम महाप्रलय है। उस महाप्रलय के अन्त में इसने स्वर्गभोग किया तो असार सुख की आस्था क्या योग्य है? ऐसा सुख स्वर्ग में कोई नहीं; न पृथ्वी में है और न पाताल में है जो आपदा और दुःख से मिश्रित न हो। सर्वलोक आपदा संयुक्त हैं और सब दुःखो का मूल चित्त है जो शरीररूपी बांबी में सर्पवत् रहता है और आधि-व्याधि बड़े दुःखरूपी बिष देता है। यह जब किसी प्रकार निवृत्त हो तब सुखी हो। इससे सब जीव नीचप्रकृति होरहेहैं; कोई बिरला साधु है जिसके हृदय में चित्तरूपी सर्वभोगों की तृष्णारूप विषसंयुक्त नहीं होता। ये जगत् के पदार्थ सत्यता के मस्तक पर असत्यता हैं; जो रमणीय भासता है उसकेमस्तक पर अरमणीय स्थित हैं और जो सुखरूप है उसके मस्तक पर दुःख स्थितहैं जिसका मैं आश्रय करूं वह दुःख से मिश्रित है; दुःख तो दुःखसे मिश्रित क्याकहिये वहतो आपही दुःखहै और जो सुख सम्पदा है सो आपदा दुःखसे मिश्रित है; फिर मैं किसका आश्रय करूं? ये जीव जन्मते और मरतेहैं; इनमें कोईबिरला दुःखसे रहित है। ये सुन्दर स्त्रियां जिनके नील कमलवत् नेत्र हैं और परम हास्य विलास आदिक भूषणों से संयुक्त हैं, इनको देखके मुझको हँसी आती है कि; ये तो अस्थि मांस की पुतली हैं और क्षणमात्र इनकी स्थिति है। जिन पुरुषों के निमेष खोलने से जगत् होता है और उन्मेष मूंदने से जगत् का अभाव होजाताहै वेभी नष्टहुयेहैं तो हमारी क्या गिनती है? जो पदार्थ बड़े रमणीय भासते हैं वे अस्थित रूप हैं उन पदार्थों की चिन्ता और क्या इच्छाकरनी है? नाना प्रकार की सम्पदा प्राप्त होती हैं पर इनमें जब कोई चित्त को आलगता है तब सब सम्पदा आपदारूप होजाती हैं और जो बड़ी आपदा आ प्राप्त होतीहै और चित्त में क्षोभ नहीं होता शान्तरूप है तब वेही आपदा सम्पदारूप हैं? इससे यही सिद्ध हुआ कि, सब मनके फुरनेमात्र

है । क्षणभंगुररूप मन की वृत्ति अकस्मात् जगत् में इनकी स्थितिभई है और अ-ज्ञान से अहं इसकी कल्पना है उसमें त्याग और ग्रहण की भावना मिथ्या है। क्षीण-रूप संसार में सुख आदि अन्तसंयुक्त है। जो सुख जानकर जीव इसकी ओर धावता है वह सुख फिर नष्ट होजाता है—जैसे पतङ्ग दीपकशिखा को सुखरूप जानकर उसकी ओर धावता है तो दग्ध होजाता है तैसेही संसार के सुख ग्रहण करनेवाले तृष्णा से दग्ध हुये हैं। जैसे नरक का अग्नि दग्ध करता है पर वह भी श्रेष्ठ है प-रन्तु क्षणभंगुर जो संसार के सुख हैं वे महानीच हैं—नष्ट हुये भी दुःख देजातेहैं। और दुःखों की सीमा हैं पर जो इस संसारसमुद्र में गिरते हैं वे सुख नहीं पाते। सं-सार में दुःख स्वाभाविक हैं और दुःखसे मिश्रित हैं। मैंभी अज्ञानी की नाईं काष्ठ-लोष्ठवत् स्थित होरहाहूं और बड़ा खेद है। कि अज्ञानीवत् शमादिक सुख को त्याग करके क्षणभंगर संसार के सुख के निमित्त यत्न करताहूं। जैसे बरफ़ से अग्नि नहीं उपजती तैसेही संसार से सुख नहीं उपजते; जितने जीव हैं वे जड़ धर्मात्मक हैं संसाररूपी एक वृक्ष है और सहस्रों अंकुर, शाखा, पत्र, फल, फूलों से पूर्ण है। उस संसाररूपी वृक्ष का मूल मन है उसके संकल्परूपी जल से विस्तार को प्राप्त हुआ है और सङ्कल्प के उपशम हुये नष्ट होजाता है। इससे जिसप्रकार यह नष्ट हो वही उपाय मैं करूंगा। संसार में भोग देखनेमात्र सुन्दर भासतेहैं और भीतर से दुःखरूप हैं। मन मर्कटवत् चञ्चलरूप है, उसने यह रचना रची है। जबतक इसको वास्तव में नहीं जाना तबतक चञ्चल है और जब विचार से जानता है तब पदार्थों की रमणीयता सहित मन का अभाव होजाता है; इससे मैं नाशरूप पदार्थों में नहीं रमता। संसार की वृत्ति अनेक फांसियों से मिश्रित है उस में गिरके जीव फिर उछलते हैं और शान्त कदाचित् नहीं होते। ऐसी संसार की वृत्ति को मैंने चिरकाल पर्य्यन्त भोगा है अब मैं भोगसे रहित होकर ब्रह्मही होताहूं। इस संसार में बारम्बार जन्म मरण होता है और शोकही प्राप्त होता है इस से अब संसार की वृत्ति से रहित हो शोक से रहित होताहूं अब मैं प्रबुद्ध और हर्षवान् हुआ हूं। मैंने अपने चोर आपही देखेहैं। जिसका नाम मनहै इसीको मारूंगा। इस मनने मुझको चिर पर्यन्त मारा है। इतने कालपर्यन्त मेरा मनरूपी मोती अबेध रहा था अब मैंने इसको बेधा है अर्थात् आत्मविचार से रहित था सो अब उसको आत्मविचार में लगाया है; और अब यह आत्मज्ञान के योग्य है। मनरूपी एक बरफ़ का कण जड़ता को प्राप्त हुआ था अब विवेकरूपी सूर्य से गलगया है और अब मैं अक्षय शान्ति को प्राप्त हुआहूं। अनेक प्रकार के वचनों से साधुरूप जो सिद्ध थे उन्हों ने मुझको जगाया है और अब मैं आत्मपद को प्राप्त हुआ हूं। परमानन्द से अब मैं

आत्मरूपी चिन्तामणि को पाकर एकान्त सुखी होकर स्थित होऊंगा। जैसे शरत्-काल का आकाश निर्मल होता है तैसे होऊंगा। मनरूपी शत्रु ने मुझको भ्रम दिखाया था वह अब विवेकसे नाश किया है और उपशम को प्राप्त हुआहूं। हे विवेक! तुझको नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजनकविचारोनामनवमस्सर्गः॥ ९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब राजा चिन्तन करता था तब एक दासी ने राजा के निकट आकर कहा; हे देव! अब उठिये और दिनका उचित विचार अर्थात् स्नानादिक कीजिये। स्नानशाला में पुष्प, केसर और गङ्गाजल आदि के कलशे लेकर स्त्रियां खड़ी हैं और कमल पुष्प उनमें पड़े हैं जिनपर भँवरे फिरते हैं, छत्र चमर पड़े हैं, स्नान का समय है। हे देव! पूजन के निमित्त सब सामग्री आई है और रत्न और औषध ले आये हैं। हाथों में ब्राह्मण स्नान करके और पवित्रे डालकर अघमर्षण जाप कररहे हैं और आपके आगमन की राह देखते हैं। हाथों में चमर लेकर सुन्दरकान्ता तुम्हारे सेवन के निमित्त खड़ी हैं और भोजनशाला में भोजन सिद्ध होरहा है; इससे शीघ्र उठिये और जो कार्य है वह कीजिये; जैसा काल होता है उसके अनुसार कर्म बड़े पुरुष करते हैं इसका त्याग नहीं करते। इससे काल व्यतीत न कीजिये। हे रामजी! जब इस प्रकार दासी ने कहा तब राजाने विचारा कि, संसार की जो विचित्र स्थिति है वह कितेक मात्र है। राजसुखों से मुझको कुछ प्रयोजन नहीं, यह क्षणभंगुर है; इस सम्पूर्ण मिथ्या आडम्बरको त्याग के मैं एकान्त जा बैठताहूं-जैसे समुद्र तरङ्गोंसे रहित शान्तरूप होताहै तैसेही शान्तरूप होऊंगा। यह जो नाना प्रकार के राजभोग और क्रियाकर्म हैं उनसे अब मैं तृप्तहुआ हूं और सब कर्मों को त्यागकर केवल सुखमें स्थित होऊंगा। मेरा चित्त जिन भोगोंसे चञ्चल था वे भोगतो भ्रमरूप हैं इनसे शान्ति नहीं होती और तृष्णा बढ़ती जाती है। जैसे जल पर सेवाल बढ़तीजाती है और जलको ढांप लेती है तैसेही तृष्णा ढांपलेती है। अब मैं इसको त्याग करता हूं। हे चित्त! तू जिस जिस दशा में गिरा है और जो २ भोग भोगे हैं वे सब मिथ्या हैं; तृप्ति तो किसीसे न हुई? इससे भ्रमरूप भोगों को जब मैं त्यागूंगा तब परमसुखी होऊंगा। बहुत उचित अनुचित भोग बारम्बार भोगे हैं परन्तु तृप्ति कभी न हुई; इससे, हे चित्त! इनको त्याग करके परमपद के आश्रय होजा। जैसे बालक एक को त्यागकर दूसरे को अङ्गीकार करता है तैसेही यत्न विना तूभी कर। जब इन तुच्छ भोगों को त्यागेगा और परमपद का आश्रय करेगा तब आनन्दी तृप्ति को प्राप्त होगा और उसको पाकर फिर संसारी न होगा। हे रामजी! इस प्रकार चिन्तन करके जनक तूष्णी होरहा और मन की चपलता त्याग करके

सोमाकार से स्थित हुआ जैसे-मूर्ति लिखी होती है तैसेही होगया और प्रतिहारी भी भयभीत होकर फिर कुछ न कहसकी। इसके अनन्तर मनकी समता के निमित्त फिर राजा ने चिन्तन किया कि, मुझको ग्रहण और त्याग करने योग्य कुछ नहीं है; किसको मैं साधूं और किस वस्तु में मैं धैर्य धारूं; सब पदार्थ नाशरूप हैं मुझको करने से क्या प्रयोजन है और न करनेसे क्या हानि है। जो कुछ कर्तव्य है वह शरीर करता है निर्मल अचलरूप चेतन न करता है, न भोगता है। इससे मुझको कुछ कर्तव्य नहीं। जो त्याग करूंगा तो शरीर करने से रहित होगा और जो करूंगा तो भी शरीर करेगा, मुझको क्या प्रयोजन है? इससे करने और न करने में मुझको लाभ हानि कुछ नहीं जो कुछ प्राप्त हुआ है उसमें बिचरता हूं अप्राप्त की मैं वाञ्छा नहीं करता और प्राप्त मैं त्याग नहीं करता अपने स्वरूप में स्थित होकर स्वस्थ होऊंगा और जो कुछ प्राप्त कर्म है वही करताहूं, न कुछ मुझको करने में अर्थ है और न करनेमें दोष है जो क्रिया हो सो हो करो अथवा न करो और युक्त हो अथवा अयुक्त हो मुझको ग्रहण त्याग करने योग्य कुछ नहीं। इससे जो कुछ प्राप्त करने योग्य कर्म हैं वेही करूंगा कर्मका करना शरीर प्रकृति से होता है; आत्मा को तो कुछ कर्तव्य नहीं, इससे मैं इनमें निस्संग होरहूंगा। जो निस्पन्द चेष्टा हो तो क्या सिद्ध हुआ और क्या किया। जो मन कामना से रहित स्थित विगतज्वर हुआ अर्थात् हृदय में राग द्वेष मलीनता न उपजी तो देह से कर्म हो तौभी इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्ति में तुलना रहेगी और जो देह से मिलकर मन कर्म करताहै तब कर्ता भोक्ता है और इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेषवान् होताहै। जब मन का मनन उपशम होता है तब कर्तव्य में भी अकर्तव्य है। जैसा निश्चय हृदयमें दृढ़ होताहै वही रूप पुरुष का होताहै; जिसके हृदय में अहंकृत नहीं है और बाहर कर्म चेष्टा करता है तौभी उसने कुछ नहीं किया और जिसके हृदय में अहंकृत अभिमान है वह बाहर से अकर्ता भासताहै तौभी अनेक कर्म करता है। इससे जैसा निश्चय हृदय में दृढ़ होताहै तैसाही फल होताहै। जो बाहर कर्ता है परन्तु हृदय में कर्तव्य का अभिमान नहीं रखता न तो वह धैर्यवान् पुरुष अनामय पद को प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजनकनिश्चयवर्णनन्नामदशमस्सर्गः॥ १०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार बिचारके राजा यथाप्राप्तक्रिया केकरनेको उठ खड़ा हुआ और जो इष्ट अनिष्टकी वासनाथी वह चित्तसे त्यागदी। जैसे सुषुप्तिरूप पुरुष होता है तैसेही वह जाग्रत् में होरहा। निदान दिन को यथाशास्त्र क्रिया करे और रात्रिको लीला करके ध्यानमें स्थितहो। मनको समरस कर जब रात्रि क्षीण हुई तब इस प्रकार चित्तको बोध कियाकि, हे चञ्चलरूप, चित्त! परमानन्दस्वरूप जो

आत्मा है वह क्या तुझको सुखदायक नहीं भासता जो इस मिथ्या संसारसुख की इच्छा करता है। जब तेरी इच्छा शान्त होजावेगी तब तू सार सुख आत्मपद को प्राप्त होगा। ज्यों २ तू संकल्प लीलासे उठता है त्यों २ संसार जाल विस्तार होताजाता है। इस दुःखरूप संसार से तुझको क्या प्रयोजन है? हे मूर्ख, चित्त! ज्यों २ संकल्प इच्छा करता है त्यों २ संसार का दुःख बढ़ता जाता है। जैसे जल सींचने से वृक्ष की शाखा बढ़ती है तैसेही संसार सुख से अधिक दुःख प्राप्त होता है। ऐसे दुःखरूप भोगों की इच्छा क्यों करता है? यह संसार चित्तजाल से उपजाहै; जब तू इसका त्याग करेगा तब दुःख मिटजावेगा। फुरनेका नाम दुःखहै इसके मिटेसे दुःखभी कोई न रहेगा। यह महाचञ्चल संसार देखनेमें सुन्दर है वास्तव में कुछ नहीं। जो तुझको इससे कुछ सार प्राप्त हो तो इसका आश्रय कर पर यह तो क्षणभंगुर है और दुःख की खानि है; इसकी आस्था त्याग, आत्मतत्त्वका आश्रयकर और शुद्ध निर्मल होकर जगत् में बिचर, तब तुझको दुःख स्पर्श न करेगा। जगत् स्थित हो अथवा शान्त हो इसके उदय अस्त की वासना से इसके गुण अवगुण में आसक्त मतहो। जो अविद्यमान असत्यरूप हो उसकी आस्था क्या करनी? यह असत्यरूप है और तू सत्यरूप है; असत्य और सत्य सम्बन्धक कैसे हो? मृतक और जीने का कभी सम्बन्ध हुआ है? जो तू कहे कि, चेतनतत्त्व दृश्यरूप है तो दोनों सत्यस्वरूप हैं और विस्तृतरूप आत्मा ही हुआ तो हर्ष विषाद किसका करताहै? इससे तू मूढ़ मत हो; समुद्र की नाईं अक्षोभरूप अपने आपमें स्थित हो और संसार की भावना त्याग करके मान मोह मल को त्यागकर। इसकी इच्छाही दुःख का कारण है; इसको त्याग करके आत्मतत्त्व में स्थित हो तब परिपूर्णपद को प्राप्त होगा। इस लिये बल करके और इसका आश्रय करके चञ्चलता को त्याग॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तानुशासनन्नामएकादशस्सर्गः॥ ११॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार विचार करके राजा ने सब काम किये और आनन्दवृत्ति में उसका प्रबोधवान् मन मोहको न प्राप्त हुआ। वह इष्टमें हर्षवान् न हो और अनिष्ट में द्वेषवान् न हो केवल सम और स्वच्छ अपने स्वरूप में स्थित हुआ और जगत् में विचरने लगा; न कुछ त्याग करे, न कुछ ग्रहणकरे और न कुछ अङ्गीकार करे, केवल वीतशोक होकर सन्ताप से रहित वर्त्तमान में कार्यकरे और उसके हृदय में कोई कल्पना स्पर्श न करे–जैसे आकाश को धूलकी मलीनता स्पर्श नहीं करती। मलीनता से रहित अपने स्वरूप के अनुसंधान और सम्यक् ज्ञानके अनन्त प्रकाश में उसका मन निश्चलता को प्राप्त हुआ; मन की जो संकल्प वृत्ति थी वह नष्ट हो गई और महाप्रकाशरूप चेतन आत्मा अनामय हृदय में प्रकाशित हुआ। जैसे

आकाश में सूर्य प्रकाशता है तैसेही अनन्त आत्मा प्रकट हुआ और सम्पूर्ण पदार्थ उसमें प्रतिबिम्बित देखे । जैसे शुद्धमणि में प्रतिबिम्ब भासता है तैसेही उसने सर्व पदार्थ अपने स्वरूप में आत्मभूत देखे; इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट विषयों की प्रीति में हर्ष खेद मिट गया और सर्वदा समान हो प्रकृत व्यवहार करके जीवन्मुक्त हो बिचरने लगा । हे रामजी ! जनक को ज्ञानकी दृढ़ता हुई उससे लोकों के परावर को जानकर उसने विदेह नगर का राज्य किया और जीवों की पालना में हर्ष विषाद को न प्राप्त हुआ । वह संताप से रहित हो कोई अर्थ उदय हो अथवा अस्त होजा परन्तु हर्ष शोक कदाचित् न करे और कार्यकर्ता दृष्टि आवे परन्तु हृदय से कुछ न करे । हे रामजी ! तैसेही तुमभी कार्य सब करो परन्तु निरन्तर आत्मस्वरूप में स्थितरहो । तुम जीवन्मुक्त वपु हो राजा जनक की सब पदार्थ भावना अस्त होगई थी, उसकी सुषुप्तिवत् वृत्ति हुई थी, भविष्यत् की इच्छा नहीं करना था और व्यतीत की चिन्तना करता था जो वर्तमान कार्य प्राप्त हो उसको यथाशास्त्र करे और अपने विचार के वश से उसने पाने योग्य पद पाया और इच्छा कुछ न की । हे रामजी ! जीव आत्मपद को तभीतक नहीं प्राप्त होता जबतक हृदय में अपना पुरुषार्थरूपी विचार नहीं उपजा; जब अपने आपसे अपना विचाररूप पुरुषार्थ जागे तब सब दुःख मिटजावे और परमसंपदा को प्राप्त हो । ऐसा पद शास्त्र अर्थ और पुण्य क्रिया से नहीं प्राप्त होता जैसा अपने हृदय में विचार कियेसे होता है । वह पद निर्मल और स्वच्छ है और हृदय की तपन को निवृत्त करता है । बुद्धि के विचाररूपी प्रकाश से हृदय का अज्ञान नष्ट होजाता है; और किसी उपाय से नहीं नष्ट होता । जो बड़ा आपदारूप दुःख तरनेको कठिन है वह अपनी बुद्धि से तरना सुगम होताहै—जैसे जहाज़ से समुद्र को लंघजाता है । जो बुद्धि से रहित मूर्ख है उसको थोड़ी आपदा भी बड़ा दुःख देती है—जैसे थोड़ा पवन भी तृण को बहुत भ्रमाता है । जो बुद्धिमान् है उसको बड़ी आपदा भी दुःख नहीं देती—जैसे बड़ा वायुभी पर्वत को चला नहीं सक्ता । इसी कारण प्रथम चाहिये कि, सन्तों का संग और सत्शास्त्रोंका विचार करे और बुद्धि बढ़ावे । जब बुद्धि सत्यमार्ग की ओर बढ़ेगी तब परमबोध प्राप्त होगा—जैसे जल के सींचने और रखने से फूल फल प्राप्त होताहै तैसेही जब बुद्धि सत्यमार्ग की ओर धाती है तब परमानन्द प्राप्त होताहै । जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा पूर्णमासी से बहुत प्रकाशता है; जितने जीव संसार के निमित्त यत्न करते हैं वही यत्न सत्यमार्ग की ओर करें तो दुःख से मुक्त हों और परम संपदा के भण्डार को पावें । संसाररूपी वृक्ष का बीज बुद्धि की मूढ़ताहै; इस से मूढ़तासे रहित होना बड़ा लाभ है । स्वर्ग पाताल का राज आदिक जो कुछ पदार्थ प्राप्त होते हैं सो अपने बोधरूपी भण्डार

से मिलते हैं। संसाररूपी समुद्र के तरने को अपनी बुद्धिरूपी जहाज़ है और तप तीर्थ आदिक शुभआचार से जहाज़ चलता है। बोधरूपी पुष्प लता के बढ़ाने को दैवीसंपदा जल है उसके बढ़ने से सुन्दर फल प्राप्त होताहै। जो बोध से रहित बल ऐश्वर्य से बड़ाभी है उसको तुच्छ में अज्ञान नाशकर डालता है-जैसे बलसे रहित सिंह को गीदड़ हरिण भी जीत लेते हैं। इससे जो कुछ प्राप्त होता दृष्टि आता है वह अपने प्रयत्न से होताहै। अपनी बोधरूपी चिन्तामणि हृदय में स्थित है उससे विवेकरूपी फल मिलता है-जैसे कल्पलता से जो मांगिये वह पाते हैं तैसेही सर्व-फल बोध से पाते हैं। जैसे जाननेवाला केवट समुद्र से पार करता है अजान नहीं उतारसक्ता तैसेही सम्यक् बोध संसार समुद्र से पार करता है और असम्यक् बोध जड़ता में डालता है। जो अल्पभी बुद्धि सत्यमार्ग की ओर होती है तो बड़े संकट दूर करतीहै-जैसे छोटी बेड़ीभी नदी से उतार देती है हे रामजी! जो पुरुष बोधवान् है उसको संसार के दुःख नहीं बेध सक्ते-जैसे लोह आदिक का कवच पहिने हो तो उसको बाण बेध नहीं सक्ते। बुद्धि से मनुष्य सर्वात्म पद को प्राप्त होता है, जिस पद के पानेसे हर्ष, विषाद, संपदा, आपदा कोई नहीं रहती। अहंकाररूपी मेघ जब आत्मारूपी सूर्य के आगे आता है तो माया मलीनता से आत्मरूपी सूर्य नहीं भासता। बोधरूपी वायु से जब यह दूर हो तब आत्मारूपी सूर्य ज्यों का त्यों भासता है-जैसे किसान प्रथम हल आदिक से पृथ्वी को शुद्ध करता, फिर बीजबोताहै और जब जल सींचता है और नाश करनेवाले पदार्थों से रक्षा करता है तब फल पाताहै; तैसेही जब आर्यवादिगुणों से बुद्धि निर्मल होती है तब शास्त्र का उपदेशरूपी बीज मिलता है और अभ्यास वैराग करके करता है उससे परमपदकी प्राप्ति होती है वह अतुलपद है, उसके समान और कोई नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्राज्ञमहिमावर्णनंनामद्वादशस्सर्गः॥ १२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जनक की नाईं अपने आपसे आपको विचार करो और पीछे जो विदितवेद पुरुषों ने किया है उसी प्रकार तुमभी निर्वाण होजाओ। जो बुद्धिमान् पुरुष हैं और जिनका यह अन्तका जन्म है वे राजस-सात्विकी पुरुष आपही परमपद को प्राप्त होते हैं। जबतक अपने आपसे आत्मदेव प्रसन्न न हो तबतक इन्द्रीरूपी शत्रुओं के जीतने का यत्न करो और जब आत्मदेव जो सर्ववत् परमात्मा ईश्वरोंका भी ईश्वर है प्रसन्न होगा तो आपही स्वयंप्रकाश देखेगा और सर्व दोष दृष्टि क्षीण होजायगी। मोहरूपी बीज को जो मुट्ठी भरभर बोता था और नाना प्रकार की आपदारूपी वर्षा से महामोह की बेलि जो होती दृष्टि आती थी वह सब नष्ट हो जाती है। जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है तब भ्रान्तिदृष्टि

नहीं आती । हे रामजी ! तुम सदा बोध से आत्मपद में स्थितहो, जनकवत् कार्योंका आरम्भ करो और ब्रह्म लक्षवान् होकर जगत् में बिचरो तब तुमको खेद कुछ न होगा । जब नित्य आत्मविचार होता है तब परम देव आपही प्रसन्न होताहै और उसके साक्षात्कार हुये से तुम चञ्चलरूपी संसारीजनों को देखकर जनक की नाईं हँसोगे । हे रामजी ! संसार की भय से जो जीव भयभीत हुये हैं उनको अपनी रक्षा करने को अपनाही पुरुष प्रयत्न है और देव अथवा कर्म वा धन, बान्धवों से रक्षा नहीं होती । जो पुरुष देव को निश्चय करके रहे हैं पर शास्त्रविरुद्ध कर्म करते हैं और संकल्प विकल्प में तत्पर होते हैं वे मध्यबुद्धि हैं उनके मार्ग की ओर तुम न जाना उनकी बुद्धि नाशकरती है, तुम परम विवेक का आश्रय करो और अपने आपको आपसे देखो । वैराग्यवान् शुद्धबुद्धि से संसारसमुद्र को तरजाता है । यह मैंने तुमसे जनक का वृत्तान्त कहाहै—जैसे आकाशसे फल गिरपड़े तैसेही उसको सिद्धों के विचार में ज्ञान की प्राप्ति हुई । यह विचार ज्ञानरूपी वृक्ष की मञ्जरी है । जैसे अपने विचार मे राजा जनक को आत्मबोध हुआ तैसेही तुमको भी प्राप्त होगा । जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखकर प्रसन्न होताहै तैसेही इस विचारसे तुम्हारा हृदय प्रफुल्लित हो आवेगा और मनका मननभाव जैसे बरफ़ का कणका सूर्यसे तप्तहो गलजाताहै शान्त होजावेगा । जब अहं त्वं आदिक रात्रि विचाररूपी सूर्यसे क्षीण होजावेगी तब परमात्मा का प्रकाश साक्षात् होगा; भेद कल्पना नष्ट होजावेगी और अनन्त ब्रह्माण्ड में जो व्यापक आत्मतत्त्व है वह प्रकाशित होगा । जैसे अपने विचार से जनक ने अहंकार वासना का त्याग किया है तैसेही तुमभी विचार करके अहंकार वासना का त्याग करो । अहंकाररूपी मेघ जब नष्ट होगा और चित्ताकाश निर्मल होगा तब आत्मरूपी सूर्य प्रकाशित होगा । जबतक अहंकाररूपी मेघ आवरणहै तबतक आत्मरूपी सूर्य नहीं भासता । विचाररूपी वायु से जब अहंकाररूपी मेघ नाश हो तब आत्मरूपी सूर्य प्रकट भासेगा । हे रामजी ! ऐसे समझो कि, न मैं हूं न कोई । और है; न नास्ति है; न अस्ति है; जब ऐसी भावना दृढ़ होगी तब मन शान्त होजावेगा और हेयोपादेय बुद्धि जो इष्ट पदार्थों में होती है उसमें न डूबोगे । इष्ट अनिष्ट के ग्रहण त्याग में जो भावना होती है यही मन का रूप है और यही बन्धन का कारण है—इससे भिन्न बन्धन कोई नहीं । इससे तुम इन्द्रियों के इष्ट—अनिष्ट में हेयोपादेय बुद्धि मतकरो और दोनों के त्यागे से जो शेषरहे उसमें स्थित हो । इष्ट अनिष्ट की भावना उसकी की जाती है जिसको हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती और जबतक हेयोपादेय बुद्धि क्षीण नहीं होती तबतक समता भाव नहीं उपजता । जैसे मेघ के नष्ट हुये विना चन्द्रमा की चांदनी नहीं भासती तैसेही जबतक पदार्थों में इष्ट अनिष्ट

बुद्धि है और मन लोलुप होता है तबतक समता उदय नहीं होती। जबतक युक्त अयुक्त लाभ अलाभ इच्छा नहीं मिटती तबतक शुद्ध समता और निरसता नहीं उपजती। एक ब्रह्मतत्त्व जो निरामयरूप और नानात्व से रहित है उसमें युक्त क्या और अयुक्त क्या? जबतक इच्छा–अनिच्छा और वाञ्छित–अवाञ्छित यह दोनों बातें स्थित हैं अर्थात् फुरते और क्षोभ करते हैं तबतक सौम्यता भाव नहीं होता। जो हेयोपादेय बुद्धि में रहित ज्ञानवान् है उस पुरुष को यह शक्ति आ प्राप्त होती है–जैसे राजा के अन्तःपुर में पटरानी स्थित होती हैं। वह शक्ति यह है; भोगों में निरसता; देहाभिमान से रहित निर्भयता, नित्यता, समता, पूर्णआत्मा दृष्टि, ज्ञाननिष्ठा, निरिच्छता, निरहंकारता, आपको सदा अकर्ता जानना, इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में समचित्तता, निर्विकल्पता, सदा आनन्दस्वरूप रहना, धैर्य से सदा एकरस रहना, स्वरूप में भिन्नवृत्ति न फुरना, सब जीवों से मैत्रीभाव; सत्यबुद्धि, निश्चयात्मकरूप से तुष्टता, मुदिता और मृदुभाषणा; इतनी शक्ति हेयोपादेय से रहित पुरुष को आ प्राप्त होती हैं। हे रामजी! संसार के पदार्थों की ओर जो चित्त धावता है उसको वैराग्य से उलटाके खैंचना–जैसे पुल से जल के वेग का निवारण होता है तैसेही जगत् से निवारकर मन को आत्मपद में लगाने से आत्मभाव प्रकाशता है। इससे हृदय से सब वासना का त्याग करो और बाहर से सब क्रिया में रहो। वेग चलो, श्वास लो और सर्वदा, सर्वप्रकार चेष्टा करो, पर सर्वदा सर्व प्रकार की वासना त्याग करो। संसाररूपी समुद्र में वासनारूपी जल है और चिन्तारूपी सिवार है; उस जल में तृष्णावान् रूपी मच्छ फँसे हैं। यह विचार जो तुमसे कहाहै उस विचाररूपी शिला से बुद्धि को तीक्ष्णकरो और इस जाल को छेदो तब संसार से मुक्त होगे। संसाररूपी वृक्ष का मूल बीज मन है। ये वचन जो कहे हैं–उनको हृदय में धरकर धैर्यवान् हो तब आधि व्याधि दुःखों से मुक्त होगे। मन से मन को छेदो; जो बीती है उसको स्मरण करो और भविष्यत् की चिन्ता न करो क्योंकि; वह असत्यरूप है और वर्तमान कोभी असत्य जानके उसमें विचरो। जब मन से संसार का विस्मरण होता है तब मन में फिर न फुरेगा। मन में असत्यभाव जानके चलो बैठो, श्वास लो, निश्वासकरो, उछलो, सोवो, सब चेष्टा करो परन्तु भीतर सब असत्यरूप जानो तब खेद न होगा। अहंममरूपी जो मल को त्याग करो प्राप्ति में विचरो अथवा राज आ प्राप्तहो उसमें विचरो परन्तु भीतर से इसमें आस्था न हो। जैसे आकाश का सब पदार्थों में अन्वय है परन्तु किसीसे स्पर्श नहीं करता तैसेही बाहर कार्य करो परन्तु मन से किसी में बन्धायमान न हो तुम चेतनरूप अजन्मा महेश्वर पुरुष हो; तुम से भिन्न कुछ नहीं और सब में व्यापरहे हो। जिस पुरुष को सदा यही निश्चय

रहता है उसको संसार के पदार्थ चलायमान नहीं करसक्ते और जिनको संसार में आसक्त भावना है और स्वरूप भूले हैं उनको संसार के पदार्थों से विकार उपजता है और हर्ष, शोक और भय खींचते हैं; उससे वे बांधेहुये हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष राग द्वेष से रहित हैं उनको लोहा, बट्टा, पाषाण और सुवर्ण सब एक समान है। संसार वासना के त्यागने काही नाम मुक्ति है। हे रामजी! जिस पुरुष को स्वरूप में स्थिति हुई है और सुख दुःख में समता है वह जो कुछ करता, भोगता, देता, लेता इत्यादिक क्रिया करता है सो करता हुआ भी कुछ नहीं करता। वह यथा प्राप्त कार्य में बर्तता है। और उसे अन्तःकरण में इष्ट अनिष्ट की भावना नहीं फुरती और कार्य में राग द्वेषवान् होकर नहीं डूबता। जिसको सदा यह निश्चय रहता है कि, सर्व चिदाकाशरूप है औ जो भोगों के मनन से रहित है वह समताभाव को प्राप्त होता है। हे रामजी! मन जड़रूप है और आत्मा चैतनरूप है; उसी चैतन की सत्ता से जीव पदार्थों को ग्रहण करता है इस में अपनी सत्यता कुछ नहीं। जैसे सिंह के मारेहुये पशु को बिल्ली भी खानेजाती है, उसको अपना बल कुछ नहीं; तैसेही चैतन के बलसे मन दृश्य का आश्रय करता है, आप असत्यरूप है चैतनकी सत्ता पाकर जीता है; संसार के चिन्तवन को समर्थ होता है और प्रमाद से चिन्ता से तपायमान होता है। यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि; मन जड़ है और चैतनरूपी दीपक से प्रकाशित है। चैतनसत्ता से रहित सब समान है और आत्मसत्ता से रहित उठभी नहीं सक्ता। आत्मसत्ता को भुलाकर जो कुछ करता है उस फुरने को बुद्धिमान् कलना कहते हैं। जब वही कलना शुद्ध चेतनरूप आपको जानती है तब आत्मभाव को प्राप्त होताहै और प्रमाद से रहित आत्मरूप होता है। चित्तकला जब चैत्य दृश्य से स्फुर होतीहै उसका नाम सनातन ब्रह्म होता है और जब चैत्य के साथ मिलती है तब उसका नाम कलना होता है; स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं केवल ब्रह्म तत्त्व स्थित है और उस में भ्रान्ति से मन आदि भासते हैं। जब चेतन सत्ता दृश्य के सन्मुख होती है तब वही कलनारूप होती है और अपने स्वरूप के विस्मरण कियेसे और संकल्प की ओर धावनेसे कलना कहाती है। वह आपको परिच्छिन्न जानती है उससे परिच्छिन्न होजातीहै और हेयोपादेय धर्मिणी होती है। हे रामजी! चित्तसत्ता अपनेही फुरनेसे जड़ता को प्राप्त हुईहै और जबतक विचार करके न जगावे तबतक स्वरूप में नहीं जागती इसी कारण सत्यत्व शास्त्रों के विचार और वैराग से इन्द्रियों का निग्रह करके अपनी कलना को आप जगाओ। सब जीवों की कलना विज्ञान और सम करके जगाने से ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त होती है और इससे भिन्न मार्ग से भ्रमता रहता है। मोहरूपी मदिरा से जो पुरुष उन्मत्त होताहै वह विषयरूपी गढ़े में गिरता है।

सोई हुई कलना आत्मबोध से नहीं जगाते अप्रबोध ही रहते हैं सो चित्तकलना जड़ रहती है; जो भासती है तौभी असत्यरूप है। ऐसा पदार्थ जगत् में कोई नहीं जो संकल्प से कल्पित न हो; इससे तुम अजड़धर्मा होजाओ। कलनाजड़ उपलब्ध-रूपिणी है और परमार्थ सत्ता से विकाशमान होतीहै—जैसे सूर्यसे कमल विकाशमान होताहै। जैसे पाषाण की मूर्ति से कहिये कि, तू नृत्यकर तो वह नहीं करती क्योंकि जड़रूप है; तैसेही देह में जो कलना है वह चेतन कार्य नहीं करसक्ती। जैसे मूर्ति का लिखाहुआ राजा गुर गुर शब्द करके युद्ध नहीं करसक्ता और मूर्ति का चन्द्रमा औषध पुष्ट नहीं करसक्ता तैसेही कलना जड़रूप कार्य नहीं करसक्ती। जैसे निरवयव अङ्गनासे आलिङ्गन नहीं होता; संकल्प के रचे आकाश के वन की छाया के नीचे कोई नहीं बैठता और मृगतृष्णा के जलसे कोई तृप्त नहीं होता तैसेही जड़रूप मन क्रिया नहीं करसक्ता। जैसे सूर्य की धूप से मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसेही चित्त-कलना के फुरनेसे जगत् भासता है। शरीर में जो स्पन्दशक्ति भासती है वही प्राण-शक्ति है और प्राणोंसेही बोलता, चलता, बैठताहै। ज्ञानरूप संवित् जो आत्मतत्त्व है उससे कुछ भिन्न नहीं; जब संकल्प कला फुरतीहै तब अहंत्वं इत्यादिक कलना से वही रूप होजाताहै और जब आत्मा और प्राण का फुरना इकट्ठा होताहै अर्थात् प्राणों से चेतन संवित् मिलता है तब उसका नाम जीव होताहै। और बुद्धि, चित्त, मन, सब उसीके नाम हैं। सबसंज्ञा अज्ञान से कल्पित होती हैं। अज्ञानी को जैसे भासित है, तैसेही उसको है; परमार्थ से कुछ हुआ नहीं; न मन है, न बुद्धि है, न शरीर है केवल आत्मामात्र अपने आप में स्थित है—द्वैत नहीं। सब जगत् आत्मरूप है और काल क्रियाभी सब आत्मरूप है; आकाश से भी निर्मल, अस्ति, नास्ति, सर्व वहीरूप है और द्वितीय फुरनेसे रहित है इस कारण है और नहीं ऐसा स्थित है और सर्वरूप से सत्य है। आत्मा सबपदों से रहित है इस कारण असत्य की नाईं है और अनुभवरूप है इससे सत्य है और सर्वकलना से रहित केवल अनुभवरूप है। ऐसे अनुभव का जहां ज्ञान होताहै वहां मन क्षीण होजाताहै—जैसे जहां सूर्य का प्रकाश होता है वहां अन्धकार क्षीण होजाताहै। जब आत्मसत्ता में संवित् करके इच्छा फुरती है तो वह संकल्प के सन्मुख हुई थोड़ीभी बड़े विस्तार को पाती है; तब चित्त-कला को आत्मस्वरूप विस्मरण होजाताहै; जन्मोंकी चेष्टासे जगत् स्मरण होआता है और परमपुरुष को संकल्प से तन्मय होनेकरके चित्तनाम कहाता है। जब चित्तकला संकल्प से रहित होती है तब मोक्षरूप होताहै। चित्तकला फुरनेका नाम चित्त और मन कहते हैं और दूसरी वस्तु कोई नहीं। एकतामात्र ही चित्त का रूप है और सम्पूर्ण संसार का बीज मनहै। संकल्प के सन्मुख होकरके चेतन संवित् का नाम मन

होता है और निर्विकल्प जो चित्तसत्ता है वह जब संकल्प करके मलीन होती है तब उसको कलना कहते हैं। वही मन जब घटादिक की नाईं परिच्छिन्न भेद को प्राप्त होता है तब क्रियाशक्ति से अर्थात् प्राण और ज्ञानशक्ति से मिलताहै; उस संयोग का नाम संकल्प विकल्पका कर्ता मन होताहै। वही जगत् का बीज है और उसके लीन करने के दो उपाय हैं—एक तत्त्वज्ञान दूसरा प्राणों का रोकना। जब प्राणशक्ति का निरोध होताहै तब मन भी लीन होजाता है और जब सत्य शास्त्रों के द्वारा ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान होताहै तौभी लीन होजाताहै। प्राण किसका नाम है और मन किसको कहते हैं? हृदयकोश से निकल कर जो बाहर जाता है और फिर बाहर से भीतर आताहै वह प्राण है, शरीर बैठाहै और वासना से जो देश देशान्तर भ्रमता है उसका नाम मन होताहै; उसको वैराग और योगाभ्यास से वासना से रहित करना और प्राणवायु को स्थित करना ये दोनों उपाय हैं। हे रामजी! जब तत्त्वज्ञान होताहै तब मन स्थिर होजाताहै क्योंकि, प्राण और चित्तकला का आपसमें वियोग होताहै और जब प्राण स्थित होताहै तबभी मन स्थिर होजाताहै क्योंकि;प्राण स्थित हुये चेतनकला से नहीं मिलते तब मन भी स्थित होजाता है और नहीं रहता। मन चेतनकला और प्राण फुरने विना नहीं रहता। मनको भी अपनी सत्ताशक्ति कुछ नहीं, स्पन्दरूप जो शक्ति है वह प्राणों की है सो चलरूप जड़ात्मक है और आत्मसत्ता चेतनरूप है और वह अपने आपमें स्थितहै। चेतनशक्ति और स्पन्दशक्ति के सम्बन्ध होने से मन उपजा है सो उस मनका उपजना भी मिथ्या है। इसीका नाम मिथ्याज्ञान है। हे रामजी! मैंने तुमसे अविद्या जो परम अज्ञानरूप संसाररूपी विष के देनेवाली है कही है। चित्तशक्ति और स्पन्दशक्ति का सम्बन्ध संकल्प से कल्पित है; जो तुम संकल्प न उठावो। तो मनसंज्ञा क्षीण होजावेगी। इससे संसार भ्रम से भयवान् मत हो। जब स्पन्दरूप प्राण को चित्तसत्ता चेतती है तब चेतने से मन चित्तरूप को प्राप्त होता है और अपने फुरने से दुःख प्राप्त होता है जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्प कर भयवान् होता है। अखण्डमण्डलाकार जो चेतनसत्ता सर्वगत है उसका सम्बन्ध किसके साथ हो और अखण्डशक्ति उन्निद्ररूप आत्मा को कोई इकट्ठा नहीं करसक्ता इसी कारण सम्बन्ध का अभाव है। जो सम्बन्ध ही नहीं तो मिलना किससे हो और मिलाप न हुआ तो मनकी सिद्धता क्या कहिये? चित्त और स्पन्द की एकता मन कहाती है, मन और कोई वस्तु नहीं। जैसे रथ, घोड़ा, हस्ति,प्यादा इनके सिवा सेना का रूप और कुछ नहीं, तैसेही चित्त स्पन्द के सिवा मन का रूप और कुछ नहीं—इस कारण दुष्टरूप मनके समान तीनोंलोकों में कोई नहीं। जब सम्यक्ज्ञान हो तब मृतकरूप मन नष्ट होजाता है मिथ्या अनर्थ का कारण चित्त है इसको मत धरो अर्थात्

संकल्प का त्याग करो। हे रामजी! मन का उपजना मिथ्या है; परमार्थ से नहीं। संकल्प का नाम मन है इस कारण कुछ है नहीं। जैसे मृगतृष्णा की नदी मिथ्या भासती है तैसेही मन मिथ्या है हृदयरूपी मरुस्थल है, चेतनरूप सूर्य है और मनरूपी मृग-तृष्णा का जल भासता है। जब सम्यक्ज्ञान होता है तब इसका अभाव होजाता है। मन जड़ता से निःस्वरूप है और सर्वदा मृतकरूप है उसी मृतक ने सब लोगों को मृतक किया है। यह बड़ा आश्चर्य है कि, अङ्गभी कुछ नहीं देह भी नहीं और न आधार है, न आधेय है पर जगत् को भक्षण करता है और विना जालके लोगों को फँसाये है। सामग्री से बल, तेज, विभूति, हस्त पदाति रहित लोगों को मारता है; मानों कमल के मारनेसे मस्तक फटजाता है। जो जड़ मूक अधम हैं वे पुरुष ऐसे मानते हैं कि, हम बांधे हैं; मानों पूर्णमासी के चन्द्रमा की किरणों से जलते हैं। जो शूरमा होते हैं वे उसको हनन करते हैं। जो अविद्यमान मन है। उसी ने मिथ्या ही जगत् को मारा है और मिथ्या संकल्प से उदय और स्थित हुआ है। ऐसा दुष्ट है जोकि किसीने उसको देखा नहीं। मैंने तुमसे उसकी शक्ति कही है सो तो बड़ा आश्चर्यरूप विस्तृतरूप है चञ्चल अस्तरूप चित्त से मैं विस्मित हुआ हूं। जो मूर्ख है वह सर्व आपदा का पात्र है कि, मन है नहीं पर उससे वह इतना दुःख पाता है। बड़ा कष्ट है कि, सृष्टि मूर्खता से चलीजाती है और सब मनसे तपते हैं। यह मैं मानता हूं कि, सर्व जगत् मूढ़रूप है और तृष्णारूपी शस्त्र से कण २ होगयाहै; पेलवरूप है जो कमल से विदारण हुआ है, चन्द्रमा की किरणों से दग्ध होगये हैं; दृष्टिरूपी शस्त्र से बेधे हैं और संकल्परूपी मन से मृतक होगये हैं। वास्तव में कुछ नहीं मिथ्या कल्पना ने नीच कृपण करके लोगों को हनन किया है; इससे वे मूर्ख हैं। मूर्ख हमारे उपदेश योग्य नहीं, उपदेश का अधिकारी जिज्ञासी है। जिसको स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ पर संसार से उपशान्त हुआ है, मोक्ष की इच्छा रखता है और पदपदार्थ का ज्ञाता है वही उपदेश करने योग्य है। पूर्ण ज्ञानवान् को उपदेश नहीं बनता और अज्ञानी मूर्ख को भी नहीं बनता। मूर्ख वीणा की धुनि सुनकर भयवान् होताहै और बान्धव निद्रा में सोया पड़ा है; उनको मृतक जानके भयवान् होता है और स्वप्न में हाथी को देखकर भय से भागता है। इस मन ने अज्ञानियों को वश किया है और भोगों का लव जो तुच्छ सुख है उसके निमित्त जीव अनेक यत्न करते हैं और दुःख पाते हैं। हृदय में स्थित जो अपना स्वरूप है उसको वे नहीं देख सके और प्रमाद से अनेक कष्ट पाते हैं। अज्ञानी जीव मिथ्याही मोहित होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेमननिर्वाणवर्णनंनामत्रयोदशस्सर्गः॥ १३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसाररूपी समुद्र में राग द्वेषरूपी बड़े कलोल उठतेहैं

और उसमें वे पुरुष बहते हैं जो मनको मूढ़ जड़रूप नहीं जानते। उनको जो आत्मफल है सो नहीं प्राप्त होता। यह विचार और विवेक की वाणी मैंने तुमसे कही है सो तुम सारिखों के योग्य है। जिन मूढ़ जड़ों को मन के जीतनेकी सामर्थ्य नहीं है उन को यह नहीं शोभती और वे इन वचनों को नहीं ग्रहण करसक्के; उनको कहने से क्या प्रयोजन है? जैसे जन्म के अन्धेको सुन्दर मञ्जरीका बन दिखाइये तो वह निष्फल होताहै क्योंकि, वह देख नहीं सक्ता तैसेही विवेक वाणीका उपदेश करना उनको निष्फल होताहै। जो मनको जीत नहीं सक्के और इन्द्रियों से लोलुप हैं उनको आत्मबोध का उपदेश करना कुछ कार्य नहीं करता। जैसे कुष्ठ से जिसका शरीर गलगया है उसको नानाप्रकारकी सुगन्ध का उपचार सुखदायक नहीं होता, तैसेही मूढ़को आत्मउपदेशक बोध सुखदायक नहीं होता। जिसकी इन्द्रियां व्याकुल और विपर्यय हैं और जो मदिरा से उन्मत्त है उसको धर्मके निर्णय में साक्षी करना कोई प्रमाण नहीं करता। ऐसा कुबुद्धि कौन है जो श्मशान में शव की मूर्ति पाकर उससे चर्चा विचार और प्रश्नोत्तर करे? अपने हृदयरूपी बांबी में मूकजड़ सर्पवत् मन स्थितहै जो उसको निकालडाले वह पुरुषहै और जो उसको जीत नहीं सक्का उस दुर्बुद्धि को उपदेश करना व्यर्थ है। हे रामजी! मन महातुच्छ है। जो वस्तु कुछ नहीं उसके जीतने में कठिनता नहीं। जैसे स्वप्ननगर निकट होताहै और चिरपर्यन्तभी स्थितहै पर जाकर देखिये तो कुछ नहीं, तैसेही मन को जो विचारकर देखिये तो कुछ नहीं जिस पुरुषने अपने मन को नहीं जीता वह दुर्बुद्धि है और अमृत को त्यागकर विषपान करताहै और मर जाता है। जोज्ञानी है वह सदा आत्माही देखताहै। इन्द्रियां अपने २ धर्ममें बिचरती हैं प्राण की स्पन्द शक्ति है और परमात्मा की ज्ञानशक्ति है, इन्द्रियों को अपनी शक्ति है फिर जीव किससे बन्धायमान होता है? वास्तव में सर्वशक्ति सर्वात्मा है उससे कुछ भिन्न नहीं। यह मन क्या है? जिसने सब जगत् नीच किया है? हे रामजी! मूढ़ोंको देखकर मैं दयाकरता और तपताहूं कि ये क्यों खेद पाते हैं? और वह दुःखदायक कौन है जिससे वे तपतेहैं? जैसे उष्ट्र कण्टक के वृक्षों की परम्परा को प्राप्त होताहै तैसेही मूढ़ प्रमाद से दुःखों की परम्परा पाताहै। और वह दुर्बुद्धि देह पाकर मरजाता है। जैसे समुद्र में बुद्बुदे उपजकर मिटजाते हैं तैसेही संसारसमुद्र में उपजकर वह नष्ट हो जाता है; उसका शोक करना क्या है, वह तो तुच्छ और पशुसे भी नीच है? तुम देखो कि, दशो दिशाओं में पशु आदिक होते हैं और मरते हैं उनका शोक कौन करताहै? मच्छरादिक जीव नष्ट होजाते हैं और जलचर जल में जीवों को भक्षण करते हैं उनका विलाप कौन करताहै? आकाश में पक्षी मृतक होते हैं उनका कौन शोक करताहै? इसी प्रकार अनेक जीव नाश होते हैं उनका विलाप

कुछ नहीं होता; तैसेही अब जो हैं उनका विलाप न करना क्योंकि, कोई स्थिर न रहेगा सब नाशरूप और तुच्छ हैं। सबका प्रतियोगी काल है और अनेक जीवों को भोजन करता है। जूंआदिकों को मक्षिका और मच्छर आदिक खाते हैं और मक्षिका मच्छरादिकों को दादुर खाते हैं। मेढ़कों को सर्प; सर्पों को नेवला; नेवले को बिल्ली; बिल्ली को कुत्ते; कुत्तों को भेड़िया; भेड़ियों को सिंह; सिंहों को सरभ और सरभ को मेघ की गर्जना नष्ट करनी है। मेघको वायु; वायु को पर्वत; पर्वत को इन्द्र का वज्र और इन्द्रके वज्रको विष्णुजी का सुदर्शनचक्र जीतलेना है और विष्णुभी अवतारों को धरके सुख दुःख जरा मरण संयुक्त होते हैं। इसी प्रकार निरन्तर भूत जाति को काल जीर्ण करता है; परस्पर जीव जीवों को खाते हैं और निरन्तर नाना प्रकार के भूत जात दशोदिशाओं में उपजते हैं। जैसे जल में मच्छ, कच्छ; पृथ्वी में कीट आदि; अन्तरिक्ष में पक्षी; वनवीथी में सिंहादिक; मृगस्थावर में पिपीलिका, दर्दुर, कीटादि; विष्ठा में कृमि और और नाना प्रकार के जीवगण इसी प्रकार निरन्तर उपजते और मिटजाते हैं। कोई हर्षवान् होताहै, कोई शोकवान् होता है, कोई रुदन करताहै और कोई सुख और दुःख मानते हैं। पापी पापों के दुःख से निरन्तर मरते हैं और सृष्टि में उपजते और नाश होते हैं। जैसे वृक्षमे पत्ते उपजते हैं तैसेही कितने भूत उपजकर नाश होजाते हैं उनकी कुछ गिनती नहीं। जो बोधवान् पुरुष हैं वे अपने आपसे आप पर दया करके आपको संसारसमुद्र से पार करते हैं। हे रामजी! और जितने जीव हैं वे पशुवत् हैं; मूढ़ों और पशुओं में कुछ भेद नहीं और उनको हमारी कथा का उपदेश नहीं। वे पशुधर्मा इस वाणी के योग्य नहीं; देखनेमात्र मनुष्य हैं परन्तु मनुष्य का अर्थ उनसे कुछ सिद्ध नहीं होता। जैसे उजाड़ वन में ठूंठ वृक्ष छाया और फल से रहित किसी को विश्रामदायक नहीं होते तैसेही मूढ़ जीवों से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जैसे गले में रस्सी डालकर पशुको जहां खैंचते हैं वहां चलेजाते हैं तैसेही जहां चित्त खैंचता है वे वहीं चलेजाते हैं। मूढ़चित्त जीव पशु विषयरूपी कीच में फँसे हैं और उससे बड़ी आपदा को प्राप्त होते हैं। उन मूढ़ों को आपदा में देखके पाषाणभी रुदन करते हैं। जिन मूर्खों ने अपने चित्त को नहीं जीता उनको दुःखों के समूह प्राप्त होते हैं और जिन्होंने चित्त को बन्धन से निकाला है वे संपदावान् हैं; उनके सब दुःख मिटजाते हैं और वे संसार में फिर नहीं उपजते। इससे अपने चित्त के जीते विना दुःख नष्ट नहीं होते। जो चित्त जीतने से परमसुख न प्राप्त होता तो बुद्धिमान् इसमें न प्रवर्त्तते पर बुद्धिमान् इसके जीतने में प्रवर्त्तते हैं इससे जानिये कि, चित्तभी वश होता है और मनरूपी भ्रम के नष्ट हुये आत्मसुख प्राप्त होता है। हे रामजी! मनभी कुछ

है नहीं मिथ्याभ्रम से कल्पित है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैतालबुद्धि होती है और उससे वह भयवान् होता है तैसेही भ्रमरूप मन से नाश मानते हैं। जबतक आत्मसत्ता का विस्मरण है तबतक मूढ़ता है और हृदय में मनरूप सर्प बिराजता है; जब अपना विवेकरूपी गरुड़ उदय हो तब वे नष्ट होजाते हैं। अब तुम जागेहो और ज्योंका त्यों जानते हो। हे शत्रुनाशक, रामजी! अपनेही संकल्प से चित्त बढ़ता है, इसलिये उस संकल्प का शीघ्रही त्यागकरो तब चित्त शान्तहोगा। जो तुम दृश्यका आश्रयकरोगे तो बन्धन होगा और अहंकार आदिक दृश्यका त्याग करोगे तो अचित्त मोक्षवान् होगे। यह गुणों का सम्बन्ध मैंने तुमसे कहाहै कि, दृश्य का आश्रय करना बन्धन है और इससे रहित होना मोक्ष है। आगे जैसे इच्छा हो वैसे करो। इस प्रकार ध्यान करो कि, न मैं हूं और न यह जगत् है। मैं केवल अचलरूप हूं। ऐसे निःसंकल्प हुये से आनन्द चिदाकाश हृदयमें आ प्रकाशेगा। आत्मा और जगत् में जो विभाग कलना आ उदय हुई है वही मल है। इस द्वैत-भाव के त्याग किये से जो शेष रहेगा उसमें स्थित हो। आत्मा और जगत् में अन्तर क्या है? द्रष्टा और दृश्य के अन्तर जो दर्शन और अनुभवसत्ता है सर्वदा उसीकी भावना करो और स्वाद और अस्वाद लेनेवाले को त्याग कर उनके मध्य जो स्वादरूप है उसमें स्थित हो। वही आत्मतत्त्व है उसमें तन्मय होजाओ अनु-भव जो द्रष्टा और दृश्य है उसके मध्य में जो निरालम्ब साक्षीरूप आत्मा है उसीमें स्थित होजाओ। हे रामजी! संसार भावअभावरूप है उसकी भावना को त्याग करो और भावरूप आत्माकी भावनाकरो वही अपना स्वरूप है। प्रपञ्चदृश्य को त्याग किये से जो वस्तु अपना स्वरूप है वही रहेगा—जो परमानन्द स्वरूप है। चित्तभाव को प्राप्त होना अनन्त दुःखहै और चित्तरूपी संकल्पही बन्धन है; उस बन्धन को अपने स्वरूप के ज्ञान युक्त बल से काटो तब मुक्ति होगी। जब आत्मा को त्यागकर जगत् में गि-रता है तब नाना प्रकार संकल्प विकल्प दुःखों में प्राप्त होता है। जब तुम आत्मा को व्यतिरेक शब्द करोगे तब मन दुःखके समूह संयुक्त प्रकट होगा और व्यतिरेक भावना त्यागने से सब मन के दुःख नष्ट होजावेंगे। यह सर्व आत्मा है—आत्मा से कुछ भिन्न नहीं; जब यह ज्ञान उदय हो तब चैत्य, चित्त और चेतना—तीनोंका अ-भाव होजावेगा। मैं आत्मा नहीं—जीव हूं इसी कल्पना का नाम चित्त है। इस से अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। जब यह निश्चय हुआ कि, मैं आत्मा हूं—जीव नहीं; वह सत्य है कुछ भिन्न नहीं इसीका नाम चित्त उपशम है। जब यह निश्चय हुआ कि; सब आत्मतत्त्व है आत्मा से कुछ भिन्न नहीं तब चित्त शान्त होजाता है—इस में कुछ संशय नहीं। इस प्रकार आत्मबोध करके मन नष्ट होजाता है। जैसे सूर्य के

उदय हुये तम नष्ट होजाता है। मन सब शरीरों के भीतर स्थित है, जबतक रहता है तबतक जीव को बड़ा भय होता है। यह जो परमार्थयोग मैंने तुमसे कहा है, इस से मन को काटडालो। जब मन का त्यागकरोगे तब भय भी न रहेगा। यह चित्त भ्रममात्र उदय हुआ है। चित्तरूपी वैताल का सम्यक्ज्ञानरूपी मन्त्रसे अभाव हो-जाता है। हे बलवानों में श्रेष्ठ निष्पाप रामजी! जब तुम्हारे हृदयरूपी गृह में से चित्तरूपी वैताल निकलजावेगा तब तुम दुःखों से रहित और स्थित होगे और फिर तुम्हें भय उद्वेग कुछ न व्यापेगा। अब तुम मेरे वचनों से वैरागी हुये हो और तुमने मनको जीता है। इस विचार विवेक से चित्त नष्ट और शान्त होजाता है और नि-र्दुःख आत्मपद को प्राप्त होता है। सब एषणा को त्याग करके शान्तरूप स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तचैत्यरूपवर्णनंनामचतुर्दशस्सर्गः॥ १४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार तुम देखो कि, चित्त आप विचित्ररूप है और संसाररूपी बीज की कणिका है। जीवरूपी पक्षीके बंधन का जाल संसार है। जब चित्त संवित् आत्मसत्ता को त्यागता है तब दृश्यभाव को प्राप्त होता है और जब चित्त उपजता है तब कल्पनारूप मलधारण करता है वह चित्त बढ़कर मोह उपजता है, मोह से संसार का कारण होता है और तृष्णारूपी विष की बेलि प्रफु-ल्लित होती है उससे मूर्च्छित होजाता है और आत्मपद की ओर सावधान नहीं होता। ज्यों २ तृष्णा उदय होती है त्यों २ मोह को बढ़ाती है। तृष्णारूपी श्याम-रात्रि अनन्त अन्धकार को देती है; परमार्थसत्ता को ढांप लेती है और प्रलयकाल की अग्निवत् जलाती है उसको कोई संहार नहीं सक्ता वह सब को व्याकुल करती है। तृष्णारूपी तीक्ष्ण खड्ग की धारा दृष्टिमात्र कोमल, शीतल और सुन्दर है पर स्पर्श किये से नाश करडालती है और अनेक संकट देतीहै। जो बड़े असाध्य दुःख हैं व जिनकी प्राप्ति बड़े पापों से होती है वे तृष्णारूपी फूल का फल हैं। तृष्णारूपी कुतिया चित्तरूपी गृह में सदा रहती है; क्षण में बड़े हुलास को प्राप्त होती है और क्षण में शून्यरूप होजाती है और बड़े ऐश्वर्यसंयुक्त है। जब मनुष्य को तृष्णा उप-जती है तब वह दीन होजाता है। जो देखने में निर्द्धन कृपण भासता है पर हृदय में तृष्णा से रहित है वह बड़ा ऐश्वर्यवान् है। जिसके हृदय छिद्र में तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं पैठी उसके प्राण और शरीर स्थित हैं और उसका हृदय शान्तरूप होताहै। निश्चय जानो कि, जहां तृष्णारूपी काली रात्रि का अभाव होताहै वहां पुण्य बढ़ते हैं–जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा बढ़ताहै। हे रामजी! जिस मनुष्यरूपी वृक्ष का तृष्णारूपी घुन ने भोजन किया है उसकी पुण्यरूपी हरियाली नहींरहती और वह प्रफुल्लित नहीं होता। तृष्णारूपी नदी में अनन्त कलोल आवृत उठते हैं

और तृणवत् बहती है; जीवरूपी खेलनेकी पुतली है और तृष्णारूपी यन्त्री को भ्रमावती है और सब शरीरों के भीतर तृष्णारूपी तागा है उससे वे पिरोये हैं और तृष्णा से मोहित हुये कष्ट पाते हैं पर नहीं समझने–जैसे हरेतृण से ढँपेहुये गढ़ेको देखकर हरिणका बालक चरनेजाता है और गढ़े में गिर पड़ता है। हे रामजी! ऐसा और कोई मनुष्य के कलेजे को नहीं काटसक्ता जैसे तृष्णारूपी डाकिनी इसका उत्साह और बलरूपी कलेजा निकाललेती है और उससे वह दीन होजाता है। तृष्णारूप अमङ्गल इन जीवोंके हृदयमें स्थित होकर नीचता को प्राप्त करती है तृष्णा करके विष्णु भगवान् इन्द्र के हेतु से अल्पमूर्ति धारकर बलि के द्वार गये और जैसे सूर्य नीतिको धरकर आकाश में भ्रमता है तैसेही तृष्णारूपी ताग से बांधे जीव भ्रमते हैं। तृष्णारूपी सर्पिणी महाविष से पूर्ण होती है और सब जीवों को दुःखदायक है; इससे इसको दूर से त्याग करो। पवन तृष्णा से चलता है; पर्वत तृष्णा से स्थित है; पृथ्वी तृष्णा से जगत् को धरती है और तृष्णासेही त्रिलोकी वेष्टित है निदान सबलोक तृष्णा से बांधेहुये हैं। रस्सी से बांधा हुआ छूटता है परन्तु तृष्णा से बँधा नहीं छूटता तृष्णावान् कदाचित् मुक्त नहीं होता; तृष्णा से रहित मुक्त होता है। इस कारण; हे राघव! तुम तृष्णा का त्याग करो सब जगत् मनके संकल्प में है उस संकल्प से रहितहो। मनभी कुछ और वस्तु नहीं है युक्ति से निर्णय करके देखो कि, संकल्प प्रमादका नाम मन है। जब इसका नाश हो तब सब तृष्णा नाश होजावे। अहं, त्वं, इदं इत्यादिक चिन्तन मतकरो; यह महामोहमय दृष्टि है; इसको त्याग करके एक अद्वैत आत्मा की भावना करो। अनात्मा में जो आत्मभाव है वह दुःखों का कारण है। इसके त्यागे से ज्ञानवानों में प्रसिद्ध होगे। अहंभावरूपी अपवित्र भावना है उसको अपने स्वरूप शलाका की भावनारूपसे काटडालो। यह भावना पञ्चम भूमिका है; वहां संसार का अभाव है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णावर्णनंनामपञ्चदशस्सर्गः॥ १५॥

रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! ये आपके वचनगम्भीर और तोलसे रहित हैं। आप कहते हैं कि, अहंकार और तृष्णा मतकरो। जो अहंकार त्यागें तो चेष्टा कैसे होगी? तबतो देहका भी त्याग होजावेगा। जैसे वृक्ष थम्भके आश्रय होतेहैं। स्थम्भ के नाश हुये वृक्ष नहीं रहते तैसेही देह को अहंकार धारण कररहा है; उससे रहित देह गिरजावेगी, इससे मैं अहंकार को त्याग करके कैसे जीतारहूंगा? यह अर्थ मुझ को निश्चय करके कहिये क्योंकि, आप कहनेवालों में श्रेष्ठ हैं। वशिष्ठजी बोले, हे कमलनयन, रामजी! सर्व ज्ञानवानों ने वासना का त्यागकिया है सोदो प्रकारका है। एकका नाम ध्येयत्याग है और दूसरे का नाम ज्ञेयत्याग है। मैं यह पदार्थरूप

हूं; मैं इनसे जीता हूं; इन विना मैं नहीं जीता और मेरे सिवा यह भी कुछ नहीं, यह जो हृदय में निश्चय है उसको त्याग करके मैं बिचारताभया हूं कि न मैं पदार्थ हूं और न मेरे पदार्थ हैं। ऐसी भावना करनेवाले जो पुरुष हैं उनका अन्तःकरण आत्मप्रकाश से शीतल होजाता है और वे जो कुछ क्रिया करते हैं वह लीलामात्र है। जिस पुरुष ने निश्चय करके वासना का त्याग कियाहै वह सर्वक्रियाओं में सर्व आत्मा जानता है। उसको कुछ बन्धन का कारण नहीं होता; उसके हृदय में सर्व वासनाका त्याग है और बाहर इन्द्रियों से चेष्टा करता है। जो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है उसने जो वासना का त्याग किया है उस वासना के त्याग का नामध्येय त्याग है और जिस पुरुषने मनसंयुक्त देह वासना का त्याग कियाहै और उस वासना का भी त्याग किया है वह नेयत्याग है। नेयवासना के त्याग से विदेहमुक्त कहाता है। जिस पुरुष ने देहाभिमान का त्याग किया है; संसार की वासना लीला से त्याग की है और स्वरूप में स्थित होकर क्रियाभी करताहै वह जीवन्मुक्त कहाताहै। जिसकी सब वासना नाशहुई है और भीतर बाहर की चेष्टा से रहित हुआ है अर्थात् हृदय का संकल्प और बाहर की क्रिया त्यागी है उसका नाम नेयत्याग है—वह विदेहमुक्त जानो। जिसने ध्येय वासना का त्यागकिया है और लीला करके कर्ताहुआ स्थित है वह जीवन्मुक्त महात्मापुरुष जनकवत् है। जिसने नेयवासना त्यागी है और उपशमरूप होगया है वह विदेहमुक्त होकर परमतत्त्व में स्थित है। परात्पर जिसको कहते हैं वही होताहै। हे राघव! इन दोनों समपदत्यागों में स्थित हुये ब्रह्मपद को प्राप्त होता है। वे विगतसन्तापउत्तमपुरुष दोनों मुक्तस्वरूप हैं और निर्मलपद में स्थित होते हैं। एककी देह स्फुरणरूप होतीहै और दूसरेकी अस्फुर होती है। वह विदेहमुक्तरूप देह में स्थित होताहै और क्रिया करता सन्ताप से रहित जीवन्मुक्तज्ञान को धरता है और फिर दूसरी देह त्यागके विदेहपद में स्थित होताहै; उसके साथ वासना और देह दोनों नहीं भासते। इससे विदेहमुक्त कहाता है। जीवन्मुक्त के हृदयमें वासना का त्याग है और बाहर क्रिया करताहै। जैसे समय से सुख दुःख प्राप्तहोता है तैसेही वह निरन्तर राग द्वेष से रहित प्रवर्त्तता है और सुख में हर्ष नहीं दुःखमें शोक नहीं करता वहजीवन्मुक्त कहाता है। जिस पुरुष ने संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थों की इच्छा त्यागी है सो सब कार्य में सुषुप्ति की नाईं अचल वृत्ति है, वह जीवन्मुक्त कहाता है। हेयोपादेय, मैं और मेरा इत्यादि सब कलना जिसके हृदय से क्षीण होगई है वह जीवन्मुक्त कहाता है जिसकी वृत्ति सम्पूर्ण पदार्थों से सुषुप्ति की नाईं होगई है; जिसका चित्त सदा जाग्रत है और जो कलना क्रियासंयुक्त भी दृष्टि आता परन्तु हृदय में आकाशवत् निर्मल है वह जीवन्मुक्त पूजने योग्य है। इतना कहकर

बाल्मीकि जी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य भगवान् अस्त हुये; सभाके सब लोग स्नान के निमित्त परस्पर नमस्कार करके उठे और रात्रि व्यतीत करके सूर्य के उदय साथ परस्पर नमस्कार करके यथायोग्य अपने २ आसन पर आ बैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णाचिकित्सोपदेशोनामषोडशस्सर्गः ॥१६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो पुरुष विदेहमुक्त है वह हमारी वाणी का विषय नहीं; इससे तुम जीवन्मुक्त काही लक्षण सुनो । जो कुछ प्रकृत कर्म है उसको जो करता है परन्तु तृष्णा और अहंकार से रहित है और निरहंकार होकर बिचरता है वह जीवन्मुक्त है । दृश्य पदार्थों में जिसकी दृढ़ भावना है वह तृष्णा से सदा दुखी रहता है और संसार के दृढ़ बन्धन से बन्ध कहाताहै और जिसने निश्चय करके हृदय से संकल्प का त्याग किया है और बाहर से सब व्यवहार करता है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है । जो बाहर जगत् में बड़े आरम्भ करता है और इच्छा संयुक्त दृष्टि आता है पर हृदय में सब अर्थों की वासना और तृष्णा से रहित है वह मुक्त कहाता है । जिस पुरुष को भोगों की तृष्णा मिट गई है और वर्तमान में निरन्तर विचरता है वह निर्दुःख निष्कलङ्क कहाता है । हे महाबुद्धिमन् ! जिसके हृदय में इदं अहंकार निश्चय है और जो उसको धारकर संसार की भावना करता है उसको तृष्णारूप जंजीर से बांधा और कलना से कलङ्कित जानो । इससे तुम, मैं और मेरा; सत् और असत्य बुद्धि संसार के पदार्थों का त्याग करो और जो परमउदार पद है सर्वदा काल उसमें स्थित होजाओ । बन्ध, मुक्त, सत्य, असत्य की कल्पना को त्यागके समुद्रवत् अक्षोभचित्त स्थित हो; न तुम पदार्थजाल हो; न यह तुम्हारे हैं; असत्यरूप जानके इनका विकल्प त्यागो । यह जगत् भ्रान्तिमात्र है और इसकी तृष्णा भी भ्रान्तिमात्र है; इनसे रहित आकाश की नाईं सन्मात्र तुम सत्यस्वरूप हो और तृष्णा मिथ्यारूप है । तुम्हारा और इसका क्या संग है ? हे रामजी ! जीव को चारप्रकार का निश्चय होता है और वह बड़े आकार को प्राप्त होताहै । चरणों से लेकर मस्तकपर्यन्त शरीर में आत्मबुद्धि होना और माता पिता से उत्पन्न हुआ जानना; यह निश्चय बन्धनरूप है और असम्यक् दर्शन भ्रान्ति से होता है । यह प्रथम निश्चय है । द्वितीय निश्चय यहहै कि, मैं सबभावों और पदार्थोंसे अतीत हूं; बालके अग्र से भी सूक्ष्म हूं और साक्षीभूत सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म हूं । यह निश्चय शान्तिरूप मोक्ष को उपजाता है । जो कुछ जगत् जाल है वह सब पदार्थों में मैंहीं हूं और आत्मारूप मैं अविनाशी हूं । यह तीसरा निश्चय है; यहभी मोक्षदायक है । चौथा निश्चय यह है कि, मैं भी असत्य हूं और जगत् भी असत्य है; इनसे रहित

आकाश की नाईं सन्मात्र है। यहभी मोक्ष का कारण है। हे रामजी! ये चार प्रकार के निश्चय जो मैंने तुमसे कहेहैं उनमेंसे प्रथम निश्चय बन्धन का कारण है और बाक़ी तीनों मोक्ष के कारण हैं और वे शुद्धभावना से उपजते हैं। जो प्रथम निश्चयवान् है वह तृष्णारूप सुगन्ध से संसार में भ्रमता है और बाक़ी तीनों भावना शुद्ध जीवन्मुक्त विलासी पुरुष की हैं। जिसको यह निश्चय है कि, सर्व जगत् मैं आत्मस्वरूप हूं उसको तृष्णा और राग द्वेष फिर नहीं दुःख देते। अध, ऊर्ध्व, मध्य में आत्मा ही व्यापा है और सब मैंहीं हूं, मुझसे कुछ भिन्न नहीं है; जिसके हृदय में यह निश्चय है वह संसार के पदार्थों में बन्धायमान नहीं होता। शून्य प्रकृति माया, ब्रह्मा, शिव, पुरुष, ईश्वर सब जिसके नाम हैं वह विज्ञानस्वरूप एक आत्मा है।सदा सर्वदा एक अद्वैत आत्मा मैं हूं, द्वैतभ्रम चित्त में नहीं है और सदा विद्यमान सत्ता व्यापकरूप हूं। ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त जो कुछ जगत्जाल है वह सर्व परिपूर्ण आत्मतत्त्व भररहा है—जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे सर्व जलरूप हैं तैसेही सर्व जगत्जाल आत्मरूप ही है। सत्यस्वरूप आत्मा से द्वैत कुछ वस्तु नहीं है जैसे बुद्बुदे और तरङ्ग कुछ समुद्र से भिन्न नहीं हैं और भूषण स्वर्ण से भिन्न नहींहोते तैसेही आत्मसत्ता से कोई पदार्थ भिन्न नहीं। द्वैत और अद्वैत जो जगत् रचना में भेद है वह परमात्मा पुरुष की स्फुरण शक्ति है और वही द्वैत और अद्वैतरूप होकर भासता है। यह अपना है, यह और का है; यह भेद जो सर्वदा सबमें रहता है और पदार्थों के उपजने और मिटने में सुख दुःख भासता है उनका मत ग्रहण करो; भावरूप अद्वैत आत्मसत्ता का आश्रय करो और भ्रम द्वैत को त्याग करके अद्वैत पूर्णसत्ता होजाओ; संसार के जो कुछ भेद भासते हैं उनको मत ग्रहण करो इस भूमिकाकी भावना जो भेदरूप है वह दुःखदायी जानो। जैसे अन्धहस्ती नदी में गिरताहै और फिर उछलता है तैसेही तुम पदार्थों में मत गिरो। तुम पूर्णस्वरूप हो; महात्मा पुरुष के राग द्वेष कुछ सम्भव नहीं होते। सर्वगत आत्मा एक, अद्वैत, निरन्तर, उदयरूप और सर्वव्यापक है। एक और द्वैत से रहित भीहै; सर्वरूपभी वही है और निष्किञ्चनरूप भी वही है। न मैंहूं, न यह जगत् है, सब अविद्यारूप है; ऐसे चिन्तन करो और सबका त्याग करो। अथवा ऐसे विचारो कि, ज्ञानस्वरूप सत्य असत्य सब मैं हीं हूं। तुम्हारा स्वरूप सर्व का प्रकाशक, अजर, अमर, निर्विकार, निष्प्रिय, निराकार और परम अमृतरूप है और निष्कलङ्क जीवशक्ति का जीवनरूप और सर्व कलना से रहित कारण का कारण है। निरन्तर उद्योग ईश्वर विस्तृतरूप है और अनुभवस्वरूप सब अनुभव का बीज है। अपना आप आत्मपद उचित स्वरूप ब्रह्म, मैं और मेरा भाव से रहित है। इससे अहं और इदं कलना को त्याग करके अपने हृदय में यह

निश्चय धारो और यथाप्राप्त क्रिया करो। तुम तो अहङ्कार से रहित शान्तरूप हो॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णाउपदेशोनामसप्तदशस्सर्गः ॥ १७ ॥
वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिनका हृदय मुक्तस्वरूप है उन महात्मा पुरुषों का यह स्वभाव है कि, असम्यक् दृष्टि और देहाभिमान से नहीं रहते पर लीला से जगत् के कार्यों में बिचरते हैं और जीवन्मुक्त शान्तस्वरूप हैं। जगत् की गति आदि, अन्त, मध्य में विरस और नाशरूप है इससे वे शान्तरूप हैं और सब प्रकार अपना कार्य करते हैं। सब वृत्तियों में स्थित होकर उन्होंने हृदयसे ध्येयवासना त्यागीहै; निरालम्ब तत्त्व का आश्रय लिया है और सर्वमें उद्वेगसे रहित सर्व अर्थ में सन्तुष्टरूप हैं। विवेकरूपी वनमें वे सदा बिचरते हैं; बोधरूपी बागीचेमें स्थित हैं और सबसे अतीतपदका अवलम्बन किया है। उनका अन्तःकरण पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतलभया है; संसार के पदार्थों से वे कदाचित् उद्वेगवान् नहीं होते और उद्वेग और असन्तुष्टत्व दोनों से रहित हैं। वे संसार में कदाचित् दुःखी नहीं होते। वे चाहे शत्रुओं के मध्य में होकर युद्धकरें अथवा दया वा बड़े भयानक कर्म करते दृष्टआवें तौभी जीवन्मुक्त हैं। संसार में वे दुःखी नहीं होते और न किसी पदार्थ में आनन्दवान् होतेहैं; न किसी में कष्टवान् होते हैं न किसी पदार्थ की इच्छा करते हैं और न शोक करतेहैं; मौन में स्थित यथाप्राप्त कार्य करतेहैं और संसार में दुःख से रहित सुखी होते हैं। जो कोई पूछताहै तो वे यथाक्रम ज्योंका त्यों कहतेहैं और पूछे विना मूकजड़ वृक्षवत् होरहते हैं। इच्छा अनिच्छा से मुक्त संसार में दुःखी नहीं होते और सबसे हित करके और कोमल उचित वाणी से बोलते हैं। वे यज्ञादि कर्मभी करते हैं परन्तु संसारी कार्य में नहीं डूबते। हे रामजी! जीवन्मुक्त पुरुषयुक्त अयुक्त नाना प्रकार की उग्रदशा संयुक्त जगत् की वृत्ति को हाथ में बेल फलवत् जानता है परन्तु परमपद में आरूढ़ होकर जगत् की गति देखतारहता है और अपना अन्तःकरण शीतल और जीवों को तप्त देखता है। वह स्वरूपमें कुछ द्वैत नहीं देखता है परन्तु व्यवहार की अपेक्षा से उसकी महिमा कही है। हे राघव! जिन्होंने चित्त जीता है और परमात्मा देखा है उन महात्मा पुरुषों की स्वभाव वृत्ति मैंने तुम से कहीहै और जो मूढ़ हैं और जिन्होंने अपना चित्त नहीं जीता और भोगरूपी कीचमें मग्न हैं; ऐसे गर्दभों के लक्षण हमसे नहीं कहते बनते। उनको उन्मत्त कहिये उन्मत्त इस प्रकार होतेहैं कि, महानरककी ज्वाला स्त्री है और वे उस उष्णनरक अग्निके इन्धनहैं उसी में जलते हैं और नाना प्रकार के अर्थों के निमित्त अनर्थ उत्पन्न करते हैं। भोगों की अनर्थरूप दीनता से उनके चित्तहत हुये हैं और संसारके आरम्भ से दुःखी होतेहैं नाना प्रकारके कर्म जो वे करतेहैं उनके फल हृदयमें धारतेहैं और उन कर्मों के अनुसार सुख दुःख भोगतेहैं। ऐसे जो भोग लम्पट

हैं उनके लक्षण हम नहीं कहसके। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषों की दृष्टि पूर्व जो कही है उसीका तुम आश्रय करो। हृदय से ध्येयवासना को त्यागो और जीवन्मुक्त होकर जगत् में बिचरो। हृदय की संपूर्ण इच्छा त्यागके वीतराग और निर्वासनीक होरहो। बाहर सब आचारवान् होकर लोगों में बिचरो और सर्वदिशा और अवस्था का भलीप्रकार विचारकर उनमें जो अतुच्छ पद हों उनका आश्रय करो पर भीतर सर्व पदार्थों से निरस और बाहर इच्छा के संमुख हो। भीतर शीतल रहो और बाहर तपायमान हो; बाहरसे सबकार्यों का आरम्भ करो और हृदय से सब आरम्भ से विवर्जित होरहो। हे रामजी! अब तुम ज्ञानवान् हुयेहो और सब पदार्थों की भावना का तुम्हें अभाव हुआहै; जैसे इच्छा हो तैसे बिचरो। जब इन्द्रियों का इष्टपदार्थ होआवे तब कृत्रिम हर्षवान् होना और दुःख आय प्राप्त हो तब कृत्रिम शोक करना। क्रिया का आरम्भ करना और हृदयमें सारभूत रहना अर्थात् बाहर क्रिया करो पर भीतर अहंकार से रहित आकाशवत् निर्मल रहो। कार्यकलना से रहित होकर जगत् में बिचरो और आशारूप फांसी से मुक्तहोकर इष्ट अनिष्टसे हृदयमें सम रहो और बाहर कार्य करते लोगों में बिचरो। इस चैतन पुरुष को वास्तवमें न बन्ध है और न मोक्ष है; मिथ्या इन्द्रजालवत् बन्धमोक्ष संसार का वर्तना है। सबजगत् भ्रान्तिमात्र है पर प्रमाद से जगत् भासता है। जैसे तीक्ष्ण धूप से मरुस्थल में जल भासता है तैसेही अज्ञान से जगत् भासता है। आत्मा अबन्ध और सर्वव्यापकरूपहै, उसे बन्ध कैसेहो और जो बन्ध नहीं तो मुक्त कैसे कहिये। आत्मतत्त्व के अज्ञान से जगत् भासता है और तत्त्वज्ञान से लीन होजाता है—जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है और रस्सी के जानेसे सर्प लीन होजाताहै। हे रामजी! तुम तो ज्ञानवान् हुये हो और अपनी सूक्ष्मबुद्धि से निरहंकार हुये हो अब आकाश की नाईं निर्मल स्थित हो रहो। जो तुम असत्यरूप हो तो संपूर्ण मित्र भ्रातभी तैसेहीहैं उनकी ममता को त्यागकरो क्योंकि, जो आपी कुछ न हुआ तो भावना किसकी करेगा और जो तुम सत्यस्वरूप हो तो अत्यन्त सत्य आत्मा की भावना से दृश्य जगत् की भावना से रहित हो। यह जो अहं मम भोगवासना जगत् में है वह प्रमादसे भासती है और अहं मम और बान्धवों का शुभकर्म आदिक जो जगत्जाल भासता है इनसे आत्मा का कुछ संयोग नहीं तुम क्यों शोकवान् होते हो? तुम आत्मतत्त्व की भावनाकरो; तुम्हारा सम्बन्ध किसीसे नहीं—यह प्रपञ्च भ्रममात्र है। जो निराकार अजन्मा पुरुष हो उसको पुत्र बान्धव दुःख सुख का क्रम कैसेहो? तुम स्वतः, अजन्मा, निराकार, निर्विकार हो तुम्हारा सम्बन्ध किसीसे नहीं तुम इनका शोक काहे को करते हो? शोक करने का स्थान यह होता है जो नाशरूप हो सो न तो कोई जन्मता है और न मरता है और

जो जन्म मरण भी मानिये तो आत्मा उसको सत्ता देनेवाला है जो इस शरीर के आगे और पीछेभी होगा। आगे जो तुम्हारे बड़े बुद्धिमान्, सात्त्विकी और गुणवान् अनेक बान्धव व्यतीत हुये हैं उनका शोक क्यों नहीं करते? जैसे वे थे तैसेही तो येभी हैं? जो प्रथम थे वे अबभी हैं। तुम शान्तरूप हो; इससे मोह को क्यों प्राप्त होतेहो जो सत्यस्वरूप है उसका न कोई शत्रु है और न वह नाश होता है। जो तुम ऐसे मानते हो कि, मैं अबहूं आगे न हूंगा तौभी वृथा शोक क्यों करतेहो? तुम्हारा संशय तो नष्ट हुआ है; अपनी प्रकृति में हर्ष शोक से रहित होकर बिचरो और संसार के सुख दुःख में समभाव रहो। परमात्मा व्यापकरूप सर्वत्र स्थितहै और उससे कुछ भिन्न नहीं। तुम आत्मा आनन्द आकाशवत् स्वच्छ विस्तृत और नित्य शुद्ध प्रकाशरूप हो जगत् के पदार्थों के निमित्त क्यों शरीर सुखाते हो? सर्व पदार्थ जाति में एक आत्मा व्यापक है—जैसे मोती की माला में एक तागा व्यापक होता है तैसेही आत्मा अनुस्यूत है; ज्ञानवानों को सदा ऐसेही भासता है और अज्ञानियों को ऐसे नहीं भासता। इससे ज्ञानवान् होकर तुम सुखी रहो। यह जो संसरणरूप संसार भासता है वह प्रमाद से सारभूत होगया है। तुम तो ज्ञानवान् और शान्तबुद्धि हो। दृश्यभ्रममात्र संसार का क्या रूप है? भ्रम और स्वप्नमात्र से कुछ भिन्न नहीं। स्वप्न में जो क्रम और जो वस्तु है; सब मिथ्याही है तैसेही यह संसार है। सर्वशक्त जो सर्वात्मा है उसमें जो भ्रममात्रशक्ति है उससे यह संसारमाया उठी है, सो सत्य नहीं है। वास्तव में पूछो तो केवल ज्ञानस्वरूप एक आत्मसत्ताही स्थित है। जैसे सूर्य प्रकाशता है तो उसको न किसीसे विरोध है और न किसी से स्नेह है, तैसेही वह सर्वरूप, सर्वत्र, सर्वदा सर्वका ईश्वर है। उस सत्ता का आभास संवेदन स्फूर्त्ति है और उससे नानारूप जगत् भासता है और भिन्न भिन्नरूप निरन्तरही उत्पन्न होते हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं तैसेही देहधारी जैसी वासना करता है उसके अनुसार जगत्में उपजकर बिचरता और चक्र की नाईं भ्रमताहै। स्वर्ग में स्थित जीव नरक में जाते हैं और जो नरक में स्थित हैं वे स्वर्ग में जाते हैं; योनि से योन्यन्तर और द्वीप से द्वीपान्तर जाते हैं और अज्ञान से धैर्यवान् कृपणता को प्राप्त होता है और कृपण धैर्य को प्राप्त होताहै। इसी प्रकार भूत उछलते और गिरते हैं और अज्ञान से अनेक भ्रम में प्राप्त होते हैं पर आत्मसत्ता एकरूप, स्थित, स्थिर, स्वच्छ और अपने आपमें अचल है और दुःख, भ्रम उसमें कोई नहीं। जैसे अग्नि में बरफ़ का कणका नहीं पायाजाता तैसेही जो आत्मसत्ता में स्थित है उसको दुःख क्लेश कोई नहीं होता। उसका हृदय जो शीतल रहता है सो आत्मसत्ता की बड़ाई है। संसार की यही दशा है कि जो बड़े २ ऐश्वर्य से सम्पन्न दृष्टि आते थे वे कितनेक दिन पीछे नष्ट

होते देखे हैं। तुम और मैं इत्यादिक भावना आत्मा में मिथ्याभ्रम से भासती हैं। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही ये बान्धव हैं, ये अन्य हैं यह मैं हूं इत्यादिक मिथ्यादृष्टि तुम्हारी अब नष्ट हुई है। संसार की जो विचारदृष्टि है जिसमें जीव नष्ट होतेहैं उसे मूल से काटकर तुम जगत् में क्रिया करो। जैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त संसार में बिचरतेहैं तैसेही विचरो—भारवाहक की नाईं भ्रम में न पड़ना। जहां नाश करनेवाली वासना उठे वहां यह विचारकरो कि, यह पदार्थ मिथ्या है तब वह वासना शान्त होजावेगी। यह बन्ध है, यह मोक्ष है, यह पदार्थ नित्य है इत्यादिक गिनती लघुचित्त में उठती हैं, उदार चित्त में नहीं उठतीं। उदारचित्त जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनके आचरण के बिचारने में देहदृष्टि नष्ट होजावेगी। ऐसे बिचारो कि, जहां मैं नहीं वहां कोई पदार्थ नहीं और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो मेरा नहीं; इस विचार से देहदृष्टि तुम्हारी नष्ट होजावेगी। ऐसे ज्ञानवान् पुरुष संसार के किसी पदार्थ से उद्वेगवान् नहीं होते और किसी पदार्थ के अभाव हुये आतुर भी नहीं होते। वे चिदाकाशरूप सबको सत्य और स्थितरूप देखते हैं; आकाश की नाईं आत्मा को व्यापक देखते हैं और भाई, बान्धव भूतजात को अत्यन्त असत्यरूप देखते हैं। नाना प्रकार के अनेकजन्मों में भ्रम से अनेक बान्धव होगये हैं—वास्तव में त्रिलोकी और बान्धवों में भी बान्धव वही है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजीवन्मुक्तवर्णनंनामाष्टादशस्सर्गः॥ १८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रसंगपर एक पुरातन इतिहास है जो बड़े भाई ने छोटे भाई से कहा है सो सुनो। इसी जम्बूद्वीप के किसी स्थान में महेन्द्रनाम एक पर्वत है वहां कल्पवृक्ष था और उसकी छाया के नीचे देवता और किन्नर आकर विश्राम करते थे उस पर्वत के बड़े शिखर बहुत ऊंचे थे और ब्रह्मलोकपर्यन्त गये थे जिनपर देवता सामवेद की ध्वनि करते थे। किसी ओर जल से पूर्ण बड़े मेघ बिचरते थे, कहीं पुष्प से पूर्ण लताथीं, कहीं जल के झरने बहते थे और कन्दरा के साथ उछलते मानों समुद्र के तरङ्ग उठते थे, कहीं पक्षी शब्द करते थे, कहीं कन्दरा में सिंह गर्जते थे, कहीं कल्प और कदम्ब वृक्ष लगेथे, कहीं अप्सरागण बिचरती थीं, कहीं गङ्गाका प्रवाह चला जाताथा और किसी स्थान में महासुन्दर रमणीय रत्नमणि बिराजते थे। वहां गङ्गा के तटपर एक उग्रतपस्वी स्त्रीसंयुत तप करता था और उसके महासुन्दर दो पुत्र थे। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तो पुण्यकनामक पुत्र ज्ञानवान् हुआ पर पावन अर्धप्रबुद्ध और लोलुप अवस्था में रहा। जब कालचक्र के फिरने हुये कई वर्ष व्यतीत हुये तो उस दीर्घतपस्वी का शरीर जर्जरीभूत होगया और उसने शरीर की क्षणभंगुर अवस्था देखकर चित्त की वृत्ति देहसे विरक्त अर्थात्

विदेह होनेकी इच्छाकी। निदान दीर्घतपा की पुर्यष्टका कलनारूप शरीर को त्यागती भई और जैसे सर्प कञ्चुकी को त्याग दे तैसेही पर्वतकी कन्दरा में जो आश्रय था उसमें उसने शरीर को उतारदिया और कलनासे रहित अचैत्य चिन्मात्र सत्ता स्वरूप में स्थित हुआ और राग द्वेषसे रहित जो पद है उसमें प्राप्त हुआ। जैसे धूम्र आकाश में जा स्थितहो तैसेही चिदाकाश में स्थित हुआ। तब मुनीश्वर की स्त्रीने भर्ता का शरीर प्राणों से रहित देखा और जैसे दण्ड से कमल काटा हो तैसेही चित्त विना शरीर देखती भई। निदान चिरपर्यन्त योगकर्म कर उसने अपना शरीर प्राण और पवन को वश करके त्यागदिया और जैसे भवँरा कमलिनी को त्यागे तैसेही शरीर त्यागकर भर्ताके पद को प्राप्तहुई। जैसे आकाश में चन्द्रमा अस्त होताहै और उसकी प्रभा उसके पीछे अदृष्ट होती है तैसेही दीर्घतपा की स्त्री दीर्घतपा के पीछे अदृष्ट हुई। जब दोनों विदेहमुक्त हुये तब पुण्य जो बड़ा पुत्र था उनके दैहिककर्म में सावधान होकर कर्म करनेलगा पर पावन माता पिता विना दुःख को प्राप्त हो शोक करके उसका चित्त व्याकुल होगया और वन कुञ्जों में भ्रमनेलगा। पुण्य जो माता पिता की देहादिक क्रिया करताथा जहां पावनशोक से विलापकरताथा आया और भाई को शोकसंयुक्त देखकर पुण्य ने कहा; हे भाई! शोक क्यों करतेहो जो वर्षाकाल के मेघवत् आंशुओं का प्रवाह चलाजाता है? हे बुद्धिमन्! तुम किसका शोक करतेहो? तुम्हारे पिता और माता तो आत्मपद को प्राप्त हुये हैं जो मोक्षपद है। वही सर्वजीवों का स्थान है और ज्ञानवानों का स्वरूप है यद्यपि सबका अपना आप स्वरूप एकै है पर तौभी ज्ञानवान् को इस प्रकार भासता है और अज्ञानी को ऐसे नहीं भासता। वे तो ज्ञानवान् थे और अपने स्वरूप में प्राप्त हुये हैं उनका शोक तुम किस निमित्त करते हो? यह क्या भावना तुमने बांधी है? संसार में जो शोक मोक्षदायकहै वह तू नहीं करता और जो शोक करनेयोग्य नहीं वह करता है। न वह तेरी माता थी; न वह तेरा पिता था और न तू उनका पुत्र है; कई तेरे माता पिता होगये हैं और कई पुत्र होगये हैं; असंख्यबार तू उनका पुत्र हुआ है और असंख्य पुत्र उन्होंने उत्पन्न किये हैं और अनेक पुत्र, मित्र, बान्धवों के समूह तेरे जन्म २ के बीत गये हैं। जैसे ऋतु २ में बड़े वृक्षों की शाखाओं में फलहोते और नष्ट होजाते हैं तैसेही जन्म होते हैं; तू काहेको पिता माता के स्नेह में शोक करना है? जो तेरे सहस्रों माता पिता होकर बीतगये हैं उनका शोककाहेको नहीं करता? जो तू इस जन्म के बान्धवों का शोक करता है तो उनका भी शोककर? हे महाभाग! जो प्रपञ्च तुझको दृष्ट आता है वह जाग्रत्भ्रम है; परमार्थ में न कोई जगत् है, न कोई मित्र है और न कोई बान्धव है। जैसे मरुस्थल में बड़ी नदी भासती है

परन्तु उस में जलका एक बूंद भी नहींहोता तैसेही वास्तवमें जगत् कुछ नहीं। बड़े२ लक्ष्मीवान् जो छत्र चामरों से सम्पन्न शोभते हैं वे विपर्यय होंगे क्योंकि, यह लक्ष्मी तो चञ्चलस्वरूप है कोई दिनों में अभाव होजाती है । हे भाई! तू परमार्थदृष्टि से विचार देख, न तू है और न जगत् है; यह दृश्य भ्रान्तिरूप है इसको हृदय से त्याग। इसी मायादृष्टि से बार २ उपजता और बिनशता है । यह जगत् अपने संकल्पसे उपजा है, इस में सत्पदार्थ कोई नहीं। अज्ञानरूपी मरुस्थल में जगत्रूपी नदी है और उस में शुभ अशुभरूपी तरङ्ग उपजते और फिर नष्ट होजाते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेपावनबोधवर्णनंनामैकोनविंशतितमस्सर्गः॥१६॥

पुण्य बोले; हे भाई! कई माता और कई पिता हो होकर मिटगये हैं। जैसे वायु से धूल के कणके उड़ते हैं तैसेही बान्धव हैं; न कोई मित्र है; और न कोई शत्रु है; सम्पूर्ण जगत् भ्रान्तिरूप है और उस में जैसी भावना फुरती है तैसेही हो भासती है। बान्धव, मित्र, पुत्र आदिकों में जो स्नेह होता है सो मोह से कल्पित है और अपने मन से माता पितादिक संज्ञा कल्पी है। जगत् प्रपञ्च में जैसी संज्ञा कल्पता है तैसेही हो भासती है; जहां बान्धव की भावना होती है वहां बान्धव भासता है और जहां और की भावना होती है वहां औरही हो भासता है। जो अमृत में विष की भावना होती है तो अमृत भी विष होजाता है सो कुछ अमृत में विष नहीं भावनारूप भासता है; तैसेही न कोई बान्धव है और न कोई शत्रु है, सर्वदा काल विद्यमान एक सर्वगत सर्वात्मा पुरुष स्थित है उस में अपने और और की कल्पना कोई नहीं और जो कुछ देहादि हैं वे रक्त मांसादि के समूहसे रचे हैं उनमें अहंसत्ता कौन है और अहंकार, चित्त, बुद्धि और मन कौन है? परमार्थदृष्टि से यह तो कुछ नहीं है, विचार किये से न तू है, न मैं हूं, यह सब मिथ्याज्ञान से भासते हैं। एक अनन्त चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है उस में तेरी माता कौन है और पिता कौन है, यह सर्व मिथ्याभ्रम से भासता है, वास्तव में कुछ नहीं। शरीर से देखिये तो जो कुछ शरीर है वह पञ्चतत्त्वों से रचा जड़रूप है, उस में चैतन एकरूपहै और अपना और पराया कौन है। इस भ्रमदृष्टि को त्यागके तत्त्व का विचार करो; मिथ्याभावना करके माता पिताके निमित्त क्यों शोकवान् हुयेहो? जो सम्यक्दृष्टि का आश्रय करके उस स्नेह का शोक करते हो तो और जन्मों के बान्धव और मित्रों का शोक क्यों नहीं करते? अनेक पुष्पों और लताओं में तू मृगपुत्र हुआ था, उस जन्म के तेरे अनेक मित्र बान्धव थे उनका शोक क्यों नहीं करता? अनेक कमलों संयुक्त तालाब में हाथी विचरते थे वहां तू हाथी का पुत्र था; उन हस्ति बान्धवों का शोक क्यों नहीं करता? एक बड़े वन में वृक्ष लगे थे और तेरे साथ फल पत्र हुये थे और अनेक

वृक्ष तेरे बान्धव थे, उनका शोक क्यों नहीं करता ? फिर नदी तालाब में तुम मच्छ हुये थे और उस में मच्छयोनि के बान्धव थे; उनका शोक क्यों नहीं करता ? दशार्णव देश में तू काक और बानर हुआ, तुषारदेश में तू राजपुत्र हुआ और फिर वनकाक हुआ, बङ्गदेश में तू हाथी हुआ, बिराजदेश में तू गर्दभ हुआ; मालवदेश में सर्प और वृक्ष हुआ और बङ्गदेश में गृद्ध हुआ, मालवदेश के पर्वत में पुष्पलता हुआ और मन्दराचल पर्वत में गीदड़ हुआ; कोशलदेश में ब्राह्मण हुआ; बङ्गदेश में तीतर हुआ; तुषारदेश में घोड़ा हुआ; कीट अवस्था में हाथी हुआ; एक नीच ग्राम में बछरा हुआ और पन्द्रह महीने वहां रहा, एक बन में तड़ागथा वहां कमल पुष्प में भ्रमरा हुआ और जम्बूद्वीप में तू अनेकबार उत्पन्न हुआ है। हे भाई ! इस प्रकार वासनापूर्वक वृत्तान्त मैंने कहा है। जैसी तेरी वासना हुई है तैसे तू ने जन्म पाये हैं। मैं सूक्ष्म और निर्मलबुद्धि से देखताहूं कि, ज्ञान विना तू ने अनेक जन्म पाये हैं। उन जन्मों को जानके तू किस २ बान्धव का शोक करेगा और किस का स्नेह करेगा ? जैसे वे बान्धव थे तैसेही यह भी जानले। मेरे भी अनेक बान्धव हुये हैं; जिन २ में मैंने जन्म पाया है और जो २ बीत गये हैं तैसेही सब मेरे स्मरण में आते हैं और अब मुझको अद्वैत ज्ञान हुआ है। हे भाई ! त्रिरागदेश में मैं तोता हुआ; तड़ाग के तटपर हंस हुआ; पक्षियों में काकहुआ; बैल हुआ, बङ्गदेश में वृक्ष हुआ, इस वन पर्वत में बड़ा उष्ट्र होकर विचरा; पौंड्रदेश में राजा हुआ और सह्याचल पर्वत की कन्दरा में भेड़िया हुआ जहां तू मेरा वहां बड़ा भाई था। फिर मैं दश वर्ष मृग होकर रहा; पांच महीने तेरा भाई होकर मृग रहा सो तेरा बड़ा भ्राता हूं। इस प्रकार ज्ञान से रहित वासना कर्म के अनुसार कितने जन्मों में हम भ्रमते फिरे हैं। मैंने तुझ से सब कहा है और सब मुझको स्मरण है। इस प्रकार जगत्जाल की स्थिति मैंने तुझ से कही है। तेरे और मेरे अनेक जन्म के माता, पिता, भाई और मित्र हुये हैं उनका शोक तू क्यों नहीं करता ? यह संसार दुःखसुखरूप अप्रमाण भ्रमरूप है, इस कारण सब को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होजाओ। यह सब प्रपञ्च भ्रान्तिरूप है; इनकी वासना त्याग जब अहंकार वासना को त्याग करे। तब उसपद को प्राप्त होगे जहां ज्ञानवान् प्राप्त होते हैं। इससे, हे भाई ! यह जो जीवभाव अर्थात् जन्म, मरण, ऊर्ध्वजाना और फिर गिरना व्यवहार है उसमें बुद्धिमान् शोकवान् नहीं होते; वे दुःख की निवृत्ति के अर्थ अपना स्वरूप स्मरण करते हैं जो भाव, अभाव और जरा मरण विना नित्य शुद्ध परमानन्द हैं। तू उसको स्मरणकर, और मूढ़ मतहो; तुझको न सुख है, न दुःख है; न जन्म है, न मरण है; न माता है, न पिता है; तू तो एक अद्वैतरूप आत्मा है और किसी से सम्बन्ध नहीं

रखता क्योंकि; कुछ भिन्न नहीं है, हे साधो! यह जो नाना प्रकार का संसार विषय संयुक्त यन्त्र है इसको अज्ञानरूप नटुआ ग्रहण करता है और इष्ट अनिष्ट से बन्धायमान होताहै। जो आत्मदर्शी पुरुष हैं उनको कुछ क्रिया स्पर्श नहीं करती; वे केवल सुखरूप हैं और जो अज्ञानी हैं वे देह इन्द्रियों के गुणों में तद्रूप होजाने हैं और इष्ट अनिष्ट से सुखदुःख के भोक्ता होते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे देखनेवाले साक्षीभूत होते हैं;। करते हुये भी अकर्तारूप हैं और इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष से रहित हैं। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब आपड़ताहै परन्तु दर्पण भले बुरे रङ्ग से रञ्जित नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् राग द्वेष से रञ्जित नहीं होता। सब इच्छा और भयकलना से रहित स्वच्छ आत्मसत्ता सदा प्रफुल्लितरूप है और पुत्र, कलत्र, बान्धवों के स्नेह से रहित है और उसका हृदय कमल सर्व इच्छा और अहंमम से रहित अपने स्वरूप में सन्तुष्टवान् होता है। इससे मिथ्या देहादिकों की भावना को त्यागकर अपने नित्य, शुद्ध, शान्त और परमानन्दस्वरूप में तू भी स्थित हो। तू तो परब्रह्म और निर्मलरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेपावनबोधोनामविंशतितमस्सर्गः॥ २०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार पुण्य ने पावन से बोध उपदेश किया तब पावन बोधवान् हुआ। तब दोनों ज्ञानवान् के पारगामी और निरिच्छित आनन्दित पुरुष होकर चिरकाल पर्यन्त बिचरते रहे और फिर दोनों विदेहमुक्त निर्वाण पद को प्राप्त हुये। जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण होजाताहै तैसेही प्रारब्ध कर्म के क्षीणहुये दोनों विदेहमुक्त हुये। हे रामजी! इसी प्रकार तू भी जान। जैसे वे मित्र, बान्धव, धनादिक के स्नेह से रहित होकर बिचरे तैसेही तुमभी स्नेह से रहित होकर बिचरो और जैसे उन्होंने विचार किया था तैसेही तुमभी करो। इस मिथ्यारूप संसार में किसकी इच्छाकरे और किसका त्याग करे; ऐसे विचारकर अनन्त इच्छा और तृष्णा का त्यागकरना, यही औषधहै; तृष्णाकी इच्छाका पालना औषध नहीं क्योंकि; पालने से पूर्ण कदाचित् नहीं होती। जो कुछ जगत् है वह चित्त से उत्पन्न हुआ है और चित्त के नष्ट हुये संसार दुःख नष्ट होजाता है। जैसे काष्ठ के पानेसे अग्नि बढ़ता जाता है और काष्ठ से रहित शान्त होजाताहै तैसेही चित्त की चिन्तना से जगत् विस्तार पाता है और चिन्तना से रहित शान्त होजाता है। हे रामजी! ध्येय वासनावान् त्यागरूपी रथपर आरूढ़ होकर रहो, करुणा दया और उदारता संयुक्त होकर लोगों में बिचरो और इष्ट अनिष्ट में राग द्वेष से रहित हो। यह ब्रह्मस्थिति मैंने तुम से कही। निष्काम, निर्दोष और स्वस्थरूपको पाकर फिर मोह को नहीं प्राप्त होता। परम आकाशही इसका हृदयमात्र विवेक है और बुद्धि इसकी सखी है जिनके निकट

विवेक और बुद्धि है वे परमव्यवहार करते भी संकटको नहीं प्राप्त होते; इससे तुम परम विवेक और बुद्धि का संग लेकर जगत् में बिचरोगे तब संकट और दुःख से मोहित न होगे। नाना प्रकारके दुःख, संकट, स्नेह आदिक विकाररूप जो समुद्र है उसके तरने के निमित्त एक अपना धैर्यरूपी बेड़ा है और कोई उपाय नहीं सो धैर्य क्याहै—दृश्य जगत् से वैराग्य और सत् शास्त्र का विचार। इन श्रेष्ठगुणों के अभ्यास से आत्मपद की प्राप्ति होतीहै। वह आत्मपद त्रिलोकीके ऐश्वर्यरूपी रत्नोंका भण्डार है। जो त्रिलोकी के ऐश्वर्य से भी नहीं प्राप्त होता वह वैराग्य, विचार, अभ्यास और चित्त के स्थिर करने से होता है। तब तक मनुष्य जगत् कोष में उपजता है और मन तृष्णारूपी ताप से रहित नहीं होता तबतक कष्ट है और जब आत्मविवेक से मन पूर्ण होताहै तब सब जगत् अमृतरूप भासता है। जैसे जूती के पहिरने से सब पृथ्वी चर्म से वेष्टितसी होजाती है तैसेही पूर्णपद इच्छा और तृष्णा के त्यागने से पाता है। जैसे शरद्काल का आकाश मेघों से रहित निर्मल होता है तैसेही इच्छा से रहित पुरुष निर्मल होता है। जिनपुरुषों के हृदय में आशा फुरती है उनके वश हुये चित्त शून्य होजाता है और जैसे अगस्त्य मुनि ने समुद्र को पान किया था तब समुद्र जल से रहित होगया था तैसेही आत्मजल से रहित समुद्रवत् चित्त शून्य होजाता है। जिस पुरुष के चित्तरूपी वृक्ष में तृष्णारूपी चञ्चल मर्कटी रहती है उसको वह स्थिर होने नहीं देती और सदा शोभायमान होती है और जिसका चित्त तृष्णा से रहित है उस पुरुष को तीनों जगत् कमल की कली के समान होजाते हैं, योजनों के समूह गोपदवत् सुगम होजाते हैं और महाकल्प अर्ध निमेषवत्होजाताहै। हे रामजी! चन्द्रमा और हिमालय पर्वत भी ऐसा शीतल नहीं और केले का वृक्ष और चन्दन भी ऐसा शीतल नहीं जैसा शीतलचित्त तृष्णा से रहित होता है। पूर्णमासी का चन्द्रमा औरक्षीरसमुद्र भी ऐसा सुन्दर नहीं और लक्ष्मी का मुख भी ऐसा नहीं जैसा इच्छा से रहित मन शोभायमान होताहै। जैसे चन्द्रमा की प्रभा को मेघ ढांप लेताहै और शुद्धस्थानों को अपवित्र लेपन मलीन करता है तैसेही अहंतारूप पिशाचिनी पुरुषों को मलीन करतीहै। चित्तरूपी वृक्ष के बड़े २ टास दिशा विदिशा में फैलरहे हैं सो आशारूप हैं, जब विवेकरूपी कुलहाड़े से उनको काटेंगे तब अचित पद की प्राप्ति होगी और तभी एक स्थानरूपी चित्त रहेगा अविवेक और अधैर्य तृष्णा शाखा संयुक्त हैं उनकी अनेक शाखा फिर होंगी इसलिये आत्मधैर्य को धरो कि, चित्त की वृद्धि न हो। उत्तम धैर्य करके जब चित्त नष्ट होजावेगा तब अविनाशी पद प्राप्त होगा। हे रामजी! उत्तम हृदय क्षेत्र में जब चित्त की स्थिति होती है तब आशारूपी दृश्य नहीं उपजनेदेती केवल ब्रह्मरूप शेष रहताहै। जब तुम्हारा चित्त वृत्ति से रहित

अचितरूप होगा तब मोक्षरूप विस्तृतपद प्राप्त होगा। चित्तरूपी उलूकपक्षीकी तृष्णारूपी स्त्री है। ऐसा पक्षी जहां बिचरता है तहां अमङ्गल फैलाता है। जहां उलूक पक्षी बिचरते हैं वहां उजाड़ होता है विवेकादि जिससे रहित होगये हैं ऐसे चित्तकी वृत्ति से तुम रहित होरहो। ऐसे होकर बिचरोगे तब अचिन्त्यपद को प्राप्त होगे। जैसी जैसी वृत्ति फुरती है तैसाही तैसारूप जीव होजाता है; इसकारण चित्त उपशम के निमित्त तुम वही वृत्ति धरो जिससे आत्मपद की प्राप्ति हो। हे महात्मापुरुष! जिस को संसार के पदार्थों की इच्छा और ईर्षणा उपशम हुई है और जो भाव अभाव से मुक्त हुआ है वह उत्तमपद पाता है और जिसका चित्त आशारूपी फांसी से बांधा है वह मुक्त कैसे हो? आशा संयुक्त कदाचित् मुक्त नहीं होता और सदा बन्धायमान रहता है॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणेतृष्णाचिकित्सोपदेशोनामैकविंशतितमस्सर्गः॥२१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मैंने जो तुमको उपदेश किया है उसको बुद्धि से बिचारो। रामजी बोले; हे भगवन्! सर्वधर्मों के वेत्ता! तुम्हारे प्रसाद से जो कुछ जानने योग्यथा वह मैंने जाना; पानेयोग्य पद पाया और निर्मलपद में विश्राम किया भ्रमरूपी मेघ से रहित शरत्काल के आकाशवत् मेरा चित्त निर्मल हुआ है; मोहरूपी अहंकार नष्ट होगया है; अमृत से हृदय पूर्णमासी के चन्द्रवत् शीतल हुआ है और संशयरूपी मेघ नष्ट होगया है परन्तु आपके वचनरूपी अमृतको पान करता मैं तृप्त नहीं होता। जिस प्रकार बलि को विज्ञानबुद्धि भेद प्राप्त हुआ है, बोध की वृद्धि के निमित्त वह मुझसे ज्यों का त्यों कहिये। नम्रभूत शिष्यप्रति कहते हुये बड़े खेद नहीं मानते। वशिष्ठजी बोले; हे राघव! बलिका जो उत्तम वृत्तान्त है वह मैं कहताहूं सुनो; उससे निरन्तर बोध प्राप्त होगा। हे रामजी! इस जगत् के नीचे पाताल है। वह स्थान महाक्षीर समुद्र की नाईं सुन्दर उज्ज्वल है और वहां कहीं महासुन्दर नागकन्या बिराजती हैं; कहीं विषधर सर्प, जिनके सहस्रशीश हैं बिराजते हैं; कहीं दैत्यों के पुत्र रहते और कट कट शब्द करते हैं; कहीं सुन्दर सुख के स्थान हैं; कहीं जीवों के परम्परा समूह नरकों में जलते हैं और कहीं दुर्गन्ध के स्थान हैं। सात पाताल हैं उन सब में जीव स्थित हैं कहीं रत्नोंसे खचित स्थान हैं; कहीं कपिलदेवजी, जिनके चरण कमलोंपर देवता और दैत्य शीश धरते हैं, बिराजते हैं और कहीं रत्नों के सुगन्धित बाग लगे हैं। ऐसी दो भुजाओं से पाली हुई पृथ्वी में दानवों में श्रेष्ठ बिरोचन का पुत्र राजा बलि रहताथा जिसने सर्वदेवताओं और विद्याधरों और किन्नरों को लीला करके जीता था और त्रिलोकी अपने वश कर छोड़ी थी। सब देवताओं का राजा इन्द्र उसके चरण सेवन की वाञ्छा करता है; त्रिलोकी में जो जाति२

के रत्न हैं वे सब उसके विद्यमान रहते हैं और सब शरीरों की रक्षा करने और भावना के धर्मों के धरनेवाले विष्णुदेव द्वारपाल हैं । ऐरावत हाथी जिसके गण्डस्थल से मद झरता है उसकी वाणी सुन ऐसा भयवान् होता है जैसे मोर की वाणी सुनकर सर्प भयवान् होता है उसका ऐसा तेज था जैसे सप्तसमुद्रों का जल कुहीड़ शोषलेती है और जैसे प्रलयकाल के द्वादश सूर्यों से समुद्र सूखने लगता है। उस ने ऐसे यज्ञ करे जिसके क्षीर घृत की आहुतिका धुवां मेघ बादल होकर पर्वतोंपर बिराजा। जिसकी दृढ़ दृष्टि देखकर कुलाचल पर्वत भी नम्रीभूत होता था। जैसे फूलों से पूर्णलता नमती है तैसेही लीला करके उसने भुवन को विस्तार सहित जीता और त्रिलोकी को जीतकर दशकोटि वर्ष पर्यन्त राजा बलि राज्य करता रहा। राजा बलि ने युगों के समूह व्यतीत हुये देखे थे और अनेक देवता और दैत्य भी उपजते मिटते अनेक बार देखे थे। त्रिलोकी के अनेक भोग भी उसने भोगे थे निदान उनसे उद्वेग पाकर सुमेरु के शिखर पर एक ऊंचे झरोखे में अकेला जा बैठा और संसार की स्थिति की चिन्तना करनेलगा कि, इस बड़े चक्रवर्ती राज्यसे मुझको क्या प्रयोजन है ? यद्यपि त्रिलोकी का राज्य बड़ा है तो भी इस में आश्चर्य क्या है। इसमें मैं चिरकाल भोग भोगता रहाहूं परन्तु शान्ति न हुई। ये भोग उपजकर फिर नष्ट होजाते हैं, इन भोगों से मुझे शान्ति सुख प्राप्त नहीं हुआ पर बारम्बार मैं वही कर्म और वही व्यवहार करताहूं और दिनरात्रि वही क्रिया करने में लज्जा भी नहीं आती। वही स्त्री आलिङ्गन करती, फिर भोजन करना; पुष्पों की शय्यापर शयन करना और क्रीड़ा करनी; ये कर्म बड़ों को लज्जा के कारण हैं। वही निरस व्यवहार फिर करना जो एक बार निरस हुआ और उस काल में तृप्त करता है; फिर बारम्बार दिन२ करते हैं। यह मैं मानता हूं कि, यह काम बुद्धिमानों को हँसने योग्य और लज्जा का कारण है। जीवों के चित्त में वृथा संकल्प विकल्प उठतेहैं—जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और मिटते हैं तैसेही यह संकल्प और इच्छा जाल जो उठते और मिटते हैं सो उन्मत्त की नाईं जीवों की चेष्टाहै। यह तो हँसी करने योग्य बालकों की लीला है और मूर्खता से अनर्थ फैलाती है। इसमें जो कुछ बड़ा उदार फल हो वह मैं नहीं देखता बल्कि इसमें भोगों से भिन्नकार्य कुछ नहीं मिलता इस लिये जोकुछ इससे रमणीय और अविनाशी हो उसको शीघ्रही चिन्तन करूं। ऐसे विचार कर कहने लगा कि, मैंने प्रथम भगवान् विरोचन से पूछाथा। मेरा पिता विरोचन आत्मतत्त्व का ज्ञाता था और सर्वलोकों में गयाथा। उससे मैंने प्रश्न किया था कि, हे भगवन्, महात्मन् ! जहां सब दुःखों और सुखों का अन्त होजाता है और सर्वभ्रम शान्त होजाता है वह कौन स्थान है ? वह पद मुझसे कहिये जहां मन का मोह नाश हो-

जाता है; सर्वइच्छा से मुक्त होताहै और रागद्वेष से रहित जिसमें सर्वदा विश्राम होता है फिर कुछ क्षोभ नहीं रहता। हे तात! वह कौन पद है जिसके पायेसे और कुछ पाना नहीं रहता और जिसके देखे से और कुछ देखना नहीं रहता? यद्यपि जगत् के अत्यन्त भोग पदार्थ हैं तौ भी सुखदायक नहीं भासते हैं क्योंकि; क्षोभ करते हैं और उनसे योगीश्वरों के मन भी मोहित होकर गिर पड़ते हैं। हे तात! जो सुख सुन्दर विस्तीर्ण आनन्द है वह मुझ से कहिये। उसमें स्थित हुआ मैं सदा विश्राम पाऊंगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेविरोचनवर्णनंनाम
द्वाविंशतितमस्सर्गः॥ २२॥

विरोचन बोले, हे पुत्र! एक अतिविस्तीर्ण विपुल देश है उसमें अनेक सहस्र त्रिलोकियां भासती हैं। वहां समुद्र, जल, धारा, पर्वत, वन, तीर्थ, नदियां, तालाब, पृथ्वी, आकाश, नन्दनवन, पवन, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्यलोक, देश, देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, कमलोंकी शोभा, काष्ठ, तृण, चर, अचर, दिशा, ऊर्ध्व, अध, मध्य, प्रकाश, तम, अहं, विष्णु, इन्द्र, रुद्रादिक नहीं हैं; केवल एकही है—जो महान्ता नानाप्रकार प्रकाश को धरनेवाला है; सबका कर्ता, सर्वव्यापक है और सर्वरूप तूष्णींभाव से स्थित है। उसने सब मन्त्रियों सहित एक मन्त्री संकल्प किया। वह मन्त्री जो न बने उसको शीघ्रही बनालेता है और जो बने उसको न बनाने काभी समर्थ है वह आप से कुछ नहीं भोगता और सब जाननेको समर्थ है। केवल राजाके अर्थ वह सर्व कार्य का कर्ता है। यद्यपि वह आप अज्ञहै तौभी राजा के बल से तनुता से ज्ञाता और कार्य करता है। यह सब कार्यों को करता है और उसका राजा एकता में केवल अपने आपमें स्थित है। बलिने पूछा, हे प्रभो! आधि-व्याधि दुःखों से रहित जो प्रकाशवान् है वह देश कौन है, उसकी प्राप्ति किस साधनसे होती है और आगे किस ने पाया है? ऐसा मन्त्री कौन है और वह महाबली राजा कौन है जो जगत् जाल संयुक्त हमने भी नहीं जीता? हे देव! यह अपूर्व आख्यान तुमने कहा है जो आगे मैंने नहीं सुनाथा। मेरे हृदय आकाश में संशयरूपी बादल उदय हुआ है सो वचनरूपी पवनसे निवृत्तकरो। विरोचन बोले, हे पुत्र! उस देश का मन्त्री भगवान् और अनेक कल्प के देवता और असुरगणों से वश नहीं होता; सहस्रनेत्र जो इन्द्र हैं उनके वशभी नहीं होता; यम, कुबेर उसे वश कर नहीं सके और देवता और असुरों से भी जीता नहीं जाता। मुसल, वज्र, चक्र, गदादिक खड्ग उसपर चलाये कुण्ठित होजाते हैं—जैसे पाषाण पर चलाये से कमल कुण्ठित होजाते हैं। वह मन्त्री अस्त्र और शस्त्र से वश नहीं होता और बड़े युद्धकर्मों से भी नहीं पाया जाता। देवता

और दैत्य सबको उसने वश कियाहै; विष्णु पर्यन्त देवता और हिरण्यकशिपु आदिक असुर उसने डाल दिये हैं। जैसे प्रलयकाल का पवन सुमेरु के कल्पवृक्ष को गिरा देता है। प्रमाद से इस त्रिलोकी को वशकर चक्रवर्त्ती राजावत् वह स्थित है और सुर असुरों के समूह उससे भासते हैं। यद्यपि वह गुह्य और गुणहीन है तौ भी दुर्मति, दुष्ट अहंकार और क्रोध उससे उदय होते हैं। देवता और दैत्यों के समूह फिर फिर उपजाता है सो इसकी क्रीड़ा है। ऐसा मन्त्रों से संयुक्त मन्त्री है। हे पुत्र! जब उसके राजा को वश कीजिये तब उसके मन्त्री को वश करना सुगम होता है। राजा को वश किये विना मन्त्री वश नहीं होता; कभी भीतर रहताहै कभी बाहर जाता है। जिस काल में राजा की इच्छा होती है कि, मन्त्री अपने को जीते तब यत्न विना जीत लेता है। वह ऐसा बली मल्ल है जिससे तीनों जगत् उल्लास को प्राप्तहुये हैं वह मन्त्री मानो सूर्य है जिसके उदय हुये से त्रिलोकीरूपी कमलों कीखानि विकाश को प्राप्त होती है और जिसके लयहुये से जगत्रूपी कमल लय होजाते हैं। हे पुत्र! यदि उसके जीतने की तुझको शक्ति है तब तो तू पराक्रमवान् है और यदि मोहसे रहित एकत्र बुद्धि हो उससे एकको जीतसकेगा तब तू धैर्यवान् है और तेरी सुन्दर वृत्ति है क्योंकि; उस जीतने से जो नहीं जीता उस पर जीत पाता है और जो उसको नहीं जीता पर और और लोक सब जीते हैं तौभी जीते अजीत होजावेंगे। इस कारण जो तू अनन्तसुख चाहता है तो जो नित्य अविनाशी है उसके जीतने के निमित्त यत्न से स्थित हो और बड़े कष्ट और चेष्टा करके भी उसको वशकर। देवता, दैत्य, यक्ष, मनुष्य, महासर्प और किन्नरों संयुक्त अतिबली हैं तौभी सर्वओर से यत्नकरने से वश होते हैं। इस से उस को वश कर॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिवृत्तान्तविरोचन
गाथानामत्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥ २३ ॥

बलिने पूछा, हे भगवन्! किस उपायसे वहजीताजाता है औरऐसा महावीर्यवान् मन्त्री कौन है और राजा कौन है? यह वृत्तान्त सब मुझ से शीघ्रही कहिये कि, उपाय करूं। विरोचन बोले, हे पुत्र! स्थित हुआ भी त्यागने योग्य है। ऐसा मन्त्री जिस उपाय से जीतिये सो भली प्रकार कहताहूं तू सुन। उस युक्तिके ग्रहण कियेसे शीघ्रही वश होताहै; युक्ति विना वश नहीं होता। जैसे बालक को युक्ति से वश करते हैं तैसे ही जो पुरुष युक्ति से उस मन्त्री को वश करता है उसको राजा का दर्शन होता है। और उससे परमपद पाता है। जब राजा का दर्शन होता है तब मन्त्री वश होजाता है और उस मन्त्री के वश किये से फिर राजा का दर्शन होता है। जबतक राजा को न देखा तबतक मन्त्री वश नहीं होता और जबतक मन्त्री को वश नहीं किया तब-

तक राजा का दर्शन नहीं होता। राजा के देखे विना मन्त्री का जीतना कठिन है और मन्त्रीके जीते विना राजा को देखना कठिनहै। इसकारण दोनों का इकट्ठा अभ्यासकर। राजा का दर्शन और मन्त्री का जीतना अपने पुरुष प्रयत्न और शनैः शनैः अभ्यास से होता है और दोनों के सम्पादन से मनुष्य शुभता को प्राप्त होता है। जब तू अभ्यास करेगा तब उस देश को प्राप्त होगा; यह अभ्यास का फल है। हे दैत्यराज! जब उसको पावेगा तब रञ्चक भी शोक तुझको न रहेगा और सब यत्नों से शान्त होकर नित्य प्रफुल्लित और प्रसन्न रहेगा। जो साधु जन हैं वे सर्वसंशय से रहित उस देश में स्थित होते हैं। हे पुत्र! सुन, वह देश अब मैं तुझसे प्रकट करके कहता हूं। देश नाम मोक्ष का है जहां सर्वदुःख नष्टहोजाते हैं और राजा उस देश का आत्म भगवान् है जो सर्वपदों से अतीत है। उस महाराजा ने मन्त्री मनको किया है सो मन परिणाम को पाकर सर्व ओर से विश्वरूप हुआहै। जैसे मृत्तिका का पिण्ड घटभाव को प्राप्त हुआ है और जैसे धूम्रबादल को धरता है तैसेही मनने विश्वरूप धराहै। उस मन को जीतेसे सबसुख विश्वके जीतपाताहै। मनका जीतना कठिनहै परन्तु युक्ति से वश होता है। बलिने पूछा, हे भगवन्! उस मन के वश करने की युक्ति मुझ से कहिये। विरोचन बोले, हे पुत्र! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के रसकी सर्वदा सर्वओर से आस्था त्यागनी अर्थात् नाशवन्त और भ्रमरूप जानना, यही मन के जीतने की परम युक्ति है। मनरूपी हाथी विषयरूपी मद से मस्त है वह इस युक्ति से शीघ्रही दमन होजाताहै। यह युक्ति कठिनहै और अतिदुःखसे प्राप्त होती है परन्तु अभ्यास से सुखेनही प्राप्त होजातीहै। क्रम से अभ्यास कियेसे और विरक्तता से यह युक्ति सर्वओर से प्रकट होतीहै—जैसे रसवान् पृथ्वी से लता उपजती हैं तैसेही जो२ शठ जीव हैं वे इसकी वाञ्छा करते हैं परन्तु अभ्यास विना उन्हें नहीं प्राप्त होती और अभ्यासवान् को प्रकट होती है। इससे तुमभी अभ्यास सहित युक्ति का आश्रय करो। जबतक विषयों से विरक्तता नहीं उपजती तबतक संसाररूपी वन के दुःखों में भ्रमता है पर विषयोंसे विरक्तता अभ्यास विना किसीको नहीं प्राप्त होती। जैसे अभ्यास विना नहीं पहुंचता तैसेही जब आत्मा ध्येय को पुरुष निरन्तर धरता है तब अभ्यासवान् की वृत्ति विषयों में अप्रतीत होतीहै। जैसे जल के अभ्यास से बेल को सींचतेहैं तब लता वृद्धि होतीहै; ऐसेही पुरुषार्थ से सब कार्यों की प्राप्ति होती है; भिन्न नहीं होता। यह निश्चय किया है कि जो क्रिया आपसे आप करिये उसका फल अवश्य प्राप्त होता है। वही लोगों में देव कहाता है। जो अवश्य होनाहै उसकी जो नीति है वह दूर नहीं होती उसेही देवशब्द कहिये वा नीति कहिये पर अपनेही पुरुषार्थ का फल पाताहै—जैसे मरुस्थलमें भ्रम से जल भासता है और सम्यक्ज्ञान

से भ्रम निवृत्त होजाताहै । इस दैव और नीति को अपने पुरुषार्थ से जीतो । जैसा पुरुषार्थ से संकल्प दृढ़ करता है तैसाही भासता है । जैसे आकाश को नीलता ग्रहण करती है पर वह नीलता कुछ है नहीं; तैसेही सुख दुःख देनेवाला और कोई नहीं; जैसा संकल्प करताहै तैसाहीहो भासताहै और जैसी नीति होती है तैसाही संकल्प करताहै उसी नीति से मिलकर कदाचित् कर्म करताहै तो उससे इस जगत् कोश में जीव शरीर धारकर फिरताहै—जैसे आकाश में पवन फिरता है पर वह कदाचित् नीति से और कदाचित् नीति से रहित फिरता है; तैसेही दोनों सीढ़ियां मन में होती हैं। आकाशरूपी मन में नीति अनीतिरूपी वायु फिरताहै इस कारण, जबतक मन है तबतक नीति है और दैव है । मनसे रहित न नीतिहै, न दैव है; मन के अस्त हुये जो है वही रहता है; तैसेही जीवपुरुष से पुरुषार्थ कर जैसा संकल्प इस लोक में दृढ़ होता है सो कदाचित् अन्यथा नहीं होता । हे पुत्र ! अपने पुरुषार्थ विना यहां कुछ सिद्ध नहीं होता; इससे परम पुरुषार्थ करके विषयसे विरक्त हो । जबतक विरक्तता नहीं उपजती तबतक परम सुख के देनेवाली मोक्षपदवी और संसारभय का नाश-कर्त्ता नहीं प्राप्त होता । जबतक विषयों में मोहकारण प्राप्ति है तबतक संसार दशा डोलायमान करती है; दुःखदायक होती है और सर्प की नाईं विष फैलाती है; अ-भ्यास किये विना निवृत्त नहीं होती । फिर बलिने पूछा कि, हे सब असुरों के ईश्वर ! चित्त में भोगों से विरक्तता कैसे स्थित होती है; जो जीवों को दीर्घजीनेका कारणहै ? विरोचन बोले; हे पुत्र ! जैसे शरत्काल की महालता में फूल से फल परिपक्व होता है तैसेही आत्मावलोकन करनेवाले पुरुष को भोगों में विरक्तता प्रकट होतीहै। आत्मा के देखनेसे विषयोंकी प्रीति निवृत्त होजाती है और हृदय में स्थिति प्राप्त होती है । जैसे कमलों के उदर में सुन्दरशोभा स्थित होती है तैसेही बीजलक्ष्मी स्थित होती है। इससे सूक्ष्मबुद्धि विचारवेत्ता ने आत्मदेवको देखकर विषयों की प्रीति की है उसे सब ओरसे निवारो । प्रथम दिन के दोभाग भोग कर्म देह के कार्य करो; एक भाग शास्त्रों का श्रवण विचार करो और एक भाग गुरुकी सेवा टहलकरो । जबकुछ विचार संयुक्त मनहो तब दो भाग वैराग्य संयुक्त शास्त्रों को बिचारो और दोभाग ध्यान और गुरुके पूजन में रहो। इस क्रम से जीव ज्ञानकथा के योग्य होताहै और क्रम से निर्मल भाव को ग्रहण करता है; तब शनैश्शनैः उत्तमपद को भावनाहोतीहै। इस प्रकार शास्त्रों के अर्थ विचार में चित्तरूपी बालक को परचावो । जब परमात्मा में ज्ञान प्राप्त होताहै तब कर्म फांसी से छूटजाता है । जैसे चन्द्रमा के उदयहुये चन्द्रकान्तमणि द्रवीभूत होताहै तैसेही वह शीतल हो बिराजताहै । बुद्धिके विचारसे सर्वदा सम और आत्म-दृष्टि देखनी और तृष्णा का बन्धन त्यागना यह परस्पर कारण है । परमात्मा के

देखनेसे तृष्णा दूर होजातीहै और तृष्णा के त्याग से आत्मा का दर्शन होता है। जैसे नौका को केवट लेजाता है और नौका केवट को लेजाती है तैसेही परमात्मा का दर्शन होता है और भोगों का त्याग होताहै। परब्रह्म में जो अनन्त विश्रान्ति नित्य उदय होती है सो मोक्षरूप आनन्द उदय होता है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता। जीवों को आनन्द आत्मविश्रान्ति के सिवा न तपों से प्राप्त होता न दानों से प्राप्त होता है और न तीर्थों से प्राप्त होता है। जब आत्मस्वभाव का दर्शन होता है तब भोगों से विरक्तता उपजती है पर आत्मस्वभाव का दर्शन अपने प्रयत्न विना और किसी युक्ति से नहीं प्राप्त होता है। हे पुत्र! भोगों के त्यागकरने और परमार्थ दर्शन के यत्न करने से ब्रह्मपद में विश्रान्त और परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होता है। ब्रह्मा से आदि काष्ठपर्यन्त को इस जगत् में ऐसा आनन्द कोई नहीं जैसा परमात्मा में स्थित हुयेसे है। इससे तुम पुरुष प्रयत्न का आश्रय करो और देव को दूर से त्यागो। इस मार्ग के रोकनेवाले भोग हैं, उनकी निन्दा बुद्धिमान् करते हैं। जब भोगों की निन्दा दृढ़ होती है तब विचार उपजता है—जैसे वर्षाकाल गयेसे शरत्काल की सर्व दिशा निर्मल होजाती हैं तैसेही भोगों की निन्दा से विचार और विचारसे भोगों की निन्दा परस्पर होती हैं जैसे समुद्र की अग्नि से धूम्र उदय होता है और बादलरूप हो वर्षाकर फिर समुद्र को पूर्ण करता है और जैसे मित्र आप से परस्पर कार्य सिद्ध करदेता है। इससे प्रथम तो देव का अनादर करो और पुरुष प्रयत्न करके दांतों से दांतों को पीसकर भोगों की प्रीति त्यागो और फिर पुरुषार्थ से प्रथम अविरोध उपजावो और उसे अपने गुणवान् जन्म और कल्याणमूर्ति को अर्पणकरो और भोगों से असंगहोकर उनकी निन्दाकरो तब विचार उपजेगा। फिर शास्त्रज्ञान को संग्रह करो तब परमपद की प्राप्ति होगी। हे दैत्यराज! समय पाकर जब तू विषयों से विरक्तचित्त होगा तब विचार के वश से परमपद पावेगा। अपने आपमें जो पावनपदहै उसमें तब तू भली प्रकार अत्यन्त विश्राम पावेगा और फिर कल्पना दुःख में न गिरेगा। अङ्ग और देशाचारके कर्म से अल्पधन उपजाना फिर निन्दा से उसे साधू के संग लगाना। उनके संग से वैराग्य और विचार संयुक्त हुये तुझको आत्मलाभ होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलोपाख्यानेचित्तचिकित्सो
पदेशोनामचतुर्विंशतितमस्सर्गः॥ २४॥

बलि ने विचार किया कि, इस प्रकार मुझसे पूर्व पिता ने कहाथा। अब मैं स्मृति दृष्टि से प्रसन्न हुआ हूं और भोगों से विरक्तता उपजी है कि, इस लिये शान्त और सम, निर्मल, अमृतरूपी, शीतल सुख में स्थित होऊं। धन एकत्र होताहै और

नाश होजाता है फिर आशा उपजती है और फिर धन से पूर्ण होता है; फिर स्त्रियों की वाञ्छा उपजती है और फिर उन्हें अङ्गीकार करता है। अब मैं विभूति की स्थिति से खेदवान् हुआहूं। अहो आश्चर्य है कि, इस रमणीय पृथ्वी से अब मैं सम शीतलचित्त होता हूं और दुःख सुख से रहित सर्वशान्ति को प्राप्त होताहूं। जैसे चन्द्रमा के मण्डल में स्थित हुआ समशीतल होता है तैसेही भीतर से मैं हर्षवान् और शीतल होताहूं। दुःखरूपी विभूति ऐश्वर्य से रहित हो अब मैं अक्षोभ हूंगा। यह सब मनरूपी बालक की दिन दिन प्रति कला है। प्रथम मैं स्त्री से चिढ़ताथा फिर मोहसे मेरी प्रीति बढ़गई थी; जो कुछ दृष्टि से देखने योग्य था वह मैंने देखा है; जो कुछ भोगने योग्यथा वह चिरकालपर्यन्त अखण्ड भोगा है और सर्वभूतजातों को वश कररहाहूं पर उससे क्या शोभनीक हुआ। फिर२ उनमें वही चेष्टा से और और देखे, इससे चित्त अपूर्व पदार्थको नहीं देखता फिर २ जगत् के वही पदार्थ हैं। इससे अपनी बुद्धि से इनका निश्चय त्यागकर पूर्णसमुद्रवत् अपने आपसे आपमें स्वच्छ, स्वस्थ और स्थित हूं। पाताल, पृथ्वी और स्वर्ग में, जो स्त्री और रत्न, पन्नगादिक सार हैं वेभी तुच्छहैं, समय पाकर उन्हें कालग्रास लेता है। इतने काल पर्यन्त मैं बालक था और जो तुच्छ पदार्थ मन के रचेहुये हैं उनकी इच्छा से दुःखकर देवतों के साथ द्वेष करताथा। उनके दुःखों के त्यागने से क्या माहात्म्य का अनर्थ होगा ? बड़ा कष्ट है कि, मैंने चिरकाल अनर्थ में अर्थबुद्धि की थी; अज्ञानरूपी मद से मतवाला था और चञ्चल तृष्णा से इस जगत् में क्या नहीं किया। जो कार्य पीछे ताप बढ़ाते हैं वही मैंने किये हैं पर अब पूर्व तुच्छ चिन्ता से मुझको क्या है। वर्तमान चिकित्सा पुरुषार्थ से सुफल होगा। जैसे समुद्र मथनेसे अमृत प्रकट भयाहै तैसेही अपरमितरूप आत्मा की भावना से अब सब ओरसे सुख होगा। मैं कौन हूं; और आत्मा के दर्शन की युक्ति गुरुसे पूछूंगा। इस लिये अब मैं अज्ञानके नाशनिमित्त शुक्र भगवान् का चिन्तनकरूं; वह जो प्रसन्न होकर उपदेश करेगा उससे अनन्त विभव अपने आपमें आपसे स्थित होगा और निष्काम पुरुषों का उपदेश मेरे हृदय में फैलेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिचिन्तासिद्धान्तोपदेशं नामपञ्चविंशस्सर्गः॥ २५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार चिन्तन करके बलिने नेत्रों को मूंदा और शुक्रजी जिनका आकाश में मन्दिर है और जो सर्वत्र पूर्ण चिन्मात्र तत्त्व के ध्यान में स्थित हैं आवाहनरूप ध्यान किया; और शुक्रजी ने जाना कि, हमारे शिष्य बलि ने हमारा ध्यान कियाहै। तब चिदात्मस्वरूप भार्गव अपनी देह वहांले आये जहां रत्न के झरोखे में बलि बैठाथा और बलि उज्ज्वल और प्रभारूप गुरु को देखकर

उठा और जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्य को देखकर प्रफुल्लित होते हैं तैसेही उसका चित्त प्रफुल्लित होगया। तब उसने रत्न अर्घ्य पुष्पों से चरणवन्दना की और रत्नों से अर्घ दिया और बड़े सिंहासन पर बैठाकर कहा, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से मेरे हृदय में जो प्रतिभा उठती है वह स्थिर होकर मुझको प्रश्न में लगाती है। अब मैं उन भोगों से जो मोह के देनेवाले हैं विरक्त हुआहूं और तत्त्वज्ञान की इच्छा करताहूं जिससे महामोह निवृत्त हो। इस ब्रह्माण्ड में स्थिर वस्तु कौन है और उसका कितना प्रमाण है? इन्द्र क्या है और अहं क्या है? मैं कौन हूं? तुम कौन हो और यह लोक क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर कृपाकरके कहिये। शुक्र बोले, हे दैत्यराज! बहुत कहने से क्या है; मैं आकाश में जाना चाहता हूं इससे सबका सारसंक्षेप से मैं तुमसे कहता हूं सो सुनो। जो चेतन तत्त्व और विस्तृतरूप है वह सब चेतनमात्र है और चेतनहीं प्रमाण है। तूभी चेतनस्वरूपहै, मैंभी चेतनहूं और यह लोकभी चेतनरूप है। यही सबका सार है। इस निश्चय को हृदय में दृढ़कर धारोगे तब निर्मल निश्चयात्मकबुद्धिसे अपने को आपसे देखोगे और उससे विश्रान्तिमान् होगे। हे राजन्! यदि तुम कल्याणमूर्ति हो तो इसी कहनेसे सब सिद्धान्त को प्राप्त होगे और सबका सार जो चिदात्मा है उसको पावोगे और यदि कल्याणमूर्ति नहीं हो तो फिर कहनाभी निरर्थक होता है। चेतन को जो चैत्यकला का सम्बन्ध है वहीबन्धन है। इससे जो मुक्त है वही मुक्त है। आत्मतत्त्व चेतनस्वरूप चैत्यकलना से रहित है। यह सब सिद्धान्तों का संग्रह है। हे राजन्! इस निश्चयको धारो और निर्मलबुद्धि से अपने आपसे आपको देखो; यही आत्मपद की प्राप्ति है। सप्तऋषियों से देवताओं का कोई कार्य है उस निमित्त मैं अब आकाश जाताहूं। जबतक यह देह है तबतक मुक्त बुद्धि को यथाप्राप्त कार्य त्यागनेमें योग्य नहीं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे कहकर शुक्र बड़े वेग से आकाश में चले और जैसे समुद्र से तरङ्ग उठकर लीन होजावें तैसेही शुक्रजी अन्तर्धान होगये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबल्युपदेशोनामषड्विंशतितमस्सर्गः॥२६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवता और दैत्यों के पूजनेयोग्य शुक्र के गयेसे बलवानों में श्रेष्ठ बलि मन में विचारने लगा कि, भगवान् शुक्रजी यह क्या कहगये कि, त्रिलोकी चिन्मात्ररूप है; मैंभी चेतनहूं, दिशाभी चेतनरूप हैं; परमार्थ से आदि जो सत्स्वरूप है वहभी चेतन उससे भिन्न नहीं; यह जो सूर्य है उसमें चेतन होनेसेही सूर्यत्वभाव भासता है और यह जो भूमि है उसको चेतन न चेते तो इसमें भूमित्व भाव नहीं। यह जो दशोंदिशा हैं यदि इनको चेतन न चेते तो दिशा में दिशात्वभाव न रहे; पर्वत में पर्वतता भी चेतन विना नहीं; इस जगत् में जगत्भाव; आकाश में

आकाशता; शरीर में लक्षणभी चेतन विना न पाइयेगा; इन्द्रियांभी चेतन हैं; मनभी चेतन है; भीतर बाहर सब चेतन है और चिदात्माही अहंत्वंभावरूप होकर स्थित है । चेतन मैं हूं; सब इन्द्रियों संयुक्त विषयों का स्पर्श मैं करताहूं और कदाचित् कुछ नहीं किया । काष्ठ लोष्टतुल्य शरीर से मेरा क्या है ? मैं तो सम्पूर्ण जगत् में आत्मा चेतन हूं और आकाश में भी एक मैं आत्माहूं । सूर्य और भूत, पिञ्जर, देवता, दैत्य और स्थावर-जङ्गम सबका चेतन आत्मा एक अद्वैत चेतन है और द्वैतकलना नहीं । बस यदि इस लोक में द्वैत का असम्भव है तो शत्रु कौन है और मित्र किसको कहिये ? जिस शरीर का नाम बलि है उसका शिर काटा तो आत्मा का क्या काटा ? सबलोगों में आत्मा पूर्ण है पर जब चित्त दुःख चेतता है तब दुःखी होता है चेतने विना दुःख नहीं पाता । इसकारण जो दुःखदायक भाव-अभाव पदार्थ भासते हैं वे सर्व आत्मरूप हैं, चेतन तत्त्व से भिन्न कुछ नहीं । सब ओरसे आत्मा पूर्ण है, आत्मा से भिन्न जगत् का कुछ व्यवहार नहीं । न कोई दुःखहै; न कोई रोगहै; न मन है; न मनकी वृत्ति है; एक शुद्ध चेतनमात्र आत्मातत्त्व है और विकल्प कलना कोई नहीं । सब ओरसे चेतन स्वरूप, व्यापक, नित्य आनन्द, अद्वैत, सब से अतीत और अंशांशीभाव से रहित चेतनसत्ता व्यापक है । चेतन आदिक नाम से भी मैं रहितहूं वे चेतन आदिक नाम भी मेरे व्यवहार के निमित्त कल्पे हैं । चेतन जो आत्मा की स्फुरणशक्ति है वही विस्तारमें जगत्रूप होकर भासती है; द्रष्टा, दर्शनसे मुक्त केवल अद्वैतरूप है और प्रकाश प्रकाशकभाव से रहित निराभास द्रष्टा परमेश्वर रूप हूं । न मैं कर्ताहूं और न मैं भोक्ताहूं; मैं केवल द्रष्टा निरामयरूप कलना कलङ्क से रहितहूं । इनसे परेहूं और यह स्वरूपभी मैं हूं । यह मेरेमें आभासमात्र है और मैं उदित नित्य और आभास से भी रहित एक प्रकाशरूप हूं । स्वरूप होनेसे मेरा चित्त दृश्य के राग से रहित मुक्तरूप है । प्रत्यक्ष चेतन जो मेरा स्वरूप है उसको नमस्कार है । चित्त दृश्य से रहित है और युक्ति अयुक्ति सर्वका प्रकाशस्वरूप मैं हूं, मुझको नमस्कार है । मैं चित्त से रहित चेतनहूं; सब ओर से शान्तरूप हूं; फुरनेसे रहित हूं और आकाश की नाईं अनन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म; दुःख सुख से मुक्त और संवेदन से रहित असंवेदनरूप हूं । मैं चैत्यसे रहित चेतन हूं, जगत् के भाव अभाव पदार्थ मुझको नहीं छेदसक्ते । अथवा यह जगत् के पदार्थ छेदते हैं वह भी मुझसे भिन्न नहीं क्योंकि, छेद मैं हूं और छेदनेवाला मैं हूं । स्वभावभूत वस्तु से वस्तु ग्रहण होती है अथवा नहीं होती तौभी किससे किसका नाश हो; मैं सर्वदा. सर्वप्रकार सर्व शक्तिरूप हूं; संकल्प विकल्प से अब क्या है । मैं एकही चेतन अजड़रूप होकर प्रकाशता हूं । जो कुछ जगत्जाल है वह सब मैंहीं हूं मुझसे भिन्न कुछ नहीं । इतना

कहि वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार तत्त्व के वेत्ता राजा बलि ने बिचारा तब ओंकार की अर्धमात्रा तुरीयापद की भावना से ध्यान में स्थित हुआ और उस के संकल्प भली प्रकार शान्त होगये। वह सब कलना और चित्त चैत्य से रहित निःसंग होकर स्थित हुआ और ध्याता जो है अहंकार; ध्यान जो है मन की वृत्ति और ध्येय जिसको ध्याता था तीनों से रहित हुआ और मनसे सब वासना नष्ट हो गई। जैसे वायु से रहित अचलरूप दीपक प्रकाशता है तैसेही बलि शान्तरूप पद को प्राप्त हुआ और रत्नों के झरोखे में बैठे दीर्घकाल बीत गया। जैसे स्तम्भ में पुतली हो तैसेही सर्व एषणा से रहित वह समाधि में स्थित रहा और सब क्षोभ, दुःख, विघ्न से रहित निर्मल चित्त, शरत्काल के आकाशवत् होरहा॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणेबलिविश्रान्तवर्णननामसप्तविंशतितमस्सर्गः॥२७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार दैत्यराज बहुतकाल पर्यन्त समाधि में बैठा रहा तब बान्धव, मित्र, टहलुये, मन्त्री रत्नों के झरोखे में देखने चले कि, राजा को क्या हुआ। ऐसा विचार कर उन्होंने किवाड़ों को खोला और ऊपर चढ़े। यक्ष, विद्याधर और नाग एक ओर खड़ेरहे और रम्भा और तिलोत्तमादिक अप्सरागण हाथों में चमर ले खड़ी हुईं और नदियां, समुद्र, पर्वत आदिक मूर्ति धारकर और रत्न आदिक भेंट लेकर सब प्रणाम के निमित्त खड़े हुये और त्रिलोकी के उदरवर्ती जो कुछ थे वे सब आये पर राजा बलि ध्यान में ऐसा स्थित था मानो चित्र की मूर्ति लिखी है और पर्वतवत् स्थित है। उसको देखकर सब दैत्यों ने प्रणाम किया; कोई उसे देख कर शोकवान् हुये, कोई आश्चर्यवान्, कोई आनन्दवान् हुये और कोई भय को प्राप्त हुये। तब मन्त्री विचारने लगे कि राजा की क्या दशा हुई है। इसलिये उसने शुक्रजी का ध्यान किया और भार्गवमुनि झरोखे में आये। उनको देखकर दैत्यगणों ने पूजन किया और बड़े सिंहासन पर गुरुको बैठाया बलिको ध्यान स्थित देखकर शुक्रजी अतिप्रसन्न हुये कि, जो पद मैंने उपदेश किया था। उस में इसने विश्राम पाया है इसका भ्रम अब नष्ट हुआ है और क्षीरसमुद्रवत् प्रकाश है। ऐसे देखकर शुक्रजी ने कहा बड़ा आश्चर्य है कि, दैत्यराज ने विचार करके निर्मल आत्मप्रकाश पाया है। अब भगवान् सिद्ध हुआ है और अपने स्वरूप में जो सब दुःखों से रहित पदहै उस में यह स्थित हुआ है और चिन्ता भ्रम इसका क्षीण हुआ है। अब इसको मत जगाओ। यह आत्मज्ञान को प्राप्तहुआ है और यत्न और क्लेश इसका दूर होगया है। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है। अब मैं इसको नहीं जगाता यह आपही दिव्यवर्ष में जागेगा क्योंकि, प्रारब्ध अंकुर इसके रहना है और उठकर अपना राजकार्य करेगा। अब तुम इसको मत जगाओ, अपने

राजकार्य में जा लगो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इस प्रकार शुक्रजी ने कहा तब सब सुनकर सूखे वृक्ष की मञ्जरी ऐसे होगये और शुक्र जी अन्तर्द्धान होगये दैत्य भी अपने राजा विरोचन की सभा में जाकर अपने२ व्यवहार में लगे और खेचर, भूचर और पातालवासी अपने २ स्थान में गये और देवता, दिशा, पर्वत, समुद्र, नाग, किन्नर, गन्धर्व सब अपने २ व्यवहार में जा लगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिविज्ञानप्राप्ति-
र्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः ॥ २८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हुये तब दैत्यराज समाधि से उतरे; नौबत नगारे बाजनेलगे; देवता और दैत्य बड़े जय जय शब्दकरने लगे नगरवासी देखकर बड़े प्रसन्न हुये और जैसे सूर्य के उदय हुये कमल खिल आते हैं तैसेही खिल आये । जबतक दैत्य न आये थे तबतक राजा ने बिचारा कि, बड़ा आश्चर्य है कि, परम पद जो ऐसी रमणीय, शान्तरूप और शीतल पदवी है उस में स्थित होकर मैंने परम विश्राम पाया है। इससे फिर उसी पद का आश्रयकरूं और उसी में स्थित होऊं राज्य विभूति से मेरा क्या प्रयोजनहै ऐसा आनन्द शीतल चन्द्रमा के मण्डल में भी नहीं होता जैसा अनुभव में स्थित हुये से पाया जाता है । हे रामजी ! इस प्रकार चिन्तन कर वह फिर समाधि करने लगा कि, जिससे गलित मन हो । तब दैत्यों की सेना, मन्त्री, भृत्य, बान्धवों ने आनकर उनको घेर लिया और जैसे चन्द्रमा को मेघ घेर लेता है तैसेही घेर करके प्रणाम करने लगे । बलिराज ने मन में विचारा कि, मुझको त्यागने और ग्रहण करने योग्य क्या है; त्याग उसका करना चाहिये जो अनिष्ट और दुःखदायक हो और ग्रहण उसका कीजिये जो आगे न हो पर आत्मा से व्यतिरेक कुछ नहीं उस में ग्रहण और त्याग किसका करूं । मोक्ष की इच्छाभी मैं किस कारण करूं क्योंकि; जो बन्ध होता है तो मोक्ष की इच्छा करता है सो जब बन्धही नहीं तो मोक्ष की इच्छा कैसे हो ? यह बन्ध और मोक्ष बालकों को क्रीड़ कही है वास्तव में न बन्ध है, न मोक्ष है । यह कल्पना भी मूढ़ता में है सो मूढ़ता तो मेरी नष्ट हुई है; अब मुझ को ध्यान विलास से क्या प्रयोजन है और ध्यानसे क्या है । अब मुझको न परमतत्त्व की इच्छाहै और न कुछ ध्यान से प्रयोजन है अर्थात् न विदेहमुक्त की इच्छा है, न जगत् में स्थित रहने की इच्छा है; न मैं मरता हूं; न जीता हूं; न सत्य हूं;न असत्यहूं; न समहूं, न विषमहूं;न कोई मेरा है और न कोई और है; अद्वैतरूप मैं एक आत्माहूं सो मुझको नमस्कार है । इस राजक्रियामें मैं स्थित हूं तो भी आत्मपद कार्यमें स्थित हूं; और सदा शीतल हूं । ध्यानदिशासे मुझको सिद्धता नहीं और न राजकार्य विभूति से कुछ सिद्ध होना

है। इससे राजकार्य से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं; मैं आकाशवत्ही रहताहूं। मैं न कुछ इच्छा करूंगा, न राज्य करूंगा तो भी मेरा कुछ सिद्ध नहीं होता इससे जो कुछ प्रकृत आचार है उसीको मैं करूं। बन्धनका कारण अज्ञान है सो तो नष्ट हुआ है अब कोई क्रिया मुझको बन्धनरूप नहीं। हे रामजी! इसी प्रकार निर्णय करके बलि ने दैत्योंकी ओर देखा तब देवता और दैत्यों ने शीशसे प्रणाम किया और राजा ने दृष्टि करके उनकी प्रणाम वन्दना अङ्गीकार की। तब राजा बलि ने ध्येयवासना को मनसे त्याग किया और राज्यके कार्य करनेलगा। ब्राह्मण, देवता और गुरुका पूर्ववत् पूजन किया, जो कोई अर्थी और मित्र, बान्धव टहलुये थे उनका अर्थ पूर्ण किया; स्त्रियोंको नाना प्रकारके वस्त्र आभूषण दिये और जो दण्डदेनेयोग्य थे उनको दण्ड दिया। फिर उसने यज्ञ का आरम्भ करके सुरगणोंका पूजन किया और शुक्रजीसे आदि ले मुख्य२ देवता यज्ञ करानेके निमित्त बैठे। फिर विष्णु भगवान्ने इन्द्रके अर्थ सिद्ध करनेके निमित्त छल करके बलिराजा को वञ्चित करलिया और बांधकर पाताल में स्थित किया। वह आगे इन्द्र होगा अब जीवन्मुक्त, स्वस्थवपु, सदा ध्यानस्थित और एषणासे रहित पुरुष पाताल में है। हे रामजी! जीवन्मुक्त पुरुष राजा बलि सम्पदा और आपदा में समचित्त बिचरता है; वह सम्पदा में हर्ष नहीं करता और आपदा में शोक नहीं करता। अनेक जीवों को उपजना और लय होना बलि ने देखा है; दश करोड़ वर्ष पर्यन्त तीनों लोकों का कार्य किया और बड़े विषय भोग भोगे हैं। अन्त में भोगों को विरस जानकर उसका मन विरस हुआ, विचार कियेसे तृष्णा नष्ट होगई और मन उपशम हुआ। हेयोपादेय की नाना प्रकार की चेष्टा बलि ने देखीं पर पदार्थों के भाव अभाव में मन शान्ति को न प्राप्त हुआ। अब भोगों की अभिलाषा त्याग आत्मारामी हो नित्य स्वरूप में स्थित पाताल में बिराजता है। हे रामजी! इस बलिको फिर इस जगत् का इन्द्र होना है और सम्पूर्ण जगत् का कार्य करना है वह अनेक वर्ष आज्ञा चलावेगा परन्तु इन्द्रपद को पाकर भी तुष्टवान् न होगा और अपने ऐश्वर्यपदके गिरने से खेदवान् भी न होगा और सब पदार्थों और विभूतियों के उदय और अस्त में अमर होगा। यह बलि की विज्ञानप्राप्तिका क्रम वृत्तान्त कहाहै। इसी दृष्टिका आश्रय करके तुम भी स्थित हो और बलि की नाईं अपने विवेकसे नित्य तृप्ति आत्मनिश्चय को धारो कि, सर्व मैं हीं हूं। इस निश्चय से निर्द्वन्द्व और परमपद प्राप्त होगा। हे रामजी! दश करोड़ वर्ष तीन लोकों का राज्य बलि ने भोगा और अन्त में विरक्त हुआ तैसेही तुम भी भोगों से विरक्त होजाओ। ये भोग तुच्छ हैं, इनको त्यागकर परमपद में प्राप्त होजाओ। यह जो दृश्य प्रपञ्च नाना प्रकार के विकार संयुक्त भासता है वह न कोई तेरा है और न तू किसीका है। जैसे पर्वत और शिला में बड़ा भेद है

तैसेही जिस पुरुष का मन संसार की ओर धावता है वह मन की वृत्ति में डूबता है। जब तुम मनको हृदय में धरोगे तब सब जगत् का प्रकाश होगा। तुम आत्मस्वरूप हो तो अपना क्या और पराया क्या—यह सब मिथ्या कल्पना है। तुम सबके आदि पुरुषोत्तम हो, तुमहीं साकाररूप पदार्थ और तुमहीं सब ओर पूर्ण और सब जगत् में चेतनरूप हो। और स्थावर—जङ्गम जगत् सब तुम में पिरोया है—जैसे सूत में माला के दाने पिरोये हैं। तुम नित्य शुद्ध, उदित, बोधस्वरूप और भ्रान्ति से रहितहो। जन्म आदिक सर्व रोग के नाश निमित्त आत्मविचार करके बलात्कार से भोगों का त्यागकर सर्व के भोक्ता होजाओ। तुम केवल स्वरूप जगत् के नाथ हो और चैतन्य सूर्य प्रकाशरूप सर्वदा स्थित हो। सर्व जगत् तुम्हारे प्रकाश से प्रकाशता है और सुख दुःख की कल्पना तुम्हारे में कोई नहीं। तुम तो शुद्ध, सर्वात्मा और सर्वप्रकाशक हो; इष्ट अनिष्ट को त्याग करके केवल अपने स्वरूप में स्थित हो। इष्ट अनिष्ट के त्यागसे निरन्तर सत्यता उदय होती है उस सत्यता को हृदय में धार फिर जन्म मरण भी नहीं आता। जिस २ पदार्थ में मन लगे उससे निकालकर आत्मतत्त्व में लगाओ। जब इस प्रकार तुम दृढ़ अभ्यास करोगे तब मन जो उन्मत्त हाथी है वह बांधा जावेगा और तभी सर्व सिद्धान्त के परमसार को प्राप्त होगे। हे रामजी! तुम मूढ़ों की नाईं मत हो। क्योंकि, मूढ़ जीव सब चेष्टा मिथ्याही करता है मिथ्या चेष्टा से जिनकी बुद्धि नष्ट हुई है और अविद्यारूपी धूर्त से बिके हैं उनके तुल्य न होना। यह जगत् अणुमात्र भी कुछ नहीं है। पर बड़ा विस्ताररूपी जो दृष्ट आता है सो निर्णय से देखा है कि, मूढ़ता से भासित हुआ है। मूढ़ता परम दुःखरूप है, इससे अधिक दुःख कोई नहीं। आत्मारूपी सूर्यके आगे आवरणकर्ता जो अज्ञानरूपी मेघ है उसको विवेकरूपी पवन से नाशकरो तब आत्मा का साक्षात्कार होगा। आत्मविचार के अभ्यास और विषयों से वैराग्य विना आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। वेदरूप वेदान्तशास्त्र जो दृष्टान्त और तर्कयुक्त है उनसे भी अपने विचार विना साक्षात्कार नहीं होता। आत्मविचार और पुरुषार्थ से आत्मा की प्रसन्नता होती है और बुद्धि की निर्मलता और बोध से प्राप्त होती है। इससे संकल्प विकल्प से रहित होकर चेतनतत्त्व में स्थित होजाओ। विस्तृत और व्यापकरूप आत्मतत्त्व की स्थिति मेरे वचनों से ग्रहण करके सब संकल्प तुम्हारे लीन होगये हैं; संवेदनरूपी भ्रम शान्त हुआ है और संसार कौतुकरूपी कुहिरा तुम्हारा नष्ट हुआ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनंनामैकोन त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम विज्ञानप्राप्ति के निमित्त और क्रम सुनो

जैसे दैत्य असुर प्रह्लाद को आत्मा की सिद्धता हुई तैसे तुमभी होजाओ। पाताल में एक हिरण्यकशिपु दैत्य महाबलिष्ठ हुआहै जिसने इन्द्र भगायेथे और विष्णुजी के सम उसका पराक्रम था। सम्पूर्ण भुवन उसने वशकर छोड़े थे और सर्व देवता और दैत्यों को वश करके जगत् का कार्यकरता था। वह दैत्यों और तीनों भुवनों का ईश्वर हुआ और समय पाकर कई पुत्र उत्पन्नकिये—जैसे बसन्तऋतु अंकुर उत्पन्न करतीहै। उसके पुत्रों में बड़ापुत्र प्रह्लाद सबसे अधिक प्रकाशवान् हुआ और तिसपुत्रसे हिरण्यकशिपु ऐसा शोभितहुआ जैसे सर्व सुन्दर लता से बसन्तऋतु शोभित है। जैसे प्रलय काल में सूर्य सब लोकों को तपाता है तैसेही वह सबको तपानेलगा। जब दुष्ट क्रीड़ा से देवताओं को दैत्य दुःख देनेलगे तब सब देवता मिलकर विष्णु की शरण गये और बिनती की कि, यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है इसका नाशकरो और हमारी रक्षाकरो। बारम्बार दुखावने से महापुरुषभी क्रोधवान् होजाते हैं। हे रामजी! जब इस प्रकार देवताओं ने प्रार्थना की तब विष्णुदेवने कहा अब तुम जाओ मैं उसको पुत्र के हेतुसे मारूंगा। ऐसे कहकर विष्णु भगवान् अन्तर्धान होगये और हिरण्यकशिपु अपने ऐश्वर्यकी शिक्षा प्रह्लाद को देनेलगा परन्तु वह ग्रहण न करे और बहुत प्रकार ताड़नाभी दे तौ भी उसकी शिक्षा को प्रह्लाद अङ्गीकार न करे। वह ईश्वर विष्णुजी की आराधना में रहता था इस कारण ताड़ना का दुःख प्रह्लाद को कुछ न हो। तब दैत्य अपने हाथ में खड्ग लेकर कहनेलगा कि, हे दुष्ट! तेरा ईश्वर कहां है, जिसका तू आराधन करता है? मेरे सिवा ईश्वर और कौन है? प्रह्लाद ने कहा मेरा ईश्वर सर्वव्यापक है। तब हिरण्यकशिपु ने कहा इस खम्भे में कहां है? जो है तो दिखादे और यदि न दिखावेगा तो तुझको मारूंगा। तब सर्वव्यापक विष्णु खम्भेसे भासनेलगे और बड़े शब्द होनेलगे। फिर उस खम्भे को फोड़कर बड़ी भुजा और तीक्ष्णनखों के संयुक्त महाभयानकरूपसे विष्णु भगवान्ने नरसिंहरूप प्रकटकरके हिरण्यकशिपु को नखोंसे विदारण किया और ऐसा कोपवान् रूप धरा जिससे दैत्यों के स्थान जलने लगे और दृष्टि से मानों पर्वत चूर्ण होतेथे। दैत्योंके कई समूह मारेगये कईभाग और बहुत से दिशा विदिशा को दौड़गये—जैसे वायु के मारे मच्छर उड़ जाते हैं और कुछ पाताल छिद्र में नाश होगये। निदान प्रलयकालवत् स्थान शून्य होगये मानों अकाल प्रलय आया है और दैत्यों को नाश करके फिर विष्णुदेव अन्तर्धान होगये। कुछ दैत्य बान्धव और टहलुये जो रहे थे वे प्रह्लाद के निकट मुख कुम्हिलाये हुये आये—जैसे जल से रहित कमल होता है और भाई, बान्धव मिलकर प्रह्लाद को समझाने लगे। प्रह्लाद ने सबसे मिलकर पिताका शोच किया और फिर उठकर सबकर्म किये। निदान संशय संयुक्त सब दैत्य बैठे और विचार करके शोकवान् हुये

और सब सूखकर चित्र की पुतलीवत् होगये। जैसे दग्धवृक्ष सूखकर रससे रहित होजाता है तैसेही हिरण्यकशिपु विना दैत्य शोकवान् और महादुःखी हुये॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेहिरण्यकशिपुवधोनामत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३० ॥
वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब हिरण्यकशिपु के मारने से दैत्य बहुत दुःखी हुये तब प्रह्लाद ने मौन होकर बिचारा कि, पाताल में सब दैत्य मिलकर चिन्ता संयुक्त बैठे हैं। उनसे जाकर प्रह्लाद ने कहा कि, अब अपनी रक्षा के निमित्त कौन उपाय कीजियेगा, हमारे दैत्यों के नाशकरनेवाले विष्णु बड़े बली हैं; जिनके नख तीक्ष्ण खड्ग की धारवत् हैं। जैसे सिंह मृगों को मारता है तैसे वे हमको मारते हैं और पाताल में दैत्य शान्तिमान् कदाचित् नहीं होनेपाते। जब दैत्य वर्धमान होते हैं तब विष्णु आ उन्हें नाश करते हैं और जैसे कमलों पर पर्वत आपड़े तैसे उन्हें चूर्ण करते हैं। बड़े आकाश गौरवशब्द करनेवाले दैत्य उपज२ नष्ट होजातेहैं—जैसे जल में तरङ्ग उपज२ नष्ट होजाते हैं। भीतर बाहर वह हमको बड़ा कष्ट देताहै। हमारा शत्रु बड़ा दृढ़ और बड़ा अपूर्व तम आ बढ़ा है; हमारा हृदय तम से पूर्ण होगया है और सम्पदा नष्ट होगई है। जो देवता हमारे पिता से चूर्ण हुये थे उनका बल अब हमसे अधिक होगया है और वे हमारी स्त्रियों को वशकर लेगये हैं—जैसे मृग को व्याध ले जाताहै। वे हमारा सब धन भी लेगये हैं। और हम दीन होरहे हैं। जैसे जल विना कमल कुम्हिला जाताहै तैसेही हम भी बान्धव विना हुये हैं। हमारे घरों में धूल उड़ती है, जो बड़े स्थान मिलकर खचितकिये थे वे शून्यहोगये और हमारे स्थानों में जो बड़े कल्पवृक्ष लगे थे वे उखड़कर नन्दनवन में लगाये हैं। नरसिंहजी की सहायता से देवताओंने ऐसा बल पाया है। हमारे वृक्ष और स्थान नरसिंहजी ने जलादिये हैं जिन देवताओं की स्त्रियों के मुख दैत्य देखते थे, उन सब दैत्यों की स्त्रियों के मुख अब देवता देखते हैं। जिस सुमेरु पर्वतपर कल्प और मन्दारवृक्ष बिराजतेथे वे स्थान अब शून्य होगये, वहां धूल उड़ती है और सुमेरु दुर्लभ होगया है। जो दैत्यों की स्त्रियां अपने स्थानों में बैठीथीं वे अब देवाङ्गनाओं के शिरपर चमर करती हैं और वे हास विलास करती हैं; यह बड़ा कष्ट है। हमको आपदा ने दीन किया है। हे दैत्यो! हमको और उपाय कोई दृष्टि नहीं आता जब उसही विष्णु की शरण में जावें तब सुखी होऊंगा वह कैसा पुरुष है, जिसके दो भुजारूपी वृक्षों की छाया में देवता विश्राम करते हैं और जैसे हिमालय पर्वत कदाचित् तपायमान नहीं होता तैसेही जो पुरुष विष्णु की शरण जाता है वह तपायमान नहीं होता। तुम देखतेहो कि, जो देवाङ्गना असुरों की स्त्रियों की पूजन करती थीं वे अब अपने को पुजानेलगी हैं और हम दैत्यों की स्त्रियों के मुख कुम्हिला गये हैं। जैसे बरफ़ की

वर्षा से कमल सूख जाता है तैसेही हमारे मण्डप टूट गये हैं और नीलमणि के खम्भे गिरपड़े हैं। दैत्यसेना जो आपदा के समुद्र में डूबती थी उसके रक्षा करने को हमारे पितादि बड़े समर्थ थे और डूबने न देते थे। जैसे क्षीरसमुद्रमें मन्दराचल को कच्छपरूप ने डूबने न दिया था हमारे पितादि जो बड़े २ बली रक्षा करनेवाले थे उनको विष्णुजी ने मारके चूर्ण किया—जैसे प्रलयकाल का पवन पर्वतों को चूर्ण करता है। ऐसे मधुसूदन की गति अतिविषम है वे दैत्यों की भुजारूपी दण्ड के काटनेवाले कुठार हैं, उनकी सहायता से इन्द्रादिक देवता दैत्य सेना को जीतने और मारनेलगे हैं—जैसे बालक को वानर मारें। इस पुण्डरीकाक्ष विष्णु को जीतना कठिन है। जो वे शस्त्रों बिना हों तौभी हमारे शस्त्र इनको छेद नहीं सक्के और वज्र भी छेद नहीं सक्का। वे महापराक्रमी हैं, उन्होंने युद्ध का बड़ा अभ्यास किया है और पर्वतों के साथ युद्ध करते रहेहैं। हमारा पिता जो बड़ा बली था और जिसने त्रिलोकी के राजा और सब देवता वश किये थे उसको भी इसने मारडाला तो हमारा मारना कौन कठिन है। यह महाबली है इसको हम नहीं जीत सक्के; इस लिये एक उपाय मैं तुमसे कहताहूं उससे विष्णु प्रकट वश होंगे। उपाय यहहै कि, विष्णु जो सर्वात्मा, सबका प्रकाशक और सबका कारण है उसकी हम शरण हों; और हमारी कोई गति आश्रय नहीं। हे दैत्यो! उससे अधिक इस त्रिलोकीमें कोई नहीं; जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकर्ता वही देवताहै। उसके ध्यान में लगो और एक निमेष भी उसके ध्यान से न उतरो। मैंभी उसके ध्यान में लगता हूं। वह नारायण अजन्मा पुरुष है और मैं सदा उसके परायण हूं और सब प्रकार नारायण मैं हूं। 'ओंनमोनारायणाय;' यह मन्त्र सब अर्थों को सिद्ध करता है, इस मंत्रके ध्यान जाप करते हुये हमारे हृदय में स्फुरणरूप होगा। वह हरि सबका आत्मा है पृथ्वीभी हरि है, यह सब जगत्भी हरि है, मैंभी हरि हूं, आकाशभी हरि है और सबका आत्मा भी हरि है। अविष्णु होकर जो विष्णुका पूजन करते हैं वे पूजनेका फल नहीं पाते और जो विष्णु होकर विष्णु का पूजन करते हैं वे परम उत्तम फल पाते हैं। इससे मैं विष्णुरूप होकर स्थित होताहूं। मैं अनन्त आत्मा आकाश गरुड़ पर आरूढ़ हूं और सुवर्ण के भूषण पहिरे हूं मेरे हाथरूप वृक्ष पर जीवरूप सब पक्षी विश्राम पाते हैं। यह मेरी चतुर्भुजा हैं। जब मैंने क्षीरसमुद्र मथन किया था तब यह परस्पर घसे हैं और यह मेरे पार्षद हैं, सुन्दर चमर जिनके हाथों में है, इनको मैंने क्षीरसमुद्र से उपजायाहै। त्रिलोकीरूपी वृक्ष की यह सुन्दर मञ्जरी जो महाधवल मन के हरनेवाली है। यह मेरे पार्षदों में माया है जिसने अनन्त जगत्जाल निरन्तर उत्पत्ति, प्रलय किया है और इन्द्रजालकी विलासिनी है। यह मेरे पार्षदों में जो शक्ति

है इन्हों ने लीला करके त्रिलोकीखण्ड वश किया है । जैसे कल्पवृक्ष लता फूलती है तैसेही मेरे पार्षदों में यह फूलती है शीतउष्ण मेरे दो नेत्र हैं जो सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशते हैं और चन्द्रमा और सूर्य उनके नाम हैं। यह मेरा नीलकमल और महासुन्दर श्याम मेघवत् देह महाप्रकाशरूप है। यह मेरे हाथ में पाञ्चजन्य शंखज जिसकी स्फुरणरूप ध्वनि है क्षीरसमुद्र से निकला है। यह नाभिकमल है जिससे ब्रह्मा उत्पन्न हुये और इसमें निवास करते हैं—जैसे भ्रमरा कमल में निवास करता है। यह मेरे हाथ में कौमोदकी गदा है जो सुमेरु के शिखरवत् रत्नों की बनीहुई है और दैत्यदानवों के नाश करनेवाली है। यह मेरे हाथों में महाप्रकाशरूप सुदर्शनचक्र है जिसका तेज ज्वाला के पुञ्जवत् है और साधु को सुखदेनेवाला है । यह मेरे हाथों में अग्नि के समूहवाला कुठार है सो दैत्यरूपी वृक्षों को काटनेवाला है और साधुओं को आनन्ददायक है। यह मेरे हाथ में शार्ङ्गधनुष है, इसकी महाप्रकाशवत् ध्वनि है। यह मेरे पीतवर्ण वस्त्र हैं यह वैजयन्ती माला है और कौस्तुभमणि मेरे कण्ठ में है । ऐसा मैं विष्णुदेव हूं। अनन्त जगत् जो उत्पत्ति और लय होगये हैं सबोंका धारनेवाला हूं । यह पृथ्वी मेरे चरण हैं, आकाश मेरा शीश है, तीनों लोक मेरा वपु है, दशोदिशा मेरे वक्षस्थल हैं और मैं साक्षात् विष्णु हूं । नील मेघवत् मेरी कान्तिहै; गरुड़पर आरूढ़, शंख, चक्र, गदा, पद्म का धारनेवाला हूं । जिसका चित्त दुष्ट है वह हमको देखकर भागजाता है। यह सुन्दर, शीतल चन्द्रमावत् मेरी कान्ति है और पीतवस्त्र श्याम वदन गदाधारी हूं। लक्ष्मी मेरे वक्षस्थल में है और अच्युतरूपी विष्णु मैं हूं। वह कौनहै जो मेरे साथ विरोध करसके ? मैं त्रिलोकी जलासक्ता हूं; जो मेरे साथ युद्ध करने को सन्मुख आवे उसको अप और तेज नाश का कारण है । जैसे अग्नि में पतङ्ग जलमरते हैं तैसेही मेरा तेज है । मेरी दृष्टि कोई सह नहीं सक्ता। मैं विष्णु ईश्वर हूं, ब्रह्मा, इन्द्र और यमादिक नित्य मेरी स्तुति करते हैं और तृण काष्ठ स्थावर जङ्गम जो कुछ जाल है सबके भीतर व्यापकरूप हूं । त्रिलोकी में मैं प्रकाशरूप अजन्मा और भयनाशकर्ताहूं। ऐसे मेरे स्वरूप को मेरा नमस्कार है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादविज्ञाननामएकत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार प्रह्लाद ने अपना नारायणस्वरूप करके ध्यान किया। फिर पूजनके निमित्त वैष्णवों का चिन्तन किया और मन में विष्णुजी की दूसरी मूर्ति जो गरुड़ पर आरूढ़ और चारशक्ति—अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से सम्पन्न चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये श्याम रङ्ग है; चन्द्रमा और सूर्य जिसके सुन्दर नेत्र हैं और हाथ में शार्ङ्गधनुष है; धारण करके परिवार संयुक्त भली प्रकार धूप दीप और नाना प्रकार के विचित्र वस्त्र और भूषणों सहित

पूजन किया और अर्घ दिया। चन्दन का लेपन, धूप, दीप, नाना प्रकार के भूषणों सहित पिस्ता, खजूर, बदाम आदिक मेवों से; भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य चतुरप्रकार के भोजन कराये। फिर अपना आप विष्णु को अर्पण किया और परम भक्ति को प्राप्तहुआ। जिस प्रकार मन से पूजनकिया उसी प्रकार अन्तःपुर में विष्णु की मूर्ति देखकर पूजा। इसी प्रकार दिन प्रति दिन विष्णु का पूजन किया और जिस प्रकार प्रह्लाद मन की चिन्तन से पूजा करे उसी प्रकार और दैत्य भी मानसी पूजा करें। उनको प्रह्लाद ने सिखाया और उस पुर में सब दैत्य कल्याणमूर्ति विष्णुभक्त होगये। जैसा राजा होता है तैसीही उसकी प्रजा होती है इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। यह वार्त्ता देवलोक में प्रकटहुई कि, दैत्यों ने विष्णु का द्वेष त्याग किया है और भक्त हुये हैं। तब देवता आश्चर्य को प्राप्त हुये और इन्द्रादिक अमरगण विचारने लगे कि, यह क्या हुआ जो दैत्योंने विष्णु की भक्ति ग्रहण की और इनको यह प्राप्त कैसे हुई। ऐसे आश्चर्यवान् होकर क्षीर समुद्र के दैत्यों की वार्त्ता करनेके निमित्त वे विष्णु के निकट गये और कहा, हे भगवन्! यह आपने क्या माया फैलाई कि, जो दैत्य सर्वदा विरोध करतेथे वे अब तुम्हारे साथ तन्मयरूप होरहे हैं; कहां वह दुर्वृत्ति पर्वत को चूर्ण करनेवाले दैत्य और कहां तुम्हारी भक्ति, जो अनेक जन्मों से भी दुर्लभ है। हे जनार्दन! तुम्हारी भक्ति कहां और उनकी वृत्ति कहां। यह तो अपूर्व वार्त्ता हुई है। जैसे समय विना पुष्पों की माला नहीं शोभती तैसेही पात्र विना तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती और यह हमको सुखदायक नहीं भासती। जैसा जैसा कोई होता है तैसेही तैसे स्थान में शोभता है। जैसे कांच में महामणि नहीं शोभती तैसेही दैत्यों में तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती। जैसा गुण किसीमें होता है तैसीही पंक्तिमें वह शोभता है और में स्थित हुआ नहीं शोभताहै। जो सुदेश नहीं होता तो दुःखदायक होता है जैसे अङ्गों में वज्र दुःखदायक होताहै। जैसा गुणवान् हो तैसा पदार्थ जब प्राप्त होताहै तो वह शोभा पाताहै विपर्यय हो तब शोभा नहीं पाता। जैसे कमलिनी जलमें शोभती है, मरुस्थलमें नहीं शोभती तैसेही कहां वह अधम नीचजन भयानक कर्म करनेवाले और कहां तुम्हारी आश्चर्य भक्ति। जैसे कमलिनी पृथ्वी पर नहीं शोभती तैसेही तुम्हारी भक्ति दैत्यों में नहीं शोभती और तैसेही भक्ति हमको उनमें सुखदायक नहीं भासती॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेविविधव्यतिरेको नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बड़े शब्द से देवता कहने लगे तब माधव आकर बोले; हे देवगण! तुम शोक मत करो। प्रह्लाद मेरा भक्त है; इसका

यह अन्त का जन्म है, और अब मोक्ष को प्राप्त होकर फिर जन्म न पावेगा। हे देव-गण! गुणवान् के गुणों को त्यागकर द्वेष ग्रहण करना अनर्थरूप होताहै और जो प्रथम गुणोंसे रहित निर्गुण हो और फिर उनको त्यागकर गुण ग्रहण करे और शास्त्र मार्ग में बिचरे तो यह सुखदायक होताहै। प्रह्लाद की विचित्र चेष्टा तुमको सुखदायक होगी। अब तुम अपने स्थानों में जाओ, प्रह्लाद मेरा भक्त है। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर भगवान् क्षीरसमुद्र में अन्तर्धान होगये देवता नमस्कार करके अपने २ स्थानों में गये और प्रह्लाद से द्वेषभावना त्याग की। प्रह्लाद दिनप्रति दिन अपने घर में जनार्दन की मनसा, वाचा और कर्मणा से भक्ति करने लगा और समय पाकर दैत्यों में बड़ी भक्ति होगई। तब उन्हें परम विवेक प्राप्त हुआ और विषय भोग से वैराग्यवान् हुये। वे विषयों से प्रीति न करें; सुन्दर स्त्रियों से न रमें; दृश्य में उनकी प्रीति न उपजे और यह भोग जो रोगरूप है उनमें उनका चित्त विश्राम न पावे और रागभी न करें परन्तु मुक्तकर्ता जो आत्मबोध है सो उन्हें प्राप्त न हुआ वे मुक्त फल के निकट आ स्थित हुये और भोगों की अभिलाष त्यागकर निर्मल होगये पर परमसमाधि को न प्राप्त हुये चित्त अवस्था में डोलायमान होरहे। तब श्याममूर्ति विष्णुदेव प्रह्लाद की वृत्ति विचारकर पाताल में उसके गृह पूजा के स्थान में महाप्रकाश सुन्दररूप से प्रकटे और उनको देखकर प्रह्लाद ने विशेष पूजा की और प्रेम से गद्गद हो कहा हे ईश्वर! त्रिलोकी में सुन्दरमूर्ति, सब के धारनेवाले, सब कलङ्कों के हरनेवाले, प्रकाशस्वरूप, अशरणों के शरण, अजन्म। और अच्युत मैं तुम्हारी शरण हूं। हे नीलोत्पल और कमलों के पर्वत, श्यामरूप, असंग चित्त से धरनेवाले! मैं तुम्हारी शरण हूं। हे निर्मलरूप, केलेवत् कोमलअङ्ग और श्वेत कमल की नाईं श्वेतशंख हाथमें धारणकिये! तुम्हारे नाभिकमल में भँवरे रूप ब्रह्मा स्थित हो वेद का उच्चाररूपी गुरु गुरु शब्द करते हैं और हृदयकमल में बिराजनेवाले जल के ईश्वररूप मैं तुम्हारी शरण हूं! जिसके श्वेतनख तारागणवत् प्रकाशरूप; हँसता मुखचन्द्रमा के मण्डलवत्, हृदयमणि सबका प्रकाशक और शरत्-काल के आकाशवत् निर्मल विस्तृतरूप! मैं तेरी शरण हूं। हे त्रिभुवनरूपी कमलिनियों के प्रकाशनेवाले चन्द्रमा! मोहरूपी अन्धकारके नाशकर्ता, सूर्य! अजड़, चिदात्मा, सम्पूर्ण जगत् के कष्ट हरनेवाले! मैं तुम्हारी शरण हूं। हे नूतनविकसितरूप कमल पुष्पों से भूषित अङ्ग और स्वर्णवत् पीताम्बरधारी महासुन्दरस्वरूप! मैं तेरी शरण हूं। हे ईश्वर! लीला करके सृष्टि के उत्पत्ति, स्थिति और नाश करनेवाले और परमशक्ति शङ्करयोगवत् दृढ़देह! मैं तेरी शरण हूं। हे दामिनीवत् प्रकाशरूप सबको संहारकर जल में बालकरूप धर वटके नीचे शयन करनेवाले! मैं तेरी शरण हूं

हे देवतारूप कमलों के प्रकाश करनेवाले सूर्यमण्डल; दैत्यपुत्ररूपी कमलिनियों के तुषाररूपी बरफ़ जलानेवाले और हृदयरूपी कमलों के आश्रयभूत! मैं तेरी शरण हूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब अनेकगुणों से आठ श्लोक प्रह्लाद ने कहे तब विष्णुजी ने प्रह्लाद से कहा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाष्टकानन्तरनारायणागमनं नामत्रयस्त्रिंशतितमस्सर्गः॥ ३३॥

श्रीभगवान्‌जी बोले, हे गुणनिधि; दैत्यकुल के शिरोमणि! जो तुझको वाञ्छित फल है सो मांगो और जन्मदुःख के शान्ति निमित्त वर मांगो प्रह्लाद बोले, हे सर्व संकल्प के फलदायक और सर्वलोकों में व्यापकरूप! जो वस्तु दुर्लभतर है वह शीघ्र ही मुझसे कहिये और दीजिये। श्रीभगवान्‌जी बोले, हे पुत्र! सब भ्रम के नाश करनेवाले और परम फलरूप ब्रह्म से विश्रान्ति होती है और वह जिस आत्मविवेक की समता से प्राप्त होती है वही आत्मविवेक तुझको होगा। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार दैत्येन्द्र से कहकर विष्णु अन्तर्द्धान होगये। फिर प्रह्लाद ने पुष्पाञ्जली दी और पूजा करके श्रेष्ठ आसन बिछा उसपर आप पद्मासन धरके बैठा और विधिसंयुक्त उत्तम शास्त्रों का पाठ करने लगा। जब पाठ करके निश्चिन्त हुआ तब विचारनेलगा कि, विष्णु ने मुझसे क्या कहा था, उन्हों ने कहाथा कि, तुझको विवेक होगा। इस लिये संसारसमुद्र तरनेके निमित्त शीघ्रही विचार करूं। इस संसार आडम्बर में मैं कौनहूं जो बोलता हू; नर और यह जगत् तो मैं नहीं; यह तो असत्य उपजाहै और जड़रूप पवन से स्फुरणरूप होता है सो मैं कैसे होऊं? यह देह भी मैं नहीं, क्योंकि, यह तो क्षण २ में काल से लीन होता है और जडरूप है। श्रवणरूपी जड़ भी मैं नहीं क्योंकि, जो शब्द सुनते हैं वह शून्य से उपजा है। त्वचा इन्द्रिय भी मैं नहीं इसका क्षण २ में विनाश स्वभाव है। प्राप्त हुआ अथवा न हुआ; यह इष्ट है, यह अनिष्ट है; इन्द्रिय आप जड़ है पर इसके जाननेवाला चेतन तत्त्व है और चेतन के प्रसाद से ये विषय उपलब्ध होते हैं। इससे न मैं त्वचा इन्द्रिय हूं और न स्पर्श विषय हैं: यह जड़ात्मक है। यह जो चञ्चलरूपी तुच्छ जिह्वा इन्द्रिय है और जिस के अग्र में अल्प जल अणु स्थित है वही रसग्रहण करता है; वह रस भी आत्मसत्ता करके लब्धरूप होता है आप जड़ है; इससे यह जड़रूप जिह्वा और रस मैं नहीं ये जो विनाशरूप नेत्र दृश्य के दर्शन में लीन हैं सो मैं नहीं और न मैं इनका विषयरूप हूं, ये जड़ हैं। यह जो नासिका पृथ्वी का अंश है सो केवल आत्मा के आधार है यह आप जड़ है पर इसका जाननेवाला चेतन है; सो न मैं नासिकाहूं, न गन्धि हूं; मैं अहंमम से और मन के मनन से रहित शान्तरूप हूं और ये पञ्च

इन्द्रियां मेरेमें नहीं, मैं शुद्ध चेतनरूप कलना कलङ्क से और चित्त से रहित चि-न्मात्र और सर्व का प्रकाशक सबके भीतर बाहर व्यापक और निःसंकल्प निर्मल शान्तरूप हूं। आश्चर्य है कि अब मुझको अपना स्वरूप स्मरण आताहै। प्रकाश-रूप चेतन अनुभव अद्वैत मेरे अनुभव चेतन से स्थित है। सूर्य, घट, पटादिक सब पदार्थ मैं प्रकाशता हूं। जैसे दीपक से उत्तम तेज भासे तैसेही चेतन अनुभवसे इ-न्द्रियों की वृत्ति स्फुरणरूप होती है। जैसे तेज से चिनगारे स्फुरणरूप होतेहैं तैसेही सर्वज्ञ अनुभव सत्तासे मनकी मननरूप शक्ति फुरतीहै। जैसे सूर्य के तेजसे मरुस्थल में मृगतृष्णा की नदी फुरती है तैसेही अनभव सत्तासे पदार्थ भासतेहैं। जैसे दीपकमें शुक्लादि रङ्ग भासते हैं, तैसेही इन पदार्थों में अहं आदिक पदार्थ भासते हैं वह जा-ग्रद्वत् सब पदार्थों का प्रकाशक है, सबको अनुभवसे भासता है और सबके भीतर आत्मभाव से स्थितहै। जैसे बीज में अंकुर स्थित होताहै तैसेही चेतनरूप दीपकके प्रकाश से विकल्परूपी पदार्थों की शक्ति भासती है। उष्णरूपी सूर्य, शीतलरूपी चन्द्रमा, घनरूपी पर्वत, द्रवतारूपी जल है और इसी प्रकार अनुभव सत्तासे सकल पदार्थ प्रकट होते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश से घटपटादिक होते हैं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र ये सब के कारणरूप जगत् में स्थितहैं और इनका कारण अनुभव तत्त्वआदि अन्त से रहित और सब कारणों का कारण है। जैसे बरफ़ से शीतलता उपजती है तैसे ही अनुभव से जगत् उदय होता है चित्त, चैत्य, दृश्य, दर्शन कलनासे रहित प्रकाश-रूप सत्ता मेरा आत्मा मुझको नमस्कार है। इसी से सर्वभूत उत्पन्न और स्थित हो-कर फिर लय होते हैं सो निर्विकल्प चेतन सर्वका आश्रयभूत आत्मा है। जो इस चित्तसे अन्तःकरण कल्पितरूप होजाता है। वही होता है। आत्मा से रहित सत्य भी असत्य होजाता है। जो चेतनसंवित् में कल्पितरूप होताहै सोही पदार्थ अपने स्वरूप को पाता है और जो चित्तसंवित् में कल्पितरूप नहीं होता सो सत्य भी अ-सत्यरूप होजाता है। ये जो घट, पटादि पदार्थों के समूह भासते हैं वे विस्तृतरूप चिदाकाश दर्पण में प्रतिबिम्बित हैं और अनुभव सत्ता सर्व भूतों का आदर्शरूपहै। जिनका चित्त नष्ट होजाताहै उन सन्त पुरुषों को ऐसे दृढ़भाव प्राप्त हैं और वे परम आकाशरूप आत्मा में अभ्यास से तन्मय होजाते हैं? अनुभवसत्ता पदार्थों के वृद्ध होनेसे वृद्ध नहीं होती और नष्ट होनेसे नष्ट नहीं होती। पदार्थों के भाव अभाव में सत्ता सामान्य ज्यों की त्यों है जैसे सूर्य के प्रतिबिम्ब में घट सत्य हो अथवा असत्य हो सूर्य ज्यों का त्यों है। संसाररूप नाना प्रकार की विचित्र रचना ऐसे आत्मा में स्थित है। जैसे विचित्र गुच्छों के संयुक्त वृक्षों की पंक्ति की विचित्र रचना पर्वतपर स्थित होती है तैसेही संसाररूप दृश्य नाना प्रकार की मञ्जरी को धरनेवाला आत्म-

सत्ता वृक्ष है जितने भूतगण त्रिलोकी उदर में बर्तते हैं वे सब आत्मा से अभिन्नरूप हैं ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सर्व का प्रकाशक आत्मा है। वह अनुभवसत्ता आदि अन्त से रहित है; जिसका सर्वरूप आकारहै और स्थावर जङ्गम सर्व जगत् भूत जात अन्तर अनुभवरूप स्थित है। वह एक अनुभव आत्मा मैं हूं; द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्वरूप आत्मा मैं हूं और सहस्रनेत्र सहस्रहस्त मेरे हैं। मैंहीं चिदाकाशरूप हूं; सूर्य देहसे आकाश में विचरताहूं और पवन देहसे बहता वायु वाहनपर आरूढ़ हूं। मैं विष्णुरूप शंख, चक्र, गदा, पद्म के धरनेवाला हूं; सर्व सौभाग्य देखनेवाला हूं, और सब दैत्यों को भगाता और नाशकर्ता मैं हीं हूं। मैं नाभिकमल से उत्पन्न हुआहूं; पद्मासन से निर्विकल्प समाधि में स्थितरूप ब्रह्माहूं और मनवृत्तिरूपको प्राप्त हुआ। मैंनेही त्रिनेत्र आकार लिया है; गौरी मेरी अर्द्धाङ्गना हैं और सृष्टि के अन्त में सबको मैं हीं संहार करता हूं। जैसे कोई अपने अङ्गोंको संकोच ले तैसेही मैं संहार करताहूं। त्रिलोकीरूपी मढ़ी की इन्द्ररूप होकर मैं पालना करता हूं और कर्मों के अनुसार जैसा कोई तप करे तैसा फल देताहूं। तृणबल्लि में गुच्छे और रस होकर मैं स्थित हूं; मैं हीं उत्पत्तिकर्ता और चेतनरूप हूं और लीला के निमित्त जगत् आडम्बर विस्ताररूप मैंनेही किया है, जैसे मृत्तिका के खिलौने बालक रचलेता है। मेरे में सर्व कर्म अर्पण करनेसे सर्व शान्ति प्राप्त होती है और मुझसे रहित कुछ वस्तु नहीं; मैं सत्ता स्वरूप आदर्श हूं, सब पदार्थ मेरेमें प्रतिबिम्बित होते हैं, तब यह असत्यरूप भी सत्यता को प्राप्त होताहै–इससे मुझसे भिन्न कुछ नहीं। पुष्पों में सुगन्ध, पत्रों में सुन्दरता, पुरुषों में अनुभव और स्थावर–जङ्गमरूप जो जगत् दृष्ट आता है वह सर्व मैं हूं। मैं सब संकल्पसे रहित परम चैतन्य हूं और अहंत्वं आदिक से परेहूं, जल में रसशक्ति, अग्नि में उष्णता और बरफ़ में शीतलता मैंहीं हूं। जैसे काष्ठ में अग्नि तैसेही सर्वमें स्थित हूं, सब पदार्थों में मैं परमात्मा व्यापक हूं और सबको अपनी इच्छा से उपजाताहूं। जैसे दूध में घृतशक्ति, जल में रसशक्ति और सूर्यमें प्रकाशशक्ति है तैसेही मैं चेतनस्वरूप सब पदार्थों में स्थितहूं। त्रिकाल का जगत् सब मेरे में स्थित है और मैं चित्त के उपचार फुरने से रहित शुद्धस्वरूप और सबका भरण और पीनेवाला और वैराट्राज होकर स्थित भया हूं। त्रिलोकी का राज्य मुझको अपूर्व प्राप्त हुआ है, जो शस्त्रों और देवों के दल विना निरक्षित विस्तृत है। बड़ा आश्चर्य है कि मैं इतना बड़ा विस्तृतरूप हूं और अपने आपमें नहीं समाता, जैसे कल्पान्तर के वायुसे उछला समुद्र आपमें नहीं समाता। मैं अनन्तरूप आत्मा अपनी इच्छा से आप प्रकाशता हूं। जैसे क्षीरसमुद्र अपनी उज्ज्वलता से शोभता है तैसेही मैं भी अपने आपसे शोभता हूं। यह जगत्रूपी मटकी

महाअल्परूप है—जैसे बिल में हाथी नहीं समाता तैसेही मैं अपने आपमें विस्तृत-रूप से जगत् में नहीं समाता। मैं कोटि ब्रह्माण्ड में व्यापक हूं और ब्रह्मलोक से परे जो तत्त्वों का अन्त आता है उससे भी परे मैं अनन्तरूप हूं। यह मैंहूं, यह मैं नहीं, यह निर्बलता मेरे में तुच्छरूप है; मैं तो आदि अन्त से रहित चेतन आकाश हूं और मेरेमें परिच्छिन्नता मिथ्या भासती थी। मैं, तू, यह. वह आदिक मिथ्या भ्रम है। देह क्या, परक्या और अपर क्या; मैं तो सर्वव्यापक चेतनतत्त्व हूं। मेरे पितामह बड़े नीचबुद्धि थे जो ऐसे ऐश्वर्य को त्याग कर तुच्छ ऐश्वर्य में खचित हुये थे कहां यह महादृष्टि सर्वका कर्ता ब्रह्मवपु और कहां वह संसार भ्रम का राज अनित्यरूप सुख भोग दुःखदायक। अनन्त सुख, परम उपशम स्वभाव, शुद्धचेतन दृष्टि अब मेरे में हुई है। सब भावपदार्थों में चैत्य से रहित मैं चेतन आत्मा स्थित हूं। अब मुझको नमस्कार है क्योंकि मेरी जय हुई है और जीर्णरूप संसारभ्रम से निकला हूं। इससे मेरी जीत पाई है, पानेयोग्य आत्मपद पाया है और जीवित सार्थक हुआहै। ऐसा उत्तम समराज चक्रवर्ती में भी नहीं रमता ये जीव निरन्तर बोध को त्यागकर दुःख-रूपी कार्यों में रमते हैं। काष्ठ, जल और मृत्तिका से संयुक्त जो पृथ्वी है उसको पा-कर जो भुलायमान हुये हैं उनको धिक्कार है; वे कीट हैं। यह द्रव्य ऐश्वर्य अविद्या-रूप है, अविद्या से उपजे हैं और अविद्यारूप इनका बढ़ना है। इनमें क्या गुण है जिस निमित्त यत्न करते हैं? इस जगत्रूपी मढ़ी में कई वर्ष हिरण्यकशिपु ने राज-सुख भोगा परन्तु उपशम जो शान्तिसुख है उनको न प्राप्त हुआ। उसने एक ज-गत् का राज किया है परन्तु जो सौ जगतों का राजसुख हो तौभी अनास्वाद है इससे वह जो समतारूप आत्मानन्द है सो नहीं प्राप्त होता। जब उस आत्मानन्द के स्वाद का यत्न हो तब प्राप्त हो, अन्यथा नहीं होता। जिस पुरुष को बड़े ऐश्वर्य और इ-न्द्रियों के सुख प्राप्त हुये हैं पर समतासुख से रहित है तो जानिये कि, उसको कुछ ऐश्वर्य और सुख नहीं मिला और जिनको कुछ ऐश्वर्य और सुख नहीं प्राप्त हुआ पर समता सुख संयुक्त हैं उनको सब कुछ प्राप्त हुआ जानिये। वे परम अमृत से संपन्न हैं और अखण्डित सुख जो आत्मा है उस परमसुख को प्राप्त हुये हैं और आनन्दरूप हैं। जो अखण्डपद को त्यागकर परिच्छिन्नता को प्राप्त है वह मूढ़ है और जो पण्डित और ज्ञानवान् है वह परिच्छिन्नता में प्रीति नहीं करता। जैसे ऊंट दूसरे पदार्थों को त्यागकर कण्टकों के पास धावता है और दूसरा पशु नहीं जाता तैसेही मूढ़ बिना ऐसा कौन है जो आत्मसुख को त्यागकर जले हुये राजसुख में रमै और अमृत को त्यागकर कण्टक और नीम का पानकरे। मेरे पितामह और २ जो बड़े सब मूढ़ हुये हैं वे इस परम अमृतरूप दृष्टि को त्यागकर राजकण्टक में

प्रीतिमान् हुये हैं। कहां फूल फलादिक से संयुक्त नन्दनवन की भूमिका और कहां जले हुये मरुस्थल की भूमिका। तैसेही कहां यह शान्तरूप बोधदृष्टि और कहां भोगों में आत्मबुद्धि। इससे ऐसा पदार्थ त्रिलोकी में कोई नहीं जिसकी मैं इच्छा करूं। सब चेतनस्वरूप हैं और अनुभव कर्ता चेतनतत्त्व स्वच्छसमभाव और निर्विकार, सर्वदा, सर्व में, सर्व ओरसे स्थितहै। यह जैसे है तैसा पायाजाता है—ज्ञानवान्को प्रत्यक्ष है। सूर्य में प्रकाश, चन्द्रमा में अमृतस्रवन, ब्रह्मा में महत्, इन्द्र में त्रिलोकपालन, विष्णु जी में सब ओर से पूर्ण लक्ष्मीशक्ति है, शीघ्र मन कर्ता शक्ति मन की है, बलवान् शक्ति पवन में, दाहक अग्नि में, रसशक्ति जल में है और मौन से महातपकी सिद्धता शक्ति और बृहस्पति विद्या देवताओं में विमानोंपर आरूढ़ होकर आकाशमार्ग गमन करनेकी शक्तिहै। पर्वतोंमें स्थिरता, बसन्तऋतु में पुष्प, सबकाल मेघोंको शान्तशक्ति, पक्षों में ममत्वशक्ति, आकाश में निर्लेपता, बरफ़ में शीतलता, ज्येष्ठ आषाढ़ में तप्त इत्यादिक देश, काल, क्रियारूप नाना प्रकार के आकार विकार जो त्रिकाल के उदर में स्थित हैं सो सर्वशक्ति, स्वच्छ, निर्विकार कलनारूप कलङ्कसे रहित चेतनकी हैं सो इस प्रकार हो भासती है और वही आत्मतत्त्व समपदार्थ जाति में व्यापक हुआ है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्वओर से समान उदय होताहै तैसेही वह सर्वदेश पदार्थोंका भण्डार और सर्वका आश्रयभूतहै; त्रिकाल उसी में कल्पितरूप होतेहैं। जैसे अनुभव उस में होताहै तैसाही तत्काल हो भासता है। जैसे २ चेतनतत्त्व में देश, काल और क्रिया द्रव्य का फुरना होताहै तैसाही तैसा भासता है। आत्मा में त्रिकालों की सम प्रतिभा फुरी है, उसमें फिर अनन्तकालकी प्रतिभा हुई है और शुद्ध चेतनतत्त्व में सर्व ओर से पूर्ण है। त्रिकाल के स्मरण में दृश्यसंयुक्त भासता है तो चेतनतत्त्व शेषरहता है और इसको त्रिकाल का ज्ञान होता है। मधुर, कटुक आदिक भिन्न २ से एक समता भासती है। जैसे मधुरता पानकरनेवाले जीवों को मधुरता भासती है औरको नहीं भासती तैसेही सर्व जो संकल्पकलनाहै सबको भोगता है। सूक्ष्म चेतन सत्तास्वरूप सर्वपदार्थों का अधिष्ठान है उससे अनागत होकर द्वैत जगत् भासताहै और नाना प्रकार की जो पदार्थलक्ष्मी है वह अत्यन्त दुःख को प्राप्त करती है। जब त्रिकाल का अनुभव होता है तब सबही सम भासता है। भाव पदार्थों में जो पदार्थ हैं वे ईश्वर के हैं; उन भाव पदार्थों को त्यागकर अभाव की भावना करनेसे दुःख सब नष्ट होजाते हैं और संतुष्टता प्राप्त होती है। इससे त्रिकालको मत देखो, यह बन्धनरूप है। त्रिकाल से रहित जो चेतनतत्त्व है उसके देखने से त्रिभाग कल्पना काल का अभाव होजाता है और एकसम आत्मा शेष रहता है जिसको वाणी वशकर नहीं सकी और जो असत्य की नाईं निरन्तर स्थित है उसकी प्राप्ति होती है। अनामय

सिद्धान्त शून्यवादी की नाईं स्थित होता है निष्किञ्चन आत्मा ब्रह्म होता है अथवा सर्वरूप परम उपशम में लीन होता है और जिसका अन्तःकरण मलीन है और संकल्प से सम्यक्दर्शी है उसको ज्योंका त्यों नहीं भासता-जगत् भासता है और जिसकी इच्छा नष्ट हुई है और परमपद का अभ्यास करता है उसको आत्मतत्त्व भासता है जो किसी जगत् के पदार्थ की वाञ्छा करता है और हेयोपादेय फांसी से बांधा है वह परमपद नहीं पासक्ता-जैसे पेटसे बांधा पक्षी आकाशमार्ग में नहीं उड़सक्ता। जो पुरुष संकल्पकलना संयुक्त है वह मोहरूपी जाल में गिरपड़ता है-जैसे नेत्रों विना मनुष्य गिर पड़ता है। संकल्प कलनाजाल से जिसका चित्त वेष्टित है वह विषयरूपी गढ़े में गिराहै और अच्युतपदवी को प्राप्त नहीं होता। मेरे पितामह कई दिन पृथ्वी में फुर फुरके लीन होगये हैं वे बालकवत् नीच थे। जैसे गढ़े में मच्छर लीन होजाते हैं तैसेही अज्ञान से वे परमतत्त्व को न जानते थे । भोगों की वाच्छा जो दुःखरूप है अज्ञानी करते हैं और उससे भाव अभावरूप गढ़ और अन्धकूप में नष्ट होते हैं। और इच्छा और द्वेष से जो उठा है उससे बन्धायमान हुये हैं। जैसे पृथ्वी में कीट मग्न होते हैं वे जीव उनके तुल्य हैं और जिनको मृगतृष्णारूप जगत् के पदार्थों में ग्रहण त्याग की बुद्धि शान्त हुई है वे पुरुष जीते हैं, और सब नीच मृतकरूप हैं कहां निर्मल और अविच्छिन्नरूप चेतन चन्द्रमावत् शीतलता और कहां उष्णकाल कलङ्क संयुक्त चित्त की अवस्था अब मेरे आत्मा को नमस्कार है जो अविच्छिन्न प्रकाशता है और प्रकाश और तम दोनों का प्रकाशरूप है । हे चिदात्मा देव ! मुझको तू चिरकाल से प्राप्त होकर परमानन्द हुआहै जो विकल्परूपी समुद्र से मेरा उद्धार किया है। जो तू है, वह मैं हूं और जो मैं हूं सो तू है तुझको नमस्कार है। संकल्प विकल्प कलना के नष्ट हुये अनन्तशिव आत्मतत्त्व का चन्द्रमा सदा निर्मल और उदितरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपदेशोनामचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३४ ॥

प्रह्लाद बोले कि, जिसका नाम 'ओं' है वह विकार से रहित ब्रह्म मैं हूं। जो कुछ जगत् है वह सब आत्मस्वरूप, सत्य-असत्य से अतीत, चेतनस्वरूप और सब जीवों के भीतर है। सूर्यादिक में प्रकाश वही है, अग्नि आदिकको उष्णकर्ता वही है और चन्द्रमा में शीतकर्ता वही है । अमृत का स्रवना आत्मा सेही है और इन्द्रियों के भोगों का भोक्ता अनुभवरूप यही है। राजा की नाईं खड़ा बैठाहूं तो मैं कभी नहीं बैठा और चलता हूं तो कभी नहीं चलता और न व्यवहार करता हूं। मैं सदा शान्तरूप कर्ताहूं किसीसे लेपायमान नहीं होता। त्रिकालों में समरूप हूं

और सर्वदा सर्व अवस्था में पदार्थों के उपजने और मिटने में सदा ज्यों का त्यों हूं। ब्रह्मा से आदि तृण पर्यन्त सब जगत् आवृत आत्मतत्त्व स्थित है पवन जो स्पन्द-रूप है उसमें भी मैं अतिसूक्ष्म स्पन्दरूप हूं; पर्वत स्थान जो अचल पदार्थ हैं उनसे भी मैं अचल हूं; आकाश से भी अतिनिर्लेपहूं। मनको भी आत्मा चलाता है-जैसे पत्रों को पवन चलाताहै और इन्द्रियोंको आत्मा फेरताहै-जैसे घोड़े को सवार चलाता है। समर्थ चक्रवर्ती राजा की नाईं मैं भोग भोगताहूं और अपने ऐश्वर्य से आप शोभता हूं। संसार समुद्र में जरा मरणरूपी जल के पार करनेवाला आत्मा है। यह सबसे सुलभ है और अपने आपसे जानाजाता है और बान्धव की नाईं प्राप्त होता है आत्मा शरीररूपी कमलों के छिद्रों का भँवरा है और विना खेंचे बुलाये सुलभ आ प्राप्त होता है। जो कोई अल्प भी उसको बुलाता है तो उसी क्षण वह उसके सन्मुख होता है इसमें कोई संशय और विकल्प नहीं। वह निष्कलङ्क और परम सम्पदावान् है और सदा स्वस्थरूप है। रसदायक पदार्थों में जैसे रस स्वाद है, पुष्पों में सुगन्ध और तिलों में तेल है तैसेही वह देव परमात्मा देहों में स्थित है तौभी अविचार के वश से नहीं जाना जाता; जैसे चिरकाल उपरान्त आया बान्धव अपने आगे आन स्थित हो तो भी उसको नहीं पहिंचाना जाता। जब विचार उदय होता है तब ऐसे आत्मा परमेश्वर को जानलेता है। जैसे किसी प्रियतम बान्धव के पाये से आनन्द उदय होता है तैसेही आत्मा देव के साक्षात्कार हुये से परमआनन्द उदय होता है और सब बान्धवपन नष्ट होजाता है; जितनी कुछ दुष्ट चेष्टा है उसका अभाव हो जाता है, सब ओरसे बन्धन फांस टूटजाती है; सब शत्रुक्षय होजाते हैं और आशा फिर नहीं फुरती-जैसे पर्वत को चूहा तोड़ नहीं सक्ता। ऐसे देव के देखेसे सब कुछ देखना होता है और सुनेसे सब कुछ सुनना होताहै; उसके स्पर्श कियेसे सब जगत् का स्पर्श होता है और उसकी स्थिति से सर्व जगत् स्थित भासता है। यह जो जाग्रत् है सो संसार की ओर से स्वप्न है; उसी जाग्रत् से अज्ञान नष्ट होजाताहै और जितनी आपदा हैं उनका कष्ट दूर होजाता है। आत्मा के प्राप्त हुये आत्मामय होजाता है। और वह विस्तृतरूप आत्मा दीपकवत् साक्षीभूत होता है। जगत् की स्थिति में भोगों से राग उठा है, सब ओर से आत्मतत्त्व का प्रकाश भासता है और भीतर शान्तरूप सबको अनुभव करनेवाला सबदेहों में मैं स्थित हूं। जैसे मिरचों में तीक्ष्णता स्थित है तैसेही सब जगत् के भीतर बाहर मैं व्यापरहाहूं। जो कुछ जगत् के पदार्थ भासते हैं उन सबमें ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है; आकाश में शून्यता; वायु में स्पन्दता; तेज में प्रकाश; जल में रस; पृथ्वी में कठोरता; चन्द्रमा में शीतलतारूप वही है और सब जगत् में अनुस्यूत एक आत्मतत्त्व ही व्यापरहा है। जैसे बरफ़ में

श्वेतता; और पुष्पों में गन्ध है तैसेही सब देहों में आत्मा व्यापक है। जैसे सर्वगत काल है और सर्वव्यापक आकाश है तैसेही सब जगत् में आत्मा व्यापक है। जैसे राजा की प्रभुता सबमें होती है तैसेही मुझसे भिन्न और कोई कलना नहीं है। जैसे धूलि को पकड़के आकाश को स्पर्श नहीं करसक्ते; कमलों को जल स्पर्श नहीं करता और पाषाण को स्फुरणभ्रम स्पर्श नहीं करता तैसेही मेरे साथ किसीका सम्बन्ध नहीं स्पर्श करता। सुख-दुःखका सम्बन्ध देहको होताहै यदि देह चिरकाल रहे अथवा अबहीं नष्ट हो तो मुझको लाभ हानि कुछ नहीं। जैसे दीपककी प्रभा रज्जु से नहीं बांधी जाती तैसेही आत्मा किसी से बांधा नहीं जाता; सब पदार्थों के ग्रहण में अबन्धरूप है। जैसे आकाश किसी से बांधा नहीं जाता और मन किसीसे रोंका नहीं जाता तैसेही परमात्मा को देह इन्द्रिय का सम्बन्ध वास्तव में नहीं होता। यदि शरीर के टुकड़े होजावें तौभी आत्मा का नाश नहीं होता-जैसे घट फूटे से दूध आदिक पदार्थ नहीं रहता परन्तु आकाश कहीं नहीं जाता वह ज्योंका त्योंहीं रहता है तैसेही देह के नाश हुये प्राणकला निकल जाती है आत्मा का कुछ नाश नहीं होता और पिशाच की नाईं उदय होकर भासता है। जिसका नाम मन है उस मन से जगत् भासित हुआ है और उसीमें जड़ शरीर के नाश का निश्चय हुआ है, हमारा क्या नाश होताहै? जिसके मन से दुःख सुख से वासना नाश होतीहै सो भोगोंसे निवृत्ति सुख सम्पन्न होताहै और ग्रहण करते भोगसे और इन्द्रिय के अज्ञान से मूढ़ दुःख पाते हैं। यह बड़ा आश्चर्य है कि, आत्मा के अज्ञान से मूढ़ दुःख पाता है। अब मैंने आत्मतत्त्व देखा है, उससे मेरा भ्रम शान्त होगयाहै और कुछभी किसीसे मुझको क्षोभ नहीं अब मुझे न कुछ भोगों के ग्रहण करनेकी इच्छा है और न त्याग की वाञ्छा है; जो जावे सो जावे और जो प्राप्त हो सो हो, न मुझको देहादि के सुख की अपेक्षा है; न दुःख के निवृत्ति की अपेक्षाहै सुख दुःख आवे और जावे मैं एकरस चिदानन्द स्वरूप हूं जिस देह में वासना करने से नाना प्रकारकी वासना उपजती है वह देहभ्रम मेरा नष्ट होगयाहै, यह वासना नहीं फुरती। इतने कालपर्यन्त मुझको अज्ञानरूपी शत्रु ने नाश किया था अब मैंने आपको जाना है और अब इसको मैं चूर्ण करताहूं। इस शरीररूपी वृक्ष में अहंकाररूपी पिशाच था सो मैंने परमबोधरूपी मन्त्र से दूर किया है इससे पवित्र हुआ हूं और प्रफुल्लित वृक्षवत् शोभता हूं। मोहरूपी दृष्टि मेरी शान्त हुई है, दुःख सब नष्ट हुयेहैं और विवेकरूपी धन मुझको प्राप्त हुआ है। अब मैं परम ईश्वररूप होकर स्थित हुआहूं। जो कुछ जानने योग्य था सो मैंने जानाहै और जो कुछ देखने योग्य था वह देखा है। अब मैं उसपद को प्राप्त हुआहूं जिसके पायेसे कुछ पानेयोग्य नहीं रहता। अब मैंने आत्मतत्त्व को देखा है; विषयरूपी सर्प मुझको त्यागगया है;

मोहरूपी कुहिरा नष्ट होगयाहै; इच्छारूपी मृगतृष्णा शान्त होगई और रागद्वेषरूपी धूलि से रहित सब ओरसे निर्मल हुआ हूं। अब मैं उपशमरूपी वृक्ष से शीतलहुआ हूं और सब ओरसे विस्तृतरूप को प्राप्त हुआ हूं। अब मैंने सबसे उचित परमात्म देव परमार्थ को ज्ञान और विचार से पाया है और प्रकट देखा है। अधोगति का कारण जो अहंकार है उसको मैंने दूर से त्याग दिया है और अपना स्वभावरूप जो आत्मभगवान् सनातन ब्रह्म है सो जो अहंकार के वश से विस्मरण हुआ था उसे अब चिरकाल करके देखा है। इन्द्रियरूपी गढ़े में मैं गिराथा और रागद्वेषरूपी सर्प से दुःख पाकर मृत्यु को प्राप्त हुआ था। मृत्यु की भूमिका टोये विना तृष्णारूपी करंजुये की कुञ्जोंमें मैं भ्रमता रहा जहां कामरूपी कोयल के शब्द होते थे और जन्मरूपी कूप में दुःख पाता था। सुख के पाने की आशा में डूबा; वासनारूपी जाल में फँसा; दुःखरूपी दावाग्निमें जला और आशारूपी फांसीसे बँधाहुआ मैं कईवार जन्ममरण को प्राप्त हुआ था क्योंकि अहंकार के वश हुये जन्म मृत्यु को प्राप्त होताही है—जैसे रात्रि में पिशाच दिखाई दे और अधीरता को प्राप्त करे तैसेही मुझको अहंकार ने किया था सो अब परमात्मरूप की मुझको तुमने प्रेरणा की है और अपनी शक्ति विष्णुरूप धारकर विवेक उपदेश किया और जगाया है। हे देव, ईश्वर! तुम्हारे बोध से अहंकाररूपी राक्षस नष्ट हुआ है। हे विभो! अब मैं उसको नहीं देखता जैसे दीपक से तम नहीं भासता। अहंकाररूपी जो यक्ष था और मन में जो वासना थी वह सब नष्ट हुई है। अब मैं नहीं जानता कि, वे कहां गये—जैसे दीपक निर्वाण होता है तब नहीं जानाजाता कि, प्रकाश कहांगया। हे ईश्वर! तुम्हारे दर्शनसे मेरा अहंभाव नष्ट हुआ है। जैसे सूर्य के उदय हुये चोरभय मिट जाता है तैसेही देहरूपी रात्रि में अहंकाररूपी पिशाच उठा था वह अब नष्ट हुआ है और अब मैं परमस्वस्थ हुआ हूं। जैसे वानरों से रहित वृक्ष स्वस्थ होता है तैसेही मैं परमनिर्वाण को प्राप्त हुआ हूं। अब मैं सम और शान्त बोध में जागा हूं और चिर पर्यन्त चोरों से जो घिरा था सो अब छूटाहूं। अब मेरा हृदय शीतल हुआ है और आशारूपी मृगतृष्णा शान्त होगई है। जैसे जल से पर्वत की तप्तता मिटे और वर्षा से शीतलता को प्राप्त हो तैसेही विवेकरूपी विचार से अहंकाररूपी तप्तता दूर होगई है। अब मोह कहां और दुःख कहां, आशारूपी स्वर्ग कहां और नरक कहां; बन्ध कहां और मुक्त कहां। अहंकार के होनेसे पदार्थ भासते हैं अहंकारके गये इनका अभाव होजाता है। जैसे मूर्ति दीवारपर लिखी जाती है आकाश पर नहीं लिखी जाती तैसेही अहंकार संयुक्त जो चेतन है वह नहीं शोभता; अहंकारसे ही सुख दुःखादिक का पात्र होता है। जैसे मलीनवस्त्र पर केशर का रङ्ग नहीं शोभता तैसेही उस में ज्ञान नहीं

शोभता। जब अहंकाररूपी मेघ का अभाव हो तब तृष्णारूपी कुहिरा भी नहीं रहता और शरत्काल के आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहता है। निरहंकाररूपी जल में प्रसन्नतारूपी कमलों से शोभता है। हे आत्मा ! तुझको नमस्कार है। इन्द्रियांरूपी तेंदुये और चित्तरूपी बड़वाग्नि, दोनों जिससे नष्ट भये हैं ऐसे आत्मारूपी समुद्र आत्मा को नमस्कार है; जिससे अहंकार मेघ दूर हुआ है और दावाग्नि शान्त हुई है। ऐसा जो आत्मानन्दरूपी पर्वत है उस आनन्द के आश्रय मैंने विश्राम पाया है। हे देव ! तुझको नमस्कार है। जिसमें आनन्दरूपी कमल प्रफुल्लित हैं और जिससे चित्तरूपी तरङ्ग शान्त हुआ है ऐसा जो मानसरोवर मैं आत्मा हूं उसको नमस्कार है। आत्मारूपी हंस में संवित्रूपी पंख हैं और हृदयरूपी कमलों से पूर्ण मानसरोवर पर विश्राम करनेवाले को नमस्कार है। कालरूपी कलना से रहित निष्कलङ्क; सदा उदितरूप, सब ओर से पूर्ण और शान्त आत्मा तुझको नमस्कार है मैं सदा उदित, शीतल हृदय का तम दूर करता, और सर्वव्यापक हूं परन्तु अज्ञान से अदृष्ट हुआ था सो उस चेतन सूर्य को नमस्कार है। मन के मन से जो उपजे थे वह अब शान्त हुये हैं और मन को मन से और अहं को अहं से छेद के जो शेष रहे सो ही मेरी जय है। भावरूप जो दृश्य पदार्थ हैं उनको आत्मभाव से तृष्णा को अतृष्णा के छेद से, अनात्मा को आत्मविचार के नष्ट किये से और ज्ञान से ज्ञेय को जानेसे मैं निरहंकार पदको प्राप्त हुआ हूं और भाव अभाव क्रिया नष्ट होगई है। मैं अब केवल स्वस्थित हूं और निर्भय, निरहंकार, निर्मन, निष्पन्द, शुद्धात्मा हूं। मेरा शरीर जीव की नाईं स्थित है, लीला करके मन ने अहंकार को जीता है; परम उपशमको प्राप्त हुआ हूं और परमशान्ति मुझको प्राप्त हुई है मोहरूपी वैताल और अहंकाररूपी राक्षस नष्ट हुये हैं; वासनारूपी कुत्सित भूमिका से मुक्त और विगतज्वर हुआ हूं और तृष्णारूपी रस्सी से जो बँधा हुआ देह पिंजरा था और उस में अहंकाररूपी पक्षी फँसा था सो तृष्णारूपी रस्सी विवेकरूपी कतरनी से काटी है। अब जाना नहीं जाता कि, शरीररूपी पिंजरे से अहंकाररूपी पक्षी कहां निकलगया। अज्ञानरूपी वृक्षमें अहंकाररूपी पक्षी रहता था उस के जानने से जाना नहीं जाता कि, कहां गया ? दुराशारूपी दुर्मति ने धूसर किया था; भोगरूपी भस्म ने शुद्ध दृष्टि दूर की थी और वासना से हम मृतक होगये थे। इतने काल से मैं चित्त की भूमिका में मिथ्या अहंकार को प्राप्त हुआ था अब मैं उपजाहूं आजही मेरी बड़ी शोभा बढ़ी है; अहंकाररूपी महामेघ नष्ट हुआ है और उसमें तृष्णारूपी समता थी वह नष्ट हुई है। अब मैं निर्मल आकाशवत् शोभता हूं; अब मैंने आत्मा भगवान् देखा है और अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ

हूं और अनुभवरूप सदा प्राप्त है। प्रभुता के समूह के आगे अज्ञान अल्परूप है॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआत्मलाभचिन्तनं
नामपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३५॥

प्रह्लाद बोले, हे महात्मा पुरुष! तुझको नमस्कार है। तू सर्वपद से अतीत आत्मा चिरकालमें मुझको स्मरण आया है और तेरे मिलने से मेरा कल्याण हुआ है। हे भगवन्! तुमको देखकर सब ओरसे नमस्कार करताहूं और हृदय से तुमको आलिङ्गन करूंगा। त्रिलोकी में तुझसे अन्य बान्धव कोई नहीं। तू सबसे सुखदायक है और सबका तूही संहार करता और रक्षा करता है और देने और लेनेवालाभी तू ही है। अब तू क्या करेगा और कहां जावेगा? तूने अपनी सत्तासे विश्वको पूर्ण किया है और विश्वरूप भी तूही है। अब सब ओर से मैं तुझको देखताहूं और तूही नित्यरूप सर्वत्र है। तेरे और मेरे में अनेक जन्मका अन्तर पड़ा था पर अब कल्याण हुआ जो तुझको देखा है। तू अत्यन्त निकट है और परम बान्धवरूप है- तुझको नमस्कार है। तू सबका कृतकृत्य स्वरूप कर्त्ता हर्त्ता है और संसार तेरी नृत्य है। हे नित्य, निर्मलस्वरूप! तुझको नमस्कार है। शंख, चक्र, गदा और पद्म के धारनेवाले विष्णु और अर्धचन्द्रमा के धारनेवाले सदाशिवरूप तुझको नमस्कार है। हे सहस्र-नेत्र, इन्द्र! तुझको नमस्कारहै। पद्मजन्म ब्रह्मा सब देव विद्या का सम्बन्ध तूही है। तेरे में कुछ भेद नहीं तो तुम्हारे हमारे में भेद कैसे हो? जैसे समुद्र और तरङ्गों का संयोग अभेद है तैसेही तेरा और मेरा संयोग अभेद है। तही अनन्त और विचित्र-रूप है और भाव अभावरूप जगत् के धरनेवाली नीति है-जो जगत् की मर्याद करती है। हे द्रष्टारूप! तुझको नमस्कार है। हे सर्वज्ञ! सर्वस्वभावरूप आत्मदेव! जन्म प्रति जन्म मैं बहुत दुःख मार्ग में बिचरा हूं और तेरी माया से चिरकाल दग्ध हुआ हूं। हे देवेश! देशलोक मैंने अनन्त देखे हैं और दृष्टान्त द्रष्टा भी अनेक देखा है परन्तु किसीसे तृप्त न हुआ। जगत् को जिस ओर देखूं उसी ओर से काष्ठ, पाषाण, जल, मृत्तिका, आकाश दृष्ट आता था अब तुझ विना कुछ और दृष्ट नहीं आता अब वाञ्छा किसकी करूं जब तुझको देखा है और उपलब्धस्वरूपको प्राप्त हुआहूं। तुझको नमस्कारहै। नेत्रों की श्यामता में जो पुतलीरूप स्थित है और रूप को देखता है वह साक्षीभूत भीतर कैसे नहीं देखता? जो त्वचा में स्पर्श करता है और शीत उष्णादिक को जानता है ऐसा सर्व अङ्गों में व्यापक अनुभवकर्ता है- जैसे तिलों में तेल व्यापक होता है। उसको अनुभव कोई नहीं करता। जो शब्द श्रवण इन्द्रियके भीतर ग्रहण करताहै उस शब्दशक्ति का जो जाननेवाली सत्ता है और जिसमें शब्द शक्ति का विचार होता है इससे रोम खड़े हो आते हैं सो सत्ता दूर कैसे

हो ? जो जिह्वा के अग्र में रस स्वाद को ग्रहण करता है उस रस के अनुभव करने-वाली सत्ता दूर कैसे हो ? नासा में जो ग्रहणशक्ति है उसको गन्ध आती है उसको अनुभव करनेवाली अलेप सत्ता है सो सन्मुख कैसे न हो ? वेद, वेदान्त, सप्त-सिद्धान्त, पुराण और गीता से जो जानने योग्य आत्मा है उसको जब जाना तब विश्राम कैसे न हो? वह तो परावर परमात्मा पुरुष है। जिन भोगोंकी मैं तृष्णा करता था वह भोग विद्यमान रमणीय हैं तौभी तेरे दर्शन से रस नहीं देते। हे स्वच्छरूप, निर्मलप्रकाश ! तू सूर्यभाव होकर प्रकट हुआ है और तेरी सत्ता से चन्द्रमा शीतल हुआ है; तेरी सत्ता से पृथ्वी स्थित है; तेरी सत्ता से देवता आकाश मार्ग में बिचरते हैं और तेरी सत्ता से आकाश में आकाशभाव है। मेरी अहंता तेरेमें तत्त्व को प्राप्त हुई है; तेरे और मेरेमें भेद कुछ नहीं। तुझे और मुझे नमस्कार है। मैं सम, स्वच्छ, साक्षीरूप, निर्विकार और देश, काल पदार्थ के छेदसे रहितहूं। मन जब क्षोभ को प्राप्त होता है तब इन्द्रियों की वृत्ति स्फुरणरूप होती है और प्राण, अपानशक्ति जब उल्लास को प्राप्त होती है तब देहरूपी यन्त्र बहता है उस यन्त्र में चर्म अस्थि आ-दिक लकड़ियां और रस्सी हैं; इन्द्रियरूपी घोड़े हैं और मनरूपी सारथी चलानेवाला है। उस देहरूपी रथ में मैं चेतनरूप स्थित हूं परन्तु मैं किसीमें आस्था नहीं करता। देह रहे अथवा गिरे मुझको कुछ इच्छा नहीं; मैं अब आत्मलाभ को प्राप्त हुआ हूं और चिरकाल पर उपशम को प्राप्त हुआ हूं। जैसे कल्प के अन्त में जगत् शान्ति को प्राप्त होता है तैसेही दीर्घसंसार मार्ग में मैं चिरकाल तक भ्रमता २ अब विश्राम को प्राप्त हुआ हूं। जैसे कल्प के अन्त में वायु चलता २ रहजाता है। हे सर्वरूपात्मा ! तुझको नमस्कार है-जो तुझको और मुझको इस प्रकार जानते हैं। हे देव ! सम्पूर्ण जगतजाल जो विस्तृतरूप है उसका तुमने कदाचित् स्पर्श नहीं किया-तुम्हारी जय है। जैसे पुष्पों में गन्ध और तिलों में तेल रहता है तैसे ही तुम सब देहों में रहते हो। तुम सर्व जगत् के प्रकाशक दीप हो। उत्पत्ति और प्रलयकर्ता और सदा अकर्तारूप हो तेरी जय है तेरे परमाणु चिदणु में यह विस्ताररूप जगत् स्थित है जैसे वटबीज में वृक्ष होता है; फिर और में और होता है तैसे ही चिदणु में जगत् है। जैसे आकाश में एकबादल के अनेक आकार दृष्ट आते हैं तैसेही चित्तकला फुरने से अनेक पदार्थ भ्रमरूप भासते हैं। इस संसार के जो क्षणभंगुररूप पदार्थ हैं इनकी अभावना किये से अब भाव अभाव से रहित भाव को देखताहूं मुझे अब यह निश्चय हुआ है कि, मान, मद, क्रोध और कलुषता, कठोरता आदिक विकारोंमें महापुरुष नहीं डूबते पर जिनकी नीच प्रकृतिहै वे इनदोषों और अवगुणों में डूबते हैं। पूर्व जो मेरी महादुरात्मा नीचअवस्था थी उसको स्मरण

करके अब मैं हँसताहूं कि, मैं कौन था और क्या जानता था। हे मेरे आत्मा! मैं उस पदको प्राप्त हुआथा जहां चिन्तारूपी अग्निकी ज्वाला थी और दग्धहुये जीर्णसंसार के आरम्भ थे पर अब देहरूपी नगर में स्फाररूपी मनोरथ की जय है और अब दुःख ग्रहणकर नहीं सके। जहां दुष्ट इन्द्रियांरूपी घोड़े और मनरूपी हाथी जाता था उस भोगरूपी शत्रु को अब चारों ओरसे भक्षण किया है और निष्कण्टक राजा चक्रवर्ती हुआहूं। तू परमसूर्य है और परम आकाश में तेरा मार्ग है; उदय अस्त से रहित तू नित्य प्रकाशरूप है और सबके भीतर बाहर प्रकाशता है। अब मैं भोगों को लीलारूप देखता हूं—जैसे कामी कामिनी को देखे परन्तु इच्छा से रहित हो तैसेही तू ग्रहण करता है। नेत्ररूपी झरोखे में बैठकर तू रूप विषय को ग्रहण करता है और अपनी शक्ति से इसी प्रकार सब इन्द्रियों में वही रूप धारकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषयों को ग्रहण करता है। ब्रह्मकोटरमें जो देशहैं उनमें प्राण अपान शक्तिसे तूही बिचरता है ब्रह्मपुरी में जाता है और क्षणमें फिर आताहै और सब जगत् देहों में तूही बिचरता है। देहरूपी पुष्पों में तू सुगन्धहै; देहरूपी चन्द्रमा में तू अमृतहै; देहरूपी वृक्ष में तू रस है और देहरूपी बरफ़ में तू शीतलता है। दूधमें घृत, काष्ठमें अग्नि, उत्तम स्वादों में स्वाद; तेजमें प्रकाश और सर्व असर्व अर्थकर्ता पूर्ण तूही है और सर्व जगत् का प्रकाशक भी तूही है। वायु में स्पन्द, मन में मुदित और अग्नि में तेज तुझीसे सिद्ध है; प्रकाश में प्रकाश तू है और सब पदार्थों को सिद्धकर्ता दीपक तू है पर लीन हुयेसे जाना नहीं जाता कि, कहांगया। संसार में जितने पदार्थ और अहं त्वं आदिक शब्द हैं वे ऐसे हैं जैसे सुवर्ण में भूषण होते हैं सो उसने अपनी लीला के निमित्त कियेहैं और आपही प्रसन्न होता है। जैसे मन्द वायु से खण्ड २ हुये बादल के हाथी आदिक आकार हो भासते हैं तैसेही तू भौतिक दृष्टि से भिन्न २ रूप भासता है। हे देव! ब्रह्माण्डरूपी मोती में तू निरिच्छित व्यापकहै भूतोंरूपी जो अन्न का तू खेतहै और चेतनरूपी रस से बढ़नेवाला है। तू अस्त की नाईं स्थित है अर्थात् इन्द्रियों के विषयों से रहित अव्यक्तरूप है और सर्वपदार्थों का प्रकाशक है। जो पदार्थ शोभा संयुक्त विद्यमान होताहै पर यदि तेरी अवस्था उसमें नहीं होती तो वह अस्त होता है—जैसे सुन्दर स्त्री भूषणों सहित अन्धेके आगे स्थित हो तो वह अस्तभूत होतीहै तैसेही विद्यमान पदार्थ हो और तू न कल्पे तो अस्त होजाता है। जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब होताहै उसको देखकर अपनी सुन्दरता विना कोई प्रसन्न नहीं होता। हे आत्मा! तेरे संकल्प विना देह त्रुटित हो काष्ठलोष्टवत् होती है। जब पुर्यष्टक शरीर से अदृष्ट होतीहै तब सुख दुःख आदिक क्रम नष्ट होजातेहै और किसी का ज्ञान नहीं होता—जैसे तम में कोई पदार्थ दृष्टि नहीं आता। तेरे देखने से

सुख दुःख आदिक स्थित होते हैं–जैसे सूर्य की दृष्टि से प्रातःकाल शुक्लवर्ण से प्रकाश आताहै। जब अपने स्वरूप को प्राप्त होताहै तब अज्ञानरूप सर्वविकार नष्ट होजाते हैं–जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट होता है तो पदार्थ ज्योंका त्यों भासता है तैसेही अज्ञानके नष्ट हुयेसे आत्मा ज्योंका त्यों भासता है। यह जो मनरूप तू है तेरे उपजनेसे सुखदुःख की लक्ष्मी उपजआती है और तेरे अभाव हुयेसे सर्वनष्ट होजाता है। स्वरूप से तू अनामयरूप है और क्षणभंगुर देहमें जो मन ने आस्था की है सो महासूक्ष्म अणु निमेष के लक्षभाग ऐसा सूक्ष्म है सुख दुःखादिक की भावना करके अनीश्वरता को प्राप्त हुआहै। तेरे प्रमाद से फुरनरूप होताहै और तेरे देखने से सर्व लीन होजाता है। यह जो पुर्यष्टक तेरा रूप है उसके देखनेसे क्षीणपदार्थजात भासि आते हैं–जैसे नेत्रों के खोलने से रूप भासताहै और अन्तर्धान मनके मरनेसे सर्वनष्ट होजाता है और फिर किसीसे ग्रहण नहीं होता। जो वस्तु क्षणभंगुर है उससे कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता–जैसे बिजली के प्रकाश से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता तैसेही अन्तर्धान होनेसे देह से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जो उपजकर तत्काल नष्ट होजाता है उससे क्या कार्य सिद्ध हो? देहादिक जड़ और नाशवन्त हैं और जो सबको प्रकाशता है वह सदा निर्विकार सच्चिदानन्दरूप है। सुख दुःखआदिक अज्ञानी के चित्त को स्पर्श करते हैं और जिसका सम चित्त है उसको स्पर्श नहीं करते। हे देव! ये जो सुख दुःख आदिक अविवेक के आश्रय हैं सो अविवेकनष्ट होगयाहै। तू निरीह निरंश निराकार है और सत्य असत्य से परे भैरवरूप परमात्मा तेरी सदा जय है। तू सर्वशस्त्रों का असि पद है। तू जात अजातरूप सदा जय है; तेरे नाश और अविनाशरूप की जय है और तेरे भाव और अभावरूप की जय है और जीतने और न जीतने योग्य तेरी जय है। मायाहुलास और उपशान्ति को प्राप्त हुआ है तुझको नमस्कार है। हे निर्दोष! तेरे में स्थितहोनेसे मेरे राग द्वेष मिटगये हैं। अब बन्ध कहां और मोक्ष कहां और आपदा, सम्पदा और भाव–अभाव कहां। अब मेरे सर्वविकार शान्तहुये हैं और सम समाधि में स्थित हुआ हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेसंस्तवननामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार चिन्तनकर महाधैर्यवान्‌प्रह्लाद निर्विकार निरानन्द समाधि में ऐसे स्थित हुआ जैसे मूर्ति का पर्वत हो। जब बहुतकाल अपने भुवन में सुमेरुवत् समाधि में स्थितरहा तब दैत्य उसको जगानेलगे परन्तु वह न जागा–जैसे समय विना बीज अंकुर नहीं लेता–और पांचसहस्रवर्ष समाधि में व्यतीत भये पर शरीर उसी प्रकार पुष्ट रहा। दैत्यों के नगर में शान्ति होगई और वह

परमानन्द आत्मा को प्राप्त हुआ; निरानन्द जो प्रकाश है सो प्रकाशमात्र रहगया और कलना सब मिटगई। इतना काल जब इस प्रकार व्यतीत हुआ तब रसातलमण्डल में राजभय दूर होगया और छोटेको बड़ा भक्षणकरनेलगा। निदान दैत्यमण्डलीकी विपर्यय दशा होगई और निर्बल को बलवान् मारके लूट लेगये। तब अनेक मल्ल मिलकर प्रह्लाद को जगानेलगे पर तौभी वह न जागा—जैसे सूर्यमुखी कमलको रात्रि में भँवरे गुञ्जारकरें और तौभी वह प्रफुल्लित नहीं होता मुंदाही रहताहै। संवित्कला जो चित् धातु है सो उसके भीतर फुर्नी न भासती थी जैसे मूर्तिका लीला सूर्यप्रकाश से रहित होता है तैसेही उसे देखकर दैत्य उद्वेगवान् हुये और जहां किसीको सुखदायक देश स्थान मिला वहां जारहे; मर्यादा सब दूर होगई मत्सर होनेलगा और पुरुष स्त्रियां रुदन करने और शोकवान् होनेलगे। कोई मारे जावें, कोई लूटे जावें और कोई व्यर्थ अनर्थ कदर्थ करनेवाले होगये। सब दैत्यतापरायण हुये, बान्धव नष्ट होगये और उपद्रव उत्पन्न होनेलगे। दिशा के मुख अग्निरूप होगये देवता आन दिखाई देनेलगे और दैत्य निर्बल को बांधि लेजानेलगे। दैत्य मूलभूमि से रहित निर्लक्ष्मी उजाड़ से होगये और दैत्यपुर में अनीति अकाण्ड उपद्रव हुआ। जैसे कल्पके अन्त में जीव दुःख पाते हैं तैसेही दैत्य दुःख पानेलगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे दैत्यपुरीप्रभञ्जनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब दैत्यपुरी की दशा हुई तब सम्पूर्ण जगत् जालके क्रम पालनेवाले विष्णुदेव, जो क्षीरसमुद्र में शेषनाग की शय्या पर शयन करनेवाले हैं, चतुर्मास वर्षाकाल की निद्रा से जागे और बुद्धि के नेत्रों से जगत् की मर्यादा विचारी तो देखा कि, पाताल में प्रह्लाद दैत्य समाधि में पद्मासन बांधकर स्थित हुआ है और सृष्टि दैत्यों से रहित हुई है। बड़ा कष्ट है कि, अब देवता जीतने की इच्छा से रहित होकर आत्मपद में स्थित होजावेंगे और जब देवता और दैत्यों का विरोध रहता है तब जीतने के निमित्त याचना करते हैं कि, दैत्य नष्ट होवें। अब सब देवता निर्द्वन्द्वरूप होकर परमपद को प्राप्त होवेंगे। जैसे रस से रहित बेलि सूख जाती है तैसेही अभिमान और इच्छा से रहित देवता जगत् की ओर से सूखकर आत्मपद को प्राप्त होंगे। जब देवताओं के समूह शान्ति को प्राप्त होंगे तब पृथ्वी में यज्ञ तपादिक उत्तमक्रिया निष्फल होजावेंगी न कोई करेगा, न किसीको प्राप्त होगा और जब पृथ्वीलोकमें शुभक्रिया नष्ट हुई तब लोकभी नष्ट होजावेंगे, अकाण्ड प्रलय प्रसंग होगा और सब मर्यादा क्रम जगत् का नष्ट होजावेगा। जैसे धूप से बरफ होनाहै तैसेही जगतक्रम सब नष्ट होवेगा इसके नष्टहुये भी मुझको कुछ नहीं परन्तु

मैंने अपनी लीलारची है सो सब नष्ट होजावेगी तब मैं भी इस शरीर को त्याग कर परमपद में स्थित हूंगा और अकाण्डीही जगत् उपशम को प्राप्तहोगा । इससे इससे मैं कल्याण नहीं देखता । जो दैत्यों के उद्वेग से रहित देवनाभी शान्त होजावेंगे तो तपक्रिया नष्ट होजावेगी और जीव दुःखी होकर नष्ट होजावेंगे । इससे मैं जगत्कर्म को स्थापनकरूं कि, परमेश्वर की नीति इसी प्रकार है । अब रसातल को जाऊं और जगत् की मर्यादा ज्योंकी त्यों स्थापन करूं पर जो मैं प्रह्लाद से भिन्न पाताल का राज्य करूंगा तो वह देवताओं का शत्रु होगा इससे ऐसे भी न करूंगा । प्रह्लाद का यह अन्त का जन्म है और परम पावन देह है और कल्प पर्यन्त रहेगी । यह ईश्वर की नीति है सो ज्योंकी त्यों है; इससे मैं जाकर दैत्येन्द्र प्रह्लाद को जगाऊं कि अब वह जागकर जीवन्मुक्त हुआ है दैत्योंका राज्यकरे । जैसे मणि मल से रहित प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है तैसेही प्रह्लाद भी इच्छासे रहित होकर प्रवर्त्ते । इस प्रकार सृष्टि देवता दैत्यों से संयुक्त रहेगी और परस्पर इनका द्वेष न होगा और मेरी क्रीड़ा लीला और इच्छा होगी । यद्यपि सृष्टि का होना न होना मुझको तुल्य है तौभी जो नीति है वह जैसे स्थित है तैसेही रहे । जो वस्तु भाव में तुल्य हो उसका नाश और स्थित में प्रयत्नकरना कुबुद्धि है; आकाश के हननके यत्न के तुल्य है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेभगवान्चित्तविवेकोनामाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार चिन्तन कर सर्वात्मा विष्णुदेव अपने परिवार सहित क्षीरसमुद्रसे चले-जैसे मेघघटा एकत्र होकर चले—और आकर प्रह्लाद के नगर को प्राप्त हुये । वह नगर मानो दूसरा इन्द्रलोक था और प्रह्लाद के मन्दिर में देखा कि, निकट दैत्य थे वे विष्णुजी को दूर से देखकर भागगये—जैसे सूर्य से उलूकादिक भागजावें तब जो मुख्य दैत्य थे उनके साथ विष्णुजी ने दैत्यपुरी में प्रवेश किया—जैसे तारासंयुक्त चन्द्रमा आकाश में प्रवेश करता है तैसेही विष्णुजी गरुड़ पर आरूढ़ लक्ष्मी साथ चमरकरतीं और अनेक ऋषि, देव, सहित प्रह्लाद के गृह आये । आतेही विष्णुजी ने कहा, हे महात्मापुरुष ! जाग ! जाग ! ऐसे कहकर पांचजन्य शंख बजाया जिससे महाशब्द हुआ । फिर उस प्रह्लाद के कानों के साथ लगाया और जैसे प्रलयकाल में इकट्ठा मेघ का शब्द हो तैसेही बड़े शब्द को सुनकर दैत्य पृथ्वी पर गिर गिरपड़े । निदान शनैःशनैः दैत्येन्द्र को जगाया और प्राणशक्ति जो ब्रह्मरन्ध्र में थी वहांसे विष्णुजी ने उठाई और वह शरीर में प्रवेश करगई । जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्य की प्रभा वनमें प्रवेश करजाती है तैसे नवद्वारों से प्रवेश करगई । तब प्राणरूपी दर्पण में चित्तसंवित् प्रतिबिम्बित होकर चैतन्य मुखत्व हुई और मनभाव को प्राप्त हुई और तब जैसे प्रातःकाल में कमल खिलआते हैं तैसेही उसके

नेत्र प्रफुल्लित हो आये और प्राण औ अपान नाड़ी में छिद्रों के मार्ग बिचरनेलगे। जैसे वायु से कमल स्फुरनेलगते हैं तैसेही मन और प्राणशक्ति से अङ्कुरनेलगे और जाग जाग शब्द जो भगवान् कहते थे उससे वह जगा और उसने जाना कि, मुझ को विष्णुभगवान् ने जगाया है और जैसे मेघ का शब्द सुनकर मोर प्रसन्न होता है तैसे वह प्रसन्न हुआ और मन में दृढ़ स्मृति होआई। तब त्रिलोकीके ईश्वर विष्णुदेव ने, जैसे पूर्व कमलोद्भव ब्रह्मा से कहाथा कहा कि, हे साधु ! तू अपनी महालक्ष्मी को स्मरणकर कि, तू कौनहै। समय विना देहके त्यागने की इच्छा क्या की थी। जो ग्रहण त्याग के संकल्प से रहित पुरुष हैं उनको भाव अभाव के होनेमें क्या प्रयोजन है ? उठकर अपने आचार में सावधान हो, तेरा यह शरीर कल्पपर्यन्त रहेगा और नष्ट नहीं होगा। इसनीति को ज्योंकी त्यों मैंजानताहूं। हे आनन्दित ! तू जीवन्मुक्त हुआ राज्य में स्थित हो। हे क्षीणमन ! गतउद्वेग तेरा देह कल्पपर्यन्त रहेगा और फिर कल्प के अन्त में तू शरीर त्यागकर अपनी महिमा में स्थित होगा—जैसे घट के फूटेसे घटाकाश महाकाश को प्राप्त होताहै। अब तू निर्मलदृष्टिको प्राप्त हुआहै; लोकों का पाशवार तू ने देखा है और अब तू जीवन्मुक्त विलासी हुआ है। हे साधु ! द्वादश सूर्य जो प्रलयकाल में तपते हैं उदय नहीं हुये तो तू क्यों शरीर त्यागता है; उन्मत्त पवन जो त्रिलोकी की भस्म उड़ानेवाला वह तो नही चलाहै और देवताओंके विमान उससे नहीं गिरे तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागता है ? सबलोगों के शरीर सूखे वृक्ष की मञ्जरीवत् नहीं सूखे; पुष्कर मेघ और वह बिजली फुरने नहीं लगी पर्वत तो युद्ध करके परस्पर नहीं गिरनेलगे, अबतक मैं भूतों को खैंचने नहीं लगा लोकों में बिचरताहूं। यह अर्थ है, यह मैं हूं, यह पर्वत हैं, ये भूत प्राणी हैं, यह जगत् है, यह आकाश है, तू देह मत त्याग; देह को धारेरह। हे साधो ! जो जीव अज्ञानयोग से शिथिल हुआ है अर्थात् जिसकी देह में आत्म अभिमान है कि, मैं और मम से व्याकुल रहता है और दुःखों से जीर्ण होता है उसको मरना शोभताहै। जिसको तृष्णा जलाती है और हृदय में संसारभावना जीर्ण करती है और जिसके मनरूपी वन में चित्तरूपी लता दुःख सुखरूपी पुष्पों से प्रफुल्लित है और उदय होती है उस को मरना श्रेष्ठ है। जो पुरुष अपनी देह में आधि व्याधि दुःखों से जलता है और जिसके हृदय में काम क्रोधरूपी सर्प फुरते हैं और देहरूपी सूखा वृक्ष निष्फल है और चित्त चञ्चल है ऐसी देहके त्यागने को लोक में मरना कहते हैं; स्वरूपमें नाश किसी का नहीं होना। क्या ज्ञानी का हो क्या अज्ञानी का हो। हे साधो ! जिसकी बुद्धि आत्मतत्त्व के अवलोकन से उपशान्त नहीं होती ऐसा जो यथार्थदर्शी ज्ञानवान् है और जिसका हृदय राग द्वेष से रहित शीतल हुआ है और दृश्यवर्ग को साक्षीभूत

होकर देखता है उसका जीना श्रेष्ठ है। जो पुरुष सम्यक् ज्ञानद्वारा हेयोपादेय से रहित है और चेतनतत्त्व में तद्रूप चित्त हुआ है; जिसने संकल्प मल से रहित चित्त को आत्मपद में लगाया है और जिस पुरुष को जगत् के इष्ट-अनिष्ट पदार्थ समान भासते हैं और शान्तचित्त हुआ लीलावत् ज..त् के कार्य करता है; जो इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष नहीं करता, जिसे ग्रहण त्याग की बुद्धि उदय नहीं होती और जिसके श्रवण और दर्शन किये से औरों को आनन्द उपजता है उसका जीना शोभता है। जिसके उदय हुये से जीवों के हृदय कमल प्रफुल्लित होते हैं उसका चिरजीना प्रकाशवान् शोभता है और वही पूर्णमासीके चन्द्रमावत् सफल प्रकाशता है—नीच नहीं शोभते ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेनारायणवनोपन्यासयोगो नामैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३९ ॥

श्रीभगवान् बोले, हे साधो! यह जो देहसंग दृष्टि आती है उसका नाम जीना कहते हैं और इस देह को त्यागकर और देह में प्राप्त होने का नाम मरना है। हे बुद्धिमन्! इन दोनों पक्षों से अब तू मुक्त है; तुझको मरना क्या है और जीना क्या है—दोनों भ्रममात्र हैं। इस अर्थ के दिखानेके निमित्त मैंने तुझ से मरना और जीना कहा है कि, गुणवानों का जीना श्रेष्ठ है और मूढ़ों का मरना श्रेष्ठ है पर तू न जीता है, न मरेगा। देह के होते भी तू विदेह है और तेरे आकाशकी नाईं अङ्ग हैं। जैसे आकाश में वायु नित्य चलता है परन्तु उससे आकाश निर्लेप रहता है तैसेही तू देह में निर्लेप रहेगा। देह, इन्द्रियां, मन आदिक की क्रिया सब तुझसे होती हैं, सबका कर्ता और सत्तादेनेवाला तूही है और स्वरूप से सदा अकर्ता है। जैसे वृक्षकी उँचाई का कारण आकाश है तैसेही तेरे में कर्तव्य है। तू अब जागा है, तूने वस्तु ज्योंकी त्यों जानी है और तू अस्ति नास्ति सर्व का आत्मा है। यह परिच्छिन्नरूप जो देह है सो अज्ञानी का निश्चय है और यह केवल दुःखों का कारण है। तू तो सर्वप्रकार सर्वात्मा चेतन प्रकाश है, तेरी बुद्धि आत्मपरायण है और तुझको देह अदेह क्या और ग्रहण और त्याग क्या। जो तत्त्वदर्शी पुरुष हैं उनका भावपदार्थ उदय हो अथवा लीन हो और प्रलयकाल का पवन चले तो भी उसको चला नहीं सक्ता और जिसका मन भाव अभाव से रहित है वह जो पर्वत के ऊपर पर्वत पड़े और चूर्ण हो और कल्पकी अग्निमें जलनेलगे तो भी अपने आपमें स्थित है—चलायमान नहीं होता। सबभूत स्थित होवें; इकट्ठे नष्ट होजावें अथवा वृद्ध होवें वह सदा अपने आपमें स्थित है। इस देह के नष्ट हुये नाश नहीं होता और विरोधी हुये प्राप्त नहीं होता। इस देह में जो परमेश्वर आत्मा स्थित है वह मैंहूं। मेरा अनात्माभ्रम नष्ट

होगया है और ग्रहण त्याग मिथ्याकल्पना उदय नहीं होती। जो विवेकी तत्त्ववेत्ता है उसका संकल्पभ्रम नष्ट होजाता है और जो प्रबुद्धपुरुष है वह सब क्रिया करता भी अकर्ता पद को प्राप्त होता है। वह सर्व अर्थों में अकर्ता, अभोक्ता रहताहै और जगत् के किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता। जब कर्तृत्व भोक्तृत्व शान्त होता है तब आत्मपद शेष रहता है। इस निश्चय की दृढ़ता को बुद्धिमान् और मुक्त कहते हैं। प्रबुद्धपुरुष चिन्मात्रस्वरूप है और सबको अपने वश करके स्थित है; वह ग्रहण किसका करे और त्याग किसका करे। ग्राह्य और ग्राहक शब्द भाव अविद्या है और देह इन्द्रियों से होता है सो ग्रहण करना क्या और त्यागकरना क्या? जब ग्राह्य-ग्राहक भाव हृदय से दूर हुआ उसीका नाम मुक्त है। जिसको ऐसी स्थित उदय होती है वह परमार्थसत्ता में सदा स्थित रहता है और वह पुरुषों में पुरुषोत्तम सुषुप्त की नाईं स्थित है; उसके अङ्गों की चेष्टा बोध को प्राप्त हुई है। परम विश्रान्तिमान् निर्वासनिक पुरुषों की वासना भी जगत् में स्थित दृष्टि आती है और अर्द्ध सुषुप्त की नाईं चेष्टा करते हैं पर वे सब जगत् में आत्मा देखते हैं। वे आत्माविषयिणी बुद्धि से सुख में हर्षवान् नहीं होते और दुःख में भी शोकवान् नहीं होते एक रस आत्मपद में स्थित रहते हैं। नित्यप्रबुद्ध पुरुष कार्यभाव को ग्रहण करता है पर जैसे इच्छासे रहित दर्पण प्रतिबिम्ब को ग्रहण करताहै तैसेही भली बुरी भावना उसको स्पर्श नहीं करती। वह आत्मपदमें जाग्रत् है और संसार की ओर से सोया है और सुषुप्तिरूप है। जैसे पालने में सोयाहुआ बालक स्वाभाविक अङ्ग हिलाता है तैसेही उसका हृदय सुषुप्तिरूप है और व्यवहार करता है। हे पुत्र! तू अजात परमपद को प्राप्त हुआ है। तू इस देह से ब्रह्मा का एक दिन भोगेगा और इस राजलक्ष्मी को भोगकर फिर अच्युत परमपद को प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादबोधोनामचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अद्भुत जिसका दर्शन है ऐसे जगत्रूपी रत्नों के डब्बे विष्णुदेव ने जब शीतल वाणी से इस प्रकार कहा तब प्रह्लाद ने नेत्रों को खोलकर धैर्य सहित कोमल वचन और मननभाव को ग्रहण करके देखा और चर्मदृष्टि से बाहर देखा कि, बड़ा कल्याण हुआ है। परमेश्वर अपना आपस्वरूप अनन्त आत्मा है और सर्व संकल्प से रहित आकाशवत् निर्मल है। अब मुझको न शोक है, न मोह है और न वैराग से देहत्याग की चिन्ता है। जो कुछ कार्य भयदायक होताहै सो एक आत्मा के विद्यमान रहते शोक कहां; नाश कहां; देहरूपी संसार कहां; संसार की स्थिति कहां, भय कहां और अभयता कहां; मैं यथा इच्छित अपने आपमें स्थितहूं। इस प्रकार मैं निर्मल विस्तृतरूप केवल पावन में स्थितहूं और संसार बन्धन को

त्यागकर विरक्त हुआहूं । जो अप्रबुद्ध मूढ़ हैं उनकी बुद्धि में हर्ष, शोक, चिन्ता, विकार सदा रहता है। वे देह के भाव में सुख मानते हैं और अभाव में दुःखी होते हैं। यह चिन्तारूपी विष की पंक्ति मूढ़ों को लेपायमान होती है। यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह ग्रहण करने योग्य है; यह त्यागने योग्य है; इस प्रकार मूर्खोंके चित्त की अवस्था डोलायमान होती है पण्डितों की नहीं होती। मैं भिन्न हूं और वह भिन्न है यह अज्ञान से अन्धवासना है, शुद्धबुद्धि के विद्यमान नहीं रहती जैसे सूर्य की किरणों से रात्रि दूर रहती है तैसेही यह वासना दूर रहती है। यह त्याग और यह ग्रहण कीजिये सो मिथ्या चित्त का भ्रमहै और उन्मत्त अज्ञानी के हृदय में होता है; ज्ञानवान् के हृदय में यह भ्रम उदय नहीं होता है। हे कमलनयन! सर्व तूही है और विस्तृत आत्मरूप है। हेयोपादेय और द्वैतभाव कल्पना कहां है? यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ता का आभास है। सत्य असत्यरूप जगत् में ग्रहण त्याग किसका कीजिये। केवल अपने स्वभाव से द्रष्टा और दृश्य का विचार किया है उस में मैं प्रथम क्षीण विश्रान्तवान् हुआ था अब भाव अभाव जगत् के पदार्थों से मुक्त हुआ हूं और हेयोपादेय से रहित आत्मतत्त्व मुझको भासता है और समभाव को प्राप्त हुआ हूं। अब मुझको संशय कुछ नहीं रहा, जो कुछ करताहूं वह आत्मा से करताहूं। त्रिलोकीमें तबतक तू पूजने योग्य है जबतक उन्मत्त नहीं हुआ इससे मैं आदर संयुक्त पूजन करता हूं तुम ग्रहण करो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार दैत्यराज ने कहकर क्षीरसमुद्र में शयन करनेवाले विष्णु को श्रेष्ठ सुमेरु की मणिसे पूजा और फिर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदिक शस्त्रों का पूजन करके गरुड़ की पूजा की और फिर देवता और विद्याधरों की पूजा की। इस प्रकार भगवान् के आत्मस्वरूप का हृदयमें ध्यान रखके परिवार संयुक्त पूजन किया, तब लक्ष्मीपति बोले; हे दैत्येश्वर! तू उठकर सिंहासन पर बैठ, मैं तुझको अपने हाथ से अभिषेक करताहूं और पाञ्चजन्य शंख बजाता हूं उसका शब्द सुनकर सब सिद्ध और देवता आकर तेरा मङ्गल करेंगे। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर विष्णुजी ने दैत्य को इस भांति सिंहासन पर बैठाया जैसे सुमेरु पर मेघ आबैठे और फिर क्षीरसमुद्र और गङ्गादि तीर्थों का जल मँगाके पाञ्चजन्य शंख बजाया जिसके शब्द से सब सिद्धगण, ऋषि, ब्राह्मण, विद्याधर, देवता और मुनियोंके समूह आये और सबने स्तुति की। इस प्रकार अभिषेक देकर मधुसूदन बोले, हे निष्पाप! जबतक सुमेरु के धरनेवाली पृथ्वी और सूर्य चन्द्रमा का मण्डलहै तबतक तू इष्ट अनिष्ट में समबुद्धि; वीतराग और क्रोध से रहित होकर राजभोग और राज्य की पालना कीजिये। तुझको पूर्णभूमिका प्राप्त हुई है उसमें स्थित होकर जैसे प्राप्त हो तैसेही हर्ष शोक और उद्वेग से रहित होकर

बिचरो। हेयोपादेय से रहित हो। तू बन्धवान् न होगा। संसार की स्थिति तू ने सब देखी है और सबको जानता है अब मैं तुझको क्या उपदेश करूं। तू राग द्वेष से रहित होकर राज भोग, अब दैत्यों का रुधिर धरती पर न पड़ेगा अर्थात् देवताओं के साथ विरोध न होगा। आज से देवता और दैत्यों का संग्राम गया। जैसे मन्दराचल से रहित क्षीरसमुद्र शान्तिमान् हुआ था तैसेही सब जगत् स्वस्थ रहेगा। मोहरूपी तम तेरे हृदय से दूर हुआ है और सदा प्रकाशस्वरूप लक्ष्मी हुई है और अनन्त विलासों को राजलक्ष्मी से भोगता आत्मपद में स्थितरह॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादाभिषेकोनामैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर पुण्डरीकाक्ष परिवार संयुक्त चले मानो दूसरी संसार की रचना दैत्यके मन्दिर से चली है। तिस पीछे प्रह्लाद ने पुष्पाञ्जलि दी और क्रमसे क्षीरसमुद्र में पहुँचे और देवताओंको बिदा करके आप शेषनाग के आसनपर जैसे श्वेतकमलपर भँवरा बैठे तैसे स्वस्थ होकर बैठे। हे रामजी! यह दृष्टि अज्ञान के सम्पूर्ण मल के नाश करनेवाली है। प्रह्लाद को बोध की प्राप्ति की जो अवस्था मैंने तुमसे कहीहै वह चन्द्रमा के मण्डलवत् शीतल है। जो मनुष्य बड़ापापी हो और इसको विचारे तो वहभी शीघ्रही परमपद को प्राप्त हो और जो पाप से रहित है उसकी क्या वार्त्ता कहिये केवल सम्यक् विचार करके पाप नष्ट होजाताहै। वह कौन है जो इन वाक्यों को विचारके परमपद को न प्राप्तहो। हे रामजी! अज्ञानरूप पाप इसके विचार से नष्ट होजाते हैं और पापों का कारण जो अज्ञान है उसका नाश करनेवाला यह विचार है—इससे विचार का त्याग कदाचित् न करो। यह जो प्रह्लाद की सिद्धता कही है इसको जो मनुष्य विचारे उसके अनेक जन्मों के पाप नष्ट होजावें इसमें कुछ संशय नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! प्रह्लाद का मन तो परमपद में लगगया था पाञ्चजन्य शब्द से उसको विष्णुजी ने कैसे जगाया? वशिष्ठजी बोले, हे निष्पाप, रामजी! लोक में मुक्ति दो प्रकार की है एक सदेह और दूसरी विदेह, उनका भिन्न भिन्न विभाग सुन। जिस पुरुष की बुद्धि देहादिकों से असंशक्ति है और जिसको ग्रहण त्याग की इच्छा नहीं और निरहंकार हुआ चेष्टा करता है उसको तुम सदेह मुक्त जानो और देहादिक सब नष्ट होजावें फिर न जन्म धारण करे उसको विदेह मुक्त जानो। वह उस पद को प्राप्त होता है जो अदृश्यरूप है। अज्ञानी की वासना कच्चे बीजकी नाईं है जो जन्मरूपी अंकुर को प्राप्त करती है और ज्ञानवान् मुक्त की वासना भूनेबीज की नाईं जो जन्मरूपी अंकुर से रहित होती है। विदेहमुक्त की वासना का अंकुर दृष्टि नहीं आता जीवन्मुक्त पुरुष के हृदय में शुद्ध वासना होती है और पावनरूप परम उदारता सत्तामात्र नित्य आत्मध्यान में है और संसार की

ओर से सुषुप्ति की नाईं शान्तरूप है। सहस्र वर्ष का अन्त होजावे और शुद्ध वासना का बीज हृदय में हो तो वह पुरुष समाधि से जागेगा—वह जीवन्मुक्त है। इससे प्रह्लाद के हृदय में शुद्धवासना थी उससे पाञ्चजन्य शंख के शब्द से वह जागा। विष्णुजी सबभूतों के आत्मा हैं जैसे जिसकी इच्छा फुरती है तैसेही तत्काल होता है और वे सर्वज्ञ और सबके कारण हैं। जब विष्णु ने चिन्तना की तब प्रह्लाद जागा। आप अकारण है कोई इसका कारण नहीं यही सब भूतों का कारण है सृष्टि की स्थिति निमित्त आत्मा पुरुष ने विष्णु वपु धारा है और आत्मा के देखनेही से विष्णुजी का दर्शन होता है और विष्णु की आराधना से शीघ्रही आत्मा का दर्शन होता है। आत्मा के देखने के निमित्त तुम भी इसी दृष्टि का आश्रय करो। तुम विराट्रूप हो, इसी दृष्टि से शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होगी। यह वर्षाकालकी नदी-वत् संसार असार बादल है सो विचाररूपी सूर्य के देखे विना जड़ता दिखाता है। विष्णुरूप जो आत्मा है उसकी प्रसन्नता से बुद्धिमान् को यह भास्वररूप माया नहीं बेधती। जैसे यक्ष माया यन्त्रमन्त्रवाले को नहीं बेधसक्ती तैसेही आत्मा की इच्छा से यह संसार माया घनता को प्राप्त होती है और आत्मा की इच्छा से निवृत्त होती है। यह संसार माया ईश्वर की इच्छा से वृद्ध होती है—जैसे अग्नि की ज्वाला वायु से वृद्ध होती है और वायुही से नष्ट होती है॥

इति श्रीयोगवा०उपशमप्रकरणेप्रह्लादव्यवस्थावर्णनन्नामद्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः४२॥

इतना सुनकर रामजी ने पूछा, हे भगवन्, सब धर्मों के वेत्ता! आपके वचन परम शुद्ध और कल्याणस्वरूप हैं जिनको सुनकर मैं आनन्दवान् हुआ हूं—जैसे चन्द्रमा की किरणों से औषध पुष्ट होती है—और आपके वचनों के सुनने को, जो पावन और कोमल हैं, जिसकी वाञ्छा है वह पुरुष जैसे पुष्पों की माला से सुन्दर छाती शोभती है तैसेही शोभता है। हे गुरुजी! आप कहते हैं कि, सबकार्य अपने पुरुष प्रयत्नसे सिद्ध होते हैं; जो ऐसे है तो प्रह्लाद माधव के वर बिन क्यों जागा—जब विष्णुने वर दिया तब उसको ज्ञान प्राप्त हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे राघव! प्रह्लाद को जो कुछ प्राप्त हुआ वह पुरुषार्थ से प्राप्त हुआ; पुरुषार्थ बिन कुछ प्राप्त नहीं होता। जैसे तिलों और तेल में कुछ भेद नहीं तैसेही विष्णु भगवान् और आत्मा में कुछ भेद नहीं। विष्णु है वह आत्मा है और जो आत्मा है वह विष्णु है; विष्णु और आत्मा दोनों एक वस्तु के नाम हैं जैसे विटप और पादप दोनों एक वृक्ष के नाम हैं। प्रह्लाद ने जो प्रथम अपने आपसे अपनी प्रेमशक्ति विष्णुभक्ति में लगाई सो आत्मशक्ति से लगाई; आत्मा से आपही वर पाया और आपही विचारकर अपने मन को जीता। कदाचित् आत्मा में आपही अपनी शक्ति से जागता है अथवा विष्णुशक्ति से जागता है।

हे रामजी ! प्रह्लाद चिर पर्यन्त आराधना करता प्रतापवान् हुआ। विचार से रहितको विष्णुभी ज्ञान नहीं देसक्ता। आत्मा के साक्षात्कार में मुख्य कारण अपने पुरुषार्थ से उपजा विचार है और गौणकारण वर आदिक है; इससे तू मुख्य कारण का आश्रयकर। प्रथम पांचों इन्द्रियों को वशकर और चित्त को आत्मविचार में लगा। जो कुछ किसीको प्राप्त होता है वह अपने पुरुषार्थ से होता है; पुरुषार्थ विना नहीं होता। अपने पुरुषार्थ प्रयत्न से इन्द्रियरूपी पर्वतको लांघे तो फिर संसारसमुद्र से तरजावे और तब परमपद की प्राप्ति हो। जो पुरुष यत्न विना जनार्दन मुक्ति दें तो मृगपक्षियों को क्यों दर्शन देकर उद्धार नहीं करता जो गुरु अपने पुरुषार्थ विना उद्धार करते तो अज्ञानी अविचारी ऊंट, बैल आदिक पशुओं को क्यों नहीं करजाते। इससे विष्णु, गुरु इत्यादि और किसीके पानेकी इच्छा बुद्धिमान् नहीं करते हैं। अपने मनके स्वस्थ किये विना परम सिद्धता की प्राप्ति महात्मा पुरुष नहीं जानते। जिन्होंने वैराग्य और अभ्यास से इन्द्रियरूपी शत्रु वश किये हैं वे अपने आपसे उसको पाते हैं और किसी से नहीं पाते। हे रामजी ! आपसे अपनी आराधना और अर्चना करो; आपसे आप को देखो और आपसे आपमें स्थितरहो। शास्त्रविचारसेरहित मूढ़ोंकी प्रकृतिके स्थिति के निमित्त वैष्णव भक्ति कल्पी है प्रथम जो अभ्यास यत्न का सुख कहा है उससे जो रहित पुरुष है उसको गौणपूजा का क्रम कहा है क्योंकि; उसने इन्द्रियों को वश नहीं किया और जिसने इन्द्रियों को वश किया उसको भेदपूजा से क्या प्रयोजन है। विचार और उपशम विना भी विष्णुभक्ति सिद्ध नहीं होती और जब विचार और उपशम संयुक्त हुआ तब कमल और पाषाण से क्या प्रयोजन है। इससे विचार संयुक्त होकर आत्मा का आराधन करो; उसकी सिद्धता से तुम सिद्ध होगे जिसने उसको सिद्ध नहीं किया वह वन का गर्दभ है जो प्राणी विष्णु के आगे प्रार्थना करते हैं वे अपने चित्त के आगे क्यों नहीं करते? सब जीवों के भीतर विष्णुजी स्थित हैं उनको त्यागकर जो बाहर के विष्णुपरायण होजाते हैं वे बुद्धिमान् नहीं। हृदय गुफा में जो चेतनतत्त्व स्थित है वह ईश्वर का मुख्य सनातन वपु है और शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हाथ में है वह आत्मा का गौण वपु है। जो मुख्य को त्यागकर गौण की ओर धावते हैं वे विद्यमान अमृत को त्यागकर जो साधन से सिद्ध हो उसकी प्राप्ति निमित्त यत्न करते हैं। हे रामजी ! मनरूपी हाथी को जिस पुरुष ने आत्मविवेक से वश नहीं किया उस अविवेकी चित्त को रागद्वेष ठहरने नहीं देते। जिसके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म है उस ईश्वर की जो अर्चना करते हैं वे कष्ट तपस्या से पूजन करते हैं; उनका चित्त समय पाकर निर्मलभाव, अभ्यास और वैराग्य को प्राप्त होता है। नित्य अभ्यास से भी चित्त निर्मल होताहै तो आत्मफल को प्राप्त होताहै; चित्त निर्मल विना आत्मफल

को प्राप्त नहीं होता और जब चित्त निर्मल हुआ तब वैराग्य और अभ्यासवान् हो-
कर आत्मफल का भोगी होताहै—जैसे बोया बीज समय पाकर फल देता है तैसेही
क्रम करके फल होता है। हे रामजी! विष्णुपूजा का क्रमभी निमित्तमात्र है। आत्मतत्त्व
के अभ्यासरूपी शाखा से फल प्राप्त होता है और जो सब से उत्तम परम संपदा का
अर्थ है वह अपने मन के निग्रह से सिद्ध होताहै । अपने मन का निग्रह करना ही
बीज है जो चेतनरूपी क्षेत्र से प्रफुल्लित होकर फलदायक होता है। संपूर्ण पृथ्वी की
निधि और शिलामात्र बड़ी २ मणि की होवें तौभी मनके निग्रह के समान नहीं।
जैसा दुःख का नाशकर्ता और बड़ा पदार्थ मनको निग्रह है वैसा और कोई नहीं।
जबतक जीव अनेक जन्म पाता है तबतक अनउपशम मनरूपी मत्स्य संसारसमुद्र
में भ्रमाता है। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु और महेश को चिरकाल पर्यन्त पूजतारहे
पर यदि मन उपशम और विचार संयुक्त न हुआ तो देवता कृपालु हों तो भी उसको
संसारसमुद्र से नहीं तारसक्ते। यह जो भास्वर आकार जगत् के पदार्थ भासते हैं
उनको इन्द्रियों से त्याग कीजिये तब जन्म के अभाव का कारण जानिये। विषयों की
चिन्तना से रहित होकर, निरामय और सब दुःखोंसे रहित आत्मसुखमें स्थितहो और
जो सत्तामात्र तत्त्व और सबका साररूप है उसका स्वादलेकर मनरूपी नदीके पारहो॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्र० प्रह्लादविश्रान्तिवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसाररूप नाम्नी माया अनन्त है और किसीप्रकार
इसका अन्त नहीं आता। जब चित्त वश हो तब यह निवृत्त होजाती है, अन्यथा नहीं
निवृत्त होती। जितना जगत् देखने और सुनने में आता है वह सब मायामात्र है और
मायारूप जगत् के भ्रम से भासता है। इस पर एक पूर्व इतिहास हुआ है सो तुम
सुनो। हे रामजी! इस पृथ्वी पर कोसलनाम एक देश है जो सुमेरु पर्वतवत् रत्नों से
पूर्ण है और जो २ उत्तम पदार्थ हैं वे सब उस देशमें हैं वहां गाधिनाम् एक ब्राह्मण
जो वेदों में प्रवीण—मानो वेद की मूर्ति था—रहताथा बाल्यावस्था से वह वैराग्यादिक
गुणों से प्रकाशित भुवनवत् शोभता था। एक समय वह कुछ कार्य मन में धरके तप
करनेके निमित्त वनमें गया और उस वनमें एक कमलोंसे पूर्ण ताल देख कण्ठपर्यन्त
जल में खड़ा होकर तप करने लगा। आठमास पर्यन्त दिन रात्रि जब जल में खड़ा
रहा तो उसके दृढ़ तप को देखकर विष्णु प्रसन्न हुये और जहां वह ब्राह्मण तप करता
था वहां, ज्येष्ठ आषाढ़ की तपी पृथ्वी पर मेघवत् आकर कहा, हे ब्राह्मण! जल से
बाहर निकल और जो कुछ वाञ्छित फल है वह मांग तब गाधि ने कहा, हे भगवन्!
असंख्य जीवों के हृदयरूपी कमल के छिद्र में आप भँवरे हैं और त्रिलोकीरूपी कमलों
के आप तड़ाग हैं आप ऐसे ईश्वर को मेरा नमस्कार है। हे भगवन्! यही इच्छा मुझ

को है कि, आपकी आश्चर्यरूप माया को, जिससे यह जगत् रचा है, किसी प्रकार देखूं। तब विष्णुजी ने कहा, हे ब्राह्मण! तुम माया देखोगे और देखकर फिर त्याग भी दोगे। ऐसे कहकर जब विष्णु अन्तर्धान होगये तब ब्राह्मण वर पाकर आनन्दवान् हुआ और जल से निकला जैसे निर्धनपुरुष धन पाकर आनन्दवान् होताहै तैसेही वह ब्राह्मण वर पाकर आनन्दवान् हुआ। चलते बैठते उसकी सुरति विष्णु के वर की ओर लगी रहे और यही विचारे कि, मैं माया कब देखूंगा। एककाल में उसी तालाब पर वह स्नान करनेलगा और डुबकी मार मन में अघमर्षणमन्त्र जपने लगा (अघमर्षण पापों के नाशकरनेवाले मन्त्र को कहते हैं) उस मन्त्र को जपते २ जब उसका चित्त विपर्ययहोकर निकल गया तब उसको कृष्ण मन्त्र भूलगया और आपको फिर अपने गृह में स्थित देखा। फिर उसने आपको मृतक हुआ देखा और देखा कि, सब कुटुम्ब के लोग रुदन करते हैं और शरीर की कान्ति ऐसी जाती रही है जैसे टूटे कमलों की शोभा जाती रहती है। जैसे पवन के ठहरे से वृक्ष अचल होजाते हैं तैसेही अङ्ग अचल होगया और होठ फटकर विरस होगये मानो अपने जीनेको हँसते हैं। माता गाधि को पकड़े बैठीरही और सब परिवारवाले ऐसे इकट्ठे हुये जैसे वृक्षपर पक्षी आन इकट्ठे होते हैं और जैसे पुलके टूटे जल चलता है तैसेही रुदन करते हैं फिर बान्धवलोग कहनेलगे कि, अब यह अमङ्गलरूप है, इसको जलाना चाहिये। ऐसे कह कर उसे सब जलाने ले चले और चितामें डालकेजलादिया और फिर अपने गृह में आकर क्रियाकर्म किया। हे रामजी! उसके उपरान्त वह ब्राह्मण एकदेश में चाण्डाल हुआ। उस देश में एक चाण्डालों का ग्राम था वहां उसने एक चाण्डाली के गर्भ में, श्वान की विष्ठामें कृमिवत् प्रवेश हुये देखा और समय पाकर गर्भ से बाहर निकला—जैसे पक्का फल वृक्षसे गिरता है, तो वहां वह बहुतसुन्दर बालक जन्मा और चाण्डाली इससे प्रीति करनेलगी। इस प्रकार दिन २ बढ़नेलगा जैसे छोटा वृक्ष बढ़जाताहै। निदान वह बारहवर्षका होके फिर सोलह वर्षका हुआ तब श्वानोंको साथ लेकर वन में जावे और मृगों को मारे और इसी प्रकार बहुत स्थानों में विचरे। फिर उसका विवाह हुआ तब उसने यौवन अवस्था को यौवन में व्यतीत किया और बहुत बड़ा कुटुम्बी हुआ। फिर जब वृद्ध होकर शरीर जर्जरीभूत होगया तो तृणों की कुटी बनाकर बाहर जा रहा—जैसे मुनीश्वर रहते हैं। दैववशात् वहां दुर्भिक्ष पड़ा और इसके बान्धव क्षुधासे मरनेलगे तब वहांसे अकेला निकला और बहुतेरे स्थान लांघता हुआ कान्त देश में पहुँचा। उस सुन्दर देश का राजा मरगया था और उसके मन्त्रियों ने एक बड़े हाथी को इस निमित्त छोड़ा था कि, जो कोई पुरुष इसके मुख से लगे उसको राजा कीजिये यह राजमार्ग में चला जाता था उस हाथी को देखा कि, बहुत सुन्दर

चरणों से सुमेरुपर्वतवत् चला आता है। जब निकट आया तब उसने इसको शीश पर ऐसे चढ़ालिया जैसे सूर्य को सुमेरु शीश पर बैठाले। इसके हाथी पर आरूढ़ होतेही नगारे और तुरियां बजनेलगे और बड़े शब्द होनेलगे—मानो प्रलयकाल के मेघ गर्जते हैं; भाट आदिक आनकर स्तुति करनेलगे और हाथी पर बैठे से इसके मुख की शोभा औरही होगई। निदान सेनासहित राजा ऐसा शोभायमान हुआ जैसे तारों में चन्द्रमा शोभताहै और अन्तःपुर में जाकर रानियों में बैठा और सब रानियां और सहेलियां इसके निकट आईं और इससे मिलनेलगीं। सहेलियों ने स्नान कराके, नाना प्रकार के हीरे, मोती, भूषण और सुन्दरवस्त्र पहिराये। निदान सब प्रकार सुशोभित होकर राज्य करनेलगा और सब स्थान और सबदेशों में इसकी आज्ञा चलनेलगी और सबलोग इससे भय पावें। वहां वह बड़े तेज और लक्ष्मी से सम्पन्न हुआ और तेजवान् होकर ऐसे बिचरनेलगा जैसे वन में सिंह बिचरता है और हाथीपर चढ़कर शिकार खेलने जाता था। वहां उसका नाम गावल हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेगावलोपाख्यानचाण्डालनाम
चतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार लक्ष्मी पाकर वह आनन्दवान् हुआ और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसेही शोभित हुआ। जब आठवर्षपर्यन्त इस प्रकार राज्य किया तब एक दिन उसके मन में संकल्प फुरा कि, मुझको वस्त्र और भूषणों के पहिरने से क्या है और इनकी सुन्दरता क्या है; मैं तो राजाधिराज हूं और अपने तेजसे तेजस्वी शोभायमान हूं। हे रामजी! ऐसे विचारकर उसने भूषण उतार डाले; शुद्ध श्याममूर्ति होकर स्थितहुआ और जैसे प्रातःकाल में तारागणोंसे रहित श्याम आकाश होता है तैसेही होकर फिर अपनी चाण्डाल अवस्था के वस्त्र पहिन अकेला निकलकर बाहर डेवढ़ीपर जा खड़ाहुआ। निदान उस देशके बड़े चाण्डाल जिनको यह दुर्भिक्ष से छोड़आया था उस मार्ग में आनिकले; उनमें एक चाण्डाल तन्त्री हाथ में लिये आता था उसने राजा को देखकर पहिचाना और श्यामपर्वतवत् राजा के सन्मुख आकर कहा; हे भाई! इतने काल तू कहां था? हमको छोड़कर यहां आकर सुख भोगनेलगा है? हे भाई! यहां के राजा ने तुझको सुखीकिया होगा क्योंकि; तू गाता भला है? राजा को राग प्यारा होता है और तू कोकिला की नाईं गाता है इस कारण प्रसन्न होकर उसने तुझे बहुत धन दिया होगा अथवा किसी और धनी ने तुझसे प्रसन्न होकर मन्दिर और धन दिया होगा। हे रामजी! इस प्रकार वह चाण्डाल मुख से कहता और भुजा फैलाता इसके सन्मुख चला और यह नेत्रों और हाथों से उसको संकेत करे, कि चुपरह पर वह चाण्डाल कुछ न समझे

सन्मुख होकर चलाही आवे। ज्यों ज्यों वह पास आता था त्यों त्यों राजाकी कान्ति घटती जाती थी कि, इतने में झरोखों में से सहेलियोंने देखा और देखकर विचार किया कि यह राजा चाण्डाल है। ऐसे विचार कर वे महाशोक को प्राप्त हुईं और कहनेलगीं कि, हमको बड़ा पाप हुआ कि, इसके साथ हमने स्पर्श और भोजन किया। इस शोक से सबकी कान्ति नष्ट होगई जैसे बरफ़ पड़नेसे कमल पंक्तिकी कान्ति जाती रहती है; और जैसे वन में अग्नि लगनेसे वृक्षों की कान्ति जाती रहती है तैसेही उनकी कान्ति जाती रही। सब नगरवासी भी यह सुनकर शोकवान् हुये और हाय २ शब्द करनेलगे। जब वह चाण्डाल राजा अपने अन्तःपुर में आया तो उसको देख करके सब भागे और निकट कोई न आता था। जैसे पर्वत में अग्नि लगे तो वहां से पशु पक्षी भागजाते हैं तैसेही चाण्डाल राजा के निकट कोई न आवे। उस देश में जो बुद्धिमान् पण्डित थे उन्हों ने विचार किया कि, बड़ा अनर्थ हुआ जो हम इतने कालतक चाण्डाल राजा से जिये। हमको बड़ा पाप लगा है इस लिये इस पाप का और पुरश्चरण कोई नहीं, हम सबही चिता बनाके अग्नि में प्रवेश कर जल मरेंगे तब यह पाप निवृत्त होगा। हे रामजी! ब्राह्मण और क्षत्रियों ने यह विचार करके चिता बना पुत्र, कलत्र और बान्धवों को छोड़कर चिता में प्रवेश करनेलगे और जैसे दीपक में पतङ्ग प्रवेश करें तैसेही जलने लगे। जैसे आकाश में तारे दृष्ट आवें तैसेही चिता का अनेक चमत्कार दृष्ट आता था और धुवें से अन्धकार होगया। कोई धर्मात्मा मनुष्य अपनी इच्छा से जलें और जो अपनी इच्छासे न जलें उनका और ले जलावें। चाण्डालराजा ने बिचारा कि, मुझ एक के निमित्त इतने नगरवासी व्यर्थ जलते हैं; इस संसार में उसका जीना श्रेष्ठ है जिस में शोभा उत्पत्ति हो और जिसके जीने से पाप की उत्पत्ति हो उसका मरना श्रेष्ठ है। हे रामजी! ऐसे विचार कर उस राजा ने भी चिता बनाई और जैसे दीपक में पतङ्ग प्रवेश करता है तैसेही प्रवेश करगया। जब अग्नि का तेज शरीर में लगा तब गाधि का शरीर जो तलाव में डुबकी लगाये था कांपा और जलसे बाहर शीश निकाला परन्तु सावधान न हुआ। इतना कहकर बालमीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य अस्त हुआ और सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेराजप्रध्वंसवर्णनन्नाम
पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इतना भ्रम उसने दो मुहूर्त में देखा और अर्धघटी पर्यन्त उसे कुछ बोध न हुआ पर उसके उपरान्त बोधवान् हुआ और उस संसार भ्रम से रहित हुआ। जैसे मद्यप नशे के क्षीण हुये बोधवान् हो तैसाही वह बोधवान्

हुआ और बाहर निकलकर विचारनेलगा कि, मुझको कुछ भ्रमसा हुआ है। कहां वह मेरा गृह में मरना, फिर चाण्डाल के गृह में जन्मलेना, फिर कुटुम्ब में रहना और फिर राज्यकरना। बड़ा भ्रम मुझको हुआ है। हे रामजी! ऐसे विचारकर फिर उसने सन्ध्यादिक कर्म किये और इस भ्रम को फिर फिर स्मरण करके आश्चर्यवान् हो पर यह जानसके कि, भगवान् का वर पाकर मैंने यह माया देखी है। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब एक क्षुधार्थी दुर्बल ब्राह्मण थकाहुआ इसके आश्रमपर आया-मानो वह्माके आश्रम पर दुर्वासा ऋषि आये-तब गाधि ने उस ब्राह्मण को आदर संयुक्त बैठाया और फल फूल इकट्ठे करके जैसे बसन्तऋतु में फल फूलसे वृक्ष पूर्ण होता है तैसेहीं उसको पूर्णकिया। वह ब्राह्मण कई दिन वहां रहा। संध्यादिक कर्म और मन्त्र जाप दोनों इकट्ठकरें और रात्रि को पत्रोंकी शय्या बनाकर शयन करें। एक रात्रि के समय शय्यापर बैठे दोनों चर्चा वार्त्ता करते थे कि, प्रसङ्ग पाकर गाधि ने पूछा हे ब्राह्मण! तेरा शरीर जो ऐसा कृश और थका हुआ है इसका क्या कारण है? उसने कहा हे साधो! जो कुछ तूने पूछा है सो मैं कहताहूं, हम सत्यवादी हैं-जैसे वृत्तान्त हुआ है सो तू सुन। एक कालमें मैं देशान्तर फिरता फिरता उत्तरदिशा की ओर गया और कान्तदेश में जा पहुँचा और वहां रहनेलगा। वहां के गृहस्थ भली प्रकार मेरी टहलकरें और उनके भले भोजन और वस्त्रों से मैं प्रसन्न हो रसस्वाद से मेरा चित्त मोहगया। एक दिन मेरे मुख से यह शब्द निकला कि, यहां के लोग बहुत श्रद्धावान् और दयावान् हैं तब जो लोग पास बैठे थे कहने लगे, हे साधो! आगे यहां दया धर्म बहुत था अब कुछ कम होगया है। तब मैंने पूछा कि, क्यों? तब उन्हों ने कहा कि, इस देश का राजा मृतक हुआ तब एक चाण्डाल राजा हुआ था। प्रथम किसी ने न जाना और वह आठवर्ष पर्यन्त राज्य करता रहा। जब उस की वार्ता प्रकट हुई कि, यह चाण्डाल है तब देश के रहनेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय चिता बना करके जल मरे और फिर राजा भी जल मरा। ऐसा पाप इस देश में हुआ है इस कारण दया धर्म कुछ कम होगया है। हे ब्राह्मण! जब मैंने इस प्रकार नगर-वासियों से सुना तब मैं बहुत शोकवान् हुआ और वहांसे यह विचारता चला कि, हाय हाय मैं बड़े पापी देश में रहाहूं। ऐसे विचारकर मैं प्रयागादि तीर्थों पर चला और तीर्थ करके कुछ और चान्द्रायण व्रत करे अर्थात् कृष्णपक्ष में एक २ ग्रास घ-टाता जाऊं और जब अमावास्या आवे तब निराहार रहूं और जब शुक्लपक्ष आवे तब एक एक ग्रास बढ़ाता जाऊं और पूर्णमासी के चन्द्रमा के कलासे बढ़ाना और कलाके घटना इस प्रकार मैंने तीन कृच्छ्र चान्द्रायण किये हैं वहांसे चल तेरे आश्रम पर आकर व्रत खोला है। हे साधो! इस निमित्त मेरा शरीर कृश और निर्बल हुआ।

हे रामजी ! जब इस प्रकार ब्राह्मण ने कहा तब गाधि विस्मय को प्राप्तहुआ कि, मैं जानता था कि, मुझको भ्रम ऐसा होगया है सो इसने प्रत्यक्ष वार्त्ता कह सुनाई। ऐसे विचार कर फिर गाधिने पूछा और फिर उसने ऐसेही कहा तब सुनकर आश्चर्यवान् हुआ। जब रात्रि व्यतीत हुई और सूर्य उदय हुआ तब सन्ध्या आदिक कर्म किये और फिर एकान्त में विचारनेलगा कि, मैंने कैसा भ्रम देखा है और ब्राह्मणने सत्य कैसे देखा; इससे अब उस देश को चलकर देखूं जहां मुझको चाण्डाल का शरीर हुआ था। हे रामजी ! इस प्रकार विचारकर मनोराजके भ्रम को देखने को गाधि ब्राह्मण चला और चलता चलता उस देश में जा पहुंचा। जैसे ऊंट कांटों को ढूंढ़ता कण्टकों के वन में जाता है तैसेही यह जब चाण्डालों के स्थानों को प्राप्त हुआ तब चाण्डालों के स्थान देखे और जहां अपना स्थान था उसको देखा और अपने खेती लगाने का स्थान देखा कि, कुछ बेड़ खड़ी है और कुछ गिरगई है और पशुके हाड़ चर्म जो अपने हाथ से डालेथे वे प्रत्यक्ष देखे और आश्चर्यवान् हुआ कि, हे देव ! क्या आश्चर्य है कि, चित्त का भ्रम मैंने प्रत्यक्ष देखा। जो बालक अवस्था में क्रीड़ा करने के और भोजन और मद्य पीने के और पात्र इत्यादिक जो खानपान भोग के स्थान थे वह प्रत्यक्ष देखे और महावैराग्य को प्राप्त हुआ। ग्रामवासी मनुष्यों से भी पूछा कि, हे साधो ! यहां एक चाण्डाल बड़े श्यामशरीरवाला हुआ था तुमको भी कुछ स्मरण है ? हे रामजी ! जब इस प्रकार ब्राह्मण ने पूछा तब ग्रामवासियों ने कहा; हे ब्राह्मण ! यहां एक कटजल नाम चाण्डाल क्रम करके बड़ा हुआ, फिर उसका विवाह हुआ और बेटे बेटी परिवार सहित बड़ा कुटुम्बी हुआ। फिर जब वृद्ध हुआ तो दैवसंयोग से अकेला कहीं चलागया और जाता २ क्रान्त-देश में वहां के राजा के मरने के कारण वहां का राज इसको मिला और आठवर्ष पर्यन्त राज करता रहा। जब नगरवासियों ने सुना कि, यह चाण्डाल है तब वह बहुत शोकवान् हुये और चिता बनाकर जल मरे। इस प्रकार सुनकर गाधि बहुत आश्चर्यवान् हुआ और एकसे सुनकर औरसे पूछा उसने भी इसी प्रकार कहा। ऐसे बारम्बार लोगों से पूछते रहा और एक मास वहां रह फिर आगे चला और नदियां, पहाड़, देश, हिमालय पर्वतों की उत्तरदिशा क्रान्तदेश में पहुँचा। जिन स्थानों का वृत्तान्त सुना था सो सबही देखे। जहां सुन्दर स्त्रियां थीं और जहां चमर झूलते थे उनको प्रत्यक्ष देखा। फिर नगरवासियों से पूछा कि, यहां कोई चाण्डाल राजा भी हुआ है; तुमको कुछ स्मरण है तो मुझसे कहो ? नगरवासियों ने कहा, हे साधो ! यहां का राजा मरगया था और मन्त्रियों ने एक हाथी छोड़ा था कि, जो कोई मनुष्य इस हाथी के संमुख आवे उसको राजा करें। जब वह हाथी चला तब उसके संमुख

एक चाण्डाल आया और हाथी ने जब उस चाण्डाल को शीश पर चढ़ा लिया तब और विचार किसीने न किया और उसको राजतिलक दिया। आठवर्ष पर्यन्त वह राज करतारहा पीछे जब उसके बान्धव आये और उससे चर्चा करने लगे तब सहेलियों ने ऊपर से देखा कि, यह चाण्डाल है। ऐसे देख उन्होंने उसका त्याग किया और विचारवान् लोग जो उसके साथ चेष्टा करते थे वे उसे चाण्डाल जानकर जल मरे और वह राजा भी आपको धिक्कारकर जलमरा। अब उसको बारहवर्ष मृत्यु पाये व्यतीत हुये हैं। हे रामजी! इस प्रकार सुनके गाधि ब्राह्मण आश्चर्य को प्राप्त हुआ कि, कहां मैं जल में स्थित था और कहां इतनी अवस्था देखी। ऐसे विचार करता था कि, इतने में पूर्वका वृत्तान्त स्मरण आया कि यह आश्चर्य भगवान् की माया है। मैंने वर मांगा था इस माया से इतना भ्रम देखा है। यह आश्चर्य है कि, यहां दो मुहूर्त बीते हैं और वहां स्वप्नभ्रम की नाईं इतना काल मुझको भासित हुआ और सत्यसा स्थित हुआ है सो बड़ा आश्चर्य है। इससे संशय निवृत्त करने के निमित्त फिर उन विष्णुजी का ध्यानकरूं जिनकी माया से मैंने इतना भ्रम देखा है और कोई इस संशय को दूर नहीं करसक्ता। हे रामजी! इस प्रकार विचारकर गाधि ब्राह्मण फिर पहाड़ की कन्दरा में जाकर तप करनेलगा और केवल एक अञ्जली जलपान करे और कुछ भोजन न करे। इस प्रकार डेढ़वर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब त्रिलोकी के नाथ विष्णु भगवान् प्रसन्न होकर उसके निकट आये और कहा, हे ब्राह्मण! मेरी माया को देख जो जगत्जाल की रचनेवाली है अब और क्या इच्छा करता है? हे रामजी! जब विष्णु भगवान् ने ऐसे कहा तब ब्राह्मण इस प्रकार बोला जैसे मेघको देखकर पपीहा बोलता है। हे भगवन्! तेरी माया तो मैंने देखी परन्तु एक संशय मुझको है कि, यह जो स्वप्नभ्रम की नाईं मैंने देखा इसमें काल की विषमता कैसे हुइ कि, यहां दो मुहूर्त व्यतीत हुये हैं और वहां चिरकालपर्यन्त भ्रमता रहा और उन झूठे पदार्थों को जाग्रत् में प्रत्यक्ष कैसे देखा? श्रीभगवान् बोले, हे ब्राह्मण! और कुछ नहीं तेरे चित्तही का भ्रम है। जिसके चित्त में तत्त्व की अदृष्टता है उसको यह चित्तभ्रम होता है। और वह क्या भ्रम था, जितना कुछ जगत् प्रत्यक्ष देखता है वह तेरे मन में स्थित है। पृथ्वी आदिक तत्त्व कोई नहीं; जैसे बीज के भीतर फूल, फल, पत्र होते हैं तैसेही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश जो पांचभौतिक हैं वह सब विस्तार चित्त में स्थित है। जैसे वृक्ष का विस्तार बीज में दृष्टि नहीं आता पर जब बोया हुआ उगता है तब विस्तार से दृष्टि आता है; तैसेही जब चित्त ज्ञान में लीन होताहै तब जगत् नहीं भासता और जब स्पन्दरूप होता है तब बड़े विस्तार संयुक्त भासता है। हे ब्राह्मण! जो कुछ जगत् देखता है वह सब चित्त का भ्रम है।

जैसे एक कुलाल घटादिक बासन उत्पन्न करता है तैसेही एक चित्तही अनेक भ्रमरूप पदार्थों को उत्पन्न करता है और जो चित्त वासना से रहित है उससे भ्रमरूप पदार्थ कोई नहीं उपजता। इससे चित्तको स्थितकर। हे ब्राह्मण! इस चित्त में कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं। जो तुझको चाण्डाल अवस्था का अनुभव हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य हुआ और तू कहताहै कि, मैंने बड़ी आश्चर्यरूप माया देखी है सो उसको ही माया कहता है। अब जो तुझको विद्यमान भासता है वह सब भी माया है। जो तुझको अपने गृह में अनुभव हुआ था और चाण्डाल के गृह में जन्म लिया, कुटुम्बी हुआ और राज किया, फिर चिता में जला, फिर अतिथि ब्राह्मणसे मिला, फिर जाकर सबस्थान देखे सोभी माया थी। जैसे इतना भ्रम तूने माया से देखा तैसेही यह फैलाव भी सब माया है। हे साधो! जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और जैसे मदिरापान करनेवाले को सब पदार्थ भ्रमते दिखते हैं तैसेही यह जगत् भी भ्रम मे भासता है। जैसे नौका पर बैठेको तटवृक्ष भ्रमते भासते हैं तैसेही यह जगत् भी भ्रममात्र भासता है और चित्त के स्थित किये से जगत् भ्रम नष्ट होजावेगा—अन्यथा निवृत्त न होवेगा। जैसे पत्र, फूल, फल, टास काटने से वृक्ष नाश नहीं होता जब मूल से काटिये तब नाश होजाता है तैसेही जब जगत् भ्रम का मूल चित्तही नष्ट होजावेगा तब संपूर्ण भ्रम निवृत्त होजावेगा यह चित्तका नाश होना क्या है? चित्त की चैत्यता जो दृश्य की ओर धावती है वही जगत् का बीज है; जब यही चैत्यता दृश्य की ओर फुरनेसे रहित हो तब जगत्भ्रम भी मिटजावेगा और जगत् की ओर फुरना तब मिटे जब जगत् को मायामात्र जानोगे। हे साधो! यह सब जगत् मायामात्र है, कोई पदार्थ सत्य नहीं। जैसे वह भ्रम को मायामात्र भासित है तैसेही यह भी सब मायामात्र जानो। इससे इस भ्रम को त्यागकर अपने ब्राह्मण के कर्म करो। हे रामजी! इस प्रकार कहकर जब विष्णुदेव उठखड़े हुये तब गाधि और और ऋषीश्वर जो वहां थे उन्होंने विष्णुकी पूजा की और विष्णु क्षीरसमुद्र को गये तब वह ब्राह्मण फिर उसी भ्रम को देखने चला। निदान वह फिर कान्तदेश में गया और उसको देखकर आश्चर्यवान् हुआ विष्णु मायामय कहाते हैं जो कुछ मैंने भ्रम में देखा था सोई प्रत्यक्ष देखताहूं। ऐसे विचारकर फिर कहा कि, जो इस संशय को और कोई दूर नहीं करसका इससे फिर मैं विष्णुका आराधन करूंगा। हे रामजी! इस प्रकार विचार कर गाधि फिर पहाड़ की कन्दरा में जाकर तप करनेलगा तब थोड़ेकाल में विष्णु भगवान् प्रसन्न होकर आये और जैसे मेघ मोर से कहे तैसेही ब्राह्मण से बोले; हे ब्राह्मण! अब क्या चाहताहै? तब गाधि ने कहा. हे भगवन्! तुम कहतेहो सब भ्रममात्र है और यह तो प्रत्यक्ष भासता है। जो भ्रम होताहै सो प्रत्यक्ष अनुभव

नहीं होता और मैंने फिर वह स्थान देखे और थोड़ेकाल से बहुतकाल देखने का मुझको संशय है सो दूर करो। हे रामजी! जब इस प्रकार गाधिने कहा तब भगवान् ने कहा, हे ब्राह्मण! जो कुछ तुझको यह भासता है वह सब मायामात्र है और जिस प्रकार तुझको यह भासता है वह सब मायामात्र है। जिस प्रकार तुझको यह अनुभव हुआहै वह सुन; हे ब्राह्मण! कण्टकजलनाम चाण्डाल एक चाण्डालके गृहमें उत्पन्न हुआ था और क्रम से बड़ा होकर बड़ा कुटुम्बी हुआ। फिर वहां दुर्भिक्ष पड़ा तब उस देश को त्यागकर क्रान्त देश का राजा हुआ। फिर लोगोंने सुना तब सबही अग्नि में जले और वह चाण्डाल आपभी अग्नि में जला। वह कण्टकजल चाण्डाल और था, यह अवस्था उसकी हुई थी और वही प्रतिभा तुझको आन फुरी है। जैसी अवस्था उसकी हुई थी सो तेरे चित्त में आनफुरी इस कारण तूने जाना कि, यह अवस्था मैंने देखी है। हे साधो! अकस्मात् ऐसेभी होताहै कि, और की प्रतिभा औरको फुर आतीहै। कहीं अन्यथा भी होतीहै, कहीं एक ऐसीभी होतीहै; इस भ्रम का अन्त लेना नहीं बनता क्योंकि यह चित्त के फुरनेसे होताहै। जब चित्त आत्मपद में स्थित होताहै तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाताहै। काल की विषमता भी होतीहै—जैसे जाग्रत्की दोघड़ी में अनेक वर्षों का स्वप्न देखता है तैसेही यह सब चित्त का भ्रम जान। तू इस भ्रम को न देख; चित्त को स्थिर करके अपने ब्राह्मण का आचारकर। हे रामजी! ऐसे कहकर विष्णु गुप्त होगये परन्तु ब्राह्मण का संशय दूर न हुआ। वह मन में विचारे कि, और की प्रतिभा मुझको कैसे हुई यह तो मैंने प्रत्यक्ष भोगी है और जाकर देखी है यह और की वार्त्ता कैसेहो। जो आंखों से नहीं देखी होती उसका अनुभव भी नहीं होता और मैंने तो प्रत्यक्ष अनुभव किया है। ऐसे २ विचारकर फिर वही स्थान देखे और आश्चर्यवान् हुआ फिर विचार किया कि, यह मुझको बड़ा संशय है इसके दूर करने का उपाय भगवान् से पूछूं। हे रामजी! ऐसे चिन्तनकर फिर तप करने लगा और जब कुछ काल पहाड़ की कन्दरामें तप करते बीता तब फिर विष्णु ने आकर कहा, हे ब्राह्मण! अब तेरी क्या इच्छा है? ऐसे जब विष्णु ने कहा तब गाधि ब्राह्मण बोला, हे भगवन्! तुम कहतेहो कि, यह और की प्रतिभा तुझको फुर आईहै और अपनी होकर भासती है और कालकी विषमता भी भासती है। यह संशय जिस प्रकार मेरे चित्त से दूर हो सो उपाय कहो। और मेरा प्रयोजन कुछ नहीं है केवल यह भ्रम निवृत्त करो। श्रीभगवान् बोले, हे ब्राह्मण! यह जगत् सब मेरी माया से रचाहै इससे मैं तुझसे सत्य क्या कहूं और असत्य क्या कहूं। जो कुछ तुझको भासता है वह सब मायामात्र है और चित्त के भ्रम से भासता है। उस चाण्डाल की अवस्था तेरे चित्त में भासि आई थी। जैसे किसी को

भ्रम से रस्सी में सर्प भासे इसी प्रकार औरोंको भी रस्सी में सर्प भासता है तैसेही प्रतिभा तुझको भासि आई है। काल का रूप आकार कुछ नहीं पर काल भी तुझको एक पदार्थ की नाईं फुर आया है। चित्त में पदार्थ काल से भासते हैं और काल पदार्थों से भासता है। अन्योन्य घटबन्ध जो भासता है सो स्वप्न की नाईं है—जैसे जाग्रत् के एक मुहूर्त में स्वप्न के अनन्तकाल का अनुभव होताहै। यह चित्त का फुरना जैसे २ फुरता है तैसे २ हो भासता है; रोगी को थोड़ा काल भी बहुत भासता है और भोगी को बहुत कालभी थोड़ा भासता है। हे साधो! जो नहीं भोगा होता उसका भी अनुभव होता है। जैसे त्रिकालदर्शी को भविष्यत् वृत्तान्त भी वर्त्तमान की नाईं भासता है; तैसेही तुझको भी अनुभव हुआहै। एक ऐसे भी होताहै कि, प्रत्यक्ष अनुभव किया विस्मरण होजाता है। यह सब मायारूप चित्त का भ्रम है। जबतक चित्त आत्मपद में स्थित नहीं हुआ तबतक अनेक भ्रम भासते हैं और जब चित्त स्थित होता है तब भ्रम मिटजाता है और तब केवल एक अद्वैत आत्मतत्त्व ही भासताहै जैसे सम्यक् मन्त्र का पाठकर गढ़ेका मेघ नष्ट होजाताहै—असम्यक् मन्त्र से नाश नहीं होता तैसेही तेरा चित्त अबतक वश नहीं हुआ। चित्त को आत्मपद में लगाने से सब भ्रम निवृत्त होजावेगा। अहंत्वं आदिक जो कुछ शब्द हैं वे अज्ञानी के चित्त में दृढ़ होतेहैं; ज्ञानवान् इनमें नहीं फँसता। हे साधो! जो कुछ जगत् है सो अज्ञान से भासता है और आत्मज्ञान हुये से नाश होजाता है। जैसे जल में तुम्बी नहीं डूबती तैसेही अहंत्वं आदिक शब्दों में ज्ञानवान् नहीं डूबता। सर्वशब्द चित्त में बर्तते हैं सो ज्ञानी का चित्त अचित्तपद को प्राप्त होता है इससे तू दशवर्ष पर्यन्त तप में स्थित हो तब तेरा हृदय शुद्ध होगा। जब चित्तपद प्राप्त होगा तब सब संकल्प से रहित आत्मपद तुझको प्राप्त होगा और जब आत्मपद प्राप्त होगा तब सब संशय जगत्भ्रम मिटजावेगा। हे रामजी! ऐसे कहकर जब त्रिलोकी के नाथ विष्णु अन्तर्धान होगये तब गाधि ब्राह्मण ऐसे मन में धरकर तप करनेलगा और मन के संसरने को स्थित कर दशवर्ष पर्यन्त समाधि में चित्त को स्थित किया। जब ऐसे परम तप किया तब उसे शुद्ध चिदानन्द आत्मा का साक्षात्कार हुआ। फिर शान्तवान् होकर विचारा और जो कुछ रागद्वेष आदिक विकार हैं उनसे रहित होकर शान्ति को प्राप्त हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेगाधिबोधप्राप्तिवर्णनंनामषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह गाधि का आख्यान मैंने तुझसे माया की विषमता जताने के निमित्त कहाहै कि, परमात्मा की माया मोह को देनेवाली है और

विस्तृतरूप और दुर्गम है। जो आत्मतत्त्व का भूला है उसको यह आश्चर्यरूप भ्रम दिखाती है। तू देख कि, दो मुहूर्त कहां और इतनाकाल कहां? चाण्डाल और राज-भ्रम को जो वर्षों पर्यन्त देखतारहा। भ्रम से भासना और प्रत्यक्ष देखना यह सब माया की विषमता है सो असत्रूप भ्रम है और जो दृढ़ होकर प्रसिद्ध भासित होता है इससे आश्चर्यरूप परमात्मा की माया है जबतक बोध नहीं होता तबतक यह अनेकभ्रम दिखातीहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह माया संसारचक्र है उसका बड़ा तीक्ष्णवेग है और सब अङ्गों को छेदनेवाला है; जिससे यह चक्र रुके और इस भ्रम से छूटूं वही उपाय कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो मायामय संसारचक्र है उसका नाभिस्थान चित्त है। जब चित्त वशहो तब संसार चक्र का वेग रोकाजावे; और किसी प्रकार नहीं रोकाजाता। हे रामजी! इस वार्त्ता को तू भली प्रकार जानताहै। हे निष्पाप! जब चक्र की नाभि रोकीजाती है तब चक्र स्थितहोजाता है—रोके विना स्थित नहीं होता। संसाररूपी चक्रकी चित्तरूपी नाभि को जब रोकते हैं तब यह चक्रभी स्थित होजाता है—रोके विना यहभी स्थित नहीं होता। जब चित्तको स्थित करोगे तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा और जब चित्त स्थित होताहै तब परब्रह्म प्राप्त होता है। तब जो कुछ करना था सो किया होता है और कृतकृत्य होताहै और जो कुछ प्राप्त होना था सो प्राप्त होता है—फिर कुछ पाना नहीं रहता। इससे जो कुछ तप, ध्यान, तीर्थ, दान आदिक उपाय हैं उन सबको त्यागकर चित्त के स्थित करने का उपाय करो। सन्तोंके सङ्ग और ब्रह्मविद् शास्त्रों के विचार से चित्त आत्मपद में स्थित होगा। जो कुछ सन्तों और शास्त्रों ने कहा है उसका बारम्बार अभ्यास करना और संसार मृगतृष्णा के जल और स्वप्नवत् जानकर इससे वैराग्य करना। इन दोनों उपायों से चित्त स्थित होगा और आत्मपद की प्राप्ति होगी और किसी उपाय से आत्मपद की प्राप्ति न होवेगी। हे रामजी! बोलने चालने का बर्जन नहीं; बोलिये, दान दीजिये अथवा लीजिये परन्तु भीतर चित्तको मत लगाओ इनका साक्षी जानने-वाला जो अनुभव आकाश है उसकी ओर वृत्ति हो। युद्ध करना हो तौभी करिये परन्तु वृत्ति साक्षीही की ओरहो और उसीको अपना रूप जानिये और स्थित होइये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; ये जो पांच विषय इन्द्रियों के हैं इनको अङ्गीकार कीजिये परन्तु इनके जाननेवाले साक्षी में स्थित रहिये। तेरा निजस्वरूप वही चिदाकाश है; जब उसका अभ्यास बारम्बार करियेगा तब चित्त स्थित होगा और आत्मपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी! जबतक चित्त आत्मपद में स्थित नहीं होता तबतक जगत् भ्रम भी निवृत्त नहीं होता। इसचित्तके संयोग से चेतन का नाम जीव है। जैसे घट के संयोग से आकाश को घटाकाश कहते हैं पर जब घट टूटजाता है

तब महाकाशही रहताहै; तैसेही जब चित्तका नाश होगा तब यह जीव चिदाकाशही होगा। यह जगत्भी चित्त में स्थित है; चित्त के अभाव हुये जगत्भ्रम शान्त हो जावेगा हे रामजी! जबतक चित्त है तबतक संसारभी है; जैसे जबतक मेघहै तबतक बूंदेंभी हैं और जब मेघ नष्ट होजावेगा तब बूंदेंभी न रहेंगी जैसे जबतक चन्द्रमा की किरणें शीतल हैं तबतक चन्द्रमा के मण्डल में तुषार है तैसेही जबतक चित्त है तबतक संसारभ्रम है। जैसे मांस का स्थान श्मशान होता है और वहां पक्षी भी होता है; और ठौर इकट्ठे नहीं होता; तैसेही जहां चित्त है वहां रागद्वेषादिक विकार भी होते हैं और जहां चित्त का अभाव है वहां विकार का भी अभाव है। हे रामजी! जैसे पिशाच आदिक की चेष्टा रात्रि में होती है, दिन में नहीं होती; तैसेही राग, द्वेष, भय, इच्छा आदिक विकार चित्तमें होते हैं। जहां चित्त नहीं वहां विकारभी नहीं– जैसे अग्नि विना उष्णता नहीं होती; शीतलता विना बरफ़ नहीं होती; सूर्य विना प्रकाश नहीं होता और जल विना तरङ्ग नहीं होवे तैसेही चित्त विना जगत्भ्रम नहीं होता। हे रामजी! शान्ति भी इसीका नाम है और शिवता भी वही है; सर्वज्ञता भी वही है जो चित्त नष्ट हो आत्मा भी वही है और तृप्तता भी वही है पर जो चित्त नष्ट नहीं हुआ तो इतने पदों में कोई भी नहीं है। हे रामजी! चित्त से रहित चेतन चेतन कहाता है और अमनशक्ति भी वही है; जबतक सब कलना से रहित बोध नहीं होता तबतक नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और जब वस्तु का बोध हुआ तब एक अद्वैत आत्मसत्ता भासती है। हे रामजी! ज्ञानसंवित् की ओर वृत्ति रखना; जगत् की ओर न रखना और जाग्रत् की ओर न जाना। जाग्रत् के जाननेवाले की ओर जाना स्वप्न और सुषुप्ति की ओर न जाना। भीतर के जाननेवाली जो साक्षी सत्ता है उसकी ओर वृत्ति रखनाही चित्त के स्थित करने का परम उपाय है। सन्तों के संग और शास्त्रों से निर्णय किये अर्थ का जब अभ्यास हो तब चित्त नष्ट हो और जो अभ्यास न हो तौभी सन्तों का संग और सत् शास्त्रों को सुनकर बल कीजिये तो सहजही चमत्कार हो आवेगा। मनको मन से मथिये तो ज्ञानरूपी अग्नि निकलेगी जो आशारूपी फांसी को जलाडालेगी। जबतक चित्त आत्मपद से विमुख है तबतक संसारभ्रम देखता है पर जब आत्मपद में स्थित होता है तब सब क्षोभ मिट जातेहैं जब तुमको आत्मपद का साक्षात्कार होगा तब कालकूट विष भी अमृत समान होजावेगा और विष का जो विषभाव मारना है सो न रहेगा। जीव.जब अपने स्वभाव में स्थित होता है तब संसार का कारण मोह मिटजाता है और जब निर्मल निरंश आत्मसंवित् से गिरता है तब संसार का कारण मोह आन प्राप्त होता है। जब निरंश निर्मल आत्म संवित् में स्थित होता है तब संसारसमुद्र से

तरजाता है। जितने तेज ईश्वर बलवान् हैं उन सबों से तत्त्ववेत्ता उत्तम है; उसके आगे सब लघु होजाताहै और उस पुरुष को संसार के किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रहती क्योंकि उसका चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है। इससे चित्त को स्थित करो तब वर्तमानकालभी भविष्यत्काल की नाईं होजावेगा और जैसे भविष्यत्काल का रागद्वेष नहीं स्पर्श करता तैसेही वर्तमानकाल का रागद्वेष भी स्पर्श न करेगा। हे रामजी! आत्मा परम आनन्दरूप है, उसके पायेसे अमृतभी विषसमान होजाता है। जिस पुरुष को आत्मपद में स्थिति हुई है वह सबसे उत्तम है जैसे मेरु पर्वत के निकट हाथी तुच्छ भासता है तैसेही उसके निकट त्रिलोकी के पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं वह ऐसे दिव्य तेज को प्राप्त होता है जिसको सूर्य भी नहीं प्रकाश कर सक्ता वह परम प्रकाशरूप सब कलनासे रहित अद्वैततत्त्व है। हे रामजी! उस आत्मतत्त्व में स्थित हो रहो जिस पुरुष ने ऐसे स्वरूप को पाया है उसने सबकुछ पाया है और जिसने ऐसे स्वरूप को नहीं पाया उसने कुछ नहीं पाया। हमको ज्ञान की वार्ता करते ज्ञानवान् को देखकर कुछ लज्जा नहीं आती और जो उस ज्ञानस्वरूप की वार्ता से विमुख है यद्यपि वह महाबाहु हो तौभी गर्दभवत् है। जो बड़े ऐश्वर्य से संपन्न है और आत्मपद से विमुख है उसको तू विष्ठा के कीट सेभी नीच जान। जीना उनको श्रेष्ठ है जो आत्मपद के निमित्त यत्न करते हैं और जीना उनका वृथा है जो संसार के निमित्त यत्न करते हैं वे देखनेमात्र तो चैतन्य हैं परन्तु शव की नाईं हैं। जो तत्त्ववेत्ता हुये हैं वे अपने प्रकाश से प्रकाशते हैं और जिनको शरीर में अभिमान है वे मृतक समान हैं। हे रामजी! इस जीव को चित्तने दीन किया है। ज्यों ज्यों चित्त बड़ा होता है त्यों त्यों इसको दुःख होता है और जिसका चित्त क्षीण हुआ है उसका कल्याण हुआ है। जब आत्मभाव अनात्म में दृढ़ होता है और भोगों की तृष्णा होती है तब चित्त बड़ा होजाता है और आत्मपद से दूर पड़ता है। जैसे बड़े मेघके आवरण से सूर्य नहीं भासता तैसेही अनात्मा अभिमान से आत्मा नहीं भासता। जब भोगों की तृष्णा निवृत्त होजाती है तब चित्त क्षीण होजाता है। जैसे वसन्त ऋतु के गयेसे पत्र कृश होजाते हैं तैसेही भोग वासना के अभावसे चित्त कृश होजाता है। हे रामजी! चित्तरूपी सर्प दुर्वासनारूपी दुर्गन्ध, भोगरूपी वायु और शरीर में दृढ़ आस्थारूपी मृत्तिका स्थान से बड़ा होजाता है; और उन पदार्थों से जब बड़ा हुआ तब मोहरूपी विष से जीव को मारता है। हे रामजी! ऐसे दुष्टरूपी सर्प को जब मारे तब कल्याण हो। देह में जो आत्म अभिमान होगया है, भोगों की तृष्णा फुरती है और मोहरूपी विष चढ़गया है; इससे यदि विचाररूपी गरुड़ मन्त्र का चिन्तन करता रहे तौ विष उतरजावे इसके सिवाय और उपाय विष उतरने का कोई नहीं।

हे रामजी! अनात्मा में आत्माभिमान और पुत्र, दारा आदिक में ममत्व से चित्त बड़ा होजाताहै और अहंकाररूपी विकार, ममतारूपी कीड़ा और यह मेरा इत्यादि भावना से चित्त कठिन होजाता है। चित्तरूपी विष का वृक्ष है जो देहरूपी भूमि पर लगा है; संकल्प विकल्प इसके टास हैं; दुर्वासनारूपी पत्र हैं और सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं; अहंकाररूपी कर्म जल है उसके सींचने से बढ़ताहै और काम भोगरूपी पुष्प हैं। चिन्तारूपी बड़ी बेल को जब विचार और वैराग्यरूपी कुठार से काटे तब शान्ति हो—अन्यथा शान्ति न होगी। हे रामजी! चित्तरूपी एक हाथी है उसने शरीररूपी तालाब में स्थित होकर शुभ वासनारूपी जल को मलीन करडाला है और धर्म, सन्तोष, वैराग्यरूपी कमल को तृष्णारूपी शुण्ड से तोड़डाला है। उसको तुम आत्मविचाररूपी नेत्रों से देख नखों से छेदो। हे रामजी! जैसे कौवा अपवित्र पदार्थों को भोजन करके सर्वदा काँ काँ करता है तैसेही चित्त देहरूपी अपवित्र गृह में बैठा सर्वदा भोगों की ओर धावताहै; उनके रस को ग्रहण करता है और मौन कभी नहीं रहता। दुर्वासना से वह काक की नाईं कृष्णरूप है—जैसे काक के एकही नेत्र होता है तैसेही चित्त एक विषयों की ओर धावता है। ऐसे अमङ्गलरूपी कौवे को विचाररूपी धनुष से मारो तब सुखी होगे। चित्तरूपी चील पखेरू है जो भोगरूपी मांस के निमित्त सब ओर भ्रमता है। जहां अमङ्गलरूपी चील आता है वहां से विभूति का अभाव होजाता है। वह अभिमानरूपी मांस की ओर ऊंचा होकर देखता है और नम्रभाव नहीं होता। ऐसा जो अमङ्गलरूपी चित्त चील है उसको जब नाश करो तब शान्तिमान् होगे। जैसे पिशाच जिसको लगता है वह खेदवान् होता है और शब्द करता है; तैसेही इसका चित्तरूपी पिशाच लगा है और तृष्णारूपी पिशाचिनी के साथ शब्द करताहै उसको निकालो जो आत्मा से भिन्न अभिमान करता है। ऐसे चित्तरूपी पिशाच को वैराग्यरूपी मन्त्र से दूर करो तब स्वभावसत्ता को प्राप्त होगे। यह चित्तरूपी वानर महाचञ्चल है और सदा भटकता रहता है; कभी किसी पदार्थ में धावता है—जैसे वानर जिस वृक्ष पर बैठता है उसको ठहरने नहीं देता। हे रामजी! चित्तरूपी रस्सी से सम्पूर्ण जगत् कर्ता, कर्म, क्रियारूपी गांठ करके बँधाहै। जैसे एक जंजीर के साथ अनेक बन्धवान् बँधते हैं और एक तागे के साथ अनेक दाने पिरोयेजाते हैं तैसेही एक चित्त से सब देहधारी बांधे हैं। उस रस्सी को असंगशस्त्र से काटे तब सुखी हो। हे रामजी! चित्तरूपी अजगर सर्प भोगोंकी तृष्णारूपी विषसे पूर्ण है और उसने फुंकारके साथ बड़े २ लोक जलाये हैं और शम, दम, धैर्यरूपी सब कमल जलगये हैं। इस दुष्ट को और कोई नहीं मारसक्ता; जब विचाररूपी गरुड़ उपजे तब इसको नष्ट करे और

जब चित्तरूपी सर्प नष्ट हो तब आत्मरूपी निधि प्राप्त होगी । हे रामजी ! यह चित्त शस्त्रों से काटा नहीं जाता; न अग्नि से जलता है और न किसी दूसरे उपाय से नाश होता है, केवल साधु के संग और सत्शास्त्रों के विचार और अभ्यास से नाश होता है। हे रामजी ! यह चित्तरूपी गढ़े का मेघ बड़ा दुःखदायक है, भोगों की तृष्णारूपी बिजली इसमें चमकती है और जहां वर्षा इसकी होती है वहां बोधरूपी क्षेत्र और शम-दमरूपी कमलों को नाश करती है। जब विचाररूपी मन्त्र हो तब शान्त हो। हे रामजी ! चित्त की चपलता को असंकल्पसे त्यागो। जैसे ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्र छिदता है तैसेही मन से मन को छेदो अर्थात् अन्तर्मुखी कर स्थितकरो। जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होगा तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभसे रहित होगा। शुद्ध बोध से मन को जीतो और यह जगत् जो तृणसेभी तुच्छ है उससे पार होजाओ ॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणेराघवसेवनवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मन की वृत्तिही इष्ट व अनिष्ट को ग्रहण करती है और खड्ग की धारावत् तीक्ष्ण है; इसमें तुम प्रीति मतकरो बल्कि इसको मिथ्या जानकर त्यागकरो। हे रामजी ! बोधरूपी बेलि जो शुभक्षेत्र और शुभकाल से प्राप्त हुई है उसको विवेकरूपी जल से सींचो तब परमपद की प्राप्ति हो। हे रामजी ! जबतक शरीर मलिनता को प्राप्त नहीं हुआ और जबतक पृथ्वी पर नहीं गिरा तबतक बुद्धि को उदार करके संसार से मुक्त हो। मैंने जो वचन तुमसे कहे हैं उनको तुमने जाना है, अब इनका दृढ़ अभ्यास करो तब दृश्यभ्रम निवृत्त-होजावेगा। हे रामजी ! यह पञ्चभौतिक शरीर जो तुमको भासताहै सो तुम्हारा रूप नहीं है; तुमतो शुद्ध चेतनरूप हो। शुद्धबोध से विचार करके पञ्चभौतिक अनात्म अभिमान को त्यागो। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! किस क्रम और किस प्रकारसे इसका अभिमान त्यागकर उद्दालक सुखी हुआ है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! पूर्व में जैसे उद्दालक भूतों के समूह को विचार करके परमपद को प्राप्त हुआ है सो तुम सुनो। हे रामजी ! जगत्‌रूपी जीर्णघर के वायव्यकोण में एकदेश है जो पर्वत और तमालादिक वृक्षों से पूर्ण है और महामणियों का स्थान है। उस स्थानमें उद्दालक नाम एक बुद्धिमान् ब्राह्मण मान करनेके योग्य विद्यमान था परन्तु अर्धप्रबुद्ध था क्योंकि; परमपद को उसनेन पाया था। वह ब्राह्मण यौवनअवस्था के पूर्वहीं शुभेच्छा से शास्त्रोक्त यम, नियम और तपको साधने लगा। तब उसके चित्त में यह विचार उत्पन्नहुआ कि, हे देव ! जिसके पायेसे फिर कुछ पाने योग्य न रहे; जिस पद में विश्राम पायेसे फिर शोक न हो और जिसके पाये से फिर जन्म से बन्धन न हो ऐसा पद मुझको कब प्राप्तहोगा ? कब मैं मन के मनन भाव को त्यागकर विश्रान्तिमान् हूंगा-जैसे मेघ भ्रमने को त्यागकर पहाड़के शिखर

में विश्रान्ति करता हे-और कब चित्त की दृश्यरूप वासना मिटेगी जैसे तरङ्ग से रहित समुद्र शान्तिमान् होताहै तैसेही कब मैं मन के संकल्प विकल्प से रहित शान्तिमान् हूंगा? तृष्णारूपी नदीको बोधरूपी बेड़ी और सत्संग और सत्शास्त्ररूपी मल्लाह से कब तरूंगा, चित्तरूपी हाथी जो अभिमानरूपी मद से उन्मत्त है उसको विवेकरूपी अंकुश से कब मारूंगा और ज्ञानरूपी सूर्य से अज्ञानरूपी अन्धकार कब नष्ट करूंगा? हे देव! सब आरम्भों को त्यागकर मैं अलेप और अकर्ता कब होऊंगा? जैसे जल में कमल अलेप रहता है तैसेही मुझको कर्म कब स्पर्श न करेंगे? मेरा परमार्थरूपी भास्वर वपु कब उदय होगा जिससे मैं जगत् की गति को हँसूंगा हृदय में सन्तोष पाऊंगा और पूर्णबोध विराट् आतमा की नाईं होऊंगा? वह समय कब होगा कि, मुझ जन्मों के अन्धेको ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त होगा, जिससे मैं परमबोध पद को देखूंगा? वह समय कब होगा जब मेरा चित्तरूपी मेघ वासनारूपी वायु से रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्वत में स्थित होकर शान्तिमान् होगा? अज्ञानदशा कब जावेगी और ज्ञानदशा कब प्राप्त होगी? अब वह समय कब होगा कि, मन और काया प्रकृतियों को देखकर हँसूंगा? वह समय कब होगा जब जगत् के कर्मों को बालक की चेष्टावत् मिथ्या जानूंगा और जगत् मुझको सुषुप्तिकी नाईं होजावेगा। वह समय कब होगा जब मुझको पत्थरकी शिलावत् निर्विकल्प समाधि लगेगी और शरीररूपी वृक्ष में पक्षी आलय करेंगे और निस्संग होकर छातीपर आनबैठेंगे? हे देव! वह समय कब होगा जब इष्ट-अनिष्ट विषय की प्राप्ति से मेरे चित्त की वृत्ति चलायमान न होगी और विराट् की नाईं सर्वात्मा होऊंगा? वह समय कबहोवेगा जब मेरा सम असम आकार शान्त होजावेगा और सब अर्थोंसे निरिच्छितरूप मैं होजाऊंगा? कब मैं उपशम को प्राप्त होऊंगा-जैसे मन्दराचल से रहित क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होता है-और कब मैं अपना चेतन वपु पाकर शरीर को अशरीरवत् देखूंगा? कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्ति होगी और कब मेरे भीतर बाहर की सब कलना शान्त होजावेगी और सम्पूर्ण चिन्मात्रही का मुझे भान होगा? मैं ग्रहण त्याग से रहित कब संतोष पाऊंगा और अपने स्वप्रकाश में स्थित होकर संसाररूपी नदी के जरामरणरूपी तरङ्गों से कब रहित होऊंगा और अपने स्वभाव में कब स्थित होऊंगा, हे रामजी! ऐसे विचार कर उद्दालक चित्त को ध्यानमें लगाने लगा परन्तु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकलजावे पर स्थित न हो। तब वह फिर ध्यान में लगावे और फिर वह भोगों की ओर निकलजावे। जैसे वानर नहीं ठहरता तैसेही चित्त न ठहरे। जब उसने बाहर विषयों को त्यागकर चित्तको अन्तर्मुख किया तब भीतर जो दृष्टि आई तौभी विषयों को चिन्तनेलगा निर्विकल्प न हो और जब रोकरक्खे तब सुषुप्ति में लीन होजावे।

सुषुप्ति और लय जो निद्राहै उसहीमें चित्त रहताहै। तब वह वहांसे उठकर और स्थान को चला—जैसे सूर्य सुमेरु की प्रदक्षिणा को चलताहै और गन्धमादन पर्वतकी एक कन्दरा में स्थित हुआ जो फूलों के संयुक्त सुन्दर और पशुपक्षीमृगोंसे रहित एकान्त स्थान था और जो देवताको भी देखना कठिन था। वहां अत्यन्त प्रकाशभी न था और अत्यन्त तम भी न था; न अत्यन्त उष्ण था और न शीत जैसे मधुर कार्त्तिकमास होता है तैसेही वह निर्भय एकान्तस्थान था। जैसे मोक्षपदवी निर्भय एकान्तरूप होती है तैसेही उस पर्वत में कुटी बना और उस कुटी में तमालपत्र और कमलों का आसनकर और ऊपर मृगछाला बिछाकर वह बैठा और सब कामना का त्याग किया। जैसे ब्रह्माजी जगत् को उपजाकर छोड़ बैठे तैसेही वह सब कलना को त्याग बैठा और बिचार करनेलगा कि, अरे मूर्खमन! तू कहां जाता है, यह संसार मायामात्र है और इतनेकाल तू जगत् में भटकतारहा पर कहीं तुझको शान्ति न हुई क्योंकि; वृथा धावतारहा। हे मूर्खमन! उपशम को त्यागकर भोगों की ओर धावता है सो अमृत को त्यागकर विष का बीज बोता है, यह सब तेरी चेष्टा दुःखों के निमित्त है। जैसे कुशवारी अपना घर बनाकर आपही को बन्धनकरती है तैसेही तूभी आपको आप संकल्प उठाकर बन्धन करता है। अब तू संकल्प के संसरने को त्याग कर आत्मपद में स्थितहो कि, तुझको शान्ति हो। हे मन! जिह्वाके साथ मिलकर जो तू शब्द करता है वह दर्दुर के शब्दवत् व्यर्थ है। कानों के साथ मिलकर सुनता है तब शुभ अशुभ वाक्य ग्रहण करके मृग की नाईं नष्ट होताहै; त्वचा के साथ मिलकर जो तू स्पर्श की इच्छा करताहै सो हाथी की नाईं नाश होताहै; रसना के स्वाद की इच्छा से मछली की नाईं नाश होताहै और गन्ध लेनेकी इच्छा से भँवरे की नाईं नाश होजावेगा। जैसे भँवरा सुगन्ध के निमित्त फूल में फँस मरता है तैसे तू फँस मरेगा और सुन्दर स्त्रियों की वाञ्छा से पतङ्ग की नाईं जल मरेगा। हे मूर्खमन! जो एक इन्द्रिय का भी स्वाद लेते हैं वे नाश होते हैं तूतो पञ्चविषय का सेवनेवालाहै क्या तेरा नाश न होगा। इससे तू इनकी इच्छा त्याग कि तुझको शान्ति हो। जो इन भोगों की इच्छा न त्यागेगा तो मैंही तुझको त्यागूंगा। तूतो मिथ्या असत्यरूपहै तुझसे मेरा क्या प्रयोजन है। विचार कर मैं तेरा त्याग करताहूं। हे मूर्खमन! जो तू देह में अहं अहं करता है सो तेरा अहं किस परमार्थ का है। अंगुष्ठ से लेकर मस्तक पर्यन्त अहं वस्तु कुछ नहीं। यह शरीर तो अस्थि, मांस और रक्त का थैला है; यह तो अहंरूप नहीं और श्वास वायुरूप और पोल आकाशरूप है। यह पञ्चतत्त्वों का जो शरीर बना है उसमें अहंरूप वस्तु तो कुछ नहीं है। हे मूर्खमन! तू अहं अहं क्यों करता है? यह जो तू कहता है कि, मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं, मैं

संघता हूं, मैं स्पर्श करता हूं मैं स्वाद लेता हूं और इनके इष्ट–अनिष्ट में रागद्वेषसे जलता है सो वृथा कष्ट पाता है। रूप को नेत्र ग्रहण करते हैं; नेत्र रूप से उत्पन्न हुये हैं और तेज का अंश उनमें स्थित है जो अपने विषय को ग्रहण करता है; इनके साथ मिलकर तू क्यों तपायमान होता है ? शब्द आकाश में उत्पन्न हुआ है और आकाश का अंश श्रवण में स्थित है जो अपने गुण शब्द को ग्रहण करता है; इसके साथ मिलकर तू क्यों रागद्वेष कर तपायमान होता है? स्पर्श इन्द्रिय वायु से उत्पन्न भया है और वायु का अंश त्वचा में स्थित है वही स्पर्श का ग्रहण करता है; उससे मिलकर तू क्यों राग द्वेष से तपायमान होता है? रसना इन्द्रिय जल से उत्पन्न हुई है और जल का अंश जिह्वा है जो अग्रभाग में स्थित है वही रस को ग्रहण करती है; इससे मिल तू क्यों वृथा तपायमान होताहै ? और घ्राणइन्द्रिय गन्ध से उपजी है और पृथ्वी का अंश घ्राण में स्थितहै वही गन्ध को ग्रहण करता है; उससे मिलकर तू क्यों वृथा राग द्वेषवान् होता है ? हे मूर्ख मन ! इन्द्रियां तो अपने २ विषय का ग्रहण करती हैं पर तू क्यों इनमें अभिमान करताहै कि, मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं, मैं सूंघता हूं, मैं स्पर्श करता हूं और रस लेता हूं। यह इन्द्रियां तो सब आत्म भर हैं अर्थात् अपने विषय को ग्रहण करती हैं और के विषय को ग्रहण नहीं करतीं कि, नेत्र देखते हैं श्रवण नहीं करते और कान सुनते हैं देखते नहीं इत्यादिक। सब इन्द्रियां अपना धर्म किसीको देती भी नहीं और न किसीका लेती हैं। वे अपने धर्म में स्थित हैं और विषयों को ग्रहण कर इनको राग द्वेष कुछ नहीं होता। इनको ग्रहण करने की वासना भी कुछ नहीं होती और तू ऐसा मूर्ख है कि, औरों के धर्म आप में मान कर रागद्वेष से जलता है। जो तूभी रागद्वेष से रहित होकर चेष्टा करे तो तुझको दुःख कुछ न हो। जो वासना सहित कर्म करता है वह बन्धन का कारण होता है; वासना विना कुछ दुःख नहींहोता। तू मूर्ख है जो विचार कर नहीं देखता। इससे मैं तुझको त्याग करता हूं। तेरे साथ मिलके मैं बड़े खेद पाता हूं। जैसे भेड़िये के वालक को सिंह चूर्ण करता है तैसेही तूने मुझको चूर्ण किया है। तेरे साथ मिलकर मैं तुच्छ हुआहूं। अब तेरे साथ मेरा प्रयोजन कुछ नहीं, मैं तो निर्विकल्प शुद्ध चिदानन्द हूं। जैसे महाकाश घट से मिलकर घटाकाश होता है तैसेही तेरे साथ मिलकर मैं तुच्छ होगया हूं। इस कारण मैं तेरा संग त्यागकर परम चिदाकाश को प्राप्त होऊंगा। मैं निर्विकार हूं और अहं त्वं की कल्पना से रहित हूं। तू क्यों अहं त्वं करता है ? शरीर में व्यर्थ अहं करनेवाला और कोई नहीं तू ही चोर है। अब मैंने तुझको पकड़कर त्याग दिया है। तू तो अज्ञान से उपजा मिथ्या और असत्यरूप है जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल जानकर आप भय पाता

है तैसेही तूने सबको दुःखी कियाहै । जब तू नाश होगा तब आनन्द होगा। तेरे उपजने से महादुःख है-जैसे कोई ऊंचे पर्वतसे गिरके कूप में जापड़े और कष्टवान् हो तैसेही तेरे संगसे मैं आत्मपद से गिरा देह अभिमानरूपी गढ़े में राग द्वेषरूपी दुःख पाता था पर अब तुझको त्यागकर मैं निरहंकारपद को प्राप्त हुआ हूं। वह पद न प्रकाश है, न तम है, न एक है, न दो है, न बड़ा है और न छोटा है; अहं त्वं आदि से रहित अचैत्य चिन्मात्र है। जरा, मृत्यु, राग, द्वेष और भय सब तेरे संयोग से होते हैं। अब तेरे वियोग से मैं निर्विकार शुद्धपद को प्राप्त होता हूं। हे मन! तेरा होना दुःख का कारण है। जब तू निर्वाण होजावेगा तब मैं ब्रह्मरूप होऊंगा। तेरे संग से मैं तुच्छ हुआ हूं; जब तू निवृत्त होगा तब मैं शुद्ध होऊंगा-जैसे मेघ और कुहिरे के होनेसे आकाश मलीन भासता है पर जब वर्षा होजाती है तब शुद्ध और निर्मल हो रहताहै, तैसेही तेरे निवृत्त हुये निर्लेप अपना आप आत्मा भासता है। हे चित्त! ये जो देह इन्द्रियादिक पदार्थ हैं सो भिन्न हैं, इनमें अहंवस्तु कुछ नहीं; इनको एक तूनेही इकट्ठी किया है। जैसे एक तागा अनेकमणियों को इकट्ठा करता है तैसेही सबको इकट्ठा करके तू अहं अहं करता है। तू मिथ्या रागद्वेष करता है इससे तू शीघ्रही सब इन्द्रियों को लेकर निर्वाण हो जिस में तेरी जय हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउद्दालकविचारोनामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४८॥

उद्दालक बोले; आत्मा जो सूक्ष्म से सूक्ष्म है, स्थूल से स्थूल है और शुद्ध, निर्विकार और शान्तरूप है सो मैं अचैत्य चिन्मात्र हूं मेरे में कोई विकार नहीं और जितने जन्म मरण आदिक विकार भासते हैं वे आत्मा में चित्त के कल्पे हैं वास्तविक आत्मा को कोई विकार नहीं। जन्म उसको कहते हैं जो पहले न हो और पीछे उपजे। आत्मा तो आगेही सिद्ध है फिर जन्म कैसे कहिये? और मृत्यु वह कहाता है जो पीछे न हो पहले अभाव होजावे पर आत्मा तो जगत् में अन्तभी सिद्धहै इससे सब विकारों से रहित है; फिर मृत्यु प्रध्वंसाभाव कैसे कहिये? देह के आदि, मध्य, अन्त तीनों काल सिद्ध हैं; इससे वह सब विकारों से रहित है और चित्त के संयोग से विकारों सहित भासता है। हे चित्त! तेरे संयोग से मैंने इतने भ्रम पाये थे और शरीर में व्यर्थ अहं अहं होता है सो जाना नहीं जाता कि, कौन है। शरीर तो रक्त मांस का पिण्ड है, इन्द्रियां, मन आदिक सब जड़ हैं तो अहं करनेवाला कौन है। जब अहं होता है तब भाव अभाव पदार्थ को ग्रहण करता है पर जहां अहं का अभाव है तहां भाव अभाव कैसे हो? अहंकार झूठ है, इन्द्रियां अपने २ विषयों को ग्रहण करती हैं और मनादिक भी अपने स्वभाव में स्थित हैं। यह अहं करनेवाला नहीं पायाजाता कि कौन है? अहं का रूप कुछ नहीं इससे निश्चय हुआ कि, सब

पदार्थ झूठे हैं। अहंकार का ग्रहण करनेवाला भी झूठ है और जितने पदार्थ हैं वे अहंकार से होते हैं। मैं इससे मिलकर देह इन्द्रियों के इष्ट-अनिष्ट में क्या राग द्वेष करूं? इसका और मेरा कुछ संयोग नहीं मैं तो निर्लेप और अद्वैत आत्मा हूं संयोग किससे हो? मैं भावरूप ब्रह्म हूं मेरा संयोग किससे हो? यह तो सब असत्यरूप है और जो कहिये देहादिक हैं तो भी संयोग नहीं बनता—जैसे लोहे और बट्टेका संयोग नहीं होता। यह बड़ा आश्चर्य है कि, सबका अहं करनेवाला कौन था? यह मिथ्या अहंकार अज्ञान से दुःखदायक था। जैसे अज्ञानसे बालकको वैताल भास कर दुःख देता है तैसेही अविचार से दुःख होता है। जैसे पहाड़ पर बादल स्थित होता है तो पहाड़ बादल नहीं होता और बादल पहाड़ नहीं होता; तैसेही आत्मा अनात्मा नहीं होता और अनात्मा आत्मा नहीं होता। जैसे सूर्य की किरणों में जल, और रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में अहंकार भासता है और विचार कियेसे अहंकार कुछ नहीं निकलता। जहां अहंकार होता है वहां दुःख भी आ स्थित होते हैं जैसे जहां मेघ होता है वहां बिजली भी होती है, तैसेही जहां अहंकार होता है तहां शरीररूपी वृक्षकी मञ्जरी बढ़ती है। जैसे गरुड़ के विद्यमान होते सर्प नहीं रहता तैसेही आत्म-विचार के विद्यमान रहते अहंकार नहीं रहता। इससे चित्तादिक सब झूठे हैं और अज्ञान से भासते हैं तो इनसे रचाहुआ जगत् कैसे सत्य हो। यह जगत् अकारण है इससे मिथ्याभ्रम से भासता है। जैसे भ्रांति से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है; नौका में बैठेसे तट के वृक्ष चलते भासते हैं और गन्धर्व नगर भासता है। जब चित्त नष्ट होता है तब सबभ्रम का अभाव होजाता है। देहमें जो अभिमान है सोही दुःखों का कारण है। जबतक विचार नहीं उपजता तबतक भासता है—जैसे बरफ़ की पुतली तबतक होती है जबतक सूर्य का तेज नहीं लगा और जब सूर्यका तेज लगता है तब बरफ़ की पुतली गलजाती है जैसे बालक को घूमने से पृथ्वी भ्रमती भासती है तैसेही चित्त के भ्रम से यह जगत् भासता है और विचार के उपजे से अहंकार गल जाता है हे मन! तेरे साथ मिलनेसे बड़ादुःख होता है। तुझसे रहित मैंने आपको देखा है, अब तू सब इन्द्रियों सहित निर्वाण हो। आत्मविचारसे आत्म-अग्नि में स्थित हो कि सब मल तेरा जलकर शुद्धता को प्राप्त हो। इस देह के साथ तेरा मिलाप दुःख के निमित्तहै। मन और देहके भीतरसे आपस में शत्रुभाव है पर बाहर से स्नेह भासता है। भीतर दोनों परस्पर नाशकरने की इच्छा करते हैं। जो दुःख होता है तो मन उसके नाश की इच्छा करता है और देह कहती है मन न हो तो मेरे में कोई दुःख नहीं—इसका मिलनाही दुःख का कारण है। हे मूर्खमन! देहको तेरे संगमे दुःख होता है। आप इसमें भी कोई नहीं। मन में देह का अभिमान

न हो तौभी कोई दुःख नहीं, इनके संयोगसेही दुःख होता है और बिछुरने से दुःख कुछ नहीं—तैसेही मन और देह में वियोग कुछ नहीं । जैसे जहां अंगारे की वर्षा होती है वहां बुद्धिमान् नहीं रहते तैसेही इनमें मिलाप करना हमको योग्य नहीं । हे मूर्खमन ! जितना कुछ दुःख तुझको होता है सो देह के मिलाप से होता है तो फिर इसके साथ तू किस निमित्त मिलता है और आपको सुख जानता है । इसके मिलने से तुझको दुःखही होता है परन्तु तू ऐसा मूर्ख है जो बारम्बार देहकी ओरही दौड़ता है और सुख जानता है पर तेरा नाश होता है । जैसे पतङ्ग दीपक को सुखरूप जानकर मिलने की इच्छा करता है पर जल मरता है और मछली मांस की इच्छा करती है सो कण्डी में फँसमरती है तैसेही तू देहकी इच्छा करता है और नाश को प्राप्त होता है; इससे इसका अभिमान त्याग तो तुझको शान्ति हो । देह कुछ वस्तु नहीं केवल मनही का विकार है । पञ्चतत्त्वों की देह बनी हुई है सोभी कुछ वस्तु नहीं है, सब मन के फुरने से रचेहैं, इससे फुरने को त्यागकर आत्मपदमें स्थित हो कि, तुझको शान्ति हो । मैं तो इससे अतीत शुद्ध चिदानन्दस्वरूप हूं; मेरे पास न कोई मन है और न इन्द्रियां हैं । मैं अद्वैतरूप हूं । जैसे राजा के समीप में दोई नहीं होता तैसेही मेरे निकट मन और इन्द्रियां कोई नहीं—मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हूं । भोगों से मुझे क्या प्रयोजन है कि, उनसे मिलकर दीनता को प्राप्त होऊं ! मुझको इनके साथ कुछ प्रयोजन नहीं, चिरपर्यन्त रहें अथवा अबहीं नष्ट होजावें; इनके नाश होनेसे मेरा नाश नहीं होता और ठहरनेसे प्रयोजन नहींहोता मैंने इनसे आप को भिन्न जाना है । जैसे तिलोंसे तेल निकाल लिया तब फिर तिलों में नहीं मिलता और दूधसे माखन निकाल लिया तब फिर दूधमें नहीं मिलता; तैसेही विचार करके अपना आप निकाल लिया तब फिर इनके साथ नहीं मिलता । मैं शुद्ध चिदानन्द आत्माहूं, सब जगत् मेरे आश्रय है और सबमें मैं एकही अनुस्यूत व्यापा हूं । अब मैं उसी स्वरूप में स्थित होऊं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे विचारकर उद्दालक ब्राह्मण विषयों से वृत्ति को निवृत्त करके पद्मासन बाँध प्रणव अर्थात् अर्धमात्रा और अकार—उकार—मकार की क्रम से उपासना करनेलगा और प्राणायाम करके मात्रा का ध्यान किया । अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव और अर्धमात्रा तुरीया इनको क्रमसहित करने लगा । प्रथम रेचक प्राणायाम करनेलगा और अकार की ध्वनि के साथ रेचककिया उससे सब प्राणवायु भीतर से निकले और हृदय शून्य और शुद्ध हुआ—जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्र को शून्य कियाथा—और आकाश से ऐसी ध्वनि हुई जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र पर्यन्त चलीगई और देहाभिमान को त्यागकर पुर्यष्टक को सुषुम्णा के मार्ग में प्राप्त किया । जैसे पक्षी आलय को त्यागकर

आकाशमार्ग को उड़ता है तैसेही उद्दालक ने पुर्यष्टक को ब्रह्मरन्ध्र में स्थित किया। हठ करनेसे दुःख होता है इस कारण जबतक सुख रहा तबतक स्थित रहा और जब थका और पुर्यष्टक का वायु अध से आया तब उकार विष्णुरूप की ध्वनि और ध्यान के साथ कुम्भक किया। जब सब प्राणवायु को आधारचक्र में रोंका—न नीचेजावे न ऊपर आवे-तो प्राण स्थित संघट हुये और उससे अग्नि निकली जिससे इसका पाप पुण्यरूपी शरीर जलगया। उसमें जबतक सुखरहा तबतक स्थित रहा क्योंकि, हठ-योग दुःखदायक है और फिर मकार की ध्वनि से रुद्र का ध्यान करके पूरक प्राणा-याम किया। पूरक प्राणायाम करके सब स्थान वायु से पूर्ण किये और ऊर्ध्वको चित्त-कला प्राप्त हुई उससे यह और को पवित्रकरनेवाला हुआ। जैसे धुआं आकाश को जाता है और जल पाकर औरों को शीतल करनेवाला होता है तैसेही इसका शरीर औरों को पवित्र करनेवाला हुआ जैसे मन्दराचल मथे हुये क्षीरसमुद्र से कल्पवृक्ष निकला तैसेही इसके शरीर में प्राणवायु स्थित हुई और पद्मासन बाँधकर इन्द्रियों को रोंका जैसे हाथी बन्धनों से बंधता है तैसेही इसने इन्द्रियों को रोंका अर्धमात्रा जो तुरीयापद है उसके दर्शन के निमित्त यत्न करने लगा उसने नेत्रों को आधा मूंदा और बाह्य विषयों को त्याग इन्द्रियों को भी त्यागकिया और प्राण अपान का मूलचक्र में रोंका जिससे नवों द्वारे रोंके गये। जैसे बालक के खेलने का पानीचोर होता है और उसके मूंदने से चलता पानी सब छिद्रों से रोंका जाता है, तैसेही मूल चक्र के रोंकने से नवोद्वार रोंकेगये। इस प्रकार उसने चित्त को रोंका और जब मनरूपी चञ्चलमृग दौड़े तब वैराग्य और अभ्यास के बल से फिर उसे रोंके। जैसे बांधसे जल का वेग रुकता है तैसेही उसने जब चित्त को स्थित किया तब अन्तःकरण की जो सात्त्विकी वृत्ति है उसको भी त्यागकर स्थित हुआ। जब मन की वृत्ति जो निद्रारूप है उसमें मन मूर्च्छित होगया तब राजस—तामस का प्रवाह फिर फुरने लगा और उसको आत्म-विवेक से निवृत्त किया। जैसे प्रकाश तम को निवृत्त करता है तैसेही इस विकल्प-रूपी तम को उसने निवृत्त किया और विवेकके बल से चित्तकला में लगा और चित्त की वृत्ति से साक्षात्कार किया पर उसमें एकक्षण चित्त स्थित रहा और फिर बाहर नि-कल गया। जैसे बांध को तोड़कर जल निकल जाता है। निदान उसने फिर अभ्यास के बल से उसे आत्मकला में लगाया तब उस परमशान्त आत्मपद में चित्त की वृत्ति स्थित हुई और परमआनन्द अमृतमें मग्न हुई जो अशब्द, आनन्द और परिणाम से रहित है और जिस पद में देवता, ऋषीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं। हे रामजी! जो उसपद में एकक्षण भी स्थित हुआ है और जो वर्ष पर्यन्त स्थित हुआ है दोनों तुल्य हैं। जिसको उस पद का अनुभव हुआ है वह भोगों की इच्छा नहीं

करता। जैसे जिसने स्वर्गका नन्दनवन देखा है वह कञ्जके वनदेखनेकी इच्छा नहीं करता, तैसेही ज्ञानवान् भोगों की वाञ्छा नहीं करता और शोक कदाचित् नहीं पजता। जैसे जिसको राज्य हुआ है वह दीनता को नहीं प्राप्त होता, तैसेही जिसने आत्मपद में स्थिति पाई है उसको विषयों की तृष्णा और शोक नहीं उपजता। हे रामजी! जब इस प्रकार उद्दालक स्थित था तब सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधरों के गण जिनके मुख चन्द्रमा की नाईं थे उसके निकट आये और नमस्कार करके बोले, हे भगवन्! स्वर्ग में चलके दिव्यभोग भोगो, तुमने बड़ी तपस्या की है। धर्म, अर्थ और पुण्य का सार काम है और काम का सार जो स्त्रियां हैं वे तुम्हारे भोगने के निमित्त हैं, जिनसे स्वर्ग भी शोभता है—जैसे बसन्तऋतु की मञ्जरी और पुष्पों से पृथ्वी शोभती है। इससे तुम विमानों पर आरूढ़ होकर स्वर्ग में चलो और बहुतकाल पर्यन्त भोग भोगो। हे रामजी! जब सिद्धों ने इस प्रकार बहुत कहा तब उद्दालक ने उनको अतिथि जानकर निरादर तो न किया किन्तु यथायोग्य पूजा करके हँसा और कहा कि, हे सिद्धो! तुमको नमस्कारहै, आवो। पर वह उनकी सिद्धता में आसक्त हुआ क्योंकि, परमानन्द में स्थित था और विषयों के सुख तुच्छ जानता था। जैसे अमृत खानेवाला विष की इच्छा नहीं करता तैसेही उद्दालक सुख को न चाहता था। कुछ दिन रहकर सिद्ध पुजते रहे और फिर उठगये पर यह परमपद में स्थित रहकर अपने प्रकृत व्यवहार करता रहा। फिर मेरु और मन्दराचल पर्वत में विचरा और कन्दरा में ध्यानलगा बैठा। कहीं एक दिनभर बैठारहे और कहीं वर्षों के समूह बीतजावें; इस प्रकार समाधि करके उतरा तब समाधि होगई। हे रामजी! चित्ततत्त्वज्ञ अभ्यास से महाचेतन तत्त्व को प्राप्त होता है। दिशा में जैसे चित्र का सूर्य होता है तैसेही उदय अस्त से रहित हो उसने परम उपशमपद को पाया, चित्त भली प्रकार शान्त होगया और और जन्मरूपी फाँसीको तोड़ उसका देहरूपी भ्रम क्षीण होकर शरत्काल के आकाशवत् निर्मल हुआ और विस्तृत उत्कृष्ट प्रकाशरूप उसका वपु होगया। तब वह सत्ता सामान्य में स्थित होकर बिचरने लगा और परम शान्ति को प्राप्त हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउद्दालकविश्रान्तिवर्णनंनामैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ४९॥

रामजी ने पूछा, हे आत्मरूप! आप ज्ञान दिन के प्रकाशकर्ता सूर्य हैं; संशयरूपी तृणों के जलानेवाले अग्नि हैं और ज्ञानरूपी तापों के शान्तिकर्ता चन्द्रमा हैं। हे ईश्वर! सत्तासामान्यका रूप क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जगत् के अत्यन्त अभाव की भावना करके जब चित्त क्षीण हो और उसमें जो शेषरहे सो सत्तासामान्य है। जब चित्त से रहित आत्मसत्ता हो और उसमें चित्त लीन होजावे तब सत्ता

सामान्य उदय हो; जो असत्य की नाईं स्थित है सोही सत्ता सामान्य है। हे रामजी! जब सब इन्द्रियों का प्रपञ्च शान्त होकर शुद्धबोध रहे; भीतर बाहर का व्यवधान मिटजावे और सब जगत् एकरूप होकर समाधि और उत्थान एकसा होजावे ऐसी दशा की जो प्राप्ति है सोही सत्तासामान्य है। वह देह के होतेही विदेहरूपहै और उस को तुरीयातीतपद कहते हैं। समाधि में स्थिति हो तौभी केवलरूप है और उत्थान हो तौभी केवलरूप है। अज्ञानी समाधि और उत्थान के तुल्य नहीं होता क्योंकि, ज्ञान से उपजी समाधि उसको नहीं प्राप्ति हुई। हमसे आदि लेकर नारद, देवर्षि, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रआदिक जिनको ज्ञान की दृष्टि पुष्ट हुई है वे सत्तासामान्य में स्थित हैं और उनको समाधि और उत्थान में तुल्यता है। जैसे आकाश में पवन का चलना और ठहरना समान है और जैसे पृथ्वी में जल स्थित है और अग्नि में उष्णता स्थित है; तैसेही सत्तासामान्य में वह स्थित है। जबतक जगत्में विचरने को उसकी इच्छा थी तबतक वह ऐसे विचरतारहा और जब विदेहमुक्ति होनेकी इच्छा हुई तब पहाड़ की कन्दरा में पत्रोंका आसन बनाकर पद्मासन बांध और दांतों से दांतों को मिलाकर सब संकल्पों का त्याग किया और प्राणवायु को मूल आधारचक्र करके नवें द्वार खेचरीमुद्रा से रोंके। न भीतर; न बाहर, न अध, न ऊर्ध्वसर्वभाव—अभाव विकल्पों को त्यागकर उसने जब आत्मतत्त्व में चित्त की वृत्ति को लगाया तब शुद्ध चिन्मात्र में चित्त की वृत्ति जा प्राप्त हुई और रोम खड़े हो आये। जब उस व्युत्थान को भी उसने त्यागकिया तब सत्तासामान्य विश्वम्भर पद को प्राप्त हुआ, जो परम विश्रान्त, अनादि, आनन्द और सुन्दररूपहै। तब पुतली की नाईं उसका शरीर होगया और जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है, तैसेही निर्मल पद को प्राप्त हुआ। जैसे सूर्य की किरणों के द्वारा वृक्ष में रस होता है और सूर्य उसे खैंचलेता है और जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर उसही में लीन होता है तैसही उसका चित्त जिससे उपजा था उसीमें लीन होगया; सम्पूर्ण उपाधि विलास से संकल्प रहित हुआ और उस आनन्दपद को प्राप्त हुआ जिसमें इन्द्रादिकों का आनन्दभी तुच्छ भासताहै। ऐसा विश्वम्भर आनन्द जो उत्तम पुरुषों से सेवने योग्य है और जो अद्वैत और अशब्द सत्तासामान्य है उसमें जब उद्दालक प्राप्त हुआ तो परम शान्तिरूप होगया। निदान कुछकाल पीछे उसका शरीर गिरपड़ा—जैसे रस सूखे से वृक्ष गिर पड़ता है। जैसे वीणा बजती है और उसका शब्द प्रकट होता है तैसेही जब वायु चले और उसके शरीर में प्रवेश कर निकले तो शब्द प्रकट होता था। कुछकाल पीछे देवताओं की स्त्रियां; अश्विनीकुमार की शक्ति जिनका अग्निकी नाईं तेजहै और देव देवी जो सब देवताओं से पूज्य हैं सखियों सहित आईं और उस शरीर को सुगन्धित पुष्पों की

माला पहिराकर उसकी पूजा करके नृत्य करने लगीं और लीला की। हे रामजी! उद्दालक के चित्त की वृत्ति में कलना से रहित विवेकरूपी बेलि हुई और उसमें आत्मानन्दरूपी फल लगा। जिसके हृदय में ऐसे फूलों की सुगन्ध स्थित हो वह सब भ्रम से तरजावे। जिसको ऐसा विवेक प्राप्त हो तो वह सबभ्रम से मुक्तहो॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउद्दालकनिर्वाणवर्णनंनामपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रकार उद्दालक ऋषीश्वर आत्मपद को प्राप्त हुआ है उसी क्रम से अपने आपको विचार करके तू भी आत्मपद को प्राप्त हो। हे कमलनयन! कर्तव्य यही है कि, गुरु और शास्त्रों के वचनों को धारण कर जगत्भ्रम से मुक्त हो और आत्म अभ्यास से शान्त पद को प्राप्त हो। प्रथमगुरु और शास्त्रों के वाक्यों को समझिये और उससे जो विषयभूत अर्थ है उसके अभ्यास में बुद्धि को लगाइये। इस प्रकार जब दृढ़ताहो तब परमपद की प्राप्ति हो। अथवा बुद्धि में एक तीक्ष्ण अभ्यास हो और कलङ्क कलना से रहित ऐसा बोध हो तो साधनादि सामग्री से रहित हो अथवा वैरागादिक सामग्री से रहित हो तौभी अविनाशी पद को प्राप्त हो। रामजी ने पूछा; हे भूतभविष्य के ईश्वर! एक ज्ञानवान् पुरुष तो समाधि में स्थित होता है और फिर जगत् व्यवहार में बिचरता है और एक समाधि में स्थित है जगत् का व्यवहार नहीं करता; इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम समाधि का लक्षण सुनो कि, समाधि किसको कहते हैं और व्युत्थान क्या है। यह गुणों का समूह अहंकार से लेकर तत्त्वगुणात्मक है। जो इनको अनात्मरूप देखता है; आपको केवल इनका साक्षी चेतन जानता है और स्वाभाविक जिसका चित्त शीतलहै उसको समाधि कहतेहैं। जो मैत्री, करुणा, अमान्यता आदिक गुणों में स्थित हुआ है और जिसका मन आत्मविषय से शान्तिको प्राप्त होता है उसको समाधि कहते हैं। हे रामजी! जिसको ऐसा निश्चयहोता है कि, मैं शुद्ध चिदानन्दस्वरूप दृश्य के सम्बन्ध से रहित हूं वह चाहे वन में रहे अथवा गृह में रहे दोनों स्थान उसको तुल्य हैं और वे दोनों पुरुष तुल्य हैं। अन्तःकरण का शीतल होना बड़े तपों का अनन्त फल है। हे रामजी! जो इन्द्रियोंको शमन करके बैठा है और मन से जगत् के पदार्थों की चिन्तना करता है उसकी समाधि मिथ्या है। वह उन्मत्त की नाईं नृत्य करता है। और जिसके मन में कोई वासना नहीं और व्यवहार करता है उसको बुद्धिमानों की समाधि के तुल्य जानो। कोई ज्ञानी व्यवहार करता है और कोई ज्ञानवान् व्यवहार को त्याग कर वन में समाधि लगाकर स्थित हो बैठा है पर दोनों निश्चय से परमपद में प्राप्त होते हैं-इसमें संशय नहीं। ज्ञानवान् निर्वाह पुरुषार्थ करताभी दृष्ट आता है तौभी अकर्ता है और अज्ञानी जो

कर्ता भी नहीं परन्तु वासना से कर्तव्यभाव को प्राप्त होता है। जैसे कोई पुरुष कथा सुनने बैठा हो और उसका मन किसी और ठौर निकल गया हो तो सुनता बैठाभी नहीं सुनता; तैसेही ज्ञानवान् का चित्त आत्मपद की ओर लगा है इससे वह कर्ता भी नहीं कर्ता क्योंकि, उसको कर्तृत्व का अभिमान नहीं होता। घन वासनासहित अज्ञानी सब इन्द्रियों को स्थित करके सोगया हो तो उसको स्वप्न आवे और पर्वत से गढ़े में आपको गिरा देखता है और कष्टवान् होता है। इससे जहां वासना है वहां क्षोभ भी है और जहां कुछ वासना नहीं वहां शान्ति है। हे रामजी! जिसमें कर्तृत्व का अभिमान नहीं और निश्चय से आपको अकर्ता जानता है उसको केवलीभावसे समाधि में स्थित जानो और जिसमें कर्तृत्व अभिमान है और समाधि में बैठा है तौभी उसको व्युत्थान जानो। हे रामजी! चित्त के चलाने का कारण स्मृति है जो स्मृति जगत् को लेकर समाधि लगा बैठता है। तौभी चित्त वासनासे फैलजाता है। जैसे बीज से अंकुर उपजता है और फैलजाता है तैसेही मनमें जो वासना की स्मृति होती है उससे चित्त फैलजाता है। और जो जगत् की वासना मन से जाती रहती है अर्थात् जगत् का सततभाव निवृत्त होजाता है तब चित्त अचल होजाता है। हे रामजी! जिस चित्त से वासना नष्ट होती है उसको अचल स्थिति कहते हैं; वह ध्यान में केवलीभाव में स्थित होता है और जिसके चित्त में सदा वासना फुरती है उसको सदा क्षोभ होता है। इससे निर्वासनीक होकर तुम परमपद को प्राप्त हो। हे रामजी! जिस चित्त में वासना गन्ध होती है उसमें कर्तृत्व का अभिमान भी फुरता है और उससे सदा दुःखी होता है। वासना के क्षीण हुयेसे मुक्त होता है। जिस पुरुष के चित्त से जगत् की आस्था निवृत्त हुई है और वीतशोक हुआ है वह स्वस्थ आत्मा है। तिसको समाधि कहते हैं। हे रामजी! जिसके हृदय से संसार का रागद्वेष मिटगया है और शान्ति को प्राप्त हुआ है उसको सदिव्य समाधि कहते हैं। इससे चित्त में जो पदार्थभावना है उसको त्याग कर अपने स्वभाव में स्थित हो; तब गृह में रहो अथवा वन में जावो दोनों तुमको तुल्य हैं। हे रामजी! जो गृह में स्थित है और चित्त समाहित है और अहंकार के दोष से रहित है उसको कुटुम्ब और जनोंके समूह भी वन की नाईं हैं। ज्ञानवान् को गृह और वन तुल्य है और देह अभिमानी जो अज्ञानी है वह वनमें जाय और समाधि लगा बैठता है पर चित्त की वृत्ति विषयों की ओर रहती है तब वह जगत् के समूह को देखता है अथवा सुषुप्ति में जड़भूत होजाता है। हे रामजी! चित्त उत्थान में स्वरूप से गिरा हुआ जगत्भ्रम दिखाता है और जब चित्त निर्वाणपद आत्मा में स्थित होता है तब उपशम होता है। हे रामजी! जो पुरुष सब भाव पदार्थों में आत्मा को अतीत जानता

है वह समाहित चित्त कहाता है और जिसको जाग्रत् जगत् स्वप्नवत् भासता है वह समाहितचित्त कहाता है। वह पुरुष जन के समूह में रहता है तौभी उसका सम्बन्ध किसी से नहीं। जैसे कोई पुरुष राजमार्ग में चला जाता है तो मार्ग के किसी पदार्थसे सम्बन्ध नहीं रखता तैसेही उसपुरुष का अभिमान किसीमें नहीं फुरता। जिस पुरुष का चित्त अन्तर्मुख हुआ है वह सोवे अथवा बैठे; चले अथवा देखे उसे नगर और ग्राम सब महावनरूप भासता है और सब जगत् उसको आकाशरूप भासता है। जिस पुरुष को आत्मा में प्रीति हुई है वह अन्तर्मुखी कहाता है और जिसका हृदय आत्मज्ञान से शीतल हुआ है उसको सब जगत् शीतलरूप भासता है। वह जबतक जीता है तबतक विगतज्वर होकर जीता है और जिसका हृदय तृष्णा से जलता है उसको सब जगत् दावाग्नि से तपता भासता है। हे रामजी! यह सब जगत् चित्त में स्थित है; जैसी भावना चित्त में होती है उसके अनुसार जगत् भासता है। स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, नदियां, आकाश, देश, काल जो कुछ जगत् है वह सब चित्त अन्तःकरण में है और वही बाहर विस्तार होकर भासता है। जैसे वट के बीज में वट फैलजाता है तैसेही चित्त में जगत् का विस्तार होताहै। बाहर जो सूर्य आदिक भासता है वहभी चित्त के भीतर स्थित है—जैसे फूल खिलता है उसके भीतर की सुगन्ध बाहर भासती है और वास्तव में न कुछ भीतर है न बाहर है जैसा किंचन होता है तैसाही चैत्यता से फुरता है—तैसेही वही सत्ता जगत्रूप होकर भासती है। जगत् सब आत्मरूप है और न कोई सत्य है, न असत्य है; एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको सदा ऐसेही भासता है। हे रामजी! जिसके हृदय में शान्ति है उसको सब जगत् शान्तिरूप है और जिसका हृदय देहाभिमान में स्थितहै सो नाश होता है और भय पाता है किसी ओरसे उसको शान्ति नहीं प्राप्तहोती। वह स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां, देश, काल सबको प्रलयकाल की अग्निवत् जलता देखताहै। जिसके हृदय में ताप होता है उसको सब जगत् तपता भासता है पर आत्मज्ञानी को शान्तरूप भासता है—जैसे अन्धेको सब जगत् तमरूप भासताहै और नेत्रोंवाले को सब जगत् प्रकाशरूप भासता है। हे रामजी! जिस पुरुष को आत्मपद में प्रतीति हुई है और इन्द्रियों से कर्म भी करता है परन्तु हर्ष शोक के वश नहीं होता वह समाहितचित्त कहाता है। जो पुरुष सबको आत्म देखता है, चित्त को नहीं चितवता; भविष्यत् की इच्छा नहीं करता और वर्तमानमें राग द्वेष से रहित होकर विचरता है वह समाहितचित्त कहाता है। हे रामजी! जो पुरुष जगत् की पूर्वापर गति को देखकर हँसता है; समपद में स्थित होता है और किसी में ममता नहीं करता वह समाहितचित्त कहाता

है। जो पुरुष अहंममता से और जगत् की विभाग कलना से रहित है और जिससे चैतन अचैतनभाव नहीं फुरता वह पुरुष सत्य है और आकाश की नाईं स्वच्छ निर्मल है और राग, द्वेष, क्रोध विकारों से काष्ठ लोष्टसमान हो रहता है। वह सब भूतों को अपने समान देखता है और और के द्रव्य को देखकर दृष्टि नहीं करता। वह स्वभावही से उसे नहीं चाहता द्वन्द्व के भय से नहीं त्यागता। ऐसे जो देखता है और अहंकार से रहित होता है वह न जगत् के सत्यभाव को देखता है, न असत्य भाव को देखता है; न ज्ञान को देखता है; न अज्ञान को देखता है; न जड़ को देखता है; न चैतन को देखता है; वह तो केवल अद्वैततत्त्व देखता है। वह महाशान्तपद में स्थित है; वह उठ खड़ा हो अथवा बैठा रहे; उदय हो अथवा अस्त हो; बड़े भोगों में रहे अथवा वन में जा बैठे; अथवा मद्यपान से उन्मत्त हो और नृत्यकरे और गयादिकतीर्थों में निवास करे अथवा कन्दरा में निवासकरे शरीर को अगरचन्दन का लेपनकरे अथवा कीचड़ के साथ लपेटे; देह अभी गिरपड़े अथवा कल्पपर्यन्त रहे; उस पुरुष को कदाचित् कुछ कलङ्क नहीं लगता। जैसे सुवर्ण को कीचड़ के मिलाप से दोष नहीं लगता तैसेही ज्ञानवान् को कर्तृत्व का दोष नहीं लगता। हे रामजी! इस संवित् को अहन्ताही कलङ्क है। महापुरुष अहंकार से रहित है इससे उनको कृतत्व स्पर्श नहीं होता। जैसे सीपी को रूपे का आभास नहीं स्पर्श करता तैसेही ज्ञानवान् को क्रिया स्पर्श नहीं करती। हे रामजी! अहन्ताही से जीव दीन होता है। जब अहन्ता फुरती है तब अनेक प्रकार के दुःख सुख देखना है और परम्परा जन्मों को देखता है और भय पाता है। जैसे किसीको रस्सी में सर्प भासता है और भय पाता है पर जब भली प्रकार दीपक के प्रकाश से देखता है तब सर्पभय निवृत्त होता है; तैसेही अहन्ता से यह दुःख पाता है और अहन्ता के शान्त हुये शान्तिमान् होता है। हे रामजी! ज्ञानवान् जो कुछ कर्म करता, खाता, पीता, लेता, देता, हवन करता है उसमें अहन्ता का अभिमान नहीं करता इससे करने में उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और जो नहीं करता उसमें भी कुछ अभिमान नहीं इससे करने से उसकी कुछ हानि नहीं होती वह अपने स्वभाव में स्थित है और जगत् को द्वैतभाव से नहीं देखता, सबको आत्मभाव से देखता है इससे उसे कर्म स्पर्श नहीं करता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेध्यानविचारोनामैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चित्त आदिक जो जगत् है सो वास्तव में आत्मा से भिन्न नहीं है। आत्मारूपी मिरच है उसमें चित्त अहन्तारूपी देश, काल, तीक्ष्णता भिन्न नहीं जैसे इक्षु से मधुरता भिन्न नहीं तैसे आत्मा से जगत् भिन्न नहीं। जैसे

पत्थर में कठोरता है तैसेही आत्मा में जगत् है; जैसे पर्वत में जड़ता होती है तैसेही आत्मा में अहन्ता होती है जैसे जल में द्रवता होती है तैसेही आत्मा में अहन्ता आदिक होती है। जैसे फूल, फल, टास वृक्ष से भिन्न नहीं होते तैसेही आत्मा में अहन्ता आदिक अभेद होते हैं; जैसे तीक्ष्णता मिरचों से भिन्न नहीं होती तैसेही चित्त अन्हतारूपी देशकाल आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे अग्नि में उष्णता; बरफ़ में शीतलता; सूर्य में प्रकाश और गुड़ में मधुरता होती है; तैसेही आत्मा में जगत् होताहै। जैसे अमृत में स्वादवेदना होती है तैसेही आत्मा में देश, कालवेदना होती है। हे रामजी! जैसे मणि में प्रकाश होता है तैसे आत्मा में अहन्ता होती है और जैसे जल से तरङ्ग भिन्न नहीं होता तैसेही आत्मा से अहन्ता आदिक भिन्न नहीं होते। जो कुछ जगत् भासता है सो आत्मतत्त्व का प्रकाश है जो अनन्त आत्मा सब में पूर्ण है और एकही ईश्वरभाव में स्थित महाघन शिला की नाईं स्थित है—उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे आकाश अपनेभाव में स्थित है तैसेही सत्य केवल आत्मा में स्थित है और अपने आपसे निर्वेद है पर वेदना भी उससे भिन्न नहीं। जैसे जलही तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही आत्मा वेदनरूप हो भासता है और जैसे जल में द्रवता और पवन में चलना भासता है तैसेही ज्ञानरूप आत्मा में अहन्तारूप देश, काल, जगत् भासता है। हे रामजी! जीवों का जीना ज्ञान से होताहै और ज्ञानसत्ता का जीना चैतन से होता है। चिन्मात्र और जीवों में रञ्चकमात्र भी कुछ भेद नहीं। जैसे ज्ञान चैतनसत्ता और जीव में भेद नहीं तैसेही ज्ञाता और जगत् में कुछ भेद नहीं—एकही अखण्डसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है हे रामजी! सर्वसत्ता एक, अज, अनादि और आदि, अन्त, मध्य से रहित, आकाशरूप, चिन्मात्र अद्वैततत्त्व अपने आपमें स्थितहै। वह अशब्द है उस में वाणी प्रवेश नहीं करसक्ती और जितने वाक्य हैं वह उसके जताने के निमित्त कहे हैं वास्तव में द्वैतवस्तु कुछ नहीं है एक आत्मतत्त्व को अपने हृदय में धारणकर स्थितहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेभेदनिराशावर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एकआगे पुरातन इतिहास हुआ है उसको तुम सुनो। उत्तरदिशा में एक सुगन्धितपृथ्वी है वह मानो कपूर से लिपी हुई है और मानो सदा शिव के हंस आ स्थित हुये हैं। हिमालय के शिखर पर वह कैलास पर्वत है जो सब पर्वतों से उत्तम और उज्ज्वल है वह रुद्र के रहने का स्थान है, वहां कल्पवृक्ष लगे हैं और गङ्गाका प्रवाह चलता है। और भी बहुतसी बड़ी नदी वहां चलती हैं और कमलों सहित बहुत महासुन्दर तालाब स्थित हैं जहां बहुत मृग पक्षी हैं। उस हिमालय के नीचे स्वर्णवत् जटावाले क्रान्त रहते हैं—जैसे वृक्ष के मूल में पिपीलिका रहती हैं। उस क्रान्त देश का राजा सुरघ मानो प्रत्यक्ष लक्ष्मीमूर्तिधारे हुये, वेगवान् ऐसा

मानो पवन की मूर्ति वैराग्यवान् मानो गजेन्द्र, बुद्धिमान् मानो बृहस्पति और शुक्र के समान कवि था। राजा ऐसा था मानो इन्द्र है; और धनी ऐसा मानो कुबेर था। ऐसा राजा होकर वह राज्य करता था और भली प्रकार प्रजा की पालना करता था। जो भलेमार्ग में चलें उनकी वह रक्षाकरे और जो पापकर्म चोरी आदिक करें उनको दण्ड दे और जैसा कर्म प्राप्त हो उसमें द्वेषसे रहित होकर व्यतीतकरे। एक समय वह अपने स्थान में बैठाथा तब चित्त में विचार उपजा और संशयरूपी वायुसे उसकी बुद्धिरूपी पक्षिणी डोलायमान हुई कि, बड़ा अनर्थ है कि, मैं जीवों को कष्ट देता हूं। इससे मैं इनको धन देऊं और कष्ट न देऊं। जैसे तिलों को तेली पेरता है तैसेही मैं पापियों को कष्ट देता हूं। दुष्टों को कष्ट दिये विना राज्य नहीं चलता—जैसे जल विना नदी का प्रवाह नहीं चलता—और यदि दण्ड देता हूं तो वे दुःख पावते हैं। मैं क्या करूं दोनों बातों में कष्ट है। हे रामजी! ऐसे विचार में राजा बहुत भ्रमतारहा निदान एकदिन उसके गृह में माण्डवमुनि आये—जैसे इन्द्र के घर में नारद आवें—तब राजा ने भली प्रकार उनका पूजनकिया और संदेहवान् होकर पूछा; हे भगवन्! तुम सर्व धर्मगत हो, तुम्हारे आनेसे मैं बड़े आनन्द को प्राप्तहुआहूं जैसे बसन्तऋतुसे पृथ्वी प्रफुल्लित होतीहै तैसेही मैं प्रफुल्लित हुआ हूं मैंभी अब आपको पुण्यवान् जानताहूं कि, मैंभी पुण्यवानों में प्रसिद्ध होऊंगा क्योंकि; तुम मेरे गृह में आये हो। जैसे सूर्यके उदयहुये प्रकाश होआताहै तैसेही मैं तुम्हारे दर्शन से प्रसन्नभया हूं। हे भगवन्! मुझको एक संशय है उसके निवारणकरने को आपही योग्य हो। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाताहै तैसेही तुमसे मेरा संशय निवृत्त होगा। जो कोई महापुरुषों का संगकरता है उसका संशय अवश्य निवृत्त होताहै। संशयही परम दुःखों का कारण है इससे मेरे संशयको तुम दूर करो। मुझे यह संशय है कि, यदि कोई दुष्ट कर्म करता है तो उसको मैं दण्डदेताहूं और जब उसको दुःखी देखताहूं तो दया उपजती है। जैसे सिंह नख से हाथी को खैंचताहै तैसेही यह संशय मुझको खैंचता है। इससे यही उपाय कहो जिससे मुझको समता प्राप्त हो। जैसे सूर्य की किरणें सब ठौरमें सम होतीहैं तैसेही इष्ट—अनिष्टमें मैं समहोऊं। कृपा करके मुझसे वही उपाय कहिये माण्डव बोले, हे राजन्! यहतो बहुत सुगम है और अपने आधीनहै; आपही से सिद्ध होताहै और अपनेही गृह में है। हे राजन्! सब उपाधि मनमें उठती है वह मन तुच्छ है और विचार किये से निवृत्त होजाता है। जैसे उष्णता से बरफ़ जलमय होजाताहै तैसेही विचार कियेसे जब मनभाव लीन होजाता है तब ताप भी निवृत्त होजाता है। जैसे शरत्काल के आये से कुहिरा नष्ट होजाता है तैसेही विचार कियेसे मनभाव नष्ट हो जाताहै। विचारो कि, मैं कौन हूं, इन्द्रियां क्याहैं; जगत् क्या है और जन्म मरण

किसको कहते हैं? इस विचार से जब तुम अपने स्वभाव में स्थित होगे तब तुमको हर्ष, शोक, क्रोध और राग द्वेष चलायमान न करसकेगा। जैसे वायुसे पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही तुम अचल रहोगे। हे राजन्! जब आत्मबोध होगा तब मन अपने मनभाव को त्याग देगा और तुम सन्ताप से रहित अपने स्वरूप को प्राप्त होगे। जैसे तरङ्ग भाव मिटनेसे जल निर्मल होता है तैसेही तुम अचल होगे और मनधर्म भी रहेगा परन्तु मध्य से अज्ञान नष्ट होजावेगा और आत्मसत्ताभाव होगा। जैसे काल वही रहता है परन्तु ऋतु और होजाती है तैसेही मन वही होगा परन्तु स्वभाव और होजावेगा। तेरे नौकर और प्रजा भी साधु होजावेंगे और तेरी आज्ञा में चलेंगे और तुझको देखकर प्रसन्न होंगे। हे राजन्! जब तुझको विवेकरूपी दीपक से आत्मारूपी मणि मिलेगा तब तेरी बड़ाई सुमेरु और समुद्र और आकाश से भी अधिक होगी। जब तुझको विवेक से आत्म महत्त्वता का प्रकाश होगा तब तू संसार की तुच्छ वृत्ति में न डूबेगा। जैसे गोपद के जल में हाथी नहीं डूबता तैसेही तू राग द्वेष में न डूबेगा। जिसको देह में अभिमान है और चित्त में वासना है वह तुच्छ-संसार की वृत्ति में डूबता है; इससे जितना अनात्मभाव दृश्य है उसका त्यागकर पीछे जो शेष रहे सो परमतत्त्व आत्मा है। हे राजन्! जो कुछ सत्य वस्तु है उसको हृदय में धरो और जो असत्य है उसका त्याग करो। जैसे तबतक कल्लर से सोनार धोता है जबतक सुवर्ण नहीं निकलता और जब सुवर्ण निकलता है तब धोनेका त्याग करता है; तैसेही तबतक आत्मविचार कर्तव्य है जबतक आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ। जब आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है तब विचार से प्रयोजन नहीं रहता। हे राजन्! सबमें, सबप्रकार, सबकाल, सब आत्मा की भावना करो अथवा जितना दृश्यभाव है सो सब त्याग करो तो जो शेष रहेगा सो तुमको भासि आवेगा। जबतक सर्वदृश्य का त्याग न करोगे तबतक आत्मपद का लाभ न होगा। सर्व दृश्य के त्याग से आत्मपद भासेगा। हे राजन्! जब किसी वस्तु के पाने का यत्न करता है तो औरका त्यागकर उसीका यत्न करिये तो प्राप्त होता है तो आत्म-तत्त्व अनन्य होकर चित्त विना कैसे प्राप्त होगा। जब अपना सम्पूर्ण यत्न एकही ओर लगाता है तब उस पद की प्राप्ति होती है। इससे आत्मपद के पानेके लिये सब दृश्य का त्यागकर सबके त्याग कियेसे जो शेष रहे सो परमपद है। हे राजन्! सबके त्याग कियेसे जो सत्ता अधिष्ठान रहेगा सो तुझको आत्मभाव से प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघवृत्तान्तमाण्डवोपदेशोनाम
त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर जब माण्डवमुनि अपने स्थान

को गये तब सुरघराजा एकान्त में बैठकर विचार करनेलगा कि, मैं कौन हूं ? न मैं सुमेरु हूं, न मेरा सुमेरु है; न मैं जगत् हूं, न मेरा जगत्है; न मैं पृथ्वी हूं,न मेरी पृथ्वी है; न मैं क्रान्त मण्डल हूं और न मेरा क्रान्तमण्डल है क्योंकि; यह अपने भावमें स्थित है, मेरे भाव से तो नहीं। जो मैं न होऊं तौभी यह ज्योंके त्यों स्थित हैं तो यह मेरे कैसे होवें और मैं इनका कैसे होऊं ? न मैं नगर हूं और न मेरा नगरहै। हाथी, घोड़ा, मन्दिर, धन, स्त्री, पुत्रादिक जो कुछ पदार्थ हैं सो न मेरे हैं और न मैं इनका हूं। इनमें आसक्त होना वृथा है; इनमें मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जितने भोगों के समूह हैं ये न मैं हूं और न ये मेरे हैं। नौकर, भृत्य और कलत्र सब अपने भाव से सिद्ध हैं, मेरा इनसे सम्बन्ध कुछ नहीं। न मैं राजाहूं, न मेरा राज्य है। मैं एकाएकी शरीर-मात्र हूं और इनमें मैं ममत्व करताहूं सो वृथाहै। शरीर में जो मैं अहं करताहूं सो भी व्यर्थ है क्योंकि; हाथ पांव आदिक का स्वरूप भिन्न है; न यह मैं हूं और न ये मेरे हैं। इनमें मेरा शब्द कुछ नहीं यह रक्त, मांस, हाड़ आदिकरूप है सो मैं नहीं। यह जड़ है और मैं चेतन हूं; इनके साथ मेरा कैसे सम्बन्ध हो। जैसे जल का स्पर्श कमल को नहीं होता तैसेही इनका स्पर्श मुझको नहीं। न मैं कर्म इन्द्रियां हूं और न मेरी कर्म इन्द्रियां हैं। यह जड़ है, मैं चैतन्य हूं। न मैं ज्ञानइन्द्रिय हूं, न मेरी ज्ञान इन्द्रियां हैं। इनसे परे मन है सोभी मैं नहीं क्योंकि, यह जड़ है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये सब अनात्मारूप हैं। मेरा इनके साथ अविद्या से सम्बन्ध है। भ्रान्ति से मैं इनको अपना स्वरूप जानता था पर यह सब भूतों का कार्य है। इनके पीछे चेतन जीव है जो चेतन दृश्य को चेतनेवाला है सो चेतन चेतना भी मैं नहीं। इन सब से शेष अचेत चिन्मात्रसत्ता मेरा स्वरूप है। बड़ा कल्याण हुआ जो मैंने अपना आप पाया। अब मैं जागा हूं। बड़ा आश्चर्य है कि, मैं वृथा देहादिक को अपना जानकर शोक और मोह को प्राप्त होता था। मैं तो एक निर्विकल्प चेतन और अनन्त आत्मा सब में व्याप रहाहूं और ब्रह्मरूप आत्मा हूं। इन्द्रियों से आदि जितने भूतगण हैं उन सबका मैं आत्मा हूं। यह भगवान् आत्मा सबके भीतर व्यापा है। जैसे सबके भीतर तत्त्व होते हैं तैसेही यह चेतनरूप सर्वभाव को भर रहा है और सर्वभावों में व्याप रहा है। भैरव और उदय अस्त भाव आदि विकारों से वह रहित है। ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सबका आत्मा यही है। सब प्रकाशों का प्रकाशनेवाला दीपक वही है और संसाररूपी मोतियों के पिरोनेवाला तागा और सबका कारण कार्य यही है। वह साकार से रहित है और शरीरादिक सब उसीकी सत्ता से उपलब्ध होते हैं। शरीररूपी रथ इसीसे चलता है पर वास्तव में शरीरादिक कुछ वस्तु नहीं। यह जगत् चित्तरूपी नट की नृत्यलीलारूप

है। चित्त में जगत् फुरता है वास्तव में और कुछ वस्तु नहीं। बड़ा कष्ट है कि, मैं वृथा संग्रह असंग्रह की चिन्ता करता था। यह गुणों का प्रवाह है इसमें मैं क्यों शोकवान् होता था? बड़ा आश्चर्य है कि, असत्यभ्रम सत्य हो मुझको दीखता था। अब मैं निश्चय करके सम प्रबोध हुआ हूं और दुर्दृष्टि मेरी दूर हुई है। दृष्टि की जो अलख दृष्टि है सो अब मैंने देखी है और जो कुछ पाने योग्य था सो मैंने पाया है और अचैत्य चिन्मात्र तत्त्व को प्राप्त हुआ हूं। जो कुछ दृश्य है उसको मैं स्वरूप से देखता हूं और अहंमम दुःख मेरा नष्ट हुआ है। मैं चिदानन्द पूर्ण और नित्य शुद्ध अनन्तआत्मा अपने आपमें स्थित हूं। ग्रहण क्या और त्याग क्या? यह क्लेश कोई नहीं और न कोई दुःख है, न सुख है; सर्व ब्रह्म है और दूसरी वस्तु कुछ नहीं। मैं राग किसका करूं और द्वेष किसका हो? मैं मिथ्या मूढ़ता को प्राप्त होकर दुःखी होता था; अब कल्याण हुआ कि, मैं अमूढ़ होकर अपने आप स्वभाव में स्थित हुआ हूं। ऐसे आत्मा के साक्षात्कार विना मैं दुःखी था। इसके देखे से अब किसका शोक करूं और मोह को कैसे प्राप्त होऊं? अब मैं क्या देखूं; क्या करूं और कहां स्थित होऊं? यह सब जगत् आत्मा के प्रकाश से है और सब आत्मारूप है। हे अतत्त्व-रूप! अर्थात् जिसमें तत्त्वों की उपाधि कुछ नहीं; तेरी दृष्टि निष्कलङ्क है। मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हूं। मेरा मुझही को नमस्कार है। मैं अनन्त आत्मा, अनु-भवरूप, निष्कलङ्क, सब इच्छा और भ्रमरहित, सुषुप्तिकी नाईं शान्तरूप, अचैत्य, चिन्मात्र सदा अपने आपमें स्थित हूं॥

इति श्रीयोगवा०उपशमप्रकरणेसुरघवृत्तान्तवर्णनंनामचतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! क्रान्त जो सुवर्णरूप देश है उसका राजा परमानन्द को प्राप्त हुआ। वह इस प्रकार विचार अभ्यास से ब्रह्मरूप हुआ। जैसे गाधि का पुत्र विश्वामित्र तपस्या करके उसी शरीर से क्षत्रिय से ब्राह्मण हुआ था तैसेही राजा सुरघ अभ्यास करके ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ और जैसे सूर्य इष्ट अनिष्ट में सम है और विगतज्वर होकर दिनों को व्यतीत करता है तैसेही राग द्वेष से रहित वह राज्य का कार्य करतारहा। जैसे जल ऊंची नीची ठौर में जाता है और अपना जलभाव नहीं त्यागता, सम रहता है; तैसेही राजा हर्षशोक से रहित होकर राज्यकार्य करता रहा और स्वभाव को न त्यागा। आत्मविचार को धार सुषुप्ति की नाईं उसकी वृत्ति होगई और संसारभाव का फुरना रुकगया। जैसे वायु से रहित दीपक प्रकाशता है तैसेही वह शुद्ध प्रकाश धारताभया। हे रामजी! वह दयाकरता भी दृष्टि आवे परन्तु उसकी दृष्टि में कुछ दया नहीं और दया से रहित भी औरों को दीखे परन्तु उसकी दृष्टि में निर्दयता नहीं। न कुछ सुख, न दुःख, प अर्थ, न अनर्थ सब नदार्थों में एक

समभाव आत्मा देखे और हृदय से पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतल रहे। वह जगत् आत्मा का किञ्चनरूप जानता था और उसके सुख दुःख का भाव शान्त होगया जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही उसके सुख दुःख नष्ट होगये थे। शोक विलास करता, मत्त होता, स्थित होता, चलता, श्वासलेता और पांचों विषयों को ग्रहणकरता वह रागद्वेष को प्राप्त न होता था। जैसे पत्थर में फुरना कुछ नहीं फुरता तैसेही उसको कर्तृत्व, भोक्तृत्व का मान कुछ न फुरा; सब कर्तव्यको करताभी निःसंग रहा। जैसे जल में कमल अलेप रहता है तैसेही वह राज्य में निर्लेप होकर जीवन्मुक्त हुआ। इस प्रकार जब बहुत काल बीता तब उसने शरीर का त्याग किया। जैसे बरफ़ का कणका सूर्य के तेज से जलमय होजाता है तैसेही उसका शरीर अपने भाव को त्यागकर आत्मतत्त्व में लीन होगया। जैसे नदी समुद्र में लीन होती है और फिर भिन्न नहीं भासती तैसेही सुरघ अपने भावको त्यागकर उज्ज्वलभाव को प्राप्त हुआ और कलनारूपी मल को त्यागकर निर्मल ब्रह्म हुआ। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होताहै तैसेही यह निर्मल चिदानन्द ज्योतिभाव को प्राप्त हुआ और जैसे घट फूटेसे घटाकाश महाकाश होजाता है तैसेही वह पूर्णब्रह्म चिदानन्द तत्त्व हुआ॥

इति श्रीयोगवा०उपशमप्रकरणेसुरघवृत्तान्तसमाप्तिर्नामपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमभी इसी दृष्टि का आश्रय करके विचारो तब सब भय मिट जावेगा। जैसे घोरतम में बालक भय पाताहै और जब दीपक का प्रकाश होता है तब निर्भय होता है तैसेही संसाररूपी घोरतम में आया पुरुष दुःख पाता है और जब ज्ञानरूपी दीपक उदय होता है तब निर्भय होजाता है। हे रामजी! जब आत्मविचार में कुछभी मनुष्य का चित्त विश्राम पाताहै तब उस विश्राम का आश्रयकर वह संसार समुद्र से निकल जाता है; जैसे गढ़े में गिरे और तृणका वृक्ष हाथ लगे तौ भी उसके आश्रय से निकल आता है। हे रामजी! यह पावन दृष्टि मैंने तुमसे कही है इसको चित्त में विचारो और परस्पर मिलकर उदाहरण के साथ अभ्यासकर नित्य एक समाधि में स्थितहो और पृथ्वी का भूषण होकर लोगों में बिचरो। इतना सुन रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! एक समाधि किसको कहतेहैं और कैसे होतीहै सो कहो जिसमें मेरा चित्त जो फुरता है सो स्थित हो। जैसे वायु से मोर की पुच्छ हिलती है तैसेही चञ्चलरूप चित्त सदा फुरता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सुरघ प्रबुद्ध हुआ था तब उसका संवाद पर्णादि राजऋषि के साथ हुआ था वही अद्भुत समाधि है; उसको सुनकर विचारोगे तो तुमभी एक समाधिमान् होगे। उसने परस्पर मिलकर जो चर्चा की थी सो सुनो। हे रामजी! पारसदेश का राजा महावीर्यवान् था। उसका परघनाम था और वह सुरघ का मित्र था। जैसे नन्दनवन में कामदेव और बसन्त

ऋतु का मित्रभाव होताहै तैसेही सुरघ और परघ का मित्रभाव था। एककाल में परघ के देशमें प्रलयकाल विना प्रलयकाल की नाईं समय हुआ और उससे सब जीव दुःख पानेलगे निदान प्रजा की पापबुद्धि का फल आनलगा और महादुर्भिक्ष पड़ा। कोई क्षुधा से मृतक हुये, कोई अग्नि से जलमरे और बहुतेरे झगड़ा करके मृतक हुये। प्रजा बहुत दुःख को प्राप्त हुई पर राजा को कुछ दुःख न प्राप्त हुआ। जब प्रजा ने बहुत दुःख पाया और राजा ने प्रजा को दुःखी देखा पर प्रजा का दुःख निवृत्त न करसका तो प्रजा अपने २ कुटुम्ब को त्यागकर चलीगई–जैसे वन में अग्नि लगेसे पक्षी त्यागजाते हैं। तब राजा एक पहाड़ की कन्दरा में तप करनेलगा और ऐसा तप-करनेलगा जैसा कि, जिनेन्द्र ने किया था। वह उस कन्दरा में फल न पाये केवल सूखे पत्ते लेकर खावे–जैसे अग्नि सूखे पत्तों को भक्षण करती है उससे उसका नाम पर्णाद हुआ। निदान चित्त की वृत्ति को आत्मपद में लगाकर सहस्रवर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब अभ्यास के बल से चित्त स्थित हुयेसे केवल ज्ञानरूप आत्मतत्त्व हृदय की निर्मलता से प्रकाश आया और सब तप्तता मिटगई। तब वह रागद्वेष से रहित हो निष्क्रिय–आत्मदर्शी–जीवन्मुक्त होकर विचरने लगा। जैसे सरोवरों में कमलों के निकट भँवरा हंसों के साथ जा मिलता है तैसेही सिद्धों के साथ राजा जामिले। ऐसे फिरता २ वह क्रान्तदेश में सुरघ के स्थानों को गया। सुरघ पूर्वमित्र को देखकर उठ खड़ाहुआ और परस्पर कण्ठलगाके मिले। फिर परस्परभाव करके एक आसन पर चन्द्रमा और सूर्य के समान दोनों बैठगये और आपस में कुशल पूछने लगे। प्रथम परघ बोले, हे मित्र! तेरे दर्शन से जैसे कोई चन्द्रमा के मण्डल में जा आनन्दवान् हो तैसेही मैं आनन्दवान् हुआहूं। बहुत काल का जो वियोग होता है तो बहुत प्रीति बढ़ती है। जैसे वृक्ष को ऊपर काटेसे बढ़ता है तैसेही प्रीति बढ़ती है। हे साधो! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ और तू भी माण्डव मुनि और आत्मा के प्रसाद से ज्ञान को प्राप्त हुआ है। हे राजन्! मेरा अभीष्ट प्रश्न यह है कि, तू अब दुःखों से मुक्त होकर विश्राम को प्राप्त हुआ है। आत्मपद पानेकी बड़ाई मेरु आदिक से भी ऊंची है उसको तू प्राप्त हुआ है और परम कल्याणवान् आत्मारामी हुआ है। तुम रागद्वेष मलसे रहित हुये हो–जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होताहै–और सब कार्यों के करते भी समभाव में रहतेहो। आधि–व्याधि ताप तुम्हारे दूर हुये हैं; तुम्हारी प्रजा भी विगतज्वर हुई है और धन, राज्य और माल में भी कुशल है। जैसे चन्द्रमा की किरणें शीतलता फैलाती हैं तैसेही तुम्हारा यश दशों दिशाओं में फैलरहा है और तुम्हारा यश ग्रामवासी क्षेत्रों में लड़कियां गाती हैं। हे राजन्! तुम्हारे प्रजा, नौकर, पुत्र और कलत्र सब आधि–व्याधे से रहित हुये हैं। विषय पदार्थ आपातरमणीय

हैं उनमें अब तुम्हारी प्रीति नहीं है और तृष्णारूपी सर्पिणी तुमको अब तो नहीं डसती। हे राजन्! तुम्हारी हमारी मित्रता हुई थी। समय पाकर तुम कहां रहे और हम कहांरहे; अब फिर इकट्ठे हुये हैं। बड़ा आश्चर्य है? ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती; सुख से दुःख होजाता है और दुःख गये से सुख होजाता है। संसार की दशा आगमापायी है; संयोगका वियोग होता है और वियोग का संयोग होता है। तैसेही तुम्हारा हमारा भी संयोग का वियोग होगया था और अब फिर वियोग का संयोग हुआहै। बड़ा आश्चर्य है—ईश्वर की नीति अद्भुतरूप है। सुरघ बोले, हे देव! परमात्मा देव की नीति जान नहीं सक्के। वह महागम्भीर, विस्मयके देनेवाली और दुर्ज्ञात है। तुम्हारा हमारा वियोग हुआ तब दूर से दूर जापड़े; तुम कहां थे और हम कहां थे वे अब फिर इकट्ठेहुये हैं। देव की नीति आश्चर्यरूप है। तुमने जो मुझ से कुशल पूछी सो तुम्हारा आनाही पुण्य है उससे मैं परम पावन हुआ हूं और तुम्हारे दर्शन से सब पाप नष्ट होजाते हैं। आज हमारे पुण्य का फल लगा है जो तुम्हारा दर्शन हुआ और जो कुछ यश सम्पदा है। वह सब आज प्राप्त हुई है। हे भगवन्! सन्तोंका आना मधुर अमृत की नाईं है। जैसे अमृत झरने से निकलता है तैसेही तुम्हारे दर्शन और वचनों से परमार्थरूपी अमृत स्रवता है। जिसको पाकर जीव निर्भयता को प्राप्त होता है। सन्तों का मिलना परमपद के तुल्य है इस लिये हम परमशुद्धता को प्राप्त हुये हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघपरघसमागमवर्णनं नामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब वे पूर्व वृत्तान्त कहरहेथे तब फिर परघ बोले, हे राजन्! समाहितचित्त इस जगज्जाल में जो जो कर्म करताहै सो सुखरूप होता है। संकल्प से रहित जो परम विश्राम और परम उपशम समाधि है उसमें अब तुम स्थित हुये हो। सुरघ बोले, हे भगवन्! तुम्हीं कहो कि, सब संकल्पों से रहित परम उपशम समाधि किसको कहते हैं? और यदि तुम मुझसे पूछो तो सुनो। जो ज्ञानवान् महात्मा पुरुष हैं वे चाहे तूष्णीं रहें अथवा व्यवहार करें असमाहितचित्त कदाचित् नहीं होते। हे साधो! जिनका नित्यप्रबुद्ध चित्त है वे जगत् के कार्य भी करते हैं पर आत्मतत्त्व में स्थित हैं तो वह सर्वदा समाधि में स्थित हैं और जो पद्मासन बांध कर बैठते हैं और ब्रह्मअञ्जली हाथ में रखते हैं पर चित्त आत्मपद में स्थित नहीं होता और विश्रान्ति नहीं पाते तो उनको समाधि कहां? वह समाधि नहीं कहाती। हे भगवन्! परमार्थतत्त्वबोध आशारूपी सब तृणों के जलानेवाली अग्नि है। ऐसी निराशरूप जो समाधि है वही समाधि है। तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं है।

हे साधो ! जिसका चित्त समाहित, नित्य तृप्त और सदा शान्तरूपहै और जो यथाभूतार्थ है अर्थात् जिसे ज्योंका त्यों ज्ञान हुआ है और उसमें निश्चयहै वह समाधि कहाती है; तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं है जिसके हृदय में संसाररूप सत्यता का क्षोभ नहीं है, जो निरहंकार है और अनउदय ही उदय है वह पुरुष समाधि में कहाता है ; ऐसा जो बुद्धिमान् है वह मेरु सेभी अधिक स्थिन है । हे साधो ! जो पुरुष निश्चिन्त है, जिसकी ग्रहण और त्याग बुद्धि निवृत्त हुई है; जिसे पूर्ण आत्मतत्त्व ही भासता है वह व्यवहार भी करता दृष्ट आता है तौभी उसको समाधि कही है । जिसका चित्त एक क्षण भी आत्मतत्त्व में स्थित होता है उसको अत्यन्त समाधि होजाती है और क्षण २ बढ़ती जाती है निवृत्त नहीं होती । जैसे अमृत के पान किये से उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है तैसेही एक क्षण की भी समाधि बढ़ती ही जातीहै । जैसे सूर्यके उदय हुये सब किसीको दिन भासता है तैसेही ज्ञानवान् को सब आत्मतत्त्व भासता है—कदाचित् भिन्न नहीं भासता जैसे नदी का प्रवाह किसीसे रोंका नहीं जाता तैसेही ज्ञानवान् की आत्मदृष्टि किसीसे रोंकी नहीं जाती और जैसे काल की गति काल को एक क्षण भी विस्मरण नहीं होती तैसेही ज्ञानवान्को आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती । जैसे चलने से ठहरे पवन को अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को चिन्मात्र तत्त्व का विस्मरण नहीं होता और जैसे सत् शब्द विना कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को आत्मा सिवाय कोई पदार्थ नहीं भासता । जिस ओर ज्ञानवान् की दृष्टि जाती है उसे वहां अपना आपही भासता है—जैसे दर्पण के मन्दिर में सर्व ओर अपनाही मुख भासताहै । जैसे उष्णता विना अग्नि नहीं, शीतलता विना बरफ़ नहीं और श्यामता विना काजर नहीं होता तैसेही आत्मा विना जगत् नहीं होता । हे साधो ! जिसको आत्मासे भिन्न पदार्थ कोई नहीं भासता उसको उत्थान कैसे हो ? मैं सर्वदा बोधरूप, निर्मल और सर्वदा सर्वात्मा समाहितचित्त हूं; इससे उत्थान मुझको कदाचित् नहीं होगा । आत्मा से भिन्न मुझको कोई नहीं भासता सर्वप्रकार आत्मतत्त्व ही मुझको भासता है । हे साधो ! आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्य है । सर्वदा और सर्वप्रकार आत्मा स्थित है फिर समाधि और उत्थान कैसेहो ? जिसको कार्य कारण में विभाग[1] कलना नहीं फुरती और जो आत्मतत्त्व में ही स्थित है उसको समाहित असमाहित क्या कहिये ? समाधि और उत्थान का वास्तव में कुछ भेद नहीं । आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है, द्वैतभेद कुछ नहीं तो समाहित असमाहित क्या कहिये ? ॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणेसमाधिनिश्चयवर्णनंनामसप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५७॥

---

१ "संयोगनाशका गुणो विभागः" ।

सुरघ बोले, हे राजन्! निश्चय करके अब तुम जागेहो और परमपद को प्राप्त हुयेहो। तुम्हारा अन्तःकरण पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतल हुआहै और परमशोभा से तुम्हारा मुख शोभित होकर तुम ब्रह्मलक्ष्मीसम्पन्न और परमानन्द से पूर्ण हुये हो। तुम्हारा हृदयकमल शीतल और स्निग्ध विराजमान है और निर्मल तुम्हारी विस्तृत गम्भीरता मुझको प्रकट भासती है। निर्मल शरत्काल के आकाशवत् तुम्हारा हृदय भासता है और अहंकाररूपी मेघ तेरा नष्ट हुआ है। हे राजन्! अब तुमको सर्वत्र स्वस्थ और सर्वथा सन्तुष्टता है और किसीमें राग नहीं। तुम वीतराग होकर विराजतेहो; सार असार को तुमने भली प्रकार जाना है और उसे जानकर असार संसाररूपी समुद्र से पार हुयेहो और महाबोध को तुमने ज्योंका त्यों जानकर अखण्ड स्थिति पाई है और भाव अभाव पदार्थ दोनों को तुम जानतेहो। तुम जगत् के सम असम पदार्थों से मुक्त हुये हो और तुम्हारा आशय मुदिता–शान्त हुआ है। इष्ट, अनिष्ट, ग्रहण, त्याग तुम्हारा निवृत्त हुआ है, राग द्वेष और तृष्णारूपी बादलों से रहित निर्मल आकाशवत् तुम शोभतेहो और अपने आपसे तृप्तहुये हो कुछ इच्छा तुमको नहीं है। सुरघ बोले, हे मुनीश्वर! इस जगत् में ग्रहण करने योग्य वस्तु कोई नहीं। जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं वे सब आभासरूप हैं तो ग्रहण किसको कीजिये? और जो कहिये कि, ग्रहण करने योग्य नहीं इससे त्यागकरिये तो आभासरूप पदार्थों का त्याग क्या कीजिये और ग्रहण क्या कीजिये क्योंकि, है नहीं सब तुच्छ अतुच्छ पदार्थ हैं। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है तो उस जलभास का कौन अङ्ग ग्रहणकीजिये और कौन अङ्ग त्याग कीजिये, तैसेही यह जगत् भी है। हे मुनीश्वर! जगत् के कोई पदार्थ तुच्छ हैं और कोई अतुच्छ हैं। जो थोड़े काल में नष्ट होजाते हैं सो तुच्छ हैं और जो चिरकालपर्यन्त रहते हैं वे अतुच्छ हैं परन्तु दोनों काल से उपजेहैं अब मैंने अकालरूप को देखाहै इससे दोनों तुल्य होगये हैं फिर इच्छा किसकी करूं? हे मुनीश्वर! जो पदार्थों को रमणीय जानते हैं वे उनकी इच्छा करते हैं पर त्रिलोकी में रमणीय पदार्थ कोई नहीं, सब तुच्छ और नाशरूप हैं और अविचारसे जीवोंको भासते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जो इन्द्रियों के विषय हैं वे भी सब असाररूप हैं। स्त्री को बड़ा पदार्थ जानते हैं पर वह भी देखनेमात्र सुन्दर है और भीतर से रक्त, मांस, विष्ठा और मूत्र का थैला बना हुआ है–इसमें भी कुछ सार नहीं। पर्वत बड़े पदार्थ हैं सो पत्थर बट्टे हैं, समुद्र जल है, वनस्पति काष्ठ–पत्र हैं और इनसे आदि जो पदार्थ हैं वे सब आपातरमणीय हैं विचार विना सुन्दर भासते हैं। इनकी जो इच्छा करते हैं वे अपने नाश के निमित्त करते हैं–जैसे पतङ्ग दीपक की इच्छा करता है सो अपने नाश के निमित्त करता है

और हरिण नाद की इच्छा से नाश को प्राप्त होता है, तैसेही जो विषयों की तृष्णा करते हैं वे अपने नाश को करते हैं। इससे विचारसे रहित जो अज्ञानी हैं वे पदार्थों को रमणीय जानकर अपने नाश के निमित्त इच्छा करतेहैं और जो समदर्शी ज्ञानवान् हैं वे उन्हें अरमणीय जानकर किसी जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं करते। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार का अभाव होता है तैसेही जब पदार्थों का राग उठगया तब तृष्णा किसमें रहे ? हे साधो ! राग, द्वेष, इच्छा, ग्रहण, त्याग जो कुछ विकार हैं उन सबसे रहित शुद्ध आत्मतत्त्व में स्थित हो। बहुत कहनेसे क्या है जिस पुरुष के मन से वासना नष्ट होगई है वह उपशमवान् कल्याणमूर्ति परमपद को प्राप्त हुआ है और संसारसमुद्र से तरगया है ॥

इति श्रीयोगवा०उपशमप्र०सुरघपरघनिश्चयवर्णनंनामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार सुरघ और परघ जगत् को भ्रमरूप विचारते परस्पर गुरु जानकर पूजतेरहे फिर कुछ दिन उपरान्त परघ चलागया। हे रामजी! इनका जो परस्पर संवाद तुमको सुनाया है सो परम बोध का कारण है। इस विचार के क्रम से बोध की प्राप्ति होती है। तीक्ष्ण बोधसे जब विचार करोगे तब अहंकाररूपी बादल का अभाव होजावेगा और शुद्ध हृदयरूपी आकाश में आत्मरूपी सूर्य का प्रकाश होजावेगा। इससे परमपद के लाभ के निमित्त अहंकाररूपी बादल के अभाव का यत्न करो। आत्मा जो सत्य और सब आनन्दों की सम्पदा चिदाकाश है उससे स्थिति पावोगे। हे रामजी ! जो पुरुष नित्य अन्तर्मुखी अध्यात्ममय है और नित्य चिदानन्द में चित्त को लगाताहै वह सदा सुखी है–उसको शोक कदाचित् नहीं होता और जो पुरुष आत्मपद में स्थित हुआ है वह बड़े व्यवहारकरे और राग द्वेष सहित दृष्टि आवे तौभी उसको कुछ कलङ्क नहीं होता। जैसे कमल जल में दृष्ट आता है तौभी ऊंचा रहता है, जल उसको स्पर्श नहीं करता; तैसेही ज्ञानवान् को व्यवहार का रागद्वेष हृदय में स्पर्श नहीं करता। हे रामजी ! जिसका मन शान्त हुआ है उसको संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थ चला नहीं सक्ते। जैसे सिंहों को मृग दुःख दे नहीं सक्ते, तैसेही ज्ञानवान् को जगत् के पदार्थ दुःख नहीं देसक्ते। जिस पुरुष को आत्मानन्द प्राप्त हुआ है उसको विषयों की तृष्णा नहीं रहती और न वह विषयों के निमित्त कदाचित् दीन होता है। जैसे जो पुरुष नन्दनवन में स्थित होताहै वह कण्टकों के वृक्ष की इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् जगत् के पदार्थों की इच्छा नहीं करता। हे रामजी ! जिस जिस पुरुष ने जगत् को अविद्यारूप जानकर त्याग किया है उसके चित्त को जगत् के पदार्थ दुःख दे नहीं सक्ते। जैसे विरक्तचित्त पुरुष की स्त्री मरजावे तो उसको दुःख नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् के चित्त में भोगोंकी दीनता ऐसे नहीं

उपजती जैसे नन्दनवन में कण्टक का वृक्ष नहीं उपजता। जिस पुरुष को आत्मबोध हुआ है और संसार का कारण मोह निवृत्त हुआ है वह जगत् का कार्यकर्ता दृष्टि आता है परन्तु उनको स्पर्श नहीं करता—जैसे आकाश में अन्धकार दृष्टि आता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! अविद्या के निवृत्ति का कारण विद्या है; और किसी उपाय से निवृत्ति नहीं होती। जैसे प्रकाश विना तम निवृत्त नहीं होता तैसेही विचार विना अविद्या निवृत्त नहीं होती। अविचार का नाम अविद्या है और विचार का नाम विद्या है; जब अविद्या नष्ट होगी तब विषयभोग स्वाद न देवेंगे और आत्मानन्द से संतुष्टवान् रहोगे। हे रामजी! ज्ञानवान् को विचारके कारण इन्द्रियों के व्यवहार अन्धा नहीं करसक्के—जैसे जल में मछली रहती है उसको जल अन्धा नहीं करसक्का पर और अन्धा होजाता है। जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होताहै तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त होजाती है; चित्त परमानन्दको प्राप्त होजाता है और रागद्वेषरूपी निशाचर नष्ट होजाता है। तब फिर वह मोह को नहीं प्राप्त होता। जिसके हृदय आकाश में आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है उसका जन्म और कुल सफल होता है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने अमृत को पाकर अपने मेंही शीतल होता है तैसेही जो पुरुष आत्मचिन्तना में अभ्यास करता है वह शान्ति पाता है। हे रामजी! बुद्धि और श्रेष्ठ दिन; मृत्यु और सत्शास्त्र वही है जिससे संसार से वैराग और आत्मतत्त्व की चिन्तना उपजे। जब जीव आत्मपद को पाता है तब उसका सब क्लेश मिटजाता है और जिनको आत्मचिन्तना में रुचि नहीं वे महाअभागी हैं। ऐसे पुरुष चिर पर्यन्त कष्ट पावेंगे और जन्मरूपी जङ्गल के वृक्ष होंगे। हे रामजी! जीवरूपी बैल अनेक आशारूपी फांसियोंसे बाँधा है, जरा अवस्थारूपी पत्थरों के मार्ग से जर्जरीभूत होता है, भोगरूपी गढ़े में गिरा है और कर्मरूपी भार को लिये जन्मरूपी जङ्गलमें भटक कर कर्म कीचड़ में फँसाहुआ रागद्वेषरूपी मच्छरों से दुःखी होता है स्नेहरूपी रथ को पकड़ के खैंचता है और पुत्र, स्त्रीआदिक की ममतारूपी कीचड़ में गोते खाता है और मोह संसाररूपी मार्ग में कर्मरूपी रथ के साथ लगता है और ऊपर से ज्ञानरूपी तपना से जलता है और सन्तजन और सत्शास्त्ररूपी वृक्ष की छाया नहीं पाता। हे रामजी! जीवरूपी ऐसा बैल है। उसे निकालने का यत्न करो जब तत्त्व का अवलोकन करोगे तब चित्तभ्रम नष्ट होजावेगा। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र के तरने का उपाय सुनो। महापुरुष और सन्तजन मल्लाह हैं, उनका युक्तिरूपी जहाज़ है उससे संसाररूपी समुद्र तरजावेगा; और उपाय कोई नहीं यही परमउपाय है। जिस देश में सन्तजनरूपी वृक्ष नहीं हैं और जिनकी फलों सहित शीतल छाया नहीं है उस निर्जन मरुस्थल में एक दिन भी न रहिये। हे रामजी!

सन्तजनरूपी वृक्ष हैं; जिनके स्निग्ध और शीतल वचनरूपी पत्र हैं, प्रसन्न होना सुन्दरफूल है और निश्चय उपदेशरूपी फल है। जब यह पुरुष उनके निकट जावे तब महामोहरूपी तप्तता से छूटेगा और शान्ति पाकर तृप्त होगा। तभी तीनों फलों को पाकर अघावेगा और सब दुःखों से मुक्त होगा। हे रामजी! अपना आपही मित्र है और अपना आपही शत्रु है। अपने आपको जन्मरूपी कीचड़ में न डाले। जो देह में अहंभावना से विषयों की तृष्णा करता है वह अपना आपही नाश करता है। जो देहभाव को त्यागकर आत्मअभ्यास करता है वह अपना आप उद्धार करता है और वह अपना आपही मित्र है और जो आपको संसारसमुद्र में डालता है यह अपना आपही शत्रु है। हे रामजी! प्रथम यह विचारकर देखे कि, जगत् क्या है, कैसे उत्पन्न हुआ है और कैसे निवृत्त होगा? मैं कौन हूं; सत्य क्या और असत्य क्या है? ऐसे विचार कर जो सत्य है उसको अङ्गीकार करे और जो असत्य है उसका त्याग करे। हे रामजी! न धन कल्याण करना है न मित्र बान्धव और न शास्त्र कल्याण करते हैं; अपना उद्धार आपही होता है। इससे तुम अपने मन के साथ मित्रताई करो। जब वह दृढ़ वैराग्य और अभ्यास करे तब संसार कष्ट से छुटे। जब वैराग्यअभ्यास से तत्त्व के अवलोकनरूपी बेड़ी कटे तब संसारसमुद्र से तरजाता है। हे रामजी! जीवरूपी हाथी जन्मरूपी गढ़े में गिरा हुआ है; तृष्णा और अहंकाररूपी जंजीर से बँधा है और कामनारूपी मद से उन्मत्त है। जब उनसे छूटे। तब मुक्त हो। हे रामजी! हृदयरूपी नेत्रों में अनात्म अभिमानरूपी मलरक्त होगया है; जब विचाररूपी औषध से उसको दूर कीजिये तब आत्मरूपी सूर्य का दर्शन हो। हे रामजी! और उपाय कोई न करो तो एक उपाय तो अवश्य करो कि, देह को काष्ठ-लोष्टवत् जानकर इसका अभिमान त्यागो। जब अहं अभिमानरूपी बादल नष्ट होगा तब आपही आत्मरूपी सूर्य प्रकाश आवेगा। जब अहंकाररूपी बादल लय होगा तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य भासेगा; वह परमानन्दस्वरूप है; सुषुप्ति से मौन अंकुर है और केवल अद्वैत तत्त्व है; वाणी से कहा नहीं जाता अपने अनुभव से आपही जानाजाता है। हे रामजी! सब जगत् अनन्त आत्मा है। जब चित्त का दृढ़ परिणाम उसमें हो तब स्थावरजङ्गमरूप जगत् में वही दिव्यदेव भासेगा और वासना सब निवृत्त होजावेगी। तब अनुभवसे केवल परमानन्द आत्मतत्त्व दिखाई देगा सो स्वरूप पूर्ण और अद्वैत है। सब जगत् का त्याग कर उसीके पानेका यत्न करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेकारणोपदेशोनामैकोनषष्ठितमस्सर्गः ॥ ५९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मन से मन को छेदो और अहं मनभाव को त्यागो। जबतक मन नष्ट नहीं होता तबतक जगत् के दुःख निवृत्त नहीं होते। जैसे मूर्तिका

सूर्य मूर्ति के नष्ट हुये विना अस्त नहीं होता—जब मूर्ति नष्ट हो तब सूर्यका आकार भी दूर हो; तैसेही जब मन नष्ट हो तब संसार के दुःख नष्ट होजावेंगे—अन्यथा नष्ट न होंगे। हे रामजी! जैसे प्रलयकाल में अनन्तदुःख होता है तैसेही मन के होनेसे अनन्तदुःख होते हैं और जैसे मेघ के बर्षने से नदी बढ़ती जाती है तैसेही मनके जागेसे आपदा बढ़ती जाती है। इसही पर एक पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो परस्पर सुहृदों का हेतु है। हे रामजी! सह्याचल सब पर्वतों में बड़ापर्वत है। उसपर फूलों के समूह और नाना प्रकार के वृक्ष हैं; जल के झरने चलते हैं और मोतियों के स्थान और सुवर्ण के शिखर हैं। कहीं देवताओं के स्थानहैं और कहीं पक्षी शब्द करते हैं। नीचे क्रान्त रहते हैं ऊपर सिद्ध, देवता और विद्याधर रहते हैं, पीठ में मनुष्य रहते हैं और नीचे नाग रहते हैं—मानो सम्पूर्ण जगत् का गृह यही है। उसके उत्तर दिशामें सुन्दर वृक्ष और फलों से पूर्ण तालाब है जिसकी महासुन्दर रचना की स्वर्ग की सी उपमा है। वहां अत्रिनाम एक ऋषीश्वर साधुओं के श्रम दूर करनेवाला रहता था। उसके आश्रम के पास दो तपस्वी आ रहने लगे—जैसे आकाश में बृहस्पति और शुक्र आ रहे। उन दोनों के गृह में दो महासुन्दर पुत्र जैसे कमल उत्पन्न हो तैसेही उत्पन्न हुये और एक का नाम भास और दूसरे का नाम विलासहुआ। दोनों क्रम से बड़े हुये और जैसे अंगुली के दोनों पत्र बढ़ते हैं तैसे ही वे बढ़नेलगे। परस्पर उनकी प्रीति बहुत बढ़ी और इकट्ठे रहनेलगे। जैसे तिल और तेल; और फूल और सुगन्ध इकट्ठे रहते हैं और जैसे स्त्री और पुरुष की प्रीति आपस में होती है; तैसेही उनकी प्रीति बढ़ी। वे देखनेमात्र तो दो मूर्ति दृष्ट आते थे परन्तु मानो एकही थे। उनकी स्नान आदिक क्रिया और मानसीक्रिया भी एक समान थी और वे महासुन्दर प्रकाशवान् थे। जैसे चन्द्रमा और सूर्य हों। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उनके माता पिता शरीर त्यागकर स्वर्गको गये और उनके वियोग से वे दोनों शोकवान् हुये और जैसे कमल की कान्ति जल विना जाती रहै तैसेही उनके मुख की कान्ति कुम्हिला गई। फिर उन्होंने उनके मरनेकी सब क्रिया की और उनके गुण सुमिरण करके विलापकरें और महाशोकवान् हों क्योंकि, महापुरुष भी लोकमर्यादा नहीं लंघते। हे रामजी! इस प्रकार शोक कर उनका शरीर कृश होगया॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणेभासविलासवृत्तान्तवर्णनंनामषष्टितमस्सर्गः॥६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे उजाड़ वन का वृक्ष जल विना सूखजाता है तैसेही उनका शरीर सूखगया। तब वे दोनों विरक्तज्वर होकर विचरने लगे। जैसे समूह से बिछुड़ा हरिण शोकवान् होता है तैसेही वे दुःखीहुये क्योंकि; उनको निर्मलज्ञान प्राप्त

न था। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब वे फिर आ मिले। विलास ने कहा, हे भाई! हृदय को आनन्द देनेवाला अमृत का समुद्र जीवनरूपी जो वृक्ष है उसका फल सुख है सो तुम इतने काल सुख से रहेहो। तुम्हारा हमारा वियोग होगया था तब तुम कैसी क्रिया करतेरहे? तुमने अपना कुछ चित्त निर्मल किया है और अब आत्मपद पाया है। अब तुम्हारी बुद्धि शोक से रहित होकर विद्या तुमको फली है और तुम अब कुशलरूप हुये हो। भास बोले, हे साधो! अब हमको कुशल हुई जो तुम्हारा दर्शन हुआ जगत् में कुशल कहां है; इस संसार में स्थित हुये हमको सुख और कुशल कहां है? हे साधो! जबतक ज्ञेय परमात्मतत्त्व को नहीं पाया, जबतक चित्त भूमिका क्षीण नहीं हुई और जबतक संसारसमुद्र को नहीं तरे तबतक कुशल कहां है जबतक चित्त से दुःख निवृत्त नहीं होता तबतक चित्त की भूमिका नष्ट नहीं होती। जबतक संसारसमुद्र से पार को नहीं होते तबतक हमको सुख कहां है? जबतक चित्तरूपी क्षेत्र में आशारूपी कण्टकों की बेलि बढ़तीजाती है और आत्मविचाररूपी हँसिये से नहीं काटी तबतक हमको कुशल कहां, जबतक आत्मज्ञान उदय नहीं हुआ तबतक हमको कुशल कहां है? हे साधो! संसाररूपी विसूचिकारोग आत्मरूपी औषध विना दूर नहीं होता। सब जीव नित्य वही क्रिया करते हैं जिससे दुःख प्राप्त हो इससे सुख को नहीं पाते। देहरूपी वृक्ष में बालअवस्थारूपी पत्र हैं और यौवन और वृद्धअवस्थारूपी फल हैं सो मृत्यु के मुख में जा पड़ता है। उपजता है और फिर नष्ट होता है। यह सुख जो लवाकार है और दुःख जिसका दीर्घ से दीर्घ स्थावर है। ऐसे जो शुभाशुभ आरम्भ हैं उनमें इनको दिन रात्रि व्यतीत होते हैं। हे साधो! चित्तरूपी हाथी वैरागरूपी जंजीर विना तृष्णारूपी हथिनी के पीछे दूर से दूर चला जाता है। जैसे चीलह पक्षी मांस की ओर चला जाता है तैसेही चित्त विषयों की ओर धावता है और आत्मारूपी चिन्तामणि की ओर नहीं जाता। अहंकाररूपी चीलह देहादिकरूपी मांस की ओर धावता है और सुखरूपी कमल अपमानरूपी धूलि से धूसर होजाता है और योगरूपी बरफ़ से नष्ट होजाता है। हे साधो! वह देहरूपी कूप में गिरा है, जिसमें भोगरूपी सर्प है, आशारूपी कण्टक है और तृष्णारूपी जल है उसमें दुःख पाता है। हे साधो! नाना प्रकार के रङ्ग रञ्जनारूपी रङ्ग है और जिसमें तृष्णारूपी चञ्चलता है ऐसे चैत्यदृश्य में मग्न है। चित्तरूपी ध्वजा कालरूपी वायु से हिलती है। चित्तरूपी समुद्र में चिन्तारूपी भँवर हैं जिसमें जीवरूपी तृण आय कष्ट पाता है और बुद्धिरूपी पक्षिणी है जो वासनारूपी जाल में कष्ट पाती है। यह मैंने किया है; यह करती हूं और यह करूंगी; इसी वासनारूपी जाल में बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्ट पाती है-एकक्षण भी विश्रामवान् नहीं होती। हे भाई! इस चित्तरूपी कमल को

रागद्वेषरूपी हाथी चूर्ण करता है। यह मेरा सुहृद् है, यह मेरा शत्रु है; यह 'अहं' 'मम' ही इसको मारता है। शुद्ध आत्मरूप को त्यागकर देहादिक अनात्मरूप में अहंभाव करता है और दीनता को प्राप्त होता है। जैसे राज्य से रहित राजा कष्ट पाता है तैसे ही आत्मभाव से रहित कष्ट पाता है और देहाभिमान जन्म मरण के दुःख देखताहै। जब देहाभिमान को त्याग करे तब कुशल हो अन्यथा कुशल नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणे अन्तरप्रसङ्गोनामैकषष्टिनमस्सर्गः॥ ६१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उन्होंने परस्पर कुशल प्रश्न किया। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब अभ्यासद्वारा उनको निर्मलज्ञान प्राप्त हुआ और मोक्ष-पद को प्राप्त हुये। इससे, हे रामजी! कल्याण के निमित्त ज्ञान के सिवा और मार्ग कोई नहीं. जिसका चित्त आशारूपी फांसी से बँधा हुआ है वह संसारसमुद्र से पार नहीं होसक्ता। इससे जीव संसारसमुद्र में गोते खाता है और ज्ञानवान् शीघ्रही ऐसे तरजाता है जैसे गोपद लङ्घने में सुगम होताहै। जैसे जिस पक्षी के पंख टूटे हैं सो स-मुद्र को नहीं तरसक्ता बीचमेंही गिरकेगोते खाता है और गरुड़ पंखों से शीघ्रही लङ्घ जाता है; तैसेही जिन पुरुषों के वैराग्य और अभ्यासरूपी पंख टूटे हैं वे संसारसमुद्र से पार नहीं होसके और जिन पुरुषों के वैराग्य और अभ्यासरूपी पंख हैं वे शीघ्रही तरजाते हैं। हे रामजी! जो देह से अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्त्व में स्थित हुये हैं वे ऊंचे होकर देखते हैं और अपने देह को देखके हँसते हैं—जैसे सूर्य जनता को देख हँसता है अर्थात् जगत् की क्रिया से निर्लेप रहता है। जैसे रथ के टूटेसे रथ वायु को कुछ खेद नहीं होता तैसेही देह के दुःख मे ज्ञानवान् को कदाचित् खेद नहीं होता और मन के क्षोभ से भी आत्मतत्त्व में कुछ क्षोभ नहीं होता। जैसे तरङ्ग पर धूलि पड़ती है तो उससे समुद्र को कुछ लेप नहीं होता तैसेही मन के दुःख से आत्मा को क्षोभ नहीं होता। हे रामजी! जैसे जल और हंस का और जल और बेड़ीका कुछ सम्बन्ध नहीं तैसेही देह और आत्मा का कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे पहाड़ और समुद्र का सम्बन्ध नहीं; जैसे जल, पत्थर और काष्ठ एक ठौर रहते हैं परन्तु कुछ सम्बन्ध नहीं और जैसे जल और बेड़ीका संघट्ट होता है तो जलकणके उठते हैं तैसेही देह और आत्मा के संयोगसे चित्तवृत्ति फुरती है। हे रामजी! जीव को दुःख संगसेही होता है। जहां अहं मम अभिमानहोताहै वहां दुःख भी होता है और जहां अहं मम का अभिमान नहीं वहां दुःखभी कुछ नहीं होता। जैसे मछली को जल में ममत्व होता है और उसके वियोग से कष्टपाती हैतैसेही जिस पुरुष को देहमें अहंमम-भाव है वह बड़ा कष्ट पाता है और जिसको देह में अभिमान नहीं उसको दुःख भी कुछ नहीं होता। हे रामजी! ज्यों २ मनमे संसर्गता निवृत्त होती है त्यों २ भोग

प्रवाह कष्ट नहीं देता जैसे जल और पत्थर को कष्ट नहीं होता और जैसे दर्पण में पर्वत का प्रतिबिम्ब होता है सो दर्पण को प्रतिबिम्ब का संग नहीं होता और कष्टभी नहीं होता तैसेही जब देह से संसर्गभाव उठजाता है तब कोई कष्ट भी नहीं होता। जैसे दर्पण को कुछ कष्ट नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत् की क्रिया है। हे रामजी! सर्वथा संवित्मात्र आत्मत्व स्थित है। वह शुद्ध है और द्वैतशब्द के फुरनेसे रहित है। जो उसमें स्थित है उसको द्वैतशब्द नहीं फुरता और जो अज्ञानी है उसको द्वैतकलना उठती है। हे रामजी ! यह सब जीव अदुःखरूप हैं परन्तु अज्ञान भ्रम से आपको दुःखी जानते हैं। जैसे स्थाणमें चोरभावना अविचार से होती है तैसेही आत्मा में दुःख की भावना अविचार से होती है। यह जीव अशब्दरूप है परन्तु कलना के वश से आपको सम्बन्धी जानता है। जैसे स्वप्ने में अङ्गना बन्धन करती है और स्थान में वैताल भासता है और भय प्राप्त होता है तैसेही अपनी कल्पना से जीव बन्धवान् होता है। हे रामजी ! देह और आत्मा का सम्बन्ध असत्य है—जैसे जल और बेड़ी का सम्बन्ध असत्य है। यदि जल का अभाव हो तो बेड़ी को कुछ चिन्ता नहीं होती और बेड़ी का अभाव हो तो जल को कुछ चिन्ता नहीं; तैसेही आत्मा और देह का सम्बन्ध असत्य है। जब ऐसे जानकर हृदय संग से रहित हो तब देह का दुःख कुछ नहीं लगता। देह के दुःख में आपको दुःखी मानना; देह से अहंभावना करके आत्मा दुःखी होताहै। जब देह में अभिमान को त्यागदे तब सुखी हो। ऐसे बुद्धीश्वर कहते हैं। जैसे जल और पत्थर इकट्ठे रहते हैं परन्तु भीतर संगका अभाव है इससे उन्हें कुछ दुःख नहीं होता तैसेही हृदय से संगरहित हो तब देह इन्द्रियों के होते भी दुःख का स्पर्श कुछ न हो और निर्दुःख पद में प्राप्त हो। हे रामजी ! जिसको देह में आत्माभिमान है उसको जन्ममरण दुःखरूप संसार भी है। जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है तैसेही देहाभिमान से सुखदुःखरूप संसार उत्पन्न होता है और संसारसमुद्र में डूबता है। जो हृदय संग से रहित होता है सो संसारसमुद्र के पार होजाता है। हे रामजी ! जिसके हृदय में देहाभिमान है उसके चित्तरूपी वृक्ष में मोहरूपी अनेक शाखा उत्पन्न होती हैं और जिसका हृदय संग से रहितहै उसका मोह लीन होजाता है। उसको चित्तलीन कहते हैं। जिसका चित्त देहादिकों में बन्धवान् है उसको नाना प्रकार का भ्रमरूप जगत् भासता है और जिसका चित्त देहादिकों में बन्धवान् नहीं वह एक आत्मभाव को देखता है जैसे टूटी आरसी में अनेक प्रतिबिम्ब भासते हैं और साजी एकही प्रतिबिम्ब को ग्रहणकरती है; तैसेही संशययुक्त चित्त में नाना प्रकार का जगत् भासता है और शुद्धचित्त में एक आत्माही भासता है। हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहार

करते हैं और संगसे रहित हैं ऐसे निर्मल पुरुष संसार से मुक्त हैं और जो सर्व व्यवहार को त्याग बैठते हैं पर तपभी करते हैं और चित्त आसक्त है सो बन्धन में है। जो हृदय में संग से रहित है वह मुक्त है और अन्तरचित्त किसी पदार्थ में बन्धहै वह बन्ध है। बन्ध और मुक्त का इतनाही भेद है। जिसका हृदय असंग है वहसत्र कार्यकर्ताभी अकर्ता है। जैसे नट सब स्वांगों को धरता भी अलेप है तैसेही वह पुरुष अलेप है। जो हृदय में अभिमान सहित है वह कुछ नहीं करता तौभी करता है। जैसे सर्वव्यवहार त्यागकर जीव शयन करता है और स्वप्ने में अनेक सुख दुःख भोगता है तैसेही वह सब कुछ करता है। चित्त के करनेसे कर्ता है चित्त के न करने सेही अकर्ता है। शरीर से करना सो करना नहीं और शरीर से न करना सो न करना नहीं। ब्रह्महत्या से भी असंसक्त पुरुष को कुछ पाप नहीं लगता और जो अश्वमेध यज्ञ करे तो कुछ पुण्य नहीं होता। जिसके चित्तसे सब आसक्तता दूर हुई है वह पुरुष मुक्तस्वरूप है और धन्य२ है और जिसका चित्त आसक्त है वह बन्ध और दुःखी है। जो पुरुष आसक्तता से रहित है वह आकाश की नाईं निर्मल है और समभाव, एक अद्वैत आत्मतत्त्व में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेअन्तरासङ्गविचारोनामद्विषष्टितमस्सर्गः॥६२॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संग किसको कहते हैं? बन्धरूप संग किसको कहते हैं; मोक्षरूप संग किसको कहते हैं और संग बन्धनों से मुक्त किसका नाम है और किस उपाय से मुक्त होताहै वह कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देह और देही का जो विभाग है उसका त्याग करो और उसके साथ जो मिलकर करता है और देहमात्र में अपना विश्वास करताहै कि, इतनाहीं मैं हूं; इसीको संग और बन्ध कहते हैं। हे रामजी! आत्मतत्त्व अनन्त है। देहमात्र में अहंभावना से आपको उतनाही मानना और उसमें अभिमान करके सुख की इच्छा करना इसीका नाम बन्ध है और इसीको संग कहते हैं। जिसको यह निश्चय हुआ है कि, सर्व आत्माही है, । मैं किसकी इच्छा करूं और किसका त्याग करूं; वह इस असंगसे जीवन्मुक्त कहाता है। अथवा न मैं हूं, न यह जगत् है; सर्व भाव अभाव को त्यागकर अद्वैतसत्ता में स्थित होनेका नाम जीवन्मुक्त है। जिसे न कर्मों के त्याग की इच्छा है, न करने की इच्छाहै और हृदयसे कर्तृत्वभाव नहीं इस संगका जिसने त्यागकियाहै वह असंग कहाता है। हे रामजी! जिसको आत्मतत्त्व में निश्चयहै और जो राग,द्वेष,हर्ष,शोकके वश नहीं होताहै वह असंसर्ग कहाता है। जिसने सर्वकर्मों का फल यह समझकर त्याग किया है कि, मैं कुछ नहीं करता ऐसा जो मन से त्यागीहै वह असंसर्ग कहाताहै और उसको कोई कर्म बन्धन नहीं करसक्ता पर सर्वसम्पदा उसको होती है और जो संसक्त पुरुष

कर्तृत्व भोक्तृत्व के अभिमान सहितहै उसको अनन्त दुःख उत्पन्न होते हैं। जैसे कोई गढ़े में गिरे और उसमें कण्टकों के वृक्ष हों तो उनसे वह कष्ट पाता है तैसेही संसक्तपुरुष कष्ट पाता है। हे रामजी! संग के वश से विस्तृत दुःख की परम्परा उत्पन्न होती है—जैसे गढ़े के वृक्ष से कण्टक उत्पन्न हों। हे रामजी! जैसे नासिका में रस्सी डलाकर ऊंट, बैल और गधे भार उठाते फिरते हैं और मार खाते हैं तैसेही संसक्तपुरुष आशारूपी फांसी से बांधे हुये दुःख पाते हैं। वही संसक्तता का फल ऊंटादिक भोगते हैं; जल में रहते हैं; शीत उष्ण से कष्टवान् होतेहैं और कुहाड़े के साथ काटेजातेहैं। इसी प्रकार संसक्तता का फल वृक्ष भोगते हैं; पृथ्वी के छिद्र में कीट होते हैं और अङ्ग-पीड़ा से कष्ट पाते हैं। अन्नादिक उगते हैं; हँसिये के साथ काटेजाते हैं और हृदय में दुःख पाते हैं; फिर बोयेजाते हैं और फिर काटते हैं सो संसक्तता का ही फल भोगते हैं; इसी प्रकार जो योनि पाते हैं और कष्टवान् होते हैं सो संसक्त हैं। हरे तृणों को हरिण खाते हैं और बधिक उनको बाण से मारता है तब कष्टवान् होते हैं। जो जीव तुमको दृष्टि आते हैं वे इस प्रकार संसक्तता से बांधे हुये हैं। संसक्तता भी दो प्रकार की है—एकबन्ध और एक बन्धन करनेयोग्य। जो तत्त्ववेत्ताहै वह वन्दना करनेयोग्य है। हे रामजी! जो आत्मतत्त्व से गिराहै और देहादिक में अभिमानी हुआ है वह मूढ़ है और संसार में जन्म मरण को प्राप्त होता है; और जिसको आत्म-तत्त्व का ज्ञान हुआ है और निष्ठा है वह वन्दना करने योग्य है उसको फिर संसार का जन्म मरण नहीं होता। जिसके हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म है; जिसको आत्मतत्त्व में निश्चय है और आत्मतत्त्व में संसक्त है और जो तीनों लोकों की पालना करताहै वह वन्दना करने योग्य है। निरालम्ब सूर्य जो आकाश में विचरताहै और सदा स्वरूपनिष्ठ है वह वन्दना करने योग्य है। महाप्रलयपर्यन्त जो जगत् को उत्पन्न करताहै; जो सदा शिवस्वरूप में संसक्त है और जो ब्रह्मारूप होकर विराजता है वह वन्दना करने योग्यहै। जो लीला से स्त्री को अर्धाङ्ग रखताहै, उसके प्रेमरूपी बन्धन से बँधा है; विभूति लगाता है सदा स्वरूपमें संसक्त है और शंकरवपु धारकर स्थित है वह वन्दना करने योग्य है। इनसे आदि लेकर सिद्ध, देवता, विद्याधर, लोकपाल जिनकी स्वरूप में संसक्ति है वे सब मुक्तस्वरूप हैं और वन्दना करने योग्यहैं और जो देहादिकों में संसक्त हैं वे बन्ध हैं और जन्म, जरा और मृत्यु पाते हैं और कष्टवान् होते हैं। हे रामजी! जिनको शरीर में अभिमान है वे यदि बाहर से उदार भी दृष्टि आतेहैं परन्तु जब भोगों को देखते हैं तब इस प्रकार गिरते हैं जैसे मांस को देख कर आकाश से चील पखेरू गिरते हैं तो वे वृथा यत्न करते हैं। हे रामजी! जो संसक्त जीव हैं वे बांधेहुये हैं; कोई देवतारूप धार स्वर्ग में रहते हैं और कई मनुष्य-

लोक में रहते हैं; बहुत से सर्प आदिक होके पाताल में रहते हैं और तीनों लोकों में भटकते फिरते हैं। जैसे गूलर में मच्छर रहते हैं तैसेही ब्रह्माण्ड में संसक्त जीव रहते और मिटजाते हैं। कालरूपी बालक का जीवरूपी गेंद है, वह उसे कभी नीचे को उछालता है और कभी ऊपर को उछालता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह सब असत्यरूप है। मनरूपी चितेरेने संगरूपी रङ्ग से शून्य आकाश में जो देहादिक जगत् लिखा है वह सब असत्यरूप है जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और मिटजाते हैं तैसेही जीव ब्रह्माण्ड में उपजते रहते हैं। जिसका मन देहादिक में संसक्त है वह तृष्णारूपी अग्नि से तृणों की नाईं जलता है। हे रामजी! जो संसक्त पुरुष है उसके शरीर पानेकी कुछ संख्या नहीं। मेरु के शिखर से लेकर चरणोंपर्यन्त यदि गङ्गाका प्रवाह चले तो उसके कणके चाहे गिनेजासकें परन्तु संसक्त जीव के शरीर की संख्या नहीं होसक्ती जो कुछ आपदा है वह उनको प्राप्त होती है। जैसे समुद्रमें सब नदियां प्राप्त होती हैं तैसेही सब आपदा उसको प्राप्त होती हैं। हे रामजी! जो देहअभिमानी सदा विषयों की सेवना करते हैं वे रौरव, कालसूत्र आदिक नरकों में जलेंगे और जो कुछ दुःख के स्थान हैं वे सब उनको प्राप्त होंगे। जो असंग संगती चित्त हैं उन पुरुषों को सब विभूति प्राप्त होती हैं। जैसे वर्षाकाल में नदियां जल से पूर्ण होती हैं और मानसरोवर में सब हंस आन स्थित होते हैं तैसेही असंसक्तचित्त पुरुष को सब सम्पदा प्राप्त होती हैं। जिस पुरुष को देहाभिमान बढ़जाताहै उसे विष की नाईं जानो और जिसका देहाभिमान घटजाता है उसको अमृतरूप जानो। विष ज्यों २ बढ़ता है त्यों २ मारता है और अमृत ज्यों २ बढ़ता है त्यों २ अमर होता है। हे रामजी! जो पुरुष देहाभिमान का त्यागकर स्वरूप में संसक्त होता है वह सुखी होता है और जिसके हृदय में दृश्य का संग है उसको यह संसक्तरूपी अङ्गार जलावेगा। जिसके हृदय में संग नहीं वह असंगरूपी अमृत से सुखी होवेगा और चन्द्रमा की नाईं शीतल मुक्तरूप होगा उसका अविद्यारूपी विसूचिकारोग नष्ट होकर वह शान्तरूप होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंसक्तविचारोनामत्रिषष्टितमस्सर्गः॥ ६३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है इसको विचार करके अभ्यास करो और सर्वदाकाल सर्वस्थान और सर्व कर्मों के कर्ता चित्त को देहादिक में मत संसक्त कर केवल आत्मचेतन में स्थित करो। हे रामजी! किसी वस्तु को सत्य जानके चित्त न लगाओ। न आकाश में, न अध में, न ऊर्ध्व में, न दिशामें, न बाहर, न भीतर; न प्राणमें, न उर में, न मूर्धा में, न तालु में, न भौंह के मध्य में, न नासिका में, न जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति में, न तम में, न प्रकाश में, न श्याममें, न रक्तमें,

न पीतमें, न श्वेतमें, न स्थिरमें, न चल में, न आदिमें, न अन्तमें, न मध्यमें, न दूरमें, न निकट में, न चित्तादि अन्तःकरणमें, न शब्दमें, न स्पर्श, रूप, रस, गन्धमें और न कलना, अकलना में चित्तलगावे। सब ओरसे चित्त को रोककर चेतनतत्त्व में विश्राम करो द्वैत को लेकर चेतनतत्त्व का आश्रय न करो। हे रामजी! जब सबसे निराश होगे और आत्मतत्त्वमें स्थित होगे तब विगतसंग होगे और जीवका जीवतत्त्व चलाजावेगा केवल चिदात्मा होकर स्थित होगे। तब सर्वव्यवहार करो अथवा न करो करते भी अकर्ता होगे अथवा इसका भी त्यागकरो केवल चिदानन्द शान्तरूप जो तत्त्व है उसमें स्थित हो तब अद्वैतरूपतत्त्व स्वाभाविक भासेगा। जैसे बादलों के दूर हुये सूर्य स्वाभाविक भासता है तैसेही फुरने से रहित होनेसे चेतनतत्त्व भास आवेगा और जैसे प्रकाशरूप चिन्तामणि स्वाभाविक भासिआती है तैसेही आत्मप्रकाश स्वाभाविक भास आवेगा। फिर जो कुछ क्रिया तुम करोगे वह सब फलदायक न होगी। जैसे कमल को जल नहीं स्पर्श करता तैसेही तुमको क्रिया न स्पर्श करेगी और चित्त आत्मगति निर्वाणरूप होगा और क्रिया कर्ताभी अकर्ता रहोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेशान्तसमाचारयोगोपदेशो नामचतुःषष्टितमस्सर्गः॥ ६४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! असंसक्त पुरुष ध्यान करे अथवा व्यवहार करे वह सदा ध्यान में स्थित और शोक से रहित है। बाहर से यदि वह क्षोभमान दृष्टि आता है परन्तु हृदय उसका सर्वकलना से रहित है और वह सम्पूर्ण लक्ष्मी से शोभता है। हे रामजी! जिस पुरुष का चित्त चैत्य से रहित अचल है सो विगतज्वर है, उसको कुछ दुःख स्पर्श नहीं करता। जैसे जल कमलों को स्पर्श नहीं करता और औरों को निर्मल करता है और जैसे निर्मली मलीन जलको निर्मल करती है तैसेही वह जगत् को निर्मल करता है। जो आत्मतत्त्व में लीन है सो क्षोभमान भी दृष्टि आता है परन्तु क्षोभ उसे कदाचित् नहीं। जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब क्षोभमान दृष्टि आता है परन्तु सूर्यको कदाचित् क्षोभ नहीं; तैसेही ज्ञानवान् का चित्त क्षोभायमान दृष्टि आताहै पर क्षोभ उसे कदाचित् नहीं। हे रामजी! आत्मारामी पुरुष बाहर से मोर के पुच्छवत् चञ्चलभी दृष्टि आता है परन्तु हृदय से सुमेरुपर्वत की नाईं अचल है जिनका चित्त आत्मपद में स्थित हुआ है उनको सुख दुःख अपनेवश नहीं करसक्के। जैसे स्फटिक को प्रतिबिम्ब का रङ्ग नहीं चढ़ता तैसेही ज्ञानवान् को सुख दुःख का रङ्ग नहीं चढ़ता। जिस पुरुष को परावर ब्रह्म का साक्षात्कार हुआहै उसका चित्त रागद्वेष से रञ्जित नहीं होता। जैसे आकाश में बादल दृष्टि आता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् के चित्त को रागद्वेष स्पर्श नहीं करता। जो आत्मध्यानी है और जो

परमबोध का साक्षात्कार होकर कलनामल से मुक्त हुआ है वह पुरुष असंसक्त कहाता है। हे रामजी! जो आत्मारामी पुरुषहै उसको आत्मज्ञान के अभ्यास से संसक्तता निवृत्त होजाती है अन्यथा संसक्तभाव निवृत्त नहीं होता। जब चित्त परिणाम आत्मा की ओर होगा– जैसे चन्द्रमा परिणाम के वश से अमावस्या को सूर्यरूप होजाता है तब चित्त दृढ़ परिणाम के वश से आत्मारूप होजावेगा। जब चित्त चैत्य भाव से हीन होता है तब क्षीणचित्त कहाता है और शान्त कलना कहाता है। तब जाग्रत् भी सुषुप्तिरूप होजाता है। उस अवस्था में जो कुछ क्रिया करता है सो फल का आरम्भ नहीं होती क्योंकि; वह तो निरहंकार होजाता है। जैसे यन्त्री की पुतली अहंकार से रहित चेष्टा करती है और संवेदन से रहित है उसको कोई दुःख नहीं होता; तैसेही निरहंकार निःसंवेदन पुरुष निर्दुःख और निर्लेप कहाता है। हे रामजी! इष्ट–अनिष्ट; भाव–अभावरूपी जगत् चित्त में होता है। जब चित्त आत्मभाव को प्राप्त हुआ तब किससे किसको बन्धन हो तब तो सर्व आत्मतत्त्व होता है। जैसे नट सर्व स्वांग को धारता है और अपना अभिमान किसीमें नहीं करता तैसेही सुषुप्ति बोध पुरुष जगत्की क्रिया करताहै और बन्धवान् नहीं होता; जीवन्मुक्तहोकर स्थित होता है। हे रामजी! सुषुप्तिबोध का आश्रय करके जगत् की क्रिया करो पर क्रिया, कर्म, कर्ता त्रिपुटी की भावना से रहित हो तब तुमको कुछ दुःख न होगा ग्रहण और त्याग में अभिमान न होगा यथा प्राप्तमें स्थित होगे। सुषुप्तिबोधमें जो स्थितहै सो कर्ताहुआ भी कुछ नहीं करता। ऐसे निश्चय को धार करके जैसे इच्छा हो तैसे करो। हे रामजी! ज्ञानवान् की चेष्टा बालकवत् होती है जैसे बालक अभिमान से रहित पालने में अङ्गों को हिलाताहै तैसेही ज्ञानवान् अभिमान से रहित कर्म करता है और फल का स्पर्श उसे नहीं होता। जब चित्त अचित्तरूप होजाता है तब जाग्रत् जगत् सुषुप्तिरूप होजाता है और जो कुछ क्रिया करता है वह स्पर्श नहीं करती। हे रामजी! जब जगत् से सुषुप्तिदशा प्राप्त होती है तब हृदय शीतल होजाता है; रागद्वेष कुछ नहीं फुरते और आत्मानन्द से पूर्ण होता है और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसेही वह शोभता है। जो सुषुप्तिबोध में स्थित है वह महातेजवान् होता है और आत्मानन्द से पूर्ण चन्द्रमा की नाईं होजाताहै। हे रामजी! जो पुरुष सुषुप्ति अवस्था में स्थित है वह संसार के किसी क्षोभ से चलायमान नहीं होता–जैसे पर्वत सर्वदा कालमें क्षोभायमान नहीं होता और भूकम्पमें सब वृक्षादिक चलायमान होते हैं पर अस्ताचल पर्वत कम्पायमान नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान् चलायमान नहीं होता। जैसे पर्वत सबकाल में सम रहता है और तरु उगके गिर पड़ता है पर्वत ज्यों का त्यों रहताहै तैसेही ज्ञानवान् अनेक प्रकार की क्रिया में सम रहता है। हे रामजी! ऐसी

सुषुप्तिदशा अभ्यासयोग से प्राप्त होती है । जब यह दशा प्राप्त होती है तब उसको तत्त्ववेत्ता तुरीयापद कहते हैं सो परमानन्दरूप है उसमें सब दुःख नाश होजाते हैं और असंसक्त होजाता है । जब मन का मननभाव निवृत्त होजाता है तब ज्ञानवान् को परमसुख उदय होताहै और उससे वह परमानन्द होजाता है । जो इस संसार रचना को लीलारूप देखता है और सर्वशोक से रहित निर्भय होता है उससे संसार-भ्रम दूर होजाता है । जब तुरीयापद में प्राप्त होता है तब संसार में फिर नहीं गिरता । जो यत्नवान् पुरुष परमपावन पद में स्थित हुये हैं वे संसार की अवस्था को देखकर हँसते हैं । जैसे पहाड़ पर बैठा पुरुष नगर को जलता देखकर हँसता है तैसेही ज्ञानवान् आत्मानन्द को पाकर संसार के कार्यों में दुःखजानकर हँस । है । हे रामजी ! तुरीया अवस्था में स्थित होनेसे अविनाशी होता है और आनन्दरूप आनन्द कलना से आनन्द कलना है । जब ऐसे तुरीयातीतपद को प्राप्त होना है तब जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होताहै और अभिमान आदिक कलना से रहित परमज्योति में लीन होता है । जैसे नमक की गोली समुद्र में जलरूप होजाती है तैसे ही वह आत्मरूप होजाता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तचिकित्सानामपञ्चषष्टितमस्सर्गः ॥ ६५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जबतक तुरीयापद में स्थित रहता है तबतक केवल जीवन्मुक्त होता है और इससे उपरान्त विदेहमुक्त तुरीयातीत है सो वाणी का विषय नहीं । जैसे आकाश को भुजा से कोई नहीं पकड़सक्ता तैसेही तुरीयातीत वाणी का विषय नहीं । तुरीयातीत पद से विश्रान्तभी दूर है विदेह मुक्त से पाता है । अब तुम कुछकाल ऐसी सुषुप्ति अवस्था में स्थित होरहो, फिर परमानन्द पद में स्थित होना । हे रामजी ! तुरीयावस्था में जो स्थित हुआ है वह निर्द्वन्द्वभाव को प्राप्त हुआ है । जब तुम सुषुप्ति अवस्था में स्थित होगे तब जगत् के कार्यभी करते रहोगे और सदा पूर्ण रहोगे और तुमको उदय अस्त का भाव कदाचित् न प्राप्त होगा । जैसे मूर्ति का लिखा चन्द्रमा उदय अस्त को नहीं प्राप्त होता है तैसेही तू उदय अस्त-भाव को न प्राप्त होवेगा । हे रामजी ! इस शरीर को अपना जानकर जीव रागद्वेष में जलता है और जिस पदार्थ का सन्निवेश होता है उसके नष्ट हुये नष्ट होजाता है । जैसे मृत्तिका का अन्वय घट में होताहै पर घट के नाश हुये मृत्तिका का नाश नहीं होता तैसेही तुम भ्रम को मत अङ्गीकार करो । तुम सदा ज्यों के त्यों हो तुम्हारा सन्निवेश इसमें कुछ नहीं । इससे ज्ञानवान् देहके नाशहुये शोकवान् नहीं होता और देह के स्थित हुये सुखी भी नहीं होता क्योंकि; उसका देह के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं । जो तत्त्वदर्शी पुरुष है वह व्यर्थ प्राप्ति में निर्दोष होकर विचरता है और

अभिमानादिक विकारों से रहित निर्मली आकाशवत् है। जैसे शरत्काल की रात्रि में चन्द्रमा से आकाश निर्मल होताहै तैसेही मन की वृत्ति विकारों से रहित होकर आत्मपद में स्थित होतीहै—संसार की ओर नहीं गिरती। जैसे योग, मन्त्र, तप और सिद्धि से सम्पन्न पुरुष आकाश में उड़ताजाता है वह फिर पृथ्वी पर नहीं गिरता। हे रामजी! तुमभी अपने प्रकृतभाव में स्थित होकर यथाप्राप्त क्रिया को करते निर्द्वन्द्व रहो। तुमभी अब स्वरूप के ज्ञाता हुये हो और परमपद में जागकर अपने स्वरूप को प्राप्त हुये हो इससे पृथ्वी में विशोकवान् हो बिचरो तब इच्छा से अनिच्छा को त्यागकर शीतल, प्रकाश, अन्धकार, तप्त और मेघ से रहित शरत्काल के आकाशवत् निर्मल शोभोगे। हे रामजी! यह जगत् चिदानन्दस्वरूप है और आदि अन्त से रहित है। जो अहं त्वं आदिक भ्रम से रहित है उसमें स्थित हो। आत्मा केवल अव्यक्त और चिन्तना से रहित है उसका शरीर के साथ सम्बन्ध कैसे हो? आत्माआदिक नाम भी उपदेश व्यवहार के लिये कल्पे हैं; वह तो नामरूप भेद और भय से रहित अशब्द पद है और वही जगत्रूप होकर स्थित हुआ है—जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं। जैसे जल तरङ्गरूप हो भासता है सो जल से भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा से भिन्न जगत् नहीं और जैसे समुद्र सब जलरूप है जल से कुछ भिन्न नहीं; तैसेही सब जगत् आत्मरूप है भिन्न नहीं। जैसे जल और तरङ्ग में भेद नहीं और पट और तन्तु में भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। हे रामजी! द्वैत कुछ वस्तु है नहीं परन्तु मैं तेरे उपदेश के निमित्त द्वैत अङ्गीकार करके कहता हूं। यह जो शरीर है उसके साथ तेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे धूप और छाया का सम्बन्ध नहीं होता और प्रकाश और तम इकट्ठे नहीं होते; तैसेही आत्मा और देह का सम्बन्ध नहीं। देह जड़ और मलीन है और दृश्य असत्य है; आत्मा निर्मल, चेतन और सत्य है तो उसका देह से सम्बन्ध कैसेहो? जैसे शीत और उष्ण का परस्पर विरोध है तैसेही आत्मा और देह का सम्बन्ध नहीं। जैसे वन में अग्नि लागेसे जन्तु जलते हैं तैसेही भ्रम दृश्यरूप देह में अहंभाव करके जीव जलते हैं। हे रामजी! जैसे दावाग्नि में कुबुद्धि जल बुद्धिकरे तैसेही अज्ञानी देह में आत्मबुद्धि करते हैं। जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों में जल भासताहै तैसेही आत्मा में देहभाव भासते हैं हे रामजी! चिदात्मा निर्मल, नित्य और स्वयंप्रकाश है और देह मलीन और अस्थि, मांस और रक्तमय है इसके साथ आत्मा का सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा में देह का अभाव है—केवल एक अद्वैततत्त्व अपने आपमें स्थित है उसमें द्वैतभ्रम कैसे हो? हे रामजी! स्वरूप से न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है सर्व सत्ता एक आत्मतत्त्व स्थित है और भीतर बाहर सब वही है। मैं सुखी हूं; मैं दुःखी

हूं; मैं मूढ़ हूं इस मिथ्यादृष्टिको दूर से त्यागो और आपको केवल आत्मरूप जानकर स्थित हो। यह दृश्य परमदुःख देनेवाला है और इसमें दुःखप्राप्त होवेगा। जैसे तृण और पहाड़ की, और पट और पत्थर की एकता नहीं होती तैसेही आत्मा और शरीर की एकता नहीं होती। जैसे तम और प्रकाश का संयोग नहीं होता तैसेही देह और आत्मा का संयोग नहीं होता और दोनों तुल्य भी नहीं होते। जैसे शीत और उष्ण; और जड़ और चेतनकी एकता नहीं होती तैसेही शरीर और आत्मा की एकता नहीं होती। हे रामजी! शरीर जो चलता, बोलता है सो वायु के बल से चलता-बोलता है। आठ स्थानों में वायुके बल से, अक्षरों का उच्चार होताहै-उर, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ, तालु यही आठ स्थान हैं। क, ख, ग और घ-इन चारों का उच्चार कण्ठमें होताहै; च, छ, ज और झ-इन चारोंका तालु स्थानमें उच्चार होताहै; ट, ठ, ड और ढ-इन वर्गोंका मूर्धा में उच्चार होताहै; त, थ, द और ध-इनका दांतों में उच्चार होताहै; प, फ, ब, भ और म-इन पांचोंका ओष्ठों में उच्चार होताहै और ङ, ञ, न और ण-इनका नासिका में उच्चार होताहै। जिह्वामूल में जिह्वाका उच्चार होता है और जिस पदके आदि हकार हो वह हृदय से बोलाजाता है। आठों स्थानों में इन वर्गोंका वायु से उच्चार होताहै और सूक्ष्म नवस्वरका उच्चार होताहै पर आत्मा इनसे निर्लेप होता है। जैसे बांसुरी वायु से शब्द करती है तैसेही इन पांचतत्त्वों से शब्द होता है; इनमें आत्माभिमान करना महामूर्खता है। नेत्रादिक इन्द्रियां भी वायु से चेष्टा करती हैं; इससे इस भ्रम को त्याग कर आत्मपद में स्थित हो-आत्मा आकाशवत् सबमें पूर्ण है। जैसे आकाश सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहां आदर्श होता है वहां प्रतिबिम्ब होकर भासता है तैसेही आत्मा सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहां चित्त होता है वहां भासता है। हे रामजी! जहां वासना से चित्तरूपी पक्षी जाता है वहां आत्मा को ऐसा अनुभव होता भासता है कि, मैं यहां हूं। जैसे जहां पुष्प होता है वहां सुगन्धभी होती है; तैसेही जहां चित्त होता है वहां अहंभाव भी होता है। जैसे आकाश सब ठौर में है परन्तु जहां प्रतिबिम्ब होता है वहां भासता है और जैसे जल सब पृथ्वी में है परन्तु भासता वहीं है जहां खोदाजाता है तैसेही आत्मा सब ठौर पूर्ण है परन्तु भासता वहीं है जहां चित्त है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब सबठौर है परन्तु जहां आदर्श अथवा जल है वहां भासता है तैसेही आत्मा जहां तहां पूर्ण है परन्तु चित्त के अहंभाव से भासता है। आत्मा का प्रतिबिम्ब चित्तही में भासता है और वह चित्त आत्मा की सत्ता से जगत् रचना फैलाता है व जैसे सूर्य की किरणें धूप को फैलाती हैं। हे रामजी! भूतों का कारण अन्तःकरणही है; आत्मतत्त्व तो अतीत है; आदिकारण नहीं है वास्तव में अकारण है। जगत् जो सत् भासता है सो

अविचार से भासता है। उसीके निवृत्त का उपाय आत्मज्ञान है। हे रामजी! संसार का कारण अन्तःकरण है और असम्यक्ज्ञान से सत्यरूप भासता है जैसे मरुस्थल में असम्यक्ज्ञान से जल भासता है। जब यथार्थज्ञान होता है तब जगत् का कारण चित्तसे नष्ट होजाता है जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मज्ञान से चित्त नष्ट होजाता है। संसार का कारण अपना चित्तही है इसीका नाम जीव, अन्तःकरण, चित्त और मन है। रामजी ने पूछा, हे महा आनन्द के देनेवाले! इतनी संज्ञा चित्त की कैसे हुई हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वभाव-रूप एक परमात्मतत्त्व है। जैसे समुद्र, नदियां, तरङ्गादि संज्ञा एक जलही धरता है तैसेही चित्तादिक अनेक संज्ञा को आत्मा धारता है पर सदा एकरूप है; संवेदन फुरने से अनेक रूप धरता है। जैसे एकजल कहीं तरङ्ग, कहीं बुद्बुदे, कहीं जल, कहीं चक्र और कहीं स्थिर—इतनी संज्ञा को धारता है परन्तु सबही जलरूप है तैसे ही सर्वशक्ति आत्मा सब शरीरों में सर्वरूप होता है। जब स्पन्दकलना दूर होती है तब शुद्धस्वरूप हो भासता है और जहां अज्ञान संसरने को अङ्गीकार करता है तहां वही अनन्त आत्मा जीव कहाता है। जैसे केसरीसिंह पिंजड़े में फँसता है तैसे ही यह जीवरूप होता है। हे रामजी! जहां अहंभाव फुरता है वहां जीव कहाताहै; जहां निश्चय वृत्ति से फुरता है उसको बुद्धि कहते हैं; संकल्प विकल्प से मन, चिन्ता करने से चित्त, और प्रकृतिभाव से प्रकृति कहाता है। हे रामजी! प्रकृतिरूप जो पदार्थ हैं वह जड़ कहाता है। और चेतन है सो जीव कहाता है। जड़ जो दृश्यभाव से संवित्भाग है और अजड़ जो जीव अहं सो द्रष्टाभाव से सिद्ध होताहै; इनके जो मध्य है सो परमात्मा तत्त्व है सो नानारूप हो भासता है। बृहदारण्य उपनिषद् और वेदान्तशास्त्रों में बहुत प्रकार से जीव का रूप कहा है इससे भिन्नसंज्ञा शास्त्रकारों ने कल्पनाकर कही है सो वृथा कल्पना है। जबतक अहंभाव से चित्त संसरता है तब-तक जगत्भ्रम होता है—जैसे जबतक सूर्य है तबतक प्रकाश होता है और जब सूर्य अस्त होताहै तब प्रकाश जातारहता है तैसेही जब चित्त का अभाव हुआ तब जगत् भ्रम जातारहता है। देह में आत्मबुद्धि करनी महामूर्खता है क्योंकि; यह अधोर्ध्व-संयोग है जो आत्माका ऐसे संयोग न हो तो देह के नाशहुये आत्मा भी नाश होजावे पर देहके नाश हुये आत्मा का तो नाश नहीं होता। जैसे वृक्ष के पत्तों के नाशहुये वृक्ष का नाश नहीं होता और घट के नाश हुये आकाश का नाश नहीं होता तैसेही शरीर के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे पुरातन वस्त्र को त्यागकर पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है तैसेही आत्मा पुरातनशरीर को त्यागकर नूतन शरीर अङ्गीकार करता है। इसीका नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं पर शरीर के नाश हुये आत्मा का नाश तो कुछ

नहीं होता। हे रामजी! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है उसका शरीर जब छूटता है तब उसका चित्त चिदाकाश में लीन होजाता है और जिसका चित्त वासना सहित है वह एक शरीर को त्यागकर और शरीर पाता है। जो देह के नाशहुये आपको नाश मानता है वह मूर्ख है—जैसे एकस्थान में अज्ञान से वैताल भासता है और जैसे माता के स्तनों में मूर्ख बालक को वैताल भासता है तैसेही अज्ञान से आत्मा में मृत्यु भासती है जो इसका आत्मत्व नाश हो अर्थात् चित्त नाश हो जावे और फिर न फुरे तो आनन्द हो। जो शरीर के नाश हुये आत्मा का नाश कहते हैं वे मूढ़ हैं और मिथ्या कहते हैं। जैसे कोई देश से देशान्तर जाताहै तो उसका अभाव नहीं होता तैसेही एक शरीरको त्यागकर और शरीर को प्राप्त होताहै तो आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे जलमें तरङ्ग फुरके फिर लीन होकर और ठौर में जा फुरतेहैं तैसेही आत्मा एक शरीर को त्यागकर और को धारता है। जैसे पक्षी उड़ता२ दूर जाता है तब दृष्टि नहीं आता परन्तु नाश नहीं होता तैसेही शरीर के नाश हुये आत्मा और ठौर प्रकट होताहै नाश नहीं होता। हे रामजी! वासना के वश से यह जीव एक शरीर को त्यागकर और शरीर को प्राप्त होता है। इसी प्रकार वासना के अनुसार जीव फिरता है। वासनारूपी रस्सी से बँधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानों में भटकता है और कभी ऊर्ध्वलोक और कभी मनुष्यलोक में घटीयन्त्रकी नाईं भ्रमता है। हे रामजी! जीव के हृदय में जो वासना होतीहै उसीसे जरा, मृत्यु, जन्म आदि का दुःख पाताहै और कमलरूपी भार उठाकर कभी स्वर्ग, कभी पाताल और कभी मध्यस्थान में जाता है शान्ति कदाचित् नहीं पाता। इससे हे रामजी! अविद्यारूपी जो संसार है इसको भ्रमरूप जानकर इसकी वासना को त्यागकरो और अपने स्वरूप में स्थित हो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य अस्त हुआ तो सब सभा स्नान के निमित्त उठी और परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थान को गये फिर रात्रि बिता के सूर्य की किरणों के निकलतेही आ बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंसारयोगोपदेशोनामषट्षष्टितमस्सर्गः॥६६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा देह के उपजे से नहीं उपजता और नाश हुये से नाश नहीं होता इस लिये तुम निष्कलङ्क आत्मा हो; तुमको देह के साथ सम्बन्ध कदाचित् नहीं। जैसे कुञ्ज में फूल और फल और घट में घटाकाश होताहै सो परस्पर भिन्नरूप होते हैं, एकके नाश हुये दूसरे का नाश नहीं होता; तैसेही देह के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। जो देह के नाश में अपना नाश मानता है वह मूर्ख जड़ है; उस अर्धचेतना को धिक्कार है। हे रामजी! जैसे रथ, रस्सी और घोड़े का स्नेह से रहित संयोग होता है तैसेही शरीर और इन्द्रियों का संयोग है। हे रामजी!

रथ टूटेसे जैसे रथवायु की हानि नहीं होती तैसेही देह और इन्द्रियों के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे पृथ्वी पहाड़ पर जल के प्रवाह का संयोग होता है और वियोग भी होता है सो एकके नाश हुयेसे दूसरे का नाश नहीं होता तैसेही देह और इन्द्रियों का संयोग है पर इनके नाश हुय आत्मा का नाश नहीं होता जैसे एक स्थान में वैताल भासता है और भयवान् होता है तैसेही देह में अहं-भाव से राग, द्वेष, सुख, दुःख पाता है। जैसे एक काष्ठ की अनेक पुतली होती हैं सो काष्ठ से इतर कुछ नहीं हैं तैसेही जो कुछ शरीर है वह पञ्चभूतों का है पञ्चभूतों से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जब यह पञ्चभूतों का शरीर पञ्चभूतों में लीन होता है तब उसको मृतक हुआ कहते हैं। यह आश्चर्य है जो प्रत्यक्ष पञ्चभूतोंका शरीर है उसमें आत्मभावना श्वान करते हैं और फिर हर्षकर शोक को प्राप्त होता है इसीसे मूर्ख है। हे रामजी! न कोई पुरुष है और न कोई स्त्री है पर इनके निमित्त मूढ़ रुदन करते हैं। जैसे मृत्तिका के हाथी घोड़ा आदिक खिलौने विचित्र रचना होती है और उस-की प्राप्ति में अज्ञानी बालक तुष्टवान् और खेदवान् होता है तैसेही अज्ञानी पञ्च-भौतिक रचना देखकर उसकी प्राप्ति में राग द्वेष करता है ज्ञानवान् को सबभूत पदार्थ भ्रान्तिमात्र भासते हैं। जैसे माटी के पुरुषों को आपस में मिलने से राग द्वेष कुछ नहीं होता तैसेही बुद्धि, इन्द्रियां, मन और आत्मा का जो मिलाप है इससे तुम को रागद्वेष कुछ नहीं होता। जैसे पाषाण की पुतलियां मिलती हैं तो उनको स्नेह ब-न्धन कुछ नहीं होता तैसेही देह, इन्द्रियां, प्राण और आत्मा का आपस में स्नेहबुद्धि से रहित है। इससे तुम स्नेह से रहित हो रहो; शोक काहेको करते हो। जैसे तृण और जल के तरङ्गका संयोग होता है तो तृण इधर उधर जाता है और जल को कुछ हर्ष शोक नहीं होता तैसेही देहभूत आत्मा का योग है इनके मिलाप और बिछुरे का दुःख सुख कुछ नहीं होता। आत्मा; और अनात्मा देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदिक विलक्षण भाव हैं और परस्पर इनके क्षय और उदय में हर्ष शोक कुछ नहीं परन्तु चित्त के उदय से अनात्मा धर्म आत्मा में प्रतिबिम्बित भासता है। तुम तत्त्व-बोध का विचार करके चित्त को त्याग अपने स्वरूप में स्थित हो—जैसे जल तरङ्ग-भाव को त्यागकर अपने स्थिर स्वभाव को प्राप्त होता है। जब तुम अपने अक्षोभ भाव को प्राप्त होगे तब भौतिक देह से आपको भिन्न जानोगे। जैसे वायुमण्डल को प्राप्त हुआ देहादिक जीव पृथ्वीमण्डल को देखता है तैसेही तुम आत्मपद को स्थित होकर देहादिक भूतोंको देखोगे। हे रामजी! तुम देहादि भूतों को देखके त्याग करो और अतीत अजन्मा पुरुष हो रहो तब तुम परम प्रकाश को पावोगे। जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य के उदय हुये परम प्रकाश को प्राप्त होता है तैसेही जब बोध करके द्रष्टा,

दर्शन, दृश्यभाव तुम्हारा जाता रहेगा तब तुम अपने भाव को ज्योंका त्यों जानोगे। जैसे मनुष्य मद्य से मत्त होजाता है और मद्य के उतरे से आपको ज्योंका त्यों जानता है और मद्यभाव को स्मरण करता है तैसेही स्मरण करोगे। आत्मतत्त्व का जो स्पन्द फुरना हुआ है उसीका नाम चित्त है सो अवस्तुरूप है। जैसे समुद्र में तरङ्गभाव उदय होता है सो कुछ वस्तु नहीं तैसेही चित्तादिक कुछ वस्तु नहीं भ्रान्तरूप है। इस प्रकार जानकर महाबुद्धिमान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्त हुये हैं और महाशान्तपद की प्राप्ति में बिचरते हैं। जैसे रत्नमणि की किञ्चन नाना प्रकार की लहर होती है सो मनन कलना से रहित चमत्कार हैं तैसेही मनुष्यों में जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं उनका व्यवहार कलना से रहित होता है जैसे कूप में प्रतिबिम्ब पड़ता है और आकाश में धूलि उड़ती भासती है पर आकाश मलभाव को नहीं प्राप्त होता तैसेही ज्ञानवान् पुरुष अपने व्यवहार में कर्तृत्व के अभिमान को नहीं प्राप्त होता। जैसे मेघ के आने जानेसे समुद्र को राग द्वेष नहीं होता तैसेही आत्मा ज्ञेय पुरुषको भोगों के आने जानेमें राग द्वेष नहीं होता हे रामजी! जिस मन में जगत्के किसी पदार्थकी मनन वासना नहीं फुरती उस चित्त में जो कुछ फुरना भासता है सो विलासस्वरूप जानो वह उसको बन्धन का कारण कुछ नहीं होता और जिस चित्त में अहं त्वं आदिक जगत् की भावना है परन्तु हृदय से उसकी सत्यता बुद्धि है उससे वह दृश्य, द्रष्टा और दर्शन सम्बन्ध तीनोंकालों संयुक्त जगत् को फैलावेगा। जो कुछ दृश्य है वह असत्रूप है और जो सत्य है सो एक अव्यक्तरूप है। उसका आश्रय करके अलेप हो तब हर्ष शोक की दशा कहां है? जो कुछ दृश्य जगत् भासता है वह सब असत्रूप है और जो सत्य है वह सदा ज्योंका त्यों है। असत्रूप दृश्य के निमित्त तुम क्यों वृथा मोह को प्राप्त होते हो। असम्यक् दर्शन को त्यागकर सम्यक्दर्शी हो। हे सुलोचन, रामजी! जो सम्यक्दर्शी हैं वे मोह को नहीं प्राप्त होते दृश्य और दर्शन इन्द्रियोंके साक्षित्वसम्बन्ध में अर्थात् विषयेन्द्रिय के साक्षिरूप आनन्द का जिसे सुख है वो परब्रह्म कहाता है और अनुत्तम सुख से जो उस संवित् में स्थित है वह ज्ञानवान् है उसको मोक्ष प्राप्त है। जो दृश्य दर्शन के मिलने में स्थित होता है उस अज्ञानी को वह संवित् संसारभ्रम दिखाती है। दृश्य-दर्शन में जो अनुभव सत्ता है वह सुख आत्मरूप है, जो दृश्य के साथ लगा है वह बन्ध है और जो दृश्य से मुक्त हो संवित् में स्थित है वह मुक्त कहाता है। हे रामजी! दृश्य-दर्शन के सम्बन्ध में जो मध्य संवित् है वह अनुभव गोचर है; उस संवित् का आश्रय करके जो दृश्य दर्शन मुक्त है वह संसारसमुद्र से तरेगा। यह सुषुप्तिरूप अवस्था है; इसको प्राप्त हुआ परम प्रकाश को प्राप्त होता है और इसीको मुक्त कहते हैं। जो दृश्य दर्शन से मुक्तबुद्धि है

वह मुक्त कहाता है और जो दृश्य दर्शन के साथ बँधा है वह बन्ध है। अन्यसबों का अनुभव करनेवाला आत्मा है, वह न स्थूल है; न अणु है, न प्रत्यक्ष है; न अप्रत्यक्ष है, न चेतन है, न जड़ है; न सत्य है, न असत्य है; न अहं है, न त्वं है; न एक है, न अनेक है; न निकट है, न दूर है; न अस्ति है, न नास्ति है; न प्राप्ति है, न अप्राप्ति है; न सर्व है, न असर्व है, न पदार्थ है, न अपदार्थ है; न पञ्चभौतिक है, न अपञ्चभौतिक है; जो कुछ दृश्यजाति है सो मनसहित षट् इन्द्रियों से भाव को प्राप्त होता है। जो इनसे अतीत है वह इनका विषय नहीं। क्योंकि, निष्किञ्चनरूप है। यह भी सब वहीरूप है और ज्योंका त्यों जाने से सब आत्मारूप है। जगत् अनात्मरूप कुछ नहीं, सम्यक्ज्ञान से ऐसे भासता है। यह जो कठिनरूप पृथ्वी, द्रवतारूप जल, स्पन्दरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि और अवकाशरूप आकाश भासते हैं वे सब आत्मरूप हैं। जो कुछ वस्तु-अवस्तुरूप जगत् भासता है सो आत्मसत्ता से भिन्न नहीं। आत्मा से भिन्न जगत् को मानना उन्मत्तचेष्टा है और मूर्ख मानते हैं। महात्मा पुरुषों को कालकलनारूप जगत् सब आत्मरूप है। कल्प से आदि लेकर अन्तपर्यन्त सब आत्मा का चमत्कार है; ऐसे जानकर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो और संसारसमुद्र से तरजावो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेमोक्षस्वरूपोपदेशोनामसप्तषष्टितमस्सर्गः ॥ ६७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो मैंने तुझको द्वैत के त्याग की विचारदृष्टि कही है इस विचार से अपना जो आत्मस्वभाव है सो प्राप्त होताहै, जैसे बुद्धिमान् को उपासना अभ्यास से चिन्तामणि प्राप्त होती है। इसके उपरान्त एक और भी परमदृष्टि सुनो जिससे मनुष्य अचल आत्मस्वरूप को देखता है वह यह है कि, मैंहीं आकाश, दिशा, सूर्य, अध, ऊर्ध्व, देवता, दैत्य, प्रकाश, तम, मेघ, पर्वत, पृथ्वी, समुद्र; पवन, धूलि, अग्नि आदिक स्थावर जङ्गम जगत् हूं। हे रामजी! सर्वजगत् आत्मा ही है तो अहं और त्वं से भिन्न और अनेक और एक कैसे हो। जिसके हृदय में ऐसा निश्चय होता है उसको सब जगत् आत्मरूप भासता है और वह पुरुष हर्षशोक नहीं पाता। सब जगत् मनोमात्र है तो अपना और पराया क्या कहिये! ज्ञानवान् को आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता इससे वह हर्ष विषाद को नहीं प्राप्त होता। हे रामजी! अहंकार भी तीन प्रकार के हैं। दो प्रकार का तो निर्मल है; तत्त्वज्ञान से प्रवर्त्तता है और मोक्षदायक परमार्थरूप है; और संसार दिखाता है। एक तो अहं है जो तुमको कहा है कि, सर्व मैंहीं हूं-मुझसे कुछ नहीं और दूसरा यह है कि, परमअणु जो सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्म है सो साक्षी भूत अव्यक्तरूप मैं हूं-ये दोनों मोक्षदायक हैं और तीसरा यह कि, आपको नख

शीशपर्यन्त देहरूप जानना सो दुःखदायक और संसार का कारण है शान्तिसुख का कारण नहीं। अथवा इन तीनों का त्यागकर स्थित हो यह सर्वसिद्धान्त का कारण है। जैसे तुम्हारी इच्छा हो तैसे करो पर आत्मा सबसे अतीत और सबसे परे है तौ भी अपनी सत्ता से जगत् को पूर्ण कररहा है और सबका प्रकाशकरूप वही है। वह अपने अनुभव से सदावस्तु उदयरूप है और किसी प्रमाण का विषय नहीं; अनुमान आदिक और सत्यवाद से रहित है और सर्वकाल सबको अपने प्रकाश से प्रकाशता है। यह जो दृश्य जगत् है वह सब आत्मा भगवान् है और दृश्य, दर्शन, सत्, असत्, सूक्ष्म, स्थूल सबसे आत्मा रहित है। वही सर्वरूप सब की वाणी कहने में भी वही आता है और किसी से कहाभी नहीं जाता। जो नानात्व भासता है वहभी उससे अन्य नहीं। आत्मा आदिक संज्ञा भी शास्त्रों ने उपदेश के निमित्त कल्पी हैं। वह सर्वत्र, तीनोंकालों में स्थित और प्रकाशरूप है। सूक्ष्मभाव और स्थूलभाव से वही है और सब ठौर व्यापक अपने फुरनेसे जीवरूप हो भासता है। जब चित्तसंवित् स्फूर्तिरूप होती है तब जीवादिकरूप हो भासता है और फुरने से रहित द्वैतकलना मिटजाती है–जैसे आकाश में जब पवन फुरता है तब उष्ण शीत हो भासता है तैसेही फुरने से जीवादिक भासता है। आत्मा चेतन सर्वत्र व्यापकरूप है और कभी किसीभाव को प्राप्त नहीं होता। जैसे पदार्थ अपने भाव में स्थित है तैसेही परमेश्वर आत्मा अपने स्वभाव में स्थित है परन्तु उसका भासना पुर्यष्टका में होता है। जैसे वायु विना धूलि नहीं उड़ती और अन्धकार में प्रकाश विना पदार्थ नहीं भासता तैसेही पुर्यष्टका विना आत्मा नहीं भासता पुर्यष्टका में प्रतिबिम्ब भासता है। जैसे सूर्य के उदय हुये सर्वजीवों का व्यवहार होता है और सूर्य के अस्त हुये से लीन होजाता है पर सूर्य दोनों से अलेप है; तैसेही आत्मा सबका प्रकाशक और निर्लेपहै। शरीरों के व्यवहार होने और इष्टता में वह ज्योंका त्यों है; न उपजताहै, न विनशता है, न वाञ्छा करता है, न त्यागता है, न मुक्त है, न बन्ध है; सर्वदा सर्वप्रकार ज्योंका त्यों एकरूप है। उसके अज्ञान से जीव अनात्मभाव को प्राप्त होता है–जैसे रस्सी में सर्प भासता है–और केवल दुःखों का कारण होता है। आत्मा आदि–अन्त से रहित और अज–अविनाशी है और अपने आपसे भिन्न नहीं हुआ इससे वाञ्छा, त्याग, देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित है बन्ध नहीं और जो बन्ध नहीं तो मुक्त कैसे हो? सर्वकलना से रहित आत्मा सबका अपना आप है पर अविचार से मूढ़ रुदन करते हैं; इससे मैंने जो तुमको उपदेश किया है उसको आदि से लेकर अन्तपर्यन्त भलीप्रकार विचार देखो और इस युक्ति से शोक का त्यागकरो–मूर्खों के समान लोगों में शोक मत करो। हे सुमते! बन्ध मोक्ष की कल्पना का त्यागकरो। न बन्ध के त्याग

की इच्छा करो और न मोक्ष के प्राप्ति की इच्छा करो, यन्त्री की पुतलीवत् अभिमान से रहित चेष्टा करो—इसका नाम आत्मा मौन है। हे रामजी! मोक्ष कोई पदार्थ का नाम आकाश में नहीं और न पाताल में है; न भूमिलोक में है—चित्त का निर्मल होना ही मोक्ष है। अनात्मा के साथ आपको मिलाना और उसमें आत्माभिमान करना यही मेल है और इसका त्याग करना और शुद्ध आत्मा में चित्त का लगाना इसका नाम मोक्ष है। जब चित्त से गुणों में वृत्ति का त्याग हो और सम्यक् आत्मज्ञान हो उसीको तत्त्वदर्शी मोक्ष कहते हैं। हे रामजी! जबतक आत्मबोध नहीं होता तबतक यह दीन दुःखी होता है और जब आत्मा का निर्मल बोध होता है तब दुःखों से मुक्त होताहै इससे और उपायों को त्याग भक्ति करके मोक्ष की वाञ्छाकरो और चिरकाल से जब इस बोध को साध चित्त विस्तृत पद को प्राप्त हुआ तब दशमोक्ष की भी वाञ्छानहीं करता एक मोक्ष क्या है। हे रामजी! जीव को और कोई उपाय मोक्ष का नहीं; आत्मबोध को ही पाकर सुखी होगे। जब चित्त अचित्त होता है तब सब जगत्-भ्रम मिट जाता है और जगत् भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं, अद्वैत आत्मतत्त्वही है; और जो वही है तो बन्ध किसको कहिये और मोक्ष किसको कहिये? बन्ध मोक्षकी कल्पना तुच्छ है उसका त्यागकर चक्रवर्ती हो पृथ्वी की पालना करो तो तुमको कर्तृत्व का स्पर्श कुछ न होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआत्मविचारोनामाष्टषष्टितमस्सर्गः॥ ६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संकल्पसे ही जगत् उपजा है। अज्ञान से आपको शरीर जानता है और अपने संकल्प को उपजाके अपना स्वरूप जानताहै। जैसे कोई सुन्दरपुरुष हो और उसको देखे विना कुरूप जाने तैसेही आत्मा के साक्षात्कार विना देहरूप आत्मा को जानता है कि, मैं देह हूं। ज्यों २ आत्मा का प्रमाद होताहै त्यों २ देह में अधिक अभिमान होताहै—जैसे ज्यों २ मद्यपान करता है त्यों २ उन्मत्त होता है। हे रामजी! यह नाना प्रकार का दृश्य अज्ञानसे भासता है। जैसे सूर्यकी किरणों से मरुस्थल में जल भासता है तैसेही असम्यक् ज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है। एक कलना के फुरनेसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियां; और देहभासती है; एक फुरने की ही इतनी संज्ञा है। जैसे एक जलकी अनेकसंज्ञा होती हैं तैसेही एक फुरने की अनेकसंज्ञा हुई हैं। जो चित्त है सो अहंकार है; जो अहंकार है वही मन है; और जो मन है वही बुद्धि है इसमें कुछ भेद नहीं। जैसे बरफ और शुक्लता और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही मन, बुद्धि आदिक में कुछ भेद नहीं एकके नाश हुये दोनों का नाश होजाता है। इससे मन में जो कुछ कलना है उसका त्यागकर मोक्ष की इच्छा का भी त्यागकरो और बन्धन वृत्ति को भी त्यागकरो। हे रामजी! वैराग और

विवेक का अभ्यास करके मनको निर्मल करो। जब मन निर्मल होगा तब मन का मननभाव नष्ट होजावेगा। जब यह फुरना फुरता है कि, 'मैं मुक्त होऊं, तब भी मन जग आता है और मन के जागेसे मनन भी होआता है। जब मनन हुआ तब अपने साथ शरीर भी भासि आता है अनेक दुःखभी भासि आते हैं। हे रामजी! आत्मतत्त्व सबसे अतीत है और सर्वरूप भी वही है तब कौन बन्ध है और कौन मोक्ष है? जब मन का मनन निवृत्त हुआ तब न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है–आत्मा सर्वक्रिया से अतीत है। क्रिया भी इस प्रकार होती है कि, जैसे वायु के हिलनेसे वृक्ष से पत्र और फूल हिलते हैं तैसेही प्राणों से फुरने से हाथ पांव आदिक इन्द्रियां चेष्टा करती हैं। हे रामजी! चित्तशक्ति सर्वव्यापी, सूक्ष्म और अचल है; वह न आपही चलती है, न और किसीकी प्रेरी हुई चलती है; सदा स्थिररूप है। जैसे मेरु पर्वत न आपही चलता है और न वायु से चलाया चलता है। हे रामजी! जितने पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित भासते हैं। जैसे सर्वपदार्थों को दीपक प्रकाशता है तैसेही सबपदार्थों को आत्मा प्रकाश करता है। सबपदार्थों में एक आत्मा अनुस्यूत प्रकाशता है; और अहं त्वं आदिक कलना से रहित है। जहां अहं त्वं आदिक कलना नहीं फुरती वहां सुख दुःखभी नहीं फुरता। जैसे वृक्षों और पहाड़ों से अहं त्वं शब्द नहीं फुरता तैसेही आत्मामें भी नहीं फुरते; इस से ज्ञानवान् में कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते। हे रामजी! आत्मा निरहंकार और निराकार उसमें कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवे? आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व अज्ञान से भासता है–जैसे मरुस्थल में जल भासता है। हे रामजी! अज्ञानरूपी मदिरा पान करके मनरूपी मृग मत्त हुआ है उससे वह सत् असत् का विचार नहीं करसक्ता–जैसे मृगतृष्णा की नदी असत् ही सत् भासती है और मृग उसको सत् जानकर पान करने के निमित्त दौड़ता है; तैसेही यह जीव अरूप संसार को रूप जानकर दौड़ता है। जब आत्मसत्ता का सम्यक्बोध होता है तब यह अविद्या नाश होजाती है। जैसे ब्राह्मणों के मध्य चाण्डाली आन बैठे और जब ब्राह्मण उसको पहिंचानें कि, यह चाण्डाली है तो वह छुपजातीहै तैसेही जब अविद्याको जाना तब वह नष्ट होजाती है। हे रामजी! जब अविद्या को ज्यों की त्यों जाना तब अविद्यारूपी जगत् मन को नहीं खैंचसक्ता–जैसे मृगतृष्णा की नदी को जब जाना तब तृषा हो तो भी मन को जल नहीं खैंचसक्ता। हे रामजी! जब परमार्थसत्ता का बोध होता है तब मूल से वासना नष्ट होजाती है, जैसे दीप के उदय से अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मज्ञान से अविद्या वासनासहित नष्ट होजाती है। हे रामजी! अविद्या अविचार से सिद्ध है; जब सत्शास्त्रों की युक्ति से विचार प्राप्त होता है तब अविद्या नाश होजाती है। जैसे

बरफ़ का कणका धूप से गलकर जलमय होजाता है तैसेही विचार से अज्ञान नष्ट होजाता है। हे रामजी! देह जड़ है और आत्मा सदा चेतनरूप है; फिर जड़ देह के निमित्त भोगों की वाञ्छा करनी बड़ी मूर्खता है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस बन्धन को तोड़डालते हैं। हे रामजी! आशारूपी फांसी को हृदय से काटो; जब आशारूपी आवरण दूर होगा तब पूर्णमासी के चन्द्रमावत् हृदय शीतल होजावेगा। तैसेही यह पुरुष भी तीन तापों से मुक्त शीतल होजाता है—जैसे पर्वतमें अग्नि लगे और उसके ऊपर जल की बहुत वर्षा हो तो वह तप्तता से मुक्त हो शान्तिमान् होताहै। हे रामजी! जैसे केशरी सिंह पिंजरे को तोड़कर निकलता है तैसेही ज्ञानवान् पुरुष भोग वासना के बन्धन को तोड़ डालता है। हे रामजी! जैसे रङ्क को त्रिलोकी का राज्य मिलने से वह आनन्द को प्राप्त हो तैसेही ज्ञानवान् को आत्मा के साक्षात्कार हुये आनन्द प्राप्त होता है और वह परम निर्मल लक्ष्मी से शोभता है जब हृदय से आशारूपी मैल जाता है तब जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल शोभता है तैसेही वह शोभता है। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष अपने आप में नहीं समाता—जैसे महाकल्प का समुद्र नहीं समाता और जैसे मेघजल को त्यागकर मौन होजाता है तैसेही ज्ञानवान् आशा को त्यागकर आत्ममौन होजाता है। जैसे अग्नि लकड़ी को जलाकर धुवें से रहित अपने आपमें स्थित होजाती है तैसेही चित्त की वृत्ति से रहित हुआ आत्मपद में निर्वाण होजाता है जैसे दीपक निर्वाण होजाताहै तैसेही चित्त निर्वाण हुआ परमानन्द को प्राप्त होता है। जैसे अमृत को पानकर पुरुष आनन्दवान् होता है तैसेही वह परमानन्द से पूर्ण अपने आपमें प्रकाशता है जैसे वायु से रहित दीपक प्रकाशता है और शुद्धमणि अपने प्रकाश से प्रकाशती है तैसेही ज्ञानवान् अपने आपसे प्रकाशता है। मैं सर्वात्मा, सर्वगत, ईश्वर, सर्वाकार, निराकार, केवल चिदानन्द आत्मा हूं और सदा अपने आप में स्थित हूं। हे रामजी! ज्ञानी अपने आपको ऐसे जानते हैं और पूर्वके व्यतीत हुये दिनको हँसते हैं। मैं तो अनन्त आत्मा हूं; माया के भ्रम से आप को कर्ता भोक्ता मानता था। ऐसे जानकर जो रागद्वेष से रहित परमशान्ति को प्राप्त होताहै उसके सब ताप निवृत्त होजाते हैं; उसकी सदा आत्मा में प्रीति रहती है; उस का चित्त सब ओरसे पूर्ण होजाता है; वह सबको पवित्र करनेवाला होताहै; वह कामरूपी चक्र से मुक्त होकर जन्मों के बन्धन काटडालता है; रागद्वेष आदिक द्वन्द्व और सर्वभय से मुक्त होता है; अविद्यारूपी संसारसमुद्र से तरजाता है; उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त होता है अर्थात् परमपद पाता है और फिर संसार के जन्म मरण को नहीं प्राप्त होता है और उसके कर्मों का अन्त होजाता है। हे रामजी! ज्ञानवान् की क्रिया को देखकर और सब वाञ्छा करते हैं परन्तु औरों की क्रिया को देखकर ज्ञानवान् किसी की

वाञ्छा नहीं करता । वह सबको आनन्दवान् करता है और आप किसीसे आनन्दवान् नहीं होता । वह न किसीको देता है, न लेता है, न किसी की स्तुति करता, न निन्दा करता है; न किसी उत्तम पदार्थों को पाकर उदय होता है और न अनिष्ट को पाकर नष्ट होता है और हर्ष शोक से रहित है । उसने सब फल का त्याग किया है और सब उपाधि से रहित है और कर्तृत्व भोक्तृत्व से आपको न्यारा मानता है । ऐसा जो पुरुष है वह जीवन्मुक्त है । हे रामजी ! जब तुम सब इच्छा त्यागकर मौन हो तब निर्विशेष भाव को प्राप्त होगे । जैसे मेघ जल का त्यागकर मौनभाव को प्राप्त होताहै तैसेही तू मोक्षभाव को प्राप्त होगा । हे रामजी ! जैसे कामी पुरुष स्त्री को कण्ठ में लगाकर आनन्दवान् होता है पर उसको ऐसा आनन्द नहीं होता जैसा आनन्द निर्वासनिक पुरुष को होताहै , फूल के गुच्छेसे बसन्तऋतु ऐसी नहीं शोभती जैसे उदारबुद्धि आत्ममौनवान् शोभता है; हिमालय पर्वत में प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा निर्वासनिक पुरुष का मन शीतल होताहै; मोतियों की माला से और केले के वन को प्राप्त हुआ भी ऐसा सुख नहीं पाता और चन्दनों के पानकरनेवाला भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा शीतल निर्वासनिक मन होता है; और चन्द्रमा के स्पर्शसेभी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होता है। चन्द्रमा बाहरकी तप्तता मिटाताहै परन्तु भीतर की तप्त निवृत्त नहीं करता पर निराशता से हृदय की तप्तता मिटजाती है और परमशान्तिको प्राप्त होता है । जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुष के संग से होती है तैसी और किसी उपाय से नहीं प्राप्त होती । हे रामजी ! ऐसा सुख स्वर्ग में नहीं प्राप्त होता और न सुन्दर स्त्रियों के स्पर्श से होता है जैसा सुख निर्वासनिक को प्राप्त होता है । निर्वासनिक पुरुष उस सुख को प्राप्त होता है जिस सुख में त्रिलोकी के सुख तृणवत् भासते हैं। हे रामजी ! आशारूपी कञ्ज के वृक्ष के काटनेको उपशमरूपी कुल्हाड़ा है । जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है उसको सब पृथ्वी गोपद के समान तुच्छ भासती है; मेरु पर्वत एक टूटेवृक्ष के समान भासता है और दिशा डिब्बी के समान भासती हैं क्योंकि वह उत्तमपद को प्राप्त हुआ है और त्रिलोकी की विभूति तृण की नाईं तुच्छ देखता है । जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है वह जगत् को देखकर हँसता है और कदाचित् उसे जगत् के पदार्थों की कल्पना नहीं फुरती । तृणवत् जानकर उसने जगत् को त्याग दिया है और सदा आत्मतत्त्व में स्थित है उसको किसकी उपमा दीजिये उस पुरुष की उदय, अस्त, अहं त्वं आदिक कलना नष्ट होगई हैं और केवल आत्मस्वभाव को प्राप्त हुआ है । उस ईश्वर आत्मा को कौन तौल सक्ता है; जब दूसरा उसके समान हो तब तौले । हे रामजी ! वह पुरुष सब सङ्कटों के अन्त को प्राप्तहुआ है । यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है । जैसे

आकाश में भ्रम से दूसरा चन्द्रमा; मरुस्थल में नदी और मद्यपान से नगर भ्रमता भासता है; तैसेही यह मिथ्या जगत् भ्रम से भासता इसकी आशा मतकरो। तुमतो बुद्धिमान् पण्डित हो मूर्खोंकी नाईं मोह को क्यों प्राप्त होतेहो? यह मैं और यह मेरा अज्ञान से भासता है; इस कलना को चित्त से दूर करो। यह वास्तव में कुछ नहीं, सब जगत् आत्मरूप है और नानात्व कुछ नहीं है जो सम्यक्दर्शी पुरुष है वह जगत् को एकरूप जानकर धैर्यवान् रहता है कदाचित् खेद नहीं पाता। हे रामजी! जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है और आत्मविचार से आत्मपद को प्राप्त हुआ है उसको देखकर मोहनेवाली माया भी भाग जातीहै औरनिकट नहीं आती। जैसे सिंह के निकट मृग नहीं आता तैसेही ज्ञानवान् के निकट माया नहीं आती। सुन्दर स्त्रियां, मणि, कञ्चनादिक, धन और पत्थर, काष्ठ सब उसको तुल्य भासता है; भोगों से उसको सुख नहीं होता और आपदा से खेद नहीं होता; वह सदा ज्योंका त्यों रहता है। जैसे पर्वत वायुसे चलायमान नहीं होता तैसेही वह पुरुष सुखदुःखसे चलायमान नहीं होता। सुन्दर बाला स्त्री उसके चित्त को खींच नहीं सक्ती; कामदेव के चलाये बाण उसके ऊपर टुकड़े २ होजाते हैं और रागद्वेष उसको खींच नहीं सक्के। वह सदा आपको निराकार, अद्वैत, निष्क्रिय और निर्गुणजानताहै और सुन्दर बगीचे, ताल, बेल, शय्या, इन्द्रियों के विषयभोग और दुःखदेनेवाले उसको तुल्य हैं राग द्वेष को नहीं प्राप्तकरते। जैसे पर्व में ऋतु के अनुसार मीठा और कटु फूल होता है तो उसको किसीमें रागद्वेष नहीं होता। अकस्मात् जो भोग प्राप्त होताहै उसको वह भोगताहै परन्तु हर्ष और शोकवान् नहीं होता। हे रामजी! यथार्थदर्शी इष्ट अनिष्ट में चलायमान नहीं होता—जैसे बसन्तऋतु के आनेजाने में पर्वत सुखदुःख को प्राप्त नहीं होता। वह कर्मइन्द्रियों से कर्म करता है परन्तु उसमें आसक्त नहीं होता और बाहरदृष्टि से आसक्तभासता है परन्तु भीतर आसक्त नहीं होता। वह जो बाहर आसक्तदृष्टि नहीं आता परन्तु चित्त आसक्त है वह मग्न हो डूबताहै—जैसे शुद्ध मणि कीचड़ में दृष्टि आती है तो भी उसको कुछ कलङ्क नहीं और जो बीच से खोटी है वह यदि बाहर से उज्ज्वलभी भासती तौभी सकलङ्क है; तैसेही जो चित्तसे आसक्त है वह आसक्त है और जो चित्तभाव से आसक्त नहीं वह आसक्त नहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप, नित्य, शुद्ध और परमानन्द स्वरूप है। जिस पुरुष को अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान है उसको विस्मरण नहीं होता। हे रामजी! जिसके शरीर से अहंभाव उठगया है और इन्द्रियोंसे कर्म करताहै तो वह करताभी नहीं करता और जिसके देह में अहंभाव है वह नहीं करता भी करताहै। जैसे किसीको चिरकाल के उपरान्त बान्धव मिला विस्मरण नहीं होता तैसेही जिसने अपना स्वरूप जाना है

उसको वह फिर विस्मरण नहीं होता। हे रामजी ! जिनको शुद्धस्वरूपका सम्यक्ज्ञान होताहै उनको भ्रान्तिरूप जगत् नहीं भासता—जैसे रस्सी में भ्रमसे सर्प भासता है पर जब भ्रम निवृत्त हुआ तब ज्यों की त्यों रस्सी भासती है सर्प नहीं भासता। जैसे मरुस्थल में जलबुद्धि निवृत्त हुये फिर जलबुद्धि नहीं होती, तैसेही आत्मा के जाने से देहभाव नहीं होता। जैसे पहाड़ से नदी उतरती है सो फिर पहाड़ पर नहीं चढ़ती और सुवर्ण का खोट अग्नि मे जला हुआ चाहे कीचड़ में डालिये तौभी खोटा नहीं होता तैसेही जब हृदय की चिद्ग्रन्थि टूटी तब गणों के व्यवहार में गांठ नहीं पड़ती अर्थात् बन्धायमान नहीं होता। जैसे वृक्षसे टूटा फल फिर नहीं लगता तैसेही जिसका देहाभिमान टूटा है वह फिर नहीं होता और स्वरूप में अभिमान नहीं होता। जैसे लोहे के हथौड़ेसे परको चूर्ण किया तो फिर वह नहीं फुरता। जिस पुरुष ने अविद्या को जाना है वह फिर उसकी संगति नहीं करता और जिस ब्राह्मण ने चाण्डालों की सभा जानी फिर वह उनकी संगति नहीं करता, तैसेही जब आत्मविचार से मनको चूर्ण किया तब फिर वह नहीं फुरता। जिस पुरुषने अविद्यारूप जगत्को जाना है वह फिर जगत् के पदार्थों में आसक्त नहीं होता। हे रामजी ! विष जो मधुर जल से मिलाहो तो जबतक जाना नहीं तबतक उसको कोई पान करता है और जब उसको जाना तब फिर पान नहीं करता तैसेही जबतक इस संसार को ज्योंका त्यों नहीं जाना तबतक इसके पदार्थों की इच्छा करताहै पर जब जाना कि, यह मायामात्रहै तब इसकी इच्छा नहीं करता। हे रामजी ! सुन्दर स्त्री जो नाना प्रकारके वस्त्र और भूषण सहित दृष्टिआती हैं उनको ज्ञानवान् जानता है कि, ये असत् मांस, रुधिर, आदिक की पुतलियां बनी हैं और कुछ नहीं और जो उनकी इच्छा त्यागता है तो वह निवृत्त होजाता है। जैसे मूर्तिपर नील, पीत, श्यामरङ्ग लिखे होते हैं तैसेही उसके वस्त्र और केशहैं। हे रामजी ! जिस पुरुष को आत्मा का साक्षात्कार होता है उसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि नहीं होती। अवस्तु में वस्तुबुद्धि तब होती है जब वस्तु का विस्मरण होता है सो ज्ञानवान् को तो सदा स्वरूप का स्मरण है उसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि कैसे हो ? जिसको आत्मबुद्धि हुई है उसको विस्मरण नहीं होता। जैसे किसी पुरुष ने किसीके पास गुड़ रक्खा हो और वह खाजावे तो उसको वह दण्ड आदि दे सकेगा परन्तु उसका रस दूर नहीं कर सक्ता, तैसेही जिसको आत्मा का अनुभव हुआ है उसको कोई कुछ नहीं कर सक्ता। हे रामजी ! जैसे कुलटा नारी का किसी पुरुष से चित्त लगता है तो वह गृह का कार्य भी करती है परन्तु चित्त उसका सदा उसमें ही रहता है; तैसेही ज्ञानवान् क्रिया करता है परन्तु उसका चित्त सदा आत्मपद में रहता है और जैसे परव्यसनी नारी को उसका भर्ता दण्डभी करता

है पर तौभी स्पर्श का सुख उसके हृदय से दूर नहीं करसक्ता, तैसेही जिसको आत्म अनुभव हुआ है उसको कोई दूर नहीं करसक्ता और जो देवता और दैत्य दूर नहीं करसक्के तो औरों की क्या वार्त्ता है। जो बड़े सुख अथवा दुःखका अनुभव प्रवाह आनपड़े तौभी उनको खण्डन नहीं करसक्ता; कर्ता हुआ भी वह अकर्ता हुआ है। जैसे पर व्यसनीनारी पर पुरुष के संयोग दुःख पाती है परन्तु उसको स्पर्श के सुख का अनुभव हुआहै उसके संकल्पसे अखण्ड अनुभव करती है उससे उसको दुःख नहीं भासता; तैसेही जिसको आत्मसुख हुआ है उसको दुःखसुख और कुछ नहीं भासता हे रामजी! सम्यक्ज्ञान से जिसकी अविद्या नष्ट हुईहै वह दुःख नहीं देखता। जो उसके अङ्ग काटे जावें तौभी उसके दुःख नहीं होता और शरीर के नष्ट हुये वह नष्ट नहीं होता सुख दुःख उसके नष्ट होगये हैं और सदा वह आत्मपद में निश्चय रखता है। संकटवान् भी वह दृष्ट आताहै परन्तु उसको संकट कोई नहीं। वह वन में रहे अथवा गृह में रहे; व्यवहार करे अथवा समाधि करे; वह सदा ज्यों का त्यों रहता है और उसको खेद कष्ट किसी प्रकार से नहीं होता॥

इति श्रीयोगवा०उपशमप्रकरणेनीरास्पदमौनविचारोनामैकोनसप्ततितमस्सर्गः ६९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! राजा जनक राजव्यवहार करता था परन्तु आत्मपद में स्थित था इससे उसको कलङ्क न हुआ और सदा विगतज्वरही रहा; तुम्हारा पितामह राजादिलीप भी सर्व आरम्भों को करतारहा परन्तु रागद्वेष को न प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होके चिरपर्यन्त पृथ्वी का राज्य करतारहा; राजा अज नाना प्रकार के युद्ध और राजव्यवहार की पालना करताहुआ सदा जीवन्मुक्त स्वभाव में स्थित था; राजा मान्धाता नाना प्रकार की युद्धचेष्टा करता था परन्तु सदा परमपद में निश्चित रहा और कदाचित् मोह को न प्राप्त हुआ; राजाबलि महात्यागी पाताल में राजव्यवहार को करता भी दृष्टआया परन्तु स्वरूप के ज्ञान से सदा शान्तरूप जीवन्मुक्त होकर विचरता था; नभचर दैत्यों का राजा सदा नानायुद्ध आदिक क्रिया में रहा करता था और देवताओं के साथ सदा विरोध रखता था परन्तु हृदय में उसके कुछ ताप न था इन्द्र ने युद्ध में वृत्रासुर दैत्य को मारा परन्तु सदा शीतल रहा कदाचित् क्षोभ को न प्राप्त हुआ और दैत्यों का राजाप्रह्लाद पाताल में राज्य करतारहा परन्तु हृदय में उसे कुछ क्षोभ न आया। हे रामजी! सम्बरनामक दैत्य अपनी सृष्टि के रचनेको उदय हुआ पर रचने में बन्धवान् न था वह सदा साम्बरी मायापरायण रहा और माया से एक मायावीरूप होकर स्थित हुआ। हे रामजी! यह संसार जो साम्बरी मायारूप है उसको साम्बरीवत् त्यागकर अपने स्वरूप में से स्थितहो। विष्णु भगवान् सदा दैत्यों को मारते और युद्ध करते रहतेहैं पर हृदयमें अलेप बुद्धि

है इससे सदासुखी जीवन्मुक्त हैं और मुसलनाम दैत्य ने विष्णु से युद्ध में शरीर छोड़ा परन्तु हृदयमें उसे देह से कुछ, सम्बन्ध न था इससे जीवन्मुक्त सुखीरहा और पीड़ा को न प्राप्त हुआ। हे रामजी! सर्वदेवताओं का मुख अग्नि है सो यज्ञ लक्ष्मी को चिरकाल पर्यन्त भोगता है परन्तु ज्ञानवान् है इससे क्षोभवान् नहीं होता, सदा शीतल रहता है; देवता सदा चन्द्रमा की किरणों से अमृत पान करतेहैं परन्तु चन्द्रमा को कुछ क्षोभ नहीं होता और देवता गुरु बृहस्पति ने स्त्री के लिये चन्द्रमा से युद्ध किये और देवताओं के निमित्त नानाप्रकारके कर्म करते हैं परन्तु राग द्वेष को नहीं प्राप्त होते इससे जीवन्मुक्त हैं। हे रामजी! दैत्यों के गुरु शुक्रजी दैत्यों के निमित्त सदा यत्न करते रहते हैं और लोभी की नाईं अर्थ चिन्तते हैं परन्तु जीवन्मुक्त हैं। जो हृदय से सदा शीतल रहता है वह कदाचित् खेद नहीं पाता। पवन प्राणियों के अङ्गों को चिरकाल फेरता है और चेष्टा करता है पर खेद को नहीं प्राप्त होता इससे जीवन्मुक्त है; ब्रह्मा सदा लोकों को उत्पन्न करता है और प्रलय पर्यन्त इसी क्रिया में रहता है परन्तु उसे स्वरूप का साक्षात्कार है इससे जीवन्मुक्त है; विष्णु भगवान् युद्धादिक द्वन्द्वों में रहते हैं और जरा मृत्यु आदिक भावों को प्राप्त होते हैं परन्तु सदा मुक्तस्वरूप हैं; सदाशिव त्रिनेत्र अर्धाङ्गधारी हैं परन्तु हृदय में संसक्त नहीं हैं इससे जीवन्मुक्त हैं; गौरी मोतियों की माला कण्ठ में धारती हैं और त्रिनेत्र को सदा मालावत् कण्ठ के रखती हैं परन्तु हृदय से शीतल रहती हैं इससे जीवन्मुक्त हैं, स्वामिकार्तिक दैत्यों के साथ युद्ध करते रहे परन्तु ज्ञानरूपी रत्नों के समुद्र थे और हृदय से शीतल थे सदाशिव के भृङ्गीगण अपना रक्त मांस माता को देते थे परन्तु धैर्यमें थे इससे खेद को न प्राप्त हुये और नाना प्रकार की क्रिया करते थे परन्तु जीवन्मुक्त थे इससे सदा सुखी थे नारदमुनि सदा मुक्तस्वभाव हैं और सदा जगत् की क्रियाजाल में रहते हैं परन्तु क्षोभ नहीं पाते इससे जीवन्मुक्त हैं; जीवन्मुक्त और मनमौन जो विश्वामित्र हैं वे वेदोक्तकर्म करते फिरते रहते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं; सूर्य भगवान् दिन को प्रकाश करते हैं और फिरते रहते हैं परन्तु जीवन्मुक्त और सदासुखी रहते हैं; यम सदा जीवों को दण्ड करते रहते हैं और क्षोभ में रहते हैं परन्तु जीवन्मुक्त हैं; इन्द्र कुबेर से आदि लेकर त्रिलोकी में बहुत जीवन्मुक्त हैं जो व्यवहार में शीतल हैं। कोई मूढ़ शिलावत् हो रहे हैं; कोई परमबोधवान् वन में जा स्थित हुये हैं–जैसे भृगु, भारद्वाज और विश्वामित्र; बहुतेरे चिरकाल पर्यन्त राजपालन करते रहते हैं–जैसे जनक, मान्धाता आदि; कोई आकाश में बड़ी कान्ति धारकर बृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्र, सप्तर्षि आदिक स्थित हुये हैं; कोई स्वर्ग में अग्नि, वायु, कुबेर, यम, नारदादिक हैं; पाताल में जीवन्मुक्त प्रह्लादादिक हुये हैं कोई देवतारूप धारकर

आकाश में स्थित हैं कोई मनुष्यरूप धारकर मनुष्यलोकमें स्थित हैं और कोई तिर्यक्-योनि में स्थित हैं उनको सर्वथा, सर्वप्रकार, सर्वमें सर्वात्मारूप ही भासता है कुछ भिन्न नहीं भासता। नाना प्रकार का व्यवहार है सोभी अद्वैत से किया है। हे रामजी! दिव्य विष्णु धाता, सर्व ईश्वर और शिवआदिक सब आत्मा के ही नाम हैं। वस्तुरूप में जो अवस्तु है और अवस्तु में जो वस्तु है सो अवस्तु से वस्तु तब निकलता है जब युक्ति होती है और वस्तु से अवस्तु भी युक्ति से ही दूर होती है। जैसे अवस्तुरूप रेत से सुवर्ण युक्ति से निकलता है और वस्तुरूपी सोने से मैल युक्ति से दूर होताहै तैसेही अवस्तुरूप देहादिकों में वस्तुरूप आत्मा शास्त्रों की युक्ति से पाता है और वस्तुरूप आत्मा से दृश्यरूप अवस्तु भी शास्त्रों की युक्तिसे दूर होती है। हे रामजी! जो पापों से भय करता है वह जब धर्म में प्रवर्तता है तब निर्भय होता है और दुःखों के भय से जीव आत्मपद की ओर प्रवर्तता है तब भावना के वश से असत् से सत् पाता है। ध्यान और योग भी शून्य है परन्तु यत्न के बल से उससे सत् पाता है और जो असत् है वह उदय होकर सत् भासती है। जैसे बाज़ीगर की बाज़ी से शशे के सींग भासि आते हैं तैसेही आत्मा में असद्रूप जो जगत् है सो अज्ञान से दृढ़ हो भासता है परन्तु कल्प के अन्त में यहभी नष्ट होजाता है। हे रामजी! यह जो सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रादिक हैं उनके नाम भिन्न रहेंगे और बड़े सुमेरु आदिक पर्वत, समुद्र और भावपदार्थ जो उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ जो भासते हैं वे सब नाश होजावेंगे क्योंकि, सब मायामात्र हैं, कोई न रहेगा। ऐसे विचारकरके इनके भाव अभाव में हर्ष शोक मत करो और समता भाव को प्राप्त हो। हे रामजी! जो असत् है वह सत् की नाईं भासता है और जो सत् है सो असत् की नाईं भासता है, इससे यथार्थ विचारकर सत्रूप आत्मपद में स्थित हो रहो और असत्रूप जगत् की आस्था त्यागके समताभाव को ग्रहण करो। इस लोक में जो अविवेक मार्ग में बिचरता है वह मुक्त नहीं होता। इस प्रकार कोटि जीव संसारसमुद्र में डूबते हैं और जो विवेक में प्रवर्तते हैं वे मुक्त होते हैं। हे रामजी! जिसका मन क्षय हुआ है उसको मुक्तरूप जानो और जिसका मन क्षय नहीं हुआ वह बन्धन में है। इससे जिसको सर्वदुःख से मुक्ति की इच्छा हो सो आत्मा विचारकरे उसीसे सब दुःख नाश होजावेंगे। हे रामजी! दुःखों का मूल चित्त है और जबतक चित्त है तबतक दुःख है; जब चित्त नष्ट होजाता है तब दुःख सब मिट जाते हैं। हे रामजी! जब आत्मज्ञान होताहै तब चित्तका अभाव होजाताहै; दुःख सब मिटजाता है और राग, इच्छा सब भय मिटकर केवल शान्तरूप होता है। जनक आदिक जो जीवन्मुक्त हुये हैं सो निराग और निस्संदेह होकर महाबोधवान् व्यवहार भी करते रहे परन्तु सदा शीतल चित्तरहे। इससे तुमभी विवेक से चित्तको लीन करो। हे रामजी!

मुक्ति भी दो प्रकार की है—एक जीवन्मुक्ति है और दूसरी विदेह मुक्ति। जो पुरुष सब पदार्थों में असंसक्त है और जिसका मन शान्त हुआ है वह मुक्त कहाता है और जिस पुरुष का ज्ञानसे सब पदार्थों में स्नेह नष्ट हुआ है और व्यवहार करता दृष्टआता है तौभी शीतलचित्त है वह जीवन्मुक्त कहाता है। जो पुरुष सर्वभाव अभाव पदार्थों को त्यागकर केवल अद्वैततत्त्व को प्राप्त हुआ है और जिसकी शरीर आदि कोई क्रिया दृष्ट नहीं आती वह विदेहमुक्त कहाता है जिसका स्नेह पदार्थों से दूर नहीं हुआ वह मुक्ति के अर्थभी यत्न करता है तौभी बन्ध कहाता है जो युक्तिपूर्वक यत्न करता है उसको दुस्तर भी सुगम होजाता है और जो युक्ति से रहित यत्न करता है उसको गोपद भी समुद्र होजाता है। हे रामजी! जिन्होंने आत्मा से आत्मविचार किया है उसको विस्तृत जगत्समुद्र गोपद होजाता है और अज्ञानी को गोपद भी दुस्तर होजाता; उसे कोई इष्ट अनिष्ट अल्प भी प्राप्त होताहै तो उससे डूब जाता है निकल नहीं सक्ता। उसको गोपद भी समुद्र है। ज्ञानी को अत्यन्त विभूति और ऐश्वर्य मिले अथवा उसका अभाव होजावे तौभी वह उसमें रागद्वेषकरके नहीं डूबता। हे रामजी! अपने प्रयत्न के बल सब होताहै; जो कोई प्रधान हुआ है वह प्रयत्नरूपी वृक्ष के फल सेही हुआ है। आत्मपद की प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्षका फलहै। इससे और उपाय त्यागकर आत्मपद की प्राप्ति का प्रयत्न करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेमुक्तामुक्तविचारोनामसप्ततितमस्सर्गः॥ ७०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ जगज्जाल है वह सब आत्मा ब्रह्म का आभासरूप हैं; अज्ञान से स्थिरता को प्राप्त हुआ है और विवेक से शान्त होजाता है। ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्‌रूपी आवृत जो फुरते हैं उनकी संख्या कोई नहीं करसक्ता। आत्मरूपी सूर्य के जगत्‌रूपी त्रसरेणु हैं। हे रामजी! असम्यक् दर्शनही जगत् की स्थिति का कारण है और सम्यक्‌दर्शन से शान्त होजाता है—जैसे मरुस्थल में असम्यक्‌दर्शन से जल भासता है और सम्यक्‌दृष्टि से अभाव होजाताहै। हे रामजी! संसाररूपी अपार समुद्र से युक्ति और आत्म अभ्यास विना तरना कठिन है। मोहरूपी जल से वह पूर्ण है; मरणरूपी उसमें आवर्त्त है; पुण्यरूपी जग है, बड़वाग्नि इसके अङ्गों में नरक समान है; तृष्णारूपी भँवर है; इन्द्रियां और मनरूपी तेंदुये और मच्छ हैं; क्रोधरूपी सर्प हैं; जीवरूपी नदियां हैं उसमें प्रवेश करती हैं; और जन्म मरणरूपी आवृतचक्र हैं उनसे जो तरजाता है वही पुरुष है। स्त्रियां जो सुन्दर लगती हैं उन के महाबलवान् नेत्र हैं जिनसे पहाड़ोंको भी खींचसक्ती हैं और मोतियों की नाईं दांत इत्यादिक जो सुन्दर अङ्ग हैं वे महादुःख के देनेवाले बड़वाग्नि की नाईं हैं। जो इनसे तरजाता है वही पुरुषहै। हे रामजी! जो जहाज़ और मल्लाहों

के होते भी इनको नहीं तरते उनको धिक्कार है। जहाज़ और मल्लाह कौन हैं सो सुनो। जिस मनुष्य के शरीर में कुछ विचारसहित बुद्धिहै वही जहाज़है और सन्त-रूपी मल्लाह है। इनको पाकर जो संसारसमुद्र से नहीं तरते उनको धिक्कार है। ऐसे संसारसमुद्र को ग्रहण कर जो तरगया है उसीको पुरुष कहते हैं। हे रामजी! जिस पुरुष ने आत्मविचार में बुद्धि लगाई है वह तरजाता है अन्यथा कोई नहीं तरसक्ता। जिसको आत्म अभ्यास दृढ़ हुआ है वह तरसक्ता है। हे रामजी! प्रथम ज्ञानवान् पुरुषों के साथ विचार और बुद्धि से संसारसमुद्र को देखो। जब तुम इसको ज्यों का त्यों जानोगे तब विलास और क्रीड़ा करने योग्य होगे। हे रामजी! तुमतो भगवान् हो परन्तु बोधके विचार से संसारसमुद्र से तरजाओ। तुम तो जवान हो तुम्हारे पीछे और तुम्हारे स्वभाव के विचार से और भी संसारसमुद्र से तरजावेंगे। जो इस शुभ मार्ग को त्यागकर विषयमार्ग की ओर जाते हैं वे संसारसमुद्र में डूबे हैं। हे रामजी! ये जो विषय भोग हैं वे विषरूप हैं; जो इनको सेवेगा वह नष्ट होगा परन्तु जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है उसको यह; जैसे गारुड़ मन्त्र पढ़नेवाले को सर्प दुःख नहीं देसक्ता तैसेही दुःख दे नहीं सक्ते। जिसका परिणाम शुद्ध हुआ है वह विभूतिमान् है बल, वीर्य और तेज यह तीनों तत्त्व के साक्षात्कार से चढ़आते हैं। जैसे वसन्तऋतु के आयेसे रस, फूल, फल सब सुन्दर हो आते हैं। हे रामजी! जिसे ज्ञान की धर्म लक्ष्मी प्राप्त भई है वह पूर्ण अमृत तुल्य शीतल, शुद्ध और सम प्रकाशरूप है। यह लक्ष्मी पाकर विदितवेद स्थित हो रहते हैं॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्र० संसारसागरयोगोपदेशोनामैकसप्ततितमस्सर्गः॥७१॥

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! तत्त्ववेत्ता के लक्षण संक्षेप से फिर कहिये और जिन को तत्त्व का चमत्कार हुआ है उनकी वृत्ति उदार वाणी से कहिये। ऐसा कौन है जो आपके वचन सुनके तृप्त हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जीवन्मुक्त के लक्षण मैंने तुमको बहुत प्रकार से आगे कहे हैं पर अब फिर भी सुनो। हे महाबाहो! संसार को ज्ञानवान् सुषुप्ति की नाईं जानता है और सब एषणा उसकी नष्ट होजाती हैं। वह सब जगत् को आत्मरूप देखता है और कैवल्य भाव को प्राप्त होता है। संसार उसे सुषुप्तिरूप होजाता है और आत्मानन्द में घूर्म रहताहै वह देताहै परन्तु अपने जानने से किसीको नहीं देता। और लोकदृष्टि में प्रत्यक्ष हाथों हाथ ग्रहण करता है परन्तु अपनी दृष्टि से कुछ नहीं लेता ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदार आत्मा है वह यन्त्री की पुतलीवत् चेष्टा करताहै जैसे यन्त्री की पुतली अभिमान से रहित चेष्टा करती है तैसेही ज्ञानवान् अभिमान से रहित चेष्टा करताहै देखता, हँसता, लेता, देता है परन्तु हृदय से सदा शीतलबुद्धि रहता है। वह भविष्यत् का कुछ विचार नहीं करता; भूत का

चिन्तन नहीं करता और वर्त्तमान में स्थिति नहीं करता। सबकामों में वह अकर्ता है, संसार की ओरसे सो रहा है और आत्मा की ओर जाग्रत् है। उसने हृदय से सबका त्यागकिया है; बाहर सब कार्यों को करताहै और हृदय में किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता। बाहर जैसे प्रकृत आचार प्राप्त होता है उसे अभिमान से रहित करता है द्वेष किसीमें नहीं करता और सुख दुःख में पवन की नाईं होता है। एवम् भ्रम को त्यागकर उदासीन की नाईं सबकार्य करता है; न किसी की वाञ्छाहै और न किसीमें खेदवान् है। बाहर से सब कुछ करता दृष्ट आता है पर हृदय से सदा असंग है। हे रामजी! वह भोक्ता में भोक्ता है; अभोक्ता में अभोक्ता है; मूर्खों में मूर्खवत् स्थित है; बालकों में बालकवत्; वृद्धों में वृद्धवत्; धैर्यवानों में धैर्यवान्; सुख में सुखी; दुःख में धैर्यवान् है। वह सदा पुण्यकर्ता, बुद्धिमान्, प्रसन्न, मधुरवाणी संयुक्त और हृदय से तृप्त है उसकी दीनता निवृत्त हुई है, वह सर्वथा कोमलभाव चन्द्रमा की नाईं शीतल और पूर्ण है। शुभकर्म करनेमें उसे कुछ अर्थ नहीं और अशुभ में कुछ पाप नहीं; ग्रहण में ग्रहण नहीं और त्याग में त्याग नहीं, वह न बन्ध है, न मुक्त है और न उसे आकाश में कार्य है, न पाताल में कार्य है, वह यथावस्तु और यथादृष्टि आत्मा को देखता है, उसको द्वैतभाव कुछ नहीं फुरता और न उसको बन्ध मुक्त के निमित्त कुछ कर्तव्यहै क्योंकि, सम्यक्ज्ञान से उसके सब संदेह जलगये। जैसे पेटी से छूटा पक्षी आकाश में उड़ता है तैसेही शङ्का से रहित उसका चित्त आत्म आकाश को प्राप्त हुआ है। हे रामजी! जिसका मन संसारभ्रम से मुक्त हुआ है और जो समरस आत्माभाव में स्थित है उसको इष्ट अनिष्ट में कुछ राग द्वेष नहीं होता; वह आकाश की नाईं सब में सम रहताहै। जैसे पलने में बालक अभिमान से रहित अङ्ग हिलाता है तैसेही ज्ञानी की चेष्टा अभिमान से रहित होती है और जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त होजाता है तैसेही आत्मानन्द में ज्ञानी घूर्म होजाता है और द्वैत की संभाल उसको कुछ नहीं; हेयोपादेय बुद्धिसे रहितहोताहै। हे रामजी! वह सबको सर्वप्रकार ग्रहण करता है और त्याग भी करता है परन्तु हृदय से ग्रहण त्याग कुछ नहीं करता। जैसे बालकों को ग्रहण त्याग की बुद्धि नहीं होती तैसेही ज्ञानी को नहीं होती और न उसको सबकार्यों में राग द्वेषही फुरता वह जगत् के पदार्थों को न सत् जानकर ग्रहण करता है और न असत् जानकर त्याग करता है; सबमें एक अनुस्यूत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्टमें सुख बुद्धि करताहै और न अनिष्ट में द्वेषबुद्धि करता है। हे रामजी! जो सूर्य शीतल होजावें; चन्द्रमा उष्ण होजावें और अग्नि अधो को धावे तौभी ज्ञानी को कुछ आश्चर्य नहीं भासता। वह जानता है कि, सब चिदात्मा की शक्ति फुरती है वह न किसी पर दया करता है और न निर्दयता करता है; न लज्जा

करता है, न निर्लज्ज है; न दीन होताहै, न उदार होता है; न सुखी होता है, न दुःखी होता है; और उसे न हर्ष है, न उद्वेगहै; वह सब विकारोंसे रहित शुद्ध अपने आप में स्थित है। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होताहै तैसेही वहभी निर्मलभाव में स्थित है और जैसे आकाशमें अंकुर नहीं उदयहोता तैसेही उसको राग द्वेष उदय नहीं होता। हे रामजी! ऐसा पुरुष सुख दुःख को कैसे ग्रहण करे? उसको जगज्जाल ऐसे भासताहै जैसे जल में तरङ्ग। ऐसे जानकर तुम भी अपने स्वभाव में स्थित हो। हे रामजी! जैसे स्वप्नमें एक निमेषमें स्वप्नसृष्टि फुरआती है और एकही क्षण में नष्ट होजाती है, तैसेही जाग्रत्में भी सृष्टि उपज आती है और लीन होजाती है। जो कुछ इच्छा, अनिच्छा, दुःख, सुख, शोक, मोह आदिक विकार हैं वे सब मन में फुरते हैं; जहां मन होता है वहां विकार भी होता है। जैसे जहां समुद्र होता है वहां तरङ्ग भी होता है तैसेही जहां मन होता है वहां विकार भी होता है। और जहां चित्त का अभाव है वहां विकारों का भी अभाव है। जबतक चित्त फुरता है तबतक जगत् भ्रम होता है और जब विचाररूपी सूर्य के तेज से मनरूपी बरफ़ का पुतला गल जाताहै तब आनन्द होता है। तब सुख दुःख की दशा शान्त होजाती है और जब सुख दुःख का अभाव हुआ तब ग्रहणत्यागभी मिटजाताहै और इष्ट अनिष्ट वाञ्छित नष्ट होजाते हैं। जब ये नष्ट होजाते हैं। तब शुभ अशुभभी नहीं रहते और जब शुभ अशुभ न रहे तब रमणीय अरमणीय भी नष्ट होजाता है, और भोगों की इच्छा भी नष्ट होजाती है। जब भोगों की इच्छा नष्ट होजाती है तब मन भी निराश पद में लीन होजाता है। हे रामजी! जब मूल से मन नष्ट हुआ तब मन में जो संसार के संकल्प हैं वे कहांरहे? जैसे तिलों के जलेसे तेल नहीं रहता तैसेही मन में संकल्प विकल्प नहीं रहते तब केवल शान्त आत्मा ही शेष रहता है। जैसे मन्दराचल के क्षोभ मिटे से क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होताहै तैसेही चित्त शान्त होता है। हे रामजी! इससे भाव में अभाव की भावना दृढ़ करो और स्वरूप का अभ्यास करो। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होताहै तैसेही कल्पना को त्यागकर महात्मा पुरुष निर्मल होजाताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजीवन्मुक्तवर्णनंनामद्विसप्ततितमस्सर्गः॥ ७२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे जल में द्रवता से चक्र आवृत होते हैं सो असतही सत् होकर भासते हैं तैसेही चित्त के फुरनेसे असत् जगत् सत् हो भासता है। और जैसे नेत्रों के दुखने से आकाश में तरवरे मोर के पुच्छवत् मुक्तमाला हो भासते हैं सो असत् ही सत् भासते हैं तैसेही चित्त के फुरनेसे जगत् भासता है। जैसे बादलों के चलनेसे चन्द्रमा चलता दृष्टि आताहै तैसेही चित्त के फुरनेसे जगत् भासता है। रामजी बोले, हे भगवन्! जिससे चित्त फुरता है और जिससे अफुर होता

है वह प्रकार कहिये कि, उसका मैं उपाय करूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बरफ़ में शीतलता; तिलोंमें तेल, फूलोंमें सुगन्ध और अग्निमें उष्णता होतीहै तैसेही चित्त में फुरना होता है। चित्त और फुरना दोनों एक अभेद वस्तु हैं; दोनों में जब एक नष्ट हो तब दोनों नष्टहोजाते हैं। जैसे शीतलता और श्वेतता के नष्ट हुये बरफ़ नष्ट होजाता है तैसेही एक के नाश हुये दोनों नाश होते हैं। इस लिये चित्तके नाश के दो क्रम हैं—योग और ज्ञान। चित्तकी वृत्तिके रोकने को योग कहते हैं और सम्यक् विचारने का नाम ज्ञान है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वृत्ति का निरोध किस युक्ति से होता है और प्राण, अपान पवन क्योंकर रोकेजाते हैं कि, जिस योग से अनन्त सुख और सम्पदा प्राप्तहोती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस देह में जो नाड़ी हैं उनमें प्राण वायु फिरता है—जैसे पृथ्वी पर नदियों का जल फिरताहै। वह प्राणवायु एकही है पर स्पन्द के वश से नाना प्रकार की विचित्र क्रिया को प्राप्त होता है उससे अपान आदिक संज्ञा पाताहै। योगीश्वरोंकी कल्पना है कि, जैसे पुष्पमें सुगन्ध और बरफ़में श्वेतता अभेदहै और आधार आधेय एकरूपहै तैसेही प्राण और चित्त अभेद-रूप है। जब भीतर प्राणवायु फुरती है तब चित्तकला फुरकर जो संकल्प के सम्मुख होती है उसीका नाम चित्त है। जैसे जल द्रवीभूत होताहै और उसमें लहर और चक्र फुर आते हैं तैसेही प्राणों से चित्त फुर आता है। चित्त के फुरने का कारण प्राणवायुही है जब प्राणवायु का निरोध होता है तब निश्चय करके मन भी शान्त होता है और मन के लीन हुये संसारभी लीन होजाता है—जैसे सूर्यके प्रकाशके अभाव हुये रात्रि में मनुष्यों का व्यवहार शान्त होजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो सूर्य और चन्द्र निरन्तर आगमन करते हैं तो देहरूपी गृह में प्राणवायु का रोकना किस प्रकार होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सन्तजनों के संग, सत्शास्त्रों के विचार और विषयके वैराग्य से योगाभ्यास होता है। प्रथम जगत् में असत्बुद्धि करनी चा-हिये और वाञ्छित जो अपना इष्टदेव है उसका ध्यान करना चाहिये। जब चिरकाल ध्यान होता है तब एकतत्त्व का अभ्यास होताहै उससे प्राणों का स्पन्द रोकाजाता है। रेचक, पूरक और कुम्भक जो प्राणायाम हैं उनका जब अखेदचित्त होकर अभ्यास दृढ़ करे और एक ध्यानसंयुक्त हो उससे भी प्राणों का स्पन्द रोकाजाता है। ऊंकार का उच्चार करनेसे ऊर्ध्व उसकी जो सूक्ष्मध्वनि होती है तो प्रथम शब्द बड़ी ध्वनि से होता है और फिर सूक्ष्मध्वनि शेष रहती है उसमें चित्त की वृत्ति लगावे तो सुषुप्तिरूप अवस्था में वृत्ति तद्रूप होजाती है तभी प्राणस्पन्द रोकाजाता है। रेचक प्राणायाम के अभ्यास से विस्तृत प्राणवायु से शून्यभाव आकाश में जाय लीन होताहै तबभी प्राण स्पन्द रोकाजाता है। कुम्भक के अभ्यास के बलसे भी प्राणवायु रोकाजाता है। तालु-

मूल के साथ यत्न से जिह्वा को तालुघण्टा से लगा खेचरीमुद्रा से वायु ऊर्ध्वरन्ध्र को जाती है और ऊर्ध्वरन्ध्र में गयेसे भी प्राणवायु का स्पन्द रोकाजाता है। नासिका के अग्र में जो द्वादश अंगुल पर्यन्त अपानरूपी चन्द्रमा का निर्मल स्थान आकाश में है उसको ज्यों का त्यों देखे तौभी प्राणस्पन्द रोकाजाता है। तालु के द्वादश अंगुल ऊर्ध्वरन्ध्र का अभ्यास हो तो उसके अन्त में जब प्राणों को लगावे तब उस संवित् में प्राणों का फुरना नष्ट होजाता है। जो भ्रुवमध्य त्रिपुटी में प्रकाश को त्यागकर जहां चेतनकला रहती है वहां वृत्ति लगावे तो उससे भी प्राणकला रोकीजातीहै। जो सर्ववासना को त्यागकर हृदय आकाश में चेतन संवित् का ध्यानकरे तौभी चिरकाल के अभ्यास से प्राणस्पन्द रोकाजाताहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जगत् के भूतों का हृदय क्या कहाता है जिस महाआदर्श में सर्वपदार्थ प्रतिबिम्बित होजाता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जगत् के भूतों के दो हृदय हैं—एक ग्रहण करने योग्य है और दूसरा त्यागने योग्य। नाभिसे जो दश अंगुल ऊर्ध्व है वह त्यागनेयोग्यहै परिच्छिन्नभाव से जो देह के एक स्थान में स्थित है और उसमें जो संवित्मात्र ज्ञान स्वरूप अनुभव से प्रकाशता है वह मनुष्य को ग्रहण करने योग्य है जो भीतर बाहर व्याप रहा है और वास्तव में भीतर बाहर से भी रहित है वही प्रधान हृदय है और सर्वपदार्थों का प्रतिबिम्ब धारनेवाला आदर्श है। सर्व सम्पदा का भण्डार और सब जीवों का संवित् हृदय वही है; एक अङ्ग का नाम हृदय नहीं। जैसे जल में एक पुरातन पत्थर पड़ा हो तो वह जल नहीं होजाता तैसेही संवित्मात्र के निकट संवित्मात्र तो नहीं होता? यह जड़रूप है और आत्मा चेतन आकाशहै। इसप्रधान हृदय से बल करके संवित्मात्र की ओर चित्त लगावे तब प्राण स्पन्दभी रोका जावेगा। हे रामजी! यह प्राणों का रोकना मैंने तुमसे कहा है और भी शास्त्रों में अनेक प्रकार से कहा है पर जिस जिस प्रकार गुरु के मुख से सुने उसी प्रकार अभ्यास करे तब प्राणों का निरोध होता है; गुरु के उपदेश से अन्यथा सिद्ध नहीं होता। जिसको अभ्यास करके निरोध सिद्ध हुआ है वह कल्याणमूर्ति है और कोई कल्याणमूर्ति नहीं होता। हे रामजी! अभ्यास करके प्राणायाम होता है और वैराग्य की दृढ़ता से वासनाक्षय होता है अर्थात् वासना रोकी जाती है। जब दृढ़ अभ्यास करे तब चित्त अचित्त होजाता है। हे रामजी! भृकुटी के दश अंगुल पर्यन्त जो वायु जाता है उसका बारम्बार जब अभ्यास करते तब वह क्षीण होजाता है और खेचरीमुद्रा अर्थात् तालु से जिह्वा लगाकरके जो अभ्यास करे तौभी प्राण रोकेजाते हैं। इसके अभ्याससे चित्तकी व्याकुलता जाती रहती है, और परम उपशम को प्राप्त होताहै। जो यह अभ्यास करता है वह पुरुष आत्मारामी होताहै, उसके सब शोक दूर होजाते हैं और हृदयमें आनन्द की प्राप्ति होती है।

इससे तुमभी अभ्यासकरो। जब प्राणस्पन्द मिटजाताहै तब चित्त भी स्थित होजाता है; उसके पीछे जो पद है सोही निर्वाणरूप है। हे रामजी! जब प्राणस्पन्द मिट जाते हैं तब चित्तभी स्थित होजाताहै। और जब चित्त स्थित हुआ तब वासना नष्टहोजाती है; जब वासना नष्ट होजाती है तब मोक्ष की प्राप्ति होती है। जबतक चित्त वासना से लपेटा है तबतक जन्म मरण देखता है और जब मन वासना से रहित होता है तब मोक्ष होता है। हे रामजी! प्राणवायु को रोककर वासना से रहित हो जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां बिचरो तो तुमको बन्धन न होगा। जब प्राण फुरता है तब मन उदय होता है और जब मन उदय हुआ तब संसारभ्रम होताहै। जब मन क्षीण होता है तब संसारभ्रम नष्ट होजाता है। हे रामजी! जब मन से संसार की वासना मिटजाती है तब अशब्दपद प्राप्त होता है। जिसमें यह सर्व है, और यह सर्व है, जिससे न सर्व है और जो न सर्व है; जो न सर्व में है और जिसमें न यह सर्व है ऐसा जो निर्गुणतत्त्व है सो सर्व कलना के त्यागेसे प्राप्त होताहै उसकी उपमा किसकी दीजे। आत्मा अविनाशी, निर्विकल्प और निर्गुण है; यह जगत् नाशरूपी संकल्पसे रचित गुणरूप है; उसका किस पदार्थ से दृष्टान्त दीजे? अर्थात् दूसरा कुछ नहीं; जो कुछ स्वादहै उनको स्वाद-कर्ता वही है और जितने प्रकाश हैं उनको प्रकाशकर्ता वही है; सर्वकलनाका कलना-रूप वही है और जितने पदार्थ हैं उन सबका अधिष्ठानरूप वही है। वह चित्त और आवरण के दूर हुये प्राप्त होताहै और सब पदार्थों की सीमा वही है। ऐसा जो आत्मरूप शीतलचन्द्रमा है जब उसमें बुद्धिमान् स्थित होता है तब जीवन्मुक्त कहाता है और उसकी सर्वइच्छा और आश्चर्य नष्ट होजाता है अहं त्वं आदिक कल्पना मिटजाती है सर्व व्यवहार विस्मरण होजाता है। ऐसा जो मुक्त मन है सो पुरुषोत्तम होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजीवन्मुक्तज्ञानबन्धोनामत्रिसप्ततितमस्सर्गः॥७३॥

रामजीने पूछा हे प्रभो! योगी की युक्ति तो आपने कही जिससे चित्त उपशम होता है अब सम्यक्ज्ञान का लक्षण भी कृपा करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! यह तो निश्चय है कि, आत्मा आनन्दरूप, आदि-अन्त से रहित, प्रकाश-रूप, सर्व, परमात्मा तत्त्व है इसी निश्चय को बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं। यह जो घट पटादिक अनेक पदार्थशक्ति है वह सब परमानन्दरूप आत्मा है उससे भिन्न नहीं। यह सम्यक् ज्ञान की दृष्टि है। और सर्वात्मा नित्य, शुद्ध, परमानन्दस्वरूप, सदा अपने आपमें स्थितहै ऐसा निश्चय सम्यक्ज्ञान है और जो इससे भिन्न हो सो असम्यक्ज्ञान है। हे रामजी! सम्यक्दर्शी को मोक्षहै और असम्यक्दर्शीको बन्धहै क्योंकि; उसको आत्मा जगतरूप भासता है और सम्यक्दर्शी को केवल आत्मा भासता है। जैसे रस्सी में असम्यक्दर्शी को सर्प भासता है और सम्यक्दर्शी को

रस्सीही भासती है। सर्व संवेदन और संकल्प से रहित शुद्ध संवित् परमात्मा है उसको जो जानता है वही परमात्मा के जाननेवाला बुद्धीश्वर है। इससे भिन्न अविद्या है। हे रामजी! आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें द्वैत कलना कोई नहीं। ऐसा जो यथार्थदर्शी है वही सम्यक्दर्शी है। सर्व आत्मा पूर्ण है उसमें भाव, अभाव, बन्ध, मोक्ष कोई नहीं और न एक है न द्वैत है; ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है जो सब चिदाकाश है तो बन्ध किसे कहिये और मोक्ष कौन हो? ऐसा जिनको ज्ञान है उनको काष्ठ पाषाण ब्रह्मा से च्यूँटी पर्यन्त सब सम भासता है अल्पमात्र भी भेद नहीं भासता तो वह कल्पना के सन्मुख कैसे होवे? हे रामजी! वस्तु के आदि अन्त अन्वय व्यतिरेक करके आत्मा सिद्ध होता है अर्थात् पदार्थ है सो है तौभी आत्मसत्ता से सिद्ध होता है और जो पदार्थ का अभाव होजाता है तौभी आत्मसत्ता शेष रहती है। तुम उसीके परायण हो रहो, वही अनुभवसत्ता जगत्-रूप होकर भासती है और जरा-मरण आदिक जो नाना प्रकार के विकार वस्तुरूप भासते हैं वह वस्तु अपने आपमेंही फुरती है। जैसे जल में द्रवता से नाना प्रकार के तरङ्ग बुद्बुदे होते हैं सो वे जलरूप हैं। कुछ भिन्न नहीं; तैसेही चित्त के फुरनेसे जो नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं। आत्मतत्त्वही अपने आप में स्थित है; जब उसमें स्थित होता है तब फिर दीन नहीं होता। जो पुरुष दृढ़ विचार-वान् है वह भोगों से चलायमान नहीं होता—जैसे मन्द पवन से मेरु पर्वत चलायमान नहीं होता—और जो अज्ञानी है और विचार से रहित मूढ़ है उसको भोग ग्रास कर लेते हैं—जैसे जल से रहित मछली को बगुला खालेता है। जिसको सर्व आत्मा ही भासता है वह सम्यक्दर्शी पुरुष कहाता है—वही मुक्तरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसम्यक्ज्ञानवर्णनंनामचतुस्सप्ततितमस्सर्गः ॥७४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विवेकी पुरुष जो भोगों के निकट आ प्राप्त होता है तौभी उनकी इच्छा नहीं करता क्योंकि; उसको उनमें अर्थबुद्धि नहीं—जैसे चित्र की लिखी हुई सुन्दर कमलिनी के निकट भँवरा आन प्राप्त होता है तौभी उसकी इच्छा नहीं करता। हे रामजी! सुख दुःख की प्राप्ति और निवृत्ति में इच्छा तबतक होती है जबतक देहाभिमान होता है; जब देहाभिमान निवृत्त हुआ तब कुछ इच्छा नहीं होती। हे रामजी! ममता करके दुःख होता है; जब रूप को नेत्र देखता है—तब उसको इष्ट मानकर प्रसन्न होता है और अनिष्ट मानकर द्वेष करता है जैसे बैल भार-वाहक चेष्टा करता है उसको लाभ और हानि कुछ नहीं और जिसको उसमें ममत्व होता है वह लाभ-हानि का हर्ष-शोक करताहै; तैसेही ममत्व से जीव इन्द्रियों के विषयों में हर्ष शोकवान् होताहै। जैसे गर्दभ कीचड़ में डूबे और राजा शोक करे कि

मेरे नगर का गर्दभ डूबा है; तैसेही ममत्व करके इन्द्रियों के विषयों में जीव दुःख पाता है; नहीं तो गर्दभ कीचड़ में डूबे तो राजा का क्या नष्ट होताहै। हे रामजी! यह इन्द्रियां तो अपने विषयों को ग्रहण करती हैं और इनमें जीव तपायमान होता है सोही आश्चर्य है। जिन विषयों की जीव चेष्टा और इच्छा करते हैं सो क्षण में नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! जो मार्ग में किसीके साथ स्नेह होजाता है तो ममत्व और प्यार से दुःख होता है। जो देहमें ममत्व करेगा उसको दुःख क्यों न होगा? चाहे कैसाही बुद्धिमान् हो वा शूरमा हो तौभी संगसे बन्धवान् होताही है अर्थात् इन्द्रियों के विषयों का अहंभाव ग्रहण करेगा तो उनके नाश होने से वहभी नाश होवेगा। जिन नेत्रों का विषयरूप है सो नेत्र साक्षी होकर रूप को ग्रहण करता है और जीव ऐसा मूर्ख है कि, औरों के धर्म आपमें मान लेता है और उन में तपायमान होता है। जैसे भ्रमदृष्टि से आकाश में मोर पुच्छवत् तरुवरे और दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही मूर्खता से जीव इन्द्रियों के धर्म अपने में मान लेता है। जैसे इन्द्रियों का साक्षी होकर जीव विषयों को ग्रहण करता है तैसेही चित्त भी अभिमान से रहित साक्षी होकर ग्रहणकरे तो रागद्वेष से तपायमान न हो जैसे जल में चक्र तरङ्ग फुरते दृष्टि आते हैं तैसेही इन्द्रियों के रूप में और इन्द्रियां फुर आती हैं; आधार आधेय से इनका सम्बन्ध होता है और चित्त इनके साथ मिलकर व्याकुल होता है रूप, इन्द्रिय और मन इनका परस्पर असंगभाव है जैसे मुख, दर्पण और प्रतिबिम्ब भिन्न २ असंग है तैसेही यहभी भिन्न २ असंग है परन्तु अज्ञान से मिले हुये भासते हैं। जैसे लाखसे साने, रूपे और चीनी का संयोग होताहै तैसेही अज्ञानसे रूप, अवलोक और मन संस्कारका संयोग होताहै। जब ज्ञान अग्नि मे अज्ञानरूपी लाख जलजावे तब परस्पर सब भिन्न २ होजाते हैं और फिर किसीका दुःख सुख किसीको नहीं लगता। जैसे दो लकड़ी का संयोग लाख से होताहै तैसेही अज्ञान से विषय इन्द्रियों और मन का संयोग होताहै और ज्ञानरूपी अग्नि से जब बिछुरजाते हैं तब फिर नहीं मिलते। जैसे माला के भिन्न २ दाने तागे में इकट्ठे होते हैं तैसेही देह और इन्द्रियों में अज्ञान से मेल होते हैं और जब विचार करके तागा टूट पड़े तब भिन्न २ होजावे फिर न मिले। हे रामजी! जिन पुरुषों को आत्मविचार हुआ है वे ऐसे विचारते हैं कि हमको दुःख देनेवाला चित्त था और चित्त के नष्ट हुये आनन्द हुआ है। जैसे मन्दिर में दुःख देनेवाला पिशाच रहता है तब दुःख होता है, नहीं तो मन्दिर दुःख नहीं देता, पिशाचही दुःख देताहै; तैसेही शरीररूपी मन्दिर में दुखः देनेवाला चित्तही है। हे चित्त! तूने मिथ्या मुझको दुःख दिया था। अब मैंने आपको जाना है। तू आदि भी तुच्छ है, अन्त भी तुच्छहै और वर्तमान में भी मिथ्या

जीवों को दुःख देता है। जैसे मिथ्या परछाहीं बालक को वैताल होकर दुःख देती है—बड़ा आश्चर्यहै। हे चित्त! तू तबतक दुःख देताहै जबतक आत्मस्वरूप को नहींजाना। जब आत्मस्वरूप का ज्ञान होता है तब तू कहीं दृष्टि नहीं आता। तू तो मायामात्रहै। टर अथवा जा मैं अब तुझसे मोहित नहीं होता। तू तो मूर्ख जड़ और मृतक है और तेरा आकार अविचार से सिद्ध है। अब मैंने पूर्वका स्वरूप पाया है; तू तत्त्व नहीं, भ्रान्तिमात्रहै। जो मूढ़है वह तुझसे मोहित होताहै, विचारवान् मोहित नहीं होता। जैसे दीपक से अन्धकार दृष्टि नहीं आता, तैसेही ज्ञानसे तू दृष्टि नहीं आता। हे मूर्खचित्त! तू बहुतकाल इस देहरूपी गृह में रहा है और तू वैतालरूप है। जैसे अपवित्रता और श्मशान आदिक स्थानों में वैताल रहताहै तैसेही सत्संग से रहित देहरूपी गृह श्मशान के समान सदा अपवित्र है वहां तेरे रहने का स्थान है। जहां सन्तों का निवास होताहै वहां तुझसरीखे ठौर नहीं पाते सो अब मेरे देहरूपी गृह में सत् विचार सन्तोषादिक सन्तजन आन स्थित हुये हैं तेरे बसने का ठौर नहीं। हे चित्त पिशाच! तू पूर्वरूपी तृष्णा पिशाचिनी और काम क्रोधादिक गुह्यक अपने साथ लेकर चिरपर्यन्त बिचरा है अब विवेकरूपी मन्त्र से मैंने तुझको निकाला है तब कल्याण हुआ। हे चित्त पिशाचरूप! तू प्रमादरूपी मद्यपानकर मत्त हुआ था और चिरपर्यन्त नृत्य करता था। अब मैंने विवेकरूपी मन्त्र से तुझको निकाला है तब देह-रूपी कन्दरा शुद्ध हुई है और शुद्धभाव पुरुषों ने निवास किया है। हे चित्त! मैंने तुझ को विवेकरूपी मित्रद्वारा वश किया है। अब तेरा क्या पराक्रम है? तू तबतक दुःख देता था जबतक विचाररूपी मित्र न पाया था। अब तेरा बल कुछ नहीं चलता। अब मैं महाकेवलभाव में स्थित हूं। आगे भी मैं तुझको जगाता था, आपसेही तू सबरूप है। जैसे कच्चे मन्त्रवाला सिंह को जगाता है और आप कष्ट पाता है तैसेही मैं तुझको जगाकर कष्ट पाता था। अब मैंने आत्मविचार से परिपक्वमन्त्र से तुझे वश किया है तब शान्तिमान् हुआ हूं। अब ममता और मान मेरे कुछ नहीं रहे, मोह, अहंकार सब नष्ट होगये हैं और इनका कलत्र भी नष्ट होगया है। मैं निर्मल और चेतन आत्माहूं। मेरा मुझको नमस्कार है। न मेरे में कोई आशा है, न कर्म है, न संसारहै, न कर्तृत्व है, न मन है, न भोक्तृत्व है, और न देहहै; ऐसा मेरा निर्गुणरूप आत्माहै। मेरा मुझको नमस्कार है। न कोई आत्माहै, न अनात्मा है, न अहं है, न त्वं है; किसी शब्द का वहां प्रवेश नहीं ऐसा निराश है। प्रकाशरूप, निर्मल आत्मा मैं अपने आप में स्थित हूं। ऐसा जो मैं आत्मा हूं मेरा मुझको नमस्कार है। मैं विकार नहीं हूं; मैं तो नित्य हूं, निराश हूं, सर्वकार्यों में अनुस्यूतहूं, और अंशांशीभाव से रहित हूं। ऐसा सर्वात्मा जो मैं हूं सो मेरा मुझको नमस्कार है। मैं सम सर्वगत, सूक्ष्म और अपने

स्वभावमें स्थितहूं और पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, आकाश आदिक जगत् मैं नहीं और मैंहीं सर्वपदार्थ होकर भासता हूं। ऐसा मैं सर्वात्मा हूं। अब मैं सर्वभाव को प्राप्त हुआ हूं और मनभाव मुझसे दूर हुआ है। मेरे प्रकाश से विश्व भासता है; मैं अजर, अमर और अनन्त हूं और गुणातीत अद्वैत हूं। मनन जिससे दूर हुआ है ऐसा जो मैं सुन्दररूप हूं जिसमें विश्व प्रकट है और स्वरूप से अविनाशी हूं उस अनन्त अजर अमर गुणातीत ईश्वररूप को नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तउपशमनामपञ्चसप्ततितमस्सर्गः॥७५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार विचारकर तत्त्ववेत्ता आत्मा को सम्यक्कर जानते हैं। तुमभी आत्मविचार का आश्रयकरके आत्मपद के आश्रय होरहो। यह जगत् सब आत्मरूप है; ऐसे जानकर चित्त से जगत् की सत्यता को त्यागकरो। जब ऐसे विचार करे तब चित्त कहां है? बड़ा आश्चर्य है कि जो चित्त वस्तुरूप दिखाई देता था सो अविदित मायामात्र असतरूप था। जैसे आकाश के फूल कहनेमात्र हैं तैसेही चित्त कहनेमात्र है और अविचार से दिखाई देता है। विचारवान् को चित्त असत् भासता है क्योंकि, अविचारसे सिद्ध है। जैसे नौका पर बैठे बालक को तट के वृक्ष चलते भासते हैं पर बुद्धिमान् को चलने में सद्भाव नहीं होता; तैसेही मूर्ख को चित्त सत्ता भासतीहै और विचारवान् का चित्त नष्ट होजाता है। जब मूर्खतारूप भ्रम शान्त होताहै तब चित्त कुछ नहीं पाया जाता। जैसे बालक चक्रपर चढ़ा हुआ फिरता है तो पर्वत आदिक पदार्थ उसको भ्रम से भासते हैं और जब चक्र ठहर जाता है तब चक्र आदि पदार्थ अचल भासते हैं; तैसेही चित्त के ठहरने से द्वैत कुछ नहीं भासता। आगे मुझको द्वैत भासता था इससे चित्त के फुरने से नाना प्रकार की तृष्णा इच्छा उठती थीं, अब चित्त के नष्ट हुये इन पदार्थों की भावना नष्ट हुई हैं और सब संशय और शोक मेरे नष्ट होगये हैं। अब मैं विगतज्वर स्थित हूं जैसे मैं स्थित हूं, तैसेहूं; एषणा कोई नहीं। जब चित्त का चैत्यभाव नष्ट हुआ तब इच्छा आदिक गुण कहां रहे? जैसे प्रकाश के नष्ट हुये वर्णज्ञान नहीं रहता तैसेही चित्त के नाश हुये इच्छाआदिक नहीं रहते। अब चित्त नष्ट हुआ, तृष्णा नष्ट होगई और मोह का पिंजड़ा टूट पड़ा अब मैं निरहंकार बोधवान् हूं; सब जगत् शान्तरूप आत्मा है और नानात्व कुछ नहीं। मैं निराभास, आदि–अन्त से रहित आनन्दपद को प्राप्त हुआ हूं। मेरा सर्वगत सूक्ष्म आत्मतत्त्व अपना आप है और उसमें मैं स्थित हूं। इन विचारों से अब क्या प्रयोजन है? जबतक आप को मैं देह जानता था तबतक ये विचार मूर्ख अवस्था में थे; अब मैं अमित, निराकार और केवल परमानन्द सच्चिदानन्द को प्राप्त हुआ। आगे मैं चित्तरूपी वैताल को आपही जगाता था और

आपही दुःखी होता था, अब विचाररूपी मन्त्र से मैंने इस को नष्ट किया है और निर्णय से अपने स्वरूप को प्राप्त हुआहूं। मैं शान्तात्मा अपने आप में स्थित हूं। हे रामजी! जिसको यह निश्चय प्राप्त हुआ है वह निर्द्वन्द्व रागद्वेष से रहित होकर स्थित होता है और प्रकृतकर्म करता है और परमानमद से रहित आनन्द करके पूर्ण होता है जैसे शरत्काल की रात्रि को पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से पूर्ण होता है तैसेही प्रकृत आचार कार्यकर्ता ज्ञानवान् का हृदय शान्त पूर्णआत्मा है॥

इति श्रीयोगवा०उपशमप्रकरणेचित्तशान्तिप्रतिपाद नामषट्सप्ततिनमस्सर्गः॥७६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विचार वेदविदोंने कहा है। पूर्व मुझमे ब्रह्माजीने यह विचार विन्ध्याचल पर्वत में कहा था। इसी विचार से वह परमपद में स्थित हुआ है। इसी दृष्टि का आश्रय करके आत्मविचार होकर तमरूपी संसारसमुद्र से तर जाओ। हे रामजी! इसपरएक और परमदृष्टि सुनो वह दृष्टि परमपद के प्राप्त करनेवाली है। जिस प्रकार वीतव मुनीश्वर विचार करके निःशङ्क स्थित हुआ है सो सुनो महातेजवान् वीतव मुनीश्वर ने संसार आधिव्याधि से वैराग्य किया और नागादि होके पर्वतों की कन्दराओं में विचरनेलगा। जैसे सूर्य सुमेरु पर्वत के चौफेर फिरता है तैसेही वह बिचरने लगा और संसार की क्रिया को दुःखरूप विचारता था कि, यह बड़े भ्रमदेनेवाली। ऐसे जानकर वह उद्वेगवान् हुआ और निर्विकल्प समाधि की इच्छाकर अपने व्यवहार को त्यागदिया और अपनी गौरकुटी त्यागकर और केलेके पत्रों की बनाकर बैठा। जैसे भँवरा कमल को त्यागकर नीलकमल पर जा बैठता है तैसेही गौरकुटी को त्यागकर वह श्यामकुटी में जा बैठा। नीचे उसने कुश बिछाया, उसपर मृगछाला बिछाया और उसपर पद्मासन कर बैठा और जैसे मेघ जल को त्यागकर शुद्धमौन स्थित होताहै तैसेही और क्रिया को त्यागकर शान्ति के निमित्त शान्तरूप स्थित हुआ। हाथों को तलेकर मुख ऊपरकर और ग्रीवा को सूधा करके स्थित हुआ और इन्द्रियों की वृत्ति को रोक फिर मन की वृत्ति को भी रोका। जैसे सुमेरु की कन्दरा में सूर्य का प्रकाश बाहर से मिटजाताहै तैसेही इन्द्रियों की रोकी वृत्ति बाहरसे भी मिटजाती है। और हृदय से भी विषयों की चिन्तना का योग उसने त्यागकिया। इस प्रकार वह क्रम करके स्थितहुआ। जब मन निकलजावे तब वह कहे कि, बड़ा आश्चर्य है, मन महाचञ्चल है कि, जो मैं स्थित करता हूं तो फिर निकलजाता है। जैसे सूखापत्ता तरङ्ग में पड़ा नहीं ठहरता तैसेही मन एक क्षण भी नहीं ठहरता सर्वदा इन्द्रियों के विषयों की ओर धाता है। जैसे गेंद को ज्यों २ ताड़ना करते हैं त्यों २ उछलता है तैसेही इस मूर्ख मन को जिस २ ओरसे खैंचताहूं उसी ओर फिर धावता है और उन्मत्त हाथी की नाईं झूमताहै; जो घटकी ओरसे

खैंचताहूं तो रस की ओर निकलजाता है और जो रस की ओर से खैंचताहूं तो गन्ध की ओर धावता है स्थिर कदाचित् नहीं होता। जैसे वानर कभी किसी डालपर कभी किसी डालपर जा बैठताहै इसी प्रकार मूर्ख मनभी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की ओर धावता है स्थिर नहीं होता। इसके ग्रहण करनेके पञ्च स्थान हैं जिस मार्गों से विषयों को ग्रहण करता है सो पञ्चज्ञान इन्द्रियां हैं। अरे मूर्ख, मन! तू किन निमित्त विषयों की ओर धावता है यह तो आप जड़ और असत्‌रूप भ्रान्तिमात्र है तू इनसे शान्ति को कैसे पावेगा? इनमें चपलता से इच्छाकरना अनर्थ का कारण है। ज्यों ज्यों इनके अर्थों को ग्रहण करेगा त्यों २ दुःखके समूह को प्राप्तहोगा। ये विषय जड़ और असत्‌रूप हैं और तूभी जड़ है जैसे मृगतृष्णा की नदी असत् होती है तैसेही ये भी असत्‌रूप हैं। हे मन! ये तो सब असाररूप हैं तूभी इन्द्रियों सहित जड़रूप है; तू कर्तृत्वका अभिमान क्यों करता है? सबका कर्ता चिदानन्द आत्माभगवान् सदा साक्षीभूत है तैसेही आत्मा भी साक्षीभूत है तू क्यों वृथा तपायमान होता है? जैसे सूर्य सबकी क्रियाओं को कराता साक्षीभूत है तैसेही आत्मा साक्षीभूत है और सब जगत् भ्रान्तिमात्र है। जैसे अज्ञान से रस्सी में सर्प भासता है तैसेही अज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है। जैसे आकाश और पाताल का सम्बन्ध कुछ नहीं होता, ब्राह्मण और चाण्डाल का संयोग नहीं होता और सूर्य और तमका सम्बन्ध नहीं होता; तैसे ही आत्मा चित्त और इन्द्रियों का सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा सत्तामात्र है और ये जड़ और असत्‌रूप हैं इनका सम्बन्ध कैसेहो? आत्मा सबसे न्यारा साक्षीभूत है। जैसे सूर्य सब जनों से न्यारा रहताहै तैसेही आत्मा सबसे न्यारा साक्षीभूत है। हे चित्त! तूतो मूर्ख है विषयरूपी चबेने में रह सर्व ओरसे भक्षण करना भी कदाचित् तृप्त नहीं होता और विचार कि, मिथ्या कूकर की नाईं चेष्टा करताहै। तेरे साथ हम को कुछ प्रयोजन नहीं। हे मूर्ख! तूतो मिथ्या अहं २ करता है और तेरी वासना अत्यन्त असत्‌रूप है। और जिन पदार्थों की तू वासना करता है वे भी असत्‌रूप हैं। तेरा और आत्मा का सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा चेतनरूप है और तू मिथ्याजड़रूप है? यह मैंने जाना है कि, जन्म मरण आदिक विकार और जीवत्वभाव को तूने मुझ को प्राप्त किया है। मैंतो केवल चेतन परब्रह्म हूं मिथ्या अहंकार करके जीवत्वभाव को प्राप्त हुआ है? और देहमात्र आपको जानता है। मैं तो संवित्‌मात्र नित्यशुद्ध आदि अन्त से रहित परमानन्द चिदाकाश अनन्त आत्मा हूं। अब मैं स्वरूप में आप जगा और सद्भाव मुझको कुछ नहीं दृष्ट आता। हे मूर्ख, मन! जिन भोगों को तू सुखरूप जानकर धावता है वे अविचार से प्रथम तो अमृत की नाईं भासते हैं और पीछे विष की नाईं होजाते हैं और वियोग से जलाते हैं। आपको तू कर्ता भोक्ता भी

मिथ्या मानता है; तू कर्ता भोक्ता नहीं और इन्द्रियां कर्ता भोक्ता नहीं क्योंकि; जड़ हैं। जो तुम जड़ हुये तो तुम्हारे साथ मित्रभाव कैसेहो और जो तू जड़ और असत्‌रूप है तो कर्ता भोक्ता कैसे हो? और जो तू चेतन और सत्‌रूप है तौभी तेरेमें कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं होसक्ता क्योंकि, तू मिथ्या है और मैं प्रत्यक्ष चेतन हूं। तू कर्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्या अपने में स्थापन करता है; तू मिथ्या है। जब मैं तुझको सिद्ध करता हूं तब तू होता है तू निश्चय करके जड़ है, तुझको कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे हो? जैसे पत्थर की शिला नृत्य नहीं करसक्ती तैसेही तुझको कर्तृत्व की सामर्थ्य नहीं। तेरेमें जो कर्तृत्व है सो मेरी शक्ति है—जैसे हसुआ घास, तृणआदिक को काटता है सो केवल आपसे नहीं काटता पुरुष की शक्ति से काटता है और खड्ग में जो हननक्रिया होती है वह भी पुरुष की शक्ति है; तैसेही तुम्हारे में कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति से है। जैसे पात्र से जल पान करते हैं तो पात्र नहीं करता पान पुरुष ही करता है और पात्र करके पान करता तैसेही तुम्हारेमें कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति करती है और मेरी सत्ता पाकर तुम अपनी चेष्टा में बिचरते हो। जैसे सूर्य का प्रकाश पाकर लोग अपनी २ चेष्टा करते हैं तैसेही मेरी शक्ति पाकर तुम्हारी चेष्टा होती है। अज्ञान करके तुम जड़जीव से रहतेहो और ज्ञान करके लीन होजाते हो। जैसे सूर्य के तेजसे बरफ़ का पुतला गल जाता है। इससे, हे चित्त! अब मैंने निश्चय किया है, तू मृतकरूप और मूढ़ है। परमार्थ से न तू है और न इन्द्रियां हैं। जैसे इन्द्रजाल की बाजी के पदार्थ भासतेहैं सो सब मिथ्या हैं। मैं केवल विज्ञानस्वरूप अपने आपमें स्थित निरामय, अजर, अमर, नित्य, शुद्ध, बोध, परमानन्दरूप हूं और मैंही नानारूप होकर भासता हूं परन्तु कदाचित् द्वैतभावको नहीं प्राप्त होता सदा अपने आपमें स्थित हूं। जैसे जल में तरङ्ग बुद्बुदे दृष्टि आते हैं सो जलरूप हैं तैसेही सर्वपदार्थ मेरेमें भासते हैं सो मुझसे भिन्न नहीं। हे चित्त! तूभी चिन्मात्रभाव को प्राप्त हो; जब तू चिन्मात्रभावको प्राप्त होगा तब तेरा भिन्नभाव कुछ न रहेगा और शोकसे रहित होगा। आत्मतत्त्व सर्वभाव में स्थित और सर्वरूप है; जब तू उसको प्राप्त होगा तब सब कुछ तुझको प्राप्त होगा। न कोई देह है और न जगत् है सर्व ब्रह्मही है; ब्रह्मही ऐसे भासता है; वास्तव में अहं त्वं कल्पना कोई नहीं। हे चित्त! आत्मा चेतनरूप और सर्वगत है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं तौभी तुझको संताप नहीं और जो अनात्मा, जड़ और असत्‌रूप है तौभी तू न रहा। जो कुछ परिच्छिन्न सा तू बनता है सो मिथ्या भ्रम है; आत्मतत्त्व सर्वव्यापकरूप है द्वैत कुछ नहीं और सर्व वही है तो भिन्न अहं त्वं की कल्पना कैसे हो? असत् से कार्य की सिद्धता कुछ नहीं होती। जैसे शशे के सींग असत् हैं और उनसे मारनेका कार्य सिद्ध नहीं होता तैसेही तुमसे कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य

कैसे हो ? और जो तू कहे कि, मैं सत्-असत् और चेतन-जड़ के मध्यभाव में हूं-जैसे तम और प्रकाश का मध्यभाव छाया है-तो सूर्यरूप परमात्मा निरञ्जन के विद्यमान रहते मन्दभावी छाया कैसे रहे जिससे कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझको नहीं होता क्योंकि; तू जड़ है। जैसे हसुवा अपने आप कुछ नहीं काटसक्ता जब मनुष्य के हाथ की शक्ति होती है तब कार्य होता है; तैसेही तुमसे कुछ कार्य नहीं होता जब आत्मसत्ता तुमसे मिलती है तब तुमसे कार्य होताहै। तुम क्यों अहंकार करके वृथा तपायमान होतेहो ? हे चित्त ! जो तू कहे कि ईश्वर का उपकारहै तो ईश्वर जो परमात्माहै उसको करने न करने में कुछ प्रयोजन नहीं। सब का कर्ता भी वही है और अकर्ता भी वही है। जैसे आकाश पोल से सबको वृद्धता देनेवाला है परन्तु स्पर्श किसीसे नहीं करता तैसेही परमात्मा सब सत्ता देनेवाला है और अलेपहै। हे मूर्ख, मन ! तू क्यों भोगोंकी वाञ्छा करताहै ? तूतो जड़ और असत्रूपहै और देहभी जड़ असत्रूपहै, भोग कैसे भोगोगे? और जो परमात्मा के निमित्त इच्छा करतेहो तो परमात्मा तो सदा तृप्त है और इच्छासे रहितहै। सर्व में वही पूर्ण है और दूसरे से रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपने आपमें स्थित है-तुझको किसकी चिन्ता है ? इससे वृथा कल्पना को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो-जहां सर्वक्लेश शान्त होजाते हैं। जो तू कहे कि, परमात्माके साथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्व सम्बन्ध है तोभी नहीं बनता-जैसे फूल और पत्थर का सम्बन्ध नहीं होता। तैसेही परमात्मा के साथ तेरा सम्बन्ध नहीं होता। समान, अधिकरण और द्रव्य का सम्बन्ध होताहै-जैसे जल और मृत्तिका का सम्बन्ध होताहै; जैसे औषध में चन्द्रमा की सत्ता प्राप्त होतीहै; जैसे सूर्य की तपन से शिला तपजाती है; जैसे बीज अंकुर का सम्बन्ध होता है; पिता और पुत्र का सम्बन्ध होता है और द्रव्य और गुण का सम्बन्ध होता है। आकार सहित वस्तु का सम्बन्ध निराकार निर्गुण वस्तु से कैसे हो ? परमात्मा चेतन है, तू जड़ है; वह प्रकाशरूप है, तू तमरूप है; वह सत्रूप है, तू असत्रूप है; इस कारण सम्बन्ध तो किसी के साथ नहीं बनताहै तो तू क्यों वृथा जलता है ? तू मननरूप है परमात्मा सर्वकलना से रहित है। तेज की एकता तेज से होती है और जल की एकता जल से होती है। तू कलङ्करूप है; परमात्मा निष्कलङ्करूप है; तेरी एकता उससे कैसेहो ? जिसका कुछ अङ्ग होता है उसका सम्बन्ध भी होता है सो सम्बन्ध तीन प्रकार का है-सम, अर्धसम और विलक्षण। जैसे जल से जल की एकता और तेजसे तेज की एकता होती है यह समसम्बन्ध है पर तेरा आत्मा के साथ समसम्बन्ध नहीं। दूसरा अर्ध सम सम्बन्ध यह है कि, जैसे स्त्री और पुरुष के अङ्ग समान होते हैं परन्तु विलक्षणरूप हैं सो अर्ध सम सम्बन्ध भी तेरा और आत्मा का नहीं। कुछ अन्य की नाईं भी तेरा सम्बन्ध नहीं-जैसे जल

और दूध का सम्बन्ध होता है तैसे भी तेरा सम्बन्ध नहीं—और अत्यन्त जो विलक्षण हैं उनकी नाईं भी तेरा सम्बन्ध नहीं—जैसे काष्ठ और लाख; पुरुष और हाथी, घोड़ा आदिक का सम्बन्ध नहीं। आधार—आधेयवत् भी तेरा सम्बन्ध नहीं—जैसे बीज और अंकुर, पिता और पुत्र आदिक का जो सम्बन्ध है तैसेभी तेरा और आत्मा का सम्बन्ध नहीं क्योंकि; सम्बन्ध उसका होताहै जिसके साथ कुछ भी अङ्ग मिलता है; जिसका कोई अङ्ग नहीं मिलता और परस्पर विरोध हो उसका सम्बन्ध कैसे कहिये ? जैसे कहिये कि; शशे के सींग पर अमृत का चन्द्रमा बैठाहै वा तम और प्रकाश इकट्ठे हैं तो जैसे यह नहीं बनता तैसेही आत्मा के साथ देह, मन और इन्द्रियों का सम्बन्ध नहीं बनता क्योंकि; आत्मा सर्वकलना से अतीत, नित्य शुद्ध, अद्वैत और प्रकाशरूप है और मनादिक जड़ असत्, मिथ्या और तमरूप हैं इनका सम्बन्ध नहीं। जिनका परस्पर विरोध हो उनका सम्बन्ध कैसे हो ? तुमतो परमात्मा के अज्ञान से मन, इन्द्रियां और देहादिक सहित उदय हुये हो और आत्मा के ज्ञान से अभाव होजाते हो फिर सम्बन्ध कैसे हो ? हे मन ! जो कुछ जगत् है वह सब ब्रह्मस्वरूप है—द्वैत नहीं और अहं त्वं की कल्पनाभी कोई नहीं। ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है; सब कलना तेरे में थी और तू तबतक था जबतक स्वरूप का अज्ञान था। जब स्वरूप का ज्ञान होता है और अज्ञान नष्ट होता है तब तू कहां है। जैसे रात्रि के अभाव से निशाचरों का अभाव होजाता है तैसेही अज्ञान के नाश हुये तेरा अभाव होजाता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेचित्तानुशासनंनाम सप्तसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार वीतव मुनीश्वर विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में तीक्ष्णबुद्धि से विचारनेलगा और औरभी जो कुछ उसने कहा सो सुनो। अनात्मा जो देह इन्द्रियां मनादिक हैं वे संकल्प से उपजे हैं, जब ज्ञान उदय होता है तब इनका अभाव होजाता है। हे मन ! जैसे सूर्यके उदय हुये तम नष्ट होजाता है तैसेही नित्य उदितरूप अनुभव स्वरूप परमात्मा के उदय हुये तुम्हारा अभाव होजाता है। वासना से उसका आवरण होता है और जब वासना का अभाव होजाता है तब आवरण का भी अभाव होजाता है। जैसे मेघ के नष्ट हुये सूर्य प्रकाशता है तैसेही वासना के अभाव हुये आत्मातत्त्व प्रकाशता है। वासना का मूल अज्ञान है; जब अज्ञानसहित वासना नष्ट होती है तब चिदानन्द ब्रह्म प्रकाशता है। वासनाही का नाम बन्ध है और वासना की निवृत्ति का नाम मोक्ष है। जब वासनारूपी रस्सी काटोगे तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा। जैसे प्रकाश विना अन्धकार

का नाश नहीं होता तैसेही मन, इन्द्रियां, देहादिक आत्मविचार विना नाश नहीं होतीं । जब विचार करके आत्मपद प्राप्त हो तब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव होजाता है अर्थात् इनका अभिमान नष्ट होता है और इनके धर्म अपने में नहीं भासते । जबतक देह इन्द्रियों के साथ आवरण है तबलग आत्मपद नहीं प्राप्त होसक्ता; इससे कल्याण के निमित्त आत्मपद पानेका अभ्यास करो । जबतक जीव मन और इन्द्रियों के गुणों के साथ आपको मिला जानता है तबतक अपने स्वरूप की विभुता और सिद्धता नहीं भासती; जब आत्मा का साक्षात्कार होजावेगा तब राग द्वेषादिक विकार नष्ट होंगे । जैसे सूर्यके उदय हुये निशाचरों का अभाव होजाता है तैसेही आत्मा के साक्षात्कार हुये विकारों का अभाव होता है । जिसके देखेसे इन का अभाव होजाता है उसका आत्मा के साथ सम्बन्ध कैसे हो ? जैसे प्रकाश और तम का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही सत् असत् का सम्बन्ध नहीं होता और जैसे जीव से मृतक का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही आत्मा अनात्मा का सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा सर्वकल्पनासे रहित है और मन आदिक सर्वकल्पनारूप हैं । कहां यह मूक, जड़ और अनात्मारूप और कहां नित्य, चेतन, प्रकाश, निराकार, आत्मारूप इन का परस्पर विरोधरूपहैं तो सम्बन्ध कैसे कहिये—ये तो निश्चय करके अनर्थ के कारण हैं । जबतक इनका अभिमान है तबतक जगत् दुःखरूपहै और जब इनका वियोग हो तब जगत् परमात्मरूप होताहै । जबतक आत्मा का अज्ञान है तबतक मनुष्य आप को इनमें मिला देखता है और दुःख पाता है और जब आत्मा का ज्ञान होता है तब अपने साथ इनका संयोग नहीं देखता । यह मैंने निश्चय करके जानाहै कि, इन्द्रियां और मनके संयोग से जगत् भासता है और जब इन्द्रियों का ग्राम नष्ट होजाताहै तब जगत् परमात्मारूप होजाता है । मैं जो आत्मा, मन और इन्द्रियों को इकट्ठा जानता था सो प्रमादरूपी मद्य के पान से मत्त हुआ मन से जानता था । अब आत्मविचार से मन नष्ट हुआ तब सुखी हुआ हूं । जो विष को पान करके मूर्च्छित हो सो तो बनता है परन्तु पान किये विना मूर्च्छित हो सो आश्चर्य है । इससे यदि अनात्मा का इसके साथ संयोग होता है तो सुख दुःख करके राग द्वेषवान् होना भी बनता पर आत्मा तो सुख दुःखका साक्षीभूतहै । सुखका संयोग ही जिससे नहीं और राग द्वेष से जलता है तो महामूर्खता है । आत्मा तो सुख दुःख का साक्षीभूत है जैसा उसके आगे अभ्यास होता है तैसाही भासता है; कदाचित् विपर्यय भाव को नहीं प्राप्त होता सुख दुःख में मूर्ख मन राग द्वेषवान् होताहै, आत्मा तो सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है उसके साथ इन्द्रियों का संयोग कैसेहो ? अब जो संयोग का अभाव सिद्ध हुआ तो आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे कहिये ? जहां चित्तकलना होती

है वहां कर्तृत्व भोक्तृत्व भी होता है और जहां चित्तकलना का अभाव है वहां कर्तृत्व भोक्तृत्व का भी अभाव है। ऐसा निष्कलङ्क आत्मतत्त्व मैं हूं कि, न कर्ता हूं, न भोक्ता हूं, न मेरेमें बन्ध है, न मोक्ष है, न हन्ता हैं, न अहन्ता हैं; मैं सर्वात्मा अलेपरूप हूं। हे मन! तू भी मैं हूं और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश पांचोतत्त्व भी मैंही हूं। इस प्रकार निर्णय करके जिसने धारा है वह मोह को नहीं प्राप्त होता। जो अहं अभिमान करनेवाला आत्मा से आपको भिन्न जानता है वह दुःखी होताहै और जब अपने स्वभाव में स्थित होता है तब परमसुखी होता है। इससे जिसको कल्याण की इच्छा हो उसको एक आत्मा परमात्मपरायण होना योग्य है। जब स्वरूप का त्यागकर संकल्प की ओर धावता है तब दुःखों के समूह को प्राप्त होता है। हे चित्त! जो तू अपनेमें कर्तृत्व देखता था सो इन्द्रियों सहित जड़रूप पत्थर के समान हैं—जैसे आकाश में पवन नहीं लगता तैसेही तुमसे कर्तृत्व नहीं होता। जब स्वरूप का प्रमाद होताहै तब जीव चित्त आदिक से आपको मिला जानता है और चित्तादिक आत्मा की सत्ता पाकर चेतन होताहै जैसे अग्नि की सत्ता पाकर लोहाभी जलासक्ता है तैसेही तुम आत्मा की सत्ता पाकर कर्तृत्व भोक्तृत्व में समर्थ होतेहो। जब आत्म विचार करके स्वरूप का साक्षात्कार होता है, अज्ञानवृत्ति निवृत्त होजाती है और मनादिक का वियोग होता है तब सर्वकलना से रहित हुआ केवल मोक्षरूप आत्मा होता है और कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभाव होजाता है। जैसे आकाश में लाली का अभाव है तैसेही आत्मा में कर्तृत्व का अभाव है। सब जगत् आत्मा स्वरूप भासता है। जैसे समुद्र तो तरङ्ग आदिक नाना प्रकार से होता है सो सब जलरूपहै—भिन्न नहीं; तैसेही सर्व जगत् आत्मारूप है—आत्मा से भिन्न नहीं। सच्चिदानन्द आत्मा मैं अपने आपमें स्थित हूं और द्वैतकलना मेरेमें कोई नहीं। जैसे समुद्र उष्णता से रहित है तैसेही परमात्मा सर्वकलना से रहित है और जैसे आकाशमें वन नहीं होता तैसेही परमात्मा में कलना नहीं होती वह संवेदन से रहित, संवित्मात्र सर्वात्मा है; जब उसका साक्षात्कार होताहै तब अहं त्वं आदिक कलना का अभाव होजाताहै। वह अनादि, अरूप सर्वगत, सदा अपने आपमें स्थित है; ऐसा जो अद्वैत तत्त्व है उसको द्वैतकलना आरोपने को कौन समर्थ है ऐसा कौन है जो आकाश में ऋग्वेद लिखे? नित्यउद्योत; सर्वकासार, अद्वैत आत्मा है उसमें द्वैतकलना का अभाव है और सबमें पूर्ण, निर्मल, नित्य आनन्दरूप है। ऐसे आत्मा को अब मैं प्राप्त हुआ हूं; जगत् का सुख दुःख अब नष्ट हुआ है और सम शान्तरूप हुआ हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलितवोपाख्यानेअनुशासनयोगोपदेशोनामाष्टसप्ततितमस्सर्गः॥ ७८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनिश्रेष्ठ विचारताथा। फिर जो कुछ वह निर्मलबुद्धि से विचारने लगा सोभी सुनो। हे इन्द्रियरूप, मन! तुम क्यों अपने अर्थों की ओर धावते हो? तुमको तो विषयों से शान्ति नहीं होती-जैसे मृग मरुस्थल की नदी देखकर दौड़ता है और शान्तिमान् नहीं होता। इससे तुमभी विषयों की ओर तृष्णा करनेसे शान्तिमान् न होगे। इनकी इच्छा त्यागकर जो परमात्म तत्त्व अविनाशी, सर्व अवस्था में एकरस और सत्य है उसको ग्रहणकरो तव सब दुःख तुम्हारे मिट जावेंगे। तुम्हारे साथ मैं मिलाथा तब मैंने भी दुःख पाया। तुम अज्ञान से उत्पन्न हुये हो और जो तुम्हारे साथ मिलता है उसको भी दुःख प्राप्त होताहै। जैसे तपी हुई लाख जिसके शरीर मे स्पर्श करती है उसको जलाती है तैसेही जिसको तुम्हारा सं हुआहै वह दुःख पाता है। हे मन! यह जीव तुम्हारे संग से काल के मुख में जापड़ताहै-जैसे नदी जलसहित होती है तब समुद्र की ओर चली जाती है—जल से रहित हो तो क्यों जावे; तैसेही तुम्हारा संग करके जीव काल के मुखमें जापड़ता है, तुम्हारा संग न हो तो क्यों पड़े? जैसे मेघ कुहिरे से सूर्य को घेर लेता है; तैसेही मनरूपी मेघ इच्छारूपी कुहिरे से आत्मारूपी सूर्यको घेरलेता है और परम्परा दुःखों की वर्षा करनेवाला है। हे मन! तेरेमें चिन्ता उठती है इससे तू मर्कटकी नाईं है। जैसे मर्कट वृक्ष को ठहरने नहीं देता, हिलाता है तैसेही चित्त देह को ठहरने नहीं देता। चित्तरूपी पखेरू के लोभ और लज्जा दो पंख हैं और रागद्वेषरूपी चोंच है जिससे शरीररूपी वृक्ष पर बैठा शुभगणों को काट २ खाता है। चित्तरूपी महानीच कुत्ता भोग भावनारूपी महाअपवित्र पदार्थों को हृदयरूपी स्थान में इकट्ठा करता है और ऐसी चेष्टा से कदाचित् रहित नहीं होता। चित्तरूपी उलूक अज्ञानरूपी रात्रि में विचरता है; चेष्टा करके प्रसन्न होताहै और शब्द करता है। जैसे श्मशान से वैताल शब्द करता है। जब अज्ञानरूपी रात्रि नष्ट हो तब चित्तरूपी उलूक का भी अभाव हो और सम्पदा आन प्रवेश करे। जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल उदय होता है तैसेही सम्पदा प्रफुल्लित होती है जब मोहरूपी कुहिरा और इच्छारूपी धूलि हृदयरूपी आकाश से निवृत्त होती है तब निर्मल आकाश प्रकट होता है। हे चित्त! जबतक तू नष्ट नहीं होता तबतक शान्ति नहीं होती। स्वस्थ बैठे हुये जो चिन्ता प्राप्त होती है वह तेरेही संयोग से होती है। जहां चित्त नष्ट होता है तहां सर्व आनन्द होकर शीतलता और मित्रता से पावन होता है। जैसे शीतकाल का आकाश निर्मल होता है और मेघ के नष्ट हुये सूर्य प्रकाशता है तैसेही अज्ञान के नष्ट हुये आत्मा प्रकाशता और प्रसन्नता, गम्भीरता महत्त्वता, और समता होती है। जैसे वायु और मन्दराचल पर्वतसे रहित क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होता है और पूर्णमासी

का चन्द्रमा शोभता है तैसेही अज्ञान के नाशहुये आत्मानन्द पाकर यह मनुष्य शोभता है। हे चित्त! यह स्थावर जङ्गम जगत् संवित्रूप आकाश में है। उस महत् ब्रह्म को कुम्भी प्राप्त हो। जो पुरुष आशारूपी फांसी को तोड़कर आत्मपद में प्राप्त हुआ है और जिसने संसार का सद्भाव निवृत्त किया है वह जन्म मरण के बन्धन में नहीं पड़ता। जैसे जला हुआ पत्र फिर हरा नहीं होता तैसेही चित्त नष्ट हुआ जन्म मरण नहीं पावता। हे चित्त! तू सबको भक्षण करनेवाला है। जो तू संसार को सत् मानकर उसकी ओर धावेगा तो तेरा कल्याण न होगा और जो आत्मा की ओर आवेगा तो तेरा कल्याण होगा। जब तू अपना अभावकर आत्मपद में स्थित होगा तब कल्याणरूप होगा और जो तू अपना सद्भाव करेगा कि, आकार को न त्यागेगा तो दुःखी होगा। जो तेरा जीना है वह मृत्यु समान है और जो मृत्यु है सो जीने के समान है। दोनों पक्षों में जो तेरी इच्छा हो सो अङ्गीकार कर। जो तू अबहीं आपको आत्मपद में निर्वाण करेगा तो परमपद को प्राप्त होकर परमसुखी होगा और जो न करेगा तो परमदुःखी होगा जो आत्मपद का त्याग करेगा वह मूढ़ है। तेरा निर्वाण होना आत्मपद में जीनेका निमित्त है और आत्मा से भिन्न जो तू जीनेकी इच्छा करता है सो तेरा जीना मिथ्या है अर्थात् तू आदि भी मिथ्या है और अब भी विचार विना भ्रममात्र है; विचार कियेसे नष्ट होजावेगा। जैसे सूर्य के प्रकाश विना अन्धकार होताहै और प्रकाश से नष्ट होजाता है तैसेही विचार विना चित्त है; विचार से नाश होजाता है। इतने काल मैं अविवेक से ही जीता था। जैसे बालकों को अपनी परछाहीं में वैतालकल्पना होतीहै और विचार विना भय पाता है—विचार कियेसे निर्भय होता है; तैसेही अब मैं तेरे संगसे छूट अपने पूर्वस्वरूप को प्राप्त हुआ हूं और विवेक से तेरा अभाव हुआ है। इससे विवेक को नमस्कार है। हे चित्त! अविवेक से तू मेरा मित्र था अब बोध से तेरा चित्तभाव नष्ट होगया। तू परमेश्वररूप है। अब वासना नष्ट हुई है। आगे तेरेमें नाना प्रकार की वासना थी उससे तू मलीन और दुःखरूप था। अब वासना के नष्ट होनेसे तेरा परमेश्वररूप हुआ है। तेरेमें अज्ञान से चित्तस्वभाव उपजा दुःखों का कारण था सो विवेकसे लीन हुआ है। जैसे रात्रि के पदार्थ सूर्यके उदय हुये लीन होजाते हैं तैसेही विवेक से चित्तभाव नष्ट हुआ है सो सिद्धान्त का कारण है। तेरे संगसे मैं तुच्छसा होगया था; अब शास्त्रों की युक्ति से निर्णय किया है कि, न तू आगे था, न अब है और न फिर होगा। जबतक मैंने आपको न जाना था तबतक तेरा सद्भाव था; अब मैंने आपको जाना है और अपने आपमें स्थित हुआ हूं। अब मैं परम निर्वाण और शान्तरूप हूं; सब ताप मेरे नष्ट हुये हैं और नित्यशुद्ध चिदानन्द परब्रह्म स्वरूप हूं। जगत् की सत्य-असत्य कलना

मेरी नष्ट हुई है क्योंकि, कलना सब चित्त में थी; जब चित्त निर्वाण होगया तब कलना कहां रही ? मैं केवल शुद्ध आत्मा हूं मेरा प्रतियोगी कोई नहीं और न व्यवच्छेद है क्योंकि; दूसरा कोई नहीं केवल चित्तकी चेतना फुरती थी सो निर्वाण होगई है और अब मैं स्वस्थ हुआ हूं । जैसे तरङ्गों से रहित समुद्र अचल होताहै तैसेही सर्वकलना से रहित मैं वीतराग हूं और संवेदन से रहित समसत्तामात्र अपने आप में स्थितहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेचित्तोपदेशोनामै कोनाशीतितमस्सर्गः ॥ ७९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार वीतव ने निर्वासनिक हो निर्णय करके विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में समाधि लगाई और आकाशवत् निर्मलचित्त हो इन्द्रियों की वृत्ति बाहर से खींचकर अचल की और फिर ग्रीवा को शम करके चित्त की वृत्ति अनन्तआत्मा साक्षीभूत में स्थित की । जैसे लकड़ियों को जलाकर अग्नि की ज्वाला शान्त होजाती है तैसेही उसके प्राण और मनकी वृत्ति का स्पन्द मिटगया और जैसे शिला में खोदी हुई पुतली होती है और मूर्ति की लिखी हुई पुतली होती है तैसेही स्थित होगया । मेघों की वर्षा शिर पर हो, मण्डलेश्वर शिकार खेलें, बड़े शब्द हों, रीछ और वानर शब्द करें, बारासिंगों और हाथियों के शब्द हों; वन में अग्नि लगे; पत्थरों की वर्षा हो, वायु चले और धूप पड़े तौभी वह समाधि से न जागे और जैसे पहाड़ में शिला दबी होती है तैसेही उसका शरीर दबगया । जब तीनसौ वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हुये तब चित्त फुर आया कि, शरीर मेरे साथ है परन्तु प्राण नहीं फुरे और चित्त के फुरने में आपको कैलास पर्वत के ऊपर और कदम्ब के वृक्ष के नीचे देखा । सौ वर्ष पर्यन्त मौन होकर जीवन्मुक्त और निर्मल आत्मा हो बिचरा । सौ वर्ष पर्यन्त विद्याधर होकर विद्याधरों में बिचरा, उसके अनन्तर और पञ्चयुग बीतकर इन्द्र हुआ तब देवता उसे नमस्कार करते थे । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! देश काल और मनादिक प्रतिभा उसको अनियत और अनियम कैसे भासित हुई ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! चित्त सर्वात्मरूपहै; जैसा जैसा उसमें फुरना होता है तैसाही तैसा भासता है । जैसे जैसे देश काल का फुरना होता है तैसेही तैसे अनुभव होता है । हे रामजी ! जैसा कुछ प्रपञ्च है वह मनोमात्र है । जैसा फुरना तीव्र होता है तैसेही अनुभवसत्ता में भासित हो वहां स्थित होता है । जब और भ्रममें गया तो नियमके अनुसार तैसेही होताजाता है । जो अज्ञानी होता है उसको वासना से नाना प्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञानवान् होता है वह सब आत्मा को देखता है; उसका फुरना भी अफुरना है और वासना भी अवासना है । वीतव मुनीश्वर ने चित्त के फुरनेसे इतना देखा परन्तु स्वस्थरूप था इससे

उसकी वासना भी अवासना थी। जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसेही उसकी वासना भी अवासना थी और भ्रान्ति का कारण न था। फिर कल्पपर्यन्त वह चन्द्रधार सदाशिवजी का गण हो समस्त विद्या का ज्ञाता और सर्वज्ञ, त्रिकालदर्शी जीवन्मुक्त होकर विचरा। हे रामजी! जैसा किसी का संस्कार दृढ़ होता है। तैसाही उसको अनुभव होता है। जैसे वीतव चित्त को स्पन्द करके जीवन्मुक्त का अनुभव करता था। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो ऐसे हैं तो जीवन्मुक्त के मत में बन्ध मोक्ष हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जीवन्मुक्त को सब ब्रह्मस्वरूप भासता है; बन्धमोक्ष अवस्था उसमें कहां है? ज्ञानमात्र आकाशमें जैसा फुरना होता है तैसा हो भासता है। हे अङ्ग! यह सब चिन्मात्रस्वरूप है और जगत् नाना प्रकारका मन से भासता है; वास्तवमें न जगत् है; न अजगत् है; केवल ब्रह्मसत्ता स्थितहै। जगत् के भूत भविष्यत् केवल ब्रह्मसत्ता भासती है। चिन्मात्रसे भिन्न जगत् मनके फुरने से भासता है जिनको ऐसा ज्ञान नहीं उनको जगत् वज्रसारसे भी दृढ़हो भासताहै और ज्ञानवान्को आकाशवत् भासता है। हे रामजी! अज्ञान से मन उपजा है और उससे सम्पूर्ण जगत् हुआ है; वास्तवमें और कुछ नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग और उल्लास होते हैं तैसेही चिदाकाश में आकार भासते हैं। जब चित्त अचित्त होजाता है तब कुछ द्वैत नहीं भासता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवमनोयज्ञवर्णनंनामाशीतितमस्सर्गः॥ ८०॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वीतव मुनीश्वर का जो शरीर बिन्ध्याचल पर्वत में फँसा था फिर उसकी क्या अवस्था हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उसके अनन्तर आत्मवेत्ता वीतव मुनीश्वर एककाल में शरीर गणों को मन से विचारने लगा कि, कई नष्ट होगये हैं। उन अनष्टों में पृथ्वी के मध्य जो उसका स्थित था उसको देखा कि, कन्दरा की धूड़ में वर्षा से फँसगया है और ऊपर तृणजाल जमगया है। उसको देखकर कहनेलगा कि, इसमें प्रवेश करूं पर फिर विचार किया कि, यह तो जड़, गूंगा और फँसा हुआ है और इसको मैं नहीं निकालसक्ता; इससे सूर्यमण्डल को जाऊं कि सूर्य के सारथी अरुण पंगु इसको निकालेंगे; अथवा इसके साथ मेरा क्या प्रयोजन है? यह नाश होजावे अथवा रहे इतना यत्न मैं किस निमित्तकरूं? मैं अपने निर्गुण स्वरूपमें स्थित होऊं देहसे मेरा क्या है। इसप्रकार विचार वीतव तूष्णी होगया और एक क्षण के अनन्तर फिर चिन्तन करनेलगा कि, पृथ्वी में देह से न कुछ त्यागने योग्य है और न कुछ ग्रहण करने योग्य है; इससे देह को त्यागना और रखना समान है तो यह शरीर किस निमित्त दबारहे। कुछ काल और इसका प्रारब्धवेग है इसलिये आकाश में जो सूर्य स्थित है उसमें प्रवेश करूं—जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब प्रवेश करता है और उस शरीर को सूर्यके सारथी से निकलवाऊं। हे रामजी! ऐसे विचार

कर मुनीश्वर पुर्यष्टकारूप से आकाशमार्ग में चढ़ा और प्रणाम करके सूर्य के भीतर वायुरूप हो प्रवेश किया–जैसे शस्त्र पिण्ड में अग्नि प्रवेश करती है । सूर्य भगवान् ने जाना कि, वीतव मुनीश्वर ने प्रवेश किया है और सर्वज्ञ थे इससे जाना कि, पृथ्वी में इसका शरीर कीचड़ और तृणों से दबा हुआ है उसके निकलवाने के निमित्त आया है। ऐसे विचार सूर्य ने अपने सारथी से कहा। हे सारथी ! बिन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में वीतव मुनीश्वर का शरीर दबापड़ा है उसको तू जाकर निकाल दे । तब अरुणनामक सारथी ने जिसका शरीर हाथी के समान है बिन्ध्याचल पर्वतमें आकर नखों से वह शरीर निकाला। उसके नख ऐसेथे जिनसे वह पहाड़ उखाड़डाले, उन नखों से धरा कोटर में गड़े हुये उस शरीर को उसने निकाला जैसे समुद्र के तीरे भीहका तन्तुकीड़ा पाते हैं तैसेही पर्वत की कन्दरा से उस शरीर को निकाल डाला। तब मुनीश्वर ने पुर्यष्टका से उस शरीर में प्रवेश किया–जैसे पक्षी आकाशमार्ग से उड़ता उड़ता आलय में आ प्रवेशकरे–और सावधान होकर अरुण को नमस्कार किया और अरुण ने भी वीतव को नमस्कार किया और अपने २ कार्यकी ओर हुये । अरुण तो आकाशमार्ग को गया और मुनीश्वर का शरीर कीचड़ से भराहुआ था इससे उसने तालाव पर जाकर डुबकीमारी और जैसे हाथी मल धोताहै तैसेही स्नान करके संध्यादिक कर्म किये और सूर्य भगवान् का पूजन किया। जैसे प्रथम तप से शरीर शोभना था तैसेही भूषित किया और मैत्री, समता, सत् मुदिता आदिक गुणों से सम्पन्न होकर ब्रह्मलक्ष्मी से सुशोभित हुआ और सबके संगसे रहित भी रहा कि, इनगुणों को भी स्वरूप में स्पर्श न करे और आपको शुद्धस्वरूप जाने ॥

इति श्रीयोगवा०उपशमप्र०वीतवसमाधियोगोपदेशोनामैकाशीतितमस्सर्गः ॥८१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार जब कुछ दिन व्यतीत हुये तब समाधि के निमित्त मुनीश्वर का मन उदय हुआ और बिन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में जा बैठा। पूर्व जो विचार अभ्यास किया था और परावर परमात्मदृष्टि हुई थी उससे फिर चित्त को कहा कि, हे चित्त और इन्द्रियो ! मैंने तुम्हारा पूर्वही प्रहार कर छोड़ा है। अब तुम्हारे अचित्त में अर्थ अनर्थ कोई नहीं क्योंकि; अस्ति नास्ति कलना मेरी नष्ट हुई है। अस्ति नास्ति के पीछे जो शेष रहता है उसमें स्थित हूं। जैसे पहाड़ का शृङ्ग अचल होताहै तैसेही अचल हूं। सदा उदयरूप असत् की नाईं स्थित हूं और सदा ज्ञानस्वरूप प्रकाशवान् हूं। असत् की नाईं इस प्रकार कि, सदा अक्रियरूप हूं और असत्रूप उदय की नाईं स्थित हूं। असत् इस प्रकार से कि, मन इन्द्रियों का विषय नहीं और उदय की नाईं इस कारण से कि, सबका साक्षीभूत हूं और सदा समरस प्रकाशरूप अपने आपमें स्थित हूं। प्रबुद्ध और सुषुप्तिविषय स्थित हूं। प्रबुद्ध इस

कारण कि, जो इन्द्रियों के विषय का उपलब्धि करताहूं और सुषुप्ति इस कारण कि, हर्ष, शोक, इष्ट, अनिष्ट से रहित और जगत् की ओरसे सुषुप्तिसमाधि में हूं और वहां जाग्रत् हुआ तुरीया पद आत्मतत्त्व में स्थित हूं। जैसे किसी स्थान में खंभ स्थित होताहै तैसेही स्थितरूप नित्य, शुद्ध, समानसत्ता जो आत्मपद है वहां मैं निरामय स्थित हूं। हे रामजी! इस प्रकार ध्यान करता हुआ वह मुनीश्वर ध्यान में लगा और छःदिनतक ध्यान में रहा और फिर जब जगा तो उसकाल को क्षण के समान जाना— जैसे सोया हुआ क्षण में जागे। इसी प्रकार वीतव शुद्धपद को प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होकर चिरकाल पर्यन्त बिचरता रहा। न कोई वस्तु उसे हर्ष दे और न शोक दे; चलता हुआ भी स्थिर रहे और इन्द्रियों का व्यवहार करता भी इष्ट—अनिष्ट की प्राप्ति में समरहे—कदाचित् किसीमें चलायमान न हो। वह चलता बैठता मन और इन्द्रियों से कहे, हे इन्द्रियो! मरो। हे मन! अब तू समवान् हुआ है और आत्मा को पाकर अब देख तुझको क्या सुख है। जिस सुख के पायेसे और पाने योग्य कुछ नहीं रहता, वह निरोग सुख है। ऐसा जो परमशान्तरूप अचल सुख है तिसको आश्चर्य करके चञ्चलता को त्याग और हे इन्द्रियो! तुम्हारा वास्तव में कुछ स्वरूप नहीं और आत्मपद में तुम दृष्ट नहीं आतीं। अपने स्वरूप के जाने विना तुम मुझको दुःख देती थीं; अब मैं अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ हूं और अब तुम मुझे वश नहीं करसक्तीं क्योंकि; तुम अवस्तुरूप हो आत्मा के प्रमाद से तुम्हारा भान होता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में जो अनात्मभावना और अनात्मा में आत्मभावना होती है सो अविचार से होती है और विचार कियेसे नहींहोनी। अब विचार करके यह भ्रम निवृत्त हुआ है; तुम इन्द्रियांगण और हो; अहंकार औरहै, ब्रह्म और है, कर्तृत्व और है, भोक्तृत्व औरहै। और का दुःख आपमें मानना यही मूर्खता है। जैसे वन की लकड़ी और है, बांस और है और चर्म और है जिससे रथ बनता है और लोहा, पीतल और कड़े जिनसे रथ जड़ाजाता है—सो भी और २ हैं और बैल जो रथ को चलाता है सो भी जुदा है; इन सबसे रथ बनता है और जैसे गृह का आकार होता है तैसे रथ है उसमें बैठनेवाला पुरुष भी और होताहै और रथ की सब सामग्री परस्पर और २ होती है तो यदि उसमें बैठनेवाला कहै कि मैं रथ हूं तो नहीं बनता; तैसेही शरीररूपी रथ अज्ञान से मिला है। इन्द्रियां और हैं और मनादिक और हैं उसमें पुरुष है सो जीव है; यदि जीव कहे कि, मैं शरीर हूं तो बड़ी मूर्खता है। उस शरीर के सुख दुःख मूर्खता से आपको मानता है जो विचार करके देखो तो रागद्वेष के क्षोभ से मुक्त हो। मैंने अविचाररूप विस्मृतिस्वरूप को दूर से त्यागा है और स्वरूप की स्मृति स्पष्ट की है कि, आत्मातत्त्व सत् है। उसीको मैंने

सत् जाना है और अनात्मा असत् है उसको असत् जाना है। जो सत् है वह स्थित है, जो असत् है वह क्षीण होजाता है। हे रामजी ! इस प्रकार वीतवमुनि विचार करके जीवन्मुक्त हुआ और अपने स्वरूप में बहुत वर्षों को व्यतीत किया। निर्भयपद में चित्तादिक भ्रम सब नष्ट होजाते हैं। ऐसे शुद्धपद को प्राप्त हुआ वह यथाभूतार्थ आत्मध्यान में स्थित हुआ और ग्रहण और त्याग की कुछ भावना न रही परिपूर्ण आत्मपद को प्राप्त हुआ। अगस्त्य मुनि का पुत्र वीतवमुनि उस पद को पाकर निर्वासनिक हुआ। फिर जिस काल में और जिस प्रकार से वह विदेह मुक्त हुआ है वह भी सुनो। बीस हज़ार और सातसै वर्ष वह जीवन्मुक्त रहकर फिर विदेह मुक्त हुआ, जो इच्छा अनिच्छा से रहित पद है और जन्म मरण का जिसमें अन्त है उस रागद्वेष से रहित पद को प्राप्त हुआ। हे रामजी ! फिर उसने हिमालय पर्वतकी कन्दरा में प्रवेश किया और पद्मासन बांध हाथ जोड़कर कहा, हे राग ! तुम निरोगता और निर्द्वेषता को प्राप्त हो। तुम्हारे साथ मैंने चिर पर्यन्त विवेक से रहित क्रीड़ा की है। तुम अब जाओ, मेरा तुम को नमस्कार है। हे भोग ! तुम्हारी लालसा से मुझको परमपद का विस्मरण होगया था। जैसे माता सुख के निमित्त पुत्र की लालसा करती है तैसेही मैं सुख जानकर तुम्हारी लालसा करता था। अब तुम जाओ तुमको मेरा नमस्कार है। अब मैं निर्वाणपद को प्राप्तहोताहूं। हे दुःख ! तुमकोभी नमस्कार है। तेरे उपदेश से मैं आत्मपद को प्राप्त हूं क्योंकि, मैं सदा भोग और सुख चाहता था, और जब सुख प्राप्त होता था तब तुझको भी साथ ले आता था। सुखसे तेरी उत्पत्ति होती है; सुख की लालसा में तो मैं अनेक जन्म पातारहा पर जब सुख आवे तब तुझको भी साथ ले आवे। तुझको देखकर मुझको आत्मपद की इच्छा उपजी और तेरे प्रसादसे मैं परमशीतल पदवी को प्राप्त हुआहूं। हे दुःख ! तू तो दुःख था परन्तु मुझको आत्मपद प्राप्त किया इससे तेरा कल्याण हो तू अब जा हे मित्र ! संसार में जीना असार है; जिसका संयोग होताहै उसका वियोग भी होताहै। तूने मेरे साथ बड़ा उपकार किया कि, अपना नाश किया और मुझको सुख प्राप्त किया क्योंकि जब तू मुझको प्राप्त न था तो मैं आत्मपद के निमित्त कब यत्न करता था। तूने अपना नाशकरना माना परन्तु मुझको सुख प्राप्त किया। हे मित्र ! तू बांधवों की नाईं चिरकाल पर्यन्त मेरे साथ रहा और कदाचित् मुझसे दूर न हुआ। मैंने तेरा नाश नहीं किया पर तूने अपना नाश आपही किया है। तू मुझको जब प्राप्त हुआ था तब मुझको विवेक उत्पन्न हुआ, उस विवेक ने तेरा नाश किया है इससे तुझको मेरा नमस्कार। और, हे मातातृष्णा ! तुझको भी नमस्कार है। तू सदा मेरे साथ रही है और कदाचित्

१ बलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः। गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैकातरुणायते ॥ १ ॥

त्याग नहीं किया। जैसे अयाने बालक का त्याग माता नहीं करती तैसेही तूने मेरा त्याग नहीं किया। अब तू जा। हे कामदेव! तुझने आपही विपर्यय होकर अपना नाश किया। जब तू बहिर्मुख था तब जीता था और जब अन्तर्मुख हुआ तब तू मिटगया। तुझको नमस्कार है। हे सुकृतो! तुमको नमस्कार है। तुमने भी बड़ा उपकार किया कि, नरकों से निकालकर स्वर्गों में डाला परन्तु अन्त सब का वियोग होना है इससे तुमभी जाओ। हे दुष्कृतो! तुमभी जाओ। विकर्मरूपी तुम्हारा क्षेत्र है और युवाअवस्था बीज है उससे दुःख फल होता है तुम्हारे साथभी संयोग हुआ था इससे तुमको भी नमस्कार है, तुमभी जाओ। हे मोह! तुझको भी नमस्कार है। तुझसे चिरकाल मैं बँधाथा और नाना प्रकार के स्थानों को प्राप्त होता था और तू भय दिखाता था उससे मैं भय पाता था। इससे तुझको नमस्कार है, अब तू जा। हे गिरिकन्दरा! तुझको भी नमस्कार है। तुममें मैंने चिरकाल तप किया है। हे बुद्धि! हे विवेक! तुमको भी नमस्कार है। तुमने मेरे साथ उपकार किया है कि, संसार-बन्धनसे मुक्तकिया। तुमभी जाओ। हे दण्ड और तूंबा! तुमको भी नमस्कारहै। तुम भी जाओ। बहुत काल तुमभी मेरे सम्बन्धी रहेहो। हे देह! रक्तमांसका पिंजर होकर तू मेरे साथ बहुतकाल रहीहै और तूने उपकार किया है। विवेक उपजाने का स्थान तूही है, तेरे संयोग से मैंने परमपद पाया है। तूभी अब जा, तुझको नमस्कार है हे संसारके व्यवहारो! तुमकोभी नमस्कार है, तुम्हारेमें मैंने बहुत क्रिया की है। ऐसा पदार्थ जगत् में कोई नहीं जिससे मैंने व्यवहार न किया हो, ऐसा कर्म कोई नहीं जो मैंने न किया होगा और ऐसा देश कोई नहीं जो देखा न होगा। अब सब को नमस्कार है। हे इन्द्रियो, प्राण और मनादिक! तुमको नमस्कार है। तुम्हारा हमारा चिरकाल संयोगथा अब वियोग हुआ क्योंकि; जिसका संयोग होता है उसका वियोग भी होता है। इससे तुम्हारा हमारा भी वियोग होता है। नेत्रों की ज्योति सूर्यमण्डल में जा लीन होगी, प्राणों की गन्ध पृथ्वी में लीन होगी और प्राण त्वचा पवन में, श्रवण आकाश में, मन चन्द्रमा में और जिह्वा रस में लीन होगी। इसी प्रकार सब अपने २ अंशमें लीन होंगे। जैसे लकड़ियों के जलेसे अग्नि शान्त होजाती है; शरत्कालमें मेघ शान्त होजाता है; तेलसे रहित दीपक निर्वाण होजाताहै और सूर्य के अस्त हुये प्रकाश शान्त होजाता है तैसेही मनादिक शान्त होजावेगा। हे रामजी! ऐसे विचार करते २ उसका मन सर्वकार्य से रहित हो प्रणव के ध्यानमें लगा और सर्व दृश्य से शान्त और मोहरूपी मल को त्यागकर प्रणव के विचार में लगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेइन्द्रियनिर्वाणं नामद्व्यशीतितमस्सर्गः॥ ८२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उसने शब्दब्रह्म प्रणव का उच्चार किया और पञ्चम भूमिका जो चित्त की अवस्थाहै उसको प्राप्त हुआ भीतर-बाहरके स्थूल सूक्ष्म पदार्थों और त्रिलोकी के सब संकल्पों को त्यागकर वह अक्षोभरूप स्थित हुआ जैसे चिन्तामणि अपने प्रकाश में स्थित होती है; जैसे पूर्णकाल से चन्द्रमा अपने आप में स्थित होता है, जैसे मन्दराचल के निकलनेसे क्षीरसमुद्र स्थित होता है और मथनेसे रहित मन्दराचल स्थित होताहै जैसे कुम्हारका चक्र फिरता २ ठहर जाता है जैसे सूर्यके अस्त हुये जीवों की व्यवहार क्रिया ठहरजाती हैं; जैसे मेघ से रहित शरत्काल का आकाश निर्मल होता है और प्रकाश तम से रहित आकाश होता है; तैसेही फुरनेसे रहित उसका मन शान्ति को प्राप्त हुआ। प्रणव का ध्यान करके फिर उस वृत्ति के अन्त को प्राप्त हुआ और फिर मन्त्रको भी त्याग-जैसे महापुरुष क्रोध को त्यागते हैं तैसेही वृत्तिको त्यागा। फिर तेजका प्रकाश उदय हुआ उसको भी निमेष में त्यागा। आगे न तेज है, न तम है उसमें अभाववृत्ति रहती है उसको भी निमेष में त्यागा, तब जैसे नौतन बालक की जन्म से पदार्थज्ञान से रहित अवस्था होती है तैसेही अवस्था प्राप्त हुई। तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुषुप्त पद है उसका आश्रयकिया और महाअचल जो सुमेरुकी नाईं स्थिर अवस्थाहै उसको प्राप्त हुआ। फिर केवल अचेतन चिन्मात्र तुरीया निरानन्द आनन्दपद में जिसमें स्वरूप से भिन्न और आनन्द नहीं प्राप्त हुआ। वह असत् असत्रूप है सर्वक्रिया से अतीत है, इस कारण असत् है और अनुभवरूप है इस कारण सत्यरूप है। ऐसे अशब्दपद को वह प्राप्त हुआ जो परमशुद्ध पावन और सर्वभाव के भीतर प्राप्त है और सर्वभाव शब्द से रहित है। जिसको शून्यवादी-शून्य, ब्रह्मवादी-ब्रह्म; विज्ञानवादी-विज्ञान, सांख्य मतवाले-पुरुष; योगवाले, ईश्वर; शैवी-शिव; वैष्णव-विष्णु; शाक्त-परमशक्ति; कालवादी-काल; आत्मवादी-आत्मा और माध्यमिक-माध्यम इत्यादिक जो शास्त्रों-वाले कहते हैं सो एक परब्रह्म को ही कहते हैं जो सर्वदा, सर्वकाल, सर्वप्रकार, सर्व में सर्वरूप है। ऐसे सर्वात्मा को वह मुनीश्वर प्राप्त हुआ। जिस आनन्द समुद्र के बल से सर्वको आनन्द होता है ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपने आनन्द को वह प्राप्त हुआ और वहीरूप होगया। जो अन्य और निरन्य, निरञ्जन, सर्व, असर्व, अजर, अगर सबके आदि सकलङ्क-निष्कलङ्क है ऐसे आकाश से निर्मल पद को वीतव मुनीश्वर प्राप्त हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नामत्र्यशीतितमस्सर्गः॥ ८३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दुःखरूप संसारसमुद्र के पार हो वीतवमुनीश्वर उस

परमपद को प्राप्त हुआ जिसपद के प्राप्त हुये जीव फिर जन्म मरण को नहीं पाता और जिसपद में स्थित हुआ परमशान्त उपशम आनन्द को प्राप्त होता है–जैसे समुद्र में पड़ी हुई बुन्द समुद्र होजाती है तैसेही ब्रह्मसमुद्र में वह ब्रह्म होगया और शरीर जो था वह विरस होकर गिरपड़ा जैसे शीतकाल में वृक्षों के सूखे पत्र गिरपड़ते हैं। शरीररूपी वृक्ष में हृदयरूपी आलयथा और उसमें प्राणरूपी पक्षी रहता था सो चिदाकाश में प्राप्त हुआ जैसे खँभानी से पत्थर धावता है तैसेही जा प्राप्त हुआ और अपने स्वरूप में स्थित हुआ। हे रामजी! यह मैंने वीतव की कथा तुझको सुनाई है सो अनन्त विचारकर युक्त है इस प्रकार विचारकर वीतव विश्रामवान् हुआ है। तुमभी उसको विचार कर सिद्धता के सार को प्राप्तहो और दृश्य की चिन्तना को त्याग के सावधान हो। हे रामजी! जो कुछ मैंने तुझसे पूर्वकहा है कि, उसपद में प्राप्तहुआ फिर कुछ पाने योग्य नहीं रहता और अब जो कुछ कहता हूं और जो कुछ पीछे कहूंगा उसको विचारो। मुक्ति ज्ञानही से होती है और ज्ञानही से सब दुःख नाश होते हैं; ज्ञानही से अज्ञान निवृत्त होता और ज्ञानही से परमसिद्धता को प्राप्त होता है। पाने योग्य यही वस्तु है, और कोई दुःखों का नाश नहीं करसक्ता। यह निश्चय है कि, ज्ञान से सब फांसी कटजाती हैं और ज्ञानही से वीतव ने मनको चूर्णकिया। हे रामजी! वीतव की संवित् जगत् के अतीत होगई। जो कुछ दुःख है वह मन से होताहै और मन के उपशम हुये सबजगत् अनुभवरूप होजाता है। वीतवभी मनोमात्र था; मैंभी मनोमात्र हूं तूभी मनोमात्र है और पृथ्वी आदि जगत् भी सर्व मनोमात्र है; मन से भिन्न कुछ नहीं। जहां मन होता है वहां जगत् होता है, मनही जगत्रूप है और जगत्ही मनरूप है। जो ज्ञानवान् पुरुष है वह मन की दशा को त्यागके केवल चिदानन्द आत्मतत्त्व में स्थित होता है और रागद्वेष आदि विकार उसके मिटजाते हैं॥

इति श्रीयोगवा॰उपशमप्रकरणेवीतवविश्रान्तिसमाप्तिर्नामचतुरशीतितमस्सर्गः८४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वीतव की नाईं विदितवेद होकर तुम भी रागद्वेष से रहित स्थित हो। जैसे तीसमहस्रवर्ष वीतव वीतशोक और जीवन्मुक्त होकर विचरा है तैसेही तुमभी विचरो। और भी बोधवान् राजा और मुनीश्वर हुये हैं जैसे वे उस पद में प्राप्त हुये राजादिक व्यवहार में रहे हैं तैसेही तुमभी जीवन्मुक्त होकररहो। हे रामजी! सुख दुःख कर्म आत्मा को स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्वज्ञ है; तुम किस निमित्त शोक करतेहो? बहुत विदितवेद पृथ्वी में विचरते हैं परन्तु शोक को कदाचित् नहीं प्राप्त होते–जैसे तुम अब शोक नहीं करते हो। हे रामजी! तुम अब स्वस्थ, उदार, शम और सर्वज्ञ हो; अब तुमको फिर जन्म न होगा। जीवन्मुक्त पुरुष जो

अपने स्वरूप में स्थित है वह हर्ष शोक को प्राप्त नहीं होताहै। जैसे सिंह, वानर और शृगाल आदिक के वश नहीं होता तैसेही जीवन्मुक्त विकारों से रहित होता है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! इस प्रसंग में मुझको संदेह हुआहै उसको जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट होजाता है तैसेही नाशकरो। हे तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ! जीवन्मुक्त के शरीर में शक्ति क्यों नहीं दृष्टि आती कि, आकाश में उड़ता फिरे और सूक्ष्मरूप से और शरीर में प्रवेश करजावे इत्यादिक? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आकाशगमनादिक जो सिद्धि हैं सो तपादिक कर्मों की शक्ति हैं। जो कुछ जगत् विचित्र दिखाई देना और फिर गुप्त होजाना इत्यादिक हैं वे वस्तु द्रव्य के स्वभाव हैं; आत्मा के ज्ञान के नहीं। हे रामजी! कोई द्रव्य, क्रिया और काल को यथाक्रम साधता है उसको भी शक्ति प्राप्त होतीहै और ज्ञानी साधे अथवा अज्ञानी साधे उसको शक्ति प्राप्त होती है परन्तु वह शक्ति आत्मज्ञान का फल नहीं। आत्मज्ञानी को आत्मज्ञानकीही सिद्धता होती है; वह आत्मा से ही तृप्त होता है और सिद्धि जो अविद्यारूप हैं उनकी ओर नहीं धावता। जो कुछ जगत् है वह उसने अविद्यारूप जाना है इससे वह पदार्थों में नहीं डूबता। जो अज्ञानी है वहसिद्धता के निमित्त इन पदार्थों को साधता है और जो ज्ञानवान् है वह इन पदार्थों के वास्ते यत्न नहीं करता। यत्न करने से ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी हो इन्द्रादिकों के ऐश्वर्य को पाता है और वह ज्ञान की शक्ति नहीं, द्रव्य की शक्ति है सो अविद्यारूप है। अज्ञानी इनकी ओर धावते हैं ज्ञानवान् नहीं धावते क्योंकि, वे सब से अतीत हैं। जिसने सर्व इच्छा का त्याग किया है और आत्मपद में संतोष पाया है वह इनकी इच्छा नहीं करते। इनकी इच्छा भोगों अथवा बड़ाई के निमित्त होती है अथवा मान और जीने और सिद्धि के निमित्त होती है आत्मज्ञानी को भोगों की, सिद्धताकी और मान की इच्छा नहीं होती क्योंकि, ये सब अनात्म धर्म हैं और वह नित्य तृप्त, परमशान्तरूप, वीतराग, निर्वासनिक पुरुष है और आकाशकी नाईं सदा अपने आप में स्थित है। जैसे सुख स्वाभाविक आता है तैसेही दुःख भी स्वाभाविक आता है। शरीर के सुख दुःख की अवस्था में वह चलायमान नहीं होता; नित्य तृप्त और असंग होता है और जीवनमरण की वृत्ति उसको नहीं फुरती सबमें सम रहता है जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं और समुद्र अपनी मर्यादा में स्थित रहता है तैसेही ज्ञानवान् को क्षोभ नहीं प्राप्त होता। हे रामजी! जो कुछ ज्ञानवान् को प्राप्त होता है उसे वह आत्मा में अर्चन करता है; उस को करने में कुछ अर्थ नहीं और न करने में कुछ प्रत्यवाय है। उसको किसीका आश्रय नहीं सदा अपने स्वरूप में स्थित है और यह मन्त्र सिद्धि काल कर्म से होती है। एक योग क्रिया ऐसी है कि, उसके साधने से उड़ने की शक्ति हो

आती है, एक मन्त्रों से शक्ति होती है और एक गुटका मुख में रखने से उड़ने इत्यादिककी शक्ति होती है; शक्तिकी नीति प्रथमही हो रहती है। उससे अन्यथा नहीं होती हे रामजी! जैसी शक्ति जिस साधन से नियत हुई है उसको सदाशिव भी अन्यथा नहीं करसक्के क्योंकि; वह स्वाभाविक स्वतःसिद्ध है—जैसे चन्द्रमा में शीतलता और अग्नि में उष्णता है इत्यादिक आदि नीतिहै उसको कोई दूर नहीं करसक्का और सर्वज्ञ जो विष्णु भगवान् हैं वे भी अन्यथा नहीं करसक्के। हे रामजी! जिस द्रव्य में मारने की सत्ता है वह मारता है; और मद्य में मत्त करने की शक्ति है तैसेही द्रव्य, योग, काल आदिक में सिद्धता शक्ति नियत हुई है। जैसे एक औषध में क्लेश करने की शक्ति है तो उसके पायेसे क्लेश होताहै तैसेही इनमें अपनी २ शक्ति है। जो इनको साधता है उसको ये प्राप्त होती हैं। आत्मज्ञानी जो उसका साधनकरे तो वह कर्ता में भी अकर्ता है। आत्मज्ञान के पाने में सिद्धि कुछ उपकार नहीं करसक्की परन्तु जो इनकी वाञ्छाकरे तो यत्न करके पाता है—यत्न विना नहीं पाता। आत्मज्ञानी को इच्छा भी नहीं होती क्योंकि, आत्मलाभ से उसकी सब इच्छा शान्त होजाती हैं। हे रामजी! जितने लाभ हैं उनसे परम उत्तम आत्मलाभ है। आत्मा को पाकर फिर किसीकी इच्छा नहीं होती। जैसे अमृत के पान किये और जल की इच्छा नहीं होती तैसेही आत्माके लाभ मे और इच्छा नहीं होती। ऐसा आत्मलाभ जिसने पाया है उसको इन सिद्धियों की इच्छा कैसेहो? जैसी जैसी किसीकी इच्छा होती है उसको तैसाही प्राप्त होता है। ज्ञानी हो अथवा ज्ञान से रहित हो इच्छा प्रयत्न के अनुसारही प्राप्त होती है। यह जो वीतव था उसको इच्छा कुछ न थी और प्रथम जो सूर्य के पास जाने की शक्ति दृष्टि आई थी सो क्रिया के साधन से थी; पीछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा कुछ न रही। हे रामजी! जो कुछ किसीको फल प्राप्त होता है सो अपने प्रयत्न से प्राप्त होताहै। जो ज्ञानवान्है वह सदा तृप्त रहता है उसको इष्ट अनिष्टकी इच्छा कुछ नहीं फुरती फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तीनसौ वर्ष वीतव मुनीश्वर समाधि में रहा तो उस का शरीर पृथ्वी में पृथ्वी क्यों न होगया और सिंह भेड़िये सियार आदिक उसको क्यों न भोजन करगये? पीछे विदेहमुक्त हुआ प्रथम क्यों न हुआ? पृथ्वी में दबे हुये शरीर को निकालने के निमित्त बड़ा यत्न क्यों किया, इस संशय को निवारण करो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संवित् वासना के साथ बँधीहुई सुख दुःख को भोगती है और मलीनभाव से घिरी हुई है; जो वासना से रहित शुद्ध समतारूप है और जो सुख दुःख के भोग से रहित है और किसी कारण छेदी नहीं जाती है रामजी! जिस जिस पदार्थ में चित्त लगता है वही २ पदार्थ स्वरूप में भासते हैं यह पदार्थ की शक्ति है। जैसी पदार्थों में शक्ति होती है तैसीही भासती है; इस

कारण बहुत वर्ष व्यतीत होते हैं तौ भी समाधि के बल से उसका शरीर ज्यों का त्यों रहता है क्योंकि; चित्त जिस पदार्थ में लगता है उसका रूप होजाता है। जैसे मित्र को मित्रभाव से देखता है तो स्वाभाविक ही प्रसन्न होताहै और शत्रु को देखकर चित्त में स्वाभाविक ही अप्रसन्नता फुर आती है; मीठी वस्तु को देखकर चित्त स्वाभाविक ही लोलुप होजाता है और कटुक में विरसता को प्राप्त होताहै; मार्ग चलनेवाले का चित्त मार्ग के पर्वत और वृक्षों के राग से बन्धायमान नहीं होता; चन्द्रमा के निकट गये से शीतलता होती है और सूर्य के निकट उष्णता प्राप्त होतीहै सो पदार्थ की शक्ति है जिस पदार्थ के साथ वृत्ति का स्पर्श होता है उसका स्वाभाविक आरम्भ विफल प्राप्त होताहै। तैसेही योगी जब देह और इन्द्रियों की वासना और ममत्वभाव को त्याग करके समभाव में प्राप्त होता है तब उसको समभाव का अनुभव होताहै अर्थात् सबमें एकही भासता है। इस कारण शरीर को सिंहादिक कोई भोजन नहीं करसक्के और जो जीव उसके घात करनेको आते हैं वे हिंसाभाव को त्याग अहिंसक होजाते हैं। वीतव का शरीर जो छेद को न प्राप्त हुआ और न पृथ्वी में पृथ्वी होगया उसका यह कारण है कि, सर्वत्र समता आकाश एकही स्थित है और काष्ठ, लोष्ट, पत्थर ब्रह्मादि तृणपर्यन्त सबमें एक अनुस्यूत है; जहां पुर्यष्टका होती है वहां भासता है और जहां पुर्यष्टका नहीं होती वहां नहीं भासता, जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब सब ठौरमें पूर्ण है परन्तु जहां स्वच्छ ठौर, दर्पण, जल आदि होते हैं वहां भासताहै और जहां उज्ज्वल ठौर नहीं होता वहां प्रतिबिम्ब नहीं भासता तैसेही जहां पुर्यष्टका है वहां संवित् भासती है अन्यथा नहीं भासती, इस कारण वीतवकी संवित् जो समभाव में स्थित है उसको किसी तत्त्व और जीव का क्षोभ नहीं होता। पञ्चतत्त्वों का क्षोभ तब होता है जब प्राण फुरते हैं और जब प्राण फुरनेसे रहित होते हैं तब तत्त्वों का क्षोभ नहीं होता; वीतव की प्राणों के भीतर और बाहरकी स्पन्दकला शान्त होगई थी और प्राण और चित्तकला दोनों फुरनेसे रहित थीं इससे उसका हृदय भी क्षोभित न हुआ। हे रामजी! देहरूपी गृह में जब चित्त और वायुका स्पन्द शान्तहोजाता है तब शरीर नाश होजाता है और सब सुमेरु की नाईं स्थित होजाताहै; तब किसीकी सामर्थ्य नहीं होती कि, इसको क्षोभ करे और नाशकरे। योगीश्वरका चित्त और प्राण निस्पन्द होजाता है। वह इनको वश करके लगाता है तब उसको न तत्त्वों का क्षोभ होता है, न वात, पित्त, कफ का क्षोभ होता है और न और कुछ क्षोभ होताहै इस कारण योगी का शरीर सहस्र वर्ष पर्यन्तभी ज्यों का त्यों रहता है नष्ट नहीं होताहै। जैसे वज्र को कोई चूर्ण नहीं करसक्का तैसेही उसके शरीर को कोई नाश नहीं करसक्का—सबकी शक्ति उस पर कुण्ठित होजाती है। इस कारण वीतव का शरीर ज्यों का

त्यों रहा। पहले वह विदेहमुक्त क्यों न हुआ सोभी सुनो। हे रामजी! तत्त्वज्ञ और विदितवेद, वीतराग महाबुद्धि है। जिनकी अभिमानरूपी गांठि टूटपड़ी है वे पुरुष स्वतन्त्र स्थित होते हैं, उनको न कोई प्रारब्धकर्म है, न संचितकर्म है और न वर्त्तमान का कर्म है। तत्त्ववेत्ता सबसे मुक्त, स्वतन्त्र और स्वेच्छ बिचरता है और जैसी इच्छाकरे तैसी शीघ्रही होती है। हे रामजी! वीतव को जब आकाशमात्र से जीनेका स्पन्द फुरआया तब वह कुछकाल जीतारहा और जब उसकी संवित् में विदेहमुक्त होनेका स्पन्द फुरा तब विदेहमुक्त होगया। ज्ञानवानों की स्थिति स्वाभाविक स्वतन्त्र होती है; जिसकी वे वाञ्छा करते हैं सो तत्काल ही होजाताहै और मन आत्मपद में स्थित होता है; उनको कुछ कृत और कर्तव्य नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसिद्धिलाभविचारोनामचतुरशीतितमस्सर्गः॥८४॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, जब विचार से वीतवका चित्त शान्त होगया तब उसको मैत्री, करुणादिक गुण प्राप्त हुये परन्तु जब विवेक से उसका चित्त नष्ट होगया तो फिर मैत्री आदिक गुण कहां आन प्राप्त हुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चित्त का नाश दो प्रकार का है। जीवन्मुक्त का चित्त अचित्तरूप होजाता है और विदेहमुक्त का चित्त स्वरूप से नष्ट होजाता है। जैसे भूना दाना होता है तैसेही जीवन्मुक्त का चित्त देखनेमें चित्तरूप है बीच से शब्दभाव नहीं और जैसे दाना नष्ट होजावे तैसेही विदेहमुक्त का चित्त देखनेमात्र भी नहीं रहता। हे रामजी! चित्त की सत्यताही दुःखों का कारण है और चित्त की असत्यताही सुखों का कारण है। जिस चित्त में विषयों की वासना फुरती है सो चित्त जन्मों का देनेवाला है और दुःखों का कारण है। गुणों के संग से अहंममभाव में रहता है और चित्त की सत्यता से जीव कहाता है। हे रामजी! जबतक चित्त विद्यमान है तबतक अनन्त दुःख होता है। दुःखरूपी वृक्ष का बीज चित्तही है। जब चित्त नष्ट होता है तब कल्याण होता है। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! मन किसका नाम है? कैसे नष्ट होताहै और कैसे अस्त होता है सो कहिये? वशिष्ठजी ने कहा, हे प्रश्नवेत्ताओं में श्रेष्ठ! चित्तसत्ता का लक्षण मैंने तुमसे कहाहै; अब चित्तमृतक का लक्षण सुनो। जिसको सुख और दुःख की दशा धैर्य और स्वरूप को चला नहीं सक्ती। जैसे सुमेरु को पवन चला नहीं सक्ता तैसेही जिसके चित्त को दुःख चला नहीं सक्ता तिसका मृत्यु जानो; अर्थात् जो चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है उस चित्त से चिन्ता नाशहोजाती है। जैसे भूने दाने में अंकुर नाश होजाता है तैसेही उसका चित्त नाश होजाता है। जिसको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं फुरना वह चित्त मृतक हुआ है। हे रामजी! जिसके चित्त को अहं इच्छा द्वेषादिक विकार तुच्छ न करसके उसका चित्त मृतक जानो और जिसको इन्द्रियों के विषय इष्ट

अनिष्ट न प्राप्त हों और रागद्वेष से ग्रहण त्याग की द्वैतभावना न उपजे ज्यों का त्यों रहे उसीपुरुष का चित्त मृतक जानो। जिसका चित्त नाश हुआ है उसे जीवन्मुक्त जानो। जिसको संसार के इष्ट पदार्थों में राग होता है वह ग्रहण की इच्छा करताहै और अनिष्ट की प्राप्ति में द्वेष करके त्यागने की इच्छा करता है। अहं मम भावसंयुक्त देह में जो अभिमान है उससे आपको सुखी दुःखी मानताहै और अपने में अनुभव होताहै सो चित्त जीता है—यह चित्तसत्यता है जब चित्त संसार से विरक्त हो और सत्संग और सत्शास्त्रों का श्रवण और मनन और स्वरूप का अभ्यास करे तब चित्त अचित्त होजाता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है और तभी जीवन्मुक्त होकर बिचरता है। जिस प्रकार मैत्री आदिक गुण जीवन्मुक्त में होते हैं सोभी सुनो। हे रामजी! चित्त में जो संसार की सत्यतारूपी मैल है यही चित्तभाव है। वह जब आत्मज्ञान से नष्ट होजाता है तब मैत्री आदिक गुण आन प्राप्त होते हैं। जैसे सूर्य के उदय हुये तम नष्ट होजाता है और प्रकाश उदय होता है और जैसे भूनेदाने का अंकुर जलजाता है तैसेही ज्ञानसे चित्त का चित्तस्वभाव नष्ट होजाता है और मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं। तब देखनेमात्र चित्त दिखता है और अज्ञानी की नाईं यत्न करता भासता है परन्तु अज्ञानी का चित्त जन्म का कारण है ज्ञानी का चित्त जन्मका कारण नहीं। जैसे कच्चा दाना उगता है, भूना नहीं उगता; तैसेही अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता। जैसे चन्द्रमा राहु से छूटता है तब चित्तमें मैत्री, करुणा आदिक गुण उदय होते हैं और जैसे बसन्तऋतु के आये वेलैं सब प्रफुल्लित हो आती हैं तैसेही चित्तभाव मिटे से मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक फुरते हैं। जो विदेहमुक्त होताहै उसका चित्त स्वरूप से भी नष्ट होजाता है और वहां गुण कोई नहीं रहता वह अवस्था और कोई नहीं जानता विदेहमुक्त ही जानता है। उसमें द्वैतकल्पना कुछ नहीं फुरती और निर्मल पावन पद है। हे रामजी! जीवन्मुक्त का चित्त स्वरूप में अचित्त होकर रहता है और विदेहमुक्त में चित्त स्वरूप से नष्ट होजाता है, इस कारण जीवन्मुक्त में मैत्री आदिक गुण पाये जातेहैं। आत्मा जो निर्मल और निष्कलङ्क है सो चित्त के नष्ट हुये विदेहमुक्त में रहता है; उस में गुणों की कल्पना कोई नहीं फुरती वह परमपावन निर्मल पद में स्थित होताहै और शान्ति आदिक गुण भी नष्ट होजाते हैं क्योंकि; चित्तस्वरूप से नष्ट होजाता है। चित्त के नष्ट हुये चित्त की अवस्था कहां रही। तब न कोई गुण रहता है, न अवगुण रहताहै; न वह गुणों से उत्पन्न हुआ सार कहाता है और न अवगुणों से उत्पन्न हुआ असार कहाता है; न लोलुप है; न लक्ष्मी है, न अलक्ष्मी है; न उदय है, न अस्त है; न हर्ष है, न शोक है; न तेज है, न तम है; न दिन है, न रात्रि है; न संध्या है, न दिशा है; न आकाश है; न अर्थ है, न अनर्थ है; न

वासना है, न अवासना है; न अञ्जन है, न निरञ्जन है; न सत्य है, न असत्य है; न चन्द्रमा है न तारे हैं और न सूर्य है। ऐसा जो सर्व कलना से रहित शरत्काल के आकाश की नाईं निर्मल और बुद्धि से परे पद है उसमें और की गम नहीं। जैसे आकाश के स्थानको पवन जानताहै तैसेही उसकी अवस्था को वही जाने। वहां स्थित हुये सब दुःख शान्त होजाते हैं और ब्रह्मानन्द में लीन होजाता है। ज्ञानवान् आकाश की नाईं निर्मलपद को प्राप्त होता है जिसके पायेसे और पाना कुछ नहीं रहता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेज्ञानविचारोनामपञ्चाशीतितमस्सर्गः॥ ८५॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! परमाकाश के कोश में एकपहाड़ है उसपर जगत्रूपी एक वृक्ष है; तारे उसके फूल हैं; मेदु पत्र हैं; सूर्य, चन्द्रमा स्कन्ध हैं, और देवता, दैत्य, मनुष्यादिक सबजीव उसपर पखेरू रहते। साती समुद्र उस पहाड़ पर बावलियां हैं और अनन्त नदियां उसमें प्रवेश करती हैं चतुर्दश प्रकार के भूतजात उसमें उत्पन्न होते हैं और सुखदुःखरूपी फलों से पूर्ण है, और मोहरूपी जल से वह सींचा जाता है सो दृढ़ होकर स्थित हुआ है। उसका बीज कौन है? बोध की वृद्धि के निमित्त यह ज्ञानरूपी सार मुझसे संक्षेप से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस संसार का बड़ा बीज शरीर है; जिसके भीतर आरम्भ की घनता है। जब शुभ अशुभ का आरम्भ शरीर का अंकुर होताहै तब शुभ अशुभ करताहै, इससे संसार का बीज शरीर ही है; और शरीर का बीज चित्त है; राजस, सात्विक और तामस वृत्ति उसकी टहनियां हैं। वही जन्ममरण का भंडार है और सुख दुःखरूपी रत्नों का डब्बा है। ऐसा जो चित्त है वह इस शरीर का कारण है। हे रामजी! जो कुछ जगज्जाल दृष्टि आता है वह सब असत्रूपहै। चित्त के फुरनेसे नाना प्रकार के आडम्बर भासते हैं। जैसे गन्धर्वनगर नाना प्रकार के आरम्भ सहित भ्रम से भासता है और संकल्पपुर भासताहै सो असत् है तैसेही यह जगत् असत् है। जैसे मृत्तिका में घटभाव होताहै तैसे चित्त में जगत् का सद्भाव होताहै। चित्तरूपी अंकुर के वृत्तिरूपी दो टास होते हैं-एक प्राणों का फुरना और दूसरा दृढ़भावना। जब प्राणस्पन्द होताहै और हृदयमात्र में जो एकसौ एक नाड़ी हैं उनकी ओर संवेदनरूप चित्त उदय होताहै तब प्राणस्पन्द उनकी ओर नहीं फुरना। जब प्राण फुरता है तब शुद्ध सात्त्विक चित्त उपजता है और उसमें जगत् भासता है। जैसे आकाश में नीलता भासती तैसेही प्राणों में नीलता भासती है। जब प्राणस्पन्द होताहै तब चित्त संवित् उछलती है-जैसे हाथ से ताड़नाकिया गेंद उछलता है। जैसे प्राणस्पन्द में सर्वगत संवित् उपलब्धरूप होती है और वहां प्रतिबिम्बरूप होकर सात्त्विकभाग में स्थित होतीहै और महासूक्ष्म से सूक्ष्म है-जैसे वायु में गन्ध रहती है। वही संवित्रूप को त्यागकर जब बहिर्मुख धावती है तब उससे नाना

प्रकार के जगत् भासते हैं और नाना प्रकार की वासना उठती हैं और उनसे अनेक दुःखों को प्राप्त होना है। इससे, हे रामजी! संवित् को अन्तर्मुख रोकनाही कल्याण का कारण है। जब संवित् स्वरूप में स्थित होती है तब क्षोभ मिटजाता है और जब शुद्ध संवित् में अहं उल्लेख फुरता है तब वेदनरूप होती है सोही चित्त है; चित्त से अनेक दुःख होते हैं और चित्त का होना अनर्थ का कारण है। जब चित्त न उपजे तब शान्ति होजाती है और चित्त तब निवृत्त होता है जब प्राणस्पन्द रोकिये अथवा वासना नष्ट हो। ध्यान और प्राणायाम से योगीश्वर प्राणों को रोकता है तब चित्त स्थित होजाता है। यह योग से अनुभव करता है। ज्ञान से जो अनुभव होता है सोभी सुनो। हे रामजी! चित्तवासना से उत्पन्न होताहै और वासना विचारसे रहित फुरती है। जैसे बालकों को जन्मसेही स्तनों से दूध पीने की वृत्ति फुरती है तैसेही अकस्मात् भावना की दृढ़ता से वासना फुर आती है। हे रामजी! जिसमें पुरुष की तीव्रभावना होतीहै वहीरूप पुरुष का होता है। स्वरूप के प्रमाद से जो भासित होताहै उस में दृढ़ प्रतीति होजाती है तब उसकी भावना करता है और जगत् की वासना मे मोह प्राप्त होताहै स्वतःसिद्ध जो अनुभवरूप आत्मा है उसको जान नहीं सक्ता। वासना की प्रबलता से स्वरूप का त्यागकरता है और भ्रान्तिरूप जगत् को सत्य देखता है—जैसे मद्य से मत्त को पदार्थ और के और भासते हैं तैसेही मूर्खों को वासना के बल से जगत् के पदार्थ सत्यभासते हैं। हे रामजी! असम्यक्ज्ञान से जीव दुःखी होता है; शान्ति को नहीं प्राप्त होता और मनकी चिन्ता से जलताहै। मन किसका नाम है सो सुनो। जो असम्यक्ज्ञान से अनात्मा में आत्मभावना हो और वस्तु आत्मा में अवस्तु अनात्म भावना हो उसका नाम मन है। वह मन ऐसे उत्पन्न होता है कि, प्रथम चेतन संवित् में पदार्थों की चिन्तना होती है फिर तीव्रपदार्थों की दृढ़भावना होती है तब वही चेतन संवित् चित्तरूप होजाती है। उस चित्त में फिर जन्ममरणादिक विकार उपजते हैं और फिर किसीका ग्रहण और किसीका त्याग करता है। जब ग्रहण और त्याग का संकल्प हृदय से निवृत्त हो तब चित्त भी मृतक होजावे। जब वासना नष्ट होजाती है तब मन अमनपद को प्राप्त होता है। मन का अमन होनाही परम उपशम का कारण है। हे रामजी! जो कुछ जगत् के पदार्थ हैं उनकी अभावना कीजिये और सब जगत् अवस्तुभूत त्याग कीजिये तब हृदय आकाश में चित्त शान्त होगा। हे रामजी! चित्त का स्वरूप इतना है। जब पदार्थों से रस उठजावे तब चित्त फिर नहीं उपजता। जबतक पदार्थों का रस फुरता है तबतक स्थूल रहता है और असम्यक्ज्ञान से अनात्मा में जो आत्मभावना है ज्यों २ यह दृढ़ होती है त्यों २ चित्तरूपी वृक्ष अनर्थके निमित्त बढ़ता जाताहै और ज्यों २ अनात्मा से आत्मबुद्धि

निवृत्त होजाती है अर्थात् अवस्तु में वस्तुबुद्धि नहीं होती त्यों२ चित्तरूपी वृक्ष क्षीण होता जाता है सो कल्याण के निमित्त है। जब चित्त यथाभूत यथार्थ को देखता है तब चित्त अचित्त होजाताहै, सब आशा निवृत्त होजाती हैं और परमशान्ति और शीतलता हृदय में स्थित होती है तब पदार्थों को ग्रहणभी करताहै परन्तु हृदय से रागसंयुक्त वासना निवृत्त होती है तो उससे चित्त शान्तिको प्राप्त होता है। हे रामजी! जीवन्मुक्त में भी चेष्टा दृष्ट आती है परन्तु जन्म का कारण नहीं होती क्योंकि; मन में मन का सद्भाव नहीं होता। जैसे नटुआ अभिमान से रहित अनेक प्रकार के स्वांग धरता है तैसेही वह अभिमान से रहित चेष्टा करता है और जैसे कुम्हार का चक्र भ्रमता२ ताड़ना से रहित हुआ शनैः२ स्थिर होजाता है तैसेही ज्ञानवान् का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है परन्तु जन्म का कारण नहीं होता और जब प्रारब्ध-भोग पूर्ण होता है तब स्वाभाविक ठहरजाता है। जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही रागसे रहित ज्ञानी की चेष्टा जन्मका कारण नहीं होती देखनेमात्र ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य होती है। जैसे भूना और कच्चा बीज एक समान भासता है परन्तु कच्चा उगता है और भूना नहीं उगता तैसेही ज्ञानी की चेष्टा जन्म का कारण नहीं होती क्योंकि; उसका चित्त शान्त होजाता है। हे रामजी! जिसकी चेष्टा अभिमान से रहित है वह जीवन्मुक्त कहाता है। उसका चित्त केवल चिन्मात्र को प्राप्त हुआ है और वह जब शरीर को त्यागता है तब अचित्तरूप चिदाकाश होताहै। हे रामजी! चित्त के दो बीज हैं—एक प्राणों का फुरना और दूसरा वासनाका फुरना। जब दोनों में एकका अभाव होजाता है तब दोनों नाश होजाते हैं—ये परस्पर कारणरूप हैं। जैसे तालसे मेघ जल पान करके फिर वर्षा से ताल को पुष्ट करताहै सो परस्पर कारणरूप है; तैसेही प्राण स्पन्द और वासना परस्पर कारणरूप हैं। जैसे बीज से अंकुर होते हैं और अंकुर से बीज होते हैं तैसेही प्राणस्पन्द से वासना होती है और वासना से प्राणस्पन्द होता है। ये दोनों चित्त के कारण हैं। जैसे फूल विना सुगन्ध नहीं और सुगन्ध विना फूल नहीं होता तैसेही वासना विना प्राण नहीं होते और प्राण विना वासना नहीं होती। हे रामजी! जब वासना फुरती है तब सम्भवित में क्षोभ होताहै और वह प्राणों को जगाती है तब उसमें जगत् उपजता है। जब हृदय में प्राणस्पन्द के धर्म होते हैं तब संवित् क्षोभवान् होता है और चित्तरूपी बालक उपजता है। इस प्रकार वासना और प्राण दोनों चित्त के कारण हैं जब दोनों में एक का नाश होजावे तब दोनों नाशहोजावें और चित्त का भी नाश होजावे। हे रामजी! चित्तरूपी एक वृक्ष है; सुख दुःखरूपी उसके स्कन्ध हैं; चिन्तारूपी फल हैं; कार्यरूपी पत्रहैं; वृत्तिरूपी बेलसे वेष्टित हुआहै और रागद्वेषरूपी दो बगले उसपर आनबैठेहैं;

तृष्णारूपी काली सर्पिणी से वेष्टित है और इन्द्रियांरूपी पक्षी उसपर आन बैठे हैं; इच्छादिक रोगों से पुष्ट होता है और अज्ञान इस का मूल है। जब अवासनारूपी खड्ग से शीघ्रही काटाजाता है तब संसार की अभावना और स्वरूप की भावना से शीघ्रही नाश होजाता है। जैसे तीक्ष्ण पवन से पका हुआ फल वृक्ष से शीघ्रही गिर पड़ताहै तैसेही आत्मभावसे फल गिरपड़ताहै। हे रामजी! चित्तरूपी आंधी ने सर्व दिशा मलीन करके प्रकाश को घेरलिया है और तृष्णारूपी तृण उसमें उड़ते हैं। शरीररूपी स्तम्भाकार बायगोला अज्ञानरूपी कुण्डसे उपजाहुआ बड़े क्षोभको प्राप्त करताहै। जब हृदय में प्रकाश हो तब तम को दूर करे और जब स्पन्द रोकिये तब धूलि शान्त होजाती है। आत्मविचार से जब वासनारहित हो तब शरीररूपी धुवां शान्त होजावे। हे रामजी! प्राणों के रोकनेसे शान्ति होती है और वासना के न उदय होनेसे चित्त स्थिर होजाताहै। प्राणस्पन्द और वासना का बीज संवेदनहै, जब शुद्ध संवित्मात्र से संवेदन का त्याग करे तब वासना और प्राण दोनों न फुरें। जैसे वृक्षका बीज और मूल काटडालिये तो फिर नहीं उगता, तैसेही इनका मूल संवेदन है। जब संवेदनका अभावहो तब दोनों नहीं बनते। संवेदनका बीज आत्मसत्ताहै, संवित्सत्ता से संवेदन प्रकट हुआहै उससे भिन्न नहीं। जैसे तिलोंमें तेलके सिवा और कुछ नहीं होता तैसेही संवित् सत्ता के सिवा हृदयमें और कुछ नहीं पायाजाता—वही संकल्पद्वारा संवेदन को देखताहै। जैसे स्वप्नेमें मनुष्य अपनी मृत्यु देखता है और देशान्तर को प्राप्त होता है तैसेही सब सत्ता संवेदन को देखती हैं। चिन्मात्र संवित् में संवेदन का उत्थान होता है कि, 'अहंअस्मि' तब संवेदन जगत् जाल दिखाती है। अपनाही संवेदन उठकर आपको भ्रम दिखाता है—जैसे बालक को अपने संकल्प से उपजा वैताल सत्य भासता है और जैसे स्थान में पुरुष भासता है तैसेही संवित्में संवेदन भासता है। हे रामजी! असम्यक्ज्ञान से संवेदनरूप होजाता है तो उस में आत्म-बुद्धि होती है और सम्यक्ज्ञान से लीन होजाता है। जैसे रस्सी में असम्यक्ज्ञान से सर्प भासता है तैसेही आत्मा में संवेदन भासता है। तीनों जगत् ब्रह्म संवित्रूप हैं संवेदन भी कुछ भिन्न नहीं। जिनको यह निश्चय दृढ़ होता है उनको बुद्धीश्वर स-म्यक्ज्ञानी कहते हैं। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जो जगत् है उससे वास्तव बुद्धि त्याग करने से भी संसार के पार होता है और जो अवस्तुबुद्धि से न त्यागेगा तो जगत् बड़े वि-स्तार को पावेगा। हे रामजी! संवेदन का जो उत्थान होताहै सो बड़े दुःखोंका देने-वाला है और संवेदन जो जड़वत् अजड़ है वह परम सुख सम्पदा का कारण है सो आनन्द उत्थानसे रहित आनन्द स्वरूपहै। जिसको संवेदन उत्थान से रहित असं-वेदन संवित् आत्मा की बुद्धि हुई है वह संसारसमुद्र से पार होता है। रामजी ने

पूछा, हे प्रभो! जड़ता से रहित असंवेदन कैसे होता है और असंवेदन से जड़ता कैसे निवृत्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो सब ठौर में आसक्त नहीं होता और कहीं चित्त की वृत्ति नहीं लगाता और जिसमें जीवतत्त्व का कुछ ज्ञान न रहे वह असंवेदन जड़ता से रहित है। संवेदन स्पन्दरूप है, जिससे दृश्य भासता है सो दृश्य की ओर से जड़ है और स्वरूप में चेतन है वह अजड़ कहाता है। हे रामजी! हृद-याकाश जो चेतन संवित् है उससे संवेदन का स्पर्श कुछ न हो ऐसा संवित् अजड़ है। देवता, नाग, दैत्य, राक्षस, हाथी, मनुष्य आदिक स्थावर जङ्गमरूप सब वही धा-रती है। हे रामजी! अपनी चेष्टा से संवित् आपको आपही बँधाती है। जैसे कुसवारी आपही आपको गृहमें बँधाती है तैसेही संवित् आपको बँधाता है। जब अपनी ओर आती है तब आपही आपको प्राप्त होती है। हे रामजी! जगत् जाग्रत्‌रूपी समुद्र है उसमें संवित्‌रूपी जल है जिससे सब स्थान पूर्ण होगया है। अन्तरिक्ष, पृथ्वी, आ-काश, पर्वत नदी आदिक सब संवित्‌रूपी जल की लहरें हैं इससे सब जगत् संवित्-मात्र है और उसमें द्वैतकलना का अभाव है। यह सम्यक्‌ज्ञान है। इस संवित् का बीज सन्मात्र है उसमें द्वैतकलना का अभाव है। यह सम्यक् ज्ञान है। इस संवित् का बीज सन्मात्र है और सन्मात्रसत्ता से संवित् उदय हुआ है—जैसे प्रकाश से ज्योति उदय होती है। इस सत्ता के दो रूप हैं—एकरूप नाना प्रकार हो भासता है और दू-सरा एकहीरूप है। घट, पट, तत्त्व आदिक एकसत्ता के नानाप्रकार के विभाग स्थित हैं और विभाग से रहित एक सत्ता स्थित है—वह सत्ता समान अद्वैतरूप परमार्थ है। हे रामजी! विषय को त्यागकर जो सन्मात्र है वह अलेप एकरूप है सोही महासत्ता है। उसको ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं। नाना आकार भी वह सत्ता कभी नहीं धा-रती। यह संवेदन से हुये हैं इस कारण अवस्तुरूप है। एकरूप जो परमसत्ता निर्मल अविनाशी है वह न कभी नाश होता है और न विस्मरण होता है क्योंकि; अनुभव-रूप है। हे रामजी! एक कालसत्ता है और एक आकाशसत्ता है सो यह सत्ता अव-स्तुरूप है। इस विभागसत्ता को त्यागकर सन्मात्रसत्ता के परायण हो। कालसत्ता और आकाशसत्ता यद्यपि उत्तम हैं परन्तु वास्तव नहीं। जहां नाना विभागकलना, आकार और नाना कारण हैं वह पवित्रकर्ता पावन नहीं। इसी से कहा है कि, आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं और सत्तासमान जो संवित्‌मात्र है वह सबका बीज है उसीसे सबकी प्रकृति होतीहै। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ हैं उनकी कलना सत्ता-समान पर्यन्त है। उस अनन्त, अनादि, बीजरूप परमपदका बीज और कोई नहीं। जब उसका भान हो तब यह निर्विकार होकर स्थित हो। जीवन्मुक्त उसीको कहते हैं जिसे दृश्य की भावना कुछ न फुरे। जैसे बालक मूक, और अभिमान से रहित होता

है तैसेही ज्ञान से जीव निर्वासनिक हो तब जड़ता से मुक्त होता है और सर्व आत्मभाव को प्राप्त होता है। जिस संवित् में दृश्य का स्पर्श होता है वह संवित् जड़ है क्योंकि; शुद्धस्वरूप में मलीन का स्पर्श होताहै। जो संवित् द्वैत फुरनेसे रहित है वह शुद्ध और अजड़ है और जो द्वैतभाव को ग्रहण करती है वह स्वरूप की ओरसे जड़ है। हे रामजी ! जिसकी स्वरूप की ओर स्थिति हुई है और दृश्यभाव का लेप नहीं होताहै वह सर्ववासना को त्यागकर निर्विकल्पसमाधि में लगता है। जैसे आकाश में नीलता स्वाभाविक बर्तती है तैसेही योगी आनन्द में बर्तता है और निस्संवेदन संवित् में प्रविष्ट होकर वहीरूप होजाता है जिसके मनकी वृत्ति वहां स्थिर होजाती है और बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगन्ध लेते, देखते, सुनते और सब इन्द्रियों की क्रिया करतें भी मन स्थिर रहता है दृश्य का अभिमान नहीं फुरता वह अजड़ कहाता है और संवेदन से रहित सुखी होता है। हे रामजी ! ऐसी दृष्टि प्रथम तो कष्टरूप भासती परन्तु पीछे सब दुःखों का नाशकर्ता होती है, इससे इसी दृष्टि का आश्रय करके दुःखरूप जो संसारसमुद्र है उससे तरजाओ। जैसे वटका बीज सूक्ष्म होता है पर विस्तार को पाकर आकाश को स्पर्श करने लगता है तैसेही सूक्ष्म संवेदन से जब संकल्प फैलता है तब वही बड़े जगत् के विस्तार को धारता है और जन्म के जाल को प्राप्त होता है। बीजरूप से आपही अपने को जन्मों में डालता है और फिर २ मोह में गिरता है। जब संवित् अपनी ओर होती है तब मोक्ष को प्राप्त होता है और जैसी भावना स्वरूप में दृढ़ होती है वही सिद्ध होती है। जैसे नटुआ अनेक स्वांग को धारता है तैसेही संवित् अनेक आकारों को धारती है। जब नट भूमिका को त्यागता है तब अपने स्वरूप में प्राप्त होता है। हे रामजी ! संवित्रूपी नटनी जगत्रूप धारकर नृत्य करती है। जो दुःखरूप संसारसमुद्र से न गिरे सो सत्ता सब कारणों की कारण है और उसका कारण कोई नहीं और वही सब सारोंका सार है उसका सार कोई नहीं। उसी चेतनरूपी बड़े दर्पण में समस्त जगत् प्रतिबिम्बित होता है। जैसे ताल में किनारे के वृक्ष प्रतिबिम्बित होते हैं तैसेही सब वस्तु चिद्दर्पण में प्रतिबिम्बित होती है। हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ हैं वे सब आत्मसत्ता से सिद्ध होते हैं और उसी अनुभव में सबका अनुभव होता है। जैसे षट्रसों का स्वाद जिह्वा से सिद्ध होताहै तैसेही सब पदार्थ चिदाकाश के आश्रय सिद्ध होते हैं। सब जगत्गण उसीसे उपजे हैं; उसीमें बर्तते और बढ़ते हैं; उसीमें स्थित दिखते हैं और उसीमें लीन होते हैं। सबका अधिष्ठान वही सत्ता है और गुरुका गुरु; लघु की लघुता; स्थूल की स्थूलता; सूक्ष्मकी सूक्ष्मता; द्रव्यों का द्रव्य; कष्टों में कष्ट; बड़े में बड़ाई, तेज का तेज, तम का तम, वस्तुकी वस्तु, द्रष्टा का द्रष्टा; किंचन में किंचन;

निष्किंचनमें निष्किंचन; तत्त्वोंका तत्त्व, असत्य का असत्य; सत्य का सत्य; आश्रम में आश्रम और अनाश्रम में अनाश्रम वही है। हे रामजी! ऐसी जो परमपावन सत्ता है उसमें प्रयत्न करके स्थित हो; फिर जैसे इच्छा हो तैसे करो। वह आत्मतत्त्व निर्मल, अजर, अमर, शान्तरूप और चित्त के क्षोभ से रहित है; उसमें भवसंसार से मुक्ति के निमित्त स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेस्मृतिबीजविचारोनामषडशीतितमस्सर्गः॥ ८६॥

रामजीने पूछा, हे महानन्द के देनेवाले! यह जो बीजों का बीज आपने कहा है सो किस प्रकार प्राप्त हो? जिस प्रकार उस पद की शीघ्र प्राप्ति हो वह उपाय कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इन सबके बीज का जो उत्तर दिया है उस उपाय से परम-पद की प्राप्ति होती है। अब औरभी जो तुमने पूछा है वह सुनो। सत्ता समान में स्थित होनेके निमित्त यत्न कर्तव्य है। जो कुछ संसार की वासनाहै बल करके उसको त्याग करिये और शुद्ध आत्मा में तीव्र अभ्यास करिये तब शीघ्रही अविघ्न आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होगी। हे तत्त्ववेत्ता! उस पद में एक क्षण भी स्थित होगे तो अ-क्षयभाव को प्राप्त होगे। हे रामजी! सत्तासमान संवित्मात्रतत्त्व है उसमें स्थित होके जो इच्छा हो सो करो तब उसके सिवा और कुछ सिद्ध न होगा—सब वही भासेगा। ऐसा जो अनुभवतत्त्व है वह तुम्हारा स्वरूप है उसके ध्यान में स्थित हुये तुमको कुछ खेद न होगा। ऐसा संवेदन के साथ ध्यान नहीं होता और ऊंचापद है पुरुष प्रयत्न से उस पद को प्राप्तहो। हे रामजी! केवल संवेदनके साथ ध्यान नहीं होता क्योंकि सर्वत्र सम्भव संवित् तत्त्व है। संवित् सर्वदा सर्वकाल सहायक होती है और सबसे मिली हुई है जो कुछ चितवे, जो इच्छित हो जो कुछकरे सो सब संवित् से सिद्ध होता है। हे रामजी! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है पर उसका भान नहीं होता और जो कुछ भा-सता है वही अविद्या आवरण है सो इसको दुःख होता है। स्वरूप के प्रमाद से जो दृश्य की वासना करता है उसकी दृढ़ता से अन्तःकरण दुःख पाता है। जब यत्न करके वासना का त्याग करिये तब मन और शरीरके दुःख सब नाशहोजावेंगे। पूर्व जो मोह दृढ़ होरहा है—जैसे मेरु को मूल से उखाड़ना कठिन है तैसेही वासना का त्याग कठिन है। वह वासना मनमें होती है; जबतक मन क्षय नहीं होता तबतक वासना भी क्षय नहीं होती। तत्त्वज्ञान बिना मन नाश नहीं होता। वासना और मन का आवरण एकसाथ दूर होना है। यह परस्पर कारणरूप है। इससे, हे रामजी! तुम पुरुष प्रयत्न करके मनके संकल्प विकल्प को निवृत्त करो और अभ्यास और विचार करके विवेक का उपाय करो और भोगों की वासना दूर से त्यागो—इसीसे तुम शान्तिमान होगे। इन तीनों के सम अभ्यास से तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासना

क्षय का बारम्बार अभ्यास करो। जबतक इनको न साधोगे तबतक अनेक उपायों से भी शान्ति को न प्राप्त होगे। हे रामजी! वासना क्षय हो और मनोनाश और तत्त्वज्ञान का अभ्यास न करे तो कार्य सिद्ध नहीं होता और जो मनोनाश करे और तत्त्वज्ञान से वासना क्षय न करे तबभी कल्याण न होगा और तत्त्वज्ञान का विचार करे और वासना क्षय न हो तौभी कुशल न होगा। जब इन तीनों का शम अभ्यास हो तब फल की प्राप्ति हो। हे रामजी! एक के सेवने से सिद्धता नहीं प्राप्त होती— जैसे मन्त्रीको कोई प्रतिबन्ध लय करे तो मन्त्र फलदायक नहीं होता। और एक एक चरण पढ़े तोभी फलदायक नहीं होता। जबतक सब मन्त्र संध्यादिक एकठौर नहीं होते तबतक मन्त्र नहीं फुरते; तैसेही अकेलेसे कार्य सिद्ध नहीं होता। जब चिरकाल इनको इकट्ठा सेवे तब कार्य हो। जैसे सेना संयुक्त बड़ा शत्रु हो और उसके मारने को एक शूरमा जावे तो शत्रु को मार नहीं सक्ता और यदि इकट्ठे सेना पर जापड़े तब उसको जीतलेवे; तैसेही संसाररूपी शत्रु के नाशके लिये जब तत्त्वज्ञान, मनोनाश, और वासनाक्षय का इकट्ठा अभ्यास हो तब संसाररूपी शत्रुनाश हो। हे रामजी! जब तीनों का अभ्यास करोगे तब हृदयकी अहं मम ग्रन्थि टूटपड़ेगी। अनेक जन्मों की संसार सत्यता जो इसके हृदय में स्थित होरही है सो अभ्यासयोग से टूटपड़ेगी इससे चलते, बैठते, खाते, पीते, सुनते, सूंघते, स्पर्श करते और जागते इन तीनों का अभ्यास करो। हे रामजी! वासना के त्याग से प्राणस्पन्द रोकाजाता है। जब प्राणों का स्पन्द रोका तब चित्त अचित्त होजाताहै। एक प्राणों के रोकनेसेही वासना क्षय होजाती है, तबभी चित्त अचित्त होजाता है। आत्मयोग से अथवा वासना के त्यागसे आत्मतत्त्व प्रकाशेगा। इनमें जो तुम्हारी इच्छा हो वही करो; चाहे प्राणों को योगसे रोको और चाहे वासना का त्याग करो। प्राणायाम तब होता है जब गुरु की दी हुई युक्ति स्तिथ होतीहै और आसन और आहार के संयम से प्राणों का स्पन्द रोकाजाता है। जब सम्यक्ज्ञान से जगत् को अवास्तव जानता है तब वासना नहीं प्रवर्तती। जो जगत् के आदि और अन्त में स्थित है उसमें मन जब स्थित होता है तब वासना नहीं उपजती। हे रामजी! जब व्यवहार में निःसंग और संसार की भावना से विवर्जित होताहै और शरीर में नाशवन्त बुद्धि होती है तबभी वासना नहीं प्रवर्तती और जब विचार करके वासना क्षय हो तब चित्त भी नष्ट हो-जावेगा जैसे वायु के ठहरनेसे धूल नहीं उड़ती तैसेही वासना के क्षय हुये चित्त नहीं उपजता। जो प्राण स्पन्द है वही चित्तस्पन्द है; जब वासना फुरती है तब जगत् भ्रम उपजता है। जैसे अरुण से धूल उपजती है तैसेही चित्त से वासना उपजती है जब प्राणस्पन्द ठहरता है तब चित्त भी ठहरजाता है; इससे यत्न करके प्राणस्पन्द अथवा

वासना के जीतने का अभ्यास करो तब शान्तिमान् होगे और जो यह उपाय न करोगे और दूसरी यत्न से चित्त वश करने का उपाय करोगे तो बहुत काल से पावोगे। हे रामजी! इस युक्ति के विना मन के जीतने का और कोई उपाय नहीं है। जैसे मतवाले हाथी को अंकुश विना वश करनेका उपाय और कोई नहीं तैसेही मनभी युक्ति विना वश नहीं होता। वह युक्ति यह है कि, सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों का विचार करना। इस उपाय से तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय और प्राणों का स्पन्द रोकना होता है चित्त वश करने की यह परमयुक्ति है–इससे चित्त शीघ्रही जीता जाता है। जो इन उपायों का त्यागकर हठसे मन वश किया चाहते हैं वे क्या करते हैं? जैसे तम के नाश करने को दीपक जगावे तो नाश होजाता है और शस्त्रों से तम को काटे तो तम नाश न होवेगा तैसेही और उपायों से चित्त वश न होगा। इस विना जो और उपाय करते हैं वे मूर्ख हैं। जैसे मतवाला हाथी कमल की तांत से बांधा नहीं जाता और जो कोई इससे बांधने लगे तो महामूर्ख है; तैसेही मनके जीतनेको और प्रकार जो हठ करते हैं सो महामूढ़ हैं। और उपाय करके क्लेश प्राप्त होगा आत्मसुख प्राप्त न होगा। जैसे दुर्भागी जीवों को कहीं सुख नहीं होता है। हे रामजी! जिसने तीर्थ, दान, तप और देवताओं की पूजा–यह चारों साधन किये हैं और मन जीतने का उपाय नहीं किया वह मृग की नाईं भ्रमता फिरता है और पहाड़ों की कन्दरा में फल और पत्र खाता फिरता है क्योंकि उसने मन का नाश नहीं किया इससे आत्मपद को नहीं पाया वह और पशुओं के समान है; जैसे और पशु होते हैं तैसेही वह भी है। हे रामजी। जिस पुरुष ने मन को वश किया उसको शान्ति नहीं होती। जैसे कोमल अङ्ग मृग ग्राम में जानेसे शान्ति नहीं पाता और जैसे जल में पड़ा तृण नदीके वेगसे भटककर कष्टवान् होताहै तैसेही वह पुरुष कर्म करताहै और मनको स्थित किये विना कष्ट पाता है। कभी दुःखसे जलता है और कभी कर्मों के वशसे स्वर्ग को प्राप्त होताहै पर वहभी नाश होजाते हैं। जैसे जलमें तरङ्ग उछलते हैं; कभी अधको जाते और कभी ऊर्ध्व को जाते तैसेही कर्मों के वश से जीव स्वर्ग नरकमें भ्रमते हैं। इससे ऐसी दृष्टि का त्याग करके शुद्ध संवित्मात्र का आश्रयकरो और वीतराग होकर स्थित हो। हे रामजी! जगत् में ज्ञानवान् ही सुखी है और जीता भी वहीहै; और सब दुःखी और मृतक समान हैं। और बलीभी ज्ञानवान्हीहै जो मोहरूपी शत्रुको मारकर संसारसमुद्र के पार होताहै और सब निर्बल है। इससे तुमभी ज्ञानवान्हो संवेदनरहित जो संवित्मात्र तत्त्व है उसमें स्थित हो वह एक है और सबके आदि, सबसे उत्तम, कलना से रहित और सब में स्थितहै तो कर्ता हुये भी अकर्ता होगे और परब्रह्म उदय होगा॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्र० संशयनिराकरणोपदेशोनामाष्टाशीतितमस्सर्गः॥८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष ने आत्मविचार कर अपना चित्त अल्पभी निग्रह किया है वह सम्पूर्ण फल को प्राप्त होगा और उसीका जन्म सुफल होगा। हे रामजी! जिस चित्त में विचाररूपी कणा का उदय हुआहै वह अभ्याससे बड़े विस्तार को पावेगा। हृदय में जो नीरागपूर्वक विचार उपजता है तो वह बढ़ता जाता है और अविद्यारूपी गुणों के फल को काटडालेगा और सब शुभगुण, आन उसमें आलय करेंगे—जैसे जल से पूर्ण हुये ताल का सब पक्षी आन आश्रय करते हैं। हे रामजी! जिसको सम्यक्ज्ञान प्राप्त होताहै और निर्मल बोध से यथादर्शन होता है उसको इन्द्रियां चला नहीं सक्तीं। जबतक स्वरूपका प्रमाद होताहै तबतक आधि व्याधि दुःख होतेहैं और जब स्वरूप में स्थिति होतीहै तब शरीर और मन के दुःख वश नहीं करसक्ते—जैसे बिजलीको कोई ग्रहण नहीं करसक्ता, तैसे पुष्टिकर मेघों को कोई पकड़ नहीं सक्ता; जैसे आकाशके चन्द्रमा को मुष्टि में कोई नहीं पकड़ सक्ता और मूढ़ स्त्री चन्द्रमा को मोह नहीं सक्ती, तैसेही ज्ञानवान् को कोई दुःख वश नहीं करसक्ता। हे रामजी! जो हाथी मदसे मत्त है और जिसके मस्तकसे मद झरता है और भँवरे उसके आगे शब्द करते हैं उसको मच्छरों के प्रहार और स्त्रियों के श्वास नहीं छेदसक्ते; तैसेही ज्ञानवान् को विषयों के राग द्वेष नहीं चलासक्ते। जिस हाथीके मस्तक से मोती निकलते हैं ऐसे बलवान् हस्तीके नखोंसे विदारनेवाले सिंह को हरिण नहीं मारसक्ता; तैसेही ज्ञानवान् को दुःख नहीं चलासक्ता। जिसके फूत्कारसे वन के वृक्ष जलजाते हैं ऐसे सर्प को दर्दुर नहीं ग्रास सक्ते; तैसेही ज्ञानवान् को रागद्वेष नहीं चलासक्ते। जैसे राजसिंहासनपर बैठे राजों को तस्कर दुःख दे नहीं सक्ते तैसेही जो ज्ञानी स्वरूप में स्थित है उसको इन्द्रियोंके विषयदुःख नहीं देसक्ते। जो विचारसे रहित देहाभिमानी हैं और आत्मतत्त्व को नहीं प्राप्तहुये उनको विषय उड़ा लेजाते हैं—जैसे सूखे पत्रको पवन उड़ाले जाता है-और ज्ञानवान्को नहीं चलासक्ते। जैसे पर्वत मन्द पवनसे चलायमान नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान् सुख दुःख में चलायमान नहीं होता और जो विचारसे रहित है वह देश के परिणामभाव में स्थित मानता है और जगत्भाव है। संसारभाव पदार्थों में रत मनुष्यजन्म में गुरु और शास्त्र का मार्ग उसकी ओरसे सो रहा है और मूढ़ हो खानेपीने में सावधान है जो विचार से शून्य है, वह मृतक समान है और मृतक कहाता है। उसको यह विचार कर्तव्य है कि, 'मैं कौन हूं' 'यह जगत् क्या है' 'कैसे उत्पन्न हुआ है' और कैसे निवृत्त होगा,। इस प्रकार विचारकर सन्तों के संग और अध्यात्मशास्त्र के विचार से जो पुरुष दृश्यभाव को त्यागकर आत्मतत्त्व में स्थित होता है वह परमपद पाता है। जैसे दीपक के प्रकाश से पदार्थ पायाजाता है तैसेही विचार से आत्मतत्त्व पाया जाता है। हे रामजी! जिसको शास्त्रविचार से आत्मतत्त्व

का बोध होता है वह ज्ञानी कहाता है और वह ज्ञान ज्ञेय के साथ अभिन्नरूप है। अध्यात्मविद्या के विचार करके आत्मज्ञान प्राप्त होताहै। जैसे दूधसे मथकर मक्खन निकाला जाता है तैसेही विचार से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञेय जो भीतर होता है सोई परब्रह्म स्वरूप है और सत्य है पर असत्य की नाईं होकर स्थित है। ज्ञानवान् उसको पाकर तृप्त होता है और जीवन्मुक्त होकर अपने आप में प्रकाशता है। जैसे चक्रवर्ती राज्य से आनन्द और तृप्ति होती है तैसेही ज्ञानवान् ब्रह्मानन्द में इन्द्रियों की इच्छा से रहित शोभता है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पांचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त नहीं होता। सुन्दर राग, तन्त्री के शब्द, स्त्रियों के गाने और कोकिलापक्षी और गन्धर्व गन्धर्वी आदि में जो गायन हैं उन किसी में वह आसक्त नहीं होता। अगर, चन्दन, मन्दार, कल्पवृक्ष के सुन्दर फूलों की सुगन्ध; अप्सरा और नागकन्याओं की नाईं सुन्दर स्त्रियों का स्पर्श करने और हीरे, मणि और भूषण और नाना प्रकार के वस्त्रोंमें वह बन्धवान् नहीं होता। जैसे चन्द्रमा सुन्दर और शीतलहै परन्तु सूर्यमुखी कमलों को विकाश नहीं करसक्ता तैसेही सुन्दर स्पर्श ज्ञानी के चित्त को हर्षवान् नहीं करते। जैसे मरुस्थल में हंस प्रसन्न नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् स्पर्श में प्रसन्न नहीं होते और रसादिक में भी बन्धवान् नहीं होते। दूध, दही, घृतादिकरस; भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य; यह चारों प्रकार के भोजन और कटु, तीक्ष्ण, मीठा, खारा आदि जितने रस हैं इनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते और किसीमें बन्धवान् नहीं होते। वे आकासबोध से नित्य तृप्त हैं और किसी भोग की इच्छा नहीं करते जैसे ब्राह्मण मुर्गी के मांस के खाने की इच्छा नहीं करते तैसेही ज्ञानवान् उर्वशी, रम्भा, मेनका आदि अप्सराओं की इच्छा नहीं करता और चन्दन, अगर, कस्तूरी, मन्दार आदि वृक्षों के फूलों की सुगन्धकी इच्छा नहीं करते। जैसे मछली मरुस्थल की इच्छा नहीं करती तैसेही ज्ञानवान् सुगन्ध की इच्छा नहीं करता और रूप की इच्छाभी नहीं करते। सुन्दर स्त्रियां, बाग, तालाब, नदियां इत्यादिक जो रूपवान् पदार्थ हैं तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करता। जैसे चन्द्रमा बादलोंकी इच्छा नहीं करते तैसेही ज्ञा-वान् रूपकी इच्छा नहीं करते। और की क्या बातहै, इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, समुद्र, कैलास, मन्दराचल, रत्न, मणि और कञ्चन ये जो बड़ेबड़े पदार्थ हैं उनकी भी वे इच्छा नहीं करते। जैसे राजा नीच पदार्थों की इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् पदार्थों की इच्छा नहीं करता। समुद्र और सिंह के गर्जने और बिजली के कड़कने काजो भयानक शब्द है उसको भी सुनकर वह भयवान् नहीं होता—जैसे शूरमा धनुष का शब्द सुनकर भयवान् नहीं होता। ज्ञानवान् मतवालेहाथी; वैताल; पिशाच और इन्द्र के वज्र के शब्द सुनता और देखता हुआ भी

कम्पायमान नहीं होता और सत्स्वरूप की स्थिति से कभी चलायमान नहीं होता। शरीर को जो आरेसे काटिये; खड्ग से कण कण करिये और बाणों से बेधिये तौभी कम्पायमान नहीं होता। उसको राग द्वेष भी किसी में नहीं होता, यदि शरीरपर एक ओर जलता अङ्गारा रखिये और एक ओर फूलों की माला रखिये तौभी वह हर्ष-शोकवान् नहीं होता। एक ओर खड्ग धारावत् तीक्ष्ण स्थान हो और एकओर पुष्प-शय्या हो तो उसको दोनों तुल्य हैं। एक ओर शीतल स्थान हो और एकओर गरम शिला हो तो दोनों उसको तुल्य हैं। एक ओर मारनेवाला विष हो और दूसरी ओर जियानेवाला अमृत हो तो उसको दोनों तुल्य हैं। हे रामजी! चाहे सम्पदा प्राप्त हो चाहे आपदा हो; चाहे मृत्यु हो, चाहे उत्साह हो इनमें व्यवहार करता भी वह दृष्टि आता है परन्तु हृदय से हर्ष और शोक नहीं। उसका मन हृदय संयुक्तहै और सदा सम रहताहै। हे रामजी! लोहेके कुल्हाड़े से उसका मांस तोड़िये; नरक में डालिये और ऊपर शस्त्रों की वर्षा हो तौ भी ज्ञानवान् भय न पावेगा और न उद्वेगवान् और न व्याकुल होगा; न दीन होगा। ज्ञानवान् इनमें सदा शममन रहकर पहाड़ की नाईं धैर्यवान् स्थित रहताहै। हे रामजी! ज्ञानवान् रागद्वेष से रहित है और देह अभिमान से मुक्त हुआ है। उसका शरीर अग्नि में पड़े, वा खाईंमें गिरे अथवा स्वर्गमें हो उसको दोनों तुल्य हैं और वह हर्ष शोक से रहितहै। हे रामजी! जिसके स्वरूप में दृढ़ स्थिति हुई है वह चलायमान नहीं होता—जैसे मेरु स्थित है—उसको पवित्र पदार्थ हो अथवा अपवित्र पदार्थ हो पन्थ हो वा कुपन्थ हो; विष हो अथवा अमृत हो; मीठा, खट्टा, सलोना, कड़ुवा, दूध, दही, घृत, रस, रक्त, मांस, मद्य, अस्थि, तृण आदिक जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य भोजन हैं वह सम हैं। न इष्ट में वह रागवान् होताहै और न अनिष्ट में द्वेषवान् है। यदि एक पुरुष प्राणों के निकालने को सन्मुख आवे और दूसरा प्राणों की रक्षानिमित्त आवे तो दोनों को वह आत्मस्वरूप, शान्तमन और मधुररूप देखता है और रागद्वेष से रहित है। रमणीय अरमणीय पदार्थों को वह सम देखता है और उसने संसार की आस्था त्याग दी है। बोधस्वरूप में वह निश्चित है, चित्त नीरागपद को प्राप्त हुआ है और सब जगत् उसको आत्मस्वरूप भासता है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पञ्चविषयों के भोग अपना अवसर नहीं पाते। जैसे दर्पण देखने से प्रतिबिम्ब भासता है, दर्पण की सुरत नहीं रहती तैसेही वह विषयों में आत्मा देखता है, विषयों की सुरत नहीं रहती अज्ञानी को इन्द्रियां ग्रास लेती हैं—जैसे तृणों को मृग ग्रास लेता है। जिसने आत्मपद में वि-श्रान्ति पाई है उसको इन्द्रियां ग्रास नहीं सक्तीं। हे रामजी! अज्ञानरूपी समुद्र में जो पड़ा है और वासनारूपी लहरों से मिलकर उछलता और गिरता है; उसको

आशारूपी तेंदुआ ग्रास करलेताहै और वह हाय हाय करताहै; शान्ति नहीं पाता। जो विचार करके आत्मपद को प्राप्त हुआ है वह विश्रान्ति को पा चलायमान नहीं होता। जैसे सुमेरु पर्वत जल के समूह से चलायमान नहीं होता तैसेही वह संकल्प विकल्प में चलायमान नहीं होता। जिसकी आत्मपद में विश्रान्ति हुई है वह उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ है। हे रामजी! उसको यह जगत् ज्ञानमात्र भासता है और वह उसे संवित्मात्र जानकर विचार करता है; न किसीका ग्रहण है और न त्याग करता है। इससे भ्रान्ति को त्यागकर संवित्मात्रही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है और किसका ग्रहण करता है? जो आदि में भी न हो; अन्त में भी न रहे और मध्य में भी कुछ न भासे उसे भ्रममात्र जानिये। इसप्रकार जानकर, भाव अभाव की बुद्धि को त्यागकर और निस्संवेदनरूप होकर संसार समुद्र से तरजाओ और मन, बुद्धि और इन्द्रियों से कर्म करो चाहे न करो; निस्सङ्ग होगे तब तुमको लेप न लगेगा। हे रामजी! जिसका मन अभिमान से रहित हुआ है वह कर्म करता भी लेपायमान नहीं होता। जैसे मन और ठौर गया होता है तो विद्यमान शब्द अथवा रूप पदार्थों को प्रस्तुत होतेभी नहीं जानता, तैसेही जिसका मन आत्मपदमें स्थित हुआहै उसको सुख दुःख कर्म नहीं लगता। जो पुरुष अभिमान से रहित है वह कर्मों में सुख दुःख भोगता दृष्टि आताहै परन्तु वह उसको स्पर्श नहीं करता। देखो तो यह बालक भी जानते हैं कि, मन और ठौर जाताहै तो सुनताभी नहीं सुनता; तैसेही वह पुरुष करताभी नहीं करता। हे रामजी! जिसका मन असंग हुआ है वह देखता है परन्तु नहीं देखता; सुनता है परन्तु नहीं सुनता; स्पर्श करता है परन्तु नहीं करता; सूंघता और रस लेता है परन्तु नहीं लेता इत्यादिक जो कुछ चेष्टा हैं सो कर्ताभी वह अकर्ता है और उसका चित्त आत्मपद में लीनहुआहै। जैसे कोई पुरुष देशान्तरको जाताहै तो वह उस देश में व्यवहार कर्म करता है परन्तु उसका चित्त गृह में रहता है तैसेही ज्ञानवान् का चित्त आत्मपद में रहताहै। यह बात मूर्खभी जानता है। जैसा वेग मन में तीव्र होता है उसकी सिद्धि होती है और वही भासता है; और नहीं भासता। हे रामजी! सब अनर्थों का कारण संग है; संसार के संगसेही जन्म-मरण के बन्धन को प्राप्त होता है; इससे सब अनर्थों का संसार का कारण संग है। सब इच्छा का कारण संग है और सब आपदा का कारण संग है; संग के त्यागसे मोक्षरूप और अजन्मा होताहै। इससे संग को त्याग कर और जीवन्मुक्त होकर विचरो। रामजीने पूछा, हे भगवन्! आप सर्वसंशयरूपी कुहिरेके नाशकर्ता शरत्कालका पवन हैं। संग किसको कहते हैं यह संक्षेपसे मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भाव-अभाव जो पदार्थ हैं वह हर्ष और शोक के देनेवाले हैं। जिस मलिन वासना से यह प्राप्त

होते हैं वही वासना संग कहाता है हे रामजी ! देह में जो अहंबुद्धि होती है और संसार की जो सत्यप्रतीति है तो उस संसार के इष्ट अनिष्ट को रागद्वेष सहित ग्रहण करताहै; ऐसी मलिन वासना संग कहाती है और जीवन्मुक्त की वासना हर्ष शोकसे रहित शुद्ध होती है—सो निस्संग कहाती है । उसकी वासना जन्म मरण नहीं होती। हे रामजी ! जिस पुरुष की देहमें अभिमान नहीं होता और जिसकी स्वरूप में स्थिति है वह शरीर के इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता क्योंकि, उसकी शुद्ध वासनाहै और वह जो कर्ता है सो बन्धन का कारण नहीं होता । जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसेही ज्ञानवान् की वासना जन्म मरण का कारण नहीं होती और जिसकी वृत्ति जगत् के पदार्थों में स्थित है और रागद्वेष से ग्रहण त्याग करता है ऐसी मलिन वासना जन्मों का कारण है । इस वासना को त्यागकर जब तुम स्थित होगे तब तुम कर्ताहुयेभी निर्लेप रहोगे और हर्ष शोकादि विकारों से जब तुम रहित होगे तब वीतराग और भय और क्रोधसे असंग होगे । हे रामजी ! जिसका मन असंग हुआहै वह जीवन्मुक्त हुआ है । इससे तुमभी वीतराग होकर आत्मतत्त्व में स्थित हो । जीवन्मुक्त पुरुष इन्द्रियों के ग्राम को निग्रह करके स्थित होता है और मान, मद, वैर को त्यागकर सन्ताप से रहित स्थित होता है । वह सब आत्मा जानकर कर्म करता है परन्तु व्यवहार बुद्धि से रहित असंग होकर कर्म करता है । वह करता भी अकरता है उसको आपदा अथवा संपदा प्राप्त हो अपने स्वभाव को नहीं त्यागता, जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचल पर्वतको पाकर शुक्लता को नहीं त्यागा तैसेही जीवन्मुक्त अपने स्वभाव को नहीं त्यागते । हे रामजी ! आपदा प्राप्त हो अथवा चक्रवर्ती राज्य मिले; सर्प का शरीर प्राप्त हो अथवा इन्द्र का शरीर प्राप्त हो; इन सब में वह सम और आत्मभाव स्थित होता है और हर्ष शोक को नहीं प्राप्त होता । वह सब आरम्भोंको त्यागकर नानात्वभाव से रहित स्थित होता है । विचार करके जिसने आत्मतत्त्व पाया है वह जैसे स्थित हो तैसेही तुम भी स्थित हो । इसी दृष्टिको पाकर आत्मतत्त्व को देखो तब विगतज्वर होगे और आत्मपद को पाकर फिर जन्म मरण के बन्धन में न आवोगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआर्षेदेवदूतोक्तमहारामायणेमोक्षोपायन्नामनवतितमस्सर्गः ॥ ९० ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणंपञ्चमंसमाप्तम् ॥

इति ॥

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे ॥

द्वितीयभाग

निर्वाणप्रकरणं षष्ठं प्रारभ्यते ॥

वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! उपशम प्रकरण के अनन्तर अब तुम निर्वाण प्रकरण सुनो जिसके जानने से तुम निर्वाणपद को प्राप्त होगे। बड़े उत्तम वचन मुनिनायक ने रामजी से कहे हैं और रामजी ने सब ओर से मन खैंचकर मुनीश्वर के वाक्यों में स्थापित किया। और राजालोग भी निस्पन्द होगये मानों काग़ज़ पर चित्र लिखे हैं—और वशिष्ठजी के वचनों को विचारने लगे। राजकुमार भी विचारते और कण्ठ हिलाते थे और शिर और भुजा फेर के विस्मय को प्राप्त हुये। उसमें वे प्रसन्नता को प्राप्त हुये कि, जिस जगत् को सत्य जानकर हम विचरते थे वह हैही नहीं। ऐसे आश्चर्य में वे आश्चर्य को प्राप्त हुये। तब दिन का चतुर्थभाग रहगया और सूर्य अस्त हुये—मानों वशिष्ठजी के वचन सुनकर उनको भी फल लगा है—सब तेज क्षीण होगया और शीतलता प्राप्त हुई। स्वर्ग से जो सिद्ध और देवता आये थे उनके गले में मन्दार आदिक वृक्षों के फूल थे उनसे पवन के द्वारा सब स्थान सुगन्धित होगये और भँवरे फूलों पर गुञ्जार करने लगे और झरोखों के मार्ग से सूर्य की किरणें आती थीं उनसे सूर्यमुखी कमल जो राजा और देवताओं के शीश पर थे वह सूखगये। जैसे मनसे जगत् की सत्ता निवृत्त होजाती है और वृत्ति सकुचती जाती है। बालक जो सभा में बैठे थे और पिञ्जरोंमें जो पक्षी बैठे थे उनके भोजन का समय हुआ और बालकों के भोजन के निमित्त माता उठीं। जब चौथे पहर राजा की नौबत, नगारे, भेरी, सहनाई, बाजे बजने लगे और वशिष्ठजी जो बड़े ऊंचे स्वर से कथा कहतेथे उनका शब्द नगारे और बाजों से दबगया तब—जैसे वर्षाकाल का मेघ गरजताहै और मोर तूष्णी होजाते हैं तैसेही वशिष्ठजी तूष्णी होगये। ऐसा शब्द हुआ कि, जिससे आकाश, पृथ्वी, और सब दिशा भरगये और पिञ्जरों में पक्षी पंखों को फैलाकर भड़ भड़ शब्द करनेलगे—जैसे भूकम्प हुयेसे लोग कांपते और शब्द करते हैं—और बालक माता के शरीर से लपट गये। इसके अनन्तर मुनिशार्दूल वशिष्ठजी बोले कि, हे निष्पाप, रघुनाथ! मैंने तुम्हारे चित्तरूपी पक्षी के फँसाने के निमित्त अपना वाक्रूपी जाल फ़ैलाया है, इससे अपने चित्त को वश करके

तुम आत्मपद में लगो । हे रामजी ! यह जो मैंने तुमको उपदेश कियाहै उसके सार में दुर्बुद्धि को त्यागकर चित्त को लगाओ । जैसे हंस जलको त्यागकर दूध पान करता है तैसेही आदिसे अन्तपर्यन्त सब उपदेश बारम्बार विचारकर सार को अङ्गीकार करो । इस प्रकार संसारसमुद्र से उतरकर परमपद को प्राप्त होगे । अन्यथा न होगे। हे रामजी ! जो इन वचनों को अङ्गीकार करेगा वह संसारसमुद्र से तरजावेगा और जो अङ्गीकार न करेगा वह नीच गति को प्राप्त होगा । जैसे बिन्ध्याचल पर्वत की खाईं में हाथी गिरके कष्ट पाता है तैसेही वह संसार में कष्ट पावेगा । हे रामजी ! ये जो मेरे वचन हैं इनको ग्रहण न करोगे तो नीचे गिरोगे-जैसे पन्थी हाथ से दीपक त्यागकर रात्रि को गढ़े में गिरता है-और जो असंग होकर व्यवहार में बिचरोगे तो आत्मसिद्धि को प्राप्त होगे । यह जो मैंने तुमको तत्त्वज्ञान; मनोनाश और वासना क्षय कहा है, इस अभ्यास से सिद्धि को प्राप्त होगे । यह शास्त्र का सिद्धान्तहै । हे सभा ! हे महाराजो, हे राम, लक्ष्मण और भूपतिलोगो ! जो कुछ मैंने तुमसे कहाहै उसको तुम विचारो; जो कुछ और कहनाहै उसे मैं प्रातःकाल कहूंगा । इतना कह बाल्मीकिजी बोले; हे साधो ! इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब सब सभा उठ खड़ीहुई और वशिष्ठजी के वचनों को पाकर सब खिलआये-जैसे सूर्यको पाकर कमल खिल आता है । वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों इकट्ठे उठे और वशिष्ठजी विश्वामित्र को अपने आश्रम में लेगये । आकाशचारी देवता और सिद्ध वशिष्ठजी को नमस्कार करके अपने२ स्थानों को गये, राजादशरथ अर्घ्य पाद्य से वशिष्ठजी का पूजन करके अपने अन्तःपुर में गये और श्रोता लोगभी आज्ञा लेकर और वशिष्ठजी का पूजन करके अपने २ स्थानों में गये । राजकुमार अपने मण्डलको गये मुनीश्वर वनमें गये और राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न वशिष्ठजी के आश्रम को गये और पूजा करके फिर अपने गृह में आये । सब श्रोता अपने २ स्थानों को जाकर स्नानसंध्यादिक कर्म करनेलगे, पितर और देवताओं को पूजा और ब्राह्मणों से लेकर भृत्यपर्यन्त सब को भोजन कराकर अपने मित्र और भाइयों के साथ भोजन किया और यथाशक्ति अपने वर्णाश्रम के धर्मको साधा । जब सूर्य भगवान् अस्त हुये और दिन की क्रिया निवृत्त होगई तब रात्रि हुई और निशाचर बिचरनेलगे तब भूचर, राजऋषि और राजपुत्र आदिक जो श्रोता थे सो रात्रि को एकान्त में अपने २ आसन पर बैठकर विचारनेलगे । राजकुमार और राजा अपने २ स्थानों पर बैठे और ब्राह्मण, तपस्वी कुशादिक बिछाकर बैठे विचारते थे कि संसार के तरने का क्या उपाय कहा है; और जो वशिष्ठजी ने वचन कहे थे उनमें भले प्रकार चित्त को एकाग्रकर और भले प्रकार विचार कर निद्रा को प्राप्त हुये । जैसे सूर्य उदय हुये पद्मिनियां मुंदजाती हैं तैसेही वे

सब सुषुप्ति को प्राप्त हुये; पर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तीनपहर वशिष्ठजी के उपदेश को विचारतेरहे और आधेपहर सोकर फिर उठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदिवसरात्रिव्यापारवर्णनंनामप्रथमस्सर्गः॥ १॥

वाल्मीकिजी बोले, हे साधो! इस प्रकार जब रात्रि व्यतीत हुई और तम का नाश हुआ तब राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्नादिक स्नान और संध्यादिक कर्म करके वशिष्ठजी के आश्रम में जा स्थित हुये। वशिष्ठजी भी संध्यादिक करके अग्निहोत्र करनेलगे और जब करचुके तब रामादिक ने उनको अर्घ्य पाद्य से पूजा और चरणों पर भले प्रकार मस्तक रक्खा। जब रामजी गयेथे तब वशिष्ठजी के द्वारे पर कोई न था पर एकघड़ी में अनेक सहस्र जीव आये और वशिष्ठजी रामादिक को साथ लेकर राजा दशरथ के गृह में आये। तब राजा दशरथ उनकी अगवानी का आगे आये और वशिष्ठजी का आदर व पूजन किया और दूसरे लोगों ने भी बहुत पूजन किया। निदान नभचर और भूचर जितने श्रोता थे वे सब आये और नमस्कार करके बैठे और सब निस्पन्द और एकाग्र होकर स्थित भये। जैसे निस्पन्द वायु से कमलों की पंक्ति अचल होती है तैसे वे बैठे। भाटजन जो स्तुति करनेवालेथे वे भी एक ओर बैठे और सूर्य की किरणें झरोखों के मार्ग से आईं—मानों किरणें भी वशिष्ठजी के वचन सुनने को आई हैं तब वशिष्ठजी की ओर रामजी ने देखा जैसे स्वामिकार्तिक शंकर की ओर; कच बृहस्पतिकी ओर और प्रह्लाद शुक्रकी ओर देखें और जैसे भ्रमरा भ्रमता२ आकाश-मार्ग से कमलपर आ बैठता है तैसेही रामजी की दृष्टि औरोंको देखते २ वशिष्ठजी पर आ स्थित हुई तब वशिष्ठजी ने रामजी की ओर देखा और बोले; हे रघुनन्दन! मैंने जो तुमको उपदेश किया है वह तुमको कुछ स्मरण है? वे वचन परमार्थबोधके कारण, आनन्दरूप और महा गम्भीर हैं। अब और भी बोधके कारण और अज्ञान-रूपी शत्रु के नाशकर्ता, इन्दुप्रभा वचनों को सुनो। निरन्तर आत्मसिद्धान्त शास्त्र मैं तुमसे कहता हूं। हे रामजी! वैराग्य और तत्त्व के विचार से संसारसमुद्र को तरता है और सम्यक्तत्त्व के बोध से जब दुर्बोध निवृत्त होजाता है तब वासना का आवेश नष्ट होजाता है और निर्दुःखपद को प्राप्त होजाता है। वह पद देश काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है। वही ब्रह्म जगत्‌रूप होकर स्थित हुआ है और भ्रम से द्वैत की नाईं भासताहै। वह सब भावों मे अविच्छिन्न सर्वत्र ब्रह्म है इस प्रकार महत् स्वरूप जानकर शान्तिमान् हो। हे रामजी! केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है; न कुछ चित्त है, न अविद्या है, न मन है, न जीवहै; यह सब कलना ब्रह्ममें भ्रमसे फुरनी हैं। जो स्पन्द फुरनादृश्य और चित्त है सो कलनारूप संभ्रम है। ब्रह्मसे कोई पदार्थ नहीं। हे रामजी! स्वर्ग, पाताल, और भूमि में सदाशिव से तृण पर्यन्त जो

कुछ दृश्य है वह सब परब्रह्म है–चिद्रूपसे अन्य नहीं। उदासीन और मित्र, बांधव से लेकर सब ब्रह्म हैं। जबतक अज्ञान कलनासे जगत् में बुद्धि स्थित है और ब्रह्मभाव नानात्व है तबतक चित्तादि कलना होती है; जबतक देह में अहंभाव है और अनात्मदृश्यमें ममत्व है तबतक चित्त आदिक भ्रम होताहै और जबतक सन्त जन और सत्शास्त्रोंसे ऊंचे पदको नहीं पाया और मूर्खता क्षीण नहीं हुई तबतक चित्तादिक भ्रम होता है। हे रामजी! जबतक देहाभिमान शिथिलता को नहीं प्राप्त हुआ; संसारकी भावना नहीं मिटी और सम्यक्ज्ञान करके स्थिति नहीं पाई; जबतक चित्तादिक प्रकट हैं; तबतक अज्ञानसे अन्धा है और विषयोंकी आशाके आवेशसे मूर्च्छित है और मोहमूर्च्छासे नहीं उठा तबतक चित्तादिककलना होती है। हे रामजी! जबतक आशारूपी विषकी गन्ध हृदयरूपी वनमें होती है तबतक विचाररूपी चकोर नहीं प्राप्त होता और भोगवासना नहीं मिटती। जब भोगों की आशा मिटजावे और सत्य शीतलता और संतुष्टता हृदय में प्राप्त हो तब चित्तरूपी भ्रम निवृत्त होजाता है। जब मोह और तृष्णा निवृत्त करिये और नित्य संवितहो तब चित्त शांतभूमिका को प्राप्त होता है। हे रामजी! जिस पुरुष की स्थिति स्वरूप में हुई है वह आपको देहसे दूर देखता है। उस सम्यक्दर्शी के चित्तकी भूमिका कहते हैं। जब अनन्त चेतनतत्त्व की भावना होती है और दृश्यको त्यागकर आत्मस्वरूप में प्राप्त होता है तब वह पुरुष सब जगत् को अपना अंगही देखता है अर्थात् सब अपना स्वरूप देखता है। ऐसा जो आत्मरूप देखता है। उसको जीवत्वादिक भ्रम कहां है? जब अज्ञान भ्रम निवृत्त होता है तब परम अद्वैत पद उदय होता है। जैसे रात्रि के क्षीण हुये सूर्य उदय होता है तैसेही मोहके निवृत्त हुये आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब चित्त नष्ट होजाता है। जैसे सूखा पत्र अग्नि में दग्ध होजाता है तैसेही ज्ञानवान् का चित्त नष्ट होजाता है। हे रामजी! जीवन्मुक्त जो महात्मा पुरुष और परावरदर्शी है और जिसको सर्वत्र ब्रह्मही दीखता है उसका चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है। वह चित्त सत्य कहाता है और उस में वासना भी दृष्टि नहीं आती। वह चेतनमन है और वह चित्त सत्यपद को प्राप्त हुआ है। यह जगत् ज्ञानवान् को लीलामात्र भासता है और वह हृदयसे शांतिरूप और नित्य तृप्त है। उसको सर्वदा आत्मज्योति भासती है; विवेक से उसके चित्तसे जगत् की सत्ता निवृत्त होगई है और स्वरूप में उसने स्थिति पाई है सो चित्तसत्ता कहाती है। फिर वह कर्म चेष्टा करता भी दृष्टि आता है और मोह को नहीं प्राप्तहोता। जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही ज्ञानी की चेष्टा जन्मका कारण नहीं और जो अज्ञानी हैं उनकी वासना मोहसंयुक्त है। जैसे कच्चा बीज उगता है

तैसेही अज्ञानी वासनासे फिर २ जन्म लेता है और जिस चित्तसे आसक्ति निवृत्त हुई है उसकी वासना जन्मका कारण नहीं। वह चित्त सत्ता कहाती है। हे रामजी! जिन पुरुषों ने पानेयोग्य पद पाया है और ज्ञानाग्निसे चित्त दग्ध किया है वे फिर जन्म नहीं लेते। जो कुछ जगत् है उनको सब ब्रह्मरूप है जैसे वृक्ष और तरु नाममात्र दो हैं वास्तवमें एकही है; तैसेही ब्रह्म और जगत् नाममात्र दोनों हैं पर वास्तव में एकही है। जैसे जलमें तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही ब्रह्ममें जगत् ब्रह्मरूप है। चेतन आत्मारूपी मिरचमें जगत्रूपी तीक्ष्णता है। हे रामजी! ऐसे ब्रह्म तुमहो। जो तुम कहो कि, मैं चित्त नहीं तो कुछ मानाजाता है क्योंकि, जो तुम कहो मैं जड़ हूं तो तुम आकाशवत् हुये तुम्हारे में कलना का उल्लेख कैसेहो? जो चेतनहो तो शोक किसका करतेहो और जो चिन्मयहो तो निरायास आदि अन्तसे रहित हुये। निदान सब तुमहीं हो अपने स्वरूपको स्मरण करो तब शान्ति पावोगे। जो सब भावमें स्थितहो और सबको उदय करनेवाले शान्तरूप, चेतन और ब्रह्मरूप हो। हे रामजी! ऐसी जो चेतनरूपी शिला है उसके उदयमें वासनारूपी फुरना कहां हो? वह तो महाघनरूप है। हे रामजी! जो तुमहो सोई हो, उसमें और तुम्हारे में कुछ भेद नहीं। वही सत् और असत्रूप होकर भासता है, जिसके अन्तर सब पदार्थ हैं और जिसमें नानात्व और 'अहं;' 'त्वं,' 'अज्ञ' 'तज्ज्ञ' में कुछ कलना नहीं। ऐसा जो सत्यरूप चिद्घन आत्मा है उसको नमस्कार है। हे रामजी! तुम्हारी जय हो। तुम आदि और अन्तसे रहित विशाल हो और शिलाके अन्तर्वत् चिद्घनस्वरूप आकाशवत् निर्मल हो। जैसे समुद्र में तरङ्ग हैं तैसेही तुम्हारे में जो जगत् है सो लीलामात्र है। तुम अपने घनस्वरूप में स्थितहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्रामदृढ़ीकरणंनामद्वितीयस्सर्गः॥ २॥

वशिष्ठजी बोले, हे निष्पाप, रामजी! जिस चेतनरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग फुरते और लीन होजाते हैं ऐसे अनन्त आत्मभाव की भावनासे मुक्त और भाव अभावसे रहित हो। ऐसा जो चिदात्म तुम्हारा स्वरूप है वही सर्व जगत्रूप है तब वासनादिक आवरण कहां हैं? जीव और वासना और सब आत्माका किञ्चनहै दूसरी वस्तु कुछ नहीं तब और कथा और प्रसंग कैसेहो? हे रामजी! महासरल गम्भीर और प्रकाशरूप जो चेतन समुद्र है वह तुम्हारा रूप है और रामरूपी एक तरङ्ग फुरआया है सो समुद्र तुम हो। ऐसा जो आत्मतत्त्व है वह जगत्रूपी होकर व्यापारी भासता है। जैसे अग्नि से उष्णता, फूल से सुगन्ध; कज्जल से कृष्णता, बरफ़ से शुक्लता; गुड़ से मधुरता और सूर्य से प्रकाश भिन्न नहीं तैसेही ब्रह्मसे अनुभव भिन्न नहीं–नित्यरूप है। अनुभव से अहं भिन्न नहीं; अहं से जीव भिन्न नहीं; जीवसे मन

भिन्न नहीं, मन से इन्द्रियां भिन्न नहीं, इन्द्रियों से देह भिन्न नहीं और देह से जगत् भिन्न नहीं । इस प्रकार महाचक्र जो प्रवृत्त की नाईं हुआ है सो कुछ प्रवृत्त नहीं, न शीघ्र प्रवर्तन, चिरकाल का प्रवर्ता है, न कोई ऊन है और न अधिक है, सर्वदा एक अखण्डसत्ता परमात्मतत्त्व है । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही ब्रह्म-सत्ता अपने आपमें स्थित है । वही सत्ता वज्रभूत और वही पूर्ण होकर स्थित है द्वैतकल्पना कुछ नहीं । ऐसे अपने स्वरूप में जो पुरुष स्थित है वह जीवन्मुक्त है । ऐसा जो ज्ञानवान् है वह मन, इन्द्रियों और शरीर की चेष्टा भी करता है पर उसको कर्तव्य का लेप नहीं लगता । हे रामजी ! ज्ञानवान् को न कुछ त्यागने योग्य रहता है और न ग्रहण करनेयोग्य है; वह सब पदार्थों से निर्लेप रहता है । जबतक इस को ग्रहण और त्याग की बुद्धि होती है तबतक संसार के सुख दुःख का भागी होता है और इससे हेयोपादेय का जिसको अभाव है वह सुख दुःख का भागी नहीं होता । हे रामजी ! जो कुछ जगत् है वह एक अद्वैत आत्मतत्त्व है, अन्यत् कुछ नहीं । जैसे घट मठ की उपाधिसे आकाश नानाप्रकार का भासता है और समुद्र तरङ्ग से अनेक रूप भासता है पर नानात्वभाव को नहीं प्राप्त होता तैसेही आत्मा में नाना प्रकार जगत् भासता है और नानात्व को नहीं प्राप्त होताहै । ऐसे स्वरूप को जानकर उसमें स्थित हो; बाहर से अपने वर्णाश्रम का व्यवहार करो पर हृदय से पत्थर की नाईं हर्ष शोक से रहित स्थित हो । संवित्मात्र आत्मा को जो अपनारूप देखता है वही सम्यक्दर्शी है और उसका अज्ञान और मोह नष्ट होजाता है । जैसे नदी का वेग मूलसहित तटके वृक्षको काटता है तैसेही आत्मज्ञान मोहसहित अज्ञान को काटता है । मित्रता, वैर, हर्ष, शोक, राग, द्वेषआदिक जो विकार हैं वे चित्त में रहते हैं सो उसका चित्त नष्ट होजाताहै । हे रामजी ! ज्ञानी सोता भी दृष्टि आताहै पर कदाचित् नहीं सोता जिसका अनात्मा में अहंभाव निवृत्त हुआ है और जिसकी बुद्धि लेपाय-मान नहीं होती वह पुरुष इस लोक को मारे तोभी उसने कोई नहीं मारा और न वह बन्धायमान होता है । हे रामजी ! जो वस्तु न हो और भासे उसको मायामात्र ज-निये, जानने से वह नष्ट होजावेगी । जैसे तेल विना दीपक शान्त होजाता है तैसेही ज्ञानसे वासना क्षय होजाती है और चित्त अचित्त होजाता है । जिसको सुख दुःखमें ग्रहण त्याग नहीं वह जीवन्मुक्त आत्मस्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकप्रतिपादनन्नामतृतीयस्सर्गः ॥ ३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मन, बुद्धि, अहंकार और इन्द्रियादिक जो दृश्य हैं वह सब अचिन्त्य चिन्मात्र है और जीव भी उससे अभिन्नरूप है । जैसे सुवर्ण और भूषण में भेद कुछ नहीं तैसेही चिन्मात्र और जीवादिक अभिन्न हैं । जबतक चित्त

अज्ञान में होता है तबतक जगत् का कारण होता है और जब अज्ञान नष्ट होजाता है तब चित्तादिक का अभाव होजाता है। अध्यात्मविद्या जो वेदान्तशास्त्र है उसके अभ्यास से अज्ञान नष्ट होजाता है। जैसे अग्नि के तेज से शीत का अभाव होजाता है तैसेही अध्यात्मविद्या के विचार और अभ्यास से अज्ञान नष्ट होजाता है। जब-तक अज्ञान का कारण तृष्णा उपशम को नहीं प्राप्त हुई तबतक अज्ञान है और जब तृष्णा नाश हो तब जानिये कि, अज्ञान का अभाव हुआ। हे रामजी! तृष्णारूपी विषूचिका रोग के नाश करनेका मन्त्र अध्यात्मशास्त्रही है, उसके अभ्यास से तृष्णा क्षीण होजाती है। जैसे शरत्काल में कुहिरा नष्ट होजाता है, तैसेही आत्मअभ्यास से चित्त शान्त होजाता है; और जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट होजाता है तैसेही विचार से मूर्खता नष्ट होजाती है। जब चित्त अचित्तता को प्राप्त होता है तब वासनाभ्रम क्षीण होजाता है जैसे तागेसे मोती पिरोये होते हैं और तागेके टूटसे मोती भिन्न २ होजाते हैं तैसेही अज्ञान के नष्ट हुये मनादिक सब नष्ट होजाते हैं। जो पुरुष अध्यात्मशास्त्रके अर्थको नहीं धारण करते और न प्रीतिही करते हैं वे पापी कीटादिक नीचयोनि को प्राप्त होंगे। हे कमलनयन! तुम्हारे में जो कुछ मूर्खता और चञ्चलता थी वह नष्ट होगई है और जैसे पवन के ठहरे से जल अचल होता है तैसेही तुम स्थिरता और भाव अभाव से रहित परम आकाशवत् निर्मल पद को प्राप्त हुयेहो। हे रामजी! मैं ऐसे मानता हूं कि, मेरे वचनों से तुम बोधवान् हुये हो और विस्तृत अज्ञानरूपी निद्रा से जागेहो। समान जीवभी हमारी वाणी से जग आते हैं, और तुमतो अतिउदार बुद्धि हो तुम्हारे जागने में क्या आश्चर्य है? हे रामजी! जब गुरु भी दृढ़ होता है और शिष्य भी शुद्धपात्र होताहै तब गुरुके वचन उसके हृदय में प्रवेश करते हैं सो मैं गुरु भी समर्थहूं कि, मुझको अपना स्वरूप सदा प्रत्यक्ष है और सत्शास्त्र के अनुसार मैंने वचन कहे हैं और तेरा हृदय भी शुद्ध है उस में वे प्रवेशकरगये हैं। जैसे तप्त पृथ्वी के क्षेत्र में जल प्रवेश करजाता है तैसेही तेरे हृदय में वचनों ने प्रवेश किया है। हे राघव! हम महानुभाव रघुवंश कुल के बड़े गुरु के गुरु हैं: हमारे वचन तुमको धारने आते हैं। अब खेदसे रहित होकर अपने प्रकृत आचार को करो। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनीश्वरने कहा तब सूर्य अस्त होनेलगा और सब सभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानों को गई रात्रि के व्यतीतहुये सूर्यकी किरणों के निकलतेही सब फिर आ बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तभावाभाववर्णनंनामचतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

रामजी बोले, हे मुनीश्वर! मैं परम स्वस्थता को प्राप्त होकर अपने आपमें स्थित हूं और आपके वचनों की भावना से जगज्जाल के स्थित हुयेभी मुझ को शान्ति

होगई है । आत्मानन्द में मैं तृप्त हुआहूं–जैसे बड़ी वर्षा से पृथ्वी तृप्त होतीहै–और प्रसन्नता को पाकर स्थित हूं । सब ओरसे केवल आत्मारूप मुझको भासता है और नानात्व का अभाव हुआहै। जैसे कुहिरे से रहित दिशा और आकाश निर्मल भासता है तैसेही सम्यक्ज्ञान से मुझको शुद्ध आत्मा भासता है और मोह निवृत्त होगया है । मोहरूपी जङ्गल में जो तृष्णारूपी मृग और रागद्वेष आदिक धूलि और कुहिरा था सो सब निवृत्त होगया है और ज्ञानरूपी वर्षा से सब शान्त होगये हैं । अब मैं आत्मानन्द को प्राप्त हुआ हूं, जो आदि अन्त से रहित और अमृत है बल्कि अमृत का स्वाद भी उसके आगे तुच्छ भासताहै। ऐसे आनन्द से मैं अपने स्वभाव में प्राप्त हुआ हूं मैं राम हूं अर्थात् सब में रमनेवालाहूं; मेरा मुझको नमस्कार है । अब मैं सब सन्देहसे रहित हूं और सब संशय और विकार मेरे नष्ट हुयेहैं । जैसे प्रातःकाल होनेसे निशाचर और वैताल आदिक निवृत्त होजातेहैं तैसेही राग द्वेषादिक विकारों का अभाव हुआ है और निर्मल विस्तीर्ण हिम की नाईं हृदयकमल में मैं स्थित हूं। जैसे भँवरा फिरता२ कमल में आ स्थित होताहै तैसेही मैं आत्मरूपी सारमें स्थित हूं। अविद्यारूपी कलङ्क आत्मा को कहां था मैं तो निश्चय से निर्मलता को प्राप्त हुआ हूं। जैसे सूर्य के उदय हुये तम का अभाव होजाता है तैसेही मेरे संशय और अविद्या नाश हुई है । अब मुझे सर्व आत्मा भासता है और कलना कोई नहीं । भावित आ-कार अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ मैं पूर्व प्रकृति को देखके हँसता हूं कि; क्या जा-नता था और क्या करता था । मैं तो नित्यशुद्ध ज्यों का त्यों आदि अन्त से रहित हूं। हे मुनीश्वर ! तेरे वचनरूपी अमृत के समुद्र में मैंने स्नान कियाहै और उससे अजर अमर आनन्दपद को पाकर सूर्यसे भी ऊंचेपद को प्राप्त हुआ हूं और वीतशोक होकर परम शुद्धता, समता, शीतलता और अद्वैत अनुभव को प्राप्त हूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराघवविश्रान्तिवर्णनन्नामपञ्चमस्सर्गः ॥५॥

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो ! फिर भी मेरे परम वचन सुनो; तुम्हारे हित की कामना से मैं कहता हूं । अब तुम आत्मपद को प्राप्त हुयेहो परन्तु बोध की वृद्धि के निमित्त फिर सुनो; जिसके सुनने से अल्पबुद्धि भी आनन्दपदको प्राप्त हो। हे रामजी ! जिसको अनात्म में आत्माभिमान है और आत्मज्ञान नहीं हुआ उसको इन्द्रियरूपी शत्रु दुःख देतेहैं–जैसे निर्मल पुरुष को चोर दुःख देते हैं और जिसको आत्मपद में स्थिति हुई है उसको इन्द्रियां दुःख नहीं देतीं—जैसे दृढ़ राजाके शत्रुभी मित्र होजाते हैं तैसेही ज्ञानवान् के इन्द्रियगण मित्र होतेहैं। जिनपुरुषों की देह में स्थित बुद्धि है और इन्द्रियोंके विषय की सेवना करते हैं उनको बड़े दुःख प्राप्त होते हैं । हे रामजी ! आत्मा और शरीरका सम्बन्ध कुछ नहींहै। जैसे तम और प्रकाश विलक्षण स्वभाव हैं

तैसेही आत्मा और देह का परस्पर विलक्षण स्वभाव है। आत्मा सर्वविकारोंसे रहित, नित्यमुक्त, उदय अस्तसे रहित और सबसे निर्लेपहै और सदा ज्योंका त्यों प्रकाशरूप भगवान् आत्मा सत्‌रूप है उसका सम्बन्ध किससे हो? देह जड़ और असत्य, अज्ञानरूप, तुच्छ, विनाशी और अकृतज्ञ है उसका संयोग किस भांति हो? आत्मा चेतन, ज्ञान, सत् और प्रकाशरूप है उसका देह के साथ कैसे संयोग हो? अज्ञान से देह और आत्मा का संयोग भासता है; सम्यक्‌ज्ञान से संयोग का अभाव भासता है। हे रामजी! ये मैंने निपुण वचन कहे हैं; इनका बारम्बार अभ्यास करने से संसार मोह का अभाव होजावेगा। जब संसार का कारण मोह निवृत्त हुआ तब फिर उसका सद्भाव न होगा जबतक अज्ञानरूपी निद्रा से दृढ़ होकर नहीं जागता तबतक आवरण रहता है। जैसे निद्रा के जागेसे फिर निद्रा घेर लेती है पर जब दृढ़ होके जागे तब फिर नहीं घेरती; तैसेही दृढ़ अभ्यास से अज्ञान निवृत्त हुआ फिर आवरण न करेगा। इससे मोह और दुःख निवृत्त के अर्थ दृढ़ अभ्यास करो। हे रामजी! आत्मा देह के गुण को अङ्गीकार नहीं करता; यदि देह के गुण अङ्गीकार करे तो आत्मा भी जड़ होजावे पर वह तो सदा ज्ञानरूप है; और जो देह आत्मा का गुण परमार्थ से अङ्गीकार करे तो देहभी चेतन होजावे पर वह तो जड़रूप है, उसको अपना ज्ञान कुछ नहीं। जब ज्यों का त्यों ज्ञान हो तब शरीर तुच्छ और जड़ भासे। हे रामजी! देह और आत्मा का कुछ सम्बन्ध नहीं और समवायसम्बन्ध भी नहीं फिर इससे मिलकर वृथा दुःख को ग्रहण करना इससे बढ़के और मूर्खता क्या है? जब कुछ भी इसका समान लक्षण हो तब सम्बन्ध भी हो पर जिसका कुछ भी समान लक्षण न हो उसका सम्बन्ध कैसेहो? आत्मा चेतन है, देह जड़ है; आत्मा सत्‌रूप है, देह असत्‌रूप है; आत्मा प्रकाशरूप है, देह तमरूप है; आत्मा निराकारहै, देह साकार है; आत्मा सूक्ष्म है और देह स्थूलहै तो फिर आत्मा और देहका सम्बन्ध कैसे हो? और जब इनका संयोग ही नहीं तब दुःख किसका हो? जैसे सूक्ष्म और स्थूल; दिन और रात्रि; ज्ञान और अज्ञान; धूप और छाया सत् और असत् का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही आत्मा और देह का संयोग नहीं होता और देह के सुख दुःख से आत्मा को सुखी दुःखी जानना मिथ्याभ्रम है। जरा-मरण, सुख-दुःख; भाव-अभाव आत्मा में रञ्चकमात्र भी नहीं यदि देह में अभिमान होता है तो ऊंच नीच जन्म पाता है; वास्तव में कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें विकार कोई नहीं। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में होता है और जलके हिलने से प्रतिबिम्ब भी चलता है तैसेही देह के सुख दुःख से आत्मा में सुख दुःख विकार मूर्ख देखते हैं- आत्मा सदा निर्लेप है और जब यथाभूत सम्यक् आत्मज्ञान हो तब देह में स्थित

भी भ्रम को न प्राप्त हो। हे रामजी! जब यथाभूत ज्ञान होता है तब सत् को सत् जानता है और असत् को असत् जानता है। जैसे दीपक हाथ में होताहै तब सत्-असत् पदार्थ भासते हैं तैसेही ज्ञान से सत्-असत् यथार्थ जानता है और अज्ञान से मोह में भ्रमता है। जैसे वायु से पत्र भ्रमता है तैसेही मोहरूपी वायु से अज्ञानी जीव भ्रमता है और कदाचित् स्वस्थ नहीं होता। जैसे यन्त्री की पुतली तागेसे चेष्टा करती है तैसेही अज्ञानी जीव प्राणरूपी तागे से चेष्टा करते हैं और जैसे नटुआ अनेक स्वांग धारताहै तैसेही कर्मसे जीव अनेक शरीर धारताहै। जैसे काठकी पुतली तृण, काष्ठ, फूलादिकको लेती, त्यागती और नृत्य करती है तैसेही ये प्राणीभी चेष्टा करते हैं और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का ग्रहण करते हैं। जैसे वह पुतलियां जड़ हैं तैसेही ये भी जड़ हैं। यदि कहिये कि; इनमें तो प्राण है तो जैसे लुहारकी धौंकनी श्वास को लेती और त्यागती है तैसेही ये जीव भी चेष्टा करते हैं। हे रामजी! अपना वास्तव स्वरूप है सो ब्रह्म है; उसके प्रमाद से जीव मोह और कृपणता को प्राप्त होते हैं। जैसे लुहार की खाल वृथा श्वास लेती है तैसेही इनकी चेष्टा व्यर्थ है। इनकी चेष्टा और बोलना अनर्थ के निमित्त है-जैसे धनुष से जो बाण निकलता है सो हिंसा के निमित्त है, उससे और कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता तैसेही अज्ञानी की चेष्टा और बोलना अनर्थ और दुःख के निमित्त है, सुख के निमित्त नहीं और उसकी संगति भी कल्याण के निमित्त नहीं-जैसे जङ्गल के ठूठवृक्ष से छाया और फल की इच्छा करनी व्यर्थ है, उससे कुछ फल नहीं होता और न विश्राम के निमित्त छाया ही प्राप्त होतीहै; तैसेही अज्ञानी जीव की संगति से सुख नहीं होता। उनको दान देना भी व्यर्थ है-जैसे कीचड़में घृत डाला व्यर्थ होताहै तैसेही मूर्खों को दान-दिया व्यर्थ होताहै और उनके साथ बोलना भी व्यर्थ है। जैसे यज्ञ में श्वान को बुलाना निष्फल है तैसेही उनके साथ बोलना निष्फल है। हे रामजी! जो अज्ञानी जीव हैं वे संसार में आते, जाते और जन्मते, मरते हैं और शरीर में आस्था करते हैं; एवम् पुत्र, दारा, बान्धव, धनादिक से ममत्व बुद्धि करते हैं पर इस मिथ्यादृष्टि से वे दुःख पाते हैं और मुक्ति कदाचित् नहीं होती क्योंकि; अनात्म में आत्मबुद्धिको त्याग नहीं करते और ममता बुद्धिमें दृढ़ रहते हैं। हे रामजी! जो अज्ञानी हैं वे असतपदार्थ को देखते हैं और वस्तुरूप की ओर से अन्धे हैं इससे वे परमार्थधन से विमुख रहते हैं। नरक का सार जो स्त्री आदिक हैं उनमें वे प्रीति करते हैं और उनको देखकर प्रसन्न होते हैं। जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होता है तैसेही स्त्री आदिकों को देखकर मूर्ख प्रसन्न होते हैं। हे रामजी! मूर्खके मारने के निमित्त स्त्री-रूपी विष की बेलि है; नेत्ररूपी उसके फूल हैं, ओष्ठरूपी पत्र हैं, स्तनरूपी गुच्छे

हैं और अज्ञानरूपी भँवरे वहां विराजमान होते हैं। और नाश होते हैं। मतिरूपी तालाब में हर्षरूपी कमल और चित्तरूपी भँवरे सदा रहतेहैं और अज्ञानरूपी नदी में दुःखरूपी लहरें हैं और तृष्णारूपी बुद्बुदे हैं; ऐसी नदी मरणरूपी बड़वाग्नि में जा पड़ेगी। हे रामजी! जब जन्म होता है तब जीव महागर्भ अग्नि से जलता हुआ निकलता है और महामूर्ख अवस्था में निकलकर दुःखी होताहै; जब यौवन अवस्था को प्राप्त होताहै तब विषयों को सेवता है–वेभी दुःख के कारण होते हैं और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है तब शरीर आसक्त होताहै और हृदय मे तृष्णा जलाती है। इस प्रकार जन्म मरण अवस्था में जीव भटकते हैं। हे रामजी! संसाररूपी कूप में मोहरूपी घटों की माला है और तृष्णा और वासनारूपी रस्सी से बांधे हुये जीवरूपी टीड भ्रमते हैं। ज्ञानवान् को संसार कोई दुःख नहीं देता; गोपद की नाईं तुच्छ होजाता है और अज्ञानी को समुद्रवत् तरना कठिन होताहै। वह अपने भीतर ही भ्रम देखता है और निकल नहीं सक्ता-थोड़ा भी उसको बहुत होजाता है। जैसे पक्षी को पिंजरे में और कोल्हू के बैल को घरही में बड़ा मार्ग होजाता है तैसेही अज्ञानी को तुच्छ संसार बड़ा हो भासता है। हे रामजी! जिस जगत् को रमणीय जानकर जीव उसके पदार्थों की इच्छा करता है। वे सब पञ्चभौतिक पदार्थ हैं पर मोह से उनको सुन्दर जानता है उनमें प्रीति करता है और स्थिर जानता है और वह सब अनर्थ के निमित्त होता है। हे रामजी! अज्ञानरूपी चन्द्रमा के उदय से भोगरूपी वृक्ष पुष्ट होते हैं और जन्मों की परंपरा रस को पाते; कर्मरूपी जलसे सिंचते हैं और पुण्य और पापरूपी मञ्जरी उनमें होती है। अज्ञानरूपी चन्द्रमा का वासनारूपी अमृत है और आशारूपी चकोर उसको देखकर प्रसन्न होता है। आशारूपी कमलिनी पर अज्ञानरूपी भँवरा बैठकर प्रसन्न होता है इससे सब जगत् अज्ञान से रमणीक भासता है। हे रामजी! जिस अज्ञान से यह जगत् स्थित है उसका प्रवाह सुनो। जब अज्ञानरूपी चन्द्रमा पूर्ण होकर स्थित होता है तब कामनारूपी क्षीर समुद्र उछलता है और अनेक तरङ्ग फैलाता है। उसके रससे तृष्णारूपी मञ्जरी पुष्ट होती है और काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी चकोर उसको देखकर प्रसन्न होते हैं देह अभिमानरूपी रात्रि के निवृत्त हुये और विवेकरूपी सूर्य के उदय हुये अज्ञानरूपी चन्द्रमा का प्रकाश निवृत्त होजाताहै। हे रामजी! अज्ञानसे जीव भ्रमते हैं और उनकी चेष्टा विपर्यय होगई है; जो तुच्छ और नीच दुःखरूप पदार्थ हैं उनको देखकर सुखदायक और रमणीय जानते हैं और स्त्री को देख प्रसन्न होते हैं। कवीश्वर कहते हैं कि, इसके कपोल कमलवत्, नेत्र भँवरेवत्, होठ हँसनेवाले और भुजा बेलिकी नाईं हैं; कञ्चनके कमलवत् स्तन हैं; उदर और वक्षस्स्थल बहुत सुन्दर हैं और जङ्घस्थल

केलेके स्तम्भवत् हैं। जिस स्त्री की कवि स्तुति करते हैं वह स्त्री रक्तमांस की पुतली है; कपोल भी रक्तमांस हैं, होठ भी रक्तमांस हैं; भुजा विषके वृक्ष के टासवत् हैं स्तन भी रक्तमांस हैं और संपूर्ण शरीर भी रक्त मांस अस्थिसे पूर्ण है। एक बुतबनी है उसको जो रमणीक जानते हैं वे मूर्ख मोह से मोहित हुये हैं और अपने नाश के निमित्त इच्छा करते हैं। जैसे सर्पिणी से जो कोई हित करेगा वह नष्ट होगा तैसेही इससे हितकिये से नाश होगा और जैसे कदलीवन का महाबली हाथी काम से नीच गति पाता है और संकट में पड़ता है और अंकुश सहकर जो अपमान को प्राप्त होता है, सो एक के हितसेही ऐसी गति को प्राप्त होता है, तैसेही यह जीव स्त्री की इच्छा करके अनेक दुःख पाता है। जैसे दीपक को रमणीय जानकर पतङ्ग उसमें प्रवेश करता है और नष्ट होताहै तैसेही यह जीव स्त्री की इच्छा करता है और उसके संग से नाश को प्राप्त होता है। लक्ष्मी का आश्रय करके जो सुख की इच्छा करता है वहभी सुखी न होगा। जैसे पहाड़ दूर से देखनेमात्र सुन्दर भासता है तैसेही यहभी देखने में सुन्दर लगती है पर लक्ष्मी का आश्रय करके जो सुख की इच्छा करे सो सुख न मिलेगा अन्त में दुःखको ही प्राप्त होगा। जब लक्ष्मी प्राप्त होती है तब अनर्थ और पाप करने लगता है और दुःख का पात्र होताहै; और जब जाती है तब दुःख दे जाती है और उससे जलता रहता है। हे रामजी! जगत् में सुख की इच्छा करनी व्यर्थ है; प्रथम जन्म लेता है तबभी दुःख से जन्म लेता है; फिर जन्म कर मूर्ख और नीच बालक अवस्था को प्राप्त होताहै तब कुछ विचार नहीं होता है उसमें दुःख पाता है और कुछ शक्ति नहीं होती उससे दुःख पाता है; जब यौवन अवस्थारूपी रात्रि आती है तब उसमें काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी निशाचर बिचरते हैं और तृष्णारूपी पिशाचिनी बिचरती है क्योंकि उस अवस्था में विवेकरूपी चन्द्रमा नहीं उदय होता इससे अन्धकार में वे सब क्रीड़ा करते हैं। हे रामजी! यौवन अवस्थारूपी वर्षाकाल में बुद्धि आदिक नदियां मलिनभाव को प्राप्त होती हैं; कामरूपी मेघ गर्जताहै और तृष्णारूपी मोरनी उसको देख प्रसन्न होकर नृत्य करती है। फिर यौवन अवस्थारूपी चूहेको जरारूपी बिल्ली भोजन करलेतीहै और शरीर महाजर्जरीभूत हो आसक्त होजाता है, तृष्णा बढ़ती जाती है और हृदय से जलता है; निदान फिर मृत्युरूपी सिंह जरारूपी हरिण को भोजन करलेता है। इस प्रकार जीव उपजता और मरता है और आशारूपी रस्सी से बँधा हुआ घटीयन्त्र की नाईं भटकता है—शान्ति कदाचित् नहीं पाता। हे रामजी! ब्रह्माण्डरूपी एक वृक्ष है और उसमें जीवरूपी पत्र लगे हैं सो कर्मरूपी वायु से हलते हैं और अज्ञानरूपी उसमें जड़ताहै। चित्तरूपी ऊंचा वृक्ष है उसपर लोभादिक घुघुआ बैठते हैं। जगतरूपी ताल में शरीररूपी कमल

हैं उनपर जीवरूपी भँवरे आ बैठते हैं और कालरूपी हाथी आकर उनको भोजन करजाता है। हे रामजी! जनतारूपी जीर्णपक्षी आशारूपी फांसीसे बांधे हुये वासनारूपी शिक्षा में पड़े हैं और राग द्वेषरूपी अग्नि में पड़े हुये कालरूपी पुरुष के मुख में प्रवेश करते हैं। जनरूपी पक्षी उड़ते फिरते हैं सो कोई दिन उनको जब कालरूपी व्याध जाल फैलावेगा तब फँसालेगा। हे रामजी! संसाररूपी ताल में जीवरूपी मछलियां हैं और कालरूपी बगला उनको भोजन करता है। कालरूपी कुम्हार जनरूपी मृत्तिका के बासन बनाता है और वे शीघ्रही फूटजाते हैं। जीवरूपी नदी कर्मरूपी तरङ्गोंको फैलाती है और कालरूपी बड़वाग्नि में जा पड़ती है। जगत्‌रूपी हाथी के मस्तक में जीवरूपी मोती हैं; उस हाथी को कालरूपी सिंह भोजन करजाता है। वह कालरूपी भक्षक ऐसा है कि जिसने ब्रह्माको भी भोजन किया है और करता है पर तृप्त नहीं होता। जैसे घृत की आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होता तैसेही काल जीवों के भोजन से तृप्त नहीं होता हे रामजी! एक निमेषमें अनेक जगत् उपजते हैं और उसी निमेषमें लीन होजाते हैं सबके अभावहुये जो शेष रहताहै वह रुद्रहै; फिर वहभी निवृत्त होताहै और सबके पाछे एक परमतत्त्व ब्रह्मसत्ता रहती है। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह अज्ञान से भासता है जन्म, मरण, बालअवस्था, यौवन और वृद्धादिक विकार अज्ञान से भासते हैं और अज्ञान के नष्ट हुये सब नष्ट होजाते हैं। जबतक आत्मविचार नहीं उपजता तबतक अज्ञान रहता है और जब आत्मविचार उपजता है तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त होजाती है केवल ब्रह्मपद भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽज्ञानमाहात्म्यवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसाररूपी यौवन चेतनरूपी पर्वत के शृङ्ग पर स्थित है और अविद्यारूपी बेलि उसमें बढ़कर विकाश को प्राप्त हुई है और सुख, दुःख, भाव, अभाव, अज्ञानपत्र, फूल और फल हैं। जहां अविद्या सुखरूप होकर स्थित होती है वहां ऊंचे सुख को भोगाती है और उसके सत्ताभाव को प्राप्त होती है और जहां दुःखरूप होकर स्थित होती है तहां दुःखरूप भासती है। वही सुख दुःख इसके फल गुच्छे हैं। दिनरूपी फूलहैं और रात्रिरूपी भँवरे हैं; जन्मरूपी अंकुर हैं और भोगरूपी रस से पूर्ण है। जब विचाररूपी घुन अविद्यारूपी वृक्ष को खाने लगता है तब वह नष्ट होजाती है। जबतक विचाररूपी घुन नहीं लगा तबतक वह दिन २ बढ़ती जाती है और दृढ़ होती जाती है। हे रामजी! अविद्यारूपी बेलि का मूल संवित् फुरना है उससे फैली है; तारागण उसके फूल हैं, चन्द्रमा और सूर्य उसका प्रकाशहै और दुष्कृत कर्मरूपी नरकस्थान कण्टक हैं; शुभ कर्मरूपी स्वर्ग उसके फूल हैं और सुखदुःखरूपी फल लगते हैं, जीवरूपी उसके पत्र हैं जो कालरूपी

वायु से हलते हैं और जीर्ण होकर गिर पड़ते हैं; पृथ्वीरूपी उसकी त्वचा है, पर्वत घोड़े हैं, मरणरूपी उसमें छिद्र हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं और मोहरूपी कलियां हैं जिनके महासुन्दर गौर अङ्ग हैं उनसे जीव मोहित होते हैं—जैसे स्त्रीको देखकर पुरुष मोहित होते हैं—और सात समुद्र के जल से सींचीजाती है जिससे पुष्ट होती है। उस बेलि में एक विष की भरी सर्पिणी रहती है जो कोई उसके निकट जाता है उसको काटती है और वह मूर्च्छा से गिर पड़ताहै। संसाररूपी मूर्च्छा की देनेवाली तृष्णा-रूपी सर्पिणी है। वह बेलि अन्यथा नष्ट नहीं होती; जब विचाररूपी घुन इसको लागे तो नष्ट होजाती है। हे रामजी ! जो कुछ प्रपञ्च तुमको भासता है सो सब अविद्यारूप है; कहीं अविद्या जलरूप हुई है कहीं पहाड़, कहीं नाग, कहीं देवता, कहीं दैत्य, कहीं पृथ्वी, कहीं चन्द्रमा, कहीं सूर्य, कहीं तारे, कहीं तम, कहीं प्रकाश, कहीं तेज, कहीं पाप, कहीं पुण्य, कहीं स्थावर, कहीं मूढ़रूप, कहीं अज्ञान से दीन और कहीं ज्ञान से आपही क्षीण होजाती है। कहीं तप दान आदिक से क्षीण होतीहै; कहीं पापादिक से वृद्ध होती है; कहीं सूर्यरूप होकर प्रकाशती है, कहीं स्थानरूप होती है, कहीं नरक में लीन है, कहीं स्वर्गनिवासी है, कहीं देवता होती है, कहीं कृमि होती है, कहीं विष्णुरूप होकर स्थित हुई है; कहीं ब्रह्मा होकर स्थित है, कहीं रुद्रहै, कहीं अग्निरूप है, कहीं पृथ्वीरूप हुई है और कहीं आकाश व कहीं भूत, भविष्यत् और वर्तमान हुई है । हे रामजी ! जो कुछ देखने में आता है वह सब महिमा इसीकी है । ईश्वर से आदि तृणपर्यन्त सब अविद्यारूप है जो इस दृश्यजाल से अतीत है उसको आत्मलाभ जानो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्यालतावर्णनंनामसप्तमस्सर्गः ॥ ७ ॥

रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन् ! विष्णु और हर आदिक तो शुद्ध आकार आकाश जाति हैं इनको अविद्या तुम कैसे कहते हो ? यह सुनकर मुझको संशय उत्पन्न हुआ है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! प्रथम अविद्या और तत्त्व सुनो कि, किसको कहते हैं। जो अविद्यमान हो और विद्यमान् भासे वह अविद्या है और जो सदा विद्यमान है उसको तत्त्व कहतेहैं। हे रामजी ! शुद्ध संवित् और कलना से रहित जो चिन्मात्र आत्मसत्ता है सोही तत्त्व है; उसमें जो अहं उल्लेख से संवेदनकलना पूर्ण-रूप से फुरी है सोही चिन्मात्र संवित् का आभास है। वही संवेदन फुरकर स्थानभेद से सूक्ष्म, स्थूल और मध्यमभाव को प्राप्त हुई है और फिर वही दृढ़ स्पन्द मे मन-भाव को प्राप्त हुई हैं। सात्त्विक, राजस और तामस तीनों उसीके आकार हुये हैं। वह अविद्या त्रिगुण प्राकृतधर्मिणी हुई है और तीनगुण जो तुझसे कहे हैं वे भी एक २ गुण तीन २ प्रकार के हुये हैं जिससे अविद्या के गुण नव प्रकार के भेद

को प्राप्त हुये हैं। जो कुछ तुमको दृश्य भासता है वह अविद्या के नव गुणों में है। ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सिद्ध, नाग, विद्याधर और देवता अविद्या के सात्त्विकभाग हैं और उस सात्त्विक के विभाग में नाग सात्त्विक-तामसहैं, विद्याधर, सिद्ध, देवता और मुनीश्वर, अविद्या के सात्त्विकभाग में सात्त्विक-राजस हैं और हरिहरादिक केवल सात्त्विक हैं। हे रामजी! सात्त्विक जो प्रकृतभाग हैं उसमें जो तत्त्वज्ञ हुये हैं वे मोह को नहीं प्राप्त होते क्योंकि, वे मुक्तिरूप होते हैं। हरिहरादिक शुद्ध सात्त्विकहैं और सदा मुक्तिरूप होकर जगत् में स्थित हैं। वे जबतक जगत् में हैं तबतक जीवन्मुक्त हैं और जब विदेहमुक्त हुये तब परमेश्वर को प्राप्त होते हैं। हे रामजी! एक अविद्या के दो रूप हैं। एक अविद्या विद्यारूप होती है-जैसे बीज फल को प्राप्त होता है और फल बीजभाव को प्राप्त होता है जैसे जल से बुद्बुदा उठता है तैसेही अविद्या से विद्या उपजती है और विद्या से अविद्या लीन होती है। जैसे काष्ठ से अग्नि उपज कर काष्ठ को दग्ध करती है तैसेही विद्या अविद्या से उपजकर अविद्या को नाश करती है। वास्तव में सब चिदाकाश है जैसे जल में तरङ्ग कलनामात्र है तैसेही विद्या अविद्या भावनामात्र है। इसको त्यागकर शेष आत्मसत्ता ही रहती है। अविद्या और विद्या आपस में प्रतियोगी हैं-जैसे तम और प्रकाश इससे इन दोनों को त्यागकर आत्मसत्ता में स्थित हो। विद्या और अविद्या कल्पनामात्र है। विद्या के अभाव का नाम अविद्या है और अविद्या के अभाव का नाम विद्या है। यह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठीहै। जब विद्या उपजती है तब अविद्या को नष्ट करतीहै और फिर आपभी लीन होजातीहै-जैसे काष्ठसे उपजी अग्नि काष्ठ को जलाकर आपभी शान्त होजाती है-उससे जो शेष रहता है वह अशब्द पद सर्वव्यापी है। जैसे वटबीज में पत्र, टास, फूल, फल और पत्ते होते हैं तैसेही सबमें एक अनुस्यूतसत्ता व्यापी है सोही ब्रह्मतत्त्व सर्वशक्ति है, उसीसे सर्वशक्ति का स्पन्द है और आकाश से भी शून्य है। जैसे सूर्यकान्त में अग्नि होती है और दूध में घृत है तैसेही सब जगत् में ब्रह्म व्याप रहा है। जैसे दधि के मथे विना घृत नहीं निकलता तैसेही विचार विना आत्मा नहीं भासता और जैसे अग्नि से चिनगारें और सूर्य से किरणें निकलती हैं तैसेही यह जगत् आत्मा का किंचनरूप है। जैसे घट के नाश हुये घटाकाश अविनाशी है तैसेही जगत् के अभाव से भी आत्मा अविनाशी है। हे रामजी! जैसे चुम्बक पत्थर की सत्ता से जड़ लोह चेष्टा करता है परन्तु चुम्बक सदा अकर्ताही है तैसेही आत्मा की सत्ता से जगत् देहादिक चेष्टा करते हैं और चैतन्य होते हैं परन्तु आत्मा सदा अकर्ता है। इस जगत् का बीज चेतन आत्मसत्ता है और उसमें संवित् संवेदन आदिक शब्दभी कल्पनामात्र है। जैसे जलको कहिये कि, बहुत सुन्दर और चञ्चल

है सो जलही जल है तैसेही संवेदन आदिक सब चेतनरूप है । जहां न किञ्चन है, न अकिञ्चन है सो तुम्हारा स्वरूप है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्यानिराकरणंनामाष्टमस्सर्गः ॥ ८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! स्थावर–जङ्गम जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह अधिभौतिकता को नहीं प्राप्त हुआ। वह सब चिदाकाशरूप है और उसमें कुछ भाव अभाव की कल्पना नहीं और जीवादिक भेद भी नहीं। हमको तो भेदकल्पना कुछ नहीं भासती। जैसे रस्सी में सर्प का अभाव है तैसेही ब्रह्म में भेदकल्पना का अभाव है। हे रामजी! आत्मा के अज्ञान से भेदकल्पना भासती है और आत्मा के जानेसे भेदकल्पना मिटजाती है वही सर्वसंपदा का अन्त है। शुद्ध चेतन में चित्त का सम्बन्ध होनेका नाम अविद्या है। जो पुरुष चित्त की उपाधि से रहित चिन्मात्र है वह शरीर के नाश हुये नाश नहीं होता और शरीर के उपजेसे नहीं उपजता। शरीर के उपजने और विनशने में वह सदा एकरस ज्यों का त्यों स्थित है। जैसे घट के उपजने और विनशने में घटाकाश ज्यों का त्यों रहता है तैसेही शरीर के भाव अभाव में आत्मा ज्यों का त्यों है जैसे बालक दौड़ता है तो उसको सूर्य भी दौड़ता भासता है और स्थित होने में स्थित भासता है परन्तु सूर्य ज्यों का त्यों है; तैसेही चित्त की चञ्चलता से मूर्खजन आत्मा को व्याकुल देखते हैं; चित्त के अचलता में अचल देखते हैं और चित्तके उपजनेमें उपजता देखतेहैं परन्तु आत्मा सदा ज्यों का त्यों है। जैसे मकड़ी अपने जालेसे आपही वेष्टितहोती है और निकल नहीं सक्ती तैसेही जीव अपनीवासनासे आपही बन्धायमान होतेहैं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! अत्यन्त मूर्खता को प्राप्तहोकर जो स्थावर आदिक तन में घन स्थित हुयेहैं उनकी वासना कैसी होती है सो कृपा करके कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो स्थावर जीव हैं वे अमनसत्ता को नहीं प्राप्त हुये। वे केवल मन अवस्था में भी प्रतिष्ठित नहीं पर मध्य अवस्था में हैं। उनकी पुर्यष्टका सुषुप्तिरूप है सो केवल दुःख का कारण है। उनका मन नहीं नष्ट हुआ वे सुषुप्ति अवस्था में जड़रूपस्थितहैं सो काल पाकर जागेंगे अब उन की सत्ता मूकजड़ होकर स्थित है। रामजीने पूछा; हे देवताओं में श्रेष्ठ! यदि उनकी सत्ता अद्वैतरूप होकर स्थावर शरीरमें स्थित है तो मुक्ति अवस्था उनके निकट है यह सिद्धहुआ। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मुक्ति कैसे निकट होती है? मुक्ति तब होती है जब बुद्धिपूर्वक वस्तु को विचारे और यथाभूत अर्थदृष्टि आवे। जब सत्ता समान का बोधहो तब केवल आत्मपद को प्राप्तहो। हे रामजी! जब ज्यों का त्यों पदार्थ जानकर वासनाको त्यागकरेतब सत्ता समान पद प्राप्त हो। प्रथम अध्यात्म शास्त्र को विचारे और उसमें जो सार है उसकी बारम्बार भावना करे तब उससे जो प्राप्त हो सो सत्ता

समान परब्रह्म कहाता है। स्थावर के भीतर वासना है परन्तु बाहर दृष्टि नहीं आती क्योंकि; उनकी सुषुप्ति वासनाहै। जैसे बीजमें अंकुर होताहै और फिर उगताहै; तैसेही उनके जन्म होवेंगे और वासना जागेगी। उनके भीतर जगत्‌की सत्यताहै पर बाहर दृष्टि नहीं आतीहै। यह सुषुप्तिवत् जड़ धर्महै वे अनन्तजन्मके दुःख पावेंगे। हे रामजी! स्थावर जो अब जड़धर्मा सुषुप्तिपद में स्थित हैं सो बारम्बार जन्मको पावेंगे—जैसे बीजमें पत्र, टास, फूल और फल स्थित होते हैं और मृत्तिका में घटशक्ति है तैसेही स्थावर में वासना स्थित है। जिसमें वासनारूपी बीज है वह सुषुप्तिरूप कहाता है और वह सिद्धता जो मुक्ति है नहीं प्राप्त करती। जहां निर्बीज वासना है सो तुरीया-पदहै और वह सिद्धता को प्राप्त करतीहै। हे रामजी! जब चित्तशक्ति वासना से मिली होती है तब स्थावर होती है और वह फिर जागती है। जैसे कोई कर्म करता हुआ सो जाताहै तो सुषुप्ति से उठकर फिर वही कर्म करने लगता है क्योंकि कर्मरूपी वासना उनके भीतर रहती है; तैसेही स्थावर वासना से फिर जन्म पावेंगे। जब वह वासना हृदय से दग्ध हो तब जन्म का कारण नहीं होती। आत्मसत्ता समानभाव से घट पट आदिक सब पदार्थों में स्थित है। जैसे वर्षाकाल का एकही मेघ नानारूप होकर स्थित होताहै तैसेही एकही आत्मसत्ता सर्वपदार्थों में स्थित होती है। इससे सबमें आत्मा ही व्याप रहाहै। ऐसी दृष्टि से जो रहितहै उसको विपर्यय दृष्टि भ्रम-दायकहोतीहै और जब आत्मदृष्टि प्राप्त होती तब सब दुःख नाशहोजाते हैं। हे रामजी! असम्यक्‌दृष्टि को ही बुद्धीश्वर अविद्या कहते हैं। वह अविद्या जगत् का कारण है और उससे सब पसारा होताहै। जब उससे रहित अपना स्वरूप भासे तब अविद्या नष्ट होती है। जैसे बरफ़ की कणिका धूप से नाश होजाती है तैसेही शुद्धस्वरूप के अभ्यास से अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे स्वप्ने से रहित जब अपना स्वरूप देखता है तब फिर स्वप्ने की ओर नहीं जाता, तैसेही शुद्धस्वरूप के अभ्यास से सम्पूर्ण भ्रम निवृत्त होजाते हैं। हे रामजी! जब वस्तु को वस्तु जानताहै तब अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट होजाता है पर दीपक को हाथ में लेकर देखिये तो अन्धकार की कुछ मूर्ति दृष्टि नहीं आती, और जैसे उष्णता से घृत का पीन गलजाताहै तैसेही आत्मा के दर्शन हुये अविद्या नहीं रहती। वास्तव में अविद्या कुछ वस्तु नहीं, अविचार से सिद्ध है और विचार किये से लीन होजाती है। जैसे प्रकाश से तम लीन होजाताहै तैसेही विचार से अविद्या लीन होजाती है। अज्ञान से अविद्या की प्रतीति होती है। जबतक आत्मतत्त्व को नहीं देखा तबतक अविद्याही प्रतीति होती है और जब आत्मा को देखा तब अविद्या का अभाव होजाता है। प्रथम यह विचारकरे कि; रक्त, मांस और अस्थि का यन्त्र जो शरीर है उस में "मैं क्या

वस्तु हूं " ? सत्य क्याहै ? और असत्य क्याहै ? इस विचारसे जिसका अभाव होताहै वह असत्य है और जिसका अभाव नहीं होता वह सत्यहै। फिर अन्वय व्यतिरेकसे विचारे कि, कार्यकल्पित के होतेभी हो और उसके अभाव में भी हो सो अन्वय सत्य है। देहादि के भाव में भी जो आत्मा अधिष्ठान है और इनके अभाव में भी निरुपाधि सिद्ध है सो सत्य है और देहादिक व्यतिरेक असत्य है। ऐसे विचार कर आत्मतत्त्व का अभ्यासकरे और असत् देहादिक से वैराग्यकरे तब निश्चय करके अविद्या लीन होजाती है क्योंकि, वह वास्तव नहीं है, असत्यरूप है। उसके नष्ट हुये जो शेषरहे सो निष्किंचन किंचनस्वरूप है और सत्य है, ब्रह्म निरन्तर है सो तत्त्ववस्तु उपादेय करने योग्य है। हे रामजी ! ऐसे विचार करके अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे पौंड़ेका रस जिह्वा से लगता है तब अवश्य स्वाद आता है तैसेही आत्मविचार से अविद्या अवश्य नष्ट होजाती है। यदि वास्तव में कहिये तो अविद्या भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं एक अखण्डित ब्रह्मतत्त्व है। जिस के घट, पट, रथ आदिक पदार्थ भिन्न २ भासते हैं उसको अविद्या जानो और जिसको सर्व में एक ब्रह्मभावनाहै उसको विद्या जानो। इस विद्या से अविद्या नष्ट होजावेगी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्याचिकित्सावर्णनंनामनवमस्सर्गः ॥ ९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! बोध के निमित्त मैं तुमको बारम्बार सार कहता हूं कि आत्मा का साक्षात्कार भावना के अभ्यास विना न होगा। यह जो अज्ञान अविद्या है सो अनन्त जन्म का दृढ़ हुआ भीतर बाहर दिखाई देता है, आत्म सर्वइन्द्रियों से अगोचर है जब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव हो तब केवल शान्ति को प्राप्त होताहै। हे रामजी ! जो कुछ वृत्ति बहिर्मुख फुरती है सो अविद्या है क्योंकि, वह वृत्ति आत्मतत्त्व से भिन्न जानकर फुरती है और जो अन्तर्मुख आत्मा की ओर फुरती है सो विद्या अविद्याको नाश करेगी। अविद्याके दोरूपहैं—एक प्रधानरूप और दूसरा निकृष्ट-रूप है । उस अविद्या से विद्या उपजकर अविद्या को नाश करती है और फिर आप भी नाश होजाती है। जैसे बांस से अग्नि उपजती है और बांस को जलाकर आपभी शान्त होजाती है तैसेही जो अन्तर्मुख है सो प्रधानरूप विद्या है और जो बहिर्मुख है सो निकृष्टरूप अविद्या है। इससे अविद्याभाव को नाश करे। हे रामजी ! अभ्यास विना कुछ सिद्ध नहीं होता। जो कुछ किसीको प्राप्त होता है सो अभ्यासरूपी वृक्ष का फल है। चिरकाल जो अविद्या का दृढ़ अभ्यास हुआ है तब अविद्या दृढ़ हुई है। जब आत्मज्ञान के निमित्त यत्न करके दृढ़ अभ्यास करोगे तब अविद्या नाश होजावेगी। हे रामजी ! हृदयरूपी वृक्ष से जो अविद्यारूपी बुरीलता फैल रही है उसको ज्ञानरूपी खड्ग से काटो और जो कुछ अपना प्रकृत आचारहै उसको करो तब

तुमको दुःख कोई न होगा जैसे जनक राजा ज्ञात ज्ञेय होकर व्यवहार को करता था तैसेही आत्मज्ञान का दृढ़ अभ्यास कर तुम भी बिचरो। हे रामजी! जैसे निश्चय पवन, विष्णुजी, सदाशिव, ब्रह्मा, बृहस्पति, चन्द्रमा, अग्नि, नारद, पुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरा, भृगु, शुकदेव और ज्ञात ज्ञेय ब्राह्मणों का है वही तुमको भी प्राप्त हो। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! जिस निश्चय से बुद्धिमान् विशोक होकर स्थित हुये हैं वह मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सम्पूर्ण ज्ञानवानों का निश्चय है और जैसे वे व्यवहार में समरहे हैं सो सुनो। विस्ताररूप जो कुछ जगज्जाल तुमको भासता है वह निर्मल ब्रह्म सत्ता अपनी महिमा में स्थित है—जैसे समुद्र में तरङ्ग स्थित होते हैं और नाना प्रकार के उत्पन्न होते हैं सो एक जलरूप है, जल से भिन्न नहीं; तैसेही जो ग्रहण करनेवाला है सो भी ब्रह्म है और जिसको भोजन करता है वह भी ब्रह्म है; मित्र भी ब्रह्म है, शत्रु भी ब्रह्म है; ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है। यह निश्चय ज्ञानवान् को सदा रहता है और ब्रह्म को ब्रह्म स्पर्श करता है तब किसको स्पर्श किया? हे रामजी! जिनको सदा यही निश्चय रहता है उनको राग द्वेष कुछ दुःख नहीं दे सक्ते। ब्रह्मही ब्रह्म में फुरता है; भावरूपभी ब्रह्म है, अभावरूप भी ब्रह्म है; कुछ भिन्न नहीं तो फिर रागद्वेष कलना कैसे हो? ब्रह्मही ब्रह्मको चेतता है; ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है, ब्रह्मही अहंअस्मि है; ब्रह्मही सम है; ब्रह्मही आत्मा है और घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्मही से विस्तार को प्राप्त हुआहै। हे रामजी! जब सर्वत्र ब्रह्मही है तब राग विराग कलना कैसे होवे? मृत्यु भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्महै; मरता भी ब्रह्म है और मारता भी ब्रह्म है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रम से भासता है तैसेही आत्मा में सुख दुःख मिथ्या है। भोग भी ब्रह्म है, भोगनेवाला भी ब्रह्म है और भोक्ता देह भी ब्रह्म है निदान सर्वत्र ब्रह्मही है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और मिटजाते हैं सो जल से भिन्न नहीं तैसेही शरीर उपजते और मिटजाते हैं सो ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है। हे रामजी! जल के तरङ्ग जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं तो क्या हुआ वे तो जलही हैं; तैसेही मृतक ब्रह्मने जो मृतक देह ब्रह्म को मारा तब कौन मुआ और किसने मारा? जैसे एक तरङ्ग जल से उपजा और दूसरे तरङ्ग से मिल दोनों इकट्ठे होकर मिटगये सो जलही जल हैं; वहां मैं, तू इत्यादिक दूसरा कुछ नहीं; तैसेही आत्मा में जो जगत् है सो आत्मा ही अपने आपमें स्थित है; तेरा, मेरा, भिन्न कुछ नहीं। जैसे सुवर्ण में भूषण और जल में तरङ्ग अभेदरूप है तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! जो पुरुष यथार्थदर्शी है उसको सदा यही निश्चय रहता है और जिनको सम्यक्ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ उनको विपर्ययरूप औरका और भासता है। पर वास्तव में सदा एकरूप है; ज्ञान और अज्ञान का भेद है। जैसे रस्सी एक होती है परन्तु

जिसको सम्यक्ज्ञान होता है उसको रस्सी भासती है और जिसको सम्यक्ज्ञान नहीं होता उसको सर्प हो भासता है; तैसेही जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको सब ब्रह्मसत्ता ही भासती है और जो अज्ञानी है उसको जगत्रूप भासता है और नाना प्रकार का जगत् दुःखदायक होताहै पर ज्ञानवान्को सुखरूप है। जैसे अन्धेको सब ओर अन्धकारही भासताहै और नेत्रवान्को प्रकाशरूप होता है तैसेही सर्व जगत् आत्मरूप है परन्तु ज्ञानी को आत्मसत्ता सुखरूप भासती है और अज्ञानी को दुःखदायक है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैतालबुद्धि होतीहै और उससे भयवान् होता है पर बुद्धिमान् निर्भय होताहै तैसेही अज्ञानी को जगत् दुःखदायक है और ज्ञानी को सुखरूप है। यदि मेरा निश्चय पूछो तो यों है कि, मैं सर्व, ब्रह्म, नित्य, शुद्ध सर्व में स्थित हूं; न कोई विनशता है, न उपजताहै। जैसे जल में तरङ्ग न कुछ उपजता है और न विनशते हैं जलही जल है तैसेही भूत भी आत्मा में है और जगत् भी आत्मरूप है। आत्मब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और शरीर के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। मृतकरूप भी ब्रह्म है शरीर भी ब्रह्म है ब्रह्मही अनेकरूप होकर भासता है ब्रह्मसे भिन्न शरीर आदिक कुछ सिद्ध नहीं होते। जैसे तरङ्ग, फेन और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही देह, कलना, इन्द्रियां, इच्छा देवतादिक सब ब्रह्मरूप हैं और जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं होता—सुवर्णही भूषणरूप होता है—तैसेही ब्रह्म से व्यतिरेक जगत् नहीं होता ब्रह्मही जगत्रूप है। जो मूढ़ हैं उनको द्वैतकलना भासती है। हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा; और इन्द्रियां, सब ब्रह्महीके नाम हैं और सुखदुःख कुछ नहीं। अहं आदिक, जो शब्द हैं उनमें भिन्न २ भावना करनी व्यर्थहै, अपना अनुभवही अन्यकी नाईं हो भासता है—जैसे पहाड़ में शब्द करने से प्रतिशब्द का भास होता है सो अपनाही शब्द है उसमें और की कल्पना मिथ्या है। जैसे स्वप्नमें कोई अपना शिरकटा देखता है सो व्यर्थ है पर सोई भासि आता है। जिसको असम्यक्ज्ञान होता है उसको ऐसेही है हे रामजी! ब्रह्म सर्वशक्त है उसमें जैसी भावना होती है वही भासि आता है। जिसको सम्यक्ज्ञान होता वह उसे निरहंकार, सुप्रकाश, और सर्वशक्त देखता है। कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण, यह जो षट्कारक बुद्धि है सो सब सर्वत्र ब्रह्मही है और ब्रह्मही अर्पण, ब्रह्मही हवि, ब्रह्मही अग्नि, ब्रह्मही होत्र, ब्रह्मही हुतनेवाला और ब्रह्मही फल देता है; ऐसे जाननेवाले का नाम ज्ञानी है और ऐसे न जानने से अज्ञानी है। जाननेवाले का नाम ब्रह्मवेत्ता है। हे रामजी! यदि चिरकालका बान्धव हो और उसको देखिये तो जानिये कि, बान्धव है और जो देखनेमें न आये और उसका अभ्यास दूर होगया हो तो बान्धव भी अबान्धवकी नाईं होजाता है; तैसेही अपना

आपही ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होती है तब ऐसेही भासि आता है कि, मैं ब्रह्महूं और द्वैत कल्पना लीन होजाती है-सर्व ब्रह्म ही भासताहै। जैसे जिसने अमृत पान किया है वह अमृतमय होताहै और जिसने नहीं पानकिया वह अमृतमय नहीं होता; तैसेही जिसने जाना है कि, मैं ब्रह्महूं वह ब्रह्मही होता है और जिसने नहीं जाना उसको नानात्वकल्पना जन्म मरण भासता है और ब्रह्म अप्राप्त की नाईं भासता है। हे रामजी! जिसको ब्रह्मभावना का अभ्यास जगा है वह अभ्यास के बलसे शीघ्रही ब्रह्म होता है। ब्रह्मरूपी बड़े दर्पण में जैसी कोई भावना करता है तैसाही रूप हो भासता है। मन भावनामात्र है, दुर्वासना से स्वरूप का आवरण हुआ है; जब वासना नष्ट होतीहै तब निष्कलङ्क आत्मतत्त्व ही भासता है। जैसे शुद्ध वस्त्र पर केशर का रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है, तैसेही वासना से रहित चित्त में ब्रह्मस्वरूप भासिआता है। हे रामजी! आत्मा सर्वकलना से रहित है और तीनों काल में नित्य शुद्ध, सम और शान्तरूप है। जिसको ज्ञान होता है वह ऐसे जानता है कि, मैं ब्रह्म हूं। और सदा-काल, सर्व में सर्व प्रकार सर्व घट, पटादिक जो जगज्जाल है उसमें मैंहीं ब्रह्म आकाशवत् व्यापरहा हूं? न कोई मुझको दुःखहै, न कर्म है न किसीका त्याग करता हूं और न वाञ्छा करता हूं और सर्वकलना से रहित निरामय हूं। मैं हीं रक्त, पीत, श्वेत और श्याम हूं और रक्त, मांस, अस्थि का वपु भी मैं हीं हूं; घट पटादिक जगत् भी मैं हीं हूं और तृण, बेलि, फूल, गुच्छे, टास, वन, पर्वत, समुद्र, नदियां, ग्रहण, त्याग, संकुचना, भूत आदिशक्ति सब मैं हीं हूं। विस्तार को प्राप्त मैं हीं भया हूं; वृक्ष, बेलि, फल, गुच्छे, जिसके आश्रय फुरतेहैं वह चिदात्मा मैं हीं हूं और सबमें रसरूप मैं हीं हूं। जिसमें यह सर्व है और जिससे यह सर्व है; जो सर्व है और जिसको सर्व-है ऐसा चिदात्मा ब्रह्म मैं हीं हूं। जिसके चेतन, आत्मा, ब्रह्म, सत्य, अमृत, ज्ञानरूप इत्यादिक नाम हैं; ऐसा सर्वशक्त, चिन्मात्र, चैत्य से रहित प्रकाशमात्र, निर्मल, सर्व भूत प्रकाशक और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का स्वामी मैं हूं। जो कुछ भेद कलना है सो इसमनकी की थी और अब इनकी कलना को त्यागकर मैं अपने प्रकाश में स्थित हूं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक जो सब जगत् का कारण है उन सबका चेतन आत्मारूप ब्रह्म, निरामय, अविनाशी, निरन्तर, स्वच्छ आत्मा, प्रकाशरूप, मनके उत्थान से रहित, मौनरूप मैं हीं हूं और परम अमृत, निरन्तर सर्वभूतों के सत्तारूप से मैं हीं स्थित हूं। सदा अलेपक, साक्षी, सुषुप्ति की नाईं और द्वैतकलना से रहित असंगरूपानुभाव मैं हीं हूं। शान्तरूप जगत् में मैं हीं फैलरहा हूं और सब वासना से रहित अक्षोभरूपी अनुभव मैं हीं हूं। जिससे सब स्वादका अनुभव होताहै सो चेतन ब्रह्म आत्मा मैं हीं हूं। जिस का चित्त स्त्री में आसक्त है; जिसको चन्द्रमा की कान्तिसे

अधिक मुदिता है और जिससे स्त्री का स्पर्श और मुदिता का अनुभव होताहै ऐसा चेतन ब्रह्म मैं हीं हूं और सुख दुःख की कलना से रहित अमनसत्ता और अनुभवरूप जो आत्मा है सो चेतनरूप आत्मा ब्रह्म मैं हीं हूं। खजूर और नींब आदिक में स्वादरूप मैं हीं हूं; खेद और आनन्द, लाभ और हानि मुझको तुल्य है और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और साक्षी तुरीयारूप आदि, अन्त से रहित चेतनब्रह्म निरामय मैं हूं। जैसे एक खेत के पौड़ों में एकहीसा रस होताहै तैसेही अनेकमूर्तियों में एक ब्रह्मसत्ता ही स्थित है। वह सत्य, शुद्ध, सम, शान्तरूप और सर्वज्ञ है, जो प्रकाशक और सूर्य की नाईं है सो प्रकाशरूप ब्रह्म मैं हीं हूं और सब शरीरों में व्यापरहाहूं। जैसे मोती की माला में तागा गुप्त होता है जिस में मोती पिरोये हैं; तैसेही मोतीरूपी शरीर में तन्तुरूप गुप्त मैं हीं हूं और जगत्रूपी दूध में ब्रह्मरूपी घृत मैं हीं व्यापरहा हूं। हे रामजी! जैसे सुवर्ण में जो नाना प्रकार के भूषण बनते हैं सो सुवर्ण से भिन्न नहीं होते तैसेही सब पदार्थ आत्मा में स्थित हैं–आत्मा से भिन्न नहीं। पर्वत, समुद्र और नदियों में सत्तारूप आत्माही है; सर्वसंकल्पों का फल दाता और सर्वपदार्थों का प्रकाशक आत्माही है और सब पानेयोग्य पदार्थों का अन्त है। उस आत्मा की उपासना हम करते हैं जो घट, पट, तट और कन्ध में स्थित है। जाग्रत् में जो सुषुप्तिरूप स्थित है और जिसमें कोई फुरना नहीं, ऐसे चेतनरूप आत्मा की उपासना हम करते हैं। मधुर में जो मधुरता है और तीक्ष्ण में तीक्ष्णताहै और जगत् में चलना शक्ति है उस चेतन आत्मा की हम उपासना करते हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया और तुरीयातीत में जो समतत्त्वहै उसकी हम उपासना करते हैं। त्रिलोकी के देहरूपी मोतियों में जो तन्तुकी नाईं अनुस्यूत है और फैलाने और संकोचने का कारण है उस चेतनरूप आत्मा की हम उपासना करते हैं। जो षोड़श कलासंयुक्त और षोड़श कला से रहित और अकिंचन, किंचनरूप है उस चेतन आत्मा की हम उपासना करते हैं। चेतनरूप अमृत जो क्षीरसमुद्र से निकला है और चन्द्रमा के मण्डल में रहता है, ऐसा जो स्वतः सिद्ध अमृत है जिस को पाकर कदाचित् मृत्यु न हो उस चेतन अमृत की हम उपासना करते हैं। जो अखण्ड प्रकाश है और सब भूतों को सुन्दर करताहै उस चिदात्मा को हम उपासते हैं। जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध प्रकाशते हैं और आप इससे रहित हैं उस चेतन आत्मा की हम उपासना करते हैं। सब मैंहूं और सब मैं नहीं और भी कोई नहीं इस प्रकार विदित जानकर अपने अद्वैतरूप में विगतज्वर होकर स्थित होते हैं। यही निश्चय ज्ञानवानों का है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तनिश्चयोपदेशोनामदशमस्सर्गः॥ १०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो निष्पाप पुरुषहै उसको यही निश्चय रहताहै कि, सत्यरूप आत्मतत्त्वहै यह पूर्णबोधवान्‌का निश्चय है। उसको न किसीमें राग होताहै और न किसी में द्वेषहोताहै; उसको जीना और मरना सुख दुःख नहीं देता और वह एकसमान रहताहै। वह विष्णु नारायण का अङ्ग है अर्थात् अभेद है और सदा अचल है। जैसे सुमेरुपर्वत वायु से चलायमान नहीं होता तैसेही वह दुःखसे चलायमान नहीं होता। ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे वनमें बिचरते हैं और नगर द्वीप आदिक नाना प्रकार के स्थानों में भी फिरते हैं परन्तु दुःख नहीं पाते। कोई स्वर्ग में फूलों के वन और बगीचों में फिरते हैं कोई पर्वत की कन्दराओं में रहते हैं, कोई राज्य करते हैं और शत्रुओं को मारकर शिरपर झुलातेहैं; कितने श्रुति–स्मृति के अनुसार कर्म करते हैं; कोई भोग भोगते हैं; कोई विरक्त होकर स्थित हैं, कोई दान, यज्ञादिक कर्म करते हैं; कोई स्त्रियों के साथ लीलाकरते, कहीं गीत सुनते और कहीं नन्दनवन में गन्धर्व गायन करते हैं; कोई गृह में स्थित हैं; कोई तीर्थ और यज्ञ करते हैं, कोई नौबत, नगारे और तुरियां इत्यादिक सुनते और नाना प्रकार के स्थानों में रहते हैं परन्तु आसक्त नहीं होते। जैसे सुमेरुपर्वत ताल में नहीं डूबता तैसेही ज्ञानवान् किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं होते। वे इष्टको पाकर हर्षवान् नहीं होते और अनिष्ट को पाकर दुःखी नहीं होते। वे आपदा और सम्पदा में तुल्य रहते हैं और प्रकृत आचार कर्म करते हैं परन्तु उनका हृदय सर्व आरम्भ से रहित है। हे राघव! इसी दृष्टि का आश्रय करके तुमभी बिचरो। यह दृष्टि सर्व पाप का नाश करती है। अहंकार से रहित होकर जो इच्छा हो सो करो, जब यथाभूतदर्शी हुये तब निर्बन्ध हुये फिर जो कुछ पतित प्रवाह से आ प्राप्त होगा उसमें सुमेरुकी नाईं तुम रहोगे। हे रामजी ! यह सब जगत् चिन्मात्र है; न कुछ सत्यहै, न असत्यहै; वही इस प्रकार होकर भासता है। इस दृष्टि को आश्रय करके और तुच्छ दृष्टि को त्यागो। हे रामजी! असंसक्त बुद्धि होकर सर्व भाव अभाव में स्थित हो रागद्वेष से चलायमान न हो; अब सावधान हो रहो। रामजी बोले, हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि, मैंने आप के प्रसाद से जानने योग्य पद जाना और प्रबुद्ध हुआहूं। जैसे सूर्यकी किरणों से कमल प्रफुल्लित होतेहैं तैसेही मैं प्रफुल्लित हुआ हूं और जैसे शरत्काल में कुहिरा नष्ट हो-जाता है तैसेही और वचन से मेरा संदेह और मान मोह मदमत्सर सब नष्ट होगये हैं। मैं अब सर्वक्षोभ मे रहित शान्ति को प्राप्त हुआहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तनिश्चयवर्णनंनामैकादशस्सर्गः॥ ११॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सम्यक्ज्ञान विलास से वासना उदय होती है सो जीवन्मुक्तपद में किसप्रकार विश्रान्ति पाते हैं सो कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी !

संसार तरने की युक्ति है सो योगनाम्नी है। वह युक्ति दो प्रकार की है–एक सम्यक्ज्ञान और दूसरी प्राण के रोकने से। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! इन दोनों में सुगम कौन है जिससे दुःख भी न हो और फिर क्षोभ भी न हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दोनों प्रकार से योग शब्द कहाता है तौभी योग प्राण के रोकने का नाम है। योग और ज्ञान दोनों संसार से तरने के उपाय हैं। इन दोनों का फल एकही सदाशिव ने कहाहै। हे रामजी! किसीको योग करना कठिन होताहै और ज्ञान का निश्चय सुगम होताहै और किसीको ज्ञानका निश्चय कठिन होताहै और योग करना सुगम है। यदि मुझ से पूछो तो दोनों में ज्ञान सुगम है क्योंकि, इसमें यत्न और कष्ट थोड़ा है। जानने योग्य पदार्थ के जानेसे फिर सुपनेमेंभी भ्रम नहीं होता क्योंकि, वह साक्षीभूत होकर, देखता है और जो बुद्धिमान् योगीश्वर हैं उनको भी कुछ यत्न नहीं होता, वे स्वाभाविकही चलेजातेहैं और उनकी एक युक्ति समझकर चित्त शान्त होजाता है। हे रामजी! दोनों की सिद्धता अभ्यास और यत्न से होती है; अभ्यास विना कुछ नहीं प्राप्त होता। वह ज्ञान तो मैंने तुमसे कहा है। जो हृदय में विराजमान ज्ञेय है उसका जाननाही ज्ञान है जो प्राण अपान के रथ पर आरूढ़ है और हृदयरूपी गुहा में स्थित है। हे रामजी! उस योग का भी क्रम सुनो वहभी परम सिद्धता के निमित्त है। प्राणवायु जो नासिका और मुख के मार्ग से आतीजाती है उसके रोकने का क्रम कहताहूं। उससे चित्त उपशम होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेज्ञानज्ञेयविचारोनामद्वादशस्सर्गः॥ १२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश के किसी कोने से यह जगत्रूपी स्पन्द आभास फुरा है–जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों में मृगतृष्णा का जल फुर आताहै–उस जगत्के कारणभाव को वही प्राप्त हुआहै जो ब्रह्म के नाभिकमल से उत्पन्न हुआ है और पितामह नामसे कहाताहै। उसका मानसीपुत्र श्रेष्ठ आचारी मैं वशिष्ठ हूं। नक्षत्र और ताराचक्र में मेरा निवास है और युग युग प्रति मैं वहां रहता हूं। एक समय मैं नक्षत्रचक्र से उड़ा और इन्द्र की सभा में गया तो देखा कि, वहां ऋषीश्वर, मुनीश्वर बैठेथे। इतने में नारद आदिक चिरंजीवी का जो प्रसंग चला तो शातातप नाम एक बुद्धिमान् ऋषीश्वर ने कहा कि, हे साधो! सब में चिरंजीव एक है। सुमेरु पर्वत की कोण पद्मरागनाम्नी कन्दरा के शिखर पर एक कल्पवृक्ष है जो महासुन्दर और अपनी शोभा से पूर्ण है। उस वृक्ष के दक्षिणदिशा की डाल पर बहुत पक्षी रहते हैं उन पक्षियों में एक महाश्रीमान् कौवा रहता है जिसका नाम भुशुण्डि है। वह वीतराग और बुद्धिमान् है और उसका आलय उस कल्पवृक्ष के टास पर बना हुआ है। जैसे ब्रह्मा नाभिकमल में रहते हैं तैसेही वह उस आलय

में रहता है। जैसे वह जिया है तैसे न कोई जिया है और न जीवेगा। उसकी बड़ी आयुर्बल है और वह महाबुद्धिमान्, विश्रान्तिमान्, शान्तरूप और काल का वेत्ता है। हे साधो ! बहुत जीना भी उसी का फल है और पुण्यवान् भी वही है। उसको आत्मपद में विश्रान्ति हुई है और संसार की आस्था जाती रही है। इस प्रकार जब उन देवताओं के देव ने कहा तब सम्पूर्ण सभा में ऋषीश्वर ने दूसरी बार पूछा कि, उसका वृत्तान्त फिर कहो। तब उसने फिर वर्णन किया तो सब आश्चर्य को प्राप्त हुये जब यह कथा वार्त्ता होचुकी तब सब सभा उठ खड़ी हुई और अपने २ आश्रम को गये पर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, ऐसे पक्षी को किसी प्रकार देखा चाहिये ऐसा विचार करके मैं सुमेरु पर्वत् की कन्दरा के सन्मुख होचला और एकक्षण में वहां जा पहुंचा तो क्या देखा कि; महाप्रकाशरूप वह कन्दरा का शिखर रत्नमणि से पूर्ण है और उसका गेरू की नाईं रङ्ग है। जैसे अग्निकी ज्वाला होती तैसेही उसका प्रकाशरूप था मानों प्रलयकाल में अग्नि की ज्वाला जागती है–और बीच में नीलमणि धूम्र के समान था–मानों धुआं निकलता है और सब रङ्गों की खानि है। ऐसा चमत्कार प्रकाश था मानों संध्या के लाल बादल इकट्ठे हुयेहैं; मानों योगीश्वरों के ब्रह्मरन्ध्र से अग्नि निकलकर इकट्ठी हुई वा मानों बड़वाग्नि समुद्र से निकलकर मेघ को ग्रहण करने के निमित्त स्थित हुई है। निदान महासुन्दर रचना बनी हुई थी जो फल और रत्नमणि संयुक्त प्रकाशवान् था और ऊपर गङ्गा का प्रवाह चलाजाता था सो यज्ञोपवीतरूप था। गन्धर्व गीत गाते थे, देवियों के रहने के स्थान बनेथे और हर्ष उपजाने को महासुन्दर लीला के स्थान विधाता ने वहां रचे हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डयुपाख्यानेसुमेरुशिखरलीलावर्णनंनामत्रयोदशस्सर्गः॥ १३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे शिखर पर मैंने कल्पवृक्ष देखा कि, वह महासुन्दर फलों से पूर्ण है और रत्न और मणियों के गुच्छे और स्वर्ण की बेलें लगी हुई हैं; तारों से दूने फूल दृष्टि आतेहैं; मेघ के बादल से दूने पत्र दृष्टि आते हैं और सूर्य की किरणों से दुगुने त्रिवर्ग भासतेहैं; जिनका बिजली की नाईं चमत्कार है। पत्रों पर देवता, किन्नर, विद्याधर और देवियां बैठीहैं और अप्सरा आ नृत्य और गान करती हैं-जैसे भँवरे गुञ्जार करते फिरते हैं। हे रामजी ! रत्नों के गुच्छे और कलियां और मणि के फूल फल पत्र निरन्ध्र दृष्टि आते थे; सब स्थान फूल फल गुच्छों से पूर्ण थे और छहों ऋतु के फूल फल वहां पायेजाते थे। उस वृक्ष के एक टास पर पक्षी बैठे कहीं फूल फलादिक खाते थे, कहीं ब्रह्माजी के हंस बैठे थे, कहीं अग्नि के वाहन तोते, कहीं अश्विनीकुमार और भगवती केशिखावाले मोर, कहीं बगले, कहीं कबूतर और

कहीं गरुड़ बैठे ऐसे शब्द करते थे मानों ब्रह्मकमल से उपजकर ॐकार का उच्चार करता है कई ऐसे पक्षी देखे कि, उनकी दो दो चोंचें थीं। फिर मैं आगे देखने को गया तो जहां उस वृक्ष का टास था वहां अनेक कौवे बैठे देखे। जैसे महाप्रलय में मेघ और लोकालोक पर्वतों पर आन बैठते हैं तैसेही वहां अनेक कौवे अचल बैठे थे जो सोम, सूर्य, इन्द्र, बरुण और कुबेर के यज्ञ की रक्षा करनेवाले और पुण्यवान् स्त्रियों की प्रसन्नता देनेवाले भर्ताके संदेशे पहुंचानेवाले हैं। उनके मध्य में एक महा-श्रीमान् और कान्तिमान् कौवा ऊंची ग्रीवा कियेहुये बैठा था। जैसे नीलमणि चमकती है तैसेही उसकी ग्रीवा चमकती थी और पूर्ण मन और मानी अर्थात् मानकरने योग्य; सुन्दर और प्राणस्पन्द को जीतनेवाला, नित्य अन्तर्मुख और नितही सुखी वह चिरंजीवी पुरुष वहां बैठा था जगत् में दीर्घआयु और जगत् की आगमापायी गति देखते २ जिसने बहुत कल्प का स्मरण कियाहै; इन्द्रकी जिसने कई परम्परा देखी हैं; लोकपाल, बरुण, कुबेर, यमादिक के कई जन्म देखे हैं और देवतों और सिद्धों के अनेक जन्म जिस पुरुष ने देखेहैं और जिसका प्रसन्न और गम्भीर अन्तः-करण है; जिसकी सुन्दर वाणी वक्रतासे रहित है; जो निर्मल और निरहंकार सबको सुहृद् मित्र है; बड़ी कोटर हलवे की नाईं है; जो पितासमान हैं उनको पुत्र की नाईं है और जो पुत्र के समान हैं उनको उपदेश करने के निमित्त पिता और गुरु की नाईं समर्थ है और जो सर्वथा, सर्वप्रकार, सर्वकाल, सब में समर्थ और प्रसन्न, महामति, हृदय पुण्डरीक, व्यवहार का वेत्ता है; गम्भीर और शान्तरूप महाज्ञाता ज्ञेय है; ऐसे पुरुष को मैंने देखा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डिदर्शनंनामचतुर्दशस्सर्गः ॥ १४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसके अनन्तर मैं आकाशमार्ग से वहां आया और महातेजवान् दीपकवत् प्रकाशवान् मेरा शरीर था। जब मैं उतरा तब जितने पक्षी वहां बैठे थे वे सब जैसे वायु से कमल की पंक्ति क्षोभ को प्राप्त होती है और भूकम्प से समुद्र क्षोभ को प्राप्त होता है तैसेही क्षोभ को प्राप्तहुये। उनके मध्यमें जो भुशुण्डि था उसने मुझको यद्यपि अकस्मात् ऐसा तौभी जानगया कि, यह वशिष्ठ है और उठ-खड़ा हो बोला; हे मुनीश्वर! स्वस्थ हो, कुशल तो है। हे रामजी! ऐसे कहकर उसने संकल्प के हाथ रचे और उनसे मेरा अर्घ्यपाद्यकर भावसंयुक्त पूजन किया और नौकरों को दूर करके आपही वृक्ष के बड़ेपत्र ले और उनका आसन रचकर मुझको बैठा बोला अहो आश्चर्य है! हे भगवन्! आपने बड़ी कृपा की कि, दर्शनदिया। चिरपर्यन्त दर्शनरूपी अमृत से हम वृक्षसहित पूर्ण होरहेहैं। हे भगवन्! मेरे पुण्य इकट्ठे होकर प्रसन्नता के निमित्त आप को प्रेर ले आये हैं। हे मुनीश्वर! देवता जो पूजने योग्यहैं

उनके भी आप पूज्य हो। कृपा करके कहो कि, आप किस निमित्त आये हैं और आपका क्या मनोरथ है? आपके चरणों के दर्शन करके मैंने तो सबकुछ जाना है। स्वर्ग की सभा में जब चिरंजीवियों का प्रसंग चला था तब मैंभी शरण में आया था इससे आप मुझको पवित्र करने आयेहो परन्तु प्रभुके वचनरूपी अमृत के स्वाद की मुझ को इच्छा है इस निमित्त मैं प्रभुके मुख से कुछ सुना चाहताहूं। हे रामजी! जब इस प्रकार चिरंजीवी भुशुण्डिनाम पक्षी ने मुझसे कहा तब मैंने कहा, हे पक्षियों के महाराज! जो कुछ तुमने कहा सो सतहै। मैं अभ्यागत तुम्हारे आश्रम पर इस निमित्त आया हूं कि, चिरंजीवियों की कथा चली थी और उसमें तुम्हारा वर्णन हुआ था। तुम मुझको शीतलचित्त दृष्टि आतेहो; और कुशलमूर्ति हो और संसाररूपी जाल से निकलेहुये दीखते हो। इससे मेरे इस संशय को दूर करो कि, कब तुमने जन्म लियाथा, ज्ञात ज्ञेय कैसे हुये; तुम्हारी आयु कितनी है; कौन२वृत्तान्त तुमको देखा हुआ स्मरण है और किस कारण यहां निवास किया है; भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर! जो कुछ तुम ने पूछा वह सब कहता हूं, शनैःशनैः तुम श्रवण करो। तुम तो स्वयम् साक्षात् प्रभु; त्रिलोकी के पूज्य और त्रिकालदर्शी हो परन्तु जो कुछ तुमने आज्ञा की है सो मानने योग्य है। तुमसारिखे महात्मा पुरुषों के सम्मुख हुये अपने में जो कुछ तप्तता होती है वहभी निवृत्त होजातीहै–जैसे मेघ के आगे आये हुये सूर्यकी तप्तता मिट जाती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डिसमागमनंनामपञ्चदशस्सर्गः॥ १५॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! इस जगत् में सब देवताओं के बड़े देव सदाशिव हैं जिन्हों ने अर्धाङ्ग भगवती को शरीर में धारण किया है और जो महासुन्दर मूर्ति और त्रिनेत्र हैं। जिनकी बड़ी जटा हैं और मस्तक पर चन्द्रमा है जिससे अमृत टपकता है; और जटा के चहुंओर गङ्गा फिरती हैं जैसे फूलों की माला कण्ठ में होती है। नीलकण्ठ कालकूट के पानसे विषविभूषण होगये हैं; कण्ठ में मुण्ड की माला है और सब ओर से भस्म लगी हुई है। दिशा उनके वस्त्र हैं; श्मशान में गृह है और महाशान्तरूप बिचरते हैं। उनके साथ जो सेनाहै उसके महाभयानक आकार हैं; किसीके तो रुद्र की नाईं तीन नेत्र हैं; किसीका तोते की नाईं मुख है; किसीका ऊंट का मुख है; कोई गर्दभमुखी है; किसी का बैल का मुख है; कोई जीवों के हृदय में प्रवेश करके रक्त मांस के भोजन करनेवाले हैं कोई पहाड़ में रहते हैं; कितने वन, कन्दराओं और श्मशान में रहते हैं। उनके साथ देवियां भी ऐसी हैं जिनकी महा-भयानक चेष्टा और आचार हैं। उन देवियोंमें जो मुख्य देवियां हैं उनका जिस जिस दिशा में निवास है वह सुनो। जया, विजया, जित और अपराजित वामदिशा की ओर तुम्बर रुद्र के आश्रित हैं; और सिद्ध, मुखका रक्तका और उतला भैरव रुद्र के

आश्रित हैं। सर्वदेवियों के मध्य ये अष्टनायिका और शतसहस्र देवियां हैं रुद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, वाराही, वायवी, कौमारी, वासवी, सौरी इत्यादिक। इनके साथ मिली हुई आकाश में उत्तम देव, किन्नर, गन्धर्व, पुरुष, सुरसंभवतियां तिनके साथ हुई हैं। भूचरपृथ्वी में कोटों हैं। और नाना प्रकार रूप, नाम धारकर पृथ्वी में जीवों को भोजन करती हैं। उनके वाहन ऊँट, गर्दभ, काक, वानर, तोते इत्यादिक हैं। उन देवियों में कई पशुधर्मिणी हैं जो क्षुद्रकर्म में स्थित हैं और कई विदितवेद जीवन्मुक्तपद में स्थित हैं। उनके मध्यनायक अलम्बसा देवी है। जैसे विष्णु का वाहन गरुड़ है तैसेही उस देवी का वाहन काक है और यह देवी अष्टसिद्धि के ऐश्वर्य संयुक्त है। वे देवियां एककाल में विचारती भईं और जगत् के पूज्य तुम्बर और भैरव की पूजा कर विचार किया कि, सदाशिव हमारे साथ भावसंयुक्त नहीं बोलते और हमको तुच्छ जानते हैं इससे हम इनको कुछ अपना भाव दिखावें क्योंकि प्रभाव दिखाये बिना कोई किसीको नहीं जानता। ऐसे विचार रच ये उमा को वश करके दुराय लेगईं और उत्साह करके मद्य, मांसादिक भोजनकिया। निदान माया के छल से पार्वती को मारकर चावल की नाईं पकाया और उसके कुछ अङ्ग पकाये हुये सदाशिव को दिये। तब सदाशिव ने जाना कि, मेरी प्यारी पार्वती इन्हों ने मारी है। ऐसे निश्चय करके वह कोप करनेलगे तब उन देवियों ने अपने २ अङ्ग से उनके अङ्ग निकाले सौरीने नेत्र, कौमारी ने नासा और इसी प्रकार सबने अपने २ अङ्ग निकाल कर वैसीही पार्वती की मूर्ति ला दी और नूतन विवाहकर दिया तब सदाशिव प्रसन्न हुये, सब ठौर उत्साह और आनन्द हुआ और सब देवियां अपने २ स्थानोंको गईं। चन्द्रनाम काक जो अलम्बसा देवी का वाहन था उसने ब्रह्माणी की हंसिनी के साथ क्रीड़ा की और इसी प्रकार सब ने क्रीड़ा की जिस से सबको गर्भ रहे। निदान वह हंसिनी ब्रह्माणी के पास गई तब ब्रह्माणी ने कहा कि, अब तुमको मेरे उठाने की शक्ति नहीं— तुम गर्भवती हो—जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां जाओ; फिर आना। हे मुनीश्वर! ऐसे कहकर ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुई और नाभिसरोवर जो ब्रह्माजी का उत्पत्तिस्थान है वहां जा स्थित हुई और उस ताल के कमलपत्र पर निवास किया। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उन हंसिनियों ने तीन तीन अण्डे दिये। जैसे बेल से अंकुर उत्पन्न होता है तैसेही उन से एकविंशति अण्ड क्रमसे उत्पन्न हुये। कुछ काल उपरान्त जब उनको फोड़ा तो उन अण्डों से हमारे अङ्ग उत्पन्न हुये और क्रम करके जब हम बड़े हो उड़ने योग्य हुये तब माता हम को ब्रह्माणी के पास लेगई। उनके आगे हम ने मस्तक टेका तब ब्रह्माणी ने, कि, उसी समय समाधि से उतरी थी हमको देखकर कृपा की वृत्ति धार हमारे शिरपर हाथ रक्खा।

उस के हाथ रखने से हमारी अविद्या नष्ट होगई और हमारा मन तृप्त और शान्त-रूप होगया और हम जीवन्मुक्त पद में स्थित हुये। तब हमको यह वृत्ति फुर आई कि, किसी प्रकार एकान्त ध्यान में स्थित होवें। देवी ने आज्ञा की कि, अब तुम जाओ; तब देवीजी की आज्ञा से हम पिता के पास आये और पिता ने हमको कण्ठलगाया और मस्तक चूंबा। फिर हमने अलम्बसा देवी की पूजा की तब पिता ने हमसे कहा, हे पुत्रो! तुम संसाररूपी जाल में तो नहीं फँसे और यदि फँसे हो तो मैं भगवती की प्रार्थना करता हूं वह भृत्यों पर दयालु है—जैसे तुम प्राप्त होगे तैसेही तुमको प्राप्त करेगी। तब हमने कहा, हे पिता! हमतो ज्ञात ज्ञेय हुये हैं; जो कुछ जानने योग्य था वह जाना है और जो पाने योग्य था वह हमने ब्रह्माणी देवीजी के प्रसाद से पाया है। अब हमको एकान्त स्थान की इच्छा है जहां एकान्त हो वहां जा बैठें। तब चन्द पिता ने कहा, हे पुत्रो! सुमेरु पर्वत निर्दोष, महापावन, निर्भय और क्षोभरहित सुन्दर स्थानहै, वह सर्वरत्नों की खानि है, सर्वदेवतों का आश्रयरूप है और सूर्य—चन्द्रमा उसके दीपक हैं जो चहुंओर फिरते हैं। ब्रह्माण्डरूपी मण्डप का वह थम्भा है और सुवर्ण का है, चन्द्र सूर्य उसके नेत्र हैं और तारों की कण्ठ में माला है। दशों दिशा उसके वस्त्र हैं, रत्नमणियों के भूषण हैं और वृक्ष और बेल रोमावली हैं। उसकी त्रिलोकी में पूजा होती है और वह षोड़शसहस्र योजन पाताल में है जहां नाग और दैत्य पूजा करते हैं और चौरासी सहस्र योजन ऊर्ध्वको है जहां गन्धर्व, देवता, किन्नर, राक्षस, मनुष्य पूजा करते हैं। ऐसा पर्वत जम्बूद्वीप के एक स्थान में स्थित है और उसके आश्रय चतुर्दश प्रकारके भूतजाति रहते हैं वह बड़ा ऊंचा पर्वत है और पद्मराग नाम उसका एक शिखर सूर्यवत् उदय है। शिखर पर एक बड़ा कल्पवृक्ष है जो मानों जगत्‌रूपी शिखर का प्रतिबिम्ब आपड़ा है। उस कल्पवृक्ष के दक्षिणदिशा की ओर जो डाल है उसमें महारत्न के गुच्छे, सुवर्ण के पत्र और चन्द्रमा के बिम्बवत् फूल हैं और सघन और रमणीय गुच्छे लगे हैं। वहां एक आलय बना हुआ है; वहां मैंभी आगे रहआया हूं। जब देवीजी समाधि में स्थित हुई थीं तब मैं वहां आलय बनाकर स्थित हुआ था। चिन्तामणि की उसमें शलाका लगी हैं और महारत्नों से बना है। वहां जा तुम निवास करो। वहां और कौवों के पुत्र भी रहते हैं जिनका हृदय आत्मज्ञान से शीतल है और बाहर से भी फल फूल से शीतल है। तुमको वहां भोग भी है और मोक्ष भी है। हे वशिष्ठजी! जब इस प्रकार पिता ने हमसे कहा तब हम सबों ने पिता के चरण परसे और पिता ने हमारा मस्तक चूंबा। निदान हम बिन्ध्याचल पर्वत से उड़े और आकाशमार्ग से मेघनक्षत्र, चक्र, लोकान्तर होकर ब्रह्मलोक में पहुंच देवीजी को प्रणाम किया और

उनने भली प्रकार हमारे ऊपर कृपादृष्टि की और दया और स्नेह सहित कण्ठलगाया और मस्तक चूंबा। हमभी मस्तक टेककर सुमेरु को चले और सूर्य और चन्द्रमा के लोकों और तारा, गण, लोकपाल और देवताओं के लोक, मेघ और पवन के स्थान लांघकर सुमेरुपर्वत के कल्पवृक्ष पर पहुंचे। हे मुनीश्वर! जिस प्रकार हम उपजे और जिससे ज्ञान को प्राप्त हुये हैं और जिस प्रकार यहां आ स्थित हुये हैं वह सब समाचार तुम्हारे आगे अखण्डित कहा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्ड्युपाख्याने
अस्ताचललाभोनामषोड़शस्सर्गः॥ १६॥

भुशुण्डिजी बोले; हे मुनीश्वर! यह चिरकाल की वार्त्ता तुम से कही है वह सृष्टि इस सृष्टि से दूर है परन्तु मैंने तुमको वर्तमान की नाईं अभ्यास के बल से सुनाया है हे मुनीश्वर! मेरा कोई पुण्य था सो फला है कि, तुम्हारा निर्विघ्न दर्शन हुआ और यह आलय शाखा और वृक्ष आज पवित्र हुआ। अब जो कुछ संशय है सो पूछो तो मैं कहूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर उसने मेरा भलीप्रकार अर्घ्यपाद्य से आदर सहित पूजन किया तब मैंने उससे कहा, हे पक्षियों के ईश्वर! तुम्हारे वे भाई कहां हैं जो तुम्हारे समान तत्त्ववेत्ता थे; वह तो दृष्टि नहीं आते, अकेले तुमहीं दीखते हो? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! यहां मुझको बहुत युग की पंक्ति व्यतीत हुई है जैसे सूर्यको कई दिन रात्रि व्यतीत होजाते हैं तैसेही मुझको युग व्यतीत हुये हैं। कुछ काल वे भी रहेथे पर समय पाकर उन्होंने शरीर त्यागदिये और तृण की नाईं तनु त्यागकर शिव आत्मपद को प्राप्त हुये। हे मुनीश्वर! बड़ी आयुर्बल हो अथवा सिद्ध महन्त हो; बली हो, अथवा ऐश्वर्यवान् हो, काल सबको ग्रासि लेताहै। फिर मैंने पूछा, हे साधो! जब प्रलयकाल का समय आता है तब सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ ये सब अपनी २ मार्यादा त्यागदेते हैं और बड़ा क्षोभ होताहै पर तुमको खेद किस कारण नहीं होता? सूर्यकी तपनसे अस्ताचल उदयाचलादिक पर्वत भस्म हो जाते हैं पर उस क्षोभ में तुम खेदवान् क्यों नहीं होते? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! कई जीव जगत् में आधार से रहते हैं और कई निराधार रहते हैं जिनको सेनादिक ऐश्वर्यपदार्थ होते हैं वे आधारसहित हैं और जो इन पदार्थों से रहित हैं वे निराधार हैं पर दोनों को हम तुच्छ देखते हैं सत् कोई नहीं। बड़े २ ऐश्वर्यवान् और बली भी हैं परन्तु सत्य कोई नहीं। उन में पक्षी की जाति महातुच्छ है जिनका उजाड़ वन में निवास है और वहांही उनका दानापानी है। ये निरालम्ब हैं और इनकी जीविका दैव ने ऐसेही बनाई है। हे भगवन्! मैं तो सदा सुखी हूं और अपने आपमें स्थित आत्मसन्तोष से तृप्त हूं कदाचित् इस जगत् के क्षोभ से खेद को प्राप्त नहीं होता

और स्वभावमात्र में सन्तुष्ट और कष्टचेष्टासे मुक्त हूं। हे ब्राह्मण! अब हम केवल काल को व्यतीत करते हैं और जगत् के इष्ट अनिष्ट हमको चला नहीं सके। न मरने की हमको इच्छा है और न जीनेकी इच्छा है क्योंकि; जीना मरना शरीरकी अवस्था है, आत्मा की अवस्था नहीं। हमको जीने का राग नहीं और मरने में द्वेष नहीं-जैसी अवस्था प्राप्त हो उसी में सन्तुष्ट हैं। हे मुनीश्वर! ऐसे २ देखे हैं कि वे फिर भस्म होगये हैं; उनकी अवस्था देखकर हमारे मन की चपलता जाती रही है और हम इस कल्पवृक्ष पर बैठे हैं जिसमें रत्नों की बेलि लगी हैं। इस पर बैठकर मैं प्राण अपान की गति को देखता हूं। इनकी कला की जो सूक्ष्मगति है उसका मैं ज्ञाताहूं और दिन रात्रि का मुझको कुछ ज्ञान नहीं। सत्बुद्धि से मैं काल को जानता हूं और सार असार को भी भले प्रकार जानता हूं। हे मुनीश्वर! जो कुछ विस्तार भासता है वह सब झूठ है, सत् कुछ नहीं; इसी कारण हमको किसी दृश्यपदार्थ की इच्छा नहीं, हम परम उपशमपद में स्थित हैं और सब जगत् भी हमको शान्तरूप है। जो कोई इस जगज्जाल का आश्रय करता है वह सुखी नहीं होता। यह सब जगत् चञ्चलरूप है और स्थिर कदाचित् नहीं होता। इसकी अवस्था में हम पत्थरवत् अचल हैं; न किसीका हमको राग फुरता है और न द्वेष है; न हम किसीकी इच्छा करें; सब जगत् हमको तुच्छ भासता है। यह सब भूतरूपी नदियां कालरूपी समुद्रमें जा पड़ती हैं पर हम किनारे खड़े हैं इसमें कदाचित् नहीं डूबते; और जितने जीवभूत हैं वे डूबते हैं? पर कई एक तुम सारिखे निकले हुये हैं और तुम्हारी कृपा से हम भी निर्विकार पदको प्राप्त हुये हैं। हे मुनीश्वर! मैं निर्विकार सब जगत् के क्षोभसे रहित हूं और आत्मपद को पाकर उपशमरूप हूं। हे मुनीश्वर! तुम्हारे दर्शन से मैं अब पूर्ण आनन्दको प्राप्त हुआ हूं; सन्तकी संगति चन्द्रमाकी चाँदनीवत् शीतलहै और अमृत की नाईं आनन्द को देनेवाली है। ऐसा कौनहै जो सन्तके संगसे आनन्द को न प्राप्त हो; अर्थात् सब आनन्दको प्राप्त होते हैं—यह अर्थ है। हे मुनीश्वर! सन्तका संग चन्द्रमा के अमृत से भी अधिक है क्योंकि; वह शीतल गौण है हृदय की तपन नहीं मिटाता और सन्त का संग अन्तःकरण की तपन मिटाताहै वह अमृत क्षीरसमुद्रके मथन के क्षोभ से निकला है और सन्तका संग सुख से प्राप्त होताहै और आत्मानन्द को प्राप्त करताहै—इससे यह परम उत्तम है। मैं तो इससे और कोई उत्तम नहीं मानता; सन्त का संग सबसे उत्तम है सन्तभी वेही हैं जिनकी आपातरमणीय सब इच्छा निवृत्त हुई हैं अर्थात् जो विचार विना दृश्यपदार्थ सुन्दर भासते हैं और नाशवन्त हैं वे उनको तुच्छ भासते हैं और वे सदा आत्मानन्द से तृप्त हैं। वे अद्वैतनिष्ठ हैं; उनकी द्वैतकलना का अभाव हुआ है वे सदा आत्मानन्द में स्थित हैं। ऐसे पुरुष सन्त कहाते

हैं। उन सन्तों की संगति ऐसी है जैसे चिन्तामणि होती है; जिसके पायेसे सब दुःख नाश होते हैं। हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी कमल के भँवरे और सब ज्ञानवानों से उत्तम तुमहीं दृष्टि आयेहो। तुम्हारे वचन स्निग्ध, कोमल और आत्मरससे पूर्ण, हृदयगम्य और उचित हैं और तुम्हारा हृदय महागम्भीर और उदार, धैर्यवान् और सदा आत्मानन्द से तृप्त है; इससे तुम सब से उत्तम मुझको दीखते हो। तुम्हारे दर्शन से मेरे सब दुःख नष्ट हुये हैं और आज मेरा जन्म सुफल हुआ है। तुमसारिखे सन्तों का संग आत्मपद को प्राप्त करता है। और दुःख और भय नष्ट करके निर्भयता को प्राप्त करता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसन्तमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशस्सर्गः॥१७॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! तुमने जो पूछा था कि; सूर्य, वायु और जल का क्षोभ होता है तो तुम खेदवान् क्यों नहीं होते उसका उत्तर सुनो। जब जगत् को क्षोभ होता है तब भी मेरा कल्पवृक्ष यह स्थिर रहता है क्षोभ को प्राप्त नहीं होता। हे मुनीश्वर! यह मेरा वृक्ष सबलोक को अगम है। भूत नष्ट होते हैं तब भी मैं इससे सुखी रहता हूं। जब हिरण्यकशिपु द्वीपों सहित पृथ्वी समेटकर पाताल लेगया था तब भी मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ; जब देवता और दैत्यों का युद्ध हुआ तब और सब पर्वत चलायमान हुये पर मेरा वृक्ष स्थिर रहा और जब क्षीरसमुद्र के मथने के निमित्त विष्णुजी सुमेरु को भुजा से उखाड़ने लगे पर मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ तब मन्दराचल को लेगये। और क्षीरसमुद्र को मथनेलगे। प्रलयकाल का पवन और मेघ का क्षोभ हुआ तबभी मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ। फिर एक दैत्य आन-कर सुमेरु को पटकने लगा और उसने कुछ उखाड़ा परन्तु मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ। हे मुनीश्वर! बड़े २ उपद्रव हुये हैं और प्रलयकाल के मेघ, पवन और सूर्य तपे हैं तब भी मेरा वृक्ष स्थिर रहा है। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर मैंने उससे पूछा कि, हे साधो! जब प्रलयकाल के वायु और मेघ क्षोभते हैं तब तू विगतज्वर कैसे रहता है? भुशुण्डिजी ने कहा, हे साधो! जब प्रलयकाल के वायु, मेघादिक क्षोभ करते हैं तब मैं कृतघ्न की नाईं अपने आलय को त्यागकर और सब क्षोभसे रहित आकाश में स्थित होताहूं और सब अङ्गोंको सकुचा लेताहूं। जैसे वासना के रोकेसे मन सकुच जाताहै तैसेही मैंभी अङ्गको सकुचालेता हूं। हे मुनीश्वर! जब प्रलयकाल का सूर्य तपताहै तब मैं जलकी धारणासे जलरूप होजाता हूं; जब वायु चलता है तब पर्वतकी धारणा बांधकर स्थित होजाताहूं, जब बहुत तत्त्वोंका क्षोभ होता है तब सबको त्यागकर ब्रह्माण्ड खप्पर के पार जो निर्मल परमपद है वहां मैं सुषुप्तिवत् अचल गम्भीर होजाता हूं और जब ब्रह्मा उपजकर फिर सृष्टि रचताहै तब

मैं सुमेरुके वृक्षपर इसी आलयमें स्थित होताहूं। फिर मैंने पूछा, हे पक्षियोंके ईश्वर! जैसे तुम अखण्ड स्थित होतेहो तैसेही और योगीश्वर क्यों नहीं स्थित होते ? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! परमात्मा की यह नीति किसीसे लंघी नहीं जाती; उन योगीश्वरों की नीति इसी प्रकार हुई है और मेरी उत्पत्ति इसी प्रकार है। ईश्वर की नीति अतुल है। उसकी तुल्यता किसी से नहीं की जाती; जहां जैसी नीति हुई है वहां वैसेही है; अन्यथा किसीसे नहीं होती। हमको इसी प्रकार हुई है कि, कल्प कल्प में इसी पर्वत के वृक्ष पर आलय होता है और हम आय निवास करते हैं। वशिष्ठजी बोले, हे पक्षियोंके नायक! तुम्हारी अत्यन्त दीर्घ आयुहै; तुम ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न और योगेश्वर हो और तुमने अनेक आश्चर्य देखे हैं उनमें जो स्मरण है वह कहो? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! एकबार ऐसे स्मरण आता है कि, पृथ्वी पर तृण और वृक्षही थे और कुछ न था; फिर एकबार एकादशसहस्रवर्ष पर्यन्त भस्म ही दृष्टि आती थी; जो वृक्ष और तृण थे सो सब जल गये थे; एकबार ऐसी सृष्टि हुई कि, उसमें चन्द्र और सूर्य न उपजे और दिन और रात्रि की गति कुछ जानी न जाती थी पर कुछ सुमेरु के रत्नों का प्रकाश होता था; एककल्प ऐसा हुआ है कि, जिसमें देवता और दैत्यों का युद्ध हुआ था। और जब दैत्यों की जीत हुई तो उन्होंने सब देवता मनुष्यों की नाईं हत किये। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों देवताओं के सिवा और सब सृष्टि उन्होंने जीती और बीसयुग पर्यन्त उनहीं की आज्ञा चली। एकबार ऐसे स्मरण आता है कि, दो युग पर्यन्त पृथ्वीपर वृक्ष ही वृक्ष थे और कुछ सृष्टि न थी; एकबार दो युग पर्यन्त पृथ्वी पर पर्वतही पर्वत सघन होरहे थे और कुछ न था और एकबार ऐसा हुआ कि, सब जलही जल होगया और कुछ न भासे केवल सुमेरु पर्वत थंभेकी नाईं भासे। एकबार अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशासे आये और बिन्ध्याचल पर्वत बढ़ा और सब ब्रह्माण्ड चूर्णकर दिये। हे मुनीश्वर! बहुत कुछ स्मरण है परन्तु संक्षेप मे सुनो। एककाल सृष्टि में मनुष्य, देवतादिक कुछ न भासते थे; एकबार ऐसी सृष्टि हुई थी कि, ब्राह्मण मद्यपान करते थे शूद्र बड़ेहो बैठेथे और सब जीवों में विपर्यय धर्म हो गयेथे; एकबार ऐसी सृष्टि स्मरण में आती है कि, पृथ्वी में कोई पर्वत दृष्टि न आता था; एकबार सृष्टि ऐसी उत्पन्न हुई कि, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, लोकपाल आदि कोई न उपजा; एक सृष्टि ऐसी हुई कि, सबही उपजे; एक सृष्टि ऐसी हुई कि, उसमें स्वामिकार्तिक न उपजा, दैत्य बढ़गये और दैत्यों हीं का राज्य होगया। मुझको बहुत स्मरण है कहांतक कहूं। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, इन्द्र, उपेन्द्र और लोकपालों के बहुत जन्म मुझको स्मरण आते हैं। जब हिरण्यकशिपु को जो वेद को चुराले आया था हरिने मारा था वहभी स्मरण है और क्षीरसमुद्र मथना भी स्मरण है।

ऐसी सृष्टि भी देखी है कि, जिसमें विष्णुजी का वाहन गरुड़ नहीं हुआ; ब्रह्माजी हंस-वाहन विना हुये हैं और रुद्र बैलवाहन विना हुये हैं। इसी प्रकार बहुत कुछ देखा है क्या २ तुम्हारे आगे वर्णन करूं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डुपाख्यानेजीवितवृत्तान्तवर्णनंनामा ष्टादशस्सर्गः ॥ १८ ॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! जब फिर सृष्टि उत्पन्न हुई तब तुम, भारद्वाज, पुलस्त्य, नारद, इन्द्र, मरीचि, उद्दालक, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा, सनत्कुमार, भार्गवेश आदिक उपजे। फिर सुमेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत उपजे और अत्रि, वासुदेव, बाल्मीकि इत्यादिक यह तो अल्पकाल के उपजे हैं। हे मुनीश्वर! तुम ब्रह्माके पुत्रहो और तुम्हारे आठ जन्म मुझको स्मरण आते हैं। कभी तुम आकाश से उपजे हो, कभी जल से उपजे, कभी पहाड़ से उपजे, कभी पवन से उपजे और कभी अग्नि से उपजे हो। हे मुनीश्वर! मन्दराचल पर्वत को क्षीरसमुद्र में डालकर जब मथने लगे और देवता और दैत्य क्षोभवान् हुये कि, मन्दराचल नीचे चलाजाता है तब विष्णुजीने कच्छपरूप धारण कर पर्वत को ठहराया था और अमृत निकालाथा सो मुझको द्वादशबार स्मरण आताहै। तीनबार हिरण्यकशिपु पृथ्वी को पाताल में समेट लेगया है और छःबार परशुराम रेणुका माता का पुत्र हुआ है सो बहुत सृष्टि के पीछे हुआ है। जब क्षत्रियों में दैत्य उपजने लगे तो उनके नाश निमित्त विष्णुजी ने परशुरामजी का अवतार लिया था। हे मुनीश्वर! एक सृष्टि ऐसी हुईहै कि, जिसमें अगले से विपर्ययरूप शास्त्र और पुराण के अर्थ हुये और एक कल्प में औरही पाठ और ही युक्ति और ही अर्थ हुये क्योंकि; युग युग प्रति और ही पुराण होते हैं, किसी को देवता बनाते हैं और किसीको ऋषीश्वर मुनीश्वर कहते हैं। कथा और इतिहास भी मुझे बहुत स्मरण हैं। बाल्मीकिजी ने द्वादशबार रामायण बनाई और विस्मरण होगया है और व्यासजी ने दोबार महाभारत बनाई और उन्होंने सातबार अवतार लिया है। हे मुनीश्वर! इस प्रकार आख्यान, कथा, इतिहास और शास्त्र जो २ हुये हैं वे सब मुझ को बहुत स्मरण में आते हैं। हे साधो! दैत्यों के मारनेके निमित्त विष्णुजी युग युग प्रति अवतार लेते हैं। एकादशबार मुझको रामजी स्मरण में आते हैं और वसुदेव के गृहमें पृथ्वीके भार उतारने के निमित्त कृष्णजी ने सोलहबार अवतार लियाहै सो भी मुझको स्मरण है और तीन बार नरसिंह अवतार धारण कर विष्णु ने हिरण्य-कशिपु को मारा है। हे मुनीश्वर! इसी प्रकार मुझको अनेक सृष्टि स्मरण आती हैं परन्तु सबही भ्रममात्र हैं, कुछ उपजी नहीं। जब आत्मतत्त्व में देखता हूं तब कुछ सृष्टि नहीं भासती सब सत्तामात्र है। जैसे जल में बुद्बुदे उपजकर लीन होजाते हैं

तैसेही आत्मा में मन के फुरनेसे कई सृष्टि उपजती हैं और लीन होजाती हैं। उस फुरने से कई सृष्टि देखी हैं; कोई सदृश ही उपजती हैं, कोई अर्धसदृश और कोई विपर्ययरूप हैं। हे मुनीश्वर! कोई २ सृष्टि में एकसेही आकार और कर्म-आचार होते हैं कोई मन्वन्तर मन्वन्तर प्रति औरही और सृष्टि होती है और किसी में ऐसे होताहै कि; पुत्र पिता होजाता है; शत्रु मित्र होजाता है; बान्धव अबान्धव और अबान्धव बान्धव होजाता है। इस प्रकार भी विपर्यय होते दृष्टि आये हैं। कभी इसही कल्पवृक्ष पर हमारा आलय होताहै, कभी मन्दराचल में; कभी हिमालय पर्वत में; और कभी मालव पर्वत में होताहै। इसी प्रकार वन, वृक्ष और बेलिपर होजाता है और कभी इसी कल्पवृक्ष के ऊपर होजाता है पर अब तो बहुत काल से इसी कल्पवृक्ष पर रहता हूं। जब सृष्टि का नाश होजाता है तबभी मेरा यही शरीर रहता है। मैं आसन लगाकर अपनी पुर्यष्टक को ब्रह्मसत्ता में स्थित करताहूं इसी कारण मुझको फिर यही शरीर प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प फुरता है तैसाही आगे हो भासता है यह जगत् सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं केवल भ्रमरूप है। उस जगत् भ्रम में अनेक आश्चर्य दृष्टि आते हैं; पिता पुत्र होजाता है; मित्र शत्रु होजाता है; स्त्री पुरष होजाती है; और पुरुष स्त्री होजाता है। कभी कलियुग में सतयुग बर्तनेलगता है और सतयुग में कलियुग बर्तने लगता है और कभी द्वापर में त्रेता और त्रेता में द्वापर बर्तता है। कभी अदृश्यही वेदविद्या के अर्थ होते हैं और नानाप्रकार के आश्चर्य भासते हैं। हे मुनीश्वर ! जब एक सहस्र चौकड़ी युग की व्यतीत होती हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है सो एकबार दो दिन पर्यन्त ब्रह्मा समाधि में लगा रहा और सृष्टि शून्य होरही-यह भी स्मरण आता है और भी कई देश क्रिया विचित्ररूप चित्त आते हैं; क्या २ कहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिरातीतवर्णनंनामैकोनविंशतितमस्सर्गः॥१९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब भुशुण्डिजी ने कहा तब मैंने फिर जिज्ञासा के अर्थ पूछा कि, हे पक्षियों के ईश्वर ! तुमतो चिरकालपर्यन्त जगत् में व्यवहार करते रहे हो तो तुम्हारे शरीर को मृत्यु ने किसनिमित्त न ग्रास किया ? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर ! तुम सब जानतेहो परन्तु ब्रह्मजिज्ञासा करके पूछतेहो इससे जैसे विद्यार्थी वेदार्थ पढ़ कर फिर गुरु के आगे कहते हैं तैसेही मैं आज्ञा मानकर कहता हूं। हे मुनीश्वर ! मृत्यु किसको मारताहै और किसको नहीं मारता सो सुनो। दुःखरूपी मोती वासनारूपी तांत से पिरोये हैं; यह माला जिस के हृदयरूपी गले में पड़ी हुई है उसको मृत्यु मारता है और जिसके कण्ठ में यह माला नहीं पड़ी उसको मृत्यु नहीं मारता। शरीररूपी वृक्ष में चित्तरूपी सर्प बैठा है। आशारूपी अग्नि

जिस वृक्ष को नहीं जलाती वह मृत्युके वश नहीं होता। रागद्वेषरूपी विषसे पूर्ण जो चित्तरूपी सर्प है, तृष्णा से चूर्ण होता है और लोभरूपी व्याधि से नष्ट होता है उसको मृत्यु मारता है और ग्रास लेता है। जिसको इनका दुःख नहीं स्पर्श करता उसको मृत्यु भी नहीं नाशकरता। हे मुनीश्वर! शरीररूपी समुद्र क्रोधरूपी बड़वाग्नि से जलता है जिसको क्रोधरूपी अग्नि नहीं जलाता उसको मृत्यु भी नहीं मारता। जिसका मन परम पावन और निर्मल पदमें दृढ़ विश्रान्त और स्थित हुआ है उसको मृत्यु नाश नहीं करता। हे मुनीश्वर! जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिन्ता, चञ्चलता, अभिमान प्रमाद इत्यादिक दुःख होते हैं उसको मृत्यु मारता है और जिसको काम, क्रोध, लोभादिक रोग संसार बन्धनका कारण बांध नहीं सके और जो इनसे लेपायमान नहीं होता उसको आधि व्याधिरूपी मल नहीं स्पर्श करता। जो मनुष्य लेता है, देता है और सबकार्य करता है पर चित्त में अनात्म अभिमान स्पर्श नहीं करता उसको और जो पुरुष इष्टकी वाञ्छा नहीं करता और अनिष्ट में दोष नहीं करता दोनोंकी प्राप्तिमें सम रहताहै उसको समाहतचित्त कहते हैं। हे मुनीश्वर! जो कुछ ऐश्वर्यवान् सुन्दर पदार्थ हैं वे सब असत्‌रूप हैं; पृथ्वीपर चक्रवर्त्ती राजा और स्वर्ग में गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, देवता और उनकी स्त्रीगण और सुरों की सेना आदिक सब नाशरूप हैं। मनुष्य, दैत्य, देवता, असुर, पहाड़, ताल, नदियां जो कुछ बड़े पदार्थ हैं वे सबही नाशरूप हैं। स्वर्ग, पृथ्वी और पाताललोक जो कुछ जगत् भोग हैं वे सब असत्‌रूप और अशुभ हैं। कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं; न पृथ्वी का राज्य श्रेष्ठ है, न देवताओं का रूप श्रेष्ठ है न नागों का पाताललोक श्रेष्ठ है न कुछ शास्त्रों का विचारना श्रेष्ठ है, न काव्यका जानना श्रेष्ठ है; न पुरातनकथा क्रम वर्णन करना श्रेष्ठ है; न बहुत जीना श्रेष्ठ है; न मूढ़ता से मरजाना श्रेष्ठ है; न नरक में पड़ना श्रेष्ठ है और न इस त्रिलोकी में और कोई पदार्थ श्रेष्ठ है; जहां सन्त का मन स्थित है वही श्रेष्ठ। यह नाना प्रकार का जगत् क्रम चलरूप है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे मूढ़ होकर चलपदार्थ में नहीं रमते और बहुत जीनेकी इच्छा भी नहीं करते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्ड्युपाख्यानेसंकल्पनिराकरणन्नामविंशतितमस्सर्गः॥ २०॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! केवल एक आत्मदृष्टि सबसे श्रेष्ठहै; जिसके पायेसे सब दुःख नाश होते हैं और परमपद प्राप्त होतेहैं। वह आत्मचिन्तन सर्वदुःखों का नाशकर्ता है और चिरकाल के तीनों तापोंसे तपे और जन्म के मार्गसे थकेहुये जीव के श्रम को दूर करता है और तपन मिटाता है। समस्त दुःखोंको जो अविद्या सत्ता

अनर्थ प्राप्त करनेवाली है उसकोभी नाश करती है । जैसे अन्धकार को प्रकाश नाश करताहै तैसेही जीवके हृदयमें शीतल प्रकाश उपजाती है । हे भगवन्! ऐसी जो आत्म-चिन्तना सब संकल्पों से रहितहै सो तुम सारिखे को सुगम प्राप्त है और हम सारिखे को कठिन है क्योंकि; सम सत् कलनासे अतीत है । हे मुनीश्वर ! उस आत्मचिन्तन की सखी औरभी कोई प्राप्त हो तो सब ताप मिटजावें और महा शीतलताहो उनमें से मुझको एकसखी प्राप्तहुईहै वह सब दुःखोंका नाश करतीहै, सब सौभाग्य देनेवाली और जीनेका मूलहै । ऐसी प्राणचिन्ता मुझको प्राप्त हुई है । हे रामजी ! जब इस प्रकार मुझ से काकभुशुण्डिने कहा तब मैंने जान करभी क्रीड़ा के निमित्त फिर उससे पूछा कि, हे सर्वसंशयोंके निवृत्त करनेवाले, चिरंजीवी, पुरुष ! सत्य कहो प्राणचिन्ता किसको कहते हैं ? भुशुण्डिजी बोले, हे सर्ववेदान्त के वेत्ता और सर्व संशयों के नाशकर्त्ता ! मेरे उपहास के निमित्त तुम मुझसे पूछते हो । तुम तो सबकुछ जानते हो परन्तु तुम से शिक्षक की भांति कहता हूं । क्योंकि, गुरु के आगे कहना भी कल्याण के निमित्त है । भुशुण्डिजी के जीने का कारण और भुशुण्डिको आत्मलाभ देनेवाली प्राणचिन्ता कहाती है । हे भगवन् ! इसी दृष्टि का आश्रय करके मैं परमपद को प्राप्त हुआ हूं मुझको बन्धन नहीं होता और सब अवस्था में बैठते, चलते, जागते, सोते सब ठौर मेरा चित्त सावधान रहता है इस कारण कोई बन्धन नहीं होता । हे मुनीश्वर ! मैंने प्राण और अपान के संसरने की गति पाई है; उस युक्ति से मुझको आत्मबोध हुआ है और उस बोध से मेरे मद, मोहादिक विकार सब नष्ट होगये हैं और शान्तरूप होकर स्थित हुआ हूं । हे मुनीश्वर ! जिसको प्राण अपान की गति प्राप्त हुई है वह सब आरम्भ कर्म को करे अथवा सब आरम्भ का त्याग करे परन्तु सदा शान्तरूपहै; उसका काल सुख से व्यतीत होता है । हे मुनीश्वर । प्राण हृदय से उपज कर द्वादश अंगुल-पर्यन्त बाहर जाता है और वहां जाकर स्थित होता है; उस ठौर से अपानरूप हो हृदय में आकर स्थित होता है । हे मुनीश्वर ! बाहर आकाश के सन्मुख जो प्राण जाता है सो अग्नि मुखवत् उष्ण होता है और जो हृदयाकाश के सन्मुख आता है सो शीतल नदी के प्रवाहवत्—आता है । अपान चन्द्रमारूप है और बाहर से अन्तर आता है और प्राण भीतर से बाहर जाता है, वह अग्नि, उष्ण और सूर्यरूप है । प्राणवायु हृदयाकाश को तपाता है और अन्न पचाता है और अपान हृदय को चन्द्रमा की सदृश शीतल करता है । हे मुनीश्वर । अपानरूपी चन्द्रमा जब प्राण-रूपी सूर्य में जहां साठ तत्त्व हैं लीन होता है तो उस में स्थित हुआ मन फिर शोक को नहीं प्राप्त होता और प्राणरूपी सूर्य जब अपानरूपीचन्द्रमा के घरमें लीन होता है उस अवस्था में मन स्थित हुआ फिर जन्म का भागी नहीं होता । हे मुनीश्वर !

सूर्यरूपी प्राण अपने सूर्यभाव को त्यागकर अपानरूपी चन्द्रमा को जबतक नहीं प्राप्त हुआ उस अवस्था के देशकाल को विचारे तो फिर शोक नहीं पाता और सब भ्रम नाश होजाते हैं। द्वादश अंगुल पर्यन्त जो आकाश है उससे अपानरूपी चन्द्रमा उपजकर हृदय के प्राणरूपी सूर्य में लीन होता है पर सूर्यभाव को जबतक नहीं प्राप्त होता उसके मध्यभाव अवस्था में जिसका मन लगा है वह परमपद को प्राप्त होता है। हृदयमें चन्द्रमा और सूर्य के अस्तभाव और उदयभाव का ज्ञाता हुआ और इसका आधारभूत जो आत्मा है उसको जानकर फिर मन नहीं उपजता। हे मुनीश्वर! प्राण और अपानरूपी सूर्य और चन्द्रमा जो हृदय आकाश में उदय और अस्त होते हैं उनके प्रकाश से हृदय में जो भास्कर देवहै उसको जो देखता है वही देखता है। बाहर जो सूर्य प्रकाशता है और कभी अन्धकार होता है तो उस प्रकाश के उदय हुये और तम के क्षीणहुये कुछ सिद्ध नहीं होता परन्तु जब हृदय का तम दूर होता है तब परमसिद्धता को प्राप्त होता है। बाहर के तम नष्ट हुये लोकों में प्रकाश होता है और हृदय के तम नष्ट हुये आत्मप्रकाश उदय होताहै और अज्ञान अन्धकार का अभाव हो परमपद को जानकर मुक्त होता है। प्राण अपान की युक्ति जाने से तम नष्ट होजाता है। हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो चन्द्रमा और सूर्य हैं सो यत्न विना उदय और अस्त होते हैं। जब प्राणरूपी सूर्य हृदयकोट से उपजकर बाहर जाता है तब उसी क्षण अपानरूपी चन्द्रमा में लीन होताहै और अपानरूपी चन्द्रमा उदय होआता है और जब अपानरूपी चन्द्रमा हृदयकोट के प्राण वायुरूपी सूर्य में स्थित होता है तब उसी क्षण में प्राणरूपी सूर्य उदय होता है। प्राणके अस्तहुये अपान उदय होताहै और अपान के अस्तहुये प्राण उदय होता है। जैसे छाया के अस्तहुये धूप उदय होती है और धूपके अस्तहुये छाया उदय होती है तैसेही प्राण अपान की गति है। हे मुनीश्वर! जब हृदयकोट से प्राण उदय होता है तब प्राण का रेचक होने लगता है और अपान का पूरक होने लगता है और जब प्राण अपान में स्थित हुआ तब अपान का कुम्भक होता है। उस कुम्भक में जब स्थिति होती है तब फिर तीनों तापों से नहीं तपता। जब अपान का रेचक होता है तब प्राण का पूरक होने लगता है और जब अपान जा स्थित होता है तब प्राण का कुम्भक होता है। उसमें जब स्थित होताहै तबभी तीन तापोंसे तपायमान नहीं होता। हे मुनीश्वर! प्राण अपान के भीतर जो शान्तरूप आत्मतत्त्व है उसमें जब स्थिति होती है तब मन तपायमान नहीं होता और जब अपान आ स्थित होताहै और प्राण उदय नहीं हुआ उस अवस्था में जो साक्षीभूत सत्ताहै वह आत्मतत्त्व है। उसमें जब स्थिति होती है तब फिर वह कठिन नहीं होता। जब अपानके स्थानमें प्राण जा स्थित होता है और

अपान जबतक उदय नहीं हुआ वहां जो देश, काल, अवस्था है उसमें मन स्थित होता है तब मनका मनत्त्वभाव जाता है और फिर नहीं उपजता। हे मुनीश्वर! प्राण जो अपान में स्थित हुआ और अपान उदय नहीं हुआ वह कुम्भक है। अपान प्राण में स्थित भया और प्राण जबतक उदय नहीं हुआ उस कुम्भक में जो शान्त तत्त्व है वह आत्मा का स्वरूपहै और शुद्ध और परमचैतन्यहै। जो उसको प्राप्तहोता है वह फिर शोकवान् नहीं होता। जैसे पुष्पमें गन्धसे प्रयोजन होता है तैसेही प्राण अपान के भीतर जो अनुभव तत्त्व स्थित है उससे प्रयोजन है। वह न प्राण है, न अपान है; उस अनुभव आत्मतत्त्व की हम उपासना करते हैं। प्राण अपानकोट क्षयको प्राप्तहोता है और अपान प्राणकोट में क्षय होता है; उस प्राण–अपान के मध्य में जो चिदात्मा है उसकी हम उपासना करते हैं। हे मुनीश्वर! जो प्राणका प्राण है; अपान का अपान है; जीवका जीव है और देहका आधारभूत है ऐसे चिदात्मा की हम उपासना करते हैं। जिसमें सर्व है, जिससे यह सर्व है और जो यह सर्व है; ऐसा जो चिदात्मा है उसकी हम उपासना करते हैं। जो सर्व प्रकाश का प्रकाश है; सब पावन का पावन है और सब भाव अभाव पदार्थों का अपना आप है उस चिदात्मा की हम उपासना करते हैं जो पवन परस्पर हृदय में संपुटरूप है उसमें स्थित जो साक्षीरूप और भीतर बाहर सब ठौर वही है; उस चिदात्मा की हम उपासना करते हैं। जब अपान अस्तहुआ और प्राण नहीं उपजा उस क्षण में जो कलंक से रहित है उस चेतनतत्त्व की हम उपासना करते हैं। जब प्राण अस्त हुआ और अपान नहीं उपजा ऐसा जो नासिका के अग्रमें शुद्ध आकाश है और उसमें जो सत्यता है उस चिद्सत्यता की हम उपासना करते हैं। जो प्राण अपान के उत्पत्ति का स्थान; भीतर बाहर सब ओर में व्याप्त और सब योगकला का आधारभूत है उस चिद्तत्त्व की हम उपासना करते हैं। जो प्राण अपान के रथपर आरूढ़ है और शक्ति का शक्तिरूप है उस चिद्तत्त्व की हम उपासना करते हैं। हे मुनीश्वर! जो संपूर्ण कला कलंक से रहित और सर्व कला जिसके आश्रयहैं ऐसा जो अनुभवतत्त्व है और सब देवता जिसकी शरण को प्राप्त होते हैं उस आत्मतत्त्व को हम उपासना करते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डचुपाख्यानेप्राणअपानसमाधि वर्णनंनामएकविंशतितमस्सर्गः॥ २१॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं प्राणसमाधि को प्राप्त हुआ हूं और इस क्रमसे मैं आत्मपदको प्राप्तहुआहूं। इसी निर्मल दृष्टिका आश्रय करके स्थित हूं और एक निमेषभी चलायमान नहीं होता। सुमेरु पर्वत की नाईं स्थितहूं और चलता

हुआ भी स्थिर हूं; जाग्रत् में सुषुप्ति स्वप्न में स्थित हूं और सर्वदा आत्मसमाधि में लगा रहताहूं; विक्षेप कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! नित्य अनित्य भावसे जो जगत् स्थित है उसको त्यागकर मैं अन्तर्मुख अपने आपमें स्थितहूं और प्राण अपान की कला जो तुम्हारे विद्यमान कही है उसका सदा ऐसेही प्रवाह चलाजाताहै उसमें मेरी अयत्न समाधि है इससे मैं सदा सुखी रहताहूं कुछ कष्ट नहीं होता। जिसको यह कला नहीं प्राप्त हुई वह कष्ट पाता है। हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीव महाप्रलयपर्यन्त संसारसमुद्र में डूबते हैं और निकलकर फिर डूबते और इसी प्रकार गोते खातेहैं और जिन पुरुषों ने पुरुषार्थ कर आत्मपद पाया है वे सुख से बिचरते हैं। हे मुनीश्वर! भूतकाल की मुझको चिन्ता नहीं और भविष्य की इच्छा नहीं; वर्तमान में यथा प्राप्त राग द्वेष से रहित होकर बिचरता हूं। मैं सुषुप्ति की नाईं स्थित हूं इससे केवल स्वरूप में भाव अभाव पदार्थों से रहित हूं और इस कारण चिरंजीवी हो दुःख से रहित हूं। प्राण अपान की कला को शम करके स्वरूप में स्थित हूं। आज यह कुछ पाया है और कल यह पाऊंगा यह चिन्ता मेरी दूर होगई है, इस कारण निर्दुःख जीता हूं। न किसी की प्रशंसा करता हूं और न कदाचित् निन्दा करता हूं; सब आत्मस्वरूप देखता हूं इस कारण सुखी जीता हूं। इष्ट की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् नहीं होता मैंने परम त्याग कियाहै सर्व आत्मभाव देखता हूं और जीवभाव दूर होगया है इस कारण अदुःख जीता हूं। हे मुनीश्वर! मेरे मन की चपलता मिटगई है और राग द्वेष दूर होगये हैं। मन शान्त हुआ है इस कारण अरोग जीता हूं, काष्ठ, सुन्दर स्त्री, पहाड़, तृण, अग्नि और सुवर्ण समभाव देखता हूं। हे मुनीश्वर! मैं जरामरण के दुःख और राजलाभ के सुख और शोक से रहित समभाव में स्थित हूं और निर्दुःख जीताहूं ये मेरे बान्धव हैं, ये अन्ध हैं। यह मैं हूं, यह मेरा है, यह सब कलना मुझको कुछ नहीं इसीसे सुखी जीता हूं और आहार व्यवहार करता, बैठता, चलता, सूंघता, स्पर्श करता और श्वास लेता हूं परन्तु यह जो अभिमानहै कि, मैं 'देह हूं', इस अभिमानसे रहित हो सुखी जीताहूं। इस संसार की ओरसे मैं सुषुप्तरूप हूं और इस संसार की गतिको देखकर हँसता हूं कि, वास्तव में यह है नहीं आश्चर्य है; इस कारण निर्दुःख जीता हूं। हे मुनीश्वर! मैं सर्वदा काल, सर्व प्रकार, सर्व पदार्थोंमें समबुद्धि हूं और विषमता मुझ को कुछ नहीं भासती; न किसीसे सुखी होताहूं और न दुःखी हूं—जैसे हाथ फैलाइये तौभी शरीर है और संकोचिये तो भी शरीर है इसी प्रकार मैंने सर्वात्मा आपको जाना है इससे मुझको कोई दुःख नहीं। मेरी बोली और निश्चय स्निग्ध और कोमल सबको हृदयगम्य है। सर्वत्र मैं जो ऐसे देखता हूं इस कारण निर्दुःख जीता हूं। चरण से

मस्तकपर्यन्त देह में मुझको ममता नहीं और अहंकाररूपी की कीचड़ से मैं निकला हूं इस कारण अरोग जीता हूं। कार्यकर्ता और भोजनकर्ताभी दृष्टि आता हूं परन्तु मेरे मनमें निष्कर्मता दृढ़ है। हे मुनीश्वर! सामर्थ्य करके कार्य करूं तौभी मुझको अभिमान नहीं और दरिद्री होऊ तौभी संपत्ति और सुख की इच्छा नहीं अर्थात् किसी में आसक्त नहीं होता। इस असत्यरूप शरीर के नाश हुये अभिमान नाश नहीं होता। भूतोंका समूह सब असत्यरूप है और आत्मा सत्यरूपहै; ऐसे जानकर मैं स्थितहूं और आशारूपी फांसी से मेरे मुक्तचित्त की वृत्ति समाहत हुई है और अनात्म में आत्म अभिमान की वृत्ति नहीं फुरती। हे मुनीश्वर! मैंने जगत् को असत्य जाना है और आत्मा को सत्य और हाथ में बिल्वफलवत् प्रत्यक्ष जाना है। इस जगत् में मैं सुपुप्त प्रबुद्ध हूं। सुख को पाकर मैं सुखी नहीं होता और दुःख को पाकर दुःखी नहीं होता। सबका मैं परममित्र हूं इस कारण मैं निर्दुःख जीताहूं; आपदा में अचलचित्त हूं; संपदा में सब जगत् का मित्र हूं और भाव अभाव से ज्यों का त्यों हूं इस कारण सदासुखी जीताहूं। न मैं परिच्छिन्न अहं हूं; न कोई अन्य है; न कोई मेराहै और न मैं किसी का हूं; यह भावना मेरे चित्तमें दृढ़है। मैं जगत् हूं; और मैंहीं आकाश, देश, काल, क्रिया, सब हूं; यह निश्चय मुझको दृढ़ है। घट भी चेतनहै, पट भी चेतन है, रथ भी चेतन है और यह सब चेतन तत्त्व है; यह निश्चय मुझको दृढ़ है इस कारण अदुःख जीता हूं। हे मुनि शार्दूल! यह सब जो मैंने तुमसे कहा भुशुण्डिनाम काक ने जो त्रिलोकी-रूपी कमल का भँवरा है मुझसे कहा था॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्ड्युपाख्यानेचिरंजीविहेतुकथनंनाम द्वाविंशतितमस्सर्गः॥ २२॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! जैसा मैंहूं तैसा तुम्हारी आज्ञा के सिद्धि अर्थ कहा है नहीं तो गुरु के आगे कहना भी ढिठाई है। तुम ज्ञान के पारगामी हो। फिर मैं बोला, हे भगवन्! आश्चर्य है और आश्चर्य से भी आश्चर्य है कि, तुमने श्रवण का भूषण कहा और आत्म उदितरूप वचन जो तुमने कहे हैं वे परम विस्मय के कारण हैं। हे भगवन्! तुम धन्य हो। तुम महात्मा पुरुषहो और चिरंजीवियों के मध्य तुम मुझको साक्षात् दूसरे ब्रह्मा भासते हो। आज हम भी धन्य हैं कि तुम्हारे ऐसे महापुरुष के मुख से इस प्रकार आत्मउदित सुना है जैसे मैंने पूछा तैसेही तुमने कहा। हे साधो! मैंने सब भूमिलोक देखे हैं और दिशागण, आकाश और पाताललोक भी देखे हैं; त्रिलोकी में तुमसा कोई बिरलाही है। जैसे बांस बहुत हैं पर मोतीवाला बिरलाही होताहै तैसेही तुम सारिखे बिरले हैं। हे साधो! आज हम पुण्यरूप हुये हैं और आज हमारी देह पवित्र हुई जो तुम ऐसे मुक्तआत्मा का दर्शन हुआ है। हे साधो!

अब हम सप्तर्षि के मध्य जाते हैं; हमारे मध्याह्न का समय हुआ है । जब मैंने ऐसे कहा तब भुशुण्डि कल्पलता से उठ खड़ा हुआ और संकल्प के हाथ करके उसने सुवर्ण का पात्र रचकर मोती और रत्नोंसे भरा और मुझको अर्घ्यपाद्य करके पूजन किया । जैसे त्रिनेत्र सदाशिव की पूजा करते हैं तैसेही उसने चरणों से लेकर मस्तक-पर्यन्त मेरा पूजन किया और बहुत नम्र होकर प्रणाम किया। मैंने भी उसको प्रणाम किया और इस प्रकार परस्पर नमस्कार करके मैं वहां से उठ खड़ा हुआ और आ-काशमार्ग को चला । जैसे पक्षी उड़ता है तैसेही मैं उड़ा और वहभी मेरे साथ उड़ा। परस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण किये जब एकयोजनपर्यन्त चले गये तब मैंने उससे कहा; हे साधो ! तुम अब इहांसे फिरो । इस प्रकार बारम्बार कह कर मैंने उसको ठहराया और मैं चलागया । जबतक मैं उसको दृष्टि आता रहा तबतक वह देखता रहा और जब मैं न दीखा तब वह अपने स्थानमें जा बैठा । मैं सप्तर्षियों के मण्डल में जा पहुंचा और अरुन्धती से पूजित हुआ । हे रामजी ! भुशुण्डि के आश्चर्यरूप वचन मैंने तुमको सुनाये हैं । अब भी सुमेरु के शृङ्ग पर उस कल्पवृक्ष की लता में वह कल्याणरूप सम स्थित है और शान्तिरूप और मान करने के योग्य है और सदा समाधिमान् है। हे रामजी ! यह हमारा और उसका समागम सतयुग के दोसौवर्ष व्यतीत हुये हुआ था और अब सतयुग क्षीण हो त्रेतायुग बर्तताहै उसमें तुम उपजे हो । हे रामजी ! अभी आठवर्ष बीते हैं कि, हमारा उसका फिर मिलाप हुआ था तो वह उसी वृक्षलता पर है । हे रामजी ! यह इतिहास जो मैंने तुम से कहाहै सो परम उत्तमहै। जब इसको विचारोगे तब संसारभ्रम निवृत्त होजावेगा । मुनिवशिष्ठ और भुशुण्डि की कथाको जो निर्मलबुद्धि से विचारेगा वह भवरूप संसारके भयसे तरेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्ड्युपाख्यानसमाप्तिर्नाम त्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥ २३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे अनघ ! यह जो मैंने तुमसे भुशुण्डिका वृत्तान्त कहा इसे बोध करके भुशुण्डि महासंकट से तरा है, इसदशा को तुमभी आश्रय करके प्राण की युक्ति कर अभ्यास करो तब तुमभी भुशुण्डि की नाईं भवसमुद्र के पार होगे। जैसे भुशुण्डि ने ज्ञान योग से पानेके योग्य पद पाया है तैसेही तुमभी पावो और जैसे प्राण अपान के अभ्यास से भुशुण्डि परमतत्त्व को प्राप्त हुआ है तैसेही तुमभी अभ्यास करके प्राप्त हो । विज्ञानदृष्टि जो तुमने सुनीहै उसकी ओर चित्त को लगाकर आत्मपद को पावो फिर जैसे इच्छा हो तैसे करो। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! पृथ्वी में आपके ज्ञानरूपी सूर्यकी किरणों के प्रकाश से मेरे हृदय से अज्ञानरूपी तम दूर होगया है और अब प्रबुद्ध होकर अपने आनन्दरूप में स्थितहुआहूं और जाननेयोग्य पदको जानताहूं—

मानो दूसरा वशिष्ठ हुआ हूं। हे भगवन्! यह जो भुशुण्डिका चरित्र आपने परमार्थ-बोध के निमित्त कहाहै उस में रक्त, मांस और अस्थिका शरीररूपी गृह किसने रचाहै; कहांसे उपजा है; कैसे स्थित हुआ है और कौन इसमें स्थित है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमार्थतत्त्वके बोध और दुःखकेनिवृत्त अर्थ ये मेरेवचनहैं सो सुनो। अस्थि इस शरीररूपी गृह का थम्भाहै और इसके नव द्वारेहैं; रक्त मांससे जो यह लेपन किया है सो किसीने बनाया नहीं आभासमात्रहै और मिथ्या भ्रमसे भासताहै। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है तैसेही असत्यरूप शरीर भी भ्रम से भासता है। हे रामजी! जबतक अज्ञान है तबतक देह सत्य भासता है और जब ज्ञान होताहै तब देह असत्यरूप भासता है—जैसे स्वप्नकाल में स्वप्ने के पदार्थ सत्य भासतेहैं और जाग्रत् काल में स्वप्ना असत्य भासता है; तैसेही अज्ञानकाल में अज्ञान के देहादिक पदार्थ सत्य भासते हैं और ज्ञानकाल में असत्य होजाते हैं। जैसे जल में बुद्बुदा जलके अज्ञानसे सत्य भासताहै और जल के जानेसे असत्य भासता है; और सूर्यकी किरणों में मरुस्थल की नदी भासती है; तैसेही आत्मा में देह भासता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् भासता है वह सब आभासमात्र अज्ञान से भासता है और 'अहं' 'त्वं' आदिक कलपना सब मननमात्र मन में फुरती हैं। तुम जो कहतेहो कि, देह अस्थि और मांस का गृह रचा है; सो अस्थिमांस से नहीं रचा संकल्पमात्र है, संकल्प से भासता है और संकल्प के अभाव हुये देह नहीं पायाजाता। हे रामजी! स्वप्न में जो देह धरकर दिशा, तट, पर्वत इत्यादि तुम देखते फिरते हो जाग्रत् में तुम्हारा वह देह कहां जाताहै? जो देह सत्य होता तो जाग्रत् में भी रहता और मनोराजसे स्वर्ग को जाता है तथा सुमेरु और भूमिलोक में फिरता है। हे रामजी! इन स्थानों में जैसे मन का फुरना देह होकर भासता है सो असत्यरूप है तैसेही यह शरीर मनके फुरनेमात्र है इससे असत्य जानो। यह मेरा धन है, यह मेरा देह है, यह मेरा देश है इत्यादिक कलपना मनकी रची हुई है—सबका बीज, चित्त ही है। हे रामजी! जगत् को दीर्घकाल का स्वप्ना जानो वा दीर्घ चित्त का भ्रम जानो अथवा दीर्घमनोराज जानो; वास्तव में जगत् कुछ नहीं। जब अपने वास्तव परमात्मस्वरूप को अभ्यास करके जानता है तब जगत् असत्यरूप भासता है। हे रामजी! मैंने पूर्वभी तुमको ब्रह्माजी के वचनों में कहाहै कि, सब जगत् मन का रचा हुआ है—इससे संकलपमात्र है। चिरकाल का जो अभ्यास होरहा है इससे सत् भासता है; जब दृढ़ पुरुष प्रयत्न से आत्मअभ्यास हो तब असत्य भासेगा। हे रामजी! जो भावना हृदय में दृढ़ हो है उसका अभाव भी सुगम नहीं होता पर जब उसके विपर्यय भावना का अभ्यास करिये तब उसका अभाव होजाता है। यह मैं हूं, यह और है इत्यादिक कलना

हृदय में दृढ़ होरही है जब इसके विपर्यय आत्मभावना हो तब वह मिटे और सर्व आत्माही भासे। हे रामजी! जिसकी तीव्र भावना होती है वही रूपफल उसका होजाता है—जैसे कामी पुरुष को सुन्दर स्त्री की कामना रहती है तैसेही जीव को जब आत्मपद की चिन्ता रहे तब वही रूप होताहै। जैसे कीटभृङ्गी होजाता है और जैसे दिन में व्यापार का अभ्यास होता है तो रात्रि को स्वप्न में भी वही देखता है; तैसेही जिसका जीवको दृढ़ अभ्यास होताहै वही अनुभव होताहै। जैसे सूर्य आकाशमें तपता है और मरुस्थल में जल होकर भासता है पर वहां जल का अभाव है; तैसेही भाव से रहित पृथ्वी आदिक पदार्थ भ्रम से भावरूप भासते हैं। जैसे नेत्र दुखने से आकाश में तरुवरे मोर पुच्छवत् भासते हैं तैसेही अज्ञान से जगज्जाल भासते हैं। हे रामजी! यह जगत् सब आभासरूप है स्वरूप के प्रमाद से भय और दुःख को प्राप्त होता है पर जब स्वरूप को जानता है तब भ्रम, भय और दुःख से रहित होताहै। जैसे स्वप्नपुर में चित्त के भ्रम से सिंहों से भय पाता है और जब जाग्रत् स्वरूप में चित्त आता है तब सिंह का भय निवृत्त होजाता है, तैसेही आत्मज्ञान से निर्भय होता है। जब वैराग अभ्यास करके जीव निर्मल आत्मपद को प्राप्त होताहै तब फिर क्षोभ को नहीं प्राप्त होता और रागद्वेषरूपी मल उसको नहीं स्पर्श करता। जैसे तांबा जब पारस के स्पर्श से सुवर्ण होता है तब वह तांबेभाव को नहीं ग्रहण करता, तैसेही जीव फिर मलिन नहीं होता। अहं, त्वं आदिक जो कुछ जगत् भासताहै वह सब आभासमात्र ही है। हे रामजी! प्रथम सत्य असत्य को जानकर असत्य का निरादरकरो और सत्य का अभ्यास करो तब चित्त सर्व कलना से रहित होकर शान्तपद को प्राप्त होता है। जो तत्त्वज्ञान से सम्यक्दर्शी हुआहै उसको जगत् के इष्ट पदार्थ पाये से हर्ष नहीं होता और अनिष्ट के पाये से शोक नहीं होता; वह न किसीकी स्तुति करता है, न किसीकी निन्दा करता है और हृदय में शीतल और शान्तरूप होजाता। जब कोई बान्धव मृतक हो तब उसमें तपायमान क्यों होता है वह तो अवश्यही मरता। जब अपनी मृत्यु आवे तब अवश्य शरीर छूटताहै वृथा क्यों तपायमान होताहै। जब सम्पदा प्राप्त हो तो उससे हर्षवान् नहीं होता क्योंकि; जो कुछ भोगना था भोगा हर्ष किस से हुआ? दुःख आन प्राप्त हो तब शोक क्यों करना शरीर का व्यवहार सुख दुःख आता जाता है और अमिट है और जब अपना किया कर्म उदय होता है तब भी शोक क्यों करता है? हे रामजी! जो सत्य है वह असत्य नहीं और जो असत्य है सो सत्य नहीं फिर जगत् द्वेष किस निमित्त करना? जिसको ऐसा निश्चय हुआ है कि, न मैं हूं, न जगतहै और न पृथ्वी है तोवह शोक किसका करे और जब देह अन्य है और मैं चेतन हूं तो चेतन का तो नाश नहीं होता तब शोक किसका करना?

हे रामजी! दुःख तो किसी प्रकार नहीं है पर जबतक विचार नहीं तबतक दुःख होता है और विचार किये से दुःख कोई नहीं रहता। सम्यक्दर्शी जो मुनीश्वर हैं वह सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानता है इस कारण दुःख नहीं पाता और जो असम्यक्दर्शी है वह अज्ञान से दुःख पाता है। जैसे दिन के अन्त में मण्डल शीतल होजाता है तैसेही सम्यक्दर्शी का हृदय शीतल होताहै। जिसको कर्तव्य में कर्तृत्व का अभिमान नहीं है वही सम्यक्दर्शी है। हे रामजी! जितने जगत् के पदार्थ हैं उनको हृदय से आभासमात्र जानो और बाहर जैसे आचार हो तैसे करो अथवा उसका भी त्याग करो और निराभास होकर स्थित हो। मैं चिदाकाश, नित्य, सर्वज्ञ और सबसे रहित हूं;ऐसा अभ्यास करके एकान्त और निर्मल आपको देखोगे। अथवा ऐसीधारणा करो कि, न मैं हूं, न यह भोग है, न अर्थरूप जगत् आडम्बर है; अथवा ऐसे धारो कि; मैं हीं नित्य शुद्ध, चिदात्मा और आकाशरूप सब कुछ हूं, मेरे से कुछ भिन्न नहीं और मैं अपने आप में स्थित हूं। इन दोनों पक्षों में जो इच्छा हो सो ग्रहण करो तो तुमको सिद्धता का कारण होगा। जगत् को आभासमात्र जानो परन्तु यह भी कलङ्क-रूप है इस चिन्तना को भी त्यागकर निराभास हो। तुम चिदाकाश, नित्य, सर्व-व्यापी और सबसे रहित हो; आभास को त्यागकर निर्मल अद्वैत हो रहो अथवा विधि निषेध दोनों दृष्टों को आश्रय करो। हे रामजी! क्रिया को करो परन्तु राग द्वेष से रहित हो। जब राग द्वेष से रहित होगे तब उत्तम पदार्थ ब्रह्मानन्द को प्राप्त होगे और जो सर्व का अधिष्ठान है उसको पावोगे। हे रामजी! जिसका हृदय रागद्वेषरूपी अग्नि से जलता है उसको सन्तोष, वैराग आदिक गुण नहीं प्राप्त होते। जैसे दग्ध भूतल के वन में हरिण प्रवेश नहीं करते तैसेही रागद्वेषादिकवाले हृदय में सन्तोषा-दिक नहीं प्रवेश करते। हे रामजी! हृदयरूपी कल्पतरु है। ऐसा वृक्ष जो रागद्वेषा-दिक सर्पों से रहित है उससे कौन पदार्थ है जो प्राप्त न हो—शुद्धहृदय से सब कुछ प्राप्त होता है। हे रामजी! जो बुद्धिमान् भी है और शास्त्र का ज्ञाता भी है परन्तु रागद्वेष संयुक्त है वह सियार की नाईं नीच है और उसको धिक्कार है। जिन पदार्थों के पानेके निमित्त लोग यत्न करते हैं वे तो आतेजाते हैं। धनको इकट्ठा कोई करता है और कोई लेजाता है तब रागद्वेष किसका करिये? जो कुछ प्रारब्ध है सो अवश्य होताहै, धनका व्यर्थ यत्न क्या करिये? बान्धव और वस्त्र आते हैं और फिर जातेभी हैं। जैसे समुद्र में झप का आश्रय बुद्धिमान् नहीं लेते तैसेही जगत् के पदार्थों का आश्रय ज्ञानवान् नहीं लेते। भाव-अभावरूप परमेश्वर की माया है और संसार की रचना स्वप्न की नाईं है: उन में जो आसक्त होते हैं उनको वे सर्पिणीवत् डसते हैं धन, बान्धव और जगत् वास्तवमें मिथ्या हीहैं अज्ञान से सत्य भासते हैं। हे रामजी! जो आदि न हो

और अन्तभी न रहे पर मध्य में भासे उसको भी असत्य जानिये । जैसे आकाश में फूल असत्य हैं तैसेही संसार रचना असत्य है और जैसे संकल्प रचना असत्य है; जैसे गन्धर्बनगर सुन्दर भासता है पर नाश होजाता है और जैसे स्वप्न दीर्घ-काल का भासता है पर भ्रमरूप है; तैसेही यह जगत् असत्यरूप और भ्रममात्र है केवल संकल्परूप अभ्यास के वश से दृढ़ता को प्राप्त हुआ है। दीवार जो आकारवान् भासती है सो आकार से रहित प्रकाशरूप है और आत्मपद सुषुप्ति की नाईं अद्वैत-रूप है। उस सुषुप्तिरूपपद से जब गिरता है तब दीर्घ स्वप्नको देखता है। हे रामजी! अज्ञानरूपी निद्रा में जो अपने स्वभाव से गिरा है वह संसाररूपी स्वप्नभ्रम को देखता है। जब अज्ञानरूपी निद्रा का अभाव हो तब अपने आत्मराज और निर्विकल्प मुदित आत्मपद को प्राप्त होता है। जैसे सूर्य को देखकर कमल प्रफुल्लित होते हैं तैसेही ज्ञान से शुभगुण फूलते हैं। आत्मरूपी सूर्य सबदुःख से रहित है । जो पुरुष निद्रा में होता है वह सूक्ष्म वचनों से नहीं जागता पर बड़ेशब्द करने और जल डालने से जागता है सो मैंने तुम पर मेघ की नाईं गर्जकर वचनरूपी जल की वर्षा की है और ज्ञानरूपी शीतलता सहित ये वचन हैं उनसे अब तुम ज्ञानरूपी जाग्रत् बोध को प्राप्त हुये। ऐसे ज्ञानरूपी सूर्य से जगत् को भ्रमरूप देखोगे। हे रामजी! तुमको न जन्म है, न मृत्यु है, न कोई दुःख है, न भ्रम है, सर्वसंकल्पों से रहित आत्मपुरुष अपने आपमें स्थित हो और तुम्हारी वृत्ति समशान्त और सुषुप्ति की नाईं है और अति विस्तृत, सम और शुद्ध अपने स्वरूप में स्थित हो ॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनामचतुर्विंशतितमस्सर्गः॥ २४॥

इतना कहकर, बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने वचन कहे तब रामजी सम, शान्त और चेतनतत्त्व में विश्राम पाकर परमानन्द को प्राप्त हुये और समस्त सभा जो बैठी थी वह भी वशिष्ठजी के वचन सुनकर सम और आत्मसमाधि में स्थित होरही और बोलने का व्यवहार शान्त होगया। पिंजरे में जो पक्षी बोलते थे वे भी शान्त होगये, वन के जो वानर थे वे भी वचन सुनकर स्थित हो रहे और सर्व ओर से शान्ति होगई। जैसे अर्धरात्रि के समय भूमि शान्तरूप होजाती है तैसेही सभा के लोग तूष्णी होरहे और वचनों को विचारनेलगे कि, क्या उपदेश मुनीश्वर ने किया है । एकघड़ीपर्यन्त शान्ति रही उसके अनन्तर फिर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम सम्यक् प्रबुद्ध हुये हो और अपने आपमें स्थित हुये हो जो कुछ जाना है उसके अभ्यास का त्याग न करना इसी में दृढ़ रहना। हे रामजी! संसाररूपी चक्र का नाभि स्थान चित्त है । उस चित्तनाभि के स्थिर हुये संसारचक्र भी स्थिर होजाता है । इस संसाररूपी चक्र का बड़ा तीक्ष्ण वेग है; यद्यपि रोकते हैं

नाभी फुरने लगता है; इससे दृढ़ प्रयत्न बल करके इसको रोकिये । सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के वचन युक्त बुद्धि से रुकता । हे रामजी ! अज्ञान से जो देवकल्पा है उसका त्यागकर अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो; इससे परमशान्तपद प्राप्त होता है । ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त जो सब अज्ञानरूपी संसारचक्र है सो असत्यरूप है और भ्रम से सत्य की नाईं भासता है इसको त्यागकरो । हे रामजी ! असत्यरूप पदार्थों में जो रागद्वेष करते हैं वे मूर्ख हैं उनसे तो चित्र का पुरुष भी श्रेष्ठ है । जब इष्टविषय प्राप्त होता है तब वे हर्षसे प्रफुल्लित होते और अनिष्ट की प्राप्तिसे द्वेष करते हैं पर चित्र के पुरुष को राग द्वेष किसी में नहीं होता इसकारण मैं कहता हूं कि, चित्र का पुरुषभी इनसे श्रेष्ठ है । ये आधि व्याधि से जलते हैं पर वह सदा ज्यों का त्यों है । चित्र का पुरुष तब नाश हो जब आधारभूत को नाश करिये; अधिष्ठान के नाश विना उसका नाश नहीं होता और मनुष्य अविनाश के आधार है उसका नाश नहीं होता पर मूर्खता से आपको नाश होता मानते हैं और राग द्वेष से संयुक्त है इस से चित्र के पुरुष से भी तुच्छ है । मनोराज संकल्परूप देहभी इस देह से श्रेष्ठ है क्योंकि, जो कुछ दुःख इसको होते हैं वे बड़े कालपर्यन्त रहते हैं पर मनोराज का दुःख और संकल्प के क्षय से अभाव होजाता है इससे थोड़ा है । संकल्पदेह से भी स्थूलदेह तुच्छ है । हे रामजी ! जो थोड़े काल से देह हुई है उस में दुःख भी थोड़ा है और जो दीर्घ संकल्परूपी देह है वह दीर्घ दुःख को ग्रहण करती है इससे महानीच है । हे रामजी ! यह देहभी संकल्पमात्र है न सत्य है, न असत्य है; उसके भोग के निमित्त मूर्ख यत्न करते हैं और क्लेश पाते हैं । देह अभिमान करके इसके सुख से वे सुखी होते हैं और दुःख से दुःखी होते हैं और इसके नष्ट हुये आपको नष्ट हुआ मानते हैं । जैसे मनोराज के नाश हुये पुरुष और दूसरे चन्द्रमा के नाश हुये चन्द्रमा का नाश नहीं होता तैसेही इस देह के नाश हुये देही पुरुष का नाश नहीं होता जैसे संकल्प पुरुष के नाश हुये पुरुष का नाश नहीं होता और जैसे स्वप्नभ्रम के नाश हुये पुरुष का नाश नहीं होता, तैसेही देह के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे घन धूप के कारण रेणु में जल भासता है और भली प्रकार जो देखिये तब जल का अभाव होजाता है परन्तु देखनेवाले का अभाव नहीं होता; तैसेही संकल्प से रचा विनाशरूप जो देहहै उसके नाश हुये तुम्हारा नाश तो नहीं होता। हे रामजी ! दीर्घ-काल का रचा जो स्वप्नमय देह है उसके दुःख और नाश से आत्मा को दुःख और नाश नहीं होता । चेतन आत्मसत्ता नाश नहीं होती और स्वरूप से चलायमान भी नहीं होती; न विकार को प्राप्त होती है; वह तो सर्वदा शुद्ध और अच्युतरूप अपने आप में स्थित है और देह के नाशहुये उसका नाश नहीं होता । अज्ञान के दृढ़

अभ्यास से देह के धर्म अपने में भासने लगे हैं; जब आत्मा का दृढ़ अभ्यास हो तो देहाभिमान और देह के धर्मों का अभाव होजावे। जैसे कोई चक्रपर चढ़कर भ्रमता है तो उतरने पर कुछ काल भ्रमता भासता है पर जब चिरकाल व्यतीत होताहै तब स्थित होजाता है; इसी प्रकार देहरूपी चक्र को प्राप्त हुआ और अज्ञान से भ्रमा हुआ आपको भ्रमता देखता है और जब अज्ञान का वेग निवृत्त होता है तब भी कोई काल देहभ्रम भासता है जिससे जानता है कि, मेरा नाश होताहै, मुझको दुःख होता है इत्यादिक। यह कल्पना अज्ञान से भासती है पर जब उस भ्रमदृष्टि को धैर्य से निवृत्त करते हैं तब अभाव होजाती है। हे रामजी! जैसे भ्रम से रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में देह भासती है सो असत्य और जड़ है; न कर्म करती है और न मुक्तहोनेकी इच्छा करती है। देवपरमात्मा भी कुछ नहीं करता; वह सदा शुद्ध, द्रष्टा और प्रकाशक है। जैसे निर्वात दीप अपने आपमें स्थित होता है तैसेही तुमभी शुद्धस्वरूप अपने आपमें स्थित हो। जैसे सूर्य आकाश में स्थित होता है पर सर्व जगत् को प्रकाश करता है और उसके आश्रय लोग चेष्टा करते हैं परन्तु सूर्य कुछ नहीं करता वह केवल सबका साक्षीभूत है तैसेही आत्मा के आश्रय देहादिक की चेष्टा होती है परन्तु आत्मा साक्षीरूप है और पाप पुण्य से रहित है। हे रामजी! इसदेहरूपी शून्यगृह में अहंकाररूपी पिशाच कल्पित है जैसे बालक परछाहीं में वैताल कल्पके भय पाता है तैसेही अहंकाररूपी पिशाच कल्पकर जीव भय पाता है। वह अहंकाररूपी पिशाच महानीच है और सर्व सन्तजनों से निन्द्य है। जब अहंकाररूपी वैताल निकले तब आनन्द हो। देहरूपी शून्य गृह में इसका निवास है; जो पुरुष इसका टहलुआ होरहा है उसको यह नरक में लेजाता है इससे तुम इसके टहलुआ न होना। जब इसके नाश का उपाय करोगे तब आनन्द पावोगे। हे रामजी! यह चित्तरूपी उन्मत्त वैताल जिसको स्पर्श करता है उसको अशुद्ध करता है अर्थात् उसका धैर्य और निश्चय विपर्यय करके उसे दुःख देताहै और निज स्वरूप से गिरादेता है। जो बड़े २ साधु महन्त हैं वे भी इसके भयसे समाधि में स्थित होतेहैं कि, किसी प्रकार अहंकार का अभाव हो। हे रामजी! अहंकाररूपी पिशाच जिसको स्पर्श करता है उसको आपसा करलेता है। यह जैसे आप तुच्छ है तैसेही और को भी तुच्छ करताहै। जहां सत्संग सत्शास्त्र का विचार और आत्मज्ञान का निवास नहीं होता उस शून्य और उजाड़रूपी देह मन्दिर में यह रहता है और जो कोई ऐसे स्थान में प्रवेश करता है उसमें प्रवेश करजाता है। हे रामजी! जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है उसका धनसे कल्याण नहीं होता और न मित्र बान्धव से कल्याण होताहै। अहंकार पिशाच से मिलाहुआ जो कुछ क्रियाकर्म वह करताहै सो अपने नाश के

निमित्त करता है और विष की बेलिको उपजाता और बढ़ाता है। हे रामजी! जो पुरुष विवेक और धैर्य से रहित है उसको अहंकाररूपी पिशाच शीघ्रही खाजाता है। वह सर्परूप है और जिसको स्पर्शकरता है उसको शवकर छोड़ताहै। जिसको अहंकार-रूपी पिशाच लगा है वह नरकरूपी अग्नि में काष्ठ की नाईं जलेगा। अहंकाररूपी सर्प देहरूपी वृक्ष के छिद्र में विष को धारे बैठा है; उसके निकट जो जावेगा उसको मार-डालेगा और जो अहंममभाव को प्राप्त होगा सो मृतकसमान होगा और जन्ममरण पावेगा। अहंकाररूपी पिशाच जिसको लगाहै उसे मलिनकरताहै और स्वरूपसे गिरा कर संसाररूपी गढ़े में डालता है और बड़ी आपदा को प्राप्त करता है। जितनी आपदा हैं उन्हें अहंकार प्राप्त करता है। बहुत वर्ष पर्यन्तभी उन आपदाओं का वर्णन न कर-सकेगा। हे रामजी! यह जो मलिनकल्पना उठती है कि, 'मैं हूं, 'मैं मरताहूं, 'मैं दग्ध होता हूं, 'मैं दुःखी हूं, 'मनुष्य हूं, इत्यादि सो अहंकाररूपी पिशाच की शक्ति है। आत्मस्वरूप नित्यशुद्ध, चिदाकाश, सर्वगत, सच्चिदानन्द, जो सबका अपना आपहै पर अहंकार के वशसे जीव आपको परिच्छिन्न और अलेप दुःखी मानताहै। जैसे आकाश सर्वगत और अलेपहै, तैसेही आत्मा सब में अलेप है और सबसे असम्बन्ध है पर अहंकार के सम्बन्ध से रहित है। हे रामजी! ग्रहण, त्याग, चलना, बैठना इत्या-दिक जो कुछ क्रिया है सो देहरूपी यन्त्र और वायुरूपी रस्सी से अहंकाररूपी यन्त्री कराता है और आत्मा सदा निर्लेप सबका अधिष्ठानरूप कारणकार्यभावसे रहित है। जैसे वृक्ष की ऊँचाई का कारण आकाश निर्लेप है, तैसेही आत्मा सर्वचेष्टा का कारण अधिष्ठान और निर्लेप है जैसे आकाश और पृथ्वी का सम्बन्ध नहीं तैसेही आत्मा और अहंकार का सम्बन्ध नहीं है। चित्तको जो आप जानते हैं वे महामूर्ख हैं। आत्माप्रकाशरूप, नित्य और सर्वगत विभु है; चित्त मूर्ख जड़ है और आवरण करताहै। हे रामजी! आत्मा सर्वज्ञ और चेतनरूप है; चित्त मूढ़ है और पत्थरवत् जड़ है, इसको दूर करो इसका और तुम्हारा कुछ सम्बन्ध नहीं। तुम इस मोह से तरो। देहरूपी शून्यगृह में चित्तरूपी वैताल का निवास है; जिसको वह अपने वश करता है उसको बान्धव भी नहीं छुड़ासक्ते और शास्त्र भी नहीं छुड़ासक्ते जिसका देहाभि-मान क्षीण होगया है उसको गुरु और शास्त्र भी छुड़ासक्ते जैसे अल्प कीचड़ से हरिण को निकाल लेते हैं तैसेही गुरु और शास्त्र निकाल लेते हैं। हे रामजी! जितने देह-रूपी शून्य मन्दिर हैं उन सब में अहंकाररूपी पिशाच रहता है, कोई देहरूपी गृह अहंकार पिशाच से खाली नहीं और भय से मिलाहुआ है। जैसे पिशाच अपवित्र स्थान में रहता है, पवित्र स्थान में नहीं रहता तैसेही जहां सन्तोष, विचार, अभ्यास, सत्सङ्ग से रहित देह है उस स्थान में अहंकार निवास करता है और जहां सन्तोष,

विचार, अभ्यास और सत्संग होता है तहां से मिटजाता है। जितने शरीररूपी श्मशान हैं वे चित्तरूपी वैतालसे पूर्णहैं और अपरिमित मोहरूपी वैतालके वश जगत्-रूपी महावन में मोह को प्राप्त होते हैं। जैसे बालक मोह पाता है। हे रामजी! तुम आपसे अपना उद्धार करो और सत्य विचार करके धैर्यको प्राप्त हो। इस जगत्रूपी पुरातन वनमें जीवरूपी मृग विचरते हैं और भोगरूपी तृण का आश्रय करते हैं पर वे भोगरूपी तृण देखने में तो सुन्दर भासते हैं परन्तु उनके नीचे गढ़ा है। जैसे हरि-याली और तृण से ढपाहुआ गढ़ा देख के मृग के बालक भोजन करने लगते हैं और गढ़ेमें गिरपड़ते हैं तैसेही जीवरूपी मृग भोगों को रमणीय जानकर भोगने लगते हैं और उनकी तृष्णा से नरक आदिक जन्मों में गिरते और अग्नि में जलते हैं, हे रामजी! तुम ऐसे न होना। जो कोई भोग की तृष्णा करेगा वह नरकरूपी गढ़े में गिरेगा, इससे तुम मृगमनि को त्यागकर सिंहवृत्ति को धारो। मोहरूपी हाथी को सिंह होकर अपने नखोंसे विदारण करो और भोग की तृष्णासे रहित हो। भोगकी तृष्णावाले जीव जम्बूद्वीपरूपी जङ्गलमें मृग की नाईं भटकते हैं—उन्हों की नाईं तुम न विचरना। हे रामजी! स्त्री जो रमणीय भासती हैं उनका स्पर्श अल्पकाल ही शीतल और सुखदायक भासता है परन्तु कीचड़ की नाईं है। जैसे कीचड़ का लेप भी शीतल भासताहै परन्तु तुच्छ है। जैसे हाथी दलदल में फँसा हुआ निकल नहीं सक्ता, तैसेही यह भोगरूपी दलदल में फँसाहुआ नहीं निकलसक्ता। इसमें तुम सन्त की वृत्ति को ग्रहण करो। ग्रहण करना किसको कहते हैं और त्याग किसका नाम है ऐसे विचार से असतवृत्ति को त्यागकरो और आत्मतत्त्वका आश्रय करो। हे रामजी! यह अपवित्र देह अस्थि, मांस, रुधिरसे पूर्णहै और तुच्छ है और इसका दुष्ट आचार है। देह के निमित्त भोग की इच्छा करनेसे कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता। देह औरने रची है, चेष्टा और से करती है; औरने इस में प्रवेश कियाहै; दुःख को और ग्रहण करता है जो दुःख का भागी होता है। संकल्पने देह रची है, प्राण से चेष्टा करता है, अहंकार पिशाच ने इसमें प्रवेश किया है और गर्जता है; मन की वृत्ति सुख दुःख को ग्रहण करती है और जीव दुःखी होता है। इससे आश्चर्य है। हे रामजी! पर-मार्थसत्ता एक है और सर्व समान है। रस में भिन्न सत्ता नहीं। जैसे पत्थर घन जड़ होताहै और उसमें और कुछ नहीं फुरता तैसेही सत्तामात्र से भिन्न द्वैत सत्ता किसी पदार्थ की नहीं। जैसे पत्थर घनरूपहै तैसेही परमात्मा घनरूप है और जड़ चेतन भिन्न कोई नहीं यह मिथ्या संकल्प की रचना है। जैसे बालक को परछाहीं में वैताल भासता है तैसेही सब कल्पना मन की है जैसे एक पौंड़े के रससे गुड़, शक्कर इत्यादि होती है तैसेही एक परमोत्तम सत्तासमान सर्व है उसमें जड़ चेतन की कल्पना मिथ्या

है। जबतक सम्यक्दृष्टि नहीं प्राप्त हुई तबतक जड़ चेतन की दृष्टि होतीहै और जब यथार्थदृष्टि प्राप्त होती है तब भेदकल्पना सब मिटजाती है। जैसे सीपी में रूपा भासता है सो न सत्य होताहै और न असत्य होता है, तैसेही आत्मा में जड़, चेतन, सत्य, असत्य विलक्षण कल्पना है। हे रामजी! जो सत्य है सो असत्य नहीं होता और जो असत्य है सो सत्य नहीं होता। आत्मा सदा सत्यरूप अपने आप में स्थित है और उसमें द्वैत और एक का अभाव है। जैसे पत्थर में अन्य सत्ता का अभाव है तैसेही आत्मा में द्वैतसत्ता का अभाव है। नानारूप भासता है तौ भी द्वैत कुछ नहीं सदा अनुभवरूप है और उसमें विभाग कल्पना कुछ नहीं—सदा अद्वैतरूप है भेदकल्पना चित्त से भासती है; जब चित्त का अभाव होता है तब जड़ चेतन की कल्पना मिटजाती है जैसे बन्ध्याके पुत्र और आकाश में वृक्ष का अभाव है तैसेही आत्मा में कल्पना का अभाव है। हे रामजी! यह चेतनहै, 'यह जड़ है, 'यह उपजता है, यह मिटजाता है इत्यादिक कल्पना सब मिथ्या हैं। जैसे रस्सी में सर्प मिथ्या है तैसेही केवल निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मा में अल्पना मिथ्या है गुरु और शास्त्र भी जो आत्मा को चेतन कहते हैं और अनात्मा को जड़ कहते हैं वहभी बोध के निमित्त कहते हैं और दृष्टान्त युक्त से दृश्य को आत्मस्वरूप में स्थिति करते हैं। जब स्वरूप में दृढ़ स्थिति होगी तब जड़ चेतन की भेद कल्पना जाती रहेगी केवल अचैत्य चिन्मात्र सत्त भासेगी जो तत्त्व है। इस प्रकार गुरु जड़ चेतन के विभाग का उपदेश करते हैं तौभी मूर्ख नहीं ग्रहण करसक्ते तो जब प्रथम हीं अचैत्य–चिन्मात्र–अवाच्य-पद का उपदेश करे तब कैसे ग्रहणकरे। हे रामजी! और आश्चर्य देखो कि, चित्त और है; इन्द्रिय और है, देह और है, देह का कर्ता कोई दृष्टि नहीं आता और अहंकार मे वेष्टित की है। यह जीव ऐसा मूर्ख है कि, देह को अपना आप जानता है और दुःख पाता है पर जो विचारवान् पुरुष आत्मपदमें स्थितहुये हैं उन महानुभावों को कोई क्रिया दुःख बन्धन नहीं करसक्ती। जैसे मन्त्र जाननेवाले को सर्प दुःख नहीं देसक्ता तैसेही ज्ञानवान् को कर्म बन्धन नहीं करते। हे रामजी! न तुम शीश हो, न नेत्र हो, न रक्त हो, न मांस हो, न अस्थि आदिक हो, न मन हो और न भूतजान हो: तुम चित्त से रहित चेतन केवल चिन्मात्र साक्षीरूप हो इसी लिये शरीरसे ममता त्यागकर नित्यशुद्ध और सर्वगत आत्मस्वरूप में स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदेहसत्ताविचारो नामपञ्चविंशतितमस्सर्गः॥ २५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी दृष्टि का ऐसा आश्रय करो और भेदकष्ट दृष्टि का त्याग और नाशकरो। जब कष्टदृष्टि नष्ट होगी तब ऐसा आत्मानन्द प्रकट होगा

जिस आनन्द के पायेसे अष्टसिद्धि का ऐश्वर्य भी अनिष्ट जानकर त्यागोगे। अब और दृष्टि सुनो जो महामोह का नाश करती है और जो आत्मपद पाना कठिन है उसे सुख से प्राप्त करती है जिसका नाश कदाचित् नहीं होता। यह दृष्टि दुःख से रहित आनन्दरूप शिवजी से मैंने सुनी है जो पूर्वकाल में कैलासकी कन्दरा में संसार-दुःख की शान्ति के लिये अर्धचन्द्रधार सदाशिव ने मुझसे कही थी। हे रामजी! महाचन्द्रमा की नाईं शीतल और प्रकाशमान हिमालय पर्वत का एकशिखर कैलास-पर्वत है जहां गौरी के रमणीय स्थान और मन्दिर हैं और गङ्गा का प्रवाह झरनों से चलता है, पक्षी शब्द करते और मन्द २ सुखदायक पवन चलता है। कुबेर के मोर वहां बिचरते हैं, कल्पवृक्ष लगे हुये हैं और महाउज्ज्वल, शीतल, सुन्दर कन्दरा पर मन्दार और तमाल वृक्ष लगे हुयेहैं जिनमें ऐसे फूल लगे हैं मानों श्वेत मेघ हैं। वहां गन्धर्व और किन्नर आते और गाते हैं और देवताओं के रमणीय सुन्दर स्थान हैं। उस पर्वत पर सदाशिव त्रिनेत्र हाथ में त्रिशूल लिये और गणों से वेष्टित अर्धाङ्ग में भगवती को लिये विराजते हैं। ऐसे सर्व लोकों के कारण ईश्वर जिन्हों ने कामदेव का गर्व नाश किया और षट्मुख सहित स्वामिकार्तिक जिनके पास बैठे हैं और महाभयानक शून्य श्मशानों में जिनका निवास है उस देव की मैंने पूजा की और महापुण्यवान् एककुटी बनाकर एक कमण्डलु और फूल और माला पूजन के निमित्त रक्खे यथाशास्त्र पुण्यक्रिया से उसमें तप करनेलगा। जल पान करूं, फल भोजन करूं, विद्यार्थी जो साथ थे उनको पढ़ाऊं और शास्त्र का अर्थ विचारूं। ब्रह्मविद्या के पुस्तक का समूह आगे था और मृग और उनके बालक बिचरते थे इस प्रकार वेदका पढ़ना, ब्रह्मविद्याको विचारना और शास्त्र अनुसार तप करना इन गुणोंसे कैलास वन कुञ्जमें हम विश्राम करते थे। निदान श्रावण बदी अष्टमी की अर्धरात्रि से जब मैं समाधि से उतरा तो क्या देखताहूं कि, दशोदिशा काष्ठवत् मौन और शान्तरूह हैं; महातम घिरा है और मन्द मन्द पवन चलता है और उसके कनके गिरते हैं—मानो पवन हँसी करता है। उसीसमय महाशीतल अमृतरूपी किरणों से चन्द्रमा प्रकाशित हो ओषधियों को रस से पुष्ट करने लगा, चन्द्रमुखी कमल खिल आये; चकोर अमृत की किरणों को पानकर मानो चन्द्रमा-रूप होगये; प्रातःकाल के तारों की नाईं मणी ऊपर आन पड़नेलगीं और सप्तर्षि शिर पर स्थित हुये—मानो मेरे तप को देखने आये हैं। सप्तर्षियों में पिछले जो तीन तारे हैं उनके मध्य में मेरा मन्दिर है वहां मैं सदा विराजता हूं। चन्द्रमा से सब स्थान शीतल होगये और पवन से फूल गिरने लगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठआश्रमवर्णनंनामषड्विंशतितमस्सर्गः २६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तब मुझको तेजका प्रकाश दृष्टि आनेलगा। जैसे मन्दराचल पर्वत के पायेसे क्षीरसमुद्र उछल आताहै। मानो हिमालय पर्वत मूर्ति धरकर स्थित है। मानो माखन का पहाड़ पिण्ड स्थित हुआहै व सब शंखों की स्पष्टता स्थित हुई है वा मोती का समूह इकट्ठा होकर उड़नेलगा है। महातीक्ष्ण प्रकाश दृष्टि आनेलगा मानो गङ्गाका प्रवाह उछलने लगा है। उस प्रकाश की शीतलता ने सब दिशा और तट पूर्ण करलिये और मैं देखकर आश्चर्यवान् हुआ कि, क्या अकाल ही प्रलय होने लगा। तब मैं बोधदृष्टि से मन में विचारने लगा कि, यह क्या है और देखा कि, देवताओंके गुरु ईश्वर सदाशिव चन्द्रकला को धारेहुये और गौरी भगवती का हाथ ग्रहण किये गणों के समूहसे वेष्टित चले आते हैं उनके कानों में सर्प पड़ेथे, कण्ठ में रुण्डों की माला थी शीश पर जटा थी और उनपर कदम्ब वृक्ष और तमाल वृक्ष के फूल पड़े हुयेथे। उनको प्रथम मैंने मनसे देखा; मनहीं से मन्दार वृक्ष के पुष्प लेकर अर्घ्य पाद्य किया; मनहीं से प्रणाम किया और मनहीं से प्रदक्षिणा कर अपने आसन से उठ खड़ा हुआ फिर अपने शिष्य को जगा अर्घ्यपाद्य लेकर चला और त्रिनेत्र शिवजी को पुष्पअञ्जली दे और प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया; तब चन्द्रधारी ने मुझको कृपादृष्टि से देखा और सुन्दर मधुरवाणी से कहा; हे ब्राह्मण! अर्घ्य पाद्य ले आवो; हम तेरे आश्रम में अतिथि आये हैं। हे निष्पाप! तुझको कल्याण तो है? तू मुझको महाशान्तरूप भासता है और महासुन्दर उज्ज्वल तप की लक्ष्मी से तू शोभित है। चलो हम तुम्हारे आश्रम को चलें। हे रामजी ! फूलों से आच्छादित स्थान में सदाशिव बैठेथे सो ऐसे कहकर उठ खड़े हुये और अपने गणों सहित मेरी कुटी में आये। वहां मैंने पुष्प और अर्घ्य से उनके चरणों की पूजा करके फिर हाथों की पूजा की और इसी प्रकार चरणों से लेकर शीश पर्यन्त सब अङ्गों की पूजा की। फिर गौरी भगवती का पूजन करके उनकी सखियों और शिव के गणों को पूजा। हे रामजी ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक जब मैं पार्वती परमेश्वरका पूजन कर चुका तब शशिकला को धारी शिवजी ने शीतल वाणी से मुझसे कहा कि, हे ब्राह्मण ! नानाप्रकार की चिन्तनेवाली जो चित्तवृत्ति है सो तेरे स्वरूप में विश्रान्ति को प्राप्त हुई है और तेरी संवित् आत्मपद में स्थित हुई है। तुम्हारे शिष्य को कल्याण तो है और तुम्हारे पास जो हरिण बिचरते हैं वे भी सुखसे हैं? मन्दार वृक्ष तुमको पूजा के निमित्त फूल फल भली प्रकार देते हैं और गङ्गाजी तुमको भली प्रकार स्नान कराती हैं ? देह के इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में तुम खेदवान् तो नहीं होते ? इस पर्वत में कुबेर के अनुचर यक्ष और राक्षस जो रहते हैं वे तुमको दुःख तो नहीं देते और मेरे गण जो चक्षु निशाचर हैं वे तो तुमको कष्ट नहीं देते ? हे रघुनन्दन ! इस प्रकार जब देवेश ने मुझसे

वाञ्छित प्रश्न किये तब मैंने उनसे कहा; हे कल्याणरूप, महेश्वर! जो तुमको सदा स्मरण करते हैं उनको इसलोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो पाना कठिन हो और उनको भय भी किसी का नहीं। जिनका चित्त तुम्हारे स्मरण के आनन्द में सर्व ओर से पूर्ण हुआ है वे जगत् में दीन नहीं होते। वही देश और उन्हीं जनों के चरण और वही दिशा पर्वत वन्दना करने योग्यहैं जहां एकान्त बुद्धि बैठकर तुम्हारा स्मरण होता है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण पूर्वपुण्यरूपी वृक्ष का फल है और वर्तमान् कर्मोंसे सिंचता है। तुम मन के परम मित्र हो, तुम्हरा स्मरण सर्व आपदा का हरनेवाला है और सर्व सम्पदारूपी लता को बढ़ानेवाला बसन्त ऋतु है। हे प्रभो! बड़ी महिमा और बड़ेसे बड़े कर्मों के कारण का कारण तुम्हारा स्मरण है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण विवेकरूपी समुद्र में परमार्थरूपी रत्न है, ज्ञानरूपी तम का नाशकर्ता सूर्य का समूह है, ज्ञान अमृत का कलश धैर्यरूपी चांदनी का चन्द्रमा और मोक्ष का द्वार है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण अपूर्वरूपी उत्तम दीपक है और चित्तका मण्डप जो संसार है उस सब को प्रकाशता है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण उदार चिन्तामणि की नाईं सर्व आपदा को निवृत्त करनेवाला और बड़े उत्तम पद को देनेवाला है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण एकक्षण भी चित्त में स्थित हो तो सर्व दुःख और भय नाश करता है और वरदायक है। उसके बल मैंभी तुम्हारे नाईं सुखसे बसताहूं। बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब दिन का अन्त हुआ; सब सभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानों को गई और सूर्य की किरणों के साथ फिर सब अपने २ आसनपर आ बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरुद्रवशिष्ठसमागमो
नामसप्तविंशतितमस्सर्गः ॥ २७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार कहा तब गौरी भगवती जगत् माता जैसे माता पुत्र से कहे मुझसे बोलीं; हे वशिष्ठजी! अरुन्धती जो पतिव्रताओं में मुख्य है वह कहां है? उसको लेआवो वह मेरी प्यारी सखी है उससे मैं कथा वार्ता करूंगी। हे रामजी! इस प्रकार जब मुझसे पार्वती ने कहा तब मैं शीघ्रही जाकर अरुन्धती को लेआया और वे दोनों परस्पर कथा वार्ता करनेलगीं। मैंने विचारा कि, मुझको ईश्वर मिले हैं और पूछने का अवसर भी पाया है इससे सर्व ज्ञान के समुद्र से पूछकर संदेह दूर करूं। हे रामजी! ऐसे विचार करके मैंने गौरीश से पूछा और जो कुछ चन्द्रकलाधारी ने मुझसे कहा है वह तुमसे कहताहूं। मैंने पूछा हे भगवन्! भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनोंकाल के ईश्वर और सब कारणों के कारण तुम्हारे प्रसाद से मैं कुछ पूछने को समर्थ हुआ हूं। हे महादेव! जो कुछ मैं पूछता हूं उसे प्रसन्नबुद्धि तत्त्व से उद्वेग को त्यागकर शीघ्रही कहो। हे सर्वपापों के नाश करने और

सर्व कल्याण के वृद्ध करनेवाले! देव अर्चन का विधान मुझसे कहो। ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! जो उत्तम देव अर्चन है और जिसके किये से संसारसमुद्र से तरजाइये सो सुनो। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! पुण्डरीकाक्ष जो विष्णु हैं सो देव नहीं और त्रिलोचन जो शिव हैं सो भी देव नहीं; कमल से उपजा ब्रह्मा है सोभी देव नहीं और सहस्र नेत्र इन्द्रभी देव नहीं, न देव पवन है, न सूर्य है, न अग्नि है, न चन्द्रमा है, न ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय हैं, न तुम हो, न मैं हूं, न देह है, न चित्त है और न कलनारूप है; अकृत्रिम, अनादि, अनन्त और संवित्रूप देव कहाता है। आकारादिक परिच्छिन्नरूप हैं सो वास्तव में कुछ नहीं। एक अकृत्रिम, अनादि, अनन्त, चेतनरूप देवहै सो देव शब्द से कहाता है और उसीका पूजन पूजन है। उस देव को जिससे यह सब हुआ है और जो सत्ता-शान्त-आत्मरूप है उसको सब ठौर में देखना यही उसका पूजन है पर जो उस संवित् तत्त्वों को नहीं जानते उनको आकार की अर्चना कही है। जैसे जो पुरुष योजनपर्यन्त नहीं चलसक्ता उसको एक कोस दो कोसका चलना भी भला है; तैसेही जो पुरुष अकृत्रिम देव की पूजा नहीं करसक्ता उसको आकार का पूजना भी भला है। हे ब्राह्मण! जिसकी भावना कोई करता है उसके फल को उसी अनुसार भोगता है। जो परिच्छिन्न की उपासना करता है उसको फलभी परिच्छिन्न प्राप्त होताहै और जो अकृत्रिम, आनन्द अनन्त देव की उपासना करता है उसको वही परमात्मरूपी फल प्राप्त होता है। हे साधो! अकृत्रिम फल को त्याग कर जो कृत्रिम को चाहते हैं वे ऐसेहैं जैसे कोई मन्दार वृक्ष के वन को त्याग कर कञ्जके वन को प्राप्त हो। वह देव कैसा है, उसकी पूजा क्या है और क्योंकर होती है सो सुनो। बोध, साम्य और शम ये तीन फूल हैं। बोध सम्यक्ज्ञान का नाम है; अर्थात् आत्मतत्त्व को ज्यों का त्यों जाना; साम्य सबमें पूर्ण देखने को कहते हैं और शम का अर्थ यह है कि, चित्तको निवृत्त करना और आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ न फुरना इन्हीं; तीनों फूलों से शिव चिन्मात्र शुद्ध देव की पूजा होती है और आकार अर्चन से अर्चा नहीं होती आत्मसंवित् जो चिन्मात्र है उसको त्यागकर और जड़ की जो अर्चना करते हैं वे चिर पर्यन्त क्लेश के भागी होतेहैं। हे ब्राह्मण! जो ज्ञान ज्ञेय पुरुष हैं वे आत्मध्यान से भिन्न पूजन अर्चन को बालक की क्रीड़ावत् मानते हैं। आत्मा भगवान् एक देव है सोही शिव है और परमकारणरूप है; उसका सर्वदा ही ज्ञान अर्चन से पूजन है और कोई पूजा नहीं है। चेतन, आकाश और अवयवस्वभाव एक आत्मदेव को जान पूज्यपूजक और पूजा त्रिपुटी से आत्मदेव की पूजा नहीं होती मैंने पूछा, हे भगवन्! चेतन आकाशमात्र आत्मा को जैसे जगत् और चेतन को जीव कहते हैं सो कहो। ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! चेतन आकाश प्रसिद्ध है जो सर्व प्रकृति से

रहित है और जो महाकल्प में शेष रहता है वह आपही किंचनरूप होता है उस किंचन से यह जगत् होता है। जैसे स्वप्न में चिदात्माही सर्वगत जगत्रूप होकर भासता है तैसेही जाग्रत् जगत् भी चिदाकाशरूप है। आदि सर्ग से लेकर इसकाल पर्यन्त आत्मा से भिन्न का अभाव है। जैसे स्वप्न में जो जगत् भासता है सोभी सब चिदाकाशरूप है भिन्न कल्पना कोई नहीं। चिन्मात्र ही पहाड़रूप हैं; चिन्मात्रही जगत् है; चिन्मात्र ही आकाश है; चिन्मात्र ही सब जीव हैं; और चिन्मात्र ही सब भूत हैं; चिन्मात्र से भिन्न कुछ नहीं। सृष्टि के आदि से अन्त पर्यन्त जो कुछ द्वैत कल्पना भासती है सो भ्रममात्र है। जैसे स्वप्न में कोई किसी के अङ्ग काटे सो काटता तो नहीं निद्रा द्वेष से ऐसे भासता है; तैसेही यह जाग्रत् जगत्भी भ्रममात्र है। हे मुनीश्वर! आकाश, परमाकाश और ब्रह्माकाश तीनों एकहीके पर्याय हैं—जैसे स्वप्न में संकल्प के माया से अनुभव होता है सो सब चिदाकाश है; तैसेही यह जाग्रत् जगत् चिदाकाशरूप है और जैसे स्वप्नपुर आकाश से कुछ भिन्न नहीं होता, तैसेही जाग्रत् स्वप्ना भी आत्मतत्त्व होकर भासता है आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं। हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्न में चिदाकाश ही घट पट आदिक होकर भासता है, तैसेही स्थित प्रलयादि जगत् चिदात्मा से कुछ भिन्न नहीं आत्मा ही ऐसे भासना है। जैसे शुद्ध संवित्मात्र से भिन्न स्वप्न में नगर नहीं पायाजाता तैसेही जाग्रत् में अनुभव से भिन्न कुछ नहीं पाते। हे मुनीश्वर! जगत् तीनोंकाल भाव अभावरूप पदार्थ भासता है सो सब चिदाकाशरूप है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। हे मुनीश्वर! यह देव मैंने तुमको परमार्थ से कहा है। तुम में और सर्वभूत जाति जगत् में सर्वका जो देव है सो चिदाकाश परमात्मा है—उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे संकल्पपुर में चिदाकाश ही शरीररूप हो भासता है उससे कुछ भिन्न नहीं बना तैसेही यह सब चिदाकाशरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेजगत्परमात्मरूप वर्णनन्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः॥ २८॥

ईश्वरबोले, हे ब्राह्मण! इस प्रकार यह सर्वविश्व केवल परमात्मारूप है। परमात्माकाश ब्रह्मही एक देव कहाता है; उसही का पूजन सार है और उसहीसे सब फल प्राप्त होते हैं। वह देव सर्वज्ञहै और सब उसमें स्थित हैं। वह अकृत्रिम देव अज, परमानन्द और अखण्डरूपहै; उसको साधन करके पाना चाहिये जिससे परमसुख प्राप्त होताहै। हे मुनीश्वर! तू जागा हुआहै इस कारण मैंने तुझसे इस प्रकार की देव अर्चना कही है पर जो असम्यक्दर्शी बालक हैं, जिनको निश्चयात्मक बुद्धि नहीं प्राप्त हुई उनको धूप, दीप, पुष्पकर्म आदिक अर्चना ही कही है और आकार कल्पितकरके देव की मिथ्या कल्पना की है। हे मुनीश्वर! अपने संकल्प से जो देव बनाते हैं और उसको

पुष्प, धूप, दीपादिक से पूजते हैं सो भावनामात्रहै उससे उनको संकल्परचित फलकी प्राप्ति होती है यह बालक बुद्धि की अर्चना है। तुम सारिखे की यही पूजा है जो तुमसे सर्व आत्मभावनासे कही है। हे मुनीश्वर! हमारे मत में तो और देव कोई नहीं; एक परमात्मा देवही तीनों भुवनमें है। वही देव शिव है और सर्वपद से अतीतहै। वह सर्वसंकल्पों से उल्लङ्घन वर्तता है और सर्वसंकल्पों का अधिष्ठान भी वही है। देश, काल और वस्तु के परिच्छेदसे वह रहित है और सर्व प्रकार शान्तरूप एक चिन्मात्र निर्मल स्वरूप है। वही देव कहाता है हे मुनीश्वर! जो संवित्सत्ता पञ्चभूतकलासे अतीत और सर्वभाव के भीतर स्थित है वही सबको सत्ता देनेवाला देव है और सब की सत्ता हरनेवाला भी वही है। हे ब्राह्मण! जो ब्रह्म सत्य–असत्यके मध्य और सत्य-असत्य के पर कहाता है वही देव परमात्मा है। परम स्वतः सत्तास्वभाव से जो सबको प्राप्त हुआ है और महाचित्त कहाता है सो परमात्म देवसत्ता है जैसे सब वृक्षों की लता के भीतर रस स्थित है तैसेही सत्तासमान रूप से परमचेतन आत्मा सर्व ओर स्थित है जो चेतनतत्त्व अरुन्धती का है और जो चेतनतत्त्व तुझ निष्पाप का और पार्वती का है वही चेतनतत्त्व मेरा है और वही चेतनतत्त्व त्रिलोकीमात्र का है सोई देव है और देव कोई नहीं। हाथ पांव संयुक्त जो देव कल्पते हैं वह चिन्मात्र सार नहीं; चिन्मात्रही सर्व जगत्‌का सारभूत है और वही अर्चना करने योग्य है, उससे सर्वफलों की प्राप्ति होती है वह देव कहीं दूर नहीं और किसी प्रकार किसी को प्राप्त होना भी कठिन नहीं। जो सबकी देह में स्थित और सबका आत्मा है सो दूर कैसे हो और कठिनता से कैसे प्राप्त हो। सब क्रिया वही करता है, भोजन, भरण और पोषण वही करताहै, वही श्वास लेता है और सबका ज्ञाता भी वही है जो पुर्यष्टका में प्रतिबिम्बित होकर प्रकाशता है जैसे पर्वत पर जो चर अचर की चेष्टा होती है और चलते, बैठते और स्थित होते हैं सो सबका आधारभूत पर्वत है; तैसेही मन सहित षट्इन्द्रियों की चेष्टा आत्मा के आश्रय होती है। उसीकी संज्ञा व्यवहार के निमित्त तत्त्ववेत्ताओं ने देवकल्पी है। एकदेव, चिन्मात्र, सूक्ष्म, सर्वव्यापी, निरञ्जन, आत्मा, ब्रह्म इत्यादिक नाम ज्ञानवानों ने, शास्त्रबुद्धि उपदेश व्यवहार के निमित्त रक्खे हैं। हे मुनीश्वर! जो कुछ विस्तारसहित जगत् भासताहै सबका वह प्रकाशक है और सबसे रहित है, नित्य, शुद्ध और अद्वैतरूप है और सब जगत् में अनुस्यूत है। जैसे वसन्तऋतु में नाना प्रकार के फूल और वृक्ष भासते हैं पर सबमें एकही रस व्यापा रहै जो अनेक रूप हो भासता है; तैसेही एकही आत्मसत्ता अनेकरूप होकर भासती है। हे मुनीश्वर! जो कुछ जगत् है सो सब आत्मा का चमत्कार है और आत्मतत्त्व में ही स्थित है; कहीं आकाश, कहीं जीव, कहीं चित्त और कहीं

अहंकाररूप है; कहीं दिशारूप कहीं द्रव्य, कहीं भाव विकार कहीं तम कहीं प्रकाश और कहीं सूर्य, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक स्थावर-जङ्गमरूप होकर स्थित है। जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे होते हैं तैसेही एक परमात्मा देव में त्रिलोकी है। हे मुनीश्वर! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक सब एकदेवमें बहते हैं। जैसे जल में तृण बहते हैं, तैसेही परमात्मा में जीव बहते हैं वही चेतनतत्त्व चतुर्भुज होकर दैत्यों का नाश करताहै जैसे जल मेघरूप होकर धूप को रोकता है-और वही चेतनतत्त्व त्रिनेत्र मस्तकपर चन्द्रधारे और वृषभपर आरूढ़ पार्वतीरूपी कमलिनीके मुखका भँवरा रुद्र होकर स्थित होता है। वही चेतना विष्णुरूपसत्ता है, जिसके नाभिकमल से ब्रह्मा त्रिलोकी वेदत्रयरूप कमलिनी की लता बड़ी होकर स्थित हुआ है। हे मुनीश्वर! इस प्रकार एकही चेतनतत्त्व अनेकरूप होकर स्थित हुआ है जैसे एकही रस अनेक रूप होकर स्थित होताहै और जैसे एकही सुवर्ण अनेक भूषणरूप होकर स्थितहोता है, तैसेही एकही चेतन अनेकरूप होके स्थित होताहै। इससे सर्वदेह एकचेतनतत्त्व के है। जैसे एकवृक्ष के अनेक पत्र होते हैं तैसेही एकही चेतन के सर्व देहहैं। वही चेतन मस्तक पर चूड़ामणि धारनेवाले त्रिलोकपति इन्द्र होकर स्थित हुआ है। देवतारूप होकर वही स्थित हुआ है और दैत्यरूप होकर भी वही स्थित है और मरने और उपजने का रूप भी वही धारता है। जैसे एकसमुद्र में तरङ्ग के समूह उपजते और मिट जाते हैं सो जल जलरूप ही है तैसेही उपजना और विनशना चेतन में होता है वह चेतनरूप परमात्मा एकही वस्तु है। हे मुनीश्वर! चेतनरूपी आदर्श में जगत्रूपी प्रतिबिम्ब होता है और अपनी रची हुई वस्तु को आपही ग्रहण करके अपने में धारता है। जैसे गर्भिणी स्त्री अपने गर्भ को धारती है तैसेही चेतनतत्त्व जगत् प्रतिबिम्ब को धारता है। हे मुनीश्वर! सर्वक्रिया उसी देव से सिद्ध होती हैं और सूर्यादिक प्रकाशरूपी उसीसे प्रकाशते हैं और उसीसे प्रफुल्लित होते हैं। जैसे नील और रक्त कमल सूर्यसे प्रफुल्लित होते हैं तैसेही आत्मा से अन्धकार और प्रकाश दोनों सिद्ध होतेहैं। हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी धूलि चेतनरूपी वायुसे उड़ती है। जो कुछ जगत् के आरम्भ हैं उन सबको चेतनरूपी दीपक प्रकाश करता है। जैसे जल के सींचने से बेल प्रफुल्लित होती है और फूलफल उत्पन्न करती है, तैसेही चेतनसत्ता सब पदार्थों को प्रकट करती है और सब को सत्ता देकर सिद्ध करती है। हे मुनीश्वर! चेतनही से जड़ की सिद्धता और चेतनही से जड़का अभाव होता है जैसे प्रकाश ही से अन्धकार सिद्ध होता है और प्रकाशही से अन्धकार का अभाव होता है तैसेही सबदेह चेतनसे सिद्ध होते हैं और चेतनही से देहों का अभाव होता है। चेतनभी उसीसे होता है और शिवजी भी उसीसे होते हैं। हे मुनीश्वर! ऐसा

पदार्थ कोई नहीं जो चेतन विना सिद्ध हो; जो कोई पदार्थ है सो आत्माही से सिद्ध होता है। हे मुनीश्वर! शरीररूपी सुन्दर वृक्ष बड़ी ऊंची डालों सहित है परन्तु चेतन-रूपी मञ्जरी विना नहीं शोभता। जैसे रस विना वृक्ष नहीं शोभता तैसेही चेतन विना शरीर नहीं शोभता। बढ़ना, घटना आदिक जो विकार हैं वह एक आत्मा से सिद्ध होते हैं यह जगत् सब चेतनरूप है और चेतनमात्र ही अपने आपमें स्थित है इतना कह वशिष्ठजी बोले। हे रामजी! जब इस प्रकार अमृतरूपी वाणी से त्रिनेत्र ने मुझ से कहा तब मैंने अमृतरूपी भली प्रकार वाणीसे पूछा। हे देव! जब सर्व जगत् चेतन देव व्यापकरूप स्थित है और चेतनही बड़े विस्तार को प्राप्त भया है तब यह प्रथम चेतन था अब यह चेतनतासे रहित है इस कल्पना का सब लोकोंमें प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होताहै, ईश्वर बोले। हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! यह महाप्रश्न तैंने कियाहै उसका उत्तर सुन इस शरीर में दो चेतन स्थित हैं एक चैतन्योन्मुखत्वरूप है और दूसरा निर्विकल्प आत्मा। जो चेतन चैतन्योन्मुखत्व दृश्यसे मिलाहुआ है सो जीव संकल्प के फुरने से अन्यकी नाईं होगयाहै पर वास्तव में और कुछ नहीं हुआ केवल दृश्यसंकल्प के अनुभव को ग्रहण करनेसे जीवरूप हुआ है। जैसे स्त्री अपने शीलधर्म को त्याग कर दुराचारिणी होजाती है तो उसकी शीलता जाती रहती है परन्तु स्त्री का स्वरूप नहीं जाता तैसेही चैतन्योन्मुखत्व से अनुभवरूपी जीवरूप होजाता है परन्तु चेतन स्वरूप का त्याग नहीं करता। जैसे संकल्प के वश से पुरुष एक क्षण में और रूप होजाता है तैसेही चित्त सत्ता फुरनेभाव से अन्यरूप होजाती है। हे मुनीश्वर! आदिमें चित्त स्पन्द चित्तकला में हुआ है, तब शब्द के चेतने से आकाश हुआ; फिर स्पर्श तन्मात्रा का चेतना हुआ तब वायु प्रकट हुये; इसी प्रकार पांचों तन्मात्रा के फुरनेसे पञ्चतत्त्व हुये। फिर देश आदिक का विभाग हुआ उस में जीव प्रतिबिम्बित हुआ; फिर निश्चय वृत्ति हुई उसका नाम बुद्धि हुआ; फिर अहंवृत्ति फुरी उसका नाम अहंकार हुआ; फिर संकल्प विकल्प वृत्ति फुरी उसका नाम मन हुआ; चिन्तना से चित्त हुआ; फिर संसार की भावना हुई तब संसार का अनुभव हुआ और अभ्यास के वश से संसार भासने-लगा जैसे विपर्ययभावना करके ब्राह्मण आपको चाण्डाल जाने; तैसेही भावना के विपर्यय होनेसे वही चेतन आपको जीव मानने लगा है; संकल्प की जड़ता से चेतन-रूपी जीव को ग्रहण कर संकल्प में वर्तता है और अनन्त संकल्पों से जड़ता तीव्रता को प्राप्त होकर जड़भाव को ग्रहण कर देहभावको प्राप्त होताहै। जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफ़रूप होजाता है तैसेही चैतन जब अनन्त संकल्पों से जड़ देहभाव को प्राप्त होताहै तब चित्त मन मोहित हुआ जड़ता का आश्रय करके संसार में जन्म लेता है और मोह को प्राप्त हुआ तृष्णा से पीड़ित होता और काम, क्रोध, संयुक्त भाव-

अभाव में प्राप्त होता है। एवम् अपनी अनन्तता को त्यागकर परिच्छिन्न व्यवहार में वर्तता है; दुःखदायक अग्नि से तप्त हुआ शून्यभाव को प्राप्त होता है और भेदभाव को ग्रहण करके महादीन होजाता है। हे मुनीश्वर! मोहरूपी गढ़े में जीवरूपी हाथी फँसा है और भाव अभाव से सदा डोलायमान होता है। जैसे जल में-तृण भासता है तैसेही असाररूप संसार में विकार संयुक्त रागद्वेष से जीव तपता रहता है शान्तिको कदाचित् नहीं पाता और जैसे यूथ से बिछुरा मृग कष्टवान् होता है तैसेही आवरणभाव जन्म मरण से जीव कष्टवान् होताहै और अपने संकल्प से आपही भय पाता है। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर आपही भय पाता है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही भयभीत होता है और संकट पाता है; आशारूपी फांसी से बँधा हुआ कष्ट से कष्टपाता है और कर्मों को करके तपायमान हुआ अनेक जन्म पाता है और भय में रहता है। बालक होता है तब महादीन और परवश होताहै; यौवन अवस्था में कामादिक के वश हुआ स्त्री में रत रहता है और वृद्ध अवस्था में चिन्ता से मग्न होताहै। जब मृतक होता है तब कर्मों के वश फिर जन्मता है और गर्भ में दुःख पाता है और फिर बालक यौवन वृद्ध और मृतक अवस्था को पाता है। स्वरूप से गिरा हुआ इसी प्रकार भटकता है, कदाचित् स्थिर नहीं होता। हे मुनीश्वर! एक चित्तसत्ता स्पन्दभाव से अनेक भाव को प्राप्त होती है; कहीं दुःख से रुदनकरती है, कहीं दुःख भोगती है; कहीं स्वर्ग में देवाङ्गना होतीहै, पाताल में नागिनी, असुरोंमें असुरी, राक्षसों में राक्षसी, वनकोटमें वानरी; सिंहों में सिंही; किन्नरों में किन्नरी; हरिणों में हरिणी, विद्याधरों में विद्याधरी, गन्धर्बों में गन्धर्बी, देवताओंमें देवी इत्यादिक जो रूप धारती है सो चैतन्योन्मुखत्व जीवकला है। क्षीरसमुद्र में वह विष्णुरूप होकर स्थित होती है, ब्रह्मपुरी में ब्रह्मारूप होती है, पञ्चमुख होकर रुद्र होती है और स्वर्ग में इन्द्र होती है। तीक्ष्णकला से सूर्य दिन का कर्ता होती है और क्षण, दिन, मास, वर्ष करती है। चन्द्रमा होकर वही रात्रि करती और काल होकर नक्षत्र फेरती है। कहीं प्रकाश, कहीं तम, कहीं बीज, कहीं पाषाण, कहीं मन होतीहै और कहीं नदी होकर बहती है; कहीं फूल होकर फूलती है; कहीं भँवर होकर सुगन्ध लेती है, कहीं फल होकर दिखती है, कहीं वायु होकर चलती है, कहीं अग्नि होकर जलाती है, कहीं बरफ़ होती है और कहीं आकाश होकर दिखती है। हे मुनीश्वर! इसी प्रकार सर्वगत सर्वात्मा सर्वशक्तिता से एकहीरूप चित्तशक्ति आकाश से भी निर्मल है। जैसे चेतताहै तैसेही होकर स्थित हुई है। जैसी२ भावना करतीहै शीघ्रही तैसा रूप होजाती है परन्तु स्वरूप से भिन्न नहीं होती। जैसे समुद्र में फेन तरङ्ग होकर भासता है परन्तु जल से भिन्न नहीं—जलही जल है तैसेही चित्तशक्ति अनेकरूप धारती है परन्तु चेतन

से भिन्न नहीं होती। चित्तशक्ति ही कहीं हंस, कहीं काक, कहीं शूकर, कहीं मक्खी, चिड़िया इत्यादिक रूप धारकर संसार में प्रवर्तती है जैसे जल में आया तृण भ्रमता है तैसेही भ्रमती है और अपने संकल्प से आपही भय पाती है और जैसे गधा अपना शब्द सुन आपही दौड़ता है और भय पाता है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही भय पाता है। हे मुनीश्वर! यह मैंने जीवशक्ति का आचार तुमसे कहा; इसी आचार को ग्रहण करके बुद्धि नीच पशुधर्मिणी हुई है और स्वरूप के प्रमाद से जैसा २ संकल्प करती है तैसीही तैसी कर्मगति को प्राप्त हो शोकवान् होती है, अनन्त दुःख पाती है और अपनी चैत्यतासेही मलिन होती है। जैसे तुषसे ढपा चावल बड़े संताप को प्राप्त होता है; फिर फिर बोया जाता है; फिर २ उगता है और काटा जाता है; तैसे स्वरूप के आवरण से जीवकला दुर्भाग्य से जन्म मरण दुःखको प्राप्त होती है। जैसे भर्तार से रहित स्त्री शोकवान् होती है तैसेही जीवकला कष्ट पाती है। हे मुनीश्वर! जड़ दृश्य और अनात्मरूप की प्रीति करने और निज स्वरूप के विस्मरण करने से आशारूपी फाँसी से बँधाहुआ चित्त, जीव को नीच योनि में प्राप्त करता है जैसे घटीयन्त्र कभी नीचे जाती है और कभी ऊर्ध्वको जातीहै तैसेही जीव आशा के वश हुआ कभी पाताल और कभी आकाश को जाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठेश्वरसंवादेचैतन्योन्मुखत्वविचारो नामैकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २९॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! स्वरूप के विस्मरण से जो इस प्रकार होता है कि, मैं हन्ता हूं, मैं दुःखी हूं; सो अनात्मा में अहं प्रतीति करकेही दुःख का अनुभव करता है। जैसे स्वप्न में पुरुष आपको पर्वतसे गिरता देखके दुःखी होता है और आपको मृतक हुआ देखता तैसेही स्वरूप के प्रमाद से अनात्म में आत्म अभिमान करके आपको दुःखी देखता है। हे मुनीश्वर! शुद्धचेतन तत्त्व में जो चित्तभाव हुआ है सो चित्तकला फुरने से जगत् का कारण हुआ है परन्तु वास्तव में स्वरूप से भिन्न नहीं। जैसे२ चित्तकला चेतती गई है तैसेही तैसे जगत् होता गया है। वह चित्त का कारण रूप भी नहीं हुआ और जब कारण ही नहीं हुआ तब कार्य किसको कहिये? हे मुनीश्वर! न वह चित्त है, न चेतन है, न चेतनेवाली है, न द्रष्टा है, न दृश्य है और न दर्शन है जैसे पत्थर में तेल नहीं होता न कारण है, न कर्म है और न कारण इन्द्रियां हैं, जैसे चन्द्रमा में श्यामता नहीं होती। न वह मन है और न मानने योग्य दृश्य वस्तु है—जैसे आकाश में अंकुर नहीं होता। न वह अहन्ता है, न तम है और न दृश्य है—जैसे शंख को श्यामता नहीं होती। हे मुनीश्वर! न वह नाना है, न अनाना है—जैसे अणु में सुमेरु नहीं होता। न वह शब्द है, न स्पर्श का अर्थ है—जैसे

मरुस्थल में बेलि नहीं होती। न वस्तु है, न अवस्तु है–जैसे बरफ़ में उष्णता नहीं होती। न शून्य है, न अशून्य है, न जड़ है, न चेतन है–जैसे सूर्यमण्डल में अन्धकार नहीं होता। हे मुनीश्वर! शब्द और अर्थ इत्यादिक की कल्पना भी उसमें कुछ नहीं–जैसे अग्नि में शीतलता नहीं होती। वहतो केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व है स्वरूप से किसीको कुछभी दुःख नहीं होता। हे मुनीश्वर! जगत् को असत् जानकर अभावना करना और आत्म को सत् जानकर भावना करना इस भावना से सर्व अनर्थ निवृत्त होजाते हैं पर यह और किसीसे प्राप्त नहीं होता अपने आपही से प्राप्त होता है और अनादिही सिद्ध है। जब उसकी ओर भावना होती है तब सब भ्रम मिटजाते हैं और जब अनात्मभावना होती है तब उसका पाना कठिन होता है। जो यत्न के साथ है सो यत्न विना नहीं पायाजाता; आत्मा निर्विकल्प, अद्वैत और सब से अतीत है, उसे अभ्यास विना कैसे पाइये? आत्मतत्त्व परम, एक, स्वच्छ, तेज का भी प्रकाशक, सर्वगत, निर्मल, नित्य सदा उदित, शक्तिरूप, निर्विकार और निरञ्जन है। घट, पट, वट, वृक्ष, गादी, वानर, दैत्य, देवता, समुद्र, हाथी इत्यादिक स्थावर–जङ्गमरूप जो कुछ जगत् है सबका साक्षीरूप होकर आत्मतत्त्व स्थित है और दीपकवत् सबको प्रकाशता है। आप सर्व क्रिया से अतीत है पर उसीसे सर्वकार्य सिद्ध होते हैं; सर्व क्रिया संयुक्त भासता है और सर्वविकल्प से रहित जड़वत् भी भासता है परन्तु परम चेतनहै। आत्मतत्त्व सब चेतन का सार चेतन, निर्विकल्प और परमसूक्ष्म है और अपने आपमें किञ्चन हो भासता है। अपनेही प्रमाद से रूप, अवलोक और नमस्कार त्रिपुटी भासती है; जब बोध होता है तब ज्यों का त्यों आत्मा भासता है। नित्य, शुद्ध, निर्मल और परमानन्दरूप के प्रमाद से चेतन चित्तभाव को प्राप्त होता है जैसे साधुभी दुर्जन के संग से असाधु होजाते हैं तैसेही अनात्मा के संग से यह नीचता को प्राप्त होता है। जैसे सोना दूसरी धातु की मिलौनी से खोटा होजाता है और जब शोधाजाता है तब शुद्धता को प्राप्त होता है तैसेही अनात्म के संग से यह जीव दुःखी होता है और जब अभ्यास और यत्न करके अपने शुद्धरूप को पाता है तब वही रूप होजाता है। जैसे मुख के श्वास से दर्पण मलीन होजाता है तो उसमें मुख नहीं भासता पर जब मलिनता निवृत्त होती है तब शुद्ध होता है और उसमें मुख स्पष्ट भासता है; तैसेही चित्त संवेदन के प्रमाद से फुरने के कारण जगत् भ्रम भासने लगताहै और आत्मस्वरूप नहीं भासता। जब यह जगत् सत्ता फुरने सहित दूर होगी तब आत्मतत्त्व भासेगा और जगत् की असत्यता भासेगी। हे मुनीश्वर! जब शुद्ध संवित् में चेतनता का फुरना निवृत्त होता है तब जीव अहंताभाव को प्राप्त होताहै और अहंकारको प्राप्त होनेसे अविनाशीरूप

को विनाशी जानता है। हे मुनीश्वर! स्वरूप से कुछ भी उत्थान होताहै तो उससे स्वरूप से गिरके कष्ट पाता है। जैसे पहाड़ से गिरा नीचे चला जाता है और चूर्ण होता है तैसेही जीव स्वरूप से उत्थान होता है और अनात्मा में अभिमान और अहंप्रतीति होतीहै तब अनेक दुःखो को प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! सर्वपदार्थों का सत्तारूप आत्मा है; उसके अज्ञानसे दैवत्वभाव को प्राप्त होता है जब उसका बोध हो तब दैवतभाव निवृत्त होजावेगा वह आत्मा शुद्ध और चिन्मात्रस्वरूप है उसीकी सत्ता से देह इन्द्रियादिक भी चेतन होते हैं और अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं। जैसे सूर्य के प्रकाश से सब जगत् का व्यवहार होता है और प्रकाश विना कोई व्यवहार नहीं होता, तैसे आत्मा की सत्तासे ही देह, इन्द्रियादिक का व्यवहार होता है और अपने २ विषय को ग्रहण करती है। हे मुनीश्वर! प्राणवायु के लिये जो नेत्र में सुख श्यामता है वह अपने आपमें रूप को ग्रहण करती है; उसका बाहर के विषय से संयोग होता है और उस रूप का जिसमें अनुभव होता है वह परम चेतन सत्ता है। त्वचा इन्द्रियां और स्पर्श का जब संयोग होताहै तो इन जड़ों का जिससे अनुभव होता है वह साक्षीभूत परम चेतन सत्ता है और नासिका इन्द्रिय का जब गन्ध तन्मात्रसे संयोग होताहै तो उसके संयोग में जो अनुभवसत्ता है सो परमचेतन है। इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांचो विषयों को श्रोत्र, नेत्र, त्वचा, रसना, नासिका पांचों इन्द्रियों से मिलकर जाननेवाला साक्षीभूत परम चेतन आत्मतत्त्व है। वह सुख संवित् परम चेतन कहाता है और जो बहिर्मुख फुरकर दृश्य से मिला है वह मलीनाचित्त कहाता है। जब वही मलीनरूप अपने शुद्धस्वरूप में स्थित होताहै तब शुद्ध होताहै। हे मुनीश्वर! यह जगत् सब आत्मस्वरूप है और शिलाघन की नाईं अद्वैत और सर्व विकारों से रहित है; न उदय होता है और न अस्त होता है संकल्प के वश से जीवभाव को प्राप्त होता है और संकल्प के निवृत्त हुये परमात्मारूप होजाता है। हे मुनीश्वर! आदि चित्तकला जीवरूपी रथपर आरूढ़ हुई है; जीव अहंकाररूपी रथ पर आरूढ़ हुआ है; अहंकार बुद्धिरूपी रथ पर आरूढ़ है; बुद्धि मनरूपी रथ पर आरूढ़ है; मन प्राणरूपी रथ पर चढ़ाहै और प्राण इन्द्रियांरूपी रथ पर चढ़े हैं। इन्द्रियों का रथ देह है और देहका रथ पदार्थ है। जो कर्म इन्द्रियां करती हैं उसी के वश जरा मरणरूपी संसार पिंजरे में भ्रमती हैं। इस प्रकार यह चक्र चलता है और उसमें प्रमाद करके जीव भटकता है। हे मुनीश्वर! यह चक्र आत्मा का आभास विरूप है। जैसे स्वप्नपुर में नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो वास्तव में कुछ नहीं हैं; तैसेही यह जगत् वास्तव में कुछ नहींहै और जैसे मृगतृष्णा की नदी भ्रम करके भासतीहै, तैसेही यह जगत् भ्रम से भासता है। हे मुनीश्वर! मन

का रथ प्राण है; जब प्राणकला फुरने से रहित होती है तब मन भी स्थित होजाता है और मन के स्थित हुये मन का मनन भी शान्त होजाता है। जब प्राणकला फुरती है तब मन का मनन भी फुरता है और जब प्राणकला स्थित होती है तब मनन निवृत्त होजाताहै। जैसे प्रकाश विना पदार्थ नहीं भासते और वायु के शान्त हुये धूर नहीं उड़ती तैसेही प्राण के फुरने से रहित मन शान्त होता है। जैसे जहां पुष्प होते हैं वहां गन्धभी होती है और जहां अग्नि है वहां उष्णता भी होती है; तैसेही जहां प्राणस्पन्द होता है वहां मन भी होता है। हृदय में जो नाड़ी है उसमें प्राण स्वतः फुरते हैं और उसीसे मनन होता है। संवित् जो स्वच्छरूप है सो जड़ अजड़ सर्वत्र भासती है और संवेदन प्राणकला में फुरती है। हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सर्वत्र अनुस्यूत है परन्तु जहां प्राणकला होती है वहां भासती है और जहां प्राणकला नहीं होती वहां नहीं भासती। जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ठौर में होता है परन्तु जहां उज्ज्वल स्थान, जल अथवा दर्पण होताहै वहां प्रतिबिम्ब भासता है और ठौर नहीं भासता; तैसेही आत्मसत्ता सर्वत्र है परन्तु जहां प्राणकला पुर्यष्टका होती है वहां भासती है और ठौर नहीं भासती। जैसे दर्पणमें मुख का प्रतिबिम्ब भासता है और शिला में नहीं भासता तैसेही पुर्यष्टका जो मनरूप है सो सर्वका कारण है और अहंकार, बुद्धि, इन्द्रियां उसीके भेद हैं; जो आपही से कल्पित हैं; सर्व दृश्यजाल उसही से उदय होताहै और कोई वस्तु नहीं। यह भली प्रकार अनुभव किया है। इससे मनही देहादिक को प्रवर्तता है और परमतत्त्व वस्तु उसही से भासती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेमनप्राणोक्त
प्रतिपादनंनामत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३० ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता विना जीव कन्धवत् होताहै और आत्मसत्ता से चेतन होकर चेष्टा करता है। जैसे चुम्बक पाषाण की सत्ता से जड़ लोहा चेष्टा करता है, तैसेही सर्वगत आत्मा की सत्तासे जीव फुरता है और आत्मसत्ता भी जीवकला में भासता है और ठौर नहीं भासता। जैसे मुख का प्रतिबिम्ब दर्पण में भासता है और ठौर नहीं भासता, तैसेही परमात्मा सर्वगत और सर्वशक्तभी है परन्तु जीवकला ही में है। हे मुनीश्वर! शुद्ध वास्तव स्वरूप से जो इस जीवकला का उत्थान हुआ है और दृश्य की ओर इससे चित्तभाव को प्राप्त हुआहै। जैसे शूद्र की संगति करके ब्राह्मण भी आपको शूद्र मानने लगता है, तैसेही स्वरूप के प्रमाद से जीवकला आपको चित्तदृश्यभाव जानने लगी है। अज्ञानसे घेरा हुआ जीव महादीनभाव को प्राप्त होता है; जड़ देह के अभ्यास से कष्ट पाता है और काम, क्रोध, वात, पित्तादिक से जलता है। जैसी जैसी भावना होती है तैसाही तैसा कर्म करता है और उन

कर्मों की भावना से मिला हुआ भटकता है। जैसे रथपर आरूढ़ होकर रथी चलताहै तैसेही आत्मा मन और प्राण कर्मको दृढ़ करके चलता है। हे मुनीश्वर! चेतनही जड़ दृश्य को अङ्गीकार करके जीवत्वभाव को प्राप्त होताहै और मन प्राणरूपी रथपर चढ़ कर पदार्थ की भावना से नाना प्रकार के भेदको प्राप्त हुयेकी नाईं स्थित होताहै। जैसे जल ही तरङ्गभावको प्राप्त होताहै, तैसेही चेतनही नाना प्रकार होकर स्थित होताहै। निदान यह जीवकला आत्मा की सत्ता को पाकर वृत्ति में फुरनरूप होती है। जैसे सूर्य की सत्ता को पाकर नेत्ररूप को ग्रहण करते हैं तैसेही परमात्माकी सत्ता पाकर जीव-वृत्ति में फुरताहै और परमात्मा चित्तत्व में जो स्थितहै उससे फुरणरूप जीता है। जैसे घर में दीपक होताहै तब प्रकाश होताहै; दीपक विना प्रकाश नहीं होता। अपने स्वरूप को भुलाकर जीव दृश्यकी ओर लगाहै इस कारण आधि व्याधिसे दुःखी होताहै। जैसे जब कमल डोडीके साथ लगता है तब उस पर भ्रमरे आन स्थित होतेहैं; तैसेही जब जीव दृश्य की ओर लगता है तब दुःख स्थित होतेहैं और उनसे जीव दीन होजाता है—जैसे जल तरङ्गभाव को प्राप्त होता है—और अपनी क्रिया से आप बन्धायमान होता है। जैसे बालक अपनी परछाहीं को देखकर आपही अविचार से भय पाता है तैसेही अपने स्वरूपके प्रमादसे जीव आपही दुःख पाताहै और दीनताको प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! चिद्शक्ति सर्वगत अपनी आप है। उसकी अभावना करके जीव दीनता को प्राप्त होता है। जैसे सूर्य बादल से घिर जाता है तैसेही मूढ़ता से आत्माका आवरण होता है पर जब प्राणों का अभ्यास करे तब जड़ता निवृत्त हो और अपना आप आत्मा स्मरण हो जिनकी वासना निर्मल हुईहै पर हृदय से दूर नहीं हुई तो वह स्थिर हुई एकरूप होजाती है और वे जीव जीवन्मुक्त होकर चिरपर्यंत जीते हैं और हृदयकमल में प्राणों को रोककर शान्ति को प्राप्त होते हैं। जब काष्ठ लोष्टवत् देह गिर पड़तीहै तब पुर्यष्टका आकाश में लीन होजाती है। जैसे आकाश में पवन लीन होताहै तैसेही उनका मन पुर्यष्टका वहांही लीन होजाती है। हे मुनीश्वर! जिनकी वासना शुद्ध नहीं हुई उनकी पुर्यष्टका मृत्युकाल में आकाश में स्थित होतीहै और उसके अनन्तर फिर फुर आती है तब उस वासना के अनुसार स्वर्ग नरक को देखने लगता है। जब शरीर मन और प्राण से रहित होता है तब शून्यरूप होजाताहै। जैसे पुरुष घर को त्यागकर दूर जा रहता है तैसेही शरीर को त्यागकर मन और प्राण और ठौर जा रहते हैं और शरीर शून्य होजाता है। हे मुनीश्वर! चिद्सत्ता सर्वत्र है परन्तु जहां जीवपुर्यष्टका होती है वहांही भासती है और चेतन का अनुभव होताहै और ठौर नहीं होता। हे मुनीश्वर! जब यह जीव शरीर को त्यागता है तब पञ्च-तन्मात्रा को ग्रहण करके संग लेजाताहै और जहां इसकी वासना होतीहै वहांही प्राप्त

होता है। प्रथम इसका अन्तवाहक शरीर होताहै, फिर दृश्य के दृढ़ अभ्यास से स्थूल-भाव को प्राप्त होजाता है और अन्तवाहकता विस्मरण होजाती है। जैसे स्वप्न में भ्रम से स्थूल आकार देखता है; तैसेही मोह करके मरता है तब अपने साथ स्थूल आकार देखता है। फिर स्थूलदेह में अहंप्रतीति करताहै और उससे मिलकर क्रिया करता है तब असत्य को सत्य मानता है और सत्य को असत्य जानताहै। इस प्रकार भ्रम को प्राप्त होता है। जब सर्वगत चिदंश से जीव मन होताहै तब जगत्भाव को प्राप्त होता है। जब देह से पुर्यष्टका निकल जाती है तब आकाश में जा लीन होती है और देह फुरनेसे रहित होतीहै तब उसको मृतक कहते हैं और अपने स्वरूपशक्ति को विस्मरण करके जर्जरीभावको प्राप्त होताहै। जब जीवशक्ति हृदयकमल में मूर्च्छित होती है और प्राण रोंके जाते हैं तब यह मृतक होता है। एवम् फिर जन्म लेता है और फिर मरजाता है। हे मुनीश्वर! जैसे वृक्ष में पत्र लगते हैं और काल पाकर नष्ट होजाते हैं और फिर नूतन लगते हैं; तैसेही यह जीव शरीर को धारता है और नष्ट होजाता है; फिर शरीर धारता है और वहभी नष्ट होजाता है। जो वृक्ष के पत्र की नाईं उपजते और नष्ट होते हैं उनका शोक करना व्यर्थ है। हे मुनीश्वर! चेतन-रूपी समुद्र में शरीररूपी अनेकतरङ्ग बुद्बुदे उपजते और नष्ट होते हैं उनका शोक करना व्यर्थ है। जैसे दर्पण में जो अनेक पदार्थ का प्रतिबिम्ब होता है सो दर्पण से भिन्न नहीं होता तैसेही चेतन में अनेक पदार्थ भासते हैं। वह चेतन निर्मल आकाश की नाईं विस्तीर्णरूप है, उसमें जो पदार्थ फुरते हैं वे अनन्यरूप हैं और विधि शरीर भी वही रूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेहपातविचारोनाम.
एकत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे अर्द्धचन्द्रधारी! जो चेतनतत्त्व परमात्मा पुरुष है वह अनन्त और एकरूप है उसको यह द्वैत कहां से प्राप्त हुआ? भूत और भविष्यकाल कहां से दृढ़ होरहे हैं? एकमें अनेकता कहां से प्राप्त हुई है? बुद्धिमान् दुःख को कैसे निवृत्त करते हैं और वह कैसे निवृत्त होता है? ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! ब्रह्मचेतन सर्वशक्त है। जब वह एकही अद्वैत होता है तब निर्मलता को प्राप्त होता है। एक के भाव से द्वैत कहाताहै और द्वैतकी अपेक्षासे एक कहाता है पर यह दोनों कल्पनामात्र हैं। जब चित्त फुरता है तब एक और दो की कल्पना होती है और चित्तस्पन्द के अभावहुये दोनों की कल्पना मिट जाती है और कारण से जो कार्य भासता है सो भी एकरूप है। जैसे बीजसे लेकर फल पर्यन्त वृक्ष का विस्तार है सो एकहीरूप है और बढ़ना घटना उसमें कल्पना होती है; तैसेही चेतन में चित्तकल्पना होती है तब

जगत्‌रूप हो भासता है परन्तु उस कालमें भी वहीरूप है। हे मुनीश्वर! वृक्ष के समेतभी बीज एक वस्तुरूप है और कुछ नहीं हुआ परन्तु बीज फुरता है तब वृक्ष हो भासता है, तैसेही जब शुद्ध चेतन में चेतनकलना फुरती है तब जगत्‌रूप हो भासता है। हे मुनीश्वर! कारण—कार्य विकाररूप जगत् असम्यक्‌दृष्टि से भासता है। जैसे जल में तरङ्ग भासते हैं सो जलरूप है—जलमें भिन्न नहीं, जैसे शशेके सींग असत् हैं और जलमें द्वैततरङ्ग कलना असत् है—अज्ञान से भासती है; तैसेही आत्मा में अज्ञान से जगत् भासता है। जैसे द्रवता से जलही तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही फुरनेसे आत्मतत्त्व जगत्‌रूप हो भासता है और द्वैत नहीं। चेतनरूपी बेल फैली है और उसमें पत्र, फूल और फल एकहीरूप हैं। जैसे एक बेल अनेकरूप हो भासती है, तैसेही एकही चेतन जो अहं, त्वं, देश, काल आदिक विकार होकर भासता है सो वही रूप है। हे मुनीश्वर! जब सबही चेतन है तब तेरे प्रश्न का अवसर कहां हो? देश, काल, क्रिया, नीति आदिक जो शक्तिपदार्थ हैं सो एकही चिदात्मा है। जैसे जल में जब द्रवता होती है तब तरङ्गरूप हो भासताहै और उसका नाम तरङ्ग होता है, तैसेही ब्रह्ममें जगत् फुरता है तब अहं, त्वं आदिक नाना प्रकर के नाम होते हैं पर वह ब्रह्म, शिव, परमात्मा, चेतनसत्ता, द्वैत, अद्वैत आदिक नामों से अतीत है; वाणी का विषय नहीं। ऐसा निर्विकल्प निर्विषय तत्त्व सदा अपने आप में स्थित है। यह जगत् जो कुछ भासता है सोभी वही चेतनतत्त्व है। जैसे बेल फूल और पत्र होकर फैलती है तैसेही चेतन सर्वरूप होकर फैलता है। हे मुनीश्वर! महाचेतन में जब किंचन होता है तब जीवरूप होकर स्थित होता है और फिर द्वैतकलना को देखता है। जैसे स्वप्न में अपना स्वरूप त्यागकर परिच्छिन्न वपु को धारण करता है और द्वैतरूप जगत् देखता है पर जब जागता है तब अपने अद्वैतरूप को देखता है परन्तु जागे विना भी द्वैत कुछ नहीं हुआ; तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी कुछ है नहीं भ्रम से भासता है। जब यह जीव अपने वास्तवस्वरूप की ओर सावधान होता है तब उसके अभ्यास से वही रूप होजाता है। हे मुनीश्वर! इस जीव का आदि वपु अन्तवाहक है और संकल्प ही उसका रूप है; जब उसमें अहंभावना तीव्र होती है तब वही आधिभौतिक होकर भासता है। जब उसमें सत्यता दृढ़ होजाती है तो उस की भावना से रागद्वेष से क्षोभायमान होता है। पर जब काकतालीयवत् अकस्मात् से हृदय में विचार उपजता है तब संकल्परूपी आवरण दूर होजाता है और अपने वास्तवस्वरूप को प्राप्त होता है। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर भय पाता है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही भय पाता है। हे मुनीश्वर! यह जो कुछ जगत् भासता है सो सब संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प हृदय में दृढ़ होता

है तैसाही भासने लगता है। प्रत्यक्ष देखो कि, जो पुरुष कुछ कार्य करता है तो कर्तृत्वभाव उसके हृदय में दृढ़ होता है और कहता है कि, यह कार्य मैं न करूं; जब यही संकल्प दृढ़ होता है तब उस कार्य से आपको अकर्ता जानता है; तैसेही दृश्य की भावना से जगत् सत्य दृढ़ होगया है। जब दृश्य का संकल्प निवृत्त होता है और आत्मभावना में लगता है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है और आत्मा ही भासता है। हे मुनीश्वर! परमार्थ से द्वैत कुछ हैही नहीं सब संकल्परचना है। संकल्प से रचा जो दृश्य है सो संकल्प के अभाव से अभाव होजाता है। जैसे मनोराज और गन्धर्व नगर मन से रचित होता है और जब संकल्प के अभाव हुये से अभाव होता है तब क्लेश कुछ नहीं रहता। हे मुनीश्वर! जगत् संकल्प की पुष्टतासे जीव दुःख का भागी होताहै। जैसे स्वप्न में संकल्प करके जीव दुःखी होता है। इस संकल्पमात्र की इच्छा त्यागने में क्या कृपणता है? जैसे स्वप्न में जो सुख भोगता है सो सुख भी कुछ वस्तु नहीं भ्रममात्र है तैसेही यह सुख भी भ्रममात्र है। हे मुनीश्वर! संकल्प विकल्प ने जीवको दीन किया है। जब संकल्प विकल्प को त्याग करता है तब चित्त अचित्त होजाता है और ऊंचेपद में विराजमान होता है। जिस पुरुष ने विवेकरूपी वायुसे संकल्परूपी मेघको दूरकिया है वह परम निर्मलता को प्राप्त होता है। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही संकल्प विकल्परूपी मलसे रहित जीव उज्ज्वलभावको प्राप्त होता है। संकल्प के त्यागे से जो शेष रहता है सो सत्तामात्र परमानन्द तेरा स्वरूप है। हे मुनीश्वर! आत्मा सर्वशक्तिरूप है; जैसी भावना होती है तैसाही उसे अपनी भावना से देखताहै इससे सब संकल्पमात्र है; भ्रमसे उदय हुआहै और संकल्प के लीनहुये सब लीन होजाता है। हे मुनीश्वर! संकल्परूपी लकड़ी और तृष्णारूपी घृतसे जन्मरूपी अग्निको यह जीव बढ़ाता है और फिर उससे अन्त कदाचित् नहीं होता। जब असंकल्परूपी वायु और जलमें इसका अभाव करे तब शांत होजाता है। जैसे दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही जन्मरूपी अग्निका अभाव होजाता है और संकल्परूपी वायुसे तृणकी नाईं भ्रमता है। हेमुनीश्वर! तृष्णारूपी कंजकी बेलको जीव संकल्परूपी जलसे सींचता है; जब असंकल्परूपी शोषता और विचाररूपी खड्गसे काटे तब उसका अभाव होताहै। जो अभावमात्र है सो आभास के क्षयहुये अभाव होजाता है। जैसे गन्धर्वनगर होताहै तैसेही यह जगत् असम्यक्ज्ञानसे भासता है और सम्यक्ज्ञानसे लीन होजाता है। जैसे कोई राजा स्वप्न में अपने को रङ्क देखे और पूर्वका स्वरूप विस्मरण करके दीनता को प्राप्त हो पर जब पूर्वका स्वरूप स्मरण आवे तब आपको राजा जाने और दुःख मिट जावे; तैसेही जीवको जब अपने पूर्वका वास्तव स्वरूप विस्मरण होजाताहै तब आपको परिच्छिन्न

दीन और दुःखी जानता है पर जब स्वरूप का ज्ञान होता है तब सब दुःख का अभाव होजाता है और जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है तैसेही निर्मल होजाता है। जैसे वर्षाकाल के मेघ गये से आकाश निर्मल होता है तैसेही अज्ञान-रूपी मलसे रहित जीव निर्मल होकर शुद्धपद को प्राप्त होता है। जो ऐसी युक्ति से भावना करता है कि, मैं एक आत्मा और द्वैत से रहित हूं तो वही होता है और द्वैत का अभाव होजाता है और उत्तम पद ब्रह्मदेव पूज्य, पूजक और पूजा; किञ्चित् निष्किंचन की नाईं चित्त एकरूप होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेव प्रतिपादनन्नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३२॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह देव निरन्तर स्थित है; द्वैत और एक पदसे रहित है और द्वैत और एक संयुक्त भी वही है। संकल्प से मिलकर चेतनरूप संसार को प्राप्त हुआहै और जो संकल्प मलसे रहित है वह संसारसे रहितहै। जब ऐसे जानताहै कि, 'मैं हूं' इसी संकल्प से बन्धवान् होताहै और जब इसके भावसे मुक्त होता है तब सुख दुःख का अभाव होजाता है और शुद्ध निरञ्जन एकसत्ता सर्वात्मा आकाशवत् होताहै। इसीका नाम मुक्तिहै। आकाशवत् व्यापक ब्रह्म होताहै। वशिष्ठजी बोले, हे प्रभो! जब मन में मन क्षीण होताहै और इन्द्रियां मन में लीन होतीहैं वह द्वितीय और तृतीयपद किसकी नाईं शेष रहताहै? जो महासत्ता आत्मसत्ता सबका लीन करताहै सो किस की नाईं है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जब मन से मन को जिसके अंग इन्द्रियां हैं विचार करके छेदता है अथवा उपासना करके आत्मबोध प्राप्त होताहै तब द्वैत एक की कल्पना नष्ट होजाती है और जगज्जाल की सत्यता नष्ट होजाती है उसके पीछे जो शेष रहता है सो आत्मतत्त्व प्रकाशता है। जैसे भूने बीज से अंकुर नहीं उपजता तैसेही जब मन उपशम होताहै तब उसमें जगत् सत्ता का अभाव होजाता है और चेतनसत्ता चित्तसत्ता को भक्षण करलेती है। जब मनरूपी मेघ की सत्ता नष्ट होती है तब शरत्काल के आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है। जब चित्त की चपलता मिटजाती है तब परमनिर्मल पावन चिन्मात्रतत्त्व प्राप्त होताहै; एकद्वैत–और भाव–अभावरूपी संसारकल्पना मिटजातीहै और सम सत्तारूप तत्त्व जो सर्वव्यापक और संसारसमुद्र से पार करनेवाला प्राप्त होताहै। तब सुषुप्त की नाईं निर्भय बोध होजाता है और शान्तिरूप आत्मा को पाकर शान्तरूप होजाता है। हे मुनीश्वर! मन की क्षीणता का यह प्रथमपद तुमसे कहा है अब द्वितीयपद सुनो। जब चित्त-शक्ति मन के मनन से मुक्त होती है तब चन्द्रमा के प्रकाशवत् शीतल होजाता है; आकाशवत् चिन्मात्ररूप अपना आप भासता है और घन सुषुप्तरूप होजाता है।

जैसे पत्थर की शिला पोल से रहित होती है तैसेही वह दृश्य से रहित घन सुषुप्त उसका रूप होता है और नमक के सदृश रसमय ब्रह्म होजाता है। जैसे आकाश में शब्द लीन होजाता है तैसेही वह चित्त आत्मा में लीन होजाताहै और जैसे वायु चलनेसे रहित अचल होताहै तैसेही चित्त अचल होजाताहै। जैसे गन्ध पुष्प में स्थित होती है तैसेही चित्तवृत्ति आत्मतत्त्व में विश्राम को पाती है। वह आत्मसत्ता न जड़है, न चेतन है; सर्व कलना से रहित अचैत्य चिन्मात्र अंकुररूप सब सत्ताओं को धारण करनेवाली और देश काल के परिच्छेद से रहित है। जिसको वह प्राप्त होतीहै उसको तुरीयापद भी कहते हैं। वह सर्वदुःख कलङ्क से रहित पद है। उस सत्ता को पाकर साक्षी की नाईं स्थित होता और सर्वत्र, सर्वदा सम स्थित होताहै। सर्वप्रकाश वही है और शान्तिरूप है। उस आत्मसत्ता का जिसको आत्मतत्त्व से अनुभव होता है उसको द्वितीयपद प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! यह द्वितीयपद भी तुमसे कहा अब तृतीय पद सुन। जब आत्मतत्त्व में वृत्ति का अत्यन्त परिणाम होता है तब ब्रह्म, आत्मा आदिक नामों की भी निवृत्ति होजाती है; भाव अभाव की कलना कोई नहीं फुरती और स्थान की नाईं अचल वृत्ति होकर परमशान्त और निष्कलङ्क सबसे उल्लङ्घित तुरीयातीत पद को प्राप्त होता है। जो सबका अन्त और सबका आधाररूप एक, अद्वैत, नित्य, चिन्मात्रतत्त्व है और तुरीया से भी आगे है जिसमें वाणी की गम नहीं। हे मुनीश्वर! सर्वकल्पना से रहित अतीतपद जो मैंने तुमसे कहा है उसमें स्थित हो। वही सनातन देव है और विश्वभी वही रूप है। वही तत्त्व संवेदन के वश से ऐसा रूप होकर भासता है पर वास्तव में न कुछ प्रवृत्त है और न कुछ निवृत्त है; आकाशरूप समसत्ता अद्वैततत्त्व अपने आपमें स्थित और आकाशवत् निर्मल है और उसमें द्वैतभ्रम का अभाव है। एक चिद्घनसत्ता पाषाणवत् अपने आपमें स्थित है उसमें और जगत् में रञ्चकभी भेद नहीं। जैसे जल और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं होता तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। सम सत्यसत्ता शिव शान्तिरूप और सर्ववाणी के विलास से अतीत है। इसकी चतुर्मात्रा है और तुरीया परमशान्त है। इतना कह बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! इस प्रकार जब ईश्वर ने कहा और परम शान्तिरूप आत्मतत्त्व का प्रसङ्ग वशिष्ठजी ने सुना तब दोनों की वृत्ति आत्मतत्त्व में स्थित होगई और तूष्णी होगई-मानों चित्र लिखे हैं—और एक मुहूर्त पर्यन्त चित्त की वृत्ति ऐसेही रही। फिर ईश्वर जागे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेपरमेश्वरोपदेशो नामत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३३ ॥

बाल्मीकिजी बोले कि, एकमुहूर्त उपरान्त सदाशिवजी ने तीनों नेत्र खोले तो जैसे

पृथ्वीरूपी डब्बे से सूर्य निकले तैसेही उनके नेत्र निकले और जैसे द्वादशसूर्य का प्रकाश इकट्ठा हो तैसेही उनका प्रकाश हुआ । उन्होंने देखा कि, वशिष्ठजी के नेत्र मूंदे हुये हैं, तब कहा कि, हे मुनीश्वर ! जागो अब नेत्र क्यों मूंदे हो ? जो कुछ देखना था सो तो तुमने देखा अब समाधि लगाने का श्रम किस निमित्त करते हो ? तुम सरीखे तत्त्ववेत्ताओं को किसीमें हेयोपादेय नहीं होता । तुम जैसे बुद्धिमान् हो तैसेही आत्मदर्शी भी हो । जो कुछ पानेयोग्य था सो तुमने पायाहै और जानने योग्य जाना है। बालकों के बोध के निमित्त जो तुमने मुझसे पूछाथा सो मैंने कहाहै अब तुम को तूष्णी रहनेसे क्या प्रयोजन है ? हे रामजी ! इस प्रकार कहकर सदाशिव ने मेरे भीतर प्रवेश करके चित्त की वृत्तिसे जगाया और जब मैं जागा तब फिर ईश्वर ने कहा, हे वशिष्ठजी ! इस शरीर की क्रिया का कारण प्राणस्पन्द है। प्राणोंसे ही शरीर की चेष्टा होती है और उसमें आत्मा उदासीन की नाईं स्थित है वह न कुछ करता है, न भोगता है । जब जीव को अपने स्वरूप का प्रमाद होता है तब देह में अभिमान होता है और क्रिया करता और भोगता आपको मानता है इससे दुःख पाता है और इसलोक परलोक में भटकता है। जब आत्मविचार उपजता है तब आत्मा का अभ्यास होता है; देह अभिमान मिटजाता है और दुःख से मुक्त होताहै। शरीर के नष्ट हुये आत्मा का नाश नहीं होता । शरीर चेतन होकर प्राणों से फुरताहै; जब बीच से प्राण निकलजाते हैं तब शरीर मूक जड़रूप होजाता है। चलाने और पवित्र करनेवाली जो संवित्शक्ति है वह आकाश से भी सूक्ष्म है। वह शरीर के नाश हुये नाश नहीं होती और जो नाश नहीं होती तो नाश का भ्रम कैसेहो ? हे मुनीश्वर ! आत्मतत्त्व ब्रह्मसत्ता सर्वत्र है परन्तु वहीं भासती है जहां सात्त्विकगुण का अंश मन होता है और प्राण होते हैं। मन और प्राणोंसहित देहमें भासती है । जैसे निर्मलदर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब भासता है और आदर्श मलीन होता है तब मुख विद्यमान भी होताहै परन्तु नहीं भासता है; तैसेही मन और प्राण जब देह में होते हैं तब आत्मा भासताहै और जब मन और प्राण निकलजाते हैं तब मलीन शरीर में आत्मसत्ता नहीं भासती। हे मुनीश्वर ! आत्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है परन्तु भासती नहीं जब उसका अभ्यास हो तब सर्वात्मरूप होकर भासती है। सर्वकलना से रहित शुद्ध शिवरूप सर्वकी सत्तारूप वही है । विष्णु, शिव, ब्रह्मा, देवता, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्यादिक सब जगत् का आदिरूप वही है । वह एक देव शुद्धचेतनरूप सर्वदेवों का देव है, सब उसके नौकर हैं और सब उसके चित्त उल्लास हैं । हे मुनीश्वर ! इस जगत् में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जो बड़े हैं सो उसही तत्त्व से प्रकट हुये हैं । जैसे अग्नि से चिनगारे उपजते हैं और समुद्र से तरङ्ग प्रकट होते हैं तैसेही हम उससे प्रकट हुये हैं। यह अविद्या भी उसही

से प्रकट हो अनेक शाखाओं को प्राप्त हुई है। देव, अदेव, वेद और वेद के अर्थ और जीव सब उस अविद्याकी जटाहैं और अनन्तभावको प्राप्त हुई हैं जो फिर फिर उपजती और मिटती है। देश काल. पृथिव्यादिक भी सब उसी से उत्पन्नहैं और सर्वसत्तारूप वही आत्मा देव है। हम जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रहैं सो हमारा परमपिता आत्माही है; सर्वका मूलबीज वही देव है और सब उससे उपजे हैं। जैसे वृक्ष से पत्र उपजते हैं तैसेही सब उसी महादेव से उपजते हैं; सबका अनुभवकर्ता वही है और सबको सत्ता देनेवाला और सब प्रकाश का प्रकाश वहीहै। वह तत्त्ववेत्ताओं से पूजने योग्य है, सब में प्रत्यक्ष है और सर्वदा सर्वप्रकार सब में उदित आकार चेतन अनुभवरूप है। उसके आवाहन में मन्त्र, आसन आदिक सामग्री न चाहिये क्योंकि; वह सर्वदा अनुभवरूप से प्रत्यक्ष है और सर्वप्रकार सर्व ठौरमें विद्यमानहै। जहां२ उसके पाने का यत्न करिये वहां २ आगेही विद्यमान है। वह शिवतत्त्व आदिही से सिद्ध है और मन वाणी में तीनोंरूप वही हो भासताहै। सबकी आदि और पूज्य और नमस्कार करने योग्य है और जानने योग्य भी वही है। हे मुनीश्वर! ऐसा जो आत्मतत्त्व जरा, मृत्यु शोक और भय के काटनेवाला है उसको जीव आपसे आपही देखता है और उसके साक्षात्कार हुये चित्त भूने बीज की नाईं होजाता है फिर नहीं उगता। वह शिव तत्त्व जीव का भी जीव है और सर्वपद का पद वही है। अनुभवरूप आत्मा परमपद है; भिन्नदृष्टि का त्याग करो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेवनिर्णयो
नामचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३४ ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह चिद्रूप तत्त्व सब के भीतर स्थितहै। अनुभवमय शुद्ध देव ईश्वर और सब बीज का बीज वही है। सर्व सारों का सार; कर्मों का कर्म और धर्मों का धर्म चेतनधातु निर्मलरूप सबकारणों का कारण और आप अपना कारण है। वह सर्वभाव अभाव का प्रकाशक और सर्व चेतन का चेतन परम प्रकाशरूप है। भौतिक प्रकाश से रहित और अवलौकिक प्रकाशक सबजीवों का जीव वही है। चेतन घन निर्मल आत्मा अस्ति तन्मयरूप है और सत् असत् से रहित महासतरूप है। सर्वसत्ता की सत्ता वही है। वही चिन्मात्रतत्त्व नानारूप होरहा है। जैसे एकही आत्मसत्ता स्वप्ने में आकाश, कन्ध, पहाड़ आदिक होकर भासती है तैसेही नाना रङ्ग रञ्जना होकर वही भासता है। जैसे सूर्यकी किरणों में मरुस्थल की नदी अनेक कोटि किरणों से अनेक तरङ्ग संयुक्तहो भासती है तैसेही यह जगत् उसमें भासता है। हे मुनीश्वर! उसी आत्मतत्त्व का यह आभास प्रकाश है; उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे अग्निसे उष्णता भिन्न नहीं—वही रूपहै; तैसेही आत्मा से जगत्

कुछ भिन्न नहीं—वही स्वरूपहै। सुमेरुभी उसके आगे परमाणुरूपहै; संपूर्ण कालउस का एक निमेषरूपहै; कल्पभी निमेष और उन्मेषवत् उदय और लय होतेहैं और सप्त समुद्र संयुक्त पृथ्वी उसके रोम के अग्रवत् तुच्छ है। ऐसा वह देवहै। वह संसाररचना को नहीं करता और कर्तृत्वभाव को प्राप्त होता है। बड़े कर्मों को करता भासता है तौभी कुछ नहीं करता; द्रव्यरूप दृष्टि आता है तौभी द्रव्य से रहित है निर्द्रव्य है तौभी द्रव्यवान् है; देहवान् नहीं तौभी देहवान् है और बड़ा देहवान् है तौभी अदेह है। सर्वका सत्तारूप वही देवहै। ठंढी, भोलि, घले, मतचुल, पिंढली, मांगले, बेल, विलिमिला, लोवलाग, युगुल, सभस इत्यादि वाक्य निरर्थक हैं; इनका अर्थ कुछ नहीं तौभी उस देव से सिद्ध होते हैं। ऐसा कुछ नहीं जो उस देवमें असत् नहीं और ऐसाभी कुछ नहीं जो उस देव से सत् नहीं। हे मुनीश्वर! जिससे यह सर्व है; जो यह सर्व है और जो सर्व में नित्य है उस सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहेश्वरस्वर्णनंनामपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३५॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! शब्द की सत्तारूप वही है; सर्व सत्तारूप रत्नों का डब्बा वही है और वही तत्त्व चमत्कार करके फुरता है। जैसे जलही तरङ्ग, फेन, बुद्बुदे आदिक आकार होकरके फुरता है तैसेही वह देव नाना प्रकार के आकार होकर फुरता है। वही फल और गुच्छेरूप होकर स्थित होताहै और वही उनमें सुगन्धित होता है। घ्राणइन्द्रियमें स्थित होकर आपही उसे सूंघना है; आपही त्वचा इन्द्रिय होता है; आपही पवन होकर चलता है; आपही स्पर्श से ग्रहण करता है; आपही जलरूप होताहै, आपही वायु होकर सुखाता है; आपही श्रवणेन्द्रिय और आपही शब्द होकर ग्रहण करताहै। इसी प्रकार जिह्वा, त्वचा, नासिका, कर्ण और नेत्र होकर आपही स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शब्द को ग्रहण करता है। उसीने सब पदार्थ रचे हैं और उसीने नीति रची है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव और पञ्चम ईश्वर सदाशिव पर्यन्त वही देव इस प्रकार हुआ है और आपही साक्षीवत् स्थित होता है। जैसे दीपक के प्रकाश से मन्दिर की सर्व क्रिया होती हैं तैसेही संसाररूपी मण्डप की सब क्रिया उसी साक्षी से होती हैं उसमें उसकी शक्ति नृत्य करती है और आप साक्षीरूप होकर देखता है वशिष्ठजी बोले कि, फिर मैंने पूछा, हे जगत्नाथ! शिव की शक्ति क्या है, कैसे स्थित है; देवको साक्षात् कैसे है और उसकी नृत्य कैसे होती है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व स्वभाव से अचल और शान्तरूप है। शिव परमात्मा निर्मल चिन्मात्ररूप और निराकार है। उसकी आसक्ति इच्छा और काल, नीति, मोह, ज्ञान, क्रियाकर्त्रादि शक्ति हैं। उन शक्तियों का अन्त नहीं। वह अनन्तरूप चिन्मात्र देव है। यह जो मैं तुमसे शक्ति कही है सो भी शिवरूप है भिन्न नहीं शिव

और शक्ति एक रूप है और बहुत भासती है। जैसे पदार्थों में अर्थशक्ति और आत्मा में साक्षी शक्ति कल्पित है तैसेही कालशक्ति नृत्यक की नाईं ब्रह्माण्डरूपी नृत्यमण्डल में नृत्य करती है और क्रियाशक्ति भी कर्तृत्व से नृत्य करती है सो शक्ति कहाती है। जैसे आदिनीति हुई है ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त तैसेही स्थित है—अन्यथा नहीं होती। हे मुनीश्वर! यह सम्पूर्ण जगत् नृत्य करता है। संसाररूपी नटिनी के प्रेरनेवाली नीति है और परमेश्वर परमात्मा साक्षीरूप है। वह सदा उदित प्रकाशरूप है और एकरस स्थित है नीति आदिक शक्ति भी उससे भिन्न नहीं वे वहीरूप हैं—इससे सर्वदेव ही जानो द्वैत नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेनीति
नृत्यवर्णनंनामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३६॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह एकदेव परमात्मा सन्तों से पूजने योग्य है। वह चिन्मात्र अनुभवआत्मा घटपटादिक सर्व में स्थित है और ब्रह्मा इन्द्रादिक देवता और जीव सबके भीतर बाहर भी वही स्थित है। उस सर्वात्मा शान्तरूप देव का पूजन दो प्रकार से होता है। उस इष्टदेव का पूजन ध्यान है और ध्यान ही पूजन है। जहां जहां मन जावे वहां वहां अलक्षिद्ररूप आत्मा को ध्यान करो। सबका प्रकाशक आत्माही है; चिद्रूप अनुभव से भीतर स्थित है और अहंता से सिद्ध है। वही सबका साररूप है और सबका आश्रयरूप है। उसका जो विराट्रूप है सो सुनो। बाहर अनन्तपारावार से रहित है; परमाकाश उसकी ग्रीवा है; अनन्त पाताल उसके चरण हैं; अनन्तदिशा उसकी भुजा हैं; सर्वप्रकाश उसके शस्त्र हैं; हृदयकोश कोण में स्थित है और ब्रह्माण्ड समूहों को परंपरासे प्रकाशताहै। परमाकाश पार अपाररूप है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता और जीव उसकी रोमावली हैं, त्रिलोकी में जो देहरूपी यन्त्र हैं उनमें इच्छादिक शक्तिरूप सूत्र व्यापा है जिससे सब चेष्टा करते हैं। वह देव एकही है और अनन्त है। सत्तामात्र उसका स्वरूप है, सब जगज्जाल उसका निवृत्त है, काल उसका द्वारपाल है और पर्वतादिक ब्रह्माण्ड जगत् उसकी देहके किसीकोण में स्थित है। उस देवकी चिन्तना करो। उसके सहस्र चरण हैं और सहस्रही नेत्र, शीश और भुजा और भुजाओं के विभूषण हैं। सर्वत्र उसकी नासिका इन्द्रिय है; सर्वत्र रसना इन्द्रिय है, सर्वत्र भावना इन्द्रिय है और सर्व ओर मन है पर सर्व मननकला से अतीत है। सर्व ओर वही शिवरूप सर्वदा सर्वका कर्ता है; सर्व संकल्पों के अर्थका फलदायक है और सर्वभूत के भीतर स्थित और सर्व साधन का सिद्ध करता है। ऐसा देव सबमें सब प्रकार और सर्वदा काल स्थितहै। उसी देव की चिन्तना करो और उसीदेव के ध्यान में सावधान रहो। सदा उसही के

आकार रहना उस देवका बाहरी पूजनहै। अब भीतरका पूजन सुनो। हे ब्रह्मवेताओं में श्रेष्ठ! संवित्मात्र जो देव है सो सदा अनुभव से प्रकाशता है। उसका पूजन दीपक करके नहीं होता और न धूप, पुष्प, दान, लेप और केशरि से होता है। अर्घ्य, पाद्यादिक जो पूजा की सामग्री हैं उनसे भी उस देव का पूजन नहीं होता। उसका पूजन तो क्लेश विना नित्य ही होताहै। हे मुनीश्वर! एक अमृतरूपी जो बोधहै उससे उस देव का सजातीय प्रतीत ध्यान करना उसका परम पूजन है। हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्र देव अनुभवरूप है उसका सर्वदाकाल और सर्व प्रकार पूजन करो; अर्थात् देखते, स्पर्श करते, सूंघते, सुनते, बोलते, देते, लेते, चलते, बैठते और उससे लेकर जो कुछ क्रिया हैं सब प्रत्यक्ष चेतन साक्षी में अर्पण करो और उसीके परायण हो। इस प्रकार आत्मदेव का पूजन करो। हे मुनीश्वर! आत्मदेव का ध्यान करनाही धूप दीप है और सर्वसामग्री पूजन की यही हैं। ध्यानही उस देवको प्रसन्न करता है और उससे परमानन्द प्राप्त होता है और किसीप्रकार से उस देवकी प्राप्ति नहीं होती। हे मुनीश्वर! मूढ़भी इस प्रकार ध्यान से उस ईश्वरकी पूजा करे तो त्रयोदश निमेष में जगत् उदान के फलको पाताहै और सतनिमेष के ध्यानसे प्रभुको पूजे तो अश्वमेधयज्ञ के फल को पावे और केवल ध्यान से आत्मा का एक घड़ी पर्यन्त पूजन करे तो राजसूययज्ञ किये के फल को पावे। जो दो प्रहरपर्यन्त ध्यानकरे तो लक्ष राजसूययज्ञ के फल को पावे और जो दिन पर्यन्त ध्यानकरे तो असंख्य फलपावे। हे मुनीश्वर! यह परम योग है; यही परम क्रिया है और यही परम प्रयोजन है। हे मुनीश्वर! दोनों पूजा मैंने तुमसे कही। जिसको ये परम पूजा प्राप्त होती हैं वह परमपद को प्राप्त होता है; उसको सब देवता नमस्कार करते हैं और सब करके वह पुरुष सुमेरुवत् पूजने योग्य होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेअन्तर्बाह्य पूजावर्णनंनामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३७॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! अब तुम अभ्यन्तर का पूजन सुनो जो सर्वत्र पवित्र करनेवाले को भी पवित्र करता है और सब तम और अज्ञान का नाश करता है। वह आत्मपूजन मैं तुमसे कहता हूं जो सर्व प्रकार से सर्वदा कालमें उस देव का पूजन होता है और व्यवधान कभी नहीं पड़ता; चलते, बैठते, जागते, सोते सर्व व्यवहार में नित्य ध्यान में रहता है। हे मुनीश्वर! इस संसार में संवित्रूप चिन्मात्र नित्य स्थित है उसका पूजन करो। जो सर्वप्रत्यय का कर्ता और सदा अनुभव से प्रकाशता है उसका आपसे आप पूजन करो। उठते, चलते, खाते, पीते जो कुछ बाहर के अर्थ त्याग, ग्रहण और भोग हैं सबको करतेभी उस देवकी पूजा करो। हे मुनीश्वर! शरीरमें

शिवलिंग चिह्न से रहित बोधरूप देव है, यथाप्राप्त में समरहना उस देव का पूजन है। यथाप्राप्ति के समभाव में स्नान करके शुद्ध होकर बोधरूप लिङ्ग का पूजन करो। जो कुछ प्राप्तहो उसमें रागद्वेषसे रहित होना और सर्वदा साक्षीरूप अनुभव में स्थित रहना यही उसका पूजन है। हे मुनीश्वर! सूर्यके भुवन आकाश में यही सूर्य होकर प्रकाशता है और चन्द्रमा के भुवन में चन्द्रमा होकर स्थित होता है। इनसे आदि लेकर जो पदार्थ के समूह हैं जैसी २ भावना से उनमें फुरना हुआहै वही रूप होकर वह देव स्थित है। हे मुनीश्वर! जो नित्य,शुद्ध, बोधरूप और अद्वैत है उसको देखना और किसीमें वृत्ति न लगाना यही उस देव का पूजन है। प्राण अपानरूपी रथ पर आरूढ़ हुआ जो हृदय में स्थित है उसका ज्ञान ही पूजन है। वही सब कर्म कर्ता है; सब भोगों का भोक्ता और सर्वशब्द का स्मरण करनेवाला और भागवतरूप है और सबकी भावना करनेवाला परमप्रकाशरूप है। ऐसा जो संवित् तत्त्व है उसको सर्वज्ञ जानकर चिन्तना करना वही उसका पूजन है। वह देव सकल निष्कलदेह में स्थित है तौभी आकाशवत् निर्मल है। वह जाता भी है और नहीं जाता। प्राणरूपी आलय में प्रकाशता है, हृदय, कण्ठ, तालु, जिह्वा, नासिका और पीठमें व्यापक है शब्द आदिक विषय को करता और मनको प्रेरता है। जैसे तिलमें तेल आश्रयभूत है तैसेही आत्मा सबमें आश्रयभूत है। वह कलनारूपी कलङ्क से रहित है और कलनागण से संयुक्त भी है। सम्पूर्ण देहों में वही एकदेव व्याप रहाहै परन्तु प्रत्यक्ष हृदयमें जो होता है सो निर्मल चिन्मात्र प्रकाशरूप है और कलनारूपी कलङ्क से रहित सदा प्रत्यक्ष है और अपने आपही से अनुभव होताहै। सर्वदा सर्वपदार्थों का प्रकाशक प्रत्यक्ष चेतन आत्मतत्त्व जो अपने आपमें स्थित है सो अपने फुरनेसे शीघ्रही द्वैत की नाईं होजाता है। हे मुनीश्वर! जो कुछ साकाररूप जगत् दृष्ट आता है सो सब विराट् आत्माहै। इससे आपको विराट्की भावना करो कि,हाथ, पांव, नख, केश यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरा देह है; मैं हीं प्रकाशरूप एक देव हूं, नीति इच्छादिक मेरी शक्ति है और सब मेरी उपासना करते हैं। जैसे स्त्री श्रेष्ठ भर्तारकी सेवा करती है तैसेही शक्ति मेरी उपासना करती है; मन मेरा द्वारपालहै जो त्रिलोकी का निवेदन करनेवालाहै; चिन्तन मेरी आनेवाली प्रतिहारी है, नाना प्रकार के ज्ञान मेरे अङ्गके भूषण हैं; कर्मइन्द्रियां मेरे द्वार हैं और ज्ञानइन्द्रियां मेरे गण हैं। ऐसा मैं एक अनन्त आत्मा अखण्ड-रूप भेदसे रहित अपने आपमें स्थित सबमें परिपूर्ण हूं। हे मुनीश्वर! इसी भावना से जो एक देव की पूजा करता है वह परमात्मदेव को प्राप्तहोताहै। दीनता आदिक उसके क्लेश सब नष्ट होजाते हैं, अनिष्टकी प्राप्ति में उसे शोक नहीं उपजता और इष्ट की प्राप्ति में हर्ष नहीं उपजता; न तोषवान् होता है और न कोपवान् होताहै; विषय की

प्राप्ति से न तृप्त मानता है और न इनके वियोग से खेद मानता है; और न अप्राप्त की वाञ्छा करता है, न प्राप्त के त्याग की इच्छा करता है; सर्वपदार्थ में समभाव रहता है। ऐसा पुरुष उसदेव का परम उपासक है। ग्रहण त्याग से रहित सब में तुल्य रहना और भेदभाव को प्राप्त न होना उस देव का उत्तम अर्चन है। हे मुनीश्वर! चेतनतत्त्व देव मैंने तुमसे कहा है जो इसी देह में स्थित है। जो वस्तु प्राप्त हो उससे अर्चन करके उसीके आगे रखना; सबका साक्षी आत्मा को देखना और किसीसे खेदवान् न होना और उसमें अहंप्रतीति रखकर भिन्नदृश्य की भावना न करना; यही उसदेव की अर्चना है। हे मुनीश्वर! जो कुछ प्राप्त हो उसमें यत्न विना तुल्य रहना जो भक्ष्य, लेह्य, चोष्य भोजन प्राप्त हो उसे देव के आगे रख के ग्रहण त्याग की बुद्धि उसमें न करना, यह उस देवका पूजन है। सब पदार्थों की प्राप्ति में देवकी पूजा करने से अनिष्टभी इष्ट होजाता है। मृत्यु आवे तो देव की पूजा, जन्म आवे तब देव की पूजा, दरिद्र आवे तब देवकी पूजा, राग प्राप्त हो तो देव की पूजा और नाना प्रकार की विचित्र चेष्टा करनी सो सब उस देव के आगे पुष्प हैं; रागद्वेषमें सम रहना ही उस देव की पूजा है। सन्तों के हृदय की रहनेवाली जो मैत्री है कि,सम्पूर्ण विश्वका मित्र होना उससेभी उसदेव का पूजन है और भोग, त्याग, राग से जो कुछ प्राप्त हो उससे उस देव का पूजन करो। जो नष्ट हुआ सो हुआ और जो प्राप्त हुआ सो हुआ दोनों में निर्विकार रहना इससे उस देवका अर्चन करो। ये भोग आपातरमणीय हैं, होते भी हैं और नष्ट भी होजाते हैं इनकी इच्छा न करना; सदा सन्तुष्ट रहना जैसे आनि प्राप्त हो उसमें राग द्वेषसे रहित होना सो उस देवका अर्चन है। हे मुनीश्वर! जो कुछ प्रारब्ध से प्राप्त हो उससे आत्मा का अर्चन करो और इच्छा अनिच्छा को त्यागकर जो प्राप्त हो उससे उस देवका अर्चन करो। हे मुनीश्वर! ज्ञानवान् न किसी की इच्छा करता है और न त्याग करता है जो अनिच्छित प्राप्त हो उसको भोगता है। जैसे समुद्र में नदी प्राप्त होती हैं और वह उससे न कुछ हर्ष मानता है न शोक करता है तैसेही ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष से रहित यथा-प्राप्तको भोगता है सोही उसदेव का पूजन है। देश, काल, क्रिया, शुभ अथवा अशुभ प्राप्त हो उसमें संसरण विकार को प्राप्त न होना उसदेव की अर्चना है। यदि द्रव्य अनर्थ रूप हो तौभी समरस से मिलाहुआ अमृत होजाता है। जैसे षट्रस स्वाद शक्कर से मिलेहुये मधुर होजाते हैं तैसेही अनर्थरूपी रस समरस से मिले हुये अमृत होजाते हैं, खेद नहीं करते और अनन्तरूप होजाते हैं। चन्द्रमा की नाईं सब भावना अमृतमय होजाती है। जैसे आकाश निर्लेप है तैसेही समताभाव करके चित्त राग द्वेषसे रहित निर्मल होजाता है। द्रष्टाको दृश्य से मिला न देखना साक्षीरूपरहनाही

देव की अर्चना है। जैसे पत्थर की शिला निस्पन्द होतीहै तैसेही विकल्प से रहित चित्त अचल होता है; सोही देव की अर्चना है । हे मुनीश्वर ! भीतर से आकाशवत् असंग रहना और बाहर से प्रकृतिआचार में रहना; किसीका संग हृदय में स्पर्श न करना और सदा समभाव विज्ञान से पूर्ण रहना ही उस देव की उपासना होती है। जिसके हृदयरूपी आकाश से अज्ञानरूपी मेघ नष्ट होगया है उसको स्वप्न में भी विकार नहीं प्राप्त होता और जिसके हृदयरूपी आकाश से अहंतारूपी कुहिरा शान्त होगया है वह शरत्कालके आकाशवत् उज्ज्वल होताहै। हे मुनीश्वर ! जिसको समभाव प्राप्त हुआ है और उससे उसने देवको पाया है वह पुरुष ऐसा होजाता है जैसा नूतनबालक राग द्वेष से रहित होताहै। जीवरूपी चेतना को उल्लंघकर परम चेतनतत्त्व को प्राप्त होता है और सकल इच्छा और सुख दुःख भ्रम से मुक्तशरीर का नायक प्रतिष्ठित होता है सोही देवअर्चना है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदेवअर्चनाविधानंनामाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३८ ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! जैसी कामना हो और जो कुछ आरम्भ करो अथवा न करो सो अपने आपसे चिन्मात्र संवित्तत्त्व की अर्चना करो इससे वह देव प्रसन्न होताहै और जब देव प्रसन्न हुआ तब प्रकट होता है। जब उसको पाया और स्थित हुआ तब राग द्वेषादिक शब्दों का अर्थ नहीं पायाजाता। जैसे अग्नि में बर्फ का कण का नहीं पायाजाता तैसेही फिर उसमें राग द्वेषादिक नहीं पायाजाता। इससे उस देव की अर्चना करनी योग्य है। यदि राज्य अथवा दरिद्र व सुख दुःख प्राप्त हो उसमें सम रहना ही देवअर्चना करनी है। हे मुनीश्वर ! शुद्धचिन्मात्र से प्रमादी न होना इसी का नाम अर्चना है। जो कुछ घटपट आदिक जगत् भासता है सो सब आत्मरूप है उससे भिन्न कुछ नहीं। वह आत्मा शिव शान्तिरूप अनाभास है और एकही प्रकाशरूप है। सम्पूर्ण जगत् प्रतीतमात्र है और आत्मा से भिन्न कुछ द्वैतवस्तु आभास नहीं। सर्वात्मारूप अद्वैततत्त्व जब भासता है तब उसमें प्राप्त हुआ जानता है कि, बड़ा आश्चर्य है; घटपटादिक सब वहीरूप है और तो कुछ नहीं। हे मुनीश्वर ! यह सब सर्वात्मा अनन्तरूप शिवतत्त्व है, जिसको ऐसे निश्चय प्राप्त हुआ है उसने देव की पूजा जानी है । घटपट आदिक जो पदार्थ हैं और पूज्य-पूजा-पूजकभाव सो सब ब्रह्मरूप है; निर्मलदेव आत्मा में कुछ भेद भाव नहीं है। हे मुनीश्वर ! आत्मदेव सर्वशक्त और अनन्तरूपहै जगत् में उससे भिन्न कुछ नहीं। निर्मलप्रकाश संवित्रूप आत्मा स्थित है; हमको तो ईश्वरदेव से भिन्न कुछ नहीं भासता और सर्वत्र, सर्वप्रकार वही सर्वात्मा सम्पूर्ण दृष्ट आताहै। जिनको देश काल के परिच्छेद सहित ईश्वर भासताहै वे हमारे उपदेश के पात्र नहीं; वे ज्ञानबन्धनीचहैं।

उनकी दृष्टिको त्यागकर मेरी दृष्टि का आश्रय ले तो स्वस्थ, वीतराग और निरामय हो और यथाप्रारब्ध जो कुछ सुख दुःख आन प्राप्त हो खेदसे रहित होकर उस देव का अर्चन करे तब शान्ति प्राप्त हो। हे मुनीश्वर! उस देव की सबप्रकार सर्वात्मा करके भावना करो–यही उसका पूजन है। वृत्तिका सदा अनुभवरूप में स्थित रहना और यथाप्राप्त में खेद से रहित बिचरना यही उस देव की अर्चना है। जैसे स्फटिक के मन्दिर में प्रतिबिम्ब भासते हैं सो और कुछ नहीं निष्कलङ्क स्फटिकही हैं, तैसेही सर्व ओरसे रहित औरजन्मादिक दुःख से रहित निष्कलङ्क आत्मा है उसकी प्राप्ति से तेरेमें जन्मादिक कलङ्क दुःख कुछ न रहेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेवपूजाविचारो-नामैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ३९॥

वशिष्ठजी बोले, हे देव! शिव किसको कहतेहैं और ब्रह्म, आत्म, परमात्म, तत्सत्, निष्किञ्चन, शून्य, विज्ञान इत्यादिक किसको कहते हैं और ये भेदसंज्ञा किस निमित्त हुई हैं कृपा करके कहो? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जब सबका अभाव होता है तब अनादि अनन्त अनाभास सत्तामात्र शेष रहता है जो इन्द्रियोंका विषय नहीं उसको निष्किञ्चन कहते हैं: फिर मैंने पूछा, हे ईश्वर! जो इन्द्रियां, बुद्धि आदिक का विषय नहीं उसको क्योंकर पासके हैं? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जो मुमुक्षु हैं और जिनको वेद के आश्रयसंयुक्त सात्त्विकीवृत्ति प्राप्त हुई है उनको सात्त्विकीरूप जो गुरुशास्त्रनाम्नी विद्या प्राप्त होती है उससे अविद्या का भाग नष्ट होजाता है और आत्मतत्त्व प्रकाश होआता है। जैसे साबुन से धोबी वस्त्र का मैल उतारता है तैसेही गुरु और शास्त्र अविद्या को दूर करते हैं। जब कुछकाल में अविद्या नष्ट होती है तब अपना आपही दिखता है। हे मुनीश्वर! जब गुरु और शास्त्रों का मिल कर विचार प्राप्त होता है, तब स्वरूप की प्राप्ति होती है; द्वैतभ्रम मिट जाता है और सर्व आत्मा ही प्रकाशता है और जब विचार द्वारा आत्मतत्त्व निश्चय हुआ कि, सर्व आत्मा ही है उससे कुछ भिन्न नहीं तो अविद्या जाती रहती है। हे मुनीश्वर! आत्मा की प्राप्ति में गुरु और शास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं क्योंकि, जिनके क्षय हुयेसे वस्तु पाइये उनके विद्यमान हुये कैसे पाइये? इन्द्रियों के समूह का नाम गुरु है और ब्रह्म सर्व इन्द्रियों से अतीत है; इनसे कैसे पाइये? अकारण है परन्तु कारण भी हैं क्योंकि; गुरु और शास्त्र के क्रम से ज्ञान की सिद्धता होती है और गुरु और शास्त्र विना बोध की सिद्धता नहीं होती। आत्मा निर्देश और अदृश्य है तौभी गुरु और शास्त्र से मिलता है और गुरु और शास्त्र से भी मिलता नहीं अपने आपही से आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है। जैसे अन्धकार में पदार्थ हो और दीपकके प्रकाश से

दीखे तो दीपक से नहीं पाया अपने आपसे पाया है; तैसेही गुरु और शास्त्र भी है। यदि दीपक हो और नेत्र न हों तब कैसे पाइये और नेत्र हों और दीपक न हो तौ भी नहीं पायाजाता जब दोनों हों तब पदार्थ पायाजाता है; तैसेही गुरु और शास्त्र भी हो और अपना पुरुषार्थ और तीक्ष्णबुद्धि भी हो तब आत्मतत्त्व मिलताहै अन्यथा नहीं पायाजाता। जब गुरु, शास्त्र और शिष्य की शुद्धबुद्धि तीनों इकट्ठे मिलते हैं तब संसार के सुख दुःख दूर होतेहैं और आत्मपद की प्राप्ति होती है। जब गुरु और शास्त्र आवरण को दूर करदेते हैं तब आपसे आपही आत्मपद मिलता है। जैसे जब वायु बादल को दूर करती है तब नेत्रों से सूर्य दीखता है। अब नाम के भेद सुनो। जब बोध के वश से कर्म और बुद्धि इन्द्रियां क्षय होजाती हैं उसके पीछे जो शेष रहता है उसका नाम संवित्तत्त्व आत्मसत्ता आदिक है। जहां ये सम्पूर्ण नहीं और इनकी वृत्ति भी नहीं उसके पीछे जो सत्ता शेष रहती है सो आकाश से भी सूक्ष्म और निर्मल अनन्त परमशून्यरूपहै—जहां शून्यका भी अभावहै। हे मुनीश्वर! जो शान्तरूप मुमुक्षु मनन कलना से संयुक्त हैं उनको जीवन्मुक्ति पद के बोध के निमित्त शास्त्र मोक्ष उपाय, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, लोकपाल, पण्डित, पुराण, वेद, शास्त्र और सिद्धान्त रचे हैं और उनमें शास्त्रों ने चेतन, ब्रह्म, शिव, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, सत्, चित, आनन्द आदिक भिन्न २ अनेक संज्ञा कही हैं पर ज्ञानी को कुछ भेद नहीं। हे मुनीश्वर! ऐसा जो देव है उसका ज्ञानवान् इसप्रकार अर्चन करते हैं। और जिसपद के हम आदिक टहलुये हैं उस परमपद को वे प्राप्त होते हैं। फिर मैंने पूछा, हे भगवन्! यह सब जगत् अविद्यमान है और विद्यमान की नाईं स्थित है सो कैसे हुआ है। सम सत् कहने को तुमहीं योग्य हो? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जो ब्रह्म आदिक नाम से कहाता है वह केवल शुद्ध संवित्मात्र है और आकाशसे भी सूक्ष्म है। उसके आगे आकाश भी ऐसा स्थूल है जैसा अणु के आगे सुमेरु स्थूल होताहै। उसमें जब वेदनाशक्ति आभास होकर फुरती है तब उसका नाम चेतन होता है। फिर जब अहन्ताभाव को प्राप्त हुआ—जैसे स्वप्ने में पुरुष आपको हाथी देखने लगे तैसे आपको अहं माननेलगा, फिर देशकाल आकाश आदिक देखनेलगा तब चेतन कला जीव अवस्था को प्राप्त हुई और वासना करनेवाली हुई; जब जीवभाव हुआ तब बुद्धि निश्चयात्मक होकर स्थित हुई और शब्द और क्रिया-ज्ञान संयुक्त हुई और जब एक से मिलकर शीघ्रही कल्पित हुये तब मन हुआ जो संकल्परूपी भाषा का बीजहै। तब अन्तवाहक शरीर में आत्मस्वरूप होकर ब्रह्मसत्ता स्थित हुई। इस प्रकार यह उत्पन्न हुई है। फिर वायुसत्ता स्पन्द हुई जिससे स्पर्शसत्ता त्वचा प्रकट हुई; फिर तेजसत्ता हुई जिससे प्रकाशसत्ता हुई और प्रकाश से नेत्रसत्ता

प्रकट हुई; फिर जलसत्ता हुई जिससे स्वाद-रससत्ता हुई और उससे जिह्वा प्रकट हुई; फिर गन्धसत्ता से भूमि, भूमिसे घ्राणसत्ता और उससे पिण्डसत्ता प्रकट हुई। फिर देश-सत्ता कालसत्ता और सर्वसत्ता हुई जिनको इकट्ठा करके आत्मसत्ता फुरी। जैसे बीज, पत्र, फूल फलादिक के आश्रय होता है तैसेही इस पुर्यष्टका को जानो। यही अन्त-वाहक देह है इसीके आश्रय ब्रह्मसत्ता हुई। वास्तवमें कुछ उपजा नहीं केवल परमात्म-सत्ता अपने आप में फुरती है। जैसे जल में जल फुरताहै तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें फुरती है। हे मुनीश्वर! संवित् में जो संवेदन पृथक्रूप होकर फुरे उसे निस्पन्द करके जब स्वरूप को जाने तब वह नष्ट होजाती है। जैसे संकल्पका रचा नगर संकल्प के अभाव हुये अभाव होजाताहै; तैसेही आत्मा के ज्ञान से संवेदनका अभाव होजाता है। हे मुनीश्वर! संवेदन तबतक भासता है जबतक उसको जाना नहीं; जब जानता है तब संवेदन का अभाव होजाताहै और संवित्में लीन होजाती है; भिन्नसत्ता इसकी कुछ नहीं रहती। हे मुनीश्वर! जो प्रथम अणु तन्मात्रा थी सो भावना के वश से स्थूल देह को प्राप्त हुई और स्थूलदेह होकर भासने लगी; आगे जैसे २ देशकाल पदार्थ की भावना होती गई तैसे २ भासनेलगी और जैसे गन्धर्व नगर और स्वप्नपुर भासता है तैसेही भावना के वश से ये पदार्थ भासनेलगे हैं मैंने पूछा, हे भगवन्! गन्धर्बनगर और स्वप्नपुर के समान इसको कैसे कहतेहो? यह जगत् तो प्रत्यक्ष दीखताहै? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! संसार को दुःख वासना के वशसे दीखता है कि, अविद्यमान में स्वरूप के प्रमाद करके विद्यमान बुद्धि हुई है और जगत् के पदार्थों का सत् जानकर जो वासना फुरती है उससे दुःख होता है। हे मुनीश्वर! यह जगत् अविद्यमान है। जैसे मृगतृष्णा का जल असत्य होता है तैसेही यह जगत् असत्य है उसमें वासना, वासक और वासना करने योग्य तीनों वृथा हैं जैसे मृगतृष्णा का जल पान करके कोई तृप्त नहीं होता क्योंकि, जलही असत् है; तैसेही यह जगत् ही असत् है इसके पदार्थों की वासना करनी वृथा है। ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त सब जगत् मिथ्यारूप है। वासना, वासक और वासना करने योग्य पदार्थों के अभाव हुये केवल आत्मतत्त्व रहता है और सब भ्रम शान्त होजाता है। हे मुनीश्वर! यह जगत् भ्रममात्र है-वास्तव में कुछ नहीं। जैसे बालक को अज्ञान से अपनी परछाहीं में वैताल भासता है और जब विचार करके देखे तब वैताल का अभाव होजाता है तैसेही अज्ञान से यह जगत् भासताहै और आत्मविचार से इसका अभाव होजाता है। जैसे मृगतृष्णा की नदी भासती है और आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही आत्मा में अज्ञान से देह भासता है। जिसकी बुद्धि देहादिक में स्थिर है वह हमारे उपदेश के योग्य नहीं है। जो विचारवान् है उसको उपदेश करना

योग्य है और जो मूर्ख भ्रमी और असत्वादी सत्कर्म से रहित अनार्य है उसको ज्ञानवान् उपदेश न करे । जिनमें विचार, वैराग्य, कोमलता और शुभ आचार हों उनको उपदेश करना योग्य है और जो इन गुणोंसे रहित हो उनको उपदेश करना ऐसे होताहै जैसे कोई महासुन्दर और सुवर्णवत् कांतिवाली कन्या को कल्पितपुरुष को विवाह देनेकी इच्छा करे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नामचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे भगवन्! वह जीव जो आदि स्वर्ग से उत्पन्न हुआ और अपने साथ देहभ्रम देखने लगा उसके अनन्तर वह कैसे स्थित हुआ? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह जीव स्वप्न की नाईं सर्वगत चिद्घन आत्मा के आश्रय उपजकर अपने शरीर को देखताभया। हे मुनीश्वर! आदि जो जीव फुरकर प्रमाद को न प्राप्त हुआ और अपने स्वरूपही में अहं प्रत्यय रहा इसकारण ईश्वर होकर स्थितहुआ। उसको यह निश्चय रहा कि मैं सनातन, नित्य, शुद्ध, परमानन्द और अव्यक्तरूप परमपुरुष हूं आत्मा की अपेक्षा से उसको जीव कहाहै और सृष्टि जगत् की अपेक्षा करके उसको ईश्वर कहा। हे मुनीश्वर! वह जो आदि जीव है सो कभी विष्णुरूप होकर ब्रह्मा को नाभिकमल से उत्पन्न करता है किसी सृष्टि में प्रथम ब्रह्मा हुआ है और विष्णु और रुद्र उससे हुये हैं; किसीसृष्टिमें प्रथम रुद्र हुआ उससे विष्णु और ब्रह्मा हुये। चेतन आकाश में जैसा २ संकल्प फुरा है तैसाही तैसा होकर स्थित हुआ है । आदिजीव ने उपजकर जिस जिस प्रकार का संकल्प किया है तैसा २ होकर स्थित हुआ है वास्तव में सब असत्रूप है और अज्ञान भ्रम करके हुआ है । जैसे परछाहीं में वैताल होता है तैसेही अज्ञान करके सत्रूपहो भासताहै आदि पुरुषसे लेकर जो सृष्टिहै सो परमाकाशके एक निमेष में हुई है और उन्मेषमें लय होजातीहै। एकनिमेषके प्रमादसे कल्पके समूह व्यतीत होजाते हैं और परमाणु परमाणुमें सृष्टि फुरतीहै उनमें कल्प और महाकल्प भासतेहैं। कई सृष्टि परस्पर दिखती हैं और कई अन्योन्य अदृश्यरूप हैं। इसीप्रकार सृष्टि उसके स्पन्दकला में फुरी है और चमत्कार होता है और जब स्पन्दकला स्वरूप की ओर आती है तब लीन होजाती है। जैसे स्वप्ने का पर्वत जागेसे लीन हो जाताहै तैसेही जाग्रत्की सृष्टि अफुर हुये लीन होजाती है। हे मुनीश्वर! जीवजीवप्रति अपनी२ सृष्टि हैं उन सृष्टियों को कोई देशकाल रोंक नहीं सक्ता क्योंकि, वे अपने २ संकल्प में स्थित हैं और आत्मा का चमत्कार है। जैसा फुरना फुरताहै तैसा चमत्कार भासताहै। हे मुनीश्वर! न कुछ उपजाहै, न कुछ नाश होताहै; स्वतः चेतनतत्त्व अपने आपमें चमकता है। जैसे स्वप्ननगर उपजकर

नष्ट होजाताहै और संकल्प का पहाड़ उपजकर मिटजाता है; तैसेही जगत् उपजकर नष्ट होजाताहै। जैसे स्वप्न और संकल्पके पहाड़को कोई रोंक नहीं सक्ता तैसेही अपनी२ सृष्टिको देश काल रोंक नहीं सक्ता क्योंकि और ठौरमें इनका सद्भाव नहीं। इससे यह जगत् अपने २ कालमें सत्रूप है, आत्मा में सद्भाव नहीं–संकल्परूप है। हे मुनीश्वर! जैसे आदितत्त्व से जीव ईश्वर फुरे हैं तैसेही कर्म फुरे हैं। रुद्रसे लेकर वृक्ष पर्यन्त सब एक क्षण में उसी तत्त्वसे फुरआये हैं। सुमेरुआदिक भी अपने स्थित में रोंकते हैं अन्य अणु को नहीं रोंकसक्के क्योंकि, वहां हैही नहीं। इससे आत्मा में सृष्टि आभासरूप है। हे मुनीश्वर! इस प्रकार सब जगत् मायामात्र है और भावना से भासता है; जब आत्मा का अभ्यास होता है; तब भेदकल्पना मिटजाती है और केवल उपशमरूप शिवतत्त्व भासता है। हे मुनीश्वर! निमेष का जो समभाग है उसके अर्द्धभाग प्रमाद होनेसे नाना प्रकार का जगत् हो भासता है। सत् असत्रूप जगत् मनरूपी विश्वकर्मा बनाता है। आत्मतत्त्व न दूर है, न निकट है, न नीचे है, न ऊंचे है, न पूर्व में है और न पश्चिम में है सत् असत् के मध्य अनुभवरूप सर्व का ज्ञाता है। उसमें प्रत्यक्षआदिक प्रमाण नहीं कर सक्के–जैसे जलमें अग्नि नहीं निकलती। हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने पूछा था सो मैंने कहा उसमें चित्त के लगाने से तुम्हारा कल्याण होगा। इतना कह सदाशिव बोले; कि अब हम अपने वाञ्छित स्थान को जाते हैं; चलो पार्वती अपने स्थानको चलें। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार ईश्वर ने कहा तब मैंने अर्घ्य पाद्य से उनका पूजन किया और ईश्वर पार्वती और गणों को लेकर आकाशमार्ग को चले। जबतक मुझको दृष्टिआते रहे तबतक मैं उनकी ओर देखतारहा फिर अपने कुश के स्थानपर आन बैठा और जो कुछ ईश्वर ने उपदेश किया था वह मैं अपनी सुध बुध ले विचारने लगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थविचारोनामैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ ईश्वरने मुझसे कहा सो मैं आपभी जानता था और तुमभी जानते हो। यह जगत् भी असत् है और देखनेवाला भी असत् है; उस मायारूप जगत् में तुमसे सत् क्या कहूं और असत् क्या कहूं? जैसे जल में द्रवता होती है तैसेही आत्मा में जगत् है और जैसे पवन में स्पन्द और आकाश में शून्यता होती है तैसेही आत्मा में जगत् है। हे रामजी! जो कुछ पतित प्रवाह से प्राप्त होता है उसीमें मैं देवअर्चन करता हूं। इस क्रम से मैं निर्वासनिक हूं और जगत् की क्रियामें भी निर्दुःख होकर चेष्टा करता हूं; व्यवहार करता दृष्टि आता हूं तो भी सदा शान्तिरूप हूं और यथाप्राप्त आचाररूपी फूल से आत्मदेव की अर्चना करताहूं–खेद भेद मुझको कोई नहीं होता है। हे रामजी! विषय और इन्द्रियों का

सम्बन्ध सबजीवों को तुल्य है पर जो ज्ञानवान् हैं वे सावधान रहते हैं और जो कुछ देखते, सुनते, बोलते, खाते, सूंघते और स्पर्श करते हैं वह सब आत्मतत्त्व में अर्चन करते हैं और आत्मा से भिन्न नहीं जानते। अज्ञानियों को कर्तृत्व-भोक्तृत्व का अभिमान होता है और उसमें वे दुःखी होते हैं। हे रामजी! तुमभी ऐसी दृष्टिको आश्रय करके संसाररूपी वन में निःसंग होकर बिचरो तो तुमको कुछ खेद न होगा। जिसकी वृत्ति इस प्रकार समान होगई है उसको बड़ा कष्ट प्राप्त हो व धन बांधवों का वियोग हो तौ भी उस को खेद नहीं होता। यह जो दृष्टि मैंने तुमसे कहीहै जब उसका आश्रय करोगे तब तुमको कोई दुःख न होगा। हे रामजी! सुख, दुःख, धन और बान्धवों का वियोग ये सब पदार्थ अनित्य हैं ये आतेभी हैं और जातेभी हैं इन को आगमापायी जानकर बिचरो। यह संसार विषमरूप है, एकरस कदाचित् नहीं रहता; इसको स्थित जानकर दुःखी न होना। हे रामजी! पदार्थ और काल जैसे जावे तैसे जावे और जैसे सुख दुःख आवे तैसे आवे ये सब आगमापायी पदार्थ हैं; आतेभी हैं और जातेभी हैं। इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट की निवृत्ति में हर्षवान् न होना और अनिष्ट की प्राप्ति और इष्ट के वियोग से खेदवान् न होना; जैसे आवे तैसे जावे, जैसे जावे तैसे आवे; जिसको आना है वह आवेगा और जिसको जाना है वह जावेगा; ये सुख दुःख प्रवाहरूप हैं इनमें आस्था करके तपायमान न होना। हे रामजी! यह सब जगत् तुमही हो और तुमही जगत्रूप हो और चिन्मात्र विस्तृत आकार भी तुमही हो; यदि सब तुमही हो तो हर्ष शोक किस निमित्त करते हो? इसी दृष्टि का आश्रय करके जगत् में सुषुप्त होकर बिचरो तो तुरीयातीत अवस्था को प्राप्त होगे जो सम प्रकाशरूप है। हे रामजी! जो कुछ मुझे तुम से कहना था सो कहा है आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। पीछे तुमने पूछाथा कि अनन्तरूप ब्रह्म में कलङ्क कैसे प्राप्तहुआ है? सो अब फिर प्रश्न करो कि, मैं उत्तर दूं। रामजी ने कहा, हे ब्रह्मन्! अब मुझको कुछ संशय नहीं रहा; मेरे सब संशय नष्ट होगये हैं और जो कुछ जानना था सो मैंने जाना है। अब मैं परम अकृत्रिम तृप्तता को प्राप्त हुआ हूं। हे मुनीश्वर! आत्मा में न मैल है, न द्वैत है और न एक आदि कोई कल्पना है। पहले मुझको अज्ञानता थी तब मैंने पूछाथा; अब तुम्हारे वचनों से मेरी अज्ञानता नष्टहुई है इससे कुछ कलङ्क नहीं भासता। आत्मा में न जन्म है, न मरण है सर्व ब्रह्मही है। हे मुनीश्वर! प्रश्न संशय से उपजता है सो संशय मेरा नष्ट होगया है। जैसे यन्त्री की पुतली हिलाने से रहित अचल होती है तैसेही मैं संशयसे रहित अचल स्थित हूं और सर्व सारों का सार मुझको प्राप्त हुआ है। जैसे सुमेरु अचल होता है तैसेही मैं अचल हूं और कोई क्षोभ

मुझको नहीं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मुझको त्यागने योग्य हो और ऐसा भी कोई पदार्थ नहीं जो ग्रहण करने योग्य हो, न किसी पदार्थ की मुझको इच्छा है और न अनिच्छाहै मैं शांतरूप स्थित हूं; न स्वर्ग की मुझको इच्छा है न नरक में द्वेष है; सर्व ब्रह्मरूप मुझको भासता है और मन्दराचल पर्वत की नाईं आत्मतत्त्व में स्थितहूं। हे मुनीश्वर! जिसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि होतीहै और कलनाकाल हृदय में स्थित होतीहै वह किसीको ग्रहण करता है; किसीको त्याग करताहै और दीनता को प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! यह संसार महासमुद्ररूपहै; उसमें राग द्वेषरूपी कलोलें हैं और शुभ अशुभरूपी मच्छ रहते हैं। ऐसे भयानक संसारसमुद्र से अब मैं आपके प्रसाद से तरगया हूं और सब सम्पदा के अन्त को प्राप्त होकर मेरे सब दुःख नष्ट होगये हैं। सबके सार को प्राप्त होकर मैं पूर्ण आत्मा हूं और अदीन पद और परम शान्त अभेदसत्ता को प्राप्त हुआ हूं। आशारूपी हाथी को मैंने सिंह बनकर मारा है अब मुझको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। मेरे सब विकल्पों के जाल गलगये हैं, इच्छादिक विकार नष्ट होगये हैं और दीनता जातीरही है। तीनों जगत् में मेरी जय है और मैं सदा उदितरूप हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्रान्तिआगमनंनाम
द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो केवल देह इन्द्रियों से करता है और मन से नहीं करता वह जो कुछ करता है सो कुछ नहीं करता। जो कुछ इन्द्रियोंसे इष्ट प्राप्त होताहै उससे क्षणमात्र सुख प्राप्त होता है; उस क्षण की प्रसन्नता में जो बन्धवान् होताहै वह बालकवत् मूर्ख है। जो ज्ञानवान् है वह उसमें बन्धवान् नहीं होता। हे रामजी! वाञ्छाही इसको दुःखी करती है। जो सुन्दर विषयोंकी वाञ्छा करताहै उसे जब यत्न से उनकी प्राप्ति होतीहै तो क्षणभर सुख होताहै और जब वियोग होताहै तब दुःख देतेहैं। इस कारण इनकी वाञ्छा त्यागनाही योग्य है। इनकी वाञ्छा तब होतीहै जब स्वरूपका अज्ञान होताहै औ देहादिकमें भाव होता है जब देहादिक में अहंभाव होताहै तब अनेक अनर्थकी प्राप्ति होतीहै; इससे हे रामजी! ज्ञानरूपी पहाड़ पर चढ़ेरहना और अहन्तारूपी गढ़े में न गिरना। हे रामजी! आत्मज्ञानरूपी सुमेरु पर्वत पर चढ़कर फिर अहन्ता अभिमान करके गढ़े में गिरना बड़ी मूर्खताहै। जब दृश्यभाव को त्यागोगे तब अपने स्वभावसत्ताको प्राप्त होगे, जो सम और शान्तरूपहै और जिससे विकल्पजाल सब मिटजावेगा, समुद्रवत् पूर्ण होगे और द्वैतरूप न फुरेगा। हे रामजी! जब हृदय में विषय को विष जाने तब मन भी निरस होजाता है। और चित्त निस्सङ्ग होता है। वास्तवमें देखो तो सबमें सत्ता समानरूप ब्रह्म चिद्घन स्थित है पर द्वैतस्वरूपके

प्रमाद से नहीं भासता । हे रामजी ! आत्मा का अज्ञान ही बन्धनरूप है और आत्मा का बोध मुक्तरूप है; इससे बल करके आपको आपही जगाओ तब इस बन्धन से मुक्त होगे । हे रामजी ! जिसमें विषय का स्वाद नहीं और जिसमें उनका अनुभव होता है वह तत्त्व आकाशवत् निर्मलसत्ता वासना से रहित है । वासना से रहित होकर जो पुरुष कुछ क्रिया करता है वह विकार को नहीं प्राप्त होता । यद्यपि अनेक क्षोभ आनि प्राप्त हों तौभी उसको विकार कुछ नहीं होता । ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ये तीनों आत्मरूप भासते हैं; जब ऐसे जाने तब किसीका भय नहीं रहता । चित्त के फुरने से जगत् उत्पन्न होता है और चित्तके अफुर हुये लीन होजाता है । जब वासना सहित प्राण उदय होते हैं तब जगत् उदय होता है और जब वासना सहित प्राण लीन होते हैं तब जगत् भी लीन होता है । अभ्यास करके वासना और प्राणों को स्थित करो । जब मूर्खता उदय होती है तब कर्म उदय होते हैं और मूर्खता के लीन हुये कर्म भी लीन होते हैं; इससे सत्संग और सत्शास्त्रों के विचार से मूर्खता को क्षय करो । जैसे वायु के संग से धूलि उड़के बादल आकार होती है तैसेही चित्त के फुरने से जगत् स्थित होता है । हे रामजी ! जब चित्त फुरता है तब नाना प्रकार का जगत् फुर आता है और चित्त के अफुर हुये जगत् लीन होजाताहै । हे रामजी ! वासना शान्त हो अथवा प्राणों का निरोधहो तब चित्त अचित्त होजाता है और जब चित्त अचित्त हुआ तब परमपद को प्राप्त होता है । हे रामजी ! दृश्य और दर्शन सम्बन्ध के मध्य में जो परमात्मसुख है और जो एकान्तसुख है सो संवित् ब्रह्मरूप है; उसके साक्षात्कार हुये मन क्षय होता है । जहां चित्त नहीं उपजता सो चित्त से रहित अकृत्रिम सुख है । ऐसा सुख स्वर्ग में भी नहीं होता । जैसे मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता तैसेही चित्त सहित विषय को सुख नहीं होते । चित्तके उपशम में जो सुख है सो वाणी से कहा नहीं जाता; उसके समान और कोई सुख नहीं और उससे अतिशय सुख भी नहीं । और सुख नाश होजाताहै पर आत्मसुख नाश नहीं होता—अविनाशी है और उपजने विनशनेसे रहित है । हे रामजी ! अबोध से चित्त उदय होता है और आत्मबोध से शान्त होजाता है । जैसे मोह से बालक को वैताल दिखाई देता है और मोह के नष्ट हुये नष्ट होजाता है; तैसेही अज्ञान से चित्त उदय होता है और अज्ञान के नष्ट हुये नष्ट होता है । यदि चित्त विद्यमान भी भासता है तब भी बोध से निर्बीज होता है । जैसे पारस के साथ मिलकर तांबा सुवर्ण होता है तो आकार तो वही दृष्टि आता है परन्तु तांबेभाव का अभाव होजाता है; तैसेही अज्ञान से जगत् भासता है और ज्ञान से चित्त अचित्त होजाता है; जड़ जगत् नहीं भासता, ब्रह्मसत्ता होकर भासता है और सत्पद को प्राप्त होता है परन्तु नामरूप तैसेही भासता है । हे रामजी ! ज्ञानी

का चित्तभी क्रिया करता दृष्टि आता है परन्तु चित्त अचित्त होजाता है। जो अज्ञान करके भासता है सो ज्ञान करके शून्य होजाता है। जो कुछ जगत् अवोध से भासता था सो बोध से शान्त होजाता है फिर नहीं उपजता। वह चित्त शान्तपद को प्राप्त होता है। कुछ काल तो वहभी तुरीया अवस्था में स्थित हुआ बिचरता है फिर तुरीयातीत पद को प्राप्त होता है। अध, ऊर्ध्व, मध्य सर्व ब्रह्मही इस प्रकार अनेक होकर स्थित हुआ है। अनेक भ्रम करके भी एकही है और सर्वात्मा ही है--चित्तादिक कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तसत्तासूचनंनामत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम संक्षेप से एक अपूर्व और आश्चर्यरूप बोध का कारण ज्ञान सुनो। एक बेलफल है जिसका अनन्त योजन पर्यन्त विस्तार है और जिसे अनन्त युग व्यतीत होगये हैं जर्जरीभाव को कदाचित् नहीं प्राप्त होता। वह अनादि है, उसमें अविनाशी रस है इससे कभी नाश नहीं होता और चन्द्रमा की नाईं सुन्दर है। सुमेरु आदिक जो बड़े पहाड़ हैं उनको महाप्रलय का पवन तृणों की नाईं उड़ाता है पर वह पवनभी उसको नहीं हिलासक्ता। हे रामजी! योजनों की अनन्त कोटनिकोट संख्या है पर उसकी संख्या नहीं कीजाती। ऐसा वह बेलफल है और बहुत बड़ा है। जैसे सुमेरु के निकट राई का दाना सूक्ष्म और तुच्छ भासता है तैसेही उस बेलफल के आगे ब्रह्माण्ड सूक्ष्म और तुच्छ भासता है। वह बेलरस से पूर्ण है, कभी गिरता नहीं और पुरातन है। उसका आदि, अन्त और मध्य; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक भी नहीं जानसक्के और न उसकेमूल को कोई जानसक्ता है; न मध्य को कोई जानसक्ता है। उसका अदृष्ट आकार है और अदृष्टफल है; अपने प्रकाश से प्रकाशता है; उसका घन आकार है; सदा अचल है किसी विकार को नहीं प्राप्त होता और सत्, निर्मल, निर्विकार, निरन्तररूप, निरन्ध्र और चन्द्रमा की नाईं शीतल सुन्दर है। उसमें ज्ञान संवित्रूपी रस है सो अपनारस आपही लेता है और सबको देताहै और सबको प्रकाश कर्ताभी वही है। उसमें अनेक चित्र-रेखों ने निवासकिया है परन्तु वह अपने स्वरूप को नहीं त्यागता अनेकरूप होकर भासता है और उस में स्पन्दरूपी रस फुरता है। तत्त्वं, इदं, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, द्वेष, हेयोपादेय, भूत, भविष्यत, काल, प्रकाश, तम, विद्या, अविद्या इत्यादि कलना जाल उस रस के फुरने से फुरते हैं। वह बेल आत्मरूप है और अनुभवरूपी उसमें रस है। वह सदा अपने आपमें स्थित और नित्य शान्तरूप है। उसको जानकर पुरुष कृतकृत्य होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबिलोपाख्याननामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४४॥

रामजी बोले, हे भगवन्! सर्वधर्मों के वेत्ता आपने यह बेलरूपी महाचिद्घन सत्ता कही सो मुझे ऐसे निश्चय हुआ कि, चेतन मज्जारूप अहंतादिक जगत् है इसमें भेद रञ्चक भी नहीं; एक द्वैत कलना सर्व वही है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे ब्रह्माण्डकी मज्जा सुमेरु आदिक पृथ्वी है तैसेही चेतन बेलकी मज्जा यह ब्रह्माण्ड है। सब जगत् चेतन बेलरूप है–भिन्न नहीं और उस सर्वचेतन जगत् का विनाश नहीं होसक्ता। हे रामजी! चेतनरूपी मिरचे के बीज में जगत्रूपी चमत्कार तीक्ष्णता है सो सुषुप्तवत् निर्मल है और शिला के अन्तरवत् अमिश्रित है। हे रामजी! अब और आश्चर्यरूप एक आख्यान सुनो कि, महासुन्दर प्रकाशसंयुक्त स्निग्ध और शीतल स्पर्श है और विस्तृतरूप एक शिला है सो महानिरन्ध्र और घनरूप है। उसमें कमल उपजते हैं और उसकी ऊर्ध्व बेलहै अध मूल है और अनेक शाखा हैं। रामजी बोले, हे भगवन्! सत्य कहते हो यह शिला मैंनेभी देखीहै कि, नदी में विष्णु की मूर्ति शालग्राम है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे तो तुम जानते हो और देखा भी है परन्तु जो शिला मैं कहताहूं वह अपूर्व शिलाहै और उसके भीतर ब्रह्माण्ड के समूह हैं और कुछ भी नहीं। हे रामजी! चेतनरूपी शिला जो मैंने तुम से कही है उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हैं; उस घनचेतनता से शिला वर्णन की है। वह अनन्तघन और निरन्ध्रहै और आकाश, पृथ्वी, पर्वत, देश, नदियां, समुद्र इत्यादिक सबही विश्व उस शिला के भीतर स्थित है और कुछ नहीं है। जैसे शिला के ऊपर कमल लिखे होते हैं सो शिलारूप हैं; शिला से भिन्न नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मरूपी शिला में है; आत्मा से भिन्न नहीं। हे रामजी! भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल उस शिलाकी पुतलियां हैं। जैसे शिल्पी पुतलियां कलपता है तैसेही यह जगत् आत्मा में है उपजा नहीं क्योंकि; मनरूपी शिल्पी कलपता है और उससे नानाप्रकार का जगत् भासताहै; आत्मा में कुछ उपजा नहीं। जैसे सुषुप्तरूप शिलाके ऊपर कमल रेखा लिखी होती है वह शिला से भिन्न नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मा में है आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे शिला में पुतली होती हैं सो उदय अस्त नहीं होती शिला ज्यों की त्यों है; तैसेही आत्मा में जगत् उदय अस्त नहीं होता क्योंकि वास्तव में कुछ नहीं है। आत्मा में द्वैतकल्पना अज्ञान से भासती है और जब बोध होता है तब शान्त होजातीहै। जैसे समुद्र में पड़ी जल की बूंद समुद्ररूप होजाती है तैसेही बोध से कल्पना आत्मा में लीन होजाती है। हे रामजी! चेतन आत्मा अनन्त है और उस में कोई विकार कल्पना नहीं है पर अज्ञानसे कल्पना भासती है और ज्ञान से लीन होजातीहै। विकारभी आत्माके आश्रय भासते हैं पर आत्मा विकार से रहित है। ब्रह्म से विकार उत्पन्न होते हैं और ब्रह्महीं में स्थित हैं पर वास्तव में कुछ हुये

नहीं; सब आभासमात्रा हैं। जैसे किरणों में जलाभास होताहै तैसेही ब्रह्म में जगत् विकार आभास होताहै। जैसे बीज में पत्र, डाल; फूल और फल का विस्तार होता है और बीजसत्ता सब में मिली होतीहै; बीजसे कुछ भिन्न नहीं होता; तैसेही चिद्घन आत्मा के भीतर जगत् विस्तार है सो चिद्घन आत्मा से भिन्न नहीं; वही अपने आपमें स्थितहै और जगत्भी वहीरूप है। यदि एक मानिये तौ द्वैतभी होताहै और यदि एक नहीं कहाजाता तो द्वैत कहांहो? जगत् और आत्मा में कुछ भेद नहीं; अद्वैत आत्मा ही अपने आपमें स्थित है। जैसे शिला में मूर्ति लिखी होती है सो शिलारूप है; तैसेही जगत् आत्मारूप है और जैसे शिला में भिन्न २ विषममूर्ति होती हैं और आधाररूप शिला अभेद है तैसेही आत्मा में जगन्मूर्ति भिन्न २ विषमरूप भासती है और चेतनरूप आधार अभेद है। ब्रह्मसत्ता समान सुषुप्तवत् समस्थित है वड़े विकारभी उसमें दृष्टि आतेहैं परन्तु वास्तव सुषुप्तवत् विकार से रहित स्थितहै और फुरने से रहित चेतन शिला स्थित है उस नित्य शान्त चिद्घनरूप सत्ता में यह जगत् कल्पित है अधिष्ठान सत्ता सदा सर्वदा शान्तरूप है भेद कदाचित् नहीं जैसे जल में तरङ्ग अभेदरूपहै और सुवर्णमें भूषण अभिन्नरूपहै तैसे आत्मामें जगत् अभिन्नरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिलाकोशउपदेशोनाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बीज के भीतर फूल फल और सम्पूर्ण वृक्ष होताहै सो आदि भी बीज है और अन्त भी बीजहै जब फल परिपक्क होताहै तब बीजही होता है तैसे आत्मा भी जगत् में है परन्तु सदा अच्युत और समहै कदाचित् भेद विकार और परिणाम को प्राप्त नहीं हुआ अपनी सत्ता से स्थितहै जगत् के आदि मध्य अन्त में वही है कुछ और भाव को प्राप्त नहीं हुआ देशकाल कर्म आदिक जो कुछ कलना भासती है सो वही रूप है जो कुछ शब्द और अर्थ है वह आत्मा से भिन्न नहीं जैसे वृक्ष के आदि भी बीज है और अन्त भी बीजहै और जो कुछ मध्य में विस्तार भासता है वहभी वही रूपहै भिन्न कुछ नहीं तैसे जगत् के आदि भी आत्मसत्ता है अन्त भी आत्मसत्ता है जो कुछ मध्य में भासताहै वह भी वही रूप है। हे रामजी! चेतनरूपी महाआदर्श में सम्पूर्ण जगत् प्रतिबिम्ब होताहै और सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र है जैसा जैसा किसी में फुरना दृढ़ होता है तैसेही आत्मसत्ता के आश्रित होकर भासता है जैसे चिन्तामणि में जैसा कोई संकल्प धारता है तैसाही प्रकट होआता है सो संकल्पमात्र ही होता है, तैसे जैसी जैसी भावना कोई करता है तैसी तैसी आत्मा के आश्रित होकर भासतीहै अनन्त जगत् आत्मरूपी मणिके आश्रित स्थित होतेहैं जैसी

कोई भावना करता है तैसी उसको हो भासती है। हे रामजी ! आत्मरूपी डब्बे से ज तृरूपी रत्न निकलते हैं। जैसा फुरना होता है तैसाही जगत् भासि आता है। जैसे शिला के ऊपर रेखा होती हैं और नाना-प्रकार के चित्र भासतेहैं सो अनन्य-रूप है। तैसेही आत्मा में जगत् अनन्यरूप है और जैसे शिला के ऊपर शंख चक्रादिक रेखा भासती हैं तैसेही आत्मा में यह जगत् भासता है सो आत्मरूप है। आत्मरूपी शिला निरन्ध्र है, उस में छिद्र कोई नहीं जैसे जल में तरङ्ग जलरूप होते हैं, तैसेही ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है। वह ब्रह्म सम, शान्तरूप और सुषुप्तवत् स्थित है उसमें जगत् कुछ फुरा नहीं शिला की रेखावत् है। जैसे बिलाव के भीतर मज्जा होती है, तैसेही ब्रह्ममें जगत् स्थित है और जैसे आकाश में शून्यता; जल में द्रवता और वायु में स्पन्दता होती है, तैसेही ब्रह्म में जगत् है। ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे तरु और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं—ब्रह्मही जगत् है और जगत् ही ब्रह्म है। हे रामजी ! इसमें भाव—अभाव भेद कल्पना कोई नहीं ब्रह्मसत्ताही प्रकाशती है और ब्रह्मही जगत्रूप होकर भासताहै। जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणें जलरूप होकर भासती हैं; तैसेही ब्रह्म जगत्रूप होकर भासता है। हे रामजी ! सुमेरुआदिक पर्वत और तृण, वन और चित्त जगत् परिणाम से लेकर भूतों को विचार देखिये तो परमसत्ता ही भासती है और सब पदार्थों में स्थूल और सूक्ष्मभाव से वही सत्ता व्यापी है। जैसे जल का रस वनस्पति में व्यापा हुआ है, तैसेही सब जगत् में सूक्ष्मता करके आत्मसत्ता व्यापी हुई है। जैसे एकहीरस सत्ता, वृक्ष, तृण और गुच्छों में व्यापी हुई है और एकही अनेकरूप होकर भासती है; तैसेही एकही ब्रह्मसत्ता अनेकरूप होकर भासती है। हे रामजी ! जैसे मोर के अण्डे में अनेक रङ्ग होते हैं और जब अण्डा फूट जाता है तब उस से शनैः शनैः अनेक रङ्ग प्रकट होते हैं सो एकही रस अनेक रूपहो भासता है, तैसेही एकही आत्मा अनेकरूप जगत् आकार होकर भासताहै। जैसे मोरके अण्डे में एकही रस होता है परन्तु जो दीर्घसूत्री अज्ञानी हैं उनको भविष्यत् अनेक रङ्ग उस में भासते हैं सो अनउपजेही उपजे भासते हैं; तैसेही यह जगत् अनउपजाही नानात्व अज्ञानी के हृदय में स्थित होताहै और जो ज्ञानवान्हैं उनकोएकरस ब्रह्म-सत्ता ही भासती है। जैसे मोर का रस परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ एक रस है और जब परिणाम को प्राप्त होकर नानारूप हुआ तब भी एक रस है; तैसेही यह जगत् परमात्मा में गुह्य है तो भी परमात्माही है और जब नानारूप होकर भासता है तो भी वही है परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ परन्तु अज्ञानी को नानात्व भासता है और ज्ञानवान् को एकसत्ताही भासता है। अथवा इस दृष्टान्त का दूसरा अर्थ यह है कि

जैसे मोर के अण्डे में नानात्व कुछ हुआ नहीं पर जिसको दिव्यदृष्टि है उसको उस में अनउपजी नानात्व भासती है और जिसको दिव्यदृष्टि नहीं उसको बीजही भासताहै, नानात्व नहीं भासता; तैसेही जिनको अज्ञानरूपी दिव्यदृष्टि है उनको अनउपजाही जगत् नानात्व हो भासताहै और जो अज्ञानदृष्टिसे रहित हैं उनको एकही ब्रह्म भासता है और कुछ नहीं भासता। हे रामजी! नानात्व भासता है तौ भी कुछ नहीं; जैसे मोरके अण्डे में नानारङ्ग भासतेहैं तौ भी एकरूपहै; तैसेही इस जगत् में भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं तौ भी एक ब्रह्मसत्ता है; द्वैत कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसत्ताउपदेशोनामषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे अनउपजे कान्तिरङ्ग मयूर के अण्डे में होते हैं सो बीज से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहं त्वं आदिक जगत् आत्मा में अनउदयही उदयरूपी भासता है। जैसे बीज में उन रङ्गों की उदयभी अनउदयरूप है, तैसेही आत्मा में जगत् की उदय भी अनउदयरूप है। आत्मसत्ता अशब्दपद है वाणी से कुछ कहा नहीं जाता। ऐसा सुख स्वर्ग तथा और किसी स्थान में भी नहीं है जैसा सुख आत्मा में स्थित हुये पायाजाताहै। हे रामजी! आत्मसुख में विश्रान्ति पानेके निमित्त मुनीश्वर, देवता, सिद्ध और महाऋषि दृश्यदर्शन सम्बन्ध फुरनेको त्याग कर स्थित होते हैं इससे वह उत्तम सुख है। संवित्में संवेदन का फुरना जिनका निवृत्त हुआहै उन पुरुषों को दृश्यभावना कोई नहीं फुरती और न कोई कर्म उनको स्पर्श करता है; प्राणभी उनके निस्पन्द होतेहैं; चित्तचेतन की सम्बन्ध से रहित चित्र की मूर्तिवत् स्थित होते हैं और शान्तरूप स्थित होते हैं। हे रामजी! जब चित्तकला फुरती है तब संसारभ्रम प्राप्त होता है और जब चित्तका फुरना मिटजाता है तब शान्तरूप अद्वैत स्थित होता है। जैसे युद्ध राजा की सेना करती है और जीत हार राजा की होती है तैसेही चित्त के फुरने के द्वारा आत्मा में बन्धमोक्ष होता है। यद्यपि आत्मा सत्रूप और अच्युत है परन्तु मन, बुद्धि और अन्तःकरण के द्वारा आत्मा में बन्ध मोक्ष भासता है। आत्मा सबका प्रकाशक है—जैसे चन्द्रमा की चांदनी वृक्षादिकों को प्रकाशती है, तैसेही आत्मा सब पदार्थों को प्रकाशता है। वह आत्मा न दृश्य है, न उपदेश का विषय है, न विस्ताररूप है, न दूर है, केवल चेतनरूप अनुभव आत्मा से सिद्ध है। वह न देह है, न इन्द्रिय है; न गुण है; न चित्त है, न वासना है; न जीव है, न स्पन्द है; न और को स्पर्श करता है, न आकाश है; न सत् है, न असत् है; न मध्य है; न शून्य है, न अशून्य है; न देश, काल, वस्तु है; न अहं है, न इतर इत्यादिक है; सर्वशब्दों से रहित हृदयस्थान में प्रकाशता है और केवल अनुभवरूप है। उसका न आदि है, न अन्त है; न उसे शस्त्र काटतेहैं; न उसे अग्नि

जलासक्ती है; न जल गलासक्ता है; न यह है, न वह है; न उसे वायु सोख सक्ती है और न किसीकी सामर्थ्य उससे चलती है। वह चित्तरूपी आत्मतत्त्व है न जन्मता है और न मरताहै। देहरूपी घट कईबार उपजते हैं और कईबार नष्ट होते हैं और आत्म-रूपी आकाश सबके भीतर बाहर अखण्ड अविनाशी है। जैसे अनेक घटों में एकही आकाश स्थित होता है तैसेही अनेक पदार्थों में एकही ब्रह्मसत्ता आत्मरूप से स्थित है। हे रामजी ! जो कुछ स्थावर–जङ्गम जगत् दृष्ट आता है सो सब ब्रह्मरूप है जो निर्धर्म, निर्गुण, निरवयव, निराकार, निर्मल, निर्विकार है और आदि अन्तसे रहित, सम और शान्तरूप है। ऐसी दृष्टि का आश्रय करके स्थित हो। हे रामजी ! इस दृष्टि का आश्रय करोगे तो बड़े कार्यभी तुमको स्पर्श न करेंगे। जैसे आकाश को बादल स्पर्श नहीं करते तैसेही तुमको कर्म स्पर्श न करेंगे। काल, क्रिया, कारण, कार्य, जन्म, स्थिति, संहारआदिक जो संसरणरूप संसार है सो सब ब्रह्मरूप है। इसी दृष्टि का आश्रय करके विचरो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मएकताप्रतिपादनंनाम सप्तचत्त्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४७ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! यदि ब्रह्म में कोई विकार नहीं तो भाव–अभावरूप जगत् किससे भासता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! विकार किसको कहतेहैं ? प्रथम तो यह सुनो। जो वस्तु अपने पूर्वरूप को त्यागकर विपर्ययरूप को प्राप्त हो और फिर पूर्व के स्वरूप को न प्राप्त हो उसको विकार कहते हैं। जैसे दूधसे दही होकर फिर दूध नहीं होता; जैसे बालकअवस्था बीतजाती है तो फिर नहीं आती और जैसे युवा अवस्था गईहुई फिर नहीं आती इसका नाम विकार है परब्रह्म निर्मल है; आदि भी निर्विकार है, अन्तभी निर्विकार है और मध्य में जो उसमें कुछ विकार मल भासता है सो अज्ञान से भासता है। मध्य में भी ब्रह्म अविकारी ज्यों का त्यों है। हे रामजी ! जो पदार्थ विपर्ययरूप होजाता है वह फिर अपने स्वरूप को नहीं प्राप्त होता और ब्रह्म-सत्ता सदा ज्योंकी त्यों अद्वैतरूप है और आत्म अनुभव से प्रकाशती है। जो कभी अन्यथारूप को प्राप्त न हो उसको विकार कैसे कहिये ? हे रामजी ! जो वस्तु विचार और ज्ञानसे निवृत्त होजाय उसको भ्रममात्र जानिये वह वास्तव में कुछ नहीं। जो कुछ विकार है सो अज्ञान से भासता है और जब आत्मबोध होताहै तब निवृत्त हो जाता है। जिसके बोध से विकार नष्ट होजाय उसे विकार कैसे कहिये ? जो ब्रह्म शब्द से कहाता है सो निर्वेदरूप आत्मा है। जो आदि अन्त में सत् हो उसे मध्यमें भी सत् जानिये और इससे भिन्न हो सो अज्ञान से जानिये। आत्मरूप सदा सर्वदा समरूप है। आकाश और पवनभी अन्यभाव को प्राप्त होजातेहैं परन्तु आत्मतत्त्व कदाचित् अन्य

भाव को नहीं प्राप्त होता। वह तो प्रकाशरूप एक, नित्य और निर्विकार ईश्वरहै; भाव अभाव विकार को कदाचित् नहीं प्राप्त होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! एकतत्त्व विद्यमान है सो ब्रह्म सदा सर्वदा निर्मलरूप है तो उस संचित् ब्रह्म में यह अविद्या कहांसे आई है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है; आगे भी ब्रह्म था और पीछे भी ब्रह्म होगा। उस निर्विकार और आदि, अन्त, मध्य से रहित ब्रह्ममें अविद्या कोई नहीं—यह निश्चय है। जो वाच्य—वाचक शब्द से उपदेश के निमित्त ब्रह्म कहता है उसमें अविद्या कहां है? हे रामजी! 'अहं' 'त्वं' आदिक जगत् भ्रम और अग्नि, वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ता है और अविद्या रञ्चकमात्र भी नहीं। जिसका नाम ही अविद्या है उसे भ्रममात्र और असत् जानो। जो विद्यमानही नहीं है उसका नाम क्या कहिये? फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उपशम प्रकरण में आपने क्यों कहाथा कि, अविद्या है और अब इसप्रकार कैसे कहते हो कि, विद्यमान नहीं है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इतने कालपर्यन्त तुम अबोध थे इस निमित्त मैंने तुम्हारे जागनेके निमित्त युक्ति कल्पकर कही थी और अब तुम प्रबुद्ध हुये हो तब मैंने कहा है कि, अविद्या अविद्यमान है। हे रामजी! अविद्या, जीव और जगत् आदिक का क्रम अप्रबोध को जगाने के निमित्त वेदवादी ने वर्णन किया है। जबतक मन अप्रबोध होता है तबतक अविद्या भ्रम है और युक्ति विना अनेक उपायों से भी बोधवान् नहीं होता। जब बोधवान् होता है तब सिद्धान्त को उपदेश की युक्ति विना भी पाता है और अबोध मन युक्ति विना नहीं पासक्ता। हे रामजी! जो कार्य युक्ति से सिद्ध होताहै वह और यत्न से नहीं साधा-जाता। जैसे युक्तिरूपी दीपक से अन्धकार दूर होता है और बल यत्न से निवृत्त नहीं होता: तैसेही युक्ति विना और यत्न से अज्ञान की निद्रा निवृत्त नहीं होती। यदि अप्रबोध को सर्वब्रह्म सिद्धान्त का उपदेश कीजिये तो वह उपदेश व्यर्थ होता है—जैसे कोई दुःखी अपना दुःख दीवालके आगे जा कहे तो उसका कहा वह नहीं सुनती और उसका कहनाभी वृथा होता है; तैसेही अप्रबुद्ध को सर्व ब्रह्म का उपदेश व्यर्थ होता है। मूढ़ युक्ति से जगता है और बोधवान् को प्रत्यक्ष तत्त्व का उपदेश होता है। हे रामजी! अब तुम यह धारणा करो कि, ब्रह्म, तीनों जगत् और अहं, त्वं आदिक सब ब्रह्महैं द्वैत कल्पना कोई नहीं: फिर जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो और दृश्य संवेदन न फुरे सदा आत्मा में स्थित रहो। इस प्रकार अनेक कार्यमें भी लेपन होगा। हे रामजी! जो चेतन वपु परमात्मा प्रकाशरूप है सो सदा अहंभावसे फुरता है। ऐसा जो अनुभवरूप है उसीमें चलने, बैठने, खाने, पीने, चेष्टा करते स्थितरहो तब तुम्हारा अहं ममभाव निवृत्त होजावेगा और जो शान्तरूप ब्रह्म सर्वभूतों में स्थित है उसको तुम प्राप्त होगे और आदि अन्त से रहित शुद्ध संवित्मात्र प्रकाशरूप आत्मा को देखोगे।

जैसे मृत्तिका के पात्र घट आदिक सब मृत्तिकाकेही हैं तैसेही तुम सर्वभूत आत्मा को देखोगे। जैसे मृत्तिका से घट भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से जगत् भी भिन्न नहीं। जैसे वायु से स्पन्द और जल से तरङ्ग भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से प्रकृति भिन्न नहीं। जैसे जल और तरङ्ग शब्दमात्र दो हैं तैसेही आत्मा और प्रकृति शब्दमात्र दो हैं पर भेदभाव कुछ नहीं केवल अज्ञान से भेद भासता है और ज्ञान से नष्ट होजाता है। जैसे रस्सी में सर्प भासताहै तैसेही आत्मा में प्रकृति है। हे रामजी! चित्तरूपी वृक्ष है और कलपनारूपी बीज है; जब कलपनारूपी बीज बोयाजाता है तब चित्तरूपी अंकुर उत्पन्न होता है और उससे जब भावरूप संसार उत्पन्न होताहै तब आत्मज्ञान करके कलपनारूपी बीज दग्ध होता है और चित्तरूपी अंकुर नष्ट होजाता है। हे रामजी! चित्तरूपी अंकुर से सुख दुःखरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है। जब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो तब सुख दुःखरूपी वृक्ष कहां उपजे ? हे रामजी! जो कुछ द्वैतभ्रमहै सो अबोध से उपजताहै और बोध से नष्ट होजाताहै। आत्मा जो परमार्थ सार है उसकी भावना करो तब संसारभ्रम से मुक्त होगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्मृतिविचारयोगोनामाष्ट चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४८॥

रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! जो कुछ जानने योग्य था सो मैंने जाना और जो कुछ देखने योग्य था सो देखा; अब मैं आपके ज्ञानरूपी अमृत के सींचनेसे परम-पदमें पूर्णात्मा हुआ हूं। हे मुनीश्वर! पूर्ण ने सब विश्व पूर्ण की है; पूर्ण से पूर्ण प्रतीत की है और पूर्ण में पूर्णही स्थित है—द्वैत कुछ नहीं, यह अब मुझको अनुभव हुआ है। हे मुनिश्वर! ऐसे जानकरभी मैं लीला और बोध की वृद्धि के निमित्त आपसे पूछता हूं। जैसे बालक पितासे पूछताहै तो पिता उद्वेग नहीं करता, तैसेही आप उद्वेगवान् न होना। हे मुनीश्वर! श्रवण, नेत्र, त्वचा, रसना और घ्राण ये पांचों इन्द्रियां प्रत्यक्ष दृष्टि आती हैं पर मरेपर विषय को क्यों नहीं ग्रहण करतीं और जीते कैसे ग्रहण करतीं हैं? घटादिककी नाईं बाहरसे ये जड़ स्थितहैं पर हृदय में अनुभव कैसे होता है? और लोहेकी शलाकावत् ये भिन्न भिन्न हैं पर इकट्ठी कैसे हुई हैं? परस्पर जो एक आत्मामें अनुभव होताहै कि, मैं देखता; मैं सुनता हूं इनसे आदि लेकर वृत्ति क्योंकर इकट्ठी हुई है? मैं सामान्यभाव से जानता भी हूं परन्तु विशेष करके आपसे पूछता हूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इन्द्रियां, चित्त और घट, पट आदिक पदार्थ निर्मल चेतनरूप आत्मा से भिन्न नहीं आत्मतत्त्व आकाश से भी सूक्ष्म और स्वच्छ है। हे रामजी! जब चेतनतत्त्व से पुर्यष्ट का चैत्यता की भावना फुरी तो उसने आगे इन्द्रिय गणों को देखा और इन्द्रियगण चित्त के आगे

हुये हैं। इनकी घनता से चेतनतत्त्व पुर्यष्टकाभाव को प्राप्त हुआ है। उसी में सब घटादिक पदार्थ प्रतिबिम्बित हुये हैं और पुर्यष्टका में भासे हैं। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर ! अनन्त जगत् जो रचे हैं और महाआदर्श में प्रतिबिम्बितहैं उस पुर्यष्टका का रूप क्या है और कैसे हुई है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आदि अन्तसे रहित जगत् का बीजरूप जो अनादि ब्रह्म है सो निरामयऔर प्रकाशरूपहै और कल्पना और कलनासे रहित, शुद्ध, चिन्मात्र और अचेतन जगत् का बीज वही अनादि ब्रह्म है। वह जब कलना के सन्मुख हुआ तब उसका नाम जीव हुआ उस जीव ने जब देह को चेता और अहंभाव फुरा तब अहंकार हुआ; जब मननकरनेलगा तब मन हुआ; जब निश्चय करनेलगा तब बुद्धि हुई, जब परमात्मा के देखनेवाली इन्द्रियों की भावना हुई तब इन्द्रियां हुईं; जब देह की भावना करनेलगा तब देह हुई और जब घट पट की भावना हुई तब घट पट हुये;इसी प्रकार जैसी जैसी भावना होती गई तैसेही पदार्थ होते गये। हे रामजी ! यही स्वभाव जिसका है उसको पुर्यष्टका कहते हैं। स्वरूप से विपर्ययरूपी दृश्य की ओर भावनाहोने और कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदिक की भावना, कलना और अभिमान जो चित्तकला में हुआ है इससे उसको जीव कहते हैं। निदान जैसी २ भावना का आकार हुआ तैसीही तैसी वासना को करता भया। जैसे जल से सींचा हुआ बीज डाल, पत्र, फूल और फलभाव को प्राप्त होता है तैसेही वासनासे सींचा हुआ जीव स्वरूपके प्रमाद से महाभ्रमजालमें गिरता है और ऐसे जानता है कि, मैं मनुष्य देह सहितहूं अथवा देवता व स्थावर हूं पर ऐसे नहीं जानता कि, मैं चिदात्मा हूं। वह देह से मिलाहुआ परिच्छिन्न और तुच्छरूप आपको देखता है। इस मिथ्याज्ञान से डूबताहै और देह में अभिमान से वासना के वश हुआ चिरपर्यन्त नीचे ऊंचे और बीच में भ्रमता है। जैसे समुद्र में आया हुआ काष्ठ तरङ्गों मे उछलता है और घटीयन्त्र का बर्तन नीचे ऊपर जाता है तैसेही जीव वासना के वश से नीचे और ऊपर भ्रमता है। जब विचार और अभ्यास करके आत्म-बोध को प्राप्त होताहै तब संसार बन्धन से मुक्त होता है और आदि अन्त से रहित आत्मपद को प्राप्त होताहै। बहुतकाल योनिरेखा को भोगके आत्मज्ञान के वश से परमपद को प्राप्त होता है। हे रामजी ! स्वरूप से गिरे हुये जीव इस प्रकार भ्रमते हैं और शरीर पाते हैं। अब यह सुनो कि, इन्द्रियां मृतक हुये विषय को किस निमित्त ग्रहण नहीं करतीं। हे रामजी ! जब शुद्धतत्त्व में चित्त कलना फुरती है तब वह जीव-रूप होतीहै और मनसहित षट्इन्द्रियों को लेकर देहरूपी गृह में स्थित हो बाहर के विषय को ग्रहण करती है। मनसहित षट्इन्द्रियों के सम्बन्ध से विषय का ग्रहण होता है; इनसे रहित विषयों को कदाचित् नहीं ग्रहण करती। इस प्रकार इनमें स्थित होकर

जीव कला विषय को ग्रहण करती है। यद्यपि इन्द्रियां भिन्न २ हैं तौभी इनको एकता करलेती हैं और ये अहंकाररूपी तागेसे इकट्ठी होती हैं। देह और इन्द्रियां माणिक्य की नाईं हैं; इनको इकट्ठे करके जीव कहता है कि; मैं देखता, सूंघता, सुनता, फिरता, बोलता हूं और इन्हीके अभिमान से विषय को ग्रहण करता है । हे रामजी ! देह इन्द्रियां मन आदिक जड़ हैं परन्तु आत्मा की सत्ता पाकर अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं । जबतक पुर्यष्टका देह में होती है तबतक इन्द्रियां विषय को ग्रहण करती हैं और जब पुर्यष्टका देह से निकल जाती है तब इन्द्रियां विषय को नहीं ग्रहण करतीं। हे रामजी ! ये जो प्रत्यक्ष नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा और त्वचा भासते हैं सो ये इन्द्रियां नहीं हैं इन्द्रियां तो सूक्ष्म तन्मात्र हैं; ये उनके रहने के स्थान हैं। जैसे गृह में झरोखे होते हैं तैसेही ये स्थान हैं। हे रामजी ! अब जीवकारूप सुनो आत्मतत्त्व सबठौर में पूर्ण है परन्तु उसका प्रतिबिम्ब वहांहीं भासता है जहां निर्मल ठौर होता है। जैसे निर्मल जल में प्रतिबिम्ब होताहै और जैसे दोकुण्ड हों एक जल से पूर्ण हो और दूसरा जल से रहित हो तो सूर्यका प्रकाश तो दोनों में तुल्य होताहै परन्तु जिस में जल है उस में प्रतिबिम्बित होता है और जल के डोलने से प्रतिबिम्ब भी हलता दृष्ट आता है पर जहां जल नहीं है वहां प्रतिबिम्ब भी नहीं; तैसेही जहां सात्त्विक अंश अन्तःकरण होता है वहां आत्मा का प्रतिबिम्ब जीव भी होता है और जबतक शरीर में होता है तबतक शरीर चेतन भासता है; पर जब वह जीवकला पुर्यष्टका-रूप शरीर को त्यागजाती है तब शरीर जड़ भासता है। जैसे कुण्ड से जल निकल जाय तो कुण्ड सूर्यके प्रतिबिम्ब से हीन होजाता है, तैसेही अन्तःकरण और तन्मात्रा पुर्यष्टका में आत्मा का प्रतिबिम्ब होताहै । जब पुर्यष्टका शरीर को त्याग जाती है तब शरीर जड़ भासता है । हे रामजी ! जैसे झरोखे के आगे कोई पदार्थ रखिये तो झरोखे को पदार्थ का ज्ञान नहीं होता और जब उसका स्वामी देखता है तब पदार्थ को ग्रहण करता है; तैसेही इन्द्रियों के स्थानों में जो सूक्ष्मतन्मात्रा ग्रहण करनेवाली होती है वही विषयों को ग्रहण करती है और जब तन्मात्रा नहीं होती तब इन्द्रियां ग्रहण नहीं करसक्तीं। हे रामजी ! प्रत्यक्ष देखो कि, कथा का श्रोता पुरुषकथा में बैठा होता है पर यदि उसका चित्त और ठौरनिकल जाता है तब प्रत्यक्ष बैठा रहता है परन्तु कुछ नहीं सुनता क्योंकि; उसकी श्रवण इन्द्रिय मनके साथ गई है; तैसेही जब पुर्यष्टका निकल जाती है तब मृतक होता है और इन्द्रियां भी विषयों को ग्रहण नहीं करतीं। हे रामजी ! अहं मम आदि जो दृश्य है सोभी सर्ग के आदि में आत्मरूपी समुद्र से तरङ्गवत् फुरा है, उस के पश्चात् दृश्य कलना हुई है सो न देश है, न काल है, न क्रिया है, न यह सब असतरूप है; वास्तव में कुछ नहीं। ऐसे जानकर संसार के

सुख, दुःख, हर्ष, शोक, राग, द्वेष से रहित होकर बिचरो तब तुम मायासे तरजावोगे॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंवेदनविचारोनामैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वास्तव में इन्द्रियादिक गण कुछ उपजे नहीं; आदि ब्रह्मा की उत्पत्ति जैसे मैंने तुमसे कहीहै सो सब तुमने सुनी और जैसे आदि जीव पुर्यष्टकारूप ब्रह्मा उपजा है तैसे और भी उपजे हैं। हे रामजी! जीव पुर्यष्टका में स्थित होकर जैसी जैसी भावना करता गया है तैसेही तैसे भासने लगा है और फिर उसीकी सत्ता पाकर अपने अपने विषय को ग्रहण करनेलगेहैं, वास्तव में इन्द्रियां भी कुछ वस्तु नहीं। सब आत्मा के आभास से फुरती हैं; इन्द्रियां और इन्द्रियों के विषय ये संवेदन से उपजे हैं सो जैसे उपजे हैं तैसे तुम से कहे हैं। हे रामजी! शुद्ध संवित् सत्तामात्र से जो अहं उल्लेख हुआहै सोही संवेदन हुई है। वही संवेदन जीव-रूप पुर्यष्टकाभाव को प्राप्त हो और बुद्धि, मन और पञ्चतन्मात्रा को उपजाकर आपही उनमें प्रवेशकर स्थित हुई है उसको पुर्यष्टका कहते हैं परन्तु यह उपजी भी स्पन्द में है आत्मा से कुछ नहीं उपजा। वह आत्मा न एक है, न अनेक है और परमात्मतत्त्व अस्ति अनामय है और उसमें वेदनाभी अनन्यरूप है। हे रामजी! उसमें न कोई द्वैत कलना है और न कुछ मनशक्ति है केवल शान्त और सत्ता है उसी को परमात्मा कहते हैं जो मनसहित षट् इन्द्रियों से अतीत अचैत्य चिन्मात्र है उससे जीव उत्पन्न हुआ है। यह भी मैं उपदेश के निमित्त कहता हूं वास्तव में कुछ उपजा नहीं केवल भ्रममात्र है। जहां जीव उपजा है वहां उसको अंहभाव विपर्यय हुआहै; यही अविद्या है सो उपदेश से लीन होजातीहै। जैसे निर्मली से जल की मलिनता लीन हो जाती है तैसेही गुरु और शास्त्र के उपदेशको पाकर जब अविद्या लीन होजातीहै तब भ्रम-रूप आकार शान्त होजाते हैं और ज्ञानरूप आत्मा शेष रहता है जिसमें आकाश भी स्थूल है। जैसे परमाणु के आगे सुमेरु स्थूल होताहै तैसेही आत्मा के आगे आकाश स्थूल है। हे रामजी! आत्मा के आगे जो स्थूलता भासती है सो भ्रममात्र है। जो बड़ उदार आरम्भ भासते हैं सो तो असत् हैं तब और पदार्थों की क्या बात है? हे रामजी! आत्मामें जगत् कुछ नहीं पायाजाता क्योंकि; वस्तु असम्यक्ज्ञानसे भासती है और सम्यक्ज्ञान से नहीं पाई जाती। जो कुछ—जगत्जाल भासते हैं वे सब मायामात्र हैं उनसे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जैसे मृगतृष्णा का जल पान नहीं किया जाता तैसेही जगत् के पदार्थों से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं होती, सब अज्ञान से भासते हैं। हे रामजी! जो वस्तु सम्यक्ज्ञानसे पाइये उसे सत् जानिये और जो सम्यक्ज्ञान सेन रहे उसे भ्रममात्र जानिये। यह जीव पुर्यष्टका अविद्धक भ्रमहै, असत् ही सत् हो भासता है और जब गुरु और शास्त्रों का विचार होता है तब जगत् भ्रम

मिटजाताहै। पुर्यष्टका में स्थित होकर जीव जैसी भावना करता है तैसी सिद्धि होती है। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है तैसेही जीवकला अपने आपमें देश, काल, तत्त्वआदिक कल्पती है और भावना के अनुसार उसको भासते हैं। जैसे बीज से पत्र, डाल, फूल, फलादिक विस्तार होता है तैसेही तन्मात्रा से भूत-जात सब भीतर बाहर, देश, काल, क्रिया, कर्म हुआ है। आदि जीव फुरकर जैसा संकल्प धारता है तैसेही हो भासता है सो यह संवेदनभी आत्मा से अनन्यरूप है। जैसे मिरच में तीक्ष्णता और आकाश में शून्यता अनन्यरूप है; तैसेही आत्मा में संवेदन अनन्यरूपहै। उस संवेदनने उपजकर निश्चय धारा है कि, ये पदार्थ ऐसे हैं ये ऐसे हैं सो तैसेही स्थित हुये अन्यथा कदाचित् नहीं होते। आदिजीवने फुरकर जो निश्चय धारा है उसीका नाम नीति है और स्वरूप से सर्व आत्मसत्ता है; आत्म-सत्ताही रूप धारकर स्थित हुआहै। जैसे एकही पौंड़ेका रस शक्कर आदि और मृत्तिका घट पटादिक आकार को धारती है तैसेही आत्मसत्ता सर्वज्ञान को पाती है। जैसे एकही जल का रस, पत्र, डाल, फल, फलादिक होकर भासता है तैसेही एकही आत्मसत्ता घट पट और दीवार आदिक आकार हो भासतीहै। हे रामजी! जैसे आदिजीव ने निश्चय किया है तैसेही स्थित है अन्यथा कदाचित् नहीं होता परन्तु जगत्काल में ऐसे है; वास्तव में न बिम्ब है और न प्रतिबिम्ब है। ये द्वैत में होते हैं सो द्वैत कुछ नहीं केवल चिदानन्द ब्रह्म आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है और देहादिकभी सर्व चिन्मात्र है। हे रामजी! जो कुछ जगत् भासता है सो आत्मा का किंचनरूप है। जैसे रस्सी सर्परूप भासती है तैसेही आत्मा जगत्रूप हो भासता है और जैसे सुवर्ण भूषण हो भासता है तैसेही आत्मा दृश्यरूप हो भासता है जैसे सुवर्ण में भूषण कुछ वास्तव नहीं होते तैसेही आत्मा में दृश्य वास्तव नहीं। जैसे स्वप्न का पत्तनदेश असत्ही सत् हो भासता है तैसेही जीव को देह और भासती है। हे रामजी! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है परन्तु फुरनेसे अनेकरूप धारती है। जैसे एक-नटवा अनेक स्वांग धारता है तैसेही आत्मसत्ता देहादिक अनेक आकार धारती है और जैसे स्वप्न में एकही अनेकरूप धार चेष्टा करता है, तैसेही जगत् में आत्मसत्ता नानारूप धारती है। हे रामजी! आत्मा नित्यशुद्ध और सबका अपना आप है। अपने स्वरूप के प्रमाद से आप से आपका जन्ममरण जानता है पर वह जन्ममरण असत्रूप है जैसे कोई पुरुष आपको स्वप्न में श्वानरूप देखे तैसेही यह आपको जन्मता मरता देखता है। जैसे इसको पूर्वभावना है और भ्रम से असत् को सत् जानताहै और जैसे स्वप्न में वस्तु को अवस्तु और अवस्तुको वस्तु देखताहै; तैसेही जाग्रत् में विपर्यय देखता है। जैसे जाग्रत् के ज्ञानसे स्वप्न भ्रम निवृत्त होजाताहै

तैसेही आत्मा अधिष्ठान के ज्ञान से जगत् भ्रम निवृत्त होजाताहै। जैसे पूर्वका दुष्कृत कर्म किया हो तो उसके पीछे सुकृत कर्म करे तो वह घटजाता है तैसेही पूर्वसंस्कार से जब नीचवासना होती है और फिर आत्मतत्त्व का अभ्यास करता है तो पुरुष प्रयत्न से मलिन वासना नष्ट होजाती है। जबतक वासना मलिन होती है तबतक उपजता विनशता और गोते खाता है और जब सन्तों के संग और सत्शास्त्रोंके विचार से आत्मज्ञान उपजताहै तब संसारबन्धनसे छूटता है—अन्यथा नहीं छूटता। हे रामजी! वासनारूपी कलङ्क से जीव घेरा हुआ है और देहरूपी मन्दिरमें बैठकर अनेक भ्रम देखताहै। आदिजीव को जो फुराहै सो अपने स्वरूपको त्यागकर अनात्म भ्रम को देखा। जैसे बालक परछाहींमें भूतकल्पे, तैसेही जीवने कल्पकर जैसी भावना की तैसाही भासनेलगा। आदिजीव पुर्यष्टका में स्थितहुआ है। बुद्धि, मन, अहंकार और तन्मात्रा का नाम पुर्यष्टका है और अन्तवाहक देहहै। चैतन्य आत्मा अमूर्तिहै; आकाशभी उसके निकट स्थूल है, प्राणवायु गुच्छे के समान है और देह सुमेरुके समानहै। ऐसा सूक्ष्मजीव है। सुषुप्त जड़रूप और स्वप्नभ्रम दोनों अवस्थाओं में स्थावर—जङ्गमरूपी जीव भटकतेहैं; कभी सुषुप्ति में स्थित होते हैं और कभी स्वप्ने में स्थित होते हैं। इसी प्रकार दोनों अवस्थाओं में जीव भटकते हैं। हे रामजी! सबका देह अन्तवाहक है और उसी देहसे सब चेष्टा करते हैं। कभी स्थावर में जाकर वृक्ष और पत्थरादिक योनि पाते हैं। जब स्वप्ने में होतेहैं तब जङ्गमयोनि पाते हैं सोभी कर्मवासना के अनुसार पाते हैं; जब तामसी वासना घन होतीहै तब कल्पवृक्ष चिन्तामण्यादिक स्वरूप को प्राप्त होते हैं; जब केवल तामसी घन मोहरूपी होती है तब वृक्ष और पत्थरादिक योनि पाते हैं। इसका नाम सुषुप्ति है सो लय घन मोहरूप है और इससे भिन्न जङ्गमविक्षेपरूप स्वप्न अवस्थाहै, कभी उसमें होना है और कभी सुषुप्तिरूप स्थावर होताहै। हे रामजी! सुषुप्ति अवस्था में वासना सुषुप्तिरूप होती है सो फिर उगती है इससे मोहरूप है। उस सुषुप्ति से जब उतरताहै तब विक्षेपरूप स्वप्न होता है और जब बोध हो तब जाग्रत् अवस्था पावे। जाग्रत् दो प्रकार की है। जाग्रत् वही है जो लय और विक्षेपता से रहित चेतन अवस्था है; उससे रहित और मनोराज सब स्वप्नरूप है। एक जीवन्मुक्ति जाग्रत् है और दूसरी विदेहमुक्ति है। जीवन्मुक्ति तुरीयारूप है और विदेहमुक्ति तुरीयातीत है। यह अवस्था जीवको यत्न से प्राप्त होती है और जीवको बोधपुरुष प्रयत्न से होताहै—अन्यथा नहीं होता। हे रामजी! जीवका फुरना ज्ञानरूप है। यदि दृश्य की ओर लगता है तो वही रूप होजाता है और यदि सत् की ओर लगता है तो सत्रूप होजाता है एवम् जब दृश्य के सन्मुख होता है तब दीर्घभ्रम को देखता है। जीवके भीतर जो सृष्टिरूप हो फुरता

है सोभी आत्मसत्ता से कुछ भिन्न वस्तु नहीं है। जैसे बटलोही में दानों के समान जल उछलता है सो उस जल से वस्तु भिन्न नहीं तैसेही आत्मा के सिवा जीव के भीतर और कुछ वस्तु नहीं और सृष्टि जो भासती है सो मायामात्र है। हे रामजी! जीव को स्वरूप के प्रमाद से सृष्टि भासती है और सत्वत् होगई है उससे नाना प्रकार का विश्व भासता है और नाना प्रकार की वासना फुरती है उससे बन्धायमान हुआ है। जब वासना क्षय हो तब मुक्तिरूप हो। हे रामजी! घनवासना मोहरूप का नाम सुषुप्ति जड़ अवस्था है और क्षीण स्वप्नरूपहै। जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब दृश्य में सत्बुद्धि होती है और जब उसमें प्रतीति होती है तब नाना प्रकार की वासना उदय होती है पर जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब संसारसत्यता नाश होजाती है—फिर वासना नहीं फुरती। हे रामजी! घनवासना तबतक फुरती है जबतक दृश्य की सत्बुद्धि होती है और जब जगत् का अत्यन्त अभाव होता है तब वासना भी नहीं रहती। जैसे भूषण पिघला कर जब सुवर्ण किया तब भूषण-बुद्धि नहीं रहती। जो वस्तु अज्ञान से उपजी है सो ज्ञानसे लीन होजाती है, एवं वासना भ्रम अबोधसे उपजा है और बोधसे लीन होजाताहै। हे रामजी! घनवासना से सुषुप्ति जड़ अवस्था होती है और तनु वासना से स्वप्न देखता है। घनवासना मोह से जीव स्थावर अवस्था को प्राप्त होता है; मध्यवासना से तिर्यक्योनि पाता है अर्थात् पशु, पक्षी और सर्पादिक होता है; तनुवासना से मनुष्यादिक शरीर पाता है और नष्टवासना से मोक्ष पाता है। हे रामजी! यह जगत् सब संकल्प से रचा है। घट पट आदिक जो बाहर देखते और ग्रहण करते हो वही हृदय में स्थित होजाते हैं और जब उनको ग्रहण करते हो तो ग्राह्य ग्राहक का सम्बन्ध देखतेहो कि, यह मैंने ग्रहण किया है और यह मैंने लिया है। जो ज्ञानवान् है वह न ग्रहण करने का अभिमान करता है और न कुछ त्यागने का अभिमान करता है उसको भीतर बाहर सब चिदाकाश भासता है। चेतन सत्ता का यह चमत्कार है; तीनों जगत्रूप होकर वही प्रकाशता है रञ्चकमात्र भी कुछ अन्य नहीं—केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे होकर भासते हैं परन्तु जलही जल है—जल से कुछ भिन्न नहीं तैसेही आत्मा जगत्रूप होकर भासता है द्वैत नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेयथार्थोपदेशोनामपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे जीव को स्वप्ने में जो संसार उदय होता है वह कल्पनामात्र होता है, न सत् है और न असत् है जीव के फुरने सेही भ्रम भासता है; तैसेही यह जाग्रत् अवस्था भ्रममात्र है—स्वप्न और जाग्रत् एकरूप है। जैसे स्वप्ने में जाग्रत् का एकक्षण भी दीर्घकाल होता है तैसेही स्वरूप के प्रमाद से जाग्रत् भी

दीर्घकाल का भ्रम हुआ है जिससे सत् को असत् जानता है और असत् को सत् जानता है; जड़ को चेतन जानता है और चेतन को विपर्यय ज्ञान से जड़ जानता है। जैसे स्वप्ने में एकही जीव अनेकता को प्राप्त होता है; तैसेही आदि जीव एकसे अनेक होकर भासता है। जैसे किसी स्थान में चोर भ्रम भासता है तैसेही आत्मा में तीनों जगत् भ्रम भासता है। जैसे सुषुप्त मे स्वप्नभ्रम उदय होता है तैसेही अद्वैततत्त्व आत्मा में जगत्भ्रम होता है। आत्मा अनन्त सर्वगत जीव का बीजरूप है जैसा उसके आश्रय फुरना होता है तैसाही सिद्ध होकर भासता है। हे रामजी! जिस पुरुष की स्वरूप में स्थिति हुई है वह सदा निःसंग होकर विचरता है। जैसे विष्णुजी के निःसंगता के उपदेश मे अर्जुन मुक्त होकर विचरेंगे; तैसेही, हे महाबाहो! तुमभी विचरो। हे रामजी! पाण्डव के पुत्र अर्जुन जैसे सुख से जन्म व्यतीत करेंगे और सब व्यवहारों में भी सुखी और स्वस्थ रहेंगे तैसेही तुमभी निस्संग होकर विचरो। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! पाण्डव के पुत्र अर्जुन कब होंगे और कैसे विष्णुजी उनको निःसंग का उपदेश करेंगे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अस्ति तन्मात्रतत्त्व में आत्मादिक संज्ञा कल्पकर कही हैं। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही निर्मलतत्त्व अपने आप में स्थित है; जैसे सुवर्ण में भूषण और समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं तैसेही आत्मा में चौदह प्रकार के भूतजाति फिरते हैं और जैसे जाल में पक्षी भ्रमते हैं तैसेही जगत् में जीव भ्रमते हैं और चन्द्रमा, सूर्य, लोकपाल होकर स्थित हैं और उन्होंने पञ्चभूतों के कर्म रचे हैं कि; यह पुण्य ग्रहण करने योग्य है और यह पाप त्यागने योग्य है; पुण्य से स्वर्गादिक सुख प्राप्त होता है और पाप से नरक होता है। यह मर्यादा लोकपाल ने स्थापन की है। इस प्रकार संसाररूपी नदी में जीव बहते हैं। संसाररूपी नदी अवच्छिन्नरूप बहती भासती है पर क्षण२ में नष्ट होती है। इस जगत् में सूर्य के पुत्र यमराज लोकपाल बड़े प्रतापवान् और तेजवान् हैं और सब जीवों को मारते हैं और उस पतित प्रवाह कार्य के कर्म में स्थित हैं। उनका जीवों को मारना और दण्ड देनाही नियम है परन्तु चित्त में पहाड़ की नाईं स्थित हैं। वे यमराज चार चार युगों प्रति कभी आठ, कभी सात, कभी बारह वा सोलह वर्षों का नियम धार के किसी जीव को नहीं मारते और उदासीन की नाईं स्थित होते हैं। जब पृथ्वी में अधिक भूत होजाते हैं और चलने को मार्ग नहीं रहता और कोई दुष्टजीव जीवों को दुःख देते हैं उससे पृथ्वी भारी और दुःखी होती है तब पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त विष्णुजी अवतार धारकर दुष्टजीवों का नाश करते हैं और धर्ममार्ग को दृढ़ करते हैं। हे रामजी! इस प्रकार नियम के धारनेवाले यम को अनन्तयुग अपने व्यवहार को करते व्यतीत होगये हैं

और भूत और जगत् अनेक होगये हैं। इस सृष्टि का जो अब वैवस्वत यम है सो आगे द्वादशवर्ष पर्यन्त नियम करेगा और किसी को न मारेगा तब जीव क्रूरकर्म करने लगेंगे और पृथ्वी भूतों से भरजावेगी। जैसे वृक्ष गुच्छों के साथ संघट्ट होजाते हैं तैसेही पृथ्वी प्राणियों के साथ संघट्ट होजावेगी और जैसे चोरसे डरकर स्त्री भर्त्ता की शरण जाती है तैसेही पृथ्वी भी दुःखित होकर विष्णु की शरण जावेगी तब विष्णुजी दो देह धारकर पृथ्वी का भार उतारेंगे और सन्मार्ग स्थापन करेंगे। सब देवता भी अवतार लेकर उनके साथ आवेंगे और नरों में नायक भाव को प्राप्त होंगे। एक देह से तो विष्णु भगवान् वसुदेव के गृह में पुत्ररूप कृष्ण नामसे होंगे और दूसरी देह से पाण्डु के गृहमें अर्जुन नाम से युधिष्ठिर नामक धर्मपुत्र के भाई होंगे और समुद्र जिसकी मेखलाहै ऐसी जो पृथ्वीहै तिसका राज्य करेंगे। उसके चचा के पुत्र का दुर्योधन नाम होगा और उसका और भीम का बड़ा युद्ध होगा। दोनों ओर संग्राम की लालसा होके अठारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होकर बड़े भयानक युद्ध होंगे और उनके बलसे हरि पृथ्वी का भार उतारेंगे। हे रामजी! उस सेनाके युद्ध में विष्णु का अर्जुन नाम देह होगा जो गाण्डीव धनुष धार के प्रकृतस्वभाव में स्थित हो हर्ष शोकादिक विकारसंयुक्त निरधर्मा होगा और युद्ध में अपने बांधवों को देखकर मूर्च्छित होगा और मोह और कायरता से उसके हाथ से धनुष गिरपड़ेगा और आतुर होगा तब बोधदेह से उसको हरि उपदेश करेंगे। जब दोनों सेनाओं के मध्य में अर्जुन मोहित होकर गिरेगा तब हरिकहेंगे कि; हे राजसिंह, अर्जुन! तू मनुष्यभाव को प्राप्त हो क्यों मोहित हुआ है? इस कायरता को त्यागकर; तू तो परमप्रकाश आत्मतत्त्वहै। सर्वका आत्मा आनन्द, अविनाशी, आदि–अन्त–मध्य से रहित; सर्वव्यापी, परम अंकुररूप, निर्मल, दुःख के स्पर्श से रहित, नित्य, शुद्ध, निरामयहै। हे अर्जुन! आत्मा न जन्मताहै, न मरता है; होकर भी फिर कुछ और नहीं होता क्योंकि; अजनित, निरन्तर और पुरातन सर्वकी आदि है। उसका शरीरके नाशहुये नाश नहीं होता तू क्यों वृथा कायरताको प्राप्त हुआहै?॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनारायणावतारोनामैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५१ ॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! जो इस आत्मा को हन्ता मानते हैं और हत होता मानते हैं वे आत्मा को नहीं जानते। यह आत्मा न मरताहै और न मारता है क्योंकि जो अक्षयरूप और निराकार आकाश से भी सूक्ष्म है उस आत्मा परमेश्वर को कोई किस प्रकार मारे। हे अर्जुन! तुम अहंकाररूप नहीं। इस अनात्म अभिमानरूपी मल को त्यागकरो; तुम जन्म मरण से रहित मुक्तरूप हो। जिस पुरुष को अनात्म में अहंभाव नहीं और जिसकी बुद्धि कर्तृत्व भोक्तृत्व से लेपायमान नहीं होती वह पुरुष

सब विश्व को मारे तौ भी उसको नहीं मारता और न बन्धवान् होता है। हे अर्जुन! जिस को जैसा दृढ़ निश्चय होता है उसको तैसाही अनुभव होता है; इससे यह, मैं, मेरा इत्यादि जो मलिन संवित् निश्चय होता है उसको त्यागकर स्वरूप में स्थित हो। जो ऐसी भावना में स्थित नहीं होते और आपको नष्ट होता मानते हैं सो सुख दुःख से राग द्वेष में जलते हैं। हे अर्जुन! वे अपने गुणों के असंख्य कर्मों में वर्तते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनसे पांचोंतत्त्व-आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उपजे हैं और उनभूतों के अंश श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका विषयों में स्थित हैं वे अपने विषय को ग्रहण करती हैं। नेत्र-रूप, त्वचा-स्पर्श; जिह्वा-रस, नासिका-गन्ध और श्रवण-शब्द ग्रहण करते हैं; उसमें अहंकार से जो मूढ़ हुआ है वह आप को कर्ता मानता है कि;मैं देखता हूं, सुनता हूं, स्पर्श करता हूं, स्वाद लेता हूं और गन्ध लेता हूं। हे अर्जुन! ये सबकर्म कलना से रचे हैं। इन्द्रियों से कर्म होतेहैं और अहंभाव से जीव वृथा क्लेश का भागी होताहै। बहुत ने मिलकर कर्म किया और इसमें एक ही अभिमानी होकर दुःख पाताहै। बड़ा आश्चर्य है कि, देह और इन्द्रियों से कर्म होते हैं और जीव अभिमानी होकर सुख, दुःख और राग, द्वेष से जलता है। इससे इनका संग और अभिमान त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो। योगी केवल इन्द्रियों से कर्म करता है और उनमें अभिमान वृत्ति नहीं करता। हे अर्जुन! इस जीव को अहंकारही दुःखदायकहै कि, अनात्म में आत्मअभिमान करताहै। जो अभिमान-रूपी विष के चूर्ण से रहित होकर चेष्टा करता है वह दुःख का कारण नहीं होता; वह सदा सुखरूप है। हे अर्जुन! जैसे सुन्दर शरीर विष्ठा और मल से मलिन किया हो तो उसकी शोभा जाती रहती है तैसेही बुद्धिमान् शास्त्र का वेत्ता और गुणोंसे सम्पन्न भी हो पर यदि अनात्म में आत्म अभिमान करे तो उसकी शोभा जाती रहती है। जो निर्मल, निरहंकार, सुख, दुःख में सम और क्षमावान् है वह शुभकर्म करे अथवा अशुभ करे उसको किसी कर्म का स्पर्श नहीं होता। हे अर्जुन! ऐसे निश्चयवान् होकर कर्म को करो। हे पाण्डवपुत्र! युद्ध तुम्हारा परम धर्म है उसे करो। अपना अतिक्रूर कर्म भी कल्याण करता है। पराया धर्म उत्तम भी दुःखदायक है और अपना धर्म अल्प भी अमृत की नाईं सुखदायक है। हे अर्जुन! चाहे जैसा कर्मकरो; यदि तुम्हारे में अहंभाव न होगा तो वह तुमको स्पर्श न करेगा। संग अभिमान को त्याग और योग में स्थित होकर कर्म करो। जो निःसंग पुरुष है उसको कोई कर्म प्राप्त हो पर वह उस को करता हुआ बन्धवान् नहीं होता। इससे ब्रह्मरूप होकर ब्रह्ममय कर्म करो तब शीघ्रही ब्रह्मरूप होजावोगे। जो कुछ आचार कर्म हो उसे ब्रह्म में अर्पण करो। संन्यास-योग युक्ति से कर्मों को करते भी मुक्तिरूप होगे। इतना सुन अर्जुन ने पूछा,

हे भगवन्! संगत्याग, ब्रह्म अर्पण, ईश्वर अर्पण और योग किसको कहते हैं? मोह की निवृत्तिके लिये इनको पृथक् २ कहिये? श्रीभगवान् बोले। हे अर्जुन! प्रथम तुम यह सुनो कि, ब्रह्म किसको कहतेहैं। जहां सब संकल्प शान्तहैं केवल एक घन वेदनाहै; दूसरी भावना का उत्थान नहीं केवल अचेत चिन्मात्रसत्ता है उसको परब्रह्म कहतेहैं। उसको जानकर उसके पानेका उद्यम करना और जिस विचारसे उसको पाइये उसका नाम ज्ञान है। उसमें स्थित होनेका नाम योग है। ऐसा निश्चय करना कि, यह सर्व ब्रह्म है; मैं ब्रह्म हूं और सब जगत् मैंहींहूं; और ब्रह्म से भिन्न कुछ भावना न करना इस का नाम ब्रह्म अर्पण है। नाना प्रकार का जो जगत् भासता है सो क्या है? भीतर भी शून्य है और बाहर भी शून्य है। जिसकी शिला की उपमा है ऐसा जो आकाशवत् सत्तारूप है सो न शून्यहै, न शिलावत् है; उसके आश्रय स्पन्दकलना स्फूर्त्ति की नाईं अन्यवत् जगत्रूप होकर भासती है परन्तु आकाश की नाईं शून्य है। जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे अनेकरूप होकर स्थित होते हैं सो जलही हैं और कुछ नहीं एक जल ही अनेकरूप भासता है; तैसेही एकही वस्तुसत्ता घट, पट आदिक आकार होकर भासती है। संवित्सार आत्मामें भेदकलना कुछ नहीं; अज्ञान से अनेकरूप भेदकलना विकल्पजाल भासते हैं और अनेकभाव को प्राप्त होते हैं। आत्मा को अनेक नाम रूप देखना और भिन्न भिन्न देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्ध्यादिक अनेक में अहंप्रतीति से एकत्रभाव देखना अज्ञानता है। यह कलना ज्ञान से नष्ट होजाती है। हे अर्जुन! संकल्पजालों को त्याग करने का नाम असंग कहते हैं। सब कलना जालों को भी ईश्वर से भिन्न न जानना इस भावना से द्वैतभाव गलित होजावेगा—इसका नाम ईश्वरसमर्पण कहते हैं। हे अर्जुन! जब ऐसी अभेद भावना होती है तब आत्मबोध प्राप्त होता है। बोध से सब शब्द अर्थ एकरूप भासते हैं; सब शब्दों का एकही शब्द भासता है और एकही अर्थ सब शब्दों में भासता है। हे अर्जुन! सर्व जगत् मैं हूं; दिशा और आकाश मैं हूं और कर्म, काल, द्वैत, अद्वैत मैंहीं हूं; तू मुझ से मन लगा, मेरी भक्तिकर, मेराही भजनकर और मुझही को नमस्कार कर तब तू मुझही को प्राप्त होगा। हे अर्जुन! मैं आत्मा हूं और तुम मेरेही परायण हो। अर्जुन बोले, हे देव! आपके दो रूप हैं—एक पर और दूसरा अपर; उन दोनों रूपों में मैं किसका आश्रय करूं जिससे मैं परमसिद्धि पाऊं? श्रीभगवान् बोले, हे अनघ! एक समानरूप है और दूसरा परमरूप है। यह जो शङ्ख, चक्र गदादिक संयुक्तहै सो तो मेरा समानरूप है और परमरूप आदि अन्तसे रहित एक अनामय है उस ब्रह्मरूप को आत्मा और परमात्मा आदिक नाम से कहते हैं। जबतक तुम अप्रबोध हो और तुमको अनात्म देहादिक में आत्म अभिमान है तबतक

मेरे चतुर्भुज आकार की पूजा के परायण हो और कर्मों को करो, और जब प्रबोध होगे तब मेरे परमरूप को प्राप्त होगे जो आदि-अन्त-मध्य से रहित है। उसको पाकर फिर जन्म-मरण में न आवोगे। जब तुमसे शत्रुओं के नाशकर्ता और ज्ञानवान् हुये तब आत्मा से मेरा पूजन करो। मैं सर्वका आत्माहूं। हे अर्जुन! मैं मानता हूं कि, तुम अब प्रबोध हुये हो, आत्मपद में विश्राम पाया है और संकलपकलना से रहित एक आत्मसत्ता में स्थित होकर मुक्त हुये हो। ऐसे योगसे तुम सर्वभूतों में स्थित होकर आत्मा को देखोगे; सब भूतों को आत्मा में स्थित देखोगे और सर्वत्र तुमको समबुद्धि होगी तब स्वरूप में तुमको दृढ़स्थिति होगी। हे अर्जुन! जो सर्वभूतों में स्थित आत्मा को देखता है और एकत्वभाव से भजन करताहै और जिसको आत्मा से भिन्न और भावना नहीं फुरती वह सर्व प्रकार वर्तमान भी है तौ भी फिर जन्म मरण में नहीं आता। हे अर्जुन! जिसमें सर्वशब्दों का अर्थ है और जो सर्व शब्दों में एक अर्थरूप है ऐसी आत्मसत्ता न सत् है और न असत् है; सत्-असत् से जो रहित सत्ता है सो आत्मसत्ता है। वह सब लोगों के चित्त में प्रकाशरूप करके स्थित है। हे भारत! जैसे दूध में घृत और जल में रस स्थित होता है तैसेही मैं सबलोगों के हृदय में तत्त्वरूप स्थित हूं। जैसे दूध में घृत स्थित है, तैसेही सब पदार्थों के भीतर मैं आत्मा स्थित हूं। और जैसे रत्नों के भीतर बाहर प्रकाश होता है, तैसेही मैं सर्व पदार्थों के भीतर बाहर स्थित हूं। जैसे अनेक घटों के भीतर बाहर एकही आकाश स्थित है तैसेही मैं अनेक देहों के भीतर बाहर अव्यक्तस्वरूप स्थित हूं। हे अर्जुन! ब्रह्मा से आदि तृण पर्यन्त सर्व पदार्थों में सत्ता समान से मैं स्थित हूं और नित्य अजन्मा हूं। मुझमें जो चित्तसंवेदन फुरा है सो ब्रह्मसत्ता की नाईं हुआ है और फुरने से जगत्‌रूप हो भासता है पर आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है-कुछ द्वैत नहीं। हे अर्जुन! आत्मा सबका साक्षीरूप है-उसको जगत् का सुख दुःख स्पर्श नहीं करता। जैसे दर्पण प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है परन्तु सबमें सम है और किसीसे खेदवान् नहीं होता; तैसेही सबपदार्थ अवस्था का साक्षीभूत आत्मा है परन्तु किसीको स्पर्श नहीं करता और शरीर के नाश में उसका नाश नहीं होता। जो ऐसा देखता है सो ही यथार्थ देखता है। हे अर्जुन! पृथ्वी में गन्ध, जल में रस, पवन में स्पर्श और स्पन्दशक्ति मैंहींहूं; अग्नि में प्रकाश और आकाश में शब्दशक्ति मैंहीं हूं। तुमसे क्या कहूं कि, यह मैं हूं। सर्वात्म सर्वका आत्मा मैं हूं-मुझसे कुछ भिन्न नहीं। हे पाण्डव! यह जो सृष्टि प्रवर्त्तती है और उत्पन्न और प्रलय होती दृष्टि आती है सो मुझमें ऐसे है जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते और लीन होते हैं। जैसे पहाड़ पत्थररूप हैं; वृक्ष काष्ठरूप है और तरङ्ग जलरूप है तैसेही सर्व पदार्थों में मैं आत्मारूप

हूं । जो सबभूतों को आत्मा में देखता है सो आत्मा को अकर्ता देखता है । जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरङ्ग और सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसेही नाना आकार आत्मा में भासते हैं । हे अर्जुन ! ये नाना प्रकार के पदार्थ ब्रह्मरूप हैं—ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं; तब और क्या कहिये; भाव विकार क्या कहिये और जगत् द्वैत क्या कहिये ? जो सब वही है तो वृथा मोहित क्यों होते हो ? इस प्रकार सुनकर बुद्धिमान् इस लोक में समरसचित्त बिचरते हैं । हे अर्जुन ! उस पद को तुम क्यों नहीं प्राप्त होते जो पुरुष निर्वाण और निर्मोह हुये हैं और जिनकी अभिलाषा और द्वेष अभिलाषा निवृत्त हुई है वे अव्ययपद को प्राप्त हुये हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअर्जुनोपदेशोनामद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५२ ॥

श्रीभगवान् बोले, हे महाबाहो ! फिर मेरे परम वचन सुनो; मैं तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त कहताहूं क्योंकि; तुम्हारा हितकारी हूं । ये जो शीतोष्ण विषय हैं सो इन्द्रियों से छूते हैं और आगमापायी हैं अर्थात् आते हैं और फिर निवृत्त होजाते हैं इससे अनित्य हैं; इनको सहकर तुम आत्मा को स्पर्श नहीं करते । तुमतो एक आत्मा आदि अन्त—मध्य से रहित, निराकार, अखण्ड और पूर्ण हो तुमको शीत, उष्ण, सुख, दुःख खण्डित नहीं करसक्ते; ये कलना से रचे हुये हैं । जैसे सुवर्ण में भूषण का निवास है तैसेही आत्मा में इनका असत् निवास है । हे भारत ! जिसको इन्द्रियों के भ्रमरूप भोग और स्पर्श चलायमान नहीं करसक्ते और सुखदुःख सम हैं उस पुरुष को मोक्ष की प्राप्ति होती है । हे अर्जुन ! आत्मा नित्य, शुद्ध और सर्वरूप है और इन्द्रियों के स्पर्श असत्रूप हैं इस लिये असत्रूप सत्रूप आत्मा को मोह नहीं करसक्ते । यह अल्पमात्र तुच्छ है और बोधरूप आत्मतत्त्व सर्वगत शुद्धरूप है; उसको इनका स्पर्श कैसेहो—सत् को असत् स्पर्श नहीं करसक्ता । जैसे रस्सीमें सर्प आभास होता है सो रस्सी को स्पर्श नहीं करसक्ता; जैसे मूर्तिकी अग्नि कागज़ को जला नहीं सक्ती और जैसे स्वप्न के क्षोभ जाग्रत् पुरुष को स्पर्श नहीं करसक्ते; तैसेही इन्द्रियां और उनके विषय आत्मा को स्पर्श नहीं करसक्ते हैं । हे अर्जुन ! जो सत् है सो असत् नहीं होता और जो असत् है सो सत् नहीं होता । सुख दुःखादिक असत्रूप हैं और परमात्मा सत्रूपहै । जगत्के सत् वस्तु घटादिक और आकाश के असत्फलादिक त्याग से जो निष्किञ्चन महासत् पद शेष रहे उस में स्थित हो । हे अर्जुन ! ज्ञानवान् पुरुष इष्ट अनिष्ट से चलायमान नहीं होता; वह इष्ट सुखसे हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट दुःखसे शोकवान् नहीं होता चेतन पाषाणवत् शरीर में स्थित होता है । हे साधो ! यह चित्त भी जड़है और देह इन्द्रियादिक भी जड़ हैं । आत्मा चेतन है इनके साथ मिलाहुआ आपको देह क्या देखताहै ?

चित्त और देहभी आपस में भिन्न भिन्न है; देह के नष्ट हुये चित्त नहीं नष्ट होता और चित्त के नष्ट हुये देह नहीं नष्ट होता। इनके नष्ट हुये जो आपको नष्ट हुआ मानता है और इनके सुख दुःखसे सुखी दुःखी होता है वह महामूर्ख है। हे अर्जुन! स्वरूप के प्रमाद से जो देहादिक में अहंप्रतीति करता है और आपको भोक्ता मानता है वह निर्बुद्धि है। जब आत्मा का बोध होता है तब आपको अकर्ता, अभोक्ता और अद्वैत देखता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है और रस्सी के बोध से सर्प का अभाव होता है; तैसेही आत्मा के अज्ञान से देह और इन्द्रियों के सुख दुःख भासते हैं और आत्मज्ञान से सुख दुःख का अभाव होजाता है। हे अर्जुन ! यह विश्व एक अज ब्रह्मस्वरूप है। न कोई जन्मता है और न मरता है – यह सत् उपदेश है। हे अर्जुन! ब्रह्मरूपी समुद्रमें तुम एक तरङ्ग फुरे हो और कुछ काल रहके फिर उसीमें लीन होजावोगे–इससे तुम्हारा स्वरूप निरामय ब्रह्म है। सब जगत् ब्रह्म का स्पन्द है और समय पाकर दृष्टि आताहै; इससे मान, मद, शोक और सुख, दुःख सब असत् रूप है। तुम शान्तिमान् हो रहो। हे अर्जुन! प्रथम तो तुम ब्रह्ममय युद्धकरो और जो कुछ अक्षौहिणी सेना है उसका अनुभव से नाश करो। यह द्वैत कुछ नहीं एकही सर्वदा परब्रह्मरूप स्थित है। ब्रह्ममय युद्धकरो और सुख, दुःख, हानि, लाभ और जय, अजय इनकी उस युद्ध में एकता करो ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ जगत् भासता है सो सब ब्रह्मही है, ब्रह्मसे कुछ भिन्न नहीं; ऐसे जानके लाभ, हानि में सम होकर स्थित हो और चिन्तना कुछ न करो। हे अर्जुन! जड़शरीर से कर्म स्वाभाविक होते हैं; जैसे वायु का फुरना स्वाभाविक होता है तैसेही शरीर से कर्म स्वाभाविक होतेहैं। हे अर्जुन! भोजन, यजन, दान इत्यादिक जो कुछ कार्य करो सो आत्मा ही में अर्पण करो; सदा आत्मसत्ता में स्थित रहो और सबको आत्मरूप देखो। हे अर्जुन! जो किसीके हृदय में दृढ़ निश्चय होताहै वही रूप उसको भासताहै। जब तुम इसप्रकार अभ्यास करोगे तब ब्रह्मरूप होजावोगे–इसमें संशय नहीं। हे अर्जुन! जो कर्मों में आत्मा को अकर्ता देखता है वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है और सम्पूर्ण कर्मोंके करते भी कुछ नहीं करता। हे अर्जुन! कर्मोंके फल की इच्छा भी नहो और कर्मोंसे विरसता भी नहो–योग में स्थित होकर कर्मको करो। हे धनंजय! कर्तृत्व के अभिमान और फल की वाञ्छा को त्यागकर कर्म करो। जो कर्मों के फल और संग को त्यागकर नित्य तृप्त हुआ है वह करता हुआ भी कुछ नहीं करता। हे अर्जुन! जिसने सब आरम्भों में कामना और संकल्प का त्याग किया है और ज्ञान अग्नि से कर्म जलाये हैं उसको बुद्धिमान् पण्डित कहते हैं। जो आत्मा में समस्थित है और सब अर्थों में निस्स्पृह और निर्द्वन्द्वसत्ता में स्थित है यथाप्राप्ति में वर्तता है सो पृथ्वी

का भूषण है और समुद्र की नाईं अचल और अपने आपमें तृप्त है। जैसे समुद्र में अनिच्छित जल प्रवेश करता है तैसेही ज्ञानवान् में सुख प्रवेश करते हैं । वह शान्तरूप सर्व कामनाओं से रहित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअर्जुनोपदेशेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनाम त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५३ ॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! तुम देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित, अविनाशी और अजर आत्मा हो। अजर परिणाम से रहितको कहतेहैं। हे अर्जुन! तुम शोक मत करो; यह जगत् तुमको अज्ञान से भासता है। अज्ञान अपने प्रमाद को कहते हैं और प्रमाद अनात्म में आत्म अभिमान करने का नाम है। हे अर्जुन! यह जो संसाररूप तुम्हारा देहहै इसमें अभिमान मत करो—यह मिथ्याहै—इसमें दुःख होताहै और तुम असंग और अविनाशी हो; तुम्हारा नाश कदाचित् नहीं होता। हे अर्जुन ! जो विनाशरूप है वह कदाचित् न होगा और जो सत्य है उसका अभाव न होगा। तत्त्ववेत्ताओं ने इनदोनों का निर्णय किया है। हे अर्जुन ! जिसमें यह सर्व प्रकाशता है उसको तुम अविनाशी जानो उसको कोई विनाश नहीं करसक्ता। हे अर्जुन ! तुम ऐसेहो और यह आत्मा सबका अपना आप है उसका विनाश कैसे हो ? अज्ञानी मनुष्य उसका विनाश होता मानते हैं। अर्जुन ने पूछा, हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, आत्मा अविनाशी है और सबका अपना आप है तो उनका क्योंकर नाश होताहै ? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! तुम सत्य कहतेहो। किसीका नाश नहीं होता परन्तु अज्ञान से अपना नाश होता मानते हैं। हे अर्जुन ! तुम आत्मवेत्ता होरहो। वह आत्मा एक अद्वैत है जिसको एकभी नहींकहसक्के तो द्वैत कहां हो ? अर्जुन बोले, हे भगवन्! आप कहतेहैं कि, आत्मा एक है तो मृत्यु भी दूसरा न हुआ और लोग मरके नरक स्वर्ग भोगते हैं; यदि मृत्यु नहीं तो लोग मरते क्यों हैं और पाप पुण्य क्यों भोगते हैं ? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! न कोई मरताहै और न जन्मता है—यह स्वप्नेकी नाईं मिथ्या कल्पना है। जैसे निद्रादोष से जन्मना और मरना भासता है तैसेही संसारमें यह जन्म मरण अज्ञानसे भासताहै। अज्ञान फुरने का नाम है उस फुरनेही से नरक और स्वर्ग कल्पा है । हे अर्जुन ! जैसे यह जीव भोगता है सो तुम सुनो। इस जीवने अपने स्वरूप के प्रमाद से संकल्प के शरीर रचे हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश में मन, बुद्धि और अहंकार से जीव प्रकाश करता है। उससे मिलकर जैसी वासना करता है तैसाही आगे भोगता है। वह वासना तीन प्रकारकी है—एक सात्त्विकी; दूसरी राजसी और तीसरी तामसी। जैसी वासना होती है तैसाही स्वर्ग और नरक बनजाता है। सात्त्विकी वासना से

स्वर्ग बनजाता है और भिन्नसे नरकादिक बनजाते हैं। स्वर्ग नरक केवल वासनामात्र हैं; वास्तव में न कोई स्वर्ग है और न नरक हैं; न कोई मरता है, न जन्मता है केवल एक आत्मा ही ज्यों का त्यों स्थित है परन्तु यह जगत्भास भ्रम से भासता है। इस जीव ने अज्ञान से चिरकाल वासना का अभ्यास किया है, उसीसे भ्रम देखता है। अर्जुन बोले, हे जगत्पते! यह जीव जो नरक, स्वर्गादिक योनि जगत् में देखता है उसका कारण कौन है? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! अज्ञान से जो अनात्मा में आत्म अभिमान हुआ है उससे जगत् को सत् जानकर वासना करने लगा है और जैसे २ जगत् को सत् जान कर वासना करताहै तैसेही जगत्भ्रम देखता है। जब आत्मविचार उपजता है तब जगत् को स्वप्नेकी नाईं देखता है और वासना भी क्षय होजाती है और जब वासना क्षय होती है तब कल्याण होता है। फिर अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! चिर अभ्यास से जो संसार भ्रम दृढ़ होरहा है सो किस प्रकार उपजा है और किस प्रकार लीन होगा? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! मूर्खता और अज्ञता से जो अनात्म देहादिक में आत्मभावना होती है उससे जगत् को सत् जान वासना करता है और उस वासना के अनुसार जगत्भ्रम देखता है पर जब स्वरूप का अभ्यास करता है तब वासना नष्ट होजाती है। इससे हे अर्जुन! तुम स्वरूप का अभ्यास करो। अहं, मम आदिक वासना को त्यागकर केवल आत्माकी भावना करो। यह देह वासनारूप है जब वासना निवृत्त होगी तब देहभी लीन होजा-वेगी और जब देह लीन हुई तब देश, काल, क्रिया, जन्म, मरण भी न रहेंगे। यह अपनेही संकल्प से उठे हैं और भ्रमरूप हैं; उनकी वासना से घेरा हुआ जीव भट-कताहै। जब आत्मबोध होता है तब वासना से मुक्त होता है और निरालम्ब असं-कल्प अविनाशी आत्मतत्त्व पाता है। उसीको मोक्ष कहते हैं। हे अर्जुन! जब जीव को तत्त्वबोध होता है तब वासनारूपी जाल से मुक्त होताहै और जो वासना से मुक्त हुआ सो मुक्त हुआ। यदि पुरुष सर्वधर्म परायणभी हो। और सर्वज्ञ और शास्त्रोंका वेत्ताभी हो पर यदि वासना से मुक्त नहीं हुआ तो वह सब ओरसे बन्धहै जैसे दृष्टिके दोषसे निर्मल आकाश में मोरके पुच्छवत् तारे भासते हैं तैसेही मूर्खको शुद्ध आत्मामें वासनारूपी मल जगत् भासना है। जैसे पिंजरे में पक्षी बन्दहोता है तैसेही वह बन्ध होताहै। जिसके हृदयमें वासनाहै वह बन्ध है और जिसके हृदय में वासना नहीं है उसको मोक्ष जानो। हे अर्जुन! जिसके हृदय में जगत् की वासना है वह यदि बड़ी प्रभुता संयुक्त दृष्टि आता है तौभी दरिद्री है और दुःख का भोगी है; और जिसकी वासना नष्ट हुइ है वह यदि प्रभुतासे रहित दृष्टि आताहै तौभी बड़ा प्रभुतावान्है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवनिर्णयोनामचतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५४ ॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! इस प्रकार तुम निर्वासानिक जीवन्मुक्त होकर विचरो तब तुम्हारा अन्तःकरण शीतल होजावेगा; जरा मरण से मुक्त और निःसंग आकाशवत् होगे और इष्ट अनिष्ट को त्याग बीतराग होकर स्थित होगे । हे अर्जुन ! पतित प्रवाह जो कार्य आन प्राप्त हो उसको करो और युद्ध में कायरता मत करो । आत्मा अविनाशी है और देह नाशवन्तहै; देह के नाश हुये आत्मा नाश नहीं होता । हे अर्जुन ! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं वे रागद्वेष से रहित होकर प्रवाह पतितकार्य को करते हैं । तुमभी जीवन्मुक्त स्वभाव होकर बिचरो और 'यह मैं करूं' 'यह न करूं; इसग्रहण त्याग के संकल्प को त्यागो । इसीसे ज्ञानवान् बन्धवान् नहीं होते । जो मूर्ख हैं वे इसमें बन्धवान् होते हैं और जीवन्मुक्त पुरुष सुषुप्तवत् स्थित होकर प्रवाह पतित और प्रबुद्ध की नाईं वासना से रहित हुये कार्य करते हैं । जैसे कच्छप अपना अङ्ग समेटलेताहै तैसेही ज्ञानवान् वासना को सकुचालेताहै और आपको चिन्मात्ररूप जानता है । मुझ में जगत्माला के दानों की नाईं पिरोया हुआ है और सबजगत् मेरा अङ्ग है । जैसे अपने हाथ पसारे और समेटे और जैसे समुद्र से तरङ्ग उठते और लीन होते हैं; तैसेही विश्व आत्मासे उपजते और लीन होते हैं—भिन्न कुछ नहीं । हे अर्जुन ! जैसे चँदवे के ऊपर नाना प्रकार के चित्त लिखे होते हैं परन्तु वह रङ्ग वस्त्र से भिन्न नहीं होते; तैसेही आत्मा में मनरूपी चितेरेने जगत् रचा है और अनउपजा होकर भासता है । जैसे थंभे में चितेरा कल्पना करता है कि, इतनी पुतलियां निकलेंगी सो आकाशरूपी पुतलियां उसके मन में फुरती हैं, तैसेही ये तीनों जगत् कालसंयुक्त चित्तमें फुरते हैं । चितेराभी मूर्ति तब लिखताहै जब उसके चित्तके भीतर कल्पना होती है पर यह आश्चर्य है कि, मन आकाश में चित्र कल्पता है । हे अर्जुन ! यह चित्र स्पष्ट भासता है तौभी आकाशरूप है । जैसे स्वप्न सृष्टि आकाशरूप होती है तैसेही यह भी है आकाश और भीत में भेद नहीं परन्तु आश्चर्य है कि, भेद भासता है । जैसे मनोराज स्वप्नपुर में जगत् मन के फुरनेसे भासता है और अफुर हुये लय होजाता है सो मनोमात्र है; तैसेही यह मनोमात्र है और आकाशसे भी शून्यरूप है । जैसे स्वप्नपुर और मनोराज में एकक्षण में बड़े काल का अनुभव होताहै और पूर्वरूप के विस्मरण से सत् हो भासता है तैसेही यह जगत् सत् हो भासता है । जबतक प्रमाद होता है तबतक भासता है पर जब इस क्रम से आत्मा को देखताहै तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है यद्यपि प्रकट देखता है परन्तु लीन होजाताहै और शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भासता है । जैसे चितेरे के मनमें चित्र फुरतेहैं सो आकाशरूप है तैसेही यह जगत् आकाशरूप है । हे अर्जुन ! भाव अभाववृत्तिको त्यागकर स्वरूप में स्थित हो तब आकाशवत् निर्मल होजावोगे । जैसे मेघकी प्रवृत्तिमें और निवृत्ति में आकाश

निर्मल ही होताहै, तैसेही तुमभी पदार्थ के भाव अभाव में निर्मल हो। जो कुछ पदार्थ भासते हैं वे सब आकाशरूप हैं। जैसे चितेरेके मनमें पुतलियां भासती हैं तैसेही यह जगत् आकाशरूप है। जैसे एक क्षण में मन के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासि- आते हैं और अफुर हुये लीन होजाते हैं; तैसेही प्रमाद से जगत् भासता है और आत्मा के जाननेसे लीन होजाता है आत्मा में जगत् निर्वाणरूप है पर आत्मा में एक निमेष के फुरने के द्वारा प्रमाद से वज्रसार की नाईं दृढ़ हो भासता है और चित्त के फुरनेसे सत् भासता है यह सब जगत् आकाशरूप है—द्वैत कुछ हुआ नहीं पर बड़ा आश्चर्य है कि, आकाश पर लिखे हुये चित्र नानारूप रमणीय होकर भासते हैं और मन को मोहते हैं। हे अर्जुन! यही आश्चर्य है कि, कुछ है नहीं और नाना प्रकार के रङ्ग भासते हैं। आकाशरूपी नील ताल में चन्द्रमा और तारे आदिक फूल खिले हैं और उनमें मेघरूपी पत्र लगे हैं। हे अर्जुन! और आश्चर्य देखो कि, चित्रभी तब होता है जब उसका आधार भीत अथवा वस्त्र होता है और यहां चित्र प्रथम उत्पन्न होते हैं आधार भूत था दीवार पीछे बनती है। प्रथम ये मूर्तें और चित्र बने हैं और पीछे भीत हुई है; यही आश्चर्य है। हे अर्जुन! यह माया की प्रधानता है कि, वास्तव आकाशरूप चितेरेने आकाश में आकाशरूप पुतलियां रची हैं। आकाशमें आकाश- रूप पुतलियां उपजी हैं और आकाश में हीं लीन होती हैं; आकाश ही को भोजन करती हैं; आकाशही को आकाश देखता है; आकाशही यह सृष्टि है और आकाशही रूप आकाश आत्मा में आकाशरूप स्थित है। हे अर्जुन! वास्तव में आत्मा ऐसे है। ऐसे अद्वैतरूप आत्मा में जो उत्थान हुआ है उस उत्थान से उसको स्वरूप का प्रमाद हुआ है जिससे दृश्यभ्रम देखता है और अनेक वासना होती हैं। वासनारूपी रस्सी से बांधाहुआ भटकता है और वासना से घेराहुआ अहं त्वं आदिक शब्दों को जानने लगता है और नाना प्रकार के भ्रम देखता है तौभी स्वरूप ज्यों का त्यों है। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है और दर्पण ज्यों का त्यों रहता है तैसेही आत्मा में जगत् प्रतिबिम्बित होता है और आत्मा छेद भेद से रहित है। ब्रह्मही ब्रह्म में स्थित है—जब सर्व वही है तब छेद भेद किसका हो? जैसे जल में तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही यह सब ब्रह्मही से पूर्ण है उसमें द्वैत कुछ नहीं। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मा में आत्मा स्थित है। उसमें वास्य वासक कल्पना कोई नहीं परन्तु स्वरूप के प्रमाद से वास्य वासक भेद होता है। जब स्वरूप का ज्ञान होता है तब वासना नष्ट हो जाती है। हे अर्जुन! जो वासना से मुक्त है वही मुक्त है और वासना से बांधाहुआ बांध है। यदि सब शास्त्रोंका वेत्ताभी हो। और सर्व धर्मोंसे पूर्णहो तौभी यदि वासनासे मुक्त नहीं हुआ तो बन्धही है। जैसे पिंजरे में पक्षी बन्ध होताहै तैसेही वह

वासना से बंधा हुआहै। हे अर्जुन! जिसके हृदय में वासनाका बीज है, यद्यपि बाह्य दृष्टि नहीं आता तौभी बहुत फैल जावेगा। जैसे वटका बीज फैल जाता है तैसेही वह वासना फैल जावेगी। जिस पुरुष ने आत्मा का अभ्यास किया है और उससे ज्ञान-रूपी अग्नि उपजाकर वासनारूपी बीज जलाया है उसका फिर संसारभ्रम नहीं उदय होता और न वस्तु बुद्धि से पदार्थों को ग्रहण करता है न सुखदुःख आदिक में डूबता है–सदा निर्लेप रहता है। जैसे तूंबी जल के ऊपरही रहती है तैसेही वह सुख दुःख के ऊपर रहता है। हे अर्जुन! तुम शान्त आत्मा हो। तुम्हारा भ्रम अब दूर हुआ है और आत्मपदको तुम प्राप्त हुये हो। तुम्हारा मन और मोह निर्वाण होगया है और सम्यक्ज्ञानी हुयेहो। व्यवहार करना और तूष्णीरहना तुमको दोनों तुल्य हैं और शान्तरूप निःशङ्कपद को प्राप्त हुये हो। यह मैं जानता हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेश्रीकृष्णसंवादेअर्जुनविश्रान्तिवर्णनं नामपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५५॥

अर्जुन बोले, हे अच्युत! मेरा मोह अब नष्ट है और मैं आत्मास्मृति को प्राप्त हुआ हूं। आपके प्रसाद से मैं अब निःसंदेह होकर स्थित हुआ हूं; अब जो कुछ आप कहिये वह मैं करूं। श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! मन की पांच वृत्तियां हैं–प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, अभाव और स्मृति। जब ये पांचों हृदय से निवृत्त हों तब चित्त शान्त हो। उसके पीछे चैत्यसे रहित चेतन जो शेष रहताहै उसको प्रत्यक्-चेतन कहते हैं। वह वस्तुरूप है और सब उपाधि से रहित सर्व है और सर्वरूप है। जो उस पद को प्राप्त हुआ है उसको आधि–व्याधि आदिक दुःख नहीं होसक्ते। जैसे जाल से निकलकर पक्षी आकाशमार्ग को उड़ता है। तैसेही वह देहाभिमान से मुक्त होकर आत्मपद को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! प्रत्यक् जो चेतनसत्ता है सो परम प्रकाशरूप, शुद्ध और संकल्प–विकल्प से रहित है और इन्द्रियों के विषय में नहीं आता–इन्द्रियों से अतीत है। जो पुरुष सबसे अतीत पद को प्राप्त हुआ है उसको वासना नहीं स्पर्श करसक्ती। उसके प्राप्तहुये ये घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य होजाते हैं और वहां तुच्छ वासना का कुछ बल नहीं चलता। जैसे अग्निसमूह के निकट बरफ़ गलजाती है और उसकी शीतलता नहीं रहती, तैसेही शुद्धपद के साक्षात्कार हुये चित्तवृत्ति नष्ट होजाती है और वासना का भी अभाव होजाता है। हे अर्जुन! वासना तबतक फुरती है जबतक संसार को सत्य जानता है; जब आत्मपद की प्राप्ति होतीहै तब संसार और वासना का अभाव होजाता है। इसकारण विरक्त पुरुष को सत्य जानने से कुछ वासना नहीं रहती नाना प्रकार के आकार विकारसंयुक्त विद्या तबतक फुरती है जबतक शुद्ध आत्माको अपनेआपसे नहीं जाना। शुद्धआत्मा को

प्राप्त हुये जगत् भ्रम सब नष्ट होजाता है; स्वच्छपद आत्मतत्त्व में स्थित होता है; आकाशवत् निर्मलभाव को प्राप्त होता है और अपने आपसे सब को पूर्ण देखता है। वही आत्मसत्ता सब आकाररूप है और सब आकाररूपों से रहित भी है। हे अर्जुन! जो शब्द से अतीत परमवस्तुहै उसको किसकी उपमा दीजे? जो वासनारूपी विसूचिका को त्यागकर अपने आत्मस्वभाव में स्थित हुआ पृथ्वी में विचरता है वह त्रिलोकी का नाथ है। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार त्रिलोकी के नाथ कहेंगे तब अर्जुन एकक्षण मौन में स्थित होजावेंगे और उसके उपरान्त कहेंगे कि, हे भगवन्! मेरे सब शोक नष्टहोगये हैं और जैसे सूर्य के उदय हुये कमल खिल आते हैं तैसेही आपके वचनों से मेरा बोध खिल आयाहै--अब जो कुछ आपकी आज्ञा हो वह मैं करूं। इस प्रकार कहकर अर्जुन गाण्डीव धनुष ग्रहण करेंगे और भगवान् को सारथी करके निःसंदेह और निश्शङ्क होकर रणलीला करेंगे जिसमें हाथी, घोड़े, मनुष्य मारकर लोहू के प्रवाह चलावेंगे तौभी आत्मतत्त्व में स्थित रहेंगे और स्वरूप से चलायमान न होंगे। जैसे पवन मेघ को अभावकर देता है। तैसेही योधाओं का नाश करेंगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेश्रीकृष्णअर्जुनसंवादेभविष्यद्गीतानामोपाख्यानसमाप्तिर्नामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसी दृष्टि का आश्रय करके जो दृष्टि दुःख का नाश करती है निःसंग संन्यासी हो अपने सबकर्म और चेष्टा ब्रह्म अर्पणकरो। जिसमें यह सब है और जिससे यह सर्व है ऐसी सत्ताको तुम परमात्मा जानो। अनुभवरूप आत्मा है उसकी भावना से उसीको प्राप्त होता है--इसमें संशय नहीं। जो सत्ता संवेदन फुरने से रहित चेतन प्रकाशताहै उसीको तुम परमपद जानो। वह सबका परम द्रष्टारूप है और सबका प्रकाशक है और महाउत्तम परमगुरु का गुरु है। जिसको शून्यवादी शून्य, विज्ञानवादी विज्ञान और ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते हैं वह परमसार शान्तरूप शिव अपने आपमें स्थितहै वही आत्मा इस जगत्रूपी मन्दिर को प्रकाश करनेवाला दीपक है; जगत्रूपी वृक्ष का रस है; जगत्रूपी पशु का पालनेवाला गोपाल है; जीवभूतरूपी मोतियों को एकत्र करनेवाला तागा है और हृदय और भूतरूपी मिर्चों में तीक्ष्णता है निदान सब पदार्थों में पदार्थरूप सत्ता वही है। सत्य में सत्यता और असत्य में असत्यता वही है। जगत्रूपीगृह में सब पदार्थों का प्रकाशनेवाला दीपक वही है और उसीसे सब सिद्ध होते हैं। चन्द्रमा, सूर्य, तारे आदिक जो प्रकाशरूप दीखते हैं उनका भी वह प्रकाशक है। यह जड़ प्रकाश है और वह चेतनप्रकाश है उसमें ये सिद्ध होते हैं और उसीसे सब प्रकाश प्रकट हुये हैं। वह

आत्मसंवित् अपनेही विचारसे पायाजाताहै । हे रामजी ! जो कुछ भाव अभाव पदार्थ भासते हैं वे असत् हैं; वास्तवमें कुछ हुये नहीं प्रमाददोष से भासते हैं और जब विचार उपजता है तब नष्टहोजाते हैं । हे रामजी ! जिसके हृदयमें अहंभावहै उसे ऐसा जो जगत्जालहै सो मिथ्याभ्रमसे भासताहै उसको उपजा क्या कहिये और किसकी आस्था कीजिये ? यह जगत् कुछ वस्तु नहीं । आदि–अन्त–मध्य की कल्पनासे रहित जो देव है वह ब्रह्मसत्ता समान अपने आप में स्थित है और द्वैत कुछ बना नहीं । जब यह तुमको दृढ़ निश्चय होगा तो तुम व्यवहार करते भी हृदय से निःसंग और शान्तरूप होगे । हे रामजी ! जिस पुरुष की उस समानसत्ता में स्थिति हुईहै वह इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में रागद्वेष से रहित हृदय से सदा शान्तरूप रहता है । वह न उदय होता है, न अस्त होताहै; सदा समताभाव में स्थित रहताहै । वह स्वस्थरूप अद्वैततत्त्व में स्थित होताहै और जगत् की ओरसे सुषुप्तवत् होजाता है; व्यवहारभी करता है परन्तु दर्पण के सदृश क्षोभवान् नहीं होता । जैसे मणि सब प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है परन्तु उसका संग नहीं करती; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष कदाचित् कलना कलङ्क को नहीं प्राप्त होता; उसका चित्त व्यवहार में सदा निर्मल रहता है । ज्ञानवान् को जगत् आत्मा का चमत्कार भासता है; न एक है, न अनेक है; आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है । चित्त में जो यह चेतनभाव भासता है उस चित्त फुरने का नाम संसार है और फुरनेसे रहित अफुर का नाम परमपद है । हे रामजी ! महाचेतनमें जो निजका अभाव है कि, मैं आत्मा को नहीं जानता; इसीका नाम चित्तस्पन्द है और यही संसार का कारण है । जब यह भावना क्षय हो तब चित्त अफुर हो । हे रामजी ! जहां निजभाव होता है वहां पदार्थों का अभाव होताहै । वह निज सब ठौर अपने अर्थ को सिद्ध करती है परन्तु आत्मा में नहीं प्रवर्त्तसक्ती । जब जीव कहता है कि मैं आत्मा को नहीं जानता तब भी आत्मा का अभाव नहीं होता क्योंकि प्रभाव को जाननेवाला भी आत्मा ही है । जो आत्मतत्त्व न हो तो अभाव क्यों न कहे सो आत्मा परमशून्य है परन्तु अजड़रूप परम चेतन है । हे रामजी ! तुम निज का अर्थ आत्मा में करो और आत्मा का अभाव न मानो । अनात्म में जो निज का भावत्व है उसका अभाव करो अर्थात् अनात्म को अभावरूप मानो । जब इस प्रकार दृढ़भावना करोगे तब संसार भ्रम निवृत्त होजावेगा और केवल आत्मभाव शेष रहेगा । हे रामजी ! चित्त के फुरने का नाम संसार है चित्त के फुरनेसेही संसारचक्र वर्तता है । जैसे सुवर्ण से भूषण प्रकट होते हैं तैसेही चित्तसे त्रिपुटी होती है पर चित्तस्पन्द भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं आत्मा का आभासरूप है । अज्ञान से चित्त स्पन्द होता है और ज्ञान से लीन होजाता है । जैसे सुवर्ण के भूषण को गलाये से भूषण बुद्धि नहीं रहती तैसेही चित्त अचलहुये

चित्तसंज्ञा जाती रहती है और जैसे भूषण के अभाव हुये सुवर्णही रहता है तैसेही बोध से चित्त के लीन हुये शुद्ध चेतनसत्ता शेष रहती है। फिर भोगों की तृष्णा लीन होजाती है और जब भोगभावना निवृत्त होती है तब ज्ञान का परम लक्षण सिद्ध होता है। हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है और जिसने सत्रूप को जाना है उसको भोग की इच्छा नहीं रहती। जैसे जो पुरुष अमृतपान से अघाजाता है उसको खली आदिक तुच्छ भोजन की इच्छा नहीं रहती तैसेही आत्मज्ञान से जो संतुष्ट हुआ है उसको विषय की तृष्णा नहीं रहती। यह निश्चय करके जानो कि, जब चित्त फुरता है तब जगत्भ्रम हो भासता है और सत्य जानकर भोगकी इच्छा होतीहै पर जब बोध होता है तब जगत्भ्रम लीन होजाताहै तो फिर तृष्णा किसकी करे। यदि इन्द्रियों के विषय प्राप्त हों और हठकर उनको न भोगे वह मूर्खहै वह मानों अस्त्र से आकाश को छेदता है। हे रामजी! गुरु और शास्त्रों की युक्ति से मन वश्य होताहै; उनकी युक्ति विना शुद्धता नहीं होती। यदि कोई अपने अङ्गही को काटे और उससे चित्त को स्थित किया चाहे तौभी चित्त स्थिर नहीं होता और न संसारभ्रमही मिटता है। जबतक चित्त में स्थिति है तबतक जगत्भ्रम दिखता है और जब गुरु और शास्त्रों की युक्ति ग्रहण करके चित्त का अभाव होताहै तब चित्त नष्ट और अचल होजाता है। जैसे बालक को अन्धकार में पिशाच भासता है और दीपक जलाकर देखे से अन्धकार निवृत्त होकर पिशाचभ्रम नष्ट होजाता है तब बालक निर्भय होताहै; तैसेही आत्मज्ञान युक्ति से अज्ञान निवृत्त होताहै; असम्यक्बुद्धि से जगत्भ्रम हुआ है और सम्यक्बोध से निवृत्त होजाता है, फिर जाना नहीं जाता कि, अज्ञान का जगत्भ्रम कहां गया। जैसे दीपक के निर्वाण हुये नहीं जानता कि, प्रकाश कहांगया, तैसेही अज्ञान नष्ट हुये नहीं जाना जाता कि, जगत् कहांगया। चित्त के फुरनेसे बन्ध होताहै और अफुरने से मोक्ष होताहै परन्तु आत्मा से भिन्न कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है; उसमें न बन्ध है; न मोक्ष है। हे रामजी! जब मोक्ष की इच्छा होतीहै तबभी उसकी पूर्णता का क्षय होता है और निःसंवेदन हुये कल्याण होताहै। जो अनाभास अजड़रूप परमपद है वह चैतन्योन्मुखत्व से रहित है। हे रामजी! बन्ध मोक्ष आदिक भी कलना में होतेहैं। जब कलना से रहित बोध होताहै तब बन्ध मोक्ष दोनों नहीं रहते। जबतक विचार से नहीं देखा तबतक बन्ध और मोक्ष भासता है विचार किये से दोनों का अभाव होजाता है। जब 'अहं' 'त्वं' 'इदं' आदिक भावना का अभाव हुआ तब किसको कौन बन्धक है और किसको कौन मोक्षक है सबकलना चित्त के फुरनेसे होती है जब चित्त का फुरना नष्ट होता है तब सब कलना का अभाव होजाता है तब शान्तिमान् होताहै अन्यथा नहीं होता। इससे चित्तको आत्मपद में लीन करो।

जिसके आश्रय यह जगत् उपजता है और लीन होताहै ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है उसी अनुपमरूप प्रत्यक् आत्मप्रकाश में स्थित हो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रत्यगात्मबोधवर्णन न्नामसप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! परमतत्त्व परमात्मपद हम को सदा प्रत्यक्ष है और वस्तुरूप वही है उससे कुछ भिन्न नहीं। यह प्रत्यक्आत्मा है और सर्वसत्ता का दर्पण है; सबसत्ता इसीसे प्रकट होतीहै। जैसे बीजसे वृक्षकी सत्ता प्रकट होतीहै तैसेही आत्मा से जगत् सत्ता प्रकट होतीहै । हे रामजी ! मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार जड़ात्मक हैं और इन से रहित परमपदहै। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक सब उसीसे स्थित हैं जैसे चक्र-वर्त्ती राजा निर्धनसे ऊंचा शोभता है तैसेही उस सत्ताको पाकर जीव सबलोगों से ऊंचे शोभता है। उसआत्मा को प्राप्त होकर फिर मृत्यु को नहीं प्राप्त होता और न कदा-चित् शोकवान्ही होताहै न क्षीण होताहै एकक्षणमात्र भी जो अप्रमादी होकर आत्मा को ज्यों का त्यों जानता है वह संसारकलना को त्यागकर मुक्त होता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के अभाव हुये जो सत्तासामान्य शेष रहतीहै उसका भान कैसे होताहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो सबदेहों में स्थित होकर भोजन और जल, पान करता और देखता, सुनता, बोलता इत्यादिक क्रिया करता दृष्टि आताहै सो आदि अन्तसे रहित संवित्सत्ता सर्वगत अपने आपमें स्थित है और सर्वविश्वरूप वही है। आकाश में आकाश; शब्द में शब्द; स्पर्श में स्पर्श; नासिका में गन्ध; शून्य में शून्य; नेत्रों में रूप; पृथ्वी में पृथ्वी; जल में जल; तेज में तेज; वृक्षों में रस; मन में मन; बुद्धि में बुद्धि; अहंकार में अहंकार; अग्नि में अग्नि; उष्णतामें उष्णता; घटमें घट; पटमें पट; वटमें वट; स्थावर में स्थावर; जङ्गममें जङ्गम; चेतन में चेतन; जड़ में जड़; काल में काल; नाश में नाश; बालक में बालक; यौवन में यौवन; वृद्ध में वृद्ध और मृत्यु में मृत्युरूप होकर वही परमेश्वर स्थित है। हे रामजी ! इस प्रकार सब पदार्थों में वह अभिन्नरूप स्थित है, नानात्वदृष्टि भी आती है परन्तु अनाना है और भ्रम से भासती है। जैसे परछाहीं में भ्रम से वैताल भासता है तैसेही आत्मा में नानात्व भासतीहै। सबमें, सबठौर, सबप्रकार, सर्व आत्माही स्थितहै; ऐसा जो आत्मदेव सत्तासमानहै उसमें स्थित हो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब दिन अस्त होनेसे सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गये और सूर्य के निकलतेही फिर अपने २ आसन पर आन बैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविभूतियोगोपदेशोनामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५८॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! जैसे हमारे स्वप्न में पुर, नगर और मण्डल होतेहैं

तैसेही ब्रह्मादिक ने उस देवको ग्रहण कियाहै उनको असत् में प्रतीतिहै और हमको दृढ़ प्रतीति कैसे उपजीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! प्रथम ब्रह्मा को सर्ग असत्वत् भासता है; वास्तव नहीं भासता। सर्वगत चेतन संवित् को संसार के दर्शन से जब सम्यक् दर्शन का अभावहुआ और स्वप्नरूप में आपसे अहंप्रतीति उपजी तब दृढ़ होकर देखने लगा। जैसे अपने स्वप्ने में जगत् दृढ़ भासता है और उसे स्वप्ना नहीं जानता; तैसेही ब्रह्मा का जगत् भी दृढ़ भासताहै; स्वप्ना नहीं भासता। जो स्वप्न पुरुष से उपजा है सो स्वप्नरूप है। हे रामजी! ऐसा जो सर्गहै सो जीव जीव प्रति उदय हुआ है। जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं तैसेही चेतनतत्त्व का आभास जगत् फुरतेहैं और जैसे स्वप्नपुर में असत् पदार्थ होतेहैं तैसेही यह पदार्थभी अवास्तव हैं और मनके संकल्प से भ्रममात्र ही स्पष्ट भासतेहैं। हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, इस जगत् में सिद्ध नहीं होता; और का और नहीं भासता और मर्यादा नहीं त्यागता क्योंकि, मनके संकल्पमात्र उपजे हैं। तुम देखो कि, जल में अग्नि स्थित है–जैसे समुद्र में बड़वाग्नि है सो विपर्यय है। इसी कारण से कहताहूं कि मनोमात्र है। और देखो कि, आकाश में नगर बसते हैं; विमान प्रत्यक्ष चलतेहैं और चिन्तामणि आदिक से कमल उपजते हैं। जैसे हिमालय पर्वत में बरफ़ उपजतीहै और सब ऋतुके फूल एकहीसमय उपजते हैं। जैसे संकल्प के वृक्ष से पत्थर निकलआते हैं; शिला में जल निकलता है; चन्द्रकान्ति से अमृत द्रवताहै और निमेष में घट पट होजाते हैं और पट घट होजाते हैं; निदान स्वरूप के विस्मरण हुये सत्को असत् देखता है जैसे स्वप्ने में अपना मरना देखता है; जल ऊर्ध्व को चलता देखता है; मेघ होकर स्वर्ग में गङ्गा बहती देखता है और पत्थर उड़ते देखताहै। जैसे पंखों सहित पहाड़ उड़ते हैं और चिन्तामणि शिलारूप से सब पदार्थ उपजतेहैं इत्यादिक भ्रमसे नानात्व विपर्ययरूप हो फुरते हैं। इससे तुम देखो कि, सब मनोमात्र हैं और का और होजातेहैं। हे रामजी! यह इन्द्रजाल, गन्धर्वनगर और साम्बर मायावत् है; असत्ही भ्रम करके सत् हो भासता है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, सत् नहीं और असत् भी नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नविचारोनामै
कोनषष्टितमस्सर्गः॥ ५९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह संसार मिथ्या है। जो पुरुष इसको सत्य जानता है वह महामूर्ख है और भ्रममें भ्रम देखकर महामोह को प्राप्त होताहै। जैसे कोई मृग गढ़े में गिरपड़ताहै तो महादुःखी होताहै और फिर उससे भी बड़े गढ़ेमें गिरताहै तो अति दुःख पाताहै; तैसेही जो मूर्खपुरुषहै वह आत्मा के अज्ञान से संसाररूपी गढ़े में गिरता है और उससे और और भ्रम देखता है और स्वप्नेसे स्वप्नान्तर देखता है। इसीसे एक

इतिहास कहताहूं उसे मन लगाकर सुनो। एक मनन और शीलवान् संन्यासी योग के आठवें अङ्ग समाधि में स्थित था और उसका हृदय समाधि करते करते शुद्ध हुआथा। समाधि में दिन को व्यतीतकरे और जब समाधि से उतरे तो फिर आसन लगाकर समाधि में लगे। इसी प्रकार जब बहुत काल बीता तो एक समय समाधि से उतर वह यह चिन्तना करने लगा कि, जैसे प्रकृति पुरुष बिचरते और चेष्टा करते हैं तैसेही मैंभी कुछ चेष्टा रचूं। ऐसे विचार करके उसने मनके संकल्प से विश्व कल्पी और उसमें एक आप भी बना और उसका नाम भीवट हुआ निदान मद्य पान करे और ब्राह्मणों की सेवाभी करे। चेष्टा करते २ सोगया और स्वप्ने में उसको ब्राह्मण के शरीर का भान हुआ तो उस ब्राह्मणशरीर में वेद का अध्ययन और पाठ करने लगा। ऐसी चेष्टा से जब उसे चिरकाल बीता तो फिर स्वप्ना आया और आपको बड़ी सेना संयुक्त राजा देखा और उस सेनासंयुक्त राजा होकर बिचरनेलगा। कुछ काल जब इसी प्रकार व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्ना आया और उस स्वप्ने में आपको चक्रवर्ती राजा देखा और चक्रवर्ती होकर सारी पृथ्वी पर आज्ञा चलानेलगा। जब कुछकाल बीता तो फिर आपको देवाङ्गना देखा और देवता के साथ बाग में बिचरने लगा और जैसे बेलि वृक्ष के साथ शोभा पाती है तैसेही देवता के साथ शोभा पाने लगा। इसी प्रकार जब कुछकाल देवता के साथ बीता तो फिर स्वप्ना आया और आपको हरिणी देखा और वन में चरनेलगा। कोई काल ऐसेभी व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्ना आया और आपको देवताओं के वन की बेलि देखा। जब ऐसे कुछ समय बीता तो फिर स्वप्ने में आपको भँवरी देखा और सुगन्ध को ग्रहण करनेलगा। उसके अनन्तर फिर स्वप्ना आया कि, मैं कमलिनी हूं और वहां एक दिन हाथी आकर बेलि को खागया। जैसे कोई मूर्खबालक भली वस्तु को भी तोड़ डालता है तैसेही वह मूर्ख हाथी बेलि तोड़कर खागया। उसके उपरान्त उस बेलि ने हाथी का शरीर पाकर बड़ा दुःख पाया और गढ़े में गिरा। थोड़े समय के उपरान्त हाथी को स्वप्ना आया और भँवरी होकर कमलों में बिचरनेलगा। जब कुछ काल बीता तो फिर वह बेलि हुआ और उस बेलि के निकट एक हाथी आया और उसहाथी के पांवों से वह बेलि चूर्ण होगई। तब उस बेलि को एक हंस ने खाया तब वह बेलि हंस हुआ और बड़े मानसरोवर में बिचरनेलगा। फिर उस हंस के मन में आया कि मैं ब्रह्मा का हंस होऊं। तब वह अपने संकल्प से ब्रह्मा का हंस बनगया जैसे जल का तरङ्ग बन जावे। तब ब्रह्मा के उपदेश से हंस को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। हे रामजी! अज्ञान से ऐसे भ्रम पाके ज्ञान से शान्त हुआ फिर सदेहमुक्त होगा। वह हंस सुमेरुपर्वत में उड़ाजाता था तब उसके मन में आया कि, मैं रुद्र होऊं इस लिये सत् संकल्प से

रुद्र होगया। जैसे शुद्धदर्पण में शीघ्रही प्रतिबिम्ब पड़ता है तैसेही शुद्ध अन्तःकरण के संकल्पसे वह रुद्र हुआ। जिसको अनुत्तर ज्ञान हो उसको रुद्र कहते हैं और अनुत्तर ज्ञान वह है जिसके पानेसे और कुछ पाना नहीं रहता। चेष्टा से अपने गुण को देख उस रुद्र के मन में विचार हुआ कि, बड़ा आश्चर्य है कि; मैं अज्ञान से इतने बड़े भ्रम को प्राप्त हुआ था। बड़ी आश्चर्य मायाहै! मैं तो एक और बड़ा हूं और यह विश्व मेरा स्वरूप है। जो मेरे निज शरीर हैं उनको जाकर जगाऊं। तब रुद्र उठ खड़ाहुआ और अपने स्थान को चला। प्रथम संन्यासी के शरीर को आकर देखा और चित्तशक्ति से उसे जगाया तो संन्यासी के शरीर में ज्ञान हुआ कि, सब मैं हीं खड़ा हूं परन्तु संन्यासी ने जाना कि; मुझको रुद्र ने जगाया है और इतने शरीर मेरे और भी हैं। फिर वहांसे वह रुद्र और संन्यासी दोनों चले और भीवट के स्थान में आये तो देखा कि, भीवट शव की नाईं पड़ा है; मदिरा के वासन पड़े हैं, चेतना भी वहांही भ्रमती है और नाना प्रकार के स्थान देखती है—जैसे भरनेके छिद्र में चींटी भ्रमती है। तब उन्होंने भीवट को चित्तशक्ति से जगाया और वह उठ खड़ा हुआ तो उसको ऐसा स्मरण हुआ कि, मुझे तो इन्होंने जगाया। फिर भीवट के मन में विचार हुआ कि, इतने शरीर मेरे और भी हैं। निदान रुद्र, संन्यासी और भीवट तीनों चले। इन्होंने विचार किया कि, हमने इतने शरीर क्योंकर पाये कि, आदि तो मैं एक परमात्मा में चैतन्योन्मुखत्व करके संन्यासी हुआ, फिर संन्यासी से भीवट हुआ और मद्यपान करनेलगा; फिर ब्राह्मण होकर वेद का पाठ करनेलगा और उसके पाठ करने के पुण्य से राजा का शरीर धारण किया, उसके आगे जो बड़ा पुण्य प्राप्त हुआ उससे चक्रवर्ती राजा हुआ; चक्रवर्तीराजा के शरीर में काम बहुत हुआ उससे देवता की स्त्री हुआ और स्त्री के शरीर में नेत्रों में बहुत प्रीति थी उससे हरिणी हुआ; फिर भँवरी हुआ; उससे आगे वेलि हुआ और इससे लेकर जो शरीर धारे सो मिथ्या धारे और अज्ञान से बहुतकाल भटकता रहा। अनेक वर्ष और सहस्रों युग व्यतीत होगये हैं संन्यासी से आदि रुद्र पर्यन्त वासना करके जन्म पाये हैं और इतने जन्म पाकर ब्रह्मा का हंस हुआ तब वहां ज्ञान की प्राप्ति हुई क्योंकि; पूर्व अभ्यास किया था उससे अकस्मात् से सत्संग प्राप्त हुआ। ऐसे विचार करते वे वहां से चले और चेतन आकाश में उड़कर वेदपाठ करनेवाले ब्राह्मण की सृष्टि में गये तो उसको देखा कि, पड़ा है। चित्तशक्ति से उन्होंने उसको जगा रुद्र, संन्यासी, मद्यपान करनेवाला भीवट और ब्राह्मण चारो वहांसे चले और चित्ताकाश में उड़े और राजा की सृष्टि में पहुंचे तो देखा कि, राजा की सृष्टि चेष्टा करतीहै और राजा जिनकी देह सुवर्ण की नाईं शोभायमान है अपने मन्दिर में रानी समेत शय्या पर सोवे हैं।

और सहेलियां चमर करती हैं । तब उन्होंने राजा को चित्तशक्ति से जगाया और उसने देखा कि, सर्वविश्व मेरा ही स्वरूप है और इतने शरीर मैंने अज्ञान से धरे हैं । निदान रुद्र, संन्यासी, मद्यपान करनेवाला भीवट, ब्राह्मण और राजा वहां से चले और हाथी से आदि लेकर जितने शरीर धरेथे उन सबको जगाया और उनमें यही निश्चय हुआ कि, हम चिन्मात्ररूप हैं और आवरण से रहित हैं अर्थात् अज्ञान के फुरने से रहित हैं । हे रामजी ! तब उनके शरीर अलग २ दीखे परन्तु चेष्टा और निश्चय सबकी एकसीही थी । उनका नाम शतरुद्र हुआ । हे रामजी ! सम्पूर्ण विश्व अज्ञान के फुरने से होता है और ज्ञान से देखिये तो कुछ नहीं । ऐसेही उनका संवेदन और निश्चय एकसा हुआ । एक देखे तो जाने कि, सर्वही मेरा रूपहै और जब दूसरा देखे तो विचारे कि, मेराहीरूप है । जैसे समुद्र से अनेक तरङ्ग होते हैं पर उनके आकार भिन्न २ होते हैं और स्वरूप एकसाही होता है; तैसेही ज्ञानवान् सर्वविश्व को अपनाही स्वरूप देखते हैं और अज्ञानी उनको भिन्न भिन्न जानते हैं और आपको भिन्न जानते हैं । एकको दूसरा नहीं जानता और दूसरे को प्रथम नहीं जानता । हे रामजी ! यह विश्व अपनाही स्वरूप है पर अज्ञान से भिन्न भासता है । चिन्मात्र में फुरने को अज्ञान कहते हैं । चित्तफुरने से संसार है और न फुरने से आत्मस्वरूपही है । इससे हे रामजी ! फुरने का त्याग करो और कुछ नहीं जिस प्रकार शत्रु मरे उस प्रकार मारिये—यही यत्न करो; और मैं तुमसे ऐसा उपाय कहता हूं कि, जिसमें कुछ यत्न नहीं और शत्रुभी माराजावे । हे रामजी ! यह चिन्तना ही दुःख है और चिन्तना से रहित होनाही सुख है—आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो । इस चित्त के फुरनेसे संसार है और निवृत्त होनेमें स्वरूपही है । जैसे पत्थर में पुरुष पुतलियां कल्पता है तो पत्थर से भिन्न पुतलियों का अभाव है; तैसेही चित्त ने विश्व कल्पा है । जब चित्त निवृत्त हो तब विश्व अपनाही स्वरूप है; कुछ भिन्न नहीं । चित्त से जहां जावे वहां पञ्चभूत ही दृष्टि आते हैं आत्मा नहीं दृष्टि आता और चित्त से रहित ज्ञानी जहां जावे वहां आत्माही दृष्टि आता है । जब चित्त की वृत्ति बहिर्मुख होती है तब संसार होता है और पञ्चभूत ही दृष्टि आते हैं और जब चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख होती है तब ज्ञानरूप अपना आपही भासता है । जो कुछ पदार्थ हैं सो ज्ञानरूप आत्मा विना सिद्ध नहीं होते । प्रथम आपको जानता है तो और पदार्थ जानते हैं । इसीसे ज्ञानवान् सब अपना आप जानता है । हे रामजी ! ये जो कुछ पदार्थ हैं सो फुरने से कलपते हैं और जितने जीव हैं उनकी संवेदन भिन्न २ है । संवेदन में अपनी २ सृष्टि है । जैसे किसी सोये हुये पुरुष को अपने स्वप्न की सृष्टि भासती है और जो उसके पास बैठा होता है उसको नहीं भासती क्योंकि, उसकी विश्व स्वप्न

को नहीं जानती; तैसेही जो ज्ञानी है उसको अपना आपही भासता और इस सब जगत् को अपनारूप जानता है। ज्ञानी जिस ओर देखताहै उसी ओर पञ्चभूत दृष्टि आते हैं। जैसे पृथ्वी के खोदे से आकाश ही दृष्टि आता है तैसेही ज्ञानी चित्तसहित जहां देखता है तहां पञ्चभूतही दृष्टि आते हैं। इससे हे रामजी! तुम फुरनेसे रहित हो। फुरनेही से बन्ध है और न फुरने से मोक्ष है; आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसा करो। हे रामजी! जो अफुरनेसे अस्त होजावे उसके नाम में कृपणता करना क्या है और जो अफुरने से प्राप्त हो उसको प्राप्तरूप जानो। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! यह भीवट और ब्राह्मण से आदि लेकर संन्यासी के रूप स्वप्न में हुये उसके उपरान्त फिर क्या हुआ वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्राह्मण से आदि जितने शरीर थे वे रुद्र के जगाये हुये सुखी हुये और जब सब इकट्ठे हुये तब रुद्र ने उनसे कहा, हे साधो! तुम अपने २ स्थान को जाओ और कुछ काल अपने कलत्र में भोग भोगो तब तुम मेरे गण होकर मुझको प्राप्त होगे और महाकल्प में हम सबही विदेहमुक्त होंगे। हे रामजी! जब रुद्रने ऐसे कहा तब सब अपने २ स्थानों को गये और रुद्रजी भी अन्तर्धान होगये वे अबभी तारों का आकार धारेहुये कभी कभी मुझको आकाश में दृष्टि आते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, संन्यासी ने भीवट से आदि लेकर सब शरीर धारे सो सत् कैसे हुये और उनकी सृष्टि कैसे सत् हुई सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा सबका अपना आप, शुद्ध, चेतन, आकाश और अनुभवरूप है; उसमें जैसे देश, काल और वस्तु का निश्चय होताहै तैसेही बनजाता है। जैसे २ फुरता है तैसेही तैसे आगे होजाताहै। जिसका मन शुद्ध होता है उसका सत् संकल्प होता है और जैसा संकल्प करता है तैसाही होता है। जो तुम कहो कि, संन्यासीका अन्तःकरण शुद्ध था उसने नीच और ऊंच जन्म कैसे पाये अर्थात् मद्यपान करनेवाला और भँवरी, बल्ली से आदि लेकर नीच और ऊंच अर्थात् ब्राह्मण, राजा आदि लेकर शुद्ध अन्तःकरण में ऐसे जन्म न चाहिये; तो उसका उत्तर यह है कि, संवेदन में जैसा फुरना होताहै तैसाही हो भासता है। जैसे एक पुरुष का अन्तःकरण शुद्ध हो और उसके मन में फुरे कि, एक शरीर मेरा विद्याधर हो और एक शरीर भेड़ का हो तो उसके दोनों भले और बुरे भी होजातेहैं। जो तुम कहो कि, बुरा क्यों बना भलाही बनता तो उसका उत्तर सुनो कि, जैसे भले पण्डित के घर पुत्र हो और संस्कार अर्थात् वासना से चोर होजावे तो उसको दुःख होता है। इससे हे रामजी! सब फुरनेहीसे ऊंच नीच होतेहैं; जब अभ्यास और परमयोग होताहै तब शुद्ध होता है। अभ्यास, मन्त्र, जाप और चित्त के स्थित करने को योग कहतेहैं। इससे जैसी २ चिन्तना होती है तैसीही सिद्ध होतीहै और अज्ञानी की नहीं होती। जैसे वस्तु निकट

पड़ी है और भावना नहीं तो दूर है; तैसेही अज्ञानी की भावना नहीं तो न दूरवाली वस्तु प्राप्त होती है और न निकटवाली प्राप्त होती है। वह सिद्ध इस लिये नहीं होती क्योंकि, उसकी भावना दृढ़ नहीं और हृदय भी शुद्ध नहीं संकल्प भी तब सिद्ध होता है जब हृदय शुद्ध होता है। शुद्ध हृदयवाला जिसकी चिन्तना करता है वह चाहे दूर भी है तोभी सिद्ध होता है और जो निकट है सो भी सिद्ध होताहै। जो तुम कहो कि, संन्यासी तो एक था बहुत चेतन शरीर कैसे हुये तो उसका उत्तर सुनो। जो कोई योगीश्वर हैं और योगिनी देवियां हैं उनका संकल्प सत्यहै; उन्हें जैसा संकल्प फुरता है तैसाही होता है। ऐसे सत् संकल्पवाले मैंने अनेक आगे देखेहैं। एक सहस्रबाहु अर्जुन राजा था जो अपने घरमें बैठाथा और उसके शिरपर छत्र झुलता और चमर होते थे; उसके मन में संकल्प हुआ कि मैं मेघ होकर बरसूं। उस संकल्प के करने से उसका एक शरीर तो राजा का रहा और एक शरीर से मेघ होकर बरसनेलगा। विष्णु भगवान् एक शरीर से तो क्षीरसमुद्र में शयन करते हैं और प्रजा की रक्षा के निमित्त और शरीर भी धारलेते हैं। यज्ञदेवियां अपने २ स्थानों में होतीहैं और बड़े ऐश्वर्य में विचरती हैं; इन्द्र एक शरीर से स्वर्ग में रहता है और दूसरे शरीर से जगत् में भी बैठा रहता है। योगीश्वरों का जैसा संकल्प होता है तैसाही सिद्ध होता है और जो अज्ञानी मूर्ख हैं उनका मन बड़े भ्रम को प्राप्त होता है और वे बड़े मोह को प्राप्त होते हैं और मोह से आगे मोह से नीच गति को प्राप्त होते हैं। जैसे बड़े पर्वत के ऊपर से वट्टा गिरता है सो नीचे को जाता है तैसेही मूर्ख आत्मपद से गिरके संसार-रूपी गढ़े में पड़ते हैं और बड़े दुःख पाते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, संसार स्वप्नमात्र है सो मैंने जाना कि, अनन्त मोहरूपी विषमता है और आत्मचेतनरूप आनन्द के प्रमाद से जीव आपको जड़ दुःखी जानताहै। यह बड़ा आश्चर्यहै! हे भगवन्! यह जो आपने संन्यासी कहा उसके समान कोई और भी है अथवा नहीं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसाररूपी मढ़ी में मैं रात्रि के समय समाधि करके देखूंगा और तुम से प्रभात को जैसे होगा तैसे कहूंगा। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले; हे राजन्! वशिष्ठजी ने जब इतना कहा तो मध्याह्न का समय हुआ; नौबत नगारे बजने लगे जिनका प्रलयकाल के मेघवत् शब्द होनेलगा और वशिष्ठजी के चरणों पर राजा और देवताओं ने फूल चढ़ाये और सब ने बड़ी पूजा की। जैसे बड़ा पवन चलता है और वेग करके बाग वृक्षों के फूल पृथ्वी पर गिर पड़तेहैं तैसेही सबने बहुत फूलों की वर्षा की। इस प्रकार प्रथम तो बहुत पूजा होती रही फिर वशिष्ठजी को नमस्कार करके सब उठके खड़े हुये और आपस में नमस्कार किया। फिर राजा दशरथ से आदि लेकर राजा और ऋषि सब उठे और जैसे

मन्दराचल पर्वत में सूर्य उदय होताहै तैसेही वशिष्ठजी से आदि लेकर ऋषि और राजा दशरथ से आदि सब राजा उठे। तब पृथ्वीके राजा और प्रजा पृथ्वीको चले और आकाश के सिद्ध और देवता आकाश को चले और सब अपने अपने कर्म में जालगे और जैसे शास्त्रोक्त व्यवहार है उसमें स्थित हुये। जब रात्रि हुई तब विचार करते रहे कि, वशिष्ठजी ने कैसे ज्ञान उपदेश कियाहै और उस विचार में उनकी रात्रि एक क्षण की नाईं बीती। इतने में सूर्यकी किरणों के उदय होतेही राम लक्ष्मण आदि सब आये और परस्पर नमस्कार कर अपने २ आसन पर शान्तरूप होकर बैठे— जैसे पवन से रहित कमल स्थित होते हैं। तब वशिष्ठजी ने अनुग्रह करके आपही कहा, हे रामजी! तुम्हारी प्रीति के निमित्त मैंने संसार का बहुत खोज किया और आकाश, पाताल और सप्तद्वीप सब खोजे हैं परन्तु ऐसा कोई संन्यासी न देखा और न अन्य का संकल्प उसकी नाईं भासता है। जब एक प्रहर रात्रि रही तो मैंने फिर ढूंढ़कर उत्तर दिशा में चिन्माचीन नगर में एक मढ़ी देखी तो उसके दरवाजे चढ़े हुये थे और उसमें पके बालवाला एक संन्यासी बैठा था और बाहर उसके चेले बैठेथे। वे दरवाजे नहीं खोलतेथे कि, ऐसा न हो हमारे गुरु की समाधि खुलजावे। वह उस स्थान में दूसरे ब्रह्मा की नाईं बैठा है। उसको बैठे अभी इक्कीस दिन हुयेहैं पर उसको समाधि में सहस्र वर्षों का अनुभव हुआ है और उसने बहुत जन्म भी पाये हैं जो उसको प्रत्यक्ष भासित हुये हैं। उसने सृष्टि भी प्रत्यक्ष देखी है और उसमें बिचरा है। हे रामजी! इसकासा एक और भी पूर्व कल्प में था। इतना सुन राजा दशरथ ने कहा, हे महामुनीश्वर! जो आप आज्ञा दें तो मैं अपना अनुचर चिन्माचीन नगर में भेजूं कि, वह वहां जाकर उस संन्यासी को जगावे? वशिष्ठजी ने कहा, हे राजन्! वह संन्यासी अब ब्रह्मा का हंस होकर ब्रह्मा के उपदेश से जीवन्मुक्त हुआ है और यह शरीर उसका अब मृतक हुआ है। उसमें अब पुर्यष्टका अर्थात् जीव नहीं उसका क्या जगाना है? एक महीने पीछे शिष्य उसका दरवाजा खोलेंगे तो उस नगर के लोग देखेंगे कि, वह मृतक पड़ा है। इससे, हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र ही है और जो तुम कहो कि, एकसे क्योंकर हुये तो सुनो कि, जैसे यह मुनीश्वर, ऋषि, राजा और और जो संसार में लोग हैं वे कईबार एकसा शरीर धारते हैं और कईबार मध्य धारते हैं, कई कुछ थोड़ा धारते हैं और कई विलक्षण धारते हैं। इस नारदजी के समान और भी नारद होंगे उनकी चेष्टा भी ऐसीही होगी और शरीर भी ऐसाही होगा। व्यासजी, शुकदेव, भृगु, भृगु के पिता; जनक, करकर, अत्रि ऋषीश्वर और अत्रि की स्त्री भी जैसी कि अब हैं वैसीही होंगी। जैसे समुद्र में तरङ्ग एकसेभी और न्यून अधिक भी होते हैं तैसेही यह संसार ब्रह्मा से आदि लेकर पाताल पर्यन्त सब

मनका रचा हुआ है और सब मिथ्याहै। जब यह चित्तकला बहिर्मुख होतीहै तब संसार और देशकाल होता है और जब अन्तर्मुख होती है तब आत्मपद प्राप्त होताहै। जब-तक बहिर्मुख होतीहै तबतक दुःख पाताहै। अपना स्वरूप आनन्दरूपहै उसमें चित्त-कला जानतीहै कि,मैं सदादुःखीहूं। देह और इन्द्रियों से मिलकर दुःखी होताहै। इससे हे रामजी! इस अज्ञानरूप फुरने से तुम रहित होरहो। फुरने से यह अवस्था प्राप्त होती है। जैसे चन्द्रमा अमृत से पूर्ण है और उसमें चर्मदृष्टि से कलङ्कता भासती है तैसेही अमृतरूपी चन्द्रमा आत्मा में अज्ञानदृष्टि से जन्म, मरण, शोक, दुःख, भय, कलङ्क दीखता है। यह माया महाआश्चर्यरूप है जैसे चन्द्रमा एक है और नेत्र-द्वेष से बहुत भासते हैं तैसेही एक अद्वैत आत्मा में नानात्व विश्व का भान अज्ञान से होता है। यही माया है। हे रामजी! तुम एकरूप आत्मा हो; उसमें फुरने से विश्व कल्पा है। इससे फुरनेसे रहित हुये विना आत्मा का दर्शन नहीं होता। जैसे उदय हुआ सूर्य भी बादल के होते शुद्ध नहीं भासता तैसेही फुरनरूपी बादल के दूर हुये आत्मरूपी सूर्य शुद्ध भासताहै और दृश्य, दर्शन, द्रष्टा फुरनेसे कल्पेहैं। हे रामजी! इस संसार का सार जो आत्मा है उसमें सुषुप्त की नाईं मौन होरहो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं तीन मौन जानताहूं—एक वाणीमौन अर्थात् चुपकर रहना; दूसरा इन्द्रियों का मौन और तीसरा कष्टमौन अर्थात् हठ करके मन और इन्द्रियों को वश करना; सुषुप्त मौन नहीं जानता आप कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये तीनों कष्ट मौन तपस्वियों के हैं और सुषुप्त मौन ज्ञानी और जीवन्मुक्त का है। वे तीनों मौन जो तुमने कहे सो अज्ञानी तपस्वियों के हैं; उनको फिर सुनो। एक वाणी का मौन कि, बोलना नहीं दूसरा मौन समाधि कि, नेत्रों का मूंदलेना और कुछ न देखना और तीसरा हठकर स्थित होना और मन और इन्द्रियों को स्थित करना। एक मौन इन्द्रियों की चेष्टा से रहित होना और ज्ञानी का सुषुप्त मौन सुनो कि, वाणी और इन्द्रियों से चेष्टा करना पर आत्मा से भिन्न और कुछ न भासित होना अथवा ऐसे होना कि, न मैं हूं, न जगत् है अथवा ऐसे होना कि, सब मैं हीं हूं। ऐसे निश्चय में स्थित-होना बड़ा उत्तम मौन है। हे रामजी! विधि से भी आत्मा की सिद्धि होती है और निषेध से भी होतीहै। उस आत्मा में स्थित होना बड़ा मौनहै। हे रामजी! यह जो मैंने सुषुप्त मौन कहाहै सो क्या है कि, द्वैतरूप संसार के फुरनेसे सुषुप्त होना; आत्मा में जागना और ऐसे देखना कि, न मुझमें जाग्रत् है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है। इस निश्चय में स्थित होना तुरीयातीत है। यह पञ्चम मौन है। ऐसा तुरी-यातीत पद अनादि अनन्त जरा से रहित शुद्ध निर्दोषहै। हे रामजी! ज्ञानी इन्द्रियों के रोकने की इच्छा भी नहीं करता और न विचरनेकी इच्छा करता है जैसे स्वाभाविक

आनपड़े उसमें स्थित होताहै। यह परम मौन है। ज्ञानी को सुख की इच्छा भी नहीं और दुःख का त्रास भी नहीं; वह हेयोपादेय से रहित है। हे रामजी! तुम रघुवंशकुल में चन्द्रमा हो अपने स्वभाव में स्थित हो; संसारभ्रम मनके फुरने से होता है सो मिथ्या है वास्तव नहीं; और न शरीर सत्य है, न माया सत्य है। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप ओंकार है और ओंकार को अङ्गीकार करके स्थित होना परम उत्तम मौन है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो पीछे आपने सब रुद्र कहे वे रुद्र थे अथवा रुद्र के गण थे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसको रुद्र कहते हैं—उसीको गण कहते हैं ये सबही रुद्र हैं। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो आपने कहा कि, सब रुद्र हुये ये तो एकचित्त थे सब क्योंकर हुये? जैसे दीपक से दीपक होता है इसीभांति हुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक सावरण है दूसरा निरावरण है। जिसका शुद्ध अन्तःकरण है वह निरावरण है और जिसका मलिन अन्तःकरण है वह सावरण है। शुद्ध अन्तःकरण में जैसा निश्चय होता है तैसाही तत्काल आगे सिद्ध होता है और मलिन अन्तःकरण का फुरना सिद्ध नहीं होता। इससे शुद्ध जो निरावरण रुद्र है सो आत्मा है और सर्वव्यापी है; जैसा उनका निश्चय होता है सो सत्यहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सदाशिव की चेष्टा तो मलिनहै कि, रुण्डों की माला गले में धारतेहैं और विभूति लगाकर श्मशान में विहार करतेहैं और स्त्री बायें अङ्ग में रहती है। आप क्योंकर कहतेहैं कि, उनका शुद्ध अन्तःकरण है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध अशुद्ध अज्ञानी को कहतेहैं। जो शुद्ध में बर्ते अशुद्ध में न बर्ते सो ज्ञानी है। वह अपने में क्रिया नहीं देखता और उसको शुद्ध अशुद्ध मलिन से राग द्वेष नहीं होता है। ऐसे सदाशिवजी को ग्रहण त्याग नहीं है, जो स्वाभाविक चेष्टा होतीहै सो हो वह ऐसे होतीहै कि, जैसे आदि परमात्मा में विष्णुभगवान् चार भुजा धारे संसार की रक्षा करने के लिये शुद्ध चेष्टा से अवतार धारकर धर्म की रक्षा करते हैं और पापियों को मारते हैं। यह आदि फुरना हुआ है। जो क्रिया स्वाभाविकही आन प्राप्त हो, उस क्रिया का उनको रागद्वेष करके हेयोपादेय कुछ नहीं और उनको क्रिया का अभिमान भी नहीं होता इसीसे क्रिया उनको बन्ध नहीं करती। इससे यह सिद्ध है कि, संसार फुरनेमात्र है जब तुम फुरने से रहित होगे तब तुमको त्रिपुटी न भासेगी आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासेगा इससे तुम अज्ञानरूप फुरनेसे रहित हो तब तुमको और आत्मपद का साक्षात्कार होगा। तब तुम जानोगे कि, सबमें फुरना, दृश्य, अदृश्य कुछ नहीं केवल आत्मपद है जिसमें एक कहना भी नहीं सो द्वैत कहांसे हो? हे रामजी! दृश्य, अदृश्य, फुरना, न फुरना और विद्या, अविद्या ये सब उपदेश के निमित्त कहते हैं, आत्मा में कुछ कहा नहीं जाता। आत्मा

एक है जिसमें द्वैत का अभावहै। जब चित्त परिणाम बहिर्मुख होताहै तब विश्व का भान होताहै और जब चित्त अन्तर्मुख परिणाम पाताहै तब अहन्ता और ममता का नाश होता है और चेतनमय शेष रहता है। जब अतिशय अन्तर्मुख परिणाम होता है तब चेतन भी नहीं कहाजाता और जब इससे भी अतिशय परिणाम पाता है तब 'है' 'नहीं' भी नहीं कहाजाता। हे रामजी! ऐसा आत्मा तुम्हारा अपना आप स्वरूप और शान्तपदहै उसमें वाणी का गम नहीं कि, ऐसा कहिये और तैसा कहिये। ऐसा कहिये तो इन्द्रियों का विषयहै और तैसा कहिये तो इन्द्रियों से पर है। जब तुम अपने में स्थित होगे तब जानोगे कि, मुझमें अहंफुरना कुछ नहीं। आत्मरूपी सूर्य केसाक्षात्कार हुये से दृश्यरूपी अन्धकार का अभाव होजावेगा क्योंकि, आत्मा तुम्हारा अपना आप है जो केवल शान्तरूप और निर्मलहै। जैसे गम्भीरसमुद्र वायु से रहित होता है तैसेही आत्मरूपीसमुद्र संकल्परूपी वायु से रहित, गम्भीर और शुद्ध होता है। यह संसार चित्त का चमत्कार है जो निरंश है और जिसमें अंशांशीभाव नहीं—अद्वैत है। हे रामजी! जब ऐसे बोध में स्थित होगे तब इस विश्व को भी आत्मरूप देखोगे और यदि बोध विना देखोगे तो विश्व का भान होगा। इससे हे रामजी! बोध में स्थित रहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकताप्रतिपादनंनामषष्टितमस्सर्गः॥ ६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सदाशिव का आदि फुरना हुआ है जो त्रिनेत्र हैं और विश्व का संहार करते और शिरों की माला धारण कियेहैं। ब्रह्मा के चारमुख हैं और चारों वेद हाथ में हैं और संसार की उत्पत्ति करतेहैं उनका ऐसेही फुरना हुआ है। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीनों एकरूप हैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक यही बनपड़ी है। उन्होंने यह कर्म न राग से अङ्गीकार किया है और न द्वेष करके त्याग करते हैं और यह संज्ञा भी लोगों के देखने के लियेहै वे अपने ज्ञानमें कुछ नहीं करते क्योंकि; बोध में ही उनका जाग्रत् है बोध में जाग्रत् क्या और कैसे होताहै सोभी सुनो। एक सांख्यमार्ग से होता है और एक योगमार्ग से होता है। सांख्यमार्ग यह है कि, तत्त्व और मिथ्या का विचारना। तत्त्व इसे कहते हैं कि, मैं आत्मा सत् और चेतन हूं और सर्वदृश्य मिथ्या, जड़ और असत् है। मेरेमें अज्ञान कल्पित है पर मैं अद्वैत आत्मा हूं और मेरेमें अज्ञान और दृश्य दोनों नहीं। ऐसे निश्चय में स्थित होना सांख्यविचार है। योग प्राणों के स्थित करने को कहते हैं क्योंकि, जब प्राण स्थित होते हैं तब मनभी स्थित होजाता है और जब मन स्थित होजाता है तब प्राण भी स्थित होते हैं—इनका परस्पर सम्बन्ध है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो प्राण ही स्थित हुये से मुक्त होता है तो मृतक पुरुषों के तो प्राण नहीं रहते—वे सब

मुक्त होने चाहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! प्रथम तो प्राण श्रवण करो कि, क्या है। यह जीव पुर्यष्टका में स्थित होकर जैसी वासना करता है तो शरीर को त्यागकर उसीके अनुसार आकाश में स्थित होताहै इसका नाम प्राण है। उस वासनारूप प्राण से फिर उसको संसार का भान होता है और जब प्राण की वासना क्षय होती है तब मुक्त होता है। ज्ञानी की वासना क्षय होजातीहै इससे वह जन्म–मरण से रहित होता है। जैसे भुनाबीज फिर नहीं उगता तैसेही ज्ञानी को वासना के अभाव से जन्म मरण नहीं होता। हे रामजी ! जन्म मरण दोनों मार्गों से निवृत्त होता है और दोनों का फल कहा है। हे रामजी ! ज्ञान से चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है और योग करके प्राणवायु स्थित होती है तब वासना क्षय होजाती है। जब स्वरूप की प्राप्ति होती है तब संसार के पदार्थों का अभाव होजाताहै जैसे रसायन से तांबा सोना होके फिर तांबे का भाव नहीं रहता; तैसेही ज्ञान से विश्वरूपी तांबे की संज्ञा नहीं रहती। जैसे तांबाभाव जाता रहता है तैसेही ज्ञान से जब चित्त सत्यरूप हुआ फिर संसारी नहीं होता। आत्मा में न बन्ध है और न मुक्त है परमात्मा एक अद्वैत है तब उसमें बन्ध कहां और मुक्त कहां ? बन्ध और मुक्त चित्त के कल्पे हुयेहैं और जो चित्त के शान्त करने का उपाय कहा है उससे शान्त होता है इसीको मुक्त कहते हैं और बन्ध मुक्त कोई नहीं। चित्त के उदय होनेका नाम बन्ध है और चित्त का शान्त होनाही मुक्त है। हे रामजी ! जब मन अपने वश होताहै तब आत्मपद प्राप्त होताहै; अथवा जब प्राण स्थित होतेहैं। तब आत्मपद प्राप्त होताहै। यह संसार मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या है; जब वासना निवृत्त होतीहै तब आत्मपद में स्थिति होतीहै। जैसे मेघ जब जल संयुक्त होते हैं तब गर्जतेहैं और वर्षा करतेहैं और जब वर्षासे रहित होतेहैं तब शान्त होजातेहैं तैसेही जब वासना क्षय होतीहै तब चित्त शान्त होजाता है। जैसे शरत्काल में बादल और कुहिरा निवृत्त होकर शुद्ध और निर्मल आकाश ही रहता है, तैसेही वासना के निवृत्त हुये शुद्ध और केवल चेतन आत्मा हो भासताहै। जो तुम एक मुहूर्त भी चित्त विना स्थित हो तो तुमको आत्मपद की प्राप्ति हो। जबतक चित्त की वासना क्षय नहीं होती तबतक बड़े भ्रम देखता है। हे रामजी ! यह संसार मृगतृष्णा के जलवत् असत् है और आभासमात्र फुरता है। इस पर एक आख्यान जो आगे हुआ है सो कहताहूं मन लगाकर सुनो। दक्षिणदिशा में मन्दराचल पर्वत है उसकी कन्दरा में एक वैताल महाभयानक आकार से रहता था और मनुष्यों को खाता था। उसके मन में विचार उपजा कि, किसी नगर को भोजनकरूं पर वह एकसमय साधु का संग भी करता था क्योंकि, एकसाधु उस वैताल का भोजनकरता था। उस साधुसंग के प्रसाद से वैतालके मनमें यह उपजा कि, मेरी कौन गति होगी ? मेरा आहार मनुष्य है

और मनुष्योंका भोजनकरना बड़ी हत्या है। इससे मैं एकवृत्ति करूं कि, जो मूर्ख और अज्ञानी मनुष्य हों उनको भोजन करूं और जो उत्तमपुरुष हैं उनको न खाऊं। हे रामजी! निदान वह वैताल यद्यपि क्षुधातुरभी हो तौभी भले मनुष्यों को न खावे इसी प्रकार एक समय वह क्षुधा से बहुत व्याकुल हो रात्रि के समय घरसे बाहर निकला तो संयोगवश उस नगर के राजा से जो वीरयात्रा को निकला था भेंट हुई। वैताल ने कहा, हे राजन्! तुम मुझे भोजन मिलेहो अब मैं तुमको खाता हूं; तुम कहांजावोगे? राजा ने कहा; हे रात्रि के बिचरनेवाले वैताल! जो तू मेरे निकट अन्याय से आवेगा तो तेरा शीश हजार टुकड़े होगा और तू गिरेगा। वैताल ने कहा, हे राजन्! मैं तुझसे नहीं डरता। हे आत्महत्यारे! मैं तुझे भोजनकरूंगा; चाहे तू जैसा बली हो मैं नहीं डरता परन्तु एक मेरी प्रतिज्ञा है कि, मैं अज्ञानी को भोजन करता हूं और ज्ञानी को नहीं मारता। जो तू ज्ञानी है तो न मारूंगा और जो अज्ञानी है तो मारूंगा जैसे बाजपक्षी पक्षियों को मारता है। जो तू ज्ञानी है तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दे। एक प्रश्न यह है कि, जिसमें ब्रह्माण्डरूपी अणु है वह सूर्य कौन है? दूसरा प्रश्न यह है कि, जिस पवन में आकाशरूपी अणु उड़ते हैं वह पवन कौन है तीसरा प्रश्न यह है कि, जिसमें केले के वृक्षवत् और कुछ नहीं निकलता वह कौन वृक्ष है और चौथा प्रश्न यह है कि, वह पुरुष कौन है जो स्वप्न से स्वप्न और फिर उसमें और स्वप्न देखता है और एक रहता है, परिणाम को नहीं प्राप्त होता? इन प्रश्नों का उत्तर दो, जो तुमने मेरे प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुझे खाजाऊंगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवैतालप्रश्नोक्तिनामैकषष्टितमस्सर्गः॥ ६१॥

राजाबोला, हे वैताल! इन प्रश्नोंका उत्तर सुनो ब्रह्माण्डरूपी एक मिरच बीज है और उसमें सत्पद आत्मा चेतनरूपी तीक्ष्णता है। एक डाल में ऐसी मिरचें कई-सहस्र लगी हुईहैं और एक वृक्ष में कई सहस्र ऐसी डालें लगी हैं; ऐसे वृक्ष एक वन में कई सहस्र हैं और ऐसे कई सहस्र वन एक शिखर पर स्थित हैं; ऐसे कई सहस्र शिखर एक पर्वत पर हैं और ऐसे कई सहस्र पर्वत एक नगर में हैं; ऐसे कई सहस्र नगर एक द्वीप में हैं और ऐसे कई सहस्र द्वीप एकभव पृथ्वी में हैं; ऐसे कई सहस्र पृथ्वीभव एक अण्ड मेंहैं और ऐसे कई सहस्र अण्ड एक समुद्र में लहरेहैं; ऐसे कई सहस्र समुद्र एक समुद्र की लहरेंहैं और ऐसे कई सहस्र समुद्र एक पुरुष के उदर मेंहैं; ऐसे कई पुरुषोंकी एक पुरुष के गलेमें माला पिरोई हुईहैं। ऐसे कई लाखकोटि सूर्य के अणु हैं जिस सूर्य से सर्व प्रकाशमान है। वह सूर्य आत्मा है जिसमें अनन्त सृष्टि स्थित है। हे वैताल! जैसे यह सृष्टि भासती है तैसेही सब सृष्टि जान। जो यह सृष्टि सत्य है तो सबसृष्टि सत् है और जो यह सृष्टि स्वप्न है तो सबसृष्टि स्वप्न जानो।

आत्मा ऐसा सूर्य है जिससे भिन्न और अणु कोई नहीं और सदा अपने आपमें स्थित है। इससे और क्या पूछताहै? ऐसे आत्मा में स्थित हो जो आत्मसत्तामात्रपद है; जिस सत्तामात्रपद से कालसत्ता हुईहै और उसीमें आकाशसत्ता हुईहै। उसी सत्पद से सबसत्ता संकल्प से उदय हुईहै और संकल्प के लय हुये सब लय होजाती है। तूने जो प्रश्न किया था कि, वह कौन सूर्य है जिससे ब्रह्माण्डरूपी अणु होते हैं? वह ब्रह्मसूर्य है जिससे भिन्न और कुछ नहीं और केले का वृक्ष जो तू ने पूछा था सो केलेकी नाईं भीतर बाहर विश्व के आत्मा स्थित है। जैसे केलेके भीतर देखे से शून्य आकाश ही निकलता है तैसेही विश्व के भीतर बाहर आत्मा से भिन्न और कुछ सार नहीं निकलता जो अद्वैत है उससे भिन्न द्वैत कुछ नहीं। वह पवन ब्रह्म है जिस पवन में ब्रह्माण्ड के समूह उड़ते हैं और वह पुरुष स्वप्ने से स्वप्ना आगे और स्वप्ना देखताहै और एक अपने आप में स्थितहै। चित्तकला फुरनेसे अनन्त ब्रह्माण्डों का भान होता है इसीको स्वप्ना कहते हैं; तोभी कुछ भिन्न नहीं एकही रूप नटवत् रहताहै और यह सब उसकी आज्ञा से बर्तते हैं। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल है। जिसमें मन्दराचल पर्वत भी अणु है ऐसा स्थूल है और जिसमें वाणी की गम नहीं, अपने आपही में स्थितहै और इन्द्रियों से अगोचर है इससे सूक्ष्म से सूक्ष्महै और पूर्णता से स्थूल से स्थूल है। हे मूर्ख, वैताल! तू किसको खाताहै और क्षुधा से क्यों व्याकुल हुआहै? तू तो अद्वैतरूप आत्माहै और आनन्दरूपहै अपने आपमें स्थित हो। जब ऐसे प्रश्न का उत्तर देकर राजाने उपदेश किया तब वैताल वहांसे चला और एकान्त स्थान में स्थित हो विचार करनेलगा कि, ऐसे मृगतृष्णा के जलवत् झूठे संसार से मुझे क्या प्रयोजनहै। फिर एकान्तस्थान में जाकर स्थित हुआ और ध्यान लगाकर आत्मा में एकधारा प्रवाहक प्रवाह स्थित हुआ। धारा प्रवाह प्रवाहक उसे कहतेहैं कि, आत्मा का अभ्यास दृढ़ हो, आत्मा से भिन्न कुछ न फुरे और एकरस स्थित हो। ऐसे ध्यान में स्थित होकर वैताल सत्आत्मपद को प्राप्त हुआ। हे रामजी! यह राजा और वैताल का आख्यान तुमको सुनाया। उस आत्मा में ब्रह्माण्ड अणु की नाईं स्थित है इससे निर्विकल्प आत्मा में स्थित हो और इन्द्रियों को बाहर से संकोचकर स्थित करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराजावैतालसंवादेवैतालब्रह्मपद प्राप्तिर्नामद्विषष्टितमस्सर्गः॥ ६२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं एक और आख्यान कहताहूं उसे सुनो, जिससे भगीरथ राजा की मूढ़ता गई; स्वस्थ चित्त होकर आत्मपद में स्थित हुआ; अपने प्रतिप्रवाह में विचरा और पुरुषार्थ से स्वर्गलोक से गङ्गा को मध्यलोक में ले आया है। तुमभी

वैसेही बिचरो उसके पास जो कोई अर्थी आता था उसका वह अर्थ पूर्ण करताथा और जिस पदार्थ का कोई संकल्प करके आवे राजा उसका पूर्ण करे। जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमणि अमृत स्रवती है तैसेही मित्रभाव का वह राजा था। जो उस राजा से शत्रुभाव रखते थे उनको वह ऐसे नाश करता था-जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार का नाश होजाता है; और जैसे अग्नि से अनेक चिनगारे उठते हैं तैसेही शत्रुओं पर शस्त्रों की भी वर्षा करता था और प्रतिप्रवाह में स्थित रहता और भले बुरे और सुख दुःख में एकसमान रहता था रामजी ने पूछा हे भगवन् ! राजा भगीरथ के मन में क्या आई जो गङ्गा को लै आया ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक समय उसने अपने नगर को देखा कि, लोग भले मार्ग को त्यागकर बुरे मार्ग और पापकर्म में लगे हैं और मूर्ख हुये हैं तब लोगों के उपकार के निमित्त उसने ब्रह्मा, रुद्र और यज्ञऋषियों का तप करके आराधन किया और गङ्गाके लाने के निमित्त मन्त्र जपने लगा। गङ्गा का एक प्रवाह स्वर्ग में चलता है और एक पाताल में चलता है; राजा भगीरथ ने एक प्रवाह मर्त्यलोक में भी चलाया है और गङ्गा के लानेसे समुद्र पर भी उपकारकिया। जो समुद्र अगस्त्यमुनि ने सुखायेथे गङ्गा के आने से उन समुद्रों का दरिद्र भी निवृत्त हुआ। उसके मन में विचार उपजा और संसार को देखकर कहने लगा कि, एकही काम बारम्बार करना बड़ी मूर्खता है; नित वही भोगना, वही खाना और फिर वही कर्म करने हैं। जिस कर्म किये से पीछे सुख निकले उसके करने का कुछ दूषण नहीं। ऐसा वैराग करके उसको विचार उपजा कि, संसार क्या है ? उस समय में राजा यौवन था-जैसे मरुस्थल में कमल उपजना आश्चर्य है तैसेही यौवन अवस्था में ऐसा विचार उपजना आश्चर्य है। हे रामजी ! जब राजा को ऐसा विचार उपजा तब घर से निकलकर अपने गुरु त्रितल ऋषीश्वर के निकट जा प्रश्न किया। हे भगवन् ! वह कौन सुख है जिसके पाये से जरा और मृत्यु के दुःख निवृत्त होते हैं ? यह संसार के सुख तो भीतर से शून्य हैं; इनके परिणाम में दुःख है। त्रितलऋषि बोले, हे राजन् ! एकज्ञेय अर्थात् जानने योग्य है जिसके जानेसे शान्तपद प्राप्त होता है सो आत्मज्ञान है। वह आत्मा न उदय होता है; न अस्त होता है; ज्यों का त्यों अपने आपमें है। हे राजन् ! यह जरा मृत्यु तबतक भासता है जबतक अज्ञान है; जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होगा। तब अज्ञानरूपी अन्धकार निवृत्त होजावेगा और केवल शान्तपद में स्थित होगा। आत्मानन्द सर्वज्ञ है, जिसके जानेसे चित्तजड़ग्रन्थि टूटजाती है अर्थात् अनात्मदेह इन्द्रियादिक में आत्म अभिमान करना निवृत्त होजाता है और सबकर्म भी निवृत्त होकर सब संशय नष्ट होजाते हैं। ऐसे शुद्ध स्वरूप को पाकर ज्ञानी स्थित होते हैं जो सत्ता

सर्व है और सर्वगत, नित्य स्थित, उदय–अस्त से रहित है। राजा बोले, हे भगवन्! ऐसे मैं जानता हूं कि, आत्मा चिन्मात्रसत्ता है और देहादिक मिथ्या है। आत्मा सर्वज्ञ शान्त और अच्युतरूप है; ऐसे जानता भी हूं परन्तु मुझे शान्ति नहीं हुई और आत्मा चिन्मात्र मुझे नहीं भासता और स्थित नहीं हुई इसलिये कृपाकरके कहिये कि, मैं स्थित होऊं। ऋषि बोले, हे राजन्! तुझसे मैं एकज्ञान कहताहूं जिसके जानेसे फिर कोई दुःख न रहेगा और उससे ज्ञेय में तुमको निष्ठा होगी तब तुम सर्वात्मारूप होकर स्थित होगे और तुम्हारा जीवभाव नष्ट होजावेगा॥ श्लोक॥ अशक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु। नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥ अर्थात् देह और इन्द्रियोंमें आत्म अभिमान न करके पुत्र, स्त्री और कुटुम्ब के दुःख से आपको दुःखी न जानना; नित्य सम चित्त रहकर इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में एकरस रहना; चित्त को आत्मपद में लगाकर वृत्ति को और ओर न जानेदेना, एकान्तदेश में स्थित होना और अज्ञानी का संग न करके ब्रह्मविद्या का सदा विचार करना; यह लक्षण तत्त्वज्ञान के दर्शनके निमित्त तुझ से कहे हैं–इससे विपरीत अज्ञानताहै। हे राजन्! यह ज्ञेय जानने योग्यहै; इसके जानेसे केवल शान्तपद को प्राप्त होगे और देह का अहंकार भी निवृत्त होगा। हे राजन्! पहले अहं होताहै और फिर मम होती है; इससे तू अहं मम का त्यागकर। जब अहं मम का त्याग करेगा तब आत्मपद अहं प्रत्यय से भासेगा वह आत्मा सर्वज्ञ है; सर्व भी आपहै; स्वतः प्रकाश और आनन्दरूप है पर संसार के आनन्द से रहित है। जब ऐसे गुरुजीने कहा तब राजा बोला; हे भगवन्! यह अहंकार तो चिरकाल का देह में रहता है और अभिमानी है उसका क्योंकर त्याग करूं? ऋषि बोले, हे राजन्! अहंकार पुरुष प्रयत्न करके निवृत्त होना है। पहले भोगों में द्वेष दृष्टि करनी, भोगों की वासना न करनी; बारम्बार अपने स्वरूप की भावना करनी और विचार करना; इससे तुम्हारा जीव अहंकार निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! जब तुम्हारा अहंकार निवृत्त होगा तब तुमको सर्वात्माही भासेगा और दुःख से रहित शान्तरूप का प्रकाश होगा। हे राजन्! यह लज्जारूप फांसी जबतक निवृत्त नहीं होती तबतक आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती। अहं, मम, तृष्णा, शोक, दुःख और भला कहने की इच्छा इत्यादिक जो मोह के स्थान हैं उसे लज्जा कहते हैं। इससे तुम अहं मम से रहित हो तुम्हारे शत्रु जो राज्य लेने की इच्छा करते हैं उनको अपना राज्य दो और क्षोभ से रहित होकर पुत्र, स्त्री और बान्धवों के मोह से रहित हो। मेरे मोह से भी रहित हो और राज्य का त्याग करके एकान्तदेश में स्थित हो और उन शत्रुओं के घर में भिक्षा मांग कि, तुझे भला कहने की इच्छा न रहे। अब उठखड़ा हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभगीरथोपदेशोनामत्रिषष्टितमस्सर्गः॥ ६३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इस प्रकार त्रितल ऋषीश्वर ने उपदेश किया तब राजा उठखड़ा हुआ और घर को गया। गुरु का उपदेश हृदय में धारकर अपने राज्य में स्थित हो राज्य करनेलगा और मन में विचार भी करता रहा। जब कुछकाल बीता तब राजा ने अग्निष्टोम यज्ञ का आरम्भ किया। धन के त्याग करने को अग्निष्टोम यज्ञ कहतेहैं। तीन दिन में धनका त्यागकर हाथी, घोड़े, रथ, भूषण, वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य थे सो लोगों को देदिये। ब्राह्मण, अर्थी, पुत्र, स्त्री और शत्रुओं को जब पृथ्वी का राज्य देदिया तो शत्रुओं ने जाना कि, अब राजा भगीथर में कुछ पराक्रम नहीं रहा तो उन्होंने आकर इसका देश घेरलिया, हवेलीपर चढ़ आये और राजा के सब स्थान रोंकलिये। राजा के पास केवल धोती अँगौछा रहगया तब राजा वहां से निकल कर वनों में विचरने लगा और शान्तपद आत्मा में स्थित हुआ। जब कुछ कालबीता तो भगीरथ फिर अपने देश में आया और अपने शत्रुओंके घर में भिक्षा मांगनेलगा तब शत्रुओं और दूसरेलोगों ने उसकी बहुत पूजा की और कहा, हे भगवन् ! तुम अपना राज्य लो; पर उसने राज्य न लिया। जैसे पृथ्वीपर पड़ा तृण को तुच्छबुद्धि करके नहीं ग्रहण करता तैसेही उसने राज्य ग्रहण न किया। कुछकाल वहां रहकर त्रितल ऋषि के पास जो उसका गुरु था अनिच्छित होकर गया। गुरु ने आत्मत्व से उसे ग्रहण किया और शिष्य ने भी गुरु को आत्मत्व से ग्रहणकिया। गुरु और शिष्य भावना से रहित हो वे दोनों कुछकाल एकस्थान में रहे और फिर वन में इकट्ठे विचरने लगे। वे शान्त और आत्मपद में स्थित रहकर रागद्वेष से रहित केवल एकरस स्थित रहे और उनको न देहत्यागने की इच्छा थी, न देहरखने की इच्छाथी; केवल अनिच्छित प्रारब्ध में स्थितरहते थे। इतने में स्वर्गलोक के सिद्धों ने आकर उनकी पूजा की और बड़े ऐश्वर्यपदार्थ चढ़ाये। बहुत अप्सरा आईं और जितने ऐश्वर्य भोग पदार्थ थे वे आये पर उनको उन्होंने तुच्छ जाना क्योंकि; वे आत्मसुखसे तृप्त और केवल आकाशवत् निर्मलथे और प्रकाशरूप, समचित्त, कलङ्कतारूपी मलसे रहित थे। हे रामजी ! जैसे राजा भगीरथ स्थित हुये हैं तैसेही तुमभी स्थित हो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनन्नामचतुःषष्टितमस्सर्गः ॥ ६४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब कुछ काल बीता तो भगीरथ वहांसे चला और एक देश में पहुंचा जहां का राजा मृतक हुआ था और उसकी लक्ष्मी राजा की याचना करती थीं। राजा भगीरथ भिक्षा मांगता फिरता था कि, उस राजा के मन्त्रीने भगीरथ को देखा कि, जो कुछ गुण राजा में होते हैं वे इसमें हैं; इसलिये वह राजा भगीरथ से बोला, हे भगवन् ! आप इस राज्य को अङ्गीकार कीजिये क्योंकि, आपको अनिच्छित प्राप्त हुआ है। निदान राजा ने उस राज्य को ग्रहण किया और उसे न कुछ

भला जाना न बुरा। फिर राजा हाथीपर आरूढ़ हो सेना में सुशोभित हुआ देश और सब स्थान सेना से पूर्ण हुये। जैसे मेघ से ताल पूर्ण होते हैं तैसेही देश और स्थान सेना से पूर्ण होगये और नगारे और साज बजनेलगे। तब राजा गृह में गया और महल की सब स्त्रियां आईं। जहां का राज्य भगीरथ ने पहले किया था उस देशसे मन्त्री और प्रजा आये और उन्होंने भगीरथ से कहा, हे भगवन्! जिन शत्रुओं को तुमने राज्य दिया था उनको मृत्यु ने भोगकर लिया है। जैसे मछली मल मांस को खालेती है तैसे उनको मृत्यु ने भोजन करलिया है; इससे तुम राज्य करो। यद्यपि इच्छा तुमको नहीं है पर तौभी राज्य करो क्योंकि, जो वस्तु अनिच्छित प्राप्त हो उस का त्याग करना श्रेष्ठ नहीं इतना सुन राजा ने उस राज्य का भी अङ्गीकार किया और राज्य करनेलगा। फिर राजा ने पिछला वृत्तान्त स्मरण कर कि, मेरे पितर कपिल मुनि के शाप से भस्म हो कूप में पड़े हैं; विचार किया कि, मैं उनका उद्धार करूं; इस लिये अपने मन्त्री को राज्य देकर अकेला वनको चला और इच्छा की कि, तप करूं निदान एकस्थान में स्थित होकर तप करनेलगा और गङ्गा के लानेके निमित्त ब्रह्मा, रुद्र और जगत् ऋषि का सहस्र वर्षपर्यन्त आराधन किया। तब गङ्गा मध्य मण्डल में आई जो विष्णु भगवान् के चरणों से प्रकट हुई हैं। जब पितरों के उद्धार निमित्त गङ्गाके प्रवाह को राजा ले आया तब फिर समचित्त और शान्तपद में स्थित होकर विचरने लगा; जिसमें क्षोभ, भय और इच्छा न थी केवल शान्त आत्मपद में स्थित हुआ। जैसे पवन से रहित समुद्र अचल होता है तैसेही संकल्प विकल्प से रहित होकर वह राजा स्थित हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभगीरथोपाख्यानसमाप्तिर्नाम पञ्चषष्टितमस्सर्गः॥ ६५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो भगीरथ की दृष्टि तुमसे कही है उसका आश्रय करके विचरो। यह दृष्टि सब दुःखों का नाश करती है। एक आख्यान ऐसा आगे भी व्यतीत हुआ है ऐसाही शिखरध्वज राजा हुआ था। इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह शिखरध्वज कौन था और किस प्रकार चेष्टा करता था सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सातमन्वन्तरों के बीतने के उपरान्त द्वापरयुग की चौथी चौकड़ी में राजा शिखरध्वज हुआ है और फिर भी होवेगा। वह राजा सम्पूर्ण पृथ्वी का तिलक, महाशूरवीर और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से संपन्न था परन्तु उसमें बन्धवान् न था। वह बड़े भोग भोगता और बड़े ओज से संपन्न, उदार, धैर्यवान् था किसी पर अन्याय न करे और समचित्त, शान्तपद में स्थित और सम्पूर्ण दुःखों से रहित था और अर्थी का अर्थ पूर्ण करता था। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसा ज्ञानवान् राजा

फिर क्यों जन्म पावेगा, ज्ञानी तो फिर जन्म नहीं पाता? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे एकसमुद्र में कई तरङ्ग समान उठते हैं, कई अर्द्धसम और कई विलक्षणभाव से फुरतेहैं, तैसेही आत्मसमुद्र में कई आकार एकसे, कई अर्द्ध और कई विलक्षणभाव से फुरते हैं. जो समान फुरते हैं उनकी चेष्टा और आकार एकसे दृष्टि आते हैं। इसीप्रकार शिखरध्वज की ऐसेही प्रतिभा होगी। हे रामजी! जब इससर्ग में सप्तमन्वन्तर और चारचौकड़ी द्वापरयुग की बीतेंगी तब जम्बूद्वीप के मालवदेश में एक श्रीमान् शिखरध्वज राजा होगा परन्तु वह उससा शिखरध्वज दूसरा होगा, वह न होगा। प्रथम शिखरध्वज जब षोड़श वर्ष का राजकुमार था तब एकसमय शिकार को निकला। वसन्त ऋतु का समय था; राजा अपने बागमें जा ठहरा जहां, फूलोंके विचित्र स्थान बने हुये थे और कमलिनियां मानों स्त्रियां और धूर के कणके उनके भूषण थे और उनके समीप पुष्पवृक्ष लगेथे इसी प्रकार भँवरी और भँवरों की सुन्दरलीला देख राजा को विचार उपजा कि, मुझे स्त्री प्राप्त हो तो मैं भी चेष्टा करूं। निदान उसे अधिक चिन्तना हुई कि, कब मुझे स्त्री मिलेगी और कब उसके साथ फूल की शय्या पर शयन करूंगा जब इस प्रकार भोग की राजा चिन्तना करनेलगा तब मन्त्रियोंने, जो त्रिकाल ज्ञान रखते थे और राजा के शरीर की अवस्था जानतेथे, जाना कि; हमारे राजा का मन स्त्री पर है, इससे अब राजा का विवाह करना चाहिये। निदान एकराजा की कन्या जो बहुत सुन्दरी थी और वर चाहती थी उससे राजा शिखरध्वज का विवाह शास्त्र की विधि सहित किया गया और राजा बहुत प्रसन्न होकर अपने घर आया। उस स्त्री का नाम चुड़ाला था और वह बहुत सुन्दरी थी। उससे राजा की बहुत प्रीति हुई और उस स्त्री का भी राजा से बहुत स्नेह हुआ; जो कुछ राजा के मन में चिन्तना हो वह रानी पहिलेही सिद्धकरदे उनकी परस्पर ऐसी प्रीति बढ़ी जैसे भँवरे और भँवरी में होती है। एक समय राजा मन्त्रियों को राज्य देकर वन को गया और वहां नाना प्रकार की चेष्टाकर दोनों ऐसे बिचरे कि, जैसे सदाशिव और पार्वती; व विष्णु और लक्ष्मी बिचरें। इसके पश्चात् राजा योगकला सीखने लगे पर रानी राजा को भोग कला सिखावे; इसी प्रकार वे दोनों सम्पूर्ण कलाओं में संपन्न हुये। चुड़ाला की बुद्धि राजा की बुद्धि से तीक्ष्ण थी वह शीघ्रही सबबातें जानले और राजा को सिखावे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजचुड़ालोपाख्याननंनाम षट्षष्टितमस्सर्गः ॥ ६६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार जब राजा और रानी ने अनन्तभोग भोगे तो जैसे कुम्भ में छिद्र होनेसे शनैःशनैः जल निकलताहै तैसेही शनैःशनैः उनके यौवन

के दिन निकल गये और वृद्ध अवस्था आई तब राजा और रानी को वैराग्य उत्पन्न हुआ और वैराग्य से वे यह विचारनेलगे कि, यह संसार मिथ्या और विनाशी है, एक सा नहीं रहता और ये भोग भी मिथ्या हैं कि, इतनेकाल हम भोगते रहे पर तृष्णा पूर्ण न हुई—बढ़तीही गई। हे रामजी! इस प्रकार राजा और रानी वैराग्य से विचारते रहे कि, ये भोग मिथ्या हैं और हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत होगई है। जैसे बिजली का चमत्कार क्षणमात्र होकर बीतजाता है तैसेही यौवन अवस्था व्यतीत होगई और मृत्यु निकट आई। जैसे नदी का वेग नीचे चलाजाता है तैसेही आयुर्बल व्यतीत होजाती है और जैसे हाथ पर जल डालने से बहजाता है तैसेही यौवन अवस्था निवृत्त होगई है। जैसे जलमें तरङ्ग और बुद्बुदे उपजकर लीन होजाते हैं तैसेही शरीर क्षणभंगुर है। जहां चित्त जाता है वहां दुःख भी इसके साथ चलेजाते हैं—निवृत्त नहीं होते। जैसे मांस के टुकड़े के पीछे चील पक्षी चलाजाता है तैसेही जहां अज्ञान है वहां दुःख भी पीछे जाते हैं। यह शरीर भी नष्ट होजावेगा। जैसे पका हुआ आंबका फल वृक्ष के साथ नहीं रहता; गिर पड़ता है। तैसेही शरीर भी नष्ट होजाता है। जो शरीर कि अवश्य गिरता है उसका क्या आसरा करना है। जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिरपड़ता है तैसेही यह शरीर गिरपड़ता है। इससे हम ऐसा कुछ करें कि, संसाररूपी विसूचिका निवृत्त हो। यह संसाररूपी विसूचिका ब्रह्मविद्या के मन्त्रसे निवृत्त होती है; ब्रह्मविद्या से ज्ञान उपजता है और आत्मज्ञान से सर्व दुःख निवृत्त होजाते हैं इसके सिवा और कोई उपाय नहीं; इस लिये आत्मज्ञान के निमित्त हम सन्तों के पास जावें। ऐसे विचार करके राजा और चुड़ाला आत्मज्ञानियों के पास चले। वे आत्मज्ञान की वार्त्ताकरें और आत्मज्ञान में हीं चित्तभावनाकर आपस में उसीका विचार और चर्चाकरें। निदान वे ऐसे सन्तों के पास पहुंचे जो संसारसमुद्र से तारनेवाले और आत्मवेत्ता थे। उनकी पूजा करके उन्होंने उनसे प्रश्न किया और राजा और रानी उन से ब्रह्मविद्या सुननेलगे कि, आत्मा शुद्ध, आनन्दरूप, चैतन्य और एक है जिसके पाये से दुःख निवृत्त होजाते हैं। हे रामजी! तब रानी चुड़ाला विचार में लगी और राजा की कोई टहल भी करे तो भी उसके चित्त की वृत्ति विचारही में रहे। वह यह विचारे कि, मैं क्याहूं? यह संसार क्या है और संसार की उत्पत्ति किससे है? ऐसे विचार कर वह जानने लगी कि, यह शरीर पञ्चतत्त्व का है सो मैं नहीं क्योंकि; शरीर जड़ है और कर्मइन्द्रियां भी जड़ हैं। जैसा शरीर है तैसेही शरीर के अङ्ग भी हैं और ये चेष्टा ज्ञानइन्द्रियों से करते हैं सो ज्ञान इन्द्रियां भी मैं नहीं क्योंकि; ये भी जड़ हैं। मन से मन की चेष्टा होती है सो मन भी जड़है; इसमें संकल्प विकल्प बुद्धिसे है। बुद्धिभी जड़है क्योंकि; उसमें निश्चय चेतना

अहंकार से होती है और अहंकार भी जड़ है क्योंकि, उस में अहंचेतना से होती है । वह चेतनता जीव से होती है वह जीव भी मैं नहीं क्योंकि, जीवत्व फुरनरूप है और मेरा स्वरूप अफुर, सदा उदयरूप और सन्मात्र है । बड़ा कल्याण है कि, चिरकाल के उपरान्त मैंने अपना स्वरूप पाया है जो अविनाशी, अनन्त और आत्मा है । जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही मैं निर्मल और विगतज्वर; राग-द्वेषरूपी ताप से रहित चिन्मात्रपद हूं और अहं त्वं से रहित हूं । मुझमें फुरना कोई नहीं; इसीसे शान्तरूप हूं । जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचलपर्वत से रहित शान्तरूप है; तैसेही मैं चित्त से रहित अचल और अद्वैत हूं, कदाचित् स्वरूप से परिणाम को नहीं प्राप्त होती । ऐसा जो तन्मात्रपद है उसको ब्रह्मवेत्ताओं ने ब्रह्म और परमात्म चेतनसंज्ञा कही है । यह आत्मा ही मन, बुद्धि आदिक दृश्य और संसाररूप होकर फैला है और स्वरूप से अच्युत है और फुरनेसे आकार भासते हैं तौ भी आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे बड़े पर्वत के पत्थर और बट्टे होते हैं सो पर्वत से भिन्न नहीं तैसेही यह दृश्य आत्मा से भिन्न नहीं । ये आकार ऐसे हैं जैसे गन्धर्वनगर नाना आकार हो भासता है पर ज्ञानवान् को एकरस है और अज्ञानी को भेदभावना है जैसे बालक मृत्तिका के खिलौने हाथी, घोड़ा, राजा, प्रजा आदि बनाता है और जिसको मृत्तिका का ज्ञान है उसको मृत्तिका ही भासती है भिन्न कुछ नहीं भासता; तैसेही अज्ञान से नानारङ्ग भासते हैं । अब मैंने जाना है कि, मैं एकरस हूं । हे रामजी ! इसप्रकार चुड़ाला आपको जाननेलगी कि, मैं सन्मात्र, अच्छेद, अदाह, स्वच्छ, अक्षर और निर्मल हूं; मुझमें 'अहं' 'त्वं' 'एक' और द्वैतशब्द कोई नहीं और जन्म, मरण भी नहीं । यह संसार चित्त से भासता है और आत्मस्वरूप है । देवता, यक्ष, राक्षस, स्थावर, जङ्गम आदिक सब आत्मरूप हैं जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे समुद्र से भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से कोई वस्तु भिन्न नहीं । दृश्य, द्रष्टा, दर्शन ये भी आत्मा की सत्ता से चेतन हैं; इनको आप से सत्ता कुछ नहीं । मुझ में अहं का उत्थान कदाचित् नहीं-अपने आपमें स्थित हूं । अब इसी पद का आश्रय करके चिरकाल इस संसार में विचरूंगी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचुड़ालाप्रबोधोनामसप्तषष्टितमस्सर्गः ॥ ६७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! फिर चुड़ाला जिसकी तृष्णा निवृत्त हुई थी और जो दुःख, भय और भोगवासना से निवृत्त होकर केवल शान्तपद को पाकर शोभित हुई थी पानेयोग्य पद पाकर जानने लगी कि; इतने कालतक मैं अपने स्वरूप से गिरी थी और अब मुझे शान्ति हुई है और दुःख सब मिटगये हैं । अब मुझे कुछ ग्रहण और त्याग नहीं और अब मैं अपने आत्मस्वभाव में स्थित हुई हूं । निदान

एकान्त बैठकर समाधि में ऐसी लगी। जैसे वृद्धगऊ पर्वत की कन्दरा पाकर तृण और घास से बहुत प्रसन्न होतीहै तैसेही अपने आनन्दरूप को पाकर चुड़ाला स्थित भई। हे रामजी! वह ऐसे आनन्द को प्राप्त हुई जिसको वाणी से नहीं कहसक्के। तब राजा शिखरध्वज रानी को देखकर आश्चर्यवान् हुआ और बोला; हे अङ्गने! अब तुम फिर यौवन अवस्था को प्राप्त हुई हो और तुमको कोई बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है। कदाचित् तुमने अमृत का सार पान कियाहै इससे अमर हुईहो वा किसी योगीश्वर ने तुझे इस कला को प्राप्त किया है; अथवा त्रिलोकी का ऐश्वर्य तुझे प्राप्त हुआ है। हे अङ्गने! तुझे कौन वस्तु मिली है? तुम्हारे चित्त की वृत्ति से ऐसा जानपड़ता है कि, तुमने अमृत का सार पान किया है व त्रिलोकी के राज्य से भी कोई अधिक पदार्थ पाया है। तू तो किसी बड़े आनन्द को प्राप्त हुई है कि, जिसका आदि अन्त कोई नहीं दीखता और तुझ में भोगवासना भी नहीं दीखती शान्तरूप होगई है। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही तुझमें निर्मलता दीखती है और तेरे श्वेतबाल भी बड़े सुन्दर दृष्टि आते हैं इस लिये कह कि, तुझे कौनसी वस्तु प्राप्त हुई है? चुड़ाला बोली, हे राजन्! यह जो कुछ दीखताहै सो किंचित् है और इससे जो रहित निष्किंचित्पद है उसको पाकर मैं श्रीमान् हुई हूं। जिसका आकार निष्किंचित् है और जिसमें दूसरे का अभाव है उसी को पाकर मैं श्रीमान् हुई हूं और जो कुछ भोग हैं उनसे रहित होकर अभोग भोग भोगा है उस भोग से तृप्त हुई हूं अर्थात् आत्मज्ञान मैंने पाया है और आत्मा में विश्राम पाया है जिससे सदा शान्तरूप और श्रीमान् हूं। हे राजन्! जितने ये राजभोग सुख हैं उनको त्यागकर मैं परमसुख को भोगती हूं और राग द्वेष से रहित होकर मैं कैसी हूं कि, 'नहीं हूं' और मैंहीं स्थित हूं। जो कुछ नेत्रों से दिखता इन्द्रियों से जानाजाता है औरमन से चिन्तन होता है वह सब मिथ्या स्वप्नवत्है और मैं वहां स्थित हुई हूं जहां इन्द्रिय और मन की गम नहीं और अहंकार का उत्थान नहीं उस पद को मैंने पाया है। जो सबका आधार और सबका आत्मा है और जो सर्व अमृत है उसका सार अमृत मैंने पान किया है इससे मेरा कदाचित् नाश नहीं और कदाचित् भयभी नहीं। हे रामजी! जब इस प्रकार रानी ने कहा तो राजा शिखरध्वज उसके वचन न समझा और हँसकर बोला, हे मूर्ख, स्त्री! यह तू क्या कहती है जो प्रत्यक्ष वस्तु को झूठ बताती है और कहती है कि, मैं नहीं देखती और असत् वस्तु जो नहीं दिखती उसको सत्य कहती है और कहती है कि, मैं देखती हूं। ये वचन तेरे कौन मानेगा? इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता। तू जो कहती है कि, मैं ऐश्वर्य को त्यागकर श्रीमान् हुई हूं सो निष्किञ्चन को पाकर इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता। तू कहती है कि, इन

भोगों को मैंने त्याग किया है और इनसे जो रहित अभोग हैं उनको मैं भोगती हूं; कभी कहती है कि, मैं कुछ नहीं; फिर कहतीहै मैं ईश्वरहूं; इससे महामूर्ख दृष्टि आती है। जो इसी में तेरा चित्त प्रसन्न है तो ऐसेही बिचर परन्तु यह बात सुनकर कोई सत् न मानेगा और तुझे यह शोभा भी नहीं देती। हे रामजी ! ऐसे कहकर राजा उठखड़ा हुआ और मध्याह्न के समय होजानेसे स्नान के निमित्त गया रानी मन में बहुत शोकवान् हुई और विचार किया कि, बड़ा कष्ट है जो राजा ने आत्मपद में स्थिति न पाई और मेरे वचनों को न जाना। यही मन में धरकर वह अपने आचार में लगी और फिर अपना निश्चय राजा को न बताया और जैसे अज्ञानकाल में चेष्टा करती थी तैसेही ज्ञान पाकर भी करनेलगी। एकसमय रानी के मन में आया कि, प्राणों को ऊपर चढ़ाऊं और ऊर्ध्व को लाकर उदान और अपान को वश करूं जिससे आकाश और पाताल दोनों स्थानों में जाऊं। ऐसे चिन्तना कर रानी योग में स्थित हुई और प्राणायाम करनेलगी। इतना सुनकर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह संसार संकल्प से उत्पन्न हुआहै। स्थावर -जङ्गमरूप संसार वृक्ष है और संकल्प इसका बीज है। वह कौन प्राणायाम पवन है जिससे आकाश को उड़ते हैं और फिर नीचे आते हैं? अज्ञानी पुरुष भी जिसे यत्न करके कैसे सिद्ध करते हैं और ज्ञानवान् कैसे लीला करके बिचरते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तीन प्रकार की सिद्धि होती हैं-एक तो उपादेय सिद्धि है कि, यह वस्तु मुझे मिले। इसके निमित्त अज्ञानी यत्न करते हैं। दूसरी सिद्धि यह है कि, यह दुःख मेरा निवृत्त हो और मैं सुखी होजाऊं। यह चिन्ता महाअज्ञानी को रहती है; और तीसरी सिद्धि यह है कि, जो मैं कर्म करताहूं उसका फल मुझे मिले। यह विचार करनेवाला भी अज्ञानी है क्योंकि; वह आपको कर्ता मानता है। ज्ञानवान् इनसे उल्लंघित बर्तता है वह कदाचित् इसमें बर्तता भी है तौभी उसको यह निश्चय रहता है कि, न मैं कर्ताहूं और न भोक्ताहूं। योग करके इस प्रकार सिद्ध होते हैं कि, देश, काल, वस्तु और क्रिया उनके आधीन होजातीहैं। मुख में गुटका राखके जहां चाहे उसी ठौर में जा प्राप्त होना नेत्रों में अञ्जन डालके जिसको देखा चाहे उसको देखलेना और खड्ग हाथ में धारण करके संपूर्ण पृथ्वी को वश करलेना-यह तो क्रिया पदार्थ है और देश यह है कि, जो सब पर्वत हैं उनमें कितनी पीठ हैं और बड़े उत्तम हैं। जिस प्रकार ये सिद्ध होते हैं सो भी सुनो नाभि के तले आधारचक्र में एक कुण्डलिनी शक्ति है, सर्पिणी की नाईं उस में कुण्डल हैं और वह कुण्डल मार बैठी है और वासना ही उसमें विष है जितनी नाड़ी हैं समष्टि नहीं हैं। उस कुण्डलिनी में जब मनन होताहै तब मन होकर प्रकट होता है; जब निश्चय होताहै तब बुद्धि प्रकट होती है; जब अहंभाव होताहै तब

अहंकार प्रकट होताहै; जब स्मरण होताहै तब चित्त प्रकट होता है और जब उसमें स्पर्श की इच्छा होती है तब पवन प्रकट होता है। इसी प्रकार पञ्चतन्मात्रा और चारों अन्तःकरण प्रकट होते हैं। जितनी नाड़ी हैं वे सब कुण्डलिनी से प्रकट होती हैं और आत्मा का प्रकट होना भी उससे जानाजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उससे आत्मा का प्रकट होना कैसे जानाजाता है? आत्मा तो देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है और सब देश, सर्वकाल और सर्व वस्तु से पूर्ण है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में और धूप सर्व ठौर में दिखता है तैसेही ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है और प्रकट सात्त्विकगुण में दिखता है। जो कुछ नाड़ी और इन्द्रियां हैं वे कुण्डलिनी शक्ति से उदय होतीहैं और जब यह जीव कुण्डलिनी शक्ति में स्थित होकर पवन को स्थित करताहै तब जो कुछ भीतर प्राणवायु हैं वे सब इसके वश होती हैं जैसे सर्वसेना राजा के वश होती है उसी प्रकार सब इन्द्रियां प्राण के वश होती हैं और जो प्राणवायु वश नहीं होती तो आधि व्याधि रोग उपजते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधि व्याधि कैसे होतीहै सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मन की पीड़ा का नाम आधिहै और देह के दुःख को व्याधि कहते हैं आधि तब होती है जब संकल्प होताहै कि, यह सुख मुझे मिले पर यदि वह वस्तु नहीं प्राप्त होती तब चिन्ता करके दुःख पाता है और व्याधि तब होती है जब वात, पित्त, कफ का विकार शरीर में होता है और उससे दुःख पाता है। जब मन और शरीर का दुःख इकट्ठा होता है तब आधि, व्याधि, दुःख इकट्ठे होते हैं और जब भिन्न २ होते हैं तब दुःखभी भिन्न २ होतेहैं। ज्ञानवान् को न आधि होतीहै न व्याधि है। यह योग की कला मैंने विस्तार से नहीं कही क्योंकि, पूर्व के ज्ञान क्रम का प्रसंग रहजाता है। जितनी कला हैं उन सबको मैं जानता हूं परन्तु यह कला ज्ञान मार्ग को रोकनेवाली है। वासना चार प्रकार की हैं सो सुनो। एक वासना सुषुप्ति है; दूसरी स्वप्न, तीसरी जाग्रत् और चौथी क्षीण। स्थावर योनि को सुषुप्ति वासना है सो आगे फुरेगी; तिर्यक्योनि को स्वप्न वासना है कि, उनको वासना का ज्ञान भी नहीं और जङ्गम अर्थात् मनुष्य, देवता आदिकों को जाग्रत् वासना है कि, वे वासनाही में लगे हैं। ये तीन वासना तो अज्ञानी को हैं और क्षीण वासना ज्ञानी की है अर्थात् उसको वासना की सत्यता नष्ट हुई है। जब इस प्रकार वासना निवृत्त होती है तब आगे संसार भी नहीं रहता और जब कुण्डलिनी शक्ति से वासना फुरती है तब पञ्चतन्मात्रा के द्वारा संसार का भान होता है। संसाररूपी वृक्ष का बीज वासनाही है, दशोंदिशा उस वृक्ष के पत्रहैं; शुभ अशुभ कर्म उसके फूलहैं और स्थावर जङ्गम फल हैं। जैसी जैसी वासना पुर्यष्टका से मिलकर जीव करताहै तैसाही आगे फल होताहै।

हे रामजी! इससे वासना का त्यागकरो-वासनाही संसाररूपी वृक्ष का बीज है और निर्वासनिक होनाही पुरुष प्रयत्न है-तब विश्व कदाचित् न भासेगा। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकाररूपी रात्रि नहीं रहती तैसेही ज्ञानरूपी सूर्य के उदय हुये संसाररूपी अन्धकार निवृत्त होजाता है। हे रामजी! आधिव्याधि बड़े रोग हैं सो मनसे होतेहैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधिरोग तो मन से होता है पर व्याधि तो शरीर का रोग है, मन से कैसे होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! व्याधि दो प्रकार की है एक लघु और दीर्घ है। जो शरीर को कोई दुःख प्राप्त हो उसे लघु कहते हैं; वह स्नान और जपसे निवृत्त होजाती है और दीर्घ व्याधि जन्म मरण के रोग को कहतेहैं वे बड़े रोग हैं और मनके शान्त हुये विना निवृत्त नहीं होते। इसीसे आधि व्याधि दोनों मन से होते हैं। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! व्याधि मन से कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब चित्त शान्त होता है तब कोई रोग नहीं रहता और जबतक चित्त शान्त नहीं होता तबतक आधि व्याधि होती है। जो कुछ अन्न बाहर अग्नि से परिपक्क होता है उसको जब मनुष्य भोजन करते हैं तब भीतर जो कुण्डलिनी पुर्यष्टका से मिली हुई है वह उदानपवन को ऊर्ध्वमुख हो फुराती है और अपान पवन उससे अध को फुरता है; उदान और अपान का आपस में विरोध है-उनके क्षोभ से अग्नि उठती है और हृदयकमल में स्थित होती है तब बाहर अग्नि का पक्का भोजन हृदय की अग्नि से फिर पकता है और सर्वनाड़ी अपने २ भाग रस को लेजाती हैं। वीर्यवाली नाड़ी वीर्य करके रखती है और रुधिरवाली नाड़ी रुधिर करके रखती है पर जब राग और द्वेष से चित्त कुण्डलिनीशक्ति में क्षोभित होता है तब नाड़ी अपने २ स्थानों को छोड़ देती हैं और अन्न भी भीतर पक्क नहीं होता तब उस कच्चे रस से रोग उठता है। जैसे राजा को क्षोभ होता है तो सेना को भी क्षोभ होता है और जब राजा को शान्ति होती है तब सेना को भी शान्ति होती है; तैसेही जब मन में क्षोभ होता है तब रोग होताहै और जब मन में शान्ति होतीहै तब नाड़ी अपने २ स्थानों में स्थित होती हैं-रोग कोई नहीं होता। इससे, हे रामजी! आधिव्याधि रोग तब होते हैं जब मनुष्य का चित्त निर्वासनिक नहीं होता पर जब चित्त शान्त होताहै तब रोग कोई नहीं रहता। इससे निर्वासनिक पद में स्थित हो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पीछे आपने कहा है कि, मन्त्रों से भी रोग निवृत्त होता है सो कैसे निवृत्त होता है? वशिष्ठजी ने कहा, हे रामजी! प्रथम मनुष्य को श्रद्धा होती है कि, इस मन्त्र से रोग निवृत्त होगा तब पुण्यक्रिया, दान, सन्तजनों की संगति और य, र, ल, व आदिक जो अक्षर हैं इनका जाप करके क्योंकि जितने कुछ जाप और मन्त्रहैं सो इन अक्षरों से सिद्ध होतेहैं व्याधिरोग निवृत्त होजाताहै। योगीश्वरों

का क्रम अणु और स्थूल है सोभी सुनो। जब ये प्राण और अपान कुण्डलिनी शक्ति में स्थित होते हैं तो इनको वश करके योगी गम्भीर होता है। जैसे मसक में पवन होता है इसी प्रकार पवन को स्थित करके कुण्डलिनी सुषुम्णा में प्रवेश करता है और ब्रह्मरन्ध्र में जा स्थित होता है। एक मुहूर्त पर्यन्त वहां स्थितहो तो आकाश में सिद्ध देखता है। जिस प्रकार इसका क्रम है तैसे तुम से कहता हूं। हे रामजी! सुषुम्णा के भीतर जो ब्रह्मरन्ध्र है उसमें जब पूरकद्वारा कुण्डलिनीशक्ति स्थित होती है अथवा रेचक प्राण वायु के प्रयोग से द्वादश अंगुल पर्यन्त मुख से बाहर अथवा भीतर वा ऊपर एक मुहूर्ततक एकही बेर स्थित होतीहै तब आकाश में सिद्धों का दर्शन होता है। रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! जब ब्रह्मरन्ध्र में जीवकला जा स्थित होती है तो कैसे दर्शन होता है? दर्शन तो नेत्रों मे होता है सो नेत्र आदिक इन्द्रियां वहां कोई नहीं होतीं; नेत्रों विना दर्शन कैसे होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो, रामजी! पृथ्वी में बिचरनेवालों को आकाश में बिचरनेवालों का दर्शन नहीं होता परन्तु दिव्यदृष्टि से दृष्ट आता है-चर्मदृष्टि से नहीं दीखते। विज्ञान के निकट जो निर्मलबुद्धि नेत्र होते हैं उनसे दर्शन होता है। जैसे स्वप्न में चर्मनेत्रों के विना भी सर्वपदार्थ दृष्ट आते हैं तैसेही सिद्धों का दर्शन होता है परन्तु इतनी विशेषता है कि, स्वप्न के पदार्थ जाग्रत् में नहीं भासते और न उनसे कुछ अर्थ सिद्ध होता है पर सिद्धों के समागम की चेष्टा जाग्रत् में भी स्थित प्रतीत होती है। मुख के बाहर जो द्वादश अंगुल पर्यन्त अपान का स्थान है उसमें रेचक प्राणायाम का अभ्यास होता है और जब चिरपर्यन्त वहां प्राण स्थिरीभूत होता है तब और पुरियों और दिशा के स्थानों में प्राप्त होसक्ता है। रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो पदार्थ चञ्चलरूप हैं वे क्योंकर स्थिर होते हैं? वक्ता जो गुरु हैं वे कृपा करके कहते हैं, वे दुष्ट प्रश्न जो तर्करूप हैं उससे भी खेदवान् नहीं होते। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसी२ वस्तु है तैसी २ उसकी शक्ति स्वाभाविक होती है। आदि जगत् के फुरने से जैसी नीति हुई है तैसेही अबतक आत्मा में स्वभाव शक्ति का फुरना होताहै। यह जो अविद्या है सो अवस्तुरूप है और जो कहीं वस्तुरूप होकर भी भासती है सो ऐसे है जैसे बसन्त ऋतु में भी शरत्काल के फूल दृष्टि आते हैं और बसन्त ऋतु के शरत्काल में भासते हैं। यह भी एक नीति है कि, इससे इस द्रव्य की शक्ति ऐसे होजावे परन्तु स्वरूप से सब ब्रह्मरूप हैं; द्वैत नानात्व कुछ नहीं। केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है, व्यवहार के निमित्त नानात्व की कल्पना हुई है; वास्तव में द्वैत कुछ नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सूक्ष्मरन्ध्र से स्थूलरूप वायु कैसे निकल जाती है और अणु सूक्ष्मरूप होकर फिर स्थूलभावको कैसे प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी!

जैसे आरेसे कटे काष्ठ के दो टुकड़े को शीघ्रही घिसयें तो उनसे स्वाभाविक अग्नि प्रकट होती है तैसेही मांसमय जो कमल उदर में है उसके मध्यहृदय कमल है और उसमें सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति है। उस कमल के भीतर दो कमल हैं एक अधः और दूसरा ऊर्ध्व अधः चन्द्रमाकी स्थिति है और ऊर्ध्व सूर्य की स्थितिहै और उनके मध्य में कुण्डलिनी लक्ष्मी स्थित है। जैसे पद्मराग मणि का डब्बा हो और मोतियों का भण्डार हो तैसेही उसका महाउज्ज्वलरूप है। जैसे आवर्त फेनके मिलने से शल-शल शब्द प्रकट होताहै तैसेही उससे शब्द निकलता है और जैसे डण्डे के साथ हिलायेसे सर्पिणी शब्द करती है तैसेही उस कुण्डलिनी से प्रणव शब्द उदय होता है। हे रामजी! आकाश और पृथ्वी जो ऊर्ध्व और अधःरूप दो कमल हैं उनके मध्य में कुण्डलिनी शक्ति स्पन्दरूपिणी स्थित है। वह जीवकला पुर्यष्टका अनुभव-रूप अतिप्रकाश सूर्य की नाईं हृदयरूप कमल की भ्रमरी है सो सबोंकी अधिष्ठान आदि शक्ति है और हृदयकमल में विराजमान है। उस हृदय आकाश में कुण्ड-लिनी शक्ति है उसमें से स्वाभाविक वायु निकलती है सो कोमल मृदुरूप है। वही पवन निकलकर दो रूप होताहै एक प्राण और दूसरा अपान, वही अन्योन्य मिल-कर स्फुरणरूप होता है। जैसे वृक्ष के पत्तों के हिलनेमे उससे शीघ्रही अग्नि प्रकट होती है और बांसों के घिसनेसे अग्नि प्रकट होती है तैसेही प्राण अपान से अग्नि प्रकट होकर जब आकाश में उदय होती है तब सर्व ओर से भीतर प्रकाश होता है। जैसे सूर्य के उदय हुये सर्व ओर से भुवन प्रकाशित होते हैं तैसेही सर्व ओर से प्रकाशित होता है और सूर्यरूप तारा अग्निवत् तेज आकार हैं। हृदयकमल का भ्रमरा स्वर्णरूप है और उसके चिन्तन से योगी तद्वत् होते हैं। वह प्रकाश ज्ञानरूप है और उस तेज से योगी की वृत्ति तद्वत् होती है अर्थात् एकत्वभाव को प्राप्त होती है तब लक्षयोजन पर्यन्त जो पदार्थ हो उनका उसे ज्ञान हो आता है और सब प्रत्यक्ष दृष्टि पड़ते हैं। उस अग्नि का हृदयरूपी ताल स्थान है–जैसे वड़वाग्नि समुद्र में रहती है और उसको जल ही इन्धन है अर्थात् जल को दग्ध करती है; तैसेही हृदयरूप ताल में उसका निवास है और रस शीतलतारूप जल को पचाती है। उस हृदयकमल से जो अपानरूप शीतल वायु उदय होताहै उसका नाम चन्द्रमा है और प्राणरूप उष्णपवन उदय होता है सो सूर्यरूप है। वही उष्ण और शीतल सूर्य चन्द्रमा नाम से देह में स्थित हैं। आदि प्राण वायुरूप सूर्य अपानरूप चन्द्रमा से सूर्यरूप होकर स्थित होता है। सूर्य उष्ण और चन्द्रमा शीतल है। इन दोनों से जगत् हुआ है। विद्या, अविद्या, सत्य, असत्यरूप जगत् इन दोनों से युक्त है। सत्, चित, प्रकाश, विद्या, उत्तरायण, सूर्य, अग्नि आदिक नाम बुद्धिमान् निर्मलभाव

से कहतेहैं और असत, जड़, अविद्या, तम, दक्षिणायन आदिक चन्द्रमारूप से मलिनभाव कहते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अग्नि, सूर्यरूप जो प्राणवायु है उससे शीतल जलरूप चन्द्रमा अपानरूप कैसे उत्पन्न होता है और अपान जल चन्द्रमारूपसे सूर्य कैसे उत्पन्न होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सूर्य चन्द्रमा जो अग्नि सोम हैं वे परस्पर कार्य कारणरूप हैं। जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से बीज होता है; जैसे दिन से रात्रि और रात्रि से दिन होता है और जैसे छाया से धूप और धूपसे छाया होती है; तैसेही सूर्य चन्द्रमा परस्पर कार्य कारण होते हैं। कभी २ इनकी इकट्ठी उपलब्धि भी होती है—जैसे सूर्य के उदय हुये धूप और छाया दोनों इकट्ठे होजाते हैं। कार्य कारण भी दोप्रकार का है— एक कार्य सत्यरूप परिणाम से होता है एक विनाशरूप परिणाम से होता है। एक से जो दूसरा होता है सो जैसे बीज नष्ट होगया तो उससे अंकुर होता है सो विनाशरूप परिणाम होता है और जैसे मृत्तिका से घट उपजता है सो सत्यरूप परिणाम कहाता है। जो कारण कार्य के भाव में भी इन्द्रियों से प्रत्यक्ष पाइये उसका नाम सत्यरूप परिणाम है और जो कार्य में इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं पाया जाता जैसे दिन में रात्रि और रात्रि में दिन सो विनाशरूप परिणाम कहाता है। जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है तैसेही अभाव प्रमाण भी है। इससे विनाशभाव भी एक कारणरूप है जैसे युक्तिवादी कहते हैं कि, अपने संवित् में कर्तव्य नहीं बनता, इत्यादि सो इस अर्थ की अवज्ञा करते हैं और अपने अनुभव को नहीं जानते। अनुभव की युक्ति उनको नहीं आती। यह अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रकट होता है। शीतलता का प्रमाण यह है कि, जैसे अग्नि के भाव से शीतलता के अभाव में उष्णता होती है; दिन के अभाव में रात्रि और छाया के अभाव में धूप इत्यादिक का नाम अभाव प्रमाण कहाता है। अग्नि से धूम्रभाग निकलता है सो मेघ होता है इस कारण सत्त्वरूप प्रमाण से चन्द्रमा का कारण अग्नि होता है और अग्निनाश होकर शीतलभाव को प्राप्त होती है तब उसका नाम विनाश प्रमाण से अग्नि चन्द्रमा का कारण होता है। सात समुद्रों का जल पान करके वड़वाग्नि धूम्र को उद्गीर्ण करताहै सो धूम्र मेघ को प्राप्त होकर अत्यर्थ जल का कारण होता है। सूर्य जो विनाश के अर्थ चन्द्रमा को पान करता है सो अमावस्यापर्यन्त बारम्बार भक्षण करताहै और फिर शुक्लपक्ष में उद्गीर्ण करताहै— जैसे सारस पक्षी कर्म की जड़ को भक्षण करके उद्गीर्ण कर डालता है। हे रामजी! अमृत के समान शीतल जो अपानवायु चन्द्रमारूप है सो मुख के अग्र में रहता है। वह कणकारूप जल जब शरीर में जाताहै तब वह जल का अणु अपान और सूर्यरूपी प्राण फुरण को प्राप्त होता है। इस प्रकार सत्यरूप परिणाम से जल अग्नि

का कण का होता है । जब जल का नाश होजाता है तब वह उष्णभाव अग्नि को प्राप्त होता है—इनका नाम विनाश परिणाम है । इस प्रकार जल अग्नि का कारण कहाता है । अग्नि के नाश हुये चन्द्रमा उत्पन्न होताहै इसका नाम विनाश परिणाम है और चन्द्रमा के अभावहुये अग्नि उत्पन्न होताहै इसका नाम भी विनाश परिणाम है जैसे तम के अभाव से प्रकाश उदय होता है और प्रकाश के अभाव से तम होता है; दिन के अभाव से रात्रि और रात्रि के अभाव से दिन होता है; इसके मध्य में जो विलक्षणरूप है सो बुद्धिमानों से भी नहीं पाया जाता । वह तम और प्रकाश दोनों रूपों से युक्त है; इनके मध्य में जो संधि है सो आत्मरूप है । उसमें स्थित होके चेतन और जड़ दोनों रूपों से भूत फुरण होते हैं । जैसे दिन और रात्रि; तम और प्रकाश से पृथ्वी में चेष्टा करते हैं सो चेतन और जड़रूप सूर्य और चन्द्रमा दोनों रूपों से युक्ति है । निर्मलरूप प्रकाश जो चिद्रूप है उसका नाम सूर्य है और जड़ात्मक तमरूप है सो चन्द्रमा का शरीर है । जब निर्मल चेतनरूप सूर्य आत्मा का दर्शन होता है तब संसार के दुःखरूप जो तम हैं सो नष्ट होजाते हैं—जैसे आकाश में सूर्य उदय से श्यामरात्रि का तम नष्ट होजाता है । जड़ चन्द्रमारूप जो देह है जब उस को देखता है तब चेतनरूप सूर्य नहीं भासता—असत्य की नाईं होजाता है और चेतन की ओर देखता है तब देह नहीं भासता । केवल लक्ष में दूसरे की उपलब्धि नहीं होती । केवल चेतनपद को प्राप्त हुये से द्वैत से रहित निर्वाणभाव होता है और जड़-भाव को प्राप्त हुये चेतन नहीं भासता । इससे संसार के दर्शन का कारण दोनों हैं । सूर्य चेतन से चन्द्रमा जड़ की उपलब्धि होतीहै और जड़ चन्द्रमा से सूर्य चैतन्य की उपलब्धि होती है । जैसे दीपक अग्नि का अन्धकार विना प्रकाश नहीं होता तैसेही इन दोनों विना आत्मा की उपलब्धि नहीं होती । प्रकाश विना केवल जड़ की उपलब्धि भी नहीं होती—जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस दीवार पर पड़ता है वह दीवार प्रकाश से भासती है और प्रकाश दीवार से भासता है; तैसेही चित्त फुरता है तब चेतन को जगत् भासता है और फुरना जगत् से होताहै—फुरने से रहित अचैत्य चि-न्मात्र निर्वाण होताहै । इससे हे रामजी ! जगत् को अग्नि और सोम जानो । देह देह से सम्बन्ध है परन्तु जिसकी अतिशय हो उसकी जय होती है । प्राण—अग्नि उष्णरूप है और अपानशीतल—चन्द्रमारूप है । ये दोनों प्रकाश और छायारूप हैं—इनको जानना सुख का मार्ग है । हे रामजी ! जब बाहर से शीतलरूप अपान भीतर को आता है तब उष्णरूप प्राण में जा स्थित होताहै और जब हृदयस्थानसे निकल कर उष्णरूप प्राण बाहर को द्वादशअंगुल पर्यन्तजाता है तब अपान जो चन्द्रमा का मण्डल है उसको प्राप्त होता है । अपानप्राणरूप होकर उदय होता है और प्राण

अपानरूप होकर उदय होता है। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है। तैसेही इनका परस्पर आपस में प्रतिबिम्ब पड़ता है जहां षोड़शकला चन्द्रमा को सूर्य ग्रास लेता है उस मध्यभाव में स्थित हो। जब अपान प्राणों के स्थान में आन स्थित होता है और प्राणरूप होकर उदय नहीं हुआ सो शान्तिरूप भाव है—उस में स्थित हो। प्राण निकलकर जब मुख से द्वादश अंगुल पर्यन्त बाहर स्थित होताहै और जबतक अपानभाव को प्राप्त होकर उदय नहीं वह वह जो मध्यभाव है उसी में स्थित हो। मेषआदिक जो द्वादशराशि हैं उनमें एकको त्यागकर दूसरी राशि को जबतक संक्रान्ति नहीं प्राप्त होती उसका नाम संक्रान्ति है और उनके मध्य में जो सन्धि है उसका नाम पुण्यकालहै सो पुण्य भीतर और बाहर प्राणअपान की सन्धि के समय में तृणवत् है। उन संक्रान्तियों में जो वैशाख की वृषवती संक्रान्ति है सो शिवरात्रि चैत्रकी संक्रान्ति त्रयोदश दिन होतेहैं और अस्तकी संक्रान्ति त्रयोदश दिन है इनका नाम वृषवती है। जहां दिन और रात्रि सम होते हैं और दक्षिणायन और उत्तरायण की जो सन्धि होती हैं इनके भीतर और बाहर भेद को जाने तब जन्मसे रहित होकर परमबोध को प्राप्त हो। हे रामजी! उत्तरायण मार्ग योगीश्वरों का है उमसे वे क्रम से मुक्त होते हैं और दक्षिणायन मार्ग कर्म करनेवालों का है इससे वे फिर संसारभागी होते हैं। उनके मध्यमें जो संधिहै उसमें स्थितहुयेसे परम उत्तमपद प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअग्निसोमविचारयोगोनामाष्टषष्टितमस्सर्गः ६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह योग की सर्वकला मैंने विस्तार से कही और इसमें उत्तम प्रभाव वर्णन हुआ है। प्रयोजन यही है कि, तुम निर्वाण पद में स्थित हो और आत्मब्रह्म की एकता हो जिससे कि, फिर जन्मादिकों का दुःख न हो। ब्रह्म सत्, चित्, आनन्द स्वभावमात्र है। जो एक वार्त्ता में एकत्वभाव होते हैं वही भाव रहते हैं और धनी शक्ति का धनी होताहै और अविद्या नाश होजाती है। इस प्रकार जब वही चुड़ालारानी योग और ज्ञान के अभ्यास से पूर्ण हुई तब सब शक्तियों से संयुक्त होकर धनी, अणिमा आदि सिद्धियोंको प्राप्त हुई। एकरात्रिमें राजा सोयाथा तो वह अवकाश पाकर आकाशके बहुत स्थानों में विचरी; फिर देवलोकमें अति चञ्चल कालीका रूप धारके फिरी; फिर मध्य दिशा, देवलोक, दैत्यों, राक्षसों, विद्याधरों और सिद्धोंके लोकमें होकर सूर्यलोक; चन्द्रलोक; मेघमण्डल और इन्द्रलोक में गई और वहांका कौतुक देखकर फिर अधोलोकमें आई। समुद्रमें प्रवेश करके फिर अग्नि में प्रवेश करगई पवन में पवनरूप हुई और नागलोककी कन्याओंमें क्रीड़ा की। फिर वनों, पर्वतों, भूतों, अप्सराओं और त्रिलोकी के मध्य विचरी। इसी प्रकार लीला करके फिर एक क्षण में उसीस्थानमें जहां राजा सोया था आई और राजा के समीप

सोरही–जैसे भँवरी भँवरा कमलिनी के मध्य में शयन करते हैं पर राजाने न जाना कि रानी कहीं गई थी वा न गई थी जब रात्रि बीती और प्रातःकाल हुआ तो राजा ने स्नानशाला में जाकर स्नान कर वेदोक्तकर्म किये और रानी ने भी प्रवाह कर्म किये। जैसे पिता पुत्रको मीठे वचनों से उपदेश करताहै। तैसेही रानीने राजाको शनैःशनैः तत्त्वका उपदेश किया और पण्डितों से भी कहा कि तुमभी राजाको उपदेश करो कि यह जगत् स्वप्नवत् भ्रम; दीर्घ रोग और दुःखों का कारण है। आत्मज्ञान औषध से यह नाश होता है और इसकी कोई औषध नहीं। इसीप्रकार आप भी राजा को उपदेश करें और पण्डितलोग भी उपदेश करें परन्तु राजा ने वह ज्ञान न पाया और विक्षेपता में रहा। राजा ने उस उत्तमपद में विश्राम न पाया जो अपना आप केवल चित्तरूप, प्रत्येक और आत्मा है रामजी ने पूछा, हे महामुनि! रानी तो सर्वशक्तिसम्पन्न हुई थी कि, योगकला में भी अतिचतुर और ज्ञानकला में तद्रूप थी और राजा भी अति मूढ़ न था उसको उसका उपदेश क्यों न दृढ़ हुआ? रानी भी उसको प्रीति से उपदेश करती थी तो क्या कारण था जो वह अपने पद में स्थित न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे अछिद्रमोती में तागा प्रवेश नहीं करता तैसेही चुड़ाला के उपदेश ने राजा को न बेधा। जबतक आप विचार न करे और उसमें दृढ़ अभ्यास न हो तबतक यदि ब्रह्मा भी उपदेश करें तो उसको न बेधे क्योंकि आत्मा आपही से जाना जाता है और इन्द्रियों का विषय नहीं। अधिष्ठानरूप और स्वभावमात्र आपही आपको देखता है और किसी मन और इन्द्रियों का विषय नहीं सबका अपना आप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यदि अपने आपही से देखता है तो गुरु और शास्त्र किस निमित्त उपदेश करते हैं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! गुरु और शास्त्र जनादेते हैं कि, तेरा स्वरूप आत्मा हैं परन्तु 'इदं' करके नहीं देखाते। विचारनेत्र से आपको आपही देखता है; विचार से रहित उसको नहीं देखसक्ता। जैसे किसी पुरुष को चन्द्रमा कोई सचक्षु दिखाता है पर जो वह सचक्षु होता है तो देखता है और मन्ददृष्टि होता है तो नहीं देखता; तैसेही गुरु और शास्त्र आत्मा का रूप वर्णन करतेहैं और लखातेहैं पर जब वह विचारनेत्र से देखता है तब कहता है कि, मैंने देखा और और के दिखाने के योग्य होताहै। हे रामजी! आत्मा किसी इन्द्रिय का विषय नहीं; वह अपना आप मूलरूप है और इन्द्रियां कल्पित हैं। जो तुम कहो कि, तुम भी तो इन्द्रियसेही उपदेश करतेहो तो सब इन्द्रियों का विस्मरण करो तो अपना मूल तुम्हें भासे। हे रामजी! इसपर एक क्रान्तका इतिहास है सुनो। एक क्रान्त था जिसके पास बहुत धन और अनाज था परन्तु वह ऐसा कृपण था कि, किसीको कुछ न देता था और धनकी तृष्णा करताथा कि, किसीप्रकार मुझे चिन्तामणि

मिले। इसी इच्छा से एक समय घरसे बाहर निकल पृथ्वी की ओर देखता जाता था कि, एकस्थान में पहुँचा जहां घास और भुस पड़ाथा तो उसे उसमें एक कौड़ी दृष्टि पड़ी और उसने उस कौड़ी को उठाकर देखनेलगा कि, कुछ औरभी निकले तो फिर दूसरी कौड़ी निकली; इसी प्रकार ढूंढ़ते २ उसे तीन दिन व्यतीत हुये तब चार कौड़ी निकलीं और फिर आठ निकलीं। जब तीनदिन और ढूंढ़ते बीते तब चन्द्रमा की नाईं चिन्तामणि प्रकट देखी और उसे लेकर अपने घर आया और अतिहर्षवान् हुआ। हे रामजी! तैसेही गुरु और शास्त्रों से 'तत्त्वमसि' और 'अहंब्रह्मास्मि' का पाना कौड़ियों का खोजना है और आत्मा चिन्तामणिरूप है। परन्तु जैसे कौड़ियों के खोज में उसने चिन्तामणि विना खोजे न पाई तैसेही गुरु और शास्त्रों से आत्मपद मिलता है—गुरु और शास्त्रों विना नहीं मिलता। धन, तप और कर्म से आत्मा नहीं मिलता, केवल अपने आपसे पाया जाता है। हे रामजी! जब शिखरध्वज चुड़ाला के पास से उठकर स्नान को गया तब राजा के मन में वैराग उपजा कि, यह संसार मिथ्या है। हमने बहुत भोग भोगे तौभी हृदय को शान्ति न हुई और इन भोगोंका परिणाम दुःख-दायक है। जब मन में ऐसा विचार उपजा तब राजाने गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण, मन्दिर और दूसरी सामग्री बहुत दान की और सब ऐश्वर्य के पदार्थ ब्राह्मणों, गरीबों और अतिथियों को अधिकार के अनुसार दिये। रानीने भी ब्राह्मणों और मन्त्रियों से कहा कि, राजा को तुम यही उपदेश दिया करो कि, ये भोग मिथ्या हैं; इनमें कुछ सुख नहीं और आत्मसुख बड़ा सुख है जिस के पायेसे जन्म—मरण से मुक्त होताहै इसी प्रकार राजा ब्राह्मणों से सुने और अपने मन में भी वैराग उपजाता था इस कारण विचारे कि, मैं इस संसारदुःख से रहित होजाऊं; यह संसार बड़ा दुःखरूप है और इसमें सदा जन्म मरणहै। निदान राजाके मनमें आया कि, मैं तीर्थोंको जाऊं और स्नान करूं, इसलिये तीर्थों को चला और स्नान, दान करता इसी प्रकार देवता, तीर्थों और सिद्धों के दर्शन करके गृह को आया। रात्रि के समय रानी के साथ शयन किया तो रानी से कहा कि, हे अङ्गने! अब मैं वन को तप करने के लिये जाताहूं क्योंकि; ये भोग मुझे दुःखदायक भासते हैं और राज्य भी वनकी नाईं उजाड़ भासता है। ये भोग हम बहुतकाल पर्यन्त भोगते रहे तौभी इनमें सुख दृष्टि न आया, इस लिये मैं वन को जाता हूं—मुझे न अटकाइयो। तब रानी ने कहा, हे राजन्! अब तेरी कौन अवस्था है जो तू वन में जाता है? अब तो हमारे राज भोगने का समय है। जैसे बसन्तमें फल शोभा पाते हैं और शरत्काल में नहीं शोभते तैसेही हमभी जब वृद्ध होंगी तब वन को जावेंगी और वनही में शोभा पावेंगी। जैसे वनके फूल श्वेत होतेहैं तैसेही जब हमारे केश श्वेत होंगे तब शोभा पावेंगे—अब तो राज करो। हे रामजी! इस प्रकार रानी ने कहा पर राजा का

चित्त वैरागही में रहा और रानी का कहना चित्त में न लाया। जैसे चन्द्रमा विना कमलिनी शान्ति नहीं पाती तैसेही ज्ञान विना राजा को शान्ति न हुई परन्तु वैराग करके फिर कहने लगा; हे रानी! अब मुझे न रोंक अब राज्य मुझको फीका लगता है इस लिये मैं वन को जाता हूं यहां नहीं ठहर सक्ता। जो तुम कहो कि, हम यहां तेरी टहल करती थी वनमें कौन करेगा तो पृथ्वी ही हमारी टहल करेगी, वनकी वीथियां स्त्रियां होंगी; मृगों के बालक पुत्र; आकाश हमारे वस्त्र और फूल के गुच्छे भूषण होंगे। जब दूसरी रात्रि हुई और राजा वहां से चला तो रानी और सेना भी पीछे चली और कोट के बीच सब स्थित हुये। राजा और रानी विश्राम किया—जैसे भँवरा भँवरी सोते हैं और सेना और सहेलियां भी सब सोगईं और पत्थर की शिलावत् कर्म निद्रा से जड़ होगये। जब आधी रात्रि व्यतीत हुई तो राजा जगा और देखा कि, सब सोगये हैं। निदान शय्या से उठ और रानी के वस्त्र एक ओर करके और हाथ में खड्ग लेकर निकला जैसे क्षीरसमुद्र से विष्णु भगवान् लक्ष्मी के पास से उठते हैं तैसेही उठ सब लोगों को लङ्घता कोट के दरवाजे पर आया। तो देखा आधे मनुष्य जागते थे और आधे सोगये थे। उन्होंने जब राजा को देखा तब राजा ने कहा, द्वारपालो! तुम यहांहीं बैठे रहो; मैं अकेलाही वीरयात्रा को जाता हूं। इतना कह राजा तीक्ष्ण वेग से चलागया और बाहर निकल कर कहा, हे राजलक्ष्मी! तुझको नमस्कार है; अब मैं वनको चला हूं। फिर एक वन में पहुंचा जहां सिंह, सर्प तथा और २ भयानक जीव थे; उनके शब्द सुनता आगे चलागया तो उसके आगे और वन मिला उसको भी लांघगया। आठ पहर चलकर राजा एक ठौर जा स्थित हुआ और जब सूर्य उदय हुआ तब स्नान करके संध्यादिक कर्म किये और वृक्षों के फल भोजन कर फिर वहां से आगे चला। इस डरसे कि, कोई कहीं पीछे से आकर मुझे न रोंके बड़े तीक्ष्ण वेग से चला और बड़े पहाड़, नदियां और वन उल्लंघकर बारह दिन पश्चात् जब मन्दराचल पर्वत के निकट जा पहुँचा तब एक वन में जा स्थित हुआ और स्नान करके कुछ भोजन किया। मेघ और छाया से रक्षा के निमित्त उसने वहां एक झोपड़ी बनाई और बासन बनाकर उन में फूल और फल रक्खे। जब प्रातःकाल हो तब स्नान करके प्रहर पर्यन्त जाप करे और फिर देवताओं की पूजा के निमित्त फूल चुने; दो प्रहर स्नान करके ऐसे व्यतीत करे, जब तीसरा प्रहर हो तब फल भोजन करे और चौथे प्रहर फिर संध्या और जाप करे। कुछ काल रात्रि को शयनकरे और बाक़ी जाप में बितावे; इसी प्रकार काल को व्यतीत करे। हे रामजी! राजा की तो यह अवस्था हुई अब रानी की अवस्था सुनो। जब अर्धरात्रि के पीछे रानी जागी तो क्या देखा कि, राजा यहां नहीं है और शय्या खाली पड़ी है। रानी

ने सहेलियों को जगा कर कहा बड़ा कष्ट है कि, राजा वन को निकलगया है और बड़े भयानक वन में जावेगा। ऐसे कहकर मन में विचार किया कि, राजा को देखा चाहिये इस निमित्त योग में स्थित होकर आकाश को उड़ी और आकाश की नाईं देह को अन्तर्धान किया। जैसे योगेश्वरी भवानी उड़ती हैं तैसेही उड़ी और आकाश में स्थित होकर देखा कि, राजा चलाजाता है। रानी के मन में आया कि, इसका मार्ग रोकूं पर एकक्षणमात्र स्थित होकर भविष्यत् को विचारने लगी कि; राजा का और मेरा संयोग नीति में कैसे रचा है। विचार करके देखा कि, राजा का और मेरा मिलाप होने में अभी बहुतकाल बाक़ी है; अवश्य मिलाप होगा और मेरे उपदेश से राजा जागेगा परन्तु यह सब बहुत काल उपरान्त होगा अभी इसके कषाय परिपक्क नहीं हुये इससे इस का मार्ग रोकना न चाहिये। निदान रानी फिर अपने घर आई और शय्या पर शयन कर बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुई। जब रात्रि व्यतीत हुई तब मन्त्रियों से कहने लगी कि, राजा एक तीर्थ करने गया है और दर्शन करके फिर आवेगा, तुम अपने कार्य करते रहो। यह सुन मन्त्री अपनी चेष्टा में बर्तनेलगे और इसी प्रकार रानी ने आठ वर्ष पर्यन्त राज्य किया और प्रजा को सुख दिया। जैसे बाग़वान कमलों और क्यारियों को पालता है तैसेही रानी ने प्रजा को पालकर सुख दिया। उधर राजा को आठवर्ष तप करते बीते और उसके अङ्ग दुर्बल होगये और इधर रानी ने राज्य किया पर जैसे भँवरा और ठौर हो तैसेही व्यतीत समय हुआ। तब रानी ने विचार किया कि, राजा अब मेरे वचनों का अधिकारी हुआ होगा क्योंकि, अब उसका अन्तःकरण तपकर के शुद्ध हुआहै इससे अब राजा को देखिये। निदान रानी वहां से उड़के आकाश को गई और इन्द्र के नन्दनवन को देख वहांके दिव्यपवन का स्पर्श हुआ तो उसके चित्त में आया कि, मुझे भर्ता कब मिलेगा। फिर कहनेलगी कि, बड़ा आश्चर्य है; मैं तो सत्पद को प्राप्त हुई थी तौभी मेरा मन चलायमान हुआ है तो और जीवों की क्या वार्ता है। वहां से भी चली तो आगे कमल फूल देखकर कहनेलगी कि, मुझे भर्ता कब मिलेगा मैं तो कामातुर हुई हूं। फिर मन में कहनेलगी कि, हे दुष्टमन! तू तो सत्पद को प्राप्त हुआ था तेरा भर्ता आत्मा है अब तू मिथ्या पदार्थों की अभिलाषा क्या करता है? मालूम होता है कि, जबतक देह है तबतक देह के स्वभाव भी साथ रहते हैं इससे यह अवस्था प्राप्त हुई है तभी मन चलायमान होता है इससे इतर जीवों की क्या वार्त्ता है। तब रानी मेघ, बिजली, पर्वत, नदियां, समुद्र और और भयानक स्थानोंको लांघकर मन्दराचल पर्वत के पास वन में पहुंची और देखनेलगी कि, मेरा भर्ता कहां है। समाधि में स्थित होकर उसने देखा कि, अमुक स्थान में बैठा है, तप करके महा दुर्बल अङ्ग

होगये हैं और ऐसे स्थान में प्राप्त हुआ है जहां और जीव की गम नहीं । बड़ा आश्चर्य है कि, महावैताल की नाईं यह रात्रि को चला आया है। अज्ञान महादुष्ट है कि, ऐसा राजा तप में लगा है और स्वरूप के प्रमाद से जड़ है। अब ऐसा हो कि, किसी प्रकार यह अपने स्वरूप को प्राप्त हो। परन्तु मेरे इस शरीर से इसको ज्ञान न उपजेगा क्योंकि, प्रथम तो उसको यह अभिमान होगा कि, यह मेरी स्त्री है और फिर कहेगा कि, मैंने इनहींके निमित्त राज्य छोड़ा है और यह फिर मुझे दुःख देने आई है इससे मैं ब्रह्मचारी का शरीर धारूं। ऐसा विचार करके उसने शीघ्रही ब्रह्मचारी का शरीर धरा और हाथ में रुद्राक्ष की माला और कमण्डलु और गले में मृगछाला धारण किया। जैसे सदाशिव के मस्तकपर चन्द्रमा विराजता है तैसेही सुन्दर विभूति लगा और श्वेतही यज्ञोपवीत धारण कर पृथ्वी के मार्ग से राजा के निकट जापहुंची। राजा उसे देखकर आगेसे उठ खड़ा हुआ और नमस्कार कर चरणों पर फूल चढ़ाये। फिर अपने स्थान पर बैठाकर कहनेलगा; हे देवपुत्र ! आज मेरे बड़े भाग हैं जो आपका दर्शन हुआ। कृपा करके कहिये कि, आप किस लिये आये हैं ? देवपुत्र बोले, हे राजन् ! हम बड़े बड़े पर्वत देखते और तीर्थ करते आये हैं परन्तु जैसी भावना तुझमें देखी है तैसी किसी में नहीं देखी। तूने बड़ा तप किया है और तू इन्द्रियजित् दृष्टि आता है। मैं जानता हूं कि, तेरा तप खड्ग की धार सा तीक्ष्ण है इससे तू धन्य है और तुझे नमस्कार है । परन्तु हे राजन् ! आत्मयोग के निमित्त भी कुछ तप किया है अथवा नहीं सो कह ? तब राजा ने जो फूलों की माला देवपूजन के निमित्त रक्खी थी सो देवपुत्र के गले में डाली और पूजा करके कहा, हे देवपुत्र ! तुम ऐसों का दर्शन दुर्लभ है और अतिथि का पूजन देवता से भी अधिक है। हे देवपुत्र ! आपके अङ्ग बहुत सुन्दर दृष्ट आते हैं। ऐसेही मेरी स्त्रीके भी अङ्ग थे; नख से शिखपर्यन्त तुम्हारे वही अङ्ग दृष्ट आते हैं परन्तु आप तो तपस्वी हैं और आपकी मूर्ति शान्ति के लिये हुईहै मैं कैसे कहूं कि, तुम वही हो। इससे हे देवपुत्र ! आप किसके पुत्र हैं; यहां किस निमित्त आयेहैं और आगे कहां जावेंगे यह संशय मेरा निवृत्त कीजिये ? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! एकसमय नारदमुनि सुमेरुपर्वत की कन्दरा में जहां आश्चर्य के देनेवाले वृक्ष और मञ्जरियां फूलों और फलों से पूर्ण थीं और ब्राह्मणों की कुटी बनी हुई थीं समाधि लगाके बैठे। वहां गङ्गा का प्रवाह चलता था और सिद्धों के सिवाय और जीवों की गम न थी इससे नारदमुनि वहां कुछ काल समाधि में स्थित रहे । जब समाधि से उतरे तब उन्हों ने आभूषणों का शब्द सुना और मन में महाआश्चर्य माना कि, यहां तो कोई नहीं आसक्ता यह भूषणों का शब्द कहां से आया। तब उठकर देखनेलगे कि, गङ्गा

का प्रवाह चलाआता है और वहां उर्वशी आदिक महासुन्दर अप्सरा वस्त्रों को उतारे हुये स्नान करती हैं। जब उनको नारदजी ने देखा तो उनका विवेकजाता रहा और वीर्य निकलकर उनके पास एकसुन्दर बेल थी उसके पत्रपर स्थित हुआ। इतना सुनके शिखरध्वज ने कहा, हे देवपुत्र! ऐसे ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञ मननशीलसंयुक्त नारदमुनि का वीर्य किस निमित्त गिरा? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! जबतक शरीर है तबतक अज्ञानी और ज्ञानी का शरीर स्वभाव निवृत्त नहीं होता; परन्तु एकभेद है कि, ज्ञानवान् को यदि दुःख प्राप्त होता है तो वह दुःख नहीं मानता और यदि सुख प्राप्त होता है तो सुख नहीं मानता और उससे हर्षवान् नहीं होता; और अज्ञानी को यदि दुःख सुख प्राप्त होते हैं तो वह हर्ष शोक करता है। जैसे श्वेत वस्त्र पर केशर का रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है तैसेही अज्ञानी को दुःख सुख का रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है और जैसे मोम के वस्त्रों को जल का स्पर्श नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को दुःख सुख का स्पर्श नहीं होता। जिसके अन्तःकरणरूपी वस्त्र को ज्ञानरूपी मोम नहीं चढ़ा उसको दुःख सुखरूप जल स्पर्श करजाता है। दुःख की और सुख की नाड़ी भिन्न २ हैं, जब सुख की नाड़ी में जीव स्थित होता है तब कोई दुःख नहीं देखता और जब दुःख की नाड़ी में स्थित होताहै तब सुख नहीं देखता। अज्ञानी को कोई दुःख का स्थान है और कोई सुखका स्थान है और ज्ञानीको एक आभासमात्र दिखाई देता है—बन्धवान् नहीं होता। जबतक अज्ञान का सम्बन्ध है तबतक दुःख निवृत्त नहीं होता। तब राजा ने कहा कि, वीर्य जो गिरताहै सो कैसे निवृत्त होता है? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! जब चित्त वासना से क्षोभवान् होता है तब नाड़ी भी क्षोभ करती हैं और अपने स्थानों को त्यागने लगती हैं; उसी अवस्था में वीर्यवाली नाड़ी से भी स्वाभाविकही वीर्य नीचे को चला आताहै। फिर राजा ने पूछा हे देवपुत्र! स्वाभाविक किसे कहते हैं? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! आदि शुद्ध चेतन परमात्मा में जो फुरना हुआ है उस क्षणमात्र शक्ति के उत्थान से प्रपञ्च बन गया है। उसमें आदि नीति हुई है कि, यह घट है; यह पट है; यह अग्नि है; इसमें उष्णता है; यह जल है; इसमें शीतलता है; तैसेही यहभी नीति है कि; वीर्य ऊपर से नीचे को आता है। जैसे पर्वत से पत्थर गिरता है सो नीचेको चला आता है तैसेही वीर्य भी नीचे को आता है। तब राजा ने प्रश्न किया कि, हे देवपुत्र! जीव को दुःख सुख कैसे होता है और दुःख सुख का अभाव कैसे होता है? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! यहँ जीव कुण्डलिनी शक्तिमें स्थित होकर दृश्यमें जो चारों अन्तःकरण; इन्द्रियां और देह है उनमें अभिमान करके इनके दुःख से दुःखी और इनके सुख से सुखी होता है तो जैसा २ आगे प्रतिबिम्ब होता है तैसा २ दुःख सुख

भासता है। जैसे शुद्ध मणि में प्रतिबिम्ब पड़ताहै। यह सब अज्ञान से होताहै और ज्ञान से इसका अभाव होजाताहै। जब ज्ञानरूप का आवरण करके आगे पटल होता है तब प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। देहादिक के अभिमान से रहित होने को ज्ञान कहते हैं कि; न देहादिक है और न मैं इनसे कुछ करताहूं। जब ऐसे निश्चय हो तब दुःख सुख का भान नहीं होता क्योंकि; संसार का दुःख सुख भावना में होताहै; जब वासना से रहित हुआ तब दुःख सुखभी सब नष्ट होजाते हैं। जैसे जब वृक्ष ही जल जाताहै तब पत्र, फूल, फल कहांरहे; तैसेही अज्ञानरूप वासनाके दग्धहुये दुःख सुख कहांरहे? फिर राजाने कहा, हे भगवन्! तुम्हारे वचन सुनते मैं तृप्त नहीं होता। जैसे मेघ का शब्द सुनते मोर तृप्त नहीं होता; इससे कहिये कि, तुम्हारी उत्पत्ति कैसे हुई है? देवपुत्र ने कहा; हे राजन्! जो कोई प्रश्न करता है उसका बड़े निरादर नहीं करते; इससे तुम जो पूछते हो सो मैं कहताहूं। हे राजर्षे! वह वीर्य नारद मुनिने एक मटकी में रक्खा और उस पर दूध डाला। वह मटकी स्वर्णवत् थी जिसका उज्ज्वल चमत्कार था। उस मटकी को पूर्णकर वीर्यको एककोने की ओर किया और फिर मन्त्रों का उच्चार किया और आहुति देकर भले प्रकार पूजन किया। जब एक मास व्यतीत हुआ तब मटकी से बालक प्रकट हुआ-जैसे चन्द्रमा क्षीरसमुद्र से निकला है-उस बालक को लेकर नारद आकाश को उड़े और अपने पिता ब्रह्माजी के पास लेआये और नमस्कार किया। तब मुझको पितामह ने गोद में बैठालिया और आशीर्वाद देकर कहा कि, तू सर्व न होगा और शीघ्रही अपने स्वरूप को प्राप्त होगा। कुम्भसे जो मैं उपजा था इसलिये उन्होंने मेरा नाम कुंभज रक्खा। मैं नारदजी का पुत्र और ब्रह्माजी का पौत्र हूं; सरस्वती मेरी माता है; गायत्री मेरी मौसी है और मुझे सर्वज्ञान है। तब राजा ने कहा, हे देवपुत्र! तुम सर्वज्ञ दृष्ट आते हो; तुम्हारे वचनों से मैं जानताहूं। देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! जो तुमने पूछा सो मैंने कहा; अब कहो तुम कौन हो; क्या कर्म करते हो और यहां किस निमित्त आये हो? राजाने कहा, हे देवपुत्र! आज मेरे बड़े भाग उदय हुये हैं जो तुम्हारा दर्शन हुआ। तुम्हारा दर्शन बड़े भाग से प्राप्त होताहै। यज्ञ और तपसे भी तुम्हारा दर्शन श्रेष्ठ है। देवपुत्रने कहा, हे राजन्! अपना वृत्तान्त कहो। राजा ने कहा, हे देवपुत्र! मैं राजा हूं; शिखरध्वज मेरा नाम है। संसार दुःखदायक भासित हुआ और बारम्बार जन्म और मरण इसमें दृष्ट आता है इससे राज्यका त्यागकर यहां पर मैं तप करनेलगा हूं। तुम त्रिकालज्ञ हो और जानते हो तथापि तुम्हारे पूछनेसे कुछ कहना चाहिये। मैं त्रिकाल संध्या और जप करता हूं तौ भी मुझे शान्ति नहीं हुई; इस लिये जिससे मेरे दुःख निवृत्त हों वही उपाय कहिये। हे देवपुत्र! मैंने बहुत तीर्थ किये हैं और बहुत देश और स्थान फिरा

हूं पर अब इसी वन में आनबैठाहूं तौभी मुझे शान्ति नहीं। तब देवपुत्र ने कहा, हे राजऋषि! तूने राज्यका तो त्याग किया पर तपरूपी गढ़े में गिरपड़ा; यह तूने क्या किया? जैसे पृथ्वी का क्रम फिर पृथ्वी में ही रहता है तैसेही तू एक गढ़े को त्यागकर दूसरे गढ़े में आपड़ा है और जिस निमित्त राज्य का त्याग किया उसको न जाना। यहां आकर तूने एकलाठी मृगछाला और फूल रक्खे हैं, इनसे तो शान्ति नहीं होती। इससे अपने स्वरूप में जाग; जब स्वरूप में जागेगा तब सब दुःख निवृत्त होंगे। इसी पर एकसमय ब्रह्माजी से मैंने प्रश्न कियाथा कि, हे पितामहजी! कर्म श्रेष्ठ है अथवा ज्ञान श्रेष्ठ है—दोनों में कौन श्रेष्ठ है? जो मुझको कर्तव्य हो सो कहो। तब पितामहने कहा कि, ज्ञान के पायेसे कोई दुःख नहीं रहता और सर्व आनन्दका आनन्द ज्ञान है। अज्ञानी को कर्म श्रेष्ठ है क्योंकि, वे पापकर्म करेंगे तो नरक को प्राप्त होंगे। इससे तप और दान करनेसे स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती तौभी अज्ञानी को कर्म ही श्रेष्ठ है कि, नरक न भोगकर स्वर्ग में रहे। जैसे कम्बल से पटका वस्त्र श्रेष्ठ है परन्तु यदि पट का न पाइये तो कम्बलही भला है; तैसेही ज्ञान पट की नाईं है और तप कर्म कम्बल के समान है—कर्म से शान्ति नहीं होती। इससे हे राजन्! तुम क्यों इस गढ़ेमें पड़े हो? आगे तू राज्यवासी था और अब वनवासी हुआ; यह क्या किया कि, अज्ञान में मूर्खता के वश अज्ञान में पड़ारहा है। जबतक तुझे क्रिया का भान होता है कि, 'मैं यह करूं' तबतक प्रमाद है; इससे दुःख निवृत्त न होगा। निर्वासनिक होकर अपने स्वरूप में जाग। निर्वासनिक होनाही मुक्ति है और वासनासहितही बन्धन है। निर्वासनिक होनाही पुरुषप्रयत्न है। जबतक वासना सहित है तबतक अज्ञानी है जब निर्वासनिक हो तब ज्ञेयरूप हो। सदा ज्ञेय की भावना करनेवाले को निर्वासनिक कहते हैं और ज्ञेय आत्मस्वरूप को कहतेहैं; उसको जानकर फिर कोई इच्छा नहीं रहती। केवल चिन्मात्रपद में स्थित होने का नाम ज्ञेय है। जो जाननेयोग्य है सो जाना तब और वासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ आपही होताहै। हे राजन्! तुझे अपने स्वरूप को ही जानना था तो तू और जञ्जालमें किस निमित्त पड़ा है? आत्मज्ञान विना और अनेक यत्न करो तौभी शान्ति न प्राप्त होगी। जैसे पवन से रहित वृक्ष शान्तरूप होता है और जब पवन होताहै तब क्षोभ को प्राप्त होताहै तैसेही जब वासना निवृत्त होगी तब शान्तपद प्राप्त होगा और कोई क्षोभ न रहेगा। जब ऐसे देवपुत्र ने कहा तब राजा ने कहा; हे भगवन्! तुम मेरे पिता हो, तुमहीं गुरु हो और तुमहीं कृतार्थ करनेवाले हो। मैंने वासना करके बड़ा दुःख पाया है। जैसे किसी वृक्ष के पत्र, डाल, फूल, फल सूखजावें और अकेला ठूंठ रहजावे तैसेही ज्ञान विना मैं भी ठूंठसा होरहाहूं इसलिये कृपा करके मुझे शान्ति को प्राप्त करो। देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! तुझे त्याग करके

सन्तों का संग करना चाहिये था और यह प्रश्न करना चाहिये था कि, बन्ध क्या है और मोक्ष क्या है ? मैं क्या हूं और यह संसार क्या है ? संसार की उत्पत्ति किससे होती है और लीन कैसे होताहै ? तूने यह क्या किया कि, सन्तों विना ठूंठ वनका आकर सेवन किया। अब तू सन्तजनों को प्राप्त होकर निर्वासनिक हो। ऐसे ब्रह्मादिक ने भी कहाहै कि, जब निर्वासनिक होता है तब सुखी होता है। फिर राजा ने कहा, हे भगवन् ! तुमहीं सन्त हो और तुमहीं मेरे गुरु और पिता हो, जिस प्रकार मुझे शान्ति हो सो कहिये। तब कुम्भजने कहा, हे राजन् ! मैं तुझे उपदेश करताहूं तू उसे हृदय में धारण कर और जो तू उसे हृदय में न धारेगा तो मेरे कहने से क्या होता है ? जैसे डाल पर कौवा हो और शब्द भी सुने तौभी अपने कौवेके स्वभाव को नहीं छोड़ता; तैसेही जो तूभी कौवेकी नाईं हो तो मेरे कहने का क्या प्रयोजन है ? जैसे तोते को सिखाते हैं तो वह सीखता है; तैसे तुमभी होजावो। शिखरध्वज ने कहा, हे भगवन् ! जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करूंगा। जैसे शास्त्र और वेद के कहे कर्म करताहूं तैसेही तुम्हारा कहना करूंगा। यह मेरा नेम है, जो तुम आज्ञा करोगेसो मैं करूंगा। तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! प्रथम तो तू ऐसे निश्चयकर कि, मेरा कल्याण इन वचनोंसे होवेगा और फिर ऐसे जान कि, जो पिता पुत्र को कहता है तो शुभही कहता है। मैं जो तुझसे कहूंगा सो शुभही कहूंगा और तेरा कल्याण होगा। इससे निश्चय जान कि, इन वचनों से मेरा कल्याण होगा। एक आख्यान आगे व्यतीत हुआहै सो सुन। एक पण्डित धन और गुणोंसे संपन्न था। वह सर्वदा चिन्तामणिके पानेकी इच्छा करता और इसके लिये जैसे शास्त्रमें उपाय कहेहैं तैसे ही करता था जब कुछकाल व्यतीत भया तब जैसे चन्द्रमा का प्रकाश होताहै तैसेही प्रकाशवान् चिन्तामणि उसे प्राप्त हुई और उसने उसे ऐसे निकट जाना कि, हाथ से उठा लीजिये। जैसे उदयाचल पर्वत के निकट चन्द्रमा उदय होता है तैसेही चिन्तामणि जब निकट आ प्राप्त हुई। तब पण्डित के मन में विचार हुआ कि, यह चिन्तामणि है अथवा कुछ और है; जो चिन्तामणि हो तो उठालूं और जो चिन्तामणि न हो तो किस निमित्त पकडूं ! फिर कहे कि, उठालेता हूं, मणिही होगी; फिर कहे कि, यह मणि नहीं है क्योंकि, मणि तो बड़े यत्न से प्राप्त होती है; मुझे सुख से क्यों प्राप्त होगी ? इससे विदित होता है कि, चिन्तामणि नहीं। जो सुख से प्राप्त होती तो सबलोग धनी होजाते। जब ऐसे संकल्प विकल्प से पण्डित विचार करने लगा और इसीसे उसका चित्त आवरण हुआ तब मणि छिपगई क्योंकि, जो सिद्धि हैं उनका मान और आदर न करिये तो उलटा शाप देती हैं। जिस वस्तु का कोई आवाहन करता है और उसका पूजन न करे तो वह त्यागजाती है। तब वह बड़े

दुःख को प्राप्त हुआ कि, चिन्तामणि मेरे पास से चलीगई। निदान वह फिर यत्न करनेलगा तब कांच की मणि हँसी करके उसके आगे आपड़ी और उसको देखकर वह कहनेलगा कि, यह चिन्तामणि है। अबोध के वश से उसको उठाकर अपने घर लेआया और अबोध के वश से उसको चिन्तामणि जानता भया। जैसे मोहसे जीव अनत् को सत् जानता है और रस्सी को सर्प जानता है और जैसे दृष्टिदोष से दो चन्द्रमा देखता है और शत्रु को मित्र और विषको अमृतरूप जानता है; तैसेही उस ने कांचको चिन्तामणि जान जो कुछ अपना धन था सो लुटादिया और कुटुम्ब का त्याग कर कहनेलगा कि, मुझे चिन्तामणि प्राप्त हुई है, अब कुटुम्बसे क्या प्रयोजनहै? निदान घरसे निकलकर वनमें गया और वहां उसने बड़े दुःख पाये क्योंकि; कांच की मणिसे कुछ प्रयोजन सिद्ध न हुआ। तैसेही हे राजन्! जो विद्यमान वस्तु हो उसको मूर्ख त्यागते हैं और उसका माहात्म्य नहीं जानते और नहीं पाते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिन्तामणिवृत्तान्तवर्णनं नामनवषष्टितमस्सर्गः॥ ६९॥

देवपुत्र बोले, हे राजन्! इसी प्रकार एक और आख्यान कहता हूं सो भी सुनो मन्दराचल पर्वत के वन में सब हाथियों का राजा एकहाथी रहता था वह मानों स्वयम् मन्दराचल पर्वत था जिसको अगस्त्यमुनि ने रोका था। उसके बड़े दांत इन्द्र के वज्र की नाईं तीक्ष्ण थे और प्रलयकालकी बड़वाग्निके समान वह प्रकाशवान् था। वह ऐसा बलवान् था कि, सुमेरु पर्वत को दांतों से उठावे। निदान उस हस्ती को एकमहावत ने; जैसे बलिराजा को विष्णु भगवान्ने छल करके बांधा था लोहे की ज़ञ्जीर से बांधा और आप पास के वृक्ष पर चढ़ बैठा कि, कूदकर हाथी के ऊपर चढ़बैठूं। वह हाथी ज़ञ्जीर में महाकष्ट को प्राप्त हुआ और इतना दुःख पाया जिसका वर्णन नहीं होसक्ता। तब हाथी के मन में विचार उपजा कि, जो अब मैं बलसे ज़ञ्जीरन तोड़ूंगा तो क्यों छूटूंगा; इसलिये उस ज़ञ्जीर को बल करके तोड़ दिया और वृक्ष पर जो महावत बैठा था सो गिरके हाथी के चरणों के आगे आ पड़ा और भय को प्राप्त हुआ। जैसे वृक्ष का फल पवन से गिर पड़ता है तैसेही महावत भय से गिरपड़ा। जब इस प्रकार महावत गिरा तब हाथी ने विचार किया कि, यह मृतक समान है इस मुये को क्या मारना है! यद्यपि यह मेरा शत्रु है तौ भी मैं इसे नहीं मारता; इसके मारने से मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्ध होगा? इस लिये जैसे स्वर्ग के द्वारे तोड़कर दैत्य प्रवेश करते हैं तैसेही ज़ञ्जीर तोड़कर वह हाथी वन में गया और महावत हाथी को गया देख उठबैठा और अपने स्वभाव में स्थित हुआ। वह फिर हाथी के पीछे चला और हाथी को ढूंढ़लिया। जैसे चन्द्रमा को राहु

खोज लेता है तैसेही वन में हाथी को खोजलिया तो क्या देखा कि, वह वृक्ष के नीचे सोया पड़ा है । जैसे संग्राम को जीतकर शूरमा निश्चिन्त सोता है तैसेही हाथी को निश्चिन्त सोया पड़ा देख महावत ने विचार किया कि, इसको वश करना चाहिये। यह विचार उसने यह उपाय किया कि, वनके चारों ओर खाई बनाई और खाई के ऊपर कुछ तृण और घास डाला जैसे शरत्काल के आकाश में बादल देखनेमात्र होता है तैसेही तृण और घास खाई के ऊपर देखनेमात्र दृष्ट आती थी । निदान जब किसीसमय हाथी उठकर चला और खाई के बीच गिरपड़ा तब महावत ने हाथी के निकट आ उसे ज़ञ्जीरोंमें बांधा और वह हाथी बड़े दुःखको प्राप्त हुआ। जो तप करके वन में दुःख पाता है उसने भविष्यत् का विचार नहीं किया। अज्ञानी को भविष्यत् का विचार नहीं होता इसीसे वह दुःखपाता है। हे राजन्! यह जो मणि और हाथी के आख्यान तुझे मैंने सुनाये हैं उनको जब तू समझेगा तब आगे मैं उपदेश करूंगा॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहस्तिआख्यानवर्णनंनामसप्ततितमस्सर्गः॥ ७० ॥

इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब देवपुत्र ने ऐसे कहा तब राजा बोला, हे देवपुत्र! यह दो आख्यान जो तुमने कहेहैं सो तुम्हीं जानतेहो, मैं तो कुछ नहीं समझा इससे तुम्हीं कहो। देवपुत्रने कहा, हे राजन्! तू शास्त्रके अर्थ में तो बहुत चतुर है और सर्व अर्थों का ज्ञाता है परन्तु स्वरूप में तुझे स्थिति नहीं है; इससे जो वचन मैं कहताहूं उसे बुद्धि से ग्रहणकर हस्ती क्याहै और चिन्तामणि क्याहै? प्रथम जो तूने सर्वत्याग किया था सो चिन्तामणि थी और उसके निकट प्राप्त होकर तू सुखी हुआथा। यदि उसको तू अपने पास रखता तो सब दुःख निवृत्त होजाते; पर मणि का तो तूने निरादर किया जो उसको त्यागा और कांच की मणि तपक्रियाको प्राप्त हुआ इस लिये दरिद्री ही रहा। हे राजन्! सर्वत्यागरूपी चिन्तामणि थी और इस क्रिया का आरम्भ कांच की मणि है उसको तूने ग्रहण किया है इससे दरिद्र की निवृत्ति नहीं होती—दुःखीही रहताहै। हे राजन्! सर्व त्याग तूने नहीं किया और जो किया भी था परन्तु कुछ न रहगया और वह रहकर फिर फैलगया। जैसे बड़ा बादल वायु से क्षीण होताहै और सूक्ष्म रहजाताहै जो पवन के लगेसे फिर विस्तार को पाताहै और सूर्यको छिपालेता है। वह बादल क्या है; सूर्य क्या है और थोड़ा रहना क्या है सो भी सुन। स्त्रियों और कुटुम्ब आदि को त्यागकर इनमें अहंकार करना सोई बड़ा बादल है। वैराग्यरूपी पवन से तूने राज्य और कुटुम्बका अहंकार त्याग किया पर देहादिक में अहंकार सूक्ष्म बादल रहगया था सो फिर वृद्ध होगया जो अनात्म अभिमान करके क्रिया का आरम्भ किया इससे आत्मारूपी सूर्य जो अपना आप है सो अहंकाररूपी बादलसे ढपगया। और ज्ञानरूपी चिन्तामणि अज्ञानरूपी कांच

की मणि से छिपगई। जब ज्ञान से आत्मा को जानेगा तब आत्मा प्रकाशेगा, अन्यथा न भासेगा। जैसे कोई पुरुष घोड़े पर चढ़के दौड़ताहै तो उसकी वृत्ति घोड़े में होती है तैसेही जिस पुरुष का आत्मा में दृढ़ निश्चय होताहै उसको आत्मा से कुछ भिन्न नहीं भासता। हे राजन्! आत्माका पाना सुगमहै जो सुखसे ही मिलताहै और बड़े आनन्द की प्राप्ति होती है। तपादिक क्रिया करके कष्ट से सिद्ध होताहै और स्वरूप सुख की प्राप्ति नहीं होती। हे राजन्! मैं जानताहूं कि, तू मूर्ख नहीं बल्कि शास्त्रों का ज्ञाता और बहुत चतुर है तथापि तुझे स्वरूप में स्थिति नहीं। जैसे आकाशमें पत्थर नहीं ठहरता। इससे मैं उपदेश करताहूं उसको ग्रहणकर तो तेरे दुःख निवृत्त होजावेंगे। हे राजन्! यह सबसे श्रेष्ठ ज्ञान कहाहै और कहता हूं। तूने जो तपक्रिया का आरम्भ किया है और उसका जो फल जाना है उस ज्ञान से यह श्रेष्ठ ज्ञान कहा है और कहताहूं उससे तेरा भ्रम निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! चिन्तामणि का संपूर्ण तात्पर्य तुझसे कहा; अब हाथी का वृत्तान्त जो आश्चर्यरूप है सो भी सुन जिसके समझनेसे अज्ञान निवृत्त होजावेगा। मन्दराचल का हाथी तो तू है और महावत तेरी अज्ञानता है। इस अज्ञानरूपी महावत ने तुझे बांधा था और तू आशारूपी जञ्जीरों से बँधा था। और जञ्जीरें घिसजाती हैं पर आशारूपी फांसी नहीं घटती यह दिन दिन बढ़तीही जातीहै। हे राजन्! आशारूपी फांसी से तू महादुःखी था। हस्ती के जो बड़े दन्त थे जिनसे उसने संकलोंको तोड़ाथा सो विवेक और वैराग्य था जो तूने विचार किया कि, मैं बल करके छूटूं। राज्य, कुटुम्ब और पृथ्वी का त्याग कर जब तूने उस फांसी को काटा तब आशारूपी रस्से कटे तो अज्ञानरूपी महावत भय को प्राप्तहुआ और तेरे चरणों के तले आपड़ा। जैसे वृक्ष के ऊपर वैताल रहता है और कोई वृक्ष को काटने आता है तब वैताल भय को प्राप्त होता है तैसेही तूने वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशा के फांस काटे तब अज्ञानरूपी महावत गिरा और तूने एक घाव लगाया परन्तु मार न डाला इससे महावत तुझसे भागगया—जैसे वृक्षपर वैताल रहता है और वृक्ष को कोई काटने लगताहै तब वैताल भागजाता है। हे राजन्! तैसेही वृक्ष को तूने वैराग्यरूपी शस्त्रकरके काटा तब अज्ञानरूपी वैताल भागा था मूर्खतासे उसको तूने न मारा बल्कि उसको छोड़कर वन में गया। जब तू वन में आया तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पीछे चला आया और तेरे चारों ओर खाई खोदी और तपादिक क्रिया आरम्भ कर तू उस खाई में गिरपड़ा और महादुःखको प्राप्त हुआ। तब उसने तुझे जञ्जीरोंसे फिर बांधा और देखने लगा कि, अबतक दुःख नहीं पाता है। अनात्म अभिमान से तूने यहां तपादिक क्रिया का आरम्भ किया है। ऐसी खाई में तू पड़ा है। हे राजन्! तू जानकर खाई

में नहीं पड़ा खाईं के ऊपर घास और तृण पड़ा था उस छल से तू गिरपड़ा है सो छल और तृण क्या है सो भी तू सुन। प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रुको तूने न मारा और ज़ञ्जीरों के भय से भागा कि, वन मेरा कल्याण करेगा। सन्तों और शास्त्रों के वचनों को न जाना कि, तेरे दुःख निवृत्त करेंगे और उन वचनरूपी खाईं पर तृणादिक था इस मूर्खता करके तू गिरा। जैसे बलिराजा पाताल में छल से बांधा हुआ है तैसेही तूने भविष्यत् का विचार न किया कि, अज्ञानरूपी शत्रु जो रहाहै वह मेरा नाश करेगा। उस विचार विना तू फिर दुःखी हुआ। सब त्याग तो किया परन्तु ऐसे न जाना कि, मैं अक्रिय हूं, इस क्रिया का आरम्भ काहेको करताहूं। इसीसे तू फिर फांसी से बँधा है। हे राजन्! जो पुरुष इस फांसी से मुक्त हुआहै वह मुक्त है और जिसका चित्त अनात्म अभिमान से बँधाहै कि, यह मुझे प्राप्त हो उससे वह दुःख पाता है। जिस पुरुष ने वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशारूपी ज़ञ्जीरको नहीं काटा वह कदाचित् सुख नहीं पाता। विवेक से वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्य से विवेक होताहै। विवेक सत्य के जानने और असत् देहादिक के असत्य जानने को कहते हैं। जब ऐसे जाना तब असत् की ओर भावना नहीं जाती सो वैराग्य हुआ। वैराग्य से विवेक उपजताहै और विवेकसे वैराग्य उपजताहै। इन विवेक और वैराग्यरूपी दांतों से आशारूपी ज़ञ्जीरको तोड़। हे राजन्! यह हस्ती का वृत्तान्त जो तुझसे कहा है इसके विचार किये से तेरा मोह निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! वह हाथी बड़ाबली था और महावत छोटाकिये से बली था। उस अज्ञानरूपी महावत को मूर्खता करके तूने न मारा उससे दुःख पाताहै। अब तू वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशारूपी फांसी को तोड़ तब दुःख सब मिटजावेंगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहस्तीवृत्तान्तवर्णनन्नामैकसप्ततितमस्सर्गः॥ ७१॥

देवपुत्र बोले, हे राजन्! ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञानियों में श्रेष्ठा, साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा और सत्यवादिनी तेरी स्त्री जो चुड़ाला थी उसने तुझे उपदेश किया था पर तूने उसके वचनों का किस निमित्त निरादर किया? मैं तो सब जानता हूं क्योंकि, त्रिकालज्ञ हूं; तौभी तू अपने मुख से कह। एक तो यह मूर्खता की कि, उपदेश न अङ्गीकार किया और दूसरी यह मूर्खता की कि, सर्व त्याग न करके फिर वन अङ्गीकार किया। जो सर्वत्याग करता तो सर्वदुःख मिटजाते। जब ऐसे देवपुत्र ने कहा, तब राजा ने कहा; हे देवपुत्र! मैंने तो स्त्री, पृथ्वी, मन्दिर, हाथी इत्यादिक ऐश्वर्य और कुटुम्ब को त्याग कियाहै; आप कैसे कहते हैं कि, त्याग नहीं किया? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! तूने क्या त्यागा है? राज्य में तेरा क्या था? जैसे ऐश्वर्य आगे था तैसेही अब भी है और स्त्रियां भी जैसे और मनुष्यथे तैसेही थीं; पृथ्वी, मन्दिर और हस्ती जैसे आगे थे तैसेही अब

भी हैं। उनमें तेरा क्या था जो त्याग किया? हे राजन्! सर्वत्याग तैंने अबभी नहीं किया। जो तेरा हो उसको तू त्यागकर कि, निर्दुःख पदको प्राप्तहो। इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब शूरवीर जो इन्द्रियजित् राजा था सो मन में विचारनेलगा कि, यह वन मेरा है और वृक्ष, फूल, फल मेरे हैं इनका त्याग करूं। ऐसा विचारकर बोला, हे देवपुत्र! वन, वृक्ष, फूल और फल जो मेरे थे उनका भी मैंने त्याग किया अब तो सर्वत्याग हुआ? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! अबभी सर्वत्याग नहीं हुआ क्योंकि, वन, वृक्ष, फूल और फल तुझसे आगे भी थे इनमें तेरा क्या है? जो तेरा हो उसको त्याग तब सुखी होगा। हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब राजा ने मनमें विचारा कि, मेरी जलपानकी बावली और बगीचे हैं इनका त्याग करूं तब सर्वत्याग सिद्ध हो और कहा, हे भगवन्! मेरी यह बावली और बगीचे हैं उनका भी मैंने त्याग किया; अब तो मेरा सर्वत्याग सिद्ध हुआ? तब देवपुत्रने कहा, हे राजन्! सर्वत्याग अब भी नहीं हुआ। जो तेरा है उसको जब त्यागेगा तब शान्तपद को प्राप्त होगा। हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब राजा विचारनेलगा कि, अब मेरी मृगछाला और कुटी है उसका भी त्याग करूं। ऐसे विचार बोला कि, हे देवपुत्र! मेरे पास एक मृगछाला और एक कुटी है उसकाभी मैंने त्याग किया अब तो सर्वत्यागी हुआ? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! मृगछाला में तेरा क्या है यह तो मृगकी त्वचा है और कुटी में तेरा क्या है यह तो मिट्टी और शिला की बनी है इससे तो सर्वत्याग सिद्ध नहीं होता? जो कुछ तेरा है उसको त्यागेगा तब सर्वत्याग होगा और तभी तू सबदुःखों से छूटजावेगा। हे रामजी! जब ऐसे कुम्भज ने कहा तब राजा ने मन में विचार किया कि, अब मेरा एक कमण्डलु, एक माला और एकलाठी है उसका भी त्याग करूं। ऐसे विचार कर राजा शान्ति के लिये बोला; हे देवपुत्र! मेरी लाठी, कमण्डलु और एकमाला है उसका भी मैंने त्याग किया; अब तो मैं सर्वत्यागी हुआ? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! कमण्डलु में तेरा क्या है? कमण्डलु तो वन का तुम्बा है उसमें तेरा कुछ नहीं; लाठी भी वन के बाँस की है और माला भी काष्ठ का है उनमें तेरा क्या है? जो कुछ तेरा है उसका त्याग कर। जब तू उसका त्याग करेगा तब दुःखसे रहित होजावेगा। हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज ने कहा तब राजा शिखरध्वज ने मनमें विचारा कि, अब मेरा क्या रह गया तब देखा कि, एक आसन और बासन हैं जिसमें फूल और फल रखते हैं; अब इनकाभी त्याग करूं। तब राजा ने कहा, हे भगवन्! आसन और बासन मेरे पास रह गये हैं इनका भी मैं त्याग करताहूं; अब तो सर्वत्यागी हुआ? तब कुम्भज ने कहा; हे राजन्! अबभी सर्वत्याग नहीं हुआ। आसन तो भेड़की ऊनका है और बासन मृत्तिका के हैं; इनमें तेरा कुछ नहीं।

जो कुछ तेरा है उसका त्याग कर तब सर्वत्याग होवे और तू दुःख निवृत्तहो। हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज ने कहा तब राजा उठ खड़ाहुआ और वनकी लकड़ी इकट्ठी करके उनमें आग लगाई। जब बड़ी अग्नि लगी तब लाठी को हाथ में लेकर कहने लगा; हे लाठी! मैं तेरे साथ बहुत देशों में फिरा हूं परन्तु तूने मेरे साथ कुछ उपकार न किया; अब मैं कुम्भजमुनि की कृपासे तरूंगा, तुझे नमस्कार है। ऐसे कहकर लाठी को अग्नि में डालदिया। फिर मृगछाला को हाथ में लेकर कहा, हे मृग की त्वचा! बहुतकाल मैं तेरे ऊपर बैठा हूं परन्तु तूने कुछ उपकार न किया; अब कुम्भजमुनि की कृपा से मैं तरूंगा; तुझे नमस्कारहै। ऐसे कहकर मृगछाला को भी अग्नि में डाल-दिया। फिर कमण्डलु को लेकर कहनेलगा, हे कमण्डलु! तू धन्य है कि, मैंने तुझे धारणकिया और तूने मेरे जलको धारा। तूने मुझसे गुणगोप नहीं किया तौभी कम-ण्डलु की जैसी प्रवृत्ति त्यागनी है तैसेही निवृत्ति की कल्पना भी त्यागनी है; इससे तुझे नमस्कार है; तुम जावो। ऐसे कहकर कमण्डलु भी अग्नि में जलादिया। फिर माला को हाथ में लेकर कहनेलगा; हे माले! तेरे दाने जो मैंने घुमाये हैं सो मानों अपने जन्म गिने हैं। तेरे सम्बन्ध से जाप कियाहै और दिशा विदिशा गया हूं, अब तुझको नमस्कार है। ऐसे कह कर माला को भी अग्नि में डालदिया। इसी प्रकार फल, फूल, कुटी और आसन सब जलादिये तब बड़ी अग्नि जगी और बड़ा प्रकाश हुआ। जैसे सुमेरु पर्वत के पास सूर्य चढ़ें और मणि का भी चमत्कार हो तो बड़ा प्रकाश होताहै तैसेही बड़ी अग्निलगी और राजा ने सम्पूर्ण सामग्री का त्यागकिया। जैसे पकेफल को वृक्ष त्यागता है और जैसे पवन चलने से ठहरता है तब धूलि से रहित होताहै तैसेही राजा सम्पूर्ण सामग्री को त्याग निर्विघ्न हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजसर्वत्यागवर्णनन्नाम द्विसप्ततितमस्सर्गः॥ ७२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! निदान सम्पूर्ण सामग्री जलकर भस्म होगई। जैसे सदाशिव के गणों ने दक्षप्रजापति के यज्ञ को स्वाहा करदिया था तैसेही जितनी कुछ सामग्री थीं सो सब स्वाहा होगईं और वह वन बड़ा प्रज्वलित हुआ। जितने वृक्ष के रहनेवाले पक्षी थे सो भागगये और मृग, पशु जो आहार करते व जुगाली करते थे सो सब भागगये। जैसे पुर में आगलगे से पुरवासी भागजावें तैसेही सब भाग-गये; तब राजा ने मन में विचारा कि, अब कुम्भज की कृपा से मैं बड़े आनन्द को प्राप्तहुआ और अब सब मेरे दुःख मिटगये। जो कुछ वस्तु मन के संकल्प से रची थी सो सब जलादी अब उसका न मुझे हर्ष है, न शोक है। ये सब दुःख ममत्व से होते हैं सो मेरा ममत्व अब किसी से नहीं रहा इससे कोई दुःख भी नहीं। अब मैं

ज्ञानवान् भया हूं, अब मेरी जय है क्योंकि, अब निर्मल होकर सबका मैंने त्यागकिया है। ऐसा विचार करके राजा उठ खड़ाहुआ और हाथ जोड़कर बोला; हे देवपुत्र! अबतो मैंने सबका त्याग किया क्योंकि; आकाश मेरे वस्त्र हैं और पृथ्वी मेरी शय्या है। जब राजा ने ऐसे कहा तब कुम्भज मुनि ने कहा, हे राजन्! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ। जो तेरा है उसका त्यागकर कि, सब दुःख तेरे निवृत्त होजावें। फिर राजा ने कहा, हे भगवन्! अब तो और मेरे पास कुछ नहीं रहा, नङ्गा होकर तुम्हारे आगे खड़ाहूं; अब एक रक्त मांस की देह इन्द्रियों को धारनेवाली है जो कहो तो इसका भी त्याग करूं और पर्वतपर जाकर डालदूं? ऐसे कहकर राजा पर्वत को दौड़ा पर कुम्भजमुनिने रोका और कहा, हे राजन्! ऐसे पुण्यवान् देह को क्यों त्यागता है? इसके त्यागेसे सर्वत्याग नहीं होता। जिसके त्यागने से सर्वत्याग हो उसका त्याग-कर। इस देह में क्या दूषण है? जैसे वृक्ष में फूल फल होते हैं और जब वायु चलती है तब गिरते हैं; सो फूल फल गिरने का कारण वायु है, वृक्ष में दूषण कुछ नहीं; तैसेही देह में कुछ दूषण नहीं। देह के पालनेवाला जो अभिमान है उसका त्यागकरो तो सर्वत्याग सिद्ध हो और तो सब गुण हैं जो कुछ इसको देता है वही लेता है। आपसे बोलता नहीं जड़ है इसके त्यागे क्या सिद्ध होता है? जैसे पवन से वृक्ष हिलता है और भूकम्पसे पर्वत कांपते हैं; तैसेही देह आप कुछ नहीं करती; और की प्रेरी चेष्टा करती है। जैसे पवन से समुद्र के तरङ्ग तृणों को जहां लेजाते हैं तहां वे चलेजाते हैं तैसेही देह आपसे कुछ नहीं करती। इसका जो प्रेरणेवाला है उस के बल से यह चेष्टा करती है इससे देह के प्रेरणेवाले का त्यागकर तो सुखी हो। हे राजन्! जिससे सर्व है; जिसमें सर्व शब्द हैं और जो सर्व ओर से त्यागने योग्य है, उसका त्याग करो। राजा ने पूछा, हे भगवन्! वह कौन है जो सर्व है और जिसमें सर्व शब्द है और जो सर्व ओर से त्यागने योग्य है? हे तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ! जिसके त्याग से जरा मृत्यु नष्ट होजावे सो कहिये। तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! जिसका नाम चित्त, प्राण और देह है उसका त्यागकरो और बाहर जो नाना प्रकारके आकार चित्तही से दृष्टि आते हैं, इससे चित्तका ही त्याग करो। हे राजन्! जैसे सर्प बिल में बैठा हो तो बिलका कुछ दूषण नहीं विष सर्प में है जिससे वह डसता है इसलिये उसके नाश करने का उपाय करो और सर्व शब्द भी इस चित्त में ही हैं। आत्मा तो मात्रपद है उसमें न एक कहना है और न द्वैत कहना है। सर्व ओरसे इसी चित्त का त्याग करना योग्य है। जब इस चित्त का त्याग करोगे तब त्यागरूपी अमृत से अमर होजावोगे और जरा मृत्यु से रहित होगे जो चित्त का त्याग न करोगे तो फिर देह धारणकर दुःख भोगोगे। जैसे एकक्षेत्र में अनेक दाने उत्पन्न होते हैं और

जब क्षेत्र ही जलजाता है तब अन्न नहीं उपजता; तैसेही यह जो देह और जरामृत्यु दुःख संसार हैं इनका बीज चित्तही है। जैसे अनेक दानों का कारण क्षेत्रहै, तैसेही असंख्य संसार के दुःख का कारण चित्त है; इससे हे राजन्! चित्त का त्यागकर जब इसका त्याग करेगा तब सुखी होगा। हे राजन्! जिसने सर्वत्याग किया है वह सुखी हुआ है। जैसे आकाश सर्व पदार्थों से रहित है, किसी का स्पर्श नहीं करता और सबसे बड़ा और सुखरूप है और सर्व पदार्थों के नष्ट होने पर भी ज्यों का त्यों रहता है; तैसेही हे राजन्! तुमभी सर्वत्यागी होरहो। राज, देह और कुटुम्ब और गृहस्थ आदिक जो आश्रम हैं सो सब चित्त ने कल्पे हैं। जो एकका त्याग नहीं होता तो कुछ नहीं त्याग। जब चित्त का त्याग करो तब सर्वत्याग हो। हे राजन्! यह धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य तीनों चित्त के कल्पेहुये हैं। जब चित्त पुण्यक्रिया में लगता है तब पुण्यही प्राप्त होता है और जब पापक्रिया में लगता है तब पापही प्राप्त होकर अधर्म और दरिद्र होता है जब पुण्य का फल उदय होता है तब सुख प्राप्त होता है और जब पाप का फल उदय होता है तब दुःख प्राप्त होता है-इससे जन्ममरण के दुःख नहीं मिटते। जब चित्त का त्याग होता है तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं। हे राजन्! जो पुरुष किसी वस्तु को नहीं चाहता उसकी बहुत पूजा होती है और जो कहता है कि, इस वस्तु को मुझको दे तो उसको कोई नहीं देता। इससे सर्वत्याग कर कि, सुखी हो। सर्वत्याग किये से सर्व तुही होगा और सर्वात्मा होकर संपूर्ण ब्रह्माण्ड अपनेमें देखेगा। जैसे माला के दानों में तागा होता है और दाने भी तागे के आधार होते हैं, उनमें और कुछ नहीं होता; तैसेही देखोगे कि, मैं सर्व-मय और एकरस हूं; मेरेही में ब्रह्माण्ड स्थित है और मैंहींहूं मुझसे कुछ भिन्न नहीं। हे राजन्! जिसने सबका त्यागकिया है वह सुखी है और समुद्र की नाईं स्थित है उसको कोई दुःख नहीं। इससे तुम चित्त का त्याग करो कि, राजदोष मिटजावे। इस चित्त के इतने नाम हैं–चित्त, मन, अहङ्कार, जीव और माया। हे राजन्! आपने ऐश्वर्य के त्यागने और औरकी भिक्षा लेनेसे तो चित्त वश नहीं होता; चित्त तबहीं वश होताहै जब पुरुष निर्वासनिक होता है। जबतक चित्त फुरताहै तबतक सर्वत्याग नहीं होता। जब यही फुरना निवृत्त होता है तब चित्त का त्याग होता है। चित्त के त्यागसे भी त्याग के अभिमान से रहित हो तब सर्वात्मा होगे। जब चित्तको त्यागोगे तब उस पद को प्राप्त होगे जो जितने ऐश्वर्य और सुख हैं उनका आश्रय है और जितने दुःख हैं उनका नाश करनेवाला है और जिसके जानेसे किसीपदार्थ की इच्छा न रहेगी क्योंकि; सर्व आनन्द का धारनेवाला तेरा स्वरूप है, फिर इच्छा किसकीरहे। जैसे आकाश के आश्रय देवलोक से आदि सर्वविश्व रहताहै और आकाश को कुछ इच्छा

नहीं और जो इच्छा नहीं करता तौभी सब आकाश ही में हैं और सबको धारनेहारा है। हे राजन्! जब तुम भी किसीकी इच्छा न करोगे तब निर्वासनिक होकर अपने स्वरूप में स्थित होगे और जानोगे कि, सर्वका आत्मा मैं हीं हूं; सबको धाररहा हूं और भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनोंकाल भी मेरे आश्रय हैं। जैसे समुद्र के आश्रय तरङ्ग हैं तैसेही मेरे आश्रय कालहै। चित्तका सम्बन्ध तुझे प्रमादसे है और प्रमाद यही है कि, चिन्मात्रपद में चित्त होकर फुरता है। चित्त कैसा है कि, जड़ भी है और चेतन भी है। इसी का नाम चिद्जड़ग्रन्थि है। जब यह ग्रन्थि खुलजावेगी तब अपने आपको वासुदेवरूप जानोगे। जब निर्वासनिक होगे तब संसाररूपी वृक्ष नष्टहोजावेगा। जैसे बीज में वृक्ष होता है, तैसेही चित्त में संसार है और जैसे बीज के जलनेसे वृक्ष भी जलजाता है तैसेही वासना के दग्ध हुयेसे संसार भी दग्ध होता है। हे राजन्! जैसे किसी डब्बे में रत्न होते हैं तो रत्नोंके नाश हुये डब्बा नहीं नाश होता और डब्बेके नष्ट हुये रत्न नष्ट होतेहैं। डब्बा क्या है और रत्न क्याहै सोभी सुनो। डब्बा तो चित्तहै और रत्न देह है। इससे चित्त के नष्ट होनेका उपाय करो। जब चित्त नष्ट होगा तब देहसे रहित होगे। देह के नष्ट हुये चित्त नष्ट नहीं होता और चित्त के नष्ट हुये देह नष्ट होजाती है। जब चित्तरूपी धूलि से रहित होगा तब केवल शुद्ध आकाश रहेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तत्यागवर्णनंनामत्रिसप्ततितमस्सर्गः॥७३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भजने कहा कि, चित्त का त्यागना ही सर्वत्याग है तब शिखरध्वज ने पूछा, हे भगवन्! मैं चित्त को कैसे स्थित करूं? संसाररूपी आकाश की चित्तरूपी धूलि है और संसाररूपी वृक्ष का चित्तरूपी वानर है जो कभी स्थित नहीं होता; इससे ऐसे चित्त को मैं कैसे स्थितकरूं? तब कुम्भजने कहा हे राजन्! चित्त का रोकना तो सुगम है। नेत्रों के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्न है परन्तु चित्त के रोकने में कुछ यत्न नहीं। दीर्घदर्शी को सुगम है और अज्ञानी को कठिनहै। जैसे चाण्डाल को पृथ्वी का राजा होना और तृण को सुमेरु होना कठिनहै तैसेही अज्ञानी को चित्त का रोकना कठिन है। राजा ने पूछा, हे देवपुत्र! चित्त का तोड़ना कठिन है तौभी टूटजाता है परन्तु मन का रोकना अति कठिन है। जैसे बड़े मच्छ को बालक नहीं रोकसक्ता, तैसेही मैं चित्त को नहीं रोकसक्ता। हे देवपुत्र! तुम कहतेहो कि, मन का रोकना सुगम है और मुझको तो ऐसा कठिन भासता है। जैसे अन्धे पुरुष को लिखी हुई मूर्ति नेत्रोंसे नहीं दृष्टि आती तो वह उसे हाथ में कैसेले; तैसेही मन को वश करना मुझे कठिन भासताहै। प्रथम चित्तका रूप मुझसे कहिये। कुम्भज बोले, हे राजन्! इस चित्त का रूप वासना है। जब वासना नष्ट होगी तब चित्त भी नष्ट होजावेगा। इससे चित्त के बीज को तू नष्ट कर तो चित्तरूपी वृक्ष भी

नष्ट हो और न कोई डाल रहे, न कोई फूल फल हों। यदि डाल को काटेगा तो वृक्ष फिर होगा क्योंकि डालके काटनेसे वृक्ष नष्ट नहीं होता फिर कई डालें लगजाती हैं। जब बीज को नष्ट करे तब वृक्षभी नष्ट होजावे। राजा बोले, हे भगवन्! चित्तरूपी फूल की संसाररूपी सुगन्धहै; चित्तरूपी कमल की जड़की संसाररूपी तन्तुहै; देहरूपी तृणके उठाने और उड़ानेवाला चित्तरूपी पवनहै; चित्तरूपी तिलका जरा-मृत्यु और आध्यात्मिक आधिभौतिक दुःख तेल है; चित्तरूपी आकाश की संसाररूपी अँधेरी है और हृदयरूपी कमलका चित्तरूपी भँवरा है। बीज क्या है? और डाल क्याहै? डाल का काटना क्या है, वृक्ष क्याहै और फूल,फल क्याहै सो कृपाकर कहो? कुम्भज बोले, हे राजन्! चेतनरूपी क्षेत्र स्वच्छ और निर्मल है; उसमें अहंभाव बीजहै उसीको अहं-कार, चित्त, मन, जड़ और मिथ्या कहतेहैं। उस अहंकार में जो संवेदनहै वही देह और इन्द्रियां हो फैली हैं और उसमें जो निश्चय है वह बुद्धि है। उस बुद्धि में जो निश्चय है कि, 'यह मैं हूं' यही संसारहै और वही जीव को अहंकारहै। अहंकार इस वृक्ष का बीज है; चित्तरूपी इस वृक्ष की डालें हैं और सुख दुःख इस चित्तरूपी वृक्षके फल हैं। हे राजन्! एकान्त बैठकर और चिन्तना से रहित होकर एक आश्रय का त्याग करना और दूसरे का अङ्गीकार करना और इस प्रकार स्थित होना कि, मैं ऐसा त्यागी हूं इसकी चिन्तना ही उस डाल का काटना है। हे राजन्! इस डालके काटेसे वृक्ष नहीं नष्ट होता क्योंकि, यह तो ऐसा होकर स्थित होताहै कि, मैंहूं। वासना त्याग करे और कुछ न फुरे। जब अहंरूपी बीज नष्ट होजाता है तब चित्तरूपी वृक्ष भी नष्ट होजाताहै क्योंकि; इसका बीज अहंही है। जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ तब वृक्षभी नष्ट होजाताहै; इससे चित्त का बीज तुम नष्ट करो। राजा बोले, हे देवपुत्र! तुम्हारा निश्चय मैंने यह जानाहै कि; चित्त के त्यागे से चित्त के बीज का नष्ट करना श्रेष्ठ है। हे भगवन्! इतने काल मैं डालें काटता रहाहूं; इसीसे मेरे दुःख नष्ट नहीं हुये और आपने कहा कि; अहंही दुःखदायी है इस लिये कृपाकरके कहिये कि, अहं कैसे उत्पन्न होता है? कुम्भज बोले, हे राजन्! शुद्धचेतन में जो चैतन्योन्मुखत्व अहं का फुरना हुआ कि 'मैंहूं' सोही दृश्यरूप हुआ है और मिथ्या संवेदन से हुआ है। जैसे शान्त समुद्र में पवन से लहरें होती हैं तैसेही शुद्ध आत्मा में अहं फुरता है और उससे संसार हुआ है। इससे अहंभाव को नष्ट करो कि, शान्तपद में स्थित हो। जो दुःख-दायक वस्तु है उसको नष्ट करे तो शान्त हो। राजा ने पूछा, हे भगवन्! वह कौन वस्तु है जो जलानेयोग्य है और वह कौन अग्नि है जिसमें वह जलती है? कुम्भज बोले, हे त्यागवानों में श्रेष्ठ राजा! तेरा जो अपना स्वरूप है उसका विचारकर कि, 'मैं क्या हूं' और 'यह संसार क्या है;' इसका दृढ़ विचार करनाही अग्नि है और

मिथ्या अनात्मा अर्थात् देह, इन्द्रियादिक में अहंभाव है उसको अवास्तवरूप विचार अग्नि में जलावो। जब विचार अग्नि से अहंकार बीज को जलावोगे तब केवल चिन्मात्र रहेगा। हे राजन्! मेरे उपदेश से तू आपको क्या जानता है सो मुझसे कह? राजा ने कहा, मैं राजा, पृथ्वी, पर्वत, आकाश, दशोंदिशा, रुधिर, मांस, देह, कर्मइन्द्रियां, ज्ञानइन्द्रियां, मन, बुद्धि और अहंकार नहीं; मैं इनसे रहित शुद्ध आत्मा हूं; परन्तु हे भगवन्! अहंरूपी कलङ्कता मुझे कहांसे लगी है कि, उस कलङ्कको मैं दूर नहीं करसका? तब कुम्भज ने कहा हे राजन्! इसी अहं का त्याग करो जो मैंने त्याग किया है; बल्कि यह फुरनाभी न फुरे, नितान्त, शून्य होरहे। जब इसका त्याग करोगे तब चेतन आकाश होगा। हे राजन्! तू अपने स्वरूप को देखकर जान कि, कौन है। राजा ने कहा, हे भगवन्! मैं यह जानता हूं कि, मेरा स्वरूप वही आत्मा है जो सबका आत्मा है; मैं आनन्दरूप हूं और सब मेरा प्रकाश है परन्तु मैं यह नहीं जानता कि, अहंभाव कलना कहां से लगी है? इसको मैं नाश नहीं करसका पर यह मैंने जाना है कि, संसार का बीज चित्त ही है और चित्त का बीज अहंकार है। तुम्हारी कृपा से मैंने जानाहै कि, मेरा स्वरूप आत्मा है और 'अहं''त्वं' मेरे में कोई नहीं। तुमभी इस अहंरूप कलङ्कता को दूर कर रहेहो–पर मुझसे दूर नहीं होता फिर फिर आफुरता है कि, मैं शिखरध्वज हूं। इस अहं से मैं संसारी हूं। इसके नाशकरने का उपाय आप कहिये, कुम्भज बोले, हे राजन्! कारण विना कार्य नहीं होता। जो कारण विना कार्य भासे तो जानिये कि, भ्रममात्र और मिथ्या है और जिसका कारण पाइये उसे जानिये कि, सत्य है। इससे तुम कहो कि, इस अहंकार का कारण–क्या है तब मैं उत्तर दूंगा? राजा बोले, हे भगवन्! अहंकार का कारण शुद्ध आत्मा है। शुद्ध आत्मा में जो जानता हुआ है और जाननेमात्र में जानने का उत्थान हुआ है कि, दृश्य की ओर लगा है सो जानना संवेदनही अहं का कारण है। कुम्भज बोले, हे राजन्! इस जानने का कारण क्या है? प्रथम तू यह कह पीछे दूर करनेका उपाय मैं कहूंगा। हे राजन्! जिसका कारण सत् होताहै सो कार्यभी सत् होता है और जो कारण झूठ होता है तो कार्यभी झूठ होता है। जैसे भ्रमदृष्टि से जो दूसरा चन्द्रमा आकाश में दिखता है उसका कारण भ्रम है। उससे इस जानने संवेदन का कारण कह जो जानना संवेदनादृष्टि और दृश्यरूप होकर स्थित हुई है और दृश्य द्रष्टरूप होकर स्थित हुई है। राजा बोले, हे देवपुत्र! जानने का कारण देहादिक दृश्य है क्योंकि; जानना तब होता है जब जानने योग्य वस्तु आगे होती है और जो आगे वस्तु नहीं होती है तो वह जाना भी नहीं जाता। इससे जानने का कारण देहादिक दृश्य। कुम्भज बोले, हे राजन्! ये देहादिक मिथ्याभ्रम से हुये हैं; इनका कारण तो

कोई नहीं? राजा बोले, हे देवपुत्र! देह का कारण तो प्रत्यक्ष है क्योंकि, खाता पीता है पितासे इसकी उत्पत्ति हुई है और प्रत्यक्ष कार्यकरता दृष्टि आता है; आप कैसे कहते हैं कि, कारण विना है और मिथ्या है? कुम्भज बोले, हे राजन्! पिता का कारण कौन है? पिता भी मिथ्या है। जैसे स्वप्न में पिता और पुत्र देखिये सो दोनों मिथ्या हैं। इससे कह पिता का कारण क्या है? राजा बोले, हे भगवन्! पुत्र का कारण पिता और पिता का कारण पितामह है; इसी प्रकार परम्परा से सर्वका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष क्योंकि, सर्वकी उत्पत्ति ब्रह्माजी से हुई है। कुम्भज बोले, हे राजन्! ब्रह्मासे आदि काष्ठपर्यन्त सर्वसृष्टि संकल्प की रची है और देह भी भ्रम करके भासता है। जैसे मृगतृष्णा का जल और सीपी में रूपा भासता है तैसेही आत्मा में देह भासता है। जैसे आकाश में दो चन्द्रमा भ्रम से दीखते हैं तैसेही आत्मा में यह संसार भ्रम से भासता है। जो तू कहे कि, क्रिया कैसे दृष्टि आती है तो सुन। जैसे कोई कहे कि, बन्ध्या के पुत्र को भूषण पहराये हैं; तो जो बन्ध्या के पुत्रही नहीं तो भूषण किसने पहिरे? अथवा स्वप्न में सब क्रिया भ्रममात्र होती हैं; तैसेही यह संसार तेरे भ्रम में है। जब भ्रम निवृत्त होगा तब केवल आत्मा ही भासेगा। हे राजन्! जैसे तू अपना देह जानता है तैसेही ब्रह्मा को भी जान। ब्रह्मा का कारण कौन है? इससे इस भ्रम से जाग कि, तेरा भ्रम नष्ट होजावे। राजा बोले, हे भगवन्! मैं अब जागा हूं और मेरा भ्रम नष्ट भया है। मैंने यह संसार अब मिथ्या जाना है कि, केवल संकल्पमात्र है। जो कुछ दृश्य है सो मिथ्या है और एक आत्मा ही मेरे निश्चय में सत् हुआ है। हे भगवन्! ब्रह्मा का कारण भी ब्रह्म है और वह अद्वैत अविनाशी और सर्वात्मा है; ब्रह्मा का कारण यह हुआ। कुम्भज बोले, हे राजन्! कारण और कार्य द्वैत में होते हैं सो असत् हैं क्योंकि; इस कारण का देश, वस्तु और काल से अन्त होजाता है और परिणामी होता है जो वस्तु परिणामी हो सो मिथ्या है। हे राजन्! आत्मा अद्वैत है; जिसमें न एक कहना है; न द्वैत कहना है; न वह भोगता है; न भोग है; न कर्म है; न अद्वैत है। जो वह स्वरूप से परिणाम को नहीं प्राप्त होता और सर्वात्मा है; जो सर्वदेश और सर्वकाल भी है; जो सर्ववस्तु में पूर्ण और अद्वैत है और जो अद्वैत है तो कारण कार्य किसका हो? कारण कार्य का सम्बन्ध द्वैत में होता है और परिणामी होता है और जिस में देशकाल का अन्त है सो अद्वैत आत्मा है। उसमें न कोई देशहै, न काल है और न कोई वस्तु है; वह केवल चिन्मात्रपद है। हे राजन्! मैं जानता हूं कि, तू जाग्रत् होगा क्योंकि, भ्रम तेरा नष्ट होता जाता है। जैसे बरफ़ की पुतली सूर्य की किरणों से क्षीण होजाती है तैसेही तेरा अज्ञान नष्ट होताजाता है अज्ञानके नष्ट हुये से तू आत्माही होगा। तू

अपने प्रत्येक चेतनस्वरूप से स्थितहो और देख कि, ब्रह्मा आदिक सर्व परमात्मा का किंचन हैं। परमात्माही ऐसे होकर स्थित हुआ है और जो दृष्टि पड़ता है उस सर्वका अपना आप आत्मा है। जब जागेगा तो जाने; जागे बिना नहीं जानसक्का। राजा बोला, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से अब मैं जागाहूं और जानता हूं कि, मेरा स्वरूप आत्मा है और मैं निर्मल हूं। अब मेरा मुझको नमस्कार है। एक मैंही हूं; मेरे से भिन्न कुछ नहीं और मैंने आपको जाना है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराजविश्रान्तिवर्णनन्नामचतुःसप्ततितमस्सर्गः७४॥

राजा ने पूछा, हे भगवन्! आप कैसे कहते हैं कि, ब्रह्मा का कारण कोई नहीं? आत्मा ऐसा अनन्त, अच्युत, अव्यक्त और अद्वैत ईश्वर है जो परमाणु का विषय नहीं और परमब्रह्म तो ब्रह्मा का कारण है? कुम्भज बोले, हे राजन्! तूही कहता है कि, आत्मा अनन्तहै। जो अनन्तहै उसको देश, काल और वस्तु का परिच्छेद नहीं होता जो सर्व देश, सर्वकाल और सर्व वस्तु में पूर्ण है सो कारण कार्य किसका हो? कारण तब हो जब प्रथम द्वैत हो सो आत्मा अद्वैतहै और कारण उसको कहते हैं जो कार्य से पूर्व हो और पीछे भी वही हो—जैसे घट के आदि मृत्तिकाहै और अन्त भी मृत्तिका होती है; वह कारण कहाता है पर आत्मा में न आदि है, न अन्तहै। वह तो आत्मा अनन्त है। कारण तब होता है जब परिणाम होताहै सो आत्मा अच्युत है; अपने स्वरूप से कदाचित् नहीं गिरा और भोक्ता भी द्वैत से होता है सो आत्मा अद्वैत है। भोग और भोक्ता दोनों नहीं और आत्मा में कर्म भी नहीं। आत्मासे आदि कौन है जिससे आत्मा सिद्ध हो? वह किसीका कार्यभी नहीं क्योंकि; कार्य इन्द्रियों का विषय होताहै सो आत्मा अव्यक्तहै और जो कार्य होताहै तो उसका कारण भी होताहै सो आत्मा सर्वका आदिहै उसका कारण कौनहो? जो सर्वात्माहै और स्वच्छ आकाश-वत् निर्मल है सोही तेरा स्वरूप है। राजा ने पूछा, हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है! मैंने जाना है कि; आत्मा अद्वैत है वह न किसीका कारणहै, न कार्य है और अनुभवरूप है सो मैं हूं। मैं निर्मल हूं; विद्या—अविद्या के कार्य से रहित हूं; निर्वाणपद हूं और निर्वि-कल्प हूं; मेरेमें फुरना कोई नहीं और मैं नहीं और मैंहीं हूं। मेरा मुझको नमस्कारहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजविश्रान्तिवर्णन
न्नामपञ्चसप्ततितमस्सर्गः॥ ७५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! राजा शिखरध्वज कुम्भजमुनि के उपदेश से प्रबोध हो और ऐसे वचन कहकर केवल निर्माणपद में स्थित हुआ। जब निर्विकल्प और फुरने से रहित हो एक मुहूर्त पर्यन्त स्थित रहा—जैसे वायु से रहित दीपक स्थित होता है—तब कुम्भज ने उसे जगाकर कहा; हे राजन्! तेरा समाधि से क्या है और उत्थान से

क्या है ? तू तो केवल आत्ममात्र है । मैं जानता हूं कि, तू परमज्ञान से शोभित हुआ है । जैसे डब्बे में रत्न होता है तो उसका प्रकाश बाहर नहीं दृष्ट आता और जब डब्बे से निकालकर देखिये तब बड़ा प्रकाश भासताहै; तैसेही अविद्यारूपी डब्बे से तू निकला है और परमज्ञान से शोभित हुआ है । हे राजन् ! अब तेरे में न कोई क्षोभ है और न कोई उपाधि है । अब तू संसार के राग द्वेष से रहित, शान्तरूप जीवन्मुक्त होकर विचार से बिचर तो तुझे कोई उपाधि न लगेगी । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इस प्रकार कुम्भज मुनि ने कहा तब राजा शान्तरूप होगया और बोला; हे भगवन् ! जो कुछ आपने आज्ञा की है उसे मैंने भलीप्रकार जाना पर अभी एक प्रश्न और है उसका उत्तर कृपा करके कहो कि, मैं दृढ़ स्थित होके रहूं । हे भगवन् ! आत्मा तो एक है और शुद्ध और केवल आकाशरूप चेतनमात्रहै उसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटी कहां से उपजी ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! जो कुछ स्थावर–जङ्गम संसार है वह महाप्रलय पर्यन्त है । जब महाप्रलय होता है तब केवल आत्माही शेष रहता है जो स्वच्छ और निर्मल है; तहां न तेज होता है; न अन्धकार है; वह केवल अपने आप स्वभाव में स्थित होता है । जो कुछ आनन्द है उसका अधिष्ठान आत्मा है और सत् असत् से रहितहै । जिसको बुद्धि 'इदं' करके कहती है उसे सत् कहिये और जिसको नहीं कहती उसे असत् कहिये । वह सत् असत् से रहित और सर्वलक्ष्मीसे संयुक्त है और अपना स्वभावमात्र है । उसमें कोई उपाधि नहीं और सर्वदा प्रकाशवान् और उदयरूप है । यह संसार उस परमात्मा का चमत्कार है । जैसे रत्न का चमत्कार लाट होतीहै तैसेही ब्रह्म का चमत्कार यह संसार है इससे ब्रह्मरूप है । जो ब्रह्म से भिन्न है उसे मिथ्याभ्रम ही जानना । जो कुछ आकार भासतेहैं सो असत् हैं । हे राजन् ! जो सब आकार मिथ्या हैं तो तेरी संवेदन भी मिथ्या है । आत्मा में अहं त्वं का कोई उत्थान नहीं; वह केवल ज्ञानमात्र है; केवल सत् और आनन्दरूप है और अविद्यातम से रहित प्रकाशरूप है । वह प्रमाणों से जाना नहीं जाता क्योंकि; इन्द्रियों का विषय नहीं और मन की चिन्तना से रहित है क्योंकि; सर्वका द्रष्टा है और सर्वका अपना आप अनुभवरूप है । हे राजन् ! तू उसीमें स्थित हो । आत्मा, बड़ेसे बड़ा है; सूक्ष्म से सूक्ष्म है और स्थूल से स्थूल है जिसमें आकाशभी किसी और अणुसा भासता है । उसमें ब्रह्माण्ड भी तृण समान है; वह अपने आपसे पूर्ण है; उससे किंचित्भी उत्पन्न नहीं हुआ और नाना प्रकार करके स्थित हुआहै । फुरनेसे जगत् भासता है और फुरनेके निवृत्त हुये केवल शुद्ध आत्मा है । राजा ने पूछा, हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, संसार फुरनेमात्र है और आत्मा शुद्ध शान्तिरूप और निर्विकल्प है तो उसमें संवेदन फुरना कहांसे आयाहै ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! फुरना भी आत्मा का चमत्कार है जैसे पवन में स्पन्द और निस्पन्द

दोनों शक्ति हैं; जब फुरता है तब चलना प्रकट होताहै और जब ठहर जाता है तब प्रकट नहीं होता; तैसेही संवेदन जब फुरता है तब नाना प्रकार होते हैं और जगत् भासताहै; और जब फुरना मिटजाता है तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है। हे राजन्! आत्मा सत्तामात्र है और संसार भी सन्मात्र आत्माही है। जो सम्यक्दृष्टि से देखिये तो आत्माही भासताहै और जो असम्यक्दृष्टिसे देखिये तो दुःखदायक जगत् भासता है। जिसके मन में संसारभावना है उसको दुःखदायक भासताहै और जिसके हृदय में आत्मभावना होती है उसको आत्मा ही भासता है और सुखरूप होता है क्योंकि; आत्मा अपने आपका नाम है। जिसने जगत् को अपना आप जाना है उसको दुःख कहां? हे राजन्! यह संसार भावनामात्र है; जैसी भावना होती है तैसाही हो भासता है। जिसकी भावना विष में अमृत की होती है उसे विष भी अमृत होजाताहै और जिसकी भावना अमृत में विष की होती है तो उसे अमृतभी विष होजाता है क्योंकि; संसार भावनामात्र है। जैसी भावना दृढ़ करता है यद्यपि आगे वह वस्तु न हो तौभी होजाती है; इससे संसार भावनामात्र मिथ्या है। ज्ञानवान् को दुःख कदाचित् नहीं देता और अज्ञानी को सुख कदाचित् नहीं देता। हे राजन्! अहंता और संवेदन; चित्त और चैत्य ये भी आत्माहीकी संज्ञा हैं। जैसे आकाश, शून्य, नभ; ये सर्वसंज्ञा आकाश ही की हैं तैसेही वह सर्वसंज्ञा आत्मा की है आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। 'अहं' 'त्वं' सर्व आत्मा के आश्रय हैं। जैसे भूषण सुवर्ण के आश्रय होतेहैं परन्तु सुवर्ण से भूषण तब होताहै जब कि अपने पूर्वरूप को त्यागता है; आत्मा तैसेभी नहीं वह केवल एकरस है और अपने आपमें स्थित है कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त होता। यह संवेदन आत्मा का चमत्कार है और आत्मा सत् असत् से परे है। जो कुछ दृश्य है सो आत्मा में नहीं चित्त से रचाहै; इससे परे है। हे राजन्! वह कारण-कार्य किसका हो? कारण-कार्य तब होताहै जब दृश्य होता है सो आत्मा किसीका विषय नहीं तो कारण कार्य किसका हो। विश्वके आदि भी आत्मा है; अन्त भी वहीहै और मध्य में भी आत्मा ही है। जो कुछ और भासता है सो भ्रममात्र है—जैसे आकाश में जो घर, मण्डल और पुर दृष्ट आते हैं उनकी आदि भी आकाशहै; अन्त भी आकाश है और मध्यभी आकाशहै और जो घर, मण्डल, पुर भासते हैं। सो मिथ्या हैं जैसे अग्नि नाना प्रकार दृष्टि आती है सो सब मिथ्या आकार है एक अग्निही है; तैसेही सबके आदि, मध्य और अन्त एक आत्माही सारहै। हे राजन्! जलमें भी देश काल होताहै क्योंकि, दृश्य है और इन्द्रियों का विषयहै जैसे कि; यह तरङ्ग अमुकस्थान से उठा और अमुक स्थान में लीन हुआ यहां स्थान देश हुआ और उपजकर इतना काल रहा सो काल हुआ और जिसको इन्द्रियां विषय न करसकें उसमें देश काल कैसे हो? राजा बोले,

हे भगवन्! अब मैंने भली प्रकार जाना है कि, आत्मा चिन्मात्र है और ज्ञानइन्द्रियों और कर्मइन्द्रियों से परे है। देश, काल और इन्द्रियां मनसे जानी जाती हैं कि, अमुक देश है और अमुक कालहै पर जहां इन्द्रियां और मनही न हो वहां देशकाल कहांहै? कुम्भज बोले, हे राजन्! जो तूने ऐसे जाना तो तू जागा है। आत्मा में देश, काल कोई नहीं। यह मन और इन्द्रियोंसे जानता है कि, यह देश है और यह काल है। जो इनसे रहित होकर देखे तो आत्माही भासे और जो इनसहित देखे तो संसारही दृष्टि आवेगा। हे राजन्! इनसे रहित होकर देख, तुझमें कुछ संसार न रहे कि, अमुक प्रश्न किया और अब अमुक प्रश्न करूं। संसार तबतक होता है जबतक इनका संयोग अपने साथ होता है। हे राजन्! ब्रह्मसे ब्रह्मको देख और पूर्णको देख कि, तू भी पूर्ण हो। जब तू पूर्ण होगा तब सर्वओर आपको ही जानेगा, सर्वसंज्ञा तेरीही होगी और उस निर्वाच्य पद को प्राप्त होगा जहां इन्द्रियों की गम नहीं, केवल आकाशरूप है। जैसे आकाश अपनी शून्यता से पूर्णहै तैसेही तू भी अपने चेतनस्वभाव से आप पूर्ण होगा। जब तू मनसहित षट् इन्द्रियों से रहित होकर देखेगा तब अपने आपको फिर यदि इन सहित भी देखेगा तौभी तुझे चेतन आत्माही भासेगा और संसार का शब्द और अर्थ तेरे हृदय से उठजावेगा—शब्द यह कि, संसार है और अर्थ यह कि, उसको सत् जानना और केवल आकाशरूप आत्माही भासेगा। संसार संवेदनमात्र है और संवेदन चित्तशक्तिका चमत्कारहै। यही चित्तशक्ति ब्रह्मा होकर स्थित हुई है और संसार देखने लगी है। जब यह शक्ति अन्तर्मुख होती है तब आत्माही दृष्टिआता है जो सदा एक रसहै और जब बहिर्मुख होतीहै तब संसार दृष्टआताहै। जैसी जीव भावना करता है तैसेही आगे दृष्टि आता है; जब संसार की भावना होती है तब संसारही भासता है और जब आत्मा की भावना होतीहै तब आत्माही भासता है। आत्मा सदा एकरस और असंसारी है इससे; हे राजन्! तू आत्माकी भावनाकर कि, तुझे आत्माही भासे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधनंनामषट्सप्ततितमस्सर्गः॥ ७६॥

कुम्भज बोले, हे राजन्! यह संसार जो तुझे भासता है सो आत्मा में नहीं। केवल शुद्ध आत्मा में जो अहं उत्थान है वही संसारहै पर अहं का वह चमत्कार न सत् है, न असत् है; न भीतर है, न बाहरहै; न शून्य है, न अशून्य है; केवल अपने आप में स्थित है। संसार का प्रध्वंसाभाव भी नहीं होता अर्थात् पहले हो और पीछे नाश होजावे ऐसा नहीं होता। आत्मा में संसार उदय अस्त नहीं होता केवल अपने आपमें स्थित है उससे कुछ भिन्न नहीं। किन्तु आत्मा को यह भी नहीं कहसके कि; केवल अपने आपमें स्वाभाविक स्थित है; उसमें वाणी की गम नहीं। वाणी उसको कहते हैं जहां दूसरा होताहै पर जहां दूसरा न हो वहां वाणी क्या कहे। यह कहना

भी तेरे उपदेश के निमित्त कहा है आत्मा में किसी शब्द की प्रवृत्ति नहीं। हे राजन्! ऐसा आत्मा किसका कारण कार्य हो। आत्मा तो शुद्ध, निर्विकार और प्रमाणों से रहित है। जो किसी लक्षणसे प्रमाण नहीं कियाजाता सो आकार होकर स्थित हुआ है और शान्तरूपहै। हे राजन्! ऐसा आत्मा किसका कारण कार्य हो? कारण कार्य तब होताहै जब प्रथम परिणाम और क्षोभ को प्राप्त होता है पर आत्मा तो शान्तरूप है और कारण तब हो जब क्रिया से कार्यको उत्पन्न करे सो आत्मा अक्रिय है अर्थात् क्रिया से रहित है। कारण को कार्यसे जानाजाता है पर आत्मा चिह्नसे रहित है और प्रमाणों का विषय नहीं इससे आत्मा कारण कार्य किसीका नहीं और आत्मा को कारण कार्य माननेसे मुझे आश्चर्य आता है। हे राजन्! जो वस्तु उपजती है सो नष्ट भी होती है और जो नष्ट होती है सो उपजती भी है पर आत्मा सबके आदि है और अजन्मा और निर्विकार है उसमें स्थित हो कि; तेरा संसार निवृत्त होजावे। यह संसार अज्ञानसे भासता है। जब तू स्वरूप में स्थित होकर देखेगा तब न भासेगा; और ऐसे भी न भासेगा कि; आगे था अब निवृत्त हुआहै तब तो एकरस आत्मा ही भासेगा और केवल शून्य आकाश होजावेगा। संसार से रहित होनेको शून्य कहते हैं। चेतन स्वरूप नाना होकेभी वही है और एक भी वही है, शून्य है और शून्यसे रहित भी वही है; द्वैतरूप भी वही है और अद्वैतरूप भी वही है; ऐसा भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजप्रथमबोधनंनाम
सप्तसप्ततितमस्सर्गः॥ ७७॥

कुम्भज बोले, हे राजन्! जो कुछ तू देखता है सो सब चेतनघन है उसमें 'अहं' 'त्वं' शब्द कोई नहीं। 'अहं' 'त्वं' शब्द प्रमाद से होते हैं; जब आत्मा में स्थित होकर देखोगे तब आत्मा से भिन्न कुछ न भासेगा तो 'अहं' 'त्वं' शब्द कहां भासे? हे राजन्! यह नाना प्रकार की संज्ञा चित्त ने कल्पी है जब चित्त से रहित होगे तब नाना और एक कोई संज्ञा न रहेगी। हे राजन्! 'सर्वब्रह्म है'; यह वाक्य वेद का सार है। जब इस वाक्य में दृढ़ भावनाबुद्धि होगे तब एकरस आत्माही दृष्ट आवेगा और चित्त नष्ट होजावेगा। जब चित्त नष्ट हुआ तब केवल महाशुद्ध आकाश की नाईं स्थित होकर निर्दुःख पद को प्राप्त होगे जो पद सबकी आदि है और सर्वदा मुक्तिरूप है। राजा बोले, हे भगवन्! आपने कहा कि, चित्तके नष्ट हुयेसे कोई दुःख न रहेगा और चित्त के नष्ट होने का उपाय भी आपने कहा है परन्तु मैं भलीभांति नहीं समझा: मेरे दृढ़ होनेके निमित्त कृपा करके फिर कहिये कि; चित्त कैसे नष्ट होता है? कुम्भज बोले, हे राजन्! यह चित्त न किसी काल का है; न किसीको है और न यह देखता है; चित्त हैही नहीं तो मैं तुझे क्या कहूं और जो चित्त तुझको

दृष्ट आता है तो तू आत्मा ही जान; आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं । हे राजन्! महासर्ग के आदि और अन्त कोई सृष्टि नहीं केवल आत्मा है और आत्मा में नहीं कहसक्के मैंने तेरे जनाने के निमित्त कही है । मध्य जो कुछ दृष्टि आता है सो अज्ञानी की दृष्टि है आत्मा में सृष्टि कोई नहीं और आत्मा किसी का उपादान कारण और निमित्तकारण भी नहीं क्योंकि; अच्युत है-परिणाम को नहीं प्राप्त होता। उपादान भी परिणाम से होताहै आत्मा शुद्ध निराकार आकाशरूप है सो कारण कार्य किसका हो ? चित्त भी वासनारूप है और वासना तब होती है जब वास होती है। जो आगे सृष्टि नहीं तो वासना किसकी फुरे और चित्तमें संसार की स्थिति कैसेहो? इस से चित्त कुछ नहीं । यह विश्व आत्मा का चमत्कार है और सृष्टि आत्मा में कोई नहीं; वह निरालम्ब केवल अपने आपमें स्थित है। हे राजन्! संसार भी नहीं हुआ और चित्त भी नहीं हुआ तो 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्द भी आत्मा में कोई नहीं। ये शब्द तब होते हैं जब चित्त होता है और चित्त तबतक है जबतक वासना है। जब निर्वासनिक पद को प्राप्त हुआ तब कोई कल्पना नहीं रहती। हे राजन्! यह संसार महाप्रलय में नष्ट होजावेगा और सत्-असत् संसार कुछ न रहेगा; एक आत्मा ही शेष रहेगा जो निराकार और शुद्ध है। जबतक महाप्रलय नहीं होता तब तक संसार है। महाप्रलय क्या है? सो भी सुनो। एकक्षण आत्मा के साक्षात्कार होनेसे सृष्टि का शेषभी न रहेगा। ज्ञानही महाप्रलय है और अब जो दृष्टि आता है सो मिथ्या है। यह क्रिया भी मिथ्या है और इसका भान होनाभी मिथ्या है। जैसे स्वप्न की क्रिया भी मिथ्या है और उसका भान होनाभी मिथ्या है, तैसेही जाग्रत् संसार स्वप्नमात्र है और कारण विनाही भासता है। जो कारण विना है सो मिथ्या है इसका कारण अज्ञानही है कि, अपना न जानना, जब आपको जाना तब अपना आपही भासेगा। जैसे स्वप्न में अपने न जाननेसे भिन्न आकार भासते हैं पर जब जगा तब अपना आपही जानता है कि, मैं हीं था। हे राजन्! मुझे तो एक आत्मा ही दृष्टि आता है; आत्मा से भिन्न संसार कोई नहीं भासता। इस संसार की स्थिति मानना मूर्खता है, यह सदा अचलरूप है। वेद शास्त्र और लोक भी कहता है कि, संसार मिथ्या है और आपभी जानता है कि, नष्ट होजाता दृष्टि आता है तो फिर उसमें आस्था करनी मूर्खता है। आत्मा में संसार नाना अनाना कोई नहीं; आत्मा सर्वदा अपने आपमें स्थित है और शुद्ध और अच्युत ज्यों का त्यों है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधनन्नामाष्टसप्ततितमस्सर्गः॥ ७८ ॥

शिखरध्वज बोले; हे भगवन्! अब मेरा मोह नष्ट हुआहै और अपना आप मैंने जाना है। तुम्हारी कृपा से मेरा संसारभ्रम निवृत्त हुआहै और शोकसमुद्र को अब मैं

तरकर शान्तपद को प्राप्त हुआहूं। 'अहं' 'त्वं' शब्द मेरेमें कोई नहीं, अब मैं निर्वाण पद को प्राप्त हुआहूं और अच्युत चिन्मात्र केवल हूं और शून्य हूं। कुम्भज बोले, हे राजन्! आत्मा शुद्ध और आकाश की नाईं निर्मलहै; बल्कि, आकाशसे भी अति निर्मल है पर उसमें अहंमल अहंमोह से उपजी है और मोह अविचार का नाम है। जब विचार होता तब कोई अहं नहीं पायाजाता। यह विश्व संवेदन में है और संवेदन सर्व के आदि होकर स्थित हुई है। जब संवेदन अन्तर्मुख होती है तब सर्व विश्व लीन होजाती है; संवेदनही में बन्ध और मुक्ति है; जब बहिर्मुख होती है तब बन्ध है और जब अन्तर्मुख होती है तब मोक्ष है। जिसने मन और इन्द्रियों से रहित होकर अपना आप देखा है उसको ज्यों का त्यों दृष्टि आता है—और जो मोहसंयुक्त देखता है उसको विपर्यय भासता है। जैसे सम्यक् दृष्टि से भूषणमें सुवर्ण भासता है और जब भूषण के आकार मिट जाते हैं तबभी सुवर्णही है और मूर्ख को सोने में भूषण दृष्टि आते हैं। चिरकाल के अभ्यास से जो बुद्धि इनमें फुरती है तौभी प्रारब्ध वेग पर्यन्त चेष्टा होती है तब चेष्टा में भी आत्मा ही दृष्टि आता है—इससे केवल आत्मा ही का किञ्चन होता है। जैसे सोने में भूषण आकाश में नीलता और वायु में स्पन्द है, तैसेही आत्मा में सृष्टि है। जैसे आकाश में नीलता देखनेमात्र है वास्तव कुछ नहीं; तैसेही आत्मा में सृष्टि वास्तव कुछ नहीं, भ्रान्तिमात्रही है। जब भ्रान्ति निवृत्त होतीहै तब जगत् का शब्द अर्थ सर्वओर से शान्त होजाताहै और शब्द अर्थ की भावना से जो चेष्टा होतीहै उससे जब अभिलाषा निवृत्त होजातीहै तब कोई दुःख नहीं होता। इसीको मुनीश्वर निर्वाण कहतेहैं। जब निर्वाणपदका ऐसा निश्चय होताहै तब शान्तरूप शून्यपद को पाकर स्थित होताहै। हे राजन्! अहं का उत्थान होनाही बन्धन है और अहं के निर्वाण होनेसेही मुक्ति है। अहंके होनेसे संसार का दुःख है; जबतक अहं का उत्थानहै तबतक संसारहै और जबतक संसारहै तबतक अहं का उत्थानहै। जब संसारकी सत्ता जाती रहेगी तब अहंफुरनाभी नष्ट होजावेगा और जब फुरना नष्ट हुआ तब अहंभी नष्ट होजावेगा। जब अहं नष्ट हुआ तब केवल शुद्धआत्माही शेष रहेगा और उसीका भान होगा। तब अहंब्रह्म का उत्थान भी शान्त होजावेगा और चेतनमात्रही रहेगा। हे राजन्! जिसको सर्वब्रह्मकी बुद्धि हुई है उसको संसारकी बुद्धि नहीं रहती और जिसको संसारबुद्धि है उसको ब्रह्मबुद्धि नहीं होती। जैसी २ भावना दृढ़ होती है तैसाही आगे भासता है; जिसको ब्रह्मभावना दृढ़ होती है वह ब्रह्मरूप होजाताहै और जिसको जगत् की भावना दृढ़ होती है उसको जगतही भासता है। हे राजन्! तू अब जागा है और ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध, निर्मल और प्रत्यक् है और जो शब्द और लक्षणविषय नहीं और इन्द्रियों का विषय भी नहीं। हे राजन्!

ऐसा आत्मा जो केवल अद्वैत है और विश्व जिसका चमत्कार है वह कारण-कार्य किसका हो जैसे समुद्रमें नाना प्रकार के तरङ्ग पवन से उपजते हैं तौभी समुद्र से भिन्न नहीं, तैसेही आत्मामें नाना प्रकार की विश्व संवेदन फुरनेसे उपजती है तौभी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं-फुरनेमात्र है । जैसे थम्भे में मनोराज से कोई पुरुष पुतलियां कल्पता है और नाना प्रकार की चेष्टा करता है पर उसकी चेष्टा तबतक है जबतक संकल्प है और जब संकल्प निवृत्त हुआ तब शून्य थम्भाही रहजाता है जैसा आगे था क्योंकि शिल्पी की संवेदन में सृष्टि थी; तैसेही यह संसार संकल्पमात्र है, जब संकल्प अन्तर्मुख होता है तब संसार की सत्ता में जाती रहती है । हे राजन्! संसार-सत्ता इस कारण जाती रहती है कि, आगेही असत् है । जो वस्तु सत् होती है उसका कदाचित् नाश नहीं होता । इससे संसार केवल संवेदन कल्पी है । जैसे एक शिला में पुरुष पुतलियां कल्पनाहै तो शिला में तो पुतली कोई नहीं; ज्योंकी त्यों शिलाही है; तैसेही फुरने से आकार दृष्ट आते हैं । जब चित्त फुरने से रहित होगा तब आत्मा को अपना आप जानोगे और अशब्दपदको प्राप्त होगे जो शान्तिपद शुद्ध आकाश-रूप है । हे राजन्! सर्वशब्द और सर्वकी अभावना ही ब्रह्म अर्थ है; जहां कोई कल्पना नहीं । जब सम्यक्दृष्टि होती है तब शेष आत्मा ही भासता है और यह भावना भी उठजाती है कि, यह संसार है और यह ब्रह्म है; तब केवल ज्ञेयमात्र ही होरहता है अर्थात् शिला की नाईं जो ज्ञान है ऐसा शेष रहता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधवर्णनंनामनवमप्तानितमस्सर्गः७९॥

राजा बोले, हे भगवन्! जैसे आप कहते हैं सो सत्य है और मैंभी ऐसेही जानता हूं कि, संसार आत्मा का कार्य है और आत्मा कारण है । जो आत्मा का कार्य हुआ तो आत्मस्वरूप हुआ आत्मा से भिन्न नहीं । कुम्भज बोले, हे राजन्! आत्मा चेतनमात्र है, कारण कार्य किसीका नहीं । आत्मा अप्रत्यक् और अक्रिय; अच्युत और निरस है और जो अशब्दपद है वह कारण कार्य किसका हो? कारण को कार्यद्वारा जानाजाना है पर आत्मा किसीप्रमाण का विषय नहीं, अप्रत्यक् और अरूपहै । कारण तब होताहै जब क्रिया होती है पर वह न किसी का कारण-कार्य है और न कर्महै केवल ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है और चेतनमात्र शिवरूप शुद्ध है । यह विश्व भी चेतन-मात्र है । जैसे आकाश में आकाश स्थितहै तैसेही आत्मामें विश्व आत्मरूप स्थितहै । ऐसा विश्व चेतनमात्र है पर उसमें असम्यक्दर्शी अज्ञान से नाना प्रकार कल्पना है । वस्तु जो परमात्मा है तिसके प्रमादसे वासनारूप चित्त से विश्वको कल्पता है सो विश्व शब्दमात्र है अर्थात् कुछ नहीं । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा; समुद्र में तरङ्ग; मृगतृष्णा में जल और परछाहीं में वैताल भासता है तैसेही असम्यक्दर्शी आत्मा

में विश्व कल्पता है और सम्यक्‌दर्शी ऐसे जानताहै कि, आत्मा शुद्ध, अजन्मा, अविनाशी और परम निरञ्जन है। हे राजन्! जब तू सम्यक्‌दृष्टिसे देखेगा तब संसार का प्रध्वंसाभाव भी न देखेगा क्योंकि; चित्त का कल्पा हुआ है और चित्त अज्ञान से उपजा है। स्वरूप में न चित्त है, न अज्ञान है और न संसारहै; केवल अद्वैतमात्र है; वहां एक कहां और द्वैत कहां, वह तो केवल मात्रपद है। जब अज्ञान नष्ट होगा तब 'अहं' 'त्वं' चित्त फुरना सब नष्ट होजावेगा और फिर भ्रमदृष्टि न आवेगा। हे राजन्! आत्मा से भिन्न जो कुछ भासता है सो अज्ञान से भासता है और विचार कियेसे नहीं राहता। राजा बोले, हे भगवन्! अज्ञान क्या है और कैसे नाश होताहै सो कहिये? कुम्भज बोले, हे राजन्! एक ज्ञान है और दूसरा अज्ञानहै। ज्ञान यह कि, पदार्थ को प्रत्यक्ष जानना और अज्ञान यह कि, पदार्थों को न जानना। एकज्ञानभी अज्ञान है सोभी सुन। मृगतृष्णा का जल देखकर आस्था करनी और रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा देखना और उसको सत्य जानना यह ज्ञान भी अज्ञान है क्योंकि; सम्यक्‌दर्शी होकर नहीं देखता यह दृष्टान्त है और एक दृष्टान्त यह भी है कि, शुद्ध आत्मा निराकार और अच्युत है उसमें मैं हूं और मेरा अमुक वर्णाश्रम है और नाना प्रकार का विश्व है। यह ज्ञान भी अज्ञान और मूर्खता है। हे राजन्! न कोई जन्मता है और न कोई मृतक होताहै; ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थितहै; उसमें जन्म मरण आदिक विकार देखना ज्ञान भी अज्ञान है हे राजन्! जैसे कोई ब्राह्मण हो और ऊंची बांह करके कहे कि, मैं शूद्र हूं और मुझे वेद का अधिकार नहीं; और जैसे कोई पुरुष कहे कि, मैं मुआ हूं और उसको मैं जानता हूं; तैसेही आपको कुछ वर्णाश्रम का अभिमान लेकर कहना मूर्खता है क्योंकि; यह असम्यक्‌दर्शन है। जब ज्यों का त्यों जाने तब दुःखी न हो। हे राजन्! ऐसा ज्ञान जो सम्यक्‌दर्शनसे नष्ट होजावे सो अज्ञानहीहै। जैसे सूर्यकिरणों में जलबुद्धि होती है और किरण के ज्ञान से जल का ज्ञान नष्ट होजाता है तो वह जल का जानना अज्ञानता ही थी और जैसे जेवरी में सर्प जानना जेवरी के ज्ञान से नष्ट होजाता है यह भी अज्ञान है और सम्यक्‌दर्शन से नष्ट होताहै। जब ऐसे सम्यक्‌दर्शी होंगे तब अध्यात्मिक तापों से निवृत्त होकर शुद्ध होंगे। आत्मा जो अज, शान्तरूप, सत्–असत् है उसमें भिन्न कुछ नहीं और वह प्रकाशरूप है। ऐसा तू है। हे राजन्! अज्ञान भी और कोई नहीं; इस चित्त के उदय होनेका ही नाम अज्ञान है। अज्ञानका कारण चित्त है। जो पदार्थ चित्त से उदयहुआ है सो नष्टभी चित्तसेही होता है; इससे तू चित्त से चित्त को नाशकर। जैसे अग्नि पवन से उपजती है और पवनही से शान्त होती है तैसेही चित्तसे चित्त को नष्टकर। हे राजन्! न तू है, न मैं हूं, न इन्द्रिय हैं, न संसार है और न यह जगत् है केवल शुद्ध आत्माहै। हे राजन्! जो चित्तही न हो तो

चित्त का कार्य विश्व कहां हो ? यह अज्ञानी को भासता है कि, चित्त है और विश्व है; आत्मा केवल अपने आपमें स्थित है । हे राजन्! चित्त का उदय होना अज्ञान से है । जब अज्ञान नष्ट होता है तब चित्त और 'अहं' 'त्वं' सर्व नष्ट होजाते हैं। हे राजन् ! तू शुद्ध आत्मा; एक; प्रकाशरूप; अच्युत और निरन्तर है; देह इन्द्रियादिकरूप होकर भी तुही स्थित हुआ है और इच्छा अनिच्छा भी तूही है। जैसे चन्द्रमा की किरणें चन्द्रमा से भिन्न नहीं, तैसेही तू है । तू निर्विकल्प है और तुझमें कुछ स्फूर्ति नहीं; तू केवल ज्यों का त्यों स्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थउपदेशोनामाशीतितमस्सर्गः ॥ ८० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब ऐसे कुम्भजमुनि ने कहा तब शिखरध्वज सुनके शान्तिको प्राप्त हुआ और नेत्र मूंदके सब अङ्गोंकी चेष्टासे रहित हुआ । जैसे शिलापर पुतली लिखीहो तैसेही स्थितहो एकमुहूर्त पर्यन्त वह निर्विकल्प स्थित रहा और फिर उठा तब कुम्भज ने कहा; हे राजन् ! आत्मा जो निर्विकल्प है उस निर्विकल्प शिला में तूने शयन कियाहै और ज्ञेय जो जाननेयोग्य है उसे तूने जानाहै। अब अज्ञान तेरा नष्ट हुआ अथवा नहीं और तू शान्तिको प्राप्त हुआ अथवा नहीं सो कह ? राजा बोले, हे भगवन् ! तुम्हारी कृपा ने मुझे उत्तमपद को प्राप्त किया है । हे भगवन् ! तत्त्ववेत्ताओं के सङ्ग से जैसा अमृत मिलताहै तैसा क्षीरसमुद्रसे भी नहीं मिलता और जो देवताओं से भी नहीं मिलता । तुम्हारी कृपासे मैंने ऐसे अमृत को पाया है जिसका आदि अन्त कोई नहीं और जो अनन्त और अमृतसार है । अब मेरे सबदुःख नष्ट होगये हैं और मैं जगाहूं । अब मैंने अपने आपको जानाहै कि, मैं आत्माहूं; मेरेसाथ चित्त कोई नहीं और मैं केवल अपने आपमें स्थितहूं । अब मुझे कोई इच्छा नहीं मैंने अपने स्व-भाव को पाया है और सबके आदिपद को प्राप्त हुआ हूं । जिसमें कोई क्षोभ नहीं ऐसे निर्विकल्पपद को मैं प्राप्त हुआ हूं । हे भगवन् ! ऐसा मेरा अपना आप है जिससे सब प्रकाशते हैं । उसके जाने विना मैंने कोटिजन्म पायेथे । अब मेरे दुःखनाश हुये हैं और तुम्हारी कृपासे एक क्षण में जाना है। आगेभी श्रवण कियाथा पर क्या कारण है जो आगे न जाना और अब जाना ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! अब तेरे कषाय परिपक्व हुये हैं । जैसे फल परिपक्व होता है तब यत्न विनाही वृक्षसे गिरपड़ता है तैसेही अब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है और अज्ञान नष्ट होगयाहै । जब अन्तःकरण मलिन होता है तब सन्तों के वचन नहीं लागते और जब अन्तःकरण शुद्ध होता है तब सन्तों के वचन लागते हैं । जैसे कोमल कमल की जड़ को बाण लगे तो शीघ्रही बेध जाता है तैसेही शुद्ध अन्तःकरण में उपदेश शीघ्रही प्रवेश करता है । हे राजन् ! अब तेरी भाग वासना नष्ट हुई है और स्वरूप जानने की तेरी इच्छा हुई है; इससे तू जगा

है। हे राजन्! मैंने उपदेश तब किया है जब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है। प्रतिबिम्ब भी वहां पड़ता है जहां निर्मल ठौर होता है। जैसे श्वेतवस्त्रपर केशर का रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है और रङ्ग भी चटक होता है, तैसेही शुद्ध अन्तःकरण में सन्तों के वचन शीघ्रही प्रवेश करतेहैं और शोभा पातेहैं। हे राजन्! जबतक अन्तःकरण मलिन होता है तबतक चाहे जितना उपदेश कीजिये स्थित नहीं होता। जब भोग से वैराग्य होताहै तब वासना कोई नहीं रहती केवल आत्मपद की इच्छा होती है और तभी स्वरूप का साक्षात्कार होता है। हे राजन्! अब तेरा सर्वत्याग सिद्ध हुआ है और अज्ञान नष्ट हुआ है क्योंकि; और उपाधि कोई नहीं रही। चित्तही बड़ी उपाधि है; जब चित्त नष्ट हुआ तब कोई दुःख नहीं रहता। अब तू सुखसे बिचर; तुझको दुःख, शोक और भय कोई नहीं अब तू शान्तिपद को प्राप्त हुआ है। राजा ने पूछा, हे भगवन्! अज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध है और ज्ञानवान् को चित्त का सम्बन्ध नहीं होता। जो स्वरूप में स्थित है वह चित्त विना जीवन्मुक्ति क्रिया में कैसे बर्तता है? कुम्भज बोले, हे राजन्! तू सत् कहता है कि, ज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध नहीं। जैसे पत्थर की शिला में अंगुरी नहीं होतीं तैसेही ज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध नहीं होता। हे राजन्! चित्त वासनारूप है और वासना जन्म मरण का कारण है पर जीवन्मुक्ति की वासना नहीं रहती। ज्ञानवान् का चित्त सत्य पद को प्राप्त है और अज्ञानी चित्त में बन्धायमानहै; इससे वह जन्मता भी है और मरता भी है। ज्ञानी का चित्त जो शान्ति में स्थित है इस से उसको न बन्ध है; न मोक्ष है और वह प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है और सर्वात्मा ही देखता है। यद्यपि इन्द्रियों से वह चेष्टा भी करता है तौभी सर्व ब्रह्मही देखता है और क्रिया करने में इस अभिमान से रहित होता है कि, मैं कर्ताहूं और भोक्ता हूं। अज्ञानी आपको कर्ता मानता है। और उसको संसार सत्य भासता है इससे संकल्प विकल्प कर्ता है। ज्ञानवान्को संसारकी सत्यता नहीं भासती; वह आपको अकर्ता, अभोक्ता देखता है और अभिलाष से रहित चेष्टा करता है। जबतक चित्त का सम्बन्ध है तबतक जीव संसार को सत्य जानकर अपने में क्रिया देखता है पर जब चित्त ही नष्ट होगया तब संसार और फुरना कहांरहे? हे राजन्! अब तूने चित्त का त्याग किया है इससे सर्वत्यागी हुआ है और आगे सर्वत्याग न किया था इससे तेरा अज्ञान न नष्ट हुआ था। अब तेरा अहंभाव दूर हुआ है। जब अज्ञान नष्ट हुआ तब अहंभाव भी न रहा। अहंके त्याग करने से सर्वत्याग सिद्ध हुआ। आगे तूने राज्य का त्याग किया था पर राज्य में तेरा कुछ न था; फिर तम का त्याग किया; फिर वन में आदि सर्व सामग्री का त्याग किया पर अब तूने उसका त्याग किया जो त्यागने

योग्य अहंभाव है–इससे सर्वत्याग हुआ। जो कुछ जानने योग्य है सो अब तूने जाना है और शान्तपद को प्राप्त हुआ है। हे राजन्! तू आत्मा सबदुःखों से रहित है। जैसे मन्दराचल पर्वत से रहित क्षीरसमुद्र शान्तपद को प्राप्त हुआहै तैसेही अज्ञान से रहित तू शान्तपद को प्राप्त हुआ है। अब तू जागा है और चित्तका त्याग किया है इससे अद्वैत सर्वआत्मा हुआहै। हे राजन्! जब दो अक्षर होतेहैं तब उनकी संज्ञा नाना प्रकार की होती हैं-जैसे अमृत-विष; सुख–दुःख और धर्म–अधर्म–पर जो एकाएकी अक्षर होता है वह सर्वका आत्मा है; तैसेही तेरा दूसरा अज्ञान नष्ट हुआ है और तू सत्यपद को प्राप्त हुआ शुद्ध निर्मल है। हे राजन्! जो ज्ञानवान् है उसने सम्यक्दृष्टि से चित्तका त्यागकिया है और उसको कोई दुःख नहीं होता। तू उसपद को प्राप्त हुआ है जिसमें कोई दुःख नहीं और जहां स्वर्गादिक सुख भी तुच्छ हैं क्योंकि, स्वर्ग में भी अतिशय क्षय होतीहै। अतिशय इसे कहतेहैं कि, जो बड़े पुण्यवाले किसी को आपसे ऊंचा देखतेहैं तो चाहतेहैं कि, हमभी इसीकेसे होजावें और क्षय इसे कहते हैं कि, ऐसा न हो कि, इन सुखों से गिरूं। निदान स्वर्ग में दोनों प्रकार दुःख होताहै पर तूने पुण्य पाप दोनों का त्याग किया है इससे सर्वत्यागी है। अज्ञानी जो पापी जीव हैं उनको स्वर्ग ही भलाहै। जैसे सुवर्ण का पात्र न पाइये तो पीतल काभी भला है तैसेही स्वर्ग का पात्र जो ज्ञान है जबतक प्राप्त न हो तबतक पीतल के पात्र जो स्वर्गादिक हैं सो नरक से भले हैं; पर तुम ऐसेको कुछ नहीं। आत्मा में सर्व पदार्थ की पूर्णता है और सर्वकी उत्पत्ति आत्मासेही है। हे राजन्! वर्णाश्रम में क्या आस्था करनी है? जहां से इनकी उत्पत्ति है, जहां लीन होतेहैं और मध्य में जिसके अज्ञान से दृष्टि आते हैं उसमें स्थित हो। हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं उनमें मत स्थित हो पर जिसमें ये उत्पन्न और लीन होते हैं उसमें स्थित हो। तपादिक क्रिया में क्या सिद्ध होता है? जिससे तप आदिक सिद्ध होते हैं उसमें स्थित हो। बूंद में क्या स्थित होना है? जिस मेघ से बूंद उत्पन्न होते हैं उसमें स्थित होइये। हे राजन्! जैसे स्त्री भर्ता से कोई पदार्थ चाहे और आप न कहे तैसेही तपादिक क्रिया से क्या सिद्ध होता है? जो उनसे आत्मपद की इच्छा करे तो प्राप्त नहींहोसक्ता अपने आपसे पाता है। हे राजन्! आत्मा तेरा अपना आप है उससे सर्व सिद्धि होती है। जो वस्तु पीछे त्याग करनी हो उसको ज्ञानवान् प्रथम ही अङ्गीकार नहीं करता। जो कुछ तपादिक हैं उनको चित्त से क्या रचताहै अपने आपको देख कि, अनुभवरूपहै और सर्वदा निरन्तर अपने आप में स्थित है। जब तू अपने आपसे आपको देखेगा तब तपादिक क्रिया को दूर करके शोभा पावेगा। जैसे बादल के दूर हुये प्रकाशवान् चन्द्रमा शोभा पाता है तैसेही तू भी भोग की चपलता को त्याग कर शोभा पावेगा। जब इन्द्रियों को जीतकर किसी पदार्थ

में आसक्त न होगा और सर्व वासना का त्याग करेगा तब ज्ञानवान् होगा। जिसने सर्ववासना का त्याग कियाहै उसको विष्णु जानना; वह सर्व राज्य का स्वामी है और जिसने मन जीता है सो चेष्टा में भी ज्यों का त्यों रहता है और समाधि में भी ज्यों का त्यों है। जैसे पवन चलने और ठहरने में तुल्य है तैसेही ज्ञानवान् को कहीं खेद नहीं होता। राजा ने पूछा, हे सर्व संशयों के नाशकर्ता! स्पन्द और निस्पन्द में ज्ञानी ज्यों का त्यों कैसे रहताहै सो कृपा करके कहिये? कुम्भज बोले, हे राजन्! चेतनआकाश आकाश से भी निर्मल है; जब उसका साक्षात्कार होताहै, तब जहां देखे तहां चेतन ही भासताहै। जैसे समुद्र के जानेसे तरङ्ग और बुद्बुदे सब जलही भासते हैं तैसेही चित्त विना आत्माके देखेसे फुरनेमें भी आत्माही दृष्टिआताहै और जिसने आत्मा को नहीं जाना उसको नाना प्रकार का जगत् ही भासता है। जैसे जल के जाने विना तरङ्ग बुद्बुदे भिन्न २ दृष्टि आते हैं और जलके जाननेसे तरङ्गभी जलमय भासते हैं। हे राजन्! सम्यक्दर्शी को जगदात्मास्वरूपहै और असम्यक्दर्शी को जगत्है। इससे तू सम्यक्दर्शी होकर देख कि, जगत्भी आत्मरूपहै। सम्यक्दर्शन जैसे प्राप्त होताहै सोभी श्रवण कर। सम्यक्दर्शन सन्तके संग करने और सत्शास्त्र के विचारसे प्राप्त होता है। भावना करिये तब कितने काल में स्वरूप का साक्षात्कार होताहै। काल की अपेक्षा भी दृढ़ विचारके निमित्त कही है। जब दृढ़ विचार होताहै तब साक्षात्कार होता है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब स्पन्द और निस्पन्द में एक समान होताहै। हे राजन्! जिसके समीप मक्खी है वह मक्खी के निमित्त पर्वत क्यों खोजे और दौड़े तैसेही तेरे घर में ब्रह्मवेत्ता चुड़ाला थी उसका त्यागकर तूने वनमें आ तप का आरम्भ किया इससे बड़ा कष्ट पाया परन्तु अब तू जागा है और तेरा दुःख नष्ट हुआ है अब तू शान्तपद को प्राप्त हुआ है। जैसे रस्सी के न जानने से सर्प भासताहै और भली प्रकार जाननेसे रस्सी ही भासती है तैसेही जिसने भली प्रकार निस्पन्द होकर अपना आप देखा है उसको फुरनेमेंभी आत्मा ही भासता है। जब मन की चपलता मिटती है तब तुरीयातीत पद को प्राप्त होता है; जिस पद को वाणी नहीं कह सक्ती। हे राजन्! तू भी अब उसी पद को प्राप्त हुआ है जो मन और वाणी से रहित तुरीयातीत पद है वहां कोई क्षोभ नहीं केवल शान्तिपद है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधवर्णनंनामैकाशीतितमस्सर्गः ८१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब राजा को कुम्भज मुनि ऐसे उपदेश करचुके; उस के उपरान्त बोले, हे राजन्! अब हम जाते हैं क्योंकि; स्वर्ग में ब्रह्माजी के पास नारद मुनि आये हैं वे यदि मुझे देवताओं की सभा में न देखेंगे तो क्रोध करेंगे। हे राजन्! जो कल्याणकृत पुरुष हैं वे बड़े की प्रसन्नता लेते हैं। जो उपदेश तुझे किया है उसको

भली प्रकार विचारना। सर्व शास्त्रों का सार यही है कि, संपूर्णवासना का त्याग करना और किसी में चित्त को बन्धवान् न करना। मेरे आनेतक स्वरूप में स्थित रहकर किसी चेष्टा में न लगना और स्वरूप को भली प्रकार जानकर चाहे तैसे बिचरना। ऐसे कहकर जब कुम्भज मुनि उठ खड़े हुये तब राजा ने अर्घ्य और फल चढ़ानेके निमित्त हाथ में लिये पर जल और फूल हाथ ही में रहे और कुम्भजमुनि अन्तर्धान होगये। जब राजा ने कुम्भजमुनि को अपने आगे न देखा तब विचार करने लगा कि, देखो ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती कि, नारद मुनि कहां था; उसका पुत्र कुम्भज कहां और मैं राजाशिखरध्वज कहां ? मालूम होताहै नीतिहीने कुम्भज मुनि का रूप धारणकर मुझको जगायाहै। कुम्भज बड़ा मुनि दृष्ट आया जिसने मुझे उपदेश करके जगाया है। अब मैं अज्ञानरूपी गढ़ेसे निकलकर स्वरूप को प्राप्त हुआ हूं; मेरे संपूर्ण संशय नष्ट हुये हैं और मैं निर्दुःख पद में स्थित होकर अज्ञाननिद्रा से जागा हूं—बड़ा आश्चर्य है। हे रामजी ! ऐसे कहकर राजा शिखरध्वज संपूर्ण इन्द्रियां, प्राण और मन स्थित करके चेष्टा से रहित हुआ और जैसे शिला के ऊपर पुतली लिखी होती है और पर्वत का शिखर स्थित होता है तैसेही स्थित हुआ इधर चुड़ाला कुम्भजरूप शरीर का त्यागकर और अपना सुन्दररूप धारणकर उड़ी और आकाश को लांघकर अपने नगर में आई। अन्तःपुर में जहां स्त्रियां रहती थीं प्रवेश करके मन्त्रियों को आज्ञा दी कि, तुम अपने २ स्थान में स्थित हो और आप राजा के स्थान में स्थित होके भली प्रकार प्रजाकी ख़बर लेने लगी। निदान तीन दिन रहकर फिर वहांसे उड़ी और जहां वन में राजा था वहां आपहुंची और कुम्भज का रूप धारकर देखा कि, राजा समाधि में स्थित है इससे बहुत प्रसन्न हुई। हे रामजी ! ऐसे प्रसन्न होकर चुड़ाला ने विचार किया कि, बड़ा सुख कार्य हुआ कि, राजा ने स्वरूप में स्थिति पाई और शान्तिको प्राप्त हुआ। फिर यह विचार कर कि, इसको जगाऊं सिंह की नाईं गरजी और ऐसा शब्द किया कि, उससे वनके पशु पक्षी सब डरगये परन्तु राजा न जगा। फिर उसे हाथ से हिलाया तौभी राजा न जगा। जैसे मेघ के शब्द से पर्वत का शिखर चलायमान नहीं होता तैसेही राजा चलायमान न हुआ और काष्ठ और पाषाण की नाईं स्थित रहा। तब रानी ने विचार किया कि, कहीं राजा शरीर को त्याग न दे, पर फिर विचारा कि, जो राजा ने शरीर का त्याग किया हो तो मैंभी त्यागूं गी। हे रामजी ! चुड़ालाने शरीर न त्यागा परन्तु आरम्भ करने लगी कि, राजा और मुझको इकट्ठा शरीर त्यागना है। फिर विचार करने लगी कि, इसकी भविष्यत् क्या होनीहै। तब राजाके नेत्रों पर हाथ लगाया और देहसे देहका स्पर्शकर देखा कि राजाके शरीरमें प्राण हैं। फिर भविष्यत्का विचार किया कि, इसकी सत्त्व शेष

रहती है इससे जीवन्मुक्त होकर राज्य में विचरेगा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमने कहा कि, राजा काष्ठ और पाषाण की नाईं स्थित हुआ और फिर कहा कि, कुम्भज ने हाथ लगाकर देखा कि, इस में प्राण हैं तो कुम्भज ने क्यों कर जाना? यह मुझको संशय है सो दूर करो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस शरीर में पुर्यष्टका होती है उसमें हरियावलता होती है। हे रामजी! अज्ञानी का चित्त रहता है और ज्ञानी का सत्त्व रहता है जो प्रारब्ध वेग से फुरता है और ब्रह्माकार वृत्ति फुरने से फिर शरीर पाता है। ज्ञानी इष्ट--अनिष्ट में एकसमान रहता और अज्ञानी एक समान नहीं रहता: वह इष्ट में प्रसन्न और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् होताहै। हे रामजी! ज्ञानी जब शरीर को त्यागता है तब ब्रह्मसमुद्र में स्थित होताहै और जबतक सत्त्व शेष है तबतक फुरता है अज्ञानी जब शरीर को त्यागता तब उसमें सूक्ष्म संसार होता है- जैसे बीज में वृक्ष, फूल और फल सूक्ष्मतासे स्थित होता है सो काल पाकर फिर निकलता है। उसी प्रकार राजाका सत्त्व शेष रहताथा उस कारण फिर फुरेगा। तब कुम्भजरूप चुड़ाला ने विचार किया कि, इसके भीतर प्रवेश करके जगाऊं और जो मैं न जगाऊंगी तौभी नीति से इसको जाना है। ऐसे विचार उसने अपने शरीर को त्यागा और चेतनता में स्थित हो, फुरने को लेकर उसमें प्रवेश किया और उसकी चेतनता का जो सत्त्व शेष था उसको फोड़ा और बड़ा क्षोभ किया। जब राजा वहांसे हिला तब आप निकल आई और अपने शरीर में प्रवेश किया। जैसे पखेरू आकाशमें उड़ताहै और फिर आलय में आ प्रवेश करताहै तैसेही वह अपने शरीरमें आन स्थित हुई और सामवेद का गायन मधुरस्वरमे करनेलगी। राजा यह सुनकर कि, कोई सामवेद गाता है जागा और देखा कि, कुम्भजमुनि बैठेहैं। इन्हें देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और फूल और जल चढ़ाकर बोला, हे भगवन्! मेरे बड़े भाग्य हैं-मैं आपका दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुआ। हे भगवन्! कूलरूपी कुलाचल पर्वत है उसमें जो देहरूपी वृक्ष है सो अब फूला है और तुमने हमको पावन किया है। हे भगवन्! किसी की सामर्थ्य नहीं कि, तुम ऐसोंके चित्त में प्रवेश करे। जिसमें सर्वदा आत्मा का निवास है उस चित्त में मेरी स्मृति हुई है कि, आपका दर्शन किया। इससे मेरे बड़े भाग्य हैं। हे भगवन्! अमृतरूपी वचनोंसे तुमने प्रथम मुझे पवित्र कियाथा और अब जो चित्त किया है सो मुझे पावन किया है। कुम्भज बोले, हे राजन्! तेरा दर्शन करके मैं भी बहुत प्रसन्न हुआहूं और तुम्हारी ऐसी प्रीति मैंने आगे किसीमें नहीं देखी। हे राजन्! तेरे निमित्त मैं स्वर्ग से आया हूं। स्वर्ग के सुख मुझे भले न लगे और तू बहुत प्रिय- तम है इसी निमित्त मैं आयाहूं। अब मैं भी स्वर्ग न जाऊंगा; तेरेही पास रहूंगा। राजा बोले, हे भगवन्! जिसपर तुम ऐसों की कृपा होती है उसको स्वर्ग आदिक सुख भले

नहीं लगते तो तुम ऐसोंकी बात क्या कहनी है? यह वनहै और यह झोपड़ी है इस में विश्राम करो; मेरे बड़े भाग्य हैं जो तुम्हारा चित्त यहां चाहता है। कुम्भज बोले, हे राजन्! अब तुझे शान्ति प्राप्त हुई है और संकल्प बीज नष्ट हुआहै। जैसे नदीके किनारे पर की बेलि जल के प्रवाह से मूलसमेत गिरती है तैसेही तेरे संकलपबीज नष्ट हुये हैं। अब तू यथाप्राप्तिमें सन्तुष्ट है कि, नहीं? और हेयोपादेय से रहित हुआ है कि, नहीं; और जो पानेयोग्य पद है सो पायाहै कि, नहीं; अपना अनुभव कह? राजा बोले, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से अब मैंने सबसे श्रेष्ठपद पाया है जहां संसारसीमा का अन्त है। अब मुझे उपदेश का अधिकार नहीं रहा क्योंकि, मेरे सम्पूर्ण संशय नष्ट हुये हैं और हेयोपादेय से रहितहूं इससे सुखी बिचरताहूं। जो कुछ जानना योग्य था सोभी मैंने जाना है। अब मुझ में कोई नहीं और मैं सबठौर तृप्त, अनित, प्राप्तरूप आत्मा अपने निर्मल स्वभाव में स्थित, सर्वात्मा और निर्विकल्प हूं। मुझमें फुरना कोई नहीं; मैं शान्तरूप हूं और चिरपर्यन्त सुखीहूं। इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार राजा और कुम्भज का तीन मुहूर्त संवाद हुआ फिर उसके उपरान्त दोनों उठखड़ेहुये और चले। निकट एक तालाब था जहां बहुत कमलिनी लगी थीं वहां पहुंच दोनोंने स्नान करके गायत्री और सन्ध्या की और पूजाकरके फिर वहां से चले और वन कुञ्जोंमें आये। तब कुम्भजने कहा चलिये। राजाने कहा भली बात है चलिये। निदान दोनों चले और बहुत नगरों, देशों, ग्रामों और तीर्थों को देखते नाना प्रकार के वनों में जो फूल और फल संयुक्त थे और मरुस्थल में बिचरे। हे रामजी! ऐसे वे दोनों तीर्थ आदिक सात्त्विकी स्थानों; सुन्दर वन आदिक राजसीस्थानों और मरुस्थलादिक तामसीस्थानों में बिचरे पर हर्ष शोक को न प्राप्त हुये और समता में रहे। हे रामजी! कुम्भज के फिरने का यह प्रयोजन था कि, देखें राजा शुभ अशुभ स्थानों को देखकर हर्ष शोक करेगा अथवा न करेगा पर राजा हर्ष शोक को न प्राप्त हुआ। फिर उन्होंने बड़े पर्वतों की कन्दरा, वन, कुञ्ज और बड़े कष्टके स्थान देखे और एकवन में जारहे। कुछ काल में राजा और कुम्भज एकही से होगये। दोनों इकट्ठे स्नान करें; एकही से जाप जपें; एकसी पूजाकरें और एक से दोनों सुहृद् हुये। किसी ठौर वे शरीर में माटी लगावें; किसी ठौर चन्दनका लेपकरें; किसी ठौर शरीर में भस्मलगावें; किसी ठौर दिव्य वस्त्र पहिरें; किसी ठौर केलेके पत्रोंपर सोवें; किसीठौर फूल की शय्या हो और किसी ठौर क्रूरस्थानों में शयनकरें। हे रामजी! ऐसे शुभ अशुभ ठौरोंमें भी वे ज्यों के त्यों रहे और हर्षशोक को न प्राप्त हुये। केवल शुद्धसत्त्वमें वे दोनों स्थित रहे और आत्मा के सिवाय और कुछ न फुरा। एकबेर रानी के मन में विचार हुआ कि, यह मेरा भर्त्ता है मैं इसको भोगूं क्योंकि, हमारी अवस्था है। जो भले कुल की स्त्री हैं

वे भर्त्ता को प्रसन्न रखती हैं और राजा का शरीर भी देवतों कासा हुआ है और स्थान भी शुभ है। जबतक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी साथ हैं। फिर विचार किया कि, राजा की परीक्षाभी करूं कि, क्या कहे। इतना विचारकर कुम्भज ने कहा, हे राजन्! अब हम स्वर्ग में जाते हैं क्योंकि, चैत्रशुद्ध एकम को ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न की है; इसीदिन वर्षके वर्ष उत्सव होताहै और वहां नारदमुनि भी आवेंगे। मेरे आनेतक तुम ध्यान में रहना और जब ध्यान से उतरो तो फूलों को देखना। ऐसे कहकर उसने फूलों की मञ्जरी राजाको दी और राजानेभी कुम्भज को फूल की मञ्जरी दी। जैसे नन्दनवन में स्त्री भर्त्तार के हाथ दे और भर्त्तार स्त्री के हाथ दे तैसेही परस्पर दोनोंने दिया। फिर कुम्भज आकाशको उड़ा और जैसे मेघ को मोर देखताहै तैसेही राजा देखतारहा। जहांतक राजा की दृष्टि पड़तीथी वहांतक रानी ने कुम्भज का शरीर रक्खा और जब दृष्टि से अगोचर हुई तब फूलों की माला जो गले में थी तोड़कर राजा के ऊपर डालदी और चुड़ाला का शरीर धारणकर आकाश को लांघ अपने अन्तःपुरमें पहुँची। निदान राजाके स्थानपर बैठकर सबको अपने२ स्थानोंमें स्थित किया और प्रजा की खबरें सुनकर फिर उड़ी। सूर्यकी किरणोंके मार्ग से मेघमण्डल को लांघती हुई जहां राजाका स्थान था वहां आकर देखा कि, राजा वियोगसे शोकवान् है इस लिये आपभी कुम्भजरूप में दिलगीर राजाके आगे आई। राजाने कहा, हे भगवन्! तुमको शोक कैसे हुआ है? ऐसा कौन कष्ट तुमको मार्गमें हुआ है? सब दुःखों का नष्ट करनेवाला ज्ञान है; जो तुम ऐसे ज्ञानवानों को शोक हो तो और की क्या बात कहनी है। हे मुनि! तुमको दुःख का कारण कोई नहीं, तुम क्यों शोकवान् होतेहो और तुमको कौन अनिष्ट प्राप्त हुआ है? तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! मुझे एकदुःखहै सो कहता हूं। जो मित्र पूछे तो सतही कहा चाहिये और दुःखभी नष्ट होता है। जैसे मेघ जड़ और श्यामहोताहै और उसका सज्जन जो है क्षेत्र और पृथ्वी तिसके ऊपर वह वर्षा करताहै तो उसकी जड़ता और श्यामता नष्ट होनी है—इससे मैं तुमसे कहता हूं। हे राजन्! जबतक स्वर्ग में सभा स्थित थी तबतक मैं नारदके पास रहा और जब सभा उठी तब नारदमुनि भी उठे और मुझसे कहा कि, जहां तेरी इच्छा हो तहां जा और मैंभी जाता हूं—क्योंकि, नारद एकही ठौरमें नहीं ठहरते विश्व में घूमते फिरते हैं। तब मैं आकाश को चला तो एकठौर सूर्य से मिलाप हुआ और मेघके मार्ग से तीक्ष्ण वेग से चला। जैसे नदी पर्वत से तीक्ष्ण वेगसे आती है तैसेही मैं तीक्ष्ण वेगसे चला आताथा तो देखा कि, दुर्वासा ऋषीश्वर महामेघ की नाईं श्यामवस्त्र पहिरेहुये और भूषणसंयुक्त जैसे बिजली का चमत्कार होता है उड़े आते हैं। भूषणों का चमत्कार देखकर मैंने दण्डवत् करके कहा, हे मुनीश्वर! तुमने क्या

रूप धारा है जो स्त्रियों की नाईं भासता है? दुर्वासा ने तब रुष्ट होकर मुझसे कहा, हे ब्रह्मा के पौत्र! तू कैसा वचन कहता है? ऐसा वचन मुनीश्वर प्रति कहना उचित नहीं। हम क्षेत्र हैं; जैसा बीज क्षेत्रमें बोइये तैसा उगता है; तूने मुझे स्त्री कहाहै इससे तू भी स्त्री होगा और रात्रिको तेरे सब अंग स्त्रीके होवेंगे। हे मुनीश्वर! जो कल्याण-कृत ज्ञानवान् पुरुष हैं उनमें नम्रता होती है जैसे फलसंयुक्त वृक्ष नम्र होता है तैसेही ज्ञानी भी नम्र होता है–ऐसा वचन तुझे कहना न चाहिये। हे राजन्! ऐसे सुनकर मैं तेरे पास चला आयाहूं और मुझे लज्जा आती है कि, स्त्रीका शरीर धारे देवताओं के साथमें कैसे विचरूंगा–यही मुझको शोक है। राजाने कहा, क्या हुआ जो दुर्वासा ने कहा और स्त्रीका शरीर हुआ? तुमतो शरीर नहीं, निर्लेप आत्माहो? हे मुनीश्वर! तुम अपनी समता में स्थित रहतेहो। ज्ञानवान् पुरुष को हेयोपादेय किसी का नहीं रहता वहतो अपनी समता में स्थित रहताहै? तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! तू सत्य कहताहै। मुझे क्या दुःख है? जो शरीर का प्रारब्ध है सो होता है। यह ईश्वर की नीति है कि, जबतक शरीर होता है तबतक शरीरके स्वभाव भी रहते हैं। शरीर का स्वभाव त्याग करना भी मूर्खता है। जिस स्थान में ज्ञान की प्राप्तिहो उसी चेष्टा में विचरिये और इन्द्रियों का रोकना और मनसे विषयकी चिन्तना करनी भी मूर्खता है। इन्द्रियों और देह की चेष्टा ज्ञानवान् भी करतेहैं परन्तु उसमें बन्धवान् नहीं होते। इन्द्रियां विषय में वर्तती हैं। ईश्वर की आदिनीति इसीप्रकार है। हे राजन्! नीति का त्याग किसीसे नहीं किया जाता–इससे नीतिका क्या त्याग करिये। यह नीति है कि, जबतक शरीर है तबतक शरीरके स्वभाव भी होते हैं। जैसे जबतक तिल है तब तक तेल भी होता है तैसेही जबतक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी होते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे देह और इन्द्रियोंसे चेष्टाभी करतेहैं परन्तु बन्धायमान नहीं होते और अज्ञानी बन्धायमान होते हैं। चेष्टा ज्ञानी भी करते हैं अज्ञानी भी करते हैं। जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि जो ज्ञानवान् हैं वे सर्वचेष्टाभी करतेहैं परन्तु बन्धाय-मान किसी में नहीं होते। हे राजन्! तैसे जो अनिच्छित आ प्राप्त हो और जिसको शास्त्र प्रमाण करें उसको भोगनेमें दूषण कुछ नहीं। राजा बोले, हे भगवन्! ज्ञान-वान् को दूषण कुछ नहीं। जो सत्ता समान में स्थित है उसे दूषण कुछ नहीं होता। अज्ञानी शरीर के दुःख अपने में देखता है उससे दुःखी होता है और ज्ञानवान् शरीर के दुःख अपने में नहीं देखता हे रामजी! ऐसे कहते सूर्य अस्त हुआ तब राजा और कुम्भज दोनों ने सायंकाल में सन्ध्या करके जाप किया और जब रात्रि हुई, तारागण निकलें और सूर्यमुखी कमलों के मुख मूंदगये तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! देख कि, मेरे शिर के बाल बढ़तेजाते हैं, वस्त्र भी टखने तक होगये हैं और स्तनभी स्त्री

की नाईं हैं। निदान चुड़ाला महासुन्दर स्त्री लक्ष्मी की नाईं होगई और उसको देख-कर राजा को एकमुहूर्त शोक रहा उसके उपरान्त सावधान होकर बोला, हे मुनि! क्या हुआ जो तेरा शरीर स्त्री का हुआ? तुमतो शरीर नहीं आत्मा हो—इससे शोक क्यों करतेहो? तुम अपनी सत्तासमान में स्थित रहो जब रात्रिहुई तो रानी ने महा सुन्दररूप धरके फूलोंकी शय्या बिछाई और उसपर दोनों इकट्ठे सोये। हे रामजी! समस्त रात्रि उनको कोई फुरना न फुरा और सत्ता समानमें दोनों स्थितरहे और मुख से कुछ न बोले। जब प्रातःकाल हुआ तब फिर रानी ने कुम्भज का शरीर धारकर स्नान किया और गायत्री से आदि जो कर्म हैं सो किये। इसी प्रकार चुड़ाला रात्रि को स्त्री बनजावे और दिन को कुम्भज पुरुष का शरीर धारे। जब कुछकाल ऐसे बीता तब दोनों वहां से चलकर सुमेरु पर्वत के ऊपर गये और मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत आदिसर्व सुखस्थानों को देखा पर एक दृष्टि को लियेरहे न कोई हर्षवान् हुआ और न शोकवान् ज्यों के त्यों रहे। जैसे पवन से सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही शुभ अशुभ स्थानोंमें वे समान रहे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिर्नामद्व्यशीतितमस्सर्गः॥८२॥

इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार विचरते २ वे मन्दराचल की कन्दरा में पहुँचे तो वहां कुम्भजरूप चुड़ाला ने राजा से परीक्षा के निमित्त कहा, हे राजन्! जब मैं रात्रिको स्त्री होती हूं तब मुझे भर्ता के भोगने की इच्छा होती है क्योंकि, ईश्वर की नीति ऐसीही है कि, स्त्री को अवश्यमेव पुरुष चाहिये जो उत्तम कुल का पुरुष होता है उसको कन्या विवाह करके पिता देता है अथवा जिसको स्त्री चाहे उसको आप देखले—इससे, हे राजन्! मुझे तुझसे अधिक कोई नहीं दृष्टि आता। तूही मेरा भर्ताहै और मैं तेरी स्त्री हूं। तू मुझे अपनी भार्या जानकर जो कुछ स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं सो किया कर। मेरी अवस्था भी यौवन है और तू भी सुन्दर है। ज्ञान-वान अनिच्छित प्राप्त हुये का त्याग नहीं करते। यद्यपि तुझको इच्छा न हो तौभी ईश्वर की नीति इसी प्रकार है उसके उल्लंघनसे क्या सिद्ध होगा? जो अपने स्वरूप-सत्ता में स्थित है उसको ग्रहण त्याग की कुछ इच्छा नहीं परन्तु जो नीतिहै वह करनी चाहिये। राजा बोला, हे साधु! जो तेरी इच्छाहै सो कर मुझको तो तीनों जगत् आकाश-रूप भासतेहैं। मुझे प्राप्त होनेसे कुछ सुख नहीं और अप्राप्ति में दुःख नहीं और न कुछ हर्ष शोक है। जो तेरी इच्छा हो सो कर। कुम्भज बोले, हे राजन्! आजही पूर्ण-मासी का भलादिन है और मैंने आगे से लग्न भी गिनरक्खा है इससे मन्दराचल पर्वत की कन्दरा में बैठकर विवाह करो। निदान राजा और कुम्भज दोनों उठे और जो कुछ सामग्री शास्त्र की रीति से थीं वे इकट्ठी कर दोनों ने गङ्गामें स्नान किया। वस्त्र,

फूल, फल आदि जो विवाह की सामग्री हैं सो कल्पवृक्ष से लेकर दोनों ने फल भोजन किये और सूर्य अस्त हुआ तो दोनों ने सन्ध्योपासनकर कुम्भजने राजा को दिव्य वस्त्र और भूषण पहिनाये और शिरपर मुकुट रक्खा। फिर कुम्भज ने अपना शरीर त्याग कर स्त्री का शरीर धारण किया और राजा से बोला; हे राजन्! अब तू मुझे भूषण पहिरा। तब राजा ने संपूर्ण भूषण फूल और वस्त्र उसे पहिराये और वह पार्वती की नाईं सुन्दर बनी। तब चुड़ाला ने कहा, हे राजन्! मैं अब तेरी स्त्री हूं और मेरा नाम मदनिका है और तू मेरा भर्ता है—मुझे तू कामदेवसे भी सुन्दर भासताहै। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार चुड़ाला ने बहुत कुछ कहा तौभी राजा का चित्त हर्षको न प्राप्त हुआ और विराग से शोकवान् भी न हुआ—ज्योंका त्यों रहा। उसके उपरान्त जब विवाह का आरम्भ हुआ तो चन्दुआदिया और पास सुवर्ण के कलश रखके देवताओं का पूजन किया और जो शास्त्र की विधि थी वह संपूर्ण करके मङ्गल किया। फिर रानी ने यह संकल्प किया कि, संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तुझेदी। और राजा ने संकल्प किया कि, सम्पूर्ण ज्ञाननिष्ठा तुझे दी जब रात्रि एक प्रहर रही तब राजा और रानी ने फूलों की शय्या बिछा के शयन की और आपस में चरचाही करते रहे मैथुन कुछ न किया। प्रातःकाल हुये कुम्भज ने स्त्री का शरीर त्याग कर कुम्भज का शरीर धारा और स्नान संध्यादिककर्म किये। हे रामजी! इसी प्रकार एक मास पर्यन्त मन्दराचल पर्वत में वे रहे। रात्रि को रानी स्त्री का शरीर धरे और दिन को कुम्भज का शरीर धरे और जब तीसरा दिन हो तब राजा को शयन कराके राज्य की सुधि ले और फिर आकर राजा के पास शयन करे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविवाहलीलावर्णनंनामत्र्यशीतितमस्सर्गः॥ ८३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब वहां से वे चले तो अस्ताचलपर्वत में जायरहे और उदयाचल, सुमेरु, कैलास इत्यादिक पर्वतों और कन्दरों और वनोंमें रहे। कहीं एक मास, कहीं दशमास, कहीं पांचदिन, कहीं सप्तदिन रहे। इसीतरह जब एक वन में आये तब रानीने विचारकिया कि, इतने स्थान राजाको दिखाये तौभी इसका चित्त किसी में बन्धवान् नहीं हुआ, इससे अब और परीक्षा लूं। ऐसे विचारकर उसने अपनी ऐसी माया फैलाई कि, तेंतीस कोटि देवता संयुक्त इन्द्र के आगे किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध और अप्सरा नृत्य करती आईं। सर्वसामग्री संयुक्त इन्द्र को देखकर राजा उठा और बहुत प्रीति संयुक्त उसकी पूजा करके बोला, हे त्रैलोक्य के पति! तुम किसलिये वनमें आयेहो सो कहो? इन्द्र ने कहा, हे राजन्! जैसे पक्षी ऊर्ध्वमें उड़ता है और उसकी पेटी में तागा होता उससे उड़ता हुआ भी नीचे आता है, तैसेही हम ऊर्ध्व के वासी तेरे तप और शुभ लक्षणों के तागेरूपी गुणों को श्रवण करके स्वर्ग से

खैंचेचले आते हैं—इस प्रकार हमारा आना हुआ है। इससे, हे राजन्! तू स्वर्ग को चल और स्वर्ग में स्थित होकर दिव्य भोगों को भोग। ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हो अथवा उच्चैःश्रवा घोड़ा जो क्षीरसमुद्र के मथन मे निकला है उस पर आरूढ़ होकर चल। अणिमा, महिमा, गरिमा आदि आठ सिद्धियां भी विद्यमान हैं जो इच्छा हो सो लो और स्वर्ग में चलो। हे राजन्! तुम तत्त्ववेत्ता हो, तुमको ग्रहण त्याग करना कुछ नहीं रहा परन्तु जो अनिच्छित प्राप्त हो उसका त्याग करना योग्य नहीं—इससे स्वर्गमें चलो। राजा बोले, हे देवराज! जाना तहां होताहै जहां आगे न हुआ हो और जहां आगे जाना हुआ हो वहां कैसे जावे? हे देवराज! हमको सबस्वर्गही दृष्टि आता है। जो वहां स्वर्ग हो और यहां न हो तो जाना भी उचित है परन्तु जहां हम बैठे हैं वहांही स्वर्ग भासता है; इससे हम कहां जावें? हमको तीनों लोक स्वर्गदृष्टि आते हैं और सदा स्वर्गरूप जो आत्मा है हम उसीमें स्थित हैं। हमको सर्वथा स्वर्ग भासताहै और हम सदा तृप्त और आनन्दरूप हैं। इन्द्र बोले, हे राजन्! जो विदितवेद पूर्ण-बोध हैं वेभी यथाप्राप्त भोगों को सेवते हैं तो तुम क्यों नहीं सेवते? ऐसे जब इन्द्रने कहा तब राजा त्योंहीं कहकर चुपकरगया। फिर इन्द्रने कहा भला जो तुम नहीं आते तो हमहीं जाते हैं। तुम्हारा और कुम्भज का कल्याण हो। हे रामजी! ऐसे कहकर इन्द्र उठखड़ा हुआ और चला पर जबतक दृष्टि आता था तबतक देवता भी साथ दीखते थे फिर जब दृष्टि से अगोचर हुये तब अन्तर्धान होगये। जैसे समुद्र से तरङ्ग उठकर फिर लीन हाजाते हैं और जाना नहीं जाता कि, कहां गये; तैसेही इन्द्र अन्तर्धान होगया। वह इन्द्र कुम्भजरूप चुड़ाला के संकल्पसे उठाथा जब संकल्प लीन हुआ तब अन्तर्धान होगया और चुड़ालाने देखा कि, ऐसे ऐश्वर्य, सिद्धि और अप्सराओंके प्राप्त भयेभी राजाका चित्त समतामें रहा और किसीपदार्थमें बन्धवान् न हुआ॥

इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्रकरणेमायाशक्रागमनवर्णनंनाम चतुरशीतितमस्सर्गः॥८४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब चुड़ाला इन्द्र का छल करचुकी तब विचारनेलगी कि, ऐसाचरित्र मैंने राजाके मोहनेके निमित्त किया तौभी राजा किसी में बन्धायमान न हुआ और ज्योंका त्योंहीं रहा। बड़ा कल्याण हुआ कि, राजा सत्तासमान में स्थित रहा-इससे बड़ा आनन्द हुआ। अब और चरित्र करूं जिसमें इसको क्रोध और खेद दोनों हों। ऐसे विचारकर राजाकी परीक्षा के निमित्त उसने यह चरित्र किया कि, जब सायंकालका समयहुआ तब गङ्गाके किनारे राजा सन्ध्याकरनेलगा और कुम्भज वनमें रहा और उसमें संकल्पका मन्दिररचा। जैसे देवताओंकी रचना होतीहै तैसेही मन्दिर के पास फूलोंकी एक बाड़ी लगाई और उसमें कल्पवृक्ष आदि नाना प्रकार के फूल फल संयुक्त वृक्ष रचे। एवम् संकलपकी शय्या रचकर एक संकलपका महासुन्दर पुरुष

रचा और उसके साथ अङ्गसे अङ्ग लगा और गलेमें फूलोंकी माला डाल कामचेष्टा करनेलगी। जब राजा सन्ध्या करचुका तौ रानी को देखनेलगा पर वह दृष्टि न आई; निदान ढूंढ़ते २ उस मन्दिर के निकट आया तो क्या देखा कि, एक कामीपुरुष के साथ मदनिका सोई हुई है और दोनों कामचेष्टा करते हैं। तब राजा ने विचारा कि, भले आराम से दोनों सोरहे हैं इनके आनन्द में विघ्न क्यों कीजिये। हे रामजी! इस प्रकार राजा ने अपनी स्त्री को देख तौभी शोकवान् न हुआ और क्रोध भी न किया ज्योंका त्यों शान्तपद में स्थित रहा। मन्दिर के बाहर निकलके वहां एक सुवर्ण की शिला पड़ी थी उसपर आन बैठा और आधेनेत्र मूंदकर समाधिमें स्थितहुआ। दो घड़ी के उपरान्त मदनिका कामी पुरुष को त्यागकर बाहर आई और राजाके निकट आकर अङ्गोंको नग्नकिया और फिर वस्त्रोंसे ढांपा जैसे और स्त्रियां कामसे व्याकुल होती हैं तैसेही चुड़ालाको देखकर राजाने कहा, हे मदनिका! तू ऐसे सुखको त्याग-कर क्यों आईहै? तूतो बड़े आनन्दमें मग्नथी अब वहांही फिरजा। मुझे तो हर्ष शोक कुछ नहीं मैं ज्योंका त्यों हूं परन्तु तेरी और कामी पुरुषकी प्रीति परस्पर देखीहै जगत् में परस्पर प्रीति नहीं होती है इससे तू उसको सुखदे वह तुझे सुखदे। तब मदनिका लज्जा से शिर को नीचे करके बोली, हे भगवन्! क्षमा करो; मुझपर क्रोध मतकरो, मुझसे बड़ी अवज्ञा हुई है परन्तु मैंने जानके नहीं की जैसे वृत्तान्त है सो सुनो। जब तुम सन्ध्या करनेलगे तब मैं वनमें आई तो वहां एक कामी पुरुषका मिलाप हुआ, मैं निर्बल थी और वह बली था उसने पकड़कर मुझे गोद में बैठाया और जो कुछ भावना थी सो किया। मैंने जो पतिव्रता स्त्री की मर्यादा थी उसके अनुसार उसपर क्रोध किया और उसका निरादर किया और पुकार भी की—ये तीनों पतिव्रता की मर्यादा हैं सो मैंने कीं—परन्तु तुम दूर थे और वह बली था मुझे पकड़ और गोदमें बैठाकर जो कुछ भावना थी वह किया। हे भगवन्! मुझ में कुछ दूषण नहीं, इससे तुम क्षमा करके क्रोध न करो। राजा बोले, हे मदनिका! मुझे कदाचित् क्रोध नहीं होता। आत्मा ही दृष्ट आता है तो क्रोध किस पर करूं? मुझे न कुछ ग्रहण है और न त्याग है तथापि यह कर्म साधोंसे निन्दित है, इससे मैंने अब त्याग किया है सुख से बिचरूंगा। हमारा गुरु जो कुम्भज है वह हमारे पासही है; वह और हम सदा निरागरूप हैं और तू तो दुर्वासा के शापसे उपजीहै तुझसे हमारा क्या प्रयोजन है— तू अब उसीके पास जा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमायापिञ्जरवर्णनंनामपञ्चाशीतितमस्सर्गः॥८५॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! तब मदनिकानाम चुड़ालाने विचार किया कि, बड़ा कार्य हुआ जो राजा आत्मपदको प्राप्त हुआ। ऐसे सिद्ध और ऐश्वर्य देखे और क्रूरस्थान

भी दिखाये तौभी राजा शुभ अशुभ में ज्योंका त्यों रहा। इससे बड़ा कल्याण हुआ कि, राजा को शान्ति प्राप्त हुई और रागद्वेष से रहित हुआ। अब मैं इसे अपना पूर्वरूप चुड़ाला का दिखाऊं और सम्पूर्ण वृत्तान्त राजाको जताऊं। ऐसे विचार कर जब मदनिका शरीर से चुड़ालारूप भूषण और वस्त्रसहित प्रकट हुई तब राजा उसे देखकर महाआश्चर्यको प्राप्त हुआ और ध्यानमें स्थित होकर देखा कि, यह चुड़ाला कहांसे आई है। फिर पूछा, हे देवि! तू कहांसे आई है? तुझे देखकर तो मैं आश्चर्य को प्राप्त हुआहूं क्योंकि; ऐसी मेरी स्त्री चुड़ाला थी। तू यहां किस निमित्त आई है और कबकी आई है? चुड़ाला बोली, हे भगवन्! मैं तेरी स्त्री चुड़ाला हूं और तू मेरा स्वामी है। हे राजन्! कुम्भज से आदि इस चुड़ाला शरीरपर्यन्त सर्वचरित्र मैंने तेरे जगाने के निमित्त किये हैं। तू ध्यान में स्थित होकर देख कि, ये चरित्र किसने किये हैं? मैंने अब पूर्वका चुड़ाला का शरीर धारा है। हे रामजी! जब ऐसे चुड़ाला ने कहा तब राजा ध्यान में स्थित होकर देखने लगा और एक मुहूर्तपर्यन्त स्थित रहकर सब वृत्तान्त देखलिया। उसके उपरान्त राजा ने आश्चर्य को प्राप्त होकर नेत्र खोले और रानी को कण्ठसे लगाकर मिला। निदान दोनों ऐसे हर्ष को प्राप्त हुये जो सहस्र वर्ष पर्यन्त शेषनाग उस सुख को वर्णनकरें तौभी न कहसकेंगे। वे ऐसे सत्ता समान में स्थित होकर शान्ति को प्राप्त हुये जिसमें क्षोभ कदाचित् नहीं। राजा और रानी दोनों कण्ठलग के मिले थे इससे अङ्गों में उष्णता उपजी थी इसकारण शनैः२ करके उन्होंने अङ्गखोले और हर्षवान् होकर राजा की रोमावलि खड़ी हो आई और नेत्रों से जल चलनेलगा। ऐसी अवस्था से राजा बोला, हे देवि! मुझपर तूने बड़ा अनुग्रह किया है। तेरी स्तुति मैं नहीं करसक्ता। जो कुछ संसार के पदार्थ हैं वे सब मायामय और मिथ्या हैं। तूने मुझे सत्पदको प्राप्त कियाहै इससे मैं तेरीक्या उपमा दूं। हे देवि! मैंने अब जाना है कि, मैंने राज्य का त्याग कियाहै और इस चुड़ाला के शरीरपर्यन्त सब तेरे चरित्र हैं। तूने मेरे वास्ते बड़े कष्ट सहे और बड़े यत्न किये। आना और जाना, शरीर का स्वांग धारना और उड़ना इत्यादिक तूने बड़ाकष्ट पाया है और बड़े यत्न से मुझे संसार समुद्र से पार करके बड़ा उपकार किया। तू धन्य है और जितनी देवियां अरुन्धती, ब्रह्माणी, इन्द्राणी, पार्वती, सरस्वती और श्रेष्ठकुल की कन्या और पतिव्रता हैं उनसबसे तू श्रेष्ठ है। जिस पुरुष को पतिव्रता प्राप्त होतीहै उसके सबकार्य सिद्ध होकर बुद्धि, शान्ति, दया, शक्ति, कोमलता और मैत्री प्राप्त होती है। हे देवि! मैं तेरे प्रसाद से शान्तपद को प्राप्त भया हूं। अब मुझे कोई क्षोभ नहीं और ऐसा पद शास्त्रों और तपसेभी नहीं मिलता। चुड़ाला बोली, हे राजन्! तू काहे को मेरी स्तुति करता है मैंने तो अपना कार्य किया है। हे राजन्! तू राज्य का त्यागकर

वन में मोह अर्थात् अज्ञान को साथही लिये आया था इससे नीचस्थान में पड़ा। जैसे कोई गङ्गाजल त्याग कर कीचड़ के जल का अङ्गीकार करे तैसेही तूने आत्मज्ञान और अक्रियपद का त्यागकर तप का अङ्गीकार किया था। जब मैंने देखा कि, तू कीचड़ में गिराहै तो मैंने तेरे निकालनेके लिये इतने यत्न किये हैं। हे राजन्! मैंने अपना कार्य कियाहै। राजा बोले हे देवि! मेरा यही आशीर्वाद है कि, जो कोई पतिव्रता स्त्री हों वे सब ऐसे कार्य करें जैसे तूने किये हैं। जो पतिव्रता स्त्री से कार्य होताहै वह और से नहीं होता। हे देवि! अरुन्धती आदि जितनी पतिव्रता स्त्रियां हैं उनमें तू प्रथम गिनी जायगी। मैं जानता हूं कि; ब्रह्माजी ने क्रोधकर तुझे इस निमित्त उपजाया है कि; अरुन्धती आदि देवियों ने जो गर्व किया होगा उस गर्व को मिटावें। इससे, हे देवि! तू धन्य है। तूने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है। हे देवि! तू फिर मेरे अङ्गसे लग। तूने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। हे रामजी! ऐसे कहकर राजा ने रानी को फिर कण्ठलगाया। जैसे नेवला और नवली मिलें और मूर्तिकी नाई लिखे हों। चुड़ाला बोली, हे भगवन्! एक तो मुझसे यह कह कि, ज्ञानरूप आत्मा के एक अंश में जगत् लीन होजाते हैं; ऐसा तूहै सो आपको अब क्या जानता है? अब तू कहां स्थित है? राज्य तुझे कुछ दिखाई देता है वा नहीं, और अब तुझे क्या इच्छा है? शिखरध्वज बोले, हे देवि! जो स्वरूप तूने ज्ञानसे निश्चय कियाहै वही मैं आपको जानता हूं और शान्तरूप हूं। इच्छा अनिच्छा मुझको कोई नहीं रही—केवल शान्तरूप हूं। हे देवि! जिस पद की अपेक्षा करके ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की मूर्त्ते भी शोकसंयुक्त भासती हैं तिस पद को मैं प्राप्त भया हूं; जहां कोई उत्थान नहीं; जो निष्किंचित् है और जिसमें किंचिन्मात्रभी जगत् नहीं। मैं जो था वही हुआहूं, इससे और क्या कहूं। हे देवि! तू ने संसार समुद्र से मुझे पार किया है इससे तू मेरी गुरु है। ऐसे कहकर राजा चुड़ालाके चरणों पर गिर पड़ा और बोला मुझे अज्ञान कदाचित् स्पर्श न करेगा। जैसे तांबा पारसके संगसे सुवर्ण होकर फिर तांबा नहीं होता, तैसेही मैं तेरे प्रसाद से मोहरूपी कीचड़ से निकलाहूं और फिर कदाचित् न गिरूंगा। अब मैं इस जगत् के सुख दुःख से तुष्ट हुआ ज्योंका त्यों स्थित हूं और राग द्वेष के उठाने वाला चित्त मेरा नष्ट होगया है। अब मैं प्रकाशरूप अपने आपमें स्थित हूं। जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है और जलके नष्ट हुये प्रतिबिम्ब भी सूर्यरूप होता है, तैसेही मेरा चित्त भी आत्मरूप हुआ है। अब मैं निर्वाणपद को प्राप्त हो सबसे अतीत हुआ हूं और सर्व में स्थितहूं। जैसे आकाश सर्वपदार्थों में स्थित है और सर्व पदार्थों से अतीत है, तैसेही मैंभी हूं। 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्द मेरे नष्ट हुये हैं और मैं शान्ति को प्राप्त हुआहूं। अब मुझमें ऐसा तैसा शब्द कोई नहीं। मैं अद्वैत और

चिन्मात्रहूं और न सूक्ष्म हूं; न स्थूल हूं। चुड़ाला बोली, हे राजन्! जो तू ऐसे स्थित हुआ है तो तू अब क्या करेगा और अब तुझे क्या इच्छाहै? राजा बोले, हे देवि! न मुझे कुछ अङ्गीकार करनेकी इच्छाहै और न त्याग करनेकी इच्छा है, जो कुछ तू कहेगी सो करूंगा। तेरे कहने को अङ्गीकार करूंगा और जैसे मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है तैसेही मैं तेरे वचनों को ग्रहण करूंगा। चुड़ाला बोली हे प्राणपपि-हृदय के प्रियतम राजा! अब तू विष्णु हुआ है। यह बड़ा उत्तम कार्य हुआ है कि, तेरी इच्छा नष्ट हुई है। हे राजन्! अब उचितहै कि, तू और हम मोह से रहित होकर अपने प्राकृत आचार में बिचरें। अखेद जीवन्मुक्त होकर अपने प्राकृत आचार को क्यों त्यागें। हे राजन्! जो अपने आचार को त्यागेंगे तो और किसी को ग्रहण करेंगे। इसमें हम अपनेही आचार में बिचरते हैं और भोग मोक्ष दोनों को भोगते हैं। हे रामजी! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत हुआ और सायंकाल की सन्ध्या राजाने की फिर शय्या का आरम्भ किया उसपर दोनों सोये और रात्रिभर परस्पर चर्चाही करते एक क्षण की नाईं रात्रि बिताई॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचुड़ालाप्राकट्यंनामषडशीतितमस्सर्गः॥ ८६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब ऐसे रात्रि व्यतीत होकर सूर्य की किरणें फैलीं और सूर्यमुखी कमल खिल आये तब राजाने स्नान का आरम्भ किया और चुड़ाला ने मन के संकल्प से रत्नों की मटकी रच हाथ में ली और उसमें गङ्गादिक सम्पूर्ण तीर्थों का जल डाला और राजा को स्नान कराके शुद्ध किया तब राजा ने संध्यादिक सर्वकर्म किये। तब चुड़ाला ने कहा, हे राजन्! मोह को नाश करके सुखसेही अपने राज्यकार्य करने चाहिये कि, जिससे आनन्द और सुख भोगें। राजा बोले, हे देवि! जो तुझे सुख भोगने की इच्छाहो तो स्वर्ग में भी हमारा राज्य है और सिद्धलोक में भी हमारा राज्य है इससे स्वर्ग में बिचरें? चुड़ाला बोली, हे राजन्! हमको न सुख भोगने की इच्छा है, न त्यागने की इच्छा है; हम तो ज्यों के त्यों हैं। इच्छा और अनिच्छा तब होतीहै जब आगे कुछ पदार्थ भासताहै पर हमको तो केवल आकाश आत्मा दृष्टि आता है; स्वर्ग कहां और नरक कहां—हम सर्वदा एकरस स्थित हैं। हे राजन्! यद्यपि हमको कुछ नहीं तौभी जबतक शरीर का प्रारब्ध है तबतक शरीर रहता है इससे चेष्टा भी होनी चाहिये और चेष्टा करनेसे अपने प्राकृत आचार को क्यों न कीजिये कि; राग द्वेषसे रहित होकर अपने राज्य को भोगें? इससे अब उठो और अष्टवसु के तेज को धारकर राज्य करनेको सावधान हो। राजा ने कहा बहुत अच्छा और अष्टवसु के तेजसंयुक्तहो बोला, हे देवि! तू मेरी पटरानी है और मैं तेरा भर्ताहूं तौ भी तू और मैं एकही हूं। राज्य तब होताहै जब सेना भी हो इससे सेना भी

रच। इतना सुन चुड़ाला ने सम्पूर्ण सेना और हाथी, घोड़े, रथ, नौबत, नगारे, निशान इत्यादिक राज्य की सामग्री रची और सब प्रत्यक्ष आगे आन स्थित हुई। नौबत, नगारे, तुरियां और सहनाई बजने लगीं और जो कुछ राज्य की समाग्री हैं वे अपने २ स्थान में स्थित हुई। राजा के शिरपर छत्र फिरने लगा और राजा और रानी हाथी पर आरूढ़ होकर मन्दराचल पर्वत के ऊपर चले और आगे पीछे सब सेना हुई। राजा ने जिस जिस ठौरपर तप किया था सो रानी को दिखाता गया कि, इस स्थान में मैं इतने काल रहाहूं; इसमें इतना रहाहूं। ऐसे दिखाते दिखाते तीक्ष्ण वेगसे चले। मन्त्री, पुरवासी और नगरवासी राजा को लेने आये और बड़े आदर संयुक्त पूजन किया। इस प्रकार दोनों अपने मन्दिर पहुंचे और आठ दिनतक राजा से लोकपाल और मण्डलेश्वर मिलनेको आतेरहे। इसके उपरान्त राजसिंहासनपर बैठकर दोनों राज्य करनेलगे और समदृष्टि को लिये दश सहस्र वर्षतक राज्य किया। फिर चुड़ाला संयुक्त जीवन्मुक्त होकर बिचरे और दोनों विदेहमुक्त हुये। हे रामजी! दशसहस्र वर्ष पर्यन्त राजा और चुड़ाला ने राज्य किया और दोनों सत्तासमान में स्थित रहे। किसी पदार्थ में वे रागवान् न हुये और किसीसे द्वेषभी न किया ज्योंके त्यों शान्तपदमें स्थित रहे। जितनी राज्य की चेष्टा हैं सो करतेरहे परन्तु अन्तःकरण से किसीमें बन्धवान् न हुये—केवल आत्मपदमें अचल रहे। फिर राजा और चुड़ाला विदेहमुक्तको प्राप्त हुये—जैसे आपको जानतेथे उसीके बल परमाकाश अक्षोभपद में जाय स्थित हुये और जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होताहै तैसेही प्रारब्धवेगके क्षय हुये निर्वाण पद में प्राप्त हुये। हे रामजी! जैसे शिखरध्वज और चुड़ाला जीवन्मुक्त होकर भोगों को भोगते बिचरे हैं तैसेही तुमभी रागद्वेष से रहित होकर बिचरो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजचुड़ालाख्यानसमाप्तिर्नाम सप्ताशीतितमस्सर्गः॥ ८७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शिखरध्वज का सम्पूर्ण वृत्तात मैंने तुमसे कहा; ऐसी दृष्टि का आश्रय करो जो पाप को नाशकरती है और उस दृष्टि के आश्रय से जिस मार्ग के द्वारा शिखरध्वज तत्पद को प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होकर राज्य व्यवहार करता रहा तैसेही तुमभी तत्पद का आश्रयकरो और उसीके परायण हो आत्मपद को पाकर भोग और मोक्ष दोनों भोगो। इसी प्रकार बृहस्पति का पुत्र कच भी बोधवान् हुआहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिस प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच बोधवान् हुआ है सोभी संक्षेप से कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कच बालक जब अज्ञात अवस्थाको त्यागकर पद पदार्थको जाननेलगा तब उसने अपने पिता बृहस्पति से प्रश्न किया कि, हे पितः! इस संसारपिंजरे से मैं कैसे निकलूं? जितना संसार

है वह जीवित से बांधा हुआ है—जीवित अनात्मदेहादिकों में मिथ्या अभिमान करने को कहते हैं जो 'अहं' 'त्वं' मानता है उस संसार से कैसे मुक्त होऊं? बृहस्पति बोले, हे तात! इस अनर्थरूप संसारसे जीव तब मुक्त होताहै जब सर्वका त्याग करताहै। सर्वत्याग किये विना मुक्ति नहीं होती; इससे तू सर्वत्याग कर कि, मुक्तहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पति ने कहा तब कच ऐसे पावन वचनों को सुन ऐश्वर्य का त्यागकर वन को गया और एक कन्दरा में स्थित होकर तप करने लगा। हे रामजी! बृहस्पति को कच के जाने से कुछ खेद न हुआ क्योंकि; ज्ञानवान् पुरुष संयोग वियोग में समभाव रहते हैं और हर्ष शोक को कदाचित् प्राप्त नहीं होते। जब आठवर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब बृहस्पति ने जाकर देखा कि, कच एक कन्दरा में बैठाहै तब वह कचके पास आन स्थित हुआ और कचने पिता का पूजन गुरुकी नाईं किया। बृहस्पतिने कचको कण्ठलगाया और कचने गद्गदवाणी सहित प्रश्न किया; हे पितः! आठ वर्ष बीते हैं कि, मैंने सर्वत्याग किया है तौभी शान्तिको नहीं प्राप्त हुआ? जिससे मुझे शान्तिहो सो कहो। बृहस्पति ने कहा, हे तात! सर्व त्याग करकि, तुझे शान्तिहो। ऐसे कहकर बृहस्पति उठ खड़ाहुआ और आकाश को चलागया। हे रामजी! जब ऐसे बृहस्पति कहकर चलागया तब कच आसन और मृगछाला को त्यागकर और वन को चला और एक कन्दरा में जाकर स्थित हुआ। तीन वर्ष वहां व्यतीतहुये तो फिर बृहस्पति आये और देखा कि, कच स्थित है। तब कचने भलीप्रकार गुरु की नाईं उनका पूजन किया और बृहस्पतिने कचको कण्ठ लगाया तब कचने कहा, हे पितः! अबतक मुझे शान्ति नहीं हुई और मैंने सर्व त्याग भी किया क्योंकि; अपने पास कुछ नहीं रक्खा। इससे जिस करके मेरा कल्याण हो वही कहो। बृहस्पतिने कहा, हे तात! अबभी सर्वत्याग नहीं हुआ; सर्वपद चित्तका जब त्याग करेगा तब सर्वत्याग होगा; इससे चित्त का त्यागकर। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे कहकर जब बृहस्पति आकाश को चलेगये तब कच विचारने लगा कि. पिता ने सर्वपद चित्त को कहा है सो चित्त क्या है। प्रथम वनके पदार्थों को देख कर विचारनेलगा कि, यह चित्त है; फिर देखा कि, यह भिन्न २ है इससे यह चित्त नहीं और नेत्रभी चित्त नहीं क्योंकि; नेत्र श्रवण नहीं और श्रवण नेत्रोंसे भिन्नहैं और श्रवण भी चित्त नहीं। इसी प्रकार सर्व इन्द्रियां चित्त नहीं क्योंकि; एकमें दूसरे का अभाव है इससे चित्त क्या है जिसको जानकर त्याग करूं। फिर विचार किया कि, पिता के पास स्वर्ग में जाऊं। हे रामजी! ऐसे विचार कर उठ खड़ाहुआ और दिगम्बर आकारसे आकाशको चला। जब पिताके पास पहुंचा तब पिताका पूजन करके बोला, हे तेंतीसकोटि देवताओं के गुरु! चित्त का रूप क्या है? उसका रूप कहिये

कि, मैं उसका त्याग करूं। बृहस्पति बोले, हे पुत्र! चित्त अहंकार का नाम है। वह अज्ञान से उपजा है और आत्मज्ञान से इसका नाश होता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्पभासता है और रस्सीके जाननेसे सर्पभ्रम नष्ट होजाताहै। इससे अहंभाव का त्यागकर और स्वरूपमें स्थितहो। कच बोले, हे पितः! अहंभावका त्याग कैसे करूं? 'अहं' तो मैंहीहूं फिर अपना त्याग करके स्थित कैसे होऊं। इसका त्याग करना तो महाकठिन है। बृहस्पति बोले, हे तात! अहंकार का त्याग करना तो महासुगमहै। फूल के मिलने में और नेत्रों के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्न है परन्तु अहंकार के त्यागने नें कुछ यत्न नहीं। हे पुत्र! अहंकार कुछ वस्तु नहीं; भ्रमसे उठा है। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है; रस्सी में सर्प भासता है; मरुस्थल में जल की कल्पना होती है और आकाश में भ्रम से दो चन्द्रमा भासते हैं; तैसेही परिच्छिन्न अहंकार अपने प्रमाद से उपजा है। आत्मा शुद्ध आकाश से भी निर्मलहै और देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे रहित सत्ता सामान्य चिन्मात्रहै, उसमें स्थित हो जो तेरा स्वरूप है; तू आत्मा है, तुझमें अहंकार कदाचित् नहीं है। हे साधो! आत्मा सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वमें स्थितहै उसमें अहंभाव किंचित् नहीं। जैसे समुद्रमें धूलि कदाचित् नहीं तैसेही उसमें अहंकार कदाचित नहीं। आत्मामें न एक ग्रहणहै और न दो ग्रहण-केवल अपने आप में स्थितहै और जो आकार दृष्ट आते हैं वे चित्त के फुरनेसे हैं। चित्त के नष्ट हुये आत्मा ही शेष रहता है; इससे अपने स्वरूप में स्थित हो जिसमें तेरा दुःख नष्ट होजावे। जो कुछ यह दृष्टि आताहै उसम भी आत्मा है। जैसे पत्र, फूल, फल सब बीजसे उत्पन्न होते हैं तैसेही सब आत्माका चमत्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबृहस्पतिबोधनंनामाष्टाशीतितमस्सर्गः॥ ८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पति ने उत्तम उपदेश किया तब कच उसे सुनके स्वरूपमें स्थित हुआ और आत्मा और परिच्छिन्न अहंकार की एकता को प्राप्त होकर आत्मस्वरूप हुआ और जीवन्मुक्त होकर बिचरा। हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्त होकर बिचरा और निरहंकार हुआ है तैसेही तुमभी निराश होकर बिचरो और केवल अद्वैतपद को प्राप्तहो जो निर्मल और शुद्ध है और जिसमें एक और दो कहना नहीं बनता। तुम उसीपद में स्थित हो। तुममें दुःखकोई नहीं; तुम आत्मा हो और तुम में अहंकार नहीं; तुम ग्रहण त्याग किसका करो। जो पदार्थ होही नहीं तो ग्रहण त्याग क्या कहिये? हे रामजी! जैसे आकाश के वन में फूल नहीं है तो उसका ग्रहण क्या और त्याग क्या; तैसेही आत्मा में अहंकार नहीं। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे अहंकार का ग्रहण और त्याग नहीं करते। मूर्ख को एक आत्मा में नाना आकार भासते हैं इससे किसी का शोक करताहै और कहीं हर्ष करता है। तुम

कैसे दुःख का नाश चाहते हो ? दुःख तो तुममें हैही नहीं तो तुम कैसे नाश करने को समर्थ हुये हो ? जो कुछ आकार भासते हैं वे मिथ्या हैं पर उनमें जो अधिष्ठान है वह सत् है। मूर्ख मिथ्या करके सत्की रक्षा करते हैं कि, मेरे दुःख नाश हों। रामजी बोले, हे भगवन् ! तुम्हारे प्रसाद से मैं तृप्त हुआ हूं और तुम्हारे वचनरूपी अमृत से अघाया हूं। जैसे पपीहा एकबूंद को चाहता है और मेघ कृपा करके उसपर वर्षा करके उसको तृप्त करता है तैसेही मैं तुम्हारी शरण को प्राप्त हुआ था और तुम्हारे दर्शन की इच्छा बूंद की नाईं करता था पर तुमने कृपा करके ज्ञानरूपी अमृत की वर्षा की; उस वर्षा से मैं अघाया हूं। अब मैं शान्तपद को प्राप्त हुआ हूं; मेरे तीनों ताप मिटगये हैं और कोई फुरना मुझमें नहीं रहा। तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को सुनता मैं तृप्त नहीं होता। जैसे चकोर चन्द्रमा को देखकर किरणोंसे तृप्त नहीं होता; तैसेही तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से मैं तृप्त नहीं होता; इससे एक प्रश्न करता हूं उसका उत्तर कृपा करके दीजिये ? हे भगवन् ! मिथ्या क्या है और सत् क्याहै जिसकी रक्षा करते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसपर एक आख्यान है सो कहता हूं जिसके सुनने से हँसी आवेगी। आकाश में एक शून्य वन है और उसमें एक मूर्ख बालक है जो आप मिथ्या है और सत्य के रखने की इच्छा करता है कि, मैं इसकी रक्षा करूंगा। अधिष्ठान जो सत्य है उसको वह नहीं जानता। मूर्खता करके दुःख पाता है और जानता है कि, यह आकाश है; मैंभी आकाश हूं; मेरा आकाश है; और मैं आकाश की रक्षा करूंगा। ऐसे विचारकर उसने एक दृढ़ गृह इस अभिप्राय से बनाया कि, इसके द्वारा आकाश की रक्षा करूंगा। हे रामजी ! ऐसे विचार करके उसने गृह की बहुत बनावट की और वह जो किसी ठौरसे टूटे तो फिर बना ले। जब कुछकाल इस प्रकार बीता तो वह गृह गिरपड़ा तब वह रुदन करनेलगा कि, हाय मेरा आकाश नष्ट होगया ! जैसे एक ऋतु व्यतीत हो और दूसरी आवे तैसेही काल पाकर जब वह गृह गिरगया तो उसके उपरान्त उसने एक कुआं बनाया और कहने लगा कि, यह न गिरेगा क्योंकि; इसकी भलीप्रकार रक्षा करूंगा। हे रामजी ! इस प्रकार कुयें को बनाकर उसने सुख माना। जब कुछकाल बीता तो जैसे सूखा पात वृक्ष से गिरता है तैसेही वह कुआं भी गिरपड़ा और वह बड़े शोक को प्राप्त हुआ कि; मेरा आकाश गिरपड़ा और नष्ट होगया अब मैं क्या करूंगा ऐसे शोकसंयुक्त जब कुछ काल बीता तब उसने एक खांहीं बनाई—जैसे अनाज रखने के निमित्त बनाते हैं— और कहने लगा कि; अब मेरा आकाश कहां जावेगा ? मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करूंगा। ऐसी खांहीं बनाकर उसने बहुत सुख माना और अतिप्रसन्न हुआ पर जब कुछ काल पाकर वह खांहीं भी टूट पड़ी क्योंकि; उपजी वस्तु का विनाश होना

अवश्य है–तो फिर वह रुदन करनेलगा कि. मेरा आकाश नष्ट होगया। जब कुछ काल शोक संयुक्त बीता तो उसने एक घट बनाया और घटाकाशकी रक्षा करनेलगा। कुछ काल में वह घटभी जब नष्ट होगया तब उसने एक कुण्ड बनाया और कुण्डाकाश को रक्षा करनेलगा। कुछ काल के उपरान्त कुण्ड भी नष्ट होगया तब शोकवान् हो उसने एक हवेली बनाई और कहनेलगा कि अब मेरा आकाश कहां जावेगा। मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करूंगा। ऐसा विचार कर, वह बड़े हर्ष को प्राप्त हुआ पर जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब वह हवेली भी गिरपड़ी तो वह दुःखको प्राप्तहो कहने लगा कि, हाय! हाय!! मेरा आकाश नष्ट होगया और मुझे बड़ा कष्ट हुआ है। हे रामजी! आत्मज्ञान और आकाशके जाने विना वह मूर्ख बालक इसी प्रकार दुःख पातारहा। जो आपको भी यथार्थ जानता और आकाश को भी ज्योंका त्यों जानता तो यह कष्ट काहेको पाता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणंनामैकोननवतितमस्सर्गः॥ ८९॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह मिथ्यापुरुष कौन था; जिसकी रक्षा करता था वह आकाश क्या था और जो गृह, कूप आदिक बनाता था सो क्या था यह प्रकट करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मिथ्या पुरुष तो अहंकार है जो संवेदन फुरने से उपजा है; आकाश चिदाकाश है उसे वह उपजा जानता है कि, मैं आकाश की रक्षा करूं और आकाश, गृह, घटादिक जो कहा सो देह है। उसमें आत्मा अधिष्ठान है उस आत्मा की रक्षा करने की इच्छा वह मूर्खता से करता है और आपको नहीं जानता कि, मेरा स्वरूप क्या है। उस अपने स्वरूप को न जानने से वह दुःख पाता है। आप मिथ्या है और मिथ्या होकर आकाश को कल्पकर रखने की इच्छा करता है अर्थात् देह से देहीं के रखने की इच्छा करता है कि, मैं जीता रहूं पर देह तो काल से उपजा है–फिर देहके नष्ट होनेसे शोकवान् होता है और अपने वास्तव स्वरूप को नहीं जानता जिसका नाश कदाचित् नहीं होता ऐसे विचार से रहित क्लेश पाता है हे रामजी! जिसमें भ्रम उपजता है उसकी अधिष्ठान सत्ता नहीं होती। सर्व का अपना आप आत्मा है सो कदाचित् नाश नहीं होता उसमें मूर्खता से अहंरूप संसार को जीव कल्पता है। अहंकार, मन, जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति और दृश्य ये सब इसके नाम हैं पर मिथ्या हैं और इसका अत्यन्त अभाव है; अनहोता ही उदय हुआ है और क्षत्रिय, ब्राह्मण इत्यादि वर्ण और गृहस्थादि आश्रम, मनुष्य, देवता, दैत्य इत्यादिक की कल्पना करता है। हे रामजी! यह कदाचित् हुआ नहीं, न होगा और न किसीकाल किसी को है केवल अविचार सिद्ध है और विचार किये से कुछ

नहीं रहता। जैसे रस्सी के अज्ञान से जीव सर्प कल्पता है और जानने से नष्ट होजाता है; तैसेही स्वरूप के प्रमाद से अहंकार उदय हुआ है। तुम्हारा स्वरूप आत्मा है जो प्रकाशरूप, निर्मल, विद्या अविद्याके कार्य से रहित; चेतनमात्र और निर्विकल्पहै। वह ज्योंका त्यों स्थित है; अद्वैत है और प्रमाण को कदाचित् नहीं प्राप्त होता आत्म-तत्त्वमात्र है उसमें संसार और अहंकार कैसे हो? सम्यक्दर्शी को आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता और असम्यक्दर्शी को संसार भासता है, वह पदार्थों को सत् जानता है; संसार को वास्तव जानता है और अपने वास्तवस्वरूप को नहीं जानता है कि, मैं कौनहूं। इसके जानेसे अहंकार नष्ट होजाता है। जितनी कुछ आपदा है उसकी खानि अहंकार है और सर्वताप अहंकार सेही उत्पन्न होते हैं इसके नष्ट हुये अपने स्वरूप में स्थित होता है। और विश्व भी आत्मा का चमत्कार है—भिन्न नहीं, जैसे समुद्र में पवन से नाना प्रकार के तरङ्ग और सुवर्णमें नाना प्रकारके भूषण भासते हैं सो वही रूप है— भिन्न कुछ नहीं तैसेही आत्मा से विश्व भिन्न नहीं। सुवर्ण परि-णाम से भूषण और समुद्र परिणाम से तरङ्ग होता है पर आत्मा अच्युत है और परिणाम को नहीं प्राप्त होता; इससे समुद्र और सुवर्णसे भी विलक्षण है। आत्मा में संवेदन से चमत्कारमात्र विश्वहै सो आत्मस्वरूप है, न कदाचित् जन्मताहै, न मृत्यु को प्राप्त होताहै; न किसी काल में और न किसी से मृत होताहै ज्यों का त्यों स्थित है। जन्म मृत्यु तो तब हो जब दूसरा हो पर आत्मा तो अद्वैत है। जिसको एक नहीं कहसक्के तो दूसरा कहां हो इससे प्रत्येक आत्मा अपना अनुभवरूप है उसमें स्थित हो कि, दुःख और ताप सब नष्ट होजावें। वह आत्मा शुद्ध और निराकारहै। हे रामजी! जो निराकार और शुद्ध है उसे किससे ग्रहण कीजिये, कैसे रक्षा करिये और किसकी सामर्थ्य है कि, उसकी रक्षा करे। जैसे घट के नष्टहुये घटाकाश नष्ट नहीं होता तैसेही देह के नष्टहुये देही आत्मा का नाश नहीं होता। आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है और जन्म मरण पुर्यष्टका से भासते हैं। जब पुर्यष्टका देह से निकल जाती है तब मृतक भासता है और जब पुर्यष्टका संयुक्त है तब जीवत् भासता है। आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्महै और स्थूल से स्थूल है उसका ग्रहण कैसेहो और रक्षा कैसे करिये। स्थूल भी उपदेश के जताने के निमित्त कहते हैं आत्मा तो निर्वाच्य और भाव अभावरूप संसार से रहित है। वह सबका अनुभवरूप है उसमें स्थित होकर अहंकार का त्यागकरो और अपने स्वरूप प्रत्येक आत्मा में स्थित हो॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०मिथ्यापरुषोपाख्यानसमाप्तिर्नामनवतितमस्सर्गः॥९०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार आत्मरूप है और जैसे इसकी उत्पत्ति हुई है सो सुनो। निर्विकल्प शुद्ध आत्मामें चेतन लक्षण मनसे विवर्त स्थित हुआ है

और आगे उसने जगत् कल्पना की है । जैसे समुद्र में तरङ्ग; सुवर्ण में भूषण; रस्सी में सर्प और सूर्य की किरणों में जलाभासहै तैसेही आत्मा में विवर्त मन है पर आत्मा से भिन्न नहीं । जिसको तरङ्ग का ज्ञान है उसको समुद्रबुद्धि नहीं होती, वह तरङ्ग को और जानता है; जिसको भूषण का ज्ञान है वह सुवर्ण नहीं जानता; सर्प के ज्ञान से रस्सी को नहीं जानता और जल के ज्ञान से किरणों को नहीं जानता; तैसेही नाना प्रकार के विश्व के ज्ञानसे जीव परमात्मा को नहीं जानता । जैसे जिस पुरुष ने समुद्र को जाना है कि, जल है उसको तरङ्ग और बुद्बुदे भी जलही भासते हैं जलसे भिन्न कुछ नहीं भासता और जिसको रस्सी का ज्ञान हुआ है उसको सर्पबुद्धि नहीं होती; जिसको सुवर्ण का ज्ञान हुआहै उसको भूषणबुद्धि नहीं होती और जिस को किरणों का ज्ञान हुआ है उसको जलबुद्धि नहीं होती ऐसा पुरुष निर्विकल्प है तैसेही जिस पुरुष को निर्विकल्प आत्मा का ज्ञान हुआ है उसको संसारभावना नहीं होती-उस को ब्रह्मही भासता है। ऐसा जो मुनीश्वर है वह ज्ञानवान् है । हे रामजी ! मन भी आत्मा से भिन्न नहीं । आदि परमात्मासे 'अहं' 'त्वं' आदिकमें मन फुरकर मात्रपद में जो अहंभाव हुआ सो उत्थान है । उससे बहिर्मुख होनेसे अपने निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मस्वरूप का प्रमाद हुआ है और उस प्रमाद होनेसे आगे विश्व हुई है। मनभी कदाचित् उदय नहीं हुआ; आत्मास्वरूपहै इससे उदय हुये की नाईं भासता है। मन और संसार सत् भी नहीं और असत् भी नहीं; जो दूसरी वस्तु हो तो सत् अथवा असत् कहिये पर आत्मा तो अद्वैत ज्यों का त्यों स्थित है और उसका विवर्त मन होकर फुराहै। वही मन कीट है, और वही ब्रह्मा है । फिर ब्रह्माने मनोराज करके स्थावर जङ्गम सृष्टि कल्पी है सो न सत्यहै और न असत्यहै। हे रामजी ! सर्व प्रपञ्च मनने कल्पाहै और उसीने नाना प्रकार के विकार रचेहैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीव सब मन के नाम हैं। जब मन नष्ट होजावे तब न संसार है और न कोई विकार है। यदि मन दृश्य से मिलकर कहे कि, मैं संसार का अन्त लूं तो कदाचित् अन्त न पावेगा क्योंकि संसरना ही संसार है तो फिर संसरने संयुक्त संसारका अन्त कहां? अन्तलेनेवाला वाणी से आगे फुरकर देखताहै-जैसे कोई पुरुष दौड़ता जावे और कहे कि, मैं अपनी परछाहीं का अन्त लूं कि, कहांतक जातीहै तो, हे रामजी ! जब तक वह पुरुष चला जावेगा तबतक परछाहीं का अन्त नहीं होता और जब ठहर जाता है तब परछाहीं का अन्त होजाताहै; तैसेही जबतक फुरनाहै तबतक संसार का अन्त नहीं होता और जब फुरना नष्ट होजाता है तब संसार का भी अन्त होता है और आत्मा ही दृष्टि आता है और संसार का अत्यन्त अभाव होजाताहै पर जो स्फूर्ति-संयुक्त देखेगा तो संसारही भासेगा । हे रामजी ! जिस पदार्थ को मन देखता है वह

पदार्थ पूर्व कोई नहीं चित्त के फुरनेसे उदय होता है। जब चित्त फुरा कि यह पदार्थ है तब आगे पदार्थ हुआ और फुरनेसे रहित होकर देखे तो पदार्थ कोई नहीं भासता केवल शान्तपद है। हे रामजी! अहंकार का त्याग करके यह जो नाना प्रकार की कल्पनाहै उससे रहित निर्विकल्प ब्रह्मपद में स्थितहो। अहंकार नामरूपहै और देह और वर्णाश्रम में माया से कल्पित है। जब उससे रहित होकर देखोगे तब केवल सत्चिदानन्द आत्मपद शेष रहेगा और जब उसपद को अपना आप जानोगे तब तुमहीं सर्वात्मा होकर बिचरोगे और तुमको कोई दुःख न रहेगा। हे रामजी! मनही संसारहै और मनही ब्रह्मासे कीट पर्यन्तहै; मनही सुमेरु है और मनही तृण है और विश्वरूप होकर स्थित हुआ है और वहभी आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे फलही में सम्पूर्ण वृक्ष हैं तैसेही मन आत्मस्वरूपहै; आत्मासे भिन्न मन कुछ वस्तु नहीं। ऐसे जानकर आत्मस्वरूप होगे यह जो बन्ध और मोक्ष संज्ञा है इनका त्यागकर, न बन्ध की वाञ्छाकरो और न मोक्ष की इच्छा करो। इस कल्पना से रहित हो; ऐसे न होवे कि, मुक्त हो और यह बन्ध है; केवल सत्तासमान आत्मपद में स्थित हो। यहीभावना करो जिसमें तुम्हारा सर्व दुःख नष्ट होजावे। ऐसा जो पुरुष है उसका चित्तभाव नहीं रहता उसको सर्व आत्मा भासता है। जैसे जिस पुरुष ने सूर्य को जाना है उस को किरणें भी सूर्यही दृष्टि आती हैं तैसेही जिसको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है उस को जगत् भी आत्मस्वरूप भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनामैकनवतितमस्सर्गः॥९१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी होरहो और सब शङ्काओं को त्यागकर निरन्तर धैर्य धारकर स्थित हो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! महाकर्ता; महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपा करके कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रश्नपर एक आख्यानहै सो सुनिये। एकसमय सुमेरु पर्वत की उत्तरदिशा के शिखर से सदाशिवजी आये, जो चन्द्रमा को मस्तकमें धारे थे और गणों संयुक्त गौरी बायें अङ्ग में जिनके साथ थीं। तब भृङ्गीगण ने जो महातेजवान् था और जिसे आत्मजिज्ञासा उपजी थी हाथ जोड़कर प्रश्न किया कि, हे भगवन्! देवों के देव! यह संसार मिथ्या भ्रम है; इसमें मैं सत्य पदार्थ कोई नहीं देखता यह सदा चलरूप भासता है और जो सत्पदार्थ है उसको मैं नहीं जानता; मेरे ताप नष्ट नहीं हुये और मैं शान्त नहीं हुआ इससे आपको दुःखी देखता हूं। जिससे शान्तिहो सो कृपा करके कहो जिसमें खेद से रहित होकर मैं चेष्टा में विचरूं। पर खेदसे रहित तब होता है जब कोई आसरा होता है। संसार तो मिथ्या है मैं किसका आसरा करूं? इससे मुझसे वह कहिये कि, किसका आश्रय किये मेरे दुःख नष्ट हों? ईश्वर बोले,

हे भृङ्गिन्! तुम महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी होरहो और सर्वशङ्काओं को त्यागकर निरन्तर धैर्य का आश्रय करो; इससे तुम्हारे दुःख नष्ट होंगे। हे रामजी! ऐसे भृङ्गीगण ने जिसको शिवजी ने पुत्र करके रक्खा है श्रवण करके प्रश्न किया है कि, हे परमेश्वर! महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपा करके ज्योंका त्यों मुझसे कहिये? ईश्वर बोले; हे पुत्र! सर्वात्मा जो अनुभवरूप है उसका आश्रय करके विचरो कि, दुःख से रहित हो। इन तीनों वृत्तियों से तुम्हारे दुःख नष्ट होजावेंगे। जो कुछ शुभक्रिया आ प्राप्त हो उसको शङ्का त्याग के करे वह पुरुष महाकर्ता है; धर्म अधर्म क्रिया जो अनिच्छित प्राप्त हो उसको राग द्वेष से रहित होकर जो करे; वह पुरुष महाकर्ता है; जो पुरुष मौनी, निरहंकार, निर्मल और मत्सर से रहित है वह पुरुष महाकर्ता है; जो अनिच्छित प्राप्त हुये का त्याग न करे और जो नहीं प्राप्त हुआ उसकी वाञ्छा न करे वह पुरुष महाकर्ता है; जो पुण्य पाप क्रिया अनिच्छित प्राप्त हों उनको अहंकार से रहित होकर करे, पुण्यक्रिया करने से आप को पुण्यवान् न माने और पाप किये से पापी न माने सदा आपको अकर्ता जाने वह पुरुष महाकर्ता है; जो सर्वत्र में विगतस्नेह है; सत्यवत् स्थित है और निरिच्छित वर्तता है वह महाकर्ता है। जो दुःख के प्राप्त हुये शोक नहीं करता और सुखके प्राप्त हुये से हर्षवान् नहीं होता स्वाभाविक चित्त समताको देखताहै वह कदाचित् विषमता को नहीं प्राप्त होता। सुख की जो भिन्न २ विषमता हैं इससे जो रहित है वह पुरुष महाकर्ता है और जिस पुरुष ने सुख दुःख का त्याग कियाहै वह पुरुष महाकर्ता है। हे भृङ्गिन्! जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तु को रागद्वेष से रहित होकर भोगता है सो महाभोक्ता है और जो बड़ा कष्ट प्राप्त हो उसमें भी द्वेष नहीं करता और बड़े सुख की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता वह पुरुष महाभोक्ताहै। जो बड़े राज्य के सुख भोगने में आपको सुखी नहीं मानता और राज्य के अभाव होने और भिक्षा मांगने में आपको दुःखी नहीं मानता सदा स्वरूप में स्थित है वह महाभोक्ताहै। जो मान, अहंकार और चिन्तना से रहित केवल समता में स्थित है वह महाभोक्ताहै और जो कोई कुछ दे तो आपको लेनेवाला नहीं मानता और शुभक्रिया में भोक्ता हुआ आपको कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता वह पुरुष महाभोक्ता है। जो मीठा, खट्टा, तीक्ष्ण, सलोना, कटु छहों रसों के भोगने में समचित्त रहता है और सम जानता है वह महाभोक्ता है। जो रसवान् पदार्थ प्राप्त हुये से हर्षवान् नहीं होता और विरस के प्राप्त हुये से द्वेषवान् नहीं होता ज्योंका त्यों रहताहै और जैसा बुरा भला प्राप्त हो उसको दुःख से रहित होकर भोगताहै वह पुरुष महाभोक्ताहै। जो कुछ शुभ, अशुभ, भाव, अभाव क्रियाहै उसके सुख दुःखसे चलायमान नहीं होता सो पुरुष महाभोक्ताहै और जिसको मृत्युका भय नहीं और जीनेकी आस्था

नहीं और उदय अस्त में समान है वह महाभोक्ता है। जो बड़े सुख प्राप्त में हर्षवान् नहीं होता और दुःख की प्राप्ति में शोकवान् नहीं ज्योंका त्यों रहता है वह महाभोक्ता है। जो कुछ अनिच्छित प्राप्त हो उसको कर्ताहुआ अहंकार से जो रहित है वह पुरुष महाभोक्ता है। जो पुरुष शत्रु, मित्र और सुहृद् में समबुद्धि रखताहै और विषमता को कदाचित् नहीं प्राप्त होता वह पुरुष महाभोक्ता है। जो कुछ शुभ, अशुभ, दुःख, सुख प्राप्त हो उसको जो धार लेताहै कदाचित् विषमता को नहीं प्राप्त होता-जैसे समुद्र में नदियां प्राप्त होतीहैं उनको धारकर वह सम रहता है; तैसेही ज्ञानवान् शुभ अशुभ को धारकर सम रहताहै। जो संसार, देह इन्द्रियां और अहंकार की सत्ता को त्यागकर स्थित हुआ है और जानता है कि, 'न मैं देह हूं'; 'न मेरी देह है' मैं इनका साक्षी हूं ऐसी वृत्ति के धारनेवाला महात्यागी है और जो सर्व चेष्टा करता है और राग द्वेष से रहित है वह महात्यागी है। जो शुभ अशुभ प्राप्त हुये को अहंकार से रहित होकर करता है वह महात्यागीहै और जो मन, इन्द्रियां और देह भी इच्छा से रहित हुआ है वह सर्वचेष्टा भी करताहै पर महात्यागीहै। जो पुरुष समचित्त, इन्द्रियजित् और क्षमावान् है वह महात्यागी है। हे रामजी! जिस पुरुषने धर्म अधर्म की देह और संसार के मद, मान, मनन इत्यादिक कल्पना का त्याग कियाहै वह महात्यागी है। हे रामजी! इस प्रकार सदाशिवजीने जो हाथमें खप्परलिये, बाघाम्बर ओढ़े और चन्द्रमा मस्तक में धारे हुये परम प्रकाशरूपहैं भृङ्गीगणको उपदेश किया और जैसे भृङ्गीगण बिचरा तैसेही तुमभी बिचरो तो तुम्हारे सब दुःख नष्ट होंगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहाकर्त्राद्युपदेशोनामद्विनवतितमस्सर्गः॥ ९२॥

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जो आपने उपदेश किया वह मैं समझगया। आपने आगे उपशम प्रकरण में उपदेश किया था कि, आत्मा अनन्त और शुद्ध है तब मैंने प्रश्न किया था कि, जो आत्मा अनन्त और शुद्ध है तो यह कलना कैसे उपजी है-जैसे समुद्र निर्मल है उसमें धूलि कैसेहो-तो आपने प्रतिज्ञा की थी कि, इस प्रश्न का उत्तर सिद्धान्तकाल में कहेंगे सो मैं अब सिद्धान्त का पात्र हूं मुझसे कहिये। जैसे स्त्री भर्तासे प्रश्न करती है और भर्ता कृपा करके उपदेश करताहै तैसेही मैं आपकी शरण हूं कृपा करके मुझे उत्तर दीजिये; क्योंकि; आशा और तृष्णा के फांस मेरे टूटेहैं और आशारूपी जाल से मैं निकलाहूं। मेरे हृदद से संशयरूपी धूलि उठगई है उसको वचनरूपी वर्षा से शान्त करो और मेरे हृदय में अन्धकार है उसे वचनरूपी क्रीड़ा मे निवृत्तकरो। आप के वचनरूपी अमृत से मैं तृप्त नहीं होता। हे भगवन्! गुरु के उपदेश किये विना अपने विचार ज्ञान से नहीं शोभता। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष शान्तिमान; क्षमावान् और इन्द्रियजित् है और जिसने मनके संकल्प विकल्प

को जीता है वह सिद्धान्त का पात्र है। हे रामजी! तुम अब सिद्धान्त के पात्र हो इससे उपदेश करताहूं । जो पुरुष राग द्वेष सहित क्रिया में स्थित है और इन्द्रियों के सुखसे जिसको आराम है वह सिद्धान्त के वाक्य "अहंब्रह्मास्मि" और "सर्वब्रह्म" को सुन-कर भोगों में स्थित होता है और अधोगति पाता है क्योंकि; उसको निश्चय नहीं होता और उस का हृदय मलिनहै इससे इन्द्रियों के सुख करके आपको सुखी मानता है और नीच स्थानों को प्राप्त होताहै। जो पुरुष क्षमा आदिक साधनोंसे पवित्र हुआ है उसको "अहंब्रह्मास्मि" और "सर्वब्रह्म" के सुननेसे शीघ्रही भावना से आत्मपद की प्राप्ति होती है। तुम ऐसे जो पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुये हैं उनको स्वरूप की प्राप्ति सुगम होतीहै और जिनका अन्तःकरण मलिनहै उनको प्राप्त होना कठिन है । जैसे भूने बीज को पृथ्वी में बोइये तो उसका अंकुर नहीं होता तैसेही इन्द्रियारामी पुरुष को आत्मा की प्राप्ति नहीं होती और तुम सारिखे जिनका हृदय शुद्ध है उनको ज्ञानकी प्राप्ति होतीहै और वेही इन वचनों को पाकर शोभते हैं। जैसे वर्षाकाल में धान पृथ्वी में वर्षासे शोभा पाते हैं तैसेही सिद्धान्त वचनों को पाकर वे ज्ञानरूपी दीपक से प्रकाशतेहैं। जो ज्ञानवान् पुरुष ऊंची बांह करके कहतेहैं और सब शास्त्र भी कहते हैं उन सर्वशास्त्रों के सिद्धान्तों को और उनके दृष्टान्तों को मैं जानताहूं; इससे सर्व सिद्धान्तोंका सार कहताहूं तुम सुनो तो जो तुम्हारा स्वरूपहै उसको जानोगे। हे रामजी! जिसको अभ्यास करके एक क्षणभी साक्षात्कार हुआ है वह फिर गर्भ में नहीं आता और उसको सत् असत् में कुछ भेद नहीं होता संवेदन में भेद है । जैसे जाग्रत् और स्वप्न के सूर्य के प्रकाश दोनों समान हैं; जाग्रत् में जाग्रत् सूर्य का प्रकाश अर्थाकार होता है और स्वप्ने में स्वप्ने का सूर्य अर्थाकार होता है पर प्रकाश दोनों का सम है और संवित् भिन्न है। स्वप्न को मिथ्या जानता है और जाग्रत् को सत् जानता है तो संवेदनसे भेद हुआ स्वरूप से भेद कुछ न हुआ। जैसे मन से एक बड़ा पर्वत रचिये तो संकल्प से दिखताहै और एक पर्वत बाहर प्रत्यक्ष दिखता है तो संवित् का भेद हुआ स्वरूप दोनों का तुल्य है। जैसे समुद्र में तरङ्ग हैं तो स्वरूप में जल और तरङ्गों का भेद कुछ नहीं पर जिसको जल का ज्ञान नहीं सो तरङ्गही जानताहै, इससे संवित् में भेद है; तैसेही स्वरूप में सत् असत् तुल्य है। वास्तव में कुछ भिन्न नहीं केवल शान्तरूप आत्मा है और शब्द अर्थ संवेदन में है । शब्द अर्थात् नाम और अर्थ याने नामी संवेदन फुरनेसेहैं; जब फुरना नष्ट होजावेगा तब सर्व अर्थभी आत्मा ही भासेगा । जगत् की सत्ता तबतकहै जबतक आत्मा का प्रमाद है और प्रमाद तब तक है जबतक अहंभाव है। जब अहंभाव नष्ट हो तब केवल आत्मा शेष रहेगा जो शुद्ध, विद्या-अविद्या के कार्यसे रहित और कदाचित् स्पर्श नहीं करता । हे रामजी!

अविद्या की दो शक्ति हैं; एक आवरण और दूसरी विक्षेप। आत्मा के न जानने का नाम आवरण है और कुछ जाननेको विक्षेप कहते हैं। वह आत्मा सदा ज्ञानरूप है, उस को आवरण कदाचित् नहीं होता और अद्वैत है, उससे कुछ भिन्न नहीं बना-इसीसे वह शुद्ध, केवल और ज्ञानमात्र है। हे रामजी! जो आत्ममात्र और चिन्मात्र है और जिसमें अहं का उत्थान नहीं केवल निर्वाणपद है और जहां एक और द्वैत कहना भी नहीं केवल अपने आपमें स्थितहै उसमें कलनारूपी धूलि कहांहो? रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सर्वब्रह्म है तो मन, बुद्धि आदिक कौन हैं जिनसे तुम यह शास्त्र उपदेश करतेहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शास्त्रके व्यवहारके अर्थ शब्दहैं परमार्थ में कोई कल्पना नहीं। यह मन, बुद्धि आदिक कुछ वस्तु नहीं; ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। जैसे तरङ्ग जल से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। तैसे मनादिकहैं। आत्मतत्त्व नित्य, शुद्ध और सन्मात्रहै; नाहकी नाईं स्थितहै हे रामजी! ऐसे आत्मा में संसार अविद्याका नाम आदिक कैसेहो? आत्मा ब्रह्महै उससे भिन्न कुछ नहीं। वह सर्वका अधिष्ठान, अविनाशी और देश काल वस्तुके परिच्छेदसे रहितहै। इसीसे ब्रह्म है हे रामजी! ऐसा जो अपना आप आत्माहै उसीमें स्थित हो। यह जगत् जो दृष्टि आताहै सो सर्व चिदाकाशहै भिन्न नहीं। जैसे स्वप्नेमें विश्व देखताहै सो अनुभवमात्रहै तैसेही जाग्रत् विश्वभी आत्मरूप है। ऐसा जो तुम्हारा शुद्ध, नित्य उदित और अविनाशीरूपहै उसमें जब स्थित होगे तब कलना जो तुमको भासतीहै सो नष्ट होजावेगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकलनानिषेधोनामत्रिनवतितमस्सर्गः॥ ९३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसार का बीज अहंकार है। जब अहंभाव होता है तब संसार होताहै पर अहंकार कुछ वस्तु नहीं भ्रम से सिद्ध हुआहै। जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में पिशाच कल्पता है सो पिशाच कुछ वस्तु नहीं उसके भ्रम से होताहै तैसेही अहंकार कुछ वस्तु नहीं स्वरूप के भ्रम से होता है। हे रामजी! जो वास्तव कुछ वस्तु नहीं तो उसके त्यागने में क्या यत्न है? तुम में अहंकार वास्तव नहीं है, तुम केवल शान्तरूप चेतनमात्र हो और उस में अहंभाव होना उपाधि है उससे सुमेरु पर्वत आदिक जगत् बनजाता है सो संवेदनरूप है। चित्तरूपी पुरुष चेतन के आश्रय से फुरता है और विश्वकल्पता है। जैसे रस्सी के आश्रय से सर्प फुरताहै तैसेही चेतन के आश्रय विश्व और चित्त फुरते हैं सो आत्मा से भिन्न नहीं। अहंकार हुये की नाईं हुआ है कि, 'मैं हूं' ऐसा जो अहंभाव है सो दुःख की खानि है। सर्व आपदा अहंकार से होतीहैं। जब अहंकार नष्ट होगा तब सब दुःख भी नष्ट होंगे। हे रामजी! जैसे सूर्य के आगे बादल होते हैं तो प्रकाश नहीं होता और जब बादल दूर होते हैं तब प्रकाशवान् भासता है और कमल प्रफुल्लित होतेहैं; तैसेही आत्मरूपी सूर्य को

अहंकाररूपी बादल का आवरण हुआ है माया के किसी गुण से मिलकर कुछ आप को मानने को अहंकार कहते हैं। जब अहंकाररूपी बादल नष्ट होगा तब आत्मरूपी सूर्य का प्रकाश होगा और ज्ञानवान्रूपी कमल उस प्रकाश को पाकर बड़े आनन्द को प्राप्त होंगे। हे रामजी! इससे अहंकार के नाश का उपाय करो जो तुम्हारे दुःख नष्ट होजावें। वह कौन पदार्थ है जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता? अहंकार के नाश का उपाय करिये तो वहभी नष्ट होजाता है। अहंकार के नष्ट करने का यह उपाय है कि, सत् शास्त्रों अर्थात् ब्रह्मविद्या के बारम्बार अभ्यास और सन्त के संग द्वारा कथा की परस्पर चर्चा करने से अहंकार नष्ट होजाता है। जैसे पानी भरने की रस्सी से पत्थर की शिला घिस जाती है तैसेही ब्रह्मविद्या के अभ्यास से अहंकार नष्ट होता है बल्कि, शिला के घिसने में तो कुछ यत्न भी है पर अहंकार के त्यागने में कुछ यत्न नहीं। हे रामजी! सदा अनुभवरूप जो आत्मा है उसका विचार करो कि, मैं कौन हूं? इन्द्रियां क्या हैं? गुण क्या है और संसार क्या है? ऐसे विचार से इनका साक्षीभूतहो कि, मुझमें 'अहं त्वं' कोई नहीं। इससे तुम अहंकार का नाश करो और शुद्ध हो। मेरा भी आशीर्वाद है कि, तुम सुखी होजाओ। जब अहंकार नष्ट होगा तब कलना कोई न फुरेगी केवल सुषुप्ति की नाईं स्थित होगे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो आपका अहंकार नष्ट हुआ है तो प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे दिखते हो और जो अहंकार नहीं है तो सर्वशास्त्र और ब्रह्मविद्या कहां से उपजे हैं और उपदेश कैसे होताहै? उपदेश में तो अन्तःकरण चारों सिद्ध होते हैं। प्रथम जब उपदेश करने की इच्छा होती है तब अहंकार सिद्ध होताहै; जब स्मरण होता है कि, उपदेश करूं तब चित्तभी चैत्य से सिद्ध होताहै; फिर यह उपदेश करिये यह न करिये, ऐसे संकल्प कियेसे मन की सिद्धि होती है। फिर जब निश्चय किया कि, यह उपदेश करिये तब बुद्धि की सिद्धि होती है। इससे चारों अन्तःकरण सिद्ध होते हैं आप कैसे कहते हैं कि, अहंकार नष्ट होजाता है और सर्वचेष्टा होती हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मस्वरूप में अहंकार आदिक अन्तःकरण और इन्द्रियां कल्पित हैं वास्तव में कुछ नहीं। शास्त्र उपदेश भी कल्पना है, आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है उससे संवेदन करके अहंकारादिक दृश्य फुरे हैं और उसके निवृत्त करनेको प्रवर्त्तते हैं। जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प भासता है तो उसके भय से आदमी दुःख पाता है पर जब कोई कहे कि, यह सर्प नहीं रस्सी है तू भय मतकर, इसको भली प्रकार देख; तो उसके उपदेश से वह भली प्रकार देखताहै तब उसका भय और शोक निवृत्त होजाता है क्योंकि, उसको भ्रम से सर्पभान हुआ था सोभी मिथ्याहै और उसको रस्सी का उपदेश करना भी मिथ्या है क्योंकि, रस्सी तो आगेसे सिद्ध है उपदेश से सिद्ध नहीं होती; तैसेही

रस्सी की नाई आत्मा है उसकी निवृत्ति जो चेतन लक्षणहै उसको अहंभाव कहतेहैं और उस अहंकार के निवृत्त करनेको शास्त्र हुये हैं। आत्मरूपी रस्सी के प्रमाद से अहंकाररूपी सर्प फुरा है और उसके निवृत्त करनेको शास्त्र के उपदेश हुये हैं और आत्मा को जतादेते हैं। जब भली प्रकार रस्सी की नाई आत्मा को जाना तब सर्प की नाई जो परिच्छिन्न अहंकार है सो नष्ट होजाताहै। जैसे नेत्र का मैल जब अञ्जन के लगानेसे नष्ट होजाता है तब ज्योंके त्यों निर्मल नेत्र होतेहैं; तैसेही अज्ञानरूपी मैल गुरु और शास्त्र के उपदेशरूपी सुरमें से नष्ट होजाताहै। वास्तव में न कोई अहं-कार है और न शास्त्र है क्योंकि; आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है परन्तु तौभी गुरु शास्त्र से जाना जाता है। हे रामजी ! ज्ञानवान् के साथ चारों अन्तःकरण और इन्द्रियां भी दृष्टि आती हैं पर उनमें सत्यता नहीं होती—जैसे भूना बीज दृष्टि आता है परन्तु उगने की सत्यता नहीं रखता और जैसे जला वस्त्र देखनेमात्र है पर उसमें सत्यता कुछ नहीं होती तैसेही ज्ञानवान् को अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता और उससे वह कष्ट नहीं पाता जैसे सूर्य की किरणों मे मरुस्थल में जलाभास होता है और उसको देखकर पान करने के निमित्त मृग दौड़ता है और दुःखी होता है तैसेही दृश्यरूपी मरुस्थल में पदार्थरूपी जलाभास को देखकर अज्ञानरूपी मृग दौड़ते हैं और दुःख पाते हैं। जब ज्ञानरूपी वर्षा से आत्मरूपी जल चढ़ा तब चित्तरूपी मृग कहां दौड़े। जब ज्ञानरूपी वर्षा होती है और अनुभवरूपी जल चढ़ता है तब चित्त-रूपी मृग में यत्नरूपी जो फुरना था सो नष्ट होजाता है। हे रामजी ! अहंकार अवि-चार से सिद्धहै और विचार से क्षीण होजाता है। जैसे बरफ़ की पुतली सूर्य की किरणों से क्षीण होती है और जब अधिक तेज होता है तब जलरूप होजाती है, बरफ़ की संज्ञा नहीं रहती; तैसेही अहंकाररूपी बरफ़ विचाररूपी किरणों से क्षीण होजाती है। जब दृढ़ विचार होता है तब अहंकार संज्ञा नष्ट होजातीहै और केवल आत्मा ही रहता है रामजीने पूछा, हे सर्वतत्त्वज्ञ भगवन्! जिसका अहंकार नष्ट होता है उसका लक्षण क्या है सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अज्ञानरूपी गढ़ा संसार है उसमें पदार्थ की भावना से वह नहीं गिरता और जैसे समुद्रमें नदियां स्वाभाविक आय प्राप्त होती हैं तैसेही उसको क्षमा शान्ति आदिक शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होते हैं उसका क्रोध भी नष्ट होजाता है और देखनेमात्र यदि भासता भी है तौभी अर्थाकार नहीं होता; विषमता करके भिन्नभावना हृदयमें नहीं फुरती और केवल सत्तासमानमें स्थित होता है। जैसे शरत्काल का मेघ गर्जता है पर वर्षा से रहित होता है तैसेही इन्द्रियों की चेष्टा वह अभिमान से रहित होकर करता है। जैसे वर्षाऋतु के जानेसे कुहिरा नहीं रहता तैसेही उसकी अभिमान चेष्टा नष्ट होजाती है और लोभ भी मन से जाता

रहता है। जैसे वन में अग्नि लगती है तो मृग और पक्षी उस वन को त्याग जाते हैं तैसेही लोभरूपी मृग उसको त्याग जाते हैं और उसके मन में कोई कामना नहीं रहती। जैसे दिन में उलूक और पिशाच नहीं विचरते तैसेही जहां ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है वहां सम्पूर्ण कामनारूपी तम नष्ट होजाताहै और शान्तरूप आत्मा में स्थित रहता है। जैसे मज़दूर दोपोटों को ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप में उठाता है और गरमी में थकताहै तो उसको डारकर वृक्ष के नीचे सुख से स्थित होताहै तैसेही वासनारूपी पोट है और अज्ञानरूपी धूप है उससे दुःखी होता है पर ज्ञानरूपी बलकर वासनारूपी पोट को डार के सुखसे स्थित होताहै। हे रामजी! उस पुरुष की भोगभावना नष्ट होजाती है और फिर उसे दुःख नहीं देती। जैसे गरुड़ को देखकर सर्प भागता है और फिर निकट नहीं आता, तैसेही ज्ञानरूपी गरुड़ को देखकर भोगरूपी सर्प भागते हैं और फिर निकट नहीं आते। आत्मपद को पाकर ज्ञानी शान्तिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान् होता है और भाव-अभाव पदार्थ उसको स्पर्श नहीं करते और संसार-भ्रम निवृत्त होजाता है। ज्ञान समझनेमात्र है कुछ यत्न नहीं। सन्तों के पास जाकर प्रश्न करना कि, मैं कौन हूं? जगत् क्या है? परमात्मा क्या है? भोग क्या है? और इससे तरकर कैसे परमपद को प्राप्त हूं। फिर जो ज्ञानवान् उपदेशकरे उसके अभ्यास से आत्मपद को प्राप्त होगा अन्यथा न होगा ॥

इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्र० सन्तलक्षणमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुर्णवतितमस्सर्गः ९४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रकार तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकुनामक बड़े राजा जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं तैसेही तुमभी बिचरो क्योंकि, तुमभी उसी कुल में उपजे हो। हे रामजी! वह सूर्यवंशी इक्ष्वाकुराजा मनु का पुत्र और सूर्य का पौत्र सब राजाओं से श्रेष्ठ हुआहै-जैसे पितरोंका राजा धर्महै-और बरफ़ की नाईं उसका शीतल स्वभाव था। जैसे सूर्य को देखकर मणिसे तेज प्रकट होताहै तैसेही उसको देखकर शत्रु तपायमान होतेथे और साधु मित्र और प्रजा को रमणीय भासता था और वे सब उसको देखकर शान्तिमान् होते थे। जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसेही उसको देखकर सब प्रसन्न हों। वह पापरूपी वृक्षों का काटनेवाला कुल्हाड़ा और मित्र का सुखदायक था-जैसे मोरों को मेघ सुखदायक है। सुन्दर वह ऐसा कि जिसको देखकर लक्ष्मी स्थित होरही थी और उसके यश से सम्पूर्ण पृथ्वी पूर रही थी। ऐसा राजा भली प्रकार प्रजा की पालना करता था कि, एककाल उस के मन में विचार उपजा कि, संसार में जरा, मरण आदिक बड़े क्षोभ हैं इस संसार दुःख के तरने का क्या उपाय है। ऐसे वह विचारता था कि, शम्भुमुनि ब्रह्मलोक से आये और उसने उनका भली प्रकार पूजन करके पूछा, हे भगवन्! आपकी कृपा का

पराक्रम मेरे हृदय में बैठ कर प्रश्न करने को-प्रेरता है इससे मैं प्रश्न करता हूं। हे भगवन्! मेरे हृदय में संसार फुरताहै और जैसे समुद्रको बड़वाग्नि जलातीहै तैसेही मुझको जलाता है। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे मुझ को शान्ति हो। हे भगवन्! यह संसार कहांसे उपजाहै; दृश्यका स्वरूप क्याहै और कैसे निवृत्त होता है? जैसे जाल से पक्षी निकल जाता है; तैसेही जन्म, मरण महाजाल संसार से मैं निकलना चाहताहूं और जैसे वरुण समुद्र के सब स्थान जानता है तैसेही तुम जगत् के सब व्यवहारों को जानते और संशय के निवृत्त करनेवाले हो। अज्ञानरूपी तम के नाशकर्ता तुम सूर्य हो और तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से मैं शान्तिको प्राप्त हूंगा। मुनि बोले, हे साधो! मैं चिरकाल पर्यन्त जगत् में बिचरता रहाहूं परन्तु ऐसा प्रश्न मुझसे किसीने नहीं किया-तुमने परमसार प्रश्न किया है? यह प्रश्न अनर्थ का नाश करनेवाला है और तेरी बुद्धि विवेक से विकाशमान हुई दृष्टि आती है। हे राजन्! जो कुछ जगत् तुझको भासता है सो सब असत् है। जैसे रस्सी में सर्प, स्वप्न में गन्धर्वनगर; मरुस्थल में जल; सीपीमें रूपा; आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासते हैं; तैसेही यह जगत् असतरूपहै और जैसे जल में चक्र और तरङ्ग असत्रूप हैं तैसेही जगत् असत्रूप है। जो मन सहित षट् इन्द्रियों से अतीत है और शून्य भी नहीं सो सत् और अविनाशी आत्मा कहाता है। वह निर्मल परब्रह्म सर्व ओरसे पूर्ण और अनन्त है, उसीमें जगत् कल्पित है। हे राजन्! जैसे सर्ववृक्षों में एक ही रस व्यापकहै तैसेही सर्व पदार्थों में एक चिन्मात्रसत्ता व्यापक है और जैसे अचल समुद्र में द्रवता से तरङ्ग फुरते हैं तैसेही परमात्मा में जगत् फुरते हैं। उस महादर्पण में सर्ववस्तु प्रतिबिम्बित होती हैं जैसे समुद्र में कोई तरङ्ग और कोई बुद्बुदे, चक्रादिक होते हैं तैसेही आत्मा में जीवादिक आभास होते हैं। प्रथम फुरनेरूप होते हैं और पीछे कारण कार्यरूप होते हैं सो चित्तशक्ति अपने संकल्प से भूतादिक देह रचकर उसमें स्वरूप के प्रमाद से आत्मा अभिमान करता है। जैसे कुसवारी की क्रिया अपने बन्धन के निमित्त होती है तैसेही जीव को अपना संकल्प बन्धन का कारण होताहै। हे राजन्! जीवकला को स्वरूप का अज्ञान हुआ है। इससे जैसे बालक को अपनी परछाहीं यक्षरूप होकर भय देती है तैसेही यह नाना प्रकार के आरम्भ को प्राप्त हुआ है और अकारणही ब्रह्मशक्ति फुरनेसे कारणभाव को प्राप्त हुआहै। उसमें बन्ध और मोक्ष भासतेहैं तैसेही वास्तवमें न बन्धहै और न मोक्ष है; निरामय ब्रह्मही अपने आपमें स्थितहै और उसमें एक और अनेक कुछ नहीं कह सक्के। इससे बन्ध मोक्ष की कल्पना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनामपञ्चनवतितमस्सर्गः॥ ९५॥

मुनि बोले, हे राजन्! जैसे द्रवता से जलही तरङ्गभाव को प्राप्त होता है तैसेही चिन्मात्र ही संकल्प के फुरनेसे जीव होताहै और वह जीव संसार में कर्मों के वश से भ्रमता हुआ आपको कर्ता देखता है पर सर्वात्मा परब्रह्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता। जैसे सूर्य के प्रकाशसे सब चेष्टा होती हैं और सूर्य अकर्ता है तैसेही आत्मा की शक्ति से जगत् चेष्टा करता है और जैसे चुम्बक पत्थर के निकट लोहा चेष्टा करता है तैसेही आत्मा की चेतनतासे सबदेहादिक चेष्टा करतेहैं और आत्मा सदा अकर्ता है। जैसे जलमें तरङ्ग फुरते हैं तैसेही आत्मा में देहादिक फुरते हैं। जैसे सुवर्ण में भूषणकल्पना होतीहै तैसेही आत्मा में मोह से सुख दुःख कलपते हैं पर आत्मा में कुछ कल्पना नहीं। शुद्ध आत्मा में मूढ़ों ने सुख दुःख की कल्पना की है पर जो ज्ञानवान् हैं उनको मन, चित्त, सुख, दुःख सब आकाशरूप हैं। वे देह से रहित केवल चिदाकाशभाव को प्राप्त होते हैं, जरा, मरण को नहीं प्राप्त होते और सब कार्य को करते दृष्टि आते हैं पर हृदय से सदा अकर्तारूप हैं। जैसे जल और दर्पण में पर्वत का प्रतिबिम्ब पड़ता है परन्तु स्पर्श नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् को क्रिया स्पर्श नहीं करती। शरीर के व्यवहारमें भी वह सदा निर्मलभावहै। हे राजन्! आत्मा सदा स्थितरूपहै परन्तु भ्रम से चञ्चल भासता है। जैसे जल की चञ्चलतासे पर्वत का प्रतिबिम्ब भी चञ्चल होताहै, तैसेही देहादिकसे आत्मा चलता भासताहै पर आत्मा नित्य शुद्ध और अपने आपमें स्थित है। जैसे घटके नाश हुयेसे घटनाश नहीं होता तैसेही देह के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता और जैसे शुद्ध मणि में नाना प्रकार के प्रतिबिम्ब होते हैं पर उनसे वह रञ्जित नहीं होती तैसेही आत्मा में मन, इन्द्रियां और देह दृष्टि आतेहैं पर स्पर्श नहीं करते। जैसे सब मिष्ट पदार्थों में एकही मिठाई व्यापी है तैसेही सब पदार्थों में एक आत्मसत्ता व्यापी है। हे राजन्! आत्मा सदा अचलरूप है परन्तु अज्ञान से चलरूप भासता है। जैसे दौड़ते बालक को सूर्य दौड़ता भासता है तैसेही आत्मा देह के संग से अज्ञानवश विकारवान् भासताहै और जैसे प्रतिबिम्ब का विकार आदर्श को नहीं स्पर्श करता तैसेही देह का विकार आत्मा को स्पर्श नहीं करता। जैसे अग्नि में सुवर्ण डालिये तो मैल दग्ध होजाता है पर सुवर्ण का नाश नहीं होता; तैसेही देह के नाशहुये आत्मा का नाश नहीं होता जो नित्यशुद्ध अवाक् और अचिन्त्यरूपहै। हे राजन्! वह चिन्तवनेमें नहीं आता परन्तु चेतनवृत्ति से सब दिखता है। जैसे राहु अदृष्ट है परन्तु चन्द्रमा के संयोग से दृष्टि आता है, तैसे ही आत्मा अदृष्ट है परन्तु चेतनवृत्ति से जानाजाता है। जैसे शुद्धदर्पण में प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही निर्मलबुद्धि में आत्मा साक्षात् भासता है। और संकल्प से रहित अपने आपमें स्थितहै। जब बुद्धि निर्मल होतीहै तब अपने आपमें उसको पाती है।

हे राजन्! जबतक अपनी बुद्धि निर्मल न हो तबतक शास्त्र और गुरु से ईश्वर नहीं मिलता और जब अपनी बुद्धि सत्पद में निर्मल हो तब अपने आप से दिखता है। जब संसार की सत्यता हृदय से दूर हो और आत्मा का अभ्यास हो तब बुद्धि निर्मल होती है। हे राजन्! सर्वभाव-अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं सो असत् और केवल भ्रममात्र हैं उनकी आस्था का त्याग करो। जैसे कोई मार्ग में चलता है तो अनेकपदार्थ मिलते हैं परन्तु उनमें वह कुछ राग, द्वेष नहीं करता तैसेही देह और इन्द्रियोंके स्नेह से रहित आत्मतत्त्व सदा अपने आप में स्थित है और उसमें देहादिक इन्द्रजाल की नाईं मिथ्या हैं उनकी भावना दूर से त्यागकर नित आत्मा शीतल चित्त में स्थित होरहो। हे राजन्! जीव आपही अपना मित्र है और आपही अपना शत्रुभी है क्योंकि; आत्मा में और का ठौर नहीं-आत्मा में आत्मा का ही भाव है-द्वैत नहीं। जो दृश्य पदार्थ की ओरसे और अनात्म धर्म विषय से खैंचकर चित्त को अपने आपमें स्थित करता है वह अपना आपही मित्र है और जो अनात्म धर्म में पदार्थों की ओर चित्त लगाता है वह अपना आपही शत्रु है। वास्तवमें जो कुछ दृश्यजाल है वहभी आत्मरूप है आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जैसे समुद्र में जलसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं जलही जल है; तैसेही आत्मा से भिन्न जगत् कुछ वस्तु नहीं-सब अनुस्यूत एक आत्मसत्ता ही स्थित है। जैसे अनेक घटों के जल में एकही सूर्य का प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है, तैसेही अनेक देहोंमें एकही आत्मा व्याप रहाहै। वह न अस्त होता है और न उदय होता है; सदा एकरस अविनाशी पुरुष ज्यों का त्यों स्थित है और उसमें अहंभावना करके संसार भासता है। जैसे सीपी में रूपे की बुद्धि होती है तैसेही आत्मा में अहंबुद्धि संसार का कारण है और इसी बुद्धि से सर्व दुःख का भागी होता है। जैसे वर्षाकाल में सब नदियां समुद्रमें प्रवेश करतीहैं तैसेही अनात्म अभिमान से सब आपदा प्राप्त होती हैं। वास्तव में चिन्मात्र और जीव में रञ्चकभी भेद नहीं एकही रूप है। ऐसी जो बुद्धि है सो बन्धन से मुक्तिका कारणहै। आत्मा सर्व में अनुस्यूत व्यापा है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्वठौर में होताहै परन्तु जहां शुद्ध जलहै वहां भासताहै तैसेही आत्मा सबठौर पूर्णहै परन्तु शुद्धबुद्धिमें भासता है। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदों में जल ही व्यापरहा है तैसेही अविनाशी आत्मा दृश्य कलना से सर्वत्र व्यापाहै पर जैसे सुवर्ण में भूषण नहीं तैसेही आत्मा में जगत् का अभावहै। हे राजन्! यह संसार आत्मा में नहींहै; केवल आत्माही है। जो एक वस्तु पात्र की नाईं होती है उसमें दूसरी वस्तु होती है पर आत्मा तो अद्वैतहै दूसरी वस्तु संसार कहां हो? जैसे चित्त से सुवर्ण में भूषण कल्पित हैं-वास्तवमें कुछ नहीं; तैसेही आत्मामें संसार अज्ञानसे कल्पितहै और वास्तव कुछ नहीं-केवल चिदाकाश

है। जैसे नदियां और समुद्र नाममात्र भिन्न हैं, वास्तव में जलही है, तैसेही केवल चिदाकाश में विश्व नाममात्र है। जितने आकार भासते हैं उनको काल भक्षण करता है जैसे नदियों को समुद्र भक्षण करके नहीं अघाता तैसेही पदार्थ समूहों को काल भक्षण करके नहीं अघाता। हे राजन्! ऐसे पदार्थों में क्या अभिलाषा करनी है? कई कोटि सृष्टि उत्पन्न होती हैं और उनको काल भक्षण करताहै–कोई पदार्थ काल से मुक्त नहीं होता जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे उपजते हैं और नष्ट होजाते हैं। इससे तू काल से अतीत पद की भावनाकर कि, काल को भी भक्षण करे। कैसे भावना करिये और कैसे भक्षण करिये सो भी सुन। जैसे मन्दराचल ने अगस्त्यमुनि के आने की भावना करी है तैसेही तुम भी अपने स्वरूप की भावना करो तब काल को भक्षण करोगे। जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्रको भक्षण किया था तैसेही आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्र को भक्षण करेगा। हे राजन्! जन्म मरणादिक जो विकार हैं सो भ्रम करके हैं और आत्मा के प्रमाद से भासते हैं। जब आत्मा को निश्चय करके जानोगे तब कोई विकार न भासेगा, क्योंकि; ये अज्ञानसे रचेहैं–आकाश में कोई नहीं। जैसे भ्रमसे रस्सी में सर्प भासता है सो तबतकहै जबतक रस्सी को नहीं जाना और जब रस्सी को जाना तब सर्पभ्रम निवृत्त होजाता है; तैसेही जन्म मरणादिक विकार आत्मा में तबतक भासता है जबतक आत्मा को नहीं जाना; जब आत्मा को जानोगे तब सर्व विकार नष्ट होजावेंगे। हे राजन्! ऐसा विकार से रहित आत्मा तेरा स्वरूपहै उसकी भावना कर कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें। आत्मपदको कहीं खोजने नहीं जानाहै; न किसी वस्तु को जान कर ग्रहण करना है कि, यह आत्माहै और न किसीकालकी अपेक्षाही है, आत्मा तेरा अपना स्वरूपहै और सर्वदा अनुभवरूपहै। तुझसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं तू आपको ज्यों का त्यों जान। आत्मा के न जाननेसे आप को दुःखी जानता है। मैं मरूंगा, मैं दरिद्रीहूं, मैं दासहूं इत्यादिक दुःख तबतक होते हैं जबतक आत्माको नहीं जाना; जब आत्माको जानोगे तब आनन्दरूप होजावोगे। जैसे किसी स्त्री की गोद में पुत्र हो और वह स्वप्नमें देखे कि, बालक मेरे पास नहीं है तो बड़े दुःख को प्राप्त हो और रुदन करनेलगे पर जब स्वप्नसे जागे और देखे कि, बालक मेरी गोदमें है तो बड़े आनन्दको प्राप्त होतीहै और दुःख शोक नष्ट होजाते हैं। हे राजन्! उसी प्रकार तेरा आत्मा अपना आप है और सदा अनुभवरूप है; उसके प्रमादसे तू आपको दुःखी जानताहै; जब अज्ञानरूपी निद्रामें तू जागेगा तब आपको जानेगा और तेरे दुःख और शोक नष्ट होजावेंगे। देह और इन्द्रियादिक जो दृश्य हैं उनसे मिलकर आपको यह जानना कि 'मैं हूं' यही अज्ञाननिद्रा है। इससे रहित होकर देख कि, आनन्दको प्राप्तहो। यह जो पदार्थ भासते हैं सो सब मिथ्या

हैं जैसे बालक मृत्तिका में राजा, सेना, हाथी और घोड़ा कल्पता है सो न कोई राजा है, न सेना है न कोई हाथी घोड़ा है एक मृत्तिका ही है; तैसेही चित्तरूपी बालक ने आत्मरूपी मृत्तिका में जो राजा और सेना आदिक सम्पूर्ण विश्व कल्पा है सो सब मिथ्या है। हे राजन्! एक उपाय तुझसे कहताहूं उसे कर कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें एक वस्तु जो 'अहं' अभिलाषा सहित फुरना है, उसका त्यागकरो; फिर जहां इच्छा हो वहां बिचरो तुझे दुःखका स्पर्श न होगा। संकल्पही उपाधिहै और उपाधि कोई नहीं। जैसे मणि तृण से आच्छादित होती है तब दृष्टि नहीं आती और जब तृण दूर करिये तब मणि प्रकट होआती है; तैसेही आत्मारूपी मणि वासनारूपी तृण से ढँपीहै; जब वासनारूपी तृण दूर कीजिये तब आत्मारूपी मणि प्रकटहो। हे राजन्! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति से रहित जो आत्मपद है जब उसको प्राप्त होगे तब जानोगे कि, मैं मुक्त हूं। तेरा स्वरूप जो केवल आत्मरूप है उस पद में स्थित हो। वह अजन्मा और नित्यहै। और चेतनमात्र सर्वका अपना आपहै, उसके प्रमादसे दुःख होताहै जैसे बालक मृत्तिकाके खिलौने बनाते हैं और हाथी, घोड़ा आदि उनके नाम कल्पकर अभिमान करते हैं कि, मेरे हैं और उनके नाश होने से दुःखी होते हैं; तैसेही बालकरूप अज्ञानी स्वरूप के प्रमाद से अभिमान करता है कि, यह मेरे हैं; मैं इनकाहूं और उनके नाश होने से दुःखी होता है—ऐसे नहीं जानता कि, सत् का नाश नहीं होता। असत् के नाश होनेसे सत्का नाश मानता है। जैसे घट के नाश होनेसे घटाकाश नाश मानिये तैसेही मूर्खतासे दुःख पाताहै। हे राजन्! तू आपको आत्मा जान। आत्मादिकसंज्ञा भी शास्त्रों ने जताने के निमित्त कल्पी हैं नहीं तो आत्मा निर्वाच्य पदहै; उसमें वाणीकी गम नहीं और इनहींसे जाना जाताहै क्योंकि; मन और वाणी में भी आत्मसत्ता है उसीसे आत्मादिक संज्ञा सिद्धि होती हैं। जैसे जितने स्वप्न के पदार्थ हैं उनमें अनुभवसत्ता है उससे वे पदार्थ सिद्ध होते हैं; तैसेही जितनी कुछ अर्थसंज्ञा हैं सो सब आत्मा से सिद्ध होती हैं। ऐसा जो तेरा स्वरूप है उसमें स्थितहो कि, जरा मृतादिक दुःख नष्टहोजावें। हे राजन्! निस्पन्द होकर देखेगा तब स्पन्द में भी वही भासेगा और स्पन्द—निस्पन्द तुल्य होकर भासेंगे जो समाधि में होवेगा अथवा ऐसेही चेष्टा करेगा तौभी तुल्य होवेगी और न समाधिमें शान्ति भासेगी और न चेष्टा में दुःख भासेगा दोनोंमें एकरस रहेगा। हे राजन्! देना अथवा लेना, यज्ञ, दान आदिक क्रिया जो कुछ प्रकृत आचार प्राप्त हो उनको मर्यादा और शास्त्र की विधिसंयुक्त कर पर निश्चय आत्मस्वरूपमें ही रख। जैसे नट स्वांगों को धारकर सम्पूर्ण चेष्टा करताहै पर उसमें निश्चय नटत्वही का रहताहै, तैसेही तुमभी सर्व चेष्टा करो पर उसके अभिमान और संकल्पसे रहित हो। ग्रहण अथवा त्याग जो कुछ

स्वाभाविक आ प्राप्त हो उसमें ज्योंके त्यों रहो। जब निर्विकल्प होकर अपने स्वरूप को देखोगे तब उत्थानकाल में भी तुम्हें आत्माही भासेगा जैसे जलके जानेसे तरङ्ग फेन बुद्बुदा सर्वजलही भासते हैं तैसेही जब तुम आत्माको जानोगे तब संसारभी आत्मरूप भासेगा। जो आत्माको नहीं जानता उसको जगत् ही दृष्टि आताहै और उससे दुःख पाता है; इससे तू अन्तर्मुख हो और संकल्प को त्यागकर परम निर्वाण अच्युतपद में स्थितहो॥

इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्र० राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनामषण्णवतितमस्सर्गः॥९६॥

मुनि बोले, हे राजन्! यह जो संकल्पपुरुष है सो संकल्प से ही आप बँधाता है और आपही मुक्त होता है। जब संकल्प से दृश्य की भावना करता है तब जन्म मरण को प्राप्त होकर दुःखी होताहै। आपही संकल्प करताहै और आपही बन्धन को प्राप्त होता है जैसे कुसवारी आपही गुफ़ा बनाकर और आपही उसको मूंदकर फँसती है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही दुःख पाता है और जब संकल्प को अन्तर्मुख करता है तब मुक्त होता है और मुक्त ही मानता है। इससे हे राजन्! संकल्प को त्याग कर आत्मा जो सर्वका अपना आप है उसकी भावनाकर कि, तू सुखी हो। हे राजन्! आत्मा के प्रमाद से देह आस्था की भावना हुई है उससे दुःख पाता है; इससे आत्म-स्वरूप की भावना करो। तुम आत्मा चिद्रूप हो। महा आश्चर्य माया है जिसने संसार को मोह लिया है। आत्मा सर्वदा अनुभवरूप और अङ्ग अङ्ग व्यापी है उसको जीव नहीं जानते यही आश्चर्य है। हे राजन्! आत्मा सदा अनुभवरूप उसमें स्थित हो। संसार आत्मा के प्रमाद और फुरने से हुआ है सो सत् भी नहीं। और असत् भी नहीं। जो आत्मा से भिन्न देखिये तो मिथ्या है—इससे सत् नहीं और जो आत्मा के सिवा दूसरा है नहीं इससे असत् भी नहीं। तू आत्मा की भावनाकर। जो कुछ पदार्थ भासते हैं उन्हें आत्मा से भिन्न न जान—सर्वात्मा ही है। आत्मा के सिवा जो और भावना है उसका त्यागकर। हे राजन्! जैसे जल में तरङ्ग और बुद्बुदे होते हैं सो जल से भिन्न नहीं—जलही ऐसे भासते हैं; तैसेही जगत् जो दृष्टि आता है सो आत्मा हो ऐसे भासता है जैसे सूर्य और किरणों में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। आत्मा ही जगत्रूप है और भिन्न २ आकार चित्त शक्ति से हैं सो भिन्न नहीं आत्मसत्ताही है। जैसे तप्त हुआ लोहा वस्त्रादिक को जलाता है; सो लोहे को अपनी सत्ता नहीं अग्नि की सत्ता है; तैसेही चेतन की सत्ता जगत्रूप होकर स्थित हुई है। आत्मा सदा केवलरूपहै जिसमें प्रकाश और तम दोनों नहीं और न सतहै; न असत् है, न कोई देश है, न काल है, न कोई पदार्थ है केवल चेतनमात्र गुणातीत है उसमें न कोई गुणहै न मायाहै केवल शान्तरूप आत्मा है। हे राजन्! वह शास्त्रों और

गुरु के वचनोंसे पाया जाताहै और तपसे नहीं मिलता। केवल अपने आपसे जाना-जाता है और शास्त्रादिक लखा देते हैं परन्तु "यह है" ऐसा कहकर नहीं जानते। द्रष्टा पुरुष अपने आप में जानता है। जैसे सूर्य की ज्योति जो नेत्रों में है वही सूर्य को देखतीहै, तैसेही आत्माही आत्मा को देखताहै और अन्तर्मुख होकर संकल्पसे रहित हुआ अपने आपको देखता है। जब संकल्प बहिर्मुख होता है तब वही दृढ़ होकर स्थित होताहै और फिर उसकी भावना होतीहै। जब संकल्परूप जगत् दृढ़तासे स्थित होताहै तब दुःखदायी होताहै। हे राजन्! जीवको दुःखदायी और कोई नहीं; अपनेही संकल्प करके असम्यक्दर्शी दुःखी होता है और असम्यक्दर्शी को जगत् दृष्टि भी आता है तौभी दुःखदायी नहीं होता। जैसे रस्सी में सर्प की भावना होती है तो भय प्राप्त होताहै फिर जब रस्सी के जाननेसे सर्प भावना दूर होती है तब भयभी जाता रहता है; तैसेही जिस पुरुष को संसार की भावना होती है वह दुःखदायी है। इससे आत्माकी भावनाकर कि, तेरे सब दुःख नष्ट होजावें। हे राजन्! तू सर्वदा आनन्दरूप और अद्वैत है; तेरे में कोई कल्पना नहीं और तू आत्मस्वरूप है। आत्मा षट्विकारों से रहित है; विकार मिथ्या देहके हैं आत्मा शुद्ध है और आत्मा के प्रमाद से विकार भासते हैं। जब तू आत्मा को जानेगा तब कोई विकार न दृष्टि आवेगा क्योंकि; आत्मा अद्वैत है। राजा ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहतेहो कि, आत्मा अद्वैतहै। जो इसप्रकार है तो पर्वत आदिक विश्वका कैसे भान होताहै और पत्थररूप बड़े आकार बनके कहां से उपजे हैं? इसका रूप क्या है कृपा करके कहो? मुनि बोले, हे राजन्! आत्मा में संसार कोई नहीं वह सदा शान्तरूप और निराकार है और उसमें स्पन्द निस्स्पन्द दोनों शक्ति हैं जब निस्स्पन्द शक्ति होतीहै तब केवल अद्वैत भासताहै और जब स्पन्द शक्ति फुरतीहै तब नाना प्रकार के जगत् आकार भासते हैं पर वास्तवमें आत्माहीहै-कुछ भिन्न नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग कुछ और नहीं वहीरूप हैं पर पवन के संयोग से तरङ्ग फुरते हैं तो भिन्न २ दृष्टि आते हैं; तैसेही फुरनशक्ति से अहंकार भिन्न २ भासते हैं-वास्तवमें आत्मस्वरूपहै-इतर कुछ नहीं। जैसे वटके बीजमें पत्र, डाल, फूल और फल अनेक दृष्टि आते हैं तैसेही आत्मसत्ता ने जो नाना प्रकार के आकार धारे हैं यद्यपि वे दृष्टि आतेहैं तौभी कुछ बना नहीं केवल अद्वैत आत्मा ज्योंका त्यों स्थित है और सूक्ष्म सेभी अतिसूक्ष्महै और पर्वत आदिक जो विश्व भासताहै सो आत्मा का चमत्कार है जैसे स्वप्न में पर्वत और वृक्षादिक नाना प्रकार के जो आकार भान होतेहैं वे अनुभवरूप हैं-उनसे इतर कुछ नहीं; तैसेही जाग्रत्‌विश्वभी आत्माका अनुभव-रूप है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। इक्ष्वाकु ने पूछा, हे भगवन्! जो आत्मा सूक्ष्म है तो पर्वतादिक स्थूल असत्‌रूप सत् होकर कैसे भासते हैं सो कृपा करके कहो? मुनि

बोले, हे राजन्! आत्मा में अनन्त शक्ति है सो आत्मा से भिन्न नहीं वही रूप है। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नहीं, तैसेही आत्मा की शक्ति आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे पवन में दो शक्ति हैं—स्पन्द और निस्स्पन्द सो वही रूप है—स्पन्दशक्ति से प्रकट भासता है और निस्स्पन्द से प्रकट नहीं भासता; तैसेही आत्मामेंभी स्पन्द—निस्स्पन्द दो शक्ति हैं। जब स्पन्दशक्ति फुरती है तब अहंभाव प्रकट होताहै और जब अहंभाव हुआ तब चित्त उदय होताहै। अहंही चित्त है; जब चित्त हुआ तब आकाशकी भावना से आकाश बनजाताहै; जब स्पर्श की भावना हुई तब पवन उत्पन्न होताहै; रूप की भावना से अग्नि बनती है और जब रस की भावना हुई तब जल उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार चित्त की कल्पनासे तत्त्व उपजेहैं। जब चारोंतत्त्व इकट्ठेहुये तब एक अण्डहुआ और जब दृढ़ संकल्प किया तब स्वायंभू मनु हुआ। जब अण्ड फूले तब स्वर्ग मध्य और पाताल तीन लोक हुये वे तीनोंलोक राजस सात्त्विक और तामस तीनों गुण हुये। फिर पर्वत आदिक दृश्य पदार्थ हुये। हे राजन्! केवल संकल्पमात्र ही सब हुये हैं। जब स्पन्दशक्ति फुरती है तब इस प्रकार आत्मा में भासतेहैं परन्तु कुछ बना नहीं। जैसे समुद्र में फेन और बुद्बुदे फुरते हैं सो जलरूप हैं—जलसे कुछ भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। आदिमनु जो स्वायंभू हैं उनके संकल्प ने आगे मन कल्पे हैं। इसी प्रकार त्रिगुणमय सृष्टि उत्पन्न होतीहै सो केवल संकल्पमात्रहै। जबतक चित्त है तबतक विश्व है; जब चित्त फुरनेसे रहित हुआ तब निस्स्पन्दशक्ति होती है और जब निस्स्पन्द हुई तब फिर जगत् नहीं देखाईदेता। हे राजन्! यह विश्व मनके फुरनेसेहै और सत्य की नाईं स्थित हुआ है। सत् जो है सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु सो नहीं भासता और असत् सत् की नाईं भासता है। वह सत् कैसे असत् की नाईं हुआ है और असत् कैसे सत् की नाईं हुआ है सो सुन। सत् जोहै सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु नहीं भासती और असत् जो परिच्छिन्नरूप देश, काल, वस्तु परिच्छेदसंयुक्त हैं वह सत् की नाईं हुई है। जहां देखिये वहां दृश्य ही गुणमय संसार भान होता है। महाआश्चर्यरूप माया है जिसने सत्य को असत्य की नाईं किया है और असत्य को सत्य की नाईं स्थित किया है सो चित्त के सम्बन्धसे ही संसार भासता है आत्मा में संसार कोई नहीं। जब चित्त को स्थित करके देखोगे तब तुम्हें संसार न भासेगा। जैसे गम्भीर जल होताहै तो चलता नहीं भासता तैसेही गम्भीर आत्मा में संसार नहीं जानाजाता कि, कहां फुरता है। संसारभी आत्मासे भिन्न कुछ वस्तु नहीं आत्मस्वरूप ही है। जैसे अग्नि के चिनगारे और जल के तरङ्ग जल से भिन्न नहीं और मणि का प्रकाश मणिसे भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा से संसार भिन्न नहीं केवल आत्मस्वरूप है। ऐसे आत्मा को जानकर शान्तिमान् हो कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें। केवल शान्तपद

आत्मा तेरा अपना आप है। अपने स्वरूप को भूलके तू दुःखी हुआ है। जब आत्मा को जानोगे तब संसार भी आत्मरूप भासेगा क्योंकि; आत्मस्वरूपहै आत्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं। ऐसा आत्मा तेरा स्वरूपहै उसमें स्थितहो। हे राजन्! यह सर्व जगत् चिदाकाशरूपहै; यही भावना दृढ़ करो जिसको ऐसी भावना दृढ़है और जिसकी सब इच्छा शान्त होगई उस पुरुष को कोई दुःख नहीं लगता। उसने निरिच्छारूपी कवच पहिनाहै। हे राजन्! जो अहं के अर्थ से रहित है, जिसका सर्वशून्य होगया है और जिसने निरालम्ब का आसरा कियाहै वह पुरुष मुक्तिरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमनइक्ष्वाकुआख्यानेसर्वब्रह्मप्रतिपादनं नामसप्तनवतितमस्सर्गः॥ ९७॥

मनु बोले, हे राजन्! यह संसार आत्मासे कुछ भिन्न वस्तु नहीं। जैसे जल और तरङ्ग; सूर्य और किरणें; अग्नि और चिनगारे भिन्न नहीं तैसेही आत्मा और संसार भिन्न नहीं—आत्मस्वरूप हीहै। जैसे इन्द्रियोंके विषय इन्द्रियोंमें रहतेहैं तैसेही आत्मा में संसारहै। जैसे पवनमें स्पन्द—निस्स्पन्दशक्तिहै सो पवनसे भिन्न नहीं; तैसेही संसार आत्मा से भिन्न नहीं—आत्मस्वरूप है। हे राजन्! विषय की सत्यता को त्याग कर केवल आत्माकी भावनाकर कि, तेरे संशय मिटजावें। तुम आत्मस्वरूप और निर्गुण हो; तुम को गुणों का स्पर्श नहीं होता और तुम सबसे परे हो। जैसे आकाशमें धूल, धुवां, मेघ और बादल विकार भासते हैं पर आकाश को कुछ लेप नहीं करते—आकाश अद्वैतरूप है; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष जिनको आत्मज्ञान हुआ है उनको सुख, दुःख, राजस, तामस, सात्त्विक गुण लेप नहीं करते। यद्यपि उनमें लोकदृष्टि से ये गुण दीखते हैं पर वे अपनेमें नहीं दीखते। जैसे समुद्र में अनेक तरङ्ग जलरूप होते हैं और शुद्धमणि में नील, पीत आदिक प्रतिबिम्ब पड़ते हैं सो देखनेमात्र हैं, मणि को स्पर्श नहीं करते; तैसेही जिस पुरुष के हृदय से वासना का मल दूर हुआ है उसके शरीर को सम्बन्ध करके राजस, सात्त्विक और तामस गुणोंके कार्य सुख दुःख देखनेमात्र होते हैं परन्तु स्पर्श नहीं करते। उसमें केवल सत्ता समान पद का निश्चय होता है और उसको कोई रङ्ग स्पर्श नहीं करता। जैसे आकाश को धूल का लेप नहीं होता तैसेही आत्मा को गुणों का सम्बन्ध नहीं होता। जो पुरुष ऐसे जानता है उसको ज्ञानी कहते हैं। जब जीव निस्स्पन्द होता है तब आत्मा होता है और जब स्पन्द होता है तब संसारी होता है। जब चित्त फुरता है तब अनेक सृष्टि भासती हैं और जब चित्त फुरनेसे रहित होता है तब संसार का अत्यन्ताभाव होता है और प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता। तब संसार भी केवल आत्मरूप होजाता है। इस से हे राजन्! वासना को त्यागकर चित्त को स्थिर करो। यह वासनाही मल है। जब

वासना का त्याग होगा तब केवल आकाशकी नाईं आपको स्वच्छ जानोगे। आत्मा वाणी का विषय नहीं; वह केवल आत्मत्वमात्र है; अपने आप में स्थित है और सर्वदा उदयरूप है। विश्व भी आत्मा का चमत्कार है कुछ भिन्न वस्तु नहीं। द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी है सो अज्ञान से भासती है; आत्मा सर्वदा एकरूप और त्रिपुटी से रहित है। फुरने से आत्माही त्रिपुटीरूप होकर स्थित हुआ है; इससे चित्त को स्थिर कर देख कि, आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। फुरने में संसार है जब फुरना मिटता है तब संसार भी मिट जाता है। उस फुरनेकी निवृत्ति के लिये सप्तभूमि का कहता हूं। जब प्रथम जिज्ञासु होताहै तब चाहता है कि; सन्तजनों का संग करूं और ब्रह्मविद्या शास्त्र को देखूं और सुनूं—यह प्रथम भूमिका है। भूमिका चित्त के ठहराने के ठौर को कहते हैं। फिर जब सन्तों के संग और शास्त्रों से बुद्धि बढ़ी तब सन्तों और शास्त्रों के कहनेको विचारना कि, मैं कौन हूं और संसार क्या है—यह दूसरी भूमिका है। उसके उपरान्त यह विचारना कि, मैं आत्मा हूं; संसार मिथ्या है और मुझमें कोई संसार नहीं; ऐसी भावना बारम्बार करनी तीसरी भूमिका है। जब आत्मभावना की दृढ़ता से आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सम्पूर्णवासना मिटजाती हैं और जब स्वरूप से उतर कर देखता है तब संसार भासता है परन्तु स्वप्न की नाईं जानता है—इससे वासना नहीं फुरती। ऐसे जो अवलोकन हैं सो चौथी भूमिका है। जब अवलोकन होता है तब आनन्द प्रकट होता है। ऐसे महाआनन्द का प्रकट होना पञ्चम भूमिका है। जब आनन्द प्रकट होता है और उसमें बल से स्थित हुआ तो इसका नाम पञ्चम भूमिका है। तुरीयापद छठी भूमिकाहै। चित्तके दृढ़ता का नाम तुरीया है। जब तुतरीयातीतपद को प्राप्त होता है तब परम निर्वाण होता है—उसको सप्तम भूमिका कहते हैं। उस परमनिर्वाण पद की जीवन्मुक्ति को गम नहीं क्योंकि; तुरीयातीतपद है उसको वाणी से नहीं कह सक्के। प्रथम तीन भूमिका जो कही हैं सो जाग्रत् अवस्था हैं; उन में श्रवण, मनन और निदिध्यासन करता है और संसार की सत्ता भी दूर नहीं होती। चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है उसमें संसार की सत्ता नहीं होती और पञ्चम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है क्योंकि; आनन्दघन में स्थित होता है। छठी भूमिका तुरीयापद है जो जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति तीनों का साक्षी है; उसमें केवल ब्रह्मही प्रकाशता है और निर्वाणपद में चित्त की लय होजाती है। तुरीयापदमें जीवन्मुक्त विचरते हैं। सप्तम भूमिका तुरीयातीतपदहै सो परमनिर्वाणपद है। तुरीया में ब्रह्माकारवृत्ति रहती है और ब्रह्माकारवृत्ति भी लीन हो जाती है जहां वाणी की गम नहीं वहां चित्त नष्ट होजाता है; वह केवल आत्मत्वमात्रहै और अहंभाव नहीं होता। शान्त और परमनिर्वाण तेरा स्वरूप है और सर्व

विश्व भी वही रूप है कुछ भिन्न नहीं। जैसे सुवर्णही भूषण हैं और और सुवर्ण में भूषण कल्पता है। भूषण भी परिणाम से होता है पर आत्मा सदा अच्युतरूप है और कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त होता। वह केवल एकरस है उसने चित्त के फुरने से विश्व कल्पा है इससे विकार संयुक्त भासता है। हे राजन्! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है उसमें स्थित होकर अपने प्रकृत आचार में निरहंकार होकर विचरो बल्कि अहंकार के त्याग का अभिमान भी त्यागकर केवल आत्मरूप हो रहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमनिर्वाणवर्णनंनामाष्टनवतितमस्सर्गः॥९८॥

मनुबोले, हे राजन्! सर्वचिदाकाश सत्ता आदि–मध्य–अन्त से रहित अनाभास ज्योंका त्यों स्थित है और आगेभी वही स्थिर रहेगा। उसमें न ऊर्ध्व है, न अध है, न तम है, न प्रकाश है और न कुछ उससे भिन्न है। सर्वकी सत्ता है जो चिन्मात्र परम सार है उसने आपही संकल्प से चिन्तना की तब जगत् हुआ। हे राजन्! यह विश्व आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। जैसे जल में तरङ्ग, मिरच में तीक्ष्णता, शक्कर में मधुरता; अग्नि में उष्णता; बरफ़ में शीतलता; सूर्य में प्रकाश; आकाश में शून्यता और वायु में स्पन्द है; तैसेही आत्मा में विश्वहै सो आत्मस्वरूपही है कुछ भिन्न नहीं। हे राजन्! जो सब आत्मस्वरूपही है तो शोक और मोह किसका करता है? जैसे काष्ठ की पुतली यन्त्रीके तागेसे अनिच्छित चेष्टा करती है तैसेही नीतिरूप तागे से अभिमान से रहित होकर तूभी विचार और यह निश्चय रख कि, न मैं कुछ करताहूं; न कराता हूं और किसी में रागद्वेष न कर। जैसे शिलापर जो मूर्ति लिखी होती है उसको न किसीका राग है और न द्वेष है; तैसेही तूभी बिचर कि आत्मा से भिन्न कुछ न फुरे ऐसा निरहंकार हो। चाहे व्यवहारी गृहस्थ हो, चाहे संन्यासी हो; चाहे देहधारी हो, चाहे देहत्यागी हो; चाहे विक्षेपी हो; चाहे ध्यानी हो तुझे कोई दुःख न होगा ज्यों का त्योंही रहेगा। फुरना ही संसार है और फुरने से रहित असंसार है। जब फुरता है तब संसारी होताहै और जब फुरना मिटजाता है तब केवल आकाशरूप भासता है। हे राजन्! यह जगत् सब आत्मरूप है और आत्माही अपने आपमें स्थित है। जो सर्वात्माही है तो शोक और मोह किसका कीजिये? हे राजन्! आत्मा सर्वदा एकरस है और विश्व आत्माका चमत्कारहै। जन्म मरण आदि नाना विकार आत्मा के अज्ञान से भासते हैं; जब आत्मा का ज्ञान होगा तब आत्मरूपही एकरस भासेगा और विषमता कुछ न भासेगी। संवेदन से आकार भासते हैं। संवेदन अहंकार और वासना के सम्बन्ध को कहते हैं। अहंकार और चित्त दोनों पर्याय हैं। हे राजन्! इस का अहंकार के साथ होनाही दुःखदायी है। केवल चिन्मात्र में अहंभाव मिथ्या है। जबतक संवेदन दृश्यकी ओर फुरती है तबतक दृश्यका अन्त नहीं आता और नाना

प्रकार के विकार भासते हैं पर जब संवेदन आत्मा अधिष्ठान की ओर आतीहै तब आत्मा शुद्ध अपना आप होकर भासताहै । संवेदन भी आत्मा का आभास कल्पित है; आभास के आश्रय विश्व कल्पाहै और फुरने में भी और अफुरने में भी आत्मा ज्योंका त्यों है परन्तु फुरने में विषमता भासती है और अफुरने में ज्यों का त्यों भासता है। जैसे रस्सी के अज्ञानसे सर्प भासता है और जब रस्सी का ज्ञान होता है तब सर्प की विषमता जाती रहती है और ज्यों की त्यों रस्सी भासती है पर सर्प भासनेके कालमें भी रस्सी ज्योंकी त्योंहीं थी; उसमें कुछ नहीं हुआ था—जानने न जानने में एक समानही थी; तैसेही आत्मा भी फुरने के काल में जगत् भासता है और फुरने से निवृत्त हुये आत्मा ही भासता है पर आत्मा दोनों काल में एक समान है । जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नहीं और अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं, तैसेही आत्मा से विश्व भिन्न नहीं—आत्मस्वरूप ही है । हे राजन् ! अहंकार को त्याग करके अपने सत्तासमान स्वरूप में स्थित हो तब तेरे सब दुःख निवृत्त होजावेंगे एक कवच तुझ से कहता हूं उसको धारण करके बिचर तो यद्यपि अनेक शस्त्रों की वर्षा हो तौ भी तुझे दुःख न होगा । "जो कुछ देखता सुनताहै" उसे सर्व ब्रह्म जान और बारम्बार यही भावनाकर कि, ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । जब ऐसी भावना दृढ़ करेगा तब कोई शस्त्र छेद न सकेगा । यह ब्रह्मभावनाही कवच है । जब इसको तू धारेगा तब सुखी होगा । इतना कह बाल्मीकिजी बोले कि, जब वशिष्ठजीने रामजी को मनु और इक्ष्वाकु का संवाद सुनाया तब सायंकाल होकर सूर्य अस्त हुआ और सम्पूर्ण सभा और वशिष्ठजी भी स्नान को उठे । फिर सूर्य की किरणों के निकलते ही सब आपहुंचे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमोक्षरूपवर्णनंनामनवनवतितमस्सर्गः ॥९९॥

मनु बोले, हे राजन् ! जिसका कारणही मिथ्याहै उसका कार्य कैसे सत् हो ! यह आभास जो संवेदनहै सोही विश्वका कारणहै । जो आभासही मिथ्याहै तो विश्व कैसे सत्य हो और जो विश्वही असत्है तो भय और शोक किसका करताहै ! हे राजन् ! न कोई जन्मता है, न मरताहै, न सुखहै, न दुःखहै ज्योंका त्यों आत्मा स्थितहै उसी से संवेदन ने विश्व कल्पा है; इससे संवेदन का त्याग कर कि, न 'मैं हूं', न यह है। जब तुझे ऐसा दृढ़ निश्चय होगा तब आत्मा ही शेष रहेगा और अहंकार निवृत्त होजावेगा क्योंकि; आत्मा के अज्ञानसे हुआ है और आत्मज्ञानसे नष्ट होजाताहै। हे राजन् ! जो वस्तु भ्रम सिद्ध हो और सत् दृष्टि आवे उसको प्रथम विचारिये; जो विचार कियेसे रहे तो सत्य जानिये और आत्मा जानिये और जो विचार कियेसे नष्ट होजावे उसको मिथ्या जानिये । जैसे हीराभी श्वेत होताहै और बरफ़का कणका भी श्वेत होता है और एक समान दोनों भासते हैं पर तिनकी परीक्षा के लिये सूर्य के

सम्मुख दोनों को रखिये तो जो धूप से गल जावे सो झूठा जानिये और जो ज्योंका त्यों रहे उसको सत् जानिये; तैसेही विचाररूपी सूर्यके सम्मुख करिये तो अहंकार बरफ़ की नाईं नष्ट होजाता है क्योंकि; जो अहंकार अनात्म अभिमान में होताहै सो तुच्छ है-सर्वव्यापी नहीं। जीव इन्द्रियोंकी क्रिया जो अपनेमें मानताहै और परधर्म अपने में कल्पताहै सोभी तुच्छहै; एवम् आपको भिन्न जानताहै और पदार्थ आपसे भिन्न जानता है इससे विचार किये से बरफ़ के हीरेकी नाईं मिथ्या होताहै दूसरे अविचार सिद्ध है विचार किये से नष्ट होजाती है पर आत्मा सर्वसाक्षी ज्यों का त्यों रहता है। वह अहंकार और इन्द्रियों का भी साक्षी है और सर्वव्यापी है हे राजन्! जो सत् वस्तु है उसकी भावनाकर और सम्यक्दर्शी हो। सम्यक्दर्शी को कोई दुःख नहीं होता। जैसे मार्गमें रस्सी पड़ी हो उसको रस्सी जानिये तो कोई दुःख नहीं और सर्प जानिये तो भय होता है। इससे सम्यक्दर्शी हो-असम्यक्दर्शी मत हो। हे राजन्! जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं वे सुखदायी नहीं हैं दुःखदायी ही हैं जबतक इनका संयोग है तबतक सुख भासता है पर जब वियोग होता है तब दुःख को प्राप्त करते हैं। इससे तू उदासीन हो; किसी दृश्य पदार्थ को सुखदायी न जान और दुःखदायी भी न जान। सुख और दुःख दोनों मिथ्या हैं इनमें आस्था मतकर और अहंकारसे रहित जो तेरा स्वरूप है उस में स्थित हो। जब अहंकार नष्ट होगा तब आपको जन्म मरण विकारों से रहित आत्मा जानोगे कि, मैं निरहंकार ब्रह्म चिन्मात्रहूं। ऐसे अहंभाव से रहित होनेपर अपना होनाभी न रहेगा, केवल चिन्मात्र; आनन्द और रागद्वेष के क्षोभ से रहित शान्तरूप होगा। जब ऐसा आपको जाना तब शोच किसका करेगा? हे राजन्! इस दृश्य को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो और इस मेरे उपदेश को विचारो कि, मैं सत्य कहता हूं अथवा असत्य कहता हूं। जो विचार से संसार सत्य हो तो संसार की भावना करो और जो आत्मा सत्य हो तो आत्मा की भावना करो। हे राजन्! तू सम्यक्दर्शी हो सत् को सत जान और असत् को असत् जान कि, जो असम्यक्दर्शी हैं वे सत्य को असत्य मानतेहैं और असत्य को सत्य मानते हैं। ऐसे न जाननेसे असत् वस्तु स्थिर नहीं रहती अज्ञानी दुःख पाताहै। जैसे कोई पुरुष एक कुटी रचकर चिन्तने लगा कि, मैंने आकाश की रक्षा की है तो जब कुटी नष्ट हो तब शोक करताहै कि, आकाश नष्ट होगया क्योंकि; आकाश को वह कुटी के आश्रय जानता था; तैसेही अज्ञानी पुरुष आत्मा को देह के आश्रय जानकर देह के नष्ट हुये आत्मा का नाश मानताहै और दुःखी होताहै। जैसे सुवर्ण के भूषण कल्पितहैं; भूषणों के नष्ट हुये मूर्ख सुवर्णको नष्ट मानताहै, तैसेही देह के नष्ट हुये अज्ञानी आपको नष्ट जानता है पर जिसको सुवर्णज्ञान है वह भूषणों के नाशसे भी सुवर्ण को देखताहै और

भूषणसंज्ञा कल्पित जानता है, पर ज्ञानवान् आत्मा को अविनाशी जानता है और देह और इन्द्रियों को असत् जानता है। हे राजन्! तू देह और इन्द्रियों के अभिमान से रहितहो। जब अभिमान से रहित इन्द्रियों की चेष्टा करेगा तब शुभ अशुभ क्रिया तुझे बांध न सकेंगी और जो अभिमान सहित करेगा तो शुभ अशुभ फलको भोगेगा। हे राजन्! जो मूर्ख अज्ञानी हैं वे ऐसी क्रियाका आरम्भ करते हैं जिसका कल्पपर्यन्त नाश न हो और देह-इन्द्रियों के अभिमान का प्रतिबिम्ब आपमें मानते हैं कि, मैं करताहूं, मैं भोगता हूं; इससे अनेक जन्म पाते हैं क्योंकि, उनके कर्मों का नाश कभी नहीं होता और जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान् पुरुष हैं वे आपको देह और इन्द्रियों के गुण से रहित जानते हैं और उनके संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट होजाते हैं। संचित कर्म वृक्षकी नाईं हैं और क्रियमाण फूल फलकी नाईंहैं। जैसे रुईसे लपेटकर अग्नि लगाये से वृक्ष, फूल, फल, सूखे तृणवत् दग्ध होते हैं तैसेही ज्ञानरूपी अग्नि से संचित और क्रियमाण कर्म दग्ध होजाते हैं। इससे हे राजन्! जो कुछ चेष्टा तू वासना से रहित होकर करेगा उसमें कोई बन्धन नहीं जैसे बालक के अङ्ग स्वाभाविकही भली बुरी प्रकार हिलते हैं, उसके हृदयमें अभिमान् नहीं फुरता इससे उसको बन्धन नहीं; तैसेही तूभी इच्छा से रहित होकर चेष्टा कर तो तुझे कोई बन्धन न होगा। यद्यपि सब चेष्टा तुझमें तबभी भासेंगी तौभी वासना से रहित होगा और और जन्म न पावेगा। जैसे भूना बीज देखनेमात्र होताहै और उगता नहीं तैसेही तुझमें सर्वक्रिया दृष्टि आवेगी परन्तु जन्मका कारण न होंगी और पुण्यक्रिया का फल और सुख न भोगेगा और पापक्रिया से दुःख न भोगेगा और पाप पुण्य का स्पर्श न होगा। जैसे जल में कमल स्थित होताहै और उसको जल स्पर्श नहीं करता तैसेही पाप पुण्य का स्पर्श तुझे न होगा। इससे अभिलाष से रहित होकर जो कुछ अपना प्रकृत आचार है सो कर। हे राजन्! जैसे आकाश में जल से पूर्ण मेघ भासते हैं परन्तु आकाश को लेप नहीं करते तैसेही तुझ को कोई क्रिया बन्धन न करेगी। जैसे विष के खानेवाले को विष नहीं मारसक्ता तैसेही ज्ञानी की क्रिया नहीं बांध सक्ती। ज्ञानवान् क्रिया करने में भी आपको अकर्ता जानताहै पर अज्ञानी न करने में भी अभिमान से कर्ता होता है और देह और इन्द्रियों के न करते आपको कर्ता मानताहै। जो देह इन्द्रियों से कर्ताहै और उसके अभिमान से रहित है वह अकर्ता है और जो पुरुष कर्म से इन्द्रियों को संयमकर बैठता है पर मन में विषय के भोग की तृष्णा रखता है और जिसका अन्तःकरण राग द्वेष से मूढ़है और बड़ी क्रिया को उठाता और दुःखी होताहै वह मिथ्याचारी है। जो पुरुष मन में इन्द्रियों के रागद्वेष से रहितहै-पर कर्म इन्द्रियों से चेष्टा करताहै वह विशेष है अपने जाने में कुछ नहीं करता। वह मोक्ष पाता है। हे राजन्! अज्ञानरूप

वासना से रहित होकर बिचरो। जो ऐसे होकर बिचरोगे तो आपको ज्योंका त्यों आत्मा जानोगे और सदा उदयरूप सर्वका प्रकाशक आपको जानोगे और जन्म मरण बन्धमुक्ति विकार से रहित ज्योंका त्यों आत्मा भासेगा। हे राजन्! उस पद को पाकर न शांतिमान् होगा। अन्य सर्वकला अभ्यास विशेष विना नष्ट होतीहै। जैसे रसविना वृक्ष होताहै तो यद्यपि फैलाववाला होता तौभी उगता नहीं। ज्ञानकला अभ्यास विना नहीं उपजती और उपजकर नाश नहीं होती। जैसे धान बोते हैं तो दिन प्रतिदिन बढ़ने लगते हैं, तैसेही ज्ञानकला प्राप्त कर दिन प्रतिदिन बढ़ती है। हे राजन्! ज्ञान उपजने से ऐसे जानताहै कि, मैं न मरताहूं, न जन्मताहूं, निरहंकार, निष्किंचनरूप हूं; सर्वका प्रकाश हूं, अजर हूं और अमर हूं। हे राजन्! ऐसी ज्ञानकला पाकर जीव मोह को नहीं प्राप्त होता। जैसे दूध से दही हुआ फिर दूध नहीं होता और जैसे दूधको मथकर घृत निकाला तो फिर नहीं मिलता तैसेही जिसको ज्ञानकला उदयहुई है वह फिर मोह का नहीं स्पर्श करता। हे राजन्! अपने स्वरूप में स्थित होकर और उपाय के त्याग करने का नाम पुरुषप्रयत्न है। जिस पुरुष को आत्मा की भावना हुई है वह संसारसमुद्र से पार हुआ है और जिसको संसारकी भावना है वह संसारी जरामृत्यु दुःख को प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थोपदेशोनामशततमस्सर्गः॥ १००॥

मनु बोले, हे राजन्! बड़ा आश्चर्य है कि, शुद्ध चिन्मात्र आत्मा में मायासे नाना प्रकार के देह, इन्द्रियां और दृश्य भासि आये हैं। हे राजन्! दृश्यका कारण अज्ञान है। जिस आत्मा के अज्ञान से दृश्यरूप भासता है उसीके ज्ञान से लीन होजाता है इससे इस संवेदन को त्यागकर आत्मा की भावना कर। यह मैं हूं, ये मेरे हैं ये संकल्प मिथ्या ही फुरते हैं। हे राजन्! प्रथम कारणरूप से एक जीव उपजा और उस आदि जीव से अनेक जीवगण हुये। जैसे अग्निसे चिनगारे निकलतेहैं तैसेही उसने अनेक रूप धारे हैं और कोई गन्धर्व, कोई विद्याधर, कोई मनुष्य, कोई राक्षस इत्यादिक हुये हैं। फिर जैसे २ संकल्प होते गये हैं तैसेही रूप होते गये, वास्तव में जैसे जल में तरङ्ग स्वरूप के प्रमाद से अनेकभाव को प्राप्त होतेहैं तैसेही अपने संकल्प आपही को बन्धनरूप होते गये हैं। इससे संकल्प नानात्वकलना मिथ्या है। हे राजन्! इस भावना को त्यागकर आत्मपद की शरण को प्राप्त हो जो आत्म अनन्त है। कोई विश्व और प्रकार की भान होतीहै। जैसे समुद्र सम है पर उसमें कोई आवर्ततरङ्ग और बुद्बुदे उठते हैं सो जलसे भिन्न नहीं तैसेही आत्मा में अनेक प्रकार का विश्व फुरता है सो आत्मा से भिन्न कुछ नहीं आत्मस्वरूप ही है इससे आत्मा की भावना कर। कहीं ब्रह्म सत् संकल्प होकर फुरता है तो जानता है कि, मैं ब्रह्म, शुद्धरूप और सदा

मुक्तरूप हूं और इस संसारसमुद्रसे पार होगयाहूं । जहां चेतनता शक्तिहै वहां आपको जीवता मानता है और दुःखी भी जानताहै । अन्तःकरण से मिलकर भोग की भावना करना और सदा विषय की तृष्णा करना जीवात्मा कहाता है और जहां वासना क्षय हुई है और शुद्ध आत्मा में आत्मप्रत्यक्ष है वहां जीवसंज्ञा नष्ट होजाती है और केवल शुद्ध आत्मा प्रकाशता है । हे राजन् ! चेतन जब अन्तःकरण से मिलकर बहिर्मुख फुरता है तब संसारी हुआ जरा मरण से दुःखी होता है और जहां चेतनशक्ति अन्तर्मुख होती है तब जन्म, मरण की भावना को त्यागकर स्वरूप की भावना करता है। और सर्व दुःख की निवृत्ति होतीहै । जब इसकी भावना स्वरूप की ओर लगती है तब कोई दुःख नहीं रहता और जब स्वरूप का प्रमाद होताहै तब दुःख पाता है । स्वरूप के ज्ञान से आनन्दरूप मुक्त होता है । हे राजन् ! तू संसाररूपी कूप की गरारी न हो । जब गरारी रस्सी से बँधती है तो कभी ऊर्ध्व को जाती है और कभी अधो को जाती है पर जब रस्सी टूट पड़ती है तब न ऊर्ध्व को जाती है और न अधो को जाती है । कूप क्या है ? अधो क्या है, और ऊर्ध्व क्या है ? सो भी सुन । हे राजन् ! संसाररूपी कूपहै, स्वर्गलोक ऊर्ध्व है और नरक अधो है । पुण्य कर्म से स्वर्ग को जाता है और पापकर्म से नरक में जाता है । इसी प्रकार आशारूपी रस्सी से बँधा हुआ जीव जन्ममरणरूपी चक्र में फिरता है । स्वर्ग और नरक के फिरने का कारण आशा है । जब आशा निवृत्त होती है तब न कोई नरक है न स्वर्ग है । जबतक देह में अभिमान है तबतक नीच से नीच गति को प्राप्त होताहै । जैसे पत्थर की शिला समुद्र में डारिये तो नीचे से नीचे चली जातीहै तैसेही नीचस्थानों को देखकर देहाभिमानी नीचे को चलाजाता है । जब इन्द्रियादिक का अभिमान त्याग करताहै तब जैसे क्षीरसमुद्र से निकलकर चन्द्रमा अधो से ऊर्ध्व को चलाजाता है तैसेही ऊर्ध्व को जाता है । हे राजन् ! यदि आत्मा की भावना करोगे तो आत्मा ही होगा; इससे आशारूपी फांसी को तोड़कर शान्तपद को प्राप्तहो आत्मा चिन्तामणि की नाईं है । जैसी भावना कीजिये तैसेही सिद्धि होती है, यदि तू आत्मभावना करेगा तो सम्पूर्ण विश्व अपने में देखेगा । जैसे पर्वत शिला और पत्थर सब अपने में देखता है तैसेही तूभी सर्व आत्मा में जानेगा । हे राजन् ! जो कुछ दृष्टि है सो सर्वात्मा के आश्रय है; शास्त्र और शास्त्रदृष्टि सब आत्मा के आश्रय हैं और राजाभी आत्मा के आश्रयहै वह सर्वसत्य आत्मा चिन्तामणि कल्पवृक्ष है, जैसी कोई भावना करता है तैसी सिद्धि होतीहै । हे राजन् ! फुरने में यह सर्व दृष्टि सत्य है और जब फुरना नष्ट होताहै तब न कोई शास्त्र है और न कोई दृष्टि है ! केवल अद्वैत आत्मा है तो निषेध किसका कीजिये और अङ्गीकार किसका करिये ! जो पुरुष अहंकार से रहित हुआहै वह सर्वशास्त्र दृष्टिपर विराजता है और सर्व आत्मा होता है।

जैन उसी को जैन कहते हैं और कालवाले उसीको काल कहते हैं। सर्वका आसरा आत्माहै। जो पुरुष देहअभिमानी है वह मूर्ख है और स्वरूप के अज्ञानसे अधोऊर्ध्व लोक को गमन—आगमन करता है; पशु, पक्षी, स्थावर-जङ्गम योनि पाताहै और आकाशरूपी फांसी से बँधा हुआ दुःख को प्राप्त होताहै। जो पुरुष सम्यक्‌दर्शी है और जिसकी शुद्ध चेष्टा है उसको कोई विकार दृष्टि नहीं आता सब आकाश की नाईं सदा निर्मल भासता है। उसको सम्पूर्ण विश्व आत्मस्वरूप भासता है और जो चेष्टा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादिक करते हैं उसका कर्ताभी आपको जानता है। उसको सर्वदुःख का अन्त होता है, वह आत्मपद को प्राप्त होता है और उसको सर्व सुख की सीमा प्राप्त होती है। हे राजन्! जैसे नदी तबतक चलती है जबतक समुद्रको नहीं प्राप्त हुई पर जब समुद्रको प्राप्त होती है तब नहीं चलती तैसेही जब तू आत्मपदको प्राप्त होगा तब कोई इच्छा तुझे न रहेगी। हे राजन्! तू अहंकारका त्यागकर अथवा ऐसा जान कि, सर्व मैंहीं हूं। जरा मरण आदिक दुःख तबतक हैं जबतक आत्मबोध नहीं प्राप्त हुआ; जब आत्मबोध होताहै तब कोई दुःख नहीं रहता। दोनोंही दुःख भारी हैं पर ज्ञानी को इन्द्र के वज्रसमान दुःखभी स्पर्श नहीं करता। हे राजन्! जैसे पेड़से सूखकर फल गिरताहै उसी प्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्त होताहै तब मन, बुद्धि, अहंकार पेड़ की नाईं गिर पड़ता है। जबतक मन की चपलता है तबतक दुःख पाता है और जब मन की चपलता निवृत्त होती है तब कोई क्षोभ नहीं रहता और शान्त पद को प्राप्त होता है। शान्ति तब होती है जब प्रकृति का वियोग होता है। प्रकृति के संयोग से संसारी होता है और दुःख पाता है इससे प्रकृति अर्थात् अहंकार का त्यागकर और अहंकारसे रहित होकर चेष्टाकर। जब तू अहंकारसे रहित होगा तब उसपद को प्राप्त होगा जो न जड़ है, न चेतनहै, न शून्यहै, न अशून्यहै, न केवल है न अकेवल है उसे न आत्मा कहसक्ते हैं न अनात्मा; न एक होता है न दो। जो कुछ नाम हैं सो प्रतियोगी से मिले हुयेहैं। प्रतियोगी हुआ द्वैत होताहै और आत्मा अद्वैतमात्र है जिसमें वाणीकी गम नहीं और जो अवाच्यपद है उसको कैसे कहिये? जितनी नाम संज्ञाहैं सो उपदेशमात्रहैं, आत्मा अनिर्वाच्यपदहै। इससे संकल्पका त्यागकर और आत्माकी भावना कर। जब तू आत्मभावना करेगा तब केवल आत्मा ही प्रकाशेगा। जैसे फूल का कोई अङ्ग सुगन्ध से रहित नहीं तैसेही आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। हे राजन्! जब अहंकारका त्याग करोगे तब अपने आपसे शोभायमान होगे और आकाश की नाईं निर्मल आत्मा में स्थित होगे। अहंकार को त्याग कर उसपद को प्राप्त होगे जहां शास्त्र और शास्त्रों के अर्थ प्राप्त नहीं होते; जहां सम्पूर्ण इन्द्रियां के मन लीन होजाते हैं और सब दुःख नष्ट होजाते हैं तब केवल मोक्ष पद

को प्राप्त होगे। हे राजन्! मोक्ष किसी देश में नहीं कि, वहां जाकर पावे, न किसी कालमें हीहै कि, अमुक काल आवेगा तब मुक्त होगा और न कोई पदार्थ ही है कि, उसको ग्रहण करेगा; केवल अहंकार के त्याग से मोक्ष होताहै। जब तू अहंकार का त्याग करेगा तभी मोक्षहै। जब तू इस अनात्म अभिमानको त्यागेगा तब अपने आप से शोभायमान होगा और जैसे धुवां विना अग्नि प्रकाशमान होतीहै तैसेही अहंकार विना प्रकाशेगा। जैसे बड़े पर्वत पर निर्मल और गम्भीर तालाब शोभता है तैसेही तू शोभेगा। हे राजन्! तू अपने स्वरूप में स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसमाधानवर्णनंनामैकाधिकशततमस्सर्गः ॥१०१॥

मनु बोले, हे राजन्! तू शुद्ध और राग द्वेष से रहित आत्मारामी नित अन्तर्मुख होरह। जब तू आत्मारामी होगा तब तेरी व्याकुलता नष्ट होजावेगी और शीतल चन्द्रमा सा पूर्णवत् होजावेगा। ऐसा होकर अपने प्रकृत आचारमें विचर और किसी फल की वाञ्छा न कर। जो पुरुष वाञ्छा से रहित होकर कर्म करता है वह सदा अकर्ता है और महा शोभा पाताहै। ऐसी अवस्थामें स्थित होकर जो भोजन आवे उस को भक्षणकर और जो अनिच्छित वस्त्र आवे उसको पहिर; जहां नींद आवे वहां सोरह और रागद्वेषसे रहित हो। जब तू ऐसा होगा तब शास्त्र और शास्त्रोंके अर्थ से उल्लंघित बर्तेगा जो ऐसा पुरुष है वह परम रसको पाकर मतवाला होता है और उसको संसार की कुछ इच्छा नहीं रहती। हे राजन्! ज्ञानवान् चाहे काशी में देह त्यागे अथवा चाण्डालके गृहमें त्यागे उसे सब स्थानोंमें मुक्तिहै और वह सदा आत्मस्वरूप में स्थित है। वर्तमानकाल में वह देह को नहीं त्यागता क्योंकि; जिस काल में उसको ज्ञान हुआ उसीकालमें देहका अभाव हुआ—ज्ञानसे देह दग्ध होजातीहै। हे राजन्! ज्ञानवान् सदा मुक्तरूप है; वह न किसी की स्तुति करता है और न निन्दा करता है क्योंकि; उसके चित्तकी कलना मिटगईहै। यद्यपि राग द्वेष ज्ञानवान् में भी दृष्टि आते हैं और वह हँसता रोता भी देख पड़ताहै परन्तु उसके अन्तःकरण में न रागहै और न द्वेष है; और वह न हँसता है, न रोता है—ज्योंका त्यों है। जैसे आकाश शून्यरूप है और उसमें मेघ बादल भी दृष्टि आते हैं परन्तु आकाश को कुछ लेप नहीं करते; तैसेही ज्ञानवान् को कोई क्रिया बन्धन नहीं करती पर अज्ञानी जानते हैं कि, ज्ञानवान्को क्रिया बन्धन करतीहै। हे राजन्! ज्ञानवान् सर्वदा नमस्कार करने और पूजने योग्य हैं। जिस स्थान में ज्ञानवान् बैठता है उस स्थान कोभी नमस्कार है; जिससे बोलता है उस जिह्वा को भी नमस्कारहै और जिस पर ज्ञानवान् दृष्टि करता है उस को भी नमस्कार है; वह सबका आश्रयभूत है। हे राजन्! जैसा ज्ञानवान् की दृष्टि से आनन्द मिलताहै वैसा आनन्द तप, दान और यज्ञकर्मों से भी नहीं मिलता और

ऐसी दृष्टि किसी में नहीं होती जैसी सन्त की दृष्टि है वह ऐसे आनन्द को पाता है जिसमें वाणी की गम नहीं। जो पुरुष सन्त की दृष्टि को पाकर सुखी होता है उससे लोग दुःख नहीं पाते और लोगोंसे वह दुःखी नहीं होता और न किसी का भय करता है; न किसी का हर्ष करताहै। हे राजन्! सिद्धि पानेका सुख अल्पहै, क्योंकि, उड़ने की सिद्धि पाई तो अनेक पक्षी उड़ते फिरते हैं; इससे आत्मज्ञान तो नहीं मिलता और आत्मज्ञान विना शान्ति नहीं होती जब आत्मज्ञान प्राप्त होताहै तब जरा, मृत्यु आदिक दुःख से मुक्त होता है और कोई दुःख नहीं रहता। जैसे पिंजरेसे छूटा सिंह फिर पिंजरेके बन्धन में नहीं पड़ता, तैसेही वह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरेमें नहीं फँसता। हे राजन्! इससे तू आत्मा की भावनाकर कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें। अज्ञान से तुझे दुःख भासते हैं—अज्ञान से रहित सदा आनन्दरूप है इससे अनुभवरूप आत्मा में स्थित हो। जब तू आत्मामें स्थित होगा तब जैसे शुद्धमणिके निकट श्वेत, रक्त, पीत, श्याम आदि रङ्ग रखिये तो वह उनके प्रतिबिम्बको ग्रहण करती है पर कोई रङ्ग स्पर्श नहीं करता कल्पित से भासते हैं, तैसेही तू प्रकृत आचार को अङ्गीकार करता रहेगा पर तुझे पाप पुण्य का स्पर्श न होगा॥

इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्र० मनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिर्नामद्व्यधिकशततमस्सर्गः १०२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उपदेश करके जब मनुजी तूष्णी होगये तब राजाने भली प्रकार उनका पूजन किया। फिर मनुजी आकाश को उड़के ब्रह्मलोक में जापहुँचे और राजा इक्ष्वाकु राज्य करनेलगा। हे रामजी! जैसे राजा इक्ष्वाकुने जीवन्मुक्त होकर राज्य कियाहै तैसेही तुमभी इस दृष्टि का आश्रय करके विचरो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो कहा कि, जैसे राजा इक्ष्वाकु ज्ञान पाकर राज्यचेष्टा करता रहा तैसेही तू भी कर उसमें मेरा यह प्रश्नहै कि; जो अतिशय अपूर्व हो उसका पाना विशेष है और जो पूर्व में किसीने पायाहै उसका पाना अपूर्व और अतिशय नहीं; इसलिये मुझसे कहिये कि; सर्व से विशेष अपूर्व अतिशय क्या है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानवान् सदा शान्तरूप और रागद्वेषसे रहितहै और वह अपूर्व अतिशय को पाता है। जो कुछ और अतिशय है वह पूर्व अतिशयहै पर ज्ञानवान् अपूर्व अतिशय को पाता है—ज्ञानी से अन्य कोई नहीं पाता आत्मज्ञान को ज्ञानी ही पाताहै और वह ज्ञान एकही है। हे रामजी! जो दूसरा नहीं पाता तो अपूर्व अतिशय हुआ। हे रामजी! अपूर्व अतिशयको पाकर ज्ञानवान् प्रकृत आचार और सर्व चेष्टा भी करता है तौभी निश्चय सर्वदा आत्मा में रखता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसा ज्ञानवान् जो अज्ञानी की नाईं सर्व चेष्टा करताहै उसको किन लक्षणोंसे तत्त्ववेत्ता जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक स्वसंवेद लक्षण है और दूसरा परसंवेद लक्षण है।

आपही अपनेको जाने और न जाने इसे स्वसंवेद कहते हैं और जिसको और भी जानते हैं उसे परसंवेद कहते हैं। हे रामजी! परसंवेद के लक्षण कहता हूं सो सुनो। तप, दान, यज्ञ, व्रत इत्यादिक करना परसंवेदहै और दुःख-सुख की प्राप्ति में धैर्य से रहना समान साधु के लक्षण हैं। महाकर्त्ता और महाभोक्ता और महात्यागी होना, क्षमा, दया इत्यादिक लक्षण साधु के हैं ज्ञानवान् के नहीं और उड़ना, छिपजाना, जो अणिमादिक सिद्धि हैं वेभी समान लक्षण हैं परन्तु ये स्वाभाविक आन फुरते हैं सो और से भी जाने जाते हैं पर जो ज्ञानी के लक्षण हैं वे स्वसंवेद हैं। इससे भिन्न उसके शिर में सींग नहीं होते कि, उससे जानिये। जैसे और व्यवहार हैं तैसेही ज्ञानी को सिद्धिसमान है। यह भी ज्ञानवान् का लक्षण नहीं और पुण्य पापादिक क्रिया परसंवेद हैं सो माया के कल्पे हैं ज्ञानी के नहीं। जितने लक्षण देखने में आवेंगे वे मिथ्या हैं और माया के कल्पे हैं। ज्ञानी का लक्षण स्वसंवेदहै। वह सर्वदा आत्मा में स्थितहै और अपने आपसे संतुष्ट है। उसे न किसीका हर्ष है, न शोकहै; जन्ममरण में समान है और काम, क्रोध, लोभ, मोह सर्वको जानता है। उसका लक्षण इन्द्रियों का विषय नहीं क्योंकि; वह निर्वाच्यपद को प्राप्त हुआ है। हे रामजी! जिसको ज्ञान प्राप्त होता है उसका चित्त स्वाभाविकही विषयों से विरस होताहै और वह इन्द्रियजित होताहै-उसको भोगों की इच्छा निवृत्त होजाती है॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०ज्ञानिलक्षणविचारोनामत्र्यधिकशततमस्सर्गः॥ १०३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मायाजाल का काटना महाकठिनहै। यह आदि कलना जीवको हुई है। जो कोई इसमें सतबुद्धि करता है वह पखेरू की नाईं जाल में फँसा हुआ निकल नहीं सक्ताहै-तैसेही अनात्म अभिमानसे निकल नहीं सक्ताहै। हे रामजी! फिर मेरे वचन सुनो क्योंकि; जैसे मेघका शब्द मोरको प्रियतम लगता है, तैसेही मेरे वचन प्रिय लगते हैं। मैं भी तेरे हित के निमित्त कहता और उपदेश करताहूं। रघुकुलका ऐसा गुरु कोई नहीं हुआ जो शिष्य का संशय निवृत्त न करे। हे रामजी! मेरा शिष्य भी ऐसा कोई नहीं हुआ जो मेरे उपदेश से न जगा हो। इस निमित्त मैं तप, ध्यान आदिक को भी त्यागकर तुझे जगाऊंगा-इससे मैं तुझको उपदेश करता हूं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा में जो अहंभाव हुआ है और जो कुछ अहंकार से भासता है सो मिथ्या है-इसमें कुछ सत् नहीं-और जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है वह सत्य है-उसका कदाचित् नाश नहीं होता। जो जो वस्तु फुरनेसे उपजी हैं वे सब नाशवन्त हैं-यह बात बालक भी जानते हैं। जो सत्य है वह असत्य नहीं होता और जो वस्तु असत् है वह सत् नहीं होती। जैसे रेतसे घृत निकलना असत् है अर्थात् कदाचित् नहीं निकलता। जैसे एक मेढ़क के लाख कणका करिये अथवा शिला पर घिसिये

पर जब उसपर वर्षा होती है तब सर्व कणके दर्दुर होजाते हैं। हे रामजी! तो वे दर्दुर तब उत्पन्नहुये जब उनमें सत्यता थी। इससे सत्य का कदाचित् नाश नहीं होता और असत्यका सद्भाव कदाचित् नहीं होता। हे रामजी! सत्ब्रह्म की भावना करो। जो ब्रह्म की भावना करता है वह ब्रह्म ही होता है। जैसे घृत में घृत; दूध में दूध और जल में जल मिलजाताहै तैसेही यह जीव भावना करके चिद्घन ब्रह्म के साथ एक होजाताहै और जीवसंज्ञा निवृत्त होजाती है। जैसे अमृत के पान किये से अमर होता है तैसेही ब्रह्म की भावना करनेसे ब्रह्म होता है। जो अनात्मा की भावना करता है तो पराधीन होकर दुःख पाता है। जैसे विष के पानकिये से अवश्य मरताहै तैसेही अनात्मा की भावना से अवश्य दुःख पाताहै और उसका नाश होताहै। इससे आत्मभावना करो। हे रामजी! जो वस्तु संकल्प से उदय होतीहै वह थोड़ेकाल रहतीहै और जो चलवस्तु है वह भी अवश्य नाश होतीहै। यह दृश्य आत्मामें भ्रमसे सिद्धहै। जैसे मृगतृष्णा का जल; सीपी में रूपा और आकाश से दूसरा चन्द्रमा भ्रमसे सिद्धहै—वास्तव नहीं; तैसेही अहंकार देह इन्द्रिया से सुख भासता है सो सब मिथ्या है। इससे दृश्य की भावना त्याग करके अपने अनुभव स्वरूप में स्थितहो। जब आत्मा में स्थित होगे तब मोह को न प्राप्त होगे। जैसे पारसके स्पर्श से सुवर्ण हुआ तांबा फिर तांबा नहीं होता, तैसेही तूभी जब आत्मपदको जानेगा तब फिर इस मोहको न प्राप्त होगा कि, मैंहूं, यह मेरा है 'अहं' त्वंभाव तेरा निवृत्त होजावेगा और यह भावना न रहेगी। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मच्छर और जूं आदिक जो प्रस्वेदसे उत्पन्न होते हैं सो सब कर्म करके उत्पन्न होते हैं और देवता, मनुष्यादिक सब कर्मों से उत्पन्न होते हैं अथवा कर्मों विना भी कुछ होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि परमात्मा से जो सब जीव उत्पन्न हुये हैं सो चार प्रकारके हैं। एक तो कर्मों से उत्पन्न हुये हैं और एक कर्मों विना हुये हैं; एक आगे होंगे और एक अबभी उत्पन्न होते हैं। रामजी बोले, हे संशयरूपी हृदय अन्धकारके निवृत्त करनेवाले सूर्य और संदेहरूपी बादलोंके निवृत्त करनेवाले पवन! कृपा करके कहिये कि, कर्मों विना कैसे उत्पन्न होते हैं और कर्मों से कैसे उत्पन्न होते हैं? कैसे कैसे हुये हैं; कैसे होते हैं और कैसे आगे होंगे? वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! आत्मा चिदाकाश अपने आपमें स्थित है। जैसे अग्नि अपनी उष्णतामें स्थितहै तैसेही आत्मा अपने स्वभावमें स्थितहै। वह अनन्त और अविनाशी है—उसमें फुरनशक्ति स्वाभाविक स्थित है जैसे पवन में स्पन्दशक्ति स्वाभाविक होती है और जैसे फूलों में सुगन्ध स्वाभाविक रहती है, तैसेही आत्मा में फुरनशक्ति है। हे रामजी! फुरनशक्ति जैसेही आद्यफुरी है तो उस शब्द की अपेक्षा से आकाश हुआ और जब स्पर्श की अपेक्षा की तब पवन प्रकट हुआ। इसी प्रकार पञ्चतन्मात्रा

हो आई शुद्धसंवित् में जो आदि फुरना हुआ उससे प्रथम अन्तवाहक शरीर हुये; उनका निश्चय आत्मा में रहा कि, हम आत्मा हैं और सम्पूर्ण विश्व हमारा संकल्प है। हे रामजी ! कई इस प्रकार उत्पन्न होकर अन्तवाहक से फिर विदेह मुक्तिको प्राप्त हुये। जैसे जल से बरफ़ होकर सूर्य के तेजसे शीघ्रही फिर जल होजाती है तैसेही वे शीघ्रही विदेहमुक्ति हुये। कई अन्तवाहक से आधिभौतिक इस प्रकार होगये कि, जब तक अन्तवाहक में स्मरण रहा तबतक अन्तवाहक रहे और जब स्वरूप का प्रमाद हुआ और संकल्प से जो भूत रचे थे उनमें दृढ़ निश्चय हुआ और जाना कि, हम ये हैं तब आधिभौतिक होगये जैसे ब्राह्मण शूद्रों के कर्म करने लगे और उसके निश्चय में होजावें कि, मेरा यही कर्म है और जैसे शीत करके जलसे बरफ़ होजाती है तैसेही संवित् में जब दृढ़ संकल्प हुआ तब उन्होंने आपको आधिभौतिक जाना। हे रामजी ! आदि परमात्मासे जो कर्म विना उत्पन्नहुये हैं उनका कोई कर्म नहीं क्योंकि; जो अन्तवाहक में रहे उनकी ईश्वरसंज्ञा हुई। उनके संकल्प से जीव उपजे, उनका कारण ईश्वर हुआ और आगे जीवकलना से उनका फुरना कर्म हुआ। आगे जैसे२ कर्म संकल्पसे करते हैं तैसे२ शरीर धारते हैं। हे रामजी ! आत्मा से जो जीव उपजे हैं सो आदि-अकारण होते हैं; जो आज उपजे हैं तौभी और जो चिरकाल से उपजे हैं तौभी। वे पीछे कारणभावको कर्मके वशसे प्राप्त हुये हैं। हे रामजी ! जिनका आदि फुरना हुआहै और स्वरूपमें दृढ़ निश्चय रहाहै उनकी संज्ञा पुण्यहै और जो स्वरूप को विस्मरण करके आधिभौतिकमें निश्चय करते रहे उनकी धनसंज्ञाहै। हे रामजी ! पुण्य से धन होना सुगम है और धनसे पुण्य होना कठिन है-कोई भाग्यवान् पुरुष ही यत्न करके धन से पुण्यवान् होता है। जैसे पर्वत से पत्थर गिरना सुगमहै तैसेही पुण्य से धन होना सुगमहै और जैसे पत्थरको पर्वत पर चढ़ाना कठिनहै तैसेही धन से पुण्य होना कठिन है। कितने चिरकाल धन में बहते हैं और कितने यत्न करके शीघ्रही पुण्यवान् होतेहैं। हे रामजी ! जो सदा अन्तवाहक रहते हैं उनकी संज्ञा ईश्वर है और जो अन्तवाहकको त्यागकर आधिभौतिक होतेहैं वे जीव कहातेहैं और परतन्त्र हैं-जैसे कर्म करते हैं तैसेही शरीर धारते हैं। जो धन से पुण्य होते हैं वे ज्ञानवान् हैं और उनका फिर जन्म नहीं होता। अबभी जो प्रथम उत्पन्न होते हैं वे कर्म विना होते हैं और जब अपने स्वरूप से गिरते हैं तब जैसा संकल्प करते हैं तैसेही शरीर धारते हैं। हे रामजी ! यह विश्व संकल्पमात्र है; इससे संकल्प का त्याग करो। इस दृश्य की आस्था न करो। हे रामजी ! खाना, पीना इत्यादिक चेष्टा करो परन्तु उस में अहंभाव न करो। अहंकार अज्ञान से सिद्ध हुआहै सो दृश्य मिथ्याहै। अहंभाव के होनेसे दुःखी होताहै। इससे अहंकारसे रहित चेष्टा करो। हे रामजी ! बन्धन और

मोक्ष का लक्षण सुनो। विषय और इन्द्रियों के संयोग से इष्टमें राग करना और अनिष्टमें द्वेष करनाही बन्धनहै। जैसे जल में पक्षी बन्धायमान होता है। ग्राह्य ग्राहक इन्द्रियां और विषयके सम्बन्धसे इष्ट अनिष्ट होताहै। जिसमें इन्द्रियोंका संयोग होता है उसमें समबुद्धि रहै, उनके धर्म अपनेमें न देखे और उनका जाननेवाला जो अनुभवरूप आत्माहै उसमें साक्षीरूप होकर स्थित रहे; इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है वह सदा मुक्तिरूप है और जो इससे भिन्न है वह मूर्खजीव बन्धवान् है। तुम इस ग्राह्य ग्राहक सम्बन्धसे सावधान रहो। इनका सम्बन्धही बन्धन है और इनसे रहित होना मुक्तिहै। राग-द्वेष करनेवाला मनहै; इस मन का त्याग करो; मनहीं दुःखदायी है। जैसे कुम्हार का चक्र फिरताहै और उससे बासन उत्पन्न होते हैं तैसेही मनरूप चक्र से पदार्थरूपी बासन उत्पन्न होते हैं। मनके फुरने से संसार सत्य होता है और जब फुरना निवृत्त होगा तब कोई दुःख न रहेगा। हे रामजी! जब फुरने और अफुरने में समान होगे तब राग द्वेष से रहित होकर बिचरोगे। यह हो और यह न हो; इससे रहित होकर चेष्टा करो। अभिलाषपूर्वक संसार में न फुरो। हे रामजी! पूर्व जो ज्ञानवान् हुये हैं उनको चित् चिन्तना न थी और आगे होनेकी आशाभी न थी। वर्तमानकाल में शास्त्र के अनुसार राग द्वेष से रहित वे चेष्टा करते हैं; इससे तू भी संकल्प का त्यागकर स्वरूपमें स्थित हो। हे रामजी! ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त किसी पदार्थ में राग हुआ तो बन्धन है। मेरा यही आशीर्वादहै कि, ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त किसी पदार्थ में तुम्हें रुचि न हो, अपने आपही में रुचि हो। हे रामजी! यह संसार मिथ्या है और इसमें कोई पदार्थ सत् नहीं है—सर्व मनके रचे हुये हैं; इससे मन को स्थित करो। जैसे धोबी साबुन मिलाके वस्त्र का मैल दूर करता है तैसेही मनसे मन को स्थिर करो। जब मन को स्वरूप में स्थिर करोगे तब मन अपने संकल्प को आप ही नाश करेगा। जैसे दुष्ट पुरुषकी जब धनसे वृद्धि होती है तब वह अपने भाई आदिक के नाशकरने का उपाय करता है, तैसेही मन जब आत्मपद में स्थित होता है तब अपने संकल्पको नाश करताहै जब तुम्हारा मन स्वरूप में स्थित होगा तब तुम अमन होगे और तुम्हारे सब दुःख नष्ट होजावेंगे। मन के नाश विना कोई सुख नहीं। हे रामजी! यह मन ऐसा दुष्ट है कि, जिससे उपजताहै उसीके नाशका निमित्त होता है। जैसे बांस से अग्नि उपजकर उसीको जलाती है, तैसेही आत्मा से उपजकर यह मन आत्मा ही को तुच्छ करता है। जैसे राजा का नौकर राजा की सत्ता पाकर राजा को ही मारकर आप राजा होता है, तैसेही मन आत्मा की सत्ता पाकर और उसको ढांपकर आपही कर्ता भोक्ता हो बैठा है। इससे मन को मनही से नाश करो। जैसे लोहा तपाकर लोहे को काटता है तैसेही मनसे मनही को शुद्ध करो। हे रामजी!

वृक्ष, बेलि, फल, फूल, पशु, पक्षी, देवता, यक्ष, नाग जो कुछ स्थावर—जङ्गम पदार्थ हैं वे प्रथम कर्मों के विना उत्पन्न हुये हैं और पीछे जब स्वरूपसे गिरते हैं और घन पद को प्राप्त होते हैं तब कर्मों से शरीर होते हैं । कर्मों का बीज अहंकार है और अहंकार में शरीर है । जैसे बीज से वृक्ष होता है और समय पाकर फूल, फल प्रकट होते हैं; तैसेही अहंकार से शरीर प्रकट होतेहैं और जब अहंकार नष्ट हुआ तबकोई शरीर नहीं—केवल आत्मपद है। अहंकार है नहीं और प्रत्यक्ष दिखाई देताहै और आत्मा अच्युत है पर गिरे की नाईं भासता है; निरवलम्ब है और अवलम्बकी नाईं दृष्टि आताहै; निराकार है पर आकार सहित भासता है; निराभास है और आभास सहित दिखाई देताहै। इससे केवल चिन्मात्र आत्मामें स्थित हो। यह सब चिन्मात्रही रूपहै। हे रामजी ! जब ऐसी भावना होती है तब चित् अचित् होजाता है और जब चित् अचित् हुआ तब जगत्कलना मिट जाती है केवल आत्मतत्त्व ही भासता है ॥ इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्र० कर्माकर्मविचारोनामचतुरधिकशततमस्सर्गः ॥ १०४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस जीव के तीन स्वरूप हैं—एक स्वरूप तो शुद्धात्मा चिदानन्द ब्रह्म है जिससे सर्व प्रकाशते हैं; दूसरा अन्तवाहक पुण्यनाम है जो आत्मा के प्रमाद से हुआहै। जो मात्रपद से उत्थान हुआहै तौ भी प्रमाद नहीं क्योंकि; आत्मा का स्मरण रहाहै और जब आत्मा का स्मरण भूला तब तीसरा आधिभौतिक हुआ और पञ्चतत्त्व को अपना आप जाननेलगा है । हे रामजी ! ये तीन स्वरूप जीवके हैं। आत्मा के प्रमाद से जीवसंज्ञा पाता है और दुःखी और परतन्त्र होताहै। इससे पञ्च-भौतिक और अन्तवाहक को त्यागकर वास्तवस्वरूप में स्थित हो। हे रामजी ! ये जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर हैं सो विचार से नष्ट होजाते हैं पर तीसरा जो स्वरूप है वह सत्य है। तू उसीमें स्थित हो । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! ये तीन रूप जो तुमने जीव के कहे उनके मध्यमें नाशरूप कौनहै और सत्रूप कौनहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! हाथ पांव संयुक्त जो देह है और भोग से मिली हुई है वह स्थूलरूपहै और यह जीव अपनेही संकल्प से सदा फैलाव रचता है । चित्तरूपी देह इस फुरनेरूप से अन्तवा-हकहै वह सदा प्राणवायु के रथपर स्थित रहता है—देह हो चाहे न हो । हे रामजी ! ये दोनों शरीर उपजते और नष्ट भी होतेहैं और आदि अन्तसे रहित चिन्मात्र निर्वि-कल्प हैं उसे जीव का परमरूप जानो । जो तुरियापदहै उसीसे जाग्रदादिक उपजेहैं और उसीमें लीन होतेहैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! मैं तीनको जानता हूं—एक जाग्रत् है जो निद्रासे रहित है और जिसमें इन्द्रियां और चार अन्तःकरण अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं; दूसरा स्वप्न है वहांभी इन्द्रियां विषय को जाग्रत् की नाईं संकल्प से ग्रहण करतीहैं और तीसरेमें इन्द्रियां अपने विषय से रहित होतीहैं

और जड़ता आतीहै, तब कुछ नहीं भासता शिला की नाईं जड़ता तमोगुण आत्मा है–सो सुषुप्ति है। इन तीनों को तो मैं जानताहूं पर तुरीया और तुरीयातीत को कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अपना होना और न होना दोनों को त्याग कर पीछे केवल तुरीयापद रहता सो शान्त और निर्मलपद है। हे रामजी! तुरीया जाग्रत् नहीं क्योंकि; जाग्रत् संकल्पजाल है और उसमें इन्द्रियों से राग द्वेष होता है तुरीया स्वप्न अवस्थाभी नहीं क्योंकि; स्वप्न भ्रमरूप होता—जैसे रस्सीमें सर्प भासता है सो औरका और संकल्प होताहै और तुरीया सुषुप्ति भी नहीं क्योंकि; उसमें अत्यन्त जड़ता है और तुरीया चेतनरूप, उदासीन और शुद्ध है और जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति से रहित है। जीवन्मुक्त तुरीयापद में स्थित रहता है। हे रामजी! जो तुरीया-पद में स्थित है उसको यह स्थिति भी है और वह जगत् से भी शान्तरूप होजाताहै और अज्ञानी को वज्रसारवत् दृढ़ है। ज्ञानी सदा शान्तरूपहै क्योंकि; वह तीनों अवस्थाओं का साक्षी है, उसको न उनके राग हैं, न द्वेषहैं उदासीन की नाईं हैं। तुरीया-तीतपद को वाणी की गम नहीं। जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होताहै तब इसीपद को प्राप्त होताहै जहां वाणी की भी गम नहीं। जबतक जीवन्मुक्त है तबतक तुरीयापद में स्थित रह राग द्वेष से रहित होताहै और इन्द्रियां भी अपने विषय में राग द्वेष से रहित होकर स्वाभाविक बर्तती हैं। जिस पुरुषको राग द्वेष उत्पन्न होताहै वह तुरीया-पद को नहीं प्राप्त हुआ और चित्त सहितहै और जिस पुरुष को राग द्वेष नहीं उत्पन्न होता उसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है। जिसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है उसको संसार की सत्यता नहीं भासती; वह स्वप्नवत् जगत् को देखताहै। इससे तूभी सत्पद में स्थित होकर साक्षीरूप होरह॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्रकरणेतुरीयपदविचारोनामपञ्चाधिकशततमस्सर्गः॥१०५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कर्ता, कारण और कर्म ये तीनों हों पर तू इनका साक्षी हो। इनका कर्तृत्व अभिमान तुझे न हो कि, मैं यह कर्ताहूं अथवा मैंने इसका त्याग किया है, उदासीन की नाईं होरह। इसीपर एक आख्यान कहता हूं उसे सुनो। तुम प्रबुद्ध हो तौभी दृढ़ बोध के निमित्त सुनो। हे रामजी! एक वनमें काष्ठमौन नामक एक मुनि रहताथा। निदान एकदिन एक बधिक किसी मृगपर बाण चलाते हुये उस के पीछे दौड़ता जाता था जब वह आगे गया तो मृग बधिक की दृष्टि से अगोचर होगया। बधिक ने देखा कि, एक तपस्वी बैठा है; उससे पूछा, हे मुनीश्वर! यहां एक मृग आया था सो किस ओर को गया तुमने देखाहो तो मुझसे कहो? काष्ठमौन बोले, हे बधिक! हमको कुछ सुधि नहीं क्योंकि; हम निरहंकार हैं, हमारे साथ चित्त और अहंकार दोनों नहीं। जो तुम कहो कि, इन्द्रियोंकी चेष्टा कैसे होतीहै; तो जैसे सूर्य के

आश्रय लोगों की चेष्टा होतीहै और दीपक की मणि के आश्रय चेष्टा होतीहै और सूर्य दीपक मणिप्रकाश के साक्षीभूत हैं तैसेही हम इन्द्रियोंके साक्षीभूत हैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक होतीहै। हमको इनसे कुछ प्रयोजन नहीं। हे बधिक! अहंभाव करने वाला अहंकार है। जैसे माला के भिन्न भिन्न दाने तागे के आश्रय होते हैं और सबमें एक तागा होता है तब माला होती है पर जब तागा टूट पड़ता है तब दाने भिन्न २ होजाते हैं; तैसेही इन्द्रियांरूपी दाने हैं और अहंकाररूपी तागाहै; उस अहंकाररूपी तागेके टूटनेसे इन्द्रियां भिन्न २ होजाती हैं। जैसे राजाके नाश हुये सेना और गोपाल के नष्ट हुये गौवें भिन्न २ होजाती हैं और पिता के नष्ट हुये बालक व्याकुल होते हैं तैसेही अहंकार विना इन्द्रियां व्याकुल होती हैं। इनका अभिमान मुझमें कुछ नहीं। इनका अभिमानी अहंकार था सो मेरा नष्ट होगयाहै। इन्द्रियां अपने २ विषय में बिचरती हैं मुझको इनका न राग है और न द्वेषहै। हे साधो! मुझे न जाग्रतहै और न स्वप्न, सुषुप्ति भासती है; इन तीनोंसे रहित हम तुरीयापदमें स्थित हैं और हमारा अहं त्वं मिटगयाहै। हम नहीं जानते कि, मृग बायें गया या दाहिने क्योंकि; नेत्र इन्द्रियां देखनेवाली हैं उनको बोलने की शक्ति नहीं। ये अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं, एक इन्द्रिय को दूसरे की शक्ति नहीं फिर तुझसे कौन कहे? इन सबका धारनेवाला अहंकार था जो सबको अपना आप जानता था। जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट होतेहैं तैसेही अहंकारके नष्ट होनेसे हम स्वच्छ, निर्मल शान्त तुरीयापदमें स्थितहैं। इन्द्रियों का जीव और अहंकार मृतक होगया है और इन्द्रियां भी मृतक होगई हैं देखनेमात्र दृष्टि आती हैं। जैसे भीतपर पुतलियां लिखीहों पर उनके कार्य कुछ न हों तैसेही हमारी इन्द्रियोंसे कुछ कार्य नहीं होता तो तुझसे कौन कहे। वशिष्ठजी बोले, हे रामचन्द्र! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब बधिक समझकर उठगया। हे रामजी! तुरीयापद शान्तरूपहै जहां जग्रात्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों का अभाव है। वह केवल अद्वैतपद है। ये जो ब्रह्म, आत्मा, चिदानन्द आदिसंज्ञा हैं सो तुरीयापद में हैं और तुरीयातीतपद में शब्द की गम नहीं वह अशब्दपद है। विदेहमुक्त पुरुष उसी पद को प्राप्त होते हैं और जीवन्मुक्त साक्षात् करके तुरीयावस्था में विचरतेहैं; जहां जाग्रत् जो दीर्घ दुःख सुख का भान है सो नहीं और स्वप्न जो राग द्वेष के लिये अल्पकाल है सो भी नहीं और जड़ता तामस अवस्था भी नहीं। इन तीनों से रहित तुरीयापद है और शान्तहै उसमें कोई क्षोभ नहीं। यह जगत् उसका आभास है। जैसे समुद्र में तरङ्ग वास्तव में कुछ नहीं—जलही है, तैसेही केवल तुरीयास्वरूप सत्तासमान तेरा स्वरूपहै उसमें स्थित हो। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सिद्ध, ज्ञानी इत्यादिक स्थितहैं और काष्ठमौन बधिक का उपदेश करनेवाला भी तुरीयापदमें स्थितहै। उसकी विशेषकलना जो

भिन्न २ नामरूप को देखनेवाली थी निवृत्त हुई थी केवल सत्तासमान में स्थित था। इससे कलना को त्यागकर तुमभी तुरीयापद में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०काष्ठमौनवृत्तान्तवर्णनंनामषडधिकशततमस्सर्गः१०६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व केवल आकाशरूप है पर आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, आत्मा का ही चमत्कारहै। जैसे मेघ में बिजलीका चमत्कार होताहै तैसेही यह विश्वरूप चित्तकला आत्मा का चमत्कार है। हे रामजी! वास्तव में ब्रह्महीहै कुछ भिन्न नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह विश्व आपने ब्रह्मरूप कहा कि, मेघ में बिजलीकी नाईं क्षणमें उपजता और क्षणमें लीन होताहै; पर मेघमें बिजली दृष्टि आती है। जहां मेघ होता है वहां बिजलीभी होतीहै इससे मेघसे बिजली उत्पन्न हुई तो उसका कारण मेघ है? हे मुनीश्वर! इस चित्तस्पन्द कला के कारण की उत्पत्ति ब्रह्म से कैसे हुईहै सो कृपा करके मुझसे समझाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो वितण्डक होकर तुम तर्क करते हो सो कुछ नहीं—इस नाशबुद्धि को त्यागो। यह तो बालक भी जानते हैं कि, बिजली क्षणभंगुररूप है सत्य नहीं। तुम्हारा और क्या प्रयोज है सो कहो। यह तर्क कारण कार्यरूप का कैसा करतेहो? रामजी बोले, हे भगवन्! यह स्पन्दकला सत्यहै वा असत्य है? इसका कारण कौनहै जिससे यह फुरती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वप्रकार से सर्वात्माही स्थितहै। चित्त और चित्तस्पन्द यह भेद कलपना वास्तव में कुछ नहीं; ब्रह्मही अपने स्वरूपमें आप स्थित है और सब भ्रम से भासते हैं। जैसे भ्रमदृष्टि से आकाश में मोती भासते हैं और नेत्र मूंदकर खोलो तो तरुवरे आकार भासते हैं, तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासता है। हे रामजी! हम इस संसारसमुद्रके पार हुये हैं। हम प्रभृति ज्ञानवानोंके यथार्थ वचन सुनकर हृदय में धारो तो शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति हो और जो मूर्खता करके मेरे वचनोंको न धारोगे तो तुम्हारे दुःख नष्ट न होंगे और वृक्ष, तृण, बेल आदिक योनि पाओगे। हे रामजी! आकाश और काल आदिक पदार्थ सर्वकलनासे सिद्ध हुये हैं—आत्मा में कोई नहीं। हे रामजी! वायु से रहित जो समुद्रका चमत्कारहै उसका कारण कौन है? दीपक में जो प्रकाश और अग्नि में उष्णता है तो उस प्रकाश और उष्णता का कारण कौन है? वायु के निस्स्पन्द और स्पन्द का कारण कौन है? जैसे इनका कारण कोई नहीं, वायु का रूप स्पन्द निस्स्पन्द है, अग्नि का रूप उष्णता है और दीपक का रूप प्रकाश है तैसेही कलना भी आत्मस्वरूप है—कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी! यह कलना जो तुझ को भासती है उसको त्याग करो। जब अपने आप को देखोगे तब संशय मिट जावेंगे। जैसे जब प्रलयकाल का जल चढ़ता है तब सर्व जलमय होजाता है—कुछ भिन्न नहीं होता, तैसेही अपने स्वरूप को जब तुम देखोगे

तब तुमको सर्व आत्माही भासेगा—आत्मासे भिन्न कुछ न दृष्ट आवेगा । हे रामजी ! आत्मा एकरसहै; सम्यक्दर्शनसे ज्योंकात्यों भासेगा और असम्यक्दर्शन से औरका और भासेगा । जैसे रस्सीको यथार्थ न देखिये तो सर्पभ्रम होताहै और भयवान् होता है और जब ज्योंकी त्यों रस्सी जानी तब सर्पभ्रम निवृत्त होजाताहै तैसेही आत्माके न जानेसे जीव संसारी होता है, भयभीत होता है, आपको जन्मता मरता मानताहै और सर्वविकार देह के आत्मा में जानता है पर जब आत्मा को जानता है तब सर्व भ्रम निवृत्त होजाते हैं । जैसे नेत्रों से तारे दिखतेहैं और जब नेत्र मूंदलो तो उनका आकार अन्तःकरण में भासता है क्योंकि, उनकी सत्यता हृदय में होती है—पर जब हृदय से उनकी सत्यता उठजाती है तब फिर नहीं भासते, तैसेही चित्त के भ्रम से संसार हुआ है उसको मिथ्या जानो । हे रामजी ! फुरने में जो दृढ़भावना हुई है सो ही सत्य होकर मिथ्या संसार हुआहै; जब चित्तका त्याग करोगे तब संसारकी सत्यता जाती रहेगी । रामजी बोले, हे भगवन् ! आपने जो कहा कि, यह विश्व कल्पनामात्र है सो मैंने जाना कि, इसी प्रकार है—कुछ सत्य नहीं । जैसे राजा लवण, इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र और शुक्रकी कलना जब फुरनेमें दृढ़ हुई तब उन्हें फुरनरूप विश्व सत्य होकर स्थित हुआ और भासने लगा । हे भगवन् ! यह मैं जानता हूं कि, विश्व फुरनेमात्रहै पर जब फुरन मिटजातीहै तो उसके पीछे जो शान्तिरूप शेष रहताहै सो कहो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अब तुम सम्यक् बोधवान् हुयेहो और जो जाननेयोग्यहै वह तुमने जाना है । हे रामजी ! अध्यात्मशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि, और सब दृश्य असंभव है एक चिद्घन ब्रह्म अपने आपमें स्थित है । हे रामजी ! आत्मा शुद्ध, निर्मल और विद्या—अविद्या से रहित है और संसार का उसमें अत्यन्त अभाव है । जो कुछ शुद्ध आदिक संज्ञा कहाती हैं वे भी फुरने में हैं आत्मा तो निर्वाच्यपद है । उसकी संज्ञा इतनी शास्त्रकारों ने कही है । शून्यवादी तो उसीको शून्य कहते हैं; विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं; उपासनावाले उसीको ईश्वर कहते हैं; कोई कहतेहैं आत्मा सर्व का कारण है वही शेष रहता है; कोई आत्माको सर्वशक्त कहते हैं; कोई कहते हैं कि, आत्मा निःशक्तहै और कोई साक्षी आत्मा और शक्तिको भिन्न मानतेहैं । हे रामजी ! जितने वाद हैं सो सर्वही कलना से हुये हैं और कलनाको मानकर सब वाद उठाते हैं, वास्तवमें कोई वाद नहीं आत्मा निर्वाच्यपदहै । मेरा जो सिद्धान्त है वहभी सुनो । आत्मा सर्वकलना से अतीत है । जैसे पवनस्पन्द शक्ति से फुरताहै और निस्स्पन्द से ठहर जाता है क्योंकि, स्पन्दभी पवनहै और निस्स्पन्दभी पवनहै इतर कुछ नहीं, तैसेही आत्मा शुद्ध अद्वैतरूप है और कलना भी आत्मा के आश्रय फुरतीहै आत्मा से भिन्न नहीं । और जो भिन्न प्रतीत होतीहै उसको मिथ्या जानकर त्यागो और अपने

निर्विकारस्वरूपमें स्थित रहो। जब तुम आत्मस्वरूपमें स्थित होगे तब जितने शास्त्रों के भिन्न भिन्न मतवाद हैं सो कोई न रहेंगे। केवल अपना आप स्वच्छ आत्मा ही भासेगा। हे रामजी! उस निर्विकल्प पद को पाकर तुम शान्तिमान् हुये हो और अमृत की नाईं स्थित हुये हो क्योंकि, उनकी द्वैतकलना कुछ नहीं फुरती। हे रामजी! आत्मा, ब्रह्म आदिक शब्द भी उपदेश निमित्त कहेहैं पर आत्मा शब्द से अतीतहै और सर्वजगत् आत्मस्वरूप है और संसाररूप विकार आत्मा में असम्यक्दर्शन से भासते हैं जैसे शून्य आकाशमें तरुवरे मोतीवत् भासते हैं सो अविदित हैं। तैसेही आत्मा में जगत् द्वैत अविदित भासता है। इससे जगत् द्वैत की भावना त्याग कर निर्विकल्प आत्मस्वरूप में स्थित रहो॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०अविद्यानाशरूपवर्णनंनामसप्ताधिकशततमस्सर्गः १०७॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! देह, इन्द्रियां और कलना में सार वस्तु क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ यह अहं त्वं आदि जगत् दृश्य है सो सब चिन्मात्र है। जैसे समुद्र जलहीमात्र है तैसेही जगत् चिन्मात्र है। मनसहित षट्इन्द्रियों से जो कुछ दृश्य भासताहै सो भ्रममात्रहै। हे रामजी! देह, इन्द्रियां आदि सब मिथ्या हैं; आत्मा में कोई नहीं चित्त के कल्पे हुये हैं और चित्तही इन को देखता है। जैसे मरुस्थल में मृग को जलबुद्धि होती है तो जल के निमित्त दौड़कर दुःख पाताहै, तैसेही चित्तरूपी मृग आत्मरूपी मरुस्थल में देह इन्द्रियां विषयरूपी जल कल्पकर दौड़ता है और दुःख पाता है सो देहइन्द्रियोंमें भ्रम करके भासते हैं। जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में वैताल कल्पना तैसेही मूर्खचित्तने देहइन्द्रियादिक कल्पना की हैं। हे रामजी! आत्मा शुद्ध निर्विकार है उसमें चित्तने भ्रमसे विकार आरोपण किये हैं। जैसे भ्रांति दृष्टिसे आकाशमें दो चन्द्रमा भासते हैं, तैसेही चित्तने देह इन्द्रियां कल्पी हैं पर चित्त भी आपमें कुछ नहीं आत्मा की सत्ता लेकर चेष्टा करताहै। जैसे चुम्बक की सत्ता लेकर लोहा चेष्टा करता है तैसेही निर्विकार आत्मा की सत्ता लेकर चित्त नाना प्रकार के विकार कल्पता है। इससे चित्त का त्यागकरो जिसमें तुम्हारा विकार जाल मिटजावे। हे रामजी! देह इन्द्रियों में सार क्या है सो सुनो। जो कुछ संसार है उसमें सार देह है क्योंकि, सब देह के सम्बन्धी हैं। जब देह मिटजाता है तब सम्बन्धी भी नहीं रहते। देहमें सार इन्द्रियां हैं; इन्द्रियों में सार प्राण हैं; प्राणों में सार मन है और मन का सार बुद्धि है। बुद्धि का सार अहंकार है, अहंकार का सार जीव है, जीव का सार चिदावली है—चिदावली वासना संयुक्त चेतना को कहते हैं—और चिदावली का सार चित्त से रहित शुद्ध चेतन है जिसमें सर्व विकल्प की लय है और जो शुद्ध, निर्मल और चिन्मात्र ब्रह्म आत्मा है उसमें कोई उत्थान नहीं। हे रामजी! चिदावली पर्यन्त

सर्वको त्यागकर इनका जो सार चेतनमात्र आत्मा है उसमें स्थित हो। विश्वकलना-मात्र है, आत्मा में कुछ नहीं संकल्प की दृढ़ता से सत् की नाईं भासती है। आगे भी शुक्र और लवण राजा और इन्द्र के पुत्रों का वृत्तान्त कहा है कि, संकल्प की भावना से उन्हें जगत् दृढ़ होकर भासि आया था सो वास्तव में कुछ नहीं था; तैसेही यह विश्वभी चित्त के फुरने में स्थित है। असम्यक्दृष्टि से अद्वैत आत्मा में दृश्य भासता है। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है तैसेही आत्मा में अहंकार आदिक अज्ञानसे दृश्य भासते हैं। इस से इनको त्यागकर अपने वास्तवस्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! एक गढ़ तुमसे कहताहूं जिसमें किसी शत्रु की गम नहीं उसमें स्थितहो। हमभी उसी गढ़ में स्थित हैं और जितने ज्ञानवान् हैं वे भी उसी में स्थित होते हैं। हे रामजी! काम, क्रोध, लोभ अभिमानादिक विकार आत्मा में नहीं पायेजाते। जैसे रात्रि में दिन नहीं होता, तैसेही विकाररूपी दिन गढ़रूपी रात्रि में नहीं पायाजाता इससे अचिन्त्यरूप गढ़ में जहां कोई फुरना नहीं और जो केवल शान्तरूपहै उसमें अहंभाव त्यागकर स्थितहो तो अहंत्वंभाव निवृत्त होजावें। जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब ज्ञानी फुरने अफुरने में स्वरूप को तुल्य देखता है और सम्पूर्ण जगत् उसको आत्मरूप भासता है। इससे चिदावली से आदि देह पर्यन्त जो अनात्म है उसको क्रम करके त्यागो। प्रथम देह को त्यागो, फिर इन्द्रियोंके अभिमान को त्यागो; इसी क्रम से सब को त्यागके अपने वास्तवस्वरूप में स्थित हो ॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०जीवत्वाभावप्रतिपादनंनामाष्टाधिकशततमस्सर्गः१०८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार चेतनमात्र है। आत्मा से कुछ भिन्न नहीं, आत्माही विश्वरूप होकर स्थित हुआहै। जैसे सूर्य की किरणें ही जलाभास होती हैं तैसेही आत्माका चमत्कार दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। जैसे संकल्प और संकल्प-कर्त्ता भिन्न नहीं और आकाशही भ्रम से मोती की माला होकर भासता है, तैसेही आत्माही दृश्यरूप होकर भासता है। जैसे बीजही वृक्ष, फूल और फल होता है तैसेही विश्व आत्माही है और दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। जैसे जल के तरङ्ग जलही हैं तैसेही विश्व आत्माही है। हे रामजी! चिदावली भी जीव, अहंकार, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियां, देह, विश्व, आकाश, काल, दिशा, पदार्थ, सब आत्माही है—आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। इससे विश्व को अपना स्वरूप जानो। जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्यही है तैसेही तुम जानो कि, सर्व मैंहीहूं। जो ऐसे न जानसको तो ऐसे जानो कि, देहभी जड़ है और इन्द्रियों से पालित है; सो मैं नहीं। इन्द्रियां भी मैं नहीं क्योंकि, प्राण इन्द्रियों का सार है जो प्राण न हो तो इन्द्रियां किसी कामकी नहीं। प्राण भी मैं नहीं क्योंकि, प्राण का सार मनहै जो मन मूर्च्छित होताहै और प्राण आतेजाते भी हैं तोभी

किसी कामके नहीं। मन भी मैं नहीं क्योंकि, मन के प्रेरनेवाली बुद्धिहै; जो निश्चय बुद्धि करती है मन भी वहीं जाता है बुद्धि भी मैं नहीं क्योंकि, बुद्धि का प्रेरक अहंकार है और अहंकार भी मैं नहीं क्योंकि, अहंकार का सार जीव है जीव विना अहंकार किसी काम का नहीं। जीव भी मैं नहीं क्योंकि, जीव का सार चिदावली है। चिदावली शुद्ध-चिद्में चैतन्योन्मुखत्व होने को कहते हैं। जीवसंज्ञा से प्रथम ईश्वरभाव चिदावली भी मैं नहीं क्योंकि, चिदावली का सार चिन्मात्रहै सो अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है। ये सर्व अनात्मभ्रम से सिद्ध हुये हैं, मैं केवल शान्तरूप आत्माहूं। हे रामजी! जो तुम्हारा वास्तवस्वरूपहै वही होरहो उससे भिन्न अनात्म में अहं प्रतीतका त्याग करो तुम देह से रहित निर्विकार हो, तुममें जन्म मरणादिक कोई विकार नहीं और शान्तरूप ज्यों के त्यों स्थितहो। तुम कदाचित स्वरूप से और नहीं हुये—उसी स्वरूपमें स्थित रहो॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसारप्रबोधनंनामनवाधिकशततमस्सर्गः॥ १०९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा चिन्मात्र से बढ़के और सार कुछ नहीं। उसी में स्थित रहो जिसमें सब ताप मिटिजावें। हे रामजी! सर्व आत्मा ही स्थित है। जैसे बीजही फलफूल होकर स्थित होताहै तैसेही सर्व आत्मा ही स्थितहै तो निषेध और त्याग किसका करिये। इतना कह बाल्मीकिजी बोले, हे शिष्य! ऐसे वशिष्ठजी के वचन सुनके रामजी प्रसन्न हुये और जैसे कमल सूर्यको देखकर खिल आताहै तैसेही रामजी की बुद्धि वशिष्ठजी के वचनरूपी सूर्यसे खिल आई। तब बोले हे भगवन् सर्व धर्मज्ञ! आपकी कृपा से अब मैं जगा। बड़ा आश्चर्यहै कि, आत्मा सर्वदा अनुभवरूप और अपना आप है पर उसके प्रमादसे मैंने इतने काल दुःख पाया। अहंता और ममता-रूपी बड़ा बोझा जो शिर पर था उससे मैं दुःखी था। जैसे किसीके शिर पर पत्थर की शिलाहो और ज्येष्ठ आषाढ़की धूप में वह पैदल चले तो दुःख पाता है और जो उसके शिरसे कोई उस शिला को उतारले और छायामें बैठावे तो बड़े सुखको प्राप्त होताहै; तैसेही अज्ञानरूपी धूप में अहंताममतारूपी शिलासे मैं दुःखी था और आपने वचन-रूपी बल से उस शिला को उतार लिया और आत्मरूपी वृक्ष की छाया में विश्राम कराया। हे भगवन्! अब मुझे शान्तिपद प्राप्त हुआहै और मेरे तीनों ताप मिटगये हैं। अब जो सुमेरु पर्वतका भारभी आन प्राप्तहो तौभी मुझे कोई कष्ट नहीं। अब मेरे सर्व संशय निवृत्त हुयेहैं। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल और स्वच्छरूप होताहै, तैसे रागद्वेषरूपी द्वन्द्व मेरा नष्ट हुआहै। अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआहूं परन्तु एक प्रश्न है कृपा करके उसका उत्तर कहिये। महापुरुष बारम्बार प्रश्न करने में खेद नहीं मानते। हे भगवन्! आप कहते हैं कि, सर्व ब्रह्महीहै तो शास्त्र का विधि निषेध और उपदेश किसको कहते हैं कि, यह कर्म कर्तव्यहै और यह कर्म कर्तव्य नहीं।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। विश्वभी उसका चमत्कार है। जैसे समुद्र में पवन से नाना प्रकारके तरङ्ग फुरतेहैं पर जल से कुछ भिन्न नहीं, तैसेही चेतनमात्र आत्मा से चैतन्योन्मुखत्व अहंभाव को लेकर फुराहै उससे देश,काल,वस्तु बनगये हैं और शास्त्र फुरे हैं। फिर फुरने में दो रूप हुये हैं—एक विद्या और दूसरा अविद्या। उसमें विद्यारूप जो जीव हुये हैं वे ईश्वर कहातेहैं और अविद्यारूप जीव हैं। जिनको अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय वास्तव की रहीहै सो ईश्वर हैं और जिनका स्वरूप का प्रमाद हुआ और संकल्प विकल्प में बहतेहैं वे जीव दुःखी हैं। हे रामजी! इतनी संज्ञा फुरने में हुईहै तौभी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। जैसे एकही रस फूल,फल और वृक्ष हुआ है रससे कुछ भिन्न नहीं। आत्मा रस की नाईंभी प्रमाण को नहीं प्राप्त हुआ; फुरनेसे ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुईहै—आत्मामें कुछ नहीं। हे रामजी! जिन का संकल्प आधिभौतिक में दृढ़ नहीं हुआ वे जीव शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त होते हैं। और उनको आत्मा का साक्षात्कार शीघ्रही होता है। जिनका संस्कार आधिभौतिक में दृढ़ हुआहै वे चिरकाल में आत्मपद को प्राप्त होतेहैं। आत्मपद की प्राप्ति विना वे दुःख पाते हैं और जिनको आत्मपद की प्राप्ति होती है वे सुखी होतेहैं। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी के स्वरूपमें और कुछ भेद नहीं केवल सम्यक् और असम्यक् दर्शन का भेद है। हे रामजी! विद्याभी दो प्रकारकी है—एक ईश्वर वाद और दूसरा अनीश्वर वाद है। जो ईश्वरवादी हैं। वे तुरीयापदको प्राप्त होते हैं और जो अनी-श्वरवादी हैं उनको जब ईश्वर की भावना होती है तब वे शास्त्र और गुरुद्वारा ईश्वर को प्राप्त होते हैं। ईश्वरवादी भी दो प्रकारके हैं—एक वे जो और वासना त्याग कर ईश्वरपरायण होते हैं। वे शीघ्रही ईश्वर को प्राप्त होते हैं। आत्मा ही ईश्वर है जो सर्वका अपना आप है। दूसरे ईश्वर को मानतेहैं पर उनकी वासना संसार की ओर होती है। वे चिरकाल में आत्मपद को प्राप्त होतेहैं। अनीश्वरवादीभी दो प्रकारकेहैं-एक कहते हैं कि, कुछ होगा। उनको होते होतेकी भावना से शास्त्र और गुरु के द्वारा आत्मपद की प्राप्ति होगी। दूसरे कहते हैं कि, कुछ नहीं; उनको चिरकाल में जब आस्तिकभावना होगी तब आत्मपदको प्राप्त होंगे। हे रामजी! उनके निमित्त विधि और निषेध कहे हैं कि, शुभकर्मको अङ्गीकार करो और अशुभकर्म त्यागो तो उससे जब अन्तःकरण शुद्ध होगा तब आत्मपदकी प्राप्ति होगी। जो विधि निषेध शास्त्र न कहें तो बड़ा छोटेको भोजन करलेवे। इसनिमित्त शास्त्रका दण्डहै। हे रामजी! स्वरूप से किसीको उपदेश नहीं, भ्रम में उपदेश है। जिस पुरुष का भ्रम निवृत्त हुआहै वह फिर मोह में नहीं डूबता—जैसे जल में डूबा नहीं डूबता। और जिसका चित्त वासना से घेरा हुआ संसरता है उसको इस संसार से निकलना कठिनहै। जैसे उजाड़ के कुयें

में गिरके निकलना कठिन होताहै तैसेही चित्त से मिलकर संसार से निकलना कठिन होता है। हे रामजी ! इस चित्त को स्थिर करो कि, तुम्हारे दुःख मिटजावें और सत्ता-समान पद को प्राप्त हो। हे रामजी ! जिसको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है और अनात्म में अहं प्रत्यय निवृत्त हुआहै वह पुरुष जो कुछ करताहै उस में बन्धायमान नहीं होता वह सदा अकर्ता आपको देखता है और जिसको अहंप्रत्यय अनात्म में है वह पुरुष करे तौभी कर्ता है और जो न करे तौभी कर्ता है। हे रामजी ! जो ज्ञानी शुभकर्म करता है तो शुभकर्म करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त होता है और अशुभ कर्म करने से नरक को प्राप्त होताहै। जो शुभकर्म को त्यागताहै तौभी नरक को प्राप्त होता है क्योंकि; अनात्म में आत्म अभिमानहै। इससे बुद्धि और इन्द्रियों को मन से निग्रह करो और कर्म इन्द्रियोंसे चेष्टा करो। देखने, सुनने, सूंघने को मैं तुम्हें नहीं बर्जता; यही कहताहूं कि, अनात्म में अभिमान को त्यागो। जब अनात्म अभिमान को त्यागोगे तब शान्तपद को प्राप्त होगे और जहां तुम्हारा चित्त फुरेगा वहां आत्माही भासेगा-आत्मा से भिन्न कुछ न भासेगा। इससे चित्त को त्यागो—चित्त अहंभाव का नाम है—और आत्मपद में स्थित हो। जैसे विश्वकी उत्पत्ति हुई है सो भी सुनो। शुद्धचेतन-मात्र स्वरूप में चिदावलीरूप अहंतरङ्ग फुरा है। उस चिदावलीरूपी समुद्रमें जीवरूपी तरङ्ग उपजता है और जीवरूपी समुद्र में अहंकाररूपी तरङ्ग भासित हुआ है। अहंकाररूपी समुद्रमें बुद्धिरूपी तरङ्ग उपजाहै, बुद्धिरूपी समुद्रमें चित्तरूपी तरङ्ग भासाहै और चित्तरूपी समुद्र में संकल्परूपी तरङ्ग उपजा है। उस संकल्परूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग उपजा है और जगत्रूपी समुद्र में देहरूपी तरङ्ग भासित हुआहै और उसके संयोग से दृश्य का ज्ञान हुआहै कि; यह पदार्थ है, यह नहींहै, ये ऐसे हैं; उसीमें देश, काल, दिशा सर्व हुयेहैं। हे रामजी ! निदान वे सब संकल्पसे होगयेहैं सो आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। केवल शान्तरूप एकरस आत्मा है उसमें नाना प्रकार के आचार रचे हैं। जैसे स्वप्न की सृष्टि नाना प्रकार हो भासती है सो अपना ही अनुभव होताहै तैसेही इस जगत् कोभी जानो; आत्मा सर्वदा एकरस, अद्वैत, शुद्ध, परम निर्वाण, अपने आपमें स्थितहै और फुरनेसे नाना प्रकार की कल्पना उदय हुईहै। हे रामजी ! शुद्ध आत्मा में चिदेव संज्ञाभी संकल्पसे हुई है—"चिदेव पञ्चभूतानि; चिदेव भुवनत्रयम्" आत्मा निर्वाच्यपदहै उसमें वाणी की गम नहीं और शुद्ध शान्तरूप है। चिदेव जो फुरी है उस फुरने में संसार हुये की नाईं स्थित है। जैसे एकही बीजने वृक्ष, फूल, फल आदिक संज्ञा पाई है सो बीज से भिन्न कुछ नहीं और आत्मा बीज की नाईंभी नहीं संकल्पसेही नानासंज्ञा कल्पी है और जगत् स्थित हुआहै तौभी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। जैसे वायु चलती है तौभी वायु है और ठहरती है तौभी वायु है; तैसेही

आत्मा में नानात्व कुछ नहीं केवल शुद्ध अद्वैत है। आत्मरूपी समुद्र में नाना प्रकार विश्वरूपी तरङ्ग स्थित हैं। हे रामजी! आकारभी आत्मासे कुछ भिन्न नहीं; जो आत्मा से भिन्न भासे उसे मिथ्या जानो और मृगतृष्णाके जलकी नाईं जानकर उसकी भावना त्यागो और स्वरूप की भावना करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकत्वप्रतिपादनंनाम दशाधिकशततमस्सर्गः॥ ११०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मेरे वचनों को धारो और हृदय में आस्तिकभावना करो। जब सर्वत्याग करोगे तब चित्त क्षीण होजावेगा और जब चित्त क्षीण हुआ तब शान्ति होगी। हे रामजी! काष्ठवत् मौन होकर हृदयमें सर्वका त्याग करो। बाहरसे कर्मों को करो पर अभिमान से रहित होकर अन्तर्मुखी होरहो। अन्तर्मुखी आत्मामें स्थित होने को कहते हैं। जब आत्मामें स्थित होगे तब विद्यमान दृश्य भी तुम्हें न भासेगा क्योंकि; तब सर्व आत्माही भासेगा। जो तुम्हारे पास भेरीके शब्दहोंगे तौभी न सुन पड़ेंगे और जो सुगन्धि लोगे तौभी नहीं ली; निदान जो कुछ क्रिया करोगे सो तुम्हें स्पर्श न करेगी-आकाश की नाईं सर्वसे असंग रहोगे। हे रामजी! स्वरूप से भिन्न न देखना और आत्मा से भिन्न न फुरना, अन्धे गूंगे की नाईं और पत्थर की शिलावत् मौन हो रहो तब तुम्हारी चेष्टा यन्त्र की पुतलीवत् खड़ी होगी। जैसे यन्त्र की पुतली तागेकी सत्तासे चेष्टा करतीहै तैसेही तुम्हारी नीति शक्तिसे प्राणोंकी चेष्टा होगी। स्वाभाविक क्रिया में अभिमानसे रहित होकर स्थित होना, जो अभिमान सहित चेष्टा करता है वह मूर्ख और असम्यक्दर्शी है और जो सम्यक्दर्शी है उसको अनात्म में अभिमान नहीं होता। हे रामजी! जिसको अनात्म अभिमान नहीं और जिसका चित्त दृश्यमें लेपायमान नहीं होता वह सारी सृष्टिको संहारकरे अथवा उत्पन्न करे उसको कुछ बन्धन नहीं होता क्योंकि;वह सर्वकर्म अभिलाषसे रहित होकर करता है। हे रामजी! समाधि में स्थित हो और जाग्रत् की नाईं सबकर्म करो। तुममें सब कर्म दृष्टि भी आवें तौभी उनमें सुषुप्त की नाईं कोई फुरना न फुरे। अपने स्वरूप की समाधिभी रहे। समाधि भी तब कहिये कि, कोई दूसरा हो जो इसमें स्थितहो व इसका त्याग करे। हे रामजी! जहां एक शब्द और दो शब्द भी नहीं कहसके वह अद्वितीयात्मा परमार्थसत्ता है; उसमें चित्तने नाना प्रकारके विकार कल्पे हैं—ज्ञानी को एकरस भासता है। ज्ञानी को ज्ञानी जानता है। जैसे सर्पके खोजको सर्पही जानता है; तैसेही ज्ञानीको एकरस आत्माही भासताहै सो ज्ञानीही जानताहै। मूर्खको संकल्प से नाना प्रकार का जगत् भासता है इससे संकल्पको त्यागकर अपने प्रकृत आचार में बिचरो। जैसे उन्मत्त और बालक की चेष्टा स्वाभाविक होती है कि, अङ्ग हिलते

है; तैसेही अभिमान से रहित होकर चेष्टा करो। जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है तैसेही दृश्य की भावनासे ऐसे रहित हो कि, जड़की नाईं कुछ न फुरे। जब ऐसे होगे तब शान्तपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! चित्त के सम्बन्ध से क्षोभ उत्पन्न होता है। जैसे बसन्तऋतुमें फूल उत्पन्न होते हैं तैसेही चित्तरूपी बसन्तऋतुमें दुःखरूपी फूल उत्पन्न होते हैं। जब तुम चित्त को शान्त करोगे तब परमपदको प्राप्त होगे जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल है। इससे तुम असंग होरहो। जब तुम अस्थूलसे अ-स्थूल होगे तबभी असंग रहोगे। ऐसे पदको पाकर काष्ठ पत्थरकी नाईं मौन होरहो। हे रामजी! दृश्यपदार्थको त्याग कर जो द्रष्टा जाननेवाला है उसमें स्थित हो। हे रामजी! इन्द्रियां तो अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं उनकी ओर तुम भावना मत करो कि, यह सुन्दर रूपहै और इसकी प्राप्ति हो। भले के प्राप्त होनेकी भावना मत करो; इनके जाननेवाला जो आत्मा है उसीमें स्थित रहो। जो पुरुष द्रष्टा में स्थित होता है वह गोपद की नाईं संसारसमुद्र को लांघ जाता है। हे रामजी! जो पदार्थ दृष्टि आते हैं उनमें अपनी २ सृष्टि है सो संकल्पमात्रही है और अपने २ संकल्प में स्थित है पर सर्वसंकल्प आत्मा के आश्रय हैं। जैसे सब पदार्थ आकाश में स्थित हैं तैसेही सर्व संकल्प की सृष्टि आत्मा के आश्रय है। एकके संकल्प को दूसरा नहीं जानता—सृष्टि अपनी २ है। जैसे समुद्र में जितने बुद्बुदे हैं उनको जल से एकता है और आकार से एकता नहीं, तैसेही स्वरूप से सबकी एकता है; और संकल्पसृष्टि अपनी २ है। जो पुरुष ऐसे चिन्तता है कि, मैं उसकी सृष्टिको जानूं तब जानता है। हे रामजी! आत्मा कल्पवृक्ष है; उसमें जैसी कोई भावना करता है तैसीही सिद्धि होती है। जब ऐसीही भावना करके जीवस्वरूप में लगताहै कि, सब सृष्टि मुझे भासे तो भावनासे भासि आती है। ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता क्योंकि, आत्मा से भिन्न वह कोई पदार्थ नहीं जानता और जानताहै कि, स्वरूप से सबकी एकता है पर संकल्परूप से एकता नहीं होती। जैसे तरङ्गों की एकता नहीं पर जल की एकता है और जो एक तरङ्ग दूसरे के साथ मिलजाता है तो उससे एकता होती है, तैसेही एकका संकल्प भावना से दूसरे के साथ मिलता है; इससे ज्ञानी जानता है कि, संकल्परूप आकार नहीं मिलते और स्वरूप से सबकी एकता है। जिसकी भावना होती है कि, मैं इसकी सृष्टि को देखूं तो वह उसके संकल्प से अपना संकल्प मिलाकर देखता है तब उसकी सृष्टि जानता है। जैसे दो मणियों का प्रकाश भिन्न २ होता है और जब दोनों इकट्ठी करके आगे रखिये तो दोनों का प्रकाश इकट्ठा होजाता है; तैसेही संकल्प की एकता भावना से होती है। ज्ञानी को प्रथम संकल्प हो कि, मैं उसकी सृष्टि देखूं तो संकल्प से देखता है और ज्ञान के उपजेसे वाञ्छा नहीं रहती। हे रामजी! इच्छा चित्त का

धर्म है । जब चित्त ही नष्ट होगया तब इच्छा किसकी रहे । जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब चित्तरूपी दैत्य प्रसन्न होताहै कि, यह मेरा आहार हुआ और मैं इसको भोजन करूंगा । हे रामजी ! जो पुरुष चित्त की ओर हुआ है और जिसको स्वरूप की भावना नहीं हुई सो चित्तरूपी दैत्य उसे जन्मरूपी वन में लिये फिरता है; उसको भोजन करता रहताहै; उसका पुरुषार्थ नाश करता है और आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न नहीं होने देता । जैसे वृक्ष को अग्नि लगे तो फिर उसमें फल नहीं लगते, तैसेही पुरुषार्थरूपी वृक्ष को भोगरूपी अग्नि लगी तो शुद्ध बुद्धिरूपी फल उत्पन्न नहीं होते । हे रामजी ! अपना चित्त आत्मा में लगावो और विषय की ओर जाने न दो । यह चित्त दुष्ट है; जब इसको स्थित करोगे तब परम अमृत से शोभायमान होगे और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से शोभताहै तैसेही ब्रह्मलक्ष्मी से शोभोगे और परम निर्वाणपद को प्राप्त होगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनंनामैकादशाधिकशततमस्सर्गः ॥ १११ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ज्ञान की सप्तभूमिका हैं इनसे ज्ञान की उत्पत्ति होती है रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जिस भूमिका में जिज्ञासी प्राप्त होता है उसका लक्षण क्या है और ये सप्तभूमिका क्या हैं और कैसे प्राप्त होतीहैं सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ये सप्तभूमिका जिस प्रकार प्राप्त होतीहैं और जिस प्रकार इनसे ज्ञान प्राप्त होता है सो सुनो । हे रामजी ! जब बालक माता के गर्भ में होता है तब उसको दृढ़ सुषुप्ति जड़ अवस्था होती है—जैसे ज्ञानी को होती है—परन्तु बालक में संस्कार रहता है उससे संस्कारकी सत्यता आगे होती है । जैसे बीज में अंकुर होताहै उससे आगे वृक्ष होता है तैसेही बालक की भावी होती है और ज्ञानी की भावी नहीं होती । जैसे दग्धबीज में अंकुर नहीं होता तैसेही ज्ञानी की भावी नहीं होती क्योंकि; वह संसार से सुषुप्ति है और स्वरूपमें नहीं । जब बालकको बाहर निकलके कुछ काल व्यतीत होता है तब दृढ़ जड़ता निवृत्त होजाती है और सुषुप्ति रहतीहै । कुछ काल के उपरान्त सुषुप्ति भी लय होजाती है और चेतनता होती है । तब वह जानता है कि, 'यह मैंहूं;' "ये मेरे पिता-माता हैं" । तब कुलवाले उसको सिखाते हैं कि, यह मीठाहै; यह कड़ुआ है; यह तेरी माता है; यह तेरा पिता है; यह तेरा कुल है; इससे पाप होताहै; इससे पुण्य होताहै; इससे स्वर्ग मिलता है; इससे नरक पाताहै; इस प्रकार यज्ञ होता है; इस प्रकार तप होताहै और इस प्रकार दान करते हैं । हे रामजी ! इस प्रकार कुल के उपदेश और शास्त्र के भय से वह धर्म में बिचरता है और पाप का त्याग करताहै । ऐसा शास्त्र अनुसार बिचरनेवाला पुरुष धर्मात्मा कहाता है । वे धर्मात्मा पुरुष भी दो

प्रकार के हैं-एक प्रवृत्ति की ओर है और दूसरा निवृत्ति की ओर है। जो प्रवृत्ति की ओर है वह पुण्यकर्मों से स्वर्ग के फल भोगता है और मोक्ष को उत्तम नहीं जानता, इससे संसार में जलके तृणवत् भ्रमता है और कभी चिरकाल से इस क्रम से मुक्त होता है। जो निवृत्ति की ओर होता है उसको विषय भोग से वैराग्य उपजता है और वह कहता है कि, यह संसार मिथ्या है; मैं इससे तरूं और उस पद को प्राप्त होऊं जहां क्षय और अतिशय न हो-यह संसार सर्वदा चलरूप और दुःखदायी है। हे रामजी! उस पुरुष को इस क्रम से ज्ञान और विज्ञान उत्पन्न होता है और जो पशुधर्मा मनुष्यहै उसको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है-शास्त्रके अर्थ के न जाननेवालों को पशुधर्मा कहते हैं। वे अपनी इच्छासे बिचरकर अशुभको ग्रहण करते और विचार से रहित होते हैं। मनुष्यभी दो प्रकार के हैं-एक प्रवृत्ति के धारनेवाले और दूसरे निवृत्ति के धारनेवाले। प्रवृत्तिमार्ग इसे कहते हैं कि, जिसको शास्त्र शुभ कहे उसको ग्रहण करना और जिसे अशुभ कहे उसका त्याग करना और कामना करके फल के निमित्त यज्ञादिक शुभकर्म करने कि, स्वर्ग, धन, पुत्रादिक मुझे प्राप्त हों। ऐसी कामना धारकर जो शुभकर्म करके इस प्रकार संसारसमुद्र में बहते हैं वे चिरकाल में निवृत्ति की ओर भी आते हैं तब स्वरूप पाते हैं। निवृत्ति यह है कि, जो निष्काम होकर और शुभकर्म करके अन्तःकरण शुद्ध करता है उसको वैराग्य उपजताहै और वह कहताहै कि, मुझे कर्मोंसे क्याहै और फलोंसे क्या है; मैं किसी प्रकार आत्मपद को प्राप्त होऊं। वह यही विचारता है कि, मैं संसार से कब मुक्त हूंगा? यह संसार मिथ्या है और मुझे भोगसे क्याहै? यह भोग तो सर्प है। हे रामजी! इसप्रकार वह भोगों की निन्दा करता है; संसार से उपरत होता है; शम, दम आदिक जो ज्ञान के साधनहैं उनमें बिचरताहै; देश, काल और पदार्थको शुभ अशुभ विचारता है; मर्यादा से बोलता है; सन्तजनोंका संग करताहै और सत् शास्त्र और ब्रह्मविद्याको बारम्बार विचारता है। इस प्रकार सन्तजनोंके संगसे उसकी बुद्धि बढ़ती जातीहै। जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कला दिन दिनप्रति बढ़ती है तैसेही उसकी बुद्धि बढ़ती है और विषया से उपरत होतीहै तब वह तीर्थ, ठाकुरद्वारों आदि शुभ स्थानों को पूजता है; देह और इन्द्रियों से सन्तों की टहल करता है और सर्वसे मित्रता रखके दया, सत्य और कोमलतापूर्वक बिचरता है। वह ऐसे वचन बोलताहै कि, जिससे सब कोई प्रसन्न हो और जो यथाशास्त्र हों; इससे भिन्न किसी को नहीं कहता। वह अज्ञानी का संग त्यागता है; स्वर्ग आदिक सुखकी भावना नहीं करता है-केवल आत्मपरायण होता; सन्त और शास्त्रों की दृढ़ भावना करता है और उनके अर्थों में सुरत लगाकर और किसी ओर चित्त नहीं लगाताहै। जैसे कादर्य दरिद्री सर्वदा धनकी चिन्तना करता

है तैसेही वह सदा आत्मा की चिन्तना करताहै। जो पुरुष इतने गुणों संयुक्त है उस को प्रथम भूमिका प्राप्त हुई है। वह पापरूपी सर्प को मोरके समान नाश करता है; सन्तजन, सत्शास्त्र और धर्मरूपी मेघ को गर्दन ऊंची करके देखता है और प्रसन्न होता है। इसका नाम शुभेच्छा है। उसको फिर दूसरी भूमिका प्राप्त होतीहै तब जैसे शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला बढ़तीजातीहै तैसेही उसकी बुद्धि बढ़ती जातीहै। उसके ये लक्षण हैं; सत्शास्त्रों और ब्रह्मविद्याको विचारके दृढ़ भावना करनी। उस विचार का कवच जो गले में डालताहै उससे शस्त्रोंका कोई घात नहीं लगता। इन्द्रियरूपी चोरके हाथमें इच्छारूपी बरछीहै सो विचाररूपी कवच पहिरनेवालेको नहीं लगती। हे रामजी! इन्द्रियरूपी सर्प में तृष्णारूपी विष है उससे मूर्ख को मारताहै। विचारवान् पुरुष इन्द्रियों के विषयोंको नाश कर डालताहै और सर्वओरसे उदासीन रहता है और दुर्जनों की संगति का बल करके त्याग करताहै। जैसे गधा तृणको त्यागता है तैसेही मूर्ख की संगति वह त्यागताहै। उसमें सर्व इच्छाका भी त्याग होताहै परन्तु एक इच्छा रहती है, कि दया सबपर करता है और सन्तोषवान् रहताहै। उसके निषेधगुण स्वाभाविक जाते रहते हैं और दम्भ, गर्व, मोह, लोभ आदिक स्वाभाविक नष्ट होजाते हैं। जैसे सर्प कञ्चुकी को त्यागकर शोभायमान होताहै तैसेही विचारवान् इन्द्रियों के विषयों को त्याग करके शोभता है। जो उसमें क्रोध भी दृष्टि आता है तो क्षणमात्र होता है हृदयमें स्थित नहीं होसक्ताहै। वह खाना, पीना, लेना, देना आदि क्रिया विचारपूर्वक करता है और सर्वदा शुद्धमार्गमें बिचरताहै; सन्तजनों का संग और सत्शास्त्रों के अर्थ विचारनेसे बोधको बढ़ाता और तीर्थोंके स्नानसे काल व्यतीत करता है। हे रामजी! यह दूसरी भूमिका है। जब तीसरी भूमिका आतीहै तब श्रुति जो वेद और स्मृति जो धर्मशास्त्र उनके अर्थ हृदय में स्थित होते हैं और जैसे कमलपर भँवरे आन स्थित होते हैं, तैसेही उस पुरुषके हृदयमें शुभगुण स्थित होते हैं; तब उसे फूलोंकी शय्या सुखदायी नहीं भासती, वन और कन्दरा सुखदायक भासते हैं। निदान उसका वैराग्य दिन २ बढ़ताजाताहै और वह तालाव, बावलियों और नदियों में स्नान करके शुभस्थानों में रहताहै; पत्थरकी शिला पर शयन करता है; देह को तप से क्षीण करता है, धारणा से चित्त को किसी ठौर में नहीं लगाता; आत्मभावना और ध्यान करके भोगोंसे सर्वदा उपराम होताहै। भोगोंको अन्तवन्त विचारके कि, यह स्थिर नहीं रहते और देहके अहंकारको उपाधि जानकर वह त्यागता है, देहको रक्त, मांस, पुरीषादिक से पूर्ण जानकर उसमें अहंकार को त्यागता है और निन्दा करता है और सूखे तृण की नाईं तुच्छ जानकर त्यागता है। जैसे विष्ठा संयुक्त तृण को पशु त्यागता है तैसेही देह के अहंकार को वह त्यागताहै और

कन्दराओंमें बिचरके फल फूलोंका आहार करताहै, सन्तजनोंकी टहल करके आयुर्बल बिताता है और सदा असंग रहता है। यह तीसरी भूमिका है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकालक्षणविचारोनाम द्वादशाधिकशततमस्सर्गः॥ ११२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञान का यह साधन है कि, ब्रह्मविद्या को विचार के उसके अर्थको बारम्बार भावना करना और पुण्यक्रियामें विचरना; इससे भिन्न ज्ञान का कोई साधन नहीं–इसी से ज्ञान की प्राप्ति होती है। जिस पुरुष को ऐसी भावना होती है उसको यदि नाना प्रकारकी सुगन्ध–अगर, चन्दन, चोये आदि और अप्सरा अनिच्छित प्राप्त हों तो उनका निरादर करताहै और जो स्त्री को देखताहै तो माता समान जानताहै; पराये धनको पत्थरके बट्टे समान देखकर वाञ्छा नहीं करता और सब भूतों को देखकर दयाही करताहै। जैसे आपको सुख से प्रसन्न और दुःख से अनिष्ट जानता है तैसेही वह और को भी आप जानकर सुख देताहै और दुःख किसीको नहीं देता। इस प्रकार वह पुण्यक्रियामें बिचरता है। सत्शास्त्रोंके अर्थका अभ्यास करताहै और सर्वदा असंग रहताहै। असंगति भी दो प्रकारकी है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संग असंग का लक्षण क्या है-इनका भेद समझाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! असंग दो प्रकारका है–एक समान और दूसरा विशेष; उनका लक्षण सुनो। समान असंग यह है कि मैं कुछ नहीं करता। न मैं किसीको देताहूं और न मुझे कोई देताहै। सर्व ईश्वरकी आज्ञाहै, जिसको धन देनेकी इच्छा होतीहै उसको धन देताहै और जिससे लेना होताहै उससे लेता है, अपने आधीन कुछ नहीं। समान असंगवाला जो कुछ दान, तप, यज्ञादि करता है वह ईश्वरार्पण करताहै और अपना अभिमान कुछ नहीं करता और कहता है कि, सब ईश्वर की शक्ति से होताहै। इस प्रकार निरभिमान होकर वह धर्मचेष्टा में स्वाभाविक बिचरता है और जो कुछ इन्द्रियोंके भोग की सम्पदाहै उसको आपदा जानताहै, और भोगों को महाआपदारूप मानताहै। संपदा आपदारूपहै; संयोग वियोगरूपहै और जितने पदार्थ हैं वे सब सन्निपातरूप हैं–विचारसे नष्ट होजाते हैं इससे सबको वह नाशरूप जानताहै। यह संयोग वियोगको दुःखदायी जानताहै; परस्त्रीको विषकी बेलि समान रससे रहित जानताहै और सर्व पदार्थों को प्रणामी जानकर किसीकी इच्छा नहीं करता सम्पूर्ण विश्व का जो ईश्वर है उसे जिसको सुख देनाहै उसको सुख देताहै और जिसको दुःख देना है उसको दुःख देता है; अपने हाथ कुछ नहीं करने करानेवाला ईश्वर है। न मैं करताहूं; न मैं भोक्ताहूं; और न मैं वक्ताहूं-सब ईश्वरकी सत्तासे होताहै॥ ऐसे निरभिमान होकर वह पुण्यक्रिया करताहै॥ यह समान असंग है। उसके वचन

सुननेसे श्रवण को अमृतकी प्राप्ति होतीहै। इस प्रकार सन्तों के मिलने और तीसरी भूमिका की प्राप्ति से जिसकी बुद्धि बढ़ी है और जो निरभिमान है उसके उपदेश में अनुभवसे तबतक अभ्यास करे जबतक हाथपर आंवले की नाईं आत्माका अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्षहो विशेष असंगवाला कहलाहै कि; न मैं कुछ करताहूं, न करानाहूं; केवल आकाशरूप आत्माहूं न मुझ में करनाहै, न करानाहै; न कोई औरहै, न मेरा है; मैं केवल आकाशरूप अद्वैत आत्मा हूं। हे रामजी! वह पुरुष न भीतर, न बाहर, न पदार्थ, न अपदार्थ, न जड़, न चेतन, न आकाश, न पाताल, न देश, न पृथ्वी, न मैं, न मेरेको देखता है, वह निर्वास, अज, अविनाशी, सर्वशब्द अर्थोंसे रहित, केवल शून्य आकाशमें स्थित है। चित्तसे रहित चेतन में जो स्थित है उसको श्रेष्ठ असंग कहतेहैं और उसकी चेष्टा दृष्टि भी आतीहै तौभी उसमें हृदयमे पदार्थों की भावना का अभाव है। जैसे जल में कमल दृष्टि भी आता है परन्तु ऊंचाही रहताहै, तैसेही वह क्रियामें विचरता दृष्टिभी आताहै परन्तु असंग रहताहै। उसको कोई कामना नहीं रहती कि, यह हो और यह न हो क्योंकि; उसको संसारका अभाव निश्चय हुआ है और सर्वकलना से रहित है। उसको आत्मा से भिन्न किसी पदार्थ की सत्ता नहीं फुरती। यह श्रेष्ठ असंग कहाता है। कार्य करनेसे उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और न करनेमें कुछ हानि नहीं होती; वह सर्वदा असंग है और संसारमें कदाचित् नहीं डूबता क्योंकि, वह तो संसारसमुद्र के पार हुआ है और उसने अनात्म में आत्मभावना त्यागी है; अहंभाव का त्याग किया है; इष्ट अनिष्टरूप जितने पदार्थ हैं उनके सुखदुःखकी वेदना उसे नहीं फुरती और वह सदा मौनरूपहै। उसे पैसा पत्थर के समान है। यह श्रेष्ठ असंग कहाता है। हे रामजी! एक कमल है जो अज्ञानरूपी कीचड़ से निकलकर आत्मरूपी जल में विराजता है उसका बीज संसार की अभावना है। उस जल में तृष्णारूपी मछलियां हैं जो उस कमल के चहुंओर फिरती हैं और उसके साथ कुकर्म दुःखरूपी कांटे हैं। अज्ञानरूपी रात्रि से उस कमलका मुख मूंदा रहताहै और विचाररूपी सूर्य के उदय हुयेसे खिलता और शोभता है। उसमें सुगन्ध सन्तोष है। और वह हृदय के बीच लगता है। उसका फल असंग है। यह तीसरी भूमिका में उगता है। हे रामजी! सन्त की संगति और सत्शास्त्रों का विचारना सार को प्राप्त करता है और अमृत मोक्ष को प्राप्त होताहै। बड़ा कष्टहै कि, ऐसे स्वरूप को विस्मरण करके जीव दुःखी होते हैं। इसका स्वरूप जो दुःखों का नाश करताहै और जिसमें कोई दुःख नहीं आनन्दरूपहै सो इन भूमिकाओं के द्वारा प्राप्त होताहै। हे रामजी! यह तीसरी भूमिका ज्ञानके निकट बनती है और विचारवान् इन भूमिकाओं में स्थित होकर बुद्धि को बढ़ाते हैं। जब इस प्रकार वह बोध को बढ़ाता

है तो शास्त्र की युक्ति से रक्षा करता है और क्रम करके इस तीसरी भूमिका को प्राप्त होताहै जहां असंगता प्राप्त होती है। जैसे किसान खेती की रक्षा करके बढ़ाताहै तैसेही। वह विचाररूपी जलसे बुद्धि को बढ़ाताहै तब बुद्धिरूपी बल्ली बढ़तीहै। फिर चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है और अहंकार, मोहादिक शत्रुओं से रक्षा करता है। हे रामजी! इस भूमिका को प्राप्त होकर ज्ञानवान् होता है सो यह भूमिका क्रम करके प्राप्त होती है अथवा बड़े पुण्य कर्म कियेहों उनसे आन फुरती है वा अकस्मात् भी आन फुरतीहै। जैसे नदीके तटपर कोई आ बैठाहो और नदीके वेगसे बीचमें जापड़े तैसेही जब पहली भूमिका प्राप्त होती है तब बुद्धि को बढ़ाती है और जब बुद्धिरूपी वेलि बढ़ती है तब ज्ञानरूपी फल लगता है। जब ज्ञान उपजता है तब उसमें प्रत्यक्ष क्रिया दृष्टि भी आवे तौ भी उसका वह अभिमान नहीं करता जैसे शुद्धमणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण भी करती है परन्तु उसमें कोई रङ्ग नहीं चढ़ता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेतृतीयभूमिकाविचारोनाम त्रयोदशाधिकशततमस्सर्गः॥ ११३॥

रामजी बोले, हे भगवन्! आपने भूमिका का वर्णन किया पर उसमें मुझे यह संशय है कि, जो भूमिका से रहित और प्रकृत के सम्मुख हैं उनको भी कदाचित् ज्ञान उपजेगा अथवा न उपजेगा? और जो एक, दो, वा तीन भूमिका पाकर शरीर छूटे और आत्मा का साक्षात्कार न हुआ हो और उसको स्वर्ग कीभी कामना नहीं तो वह कौन गति पाताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष विषयी हैं उनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है; वे वासना करके घटीयन्त्र की नाईं कभी स्वर्ग और कभी पातालको जाते हैं और दुःख पाते हैं; कदाचित् अकस्मात् काकतालीय न्याय की नाईं उनको सन्त के संग और सत्शास्त्रों को सुननेकी वासना फुरती है। जैसे मरुस्थल में बेलि लगना कठिन है तैसेही जिस पुरुष को आत्मा का प्रमाद है और भोग की भावना है उसको ज्ञान प्राप्त होना कठिनहै। परन्तु जब अकस्मात् उसे सन्तों के संग से वैराग्य उपजता है और उसकी बुद्धि निवृत्ति की ओर आतीहै तब भूमिका के द्वारा उसे ज्ञान प्राप्त होता है और तभी मुक्त होताहै। हे रामजी! अकस्मात् यही भावना उपजे विना योनियों में भ्रमता है। जिसको एक अथवा दो भूमिका प्राप्त हुई हैं और शरीर छूट गया तो वह और जन्म पाकर ज्ञान को प्राप्त होताहै और पिछला संस्कार जाग आता है और दिन २ बढ़ता जाता है। जैसे बीजसे प्रथम वृक्ष का अंकुर होताहै, फिर डाल, फूल और फल से बढ़ता जाता है तैसेही उसको अभ्यास का संस्कार बढ़ता जाता है और ज्ञान प्राप्त होताहै। जैसे पहलवान खेलकर रात्रि को सोजाता है और फिर दिन को उठताहै तब पहलवानही का अभ्यास आय फुरताहै और जैसे कोई मार्ग चलता

चलता सोजावे और जागकर चलनेलगे तैसेही वह फिर पूर्व के अभ्यासको लगाता है। हे रामजी! जिसको यह भावना होती है कि, मुझे विशेषता प्राप्त हो वह जन्म पाता है और ब्रह्मा से चींटीपर्यन्त जिसको विशेष होनेकी कामना है सो जन्म पाता है। ज्ञानी को भोगों की और विशेष प्राप्त होनेकी इच्छा नहीं होती। जिसको भोग की इच्छा होती है वह भोग से आप को विशेष जानता है और अनिष्ट की निवृत्ति की इच्छा करताहै ज्ञानी को कोई वासना नहीं होती कि, यह विशेषता मुझे प्राप्त हो इसी से वह फिर जन्म नहीं पाता जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही वासनासे रहित ज्ञानी जन्म नहीं पाता। हे रामजी! जन्म का कारण वासना है। जैसी जैसी वासना होती है तैसी २ अवस्थाको जीव प्राप्त होताहै। नाना प्रकार की वासनाहैं; जब शरीर छूटने का समय आता है तब जो वासना दृढ़ होतीहै और जिसका सर्वदा अभ्यास होताहै वही अन्तकाल में दिखाई देतीहै चाहे वह पाठ की, तप की, कर्म की, देवता इत्यादिक की हो सबको मर्दन करके वही उस समय भासतीहै। हे रामजी! उस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं सो भी नहीं भासते और पांचो इन्द्रियों के विषय विद्यमान हों तौ भी नहीं भासते पर वही पदार्थ भासता है जिसका दृढ़ अभ्यास किया होताहै। वासना तो अनेक होतीहैं परन्तु जैसी वासना दृढ़ होतीहै उसीके अनुसार शरीर धारता है। जब देह छूटता है तब मुहूर्तपर्यन्त सुषुप्तिकी नाईं जड़ता रहती है उसके उपरान्त चेतनता होतीहै तब वासना के अनुसार शरीर देखता है और जानता है कि, यह मेरा शरीर है; मैं उत्पन्न हुआ हूं। कोई ऐसे होतेहैं कि, उसी क्षण में युग का अनुभव करते हैं; कोई ऐसे होतेहैं कि, चिरकालपर्यन्त जड़ रहतेहैं तब उनको चेतनता फुरती है और उसके अनुसार संसारभ्रम देखते हैं और कोई जो संस्कारवान् होते हैं उनको शीघ्रही एकक्षण में चेतनता होती है और वे जानते हैं कि, हम उस ठौर मुयेथे और इस ठौर जन्मे हैं; यह हमारी माता है, यह पिता है और यह कुल है। इस प्रकार एक मुहूर्त में जागकर वे देखतेहैं और बड़े कुल को देखतेहैं। इसी प्रकार वे परलोक और यमराज के दूतों को देखते हैं और जानतेहैं कि, यह हमें लिये जातेहैं और हमारे पुत्रों ने पिण्ड किये हैं उनमें हमा। शरीर हुआ है और दूत लेचले हैं। तब आगे ये धर्मराज को देखतेहैं और उसके निकट जाके खड़े होतेहैं और पुण्य पाप दोनों मूर्ति धारकर उनके आगे स्थित होते हैं। तब धर्मराज अन्तर्यामी से एक २ का हाल पूछताहै कि, इसने क्या कर्म कियेहैं? यदि पुण्यवान् होताहै तो स्वर्ग भोग भोगाकर फिर योनि में डालाजाता है और जो पापी होता है तो नरक में डालदेते हैं। निदान सब प्रकार जन्मों को धारता है। सर्प की योनि में कहता है कि मैं सर्पहूं और बैल, वानर, तीतर, मच्छ, बगला, गर्दभ, बेलि, वृक्ष इत्यादिक योनि पाता है, तो जानता है कि, मैं यही

हूं। अकस्मात् काकताली योग की नाईं कदाचित् मनुष्य शरीर पाताहै तो माता के गर्भ में जानता है कि, यहां मैंने जन्म लिया है; यह मेरी माता है, मैं पिता से उत्पन्न हुआ हूं और यह मेरा कुल है। फिर बाहर निकलताहै और बालक होताहै तब जानता है कि, मैं बालक हूं; यौवन अवस्था होतीहै तब जानता है कि, मैं जवानहूं और फिर वृद्ध होताहै तब जानता है कि, मैं वृद्ध हूं। इस प्रकार काल बिताकर जब मरता है तो सर्प, तोता, तीतर, वानर, मच्छ, कच्छ, वृक्ष, पशु, पक्षी, देवता इत्यादिक का जन्म धारण करताहै। हे रामजी! संसार में वह घटीयन्त्रकी नाईं फिरताहै और कभी ऊर्ध्व और कभी अध को जाता है और इसी प्रकार स्वरूप के प्रमाद से दुःख पाता है। हे रामजी! इतना विस्तार जो तुमसे कहाहै सो बना कुछ नहीं केवल अद्वैत आत्माहै पर चित्त के संयोग से इतना भ्रम देखता है और वासनाद्वारा विमानों को देखता है और आकाश में जाताहै। जैसे पवन गन्ध को लेजाता है तैसेही पुर्यष्टकाको लेजाता है और शरीर देखता है। हे रामजी! आत्मा से भिन्न कुछ नहीं परन्तु चित्तके संयोग से इतने भ्रम देखताहै। इससे चित्तको स्थित करो तो भ्रम मिटजावेगा और आत्मतत्त्वमात्रही शेष रहेगा। जो शुद्ध और आनन्दरूप है उसी में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्ववासनारूपवर्णनंनाम चतुर्दशाधिकशततमस्सर्गः॥ ११४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तो प्रवृत्तिवाले का क्रम कहा अब निवृत्ति का क्रम सुनो। जिसको भूमिका प्राप्त हुई है और आत्मपद नहीं प्राप्त हुआ उसके पाप सब दग्ध होजातेहैं। जब उसका शरीर छूटताहै तब वह वासना के अनुसार शून्याकार हुआ फिर अपने साथ शरीर देखता है और फिर बड़े परलोक को देखताहै जहां स्वर्ग के सुख भोगता है। फिर विमानपर चढ़के लोकपालोंके पुरों में बिचरता है जहां मन्द मन्द पवन चलता है, सुन्दर वृक्षोंकी सुगन्ध है और पांचों इन्द्रियों के रमणीय विषय हैं। देवताओं में क्रीड़ा करताहै और भोगों को भोगकर संसार में उपजता है और फिर भूमिका क्रम को प्राप्त होताहै। जैसे मार्ग चलता कोई सोजावे तो जागकर फिर चलता है तैसेही शरीर पाकर वह फिर भूमिका के क्रम को प्राप्त होताहै और जैसी २ भावना दृढ़ होती है तैसेही भासता है। यह सब जगत् संकल्पमात्र है, संकल्प के अनुसारही भासताहै और वासनाके अनुसार परलोकभ्रम सुख दुःख देखता है, वहां से भोगकर फिर संसार में आनपड़ता है। इसी प्रकार संकल्प से भटकता है और जब आत्मा की ओर आता है तब संसारभ्रम मिटजाता है। जबतक आत्मा की ओर नहीं आता तबतक अपने संकल्प से संसार को देखता है। जीव जीव प्रति अपनी २ सृष्टि भासती है देवता, दैत्य, भूमिलोक, स्वर्ग सब संकल्प के रचेहुये हैं। जो कुछ

संसार भासता है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से आदि लेकर वह सब मनोमात्र है, मन के संकल्प से उदय हुआ है और असत्‌रूप है। जैसे मनोराज, गन्धर्बनगर और स्वप्नसृष्टि भ्रमरूप हैं तैसे ही यह जगत् भ्रमरूप है। यह सृष्टि परस्पर अदृष्ट है; कहीं उदय होती भासती है और कहीं लय होजाती है। जैसे मूर्ख और देश को जाता है तैसेही देह को त्यागकर जीव परलोक जाताहै पर स्वरूप में आना, जाना, अहं, त्वं कलपना कोई नहीं; केवल सत्तामात्र अपने आप में स्थित है और जगत् भी वही है। हे रामजी! यह विश्व आत्मस्वरूप है। जैसे मणि का चमत्कार होता है तैसेही विश्व आत्मा का चमत्कार है और जो कुछ तुमको भासता है सो आत्माही है–आत्मा विना आभास नहीं होता। जैसे ईख में मधुरता और मिरचों में तीक्ष्णता होती है तैसेही आत्मा में विश्वहै। जो कुछ देखते, सुनते, स्पर्श करो। और सुगन्ध लो उसे सब आत्माही जानो अथवा जो इनके जाननेवाला अनुभवरूपहै उसमें स्थितहो और इन्द्रियां और विषय को त्यागकर अनुभवरूप में स्थित हो। हे रामजी! यह विश्व संवितरूप है और संवित्‌ही विश्वरूप है। जब संवित् बहिर्मुख होकर रस लेतीहै तब जाग्रत्‌को देखती है; जब अन्तर्मुख होकर रस लेती है तब स्वप्न होता है और जब शान्त होजाती है तब सुषुप्ति होतीहै संसारको सत्य जानकर जब रस लेतीहै तब जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था होतीहै और जब संवित्‌से रसकी सत्यता जाती रहतीहै तब तुरीयापद होता है। यह पदार्थ है, यह नहीं; जब यह नष्ट हो तब तुरीयापदहै। हे रामजी! यह विश्व फुरनेमात्र है; जब फुरना नष्ट हो तब विश्व दखा नहीं जाता। जैसे स्वप्न के देश, काल, पदार्थ जागेसे मिथ्या होते हैं तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी मिथ्या है। जीव जीव प्रति जो अपनी २ सृष्टि होती है उसमें आपभी कुछ बनजाता है इससे दुःखी होता है। जब इस अहंकार को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो तब विश्व कहीं नहीं है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसृष्टिनिर्वाणएकताप्रति पादनंनामपञ्चदशाधिकशततमस्सर्गः ॥ ११५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस सृष्टि का स्वरूप संकलपमात्र है और संकल्प भी आकाशरूप है। आकाश और स्वर्ग में कुछ भेद नहीं; जैसे पवन और स्पन्द में भेद नहीं। सृष्टि में अनेक पदार्थहैं परन्तु परस्पर नहीं रोकती और वास्तव में विश्व भी आत्मा का चमत्कार है और आत्मरूप है। जो आत्मरूप है तो राग और द्वेष किस में कीजिये? चेतन धातुमें कोटि ब्रह्माण्ड स्थितहैं और यह आश्चर्य है कि, आत्मा से कुछ नहीं हुआ। भिन्न २ संवेदन दृष्टि आती है पर नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं। हे रामजी! जीव जीव प्रति अपनी २ सृष्टि है। एक सृष्टि ऐसी है कि, उसका संकल्प एक दृष्टि आताहै परन्तु सृष्टि अपनी२ है और कई ऐसी हैं कि, भिन्न २ हैं

परन्तु समानता करके एकही दृष्टि आती हैं। जैसे जल की बूँदैं इकट्ठी होती हैं और धूलिके कण भिन्न २ होते हैं परन्तु एकही धूलि भासती है। जैसे नदीमें नदी पड़ती है तो एकही जल होजाताहै तैसेही समान अधिकरण करके सब संकल्प एकही भासते हैं; एक एक के साथ मिलते हैं और नहीं भी मिलते। जैसे क्षीरसमुद्र में घृत डालिये तो नहीं मिलता तैसेही एक संकल्प ऐसेहैं कि, औरसे नहीं मिलते—जैसे सूर्य, दीपक और मणिका प्रकाश भिन्न २ दृष्टि आताहै पर एक से होतेहैं तैसेही कई सृष्टि एकही भासती हैं और भिन्न २ होती हैं और कई इकट्ठी होती हैं और भिन्न २ दृष्टि आती हैं हे रामजी! इतनी सृष्टि जो मैंने तुमसे कही हैं सो सब अधिष्ठानमें फुरनेसे कई कोटि उत्पन्न होतीहैं और कई कोटि लीन होजातीहैं। जैसे जलमें तरङ्ग और बुद्बुदे उपज कर लीन होजाते हैं तैसेही सृष्टि उत्पन्न और लीन होतीहै पर अधिष्ठान ज्योंकात्यों है क्योंकि; उसमे कुछ भिन्न नहीं। ब्रह्म, आत्मा आदिक जो सर्व हैं सोभी फुरनेमें हुये हैं। जबतक शब्द अर्थ की भावनाहै तबतक भासते हैं और जब भावना निवृत्त हुई तब शब्द अर्थ कोई न भासेगा केवल शुद्ध चेतनमात्रही शेष रहेगा और संसार का भाव किसी ठौर न होगा। जैसे पवन जबतक चलता है तबतक जानाजाता है कि, पवन है और गन्ध भी पवन करके जानी जाती है कि, सुगन्ध आई अथवा दुर्गन्ध आई और जब पवन नहीं चलता तब नहीं भासता और गन्धभी नहीं भासती; तैसेही जब फुरना निवृत्त हुआ तब संसार और संसार का अर्थ दोनों नहीं भासते। फुरने में जीव जीव प्रति ज्यों ज्यों अपनी २ सृष्टिहै उस सृष्टिमें सत्तासमान ब्रह्म स्थितहै और सबका अपना आप है—द्वैतभाव को कदाचित् नहीं प्राप्त हुआ। हे रामजी! इससे ऐसे जानो कि, आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि सर्व पदार्थ आत्माही हैं अथवा ऐसे जानो कि, सर्व मिथ्या हैं और इनका साक्षीभूत सत्ता ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है उसमे कुछ भिन्न नहीं और उसी ब्रह्ममें अंशसे अनेक सुमेरु और मन्दराचल आदिक स्थित हैं। अंशांशीभाव भी आत्मामें स्थूलताके निमित्त कहे हैं वास्तव नहीं—जनावने निमित्त कहे हैं। आत्मा एकरस है। हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो आत्मसत्ता विना हो। जिसको सत्य जानतेहो सोभी आत्माहै और जिसको असत्य जानते हो वहभी आत्माहै; आत्मामें जैसे सत्य का फुरनाहै तैसेही असत्यका फुरना है—फुरना दोनों का तुल्य है। जैसे स्वप्न में एक सत्य जानताहै और दूसरा असत्य जानता है तैसेही जो इन्द्रियोंके विषय होते हैं उनको सत्य जानताहै और आकाश के फूल और शश के शृङ्ग को असत्य कहताहै सो सर्व अनुभवसे फुरेहैं इससे अनुभवरूप हैं। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो आत्मा से असत् नहीं; जो कुछ भासते हैं सो सर्व फुरने में हुये हैं सत्य क्या और असत्य क्या; सब मिथ्या और स्वप्नेके सत्

और असत् की नाईं हैं। जो अनुभव करके सिद्ध है सो सब सत्य है और अनुभव से भिन्न सत्य है। हे रामजी! गुणातीत परमात्मस्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें ज्ञानवान् पुरुष समहै और दशोंदिशा, आकाश, जल, अग्नि आदिक पदार्थ उसको सर्व आत्माही दृष्टि आताहै—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता; सूर्य, चन्द्रमा, तारे सब आत्माहैं यह विश्व आकाशरूपहै और शुद्ध निर्मल है; आकाश में आकाश स्थितहै, कुछ भिन्न नहीं। जो तुम्हें भिन्न भासे उन्हें मिथ्या जानो वे भ्रमकरके सिद्ध हुयेहैं; कोई सत् नहीं। पर परमार्थसे देखो तो सर्व आत्माहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्वआकाशएकताप्रतिपादनं नामषोडशाधिकशततमस्सर्गः॥ ११६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व स्वप्नेके समानहै। जैसे स्वप्नेकी सेना नाना प्रकार की दिखतीहै और शस्त्र चलते भासते हैं पर आत्मामें इनका रूप देखना और मानना और शब्द अर्थ कोई नहीं; वह जगत् से रहितहै और जगत्रूप भान होता है। अहं, त्वं जो कुछ भासता है सो सब स्वप्नवत् है और भ्रमसे सिद्ध हुआहै। जो सर्वका अधिष्ठान है वह सत्यहै और सब उसीमें कल्पित हैं। जो अनुभवसे देखिये तो सर्व आत्मास्वरूपहैं और भिन्न देखिये तो कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने के देश, काल, पदार्थ सब अर्थाकार भी भासते तौभी मिथ्या हैं तैसेही यह विश्व भ्रम करके फुरता है। उनकी अपेक्षा से वह और तू है और उसकी अपेक्षा से वह अहं है वास्तव में दोनों नहीं—जो है सो आत्माहीहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि त्वं आदिक अहंपर्यन्त और अहं आदिक त्वंपर्यन्त सर्व स्वप्नसेनाकी नाईं मिथ्या हैं और अनुभव से देखिये तो आत्मरूप हैं तो हम स्वप्नसेना में हैं अथवा हमारा अहं आत्मा है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनात्म देहादिकमें यह अहंभावना करनी कि, मैं हूं तो स्वप्न सेना के तुल्य है और अधिष्ठान चिन्मात्रदृश्य और अहंकार से रहित अहंभावना करनी आत्मरूपहै। हे रामजी! तुम आत्मरूपहो। यह विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं; जो अधिष्ठानरूप से देखिये तो आत्मरूपहै और जो अधिष्ठान से रहित देखिये तो मिथ्याहै। वह अधिष्ठान शुद्ध, आनन्दरूप, चित्त से रहित चिन्मात्र परब्रह्म है उसमें अज्ञान से दृश्य दीखता है। जैसे असम्यक्दृष्टिसे सीपी में रूपा भासता है तैसेही आत्मामें अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं। हे रामजी! दृश्य अविचार से सिद्ध है और विचार किये से कुछ वस्तु नहीं होती पर जिसके आश्रय कल्पित है सो अधिष्ठान सत्य है। जैसे सीपी के जानने से रूपे की बुद्धि जाती रहती है तैसेही आत्माविचार से विश्वबुद्धि जाती रहती है। जैसे समुद्र में पवन से चक्र-तरङ्ग फुरते और प्रत्यक्ष भासतेहैं पर विचार किये से चक्रसे भी जलबुद्धि होती है

तैसेही आत्मरूपी समुद्रमें मनके फुरनेसे विश्वरूपी चक्र उठते हैं और विचार किये से तुमको मनके फुरनेमें भी आत्मरूप भासेगा, विश्वरूपी चक्र न भासेंगे और भ्रम निवृत्त होजावेगा। जो वस्तु फुरने में उपजी है सो अफुर करके निवृत्त होजाती है। यह विश्व अज्ञान से उपजा है और ज्ञानसे लीन होजायगा। इससे विश्वको भ्रम-मात्र जानो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, ब्रह्मा, रुद्र आदि और उत्पत्ति, संहार करनेपर्यन्त सब विश्व भ्रममात्र है; इस जानने से क्या सिद्ध होता है, यह तो प्रत्यक्ष दुःखदायक भासताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ तुम देखते हो सो सम्यक्दृष्टि से सब आत्मरूप है–कुछ भिन्न नहीं–और असम्यक्दृष्टि करके विश्वहै तो दृष्टि का भेदहै-सम्यक् असम्यक् देखनेका अधिष्ठान ज्योंका त्योंहै। जैसे एक अन्धकारकी उपाधिसे रस्सी सर्पहो भासतीहै और भयदायक होतीहै और जो प्रकाश से देखिये तो रस्सी ही भासती है; तैसेही जिसने आत्मा को जाना है उसको दृश्य भी आत्मारूप है। अज्ञानी को विश्व भासता है और दुःखदायी होताहै। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में बैताल कल्पकर भयवान् होताहै और अपने न जानने से दुःख पाताहै जो जाने तो भय किस निमित्त पावे? हे रामजी! जीव अपनेही संकल्प से आप बन्धायमान होता है। जैसे कुसवारी कीट अपने बैठने का स्थान बनाकर आपही फँस मरती है, तैसेही अनात्मामें अहं प्रतीति करके जीव आपही दुःख पाता है। हे रामजी! जीव आपही संसारी होताहै और आपही ब्रह्म होताहै। जब दृश्य की ओर फुरता है तब संसारी होता और जब स्वरूप की ओर आताहै तब ब्रह्म आत्मा होताहै। इससे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो; जो संसारी होनेकी इच्छा हो तो संसारी हो और जो ब्रह्म होनेकी इच्छा हो तो ब्रह्म होजावो। मुझसे पूछो, तो दृश्य अहंकार को त्यागकर आत्मा में स्थित होरहो–विश्व भ्रममात्रहै, कुछ वास्तव नहीं। यही पुरु-षार्थहै कि, संकल्पसे संकल्पको काटो। जब बाहरसे अन्तर्मुख होगे तब ब्रह्मही भासेगा और दृश्यकी कल्पना मिटजावेगी क्योंकि; आगे भी नहीं था। हे रामजी! जो सत्-वस्तु आत्मा है उसका अनेक यत्नों से नाश नहीं होता और जो असत्य अनात्मा है उसके निमित्त यत्न कीजिये तो सत् नहीं होता। जो सत्य वस्तु है उसका कदाचित् अभाव नहीं और जो असत् है उसका भाव नहीं होता। असत् वस्तु तबतक भासती है जबतक उसको भले प्रकार नहीं जाना और जब विचारसे देखिये तब नाश होजाती है। अविद्या के पदार्थ विद्या से नष्ट होजाते हैं–जैसे स्वप्न का सुमेरु पर्वत सत्य हो तो जाग्रत में भी भासे-इससे है नहीं। यह संसार जो तुमको भासता है सो स्वरूप के ज्ञान से नष्ट होजावेगा। हमसे पूछो तो हमको आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता, सर्वआत्मा ही है; यह भी नहीं कि, यह जीव अज्ञानी है किसी प्रकार मोक्ष होवे। न हमको ज्ञान

से प्रयोजन है, न मोक्ष होने से प्रयोजन है क्योंकि; हमको सर्व आत्मा ही भासता है। हे रामजी! जबतक चेतन है तबतक मरता और जन्म भी पाताहै; जब जड़ होता है तब शान्तिको प्राप्त होकर मुक्त होता है। चेतन दृश्य की ओर फुरनेको कहते हैं, इसी से जन्म मरण के बन्धन में आता है। जब दृश्य के फुरनेसे जड़ होजावे तब मुक्त हो। इसका होनाही दुःख है और न होनाही मुक्ति है। अहंकार का होना बन्धन है और अहंकार का न होना मुक्ति है। इससे पुरुषप्रयत्न यही है कि, अहंकार त्याग करो और चेतन ब्रह्मघन अपने आप में स्थित हो। जिसको संसार की सत् भावना है उसको संसार ही है, ब्रह्म नहीं और जिसको ब्रह्मभावना हुई है उसको ब्रह्मही भासता है। हे रामजी! जो पातालमें जावे अथवा सम्पूर्ण पृथ्वी, दशोंदिशा, आकाश, देवताओं के स्थानमें फिरे तौ भी सुख न पावेगा और आत्माका दर्शन न होगा क्योंकि; अनात्मा में अहंकार कियेसे सुख नहीं। जब आत्मदर्शी होकर देखोगे तो सर्व आत्माही भासेगा॥
इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्रकरणे विश्वविजयोनामसप्तदशाधिकशततमस्सर्गः ॥११७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार संकल्पमात्र है और तुच्छ है। पर्वत, नदियां, देश और काल सर्व भ्रमसे सिद्ध हैं। जैसे स्वप्न में पर्वत, नदियां, देश, काल, निद्रा-दोष से भासते हैं; तैसेही अज्ञाननिद्रा से यह संसार भासता है। हे रामजी! जागकर देखो तो संसार है नहीं, इसका तरना महासुगमहै और सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं सो कमल की नाईं कोमल हैं। जैसे कमल के मुंदने में कुछ यत्न नहीं तैसेही यह कोमल निवृत्त होते हैं। आकारभूत प्राणियों की स्थूलदृष्टिहै और आकार को देखरहे हैं। जैसे पवनका चलना जाना जाताहै और जब चलनेसे रहित होताहै तब मूर्ख नहीं जानता तैसेही भूतप्राणी आकार को जानते हैं; और इसमें जो निराकार स्थित है उसको नहीं जानते। जैसे पवन चलताहै तौभी पवन है और ठहरता है तौभी पवन है तैसेही विश्व फुरता है सो भी आत्मा है और अफुरने में भी वही है। इससे विश्व भी आत्मरूप है, कुछ भिन्न नहीं; जो सम्यक्दर्शी हैं उनको फुरने न फुरने में आत्माही भासताहै। जैसे स्पन्द निस्स्पन्दरूप पवनहीहै, तैसेही ज्ञानीको सर्वदा एकरस है और अज्ञानीको द्वैत भासता है। जैसे वृक्ष में बालक पिशाचबुद्धि करता है तैसेही आत्मा में जगद्बुद्धि अज्ञानी करता है और जैसे नेत्रदोष से आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसेही मनके फुरनेसे जगत् भासता है। हे रामजी! जैसे वायु का रूप कदाचित् नहीं तैसेही जगत्के रूप का अत्यन्त अभाव है और जैसे मरुस्थल में जल का अभाव है तैसेही आत्मा में जगत् का अभाव है। हे रामजी! सुमेरु पर्वत, आकाश, पाताल, देवता, यक्ष, राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेक ब्रह्माण्ड इकट्ठे करके विचाररूपी कांटे में रक्खे और पीछे आधीरत्ती डाली तौभी पूरे नहीं होते क्योंकि; हैं नहीं; अविचारसिद्ध

है स्वप्नके पर्वत जागेपर चावल प्रमाणभी नहीं रहते क्योंकि, हैं नहीं; भ्रममात्र है। हे रामजी! इस संसारकी भावना मूर्ख करते हैं। ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरुष हैं उनको ऐसे जानो कि, जैसे लुहार की फुकनी से पवन निकलताहै तैसेही उन पुरुषों के श्वास वृथा आते जातेहैं। जैसे आकाश में अँधेरी व्यर्थ उठतीहै तैसेही उन पुरुषों का जीना और सर्व चेष्टा व्यर्थ है और वे आत्मघाती हैं अर्थात् अपना आप नाश करतेहैं और उनकी चेष्टा दुःख के निमित्त है। हे रामजी! यह अपने आधीनहै। जो दृश्य की ओर होता है तो संसार होता है और जो अन्तर्मुख होताहै तो सर्व आत्माही होता है। यह संसार मिथ्या है, न सत् कहिये; न असत् कहिये; भ्रम से हुआहै ये जीवभूत, भविष्य और वर्तमानकाल में वन्ध होते हैं और अग्नि शीतल होती है, आकाश पातालमें, पाताल आकाशमें, तारे पृथ्वी पर, पृथ्वी आकाशके ऊपर भी होती है; बादल विना मेघ वर्षा करताहै और आकाश में हल फिरते हैं ऐसे कौतुक मैं देखताहूं। हे रामजी! इसमें कुछ आश्चर्य नहीं; मन करके सब कुछ होताहै। जैसे मनोराज किया तैसाही आगे स्थित होताहै और सिद्धि होती है। पर्वतपुर में भिक्षुक के समान भिक्षा मांगते फिरते हैं; ब्रह्माण्ड उड़ते फिरते हैं; बालूसे तेल निकलताहै और मृतक युद्ध करतेहैं; मृग गाते हैं और वन नृत्य करते हैं। हे रामजी! मनोराजकरके सब कुछ बनताहै। चन्द्रमा की किरणों से पर्वत भस्म होते हैं, इसमें क्या आश्चर्य है? ऐसेही यह संसार भी मनोराज है और शीघ्रसंवेग है इससे इसको जीव सत् मानता है और आगे जो बालू से तेलादिक कहे हैं उनको सत् नहीं जानता क्योंकि; उसमें मृदु संवेग है पर दोनों तुल्य हैं। हे रामजी! जिनको सत् और असत् कहते हो सो आत्मा में दोनों नहीं। ये जो तुम को सत् पदार्थ भासते हैं तो अग्नि आदिक शीतल भी सत् हैं और जो ये मिथ्या भासते हैं तो वे भी मिथ्या हैं, केवल तीव्र और मृदुसंवेग का भेद है। जब तीव्र संवेग दूर होताहै तब सब मिथ्या मानते हैं। जैसे स्वप्न से जागा हुआ स्वप्ने को मिथ्या कहताहै और जाग्रत् को सत्य कहता है पर दोनों मनोराजहैं। हे रामजी! जितने आकार दृष्टि आते हैं उन सबको मिथ्या जानो; न तुम हो, न मैं हूं और न यह जगत है। परमार्थ सत्ता ज्यों की त्योंहै, उसमें अहं त्वं का उत्थान कोई नहीं; वह केवल शान्तरूप; आकाशरूप और निराकाशरूपहै जिसमें कुछ द्वैत नहीं—केवल अपने आपमें स्थित है जैसे बालक मृत्तिका के हाथी, घोड़े और मनुष्य बनाकर उनके नाम कल्पता है कि, यह राजा है; यह हाथी है; यह घोड़ा है सो मृत्तिका से भिन्न नहीं पर बालकके मनमें उनके नाम भिन्न २ दृढ़ होते हैं; तैसेही मनरूपी बालक नाना प्रकार की संज्ञा कल्पताहै पर आत्मासे कुछ भिन्न नहीं। इससे हे रामजी! तुम किसका भय करतेहो? निर्भय हो रहो। तुम्हारा स्वरूप शुद्ध, निर्भय और अविद्या के कारण

कार्य से रहित है उसमें स्थित रहो । यह संसार तुम्हारे फुरने में हुआ है; आत्मा न सत्य है, न असत्य है, न जड़ है, न चेतन है, न प्रकाश है, न तम है, न शून्य है, न अशून्य है । शास्त्रने जो विभाग कहेहैं कि, यह जड़ है, यह चेतन है सो इस जीव के जगाने के निमित्त कहे हैं । आत्मा में कोई वास्तव संज्ञा नहीं—केवल आत्मत्वमात्रहै। इससे दृश्य की कलना त्यागकर आत्मा में स्थित हो । ब्रह्मा से आदि स्थावरपर्यन्त सर्वकलनामात्र हैं; इसमें क्या आस्था करनीहै ? संसारके भाव दोनों तुल्य हैं। फुरना जैसा भावका है, तैसाही अभाव का है—स्वरूप में दोनों की तुल्यताहै और व्यवहार काल में जैसा है तैसाही है ॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०विश्वप्रमाणवर्णननामाष्टदशाधिकशततमस्सर्गः॥११८॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! भूमिका प्रसंग यहां चला था; उसमें जो सार आपने कहा वह मैं समझगया; अब भूमिकाओं का विस्तार कहिये । योगी का शरीर जब छूटता है और स्वर्गके भोगोंको भोगकर गिरताहै तो फिर उसकी क्या अवस्था होती है सोभी कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिस योगी को भोग की वाञ्छा होती है वह स्वर्ग में जाकर भोग भोगता है पर यदि उसको और भी भोगने की इच्छा होती है तो वह मध्यमण्डल मनुष्यलोकमें पवित्रस्थान और धनवानोंके गृहमें जन्म लेता है और जो उसको भोगकी वाञ्छा और नहीं होती तो ज्ञानवानोंके गृहमें जन्म लेता है। थोड़े कालके उपरान्त उसका पिछला संस्कार आ फुरताहै वह स्मरण करके आत्मा की ओर होता जाता है। जैसे कोई पुरुष लिखता हुआ सो जाता है पर जब जागता है तब उस लिखेको देखकर फिर आगे लिखता है तैसेही वह योगी पूर्व के अभ्यास को पाकर दिन २ बढ़ाता जाताहै। वह अज्ञानका संग नहीं करता क्योंकि; वह भोगों के सम्मुख है और आत्ममार्ग से बहिर्मुख है; जो चुगुली करनेवाले हैं उनका संग नहीं करता; उसके सर्व अवगुण त्याग जाते हैं और दम्भ, गर्व, राग, द्वेष, भोग की तृष्णा आदि स्वाभाविक छूटजाते हैं। वह शान्तिको प्राप्त होताहै और उसको कोमलता, दया आदि शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होते हैं । हे रामजी ! इस निश्चय को पाकर वह वर्णआश्रम के धर्म यथाशास्त्र करता हुआ संसारसमुद्र के पार के निकट प्राप्त होता है पर पार नहीं होता यह भेदहै सो तीसरी भूमिका है—फिर मोह को नहीं प्राप्त होता । जैसे चन्द्रमाकी किरणें कदाचित् तापको नहीं प्राप्त होतीं तैसेही तीसरी भूमिकावाला संसाररूपी गढ़े में नहीं गिरता । हे रामजी ! यह सप्तभूमिका ब्रह्मरूपहै पर इतनाही भेदहै कि तीन भूमिका जाग्रत् अवस्थाहै, चतुर्थ स्वप्नहै, पंचम सुषुप्तिहै, षष्ठ तुरीयहै और सप्तम तुरीयातीत है । हे रामजी ! प्रथम तीन भूमिकाओंमें संसार की सत्यता भासती है इससे जाग्रत् कही है और पिछली चारों में संसार का अभाव

है इसमें जाग्रत् से विलक्षण है। जाग्रत् में घट, पट आदिक सत् भासते हैं कि, घट घटही है और पट पटही है अन्यथा नहीं, अपनाही अपना कार्य सिद्ध करते हैं, इससे अपने काल में ज्यों के त्यों हैं। इसी प्रकार सर्व पदार्थ हैं। तीसरी भूमिकावाला स्थावर-जङ्गम को जानता है और नाम और रूप से ग्रहण करताहै पर हृदय में राग द्वेष नहीं धारता क्योंकि; विचार करके तुच्छ जानेहै पर इससे संसार का अत्यन्त अभाव नहीं जाना और ब्रह्म स्वरूपभी नहीं जानता, क्योंकि; उसके स्वरूपका साक्षात्कार नहीं हुआ। जब स्वरूपको जाने तब संसारका अत्यन्त अभाव होजावे। इनतीनों भूमिकाओं में संसार की तुच्छता होती है नष्टता नहीं होती। इनको पाकर जब शरीर छूटताहै तब और जन्म में उसको ज्ञान प्राप्त होताहै और दिन २ में ज्ञानपरायण होता है। जब दृढ़बुद्धि होतीहै तब ज्ञान उपजताहै। जैसे बीजसे प्रथम अंकुर होताहै और फिर डाल, फूल, फल निकलते हैं तैसेही प्रथम भूमिका ज्ञानका बीज है, दूसरी अंकुरहै; तीसरी डाल है और चतुर्थ मे ज्ञान की प्राप्ति होतीहै सोही फलहै। प्रथम तीन भूमिकाओं वाला धर्मात्मा होता है और पुरुषों में श्रेष्ठ है। उसका लक्षण यह है कि, वह निरहंकार, असंगी और धीर होता है। उसकी बुद्धिसे विषयोंकी तृष्णा निवृत्त होजाती है और वह आत्मपद की इच्छा रखता है। यह पुरुष श्रेष्ठ कहाताहै, प्रकृत आचार से यथाशास्त्र विचरता है और शास्त्रमार्ग को कदाचित् नहीं छोड़ता जो शास्त्रमार्ग की मर्यादा के साथ अपने प्रकृत आचार में बिचरताहै सो पुरुष श्रेष्ठ है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पीछे आपने कहाहै कि, जब मनुष्य शरीर छोड़ताहै तब एकमुहूर्त में उसको युग व्यतीत होता है और जन्म से आदि मरणपर्यन्त जैसी किसीको भावना होनी है तैसा आगे भासताहै सो एकमुहूर्तमें युग कैसे भासताहै? यह कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् जो तीनों काल में संयुक्त भासताहै वह ब्रह्मस्वरूपही है भिन्न कुछ नहीं—समानहीहै। जैसे इक्षुमें मधुरताहै तैसेही ब्रह्ममें जगत् है और जैसे तिलों में तेल है और मिरचों में तीक्ष्णता है तैसेही आत्मामें जगत्है। जैसे तिलों में तेल होता है तैसेही ब्रह्म में जगत् है। कहीं सत्, कहीं असत्; कहीं जड़, कहीं चेतन; कहीं शुभ, कहीं अशुभ; कहीं नरक; कहीं मृतक, कहीं जीवत, ब्रह्मा से काष्ठपर्यन्त भाव अभावरूप होताहै। वह सत् असत् से विलक्षणहै। आत्मसत्ता से सर्व सत्य है और भिन्न देखिये तो असत्य है। हे रामजी! जिनको सत्य असत्य जानते हो कि, पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य और आकाश के फूलादिक असत्य हैं सो दोनों तुल्य हैं। जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानिये तो आकाशके फूलभी सत् मानिये। जैसे स्वप्न में कई पदार्थ सत और असत् भासते हैं तैसेही जाग्रत् में भासते हैं पर फुरना दोनों का समान है। जैसे सत्य पदार्थोंका फुरना हुआहै तैसाही असत् का भी

हुआ है; फुरने से रहित सत् असत् दोनों का अभाव होजाता है। इससे यह विश्व भ्रम से सिद्ध हुआ है। जैसे जल में पवन से चक्र उठते हैं तैसेही आत्मा में फुरने से संसार भासताहै; इसकी भावना त्यागकर स्वरूपमें स्थित हो रहो। तुमने जो प्रश्न किया कि, एकमुहूर्तमें युग कैसे भासताहै ? उसका उत्तर सुनो। जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आताहै तो एकक्षणमें बड़ा काल बीता भासताहै और और का और भासता है सो आश्चर्य तो कुछ नहीं; मोहसे सब कुछ उत्पन्न होताहै और भ्रमसे दृष्टि आता है। हे रामजी ! जैसे पुरुष सोयाहै तो एक आपही होताहै पर उसमें नाना प्रकारका जगत् भ्रमसे भासता है तैसेही स्वरूप के प्रमाद से जीव कई भ्रम देखताहै। स्वरूप के जाने विना भ्रमका अन्त नहीं होता इससे तुम और प्रश्न किस निमित्त करते हो? एक चित्त को स्थिर करके देखो तो न कोई संसार भासेगा; न कोई जन्म-मरण होंगे; न कोई बन्धहै; न मोक्षहै केवल आत्माही भासेगा। जब संकल्प फुरताहै तब अविद्या से आपको बन्ध जानता है और संकल्प से रहित मुक्त जानताहै और विद्यासे मुक्त जानता है पर आत्मस्वरूप ज्योंका त्यों है उसे न बन्ध है, न मुक्त है, न विद्या और न अविद्या है-केवल शान्तरूप है। इससे सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वओर से ब्रह्महो है दूसरा कुछ नहीं। हे रामजी ! जब स्वरूप की भावना होतीहै तब संसार की भावना जाती रहती है-ये सर्व शब्द कलना में हैं यह पदार्थ है, यह नहीं है आत्मा में यह कोई नहीं। जैसे पवन चलने और ठहरनेमें एकहीहै तैसेही विश्व चित्तका चमत्कार है। ब्रह्मासे चींटी पर्यन्त ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै और आत्माहीके आश्रय सर्व शब्द फुरते हैं पर आत्मा फुरने और न फुरनेमें समहै क्योंकि; दूसरा कोई नहीं। हे रामजी ! जो ब्रह्मसत्ताहीहै तो आकाश क्याहै; पृथ्वी क्याहै; मैं क्या हूं यह जगत् क्याहै; ये प्रश्न बनतेही नहीं। एक मनको स्थिर करके देखो कि, ब्रह्मासे चींटी पर्यन्त कुछभी पदार्थ भासताहै; जो भासे तो प्रश्न कीजिये। इससे जैसे भ्रमसे दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही जगत् भी भ्रमसे भासता है। रूप अर्थात् दृश्य; अवलोक अर्थात् इन्द्रियां; मनस्कार अर्थात् मन की स्फूर्ति, ये शब्द कलना में फुरे हैं सो सब मिथ्या हैं-आत्मा में ये कोई नहीं। हे रामजी ! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं सो भावना में स्थित हुये हैं। जैसी भावना करताहै तैसेही पदार्थ सिद्ध होतेहैं और भासतेहैं। जब संसार की भावना उठजावे तब कोई पदार्थ न भासे। हे रामजी ! सुषुप्ति में ही जब इसका अभाव होजाता है तो तुरीया में कैसे भानहो। जब जीवस्वरूपमें गिरता है तब उसको संसार भासता है और संसार में वासना और प्रमाद से घटीयन्त्र की नाईं फिरता है। स्वरूप से उतरकर अनात्म में इस अभिमान करनेको प्रमाद कहते हैं कि, मैं हूं। यही अज्ञान है जिससे दुःख पाता है; जब अज्ञान नष्ट हो तब संसार

के शब्द अर्थ का अभाव होजावे। अहंकारसे संसार होताहै; संसार का बीज अहंकारही है। अहंकार अनात्मा में आत्म अभिमान करने को कहते हैं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा अहंकारके उत्थानसे रहित केवल शान्तरूपहै और विश्वभी वही रूप है। इसकी भावना में दुःख है। यह संवित् शक्ति आत्मा के आश्रय फुरती है। जैसे तेल की बूंदी जल में डालिये तो चक्रकी नाईं फिरतीहै तैसेही संवेदन शक्ति आत्मा के आश्रित फुरती है और ब्रह्म एक स्वरूप है उसका स्वभाव ऐसे है। जैसे मोर का अण्डा और उसका वीर्य एकरूपहै अपने स्वभावसे वीर्यही नाना प्रकारके रङ्ग धारता है तौ भी मोर से कुछ भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा के संवेदन स्वभाव से नाना प्रकार का विश्व भासताहै परन्तु आत्मासे कुछ भिन्न नहीं—आत्मरूपहीहै। सम्यक्दर्शीको नाना प्रकारमें एक आत्माही भासताहै और अज्ञानीको नाना प्रकार का जगत् भासताहै। हे रामजी! ब्रह्मरूपी एकशिलाहै उसमें त्रिलोकीरूपी अनेकपुतलियां कल्पित हैं। जैसे एक शिला में शिल्पी पुतलियां कल्पता है कि, इसमें इतनी पुतलियां होंगी सो वे पुतलियां उसके चित्त में हैं और शिला में कुछ नहीं हुआ तैसेही आत्मरूपी शिला में चित्तरूपी शिल्पी नाना प्रकार के पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है सो सर्व आत्मारूप है। इससे पदार्थों की भावना त्यागकर आत्मा में स्थित हो। यह संसार भी निर्वाच्य है क्योंकि; ब्रह्मही है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। न कोई उपजता है, न कोई विनशता है ज्योंका त्यों आत्माही स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदभावप्रतिपादनंनामशताधिके
कोनविंशतितमस्सर्गः॥ ११९॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तो इस संसार का बीज अहंकार हुआ। इसका पिता अहंकार है तो मिथ्यासंसार जो अविद्यमानही विद्यमान भासताहै सो भ्रमरूप हुआ? और जो भ्रमरूप है तो लोग और शास्त्र; श्रुति और स्मृति क्यों कहते हैं कि, इसका शरीर पिण्डमे होता है? और जो पिण्डसे होता है तो आप कैसे भ्रम कहते हैं? जो भ्रम है तो लोग, शास्त्र, श्रुति और स्मृति क्यों पिण्ड से कहते हैं? इससे मेरे संशय को निवृत्त कीजिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरा कहना सत्य है। ऐसेही है। ब्रह्म में ब्रह्मतत्त्व स्वभाव है और जगत् का लक्षण भी वही है। हे रामजी! आदि जो किंचन हुआ है और चित्तशक्ति फुरी है वही ब्रह्मरूप हुआ है और उसमें पदार्थ का मनोराज हुआ है। यह आकाश है; यह पवन है; यह कर्तव्य है; यह अकर्तव्य है; यह सत्य है; यह झूठ है इत्यादि जबतक मनोराज है तबतक सर्व मर्यादा ऐसेही है। फिर ब्रह्मा में ऐसे हुआ कि, जगत् की मर्यादा के निमित्त वेद कहता है कि, यह पदार्थ शुभ है और यह अशुभ है। हे रामजी! आत्मा में कुछ द्वैत नहीं; मायारूप

जगत् में मर्यादा है; तो अध, ऊर्ध्व, नीच, ऊंच कौन कहे ? यह मर्यादा भी वेद नीति निश्चय हुई है कि, ये शुभकर्म हैं; इनके कियेसे स्वर्ग सुख ही भोगते हैं और ये अशुभकर्म हैं इनके कियेसे नरकदुःख भोगते हैं। हे रामजी! जैसे वेद में निश्चय किया है तैसेही जीव अपनी वासना के अनुसार भोगता है। हे रामजी ! यह रचित शक्ति नीति होकर ब्रह्मादिक में फुरी है परन्तु उनको सदा स्वरूपमें निश्चय है इससे वे बन्धायमान नहीं होते और ब्रह्मा विष्णु रुद्र ने यह वेदमाला धारीहै कि; जैसा कोई कर्म करे तैसाही फल देते हैं। यह वेद सर्वकी नीति है हे रामजी ! जिन पुरुषों को संसार की सत्यता दृढ़ हुईहै वे जैसे कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं तैसेही शरीर को धारते हैं। इसमें संशय नहीं कि, जो शास्त्रमर्यादा को अपनी इच्छा से उल्लंघित बर्त्तते हैं सो शरीर त्यागकर कोई काल मूर्च्छित होजाते हैं और आत्मज्ञान विना एक मुहूर्त में जागकर बड़े नरकों को चलेजाते हैं। जिनको शून्यभावना हुई है कि, आगे नरक स्वर्ग कोई नहीं और जो लोक-परलोकके भय को त्यागकर शास्त्र बाहरसे बर्त्तते हैं सो मरकर पत्थर वृक्षादिक जड़योनि पाते हैं और चिरकाल से उनकी वासना प्रणमतीहै फिर दुःखभागी होतेहैं और जिनको आत्मभावना हुईहै और संसारकी भावना निवृत्त हुई है वे शास्त्रविहित करें अथवा अविहित करें उनको कोई बन्धन नहीं। हे रामजी! चित्तरूपी भूमिमें निश्चयरूपी जैसा बीज बोताहै तैसाही काल पाकर उगता है-यह निःसंशयहै। इससे तुम आत्मभावनारूप बीज बोओ कि, सर्व आत्माहै। ऐसी भावना करो तब सिद्ध आत्माही भासेगा और जिनको संसारका निश्चय हुआहै उनको संसारहै। हे रामजी! जो पुरुष धर्मात्मा हैं उनको उसी वासना के अनुसार भासताहै। धर्मात्मा भी दो प्रकारके हैं-एक सकामी और दूसरे निष्कामी। जो धर्म करतेहैं और पापरूपी कामना सहितहैं तो वे स्वर्गभोग भोगकर फिर गिरते हैं और जो निष्काम ईश्वरार्पण कर्म करते हैं उनका अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह भी संसार में मर्यादा है कि, जैसा किसीको निश्चय होताहै तैसाही संसारको देखता है। पिण्डकरके भी शरीर होता है क्योंकि, यह भी आदि नीति में निश्चय हुआ है जैसे आदि नीति में निश्चय हुआ है तैसेही होता है। जो पवन है सो पवनही है और जो अग्नि है सो अग्निही है। इसी प्रकार कल्पपर्यन्त जैसे मनोराज हुआ है तैसेही स्थित है। जैसे जल नीचेही को जाता है-ऊंचे नहीं जाता; तैसेही जो आदि किंचनमें निश्चय हुआहै वही कल्पपर्यन्तहै। हे रामजी! जगत् व्यवहारमें तो ऐसेहैं और परमार्थ से दूसरा कुछ हुआ नहीं, इस जीवने आकाशमें मिथ्या देह रची है। परमार्थ से केवल निराकार अद्वैत आत्माहै शरीर इसके साथ नहीं है इस से जगत् कैसे हो?॥
इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्रकरणेपिण्डनिर्णयोनामशताधिकविंशतितमस्सर्गः॥१२०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रश्नपर एक इतिहास बृहस्पति और बलि राजा का है सो सुनो। जब छः कल्प व्यतीत हुये तो दूसरे परार्द्ध में राजा बलि हुआ। वह महापराक्रम की मूर्ति था। उस राजा बलि ने सम्पूर्ण दैत्यों और राक्षसोंको जीत कर अपने वश किया और उनपर अपनी आज्ञा चलाई। इन्द्रको भी जीतकर अपने वश किया और उसका सम्पूर्ण ऐश्वर्य एक नगर की नाईं लेलिया था। देवता और किन्नरों पर उसकी आज्ञा चली और भूलोक भी उसने लेलिया। जब वह सबको ले चुका तब उसने धर्म आचार को ग्रहण किया। एक समय सब सभा बैठीथी और यह कथा चली कि; जन्म कैसे होता है और मरण कैसे होताहै? तब राजा बलि ने देवगुरु बृहस्पति से प्रश्न किया कि; हे ब्राह्मण! यह पुरुष जब मृतक होताहै तब शरीर तो भस्म होजाता है फिर कर्मों के फल कैसे भोगताहै और शरीर विना कैसे आताजाता है सो कहिये? बृहस्पति बोले, हे राजन्! जीव के देह नहीं है। जैसे मरुस्थल में जल भासता है पर है नहीं; तैसेही जीव के साथ शरीर भासता है और है नहीं। जीव न जन्मता है; न मरता है; न भस्म होता है; न जल के दुःखी होता है। यह सदा अच्युत रूप है पर स्वरूप के प्रमाद से आपको दुःखी जानताहै कि; मैं इनको भोगता हूं और जन्मा हूं; इतना काल हुआ है; यह मेरी माता है; यह पिता है; मैं इनसे उपजाहूं और फिर आपको मृतक हुआ जानता है। हे राजन्! भ्रम से ऐसे देखता है। जैसे निद्रा भ्रम से स्वप्न में देखता है तैसेही अज्ञान से जीव आपको मानताहै। जब मृतक होता है तब जानता है कि; मेरा शरीर पिण्ड से हुआ है और अब मैं दुःख सुख भोगूंगा। जैसे स्वप्न में आकाश होता है और वहां वासना से अपने साथ शरीर देखता है और सुख दुःख भोगता है; तैसेही मरकर जीव अपने साथ शरीर देखताहै और दुःख सुख का भागी होताहै। परमार्थमे इसके साथ शरीरही नहीं तो जन्म मरण कैसेहो? स्वरूप से प्रमाद करके देहधारी की नाईं स्थित हुआहै और उस देह से मिलकर जैसी २ भावना करताहै तैसाही फल भोगता है और वासना के अनुसार जैसी भावना होती है तैसेही आगे शरीर देखताहै और पञ्चभौतिक संसारको देखताहै। इसप्रकार भ्रमता है और जन्मता मरता आपको देखता है। जैसे समुद्रसे तरङ्ग उठता और मिटजाता है तैसेही शरीर उपजता और नष्ट होता है। शरीर के सम्बन्ध मे ही उपजता और विनसता भासता है। यह आश्चर्य है कि, आत्मा ज्यों का त्यों स्वाभाविक स्थित है उसमें वासनाके अनुसार विश्व देखता है। हे राजन्! विश्व इसके हृदय में स्थित है और वासना के अनुसार आगे देखता है। इस जीवमें विश्व है और विश्व में जीव नहीं। जैसे तिल में तेल है और तेल में तिल नहीं और सुवर्ण में भूषण कल्पित है भूषण में सुवर्ण कल्पित नहीं वैसेही विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं। सत्

इस कारण नहीं कि, चलरूपहै स्थित नहीं और असत् इससे नहीं कि, विद्यमान भासताहै । इससे इसकी भावना त्यागो; यह दृश्य मिथ्याहै और इसका अनुभव मिथ्या है और इसका जाननेवाला अहंकार जीवभी मिथ्याहै। जैसे मरुस्थलमें जल मिथ्या है तैसेही आत्मामें अहंकार और जीव मिथ्या है । हे राजन्! जबतक शास्त्रके अर्थ में चपलता है और स्थित से रहित है तबतक संसार की निवृत्ति नहीं होती और जब दृश्य के फुरने और अहंकार से जड़ हो तब इसको आत्मपदकी प्राप्ति हो । जब तक दृश्य की ओर फुरता है और चेतन सावधान है तबतक संसार में भ्रमता है। हे राजन्! आत्मा न कहीं जाताहै; न आता है; न जन्मताहै; न मरताहै । जब चेत और चित्तका सम्बन्ध मिटजावे तब आनन्दरूप ही है। चेत दृश्यको कहते हैं और चित्त अहंकार संवित् का नामहै । जब दोनों का सम्बन्ध आपस में मिटजावेगा तब शेष आत्मा ही रहेगा । वह ब्रह्म आत्मा और शिवपदहै जिसमें वाणी की गम नहीं और अनुभव निर्वाच्य पदहै उसीमें स्थितहो। हे रामजी! जिस युक्तिसे इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त हो सो युक्ति श्रेष्ठ है । जबतक फुरना उठता है कि, यह भाव है यह अभाव है; तबतक इसको जीव कहतेहैं और जब भाव अभावका फुरना मिटजाताहै तब जीवसंज्ञाभी जातीरहतीहै। शिवपद आत्माको प्राप्त हो जहां वाणीकी गम नहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबृहस्पतिबलिसंवादवर्णनं
नामशताधिकैकविंशातितमस्सर्गः ॥ १२१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार बृहस्पति ने बलिराजासे कहाथा वह तेरे प्रश्न के उत्तर निमित्त मैंने कहा है। जबतक हृदय में संसार की सत्यता है तबतक जैसे कर्म करेगा तैसाही शरीर धरेगा । हे रामजी ! जिस वस्तुको चित्त देखताहै उस की ओर अवश्य जाताहै; उसका संस्कार उसके हृदय में होता है और जिस पदार्थ को सत् जानता है उस पदार्थ का संस्कार स्थित होजाता है। जैसे मोर के अण्डे में शक्ति होती है और जब समय आता है तब नाना प्रकारके रङ्ग उसमें प्रकट भासते हैं; तैसेही चित्त का संस्कार भी समय पाकर जागता है। हे रामजी ! चित्त अज्ञान से उपजा है। फिर बृहस्पति ने कहा, हे राजन्! बीज पृथ्वी पर उगता है आकाश में नहीं उगता; जैसा बीज पृथ्वी में बोया जाताहै तैसाही फल होता है। यहां अहंरूप अपना होना यही पृथ्वी है; जैसी २ भावनासे कर्म करता है तैसा २ चित्तरूपी पृथ्वीपर उत्पन्न होताहै और फिर उसमें फल होताहै। उन कर्मोंके अनुसार धारके सुख दुःख को भोगता है । ज्ञानवान् आकाशरूप है आकाश में बीज कैसे उपजे? बीजभावना से अज्ञानरूपी पृथ्वी में उगता है। बलि ने पूछा, हे देवगुरो ! आपने कहा कि, जीव जीता हो अथवा मृतक हो इसे अपनी भावनाही से अनुभव होताहै

तो जब यह मृतक हुआ और इसकी पिण्डादिक में भावना न हुई तो फिर इसका शरीर कैसे होताहै ? बृहस्पति बोले, हे राजन् ! पिण्डदान आदिक क्रिया न हो पर उसके हृदयमें भावनाहो और उसीसमय किसीने किया तौभी वह जो हृदयमें भावना है वही कर्मरूप है और उसीसे भासि आताहै और जो उसके हृदय में भावना नहीं और किसी बान्धवने इसके निमित्त पिण्डदान किया तौभी इसको भासि आता है क्योंकि; वहभी इसकी वासनामें स्पन्द है। हे राजन् ! जो अज्ञानी जीवहैं और जिन को अनात्म में आत्मबुद्धि है उनके कर्म कहांगये हैं, वे जो कर्म करते हैं वही उनके चित्तरूपी भूमि में उगते हैं। उनके शरीरकी क्या संख्या है ? वे वासनारूपी अनेक शरीर ज्ञान विना स्वप्नवत् धारते हैं। बलि बोले, हे देवगुरो ! यह निश्चय करके मैंने जानाहै कि, जिसको निष्किंचन की भावना होतीहै वह निष्किचन पदको प्राप्त होता है और संसारकी ओरसे शिला की नाईं होजाता है। जिसकी जैसी भावना होती है तैसाही स्वरूप होजाता है। जब संसार से पत्थरवत् हो तब मुक्त हो। बृहस्पति बोले, हे राजन् ! निष्किंचन को जब जानता है तब संसार की ओर से जड़ होजाता है। संसार के न फुरनेही का नाम जड़है और केवल सारपद के स्थित होताहै। जिसे गुण चला न सकें उसे जानिये कि, निष्किंचनपद को प्राप्त हुआ है। वही निःसंदेह मुक्त है। हे राजन् ! जबतक संसार की सत्यता चित्त में स्थित है तबतक वासना है और जबतक वासना है तबतक संसार है। संसार के अभाव विना शान्ति नहीं होती। स्वरूप के प्रमाद से चित्त हुआ है; चित्तसे वासना हुईहै और वासना से संसार हुआ है; इससे इस वासना को त्यागकरो। कोई फुरना फुरे तो निष्किंचनभाव हो और शान्त भागीहो। हे राजन् ! जिस युक्ति और क्रमसे यह निष्किंचनरूप हो वही करे। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकारसे सुरपुरमें असुरनायक को सुरगुरु ने जो पिण्डदानादि क्रिया कही वह मैंने तुमको सुनाई ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबृहस्पतिबलिसंवादोनाम शताधिकद्वाविंशतितमस्सर्गः ॥ १२२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! चाहे जीता हो चाहे मृतक हो जो कुछ इसके चित्तके साथ स्पर्श होगा उसका अनुभव अवश्य करेगा। जैसे मोर के अण्डे में रस होता है तो वह समय पाकर विस्तार पाताहै तैसेही इसके भीतर जो वासना का बीज है वह यदि प्रकट नहीं भासता तौ भी समय पाकर विस्तारवान् होताहै। जबतक चित्त है तबतक संसार है और जब चित्त नष्ट हो तब सब भ्रम मिटजावे। हे रामजी ! चित्त भी असत् है तो विश्व भी असत्यहै। जैसे आकाशरूपमें नीलता भ्रमसे भासतीहै तैसेही आत्मा में विश्वभ्रम है। हे रामजी ! हमको न चित्त भासताहै न विश्व भासताहै; मैंभी आकाश

हूं और तुम भी आकाशरूप हो। यह चित्तस्वरूप के प्रमाद करके उपजता है। जैसे जहांका जल होताहै वहां श्यामता होतीहै तैसेही जहां चित्त होताहै वहां वासना होती है। जब ज्ञानरूपी अग्नि से वासना दग्ध हो तब चित्त सत्पद को प्राप्त होता है और जीवितसंज्ञा निवृत्त होती है। हे रामजी! चित्त के उपशम का उपाय मुझ से सुनो तो उससे चित्त निर्वाण होजावेगा। जो सात भूमिका ज्ञान की हैं उनसे चित्त नष्ट होजावेगा। उनमें से तीन भूमिका तो तुमसे क्रमसे कही हैं और चार कहने को रही हैं। हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाओं में से जिसको एक भी प्राप्त होती है; उसको महापुरुष जानो। उसके मान और मोह निवृत्त होजाते हैं और उसे संग दोष नहीं लगता। उसमें विचार स्थितिसे कामना नष्ट होजातीहै और राग देष न रहकर सुख दुःखमें सम रहताहै। ऐसा अमूढ़ पुरुष अव्ययपद को प्राप्त होता है। इतने गुण तीसरी भूमिका में प्राप्त होतेहैं और चित्त नष्ट होजाता है तब संसारको नहीं दृष्टि आताहै जैसे दीपक से देखिये तो अन्धकार नहीं मिलता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्ताभावप्रतिपादनंनाम
शताधिकत्रयोविंशतितमस्सर्गः॥ १२३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब तृतीय भूमिका दृढ़ पूर्ण होके दृढ़ अभ्याससे चौथी भूमिका उदय होती है तो अज्ञान नष्ट होजाता है और सम्यक्ज्ञान चित्त में उदय होता है। तब वह पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शोभा पाता है और आदि अन्त से रहित निर्विभाग चेतन तत्त्वमें उस योगीका चित्त स्थित होताहै और वह सबको सम देखता है। जिस योगी को चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है उसके नाना प्रकार के भेदभाव निवृत्त होजाते हैं और अभेद सर्व आत्माभाव उदय होताहै। उसको जगत् स्वप्न की नाईं भासता है और इन्द्रियों का व्यवहार स्वप्नवत् होजाता है। जैसे जिसको अर्धसुषुप्ति होती है उसे उसकाल में खाना पीना रससे रहित होजाता है तैसेही चतुर्थभूमिका वालेका व्यवहार रससे रहित होताहै। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से प्रकाशता है तैसेही उसको आत्मा का प्रकाश उदय होता है और उसकी सब कल्पना नाश होजाती है; न किसी पदार्थ में राग रहता है, न किसीमें द्वेष रहताहै। संसारसमुद्र में डुबानेवाले राग और द्वेष हैं। इष्टपदार्थ में राग होताहै और अनिष्ट में द्वेष होताहै। इससे वह संसारसमुद्र में गोते नहीं खाता और उसके चित्त को कोई मोहित नहीं कर सक्ता। हे रामजी! जबतक तृतीयभूमिका होती है तबतक उसको जाग्रत् अवस्था होती है और जब चतुर्थभूमिका प्राप्त होतीहै तब जगत् स्वप्न होजाताहै। तब वह सर्वजगत् को क्षणभंगुर और नाशवन्त देखता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य भावना का अभाव होजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति का लक्षण कहिये

और तुरीया और तुरीयातीत मुझसे कहिये। गुरु शिष्य को उपदेश करते खेदवान् नहीं होते। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तत्त्व का विस्मरण, पदार्थों की भावना और नाशवन्त पदार्थों को सत् की नाईं जाननाही जाग्रत् है। पदार्थों में भाव-अभाव की सत्यता और जगत् को मिथ्या भावनामात्र जानना स्वप्न कहाताहै और जाग्रत् और स्वप्न जिसमें लय होजावें सो सुषुप्तिहै। यदि ज्ञानभाव से भेद की शान्ति होजावे और जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों का अभाव हो ऐसी जो निर्मल स्थिति है सो तुरीया है। हे रामजी! अज्ञानी जीव संसार को वर्षाकालके मेघकी नाईं देखते हैं क्योंकि, उनको दृढ़ होकर भासता है पर जिसको चतुर्थभूमिका प्राप्त हुईहै वह शरत्काल के मेघ की नाईं संसार को देखता है और जिसको पञ्चमभूमिका प्राप्त हुईहै वह शरत्काल के मेघ नष्ट हुये की नाईं देखताहै। जैसे निर्मल आकाश होताहै तैसेही उसको निर्मल भासता है। इन तीनों का वृत्तान्त सुनो। अज्ञानी जगत् को जाग्रत् की नाईं देखता है और उसको जगत्की दृढ़ सत्यता भासतीहै इससे उसे राग द्वेष उपजता है। चतुर्थभूमिका वाला जगत्को ऐसे देखताहै जैसे शरत्कालका मेघ वर्षा से रहित होताहै। जैसे स्वप्ने की सृष्टि होतीहै तैसेही उसको जगत् की सत्यता नहीं भासती क्योंकि; उसकी स्मृति स्वप्ने की होती है और वह जगत् को स्वप्नवत् देखताहै इससे उसको राग द्वेष नहीं उपजता। पञ्चमभूमिका की प्राप्तिवाला जगत्को सुषुप्ति की नाईं देखताहै। जैसे शरत्काल का मेघ नष्ट होके फिर नहीं दीखता तैसेही उसको संसार का भान नहीं होता और उसकी चेष्टा स्वाभाविक होती है। जैसे कमल स्वाभाविकही खुलता और मूंद जाताहै तैसेही उसको कुछ यत्न नहीं-चेष्टामें जैसा प्रतियोगी स्वाभाविक प्राप्त होता है सो करता है। जैसे कमल के खुलने का प्रतियोगी जब सूर्य उदय हुआ तब खुल गया और जब मूंदने का प्रतियोगी रात्रि हुई तब मूंदजाता है-उसको कुछ खेद नहीं; तैसेही उस पुरुष की अहंममता से रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है। हे रामजी! अहंता ममतारूपी जाग्रत्से वह पुरुष सुषुप्त होजाताहै और सम्पूर्ण भावरूप जो शब्द और अर्थ हैं उनका उसको अभाव होजाताहै; उसका अशेष शेषका मनन नष्ट होजाता है और उसको पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता; भला, बुरा इत्यादिक भिन्न २ पदार्थों की भावना नहीं रहती; उसकी द्वैतकलना नष्ट होजाती है और एक ब्रह्मसत्ताही भासती है-संसार नहीं भासता। हे रामजी! अहंतारूपी तिलसे संसाररूपी तेल उपजताहै और अहंतारूपी फूल से संसाररूपी गन्ध उपजती है। संसार का कारण अहंताही है। जिस पुरुष की अहंता नष्ट होजाती है वह इन्द्रियों के इष्टको पाकर हर्षवान् नहीं होता और अनिष्टके प्राप्त हुये द्वेष नहीं करता। वह ऐसे आपको नहीं जानता कि, मैं खड़ा हूं वा बैठा हूं अथवा चलता हूं; वह आपको सर्वदा आकाशरूप जानता है

और न भीतर देखता है, न बाहर देखता है; न आकाशको देखता है और न पृथ्वी को देखता है सर्व ब्रह्मही देखता है । उसको भिन्न कुछ नहीं भासता और वह द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों का साक्षी रहता है । वह अहंकार का भी साक्षी; इन्द्रियों का भी साक्षी और विश्वकाभी साक्षीहै और इनके साथ स्पर्श कदाचित् नहीं करता । जैसे ब्राह्मण चाण्डाल से स्पर्श नहीं करता । जैसे बीजसे अंकुर होताहै और फिर अंकुर से डाल होते हैं; इसी प्रकार सब पदार्थों का परिणाम है पर उनमें आकाश ज्यों का त्यों रहताहै क्योंकि, उनके साथ स्पर्श नहीं करता; तैसेही वह पुरुष द्रष्टा, दर्शन, दृश्य से अतीत रहताहै । जैसे मरुस्थलमें जल असत्है तैसेही उस पुरुषको त्रिपुटी असत्य है । त्रिपुटी और अहंता उस पुरुष की नष्ट होजातीहै इससे भेदबुद्धि भी नहीं रहती और इसीसे वह शान्त; निर्मल, संसार से सुषुप्त; चेतन घनता से पूर्ण और सर्वदा शान्तरूप है । जिन नेत्रोंसे लोग संसार देखतेहैं उनसे वह अन्धा हुआहै–अर्थ यह कि, जिस मन से फुरना होता है उसको उसने नाश किया है और यदि भय, क्रोध, अहंकार, मोह इत्यादि उस पुरुषमें दीखते भी हैं पर उसके हृदयमें कुछ स्पर्श नहीं करते । जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है परन्तु आकाशको स्पर्श नहीं करसक्ता तैसेही उस पुरुष को कोई विकार स्पर्श नहीं करता । हे रामजी ! उस पुरुष के संपूर्ण संशय नष्ट होगये हैं और वह सर्वदा स्वरूपमें स्थित और शान्तरूपहै; आत्मासे भिन्न वह किसी सुखकी वाञ्छा नहीं करता और उसके सर्व संकल्प नष्ट हुये हैं । उसे आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता; जाग्रत्की नाईं दृष्टि आताहै पर सर्वदा जाग्रत्से सुषुप्त है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपञ्चमभूमिकावर्णनंनाम
चतुर्विंशतिशताधिकतमस्सर्गः ॥ १२४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तीसरी भूमिका पर्यन्त जाग्रत् है और चतुर्थ भूमिका में जाग्रत् अवस्था को स्वप्नवत् देखताहै । पञ्चम भूमिकावाला संसार से सुषुप्त होता है और छठी भूमिकावाला तुरीयापदमें स्थित होताहै और सर्वदा अक्रिय है अर्थात् किसी क्रियामें बन्धवान् नहीं होता । वह सर्वकाल आनन्दरूपहै; भिन्न होकर आनन्द को नहीं भोगता आपही आनन्द है; केवल अपने आप स्वतः स्थित है और सर्वदा निर्वाणहै । हे रामजी ! सर्वक्रियामें वह यथाशास्त्र बिचरता दृष्टि आताहै परन्तु हृदय में शून्य है–उसको किसी से स्पर्श नहीं । जैसे आकाश में सर्व पदार्थ भासते हैं और आकाश का स्पर्श किसी से नहीं; तैसेही सर्वक्रिया उसमें विद्यमान दृष्टि भी आती हैं तौभी वह हृदयसे किसीसे स्पर्श नहीं करता क्योंकि; उसको क्रियामें बन्धवान् करने वाला जो अहंकार था सो उसका नष्ट होगयाहै–केवल शान्तरूपहै । उसमें अहंकार फुरना चिन्मात्र में से निवृत्त हुआ है । चिन्मात्र से अहंभाव का उत्थान ही अज्ञान है

और वही दुःखदायी है। जब अहंभाव निवृत्त होताहै तब कोई कर्म स्पर्श नहीं करता। यद्यपि उसको विश्व दृष्टि भी आता है तौभी वास्तव से नहीं देखता क्योंकि उसको सर्वब्रह्मही भासताहै; खाताहै और नहीं खाता; देता भीहै और कदाचित् नहीं देता; लेताहै तौभी कदाचित् किसीसे कुछ नहीं लेता और चलताहै परन्तु कदाचित् नहीं चला। हे रामजी! जो देश काल-वस्तु पदार्थ हैं उन सब में वह आत्मभाव रखता है यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष चेष्टा दीखती है तौभी उसके हृदय में कुछ नहीं। जैसे सुपने में खाता, पीता, चेता, देता आपको भासताहै और जागेसे सबका अभाव होजाता है तैसेही जो पुरुष परमार्थसत्तामें जगाहै उसको गुणकी क्रिया अपनेसे नहीं भासती और जो करता है उसमें अभिलाषा नहीं रखता, उसकी सब चेष्टा स्वाभाविक होती है। अपने निमित्त उसे कुछ कर्तव्य नहीं। ऐसे भगवान् ने भी कहा है और वह सर्व आत्माही दीखता है। आकाश, पृथ्वी, सूर्य, ब्राह्मण, हाथी, श्वान, चाण्डाल आदिक सर्वमें वह आत्मभाव देखताहै और आकार को मृगतृष्णाके जलवत् देखता है कि, इसका अत्यन्त अभाव है। द्रष्टा, दर्शन, दृश्यभी उसको आकाशवत् भासतेहैं और वह निर्मल आकाशवत् शान्तरूप है। अहंभाव से रहित वह केवल चिन्मात्र में स्थित है और ग्रहण-त्याग से अतीत; सर्वकलना से रहित; निर्वाण, स्वच्छ, निर्मल आकाशरूप स्थित है। अहं मम आदिक चिद्ग्रन्थि उसकी भेदी हैं और अनात्ममें अहं अभिमान उसका नष्ट होताहै-केवल शान्तरूप हो रहताहै। जैसे क्षीरसमुद्रसे मन्दराचल पर्वत निकलकर शान्तरूप हुआ तैसेही वह राग-द्वेषरूपी क्षोभ करनेवाले अन्तःकरणरूपी समुद्र से निकलगया तब शान्तरूप अक्षोभ हुआ परम शोभा से शोभता है। जैसे विश्वकर्मा ने सूर्य का मण्डल रचा है और वह प्रकाश से शोभा पाता है तैसेही ज्ञानरूपी प्रकाश से वह प्रकाशताहै। जैसे चक्र फिरता २ रहजाता है और शान्त होताहै तैसेही अज्ञानसे फिरता२ ठहरकर वह सदा शान्ति को प्राप्त हुआ है और अपने आपसे प्रकाशता है। जैसे पवन से रहित दीपक प्रकाशता है तैसेही कलनारूपी पवनसे रहित पुरुष अपने आपसे प्रकाशताहै और सर्वदा निर्मल और एकरस है। जैसे घट के भीतर और बाहर शून्य है तैसेही देह के भीतर बाहर आत्मा है। जैसे जलमें घट रखिये तो उसके भीतर बाहर जल होताहै तैसेही वह पुरुष अपने आपसे भीतर बाहर पूर्ण होरहा है और एकरस है-द्वैतकलना को नहीं प्राप्तहोता और उस पदको पाकर आनन्दवान्है। जैसे कोई मारेजानेके निमित्त पकड़ा गया हो और उसकी रक्षा हो तो वह बड़े आनन्द को प्राप्त होताहै तैसेही वह पुरुष आनन्द को प्राप्त होताहै। जैसे कोई आधि व्याधि से छूटा आनन्द को प्राप्त होता है तैसेही वह ज्ञानवान् आनन्द को प्राप्त होता है। जैसे कोई मंजिल चलनेसे थका हुआ

शय्यापर विश्राम करे और आनन्द को प्राप्त होता है तैसेही ज्ञानवान् को आनन्द है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से आनन्दवान् होताहै तैसेही वह पुरुष अपने आनन्द से घूर्म है। जैसे काष्ठ के जले से रहित अग्नि धुयें से रहित प्रज्वलित होती है; तैसेही ज्ञानवान् अज्ञानरूपी धुयें से रहित शोभता है। हे रामजी! जब वह संसारकी ओर देखता है तो उसे अग्नि से जलता हुआ आपसे जुदा देखता है और ज्ञानरूपी पर्वत के ऊपर स्थित होकर संसारको जलता देखता है। हे रामजी! यह जो कहाहै कि; संसार को जलता देखता है सो ऐसेभी नहीं फुरता कि; मैं ज्ञानीहूं और यह संसार है। स्वरूप की अपेक्षासे यह कहा है कि, संसार उसको दुःखदायी भासता है। वह आनन्द से रहित परमानन्द को प्राप्त हुआहै और सत् असत् से रहित जो अपना आप है उस में स्थित है। जैसे पर्वत भीतर बाहर अपने आप में स्थित और एकरस है तैसेही वह पुरुष एकरस है। संसार में जाग्रत् होकर चेष्टा करताहै पर हृदय में संसार की भावना से रहित है। उस पद में वाणी की गम नहीं परन्तु कुछ कहता हूं सुनो; कोई उसे ब्रह्म कहते हैं; कोई चेतन कहते हैं; कोई आत्मा कहते हैं; कोई साक्षी कहते हैं; कालवाले उसीको काल कहते हैं; ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं; सांख्यवाले प्रकृति इत्यादिक संज्ञाओं से कहते हैं। ये सब उसी के नाम हैं—उससे भिन्न नहीं। उस पद को सन्त-जन जानते हैं। हे रामजी! ऐसे पद को पायके वह अपने आपसे शोभता है। जैसे मणि के भीतर बाहर प्रकाश होताहै तैसेही वह पुरुष भीतर बाहर से शोभता है और अपने स्वरूप से सदा घूर्म रहताहै। जो पुरुष छठीभूमिका में स्थितहै उसके ये लक्षण होते हैं कि, संसार से सुषुप्त होकर स्वरूप में चेतन होता है और उसका जीवत्वभाव जाता रहता है। जैसे घट की उपाधि से घटाकाश परिच्छिन्न भासता है और जब घट भग्न हुआ तब घटाकाश महाकाश एक होजाताहै तैसेही अहंकाररूपी घट के भग्न हुये आत्माही भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेषष्ठभूमिकाउपदेशोनाम शताधिकपञ्चविंशतितमस्सर्गः॥ १२५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसके अनन्तर जब सप्तमभूमिका उस पुरुषको प्राप्त होतीहै तब आपको आत्मा ही जानताहै और भूतों का ज्ञान जातारहताहै। तब केवल आत्मत्वमात्र होताहै और दृश्य का ज्ञान नहीं रहता; बल्कि यह भी ज्ञान नहीं रहता कि, विश्व मेरे आश्रय फुरती है। देहसहित हो अथवा विदेहहो उसको आत्मा से उत्थान कदाचित् नहीं होता। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही वह आत्मस्वरूप में स्थित होता है और उसकी चेष्टाभी स्वाभाविक होतीहै। जैसे बालक पालने में अपने अङ्ग स्वाभाविक हिलाता है तैसेही उसकी खान, पान आदिक चेष्टा

स्वाभाविकही है और जैसे काष्ठ की पुतली तागेसे चेष्टा करतीहै तैसेही प्रारब्ध वेगके तागेसे उसकी चेष्टा होतीहै–उसको अपनी कुछ इच्छा नहीं रहती। हे रामजी! सप्तम भूमिकावाला जैसी अवस्था को प्राप्त होताहै सो आपही जानता है और कोई नहीं जानसक्ता जिसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है वह भी उस अवस्था को नहीं जानसक्ता; जिसको वह पद प्राप्त हुआ है वही जानै है। हे रामजी! जीवन्मुक्त का चित्त सत्पद को प्राप्त होता है और यह तुरीयापद में स्थित होता है। उसका चित्त निर्वाण होजाता है और तुरीयातीतपद को प्राप्त होकर विदेहमुक्त होता है। उसको अहंभावका उत्थान कदाचित् नहीं होता और सत्‌रूप है पर असत् की नाईं स्थित है। हे रामजी! वह पुरुष उस पद को प्राप्त होताहै जिसको वाणीकी गम नहीं परन्तु कुछ कहता हूं। वह पद, शुद्ध, निर्मल, अद्वैत, चेतन, ब्रह्म और कालकाभी काल केवल चिन्मात्र है और ज्योंका त्यों अच्युत पद है। उस पद को पाकर ऐसे होता है। जैसे वस्त्रके ऊपर मूर्ति लिखी हो तैसेही यह उत्थानसे रहित है और उसको अहंब्रह्म का उत्थान भी नहीं रहता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसप्तभूमिकालक्षणविचारोनाम षड्विंशाधिकशततमस्सर्गः॥ १२६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सप्त भूमिका जो तुमसे कही हैं, ज्ञान की प्राप्ति इनहीं से होती है; अन्य साधन से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी! जब पुरुष ज्ञानवान् हो तब जानिये कि, उसकी वृत्ति प्रथम भूमिका में स्थित हुई है। इससे तुम भूमिका की ओर चित्तरूप चरण रक्खो तब तुमको स्वरूपकी प्राप्ति होगी। हे रामजी! तीसरी भूमिका पर्यन्त सर्व कामना निवृत्त होती हैं केवल एक आत्मपद की कामना रहती है। यदि उस अवस्था में शरीर छूट जावे तो और जन्म पाकर ज्ञान को प्राप्त होता है और यदि चतुर्थभूमिका में प्राप्त होकर शरीर छूटे तो फिर जन्म नहीं पाता क्योंकि; आत्मपद की प्राप्ति हुये से फिर कुछ पानेकी इच्छा नहीं रहती। जन्म का कारण इच्छा है; जब कुछ इच्छा न रही तब जन्म भी न रहा। जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है उसको स्वरूप की प्राप्ति होतीहै तो फिर इच्छा कैसेहो? जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही उसका चित्त ज्ञानअग्नि से दग्ध होता है क्योंकि; वह सत्पद को प्राप्त होता है; इसीसे वह जन्म नहीं लेता और मरता भी नहीं–संसार को स्वप्नवत् देखता है। पञ्चम भूमिकावाला सुषुप्ति की नाईं होता है और छठी भूमिका साक्षीरूप तुरीयापद है; सप्तम तुरीयातीत निर्वाच्य पद है। हे रामजी! मुझे इतने कहने का प्रयोजन यही है कि, वासना का त्याग करो और अचित् पद को प्राप्त हो। इसका अभिमान होनाही वासना है; जब इसका अभिमान निवृत्त हो तब शान्ति होगी यह

परिच्छिन्न अहंकार न रहेगा। आत्मा के अज्ञानसे हुआ है और आत्मज्ञान से लीन होजाताहै। हे रामजी ! संसाररूपी एक नदी में आधि-व्याधि उपाधि रोग तरङ्ग हैं; रागद्वेषरूपी छोटे मच्छ हैं और तृष्णारूपी बड़े मच्छ हैं उसमें जीव दुःख पाते हैं। जैसे जल नीचे को चलाजाता है तैसेही मृत्यु के मुख में संसार चला जाता है और अज्ञानरूपी जल है। हे रामजी ! तृष्णा से पुरुष बांधे हैं; इससे तुम हाथी की नाईं वैराग्य और अभ्यासरूपी दांतों से तृष्णारूपी जंजीर काटो। हे रामजी ! तृष्णारूपी सर्पिणी विषयरूपी फूत्कारेसे विचाररूपी बेलि को जलातीहै इससे जीवरूपी किसान दुःख पाता है। इससे तुम वैराग्यरूपी अग्नि से उस सर्पिणी को जलाओ। हे रामजी ! तृष्णा दुःखदायी है। जबतक तृष्णाहै तबतक सन्तों के वचन स्थित नहीं होते। जैसे दर्पण पर मोती नहीं ठहरता तैसेही तृष्णावान्के हृदयमें सन्तोंके वचन नहीं ठहरते। तृष्णा के इतने नाम हैं तृष्णा, अभिलाषा, इच्छा, फुरना, संसरना इत्यादिक सर्व इसीके नाम हैं इच्छारूपी मेघ ने ज्ञानरूपी सूर्य को ढांका है इससे वह नहीं भासता जब विचाररूपी पवन चले तब इच्छारूपी मेघ नष्ट होजावे और आत्मरूपी सूर्य का साक्षात्कार हो। हे रामजी ! यह जीव आकाश का पक्षी है पर कर्म में इच्छारूपी तागे से बँधा है इससे नहीं उड़सक्ता और परमात्मपद को भी प्राप्त नहीं होता-इच्छाही से दीन है जब इच्छा नष्ट हो तब आत्मस्वरूप है। इससे तुम इच्छा को नाशकर आत्मपरायण हो अर्थात् विषय संसारसे वैराग्य और आत्माभ्यास करो। हे रामजी ! यह जो मैंने तुमसे भूमिका का क्रम कहाहै जब इसमें आवे तब ज्ञान की प्राप्ति हो पर इनको तब प्राप्त होता है जब कि, एक हथिनी को जीते जो एकवन में रहती और महामत्तरूप उसके दो पुत्रहैं जो अनेक जीवोंको मारकर अनर्थ प्राप्त करते हैं। उसके जीते से सर्व जगत् जीता जाताहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! ऐसी मत्तरूप हथिनी कौन है और कहां रहती है ? उसके दांत और पुत्र कौन हैं ? कैसे वह मरती है, कैसे उत्पन्न हुई है और कौन वन है ? यह सब मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इच्छारूपी हथिनी शरीररूपी वनहै और मनरूपी गुफा में रहती; इन्द्रियांरूपी उसके बालक हैं और संकल्प विकल्परूपी दांत हैं उनसे छेदतीहै। हे रामजी ! एक नदी है जिसका प्रवाह सदा चलाजाता है और जिसमें दो मच्छ रहतेहैं जो कभी नाश नहीं होते संसरनाही नदी है जिसमें रागद्वेष मच्छ रहते हैं सो नाश नहीं होते। हे रामजी ! वे मच्छ तब नाश हों जब संसरणरूपी जल नष्ट हो जिसके सुकृत दुष्कृतरूपी किनारे हैं; चिन्तारूपी ग्राहहैं और कर्मरूपी लहरें हैं उनमें जीवरूपी तृण आकर भटकता है। इस तृष्णारूपी विषवेलिका नाश करो। हे रामजी ! तृष्णारूपी अंकुरका बढ़ाना घटाना अपने ही आधीनहै; जो अंकुर को जल दीजिये तो बढ़ता जाताहै और जो न दीजिये

तो जल जाता है। फुरनरूपी जल देनेसे तृष्णारूपी अंकुर बढ़ता जाता है और न देने से स्वरूप के अभ्यास द्वारा जलजाता है। हे रामजी! तृष्णारूपी बड़ा मच्छ है जो धैर्य आदिक मांस को भक्षण करनेवालाहै; उसे वैराग्यरूपी कएडी और अभ्यासरूपी दांतों से नाश करो। हे रामजी! इच्छा का नाम बन्धन है और निरिच्छा का नाम मुक्ति है। हे रामजी! एक सुगम उपाय कहताहूं जिससे तृष्णा नष्ट होजावेगी निज अर्थ की भावना करो तो उस भावना से शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी, एवम् तुम्हारी जय होगी और सबसे उत्तम पद को प्राप्त होगे; फिर तुम्हें वासना न रहेगी और शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और सर्व संकल्प नष्ट होजावेंगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंसरणभावप्रतिपादनंनाम शताधिकसप्तविंशतितमस्सर्गः॥ १२७॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप कहते हैं कि, निजअर्थ की भावना से वासना नष्ट होजावेगी और शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी सो वासना तो चिरकाल की चित्तमें स्थितहै एकही बार कैसे नष्ट होगी? तथा आप कहते हैं कि; वासनाके नष्ट हुये जीवन्मुक्त होता है पर जिसकी वासना नष्ट होगी उसका शरीर कैसे रहेगा; वासना विना चेष्टा क्योंकर होगी और जीवन्मुक्तपद कैसे होगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरे वचनों को जो कानोंके भूषण हैं सुनेसे दरिद्र न रहेगा। निज अर्थ के धारने से संशय नष्ट होजावेंगे और आत्मपद की प्राप्ति होगी। उस निज अक्षर के तीन अर्थहैं–एक तो अन्यके अर्थहैं कि, पञ्चभौतिक शरीरसे तेरा स्वरूप विलक्षण है और दूसरा अर्थ विरुद्धहै अर्थात् शरीर जड़ और तमरूपहै और तेरा स्वरूप आदित्यवर्ण और तम से परे है। हे रामजी! जब तूने ऐसे धारणा की कि, मैं आत्मा हूं और यह देहादिक अनात्मा है तब देहसे मिलकर अभिलाषा कैसे रहेगी? अर्थ यह कि, अभिलाषा न करेगा क्योंकि, जबतक जाना नहीं तबतक अभिलाषाहै। तीसरा अर्थ यह है कि, अभाव है अर्थात् न मैं हूं और न कोई जगत् है। जब ऐसे जाना तब किसकी इच्छा रहेगी? अर्थात् किसीकी न रहेगी। अथवा जो तुम आपको देह से विलक्षण आत्मा जानोगे तौभी अविद्यक तमरूप शरीरकी अभिलाषा न रहेगी। देह तमरूप है और तुम आदित्य वर्ण हो अर्थात् प्रकाशरूप हो; तुम्हारा और इस का क्या संयोग जैसे सूर्य के मण्डल में रात्रि नहीं दिखती तैसेही जब तुम आपको प्रकाशरूप जानोगे तब तमरूप संसार न दीखेगा। तब शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और तुम में कुछ चेष्टा न होगी। जैसे अर्धनिद्रावाले की चेष्टा होती है तैसेही चेष्टा होगी और तुमको बालक की नाईं अभिमान न होगा। जैसे बालक की उन्मत्त चेष्टा होती है तैसेही तुम्हारी चेष्टा भी स्वाभाविक होगी। हे रामजी! यदि तुम यह

इच्छा करो कि, यह सुख हो और यह दुःख न हो तो कदाचित् न होवेगा। जो कुछ शरीर की प्रारब्ध है सो अवश्य होतीहै परन्तु ज्ञानवान्के हृदयसे संसारकी सत्यता जाती रहती है और स्वाभाविक चेष्टा होती है; इच्छा नहीं रहती। हे रामजी! जैसे कोई पुरुष किसी देश को जाता है और पहुंचने का समय थोड़ा हो तो वह मार्ग के स्थान देखता भी जाता है परन्तु बन्धवान् किसी में नहीं होता; तैसेही चित्त को आत्मपद में लगावो। ऐसा शरीर पाकर यदि आत्मपद न पाया तो कब पावेगा? जो आत्मपद से विमुख है वह वृक्षादिक जन्मों को पावेगा इससे; हे रामजी! चित्त आत्मपदमें रक्खो और स्वाभाविक इच्छा विना चेष्टा करो इच्छाही दुःखदायकहै। जब इच्छा नष्ट होतीहै तब उसीको ज्ञानवान् तुरीयापद कहते हैं जहां जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का अभाव हो सो तुरीयापद है। हे रामजी! यह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था जहां न पाइये सो तुरीयापदहै। जब संवेदन फुरना अहंकारका अभाव होजावे तब तुरीयापद प्राप्त होता है। हे रामजी! अहंकार का होना दुःखदायकहै। जब इस का नाश हो तबहीं आनन्दहै। आत्मपदसे भिन्न जो मायाकी रचनाहै उससे मिलकर आपको जानताहै कि, 'कि मैंहूं' यही अनर्थहै। इससे अहंकारका त्याग करो। जिस को देखकर यह फुरताहै उसको निज अर्थकी भावनासे नाश करो और जो आत्मपद से भिन्न भासताहै उसे मिथ्या जानो। यही निज अक्षर का अर्थ है जो कुछ संसार भासता है उसको स्वप्नमात्र जानो। इसको सत्य जानकर इसकी इच्छा करनाही अनर्थ है और मिथ्या जानकर इच्छा न करनी कल्याणहै। हे रामजी! मैं ऊंची बाहु करके पुकारता हूं पर मेरे वचन कोई नहीं सुनता कि; इच्छा ही संसार का कारण है और इच्छासे रहित होनाही परमकल्याणहै। जब जीव इच्छासे रहित होताहै तब शान्तपद को प्राप्त होता है और निरिच्छित हुये से आत्मा ही भासताहै जो आनन्दरूप, सम और अद्वैत है और उसमें जगत् का अभावहै। हे रामजी! मोह का बड़ा माहात्म्य है। हृदय में जो आत्मरूपी चिन्तामणि स्थित है उसको विस्मरण करके मूर्ख अहंकाररूपी कांच को ग्रहण करते हैं। हे रामजी! तुम निरभिमान होकर चेष्टा करो। जैसे यन्त्री की पुतलीमें अभिमान कुछ नहीं होता और उसकी चेष्टा होतीहै; तैसेहीं प्रारब्धवेगसे तुम्हारी चेष्टा होगी। यह अभिमान तुम न करो कि, ऐसे हो और ऐसे न हो। जब ऐसे होगे तब शान्तपदको प्राप्त होगे; जहां वाणीकी गम नहीं ऐसे आनन्द को प्राप्त होगे। जबतक इन्द्रियों के अर्थ की तृष्णा है तबतक जन्म मृत्यु के बन्धन में है इससे पुरुषप्रयत्न यही है कि, तृष्णा का नाश करो; कर्म के फल की तृष्णा न हो और कर्म के करने की भी इच्छा न हो। इन दोनों को त्यागकर स्वरूप में स्थित होरहो बल्कि ऐसाभी निश्चय न हो कि; मैंने त्याग कियाहै। हे रामजी! जिस पुरुष

ने कर्म को त्याग कियाहै और अहंकार सहितहै उसने पुण्य और पाप सब कुछ किया है और जिसमें अहंभाव नहींहै वह चाहे जैसे कर्म करे तौभी कुछ नहीं करता और वह बन्धन को नहीं प्राप्त होता। जो कर्म में आपको अकर्ता जानताहै और न करने में अभिमान सहितहै उसको कर्ता देखते हैं वह बन्धवान्है। हे रामजी! ऐसे आत्मा को जानकर अहंममका त्याग करो। ऐसे संवेदनके त्यागनेमें कुछ यत्न नहींहै। स्मृति उसकी होतीहै जिसका अनुभव होताहै पर जिसका अनुभव नहीं उसका त्याग करना सुगमहै। अनुभव प्रत्यक्ष देखनेको कहतेहैं। तुम्हारे स्वरूपमें विश्व नहीं है तो अनुभव क्या हो। ये पदार्थ जो तुमको भासते हैं उनके कारणको जानो। इनका कारण अनुभव है; जो अनुभवही इनका मिथ्या है तो स्मृति कैसे सत् हो? रस्सी में सर्प का अनुभव हुआ और फिर स्मरण किया कि, वहां सर्प देखा था; जो सर्प का अनुभव ही मिथ्या है फिर उसका स्मरण कैसे सत् हो? इससे जो वस्तु मिथ्याहै उसके त्यागने में क्या यत्न है? जब प्रपञ्च को मिथ्या जाना तब तुझको कोई क्रिया बन्धन न करेगी; चेष्टा स्वाभाविक होगी और रागद्वेष जाता रहेगा। जैसे शरत्काल की बेलि सूख जातीहै और उसका आकार दृष्टि आताहै; तैसेही तुम्हारा चित्त देखनेमें आवेगा और चित्त का धर्म जो रागद्वेष है वह जाता रहेगा-वह चित्त सत्पद को प्राप्त होगा। जब सब विस्मरण होता है उसको शिवपद कहते हैं। वह परमपद ब्रह्मशब्द-अर्थ से रहित केवल चिन्मात्र अद्वैतपद है; उसमें अहंमम का त्याग करके स्थित रहो। संसार इसीका नाम है कि, अहं हूं और यह मेरा है। इसको त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! जबतक अहंमम का संवेदनहै तबतक दुःख नहीं मिटते और जब यह संवेदन मिटा तब आनन्द है। आगे जो इच्छा हो सो करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइच्छाचिकित्सोपदेशंनाम
शताधिकाष्टविंशतितमस्सर्गः॥ १२८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अद्वैत आत्मा जिसको एक दो नहीं कहसक्के अपने आप स्वभाव में स्थितहै और अन्तःकरण चतुष्टय बाह्यपदार्थ सब चेतनमात्र हैं कुछ भिन्न नहीं। रूप, इन्द्रियां और मन का फुरना; देश, काल सर्व आत्मारूपही है। जैसे बालक मट्टी की सेना बनाकर हाथी, घोड़े, राजा, प्रजा नाम कल्पताहै सो सब मट्टीही हैं-भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहंमम आदिक भी सर्व आत्मरूप है—कुछ पृथक् नहीं। जैसे मट्टी में हाथी, घोड़ा आदि नाम कल्पितहैं; तैसे आत्मा मेंही जीव जगत् कल्पता है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। इस अहंकार को त्याग करो कि आत्मपद से भिन्न कुछ न फुरे। हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार यह सब शिवरूपी मृत्तिका के नाम हैं और मान; मेय; प्रमाण आदिक यह सब वही रूप हुये तो किससे किसको संचित

कहिये ? यह अहंमम आदिक भी चिदाकाश से कुछ भिन्न वस्तु नहीं । इनको ऐसे जानकर अफुर शिलावत् निःसंग होरहो । रामजीने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि; अहंमम फुरनेका त्याग करो यह मिथ्याहै और अहंमम असत् है । ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं कि, इनकी सत्ता कुछ नहीं और तुम असंग होरहो पर असंग निष्कर्मसे होता है अथवा सुकर्मसे होताहै यह कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह तुमहीं कहो कि; कर्म क्या है और निष्कर्म क्या है; इनका कारण कौनहै और इनका नाश कैसे हो और नाश होने से क्या सिद्धि होगी; जो तुम जानते हो तो कहो ? रामजी बोले, हे भगवन्! जैसे आपसे सुनाहै और समझाहै सो मैं कहताहूं । जो वस्तु नाश करनीहो उसको निश्चय करके मूल से नाश कीजिये तभी उसका नाश होताहै, शाखा और पत्र काटेसे उसका नाश नहीं होता—इससे इनका क्रम सुनो । इस संसाररूपी वन में देहरूपी वृक्षहै जिसका बीज कर्म है; पाणि पाद आदिक पत्रहैं; रुधिर, श्वास और वासना रस हैं और सुख दुःख फूलहैं । जाग्रत् कर्म वासनारूपी बसन्त ऋतुहै उससे वह प्रफुल्लित होताहै और सुषुप्ति पापकर्मरूपी शरत्कालहै उससे सूख जाताहै । ऐसा शरीररूपी वृक्ष है । तरुणपनरूपी उसकी कली है सो क्षण का क्षण सुन्दर है; जरारूपी फूल इसको हँसते हैं और द्वेषरूपी वानर क्षण क्षण में क्षोभते हैं । जाग्रतरूपी वसन्तऋतुहै जो सुषुप्तिरूपी हिम करती है और वासनारूपी रस से बढ़ता है । पुत्र कलत्र आदिक तृण और घास हैं और इन्द्रियों के गढ़रूपी मुख हैं जिनसे शरीर की चेष्टा होती है । ज्ञान इन्द्रियां पञ्चथम्भहैं जिनसे वृक्ष सधाहै और इच्छारूपी बेलि है जो अपने अपने को चाहती हैं । बड़ा थम्भ इसका मन है जो सबको धारता है और पञ्चप्राण इसके रस हैं उनसे प्रत्यक्ष सबको ग्रहण करताहै । इनका बीज जीव है—जीव चैत्योन्मुखत्व चेतन को कहते हैं; जीवका बीज संवित् है जो मात्रपद से उत्थान हुआ है और उस संवित् का बीज ब्रह्म है—उसका बीज कोई नहीं । हे भगवन्! सबका मूल संवित् का फुरना है; जब इसका अभाव होताहै तब आत्मा ही शेष रहताहै । हे भगवन्! यह तो मैं जानताहूं आगे आपभी कुछ कृपा करके कहिये । हे भगवन्! जबतक चित्तसे सम्बन्ध है तबतक संसार में जन्म मरण होताहै और जब चित्तसे रहित होता है तब परब्रह्म है—वह शिवपद अनिच्छित, शान्त और अनन्तरूपहै । चिन्मात्रमें जो अहंका उत्थान है वही कर्मरूपी वृक्षका कारणहै । जबतक अनात्मासे मिलकर कहताहै कि, 'मैं हूं' वही संसार का कारण है । यह आपके वचनों से मैंने समझा है सो प्रार्थना की है आगे कुछ कृपा करके आप भी कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसी प्रकार कर्म का बीज सूक्ष्म संवित् है । जबतक संवित् है तबतक कर्मोंका बीज नाश नहीं होता और ये सब संज्ञा इसीकी हैं । कर्मोंका बीज इच्छा, तृष्णा, अज्ञान, चित्त और ग्रहण त्याग

की बुद्धि इत्यादिक बहुत संज्ञाहैं; क्या किसीमें हेयोपादेय बुद्धि करे ? हे रामजी ! जब तक अज्ञान है तबतक इच्छा नाश नहीं होती और कर्म भी नाश नहीं होते। नाश दोनों का नहीं होता परन्तु भेद इतनाही है कि, अज्ञानी को भासताहै कि, यह इच्छा है, यह कर्म है। ज्ञानवान् को सब ब्रह्मही भासता है इससे वह सुखी रहता है और अज्ञानी को कर्म में कर्म भासताहै इसलिये बन्धवान् होताहै। कर्म से कर्मबुद्धि जाने को त्याग कहतेहैं, क्रियाका त्याग करनेको त्याग नहीं कहते। हे रामजी ! बड़ी उपाधि अहंकारहै। जिसका अहंकार नष्ट हुआहै वह पुरुष कर्म करता है तौभी उसने कभी कुछ नहीं किया और जो अहंकार सहितहै वह पुरुष जो तूष्णी हो बैठाहै तौभी सब कर्म करता है। इस अहं के त्याग का नाम सर्वत्याग है; क्रियाके त्याग का नाम सर्व त्याग नहीं। सब कर्मों के बीज अहंकारका त्यागना और परम शान्तिको प्राप्त होना ही पुरुषप्रयत्न है॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०कर्मबीजदाहोपदेशंनामशताधिकनवविंशस्सर्गः ॥१२९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस संवेदन का होनाही अनर्थ है कि, आपको कुछ जानता है। जब यह निवृत्त हो तबहीं इसको आनन्द है। हे रामजी ! ज्ञानी की चेष्टा अहंकार से रहित स्वाभाविक होती है। जैसे अर्धनिद्रित पुरुष होताहै तैसेही ज्ञानी अपने स्वरूप में घूर्म है। जैसे हाथी मदसे उन्मत्त होताहै तैसेही ज्ञानवान् स्वयम्ब्रह्म लक्ष्मीसे घूर्म है। जैसे कामी को काम व्यसन होताहै तैसेही सुखरूपी स्त्रीको पाकर ज्ञानी घूर्म रहताहै क्योंकि; निरहंकारहै। सब दुःखों का बीज अहंकारहै, जब अहंकार नष्ट हो तब आनन्द हो। हे रामजी ! संसाररूपी विषकी बेलिका बीज अहंकारहै; जब अहंकार का अभाव हो तब संसार का भी अभाव होता है। हे रामजी ! अहंकारही दुःख का मूल है। इस संवेदन का विस्मरण करना बड़ा कल्याणहै और अनात्मासे मिलकर आपको माननाही अनर्थहै। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो वस्तु असत्य है वह नहीं होती और जो सत्यहै उसका अभाव नहीं होता फिर आप कैसे कहतेहैं कि; अहं संवेदन का नाश करो ? ये तो सत् भासती है संवेदन कैसे हो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तुम सत्य कहतेहो कि, जो वस्तु असत्यहै वह नहीं होती और जो सत्यहै उसका नाश नहीं होता। हे रामजी ! यह जो अहंकार दृश्य तुमको भासता सो कदाचित् नहीं हुआ-मिथ्या कलिपत है। जैसे रस्सी में सर्प होता है तैसेही आत्मा में अहंकारहै और जैसे सूर्यकी किरणोंमें जलाभास होताहै तैसेही आत्मामें अहंकार शब्द अर्थ फुरता है। यह शब्द और अर्थ मिथ्या है। इसका लक्षण यह है कि, मैं हूं सो कलिपतहै; आत्मा केवल शुद्धस्वरूपहै उसमें अहं त्वं का शब्द अर्थ कोई नहीं। यह अबोध से भासते हैं और बोध से लीन होजाते हैं। वेदना का बोध अनर्थ का

कारण है और अबोध तम है। जब यह निर्वाण हो तब कर्म का बीज मूलसे कटे। हे रामजी ! जो कर्मों का त्यागकर एकान्त जाकर बैठता है और ऐसे मानता है कि मैं कर्म नहीं करता सो कहताही है पर वास्तव में अहंकार से है इससे फल को भोगताहीहै क्योंकि; अहंकार सहित फिर अहंकार करेगा। वह आत्मज्ञान विना अनात्म से मिलकर आपको मानता है। जो पुरुष कर्म इन्द्रियोंसे चेष्टा करताहै और आत्मा को लेप नहीं जानता वह अकर्ताहीहै-उसके करने से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होते और न करनेसे भी नहीं होते। ऐसा पुरुष परम निर्वाणपदको प्राप्त होताहै जिसको वाणी की गम नहीं। हे रामजी ! उसमें फुरना कोई नहीं—केवल चमत्कार है अर्थात् हुआ कुछ नहीं और भासता है। जैसे बिल्ली की मज्जा बिल्लीसे भिन्न नहीं तैसेही जगत्है। जैसे सोने से भूषण भिन्न नहीं तैसेही निज शब्दका अर्थ है पर ये भिन्न भिन्न शब्द अर्थ तबतक भासते हैं जबतक अहंवेदनाकारहै। हे रामजी ! आत्मपद सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे पत्थर अपनी जड़ता में स्थितहै तैसेही आत्मा अपनी चेतनघनता में स्थित है। उसको मुनीश्वर चेतनसार कहते हैं और उस अपने स्वरूप के प्रमाद से दुःख पाता है। हे रामजी ! जो पुरुष गृहस्थी में स्थित है पर अहंकार से रहित है उसको वनवासी जानो और सदा एकान्त है और जो वनवासी अहंकार सहितहै वह सदा जनों में स्थितहै। प्रथम तो वह एक गढ़ेमें था फिर उसको त्याग कर दूसरे गढ़ेमें पड़ाहै कि वेषधारीहै और वनवास लियाहै। ईश्वर चाहे तो निकसे नहीं तो बड़े कूप में पड़ा है। हे रामजी ! जो पुरुष अर्ध त्याग करताहै वा एक अङ्ग का त्याग करता है और दूसरे का अङ्गीकार करता है ऐसा पुरुष आपको निष्कामी मानताहै पर उसको यह त्यागरूपी पिशाचिनी भोगतीहै। हे रामजी ! यह जीव निष्कर्म तबहीं होता है जब इसकी अहंवेदना नष्ट होतीहै—अन्यथा नहीं होता। इससे कर्म को मूलसे उखाड़ो। जैसे सुरदण्ड बेलि और वृक्षको मूलसे काटतेहैं, तैसेही काटो। अहंवेदनाही मूलहै उसकी मूल काटना चाहिये। हे रामजी ! पुरुषप्रयत्न इसीका नाम है कि, अपने आपका नाश करना और आपही रहना। देह से मिलाहुआ आपको जानताहै उसका नाश करना और शिवपदको प्राप्त होना जो सर्वदा सत्स्वरूप अद्वैत है—यह विश्व भी उसका चमत्कार है। जैसे नारियलमें खोपरा होता है और उसके बहुत नाम रखते हैं सो नारियल से कुछ भिन्न नहीं, तैसेही संसार आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे थम्भे में काष्ठ से भिन्न कुछ नहीं तैसेही यह संसार है। यह नानात्व भी चेतनघन आत्माहीहै निज अक्षरका अर्थ जो कहाहै सो भी वहीहै तो विधि निषेध किसका कीजिये ? सब परमात्मतत्त्वहै दूसरा किंचिन्मात्र भी नहीं। हे रामजी ! ऐसे आत्माको जानकर सुखसे विचरो। जैसे अर्द्धनिद्रितकी चेष्टा होतीहै और जैसे बालक

पालनेमें सोकर स्वाभाविक अङ्ग हिलाताहै तैसेहीं तुम्हारी चेष्टा होगी। अपना अभिमान तुम न करो। हे रामजी! जो कुछ भाव-अभाव पदार्थ भिन्न२ भासतेहैं वे असत्य हैं; आत्माके साक्षात्कार हुयेसे परमात्मतत्त्व ही भासेंगे, तब अहंकार उत्थान निवृत्त होगा। हे रामजी! एक और युक्ति सुनो जिससे आत्मज्ञानहो यह जो अहं अहं क्षण क्षण में फुरती है सो जब फुरे तबहीं उस क्षण में जानो कि, मैं नहीं। जब ऐसे दृढ़ हुआ तब अहंकाररूपी पिशाच नाश होजावेगा और आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होगा। इससे अहंकार के नाश का यत्न करो कि, 'न मैं हूं' 'न जगत् है'। हे रामजी! ज्ञान इसीका नाम है कि, 'अहं' 'मम' न रहे। उसको मुनीश्वर परब्रह्म और सम्यक्पद कहतेहैं। और जहां (अहंमम) है वहां अविद्यारूपी तम खड़ाहै। हे रामजी! अज्ञानी के हृदयमें सर्वपदार्थों का भाव स्थित है इससे उसको देश, काल, घर, नगर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक त्रिगुण संसार भासताहै। जब इनका अभाव होजावे तब शान्तिपद की प्राप्ति हो॥

इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्र० अहंकारनाशविचारोनामसताधिकत्रिंशत्तमस्सर्गः १३०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसके मन से 'मैं' और 'मेरे' का अभिमान गया है उसको शान्ति हुई है और जिसके हृदय में 'मैं' देह, 'मेरे सम्बन्धी' 'गृह' आदिक का अभिमान है उसको कदाचित् शान्ति नहीं और शान्ति विना सुख नहीं। हे रामजी! प्रथम आप बनता है तब जगत्है। जो आप न बने तो जगत् कहां हो? इसका होनाही अनर्थ का कारण है। जिस पुरुष ने अहंकार का त्याग किया है वह सर्वत्यागी है और जिसने अहंकार का त्याग नहीं किया उसने कुछ नहीं त्यागा। जिसने क्रिया का त्याग किया और आपको सर्वत्यागी मानता है सो मिथ्या है। जैसे वृक्ष की डालें काटिये तो फिर उगताहै नाश नहीं होता; तैसेही क्रिया के त्यागकिये त्याग नहीं होता। जो त्यागने योग्य अहंकार नष्ट नहीं होता तो क्रिया फिर उपजतीहै। इससे अहंकार का त्याग करो तब सर्वत्यागी होगे। इसका नाम महात्याग है और स्वप्न में भी संसार न भासेगा, जाग्रत् का क्या कहना है—उसको संसार का ज्ञान कदाचित् नहीं होता। हे रामजी! संसार का बीज अहंभाव है; उसीसे स्थावर जङ्गम जगत् भासता है; जब इसका नाश हुआ तब जगत्भ्रम मिटजाता है—इससे इसके अभाव की भावना करो। जब तुम्हें अहंभाव की भावना फुरे तो जानना कि, मैं नहीं। जब इस प्रकार अहंका अभाव हुआ तब पीछे जो शेष रहेगा सोही आत्मपद है। हे रामजी! सब अनर्थों का कारण अहंभाव है उसका त्याग करो। हे रामजी! शस्त्र के प्रहार और व्याधिरोग को यह जीव सहसक्ता है तो इस अहं के त्यागने में क्या कदर्थना है? हे रामजी! संसार का बीज अहं का सद्भाव है, उसका नाश करना मानों संसार का मूलसंयुक्त नाश करना है—

इसीके नाशका उपाय करो। जिसका अहंभाव नष्ट हुआहै उसको सब ठौर आकाशरूप है और उसके हृदयमें संसारकी सत्ता कुछ नहीं फुरती। यद्यपि वह गृहस्थ में हो तौभी उसको यह प्रपञ्च शून्य वन भासताहै। जो अहंकारसहितहै और वनमें जा बैठै तौभी वह जनों के समूहमें बैठाहै क्योंकि; उसका अज्ञान नष्ट नहीं हुआ। जिसने मन सहित षट् इन्द्रियों को वश नहीं किया उसको मेरी कथा के सुननेका अधिकार नहीं—वह पशु है। जिस पुरुष ने मनको जीता है अथवा दिन प्रतिदिन जीतने की इच्छा करताहै वह पुरुष है और जो इन्द्रियों का विश्रामी अर्थात् क्रोध, लोभ, मोहसे संपन्नहै वह पशुहै और महाअन्धतम को प्राप्त होताहै। हे रामजी! जो पुरुष ज्ञानवान्है उसमें यदि कर्म की इच्छा दृष्ट आतीहै तौ भी वह उस की इच्छा अनिच्छाही है और उसके कर्म अकर्महीहैं। जैसे भूना दाना फिर नहीं उगता पर उसका आकार भासताहै तैसेही ज्ञानवान् की चेष्टा दृष्ट आती है सो देखनेमात्र है उसके हृदय में कुछ नहीं हे रामजी! जो पुरुष कर्मेन्द्रियोंसे चेष्टा करताहै और हृदयमें जगत्की सत्यता नहीं मानता उसे कोई बन्धन नहीं होता और जो जगत् को सत्य मानकर थोड़ा भी कर्म करता है तौ भी वह फैलजाता है—जैसे थोड़ी अग्नि जागकर बहुत होजातीहै—ज्ञानी को नहीं होता। उसकी प्रारब्ध शेष है सो भी हृदय में नहीं मानता और जानता है कि, ये कर्म शरीर के हैं आत्मा के नहीं। जैसे कुम्हार के चक्र का वेग उतरता जाताहै तैसेही प्रारब्धवेग उसका उतरता जाता है और फिर जन्म नहीं होता क्योंकि; उसको अहंकाररूपी चरण नहीं लागता। इससे अहंकार का नाश करो; जब अहंकार नाश होगा तब सबके आदिपद की प्राप्ति होगी जो परम निर्वाणपद है और जिसमें निर्वाण भी निर्वाण होजाता है। हे रामजी! जब वर्षाकाल होताहै तब बादल होते हैं जब शरत्काल आताहै तब बादल जाते रहते हैं। हे रामजी! जबतक अज्ञानरूपी वर्षाकालहै तबतक अहंकाररूपी वर्षा है और जब विचाररूपी शरत्काल आवेगा तब अहंकाररूपी मेघ जाते रहेंगे और आत्मरूपी आकाश निर्मल भासेगा। हे रामजी! जैसे मलिन आदर्श में मुखका प्रतिबिम्ब उज्ज्वल नहीं भासता और जब मैल निवृत्त होताहै तब मुखका प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष भासता है तैसेही; अहंकाररूपी मैल से जीव ढांपा हुआहै इससे आत्मा नहीं भासता; जब अहंकाररूपी मैल निवृत्तहो तब आत्मा ज्योंका त्यों भासे। जैसे समुद्रमें नानाप्रकार के तरङ्ग उठते हैं तो सम्यक्दर्शीको सब जलमय दृष्ट आते हैं और भूषण में सुवर्णही भासता है तैसेही नाना प्रकार के प्रपञ्च उस समदर्शी को चैतन्यघन आत्मा ही दृष्ट आते हैं—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं देखता। वह सबसे पत्थरकी शिलावत् होजाता है क्योंकि; उसका अहंकार नष्ट होगयाहै और जो अहंकार संयुक्तहै और क्रियाका त्याग कर आपको सुखी मानताहै वह मूर्खहै। जैसे कोई लकड़ी लेकर आकाश को नाश किया

चाहे तो वह नष्ट नहीं होता तैसेही क्रिया के त्याग से दुःख नष्ट नहीं होते—जब सम्पूर्ण संसार क्रिया के बीज अहंकार का नाश हो तब अक्रिय आत्मस्वरूप को प्राप्त होताहै। जैसे तांबा अपने ताम्रभाव को त्यागकर सुवर्ण होता है तैसेही जब जीव अपना जीवत्वभाव त्यागे तब आत्मा होताहै और जैसे तेलकी बूंद जलमें फैलजातीहै और नाना प्रकार के रङ्ग जल में भासते हैं तैसेही ब्रह्म में अहंता प्रकारकी कलना दिखाई देती हैं—आत्मा ब्रह्म निराकार, निरञ्जन इत्यादिक नाम भी अहंकार से शुद्ध में कल्पे हैं; वह अफुर केवल सत्तामात्र है और सत्य और असत्य की नाईं स्थितहै। हे रामजी! संसार रूपी मिरचका पेड़है अथवा संसाररूपी फूलहै उसमें अहंतारूपी सुगन्धहै; जब अहंता उदय होतीहै तब संसार क्षण में उदय होताहै और अहंता के नाश हुये संसार क्षणमें नाश होजाताहै। क्षण में उदय होता है और क्षणमें नाश होताहै सो अहंता का होनाही उदय होनेका क्षण है और अहंता का लीन होना नाश का क्षण है। हे रामजी! जैसे मृत्तिका में जल के संयोग से घट बनताहै तब मृत्तिका घटसंज्ञा पातीहै; तैसेही पुरुषको जब अहंकार का संग होताहै तब संसारी होता है और जीवसंज्ञा पाताहै और देश, काल, पृथ्वी, पर्वत आदिक दृश्य को प्रत्यक्ष देखता है; और जब अहंता नाश होती है तब सुखी होताहै; निदान जो कुछ मानरूप और उसका अर्थ है सो अहंता से भासताहै और जब अहंताको त्यागे तब शान्तरूप आत्माही शेष रहताहै। जैसे पवनसे रहित दीपक प्रकाशता है तैसेही अहंकाररूपी पवन से रहित जीव अपने स्वभाव में स्थित होकर आनन्दपद को प्राप्त होताहै; अनादिपद पाता है; सबका अपना आप होता है और देश, काल, वस्तु अपने में देखता है। हे रामजी! जबतक अहंता का नाश नहीं होता तबतक मेरे वचन हृदयमें स्थित न होंगे। जैसे रेतमें तेल निकलना कठिन है तैसेही जिस पुरुष ने अपना स्वभाव नहीं जाना उसको ब्रह्म का पाना कठिन है। अपना स्वभाव जानना अतिसुगम है। जब अहंता का त्यागकरे कि, न मैं हूं और न जगत् है तब कल्याण होताहै और तभी अहंता का नाश होता है और कोई भ्रम नहीं रहता। जैसे रस्सी के जाने से सर्पभ्रम निवृत्त होजाता है। जबतक अहंता फुरती है तबतक उसको उपदेश नहीं लगता। जैसे आरसी पर मोती नहीं ठहरता तैसेही जिसको अहंता फुरती है उसके हृदय में मेरे वचन नहीं ठहरते और जिसका हृदय शुद्ध है उसको मेरे वचन लगते हैं। जैसे तेल की बूंद जल में फैलजाती है तैसेही उसको थोड़े वचनभी बहुत लगते हैं। हे रामजी! इसी पर एक पुरातन इतिहास कहताहूं सो तुम सुनो; वह मेरा और काकभुशुण्डि का संवाद है। एक समय में सुमेरु पर्वत के शिखर पर गया तो वहां भुशुण्डि बैठा था, उससे मैंने प्रश्न किया कि, हे अङ्ग! ऐसा भी कोई पुरुषहै जिसकी आयुर्बल बड़ी हो और ज्ञान

से सून्य रहा हो ? जो उसको देखा हो तो कहो । भुशुण्डि बोले, हे भगवन् ! एक विद्याधर हुआहै जिसकी बड़ी आयुर्बल थी और जिसने बहुत विद्या अध्ययन की थी। वह सत्कर्मोंमें बहुत बिचरता था; उसने बहुत भोग भोगे थे और चारयुग पर्यन्त जप, तप, नियम आदिक सकामकर्म किये थे। जब चतुर्थयुग का अन्त हुआ तब उसको विचार उपजा और जितने भोग सुखरूप जानकर भोगता था उनमें उसको वैराग्य हुआ; तब उनको त्यागकर लोकालोक पर्वत पर जा बिचरा और विचारा कि; यह संसार असाररूप है किसी प्रकार इससे छूटूं । इसमें बारम्बार जन्म और मरण है और कोई पदार्थ सत्य नहीं, किसका आश्रय करूं ? ऐसे विचार करके वह वि-कृतआत्मा पुरुष सुमेरु पर्वत पर मेरे पास आया और शिर नीचा करके मुझे दण्डवत् की। मैंनेभी उसका बहुत आदर किया तब हाथ जोड़कर उसने कहा, हे भगवन् ! इतने कालपर्यन्त मैं विषयों को भोगता रहा परन्तु मुझे शान्ति न हुई इससे मैं दुःखी हूं तुम कृपा करके शान्ति का उपाय कहो। हे भगवन् ! चित्ररथ के बाग में जिसमें सदाशिवजी रहते हैं और जहां बहुत कल्पवृक्षहैं उसमें मैं चिरकाल रहा; फिर विद्या-धरों के स्वर्ग में रहा; फिर इन्द्र के नन्दनवन और सुवर्ण की कन्दरामें रहकर सुन्दर अप्सराओं के साथ स्पर्श किया और विमान पर बहुत आरूढ़ रहाहूं । हे भगवन् ! बहुत स्थान मैंने देखे हैं और तप, दान, यज्ञ, व्रतभी बहुत किये हैं । सहस्र वर्षतक ऐसे सुन्दर रूप देखता रहाहूं जिनकी सुन्दरता नहीं कहसक्ता तौ भी नेत्रोंको तृप्ति न हुई; बहुत सुगन्ध सूंघी पर नासिकाको तृप्ति न हुई; रसना से भोजन बहुत प्रकार के खाये पर शान्ति न हुई बल्कि तृष्णा बढ़ती गई; कानों से बहुत प्रकार शब्द और राग सुने और त्वचासे बहुत स्पर्श कियेहैं तौभी शान्ति न हुई। हे भगवन् ! मैं जिस ओर सुख जानकर प्रवेश करूं उसी ओर दुःख प्राप्तहोवे—जैसे मृग क्षुधा निवारनेके लिये घास खाने जाता है और राग सुनकर मूर्च्छित होजाता है तब उसको बधिक पकड़लेता है तो मृग दुःख पाता है तैसेही मैं सुख जानकर विषयों को ग्रहण करता था और बड़े दुःखों को प्राप्त होता था हे भगवन् ! मैंने चिरकालतक पांचों इन्द्रियों और छठे मन सहित दिव्यभोग भोगे हैं जो कुछ कहे नहीं जाते परन्तु मुझे शान्ति न हुई और न इन्द्रियां तृप्त हुईं। जैसे घृतसे अग्नि तृप्त नहीं होती तैसेही दिन दिन प्रति तृष्णा वृद्ध होती जाती है और हृदय जलातीहै। जो पुरुष इनभोगों के निमित्त यत्न करता है कि, मैं इनसे सुखी हूंगा वह मूर्ख है और उसको धिक्कार है—वह समुद्र में तरङ्ग का आश्रय करता है। ये तबतक सुखरूप भासते हैं जबतक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है; जब इन्द्रियों से विषयों का वियोग होता है तब महादुःख को प्राप्त होता है क्योंकि; तृष्णा हृदय में रहती है और भोग जाते रहते हैं तब जो २

विषय भोग होतेहैं वे दुःखदायक होजाते हैं। हे भगवन्! मैंने इसी से बहुत दुःख पाया है। यद्यपि इन्द्रियां कोमल हैं तौभी सुमेरु की नाईं कठिन हैं। कोमल भासती हैं परन्तु ऐसी हैं जैसे सर्पिणी और खड्ग की धार कोमल होती है पर स्पर्श किये से मरजाता है। जैसे जल में नाव पवन से भ्रमती है; तैसेही अज्ञानरूपी नदी में पवनरूपी इन्द्रियों ने मुझे दुःख दिया है। हे भगवन्! ऐसे भी मैंने देखे कि, सारा दिन मांगते रहे और भोजन खाने के निमित्त इकट्ठा नहीं हुआ और ऐसे भी देखे हैं कि, उन्होंने ब्रह्मा से आदि काष्ठपर्यन्त सबभोग एकदिन में भोगेहैं पर जिसको दिन में भोजनमात्र भी प्राप्त नहीं होता और जो सबमें इन्द्रियों के इष्टरूप भोगता है उन दोनों को भस्म होते देखा है और भस्म दोनों की तुल्य होजाती है–विशेषता कुछ नहीं। इन्द्रियों के बन्धन में बारम्बार जन्मते मरते अज्ञानी शान्ति नहीं पाते। जो तुम कहो कि, तूतो सुखी दृष्ट आता है तुझे क्या दुःख है तो हे भगवन्! यह दुःख देखने में नहीं आता परन्तु मेरे हृदयकी इन्द्रियां जलतीहैं। हे भगवन्! ब्रह्मा के लोक में मैंने बड़े सुख देखे हैं परन्तु वहां भी दुःखीही रहाहूं क्योंकि; क्षय और अतिशय वहांभी रहती है इससे वेभी जलते हैं। इन्द्रियोंका शस्त्रसे भी कठिन घाव है जो नाना प्रकार की संसार की विषमता दिखाती हैं और उनमें सर्वदा रागद्वेष रहता है जिससे मैं बहुत जलतारहा हूं। इससे मुझसे वही उपाय कहिये जिस से मैं शान्ति पाऊं। वह कौन सुख है जिससे फिर दुःखी न होऊं और जिसका कदाचित् नाश नहीं और जो आदि अन्त से रहित है। जो उसके पाने में कष्ट है तौभी मैं यत्न करताहूं कि; किसी प्रकार प्राप्त हो। हे मुनीश्वर! इन्द्रियोंने मुझे बड़ा कष्ट दियाहै। ये इन्द्रियां गुणरूपी वृक्ष को अग्नि हैं; शुभगुणोंको जलातीहैं और विचार, धैर्य, संतोष और शान्ति आदिक गुणरूपी वृक्ष के नाश करनेवाली हैं। हे भगवन्! इन्होंने मुझे दुःखदिया है। जैसे मृग का बच्चा सिंह के वश पड़े तो वह उसको मर्दन करताहै; तैसेही इन्द्रियोंने मुझे मर्दन कियाहै। हे भगवन्! जिस पुरुषने इन्द्रियोंको वश कियाहै उसका पूजन सब देवता करते हैं और उसके दर्शन की इच्छा करतेहैं और जिसने मन को नहीं वश किया उसको दीन जानतेहैं। जिस पुरुषने इन्द्रियोंको वश कियाहै वह सुमेरु पर्वत की नाईं अपनी गम्भीरता में स्थितहै और जिसने इन्द्रियां वश नहीं कीं वह तृण की नाईं तुच्छ है। जिसको इन्द्रियों के अर्थ में सदा तृष्णा रहती है वह पशु है; उसको सदा धिक्कार है। हे मुनीश्वर! जो बड़ा महन्त भी हो, यदि उसके इन्द्रियां वश नहीं तो वह महानीच है। हे मुनीश्वर! इन्द्रियोंने मुझे बड़ा दुःख दियाहै। जैसे महाशून्य उजाड़ में चोर लूटलेते हैं तैसेही इन्द्रियों ने मुझे लूटलिया है। इन्द्रियांरूपी सर्पिणी की तृष्णारूपी विष है इससे इनमें सारा विश्व मोहित देख पड़ता है और कोई विरला

इन से बचा होगा। ये इन्द्रियां दुष्ट हैं जो अपने २ विषय को लेती हैं और को नहीं देतीं और तुच्छ और जड़ हैं। जैसे बिजली का चमत्कार होता है और फिर छिपजाता है तैसेही इन्द्रियों के सुख क्षणमात्र दिखाई देते हैं और फिर छिपजाते हैं। जबतक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है तबतक सुख भासता है और जब इनका वियोग होताहै तब दुःख उत्पन्न होताहै क्योंकि; तृष्णा रहतीहै। एकसेनाहै उसमें इन्द्रियों के भोग उन्मत्त हाथी हैं; तृष्णारूपी जंजीर है; इन्द्रियांरूपी रथहैं; नाना प्रकार के विषय घोड़ेहैं और संकल्प विकल्परूपी खड्गों का धारनेवाला अहंकार है और यह जो क्रिया अहंकार सहित होती है सो शस्त्रों के समूह हैं। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने इस सेना को नहीं जीता वह मोहरूपी अन्धे कुयेंमें गिरके कष्ट पाता है और जिसने जीता है वह परमसुख को प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! ये इन्द्रियां भोग की इच्छारूपी खाईं में अहंकाररूपी राजा को डालदेती हैं और उसमें से निकलना कठिन होताहै। जिस पुरुष ने इनको जीता है उसकी त्रिलोकी में जय होती है और जिसने नहीं जीता वह महादीनता को प्राप्त होताहै और जन्म जन्मान्तर पाताहै। इन इन्द्रियों में रजोगुण और तमोगुण रहता है। ये तबतक दाह देती हैं जबतक रज तम वृत्ति है। यहभी मन की वृत्ति है। जब इनका अभाव होताहै तब शान्ति प्राप्त होतीहै। यह शोध करके देखाहै कि, इन्द्रियां तप, यज्ञ, व्रत, तीर्थ और किसी औषधसे वश नहीं होतीं और न इनके वश करनेका कोई उपाय है; केवल सन्त के संग से निरवासी हो तब वश होती हैं। इससे मैं तुम्हारी शरण हूं; कृपा करके मुझे आपदा के समुद्र से निकालो क्योंकि; मैं डूबता हूं। मैं इस संसारसमुद्र में दीन हूं, तुम पार करो और तुम्हारी महिमा सन्तों ने भी सुनी है। हे भगवन्! जो कोई आयुर्बल पर्यन्त विषयके दिव्यभोग भोगतारहे और इनसे शान्ति चाहे तो न प्राप्त भोगी। बड़े सुख दुःख समान हैं। आकाश में उड़नेवालेभी इन्द्रियों को वश नहीं करसके इससे दीन और दुःखी रहते हैं। कोई पुरुष वीर्यवान् हो और फूल की नाईं महामत्त हाथी के दांत को चूर्ण करसक्ता हो परन्तु इन्द्रियों को अन्तर्मुख करना महाकठिन है। हे मुनीश्वर! इतने कालतक मैं महाअध्यात्म तपसे दुःखी रहा हूं। तुम कृपा करके निकालो, मैं तुम्हारी शरण हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधरवैराग्यवर्णनंनाम
शताधिकैकत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३१॥

भुशुण्डिजी बोले, हे वशिष्ठजी! जब इस प्रकार विद्याधर ने मेरे आगे प्रार्थना की तो मैंने कहा, हे अङ्ग! तू धन्य है। अब तू जागा है। जैसे कोई पुरुष अन्धे कुयें में पड़ा हो और उसकी इच्छा हो कि; निकले तो जानिये कि, निकलेगा। हे विद्याधर! मैं उपदेश करताहूं सो तू अङ्गीकार करियो और सत्य जानके मेरे वचनों में संशय न

करना। जो सबके सार वचन हैं सो तुझसे कहता हूं। जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिम्ब को यत्न विना ग्रहण करतीहै तैसेही मेरे वचन शीघ्रही तेरे हृदय में प्रवेश करेंगे। जिसका अन्तःकरण शुद्ध होताहै उसको सन्त उपदेश करें अथवा न करें उसको सहज वचनही उपदेश हो लगते हैं। जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिम्बको यत्न विना ग्रहण करता है तैसेही मेरे वचनोंको तू धार लेगा तो तेरे दुःख नाश होजावेंगे और परमानन्दको जो अविनाशी सुख और आदि अन्त से रहितहै सो प्राप्त होगा। इन्द्रियोंके सुख आगमापायी हैं सो दुःख के तुल्य हैं–इनसे रहित परमसुख है। हे विद्याधरों में श्रेष्ठ! जो कुछ तुझे सुखरूप दृष्ट आवे उसका त्याग कर तब तुझे परमसुख प्राप्त होगा। सब दुःखोंका मूल अहंभाव है; जब अहंकार नाश हो तब शान्ति होगी। संसार का बीज भी अहंकारहै और संसार मृगतृष्णाके जलवत्है। तबतक संसार नष्ट नहीं होता जबतक अहंतारूपी संसार का बीज है; जब अहंतारूपी बीज नष्ट होजावे तब संसार भी निवृत्त होजावे। संसाररूपी वृक्ष के सुमेरु आदिक पर्वत पत्रहैं; तारागण कली और फूल हैं; सातों समुद्र रस हैं; जन्म मरण बेलहैं; सुख दुःख फलहैं और वह आकाश, दिशा, पातालको धारके स्थित हुआहै। अहंकाररूपी वृक्ष पृथ्वी पर उत्पन्न हुआहै; अहंकारही उसका बीज है और वृक्ष मिथ्या भ्रममात्र असत्य और सत्य की नाईं स्थित हुआ है। इससे अहंकार के बीज का नाश करो और निरहंकाररूपी अग्निसे इसको जलाओ तब अत्यन्त अभाव होजावेगा। यह भ्रम करके भय देताहै। जैसे रस्सी में सर्पभ्रम और भय देता है इससे निरहंकाररूपी अग्नि से इसका नाश करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंसाररूपवृक्षवर्णनंनामशताधिकद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३२॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होताहै सो सुनो। ब्रह्मविद्या शास्त्र के सुनने और आत्मविचार से यह उपजताहै। उस आत्मज्ञानरूपी अग्निसे संसाररूपी वृक्षको जलाओ। यह आगेभी नहीं था, अनहोताही उदय हुआहै और मनके संकल्प से हुये की नाईं स्थित है। जैसे पत्थरमें शिल्पी कल्पताहै कि; इतनी पुतलियां निकलेंगी सो हुईं कुछ नहीं; तैसेही मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियां कल्पताहै। जब मनका नाश करोगे तब संसारभ्रम मिटजावेगा; आत्मविचार करके परमपदको प्राप्त होगे और अपना आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासेगा। इससे अहंता को त्याग करके अपने स्वरूपमें स्थित होरहो। हे विद्याधर! यह जो संसाररूपी वृक्ष है सो अहंतारूपी बीजसे उपजाहै; उसको जब ज्ञानरूपी अग्निसे जलाइये तब फिर यह जगत् न उपजेगा। यदि इसको विचार करके देखिये तब अहं त्वं नहीं रहता। हे विद्याधर! यह अहं त्वं मिथ्या है–इनके अभावकी भावना करो, यही उत्तम ज्ञान

है। हे साधो ! जब गुरुके वचन सुनकर उनके अनुसार पुरुषार्थ करे तब परमपद को प्राप्त होताहै और जय होतीहै। हे विद्यारूपी कन्दराके धारनेवाले पर्वत और विद्या रूपी पृथ्वी के धारनेवाले ! यह संसाररूपी एक आडम्बर है और उसके सुमेरु ऐसे कई थम्भे हैं जो रत्नों की पंक्ति से जड़े हुये हैं और वन, दिशा, पहाड़, वृक्ष, कन्दरा, वैताल, देवता, पाताल, आकाश इत्यादिक ब्रह्माण्ड उसके ऊपर स्थितहैं। रात्रि, दिन, भूत, प्राणी और इनके जो घर हैं सो चौपड़के खानेहैं; जो जैसा कर्म करताहै वह उसके अनुसार दुःख सुख भोगता है। ऐसेही सम्पूर्ण प्रपञ्च जो क्रियासंयुक्त दिखाई देताहै सो भ्रम से सिद्ध है-इससे मिथ्या है। जैसे स्वप्न की सृष्टि संकल्प से भासती है तैसेही यह सृष्टिभी भ्रमसे भासतीहै और अज्ञानकी रचीहुई है; आत्माके अज्ञान से भासती है और आत्मा के ज्ञानसे लीन होजातीहै। जब सृष्टिहै तबभी परमात्मतत्त्वही है और जब सृष्टि होगी तबभी परमात्मतत्त्वही होगा; आगेभी वही था और जो कुछ प्रपञ्च तुझे दृष्ट आताहै सो शून्य आकाशहीहै। त्रिगुणमय प्रपञ्च गुणों का रचा हुआ अपने स्वरूप के प्रमाद से स्थित हुआ है और आत्मज्ञान से शून्य होजावेगा। जब प्रपञ्चही शून्य हुआ तब आत्मा और अनात्माका कहनाभी न रहेगा और पीछे जो शेष रहेगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है और तेरा अपना आपहै, उस में स्थित होरह और दृश्यका त्याग कर कि, न मैंहूं और न जगतहै। जब तू ऐसा होगा तब तेरी जय होगी। आत्मपद सबसे उत्तम है जब तू आत्मपद में स्थित होगा तब सबसे उत्तम होगा और तेरी जय होगी-इससे आत्मपद में ही स्थित होरह ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंसारआडम्बरउत्पत्ति
नामशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ १३३ ॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर ! यह प्रपञ्चभी आत्माका चमत्कार है आत्मा शुद्ध चेतनहै जिसमें जड़ और चेतन स्थित हैं और वह सबका अधिष्ठानहै सो सत्तामात्र तेरा आपना आप है और अहं त्वं शब्द-अर्थ से रहित आत्मत्वमात्र है पर सत्यस्वरूप होके असत्यकी नाईं स्थितहै। हे विद्याधर ! तू इस जड़ और चेतनसे अबोधमान होरह। जब तू अबोध होगा तब शान्त और चिद्घन होगा। ये जो जड़ और चेतन हैं इन दोनों का परमार्थ चेतन के आगे अन्तर रहता है; यद्यपि वह अदृश्य है तो भी इनके भीतरही रहता है। जैसे समुद्रके भीतर वड़वाग्नि रहतीहै। इन जड़ चेतनरूप का कारणरूप वही है, उत्पत्ति भी उसीसे होतीहै और नाशभी वही करता है। हे विद्याधर ! जब ऐसे जाना कि; मैं चेतनरूप भी नहीं और जड़भी नहीं तो पीछे जो रहेगा वह तेरा स्वरूप है। जब तेरे भीतर इन जड़ और चेतन दोनों का स्पर्श नहीं हुआ तब सबके भीतर जो चेतन है वही ब्रह्म तुझे भासेगा और विश्व आत्मा

में कुछ नहीं हुआ। जैसे सूर्यकी किरणों का चमत्कार जलाभास होताहै तैसेही शुद्ध चेतनका चमत्कार विश्व हो भासताहै। हे अङ्ग! जैसे भीतिपर पुतलियां लिखी होती हैं सो भीति से कुछ भिन्न नहीं, चितेरे ने लिखी हैं; तैसेही शून्य आकाश में चित्त-रूपी चितेरे ने विश्वरूपी पुतलियां कल्पी हैं सो आत्मरूपी भीतिसे भिन्न नहीं। जैसे सुवर्ण में भूषण कल्पितहै सो सुवर्णसे भिन्न नहीं, तैसेही आत्मामें अज्ञानसे विश्व देखते हैं वह आत्मासे भिन्न नहीं, जगत्, ब्रह्म, आत्मा, आकाश, देश, काल सब उसी तत्त्व की संज्ञा हैं। वही शुद्ध चेतन आकाशहै जिसका चमत्कार ऐसे स्थितहै। उसी तत्त्वमें तूभी स्थित होरह। यह जगत् ऐसेहै जैसे दूरदृष्टि से आकाश में बादल हाथी की सूंड़ से भासते हैं। यह जो अहं त्वं रूप जगत् है सो अबोधसे भासताहै और बोध करके लीन होजाता है—जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणोंसे जल भासता है और गन्धर्वनगर है तैसेही यह जगत् है—इससे इसका त्याग करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तचमत्कारोनाम
शताधिकचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३४॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह स्थावर जङ्गम जगत् सब आत्मासे उत्पन्नहुआ है और आत्माहीमें स्थितहै और आत्माही विश्वमें स्थितहै। जैसे स्वप्नेका विश्व स्वप्ने वाले में स्थित है। आत्मा किसीका कारण नहीं क्योंकि; अद्वैत है। हे अङ्ग! जो तू उस पद के पानेकी इच्छा करता है तो तू ऐसे निश्चयकर कि, न मैं हूं और न यह जगत् है। जब तू ऐसा होगा तब आत्मपद की प्राप्ति होगी जो देश, काल और वस्तु के प्रच्छेदसे रहित है और सर्व वही परमात्मतत्त्व स्थितहै। जगत् का कर्ता संकल्पही है क्योंकि; संकल्पसे जगत् उत्पन्न होताहै। जैसे पवनसे अग्नि उत्पन्न होताहै और पवन ही से दीपक निर्वाण होता है, तैसेही जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है तब संसार उदय हो भासता है और जब संकल्प अन्तर्मुख होता है तब आत्मपद प्राप्त होताहै और सर्वप्रपञ्च लय होजाता है। इससे संसार की नाना प्रकार की संज्ञा फुरनेसेही होती हैं स्वरूप में कुछ नहीं, न सत्य है; न असत्य है; न स्वतः है; न अन्य है। यह सब कलनामात्रहै सत्, असत् और स्वतः, अन्यका अभावहुआ तो वहां अहं त्वं कहां पाइये? वह है नहीं और बालकके यक्षवत् भ्रममात्रहै। हे साधो! जहां अहं त्वं नष्ट होगये तहां जो सत्ता है सो परमपद है और जहां जगतहै वहां विचारसे लीन होजाताहै। वास्तव में पूछो तो ब्रह्म और जगत्में कुछ भेद नहीं—नाममात्र दो हैं—जैसे घट और कुम्भ हैं—परन्तु भ्रम से नानात्व भासतेहैं। जैसे समुद्रमें आवर्त और तरङ्ग उठतेहैं सो जल से कुछ भिन्न नहीं और पवन के संयोग से आकार भासतेहैं तैसेही आत्मा में जगत् कुछ भिन्न नहीं; संकल्प के फुरने से नाना प्रकार का जगत् भासताहै। हे अङ्ग! संकल्प

के साथ मिलकर चित्त जैसी भावना करता है तैसाही रूप अपना देखता है स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं परन्तु भावना से और का और देखता है। जैसे शुद्ध मणि के निकट कोई रङ्ग रखिये तो तैसाही रूप भासता है और मणि में कुछ रङ्ग नहीं तैसेही चित्त शक्ति में कुछ हुआ नहीं और हुयेकी नाईं स्थित है। इससे अपने स्वरूप की भावना करो और जड़ चैतन्य को छोड़कर शुद्ध चैतन्य में स्थित होरहो। जब ऐसे जानकर अपने स्वरूप में स्थित होगे तब तुम्हें उत्थान में भी अपना स्वरूप भासेगा जैसे स्थिर समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं सो कारणरूप जल विना तो नहीं होते, तैसेही ब्रह्म कारणरूप विना जगत् नहीं परन्तु ब्रह्मसत्ता अकर्तारूप, अद्वैत और अच्युत है इसी से कहाहै कि, अकर्ताहै और जगत् अकारणरूपहै। जो जगत् अकारणरूप है तो न उपजता है और न नाश होता है—मरुस्थल के जलवत् है। इसीसे कहाहै कि, जगत् कुछ वस्तु नहीं केवल अज, अच्युत और शान्तरूप आत्मतत्त्वही अखण्डित स्थित है और शिलाकोशवत् अचैत्य चिन्मात्र है। जिसके हृदय में चिन्मात्र की भावना नहीं उस मूर्ख से हमारा क्या है ? हे साधो ! परमार्थ से कुछ नहीं बना पर जहां जहां मन है तहां तहां अनेक जगत् हैं और तृण सुमेरु आदिक सबमें जगत् है। जो विचार कर देखिये तो वहीरूप है और कुछ नहीं। जैसे सुवर्ण के जाने से भूषण भी सुवर्ण भासते हैं तैसेही केवल सत्ता समानपद एक अद्वैत है भिन्न कुछ नहीं और भिन्न २ संज्ञा भी वही है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्गोपसर्गोपदेशोनाम
शताधिकपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ १३५ ॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर ! जब आत्मपद प्राप्त होताहै तब ऐसी अवस्था होतीहै कि, जो नग्नशरीर हो और उस पर बहुत शस्त्रों की वर्षा हो तो उससे दुःखी नहीं होता और सुन्दर अप्सरा कण्ठसे मिले तो हर्षवान् नहीं होता: अर्थात् दोनोंही में तुल्य रहता है। हे विद्याधर ! तबतक आत्मपद का अभ्यास करे जबतक संसार से सुषुप्त की नाईं न हो। अभ्यासहीसे आत्मपद को प्राप्त होगा। जब आत्मपद की प्राप्ति होगी तब पञ्चभौतिक शरीर को ज्वर स्पर्श न करेंगे और यद्यपि शरीर में प्राप्त भी हों तो भी उसके भीतर प्रवेश नहीं करते। वह केवल शान्तपद में स्थित रहता है—जैसे जल में कमल को स्पर्श नहीं होता। हे देवपुत्र ! जबतक देहादिकों में अभ्यास है तब तक आत्मा के प्रमादसे सुख दुःख स्पर्श करते हैं और जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सब प्रपञ्चभी आत्मरूप होजाते हैं। हे विद्याधर ! जैसे कोई पुरुष विष पान करता है तो उसको जलन और खाँसी होती है—यह अवस्था विष की है—सो विष से और कुछ नहीं परन्तु नामसंज्ञा हुई है। विष न जन्मता, न मरता है और धूप खाँसी उसमें

दृष्टि आती है तैसेही आत्मा न जन्मताहै और न मरताहै और गुणों के साथ मिलकर अवस्था को प्राप्त हुआ दृष्टि आता है। आत्मा जन्म मरण से रहित है पर गुणों के संकल्प के साथ मिलने से जन्मता मरता भासता है और अन्तःकरण, देह, इन्द्रियादिक भिन्न २ भासते हैं। हे साधो! यह जगत् भ्रम से भासता है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस जगत् को गोपद की नाईं अपने पुरुषार्थ से लांघ जाते हैं और जो अज्ञानी हैं उनको अल्पभी समुद्र समान होजाता है। इससे आत्मपद पाने का यत्न करो जिसके जानेसे संसारसमुद्र तुच्छ होजावे। वह आत्मतत्त्व सबमें अनुस्यूत और सबसे अतीत है, उसके जाने से अन्तःकरण शीतल होजाता है और सब ताप नष्ट होजाते हैं। हे साधो! फिर उसका त्याग करना अविद्या है और बड़ी मूर्खता है। हे साधो! ये सब पदार्थ ब्रह्मस्वरूपही हैं और जो ब्रह्मस्वरूप हुये तो मन, अहंकार, कलङ्क आदिकभी वही है—किसीसे किसीको कुछ दुःख सुख नहीं। हे विद्याधर! जब आत्मपद को जाना तब अन्तःकरण भी ब्रह्मस्वरूप भासेंगे। जो संकल्प से भिन्न २ जानतेहैं वे संकल्प के होतेभी ब्रह्मस्वरूप भासेंगे। इससे निःसंकल्प होकर स्थितहो कि, न मैंहूं; न यह जगत् है और न इदम् है। इन शब्दों और अर्थों से रहित होकर स्थित होरह कि; सब संशय मिटिजावें। हे विद्याधर! जब तू ऐसा निरहंकार और निःसंकल्प होगा तब उत्थानकाल मेंभी बुद्धि, बोध, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, यश, कीर्ति इत्यादिक जो शुभाशुभ अवस्था हैं सब आत्मस्वरूप भासेंगी और सर्व आत्मबुद्धि रहेगी। इनके प्राप्त हुये भी केवल परमार्थ सत्तासे भिन्न न भासेगा—जैसे अन्धकारमें सर्प के पैर का खोज नहीं भासता क्योंकि; है नहीं; तैसेही तुमको सर्व अवस्था न भासेंगी—सर्व आत्माही भासेगा—और जितने कुछ भावरूप पदार्थ स्थित हैं सो अभाव होजावेंगे। हे अङ्ग! जिस पुरुषने विचारकर आत्मपद पानेका यत्न किया है वह पावेगा और जिसने कहा कि, मैं मुक्त होरहूंगा और ईश्वर मुझपर दया करेंगे वह पुरुष कदाचित् मुक्त न होगा। पुरुष के प्रयत्न विना कदाचित् मुक्ति न होगी। आत्मस्वरूप में न कोई दुःखहै और न किसी गुण से मिला हुआ सुख है वह केवल शान्तरूप हैं। किसी से किसी को कुछ सुख दुःख नहीं; न सुख है और न दुःख है, न कोई कर्ता है और न भोक्ता है केवल ब्रह्म सत्ता अपने आपमें स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेयथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशो नामशताधिकषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३६॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जैसे कोई कलना करे कि; आकाशमें और आकाश स्थितहै तो मिथ्या प्रतीतिहै; तैसेही आत्मामें जो अहंकार फुरताहै सो मिथ्या है। जैसे आकाश में और आकाश कुछ वस्तु नहीं। परमार्थ तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है कि;

उसमें आकाशभी स्थूल है और ऐसा स्थूल है कि, जिसमें सुमेरु आदिक भी सूक्ष्म अणुरूप हैं और राग द्वेष से रहित चेतन केवल शान्तरूपहै–गुण और तत्त्वके क्षोभ से रहित है । हे देवपुत्र ! अपना अनुभवरूपी चन्द्रमा अमृत का बर्षनेवाला है । हे अङ्ग! जितने दृश्यपदार्थ भासतेहैं सो हुये कुछ नहीं । हे अङ्ग ! आत्मरूप अमृतकी भावना कर कि, तू जन्म मरणके बन्धनसे मुक्त हो । जैसे आकाशमें दूसरे आकाश की कल्पना मिथ्या है तैसेही निराकार चिदात्मामें अहं मिथ्याहै; और जैसे आकाश अपने आपमें स्थितहै तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और अहं त्वं आदिक से रहित है । जब उसमें अहं का उत्थान होता है तब जगत् फैलजाताहै–जैसे वायु फुरने से रहित हुई आकाशरूप होजातीहै तैसेही संवित् उत्थान अहं से रहित हुई आत्मरूप होजाती है और जगत् भ्रम मिटजाता है । फुरनेसे जगत् फुर आया है; वास्तव में कुछ नहीं । ज्ञानवान् को आत्मा ही भासताहै और देश, काल, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, कीर्ति सब आकाशरूप हैं–ब्रह्मरूपी चन्द्रमाके प्रकाशसे प्रकाशते हैं । जैसे बादलों के संयोगसे आकाश धूम्रभावको प्राप्त होताहै; तैसेही प्रमाद से संवित् दृश्यभाव को प्राप्त होती है परन्तु और कुछ नहीं होती । जैसे तरङ्ग उठने से जल और कुछ नहीं होता और जैसे काष्ठ छेदेसे और कुछ नहीं होता; तैसेही द्रष्टा से दृश्य भिन्न नहीं होता । जैसे केलेके थम्भ में पत्र विना और कुछ नहीं निकलता और पत्र शून्यरूपहै तैसेही क्रूररूप जगत् भासताहै परन्तु आत्मासे भिन्न नहीं शून्य रूप है । शीश, भुजा, नेत्र, चरण आदिक नाना प्रकार भिन्न २ भासतेहैं परन्तु सब शून्यरूप केलेके पत्रों की नाईं भासते हैं और सब असाररूप हैं । हे विद्याधर ! चित्त में रागरूपी मलिनताहै; जब वैराग्यरूपी झाड़से झाड़िये तब चित्त निर्मलहो । जैसे दीवारपर चित्र लिखे होते हैं तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै और देवता, मनुष्य, नाग, दैत्य आदिक सब जगत् संकल्परूपी चितेरेने चित्र लिखेहैं; स्वरूप के विचार से निवृत्त होजाते हैं । जब स्नेहरूप संकल्प फुरता है तब भाव अभावरूप जगत् फैल जाता है । जैसे जलमें तेलके बूंद फैलजाते हैं और जैसे बाँस से अग्नि निकलकर बाँस को दग्ध करती है तैसेही स्नेह इससे उपजकर इसीको खाते हैं । आत्मामें जो देश काल पदार्थ भासते हैं यही अविद्याहै–पुरुषार्थसे इसका अभाव करो । दो भाग साधुके संग और कथा सुननेमें व्यतीत करो; तृतीय भाग शास्त्रका विचार करो और चतुर्थभाग में आत्मज्ञान का आपही अभ्यास करो । इस उपायसे अविद्या नष्ट होजावेगी और अशब्द और अरूपपदकी प्राप्ति होगी । विद्याधरने पूछा, हे मुनीश्वर ! भाग में जो उपाय से अशब्दपद प्राप्त होता है सो सबकाल क्या है ? नाम अर्थ के अभाव हुये शेष क्या रहताहै ? भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर ! संसारसमुद्रके तरने

को ज्ञानवानोंका संग करना और जो विकृत निर्वैर पुरुषहैं उनकी भली प्रकार टहल करना; इससे अविद्याका अर्धभाग नष्ट होगा; तीसरा भाग मनन करके और चतुर्थ भाग अभ्यास करके नष्ट होगा। जो यह उपाय न करसको तो यह युक्ति करो कि, जिस में चित्त अभिलाषा करके आसक्तहो उसीका त्याग करो। एकभाग अविद्या इसप्रकार नष्ट होगी। तीनभाग शास्त्र विचार और अपने यत्नसे शनैः शनैः नष्ट होवेगी। साधु-संग; सत्शास्त्रविचार और अपना यत्न होवे तो एकही बार अविद्या नष्ट होजावेगी। यह समकाल कहे। एक एकके सेवनेसे एक एक भाग निवृत्त होताहै। पीछे जो शेष रहताहै उसमें नाम अर्थ सब असत्रूपहैं और वे अजर, अनन्त, एकरूपहैं। संकल्प के उपजे से पदार्थ भासतेहैं और संकल्पके लीन हुये लीन होजाते हैं। हे विद्याधर! यह जगत् संकल्प से रचा है—जैसे आकाश में सूर्य निराधार स्थित होता है तैसेही देश काल की अपेक्षा से रहित यह मननमात्र स्थितहै। तीनों जगत् मनके फुरने से फुर आतेहैं और मनके लय हुये लय होजातेहैं—जैसे स्वप्नेके पदार्थ जागेसे अभाव होजाते हैं। हे विद्याधर! ब्रह्मरूपी वन में एक कल्पवृक्षहै जिसकी अनेक शाखाहैं। उसकी एक शाखासे जगत्रूपी पुरैनका फलहै जिसमें देवता, दैत्य, मनुष्य, पशुआदिक मच्छरहैं। वासनारूपी रससे पूर्ण मज्जा पहाड़है, पञ्चभूत मुखद्वारा उसका निकलनेका खुला मार्ग इत्यादिक सुन्दर रचना बनी हैं। उसमें त्रिलोकी का ईश्वर इन्द्र एक हुआ और गुरुके-उपदेशसे उसका आवरण नष्ट होगया। फिर इन्द्र और दैत्यों का युद्ध होनेलगा और इन्द्र अपनी सेनाको लेचला पर उसकी हीनता हुई इसलिये वह भागा और दशोंदिशाओं में भ्रमतारहा पर जहां जावे वहां दैत्य उसके पीछे चले आवें। जैसे पापी परलोक में शोभा नहीं पाता तैसेही इन्द्र ने जब शान्ति न पाई तब अन्तवाहकरूप करके सूर्य की त्रसरेणु में प्रवेश करगया। जैसे कमल में भँवरा प्रवेश करे तैसेही उसने प्रवेश किया तो वहां उसको युद्ध का वृत्तान्त विस्मरण होगया तब एक मन्दिर में बैठा आपको देखता हुआ। जैसे निद्रा से स्वप्नसृष्टि भास आवे तैसेही उसे वहां रत्न और मणियों संयुक्त संवित् नगर देखा—वह उसमें गया और पृथ्वी, पहाड़, नदियां, चन्द्र, सूर्य, त्रिलोकी इसको भासनेलगी और उस जगत् का इन्द्र आपको देखा कि, दिव्यभोग और ऐश्वर्य से संपन्न मैं इन्द्र स्थित हूं। वह इन्द्र कुछ काल के उपरान्त शरीर को त्यागके निर्वाण हुआ—जैसे तेलसे रहित दीपक निर्वाण होताहै—तब कुन्दनाम उसका पुत्र इन्द्र हुआ और राज्य करनेलगा। फिर उसके एक पुत्र हुआ तब कुन्दभी इन्द्र शरीर को त्यागकर परमपद को प्राप्त हुआ और उसका पुत्र राज्य करनेलगा। फिर उसके भी एक पुत्र हुआ; इसी प्रकार सहस्र पुत्र होकर राज्य करते रहे उन्हीं के कुल में यह हमारा इन्द्र राज्य करता है। इससे यह जगत् संकल्प-

मात्र है और उस त्रसरेणु में यह सृष्टि है । इस लिये इस जगत् को संकल्पमात्र जानकर इसकी आस्था त्यागो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइन्द्रोपाख्यानेत्रसरेणुजगत् वर्णनन्नामशताधिकसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ १३७ ॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर ! फिर उनके कुल में एक बड़ा श्रीमान् इन्द्र हुआ जो त्रिलोकी का राज्य करतारहा और फिर निर्वाण हुआ । उसके एक पुत्र था जिसको बृहस्पतिजी के वचनोंसे ज्ञानरूप प्रतिभा उदय हुई तब वह विदितवेद होकर स्थित हुआ; यथाप्राप्तिमें इन्द्र होकर राज्य करनेलगा और दैत्यों को जीता । एक कालमें वह किसी कार्यके निमित्त कमलकी तन्तुम घुसगया तो वहां उसको नाना प्रकार का जगत् भासने लगा और अपनी इन्द्रकी प्रतिभा हुई इससे उसे इच्छा उपजी कि; मैं ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त होजाऊं और दृश्यपदार्थ की नाईं उसे प्रत्यक्ष देखूं । इस लिये वह एकान्त बैठकर समाधि में स्थित हुआ तो उसको भीतर बाहर ब्रह्म साक्षात्कार हुआ और उस प्रतिभा के उदय होनेसे यह निश्चय हुआ कि; सर्व ब्रह्महीं है और सब ओर पूजने योग्य है । सब उसीको पूजतेभी हैं और सर्व हैं । सर्वशब्द, रूप, अवलोक और मनन से भी रहित केवल शुद्ध आत्मपद है और सर्व ओर उसी के प्राणपद हैं । सब शीश और मुख उसीके हैं; सब ओर उसीके श्रवण हैं; सब ओर उसीके नेत्र हैं और सबमें आत्मत्वसे वही स्थित होरहा है । सब इन्द्रियों और विषयोंको वही प्रकाशताहै और सब इन्द्रियों से रहितहै और अशक्त हुआ भी सबको धाररहाहै । वह निर्गुण है और इन्द्रियों के साथ मिलकर गुणों का भोक्ता है और सब भूतों के भीतर बाहर व्यापरहा है । सूक्ष्म है इससे दुर्विज्ञेय है और इन्द्रियों का विषय नहीं । अज्ञानी को अज्ञान से दूर है और आत्मत्वद्वारा ज्ञानी को ज्ञान से निकट है और अनन्त, सर्वव्यापी केवल शान्तरूप है जिसमें दूसरा कोई नहीं । घट, पट, दीवार, गाय, आवा, बरा, नरा, सबमें वही तत्त्व भासता है और पर्वत, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, देश, काल, वस्तु सब ब्रह्महीं है-ब्रह्म से भिन्न नहीं । हे विद्याधर ! इस प्रकार इन्द्र को ज्ञान हुआ और जीवन्मुक्त हुआ । तब वह सब चेष्टा करे परन्तु अन्तःकरण में बन्धवान् न हो । जब कुछ काल बीता तब इन्द्र उस निर्वाणपद को प्राप्त हुआ जिसमें आकाश भी स्थूल है । फिर उस इन्द्र का एक बड़ा शूरवीर पुत्र सब दैत्यों को जीतकर देवता और त्रिलोकी का राज्य करनेलगा और उसको भी ज्ञान उत्पन्न हुआ । सत्शास्त्र और गुरु के वचनों से कुछ काल में वह भी निर्वाण हुआ तब उसका जो पुत्र रहा वह राज्य करनेलगा । इसी प्रकार कई इन्द्र हुये और राज्य करते रहे और नाना प्रकार के व्यवहारों को देखते रहे । फिर उसके कुल में कोई पुत्र था उसको यह हमारी सृष्टि भासि आई तो वहभी ब्रह्मध्यानी हुआ

और इसत्रिलोकीका राज्य करनेलगा और अबतक विश्वका इन्द्र वहीहै। हे विद्याधर! इस प्रकार जो विश्व की उत्पत्ति है सो संकल्पमात्र है और सब मैंने तुझसे कही हैं। पहले उसको त्रसरेणु में सृष्टि भासी; फिर उस सृष्टि के एक कमल की तन्तु में भासी और फिर उसमें कई वृत्तान्त जो संकल्पमात्र थे उसने देखे और उस अणु में अनेक अवस्था देखीं। हे विद्याधर! पर वास्तव में वह कुछ हुई नहीं। जैसे आकाश में नीलता भासती है और है नहीं; तैसेही यह विश्वहै। आत्मा में विश्वका अत्यन्त अभावहै। यह विश्व अहंभाव से उपजा है। जब अहंभाव फुरता है तब आगे सृष्टि बनती है और जब अहं का अभाव होताहै तब विश्व कोई नहीं। इस विश्व का बीज अहं है, इससे तू ऐसी भावना कर कि, न मैं हूं और न जगत् है। जब ऐसी भावना की तब आत्मा ही शेष रहैगा जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपना आप है। हे विद्याधर! इस मेरे उपदेश को अङ्गीकार कर॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनन्नामशताधिकअष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३८॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जब अहं का उत्थान होताहै तब आगे सृष्टि बनकर भासताहै और जब अहं का अभाव होताहै तब विश्व कुछ नहीं भासता केवल शुद्ध आत्माही भासता है। हे विद्याधर! इन्द्र ने कहा कि, मैं हूं, उसको सूर्य की किरणों के अणु में ऐसे अहं हुआ तो उसमें नाना विस्तार देखा और कष्ट पाया। जो उसको अहं न होता तो दुःख न पाता। दुःखरूपी वृक्ष का अहंरूपी बीज है और आत्मविचार से इसका नाश होताहै। जब अहं का नाश होताहै तब आत्मपद का साक्षात्कार होता है और आत्मपदके साक्षात्कार हुयेसे प्रच्छन्न अहंका नाश होताहै। हे विद्याधर! आत्मरूपी एक पर्वत है जिस पर आकाशरूपी वन है और उसमें संसाररूपी वृक्ष लगाहै। उसमें वासनारूपी रसहै; अज्ञानरूपी भूमि से उत्पन्न हुआहै; नदियां—समुद्र उसकी नाड़ी हैं; चन्द्रमा और तारे फूलहैं; वासनारूपी जलसे बढ़ता है और अहंकाररूपी वृक्षका बीज है। सुख—दुःखरूपी इसके फल हैं; आकाश इसकी डालें हैं और जड़ पाताल है। तुम इस वृक्षको ज्ञानरूपी अग्निसे जलावो और अहंरूपी वृक्ष के बीज का नाश करो। हे विद्याधर! एक खाईहै जिसके जन्ममरणरूपी दो किनारे हैं; अनात्मरूपी उसमें जलहै; वासनारूपी तरङ्गहैं और विश्वरूपी बुद्बुदे होते भी हैं और मिट भी जाते हैं। शरीररूपी झाग है और अहंकाररूपी वायुहै; जब वायु हुई तब तरङ्ग और बुद्बुदे सब होते हैं और जब वायु मिटगई तब केवल स्वच्छ निर्मलही भासता है। हे विद्याधर! जो वायु हुई तौ जल से भिन्न कुछ न हुआ और जो न हुई तौभी जलसे भिन्न कुछ नहीं—जलहीहै; तैसेही अज्ञानके होते और निवृत्त हुये भी आत्मपद-

ज्योंका त्यों है परन्तु सम्यक्दर्शनसे आत्मपद भासताहै और अज्ञानसे जगत् भासता है। अहंका होनाही अज्ञान है। जब अहं हुआ तब मम भी होता है। सो 'अहं''मम' नाम संसार का है, जब अहं मम मिटता है तब जगत् का अभाव होता है। अहं के होते दृश्य भासता है और दृश्य में अहं होता है; इससे संवेदन को त्यागकर निर्वाण पदमें प्राप्तहो। इतना कह भुशुण्डिजी ने मुझसे कहा कि, हे वशिष्ठजी! इस प्रकार जब मैंने विद्याधरको उपदेश किया तो वह समाधिमें स्थितहुआ और परम निर्वाणपद को प्राप्त हुआ। जैसे दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही उसका चित्त क्षोभ से रहित शान्तिको प्राप्त हुआ। हे ब्राह्मण! उसका हृदय शुद्धथा इसकारण मेरे वचन शीघ्रही उसके हृदय में प्रवेश करगये। जब वह समाधिमें स्थित हुआ तो मैंने उसको बारम्बार जगाया परन्तु वह न जागा—जैसे कोई जलता जलता शीतलसमुद्रमें जाय बैठे और उससे कहिये कि, तू निकल तो वह नहीं निकलता, तैसेही संसारतापसे जलता हुआ जब आत्मसमुद्र को प्राप्त होताहै तब वह अज्ञानरूपी संसारके प्रवाहको नहीं देखता। हे वशिष्ठजी! जिसका अन्तःकरण शुद्ध होताहै उसको थोड़े वचनभी बहुत हो लगते हैं। जैसे तेलकी एक बूंद जलमें बहुत फैल जातीहै तैसेही जिसका अन्तःकरण शुद्ध होताहै उसको थोड़ा वचनभी बहुत होकर लगताहै और जिसका अन्तःकरण मलिन होताहै उसको वचन नहीं लगते। जैसे आरसी पर मोती नहीं ठहरता तैसेही गुरुशास्त्रके वचन उसको नहीं लगते। जब विषयों से वैराग उपजै तब जानिये कि; हृदय शुद्ध हुआहै। हे वशिष्ठजी! जब मैंने विद्याधर को उपदेश किया तब वह शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त हुआ क्योंकि; उसका चित्त निर्मल था। हे मुनीश्वर! जो तुमने मुझसे पूछा था सो कहा कि, उस विद्याधर को मैंने ज्ञान से रहित चिरकाल जीता देखा। इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे कहकर काकभुशुण्डि चुप होरहा और मैं नमस्कार करके आकाशमार्ग से अपने घर आया। हे रामजी! मेरे और काकभुशुण्डिके इस संवादको एकादश चौकड़ी युग बीते हैं। हे रामजी! यह नियम नहीं है कि; थोड़े काल में ज्ञान उपजै वा बहुत कालमें यह हृदय की शुद्धता की बातहै; जिसका हृदय शुद्ध होताहै उसको गुरु और शास्त्रोंका वचन शीघ्रही लगता है—जैसे जल नीचेको स्वाभाविक जाताहै। हे रामजी! इतना उपदेश जो तुमको मैंने क्रम से किया है उसका तात्पर्य यहीहै कि; फुरने को त्याग करो कि; न मैं हूं और न कोई जगत् है—तब पीछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहेगा जो सबका अपना आप है और उसका साक्षात्कार तुमको होगा। जैसे मलिनदर्पणमें मुख नहीं दीखता तैसेही आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मलसे ढपा है; जब इसका त्याग करो तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और जगत्भी अपना आप भासेगा। आत्मासे कुछ भिन्न नहीं क्योंकि;

केवल आत्मत्वमात्रहै और जो कुछ भासताहै उसे मृगतृष्णाके जलवत् और बन्ध्या के पुत्रवत् जानो, यह जगत् आत्मा के प्रमादसे भासताहै–जैसे आकाश में नीलता भासती है पर है नहीं; तैसेही जगत् प्रत्यक्ष भासता है और है नहीं। जैसे रस्सी में सर्प मिथ्याहै तैसेही आत्मामें जगत् मिथ्याहै। जब आत्माका ज्ञान होगा तब जगत् का अत्यन्त अभाव होगा और केवल आत्मत्वमात्र अपना आप भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डिविद्याधरोपाख्यान समाप्तिर्नामशताधिकनवत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम अहंवेदना से रहित होरहो। संसाररूपी वृक्षका बीज अहंही है। वासना से शुभ अशुभरूप कर्म का सुख दुःख फलहै और वासना हीसे प्रफुल्लित होताहै; इससे अहंभावको निवृत्त करो। जब अहं फुरताहै तब आगे जगत् भासता है; जब अहंता से रहित होगे तब जगत् भ्रम मिट जावेगा। अहंता आत्मबोध से नष्ट होता है। आत्मबोधरूपी खंसारी मे उड़ाया अहंतारूपी पाषाण न जानोगे कि, कहां गया और सुवर्ण पाषाण तुल्य तुमको होजावेगा शरीररूपी पत्र पर अहंतारूपी अणु स्थित है; जब बोधरूपी वायु चलेगी तब न जानोगे कि,कहां गया। शरीररूपी पत्रपर अहंतारूपी बरफ़ का कणका स्थित है; बोधरूपी सूर्य के उदय हुये न जानोगे कि वह कहां गया बोध विना अहंता नष्ट नहीं होती चाहे कीचड़ में रहे और चाहे पहाड़ में जावे; चाहे घरमें रहे और चाहे स्थलमें रहे; चाहे स्थूल हो और चाहे सूक्ष्महो चाहे निराकारहो और चाहे रूपान्तरको प्राप्त हो; चाहे भस्म हो और चाहे मृतकहो; चाहे दूरहो अथवा निकट हो जहां रहेगा वहांही अहंता इस के साथ है। हे रामजी! संसाररूपी वट का बीज अहंता है उसीसे सब शाखा फैली हैं। सब अर्थोंका कारण अहंताहै; जबतक अहंताहै तबतक दुःख नहीं मिटता और जब अहंभाव नष्ट हो तब परमसिद्धि की प्राप्ति हो। हे रामजी! जो कुछ मैंने उपदेश किया है उसको भली प्रकार विचार कर उसका अभ्यास करो तब संसाररूपी वृक्ष का बीज जलजावेगा और आत्मपदकी प्राप्ति होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअहंकारअस्तयोगोपदेशोनाम शताधिकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसार संकल्पमात्र सिद्ध है और भ्रमसे उदय हुआ है। आत्मस्वरूप में अनेक सृष्टि बसती हैं; कोई लीन होती हैं; कोई उत्पन्न होती हैं और कोई उड़ती हैं; कहीं इकट्ठी होती हैं और कहीं भिन्न२ उड़ती हैं सो सब मुझ को प्रत्यक्ष भासती हैं। देखो वे उड़ती जाती हैं सो ये सब आकाशरूप हैं और आकाश ही मे मिलती हैं। जैसे केले का वृक्ष देखनेमात्र सुन्दर होता है पर उसमें कुछ सार

नहीं होता तैसेही विश्व देखनेमात्र सुन्दर है पर आकाशरूप है। जैसे जल में पहाड़ का प्रतिबिम्ब पड़ता है और हिलता भासताहै तैसेही यह जगत् है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप कहतेहैं कि, सृष्टि मुझे प्रत्यक्ष उड़ती भासतीहैं—तुमभी देखो; यह तो मैंने कुछ नहीं समझा कि, आप क्या कहतेहैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनेक सृष्टि उड़नी हैं सो सुनो। पञ्चभौतिक शरीर में प्राण स्थित हैं; प्राण में चित्त स्थित है और उस चित्त में अपनी २ सृष्टिहै। जब यह पुरुष शरीर का त्याग करताहै तब लिङ्ग शरीर जो वासना और प्राणवायु हैं वे उड़ते हैं। उस लिङ्गशरीर में जो विश्व है सो सूक्ष्मदृष्टि से मुझ को भासती है। हे रामजी! आकाश की जो वायुहै जिसका रूप रङ्ग कुछ नहीं वही वायु प्राणों से मिलकर मुझे प्रत्यक्ष दिखाई देती है—इसीका नाम जीव है। स्वरूप मे न कोई आता है न जाताहै परन्तु लिङ्गशरीर के संयोग से आता-जाता और जन्मता-मरता दीखता है और अपनी वासना के अनुसार आत्मा में विश्व देखता है और कुछ नहीं बना। यह वासनामात्र सृष्टि है; जैसी वासना होतीहै तैसाही विश्व भासता है। हे रामजी! यह पुरुष आत्मस्वरूप है परन्तु लिङ्गशरीर के मिलने से इसका नाम जीव हुआ है और आपको प्रच्छिन्न जानता है; वास्तव में ब्रह्मस्वरूप है। देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित ब्रह्म है पर उसके प्रमाद से आपको कुछ मानता है इसीका नाम लिङ्गशरीर है। जैसे घटाकाश भी महाकाशहै परन्तु घट के खप्पर से परिच्छिन्न हुआ है तैसेही यह पुरुष भी आत्मस्वरूपहै और अहंकार के संयोग से प्रच्छिन्न हुआ है। जैसे घट को एकदेश से उठाकर देशान्तर में लेजा रक्खो तो आकाश तो न कहीं गया और न आया परन्तु आता जाता भासता है, तैसेही आत्मा अखण्डरूप है परन्तु प्राण चित्त मे चलता भासताहै। जब अहंकाररूप चित्त नष्ट हो तब अखण्डरूप हो; जबतक अहंकार नहीं जाता तबतक जगत्भ्रम दिखता है और वासना करके भटकता फिरता है। वासना की सृष्टि अपने २ चित्त में स्थित है। जब शरीर का त्याग करता है तब आकाश में उड़ता है और प्राणवायु उड़कर जो आकाश में शून्यरूप वायु है उससे जा मिलतीहै। वहां सबको अपनी २ वासना के अनुसार सृष्टि भासि आती है और अपनी सृष्टि लेकर इस प्रकार उड़तेहैं जैसे वायु गन्ध को लेजातीहै सोही मुझको सूक्ष्मदृष्टिसे उड़ते भासतेहैं। हे रामजी! स्थूलदृष्टि से लिङ्गशरीर नहीं भासता; सूक्ष्मदृष्टिसे दिखताहै। जिस पुरुष को सूक्ष्मदृष्टि मे लिङ्ग-शरीर देखने की शक्ति है और ज्ञान से रहित है वह भी मेरे मत में मूर्ख और पशु है। हे रामजी! जब मनुष्य वासना का त्याग करता है—अर्थात् इस अहंकार को कि, मैं हूं त्याग करताहै तो आगे विश्व नहीं दिखाईदेता केवल निर्विकल्प ब्रह्म भासताहै और उसके प्राण नहीं उड़ते वहांहीं लीन होजातेहैं क्योंकि; उसका चित्त अचित्त होजाता

है। जबतक अहंकार का संयोग है तबतक विश्व भी चित्त में स्थित है। जैसे बीज में वृक्ष और तिलों में तेल स्थित होताहै तैसेही उसके हृदय में विश्व स्थित है। जैसे मृत्तिका में बड़े छोटे बासन; लोहे में सुई और खड्ग और बीज में वृक्षभाव स्थित है चैतन्य अथवा जड़ हो तैसेही यह संकल्पकलना में भेद है, स्वरूप से कुछ नहीं और वैसेही यह जगत् भी है। हे रामजी! विश्व संकल्पमात्र है क्योंकि; दूसरी अवस्था में नाश होजाता है। यह जाग्रत् जो तुमको भासती है सो मिथ्या है। जब स्वप्न आता है तब जाग्रत् नहीं रहती और जब जाग्रत् आतीहै तब स्वप्न नष्ट होजाताहै; जब मृत्यु आती है तब सृष्टि का अत्यन्त अभाव होजाता है और देश, काल, पदार्थ सहित वासनाके अनुसार और सृष्टि भासतीहै। हे रामजी! यह विश्व ऐसाहै जैसे स्वप्ननगर। जैसे संकल्पपुर होतेहैं तैसेही ये सब संकल्प उड़ते फिरतेहैं। कई सृष्टि परस्पर मिलती हैं; कई नहीं मिलतीं परन्तु सब संकल्परूप हैं और भ्रम से और का और भासता है। जैसे कोई पुरुष बड़ा होता है और कोई छोटा भासता है तो छोटे को बड़ा भासता है और जैसे हाथी के निकट और पशु तुच्छ भासते हैं और चींटी के निकट और बड़े भासते हैं तैसेही जो ज्ञानवान् पुरुषहै उसको बड़े पदार्थ देश, काल संयुक्त विश्व तुच्छ भासता है और वह उन्हें असत्य जानता और जो अज्ञानी है उसको संकल्प सृष्टि बड़ी होकर भासतीहै। जैसे पहाड़ बड़ा भी होताहै परन्तु जिसकी दृष्टि से दूर है उसको महालघु और तुच्छसा भासताहै और चींटी के निकट तुच्छ मृत्तिका का ढेलाभी पहाड़ के समान है तैसेही ज्ञानीकी दृष्टि से यह जगत् रहित है इससे बड़ा जगत् भी उसको तुच्छरूप भासता है और अज्ञानी को तुच्छरूप भी बड़ा भासता है। हे रामजी! यह विश्व भ्रम से सिद्ध हुआ है। जैसे भ्रम से सीपी में रूपा और रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा के प्रमाद से यह विश्व भासता है पर आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे निद्रा दोष से जीव अपने अङ्ग भूल जातेहैं और जागे हुये सब अङ्ग भासते हैं तैसेही अविद्यारूपी निद्रामें सोया हुआ जब जागताहै तब उसे सब विश्व अपना आप दिखाई देताहै। जैसे स्वप्न से जगा हुआ स्वप्न के विश्व को आपना आपही देखता है तैसेही यह विश्व अपना आपही भासेगा। हे रामजी! जब मनुष्य निद्रा में होता है तब उसे शुभ अशुभ विश्व में राग कुछ नहीं होता और जब जागता है तब इष्ट में राग और अनिष्ट में द्वेष होताहै इसी प्रकार जबतक विश्वमें हेयोपादेय बुद्धिहै तबतक जो सर्वज्ञ भी हो तौभी मूर्ख है। हे रामजी! जब जड़ होजावे तब कल्याण हो। जड़ होना यही है कि, दृश्य से रहित आत्मा में स्थित हो वह आत्मा चिन्मात्र है। जबतक आत्मा से भिन्न जो कुछ सत्य अथवा असत्य जानताहै तबतक स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती और जब संवित् फुरने से रहित हो तब स्वरूप का साक्षात्कार हो। इससे फुरने का त्याग

करो। यह स्थावर जङ्गम जगत् जो तुमको भासता है सो सर्व ब्रह्मस्वरूप है। जब तुम ऐसे निश्चय करोगे तब सर्व विवर्त्त का अभाव होजावेगा और आत्मपदही शेष रहेगा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जीव जो आपने कहा सो जीवका स्वरूप क्या है; वह आकार को कैसे ग्रहण करता है; उसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है और उसके रहने का स्थान कौन है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जीव शुद्ध परमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्र पद है; उसमें चैत्योन्मुखत्व हुआ कि, 'मैं हूं; ऐसे जो चित्कला ज्ञानरूप फुरी है और उसको चित् का सम्बन्ध हुआहै उसीका नाम जीव है। वह जीव न सूक्ष्म है; न स्थूल है; न शून्य है; न अशून्य है; न थोड़ा है; न बहुत है; केवल शुद्ध आत्मत्वमात्र है। वह न अणु है, न स्थूल है; अनन्त चैतन्य आकाशरूप है उसीको जीव कहतेहैं। स्थूल से स्थूल वही है और सूक्ष्मसे सूक्ष्म वही है। अनुभव चैतन्य सर्व-गतरूप जीव है; उसमें वास्तव शब्द कोई नहीं और जो कोई शब्द है सो प्रतियोगी से मिलकर हुआ है। जीव अद्वैत है उसका प्रतियोगी कैसे हो। यही जीव का स्वरूप है। चैत्य के संयोग से जीव हुआ है और उसका अधिष्ठान चैतन्य आकाश, निर्वि-कल्प, चैत्यसे रहित, शुद्ध, चैतन्य परमात्मतत्त्व है; उसमें जो संवित् फुरी है उसीका नाम जीव है वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल और सर्वका बीज है। इसीका नाम विराट् कहते हैं और उसका शरीर मनोमय है। आदि परमात्मतत्त्व से फुरा है और और अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् प्रच्छिन्नता को नहीं प्राप्त हुआ— आपको सर्व आत्मा जानता है। इसका नाम विराट् है उसका प्रथम शरीर मनोमात्र और शुद्ध प्रकाशरूप रागद्वेषरूपी मलसे रहित अनन्त आत्माहै और सर्व मन, कर्मों और देहों का बीज है; सब में व्याप रहाहै और सबजीवों का अधिष्ठाता है। उसीके संकल्पसे ये जीव रचेहैं और पञ्चज्ञान इन्द्रियों, अहंकार; मन और संकल्प इन आठों के आकार धारेहै और आपही ग्रहण कियेहै। परमार्थरूपको त्याग फुरनेसे जो आकार उत्पन्न हुये हैं उनको ग्रहण करना इसीका नाम पुर्यष्टकाहै। फिर इन इन्द्रियों के छिद्र रचे और स्थूलरूप रचकर उनमें आत्मा प्रतीत किया। जैसे जीव शयनकालमें जाग्रत् शरीर को त्यागकर स्वप्न शरीर का अङ्गीकार करता है, तैसेही शुद्ध, चिन्मात्र, निर्वि-कार, अद्वैतस्वरूप को त्यागकर उसने वासनामय शरीर का अङ्गीकार किया है पर वास्तवस्वरूप का कुछ त्याग नहीं किया और स्वरूप से नहीं गिरा शुद्ध निर्विकल्प भाव को त्यागकर विराट्भाव हुआ है। इसी प्रकार आगे उस पुरुष ने ज्ञान से चारों वेद रचे और नीति को निश्चय किया। नीति इसे कहतेहैं कि; यह पदार्थ ऐसेहो और इतने कालतक रहे—निदान यह रचना रची और जो २ संकल्प करता गया सो २ देश, काल, पदार्थ, दिशा, ब्रह्माण्ड सब आगेहुये। ईश्वर, विराट्, आत्मा, परमेश्वर इत्यादिक

जीव के नाम हैं पर जीव का वासनारूप स्वरूप कुछ झूठ नहीं। वासना के शरीर ग्रहण करनेसे वासनारूप कहाहै पर वास्तवरूप शुद्ध, निर्विकार और अद्वैत है और कदाचित् स्वरूप से अन्य अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ; सदा ज्ञानरूप, अद्वैत और परमशुद्ध है। उसको अपने चैतन्यस्वभाव से चैत्य का संयोग हुआ है इससे कहा है कि; उसका वपु वासनारूप है। उसी आदि जीव से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता, दैत्य, आकाश, मध्य, पाताल और त्रिलोकी उत्पन्न हुई हैं। जैसे दीपकसे दीपक होता है और जल से जल होताहै तैसेही सब विराट् स्वरूप है। महाआकाश उस विराट् का उदरहै; समुद्र रुधिर है; नदियां नाड़ी हैं और दिशा वपु हैं। उसके उदरमें कई ब्रह्माण्ड सुमेरु पर्वत सहित समाये रहतेहैं पवन उसका मूंड़है उश्वास पवन प्राणवायु हैं; पृथ्वी मांस है; सुमेरु आदिक पर्वत हाथ हैं; तारे रोमावली हैं; सहस्र शीश नेत्र हैं और अनन्त और अनादि है। चन्द्रमा उसका कफ है जिससे अमृत स्रवता है और भूत उपजतेहैं और सूर्य पित्त है जो सर्व का उत्पन्नकर्ता है और सब मन; सबकर्मों और सब शरीरोंका आदि बीज विराट् है। हे रामजी! इस चित्त के सम्बन्ध से तुच्छ हुआ है पर वास्तव में परमात्मस्वरूप है। जैसे महाकाश घट के संयोग से घटाकाश होता हैं तैसेही विराट् परमात्मा ने फुरने से सृष्टि रची है और उसमें अहं प्रत्यय की है इस से तुच्छ हुआ है; सो इसको मिथ्या भ्रम हुआ है। जैसे स्वप्ने में कोई अपना मरना देखता है तैसेही आपको दृश्य देखता है। लघुता भी आत्माकी अपेक्षा से है; दृश्य में विराट् है और आत्मा में इस का अनुभव है। हे रामजी! इसी प्रकार उसने उपजकर सृष्टि रची है। जैसे एक विराट् पुरुष ने आदि निश्चय किया है तैसेही अबतक है। यह आपही उपजाहै और आपही लीन होजाताहै। हे रामजी! जिस प्रकार विराट्की आत्मा से उत्पत्ति हुई है तैसेही सब जीवों की है। यह सब विराट्रूप है परन्तु जो स्वरूप से उपजकर दृश्य से तद्रूप हुये हैं और जिनका वास्तवस्वरूप भूल गया है सो तुच्छरूप जीवहुये और जो स्वरूपसे फुरकर स्वरूपसे न गिरे और जिसे आगे अपनाही संकल्प रूप विश्व देखकर प्रमाद न हुआ उसका नाम विराट् आत्माहै। हे रामजी! जीव चैतन्य और निराकाररूप है इसको शरीर का संयोग कलनासे हुआहै। जब आपको दृश्य संयुक्त देखता है तब महाआपदा को प्राप्त होताहै और जब द्वैतसे रहित निर्विकल्प होकर देखे तब शुद्ध चैतन्य आत्मपद को प्राप्त होताहै। हे रामजी! यह विराट् सब को उत्पन्न करता है ऐसे कई विराट् आत्मपद से उदय हुये हैं; कई मिटगये हैं और कई आगे होंगे। जैसे समुद्रसे कई तरङ्ग बुद्बुदे उठते हैं और लीन होते हैं तैसेही आत्मारूपी समुद्र से कई विराट् उठतेहैं; कई लीन होते हैं और कई उपजेंगे। ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठान है और सबके भीतर बाहर पूर्ण ज्ञानस्वरूप है। ऐसा

तेरा अपना आप अनुभवरूप है। हे रामजी ! इस संवेदन को त्यागकर देखो वही परमात्मस्वरूप है यह जो कुछ तुमको भासताहै उसको विचारकर त्यागो। जब तुम इसका त्याग करोगे तब चिन्मात्र जो परमशुद्ध तुम्हारा स्वरूपहै सो तुमको भासेगा- उसके आगे चैतन्यता ही आवरणरूप है। जैसे सूर्य के आगे बादलों का आवरण होताहै और जबतक बादल होतेहैं तबतक सूर्य का प्रकाश ज्योंका त्यों नहीं भासता पर जब बादल दूर होते हैं तब प्रकाश स्वच्छ भासता है, तैसेही जब फुरना निवृत्त होवेगा तब शुद्ध आत्मा ही प्रकाशेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविराडात्मवर्णनंनाम
शताधिकैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह परमात्मा पुरुष फुरनेसे जीवसंज्ञा को प्राप्त हुआ है। फुरने में भी वहीहै पर अपने स्वरूपको नहीं जानता इसीसे दुःख पाताहै। जैसे पवन चलता है तौभी वही रूप है और जब ठहरता है तौभी वही रूप है-दोनों में तुल्यहै-तैसेही आत्मा सर्वदा एकरसहै कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्त हुआ। जीव प्रमादसे दृश्यको कल्पताहै और दृश्यको आप जानताहै इसीसे दुःख पाता है पर जो इसको अपना स्वरूप स्मरण रहे तो दृश्यमें भी अपना रूप भासे और जो निःसंकल्प हो तौभी विश्व अपना रूप भासे। विश्वभी इसीका रूप है परन्तु अविचार से भिन्न २ भासताहै। जैसे स्वप्ने का विश्व स्वप्नेवाले का रूप है परन्तु निद्रादोषसे नहीं जानता और जब जागताहै तब जानताहै कि; मैंही था; तैसेही यह प्रपञ्च सब तुम्हारा स्वरूपहै। तुम अपने स्वरूपमें निरहंकार स्थित होकर देखो तो कुछ नहीं बना। जो आत्मासे भिन्न तुम कुछ बनोगे तो प्रपञ्च विश्व भासेगा और जो आत्मस्वरूपमें स्थित हो तो अपना आप भासेगा और प्रपञ्चका अभाव होजावेगा। हे रामजी ! शून्याशून्य; जड़, चैतन्य; किंचन-निष्किंचन; सत्य-असत्य सब आत्माही पूर्ण है तो निषेध किसका करिये? हे रामजी ! वह ऐसा अनुभवरूप है जिससे सर्वपदार्थ सिद्ध होतेहैं पर ऐसे आत्मा को मूर्ख नहीं जानते। जैसे जन्म का अन्धा मार्ग को नहीं जानता तैसेही अज्ञानी महाअन्ध जागती ज्योति आत्मा को नहीं जानते और जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुये को नहीं जानते तैसेही वासना से घेरेहुये आपको नहीं जानसक्ते। जैसे जाल में पक्षी फँसा होताहै तैसेही जीव फँसे हुयेहैं। इसीका नाम बन्धनहै। जब वासना का वियोग हो तो इसीका नाम मुक्ति है। हे रामजी ! विषमतासे जीव संज्ञा हुई है; जब सम हुआ तब ब्रह्म है सो ब्रह्म अहंकार को त्यागकर होता है जैसे खप्पर के संयोग से घटाकाश कहाताहै और जब खप्पर टूट जाताहै तब महाकाश होजाता है; तैसेही जब अहंकार नष्ट होताहै तब आत्मस्वरूपहै। हे रामजी ! अज्ञान से एकदेशी जीव

हुआहै; जब प्रच्छिन्नताका वियोग हो तब आत्मस्वरूपही है। हे रामजी! अपने वास्तव निर्गुण स्वरूप में गुणों का संयोग उपाधि से भासता है सो अनर्थरूपहै। जब निर्गुण और सगुणकी गांठ टूटे तब केवल अद्वैततत्त्व अपना आप भासेगा जो अनामय और दुःख से रहित है और सत् असत् से परे ज्ञानरूप और आदि-अन्त से रहितहै जिसके पायेसे फिर कुछ पाना नहीं रहता और जिसके जानेसे और कुछ जानना नहीं रहता। ऐसा जो उत्तम पदहै उसको आत्मतत्त्व से प्राप्त होगे। हे रामजी! यह जो ज्ञान तुमसे कहाहै उसका आश्रय करके तुम ज्ञानवान् होना; ज्ञानबन्ध न होना। ज्ञानबन्धसे तो अज्ञानी भलाहै क्योंकि; अज्ञानी भी साधुओंके संग और सत्शास्त्रों के सुननेसे ज्ञानवान् होताहै पर ज्ञानबन्ध मुक्त नहीं होता। जैसे रोगी कहे कि, मुझको कोई रोग नहींहै, मैं अरोग हूं; तो वह वैद्य की औषधभी नहीं खाता क्योंकि; वह आपको अरोग जानताहै तैसेही जो ज्ञानबन्धहै उससे सन्तोंका संग और सत्शास्त्रों का श्रवण भी नहीं होता इससे वह अन्धतम को प्राप्त होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञान और ज्ञानबन्धका लक्षण क्याहै और ज्ञानबन्धका फल क्या है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुषने आत्माके विशेषण शास्त्रों से श्रवण कियेहैं कि; आत्मा नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप और तीनों शरीरों से भिन्न है और ऐसे सुनकर आपको मानता है पर विषयों के भोगने की सदा तृष्णा करता है कि किसी प्रकार इन्द्रियों के विषय मेरेलिये प्राप्त हों ऐसा पुरुष ज्ञानबन्ध है। वह बोधशिल्पी है जो कर्मफल के विचार से रहितहै अर्थात् भला बुरा विचार नहीं करता और उस में विचरता है और जो मुख से शुभ अशुभ निरूपण करता है वह शास्त्रशिल्पी है और फलके अर्थ कर्म करता है। कोई ऐसा है कि, शास्त्रोक्त आपको उत्तम मानता है; शास्त्रों के अर्थ बहुत प्रकार भी कहता है, पढ़ता और पढ़ाता भी है पर विषयों से बन्धायमान है और सदा विषयों की चिन्तना करता है-ऐसा पुरुष ज्ञानबन्ध है और इसी निमित्त अर्थशिल्पी भी कहाता है अर्थात् चितेरा करने को समर्थ है और धारने को समर्थ नहीं। हे रामजी! एक प्रवृत्तिमार्ग है और एक निवृत्तिमार्ग है। प्रवृत्ति संसारमार्ग है और निवृत्ति आत्मज्ञानमार्ग है। जिस पुरुष ने निवृत्तिमार्ग धारण किया है पर प्रवृत्तिमार्ग में अर्थात् बहिर्मुख विषय की ओर वर्तता है; इन्द्रियों के विषयों की वाञ्छा करता और विषयों से उपराम नहीं होता एवम् उनसे तृप्तिमान् होकर स्वरूपका अभ्यास नहीं करता वह ज्ञानबन्ध कहाताहै। हे रामजी! जो पुरुष श्रुतिउक्त शुभकर्म फल की हृदय में कामना धारता है वह पुरुष ज्ञान के निकटवर्ती है तौभी ज्ञानबन्ध है। जिसको आत्मा में प्रीति भी है पर विषय को चिन्तना है और आपको उत्तम मानता है वह ज्ञानबन्ध कहाता है और जो आत्म-

तत्त्व का यथार्थ निरूपण करताहै और स्थित नहीं वह ज्ञान आभासहै और ज्ञान का फल उसको साक्षात्कार नहीं । जिस पुरुष ने सिद्धि और ऐश्वर्य पाया है और उससे आपको बड़ा जानता है पर आत्मज्ञान से रहितहै वह ज्ञानबन्ध कहाताहै । हे रामजी ! निदिध्यास से ज्ञान की प्राप्ति होती है और उससे शान्ति का प्रकाश होता है । जब तक शान्ति प्राप्त नहीं होती तबतक आपको बड़ा ज्ञान न माने । हे रामजी ! ज्ञान से बड़ा होता है; जबतक ज्ञान नहीं उपजा तबतक आत्मपरायण हो; अभ्यास और यत्न करो; शुभ व्यवहारसे प्राणों की रक्षाके निमित्त उपजीविका उत्पन्न करो और ब्रह्मजिज्ञासा के अर्थ प्राणों की धारणाकरो । ब्रह्मजिज्ञासा इस निमित्त है कि, दुःखरूप संसार समुद्र से मुक्त हो; फिर संसारी न हो और आत्मपरायण हो । जब आत्मपरायण होगे तब सब दुःख मिटजावेंगे । जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मपद के प्राप्त हुये सब दुःख नष्ट होजाते हैं । उस पद के प्राप्त होने का उपाय यहहै कि, सत्शास्त्रोंसे जो विशेषण सुनेहो उनको समझकर बारम्बार अभ्यास करना; दृश्य के उपरान्त होना और उनको मिथ्या जानकर वैराग्य करना । इसीसे आत्मपद की प्राप्ति होती है ॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०ज्ञानबन्धयोगोनामशताधिकद्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४२

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिज्ञासी होकर ज्ञाननिष्ठ होना और जो कुछ गुरुशास्त्रों से आत्मविशेषण सुने हैं उनमें अहंप्रत्यय करके स्थित होना इसीका नाम ज्ञाननिष्ठा है । इस ज्ञाननिष्ठा से परम उच्चपद को प्राप्त होता है जो सबका अधिष्ठानपदहै । जब उस पद में स्थित हुआ तब कर्मों के फल का ज्ञान नहीं रहता क्योंकि; शुभकर्मों में फलका राग नहीं रहता और अशुभ कर्मोंके फल में द्वेष नहीं रहता । ऐसा पुरुष ज्ञानी कहाता है और वह शीतल चित्त रहता है; अकृत्रिम शान्ति को प्राप्त होताहै; किसी विषयके सम्बन्ध से नहीं फँसता और उसकी वासना की गांठ टूट जाती है । हे रामजी ! बोध वही है जिसको पायेसे फिर जन्म न हो और जो जन्म मरण से रहित हो उसीको ज्ञानी कहतेहैं । जब संसार से विमुख हो और संसारकी सत्यता न भासे तब जानिये कि, फिर जन्म न पावेगा क्योंकि; उसकी संसार की वासना नष्ट होगई है हे रामजी ! जिससे ज्ञानी की वासना नष्ट होती है वह भी सुनो । वह इस संसार का कारण नहीं देखता । जो पदार्थ कारण से उत्पन्न नहीं हुआ वह सत्य नहीं होता; इससे संसार मिथ्या है । जैसे रस्सी में सर्प भासता है तो उसका कारण कोई नहीं भ्रम से सिद्ध हुआ है, तैसेही यह विश्व कारण विना दृष्टि आता है इससे मिथ्या है । जो मिथ्या है तो उसकी वासना कैसे हो ? हे रामजी ! जो प्रवाहपतित कार्य प्राप्त हो उसमें ज्ञानी विचरता है और संकल्प से रहित होकर अपना अभिमान कुछ नहीं करता कि, इस

प्रकार हो और इस प्रकार न हो। वह हृदय से आकाश की नाईं संसार से न्यारा रहता है और फुरनेसे शून्य है। ऐसा पुरुष पण्डित कहाताहै। हे रामजी! यह जीव परमात्म-रूप है। जब अचेतन अर्थात् संसार के फुरने से रहित हो तब आत्मपद को प्राप्त हो। जैसे आंब का वृक्ष फलसे रहितहै तौभी उसका नाम आंब है परन्तु निष्फल है तैसेही यह जीव आत्मस्वरूप है परन्तु चित्त के सम्बन्धसे इसका नाम जीव है। जब चित्त को त्यागकरे तब आत्मा हो। जैसे आंब के पेड़ में फललगनेसे शोभताहै और सफल कहाताहै तैसेही जब जीव आत्मपद को प्राप्त होताहै तब महाशोभा से विराजता है। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष कर्मके फल की स्तुति नहीं करता अर्थात् इन्द्रियों के इष्ट विषय की वाञ्छा नहीं करता। जैसे जिस पुरुषने अमृत पान किया हो वह मद्य पान करने की इच्छा नहीं करता तैसेही जिसको आत्मसुख प्राप्त होताहै वह विषयों के सुख की इच्छा नहीं करता। जो किसी पदार्थ को पाकर सुख मानते हैं वे मूढ़ हैं। जैसे कोई पुरुष कहे कि; बन्ध्या के पुत्र के कांधे पर आरूढ़ होकर नदीके पार उतरते हैं तो वह पुरुष महामूढ़ है क्योंकि; जो बन्ध्या के पुत्र हैही नहीं तो उसके कांधे पर कैसे आरूढ़ होगा; तैसेही जो कोई कहै कि, मैं संसार के किसी पदार्थ को लेकर मुक्त हूंगा तो वह महामूढ़ है। हे रामजी! ऐसा पुरुष ज्ञान से शून्यहै उसकी इन्द्रियां स्थिर नहीं होतीं और वह शास्त्रों के अर्थ प्रकट भी करता है परमात्मा के ज्ञानसे रहित है उसको इन्द्रियां बलसे विषयोंमें गिरादेती हैं जैसे चीलपक्षी आकाशमें उड़ता २ मांसको देख कर पृथ्वीपर गिरपड़ताहै तैसेही अज्ञानी विषय को देखकर गिर पड़ता है। इससे इन इन्द्रियोंको मनसंयुक्त वश करो और युक्तिसे तत्परायण और अन्तर्मुख होरहो। यह जो संवेदन फुरतीहै उसका त्याग करो। जब फुरना निवृत्त होगा तब परमात्माका साक्षात्कार होगा और जब परमात्माका साक्षात्कार होगा तब रूप अवलोक और मनस्कार, जो त्रिपुटी है उसके सब अर्थकी भावना जाती रहेगी; केवल आत्मतत्त्वही प्रत्यक्ष भासेगा और संसारका अत्यन्त अभाव होजावेगा। हे रामजी! संसारका आद्य परमात्मतत्त्वहै और अन्तभी वही है। जैसे स्वर्ण गलाइये तौभी स्वर्णहै और जो न गलाइये तौभी स्वर्णहै; तैसेही जब सृष्टिका अभाव होताहै तौभी आत्माही शेष रहताहै; जब उपजी न थी तब भी आत्माही था और मध्यभी वहीहै परन्तु सम्यक्दर्शीको भासता है और असम्यक्दर्शीको आत्मसत्ता नहीं भासती। हे रामजी! विश्व आत्माका परिणाम नहीं, चमत्कारहै। जैसे सुवर्ण गलताहै तो उसकी रेणसंज्ञा होतीहै अथवा शलाका कहाताहै। यद्यपि उसमें भूषण नहींहुये तौभी उसका चमत्कार ऐसाही होता है कि, उससे भूषण उपजकर लीन होजाताहै और जैसे सूर्यकी किरणें जलाभासहो भासती हैं, तैसेही विश्व आत्माका चमत्कारहै और बना कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है

और उसका चमत्कार विश्व होकर स्थित हुआहै। हे रामजी! जब तुमने ऐसे जाना कि केवल आत्मसत्ताहै तब वासना क्षय होजावेगी और चेष्टा स्वाभाविक होगी। जैसे वृक्षके पत्र पवन से हिलते हैं तैसेही शरीर की चेष्टा प्रारब्धवेगसे होगी। हे रामजी! देखनेमात्र तुम्हारे में क्रिया होगी और हृदयमें शून्य भासेगा। जैसे यन्त्रीकी पुतली संवेदन विना तागेसे चेष्टा करतीहै तैसेही शरीरकी चेष्टा प्रारब्धसे स्वाभाविक होवेगी और तुमको अभिमान न होगा। जैसे कोई पुरुष दूधके निमित्त अहीरके पास बासन लेजाय और उसको दूध दुहने में कुछ विलम्ब हो तो कहे कि, बासन यहां रक्खाहै मैं गृह से कोई कार्य शीघ्रही कर आऊं तो यद्यपि वह गृह का कार्य करने लगताहै पर उसका मन दूधकी ओरही रहताहै कि, शीघ्रही जाऊं, ऐसा न हो कि; वह दुहता हो, तैसेही तुम्हारी क्रिया प्रारब्धवेगसे होगी पर मन आत्मतत्त्वमें रहेगा और अहंकार से रहित होगे। जबतक अहंकार फुरता है तबतक प्रच्छिन्न अर्थात् तुच्छ जीव है और उसको शरीरमात्र का ज्ञान होता है और अन्तःकरण में जो प्रतिबिम्ब जीव है उसको नखशिख पर्यन्त शरीर का ज्ञान होता है। इसीमें आत्म अभिमान होता है और ज्ञान नहीं होता इससे जीवहै और विराट् जो आगे तुमसे कहाहै सो ईश्वर है; सर्वशरीर और अन्तःकरणका ज्ञाताहै; सर्वलिङ्गशरीरका अभिमानीहै और सब को अपना आप जानताहै। हे रामजी! यद्यपि विश्वरूपहै तो भी अहंकारसे तुच्छसा हुआ है। जैसे मेघसे भिन्न हुआ एक बादर कहाताहै और घटसे घटाकाश कहाता है पर वह बादलभी मेघहै और घटाकाशभी महाकाशहै तैसेही अहं फुरनेसे प्रच्छिन्न हुआ है सो फुरना दृश्य में हुआ है और दृश्य फुरने में हुई है। जैसे फूलों में गन्ध और तिलों में तेल है तैसेही फुरने में दृश्य है। हे रामजी! आत्मा में बुद्धि आदिक फुरनाहै कि; 'मैंहूं' जब ऐसे फुरताहै तब आगे दृश्य होतीहै और जब अहंकार होता है तब आगे देह इन्द्रियादिक विश्व रचता है; इससे फुरने में दृश्य हुई और फुरना दृश्य में हुआ। देह, इन्द्रियां, मन आदिक जो दृश्य हैं उसमें अहंप्रत्यय से फुरना हुआ है इसी कारण से इसकी जीवसंज्ञा हुई है; जब फुरना नष्ट होजावे तब आत्मा का साक्षात्कार हो। यह जन्म, मरण, आना, जाना आदिक विकार संयुक्त प्रपञ्च भासता है तो भी मिथ्या है क्योंकि; विचार किये से कुछ नहीं रहता। जैसे केले के थंभे में कुछ सार नहीं तैसेही विचार कियेसे प्रपञ्च नहीं रहता और जैसे स्वप्ने में जन्म, मरण, आना, जाना देखता है परन्तु मिथ्या है तैसेही जाग्रत् क्रिया भी सर्वमिथ्या हैं हे रामजी! जो पारावारदर्शी है वह इतनी अवस्थाओं में निर्विकल्पहै और जन्मता भी है परन्तु नहीं जन्मता और सर्वक्रिया करता भीहै परन्तु नहीं करता—वह सबको स्वप्नवत् समझता है और स्वरूप से कदाचित् कुछ नहीं हुआ। हे रामजी! ज्ञानी

जाग्रत् मेंभी ऐसेही देखता है। जब यह आत्मपद में जागता है तब सर्वविकार का अभाव होजाता है कोई विकार नहीं भासता हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियों के विषय की चिन्तना करता रहताहै सो बन्ध है क्योंकि; अभिलाषही दुःखदायक है। यद्यपि वह राजा हो पर उसके हृदयमें अभिलाषहै इससे उसे दरिद्री जानो और जिस पुरुष का छादन, भोजन, शयन, कष्टसे देखतेहो कि; भोजन तो भिक्षा से होताहै अथवा किसी और यत्न से होता है और छादन भी निर्गुणसा पहिरता है और शयन करने का स्थान भी जैसा तैसा हो पर ज्ञानसे सम्पन्नहै तो उसको चक्रवर्ती जानो—यथा॥

दो० सातगांठ कोपीनकी,साधु न मानैशङ्क।रामअमलमाताफिरै,गिनैइन्द्रकोरङ्क॥७॥

हे रामजी! उसको चक्रवर्तीसेभी अधिक जानो। यद्यपि वह आरम्भ क्रिया करता भी दृष्ट आताहै पर संकल्पसे रहितहै तो कुछ नहीं करता; उसका करना, न करना दोनों तुल्यहैं क्योंकि; वह निरभिमानहै और शुभकर्मोंके करनेसे स्वर्ग नहीं भोगता और अशुभकर्मसे नरक नहीं भोगता—उसको दोनों एकसमानहैं। हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानी की चेष्टा समानहै परन्तु अज्ञानी अहंकार सहित करताहै इससे दुःख पाता है। इससे तुम अहंकार का त्यागकरो और अपना स्वरूप जो चैत्यसे रहित चैतन्य है उसमें स्थित होरहो कि, सब संशय मिटजावें। जितने जीव तुमको भासते हैं सो सब संवित् अर्थात् ज्ञानरूप हैं परन्तु बहिर्मुख जो फुरते हैं उससे भ्रमको प्राप्त हुये हैं और जब अन्तर्मुखहो तब केवल शान्तरूपहो जहां गुणों और तत्त्वोंका क्षोभ नहीं। वह शान्तपद कहाताहै। हे रामजी! जैसे विराट्का मन चन्द्रमाहै तैसेही सब जीवोंकाहै अर्थात् सब विराट्रूपहैं परन्तु प्रमादसे वास्तव स्वरूप नहीं भासता। हे रामजी! जैसे गुलाब की सुगन्ध संपूर्ण वृक्षमें व्यापकहै परन्तु फूलही में भासती है तैसेही चैतन्य सत्ता सब शरीर में व्यापक है परन्तु हृदय में भासतीहै जो त्रिकोणरूप निर्मल चक्र है वहां हीं अहं ब्रह्म का उत्थान होताहै; वहां से वृत्ति फैलकर पञ्चइन्द्रियोंके छिद्र से निकलकर विषयको ग्रहण करती है और उन इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में राग द्वेष मानताहै। इससे, हे रामजी! इतना कष्ट प्रमादसेहै; जब बोध होताहै तब संसार भ्रम मिटजाताहै। हे रामजी! वासनारूप जो संसारहै उसका बीज अहंभावहै और वह प्रत्यक्ष संसारमें फुरताहै। जब इसकी अचिन्तना हो और स्वरूप में अहंप्रत्यय हो तब संसारभ्रम मिटजावे। अहंभाव के शान्तहुये ज्ञानवान् यन्त्री की पुतलीवत् चेष्टा करता है। हे रामजी! जो पदार्थ सत्यहै उसका कदाचित् अभाव नहीं होता और जो असत्य है वह सत्य नहीं होता और यद्यपि होनेकी भावना कीजिये तौभी नहीं होता। जैसे अग्नि को जानकर स्पर्श कीजिये तौभी जलाती है और अजान स्पर्श करिये तौभी जलाती है क्योंकि; सत्य है और जैसे जल की भावना से मृग मरुस्थल में धावता है

परन्तु जल नहीं पाता क्योंकि; असत्य है; तैसेही हे रामजी ! अहंकार जो फुरताहै सो असत्य है; भ्रमसे सिद्धहै और विचारसे नष्ट होजावेगा। हे रामजी ! यह अहंकाररूपी कलङ्क उठा है। यदि निरहंकार होकर देखो तो मुक्तरूप हो और यदि अहंकार संयुक्त हो तो बन्ध है। इससे निरहंकार होकर परमनिर्वाण को प्राप्त होरहो यही हमारा सिद्धान्त है और परमभूमिका भी यही है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसेही तुम ब्राह्मी लक्ष्मी से शोभा पावोगे। हे रामजी ! ज्ञानवान् का चित्त सत्पद को प्राप्त होता है इससे अहंकार नहीं रहना और उसके चित्त की चेष्टा फलदायक नहीं होती। जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही उसको जन्मफल नहीं होता और अज्ञानी का चित्त जन्म मरण का कारण होताहै। जैसे कच्चा बीज उगताहै तैसेही अज्ञानी की चेष्टा जन्म फल देतीहै। हे रामजी ! जितने पदार्थ हैं उन सबसे निराश होरहो कि, हृदय में किसी की अभिलाषा न फुरे और न किसीका सद्भाव फुरे और पाषाण की नाईं तुम्हारा हृदय हो। हे रामजी ! जिसका हृदय कोमल स्नेहसंयुक्तहै वह अज्ञानीहै और जिसका हृदय पाषाण समान और स्नेह से रहित है वह ज्ञानी है; इससे निर्मम और निरहंकाररूप होकर स्थित होरहो। ये भोग मिथ्या हैं—इनकी इच्छा में सुख नहीं। हे रामजी ! जब संसार से उपरान्त और अन्तर्मुख आत्मपरायण होगे तब अहंकार निवृत्त होजावेगा और आत्माही भासेगा। जैसे वसन्तऋतु आती है तो वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं और पुरातन पत्र त्यागकर नूतन होआते हैं तैसेही जब तुम अन्तर्मुख होगे तब अहंकार निवृत्त होजावेगा, विभुता को प्राप्त होगे; अहंप्रत्यय जाती रहेगी और परमनिर्वाण पद पावोगे। इससे एक अहंकार संवेदन का त्याग करो और कोई यत्न न करो। तुमको यही हमारा उपदेश है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसुखेनयोगोपदेशःशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ १४३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जो वासनारूपी संसार है उससे तुम मङ्कीऋषि के सदृश तरजाओ। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! मङ्कीऋषि किसप्रकार तरे हैं सो कृपा करके कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मङ्कीऋषि का वृत्तान्त सुनो, उसने महातीक्ष्ण तप कियेथे। एक समय मैं आकाश में अपने गृह में था और तुम्हारे पितामह राजा अज ने मेरा आवाहन किया तब मैं राजा अज के निमित्त आकाश से उतरा तो मार्ग में एक वन देखा जिसमें अनेक वनके समूह थे जो भयानक और शून्य थे। वहां न कोई मनुष्य दृष्टि आताथा और न कोई पशु केवल महाशून्य वन था—मानो एकान्त ब्रह्मस्थानहै—और कई योजनपर्यन्त मरुस्थलही दृष्टि आताथा। मध्याह्नका समय था और अतितीक्ष्ण धूप पड़ती थी, ऊरुपर्यन्त तपी हुई रेत में मैंने प्रवेश किया और कई

वृक्ष वहां दग्ध हुये दृष्टि आये। हे रामजी! उस शून्यस्थलमें एक अति दुःखित विदेशी मुझ भ्राता को दृष्टि आया और उसने यह वाक्य मुख से निकाला कि, हाय हाय! मैंने महाकष्ट पाया है। जैसे किसीको दुष्टजन दुःख देतेहैं और दया नहीं करते तैसेही मुझ को धूप और मंज़िलने जलायाहै और मैं अतिदुःख को प्राप्त हुआ हूं। हे रामजी! ऐसे वचन कहता हुआ वह मेरे साथ चलाजाता था। जब कुछ मार्ग आगे गया तो एक धीवरका गांव दृष्टि पड़ा जहां पांच अथवा सात गृह थे; उसको देखकर वह शीघ्र चलने लगा कि, वहां मुझ को शान्ति होगी और मैं जल पान करके छाया के नीचे बैठूंगा। हे रामजी! उसको देखकर मुझे दया उपजी तो मैंने कहा कि, हे मार्ग के मीत! तू कहां जाता है? जिनको सुखदायी जानकर तू धावताहै सो तो दुःखदायक हैं जैसे मरुस्थल को नदी जानकर मृग जलपान के निमित्त धावता है कि, शान्ति पाऊं सो अति दुःख पाता है तैसेही जिस स्थान को तू सुखरूप जानता है सो दुःखरूप है। हे अङ्ग! ये जो इस गांव के वासीहैं उनका संग कदापि न करना। इनका संग दुःखरूप है जो पुरुष विचारपूर्वक चेष्टा करता है उसको दुःख नहीं होता और जो विचारे विना चेष्टा करता है सो दुःख पाता है। ये जो नगरवासी हैं वे आप जलते हैं तो मुझको सुख कैसे देंगे। जैसे कोई पुरुष अग्निकुण्ड में जलता हो और उससे कहिये कि, तू मेरी तपन शान्त कर तो कहनेवाला मूढ़ होता है क्योंकि, वह तो आपही जलता है और की तपन कैसे शान्त करेगा; तैसेही वे तो आप इन्द्रियों के विषय की तृष्णारूपी अग्नि में जलते हैं तुझको कैसे शान्त करेंगे? हे मार्ग के मीत! पृथ्वीके छिद्रमें सर्प होना; मरुस्थल का मृग होना और पाषाण की शिला में कीट होकर रहना अङ्गीकार कीजिये परन्तु अज्ञानी का संग न कीजिये; जिनको इन्द्रियोंके सुखकी तृष्णा रहतीहै। इन्द्रियोंके सुख कैसे हैं कि, आपातरमणीय हैं अर्थात् यह कि, जबतक इन्द्रियों का विषयके साथ संयोगहै तबतक सुख है और जब वियोग होताहै तब दुःख होताहै। विषयी जनोंकी प्रीतिभी विषवत्है और विचारवती बुद्धिरूपी कमलिनी के नाश करनेवाली बरफ़ है। इनकी संगति में वचनरूपी पवन से राख उड़ती है और पास बैठनेवाले को अन्धकार में डालती है। इससे इन ग्रामवासी अज्ञानियोंका संग न करना। ये अज्ञानी विचारवती बुद्धिरूपी सूर्य के आवरण करनेवाले बादल हैं। जैसे बेलि पर अग्नि डालिये तो जलाती है तैसेही वैराग्य को ग्रहण करनेवाली बुद्धि के नाश करनेवाली इनकी संगति है—इस से इनका संग न करना। हे साधो! संग उसका कर जिसके संग से तेरा ताप मिटे। इनके संगसे शान्ति न पावेगा। हे रामजी! इसप्रकार जब मैंने कहा तब वह मेरे निकट आकर बोला; हे भगवन्! तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारे वचन सुनकर मैं शान्ति को प्राप्त हुआ हूं। तुम शून्य ऐसे दृष्टि आते हो; पर सर्वगुणों से

पूर्ण हो और तुम्हारा दिव्यप्रकाश मुझको भासता है । तुम आदि पुरुष विराट् हो और तुम सुन्दर दृष्टि आते हो । हे भगवन् ! जो सुन्दर होताहै उसको देखकर राग उपजताहै और चित्त क्षोभको भी प्राप्त होताहै । तुम ऐसे सुन्दरहो कि; तुम्हारे दर्शन से मुझको शान्ति आतीजातीहै । तुम दिव्य तेजको धारेहुये दृष्टि आते हो और ऐसे तेजवान्हो कि, देखने नहीं देते—अर्थ यहहै कि, तुम्हारे समान किसीकी सुन्दरता नहीं और तुम्हारा तेज हृदय में शान्ति उपजाता है और शीतल प्रकाशहै । हे भगवन् ! तुम धर्मसे उन्मत्तवत् दृष्टि आतेहो सो तुम कैसी शान्तिको लेकर एकान्त में स्थित हो ? अपने स्वरूप प्रकाशको तुम दया करते दृष्टि आतेहो और पृथ्वी पर स्थित भी दृष्टि आते हो परन्तु त्रिलोकी के ऊपर विराजमान भासते हो । एकही दृष्टि आतेहो परन्तु सर्वात्मा हो और किंचित्–अकिंचित् और सर्वभावपदार्थोंसे शून्य दृष्टि आते हो पर सर्वपदार्थ तुम्हारी सत्तासे प्रकाशते हैं । तुम सर्वपदार्थोंके अधिष्ठान हो और तुम्हारे नेत्रों के खोलने से उत्पत्ति होतीहै और मूंदनेसे लय होजातीहै; इससे ईश्वर हो । तुम सकलङ्क दृष्टि आते हो परन्तु निष्कलङ्क हो अर्थात् तुम्हारेमें फुरना दृष्टि आता है परन्तु हृदय से शून्य हो । तुम किसी अमृतको पान करके आये हो और बड़े ऐश्वर्यसे सम्पन्न दृष्टि आते हो । इससे, हे भगवन् ! तुम कौन हो ? यदि मुझसे पूछो कि, तू कौन है तो मैं माण्डव्य ऋषि के कुल में हूं और मेरा नाम मङ्की है । मैं ब्राह्मण हूं और तीर्थयात्राके निमित्त निकला था । मैं सर्वदिशाओंमें भ्रमा और अति भयानक स्थानोंमें जो तीर्थहैं वहांभी गया परन्तु मुझको शान्ति न हुई । ऐसी शान्ति कहीं न पाई कि, इन्द्रियों की जलन से रहित होरहूं—अब मैं अपने गृहको चलाहूं । हे भगवन् ! अब गृह से भी मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि; यह संसार ही मिथ्या है तो गृह किसका है ? संसार में सुख कहीं नहीं । यह प्राण ऐसे हैं जैसा दामिनी का चमत्कार होता है और तैसेही यह संसारभी नष्ट होता दृष्टि आताहै । शरीर उपजते भी हैं और मिटभी जाते हैं—दृष्टिमात्र हैं । जैसे रात्रि आती है और फिर नहीं जान पड़ती कि; कहां गई । हे भगवन् ! इस संसार को असार जानकर मैं उदासीन हुआ हूं क्योंकि; अनेक जन्म पायेहैं सो नष्ट होगये हैं और इसी प्रकार भ्रमता फिरताहूं । अब तुम्हारी शरणागतहूं और जानताहूं कि, तुमसे मेरा कल्याण होगा । तुम कल्याण-रूप दृष्टि आते हो इससे कृपा करके कहो कि, कौन हो ? हे रामजी ! इतना सुन मैंने कहा; हे मङ्कीऋषि ! मैं वशिष्ठ ब्राह्मणहूं और मेरा गृह आकाशमें है । मुझको राजा अज ने स्मरण कियाहै इस लिये मैं इस मार्गसे जाताहूं । अब तुम संशय मत करो ज्ञानमार्गको पावोगे । हे रामजी ! जब मैंने ऐसे कहा तब वह मेरे चरणों पर गिरपड़ा और उसके नेत्रोंसे जल चलनेलगा; और महाआनन्दको प्राप्त हुआ । तब मैंने कहा

कि हे ऋषे! तू संशय मतकर। मैं तुझको अकृत्रिम शान्तिको प्राप्त करके जाऊंगा। जो कुछ तू पूछा चाहता है सो पूछ; मैं तुझको उपदेश करूंगा और मैं जानताहूं कि; तू कल्याणकृतहै इस लिये जो कुछ मैं कहूंगा सो तू धारेगा। तू कुछ प्रश्न कर क्योंकि; तेरे कषाय परिपक्व हुये हैं। और तू मेरे वचनों का अधिकारी है तुझको मैं उपदेश करूंगा। अब तू संसारके तटको प्राप्त हुआ है और अब तुझको निकालनेका विलम्ब है अर्थात् तू वैराग्य से पूर्णहै और संसारका तट वैराग्यहीहै; इससे संशय मतकर॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमङ्किऋषिपरमवैराग्यनिरूपणं नामशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४४॥

मङ्की बोले; हे भगवन्! अब मैं जानताहूं कि, मेरा कार्य सिद्ध हुआ है। मुझको अज्ञान से मोह था उसके नाश करनेको तुम समर्थ दृष्टि आते हो और मेरे हृदयके तम नाश करनेको तुम सूर्य उदय हुयेहो। हे भगवन्! यह संसार असारहै पर लोगों की बुद्धि विषयोंकी ओरही धावती है जहां दुःखही होते हैं। जैसे जल नीचे स्थानको चलाजाता है तैसेही हमारी बुद्धि नीचे स्थानों में धावती है और वही चाहती है। हे भगवन्! जितने भोगहैं उनको मैंने भोगाहै परन्तु शान्ति न पाई बल्कि, उलटी तृष्णा बढ़ती गई। जैसे तृषा लगे और खारा जल पान करिये तो तृषा नहीं मिटती बल्कि बढ़तीही जाती है; तैसेही विषयों के भोगने से शान्ति नहीं प्राप्त होती—तृष्णा बढ़ती जाती है। हे मुनिराय! देह जर्जरीभाव होजातीहै दांत गिरपड़ते हैं और अतिक्षोभ होताहै तोभी तृष्णा नहीं मिटती; इससे अब मैं दुःख चाहताहूं, सुख कोई नहीं चाहता क्योंकि; संसार के जितने सुख हैं उनका परिणाम दुःख है। जो प्रथम दुःख हैं उन का परिणाम सुखहै इसीसे दुःख चाहताहूं और संसारके सुख नहीं चाहता। हे भगवन्! अपनी वासनाही दुःखदायक है। जैसे कुसवारी गुफा बनाकर उस में आपही फँस मरती है तैसेही अपनी वासना से जीव आपही बन्धायमान होता है। हे मुने! वह कौन काल था जब अज्ञानरूपी हाथी ने मुझ को वश किया था और उसका नाश करनेवाला ज्ञानरूपी सिंह कब प्रकट होगा? कर्मरूपी तृणों का नाशकर्ता विवेकरूपी वसन्त कब प्रकटेगा और वासनारूपी अन्धेरी रात्रिका नाशकर्ता ज्ञानरूपी सूर्य कब उदय होगा? हे भगवन्? वैताल तबतक भासता है जबतक निशा है और जब सूर्य उदय होताहै तब निशा जाती रहती है और वैताल नहीं भासता तैसेही अहंकाररूपी वैताल तबतक है जबतक अज्ञानरूपी रात्रि दूर नहीं हुई। हे भगवन्! जब सन्तजनों के उपदेश से आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रकट होता है तब अहंकाररूपी वैताल वहां नहीं विचरता। सन्तजनों का संग और सत्शास्त्रों का देखना चांदनी सा प्रकाश है; उनसे जब स्वरूप का साक्षात्कार हो तब दिन हुआ जानिये और जब

तक सन्तजनों का संग न करे और सत्शास्त्रों को न देखे तबतक अंधेरी रात्रि है। हे भगवन्! जो सत्शास्त्रों को भी सुने और फिर विषयों की ओर भी गिरे उसे बड़ा अभागी जानिये सो मैं हूं; परन्तु अब मैं तुम्हारी शरण आया हूं मेरे हृदयरूपी आकाश में जो अज्ञानरूपी कुहिरा है सो तुम्हारे वचनरूपी शरत्काल से नष्ट होजावेगा और हृदयाकाश निर्मल होगा। हे भगवन्! मैंने त्रिदण्ड साधे हैं अर्थात् मन, शरीर और वाणी से तीन तप दीर्घ कालपर्यन्त किये हैं परन्तु आत्मप्रकाश नहीं हुआ। अब मैं तुम्हारी शरणागत होके तरूंगा इस लिये कृपा करके उपदेश करो कि, मेरे हृदय का तम दूर हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमङ्किवैराग्ययोगोनाम
शताधिकपञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४५॥

वशिष्ठजी ने कहा; हे तात! संवेदन, भावना, वासना और कलना ये चारों अनर्थ के कारण हैं। जब इनका अभाव हो तब कल्याण हो। शुद्धचिन्मात्रपद प्रत्यक्ष चैतन्य अपने आप में स्थित है। जो अहंकार का उत्थान है सोही संवेदन है। भावना यह है कि; पहले आप कुछ बना फिर चेता और अपना आप चित्त स्मरण हुआ तब भ्रम मिटजाता है और जो कुछ बना उसकी भावना होती है कि, मैं यह हूं तो इससे संसार दृढ़ होता है फिर तैसेही वासना दृढ़ होती है और अपने शरीर के अनुसार नाना प्रकार की कलना होती हैं और फिर संसार के संकल्प विकल्प उठते हैं। हे ब्राह्मण! ये चारों अनर्थ के कारण हैं। जब इनका अभाव हो तब कल्याण हो। जितने कुछ शब्द अर्थ हैं उनका अधिष्ठान प्रत्येक चैतन्य है; सर्व शब्द उसी के आश्रित हैं और सर्व वही है। जब तू ऐसे जानेगा तब वासना क्षय होजावेगी। जब अहंसंवेदन फुरती है तब आगे संसार भासता है। जैसे जब बसन्त ऋतु आती है तब बेलैं प्रफुल्लित होती हैं तैसेही जब संवेदन फुरती है तब आगे संसार सिद्ध होता है और जब संसार हुआ तब नाना प्रकार की वासना फुरती हैं और संसार नहीं मिटता। हे अङ्ग! संसार इसी का नाम है कि, संसरता है। जब संसरता मिटे तब आत्मपद ही शेष रहेगा सो तेरा अपना आप है इससे इस फुरने को त्यागकर अपने आपमें स्थित होरह—सब तेराहीरूप है। जबतक वासना फुरती है तबतक संसार दृढ़ रहता है। जैसे वृक्ष को जल दीजिये तो बढ़ता जाता है तैसे ही वासनारूपी जल देनेसे संसाररूपी वृक्ष वृद्ध होजाता है। इससे वासना का नाश करो कि, यह संवेदन न फुरे। जब जलसे रहित होता है तब आपही जलजाता है। हे पुत्र! आत्मा में जगत् कुछ हुआ नहीं केवल परमार्थसत्ता है। जैसे रस्सी में सर्प कुछ वस्तु नहीं रस्सी के अज्ञानसे ही भासता है तैसे ही आत्मा के अज्ञान से संसार

भासता है। जब तू आत्मपद को जानेगा तब परमार्थसत्ताही भासेगी। जैसे बालक अपनी परछाहीं में भूतकल्प कर भय पाता है और जब विचारकर देखता है तब भूत कोई नहीं सब भय दूर होजाता है; तैसेही आत्मा के अज्ञान से संसार के राग द्वेष जलाते हैं। ज्ञानवान् को वासनासंयुक्त संसार का अभाव होजाता है और केवल अद्वैत आत्मसत्ताही भासती है। जैसे स्वप्न से जागकर स्वप्न के प्रपञ्च का वासना संयुक्त अभाव होजाता है; तैसेही जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब वासना संयुक्त संसार का अभाव होजाता है क्योंकि; है नहीं। जैसे घटादिक में मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं तैसेही सर्व प्रपञ्च चिन्मात्रस्वरूप है कुछ भिन्न नहीं। जितने शब्द अर्थ हैं सर्व आत्माही हैं। हे मित्र! जो कुछ आत्मासे इतर भासता है उसको भ्रम-मात्र जानो। जैसे आकाश में नीलता भासती है सो भ्रममात्र है तैसेही विश्व अ-सम्यक्‌दृष्टि से भासता है और सम्यक्‌दृष्टि से सर्व प्रपञ्च आत्मस्वरूप हैं और दृष्टि, दर्शन, दृश्य–त्रिपुटी भी बोधस्वरूप है। बोधही त्रिपुटीरूप होकर स्थित होता है। जैसे स्वप्न में एकही अनुभव त्रिपुटीरूप हो भासता है तैसेही यह जाग्रत् की त्रिपुटी भी आत्मस्वरूप है। हे अङ्ग! जितने स्थावर–जंगमपदार्थ हैं सो सर्व आत्मस्वरूप हैं–जो परमात्मस्वरूप न हों तो भासैं नहीं। द्रष्टारूप जो अनुभव करता है सो एक अद्वैतरूप है–उसी स्वरूप के प्रमाद से भिन्न २ त्रिपुटी भासती है तो भी कुछ भिन्न नहीं। जैसे स्वप्न में त्रिपुटी अपने अनुभव से भासती है; जो अनुभव न हो तो क्यों-कर भासे? तैसेही यह त्रिपुटी भी अनुभव आत्मासे भासतीहै। इससे सर्व परमात्म स्वरूप है कुछ भिन्न नहीं और जो भिन्न नहीं तो है नहीं क्योंकि; सबकी एकता परमार्थस्वरूप में होती है। हे ऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिलजाती है। जैसे जल में जल की बुन्द डालिये तो मिलजाती है क्योंकि; एक रूप है; तैसेही बोध से सर्व पदार्थों की एकता भासती है क्योंकि; द्वैतसत्ता नहीं है। जैसे स्पन्द और निस्पन्द दोनों पवनही हैं और जल और तरङ्ग अभेदरूप है तैसेही विश्व परमार्थस्वरूप है। इससे ऐसे निश्चय करो कि, सर्वब्रह्मस्वरूप है अथवा आपको उठादो कि, मैं नहीं–जब तू न होगा तब विश्व कहांसे होगा। हे मङ्कीऋषि! प्रथम जो अहं होताहै तो पीछे ममत्व भी होताहै; इसलिये जो अहंही न रहेगा तो ममत्व कहां रहेगा? इस अहंका होनाही बन्धनहै और इसके अभाव का नाम मुक्तिहै। हे मित्र! इसयुक्तिमें क्या यत्नहै? यहतो अपने आधीन है कि मैं नहीं। जब अहंकार को निवृत्त किया तब शेष वही रहेगा जो सर्वका परमार्थरूपहै और उसीको ब्रह्म कहतेहैं। हे मुनीश्वर! जब अहंकार फुरता है तब नानाप्रकार की वासना होती हैं और उन वासना के अनुसार अनेक जन्म पाता है जो वर्णन नहीं किये जाते। जैसे पवन से तृण भटकते फिरते हैं तैसेही वासना करके

जीव भटकते फिरते हैं। जब पर्वत से कंकड़ गिरताहै तब चोटें खाता नीचेको चला-जाता है तैसेही स्वरूप के प्रमाद से जीव जन्म जन्मान्तर पाते चलेजाते हैं और वास-नानुसार घटीयन्त्र की नाईं कभी ऊर्ध्व और कभी अध को जाते हैं। जैसे हाथ से ताड़ना किया गेंद कभी ऊर्ध्व और कभी अधको जाता है। हे अङ्ग! इससंसार का बीज वासना है। जब वासना निवृत्त हो तब सबकी एकता होजाती है और जबतक संसार की वासना दृढ़ है तबतक एकता नहीं होती। जैसे दूध और जल मिलता है तो उनका संयोग होजाता है तैसेही आत्मा और विश्व का संयोग नहीं—आत्मा केवल अद्वैत और सबका अपना आपहै। जैसे मृत्तिकाही घटादिकरूप हो भासती है तैसेही आत्मा सत्ता ही जगत्‌रूप हो भासती है—इससे आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। हे साधो! आत्मा और दृश्यका काष्ठ और लाखवत् अथवा घट और आकाशवत् कुछ संयोग नहीं क्योंकि; आत्मा अद्वैत है और सर्वदृश्य बोधमात्र है। हे साधो! जो जड़ है सो चैतन्य नहीं होता और चैतन्य जड़ नहीं होता; इससे न कोई जड़ है, न चैतन्य है; चैतन्य आत्मा ही भावनासे जड़ दृश्य हो भासताहै और उसके बोध से एक अद्वैत रूप होजाता है तो जानता है कि; सर्व वही है भिन्न कुछ नहीं। हे मित्र! अज्ञान से नाना प्रकार का विश्व भासता है। जैसे मेघ की वर्षा से नाना प्रकार के बीज प्रफुल्लित हो आते हैं तैसेही अहंरूपी बीज से संसाररूपी वृक्ष वासना मुख से प्रफुल्लित होता है। जब अहंकाररूपी बीज नष्ट हो तब संसाररूपी वृक्ष भी नष्ट होजावेगा। हे अङ्ग! जैसे वानर चपलता करताहै तैसेही आत्मतत्त्व से विमुख अहंकाररूपी वानर वासना से चपलता करता है। जैसे गेंद हाथ के प्रहार से अध और ऊर्ध्व को उछलता है तैसेही जीव वासना के प्रहारसे जन्मान्तरोंमें भटकता फिरता है और कभी स्वर्ग, कभी पाताल और कभी भूलोक में आता है स्थिर कदाचित् नहीं होता। इससे वासना का त्यागकर आत्मपदमें स्थितहो रहो। हे तात! यह संसाररात्रि की मंज़िल है देखते २ नष्ट होजाती है। इसको देखकर इसमें प्रीति करनी और सत्य जाननाही अनर्थ है। इससे संसार को त्याग करके आत्मपद में स्थित हो रहो। चित्त की वृत्ति जो संसरती है इसीका नाम संसार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभृङ्गिऋषिप्रबोधोनामशताधिक षट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे तात! यह संसार का मार्ग गहन है और इसमें जीव भटकते हैं। यह चैतन्यवृत्ति जो संसरतीहै। यही संसारहै। जब यह संसरना मिटे तब स्वच्छ अपना आपही स्वरूप भासे। चेतनावृत्ति जो बहिर्मुख फुरती है इसीका नाम बन्धन है; और कोई बन्धन नहीं। हे साधो! यह जगत् वासना से बांधा है। जैसे बसन्त

ऋतु से रस फैलता है तैसेही वासना से जगत् फैलताहै। बड़ा आश्चर्य है कि; मिथ्या वासना से जीव भटकते फिरते हैं; दुःख भोगतेहैं और बारम्बार जन्म मृत्यु पाते हैं। बड़ा आश्चर्य है कि, विषमरूप वासनासे वश हुये जीव अविद्यमान जगत् को भ्रम से सत्य जानते हैं। हे साधो! जो इस वासनारूप संसार से तरगये हैं वे धन्य हैं और वे प्रत्यक्ष चन्द्रमा की नाईं हैं। जैसे चन्द्रमा अमृतरूप, शीतल और प्रकाशवान् है और सबको प्रसन्न करताहै; तैसेही ज्ञानीपुरुष है। इससे तू धन्य है जिसको आत्मपद की इच्छा हुईहै। हे अङ्ग! यह संसार तृष्णा से जलताहै। जिनकी चेष्टा तृष्णा संयुक्त है उनको तू बिल्ला जान। जैसे बिल्ला तृष्णा से चूहेको ग्रहण करता है तैसेही वेभी अपनी तृष्णासंयुक्त चेष्टा करते हैं। इस मनुष्य शरीर में यही विशेषता है कि, किसी प्रकार आत्मपद को प्राप्त हो। जो नर देह पाकर भी आत्मपद पाने की इच्छा न करे तो वह पशुसमान है। हे मित्र! मूढ़जीव ऐसी चेष्टा करतेहैं कि; प्राणों के अन्तपर्यन्त भी तृष्णा करते रहते हैं। हे अङ्ग! ब्रह्मलोक से काष्ठपर्यन्त जितने इन्द्रियों के विषय हैं उनके भोगने से शान्ति नहीं होती क्योंकि, आपातरमणीय हैं—इनमें सुख कदाचित् नहीं—जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनकी शान्ति ऐसीहै। जैसे चन्द्रमा में और वे सूर्य की नाईं प्रकाशते हैं विषयों की तृष्णा कदाचित् नहीं करते। जैसे कोई पुरुष अमृत पान करके तृप्त हुआ हो तो वह खली खानेकी इच्छा नहीं करता, तैसेही जिस पुरुष को आनन्द प्राप्त होता है वह विषयों के भोगने की इच्छा नहीं करता। इससे इसी वासना का त्याग करो। वासना का बीज अहंकार है उसको निवृत्त करो कि, 'मैं नहीं' क्योंकि; मेरा होनाही अनर्थ है। हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकारपद में जो कुछ तू आपको प्रसन्न जानताहै कि, 'मैं ब्राह्मण हूं' अथवा किसी प्रकृति से मिलकर आपको मानता है कि, 'मैं यह हूं' यही अनर्थहै। हे ऋषे! तेरे नेत्रोंके खोलनेसे संसार उत्पन्न होता है और नेत्रों के मूंदनेसे नष्ट होजाताहै; सो नेत्र अहंकार का फुरनाहै; इसीसे आगे विश्व सिद्ध होता है। इससे तेरा होनाही अनर्थ है। हे अङ्ग! जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र उदय होता है तैसेही आत्मा में अहंकार उदय हुआ है। इसीके अभाव से भय शान्त होती है। जब अहंकार होताहै तब आगे स्त्री, कुटुम्ब और धन होते हैं सोही बन्धन हैं। इनके चमत्कार ऐसे हैं जैसे दामिनी का चमत्कार क्षण में उदय होकर नष्ट होजाता है; इससे इनमें बन्धवान् न होना चाहिये। हे अङ्ग! जब तू कुछ बना तब सब आपदा तुझे प्राप्त होंगी और यदि तू अपना अभाव जानेगा तो पीछे आत्मपद ही शेष रहेगा जो परमशान्तरूप है और जिसकी अपेक्षा से चन्द्रमाभी अग्निवत् जान पड़ताहै। वह परमशून्य और सर्व पदार्थोंकी सत्ता और आकाशरूपहै। हे मित्र! मेरे इन वचनोंको धारणकर कि, तेरा मोह नष्ट होजाय। यह विश्व कुछ हुआ नहीं। जैसे

आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासताहै पर है नहीं तैसेही विश्व नहीं आत्माके प्रमाद से भासताहै । हे ऋषे ! तू उसीको जान जिसके अज्ञानसे विश्व भासताहै और जिसके ज्ञानसे लय होजाताहै । हे मङ्की ! जैसे आकाश शून्यमात्रहै; पवन स्पन्दमात्र है और जल तरङ्गमात्र है तैसेही जगत् संवित्मात्र है उस संवित् आकाशसे जो भिन्न भासताहै उसे भ्रममात्र जानो । जैसे असम्यक्दृष्टिसे जल पहाड़रूप भासता तैसेही असम्यक्-दृष्टि से जगत् भासता है और सम्यक् अवलोकन से परमार्थसत्ता ही भासती है । जिसके अज्ञानसे विश्व भासताहै उसकोभी ज्ञानवान् ब्रह्मशब्द कहतेहैं उस ब्रह्मपद के अहंकार ही व्यवधान हैं सो ज्ञानवान्का नष्ट भयाहै इससे वह सर्वका अधिष्ठान एक परमार्थस्वरूप देखता है उसीमें तूभी एकत्र होरह जैसे आकाश अनेक घट के संयोग से भिन्न २ भासता है और घट को फोड़िये तो सर्व एकही होजाता है तैसेही अहंकाररूपी घट फोड़िये तो सर्व पदार्थ एकत्र होजातेहैं । हे अङ्ग ! सर्वकी परमार्थ सत्ता एक ब्रह्मपद है जो अजन्मा, अच्युत, आनन्द, शान्तरूप, निर्विकल्प, अद्वैत, सर्वका अधिष्ठान है; उस शिलावत् आत्मसत्ता से भिन्न कुछ न फुरे; इससे निर्बोध बोध होजावो । हे मङ्कीऋषि ! ये जो पदार्थ दुःखके देनेवाले हैं और ऐसे जो शब्द अर्थ हैं सो आकाश के फूल हैं; इससे शोक मतकर क्योंकि; सर्वपरमार्थसत्ताही है । जैसे पुरुष निराकार है पर उसकी भावनासे अङ्गका संयोग होताहै तैसेही विश्व भी इसकी भावना से होता है और जैसी २ संसार की भावना दृढ़ होती है तैसाही रूप आगे दृष्टि आता है । जो विश्व उपादान से नहीं हुआ तो आरम्भ परिणाम से भी कुछ नहीं बना । हे मित्र ? शुद्ध परमात्माका पाना साधनहै, विश्व उपादानहै सो शब्द है । आत्मा अद्वैतहै सो इनका हेतुहै और अचिन्त्य है इसीसे विश्व निरुपादान स्वप्न-वत् है । जैसे स्वप्नेकी सृष्टि निरुपादान होतीहै तैसेही जाग्रत् सृष्टि भीहै । जैसे मृत्तिका से घटकार्य बनता है आत्मा विश्व का उपादान ऐसे भी नहीं क्योंकि, मृत्तिका परि-णाम से घटाकार होती है और आत्मा अच्युत है । जैसे भीत विना चित्र हो सो है ही नहीं–इससे यह विश्व आकाश में चित्र है । जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार का विश्व आधार भीत विना चित्र होताहै तैसेही यह विश्व भी आकाश में चित्र हुआ है । इसीसे आत्मा अकर्ता है और विश्व जो दृष्टि आता है सो निरुपादान है इसका शोक और हर्ष क्याकरें ? यह प्रपञ्च सर्व आत्मरूप है प्रमादसे नहीं जानाजाता । हे साधो ! संवेदन से जो अहंकार फुरता है तब विश्व भासताहै । जैसे स्वप्ने में जो कुछ बनता है सो अपने स्वरूप से भिन्न देखता है और उसी में रागद्वेष भासते हैं पर जागे हुये और कुछ नहीं सब कल्पनाही का अनुभव था, तैसेही जब संवेदन उठगई तब सब विश्व अपना आप होजाता है । यह अहंकार होनाही विश्व है; जब अहंकार नष्ट हो

तब सर्व शब्द अर्थ कि, मैं दुःखी हूं; मैं सुखी हूं; यह नरक है; यह स्वर्ग है इत्यादिक परमार्थसत्ताही में फुरते हैं। सर्वका अधिष्ठान आत्मा है इससे सर्व आत्मस्वरूप है जो दृश्यसे रहित द्रष्टा है, ज्ञेयसे रहित ज्ञाता है और निर्बोध बोध है; इच्छासे रहित इच्छा है; अद्वैत है और नानात्व भी वही है; निराकार है और आकार भी वही है; अकिञ्चन और किञ्चन भी वही है और अक्रिय है और सर्वक्रिया भी वही करता है। ऐसे आत्मज्ञानको पाकर आत्मवेत्ता बिचरते हैं और जगत् का भान उनको किंचित् भी नहीं होता। जैसे सुवर्ण के भूषण जल के तरङ्ग होते हैं तैसेही सब विश्व उसको आत्मस्वरूप भासता है। ऐसे जानकर वे सर्व चेष्टा करते हैं। जैसे यन्त्री की पुतली में संवेदन नहीं फुरती तैसेही उनको जगत् में सत्यता नहीं फुरती क्योंकि; वे निरहंकार हुये हैं। हे मंकीऋषि! जैसे सुवर्ण में भूषण बन आये हैं तैसेही आत्मामें विश्व फुर आया है सो अहंकार फुरा है; इससे इसके अभावकी भावना करो और निरहंकार होकर चेष्टा करो। जैसे पालने में बालक के अङ्ग स्वाभाविक हिलते हैं तैसेही ज्ञानी की निर्वेदन चेष्टा होती है। हे ऋषे! जब तू इस मेरे उपदेश को धारेगा तब सुखसेही आत्मपद की प्राप्ति होगी और यह विश्वभी आत्मस्वरूप ही भासेगा। जो कुछ विश्व भासताहै सो सब आत्मरूप ही है। हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार कहा तब मङ्कीऋषि परमनिर्वाण पद को प्राप्त हुआ और परमसमाधि में एक वर्ष स्थित रहा शिलावत् कुछ न फुरा। हे रामजी! जैसे मङ्कीऋषि स्वरूप को प्राप्त हुआ है तैसेही तुम भी स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमङ्किऋषिनिर्वाणप्राप्तिर्नामशताधिक सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व आत्माका चमत्कार है और सर्व वही चिन्मात्रस्वरूप है। हे रामजी! मेरा आशीर्वाद है कि, तुम चिन्मात्रस्वरूप को प्राप्त हो रहो और जो तुम्हारा अपना शाप है उसको अपना आप जानो कि, तुम्हारे दुःख नष्ट होजावें। हे रामजी! तुम निर्वाण शान्त आत्मा होरहो; यथालाभ में सन्तुष्ट रहो, सत्य हुये भी असत्य की नाईं स्थित होरहो और राग द्वेषका रङ्ग तुमको स्पर्श न करे। हे रामजी! यह सब जगत् एकही स्थित है और वास्तव में एक में कुछ स्थित नहीं—आदि अन्तसे रहित एक चिदाकाश अपने आपमें स्थित है और शरीरादिकों नाश में भी अखण्डरूप है उसीका यह जगत् चमत्कारहै जो उपज उपज कर नाश होजाताहै। हे रामजी! ध्याता, ध्यान, ध्येय, त्रिपुटी भ्रान्तिमात्र सिद्ध है और वास्तव में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य सर्व आत्मस्वरूप है; उससे भिन्न कुछ नहीं और सदा एक रस है कदाचित् क्षोभ को नहीं प्राप्त होता। यद्यपि यह दशा हो कि; अमावस का

चन्द्रमा दृष्टि आवे और प्रलयकाल विना प्रलयकाल की वायु चले तौभी आत्मा को क्षोभ नहीं होता–आत्मपद सदा ज्योंका त्यों है। हे रामजी! ऐसे आत्मा के प्रमाद से जीव दुःख पाते हैं। जब आत्मा का प्रमाद होताहै तब देह और इन्द्रियां अपने आप में प्रत्यक्ष भासती हैं पर जैसे बालू से तेल नहीं निकलता; आकाश में वन नहीं होता और चन्द्रमा के मण्डल में ताप नहीं होता तैसेही आत्मा में देह–इन्द्रियां कदाचित् नहीं। हे रामजी! ये सर्वजीव आत्मरूप हैं, इससे इनको देह इन्द्रियों का सम्बन्ध कुछ नहीं; परन्तु इनको जो क्रियामें अभिमान होताहै इसीसे बन्धवान् होतेहैं। हे रामजी! जैसे नाव पर बैठेहुये पुरुष को भ्रान्ति से नदीतटके वृक्ष चलते भासते हैं तैसेही मन के भ्रम से आत्मा में चित्त और देह इन्द्रियां भासती हैं। वास्तव में चित्त, देह और इन्द्रियां कुछ भिन्न वस्तु नहीं ये भी आत्मस्वरूपही हैं तो निषेध किसका कीजिये? हे रामजी! मन और इन्द्रियादिक को अपनी सत्ता कुछ नहीं भ्रान्ति से भासती हैं। जैसे पर्वतपर उज्ज्वल मेघ होता है और उसमें वस्त्र बुद्धि निष्फल होती है तैसेही देहादिक हैं; इनमें अहंबुद्धि निष्फलहै। इससे हे रामजी! एक अखण्ड आत्मतत्त्व है और द्वैत कुछ नहीं जब तुम ऐसे धारो तो निरञ्जन स्वरूपहो। हे रामजी! ये सर्वशरीर चित्त के फुरनेसे स्थित हैं जैसे चित्त के फुरने से शरीर है तैसेही जीव में चित्तहै और परमात्मा में जीव है। हे रामजी! इस प्रकार फुरनेमात्र दृश्य हुई तो द्वैत तो कुछ न हुआ? इस प्रकार विचारपूर्वक दृश्यभ्रम को त्याग कर स्वरूप में स्थित हो रहो। हे रामजी! ऐसे धारणाकर सुखसे बिचरो और जो कुछ चेष्टा नीतिसे प्राप्तहो उसको करो परन्तु अपना अभिमान न हो। जब अपना अहंभाव दूर होगा तब स्पन्द हो अथवा निस्स्पन्द हो, समाधि में स्थित हो अथवा राज्य करो तुमको दोनों तुल्य होजावेंगे। जब अपनी अभिलाषा दूर होतीहै तब जैसी चेष्टा प्राप्त हो तैसाही हो वह फुरना भी अफुर है और एक अद्वैत की सत्ताही भान होगी। जैसे सम्यक्दर्शी को तरङ्ग और सोम जल एक भासता है तैसेही तुमको भी एकही भासेगा। चाहे जीवन्मुक्त होरहो अथवा विदेहमुक्त हो; समाधि हो अथवा राज्य हो तुमको दोनों तुल्य हैं। हे रघुकुल आकाश के चन्द्रमा रामचन्द्रजी! जीव को अपनी अभिलाषाही बन्धन करती है। जब अभिलाषा मिटतीहै तब कर्म करो अथवा न करो कुछ बन्धन नहीं क्योंकि; करने में भी आत्मा को अक्रिय देखता है और न करने में भी वैसेही देखता है और उसकी द्वैतभावना निवृत्त होजाती है इससे उसको चित्त, देह, इन्द्रियादिक सर्वपदार्थ आत्मरूपही भासते हैं। हे रामजी! मैं जानता हूं कि, तुम्हारे हृदय का मोह निवृत्त हुआ है अब तुम जागेहो। यदि कुछ तुमको संशय रहा हो तो फिर प्रश्न करो कि, मैं उत्तर दूं॥

इति श्रीयोगवा० नि० सुखेनयोगोपदेशोनामशताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥१४८॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! एक संशय मुझको और है उसको भी आप निवृत्त कीजिये। कोई कहते हैं कि, वीर्य से अंकुर होताहै और कोई कहते हैं कि, अंकुर से वीर्य होता है; कोई कहते हैं कि, जो कुछ कर्ता है सो दैवही कर्ता है और कोई कहते हैं कि, कर्म करतेहैं तब जन्म पातेहैं और कर्मही से सब कुछ होताहै किसीके अधीन नहीं, कोई कहते हैं कि, जब देह होती है तब कर्म करते हैं और कोई कहते हैं कि, कर्मों से देह होती है; बाजे कहते हैं कि, देह से कर्म होते हैं और कोई पुरुषप्रयत्न मानते हैं सो यह जैसे है तैसे तुम कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक २ मैं तुमको क्या कहूं; कर्म से दैव और घट से आकाश पर्यन्त जितने क्रिया, कर्म और द्रव्य हैं, ये सब विकल्पजाल भ्रान्तिमात्र हैं केवल आत्मस्वरूप अपने आपमें स्थित है–द्वैत कुछ नहीं हुआ। हे रामजी! जब संवेदन फुरतीहै तब सब कुछ भासता है और निःसंवेदन हुये कुछ नहीं। जैसे शीत, श्वेत आदिक बरफ़ के पर्यायहैं तैसेही कर्म, पुरुषप्रयत्न आदि सब आत्मा के पर्याय हैं। दैव पुरुषहै और पुरुष दैव है; कर्म देह है और देह कर्म है; वीर्य अंकुर है और अंकुर वीर्य है; दैव कर्म है और कर्म दैवहै और वही पुरुषप्रयत्न है; जो इनमें भेद मानते हैं वे पण्डितों में पशु हैं क्योंकि; उनका वीर्य अहंकार है–जब अहंकार हुआ तब सब कुछ सिद्ध हुआ। जैसे वीर्य से वृक्ष, फल, फूल और डाल होते हैं पर जो वीर्यही न हो तो वृक्ष कैसे उपजे। हे रामजी! इनका वीर्य संवेदन है। अहंकार, संकल्प और संवेदन तीनों पर्याय हैं। जब फुरना हुआ तब कर्म, देह, दैव सर्व सिद्ध होते हैं और जब फुरना मिटगया तब कुछ नहीं भासता। इसीको ज्ञान अग्नि से जलाओ कि, फूल, फल, टहनी सब जल जावें। यह जो संवेदन फुरती है कि, 'मैं हूं' यही संसार का वीर्य है; इसे ज्ञानरूपी अग्नि से जलाओ। जब अहंकार नष्ट होगा तब द्वैत कुछ न भासेगा। हे रामजी! यह जो प्रपञ्च भासता है उसका वीर्य संवेदन है और संवेदन का वीर्य शुद्ध संवित्तत्त्व है पर उसका वीर्य और कोई नहीं। हे रामजी! आदि जो स्पन्द संवेदन फुरना हुआ है उसीका नाम दैव है क्योंकि; वह कर्म से आदिही फुरताहै; फिर जो आगे क्रिया करती है सो कर्म है और इसीका नाम पुरुषप्रयत्न है। वह जो कर्म से आदिदैवरूप फुराहै सो क्या रूपहै? इसीका जो प्रकृत कर्म हुआ है उसी का नाम दैव कहते हैं। इन सबका वीर्य संवेदन है हे रामजी! वह स्वतःपुरुष चिन्मात्रपद एकही था; जब उससे विकार संयुक्त उत्थान हुआ तब प्रपञ्च भासने लगा और फिर जब उत्थान का अभाव हो तब प्रपञ्च का भी अभाव होजावे। हे रामजी! जब जीव कुछ बनता है तब सर्व आपदा उसको प्राप्त होती हैं। जैसे सुई वस्त्र में प्रवेश करतीहै तो उसके पीछे तागा भी चलाजाता है और जो सुई प्रवेश न करे तो तागा कहां से जावे; तैसेही जब अहंकार प्रवेश करता है तब सब आपदा भी

आती हैं और जब अहंकार निवृत्त हो तब सब विश्व आनन्दरूप और अपना आप भासता है। इससे अहंकार का अभाव करो क्योंकि; विश्व भ्रान्ति से सिद्ध है, आगे कुछ हुआ नहीं; सर्व आत्मस्वरूप है। हे रामजी! विश्व वासनामात्र है; जब वासना नष्ट हो तब परमकल्याण है। जिस प्रकार वासना क्षय हो वही युक्ति श्रेष्ठ है। जब युक्ति से वासना क्षय होगी तब चेष्टा भी होगी परन्तु फिर जन्म न देगी। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य दृष्टि आती है परन्तु ज्ञानी का संकल्प दग्धवीर्यवत् है–फिर जन्म नहीं देता और अज्ञानी का संकल्प कच्चे वीर्यवत् है–फिर जन्म देता है पर वास्तव में देखिये तो न कोई जन्म ही पाता है और न कोई मृतक होता है केवल अपने आप भाव में स्थित है और भ्रान्ति करके भिन्न २ भासते हैं। स्वरूप से सब अपनाही आप है–द्वैत कुछ नहीं हुआ और जो भासता है सो मिथ्या है। जैसे केलेके थम्भमें सार कुछ नहीं होता तैसेही सर्वप्रपञ्च मिथ्या है इसमें सार कुछ नहीं–इससे इसकी वासना त्यागकर अपने आप में स्थित हो। हे रामजी! जिस प्रकार तुम्हारी वासना निर्मूल हो उसी यत्न से निर्मूल करो तब परम शिवपद ही शेष रहेगा। हे रामजी! पुरुषप्रयत्न से जब निरहंकार होगे तब वासना आपही क्षय होजावेगी। वासनक्षय का उपाय अपने पुरुषप्रयत्न के सिवा और कोई नहीं। इससे हे रामजी! पुरुषार्थ करके इसी एकदेव के परायण होरहो, कर्म, दैव आदिक वही पुरुष होकर भासता है और कुछ हुआ नहीं–जैसे एकही पुरुष देवन का स्वांग धारे। हे रामजी! इस प्रकार विचारपूर्वक सब ईक्षणा को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिराशयोगोपदेशोनाम
शताधिकनवचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानवान्की बुद्धि निर्मल होजाती है। उसके हृदयमें शीतलता होती है और उसकी बुद्धि चैतन्यसे पूर्ण होतीहै और दूसरा भान उठ जाता है। इससे तुमभी नित अन्तर्मुख और वीतराग निर्वासी होरहो और चिन्मात्र, निर्मल और शान्तरूप सर्वब्रह्म की भावना करो। उस ब्रह्मपद को पाकर नीति के अनुसार अज्ञानीके समान चेष्टा करो; जो हर्षका स्थान हो उसमें हर्ष करो और शोकके स्थान में शोक करो पर हृदय में आकाश की नाईं रहो। हे रामजी! जब इष्ट की प्राप्ति हो तो उससे स्पर्श करो परन्तु हृदय में तृष्णा न करो; जब युद्ध प्राप्त हो तब शूरमा होकर युद्ध करो; जो दीन हो उसपर दया करो; जो राज्य प्राप्त हो तो उसको भोगो और जो कोई कष्ट प्राप्त हो तो उसको भी भोगो-ये सब चेष्टा अज्ञानी की नाईं करो पर हृदय में समता रक्खो; आत्मा से भिन्न कुछ न फुरने दो और रागद्वेष से रहित सदा निर्मल होरहो। जब तुम ऐसे निश्चय को धारोगे तब तुमको कुछ खेद न होगा। यद्यपि बड़ा

दुःख और इन्द्र का वज्र पड़े तौ भी तुमको स्पर्श न करेगा। हे रामजी! तुम्हारा रूप न शस्त्र से कटताहै न अग्नि से जलता है; न जल से गलता है और न पवन से सूखता है-केवल निराकार, अजर अमर और सबका अपना आप है। हे रामजी! कष्ट तब होताहै जब विलक्षण वस्तु होतीहै और अग्नि तब जलतीहै जब काष्ठ आदिक भिन्न वस्तु होती हैं; अग्निको अग्नि तो नहीं जलाती और जलको जल तो नहीं गलाता? इसमें तुम अपने आपमें स्थित होरहो। हे रामजी! संवित्‌रूप आलयवत् स्थिर स्थान है उसीमें स्थित होरहो—जैसे पक्षी सर्व ओर से संकल्प को त्यागकर आलय में स्थित होताहै तब सुख पाता है तैसेही जब तुम सर्वकलना को त्यागकर अन्तर्मुख संवित् में स्थित होगे तब राग द्वेषरूपी धुंध कोई न रहेगा। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र का बड़ा प्रवाह है, आश्रय विना उससे नहीं निकल सक्ता; सो आश्रय मैं तुमसे कहताहूं कि; अनुभवरूप आत्माको आश्रय करके संसारसमुद्र के पार होरहो; विलम्ब न करो और अपने आपमें स्थित होरहो। हे रामजी! यदि कोई संसाररूपी वृक्ष का अन्त लियाचाहे तो नहीं लेसक्ता। संसाररूपी एक वृक्ष है उसमें चैतन्यमात्र सुगन्ध है सो तेरा अपना आप है उसको ग्रहण कर। जो सर्वका अधिष्ठानहै जब उसको ग्रहण किया तब सबको ग्रहण किया। हे रामजी! जो कुछ प्रपञ्च तुमको भासता है सो सब आत्मरूप है—उसीकी भावना करो जाग्रत् में सुषुप्त होरहो और सुषुप्तिमें जाग्रत् हो-रहो। संसारकी सत्ता जो जाग्रत् है उसकी ओरसे सुषुप्त होरहो अर्थात् फुरनेसे रहित होकर तुरीयापद में स्थित होरहो जहां गुण का क्षोभ कोई नहीं और निर्मलशान्ति-रूप है और जहां एक और दो की कलना कोई नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसे जो शान्तिरूप तुरीयापदमें स्थित होना तुमने कहा सो तुम्हारेमें यह नहीं फुरता कि, मैं वशिष्ठ हूं; उसका रूप क्या है कि, अहंप्रतीति तुमको नहीं होती है? इतना कह वाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज! जब इस प्रकार रामजीने प्रश्न किया तब वशिष्ठजी चुप होगये और सबसभा संशयके समुद्रमें मग्न हुई। तब रामजी बोले, हे भगवन्! चुप होना तुम्हारा अयोग्य है। तुम साक्षात् विश्वगुरु और ब्रह्मवेत्ता हो। ऐसी कौन बात है जो तुमको न आवे? क्या मुझको समर्थ नहीं देखते? जब ऐसे रामजी ने कहा तब वशिष्ठजी एक घड़ी के उपरान्त बोले, हे रामजी! असामर्थ्य से मैं चुप नहीं हुआ परन्तु जैसा तेरे प्रश्न का उत्तर है वही दिखाया कि; तेरे प्रश्न का चुपही उत्तर है। जो प्रश्न करनेवाला अज्ञान हो तो उसको अज्ञान लेकर उत्तर देते हैं और जो ज्ञानवान हो उसको ज्ञान से उत्तर देते हैं। आगे तुम अज्ञानी थे तब मैं सवि-कल्प उत्तर देता था और अब तुम ज्ञानवान् हो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तूष्णीही है। हे रामजी! जो कुछ कहनाहै सो प्रतियोगी से मिला हुआ है; प्रतियोगी विना शब्द मैं

कैसे कहूं ? आगे तुम सविकल्प शब्द के अधिकारी थे और अब तुमको निर्विकल्प का उपदेश कियाहै। हे रामजी! शब्द चार प्रकार के हैं-एक सूक्ष्म अर्थ का; दूसरा परमार्थ का; तीसरा अल्प और चौथा दीर्घ। तीनि कलङ्क इनमें रहते हैं-एक संशय; दूसरा प्रतियोग और तीसरा भेद। जैसे सूर्यकी किरणों में त्रसरेणु रहते हैं तैसेही शब्द में कलङ्क रहते हैं पर जो पद मन और वाणी से अतीत हैं उनको कलङ्कित शब्द कैसे ग्रहण करें ? हे रामजी! काष्ठमौन उसको कहतेहैं जहां इन्द्रियां न फुरें; न मन फुरे और कोई फुरना न फुरे-ऐसे पद को मैं वाणीसे कैसे कहूं ? जो कुछ बोला जाता है सो सविकल्प होता है-तुम्हारे उस प्रश्न का उत्तर तूष्णी है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, बोलना सविकल्प और प्रतियोगी सहित होता है तो जो कुछ ब्रह्म में दूषण है उसका निषेध करके कहो मैं प्रतियोगी को न विचारूंगा। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशस्वरूप; चैत्य से रहित; चिन्मात्र; शान्तरूप; सम और सर्व कलना से रहित केवल आत्मत्वमात्र हूं; और तुम और जगत् भी चिदाकाश है अहं त्वं कोई नहीं क्योंकि; दूसरी सत्ता कोई नहीं सब अहंसंवेदन से रहित शुद्ध चिदाकाश है। जो सापेक्षक अहं अहं फुरती है और मोक्ष की भी इच्छा होती है तो सिद्ध नहीं होती क्योंकि; आपको कुछ मानकर फुरती है इससे एक अहंकार के कई अहंकार होजाते हैं। यही अहं गलेमें फांसी पड़ती है; जब अहन्तासे रहित हो तब आत्मपद को प्राप्त हो। हे रामजी! जब शव की नाईं होजावे और कुछ अपना अहन्ता अभिमान न फुरे तब संसारसमुद्र से पार हो और जबतक द्वैतसे मिला हुआ जीता है तबतक जन्म मरण के बन्धन में है कदाचित् मुक्त नहीं होता। जैसे जन्म का अन्धा चित्र की पुतली को नहीं देखसक्ता तैसेही अहन्तासंयुक्त मुक्ति नहीं पाता। जब अहन्ता का अभाव हो तब कल्याण हो-स्वरूप के आगे अहन्ताही आवरण है। हे रामजी! जब जीव चैतन्य हुआ फुरा तब उसको बन्धन पड़ा और जब जड़-अफुर हो तब कल्याण हो। जब चैतन्योन्मुखत्व होताहै तब इसका नाम पशु होता है और पशु का शरीर पा जब चैत्य से रहित शुद्ध चैतन्य प्रत्यक्आत्मामें स्थित होताहै तब मनुष्यजन्म सफल होताहै। मनुष्यजन्म पा जो कुछ पाना है सो पाता है। हे रामजी! यदि मनुष्यजन्म को पाकर न जानेगा तो और किस जन्म में जानेगा ? यह संसार चित्त के फुरने से उत्पन्न हुआ है; जब चित्तसंसरने से रहित हो तब केवल केवलीभावस्वरूप भासे। ज्ञानवान् की दृष्टि में अब भी कुछ नहीं हुआ केवल आत्मस्वरूप ही भासता है और फुरना न फुरना दोनों तुल्य दिखाई देते हैं। अन्तःकरणचतुष्टय आत्मस्वरूप है और अज्ञानी को भिन्न २ भासते हैं इसीसे चित्त आदिक जड़ और मिथ्या हैं और आत्मस्वरूप से सब आत्मस्वरूपहैं आत्मा देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से रहित है-

ज्ञानी को सर्व आत्माही भासता है चाहे वह कैसीही चेष्टाकरे वह लोक, धन, पुत्र आदि सर्वईक्षणासे रहित है; केवल आत्म अनुभवरूप में स्थित है और सबको अपना आप जानता है। हे रामजी! जिसपद को वह प्राप्त होताहै उस पद को मेरी वाणी नहीं कहसक्ती वह अनिर्वाच्यपद है। जो पुरुष कहता है कि, "अहंब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूं और यह जगत् है तो जानिये कि, उसको ज्ञान नहीं उपजा—उसको शास्त्र श्रवण का अधिकार है। जैसे कोई कहे कि, मेरे हाथ में दीपक है और अन्धकार भी मुझको दृष्टि आता है तो जानिये कि, इसके हाथ में दीपक नहीं; तैसेही जबलग जगत् भासता है तबलग ज्ञान नहीं उपजा यह जीव निर्वाण होजावेगा। जब प्रत्यक् चैतन्य में स्थित हो तब जड़ होजावेगा और संसार का भास कुछ न रहेगा—ऐसीभी दृष्टि न रहेगी कि, मैं सम्यक्दर्शी हूं, केवल निर्वाण होजावेगा। हे रामजी! अबभी निर्वाणपद है, किससे किसको कौन उपदेश करे? केवल एकरस शून्य है; शून्य और आत्मा में कुछ भेद नहीं और जो कुछ भेदहै उसको ज्ञानवान् जानते हैं वाणी की गम नहीं। उसमें जो अनन्त संवेदन फुरती है तिससे संसार फुरता है और संवेदन ही से लीन होता है। जैसे पवन से अग्नि प्रज्वलित होता है और पवन ही से लीन होताहै तैसेही जब संवेदन बहिर्मुख फुरतीहै तब संसार भासता है और जब अन्तर्मुख होतीहै तब जगत् लीन होजाता है—इसमें संसार फुरनेमात्रहै। जैसे आकाश में नीलता भ्रम से भासती है तैसेही आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं केवल ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्योंहै—उसीमें स्थित होरहो। जब उसमें स्थित होगे तब अशेषभाव मिटजावेगा। हे रामजी! तब ग्राह्य और ग्राहकसंम्बन्ध भी जाता रहेगा और केवल परमात्मतत्त्व जो शुद्ध, अजर और अमर है उसमें खाते, पीते, चलते, फिरते वृत्ति रहेगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभावनाप्रतिपादनोपदेशोनाम
शताधिकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ १५०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिस प्रकार पुरुष आत्मपद को प्राप्त होताहै सो सुनो। जब निरहंकार होता है तब आत्मपद को प्राप्त होताहै। जो सर्वात्माहै उसको आवरणकरनेहारी अविद्याही है। जैसे सूर्यमण्डल को बादल ढाँप लेताहै तैसेही अविद्या आत्मा में आवरण करती है। उस अविद्या से उन्मत्त की नाईं मूर्ख चेष्टा करते हैं और जो अहंमत्ता से रहित ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको कोई दुःख नहीं स्पर्श करता—सदेह भी निर्दुःख होताहै। जैसे भीतपर लिखी युद्ध की सेना देखनेमात्र क्षोभित दृष्टि आती है परन्तु शान्तरूप है; तैसेही ज्ञानवान् की चेष्टा में भी क्षोभ दृष्टि आता है परन्तु सदा अक्षोभ और निर्वाणरूप है और वासनासहित दृष्टि आता है पर सदा निर्वासनिक है। जैसे जल में लहर और चक्र क्षोभ दृष्टि आते हैं परन्तु जल से भिन्न

नहीं; तैसेही ज्ञानवान् को ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता। जिसके हृदय से दृश्यभाव शान्त होगया है और बाहर से क्षोभवान् दृष्टि आता है तौभी वह मुक्तरूप है। जैसे धुयें के बादल आकाश में हाथी, घोड़ा और पहाड़रूप दृष्टि आते हैं परन्तु हैं कुछ नहीं तैसेही जगत् दृष्टि आताहै परन्तु है कुछ नहीं; अहंकारसे भासता है और अहंकार से रहित निर्विकार शान्तरूप होताजाता है। ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है उसको पाकर ज्ञानवान् शोभता है। शरत्काल का आकाश, क्षीरसमुद्र और पूर्णमासी का चन्द्रमा भी ऐसा नहीं शोभता जैसा ज्ञानवान् पुरुष शोभता है। हे रामजी ! अहन्ताही इस पुरुष को मल है; जब अहन्ता नष्ट हो तब स्वरूप की प्राप्ति हो और संसार के पदार्थों की भावना निवृत्त हो क्योंकि; भ्रम से उपजी थी। जो वस्तु भ्रम से उपजी होती है उसका भ्रम के अभाव हुये अभाव होजाताहै। जैसे आकाश में धुयें का बादल नाना प्रकार के आकार हो भासता है पर है नहीं; तैसेही यह विश्व अनहोता भासता है और विचार किये से नहीं रहता। हे रामजी ! जबतक संसार की वासना है तबतक बन्ध है और जब वासना निवृत्त हो तब आत्मपद की प्राप्ति हो, संपूर्ण कलना मिटजावे और इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट में तुल्य होजावे। तब वह यद्यपि व्यवहार कर्ता हो तौभी शान्तरूप है। जैसे शब्द को राग द्वेष नहीं फुरता तैसेही ज्ञानी निर्वाणपद को प्राप्त होता है जिस में सत् असत् शब्द कोई नहीं केवल ब्रह्मस्वरूप है बल्कि ब्रह्म कहना भी वहां नहीं रहता केवल आत्मतत्त्वमात्र है और अद्वैत है। हे रामजी ! विश्वभी वहीरूप चैतन्य आकाश है। जैसी २ भावना होती है तैसाही तैसा चैतन्य होकर भासता है। जब जगत् की भावना होती है तब नाना प्रकार के आकार दृष्टि आते हैं और ब्रह्म की भावना से ब्रह्म भासता है। जैसे विष में यदि अमृत की भावना होतीहै और विधिसंयुक्त खाते हैं तो वह विष भी अमृत होजाताहै और जो विधि विना खाइये तो मृत्युका कारण होताहै; तैसेही इस संसारको यदि विधि संयुक्त देखिये अर्थात् विचार करके देखिये तो ब्रह्मस्वरूप भासता है और जो विचार विना देखिये तो जगद्रूप भासता है पर विचार तब होता है जब अहंकार निवृत्त होता है। अहंकार आकाश में उपजा है; आकाश शून्यता में उपजा है और शून्यता आत्मा के प्रमाद से उपजी है। फिर अहंकार से जगत् हुआ है और अहंकार मिथ्या है। हे रामजी ! शरीर आदिक चित्तपर्यन्त विचारकर देखिये तो दृष्टि कहीं नहीं आते; इनमें जो अहंप्रत्यय है वह भ्रान्तिमात्र है। जब तुम विचार करके देखोगे तब मरीचिका के जलवत् भासेगा। हे रामजी ! जैसे स्वप्ने के पर्वतके त्यागने में कुछ यत्न नहीं तैसेही मिथ्या संसारके त्यागनेमें कुछ यत्न नहीं—फिर इसका निर्णय क्या कीजिये? जैसे बन्ध्या के पुत्र की वाणी विचारिये कि, सत्य कहता है अथवा असत्य कहता है

तो मिथ्या कल्पना है क्योंकि, बन्ध्या का पुत्र हैही नहीं तो उसका विचार क्या करिये; तैसेही प्रपञ्च है नहीं तो इसका निर्णय क्या कीजिये ? इससे तुम ऐसे होरहो जैसे मैं कहताहूं तब आत्मपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी ! ऐसी भावना करो कि, न मैं हूं और न जगत् है जब अहंकार ही न रहा तब कलना कहां हो; इसका होनाही अनर्थ है। जब ऐसा विचार उत्पन्न होताहै तब भोगों की वासना क्षय होजाती है और सन्तों की संगति होती है-अन्यथा भोग की वासना नष्ट होती। हे रामजी ! जबतक अहन्ता उठती है अर्थात् दृश्य और प्रकृति से मिलाप है तबतक द्वैतभ्रम नहीं मिटता और जब अहंकार का उत्थान मिटजावे तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ता होरहे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहंससंन्यासयोगोनाम
शताधिकएकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ १५१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब अहन्ताका उत्थान होताहै तब स्वरूपका आवरण होता है और जब अहन्ता मिटजाती है तब स्वरूप की प्राप्ति होती है। इस संसार का वीर्य अहन्ताही है; सो अहंकार ही मिथ्या है तो उसका कार्य कैसे सत्य हो और जो प्रपञ्च मिथ्या हुआ तो पदार्थ कहांसे सत्य हों ? हे रामजी ! ऐसा जो ब्रह्म है उसकी युक्ति क्या है ? संकल्पपुरुषभी असत्यहै; उसका संशयभी मिथ्याहै और जिस प्रति प्रश्न करता है सोभी मिथ्याहै । जैसे स्वप्ने में द्वैतकलना होती है सो असत् है तैसेही यह जगत् द्वैत भी असत्य है। हे रामजी ! यह सब जगत् इसके भीतर स्थित है और प्रमाद से बाहर भासता है। यह अपनाही स्वप्ना दृष्टि आताहै कि, भीतर की बाहर सृष्टि भासती है। इससे यह जगत् सब चिद्रूप है-भिन्न कुछ नहीं। यह चैतन्यसत्ता आकाशसे भी अति सूक्ष्म और स्वच्छ है। हे रामजी ! यह जगत् चित्त से चेता है इससे कहीं हुआ नहीं और न किसीका नाश होताहै; न कोई उत्पन्न होताहै, न कहीं जन्म है और न मरण है-सर्वब्रह्म ही है। हे रामजी ! जगत् के नाश हुये कुछ नाश नहीं होता क्योंकि, हुआ कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने के पहाड़ और संकल्पपुर नष्ट हुये तो क्या नष्ट हुये वे तो कुछ उपजेही नहीं, तैसेही यह जगत् है। यह विचारकर देखाहै कि जो वस्तु अविचार से उपजी होतीहै सो विचार करने से नहीं रहती। जैसे जो पदार्थ तम से उपजा होताहै सो प्रकाश हुये से नहीं रहता तैसेही यह जगत् है; अविचार से भासता है और विचार करेसे नाश होजाताहै। हे रामजी ! यह जगत् संकल्पहीमात्रहै-जैसे संकल्पनगर होता है तैसेही यह संसार है इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं; इससे रूप, इन्द्रियां और मन के अभाव की चिन्तना करना। यह संसार ऐसाहै जैसे समुद्र में चक्र; इसमें प्रीतिभावना करनी अज्ञानता है। हे रामजी ! कोई ऐसेहैं कि, बाहर से शान्तरूप दृष्टि आते हैं पर उनके हृदय में क्षोभ होता है और कोई पुरुष ऐसेहैं कि,

हृदय से शीतल हैं और बाहर नाना प्रकार की चेष्टा करते हैं पर जिनके दोनों मिट जाते हैं वे मोक्ष के भागी होते हैं और उनके भीतर बाहर एकता होती है–जैसे समुद्र में घट भरके रखिये तो उसके भीतर बाहर जलही होताहै। हे रामजी! जिस पुरुष ने आत्मा को ज्योंका त्यों जानाहै उसको भय, शोक और मोह नहीं होता वह केवल स्वच्छरूप शान्त आत्मामें स्थितहै। भय तब होताहै जब दूसरा भासता है सो उसको सर्वद्वैत का अभाव होकर शान्तरूप होताहै। हे रामजी! सम्यक्‌दर्शी को जगत् दुःख नहीं देता और असम्यक्‌दर्शी को दुःख देताहै। जैसे रस्सी को जो जानता है उसको रस्सी ही भासती है और जो नहीं जानता उसको सर्प भासताहै और भय पाता है; तैसेही जिसको आत्मा का साक्षात्कारहै उसको जगत्‌कल्पना कोई नहीं भासती केवल चिदानन्दब्रह्म अधिष्ठानरूप भासता है और जिसको अधिष्ठान का अज्ञान है उसको जगत् द्वैतरूप होकर भासताहै और वह रागद्वेष में जलता है। हे रामजी! और जगत् कोई नहीं इसके अनुभव में ही जगत् कल्पना होती है और अज्ञान से द्वैतरूप हो भासता है पर जब अपने स्वभावसत्ता में जागताहै तब सब अपना आप भासता है। जैसे स्वप्न में अपना आपही द्वैतरूप हो भासता है और रागद्वेष उपजता है पर जब जागता है तब सब आत्मरूप हो भासता है; तैसेही यह जगत् है; न इस जगत् का कोई निमित्त कारण है और न कोई उपादान कारणहै। जो पदार्थ कारण विना भासे उसे असत् जानिये वह वास्तव में उपजा नहीं भ्रमसे सिद्ध हुआ है। जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है तैसेही यह जगत् अकारण है और भ्रम करके भासता है। हे रामजी! शास्त्र की युक्तिसे विचार करके देखो तो द्वैतभ्रम मिटजावे रञ्चकमात्र भी कुछ बना नहीं। जैसे आकाश में नीलता नहीं और मरुस्थल में नदी नहीं तैसेही इस जगत् को भी जानो। आत्मा शुद्ध और अद्वैत है उसमें अहंकृत का फुरनाही दुःख है और दुःख का कारण है। जो स्वरूप का प्रमाद न हो तो अहंकृत भी दुःख का कारण नहीं और जो स्वरूप भूला तो अहंकृतादिक दृश्य विष की बेलि बढ़ती जातीहै और नाना प्रकार के आकार धारती है और वासना दृढ़ होतीहै। जबतक वासना होतीहै तबतक बन्ध है और जब वासना निवृत्त हो तबहीं कल्याण होता है। हे रामजी! जिस दृश्य की जीव भावना करता है वह जैसे समुद्र में तरङ्ग और चक्र होते हैं सो समुद्र से भिन्न कुछ नहीं होते तैसेही अहंकार आदिक जो दृश्य हैं सो हैं नहीं और जो हैं नहीं तो उनकी इच्छा करनी मूर्खताहै। ज्ञानवान्‌की वासना क्षय होजातीहै और उसको बन्धन का कारण नहीं होता क्योंकि; संसार की सत्यता उसके हृदय में नहीं रहती और सत्यता इससे नहीं रहती कि; आत्मा का साक्षात्कार हुआ है। जब आत्मा का प्रमाद होता है तब अहन्ता उदय होती है और दृश्य भासतीहै। जैसे नेत्र के खोलने से दृश्य

का ग्रहण करताहै और जब नेत्र मूंदलिये तब दृश्यरूप का अभाव होजाताहै तैसेही जब अहन्ता उदय होती है तब दृश्य भी होती है और जब अहन्ता नष्ट होती है तब संसार का अभाव होजाताहै। हे रामजी! अहंन्ता का उदय होनाही अज्ञानता है और अहन्तासेही बन्ध है; अहन्तासे रहित मोक्ष है—आगे जो इच्छाहो सो करो। हे रामजी! देह, इन्द्रियादिक मृगतृष्णा के जलवत् हैं; इनमें अहन्ता करनी मूर्खता है। ज्ञानवान् अहन्ता को त्यागकर आत्मपदमें स्थित होताहै और संसारके इष्ट अनिष्ट में हर्ष और शोक नहीं करता। जैसे आकाशमें बादल हुआ तौभी वह ज्योंका त्यों है; तैसेही ज्ञानी ज्योंका त्योंहै। उसमें अहंकार नहीं होता इससे वह सुखरूपहै। हे रामजी! रूप, दृश्य, इन्द्रियां और मन उसके जाते रहते हैं। जैसे बन्ध्या के पुत्र की नृत्य नहीं होती तैसेही ज्ञानी के रूप, अवलोक, मनस्कार नष्ट होजाते हैं क्योंकि; उसको सर्व ब्रह्म भासताहै और द्वैतभावना उसकी नष्ट होजातीहै संसार का बीज अहन्ता अज्ञानियों में दृढ़ है। हे रामजी! अहन्ता से जीव की बुद्धि बुरी होजाती है अर्थात् स्थूल होजाती है इससे वह दुःख पाता है। इस दुःख के नाश का उपाय यह है कि, सन्तजनों के वचनों की भावना करना और विचारकरके हृदयमें धारणा—इससे अहन्तारूपी दुःख नष्ट होजाता है। सन्तों के वचनों का निषेध करना मुक्तिफल के नाश करनेवालाहै और अहन्ता-रूपी वैताल के उपजाने वालाहै—इसलिये सन्तों की शरण में जाओ और अहन्ताको दूर करो इसमें कुछ खेद नहीं; यह अपने अधीन है। अपने अभाव के चिन्तने में क्या खेद है? हे रामजी! आत्मपद सन्तों की संगतिद्वारा बहुत सुगमता से प्राप्त होताहै। ज्ञानवानों की पृथक् २ सेवा करो और उनके वाक्य विचार करके बुद्धि को तीक्ष्ण करो; जब बुद्धि तीक्ष्ण होगी तब अहन्तारूपी विष की बेलि का नाश करेगी। यह विचार करना चाहिये कि; 'मैं कौन हूं;' और 'यह जगत् क्या है;' इस प्रकार सन्तों के वचनों और शास्त्रों के वचनोंके निर्णय कियेसे सत्य २ होताहै और जो असत्य है वह असत्य होजाता है। सत्य जानकर आत्मा की भावना करना और असत्य जगत् को मृगतृष्णा के जलवत् जानकर भावना त्यागना तो जिनको सुख जानकर पानेकी भावना करता था सो दुःखदायी भासते हैं। जैसे अधिष्ठान के अज्ञान से मरुस्थल में जल जानकर मृग दौड़ताहै तो दुःख पाताहै तैसेही सबका अधिष्ठान आत्मतत्त्व है; सो शुद्धरूप, परमशान्त और परमानन्दस्वरूपहै जिसको पाकर फिर दुःखी नहीं होता। हे रामजी! बन्धन का कारण भोग की वासना है पर भोगों से शान्ति नहीं होती; जब सन्तों की संगति होती है तब कल्याण होता है और अनात्म में अहंभाव छूटजाता है; और प्रकार शान्ति नहीं होती। हे रामजी! बालक की नाईं हमारे वचन नहीं हैं, हमारा कहना यथार्थ है क्योंकि; हमको स्वरूप का स्पष्ट भान है। जब अहंता मिटजावे

तब सुखी हो। इससे अहंता का नाश करो। जब अहंता नाश हो तब जानिये कि, चैत्यकी भावना मिटजातीहै। हे रामजी! जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होताहै तब अहंता-रूपी अन्धकार नष्ट होजाता है। ज्ञान तब होता है जब सन्तों का विचार; विषयों से वैराग्य और स्वरूप का अभ्यास करे—इससे स्वरूप की प्राप्ति होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणयुतयुक्त्युपदेशोनाम शताधिकद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ १५२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिन पुरुषों ने ज्ञानसे अपना अज्ञान नष्ट नहीं किया उन्होंने करने योग्य कुछ नहीं किया। अज्ञान से पहले अहंभावना होतीहै तब आगे जगत् भासता है और लोक परलोक की भावना करता है और इसी वासना से जन्म मरण पाताहै। हे रामजी! जबतक हृदयमें संसार का शब्द अर्थ दृढ़ है तबतक शब्द अर्थ के अभाव की चिन्तना करे और जहां जगत् भासता है तहां ब्रह्म की भावना करे। जब ब्रह्मभावना करेगा तब संसार के शब्द अर्थ से रहित होगा और आत्म-पद भासेगा। हे रामजी! इस संसारमें दो पदार्थ हैं—एक यहलोक और दूसरा परलोक। अज्ञानी इस लोक का उद्यम करते हैं और परलोक का नहीं करते इससे दुःख पाते हैं और तृष्णा नहीं मिटती और विचारवान् पुरुष परलोक का उद्यम करतेहैं इससे यहां भी शोभा पाते हैं और परलोक में भी सुख पाते हैं और उनके दोनों लोकों के कष्ट मिटजाते हैं। जो इसीलोक का उद्यम करते हैं उनको दोनोंही दुःखदायक होते हैं अर्थात् यहां तृष्णा नहीं मिटती और आगे जाकर नरक भोगते हैं। जिन पुरुषों ने आत्माका यत्न कियाहै उनको वही सिद्ध होताहै और वे सुखी होते हैं और जिसने यत्न नहीं किया वह दुःखी होता है। इससे अहंकार से रहित होनेसे ही आत्मपद की प्राप्ति है। जबतक प्रच्छिन्न अहंकार होताहै तबतक दुःखी होताहै और नाम इस का जीव है। जो कुछ फुरता है उससे विश्व की उत्पत्ति होती है। जैसे नेत्रों के खोलने से रूप भासता है और नेत्रोंके मूंदने से रूपका अभाव होजाताहै; तैसेही जब अहंता फुरती है तब दृश्य भासती है और जब अहंता का अभाव होता है तब दृश्य का भी अभाव होजाता है। अहंता अज्ञान से सिद्ध होती है और ज्ञान के उपजे से निवृत्त होजाती है। हे रामजी! यदि पुरुष अपना प्रयत्न करे और साथही सत्संग करे तो इस संसारसमुद्र से उतर जावेगा; और किसी प्रकार नहीं तरता। हे रामजी! युक्ति करके जैसे विषभी अमृत होजाताहै तैसेही पुरुषार्थसे सिद्धि प्राप्त होतीहै। हे रामजी! इस जीव को दो व्याधि रोग हैं—एक यह लोक और दूसरा परलोक है उनसे दुःख पाताहै। जिनपुरुषों ने सन्तों के मिलापरूपी औषध से चिकित्सा की है वे मुक्तरूप हैं और जिन्होंने वह औषध नहीं की वे पुरुष पण्डित हों तौ भी दुःख पातेहैं। सो औषध

क्या है? शम, दम और सत्संग; इन साधनों के यत्न से जिसने आत्मपद पाया है वह कल्याणमूर्ति है। हे रामजी! चिकित्सा की औषध भी यही है। जिसने किया है उसने किया और जिन्होंने न किया वे भोगमें लम्पट रहे। व वे मूर्ख वहां पड़ेंगे जहां फिर कोई औषध न पावेंगे। इससे, हे रामजी! इन भोगों का त्याग करो और आत्म-विचार में सावधान होरहो—यही औषध है। हे रामजी! जिसपुरुष ने मन नहीं जीता वह मूढ़ है—वह भोगरूपी कीचड़ में मग्न है और आपदा का पात्र है। जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं, तैसेही उसको आपदा प्राप्त होती है। जिसकी तृष्णा भोग से निवृत्त हुई है और वैराग्य उपजा है वह मुक्त होताहै। जैसे जीवने की आदि बा-लक अवस्थाहै तैसेही निर्वाणपदकी आदि वैराग्यहै। हे रामजी! जैसे दूसरा चन्द्रमा, संकल्पनगर और मृगतृष्णा का जल भ्रम से भासता है तैसेही यह जगत् भ्रम से भा-सताहै। संसारका बीज अहंताहै; जब अहंता उदय होतीहै तब रूप और अवलोक भासतेहैं, इससे यही चिन्तना करो कि, मैं नहीं। जब यही भावना करोगे तब शेष जो रहेगा सो तुम्हारा शान्तरूप है; जिसमें आकाश भी शून्य है और अहं के उत्थान से रहित जड़ अजड़ केवल आत्मत्वमात्रहै। जड़ताका उसमें अभावहै इससे अजड़ है और केवल ज्ञानमात्र है। उसमें विश्व ऐसे है जैसे जल में तरङ्ग; पवन में स्पन्द और आकाश में शून्यता। आत्मा से भिन्न कुछ नहीं जो आत्मा से कुछ भिन्न होता तो प्रलय में नाश होजाता पर आत्मा तो प्रलयकाल में भी रहताहै। जैसे सूर्य की किरणों में सदा जलाभास रहता है तैसेही आत्मामें विश्व का चमत्कार रहताहै और जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवरूप होती है तैसेही यह जाग्रत्सृष्टि भी अनुभव है। आत्मा भीतर बाहरसे रहित, अद्वैत, अजर, अमर, चैत्यसे रहित, चैतन्य और सर्वशब्द अर्थ का अधिष्ठानहै; फुरने से दूसरा भासता है और फुरना न फुरना वही है। जैसे चलना और ठहरना दोनों पवन के रूप हैं—जब चलताहै तब भासता है और जब ठहरताहै तब नहीं भासता; तैसेही जब चित्तशक्ति फुरती है तब विश्वरूप होकर भासती है और जब अफुर होतीहै तब केवलमात्र पद रहताहै सो निराभास, अविनाशी, निर्वि-कल्प और सबका अपना आप है और सत्य, असत्य; जड़, चैतन्य आदिक शब्द अर्थ सब उसी अधिष्ठानसत्ता में फुरते हैं। इससे उसी अपने स्वरूपमें स्थित होरहो जो परमार्थसत्ता आत्मतत्त्व अपने स्वभाव में स्थित और अहं त्वं से रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशान्तिस्थितियोगोपदेशो नामशताधिकत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ १५३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिनको दुःख सुख चलाते हैं और जो इन्द्रियों के इष्ट

में सुखी और अनिष्ट में दुःखी होते हैं और राग द्वेष के आधीन बर्तते हैं उनको ऐसे जानो कि, वे नष्ट हुये हैं। जिनका पुरुषप्रयत्न नष्ट हुआ है वे बारम्बार जन्म पावेंगे और जिनको सुख दुःख नहीं चलाते उनको अविनाशी जानो। वे जन्ममरण की फांसी से मुक्तहुये हैं और उनको शास्त्र का उपदेश नहीं है। हे रामजी! राग द्वेष तब फुरताहै जब मन में इच्छा होती है और इच्छा तब होतीहै जब संसार की सत्यता दृढ़ होतीहै। जिसको असत्य जानता है उसको बुद्धि नहीं ग्रहण करती और इच्छाभी नहीं होती और जिसको सत्य जानता है उसमें बुद्धि दौड़ती है। हे रामजी! अज्ञानी को संसार सत्य भासता है इससे वह दुःख पाता है। जब वह शान्तपद का यत्न करे तब दुःख से मुक्त हो। जिसमें अहं, त्वं, जगत, ब्रह्मआदि शब्द कोई नहीं और जो केवल चिन्मात्र आकाशरूप है उसमें ये शब्द कैसे हों? ये सब शब्द विचार के निमित्त कहे हैं पर वास्तवमें शब्द कोई नहीं अद्वैत और चैत्यसेरहित चिन्मात्रहै। जब सर्वशब्दका बोध किया तब शेष शान्तपद रहता है–अभाव से नहीं–इसीसे आत्मत्वमात्र कहा है और जगत् फुरनेसे उसीमें भासताहै। उस जगत्में जहां ज्ञप्ति जातीहै उसका ज्ञान होता है। हे रामजी! एक अधिष्ठान ज्ञान है और दूसरा ज्ञप्तिज्ञानहै; अधिष्ठान ज्ञान सर्वज्ञ ईश्वर को है और ज्ञप्तिज्ञान जीव को है। एक लिङ्ग शरीर का जिसको अभिमान है वह जीव है और सर्वलिङ्ग शरीर का अभिमानी ईश्वर है। जहां इस जीव की ज्ञप्ति पहुँचती है उसको जानता है। जैसे एक शय्यापर दो पुरुष सोये हों और एकको स्वप्न आवे उसमें मेघ गर्जते हैं और दूसरा वह मेघ का शब्द नहीं सुनता क्योंकि; ज्ञप्ति उसके में नहीं आई परन्तु मेघ तो उसके स्वप्ने में है। जैसे सिद्ध विचरते हैं और जीव को दृष्ट नहीं आते क्योंकि; इसकी ज्ञप्ति नहीं जाती और सब सृष्टि बसती है तिसका ज्ञान ईश्वर को है सो सृष्टि भी संकल्पमात्र है; कुछ बनी नहीं और भ्रम से भासती है। जैसे बादल में हाथी, घोड़े, मनुष्य आदिक विकार भासतेहैं वे भ्रान्तिमात्र हैं तैसेही आत्मा के अज्ञान से यह सृष्टि नाना प्रकार की भासती है, हे रामजी! यह आश्चर्य है कि, आत्मामें अहंकार का उत्थान होताहै कि, मैंहूं और अपने को वर्णाश्रम मानता है पर विचार करके देखिये तो अहं कुछ वस्तु नहीं सिद्ध होतीहै और अहं अहं फुरती है। यह आश्चर्य हैकि, भूत कहांसे उठा है और शुद्ध आत्मब्रह्म यह कैसे हुआ है? अनहोते अहंकार ने तुमको मोहित कियाहै इसके त्यागने में तो कुछ यत्न नहीं इसका त्याग करो। हे रामजी! यह मिथ्यासंकल्प उठाहै। जब अहंकार का उत्थान होता है तब जगत् होताहै और जब अहन्ता मिटजातीहै तब जगतका भी अभाव होजाताहै क्योंकि; कुछ बना नहीं भ्रममात्र है। जैसे संकल्पनगर और स्वप्न की सृष्टि भ्रममात्र है तैसेही यह विश्व भी भ्रममात्र है। कुछ बना नहीं और आत्मतत्त्वरूपहै–भिन्न नहीं।

जैसे पवन के दोरूप हैं चलताहै तौभी पवन है और ठहरता है तौभी पवन है; तैसेही विश्व भी आत्मस्वरूप है। जैसे पवन चलता है तब भासता है और ठहर जाताहै तब नहीं भासता, तैसेही चित्त चैत्त्यशक्ति का चमत्कार है; जब फुरता है तब विश्व भासता है पर तौभी चिद्घन है और जब ठहर जाताहै तब विश्व नहीं भासता परन्तु आत्मा सदा एकरसहै। जैसे जलमें तरङ्ग और सुवर्ण में भूषण हैं सो भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा में विश्व कुछ हुआ नहीं—आत्मस्वरूपही है। ज्ञप्ति भी ब्रह्म है और ज्ञप्ति में फुरा विश्व भी ब्रह्म है तो विधि, निषेध और हर्ष, शोक किसका करें? सब वही है। हे रामजी! संकल्प को स्थिर करके देखो कि, सब तुम्हारा ही स्वरूपहै। जैसे मनुष्य शयन करता है तो उसको स्वप्नसृष्टि भासती है और जब जागता है तब देखता है कि; सब मेराही स्वरूप है; तैसेही जाग्रत् विश्व भी तुम्हारा स्वरूप है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठते हैं सो जलरूप हैं तैसेही विश्व आत्मस्वरूप है और जैसे चितेरा काष्ठ में कल्पना करता है कि; इतनी पुतलियां निकलेंगी और जैसे मृत्तिका में कुम्हार घटादिक कल्पता है कि, इसमें इतने पात्र बनेंगे पर काष्ठ और मृत्तिका में तो कुछ नहीं; ज्योंका त्यों काष्ठ है और ज्यों की त्यों मृत्तिका है परन्तु उनके मन में आकार की कल्पना है; तैसेही आत्मा में संसाररूपी पुतलियां मन कल्पताहै। जब मन का संकल्प निवृत्त हो तब ज्यों का त्यों आत्मपद भासे। जैसे तरङ्ग जलरूपहै; जिसको जल का ज्ञानहै सो तरङ्ग भी जलरूप जानता है और जिसको जल का ज्ञान नहीं सो भिन्न २ तरङ्ग के आकार देखता है; तैसेही जब निस्संकल्प होकर स्वरूप को देखे तब फुरने में भी आत्मसत्ता भासेगी। अहंत्वमादिक सब जगत् ब्रह्मस्वरूप ही है तो भ्रम कैसेहो और किसको हो। सब विश्व आत्मस्वरूप है और आत्मा निरालम्ब अर्थात् चैत्त्य और अहंकार से रहित केवल आकाशरूप है। जब तुम उसमें स्थित होगे तब नाना प्रकार की भावना मिटजावेगी क्योंकि, नाना प्रकार की भावना जगत् में फुरती है। जगत् का बीज अहन्ता है; जब अहन्ता नष्ट हो तब जगत् का भी अभाव होजावेगा। हे रामजी! अहन्ताका फुरनाही बन्धनहै और निरहंकार होनाही मोक्ष है। एक चित्तबोध है और दूसरा ब्रह्मबोध है—चित्तबोध जगत् है और ब्रह्मबोध मोक्ष है। चित्तबोध अहन्ता का नाम है, जबतक चित्तबोध फुरना है तबतक संसारहै और जब चित्त का अभाव होताहै तब मुक्त होता है। इस चित्त के अभाव का नाम ब्रह्मबोध है। हे रामजी! जैसे पवन फुरता है तैसेही ब्रह्म में चित्तबोध है और जैसे पवन ठहर जाता है तैसेही चित्त का ठहरना ब्रह्मबोध है। जैसे फुर अफुर दोनों पवनही है तैसेही चित्तबोध और ब्रह्मबोध ब्रह्मही है-भिन्न कुछ नहीं। हमको तो ब्रह्मही भासता है जो चैतन्यमात्र और शान्तरूप अपने स्वभाव में स्थित है। जिसको अधिष्ठान का ज्ञान होताहै उसको निवृत्त भी वहीरूप भासता

है और जिसको अधिष्ठान का ज्ञान नहीं होता उसको भिन्न २ जगत् भासता है। जैसे एक बीज में पत्र. डाल फूल और फल भासते हैं पर जिसको बीज का ज्ञान नहीं उसको भिन्न २ भासते हैं। हे रामजी ! हमको अधिष्ठान आत्मतत्त्व का ज्ञान है इससे सब विश्व आत्मस्वरूप भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार का विश्व और जन्म मरण भासते हैं। हे रामजी ! सब शब्द आत्मतत्त्व में फुरते हैं और सब का अधिष्ठान, निराकार, निर्विकार, शुद्ध आत्मा सबका अपना आप है; इससे सब विश्व आकाशरूप है कुछ भिन्न नहीं। जैसे तरङ्ग जलरूप है तैसेही विश्व आत्मस्वरूप है। चित्त जो फुरता है उसके अनुभव करनेवाली चैतन्यसत्ता है सोही ब्रह्महै और तुम्हारा स्वरूप भी वही है; इससे अहं त्वं आदिक जगत् सब ब्रह्मरूप है तुम संशय त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थितहो। आगे तुमसे जो द्वैत अद्वैत कहाहै वह सब उपदेशमात्र है। एकचित्त की वृत्ति को स्थित करके देखो सब ब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं तो निषेध किसका कीजिये ? हे रामजी ! चित्तकी दो वृत्ति ज्ञानवान् कहते हैं—एक मोक्षरूप है और दूसरी बन्धरूप है। जो वृत्ति स्वरूप की ओर फुरती है सो मोक्षरूप और जो दृश्य की ओर फुरती है सो बन्धरूप है। जो तुमको शुद्ध भासती हो वही करो। जो द्रष्टा है सो दृश्य नहीं होता और दृश्य है वह द्रष्टा नहीं होता पर आत्मा तो अद्वैत है इसस द्रष्टा में दृश्य पदार्थ कोई नहीं। तुम क्यों दृश्य की ओर फुरतेहो और अनहोती दृश्य को ग्रहण करतेहो ? द्रष्टा भी तुम्हारा नाम दृश्य से होताहै। जब दृश्य का अभाव जानो तब अवाच्यपद है उसको वाणी से कुछ कहा नहीं जाता। हे रामजी ! जैसे अङ्गी और अङ्गवाले; आकाश और शून्यता; जल और द्रवता और बरफ़ और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। कोई जगत् कहे अथवा ब्रह्म कहे एकही पर्याय है; जगतही ब्रह्म है और ब्रह्मही जगत् है। इससे आत्मपद में स्थित होरहो; भ्रम करके जो आपको कुछ और मानते हो उसको त्यागकर ब्रह्मही की भावना करो और आपको मनुष्य कदाचित् न जानो जो आपको मनुष्य जानोगे तो यह निश्चय अधोगति को प्राप्त करनेवाला है इससे अपने स्वरूप में स्थित होरहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनामशताधिक चतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ १५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब देश से देशान्तर को वृत्ति जाती है तो उसके मध्य जो संवित्तत्त्व है उसको जो अनुभव करता है सो तुम्हारा स्वरूप है उसमें स्थित हो रहो और जैसी चेष्टा आवे तैसी करो। देखो, सुनो, स्पर्श करो, गन्ध लो, बोलो, चलो, हँसो, सब क्रिया करो परन्तु इनके जाननेवाली जो अनुभवसत्ता है उसी में स्थित

होरहो। यह जाग्रत् में सुषुप्ति है। चेष्टा शुभ करो और हृदयमें फुरनेसे रहित शिलावत् होरहो। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप निराभास; निर्मल और शान्तरूप है। जैसे सुमेरु पर्वत स्थित है तैसेही होरहो। यह दृश्य अज्ञान से भासता है पर तमरूप है और आत्मा सदा प्रकाशरूप है; उस प्रकाश में अज्ञानी को तम भासता है। जैसे सूर्य सदा प्रकाशरूप है पर उलूक को नहीं भासता है और अज्ञान करके तमही भासता है तैसेही अज्ञानी को जो अविद्यारूप जगत् भासता है सो अविचार से सिद्ध है। अविद्या से इसकी विपर्यय दृष्टि हुई है पर इसका वास्तवस्वरूप निर्विकार है अर्थात् जायते, अस्ति, वर्द्धते, परिणमते, विपक्षीयते, नश्यते इन षट् विकारों से रहित है पर उसको विकार जानता है; आत्मा निर्विकार निराकार है पर उसको साकार जानता है; आत्मा आनन्दरूप है पर उसको दुःखी जानता है; आत्मा शान्तरूप है पर उसको अशान्त जानता है; आत्मा महत् है पर उसको लघु जानता है; आत्मा पुरातन है पर उसको उपजा मानता है; आत्मा सर्वव्यापक है पर उसको प्रच्छन्न मानता है; आत्मा नित्य है पर उसको अनित्य देखता है; आत्मा चैत्य से रहित शुद्ध चिन्मात्र है पर यह उसे चैत्यसंयुक्त देखता है; आत्मा चैतन्य है यह उसे जड़ देखता है; आत्मा अहं से रहित सदा अपने स्वभाव में स्थित है और यह अनात्म अहंकार में अहंप्रतीति करता है और आत्मा में अनात्मभावना करता है और अनात्मा में आत्मभावना करता है; आत्मा निरवयव है उसको यह अवयवी देखता है; आत्मा अक्रिय है उसको यह सक्रिय देखता है; आत्मा निरंश है उसको अंशांशीभाव करके देखता है; आत्मा निरामय है पर उसको रोगी देखता है; आत्मा निष्कलङ्क है पर उसको कलङ्कसहित देखता है; आत्मा सदा प्रत्यक्ष है उसको परोक्ष जानता है और जो परोक्ष है उसको प्रत्यक्ष जानता है। हे रामजी! यह सब विकार आत्मा में अज्ञान से देखता है पर आत्मा शुद्ध और सूक्ष्म से सूक्ष्म; स्थूल से स्थूल, बड़ेसे बड़ा और लघु से लघु है और सर्वशब्द और अर्थ का अधिष्ठान है। हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक डब्बा है उसमें जगत्रूपी रत्न है। पर्वत और वनसहित भी जगत् दृष्ट आताहै परन्तु आत्मा के निकट रुई के रोम सा लघु है। आत्मरूपी वन है उसमें संसाररूपी मञ्जरी उपजी है। पांचों तत्त्व—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश उसके पत्र हैं उनसे शोभती है सो अहन्ता के उदय हुये उदय होती है और अहन्ता के नाशहुये नाश होती है। आत्मरूपी समुद्र है उसमें जगत्रूपी तरङ्ग हैं सो उठते भी हैं और लीन भी होजाते हैं। आत्माकाश में संसार भ्रममात्र है और आकाश वृक्षकी नाईं है और आत्मा के प्रमाद से भासता है। हे रामजी! मायारूपी चन्द्रमा की किरणें जगत् है और नेतिशक्ति नृत्य करनेवाली है सो तीनों अविचार सिद्ध हैं और विचार कियेसे

शान्त होजाते हैं । जैसे दीपक हाथमें लेकर अन्धकार देखिये तो दृष्ट नहीं आता तैसे ही विचार करके देखिये तो जगत् का अभाव होजाता है और केवल शुद्ध आत्मा ही प्रत्यक्ष भासता है । हे रामजी! जगत् कुछ बना नहीं—जैसे किसी ने बरफ़ कही और किसीने शीतलता कही तो उसमें भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं और जो भेद भासता है सो भ्रममात्र है । जैसे तागे और पट में भेद कुछ नहीं तैसेही आत्मा और जगत् है । हे रामजी ! आत्मरूपी रङ्ग में जगत्रूपी चित्र पुतलियां हैं और आत्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग हैं सो जलरूप हैं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं—आत्मा ही है आत्मा से भिन्न कुछ नहीं बना। जिससे सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं; जिससे सर्वक्रिया सिद्ध होती हैं और जो अनुभव-रूप सदा अप्रौढ़है उसको प्रौढ़ जाननाही मूर्खता है । हे रामजी ! यह विश्व तुम्हारा ही स्वरूप है; तुम जागकर देखो तुमहीं खड़ेहो और स्वच्छ आकाश, सूक्ष्म, प्रत्यक्ष ज्योति अपने आपमें स्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनाम शताधिकपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ १५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे जल में लहर और तरङ्ग उठते हैं सो जलरूप हैं; तैसेही आत्मा में रूप, अवलोक और मनस्कार फुरते हैं सो सब आत्मरूप हैं—भिन्न नहीं । हे रामजी ! यह शुद्ध परमात्माका चमत्कारहै और आत्मा दृश्यसे रहित, शुद्ध, चिन्मात्र निर्मल और अद्वैतहै उसमें जगत् कुछ नहीं बना। हमको तो सदा वही भा-सता है—जगत् कुछ नहीं भासता। जैसे कोई आकाश में नगर कल्पताहै और उसमें सब रचना देखता है सो उसके हृदय में दृढ़ होजाती है और जो संकल्प की सृष्टि को मिथ्या जानता है उस को शून्याकाश ही भासता है । तैसेही यह विश्व मूर्ख के हृदय में दृढ़ होता है और ज्ञानवान् को आत्मरूपही भासता है । जैसे मट्टीके खिलौने की सेना होती है तो जिसको मट्टीका ज्ञान है वह उसमें राग द्वेष नहीं करता और बालक मट्टीके ज्ञानसे रहितहै इससे वह उसमें राग द्वेष करताहै; तैसेही ज्ञानवान् इस जगत् में राग द्वेष नहीं करते और अज्ञानी राग द्वेष करते हैं। जैसे खिलौनेमें सारभूत मृत्तिका होती है तैसेही इस जगत् में सारभूत चैतन्य आत्मा है। जो कुछ पदार्थ भासते हैं वे आत्मा के विवृत्त हैं। और मिथ्याही भ्रमसे सिद्ध हुये हैं । जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र हो उसमें सुखके निमित्त इच्छा करनाही मूर्खताहै । हे रामजी ! हमको तो इच्छा कुछ नहीं क्योंकि, हमको जगत् मृगतृष्णाके जलवत् भासताहै किसकी इच्छा करें । जिसमें सत्य प्रतीति होतीहै उसमें इच्छा भी होतीहै और जो सत्यही न भासे तो इच्छा कैसे हो ? हे रामजी! इच्छाही बन्धन है और इच्छा से रहित होनेका नाम मुक्ति है । इससे

ज्ञानवान् को इच्छा कुछ नहीं रहती उसकी अनिच्छितही चेष्टा होती है। जैसे सूखे बाँस के भीतर बाहर शून्य होता है और संवेदन उसको कुछ नहीं फुरती तैसेही ज्ञानवान् के अन्तःकरण और बाह्यकरणमें भी शान्ति होती है; अन्तःकरणमें संकल्प कोई नहीं उठता और बाहरभी कोई उपाधि नहीं निस्संकल्प निरुपाधि उसकी चेष्टा उसकी होतीहै। हे रामजी! जिस पुरुषके हृदयसे संसारका रस सूखगयाहै वह संसारसमुद्र से पार हुआ है और जिसका रस नहीं सूखा उसको रागद्वेष फुरते हैं उसे संसार बन्धन में जानो। हे रामजी! मैं तुमसे ऐसी समाधि कहताहूं कि, जो सुख से प्राप्त हो और जिससे मुक्त हो। सर्व इच्छासे रहित होनाही परमसमाधि है। जिस पुरुष को इच्छा फुरती है उसको उपदेशभी नहीं लगता। जैसे आरसी के ऊपर मोती नहीं ठहरता तैसेही उसके हृदय में उपदेश नहीं ठहरता। इच्छाही जीव को दीन करती है और इच्छासे रहित हुआ शान्तरूप होताहै और फिर शान्तिके निमित्त कर्तव्य कुछ नहीं रहता। हे रामजी! हमतो निरीच्छित हैं इससे हमको भीतर बाहर शान्ति है और हमको कर्तव्य करने योग्य कुछ नहीं--यह सब प्रारब्ध के अनुसार राग द्वेष से रहित चेष्टा होतीहै और बोलतेहैं परन्तु बांसुरी की नाईं। जैसे बांसुरी अहंकारसे रहित बोलतीहै तैसेही ज्ञानवान् अहंकारसे रहितहैं और स्वादको ग्रहण करतेहैं। जैसे करछी सब व्यञ्जनोंमें डालीजातीहै और उसीके द्वारा सब व्यञ्जन निकलते हैं परन्तु उसको कुछ राग द्वेष नहीं फुरता; तैसेही ज्ञानवान् स्वाद लेता है। जैसे पवन भली बुरी गन्ध को लेता है परन्तु राग द्वेष से रहितहै तैसेही ज्ञानवान् राग द्वेष की संवेदन से रहित गन्ध को लेता है और इसी प्रकार सर्व इन्द्रियों की चेष्टा करता है परन्तु इच्छा से रहित होता है इसीसे परमसुखरूप है। जिस की चेष्टा इच्छासहित है वह परमदुःखी है। हे रामजी! जिस पुरुष को भोगरस नहीं देते वही सुखी है और जिसको रस देते हैं और जिसकी रागसे तृष्णा बढ़ती जाती है उसको ऐसे जानो जैसे किसीके मस्तक पर अग्नि लगे और उसपर तृण बुझाने के निमित्त डाले तो वह बुझती नहीं बल्कि बढ़ती जाती है; तैसेही विषयों की इच्छा भोगने से तृप्ति नहीं होगी। इच्छाही बन्धन है और इच्छा की निवृत्ति का नाम मोक्ष है। हे रामजी! संसाररूपी विष का वृक्ष है और उसका बीज इच्छा है जिसकी इच्छा बढ़ती जाती है उसका संसार बढ़ता जाता है और उससे वह बारम्बार जन्म पाता है। हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्मा के लोक में भी नहीं जैसा सुख इच्छा की निवृत्ति में है और ऐसा दुःख नरक में भी नहीं जैसा दुःख इच्छा के उपजाने में है। इच्छा के नाशका नाम मोक्ष है और इच्छा के उपजाने का नाम बन्धनहै। जिस पुरुषको इच्छा उत्पन्न होतीहै वह दुःख पाताहै और संसाररूपी गढ़े और खत्ते में पड़ता है इच्छारूपी विषकी बेलहै उसको समतारूपी अग्नि

से जलाओ। सम्यक्दर्शन से जलाये विना बड़ादुःख देगी और बढ़ती जावेगी। हे रामजी! जिस पुरुष ने इच्छा के दूर करने का उपाय नहीं किया उसने अन्धेकूप में प्रवेश किया है। शास्त्र का श्रवण और तप, दान, यज्ञ इसी निमित्त है कि; किसी प्रकार इच्छा निवृत्त हो जो एकही बार निवृत्त न करसको तो शनैःशनैः निवृत्त करो। हे रामजी! यह विष की बेल बढ़ी हुई दुःख देतीहै। जो पुरुष शास्त्रों को पढ़ता और इच्छा को बढ़ाता है वह मानो दीपक हाथ में लेकर कूप में गिरताहै। इच्छारूपी कँटिआरी का वृक्ष है जिसमें सर्वदा कण्टक लगेरहते हैं—उसमें कदाचित् सुख नहीं। जो पुरुष काँटे की शय्यापर शयन करके सुखी हुआ चाहे तो नहीं होता; तैसेही संसार से कोई सुख पाया चाहे तो कदाचित् न होगा। जिससे इच्छा निवृत्ति हो वही उपाय किया चाहिये। इच्छा के निवृत्त होनेमें सुखहै और इच्छा के उत्पन्न होनेमें बड़ादुःख है। हे रामजी! जो अनिच्छित पद में स्थित हुआ है उसको यदि एक क्षण भी इच्छा उपजती है तो वह रुदन करता है। जैसे चोरसे लूटा रुदन करताहै तैसेही वह रुदन और पश्चात्ताप करता है और उसके नाश करने का उपाय करता है। हे रामजी! इच्छारूपी क्षेत्र में राग द्वेषरूपी विषकी बेल है। जो पुरुष उसके दूर करनेका उपाय नहीं करता वह मनुष्यों में पशु है यह इच्छारूपी विष का वृक्ष बढ़ा हुआ नाश का कारण है। इससे तुम इसका नाश करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइच्छानिषेधयोगोपदेशो नामशताधिकषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ १५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इच्छारूपी विष के नाश करनेका उपाय तुमसे आगेभी कहाहै और अब फिर स्पष्ट करके कहताहूं। इच्छा त्याग करने के योग्य संसारहै; यदि आत्मसत्ता से भिन्न कीजिये तो मिथ्या है उसमें क्या इच्छा उसकी करनी है और जो आत्मा की ओर देखिये तो सर्व आत्माहीहै क्या इच्छा करनीहै; इच्छा दूसरे में होती है पर दूसरा तो कुछ हैही नहीं तो इच्छा किसकी कीजिये? हे रामजी! द्रष्टा और दृश्य भी मिथ्या है; द्रष्टा इन्द्रियां और दृश्य विषय; ग्राहक इन्द्रियां और ग्राह्य विषय अविचार सिद्ध है और भ्रम करके भासते हैं आत्मा में कोई नहीं। जैसे स्वप्ने में भ्रम से रूप भासते हैं तैसेही यह ग्राह्य-ग्राहक भ्रम से भासतेहैं और सुख दुःखभी इनहीं से होता है आत्मा मेंकोई नहीं। हे रामजी! द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों ब्रह्म में कल्पित हैं और वास्तव में ब्रह्महीहै; चिरकाल से हम खोज रहेहैं परन्तु द्वैत हमको कुछ दृष्टि नहीं आता, एक ब्रह्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों भासती है जो निराभास, फुरनेसे रहित और ज्ञानरूप है; आकाशसे भी सूक्ष्म है और सर्वजगतभी वही है—सो मैं हूं। हे रामजी! जैसे जलमें तरङ्ग; आकाश में शून्यता; पवन में स्पन्द और अग्नि में उष्णता है सो

है। हे रामजी! दूसरा कुछ बना नहीं तो क्या कहिये? केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है सो सबका अपना आप वास्तवरूप है। जब उसका साक्षात्कार होता है तब अहंरूप भ्रम मिट जाता है। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकारका अभाव होजाता है तैसेही आत्मा के साक्षात्कार हुये अनात्म अभिमानरूपी अन्धकार का अभाव होजाता है और परम निर्वाण भासता है। उसको एक और दोभी नहीं कहसक्के; वह केवल शान्तरूप परम शिव है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मामें जगत् भासता है। हे रामजी! जिन्होंने ऐसे निश्चय किया है उनको इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं तौभी मेरे निश्चय में यह है कि; इच्छा के त्याग में सुख है। जिसकी इच्छा दिन दिन घटतीजावे और आत्मा की ओर आवे उसको ज्ञानवान् मोक्षभागी कहते हैं क्योंकि; संसार भ्रम से सिद्ध है और अपनीही कल्पना जगत्रूप होकर भासती है; विचार कियेसे कुछ नहीं निकलता। संसार के उदय होनेसे आत्मा को कुछ आनन्द नहीं और नाश होनेसे खेद नहीं होता क्योंकि; कुछ भिन्न नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और विनशते हैं तो जल को हर्ष और शोक कुछ नहीं होता क्योंकि; वे जल से भिन्न नहीं हैं; तैसेही सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है तो इच्छा क्या और अनिच्छा क्या? हे रामजी! आदि जो परमात्मा से चित्तशक्ति फुरी है उसमें जब अहं हुआ तब स्वरूप का प्रमाद हुआ और यही चित्तशक्ति मनरूप हुई; फिर आगे देह इन्द्रियां हुई और अज्ञान से मिथ्याभ्रम उदय हुआ इसी प्रकार अपने साथ मिथ्या शरीर देखता है। जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफ़रूप होजाता है तैसेही चित्संवित् प्रमाद की दृढ़ता से मन, इन्द्रियां, देहरूप होताहै। जैसे कोई स्वप्ने में अपना मरना देखता है तैसेही अपने साथ जीव शरीर को देखता है। जब चित्तशक्ति नष्ट होती है तब शरीर कहां—और मन कहां यह कोई नहीं भासता? जैसे स्वप्ने में भ्रम से शरीरादिक भासते हैं तैसेही इस जगत् को भी जानो कि, मिथ्याभ्रम से उदय हुये हैं। जब अपने स्वरूप की ओर आवे तब सबही भ्रम मिटजाते हैं हे रामजी! जैसे भ्रम से आकाशमें नीलता भासती है तैसेही विश्वभी अनहोताही भ्रम से भासता है; आत्मा में कुछ आरम्भ और परिणाम करके नहीं बना—वही स्वरूप है। जैसे आकाश और शून्यता और पवन और स्पन्द में भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभवरूप है-कुछ भिन्न नहीं; तैसेही जगत् और आत्मा अनुभव से कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी! चेतन आकाश परमशान्तरूप है; उस में देह और इन्द्रियां भ्रम से भासती हैं और क्रिया, काल, पदार्थ सब भ्रममात्र हैं जब आत्मस्वरूप में जागकर देखोगे तब द्वैतभ्रम निवृत्त होजावेगा और कैवल्य, अद्वैत आत्माही भासेगा—दृश्य का अभाव होजावेगा। यह पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं

सो अविद्यमान हैं और इनकी प्रतिभा मिथ्या उदय हुई है। जैसे स्वप्न में अनहोते पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परन्तु हैं नहीं तैसेही आत्मा में यह जगत् भासता है। हे रामजी! पृथ्वी, दीवार, कीट, पर्वत आदि प्रपञ्च आकाशरूप हैं तो ग्रहण त्याग किस का हो? आकाशरूपी दीवार पर संकल्प ने चित्र रचे हैं और रङ्ग आत्मचैतन्यता है इससे विश्व संकल्पमात्र है और जैसा २ निश्चय होताहै तैसीही तैसी सृष्टि भासती है। यदि कुछ बना होता तो और का और न भासता; इससे कुछ बना नहीं जैसा संकल्प होताहै तैसाही आगे रूप हो भासता है। हे रामजी! सिद्धों के पास एक चूर्ण होता है उससे वे जो चाहते हैं सो करते हैं पर्वतको आकाश और आकाश को पर्वत करते हैं—वह चूर्ण मैं तुमसे कहता हूं। जब चित्तरूपी सिद्धसंकल्परूपी चूर्ण से फुरता है तब आत्मरूपी आकाश में पर्वत हो भासते हैं और जब चित्तरूपी सिद्ध का संकल्प उलटता है तब पर्वत भी आकाशरूप हो भासताहै। जैसे स्वप्न में संकल्प फुरता है तब अनुभव में पर्वत आदिक पदार्थ भासि आते हैं और जब संकल्प से जागता है तब स्वप्न के पर्वत आकाशरूप होजाते हैं तो आकाशही पर्वतरूप हुआ और पर्वत ही आकाशरूप होता है; तैसेही हे रामजी! यह सृष्टि कुछ बनी नहीं संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प होताहै तैसा भासताहै। जब विश्वके अत्यन्त अभावका संकल्प किया तब तैसेही भासता है। जैसे विश्व का अभ्यास किया है और विश्व भासा है तैसेही आत्मा का अभ्यास कीजिये तो क्यों न भासे? वह तो अपना आप है, जब आत्मा का अभ्यास कीजियेगा तब आत्माही भासेगा विश्व का अभाव होजावेगा। अनेक सृष्टि अपने २ संकल्प से आकाशमें भासती हैं; जैसा किसीका संकल्प होताहै तैसीही सृष्टि उसको भासती है। जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में दृढ़ संकल्प होता है तो यथाइच्छित पदार्थ निकल आते हैं पर वे कुछ बने नहीं और चिन्तामणि भी परिणाम को प्राप्त हुई ज्योंकी त्यों पड़ी है केवल संकल्प की दृढ़ता से भासि आते हैं; तैसेही यह प्रपञ्च भी आकाशरूप है। जैसे आकाश में शून्यता है तैसेही आत्मा में जगत् है। हे रामजी! सिद्ध के जो वचन फुरते हैं सोही संकल्प की तीव्रता होती है; जो चित्त शुद्ध होताहै तो दूसरी सृष्टि को भी जानताहै। जो पुरुष वचन सिद्धि होनेके निमित्त वासना को सूक्ष्म करता है अर्थात् रोकता है तो उससे वचन सिद्धि पाता है और जैसा संकल्प करता है तैसाही सिद्ध होता है। हे रामजी! जितना यह दृश्य की ओर से उपरान्त होकर अन्तर्मुख होता है उतनीही वचनसिद्धि होती जाती है—चाहे वर दे, चाहे शाप दे वह सिद्ध होताहै हे रामजी! एक प्रमाण ज्ञान है कि, यह पदार्थ इस प्रकार है। उसका जो नामरूप है वह सब आकाशरूप भ्रममात्र है—आत्मा में और कुछ नहीं। आत्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग उठते हैं सो आत्मरूपही हैं;

जिनको ऐसा ज्ञान हुआ है उनको इच्छा और अनिच्छा का ज्ञान नहीं रहता और सब आकाशरूप भासता है। हे रामजी! आत्मरूपी फूल में जगत्रूपी गन्ध है। जैसे पवन और स्पन्द में भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। पत्थर पर लकीर खैंचिये तो वह पत्थर से भिन्न नहीं होती तैसेही ब्रह्म से जगत् भिन्न नहीं। हे रामजी! देश, काल, पृथ्वी आदिक तत्त्व और मैं, मेरा सब आत्मरूप है और अविनाशी है। जिन को ऐसे निश्चय हुआ है उनको राग द्वेष नहीं रहता, उन्हें सब आत्मरूप ही भासता है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे जगदुपदेशोनामशताधिकसप्तपञ्चाशत्सर्गः१५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्व में जो संवेदन फुरी है उससे आगे जगत् भासित हुआ है। जैसे किसीके नेत्र में एक अञ्जन डालकर आकाश में पर्वत उड़ते दिखाते हैं तैसेही अनहोता जगत् फुरने से भासता है। हे रामजी! ब्रह्मस्वर्ग और चित्तस्वर्ग में कुछ भेद नहीं परमार्थ से एकही है और दृष्टि, सृष्टि और वस्तु-पर्याय है और नाना तत्त्व भी इसकी भावना से भासते हैं आत्मा में दूसरा कुछ नहीं बना। चित्त और चैत्य आत्मा से भिन्न नहीं; चित्तही चैत्य होकर भासताहै और ज्ञानसे इनकी एकता होती है—इसीसे दृश्यभी द्रष्टारूपहै। जैसे स्वप्नमें शुद्ध संवित्ही दृश्यरूप होकर स्थित होती है और जागे से एक होजाती है। एकताभी तब होतीहै जब वही रूप हो,इससे तुम अबभी वही जानो। दृश्य, दर्शन और द्रष्टा त्रिपुटी भी सब वही रूप है। हे रामजी! जो सजातिहै उसकी एकता होतीहै, विजाति की एकता नहीं होती। जैसे जलमें जलकी एकता होतीहै, तैसेही बोधसे सबकी एकता होती है-इससे दृश्य भी वही रूप है कि, एकता होजाती है। जो दृश्य कुछ आत्मा से भिन्न होती तो एकता न होती। हे रामजी! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूप हैं। जिससे ये सर्व हैं; जो यह सर्व है और जो सर्वव्यापी-सर्वगत सबको धार रहा है और सब वही है ऐसे सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है। जो कुछ भासताहै सर्व वही है। जैसे जल में गलाने की शक्ति है और काष्ठ में नहीं तैसेही ब्रह्म में भावना स्वभाव है और में नहीं। ब्रह्मभावना से सर्व ब्रह्मही भासता है। हे रामजी! जड़पदार्थ भी ब्रह्मही हैं क्योंकि; जो भासता है सो ब्रह्मही है जड़ हो तो भासे नहीं। जड़भी चेतनता शुद्ध संवित् में है; उसमें शब्द चेतन है भिन्न कुछ नहीं भासता। जैसे शुद्ध संवित् में स्वप्न फुरता है और उसमें जड़ और चेतन भी भासते हैं परन्तु जो जड़ भासते हैं वे भी उस संवित् में चेतन हैं क्योंकि चेतन हैं तब फुरते हैं। जिनको शुद्ध संवित् में अहं-प्रयत्न नहीं वह जान नहीं सक्ता अज्ञानी है परन्तु सब ब्रह्म है। जैसे समुद्र में जल होताहै सो ऊंचे आवे तौभी जल है और नीचेको जावे तौभी जल है तैसेही जो कुछ

दिखता और भासता है सो सब ब्रह्मस्वरूप है भिन्न नहीं और इन्द्रियों का ग्राम भी आत्माहै। पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरेहैं उनमें प्रथम आकाश फुराहै, फिर वायु फुरी है; फिर अग्नि, फिर जल और फिर पृथ्वी फुरी है सो सब अनिच्छित चमत्कारकी नाईं फुरे हैं-इससे सब आत्मरूप हैं। जैसे वट बीजमें वृक्ष होताहै तैसेही आत्मरूपी बीज में जगत् होता है और नाना प्रकार भासते हैं। हे रामजी! जैसे एक बीज ही नाना प्रकारके रूप धारताहै परन्तु बीजसे भिन्न कुछ नहीं तैसेही आत्मसत्ता नानाप्रकार हो भासतीहै परन्तु बीजकी नाईं भी प्रमाण नहीं। विश्व आत्माका चमत्कारहै इससे वही रूपहै। जैसे सुवर्णमें अनेक भूषण होते हैं सो सुवर्णसे भिन्न नहीं तैसेही विश्व आत्म-स्वरूपहै द्वैत नहीं और जो आत्मासे इतरहो तो भासे नहीं; इससे जो भासताहै सो चेतन रूपहै और दृश्य और द्रष्टा एकही रूपहै; द्रष्टाही दृश्यकी नाईं हो भासताहै। हे रामजी! जैसे कोई पुरुष तुम्हारे निकट सोया हो और उसको स्वप्ना आवे कि, मेघ गर्जते हैं और नाना प्रकारकी चेष्टा होतीहै तो वह सब उसीको भासता है और तुमको नहीं भासता; तैसेही यह दृश्य तुम्हारी भावना में स्थित है और हमको आकाशरूप है। हे रामजी! चेतन आकाश शान्तरूप है; उसमें सृष्टि कुछ बनी नहीं और जो कुछ उपजा नहीं तो नष्ट भी नहीं होता केवल शान्तरूप है पर भ्रम से जगत् भासताहै। जैसे कोई बालक मनोराजसे आकाशमें पुतलियां रचे तो आकाशमें कुछ नहीं बना परन्तु उसके संकल्प में है; तैसेही यह विश्व मनरूपी बालक ने रचाहै उसके रचेहुये में ज्ञानवान् को शून्यता भासती है। हे रामजी! संकल्पमात्रही सृष्टि हुईहै; जब इसका संकल्प नष्ट होताहै तब शान्तपद शेष रहताहै। निरहंकार सत्तामात्र असत् की नाईं स्थितहै फिर उस चिन्मात्र अद्वैत में अहन्ता करके जगत् भासि आता है। जब अहन्ता फुरती है तब जगत् भा-सताहै और जब स्वरूप का साक्षात्कार होताहै तब अहन्तारूप भ्रम मिटजाताहै। जब अहन्तारूप भ्रम मिटजाता है तब जगत् और इच्छाका भी अभाव होजाताहै, इसमें ज्ञानी को इच्छा और वासना कोई नहीं रहती। जब प्रच्छन्नरूप अहन्ता नष्ट होती है तब उस पद को प्राप्त होता है जिस पद में अणिमा आदिक सिद्धियांभी सूखे तृण की नाईं भासती हैं और वह ऐसा आनन्दरूपहै जिसमें ब्रह्मादिक का सुखभी तृणसमान भासता है। हे रामजी! जिसको ऐसा ब्रह्मानन्दपद प्राप्त हुआहै उसको फिर किसीकी इच्छा नहीं रहती और उसको मारनेवाले विषयादिक पदार्थ मृतक नहीं करते और जिलानेवाले पदार्थ अमृत आदिक नहीं जिलाते केवल निर्वाणपद में उसकी स्थिति है। हे रामजी! जिस पुरुष को संपूर्ण संसार से वैराग्य हुआहै उसको संसार के पदार्थ सुखदायक नहीं भासते, मिथ्या भासतेहैं और वह संसारसमुद्रसे पार हुआहै। जिनको संसार की वासना और अहन्ता नष्ट हुईहै उनकी मूर्ति देखनेमात्र भासती है और वे

निर्वासी ज्ञानवान् शान्तरूप हैं। हे रामजी! इच्छाही बन्धन है। जब इच्छा का अभाव हो तब आनन्द हो। इच्छा भी तब फुरती है जब संसार को सत्य जानताहै और संसार की सत्यता अहन्तासे भासती है। जब अहन्तारूपी बीज नष्ट हो तब निर्वाणपद की प्राप्ति हो। हे रामजी! संसार कुछ बना नहीं–भ्रम से सिद्ध हुआ है। सर्वही ब्रह्म है; उस परमात्मा में जो प्रच्छन्न अहन्ता फुरी वही उपाधि है। हे रामजी! बुद्धि से आदि लेकर जितनी दृश्य है यह जिसको अपने में स्वाद नहीं देती और जो आकाश की नाईं रहता है उसको सन्त मुक्तरूप कहते हैं। हे रामजी! यह अहं विचार से सत्य भासती है और विचार कियेसे असत्य होजाती है। अनहोती अहन्ताने दुःख दियाहै; इससे तुम निरहंकार होकर चेष्टा करो। जैसे यन्त्री की पुतली अभिमान से रहित चेष्टा करती है तैसेही तुम निरहंकार होकर चेष्टा करो और अपने स्वरूप में स्थित होरहो तब व्यवहार और अव्यवहार तुमको तुल्य होजावेगा। जैसे पवनको स्पन्द निस्स्पन्द दोनों तुल्य होते हैं तैसेही तुमको होजावेगा और अहंकार से रहित तेरी चेष्टा होगी। अहन्ताही दुःख है; जब अहन्ता का नाश होगा तब तुम शान्त, निर्मल और अनामय पद को प्राप्त होगे जो सर्वपदार्थ का अधिष्ठान है और सबका अपना आप है; उसमें न कोई सुख है; न दुःख है; न कोई इन्द्रियों का विषय है परम शान्तरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमनिर्वाणयोगोपदेशो नामशताधिकाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ १५८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है वह निरावरण है अर्थात् दोनों आवरणों से रहित है। एक असत्यत्वापादक आवरण है और दूसरा अभावनापादक आवरण है। जो आत्मब्रह्म की सत्यता हृदय में न भासे सो असत्यत्वापादक है और जो आत्मा की सत्यता हृदय में भासे परन्तु दृढ़ प्रत्यक्ष न भासे सो अभावनापादक आवरण है। असत्यत्वापादक आवरण अज्ञानी को भासता है और अभावनापादक आवरण जिज्ञासी को होताहै पर ज्ञानवान् को ये दोनों आवरण नहीं रहते इससे वह निरावरण; शान्तरूप, आकाशवत् निर्मल और निरालम्ब किसी गुणत्व के आश्रय नहीं होता और एक द्वैतभ्रम उसका नष्ट होजाताहै क्योंकि, उसने आत्मरूपी तीर्थ का स्नान किया है जो अपवित्र को भी पवित्र करता है। जिस पुरुष ने शरीर में आत्मा का दर्शन किया है उसका शरीर भी पवित्र होताहै। ऐसे पुरुषको शरीर की सत्यता नहीं रहती और संसार भी नहीं रहता। आत्मा के साक्षात्कार हुयेसे सब इच्छा नष्ट होजाती हैं और सर्व ब्रह्मही भासताहै–द्वैत कुछ नहीं भासता। सर्व आत्मस्वरूप है पर उसमें संकल्प से नाना प्रकार की सृष्टि भासतीहै। हे रामजी! तुम संकल्प की ओर मतजाओ क्योंकि; चित्त की वृत्ति क्षणक्षण में प्रणमतीहै और अनन्त योजनपर्यन्त चलीजातीहै।

जो उसके अनुभव करनेवाली सत्ता मध्य में है और जिसके आश्रय वह जाती है सो चिन्मात्र तेरा स्वरूप है। जब तुम उसमें स्थित होकर देखोगे तब फुरनेमें भी ब्रह्मसत्ता भासेगी। हे रामजी! यह संवित् सदा प्रकाशरूप; चित्त के क्षोभसे रहित और द्वैतरूप विकार से रहित शुद्धहै। जितने प्रकाशहैं उनके विरोधी भी है जैसे दीपक का विरोधी पवन है जो निर्वाण करताहै और सूर्य का विरोधी राहु केतु है जो घेर लेताहै और महा-प्रलय में सर्व प्रकाश तमरूप होजाते हैं पर आत्मप्रकाशतत्त्व सिद्धहै; तमको भी प्रकाशताहै और सदा ज्ञानरूप एकरसहै। उसको त्यागकर और किसी ओर न लगना। हे रामजी! यह दृश्य सब मिथ्या है; जैसे रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा कल्पित है। जब तुम जागकर देखोगे तब सबका अभाव होजावेगा—जैसे बन्ध्या के पुत्र के रूप का अभाव है तैसेही सब विश्व मिथ्या भासेगा क्योंकि; है नहीं—भ्रममात्र स्वप्ने की नाईं अविचार सिद्ध है और विचार कियेसे आत्माही है; भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभव से कुछ भिन्न नहीं तैसेही यह आत्मस्वरूप विश्व भी ज्ञानमात्र है और अहं, मम, देह, इन्द्रियादिक भी सब ज्ञानमात्र हैं—दृश्य कुछ दूसरी वस्तु नहीं। जब ऐसे निश्चय धारोगे तब निश्शोक और मोहसे भी रहित होगे और परमार्थसत्ता ज्यों की त्यों भासेगी। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठतेहैं; तैसेही आत्मामें दृश्य उठती है सो वही रूप है और जो भिन्न भासे सो मिथ्या है। सब सृष्टि इसके हृदय में स्थित है पर अज्ञान से बाह्य भासती है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपने भीतर होती है और अपना स्वरूप होता है पर निद्रादोष से बाहर भासती है और जब जागता है तब अपनाही स्वरूप भासता है; तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी विचार कियेसे अपने अनुभव में भासती है। इस से स्थित होकर देखो कि, सर्वदा जागती ज्योति है; उसको त्यागकर और यत्न करना व्यर्थ है। हे रामजी! अपने अनुभव में स्थित होना क्या कष्ट है? जो इसे कठिन जानते हैं वे मूढ़ हैं और उनको मेरी धिक्कार है क्योंकि; वे गऊ के पग को समुद्रवत् जानते हैं उनसे और कौन मूर्ख है। अनुभव में स्थित होना गऊ के पग की नाईंही तरना सुगम है और जो और पदार्थों के पाने की इच्छा करेगा तो उनमें व्यवधान है पर आत्मा में व्यवधान कुछ नहीं क्योंकि, अपना आप है। हे रामजी! जिन पुरुषों ने आत्मा में स्थिति पाई है उनको मोक्ष की इच्छा भी नहीं तो स्वर्गादिक की इच्छा कैसे हो? मोक्ष और स्वर्ग आत्मामें रस्सीके सर्पवत् मिथ्या भासते हैं—उनको केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होताहै। हे रामजी! स्वप्नेमें सुषुप्ति नहीं और सुषुप्तिमें स्वप्ना नहीं—इनके अनुभव करनेवाली शुद्ध सत्ताहै और ये दोनों मिथ्या हैं। उनको निर्वाण और जीना दोनों तुल्य हैं। ऐसे जानकर वे इच्छा किसीकी नहीं करते—प्रपञ्च उनको शशे के सींग और बन्ध्या के पुत्रवत् भासते हैं। हे रामजी! हमको तो संसार सदा

आकाशरूप भासताहै । यदि तुम कहो कि, उपदेश क्यों करतेहो ? तो हमको कुछ भास नहीं तुम्हारीही इच्छा तुमको वशिष्ठरूप होकर उपदेश करती है । हमको विश्व सदा शून्यरूप भासता है और हमको चेष्टा करते भी अज्ञानी जानते हैं पर हमारे निश्चय में चेष्टा भी नहीं और हमारी चेष्टा कुछ अर्थाकार भी नहीं । अज्ञानी की चेष्टा अर्थाकार होती है हमारी चेष्टा सत्य नहीं इससे अर्थाकार भी नहीं होती । जैसे ढोल के शब्द का अर्थ नहीं होता कि, क्या कहता है और वाणी से जो शब्द बोलाजाता है उसका अर्थ होता है; तैसेही हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं अर्थात् जन्म नहीं देती और अज्ञानी की चेष्टा जन्म देती है । हमको संसार ऐसे भासता है जैसे अवयवी सर्व अवयवोंको अपना स्वरूपही देखताहै अर्थात् हस्त, पाद, शीश आदिक सबको अपनेही अङ्ग देखताहै । हे रामजी ! जगत्में एक ऐसे जीव दृष्टि आते हैं कि, उनको हम स्वप्नेके जीव भासतेहैं और हमको वे शून्य आकाशवत् दृष्टि आतेहैं और उनके हृदय में हम नाना प्रकार की चेष्टा करते और की नाईं भासते हैं । हमको तो जगत् ऐसे भासता है जैसे समुद्र में तरङ्ग । मैं भी ब्रह्म हूं; तुमभी ब्रह्म हो, जगत् भी ब्रह्म है और रूप, अवलोक, मनस्कार सब ब्रह्मरूपहै; इससे तुमभी ब्रह्मकी भावना करो। अपने स्वभाव में स्थित होना परमकल्याण है और परस्वभाव में स्थित होना दुःख है । हे रामजी ! अपना स्वभाव साधनेका नाम मोक्षहै और न साधनेका नाम बन्धन है । हे रामजी ! धन, मित्र, क्रिया आदि कोई पदार्थ उपकार नहीं करता केवल अपना पुरुषार्थही उपकार करताहै सो यहीहै कि, अपने चैतन्य स्वभावमें स्थित होना और परस्वभाव का त्याग करना । जब अपने स्वभावमें स्थित होंगे तब सब अपना स्वरूपही भासेगा । जो स्वरूपसे भिन्न होके देखो तो न मैं हूं; न तुमहो और न जगत् है; सब भ्रममात्र है और मृगतृष्णा के जलवत् भासता है । ऐसे जानो कि, मैं भी ब्रह्म हूं; तुमभी ब्रह्म हो और जगत् भी ब्रह्म है; वा ऐसे जानो कि, न तुम हो, न मैं हूं और न जगत् है तो पीछे जो शेष रहेगा सो तुम्हारा स्वरूप है । हे रामजी ! जिन पुरुषोंको ऐसे निश्चय हुआहै कि; मैं तू, और जगत् सब ब्रह्महै अथवा मैं, तू और जगत् सब मिथ्याहै; उनको फिर कोई इच्छा नहीं रहती और जिनको इच्छा उठती है उनको जानिये कि, ब्रह्मआत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ । जब भोगों की वासना निवृत्त हो और संसार विरस होजावे तब जानिये कि, यह संसारसे पार हुआ अथवा होगा । हे रामजी ! यह निश्चय करके जानो कि; जिसको भोगों की वासना क्षीण होती है उसको स्वभावरूपी सूर्य उदय होता है और भोगों की तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है । यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष भोगों की तृष्णा दृष्टि आती है तो भी उसकी भास जाती रहती है और ब्रह्मसत्ताही भासती है । संसार की ओर से वह सुषुप्त और

मृतककी नाईं होजाता है, अपने स्वरूप में सदा जाग्रत् रहता है और अपने स्वभाव-रूपी अमृत में मग्न होताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठगीतोपदेशोनाम शताधिकैकोनषष्टितमस्सर्गः ॥ १५९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार यह परस्वभावहै; इन को ब्रह्मरूप जानो। परस्वभाव क्याहै और ब्रह्मरूप क्याहै? सो भी सुनो। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप शुद्ध आकाश है और उसमें जो रूप, अवलोक और मनस्कार फुरे हैं सो प्रकृतिकी मायासे फुरेहैं। माया स्वभावसे परस्वभावहै परन्तु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ताहै इससे आत्मस्वरूप है। आत्मा के जानेसे इसका अभाव होजाता है। हे रामजी! जब ज्ञान उपजताहै तब संसार स्वप्नवत् होजाताहै और उसकी सत्ता कुछ नहीं भासती। जब दृढ़ता होती है तब सुषुप्त होजाता है इनका भाव भी नहीं रहता और तुरीया में स्थित होता है। जब तुरीयातीत होता है तब अभाव का भी अभाव होजाता है और परमकल्याणरूप सत्ता समानपद को प्राप्त होता है जो आदि अन्त से रहित परमपद है। ऐसा मैं ब्रह्मस्वरूप; परमशान्तरूप और निर्दोष हूं और जगत् भी सब ब्रह्मरूप है। हमको सदा यही निश्चय रहता है और ऐसा उत्थान नहीं होता कि; मैं वशिष्ठ हूं। हमारा प्रच्छन्न अहंकार नष्ट होगया है इससे हम निरहंकारपद में स्थित हैं। जब तुम ऐसे होकर स्थित होगे तब परम निर्मल स्वरूप होजाओगे। जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभताहै तैसेही तुमभी शोभोगे। हे रामजी! कैसे पुरुष को बन्धन है सो भी सुनो जिससे वह आत्मपद को नहीं प्राप्त होता। प्रथम धन मणि का बन्धन है, दूसरे भोग की तृष्णा और तीसरे बान्धवों का बन्धन है। जिसको इन तीनों की वासना रहती है उसको मेरा धिक्कारहै। बड़े अनर्थ की देनेवाली यह वासना है। यह भोग महारोग है; बान्धव दृढ़बन्धनरूप है और अर्थ की प्राप्ति अनर्थ का कारणहै। इससे इस वासना को त्यागकर आत्मपद में स्थित होरहो। यह संसार भ्रम-मात्र है, इसकी वासना करना व्यर्थ है और इसको सत्य न जानना। यह जो तुम को संग और मिलाप भासता है सो कैसा है जैसे बैठे हुये स्मरण आवे कि, मैं अमुक से मिला था तो वह प्रतिभा प्रत्यक्ष हृदय में भासती है। जैसे संकल्प से नगर रच लिया तो उसमें मनुष्यादिकके चित्र भासनेलगते हैं तैसेही इस जगत् कोभी जानो। हे रामजी! तुम, मैं और यह जगत् भ्रममात्र संकल्पनगरके समानहै। जैसे भविष्यत् नगर की रचना है तैसेही यह जगत् है। कर्ता क्रिया कर्म जो भासतेहैं सोभी भ्रममात्रहैं केवल आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। आत्मरूपी आकाश में यह जगत्रूपी पुतलियां हैं और संकल्पमात्र प्रत्यक्ष हुआ है वास्तव में केवल शान्तरूप आत्मतत्त्व

है। हे रामजी! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं उनको आत्मतत्त्वही भासताहै और जिनको आत्मतत्त्व का प्रमाद है उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है पर आत्मा में यह जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना। जैसे सूर्य की किरणों में अज्ञान से जलाभास भासते हैं तैसेही आत्मा में अज्ञान से जगत् की प्रतीति होतीहै। जब आत्मा का सम्यक्ज्ञान हो तब जगत् भ्रम निवृत्त होजाता है—जैसे सूर्य की किरणों के जानेसे जलभ्रम निवृत्त होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठगीतासंसारोपदेशोनाम शताधिकषष्टितमस्सर्गः॥ १६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! रूप, अवलोक, मनस्कार सब ब्रह्मरूप हैं। जिसको ज्ञान प्राप्त होता है उसको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है—यही ज्ञान का लक्षण है। ज्यों ज्यों ज्ञानकला उदय होती है त्यों त्यों भोगों की वासना क्षीण होतीजाती है और जब पूर्णबोध की प्राप्ति होतीहै तब किसीको इच्छा नहीं रहती। जैसे ज्यों ज्यों सूर्य प्रकाशता है त्यों त्यों अन्धकार नष्ट होताजाताहै और जब पूर्णप्रकाश होताहै तब रात्रि का अभाव होजाता है; तैसेही जिसको ज्ञान उत्पन्न हुआहै उसको भोगों की वासना नहीं रहती और संसार उसको जलेवस्त्र की नाईं भासता है पर अज्ञानी को सत्य भासता है। जैसे स्वप्नेमें सुषुप्ति नहीं होती और सुषुप्ति में स्वप्ना नहीं होता और स्वप्ने का पुरुष सुषुप्ति को नहीं जानता और सुषुप्तिवाला स्वप्नेवाले को नहीं जानता तैसेही जिसको तुरीयापदकी प्राप्ति होतीहै उसको संसारका अभाव होजाताहै और वह अपने स्वभाव में स्थित होताहै। जो संसार को सत् जानतेहैं वे स्वप्ननगरहैं—सुषुप्तिको नहीं जानते। हे रामजी! तेरा स्वरूप जो तुरीयापदहै उसको अज्ञानी नहीं जानसक्के और जो जानें तो उनका प्रच्छन्न अहंकार नष्ट होजावे। जब अहंकार नष्ट हो तब सर्व आत्मा हुआ। हे रामजी! जीव को अहन्ता ने तुच्छ किया है; इससे तुम अहन्तारूप दृश्य का त्याग करके अपने स्वभावमें स्थित होरहो। संसाररूपी एक पुतलीहैजो भ्रमसे उठीहै; उसका शीश ऊर्ध्व ब्रह्मलोक है; टखने और पांव पाताललोक हैं; दशोंदिशा वक्षस्स्थल है; चन्द्रमा और सूर्य नेत्रहैं; तारागण रोम हैं; आकाश वस्त्र है; सुखदुःखरूपी स्वभाव है; पवन प्राणवायु है; बगीचे भूषणहैं; द्वीप और समुद्र कङ्कण हैं और लोकालोकपर्वत मेखला है। हे रामजी! ऐसी जो पुतली है सो नृत्य करती है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और नाश होतेहैं परन्तु जल ज्योंका त्योंही है तैसेही जल की नाईं सर्व ब्रह्मरूपहै और भ्रम से विकार दृष्टि आतेहैं। हे रामजी! कर्ता, क्रिया और कर्म भी आत्मस्वरूप हैं। जब तुम आत्माकी भावना करोगे तब तुम्हारा हृदय आकाशवत् शून्य होजावेगा। जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है; तैसेही तुम्हारा हृदय जगत् से जड़ और शून्य

होजावेगा। हे रामजी ! आत्मपद शान्तरूप और आकाशवत् निर्मलहै। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मा में जगत् है; न उदय होताहै और न अस्त होता है केवल शान्तरूप है। उदय अस्त भी तब होताहै जब कुछ दूसरी वस्तु होती है पर जगत् कुछ भिन्न नहीं आत्मा स्वरूपही है। द्वैत और एक कलपना से रहित आत्मा अपने आपमें स्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदुपशमयोगोपदेशोनाम शताधिकैकषष्टितमस्सर्गः ॥ १६१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह विश्व आत्माका चमत्कारहै। जैसे मृत्तिकाकी पुतली मृत्तिकारूप और कागज़की पुतली कागज़रूप होतीहै तैसेही विश्व आत्मरूपहै। जैसे मृत्तिका का दीपक देखनेमात्र होताहै और प्रकाश का कार्य नहीं करता तैसेही यह जगत् देखनेमात्रहै विचार कियेसे आत्माके सिवा भिन्नसत्ता कुछ नहीं; इससे जगत्की सत्यता आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। जगत् की आस्था आत्मा के आश्रित होतीहै। जैसे जल में तरङ्ग; आकाश में शून्यता और पवन में फुरना है तैसेही आत्मा में जगत् अभिन्नरूपहै; और जैसे वायु चलतीहै तबभी पवन है क्योंकि, उसको वायुका निश्चय है; तैसेही चैतन्य में निश्चय है कि, जगत् वही स्वरूपहै–इससे चैतन्यहै। ज्ञानवान् जानताहै कि, जगत् मेराही स्वरूप है। हे रामजी ! यह आश्चर्य देखो कि, जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं और भ्रम करके भिन्न भासता है। जैसे कथा में कथा के पुरुष विद्यमान भासते हैं और क्रिया करते हैं तैसेही इस जगत् को भी मनोमात्र जानो। हे रामजी ! जो विद्यमानहै सो अविद्यमान होजाताहै और जो अविद्यमानहै सो विद्यमान होजाताहै। जैसे स्वप्नमें जगत् अनुभवस्वरूपहै–भिन्न नहीं तैसेही जाग्रत् जगत् विचारकर देखोगे तब ब्रह्मस्वरूपही भासेगा। जैसे जो पुरुष सोया होताहै और स्वप्न जगत् उसीका रूपहै परन्तु जबतक निद्रादोषहै तबतक भिन्न भासताहै पर जब जागा तब सब अपनाही आप भासताहै, तैसेही जब मनुष्य अपने स्वरूपमें स्थित होकर देखता है तब सब अपना आपही भासताहै। हे रामजी ! रूप, अवलोक, मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप है पर आत्मा इन्द्रियों का विषय नहीं, वह तो निराकारहै और मन के चिन्तनेसे रहित है। संकल्प से आपही रूप, अवलोक और मनस्कार करके स्थित हुआहै, भिन्न नहीं। सर्व वहीहै और शास्त्रकारोंने शिव, ब्रह्म, आत्मा, शून्य आदि उसके नाम संकल्प में कहेहैं। आत्मा केवल चिन्मात्र है; वह वाणी का विषय नहीं और शान्तरूप, चैत अर्थात् दृश्यसे रहित और सर्वशब्दअर्थोंका अधिष्ठानहै और जगत् उसका चमत्कार है। हे रामजी ! आत्मा में एक और द्वैतकलपना कोई नहीं क्योंकि; वह आत्मत्वमात्रहै और जगत्भी आत्मरूपहै। जैसे आकाश और शून्यता

में भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं। हे रामजी! यदि ऐसाभी किसी देश अथवा काल में हो कि; सुवर्ण और भूषणमें कुछ भेद हो अर्थात् सुवर्ण भिन्न हो और भूषण भिन्न हो परन्तु आत्मा और जगत्में भेद नहीं; आत्माही ऐसे प्रकाशता है और अपने स्वभावमें स्थितहै दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे मृत्तिकाकी सेना नाना प्रकारकी संज्ञा धारतीहै परन्तु मृत्तिका से भिन्न कुछ दूसरी वस्तु नहीं है तैसेही फुरने से नाना प्रकार की संज्ञा दृष्टि भी आती हैं परन्तु आत्मासे भिन्न नहीं—वही रूप है। हे रामजी! यह सर्वपदार्थ अनुभव से भासते हैं। पदार्थ की सत्ता अनुभव से भिन्न नहीं। जब तुम अनुभवमें स्थित होकर देखोगे तब अनुभवरूप अपना आपही भासेगा। अपना स्वभाव ज्ञानमात्र है; उसीके जाननेका नाम ज्ञान है हे रामजी! ज्ञान विना जो तप, यज्ञ, दान आदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं। सब क्रियाओंकी सिद्धि ज्ञानसे होतीहै। हे रामजी! जो कुछ क्रिया ज्ञानके निमित्त कीजिये सोही पुरुषप्रयत्न श्रेष्ठ है और इससे अन्यथा व्यर्थ है। धन के उपजाने में भी और रखने में भी कष्ट है परन्तु जो ज्ञान के साधन निमित्त इसको रखिये और दीजिये तो यह अमृत होजाता है। हे रामजी! यह जगत् भ्रममात्र है। जैसे मलीन नेत्रवाले को रूप विपर्यय भासता है और स्वप्न की सृष्टि में अज्ञ तज्ञ भी भासते हैं परन्तु असत्यरूप हैं; तैसेही यह जगत् विद्यमान भासता है पर अविद्यमान है और आत्मा सदा विद्यमानहै। हे रामजी! विद्यमान देव जो विष्णु हैं उनको त्यागकर जो और देव का पूजन करते हैं उनकी पूजा सफल नहीं होती और विष्णु उन पर कोपमान भी होते हैं इसी तरह आत्मा जो अनुभवरूप विद्यमान है उसको त्यागकर जो और की पूजन करते हैं वे जन्म मरण के बन्धन से मुक्त नहीं होते—मूढ़ता में रहते हैं। आत्मदेव की पूजा सुनो। जो कुछ अनिच्छित आवे सो उसको अर्पण कीजिये और इसके जाननेवाले में अहंप्रत्यक्ष करना—यही बड़ी पूजा है। हे रामजी! इस आत्मदेव से भिन्न जो सूर्य, चन्द्रमा आदिक भेदपूजा है सो तुच्छ है। जब तुम आत्मपूजा में स्थित होगे तब और पूजा तुमको सूखे तृण की नाईं भासेगी। दानभी आत्मदेवको ही करना है सो बोधसे करने योग्य है और वैराग्य, धैर्य और संतोष बोध का कारण है। यथालाभ में संतुष्ट रहकर ब्रह्मविद्या का विचार करो और सन्तोंका संग करो। इन साधनोंसे जब बोधरूपी सूर्य उदय होगा तब द्वैतरूपी अन्धकार नष्ट होजावेगा और ज्ञानरूप ही भासेगा। फिर जो ज्ञान उपजा है वह भी शान्त होजावेगा—इससे उसी देव की पूजा करो जिससे आत्मपद को प्राप्त हो। आत्मदेव की पूजा के निमित्त फूल भी चाहिये इसलिये आत्मविचार करके चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख करना और यथालाभमें संतुष्ट रहकर सन्तोंकी संगति करना—इन फूलोंसे निवेदन करना। यह पूजाभी तब होतीहै

जब अन्तःकरण शुद्ध होता है; उससे ज्ञान उत्पन्न होता है और जब ज्ञान उपजता है तब आत्मदेव का साक्षात्कार होता है। ज्ञान का लक्षण सुनो। गुरु और शास्त्रसे जो वस्तु सुनी है उसमें स्थित होती है और संसार की वासना क्षीण होजाती है तब ज्ञानी कहाता है। जब इस ज्ञान की पूर्णता होती है तब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूपही भासताहै और तब उसको शस्त्र काट नहीं सक्ते और सिंह, सर्प, अग्नि और विषका भी भय नहीं होता। हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूपहै। जैसी भावना कोई करता है तैसाही आगे होभासताहै। जब शस्त्रमें शस्त्रके अर्थकी भावना होतीहै तब शस्त्रही भासते हैं; इसीप्रकार सर्प और अग्नि सब अपने२ अर्थाकार भासते हैं। जो सर्व आत्म-भावना होती है तब सर्व आत्मा ही भासताहै क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं तो दिखाई कैसेदे। जो पुरुष कृतकृत्य नहीं हुआ और आपको कृतार्थ मानताहै पर दुःख की निवृत्तिका उपाय नहीं करता तो दुःखके आयेसे दुःखही होवेगा और दुःख उसको चलालेजावेगा और जब सुख आवेगा तब सुखभी चलालेजावेगा। हे रामजी! जो पुरुष सर्व ब्रह्म कहाता है पर निश्चय से रहित है और शास्त्र भी बहुत देखता है वह महामूर्ख है। जैसे जन्म का अन्धा सूर्य को नहीं जानता तैसेही वह आत्म अनुभव से रहित है। जब आत्मपद का साक्षात्कार होगा तब ऐसा आनन्द प्राप्त होगा जिस के पाये से और पदार्थ रससे रहित भासेंगे और ब्रह्मा से काष्ठपर्यन्त सब पदार्थ विरस होजावेंगे। इससे आत्मपरायण होकर सदा आत्मपदकी भावना करो। हे रामजी! जैसे शुद्धमणि के निकट जैसी वस्तु रखिये तैसाही प्रतिबिम्ब होता है तैसेही जीव जैसी भावना करता है तैसाही रूप भासता है। इससे जगत् को ब्रह्मस्वरूप जानो और जो दूसरा भासे उसे भ्रममात्र जानो। जैसे पत्थर की शिलापर पुतलियां लिखते हैं सो शिलारूप ही हैं तैसेही यह सब जगत् आत्मस्वरूप है। जब आत्मपद की तुमको प्राप्ति होगी तब सब पदार्थ विरस होंगे। हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है। जो पुरुष इस जगत् को पदार्थ जानता है और कहता है कि, हम मुक्त होंगे सो ऐसा है जैसे अन्धेकूप में जन्म का अन्धा गिरे और कहे कि, अन्धकार के साथ मैं सचक्षु हूंगा। वह मूर्ख है क्योंकि, आत्मज्ञान विना मुक्त नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपुनर्निर्वाणोपदेशोनाम
शताधिकद्विषष्टितमस्सर्गः॥ १६२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अहन्ता आदि जो जगत् भासता है सो मिथ्या भ्रम करके उदय हुआहै; इसको त्यागकर अपने अनुभवस्वरूप में स्थित हो। इस मिथ्या जगत् में आस्था करनी तो मूर्खता है। जो ज्ञानवान् है उसको जगत्भ्रम का अभाव है। अब ज्ञानी और अज्ञानी का लक्षण सुनो। हे रामजी! जैसे किसी पुरुष को ताप

चढ़ता है तो उसका हृदय जलता है और तृषा बहुत होती है पर जिसका ताप नष्ट होगया है उसका हृदय शीतल होता है और जल की तृषा भी नहीं होती; तैसेही जिस पुरुष को अज्ञानरूपी ताप चढ़ाहुआ है उसका हृदय जलता है और भोगरूपी जल की तृष्णा बहुत होतीहै पर जिसके हृदय में अज्ञानरूपी ताप मिटगयाहै उसका हृदय शीतल होता है और भोगरूपी जल की तृष्णा मिटजातीहै। अब ताप निवृत्त करने का उपाय सुनो। शास्त्रों के अर्थवाद से तो बुद्धिभ्रम होजाता है और मैं तुमसे सुगम उपाय कहताहूं कि; निरहंकार होनाही सुगम उपायहै। 'न मैं हूं' और 'न यह जगत् है'; जब तुम ऐसा निश्चय धारोगे तब सब जगत् तुमको ब्रह्मस्वरूप भासेगा और किसी पदार्थ की वाञ्छा न रहेगी। जब सबपदार्थों को मिथ्या जानकर अपना भी अभाव करोगे तब पीछे प्रत्येक चैतन्य परमानन्दस्वरूप सबका अधिष्ठान शेष रहेगा। हे रामजी ! यह अहन्तारूपी यक्ष जो उठा है सो मिथ्या है और उस मिथ्या पुरुष ने नाना प्रकार का जगत् कल्पाहै। अहंकार भी मिथ्याहै और जगत् भी मिथ्या है। जब तुम अपने स्वरूप में स्थित होगे तब जगत् भ्रम मिटजावेगा। जैसे स्वप्न के जगत् में सुन्दर पदार्थ भासते हैं और मनुष्य उनकी इच्छा करता है। जबतक जागता नहीं तबतक जानता है कि, ये पदार्थ कदाचित् नाश न होंगे और कहता है कि, अमुकरूप देखिये और अमुक भोजन कीजिये पर जब जाग उठा तब जानता है कि, मेराही संकल्प था और फिर वे पदार्थ सुन्दर स्मरण भी होते हैं अथवा भासतेहैं तौभी उनको मिथ्या जानता है; तैसेही जब आत्मस्थिति में जागताहै तब सर्वब्रह्म ही भासता है। हे रामजी ! इस जगत् का बीज अहन्ताहै। जैसे दुःख का बीज पाप होता है तैसेही जगत् का बीज अहन्ताहै, इससे तुम निरहंकार पद में स्थित होरहो। यह सब तुम्हाराही स्वरूप है पर भ्रम से जगत् भासता है हे रामजी ! जगत् का अत्यन्ताभाव है। जैसे रस्सी में सर्प का अत्यन्ताभावहै पर भ्रमदृष्टि से सर्प भासताहै और जब विचाररूपी दीपक से देखिये तो सर्प का अभाव होजाताहै तैसेही आत्मा में यह जगत् भ्रम से भासताहै। जब विचार करके जगत् का अभाव निश्चय करोगे तब आत्मपद ज्यों का त्यों भासेगा। जैसे जब बसन्तऋतु आती है तब सब फूल, फल और डालें दृष्टि आते हैं सो एकही रस इतनी संज्ञा को धारता है; तैसेही तुम जब आत्मपद में स्थित होगे तब तुमको सब आत्मरूपही भासेगा। और सर्वनामभी आत्माही भासेगा। हे रामजी ! आदि भी आत्माही है और अन्त में भी आत्माही होगा पर मध्य में जो जगत् के पदार्थ भासते हैं उनकी ओर मतजाओ—जो इनका जाननेवाला है और जिससे सबपदार्थ प्रकाशतेहैं उसमें स्थित होरहो। ये सब मनुष्य मृगकी नाईं हैं। जैसे मरुस्थल में जल जानकर मृग दौड़तेहैं तैसेही जगतरूपी मरुस्थल की भूमिका शून्य

है और तीनोंलोक मृगतृष्णाके जल हैं उनमें मनुष्यरूपी मृग दौड़तेहैं और दौड़ते २ हार जातेहैं कदाचित् शान्ति नहीं होती क्योंकि; जगत् के पदार्थ सब असत्य हैं। हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार सब मृगतृष्णाके जल हैं; इनको जो सत्य जानता है वह मूर्ख है। यह जगत् गन्धर्वनगर की नाईं है तुम जागकर देखो; इनको सत्य जानकर क्यों तृष्णा करतेहो। इनको सत्य जानकर तृष्णा करनाही बन्धन है। हे रामजी! तुम आत्मा हो। इसकी इच्छा से बन्धवान् क्यों होतेहो? जैसे सिंह पिंजरे में आकर दीन होताहै पर बल करके जब पिंजरे को तोड़डालताहै तब बड़े वनमें जाय निवास करता है और निर्भय होता है तैसेही तुमभी वासनारूपी पिंजरे को तोड़कर आत्मपद में स्थित होरहो जो सर्वका अधिष्ठान और सबसे उत्कृष्ट है। जब तुम उस पद को प्राप्त होगे तब इस संसारकी वासना नष्ट होकर आनन्द होगा और तुम निर्वाण पद को प्राप्त होकर अफुर होगे; परम उपशम ज्ञेय पद को प्राप्त होगे और द्वैतभाव मिटकर केवल परमार्थसत्ता भासेगी—इसीका नाम निर्वाणहै। जैसे कोई मार्ग चलकर तपता आवे तो वह शीतल स्थान में आकर शान्ति पाताहै तैसेही यह चारों भूमिका शान्ति का स्थान है। निर्वाणता, निरहंकारता, वासना का त्याग और परम उपशम इनसे ज्ञेय में स्थित होना। जब तुमभी इन शान्तियों में स्थित होगे तब द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटी का अभाव होजावेगा और केवल द्रष्टाही रहेगा। हे रामजी! द्रष्टा भी उपदेश जतानेके निमित्त कहाहै; जब दृश्य का अभाव हुआ तब द्रष्टा किसका हो; केवल अपने आपमें स्थित हो जो शुद्ध है यह जगत् बुद्धि जन्म का देनेवाला है। जो जगत् के पदार्थ सुखदायी भासतेहैं सो दुःखके देनेवालेहैं, इनको विष जानकर त्याग करो। जैसे आकाशमें तरुवरे भासतेहैं तैसेही यह जगत् अनहोता भासताहै—आत्मामें दृश्य नहीं। एकही पदार्थमें दोदृष्टिहैं ज्ञानी उसको आत्मा और अज्ञानीजगत् जानतेहैं॥

दो० सबभूतनकीरात्रिमें, सन्तनकादिनहोय। जोलोकनादिनमानियां, सन्तरहेतबसोय १॥

ज्ञानी परमार्थतत्त्व में जागतेहैं और संसार की ओर से सोरहे हैं और अज्ञानी परमार्थतत्त्व में सोये हुयेहैं और संसारकी ओर सावधानहैं। हे रामजी! यह जगत् मन से फुरा है और ज्ञानी का मन सत्पद को प्राप्त हुआ है इससे उसे जगत् की भावना नहीं फुरती। जैसे बालक को संसार के पदार्थों का ज्ञान नहीं होता तैसेही ज्ञानी के निश्चय में जगत् कुछ वस्तु नहीं। हे रामजी! जब ज्ञान उपजता है तब जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं भासता। जैसे जल की बूंदें जल में डालिये तो भिन्न नहीं भासतीं तैसेही ज्ञानी को जगत् भिन्न नहीं भासता। जैसे बीज में वृक्ष होताहै तैसेही मन में जगत् स्थित होता है और जैसे वृक्ष बीजरूप है तैसेही जगत् मनरूप है; जब जगत् नष्ट हो तब मनभी नष्ट होजावेगा और मन नष्ट हो तब दृश्य भी नष्ट होगी—एकके अभाव हुये दोनों का

अभाव होजाता है–मन नष्ट हो तो फुरना भी नष्ट हो और फुरना नष्ट हो तो मन भी नष्ट होताहै। हे रामजी! जगत् के भीतर बाहर जो भासताहै वही मन है। इससे जब मन को स्थित करके देखोगे तब जगत् की सत्यता न भासेगी। अज्ञानी के हृदय में जगत् दृढ़ स्थित है इससे वह दुःख पाता है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में भूत भासता है तिससे वह दुःख पाता है और जो कोई निकट खड़ा है उसको नहीं भासता इससे वह दुःख नहीं पाता। हे रामजी! यह जगत् कुछ सत्य वस्तु होती तो ज्ञानवान् को भी भासता पर ज्ञानी को नहीं भासता इससे जगत् कुछ वस्तु नहीं है। जैसे एकही स्थान में दो पुरुष बैठे हों और एक को निद्रा आवे तो उसको स्वप्ने का जगत् भासता है और नानाप्रकार की चेष्टा होतीहै पर दूसरा जो बैठा जागताहै उसको उसका जगत् नहीं भासता; तैसेही जो पुरुष परमार्थसत्ता से जाग्रत् है उसको जगत् शून्य भासता है। हे रामजी! यह जगत् मिथ्याहै; उसकी तृष्णा तुम काहेको करतेहो–अपने स्वभाव में स्थित होरहो। यह जगत् परस्वभाव है–ऐसे जानकर चाहे जैसी चेष्टा करो तुमको बन्धन न करेगी और पूर्वपद की प्राप्ति होगी। जैसे अग्नि से जले सूखे तृण को पवन उड़ा लेजाता है और नहीं जाना जाता कि, कहां गया; तैसेही ज्ञानरूपी अग्नि से जलाया और निरहंकारतारूप पवन से उड़ाया हुआ संसाररूपी तृण न जाना जायगा कि; कहां गया? जैसे लाखयोजन पर्यन्त चलाजावे तौभी यही दृष्टि आताहै कि आकाश ही सब सृष्टि को धार रहाहै; तैसेही सब दृश्य जगत् को आत्म: धारता है। संसार का शब्द अर्थ आत्मा में कोई नहीं, इसको छोड़कर देखो कि, सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान आत्माही है। हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार मिथ्या उदय हुयेहैं–इनका त्याग करो। जैसे मरुस्थलमें जलाभास मिथ्या है तैसेही आत्मामें जगत् मिथ्या भ्रममात्र है। इसका सम्बन्ध करके जीव दुःखी होताहै। जैसे रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा मिथ्या है, तैसेही आत्मा में जगत्है। तुम आत्म ब्रह्म हो, दुःखसे रहित अपने स्वभाव में स्थित रहो और आत्मदृष्टि से देखो कि, सर्व आत्मा हो; अथवा जगत् को मिथ्या जानो तौभी शेष आत्मपद ही रहेगा। जैसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके अभाव हुयेसे शान्तपद शेष रहताहै, तैसेही जगत् के अभाव कियेसे आत्मपद शेष भासेगा। इस जगत् का अत्यन्ताभाव है और जो दृष्टि आता है सो भ्रममात्र है। जो एक काल में होताहै वह दूसरे काल में नष्ट होजाताहै। स्वप्ने में जाग्रत् का अभाव होजाताहै और जाग्रत् में स्वप्ने का अभाव होजाताहै पर सुषुप्ति में दोनों का अभाव होजाता है इससे वे भ्रममात्र हैं विश्व आत्मा का चमत्कार है। जैसे समुद्र में तरङ्ग होतेहैं तैसेही आत्मामें जगत् है। अहन्तासे यह उदय होताहै और अहन्ताके अभावसे अभाव होजाता है। जिनकी अहन्ता का अभाव हुआ है वेही सन्त और उत्तम पुरुष हैं; उन

महानुभाव पुरुषों का अभिमान और भोगों की आशा नष्ट होजाती है वे निर्भ्रान्ति-रूप नित्यही समाधिरूप होतेहैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकताप्रतिपादनन्नाम
शताधिकत्रिषष्टितमस्सर्गः ॥ १६३ ॥

रामजी बोले; हे भगवन्! यह मनरूपी मृग भटकताहै और वन में जलताहै; वह समाधानरूप कौन वृक्षहै जिसके नीचे आकर शान्त हो? उसके फूल, फल और लता कैसे हैं और वह वृक्ष कहां होताहै। सो कृपाकरके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसप्रकार समाधानरूप वृक्ष उत्पन्न होता है सो सुनो। इसके पत्र, पुष्प और लता आदि सब समाधानरूप हैं। हे रामजी! यह वृक्ष सबजीवों को कल्याण के निमित्त साधना योग्य है। अब तुम इसका क्रम सुनो। जलसे तो यह उत्पन्न होताहै और सन्त-जनों के वन में यह वृक्ष उपजताहै; चित्तरूपी पृथ्वी में लगताहै और वैरागरूपी इसका बीजहै। वैराग दो प्रकारसे प्राप्त होता है—एक तो दुःख और कष्ट प्राप्त होनेसे वैराग उ-पज आताहै; दूसरे शुद्ध निष्काम हृदयहोताहै तौभी वैराग उपजताहै। उस वैरागरूपी बीजको जब चित्तरूपी भूमिका में डालते हैं; वासनारूपी हल फेरते हैं और सन्तों की संगति और सत्शास्त्ररूपी जल जो निर्मल; शीतल और हृदयागम्य है मनरूपी क्यारी में पड़ता है तब उस वृक्ष के बढ़ने की आशा होती है। क्रियारूपी झाड़ू से जब अनुभवरूपी कूड़ेको दूर करते हैं; बहुत जलसे भी उसकी रक्षा करतेहैं अर्थात् आत्मविचाररूपी सूर्य की किरणों से सुखाते हैं और उसके चहुँफेर धैर्यरूपी बाड़ी करतेहैं और तप, दान, तीर्थ, स्नानरूपी चौतरे पर उस बीज को रखके बैठतेहैं कि, जल न जावे और आशारूपी पक्षीसे रक्षा करतेहैं कि; वैरागरूपी बीज को काढ़ न लेजावे और अभिलाषारूपी बूढ़े बैलसे रक्षा करतेहैं कि, क्षेत्र में प्रवेश करके उसको मर्दन न करे उसके निमित्त सन्तोष और सन्तोष की स्त्री मुदिता दोनों बैठारखते हैं और इस बीज का नाशकर्ता जो मेघ से उपजता है कुहिरा उससे भी रक्षा करते हैं। संपदा, धन और सुन्दर स्त्रियोंकी प्राप्ति होनीही वैरागरूपी बीजका नाशकर्ता ओला है। इसकी रक्षा का एक सामान्य उपाय है और एक विशेष उपाय है। तप करके इन्द्रियों को सकुचाना, दुःखीपर दया करना और सन्तोषमात्र पाठ और जाप करना इत्यादिक शुभ क्रियारूपी यन्त्री की पुतली इसके विद्यमान रखिये तो सब विघ्न दूर हो-जाता है। दूसरा परम उपाय यहहै कि, सन्तोंकी संगति करके सत्शास्त्रों का सुनना, प्रणव जो ॐकार[1] है उसका ध्यान और जप करना और उसका अर्थ विचारना यही त्रिशूलरूप ओलों के नाश का परमउपाय है। जब इतने शत्रुओंसे रक्षा करे तब उस

[1] ॐकार एवेदं सर्वम्।

बीज की उत्पत्ति हो। सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के विचाररूपी वर्षाकाल के जल से सींचिये तब अंकुर निकलताहै और बड़ा प्रकाश होताहै। जैसे द्वितीयाके चन्द्रमा को सबकोई प्रणाम करताहै तैसेही सन्तोष दया और यशरूपी अंकुर निकलताहै। उसके दो पत्र निकलतेहैं–एक वैराग दूसरा विचार और वे दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं। शास्त्रों से जो सुना है कि; आत्मा सत्यहै और जगत् मिथ्याहै उसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये इस जल के सींचने से वे अंकुर दिन प्रतिदिन बढ़ते जावेंगे और उनके थम्भ बड़ेहोंगे। हे रामजी! जब डालें बड़ी होतीहैं तब राग द्वेषरूपी वानर उनपर चढ़कर तोड़ डालतेहैं इससे इस वृक्षको दृढ़ वैराग, सन्तोष और अभ्यासरूपी रससे पुष्ट करना योग्यहै। जैसे सुमेरुपर्वत है तैसेही सन्तोषसे उसे पुष्ट करना। जब ऐसे होगा तब उसमें सुन्दर पत्र, डालें, फूल और मञ्जरी लगेंगी; बड़े मार्गपर्यन्त इसकी छाया होगी और शान्ति, शीतलता, शुद्धता, कोमलता, दया यश और कीर्ति इत्यादिक गुण प्रकट होंगे। उसके नीचे मनरूपी मृग विश्राम पाकर शीतल होता है और आध्यात्मिक; आधिभौतिक और आधिदैविक ताप मिटजाते हैं और परमशान्ति पाता है। हे रामजी! यह मैंने तुमसे समाधानरूपी वृक्ष कहा है। जहां यह वृक्ष उत्पन्न होताहै उस स्थानकी शोभा कही नहीं जाती और जो इस वृक्षकी शरण जाता है उसके ताप मिटजाते हैं और शान्तिमान् होता है। यह वृक्ष ब्रह्मरूपी आकाश के आश्रय बढ़ताहै और वैरागरूपी रस और सन्तोषरूपी छाल से पुष्ट होता है। जो पुरुष इसका आश्रय लेगा सो शान्तिमान् होगा। हे रामजी! जबतक मनरूपी मृग इस समाधानरूपी वृक्षका आश्रय नहीं लेता तबतक भटकता फिरताहै पर शान्ति नहीं पाता। जैसे मृग वनमें भटकताहै तैसेही मनमृग भटकताहै और द्वैत, अज्ञान और प्रमादरूपी बेधक मारने लगते हैं उससे दुःख पाता है जब भय से इन्द्रियरूपी गांववासियों के निकट जाता है तब वे आपही इसको खेदकर पकड़ लेते हैं अर्थात् विषयों की ओर खींचते हैं और उससे बड़ा कष्ट पाता है। इनके भय से जब फिर वनमें जाता है तो वहां विषय की अप्राप्तिरूपी तपन से दुःखी होता है। जब उसको भी त्यागकर रसरूपी स्थानोंको शान्ति के निमित्त दौड़ताहै तो कामरूपी श्वान मारने को दौड़ता है और उसके भय से जब फिर वैरागरूपी वन की ओर धावता है तब क्रोधरूपी अग्नि जलाती है; वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं और लोभ और मोहरूपी अँधेरी में अन्धा होजाता है। निदान पुत्र और धनरूपी हरेहरे तृणों को देखकर ग्रहण करताहै तब गढ़े में गिरपड़ताहै। वह गढ़ा तृण से ढपाहुआ है सो तृण पुत्र धनहै तिनको सुन्दर देख तब ममतारूपी गढ़े में गिरपड़ताहै। इस प्रकार दुःख पाता है। हे रामजी! जब यह मन झूठ बोलता है तब मृत्तिकामें लोटतेकीसी चेष्टा

करता है और जब मनरूपी भेड़िया आता है तब उसको भक्षण करजाता है। जब समाधानरूपी वृक्ष से जीव विमुख होता है तब इतने कष्ट पाता है। और जब मनरूपी भेड़िये से छूटताहै तब आशारूपी जंजीरमें बन्धवान् होताहै; निदान जबतक इस वृक्ष के निकट नहीं आता है तबतक बड़े कष्टस्थानों को जाता है। तमाल वृक्षादिक के तलेभी जाता है और कण्टक के वृक्षोंके तले भी जाता है परन्तु शान्तिमान् किसी स्थान में नहीं होता—बड़े २ कष्टों को ही पाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहरिणोपाख्यानेवृत्तान्तयोगो पदेशोनामशताधिकचतुःषष्टितमस्सर्गः॥ १६४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार मूढ़ बुद्ध मनरूपी हरिण भटकताहै। इससे मेरा यही आशीर्वादहै कि, तुमको उस वृक्षका संग हो। जब उस वृक्षके निकट जीव जाताहै तब शान्ति होतीहै और जब इसके नीचे आ बैठताहै तब तीनों ताप अन्तःकरण से मिटजाते हैं। जितने विषयरूपी वृक्ष हैं उनके निकट गया मनरूपी मृग शान्ति नहीं पाता पर जब समाधानरूपी वृक्ष के निकट आता है तब शान्ति पाताहै और बुद्धि खिलआती है—जैसे सूर्यमुखीकमल सूर्य को देखकर खिलआता है। उस वृक्षके अनुभवरूपी फल और शास्त्रके विचाररूपी पत्र और फूलोंको देखकर वह बड़े आनन्दको पाताहै और उस वृक्षके ऊपर चढ़जाताहै और पृथ्वीका त्याग करता है। जैसे सर्प अपनी पुरानी कञ्चुकीका त्याग करताहै और नूतन सुन्दर शरीरसे शोभताहै। जब उस वृक्ष पर चढ़ताहै तब गिरता नहीं। क्योंकि, उसके पत्र बहुत बली हैं उनके आश्रय ठहरता है। समाधानरूपी वृक्ष के सतशास्त्ररूपी पत्र हैं। जब समाधानरूपी वृक्ष से उतरता है तब शास्त्र के अर्थ में ठहरताहै और जितने पदार्थ देखता है वे उसे क्षारवत् दृष्ट आते हैं और अपनी पिछली चेष्टा को स्मरण करके पछताता है। जैसे कोई मद्यपान करके उसमें नीच चेष्टा करे तो जब मद उतरताहै तब पछताताहै तैसेही मनरूपी मृग अपनी पिछली चेष्टा को धिक्कार करता है और कहता है कि; बड़ा आश्चर्य है जो मैं इतने काल इस वृक्ष से विमुख हुआ भटकता रहा—अब मुझको शान्ति हुई है। जैसे दिनकी तपन के अभाव हुयेसे चन्द्रमुखी कमलिनी को शान्ति होती है तैसेही मनरूपी मृग को शान्ति होतीहै। हे रामजी! पुत्र, धन, स्त्रीआदिक जो दीखते हैं उनको वह संकलपपुर और स्वप्नवत् देखता है। जैसे स्वप्न से जागकर कोई स्वप्नपुर को स्मरण करताहै परन्तु उसमें अभिमान नहीं होता तैसेही उसमें भी अभिमान नहीं होता। जब जीव अनुभवरूपी फल को पान करताहै तब बड़े आनन्द पाता है जिसको वाणी नहीं कहसक्ती और शान्त; निर्मल और निरतिशयपद को प्राप्त होता है। जो मन का विषय हो सो सातिशयपद है और जो मन का विषय नहीं वह निरतिशयपद

है। जो इन्द्रियों का विषय है उसका नाश भी होता है और जो इन्द्रियों और मन का विषय नहीं उसका नाश नहीं होता। वह उसी अविनाशी पद को पाताहै। जैसे किसी को बाण लगता है और उसकी बिरोधी बूटी उसके सन्मुख रखिये तो निकल आता है तैसेही अनुभवरूपी बूटी के सन्मुख हुये मोह बन्धनरूपी शर खुलपड़ते हैं और परमपद पाता है। हे रामजी! ज्ञानवान् जगत् से मृतक होजाताहै; उसको संसार का कुछ लेप नहीं लगता। जैसे लकड़ी बिना अग्नि शान्त होजाती है तैसेही वासना से रहित ज्ञानवान् की चेष्टा शान्त होजाती है अर्थात् संसार की सत्यता से रहित चेष्टा होती है और फिर संसाररूपी अग्नि नहीं उदय होती। तब द्वैत और एक कल्पना भी मिटजाती है और उन्मत्त की नाईं अपने स्वरूप में घुर्म रहता है जैसे मरुस्थल का मार्ग चलनेवाला धूपकी इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानी विषयकी तृष्णा नहीं करता। जिसने आत्मअनुभवरूपी अमृत पान कियाहै उसको विषयरूपी कांजीकी इच्छा नहीं रहती–वह पुरुष सदा निर्वासी है। जब जीव निर्वासी होताहै तब चञ्चल जो मन की वृत्ति है सो सब लीन होजातीहै और केवल आत्मत्वमात्रपद रहताहै 'मैं' 'मेरा' इत्यादि भावना नष्ट होजाती है जबतक चित्त का सम्बन्ध होता है तबतक 'मैं' और 'मेरा' भासता है और जब चित्त का सम्बन्ध मिटजाताहै तब एकाकार होजाताहै। जैसे एक सूखा काष्ठ होता है और एक गीला काष्ठ होता है; सूखा तो शुद्ध कहाताहै और गीला उपाधिक कहाता है और जब जल सूखगया तब वहभी शुद्ध होताहै; तैसेही जब मन की उपाधि नष्ट होती है तब शुद्ध आत्माही रहता है और एकरस भासता है। हे रामजी! संसार द्वितीयभ्रम से भासताहै। जैसे पत्थर की शिला में पुतली अनउपजीही भासती हैं सो न सत् हैं और न असत् हैं; यदि पत्थर से भिन्न करके देखिये तो सत् नहीं और जो शिला में देखिये तो वेही रूप हैं; तैसेही जगत् आत्मा से भिन्न सत्य नहीं और आत्मसत्ता में आत्मरूप है। जैसे छोटे बालक के हृदय में जगत् का शब्द अर्थ नहीं होता; तैसेही ज्ञानी की चेष्टाभी प्रारब्धवेगसे होतीहै और उसके हृदयमें जगत् के शब्दअर्थ का अभाव है। हे रामजी! जो कुछ प्रारब्ध होतीहै सो अवश्य उसको भी प्राप्त होतीहै, मिटती नहीं; शुभहो अथवा अशुभहो। जैसे मेघ से गिरती हुई बूंद नहीं नष्ट होती मेघ मन्त्रशक्तिसे नष्ट होताहै; तैसेही प्रारब्धकर्म[1] उसका भी नष्ट नहीं होता परन्तु वह उनमें बन्धायमान नहीं होता। अज्ञानीके हृदय में संसार सत्य भासताहै और भिन्न २ पदार्थ संयुक्त भासता है; क्योंकि, उसे पदार्थ का ज्ञानहै पर ज्ञानी के हृदय में आत्मा का ज्ञान है उसको संसार की सत्यता नहीं भासती। हे रामजी! यह जो समाधानरूपी वृक्ष मैंने तुमसे कहा है उसकी विधि संयुक्त सेवा करनेसे अनुभवरूपी फल प्राप्त होताहै और जो

१. प्रारब्धकर्मणांभोगादेव क्षयः।

बोध से रहित होकर सेवन करताहै तो अनेक यत्नसे भी फल की प्राप्ति न होती क्योंकि; उसे ऐसी भावना नहीं होती कि; आत्मा शुद्ध है और सत्-चित्-आनन्द है। जिनको यह भावना प्राप्त होती है उनको भोगों की इच्छा नहीं रहती। जैसे किसीने अमृत पान किया हो तो अमल और कटुक फलकी वाञ्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानी किसीकी इच्छा नहीं करता। जैसे रुई के फाहे को अग्नि लगे और ऊपरसे तीक्ष्ण पवन चले तो नहीं जाना जाता कि,कहां जापड़ा; तैसेही जगत्रूपी रुईका फाहा ज्ञान अग्निसे दग्ध किया हुआ और वैरागरूपी पवन से उड़ाया नहीं जाना जाता कि, कहां जा पड़ा। तब आकाशही आकाश भासता है और जगत् सत्य नहीं भासता तो फिर तृष्णा किसकी करे-तब वह तृष्णा से रहित स्थित होता है। हे रामजी! दुःख का मूल तृष्णाहै; तृष्णाहीसे भटकता है। जैसे जबतक पर्वतों के पंख थे तबतक वे उड़ते थे, पंख बिना उड़नेसे रहित होकर गम्भीर स्थित होरहे हैं; तैसेही जब मन से वासना नष्ट होती है तब मन स्थिर होजाता है। हे रामजी! वाञ्छितदेश को विदेशी तब जा प्राप्त होता है जब एक देश का त्याग करताहै; तैसेही शुद्धस्वरूप परमानन्द अपना आप आत्मा तब प्राप्त होता है जब धन, लोग और पुत्र एषणा का त्याग करे। जब आत्मा की प्राप्ति होतीहै तब निर्विकल्पसमाधि से निर्विकल्प चैतन्यका साक्षात्कार होताहै और जब समाधिमें उसका साक्षात्कार होता है तब उत्थानकाल में भी समाधि में स्थित रहता है; परम निर्वाणपदको प्राप्त होताहै और चित्तरूपी बेलि दूर होजातीहै। जैसे रस्सीमें जो वल होता है तो उसको खैंचकर फिर छोड़तेहैं तब वह सीधी होजाती है; तैसेही जिसको समाधिमें चैतन्यका साक्षात्कार होताहै उसको उत्थानकालमें भी वही भासताहै और जिसको उसका प्रमादहै उसको जगत् भासताहै। हे रामजी! वस्तु एक है परन्तु उसमें दो दृष्टि हैं। जैसे रस्सी एकहै पर सम्यक्दर्शीको रस्सी भासतीहै और असम्यक्दर्शी को सर्प हो भासताहै; तैसेही ज्ञानवान्को आत्मा भासता है और अज्ञानी को जगत् भासता है। जिस पुरुष ने ज्ञान से जगत् को असत्य नहीं जाना वह मानो चित्त की अग्नि है उससे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता और जिसको स्वरूपकी इच्छाहै और जो तृष्णाके नाश करनेका प्रयत्न करताहै और जगत्को मिथ्या विचारताहै वह आत्मपद को प्राप्त होगा और उसकी तृष्णा भी निवृत्त होजावेगी। हे रामजी! ज्ञानवान् की तृष्णा स्वाभाविक मिटजाती है। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार मिटजाता है तैसेही वस्तु की सत्ता पाकर उसकी तृष्णा नष्ट होजाती है और परमपद में स्थित होताहै। हे रामजी! जिसको दृश्यमें निरसता है वह उत्तम पुरुष है, वह मनुष्य शरीर पाकर ब्रह्म होता है; उसको मेरा नमस्कार है और वह मेरा गुरु है। हे रामजी! जब जीवकी बुद्धि विषय से विरस होती है तब कल्याण होताहै। वैराग से बोध होता है

और बोध से वैराग होता है क्योंकि; परस्पर दोनों सम्बन्धी हैं—जब एक आता है तब दूसरा भी आता है। जब यह आते हैं तब तीनों एषणा निवृत्त होजाती हैं और जब तीनों एषणा होती हैं तब अमृत की प्राप्ति होती है। हे रामजी! सन्तों के संग और सत्शास्त्रोंके सुननेसे अपने स्वरूपका अभ्यास करो—इससे आत्मपदकी प्राप्ति होती है। यह तीनों परस्पर श्रेष्ठ हैं। जैसे आठ पांववाला कीट प्रथमचरण को रखकर और चरण को रखता है तब सुख से चला जाताहै, तैसेही सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के सुननेसे जो आत्मपद का अभ्यास करता है वह शीघ्रही आत्मपद को प्राप्त होता है और उसे जगत् का अभाव होजाताहै। हे रामजी! जगत्के भाव और अभावको ज्ञानी जानताहै। जैसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति को तुरीयावाला जानता है; तैसेही जगत्के भाव अभावको ज्ञानी जानताहै। जैसे अग्निमें सूखा तृण डाला दृष्ट नहीं आता, तैसेही ज्ञानवान्को जगत् नहीं दृष्ट आता। हे रामजी! ज्ञानवान्को सर्वदा समाधिहै, कदाचित् उत्थान नहीं होता। जबतक उस पद को प्राप्त न हो तब तक साधनामें लगारहे और जब उस पदको प्राप्त हो तब फिर कोई यत्न नहीं रहता। हे रामजी! इस चित्त के दो प्रवाह हैं—एक तो जगत् की ओर जाता है और दूसरा स्वरूप की ओर जाता है। जो जगत् की ओर जाता है सो उपाधिक है और जो स्वरूप की ओर जाता है सो उपाधि को दूर करनेवाला है। जैसे एक लकड़ी गीली और एक सूखी होती है; जो गीली है उसमें उपाधि जलहै सो फैलजाता है और जब जल नष्ट होजाता है तब वह शुद्ध होती है फिर प्रफुल्लित नहीं होती; तैसेही संसार की सत्यतासे चित्त वृद्ध होताहै और जब संसारकी वासना नष्ट होतीहै तब शुद्धपद पाता है। हे रामजी! वाद जो करतेहैं सो भी दो प्रकारके हैं; जो वाद किसीको दुःख दे उसे मूर्ख करतेहैं और जो परस्पर मित्रभावसे निरूपण तत्त्वका करे सो ज्ञानवान् करतेहैं। जैसा जो वाद करते हैं उसका उन्हें दृढ़ अभ्यास होताहै और तैसाही रूप होजाताहै। जो कष्ट और झगड़ा करते हैं उनका वहीरूप होजाताहै और जो मित्रतासे स्वरूप का वाद करते हैं तो वही रूप होता है—उस पद को पाकर परम शान्ति होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमनमृगोपाख्यानयोगोपदेशो नामशताधिकपञ्चषष्टितमस्सर्गः॥ १६५॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपूर्वार्द्धं समाप्तम्॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्ध प्रारभ्यते ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष ने समाधानरूपी वृक्ष के फल को जानकर पान किया है और उसको पचाया है उसे परम स्थिति प्राप्त होती है। जैसे पंख टूटेसे पर्वत स्थित होरहे हैं तैसेही तृष्णारूपी पंख के टूटे से जीव स्थित होता है। हे रामजी! जब उसको फल प्राप्त होता है तब उसका चित्तभी आत्मरूप होजाता है। जैसे दीपकनिर्वाण होता है तब जाना नहीं जाता कि, कहां गया; तैसेही आत्मपद के प्राप्त हुये चित्त भिन्न होकर दिखाई नहीं देता। हे रामजी! जबतक वह अकृत्रिम आनन्द प्राप्त नहीं हुआ और उसपद में विश्रान्ति नहीं पाई तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती। वह पद निर्गुण, शुद्ध, स्वच्छ और परमशान्त है जब उस पद में स्थिति होती है तब परम समाधि होजाती है। ऐसा त्रिलोकी में कोई नहीं जो उसको उतारे। जैसे चित्र की मूर्ति होती है तैसेही उसकी अवस्था होती है और उसकी सब चेष्टा इच्छा से रहित होती है। जैसे पंख से रहित पर्वत स्थित होता है तैसेही मन अमन होजाता है और शान्तिपद को प्राप्त होताहै। हे रामजी! जिसके मन में संसार का अभाव हुआ है वह शान्तिपद को प्राप्त होताहै और जो वासनासंयुक्तहै तो मनहै। जिस क्रम और युक्ति से वासना क्षय हो सोही कर्तव्य है। हे रामजी! जब वासना क्षय होती है तब बोधरूप शेष रहता है, इसलिये जिस क्रम से वह प्राप्त हो वही किया चाहिये क्योंकि; उस पद के प्राप्त हुये विना शान्ति कदाचित् न होगी। जब चित्त उस पद की ओर आवे तब शान्त होकर दुःख से रहित और अविनाशी हो क्योंकि; सर्व आत्मा निर्विभाग; अनन्त परम शान्तिरूप और सबको कर्म के फल का देनेवालाहै। हे रामजी! जब ऐसे पदको जीव प्राप्त होताहै तब उसको उत्थानकालमें भी आत्माही भासताहै द्वैत नहीं भासता तो समाधि से उत्थान कैसे हो? ऐसा कोई समर्थ नहीं कि, उसको समाधि से उतारे। जब ऐसा पद प्राप्त होता है तब संसार विरस होजाता है हे रामजी! जबतक मनुष्य मूर्तिवत् नहीं होता तबतक विषय का त्याग करे और जब ऐसी दशा हो तब कुछ कर्तव्य नहीं रहता त्याग करे अथवा न करे। यह मुझे निश्चय है कि, जब ज्ञान उपजेगा तब विषयों से विरक्त होजावेगा। ब्रह्मा से आदि

काष्ठ पर्यन्त जितने पदार्थहैं वे सब उसको विरस होजाते हैं। ऐसा जो पुरुषहै उसको सदा समाधिहै। हे रामजी! जिसको समाधिका सुख आता है वह स्वाभाविक समाधि की ओर आता है। जैसे वर्षाकाल की नदी स्वाभाविक समुद्र को जाती हैं तैसेही वह पुरुष समाधि की ओर लगारहता है। जो पुरुष विषयों से निरिच्छित और आत्मारामी होताहै उसको वज्रसार की नाईं स्थिति होती है। जैसे पंख से रहित पर्वत स्थित होते हैं तैसेही जिस पुरुष ने संसार को विरस जानकर त्याग कियाहै और आत्मा में क्रीड़ा करके तृप्त हुआ है उसका ध्यान चलायमान नहीं होता। हे रामजी! जिस पुरुष की चेष्टा भी होती है पर संकल्प विकल्प से रहित है वह सदा मुक्तरूप है; उसको कोई क्रिया बन्धायमान नहीं करतीं क्योंकि; क्रिया और साधन का अभाव होजाता है। जिस पुरुष को जगत् विरस होगया है उसको विषयोंकी तृष्णा कैसे हो और जब तृष्णा न रही तब दुःख कैसे हो? दुःख तबतक होता है जबतक विषयों की तृष्णा होती है और विषयों की तृष्णा तब होती है जब अपने स्वभाव को त्यागता है। हे रामजी! जब अपने स्वभाव में स्थित हो तब परस्वभाव जो इन्द्रियों के विषय हैं सो रससंयुक्त कैसे भासें और दुःख और तृष्णा कैसेहो? हे रामजी! जब अपने स्वभाव को जानता है तब उस परम निर्वाणपद को प्राप्त होता है जो आदि और अन्त से रहितहै। तिस की प्राप्ति का उपाय यह है कि, वेद का अध्ययन करना और प्रणव का जप करना। जब इनसे थके तब समाधि करे और जब फिर थके तब वहीं जा पाठकरे। जब ऐसे दृढ़ अभ्यास हो तब उस पद को प्राप्त होवेगा जो संसार के पार गमन का मार्ग है और जब उसको पाया तब परम शान्ति को प्राप्त होवेगा और स्वच्छ निर्मल अपने स्वभाव में स्थित होवेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वभावसत्तायोगोपदेशो
नामशताधिकषट्षष्टितमस्सर्गः॥ १६६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार बड़ा गम्भीर है और इसका तरना कठिन है जिसको इससे तरने की इच्छा हो उसको यह कर्तव्य है कि, वेदका अध्ययन; प्रणव का जाप और चित्त को स्थित करे। जब ऐसा उपाय करे तब ईश्वर उस पर प्रसन्न होंगे और उसके हृदय में विवेक का कण उत्पन्न होगा जिससे संसार असत्य भासेगा और सन्तजनों का संग प्राप्त होगा; जिनका शुभ आचार है और जो परमशीतल और गम्भीर ऊंचे अनुभवरूपी फलसंयुक्त वृक्ष हैं और यश, कीर्ति और शुभआचाररूपी फूल और पत्रों सहित हैं। ऐसे सन्तजनोंकी संगति जब प्राप्त होतीहै तब जगत् के राग द्वेषरूपी तम मिटजाते हैं। जैसे किसी मजूरके शिरपर भार हो और तपनसे दुःखी हो पर जब वृक्षकी शीतलछाया प्राप्त हो तब शीतल होताहै और फलके भक्षणसे तृप्त होता

है और थकानका कष्ट दूर होजाताहै तैसेही सन्तों के संग से सुखको प्राप्त होताहै । जैसे चन्द्रमा की किरणों से शीतल होताहै तैसेही सन्तजनों के वचनों से शान्ति होती है । हे रामजी ! सन्तजनों के दर्शन किये से पाप दग्ध होजाते हैं जो पुरुष सकाम तप, यज्ञ और व्रत करतेहैं उनकी संगति न कीजिये क्योंकि; वे ऐसे हैं जैसे यज्ञ का थम्भा जो पवित्र भी होताहै परन्तु उसकी छाया कुछ नहीं इससे उसके नीचे कोई सुख नहीं पाता । हे रामजी ! सब सकामकर्म जन्म मरण देनेवाले हैं । यद्यपि यज्ञ, व्रत और तप जिज्ञासी भी करतेहैं तौ भी उनसे विशेषहैं क्योंकि; निष्कामहैं । उनको विषयों में विरस भावना है और उनका शुभ आचार है । हे रामजी ! ऐसे जिज्ञासी की संगति विशेषहै जिसकी चेष्टाकी सब कोई स्तुति करता है और जो सबको सुखदायक भासता है । जो जिज्ञासी नवनीतवत् कोमल, सुन्दर और स्निग्ध होता है उसको सन्तोंकी संगति प्राप्त होनी है । हे रामजी ! फूलोंके बगीचे और सन्दर फूलोंकी शय्या आदिक विषयों मे भी ऐसा निर्भय सुख नहीं प्राप्त होता जैसा निर्भय सुख सन्तों की संगति से प्राप्त होता है क्योंकि, उनका निश्चय सदा आत्मामें रहताहै । हे रामजी ! ऐसे ज्ञानवानों की संगति करके जब हृदय शुद्ध होता है तब आत्मतत्त्व की प्राप्ति होतीहै और जबतक हृदय मलिनहै तबतक प्राप्ति नहीं होती । जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है और लोहे की शिला प्रतिबिम्ब को नहीं ग्रहण करती; तैसेही जब हृदय उज्ज्वल होताहै तब सन्तों के वचन हृदय में ठहरते हैं । और जैसे वर्षाकालका बादल थोड़ेसे बहुत होजाताहै तैसेही जब हृदय शुद्ध होताहै तब बुद्धि बढ़ती जाती है । जैसे वन में केले का वृक्ष बढ़ताजाता है तैसेही बुद्धि बढ़तीजाती है । जब आत्मविषयिणी बुद्धि होती है तब वही रूप होजाता है और बुद्धि की भिन्नसंज्ञा का अभाव होजाता है जैसे लोहेको पारस का स्पर्श होता है तब सुवर्ण होजाता है और फिर लोहेकी संज्ञा नहीं रहती तैसेही आत्मपद की प्राप्ति हुये बुद्धि की संज्ञा नहीं रहती और विषय भोगकी तृष्णा भी नहीं रहती । हे रामजी ! विषयोंकी तृष्णा और अभिलाषा ने जीव को दीन किया है; जब तृष्णा का त्याग करे तब परम निर्मलताको प्राप्त होताहै । जैसे हस्ती शिर पर मृत्तिका डालताहै तबतक मलीनहै और जब नदी में प्रवेश करताहै तब निर्मल होजाताहै; तैसेही जब जीव तृष्णारूपी राख का त्याग करता है और आत्मा में स्थित होता है तब निर्मल होता है । हे रामजी ! जब भोगों की इच्छा त्यागताहै तब बड़ी शोभा धारता है । जैसे सुवर्ण को अग्नि में डालने से उसका मैल जलजाता है और उज्ज्वलरूप धारता है । हे रामजी ! भोगरूपी बड़ा विष है; उसको दिन २ त्याग करना विशेष है । जब तृष्णा का त्याग करता है तब मुख भी बड़ी शोभा से शोभता है जैसे राहु दैत्य से रहित हुआ चन्द्रमा का

मुख शोभा पाताहै तैसेही तृष्णाके वियोग हुये पुरुषका मुख शोभताहै । हे रामजी! जब भोगों से वैराग होता है तब दो पदार्थों की प्राप्ति होती है । जैसे नूतन अंकुर के दो पत्र होते हैं तैसेही तृष्णा के त्याग से एकतो सन्तों की संगति और दूसरा सत्-शास्त्र का विचार उत्पन्न होता है । और उनमें जब दृढ़ भावना होतीहै तब अभ्यास करके वही परमानन्दरूप होता है जिसको वाणी की गम नहीं । तब भोगों की इच्छा से मुक्त होता है और परमशान्त सुख पाता है । जैसे पिंजरे से निकल कर पक्षी सुखी होता है तैसेही वह सुखी होता है । हे रामजी ! जीव को भोग की इच्छानेही दीन कियाहै । जब इच्छा निवृत्त होती है तब गोपद की नाईं संसारसमुद्र को लांघजाताहै और तब उसको तीनों जगत् सूखे तृणकी नाईं भासते हैं । हे रामजी ! जब वह भोग की इच्छा से मुक्त होता है तब ईश्वर होता है । जिस पुरुष को आत्मसुख प्राप्त हुआ है वह भोगोंकी इच्छा कदाचित् नहीं करता और जब वे आन प्राप्त होते हैं तब भी उसको विरस और मिथ्या भासते हैं इससे उनके भोग को नहीं चाहता । जैसे जाल से निकला हुआ पक्षी फिर जाल को नहीं चाहता तैसेही वह पुरुष भोगों को नहीं चाहता । जब विषयों की तृष्णा निवृत्त होती है तब परम शोभा पाताहै और सन्तों के वचन उसके हृदय में शीघ्रही प्रवेश करते हैं । हे रामजी ! मोक्षरूपी स्त्री के कानों के भूषण सन्तों की संगति है । जब साधु की संगति होती है तब अशुभ क्रिया का त्याग होजाताहै और बिराने धन की इच्छा नहीं रहती । तब जो कुछ अपना होता है उसके भी त्यागने की इच्छा होती है और भलेभोग जो भोगने के निमित्त आते हैं उनको विभाग देकर खाता है । निदान बड़े उत्तम भोगोंसे लेकर साग पर्यन्त जो कुछ प्राप्त होताहै उसमेंसे देकर खाताहै । तथाशक्ति जब ऐसे प्रमाण हुआ तब फिर ऐसा होजाता है कि; यदि कोई शरीर मांगता तो शरीर भी देताहै क्योंकि; उसको देनेका अभ्यास होजाताहै पर और से साग मांगनेकी भी इच्छा नहीं रखता उसीमें संतोषमें यथाप्राप्त चेष्टा और तप, दान करताहै; यज्ञ, व्रत और ध्यान करके पवित्र रहताहै और तृष्णा का त्याग करताहै । हे रामजी ! ऐसा दुःख क्रूरनरकमें भी नहीं होता जैसा दुःख तृष्णासे होताहै । जो धनवान् हैं उनको धनके उपजनेकी चिन्ताहै; रखनेकी चिन्ताहै और उठते, बैठते, खाते, पीते, चलते, सोते सदा धनकीही चिन्ता रहतीहै । इसही चिन्तामें वे मचिमचि मरजातेहैं और फिर जन्मते हैं । हे रामजी ! निर्धनको भी चिन्ता रहतीहै परन्तु थोड़ी होतीहै । जबतक चिन्ता रहतीहै तबतक दुःखी रहताहै पर जब चिन्ता नष्ट होती तब परमसुखी होताहै । हे रामजी ! यद्यपि धनी हो और उसे संतोष नहीं तो वह परम दरिद्री है और जो धन से हीन है परन्तु संतोषवान् है वह परम ईश्वर है । जिसको संतोष है उसको विषय बन्ध नहीं करसक्के ।

हे रामजी ! जबतक धनकी इच्छा नहीं की तबतक भोगरूपी विष नहीं लगता और जब धनकी इच्छा उपजतीहै तब परम विष लगताहै; विपरीत भावनामें दुःख होताहै और जो दुःखदायक पदार्थहैं उनको सुखदायक जानता है । हे रामजी ! जो कुछ अर्थहै वही अनर्थ है; जिसको संपदा जानाहै वही आपदाहै और जिनको भोग जाना है वही सब रोगरूप हैं । इनको संपदा जानकर बिचरता है इससे बड़ा दुःखी होताहै । हे रामजी ! रसायन सबदुःख नाश करती है परन्तु वह देवताओं के पास होती है । यदि अमृत चाहिये तो संतोष परम रसायन है । जब विषयों में दोषदृष्टि होती है और संतोष धारण करता है तब मूर्खता दूर होजाती है और गोपद की नाईं संसारसमुद्र से शीघ्रही तरजाताहै । जैसे गोपदको सुगमही लंघजाते हैं तैसेही संसारसमुद्र को वह सुगम तर जाताहै । हे रामजी ! जिसको संतोष प्राप्त होताहै उसको परमशान्ति होती है । कदाचित् बसन्तऋतु भी सुख का स्थान हो; नन्दन वन भी सुख का स्थान हो; उर्वशी आदिक अप्सरा हों; चन्द्रमा विद्यमान बैठा हो; कामधेनु विद्यमान हो और इन्द्रियों के सब सुख विद्यमान हों तो भी शान्ति न होगी परन्तु एक संतोषसेही शान्ति होगी । संतोषवान् को यह विषय चला नहीं सक्के । हे रामजी ! जैसे अर्घा भरभर छोड़नेसे तालाब नहीं भरा जाता और जब मेघ के जल की वर्षा होतीहै तब शीघ्रही भरजाता है; तैसेही विषय के भोगने से शान्ति नहीं होती पर संतोष से पूर्ण आनन्द और ओज की प्राप्ति होतीहै । गम्भीर, निर्मल, शीतल, हृदयगम्य और सबका हितकारी ओज संतोषी पुरुषों को प्राप्त होता है । और जो ओज हैं वे सात्त्विकी, राजसी और तामसी होते हैं पर यह शुद्धसात्त्विकी है । जिस पुरुष को संतोष होताहै वह ऐसे शोभता है जैसे बसन्तऋतु का वृक्ष फूल, फल और पत्रों से शोभा पाता है और जिसको तृष्णा है वह चरणोंके नीचे आये कीटवत् मर्दन होताहै । हे रामजी ! जिसको तृष्णाहै उसको संतोष और शान्ति कदाचित् नहीं होती । जैसे जल में डाला तृणों का पूला तीक्ष्ण पवन से बड़ेक्षोभको प्राप्त होताहै तैसेही तृष्णावान् पुरुषको क्षोभ होताहै । हे रामजी ! जो पुरुष अर्थ के निमित्त सदा इच्छा करता है वह अग्नि में प्रवेश करताहै अर्थात् सर्वदाकाल तपता रहताहै और जैसे गर्दभ विष्ठाके स्थान में प्रवेश करताहै तैसेही तृष्णावान् जो विषयरूपी स्थान में प्रवेश करताहै सो गर्दभहै । जैसे गर्दभ के साथ स्पर्श करना योग्य नहीं तैसेही तृष्णावान् गर्दभसे स्पर्श करना योग्य नहींहै । हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है; जो इस संसार के पदार्थों को चाहताहै वह मूर्खहै । इस जगत् के अधिष्ठान के प्राप्त होनेसे निर्वासनिक होता है और जब निर्वासनिक होताहै तब संतोष को प्राप्त होताहै । तब ऐसा होताहै जैसे तारों में चन्द्रमा शोभा पाताहै—इससे इच्छा के नाश करने का उपाय करो । हे रामजी ! जब इच्छा नष्ट होतीहै और संतोषरूपी गम्भीरता प्राप्त होकर

द्वैतकलना मिटती है तब उसीको पण्डित परमपद कहतेहैं। यह पद कैसे प्राप्त होता है सोभी श्रवण करो। हे रामजी! जब संसारसे वैराग, सन्तोंकी संगति और सत्शास्त्रों के अर्थों और आत्मामें दृढ़भावना होतीहै तब जगत् विरस होजाताहै अर्थात् जगत् असत् भासता है हृदय में शान्ति होतीहै; स्वाभाविक आपको ब्रह्म जानने लगता है और प्रच्छन्नता मिटजाती है। जबतक आपको प्रच्छन्न जानता था तबतक सब दुःख का अनुभव करता था और जब सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों से जगत् विरस हुआ तब परमपद को प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमोक्षोपदेशोनाम
शताधिकसप्तषष्टितमस्सर्गः॥ १६७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब संसारसे वैराग होताहै तब सन्तोंकी संगति होती है; फिर शास्त्र सुनता है तब सम्पूर्ण जगत् विरस होजाता है। जब जगत् विरस हुआ और आत्मा में दृढ़ अभ्यास हुआ तब अपनी स्वभाव सत्ता प्रकाशित होतीहै, उसी स्वभावसत्तामें स्थित हुये तब परमानन्द की प्राप्ति होतीहै जिसमें वाणी की गम नहीं। हे रामजी! जब यह अवस्था प्राप्त होतीहै तब मन अमन होजाताहै; अर्थों की तृष्णा नहीं रहती; जो अपने पास होताहै उसको रखने की भी इच्छा नहीं रहती—सहज त्याग होजाताहै—और पुत्र, धन, स्त्रीआदिक सब विरस होजाते हैं। यद्यपि वह इनके बीच भी रहताहै तौभी इनमें, 'अहं, 'मम, अभिमान नहीं करता। जैसे मज़दूर किसी मार्ग में आ उतरताहै और मार्गवालेसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता तैसेही वह किसी विषय से सम्बन्ध नहीं रखता और जो अनिच्छित इन्द्रियों के सुख प्राप्त होते हैं उनमें राग द्वेष नहीं करता। जैसे किसी पत्थर की शिलापर जल चला जाता है तो उसको कुछ राग द्वेष नहीं होता, तैसेही ज्ञानवान् को राग द्वेष किसीमें नहीं होता। हे रामजी! उसके शरीर की यह स्वाभाविक अवस्था होजाती है कि, वह एकान्त को चाहता है और वन और कन्दरा में रहने की इच्छा करता है। मुमुक्षु को अज्ञान के स्थान स्त्रीभोग, राग-द्वेष के इष्ट-अनिष्ट भी जो दैवसंयोग से प्राप्त होते हैं तौभी शीघ्रही त्याग देता है। हे रामजी! जब क्षेत्रमें बीज डालना होताहै तब पहले जो कांटा आदि होतेहैं उन्हें फड़ुवे से काटकर दूर कियाजाताहै तब खेत अच्छा और सुन्दर फलताहै; तैसेही जिस पुरुष को मनरूपी क्षेत्र में अनुभवरूपी फल देखना हो सो इच्छारूपी कण्टक और वृक्षों को अनिच्छारूपी फड़ुवे से काटे और सन्तोषरूपी बीजको बोवे तो क्षेत्र भी सुन्दर फलेगा। हे रामजी! जब अनुभवरूपी फल प्राप्त होताहै तब मनुष्य सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल होजाताहै और सर्व आत्मा होकर स्थित होताहै। हे रामजी! जब चित्त अदृश्य होता है तब द्वैत भावना मिटजाती है और जब द्वैतभावना मिटी तब चित्त

अदृश्य को प्राप्त होताहै। उस चित्तको जो उपशम का सुख होता है सो वाणी से कहा नहीं जाता–उसका नाम निर्वाणपद है। जब ईश्वरकी भक्ति करता है और दिन रात्रि चिरकाल पर्यन्त भक्ति करतारहता है तब ईश्वर प्रसन्न होता है और निर्वाणपद की प्राप्ति होतीहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्वतत्त्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ! वह कौन ईश्वरहै और उसकी भक्ति क्याहै जिसके करनेसे निर्वाणपदको प्राप्त होताहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह ईश्वर दूर नहीं; उसमें भेद भी कुछ नहीं और दुर्लभ भी नहीं क्योंकि; अनुभव ज्योति है और परमबोध स्वरूप है। सर्व जिसके वशहै; जो सर्वहै और जिससे सर्व है उस सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है। हे रामजी! सब कोई उसीको पूजते हैं। जाप, मन्त्र, तप, दान, होम जो कुछ कोई करताहै सो सर्वही उसको पूजतेहैं। देवता, दैत्य, मनुष्य जो कुछ स्थावर–जङ्गम जगत् है वे सब उसीको पूजते हैं और सबको फल देने-वाला भी वही है। उत्पत्ति और प्रलय में जो पदार्थ भासते हैं वे सब उसीसे सिद्ध होते हैं–ऐसा वह ईश्वर है। जब उस ईश्वरकी प्रसन्नता होतीहै तब वह अपना एक दूत जो शुभक्रिया संयुक्त पवित्रहै भेजताहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ईश्वर जो अद्वैतआत्मा शुद्धब्रह्म है उसका दूत कौन है और वह कैसे आता है सो मुझे कहिये? वशिष्ठजी ने कहा, हे रामजी! वह ईश्वर जो परमदेव है उसका दूत विवेक है और हृदयरूपी गुफा में उदय होता है। जब वह उदय होताहै तब उससे परमशोभा प्राप्त करता है। जैसे चन्द्रमाके उदय हुये आकाश शोभा पाताहै तैसेही वह पुरुष शोभा पाताहै। हे रामजी! जब विवेकरूपी दूत आता है तब जीव को संसार से पवित्र करताहै। प्रथम वासनारूपी मैल से भरा था और चिन्तारूपी शत्रु ने बांधा था पर जब विवेकरूपी दूत आताहै तब चित्तरूपी शत्रुको मारताहै और वासनारूपी मैलको नाश करके देव के निकट लेजाता है। जब उस देव का दर्शन होता है तब परमानन्द को प्राप्त होता है और बड़ा सुख पाता है। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र में मृत्युरूपी भँवर हैं; तृष्णारूपी तरङ्ग है, अ-ज्ञानरूपी जल है और इन्द्रियांरूपी तँदुयेहैं। उसी समुद्रमें यह जीव पड़े हैं जब विवेक-रूपी नौका अकस्मात् प्राप्त होतीहै तब संसारसमुद्र से पार होते हैं। हे रामजी! जीव प्रमाद सेही जड़ता को प्राप्त हुये हैं। जैसे जल शीतलता से ओले की संज्ञा को पाताहै तैसेही प्रमाद से जीवसंज्ञा को पाता है और वासना से ढपगया है पर जब अन्तर्मुख होता है तब उस देव के सन्मुख होता है और वह दैव प्रसन्न होता है। उस जीव के सहस्रशीश, सहस्रपद, सहस्रभुजा, सहस्रनेत्र और सहस्रकर्ण हैं। सर्वचेष्टा का वही कर्ता है और देखता, सुनता, बोलता और चलताभी वहीहै और अपने स्वभावसत्ता से प्रकाशता है। जैसे सब घटों में चलनाशक्ति पवन कीहै तैसेही प्रकाशशक्ति उस देव की है जब जीव उसके सन्मुख अन्तर्मुख होताहै तब वह प्रसन्न होके विवेकरूपी दूत

भेजता है तब इसको सन्त की संगति होती है और सत्शास्त्रों को सुनकर उनके अर्थ में दृढ़भावना होती है और वह विवेकरूपी दूत इसको अदृश्यता में प्राप्त करता है तब यह शून्य होजाताहै। फिर यह शून्यको भी त्यागकर बोधमात्र में स्थित होता है तब पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है। हे रामजी! मनुष्य आनन्दस्वरूप है और यह विश्व भी अपना आप है परन्तु अज्ञानसे भिन्न भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा; मरुस्थल में जल और आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही भ्रान्ति से जगत् भासताहै पर भूतोंके भीतर बाहर और अध ऊर्ध्व में सब ब्रह्मदेवही व्यापरहाहै और स्थावर; जङ्गम आदि सब जगत् उसी आत्मतत्त्वके आश्रय फुरता है; इससे वही स्वरूप है और वही सबको धाररहाहै। वही ईश्वर ब्रह्म है और गम्भीर, साक्षी, आत्मा, ॐकार, प्रणव सब उसी के नाम हैं। जब ऐसे ईश्वर की कृपा होतीहै तब जीव अन्तर्मुख होकर शुद्ध और निर्मल होताहै। हे रामजी! जब हृदय शुद्ध होताहै तब आत्मपदकी ओर भावना होती है कि; सब आत्माही हैं। जब यह भावना होतीहै सोही भक्ति है—तब वह ईश्वर कृपा करके विवेकरूपी दूत भेजताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविवेकदूतवर्णनंनाम शताधिकाष्टषष्टितमस्सर्गः॥ १६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब विवेक की दृढ़ता होतीहै तब जीव उस परमपदको प्राप्त होता है जो चैतसे रहित चैतन्य घन है। तब चैत का सम्बन्ध टूट जाताहै और जब चेतका सम्बन्ध टूटा तब विश्वका क्षय होजाताहै; जब विश्व क्षय हुआ तब वासना भी नहीं रहती। हे रामजी! यह जगत् भी फुरने से है। जब जीव शुद्ध चैतन्य में चैत्त्योन्मुखत्व होताहै तब मनोमात्र शरीर होता है जिसको अन्तवाहक कहते हैं और जब वासना की दृढ़ता होती है तब आधिभौतिक भासने लगता है। हे रामजी! इसका उत्थानही अनर्थ का कारणहै; जब यह चेतनभाव होताहै तब इसको अनर्थकी प्राप्ति होतीहै और मैं-मेरा इत्यादिक जगत् भासि आताहै; जो यह न हो तो जगत् भी न हो; इसके होने सेही जगत् भासता है। इससे मेरा यही आशीर्वाद है कि, तुम चेतनता से शून्य होजाओ और अहन्तारूपी चेतनता से रहित अपने बोध में स्थित रहो। हे रामजी! मनसेही जगत् हुआहै सो मन और जगत् दोनों मिथ्या और शून्यहैं। रूप, अवलोक और मनस्कार तीनोंका नाम जगत्है सो मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या शून्य है। जब इनका अभाव होताहै तब शून्य भी नहीं रहता केवल बोधमात्र चेतन होताहै। हे रामजी! दृश्य, दर्शन और द्रष्टा ये तीनों भावनामात्र हैं; जब ये होतेहैं तब जगत् भासताहै और जब अहन्ता का अभाव होताहै तब आत्मपद शेष रहताहै। जैसे सुवर्ण में भूषण होतेहैं तैसेही आत्मामें जगत है दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी। वासना से दृश्य

भासतीहै सो वासना मनसे फुरीहै और मन अज्ञानसे हुआहै। जब मन अमन पदको प्राप्त होताहै तब दृश्य सब एकहीरूप होजातीहै। जबतक वासना उठतीहै तबतक मन में शान्ति नहीं होती। जैसे कोई पुरुष भँवरी घुमाताहै तो बलचढ़ते जाते हैं और जब ठहरताहै तब वह बल उतरजाता है; तैसेही जबतक चित्तवासना करके भ्रमता है तबतक जन्मरूपी बल चढ़ते जाते हैं और जब चित्त ठहरताहै तब जन्मका अभाव होजाता है। हे रामजी! जबतक चित्त का दृश्य के साथ सम्बन्ध है तबतक कर्म से नहीं छूटता और जब चित्त का दृश्यसे सम्बन्ध टूटताहै तब शुद्ध अद्वैतपदको प्राप्त होताहै। हे रामजी! जब शुद्धचिन्मात्रमें उत्थान होताहै तब उसका नाम चैत्योन्मुखत्व होताहै, वही अहन्ता दृश्यकी ओर फुरती जातीहै तब प्रमाद होजाताहै और जड़ता होतीहै। जैसे जल ओला होजाता है तैसेही चित्तशक्ति प्रमाद से जड़ होजाती है। जब दृढ़ वासना ग्रहण करताहै तब अन्तवाहकसे आधिभौतिक अपना शरीर दृष्टि आताहै; फिर पृथ्वी आदिक भूत भासने लगतेहैं और ज्यों ज्यों चित्तशक्ति बहिर्मुख फिरतीजाती है त्यों त्यों संसार होताजाता है। जब चित्तवृत्ति फुरने से रहित होकर अपने स्वरूपकी ओर आती है तब अपना आपही भासताहै; द्वैत मिटजाताहै और परमानन्द अद्वैतपद भासता है। जब पूर्णबोध होता है तब द्वैत और एक संज्ञा भी जाती रहती है केवल आत्ममात्र शुद्ध चैतन्य रहताहै और ईश्वरसे एकता होती है और जगत् की भास जातीरहती है। जब उस पद की प्राप्ति होती है तब दृश्य का अभाव होजाता है क्योंकि; जगत् भावनामात्र है। जैसे भविष्यकालका वृक्ष आकाश में हो तैसेही यह जगत् है क्योंकि; इसका अत्यन्त अभाव है—कुछ बना नहीं भ्रान्ति करके भासताहै। हे रामजी! मेरे वचनों का अनुभव तब होगा जब स्वरूपका ज्ञान होगा और तभी ये वचन हृदय में फुरेंगे। जैसे कथा वाले के हृदय में कथा के अर्थ फुरते हैं तैसेही मेरे ये वचन आन फुरेंगे। हे रामजी! जबतक मन फुरताहै तबतक जगत् का अभाव नहीं होता और जब मन उपशम होता है तब जगत् का अभाव होजाता है। जैसे स्वप्ने को जब स्वप्न जानता है तब फिर स्वप्ने के पदार्थों की इच्छा नहीं करता पर जबतक सत्य जानता है तबतक इच्छा करता है। हे रामजी! सब जीव वासनासे ढँपे हुयेहैं। जब वासनाका क्षय होताहै उसीका नाम ज्ञानहै। अज्ञानरूपी भूत इनको लगाहै उससे उन्मत्त होकर जगत् भासताहै और जगत् के भासने से नाना प्रकार की वासना दृढ़ होगई है उससे दुःख पाते हैं। जब यह चित्त उलट कर अन्तर्मुख हो और आत्मा में दृढ़ भावना करे तब ज्ञानरूपी मन्त्र प्राप्त होता है और अज्ञानरूपी भूत जाता रहता है। हे रामजी! अनुभवरूपी कल्पवृक्ष में जैसी भावना होती है तैसाही भान होता है। हे रामजी! प्रथम इसका शरीर अन्तवाहक

था और अपना स्वरूप भूला न था इससे आपको आत्माही जानता था और जगत् अपना संकल्पमात्र भासता था। जब उस संकल्प में दृढ़ भावना हुई तब वह शरीर आधिभौतिक भासने लगा और जब उसमें दृढ़भावना हुई तब देह और इन्द्रियां सब अपने में भासने लगीं तो इनके सुख दुःख को जाननेलगा और जब जगत् के सुख दुःख भासे तब सर्वआपदा प्राप्त हुई पर वास्तव में न कोई सुख है, न दुःख है और न जगत् है केवल भावना मात्र है। जैसी चित्त की भावना होतीहै तैसेही आगे भासता है। हे रामजी! जब यह भावना उलटकर अन्तर्मुख आत्मा की ओर होती है तब एकही बोध का भान होताहै और जब एक बोध का भान होता है तब द्वैत सब मिट जाता है। हे रामजी! आत्मा में अन्तवाहक भी नहीं है। यह जो ब्रह्मा है वहभी बोधस्वरूप है; यदि बोध से भिन्न अन्तवाहक कुछ होता तो भासता। अन्तवाहक भी उसीसे है—अन्तवाहक शुद्धचिन्मात्र में चैत्योन्मुख होना और चित्तशक्ति फुररहनेका नाम है जब उसको पञ्चतन्मात्राका सम्बन्ध होताहै तो यही जड़-चेतन ग्रन्थि है। चित्तशक्ति चेतन है और पञ्चतन्मात्रा जड़ है—इनके इकट्ठा होनेका नाम अन्तवाहक शरीरहै। यदि यहभी आत्मामें कुछ हुआ होता तो ये वचन न होते-इससे चिन्मात्र है, कुछ बना नहीं क्योंकि; आत्मा अद्वैत है। हे रामजी! दूसरा कुछ बना नहीं पर भ्रममें द्वैत भासताहै; तैसेही यह जाग्रत् भी भ्रान्तिसे भासताहै-कुछहै नहीं। हे रामजी! जड़ है नहीं तो किसकी इच्छा करता है? इतना सुख इन्द्रियों के इष्ट-भोग से नहीं होता जितना इनके त्यागनेसे होताहै। हे रामजी! एक यज्ञ है जिसके किये से पुरुष परमपदको प्राप्त होताहै पर वह यज्ञ तब होताहै जब एक थम्भा गड़े और उसके नीचे बलिकरे। जब यज्ञ करचुके तब सर्व त्याग करना होताहै तब फल की प्राप्ति होतीहै। इस क्रमके किये बिना यज्ञ सफल नहीं होता। सो वह थम्भा क्या है; बलि क्याहै; यज्ञ क्याहै; त्याग क्याहै और फल क्याहै सो श्रवणकरो। हे रामजी! ध्यानरूपी तो थंभा गाड़े कि; आत्मपदका सदा अभ्यास हो और उसके आगे तृष्णा-रूपी बलि करे और ज्ञानरूपी यज्ञ करे—अर्थात् आत्मा के जो नित्य, शुद्ध; बोधरूप; अद्वैत, निर्विकल्प, देह, इन्द्रियां; प्राण आदिकसे रहित इत्यादि विशेषण वेदशास्त्र में कहे हैं ऐसे जाननेका नाम ज्ञान है। यही यज्ञ है। ध्यानरूपी थम्भे, तृष्णारूपी बलि और मनरूपी दृश्य को जीतकर यह यज्ञ पूर्ण होता है। जब ऐसा यज्ञ समाप्त होताहै तब उसके पीछे दक्षिणा भी चाहिये तब यज्ञका फल हो। सर्वस्व देना ही दक्षिणा है—सो अहंकार त्याग करना ही सर्वस्वत्याग है। जब सर्वस्वत्याग होताहै तब यह यज्ञ सफल होताहै। इसका नाम विश्वजित् यज्ञ है। जब इस प्रकार यज्ञ होता है तब इसका फल भी होता है—सो फल यहहै कि, यद्यपि अङ्गारकी वर्षा हो;

प्रलयकालका पवन चले और पृथ्वी आदिक तत्त्व नाश हों तो ऐसे क्षोभोंमें भी चलायमान नहीं होता। यह फल प्राप्त होताहै कि, कदाचित् स्वरूपसे नहीं गिरता–यह शत्रु नाश वज्र ध्यान है। हे रामजी! अहन्ता का त्याग करना सब से श्रेष्ठ त्याग है। जो कार्य अहन्ता के त्याग किये से होता है सो और उपाय से नहीं होता और तप, दान, यज्ञ, दमन, उपदेश इन उपाधियों से भी अहन्ता का त्याग करना बड़ा साधन है; और सर्वसाधन इसके अन्तर्भूत होते हैं। हे रामजी! जब तुम अहन्ता का त्याग करोगे तब तुमको भीतर बाहर ब्रह्मसत्ताही भासेगी और द्वैतभ्रम सम्पूर्ण मिटजावेगा। हे रामजी! मनके सर्व अर्थरूपी तृणों को ज्ञानरूपी अग्नि लगाइये और वैरागरूपी वायु से जगाइये। जब इन तृणोंको भस्म करडालो तब तुम परम शान्तिको प्राप्त होगे। मन के जलाने से परम संपदा प्राप्त होती है–इससे भिन्न सब आपदा है। मन उपशम करने में कल्याण है। यह जो भीतर बाहर नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं सो मन के मोह से उत्पन्न हुये हैं; जब मन उपशम को प्राप्त हो तब नानाप्रकार जो भूतों की संज्ञा है अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, पृथ्वी आदिक सो सब आकाशरूप होजाते हैं। हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है; ज्ञानी को एकसत्ता भासती है क्योंकि, दूसरा कुछ बना नहीं भ्रमसे जगत् भासता है। उसमें जब नानाप्रकार की वासना होती है तो अपनी २ वासना के अनुसार जगत् को देखता है। इससे तुम जागो और वासना के पिंजरे को काटकर आत्मपद को प्राप्त होरहो। हे रामजी! अज्ञान से जो आत्मपद की तरफ़ से सोयेपड़े हैं और वासना के पिंजरे में पड़े हैं उन अज्ञानियों की नाईं तुम न होना। अज्ञान से जीव का नाश होता है; जो कुछ जगत् देखतेहो सो भ्रममात्र है। जैसे बांसुरी में पवन का शब्द होताहै तैसेही यह भी प्राणवायु से बोलते दृष्टि आते जानो। जगत् भ्रममात्र है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वमत्तोपदेशोनाम
शताधिकनवषष्टितमस्सर्गः॥ १६९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सम्पूर्ण जगत् में सप्तप्रकार की सृष्टि है और सातही भांति के जीव हैं उनको भिन्न २ सुनो। एक स्वप्न जाग्रत् हैं; दूसरे संकल्पजाग्रत् हैं; तीसरे केवल जाग्रत् हैं; चौथे चिर जाग्रत् हैं; पञ्चम दृढ़जाग्रत् हैं; षष्ठम जाग्रत्स्वप्न हैं और सप्तम क्षीणजाग्रत् हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो यह सात प्रकार की सृष्टि कही सो बोधके निमित्त मुझसे खोल कर कहिये। यह ऐसे हैं जैसे नदियों के जल का समुद्र में भेद हो और इनका पूछना भी ऐसेही है जैसे एक जल में फेन, बुद्बुदे और तरङ्ग वायुसे होतेहैं इसलिये विस्तारसे कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक तो यह है कि; किसी जीव को किसी कल्प में अपनी जाग्रत् में सुषुप्ति हुई और

उसमें जो स्वप्न हुआ तो उसको हमारी जाग्रत् का जगत् भासि आया और वह उसको शब्द अर्थ संयुक्त सत् जानकर ग्रहण करनेलगा तो उसके स्वप्नमें हम स्वप्न नर हैं परन्तु उसके निश्चयमें नहीं क्योंकि, वह अपनी जाग्रत् मानता है पर हमारा और उसका कल्प एक होगया है इसी से वह भी जाग्रत् जानता है और पूर्व कल्प में भी उसका शरीर चैतन्य फुरता था परन्तु सोया पड़ा है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जब वह पुरुष अपने कल्प में जागता है तब यह उसको क्या भासता है और जब वह जागे और वहां कल्प का प्रलय हो तब उसके शरीर की क्या अवस्था हो? एवम् यदि यहां ज्ञान की प्राप्ति हो तो उस शरीर की क्या अवस्था हो सो क्रम करके कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यदि वह पुरुष अपने कल्प में जागे तो यह जाग्रत् उसको स्वप्ना भासे और जो वहां न जागे और उस कल्प का प्रलय हो तो वह जीव वही चेष्टाकरे। यदि ज्ञान की प्राप्ति हो तो उस शरीर और इस शरीर की वासना इकट्ठी होकर निर्वाण को प्राप्त हो और जो ज्ञान न प्राप्त हो तो उस जीव के शरीर को त्याग कर और जगत् भ्रम भास आवे। आपको पूर्ववत् जाने चाहे न जाने परन्तु जगत् भ्रम बिना ज्ञान नहीं मिटता। हे रामजी! यह और वह दोनों तुल्य हैं; ब्रह्मसत्ता सर्व ठौर समान प्रकाशती है। हे रामजी! जैसे गूलर में मच्छर होते हैं तैसेही ये जीव भी भ्रम से फुरते हैं। यह जाग्रत् कही स्वप्न में जो जाग्रत् है उसका नाम स्वप्न जाग्रत् है। पुरुष बैठा हो और एक ऐसी चित्त की वृत्ति ठहरजाय पर निद्रा नहीं आई पर उसमें जो मनोराज हुआ और उस मनोराज में जगत् होके उसीमें दृढ़ वासना होगई और पूर्व की वासना विस्मरण हुई; यह सत्ता भासी और उसमें मनोराज का शरीर रचा वही आधिभौतिकना दृढ़ होगई उसका नाम संकल्प जाग्रत् है। आदि परमात्मतत्त्व से फुरा और निश्चयात्मपद में जो और जगत् भासित हुआ उसको संकल्पमात्र जाना उसका नाम केवल जाग्रत् है। आदि परमात्मतत्त्व से फुरना हुआ; उसमें सृष्टि हुई और उसको सत् जानकर ग्रहण किया; स्वरूप का प्रमाद हुआ और आगे जन्मान्तर को प्राप्त हुआ उसका नाम चिरजाग्रत् है जब इसमें दृढ़ घनभूत वासना हुई और पापकर्म करनेलगा उसके वश से स्थावर योनि पाई तो उसका नाम घनजाग्रत् और सुषुप्त जाग्रत् है। जब इसमें सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों के विचार से बोध प्राप्त हुआ तब यह जाग्रत् उसको स्वप्न होजाती है उसका नाम स्वप्नजाग्रत् है। जब बोध में दृढ़ स्थिति हुई तब उसको तुरीयापद कहते हैं—इसका नाम क्षीणजाग्रत् है। जब इस पद को प्राप्त होताहै तब परमानन्द की प्राप्ति होती है। हे रामजी! ये सात प्रकार के जीव और सृष्टि मैंने तुमसे कही है इनको विचार करके देखो कि, तुम्हारा भ्रम निवृत्त होजावे। यह भी क्या कहना है कि, यह जीव है और यह सृष्टि है; सर्व ब्रह्मसत्ता

है, दूसरा कुछ हुआ नहीं, मन के फुरने से दृश्य भासती है और मनको स्थिर करके देखो तो सब शून्य होजावेगी और शून्य भी न रहकर शून्य का कहना भी न रहेगा- इस गिनती को भी स्मरण करो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनंनाम शताधिकसप्ततितमस्सर्गः ॥ १७० ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो केवल जाग्रत्की उत्पत्ति अकारण, अकर्मक और बोधमात्र में कही सो असम्भव है–जैसे आकाश में वृक्ष नहीं हो सक्ता तैसेही आत्मा में सृष्टि नहीं हो सक्ती–क्योंकि, आत्मा निराकार है और निष्क्रिय है; वह न समवायकारण है और न निमित्तकारण है। जैसे मृत्तिका घट आदिक का कारण होती है तैसेही आत्मा सृष्टि का समवायकारण भी नहीं क्योंकि; अद्वैत है और जैसे कुलाल घटादिकका निमित्तकारण होताहै तैसे आत्मा सृष्टिका निमित्तकारणभी नहीं क्योंकि; अक्रिय है। उस अकारणक और अकर्मक में सृष्टि कैसे होसक्ती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम धन्य हो और अब तुम जागे हो। आत्मा में सृष्टि का अत्यन्त अभाव है क्योंकि; वह निर्विकार और निष्क्रियहै। वह न भीतरहै, न बाहर है; न ऊर्ध्व है, न अध है; केवल बोधमात्र है और उसमें न कोई आरम्भ है और न परिणाम है; केवल बोधमात्र अपने आपमें स्थित है। जैसे सूर्य की किरणों में जल कल्पित है; तैसेही आत्मा में जगत् मिथ्या है। हे महाबुद्धिमन्! आत्मा अकारणरूप है उसमें कार्यरूप जगत् कैसेहो? उसमें जगत् कुछ नहीं उत्पन्न हुआ। उसके अभाव से सबका अभाव है, न कुछ उपजा है; न भास होता है; उपदेश और उसका अर्थ आरोपित है और कुछ हैही नहीं। आरोपित शब्द भी जिज्ञासी के जतानेके निमित्त कहा है, है कुछ नहीं; आत्मा सदा अद्वैतरूप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो आत्मा में सृष्टि हैही नहीं तो पिण्डाकार कैसे भासते हैं? उनको किसने रचा है और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का भान क्या होताहै? चैतन्य को स्नेह और राग से किसने मोहित किया है और आत्मामें आवरण कैसे होताहै सो मुझे समझाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई पिण्ड है, न किसीने इनको किया है; न कोई भूत है, न किसीने इनको मोहित किया है और न किसीको आवरण किया है; भ्रान्तिसे आवरण भासताहै। जो आत्मा को आवरण होता तो किसीप्रकार नष्ट होता परन्तु आवरणही नहीं तो नष्ट कैसे होवे? हे रामजी! जिसको आवरण होताहै उसका स्वरूप एक अवस्था को त्यागकर दूसरी अवस्था को ग्रहण करताहै पर आत्मा तो सदा ज्ञानस्वरूप है इससे अन्य अवस्था को कदाचित् नहीं प्राप्त होता सदा ज्यों का त्योंहै। उसमें मन, बुद्धि आदिक भी कुछ नहीं बने तब मोह कहां और आवरण कहां? सदा एकरस आत्मतत्त्व है; ज्ञानी को

ऐसे भासता है और अज्ञानी को नानाप्रकार का जगत् भासता है। वह आत्मा ज्ञान काल में और अज्ञानकाल में एकरस है पर उसमें दो दृष्टि होती हैं, ज्ञानदृष्टि में तो सर्वआत्मा है और अज्ञान से नानाप्रकार का जगत् भासता है। हे रामजी! जैसे एक समुद्रसे अनेक तरङ्ग और बुद्बुदे उठते और लीन होते हैं पर उनका उत्पन्न और लीन होना जलमें है, जलसे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही जितने विचार और इच्छा भासते हैं सो सब आत्मामें होतेहैं और दूसरी वस्तु नहीं। विकार और अविकार सब परमात्मतत्त्व है समुद्र में लहरें और बुद्बुदे परिणाम से होते हैं; आत्मा सदा ज्यों का त्यों है और नानाप्रकार के आकार भासते हैं सो भी वहीरूपहै। जैसे सुवर्ण में नानाप्रकार के भूषण होते हैं सो सब सुवर्णही हैं दूसरी वस्तु कुछ नहीं और भ्रान्तिसे नानाप्रकार की संज्ञा होती है। जैसे कोई पुरुष जाग्रत् बैठा हो और नींद आनेसे स्वप्नसृष्टि भासे तो चाहे वह जाग्रत् के अज्ञान से स्वप्नसृष्टि भासी हो पर जब निद्रा निवृत्त होती है तब जाग्रत्ही भासती है सो जाग्रत्भी परमात्मतत्त्व के अज्ञान से भासती है। जब उस पद में जागोगे तब जाग्रत्भ्रम निवृत्त होजावेगा। हे रामजी! यह संसार अपने फुरने से हुआ है। जब फुरना दृढ़ हुआ तब दुःख पानेलगा। जैसे बालक अपनी परछाहीं में बैताल कल्पितकर आपही दुःख पाता है तैसेही जीव अपने फुरनेसे आपही दुःख पाताहै। जब आत्मबोध होता है तब संसारभ्रम निवृत्त होजाता है। हे रामजी! यह संसार जो रससंयुक्त भासता है सो भावनामात्र है। जब यही भावना उलटकर आत्मा की ओर आवे तब जगत्भ्रम मिटजावेगा। देह, इन्द्रियादिक जो आत्मा के अज्ञान से फुरे हैं और उनमें अहंकार हुआहै सो आत्मभावनासे निवृत्त होजावेगा। जैसे वर्षाकाल में मेघ घन होते हैं और जब शरत्काल आताहै तब नष्ट होजाते हैं तैसेही जब बोधरूपी शरत्काल आता है तब अनात्ममें आत्म अभिमानरूपी मेघ नष्ट होजाता है और परमस्वच्छता प्रकट होती है। हे रामजी! जितना जगत् पिण्डरूप होकर भासताहै सो जब आत्मा का साक्षात्कार होगा तब पिण्डबुद्धि जाती रहेगी और सब जगत् आकाशरूप होजावेगा। जैसे शरत्काल में मेघ की घनता जाती रहती है और आकाशरूप होजाता है। हे रामजी! यह भ्रान्ति की कठिनता तबतक भासती है जब तक स्वरूप से सुषुप्तिवत्है, जब जागेगा तब जगत् सब आकाशरूप होजावेगा। जैसे स्वप्न में जागकर स्वप्न जगत् आकाशरूप होजाता है। हे रामजी! यह विकार; क्षोभ और नानात्व प्रमाद में भासते हैं, जब आत्मबोध होताहै तब सब क्षोभ और विकार मिटजाते हैं और सर्व प्रपञ्च एकताको प्राप्त होकर द्वैतभाव मिट जाताहै। जैसे प्रज्वलित अग्नि में घृत अथवा ईंधन और मिष्टान्न जो कुछ डालिये सो एकरूप होजाता है; तैसेही जब बोध की प्राप्ति होती है तब सब जगत् एकरूप होजाताहै; और जैसे

नानाप्रकार के भूषण अग्नि में डालिये तो एक सुवर्ण ही होजाता है और भूषण की संज्ञा नहीं रहती है तैसेही मन को जब आत्मबोध में स्थित किया तब जगत्संज्ञा नहीं रहती केवल परमात्मतत्त्व होजाता है। हे रामजी! इन्द्रियां और जगत् तबतक भासता है जबतक स्वरूप में सोया पड़ा है; जब जागेगा तब संसार की सत्यता मिट जावेगी और इच्छा भी कोई न रहेगी। जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आता है और जब उस स्वप्न से जागता है तब स्वप्न के स्मरण की इच्छा नहीं करता कि, मुझ को प्राप्त हो क्योंकि; उसकी सत्यता नहीं भासती तो इच्छा कैसे करे; तैसेही जबतक स्वरूपसे सोयापड़ाहै तबतक संसार के पदार्थोंको मिथ्या नहीं जानता उनकी इच्छा करताहै। जब तुम स्वरूपमें जागोगे तब सब पदार्थ विरस होजावेंगे और जब ज्ञान से जगत्को मिथ्या स्वप्नवत् जानोगे तब इच्छा भी न करोगे। हे रामजी! जीवन्मुक्त की चेष्टा सब दृष्टि आतीहै परन्तु उसके हृदयमें जगत्की सत्यता नहीं होती क्योंकि, उसको आत्मानुभव हुआ है। जैसे सूर्यकी किरणोंमें जल भासताहै पर जिसने सूर्य की किरणें जानी हैं उसको जल नहीं भासता किरणेंहीं भासतीहैं और जिसने किरणें नहीं जानी उसको जल भासताहै। दृष्टि दोनोंकी तुल्यहै परन्तु ज्ञानवान्के निश्चय में जगत् जलवत् नहीं और अज्ञानी को जगत् जलवत् दृढ़ भासता है। हे रामजी! मनरूपी दीपक प्रज्वलित है; उसमें ज्ञानरूपी जल डालिये तो निर्वाण होजावे। जब मन निर्वाणहोगा तब उस पदको प्राप्त होगे जहां जगत् और अहंकार का अभाव है; वह न शून्य है, न अशून्यहै और केवल, अकेवल; उदय, अस्तभी नहीं। हे रामजी! जो पुरुष ऐसे पदको प्राप्त हुआहै वह कृतकृत्य होता है और रागद्वेषसे रहित परम शान्तिपदको प्राप्त होताहै। उसका अहंकार निर्वाण होजाताहै और केवल निर्वाच्य पद को प्राप्त होता है जहां कोई उत्थान नहीं। हे रामजी! आत्मा में जगत् के पदार्थ कोई नहीं परन्तु मन के संकल्प से भासते हैं। जैसे थम्भे में चितेरा कल्पना करताहै कि;इतनी पुतलियां इस थम्भे में हैं सो उसके निश्चय में हैं, थम्भे में पुतलियों का अभाव है; तैसेही मन के निश्चय में जगत् है; आत्मा में कुछ नहीं बना जिस पुरुष का मन सूक्ष्म होगया है उसको जगत् स्वप्न भासता है; जब उसने स्वप्न जाना तब वह इच्छा और त्याग किसका करे। हे रामजी! जगत् तबतक भासता है जबतक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं हुआ; जब आत्मानुभव होगा तब जगत् रस संयुक्त कदाचित् न भासेगा। जैसे धूप और छाया इकट्ठी नहीं होती तैसेही ज्ञान और जगत् इकट्ठे नहीं होते आत्मज्ञान हुये जगत्का अभाव होजाताहै और जैसे पूर्वकाल वर्तमानकाल में नहीं होता; तैसेही आत्मा में जगत् नहीं होता। हे रामजी! यह जगत् भ्रमसे भासता है और विचार कियेसे इसका अभाव होजाता है। द्रष्टा-दर्शन-दृश्य

जो त्रिपुटी भासतीहै सो भी मिथ्याहै। जैसे निद्रादोषसे स्वप्नमें तीनों भासते हैं और जागेसे अभाव होजातेहैं तैसेही अज्ञानसे ये भासतेहैं और ज्ञानसे त्रिपुटीका अभाव होजाताहै। हे रामजी! जैसे मनोराज करके मनमें जगत् स्थित होताहै तैसेही ये पर्वत, नदियां, देश, काल, जगत्भी जानो। इससे इस जगत् भ्रमका त्यागकर अपने स्वभावमें स्थित होरहो। यह जगत् भ्रमसे उदय हुआहै। विचार कियेसे नष्ट होजावेगा और तुमको परमशान्ति प्राप्त होगी। हे रामजी! जिसका मन उपशमभाव को प्राप्त हुआ है, वह पुरुष मौनी है। वह निरोधपद को प्राप्त हुआ है और संसारसमुद्र से तरकर कर्मों के अन्त को प्राप्त हुआ है। उसको सम्पूर्ण जगत्, पहाड़, नदियां, संयुक्त लीन होजाताहै। अज्ञानके नष्ट हुये विद्यमान जगत्भी नष्ट होजाता है क्योंकि; वह शान्त अन्तःकरण और परमशान्तिरूप अमृत से तृप्त है। वह ज्ञानवान् निरावरण होकर स्थित होता है॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्रकरणेसर्वशान्त्युपदेशोनामशताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः १७१॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिस क्रम से बोध आत्मा जगत्रूप हो भासता है सो क्रमभेद के निवृत्ति के अर्थ फिर मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितना जगत् दृष्टि आता है उसका चित्त में निश्चय होता है। ज्ञानवान्को भी चित्त से भासता है और अज्ञानी कोभी चित्त से भासता है परन्तु इतना भेदहै कि, अज्ञानी जगत्को देखताहै तब सत् मानताहै और ज्ञानवान् शास्त्रयुक्तिसे देखकर पूर्व अपर अर्थके विचारसे भ्रान्तिमात्र जानताहै। यह जगत् अविद्यासे भासताहै सो अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं। जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासता है सो कुछ है नहीं, तैसेही अविद्या कुछ वस्तु नहीं है। जितना स्थावर–जङ्गम जगत् भासता है सो कल्प के अन्तमें नष्ट होजाताहै। जैसे समुद्रसे एक बुन्द निकालिये तो नष्ट होजातीहै क्योंकि; विभागरूप है, तैसेही माया, अविद्या, सत्, असत् आदिक सर्व सम्बन्धका अभाव होजाताहै क्योंकि; सबशब्द जगत्में हैं; जब जगत् लीन हुआ तब शब्द कहां रहे? और वास्तव में न कुछ उपजा है; न लीन होताहै–एकही चिदाकाशहै जो तुम कहो कि, देह उपजती है सो देह और तत्त्वको स्वप्नवत् जानो। जो तुम कहो कि, जगत् प्रलय में लीन होताहै इससे कुछ है; तो नाश वही होताहै जो असत्य होता है। जो तुम कहो कि, असत्यहै तो फिर क्यों उपजताहै तो उपजी वस्तुभी सत् नहीं होती। जो तुम कहो कि, महाप्रलयमें चिदाकाशही रहताहै और वही जगत्रूपहो भासताहै तो जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं हुआ–बोधमात्रही इस प्रकार हो भासताहै जैसे बीज और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसेही जिससे जगत् भासताहै वही रूप है, कुछ उपजा नहीं; जो उपजा नहीं तो विकार और भेद कैसेहो–इससे बोधमात्रही अपने आप

में स्थित है । कारण कार्य से रहित परम शान्तरूप अपने आपमें आत्मसत्ता स्थित है, वही जगत्रूप होकर भासता है और देश, काल, पदार्थ भी सब महाप्रलयरूप हैं । जब महाप्रलय होता है तब ब्रह्मदेव पर्यन्त सबपदार्थ नष्ट होजाते हैं और आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी का नाम भी नहीं रहता और अर्थ भी नहीं रहता; तब केवल बोधमात्र और बोध से भी रहित शेष रहता है जो परमशान्तरूप है और उसमें वाणी और मन की गम नहीं–केवल अचेत चिन्मात्र सत्ताही है । उसी को तत्त्ववेत्ता अनुभव कहतेहैं और कोई नहीं जानसक्ता । हे रामजी ! जो पुरुष अविद्यारूपी निद्रा से जागा है वह निराभास होता है अर्थात् चित्त से चैत्य का सम्बन्ध टूट जाताहै और उसको परम प्रकाशरूप आत्मपद प्राप्त होकर स्वभाव में स्थिति होती है और परभाव जो प्रकृति है उसका अभाव होजाता है । हे रामजी ! जो कुछ जगत् परभाव से भिन्न २ भासता था सो सब एकरूप होजाता है । जैसे स्वप्न में सब पदार्थ भिन्न २ भासते हैं और जागेसे सब एकरूप होजाते हैं, अपना आपही भासता है; तैसेही जब आत्मा का अनुभव होताहै तब जगत् अपना आपही भासताहै । हे रामजी! एकरूप तब हो भासता है जब और कुछ नहीं बना । जैसे सुवर्ण के भूषण अग्नि में डालिये तो अनेकभूषणों का एक पिण्ड होजाता है और एकही आकार भासता है; तैसेही जब बोध का अनुभव होताहै तब सर्व एकरूप होजाताहै । हे रामजी ! भूषणों के होतेभी सुवर्णही था इसीसे सब एकरूप होगया, तैसेही जब बोधका अनुभव होता है तब सर्व एकरूप हो भासता है इससे जगत् के होते भी जगत् आत्मरूप है । जगत् है नहीं और हुये की नाईं भासित होकर भिन्न२ दृष्टि आताहै–जैसे सोमजल में तरङ्ग हैं नहीं और भासते हैं तौभी जलरूप हैं–असम्यक्दृष्टि करके भिन्न २ भासते हैं । हे रामजी ! ज्ञानीको जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त तुल्यहैं । जैसे भूषणके होतेभी स्वर्ण है और भूषण के अभाव हुये भी स्वर्णहै तैसेही ज्ञानवान् को देह के होतेभी ब्रह्म है और देह के अभाव हुयेभी ब्रह्महै । जो अज्ञानी है उसको नानाप्रकारका जगत् फुरता है । अज्ञानी वही है जिसको मन का सम्बन्ध है । हे रामजी ! यह जगत् भिन्न २ फुरताहै । जैसे काष्ठ के थम्भे में चितेरा पुतलियां कल्पता है सो और को नहीं भासतीं उसीके मन में होती हैं; तैसेही भिन्न २ पदार्थरूपी पुतलियां अज्ञानी के मन में फुरती हैं और ज्ञानवान् को नहीं भासतीं । जब काष्ठका आधार होताहै तब चितेरा पुतलियां कल्पता है पर यह आश्चर्य देखो कि, मनरूपी ऐसा चितेराहै कि, आकाश में पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है और बिन खोदी भासती हैं । हे रामजी ! और दूसरा कुछ नहीं बना; जैसे किसी पुरुष ने कागज़ पर पुतली लिखी हो सो कागज़रूप है और कुछ नहीं बनी; तैसेही यह जगत् भी वही स्वरूपहै । हे रामजी ! जब तुमको आत्मपद का अनु-

भव होगा तब जितने जगत् के शब्द अर्थ हैं वे सब उसीमें भासेंगे जैसे जिसने स्वर्ण को जाना उसको भूषण के शब्द—अर्थ स्वर्णही भासते हैं, तैसेही जब आत्मपद को जानोगे तब तुमको जगत् के शब्द अर्थ आत्माही में दृष्टि आवेंगे। हे रामजी! यह जीव महासूक्ष्मरूप हैं। और इनमें अपनी २ सृष्टि है। जबतक फुरनाहै तबतक सृष्टि है; जब सृष्टि फुरना अपनी ओर आता है तब सब सृष्टि एक आत्मरूप होजाती है और आकाश, काल, दिशा, पदार्थ सर्व आत्मा है; आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, वह अपने आपमें स्थित है—जो अद्वैत चिन्मात्रपद है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनन्नाम शताधिकद्विसप्ततितमस्सर्गः॥ १७२॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्वतत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ द्रष्टा और दृश्य का सम्बन्ध कैसे हुआ है? काल में कालत्व; आकाशमें शून्यता; और वायु में स्पन्द कैसे हुई है? जड़ में जड़ता; भूतों में भूतता; संकल्प में स्पन्द; सृष्टि में सृष्टिता; मूर्ति में मूर्तिता; भिन्न में भिन्नता और दृश्य में दृश्यता किससे हुयेहैं सो मुझसे कहिये क्योंकि; अर्ध-प्रबुद्धको बोध के निमित्त कहना योग्य है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर आदिक जो सब हैं सो प्रलयकाल में जिसमें लीन होते हैं उसका नाम प्रलय है। उसका शब्द 'प्रलय' शब्दहै और सर्व 'निर्वाण' होजातेहैं 'यह' अर्थहै। हे रामजी! ऐसा जो अनन्त आकाश है सो सम, शुद्ध, आदि—अन्त—मध्य से भी रहित; चैतन्य, घन और अद्वैत है जहां एक और दो शब्द भी नहीं और जिसमें आकाश भी पहाड़ के समान स्थूल है और ऐसा सूक्ष्म है कि, 'है, 'नहीं, 'दोनों, 'शब्दों' से रहित अपने आपमें स्थित है। जैसे पाषाणका शिलाकोष होताहै तैसेही वह चित्त के फुरनेसे रहित है। ऐसे परमात्मतत्त्व अकारण से सृष्टिका उपजना कैसे कहिये? जैसे आकाश अपने आपमें स्थित है तैसेही ब्रह्म अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! एक निमेष के फुरने में जो वृत्ति अनेकयोजन पर्यन्त जाती है उसके मध्य जो अनुभव करनेवाली सत्ता है उसमें तुम स्थित होकर देखो कि, जगत् और उसकी उत्पत्ति कहांहै? हे रामजी! उत्पत्ति जो होती है सो समवायकारण और निमित्तकारण से होती है पर आत्मा निराकार, अद्वैत और सन्मात्र है—न समवायकारण है और न निमित्तकारण है। इससे आत्मा अच्युतहै अर्थात् स्वरूपसे कदाचित् नहीं गिरा तो समवायकारण कैसे होवे? निमित्तकारण भी नहीं क्योंकि, निराकार है; इससे आत्मामें जगत् कोई नहीं भ्रान्ति-मात्र और अविद्या करके भासता है। जो वस्तु होवे नहीं और प्रत्यक्ष भासे उसे अविद्या से जानिये। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है। जल में जो तरङ्ग और आवर्त उठते हैं सो जलरूप हैं जल से भिन्न कुछ नहीं। जब तुम अपने

आपमें स्थित होगे तब जगत् का शब्द अर्थ भिन्न न भासेगा क्योंकि; दूसरी कुछ नहीं है। हे रामजी! ब्रह्म अमूर्त है; उसमें यह मूर्ति कैसे उत्पन्न हो? यह भ्रान्ति-मात्र है। जो वस्तु कारणसे उपजी हो सो सत् होतीहै और जो कारण विना दृष्टि आवे उसे भ्रममात्र जानिये। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है उसका कोई कारण नहीं इससे मिथ्याभ्रम से भासता है, तैसेही यह जगत् मिथ्यामात्र है विचार कियेसे नहीं रहता। हे रामजी! आकाश काल आदिक जो पदार्थ हैं सो सब शून्य हैं; आत्मा में न उदय हुये हैं और न अस्त होते हैं—ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनंनामशताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः॥ १७३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही ब्रह्म-रूपी आकाश अपने आपमें स्थित है सो कैसे किसीका कारण हो? कारण और कार्य तब होता है जब द्वैत होता और आरम्भ, परिणाम होता है पर आत्मा तो अद्वैत, अच्युत और निर्गुण है उसमें आरम्भ कैसेहो? हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो सब काष्ठवत् मौन है अर्थात् वहां मन का फुरना शून्य है। हे रामजी! जो कुछ द्वैत भासता है सो भ्रममात्रहै। जो कुछ हुआ होता तो ज्ञानीको भी प्रत्यक्ष होता पर ज्ञानकालमें नहीं भासता इससे भ्रममात्रहै। हे रामजी! पृथ्वी, जल आदि जो पदार्थ हैं तिनका फुरना स्वप्न की नाईं है। जैसे स्वप्न में चेष्टा होती है सो पास बैठेको नहीं भासती क्योंकि, है नहीं; तैसेही सृष्टि अकारण संकल्पमात्रहै। हे रामजी! जैसे शशे के सींगों का कारण कोई नहीं तैसेही जगत् का कारण कोई नहीं। जो कुछ हो तो उसका कारण भी हो पर जो कुछ होही नहीं तो किसका कारण कौन हो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जैसे वट के बीज में वृक्ष का भाव होता है पर काल पाकर बीजसे वृक्ष हो आता है तैसेही इस जगत् का कारण परमाणु क्यों न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सूक्ष्म में स्थूल संकल्पमात्र होता है। मैंभी कहता हूं कि, सूक्ष्म में स्थूल होताहै परन्तु संकल्पमात्र होताहै—कुछ सत्य नहीं होता। जो कहिये कि, सत्य होता है तो नहीं होसक्ता। जैसे राईके कणके में सुमेरु पर्वत का होना नहीं होसक्ता तैसेही सूक्ष्म परमाणु से जगत् का उत्पन्न होना असम्भव है। हे रामजी! सूक्ष्म परमाणु का कार्यभी जगत् तब कहाजाय जब सूक्ष्म अणुभी आत्मामें पायाजावे; आत्मा तो अ-द्वैतहै और उसमें एक और दो कहने का अभावहै। आत्मामें जाननाभी नहीं—केवल आत्मतत्त्वमात्र है और आधार आधेय से रहित है। बीजभी तब प्रणमता है जब उसको जल देते हैं और रक्षा करने का स्थान होताहै पर आत्मा आधार आधेय मे रहित केवल अपने भाव में स्थित है और अद्वैत सत्तामात्र है। जैसे वन्ध्याके पुत्र का कारण कोई नहीं, तैसेही जगत् का कारण कोई नहीं; जो वन्ध्या का पुत्र ही नहीं तो

उसका कारण कौन हो तैसेही जगत् है नहीं तो ब्रह्म इसका कारण कैसे हो? जिसको तुम दृश्य कहते हो सो द्रष्टा ही दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। हे रामजी! जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होकर स्थित है; तैसेही ब्रह्म ही जगत् आकार होकर दृष्टि आता है; दृश्य भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं। जैसे समुद्रही तरङ्ग और आवर्तरूप होकर भासता है तैसेही अनन्तशक्ति होकर परमात्मसत्ताही स्थित है। हे रामजी! मैं और तुम आदि जगत् के पदार्थ सब फुरनेमात्र हैं। जैसे संकल्प नगर होताहै जो मन से रचा है; तैसेही यह जगत् आत्मामें कुछ बना नहीं केवल ब्रह्म अपने आपमें स्थित है—हमको तो सदा वही भासताहै। हे रामजी! आत्मा में यह जगत् न उदय होता है और न अस्त होता है सदा ज्यों का त्यों निर्मल शान्तपद है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेद्वैतएकताप्रतिपादनंनाम
शताधिकचतुःसप्ततितमस्सर्गः॥ १७४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जगत्का भाव—अभाव; जड़—चैतन्य; स्थावर—जङ्गम; सूक्ष्म—स्थूल; शुभ—अशुभ कुछ हुआ नहीं तो मैं तुमसे क्या कहूं कि, यह कार्य है और इसका यह कारण है? यह हुआ ही नहीं तो फिर कारण कार्य कैसेहो? जो सर्व देश, सर्वकाल और सर्ववस्तु हो सो कारण कार्य कैसे हो? आत्मा केवल अपने आप में स्थित है और जो है और नहीं की नाईं स्थित हुआ है; उसमें संवेदनहै और उसके फुरनेसे जगत् भासता है। वह फुरना चैतन्यमात्र का विवर्त है और उस विवर्त से जगत् भ्रम हुआ है; जब यही फुरना उलटकर अपनी ओर आताहै तब जगत्भ्रम मिटजाता है और जब फुरता है तब ध्यान, ध्याता और ध्येयरूप होकर स्थित होता है। इसही का नाम जगत् है और इसीमें बन्ध और मुक्त होता है; आत्मामें न बन्ध है और न मोक्षहै। हे रामजी! जब तरङ्ग घनभूत होकर बहता है तब एक नदी होकर चलता है; तैसेही जब वासना दृढ़ होती है तब जगत्रूप होकर स्थित होता है और भासता है। जब ऐसी वासना दृढ़ हुई तब राग द्वेष संकल्प से बन्धवान् होताहै और जब वासना क्षय होती है तब जगत् का अभाव होकर स्वच्छ आत्मा भासता है। जैसे शरत्काल का आकाश स्वच्छ होता है—उससे भी निर्मल भासताहै। हे रामजी! जीव जो निकलजाताहै सो मरता नहीं; मुआ तब कहाजाय जब अत्यन्त अभाव को प्राप्त हो और न जानाजाय; इससे यह मरना नहीं क्योंकि; फिर जगत् भासता है। यह मरना सुषुप्ति की नाईं हुआ—जैसे सुषुप्तिसे जागे हुये जगत् भासताहै और वही चेष्टा करने लगता है और जैसे स्वप्न और जाग्रत् होता है तैसेही मृत्यु और जन्म भी है। यदि मरनेका शोक उपजे तो जीनेका सुख भी मानिये और जो जीनेका हर्ष उपजे तो उसमें मरने का शोक मानिये—दोनों अवस्था शरीर की सम रची हैं। जब यह

अवस्था शरीर की जानी तब तुम्हारा हृदय शीतल होजावेगा। जब संवेदन का अत्यन्त अभाव हो तब परमशान्ति होती है। ध्यान, ध्याता और ध्येय तीनों का अभाव होजाता है और अज्ञान भी नहीं रहता। जब ऐसा अभाव होताहै तब शुद्ध स्वच्छ निर्मलपद रहता है। हे रामजी! अब भी निर्मलपद है परन्तु भ्रम से पदार्थ सत्ता भासती है। जैसे निद्रादोष से केवल अनुभव में पदार्थसत्ता होकर भासती है और जागेसे कहता है कि, केवल भ्रममात्र ही था; तैसेही इस जगत्को भी भ्रममात्र जानो। परमार्थस्वरूपके प्रमादसे यह जगत् भासता है और स्वरूपमें जागेसे इसका अभाव होजाता है। हे रामजी! जैसे स्वप्नेमें जीव अनहोताही राज्य देखताहै तैसेही तुम इस जगत् को जानो। इसका फुरनाही इसको बन्धन का कारण है। जैसे कुम-वारी आपही स्थान बनाकर आपही फँस मरती है और जैसे मद्यपान करनेवाला मद्यपान करके मुखसे और का और बोलताहै और उससे बन्धायमान होताहै; तैसेही जीव अपने संकलपही से बन्धता है और जब संकल्प मिटता है तब परमानन्द को प्राप्त होकर परम स्वच्छ शान्ति उदय होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमशान्तिनिर्वाणवर्णनंनाम शताधिकपञ्चसप्ततितमस्सर्गः॥ १७५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जहां आकाश होताहै वहां शून्यता भी होतीहै; जहां अवकाश होताहै वहां आकाश भी होता है और जहां आकाश है वहां पदार्थ भी होते हैं; तैसेही जहां चैतन्यसत्ता है वहां सृष्टि भी भासती है पर बनी कुछ नहीं और सदा रहती है। जैसे सूर्य की किरणों में जल कदाचित् नहीं उत्पन्न हुआ और जलाभास सदा रहताहै क्योंकि, उसीका विवर्तहै; तैसेही सृष्टि आत्मा का विवर्त है—जहां चैतन्य सत्ता है वहां सृष्टि भी है। इसीपर मैं एक इतिहास तुमसे कहताहूं जिसके सुने और समझे से जरा मृत्यु से रहित होगे। वह इतिहास परमसुन्दर और चित्त का मोहने-वाला आश्चर्यरूप है और मेरा देखा हुआ है। हे रामजी! एककाल में मेरा चित्त जगत् से उपरत हुआ तो मैंने विचारकिया कि; किसी एकान्तस्थान में जाकर समा-धान करूं क्योंकि; जगत् मोहरूप व्यवहार से दृढ़ हुआ है और जितना कुछ जानने योग्य है उसको मैं जाननेवालाहूं परन्तु व्यवहार करके भी शान्तरूप होऊं। तब ऐसा मैंने विचार किया कि, निर्विकल्प समाधि करके परमशान्ति पाऊं और जो आदि, अन्त और मध्यसे रहित परमानन्दस्वरूप और अविनाशीपदहै उसमें विश्राम करूं। हे रामजी! तब भी मैं ज्ञान वृत्तिमान् और परमात्मस्वरूप ही था परन्तु चित्त की वृत्ति जब जगत्भावसे उपरत हुई तो व्यवहार सेभी एकान्त समाधि की इच्छा की कि; जहां कोई क्षोभ न हो वहां स्थित हूं। ऐसे विचार करके मैं आकाशमें उड़ा और एक देवता

के पर्वत पर जाबैठा तो वहां बहुत प्रकार के इन्द्रियों के विषय देखे कि; अङ्गना गान करती हैं। शिरपर चमर होते हैं; और मन्द मन्द पवन चलताहै। पर वहभी मुझको आपात रमणीय भासे क्योंकि, किसी काल में किसी को सुखदायक नहीं—समाधिवाले के ये शत्रु हैं। उनको विरस जानकर मैं फिर उड़ा और एक पर्वत की कन्दरा में जो बहुत सुन्दर थी और जहां एक सुन्दर वन था और उसमें सुन्दर पवन चलता था पहुंचा। ऐसे स्थान को मैंने देखा तो वहभी मुझको शत्रुवत् भासित हुआ क्योंकि; पक्षियों के शब्द होते थे और पवन का स्पर्श होता था व और भी अनेक विघ्न थे। उनको देखकर मैं आगे चला तो नागोंके देश और सुन्दर नागकन्या देखीं और इन्द्रियों के बहुत सुन्दर विषय भी देखे पर वह भी मुझको सर्पवत् भासे। जैसे सर्प के स्पर्श किये से अनर्थ होता है तैसेही मुझको विषय भासे। हे रामजी! जितने इन्द्रियों के विषय हैं वे सब अनर्थ के कारण हैं; उनमें प्रीति मूढ़ और अज्ञानी करते हैं। फिर मैं समुद्र के किनारे गया और उसके पास जो पुष्प के स्थान थे उनमें विचरा और कन्दरा और वन को देखता हुआ पर्वत, पाताल और दशोंदिशा देखता फिरा परन्तु एकान्त स्थान मुझको कोई दृष्ट न आया। तब मैं फिर आकाश को उड़ा और पवन; मेघों; देवगणों; विद्याधरों और सिद्धोंके स्थान लांघतागया तो आगे देखा कि, कई ब्रह्माण्ड भूतों के उड़ते थे उनमें मैंने अपूर्वभूत और नानाप्रकार के स्थान देखे। फिर गरुड़ के स्थान लांघे तो कहीं सूर्य का प्रकाश होता था और कहीं सूर्य का प्रकाशही न था। फिर मैं चन्द्रमा के मण्डल को लांघगया और अग्नि के स्थान लांघकर महा आकाश में गया जहां इन्द्रियों का रोकना भी न था क्योंकि; इन्द्रियोंके विषय कोई दृष्ट न आते थे केवल एक आकाश ही आकाश दृष्ट आता था और वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी चारों का अभाव था। हे रामजी! निदान मैं उस स्थान में गया जहां भूत स्वप्न में भी दृष्ट न आते थे और सिद्धों की भी गम न थी। वहां मैंने संकल्प की एक कुटी रची और उसके साथ फूल और पत्रों से पूर्ण कल्पवृक्ष रचे और उसके एक ओर मैंने छिद्र रक्खा। मेरा तो सूक्ष्मसंकल्प था इसलिये सब प्रत्यक्ष आन हुआ। उस कुटी को रचकर उसमें मैंने प्रवेशकिया और संकल्प किया कि; एकवर्ष पर्यन्त मैं समाधि में रहूंगा और उससे उपरान्त समाधि से उतरूंगा। ऐसे विचारकर मैंने पद्मासन बांधा और समाधि में स्थित होकर परमशान्ति में एकवर्ष पर्यन्त स्थित हुआ जहां कोई क्षोभ न था जब वर्ष व्यतीत हुआ तब वह भावी समाधि के उतरने की थी इस लिये वह संकल्प आन फुरा। जैसे पृथ्वी में बोया हुआ बीज काल पाकर अंकुर लेता है तैसेही वह संकल्प आन फुरा। प्रथम, जैसे सूखा वृक्ष वसन्तऋतु में हरा हो आता है तैसेही प्राण फुरि आये; फिर, जैसे वसन्तऋतु में फूल खिलआते हैं तैसेही ज्ञान

इन्द्रियां खिल आईं और फिर स्पन्द जो अहंकाररूपी पिशाच है सो फुरा कि, मैं वशिष्ठ हूं; और उसकी इच्छारूपी स्त्री फुरी । हे रामजी ! वह वर्ष मुझको ऐसे व्यतीत हुआ जैसे निमेष का खोलना होता है । कालभी बहुतप्रकारसे व्यतीत होताहै; किसी को थोड़ाही बहुत होजाताहै और किसीको बहुत थोड़ा होजाता है । जब सुख होताहै तब बहुत काल भी थोड़ा हो भासता है और जब दुःख होता है तब थोड़ाकाल बहुत होजाता है । हे रामजी ! इस समाधि का जो मैंने वर्णन किया यह शक्ति सब जीवों में है परन्तु सिद्ध नहीं होती क्योंकि, नानाप्रकार की वासनासे अन्तःकरण मलीन है । जब अन्तःकरण शुद्ध हो तब जैसा संकल्प करे तैसाही सिद्ध होता है और मलीन अन्तः-करण वाले का संकल्प सिद्ध नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेआकाशकुटीवशिष्ठसमाधिवर्णनन्नाम शताधिकषष्ठसप्ततितमस्सर्गः ॥ १७६ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! तुम तो निर्वाणस्वरूप हो तुमको अहंकाररूपी पिशाच कैसे फुरा—यह मेरा संशय दूर कीजिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी जबतक शरीर का सम्बन्ध है तबतक अहंकार दूर नहीं होता । जैसे जहां आधार होताहै वहां आधेय भी होता है और जहां आधेय होता है वहां आधार भी होताहै; तैसेही जहां देह होती है वहां अहंकार भी होताहै और जहां अहंकार होताहै वहां देह भी होती है । हे रामजी ! अहंकार विना शरीर नहीं रहता पर वह अहंकार अज्ञानरूपी बालक ने कल्पा है और ज्ञानी को अहंकार नष्ट होजाता है । हे रामजी ! यह अहंकार अविद्या ने कल्पा है । जो वास्तव में मिथ्या हो और भासे वह अविद्या है । और जो अविद्याही मिथ्या है तो उसका कार्य अहंकार कैसे सत् हो ? यह केवल मिथ्या भ्रम से उदय हुआ है । जैसे भ्रम से वृक्ष में वैताल भासता है तैसेही भ्रम से अहंकाररूपी वैताल उदय हुआ है और इसका कारण अविचार सिद्ध है; विचार कियेसे इसका अभाव होजाताहै । जहां विचार होताहै वहां अविद्या नहीं रहती । जैसे जहां दीपक होता है तहां अन्धकार नहीं रहता क्योंकि; दीपक के जागते अन्धकार का अभाव होजाता है; तैसेही विचार के उदय हुये अविद्या का अभाव होजाता है । जो वस्तु विचार कियेसे न रहे उसे मिथ्या जानिये और जो आपही मिथ्या है तो उस का कार्य कैसे सत्य हो ? इससे अहंकार को मिथ्या जानो । हे रामजी ! जैसे आकाश के वृक्ष का कारण कोई नहीं; तैसेही अहंकार का कारण कोई नहीं । मन सहित जो षट्इन्द्रियां हैं शुद्ध आत्मा उनका विषय नहीं क्योंकि; वे साकार और दृश्य हैं । साकार का कारण निराकार आत्मा कैसे हो ? जो कुछ आकार है सो सब मिथ्या है । जो बीज होताहै उससे अंकुर उत्पन्न होता है तब जानाजाता है कि, बीज से अंकुर उत्पन्न हुआ

है परन्तु बीजही न हो तो उसका कार्य अंकुर कैसे उत्पन्न हो? जैसेही जगत् का कारण संवेदनही न हो तो जगत् कैसे हो? जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा हो तो उसका कारण भी मानिये और जो दूसरा चन्द्रमाही न हो तो उसका कारण कैसे मानिये? हे रामजी! ब्रह्म आकाश, अद्वैत, शुद्ध, फुरने से रहित, अच्युत और अविनाशी है, वह कारण कार्य कैसे हो? हे रामजी! पृथ्वी आदिकतत्त्व अविद्यमान हैं पर भ्रम से भासते हैं। केवल शुद्ध आत्मा अपने आपमें स्थित है। जो तुम कहो कि, अविद्यमान हैं तो भासते क्यों हैं तो उसका उत्तर यह है कि; जैसे स्वप्ने में अन होती सृष्टि भासती है तैसेही यह जगत् भी अनहोता भासता है। जैसे भ्रम से आकाश में वृक्ष अनहोते भासते हैं तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं और संकल्पनगर रचलीजे तो चेष्टा भी होती है परन्तु इसका स्वरूप संकल्पमात्र है वास्तव में अर्थाकार कुछ नहीं होता और अपने काल में सत्य भासता है पर जब संकल्प का लय होता है तब उसका भी अभाव होजाता है—इससे आकाश के वृक्ष की नाईं हुआ है। जैसे आकाश के वृक्ष भावना से भासते हैं। तैसेही यह जगत् संकल्पमात्र है। स्वरूप से कुछ नहीं है जो विचार करके देखिये तो इसका अभाव होजाता है। हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्व अपने आप में स्थित है वही जगत् का आकार हो भासता है—दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में जितने पदार्थ भासते हैं सो सब अनुभवरूप हैं तैसेही जगत् भी ब्रह्मरूपहै। हे रामजी! हमको सदा वही भासता है तो अहंकार कहां हो? न मैं अहंकार हूं और न मेरा अहंकार है केवल आकाश में अहंकार कहां हो? हे रामजी! न मैं हूं और न मेरे में कुछ फुरना है; अथवा सर्व आत्मसत्ता मैं ही हूं तो भी अहंकार न हुआ। हे रामजी! हमारा अहंकार ऐसाहै जैसे अग्निकी मूर्ति लिखी होती है तो उससे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता—दृश्यमात्र होती है। तैसेही ज्ञानी का अहंकार देखनेमात्र है उन्हें कर्तृत्व भोक्तृत्व का नहीं होता और वे अपने स्वभाव में स्थित हैं। सर्व ज्ञानवानों का एकही निश्चय है कि, ब्रह्मही भासता है और अहंकार का अभाव है। अहंकार न आगे था, न अब है और न फिर होगा- भ्रम से अहंकार शब्द जाना जाता है। हे रामजी! जब ऐसे जानोगे तब अहंकार नष्ट होजावेगा। जैसे शरत्काल में मेघ देखने मात्र वर्षासे रहित होताहै, तैसेही ज्ञानीका अहंकार देखनेमात्र होताहै। और की बुद्धि में भासताहै परन्तु ज्ञानी के निश्चयमें असंभवहै क्योंकि; उसका अहंप्रत्यय आत्मा में रहना है और प्रच्छन्न अहंकार का अभाव होजाता है। जब अहंकार नाश होता है तब अविद्या का भी नाश होजाताहै और यही अज्ञान का नाशहै—यह तीनों पर्याय हैं। हे रामजी! अपने स्वभाव में स्थित रहो और प्रकृत आचार करो; हृदय से शिलाकोषवत् होरहो और बाहर इन्द्रिया की सब क्रिया हों; अपने निश्चय को गुप्त

रक्खो और सब इन्द्रियों को इस प्रकार धारो जैसे आकाश सबको धाररहाहै; अन्तर से शिला के जठरवत् रहो और देखनेमात्र तुम्हारे में भी अहंकार दृष्ट आवेगा। जैसे अग्नि की मूर्ति लिखी दृष्टि आती है तैसेही तुम्हारे में अहंकार दृष्ट आवेगा परन्तु अर्थ कारण होगा और केवल ब्रह्मसत्ताही भासेगी और कुछ न भासेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविदितवेदअहंकारवर्णनं नामशताधिकसप्तसप्ततितमस्सर्गः ॥ १७७ ॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि, तुमने अहंकार के त्यागेसे परम सात्त्विकी प्राप्ति का उपदेश किया है। यह परम दशा है और राग द्वेष मल से रहित; निर्मल; उत्तम; अविनाशी और आदि–अन्त से रहित है। यह दशा तुमने परम-विभुता के अर्थ कहीहै। हे भगवन्! सर्वदाकाल और सर्वप्रकार सर्ववस्तु वही ब्रह्म-सत्ता है और समरूपसत्ता के अनुभव से परम निर्मलहै तो शिलाख्यान किस निमित्त कहा है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह तो सर्वमें; सर्वदाकाल और सब से रहित है पर उसके बोध के अर्थ मैंने तुझ को शिलाख्यान का दृष्टान्त कहा है। हे रामजी! ऐसा स्थान कोई नहीं जहां सृष्टि न हो। सब स्थानमें सृष्टि भासतीहै पर आदि से कुछ नहीं बना और सर्वदाकाल बसती है–शिला के कोष में भी अनेक सृष्टि भासती हैं। जैसे आकाशमें शून्यताहै तैसेही शिलाकोष मेंभी सृष्टि बसती हैं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सर्वमें सृष्टि बसती है तो आकाशरूप क्यों न हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यहीमैं भी तुमसे कहताहूं कि; जो कुछ सृष्टिहै वह सब आकाशरूप है। स्वरूप में तो सृष्टि उपजीही नहीं; सर्वदा आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और आकाश की वार्ता क्या कहनी है कि; शिलाकोष में सृष्टि बसतीहै और आकाशरूप है–अर्थात् कुछ हुई नहीं हे रामजी! पृथ्वीमें ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि न हो। अणु अणु में सृष्टिहै और सर्व ओरसे बसती है परन्तु परमार्थसे कुछ नहीं बना केवल आत्मरूप है और सर्वसृष्टि शब्दमात्र है। जैसे यह सृष्टि भासती है तैसेही वह भी है। जो यह शब्दमात्र है तो वह भी शब्दमात्र है और जो यह सत्य भासती है तो वह भी सत्य भासती है। हे रामजी! ऐसा कोई जलका कण नहीं जिसमें सृष्टि न हो; सर्वमेंही सृष्टि है और यह आश्चर्य देखो कि, इस विना कुछ नहीं और ऐसा कोई अग्नि और वायु का कण नहीं जिसमें सृष्टि न हो। सबमें सृष्टि है और आकाशरूप है, कुछ बना नहीं–ब्रह्मसत्ता अपने आपमें सदा ज्यों की त्यों स्थित है। हे रामजी! आकाश में ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि न हो परन्तु कुछ उपजी नहीं। ऐसा ब्रह्म अणु कोई नहीं जहां सृष्टि न हो परन्तु स्वरूप से कुछ हुई नहीं–ब्रह्मसत्ता अपने आपमें सदा स्थित है। हे रामजी! ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें ब्रह्मसत्ता

नहीं और ऐसा कोई चिद्अणु नहीं जिसमें सृष्टि नहीं पर जैसे किसीने अग्नि कही और किसीने उष्णता कही तो उसमें भेद कोई नहीं तैसेही कोई ब्रह्म कहते हैं और कोई जगत् कहते हैं। शब्द दो हैं परन्तु वस्तु एकही है—जगत्ही ब्रह्म है और ब्रह्मही जगत् है—कुछ भेद नहीं। जैसे बहते जलका शब्द होताहै पर उसमें कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता; तैसेही जगत् मुझको कुछ पदार्थ नहीं भासताहै क्योंकि दूसरी वस्तु बनी नहीं। मैं, तुम और यह जगत्, सुमेरु आदि पर्वत, देवता, किन्नर, दैत्य, नाग इत्यादिक जगत् सब निर्वाणस्वरूप हैं-आत्मतत्त्व में, कुछ नहीं बना। यह बोलते और चालते जो भासते हैं उसे स्वप्नेकी नाईं जानो। जैसे कोई पुरुष सोया हो और स्वप्ने में उसे नाना प्रकार के युद्ध होते वा यन्त्र बजते और चेष्टा होती दिखाई दें पर जो उसके निकट जाग्रत् पुरुष बैठा हो उसको कुछ नहीं भासता क्योंकि; बना कुछ नहीं और उसको सब कुछ भासता है; तैसेही ज्ञानी के हृदय में जगत् शून्य है और अज्ञानी को भ्रम से नाना प्रकार का भासताहै। इससे,हे रामजी! स्वप्नवत् इस जगत् को जानकर प्रकृत आचार करो और हृदय से शिला की नाईं हो कि; कुछ न फुरै। ब्रह्म और जगत् में रञ्चकभी भेद नहीं; ब्रह्मही जगत् है और जगत् ब्रह्म है। जगत् का स्पष्ट अर्थ ब्रह्म से भिन्न नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनंनाम शताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः॥ १७८॥

रामजीने पूछा;हे भगवन्! आपने आकाशकोषमें कुटी बनाकर एकवर्ष की समाधि लगाई तो उसके अनन्तर जो वृत्तान्त हुआ सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैं समाधि से उतरा तब आकाश में एक परम मनोहर सतुरी की तान के सदृश अङ्गना का शब्द सुना तब मैंने विचार किया कि, मैं तो बहुत ऊंचे पर आयाहूं जहां सिद्धों की भी गम नहीं और सिद्धों से भी तीनलाख योजन ऊंचा आया हूं यह शब्द कहां से आया? ऐसे विचारकर मैं देखनेलगा तो दशोंदिशाओं में आकाशही दीखा परन्तु सृष्टि का कर्ता कोई दृष्टि न आया। तब मैंने विचार किया कि, सृष्टि आकाश में होतीहै इससे मैं आकाशही होजाऊं और इस शब्दको पाऊं कि;किसका शब्दहै; बलिक आकाश कोभी त्यागकर चिदाकाश होजाऊं जहां भूताकाश भी कुटीवत् भासताहै तब इसका भी अन्त भासेगा और जानलूंगा कि, यह किसका शब्द होताहै। ऐसे विचार कर मैंने निश्चय किया कि, यह शरीर यहां रहे और नेत्र मुंदे रहैं। तब पद्मासन बांध कर मैंने बाहर की इन्द्रियों को रोका और जो इन्द्रियों की वृत्ति शब्द आदिक को ग्रहण करनी थी उसको भी रोकलिया। निदान भीतर बाहर की सब वृत्तियों और अहंवृत्ति को त्यागकर मैं आकाशरूप होगया। जैसे इस ब्रह्माण्ड में आकाश का अन्त

नहीं मिलता तैसेही मैं इसको त्यागकर चित्ताकाशरूप होगया जिसका संकल्पही रूप है। उसको भी त्यागकर मैं बुद्धिआकाशमें आया; फिर उसकोभी त्याग करके आ-काश में आया और उस शब्द के सुनने के संकल्प से चिदाकाशरूप होगया। जैसे समुद्रमें मिली जलकी बूंद समुद्ररूप होजाती है तैसेही मैं चिदाकाश होगया जो निरा-कार और निराधार है; सबको धाररहा है और परमानन्दस्वरूप, शान्त और अनन्त है और जिसमें सर्व ब्रह्माण्ड प्रतिबिम्बित होते हैं जब मैं आत्मा आदर्श में स्थित हुआ तब मुझको अनन्त सृष्टि अपने आपमें भासनेलगीं। जैसे सूर्य की किरणोंमें त्रसरेणु होतेहैं तैसेही ब्रह्म में सृष्टियां हैं परन्तु जीव २ की अपनी २ सृष्टि है एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता। जैसे कई एक मनुष्य सोये हों और अपनी २ स्वप्नसृष्टि को देखें तो उसमें अपना आकाश और काल देखते हैं; इसकी सृष्टिको वह नहीं जा-नता और उसकी सृष्टिको यह नहीं जानता परन्तु ज्ञानी सर्वसृष्टियां देखताहै; तैसेही मुझको सर्वसृष्टियां चिदाकाश में भासी पर जीवों को अपनी २ सृष्टि भासती थी। हे रामजी! एक सृष्टि ऐसी भासी कि, उसमें कोई आवरण न था जैसे पृथ्वीके चौफेर समुद्र होते हैं—कहीं कहीं एकही भूत का आवरण था और कहीं ऐसी सृष्टि दृष्ट आई जिनको पांचो तत्त्वोंका आवरण था प्रथम पृथ्वी का; दूसरा जल का; तीसरा अग्नि का; चतुर्थ वायु का और पञ्चम आकाश का आवरण था। कहीं ऐसी सृष्टियां देखीं जिनको चारही तत्त्वोंका आवरण था; कहीं ऐसी देखीं जिनको षट् आवरण थे; कहीं दश आव-रण दृष्ट आये, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवे जिसको षोडश आवरण हैं और कहीं ऐसी दृष्ट आवें जिनको चौंतीस आवरण थे और कहीं तत्त्वों के छत्तीस आवरण संयुक्त सृष्टि देखीं। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां चिदाकाशमें देखीं परन्तु सब आ-काशरूप थीं; आत्मा से कुछ भिन्न वस्तु न थीं; मन के फुरनेसे मुझको सृष्टि दृष्ट आई क्योंकि, सब संकल्पमात्रही थी—कुछ बना नहीं। जैसे दीवार पर चित्र लिखे हों तैसेही आत्मारूपी दीवार पर चित्ररूप सृष्टि दृष्ट आई कि; अपने २ व्यवहार में मग्न हैं। हे रामजी! ऐसी अनन्त सृष्टियां देखीं पर एककी सृष्टि को दूसरा न जानता था सब अपनी २ सृष्टि को जानते थे। जैसे अनेक मनुष्य एकही काल में शयन करें और अपनी २ स्वप्न सृष्टि देखें तौभी दूसरी सृष्टि को वे नहीं जानते। हे रामजी! कुछ ऐसी सृष्टि देखीं जहां न सूर्य का प्रकाश था न चन्द्रमा का प्रकाश था और न अग्नि का प्रकाश था और उनकी चेष्टा बड़ी होती थी कहीं ऐसी सृष्टि देखी जहां सूर्य और चन्द्रमा हैं और कहीं ऐसी देखी कि; उनको कालका ज्ञानभी नहीं और न वहां कोई दिन है, न रात्रि है; सदा एकसमान रहते हैं। कहीं महाशून्यरूप तमही दृष्ट आया; कहीं ऐसे दृष्ट आया कि, देवताही रहते हैं; कहीं मनुष्यही रहते हैं; कहीं तिर्यक् ही रहते हैं; कहीं

दैत्यही दृष्ट आये; कहीं जलही दृष्ट आया और कोई तत्त्व न दृष्ट आया और कहीं ऐसी सृष्टि दृष्ट आई जहां शास्त्रका विचारही नहीं; कहीं शास्त्र पुराण विपर्ययरूप थे और कहीं समान थे। कहीं प्रलय होती दृष्ट आई और कहीं उत्पत्ति होती दृष्ट आई। हे रामजी! इसी प्रकार अनन्त सृष्टि मैंने देखीं परन्तु जब स्वरूप की ओर देखूं तब केवल ब्रह्मरूपही भासे और कुछ बना दृष्ट न आवे और जब संकल्प करके देखूं तब अनन्त सृष्टि दृष्ट आवें। कहीं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवे जहां बालक, वृद्ध, यौवन अवस्था की मर्यादाही नहीं–जैसे जन्मे तैसेही रहे–कहीं ऐसी सृष्टि है कि; चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश नहीं और अग्नि के प्रकाश से उनकी चेष्टा होती है और कहीं ऐसे देखे कि, ऊर्ध्व को चलेजावें; कहीं नीचेको चले जावें। कहीं ऐसे देखे जो शास्त्र की मर्यादा से चेष्टा करें और कहीं कृमिही बसते हैं और कोई नहीं। हे रामजी! चैतन्यरूपी वन में मैंने अनन्त सृष्टिरूपी वृक्ष देखे परन्तु दूसरा कुछ बना दृष्ट न आया; सब चैतन्य का आभासही दृष्ट आया। जैसे सूर्य की किरणोंमें जलाभास होताहै और बना कुछ नहीं; तैसेही सृष्टि बनी कुछ नहीं और जैसे आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही अनहोती सृष्टि भासे। जैसे मरुस्थल में जल और गन्धर्वनगर की सृष्टि भासती है तैसेही सम्पूर्ण सृष्टि भासी हैं। हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश में चित्तरूपी गन्धर्व ने सृष्टि रची है पर स्वरूप से भिन्न कुछ उपजा नहीं–सब अकारण है। जो समवायकारण विना सृष्टि भासे उसे भ्रममात्र जानिये। जैसे स्वप्ने की सृष्टि कारण विना होती है और अर्थाकार हो भासतीहै तौभी अजातजातहै अर्थात् उपजे विना उपजी भासती है; तैसेही सम्पूर्ण सृष्टि आभासमात्र है। हे रामजी! आभास में भी अधिष्ठानसत्ता होती है जिसके आश्रय आभास फुरता है। सच्चिदानन्द ब्रह्म सबका अधिष्ठान है और सर्व आत्मता सेही स्थित हैं–ब्रह्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं। चेतना करकेही नानात्व भासता है परन्तु नानात्व हुआ कुछ नहीं; आत्माही सर्वदा अपने आपमें स्थित है। जैसे क्षीरसमुद्रमें वायुसे नाना प्रकार के तरङ्ग उपजते भासते हैं तौभी क्षीर से भिन्न नहीं–ऐसा क्षीरसमुद्र का तरङ्ग कोई नहीं जिसमें घृत न हो; तैसेही जो कुछ पदार्थ हैं उन सबमें ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत है। जैसे क्षीरमथन किये से घृत निकलता है; तैसेही विचार कियेसे जगत् ब्रह्मस्वरूप भासताहै–कुछ भिन्न नहीं दिखता क्योंकि; कारण द्वारा कुछ नहीं उपजा परमार्थ से केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है। फुरनरूपी भ्रम से कुछ हुआ दृष्ट आता है और जब फुरनरूपी भ्रम निवृत्त होता है तब ब्रह्मही भासता है; इससे अविद्यारूप फुरने को त्यागकर अपने निर्विकल्पस्वरूप में स्थित होरहो तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा॥

इति श्रीयो०नि०जगज्जालसमूहवर्णनन्नामशताधिकसप्तनवतितमस्सर्गः॥ १७९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार मैंने सृष्टि देखी तब फिर विचार हुआ कि, वह शब्द करनेवाला कौन था उसको देखूं। तब मैं देखने लगा तो देखते २ तीतरी की नाईं शब्द सुना परन्तु उसको न देखा। तब फिर देखा तो शब्द का अर्थ भासने लगा और फिर देखा तो एक अङ्गना दृष्ट आई जिसका शरीर सुवर्णवत् था; बहुत सुन्दर वस्त्र पहिरे हुये थी और सब अङ्ग भूषणों से पूर्ण थे; मानो लक्ष्मी वा भवानी थी। जब मैंने उसको देखा तब वह मेरे निकट आई और कहने लगी; हे मुनीश्वर! और संसार जो मैंने देखाहै वह सामान्यधर्मा मुझको दृष्ट आयाहै पर तुम उत्तमधर्मा और संसारसमुद्र के पार हुये दृष्ट आते हो। तुम संसारसमुद्र पार के वृक्ष हो; जो कोई तुम्हारी ओर आता है उसके आश्रयभूत हो और उसको निकाल भी लेते हो पर और जीव संसार समुद्र में बहेजाते हैं और तुम पार हुये हो; इससे तुमको नमस्कार है। हे रामजी! जब इस प्रकार उस अङ्गना ने कहा तब मैं आश्चर्य में हुआ कि; इसने मुझे कदाचित् देखा भी नहीं और सुना भी नहीं फिर इसने क्योंकर जाना? तब मैंने ऐसे विचार किया कि, यह माया का कोई चरित्र है और सब ब्रह्माण्ड मुझको इस करके दृष्ट आये हैं। हे रामजी। ऐसे विचारकर मैं फिर आकाश को उड़ा तब और सृष्टि भासने लगी। जैसे स्वप्न की सृष्टि संकल्प की सृष्टि और गन्धर्बनगर की सृष्टि होती हैं तैसेही यह सृष्टि है-वास्तव में कुछ बना नहीं। जैसे स्वप्नादिक की सृष्टि अनहोती भासती है तैसेही यह जगत् है-केवल बोधमात्र आत्मा अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! जब मैं बोध में स्थित होकर देखूं तब मुझको आत्मा ही भासे और जब संकल्प करके देखूं तब नाना प्रकार के जगत् भासें कहीं नष्ट होते भासें और कहीं नष्ट होकर उत्पन्न होते भासें। जैसे पीपल के पत्ते गिरते हैं और तैसेही उपजते हैं; तैसेही जगत् उपजते भासें। कहीं ऐसे दृष्ट आवें कि; नाश होकर औरके और उत्पन्न हों, कहीं उत्पन्न होतेही दृष्ट आवें और कहीं भिन्न २ सृष्टि और भिन्न २ शास्त्र दीखे। कहीं सूर्य चन्द्रमा और तारों का चक्र ऐसेही फिरता दृष्ट आवे और कहीं और प्रकार दृष्ट आवे; कहीं नरक की सृष्टि और कहीं स्वर्ग के स्थान दृष्ट आवें। इसी प्रकार अनन्त सृष्टियां देखीं; अनन्तही रुद्र देखे; अनन्तही ब्रह्मा देखे और अनन्तही विष्णु देखे। कहीं प्रलय के मेघ गर्जते थे; कहीं सुमेरुआदिक पर्वत उड़ते दृष्ट आते थे; कहीं ब्रह्माण्ड जलते और द्वादश सूर्य तपते थे और कहीं ऐसे स्थान दृष्ट आते थे कि, जन्मतेही पुष्ट होजावें। कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आई कि; एक सृष्टि में मुआ और दूसरी सृष्टि में आया और दूसरी सृष्टि में मुआ उसी सृष्टि में आया। कहीं प्रलय होती दृष्टि आवे; कहीं ज्योंकी त्यों सृष्टि दृष्टि आवे और उन के निकट उनको कुछ कष्ट न हो। जैसे दो पुरुष एकही शय्यापर सोये हों और दोनों

को स्वप्ना आवे तो एकको सृष्टि में प्रलय होती है और दूसरे की ज्योंकी त्यों रहे—इस में कुछ आश्चर्य नहीं। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं परन्तु उनमें सार ब्रह्मसत्ताही थी और सब स्वप्नवत् थे जैसे केले के वृक्ष में सार कुछ नहीं निकलता, तैसेही उस स्थान में सार कुछ न देखा। हे रामजी! क्रिया—काल सब विश्व ब्रह्मस्वरूप है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग बुद्बुदे सब जलरूप हैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, भिन्न नहीं। जैसे क्षीरसमुद्र में तरङ्ग आवृत क्षीर से भिन्न कुछ नहीं होते, तैसेही तुम और मैं, सब जगत् ब्रह्मही है। जब मैं बोध की ओर देखूं तब सर्व ब्रह्मही दृष्टि आवे और जब संकल्प की ओर देखूं तब नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आवे। इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, अधही है, कहीं गुण की सृष्टि देखी और कहीं ऐसी सृष्टि थी कि, धर्म अधर्म को जानतीही न थी। हे रामजी! एक सौ पचास सृष्टियां त्रेतायुग की मैंने देखीं जो भिन्न २ थीं और भिन्नही भिन्न जगत् भी थे। उनमें ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ भिन्न २ देखे जिसको मेरे समान ज्ञान था और मेरेही समान मूर्ति थी। फिर कोई २ मुझ से उत्तम भी थे और उन सबके आगे उपदेश लेनेके निमित्त रामजी बैठे थे। त्रेतायुग में अनेक युग और अनेक द्वापर, त्रेता और सतयुग देखे कि, सब चैतन्य आकाश के आश्रय हैं। हे रामजी! हुये विनाही यह सब दृष्टि आये। जैसे मरुस्थल में जल, आकाश में अनहोती नीलता और रस्सी में सर्प भासता है तैसेही ब्रह्म से अनहोता जगत् भासता है। हे रामजी! मन के फुरने से जगत् भासता है और फुरने के मिटे से सब ब्रह्मही भासता है। हे रामजी! जैसे सूर्य की किरणों में अनन्त त्रसरेणु दृष्टि आते हैं, तैसेही अनन्तसृष्टि देखीं जो एक चैतन्य से अनेक चैतन्य दृष्टि आईं। जैसे वृक्ष से फल प्रकट होते हैं, तैसेही संकल्परूपी वृक्ष से सृष्टिरूपी फल दृष्टि आये। जैसे एक गूलर के फल में अनन्त मच्छर होते हैं, तैसेही एक आत्मसत्ता के आश्रय अनन्त सृष्टि संकल्प के फुरनेसे मुझको दृष्टि आईं। कहीं महाप्रलय के क्षोभ होते थे और समुद्र उछलते थे उनके तरङ्ग देवलोक को गिराते, कहीं श्यामरूप चन्द्रमा उष्ण और सूर्य शीतल दृष्टि आता था, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आई कि, दिन को अन्धेरा होजावे और रात्रि को जीव उलूकादिक की नाईं चेष्टा करते थे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, उनको रात्रि और दिन का कुछ ज्ञान नहीं; कालका ज्ञान भी नहीं और धर्म अधर्म का भी ज्ञान नहीं; जैसी अपनी इच्छा हो तैसेही करते थे। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, पुण्य करनेवाले नरक को प्राप्त होते थे और पापकर्ता स्वर्ग को जाते थे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, बालू से तेल निकलता था; विषपान किये से अमर होते थे और अमृतपान किये से मरजाते थे। हे रामजी! जैसे किसी का निश्चय होता है तैसेही आगे भासता है।

यह जगत् संकल्पमात्र है। जैसी भावना होती है तैसाही आगे होकर भासता है। कहीं पत्थरों में कमल उपजते थे और कहीं वृक्षों में रत्न और हीरे दृष्टि आते थे और बड़े प्रकाश संयुक्त आकाश में वृक्षों के वन दृष्टि आये। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, मेघ के बादलही उनके वस्त्र हैं और वस्त्रों की नाईं बादलों को पकड़ लें; कहीं शीश पर भार लिये सब चेष्टा करते थे। निदान अन्धे, काने, बहरे इत्यादिक नाना प्रकार की सृष्टि देखी। हे रामजी! जब मैं स्वरूप की ओर देखूं तब सब सृष्टि शून्यरूप दृष्टि आवे और जब संकल्प की ओर देखूं तब नाना प्रकार का जगत् भासे। कहीं ऐसेही सृष्टि दृष्टि आवे कि, वे चन्द्रमा और सूर्य को जानतेही नहीं, कहीं एक पृथ्वी की सृष्टि पृथ्वी में; अग्नि की सृष्टि अग्नि में और जल की सृष्टि जल में देखी; कहीं पांचभूत की सृष्टि देखी–जैसे यह विद्यमान है और कहीं काष्ठ की पुतलीवत् सृष्टि चेष्टा करती देखी–जैसे यह विद्यमान है और भोजन करती है और कहीं २ प्राणों विना यन्त्री की पुतलीवत् चेष्टा करती हैं। हे रामजी! जब ऐसे सृष्टि देखी तो मैं महाआकाश में अनन्तयोजन पर्यन्त चलागया परन्तु एक आकाशही दृष्टि आता था और कोई तत्त्व न दीखा। फिर ऐसी सृष्टि देखी कि, वे खाना, पीना आदि सब चेष्टा वैताल की नाईं करते थे परन्तु दृष्टि न आते थे। जैसे वैताल सब चेष्टा करते हैं और दृष्टि नहीं आते तैसेही वे दृष्टि न आवें। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, जहां मैं और तुमकी कल्पना भी नहीं केवल निश्चितपद था और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, उनका मनही नहीं। कहीं अहंकार सृष्टि देखी; कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि; वे सब में आत्मभावना करते हैं, कहीं सब अपना आपही जानें और भेदभावना किसीकी न करें कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, सब मोक्ष की लक्ष्मी से शोभते हैं; कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि; उपजकर नाश होजावें–जैसे नख और केश उपजते हैं–और कहीं ऐसे देखे कि, चिरकालपर्यन्त रहें। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखी जो अनहोतीही फुरती हैं और संकल्पमात्र हैं। और जब संकल्प लय होजाता है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। चित्त के स्पन्द में सब जगत्जाल देखे पर वास्तव में मैं ऊर्ध्व गया, अध गया और दशोंदिशा गया परन्तु सब चेतनरूपी समुद्र के बुद्बुदे हैं और कुछ न भासा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगज्जालवर्णनंनाम
शताधिकाशीतितमस्सर्गः॥ १८०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चिदाकाश ब्रह्म अपने आप में स्थित है–जैसे जल अपने जलभाव में स्थित है–और उसमें जो चैत्योन्मुखत्व होता है मुनीश्वर उसको चिदाकाश कहते हैं। उस मन में संकल्प विकल्प फुरने से जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड

बनगयेहैं उनका नाम भूताकाशहै। मन से उपजेहैं इस कारण इनका नाम भूताकाश है ये संकल्पमात्र हैं–आत्मा से भिन्न नहीं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो संकल्प है कि, ब्रह्मा के दिन में भूत उत्पन्न होतेहैं; रात्रि में प्रलय होजाते हैं और जब महाप्रलय होताहै तब कोई भूत नहीं रहता सब ब्रह्मसत्तामें लीन होजातेहैं और सब जीवन्मुक्त होजातेहैं केवल सूक्ष्म ब्रह्महीं शेष रहता है; तो उस सूक्ष्म ब्रह्म से फिर कैसे सृष्टि उत्पन्न होती है सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब सबभूत नष्ट होजाते हैं और ब्रह्मसत्ता ही शेष रहती है उसको तुम मानते हो क्योंकि; तुमनेभी कहा कि, पीछे ब्रह्मसत्ताही शेष रहती है। जब तुमने माना कि,सबका कारण ब्रह्म शेष रहताहै तो वह ब्रह्मसत्ता शुद्धस्वरूप है और आकाश से भी सूक्ष्म है; बरन आकाश के हजारहवें भाग से भी अतिसूक्ष्म है। हे रामजी! ऐसे सूक्ष्म ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति कैसे कहूं? और जो उत्पत्ति ही नहीं तो उसका प्रलय कैसे हो। यह जगत् जो दृष्टि आता है सो ब्रह्म का हृदयहै। अपनी जो स्वभावसत्ता है तिसका नाम हृदय है सो यह और जगत् ब्रह्म का वपुहै। जैसे स्वप्ने में अपनी संवित् ही देश, काल, पर्वत आदिकरूप होती है तैसेही यह जगत् संवित्रूपहै और अपने स्वरूप के अज्ञानसे हुये की नाईं दुःखदायक भासता है। जैसे अपनी परछाहीं में अज्ञान से भूत कल्पके बालक भय पाता है पर जब विचार से देखता है तब भय निवृत्त होजाता है, तैसेही यह जगत् कुछ उपजा नहीं। हे रामजी! चेतन–संवित् ही जगत् आकार होकर भासतीहै और कुछ वस्तु नहीं। जो सब वही हुआ तो आदिसर्ग का होना और प्रलय सब उसीके अङ्गहैं भिन्न नहीं। 'अस्ति', 'नास्ति', 'उदय', 'अस्त' आदि जो शब्द हैं वे सब आकाशरूप हैं और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है। सर्व शब्द ब्रह्महीमें होते हैं और ब्रह्म सर्वशब्दों से रहित भी है। जो वह सर्वशब्दों से रहित हुआ तो जगत् की उत्पत्ति और प्रलय क्योंकर कहीजावे। आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अदृश्य है इन्द्रियों का विषय नहीं और जगत् भी अविनाशी है क्योंकि, उपजाही नहीं। हे रामजी! जगत् भी आत्मा से भिन्न नहीं–आत्मरूप ही है और जो आत्मरूपहै तो विकार कहां हो? सर्वशब्द और अर्थका अधिष्ठान आत्मसत्ता है इससे जगत् ब्रह्मस्वरूप है। जैसे अङ्गवाला सर्वअङ्ग अपनेही जानता है तैसेही सब जगत् ब्रह्म के अङ्ग हैं और वह सबको जानता है। वास्तव में सुस्वच्छ; आकाशवत् और देश, काल, वस्तु, सुख, दुःख; जन्म, मरण; साकार, निराकार; केवल, अकेवल; नाशी, अविनाशी इत्यादिक सर्व शब्द और अर्थ उसहीके नाम हैं। जैसे अवयव अवयवी पुरुष के हैं जो फैलावे तो भी अपना स्वरूपहै जो संकोचे तौभी अपने अवयव हैं; तैसेही उत्पत्ति और प्रलय सब ब्रह्म ही के अवयव हैं; भिन्न नहीं

परन्तु भिन्न की नाईं जगत् हुआ भासताहै। जैसे सूर्य की किरणों में जल कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु हुये की नाईं दृष्टि आता है और किरणोंही जल होकर भासती हैं; तैसेही आत्मा जगत् आकार होकर भासता है सो आत्मा स्वरूप ही है। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपी एक वृक्ष है उसमें जो संवित् फुरना हुआहै सोही दृढ़मूल है; चित्त शरीररूपी थम्भ है; लोकपाल डालें हैं; शाखा जगत् है; फल प्रकाश है जिससे जगत् प्रकाशता है; अन्धकार श्यामताहै; पोल आकाश है; फूलों के गुच्छे प्रलय हैं; गुच्छों के हिलानेवाले भँवरे विष्णु, रुद्रादिकहैं और जड़ता त्वचा है। इस प्रकार सम और सत् आत्मब्रह्महै। ब्रह्मत्वभावसे भी कुछ नहीं बना सर्वदा अपने स्वभावमें स्थित है। हे रामजी! जगत् का भाव, अभाव; उत्पत्ति प्रलयादिक सर्वस्वभाव अनुभवरूप ब्रह्म स्थितहै और उसमें कोई विकार नहीं; वह केवल, शुद्ध; निरञ्जन, आत्मआकाश निर्मल है! जैसे चन्द्रमा के मण्डलमें विष की बेल नहीं होती, तैसेही आत्मा में कोई विकार नहींहोता निर्मल आकाशरूपहै और आदि–अन्त–मध्यकी कलनासे रहितहै तो लोकपाल भ्रम कैसे हो? यह सम्पूर्ण विकार आत्माके अज्ञानसे भासतेहैं; जब तुम एकाग्रचित्त करके देखोगे तब जगत्भ्रम शान्त होजावेगा। यह जगत् भ्रम फुरने से भासित हुआ है, जब फुरना उलटकर आत्मा की ओर आवेगा तब यह जगत्भ्रम मिट जावेगा। जैसे पवन से अग्नि जागता है और पवनही से दीपक लीन होजाता है तैसेही चित्त के फुरनेसे जगत् भासता है और जब चित्त का फुरना अन्तर्मुख होता है तब जगत्भ्रम मिटजाता है। हे रामजी! जब ज्ञानसे देखोगे तब अज्ञानरूप फुरने का त्रिकाल अभाव होजावेगा और बन्ध मुक्ति आत्मा में न भासेगी–इसमें कुछ संशय नहीं। यह जगत्जाल आत्मा में कुछ उपजा नहीं अज्ञान से भासता है; जब विचार करके देखोगे तब अष्टसिद्धि का ऐश्वर्य तृणवत् भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबोधजगदेकताप्रतिपादनंनाम
शताधिकैकाशीतितमस्सर्गः॥ १८१॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जगत्जाल तुमने चिद्रूप होकर एकस्थानमें बैठ कर देखा अथवा सृष्टिमें जाकर देखा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं अनन्त आत्मा सर्वशक्तिसम्पन्न और सर्वव्यापी चिदाकाश हूं मुझमें आना जाना कैसेहो? न एक स्थान में बैठकर देखी और न सृष्टि में जाकर देखी। हे रामजी! मैं चिदाकाश हूं मैंने चिदाकाशमें देखी। हे रामजी! जैसे तुम अपने अङ्गोंको शिखा से लेकर नखपर्यन्त देखते हो तैसेही मैंने ज्ञाननेत्र से अपने आपही में जगत् देखा जो निराकार, निरवयव, आकाशरूप निर्मल; सावयव और फुरनेसे दृष्टि आये हैं; वास्तव में कुछ नहीं केवल आकाशरूप है। जैसे स्वप्नेमें सृष्टि का अनुभव हो परन्तु संवित्रूप है बना कुछ

नहीं और जैसे वृक्ष के पत्र, टास, फूल, फल सब वृक्ष के अङ्ग होतेहैं तैसेही ज्ञाननेत्र से मैंने जगत् को देखा। हे रामजी! जैसे समुद्र तरङ्ग, फेन, बुद्बुदे और जल को अपने आपही में देखता है; तैसेही मैं अपने आपमें जगत् को देखताहूं और अबभी मैं इस देह में स्थित हुआ पर्वत की सृष्टि को ज्ञान से देखता हूं। जैसे कुटी के भीतर बाहर आकाश एकरूपहै तैसेही मुझको आगे और अबभी जगत् आकाशरूप अपने आप में भासतेहैं। जैसे जल अपने रस को जानताहै; बरफ़ अपनी शीतलताको जानताहै और पवन अपनी स्पन्दता को जानताहै तैसेही मैं ज्ञान से सृष्टि अपनेमें देखताभया। जिस ज्ञानवान् पुरुष को शुद्ध बुद्धि में एकता हुई है वह अपनेको सर्वात्मा देखता है और जिसको आत्मस्थिति हुईहै वह वेदन को भी अवेदन देखता है और कदाचित् उपजा नहीं मानता। जैसे देवता अपने २ स्थानों में बैठे हुये दिव्यनेत्र से कोटि योजन पर्यन्त अपने विद्यमान देखते हैं तैसेही जगतों को मैंने सर्वात्म होकर देखा। जैसे पृथ्वी में निधि; औषध और रससहित पदार्थ होते हैं सो पृथ्वी अपने मेंही देखती है, तैसेही मैंने जगत् को अपनेमेंही देखा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह जो कमलनयनी कान्ता छन्दके पाठ करनेवाली थी उसने फिर क्या किया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह आकाशवपु को धारके मेरे निकट आई और जैसे भवानी आकाश में आन स्थित हों तैसेही आन स्थित हुई। जैसे मैं आकाशवपु था तैसेही उसको भी मैंने आकाशवपु देखा। प्रथम मैंने आकाश में इस कारण न देखा कि, मेरा आधिभौतिक शरीर था। जब चित्तपद होकर मैं स्थित हुआ तब वह कान्ता देखी। मैं आकाशरूपी हूं और वह सुन्दरी भी आकाशरूप है और जगत्जाल जो देखे सो भी आकाशरूप हैं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमभी आकाशरूप थे और वह भी आकाशरूप थी पर वचनविलास तो तब होता है जब शरीर होता है और उसमें बोलनेका स्थान कण्ठ, तालु, नासिका, दन्त, होठ और हृदयमें प्रेरनेवाले प्राण होते हैं और अक्षर का उच्चार होता है और तुमतो दोनों निराकार थे; तुम्हारा देखना और बोलना किस प्रकार हुआ? बोलना रूप, अवलोक और मनस्कारसे होताहै—रूप अर्थात् दृश्य; अवलोक अर्थात् इन्द्रियां और मनस्कार अर्थात् मनका फुरना—इनतीनों विना तुम्हारा बोलना कैसे हुआ? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जैसे स्वप्न में रूप, अवलोक और मनस्कार; शब्दपाठ और परस्पर वचन होते हैं सो आकाशरूप होते हैं तैसेही हमारा देखना, बोलना और आपस में संवाद हुआ था। जैसे स्वप्न में रूप अवलोक और मनस्कार आकाशरूप होते हैं और प्रत्यक्ष भासते हैं तैसेही हमारा देखना और बोलना हुआ। यह प्रश्न तुम्हारा नहीं बनता कि, देखना और बोलना कैसे हुआ? जैसे आकाशमें सृष्टि देखी है तैसे यह सृष्टि भी है

और जैसे उनके शरीर थे तैसेही इनके और हमारे शरीर हैं जैसे यह जगत् है तैसेही वह जगत् है । हे रामजी ! यह आश्चर्य है कि, सत् वस्तु नहीं भासती और असतवस्तु भासती है । जैसे स्वप्ने में पृथ्वी, पर्वत, समुद्र और जगत् व्यवहार है नहीं पर प्रत्यक्ष भासता है और सत् वस्तु अनुभवरूप नहीं भासती तैसेही हम तुम जगत् सब आकाशरूप हैं । जैसे स्वप्ने में युद्ध होते भासते हैं और शब्द होते हैं और आना जाना भासता है वह सब आकाशरूप है और हुआ कुछ नहीं तैसेही यह जगत् भी है। हे रामजी ! स्वप्नसृष्टि मिथ्या है, कुछ बनी नहीं और जो कुछ है सो अनुभवरूप है—भिन्न कुछ नहीं। जो तुम पूछो कि, स्वप्ना क्या है और कैसे होताहै तो सुनो; आदि परमात्मतत्त्व में स्वप्ने वचन हुआ है सो विराट्आत्माहै और फिर उससे यह जीव हुये हैं सो आकाशरूप हैं क्योंकि; विराट् आकाशरूप है और ये सब आकाशरूपहैं। स्वप्ने का दृष्टान्त भी मैंने तुमसे बोधके निमित्त कहाहै क्योंकि; स्वप्ना भी कुछ हुआ नहीं केवल आत्ममात्रहै; ब्रह्महो अपने आपमें स्थित है। हे रामजी ! वह कान्ता जब मैंने देखी तो मैंने उससे पूछा क्योंकि; संकल्प मेरा और उसका एक था। जैसे स्वप्ने में स्वप्ना होता है तैसेही हमारा हुआ। हे रामजी ! जैसे स्वप्ने की सृष्टि आकाशरूप होती है तैसेही हम, तुम और सब जगत् आकाशरूप हैं कुछ हुआ नहीं। स्वप्नजगत् और जाग्रत् जगत् एकरूप है परन्तु जाग्रत् दीर्घकाल का स्वप्ना है इससे इसमें दृढ़ व्यवहार; उत्पन्न और प्रलय होते भासते हैं। हे रामजी ! स्वप्ने में भोग होते भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र हैं; निर्मल आकाशरूप आत्मा से भिन्न कुछ नहीं बना। दृश्य और द्रष्टा स्वप्नेकी नाईं अनहोते भासते हैं। जो हम तुम आदिक दृश्यको मनरूपी द्रष्टा सत्य मानताहै सो दोनों अज्ञानसे भ्रममात्र उदय हुयेहैं और जो शुद्ध द्रष्टाहै सो दृश्य से रहित है । जैसे द्रष्टा आकाशरूप है तैसेही दृश्य भी आकाशरूप है और जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभव से भिन्न कुछ नहीं तैसेही यह जाग्रत् भी अनुभवरूप है। हे रामजी ! चिदाकाश जो अनन्त आत्माहै वह इस जगत्का कारण कैसेहो? जैसे स्वप्ने की सृष्टि का कारण कोई नहीं; तैसेही इस जाग्रत्जगत्का कारण भी कोई नहीं क्योंकि; हुआ कुछ नहीं और जो कुछ है सो अनुभवरूप है—इससे यह जगत् अकारण है। हे रामजी ! सबजीव साकाररूपहैं और इनके स्वप्नेकी सृष्टि जो नाना प्रकारकी होती है सोभी आकाशरूपहै कुछ आकार नहीं। जो निराकार अद्वैत आत्मसत्ताहै उसमें आदि आभासरूप जगत् फुरा है तो वह आकाशरूप क्यों न हो ? अब साकार और निराकार का भेद कहते हैं सो सुनो । एक चित्त है और दूसरा चैत्त्य है—चित्त शुद्ध चिन्मात्र का नाम है और चैत्त्य दृश्य फुरनेको कहते हैं। जिस चित्त को दृश्य का सम्बन्ध है उसका नाम जीव है । जिस चित्त को अज्ञान से द्वैत का सम्बन्ध है और अनात्म में

आत्मअभिमान करताहै ऐसा जीव साकाररूपहै और उसकेस्वप्नेकी सृष्टि आकाशरूप है सो अचैत्य चिन्मात्र निराकार सत्ताहै तो उसका स्वप्ना आभासरूप जगत् आकाश रूप क्यों न हो? हे रामजी! यह जगत् निरुपादानरूप है अर्थात् कुछ बना नहीं और चिदाकाश निराकाररूपहै। जैसे स्वप्नेमें जगत् अकृत्रिम होता है तैसेही यह जगत् है; न इसको कोई निमित्तकारणहै और न समवायकारणहै पर आत्मा अच्युत और अद्वैत है सो दृश्य का कारण कैसे कहिये? हे रामजी! न कोई कर्ता है; न भोक्ता है और न कोई जगत् है और नाहीं कहना भी नहीं बनता। ऐसा जो ज्ञानवान् है सो पाषाणवत् मौन स्थित होता है और जब प्रकृत आचार आन पड़ताहै तब उसकोभी करता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदेकताप्रतिपादनंनाम
शताधिकद्व्यशीतितमस्सर्गः॥ १८२॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह जो तुम्हारे निकट आकाशरूप कान्ता आई तो वह शरीर विना अनेक क, च, ट, तादिक अक्षर कैसे बोली और जो तुम स्वप्ने की नाईं कहो तो स्वप्ने में भी केवल आकाश होता है वहां य, र, ल, वादिक कैसे बोलते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्वप्ने में जो शरीर होताहै सो आकाशरूपहै; उसमें क, च, ट, तादिक अक्षर कदाचित् उदेश नहीं हुये। जैसे मृतक कदाचित् नहीं बोलता तैसेही आकाशरूप आत्मा में शब्द कदाचित् नहीं होता। जो तुम कहो कि, स्वप्ने में जो य, र, ल, वादिक अक्षर प्रवृत्त होते हैं; तो उसका उत्तर यहहै कि; जो कुछ शब्द वहां सत् हुये होते तो निकट बैठेभी सुनते। हे रामजी! निकट बैठे जगत् को नहीं सुना तो ऐसे मैं कहता हूं कि; आकाशरूपहै कुछ हुआ नहीं और जो हुआ भासताहै सो भ्रान्तिमात्र केवल चिन्मात्र आकाश का किञ्चन है और आकाश में आकाश ही स्थित है; तैसेही यह जगत् भी कुछ हुआ नहीं। हे रामजी! जैसे चन्द्रमा में श्यामता; आकाश में वृक्ष और पत्थर में पुतलियां नृत्य करती भासें तो मिथ्या है तैसेही इस जगत् का होना भी मिथ्या है। हे रामजी! स्वप्ने में जो जगत् भासता है सो चिदाकाश का किञ्चन है सो भी आकाशरूपहै—भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने का जगत् आकाशरूप है तैसेही यह जगत् भी आकाशरूपहै और जैसे यह जगत् है तैसेही वे जगत् भी थे और यह जो आकाश है सो आत्माकाश में अनाकाशहै। जैसे स्वप्ने की सृष्टि भ्रम से प्रवृत्त भासतीहै तैसेही जगत्भी भ्रमसे प्रत्यक्ष भासताहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो यह जगत् स्वप्ना है तो जाग्रत् क्यों भासता है और जो असत्है तो सत्य की नाईं क्यों भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक मृदुसंवेग है; दूसरा मध्यसंवेग है और तीसरा तीव्रसंवेग है—संवेग संकल्प के प्रमाण को कहते हैं सो त्रिविध है। जैसे कोई पुरुष अपने स्थानमें बैठा हुआ मनोराजसे किसी व्यवहारको रचताहै सो उसको

जानता है कि; संकल्पमात्र है और नट स्वांग धारता है तब वह जानता है कि, मेरा स्वांग है और अपने स्वरूप को सत्य जानता है। इसका नाम मृदुसंवेग है क्योंकि; अपना स्वरूप नहीं भूला। मध्यसंवेग यह है कि, जैसे किसी पुरुष को स्वप्ना आताहै तो उसमें स्वप्न सृष्टि भासती है और एक शरीर अपना भासता है; तब अपने शरीर को सत्य जानता है और जगत् को भी सत्य जानता है क्योंकि; स्वरूप का प्रमाद है इससे स्वप्नकाल की सृष्टि को सत्य जानता है और आगे हुये को असत्य जानता है। इसका नाम मध्यसंवेग है क्योंकि; सोया हुआ शीघ्रही जाग उठता है और जो सोया और जागे नहीं उसका नाम तीव्रसंवेग है। हे रामजी! आदिसंकल्प स्वप्नमें रूप भासते हैं और उस में नाना प्रकार की सृष्टि होकर स्थित है। जिनको आदिस्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ उनको यह जगत् मृदुसंवेगहै क्योंकि; वे अपनी लीलामात्र असत्य जानते हैं और जिनको आदिस्वरूप का प्रमाद हुआहै वे फिर शीघ्रही जाग उठते हैं तब उन को वह जगत् असत्य भासता है और इस जगत् में सत्य प्रतीति नहीं होती। जिनको प्रमाद हुआ है और फिर नहीं जागे। उनको यह जगत् सत्यही भासता है क्योंकि; उनकी चित्त की वृत्ति का प्रमाण तीव्र होगया है इस कारण अज्ञानी को यह जगत् स्वप्न जाग्रत् हो भासता है–जैसे स्वप्नकाल में स्वप्ने की सृष्टि सत्य हो भासती है। हे रामजी ! चित्तके फुरनेका नाम जगत्है; जब चित्त बहिर्मुख होताहै तब जगत् हो भासता है और स्वरूप का अज्ञान होताहै और जब अज्ञान होता है तब जगत्भ्रम दृढ़ होताजाता है–इससे इस जगत् का कारण अज्ञान है। हे रामजी ! आत्मा के अज्ञानसे जगत् भासताहै; जब आत्मज्ञान होगा तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जावेगा। वह आत्मा अपना आप है इससे आत्मपद में स्थित होरहो तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा। हे रामजी ! अज्ञान से इस जगत् की सत्य प्रतीति होती है और उसमें जैसी २ भावना होती है तैसेही जगत् हो भासता है। हे रामजी! जिस प्रकार जगत् भ्रम सत्य हो भासता है सो भी सुनो कि, जो अज्ञानी जीव है वह जब मृतक होता है तब मुक्त नहीं होता बल्कि अज्ञानके वशसे जड़ पत्थरवत् होताहै क्योंकि; चेतन-रूप है। हे रामजी ! जब मृत्यु होतीहै तब आकाशरूप चित्त मेंही जगत् फुर आता है और अपनी वासना के अनुसार नाना प्रकार का जगत् हो भासता है, एवं नाना प्रकार के व्यवहाररचना क्रियासहित होकर भासते हैं। कल्पपर्यन्त सब क्रिया जीवों की अन्तवाहक होती हैं–जैसी हमारी है। हे रामजी ! तुम देखो वह जगत् क्या रूप है–किसीकारण से तो नहीं उपजा ? जैसे वह जगत् कलनामात्र सत् हो भासता है; तैसेही इस जगत् को भी जानो। हे रामजी ! यह जो तुमको स्वप्ना आता है और उसमें पुरुष पदार्थ हैं वेभी सत्य हैं क्योंकि; ब्रह्मसत्ता सर्वात्मक है। हे रामजी !

प्रबोध हुये से भी स्वप्न के पदार्थ विद्यमान भासते हैं, इसीसे कहा है कि; स्वप्न संकल्प और जाग्रत् तुल्य है। जैसे आगे शुक्र, ब्राह्मण के पुत्र इन्द्र, लवण और गाधि का उदाहरण कहा है, इनको मनोराजभ्रम प्रत्यक्ष हुआ है और दीर्घतपा को जिसका उदाहरण आगे कहेंगे प्रत्यक्ष स्वप्न हुआहै। जीव जीवप्रति अपनी २ सृष्टिहै क्योंकि; संकल्प अपना २ है इससे सृष्टि भिन्न २ है और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है। सर्व सृष्टि का प्रतिबिम्ब आत्मरूपी आदर्श में होता है और सर्वसृष्टि आत्माका अनुभव है। जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होताहै और उस वृक्षसे और वृक्ष होते हैं तौभी विचार से देखो कि, बीज तो एकही था और सब वृक्ष आदि उसी बीज से उपजे हैं; तैसेही एक आत्मा से अनेक सृष्टि प्रकाशती हैं परन्तु स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं। जैसे एक पुरुष सोया है और उसको स्वप्नेकी सृष्टि भासती है और फिर स्वप्ने में जो बहुत जीव भासते हैं उनको भी अपने २ स्वप्ने की सृष्टि भासती है। हे रामजी! जिससे आदि स्वप्ने की सृष्टि भासती है वह पुरुष एकही है और उस एकही में अनन्तसृष्टि चित्त के फुरने से होती हैं; तैसेही आत्मसत्ता के आश्रय अनन्तसृष्टि फुरती हैं परन्तु स्वरूप से कुछ हुआ नहीं सब आकाशरूप हैं और जीवों को अपनी २ सृष्टि अज्ञान से भासती है। हे रामजी! जीवों को और सृष्टि का ज्ञान नहीं होता अपनीही सृष्टि को जानते हैं क्योंकि; संकल्प भिन्न २ हैं। कितनों को हम स्वप्नों के नर हैं और कितने हमको स्वप्नेके नर हैं; वे और सृष्टि में सोये हैं और हमारी सृष्टि उनको स्वप्न में भासती है तिनको हम स्वप्ने के नर हैं और जो हमारी सृष्टि में सोये हैं उनको स्वप्ने में और सृष्टि भासि आई है सो हमारे स्वप्ने के नर हैं। हे रामजी! इस प्रकार आत्मतत्त्व के आश्रय अनन्तसृष्टि भासती हैं। जो जीव सृष्टि को सत् जानकर विचरते हैं वे मोक्ष मार्ग से शून्य हैं। जैसे मनुष्य जो शयन करताहै तो उसको स्वप्नमें प्रमाण होता है और उसमें जो जीव होते हैं उनको फिर स्वप्ना होता है तब अपनी २ सृष्टि उनको भासतीहै तो वह अनन्तसृष्टि अनुभवके आश्रय होतीहै; तैसेही एक आत्मा के आश्रय असंख्य सृष्टि फुरती हैं सो कई समान; कई अर्धसमान और कई विलक्षण भासती हैं पर अपनी २ सृष्टि को जीव जानते हैं। जैसे एक मन्दिरमें दशपुरुष सोये हैं और उनको अपना २ स्वप्ना आवे तब उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता; तैसेही यह सृष्टि भी और को नहीं भासती क्योंकि; संकल्प अपना २ है। जैसे पत्थरको पत्थर नहीं जानता और जो अन्तवाहक शरीर योगेश्वर हैं उनको सृष्टि का ज्ञान होता है। हे रामजी! वास्तवमें सृष्टि भी निराकार आकाशरूप है। जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होताहै तैसेही आत्मा में सृष्टि है और जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में सृष्टि भासती है। हे रामजी!

वास्तवमें कुछ हुआ नहीं; सर्वदा काल सर्वप्रकार आत्माही अपने आपमें स्थितहै; जिनको आत्माका प्रमाद हुआहै उनको जगत् भासताहै वास्तवमें जगत् किसीकारण से नहीं उपजा—आभासरूप है। सम्यक्ज्ञान के हुयेसे ब्रह्म अद्वैत भासता है और असम्यक्ज्ञान से अद्वैतरूप जगत् हो भासता है। जैसे रस्सी के सम्यक्ज्ञान से रस्सी ही भासतीहै और असम्यक्ज्ञान से सर्प भासता है; तैसेही आत्मा के असम्यक्ज्ञान से जगत् भान होता है। हे रामजी! मैंने उस देवी से प्रश्न किया कि; हे देवि! तुम कहां से आई हो; तुम्हारा स्थान कहां है; तुम कौन हो और यहां किस निमित्त आई हो? तब वह देवी बोली, हे मुनीश्वर! ब्रह्मरूपी महाकाश के अणुका भी जो अणुहै और उसके छिद्र में भी जो छिद्र है तिसमें तुम रहते हो और तुम्हारा यह जगत् भी उसीमें है। तुम्हारी सृष्टिका जो ब्रह्माहै तिसकी संवेदनरूपी कन्याने यह जगत् रचा है। उस तुम्हारे जगत् में पृथ्वीहै और उसके ऊपर समुद्रहै जिनसे पृथ्वी घेरी हुईहै; उसके ऊपर दूना और द्वीपहै और उस द्वीपके ऊपर दूना समुद्रहै। इसी प्रकार पृथ्वीको लंघके आगे सुवर्ण की पृथ्वी आती है जो दशसहस्र योजन पर्यन्त महासुन्दर प्रकाशरूप है और उसने सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश को भी लज्जित किया है। उसके परे और लोकालोक पर्वत हैं जो सब ठौर प्रसिद्ध हैं और उनमें बहुतसे नगर बसते हैं। कहीं ऐसे स्थानहैं जहां सदा प्रकाशही रहताहै—जैसे ज्ञानी के हृदय में सदा प्रकाश रहताहै; कहीं ऐसे स्थानहैं जहां सर्वदा अन्धकारही रहताहै—जैसे अज्ञानीके हृदय में अन्धकार रहताहै; कहीं ऐसेही स्थानहैं जहां प्रत्यक्षपदार्थ मिलतेहैं—जैसे पण्डित के हृदय में अर्थ प्रत्यक्ष होते हैं; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां पदार्थ नहीं मिलते—जैसे मूर्ख के हृदय में श्रुति का अर्थ नहीं होता; कहीं ऐसे स्थान हैं जिनके देखनेसे हृदय प्रसन्न होता है—जैसे सन्तों के दर्शन से हृदय प्रसन्न होता है; कहीं ऐसे स्थान हैं जिनमें सदा दुःखही रहता है जैसे अज्ञानी की संगति में सदा दुःख रहता है; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां सूर्य उदय नहीं होता; कहीं सूर्य चन्द्रमा दोनों उदय होते हैं; कहीं पशुही रहते हैं; कहीं मनुष्यही रहते हैं; कहीं दैत्य और कहीं देवताही रहतेहैं; कहीं किसान रहते हैं; कहीं धर्म का व्यवहार होताहै; कहीं विद्याधरही रहते हैं; कहीं उन्मत्तहाथी हैं कहीं बड़े नन्दनवन हैं; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां शास्त्र का विचारही नहीं; कहीं शास्त्र के विचारवान् हैं; कहीं राज्य ही करते हैं; कहीं बड़ी बस्तियां हैं; कहीं उजाड़ वन हैं; कहीं पवन चलता है; कहीं बड़े खात छिद्र हैं; कहीं ऊर्ध्वशिखर हैं जहां विद्याधर और देवता रहते हैं; कहीं म्लेच्छ, यक्ष और राक्षस हैं और कहीं विद्याधरी देवियां महामत्त रहती हैं। इसी प्रकार अनन्त देशों और स्थानों की बस्तियां हैं। उस लोकालोक के शिखर पर सात योजन का एक तालाब है जिसमें

फूले कमल लगे हैं; सब ओर कल्पवृक्ष हैं और वहां के सब पत्थर चिन्तामणि हैं। उसके उत्तर दिशा में एक सुवर्ण की शिला पड़ी है जिसके शिखर पर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बैठते हैं और विलास करते हैं उसके ऊपर शिला में मैं रहती हूं और मेरा भर्ता और सम्पूर्ण परिवार भी वहांही रहता है। हे मुनीश्वर! उसमें एक वृद्ध ब्राह्मण रहता है जो अबतक जीता है और एकान्त जाकर सदा वेद का अध्ययन करता है। उसने मुझको अपने विवाह के निमित्त अपने मन से उपजाया है और अब मैं बड़ी हुई हूं तो वह मेरे साथ विवाह नहीं करता। वह जबसे उपजा है तब से ब्रह्मचारी ही रहता है और वेद का अध्ययन करके विरक्तचित्त हुआ है। हे मुनीश्वर! मैं वस्त्रों और भूषणों से संयुक्त हूं; चन्द्रमा की नाईं मेरे सुन्दर अङ्ग हैं और मैं सब जीवोंके मोहनेवाली हूं। मुझको देखकर कामदेव भी मूर्च्छित होजाता है; फूलों की नाईं मेरा हँसना है और सब गुण मेरे में हैं। महालक्ष्मी की मैं सखी हूं पर मुझको त्यागकर वह ब्राह्मण एकान्त जाकर बैठा है और सदा वेद का अध्ययन करता है। वह बड़ा दीर्घसूत्री है; जब मैं उत्पन्न हुई थी तब वह कहता था कि; मैं तुझको विवाहूंगा पर अब मैं यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई हूं तब त्यागकर एकान्त जा बैठा है। हे मुनीश्वर! स्त्री को सदा भर्ता चाहिये। अब मैं यौवन अवस्था से जलती हूं और बड़े तालाव जो कमलसहित दृष्टि आते हैं वे भर्ता के वियोग से मुझे अग्नि के अङ्गारे से भासते हैं और नन्दनवन आदिक बड़े बाग मुझको मरुस्थल की नाईं भासते हैं। इनको देखकर मैं रुदन करती हूं और नेत्रों से ऐसा जल चलता है जैसे वर्षाकाल का मेघ वर्षता है। जब मैं मुख आदिक अपने अङ्गों को देखती हूं तब नेत्रों के जल से कमलिनी डूब जाती है और जब कल्पतरु और तमाल वृक्ष के फूल और पत्र शय्या पर बिछाकर शयन करती हूं तब अङ्गों के स्पर्श से फूल जलते हैं। जिस कमल से मेरा स्पर्श होता है सो जल जाता है। हे भगवन्! भर्ता के वियोग से मैं तपी हुई हूं। जब मैं बरफ के पर्वतपर जा बैठती हूं तब वह भी अग्निवत् होजाता है और मैं नाना प्रकार के फूलों को गले में डालती हूं तब भी तप्तता निवृत्त नहीं होती। मेरे भर्ता की देह त्रिलोकी है और उसके चरणों में सदा मेरी प्रीति रहती है। मैं गृह के सब आचार करती हूं और सब गुणों मे सम्पन्न हूं; सबको धाररही हूं; सबकी प्रतिपालक हूं और ज्ञेय की मुझको सदा इच्छा रहती है। हे मुनीश्वर! मैं पतिव्रता हूं; जो पुरुष पतिव्रता स्त्री के साथ स्पर्श करता है वह बहुत सुख पाता है और तीनों तापसे रहित होता है क्योंकि, उसमें सब गुण मिलते हैं और वह सदा भर्ता में प्रीति करती है और भर्ता की प्रीति उसमें होती है—ऐसी मैं हूं पर मुझको त्यागकर वह ब्राह्मण एकान्त जा बैठा है और सर्वकाल वेद का अध्ययन और विचार करता रहता है।

मेरे भर्ता ने कामना का त्याग किया है, उसको कोई इच्छा नहीं रही और मैं उसके वियोग से जलती हूं। हे भगवन्! वह स्त्री भी भली है जिसका भर्ता विवाह करके मरगया हो; कुँआरी भी भली है और जो भर्ता के संयोग से प्रथमही मरजाती है वह भी श्रेष्ठ है पर जिसको भर्ता प्राप्त हुआ है परन्तु उसको स्पर्श नहीं करता तो उसको बड़ा दुःख होता है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष परमात्मा की भावना के संस्कार से रहित उत्पन्न हुआ है वह निष्फल है। जैसे पात्र विना अन्न निष्फल होता है–अर्थ यह कि, सन्तजन, तीर्थ आदिक से रहित पापस्थानों में डाला हुआ धन निष्फल होता है और जैसे समदृष्टि विना बोध और वेश्या की लज्जा निष्फल है; तैसेही मैं पति विना निष्फल हूं। हे भगवन्! जब मैं शय्या बिछाकर शयन करतीहूं तब फूल भी जल जाते हैं। जैसे समुद्र को वड़वाग्नि जलाता है तैसेही कमलों को मेरे अङ्ग जलाते हैं। हे मुनीश्वर! जो सुख के स्थान हैं सो मुझको दुःखदायक भासते हैं और जो मध्य स्थान हैं सो न सुख देते हैं न दुःख देते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधरीविशोकवर्णनंनाम शताधिकत्र्यशीतितमस्सर्गः॥ १८३ ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं तप करती फिरती हूं। अब मुझको भी भर्ता के वियोग से वैराग्य उपजा है। भर्ता का वैराग्यरूपी ओला मेरी तृष्णारूपी कमलिनी पर पड़ा है और उससे मैं जलगई हूं इससे जगत् मुझको विरस भासताहै। हे मुनीश्वर! यह जगत् असार है, इसमें स्थिर वस्तु कोई नहीं; इस कारण मुझको भी वैराग्य उपजा है। मेरा भर्ता जो स्वभूत है सो संसार से विरक्त होकर एकान्त जा बैठा है और वेद को विचारता रहता है परन्तु आत्मपद को नहीं प्राप्त हुआ। वह मनके स्थिर करने का उपाय करताहै परन्तु अबतक उसका मन स्थिर नहीं हुआ। सर्व एषणा से रहित होकर वह शास्त्र को विचारता रहता है पर आत्मा का साक्षात्कार उसे नहीं हुआ। मुझको भी वैराग्य उपजा है; अब हम दोनों वैराग्य से संपन्न हुये हैं और परमपद पाने की इच्छा हुईहै। शरीर हमको विरस होगया है–जैसे शरत्काल की बेलि विरस होती है–इस कारण मैं योग की धारणा करनेलगी हूं। यह शक्ति अब मुझको उत्पन्न हुई है कि; आकाशमार्ग को आऊं और जाऊं; योग धारणा से आकाश पर उड़ने की भी शक्ति हुई है और सिद्धमार्ग की धारणा से सिद्धों के मार्ग में भी आती जाती हूं परन्तु अर्थ कुछ सिद्ध न हुआ क्योंकि; पाने योग्य आत्मपद प्राप्त नहीं हुआ। जिस के पाये से कोई दुःख न रहे। अब मुझको निर्वाण की इच्छा हुई है। मैंने सिद्धों के गण; देवता; विद्याधर और ज्ञानियों के बहुत स्थान देखे हैं परन्तु जहां गई वहां सब तुम्हारीही स्तुति करतेहैं कि; वशिष्ठजी बलके द्वारा अज्ञानको निवृत्त करतेहैं। जैसे

बड़ा मेघ वर्षता है परन्तु जब वायु चलताहै तब मेघको दूर करताहै तैसेही तुम्हारे वचन अज्ञानको दूर करते हैं। जब ऐसे मैंने तुम्हारी स्तुति सुनी तब मैंने इस सृष्टि में आने का अभ्यास किया और धारणा के अभ्यास से तुम्हारी सृष्टिमें आई हूं। इससे, हे मुनीश्वर! मेरे और मेरे भर्ता को शान्ति के अर्थ आत्मज्ञान का उपदेश करो। मेरा भर्ता जो मनके स्थित करने का यत्न करता है उसको तुम ऐसा उपदेश करो कि, शीघ्रही स्थित हो और आत्मपदको प्राप्त करे और मुझको भी आत्मज्ञान का उपदेश करे। हे भगवन्! तुम मायासे पार मुझको दृष्टि आते हो इस कारण मैं तुम्हारी शरण आई हूं। मैं स्त्री बुद्धि करके तुम्हारे निकट नहीं आई पर शिष्यभाव को लेकर आई हूं और मैं जानती हूं कि; मेरा अर्थ सिद्ध होरहाहै क्योंकि; जो कोई महापुरुष की शरण आय प्राप्त होता है तो निष्फल नहीं जाता बल्कि सब अर्थ सम्पूर्ण होता है। जैसा किसीका अर्थ होताहै वैसा महापुरुष सिद्ध करदेते हैं। जैसे कल्पवृक्षके निकट कोई जाताहै तो उसका अर्थ पूर्ण होताहै, तैसेही मेरा अर्थ सफल होजावेगा। इससे कृपा करके मुझको उपदेश करो। हे मुनीश्वर! तुम मानो दया के समुद्र हो। सबके अर्थ सम्पूर्ण करनेको तुम समर्थ हो और सुहृद् हो अर्थात् उपकार की अपेक्षा विना उपकार करते हो; इससे मैं अनाथ तुम्हारी शरणमें आई हूं मुझको आत्मपद को प्राप्त करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधरीवेगवर्णनन्नाम शताधिकचतुरशीतितमस्सर्गः॥ १८४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार विद्याधरीने मुझसे कहा तब मैं आकाश में संकल्प का आसन रचकर उसपर बैठा और संकल्पसे ही एक आधारभूत का आसन रचकर उसको बैठाया क्योंकि, हमारा शुद्ध संकल्प है जो कुछ चिन्तना करते हैं सो होजाताहै। तब मैंने कहा, हे देवि! यह तू कैसे कहतीहै कि; शिला में हमारी सृष्टिहै सो कह? शिला में सृष्टि कैसे बसती है? विद्याधरी बोली; हे भगवन्! तुम्हारी सृष्टि में जो लोकालोक पर्वत हैं सो प्रसिद्ध हैं, उनके उत्तरदिशा शिखरपर एक सुवर्ण की शिला है उसमें हमारी सृष्टि है, तैसे उस शिला में सृष्टि बसती है। उस सृष्टि का ब्रह्मा मेरा भर्ता है और मैं उसकी स्त्री हूं। त्रिलोकी इस प्रकार बसती है कि, ऊर्ध्वलोक में देवता रहते हैं; पातालमें दैत्य और नाग रहते हैं; मध्यमण्डल में मनुष्य और पशु, पक्षी बसते रहते हैं और समुद्र, पर्वत, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशभी हैं। समुद्रने गम्भीरता; जीवोंने प्राण; पवनने आकाश में चलना; आकाश ने पोल; पृथ्वी ने धर्य; विद्याधरों ने ज्ञान; अग्निने उष्णता; सूर्यने प्रकाश; दैत्योंने क्रूरता; विष्णुने जगतकी रक्षाके निमित्त अवतार; नदियोंने चलना और पर्वतोंने स्थिरता अङ्गीकार

किया है । इस प्रकार सब नीति परमात्मा के आश्रय रची हुई है और कल्पपर्यन्त ज्यों की त्यों मर्यादा रहतीहै । इसी प्रकार जीव जन्मते और मरते हैं; देवता विमान पर आरूढ़ फिरते हैं; दिन का स्वामी सूर्यहै; रात्रि का स्वामी चन्द्रमा है और नक्षत्र और तारों का चक्र पवन से फिरताहै । इस चक्रके दो ध्रुव हैं और काल इस चक्रको फेरताहै सो फेरता फेरता नाशरूप जो काल है सो कल्पके अन्तमें उस चक्रके मुख में जा रहता है । हे मुनीश्वर ! परमात्मा अनन्त है, उसका कोई अन्त नहीं जान सक्ता; जब संवेदन फुरतीहै तब जानताहै कि, यह जगत् ईश्वर की सत्तासे है । और जब फुरनेसे रहित होताहै तब जाना नहीं जाता कि,जगत् कहां गया । हे मुनीश्वर ! तुम चलो और हमारी सृष्टिका विलास देखो । तुमतो जगत्के विलाससे पार हुयेहो और यद्यपि तुमको इच्छा नहीं है तौभी कृपा करके उस शिला में हमारी सृष्टि देखो । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार कहकर वह आकाशमार्ग में मुझे लेचली—जैसे गन्धको वायु लेजाताहै—तब हम और वह दोनों आकाशमार्ग में उड़े और भूताकाश में चिरकाल उड़ते गये तब हमको लोकालोक पर्वत दृष्टि में आया, उसके निकट जाकर उसके शिखर देखे कि; बहुत ऊंचे गये हैं और बड़े मेघ उसपर बिचरतेहैं और शिखर ऐसे सुन्दर हैं कि, मानों क्षीरसमुद्र से चन्द्रमा निकला है वहां जाकर मैंने महासुन्दर सुवर्णकी एकशिला देखी और उसके निकट गया तो मैंने कहा, हे देवि ! यह तो शिला पड़ीहै, तुम्हारी सृष्टि कहांहै ? इसमें पृथ्वी द्वीपकी मर्यादा जिसका आवरण चहुंफेर समुद्र होता है और उनपर की दशसहस्र योजन पर्यन्त सुवर्ण की पृथ्वी, पर्वत, मत्र्यलोक, आकाश, दशोंदिशा, तारामण्डल, सूर्य, चन्द्रमा जो रात्रि दिन के प्रकाशक हैं और भूतों का संचार, देवगण, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, योगीश्वर, वरुण, कुबेर, जगत्की और उत्पत्ति प्रलयका संचार, पातालकी भूमिका; मण्डलेश्वर; न्याय करनेवाले; मरुस्थल की भूमिका; नन्दन वनादिक; दैत्यों के विरोध संचारक देवता कहां हैं ? यह तो एकशिला दृष्टि में आती है । हे रामजी ! जब मैंने आश्चर्य को प्राप्तहोकर ऐसे कहा तब विद्याधरी बोली; हे भगवन् ! मुझको तो प्रत्यक्ष इस शिलाविषयमें अपनी सृष्टि भासती है—जैसे शुद्ध आदर्शमें अपना मुख भासता है तैसेही मुझको अपनी सृष्टि इस शिलामें प्रत्यक्ष भासतीहै—जैसी मर्यादा देशदेशान्तर की मुझको भासती है इसका संस्कार पूर्व का मेरे हृदय में है इसीसे मुझको प्रत्यक्ष भासती है और तुम्हारे हृदय में इसका संस्कार नहीं है इसीसे तुमको नहीं भासती । तुम्हारी सृष्टि की अपेक्षा से यह शिला पड़ी है और तुमको शिला का निश्चय है इस कारण तुमको इसमें जगत् नहीं भासता । हे भगवन् ! जिसका अभ्यास होता है सो पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है और वही भासता है । हे मुनीश्वर ! गुरु शिष्य को

उपदेश करताहै पर उपदेशमात्र से इष्टकी प्राप्ति नहीं होती, जब उसका अभ्यास करे तब इष्ट की प्राप्ति होती है। हे मुनीश्वर! ऐसा शास्त्र कोई नहीं कि, अभ्यास किये से न मिले; ऐसा न्याय और सिद्धता कोई नहीं जो अभ्यास किये से न मिले; ऐसी कला कोई नहीं जो अभ्यास किये से न पाइये और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो अभ्यास की प्रबलता से सिद्ध न हो; जो थककर फिरे नहीं तो अवश्य सिद्ध होते हैं। हे मुनीश्वर! जो कुछ सिद्ध होता दृष्ट आता है सो सब अभ्यास के वश से होताहै। प्रथम जब मैं तुम्हारे साथ आई थी तब मुझको भी शिला में सृष्टि नहीं भासी थी क्योंकि, यह सृष्टि अन्तवाहक शरीर में स्थित है। तुम्हारे साथ द्वैतरूपी कथाके कहने से अन्तवाहक शरीर मुझको विस्मरण होगया था इससे विश्व की चर्चा और तुम्हारी सृष्टि की चर्चा करके मुझको वह स्पष्ट नहीं भासती। जैसे मलिनदर्पण में मुख नहीं भासता तैसेही तुम्हारी सृष्टि के संकल्प से मुझको भी अपनी सृष्टि भासती नहीं परन्तु चिरकाल जो अभ्यास किया है इससे फिर भासती है क्योंकि, जो कुछ दृढ़ अभ्यास होता है उसकी जय होती है। हे मुनीश्वर! चिन्मात्रपद में फुरनेसे आदि जीवों के शरीर अन्तवाहक हुये हैं अर्थात् आकाशरूप शरीर थे; जब उन में प्रमाद करके दृढ़ अभ्यास हुआ तब आधिभौतिक होकर भासने लगे। जब फिर भावना उलटकर योग की धारणा से अभ्यास होता है तब आधिभौतिकता क्षीण होजाती है और अन्तवाहक प्रकट होता है उससे आकाश में पक्षी की नाईं उड़ता फिरता है। इससे तुम देखो कि, अभ्यास के बल से सब कुछ सिद्ध होता है। हे मुनीश्वर! अज्ञान से जगत् को अहंकाररूपी पिशाच लगा है सो दृढ़ स्थित हुआ है; जब शास्त्र के वचनों में दृढ़ अभ्यास होता है तब क्षीण होजाता है। हे मुनीश्वर! तुम देखो कि, जिस किसीको सृष्टि की प्राप्ति होती है सो अभ्यास के बल से होती है; जो अज्ञानी होता है और ब्रह्म अभ्यास करता है तो ज्ञानी होता है। पर्वत बड़ा है परन्तु जब अभ्याससे चूर्ण किया चाहे तो चूर्ण होताहै; और सम्पूर्ण वृक्षको भोजन करना कठिन है परन्तु अभ्यास करके शनैः शनैः घुन खाजाता है; आप तो छोटा है परन्तु जो वस्तु पानी कठिन हो सो अभ्यास से सुगम होजाती है। जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु के निकट जाकर जिस पदार्थ की वाञ्छा करो सो सिद्ध होती है, तैसेही आत्मरूपी चिन्तामणि और कल्पतरु है उसमें जिस पदार्थ का अभ्यास करता है सो सिद्ध होता है और अभ्यासरूपी भूमिका फल देती है। जो बालक अवस्था से अभ्यास होता है सोही वृद्धावस्था पर्यन्त रहता है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष बान्धव नहीं होता और निकट आरहता है तो निकट के अभ्यास से बान्धव होजाता है परन्तु बान्धव जो विदेश में रहता है तो अभ्यास की क्षीणता से अबान्धव होजाता है। हे मुनीश्वर!

विष भी अमृत की भावना करने से अभ्यास के द्वारा अमृत होजाता है। जो मिष्टान्न में कटुक भावना होती है तो कटु भासता है और कटु में मिष्टान्न की भावना कीजिये तो मिष्टान्न हो भासता है—जैसे किसी को नींब प्रियतम है और किसी को मिष्टान्न प्रियतम है। हे मुनीश्वर! जो कुछ सिद्ध होता है सो अभ्यास के बल से सिद्ध होता है; जो पुण्य किया होता है तो पापके अभ्यास से नष्ट होजाता है और पाप पुण्य के अभ्यास से नाश होता है; माता भी अमाता होजाती है; अर्थ के अनर्थ होजाते हैं; मित्र अमित्र होजाता है और भाग्य अभाग्यरूप होजाते हैं; निदान सबपदार्थ चल होजाते हैं परन्तु अभ्यास का नाश कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! जो पदार्थ निकट पड़ा होता है और साधक इन्द्रियां भी विद्यमान होती हैं तो भी अभ्यास विना प्राप्त नहीं होता। जहां अभ्यासरूपी सूर्य उदय होता है वहां दृष्टिरूप पदार्थ की प्राप्ति होती है। अज्ञानरूपी विसूचिका रोग ब्रह्मचर्चा के अभ्याससे नाश होजाता है। हे मुनीश्वर! संसाररूपी समुद्र आदि–अन्त से रहित है पर आत्म-अभ्यासरूपी नौका द्वारा उससे तरजाता है—जो अभ्यास को न त्यागोगे तो अवश्य तरोगे। हे मुनीश्वर! जो पदार्थ उदय हो उसके अभावकी भावना कीजिये तो अस्त होजाताहै और जो अस्तहो पर उसके उदय होनेकी भावना कीजिये तो उदय होता है। जैसे सिद्ध के शाप से उदयपदार्थ की नष्टता होती है और वर से अप्राप्तपदार्थ की प्राप्ति होती है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र से इष्टपदार्थ को सुनता है और उसका अभ्यास नहीं करता उसे मनुष्यों में नीच जानो; उसको इष्टपदार्थकी प्राप्ति कदाचित् नहीं होती जैसे बन्ध्या के पुत्र नहीं होता, तैसेही उसको इष्टपदार्थ की सिद्धि नहीं होती। हे मुनीश्वर! जो आत्मरूपी इष्टको त्यागकर और किसी पदार्थ की वाञ्छा करता है वह अनिष्ट से अनिष्ट पाकर नरक से नरक को भोगता है। हे मुनीश्वर! जिसको अभ्यासका भी अभ्यास प्राप्त हुआहै उसको शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होती है और अभ्यास के बलसे इष्टको पाताहै—जैसे प्रकाश से पदार्थ देखिये कि, वह पड़ा है तो उसका नाम अभ्यास है और उसके निमित्त यत्न करना अभ्यास का अभ्यास है। जब यत्न और अभ्यास करते हैं तब पदार्थ पाते हैं। बारम्बार चिन्तना करने का नाम अभ्यास है; जब ऐसा अभ्यास हो तब इष्टपदार्थ की प्राप्ति होती है -अन्यथा नहीं होती। हे मुनीश्वर! चौदह प्रकार के भूतजात हैं: जैसा २ किसीको अभ्यासहै उसके बलसे तैसाही तैसा सिद्ध होता है। अभ्यासरूपी सूर्य के प्रकाशसे जीव अपने इष्टपदार्थ पाताहै और अभ्यास के बल से भय निवृत्त होताहै और पृथ्वी, पर्वत, वन, कन्दरा में निर्भय होकर विचरना है॥

इति श्रीयो०नि०विद्याधर्य्यभ्यासवर्णनन्नामशताधिकपञ्चाशीतितमस्सर्गः॥ १८५॥

विद्याधरी बोली, हे मुनीश्वर! सर्वपदार्थ निरन्तर अभ्याससे सिद्ध होतेहैं। तुम्हारा शिला में दृढ़ निश्चय होता है इससे तुमको शिलाही भासती है और मुझको इसमें सृष्टि भासती है। जब तुम्हारा संकल्प भी मेरे संकलपके साथ मिले तब तुमको भी यह जगत् भासे। यह जगत् जो स्थित है सो मेरे अन्तवाहक में है और आदिवपु सबका अन्तवाहक है सो अन्तवाहकमें सबकी एकता है जैसे समुद्र में सबतरङ्गों की एकता होती है। हे मुनीश्वर! जब तुम धारणा का अभ्यास करके शुद्धबुद्धि में प्राप्त होगे तब तुम को इस शिला में सृष्टि भासेगी। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब उसने इस प्रकार मुझसे शुद्धयुक्ति कही तब मैंने पद्मासन बांधकर सब विषय त्याग किये और कथा के क्षोभ का भी त्यागकर अपने आधिभौतिक का भी त्यागकिया, तब निरन्तर शुद्धबोध का अभ्यास करनेसे मुझको बोध का अनुभव उदय हुआ। जैसे मेघ के अभाव से शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही कलना से रहित मुझको शुद्धबोध का अनुभव उदय हुआ जो उदय और अस्त से रहित परमशान्तरूपहै और उसमें वह शिला मुझको आकाशरूप दृष्टि आई और शिलातत्त्व करके केवल बोधमात्र दृष्टि आई। पृथ्वी आदिक तत्त्व मुझको कोई दृष्टि न आये केवल अद्वैत आकाश आत्मतत्त्वमात्र अपना आपही दृष्टि आया पर जब बोधमात्रसे अन्तवाहकरूप होकर स्पन्द फुरा तब अन्तवाहक करके उस शिला में सृष्टि भासनेलगी—जैसे मनोराज की सृष्टि होती है और बोध से भिन्न २ नहीं होती तैसेही वह सृष्टि मुझको दृष्टि आई और शिला का रूप भासी। जैसे स्वप्ने के गृहमें शिला दृष्टि आवे तो वह अनुभवही शिला और गृहरूप होकर भासता है कुछ भिन्न नहीं होता, तैसेही वह शिला दृष्टि आई। हे रामजी! जैसे मैंने आकाशरूप वह शिला देखी, तैसेही सब जगत् चिदाकाशरूप है कुछ द्वैत नहीं बना। सर्वदाकाल आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै पर आत्माके अज्ञानसे द्वैत भासताहै—जैसे कोई पुरुष स्वप्ने में अपना शिर कटा देखे और रुदन करे पर जागकर आपको ज्योंका त्यों आनन्द देखताहै; तैसेही जबतक जीव अज्ञाननिद्रा में सोता है तबतक जगत् भ्रम पर नहीं मिटता पर जब स्वरूप में जागकर देखेगा तब सब भ्रम मिटजावेगा और केवल अपनाही आप भासेगा। हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि; जो वस्तु सत्‌रूप है सो असत् की नाईं भासती है। आत्मा सदा सत्‌रूप है पर ज्ञान करके नहीं भासता और जो असत्यरूप है वह सत् की नाईं हो भासती है। शरीरादिक दृश्य असत्‌रूपहैं सो सत्यवत् होकर भासतेहैं। हे रामचन्द्र! आत्मा सदा प्रत्यक्ष और शरीरादिक परोक्षहैं पर अज्ञान से शरीरआदिक प्रत्यक्ष भासतेहैं और आत्मपद परोक्ष भासता है। हे रामजी! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है और इसलोक अथवा परलोक की क्रिया जो सिद्ध होतीहै सो सम्पूर्ण आत्मसत्ता सेही सिद्ध होती है। प्रत्यक्ष

प्रमाण आत्मसत्ता सेही भासता है—आदि प्रत्यक्ष आत्माही है और सब कुछ आत्मा के पीछे जानता है। जो पुरुष कहते हैं कि, आत्मा योग और मन से प्रत्यक्ष होता है सो मूर्ख हैं; आत्मा सदा प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण भी आत्मा से सिद्ध होते हैं। माया इसीका नाम है कि, सदा अपरोक्ष वस्तु आत्मा को परोक्ष जानना और शरीरादिक असत्य को सत्य मानना। हे रामजी! जितने जीव हैं उनका वास्तवरूप ब्रह्मही है और उनमें आदि फुरना अन्तवाहकरूप हुआ है; उसके अनन्तर आधिभौतिक भासनेलगा है और भ्रम करके आधिभौतिक को अपना आप जानते हैं पर जो सदा निर्विकार, निराकार, निर्गुण स्वरूप अपना आप अनुभवरूपहै उसको कोई नहीं जानते। आदि शरीर सर्वजीव का अन्तवाहक है सो शुद्ध आत्मा का किञ्चन केवल आकाशरूप है और कुछ बना नहीं संकल्प करके आधिभौतिकता दृढ़ हुई है सो मिथ्याभ्रान्ति से भासती है जैसे स्वप्न में आधिभौतिक शरीर भासता है तैसेही जाग्रत् में आधिभौतिक शरीर भासता है और अन्तवाहक अविनाशी है—इसलोक और परलोक में इसका नाश नहीं होता। वास्तवबोध स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं, भ्रम करके आधिभौतिक दृष्टि आता है। जैसे सूर्य की किरणों में जल; सीपी में रूपा; रस्सी में सर्प और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही भ्रम से अपने में आधिभौतिक शरीर भासता है। हे रामजी! यह आश्चर्य है कि, सत्य वस्तु असत्य हो भासती है और जो असत्य वस्तु है वह सत्य होकर भासती है सो अविचार से भासती है। यह मोह का माहात्म्य है कि, सब के आदि जो प्रत्यक्ष आत्मा है उसको लोग अप्रत्यक्ष जानते हैं और अप्रत्यक्ष जगत् को प्रत्यक्ष जानते हैं। हे रामजी! यह जगत् भ्रम से भासता है और स्वप्न की नाईं मिथ्या है। जो पदार्थ जीव सुखरूप मानते हैं वे दुःख के कारण हैं क्योंकि; परिणाम इनका दुःख होता है। जो प्रथम क्षीणसुख भासता है और फिर उनके वियोग से दुःख होता है इसी कारण इनका नाम आपातरमणीयहै—इनको पाकर शान्तिमान् कोई नहीं होता। जैसे मृगतृष्णा का क्षीणसुख भासताहै और फिर उनके वियोग से दुःख होता है क्योंकि, उस जल को पाकर कोई तृप्त नहीं होता; तैसेही विषय के सुखों से कोई तृप्त नहीं होता—जो उनमें लगते हैं वे मूर्ख हैं। जो अत्युत्तम सुख है वह अनुभव करके प्रकाशता है; उसको त्यागकर विषयके सुखमें जो लगतेहैं सो मूर्खहैं; वे शुद्ध आकाशरूप अन्तवाहक में जगत् देखते हैं। हे रामजी! जगत् जाल हुये की नाईं भासने हैं तो भी हुये कुछ नहीं—जैसे स्थान में पुरुष भासता है तौभी हुआ नहीं और जैसे सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसेही यह जगत् प्रत्यक्ष भासता है पर कुछ नहीं है। हे रामजी! प्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं है तो अनुमानादिक प्रमाण कहां से सत्य हों? जैसे जिस नदी में

हाथी बहे जाते हैं तो उसमें रुई के बहने में क्या आश्चर्य है ? तैसेही सब प्रत्यक्ष प्रमाण जगत्को असत् जानो तो अनुमानप्रमाण कर क्या सत् होनाहै ? हे रामजी! केवल बोधमात्र में जगत् कुछ बना नहीं। हमको तो सदा ऐसेही भासता है और अज्ञानी को जगत् भासता है--जैसे किसी पुरुष को स्वप्न में पर्वत दृष्ट आते हैं और जाग्रतपुरुष को नहीं भासते तैसेही अज्ञानी को यह जगत् भासता है पर हमको तो आकाश, समुद्र, पर्वत, सब केवल बोधमात्र भासते हैं। जैसे कथा के अर्थ श्रोता के हृदयमें होते हैं और जिसने नहीं सुनी उसके हृदयमें नहीं होते, तैसेही मेरे सिद्धान्त को ज्ञानवान् जानतेहैं और अज्ञानी जान नहीं सक्के। हे रामजी! जितना कुछ आधिभौतिक जगत् भासता है सो अप्रत्यक्ष है और आत्मा सदा प्रत्यक्ष है। जो इसलोक अथवा परलोक का अर्थ है सो अनुभव से सिद्ध होता है क्योंकि, सबके आदि अनुभव प्रत्यक्ष है; उसको त्यागकर जो देहादिक दृश्य को अपना आप जानते हैं और इनहीं को प्रत्यक्ष जानते हैं वे मूर्ख पशु और पत्थरवत् हैं और सूखे तृण की नाईं तुच्छ हैं। जैसे भ्रमण से पर्वत आदिक पदार्थ भ्रमसे भासते हैं तैसेही अज्ञानी को आधिभौतिक भासते हैं। हे रामजी! यह जगत् सब परोक्ष है क्योंकि; इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होता है। जो नेत्र होते हैं तो रूप भासते हैं और जो नेत्र न हों तो न भासें; इसी प्रकार सब इन्द्रियों के विषय हैं जो होवें तो भासें नहीं तो न भासें और आत्मा सदा प्रत्यक्षहै उसके देखनेमें किसी विषय की अपेक्षा नहीं। हे रामजी! जो इन्द्रियों कर सिद्ध हो सो असत्है; जो जगत्ही असत् हुआ तो उसके पदार्थ कैसे सत् हों? इससे इस जगत् की सत्यता त्यागकर शुद्धबोध में स्थित हो रहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रत्यक्षप्रमाणजगन्निराकरणन्नाम शताधिकषष्ठाशीतितमस्सर्गः॥ १८६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैं उस शिला को बोध दृष्टि से देखूं तब वह मुझको ब्रह्मरूप भासे और जब संकल्पदृष्टि से देखूं तब पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, पर्वत, लोक, लोकपाल, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पातालसंयुक्त जगत् दृष्ट आवे। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब भासता है, तैसेही आत्मरूपी आदर्श में जगत् भासता है। तब देवीने शिला में प्रवेश किया और मैंभी संकल्परूपी शरीरसे उसके साथ चलागया। हम दोनों जगत् के व्यवहार को लांघते गये। और जहां परमेष्ठी ब्रह्मा का स्थान था वहां हम जा बैठे। तब देवीने कहा, हे भगवन्! तुम परमेष्ठी से ऐसे कहना कि, मुझको यह ले आई है; और यह पूछना कि, इसको जो तुमने विवाह के निमित्त उपजाया था तो फिर क्यों इसका त्याग किया ? हे मुनीश्वर! उसने मुझको विवाह के अर्थ उत्पन्न किया था पर जब मैं बड़ी हुई तब उसने मेरा त्याग किया है। उसको

वैराग्य उपजाहै और उसे देखकर अब मुझकोभी वैराग्य उपजाहै; इसीसे हम परमपद की इच्छा रखती हैं जहां न द्रष्टा है, न दृश्य है और न शून्यहै केवल शान्तरूपहै और जो सर्गके आदि और महाकल्पके अन्तमें रहताहै उसमें स्थित होनेकी इच्छा है जिसमें स्थित हुये पहाड़वत् समाधि होजावे। ऐसे परमपद का उपदेश करो। हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह भर्ताके जगाने के निमित्त निकट जाकर बोली, हे नाथ! तुम जागो; तुम्हारे गृह में दूसरी सृष्टि के ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठमुनि आये हैं। तुम उठकर इनका अर्घ्यपाद्य से पूजनकरो क्योंकि, गृह में अतिथि आये हैं। महापुरुष केवल पूजासेही प्रसन्न होते हैं। हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब ब्रह्माजी समाधि से उतरे और उनके प्राण देह और नाड़ियों में आन स्थित हुये। जैसे वसन्तऋतु से सब वृक्षों में रस हो आताहै तैसेही उसकी दशों इन्द्रियों और चारों अन्तःकरण में शनैः २ करके प्राण स्थित हुये और सब इन्द्रियां खिल आईं। तब उन्होंने मुझको और देवीको अपने सन्मुख देखा और ज्ञानसे ॐकार का उच्चार करके सिंहासन पर बैठे। ब्रह्माजी के जागने से बड़ा शब्द होने लगा और विद्याधर, गन्धर्व, ऋषि, मुनि आ प्रणाम करके स्तुति और वेद की ध्वनि से पाठ करने लगे। ब्रह्मा बोले, हे ऋषे! कुशल तो है? तुम इतनी दूर से क्यों आयेहो तुमतो सार असारको जाननेवाले हो? जैसे हाथमें बेलका फल होताहै तैसेही तुमको ज्ञानहै बल्कि ज्ञानरूपी समुद्र हो। ऐसे कहकर उसने अपने निकट आसन दिया और नेत्रों से आज्ञा की कि, इसपर विश्राम करो। हे रामजी! जब इस प्रकार उसने मुझसे कहा तब मैं प्रणाम करके उसके निकट जा बैठा और एक मुहूर्तपर्यन्त देवता, सिद्ध और ऋषियों के प्रणाम होते रहे। उसके अनन्तर जब विद्याधर और देवता सब चलेगये तब मैंने कहा, हे भूत–भविष्य–वर्तमान तीनोंकालों के ज्ञाता ईश्वर परमेष्ठी! तुम ऊंचे आसन पर विराजमान हो और साक्षात् ब्रह्मज्ञान के समुद्र हो यह जो तुम्हारी शक्ति देवी है जिसको तुमने भार्या करने के निमित्त उत्पन्न किया था और फिर उसे विरस जानकर त्याग किया है तो तुम्हारे वैराग्य करने से इसको भी वैराग्य उपजा है इस निमित्त यह मुझको यहां लेआई है कि, तुम परमात्मतत्त्व की वाणी से हमको उपदेश करो सो इससे इसका क्या अभिप्राय है? ब्रह्मा बोले, हे मुनीश्वर! मैं शान्त, अजर अमररूप हूं और मुझ में उदय अस्त कदाचित् नहीं। मैं परम आकाशरूप हूं और अपने आपमें स्थित हूं। न मेरी कोई स्त्री है और न मैंने किसी को उत्पन्न किया है तथापि जैसे वृत्तान्त हुआ है तैसे मैं कहता हूं क्योंकि; महापुरुष के विद्यमान ज्यों का त्यों कहना योग्य है। हे मुनीश्वर! आदि शुद्ध चिदात्मा चिन्मात्रपद है, उसका वचन जो अहं होकर फुरा है उसका नाम आदि ब्रह्मा है सो

में हूं जैसे भविष्यत्सृष्टि का हो—अर्थ यह है कि, संकल्परूप द्रष्टा और संकल्परूप में हूं—और वास्तव में आकाशरूप सदा निरावरण हूं और अपने आपही में मेरी अहंप्रतीति है। उसमें आदि जो संकल्प का फुरना हुआ है उसमें जगत्भ्रम रचा है और उस जगत्भ्रम में मर्यादा हुई है और संकल्प का अधिष्ठाता जो ब्रह्मशक्ति है सो भी शुद्ध है। हे मुनीश्वर! उस मर्यादा को सहस्र चौकड़ी युगों की बीती हैं—अब कलियुग है। कल्प और महाकल्प की मर्यादा पूरी हुई है इससे मुझ को परम चिदाकाश में स्थित होने की इच्छा हुई है और इसी से इस को विरस जानकर मैंने त्याग किया है। जब इसका त्यागकरूंगा तब निर्वाणपद को प्राप्त होऊं क्योंकि; यह मेरी इच्छा वासनारूपहै जो वासना का त्याग हो तो निर्वाणपद प्राप्त हो। यह जो शुद्ध चित्तकला है इसने धारणा का अभ्यास किया था इससे इसमें अन्तवाहक शक्ति प्राप्त हुई है अन्तवाहक शक्ति से यह आकाश में फुरीहै और संसार से विरक्त हुई है। आकाश मार्गमें इसको तुम्हारी सृष्टि भासि आई और परमपद पाने की इच्छा से इसको तुम्हारी संगति प्राप्त हुई—इससे तुम्हारी शरण आई है और तुमको लेआई है। जो श्रेष्ठ हैं वे बड़ों की शरण जाते हैं; यह अपने कल्याण के निमित्त तुमको लेआई है। हे मुनीश्वर! यह मेरी मूर्तिरूप वासनाशक्ति है; आगे मैंने इसको उत्पन्न करके इस जगत्जाल को रचा पर अब मुझको निर्विकल्प निर्वाणपद की इच्छा हुई है इससे मैंने इसका त्याग किया है। अब इसको भी वैराग उपजा है इस कारण तुम बोधरूप की शरण में आई है। हे मुनीश्वर! यह जगत् विलास संकल्प हुआ है; वास्तव में कुछ हुआ नहीं; परमात्मतत्त्व ज्योंका त्यों अपने आपमें स्थितहै और मैं, तुम; मेरा, तेरा इत्यादिक शब्द समुद्र के तरङ्ग की नाईं हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर शब्द करते हैं और फिर लीन होजाते हैं; तैसे ही हमारा तुम्हारा बोलना और मिलाप होता है। हे मुनीश्वर! वास्तव में न कोई उपजा है और न कोई लीन होता है। जैसे तरङ्ग जलरूप है—भिन्न कुछ नहीं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है—भिन्न कुछ नहीं; इन्द्रियां, मन, बुद्धि सब वहीरूप हैं। हे मुनीश्वर! मैं चिदाकाश हूं और चिदाकाश में स्थित हूं। यह ब्रह्मशक्ति है जिसने जगत् रचा है; यह भी अजर और अमर है और न कदाचित् उपजा है और न नाश होगा। शुद्ध आत्मा किञ्चन द्वारा जगत् हो भासता है। जैसे सूर्य की किरणें जल हो भासती हैं; परन्तु जल कुछ हुआ नहीं तैसेही आत्माही है; विश्व कुछ हुआ नहीं। हे मुनीश्वर! जगत्जाल होकर आत्मा भासताहै पर जगत्के उदय अस्त होनेसे आत्मामें कुछ क्षोभ नहीं होता; वह ज्योंका त्यों स्वरूप स्थित है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और लीन होते हैं परन्तु समुद्र ज्योंका त्यों रहता है; तैसेही जगत् कुछ उपजा नहीं संकल्प से उपजेकी नाईं भासता

है। जैसे दृढ़ता से जल ओला होजाता है, तैसेही चिन्मात्र में चैतन्यता से पिण्डा-
कार भासता है परन्तु उपजा कुछ नहीं। हे मुनीश्वर ! यह जो शिला है जिसमें हमारी
सृष्टि है सो केवल चित्घनरूप है। तुम्हारी सृष्टि में यह शिला है और हम चैतन्य-
घन हैं चैतन्य आकाश आत्मा शिला होकर भासता है। जैसे स्वप्न में सृष्टि सब
जाग्रत् भासती है सो बोधरूप है—बोध ही जगत् सा भासता है; तैसे ही यह जगत्
और शिलारूप होकर बोध ही भासता है। हे मुनीश्वर ! जैसे स्वप्न में ग्रह का चक्र
फिरता दृष्ट आता है तैसेही सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, नदी, वरुण, कुबेर आदिक जगत्
जो भ्रम से दृष्ट आता है सो बना कुछ नहीं—चैतन्य का किञ्चनहीं ऐसे भासता है।
जैसे सूर्य की किरणों में किञ्चन जलाभास होता है तैसेही जहां आत्मसत्ता है वहां
जगत् भासताहै। सब पदार्थ आत्मसत्ता सेही भासते हैं, ब्रह्मसत्ता सब में अनुस्यूत
है इससे सब ओर से सृष्टि बसती है। जैसे एक शिला में हमारी सृष्टि में जो कुछ
पदार्थ भासते हैं और इनमें सृष्टि बसती है सो प्रच्छन्नदृष्टि से नहीं भासती पर जब
अन्तवाहक दृष्टि से देखिये तब सृष्टि भासती है। घटों में, गढ़ों में और पृथ्वी, जल.
अग्नि, पवन, आकाश आदि ठौरों में सृष्टि है और बना कुछ नहीं। जैसे जहां समुद्र
है तहां तरङ्गभी होतेहैं परन्तु समुद्रसे भिन्न कुछ तरङ्ग हुयेभी नहीं—वही रूप हैं; तैसेही
यह जगत् कुछ उपजता नहीं और न लीन होता है; ज्योंका त्यों आत्मसमुद्र अपने
आप में स्थित है; जगत् संकलपशक्ति से फुरताहै और संकलपशक्ति अहंरूपी किञ्चन
मात्र उदय हुई है। जैसे कमल से सुगन्ध लेकर तरियां निकलती हैं तैसेही मूल से
देवी जगत्रूपी सुगन्ध को लेकर उदय हुई है परन्तु वास्तव जगत् कुछ बना नहीं
केवल संकलपशक्ति से बनेकी नाईं भासताहै। हे मुनीश्वर ! वास्तवमें न कोई संकल्प
है और न प्रलय है; ज्योंका त्यों ब्रह्म अपने स्वभाव में स्थित है। जैसे आकाश में
आकाश और समुद्र में समुद्र स्थित है, तैसेही ब्रह्म में ब्रह्म स्थित है। हे मुनीश्वर !
यह जगत् न सत्य है और न असत्य है; आत्मामें न यह उदय हुआ और न अस्त
होवेगा। जैसे आकाश में नीलता न सत्य है, न असत्य है; तैसेही ब्रह्म में जगत् न
सत्य है और न असत्य है। मैं उस ब्रह्म का किञ्चन ब्रह्मा हूं और यह जगत् मेरे सं-
कल्पसे उत्पन्न हुआहै। अब मैं संकल्पको निर्वाण करताहूं; जब संकल्प निर्वाण होगा
तब जैसे कमलके नाश हुये सुगन्धका अभाव होजाताहै तैसेही जगत्का अभाव हो-
जावेगा। मेरेसे इच्छा फुरीथी, उसमें वासनाहै और वासनामें जगत्है। अब मैं इसको
निर्वाण करताहूं; जब इच्छा निर्वाण होगी तब जगत्काभी स्वाभाविक अभाव होजा-
वेगा। तुम्हारा शरीर संकलपसे भासताहै इससे तुम अपनी सृष्टिमें जाओ; ऐसा नहीं
कि, तुम्हारा शरीरभी यहां निर्वाण होजावे। हे रामजी ! इस प्रकार वह मुझसे कहकर

फिर देवी से बोला, हे देवि ! अब तू निर्वाण हो और अपने आपमें बोध आदिक को भी लीन कर ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिलान्तरवशिष्ठब्रह्मसंवादवर्णनन्नाम शताधिकसप्ताशीतितमस्सर्गः ॥ १८७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार ब्रह्मा ने कहकर पद्मासन बांधा और सब जनों के संयुक्त 'अकार', 'उकार', 'मकार' को छोड़कर अर्धमात्रा में स्थित हुआ तब उसकी मूर्ति ऐसी दृष्टि आनेलगी जैसे कागज़पर मूर्ति लिखी होतीहै और उसे सम्पूर्ण जगत्जाल का ज्ञान विस्मरण होगया और देवी भी उसी प्रकार पद्मासन बांधकर ब्रह्माजी के निश्चय में लीन होजाने लगी। जब ब्रह्माजी निर्वेदना ब्रह्म में लीन होनेलगे उस समय जितने उपद्रव थे सब उदय हुये मनुष्य पाप करनेलगे, स्त्रियां दुराचारिणी होगईं; सबजीवों ने धर्म का त्याग दिया; कामी पुरुष बहुत हुये जो परस्त्रियों के साथ संग करते थे और पुरुष स्त्रियां किसीकी शङ्का न करती थीं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष बढ़गये और शास्त्र की मर्यादा त्यागकर लोग अनीश्वरवादी हुये। वर्षा बन्द होगई और कुहिरा पड़ने लगा, कालपड़ा; दुष्टजन धनपात्र होनेलगे, धर्मात्मा आपदा भोगनेलगे, चोर चोरीकरनेलगे, राजा मद्यपान करनेलगे; जीवों को बड़े दुःख प्राप्त होनेलगे और तीनों तापों से जलने लगे और राजाओं ने न्याय को त्याग दिया। निदान जो पाप आचार थे सो उदय हुये और धर्म छिपगया; अज्ञानी राज्य करें; पण्डितज्ञानी टहल करें; दुर्जनों की मानपूजा हो, सत् पण्डितों का निरादर हो; जीवों के समूह इकट्ठे हुये और पृथ्वी ने अपनी सत्ता को त्याग दिया क्योंकि, पृथ्वी ब्रह्माके संकल्प में पड़ीथी, जब उसने अपना संकल्प खैंचा तब निर्जीव होगई और चैतन्यता निकल गई। जो स्थान भूतों के बिचरने के थे सो खाईं की नाईं होगये, भूतानाश होगये और पृथ्वी भी नाश होनेलगी; पर्वत कांपने लगे; और भूचाल और हाहाकार शब्द होने लगे जैसे शरत्कालमें बेल सूख जातीहै और जर्जरीभावको प्राप्त होतीहै, तैसेही पृथ्वी जर्जरीभावको प्राप्त हुई क्योंकि; चैतन्यता और शरीर सर्वजगत् का ब्रह्मा है, ज्यों ज्यों संकल्परूपी चैतन्यता क्षीण होती गई त्यों त्यों पृथ्वी जर्जरीभूत होती गई। जैसे किसी पुरुषका अर्धाङ्ग मरजाताहै तब वह अङ्ग शवसा होजाताहै और फुरना उसमें नहीं रहता तैसेही ब्रह्माकी संकल्परूप चैतन्यता पृथ्वी से निकलती जाती थी इस कारण पृथ्वी दुःखी हुई; धूलि उड़ने लगी और नगर नष्ट होनेलगे। इस प्रकार उपद्रव उदय हुये क्योंकि; पृथ्वी के नाश का समय निकट आया और समुद्र जो अपनी मर्यादामें स्थितथे उन्होंने भी अपनी मर्यादा त्याग दी। जैसे कामीपुरुष मद्यपान कियेसे अपनी मर्यादा को त्यागता है,

तैसेही समुद्र उछले, किनारे गिरगये और पर्वत कन्दरासे निकलकर पृथ्वीको नाश-करनेलगे। राजा और नगरवासी भागने लगे और उनके पीछे तीक्ष्ण वेग से जल चलनेलगा; बड़ेपर्वत गिरने लगे और चक्र की नाईं फिरनेलगे। समुद्र के तरङ्गों से पर्वत गिरते थे और उड़ते थे और तरङ्गें उछलकर पाताल को गईं और पाताल का नाश होनेलगा। बड़ेरत्नों के पर्वत जब गिरे, तब रत्नों का ऐसा चमत्कार हो जैसे तारा-मण्डलका होताहै। इसी प्रकार बड़ा क्षोभ होनेलगा और तरङ्ग उछलकर सूर्य चन्द्रमा के मण्डल को जाने लगे और उनका प्रकाश जातारहा। बड़वाग्नि उदय हुई तब वरुण, कुबेरआदि देवताओंके वाहन भयवान् हुये और जल के वेग से पर्वत नृत्य करनेलगे—मानों पर्वतों के पंख लगे हैं और स्वर्ग के कल्पतरु समुद्र में आन पड़े और चिन्तामणि, सिद्ध और गन्धर्व गिरने लगे। समुद्र इकट्ठे होगये। जैसे गङ्गा, यमुना और सरस्वती एकत्र होती हैं तैसेही समुद्र मिलकर शब्द करनेलगे और उनमें से ऐसे मच्छ निकले जिनके पूछों के लगने से पर्वत उड़ जावें कन्दरा में जो हाथी थे वे पुकार करने लगे और सूर्य, चन्द्रमा, तारागण क्षोभ को प्राप्त होकर समुद्र में गिरनेलगे। हे रामजी! इस प्रकार प्रलय के क्षोभ से जितने लोकपाल थे वे सब समुद्र के मुख में आनपड़े और मच्छ उनको भक्षण कर गये। तरङ्ग आपस में युद्ध करने लगे जैसे मतवाले हाथी शब्द करते हैं॥

इति श्रीयो०निर्वा०ऽन्यजगत्प्रलयवर्णनन्नामशताधिकाष्टाशीतितमस्सर्गः॥ १८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस विराट्रूप ब्रह्माने जिसका देह सम्पूर्ण जगत् था अपने प्राणको खैंचा तब छत्र चक्रके फेरनेवाला जो वायुहै सो अपनी मर्यादा त्याग कर क्षोभ करनेलगा और वे चक्र नाश होने लगे क्योंकि; ब्रह्मा के संकल्प में वे थे किसीको सामर्थ्य नहीं कि, उनको रक्खे। तेजमें जो देवता थे सो पवन के आधार थे, पवन के निकलने से वे निराधार होकर समुद्रमें गिरनेलगे और जैसे वृक्ष से फल गि-रतेहैं तैसेही गिरते भये। जैसे संकल्पके नाश हुये संकल्पका वृक्ष गिरताहै और जैसे पक्कफल समय पर वृक्ष से गिरता है, तैसेही सब गिरते भये। सुमेरु की कन्दरा गिरी और पवन का बड़ा क्षोभ और शब्द हुआ। जैसे अपनी शान्ति के निमित्त पवन में तृण फिरता है तैसेही आकाशमें पवन फिरनेलगा देवताओं के रहनेवाला जो सुमेरु पर्वत था सोभी गिरपड़ा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संकल्परूप जो ब्रह्मा था सो तो विराट् आत्मा है और सब जगत् उसकी देह है। भूमण्डल, पाताल और स्वर्ग-लोक उसके कौन अङ्ग हैं और संकल्परूप कैसे अङ्ग होते हैं? संकल्प तो आकाशरूप होतेहैं और जगत् प्रत्यक्ष पिण्डाकार दृष्ट आताहै? जो जिससे उपजता है सो वैसाही होताहै तो यह जगत् ब्रह्मा के अङ्ग कैसे हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस जगत् से

पूर्व केवल चिन्मात्र था और उसमें जगत् न सत्य था, न असत्य था; केवल आत्मत्वमात्र अपने आप में स्थित था। जैसे आकाश अपने आपमें स्थित है और एक और दो शब्द से रहित है। उस केवल चिन्मात्र का किञ्चन अहं होकर स्थित हुआ है; उस का दृश्यसे सम्बन्ध हुआ और उसके अनुभव ग्रहणसे जो निश्चय हुआ उसका नाम बुद्धि है और वह जब व्यतीत हुआ उसका नाम मन है; उस मन के फुरनेसे जगत् दृश्य हुआ है। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्यहै वही ब्रह्मारूप कहाता है; उसके फुरनेमें आगे जगत् खड़ा हुआहै और उस संकलपरूप जगत्का वह विराट् है परन्तु आकाशरूप है और कुछ नहीं बना। यह जो आकार सहित जगत् भासता है सो ब्रह्म से भासता है पर सब संकल्प आकाशरूप हैं। जैसे स्वप्ने में जगत् भासता है सो सब आकाशरूप होताहै परन्तु निद्रादोष से पिण्डाकार भासता है और आत्मसत्ता सदा केवल आकाश ज्योंका त्यों अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! अहं जो फुरा है सो मिथ्याहै अज्ञान से दृढ़ स्थित हुआहै और असम्यक्दर्शी को दृढ़ भासताहै सो केवल संकल्पमात्र है और कुछ नहीं बना। इससे जितना जगत् भासता है सो सब चिदाकाश है; एक और द्वैतकलना और सर्वशब्दों से रहित आत्मामात्र है; मैं और तुम शब्द कोई नहीं और यह जगत् उनका किञ्चनहै। जैसे सूर्यकी किरणों में जलाभास होता है तैसेही आत्मा का आभास जगत् है; संकल्प की दृढ़तासे दृश्य भासता है पर है नहीं। जैसे संकलपरूप गन्धर्बनगर और स्वप्नपुर होते हैं, तैसेही यह जगत् है। हे रामजी! जिस प्रकार मैंने जगत् वर्णन कियाहै उसे जो पुरुष मेरे कहेके अनुसार ज्यों का त्यों धारे तो उसकी वासना नष्ट होजावे और पूर्ववत् आत्मा ज्योंका त्यों भासे। तब जैसे जगत् के आदि आत्मत्वमात्र था तैसेही भासेगा क्योंकि; और कुछ हुआ नहीं केवल आत्मत्वमात्र ज्योंका त्यों स्थित है। जो आत्माही है तो समवायकारण और निमित्तकारण कैसे हो? जगत् का उदय और नाश होना असत्यहै और अद्वैत और अनन्त कहना भी कोई नहीं। जब सब शब्दोंका अभाव होताहै तब परम चिदाकाश अनुभवसत्ताही शेष रहती है इसीका नाम मोक्ष है। हे रामजी! हमको तो अबभी संवित्सत्ताही भासती है और मैं शुद्ध हूं; सर्वकल्पना से रहित हूं; और चिदाकाश हूं। मुझमें जो वशिष्ठ अहंफुरा है सो फुरा नहीं फुरे की नाईं भासताहै और आत्मा का ही किञ्चनहै; हुआ कुछ नहीं। इससे तुमभी इसी प्रकार जागकर निर्वासनिक हो रहो और अपने प्रकृत आचार को करो अथवा न करो, जो इच्छाहै सो करो परन्तु करने और न करने का संकल्प मत करो और परम मौनमें स्थित हो रहो। ज्ञानवान् को यही अनुभव होता है, इससे तुमभी ऐसेही धारो॥

इति श्रीयोग॰निर्वाणप्र॰निर्वाणवर्णनंनामशताधिकनवाशीतितमस्सर्गः॥ १८९॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! बन्धमोक्ष जगत् बुद्धि न सत् है और न असत् है; ... भी नहीं हुआ और अस्त भी नहीं होता केवल ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है; ऐसे आपने मुझको उपदेश किया है इसलिये मैंने जाना है कि, आत्मा में जगत् न ... हैं और न मिटता है पर तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को सुनता मैं तृप्त नहीं होता औ... अमृत की नाईं पानकरता हूं। जगत् सत् असत् से रहित सन्मात्र है उसको भी मैं जाना है अब यह कहिये कि, संसारभ्रम कैसे उपजता है और अनुभव कैसे होताहै. वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ तुमको स्थावर-जङ्गम जगत् सर्वप्रकार दे... काल संयुक्त दीखताहै उसके नाश का नाम महाप्रलयहै। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ... भी लीन होजाते हैं और उसके पीछे जो शेष रहता है वह स्वच्छ, अज, अनादि, के... ल आत्मतत्त्वमात्र है-उसमें वाणी की गम नहीं वह केवल अपने आपमें स्थित है और परमसूक्ष्म है जिसमें आकाश भी स्थूल है। जैसे सुमेरुपर्वत के निकट राई का दाना सूक्ष्महै तैसेही आकाश सेभी आत्मा सूक्ष्म है और संवेदन से रहित चिन्मात्र है उसमें अहं किञ्चन होकर फुराहै। आत्मा सदा निर्विकल्पहै, समुद्रवत् है, देश काल के भ्रम से रहित है और केवल चेतनघन अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्न में अपने भाव को लेकर जीव स्थित होता है तैसेही आत्मा अपने भावको लेकर चेतन किञ्चन होता है। उसीका नाम ब्रह्मा है और वहभी चिद्रूप है। हे रामजी! चिद्अणु जो अपने भाव को लेकर उदय हुआ है उसने चैत्यनाम दृश्य को देखा इससे उसका अनुभव मिथ्या हुआ। जैसे स्वप्न में कोई अपना मरण देखता है सो अनुभव मिथ्या है; तैसेही चिद्अणु दृष्टि से दृश्य को देखता है सो मिथ्यादृष्टि है। जब चिद्अणु अपने स्वरूप को देखताहै सो केवल निराकाररूपहै परन्तु अहं ऐसे बीज दृढ़ होताहै उससे अपने आप से निकल दृश्य को संकल्प से देखता है। जैसे बीज से अंकुर निकलता है तैसेही संकल्प के फुरने से देश, काल, द्रव्य, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य होता है, वास्तव में हुआ कुछ नहीं, आत्मा सदा अपने स्वभाव में स्थित है परन्तु संकल्प से हुयेकी नाईं भासता है। जहां चिद्अणु भासे वह देश है; जिस समय भासे वह काल है; जो भान हो वह क्रिया हुई; भान का ग्रहण द्रव्य है और देखने को जो वृत्ति दौड़ती है वह नेत्र होकर स्थित हुई है। जिसको देखते हैं वह भी शून्य है और देखनेवाले भी शून्यहैं; सब अस्त है-कुछ बना नहीं। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मा अपने आप में स्थित है। संकल्पद्वारा सब कुछ बनता जाता है। चिद्अणु जो भासित हुआ है वह दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। जब चिद्अणु में स्वरूप की वृत्ति फुरती है तब चक्षु इन्द्रियां होकर स्थित होती हैं, जब सुनने की वृत्ति फुरती है तब श्रोत्र होकर स्थित होते हैं, जब स्पर्श की वृत्ति फुरती है तब त्वचा इन्द्रिय होकर

स्थित होती है; जब सुगन्ध लेनेकी वृत्ति फुरती है तब नासिका इन्द्रिय होकर स्थित होती है और जब रस लेनेकी इच्छा होती है तब जिह्वा इन्द्रिय होकर स्वाद लेतीहै। हे रामजी! प्रथम यह चिद्अणु नाम से रहित फुरा है और सम्पूर्ण जगत् भी तद्रूप ही था और अब भी वही केवल आकाशरूप है। संकल्प से अपने में पिण्डधन देख-कर शरीर और इन्द्रियां देखीं। अनादि सत्स्वरूप चिद्अणु इन्द्रियों के संयोग से पदार्थों को ग्रहण करता है और स्पन्दरूप जो वृत्ति फुरी है उसीका नाम मन हुआ। जब निश्चयात्मक बुद्धि होकर स्थित हुई तब चिद्अणु में यह निश्चय हुआ कि, मैं द्रष्टाहूं—यही अहंकार हुआ। जब अहंकारसे चिद्अणुका संयोग हुआ तब अपनेमें देशकाल का परिच्छेद देखा, आगे दृश्य और पूर्व उत्तरकाल देखा कि, इस देश में बैठा हूं और यह मैंने कर्म किया है—यह विषम अहंकार हुआ। निदान देश, काल, क्रिया, द्रव्य के अर्थ को भिन्न २ ग्रहण करता है और आकाश होकर आकाश को ग्रहण करता है। हे रामजी! आदि फुरने से चिद्अणु में प्रथम अन्तवाहक शरीर हुआ, फिर संकल्प के दृढ़ अभ्यास से आधिभौतिक भासने लगा है। जैसे आकाश में और आकाश हो तैसेही यह आकाश हैं और अनहोते भ्रम से उदय हुये हैं और सत की नाईं भासते हैं। जैसे मरुस्थल में भ्रम से नदी भासती है तैसेही अविचार से संकल्प की दृढ़ता से पाञ्चभौतिक आकार भासते हैं। उन में अहंप्रत्यय होनेसे देखता है कि, यह मेरा शिर है; यह मेरे चरण हैं; यह अमुकदेश है इत्यादिक शब्द अर्थ और नाना प्रकार का जगत् और भाव अभाव ग्रहण करताहै और इस प्रकार कहता है कि; यह देश है; यह काल है; यह क्रिया है और यह पदार्थ है। हे रामजी, जब इस प्रकार जगत् के पदार्थों का ज्ञान होता है तब चित्त विषयों की ओर दौड़ता है और राग द्वेष को ग्रहण करता है। जो कुछ देहादिक भूत फुरनेसे भासते हैं सो केवल संकल्पमात्र हैं और संकल्प की दृढ़ता से दृढ़ हुये हैं। हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न हुये हैं और इसी प्रकार कीट उत्पन्न हुये हैं परन्तु प्रमाद अप्रमाद का भेद है। जो अप्रमादी हैं वे सदा आनन्दरूप स्वतन्त्र ईश्वर हैं, उनको यह जगत् और वह जगत् अपना आपरूप है और जो प्रमादी हैं वे तुच्छ हैं और सदा दुःखी हैं पर वास्तव में परमात्मतत्त्व से भिन्न कुछ हुआ नहीं। जैसे आ-काश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और सर्वका बीज; त्रिलोकीरूप बूंद का मेघ; कारण का कारण; काल में नीति और क्रिया से क्रिया वही है। आदि विराट् पुरुष का शरीर भी नहीं और हम तुम भी नहीं—केवल चिदाकाशरूप है। अब भी इनका शरीर आकाशरूप है और आत्मसत्ता भिन्न अ-वस्था को नहीं प्राप्त हुई—केवल आकाशरूप है। जैसे स्वप्ने में युद्ध होते और मेघ

गर्जते इत्यादि शब्द-अर्थ भासते हैं सो केवल आकाशरूप है बना कुछ नहीं निद्रादोष से भासते हैं और जब जागता है तब जानता है कि, हुआ कुछ न था आकाशरूपहै; तैसेही जो पुरुष अनादि अविद्या से जागाहै उसको जगत् आकाश रूप भासता है। हे रामजी! बहुत योजन पर्यन्त विराट् पुरुष का देह है तौभी आकाश के सूक्ष्मअणु में स्थित है। यह त्रिलोकी एक चिद्अणु में स्थित है। विराट्पुरुष इसका ऐसा है जिसका आदि, अन्त और मध्य नहीं भासता तौ भी चावल के समान भी नहीं है। हे रामचन्द्र! यह जगत् और जगत्के भाग विस्तीर्ण दृष्ट आते हैं पर जैसे स्वप्ने के पर्वत जाग्रत् के एक अणु के समान नहीं तैसेही विचाररूपी तराजू से तोलिये तो परमार्थसत्ता में इनकी कुछ सत्यता नहीं दृष्ट आती परन्तु आत्मसत्तासे कुछ भिन्न नहीं हुआ, आत्मसत्ताही इस प्रकार भासती है। इसी का नाम स्वायम्भुव मनु और विराट् है और इसी को जगत् कहते हैं। जगत् और विराट् में कुछ भेद नहीं-वास्तव में आकाशरूप है। सनातन भी इसी को कहते हैं और रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र, पवन, मेघ, पर्वत, जल जितने भूत हैं सो उसका वपु हैं। हे रामजी! इसका आदि वपु जो चिन्मात्ररूप है उसमें चैतन्यता से अपना अणु सा वपु देखता है-जैसे तेज का कण का होता है उस तेज अणु से चैतन्यता-और क्रम करके अपना बड़ा शरीर जगत्रूप देखता है। जैसे स्वप्ने में कोई पुरुष आपको पर्वत देखे, तैसेही वह आपको विराट्रूप देखता है। जैसे पवन के दोरूप हैं-चलता है तौभी पवन है और नहीं चलता तौभी पवन है-तैसेही जब चित्त फुरता है तब भी ब्रह्मसत्ता ज्यों का त्यों है और जब चित्त नहीं फुरता तब भी ज्यों का त्यों है परन्तु जब स्पन्द फुरता है तब विराट्रूप होकर स्थित होता है और जब चित्त अफुर होता है तब अद्वैतसत्ता भासती है और सदा अद्वैतही विराट्स्वरूप है। हे रामजी! इस दृष्टि से उसके शिर और पाद नहीं भासते। जितनी ब्रह्माण्ड की पृथ्वी है सो उसका मांस है; सब समुद्र उसका रुधिर है; नदी नाड़ी हैं; दशोदिशा वक्षस्स्थल हैं; तारागण रोमावली हैं; सुमेरु आदिक अँगुलियां हैं; सूर्यादिक तेज पित्त है; चन्द्रमा कफ है; पवन प्राणवायु है; सम्पूर्ण जगत्जाल उसका शरीर है और ब्रह्मा हृदय है सो आकाशरूप है पर संकल्प से नानारूप हो भासता है, स्वरूप से कुछ बना नहीं। आकाश आदिक जगत् सब चिदाकाशरूप है और अपने आपही में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविराडात्मवर्णनन्नाम शताधिकनवतितमस्सर्गः॥ १९० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आदि जो विराट्है सो ब्रह्महै उसका तो आदि-अन्त कुछ नहीं और यह जगत् उसका छोटा वपु है; उसी चैतन्यवपु का किञ्चन ब्रह्मारूप

हुआ है। उसके विस्तार का क्रम सुनो—उस ब्रह्मा ने, जिसका वपु संकल्पमात्र है, अपने संकल्प से एक अण्ड रचा और उसको तोड़ फोड़कर ऊर्ध्वभाग ऊपर किया और नीचेका भाग नीचे गया। पाताल ब्रह्माका चरण हुआ; ऊर्ध्व शिर हुआ; मध्य आकाश उदर हुआ; दशो दिशा वक्षस्स्थल; हाथ सुमेरु आदिक पर्वत; मांस पृथ्वी; समुद्र और सब नदियां उसकी नाड़ी; जल रुधिर; प्राण अपान वायु पवन; हिमालय पर्वत कफ; सर्वतेज पित्त; चन्द्रमा और सूर्य नेत्र; तारागण स्थूल लार और लार प्राणके बलसे निकलतीहै-जैसे ताराचक्रको पवन फेरताहै—ऊर्ध्वलोक उसकी शिखा; मनुष्य,पशु और पक्षीरोम;सबभूतोंकी चेष्टा उसका व्यवहारहै;पर्वत अस्थि ब्रह्मलोक उसका मुख है और सब जगत् उस विराट् का वपु है। रामजी बोले, हे भगवन्! यह जो आपने संकल्परूप ब्रह्मा और जगत् उसका वपु कहा उसे मैं मानता हूं परन्तु यह जगत् तो उसीका शरीर हुआ फिर ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा कैसे बैठताहै और अपने शरीर में भिन्न होकर कैसे स्थित होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है? जो तुम ध्यान लगाकर बैठो और अपनी मूर्ति अपने हृदय में रचकर स्थित हो तो बनजावे। जैसे मनुष्य को स्वप्न आता है और उसमें जगत् भासता है सो सब अपनास्वरूप है परन्तु अपनी मूर्ति धारकर और को देखता है; तैसेही ब्रह्मा का एक शरीर ब्रह्मलोक में भी होताहै। ब्रह्मा और जीव में इतना भेद है कि, जीव भी अपनी स्वप्नसृष्टि का विराट् है परन्तु उसको प्रमाद से नहीं भासती और ब्रह्मा सदा अप्रमादी है उसको सब जगत् अपना शरीर भासताहै। हे रामजी! देवता, सिद्ध, ऋषीश्वर और विद्याधर उस विराट्पुरुष की ग्रीवा में स्थित हैं; भूत, प्रेत, पिशाच सब उस विराट् पुरुष के मल से उपजे हैं और कीट की नाईं उदर में स्थितहैं और स्थावर जङ्गम जगत् सब संकल्प से रचा हुआ विराट् में स्थित है—सब उसीके अङ्ग हैं। जो जगत् है तो विराट् भी है और जगत् नहीं तो विराट् भी नहीं। जगत्, ब्रह्म और विराट् तीनों पर्याय हैं; इससे सम्पूर्ण जगत् विराट् का वपु है—निराकार क्या और आकार क्या—सब भीतर बाहर विराट् का वपु है। जैसे भीतर बाहर आकाश में भेद नहीं तैसेही विराट् आत्मा में भेद नहीं। जैसे पवन के चलने और ठहरने में भेद नहीं, तैसेही विराट् और आत्मा में भेद नहीं। जैसे चलना और ठहरना दोनों रूप पवन के हैं तैसेही साकार निराकार सब विराट् का शरीर है। हे रामजी! इस प्रकार जगत् हुआ है सो कुछ उपजा नहीं संकल्प से उपजे की नाईं भासता है। जैसे सूर्य की किरणों में जल है नहीं और हुये की नाईं भासता है; तैसेही ब्रह्मसत्ता में जगत् उपजे की नाईं भासताहै और उपजा कुछ नहीं—केवल अपने आपमें स्थित है। वह शिला जठर की नाईं स्थितहै अर्थात् तुम्हारा संकल्प विकल्प और चैतन्यरूप चैत्य

से रहित चिन्मात्रस्वरूपहै--इससे कलनाको त्यागकर अपने स्वभावमें स्थित हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविराट्शरीरवर्णनंनाम
शताधिकैकनवतितमस्सर्गः॥ १६१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम प्रलयका प्रसंग फिर सुनो। मैं ब्रह्मपुरीमें के पास बैठा था, जब मैंने नेत्र खोलकर देखा कि, मध्याह्न का समय है और सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हुआ है उसका बड़ा प्रकाशहै—मानो सम्पूर्ण तेज हुआहै वा वड़वाग्निकी नाईं प्रकाश हुआहै और बिजलीकी नाईं स्थित हुआ है—उसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ। ऐसे देखताथा कि, एक और सूर्य उदय हुआ; फिर उत्तर दिशाकी ओर और सूर्य उदय हुआ; इसी प्रकार दश सूर्य आकाश में प्रकट हुये और एक प्रथम था और द्वादशवड़वाग्नि समुद्र से उदय हुई उनसे एक सूर्य निकला सब द्वादश सूर्य इकट्ठे होकर विश्व को तपानेलगे। हे रामजी! प्रलय के तीननेत्र उदय हुये—एक नेत्र सूर्य, दूसरा नेत्र वड़वाग्नि और तीसरा नेत्र बिजली वे तीनों विश्व को जलाने लगे; दिशा सब रक्त होगईं; अट्टअट्ट शब्द होनेलगे; नगर, वन, कन्दरा, पृथ्वी जलनेलगीं; देवताओं के स्थान जलजलकर गिरनेलगे; पर्वत जलकर श्याम होगये; ज्वाला के कण निकलकर पाताल को गये वह भी जल गया; समुद्र जलकर सूखगये और हिमालय पर्वतके बरफ़ का जल होकर जलने लगा—जैसे दुर्जनोंके संगकर साधु का हृदय तप्त होताहै-जब इसी प्रकार बड़ी अग्नि प्रज्वलित हुई तब मुझको भी तपन आन लगी और मैं वहां से दौड़कर नीचे जाकर स्थित हुआ। वहां मैंने देखा कि, अस्ताचल पर्वत जलता हुआ उदयाचल पर्वत के पास आपड़ा; मन्दराचल और सुमेरुपर्वत जलकर गिरने लगे और अग्नि की ज्वाला ऊंचे उठकर भड़भड़ शब्द करनेलगी। हे रामजी! इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व जलनेलगा; बड़ा क्षोभ हुआ और जहां कुछ रस था सो सब फैल गया। हे रामजी! जिसको अज्ञानी रस कहते हैं सो सब विरस हैं परन्तु अपने २ काल में रससंयुक्त दृष्टि आते हैं। उस काल में मुझको सब ऐसे भासे जैसे जली हुई बेल होती है। हे रामजी! इस प्रकार मैंने सब विश्व जलता देखा परन्तु ज्ञान से जिसका अज्ञान नष्ट हुआ था सो सुखी दृष्टि आता था और सब अग्नि में जलते दृष्टि आते थे और बड़े भयानक शब्द होते थे। शिव का जो कैलासपर्वत है उसके निकट जब अग्नि आई तब सदाशिव ने अपने नेत्र से अग्नि प्रकट की जिससे बड़ा क्षोभ हुआ और ब्रह्माण्ड जलनेलगा। तब महापवन चला और बड़े पर्वत उड़नेलगे—जैसे तृण उड़ते हैं। जो स्थान जले थे उनकी अँधेरी होकर यक्षों के स्थान भी उड़नेलगे, निदान बड़ा क्षोभ उदय हुआ और इन्द्रादिक देवता अपने स्थान को त्यागकर ब्रह्मलोक में चलेगये; बड़े मेघ जो जल से पूर्ण थे

सूखकर जलनेलगे और कल्परूपी पुतली नृत्य करनेलगी। जले स्थानों से जो धूम्र निकलता था वह उसके केश थे और प्रलय शब्द उसका बोलना था। बड़ा पवन चलनेलगा, पर्वत जलकर उड़नेलगे और सुमेरु आदिक पर्वत तृणों की नाईं उड़ते थे। निदान जीवों को बड़ा कष्ट हुआ जो कहा नहीं जाता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगद्ब्रह्मप्रलयवर्णनंनाम शताधिकद्विनवतितमस्सर्गः॥ १६२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब अग्नि से सब स्थान जलगये उसके उपरान्त पुष्कल मेघ गर्जकर वर्षनेलगे और प्रथम मुसल की, फिर थम्भधारा, फिर नदी की नाईं और फिर महानद की नाईं वर्षनेलगे जिनकी गङ्गा यमुना नदी लहरें हैं और उनसे सब स्थान शीतल होगये—जैसे तीनों तापों से जला हुआ अज्ञानी सन्तों के संग से शीतल होता है। हे रामजी! फिर ऐसा जल चढ़ा जिससे सुमेरु आदिक पर्वत नृत्य करने लगे और जैसे समुद्र में झाग होते हैं तैसेही होगये अथवा ऐसे जानपड़ते थे जैसे जलचर होते हैं। हे रामजी! ऐसे जल चढ़े कि, कहा नहीं जाता; बड़े बड़े स्थान और देवता, सिद्ध, गन्धर्व बहे जाते थे। जिनको अज्ञानी परमार्थ जानकर सेवन करते हैं वे भी बहुत दृष्टि आये। जैसे कोई पुरुष कण्टक के अन्धे कूप में गिरके दुःख पावे तैसेही वे दृष्टि आवें पर मुझको सब ब्रह्म दृष्टिआवे पर जब संकल्प की ओर देखूं तब महाप्रलय दृष्टि आवे और मेघ गर्जते जटा होकर दृष्टि आवें। निदान ब्रह्मलोक पर्यन्त जलचढ़गया और मैं देखकर आश्चर्यको प्राप्तहुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजलमयवर्णनंनाम शताधिकत्रिनवतितमस्सर्गः॥ १६३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस ब्रह्मा का जगत् जलमय होगया और मुझे जल से भिन्न कुछ न भासे सब शून्यही भासे। ऊर्ध्व, अध और मध्य दिशा भी न भासें और न कोई तत्त्व, न कोई पर्वत; न कोई देवता; न पशु और न पक्षी भासें। तब मैंने ब्रह्मपुरी को देखा कि, इसकी क्या दशा है। फिर जैसे प्रातःकालका सूर्य अपनी प्रतिभा को फैलाता है; तैसेही मैंने ब्रह्मपुरी को दृष्टि फैलाके देखा तब ब्रह्माजी मुझ को परमसमाधि में दृष्टि आये और और जो जीवन्मुक्त ब्रह्मा के परिवार वाले थे वे भी सब पद्मासन बांध करके परमसमाधि लगाये बैठे थे और जैसे पत्थर पर मूर्ति हो तैसेही सब परमसमाधि में अचल स्थित थे और संवेदन फुरनेसे रहित थे। चारों वेद मूर्ति धरे और बृहस्पति, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम, चन्द्रमा, अग्नि, देवता इत्यादि ऋषीश्वर मुनीश्वर जीवन्मुक्त सबको मैंने ध्यान में स्थित देखा और द्वादश-सूर्य भी जो विश्व को तपाये थे सो पद्मासन बांधकर समाधि में स्थित हुये थे। एक

मुहूर्त पर्यन्त मैंने इसी प्रकार देखा जब एक मुहूर्त बीता तब सूर्य विना सब अन्त धान होगये । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपने विद्यमान होती है और जागे से अभ होजाती है; तैसेही मेरे देखते २ ब्रह्मपुरी शून्य बन की नाईं होगई । जैसे ... से मार्गप्रलय होजाते हैं तैसे प्रलय होगई । हे रामजी ! जैसे स्वप्नेमें मेघ गर्जते दृ... आते हैं—और यह दृष्टान्त तो बालक भी जानते हैं कि, प्रत्यक्ष अनुभव को छि... हैं वे मूर्ख हैं । मैं अनुभव से भी जानता हूं; स्मृति भी होती है और सुना भी है कि, जबतक निद्रा है तबतक स्वप्ने की सृष्टि भासती है और जागेसे उसका अभाव होता है—तैसेही जबतक ब्रह्मा की वासना थी तबतक सृष्टि थी, जब वासना क्षय हुई तब सृष्टि कहां रही । जब वासना नष्ट होती है तब अन्तवाहक आधिभौतिक शरीर नहीं रहते । हे रामजी ! जब शुद्धमात्र पद से चित्तशक्ति फुरती है तब पिण्डाकार हो भासती है और जबतक वह शरीर है तबतक संसार उपजता भी है और नष्ट भी होता है; तैसेही ब्रह्मा की सुषुप्ति में जगत् लीन होजाता है और जाग्रत् में उत्पन्न होताहै क्योंकि; ब्रह्मा के शरीर का सुषुप्ति में लीन होनाही प्रलय है । यदि कहिये कि, इस शरीर के नाश का नाम महाप्रलय हो तो ऐसे नहीं है क्योंकि; मृतक हुये शरीर का नाश होता है और फिर लोक भासता है । और जो कहिये कि, वह परलोक भ्रममात्र है तैसेही यहभी भ्रान्तिमात्र है और वह परलोक भ्रान्तिमात्र है इसी का नाम महाप्रलयहै तो ऐसे भी नहीं है क्योंकि; श्रुति, स्मृति और पुराण सब कहतेहैं कि; महाप्रलयमें कुछ नहीं रहता केवल आत्मसत्ताही रहती है । और जो कहिये कि, परलोक भ्रान्तिमात्रहै इसका नाम होना क्याहै तो श्रुति और शास्त्रका कहना व्यर्थ होता है और जो उनका कहना व्यर्थ हो तो इनके कहनेसे ब्रह्माकार वृत्ति किसीको उत्पन्न न हो। जो तुम कहो कि, जैसे अङ्गवाला अङ्ग को सकुचा लेता है तैसेही स्थूलभूत सकुचकर अपने सूक्ष्मकारणमें जा लीन होते हैं इसीका नाम महाप्रलय है, तो ऐसे भी नहीं क्योंकि; सूक्ष्मभूतके रहते महाप्रलय नहीं होता और जो तुम कहो कि, संवेदन जो अज्ञान है जिसमें अहं फुरता है उसका नाम महाप्रलय है तो यह भी नहीं क्योंकि; मूर्च्छा में इसको अज्ञान होता है परन्तु फिर सृष्टि भासती है और मृत्यु होती है सो बड़ी मूर्च्छा है पर उसमें भी फिर पाञ्चभौतिक शरीर भासता है और आगे जगत् भासता है इससे इसका नाम भी महाप्रलय नहीं । जो तुम कहो कि; जबतक यह पाञ्चभौतिक शरीर है तबतक जगत् है और इसका अभाव हो तब महाप्रलय है तो यह भी नहीं क्योंकि; जब शरीर को जीव त्यागता है और उसकी क्रिया नहीं होती तो पिशाच होता है । इस शरीर का जब नीरूप होता है और मनुष्य शव होजाता है तब क्षत्रिय ब्राह्मण की संज्ञा नहीं रहती. इससे तुम देखो कि;

बस देहका नामभी महाप्रलय नहीं और प्रमाद करके विपर्यय का नाम भी महाप्रलय नहीं। महाप्रलय उसको कहते हैं कि, जिसमें सबका अभाव होजावे और सबका अभाव तब होता है जब वासना क्षय होजाती है। इसलिये वासना के क्षय का नाम ज्ञानी निर्वाण कहते हैं। जैसे जबतक निद्रा हैं तबतक स्वप्ने का जगत् भासताहै और जब जाग्रत् में स्वप्नेके जगत् का अभाव होजाता है, तैसेही जबतक वासना है तबतक जगत् है, जब वासना का क्षय होता है तब जगत् का अभाव होता है। हे रामजी! वासना भी फुरती नहीं आभासमात्र है और तुम जो कहो कि, भासता क्यों है? तो जो कुछ भासता है सो वही अपने भाव में आप स्थित है। हे रामजी! भाव से उत्थान होनेका नाम बन्धन है और उत्थान के मिटने का नाम मोक्ष है। हे रामजी! नेत्र के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्न है पर मुक्त होनेमें कुछ यत्न नहीं। जो वृत्ति बहिर्मुख हुई तो बन्धन हुआ और वृत्ति अन्तर्मुख हुई तो मुक्त हुआ। इसमें क्या यत्न है? इसलिये सुषुप्त की नाईं निर्वासनिक स्थित होरहो। जब अहंसंवेदन फुरता है तब मिथ्या जगत् सत्ता हो भासता है। आगे जो इच्छा है सो करो पर जब अहं उत्थान से रहित होगे तब निर्वाणपद को प्राप्त होगे, जहां एक और दो कल्पना कोई नहीं उस परमशान्त निर्विकल्प पद को प्राप्त होगे॥

इति श्रीयो०नि०वासनाक्षयप्रतिपादनंनामशताधिकचतुर्नवतितमस्सर्गः॥ १९४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! निदान वे ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये—जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होजावे। जब ब्रह्माजी ब्रह्मपदमें निर्वाणहुये और द्वादश सूर्य फिर ब्रह्मपुरी को जलानेलगे और सम्पूर्ण ब्रह्मपुरी जलगई तब वे सूर्य भी ब्रह्मा की नाईं पद्मासन बांध स्थित हुये। जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होताहै तैसेही वे सूर्य भी निर्वाण होगये। हे रामजी! जब द्वादश सूर्य निर्वाण होगये तब समुद्र उछले और ब्रह्मपुरी को ढाँपलिया। जैसे रात्रि में अन्धकार नगर को ढाँप लेता है तैसेही ब्रह्मपुरी को उन्हों ने आच्छादित किया; बड़े तरङ्ग उछले और पुष्करमेघ भी तरङ्गों से छेदेगये और जलरूप होगये। हे रामजी! तब एक पुरुष आकाश से निकला मुझको दृष्ट आया, जो महाभयानक श्यामरूप उग्र आकाश था। उसने सबको ढाँपलिया और वह कृष्णमूर्ति मानों कल्पपर्यन्त रात इकट्ठी होकर उसका रूप आन स्थित हुआ है। और मुख से ज्वाला निकलती है। उसके शरीर का बड़ा प्रकाश था मानों कोटि सूर्य स्थित हैं और बिजली का प्रकाश इकट्ठा हुआहै। उसके पञ्चमुख थे, दश भुजा थीं और तीन नेत्र थे—मानों तीनों सूर्य चमत्कार करते हैं। हाथ में उसके त्रिशूल था और आकाश की नाईं उसकी मूर्ति थी। जैसे क्षीरसमुद्र के मथने को भुजा बड़ी करके विष्णुने शरीर धारा था और क्षीरसमुद्र को क्षोभाया था तैसेही नासिका के पवनसे वह समुद्रको क्षोभित करता

हुआ। जैसे आकाश का बड़ा वपु है तैसाही उसने स्वरूप धारण किया—मानों प्रलय-कालके समुद्र मूर्ति धरके स्थित हुयेहैं; अथवा मानों सर्व अहंकारकी समष्टिता अथवा महाप्रलय की वड़वाग्नि की मूर्ति स्थित वा प्रलयकाल के मेघ मूर्ति धरके स्थित हुये हैं। हे रामजी! मैंने जाना कि, यह महारुद्र है क्योंकि, इसके हाथ में त्रिशूल है, तीन नेत्र और पञ्चमुखहैं। ऐसे जानकर मैंने उसे प्रणाम किया। रामजीने पूछा, हे भगवन्। उसका भयानकरूप क्या था और रुद्र किसको कहते हैं? उसका बड़ा आकार, दश भुजा, पञ्च मुख और तीन नेत्र क्या थे और हाथमें त्रिशूल क्या था? क्या वह किसका भेजा आया था उसने क्या किया और कहां गया? वह अकेला था अथवा उसके साथ कोई और था और वह श्याममूर्ति क्यों था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विषमविष प्रच्छन्न जो अहंकार है सो त्यागने योग्य है और समष्टि अहंकार सेवने योग्य है। सर्व आत्मा प्रतीत का नाम समष्टि अहकार और उसीका नाम रुद्र है। कृष्णमूर्ति इस निमित्त थी कि, आकाशरूप है। जैसे आकाश में नीलता है तैसेही उसमें कृष्णता थी सर्वजीव जो अपने अहंकार को त्यागकर निर्वाण हुये उनकी समष्टिता होकर रुद्ररूप भासी इसीसे उग्र था। पञ्चमुख ज्ञान इन्द्रियों की समष्टिता थी और दश भुजा कर्म इन्द्रियों की समष्टिता थी राजस, तामस और सात्त्विक तीन गुण तीनों नेत्र थे अथवा भूत, भविष्यत्, वर्तमान्; वा ऋग्, यजुः और साम तीनों वेद नेत्र थे; अथवा मन, बुद्धि और चित्त तीनों नेत्र थे। ॐकार की तीनमात्रा उसके नेत्र और आकाशरूपी वपु था और त्रिलोकीरूपी हाथमें त्रिशूल थे। चित्संवित् से फुरा था इससे उसीका भेजा आया था और फिर उसीमें लीन होगा। वह केवल आकाशरूप था। जो कुछ उसने किया वह भी सुनो। हे रामजी! ऐसा वह रुद्र था मानों आकाश के पंख लगे हैं; उसने अपने नेत्र प्राणों को खींचा तो सर्व जल उसके मुख में प्रवेश करनेलगे। जैसे नदी समुद्र में प्रवेश करती है तैसेही सब जल रुद्रमें लीनहुये और जैसे वड़वाग्नि समुद्रको पान कर-लेती है, तैसेही उस रुद्र ने एक मुहूर्त में सब जल पान करलिया; कहीं जल का अंश भी दृष्टि न आवे। जैसे अन्धकार को सूर्य लीन करलेताहै तैसेही उसने जल पान कर-लिया और जैसे अज्ञानीका अज्ञान सन्त के संगसे नष्ट होजाता है तैसेही उसने जल को पानकर लिया। तब केवल शुद्ध आकाश होगया; न कहीं पृथ्वी दृष्टि आवे; न अग्नि; न वायु; कोई तत्त्व कहीं दृष्टि न आवे—एक आकाशही दृष्टि आवे। जैसे उज्ज्वल मोती होता है तैसेही उज्ज्वल आकाश दृष्टि आवे और चारों तत्त्व कहीं न भासें। एक तो अधोभाग दृष्टि आवे; दूसरे मध्यभाग आकाश सो रुद्र ही दृष्टि आवे; तीसरे ऊर्ध्वभाग दृष्टि आवे और चौथे चिदाकाश दृष्टि आवे कि, सर्वात्मा है और कुछ दृष्टि न आवे। हे रामजी! वह रुद्र भी आकाशरूप था और उसका कोई आकार न

था केवल भ्रान्तिसे आकार भासता था। जैसे भ्रमसे आकाशमें नीलता और तरुवरे भासते हैं और जैसे स्वप्नमें भ्रमसे आकार भासते हैं; तैसेही उस रुद्रका आकार दृष्टि आया पर आत्मा आकाश से भिन्न न था। जैसे चिदाकाश में भूताकाश भ्रम से भासता है, तैसेही रुद्र का शरीर भासा। वह रुद्र सर्वात्मा था और आकाश होकर भासा सो किञ्चन था। हे रामजी! आकाश में रुद्र निराधार भासा था। जैसे मेघ निराधार होते हैं तैसेही वह निराधार दृष्टि आता था। श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन्! इस ब्रह्माण्ड के ऊपर क्या है और फिर उसके ऊपर क्या है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जो ब्रह्माण्ड का आकाश है उसपर दशगुणा जल अवशेष है; जल के ऊपर दशगुण अग्नि है; उसके ऊपर दशगुण वायु है और उसके ऊपर दशगुण आकाश है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये तत्त्व जो तुमने वर्णन किये सो किसके ऊपर हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये तत्त्व पृथ्वी के ऊपर स्थित हैं। जैसे माता की गोद में बालक आन बैठता है तैसेही ये तत्त्व पृथ्वी पर हैं और पृथ्वीभाग के आश्रय है। रामजीने पूछा, हे भगवन्। पृथ्वी आदिक तत्त्व सहित निराधार ब्रह्माण्ड किसके आश्रय स्थित हुआ है; उनका चलना और ठहरना कैसे होता है और नाश कैसे होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हीं कहो कि, आकाश में मेघ किसके आश्रय होते हैं? सूर्य और चन्द्रमा किसके आश्रय होते हैं? जैसे ये संकल्प के आश्रय हैं तैसेही ब्रह्माण्ड भी संकल्प के आश्रय है और जैसे स्वप्न की सृष्टि संकल्पही के आश्रय है और संकल्प आत्मा के आश्रय है; तैसेही यह जगत् और तत्त्व भी आत्मसत्ताके आश्रय स्थित हैं और इनका ठहरना और गिरना भी आत्माके आश्रय है। जैसे आदि चित्त स्पन्द होकर नीति हुई है तैसेही है। इस प्रकार गिरना है; इस प्रकार ठहरना है; इस प्रकार इसका नाश होना है और इस प्रकार रहना है तैसेही परम स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं—केवल भ्रममात्र है जैसे सूर्य की किरणोंमें जलाभास होता है तैसेही आत्मामें जगत् भासता है और चित्त संवित् ही जगत् आकार हो भासती है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और जैसे तलवारमें श्यामता भासतीहै तैसेही आत्मा में जगत् है। जैसे नेत्रदोषसे आकाश में मोती भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और मिथ्या जगत् की संख्या कीजिये तो नहीं होती। जैसे सूर्य की किरणोंका आभास और रेतके कणके में संख्या नहीं होती; तैसेही जगत् की संख्या नहीं होती और वास्तव में कुछ बना नहीं—अजातजात हैं। जैसे स्वप्नमें अनहोती सृष्टि भासती है तैसेही यह जगत् भासता है, इससे दृश्यको मिथ्या जानकर जगत् की वासना त्यागो॥

इति श्रीयो०नि०जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनंनामशताधिकपञ्चनवतितमस्सर्गः॥१९५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! उस रुद्र का तो मैंने बड़ा भयानक रूप देखा था। उसके नेत्र बड़े तेजसे पूर्ण थे—चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि ये तीनों उसके नेत्र थे और वह महाभयानक था—मानों प्रलय के समुद्र मूर्ति धरके स्थित हुये हैं। रुण्डों की माला उसके कण्ठ में थी और उसकी परछाहीं बड़ी और श्यामरूपी निकलती थी; उसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, यहां सूर्य और अग्नि भी नहीं और किसी का प्रकाश भी नहीं तो यह परछाहीं किस प्रकार है और क्या है। ऐसे मैं देखताही था कि, वह परछाहीं नृत्य करनेलगी और उससे एक स्त्री निकली जिसका शरीर दुर्बल, बड़ा ऊंचा आकार और कृष्णवर्ण था—मानों अँधेरी रात्रि मूर्ति धरके स्थित हुई है। और उसके तीन नेत्र बड़ी भुजा और ऊंची ग्रीवा थी—मानों प्रलयकाल के मेघ मूर्ति धारके स्थित हुये हैं। उसके गले में रुद्राक्ष और रुण्डों की माला परी हुई थीं और विकराल स्वभाव हाथों में त्रिशूल, खड्ग, बाण, ध्वजा, ऊखल, मूशल आदिक आयुध लिये थी। ऐसा भयानक आकार देखकर मैंने विचार किया कि, यह काली भवानी है। उसको जानकर मैंने नमस्कार किया। जैसे अग्नि के जलेहुये पर्वतके शिखर श्याम होतेहैं तैसेही वह श्याम आकार थी और उसके मस्तकमें तीसरा नेत्र वड़वाग्नि की नाईं तेजवान् निकला था। कभी उसकी दो भुजा दृष्टि आवें; कभी सहस्रभुजा दृष्टि आवें; कभी अनन्त भुजा हों; कभी एक एक भुजा दीखे और कभी कोई भुजा न दृष्टि आवे; कभी शिर पाद कोई न रहे केवल एक बुतसी भासे और नृत्य करे। ज्यों ज्यों वह नृत्य करे त्यों त्यों शरीर स्थूल दृष्टि आवे—मानों आकाशको भी ढाँप लिया है और दशों दिशा आकाशसे पूर्ण किये हैं नख शिखकी भी मर्यादा कुछ न दृष्टि आवे ऐसा आकार बढ़ाया। जब वह भुजा को हिलावे तब मानों आकाशको मापती है। पाताल पर्यन्त उसके चरण; आकाश पर्यन्त शीश; पृथ्वी उसका उदर, सुमेरु आदिक पर्वत नाभिस्थान और दशों दिशा भुजा थीं—मानों प्रलयकाल की मूर्ति धारकर स्थित भई हैं। बड़े पर्वत की कन्दरावत् जिसकी नासिका थीं; लोकालोक पर्वत हाड़ थे और कण्ठ में नदियों की माला थी जो चलती थीं। वरुण, कुबेर आदिक देवतों के शिर की माला उसके कण्ठ में थीं; पवन नासिका के मार्ग से निकलता था उससे सुमेरु आदिक पर्वत तृणों की नाईं उड़े जाते थे। ब्रह्माण्ड की माला उसके गले में थी, हाथों में ब्रह्माण्डरूपी भूषण थे और कटि में ब्रह्माण्ड के घुंघुरू और करधनी थीं। जब वह नृत्य करे तब सब ब्रह्माण्ड नृत्य करें। जैसे पवन से पत्र नृत्य करते हैं तैसेही सुमेरु आदिक नृत्य करें और उसके एक एक रोम में ब्रह्माण्ड थे। जैसे तारागण वायु के आधीन हैं। उसके कानों में धर्म अधर्मरूपी मुद्रा थी और बड़े २ कान और बड़ा मुख था—मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को

भक्षण करती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों स्थान थे और उन स्थानों में चारों वेदों और शास्त्रोंके अर्थरूपी दूध निकलता था। निदान जगत् की सब मर्यादा मुझको उसमें दृष्टि आई। उसके नृत्य करने से कई ब्रह्माण्ड और अस्ताचल आदिक पर्वत तृणों की नाईं नृत्य करें और सब कुछ विपर्यय होता दृष्टि आवे। उसके शरीर में आकाश अध को दृष्टि आवे; पृथ्वी ऊर्ध्वको दृष्टि आवे और तारामण्डल, सिद्ध, देवता, विद्याधर, गन्धर्ब, किन्नर, दैत्य, स्थावर, जङ्गम सब उसमें दृष्टि आवें—मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का आदर्श है। भुजों के उछलनेसे चन्द्रमा की नाईं नखोंका प्रकाश हो और मन्दराचल, उदयाचल पर्वत कानों में भूषण दृष्टि आवें और हिमालय पर्वत बरफ़ के कण के समान दृष्टि आवे। हे रामजी! इस प्रकार उस देवी के शरीर में मुझको अनन्त सृष्टि दृष्टि आई। कहीं इकट्ठी और कहीं भिन्न २ कहीं एकहीसी चेष्टाकरे और कहीं भिन्न२ चेष्टाकरे। मानों ब्रह्माण्डरूपी रत्नोंका डब्बा है। हे रामजी! जब मैं संकल्प सहित देखूं तब मुझको सृष्टि दृष्टि आवे और जब आत्मा की ओर देखूं तब केवल आत्मरूपही भासे और कुछ दृष्टि न आवे। संकल्प दृष्टि से सम्पूर्ण जगत् नृत्य करते दृष्टि आवें पर ऐसी सामर्थ्य किसीकी दृष्टि न आवे कि, नृत्य न करे। जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सब उसही में दृष्टि आवें और सम्पूर्ण क्रिया उसही से होती दृष्टि आवें। उसही में सिद्ध, देवता, गन्धर्ब, अप्सरा विमानपर आरूढ़ फिरें और नक्षत्रों के चक्र फिरें—मानों ब्रह्माण्ड फिर उदय हुये हैं। जब मैं फिर आत्मदृष्टि से देखूं तब ब्रह्मस्वरूप भासे और संकलपदृष्टि से जगत् भासे। वह चित्तकला जो संकल्परूप है उसमें सबही दृष्टि आवे। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा आदि सब उसीमें दृष्टि आतेथे। जैसे मच्छर वायु से उड़ते हैं तैसेही अनन्त सृष्टि उसके शरीर में उड़ती दृष्टि आवें इससे मैं महाआश्चर्यवान् हुआ। वह भैरव था और यह भैरवी उसकी शक्ति थी; दोनों मुझको दृष्टि आये कि, बड़े वपुधारीहैं। यह नित्य शक्ति सर्वात्मा थी और परमात्मा की क्रिया शक्ति सब विश्व को अपने आपमें जानती थी। जैसे समुद्र सब तरङ्गों को अपने में अपना आप जानता है तैसेही सर्व ब्रह्माण्ड को वह अपने में अपना आप जानती थी। वह तो सदाशिव से भी बड़े अहंकार को धारे थी मानों सब ब्रह्माण्ड की माला कण्ठ में डाले है और यमादिक सब उसकी मर्यादा हैं। हे रामजी! इस प्रकार मैंने रुद्र और काली भवानी को देखा। रुद्र के शिर पर जो जटा थीं सो मोर की पंख की नाईं थीं और कालीको मैंने देखा कि, नाना प्रकार के मृग और दम दम से आदि लेकर शब्द करती थी और यह शब्द भी करती थी—"दिग्वंदिग्वं तुदिग्वं पंचमनावह संमंमप्रलये मियतुयत्रिपंत्रो त्रीलं त्रीषलषलुमं षनुषं सुमंष मपमभ्रिगुही गुंहीगुंही उगुमियगुंदलुमददारी मीदातंदती"। हे रामजी! इस

प्रकार के शब्द करती हुई वह श्मशानों में नृत्य करती थी। हे रामजी! ऐसी दे तुम्हारे सहाय हो जो सर्वशक्ति परमात्मा है और सब ब्रह्माण्ड उसके आश्रय है। ... में वह अंगुष्ठप्रमाण होजाती थी और क्षण में बड़े दीर्घ आकार धारण करती थी सब जगत् में जो क्रिया होती हैं सो उसके आश्रय होती हैं; कहीं उत्पत्ति होती और कहीं युद्ध होते हैं और नाना प्रकार की क्रिया उस देवी के आश्रय होती हैं जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही उस देवी में क्रिया होती हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदेवीरुद्रोपाख्यानवर्णनंनाम शताधिकषराणवतितमस्सर्गः॥ १९६॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो तुमने रुद्र और कालिका का वर्णन किया से कौन थे महाप्रलय में तो कुछ नहीं रहता? उसके शरीर में तुमने सृष्टि कैसे देखी और महाप्रलय होकर उसके शरीर में सृष्टि ने कैसे प्रवेश किया? उसके हाथ में शस्त्र ... थे; कहां से आई थी और कहां गई और उसका आकार क्या था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई रुद्र है; न काली है; न कोई पुरुष है; न कोई स्त्रीहै; न कोई नपुंसकहै, न पुरुष मिलकर कुछ हुआहै; न ब्रह्माण्डहै और न पिण्डहै; केवल चिदाकाश है और संकल्प से उपजे आकार भासते हैं। जैसे स्वप्नमें आकार भासतेहैं। तैसेही वे आक... भी भासतेहैं वास्तव में केवल चिदाकाश ज्योंका त्योंहै। हे रामजी! आत्मपद अनन्त; चैतन्य, सत्य, प्रकाशरूप, अविनाशी और अपने आप स्वभाव में स्थित है। रुद्रदेव का आकार जो भासाथा सो चेतन आत्माही ऐसे होकर भासित हुआ था—कोई और आकार न था। जैसे सुवर्णही भूषण होकर भासताहै तैसेही परमदेव चिदाकाश ऐसे होकर भासा था क्योंकि, चेतनस्वरूप है। जैसे मधुरता पौंड़े का स्वरूप है, तैसेही आत्मा का चेतन स्वरूप है। हे रामजी! चेतनसत्ता अपने स्वरूप को नहीं त्यागती, आकार होकर भासतीहै और सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे पौंड़े के रस में मधुरता न हो तो उसको कोई रस नहीं कहता, तैसेही आत्मसत्ता में चेतनता न हो तो चेतन कोई न कहे। जो आत्मा चेतनताको त्यागे तो परिणामी हो और चेतन न कहावे परन्तु वह तो सदा अपने आप स्वभाव में स्थित है और किसी और अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ, इसीसे कहा है कि; जो कुछ भासता है सो आत्मा का किञ्चन है। हे रामजी! जैसे पौंड़ेके रसमें मधुरता होतीहै तैसेही आत्मा में चेतनताहै। चेतन ... में चेतनता लक्षण चेतनतारूप रहता है इससे यह जगत् भावरूप लखाता है; ... शुद्धचिन्मात्र में चित्त का उत्थान न होता तो जगत्भाव न लखाता। ... दोनों अवस्थाओं में सदा ज्यों की त्यों है—जैसे वायु जब स्पन्द होता है तब उसक स्पर्शरूप लक्षण प्रतीत होता है और जब निस्पन्द होता है तब उसमें कोई ...

नहीं प्रवेश करसक्ता; पर वायु दोनों अवस्थाओं से तुल्य है; तैसेही शुद्ध चेतन में किसी शब्द का प्रवेश नहीं पर चेतनताभाव में है और आत्मसत्ता सदा तुल्य है—इससे वास्तव यह जगत्ही नहीं है। हे रामजी! आदि, मध्य, अन्त, जगत्, आकाश, कल्प, महाकल्प, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जन्म, मरण, सत्, असत्, प्रकाश, अन्धकार, पण्डित, मूर्ख, ज्ञानी, अज्ञानी, नामरूप, कर्मरूप, अवलोक, मनस्कार, विद्या, अविद्या, दुःख, सुख, बन्ध, मोक्ष, जड़, चेतन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आना, जाना, जगत्, अजगत् कुछ नहीं है। बढ़ना, घटना, मैं, तुम, वेद, शास्त्र, पुराण, मन्त्र, अकार, उकार, मकार, जय, नाम आदिक स्थावर—जङ्गम सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग, बुद्बुदे और आवृत सब जलरूप हैं, तैसेही सब ब्रह्मस्वरूप है ब्रह्म से भिन्न जगत् कुछ वस्तु नहीं। जैसे स्वप्न में पर्वत भासते हैं सो अनुभव से भिन्न नहीं होते तैसेही यह जगत् ब्रह्म से भिन्न नहीं। जैसे सूर्य की किरणों में जलरूप होकर भासता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्रूप होकर भासती है। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश आदिक जितने शब्द हैं वे सब ब्रह्मसत्ता ही से होकर स्थित हुये हैं परन्तु सत्ता अपने आप में ज्यों की त्यों है कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त हुई और वही सत्ता सर्वकी आत्माहै। जैसे समुद्र अपने तरङ्गभाव को त्यागे तो अपने सौम्यभाव में स्थित होता है, तैसेही ब्रह्मसत्ता फुरने को त्यागे तो अपने स्वभाव में स्थित हो सो अनामय है अर्थात् दुःखों से रहित, परमशान्तिरूप, अनन्त और निर्विकार है जब इस प्रकार बोध हो तब उस ब्रह्मसत्ता को प्राप्त हो और बोध, अबोध, विधि, निषेध भी वही है। जैसे जल और समुद्र की संज्ञा कही है और तरङ्ग शब्द कहने से विलक्षण भासता है पर जब जल तरङ्ग बुद्धि को त्यागे तब केवल समुद्ररूप है, तैसेही यह जीव जब अपने जीवत्वभाव को त्यागे तब आत्मरूपी समुद्रको प्राप्त हो अर्थात् जब दृश्य का सम्बन्ध त्यागकरे तब आत्मा हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअन्तरोपाख्यानवर्णनन्नाम शताधिकसप्तनवतितमस्सर्गः॥ १९७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमसे मैंने जो चिदाकाश कहाहै सो परमचिदाकाश है और सदा अपने आपमें स्थितहै। हे रामजी! शुद्धचिदाकाश जो मैंने तुमसे कहा है वही यह रुद्ररूप है और वही नृत्य करता था। वहां आकार कोई न था केवल चिद्घनसत्ता थी और वही ऐसे होकर किञ्चन होती थी। हे रामजी! जब मैं आत्मदृष्टि से देखता था तब मुझ को चिदाकाशरूप ही भासा था। हे रामजी! मेरे सा

हो वही तैसारूप देखे और नहीं देख सक्ता है । हे रामजी ! जिसका नाम कट
कहाता है वही रुद्र और भैरव है और वही कल्पान्त की मूर्ति नृत्य करके अन्त
होगई और वास्तव में मायामात्र रूप था । यह चेतनसत्ता के आश्रय नाचते थे
हे रामजी ! जैसे सोनेमें भूषणहै परन्तु सोने बिना नहीं होते तैसेही चेतनता
से जगत् भासता है और फिर वही प्रमाद से आधिभौतिक होजाता है, वास्तव
शुद्ध चिदाकाशरूपही है और चेतनता से वही जगत्रूप हो भासता है । रामजी
पूछा, हे भगवन्! प्रथम तो आपने कहा कि आत्मतत्त्व अद्वैत यह जगत्
नाशरूप कल्पित है और जो है तो कल्प के अन्त में नाश होजाताहै, केवल अद्वैत
सत्ता रहती है और फिर आपही कहतेहैं कि, चैत्यता से जगत्रूप भासता है ।
में चैत्यता कैसे हुईहै और कौन चेतनेवाला हुआ ? प्रलय के अनन्तर काली क्यों
भासी ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! न कोई चैत्य है और न कोई चेतता है
आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै जो चेतन घन, परमनिर्मल और शान्तरूपहै
शिवतत्त्वभी उसीको कहते हैं । वही शिवतत्त्व रुद्र आकार को धारण किये दृष्ट आय
था दूसरा कुछ नहीं—केवल परम चिदाकाश है। वही चिदाकाश आकार हो भ सत
है और कोई आकार नहीं हुआ; न भैरवहै, न भैरवी है, न काली है न यह जगत्
सब मायामात्र है । जैसे स्वप्न में आत्मसत्ता चैत्यता के कारण जगत्रूप हो
पर स्वरूप ते न कुछ चैत्यताहै और न जगत् है, आत्मसत्ता ही अपने आपमें
है; तैसेही उस जगत् को भी जानो । कुछ और नहीं हुआ अद्वैतसत्ताही है; इससे
और चेतनेवाला मैं तुमको क्या कहूं सब वृत्ति के बल भासते हैं आत्मा में यह
नहीं उपजे केवल स्वच्छ चिदाकाश है । हमको तो सदा वही स्वरूप भासता है पर अ
ज्ञानी को नाना प्रकार का जगत् भासता है और आत्मा सदा एक है—किञ्चन
उसमें आकार भासतेहैं । भैरव और काली सब निराकारहैं और भ्रान्ति करके आ
भासते हैं । जैसे मनोराज में युद्ध भासते हैं और जैसे कथा में अर्थ भासते हैं सो अन
होतेही संकल्प विलासतेहैं; तैसेही चिदात्मा में यह जगत् भासताहै । जैसे आकाश
तरुवरे भासते हैं; तैसेही यह आकार भासतेहैं । हे रामजी ! यह जो जगत् प्रलय
महाप्रलयादिक शब्द है उनका नाश करने के लिये मैं तुमको कहताहूं । आत्मा ए
अद्वैत चैतन्यहै, उस चेतनता का अभाव कभी नहीं होता अपने आपमें स्थितहै और
किञ्चन है । जैसे सूर्य की किरणें किञ्चनरूप होती हैं और उनमें जल भासताहै; तैसे
चैत्य का किञ्चन जगत् भासता है और वही महाप्रलय में रुद्र और भैरवी हो
है वास्तव में न कुछ रुद्र है और न काली है सर्व आत्माही है । हे रामजी ! जो
कहना सुनना होताहै तो वाच्य वाचक कहाताहै आत्मा में कहना और सुनना

नहीं। वही चिदाकाश संकल्प से रुद्र नृत्य करता था। जैसे सुवर्ण भूषण होकर भासताहै, तैसेही चिदाकाश संकल्पसे आकार होकर भासता है दूसरा कुछ नहीं बना। मैं, तुम और जगत्, चैत और अचैत सब वही रूप है; उसमें कोई शब्द नहीं फुरा। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के शब्द भासतेहैं सो कुछ वास्तव नहीं—पत्थर की नाईं मौन है—तैसेही जाग्रत् जगत में भी जितना शब्द होताहै सो सब स्वप्न है; कुछ हुआ नहीं केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, तैसेही आत्मसत्ता अपने आपभाव में स्थित है जहां न एक है; न द्वैत है; न सत्य है; न असत्य है; न चित्त है; न चेतहै; न मौनहै; न अमौन है और न कोई चेतनेवाला है; चेत के अभाववत् केवल अचेत चिन्मात्र आत्मसत्ता निर्विकल्परूप स्थित है। हे रामजी ! सबसे बड़ा शास्त्र का सिद्धान्त यही है; इस दृष्टि मौन में तुम स्थित हो। हे रामजी ! सर्वसिद्धान्तों की समता यही है कि, निर्विकल्प होना। जैसे पत्थर की शिला परम मौन होती है, तैसेही चैत से रहित हो जो कुछ प्रत्यक्ष आचार प्राप्त हो उसमें प्रवर्तना और सदा आत्मनिश्चय रखना इसी का नाम परममौन है। सब क्रिया होती रहें पर अपने से कुछ न देखना—जैसे नट स्वांग धरता है और उसके अनुसार बिचरता है परन्तु निश्चय उसका आदिही वपु में होता है, उससे चलायमान नहीं होता; तैसेही जो कुछ अनिश्चित प्राप्त हो उसको यथाशास्त्र करना परन्तु अपने निर्गुण निष्क्रियस्वरूप से चलायमान न होना उसी अद्वैत स्वरूप में स्थित रहना। रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! वह रुद्र क्या था और वह काली शक्ति क्या थी ? उनके अङ्ग जो बढ़ते घटते थे; नृत्य करना क्या था और वस्त्र क्या थे सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शिवतत्त्वही आकार होकर भासता है और कोई आकार नहीं जो चिन्मात्र; अमल, विद्या और अविद्या के कार्य से रहित; शान्त और अवाच्यपदहै। यह संज्ञा भी संकल्पमें तुमसे कही है; आत्मवेत्ता आत्मपद को अवाच्यपद कहते हैं तथापि मैं कुछ कहता हूं। हे रामजी ! केवल आत्मतत्त्वमात्र जो चिदाकाश है, वही शिव भैरव है; उसी के चमत्कार का नाम चित्तशक्ति है और उसीका नाम काली है उस काली आत्मा और शिवरूप में कुछ भेद नहीं। जैसे पवन और स्पन्दमें; और अग्नि और उष्णता में कुछ भेद नहीं होता तैसेही चित्तकला और आत्मा में कुछ भेद नहीं। जैसे पवन निस्पन्द होता है तब उसका लक्षण नहीं होता अवाचकरूप होताहै और जब स्पन्द होता है तब उसका लक्षण भी होताहै और उसमें शब्दप्रयोग होताहै; तैसेही चित्तशक्तिसे उसका लक्षण होता है। उसके अनेक नाम हैं; उसीका नाम स्पन्द और इच्छा है; उसीको चैत्योन्मुखत्व से वासना कहते हैं; उसी के स्वाद की इच्छा से जब चित्तसंवित् में वासना

फुरती है तव उसका नाम वासना करनेवाला वासक कहाता है-फिर आगे दृश्य होती है। जब त्रिपुटी हुई अर्थात् वासना, वासक और वास्य हुये तब वासक को जीव कहते हैं-जो जीवत्वभाव लेकर स्थित होती है। जब इसको यह भावना होती है कि, मैं जीव हूं और मेरा नाश कदाचित् न हो इस इच्छा से जीव कहाता है ऐसी संज्ञा जो चित्तशक्ति की होती है सो स्पन्द में होती है पर शिवतत्त्व अफुर है और अचेत शक्ति में फुरने की नाईं स्थित है। जैसे सूर्य की किरणों में जल नहीं होता और हुये की नाईं भासता है, तैसेही यह जगत् है नहीं और हुये की नाईं भासता है इससे उसमें यह संज्ञा देते हैं। काली जो परमात्मा की क्रियाशक्ति है सो प्रथम तो कारणरूप प्रकृति है और उसी से सब हैं-इसीसे प्रकृतिरूप है, विकृति नहीं; अर्थात् किसी का कार्य नहीं। महदादिक पञ्चभूत, महत्तत्त्व और अहंकार यह सप्त प्रकृति-विकृति हैं-अर्थात् कार्यभी हैं और कारणभी हैं। कार्यआदि देवी के हैं और कारण षोड़श हैं-पञ्चज्ञान इन्द्रियां, पञ्चकर्म इन्द्रियां, पञ्चप्राण और एक मन। इनके सप्तदश कारण हैं। षोड़श तो विकृत्तहैं अर्थात् कार्यरूप हैं, कारण किसी का नहीं, और पुरुष जो परमात्माहै वह अद्वैत, अचित्त और चिन्मात्रहै, न किसीका कारण है और न कार्य है अपने आपमें स्थित है इससे जितनी द्वैतकलना कारण कार्य में है वह सब चित्तशक्ति में स्थित है। जब यह निस्पन्द होती है तब तत्त्वरूप शिवपद में निर्वाण होजाती है और कारण कार्यरूपी भ्रम सब मिटजाता है केवल आकाशवत् शेष रहता है। वह शुद्ध, अद्वैत, अचेत, चिन्मात्र सदा अपने आपभाव में स्थित है और उस की स्पन्दरूप क्रियाशक्ति की इतनी संज्ञा है। प्रथम तो सबका कारणरूप प्रकृति है जो शोष है अर्थात् जैसे वड़वाग्नि समुद्र को सुखाती है तैसेही वह जगत् को सुखाती है; सिद्धि है अर्थात् सिद्ध उसे आश्रयभूत करके सेवते हैं; जयन्ती है अर्थात् उसकी जय है, चण्डिका है अर्थात् जिसके क्रोध से जगत् प्रलय होता है और भय पाता है; वीर्य है अर्थात् जिसका अनन्तवीर्यहै; दुर्गा है अर्थात् इसका रूप जानना कठिन है; गायत्री है अर्थात् जिसके पाठ से संसारसमुद्र से रक्षा होतीहै; सावित्री है अर्थात् जगत् की पालना करती है; कुमारी है अर्थात् कोमलस्वभाव है; गौरी है अर्थात् गौर अङ्गहै; शिवा है अर्थात् शिव के बायें अङ्ग में उसका निवास है; विजयाहै अर्थात् सब जगत् को जीतरही है; सुशक्ति है अर्थात् अद्वैतआत्मा में उसने विलास रचाहै और इन्द्र साराहै अर्थात् यह जो उकार इन्द्र आत्माहै उसका सार अर्धमात्रा है और उकार-अकार-मकार तीनों मात्रा अधिष्ठान है। हे रामजी! राजसी; तामसी और सात्त्विकी तीन प्रकार की जो क्रिया होती हैं सो इसीसे होतीहैं; यह सब संज्ञा क्रियाशक्ति की कही। अब उसका शस्त्र और बढ़ना घटना सुनो। हे रामजी!

वह नृत्य जो करती थी सोही क्रिया है; सो क्रिया सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीनप्रकार की है। गुसल जो था सो ग्राम, पुर और नगर थे और उसके अङ्ग सृष्टि थे। जब वह शिव से व्यतिरेक होती थी तब उसके अङ्ग सृष्टिरूप बहुत होजाते थे; जब शिव की ओर आती थी तब सृष्टिरूप अङ्ग थोड़े होजाते थे और जब शिव को आ मिलती थी तब शिवही होती थी—सृष्टिरूपी अङ्ग कोई न रहता था। यह तो आत्मा की कालीशक्ति की क्रिया का वर्णन तुमको सुनाया है अब शिव का वर्णन सुनो। वह तो वाणी से अतीत है तथापि मैं कुछ कहता हूं। वह परमशुद्ध, निर्मल और अच्युत है और उसमें कुछ हुआ नहीं केवल क्रियाशक्ति के फुरनेसे जगत् हो भासताहै। जब वह अपने अधिष्ठानकी ओर देखताहै तब अपना स्वरूप दृष्टि आताहै। क्रियाशक्ति और आत्मामें कुछ भेद नहीं—जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं क्योंकि; आकाश का अङ्ग शून्यता है—और अवयवी और अवयव में भी कुछ भेद नहीं जैसे अग्नि का रूप उष्णता है, तैसेही आत्मा का स्वभाव चित्तशक्ति है। इसका नाम काली इससे है कि कृष्णरूप है। जैसे आकाश ऊर्ध्वको श्याम भासताहै तैसेही आकाश वपुहै। और जैसे आकाश निराकारहै तैसेही काली निराकार श्यामा भासती है। आकाश की नाईं इसका वपु है इससे इसका नाम कृष्णवपु है और काली जगत् के नाश के अर्थ है। वह जब स्वरूप की ओर आती है तब जगत् का नाश करती है। हे रामजी! स्पन्दशक्ति जबतक शिव से व्यतिरेक है तबतक जगत् को रचती है—जहां यह है तहां जगत् है—जगत् से विलक्षण नहीं रहती। जैसे जहां सूर्य की किरणें हैं वहां जलाभास होताहै—किरण विना जलाभास नहीं रहता; तैसेही स्पन्दशक्ति जगत् विना नहीं रहती। जैसे आकाश के अङ्ग आकाश हैं तैसेही इसके अङ्ग जगत् हैं और जैसे समुद्र में तरङ्ग समुद्ररूप है; तैसेही जगत् इसका रूप है और यह शक्ति चिदाकाश है उससे व्यतिरेक नहीं। जब यह फुरतीहै तब जगत् आकार हो भासतीहै और जब शिवकी ओर आतीहै तब शिवरूप होजाती है। और जगत् का भाव कोई नहीं रहता। इससे, हे रामजी! तुम्हारी चित्तशक्ति जब तुम्हारी ओर आवे तब जगत्भ्रम मिटे। इस चित्तशक्तिनेही जगत्भ्रम रचा है। शिवपूजा निर्मल और शान्तरूप है और अजर, अमर, अचेत, चिन्मात्र है उसमें कुछ क्षोभ नहीं—आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमने काली के अङ्ग की जो सृष्टि देखी थी वह आत्मा में सत् है अथवा असत् है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह काली देवी आत्मा की क्रियाशक्ति है अर्थात् फुरनशक्ति है इससे आत्मा में सत्य है और वास्तव में आत्मा में कुछ नहीं मिथ्या है। जैसे तुम मनोराज से अपने में दूसरी चिन्तनाकरो तो वह कुछ

वस्तु नहीं पर उस काल में सत् भासती है; तैसेही जितनी सृष्टि है सो आत्मा में कोई सत्य नहीं परन्तु चित्तशक्ति से बसनी दृष्टि आती है । जैसे कुछ विधि-निषेध पदार्थ और आकाश, पर्वत, समुद्र, वन, जगत्, तीर्थ, कर्म, बन्ध, मोक्ष, गुरु, शास्त्र, युद्ध, शस्त्र आदिक जो भासते हैं वह सब चिदाकाश ब्रह्मरूप हैं और वास्तव में इनका होना ब्रह्म से भिन्न नहीं; सर्वप्रकार और सर्वदाकाल आत्मा अपने आप में स्थितहै जो शुद्ध, अद्वैत, निराकार, निर्विकार और ज्योंका त्यों है उसमें जगत् कोई नहीं उपजा । सब जगत् आत्मा में क्रियाशक्ति ने रचा है सो माया काल में सत्य है वास्तव में कुछ नहीं । जैसे सोनेवाले को स्वप्ने में सृष्टि भासती है और उसके शरीर को कोई हिलावे तो वह नहीं जागता पर जो कुछ सृष्टि होती तो हिलाने से उसका कोई स्थान गिरपड़ता इसीसे जानाजाताहै कि, किसीका नाश नहीं होता-वास्तव में कुछ नहीं । हे रामजी ! वह सृष्टि जो प्रत्यक्ष अर्थाकार होती है उसके चित्तस्पन्द में स्थित है परन्तु जबतक निद्रा है तबतक वह सृष्टि है और जब निद्रा निवृत्त होती है तब स्वप्नसृष्टि भी नहीं भासती तैसेही यह सृष्टि भी कुछ वास्तव में नहीं अज्ञान से चित्तशक्तिमें भासतीहै । हे रामजी ! सब पदार्थ चित्त के फुरने से भासते हैं । जिस का संकल्प शुद्ध होताहै उसके मनोराजकी सृष्टि यदि देशकालसे प्रत्यक्ष होतीहै तो संकलपरूप होतीहै क्योंकि, कुछ बना नहीं । जब संकल्प फुरताहै तब संकलपके अनुसार सृष्टि भासतीहै; इससे संकलपरूपही हुई और जो उसकी सत्यता हृदयमें होती है तब इसका अर्थ हृदय में अनुभव होताहै । जैसे परलोक अदृष्टिहै पर जब उसकी सत्यता हृदय में होती है तब उसका राग द्वेष भी हृदय से फुरता है क्योंकि; संकल्प में उसका भाव खड़ाहै; तैसेही जबतक चित्तस्पन्द फुरताहै तबतक जगत् सब खड़ाहै । और जब चित्त निस्पन्द होता है तब जगत् की सत्यता नहीं भासती । हे रामजी ! यह सब जगत् क्रियाशक्तिने आत्मामें रचाहै । जबतक यह काली क्रियाशक्ति शिवसे व्यतिरेक होतीहै तबतक नाना प्रकार के जगत् रचतीहै और क्षोभ को प्राप्त होती है और जब शिवकी ओर आतीहै तब शान्तरूप होजाती है; तब फिर प्रकृतिसंज्ञा उसकी नहीं रहती-अद्वैततत्त्व में अद्वैतरूपही होजाती है । जैसे जबतक पवन चलता है तब तक शीत, उष्ण, सुगन्ध, दुर्गन्ध, बड़ी और छोटी संज्ञा होतीहै और जब ठहरताहै तब कहा नहीं जाता कि; ऐसाहै अथवा वैसाहै; तैसेही जबतक चित्तशक्ति स्पन्दरूप होती है तबतक जगत् रचती है और प्रकृति कारणरूप कहाती है और उसमें दो प्रकार के शब्द होतेहैं-विद्या और अविद्या । हे रामजी ! जो कुछ कहना होता है सो स्पन्दरूप जो चित्र लिखाहै उसमेंहै और जब शिवतत्त्वमें अंकुर होताहै तब अद्वैतरूप होजातीहै-वहां किसी शब्दकी गम नहीं । हे रामजी ! शिव क्या है और शक्ति क्या है सो भी सुनो ?

ये सब जीव शिवरूपहैं और इनके चित्तका फुरना कालीहै। जबतक इच्छासे चितशक्ति बाहर फुरतीहै तबतक भ्रम का अन्त नहीं आता और नाना प्रकारके विकारों का अनुभव होता है कदाचित् शान्ति नहीं होती और जब चित्तशक्ति उलटकर अधिष्ठान को देखती है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है और परमशान्ति को प्राप्त होता है। हे रामजी! आत्मा और चित्तसंवित् में कुछ भेद नहीं। जैसे वायु के स्पन्द और निस्पन्दमें कुछ भेद नहीं होता परन्तु जब स्पन्द होतीहै तब जानीजातीहै और निस्पन्द नहीं जानीजाती; तैसेही चित्तसंवित् जब फुरता है तब जानाजाताहै और नहीं फुरता तब नहीं जानाजाता और जानना और न जानना दोनों नहीं रहते हैं। हे रामजी! जबतक इच्छाशक्ति शिव की ओर नहीं देखती तबतक नाना प्रकार का नृत्य करती है अर्थात् जगत्को रचतीहै और जब शिवकी ओर देखतीहै तब नृत्य विरस होजाता है और सब अङ्ग सूक्ष्म होजाते हैं। हे रामजी! इस कालीका आकार प्रमाणमें आता न था पर शिव की ओर देखनेसे सूक्ष्म होगया। प्रथम पर्वतसमान था; फिर निकट आई तब ग्रामके समान हुआ; फिर वृक्ष के समान रहा और जब निकट आई तब सूक्ष्म आकार होगया और शिव के साथ मिली तब शिवरूप होगई। शिव के सम्मिलन से इसका जो विलास है सो शून्य होजाता है और परमशान्त शिवपद की प्राप्ति होती है। श्रीरामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! यह जो परमेश्वरी कालीशक्तिहै सो उसको मिलकर शान्त कैसे हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवी परमात्मा की इच्छाशक्ति है और जगन्माता इसका नाम है। जबतक यह शिवतत्त्व से व्यतिरेक रहती है तबतक जगत् को रचती और जब अपने अधिष्ठानकी ओर आतीहै जो नित्य तृप्त, अनामय, निर्विकार, द्वैतभाव से रहित परमशान्ति को प्राप्त होती है। तब इसकी प्रकृतसंज्ञा जाती रहती है। जैसे नदी जबतक समुद्र को नहीं प्राप्त हुई तबतक दौड़ती और शब्द करती है पर जब समुद्र को मिली तब शब्द करना और दौड़ना नष्ट होजाता है और नदीसंज्ञाभी नहीं रहती—समुद्र को मिलकर परमगम्भीर समुद्ररूप होजातीहै; तैसेही जबतक चित्तशक्ति शिव से व्यतिरेक होतीहै तबतक जगत्भ्रम को रचतीहै और जब शिवतत्त्व को मिली तब शिवरूप होजाती है और द्वैतभ्रम मिटजाता है। हे रामजी! जब यह चित्तशक्ति शिवपद में लीन होजाती है तब प्रथम जो देह और इन्द्रियों से तद्रूप हुई थी; इन्द्रियों के इष्ट—अनिष्ट में आपको सुखी दुःखी मानती थी और राग द्वेष से जलतीथी सो नित्य तृप्त और अनामय पदके मिलने से सुख दुःख से रहित होती है क्योंकि; अनात्मदेह इन्द्रियों की तद्रूपता का अभाव होजाताहै और आत्मतत्त्व के साथ तद्रूप होती है। जैसे पत्थर की शिलाके साथ मिलकर खड्ग की धार तीक्ष्ण होती है तैसेही चित्तसंवित् जब आत्मपद में मिलती है तब एक अद्वैतरूप होजाती है।

और आत्मपद के स्पर्शकिये से अनात्मभाव का त्याग करती है। जैसे तांबा पारस के स्पर्श से सुवर्ण होजाता है और फिर तांबा नहीं होता तैसेही यह वृत्ति अनात्मभाव को नहीं प्राप्त होती। चित्तकला तबतक विषय की ओर धावती है जबतक अपने वास्तवस्वरूपको नहीं प्राप्त हुई; जब अपने वास्तव स्वरूप को प्राप्त होतीहै तब विषय की ओर नहीं धावती है। जैसे जिस पुरुष को अमृत प्राप्त होता है और उसके स्वाद का उसे अनुभव होता है तब वह नींब पान करनेकी इच्छा नहीं करता; तैसेही जिसको आत्मानन्द प्राप्त हुआ है वह विषयों के सुख की इच्छा नहीं करता। हे रामजी! यह संसारभ्रम चित्तसंवित्में दृढ़ सत्य होकर स्थित हुआहै और संसार के सुख का त्याग नहीं करसक्ता पर जब आत्मसुख प्राप्त होगा तब त्याग देगा। जैसे किसी पुरुष को जबतक पारस नहीं प्राप्त हुआ तबतक वह और धन को त्याग नहीं सक्ता पर जब पारस प्राप्त होताहै तब तुच्छधन का त्याग करताहै और फिर यत्न नहीं करता; तैसेही जब जीव को आत्मानन्द प्राप्त होता है तब विषय के सुख का त्याग करता है और पानेका यत्न नहीं करता। हे रामजी! भँवरा तबतक और स्थानों में भ्रमताहै जबतक कमल की पंक्तिपर नहीं पहुंचता पर जब उस पंक्तिपर पहुंचता है तब और स्थान को त्याग देता है; तैसेही चित्तशक्ति जब आत्मपद में लीन होती है तब किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करती। निर्विकल्पपद को प्राप्त होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपुरुषप्रकृतिविचारोनाम
शताधिकाष्टनवतितमस्सर्गः॥ १९८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अब पूर्वका प्रसंग फिर सुनो। जब काली नृत्य करके निर्वाण होगई तब शिव अकेला रहगया वही मुझको दृष्टि आवे और दो खण्ड आकाश के दृष्टि आवें—एक अधोभाग और दूसरा ऊर्ध्वभाग और कुछ दृष्टि न आवे। तब रुद्र ने नेत्रों को फैलाकर दोनों खण्ड देखे—जैसे सूर्य जगत् को देखता है—और प्राण कोभी खैंचा तब ऊर्ध्व और अध दोनों खण्ड इकट्ठे होगये और ब्रह्माण्ड को अन्तर्मुख करलिया—एक शिवही रहगया और कुछ दृष्टि न आवे। हे रामजी! जब एक क्षण व्यतीत हुआ तब रुद्र बड़े आकार को धारेहुये ब्रह्माण्ड कोभी लांघगया और एक वृक्ष के समान होगया। फिर अंगुष्ठमात्र शरीर होकर एकक्षणमें सूक्ष्मअणु सा होगया; फिर रेत के कणकेसे भी सूक्ष्म होगया और फिर नेत्रों से दृष्टि न आवे तब दिव्य दृष्टि से मैं देखतारहा और फिर वहभी नष्ट होगया केवल चिदाकाश ही शेषरहा और दूसरी वस्तु कुछ न भासे। जैसे वर्षाकाल के मेघ शरत्काल में नष्ट होजाते हैं तैसेही वह रुद्रभी नष्ट होगया। हे रामजी! उस काल में मुझको तीनों इकट्ठे दीखे—एकदेवी ब्रह्मा की शक्ति; दूसरी कालीशक्ति और तीसरी शिला। तब मैंने विचार किया कि, यह

स्वप्न नगरवत् आश्चर्य था और कुछ नहीं। तब मैंने क्या देखा कि; स्वर्ण की शिलाही पड़ीहै। यह श्रेष्ठशिला के कोष में स्थितथी। तब मैंने विचारकिया कि; यह सृष्टि शिला के एक कोषमें है और सृष्टि भी होगी क्योंकि; सर्व वस्तु सर्वप्रकार और सर्वठौर पूर्ण है; इसलिये उसमें भी मैं सृष्टि देखनेलगा और नाना प्रकार की सृष्टि देखीं। जब मैं बोधदृष्टि से देखूं तब सब ब्रह्मही भासे। संकल्पदृष्टि से आत्मरूपी आदर्श में अनन्त सृष्टि दृष्ट आवें और चर्मदृष्टि से शिलाही पड़ी दीखे। इस प्रकार मैं शिलाकोष में चला तो वहां मुझे घास, तृण, पत्थर, फल और फूलों में अनन्त सृष्टि दृष्टि आवें और निरसंकल्प आत्मदृष्टि से देखूं तब अद्वैत आत्माही भासे। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखीं; कहीं ऐसी सृष्टि भासे कि, ब्रह्मा उपजे हैं और रचना रचने को समर्थ हुये हैं; कहीं ब्रह्माने चन्द्रमा सूर्य उपजाये हैं और मर्यादा स्थापित की है; कहीं सम्पूर्ण पृथ्वी आदिक तत्त्व उपजाये हैं पर प्राण नहीं हुये; कहीं समुद्र नहीं उपजे; कहीं आचार सहित सृष्टि दृष्टि आवे; कहीं चन्द्रमा सूर्य नहीं उपजे और कहीं उपजे हैं; कहीं चन्द्रमा शिवसे नहीं निकले; कहीं क्षीरसमुद्र मथा नहीं गया और अमृत नहीं निकला और लक्ष्मी, हाथी, घोड़ा, धन्वतरि वैद्यभी नहीं निकले; कहीं विष और अमृत नहीं निकला—देवता मरतेहैं; कहीं क्षीरसमुद्र मथाहै उससे अमृत निकलाहै कहीं प्रकाश नहीं होता; कहीं सदा प्रकाशही रहता है; कहीं पृथ्वीपर पर्वतों के सिवा कुछ दृष्ट न आवे; कहीं इन्द्र के वज्र से पर्वत कटते हैं और उड़ते थे; कहीं प्राणियोंको जरा मृत्यु नहीं होता कल्पपर्यन्त ज्योंके त्यों रहते हैं; कहीं प्रलय होतीहै कहीं मेघ गर्जते हैं; कहीं सम्पूर्ण जलही दृष्ट आवे; कहीं आकाश दृष्ट आवे और प्राणी कोई न दीखे; कहीं देवताओंके युद्ध होतेथे; कहीं देवोंको दैत्य जीततेथे; कहीं दैत्योंको देवता जीतते थे; कहीं देवता और दैत्योंकी परस्पर प्रीति थी; कहीं बलि और इन्द्र; रुद्र और वृत्रासुरका युद्ध होताथा; कहीं मधुकैटभ दैत्य ब्रह्माकी कन्यासे उत्पन्न होतेथे, कहीं सदा प्रसन्नताही रहतीहै और तीनोंकालोंको जानते हैं; कहीं सदा शोकवान्ही रहते हैं; कहीं सतयुग का समय है और दान, पुण्य, तप होते थे; कहीं कलियुग का समय था और प्राणी पापमें बिचरते थे; कहीं अर्द्धयुग बीता था; कहीं रामजी और रावण का युद्ध होता था; कहीं रावण को रामजी ने मर्दन किया था, कहीं रामजी को रावण ने मर्दन किया था; कहीं सुमेरु पर्वत तलेहै और पृथ्वी ऊपर है; कहीं शेषनाग पर पृथ्वी है और भूचाल से भ्रमती है; कहीं प्रलयकाल का जल चढ़ा है और एक बालक वट के वृक्षपर बैठा अपने अंगुष्ठ को चूसता है सो विष्णु भगवान् हैं और कहीं ब्रह्मा के कल्प की रात्रि है और महाशून्य अन्धकार है; कहीं कौरव पाण्डव की सहायता कृष्ण करते हैं; कहीं महाभारत का युद्ध होता है और दोनों ओरसे अक्षौहिणी सेना

निकली है और श्रीकृष्णजी पाण्डवों की सहायता करते हैं; कहीं एकसृष्टि नाश होती
है और दूसरी उसी में उसीकीसी और उत्पन्न होती है और उसीकासा कर्म, उसी
कासा कुल, जाति और गोत्र होते हैं कहीं उससे अर्धभाग मिलता है; कहीं चतुर्थ
भाग उसीकासा मिलता है और कहीं विलक्षण भाग होता है। हे रामजी! इस प्र-
कार मैंने अनन्तसृष्टि देखीं जो आत्मआदर्श में प्रतिबिम्बित हैं। जब मैं आत्मदृष्टि
से देखूं तब सब चिदाकाश ही भासे और जब संकल्प दृष्टि से देखूं तब जगत् भासे।
कहीं ऐसी सृष्टि देखी जहां दशरथ के पुत्र राम हैं और रावण के मारने को समर्थ
हुये हैं; कहीं तुम्हारे रूप बड़े तपस्वी रहते हैं जिनके मन सदा प्रसन्न हैं। ऐसी अ-
नन्तसृष्टि देखीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं आगेभी ऐसाही हुआ हूं अथवा
किसी और प्रकार हुआ हूं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कई उसीकेसे;
कई अर्धलक्षणके और कई चतुर्थभाग लक्षणवाले होतेहैं। जैसे अन्नका बीज उसी
कासा होताहै और कोई उससे विशेषभी होता है; तैसेही ये सब पदार्थ होते हैं।
हे रामजी! तुम भी आगे होगे और मैंभी आगे हूंगा परन्तु आत्मा का विवर्त है।
जैसे समुद्र में एकसे तरङ्गभी होतेहैं और विलक्षणभी दृष्ट आतेहैं परन्तु वही रूप
हैं; तैसेही हमारे सदृशभी फिर होंगे परन्तु आत्मत्व भिन्न कुछ नहीं—संकल्प से भिन्न
की नाईं विलक्षणरूप भासतेहैं जैसे समुद्र में वायुसे तरङ्ग भासतेहैं; तैसेही आत्मा
संकल्प से जगतरूप हो भासता है। यद्यपि नाना प्रकार हो भासता है तौभी दूसरा
कुछ हुआ नहीं। यह जगत् चैतन्य का विलास है और चित्त के फुरने में अनन्त-
सृष्टि भासती हैं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि बड़े आरम्भ से भासती है परन्तु स्वरूपसे कुछ
भिन्न नहीं; तैसेही यह जगत् आरम्भ परिणाम से कुछ बना नहीं आत्मसत्ता सदा
अपने आपमें स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअनन्तजगद्वर्णन
नामशताधिकनवनवतितमस्सर्गः॥ १९९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार मैंने सृष्टि देखी और फिर दृश्यभ्रम को
त्याग कर अपने वास्तवस्वरूप में स्थित हुआ। मैं अनन्त, नित्य, शुद्ध, बोध, चिदा-
काश और सर्वदा अपने आप में स्थित हूं। हे रामजी! चिन्मात्र आत्मा किसीस्थान
में संवेदन आभास फुरा है—जैसे अनाज के कोठे से एक मूठीभर निकालिये और
क्षेत्र में डालिये तो उसी से किसी ठौरमें अंकुर निकले; तैसेही चैतन्यमें संवेदन फुर
है और उस संवेदनसे जगत् उपजाहै। जैसे जलके दिये से अंकुर निकलआता है
तैसेही मेरेमें सृष्टि का अनुभव होनेलगा और मैंने जाना कि, सृष्टि मुझसे फुरी है
रामजी बोले, हे भगवन्! तुम जो आकाशरूप अपने आपमें स्थितथे उसमें सृष्टि तु

को कैसे फुरी? दृढ़बोध के निमित्त मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वास्तव तो कुछ उपजा नहीं परन्तु जैसे हुई है तैसे सुनो। मुझ अनुभव आकाश और अनन्त के किसी स्थान में संवेदन चित्त 'अहं' फुरा अर्थात् 'मैंहूं'; उस अहंभावके होनेसे मैं आपको सूक्ष्म तेज अणुसा जाननेलगा और उस अणु में अहंकार फुरा जिसको तुम ऐसे अहंकार कहतेहो उस अहंकारकी दृढ़तासे निश्चयात्मक बुद्धि फुरी; उस बुद्धिसे संकल्प विकल्परूप मन फुरा और उस मनने प्रपञ्च रचा। उस मनमें देखनेका स्पन्द फुरा तब चक्षुइन्द्रियां हुईं और जिसको देखनेलगा वह रूप दृश्य हुआ। फिर सुनने की इच्छा फुरी तब श्रवण इन्द्रिय हुई और वह शब्दही सुनने लगी। फिर रसलेने की इच्छा हुई तब जिह्वा इन्द्रिय हुई और वह रसको ग्रहण करनेलगी। जब सुगन्ध लेनेकी इच्छा की तब नासिका इन्द्रिय हुई और सुगन्ध ग्रहण करनेलगी और फिर स्पर्श करनेकी इच्छासे त्वचाइन्द्रिय प्रकट होकर स्पर्श ग्रहण करने लगी। इस प्रकार मुझको ज्ञानइन्द्रिय आन फुरीं और उनमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उदय हुई तब मैंने अपने साथ स्थूल वपु देखा। जैसे कोई स्वप्ना देखताहै और उसमें अपना शरीर देखताहै तैसेही मैं देखता हुआ। हे रामजी! जिसको मैं देखने लगा वह दृश्य हुआ और जिससे मैं देखता था वे इन्द्रियां हुईं। जब दृश्य फुरना हुआ वह काल हुआ; जहां हुआ वह देश हुआ और ज्योंकर हुआ वह क्रिया हुई। इस प्रकार सब देशकाल पदार्थ हुये हैं सो मैंने तुमसे कहे। हे रामजी! वास्तव में न कोई देह है; न इन्द्रियां हैं और न सृष्टि है पर चित्तकला में हुयेकी नाईं दृष्ट आते हैं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि भासतीहै। जब वह सृष्टि मुझको फुरी तब पूर्वस्वरूप मुझे विस्मरण हुआ। जैसे सुषुप्तिमें अपना स्वरूप विस्मरणकी नाईं होताहै; तैसेही मुझको विस्मरण हुये की नाईं भासा। तब जैसे स्वप्ने में जाग्रत्स्वरूपका विस्मरण होता है और जाग्रत् में स्वप्ने के स्वरूप का विस्मरण होता है, तैसेही पूर्व का स्वरूप मुझको विस्मरण हुआ। जब शरीर और इन्द्रियां मुझको अपने साथ भासीं तो उनमें मैंने अहंप्रत्यय करके ॐकार शब्द उच्चार किया। जैसे बालक माता के गर्भ से उत्पन्न होकर शब्द करता है, तैसेही मैंने ॐ शब्द का उच्चार किया। जैसे कोई पुरुष स्वप्नेमें उड़ता और शब्द करताहै तैसेही मैंने ॐकारका उच्चार किया जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित परमब्रह्म है और सर्वब्रह्माण्डरूपी तरङ्गका आधार समुद्र है। हे रामजी! जब मैं आधिभौतिक दृष्टिसे देखूं तब मुझको शिलाही भासे और जब अन्तवाहक दृष्टि से देखूं तब अनन्तब्रह्माण्ड दृष्ट आवे और नाना प्रकारकी क्रिया और मर्यादा सहित भासे पर जब आत्मदृष्टिसे देखूं तब अद्वैत अपना आपही भासे। हे रामजी! जैसे सूर्य की किरणों में मरुस्थल की नदी भासती है तैसेही मुझको सृष्टि भासे।

जैसे मरुस्थल की नदी मिथ्याहै, तैसेही ग्रहण करनेवाली वृत्ति मिथ्याहै। जैसे संवेदन में मनन फुरता है सोभी मिथ्या है क्योंकि, नदी मिथ्या है तो मनन उसका सत् कैसे हो; तैसेही यहभी जीव का रूप–अवलोक मिथ्या है और भ्रान्ति करके सत्य भासता है । जैसे स्वप्नसृष्टि, संकल्पपुर और मनोराज का नगर मिथ्या है और कथा का वृत्तान्त अनहोताही भ्रान्ति से प्रत्यक्ष भासता है; तैसेही यह जगत् भ्रान्ति से सत्य भासताहै–वास्तवमें कुछ नहीं पर संकल्पविलासमें बना दृष्ट आताहै। हे रामजी! जिस प्रकार मुझको सृष्टि भासी है सो सुनो । जब मेरे में पृथ्वी की धारणा हुई तब पृथ्वी मुझको शरीर होकर भासनेलगी क्योंकि; मैं विराट् आत्मा था। उस पृथ्वीपर वन, पर्वत, नदी, समुद्र, वृक्ष, फल, फूल, मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, ऋषीश्वर, दैत्य और नाग आदिक जो स्थित हैं सो पृथ्वी मेरा शरीर हुआ; पर्वत मेरे मुख हुये; सुमेरु आदि पर्वत मेरी भुजा हुईं; सप्तसमुद्र इन्द्रिय हुईं; सर्वनदी मेरे कण्ठमें माला और वन मेरी रोमावली हुई; मरुस्थल की नदी मेरे ऊपर विस्तार हुये और देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और दैत्य इत्यादि मेरे में कीट भासे–शरीर में जुआं लीख आदिक हैं । किसी ठौर मेरे ऊपर हल चलातेहैं और बीज बोतेहैं जिससे खेती उगती है और प्राणी खाते हैं; कहीं खोदते हैं; कहीं पूजा करते हैं; कहीं समुद्र स्थित हैं; कहीं नदी चलती हैं; कहीं राजा राज्य करते हैं और कहीं मेरे ऊपर झगड़ मरते हैं एक कहता है पृथ्वी मेरी है और दूसरा कहता है मेरी है; इस प्रकार ममता करके युद्ध करते हैं। कहीं हाथी चेष्टा करते हैं; कई रुदन करते हैं; कई हास्य करते; कहीं वृत्ति फैलाते हैं; कहीं सुगन्धहै; कहीं दुर्गन्धहै; कहीं नदियां चलती और क्षोभ करती हैं; कहीं देवता और दैत्य मेरे ऊपर युद्ध करते हैं; कहीं शीतलतासे जल मेरे ऊपर बरफ़ होजाताहै । इस प्रकार इष्ट–अनिष्ट स्थान मैंने अपने ऊपर देखे और राजसी, तामसी और सात्त्विकी जितनी जीवों की क्रिया होती हैं उन सबका आधार मैं हुआ पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं की संज्ञा संवेदन फुरनेसे हुई है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानेपृथ्वीधातुवर्णनं नामद्विशततमस्सर्गः ॥ २०० ॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! तुमको जो धारणा से पृथ्वी का अनुभव हुआ और उसमें जगत् उत्पन्न हुआ वह संकल्परूप था वा मनसे उपजा था अथवा आधिभौतिक था? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सब जगत् संकल्परूप है और आधिभौतिककी नाईं भासता है परन्तु केवल चिदाकाश अपने आपमें स्थित है। वह चिदाकाश मैं हूं, न कदाचित् उपजा हूं और न नाश होऊंगा; सर्वदा अद्वैत, अचैत्य, चिन्मात्ररूप हूं। उसके संकल्प का नाम मन है; आभास का नाम संकल्प है और उसीका नाम ब्रह्मा

और इच्छाहै; उसी में जगत् स्थितहै सो आकाशरूपहै—कुछ बना नहीं। हे रामजी! जिसको सत्य और असत्य कहते हो वह शुभ-अशुभरूप जगत् मन में स्थित है और सर्वआकार निराकाररूपहैं; भ्रान्तिसे पिण्डाकार भासतेहैं। जैसे स्वप्ने में शुभ-अशुभ पदार्थ भासते हैं सो निराकार हैं पर भ्रान्ति से पिण्डाकार भासते हैं; तैसेही वे जगत् भी निराकार हैं पर भ्रमसे पिण्डाकार भासते हैं और विचार कियेसे शून्य होजातेहैं। जैसे मनोराजसे आकार रचितहै, तैसेही हमारे आकार जानो-स्वरूपसे कुछ उपजे नहीं। जैसे मृत्तिका में बालक नाना प्रकारकी सेना रचतेहैं और उस मृत्तिका का उनको भिन्न २ भाव निश्चय होता है; तैसेही अद्वैत आत्मा में मनरूपी बालक ने जगत् कल्पा है, वास्तव में कुछ नहीं—आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे मृगतृष्णा का जलही नहीं तो उसमें डूबा किसे कहिये; तैसेही मन आप आभासरूप है तो उसका रचा जगत् कैसे सत् हो? हे रामजी! सब चिदाकाशरूप है—दूसरा कुछ बना नहीं। आत्मरूप आकाशमें मनरूपी नीलताहै सो अविचार सिद्धहै और विचार किये से नीलता कुछ वस्तु नहीं। जैसे दीपकके विद्यमान अन्धकार नहीं रहता, तैसेही विचार किये से मन और मन की रचना जगत् नहीं रहती। मन का निर्वाण करनाही परमशान्ति है और कोई उपाय नहीं। हे रामजी! जितने क्षोभ हैं उनका कर्ता मन है और सम्पूर्ण शब्द अर्थ कलपना मन से उठती है—मनके निर्वाणहुये कोई नहीं रहती। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आप अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुये सो कुछ और रूप भी हुये अथवा न हुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मरूपी जो जाग्रत् है उसमें मैं अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ। मैं चैतन्य था और जड़की नाईं स्थित हुआ—वास्तव में मैं जगत् न था केवल चिदाकाश था जिसमें न कुछ नाना है; न अनाना है; न अस्ति है; न नास्ति है और जिसमें अहं-त्वं-इदं का अभाव है। वह केवल परम आकाश है जो आकाश से भी निर्मल चिदाकाश है और जो है सो सर्व शब्द ब्रह्म है। जगत् के होतेभी वह अरूपहै क्योंकि; कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना—केवल आत्मा का चमत्कार है। हे रामजी! जहां जहां पदार्थसत्ता है वहां वहां जगत् वस्तु है। सर्वदाकाल, सर्व प्रकार, सर्व पदार्थों का स्पन्दब्रह्म है; जहां ब्रह्मसत्ता है वहां जगत् है। इस प्रकार मैंने अनन्त ब्रह्माण्ड को देखा। जब मैं अनन्तब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ तो जब जल की धारणा की तब जलरूप होकर फैला और वृक्ष, घास, फूल, फल, गुच्छे, डाल, तमाल और पत्रों में रस होकर स्थित हुआ; थम्भे में मैंहीं बल हुआ और समुद्र हुआ; नदियों के प्रवाह होकर मैंहीं बहने लगा और उनमें गड़ गड़ शब्द करनेलगा और तरङ्ग बुद्बुद फेन को फैलाकर विलास किया; उसके कण के होकर मैंहीं स्थित हुआ; आकाश में मेघ होकर वर्षता

और प्राणियों को तृप्त करनेलगा । उनमें रुधिर आदि रस होकर मैंहीं स्थित
और उनकी नाड़ियों में मथन करके आपही प्रवेश किया । जैसी जैसी नाड़ी
तैसा तैसा रस होकर मैं स्थित हुआ । रस, बीज, कफ, पित्त, मूत्र आदिक सब
में मैंहीं स्थित हुआ । सर्व प्राणियों की जिह्वाके अग्रभाग में रस होकर मैं स्थित
और अपने आपका आपसे स्वादुको ग्रहण करने लगा और हिमालयमें बरफ़
स्थित हुआ । हे रामजी ! मैं चैतन्य होके जड़ की नाईं स्थित हुआ; बीज होकर
हीं उत्पन्न किया और प्रलय के मेघ होकर मैंहीं ने नाश किया । इस प्रकार जल
स्थावर, जङ्गम सर्व जगत्में स्थित हुआ और सदा अपने आपमें स्थित होकर
स्वरूप को न त्यागा । जैसे स्वप्ने में जगत् अनुभवरूप है और अनहोता भासता
तैसेही मैं जलरूप होकर जगत् को धारता भया । हे रामजी ! नाना प्रकार के
में मैं स्थित हुआ; फूलों की शय्या पर चिरकाल पर्यन्त विश्राम करता रहा;
होकर फूलों में स्थित हुआ और मेघ होकर आकाश में बिचरा और ऐसी वर्षा की
पर्वतों पर वेग से प्रवाह चलने लगा और मैं कणके कणके होके समुद्र और नदी
बिचरा । यह प्रतिभास चिदूअणु में मुझको हुई ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानेजलरूपवर्णनन्नाम द्विशताधिकप्रथमस्सर्गः ॥ २०१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जल के अनन्तर मैंनें तेज की भावना की अर्थात्
धारा, तब मुझमें इतने अङ्ग उदय हुये—चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि—और इनसे
की क्रिया सिद्ध होने लगी । जैसे राजा के अङ्ग अनुचर और हरकारे होते हैं
तमरूपी चोरको दीपकरूपी हरकारे मारनेलगे आकाशरूपी जो मैं था इससे मेरे
में तारावलीरूपी माला पड़ी थी । सूर्य होकर मैं जल को सोखता और दशों
को प्रकाशता रहा । आकाश जो ऊर्ध्वता से श्याम भासता है वह मेरे निकट
मान होता था; सब जगत् में मैंहीं फैलरहाथा और जहां मैं रहूं तहां से तम का
होजावे । चन्द्रमा और सूर्यरूपी डब्बाहै जिसमें दिन, रात और काल, वर्षरूपी
रत्न सर्वदा निकलते रहते हैं । राजसी, सात्त्विकी और तामसी क्रियारूपी
का मैं सूर्य हुआ और सर्वदेवतों और पितरों को तृप्त करता रहा । यज्ञ की अग्नि
रत्न, मोती, मणि आदिक जो प्रकाश पदार्थ हैं उनमें प्रकाश मैं हीं हुआ । प्राणों
भीतर मैं स्थित हुआ और प्राण-अपानके क्षोभ से अन्नको पचानेलगा । जैसे
के प्रकाश से रूप, अवलोक और मनस्कार प्रकाशतेहैं; तैसेही सब पदार्थ मेरे
से प्रकाशित होनेलगे क्योंकि; मैं तेजरूप था—मानों चैतन्यसत्ताका दूसरा भाई
जैसे सर्वपदार्थ आत्मा से सिद्ध होतेहैं, तैसेही मुझसे सिद्ध होनेलगे । हे रामजी !

में तेज और सिद्धों में वीर्य मैंहीं था; बलरूप होकर जगत्को मैंहीं पुष्ट करताथा; बड़वाग्नि दाहकशक्ति होकर जगत्को मैंहीं नष्ट करता था और तेजवानोंमें तेज; बलवानों में बल मैंहीं था। तले भी मैं था; मध्य भी मैंहीं था और चन्द्रमा सूर्यसे रहित जो स्थान हैं उनमेंभी मैंहीं था। अग्निरूपी दीपक और चन्द्रमा और सूर्यरूपी नेत्रों से मध्यमण्डल में स्पष्ट मैं देखता था। हे रामजी! इस प्रकार तेजरूप होकर भीतर बाहर स्थावर जङ्गम पदार्थों में मैं स्थित हुआ पर जब बोधदृष्टि से देखूं तब सर्व आत्माही का भान हो और जब अन्तवाहक दृष्टि से आपको विराट्रूप जानूं कि; सर्वजगत् में मैंहीं फैलरहा हूं और सर्वपदार्थ मेरेही अङ्ग हैं। निदान तेजवानों में तेज और क्रोधवानोंमें क्रोध; यतियोंमें यती और अजीत मैं हुआ और सर्व ओर मेरी ही जय है क्योंकि; जय उसकी होती है जिसमें बल और तेज होताहै—सो बल मैं हूं और तेज भी मैं हूं इससे मेरी जयहै। हे रामजी! सुवर्ण और रत्नमणिमें जो प्रकाश और रूप है सो मैं हुआ। रामजीने पूछा, हे भगवन्! इसप्रकार जो आप जगत्की क्रिया अनुभव करने लगे कि, जलरूप होकर अग्नि को बुझाना और अग्नि होकर जल को जलाना इत्यादिक क्रिया जो तुम्हारे ऊपर इष्ट अनिष्ट से होती रहीं उनको तुम ने सुख दुःखसे अनुभव किया वा न किया सो मेरे बोधके निमित्त कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे चैतन्य पुरुष स्वप्न में पर्वत, वृक्ष, देह, इन्द्रियां और नाना प्रकार के जड़पदार्थ देखते हैं जो वास्तव में उनमें नहीं हैं; केवल अनुभवरूप हैं परन्तु निद्रादोष से वे उन्हें द्वैत की नाईं जानते हैं और उनका राग—द्वेष अपने में मानते हैं, यथार्थ में द्रष्टाही दृश्यरूप होकर स्थित होता है परन्तु निद्रादोषसे नहीं जान सक्ता और जब जागता है तब स्वप्न की सब सृष्टि को अपना आपही जानता है; तैसेही यह जगत् अपने स्वरूप में नहीं है; जब बोधस्वरूप में जागोगे तब पदार्थ भावना जाती रहेगी और सब जगत् बोधस्वरूप भासेगा। हे रामजी! जिस पुरुषको देश, काल और वस्तुके परिच्छेदसे रहित अखण्ड सत्ता उदय हुई है उसको ज्ञानी कहते हैं। जब यह पुरुष परमात्म अवलोकन करताहै तब सब जगत् आत्मस्वरूपही भासता है। जिस पुरुष को स्वप्न की सृष्टि में पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ उसको अन्तवाहक कहते हैं और उसको पत्थर, जल और अग्नि में प्रवेश करनेसे भी खेद नहीं होता है। हे रामजी! मैं जो आकाश में उड़ता फिरा और आकाश को भी लांघकर ब्रह्माण्ड के खप्पर पर फिरा हूं सो अन्तवाहक शरीर से ही फिरा हूं। जिसको अन्तवाहक शरीर प्राप्त होता है उसको कोई आवरण नहीं रोंक सक्ता क्योंकि; सब उसके अङ्ग होतेहैं। मुझको शुद्ध आत्मामें स्वप्न हुआथा पर पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ इससे सब जगत् मुझको अपना स्वरूपही भासता

रहा और अपने संकल्प से कल्पे अपनेही अङ्ग भासते थे । जैसे कोई मनोराज अग्नि का समुद्र रचे और उसमें स्नानकरे तो वह भी होता है क्योंकि; उसको खे नहीं होता सब अपने संकल्पमें ही उसको भासते हैं । अन्तवाहक शरीर से ि र। सबको अपना आप देखता है तैसेही सब जगत् मुझको अपना आप भासता था . खेद कैसे हो ? जैसे स्वप्नेवाला स्वप्न में पर्वत, नदियां और अग्नि देखता है सो वही है और आपभी एक आकार धारण करके बन जाता है और पूर्व का स्वरूप उ. . प्रच्छन्नतासे भूल जाताहै और राग द्वेषसे जलताहै। मैंने तत्त्वरूप बनके जो अ. ‍ जड़रूप देखा तो मैंने आपको चैतन्यरूप देखा और जड़ की नाईं भी जाना । २. प्रकार मुझको अपना स्वरूप विस्मरण न हुआ तब मैं विराट्रूप सबको ‍ अङ्गही देखतारहा इससे मुझे खेद कैसे होता ? खेद तब होता है जब अपना . भूलता है और प्रच्छन्न बनजाता है, पर मैं तो बोधवान् रहा कि, मैंने स्पन्द से .. रूप धारे हैं । हे रामजी ! जिसको यह निश्चय है उसको दुःख कहां ? सुखदुःख . जो पदार्थहैं सो मैंने अपनेमें ऐसे देखे जैसे आदर्शमें प्रतिबिम्ब भासता है । जि.. यह दृष्टि हो उसको दुःख कहांहै ? हे रामजी ! जिसको अन्तवाहक शक्ति प्राप्त . है वह पाताल और आकाश में जाने को समर्थ होता है और जहां प्रवेश ि चाहे वहां जासक्ता है क्योंकि; सृष्टि संकल्पमात्र है। हे रामजी ! और कुछ सृष्टि नहीं आत्माका किञ्चनही सृष्टिरूप होकर भासता है । हे रामजी ! यह सृष्टि सब ब्रह्म स्वरूप है । हमको तो सदा ऐसेही भासती है । जब तुम जागोगे तब तुमको भी ऐसेही भासेगी । तुमभी अब जागे हो । उस प्रकार मैं अग्नि होकर स्थित हुआ कि जिसकी शिखा से कालख निकलती थी। प्रकाश मैंहीं हुआ और अपने ‍ अनुभव में मुझको जगत् भासे उसमें मैं स्थित हुआ। अन्धकार और उलूकादि भी मेरे प्रकाशसे प्रकाशतेहैं और भावरूप पदार्थ भी मैं अपने में जानताभया क्योंकि, भावरूप पदार्थ तब भासते हैं जब उनका रूप होता है; सो रूपवान् पदार्थ मैं० था इस कारण सब मेरेही में सिद्ध होते थे। इस प्रकार मुझको प्रतिभा हुई ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानेचिद्रूप वर्णनन्नामद्विशताधिकद्वितीयस्सर्गः ॥ २०२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! फिर मैंने पवनकी धारणा का अभ्यास किया तब पवन-रूप होकर विचरनेलगा और कमल के फूलों और वृक्षों को हिलाने लगा। तारों और नक्षत्रों का आधारभूत हुआ और वे मेरे आधार पर फिरनेलगे। चन्द्रमा और सूर्य के चलानेवाला भी मैंहीं हुआ और समुद्र और नदियों के प्रवाह मेरीही शक्ति से चलते रहे.मनका बड़ा वेगभी मैंहीं हुआ और प्राणियों के शरीरोंमें मेरा निवास हुआ मैंहीं

प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान पञ्चरूप होकर स्थित हुआ और सब नाड़ियों में मेरा निवास हुआ। सब नाड़ियों को रस अपना अपना भाग मैंहीं पहुँचाता रहा और हलना, चलना, बोलना, लेना, देना सब मुझहीसे सिद्ध होता था निदान सर्वपदार्थों में स्पर्शशक्ति मैंहीं हुआ और सर्वशब्द मेरेहीसे सिद्ध होते थे। क्रियारूपी वृन्दका मैं मेघ हुआ; आकाशरूपी गृह में मेरा निवास था और दशोंदिशा सब मेरे मेंही फुरी थीं। देवताओं को गन्धसे मैंहीं सुख देता था और दीपकको मैंहीं प्रज्वलित करता था। पक्षियों में मेरा सदा निवास था। जैसे अग्नि में उष्णता रहती है तैसेही सबके सुखाने और हरियावल करनेवाला मैंहीं हूं। हे रामजी! इस प्रकार मैं पवन होकर स्थित हुआ इसलिये रूप, अवलोक और मनस्कार सर्वपदार्थ मैंहीं हुआ और चन्द्रमा, सूर्य, तारे, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वरुण, कुबेर और यम आदिक जगत् होकर मैंहीं स्थित हुआ। पञ्चभूतों के भीतर और बाहरभी मैं था; प्राण–अपान के क्षोभसे जो दुःख होता है सो मैंहीं साकार निराकाररूप हूं और रक्त पीत श्यामरङ्ग पदार्थ सब मैंहीं हूं। पञ्चभूत जो चिद्अणु फुरे हैं सो उसीका रूपहै जैसे स्वप्ने की सृष्टि सब अपनाहीरूप होती है–इतर कुछ नहीं होती। हाड़, मांस, पृथ्वी होकर भूतों में स्थित हुआ और वायुरूप प्राण, अग्निरूप सुधा और आकाशरूप अवकाश भया हूं। इस प्रकार मैं सर्वमें स्थितभया। मैंभी चैतन्यवपु था और वे तत्त्व भी चैतन्यवपु थे। जैसे स्वप्ने में जगत् आकाशरूप होता है तैसेही वे भी आकाशरूपहैं। हे रामजी! सर्वकाल, सर्वप्रकार सर्वका सर्वात्मा स्थितहै दूसरा कुछ नहीं। आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है इससे भिन्न जानना भ्रान्तिमात्र है। यह दृष्टि ज्ञानवान् की है पर जो असम्यक्दर्शी हैं उनको भिन्न २ पदार्थ भासतेहैं। इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण जगत् अपने मेंही देखा। हे रामजी! मैं ब्रह्मरूप था इससे उसमें जगत् उत्पन्न होते दृष्ट आये और जो मैं ब्रह्म से इतर होता तो एकतृण भी न उत्पन्न होता। मैं जो ब्रह्मरूप था इससे सृष्टि उत्पन्न होती है। हे रामजी! जब मैंने बोधदृष्टि से देखा तब आत्मासे भिन्न कुछ न दीखा और जब अन्तवाहक दृष्टिसे देखा। तब स्पन्दके कारण अणु अणु में सृष्टि भासी। जैसे जहां चन्दन का अणु होताहै वहां सुगन्ध भी होती है; तैसेही जहां जहां तत्त्व के अणु हैं वहां वहां सृष्टि भी है। हे रामजी! एक अणु में अनन्त सृष्टि मुझको भासी। जैसे एकपुरुष शयन करताहै और उसको स्वप्ने में सृष्टि भासती है और फिर स्वप्नेसे स्वप्नान्तर की सृष्टि देखताहै तो एकही जीव में बहुत भासते हैं; तैसेही एक अणु से अनेक सृष्टि होती हैं। हे रामजी! जो सृष्टिहै सो आभासरूपहै और आभास अधिष्ठान के आश्रय होता है। सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है जो देश और काल के प्रच्छेद से रहित अखण्ड अद्वैतसत्ता है। इसीसे कहाहै कि, अणु अणु में सृष्टि है

क्योंकि; कोई अणु भिन्न वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताही है; जो सर्वब्रह्म है तो सृष्टि भी रूप है–इससे सब ब्रह्महीं जानो। ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे वायु औ स्पन्द में भेद नहीं, तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं
नाम द्विशताधिकतृतीयस्सर्गः॥ २०३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार जब मेरेमें सृष्टि फुरी तब मैं उनके भ्रम त्याग और संकल्पको खैंचकर अन्तर्मुख हुआ और अपनी जो कुटी थी उसकी आया। जब मैंने कुटी देखी तो उसमें एकपुरुष बैठा मुझको दृष्ट आया। तब मैं विचार किया कि, यह तो किञ्चन है; मेरा शरीर कहां है? मैंने विचार करके देखा यह कोई महासिद्ध है। मेरा शरीर इसने मृतक जानकर गिरा दिया है और पद्मासन बांधकर दोनों टँखने पुट्ठों के ऊपर किये और शिर और ग्रीवा सूधे बैठा है। दोनों हाथ कांधों पर ऊर्ध्व किये है–मानों कमल फूलहै वा मानों अन्तर प्रकाश बाहर उदय हुआ है और नेत्र मूंदे है–मानों सब वृत्ति खैंच ली है। हे रामजी इस प्रकार समाधि लगा कर पद्मासन बांधे वह आत्मपद में स्थित बैठा था औ उसका मुख सूर्य की नाईं प्रकाशता था। जैसे धुयें से रहित अग्नि प्रकाशता है, वह सिद्ध प्रकाशमान स्थित था। इस प्रकार मैंने उसको आत्मपद में स्थित देखा। जै दीपक निर्वाण स्थित होताहै, तैसेही उसे स्थित देखकर मैंने विचार किया कि इहांहीं बैठा रहनेदूं और मैं अपने स्थान सप्तर्षिलोक में जाऊं। इस प्रकार कुटी संकल्प को त्यागकर मैं उड़ा और उड़ते हुये मार्ग में मुझको विचार उपजा कि; अब उस सिद्ध की क्या दशाहै फिर निदान उलट कर देखा तो कुटी सहित सिद्ध नहीं था क्योंकि; कुटी उसकी आधारभूत थी सो मेरे संकल्प में स्थित थी, जब संकल्प निर्वाण होगया तब वह कुटी गिरपड़ी तो उसमें वह सिद्ध कैसे रहे; वह गिरपड़ा। हे रामजी! उसको गिरता देखकर मैं भी उसके पीछे हुआ कि, उसका कौतुक देखूं। निदान आगे वह चला और मैं पीछे नीचेको चला परन्तु मैं स्वाधीन जाता था और वह पराधीन चलाजाता था। जैसे मेघसे बूंद गिरती है तो वही तैसेही वह चला और सप्तद्वीपके पार दशसहस्रयोजन स्वर्णकी धरती है उस पर पड़ा और उसी प्रकार पद्मासन बांधेहुये शीश और ग्रीवा उसी प्रकार सम ठहरे क्योंकि; उसके शीश और ग्रीवा ऊर्ध्व को थे। हे रामजी! शरीर प्राण से हलता है; जब प्राण ठहर जाते हैं तब शरीर नहीं हलता चलता इस कारण उसका श समहीरहा और जैसे कुटी में बैठाथा उसी प्रकार आसन करके पृथ्वीपर आपड़ा। मेरे मन में आया कि, इसके साथ कुछ चर्चाभी करना चाहिये परन्तु यह तो सम

में स्थित है इसलिये प्रथम किसी प्रकार इसको जगाऊं। हे रामजी! ऐसा विचार करके मैं मेघ होकर उसके शिरपर वर्षा करनेलगा और बड़ा शब्द किया जिससे पहाड़ फटने लगे पर उस शब्द और वर्षासे भी वह न जागा। फिर जब मैं ओले होकर उसके ऊपर वर्षा करनेलगा—जैसे पत्थरकी वर्षा होतीहै—तब ऐसी वर्षा होनेसे वह नेत्र खोल कर देखनेलगा—जैसे पर्वतपर मोर मेघको देखनेलगे और मैं वपु त्यागकर उसके आगे आ स्थित हुआ। तब उसने समाधि खोली और उसकी प्राणइन्द्रियां अपने स्थान में आईं। हे रामजी! जब मुझको उसने अपने आगे देखा तब मैं अद्वैतभावको त्याग कर बोला, हे साधो! तू कौन है; कहां स्थितहै; क्या करता था और किस निमित्त कुटी में स्थित था? सिद्ध बोले; हे मुनीश्वर! मैं अपने प्रकृतभाव में स्थित हूं और सब कुछ कहूंगा परन्तु जल्दी मतकर—मैं स्मरण करके कहता हूं। हे रामजी! मुझसे इसप्रकार कहकर वह स्मरण करनेलगा और फिर स्मरण करके बोला; हे वशिष्ठजी! मुझपर क्षमाकरो क्योंकि सन्तों का शान्त स्वभाव होता है। मुझसे तुम्हारी बड़ी अवज्ञा हुई है परन्तु तुम क्षमा करो—मेरा तुमको नमस्कार है। हे रामजी! इस प्रकार नमस्कार करके उसने निर्मल आनन्द के उपजानेवाले यह वचन कहे कि; हे मुनीश्वर! संसाररूपी नदी है जिसका बड़ाप्रवाहहै और कदाचित् नहीं सूखता। चित्तरूपी समुद्रसे यह प्रवाह निकलताहै; जन्म मरण इसके दोनों किनारे हैं; राग द्वेषरूपी इसमें तरङ्ग हैं और भोगकी तृष्णा इसमें चक्र फिरताहै—उसमें मैंने बड़ादुःख पायाहै। हे मुनीश्वर! अपने सुख के निमित्त देवों के स्थानों में भी मैं गया; दिव्यभोग भोगे और स्पर्श आदिक जो भोग हैं वे भी सब मैंने भोगे हैं परन्तु शान्ति मुझको नहीं प्राप्त हुई और जिस सुख को मैं चाहता था सो न पाया। जैसे पपीहा मेघ की बूंद चाहता है और मरुस्थल की भूमिका में उसको शान्ति नहीं होती; तैसेही मुझको विषयों के सुख में शान्ति न हुई। हे मुनीश्वर! इस जगत् को असार जानकर मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि; इतने काल मैंने भोग भोगे परन्तु मुझको शान्ति न हुई। इनको असत् जान कर मैं फिरा और विचार किया कि, जो सार हो उसमें स्थित होरहूं। तब मैंने जाना कि, सार अपना अनुभवरूप ज्ञानसंवित्‌ही है—इससे मैं उसी में स्थित हुआ हूं। हे मुनीश्वर! जितने विषय हैं वे विषरूप हैं। विष के पानकिये से मृत्यु ही होती है। स्त्री, धन आदिक सुख मोह और दुःख के देनेवाले हैं। ऐसा कौन पुरुष है जो इनमें आया सावधान रहताहै? ये तो स्वरूप से नष्ट करनेवाले हैं। हे मुनीश्वर! देहरूपी एक नदीहै जिसमें बुद्धिरूपी एकमछली रहती है; जब वह शिर बाहर निकालती है अर्थात् इच्छा करती है तब भोगरूपी बगला इसको खाजाता है अर्थात् आत्मभार्ग से शून्य करताहै। ये जो भोगरूपी चोर हैं जब इनका संग जीव करताहै तब वे इसको

लूट लेते हैं अर्थात् आत्मज्ञान से शून्य करते हैं और जब आत्मज्ञानसे शून्य
है तब जन्मों का अन्त नहीं आता—अनेक शरीर धारता है । जैसे चक्रपर
मृत्तिका अनेक वासनाओं के आकार धारती है तैसेही आत्मज्ञान से रहित
अनेक शरीर धारताहै पर अब मैं जागाहूं मुझको वे अब नहीं लूटसक्के । हे मुनीश्वर
भोगरूपी बड़ेनाग हैं; और जो नाग हैं उनके डसेसे शरीर मृतक होतेहैं पर
रूपी सर्प के फुत्कारसेही मृतक होताहै अर्थात् इच्छा करनेसेही आत्मपद से
होता है । जब जीव को विषयों की इच्छा से सम्बन्ध होताहै तब उसका क्षण क्षण
निरादर होताहै—जैसे कदली वनसे रहित हुआ और महावत के वशमें आया हस्
निरादर पाता है । हे मुनीश्वर ! जिस शरीर के निमित्त जीव विषयों की इच्छा करत
है वह शरीर भी नाशरूप है । इसमें अहंप्रतीति करनी परम आपदा का कारण
और अहंप्रतीति न करनी परमसुख का कारण है । जैसे सर्प के मुख में पड़ा हुआ
दर्दुर व मच्छर खानेकी इच्छा करता है सो महामूर्ख है । किसी क्षण काल इसको
लेगा; इससे भोगों की इच्छा करनी व्यर्थ है और दुःख का कारण है । हे मुनीश्वर !
जब बाल अवस्था व्यतीत होतीहै तब युवा अवस्था आती है और युवा के
जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता है । जैसे बसन्तऋतु
की मञ्जरी जेठ आषाढ़ में सूखजाती है, तैसेही वृद्धावस्था में शरीर जर्जरीभाव को
प्राप्त होता और दुःख पाता है । बालक अवस्थामें जीव क्रीड़ामें मग्न होताहै; यौवन
अवस्था में कामादिक सेवता और वृद्ध होकर चिन्तामें मग्न रहता है । इस प्रकार जब
यह तीनों अवस्था व्यतीत होती हैं तब मरजाता है । जीवों की अवधि इस प्रकार
व्यतीत होती है और परमपद से अप्राप्त रहते हैं । हे मुनीश्वर ! यह आयुर्बल बि-
जली के चमत्कार की नाईं है । इस क्षणभंगुर अवस्था में जो भोगों की वाञ्छा करते
हैं वे महादुःखको प्राप्त होते हैं । इनमें सुख देखकर जो कोई कहे कि मैं स्वस्थ रहूंगा
तो कदाचित् न होगा । जैसे जलके तरङ्गोंमें बैठकर कोई स्थित हुआ चाहे तो नहीं
होसकता—अवश्य मरेगा—तैसेही विषयभोगों से शान्ति सुख नहीं होता । जैसे कोई
महाधूप से तपा हुआ सर्प के फन की छाया के नीचे बैठकर सुख की वाञ्छाकरे तो
सुख न पावेगा पर जब आत्मज्ञानरूपी वृक्ष की छाया के नीचे बैठे तब शान्त और
सुखी होगा । जिन पुरुषोंने विषयों की सेवना की है वे परमदुःख को प्राप्त होते हैं
और जिन्होंने आत्मपद की सेवना की है वे परमानन्द को प्राप्त होतेहैं । जैसे नदी
का प्रवाह नीचे चलाजाता है, तैसेही मूर्ख का मन विषयों की ओर धावता है । यह
संसार मायामात्रहै और इसमें शान्ति कदाचित् नहीं प्राप्त होती । जैसे मरुस्थल की
नदी के जल से तृषा निवृत्त नहीं होती तैसेही विषयभोग से शान्ति कदाचित् नहीं

होती। जो आत्मपद से विमुखहैं वे विषयों की ओर धावतेहैं और जो आत्मपद में स्थित हैं वे विषयों की ओर नहीं दौड़ते। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर नष्ट होतेहैं और जैसे नदी का वेग समुद्र की ओर गमन करता है पर पत्थर की शिला गमन नहीं करती; तैसेही भोगरूपी समुद्र की ओर अज्ञानरूपी नदी गमन करती है पर ज्ञानरूपी पत्थर की शिला नहीं गमन करती। हे मुनीश्वर! कमल में सुगन्ध तब तक होती है जबतक सर्प के मुख का वायु नहीं लगा; तैसेही बुद्धि में विचार तबतक है जबतक चित्तरूपी सर्प के भोग और इच्छारूपी वायु नहीं लगा। जब यह लगता है तब विचाररूपी सुगन्ध लेजाता है और विषरूपी तृष्णा को छोड़जाता है। बाण निशान की ओर तब धावता है जब धनुष और चिल्ले को त्यागता है और त्यागेसे फिर नहीं मिलता, तैसेही आत्मारूपी चिल्ले से जब चित्तरूपी बाण छूटता है तब भोगरूपी निशान की ओर धावताहै और जब जाताहै तब फिर आना कठिन होता है-अर्थात् अन्तर्मुख होना कठिन होताहै। हे मुनीश्वर! यह आश्चर्यहै कि, जो पदार्थ सुखदायक नहीं हैं उनकी ओर चित्त बड़ा यत्न करता है पर तौ भी वे सिद्ध नहीं होते और अयत्नसिद्ध आत्मपद है उसको त्यागते हैं। जिनको यह सुख जानता है वे सब दुःख के स्थान हैं। जिस अपने होनेको यह भला जानता है वह अनर्थ का कारण है। जिस देह को जीव सुखरूप जानता है वह सर्वरोग का मूल है। जिनको यह भोग जानता है वे इसको दुःख देनेवाले परम रोग हैं और जिनको यह सत्य जानता है वे सब मिथ्या हैं; जिनको यह स्थिर जानता है वे स्थिर नहीं चलरूप हैं; जिनको यह रस जानता है वे सब विरस हैं; जिनको बान्धव जानता है वे सब अबान्धव हैं और दृढ़बन्धनरूप हैं और जिसको यह सुख देनेवाली स्त्री जानता है वह सर्पिणी है और परमविष के देनेवालीहै जिसका काटा मरजाताहै फिर नहीं जीता अर्थात् आत्मपद में स्थित नहीं होता। हे मुनीश्वर! मैं परम आपदाका कारण देह को जानता हूं। इस के निवृत्तहुये जीव परमपद को प्राप्त होताहै। जिस पुत्र, धन आदिक को जीव संपदा जानता है सो परम दुःखरूप आपदा हैं; इनमें सुख कदाचित् नहीं। यह वार्ता मैं सुन-कर नहीं कहता; मैंने देखकर विचार किया है; विचार करके अनुभव किया है और अनुभव करके कहाहै कि; यह संसार मायामात्र है। बड़ेबड़े स्थानों में भी मैं गया हूं परन्तु सारपदार्थ मुझको कोई दृष्ट नहीं आया। स्वर्ग में नन्दनवन आदि काष्ठरूपही दीखे; पृथ्वी में आकर देखे तो पञ्चभूतही दृष्ट आये और शरीर में रक्त, मांस, हाड़, मूत्र आदिक देखे; इससे कि; जो ऐसे शरीर में अहं प्रत्यय करतेहैं मैं उनको धिक्कार देताहूं। शरीर की आयुर्बल ऐसी है जैसे दोनों हाथों में जल लीजिये तो बह जाता है अथवा जैसे जल में तरङ्ग बुद्बुदे उपजकर नष्ट होतेहैं वा बिजली का चमत्कार होकर

नष्ट होजाता है। जो ऐसे शरीर को पाकर सुख की तृष्णा करते हैं वे महामूर्खहैं बालक अवस्था तरङ्ग की नाईं नष्ट होजातीहै; यौवन अवस्था बिजली के चमत्कारवत् छिप-जाती है और वृद्ध अवस्था में केश श्वेत होजातेहैं और दांत घिसकर गिरपड़ते हैं। जैसे नीचे स्थान में जल स्थित होजाता है तैसेही सब रोग वृद्ध अवस्था में आ स्थित होते हैं और तृष्णा दिन दिन बढ़ती जाती है। हे मुनीश्वर! उस समय सब पदार्थ जर्जरीभूत होजाते हैं और तृष्णा जवान होतीहै–जैसे बसन्तऋतु की मञ्जरी बढ़ती जाती है–और जो सुख भोग प्राप्त होकर बिछुर जाते हैं उनका दुःख होताहै। हे मुनीश्वर! इस प्रकार इनको असत्य जानकर मैं स्वरूप में स्थित हुआ हूं। यदि पाचों इन्द्रियों के इष्ट बड़ी उत्तममूर्ति धारके आ स्थित हों तौभी हमको खैंच नहीं सक्ते। जैसे मूर्ति की लिखी कमलिनी भँवर को नहीं खैंचसक्ती; तैसेही हम सरीखों को विषय नहीं चलासक्ते। हे मुनीश्वर! तुम्हारा शरीर मैंने अवज्ञा करके डालदियाहै–विचार से नहीं फेंका। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जो त्रिकालज्ञ हैं वे भी इस चर्मदृष्टि से नहीं जान-सक्ते; जब विचार से देखते हैं तभी जानते हैं; इस कारण विचार विना मैंने तुम्हारा शरीर फेंकदिया था। अब तुम क्षमाकरो। ज्ञानी विचारसेही भूत, भविष्यत् और वर्त-मानको जानता है; इन नेत्रों से तो वही जाना जाताहै कि; जो अग्रभाग में होता है विशेष नहीं जानाजाता, इस कारण मुझसे तुम्हारा शरीर गिरा है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेआकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनं नामद्विशताधिकचतुर्थस्सर्गः ॥ २०४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे साधो! मुझसे भी तेरा गिरना विचार विना हुआहै कि, विचार विना मैं उठगया था। यह कुटी मेरे अन्तवाहक संकल्प में थी सो मैं अपने स्थान को चला इस कारण यह कुटी गिरपड़ी और तुम भी गिरपड़े। जो बीतगई सो भली हुई उसकी क्या चिन्तना कीजिये? ज्ञानवान् बीती की चिन्तना नहीं करते जो होनी थी सो भली हुई। हे साधो! अब जहां तुम्हें जाना है वहां जावो और हम भी जाते हैं। हे रामजी! इस प्रकार चर्चा करके हम दोनों आकाशमार्ग को उड़े–जैसे पक्षी उड़ते हैं–और परस्पर नमस्कार करके हम दोनों भिन्न २ होगये। वह अपने स्थान को गया और मैं अपने स्थान को चला और बहुतेरे स्थान देखता गया परन्तु मुझको कोई न जानता था। हे रामजी! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जो मैंने तुमसे कहा है उसे तुम विचारो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो सिद्धके साथ समागम किया था तो आकाशमार्ग में कैसे शरीर से किया था और पञ्चभौतिक शरीर तो पृथ्वी पर पड़ा था और पृथ्वी में अणुरूप होगया था फिर आप किस शरीर से विचरे? वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! अन्तवाहक शरीर से मैं विचरता फिरा था और उसमें ही मैं

सिद्ध और देवताओं के स्थानों और इन्द्र, वरुण और कुबेर के स्थानों में फिराहूं परन्तु मुझे कोई न देखता था और मैं सबको देखताथा। संकल्प पुरुषसे मेरा व्यवहार हुआ था और किससे कहूं? रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! अन्तवाहक शरीर तो इन्द्रियों का विषय नहीं है फिर सिद्ध से आपने चर्चा कैसे की और उसने तुमको कैसे देखा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जो तुम कहते हो तो सुनो। सिद्ध को मैं इस निमित्त दृष्ट आया कि, मेरा सत्य संकल्प था। मुझे यह फुरना हुआ कि, सिद्ध मुझको देखे और मुझसे चर्चाकरे इससे उसने मुझको देखा और उसका संकल्प भी मेरे में आया तब जाना। जो दोनों सिद्ध हों और उनका संकल्प भिन्न २ हो तो एक दूसरे के संकल्प को नहीं जानते परन्तु किसीका विशेष संकल्प हो तो वह दूसरे के संकल्प को जानता है। इससे यद्यपि उसका संकल्प मेरे देखने को न था पर मेरा जो दृढ़ था इससे मैं उसके संकल्प को खैंचकर अपनी ओर ले आया। जो बली होता है उसी की जय होती—इससे उसने मुझको देखा। हे रामजी! जो अन्तवाहक में स्थित होता है उसको तीनों काल का ज्ञान होता है परन्तु व्यवहार में लगे तो उसे भूल जाता है और जो वर्तमान पदार्थ होता है उसीका ज्ञान होता है। इसी कारण उसने मेरा शरीर डालदियाथा क्योंकि; वह समाधि के व्यवहारमें लगाथा और मेरे संकल्पसे वह कुटीभी तब गिरीथी कि, जब मैं अपने स्थानके व्यवहारको ऐसी चिन्तना करके चला था। जो मैं चिन्तना में न होता, अन्तवाहक शरीर में होता और उस कुटीका भविष्यत् विचार उस संकल्पको रहनेदेता तो वह सिद्ध न गिरता पर मैं तो और ही व्यवहार में लगा था इससे अन्तवाहक विस्मरण होगया जिससे वह कुटी गिरपड़ी और सिद्ध भी गिरपड़ा। हे रामजी! इस प्रकार सिद्ध गिरा और उससे चर्चा हुई तब मैं वहांसे चला और अन्तवाहक शरीरसे आकाशमार्ग में फिरने लगा। सिद्धों के समूह और देवता, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, ऋषि, मुनि, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमआदि सबके स्थान देखे परन्तु मुझको कोई न देखे। मैं बड़े बड़े शब्द करूं कि, किसी प्रकार कोई शब्द सुने और मुझको देखे परन्तु मेरा शब्द कोई न सुने और न कोई देखे। जैसे स्वप्नमें कोई शब्द करे तो उसका शब्द जाग्रत्वाला कोई नहीं सुनता और जैसे असंकल्पवाला दूसरे की सृष्टि व्यवहार का शब्द नहीं जानता था, तैसेही मुझको कोई न जानता था। हे रामजी! इस प्रकार मैं प्रथम आकाश पिशाच होकर बिचरा और फिर दैत्यों के स्थानों में बिचरा और मैं सबको देखूं पर मुझको कोई न देखे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पिशाच का शरीर, जाति और क्रिया कैसी होती है और उनके रहने का कौन स्थान है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पिशाच की कथासे कुछ प्रयोजन न था तथापि तुमने प्रसंग पाकर पूछा

है इससे मैं कहता हूं। पिशाच का आकार नहीं होता और जो जो रूप वे धारते हैं सो सुनो। कई तो आकाश की नाईं शून्य होते हैं और परछाहीं की नाईं भय देते हैं; कई मेघ और कई काकरूप धारकर स्थित होतेहैं। ऐसे रूपधारके वे बिचरते हैं और सबको देखते और जानते हैं पर उनको कोई नहीं जानता। शीत-उष्ण से वे भी दुःख पाते हैं और इच्छा, दोष, लोभ, मान, मोह, क्रोध आदिक विकार उनमें भी रहते हैं। शीतलजल और भलेभोजन की वे भी इच्छा करते हैं और नगरों वृक्षों और दुर्गन्धस्थानों में भी रहते हैं। कहीं सियार होकर दिखाई देते हैं और कहीं श्वान हो दृष्ट आते हैं। मनमें भी प्रवेश करते हैं और मन्त्र, पाठ, दान आदिक से जो वश होते हैं सो भी अपनी २ वासना के अनुसार होते हैं। इनमें भी उत्तम, मध्यम और नीच होतेहैं; जो उत्तमहैं वे देवताओंके स्थानों; मध्यम मनुष्योंके स्थानों और नीच नरकों के स्थानों में रहते हैं और इनकी उत्पत्ति अचैत्य चिन्मात्र जो दृश्य से रहित शुद्ध चैतन्य है उससे हुई है। हे रामजी! सबका अपना आप वही चैतन्यसत्ता कल्पवृक्ष की नाईं है, उसमें जैसी २ वासना होतीहै तैसाही तैसा पदार्थ हो भासता है। हे रामजी! न कहीं पिशाच है और न जगत् है; ब्रह्मसत्ताही ज्योंकी त्यों अपने आपमें स्थित है। शुद्ध आत्मतत्वमात्र में किञ्चन 'अहं' होकर फुरा है उसीको जीव कहते हैं। उस अहं की दृढ़ता से मन फुरा है सो मन ब्रह्मारूप होकर स्थित हुआ है। उस ब्रह्माने मनोराज से आगे जगत् उत्पन्न किया है और ब्रह्माही जगत्‌रूप होकर स्थित हुआ है सो ब्रह्ममें ब्रह्म स्थितहै। हे रामजी! ब्रह्माका शरीर अन्तवाहक और केवल आकाशरूपहै और उसके दृढ़संकल्पसे आधिभौतिक जगत् दृढ़ हुआ है-उसी मन से और मन हुआहै। हे रामजी! जैसे ब्रह्माका शरीर अन्तवाहक है तैसेही सब का शरीर अन्तवाहक है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक भासता है और सब मनरूप है परन्तु दीर्घकाल का स्वप्नाहै वह जाग्रत् होकर स्थित हुआ है इससे दृढ़ भासता है। जिनको संकल्प ब्रह्मशरीर में अहंकारहै उनको जगत् आधिभौतिक भासताहै और जो प्रबोधरूप हैं उनको सब जगत् संकल्परूप है वास्तव में कहो तो कुछ उपजा नहीं, न तुम हो, न मैं हूं, न ब्रह्मा है और न जगत् है-सर्वही ब्रह्मरूप है। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं; अग्नि और उष्णता में कुछ भेद नहीं और वायु और स्पन्द में कुछ भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। ब्रह्मा और जगत् दोनों अज हैं; न ब्रह्माही उपजा है और न जगत् ही उपजाहै-दोनों ब्रह्मरूप हैं। जो ब्रह्मसे भिन्न भासताहै वह भ्रान्तिमात्र है। हे रामजी! पञ्चभूत और छठा मन इनका नाम जगत् है। जबतक ये भूत उसमें दृष्ट आते हैं तबतक भ्रान्ति है और जब इनसे रहित केवल चैतन्य भासे तब

उसीका नाम परमपद है। हे रामजी! जब आत्मपद में जागोगे तब पञ्चभूत भी आत्मा से भिन्न भासेंगे॥ सबका अधिष्ठान चैतन्यसत्ता है जबतक आत्मा का प्रमाद है तबतक संसारभ्रम न मिटेगा। सब जगत् निराकार संकल्पमात्रहै परन्तु संकल्प की दृढ़ता से आकाश में स्थूलभूत दृष्ट आते हैं। ज्ञानकाल और अज्ञानकाल में जगत् उपजा नहीं परन्तु अज्ञानी को दृढ़ भासता है। जैसे मनोराज से किसीने नगर रचा हो तो वह उसीके हृदयमें है और कहीं नहीं भासता; तैसेही जबतक जीव अज्ञान निद्रा में सोया है तबतक जगत् भासताहै पर जब जागेगा तब आकाशरूप देखेगा। हे रामजी! अपना संकल्प आपको नहीं बांधता। जबतक स्वरूपका प्रमाद नहीं होता तबतक ब्रह्मा का संकल्प ब्रह्मा को नहीं बन्धन करता। स्वरूप भी अहं प्रत्यय से तो संकल्परूप है और दूसरी कुछ वस्तु सत्य नहीं—आत्माही है वास्तव में न जगत् का आदि है, न मध्यहै और न अन्तहै, न जगत्का होनाहै और न अनहोनाहै - आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। हे रामजी! जो सर्वात्माही है तो रागद्वेष किसका हो? सब अपना आपही है और अपना आप जो आत्मतत्त्वहै उसका किञ्चन संवेदन फुरनेसे जगत्रूप होकर स्थित हुआहै। जैसे किसी पुरुषने मनोराजसे एक स्थान रचा और उसमें दृढ़भावना हुई तो आधिभौतिक भासने लगजाताहै; तैसेही यह जगत् भी ब्रह्माका संकल्प है और चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, रुद्र, वरुण और कुबेर आदिक सब संकल्परूपहैं पर संकल्पकी दृढ़ता से आधिभौतिक भासतेहैं। हे रामजी! आत्मारूपी एक ताल है जिसमें चैतन्यरूपी जल है; फुरनरूपी कीचड़ है और उसमें चौदह प्रकारके भूतजातरूप दर्दुर रहतेहैं सो सब संकल्पमात्रहैं। हे रामजी! आकाश में एक आकाशक्षेत्र है जिसमें शिला उत्पन्न होती हैं। स्वर्गलोक और देवता बड़ी शिला हैं; एक उन में उज्ज्वलशिला है सो ज्ञानवान् हैं; मध्यम शिला मनुष्यलोक है; नीचशिला तिर्यक् आदिक योनि है सो सबही निर्बीज हैं अर्थात् कारण से रहित हैं और अद्वैत आत्मा सदा अपने आपमें स्थितहै—कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु भ्रान्ति से भिन्न २ भासताहै। जैसे फेन बुद्बुदे और तरङ्ग सब जलरूपहैं; तैसेही यह जगत् सब आत्मरूप है और जैसे स्वप्न और संकल्प की सृष्टि कारण विना होती है, तैसेही यह जगत् कारण विना संकल्प से उत्पन्न हुआ है। जैसे ब्रह्मादिक जगत् उदय हैं तैसेही पिशाच भी उदय हुये हैं। हे रामजी! जैसा किञ्चन आत्मा में होताहै तैसाही होकर भासता है; वास्तवमें पृथ्वी आदिक तत्त्व कहीं नहीं और न कहीं ब्रह्मा उपजा है, न कोई जगत् उपजा है सब भ्रममात्र हैं। जितने वपु भासते हैं वे सब निर्वपु हैं; चैतन्यता से फुरे हैं और सब जीवों का आदि अन्तवाहक शरीर है। जैसे ब्रह्मा का अन्तवाहक शरीर था, तैसेही सर्वजीवों का अन्तवाहक शरीर होताहै परन्तु संकल्प

की दृढ़ता से आधिभौतिक हो भासताहै। सब जीवों का अपना अपना भिन्न २ संकल्प है उसी के अनुसार अपनी २ सृष्टि होती है। जो तुम कहो कि, भिन्न २ हैं तो जीव इकट्ठे क्यों दृष्ट आते हैं; चाहिये कि, अपनी २ सृष्टि में हों ? तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे एक नगरवासी और नगर में जावे और एक नगरवासी और में आवे और दोनों जाय इकट्ठे बैठें, तैसेही सब जीव इकट्ठे भासतेहैं पर उनके इकट्ठे हुये भी इस की सृष्टि को वह नहीं देखता और उसकी सृष्टि को यह नहीं देखता। जैसे स्वप्न में भिन्न २ भूतजात होते हैं और अनुभव में इकट्ठे दृष्ट आते हैं और एक अनुभव में भिन्न २ होते हैं; एक दूसरे की सृष्टि को नहीं जानते। जीव अन्तवाहक भूलगया है इससे आधिभौतिक दृढ़ होरहा है जैसा अनुभवमें अभ्यास होताहै तैसाही भासता है। जहां पिशाच होता है वहां अन्धकार भी होताहै। जो मध्याह्न का सूर्य उदय हो और पिशाच आगे आवे तो अन्धकार होजाता है ऐसा तमरूप वह होता है। जैसे उलूकादिक को प्रकाश में अन्धकार होताहै तैसेही अनेक सूर्य का प्रकाश हो तौभी पिशाच को अन्धकार ही रहता है। हे रामजी ! जैसा उनमें निश्चय होता है तैसाही भान होता है क्योंकि; उनका ओज तमरूपहै। जैसा किसीको निश्चय होताहै तैसाही भासता है। हमको तो सदा आत्माका निश्चयहै इससे हमें सदा आत्मतत्त्वका भान होताहै। जैसे पिशाच पञ्चभौतिक शरीरसे रहित चेष्टा करतेहैं तैसेही मैं पञ्चभौतिक शरीर से रहित आकाश में चेष्टा करता रहा हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानवर्णनन्नाम
द्विशताधिकपञ्चमस्सर्गः॥ २०५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं चिदाकाशरूपहूं इसलिये पञ्चभौतिक शरीरसे रहित अन्तवाहक शरीर से मैं विचरतारहा परन्तु मुझको कोई न देखे। चन्द्रमा, सूर्य और इन्द्र जो सहस्र नेत्रवाले हैं और सिद्ध, गन्धर्व, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी इस चर्मदृष्टि से मुझे न देखसकें और मैं सबको देखता फिरूं। इन्द्र के निकट जाकर मैंने उसके अङ्ग हिलाये परन्तु उसने मुझको न जाना। जैसे संकल्पनर किसीको हिलावे और वह देखे पर आधिभौतिक शरीर न हिले तैसेही उनके शरीर मेरे हिलाने से नहीं हिले। इससे मैं अतिमोहको प्राप्त हुआ कि, इतने काल मैं रहा और मुझको कोई देख नहीं सक्ता। तब मैंने यह इच्छा की कि, मुझको सब देखें। मैं तो सत्य संकल्परूप था इससे सब मुझे देखनेलगे। जैसे कोई इन्द्रजाल को देखे तैसेही वे मुझको देखनेलगे। जिसने पृथ्वी पर देखा उसने पृथ्वीसे उपजा वशिष्ठ जाना और मनुष्यलोक में कई जलसे उपजा जानें कि, बारम्बार वशिष्ठहै। जिन ऋषीश्वरों और मुनीश्वरों ने जल से उपजा देखा उन्होंने जाना कि, यह वारिवशिष्ठ है; कई ने वायु से

उपजा जाना और कई जानें कि, सप्तऋषियों के मध्य जो तेज वशिष्ठ है वहीहै। इस प्रकार जगत् में मुझको सब देखनेलगे और मैं सबके साथ व्यवहार करनेलगा। जब बहुतकाल इसी प्रकार व्यतीत हुआ तब सबने भावना की दृढ़तासे पञ्चभौतिक शरीर मुझको देखा और प्रथम वृत्तान्त सबको विस्मरण हो आधिभौतिकता दृढ़ होगई जैसे अज्ञान से जीव स्वप्ने के नर को आधिभौतिक देखताहै, तैसेही मेरे साथ उन्हों ने आकार देखा पर मुझको सदा अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय से भिन्न द्वैत कुछ न भासता था क्योंकि; मैं ब्रह्मरूप था। मेरा नाम वशिष्ठ ऐसाहै जैसे रस्सी में सर्प होता है; मैं तो चिदाकाशरूप हूं पर औरों को वशिष्ठ प्रतीति उपजी है। हे रामजी! तुम सरीखों को मेरा आकार दृष्ट आता है पर मुझको आधिभौतिक और अन्तवाहक दोनों शरीर चिदाकाश का किञ्चन भासते हैं। मैं सदा निराकार अद्वैतरूप हूं। चेष्टा तुम्हारी और हमारी समान है परन्तु मुझको सदा आत्मपद का निश्चय है इस कारण मैं जीवन्मुक्त होकर विचरताहूं। अज्ञानी को क्रिया में द्वैत भासताहै और हमको क्रिया में भी अद्वैत भासता है; ब्रह्मा भी ब्रह्मरूप भासता है और उसका संकल्प जो जगत् है वहभी ब्रह्मरूप है। जैसे समुद्र में तरङ्ग जलरूप है-भिन्न कुछ नहीं, तैसेही ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है-भिन्न कुछ नहीं। इससे मैं चिदाकाशरूप हूं—द्वैत कुछ नहीं फुरता। जब अहं फुरती है तब जगत् द्वैतरूप होकर भासता है। जैसे अहं के फुरने से स्वप्ने की सृष्टि होती है, तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी होती है सो संकल्पमात्र है। ब्रह्मा और ब्रह्मा का जगत् संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिककी नाईं हो भासता है पर वास्तव में न ब्रह्मा उपजा है और न जगत् उपजा है चिदानन्द ब्रह्म अपने आप में स्थित है और सदा एकरस है। हे रामजी! सृष्टि की आदि से प्रलय पर्यन्त जो कुछ क्षोभ हैं उनमें आत्मा सदा एकरस है और उसमें कदाचित् क्षोभ नहीं क्योंकि, वास्तव कुछ उपजा नहीं; जो कुछ भासताहै सो अज्ञानसे सिद्ध है और ज्ञान से जगत् भ्रम निवृत्त होजाता है। जैसे स्वप्न सृष्टि में किसी को कहीं निधि भासे तो वह उसकी प्राप्ति के निमित्त यत्न करता है पर जब जागता है तो उसको स्वप्ना जान फिर उसके पाने का यत्न नहीं करता, तैसेही जब आत्मबोध होता है तब फिर इस जगत् में जगत्बुद्धि नहीं रहती। अज्ञान ही जगत् भ्रम का कारण है और उस अज्ञान के निवृत्त का उपाय यही है कि, इस महारामायण का विचार करना-उसीसे संसारभ्रम निवृत्त होगा। यह संसार अविद्या से वासनामात्र है, जो इसको सत्य जानकर इसकी ओर धावतेहैं वे परमार्थ से शून्य हैं, मूढ़ हैं, कीट हैं और वानर की नाईं चञ्चल हैं। जिनको भोगों में सदा इच्छा रहतीहै वे नीच पशुहैं और उनको संसारसे निवृत्त होना कठिनहै क्योंकि उनके हृदयमें सदा

तृष्णा रहती है और वैराग्य को नहीं प्राप्त होते। हे रामजी! भोग तो ज्ञानवान्भी भोगते हैं परन्तु वे भोगबुद्धि से नहीं भोगते पर प्रवाहपतित जो कुछ प्रारब्धवेगसे प्राप्त होता है उसको भोगते हैं और जानते हैं कि; गुणों में गुण बर्तते हैं और इन्द्रियों सहित भोग को भ्रान्तिमात्र जानते हैं। जो अज्ञानी हैं वे आसक्त होकर भोगते और तृष्णा करते हैं और भोग की तृष्णा से उनका हृदय जलता है-इसीका नाम बन्धन है। भोग दुःखरूप हैं; जो इनको सेवते हैं वे हृदयमें सदा तृष्णासे जलते हैं और उनका द्वैतरूप जगत्भ्रम कदाचित् नहीं मिटता और ज्ञानवान् सदा आत्मा से तृप्त रहते हैं इससे शान्तरूप हैं। जैसे हिमालय पर्वतमें सब पदार्थ शीतल होजाते हैं तैसेही आत्मज्ञान से हृदय शीतल होजाता है; आत्मानन्दकी प्राप्ति होती है और कोई दुःख नहीं रहता। जिनका चित्त सदा स्त्री, पुत्र और धनमें आसक्त है और इच्छा करते हैं वे महामूर्ख और नीच हैं; उनको धिक्कार है। जिसको आत्मपद की इच्छा हो उसको सदा सन्तों का संग करना चाहिये और शास्त्रों को श्रवण करके विचार करना चाहिये। इस अभ्यास से आत्मपद की प्राप्ति होती है। हे रामचन्द्र! इस शास्त्र का विचार परमपद को प्राप्त करनेवाला है। जो पुरुष इस शास्त्रको त्यागकर और की ओर लगते हैं वे मूर्खहैं। वाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सायंकाल का समय हुआ और सर्व श्रोता परस्पर नमस्कार करके गये और सूर्यकी किरणों के उदय होनेसे फिर आन स्थित हुये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानवर्णनसमाप्तिर्नाम द्विशताधिकषष्ठस्सर्गः॥ २०६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमको यह अन्तरोपाख्यान सुनायाहै इसके विचार से जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा। ऐसे जब तुम विचारकर देखोगे तब अनन्त ब्रह्माण्ड आत्मा में धसते दृष्टि आवेंगे। हे रामजी! आत्मामें जगत् कुछ वास्तव नहीं हुआ इससे मिटता भी नहीं; चित्त के फुरने से भासता है; जब चित्त का फुरना अधिष्ठान में लीन होजावेगा तब अद्वैततत्त्व आत्माही भासेगा। हे रामजी! अद्वैततत्त्व में जगत्भ्रम से भासता है। ज्ञानवान् की दृष्टि में सदा अद्वैतही भासता है। जगत्, मैं और तुम सब चिदाकाश हैं। आत्मा से भिन्न कुछ नहीं-आत्मसत्ताही जगत् होकर भासतीहै। जैसे अपना अनुभव स्वप्नेमें स्वप्नेकी सृष्टिहो भासताहै सो अनुभवरूपहीहै, तैसेही यह जगत्भी चिदाकाशरूप है। यदि नाना प्रकारके विकारभी दृष्टिआते हैं तो भी आत्मसत्ताअनुस्यूत और अखण्डरूपहै—आत्मसत्ता और जगत्में भेद कुछ नहीं। जैसे सुवर्ण और भूषणोंमें भेद कुछ नहीं होता, तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं ब्रह्मही चेतनता से जगत्रूप हो भासता है। जैसे स्वप्ने में अपनेही अनुभव से

बहुत कुछ वृथाहो भासताहै सो अनुभवसे इतर कुछ नहीं हुये और जैसे समुद्र और तरङ्गमें कुछ भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म; जगत् और अनुभव तीनों में कुछ भेद नहीं—असम्यक्‌दृष्टिसे भेद भासता है, सम्यक्‌दृष्टिसे कोई भेद नहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता में प्रथम आभास फुराहै सो ब्रह्मारूप होकर स्थित हुआ है वह ब्रह्मा चिदाकाशरूप है और वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। उसी ब्रह्मसत्ता ने अपने भावकी नाईं त्यागा और ब्रह्मारूप होकर स्थितहुई है। फिर उसने जगत् रचा इसलिये वह जगत् भी आकाशरूपहै वास्तवमें न जगत् उपजा है, न ब्रह्मा उपजा है और न स्वप्न हुआ है और परमार्थसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै जो शुद्ध, अनन्त, अविनाशी, अचेत चिन्मात्र है और जगत्‌भी वही स्वरूप है हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूं; न मेरे साथ कोई आकार है, न मैं कदाचित् उपजाहूं और न मैं कदाचित् मृतक होता हूं। मैं नित्य, शुद्ध, अजर, अमर सदा अपने स्वभाव में स्थित हूं और अनेक विकारों में भी एकरस हूं। जैसे स्वप्ने में बड़े क्षोभ होते हैं तो भी जाग्रत् वपु को स्पर्श नहीं करते क्योंकि; उसमें कुछ हुये नहीं आभासमात्र हैं; तैसेही जगत् की उत्पत्ति-प्रलयादिक क्षोभ में आत्मसत्ता को स्पर्श नहीं होता अर्थात् वह क्षोभसे रहित सदा अनुभवरूप है। जिस पुरुषने ऐसे अनुभवको नहीं पहिंचाना जिससे सब कुछ सिद्ध होताहै और उसे छिपायाहै वह महामूर्खहै और आत्महत्याराहै—वह महाआपदाके समुद्रमें डूबेगा—और जिसको अपने स्वरूपमें अहंप्रत्यय हुईहै उसको मानसी दुःख कदाचित् नहीं स्पर्श करता। जैसे पर्वत को चूहा नहीं चूर्ण करसक्ता, तैसेही उसको दुःख नहीं स्पर्श करता। जिसको आत्मा में अहंप्रत्यय नहीं उसको शान्ति नहीं प्राप्त होती। जैसे वायुगोले में उड़ा हुआ तृण स्थिर नहीं होता, तैसेही देहअभिमानी को कदाचित् शान्ति नहीं प्राप्त होती। जो अपने शुद्ध स्वरूपको त्यागकर देहसे आपको मिला हुआ जानता है सो क्या करताहै? वह मानों चिन्तामणि को त्यागकर राख को अङ्गीकार करता है और शुद्ध चिन्मात्र अपने स्वरूपको त्यागकर देह में आत्म अभिमान करताहै। हे रामजी! जब जीव अनात्म में आत्म अभिमान करताहै तब आपको विकारवान् और जन्मता मरता मानताहै और जब देह अभिमानको त्यागकर आत्मा को आत्मा मानता है तब न जन्मता है, न मरताहै, न शस्त्र से कटता है, न अग्नि से दग्ध होता है, न जल से डूबता है और न पवन से सूखता है—निराकार, अविनाशी और चिदाकाशरूप है। हे रामजी! यदि चेतन की मृत्यु होती हो तो पिता के मरे से पुत्र भी मरजावे और एक के मरे से सब जगत् मरजावे क्योंकि; आत्मसत्ता चेतन एक अनुस्यूत है पर एक के मरे तो सब नहीं मरते, इससे चेतन आत्मा को मृत्यु कदाचित् नहीं। शरीर के काटे से आत्मा नहीं कटता शरीर के दग्ध हुये

आत्मा नहीं दग्ध होता और सम्पूर्ण विश्व भस्म होजावे तौभी आत्मा भस्म नहीं होता। आत्मा नित्य, शुद्ध, अनन्त, अच्युतरूप है—कदाचित् स्वरूप से अन्यथा भावको नहीं प्राप्त हुआ। हे रामजी! मैं अहंब्रह्मरूप हूं अर्थात् सबमें अहंरूप निराकार अखण्ड मैं हूं; न मुझको जन्महै और न मृत्यु है; सुख की इच्छा नहीं; न कुछ हर्ष है, न शोक है न जीनेकी इच्छा है और न मरनेकी इच्छा है। जैसे रस्सी में सर्प और सुवर्णमें भूषण कल्पित हैं तैसेही आत्मामें वशिष्ठ नामरूपहै और देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित अनन्त आत्मा; नित्य, शुद्ध और बोधरूप हूं। सर्वका स्वरूप आत्मतत्त्व है परन्तु वास्तवस्वरूप के प्रमाद से और अवस्तु को प्राप्त हुयेकी नाईं भासता है। जो पुरुष स्वरूप में स्थित नहीं हुये वे संसारमार्ग की ओर दृढ़ हुये हैं, उनका जीना वृथाहै और वे कहनेमात्र चैतन्यहैं, नहीं तो पाषाण की शिलावत् हैं। जैसे लुहार की धौंकनी से पवन निकलता है, तैसेही उनका जीना वृथा है। वे घड़ीयन्त्र की नाईं वासना में भटकते हैं, आत्मानन्द को नहीं प्राप्त होते और सदा तप्त रहते हैं। जिनको आत्मपद में स्थिति हुई है उनको दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करता। यदि प्रलयकाल का पवन चले और पुष्करमेघ की वर्षा हो; वा वड़वाग्नि लगे और द्वादशसूर्य तपें पर वे ऐसे क्षोभों में भी चलायमान नहीं होते क्योंकि; वे सर्वब्रह्मस्वरूप जानते हैं। जैसे तृण से पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसेही वे बड़े दुःखोंसे भी चलायमान नहीं होते। दुःख तब होताहै जब आत्मा से भिन्न कुछ भासता है पर उनको तो आत्मा से भिन्न कुछ भासता ही नहीं। हे रामजी! यह सब जगत् आत्म अनुभवरूप है क्योंकि; परमात्मा का स्वरूप है। जैसे स्वप्न में अनुभव से भिन्न कुछ वस्तु नहीं होती तैसेही सब जगत् अनुभवरूप है और जो भिन्न भासता है सो भ्रान्तिमात्रहै। यह जगत् जो नाना प्रकारका भासताहै सो आत्मामें अव्यक्तरूप है और भ्रम से प्रकट भासता है। जैसे आकाश में नीलता भ्रम से सिद्ध है, तैसेही आत्मा में जगत् भ्रम से सिद्ध है। वास्तव में ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं; आत्मसत्ता ही जगत्‌रूप होकर भासती है और उसमें जैसा २ निश्चय होता है तैसाही अधिष्ठानरूप भासता है। जिनको कारण से सृष्टि का अधिष्ठान दृढ़ होरहाहै उनको वैसाही भासता है; जिनको परिमाण से सृष्टि उत्पन्न होनेका निश्चयहै उनको वैसेही सत्य भासती है और माध्यमिक सत् असत् के मध्य वस्तु को मानते हैं। एक चार्वाकी म्लेच्छ हैं जो चारों तत्त्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं; बौध कहतेहैं कि, जो कुछ वस्तुहै वह बोध है इसके अभावहुये से शून्यही रहती है- एक, अनेक, ब्राह्मण, हाथी, गौ, श्वान, घोड़ा, सूर्यादिक में भिन्न २ प्रतीत होरही है पर जो ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं वे सबमें एक ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत देखतेहैं। हे रामजी! वस्तु तो एकहै पर उस

में जैसा निश्चय जिसको हुआहै तैसाही भासताहै। जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु में जैसी भावना करते हैं तैसीही सिद्ध होती है; तैसेही आत्मसत्ता में जैसी भावना करतेहैं, तैसाही रूप हो भासताहै। हे रामजी! बुद्धिमानों से निर्णय कियाहै कि, सारभूत आत्मसत्ताही है; जब उसमें दृढ़ अभ्यास करोगे तब आत्मसत्ता ही भासेगी और फिर उस निश्चय से चलायमान न होगे। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जगत्, पाताल, भूतल और स्वर्ग में बुद्धिमान् कौन हैं जिनको पूर्वापर के विचारसे पारावार का साक्षात्कार हुआ है और आत्मस्वरूप का वे कैसे निश्चय करते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जितना जगत् है सब इन्द्रियों के विषयों की तृष्णा से जलता है और इष्ट की प्राप्ति में हर्ष और अनिष्ट की प्राप्ति में शोक करता है। ऐसा कोई बिरलाही है जो जगत्में सूर्यकी नाईं प्रकाशताहै; नहीं तो सब तृणवत् भोगरूपी वायु में भटकते हैं और जो सब में श्रेष्ठ कहाताहै वह भी विषयरूपी अग्निमें जलता है। जैसे कृमि अशुभस्थानोंमें रहतेहैं और उनसे आपको प्रसन्न मानते हैं, तैसेही देवता भी सदा भोगरूपी अपवित्र स्थानों में आपको प्रसन्न मानते हैं सो मेरे मत में दुर्गन्ध के कृमि हैं। गन्धर्व तो मूढ़ हैं उनको तो कुछ सुधि नहीं अर्थात् आत्मपद की गन्धभी नहीं—वे तो मेरे मतमें मृग हैं। जैसे मृगको रागमें आनन्द होताहै, तैसेही गन्धर्व राग से उन्मत्त रहते हैं और आत्मपद से विमुख हैं। विद्याधर भी मूर्ख हैं क्योंकि; वे वेद के अर्थरूपी चतुराई को अग्नि में जलाते हैं और वेद के सारभूत अमृत को नहीं जानते इसलिये आत्मपद से विमुख हैं। सिद्ध मेरे मत में पक्षी हैं जो पक्षी की नाईं उड़ते फिरते हैं और अभिमानरूपी पवन के चलने से अनात्मरूपी गढ़े में आन पड़ते हैं अपने वास्तवस्वरूप में स्थित नहीं होते यक्ष धन के अभिमान से मूर्ख की प्रीतिकर जलते हैं और आत्मपद में स्थिति नहीं पाते। योगिनी भी मद से सदा उन्मत्त रहती है इससे आत्मपद में स्थिति नहीं पाती और दैत्यों कोभी सदा देवताओं के मारने की इच्छा रहती है इससे सदा शोक में रहते हैं और आत्मपद से विमुख हैं। तुमतो आगे सेभी जानतेहो और आगेभी मारा था और अब भी मारोगे। मनुष्यभी आत्मपद से गिरेहुये हैं क्योंकि—सदा यही इच्छा रहतीहै कि गृह बनाइये और वे खाने और धन इकट्ठ करनेके निमित्त जगत् करते हैं और इन्द्रियों के विषयों में डूबेहुये हैं। पाताल में नाग रहते हैं जिनका जल मेंभी निवास है वे सुन्दर नागिनियोंमें आसक्त रहते हैं इसलिये वे भी आत्मानन्दसे गिरे हुयेहैं। निदान जितने भूतप्राणी हैं वे सब विषयों के सुख में लगे हुये हैं और आत्मपद से विमुख हैं। सब जातों में विरले जीवन्मुक्तभी हैं और ज्ञानवान्भी हैं—उन्हें सुनो। देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सदा आत्मानन्द में मग्नहैं और चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इन्द्र,

धर्मराज, वरुण, कुबेर, बृहस्पति, शुक्र, नारद, कच आदि जीवन्मुक्त पुरुष हैं। सप्त-ऋषि और दक्षप्रजापति, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन जीवन्मुक्त हैं और २ भी बहुत मुक्त हैं। सिद्धों में कपिलमुनि; यक्षों में विद्याधर और योगिनी और दैत्यों में हिरण्यकशिपु; प्रह्लाद, बलि, विभीषण; इन्द्रजीत, स्वरमेय, चित्रासुर और नमुचिआदिक जीवन्मुक्त हैं। मनुष्यों में राजर्षि और ब्रह्मर्षि और नागों में शेषनाग; वासुकि नाग आदिक जीवन्मुक्त हैं। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक में कोई कोई विरले जीवन्मुक्त हैं। हे रामजी! जात जात में जो जीवन्मुक्त हुये हैं सो तुमसे संक्षेप से कहे हैं और जहां जहां देखता हूं वहां वहां अज्ञानी ही बहुत हैं ज्ञानवान् कोई विरला दृष्टि आता है। जैसे सब जगह और वृक्ष बहुत हैं परन्तु कल्पवृक्ष कोई विरला होता है, तैसेही संसार में अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं; ज्ञानी कोई विरला है। हे रामजी! शूरमा और कोई नहीं, जिनकी आत्मपद में स्थिति हुई है वही शूरमा हैं और संसारसमुद्र तरना उनहीं को सुगम है ॥

इति श्रीयोग०निर्वाणप्रकरणेमुक्तसंज्ञावर्णनंनामद्विशताधिकसप्तमस्सर्गः ॥ २०७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो विवेकी पुरुष विरक्तचित्त हैं और जिनकी स्वरूप में स्थिति हुई है उनके राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, अभिमान, दम्भ आदिक विकार स्वाभाविक नष्ट होजातेहैं। जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार स्वाभाविक निवृत्त होजाता है और जैसे बाण को देखकर कौवा भागजाता है तैसेही विवेकरूपी बाण को देखकर विकाररूपी कौवे भागजाते हैं। विवेकी पुरुषोंके हृदयमें इतने गुण स्वाभाविक आन स्थित होते हैं कि; वे किसी पर क्रोध नहीं करते और जो करते भी दृष्टि आतेहैं–सो किसी निमित्तमात्र जानना, उनके हृदय में सदा शीतलता और दया रहती है और जो कोई उनके निकट आताहै वहभी शीतल होजाता है क्योंकि; वे निरावरण स्थित हैं। जैसे चन्द्रमा के निकट गयेसे शीतल होताहै तैसेही ज्ञानवान् के निकट आये से हृदय शीतल होता है और कोई पुरुष उनसे उद्वेगवान् नहीं होता। जो कोई निकट आता है उसको वे विश्राम के निमित्त स्थान देतेहैं और उसका अर्थभी पूर्ण करतेहैं। जैसे कमलके निकट भँवरा जाताहै तो वे उसको विश्राम का स्थान देतेहैं और सुगन्ध से उसका अर्थ पूर्ण करतेहैं; तैसेही सन्तजन अर्थ पूर्ण करते हैं। व यथाशास्त्र चेष्टा करतेहैं और हेयोपादेय की विधि को भी जानतेहैं। जो कुछ उन्हें स्वाभाविक प्राप्त हो उसको वे शास्त्र की विधि सहित अङ्गीकार भी करते हैं और हृदय में सर्वकी भावना से रहितहैं। उनमें दान, स्नान आदिक शुभक्रिया स्वाभाविक होतीहैं और उदारता, वैराग्य, धैर्य, शम, दम आदिक गुण स्वाभाविक होते हैं। वे इसलोकमें भी सुख देने-वाले हैं और परलोक में भी सुख देनेवाले हैं। हे रामजी! जिन पुरुषों में ऐसे गुण

पाइये वेही सन्त हैं। जैसे जहाज़ के आश्रय समुद्र से पार होते हैं, तैसेही संसारसमुद्र के पार करनेवाले सन्तजन हैं। जिनको सन्तजनों का आश्रय हुआ है वेही तरे हैं। सन्तजन संसारसमुद्रके पारके पर्वत हैं। जैसे समुद्र में बहुत जल होताहै तो बड़े तरङ्ग उछलते हैं और उसमें बड़े मच्छर रहते हैं पर जब उसका प्रवाह उछलताहै तब पर्वत उस प्रवाहको रोकताहै और उछलने नहीं देता तैसेही चित्तरूपी समुद्र में इच्छारूपी तरङ्ग है और राग-द्वेषरूपी मच्छर रहते हैं; जब इच्छारूपी तरङ्गका प्रवाह उछलता है तब सन्तरूपी पर्वत उसको रोकते हैं। सन्तजन अपने चित्तको भी रोकते हैं और जो उनके निकट कोई जाताहै तो उसकी भी रक्षा करते हैं। यदि शरीर नष्ट होनेलगे अथवा नगर नष्ट होनेलगे वा निकट अग्नि लगे तौभी ज्ञानवानों का हृदय स्वरूप से चलायमान नहीं होता; वे सदा अपने स्वरूप में स्थिर रहते हैं। जैसे भूकम्प से सुमेरु चलायमान नहीं होता; तैसेही वेभी चलायमान नहीं होते। यह जो मैंने तुमसे शुभगुण स्नान, दान आदि कहे हैं सो जीवों को सुख देनेवाले हैं और दुःख को निवृत्त करनेवाले हैं। इनसे सुख की प्राप्ति होतीहै और दुःख नष्ट होजाता है। जब स्नान दान की ओर मनुष्य आता है तब सन्तोंकी संगति में भी उसका चित्त लगता है और जब सन्तोंकी संगति में चित्त लगा तब क्रम से परमपद की प्राप्ति होती है इससे मनुष्य को यही कर्तव्यहै कि, शास्त्र के अनुसार शुभगुणोंकी चेष्टा करे और सन्तों के निश्चय का अभ्यास करे। हे रामजी! जिसको सन्तोंकी संगति प्राप्त होतीहै वहभी सन्त होजाता है। सन्तों का संग वृथा नहीं जाता। जैसे अग्नि से मिला पदार्थ अग्निरूप होजाता है; तैसेही सन्तों के संगसे असन्त भी सन्त होजाताहै और मूर्खों की संगति से साधु भी मूर्ख होजाता है। जैसे उज्ज्वल वस्त्र मल के संग से मलीन होजाता है तैसेही मूढ़ के संग करनेसे साधुभी मूढ़ होजाता है क्योंकि; पाप के वश से उपद्रव भी होते हैं इसीसे पाप के वश साधु को भी दुर्जनों की संगति से दुर्जनता आनि उदय होतीहै। इससे, हे रामजी! दुर्जन की संगति सर्वथा त्यागनी चाहिये और सन्तों की संगति कर्तव्य है। जो परमहंस सन्त मिले और जो साधु हो और जिसमें एक गुण भी शुभ हो उसका भी अङ्गीकार कीजिये परन्तु साधु के दोष न विचारिये-उसका शुभगुण ही अङ्गीकार कीजिये। जैसे भँवरा केतकी के कण्टकों की ओर नहीं देखता, उसकी सुगन्ध को ग्रहण करता है। इससे हे रामजी! संसारमार्ग को त्यागकर सन्तोंकी संगति करो तब संसारभ्रम निवृत्त होजावेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तव्यवहारोनाम द्विशताधिकाष्टमस्सर्गः॥ २०८॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! हमारे दोष तो सत्शास्त्र सत्संग और उनकी युक्ति से

और समानदुःख तीर्थ, स्नान, दान, जप और पूजासे निवृत्त होते हैं पर और जीव जो कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी आदिक हैं उनके दुःख कैसे निवृत्त होंगे? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो वास्तवसत्ताहै उसीका नाम ब्रह्महै और वह अखण्ड अद्वैत है, उस में कुछ द्वैत का विभाग नहीं है परन्तु उसमें जो चित्त किञ्चन आभास फुरा है सो फुरनाही नानात्व हुये की नाईं स्थित हुआ है वास्तव में कुछ हुआ नहीं। जैसे स्वप्न में स्वप्नेकी सृष्टि भासतीहै परन्तु वास्तव कुछ हुई नहीं निद्रादोषसे भासतीहै, तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी कुछ वास्तव नहीं हुई अज्ञान से जीवों को भासती है। वास्तव में सब ब्रह्मरूप है पर अपने स्वरूप के प्रमाद से जीवत्वभाव को अङ्गीकार किया है। उस अङ्गीकार करने और अनात्म देहादिकमें आत्म अभिमान करके जैसा निश्चय करता है तैसीही गति पाताहै। देश, काल, क्रिया और द्रव्य का जैसा संकल्प अनुभवसत्ता में दृढ़ होता है तैसाही भासता है। उसमें चार अवस्था कल्पित होती हैं और जैसी जैसी भावना होती है उसके अनुसार अवस्था का अनुभव होता है। वे चार अवस्था ये हैं—एक घनसुषुप्ति; दूसरी क्षीणसुषुप्ति; तीसरी स्वप्नअवस्था और चौथी जाग्रत्। पर्वत और पाषाण घनसुषुप्ति में हैं। जैसे सुषुप्ति अवस्था में कुछ नहीं फुरता, जड़ीभूत होजाता है; तैसेही इसको कुछ फुरना नहीं फुरता—घनसुषुप्ति में स्थित है। वृक्ष क्षीणसुषुप्ति में स्थित है। जैसे क्षीणसुषुप्ति में कुछ फुरना फुरताहै, तैसेही वृक्षों में भी फुरना होता है इससे वे क्षीणसुषुप्तिमें हैं। तिर्यक् जो पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि जीव हैं वे स्वप्नअवस्था में स्थित हैं। जैसे स्वप्ने में पदार्थ भासता है परन्तु दृढ़ समष्टि नहीं भासता तैसेही इन को थोड़ा सूक्ष्मज्ञान है इससे वे स्वप्नअवस्था में स्थित हैं। मनुष्य और देवता जाग्रतरूप जगत् का अनुभव करते हैं। हे रामजी! यह चारो अवस्था आत्मा में स्थित हैं और आत्मसत्ताहीमें स्थित हैं। सबका अहंप्रत्ययरूप आत्मा है—बड़ेका क्या और छोटेका क्या। उसमें जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही हो भासता है हे रामजी! हमको एक दिन व्यतीत होता है और चींटीको उसीमें युगका अनुभव होताहै; हमको जो सूक्ष्म अणु होताहै उनको वही पर्वत के समान भासताहै। हे रामजी! स्वरूप सबका एक आत्मसत्ताहै परन्तु भावना से भिन्न २ भासता है। एक कीटहै जो बहुत सूक्ष्म है, जब वह चलताहै तब जानता है कि, मेरा गरुड़कासा वेग है और उसको वही सत् होरहा है वालखिल्य का अंगुष्ठप्रमाण शरीर है उनको वही बड़ा भासता है और विराट् को वही अपना बड़ा शरीर भासताहै। निदान जैसी जिसको भावना होतीहै तैसाही उसको भासता है। मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी सबका अपना २ भिन्न २ संकल्प है; जैसा संकल्प किसीको दृढ़ होरहाहै उसको तैसाही स्वरूप भासताहै। जैसे मनुष्य राग, द्वेष, भय,

क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक आदि विकारोंमें आसक्त होता है, तैसेही कीट, पतङ्ग, पक्षी आदिको भी होताहै परन्तु इतना भेदहै कि; जैसे हमको यह जगत् स्पष्टरूप भासता है, तैसे उनको नहीं भासता। संसारी सब हैं परन्तु वासना के अनुसार न्यून अधिक भासता है और दुःख का अनुभव स्थावर जङ्गम को भी होता है। जब किसी स्थान में अग्नि लागती है और उसमें वृक्ष और पाषाण जलते हैं तब उनको भी दुःख होताहै परन्तु सूक्ष्म स्थूलका भेदहै। जैसे और जीव के शस्त्रप्रहार कियेसे शरीर नष्ट होनेका दुःख होताहै, तैसेही वृक्षादिकको भी होताहै परन्तु घनसुषुप्ति; क्षीणसुषुप्ति और स्वप्न जाग्रत् का भेद है। पर्वत पाषाण को सूक्ष्म दुःख होता है; वृक्ष को पाषाण से विशेष होताहै परन्तु स्पष्ट मान और अपमान का दुःख नहीं होता, स्वप्न की नाईं होता है। मनुष्य और देवताओं को स्पष्टराग–द्वेष जाग्रत् की नाईं होता है क्योंकि; वे जाग्रत् अवस्था में स्थित हैं और वृक्ष, पाषाण आदिक को स्पष्ट दुःख का विकल्प नहीं उठता क्योंकि, वे जड़ता स्वभाव में स्थितहैं पर दुःख तो सबको होता है। और आश्चर्य देखो कि, कीट महादुःखी रहते हैं; जब वे मृतक होते हैं तब सुखी होते हैं। अज्ञान से जो इस शरीर में आस्था हुई है उसको भी मरना बुरा भासता है तो और जीव को भला कैसे न लगे। हे रामजी! अपने स्वरूप के प्रमाद से भय, क्रोध, लोभ, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष, हर्ष, शोक, इच्छादिक विकारों की अग्निसे जीव जलतेहैं। आत्मानन्दको नहीं प्राप्त होते और घड़ीयन्त्र की नाईं वासना के अनुसार भटकते हैं। जब वासना दृढ़ पापकी होतीहै तब जीव पाषाण और वृक्षयोनि पातेहैं और जब क्षीण वासना तामसी होतीहै तब तिर्यक् पक्षी, सर्प और कीटयोनि पाते हैं। हे रामजी! राजसीवासना से जीव मनुष्य होते हैं और सात्त्विकी वासनासे देवता होतेहैं पर जब मनुष्य शरीर धारकर निर्वासनिक होते हैं तब मुक्ति पाते हैं। जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब जीवों के दुःख नष्ट होजाते हैं; दुःख के नाश करने का और कोई उपाय नहीं। यह जगत् के दुःख तबतक भासते हैं जबतक आत्मज्ञान नहीं उपजा; जब आत्मज्ञान उपजता है तब जगत्भ्रम सब मिटजाता है। मुझसे पूछो तो वास्तव में न कोई देवता है; न मनुष्य है; न पशु है; न पक्षी है; न पाषाण है; न वृक्ष है और न कीट है; सब चिदाकाशरूप हैं दूसरा कुछ नहीं बना भ्रान्ति से नानास्वरूप हो भासता है और सदा सर्वदा काल सर्वप्रकार आत्मसत्ता आप में स्थित है। हे रामजी! न कुछ जगत् का होनाहै; न अनहोना है, न आत्मता है, न परमात्मताहै, न मौन है; न अमौन है; न शून्य है; न अशून्यहै केवल अचेत चिन्मात्र अपने आपमें स्थितहै और उसमें जन्म और जन्मान्तर भ्रम से भासते हैं। जैसे स्वप्न से स्वप्नान्तर भ्रम से भासता है और

जैसे स्वप्न में एक अपना आप होताहै और निद्रादोष से द्वैत भासता है; तैसेही अब
भी आत्मा अद्वैतरूपहै पर अविचार से नानात्व भासताहै । दुःख भी अज्ञानसे भा-
सता है विचार किये से दुःख कुछ नहीं । जो मृतक होकर उत्पन्न होता है तो शान्ति
हुई दुःख कोई नहीं और जो मृतक होकर शान्त होजाताहै उपजता नहीं तौभी दुःख
कोई नहीं मुक्त हुआ; जो मरता नहीं तौभी ज्यों का त्यों हुआ दुःख कोई नहीं हुआ
और जो सर्व चिदाकाशहै तौभी दुःख कोई न हुआ । हे रामजी ! अज्ञानी के निश्चय
में दुःख है पर विचार कियेसे दुःख कोई नहीं । यह जगत् आत्मरूपी आदर्श में प्रति-
बिम्बित है परन्तु यह जगत्रूपी कैसा प्रतिबिम्ब है जो अकारणरूपहै इसका कारण
रूप बिम्ब कोई नहीं कारण से रहित है । जैसे नदी में नीलता का प्रतिबिम्ब पड़ता
है सो अकारणरूप है, तैसेही यह जगत् अकारणरूप है । अज्ञानी को प्रमाददोष
से उसमें सत्यता है और ज्ञानी को द्वैत नहीं भासता—अज्ञानी को द्वैत भासता है ।
हे रामजी ! हमको तो सदा चिदाकाश हो भासता है—हम जागे हुये हैं इससे द्वैत कुछ
नहीं भासता । जैसे सूर्य को अन्धकार नहीं भासता तैसेही हमको द्वैत नहीं भासता ।
जो ज्ञानी है उसको ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता उसे सर्व ब्रह्म ही भासता है ॥
इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणेपरमार्थरूपवर्णनंनामद्विशताधिकनवमस्सर्गः ॥ २०९ ॥

श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो कुछ तुमने कहाहै सो तो मैंने जाना परन्तु ना-
स्तिकवादी का कल्याण किस प्रकार होता है क्योंकि; वे कहते हैं कि, जबतक जीव
है तबतक सुख करे और जब मरजावेगा तब भस्मीभूत होवेगा; न कहीं आना है, न
कुछ जानाहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मसत्ता आकाश की नाईं अखण्डित
सर्वत्र पूर्णहै; जबतक उसका भान नहीं होता तबतक मनकी तप्तता नहीं नष्ट होती ।
जब आत्मसत्ताका भान होताहै तब शान्ति प्राप्त होतीहै और आपको अमर जानता
है । जिस पुरुषने अखण्ड निश्चय अङ्गीकार कियाहै उसको दुःख स्पर्श नहीं करता
वह ब्रह्मदर्शी होताहै और जिसको ब्रह्मसत्ता का निश्चय नहीं हुआ उसको मनके ताप
नहीं छोड़ते और स्वरूप के प्रमाद से आपको मरता जानता है पर महाप्रलयरूप
आत्मा में सर्वशब्द का अभाव है । जैसे महाप्रलयमें सर्वशब्दों का अभाव होता है;
तैसेही आत्मामें सर्वशब्दोंका अभावहै । जिसको आत्मा में निश्चय हुआहै उसको
सर्व शब्दों का अभाव होजाता है और वह महाज्ञानवान् है उसको आत्मसत्ताही
भासती है । जो वास्तवहै उसको हमारे उपदेश की आवश्यकता नहीं—वह ज्ञानीहै ।
हे रामजी ! आत्मसत्ता में द्वैत जगत् कुछ नहीं बना; परमार्थसत्ता सदा अपने आप
में स्थित है और उसमें जो सृष्टि भासती है सो स्वप्नवत् अकारणहै इसलिये ज्ञान-
वान् पुरुष सर्वशब्द अर्थों को नहीं जानताहै । ऐसा पुरुष हमारे उपदेशके योग्य नहीं

क्योंकि, सर्वशास्त्रोंका सिद्धान्त आत्मपदहै जो उसको जानता है उसको फिर कर्तव्य कुछ नहीं रहता। जिसको ऐसी दशा नहीं प्राप्त हुई वह उपदेश का अधिकारी है। यह जगत् आत्मा का किञ्चन है अज्ञानी को सत्य भासता है और ज्ञानी के निश्चय में कुछ नहीं। जैसे किसी ने संकल्प से एक वृक्ष रचा हो तो उसके पत्र, टास, फूल, फल उसको भासते हैं पर औरके मनमें शून्य होते हैं, तैसेही अज्ञानीके निश्चय में जगत् होता है और ज्ञानी के निश्चय में विलास और आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता सर्वत्र और सर्वव्यापीहै; उसमें जैसा निश्चय फुरना होताहै तो अहंप्रत्ययभावनाकी दृढ़तासे तैसेही भासताहै। जिस पदार्थ का निरन्तर दृढ़ अभ्यास होताहै तो शरीरके त्यागे से भी वही अभ्यासरूप धारण करलेता है पर आत्मसत्ता ज्ञानमात्रहै और केवल अद्वैतसंवित् सबका अपना आपहै। जिसको स्वरूपका ज्ञान होताहै सो शास्त्रोंके दण्डसे रहित होताहै। वेद और शास्त्र जिसपदार्थका भला, बुरा, सच वा झूठ वर्णन करते हैं उसमें जिस पुरुषको निश्चय होता है उसको वासना के अनुसार वे फल देते हैं और जिसके निश्चयमें आत्मासे भिन्न सर्वशब्द का अभाव होताहै उसको आत्म अनात्म विभाग कलना भी नहीं रहती-देह रहे अथवा न रहे। हे रामजी! जिसकी संवित् जगत्के शब्द; अर्थमें बँधी हुईहै उसको पदार्थों में राग द्वेष उपजता है। जैसे सुषुप्तिमें भी आत्मसत्ताहै पर अभावकी नाईं स्थितहै; तैसेही नास्तिकवादी भी अपने जड़स्वरूपको देखते हैं क्योंकि; उनको जड़ शून्यताकाही अभ्यासहै और उसीसे उनकी सम्पत्ति दृश्य सुखसे बँधीहुईहै इससे उनका जगत् भ्रम नहीं मिटता। उस मलीन वासनासे जो संवित् मिलीहै इससे उनको जड़ पत्थररूप प्राप्त होते हैं। उस जड़ताको भोगकर वे वासनाके अनुसार फिर सुख भोगेंगे। उस भावनासे कुछ जगत्भान शून्य होजाता है पर कुछकाल पीछे चैतन्य होकर फिर उन्हीं कर्मोंको भोगतेहैं। जैसे सूर्यके आगे बादल आवे और फिर निवृत्त हो, तैसेही जगत् होता है। फुरनरूप जो जीव है उसमें जैसा निश्चय होताहै तैसाही भासताहै। जिसको एक आत्मा में निश्चय होता है सो जन्म मरण आदिक विकारसे रहित होता है और जिसको नानास्वरूप जगत् में निश्चय होता है सो जन्म मरणसे नहीं छूटता। हे रामजी! जिसकी बुद्धि में पदार्थों का रङ्ग चढ़ता है वह राग द्वेषरूपी नरक से मुक्त नहीं होता और जिसको एक आत्मा का अभ्यास होता है उसको अभ्यास के बल से सब जगत् आत्मत्वसेही भासता है और वह राग द्वेषसे मुक्त होता है। जैसे स्वप्ने में किसी को अपना जाग्रत्स्वरूप स्मरण आता है तब वह स्वप्ने के सर्व जगत् को अपना आप देखता है, तैसेही जिसको आत्मज्ञान होता है उसको सर्वजगत् अपना आपही भासता है। सर्वदा काल आत्मसत्ता अनुभवरूप जाग्रत् ज्योति है; जिसको

ऐसी आत्मसत्तामें नास्तिभावना होतीहै वह ऐसी अवस्थाको प्राप्त होताहै कि, गढ़े में कीट होताहै; पाषाण, वृक्ष, पर्वत आदिक स्थावरयोनि को प्राप्त होताहै और उन में चिरकाल पर्यन्त रहता है। जबतक उसकी बुद्धि को द्वैत का संयोग होता है तब तक वह जगत्भ्रम देखता है—और भ्रम नहीं मिटता पर जब उसकी संवित्को द्वैत का संयोग मिटजावे तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। हे रामजी! सम्यक्ज्ञान से जगत् के भ्रम का अभाव होजावेगा। अभाव का निश्चय फुरे तब फिर जगत् नहीं भासता और जब संसारके पदार्थों से संवित् बेधी हुई है तब जैसा निश्चय होगा तैसाही प्राप्त होगा और उसी निश्चय के अनुसार गति पावेगा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! नास्तिकवादी का वृत्तान्त तो तुमने कहा सो मैंने जाना पर जिस पुरुष के हृदय में जगत् की सत्यता स्थित है और जो आत्मबोधके मार्गसे शून्यहै और शुद्ध स्वरूप को नहीं जानता उसके मोक्ष की क्या युक्ति है और उसकी क्या अवस्था होती है—मेरे बोध के दृढ़ के निमित्त कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसका उत्तर मैंने प्रथमहीं तुमसे कहा है पर अब फिर तुमने जो पूछाहै इससे फिर कहता हूं। प्रथम तो पुरुष का अर्थ सुनो। हे रामजी! यह जगत् नेत्रों में स्थित नहीं है, न श्रवण में है और न नासिकाआदि इन्द्रियों में स्थितहै—चैतन्य संवित्में स्थित है। चैतन्य संवित्ही पुरुषरूप है; जिस पुरुष को उसमें निश्चय है सो ज्ञानवान् है और उसको द्वैतकलना नहीं फुरती और जो प्रत्यक्षदृष्टि भी आती है परन्तु उसके निश्चय में नहीं होती है। जैसे आकाश में धूलिभी दृष्टि आती है परन्तु स्पर्श नहीं करती; तैसेही ज्ञानवान् को द्वैतकलना स्पर्श नहीं करती। जिस चेतन संवित् में फुरने का सम्बन्ध है उसको जगत् का आकार भासता है और जिस पुरुष की संवित् में देश, काल, क्रिया और द्रव्य का सम्बन्ध है वह कलङ्क में दृढ़ होरहाहै और जो अपने वास्तव अद्वैत स्वरूप के अभ्यास से मार्जन नहीं करता वह वास्तव चैतन्य आकाशरूप भी है तो भी कलङ्क से वासना के अनुसार जगत् उसको आपमे भिन्न भासता है—द्वैतभ्रम नहीं मिटता। हे रामजी! जो पुरुष ऐसाभी है कि, देह के इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में सम रहता है पर उसे आत्मसत्ता ज्यों की त्यों नहीं भासती तो वह अज्ञानी है; आत्मसत्ता जाने विना उसका संसार निवृत्त नहीं होता। जब आत्मसत्ता का साक्षात्कार होगा तभी सब भ्रम निवृत्त होगा। हे रामजी! यह पुरुष न जीव है, न फुरन है और न शरीर के नाश होने से नाश होता है; यह केवल चिन्मात्रस्वरूप है पर वासना से भ्रमको देखताहै और शून्यवादी वृक्ष, पर्वत, जड़ादिक योनि पाते हैं। जो सदा अनुभव है उसको त्यागकर जो और कुछ इष्ट जानते हैं वे मूर्ख हैं और उनको आत्मसुख नहीं प्राप्त होता। आत्माके प्रमाद में अहं, त्वं,

भीतर, बाहर आदिक शब्द भासते हैं और जब आत्मज्ञान हुआ तब सर्व शब्द आत्मरूप होजाता है। जिन पुरुषों ने आत्म अनात्म को निर्णय करके नहीं देखा वे पुरुषोंमें नीच हैं और जिस पुरुषने निर्णय करके आत्मा में अहंप्रतीति की है और अनात्म का त्याग किया है वह महापुरुष है और उसको मेरा नमस्कार है। जिसने अनात्मा में अहंप्रतीति की है और आत्मा को त्याग किया है वह बालक है। जैसे आकाश में बादल के चक्र हाथी और घोड़े के आकार हो भासते हैं और समुद्र में तरङ्ग भासते हैं; तैसेही आत्मा में जगत् भासता है सो द्वैत कुछ नहीं। जैसे स्वप्नके नगर अपने २ अनुभव में स्थित होते हैं और बाहर द्वैतकी नाईं भासते हैं सो आभासमात्र हैं; तैसेही आत्मामें जगत् भासता है सो आभासमात्रहै—वास्तवमें कुछ नहीं। जिसको आत्मसत्ताका अनुभव हुआहै उसको जगत्के शब्द-अर्थ और राग द्वेष किसीकी कल्पना नहीं रहती और पुण्यपाप का फल उसको स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! ज्ञान संवित् का नाश कदाचित् नहीं होता इससे विश्व भी अनुभवरूप है। इस जगत्का निमित्तकारण और समवायकारण कोई नहीं क्योंकि; अद्वैतहै और जो तुम कहो कि; प्रत्यक्ष घटादिक समवाय और निमित्तकारण उपजते दीखते हैं; तो जैसे स्वप्न में कारण-कार्य अनहोते भासते हैं, तैसेही यह भी जानो। प्रथम तो स्वप्न में ये बने हुये दृष्टि आते हैं और पीछे कारणसे होते दृष्टि आते हैं, तैसेही यह भी जानो-केवल भ्रममात्र है। जैसे स्वप्नसृष्टि का जागे हुये से अभाव होता है, तैसेही ज्ञान से इसका अभाव होजाता है। यह दीर्घकाल का स्वप्ना है इससे जाग्रत् कहाता है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपने आप होतीहै-और निद्रादोषसे भिन्न भासतीहै, तैसेही यह जगत् अपना आप है परन्तु अज्ञान से भिन्न भासता है। जाग्रत् में ज्ञानसे सब अपना आप भासता है इससे राग द्वेष का अभाव होजाता है। जैसे चन्द्रमा और चन्द्रमाकी चांदनीमें भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत्में कुछ भेद नहीं-आत्माही जगत्रूप हो भासताहै। हे रामजी! तुम अपने अनुभव में स्थित होकर देखो कि, सर्व ब्रह्मरूप है जगत् कुछ नहीं भासता-सर्वात्मकरूप है और साध्यहै। जैसे शरत् कालका आकाश शुद्ध होताहै, तैसेही आत्मसत्ता फुरनेरूपी बादलसे परमशुद्ध और शान्तरूप है और उसमें स्थित हुये से मान और मोह का अभाव होजाता है; किसी पदार्थ तृष्णा में नहीं रहती और प्रारब्धवेगसे जो कुछ आन प्राप्त होताहै उसको भोगना है। वह आत्मदृष्टि से दुःख से रहित हुआ प्रत्यक्ष आचार करता है; उसको शास्त्र का दण्ड नहीं रहता और परमशान्तरूप विराजता है॥

इति श्रीयो०नि०नास्तिकवादीनिराकरणंनामद्विशताधिकदशमस्सर्गः॥ २१०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूं और द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी

भासती है सो भी चिदाकाशरूप है। आत्मसत्ता ही त्रिपुटीरूप हो भासती है—दूसरी वस्तु कुछ नहीं। नास्तिकवादी जो कहते हैं कि, परलोक कोई नहीं अर्थात् जो कहते हैं कि, आत्मसत्ता कोई नहीं सो मूर्ख हैं। हे रामजी! जो अनुभव आत्मसत्ता न हो तो नास्तिक किससे सिद्ध हो? जिससे नास्तिकवाद भी सिद्ध होताहै सोही आत्मसत्ता है। जो इष्ट—अनिष्ट पदार्थ में राग द्वेष करते हैं और आत्मा को नाश कहते हैं सो महामूर्ख हैं जैसे जाग्रत् के प्रमाद से स्वप्ने में इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष होता है और इष्ट को ग्रहण करता और अनिष्ट को त्यागता है और जागे से सर्व अपनाही स्वरूप भासता है और ग्रहण—त्याग और राग द्वेष किसी पदार्थ में नहीं रहता, तैसेही आत्मा के अज्ञान से किसी पदार्थ में राग होता है और किसी में द्वेष होताहै पर जब आत्मज्ञान होता है तब सब अपनाही स्वरूप भासताहै और राग द्वेष किसी में नहीं रहता। चित्त के फुरनेसे जगत् उत्पन्न होताहै और चित्त के शान्त हुये लय होजाता है, इससे जगत् मन में स्थित है; और वह मन आत्मा के अज्ञान से हुआहै; जब आत्मज्ञान होताहै तब मनुष्य, देवता, हाथी, नाग आदिक स्थावर—जङ्गम जगत् सब आत्मरूप भासता है और राग द्वेष किसीमें नहीं रहता। नास्तिकवादी जो नास्ति कहते हैं सोही नास्तिका साक्षी सिद्ध होता है। जिससे नास्ति भी सिद्ध होता है सो अस्ति आत्मपदहै; उस अस्ति अनुभवके इतने नाम शास्त्रकार कहतेहैं—सत्, आत्मा, विष्णु, शिव, चिदाकाश, ब्रह्म, अहंब्रह्म और अस्मि। एक कहतेहैं कि, शून्यही रहताहै और एक कहते हैं कि, अस्ति पद रहता है। हे रामजी! ये सर्वसंज्ञा आत्मसत्ताही की है, सो आत्मसत्ता अपनाही आप स्वरूपहै। वही आत्मा मैं हूं और ये अङ्ग जो मेरे साथ दृष्टि आते हैं इनको दृष्टि पदार्थोंसे लेपन कीजिये अथवा चूर्ण करिये तो मुझको हर्ष और शोक कुछ नहीं। इनके बढ़नेसे मैं बढ़ता नहीं और इनके नष्ट हुये मैं नष्ट नहीं होता। हे रामजी! तीन शब्द होतेहैं कि, 'मैं जन्मा हूं'; मैं जीता हूं और मैं मरूंगा। जो प्रथम न हो और उपजे उसको जन्म कहते हैं; मध्य में जीता कहते हैं और फिर नाश हो उसको मृतक कहतेहैं पर आत्मा में तीनों विकार नहीं हैं। आत्मा उपजा भी नहीं क्योंकि, आदिही सिद्ध है; मृतक भी नहीं होता क्योंकि, अविनाशी है। चैतन्य आकाश सबका अधिष्ठान है और कालका भी अधिष्ठान है फिर उसका कैसे नाश हो? वहतो उदय अस्त से रहितहै। जिसमें देश, काल, वस्तु और जगत् का किञ्चन होताहै उससे आत्मा का नाश कैसे हो—इससे आत्मा अविनाशीहै। हे रामजी! जिस वस्तु को देश, काल का परिच्छेद होता है उसका नाश भी होता है सो देश, काल और वस्तु तीनों आत्मा में कल्पितहैं। जैसे सूर्य की किरणों में जल कल्पित होता है, तैसेही आत्मा में तीनों कल्पित हैं। कल्पित वस्तु के साथ सत्य का अभाव कैसेहो?

इससे आत्मा अविनाशी और अद्वैत है उसमें दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे शून्यस्थान में वैताल कल्पित होता है, तैसेही आत्मा में जगत् कल्पित है उस अभावरूप जगत् में प्रमाद से एकको अभाव जानता है और एक को सद्भाव जानता है। जब इस निश्चय को त्यागकर भीतर मोक्ष हो तब शान्ति प्राप्त होगी। विचार करके देखिये तो इस संसार में दुःख कहीं नहीं। जो मरके फिर जन्म लेता है तौभी दुःख कहीं न हुआ क्योंकि; शरीर जब वृद्धिभाव को प्राप्त होकर क्षीण हुआ तब उसको त्यागकर नवतनु को ग्रहण किया तो उत्साह हुआ; जो मृतक होकर फिर नहीं उपजता तौभी आनन्द हुआ क्योंकि; जबतक जीता था तबतक ताप था-एकका भाव जानता था, एक को ग्रहण करता था और एकको त्याग करता था तिनसे तपता था-उनसे यदि छूटा तो बड़ा आनन्द हुआ और जो सर्वचिदाकाशरूप है तौभी अपना आप आनन्दरूप है दुःख कुछ न हुआ। हे रामजी! एक प्रमादसेही दुःख होताहै और किसी प्रकार दुःख नहीं होता। यह सब जगत् आत्मरूप है और जो आत्मरूप है तो दुःख कैसे हो? जो तुम कहो कि, मैं अपने कर्म से डरताहूं जो परलोक में मुझको भय का कारण होगा तो ऐसे जानो कि, बुरे कर्म का दुःख यहां भी होता है और परलोक में भी होगा—इस्से बुरे कर्म मत करो। मैं तुमसे ऐसा उपाय कहताहूं जिससे तुम्हारे सर्व दुःख नष्ट होजावें। वह उपाय यह है कि, तुम जानो 'मैं नहीं'; अथवा ऐसे जानो कि, 'सर्व मैंही हूं' और सर्व वासना त्यागकर आपको अविनाशी जानो और आत्मसत्ता में स्थित होरहो। यह जगत् भी सब तुम्हारा स्वरूप है; जब कि, ऐसे आत्मा को जानोगे तब शरीर के त्याग कियेसेभी कोई दुःख न रहेगा और शरीर के होते भी दुःख कहीं नहीं। यदि पूर्व शरीर को त्यागकर नूतन जन्म लिया तौभी आनन्द हुआ और परमशान्ति हुई और जो चिदाकाशरूपहै तौभी परमआनन्द हुआ। हे रामजी! सर्वप्रकार आनन्द है परन्तु भ्रान्ति से दुःख भासता है। जब स्वरूप का साक्षात्कार होगा तब सर्वजगत् ब्रह्मानन्दस्वरूप भासेगा। हे रामजी! जिसको आत्मसत्ताका प्रकाशहै सो पुरुष सदा आनन्द में मग्न रहताहै और प्रकृत आचार को भी करता है परन्तु इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में स्वरूप से चलायमान कदाचित् नहीं होता। जैसे सुमेरु पर्वत वायु से चलायमान नहीं होता, तैसेही ज्ञानी इष्ट अनिष्ट में चलामान नहीं होता और परम गम्भीरता में रहता है। इससे जो कुछ आत्मा से भिन्न उत्थान होता है उसको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित होरहो कि, चिन्मात्रसत्ता शरत्काल के आकाशवत् निर्मल है। जब ऐसे स्वच्छ केवल और चिन्मात्रका अनुभव होगा तब जगत् द्वैतरूप होकर न भासेगा और व्यवहार में भी द्वैत न फुरेगा॥

इति श्रीयो॰निर्वाणप्रकरणेपरमउपदेशवर्णनंनामद्विशताधिकैकादशस्सर्गः॥ २११॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! जिन पुरुषोंको आत्मा परमात्माका साक्षात्कार हुआ
है वह कैसे होजाते हैं और उनका कैसा आचार होताहै सो मुझसे कहिये? वशिष्ठजी
बोले, हे रामजी! जैसे उनकी चेष्टा और जैसे उनका निश्चय है सो सुनो। सबके
साथ उनका मित्रभाव होता है; बल्कि; पाषाण से भी मित्रभाव होता है; बन्धुवों को
वे ऐसे जानते हैं जैसे वन के वृक्ष और पत्र होते हैं और स्त्रीपुत्रादिक के साथ वे ऐसे
होते हैं जैसे वन के मृग के पुत्र से होतेहैं। जैसे उनमें स्नेह नहीं होता, तैसेही पुत्रा-
दिकमें भी वे स्नेह नहीं करते और जैसे माता की पुत्र में दया होती है, तैसेही वे
सबपर दया करते हैं और निश्चयमें उदासीन रहतेहैं। जैसे आकाश किसीसे स्पर्श
नहीं करता, तैसेही वे किसीसे स्पर्श नहीं करते और जो कुछ आपदा है वह उनको
परमसुख है। जितने कुछ जगत् में रस हैं सो उनको विरस होजाते हैं; न किसीमें वे
राग करतेहैं और न किसीमें द्वेष करतेहैं। वे तृष्णा करते दृष्टिभी आतेहैं परन्तु हृदय
से जड़ और पत्थर की नाईं होते हैं, व्यवहार करतेभी हैं। परन्तु निश्चय में परम-
शून्य और मौन होते हैं अर्थात् सदा समाधि में स्थित होते हैं। वे सब क्रिया करते
दृष्टि आते हैं सो इस प्रकार करते हैं कि, सबको स्तुति करनेयोग्य हैं। वे यत्न से
रहित सब क्रिया का आरम्भ करते भी हैं परन्तु और निश्चय से सदा आपको अ-
कर्ता मानते हैं। जो कुछ उन्हें प्रारब्धवेग से प्राप्त होता है; उसको भोगते हैं और
देश काल क्रिया सबको अङ्गीकार करते हैं। जो परस्त्रीआदिक अनिष्ट आ प्राप्त हों
उनको त्यागभी करतेहैं परन्तु निश्चयसे सदा अकर्ता ज्योंके त्यों रहतेहैं और सुख
दुःख की प्राप्ति में समबुद्धि रहते हैं। प्रकृति आचार में यथाशास्त्र विचरतेहैं परन्तु
स्वरूपसे कदाचित् चलायमान नहीं होते। जैसे फूल के मारने से सुमेरु पर्वत चलाय-
मान नहीं होता, तैसेही दुःख सुखकी प्राप्ति में वे चलायमान नहीं होते। वे सदा स्व-
भावमें स्थित रहतेहैं और सुख दुःखको भोगते भी दृष्टि आतेहैं, पर उनके निश्चय
में कुछ नहीं होता। जैसे स्फटिक मणिके सन्मुख कोई रङ्ग रखिये तो उसमें भासता
है परन्तु उसका रूप कुछ और नहीं होजाता वह ज्योंकी त्योंही रहतीहै; तैसेही सुख
दुःख के भोग ज्ञानवान् में भी दृष्टिआते हैं परन्तु वह स्वरूप से कदाचित् चलाय-
मान नहीं होता—चेष्टा वे अज्ञानी की नाईं करते हैं परन्तु निश्चय से परमसमाधी
हैं। जैसे अज्ञानी को भविष्यत् का राग, द्वेष; सुख, दुःख, कुछ नहीं होता; तैसेही
ज्ञानीको वर्तमानका राग द्वेष नहीं होता और स्वाभाविक चेष्टा उसकी ऐसेही होती
है। वह सबसे मित्रभाव रखता है; न उससे कोई खेदवान् होताहै और न वह किसी
से खेदवान् होता है। जब उसको सुख प्राप्त होताहै तब रागवान् दृष्टि आता है और
दुःख की प्राप्तिमें द्वेषवान् दृष्टि आताहै परन्तु निश्चयसे उसको हर्ष शोक कुछ नहीं।

जैसे नट स्वांग लाता है और जैसा स्वांग होता है तैसीही चेष्टा करता है-राजा का स्वांग हो अथवा दरिद्री का-परन्तु निश्चय उसे अपने रूप मेंही होता है; तैसेही ज्ञानवान् में सुख दुःख दृष्टि आते हैं परन्तु निश्चय उसका आत्मस्वरूपमें ही होता है और पुत्र, धन, बान्धव आदिक को बुद्बुदे की नाईं जानना है। जैसे जल में तरङ्ग और बुद्बुदे होते हैं और फिर लीनभी होजाते हैं परन्तु जलको कुछ राग द्वेष नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान्‌को राग द्वेष कुछ नहीं होता। वह सबपर दयास्वभाव रखता है और पतित प्रवाह में जो सुख दुःख आन प्राप्त होता है उसको भोगता है। जैसे वायु दुर्गन्ध सुगन्ध को साथ लेजाती है परन्तु उसको राग द्वेष कुछ नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को राग द्वेष कुछ नहीं होता। बाहर अज्ञानी की नाईं वह व्यवहार करता है परन्तु निश्चय में जगत् को भ्रान्तिमात्र जानता है अथवा सर्वब्रह्म जानता है। वह सदा स्वभाव में स्थित होता है और अनिच्छित प्रारब्ध को भोगता है परन्तु जाग्रत् में सुषुप्ति की नाईं स्थित है; पूर्व और भविष्यत् की चिन्तना नहीं करता और वर्तमान में विचरता है। वह हृदय से शीतल रहता है और बाहर इष्ट-अनिष्ट दृष्टि आतेहैं पर हृदय से अद्वैतरूप है। ज्ञानवान् कर्म करताहै परन्तु कर्म में अकर्म को जानताहै और जीता ही मृतक की नाईं है। हे रामजी! जैसे मृतक होताहै और उसको फिर जगत् की कलना नहीं फुरती, तैसेही जिसको आत्मपद की अहंप्रत्यय हुई है उसको द्वैत नहीं भासता और प्रत्यक्ष व्यवहार उसमें दृष्टिभी आता है परन्तु निश्चय में अर्थ शान्त होगया है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह ज्ञानी के लक्षण जो आपने कहे सो उनको वही जानें और कोई नहीं जानता क्योंकि; बाहरकी चेष्टा तो अज्ञानी के तुल्यही है और हृदयमे शान्तरूप हैं? ब्रह्मचर्य से भी हृदय में धैर्य होता है और तपस्या से भी राग द्वेष कुछ नहीं फुरता। एक मिथ्या तपसी हैं कि, उसी प्रकार वन बैठते हैं; उनका निश्चय सत्यहै अथवा असत्यहै उनको कैसे जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह निश्चय सत्य हो अथवा असत्य हो यह लक्षण सत्य कहीं हैं और आत्मा के साक्षात्कार का निश्चय अपने आप से जानताहै और किसीसे नहीं जानाजाता इस कारण उसका लक्षण ज्ञानीही जानता है और कोई नहीं जानता। जैसे सर्पके खुदको सर्पही जानताहै और कोई नहीं जानता; तैसेही ज्ञानीका लक्षण स्वसंवेद्य है। हे रामजी! यह जो गुण कहेहैं सो ज्ञानवान् में स्वाभाविकही रहते हैं और दूसरे को यत्न सिद्ध हैं। ज्ञानवान्‌को सर्वजगत् भ्रान्तिमात्र है अथवा अनुभवदृष्टि से अपना आपही भासता है इसी कारण से वह परमशान्त है और राग द्वेष उसके निश्चय में नहीं फुरता और न वह अपने निश्चय को बाहर प्रकट करता है पर जो अधिकारी है वह उसको जानताहै और जो अनधिकारी अज्ञानी है वह उसको नहीं

जानसक्ता। जैसे वनमें चन्दनकी बड़ी सुगन्ध होतीहै परन्तु दूरसे नहीं भासती, तैसेही अज्ञानी उसके निश्चयसे दूरहै इसकारण वह नहीं जानसक्ता। चर्मदृष्टिसे उसको देखे तो नहीं देखसक्ता और वह अधिकारी विना जनावता भी नहीं। जैसे अमूल्य चिन्तामणि नीच को दीजिये तौभी उसके माहात्म्य को वह नहीं जानता, इससे उसको निरादर करता है; तैसेही आत्मरूपी चिन्तामणि और अनधिकारी अज्ञानी उसका माहात्म्य नहीं जानता इससे उसका निरादर करता है—इसीकारण ज्ञानवान् प्रकट नहीं करते। हे रामजी! यह जो प्रकट है कि, हमको अर्थ की प्राप्ति होगी; हमारा मान होगा; हमारे चेले बनेंगे और हमारी पूजा होगी उसे ज्ञानवान् गन्धर्वनगर और इन्द्रजालकी नाईं जानते हैं, फिर वे किसकी वाञ्छाकरें? इसकारण वे अनधिकारी को अपना इष्ट नहीं प्रकट करते और जो कोई निकट बैठता है तौभी अपने निश्चयरूपी अङ्गको सकुचालेते हैं। जैसे कुज अपने अङ्गको सकुचा लेताहै तैसेही वह अपने निश्चयरूपी अङ्ग को सकुचा लेता है पर जिसको अधिकारी देखता है उससे प्रकट करता है। हे रामजी! पात्र में रक्खा पदार्थ शोभता है अपात्र में रक्खा अनिष्ट होजाता है। जैसे गौको घास दिये से क्षीर होजाता है और सर्पको क्षीर दिये से विष होजाता है; तैसेही अधिकारी को दिया उपदेश शुभ होता है और अनधिकारी को अनिष्ट होजाता है। हे रामजी! अणिमा आदि ले जो सिद्धियां हैं वे जप, द्रव्य, काल अथवा देश से सबको प्राप्त होती हैं और अभ्यास के बल से अज्ञानी को भी प्राप्त होती हैं और ज्ञानीको भी होती हैं परन्तु ये ज्ञान का फल नहीं, जप आदिक का फल है। जिसकी सिद्धि के निमित्त जो पुरुष दृढ़ होकर लगता है वही सिद्ध होता है; जो इन सिद्धियों का दृढ़ अभ्यास करता है तो उनसे आकाशमार्ग में उड़ने और आनेजाने लगता है पर यह पदार्थ तबतक रस देते हैं जबतक आत्ममार्गसे शून्य हैं। हे रामजी! परम सिद्धता इनसे नहीं प्राप्त होती। परमसिद्धि आत्मपद है। जिसको आत्मपद की प्राप्ति हुई है वह इनकी अभिलाषा नहीं करता। ऐसा पदार्थ पृथ्वी में कोई नहीं और न आकाश में देवताओं के स्थानों मेंही है जिसमें ज्ञानी का चित्त मोहित हो, ज्ञानवान् को सब पदार्थ मृगतृष्णा के जलवत् भासतेहैं। मेरे सिद्धान्त में तो यही है कि, सदा विषयों से उपराम रहना और आत्माको परम-इष्ट जानना इसीका नाम ज्ञान है। ज्ञानीको जो प्रारब्ध से प्राप्त हो उसको करता है परन्तु करने से उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और न करनेमें कुछ प्रत्यवाय भी नहीं होती। न किसी अर्थ का वह आश्रय करता है; न उसके निमित्त किसी भूतका आश्रय करता है और सर्वदा अपने आप स्वभाव में स्थित होता है। ऐसे निश्चय को पाकर वह आश्चर्यवान् होताहै और कहता है कि; बड़ा आश्चर्य है कि जो सदा

अपना आप स्वरूप है उसको विस्मरण करके मैं इतने काल भ्रमता रहा पर अब मुझको शान्ति प्राप्ति हुईहै। जगत्को देखके वह हँसताहै क्योंकि; यह जगत् अनायासरूप है और अपनी ही संवित् में स्थित है। जैसे आरसी में प्रतिबिम्ब स्थित होताहै, तैसेही अपनी संवित् में जगत् स्थित है उसको जो द्वैत जानता है और राग द्वेषसे जलता है ऐसे अज्ञानी को देखकर वह हँसताहै और व्यवहार करताभी हँसता है। जैसे किसीने स्वप्नेमें हाथमें सुवर्ण दिया और फिर लेलिया और इसने उसको स्वप्ना जाना तो चेष्टा करताहै परन्तु हँसताहै और कहताहै कि; यह मेराही स्वरूप है; तैसे ज्ञानी व्यवहार करता भी अपने निश्चय में हँसता है। जैसे किसी ग्राम में अग्नि लगे और एकपुरुष उस गांव से निकलकर पर्वत पर जा बैठे तब वह जलतों को देखकर हँसता है; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष भी संसाररूपी जलते नगर से निकल कर आत्मरूपी पर्वतपर जा बैठा है और अज्ञानियों को दग्ध होता देखकर हँसता है अर्थात् आप अशोच होकर उनको सशोच देखताहै। हे रामजी! जब ज्ञानवान् बोधदृष्टि से देखता है तब अद्वैतसत्ता भासती है और जब अन्तवाहक में स्थित होकर देखताहै तब जैसे पदार्थ होतेहैं तैसेही उनको देखताहै और आपको सदा शान्तरूप देखता है—अर्थ यह कि, जो आत्मतत्त्व परमानन्दस्वरूप है उससे भिन्न जितने कुछ पदार्थ हैं सो सब दोषरूप हैं और सिद्धि से आदि लेकर जितनी क्रिया हैं वे संसार का कारण हैं। जैसे समुद्रमें कई तरङ्ग बड़े और कई छोटे होते हैं परन्तु समुद्र ही में हैं जिस तरङ्ग का आश्रय करेगा वह सिद्धता को प्राप्त होवेगा और हलने, डोलने, कहनेसे मुक्त होवेगा; तैसेही सिद्धता आदिक जो क्रिया हैं वे कहीं बड़े ऐश्वर्यहैं और कहीं छोटे ऐश्वर्यहैं परन्तु संसार ही में हैं जो पुरुष इस क्रियाको त्यागकर अन्तर्मुख होगा वह संसाररूपी समुद्रको त्यागकर आत्मरूपी पारको प्राप्त होगा। हे रामजी! जिस पुरुष को जिस पदार्थ का अभ्यास होताहै उसको वही प्राप्त होता है। जैसे पाषाण को अभ्यास करता है सो प्राप्त होता है। जिसको अभ्यास से आत्मपद प्राप्त होताहै वह नित्यप्रति घिसते रहिये तो वह भी चूर्ण होजाताहै; तैसेही जिस पदार्थ का सर्वदा परम श्रेष्ठ होजाताहै; सब जगत्से ऊंचे बिराजताहै और परमदयाकी खान होताहै। जैसे मेघ समुद्रसे जल लेकर वर्षा करतेहैं सो जलका स्थान समुद्रही होता है; तैसेही जितने कुछ दया करते दृष्टि आतेहैं सो ज्ञानके प्रसादसेही करतेहैं। सर्व दयाका स्थान ज्ञानवानहीहै और ज्ञानवान् सबका हृदयहै। जो कुछ प्रवाहपतित कार्य आन प्राप्त होता है उसको वह करता है और जो शरीर को दुःख आन प्राप्त होताहै उसको ऐसे देखताहै जैसे अन्य शरीर को होताहै और अपने में सुख दुःख दोनों का अभाव देखता है। जिनको यह अभ्यास नहीं हुआ वे शरीर के राग द्वेष मे जलतेहैं और ज्ञानी

को शान्तिमान् देखकर औरोंको भी प्रसन्नता उपज आती है। जैसे पुण्य करके जो स्वर्ग को गया है उसको वहां इष्ट पदार्थ दृष्ट आते हैं और कल्पवृक्ष की सुन्दर मञ्जरियां और सुन्दर अप्सरा आदिक भासती हैं जिन पदार्थों को देखकर प्रसन्नता उपजती है; तैसेही ज्ञानवान् की संगतिमें जो पुरुष जाताहै उसको प्रसन्नता उपज आती है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शीतलता उपजाता है; तैसेही ज्ञानवान् की संगति शीतलता उपजाती है। ज्ञानवान् आत्मपद को पाकर आनन्दवान् होता है और वह कभी आनन्द दूर नहीं होता क्योंकि; उसको उस आनन्दके आगे अष्टसिद्धियां तृण समान भासती हैं। हे रामजी! ऐसे पुरुषों का आचार और जिन स्थानों में वे रहतेहैं वह भी सुनो। कई तो एकान्त जा बैठते हैं, कई शुभस्थानों में रहतेहैं, कई गृहस्थीही में रहते हैं; कई अवधूत हुये सबको दुर्वचन कहते हैं कई तपस्या करते हैं; कई परम ध्यान लगाके बैठते हैं; कई नङ्गे फिरते हैं; कई बैठे राज्य करते हैं; कई पण्डित होकर उपदेश करते हैं; कई परममौन धारे हैं; कई पहाड़ की कन्दराओं में जा बैठते हैं; कई ब्राह्मण हैं; कई संन्यासी हैं; कई अज्ञानी की नाईं बिचरतेहैं; कई नीच पामर होतेहैं और कई आकाश में उड़ते हैं और नाना प्रकार की क्रिया करते दृष्ट आते हैं परन्तु सदा अपने स्वरूपमें स्थित हैं। हे रामजी! जिसको पुरुष कहतेहैं सो देह और इन्द्रियां पुरुष नहीं और अन्तःकरण चतुष्टय भी पुरुष नहीं; पुरुष केवल चिदाकाशरूप है; वह न कुछ करता है और न किसीसे उसका नाश होताहै। जैसे नट स्वांग ले आता है और सब चेष्टा करता है परन्तु नटभाव से आपको असंग देखताहै; तैसेही ज्ञानवान् व्यवहार भी करतेहैं परन्तु आपको अकर्ता और असंग देखते हैं; और ऐसा निश्चय रखते हैं कि, हम अछेद, अदाह, अक्लेद, अशोष, नित्य, सर्वगत, स्थिर, अचल और सनातन हैं। हे रामजी! इस प्रकार आत्मा में जिसको अहंप्रतीति हुईहै उसका नाश कैसे हो और वह बन्धायमान कैसे हो? वह पुरुष चाहे जैसे आरम्भकरे और चाहे जैसे स्थान में रहे उसको बन्धन कुछ नहीं होता। चाहे वह पाताल में चलाजावे, आकाश में उड़ता फिरे अथवा देशान्तरों में भ्रमता फिरे उसको न कुछ अधिकता है और न कुछ ऊनता है। पहाड़में चूर्ण होजावे तौभी वह चूर्ण नहीं होता। यह तो चैतन्य पुरुष है शरीर के नाश हुये इसका नाश कैसे हो? ऐसे अपने स्वरूप में वह सदा स्थित है और आकाशवत् परम निर्मल, अजर, अमर और शिवपद है। इससे हे रामजी! ऐसे जानकर तुमभी अपने स्वरूप में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचैतन्यआकाशपरमज्ञानवर्णनन्नाम द्विशताधिकद्वादशस्सर्गः॥ २१२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक भावमात्र है; दूसरा भासमात्र है और तीसरा

भासितमात्रहै। भावमात्र केवल चैतन्यमात्रको कहतेहैं; उसमें जो चैत्योन्मुखत्व अहं-कार का उत्थान हुआ उसका नाम भास है और उसमें जो जगत् हुआ उसका नाम भासित है। भासित कल्पित का नाम है। कल्पित के नाश हुये अधिष्ठान का नाश नहीं होता; जो अधिष्ठान कुछ और भाव हो तो उसका नाश भी होवे सो तो और कुछ बना नहीं। उसके फुरनेसे तीन संज्ञा हुईहैं सो फुरना भी उसीका किञ्चन है। आत्मा फुरने न फुरने में ज्योंका त्योंहै। जैसे स्पन्द और निस्पन्दवायु एकहीहै; तैसेही बोध-अबोधमें आत्मा एकहीहै। बोध, अबोध, फुरना, अफुरना एकही अर्थहै। हे रामजी! वह आत्मा किससे और कैसे नाश हो? चैतन्यभी मरता हो तो इसका किञ्चन जगत् कैसे रहे? किञ्चन आभासको कहतेहैं, सो आभास अधिष्ठान विना नहीं होता—इससे आत्माका नाश नहीं होता और तुम जो चैतन्यको भी मरता मानो कि, मरके फिर नहीं उपजता तौभी आनन्दहुआ। मेरा भी यही उपदेशहै कि, चैतन्यता मिटे। जब चैत-न्यता उपजतीहै तब जगत् भासताहै और उसके मिटे से आत्माही शेष रहेगा। ब्रह्म चैतन्यका तो नाश नहीं होता। जो तुम कहो कि, वह चैतन्य नाश होजाता है-यह और चैतन्यहै जिससे जगत् होताहै तो; हे रामजी! अनुभव तौ एकहीहै उसका नाश कैसे मानिये? जैसे बरफ़ शीतलहै चाहे किसी ठौर पान कीजिये वह सबको शीतलहीहै और अग्नि उष्णही है चाहे जिस ठौर से स्पर्श कीजिये उष्णही अनुभव होता है तैसेही आत्माका स्वरूप चैतन्यहै। वह एक अखण्डरूपहै और जहां कोई पदार्थ भासता है उसी चैतन्यतासे प्रकाशताहै। वह चैतन्यसत्ता स्वच्छ निर्मल और अद्वैत सदा अ-पने आपमें स्थितहै; उसका नाश कैसेहो? जो तुम शरीरके नाशहुये आत्माको नाश होता मानो तो नहीं बनता क्योंकि, शरीर यहां अखण्ड पड़ाहै और वह परलोक में चेष्टा करताहै और पिशाच आदिकका शरीर भी नहीं दृष्ट आता। जो शरीर विना उसका अभाव होता हो तो उनका भी अभाव होजाता; इस से शरीरके अभाव हुये आत्माका अभाव नहीं होता क्योंकि; शरीर के मृतक हुये कुछ चेष्टा शरीर से नहीं होती क्योंकि; पुर्यष्टका जीवकला में नहीं। शरीर तो अखण्ड पड़ा है उससे कुछ नहीं होता और जीव परलोक में सुख दुःख भोगता है तो शरीर के नाशहुय नाश न हुआ। जो तुम कहो कि, सब स्वभाव उसमें रहता है तो सर्वदा काल उसको क्यों नहीं देखते उसी समय आपको क्यों मृतक देखते हैं और बान्धव, भाई, जन सब उसी समय क्यों मृतक जानते हैं और जो तुम कहो कि, जीवित धर्म से वेष्टित है इसी से सब अवस्था का अनुभव नहीं करता मृत्यु समय जब जीवत्वभाव नष्ट होजाता है तब मृतक होता है जो ऐसे हो तो परलोक का अनुभव न करे तो ऐसा नहीं है क्योंकि, जब शरीर पात होता है तब सब अवस्था को भी जानता है और

परलोक में शब्द होताहै उसका अनुभव करताहै; अपने कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगताहै और देश स्थानको प्राप्त होताहै। यह वार्त्ता शास्त्रसे भी प्रसिद्धहै और अनुभव करके भी प्रसिद्धहै कि; मृतकको किसीने नहीं जाना और अभावको किसीने नहीं जाना और जिसने जाना वह आत्मा एक अखण्डहै-इससे हे रामजी! शरीरके नाश में आत्माका नाश नहीं होता; वह तो नित्य शुद्धहै और जैसा निश्चय उसमें होताहै तैसाही हो भासताहै और जैसा मिलताहै; तैसा प्रकाशताहै। ऐसा जो सत्य आत्माहै वह किसीमें बन्धायमान नहीं होता जैसे रस्सी में सर्प आकार भासताहै पर वह रस्सी सर्प तो नहीं होजाती जब कल्पित सर्प का अभाव होजाता है तब रस्सी ज्योंकी त्यों रहती है; तैसेही आत्मसत्ता आकार हो भासती है परन्तु आकार तो नहीं होती जब आकारका अभाव होजाताहै तब आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों रहतीहै इसी कारण बन्धायमान नहीं होती। ऐसी आत्मसत्तामें जो विकार भासते हैं सो भ्रममात्रहैं और भ्रान्ति से ही लोग दुःख पाते हैं। हे रामजी! वह जगत् आभासमात्रहै और उस आभासमात्र में जो राग द्वेष आदिक फुरते हैं उनकी निवृत्तिका उपाय मैं तुमसे कहता हूं। जो कुछ उपदेश मैंने किया है उसके विचारने से भ्रान्ति निवृत्त होजावेगी और आत्मपदकी प्राप्ति होगी। अभ्यास विना आत्मपद की प्राप्ति चाहे तो कदाचित् न होगी; जब वारम्बार अभ्यास करेगा तब द्वैतभ्रम मिटजावेगा और आत्मपद प्राप्त होगा। जिसका कोई नित्य अभ्यास करताहै और उसका यत्नभी करताहै सो प्राप्तहोताहै। वह कौन पदार्थ है जो अभ्याससे प्राप्त न हो। जो थककर फिरे नहीं और दृढ़ अभ्यास करे तो प्राप्त होताही है। राज्य की लक्ष्मी तब प्राप्त होती है जब रण में दृढ़ होकर युद्ध करते हैं और जय होती है और केवल मुख से कहे कि, मेरी जय हो तो नहीं होती; तैसेही आत्मपद भी तब प्राप्त होगा जब दृढ़ अभ्यास करोगे-अभ्यास विना कहनेमात्र से प्राप्त नहीं होता। हे रामजी! इस मन के दो प्रवाह हैं एक जगत् का कारण है और दूसरा स्वरूपकी प्राप्तिका कारणहै। जो असत्यशास्त्र हैं और जिनमें आत्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहा उनको त्यागो। यह जो महारामायण मोक्ष उपाय है उसमें चार वेद षट्शास्त्र और सर्व इतिहास और पुराणों का सिद्धान्त मैंने कहा है और इसके समान और न किसीने कहा है न कोई कहेगा। ऐसा जो शास्त्र है इसके विचार में मन को लगावो तो शीघ्रही आत्मपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! आत्मज्ञान वर और शापकी नाईं नहीं कि; कहनेमात्र से सिद्ध हो; इसकी प्राप्ति तब होगी जब वारम्बार विचार करके दृढ़ अभ्यास करोगे और जब इसकी भावना होगी तब मुक्तिपदको प्राप्त होगे। ऐसा कल्याण पिता, माता और मित्रभी न करेंगे और तीर्थ आदिक सुकृतसेभी न होगा जैसा कल्याण वारम्बार विचारने से मेरा उपदेश करेगा।

इससे और सब उपायोंको त्यागकर इसीका विचार करो तो सब भ्रान्ति मिटजावेगी और शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी! अज्ञानरूपी विसूचिकारोग है और उसमें पड़े जीव जलते हैं। जो हमारे शास्त्र को विचारेगा उसका रोग नष्ट होजावेगा। ईश्वर की यह महामाया है कि, मिथ्याभ्रम से जीव दुःखी होते हैं। जो अपना दुःख नाश करना चाहे वह मेरा शास्त्र विचारे। जितने सुन्दरपदार्थ दृष्ट आते हैं वे सब मिथ्या हैं और उनके निमित्त यत्न करना परमआपदा है। यह सब पदार्थ आपातरमणीय हैं जो देखनेमात्र सुन्दर हैं पर भीतर से शून्य हैं। इनकी प्राप्ति में मूर्ख आनन्द मानते हैं। हे रामजी! यह पदार्थ तबतक सुन्दर भासते हैं जबतक मृत्यु नहीं आई, जब मृत्यु आवेगी तब सब क्रिया रहजावेंगी इस लिये इनके निमित्त जो यत्न करते हैं वे मूर्ख हैं। जिसकाल में मृत्यु आती है उसकाल कष्ट प्राप्त होताहै और यदि चन्दन का लेप कीजिये तौभी शीतल नहीं होता। जिस द्रव्य के निमित्त जीव बड़े यत्न करताहै; युद्ध करताहै और प्राण त्यागता है सो धन स्थिर नहीं रहता एकदिन धन और प्राणी का वियोग होजाता है और जब वियोग होता है तब कष्ट पाता है। मैं ऐसा उपाय कहताहूं जिसमें यत्न भी थोड़ा हो और सुगमता से आत्मपद प्राप्त हो। जब शास्त्र के अर्थ में दृढ़ अभ्यास होताहै तब वह अजर, अमरपद प्राप्त होता है; इससे तुम बोधवान् हो और बोध करके अभ्यास का यत्न करो। जो यत्न न करोगे तो अज्ञानरूपी शत्रु लातें मारेगा; यदि उस शत्रु को मारना हो तो निर्मान और निर्मोह होकर आत्मपद का अभ्यास करो। हे रामजी! जो पुरुष अब तक अज्ञानरूपी शत्रु के मारने और आत्मपद पानेका यत्न नहीं करते वे परम कष्ट पावेंगे और संसाररूपी दुःख से कदाचित् मुक्त न होंगे। इस कष्ट से निकलने का यही उपाय है कि, महारामायण ब्रह्मविद्या का जो उपदेश है उसको विचार करके अपने हृदय में धारणा करें। इस उपाय से भ्रान्ति मिटजावेगी। यह महारामायण उपदेश सर्वसिद्धान्तों का सार है; और २ शास्त्रों से आत्मपद को प्राप्त हो अथवा न भी हो परन्तु इसके विचार से अवश्य आत्मा को प्राप्त होगा। जैसे तिलकी खलीसे तेल निकलना कठिन है और तिलों से तेल निकालिये तो निकलता है; तैसेही मेरा उपदेश तिल की नाईंहै। और इतर खली की नाईंहै हे रामजी! सम्पूर्ण शास्त्रों के मुख्यसिद्धान्तों का सार जो सिद्धान्त है सो मैंने तुम से कहा है। जो आत्मा सदा विद्यमानहै उसको लोग भ्रान्ति से अविद्यमान जानते हैं इसलिये उसीके विद्यमान करने को सर्वशास्त्र प्रवर्त्तते हैं पर जो उनके विचार से आत्मपद को विद्यमान नहीं जानता वह मेरे उपदेश के विचारने से अवश्य आत्मपद को विद्यमान जानेगा यह निश्चय है। हे रामजी! और शास्त्रों के दृढ़ विचार और यत्न से जो सिद्धि होती है

सो इस शास्त्र के विचार से सुखसेही प्राप्त होगी। शास्त्रकर्ता का और लक्षण न विचारना पर शास्त्र की युक्ति विचार देखनी है। जो कुछ सर्वशास्त्र का सार सिद्धान्त है सो मैंने तुमसे सुगममार्ग से कहाहै। इसके विचार से इसकी युक्ति देखो अज्ञानी जो कुछ मुझको कहते हैं और हँसते हैं सो मैं सबही जानता हूं परन्तु मेरा जो दया का स्वभाव है इससे मैं चाहताहूं कि, किसी प्रकार वे नरकरूप संसार से निकलें और इसीकारण मैं उपदेश करता हूं। हे रामजी! मैं जो तुमको उपदेश करताहूं सो किसी अपने अर्थ के निमित्त नहीं करता कि, मेरा कुछ अर्थ सिद्ध हो। जो कोई तुमको उपदेश करता है सो सुनो; तुम्हारा जो कोई बड़ा पुण्य है वही शुद्ध संवित् होकर मलीनसंवित् को उपदेश करता है। वह संवित् न देवता है; न मनुष्य है; न यक्ष है; न राक्षस है और पिशाच आदिक भी नहीं है; केवल जो ज्ञानमात्र है सो तुमहीं हो; मैं भी वही हूं और जगत् भी वही है और जो सर्व वही है तो वासना किसकी करनी है। हे रामजी! जीव को दुःख का कारण वासना ही है। जो पुरुष इस संसार बन्धन के दुःख की चिकित्सा अब न करेगा वह आत्महत्याराहै और बड़े दुःख में जापड़ेगा जहां से निकलने की सामर्थ्य न होगी इससे अबहीं उपाय करो। जबतक सर्व भाव की वासना निवृत्त नहीं होती तबतक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता—इसीका नाम बन्धन है। जब वासना क्षय होगी तब आत्मपद की प्राप्ति होगी। जितने पदार्थ भासते हैं वे सब अविचार सिद्ध हैं, विचार किये से कुछ नहीं रहते; और जो विचार कियेसे न रहें उनकी अभिलाषा करनी व्यर्थ है। जो वस्तु होती हो उसके पाने का यत्न भी कीजिये तो बनताहै और जो वस्तु होवेही नहीं उसके निमित्त यत्न करना मूर्खताहै। यह जगत् के पदार्थ असत्यरूप हैं। जैसे शशे के सींग असत् हैं और मरुस्थल की नदी असत् होती है; तैसेही यह जगत् असत् है। जो सम्यक्दर्शी ज्ञानवान् पुरुष है वह जानता है कि, यह जगत् शशे के सींगवत् असत् और भ्रान्तिमात्र है इसलिये इसके निमित्त यत्न करना मूर्खताहै। जो पदार्थ कारण विना दृष्टि आवे उसको भ्रान्तिमात्र जानिये। आत्मा जगत् का कारण नहीं इससे जगत् मिथ्या है। आत्मपद सब इन्द्रियों और मन से अतीत है और जगत् पाञ्चभौतिक है। जगत् मन और इन्द्रियों का विषय है और आत्मपद मन और इन्द्रियोंका विषय नहीं तो उसे जगतका कारण कैसे कहिये? जो अशब्दपदहै सो नाना प्रकार शब्दका कारण कैसे हो और जो निराकार आत्मपद है सो पृथ्वी आदिक नाना प्रकारके भूत आकारों का कारण कैसे हो? हे रामजी! जैसा कारण होताहै उससे तैसाही कार्य उपजता है; आत्मा निराकारहै और जगत् साकार है इस लिये निराकार साकारका कारण कैसेहो? जैसे वटका बीज साकार होता है इस लिये उसका कार्य वट भी साकार होता है और साकार से निराकार कार्य तो नहीं

होता; तैसेही निराकार से साकार कार्य भी नहीं होता। इससे इस जगत् का कारण आत्मा नहीं और न समवाय कारणहै, न निमित्तकारण है। निमित्तकारण तब होताहै जब कुछ द्वितीय वस्तु होतीहै। जैसे मृत्तिका से कुलाल घट बनाता है। पर आत्मा तो अद्वैत है वह निमित्तकारण कैसे हो? और समवाय कारण भी तब होता है जब साकार वस्तु होतीहै–जैसे मृत्तिका परिणामसे घट होता है–पर आत्मा निराकार अपरिणामी है जगत् का कारण कैसेहो? दोनों कारणों से जो रहित भासे उसे जानिये कि, भ्रान्तिमात्र है जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के आकार भासते हैं सो कारण विना भासतेहैं इस लिये वह भ्रान्तिमात्र है; तैसेही यह जगत् भी कारण विना भ्रान्तिमात्र भासता है। आत्मा में जगत् कदाचित् नहीं हुआ। जैसे प्रकाश में तम नहीं होता, तैसेही आत्मा में जगत् नहीं। यदि तुम कहो कि, तो फिर भासता क्याहै तो उसीका किञ्चन भासता है जो वही रूपहै जैसे चलतीहै तौभी वायुहै और ठहरतीहै तौभी वायु है, चलने और ठहरनेमें कुछ भेद नहीं होता और जैसे आकाश और शून्यतामें भेद कुछ नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहींहै–वही आत्मसत्ता फुरनेसे जगत्रूप हो भासतीहै। जैसे जल और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं और कुछ द्वैत वस्तु है नहीं। जो लोग कहतेहैं कि, जगत् कर्मों से होता है सो असत्यहै क्योंकि, कर्म भी बुद्धि से होतेहैं सो आत्मा में बुद्धिही नहीं तो कर्म कैसे हो और जो कर्मही नहीं तो जगत् कैसे हो? जैसे शशे के सींग के धनुष से बाण चलाना असत्यहै, तैसेही कर्मसे जगत्का होना असत्य है। एक कहतेहैं कि, सूक्ष्म परमाणु से जगत् होजाताहै पर यह भी असत्यहै क्योंकि, जो सूक्ष्म परमाणु प्रमाण से जगत्-रूप हुये होते तो बुद्धिरूप जगत् न भासता पर यह तो बुद्धिरूप क्रिया होती दृष्ट आती है। जो परमाणु से जगत् होता तो इनहीं से बढ़ताजाता क्योंकि; जो परमाणु जड़ है वही बढ़ते हैं पर ऐसे तो नहीं होता; बुद्धिपूर्वक चेष्टा होती दृष्ट आतीहै, इसीसे कहाहै कि, वे असत्य कहते हैं क्योंकि; सूक्ष्म भी किसीसे उत्पन्न हुआ चाहिये और कोई उसके रहने का स्थान भी चाहिये पर आत्मा में देश, काल और वस्तु तीनों कल्पित हैं। जो आत्मा में ये न हुये तो परमाणु कैसेहो और जगत् कैसेहो? आत्मा अद्वैतहै इससे जगत् न उपजाहै और न नष्ट होताहै। जो जगत् उपजा होता तो नष्ट भी होता, जो उपजाही नहीं तो वह नष्ट कैसेहो? आत्मसत्ता ज्योंकात्यों अपने आपमें स्थित है। इससे हे रामजी! मैं, तुम और सब जगत् आकाशरूपहै किसीके साथ आकार नहीं-सब निराकाररूपहै। जो तुम कहो कि फिर बोलते चालते क्यों हैं? तो जैसे स्वप्न में सब आकाशरूप होते हैं पर नाना प्रकार की चेष्टा करते दृष्ट आते हैं और बोलते चालते हैं; तैसेही यह भी बोलते चालते हैं परन्तु आकाशरूप है। तुम्हारा जो स्वरूप

है सो भी सुनो। देश को त्यागकर देशान्तरको जो संवित् जाता है और उसके मध्य जो ज्ञानसंवित् है वही तुम्हारा स्वरूप है। वह अनामय और सर्व दुःखसे रहित है। जैसे जब जाग्रत् दशा को त्यागकर जीव स्वप्न में जाता है तो जाग्रत् त्याग दिया हो और स्वप्ना न आया हो मध्य में जो अचेत चिन्मात्र सत्ता है वही तुम्हारा स्वरूप है; उसमें पण्डित और ज्ञानवानों का निश्चय है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक उसी में स्थित रहते हैं उनको कदाचित् उत्थान नहीं होता। जैसे बरफ़ से अग्नि कदाचित् नहीं उपजती, तैसेही उनको स्वरूपसे उत्थान कदाचित् नहीं होता। वह आत्मसत्ता न उपजती है; न विनशती है और न और की और होती है-सर्वदा अपने स्वभाव में स्थित है। हे रामजी! जितना कुछ जगत् तुम देखते हो सो वास्तव में कुछ उपजा नहीं-भ्रम से भासता है। जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के आरम्भ होते दृष्ट आते हैं और जागे से उनका अत्यन्त अभाव भासता है, तैसेही यह जगत् भी है। आदि जो अद्वैत तत्त्व में स्वप्ना हुआ है उसमें ब्रह्मा उपजे और उन्होंने आगे जगत् रचा सो ब्रह्मा भी आकाशरूप है स्वरूपसे भिन्न कुछ नहीं हुआ-सब असत्यरूप है। जैसे स्वप्न में नदी और पर्वत दृष्ट आते हैं परन्तु कुछ उपजे नहीं; अनुभवसत्ताही ज्योंकी त्यों स्थितहै; तैसेही ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त जगत् सब असत्यरूपहै जिस को तुम ब्रह्मा कहते हो वह वास्तव में कुछ उपजे नहीं तो जगत् की उत्पत्ति मैं तुम से कैसे कहूं? जैसे मरुस्थलकी नदीही उपजी नहीं तो उसमें मछलियां कैसे कहिये? तैसेही आदि ब्रह्मा नहीं उपजा तो उसमें जगत् कैसे उपजा कहिये? केवल आत्मचैतन्यसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और यह जगत्भी वही रूप है परन्तु अज्ञानसे विपर्ययरूप भासताहै। जैसे स्वप्न में पुरुष अनुभवरूप होता है और अपने प्रमाद से नाना प्रकार के पदार्थ और पर्वत, जल, पृथ्वी, जन्म, मरणादिक विकार देखता है परन्तु हुआ कुछ नहीं आत्मसत्ताही ज्यों की त्यों स्थित है और अज्ञान से विषयरूप भासतेहैं; तैसेही इस जगत् को भी जानो-आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं सब चिदाकाशरूप है और अज्ञानसे आत्मसत्ताही जगत्रूप हो भासती है। इससे हे रामजी! जिसके अज्ञान से यह जगत् भासता है और जिसके ज्ञान से निवृत्त हो जाताहै ऐसे आत्मतत्त्वके पानेका यत्न करो। वह नित्य, शुद्ध और परमानन्दस्वरूपहै और सदा अपने स्वभाव में स्थितहै और वही तुम्हारा अनुभवरूप है जो सदा अनुभव करके प्रकाशताहै और उसमें स्थित होने में क्या कायरता करनी है? हे रामजी! जितना प्रपञ्च है सो सब भ्रान्तिमात्र है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रान्तिमात्र है तैसेही आत्मा में जगत् भ्रममात्र है इससे उसको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्र०सर्वपदार्थभाववर्णनंत्रयोदशाधिकद्विशततमस्सर्गः॥ २१३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिस प्रकार यह जगत् आभास फुरा है और भासता है सो भी सुनो। आदि जो शुद्धअचेत चिन्मात्रहै उसमें जब चैतन्यता फुरती है तब वह वेदन होती है और उसमें शब्दतन्मात्र होता है फिर उसमें आकाश उत्पन्न होता है और फिर स्पर्श की इच्छा होतीहै तब वायु उपजती है। जब आकाश में उत्थान होता है तब उस वायु और आकाश के संघर्षणभाव से अग्नि उपजती है और जब अग्नि में उष्णस्वभाव होता है तब जल उत्पन्न होता है अर्थात् जब तेज की अधिकता होती है तब जल उत्पन्न होआता है। जब स्वेदवत् जल बहुत इकट्ठा होता है तब उसमें पृथ्वी उत्पन्न होती है। इस प्रकार आकाश और वायुसे जल और पृथ्वी ये उत्पन्न होतेहैं तब तत्त्वों से शरीर उपजते हैं और स्थावर जङ्गमभूत और नाना प्रकार का जगत् दृष्ट आता है सो सब पाञ्चभौतिक हैं और वास्तव में न पञ्चभूतहैं; न कोई उपजताहै और न नष्ट होताहै केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जैसे स्वप्न में नाना प्रकार का जगत् आरम्भ प्रमाणसहित भासता है परन्तु वास्तव में कुछ उपजा नहीं आत्मसत्ता ही जगत् आरम्भ प्रमाणसहित भासता है परन्तु वास्तव में कुछ उपजा नहीं आत्मसत्ताही चित्तके फुरने से जगत्रूप हो भासती है; तैसेही यह जाग्रत् जगत्भी जानो। हे रामजी ! यह जगत् सब अपना अनुभवरूप है पर भ्रम करके आकारसहित भासता है और जब भली प्रकार विचारके देखिये तब जगत्भ्रम मिटजाता है केवल चैतन्य आत्मतत्त्वमात्र शेष रहता है। जैसे निद्रादोष से स्वप्न में नाना प्रकारके क्षोभ भासतेहैं और जब जागता है तब एक अपना आपही भासता है; तैसेही आत्मसत्तामें जागेसे अद्वैत ही अद्वैत भान होता है। हे रामजी ! जो बोधसमय में द्वैत कुछ न भासे तो अबोध समयभी जानिये कि, द्वैत कुछ नहीं हुआ और जो बोध के समय सत्य भासे तो जानिये कि, सर्वदाकाल यही सत्ता है। हे रामजी ! यह निश्चय धारो कि जगत् कुछ वस्तु नहीं- जैसे आकाश में नीलता; किरणों में जल और रस्सी में सर्प भासता है, तैसेही आत्मा में जगत् भासताहै और विचार कियेसे कुछ नहीं पायाजाता। हे रामजी ! अपनी कल्पनाही जीवको जगत्रूप हो भासती है और कुछ नहीं। जैसे स्वप्न की सृष्टि अपनी कल्पनारूप है परन्तु निद्रादोष से भिन्न हो भासती है और उसमें राग द्वेष उपजता है पर जागे से सब क्षोभ मिटजाते हैं; तैसेही ज्ञान से जगत् सत्य भासता है और उसमें राग द्वेष भासते हैं–ज्ञान से सब शान्त होजाते हैं। हे रामजी ! यह जगत् भ्रममात्र है; ज्ञानवान् के निश्चय में सब चिदाकाश है और अज्ञानी के निश्चय में जगत् है। यदि बड़े क्षोभ प्राप्त हों तौ भी ज्ञानवान् को चला नहीं सके क्योंकि, उसके निश्चय में कुछ द्वैत नहीं फुरता, वह सदा एकरस रहता

है। यदि प्रलयकाल के मेघ गर्जें; समुद्र उछले और पहाड़ के ऊपर पहाड़ पड़े; ऐसे भयानक शब्द हों तौ भी ज्ञानवान् के निश्चय में कुछ द्वैत नहीं फुरता। जैसे कोई पुरुष सोया पड़ा हो तो उसके स्वप्ने में बड़े क्षोभ होते हैं और जाग्रत् के निकट बैठे भी नहीं भासते; तैसेही ज्ञानवान् को निश्चय में द्वैत कुछ नहीं भासता क्योंकि; है नहीं और अज्ञानी को होते भासते हैं। जैसे बन्ध्या स्त्री स्वप्ने में अपने पुत्र को देखती है सो अनहोता भ्रम से उसको भासता है तैसेही अज्ञानी को अनहोता जगत् सत्य होकर भासता है। हे रामजी! भ्रम से अनहोता जगत् भासता है और होतेका अभाव भासता है। जैसे बन्ध्या अनहोते पुत्र को देखती है और पुत्रवाली स्वप्ने में पुत्र का अभाव देखती है; तैसेही अज्ञान से अनहोना जगत् सत् भासता है और सदा अनुभवरूप आत्माका अभाव भासताहै सो भ्रमसेही और का और भासता है। जैसे दिन में सोया हुआ स्वप्ने में रात्रि देखता है और रात्रिको सोया हुआ स्वप्ने में दिन देखता है; शून्यस्थान में नाना प्रकार के व्यवहार और अन्धकार में प्रकाश देखताहै सो भ्रमसेही देखताहै और पृथ्वी पर सोयाहै और स्वप्नेमें आकाश पर दौड़ता फिरता है और आपको गढ़े में गिरता देखताहै सोभी भ्रमसेही भासता है; तैसेही यह जाग्रत् जगत् का विपर्ययरूप भी भ्रम से ही देखता है। जाग्रत् और स्वप्ने में कुछ भेद नहीं; जैसे स्वप्ने में हुयेभी बोलते चालते दृष्ट आते हैं। हे रामजी! जैसे स्वप्ने में तुमको नाना प्रकार का जगत् भासता है और जागकर कहते हो सब भ्रममात्र था; तैसेही हमको यह जाग्रत् जगत् भ्रममात्र भासता है। जैसे जल और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं, तैसेही जाग्रत् और स्वप्नेमें कुछ भेद नहीं। जैसे दो मनुष्य एकही से होते हैं और दो सूर्य हों तो उनमें कुछ भेद नहीं होना, तैसेही जाग्रत् और स्वप्नेमें कुछ भेद न जानना। रामजीने पूछा, हे भगवन्! स्वप्ने की प्रतिभा अल्पमात्र भासती है और शीघ्रही जागकर कहता है कि, भ्रममात्र थी और जाग्रत् दृढ़ होकर भासतीहै पर तुम दोनोंको समान कैसे कहते हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रतिभा का प्रत्यक्ष अनुभव होताहै सो जाग्रत् कहातीहै और जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता और चित्त में स्मृति होती है वह स्वप्ना है। वह जाग्रत् और स्वप्ना दो प्रकार का है—जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होताहै वह जाग्रत् है और उसमें जब सो-गया तब स्वप्ना हुआ उस स्वप्ने में जगत् भासि आया तो जहां जगत् भासि आया वही उसकी जाग्रत् होगई और जहां से सोया था वह स्वप्ना होगया। वहां जो स्वप्ना भासित हुआ उसको जाग्रत् जानो और लोगोंसे चेष्टा करनेलगा जब वहां से मृतक होगया फिर उसमें आया तो पिछले को स्वप्ना जाननेलगा तो चित्त के भ्रमसे स्वप्ने को जाग्रत् देखा और जाग्रत् को स्वप्ना देखा। हे रामजी! सो यह क्या हुआ? जैसे

किसीको स्वप्न आया और उसमें अपनी चेष्टा और व्यवहार करनेलगा और फिर उसमें स्वप्न हुआ उस स्वप्नान्तरसे जागा फिर उस स्वप्नेमें आया तो उसको स्वप्न जाननेलगा और उस स्वप्ने को जाग्रत् जाननेलगा। हे रामजी! जैसे वह स्वप्नान्तर से जागकर उसको स्वप्न कहता है और स्वप्ने को जाग्रत् कहता है, तैसेही यहां जाग्रत् स्वप्नारूप है और आगे जो होता है वह स्वप्नान्तर है। एक और प्रकार है कि, जो इस जाग्रत्में मृतक हुआ शरीर छूटगया तब परलोक देखताहै सो परलोक जाग्रत् होगया और इस जाग्रत् को स्वप्न जाननेलगा। जैसे स्वप्ने से जागा स्वप्ने को भ्रम कहता है, तैसेही इस जाग्रत् को परलोक में भ्रम जानता है। फिर परलोक में स्वप्न आया तब परलोक की जाग्रत् स्वप्नवत् होगई और जो स्वप्ने में सृष्टि भासी उसको जाग्रत् जानताहै। फिर वहांसे मृतक होकर यहां आया तब यह जाग्रत् होगई और परलोक स्वप्न होगया। इससे हे रामजी! स्वप्न और जाग्रत् दोनों मिथ्याहैं। जब मूर्ख स्वप्ने से जागतेहैं तब वे जानतेहैं कि, इसका नाम जागनाहै और इसको जाग्रत् मानतेहैं और उसको स्वप्न जानतेहैं।पर वास्तवमें वह स्वप्नान्तरहै और यह स्वप्नाहै। इसमें जो तीव्रसंवेग होरहाहै इससे उसको जाग्रत् जानते हैं और उसको स्वप्न जानते हैं पर दोनों तुल्य हैं कुछ भेद नहीं। आत्मामें दोनों असत्यरूप हैं और इनकी प्रतिभा भ्रममात्र भासती है। आत्मा न कदाचित् उपजता है; न मरताहै और उपजताभी है और मरताभी है। उपजता इस कारण से नहीं कि; पूर्व सिद्ध है और मरता इस कारण नहीं कि, भविष्यत्काल में भी सिद्ध है। परलोक में सुख दुःख भोगता है और २ भ्रमकाल में जन्मता भी है और मरता भी है सो प्रत्यक्ष भासता है पर वास्तवमें ज्यों का त्यों है। हे रामजी! यह जगत् उसका आभास है और चैतन्य का चमत्कार चैत होकर भासता है। जैसे घट मृत्तिकारूपहै—मृत्तिका से भिन्न नहीं; तैसेही चेतनभी चैतन्यरूपहै। चैतन्यसे भिन्न जगत् नहीं—स्थावर जङ्गम जगत् सब चिन्मात्रहै। हे रामजी! जैसे तुमको स्वप्न आताहै और उसमें पत्थर और पहाड़ भासते हैं सो तुम्हारा ही अनुभवरूपहैं भिन्न तो नहीं; तैसेही यह दृश्य सब चिन्मात्ररूप है। जैसे घट मृत्तिका से भिन्न नहीं; तैसेही जगत् चिदाकाश से भिन्न नहीं। जैसे काष्ठ के पात्र काष्ठ से भिन्न नहीं—सब काष्ठहीरूप हैं; तैसेही जगत् चैतन्यरूप है—चैतन्य से भिन्न नहीं। जैसे पाषाण की मूर्ति पाषाणरूप है; तैसेही जगत् भी चैतन्यरूप है जैसे समुद्र ही-तरङ्गरूप हो भासता है; तैसेही चैतन्य जगत्रूप हो भासता है जैसे अग्नि उष्णरूप है, तैसेही चैत चैतन्यरूप है जैसे वायु स्पन्दरूप है तैसे चैतन्य चेतरूप है जैसे वायु निस्स्पन्दरूपहै तैसे चैतन्य चैतरूप है; जैसे पृथ्वी घनरूप होतीहै और आकाश शून्यरूप होताहै—जहां शून्यताहै वहां आकाशहै—तैसेही

जहां चैत है तहां चैतन्य है। जैसे स्वप्ने में शुद्ध संवित् पहाड़ और नदियाँरूप हो भासती हैं; तैसेही चिन्मात्रसत्ता जगत्रूप हो भासतीहै। हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ तुमको भासते हैं उनको त्यागकर आत्मा की ओर देखो। यह सब विश्व आत्मरूप है। शुद्ध चिदाकाशरूप निर्दुःख आकाश में निर्मल है; ऐसे जानकर उसमें स्थित हो। हे रामजी! जब तुमको स्वभाव सत्ताका अनुभव साक्षात्कार होगा तब सर्वद्वैतकलना जो भासती है सो शान्त होजावेगी और केवल आत्मतत्त्वमात्र शेष रहेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादन-न्नामचतुर्दशाधिकद्विशततमस्सर्गः ॥ २१४ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! चिदाकाश कैसा है जिसको तुम परब्रह्म कहते हो और उसका क्या रूपहै ? तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को पानकरता मैं तृप्त नहीं होता इससे कृपा करके कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसे एक माता के गर्भ से दो पुत्र जोड़े उत्पन्न होते हैं और उनका एकसा आकार होता है पर जगत् के व्यवहार के निमित्त उनका नाम भिन्न २ होता है और भेद कुछ नहीं और जैसे दो पात्रों में जल रखिये तो जल एकही है और पात्रों के नाम भिन्न २ होते हैं तैसेही स्वप्न और जाग्रत् दो नाम हैं परन्तु एकही से हैं पर आत्मा में दोनों कल्पित हैं और जिस में दोनों कल्पित हैं सो चिदाकाश है। वृत्ति जो फुरती है और देश देशान्तर को जाती है उसके मध्य में जो संवित् ज्ञानरूप है कि; जिसके आश्रय वृत्ति फुरतीहै सो चिदाकाश संवित् है और वृक्ष जो रस को खैंचकर ऊर्ध्व को जाते हैं सो उसीके आश्रय जाते हैं—ऐसी जो सत्ताहै सो चिदाकाशरूप है। हे रामजी ! जैसे सर्ववृक्ष फूल, फल, टास आदि सहित रस के आश्रय फुरते हैं, तैसेही यह सब जगत् चिदाकाश के आश्रय फुरता है और उसीके आश्रय वृत्ति फुरती है—ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाश है। जिसकी इच्छा सब निवृत्त होगईहै और रागद्वेषरूपी मल शरत्काल के आकाशवत् निवृत्त होगयाहै और शुद्ध संवित्है उसको चिदाकाश जानो। हे रामजी ! जगत् का जब अन्त हुआ पर जड़ता नहीं आई उसके मध्य जो अद्वैतसत्ताहै सो चिदाकाश है; बेल, फूल, फल, गुच्छे और वृक्ष जिसके आश्रय बढ़ते हैं सो चिदाकाश है और रूप, अवलोक, मनस्कार इन तीनों का जहां अभाव है—ऐसी जो शुद्ध संवित्है—वह चिदाकाश है। पृथ्वी, पर्वत और नदियां सर्वका जो आश्रयहै सो चिदाकाशहै और द्रष्टा, दृश्य, दर्शन; ये तीनों जिससे उपजे हैं और फिर जिसमें लीन होतेहैं ऐसी जो अधिष्ठान सत्ता है सो चिदाकाश है। जिससे सर्व उपजते हैं; जो यह सर्व है और जिसमें सर्व है; ऐसा सर्वात्मा चिदाकाश है और अर्द्धरात्रि को जो उठता है और इन्द्रियों की चपलता का विषयसे अभाव होताहै और उस काल में अफुरसत्ता होती

है सो चिदाकाश है। हे रामजी ! जिस संवित् में स्वप्न की सृष्टि फुरती है और फिर जाग्रत् भासती है और दोनोंके करनेवाले में शोभताहै सो चिदाकाश है। जैसा फुरना होता है, तैसाही जगत् में भासता है और वही द्रष्टा, दर्शन, दृश्य होकर भासता है दूसरा कुछ नहीं। आत्मरूपी सूत्र में असत्य-सत्य जगत्रूपी मणि पिरोये हुये हैं। जिसके आश्रय इनका फुरना होताहै वह चिदाकाशहै। हे रामजी ! जिसके आश्रय एक निमेष में जगत् उपजता है और उन्मेष में लीन होजाताहै, ऐसी जो अधिष्ठान सत्ता है उसको चिदाकाश जानो। यह सब जगत् मिथ्याहै और भ्रान्ति से भासता है जैसे मरुस्थल की नदी भासती है। इससे जो रहित है और जिसमें संकल्प विकल्प का क्षोभ नहीं और सदा अपने आपमें स्थित और दुःख से रहित निर्विकल्प सत्ता है वही चिदाकाश है। हे रामजी ! नेति नेति से जो पीछे अनाद्यपद शेष रहता है उसको तुम चिदाकाश जानो। शुद्ध चैतन आत्मसत्ता सबका अपना आप और सबका अनुभवरूप होकर प्रकाशता है। उसमें जैसा फुरना होता है कि, ये ऐसे हैं तैसाही हो भासताहै सो चिदाकाशरूपहै। इससे शुद्ध आत्मसत्ता ही फुरने से जगत्-रूप हो भासती है। जैसे जाग्रत् के अन्त में अद्वैतसत्ता होती है और फिर उससे स्वप्न की सृष्टि भासि आती है पर स्वप्न की सृष्टि वास्तव कुछ नहीं उपजी वही अनुभव स्वप्न की सृष्टि हो भासती है; तैसेही यह जगत् जो कार्यरूप दृष्टि आता है सो अ-विद्या से भासताहै वास्तवमें कुछ उपजा नहीं। जैसे स्वप्न की सृष्टि अकारण भासती है, तैसेही यह सृष्टि अकारण है। ब्रह्मा से आदि चींटीपर्यन्त सर्व स्थावर जङ्गमरूप जगत् चिदाकाशरूपहै कुछ उत्पन्न नहीं हुआ और जो दूसरा कुछ न हुआ तो कारण कार्य भी कुछ न हुआ। हे रामजी ! न कोई द्रष्टा है, न दृश्यहै, न भोक्ता है और न भोग है सब कल्पनामात्र है। आत्म अज्ञान से कल्पना उठतीहैं और आत्मज्ञान से लीन होजाती हैं-जैसे समुद्रके जानेसे तरङ्ग कल्पना मिटजातीहै, क्योंकि, अनुभव आत्मा में कारण-कार्य कुछ नहीं हुआ। जो तुम कहो कि, कारण कार्य क्यों भासतेहैं तो जैसे इन्द्रजाल की बाजी में नाना प्रकार के पदार्थ दृष्टि आतेहैं परन्तु वास्तव कुछ नहीं बने, तैसेही यह जगत् कारण-कार्य कुछ बना नहीं। जैसे स्वप्न में अपना अनुभवही नगर-रूप हो भासताहै; तैसेही यह जगत् भासता है। हे रामजी ! आत्मसत्ता ही फुरने से जगत् की नाईं भासती है। जिस जगत् को इन्द्ररूप कहते हैं वह अहंरूप है; जिसको समुद्र कहते हैं वहभी अहंकाररूप है; जिसको रुद्र कहते हैं वह अपनाही अनुभव-रूपहै इत्यादिक जो सब जगत् भासताहै सो भावनामात्रहै। जैसी जिसकी भावना दृढ़ होती है तैसाही रूप होकर भासताहै। जैसे चिन्तामणि और कल्पान्तरमें जैसी भावना होती है, तैसाही सिद्ध होताहै; तैसेही आत्मसत्ता में जैसी भावना होती है तैसाही हो

भासती है। इससे जब चिदाकाश का निश्चय दृढ़ होता है तब अज्ञान से जो विरुद्ध भावना हुई थी सो निवृत्त होजाती है॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्र०जगन्निर्वाणवर्णनंपञ्चदशाधिकद्विशततमस्सर्गः॥ २१५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मन थोड़ा भी फुरता है तब यह जगत् उत्पन्न हो आता है और जब फुरनेसे रहित होता है तब जगत् भावना मिटजाती है इस प्रकार जो जानता है सो ज्ञानवान् है; वह पुरुष इन्द्रियों से देखता है, सुनता, ग्रहण करताभी निर्वासनिक होजाता है और जगत्की ओर से घनसुषुप्त होताहै। हे रामजी! जिसका मन निर्वासनिक और शान्त हुआहै वह बोलता, चालता, खाता, पीता भी पाषाणवत् मौन होजाता है–इससे यह जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ। जैसे मृगतृष्णा की नदी अनहोती भासतीहै और भ्रम से आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही मन के भ्रम से आत्मा में जगत् भासता है; आदि कारण से कुछ नहीं उत्पन्न हुआ। जिसका आदि कारण न पाइये वह कारणभी असत्य जानिये इससे सब जगत् कारण विनाही भासताहै उपजा कुछ नहीं। हे रामजी! जो पदार्थ कारण विना भासता है और जिसमें भासता है वह अधिष्ठानसत्ता है क्योंकि; जो अधिष्ठान में भासित होता है उस को भी वहीरूप जानिये और जो अधिष्ठान से व्यतिरेक भासे उसे भ्रममात्र जानिये। जैसे स्वप्ने में इन्द्रियादिक पदार्थ भासतेहैं और उसमें दृश्य दर्शन सब मिथ्याहैं हुआ कुछ नहीं, तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी मिथ्याहै, न कुछ उपजा है; न स्थित हुआ है; न आगे होना है और न नाश होता है। जो उपजाही नहीं तो नाश कैसेहो? न कोई द्रष्टा है; न दर्शन है और न दृश्य है; केवल चिन्मात्रसत्ता अपने आप में स्थित है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह द्रष्टा, दर्शन और दृश्य क्या है और कैसे भासता है? यह आगेभी कहा है और अब फिरभी कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह दृश्य सब अदृश्यरूपहै; कारणही दृश्यहो भासतीहै और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो कुछ जगत् विस्तारसहित भासता है सो आदिस्वरूप से सब परमात्मस्वरूप है। जैसे स्वप्ने में आकाश का वन भासे और और पदार्थ भासें सो सब चिदाकाशरूप हैं; तैसेही यह जगत्भी चिन्मात्ररूप है–कारण–कार्यभाव कहीं नहीं। जैसे वायु स्पन्दरूप होती है तब भासती है और निस्पन्द हुये नहीं भासती; तैसेही आत्मा में जब चित्त फुरताहै तब आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासतीहै सो वही आत्मसत्तारूप भावमें भाव है। जैसे आकाश में शून्यताहै; तैसेही आत्मा में जगत् आत्मरूपहै इससे जो कुछ भासता है सो चैतन का आभास प्रकाश है और परमार्थसत्ता केवल अपने आपमें स्थित है। इससे इतर कहिये तो न द्रष्टाहै और न दृश्यहै आत्मसत्ताही ज्यों की त्यों है। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण, ब्रह्म के वेत्ता! जो इसी प्रकारहै तो कारण–कार्य का भेद कैसे होता

दीखताहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसा जैसा फुरना उसमें होताहै तैसाही तैसा रूप हो भासता है चैतन आकाश ही जगत्रूप हो भासता है और कहीं न कारण है; न कार्य है । जैसे स्वप्न सृष्टि कारण–कार्य सहित भासती है सो किसी कारण से नहीं उपजी–अकारणरूपहै; तैसेही यह सृष्टि किसी कारण से नहीं उपजी अकारण रूप है । न कहीं कर्ता है और न भोक्ता है केवल भ्रम से कर्ता भोक्ता भासता है और स्वप्ने की नाईं विकल्प उठते हैं–वास्तव में ब्रह्मसत्ता ही है । हे रामजी ! जैसे स्वप्ने में नगर और जगत् भासता है सो चिदाकाश अनुभवसत्ता ही ऐसे हो भासती है–अनुभव से भिन्न कुछ नहीं तैसेही यह जगत् सम्पूर्ण चिदाकाशहै । जब ऐसे जानोगे तब जगत् भी भ्रमतत्त्व भासेगा । हे रामजी ! यह जगत् चित्त के फुरने से उपजा है । जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहींमें वैताल कल्पताहै तैसेही चित्तभ्रमसे जगत् को कल्पता है पर इसका कारण ब्रह्महीहै और कारण कहीं नहीं क्योंकि; महाप्रलय में चिदाकाश ही रहता है सो कारण किसका हो ? वही सत्ता इन्द्र, रुद्र, नदियां, पर्वत आदि जगत् हो भासता है और उससे भिन्न द्वैतरूप कुछ नहीं । इसमें जैसा जैसा फुरना होता है तैसाही रूप भासता है । जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में जैसी भावना होती है तैसाही रूप भासता है; तैसेही आत्मसत्ता में जैसी भावना होती है तैसाही पदार्थरूप हो भासता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकारणाकार्याभाववर्णनं नामषोडशाधिकद्विशततमस्सर्गः ॥ २१६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अचैत चिन्मात्र जो आकाशरूप आत्मसत्ता है सोही जगत्रूपहो भासतीहै । शुद्धचिन्मात्र में जब अहंफुरना होताहै तब जगत् हो भासता है । वही अहंरूप जीव है जगत् में जीवता दृष्टि आताहै परन्तु मृतक की नाईं स्थित है और तुम, मैं आदिक सब जगत् जीवता, बोलता, चलता और व्यवहार करता भी दृष्टि आता है परन्तु काष्ठ मौनवत् स्थित है । आत्मरूपी रत्न का जगत्रूपी चमत्कार है और वह प्रकाश आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे आकाश में तरुवरे; मरुस्थल में जल और धुयें के पर्वत मेघ भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र है तैसेही यह जगत्लक्षण भी भासता है परन्तु वास्तवमें कुछ नहीं अवस्तुभूत है–उपजा कुछ नहीं । हे रामजी ! चित्तरूपी बालक ने जगत् जालरूपी सेना रची है सो असत्य है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक भूत भ्रान्तिमात्र हैं और उनमें सत्य प्रतीति करनी मूर्खता है । बालक की कल्पना में सत्य प्रतीति बालकही करतेहैं और जो इस जगत् का आश्रय करके सुख की इच्छा करते हैं वे मानो आकाश के धोने का यत्न करतेहैं और उनका सर्व यत्न व्यर्थ है । यह सब जगत् भ्रान्तिरूपहै; इसमें जो आस्था करके इसके पदार्थ पाने का

यत्न करते हैं सो जैसे कहीं पुत्र पानेका यत्न करें सो व्यर्थ है, तैसेही जगत् में जो सुख के पानेका यत्न करते हैं सो व्यर्थ यत्न है । हे रामजी ! यह पृथ्वी आदिक जो सम्पूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र है और जो भ्रान्तिमात्र है तो इनकी उत्पत्ति किस से और कैसे कहिये ? जो मूर्ख बालक हैं उनको पृथ्वी आदिक जगत् के पदार्थ सत्य भासते हैं ज्ञानवान् को ये सत्य नहीं भासते और अज्ञानी को सत्य भासते हैं पर उनसे हमको क्या प्रयोजनहै ? जैसे सोयेको स्वप्ने में आत्म अनुभवसत्ता ही पृथ्वी पहाड़ और नदियां जगत् हो भासता है पर वे सब आकार भासते भी निराकाररूप हैं तैसेही यह जगत् आकारसहित भासता है परन्तु आकार कुछ बना नहीं—निराकार सत्ताही जगत्रूप हो भासती है और यह जगत् निराकार ही है पर और कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽभावप्रतिपादनन्नाम
सप्तदशाधिकद्विशततमस्सर्गः ॥ २१७ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! तुम कहते हो कि; जगत् अविद्यमान है पर अज्ञान से स्वप्ने की नाईं सत्य भासता है इससे विद्यमान भी है और जैसे स्वप्ने का नगर शून्यरूप है तैसेही यह जगत् अज्ञानरूप है सो अज्ञान क्या है और कितने काल की अविद्या हुई है; किसको है और इसका प्रमाण क्या है सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ तुमको जगत् दृष्टि आता है सो सब अविद्या है । यह अविद्या अनन्त है और देश और कालसे इसका अन्त कदाचित् नहीं होता । जिसका अपने वास्तवस्वरूप का अज्ञानहै उसको सत् दिखाई देताहै । इसपर एक इतिहास है सो सुनिये । हे रामजी ! आत्मरूप चिदाकाश के अणु में अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं । उनमें से एक ब्रह्माण्ड इसी कासा है और उस ब्रह्माण्डके जगत् में तुरमत नाम एक देश है जिसका राजा विपश्चित् था । वह एक समय अपनी सभामें बैठाथा और उसके चारों दिशामें उसकी बड़ी तेजवान् सेना उपस्थितथी । वह अग्निदेवताके सिवा और किसी देवताको न पूजताथा और बड़ी लक्ष्मी से शोभित और बहुत गुणों और ऐश्वर्यसे सम्पन्न था । एककालमें वह सभा में बैठाथा कि, पूर्वदिशाकी ओर से हरकारा आया और उसने कहा, हे भगवन् ! तुम्हारा जो पूर्वदिशा का मण्डलेश्वर था वह जरासे मृतक होके मानो यमको जीतने गया है इससे पूर्वदिशाकी रक्षा करो क्योंकि, वहां और मण्डलेश्वर आता है । हे रामजी ! इस प्रकार वह कहताही था कि, दूसरा हरकारा पश्चिम से आया और कहने लगा कि, हे भगवन् ! तुमने जो पश्चिम दिशा का मण्डलेश्वर किया था सो तप से मृतक होगया है और वहां एक और मण्डलेश्वर आताहै इसलिये वहांकी रक्षा करो । हे रामजी ! इस प्रकार दूसरा हरकारा

कहरहाथा कि, एक और हरकारा आया और उसने कहा कि, हे भगवन्! दक्षिणदिशा का मण्डलेश्वर पूर्व पश्चिम की रक्षाके निमित्त गया था सो मार्गही में मृतक हुआ इस से दोनों की रक्षा के निमित्त सेना भेजो क्योंकि एक दृढ़शत्रु आया है और विलम्ब का समय नहीं है शीघ्रही सेना भेजिये। हे रामजी! इस प्रकार सुनकर राजा बाहर निकला और कहनेलगा कि, सब सेना मेरे पास होकर दिशाओं की रक्षा के निमित्त जावे और बड़े बड़े शस्त्र, हाथी, घोड़े, रथआदिक सेना लेजावो। हे रामजी! इस प्रकार राजा कहताही था कि, एक और पुरुष आया और बोला कि, हे भगवन्! उत्तरदिशा की ओर जो तुम्हारा मण्डलेश्वर था उसके ऊपर और शत्रु आपड़ा है और बड़ा युद्ध होता है इससे उसकी रक्षा के निमित्त शीघ्रही सेना भेजो अब विलम्ब का समय नहीं है और आगे कई दुष्ट चले आते हैं। मैं फिरा जाताहूं क्योंकि, मेरा स्वामी युद्ध करता है। हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह चलागया तब द्वारपालने आकर कहा कि, हे भगवन्! उत्तरदिशा का मण्डलेश्वर आया है आज्ञा हो तो लेआऊं! राजा ने कहा, लेआवो। वह उसे लेआया और उस मण्डलेश्वर ने राजाके सन्मुख आकर प्रणाम किया। राजा ने देखा कि, उसके अङ्ग टूटगये हैं और मुख से रुधिर चला जाता है पर ऐसी अवस्था में भी उस धैर्यसंयुक्त मण्डलेश्वर ने कहा कि, हे भगवन्! मेरे अङ्गोंकी यह दशा हुईहै। मैं तुम्हारा देश रखनेको चलाथा पर मेरे ऊपर शत्रु आनपड़ा और मेरी सेना थोड़ी थी इसकारण दौड़कर तुम्हारे पास आया हूं कि; प्रजा की रक्षा करो। हे रामजी! जब इस प्रकार उसने कहा तब राजाने सब मन्त्रियों को बुलाया। मन्त्री राजा के पास आये और बोले, हे भगवन्! अब तीन उपाय छोड़ो और एक उपाय करो अर्थात् एक नम्रता, दूसरा धन देना और तीसरा बुद्धिभेद ये तीनों अब नहीं चाहिये। ये दुष्ट नम्रता माननेवाले नहीं हैं क्योंकि, नीच और पापी हैं और धन इस कारण न देना चाहिये कि, ये आधीन हैं और बुद्धि करि भेद भी नहीं जानते क्योंकि; सब मिलके इकट्ठे हुये हैं इससे ये तीनों उपाय छोड़ो और एक उपाय करो कि, युद्ध हो अब विलम्ब का समय नहीं है क्योंकि, उनकी सेना निकट आई है—अब उत्साहसहित कर्म करना है प्राणों की रक्षा नहीं चाहिये। हे रामजी! जब इस प्रकार मन्त्रियों ने कहा तब राजा ने आज्ञा की कि, सब सेना मेरी आज्ञा से उनके सन्मुख जावे और निशान, नगारे, हस्ती, घोड़ा, रथ, पियादे सेना के साथ जावें। इस प्रकार जब राजा ने कहा तब सब विद्यमान सेना आन स्थित हुई और नौबत नगारे बजानेलगे। जब नाना प्रकारके शस्त्रोंसहित चारों प्रकारकी सेना इकट्ठी हुई तब राजाने कहा, हे साधो! तुम आगे जावो। सेना आगे हो उसके पीछे सेनापति जावें और शत्रुओंके साथ युद्ध करो मैं भी स्नान करके आता

हूं। हे रामजी ! इस प्रकार कहकर राजा ने मन्त्री को भेजा और आप गङ्गाजल से स्नानकर एक स्थान में अग्नि का कुण्ड था उसके निकट जाकर हवन करनेलगा। जब अग्नि प्रज्वलित हुई तब राजाने कहा; हे भगवन् ! इतना काल मुझको व्यतीत हुआहै कि, यथाशास्त्र मैं बिचरता रहा; अपनी प्रजा सुखी रक्खी; अभय राज्य किया; शत्रु को नाश करके सिंहासन के नीचे दबाया और आप सिंहासन पर बैठाहूं। पातालवासी दैत्य भी मैंने जीत रक्खे हैं; दशों दिशा अपने आधीन की हैं; सातों समुद्र पर्यन्त सब मेरे भयसे काँपते हैं और सब ठौर में मेरी कीर्ति होरहीहै। रत्नोंके स्थान मेरे भरेहुये हैं और वस्त्र, सेना, घोड़े और हाथी भी बहुत हैं। मैंने बड़े भोग भी भोगकर बड़े बड़े दानभी किये हैं और सिद्ध और देवताओं में भी मेरा यश हुआ है। निदान सब ओर मेरा यश हुआ है; शरीर भी बूढ़ा हुआ है और क्षोभभी बड़ा प्राप्त हुआ है इससे अब मेरा जीने से मरना भला है। हे भगवन् ! मैं तुमको शीश निवेदन करता हूं; कृपा करके लो। यदि मुझपर प्रसन्न होना तब एककी चार मूर्ति देना कि, चारों ओर जाऊं और जहां मुझको कुछ कष्ट हो वहां दर्शन देना। हे रामजी ! इस प्रकार कहकर उसने खड्ग निकाला और अपना शीश काटकर अग्नि में डाल दिया तब धड़भी आपही अग्नि में जापड़ा और शीश धड़ दोनों भस्म होगये अथवा अग्नि ने भक्षण करलिये। तब उसी कीसी चार मूर्ति निकल आईं और उनके उसीके से आकार वस्त्र, भूषण, मुकुट और कवच पहिरे और नाना प्रकार के शस्त्र धारे हुये उदय हुये। हे रामजी ! इस प्रकार बड़े तेजसंयुक्त चारों राजा विपश्चित् प्रकट भये और रथ, हस्ती, घोड़े, प्यादे और चारोंप्रकार की सेना भी प्रकट हुई। निदान चारों ओर से शत्रु युद्ध करनेलगे और बड़ायुद्ध होनेलगा। नगर जलनेलगे, बड़ा हाहाकार शब्द होनेलगा और शूरवीर युद्ध में प्राण को त्यागते और उछल २ कर लड़ते थे। बड़े रुधिर के प्रवाह चलते थे, खड्ग और बरछी की वर्षा होती थी और अग्नि का अट्ट अट्ट शब्द होता था—मानो समय विनाही प्रलय होने लगा है। निदान बड़ा युद्ध हुआ जो सूरमा थे वे युद्ध में मरने को जीना मानते थे और जीने को मरना जानते थे; ऐसा निश्चय धरके वे युद्ध करते थे और जो कायर थे वे भाग भाग जाते थे—जैसे गरुड़ के भय से सर्प भागजाते हैं और सूरमे सन्मुख होकर लड़तेथे। इस प्रकार बड़ा युद्ध होनेलगा और रुधिर की नदियां चलीं जिनमें हाथी, घोड़े, रथ और सूरमे बहतेजाते थे और बड़े बड़े वृक्ष और नगर गिरते और बहते जाते थे। मांसभक्षणके निमित्त योगिनी भी आ उपस्थित हुईं। जो जो युद्धमें मृतक हो उसको अप्सरा और विद्याधरी विमानपर चढ़ाकर स्वर्गको लेजातीथीं। हे रामजी! इस प्रकार जब युद्ध हुआ तब राजा विपश्चित् की सेना सब शून्य होगई अर्थात्

थोड़ी होगई। राजा ने सुना कि, सेना बहुत मारीगई है इस लिये उसने सवार हो-कर देखा कि, सेना थोड़ी रहगई है इससे एक एक राजा एक एक ओर को गया अर्थात् चारों राजा चारों ओर गये और विचार करनेलगे कि, यह महागम्भीर सेना-रूपी समुद्र है, इसमें शस्त्ररूपी जल है, धाररूपी तरङ्ग है और सूरमेरूपी मच्छ हैं। ऐसा जो समुद्र है उसको अगस्त्य होकर मैं पानकरूं—ऐसे विचारकर उसने उद्यम किया क्योंकि; शत्रु की विशेष सेना देखी—एकतो आगेहीको चली आवैं, दूसरे बहुत सूरमे तेजसे सेनाको जलावें और तीसरे बहुत सेना आवे। ऐसी तीन प्रकारकी सेना के राजा ने तीन उपाय किये। प्रथम उसने वायव्यास्त्र हाथ में लिया और परमात्मा ईश्वर को नमस्कार कर और मन्त्र पढ़के पवन का अस्त्र चलाया। इससे—अँधेरी आगई और जितनी सेना आगे चली आतीथी वह सब उलटी उड़नेलगी। फिर उस ने मेघरूपी अस्त्र चलाया तब वर्षा होनेलगी और उससे जो तेज उनकी सेना को जलाता था वह शीतल होगया। उसके अनन्तर उसने शिवअस्त्र चलाया उसमेंसे प्रथम शस्त्रों की नदी चली. फिर त्रिशूलों की नदी चली, फिर चक्रों की नदी चली, फिर वज्र की नदी चली, बरछी की नदी चली; बिजली की नदी चली और अग्नि इत्यादिक की नदी चली और दूसरे शस्त्रों और अस्त्रों की वर्षा हुई। जब इस प्रकार नदियां चलीं तब जो कुछ सेना सन्मुख आतीथी सो मृतक होगई। जैसे कमलिनी काटीजाती है तैसेही शूरवीर काटेगये। कोई पहाड़ों की कन्दराओंमें गिरें और वहां से उड़कर समुद्र में जापड़ें और कोई सुमेरु की कन्दराओं में जाकर छिपें और स-मुद्र में जाकर डूबें—जैसे अज्ञानी विषयोंमें डूबते हैं। इस प्रकार दोनों ओर से सेना शून्य हुई और चारों दिशाओं की सेना नष्ट होगई। नीच से नीच देशों के और पहाड़ की कन्दराओं के रहनेवाले सब बहतेजावें। हे रामजी! कई शस्त्रों से और कई आंधी से उड़े सो सब क्षेत्रों में जापड़े और कई वन में और कई नीचे देशों में गिरे। जो पुण्यवान् थे वे उत्तम क्षेत्र में जापड़े और मृतक होकर वे स्वर्ग में गये और पापी नीच देशों में जापड़े उससे दुर्गति को प्राप्त हुये। कई पिशाच हुये, कितनों को विद्याधरियां लेगईं और कई ऋषीश्वरों के स्थानों में जीतकर जापड़े उनकी उन्हों ने रक्षा की। इसी प्रकार कितने बाणों से छेदे हुये नाश हुये और कई रुधिर की नदियों में बहते समुद्र की ओर चलेगये। हे रामजी! जब सब सेना शून्य होगई तब आकाश शुद्ध हुआ। जैसे ज्ञानी का मन निर्मल होताहै तैसेही आकाश अधिक शोभसे रहित भया। जब सब सेना शून्य होगई तब चारों राजा आगे चले। हे रामजी! निदान चारों विपश्चित् चारों दिशाओं के समुद्रोंपर जापहुँचे, तब उन्होंने क्या देखा कि, बड़े गम्भीर समुद्र हैं; कहीं रत्न और कहीं हीरा मोती इत्यादिक चमकते

हैं और बड़ेगम्भीर समुद्र में बड़े मच्छ और तरङ्ग उछलते हैं और रेती में नाना प्रकार के लौंग, इलायची, चन्दन इत्यादिक के वृक्ष समुद्रपर जाकर देखे॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्र०विपश्चित्समुद्रप्राप्तिर्नामद्विशताधिकाष्टादशस्सर्गः॥२१८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार राजा विपश्चित् समुद्र के पार जा पहुँचा तब उसके साथ जो मन्त्री पहुँचे थे उन्होंने राजा को सब स्थान दिखाये जो बड़े गम्भीर थे। बड़े गम्भीर समुद्र जो पृथ्वीके चहुँफेर वेष्टित थे वहभी दिखाये और बड़े २ तमालवृक्ष बावलियां; पर्वतोंकी कन्दरा; तलाव और नाना प्रकारके स्थान दिखाये। ऐसे स्थान राजाको मन्त्री ने दिखाकर कहा, हे राजन्! तीन पदार्थ बड़े अनर्थ और परमसार के कारणहैं—एक तो लक्ष्मी, दूसरा देह आरोग्य और तीसरा यौवनावस्था। जो पापी जीव हैं वे लक्ष्मी को पाप में लगाते हैं, देह आरोग्यता से विषय सेवते हैं और यौवन अवस्था मेंभी सुकृत नहीं करते, पापही करते हैं और जो पुण्यवान् हैं वे मोक्ष में लगाते हैं अर्थात् लक्ष्मी से यज्ञादिक शुभकर्म और आरोग्य से परमार्थ साधते हैं और यौवन अवस्था में भी शुभकर्म करते हैं—पाप नहीं करते। हे रामजी! जैसे समुद्र और पर्वत के किसी ठौर में रत्न होते हैं और किसी ठौर में दर्दुर होते हैं; तैसेही संसाररूपी समुद्र में कहीं रत्नोंकी नाईं ज्ञानवान् होतेहैं और कहीं अज्ञानीरूपी दर्दुर होतेहैं। हे राजन्! यह समुद्र मानो जीवन्मुक्तहै क्योंकि; जलसेभी मर्यादा नहीं छोड़ता और रागद्वेष से रहित है। किसी स्थान में दैत्य रहतेहैं; कहीं पंखों संयुक्त पर्वत; कहीं वड़वाग्नि और कहीं रत्न हैं परन्तु समुद्र को न किसी स्थान में राग है; न द्वेष है। जैसे ज्ञानवान् को किसीमें रागद्वेष नहीं होता परन्तु सबमें ज्ञानवान् कोई विरला होता है। जैसे जिस सीपी और बांस से मोती निकलतेहैं सो बिरलेही होतेहैं, तैसेही तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् कोई बिरला होताहै। हे रामजी! सम्पूर्ण रचना यहांकी देखो कि, कैसे पर्वत हैं जिनके किसी स्थान में पक्षी रहतेहैं; किसी स्थान में विद्याधर रहतेहैं; कहीं देवियां विलास करती हैं; कहीं योगी रहतेहैं और कहीं ऋषीश्वर; मुनीश्वर; कहीं ब्रह्मचारी, वैरागी आदिक पुरुष रहतेहैं। यह द्वीप है और सात समुद्रहैं जिनके बड़े तरङ्ग उछलते हैं और पर्वत का कौतुक और आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, तारे, ऋषि, मुनि को देखो और देखो कि, सबको आकाश ठौर देरहा है पर महापुरुष की नाईं आप सदा असंग रहता है और शुभ अशुभ दोनोंमें तुल्य है। स्वर्गादिक शुभस्थान हैं और चाण्डाल पापी नरकस्थान और अपवित्र है परन्तु आकाश दोनों में तुल्य है—असंगता से निर्विकार है। जैसे ज्ञानी का मन सर्वस्थानों से निर्लेप होता है, तैसेही आकाश सर्व पदार्थों से असंग और न्यारा है और महात्मापुरुष की नाईं सर्वव्यापी है। हे आकाश! तू कैसाहै कि, सर्वप्रकाश तुझ में अन्धकार दृष्टि आता है—यह आश्चर्य है। हे आकाश!

तू सबका आधारभूत है और जो तुझको शून्य कहते हैं वे मूर्ख हैं; दिनको तुझमें श्वेत भासता है; रात्रि को अन्धकार भासता है और संध्याकाल में तेरे में लाली भासती है पर तू तीनों से न्यारा है। ये तीनों राजसी, तामसी और सात्त्विकी गुण हैं पर तू इनके होतेभी असंग है। हे आकाश! तू निर्मल है और तम तेरे में दृष्टि आता है परन्तु तू सदा ज्योंका त्यों है। यह अनित्यरूप है। चन्द्रमा तेरेमें शीतलता करता है, सूर्य दाहक होते हैं; तीर्थ आदिक पवित्र स्थान हैं और पापी आदिक अपवित्र स्थान हैं परन्तु तू सब में एक समान ज्योंका त्यों रहताहै और वृक्ष को बढ़ने और ऊंचे होने तूही देताहै। अपनी महिमा को तू आपही जाने और कोई तेरी महिमा पा नहीं सक्ता। तू निष्किञ्चन अद्वैत है; सबको धाररहाहै और सबका अर्थ तुझसेही सिद्ध होता है। तृण और जल नीचे को जाता है और तू सबसे ऊंचा है और विभु है। अनेक पदार्थ तेरेमें उत्पन्न होते और नष्ट होजातेहैं पर तू सदा ज्योंका त्यों रहताहै। जैसे अग्नि से चिनगारे उपजते और अग्निही में लीन होजातेहैं; तैसेही तेरेमें अनन्त जगत् उपजते और लीन होते हैं और तू सदा ज्योंका त्यों रहताहै। जो तुझको शून्य कहतेहैं वे मूढ़ हैं। हे राजन्! ऐसा आकाश कौनहै सोभी सुनो। ऐसा आकाश आत्मा है जो चेतन आकाश है और जिसमें अनन्त जगत् उत्पन्न और लीन होजातेहैं। उसको जो शून्य कहते हैं वे महामूर्ख हैं–जो सर्वका अधिष्ठान है; सर्वको धार रहा है और सदा निःसंग है ऐसे चिदाकाश को नमस्कार है। हे राजन्! यह आश्चर्यहै कि, वह सदा एकरस है पर उसमें नाना तरङ्ग भासते हैं–यही माया है। हे राजन्! एक विद्याधरी और विद्याधर थे उनके मन्दिर में एक ऋषि आनिकला पर उस विद्याधर ने उनका आदरभाव न किया इससे ऋषीश्वर ने शाप दिया कि; तू द्वादशवर्ष पर्यन्त वृक्ष होगा। निदान वह विद्याधर वृक्ष होगया पर अब जो हम आये हैं हमारे देखतेही वह शाप से मुक्त हो वृक्षभाव को त्यागकर फिर विद्याधर हुआ है। यह ईश्वर की माया है कि, कभी कुछ होजाता है और कभी कुछ होजाता है। हे मेघ! तू धन्य है! तेरी चेष्टा भी सुन्दर है; तीर्थ में सदा तेरा स्नान होताहै; तू सबसे ऊंचे विराजता है और सब आचार तेरा भला दृष्टि आता है परन्तु एक तुझमें नीचता है कि, ओले की वर्षा करता है जिससे खेतियां नष्ट होजाती हैं और फिर नहीं उगतीं। तैसेही अज्ञानी की चेष्टा देखनेमात्र सुन्दर है और हृदय से मूर्ख हैं उनकी संगति बुरीहै और ज्ञानवान् की चेष्टा देखने में भली नहीं तोभी उनकी संगति कल्याण करती है। हे राजन्! सब में नीच श्वान है क्योंकि: जो कोई उसके निकट आता है उसको काट लेताहै, घर घर में भटकता फिरता है और मलीनस्थानों में जाताहै; तैसेही अज्ञानी जीव श्रेष्ठपुरुषोंकी निन्दा करता है पर मन में तृष्णा रखता है और विषयरूपी मलीन स्थानों में गिरता है। वह मूर्ख

मनुष्य मानो श्वान है और श्वान सेभी नीच है। ब्रह्माने सम्पूर्ण जगत्को रचाहै परन्तु उसमें श्वान सबसे नीच है पर श्वान क्या समझता है सो सुनो। एक पुरुष ने श्वान से प्रश्न किया कि, हे श्वान! तुझसे कोई नीचहै अथवा नहीं? तब श्वान ने कहा कि, मुझसे भी नीच मूर्ख मनुष्य है और उससे मैं श्रेष्ठ हूं क्योंकि; प्रथम तो मैं सूरमा हूं; दूसरे जिसका भोजन खाता हूं उसकी रक्षा करता हूं और उसके द्वारे बैठा रहता हूं पर मूर्ख से ये तीनों कार्य नहीं होते। इससे मैं उससे श्रेष्ठ हूं क्योंकि; मूर्ख को देहाभिमान है इससे वह श्वान से भी नीच है। हे राजन्! परमअनर्थ का कारण देहाभिमान है। देहाभिमान से जीव परम आपदा को प्राप्त होताहै। वह मूर्ख नहीं मानो कौवाहै जो सबसे ऊंची टहनी पर बैठकर कां कां करता है। हे राजन्! कमल की खानोंके तालके निकट एक कौवा जा निकला तो क्या देखे कि, भवँर बैठे कमल की सुगन्ध लेते हैं; उनको देखकर वह हँसनेलगा और कां कां शब्द किया। तब उसको देख भवँरे हँसे कि, यह कमल की सुगन्ध क्या जाने; तैसेही जिज्ञासी भवँरे के समान हैं जो परमार्थरूपी सुगन्ध लेते हैं। जो अज्ञानरूपी कौवे हैं वे परमार्थ-रूपी सुगन्ध नहीं जानते इस कारण मूर्ख को देखकर जिज्ञासी हँसते हैं जो आत्म-रूपी सुगन्ध को नहीं जानते। अरे कौवे! तू क्यों हंसकी रीस करता है हंस तो हीरे और मोती चुगनेवाले हैं और तू नीचस्थानों को सेवनेवाला है। मन्त्री ने कहा, हे कोयल! तुम कमल को देखकर क्या प्रसन्न होतेहो? प्रसन्न तो तब हो जब वसन्त ऋतु हो पर यह तो वर्षाकाल का समय है—यह फूल ओलों से नष्ट होजावेंगे। हे राजन्! कोयलरूपी जो जिज्ञासी हैं उनको यह उपदेशहै। हे जिज्ञासी! जो सुन्दर पदार्थ तुमको दृष्टि आते हैं इनको देखकर तुम क्यों प्रसन्न होतेहो? प्रसन्न तो तब हो जो यह सत्य हों पर यह तो मिथ्या हैं और अविद्या के रचे हैं। तुम क्यों प्रसन्न होते हो? अपने कुल में जाबैठो और अज्ञानी का मार्ग छोड़ दो। जैसे कौवा हंसों में जा बैठता है तौ भी उसका चित्त गन्दगी के भोजन में होताहै और हंसका आहार जो मोती है उन मोतियों की ओर देखता भी नहीं; तैसेही अज्ञानी जीव कदाचित् सन्तों की संगति में जाभी बैठता है तौभी उसका चित्त विषयों की ओरही भ्रमता फिरता है और स्थिर नहीं होता। जैसे कोयल का बच्चा कौवे को माता पिता जान कर उनमें जा बैठता है तब उनकी संगति से यह भी गन्दगी के भोजन करनेवाला होजाता है इससे कोयल उसको बर्जन करते हैं कि, रे बेटा! तू कौवे की संगति मत बैठ, अपने कुल में बैठ क्योंकि; तेरा भी नीच आहार हो जावेगा; तैसेही जिज्ञासी जो अज्ञानी का संग करता है तो उसके अनुसार उसको भी विषयों की तृष्णा उत्पन्न होती है तब उसको बर्जन करते हैं कि, रे जिज्ञासी! तू मूर्ख अज्ञानियों में मत बैठ;

अपना कुल जो सन्तजन हैं उनमें बैठ। जैसे कोयल के बच्चे को कौवे सुख देनेवाले नहीं होते; तैसेही मूर्ख तुझको सुख देनेवाले नहीं होंगे। मन्त्री फिर कहनेलगा; अरी ईल! तू क्यों हंसकी रीस करतीहै? तू भी बहुत ऊंचे उड़तीहै परन्तु हंसका गुण तेरे में कोई नहीं। जब तू मांस को पृथ्वी पर देखती है तब वहां गिरपड़ती है और हंस नहीं गिरते; तैसेही जो मूर्ख हैं वे सन्तों की नाईं ऊंचेकर्म भी करते हैं परन्तु विषयों को देखकर गिरते हैं पर सन्त नहीं गिरते तो मूर्ख सन्तोंकी रीस कैसे करें। फिर मन्त्री ने कहा; हे बगला! तू हंस की रीस क्या करता है? अपने पाखण्ड को छुपाकर तू आपको हंस की नाईं उज्ज्वल दिखाता है पर जब मछली निकलती है तब तू खालेता है; यही तेरेमें अवगुण है। हंस मानसरोवर के मोती चुगनेवाले हैं और तू गढ़ेमें से तृष्णा करके मछली खानेवाला है; तू क्यों आपको हंस मानता है? तैसेही अज्ञानी जीव विषयों की तृष्णा करते हैं और ज्ञानवान् विवेक से तृप्त हैं; उनकी रीस अज्ञानी क्यों करता है? हे राजन्! जो हंस हैं वे सदा अपनी महिमा में रहते हैं और अपना जो मोती का आहार है उसको भोजन करते हैं; दूसरे किसी पदार्थ का स्पर्श नहीं करते। जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा को देखकर शोभा पाते हैं—चन्द्रमा विना शोभा नहीं पाते; तैसेही बुद्धि भी तब शोभा पातीहै जब ज्ञान उदय होताहै—आत्मज्ञान विना बुद्धि शोभा नहीं पाती। बड़े बड़े सुगन्धवाले वृक्ष का माहात्म्य भवँरेही जानते हैं और जीव नहीं जानते। इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! समुद्र के किनारे पर राजा विपश्चित् को मन्त्रियों ने ऐसे कहकर फिर कहा; हे राजन्! अब पृथ्वीनगर के मण्डलेश्वर स्थापन करो। हे रामजी! जब ऐसे मन्त्री ने कहा तब सर्वदिशाओं के मण्डलेश्वर स्थापन कियेगये और चारों राजा जो अपनी २ दिशा के समुद्रपर बैठेथे उन्होंने अपने अपने मन्त्री से कहा, हे साधो! अब हमने समुद्र पर्यन्त दिग्विजय की है और अब हमारी जय हुई है; अब चेत जो दृश्य है सो दृश्य विभूति को देखो। समुद्र के पार द्वीप है, फिर उस समुद्र के पार और द्वीप है; फिर समुद्र है और फिर द्वीपहै और इसी प्रकार सप्त द्वीप और सात समुद्रहैं पर उनके पार क्या है? इस प्रकार सर्वदृश्य देखने की इच्छा करके उन्होंने अग्निदेवता का आवाहन किया तब उनकी दृढ़भावना से अग्निदेवता सन्मुख आन स्थित हुये और बोले, हे राजन्! जो कुछ तुमको वाञ्छा है सो मांगो। तब राजाने कहा, हे भगवन्! ईश्वर की माया से पाञ्चभौतिकदृश्य में जो भूत हैं उनके देखने की हमारी इच्छा है सो पूर्ण करो। हे देव! हम इसी शरीर से दृश्य देखनेजावें और जब यह शरीर चलने से रहित हो तब मन्त्रसत्ता से जावें पर जहां मन्त्रकी भी गम नहीं वहां सिद्धि से जावें और जहां सिद्धिकीभी गम नहीं वहां मन के बेग से जावें और मृतकभी न हों। यह

वर हमको दो । हे रामजी ! जब इस प्रकार राजा ने कहा तब अग्नि ने कहा कि,
ऐसेहीहो । इस प्रकार कहकर अग्नि अन्तर्धान होगये । जैसे समुद्रसे तरङ्ग उठकर
फिर लय होजावें तैसेही अग्नि अन्तर्धान होगये । जब राजा विपश्चित् वर पाकर
चलनेको समर्थ हुआ तब जितने मन्त्री और मित्र थे वे रुदनकरने लगे और बोले,
हे राजन् ! तुमने यह क्या निश्चय कियाहै ? ईश्वर की माया का अन्त किसीने नहीं
पाया इससे तुम अपने स्थानको चलो; यह क्या निश्चय तुमने धाराहै ? हे रामजी !
इस प्रकार मन्त्री कहतेरहे परन्तु राजाने उनको आज्ञा देकर एक एक दिशाके समुद्रमें
प्रवेश किया और चारों दिशाओं में चारों राजाओं ने गमन किया पर जो बड़े बड़े शक्ति-
मान् मन्त्रीगण थे वे साथही चले तब राजा मन्त्रशक्ति से समुद्रको लांघगया। कहीं पृथ्वी
पर चले और कहीं ऊंचे चले इसी प्रकार और द्वीप में जानिकला, तब बड़ा समुद्र
आया उसमें प्रवेश करगया जिसमें बड़े तरङ्ग उछलतेथे और जिसका सौ योजनपर्यन्त
विस्तार था। कभी अध को और कभी ऊर्ध्व को जाते थे । हे रामजी ! ऐसे तरङ्ग उछलें
मानो पर्वत उछलते हैं जब वे ऊर्ध्व को उछलें तब स्वर्ग पर्यन्त उछलते भासें और
जब अधको जावें तब पाताल पर्यन्त चलते भासें। जैसे पानी में तृण फिरता है, तैसे-
ही राजा फिरे । इस प्रकार कष्टसे रहित समुद्र और दिशा को लांघगया परन्तु मध्य
में जो वृत्तान्त हुआ है सो सुनो । क्षीरसमुद्र में एक मच्छ रहताथा जिसको सर्वदेवता
प्रणाम करते थे और जो विष्णु भगवान् के मच्छ अवतार के परिवार में था । जब
राजा ने क्षीरसमुद्र में प्रवेश किया तब राजा को उसने मुखमें डाल लिया पर राजा
मन्त्र के बल से उसके मुख से निकलगया । आगे फिर एक मच्छ मिला उसने भी
उसे मुख में डाललिया पर उससे भी वह निकलगया । फिर आगे पिशाचिनी का
देश था वहां राजा को पिशाच ने काम से मोहित किया । फिर उसने दक्षप्रजापति
की कुछ अवज्ञा की जिससे उसने शाप दिया और राजा वृक्ष होगया । निदान कुछ
काल वृक्ष रहकर फिर छूटा तो एक देश में दर्दुर हुआ और सौ वर्ष पर्यन्त खाई में
पड़ारहा । फिर उससे छूटकर मनुष्य हुआ तब किसी सिद्धके शापसे शिला होगया
और सौ वर्ष पर्यन्त शिलाही रहा। उसके उपरान्त अग्नि देवताने शिलासे छुड़ाया
तो फिर मनुष्य हुआ । तब वह सिद्ध आश्चर्यवान् हुआ। कि, मेरे शापको दूर करके
यह मनुष्य क्यों कर हुआ है–यह तो मुझ से भी बड़ा सिद्ध है । ऐसे जानकर उस
ने उसके साथ मैत्री की । इसी प्रकार दूसरे समुद्रों को भी यह लांघता गया और
क्षीरसमुद्र खारीसमुद्र और इक्षुके रसके समुद्र को लांघकर द्वीपों को लांघतागया ।
फिर एक अप्सरा से मोहित हुआ और बहुतकाल में वहां से छूटा–तो एक देश में
पक्षी हुआ और बहुत काल पर्यन्त पक्षी रहकर छूटा तो एक गोपी पिशाचिनी थी

उसने बैल बनाके उसे रक्खा और दूसरे विपश्चित् ने बैल विपश्चित् को उपदेश करके जगाया। निदान हे रामजी! चारों दिशाओं में चारों विपश्चित् भ्रमते फिरे। दक्षिण दिशा को तो पिशाचिनी से मोहित हुआ इससे उसने बहुत जन्म पाये और पूर्वका बहता हुआ मच्छके मुखमें चलागया और उसने निकालडाला, इससे लेकर वह अवस्था देखी। उत्तरदिशा का जो हुआ उसने वह अवस्था देखी और पश्चिम दिशा का हेमचूपक्षी की पीठ पर प्राप्तहुआ और उसने उसे कुशद्वीपमें डालदिया इससे उसने भी अनेक अवस्था पाई। हे रामजी! एक एक विपश्चित्ने भिन्न भिन्न योनि और अवस्था का अनुभव किया। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, विपश्चित् एकही था और उनकी संवित् भी एकही थी और आकार भी एकही था तो भिन्न भिन्न रुचि कैसे हुई जो एक पक्षी हुआ; दूसरा वृक्ष हुआ और इससे लेकर वासना के अनुसार अनेक शरीर पाते फिरे। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है? उनकी संवित् एकही थी परन्तु भ्रमसे भिन्नता होजाती है। जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आता है तो उसमें पशु पक्षी होजाते हैं और भिन्न २ रुचि भी होजाती है, तैसेही उसकी भी भिन्न २ रुचि होगई। जैसे देखो कि, शरीर तो एकही होता है पर उसमें नेत्र, श्रवण, नासिका, जिह्वा और त्वचा की रुचि भिन्न २ होती है और अपने २ विषयों को ग्रहण करती हैं सो एकही शरीर में अनेकता भासती है; तैसेही उनकी एकही संवित् थी परन्तु संकल्प भिन्न २ होगया था इससे मन के फुरने से एकमें अनेक भासीं। जैसे एकही योगेश्वर इच्छा करके और और शरीर धरलेताहै और एक में अनेक होजाताहै। एक सहस्राबाहु अर्जुन था सो एक भुजा से युद्ध करता था; दूसरीभुजा से दान करता था और एक से लेता देता था; इसी प्रकार सब भुजाओं से चेष्टा करताथा—वे भी भिन्न २ हुये। एकही शरीरमें भिन्न २ चेष्टा होती है। जैसे विष्णु भगवान् कहीं दैत्यों के साथ युद्ध करते; कहीं कर्म करते हैं, कहीं लीला करतेहैं और कहीं शयन करतेहैं सो संवित् तो एकहीहै परन्तु चेष्टा भिन्न २ होतीहै; तैसेही उनकी संवित् में अनेकरुचि हुई तो इसमें क्या आश्चर्य है? हे रामजी! इस प्रकार उन्होंने जन्म से जन्मान्तर को अविद्यक संसार में देखा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वे तो बोधवान् विपश्चित् थे और बोधवान् जन्म नहीं पाता फिर उनको किस प्रकार जन्म हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वे विपश्चित् बोधवान् न थे परन्तु बोधके निकट धारणा अभ्यासवाले थे। जो वे ज्ञानवान् होते तो दृश्यभ्रम देखने की इच्छा क्यों करते? इससे वे ज्ञानवान् न थे—धारणा अभ्यासी थे और समुद्र को लांघगये और मच्छ के उदर से बल करके निकले सो यह योगशक्ति प्रसिद्ध है। ज्ञान का लक्षण सुसंवेद है असंवेद नहीं। राजा विपश्चित्

ज्ञानवान् न थे इसकारण देश देशान्तर में भ्रमतेरहे और ज्ञान विना अविद्यक सं-सार में जन्म मरण में फटकते रहे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञानवान् योगेश्वरों को भूत, भविष्य, वर्तमान; तीनों कालों का ज्ञान कैसे होताहै और एकदेश में स्थित हुआ सर्वत्र कर्मों को कैसे करता है सो सब मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानी की वार्त्ता यह मैंने तुमसे कही है और जितना जगत् है सो सब चिदाकाश-स्वरूप है। जिनको ऐसी सत्ता का ज्ञान हुआ है वे महापुरुष हैं। जैसे स्वप्ने मे कोई पुरुष जागे तो स्वप्ने की सब दृष्टि उसको अपनाही स्वरूप भासती है और उस में बन्धायमान नहीं होता। हे रामजी! यह सब नानात्व भासती है सो नाना नहीं और अनानाभी नहीं केवल आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थित है। जैसे आ-काश अपनी शून्यता में स्थित है, तैसेही आत्मा अपने आपमें स्थित है। ये तीनों काल भी ज्ञानवान् को ब्रह्मरूप होजाते हैं और सब जगत् भी ब्रह्मरूप होजाते हैं और द्वैतभाव उसका मिटजाता है। ऐसे ज्ञानवान् को ज्ञानी ही जानता है और कोई नहीं जानसक्ता जैसे अमृत को जो पान करता है सोही उसके स्वाद को जानताहै और कोई जान नहीं सक्ता। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तो तुल्य भासती है परन्तु ज्ञानी के निश्चय में कुछ और है और अज्ञानी के निश्चय में और है। जिसका हृ-दय शीतल हुआ है वह ज्ञानवान्है और जिसका हृदय जलता है वह अज्ञानी है। वह बांधा हुआ है और ज्ञानवान्का शरीर चूर्णहो अथवा उसे राज्य प्राप्त हो तौभी उसको रागद्वेष नहीं उपजता; वह सदा ज्यों का त्यों एकरस रहताहै। वह जीवन्मुक्त है परन्तु यह लक्षण उसका कोई जान नहीं सक्ता वह आपही जानताहै। शरीर को दुःख और सुखभी प्राप्त होता है; मरता और रुदनभी करता है और हँसता, लेता और देना भी है और इससे लेकर सब चेष्टा करता दृष्टि आताहै पर वह अपने निश्चय में न दुःखी होता है; न सुखी होता है; न देता है और न लेता है—सदा ज्योंका त्यों रहता है। हे रामजी! व्यवहार तो उसका भी अज्ञानी की नाईं ही दृष्टि आता है परन्तु हृदय मे उसका यह निश्चयी होताहै और अद्वैतपद में स्थित रहता है कदाचित् नहीं गिरता। उसका परम उदितरूप होताहै और रागसहित भी दृष्टि आताहै परन्तु हृदय से राग किसीमें नहीं करता; क्रोध करता भी दृष्टि आता है परन्तु उसको क्रोध कदाचित् नहीं होता। जैसे आकाश शुभपदार्थ को धारता है और धूम और बादल से ढापा भी दृष्टि आता है परन्तु किसीमे स्पर्श नहीं करता; तैसेही ज्ञानवानों में सब क्रिया दृष्टि आती हैं परन्तु अपने निश्चय में वह किसी से स्पर्श नहीं करता। जैसे नटवा स्वांग ले आता है और चेष्टा करता दीखता है पर हृदयसे अपने नटत्वभावमें निश्चय होता है; तैसेही ज्ञानवान् को भी सर्व क्रिया में अपना आत्मभाव निश्चय होता है। जैसे जिसको स्वप्ना

आताहै वह यदि स्वप्नेमेंभी अपना पूर्वरूप स्मरण रखता है तो स्वप्ने के पदार्थ में वर्तता है तौभी उनके सुख में आपको सुखी नहीं मानता और दुःखमें आपको दुःखी नहीं मानता—सब सृष्टि उसको अपनाही स्वरूप भासती है; तैसेही ज्ञानवान् को अपने स्वरूप के निश्चय से सुख दुःख का क्षोभ नहीं होता। जो ऐसे पुरुष हैं उनको दुःख से क्या होताहै? जैसे उनकी इच्छा होती है, तैसेही सिद्ध होकर भासती है। हे रामजी! यह जितनी सृष्टि है सो सब चित्सत्ता में है और योगीश्वर पुरुष उसीमें स्थित होकर जहां प्राप्त हुआ चाहते हैं वहां अन्तवाहक से जा प्राप्त होतेहैं और तीनों काल उनको विद्यमान होतेहैं साधन कुछ नहीं परन्तु ज्ञानी अवश्य करके किसी निमित्त यत्न नहीं करते—जैसा प्राप्त होताहै उसीमें प्रसन्न रहतेहैं। हे रामजी! एक कालमें ब्रह्माजी ऊर्ध्वमुख से सामवेद को गायन करतेथे और सदाशिव का मान न किया तब सदाशिव ने अपने नख से ब्रह्मा का पांचवां शीश काटडाला परन्तु ब्रह्माजी के मनमें कुछ क्रोध न फुरा। उन्होंने विचारा कि; मैं चिदाकाश हूं सो अबभी चिदाकाश हूं मेरा तो कुछ गया नहीं; शिर से मेरा क्या प्रयोजन है? न कुछ हानि है और न कुछ लाभ है। हे रामजी! इस प्रकार सर्व विश्व रचनेवाले ब्रह्माजी का शिर कटा; जो वे फिर भी शिर लगालेते तो समर्थ थे परन्तु उनको लगाने का कुछ प्रयोजन न था और न लगाने में कुछ हानि भी न थी। उनका भी निश्चय सदा आत्मपदमें है इस कारण उन्हें कुछ क्षोभ न हुआ। हे रामजी! काम के सदृश और कोई विकार नहीं है। जो सदाशिव पार्वती को बायें अङ्ग में धारते हैं और कामदेव के पांच बाण चलने से सर्वविश्व मोहित होता है उस काम को सदाशिव ने भस्म करडाला तो क्या स्त्री के त्यागनेको वे समर्थ नहीं हैं परन्तु उनको रागद्वेष कुछ नहीं इस कारण त्याग नहीं करते। त्यागने से उन्हें कुछ अर्थ की सिद्धि नहीं होती और रखने से कुछ अनर्थ नहीं होता—जो कुछ प्रवाहपतित कार्य होता है उसको करते हैं कुछ खेद नहीं मानते इससे वे जीवन्मुक्त हैं। विष्णुजी सदा विक्षेप में रहते हैं; आपभी कर्म करते हैं और लोगों से भी कराते हैं और शरीर धारते हैं और त्याग भी देते हैं इत्यादिक क्षोभ में रहते हैं सो त्यागने को समर्थ भी हैं परन्तु त्यागने में उनका कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता और करने में कुछ हानि नहीं होती। उनको लोग कई गुणोंसे गुणवान् जानते और मुझ को तो शुद्ध चिदाकाशरूप भासता है। मूर्ख कहते हैं कि, विष्णु श्यामसुन्दर हैं परन्तु वे शुद्ध चिदाकाशरूप हैं और सदा शुद्धस्वरूप में उनको अहंप्रत्यय है। आकाशमार्ग में जो सूर्य स्थित हैं वे कभी ऊर्ध्व की ओर और कभी नीचे जाते हैं तो क्या उनको स्थित होने की सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु चलना और ठहरना दोनों उनको सम है और खेद से रहित होकर प्रवाहपतित कार्य में रहते हैं इससे

जीवन्मुक्त हैं। जीवन्मुक्त चन्द्रमा भी है सो घटते २ सूक्ष्म होते दृष्टि आते हैं और कभी बढ़ते जाते; शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष उनमें होते हैं और रात्रि को प्रकाशते हैं तो क्या वे अपनी क्रियाको त्याग नहीं सक्के? नहीं त्यागसक्के हैं; परन्तु क्षोभ से रहित होकर प्रवाहपतित कार्यमें बिचरते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं। अग्नि सदा दौड़ता रहताहै और यज्ञ और होमके भोजन करनेको सर्वओर जाता है तो क्या उसको गृह में बैठने की सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु जो कुछ अपना आचार है उसको वह नहीं त्यागता क्योंकि, ठहरने में उसका कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता और चलने में कुछ हानि नहीं होती–दोनोंमें वे तुल्य जीवन्मुक्तहैं। हे रामजी! बृहस्पति और शुक्रको बड़ा क्षोभ रहता है; बृहस्पति देवताओंकी जयके निमित्त यत्न करतेहैं और शुक्र दैत्योंकी जयके निमित्त यत्न करते रहते हैं तो क्या इनको त्यागने की सामर्थ्य नहींहै परन्तु दोनों इनको तुल्य हैं इसकारण खेदसे रहित होकर अपने कार्य में बिचरते हैं इससे जीवन्मुक्त पुरुष हैं। हे रामजी! राज्यमें बड़ेक्षोभ होतेहैं पर राजा जनक आनन्दसहित राज्य करताहै और जीवन्मुक्त है और प्रह्लाद, बलि, वृत्रासुर और मुरआदि दैत्य जीवन्मुक्त हुये हैं और समताभावको लिये खेद से रहित नाना प्रकारकी चेष्टा करतेरहेहैं और हृदयसे शीतल और जीवन्मुक्त रहे हैं। राजा नल, दिलीप और मान्धाता आदिने भी समताभावको ले राज्य कियाहै सो जीवन्मुक्तहैं। ऐसेही अनेक राजा हुयेहैं और उनमें रागवान् भी दृष्टि आये हैं परन्तु हृदय में राग द्वेष से रहित शीतलचित्त रहे हैं। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य होती है परन्तु इतना भेद है कि; ज्ञानीका चित्त शान्त है और अज्ञानी का चित्त क्षोभ में है; इष्ट की प्राप्तिमें वह हर्षवान् होताहै और अनिष्ट की प्राप्ति में द्वेष करताहै और ग्रहणत्याग की इच्छा से जलता है क्योंकि, उसको संसार सत्य भासताहै और जिसका चित्त शान्त होगयाहै उसके भीतर न रागहै, न द्वेष है; स्वाभाविक शरीर की जो प्रारब्ध होती है उसमें कुछ अपना अभिमान नहीं होता। उसके निश्चयमें सब आकाशरूपहै, जगत् कुछ बना नहीं–भ्रममात्रहै जैसे आकाशमें नीलता भ्रममात्र है और दूर नहीं होती तैसेही यह जगत् भ्रममें भासताहै परन्तु है नहीं। जैसे आकाशमें नानाप्रकारके तरुवरे भासतेहैं, तैसेही आत्मा में जगत् भासताहै और जैसे काष्ठ की पुतली काष्ठरूप होती है, तैसेही जगत् भ्रमरूपहै। जो कुछ भ्रम से भिन्न भासताहै वह सब भविष्यन्नगर में असत्यहै और जो कुछ तुम्हें दृष्टि आता है सो कुछ नहीं केवल सर्व कलना से रहित, शुद्धसंवित् जड़ता विना मुक्तस्वभाव एक अद्वैत आत्मसत्ता स्थित है और केवल आकाशरूपहै, उसमें जगत् भी वहीरूप है और पाषाण की शिलावत् घनमौन है। तुमभी उसी रूप में स्थित होरहो॥

इति श्रीयो०नि०जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनन्नामद्विशताधिकैकोनविंशतितमस्सर्गः२१९॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! उस राजा विपश्चित् ने फिर क्या किया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो उनकी दशा हुईहै सो तुम सुनो। पश्चिम दिशाका विपश्चित् वन में विचरता फिरता था कि, एक मत्तहाथी के वश पड़ा और उसने उसे पहाड़ की कन्दरा में मारडाला; दूसरे विपश्चित् को राक्षस लेगया और वड़वाग्नि में डालदिया वहां अग्नि ने उसे भक्षण करलिया; तीसरे विपश्चित् को एक विद्याधर स्वर्ग में लेगया और उसने वहां इन्द्रको मान न किया इसलिये उसको इन्द्रने शाप दिया और वह भस्म होगया; इसी प्रकार चौथा भी हुआ, उसके एक मच्छ ने आठ टुकड़े करडाले। जैसे प्रलयकाल में लोक भस्म होजाते हैं तैसेही चारों विपश्चित् मरगये। तब उनकी संवित् आकाशरूप हुई परन्तु उनको जगत् देखने का संस्कार था इससे उनकी आकाशरूप संवित् फिर आनफुरी उससे जाग्रत् भासनेलगा और पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, स्थावर जङ्गमरूप जगत् को देखा और अन्तवाहक शरीर से चेष्टा करनेलगे। उनमेंसे एक पश्चिम दिशा का विपश्चित् विष्णु भगवान् के स्थान में मुआ निर्वाण होगया इससे उसकी संवित् में सर्व अर्थ शून्य होगये और वह वहां मुक्त हुआ। एक मच्छके उदरमें सहस्र वर्ष पर्यन्त रहा उससे फिर एक देशका राजा हुआ और वहां राज्य करनेलगा। एक चन्द्रमा के निकट जा वहां मरके चन्द्रमाके लोक को प्राप्तहुआ और एक बहता हुआ समुद्र के पार हुआ और आगे चौरासी हजार योजन पृथ्वी को लांघतागया। इसी प्रकार चारों फिर जिये और समुद्र, वन और पर्वतों को लांघते गये। सबके आगे दशसहस्र योजन सुवर्ण की पृथ्वी आई जहां देवताओंके बिचरने के स्थानहैं उनकोभी वे लांघतेगये। आगे लोकालोक पर्वत आया जिसने सर्व पृथ्वी को आवरणकिया है—जैसे वृक्षोंसे वनका आवरण होताहै, तैसेही उस पर्वतने पञ्चाशत्कोटि योजन पृथ्वी को आवरणकिया है और पचास हज़ार योजन ऊंचा है—वे उस लोकालोक पर्वत में पहुँचे जहां तारों का नक्षत्र चक्र फिरता है उसको भी वे लांघ गये। उसमें आगे एक शून्यनक्षत्र था सो महाशून्य था जहां पृथ्वी, जल आदिक तत्त्व कोई न था, एक शून्य आकाश है जहां न कोई स्थावरपदार्थ है, न कोई जङ्गम पदार्थ है, न कोई उपजे है, न कभी मिटे है उसको भी उन्होंने देखा। इसी प्रकार सम्पूर्ण भूगोल को उन्होंने देखा। रामजीने पूछा, हे भगवन्! भूगोल क्याहै; किसके आश्रय है और उसके ऊपर क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे गेंद होताहै, तैसे भूगोल है और संकल्प के आश्रय है। सर्व ओर उसके आकाश है और सूर्य, चन्द्रमा; नक्षत्र सहित चक्र फिरताहै। हे रामजी! यह कोई वस्तु से बुद्धि नहीं बनी संकल्प से बनीहै; जो वस्तु बुद्धि से बनी होती है सो क्रम से स्थित होतीहै और यह तो विपर्ययरूप से स्थित है। पृथ्वी के चहुँफेर दशगुण जल है उससे परे दश गुणी

अग्नि है; उसके उपरान्त दशगुणा वायु है और फिर ब्रह्माण्ड खप्पर है। वह खप्पर एक अध को और एक ऊर्ध्व को गया है और उसके मध्य में जो पोल है वह आकाश है जो वज्रसारकी नाईं है और अनन्तकोटि योजन का उसका विस्तार है। उस ब्रह्माण्ड का उसमें भूगोल है; उसके उत्तरदिशा में सुमेरुपर्वत है, पश्चिमदिशा में लोकालोक पर्वत है और ऊपर नक्षत्रचक्र फिरता है। जहां वह जाता है वहां प्रकाश होता है और जहां वह नहीं होता वहां तमरूप भासता है सो सब संकल्परचना है। जैसे बालक संकल्पसे पत्थरका वट्टा रचे, तैसेही चैतन्यरूपी बालकने यह संकल्परूपी भूगोल रचा है। हे रामजी! जैसे जैसे उस समय उसमें निश्चय हुआ है तैसेही स्थित हुआ है। जहां पृथ्वी स्थित रची है वहांहीं स्थित है और जहां खात रची है वहां खातही है परन्तु जैसे स्वप्नेमें अविद्यमान प्रतिभा होती है, तैसेही भूगोल है। हे रामजी! जिनको ऐसा ज्ञान है कि, सुमेरुमें देवता और पूर्वादि दिशाओं में मनुष्य आदि जीव रहते हैं वे पण्डित हैं तौभी मूर्ख हैं क्योंकि, ये तो भ्रममात्र हैं कुछ बने नहीं। जो हमसे आदि लेकर तत्त्ववेत्ता हैं उनको ज्ञाननेत्रसे आत्मसत्ता ज्यों की त्यों भासती है और जो मन सहित षट्इन्द्रियों से अज्ञानी देखते हैं उनको जगत् भासता है। ज्ञानवानों को परब्रह्म सूक्ष्म ज्यों का त्यों भासता है और जगत् को वे असत् जानते हैं। जैसे आकाश में अनहोती नीलता भासती है; तैसेही आत्मा में अनहोता जगत् भासता है। जैसे नेत्रदूषण से आकाश में तरुवरे भासते हैं, तैसेही अज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है सो केवल आभासमात्र है। हे रामजी! जगत् उपजा भी दृष्ट आता है और नष्ट होता भी दृष्ट आता है परन्तु बना कुछ नहीं। जैसे संकल्प का रचा फुरना अपने मन में भासता है, तैसेही यह जगत् मनमें फुरता है। यह सम्पूर्ण भूगोल संकल्प में स्थित है। जैसे बालक संकल्प करके पत्थरका बट्टा रचे, तैसेही भूगोल है। यह ब्रह्माण्ड सौकोटि योजन पर्यन्त है। उसका एक भाग अध को गया है और एक ऊर्ध्व को गया है, उसमें चैतन्यरूपी बालक ने यह भूगोल रचा है सो संकल्प के आश्रय खड़ा है। जैसे आदि नीति हुई है, तैसेही भासता है। इस पृथ्वी के उत्तरदिशा में सुमेरुपर्वत है; पश्चिमदिशा की ओर लोकालोक पर्वत है और ऊपर तारों और नक्षत्रोंका चक्र फिरता है; लोकालोक के जिस ओर वह आता है उस ओर प्रकाश होता है। भूगोल ऐसे है, जैसे गेंद होता है और उसके एक ओर पाताल है, एक ओर स्वर्ग है, एक ओर मध्यमण्डल है और आकाश सर्व ओर है। पातालवासी जानते हैं कि, हम ऊर्ध्व हैं, आकाशवासी जानते हैं कि, हम ऊर्ध्व हैं और मध्यवासी जानते हैं कि, हम ऊर्ध्व हैं। इस प्रकार भूगोल है और उसके ऊपर महातमरूप एक शून्य खात है। जहां न पृथ्वी है, न कोई पहाड़ है, न स्थावर है, न जङ्गम है और न कुछ उपजा है। उसके ऊपर एक सुवर्ण की दीवार है जिसका दश

सहस्र योजन विस्तार है और उसके ऊपर दशगुणा जल है सो पृथ्वी को चहुँफेर से घेरे है; उससे परे दशगुण अग्नि है; फिर दशगुणा वायु है और उसके आगे आकाश है। फिर ब्रह्माकाश महाकाश है जिसमें अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं परन्तु ये तत्त्व जैसे तृण के आश्रय कपूर ठहरता है तैसेही पृथ्वी भाग के आश्रय ठहरे हैं वास्तव में शुद्ध चैतन्य ब्रह्म का चमत्कार है जो आकाशवत् निर्मल है और उसमें कोई क्षोभ नहीं है, परमशान्त, अनन्त और सर्वका अपना आपहै। हे रामजी! अब फिर विपश्चित् की वार्ता सुनो। जब वे लोकालोक पर्वत पर जा स्थित हुये तब एक शून्य खात उनको दृष्ट आया और पर्वत से उतरकर खातमें वे जापड़े। वह खातभी पर्वत के शिखर पर था और वहां शिखर की नाईं बड़े २ पक्षी भी रहते थे इस कारण उन पक्षियों ने चोंचों से इनके शरीर चूर्ण किये, तब उन्हों ने अपने स्थूल शरीर को त्यागकर अपना सूक्ष्म अन्तवाहक शरीर जाना। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधिभौतिकता कैसे होती है और अन्तवाहक क्या है? फिर उन्हों ने क्या किया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे कोई संकल्प से दूर से दूर चला जावे तो जिस शरीर से जावे वह अन्तवाहक है और जो पाञ्चभौतिक शरीर प्रत्यक्ष भासता है सो आधिभौतिकहै। जब मार्ग से कहीं जाने को चित्त का संकल्प उठता है तब स्थूल शरीर गये विना नहीं पहुँचसक्ता और जब मार्ग में चले तब पहुँचताहै सोही आधिभौतिकहै और यह प्रमाद से होता है। जैसे रस्सी के भूलने से सर्प भासता है, तैसेही आत्मा के अज्ञान से आधिभौतिक शरीर भासता है और जैसे कोई मनोराज का पुर बनाके उसमें आपभी एक शरीर बनकर चेष्टा करता फिरे तो उसे जबतक पूर्वका शरीर विस्मरण नहीं हुआ तबतक वह संकल्प शरीर मे चेष्टा करता है सो अन्तवाहक है। उस शरीर को संकल्पमात्र जानना—विशेष बुद्धि कहाती है। आत्मबोध हुये विना जो उस संकल्प शरीर में दृढ़ भावना होती है तो उसका नाम आधिभौतिक होताहै—सो घट बढ़ कहाता है। इससे जबतक शरीर का स्मरण है तबतक आधिभौतिकता नहीं होती और जब शरीर का विस्मरण होता है तब आधिभौतिकता होजाती है। विपश्चित् जो आधिभौतिक थे सो आत्मबोध से रहित थे और जहां चाहते थे तहां चलेजाते थे पर स्वरूप से न कुछ अन्तवाहक है और न कुछ आधिभौतिकहै; प्रमाद से ये सब आकार भासते हैं। वास्तव में सब चिदाकाशरूप है, दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी सब वहीहै और उसीके प्रमाद से विपश्चित् अविद्यक जगत् को देखने चलेथे वह अविद्या भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं—ब्रह्महीहै तो उस का अन्त कहां आवे। वहांसे वे चले परन्तु जानें कि, हमारा अन्तवाहक शरीर है। निदान वे सब पृथ्वी को लांघगये फिर जल को भी लांघ गये और उसके परे जो सूर्य-वदाहक अग्नि का आवरण प्रकाशवान् है तिसको भी लांघकर मेघ और वायु के

आवरण को भी लांघे। फिर आकाशको भी लांघगये तो उसके परे ब्रह्माकाश था जहां उनको संकल्प के अनुसार फिर जगत् भासनेलगा पर उसको भी लांघे। फिर आगे ब्रह्माकाश मिला और फिर उनको पञ्चभूत भासि आये उसके आवरण को भी लांघ गये। फिर उस ब्रह्माण्ड कपाट के परे तत्त्वों को लांघकर ब्रह्माकाश आया उसमें एक और पाञ्चभौतिक ब्रह्माण्ड था उसको भी लांघ गये पर अन्त न पाया। स्वरूप के प्रमादसे दृश्य के अन्तलेनेको वे भटकते फिरे पर अविद्यारूप संसारका अन्त कैसे आवे? यह जीव तबतक अन्त लेनेको भटकता फिरता है जबतक अविद्या नष्ट नहीं होती; जब अविद्या नष्ट होगी तभी अविद्यारूप संसार का अन्त होगा। हे रामजी! जगत् कुछ बना नहीं वही ब्रह्माकाश ज्योंका त्यों स्थित है और उसका न जानना ही संसार है। जबतक उसका प्रमाद है तबतक जगत् का अन्त न आवेगा और जब स्वरूप का ज्ञान होगा तब अन्त आवेगा। सो वह जानना क्या है? चित्त को निर्वाण करनाही जानना है। जब चित्त निर्वाण होगा तब जगत् का अन्त आवेगा। जबतक चित्त भटकता फिरता है तबतक संसार का अन्त नहीं आता। इससे चित्त का नासही संसार है। जब चित्त आत्मपद में स्थित होगा तब जगत् का अन्त होगा। इस उपाय बिना शान्ति नहीं प्राप्त होती॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्र०विपश्चिदुपाख्यानवर्णनंद्विशताधिकविंशतिस्सर्गः॥ २२०॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वे जो दो विपश्चित् थे उनकी क्या दशा हुई, यह भी कहो? वे तो दोनों एकही थे। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक तो निर्वाण हुआ था और दूसरा ब्रह्माण्डों को लांघता २ और एक ब्रह्माण्ड में गया तब वहां उसको सन्तों का संग प्राप्त हुआ और उनकी संगति से उसको ज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञानको पाकर वह भी निर्वाण होगया। एक अबतक दूर फिरता है और एक यहां पहाड़की कन्दरा में मृग होकर बिचरता है। हे रामजी! यह जगत् आत्मा का आभास है। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है और जबतक किरणें हैं तबतक जलाभास निवृत्त नहीं होता; तैसेही जबतक आत्मसत्ता है तबतक जगत् का चमत्कार निवृत्त नहीं होता और आत्मा के जानेसे जगत्सत्ता नहीं रहती। जैसे किरणों के जाने से जलाभास नहीं रहता और जो जल भासता है तौभी किरणोंही की सत्ता भासती है; तैसेही आत्मा के जाने से आत्मा की सत्ताही भासती है–भिन्न जगत् की सत्ता नहीं भासती। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! विपश्चित् एकही था तो एकही संवित् में भिन्न २ वासना कैसे हुईं? एक मुक्त होगया, एक मृग होकर फिरता रहा और एक आगे निर्वाण होगया–यह भिन्नता कैसे हुई है? संवित् तो एकही थी उसमें कम और अधिक फल कैसे प्राप्त हुये सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वासना

जो होतीहै सो देश, काल और पदार्थों से होतीहै। उसमें जिसकी दृढ़ भावना होती है उसकी जय होतीहै। जैसे एक पुरुषने मनोराज से अपनी चार मूर्तियां कल्पीं और उनमें भिन्न २ वासना स्थापन की पर संवित् तो एक है, यदि पूर्व का शरीर भूलकर उसमें दृढ़ होगये तो जैसी २ भावना उनके शरीर में दृढ़ होती है वही प्राप्त होती है; तैसेही संवित् में नाना प्रकार की वासना फुरती हैं। जैसे एकही संवित् स्वप्न में नाना प्रकार धारती है और भिन्न २ वासना होती है; तैसेही आकाशरूप संवित् में भिन्न २ वासना होती है। हे रामजी! संवित् उनकी एक थी परन्तु देश, काल और क्रिया से वासना भिन्न २ होगई और पूर्व की संवित् स्मृति भूल गई उससे उन्हों ने न्यून और अधिक फल पाये। वह संवित् क्या रूप है? हे रामजी! देश से देशांतर को जो संवेदन जाती है उसके मध्य जो संवित्सत्ता है सो ब्रह्मसत्ता है। जैसे जाग्रत् के आकार को छोड़ा और स्वप्न नहीं आया उसके मध्य जो ब्रह्मसत्ता है वह किञ्चनरूप जगत् होकर भासती है परन्तु किञ्चन भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं। वह एक है, न दो है; एक कहना भी नहीं होता तो दो कहां हो और जगत् कहां हो? यही अविद्याहै कि, है नहीं और भासतीहै। जिस २ आकार में जैसी २ वासना फुरती है और जो दृढ़ होजाती है उसकी जय होतीहै। इस कारण एक विपश्चित् जनार्दन विष्णु के स्थान में निर्वाण होगया और दूसरा दूर से दूर ब्रह्माण्ड को लांघता गया और उसको सन्तों का संग प्राप्त हुआ जिससे ज्ञान उदय होकर वासना मिटगई और उसका अज्ञान नष्ट होगया। जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाताहै, तैसेही जब उसका अज्ञान नष्ट होगया तब वह उस पदको प्राप्त भया जिसके अज्ञान से दूरसे दूर भटकना है, तीसरा दूरसे दूर भटकता फिरता है और चौथा पहाड़ की कन्दरा में मृग होकर विचरता है। हे रामजी! जगत् कुछ वस्तु नहीं, अज्ञानके वश से भटकता है इसलिये अज्ञानही जगत् है। जबतक अज्ञानहै तबतक जगत्है। जब ज्ञान उदय होता है तब वह अज्ञान को नाश करता है और तभी जगत् का भी अभाव होजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो मृग हुआ है सो कहां २ फिरा है और कहां २ स्थित हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दो ब्रह्माण्ड को लांघते दूरसे दूर चले गये थे, उनमें से एक अबतक चलाजाता है और पृथ्वी, समुद्र, वायु, आकाश उसकी संवित् में फुरते हैं। यह तो दूर से दूर चलागया है और हमारी आधिभौतिक दृष्टिका विषय नहीं और एक ब्रह्माण्डको लांघता गया था पर अब इस जगत में पहाड़ की कन्दरा का मृग हुआहै सो हमारी इस दृष्टिका विषयहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ये तो दूर गये थे और उनमें से एक इस जगत् में अब मृग हुआहै; तुमने कैसे जाना कि, आगे वह ब्रह्माण्ड में था और अब इस जगत् में है? वशिष्ठजी

बोले, हे रामजी ! मैं ब्रह्म हूं और सर्वब्रह्माण्ड मेरे अङ्ग हैं। मुझको सबका ज्ञानहै। जैसे अवयवी पुरुष अपने अङ्गोंको जानता है कि, यह अङ्ग फुरताहै और यह नहीं फुरता; तैसेही मैं सबको जानता हूं। जहां जहां यह लांघता गयाहै उसे बुद्धि के नेत्रों से मैं जानता हूं परन्तु तुम नहीं जानसक्ते। जैसे समुद्र में अनेकतरङ्ग फुरतेहैं और समुद्र सबको जानताहै, तैसेही मैं समुद्ररूप हूं और मेरेमें ब्रह्माण्डरूपी तरङ्गें हैं इस से मैं सबको जानताहूं। हे रामजी ! वह जो मृगहै सो दूर ब्रह्माण्ड में फिरता है। वह विपश्चित् यह सामान्य मृग नहींहै परन्तु जैसाहै सो सुनो। हे रामजी ! एक ब्रह्माण्ड इस हमारे ब्रह्माण्ड सा है जिसका ऐसाही आकार है, ऐसीही चेष्टा है, एकहीसा जगत् है और स्थावर जङ्गम सब एकही से हैं। वहां जो देश, काल और क्रिया का विचरना होताहै सो इसकेही समान होताहै। जैसे नामरूप आकार यहां होतेहैं; जैसे बिम्ब का प्रतिबिम्ब तुल्यही होता है और जैसे एकही आकार का एक प्रतिबिम्ब जलमें होता है और द्वितीय दर्पणमें होताहै सो दोनों तुल्यहैं; तैसेही दोनों ब्रह्माण्ड एक समान हैं और ब्रह्मरूपी आदर्श में प्रतिबिम्बित होते हैं। इस कारण यह मृग विपश्चित् है इसी निश्चयको धारे हुये है यह और वह दोनों तुल्य हैं सो पहाड़की कन्दरा में है। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! वह विपश्चित् अब कहां है और उसका क्या आचारहै ? अब मैं जानता हूं कि, उसका कार्य हुआ है। अब चलकर मुझको दिखाओ और उसको दर्शन देकर अज्ञान फांससे मुक्तकरो। इतना कहकर वाल्मीकि जी बोले, हे अङ्ग ! जब रामजीने इस प्रकार कहा तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जहां तुम्हारा लीला का स्थान है और तुम क्रीड़ा करते हो उस ठौर में वह मृग बांधा हुआ है। यह तुमको तिरगदेश के राजा ने दिया है सो बहुत सुन्दर है इस कारण तुमने उसे रक्खाहै। उसको मँगावो। तब रामजी ने अपने सखाओं से जो निकटवर्ती थे कहा कि, उस मृग को सभा में लेआओ। हे राजन् ! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब वे सभा में उस मृग को लेआये और जितने श्रोता सभा में बैठेथे वे बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुये। वह मृग बड़ीग्रीवा किये महासुन्दर और कमल की नाईं नेत्रवाला था; कभी वह घास खानेलगे कभी सभा में खेले और कभी ठहरजावे। तब रामजी ने कहा, हे भगवन् ! आप इसको कृपा करके मनुष्ययोनि को प्राप्त कीजिये और उपदेश करके जगाइये कि, हमारे साथ प्रश्न उत्तर करे; अभी तो यह प्रश्न उत्तर नहीं करता ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार इसको उपदेश न लगेगा क्योंकि; जिसको कोई इष्ट होता है उसीसे उसको सिद्धि होती है; इससे मैं इसके इष्ट को ध्यान करके बुलाता हूं-उससे इसका कार्य सिद्ध होगा। वाल्मीकिजी बोले, हे राजन् ! इस प्रकार कहकर वशिष्ठजीने कमण्डलु हाथमें लेकर तीन आचमन कीं

और पद्मासनबांध, नेत्रमूंद और ध्यान में स्थित होकर अग्नि का आवाहन किया। हे वह्ने ! यह तेरा भक्त है इसकी सहायता करो और इस पर दया करो। तुम सन्तों का दयालु स्वभाव है। जब ऐसे वशिष्ठजीने कहा तब सभा में बड़े प्रकाश को धारे अग्नि की ज्वाला काष्ठ अङ्गार से रहित प्रकट हुई और जलनेलगी। जब ऐसे अग्नि जागी तब वह मृग उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उस के चित्त में बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई। तब वशिष्ठजी ने नेत्र खोलकर अनुग्रहसहित मृग की ओर देखा उससे उसके सम्पूर्ण पाप दग्ध होगये। वशिष्ठजी ने अग्नि से कहा, हे भगवन्, वह्ने ! यह तेरा भक्तहै। अपनी पूर्व की भक्ति स्मरण करके इस पर दया करो और इसके मृग-शरीर को दूर करके इस को विपश्चित् शरीर दो कि, यह अविद्या भ्रम से मुक्त हो। हे राजन् ! इस प्रकार वशिष्ठजी अग्नि से कहकर रामजी से बोले, हे रामजी ! अब यही मृग अग्नि में प्रवेश करेगा तब इसका मनुष्य शरीर होजावेगा। ऐसे वशिष्ठजी कहतेही थे कि, अग्नि को वह मृग देखकर एक चरण पीछे को हटा और उछलकर अग्नि में प्रवेश करगया। जैसे बाण निशानमें आ प्रवेश करते हैं, तैसेही उसने प्रवेश किया। हे राजन्! उस मृगको कुछ खेद न हुआ बल्कि उसको अग्नि आनन्दवान् दृष्ट आया तब उसका मृगशरीर अन्तर्धान होगया और महाप्रकाशरूप मनुष्य शरीरको धारे अग्निसे निकला। जैसे कपड़े के ओढ़ेसे स्वांगी स्वांग धारणकर निकल आताहै, तैसेही वह निकल आया और अतिसुन्दर वस्त्र पहिरेहुये, शीशपर मुकुट कण्ठमें रुद्राक्ष की माला और यज्ञोपवीत धारण किये था। अग्निवत् वह तेजवान् था किन्तु सभामें जो बैठे थे उनसे भी अधिक उसका तेज था—मानो अग्निको भी लज्जित कियाहै। जैसे सूर्यके उदय हुये चन्द्रमाका प्रकाश लज्जित होजाताहै, तैसेही वह सर्व से प्रकाशवान् होगया। फिर जैसे समुद्र से तरङ्ग निकलकर लीन होजाता है, तैसेही वह अग्नि अन्तर्धान होगये। उसको देखकर रामजी आश्चर्यको प्राप्त हुये और सर्वसभा विस्मय को प्राप्त हुई। तब बड़े प्रकाशको धारनेवाला विपश्चित् निकलकर ध्यान में लगगया और विपश्चित्से आदि लेकर इस शरीरपर्यन्त सर्वशरीर स्मरण करके नेत्र खोल वशिष्ठजीके निकट आ साष्टाङ्ग प्रणाम कर बोला, हे ब्राह्मण ! ज्ञान के सूर्य और प्राण के दाता ! तुमको मेरा नमस्कार है। हे राजन्! जब इस प्रकार उसने कहा तब वशिष्ठजी ने उसके शिर पर हाथ रक्खा और कहा, हे राजन्! तू उठखड़ा हो। अब मैं तेरी अविद्या दूर करूंगा और तू अपने स्वरूप को प्राप्त होगा। तब राजा विपश्चित् ने उठकर राजा दशरथ को प्रणाम किया और बोला, हे राजन्! तेरी जय हो। तब राजा दशरथ ने आसन से उठकर कहा, हे राजन् ! तुम बहुत दूर फिरते रहे हो अब यहां मेरे पास बैठो। तब राजा विपश्चित् विश्वामित्र आदिक जो ऋषि बैठे थे

उनको यथायोग्य प्रणाम करके बैठगया और राजा दशरथने विपश्चित् को जो बड़े प्रकाश को धारे हुये था भास कहके बुलाया और कहा, हे भास! तुम संसारभ्रम के लिये चिरकाल फिरते रहेहो; थके होगे अब विश्राम करो और जो जो देश काल क्रिया की हैं और देखा है सो कहो। यह आश्चर्य है कि, अपने मन्दिर में सोये हो और निद्रादोष से गढ़े में गिरते फिरे और देश देशान्तरों को भटकते फिरे। यही अविद्या है। हे भास! जैसे वन का बिचरनेवाला हाथी जंजीर से बन्धायमान हुआ दुःख पाता है, तैसेही तुम विपश्चित् भी थे और अविद्या से जगत् के देखनेके निमित्त भटकतेरहे। हे राजन्! जगत् कुछ वस्तु नहीं है पर भासता है यही माया है। जैसे भ्रम से आकाश में नाना प्रकार के रङ्ग भासते हैं, तैसेही अविद्या से यह जगत् भासते हैं और सत्यप्रतीत होतेहैं पर सब आकाशरूप ही आकाश में स्थित हैं। उस आकाश में जो कुछ तुमने आत्मरूपी चिन्तामणि के चमत्कार से देखाहै सो कहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चिच्छरीरप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकैकविंशतितमस्सर्गः॥ २२१॥

दशरथजी बोले, हे भास! बड़ा आश्चर्यहै कि, तुम विपश्चित् बुद्धिमान् थे और चेष्टा से तुमने अविपश्चित् होकर बुद्धि की है जो अविद्याके देखनेको समर्थ हुये थे। यह जगत् प्रतिभा तो मिथ्या उठी है; असत्य के ग्रहण की इच्छा तुमने क्यों की? बाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा तब प्रसंग पाकर विश्वामित्र बोले, हे राजन्, दशरथ! यह चेष्टा वही करताहै जिसको परमबोध नहीं होता और केवल मूर्ख और अज्ञानी भी नहीं होता क्योंकि; जिसको परमबोध और आत्मा का अनुभव होता है वह जगत् को अविद्यक जानता है और उस अविद्यक जगत् के अन्त लेनेको इतना यत्न नहीं करता क्योंकि, वहतो असत्य जानता है और जो देहअभिमानी मूर्ख अज्ञहै वह भी यह यत्न नहीं करता क्योंकि; उसको देखनेकी सामर्थ्य भी नहीं होती। इससे मध्य भावीहै। जो आत्मबोधसे रहितहै और जिसने आधिभौतिक शरीर त्याग किया है वह भी संसार देखने का यत्न करता है और जिन को उत्तम बोध नहीं हुआ वे इस प्रकार बहुत भटकते फिरते हैं। हे राजन्! इसी प्रकार बटधाना भी इसी ब्रह्माण्ड में फिरतेहैं। सत्तर लक्ष वर्ष उनके व्यतीत हुये हैं कि, इसी ब्रह्माण्ड में फिरते हैं। उननेभी यही निश्चय धारा है कि, पृथ्वी कहांतक चलीजाती है। इस निश्चय से वह निवृत्त नहीं होते और इसी ब्रह्माण्डमें भ्रमते हैं और उनको अपनी वासना के अनुसार विपरीत औरही और स्थान भासते हैं। हे राजन्! जैसे किसी बालक का रचा संकल्प का वृक्ष आकाशमें हो, तैसेही यह भूगोल ब्रह्माके संकल्पमें स्थितहै और संकल्प से गेंदके समान आकाश, वायु, अग्नि,

जल, पृथ्वी इन पांचों तत्त्वों का ब्रह्माण्ड रचा है और उसके चौफेर चींटियां फिरती हैं; जिस ओर से वे जाती हैं सो ऊर्ध्व भासता है सो औरही और निश्चय होता है, तैसेही यह संकल्प के रचे भूगोलके किसी कोणमें बटधाना जीव हुआ हैं। हे राजन्! उसके तीन पुत्र थे, उनको यह संकल्प उदय हुआ कि, हम जगत् का अन्त देखें। इसी संकल्पसे फिरते २ पृथ्वी लांघते हैं, फिर पृथ्वी और जल आताहै जल लांघते हैं; फिर आकाश आता है फिर पृथ्वी, जल, वायु फिर उसी भूगोल के चहुं फेर फिरते रहे। जैसे आकाश में गेंद हो तैसेही यह पृथ्वी आकाश में है और इसका अध ऊर्ध्व कोई नहीं। चरण अध शिरका पासा ऊर्ध्व उसीके चौफेर घूमतेरहे परन्तु अपने निश्चय मे और का और जानतेरहे। जबतक स्वरूप का प्रमाद है तबतक जगत् का अभाव नहीं होता और जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब जगत् ब्रह्मरूप होजाता है। जगत् कुछ बना नहीं, फुरनेसे भासता है जैसे स्वप्ने में अज्ञान मे अनन्त जगत् दिखता है कि, यह हुआ है सो फुरना परब्रह्म में हुआ है और जो फुरने में हुआ है सोभी परब्रह्म है और कुछ बना नहीं–आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। जैसे पत्थर की शिला घनरूप होती है, तैसे है आत्मतत्त्व चैतन्यघन है। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं, तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। कल्पना परब्रह्मरूप है और ब्रह्मही कल्पनारूप है। इस जड़ और चैतन्य में कुछ भेद नहीं। हे राजन्! जिसको जगत्शब्द से कहते हो वह ब्रह्मसत्ताही है। न कुछ उत्पन्न हुआ है और न प्रलय होता है–सर्व ब्रह्मही है। जैसे पहाड़ में पत्थर से इतर कुछ नहीं होता तैसेही यह जगत् ब्रह्मसत्ता से इतर कुछ नहीं। जैसे पाषाण की पुतली पाषाणरूपही है, तैसेही जगत् ब्रह्मरूपहीहै। एक सूक्ष्म अनुभव अणु से अनेक अणु होते हैं। जैसे एक पहाड़मे अनेक शिला होती हैं। हे राजन्! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् ब्रह्मरूप भासताहै और जो अज्ञानी हैं उनको नाना प्रकार का भासताहै। जगत् कुछ वस्तु नहींहै परन्तु जबतक संकल्पहै तबतक जगत् फुरताहै। जैसे रत्नों का चमत्कार होता है, तैसेही जगत् आत्मा का चमत्कार है और चैतन्य आत्माके आश्रय अनन्त सृष्टियां फुरतीहैं सो सृष्टि सब आत्मरूपहैं आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जो जाग्रत् पुरुष ज्ञानवान् हैं उनको ब्रह्मरूपही भासता है और जो अज्ञानी हैं उनको नाना प्रकारका जगत् भासताहै। हे राजन्! कई एक इसको शून्य कहते हैं कि, शून्यही है और कुछ नहीं; कई इसको जगत् कहते हैं और कई ब्रह्म कहते हैं। जैसा किसीको निश्चय होताहै उसको वही रूप भासता है। आत्मरूपी चिन्तामणि है, जैसा २ संकल्प उसमें फुरता है तैसा तैसाही भासता है। सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ताहै; जैसा २ उसमें निश्चय होता है तैसाही तैसा होकर भासता है

और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य-त्रिपुटी जो भासती है सो भी ब्रह्म होकर भासती है द्वितीय कुछ वस्तु नहीं और और जो कुछ भासता है वही अज्ञान है। हे राजन्! जबतक वासना नष्ट नहीं होती तबतक दुःखभी नहीं मिटते और जब वासना मिटजावे तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासे और रागद्वेष किसीमें न रहे। जैसे स्वप्नेमें नाना प्रकार की सृष्टि भासती हैं पर पूर्वस्वरूप स्मरण आता है तो सर्वरूप आप होजाता है और राग द्वेष मिटजाता है; तैसेही ज्ञानवान् को यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आप भासताहै और समानरूप विचार से रहित होताहै। पूर्व, अपूर्व और अपरको विचारना कि, यह शुभ है और यह अशुभ है; अशुभ का त्याग करना यह गुण विचार है। जबतक पूर्वापर विचार मन में रहता है तबतक जगत् में भटकता है और बांधा रहता है क्योंकि, शुभ अशुभ दोनों जगत्में हैं। जब इनका विस्मरण होजावे और सम्पूर्ण जगत् को भ्रममात्र जानकर आत्मपद में सावधान हो तब मुक्त होताहै। इस जीव को अपनी वासनाही बन्धन का कारणहै। जबतक जगत् में दुःख की वासना होती है तबतक राग द्वेष उपजता है और उससे बांधा रहताहै। जिनको जगत् के सुख दुःखमें राग द्वेष की भावना नहीं उपजती और जिनकी वासना भी नष्ट होती है उनको यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासता है और जगत् में दुःखदायक कुछ नहीं भासता। उनको सब ब्रह्मही भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवटधानोपाख्यानवर्णनन्नाम द्विशताधिकद्वाविंशतितमःसर्गः॥ २२२॥

दशरथजीने विपश्चित् से पूछा, हे भास! तुम चिरकाल पर्यन्त जगत् में फिरते रहेहो जिस प्रकार तुमने चेष्टा की है और जो देश, काल, पदार्थ देखे हैं सो सबही कहो। भास बोले, हे राजन्! मैं जगत्को देखता फिरा हूं और फिरना २ थक गयाहूं परन्तु देखने की जो इच्छा थी इसकारण मुझको दुःख नहीं हुआ है। जो कुछ मैंने चेष्टा की है और जो देखा है सो कहता हूं। हे राजन्! मैंने बहुत जन्म धारे हैं: और बहुतबार मृतक हुआ हूं; बहुतबेर शाप पाया है; ऊंच नीच जन्म धारे हैं और मर मरगया हूं और बहुत ब्रह्माण्ड देखे हैं परन्तु यह सब अग्निदेवता के वर से देखे हैं। एकबार मैं वृक्ष हुआ और सहस्रवर्ष पर्यन्त फूल, फल, टास संयुक्त रहा। जब कोई काटे तब मैं दुःखी होऊँ और मेरा मन हृदय से पीड़ा पावे। फिर वहां से शरीर छूटा तब मैं सुमेरुपर्वत पर सुवर्ण का कमल हुआ और वहां का जलपान किया। फिर एक देश में पक्षी हुआ और सौवर्ष पक्षी रहकर फिर सियार हुआ और मुझे हस्ती ने चूर्ण किया इससे मृतक होकर फिर सुमेरुपर्वत पर सुन्दर मृग हुआ और देवता और विद्याधर मेरे साथ प्रीति करने लगे। कुछकाल में मरकर फिर देवताओं के वन में

मञ्जरी हुआ और वहां देवियां और विद्याधरियां मुझको स्पर्श करें और सुगन्ध लें। तब मैं देवनाओं की स्त्री हुआ, फिर सिद्ध हुआ और मेरा वचन फुरनेलगा; फिर मैंने और शरीर धारा और एक ब्रह्माण्ड लांघगया। इसी प्रकार कई ब्रह्माण्ड मैं लांघगया तब एक ब्रह्माण्ड में जो आश्चर्य देखा है सो सुनो। वहां मैंने एक स्त्री देखी जिसके शरीर में कई ब्रह्माण्ड थे इससे मैं आश्चर्यवान् हुआ और देश काल क्रिया से पूर्ण कई त्रिलोकी देखीं। जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब दृष्टि आताहै; तैसेही मुझको उसमें जगत् भासे। तब मैंने उससे कहा; हे देवि! तुम कौन हो और यह तेरे शरीर में क्या है? देवी बोली, हे साधो! मैं शुद्ध चित्शक्ति हूं और यह सब मेरे अङ्ग मेरे में स्थित हैं। मेरी क्या बात पूछनी है—यह सब जगत् जो तू देखताहै चिद्रूप हैं; चैतन्य से भिन्न और कुछ नहीं और सबमें ब्रह्माण्ड त्रिलोकी स्थितहै जो अपना आपहीहै। जो पूर्वके अपने स्वभाव में स्थित हैं उनको अपनेहीमें ये भासते हैं और अपनाही स्वरूप भासता है और जो स्वभाव में स्थित नहीं हैं उनको जगत् बाहर और आपसे भिन्न भासते हैं। हे राजन्! यह जगत् कुछ बना नहीं। जैसे स्वप्नेमें गन्धर्वनगर भासता है, तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और जैसे जलमें तरङ्ग भासता है सो जलरूप है—तरङ्ग कुछ भिन्न वस्तु नहीं होते; तैसेही सब जगत् चिद्रूप में भासता है सो चैतन्य से भिन्न कुछ नहीं परन्तु जब स्वभाव में स्थित होकर देखोगे तब ऐसेही भासेगा और जो अज्ञान दृष्टि से देखोगे तो नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आवेगा। हे राजन्, दशरथ! जब इस प्रकार उस देवी ने मुझसे कहा तब मैं वहांसे चला और आगे दूसरी सृष्टि में गया तो देखा कि, वहां सब पुरुषही रहते हैं, स्त्री कोई नहीं और पुरुषसे पुरुष उत्पन्न होतेहैं। उससे भी आगे और सृष्टि में गया तो वहां न सूर्य था, न चन्द्रमा था, न तारे थे, न अग्नि थी, न दिन था और न रात्रि थी। जैसे चन्द्रमा, सूर्य और तारों का प्रकाश होता है, तैसेही सब अपने प्रकाश से प्रकाशते थे उनको देखकर मैं आगे और सृष्टि में गया तो वहां क्या देखा कि, आकाशही से जीव उत्पन्न होकर आकाशही में लीन होतेहैं और इकट्ठेही सब उपजते और इकट्ठेही सब लीन होजाते हैं; न वहां मनुष्य हैं, न देवता हैं, न वेद हैं, न शास्त्रहैं, न जगत् है—इनसे विलक्षणही प्रकारहै। हे राजन्! इस प्रकार मैंने कई सृष्टियां देखीहैं जो मुझको स्मरण आती हैं। आगे और सृष्टि में गया तो वहां क्या देखा कि, सब जीव एकही समान हैं; न किसीको रोग है और न किसीको दुःख है—सब एकसे गङ्गाके तीरपर बैठेहैं। हे राजन्! एक और आश्चर्य मैंने देखा है सोभी सुनो। एक सृष्टि में मैं गया तो वहां क्षीरसमुद्र मन्दराचल में मथाजाता था एक ओर विष्णु भगवान् और देवता थे और मन्दराचल पर्वत रत्नों से जड़ा हुआ शेषनाग से रस्सी की नाईं लपिटा हुआ था मथने के निमित्त दूसरी ओर दैत्य लगे थे

और बड़ा सुन्दर शब्द होताथा। वहां वह कौतुक देखकर मैं आगे गया तो एक और
सृष्टि देखी जहां मनुष्य आकाशमें उड़ते फिरतेथे और देवताओंकी पृथ्वी पर मनुष्य
बिचरते और वेदशास्त्र जानते थे। हे राजन्! एक और आश्चर्य मैंने देखा सोभी
सुनो। एक सृष्टि में मैं जा निकला तो वहां मन्दराचल पर्वत पर कल्पतरु का वन था
और उसमें मन्दरका नाम एक अप्सरा रहती थी। वहां जाकर मैं सोरहा तो ज्योंही
रात्रि का समय आया कि, वह अप्सरा मेरे कण्ठ में आलगी। तब मैंने जागकर उस
को देखा और कहा कि, हे सुन्दरि! तूने मुझको किस निमित्त जगाया? मैं तो सुख से
सोरहा था। तब उस अप्सरा ने कहा कि, हे राजन्! मैंने इस निमित्त तुझको जगाया
है कि; चन्द्रमा उदय हुआ है और चन्द्रकान्तमणि चन्द्रमा को देखकर स्रवेगी और
नदी की नाईं प्रवाह चलेगा ऐसा न हो कि, उसमें तू बहजावे। हे राजन्, दशरथ! इस
प्रकार उसने कहाही था कि, नदीका प्रवाह चलनेलगा। तब वह अप्सरा उस प्रवाह
को देखकर मुझे आकाश को लेउड़ी और पर्वत के ऊपर जहां गङ्गा का प्रवाह चलता
था उसके तटपर मुझको स्थित किया। सात वर्ष पर्यन्त मैं वहां रहकर फिर एक और
ब्रह्माण्डमें गया तो देखा कि, वहां तारा, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य कुछ भी न थे। उसको देख
कर मैं और आगे गया इसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्ड मैंने देखे। हे राजन्! ऐसा देश
व ऐसी पृथ्वी, नदी और पहाड़ कोई न होगा जिसको मैंने न देखा हो और ऐसी चेष्टा
कोई न होगी जो मैंने न कीहो। कई शरीरों के मैंने सुख भोगे हैं; कितनों के दुःख भोगे
हैं और वन, कन्दरा और गुप्त स्थानोंमें फिरकर सब देखा परन्तु अग्नि देवता के वरको
पाकर फिरता २ मैं थकगया तौभी आगेही चलागया और अनेक अविद्यक ब्रह्माण्ड
भी देखे परन्तु अब उनका अन्त आयाहै कि, यह जगत् भ्रममात्र है। मैंने शास्त्रों
में सुना है कि, यह जगत् है नहीं तौभी दुःख देताहै। जैसे बालक को अपनी परछाहीं
में वैताल भासताहै; तैसेही यह जगत् अविचार से भासता है और विचार कियेसे
निवृत्त होजाता है। एक आश्चर्य और सुनो कि, एक ब्रह्माण्ड में मैं गया तो वहां
महाआकाश था। उस महाआकाश से गिरकर मैं पृथ्वी पर आनपड़ा और वहां मो
गया तब मैं महागाढ़ सुषुप्तिरूप होगया और सब जगत् का मुझे विस्मरण होगया।
जब वह गाढ़ सुषुप्ति क्षीण हुई तब एक स्वप्न आया और उसमें तुम्हारा यह जगत्
मुझको भासि आया। उसमें मुझको पहाड़, कन्दरा, देश और बहुतसे गुप्त, प्रकट
स्थान भासि आये जहां केवल सिद्धों की गम थी वहांभी मैं गया और जहां सिद्धों
की भी गम न थी वहां भी मैं गया। इस प्रकार अनेक जगत मैंने देखे परन्तु
आश्चर्य है कि, स्वप्ने की सृष्टि प्रत्यक्ष जाग्रत् की तरह दृष्टि आती थी और स्वप्न
के शरीर जाग्रत् में पड़े भासते थे। इससे सब जगत् भ्रममात्र है और अमन्यही

सत्य होकर दिखाई देता है । इस प्रकार देखकर मैं बड़े आश्चर्य में पड़ा हूं ॥
इति श्रीयो०नि०विपश्चित्कथावर्णनंनामद्विशताधिकत्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥२२३॥

विपश्चित् बोले; हे राजन्! एक सृष्टि और भी मैंने देखीहै जो इसी महाआकाश में है—अर्थात् इस महाआकाशसे भिन्न नहीं और जहां तुम्हारी भी गम नहीं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि कोई जाग्रत् में देखा चाहे तो दृष्टि नहीं आती तैसेही वह सृष्टि है। हे राजन्! पृथ्वीका एक स्थान मेरे देखतेही देखते परछाहींकी नाईं फुरनेलगा और फिर उस आकाशमें वही पहाड़ की नाईं भासने लगा, यहां तक कि मनुष्योंके शरीर और दशो दिशाओं को रोकलिया और आकाश से भी बड़ा भासने लगा इससे आकाश में भी न समाता था। उसने सूर्य और चन्द्रमाको भी मेरे देखतेही देखते ढांपलिया और फिर भूकम्प सा आया मानो प्रलयकालही आगया। तब मैंने अपने इष्ट अग्नि देवता की ओर देखकर प्रार्थना की कि, हे भगवन्! तुम मेरी जन्म जन्म रक्षा करते आये हो इससे अबभी रक्षा करो; मैं नष्ट होताहूं। तब अग्निने कहा तू भय मत कर। फिर मैंने अग्नि में जीव प्रवेश किया, तब अग्निने कहा कि, मेरे वाहनपर सवार होकर मेरे स्थान को चल। फिर अग्निदेव मुझको अपने वाहन तोते पर चढ़ाकर आकाश मार्गसे लेउड़ा। जब हम उड़े तब पीछेसे वह शव ओतक पृथ्वी पर गिरा और उसके गिरनेसे सुमेरु ऐसे पर्वत भी पाताल को चले गये। वह महाशरीर सैकड़ों सुमेरु के समान गिरा और मन्दराचल, मलयाचल, अस्ताचल से लेकर जो बड़े २ पर्वत थे सो भी नीचे को चले गये। पृथ्वी में जर्जरीभावसे फटकर गढ़े पड़गये और उसके शरीरके नीचे जो वृक्ष, मनुष्य, दैत्य, स्थावर, जङ्गम आये वे सब नष्ट होगये और बड़ा उपद्रव उदय हुआ; निदान उसके शरीर से सर्वदिशा पूर्ण होगईं और उसके अङ्ग ब्रह्माण्डसे भी पार निकलगये। हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार मैं भयानक दशा देखकर अपने इष्टदेव अग्नि से बोला कि, हे देव! यह उपद्रव क्योंकर हुआ; यह सब क्या है और ऐसा शरीर क्यों पड़ा है? आगे तो कोई भी ऐसा शरीर नहीं देखा सुना? अग्नि ने कहा, तू अभी तूष्णी होरह। यह सब वृत्तान्त मैं तुझसे कहूंगा पर प्रथम इसको शान्त होनेदे। इस प्रकार अग्नि कहताही था कि देवता, विद्याधर, गन्धर्व और सिद्ध जितने स्वर्गवासी थे वे सब आकर स्थित हुये और विचार करने लगे कि यह उपद्रव प्रलयकाल विना हुआ है इसके नाश करने को देवीजी की आराधना करना चाहिये। हे राजन्! ऐसे विचार करके वे देवी की स्तुति करने लगे कि; हे देवि, शववाहिनि, काकदेशीयचण्डिके! हम तेरी शरण आये हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो। ऐसे कहकर वे स्तुति करने लगे॥
इति श्रीयो०नि०महाशववृत्तान्तवर्णनंनामद्विशताधिकचतुर्विंशतितमस्सर्गः ॥२२४॥

विपश्चित् बोले; हे राजन्, दशरथ! उन देवताओं ने स्तुति करके शव की ओर जो देखा तो क्या देखते हैं कि, सातोंद्वीप उसके उदर में समागये हैं; भुजाओं से सुमेरु आदिक पर्वत ढपगये हैं और उसके दूसरे अङ्ग ब्रह्माण्ड को भी लांघगये हैं और साथही पाताल को भी गये हैं। निदान उनकी मर्यादा कहीं पाई नहीं जाती थी एक ही अङ्ग से पृथ्वी छिपगई। ऐसे देखकर विद्याधर, गन्धर्व और सिद्धों से लेकर सम्पूर्ण नभचर स्तुति करने लगे। हे अम्ब, चण्डिके! अपने गण को साथ लेकर इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो-हम तेरी शरण आये हैं। हे राजन्! जब इसप्रकार स्तुति करके देवता आराधन करने लगे तब चण्डिका आकाशमार्ग से यक्ष, वैताल, भैरव आदिक गण अपने साथ लेकर आई और जैसे मेघ सर्व दिशाओं को ढांप लेता है तैसेही सर्व ओर से उसके गणों ने आकर आकाश को ढांप लिया और चण्डिका ऐसे तेजरूप को धारेहुये चली आतीथी मानो अग्नि की नदी चली आती थी। उसके रक्त नेत्र, शिरपर पक्केकेश और श्वेतदांत थे और वह बड़े शस्त्र धारेहुये कई कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार था। वह सब दिशा और आकाश अपने शरीर से आच्छादित किये; कण्ठ में मुण्डों की माला पहिने; मुरदे वाहनपर आरूढ़ और परमात्मपद में उसकी स्थिति थी। वह ऐसी महाप्रकाशवान् थी मानो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदिकके प्रकाशको भी लज्जित कररही है और हाथोंमें खड्ग, मूसल, ध्वजा, ऊखल आदिक नाना प्रकारके शस्त्रधारे आकाश में तारागण की नाईं गर्जती हुई गणों सहित इस प्रकार चलीआती थी मानो समुद्र से निकली साक्षात् वड़वाग्नि चली आती है। जब वह निकटआई तब देवता फिर प्रार्थना करने लगे कि, हे अम्ब! इसका नाश करो व अपने गणों को आज्ञा दीजिये कि; इसका भोजन करें; हम इसको देखकर बड़े शोक को प्राप्तहुये हैं और तेरी शरण हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो। हे राजन्, दशरथ! जब इस प्रकार देवताओंने कहा तब चण्डिकाने प्राणवायुको खींचा और जितना शवमें रक्तथा वह सब पान करगई, जैसे समुद्रको अगस्त्यजीने पान किया था तैसेही उसने रक्तपान किया। जब उससे देवीका उदर और अङ्ग सब पूर्ण होगये और नेत्र लाल होआये तब देवी नृत्य करनेलगी और उसके गण सब उस शवका भोजन करने लगे। कई मुख को खानेलगे; कई भुजा को; कई उदर को; कई वक्षस्स्थल को; कई टांगों को और कई चरणों को, इसी प्रकार उसके सब अङ्ग गण भोजन करनेलगे। कई गण आंतें लेकर आकाश में सूर्यके मण्डल को गये; कई गण उस अङ्ग के अन्त पानेको उड़े सो मार्गही में मरगये परन्तु कहीं अन्त न पाया और देवी जो उस शव की ओर देखती थी इससे उसके नेत्रों से अग्नि निकलतीथी-और उससे मांस परिपक्क होता था और गण भोजन करते थे। मांस पकने के समय जो शरीर से कहीं रक्त

की बूंद निकलती थी उससे मन्दराचल और हिमाचलपर्वत लाल होगये—मानो पर्वतों ने भी लाल वस्त्र पहिरे हैं रक्तकी नदियां बहनेलगीं और जो बड़े सुन्दर स्थान और दिशा थीं वे सब भयानक होगईं और पृथ्वी के जीव सब नष्ट होगये पर जो पहाड़ की कन्दरा में जाकर दबरहे थे सो बचगये शेष सब नष्ट होगये। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! तुम कहते हो कि; उसके नीचे प्राणी आकर सब नष्ट होगये और अङ्ग उसके ऐसे कहते हो कि; ब्रह्माण्ड को भी लांघगये एवम् फिर कहते हो कि; देवता बचरहे सो क्या कारणहै? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जो उसके शरीर और अङ्ग के नीचे आये वे तो नष्ट होगये पर मुख और ग्रीवा में कुछ भेद है तिसमें जो पोल है और गोदी और टांग के नीचे के पोल में और सुमेरु, मन्दराचल, उदयाचल और अस्ताचल पर्वतों में कुछ पोल है उनकी कन्दरा में बैठे हुये देवता बच गये और जो अङ्ग के छिद्रों में रहे वे भी बच रहे और कहने लगे कि बड़ा कष्टहै जो हमारे बैठने के कई स्थान नष्ट होगये। हाय! वे वृक्ष कहां गये, बरफ़का पर्वत हमारा कहां गया, उनकी सुन्दरता कहां गई, वन और बगीचे कहां गये, चन्दन के वृक्ष कहां गये और वे जनोंके समूह कहां गये जो हमको यज्ञ करके पूजते थे? वे ऊँचे वृक्ष कहां गये जिनके ब्रह्मलोक पर्यन्त फूल और टहनी जाती थीं और वह क्षीरसमुद्र कहां गया जिसके मथनेसे बड़ा शब्द हुआ था? उसके पुत्र जो रत्न, कल्पतरु और चन्द्रमा थे वे कहां गये और जम्बूद्वीप कहां गया जिसमें जम्बू के फलकी नदी चलाई थी और सुवर्णवत् जल के चक्र उठते थे? ईख के रस का समुद्र कहां गया? हा कष्ट! हा कष्ट! शक्कर के और मिश्री के पर्वत और अप्सराओं के विचरने के स्थान कहां गये और पृथ्वी कहां गई? वे नन्दनवन के स्थान कहां गये जहां हम अप्सराओं के साथ विलास करते थे? उन विषयों का अभाव नहीं हुआ मानो हमको शूल चुभते हैं। जैसे फल को कण्टक चुभते हैं, तैसेही विषयके आभासरूपी हमको कण्टक चुभते हैं। इसी प्रकार वे अतिशोकवान् हुये और कहने लगे हा कष्ट! हा कष्ट! इधर विषयोंका स्मरण करके देवता शोक करते थे और उधर उस शव के जितने अङ्ग थे उनको गणोंने भोजन कर लिया और उससे अघागये। कुछ मेदा का पिण्ड शेष रहगया था उससे बहुत दुर्गन्ध हुई और उस पिण्ड की पृथ्वी होगई इससे उसका नाम मेदिनी होगया और मोटे हाड़ोंके सुमेरु आदिक पर्वत हुये। तब ब्रह्माजी ने देखा कि, सब विश्व शून्यसा होगया है इससे उन्होंने संकल्प किया कि, अब फिर मैं सृष्टि रचूं। निदान पूर्व की नाईं उनने सृष्टि रची और जगत् का सब व्यवहार उसी प्रकार चलनेलगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वयंमाहात्म्यवृत्तान्तवर्णनन्नाम द्विशताधिकपञ्चविंशतितमस्सर्गः॥ २२५॥

विपश्चित् बोले; हे राजन्, दशरथ! जब यह कर्म होरहा था तब मैंने अपने इष्टदेवता से जो तोतेवाहन पर आरूढ़ था, प्रश्न किया कि, हे महादेव! सर्वजगत् के ईश्वर और सर्वजगत् के भोक्ता! यह शव कौन था; कहां स्थित था और किस प्रकार गिरा? अग्नि बोले, हे राजन्! जिसका अनन्त त्रिलोकी आभासहै उससे इस शव का वृत्तान्त वर्णन होसक्ताहै; एक त्रिलोकीसे इसका वृत्तान्त नहीं होसक्ता। इससे सुनो; हे राजन्! एक परम आकाशहै जो चिन्मात्र पुरुष सर्वज्ञ, अनामय और अनन्तहै। वह आत्मतत्त्व केवल अपने आप में स्थित है पर उसका जो आभास संवेदन फुरना है, वही किञ्चन होता है। वह जब किसी स्थान में फुरता है तब ऐसी भावना होती है कि; मैं तेज अणु हूं। उस भावनाके वशसे अणुसी होजातीहै। जैसे कोई पुरुष सोया है और स्वप्ने में आपको मार्गमें चलता देखताहै, अथवा जैसे तुम स्वप्ने में आपको पौढ़े देखो तैसेही चित्संवेदन ने आपको अणु जाना है जैसे फुरना ब्रह्मा को हुआ है तैसेही धूरके कणके काभी अधिष्ठान में फुरना तुल्य हुआ है। जब उस अणु को शरीर की भावना होती है तब अपने साथ शरीर देखता है और शरीर के होनेसे नेत्र आदिक इन्द्रियां व्रन होतीहैं तब शरीर और इन्द्रियोंसे आपको मिला हुआ जानता है। जब अपना आप जानकर और उनको ग्रहण करके इन्द्रियोंसे विषयको ग्रहण करताहै तब वही चिद्रूप जीव प्रमाद से आधाराधेयभावको मानता है पर अधिष्ठानसत्तामें कुछ हुआ नहीं; वह अद्वैतसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्ने में प्रमाद से अपने आपको किसी गृह में बैठे देखता है, तैसेही यहां प्रमाद से आधाराधेयभाव को देखता है और प्राण और मन अहंकार को धारता है और जानता है कि मेरे माता, पिता हैं और मैं अनादि जीव हूं। अपना शरीर जानकर आगे पाञ्चभौतिक जगत् शरीर को देखताहै और अपने फुरने के अनुसार अङ्ग होते हैं। इसी प्रकार जो आदि शुद्ध चिन्मात्र तत्त्व में फुरना हुआ तो चित्तकला फुरी और उसने आप को तेज अणु जाना। तब उसमें अहंवृत्ति तो अहंकार हुआ; निश्चयात्मक बुद्धि हुई, चैतनतारूप चित्त और संकल्प विकल्परूप मन हुआ। यह उत्पन्न होकर फिर तन्मात्रा उपजी, फिर उसके इच्छाद्वारा शरीर और इन्द्रियां उत्पन्न हुईं और उनसे देखने की इच्छा हुई। उस संवित्काल में जब आगे दृश्य भासि आई तब संवित् शक्ति ने आपको प्रमाद द्वेष से द्वैत जाना और साथही उसके अपने माता, पिता और कुल फुर आये कि; यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है और यह मेरा कुल है, सो चिरकाल से चला आता है। इसी प्रकार एक दैत्य अहंकार सहित विचरने लगा और एक कुटी में एक ऋषि बैठा था, उस कुटी की ओर गया और उसकी कुटी चूर्ण करके जब ऋषि के निकट आया तब ऋषिने कहा, हे दुष्ट! तूने यह क्या

चेष्टा ग्रहण की है। अब तू मरकर मच्छर होगा। हे विपाश्चित! उस ऋषि के शापरूपी अग्नि से उसका शरीर भस्म होगया और उसकी निराकार चैतनसंवित् भूताकाश रूप होगई। फिर आकाश में उसका वायु से संयोग हुआ और उस ऋषि मौनी के शाप की वासना आन उदय हुई। जैसे पृथ्वी में समय पाकर बीज से अंकुर उत्पन्न होता है; तैसेही पञ्चतन्मात्रा उदय हुईं और अपना मच्छर का शरीर जिसकी आयुर्बल दो अथवा तीन दिन की होती है अज्ञान से भासि आया। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जीव जो जन्म पाते हैं सो जन्म से जन्मान्तर को चलेआते हैं अथवा ब्रह्म से उपजे होते हैं—यह कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कई जन्म से जन्मान्तर चलेआते हैं और कई ब्रह्मा से उपजे होते हैं। जिनको पूर्ववासना का संसरना होता है वे वासना के अनुसार शरीर धारतेहैं और जन्मते जन्मान्तरको चले आते हैं और जिनको संस्कार विना भूत भासि आते हैं वे ब्रह्मा से उत्पन्न होते हैं। हे रामजी! आदि में सब जीव संस्काररूपी कारण विना उत्पन्न हुये हैं और पीछे से जन्मान्तर होता है। जो संस्कार विना भूत भासे, उसे जानिये कि; ब्रह्मा से उपजा है और जिसको संस्कार से सृष्टि भासे उसे जानिये कि; इसका जन्मान्तर है। यह दो प्रकार से भूतों की उत्पत्ति मैंने तुमसे कही है अब फिर उस मच्छरका क्रम सुनो। हे रामजी! जब उसने मच्छर का जन्म पाया तब कमलनियों और हरीघास, तृण और पत्तों में मच्छरों को साथ लिये रहनेलगा। निदान वहां एक मृग आया और उसका चरण उस मच्छर पर इस प्रकार आपड़ा जैसे किसीपर सुमेरु पर्वत आपड़े। तब वह मच्छर चूर्ण होकर मृतक होगया और मृतक होनेके समय मृग की ओर देखने लगा इससे मरके तत्काल ही मृग हुआ और वन में बिचरनेलगा फिर एक काल में उसको बधिक ने देखकर बाण चलाया और उस बाणसे वह मृग बेधागया। बेधेहुये मृग ने बधिक की ओर देखा इसलिये वह मरके बधिक हुआ और धनुष बाण लेकर मृग और पक्षियों को मारनेलगा। एक समय में वह वनको गया और वहां एक मुनीश्वर को देख उसके निकट जाबैठा, तब मुनीश्वर ने कहा, हे भाई! तूने यह क्या पापचेष्टा का आरम्भ किया है? इस चेष्टा से तो तू नरक को प्राप्त होवेगा इससे किसी जीव को दुःख न दे। जिन भोगों के निमित्त तू यह चेष्टा करता है सो बिजली के चमत्कारवत् हैं। जैसे मेघ में बिजली का चमत्कार होता है और फिर मिटजाता है, तैसेही ये भोग भी होकर मिटजाते हैं और जैसे कमल के पत्रपर जल की बुन्द ठहरती है पर उसकी आयुर्बल कुछ नहीं होती क्षणपल में गिर पड़ती है; तैसेही इस शरीर की आयुर्बल कुछ नहीं है। जैसे अञ्जली में जल डाला नहीं ठहरता तैसेही यौवनअवस्था चली जाती है। क्षणभंगुररूप वृक्ष है और यौवन असार

है उस में भोगना क्या है? इनसे कदाचित् शान्ति नहीं होती। जो तुझको शान्ति की इच्छा हो तो निर्वाण का प्रश्न कर, तब तू दुःख से मुक्त होगा। अपने हिंसाकर्म को त्यागदे इसके करने से नरक में जावेगा और कदाचित् शान्ति तुझको न प्राप्त होगी। तू अपने हाथ से अपने चरण पै क्यों कुल्हाड़ा मारता है और अपने नाश के निमित्त तू क्यों विष का बीज बोता है? इस कर्म से तू संसार दुःख में भटकता फिरेगा और शान्तिमान् कदाचित् न होगा। इससे अब तू वही उपाय कर जिसमे संसारसमुद्र से पार हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमच्छरव्याधवर्णनन्नाम
द्विशताधिकषड्विंशतितमस्सर्गः ॥ २२६ ॥

अग्नि बोले; हे राजन्! जब इसप्रकार ऋषीश्वर ने उस बधिक से कहा तब उसने धनुषबाण को डालदिया और बोला हे भगवन्! जिस प्रकार मैं संसारसमुद्र से पार होजाऊं वह उपाय कृपाकरके मुझसे कहिये परन्तु वह कैसा उपायहो जो न दुःसाध्यहो और न मृदु हो अर्थात् जो अल्पभी न हो और कठिन भी न हो। ऋषीश्वर बोले, हे बधिक! मनको एकाग्र करनेका नाम शमहै और इन्द्रियोंके रोकनेको दम कहतेहैं—वही मौनहै। मन को एकाग्र करने से अन्तःकरण शुद्ध होताहै और अन्तःकरणकी शुद्धता से आत्मज्ञान उपजता है इससे संसारभ्रम निवृत्त होकर परमानन्दकी प्राप्ति होतीहै। अग्नि बोले, हे राजन्! इस प्रकार जब ऋषीश्वरने कहा तब वह बधिक उठ खड़ाहुआ और प्रणाम करके तप करनेलगा। इन्द्रियों को उसने संयम में रक्खा और जो अनिच्छित यथाशास्त्र प्राप्त हो उसका भोजन करने लगा और हृदय से सब क्रियाओं की मौनवृत्ति धारण की। जब उसको कुछकाल तप करते व्यतीत हुआ तब उसका अन्तःकरण शुद्ध हुआ और ऋषीश्वर के निकट आ प्रणाम करके बैठगया और बोला; हे भगवन्! बाहर जो दृश्य है सो हृदय में किसप्रकार प्रवेश करती है और स्वप्नेकी सृष्टि अन्तर की बाह्यरूप हो कैसे भासतीहै? यह कृपा करके कहो। ऋषीश्वर बोले, हे बधिक! यह बड़ा गूढ़ प्रश्न तूने किया है। यही प्रश्न मैंने भी गणपति से किया था और उनके कहने से मैंने जो ग्रहण किया है सो सुन। एक समय यही सन्देह दूर करने का उपाय मैंने भी किया था और पद्मासन बांध, बाहर की इन्द्रियों को रोक मन में लगा मन, बुद्धि आदिक को पुर्यष्टका में स्थित किया। फिर पुर्यष्टका को भी शरीर से विरक्त किया और उसको आकाश में निराधार ठहराया। निदान जब विलक्षण हुआ चाहूं तब विलक्षण होजाऊं और जब शरीर में व्यापा चाहूं तब व्यापजाऊं। हे बधिक! इस प्रकार जब मैं योगधारणा से पूर्ण हुआ, तो एक काल में एक पुरुष हमारी कुटी के पास सोरहा था और उसके श्वास भीतर बाहर

आतेजाते थे। उसको देखकर मैंने यह इच्छाकी कि; इसके भीतर जाकर कौतुक देखूं कि, क्या अवस्था होती है। ऐसे विचार करके मैंने पद्मासन बांधा और योग की धारणा करके उसके श्वासमार्ग से भीतर प्रवेश किया। जैसे उष्ट्र ऊँघता हो और उसके श्वासमार्ग से सर्प प्रवेश करे। तैसेही मैंने प्रवेश किया तो उसके भीतर अपने २ रस को ग्रहण करनेवाली नाड़ियां मुझे दृष्टि आईं। कई वीर्य को ग्रहण करनेवाली हैं, कई रक्त और कफ को ग्रहण करती हैं, कई मल मूत्रवाली हैं और अनेक विकार जो उसके भीतर थे सो सब देखे। इससे मैं अप्रसन्न भया कि; महासंकल्परूप स्थानहै और रक्तमज्जासंयुक्त महानरक के तुल्य अन्धकार है। फिर और आगे गया तो वहां एक कमल देखा कि, उसमें उसका संवेदन फुरता है और संवित् शक्ति जो महातेजवान् हृदयाकाश है सोभी वहां स्थितहै। वही त्रिलोकी का आदर्श है और त्रिलोकी में जो पदार्थ हैं उनका दीपक है और सर्व पदार्थों की सत्तारूप है। ऐसा संवित्रूपी जीवसत्ता वहां स्थित थी उससे मैं तद्रूपता को प्राप्त हुआ। फिर मैंने सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, समुद्र, देवता, गन्धर्व आदि नाना प्रकार के स्थावर–जङ्गम विश्व को देखा। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित सम्पूर्ण सृष्टिको उसके भीतर देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि; उसके भीतर सृष्टि क्योंकर भासी। हे बधिक! उसने जाग्रत् में उस सृष्टि का अनुभव इन्द्रियों से कियाथा और भीतर चित्तत्वमें उसका संस्कार हुआथा वही भीतर भासने लगा और भीतर जो भूतसत्ता थी सो उसके स्वप्नेमें सृष्टिरूप बाहर बनी और मुझको प्रत्यक्ष भासने लगी। जैसे जाग्रत् प्रत्यक्ष अर्थाकार भासतीहै, तैसेही मुझको यह सृष्टि भासने लगी। हे बधिक! इस जाग्रत्सृष्टि और उस सृष्टि में मैंने कुछ भेद न देखा–दोनों तुल्य हैं। चिरपर्यन्त प्रतीति का नाम जाग्रत् है और अल्पकाल की प्रतीति का नाम स्वप्ना है पर स्वरूप से दोनों तुल्य हैं। जो उसके स्वप्ने के अनुभव में था सो मुझको जाग्रत् भासा और जो मुझको जाग्रत् भासा सो उसको स्वप्ना भासा। निद्रादोष से उस को स्वप्ना हुआ सो उसको भी उस कालमें जाग्रत्रूप भासने लगा क्योंकि; स्वप्ना जो स्वप्नरूप है सो जाग्रत् में स्वप्ना है और स्वप्न में तो जाग्रत् है; तैसे जाग्रत् भी अपने काल में जाग्रत् है, नहीं तो स्वप्नरूप है सो जाग्रत्में भी जो सत्य प्रतीत है वही प्रमाद है। इनदोनों में कुछ भेद नहीं क्योंकि; जाग्रत् और स्वप्न दोनोंका अधिष्ठान चैतन्यसत्ता परब्रह्महीहै और उसी के प्रमाद से प्राण के साथ सम्बन्ध हुआ है। जब प्राण से चित्तसंवेदन मिलती है तब उस फुरनरूप के इतने नाम होते हैं–जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदिक। वही संवेदन जो बाह्यरूप हो फुरती है तब जाग्रत्रूप जगत् हो भासता है और पाँच ज्ञानइन्द्रियाँ पाँच कर्मइन्द्रियाँ और चतुष्टय अन्तःकरण ये

चौदह अपने २ विषय को ग्रहण करतेहैं–इसका नाम जाग्रत्है जब चित्तस्पन्द निद्रा-
दोष से अन्तर्मुख फुरता है तब नाना प्रकार की स्वप्ने की सृष्टि देखता है और उस
कालमें वही जाग्रत्रूप हो भासता है। अधिष्ठान जो आत्मसत्ताहै जब संवेदन उसकी
ओर फुरती है और बाह्यविषय के फुरने से रहित अफुरन होती है तब न जाग्रत् भा-
सती है और न स्वप्ना भासती है केवल निर्विकल्प आत्मसत्ता शेष रहतीहै। हे बधिक!
मैंने विचार देखाहै कि, जगत् और कुछ वस्तु नहीं फुरनेही का नाम जगत् है। जब
चित्तसंवेदन फुरनरूप होती है तब जगत् भासता है और जब चित्तसंवेदन फुरने से
रहित होती है तब जगत् कल्पना मिटजाती है; इसलिये मैंने निश्चय किया है कि;
वास्तवमें केवल चिन्मात्रहै। जगत् कुछ वस्तु नहीं मिथ्या कल्पनामात्रहै। हे बधिक!
जगत्भावना त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होरहो। अब वही वृत्तान्त फिर सुनो।
जब उसके भीतर मैंने स्वप्न और जाग्रत् अवस्था देखीं तब मैंने यह इच्छा की कि,
सुषुप्ति अवस्था भी देखूं और विचार किया कि; सुषुप्ति प्रलय का नाम है जहां द्रष्टा,
दर्शन और दृश्य तीनों का अभाव होजाता है परन्तु जहां मैं देखनेवाला हुआ वहां
महाप्रलय कैसे होगी और जो मैं जाननेवाला न होऊं तब सुषुप्तिको कौन जानेगा।
हे बधिक ! तब मैंने विचारके देखा कि, और सुषुप्ति कोई नहीं जहां चित्त की वृत्ति
नहीं फुरती उसीका नाम सुषुप्तिहै। ऐसे विचार करके मैंने चित्तको फुरने से रहित किया
तब उसकी सुषुप्ति देखी तो क्या देखा कि; न कोई वहां अहं और त्वं शब्द है; न
शुभ है; न अशुभ है; न जाग्रत् है; न स्वप्ना है और न सुषुप्ति की कल्पना है; सर्व
कल्पना से रहित केवल चित्तसत्ता मैंने देखी। जो तुम कहो कि, सुषुप्ति निर्विकल्प
तुमने कैसे देखी तो उसका उत्तर यहहै कि; अनुभव ज्ञानरूप आत्मसत्ता सर्वदा काल
में ज्योंकी त्योंहै और उसमें जैसा आभास फुरता है तैसाही ज्ञान होताहै। यह जो तुम
भी दिन प्रतिदिन देखते हो और सुषुप्ति से उठकर जानते हो कि, मैं सुख से सोया था
सो अनुभवसेही देखते हो; तैसेही मैंने भी वह देखा जहां चित्तसंकल्प कोई नहीं फुरता
केवल निर्विकल्प है परन्तु सम्यग्बोध से रहितहै उस अभाव वृत्तिका नाम सुषुप्ति है।
फिर मुझको तुरीया देखनेकी इच्छा हुई पर तुरीया देखनी महाकठिनहै। तुरीया साक्षी-
भूत वृत्तिका नामहै, वह सम्यग्ज्ञानसे उत्पन्न होतीहै और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति
अवस्था की साक्षीभूत है और सुषुप्ति की नाईं है। जैसे सुषुप्ति में अहं त्वं आदिक
कल्पना कोई नहीं होती तैसेही तुरीया में भी नहीं। उसमें ब्रह्मका सम्यग्बोध होता
है और सुषुप्ति जड़ीभूत तमरूप अविद्या होती है। तुरीया में जड़ता नहीं होती;
सुषुप्ति और तुरीया में इतनाही भेद होता है। सच्चिदानन्दसाक्षी वृत्ति होती है। स-
म्यग्बोध का नाम तुरीयापद है और तुरीया इससे भिन्न नहीं। ऐसे निश्चय से मैंने

उसको देखा। हे बधिक! चारों अवस्था मैंने माया अर्थात् फुरने सहित भिन्न २ देखीं पर आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है उसमें न कोई जाग्रत् है न स्वप्न है, न सुषुप्ति है और न तुरीया है–इनका भेद वहां कहीं नहीं। आत्मसत्ता सदा अद्वैत है और ये चार चित्तसंवेदन में होती हैं। हे बधिक! ऐसा अनुभव करके मैं बाहर आया और बाहर भी मुझको वैसेही भासनेलगा; तब मैंने कहा कि, यही जगत् तो मुझको उसके भीतर भासाथा यह बाहर कैसे आया? तब मैंने फिर उसके भीतर प्रवेश किया। प्रथम जो उसके भीतर मैंने प्रवेश कियाथा और उसके भीतर सृष्टि देखीथी तब उसकी और मेरी संवेदन मिलगई थी पर जब मैंने अपनी संवेदन उससे भिन्न की तब दो ब्रह्माण्ड होगये और एक उसकी संवेदन फुरन में और एक मेरी संवेदन में भासने लगा क्योंकि; मैंने प्रथम उसकी सृष्टि को देख और अर्थरूप जानकर ग्रहण किया था पर उसका संस्कार होगया। आत्मसत्ता के आश्रय जैसे संवेदन फुरती गई तैसे होकर भासनेलगा। उसका स्वप्न मुझको जाग्रत् होकर भासनेलगा–जैसे एक दर्पण में दो प्रतिबिम्ब भासें, तैसेही एक अनुभव में मुझे दो सृष्टि भासनेलगीं। तब मैंने विचार किया कि, सृष्टि संकलपरूप है; संकल्प जीव २ का अपना अपना है और अपने २ संकल्प की भिन्न २ सृष्टि है इससे अनुभव के आश्रय जैसा २ संकल्प फुरताहै तैसी२ सृष्टि भासती है; सृष्टिका कारण और कोई नहीं। हे बधिक! अष्टनिमेषपर्यन्त मुझको दो सृष्टि भासती रहीं, फिर मैंने उसके और अपने चित्त की वृत्ति इकट्ठी करके मिलाई तो दोनों तद्रूप होगये–जैसे जल और दूध मिलकर एकरूप होजातेहैं और दूसरी सृष्टि का अभाव होगया। जैसे भ्रम दृष्टि से आकाशमें दो चन्द्रमा भासतेहैं और भ्रम के गयेसे दूसरे चन्द्रमा का भाव अभाव होजाताहै; तैसेही द्वितीयवृत्तिके अभाव हुयेसे दूसरी सृष्टि का अभाव होगया। निदान एकही सृष्टि भासनेलगी और नाना प्रकार के व्यवहार होते दृष्ट आवें और चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र स्पष्ट भासनेलगे। कुछ काल के उपरान्त चित्त की वृत्ति सुषुप्ति की ओर आई और स्वप्ने की सृष्टि का विस्तार लीन होनेलगा–जैसे सन्ध्या के समय सूर्य की किरणें सूर्य में लय होजाती हैं। जब वह सृष्टि चित्त में लय होने लगी तब स्वप्ने की सृष्टि मिटगई; सुषुप्ति अवस्था हुई और सर्व इन्द्रियां स्थिर होगईं। हे बधिक! सुषुप्ति तब होतीहै जब जीव अन्न भोजन करता है और वह समवाही नाड़ीपर आन स्थित होताहै; तब जाग्रत्वाली नाड़ी ठहरजाती है, उससे प्राण भी ठहर जातेहैं और तब मन भी ठहरजाता है–उसका नाम सुषुप्ति है। जब मन फिर फुरताहै तब जाग्रत् होतीहै। इतना सुन रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! जब मन प्राणोंही से चलता है तब मन का अपना रूप तो कहीं न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमार्थ से कहिये तो देहही नहीं है तो मन क्या हो। जैसे स्वप्ने में

पहाड़ भासते हैं, तैसेही यह शरीर भासता है क्योंकि; जो सबका आदिकारण कोई
नहीं इससे जगत् मिथ्याभ्रम है-केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जो तत्त्व-
वेत्ता हैं उनको तो ऐसेही भासता है और अज्ञानी के निश्चय को हम नहीं जानते
जैसे सूर्य उलूक के अनुभव को नहीं जानता और उलूक सूर्य के निश्चय को नहीं
जानता. तैसेही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय भिन्न २ होताहै। शुद्ध चिन्मात्र आ-
काश में जगत्भ्रम कोई नहीं पर फुरनभाव से अपने चेतन वपु को भूल ज्ञान विनाही
मनभाव को प्राप्त होता है और तब मन आत्मसत्ता के आश्रय होकर प्राणवायु को
अपना आश्रयभूत कल्पता है कि; मेरा प्राणहै। हे रामजी ! फिर जैसे २ मन कल्पना
करता है, तैसे २ देह; इन्द्रियां और जगत् भासते हैं। परब्रह्म सर्वशक्तिसंपन्न है उस
में जैसी २ भावना से मन फुरता है तैसाही तैसा रूप हो भासताहै-वास्तव में और
कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। मनका फुरना जैसे २ दृढ़ हुआ
है तैसेही तैसे देह; इन्द्रियां और जगत् भासनेलगाहै। जैसे स्वप्नमें कल्पनामात्र जगत्
भासता है तैसेही इसे जानो। हे रामजी! जितने विकल्प उठतेहैं वे सब मन के रचे
हुये हैं। जब मन उदय होताहै तब यह फुरना होता है कि, यह पदार्थ सत्य है और
यह असत्य है जब चित्तशक्ति का मन से सम्बन्ध होता है तब प्रथम प्राण उदय होते
हैं और प्राण को ग्रहण करके मन कहताहै कि, मैं जीव हूं; प्राणही मेरी गति है और
प्राण विना मैं कहां था। फिर कहताहै कि, जब प्राण का वियोग होगा तब मैं मरजा-
ऊँगा-फिर न रहूंगा । फिर ऐसे कहता है कि, मुआ हुआ भी मैं जाऊंगा। हे रामजी!
जबतक चाहिये तबतक ये तीन विकल्प उठते हैं और संशयवाले को न इस लोक में
सुख है और न परलोक में सुख है जबतक आत्मबोध का साक्षात्कार नहीं होता तब
तक चित्त भी निर्वाण नहीं होता और तीनों विकल्प भी नहीं मिटते । हे रामजी! मन
के विस्मरण का उपाय आत्मज्ञान से इतर कोई नहीं और मनके शान्ति हुये विना क-
ल्याण भी नहीं होता। दो उपायोंसे मन शान्त होताहै मन की वृत्ति स्थित करनी और
प्राणस्पन्द के रोंकने से मन स्थित होताहै तब प्राण रुकजाते हैं और प्राण के स्पन्द
को रोंकने से मन स्थित होताहै। जब प्राण क्षोभते हैं तब चित्त भी क्षोभता है और
तभी आध्यात्मिक और आधिभौतिक तापोंकी अग्निसे जलताहै। मनके स्थित करने
से परमसुख प्राप्त होता है सो मनकी स्थिति दो प्रकार की है-एक ज्ञान की स्थिति है
और दूसरी अज्ञान की स्थिति है। जब प्राणी बहुत अन्न भोजन करता है तब वह
नाड़ीपर जा स्थित होताहै और प्राण ठहरजाताहै और जब प्राण ठहरे तब मन भी
जड़ीभूत होजाता है-उसीका नाम सुषुप्ति है। वे नाड़ी कौन हैं जिनपर अन्न जाय
स्थित होता है ? वे नाड़ी वेही हैं जिनके मार्ग से जाग्रत् में प्राण निकलते हैं। जब

वासना सहित वेही नाड़ी रोंकीजाती हैं तब मन सुषुप्त होजाता है। यह अज्ञानी के मन की स्थिति है क्योंकि; जड़ता है सो संसार को लिये शीघ्रही फिर उठ आताहै। जैसे पृथ्वी में बीज समय पाकर अंकुर ले आता है, तैसेही वह संस्कार से फिर सुषुप्ति से उठता है। जो ज्ञानवान् सम्यक्दर्शी है उसका चित्त चैतन्यता के लिये स्थित होता है। वह चैतन्यता दो प्रकार की है—एक तो योगी को होती है जिसमे वह समाधि में मनको स्थित करताहै। वह समाधिनिष्ठ चित्तहै; जड़ता नहीं। जैसे सुषुप्ति में जड़ता होतीहै तैसी जड़ता वह नहीं है। दूसरे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त के चित्त की वृत्ति सम्यक्ज्ञानमे स्थित होती है क्योंकि, उसका चित्त वासना से रहित है। यही स्थिति है। जिसका चित्त इसप्रकार स्थित है उसी पुरुष को शान्ति है और जिसका चित्त वासना सहित है उसको कदाचित् शान्ति नहीं प्राप्त होती और उसके दुःख भी नहीं मिटते। उसे निर्वासनिक चित्त करने को सम्यक्ज्ञान का कारण यह मेरा शास्त्रही है। इसके समान और कोई उपाय नहीं। हे रामजी! यह जो मोक्ष उपाय शास्त्र मैंने कहा है उसके विचार से शीघ्रही स्वरूप की प्राप्ति होवेगी; इससे सर्वदा इसी का विचार कर्तव्य है। जब इसको भली प्रकार विचारोगे तब चित्त निर्वाणी होजावेगा। अब वही बधिक का प्रसंग सुनो। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जब मैंने उस शव पुरुष के चित्तमें प्राणके मार्गसे प्रवेश किया तब क्या देखा कि, उसके प्राण रोंके गये हैं और अन्न करके जाग्रत् नाड़ी जो फुरती थी सो रोंकी गई है क्योंकि; अन्न पचा न था इसकारण वह सुषुप्तिमें था। उसकी सुषुप्ति में मुझको भी अपना आप विस्मरण होगया। जब कुछ अन्न पचा तब उसके प्राण फुरनेलगे और जब प्राण फुरे तब चित्त की वृत्ति भी कुछ जड़ता को त्यागती भई पर सम्पूर्ण जड़ता को त्याग नहीं किया। प्राण के फुरने से चन्द्रमा, सूर्य आदिक जो कुछ विश्व है सोभी फुरा तब मैंने नाना प्रकार के जगत् को देखा और मुझे अपना पूर्वसंस्कार भूलगया। निदान वहां मैंभी अपने कुटुम्बमें रहनेलगा; साथही उसके मुझे अपनी कुटी भासी और स्त्री, पुत्र, भाई, जन, बान्धव सब भासि आये। फिर मेरेमें देखते देखते प्रलयकालके पुष्कर मेघ गर्जने लगे; मूशलधार जल बरसनेलगा और सातों समुद्र उछलनेलगे। निदान जो कुछ प्रलयकाल के उपद्रव होतेहैं सोभी उदय हुये। प्रथम अग्नि लगी; जब अग्नि लगचुकी और सब स्थान जलगये तब जल का उपद्रव उदय हुआ तब मैंने क्या देखा कि, नगर, ग्राम, पुर, मनुष्य, पशु, पक्षी सब बहतेजाते हैं और हाहाकार शब्द करते निदान बड़ा क्षोभ हुआ और मैंने एक आश्चर्य देखा कि, मेरी कुटी भी बहीजाती है और स्त्री, पुत्र, भाई, जन इत्यादिक सब जल के प्रवाह में बहेजाते हैं। जिस स्थान में हम थे वह स्थान भी बहाजाता था और मैं भी लुढ़कता जाता था। निदान

बहते २ मुझको ऐसा कष्ट प्राप्त हुआ कि, कहने में नहीं आता । एक तरङ्ग से तो मैं ऊर्ध्व को चलाजाऊं और एक तरङ्ग के साथ नीचे चलाजाऊं । तब मुझे अपना पूर्व शरीर स्मरण आगया और जितना कुछ जगत्है वह मुझको सब भासनेलगा; मिथ्या राग द्वेष सब मिटगया और शरीर की सब चेष्टा उसी प्रकार होनेलगी कि, तरङ्गके साथ कभी ऊर्ध्व और कभी नीचे आपड़ा परन्तु हृदय मेरा शान्त होगया । उस काल में नगर, देश और मण्डल बहते जाते थे और त्रिनेत्र सदाशिव और विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, सिद्ध आदि सब बहतेजाते थे । अष्टदल कमल की पंखड़ी पर बैठे ब्रह्माजी और इन्द्र, कुबेर और विष्णुजी अपनी २ पुरियों सहित बहते जाते थे और पहाड़, द्वीप, लोकपाल भी बहतेजाते थे । पातालवासी सब प्रलय के जल में बहतेजाते थे और यम भी अपने वाहन सहित बहते जाते थे; ऐसी सामर्थ्य किसी को न थी कि, किसी को कोई निकाले क्योंकि; आपही सब बहतेजाते थे और डूबते और गोते खातेथे । बड़े ऐश्वर्य सहित देवभी बहेजातेथे । जो संसारसुख के निमित्त यत्न करतेहैं वे महामूर्ख हैं और जिनके निमित्त यत्न करते हैं वे सुख और सुख के देनेवाले सब बहते जाते थे तैसेही सब ऋषीश्वर भी बहते जाते थे । हे बधिक ! मैंने इसप्रकार उसके स्वप्ने में महाप्रलय होती देखी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनं
नामद्विशताधिकसप्तविंशतितमस्सर्गः ॥ २२७ ॥

बधिक ने पूछा, हे मुनीश्वर ! यह जो महाप्रलय तुमने कही कि, जिसमें ब्रह्मादिक भी बहते जाते थे सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक तो स्वतन्त्र ईश्वरहैं परन्तु परतन्त्र हुये बहतेजाते तुमने कैसे देखे ? वे अन्तर्धान क्यों न हुये ? मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! यह जो प्रलय हुई सो क्रम से नहीं हुई । जब क्रमसे प्रलय होती है तब यह ईश्वर समाधि से शरीर को अन्तर्धान करलेतेहैं परन्तु अन्तर्धान होनेका जल चढ़जाता है । इनका कुछ नियम नहीं क्योंकि, यह जगत् भ्रमरूप है; इसमें क्या आस्था करनी है स्वप्नेमें क्या नहीं बनता और स्वप्नभ्रान्ति करके विपर्यय भी होते हैं इसलिये उनको बहते देखा है । व्याधने पूछा, हे मुनीश्वर ! जब वह स्वप्न भ्रम था तो उसका वर्णन क्या करना ? मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! तुझसे इसकी समानता का अर्थ कहता हूं इसमें कि, स्थावर जङ्गम जगत् बहता देखा और साथही मैं भी बहताजाता था और जलकी लहरें उछलती थीं और उन तरङ्गों में मैंभी उछलता था परन्तु मुझको कुछ कष्ट न होता था । निदान मैं बहता बहता एक किनारे पर जा लगा और उसके पास एक पर्वत था उसकी कन्दरा में जा स्थित हुआ । वहां मैंने देखा कि, जीव बहते हैं और जल भी सूखता जाता है । जल के सूखने से कीचड़ होगई; किसी ठौर में जल रहा उसमें

कई डूबते दृष्ट आते थे; कहीं ब्रह्मा के हंस; कहीं यम के वाहन और कहीं विष्णु के वाहन कीचड़ में पहाड़ की नाईं डूबते दृष्ट आते थे। कहीं इन्द्र के हाथी और विद्याधर आदि वाहन कीचड़ में दृष्ट आये और देवता, सिद्ध, गन्धर्व, लोकपाल दृष्ट आये इससे मैं आश्चर्यवान् हुआ। हे बधिक! इस प्रकार देखता हुआ जब मैं पहाड़ की कन्दरा में सोगया तब मुझको अपनी संवित् में स्वप्न आया और चन्द्रमा, सूर्य आदिक नाना प्रकार के भूत जलते देखे; नगर और पर्वत जलते देखे और जगत् बड़े खेद को प्राप्तहुआ देखा। जब रात्रि हुई तो मैं वहां सोया हुआ स्वप्ने को देखा किया और दूसरे दिन उसमें मैंने फिर जगत् देखा और सूर्य, चन्द्रमा, देश, नदियां, समुद्र, मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी नाना प्रकार की क्रियासंयुक्त दृष्ट आने लगे। मैंने अपना षोड़शवर्षका शरीर देखा और मुझे अपने पिता और माता दृष्ट आये। उनको देख मैं पिता और माता जानूं और वे मुझको अपना पुत्र जानें। निदान स्त्री, कुटुम्ब, बान्धव समस्त मुझको दृष्ट आये और मैं बोधसे रहित और तृष्णा सहित था इससे मुझे अहंमम का अभिमान आन फुरा और मैंने एक ग्राममें जहां मेरा गृह था ईंट और काष्ठ संग्रह करके एक कुटी बनाई और उसके चौफेर बूटे लगाकर एक आसन बनाया जहां कमण्डलु और माला पड़ीरहे। मैं ब्राह्मण था, मुझको धन उपजाने की इच्छा हुई और जो कुछ ब्राह्मण का आचार चेष्टा थी सोभी मैं करता था। बाहर जाके ईंट और काष्ठ ले आऊं और आनकर कुटी बनाऊं। यह चेष्टा हमारी होनेलगी और शिष्य और सेवक हमारी पूजा करनेलगे और मैं यथायोग्य उनको आशीर्वाद दूं। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में मैं चेष्टाकरूं और मुझको यह विचार उपजे कि, यह कर्तव्यहै इसके करनेसे भला होताहै। नदियां और तालोंमें मैं स्नान करूं; गो की टहलकरूं और अतिथि की पूजाकरूं। हे बधिक! इस प्रकार चेष्टाकर्ता मैं सौवर्षपर्यन्त वहां रहा तब एककाल मेरे गृह में एक मुनीश्वर आया तो प्रथम मैंने उसको स्नान कराया; फिर भोजनसे तृप्त किया और रात्रिके समय उसको शय्यापर शयन कराया। इस प्रकार उसकी टहलकर रात्रिको हम वार्ता चर्चा करनेलगे उसमें उसने मुझको बड़े पर्वत, कन्दरा और चित्त के मोहनेवाले सुन्दर देश स्थान और नाना प्रकार के स्वाद सुनाये और कहनेलगा कि, हे ब्राह्मण! जितने सुन्दरस्थान और संवाद तुझको सुनाये हैं उन सबों में सार एक चिन्मात्ररूप है इससे सब चिन्मात्रस्वरूप है। सब जगत् उसका चमत्कार और आभास किञ्चन है उससे कोई वस्तु भिन्न नहीं। इससे हे ब्राह्मण! उसी सत्ता को ग्रहण करो जो सबका अनुभव और परमानन्दस्वरूप है। उसीमें स्थित होरहो। हे बधिक! जब इस प्रकार उस मुनीश्वर ने मुझसे कहा तब आगे जो मेरा मन योग से निर्मल था इससे उसके वचन मेरे

चित्तमें चुभगये और अपने स्वभावसत्तामें मैं जागउठा। तब मैंने क्या देखा कि, सब मेराही संकल्पहै, मुझसे भिन्न कोई नहीं; मैं तो मुनीश्वर हूं और यह स्वप्न आया था। मैंने जागकर देखा कि, उसी पुरुषका स्वप्नाथा; तब मेरे चित्तमें आया कि, किसी प्रकार इसके चित्तसे बाहर निकलूं और अपने शरीरमें प्रवेश करूं। तब मैंने फिर विचारा कि यह जगत् तो उस पुरुष का वपु है, वही पुरुष विराट् है जिसके स्वप्ने में यह जगत् है परन्तु उस पुरुष को अपने विराट्स्वरूप का प्रमाद है इससे जैसा वपु हमारा बना है उसके स्वप्ने में वहभी तैसा एक विराट् इतर बनपड़ाहै तो फिर उस विराट् को कैसे जानिये कि, उसके चित्त से निकलजावे। हे बधिक ! इस प्रकार विचार करके मैंने पद्मासन बांधा और योग की धारणा कर उस विराट्स्वरूप के शरीर को देखा। फिर जहां चित्त की वृत्ति फुरती थी उसके साथ मिलकर और प्राणके मार्ग से निकलकर अपनी कुटी को देखा और उसमें अपने शरीर को पद्मासन बांधे देखा। तब उसमें मैंने प्रवेश करके नेत्रखोले तो अपने सन्मुख शिष्य बैठे देखे और वह पुरुष सोया था उसको देखा। एक मुहूर्त बीता तब मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, भ्रममें क्या २ चेष्टा देखपड़ती है कि, यहां एक मुहूर्त बीता है और वहां मैंने सौवर्ष का अनुभव किया। बड़ा आश्चर्य है कि, भ्रम से क्या नहीं होता। फिर मेरे मन में उपजी कि, उसके चित्त में प्रवेश करके कुछ और कौतुक भी देखूं। तब फिर प्राण के मार्ग से उसके चित्तमें मैंने प्रवेश किया तो क्या देखा कि, अगली कल्पना व्यतीत होगईहै; बान्धव, पुत्र, स्त्री, माता, पिता आदिक सब नष्ट होगये हैं और दूसरा कल्प हुआ है उसकी भी प्रलय होती है। बारह सूर्य उदय होकर विश्व जलानेलगे हैं; वड़वाग्नि जलाने लगी है; मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत जलकर टूक टूक होगये हैं; पृथ्वी जर्जरीभाव को प्राप्त हुईहै; स्थावर जङ्गम जीव हाहाकार शब्द करते हैं; बिजली चमत्कार करती है; और बड़ा क्षोभ उदय हुआ। हे बधिक ! मैं अग्नि में जापड़ा और मेरा शरीर भी जलनेलगा परन्तु मुझको कष्ट कुछ न हुआ। जैसे किसी पुरुष को अपने स्वप्ने में कष्ट प्राप्त हो और जाग उठे तो कुछ कष्ट नहीं होता तैसेही अग्नि का कष्ट मुझको कुछ न हुआ। मैं आपको वहीरूप जाग्रत्वाला जानता था और जगत् प्रलय को भ्रममात्र जानता था इस कारण मुझको कष्ट न होता था। और चेष्टा तो मैं भी उसी प्रकार देखता और करता था परन्तु हृदय से ज्योंका त्यों शीतल चित्त था और और लोग जो थे सो अग्नि के क्षोभ से कष्ट पाते थे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहृदयान्तरप्रलयाग्निकदाहवर्णनन्नाम द्विशताधिकाष्टविंशतितमस्सर्गः॥ २२८॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! प्रलयके क्षोभ में मैंभी भटकताथा और जलमें बहता

था परन्तु पूर्व का शरीर मुझको विस्मरण न हुआ इसकारण शरीर का दुःख मुझको स्पर्श न करता था। मैंने विचारा कि, यह जगत् तो मिथ्या है इसमें विचरनेसे मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? यह तो स्वप्नमात्र है इसमें मैं किस निमित्त खेद पाऊं— इससे जगत् से बाहर निकलूं। बधिक ने पूछा, हे मुनीश्वर ! तुमने जो उस स्वप्ने में जगत् को देखा वह जगत् क्या वस्तु था और स्वप्ना क्या था ? उसकी संवित् में जगत् था और उस जगत् का उसको ज्ञान था वा वह प्रमादी था ? तुमने तो जाग्रत् होकरके उसका स्वप्ना देखा था, उसके हृदय में पहाड़ कहां से आया और नदियां, वृक्ष आदि नाना प्रकार के भूतजात और पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि आदिक विश्व की रचना कहां से आई ? वह सब क्या था यह संशय मेरा दूर करो। जो तुम कहो कि, अपने स्वप्ने में तुमभी अपनी सृष्टि देखतेहो तो हे भगवन् ! हमको जो स्वप्ना आता है उसको हम अपने स्वरूप के प्रमाद से देखते हैं और तुमने जाग्रत् होकर देखा तो कैसे देखा ? मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! प्रथम जो मैंने देखा था सो आपको विस्मरण करके उसके हृदय म जगत् देखाथा और दूसरीबार जो देखाथा सो आपको जानकर जगत् देखा था सो क्या वस्तु है सुनो। हे बधिक ! जो वस्तु कारण से होतीहै सो सत्य होती है और जो कारण विना भासती है सो मिथ्या होती है। मुझको जो सृष्टि उसके स्वप्ने में भासी थी सो कारण विना थी क्योंकि; कारण दो प्रकार का होताहै—एक निमित्तकारण; जैसे घट का कारण कुलाल होता है और दूसरा समवायकारण; जैसे घट मृत्तिका का होता है। जो दोनों कारणों में उत्पन्न हो वह कारण पदार्थ कहाता है पर आत्मा तो दोनों प्रकारों में जगत् का कारण नहीं; वह अद्वैत है इससे निमित्त कारण नहीं और समवायकारणभी इससे नहीं कि, अपने स्वरूपसे अन्यथा भाव नहीं हुआ। जैसे मृत्तिका के परिणाम से घट होता है, तैसेही आत्मा का परिणाम जगत् नहीं। आत्मा अच्युत है। वह जगत् कारण विना भासि आया था इससे भ्रममात्र ही था। हे बधिक ! वस्तु वही होती है और जगत् की भ्रान्ति आत्मा में भासी तो जगत् आत्मरूप हुआ। जब सृष्टि फुरी न थी तब अद्वैत आत्मसत्ता थी उसमें संवेदन फुरने से जगत् हुये की नाईं उदय हुआ सो क्या हुआ—जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है सो किरणही जलरूप भासती है, तैसेही यह जगत् आत्मा का आभास है सो आत्मा ही जगद्रूप हो भासता है। वहां न कोई शरीर था, न कोई हृदय था, न पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश था और न उत्पत्ति और प्रलयथी न और कोई था; केवल चिन्मात्ररूपही था। हे बधिक ! ज्ञानदृष्टि से हमको तो सच्चिदानन्दही भासता है जो शुद्ध और सर्वदुःखों से रहित परमानन्द है और जगत्भी वहीरूप है। तुम सारिखे को जो जगत् शब्द अर्थरूप भासता है सो आत्मा में कुछ हुआ नहीं केवल चिन्मात्र सत्ता है।

सर्वदा हमको आत्मरूपही भासता है। जो तू चाहे कि, मुझको भी चिन्मात्रही भासे तो सर्वकल्पना मन मे त्यागकर उसके पीछे जो शेष रहेगा वह आत्मसत्ता है और सब का अनुभवरूप वही है और प्रत्यक्ष, शुद्ध, सर्वदा स्वभावसत्तामें स्थित है और अमर है। तुमभी उस स्वभाव में स्थित होरहो। हे बधिक ! आत्मसत्ता परमसूक्ष्म है जिसमें आकाश भी स्थूल है। जैसे सूक्ष्म अणु से पर्वत स्थूल होता है, तैसेही आत्मा से आकाश भी स्थूल है। आत्मा में यही सूक्ष्मताहै कि, आत्मत्वमात्रहै जिसमें कोई उत्थान नहीं केवल निर्मल स्वभावसत्ता और निराभास है उसीमें यह जगत् भासता है इससे वहीरूप है। जैसे कालमें क्षण, पल, घड़ी, पहर, दिन, मास, वर्ष और युगसंज्ञा होती है सो कालहीहै; तैसेही एकही आत्मा में अनेक नामरूप जगत् होताहै। जैसे एक बीज में पत्र, टहनी, फूल, फल नाम होतेहैं तैसेही एक आत्मा में अनेक नामरूप जगत् होताहै सो आत्मासे कुछ भिन्न वस्तु नहीं सब आत्मस्वरूपहै और जो आत्मा से भिन्न भासे उसे भ्रममात्र जानो। जैसे संकल्पपुर होता है तैसेही यह जगत् है। हे बधिक ! आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं। वही आत्मा तेरा अपना आप अनुभवरूप है और परमशुद्ध है। उसमें न जन्महै, न मृत्युहै और चिदाकाश अपना आप है जो तेरा आप अनुभवरूप शुद्धसत्ता है--उसको नमस्कार है। हे बधिक ! तू उसमें स्थित होरह तब तेरे दुःख नष्ट होजावेंगे। यह जगत् अज्ञानी को सत्य भासता है और ज्ञानवान् को सदा आकाशरूप भासता है। जैसे एक पुरुष सोया है और एक जागता है तो जो सोया है उसको स्वप्ने में महल आदिक जगत् भासता है और जो जाग्रत् है उसको आकाशरूप है; तैसेही अज्ञानी को जगत् भासता है और ज्ञानवान् को आत्मरूपहै। बधिक बोला, हे मुनीश्वर ! कितने कहते हैं कि, यह जीव कर्म से होताहै और कितने कहते हैं कि, कर्म विना उत्पन्न होताहै तो इन दोनोंमें सत्य क्याहै ? मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! आदि जो परमात्मा से ब्रह्मादिक फुरेहैं सो कर्म से नहीं हुये, वे कर्म विना ही उत्पन्न हुयेहैं और उन्हें न कहीं जन्महै और न कर्म है। वे ब्रह्मस्वरूपहीहैं और उनका शरीर भी ज्ञानरूप है। वे और अवस्था को नहीं प्राप्त होते सर्वदा उनको अधिष्ठान आत्मा में अहंप्रतीत है। हे बधिक ! सृष्टि के आदि जो ब्रह्मादिक फुरेहैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं और और जो अनन्त जीव फुरे हैं और जिनका आदि ही आत्मपद से प्रकट होना हुआ है वे भी ब्रह्मरूप हैं ब्रह्म से कुछ भिन्न नहीं। आदि सबका ब्रह्मचेतन स्वयंभू हैं परन्तु ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिकको अविद्या ने स्पर्श नहीं किया वे विद्यारूपहैं और दूसरे जीव अविद्या के वश से प्रमाद करके परतन्त्र हुयेहैं और कर्म करके कर्म के वश हुयेहैं और संसार में शरीर धारते हैं। जब उनको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होतीहै तब वे कर्म के बन्धन से मुक्त होकर आत्मपद को पातेहैं। हे बधिक ! आदि जो सृष्टि हुई है सो

कर्म विना उपजी है और पीछे अज्ञान के वश से कर्म के अनुसार जन्म मरण देखते हैं। जैसे स्वप्न की सृष्टि आदि कर्म विना उत्पन्न होतीहै और पीछे कर्म से उत्पन्न होती भासती है; तैसेही यह जगत् है। आदि जीव कर्म विना उपजे हैं और पीछे कर्म के अनुसार जन्म पाते हैं। ब्रह्मादिक के शरीर शुद्ध ज्ञानरूप हैं। ईश्वर में जीवभाव दृष्टि आता है पर उस काल में भी ब्रह्मही स्वरूप है क्योंकि, उनके कर्म कोई नहीं केवल आत्मा ही उनको भासताहै—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्न में द्रष्टाही दृश्यरूप होता है और नाना प्रकारके कर्म दृष्टि आतेहैं परन्तु और कुछ हुआ नहीं, तैसेही जो कुछ जगत् भासता है सो सब चिन्मात्रस्वरूप है और कुछ नहीं। सुख दुःख भी वही भासता है परन्तु अज्ञानी को जबतक जगत् प्रतीति होती है तबतक कर्मरूपी फाँसीसे बाँधाहुआ दुःख पाताहै और जब स्वरूपमें स्थित होगा तब कर्मके बन्धन से मुक्त होगा वास्तव में न कोई कर्म है और न किसीको बन्धन है। यह मिथ्या भ्रमहै केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै दूसरा कुछ हो तो मैं कहूं कि, इस कर्म ने इसको बन्धन किया है। यह जगत् आत्मामें ऐसा है जैसे जलमें तरङ्ग होताहै सो भिन्न कुछ नहीं। जलसे तरङ्ग उत्पन्न होताहै सो किस कर्मसे होताहै और क्या उसका रूपहै? जैसे वह जलही रूपहै, तैसेही यह जगत् भी आत्मस्वरूपहै—आत्मा से इतर कुछ नहीं जो कुछ कल्पना कीजिये सो अविद्यामात्रहै। हे बधिक! जबतक यह संवित् वहिर्मुख फुरती है तबतक जगत् भासताहै और कर्म होते दृष्टि आते हैं और जब संवित् अन्तर्मुख होगी तब न कोई जगत् रहेगा और न कोई कर्म दृष्टि आवेगा; तब सब आत्मसत्ताही भासेगी। जैसे हमको सदा आत्मसत्ता भासती है, तैसेही तुमको भी भासेगी। हे बधिक! जो ज्ञानवान् पुरुषहैं उनको जगत् आत्मत्व दिखाई देताहै और जो अज्ञानी हैं उनको प्रमाद से द्वैतरूप भासता है इससे वह पदार्थों को सुखरूप जानकर पाने का यत्न करता है और सुख से सुखी और दुःख से द्वेष करता है पर परमानन्द जो आत्मपद है उसके पाने का यत्न नहीं करता। ज्ञानवान् सदा परमानन्द में स्थित है और सब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूप भासता है। हे बधिक! सर्व जगत् जो तुझको दृष्टि आता है वह चिन्मात्रस्वरूप ब्रह्म है: न कोई स्वप्ना है, न कोई जाग्रत् है, न कोई कर्म है और न कोई अविद्या है सर्व ब्रह्मस्वरूप सदा अपने आपमें स्थित है—उसमें और कुछ नहीं जैसे जल में आवर्त स्थित होता है परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं होता; तैसेही ब्रह्ममें जगत् हुयेकी नाईं भासताहै परन्तु ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है तू विचार करके देख तब तेरे दुःख मिट जावेंगे। जबतक विचार करके स्वरूप को न पावेगा तबतक दुःख न मिटेगा। जब स्वरूप को पावेगा तब सब कर्म नष्ट होजावेंगे। जितना विचार होता है उतनाही

उतना सुख है। जहां विचार उत्पन्न होता है वहां से अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे जहा प्रकाश होता है वहां अन्धकार नहीं रहता; तैसेही जहां सत्य असत्य का विचार उत्पन्न होता है वहां अविद्या का अभाव होजाता है और फिर वह संसारचक्र में नहीं गिरता बल्कि परमपद को प्राप्त होता है। जिस ज्ञानवान् को यह पद प्राप्त हुआ है वह दुःखी नहीं होता॥

इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणेकर्मनिर्णयोनामद्विशताधिकैकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः॥२२९॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जो ज्ञानवान् पुरुष है वह अवश्य उस परमानन्द को प्राप्त होता है जिसके पायेसे इन्द्रियों का आनन्द सूखे तृणवत् तुच्छ प्रतीत होता है और वैसा सुख पृथ्वी आकाश और पाताल में भी कहीं नहीं मिलता जैसा सुख ज्ञानवान् को प्राप्त होता है। जिसको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ है वह किसकी इच्छा करे? आत्मानन्द तब प्राप्त होता है जब आत्म अभ्यास होता है। आत्मा शुद्ध और सर्वदा अपने आपमें स्थित है और जो कुछ आगे दृष्टि आता है सो अविद्या का विलास है। जब तू अपने स्वरूप में स्थित होगा तब तुझको सब ब्रह्मही भासेगा। हे बधिक! पृथ्वी आदिक तत्त्व जो दृष्टि आते हैं सो हैं नहीं; ये जो कुछ होते तो इनका कारण भी कोई होता पर जो येही नहीं हैं तो इनका कारण किसको कहिये और जो इनका कारण नहीं तो कार्य किसका कहिये इसलिये ये भ्रममात्र हैं। विचार कियेसे जगत् का अभाव होजाता है और आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों भासती है। जैसे किसी को रस्सी में सर्प भासता है पर जब वह भली प्रकार देखता है तब सर्पभ्रम मिटजाताहै और ज्योंकी त्यों रस्सीही भासती है; तैसेही विचार कियेसे आत्मसत्ता ही भासती है। जैसे आकाश में संकल्प का कल्पवृक्ष अथवा देवता की प्रतिमा रच कर उससे प्रार्थना की तो अनुभव से कार्य सिद्ध होता है तैसेही जितना जगत् तू देखता है सो सब संकल्पमात्र और अनुभवरूप है। जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की सृष्टि स्वप्नमात्र है; तैसेही यह सर्वविश्व ब्रह्मा के संकल्पमें स्थितहै। आदि परमात्मा से कर्म विना जो सृष्टि उपजी है वह किञ्चन आभासरूप है; फिर आगे जो ब्रह्मा ने रचा है सो संकल्परूप है और फिर आगे अज्ञान से कर्म करने लगे तब उन कर्मों से उत्पत्ति होती दृष्टि आई है। जैसे स्वप्न में स्वप्ने की सृष्टि भ्रममात्रही दृढ़ हो भासती है; जबतक स्वप्ने की अवस्था है तबतक जैसा वहां कर्म करेगा तैसाही भासेगा और जो जाग उठे तो न कहीं कर्म है न जगत् है; तैसेही यह सब संकल्पमात्र है ज्ञान से इसका अभाव होजाताहै। हे बधिक! ये जो मुझको मनुष्य भासते हैं सो मनुष्य नहीं तो उनके कर्म मैं तुझसे कैसे कहूं? जैसे स्वप्नेके निवृत्तहुये स्वप्नेकी सृष्टिका अभाव होना है तैसेही अविद्या के निवृत्तहुये अविद्याकी सृष्टि का भी अभाव होजाता है। आत्म-

सत्ता अद्वैत है उसमें जगत् कुछ बना नहीं—वही रूप है। जैसे आकाश और शून्यता; अथवा वायु और स्पन्द में भेद नहीं होता; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। जब चित्तसंवित् फुरती है तब जगत् होकर भासती है और जब नहीं फुरती तब अद्वैत होकर स्थित होतीहै पर आत्मसत्ता फुरने और न फुरने में ज्यों की त्यों है। जन्म, मरण और बढ़ना, घटना मिथ्याहै क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे किसी ने जल और किसीने पानी कहा तो दोनों एकही वस्तु के नाम होते हैं; तैसेही आत्मा और जगत् एकही के नाम हैं परन्तु अज्ञान से भिन्न २ भासते हैं। जैसे स्वप्न में कार्य भासते हैं परन्तु हैं नहीं; तैसेही जाग्रत् में कारण कार्य भासते हैं परन्तु हैं नहीं—वास्तव में आत्मतत्त्व है। उस आत्मा में जो अहं मम चित्त फुरता है और उस उत्थान से आगे जो कुछ फुरना होताहै वही जगत् है; उस जगत् में जैसा जैसा निश्चय होता है वैसाही वैसा भासने लगता है—इसका नाम नेति है। उसमें देश, काल और पदार्थ की संज्ञा होने लगती है और कारण कार्य दृष्टि आते हैं सो क्या हैं; केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और कुछ हुआ नहीं परन्तु हुये की नाईं भासता है; तैसेही स्वप्न में नाना प्रकार का जगत् भासता है और कारण कार्य भी दृष्टि आता है परन्तु जागनेपर कुछ दृष्टि नहीं आता क्योंकि; है ही नहीं; तैसेही यह जगत् कारण कार्यरूप दृष्टि आता है परन्तु है नहीं आत्मा से दृष्टि आता है इससे आत्माही है। जैसे संकल्पनगर दृष्टि आता है, तैसेही आत्मा में घन चैतन्यता से जगत् भासता है सो वहीरूप है—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। जैसा आत्मामें निश्चय होताहै तैसाही प्रत्यक्ष अनुभव होताहै। यह सब जगत् संकल्पमात्र है; संकल्पहो जहां तहां उड़ते फिरते हैं और अनुभवसत्ता ज्योंकी त्यों है—संकल्पही मरके परलोक देखताहै। बधिक बोला, हे भगवन्! परलोक में जो यह मरके जाताहै तो उस शरीर का कारण कौन होताहै और वह हन्त्री और हन्ता कौनहै? यह शरीर तो यहांहीं रहताहै वहां भोगता शरीर कौन होताहै जिससे सुख दुःख भोगता है? जो तुम कहो कि, उस शरीर का कारण धर्म अधर्म होताहै तो धर्म अधर्म तो अमूर्तिहै उससे समूर्ति और साकाररूप क्यों कर उत्पन्न हुआ? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! शुद्ध अधिष्ठान जो आत्मसत्ताहै उसके फुरने की इतनी संज्ञा होती हैं—कर्म, आत्मा, जीव, फुरना, धर्म, अधर्म आदि नाना प्रकार के नाम होते हैं। जब शुद्ध चिन्मात्र में अहं का उत्थान होता है तब देह की भावना होतीहै और देहही भासने लगती है; आगे जगत् भासता है और स्वरूपके प्रमादसे संकल्परूप जगत् दृढ़ होजाता है; फिर उसमें जैसा जैसा फुरताहै तैसा तैसाही भासताहै। हे बधिक! यह जगत् संकल्पमात्रहै परन्तु स्वरूपके प्रमादसे सत्य हो भासताहै। प्रमाद से शरीरमें अभिमान होगयाहै उससे कर्तव्य भोक्तव्य अपने में मानता

है और वासना दृढ़ होजाती है उसके अनुसार परलोक देखता है। हे बधिक! वहां न कोई परलोकहै और न यह लोकहै; जैसे मनुष्य एकस्वप्न को छोड़कर और स्वप्न को प्राप्त हो; तैसेही अविदित वासना से इसलोक को त्यागकर जीव परलोक को देखता है। जैसे स्वप्न में निराकारही साकार शरीर उत्पन्न होताहै; तैसेही परलोक में है पर वास्तव में संकल्पही पिण्डाकार होकर भासताहै और जैसी २ वासना होती है तैसाही उसके अनुसार होकर भासताहै वास्तव में शरीर और परमार्थ सबही आकाशरूप हैं। हे बधिक! असत्यही सत्य होकर जन्म मरण भासताहै और जैसा जैसा फुरना होता है तैसाही तैसा भासता है--जगत् आभासमात्रहै। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको आत्मभावही सत्यहै और उसमें जैसा निश्चय होताहै तैसा होकर भासता है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञातारूप जगत् जो भासताहै वह अनुभव से भिन्न नहीं। जैसे स्वप्न में अनेकपदार्थ भासते हैं सो अनुभवही अनेकरूप हो भासताहै और प्रलय में एक होजाते हैं; तैसेही ज्ञानरूपी प्रलय में सब एकरूप होजाते हैं। जब संवित् फुरती है तब नाना प्रकार का जगत् भासता है और जब संवित् अफुर होती है तब प्रलय होजाती है और एकरूप होजाताहै। एक चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है और पृथ्वी आदिक पदार्थ उसका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कुछ नहीं, आत्मसत्ता निर्विकार है और उसमें निराकार और साकार भी कल्पित है। जो पुरुष दृश्य से मिले चैतन्य हैं वे जड़धर्मी हैं और उनको नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं; ज्ञानवान् को सत्यरूप चिन्मात्रही भासता है। हे बधिक! यह जगत् सब चिन्मात्र है; जब चित्त संवित् फुरतीहै तब स्वप्नरूप जगत् भासता है और जब चित्त संवित् फुरने से रहित होती है तब सुषुप्ति होती है। ऐसेही चित्त संवित् के फुरने से सृष्टि होती है और चित्त के स्थित होनेसे प्रलय होजाती है। जैसे स्वप्न और सुषुप्ति आत्मा में कल्पित है, तैसेही आत्मा में कल्पित सृष्टि और प्रलय आभासमात्र है और जगत् कुछ बना नहीं; फुरने से जगत् भासता है इससे जगत् भी आत्मरूप है और पञ्चतत्त्व भी आत्माका नामहै और सदा अद्वैतरूप जगत् आभासमात्रहै। जैसे आत्मामें साकार कल्पितहै तैसेही निराकार भी कल्पित है और जैसे स्वप्नमें किसीको साकार जानताहै और किसीको निराकार जानता है पर दोनों फुरनामात्रहै। जो फुरने से रहित है सो आत्मसत्ता है और साकार और निराकार भी वही है। आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासतीहै और निराकारही साकार हो भासताहै। हे बधिक! सर्व जगत् जो तुझको दृष्टि आताहै सो चिन्मात्रस्वरूप है, भिन्न कुछ नहीं; परन्तु अज्ञान से नाना प्रकार के कार्य कारण और जन्म मरण आदि विकार भासते हैं; वास्तव में न कोई जन्महै और न मरणहै; न कोई कार्य है और न कारणहै। यदि जीव मरता होता तो

परलोक भी न देखता और अपने मरने को भी न जानता जो मरके परलोक देखता है सो मरता नहीं। यदि मनुष्य मृतक हो तो पूर्वसंस्कार को न पावे और पूर्वस्मृति इसको न हो पर तू तो पूर्वसंस्कार से क्रिया में प्रवर्तता है और प्रतियोग से तुझे पदार्थों की स्मृति भी हो आती है फिर कर्म भोगता है। पूर्वलोक में तो पुरुष मृतक नहीं होता केवल भ्रम से मरण भासताहै और कारणकार्यरूप पदार्थ भासते हैं और जब मरके परलोक देखता है और सुख दुःख भोगता है तो वह शरीर किसी कारण से नहीं बना। जैसे वह शरीर अकारण है तैसेही और जो आकार दृष्टि आते हैं वे भी अकारण हैं-इसीसे आभासमात्र हैं। जैसे स्वप्नेके शरीरसे नाना प्रकारकी क्रिया होती है और देश देशान्तर देखता है सो सब मिथ्या है, तैसेही यह जगत् मिथ्याहै और मरण भी मिथ्या है। जो तू कहे कि, इसके साकार का अभाव देखता है सो मृतक है तो हे बधिक! जो यह पुरुष परदेश जाता है तो भी इसका आकार दृष्टि नहीं आता। जैसे दृष्टि के अभाव में असत्य होता है, तैसेही देहके त्यागमें भी इस का असत्यभाव होताहै पर इस पुरुष का अभाव कदाचित् नहीं होता। जो तू कहे कि, परदेश गया फिर आमिलता है शरीर के त्याग से फिर नहीं मिलता तो परदेश गया फिर मिलकर वार्त्ता चर्चा करता है और मुआ तो कदाचित् चर्चा नहीं करता पर जिसके पितर प्रीतिसे बँधेहुये मरते हैं और जिनकी यथाशास्त्र क्रिया नहीं होती तो वे स्वप्न में आ मिलते हैं और यथार्थ कहतेहैं कि; हमारी क्रिया तुमने नहीं की; हम अमुक स्थान में पड़े हैं और अमुक द्रव्य अमुक स्थान में पड़ाहै तुम निकाल लो; तो जैसे परदेशी गण मिलते हैं और वार्त्ता चर्चा करते हैं तैसेही मुये भी करते हैं। हे बधिक! वास्तव में न कोई जगत् है और न कोई मरताहै केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और जैसा २ उसमें फुरना फुरताहै तैसाही तैसा हो भासता है। हे बधिक! अनुभवरूप कल्पवृक्ष है; जैसा २ उसमें फुरना फुरताहै तैसाही तैसा हो भासता है। एक संकल्पसिद्ध और एक दृष्टिसिद्ध वस्तु है; जब इनकी दृढ़ भावना होती है तब ये दोनों सिद्ध होती हैं। जो इन्द्रियोंमें द्रव पदार्थ है सो दृष्टिसिद्ध वस्तु कहाती है; जो इसीकी भावना होती है तो यही प्राप्त होती है और जो अपने मनमें आपही मान लीजिये कि; मैं ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र वर्ण हूं अथवा गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी वा संन्यासी आश्रम हूं तो यह संकल्पसिद्ध है। जबतक इनमें अभ्यास होता है तबतक आत्मसत्ता की प्राप्ति नहीं होती और जब आत्मसत्ताका अभ्यास होताहै तब इन दोनोंका अभाव होजाताहै और आत्माही प्रत्यक्ष अनुभव से भासताहै। हे बधिक! जिस वस्तु का अभ्यास होताहै उसकी यदि भावना करे और थककर फिरे नहीं तो वह अवश्य प्राप्त होतीहै पर अभ्यास विना

कुछ सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई पुरुष कहे कि, मैं अमुकदेश जाताहूं तो जब तक उसकी ओर वह चले नहीं तबतक अनेक उपाय करे भी नहीं प्राप्त होता और जब उसकी ओर चलेगा तब पहुंच रहेगा; तैसेही जब आत्मा का अभ्यास बहुत एकाग्र होकर करेगा तब उसको प्राप्त होगा अन्यथा आत्मपद को न प्राप्त होगा। हे बधिक! जिस पुरुष को जगत् के पदार्थों की इच्छा है उसको आत्मपद नहीं प्राप्त होता और जिसको आत्मपदकी इच्छाहै उसको वही प्राप्त होवेगा; जगत्के पदार्थ न भासेंगे। यदि ऐसी भावना हो कि; मेरी देवताकीसी मूर्ति हो और उससे मैं स्वर्ग में बिचरूं और एक स्वरूपसे भूलोकमें मृग होके भ्रमणकरूं तो दृढ़ अभ्याससे वही होजाताहै क्योंकि; जगत् संकल्पमात्र है जैसा जैसा निश्चय होता है तैसाही भासि आता है। हे बधिक! दो स्वरूप की क्या वार्त्ता है जो सहस्रमूर्ति की भावनाकरे तो वही तद्रूप होजावेगा। यह मनुष्य जैसी भावना करताहै तैसाही रूप होजाता है। यह अविद्या का भ्रममात्र जगत्है इसकी भावना त्यागकर आत्मपदका अभ्यासकर तब तेरे दुःख मिटजावेंगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहाशवोपाख्यानेनिर्णयोपदेशो नामद्विशताधिकत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २३०॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जैसे अगाध समुद्र में अनेक तरङ्ग फुरते हैं, तैसेही आत्मा में अनेक सृष्टि फुरती है और जीव २ प्रति अपनी २ सृष्टि है परन्तु परस्पर अज्ञात है और एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता और दूसरे की सृष्टिको वह नहीं जानता। जैसे एकही स्थान में दो पुरुष सोये हों तो उनको अपने २ फुरने की सृष्टि भासि आती है पर एककी सृष्टि को दूसरा नहीं जानता परस्पर दोनों अज्ञात होते हैं; तैसेही सब सृष्टि आत्मा में फुरतीहै परन्तु एककी सृष्टि को दूसरा नहीं जानता। जो धारणाभ्यासी योगीहै उसको अन्तवाहक शरीर प्रत्यक्ष होताहै और वह दूसरेकी सृष्टिको भी जानताहै। जैसे एक तालाबका दर्दुर होताहै; एक कूप का दर्दुर होता है और एक समुद्र का दर्दुर होता है सो स्थान तो भिन्न भिन्न होते हैं परन्तु जल एकही है इससे चाहे जैसा दर्दुर हो पर उसको जल जानता है कि, मेरे में हैं; तैसे जगत् भिन्न २ अन्तःकरणों में है परन्तु आत्मसत्ता के आश्रय है और आदि जो संवेदन उसमें फुरी है सो अन्तवाहक है। जब अन्तवाहक में योगी स्थित होता है तब और के अन्तवाहक को भी जानता है। इस प्रकार अनन्तसृष्टि आत्माके आश्रय अन्तवाहक में फुरती हैं सो आत्मा का किञ्चन है, फुरती भी है और मिटिजाती है। संवेदन के फुरने से सृष्टि उत्पन्न होती है और संवेदन के ठहरने से मिटजाती है क्योंकि, आकाशरूप होती है। जैसे वायु के ठहरने से जल एक रूप होजाताहै और जल से इतर कुछ नहीं भासता; तैसेही संवेदन के फुरने से आत्मा में अनन्तसृष्टि

भासती है और संवेदन के ठहरने से सब आत्मरूप होजाती है तब आत्मा से इतर कुछ नहीं भासता क्योंकि इससे इतर प्रमाद से भासताहै और फिर कारण–कार्य भ्रम भासता है। प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो कारण–कार्य के क्रम और संस्कार से रहित है; पीछे कारण कार्य क्रम भासित हुआ और फिर उसका संस्कार हृदय में हुआ तब संस्कार के वश से भासने लगीं। जिनको स्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ उनको सदा परब्रह्म का निश्चय रहता है और जगत् अपना संकल्पमात्र भासताहै और जिनको स्वरूप का प्रमाद होता है उनको संस्कारपूर्वक जगत् भासता है–संस्कार भी कुछ वस्तु नहीं। हे बधिक! जो जगत् ही मिथ्या है तो उसका संस्कार कैसे सत्य हो? परन्तु ज्ञानवान् को इस प्रकार भासताहै और जो अज्ञानी हैं उनको स्पष्ट भासता है। हे बधिक! जैसे तुम संकल्प के रचे पदार्थ; स्मृति और स्वप्नसृष्टि को असत् जानते हो; तैसेही हम इस जाग्रत्सृष्टि को असत् जानते हैं और जैसे मृगतृष्णा का जल असत् भासता है, तैसेही हमको यह जगत् असत्य है तो फिर कारण, कार्य, कर्म संस्कार हमको कैसे भासे? अज्ञानी को तीनों भासतेहैं। हे बधिक! जब चित्तसंवित् बहिर्मुख होतीहै तब जगत् भासता है और जब अन्तर्मुख होतीहै तब अपने स्वरूप को देखती है। जब आत्मतत्त्वका किञ्चन संवेदन फुरतीहै तब स्वप्न जगत् हो भासता है और जब ठहरजाती है तब सुषुप्ति प्रलय होजाती है। फुरने का नाम सृष्टि की उत्पत्ति है और ठहरने का नाम प्रलय है। जिसके आश्रय फुरना फुरता है सो शुद्धसत्ता अव्यक्त और निराकार है–यही आकाररूप भासता है और जो अकारण निराकारहै उसमें अकारण आकार भासता है इससे जानता है कि; वही रूप है और कुछ नहीं। आकार भी निराकारहै; सृष्टिही दृश्यरूप हो भासतीहै और जगत् आभास-मात्र है। जैसे समुद्र का आभास तरङ्ग होते हैं तैसेही आत्मा का आभास जगत् है सो आत्मानन्द चिदाकाश है और सर्व जगत् का अपना आप है। बधिक बोला, हे मुनीश्वर! तुम जगत् को अकारण कहते हो तो कारण बिना कैसे उत्पन्न होता है क्योंकि; प्रत्यक्ष भासताहै और जो कारणसे उत्पत्ति कहो तो स्वप्नवत् क्यों कहते हो? स्वप्न सृष्टि तो कारण बिना होती है इससे यह कहो कि, यह सृष्टि कारण सहित है अथवा कारण से रहित अकारण है? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह जगत् आदि अकारण है और आत्मा का आभासमात्र है; इसका आत्मात्यन्ताभाव है और कुछ पदार्थ बने नहीं आत्मसत्ताही अपने आप में स्थितहै सो चिदाकाश चिन्मात्र है और उसको किञ्चन चैतन्यता है। जैसे सूर्यकी किरणों का आभास जल भासता है परन्तु जड़ है; तैसेही आत्मा का किञ्चन भी चैतन्य है। वह किञ्चन संवेदन अहंभाव को लेकर फुरती गई है और जैसे २ फुरती है तैसाही तैसा जगत् हो भासता है। जो २

उसमें निश्चय किया है कि, यह कर्तव्य है, इसके करनेसे पाप है; यह करना है यह नहीं करना है और देश, काल, क्रिया क्रम है, यह इसी प्रकार है। यह ऋषि है, यह देवता है; यह मनुष्य है; यह द्वैत है, यह धर्म है, यह कर्म है; इससे इनका बन्धन है; इससे इनका मोक्ष है । हे बधिक ! जो आदि नेति रची है तैसेही अबतक स्थित है अन्यथा नहीं होती—उसीमें कारण कार्य क्रम है। प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो बुद्धिपूर्वक नहीं बनी—आकाशमात्र फुरी है और जैसे फुरी है तैसेही स्थित है। फिर पदार्थ जो एकभाव को त्यागकर और भाव को अङ्गीकार करते हैं सो कारण से करते हैं; कारण विना नहीं होते क्योंकि; प्रथम सृष्टि अकारण हुई है और पीछेसे उसी सृष्टि भाव में कारण कार्य हुये हैं; परन्तु हे बधिक ! जिन पुरुषों को आत्मा का साक्षात्कार हुआ है उनको यह जगत् कारण विना ब्रह्मस्वरूप भासता है और जिनको आत्मसत्ता का प्रमाद है उनको जगत् कारण असत्य भासता है परन्तु आत्मा ब्रह्म निराकार अकारण है उसमें संवेदन के फुरनेसे अब्रह्मता भासती है; निराकार में आकार भासता है और अकारण में कारण भासता है। जब संवेदन जो मन का फुरना है सो स्थिर होजाता है तब सर्व जगत् कारण कार्य सहित भासता है पर प्रथम अकारण फुरा है पीछे से देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पदार्थों की मर्यादा भई है और बन्धमोक्ष की नेति हुई है सो ज्योंकी त्यों है कि; जल शीतल ही है और अग्नि उष्णही है। जब जीव आत्मसत्ता में जागता है तब कारण—कार्य सहित जगत् नहीं भासता। जैसे स्वप्न सृष्टि प्रथम अकारण भासि आती है और जब दृढ़ होजाती है तब कारण से कार्य होता है सो दृढ़ होआता है; जैसे मृत्तिका विन घट नहीं बनता पर जाग उठेसे सर्व जगत् आत्मरूप होजाता है। हे बधिक ! यह जगत् संवेदन में स्थित है, जबतक अहंभाव का फुरनाहै तबतक जगत् है और जब अहंभाव मिटता है तब सर्व जगत् शून्य आकाशवत् होताहै। जबतक अहं फुरती है तबतक नाना प्रकार का जगत् भासता है और जैसी भावना होतीहै तैसा भासता है। सर्वपदार्थ सर्वदाकाल अपनी २ शक्ति में और जैसे आदि नेति हुई है तैसेही स्थित है। जो जीव जैसी क्रियाका अभ्यास करेगा उसका फल पावेगा; जो बन्धन के निमित्त अभ्यास करेगा सो बन्धन पावेगा और मोक्षके निमित्त करेगा सो मोक्ष पावेगा—ऐसे ही आदि नेति हुई है। हे बधिक ! इस प्रकार किञ्चन होकर मिटजातीहै और आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है। जगत् की उत्पत्ति और प्रलय ऐसेहैं जैसे हाथी अपनी सूंड़को पसारे और खैंचे और ऐसेही चित्तसंवेदन के पसरनेसे जगत् उत्पत्ति होतीहै और निस्पन्द में प्रलय होजाती है ॥

इति श्रीयो० नि० कार्यकारणाकारणनिर्णयोनामद्विशताधिकैकत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥२३१॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह सम्पूर्ण जगत् चिद्अणु के ओज में है और उस सम्बन्ध के अभ्यास से आत्मा चिद्अणु की संज्ञा पाताहै। ओज, अन्तःकरण और हृदय तीनों अभेद हैं और चैतन्यसत्ता उसमें स्थित है जो बाहर से मृतकरूपवत् होती है और उसमें जीवितरूप है और वहां बड़े प्रकाश से प्रकाशती है। उस सत्ता का आगे चित्त से संयोग हुआहै और फिर चित्त और प्राणकला का संयोग हुआहै। हे बधिक! जब प्राण क्षोभतेहैं तब चित्त खेदको प्राप्त होताहै और जब चित्त खेदको पाताहै तब प्राण भी खेद पातेहैं। जब प्राण स्थित होते हैं तब जीव शान्ति पाता है और जो प्राण स्थित नहीं होते तो जीव जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में भटकता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था भिन्न आती है सो सुनो, हे बधिक! जब यह पुरुष अन्न भोजन करता है तब वह अन्न जाग्रत्वाली नाड़ीपर स्थित होता है और वह नाड़ी रुकजाती है उससे सुषुप्ति आती है। जिन नाड़ियों में गई हुई चित्तकी वृत्ति जाग्रत् जगत् को देखती है सो जाग्रत्नाड़ी कहाती है। उनपर अन्न जाय स्थित होता है और चित्तसत्ता जो चित्त में प्रतिबिम्बित है वह चित्तनाड़ी उस के तले आजाती है तब प्राण वायु भी उस नाड़ी में ठहरजाता है और चित्तस्पन्द भी ठहरजाता है तब सुषुप्ति होती है। जो पित्त बहुत होती है तो सूर्य, अग्निआदिक उष्ण पदार्थ स्वप्न में दिखते हैं और जब वह अन्न पचता है और उन नाड़ियों में प्राण जाते हैं तब स्वप्न अवस्था आती है। जब जल के शोषने को वायु बहता है तब जीव स्वप्न में उड़ता है और जो कफ बहुत होता है तब जल को देखता है और नदियां, तालआदि देखता है और जाकर डूबता है। जब उष्ण नाड़ी में अन्न जल पहुँचता है तब जाग्रत् अवस्था होती है। इसी प्रकार जीव तीनों अवस्थाओं में भटकताहै। जगत् न कुछ भीतर है और न बाहर है केवल अद्वैतसत्ता ज्योंकी त्यों है। उसके प्रमाद से चित्त की वृत्ति जब बहिर्मुख फुरती है तब जगत् को जाग्रत् देखता है; जब बाहर की इन्द्रियों को त्याग के भीतर आती है तब अन्तस्वप्न जगत् देखता है और जब अपने स्वभाव में स्थित होती है तब और कल्पना मिट जातीहै सर्वब्रह्मही भासताहै। इससे सर्वकल्पनाको त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्तिविचारोनाम
द्विशताधिकद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २३२॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह तीनों अवस्था आती और जाती हैं इनके अनुभव करनेवाली जो सत्ता है सो आत्मसत्ता है और वह सदा एकरस है। जिस पुरुष को अपने स्वरूप का अनुभव हुआ है उसको अपना किञ्चन भासता है और जिसको प्रमाद है उसको जगत् भासता है। यह जगत् चित्त का कल्पा हुआ है और

इन्द्रियों का जिसको प्रमाद है उसको जगत् भासता है। जब इन्द्रियां विषयों के सन्मुख होती हैं तब जगत् देखती हैं और उस संकल्प जगत् को देखकर राग द्वेषवान् होती हैं। फिर इन्द्रियों के अर्थ पाकर जीव हर्ष शोकवान् होताहै। हे बधिक! जिस चिद्अणु का इन्द्रियों से सम्बन्ध है उसको संसार का अभाव नहीं होता। नेत्र, त्वचा, जिह्वा, नासिका और श्रोत्र से देखता, स्पर्शकरता, रसलेता, सूंघता, सुनता और मानता है तब संसारी होकर दुःख पाता है और जब इनके अर्थ को त्याग के अपने स्वभाव की ओर आता है तब सर्व जगत् को आत्मरूप जानकर सुखी होता है। हे बधिक! चित्त के फुरने का नाम जगत् है और चित्त के स्थित होने का नाम ब्रह्म है-जगत् और कुछ वस्तु नहीं इसीका आभास है। चित्तके आश्रय सब नाड़ी हैं उनमें स्थित होकर जीव तीनों अवस्था देखता है पर वास्तव में जीव चिदाकाश आत्मा है-अज्ञान से जीवसंज्ञा पाई है। हे बधिक! ओज धातु जो हृदय है उसमें चिद्अणु स्थित होकर दीपक की ज्योतिवत् प्रकाशता है और उसी के ओज के आश्रय सब नाड़ी हैं सो अपने २ रस को ग्रहण करती हैं। जब प्राणी भोजन करता है और अन्न जाग्रत् नाड़ी में पूर्ण होताहै तब जाग्रत् का अभाव होजाता है और चित्त की वृत्ति और प्राण आनेजाने से रहित होजाते हैं-वह नाड़ी मूंद जाती है। फिर जब कफनाड़ी में प्राण फुरतेहैं तब स्वप्न भासताहै। हे बधिक! जब इन्द्रियों को ग्रहण करके चित्तकी वृत्ति बाहर निकलती है तब जाग्रत् जगत् हो भासता है। जब तन्मात्रा को लेकर चित्त की वृत्ति ओज धातु में फुरती है तब स्वप्न भासता है और जब ओज धातुपर अन्नआदिक द्रव्य का बोझ पड़ता है तब सुषुप्ति होतीहै। जब निद्रा और जाग्रत् का बल होता है तब दोनों भासते हैं और जब दोनों में से एक का बल अधिक होता है तब वही जाग्रत् अथवा सुषुप्ति भासती है। जब निद्रा से रहित मन्द संकल्प होता है तब उसको मनोराज कहते हैं और जब बाह्यविषयों को त्यागकर चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख होती है तब स्वप्न होता है। वहां जिस सिद्धान्त में जाता है उसके अनुसार भीतर जगत् भासता है। कफ के बल से चन्द्रमा, क्षीरसमुद्र, नदियां, जल से पूर्ण ताल और वृक्ष, फूल, फल, बागीचे, सुन्दरवन, हिमालय, कल्पवृक्ष, तमाल, सुन्दर स्त्रियां, बेलें, बावलियां इत्यादि सुन्दर और शीतल स्थान देखता है। जब पित्त का बल अधिक होता है तब सूर्य, अग्नि और सुन्दर वृक्ष, फल और टास देखता है; सन्ध्याकाल के मेघ की लाली देखता है; वन और दूसरे स्थानों में अग्नि लगी देखता है और पृथ्वी और रेत तपी हुई और मरुस्थल की नदी दृष्ट आती हैं; जल उष्ण लगता है; हिमालय का शिखर भी उष्ण लगता है और नाना उष्णपदार्थ दृष्ट आते हैं। जब वायु का बल अधिक होताहै तब स्थान

में अधिक वायु देखता है और पाषाण की वर्षा होती दृष्ट आती है; अन्धे कूप में गिरना देखता है और हाथी घोड़े उड़ते दृष्ट आते हैं; आपको उड़ता फिरता देखता है; अप्सरा के पीछे दौड़ता है; पहाड़ों की वर्षा होती; वायु तीक्ष्णवेग से चलती और अन्न से आदि लेकर पदार्थ चलते दृष्ट आते हैं और विपरीत होकर भासते हैं। इस प्रकार वात, पित्त और कफ से स्वप्ने में जगत् देखता है और जिसका बल विशेष होता है वह उस धर्म में दृष्टि आता है। वासना के अनुसार जीव न्यूनाधिक राजसी, तामसी और सात्त्विकी पदार्थ देखता है और जब तीनों इकट्ठे होकर कोपित होते हैं तब प्रलयकाल दृष्ट आताहै। हे बधिक! जबतक वात, पित्त और कफके अंश के साथ मिला हुआ पुर्यष्टक कफ के स्थान में प्रवेश करता है तबलग समान जल के क्षोभ भासते हैं। इसी प्रकार वात, पित्त और कफ जिसके स्थान में जाता है और और के स्वभाव को लेता है तबतक समान क्षोभ भासता है। जब केवल वात का क्षोभ होताहै तब महाप्रलय कालके पवन चलते और पहाड़पर पहाड़ गिरते और भूकम्प आदि क्षोभ होतेहैं; जब कफका क्षोभ होताहै तब समुद्र उछलते हैं और पित्त से अग्नि लगती है और महाप्रलय की नाईं तत्त्व क्षोभवान् होते। जब प्राण जाग्रत् नाड़ी में जाते हैं और वह अन्न से पूर्ण होतीहै तब जीव उसके नीचे आजाते हैं। जैसे कन्ध के नीचे दर्दुर आवे; पाषाण की शिला में कीट आजावे और काष्ठ की पुतली काष्ठमें हो। जैसे इनमें अवकाश नहीं रहता तैसेही और नाड़ी में फुरनेका अवकाश नहीं रहता रुकजाती है तब इसको सुषुप्ति होती है। जब कुछ अन्न पचता है तब चित्तसंवित् अपने भीतर स्वप्ना देखती है जिसको जिसका विकार विशेष होता है उसी का कार्य देखता है। जब अन्न और जल पचता है तब फिर जाग्रत् जगत् देखता है और जब जाग्रत् और स्वप्न दोनों का बल सम होता है तब दोनों को देखता और अनुभव करता है। हे वधिक! इसी प्रकार तीनों अवस्था होतीं और मिटजाती हैं सो तीनों गुणों से होती हैं। इनका द्रष्टा इनको अनुभव करनेवाला है सो गुण से अतीत है और सबका आत्मा है। यह जगत् और स्वप्न जगत् संकल्पमात्र है, कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ताही किञ्चन करके जगतरूप हो भासती है परन्तु अज्ञानी उसको जगत् जानते हैं और जगत् को सत्य जानकर इष्ट अनिष्ट में राग द्वेष करते हैं। जब बाहर की इन्द्रियां सुषुप्ति होजाती हैं तब भीतर स्वप्ने में भटकता है और उसमें सूर्य, चन्द्रमा, वन, फूल, फल, वृक्ष आदिक जगत् देखता है और जब स्वरूप का अनुभव होता है तब सर्व भटकना मिटजाता है और शान्तिपद को प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २३३॥

बधिक बोला, हे मुनीश्वर! उस पुरुषके हृदय में जो तुमने जगत् और प्रलय देखी
थी उसके अनन्तर क्या किया और क्या अवस्था देखी? मुनीश्वर बोले, हे बधिक!
उसके चित्तस्पन्द में मैंने देखा कि, बड़े बड़े पहाड़ प्रलय की वायु से सूखे तृण की नाईं
उड़ते हैं और पाषाण की वर्षा होतीहै। इस प्रकार मैंने प्रलय के क्षोभ को देखा और
मेरे देखते २ जाग्रत्वाली नाड़ी में अन्न स्थित हुआ तो वहां जो अन्नके दाने गिरे सो
पर्वतवत् भासे और चित्त स्पन्द जो संवित् थी सो रोकी गई एवम् उसमें मैं था सो
तामस नरक में जापड़ा—मानो वहां मैंभी जड़ होगया और मुझको कुछ ज्ञान न रहा।
जब कुछ अन्न पचा और कुछ अवकाश हुआ तब प्राणका स्पन्द फुरा और जैसे वायु
निस्स्पन्द हुई स्पन्द होकर चले तैसेही वहां संवित् फुरी तब सुषुप्ति दृश्य होकर भासने
लगी—मानो आत्मा द्रष्टाही दृश्यरूप होकर भासने लगा परन्तु और कुछ नहीं बना।
जैसे अग्नि और उष्णता; जल और द्रवता और मिरच और तीक्ष्णता में भेद नहीं
तैसेही आत्मा और दृश्य में कुछ भेद नहीं। हे बधिक! इस प्रकार मैंने जगत् को
देखा और सुषुप्ति जाग्रत् दृश्य से दृश्य उपजी और मुझको दृष्टि आई—जैसे कुमारी
कन्या से सन्तान उपजे। बधिक बोला, हे मुनीश्वर! जो सुषुप्ति आत्मा में दृश्य उपजी
सो सुषुप्ति क्या है जिसमें तुम दबगये थे वही सुषुप्ति है जिससे जगत् उपजता है?
मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जहां सर्वसम्बन्ध का अभाव है केवल आत्मसत्ता से भिन्न
कुछ कहना नहीं बनता उसका नाम सुषुप्तिहै और उसमें जो फुरना हुआ उसके तीन
पर्यायहैं सो सब सन्मात्र के हैं। जो वस्तु देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहितहै
वह सन्मात्र है; उस सन्मात्र में और कुछ बना नहीं उसके जो सब पर्याय हैं वेही रूप
हैं। वही सत्यवस्तु अपने आपमें विराजता है और कदाचित् अन्यथाभाव को नहीं
प्राप्त होता; किञ्चन में भी वही रूप है और अकिञ्चन में भी वही रूप है। आत्माही का
नाम सुषुप्ति है और उसीसे सब जगत् होताहै। जिस सत्ता का नाम सुषुप्ति है वही
स्वप्नदृश्य होकर भासताहै—उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे वायु निस्स्पन्द स्पन्द में वही
रूप है, तैसेही आत्मा दोनों अवस्थाओं में एकही है। हे बधिक! हम सरीखों की
बुद्धि में और कुछ नहीं बना आत्माही सदा ज्योंका त्यों स्थितहै और शरीरके आदि
भी और अन्त भी वही रूप है। उसमें जो किञ्चनद्वारा भासित हुआ है वह भी वही
रूप है। जैसे सुषुप्ति अवस्था में मुझको अद्वैतका अनुभव होताहै और कहीं फुरना
नहीं होता और उसमें जो स्वप्न और जाग्रत् भासिआती है सो भी वही रूप है और
जिसमें फुरती और जिसमें भासतीहै उसमें भिन्न कुछ नहीं: इससे यह जगत् आत्मा
का किञ्चन आत्मरूप है। जब तू जागकर देखेगा तब तुझको आत्मरूपही भासेगा।
जैसे स्वप्नपुर और संकल्पनगर का अनुभव होता है और आकाशरूप है तैसेही यह

जगत् आकाशरूप है और शक्ति भी वही है। सर्वशक्ति आत्मा निष्किञ्चन भी और किञ्चन भी और शून्यभी वहीहै जो वाणी से कहा नहीं जाता। उस अवस्थामें ज्ञानी स्थित है। हे बधिक! ज्ञानवान् को प्रत्यक्ष करके अनुभवरूपही भासताहै जैसे स्वप्ने में जीव और ईश्वर भिन्न २ भासते हैं और उपाधि करके अनुभवभेद भासता है–वास्तवमें कुछ भेद नहीं; तैसेही जाग्रत्में अज्ञान उपाधि से भेद भासताहै पर स्वरूप से आत्मा एकरूप है और जब अज्ञान निवृत्त होताहै तब सर्व आत्मरूपही भासता है। हे बधिक! सर्वजगत् अपना स्वरूप है परन्तु अज्ञानसे भेद होताहै; जब आपको जाने तब द्वैतभेद भी मिटजावे। जैसे किसी पुरुष ने अपनी भुजापर सिंह की मूर्ति लिखी हो और उसके भय से दौड़ता फिरे और कष्ट पावे तो वह प्रमाद से भयवान् होता है क्योंकि, वह तो अपनाही अङ्ग है और अपने अङ्गके जानेसे भय मिटजाता है; तैसेही स्वरूपके ज्ञानसे जगत् भय मिटजाताहै। जैसे स्वप्ने में अज्ञान से नानात्व भासता है पर बना कुछ नहीं; तैसेही जाग्रत् में नानात्व भासता है परन्तु बना कुछ नहीं। जब मनुष्य अन्तर्मुख होता है तब बोध की दृढ़ता हो आती है। जैसे प्रातः-काल को ज्यों ज्यों सूर्य की किरणें प्रकट होती हैं त्यों त्यों सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसेही ज्यों ज्यों मनुष्य अन्तर्मुख होता है त्यों त्यों बोध खिलता है। विषयों से वैराग्य और आत्माके अभ्यास से बुद्धि अन्तर्मुख होकर आत्मपद की प्राप्ति होती है तब आत्मा सर्व एकरस भासता है॥

इति श्रीयो॰निर्वाणप्रकरणेसुषुप्तिवर्णनन्नामद्विशताधिकचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥२३४॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! तब मैंने उसकी सुषुप्ति से जागकर जगत् को देखा–जैसे कोई पुरुष समुद्र से निकल आवे; जैसे संकल्प सृष्टि फुरआवे; जैसे आकाश में बादल फुरते हैं और वृक्ष से फल निकल आते हैं; तैसेही उसकी सुषुप्ति से सृष्टि निकल आई–मानो आकाश से उड़आई वा मानो कल्पवृक्ष से चिन्तामणि निकल आई है। जैसे शरीर के रोम खड़े होआते हैं; जैसे गन्धर्वनगर फुरिआताहै; अथवा जैसे पृथ्वी मे अंकुर निकल आता है; तैसेही सृष्टि फुरि आई। जैसे कन्धपर पुत-लियां लिखी हों और जैसे थम्भ में पुतलियां हों; तैसेही मैंने सृष्टि को देखा। जैसे थम्भे में पुतलियां निकली नहीं परन्तु शिल्पी कल्पता है कि; इतनी पुतलियां नि-कलेंगी; तैसेही अनहोती सृष्टि आत्मरूपी थम्भसे निकल आतीहै। आत्मरूपी माटी से पदार्थरूपी बासन निकलते हैं परन्तु यह आश्चर्य है कि, आकाश में चित्र होते हैं और निराकार चैतन्य आकाश में पुतलियां मनुष्य कल्पता है। हे बधिक! जैसे आकाश में मकड़ी के समूह निकल आते हैं, तैसेही शून्याकाश से सृष्टि निकलकर उस पुरुष के हृदय में मुझ को स्पष्ट भासनेलगी। देश, काल, क्रिया और द्रव्य से

अकस्मात् सत्यासत्य पदार्थ भासने लगते हैं और असत्यपदार्थ सत्य हो भासतेहैं। जैसे मणि मन्त्र औषधद्रव के बल से असत्यपदार्थ सत्य हो भासने लगते हैं और सत्यपदार्थ असत्य भासते हैं, तैसेही अभ्यास के बल से मुझको उस पुरुष के हृदय में सृष्टि भासनेलगी। हे बधिक! जैसा निश्चय संवित् में दृढ़ होता है तैसाही रूप होकर भासता है, वास्तव में न कोई पदार्थ है, न भीतर है, न बाहर है, न जाग्रत् है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है; यह सब सृष्टि इसके भीतरही स्थित है और प्रमाददोष से बाहर से फल उत्पन्न होते देखता है। जैसे स्वप्न में सब पदार्थ अपने भीतर बाहर होते भासते हैं तैसेही ये पदार्थ अपने भीतर से बाहर फुरते भासने हैं। हे बधिक! यह जगत् जो आकारसंयुक्त दृष्टि आता है सो सब निराकार है और कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ताही अज्ञान से जगत्रूप हो भासती है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् सत्य असत्य कुछ नहीं भासता केवल ब्रह्मसत्ताही अपने आप में स्थित भासती है और जो अज्ञानी हैं उनको भिन्न २ नाम रूप भासता है। जब चित्त की वृत्ति बाहर फुरती है उसको जाग्रत् कहते हैं; जब अन्तर्मुख फुरती है तब उसको स्वप्न कहते हैं और जब स्थित होती है तब उसको सुषुप्ति कहते हैं; तो एकही चित्तवृत्ति के तीन पर्याय हुये और कुछ वास्तव तो नहीं। इसी जगत् के आदि शुद्ध केवल आत्मसत्ता थी और उसमें जब चित्तसंवित् फुरी तब जगत्रूप भासनेलगी और किसीकारण जगत् उपजा नहीं। जिसका कारण कोई नहीं उसको असत्य जानिये—वास्तवमें कुछ बना नहीं सर्वजगत् शान्तरूप ब्रह्मही है॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्रकरणेसुषुप्तिवर्णनन्नामद्विशताधिकपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः॥२३५॥

बधिक बोला, हे मुनीश्वर! प्रलय के अन्तर तुमको क्या अनुभव हुआ था? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! तब मुझको उसके भीतर सृष्टि फुरआई और अपने पुत्र, कलत्र, स्त्री आदि सम्पूर्ण कुटुम्ब भासि आये। उनको देखकर मुझको ममत्व फुर आया और पूर्वकी स्मृति भूलगई। अपनी षोड़शवर्षकी आयुर्बल भासी और गृहस्थाश्रम में स्थित हुआ तब राग द्वेष सहित मुझको जीव के धर्म फुर आये क्योंकि; दृढ़बोध मुझको न हुआ था। हे बधिक! जब दृढ़बोध होता है तब राग द्वेषादिक जीवधर्म चला नहीं सके और संसारको सत्य जानकर कोई वासना नहीं होती इसीकारण चलायमान नहीं होता। जिसको बोधकी दृढ़ता नहीं हुई उसको जगत् की वासना खैंच लेजाती है। हे बधिक! अब मुझको दृढ़बोध हुआ है। इस वासना को तरना महाकठिन है; यह पिशाचिनी महाबली है क्योंकि; चिरकाल से दृश्य का अभ्यास हुआ इसकारण चला ले जाती है। जब सत्शास्त्र का विचार और सन्तों का संग जीव को प्राप्त होता है और अभ्यास दृढ़ होता है तब दृश्य का सद्भाव निवृत्त

होजाताहै। जबतक यह मोक्ष का उपाय नहीं प्राप्त होता तबतक यह भ्रम दृढ़ रहता है और जब सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के विचार से यह विचार उपजता है कि, 'मैं कौनहूं' और 'यह जगत् क्या है' और इसको विचारकर आत्मपद का दृढ़ अभ्यास होता है तब दृश्यभ्रम मिटजाता है क्योंकि, असम्यक्ज्ञान से जगत् सत् भासित हुआहै, जब सम्यक्ज्ञान हुआ तब जगत् का सद्भाव कैसे रहे। जैसे आकाश में नीलता; बाज़ीगर की बाज़ी और रस्सी में सर्प भ्रम से भासते हैं, तैसेही आत्मामें जगत्भ्रम से भासताहै। जब प्राणी अपने स्वरूपमें जागता है। तब जगत् भ्रम मिटजाताहै पर जबतक स्वरूपमें नहीं जागता तबतक जगत्भ्रम नहीं मिटता। बधिक बोला, हे मुनीश्वर! यह तुम सत्य कहते हो कि, जगत्भ्रम मिटना कठिन है। मैं तुम्हारे मुख से बारम्बार सुनताहूं और विचारता हूं और पदपदार्थ का ज्ञान भी मुझको दृढ़ होगया है परन्तु संसारभ्रम नष्ट नहीं होता। यह मैं जानता और सुनता हूं कि, सन्तोंके संग और सत्शास्त्रोंके विचार बिन शान्ति नहीं होती पर यह संशय मुझको होता है कि; तुम जाग्रत् जगत् को स्वप्नवत् कैसे कहते हो? कई पदार्थ सत्य भासतेहैं और कई असत्य भासतेहैं। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह सर्वजगत् पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य भासते हैं और शशेके सींग आदिक असत्य भासते हैं सो सब मिथ्यारूप हैं। जैसे स्वप्ने में सत्य असत्यपदार्थ भासते हैं सो सर्व असत्यरूप हैं, तैसेही यह जगत् असत्यरूप है पर उसमें अल्प और चिरकाल की प्रतीति का भेद है। जाग्रत् चिरकालकी प्रतीतिहै उसमें पदार्थ सत्य भासते हैं और स्वप्ना अल्पकाल की प्रतीतिहै इससे स्वप्ने के पदार्थ असत्य भासते हैं परन्तु दोनों भ्रमरूप और असत्य हैं इस कारण मैं तुल्य कहता हूं। असत्यही पदार्थ भ्रमसे सत्यकी नाईं भासते हैं और यह सर्व जगत् स्वप्नमात्र है उसमें सत्य और असत्य क्या कहूं। जैसे स्वप्ने में कई पदार्थ सत्य और कई असत्य भासते हैं पर सबही असत्य हैं, तैसेही जाग्रत् में कई पदार्थ सत्य भासते और कई असत्य भासते हैं परन्तु दोनों भ्रममात्र हैं इसी से असत्य हैं। हे बधिक! प्रतीति का भेदहै, पदार्थमें भेद कुछ नहीं। जिसमें प्रतीति दृढ़ होरही है उसको सत्य कहते हैं और जिसमें प्रतीति दृढ़ नहीं उसको असत्य कहते हैं। एक ऐसे पदार्थ हैं कि, स्वप्ने में उनकी भावना दृढ़ होगई है सो जाग्रत्में भी प्रत्यक्ष भासते हैं और मनोराज की दृढ़ता जाग्रत्रूप होजाती है सो भावनाही की दृढ़ता है और भेद नहीं। जिसमें भावना दृढ़ होगई है वह सत्य भासने लगा है जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् संकल्पमात्रही भासता है संकल्प से भिन्न जगत् का कुछ रूप नहीं तो उसमें मैं सत्य और असत्य क्या कहूं? सब जगत् भ्रममात्रहै, जो ज्ञानवान्हैं उनको सत्य असत्य कुछ नहीं सब ज्ञानरूपही भासताहै। जैसे जिस

को स्वप्ने में जाग्रत् की स्मृति आई है उसको फिर स्वप्ना नहीं भासता है, तैसेही जिसको जाग्रत्रूप स्वप्नेमें बोधस्मृति हुईहै वह फिर मोक्षको नहीं प्राप्त होता। इस से न कोई जाग्रत् है, न कोई स्वप्नाहै और न कोई नेतिहै क्योंकि; नेतिभी कुछ और वस्तु नहीं। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के पदार्थ भासतेहैं और उनकी मर्यादा नेति भी भासती है तो वह नेति किससे है? सब ज्ञानरूप होती है; तैसेही जाग्रत् में भी सब ज्ञानरूप है और संवित् के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और उसमें नेति भी भासतीहै; इससे न कोई जगत् और न कोई नेति है। इसका कारण कोई नहीं; कारण विनाही जगत् अकस्मात् फुरआता है और मिट भी जाता है। संवेदन के फुरने से जगत् फुर आता है और संवेदन के मिटेसे मिटजाता है—इससे जगत् संवेदनरूपहै। जैसे वायु स्पन्दरूप होतीहै; तैसेही संवेदनही जगत्रूप हो भासताहै। जैसे वायु स्पन्दरूप होतीहै तब फुरनरूप हो भासतीहै और निस्स्पन्द को कोई नहीं जानता परन्तु वायु को दोनों तुल्य हैं; तैसेही चित्त संवेदनके फुरनेमें जगत् भासता है और ठहरनेमें जगत् किञ्चन मिटजाताहै—फुरना और ठहरना दोनों उसके किञ्चन हैं और आप दोनों में तुल्यहै। हे बधिक! नेतिभी अज्ञानी के समुझाने के निमित्त कहीहै। स्वप्ना भी असत्यहै सब कोई जानताहै पर स्वप्ने का वृत्तान्त जाग्रत् में सिद्ध होता दृष्टि आता है; कोई कहता है कि, रात्रि में मुझको स्वप्ना आया है कि; अमुक कार्य इस प्रकार होगा और जाग्रत् में वैसाही होता दृष्टि आता है; पिता पुत्र से कह जाता है कि; मेरी गति करना और अमुक स्थान में द्रव्य पड़ा है तुम निकाललो सो उसी प्रकार होता दृष्टि आया है। जो नेति होती तो कोई कार्य सिद्ध न होता पर सो तो होताहै इससे नेति भी कुछ वस्तु नहीं। आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जाग्रत् उसका नाम है जिसको आत्मशब्द कहते हैं और जिसको तुम जाग्रत् कहते हो सो कुछ वस्तु नहीं। जाग्रत् मनसहित षट्इन्द्रियों की संवेदन होती है सो स्वप्ने में भी मनसहित षट्इन्द्रियों की संवेदन होती हैं और उनमें ग्रहण होता है इससे जाग्रत् कुछ वस्तु नहीं। जो जाग्रत् में अर्थ सिद्ध होता है और स्वप्ने में भी होवे तो जाग्रत् कुछ वस्तु न हुई और जो तू कहे कि, स्वप्ना कुछ वस्तुहै तो स्वप्नाभी कुछ वस्तु नहीं क्योंकि, स्वप्ना तहां होताहै जहां निद्राभ्रम होताहै। केवल शुद्ध चिन्मात्रसत्ताका जगत् किञ्चन है। जैसे रत्नों का चमत्कार स्थित होता है सो रत्नों से भिन्न कुछ वस्तु नहीं रत्नही व्यापाहै, तैसेही जाग्रत् स्वप्न जगत् आत्मा का चमत्कार है। बोधसत्ता केवल अपने आपमें स्थित है सो अनन्त है उसमें जगत् कुछ बना नहीं। जो आत्मा से भिन्न जगत् भासता है सो नाशरूप है और आत्मा सदा अविनाशी है। हे बधिक! जब यह पुरुष शरीरको छोड़ताहै तब परलोक में सुख दुःख ऐसे भोगताहै जैसे कि,

जल में तरङ्ग उठकर मिटजाताहै और दूसरी ठौर और प्रकार से उठता है सो जलही जल है; आगे भी जल था, पीछे भी जल है, तरङ्ग भी जलहै और जलहीका विलास इस प्रकार फुरताहै; तैसेही यह शरीर भी अनुभवरूपहै—अनुभवसे भिन्न कुछ नहीं। जैसे मनुष्य एक स्वप्न को छोड़कर दूसरा स्वप्न देखता है तो क्या है; अपनाही आप है; तैसेही यह जगत् भी आत्मरूप है। हे बधिक! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया येही चारों वपु हैं। जाग्रत् जो सृष्टि की समष्टिता है उसका नाम विराट् है; स्वप्न जो लिङ्ग शरीर की समष्टिता है उसका नाम हिरण्यगर्भ है; सुषुप्ति शरीर की समष्टिता अव्याकृत माया है और तुरीया सर्व शरीरों की समष्टिता है सो चेतनरूप आत्मा है। तुरीया साक्षीभूत के जानने को कहते हैं; उसकी समष्टितारूप चेतनवपु है; चारों शरीर उसके हैं और वह सदा निराकार अचेत चिन्मात्र है। हे बधिक! ये चारों परमात्माके शरीरहैं वह परमात्मा निराकार है और आकार जो उसमें दृष्टि आताहै सो भी वही रूप है। आकार कल्पनामात्र है और आत्मा सर्वकल्पना से रहित है—इससे सब जगत् चिदाकाशरूप है। जैसे पत्थर की शिलामें कमलके फूल नहीं लगते—उनका होना असंभवहै; तैसेही आत्मा में जगत् का होना असंभवहै। हे बधिक! आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है; तू जागकर देख कि सर्वपदार्थ संकल्पमात्र हैं और जिसमें कल्पित हैं वह नामरूप से रहित है। जब तू उसको देखेगा तब सब जगत् आत्मरूप भासेगा॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्र०स्वप्ननिर्णयोनामद्विशताधिकषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २३६॥

बधिक बोला, हे मुनीश्वर! उस पुरुष के हृदय में जो तुमने सृष्टि देखी थी उसमें तुम किस प्रकार बिचरते थे और क्या देखा था सो कहो? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जो कुछ वृत्तान्त है सो तू सुन। जब मैंने उसके हृदय में नाना प्रकार का जगत् देखा तब मैं अपने कुटुम्ब में रहनेलगा और पूर्व की स्मृति विस्मरणकर षोड़शवर्ष पर्यन्त उसीको सत्य जानकर चेष्टा करतारहा। तब मेरे गृह में मान करने योग्य उग्रतपा नाम एक ऋषीश्वर आया और उसका मैंने बहुत आदर किया। उसके चरण धोकर उसे मैंने सिंहासन पर बैठाया और नाना प्रकार के भोजन से उसको तृप्त किया। जब उस ऋषि ने भोजन करके विश्राम किया तब मैंने कहा, हे ऋषीश्वर! अदृष्ट क्रोध को मैं जानता हूं। तुम परम बोधवान् हो क्योंकि, आपको आपही जानते हो। जब तुम आये थे तब थके हुयेथे परन्तु तुममें क्रोध न दृष्टि आया और जब तुमने नाना प्रकार के भोजन किये तब तुम हर्षवान् भी न हुये; इस कारण मैंने जाना कि, तुम परम बोधवान् हो और तुम्हारे में राग द्वेष कुछ नहीं है। इससे मैं संशययुक्त होकर एक प्रश्न करता हूं कृपा करके उसका उत्तर देकर मेरे संशय को दूर कीजिये। हे भगवन्! इस

जगत् में जो दुर्भिक्ष पड़ता है और सब इकट्ठे मरजातेहैं और कष्ट पातेहैं इसका क्या कारणहै ? यह तो मैं जानताहूं कि, जैसे शुभ अथवा अशुभकर्म जीव करताहै उसका फल पाता है। जैसे धान को बोताहै तो समय पाकर फलभी अवश्य आता है, तैसेही कर्म का फलभी अवश्य प्राप्त होताहै और जिसने कियाहै वही भोगता है पर दुर्भिक्ष में इकट्ठा कष्ट क्योंकर प्राप्त होता है ? उग्रतपा बोले, हे साधो ! प्रथम यह सुनो कि, जगत् क्या वस्तु है। यह जगत् कारण बिना उत्पन्न हुआहै और जो कारण बिना दृष्टि आवे उसे भ्रममात्र जानिये इससे तू विचारकर देख कि, 'यह जगत् क्या है;' 'तू कौन है;' 'इसमें क्या है' और इसका अन्त प्रमाण कहांतकहै ? हे बधिक ! यह जगत् स्वप्नमात्र है और यह शरीर भी स्वप्नमात्र है । तू मेरा स्वप्ननर है; मैं तेरा स्वप्ननर हूं और सब जगत् स्वप्ननर है। कारण कार्य कोई नहीं, सब आभासमात्र है; आभास में कुछ और वस्तु नहीं होती इससे सब जगत् आत्मस्वरूप है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र होता है; सर्प कुछ नहीं रस्सीही है; तैसेही सब जगत् चिन्मात्ररूप है । उसमें जगत् कुछ बना नहीं केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें अहं होकर इस प्रकार चैतन्यता संवेदन फुरती है तब जगत् आकार का स्मरण होताहै और जैसे जैसे संकल्प फुरता है तैसाही तैसा जगत् भासता है। जैसे स्वप्न की सृष्टि और संकल्पनगर नाना प्रकार के भासते हैं पर अनुभव से भिन्न नहीं, तैसेही यह जगत् भासता है । जिस संवित् में अपना स्वरूप स्मरण होताहै उसको जगत् कारण कार्यरूप भासता है—वही जीव है और जिस संवित् को कर्म की कल्पना स्पर्श करती है उसको उन कर्मोंका फल नहीं लगता और कर्तव्य दृष्टिभी आताहै परन्तु उसके हृदय में कर्तव्य का अभिमान नहीं स्पर्श करता। जिसके हृदय में कर्तव्य का अभिमान होताहै उसको फलभी होता है। हे साधो ! यह जो सृष्टि है उसका एक विराट् पुरुष है उसी का यह शरीर है और यह विराट् भी और विराट् के संकल्प में है। यह विराट् उस विराट् का रोमाञ्च है। जब विराट् पुरुष के अङ्ग में क्षोभ होताहै और जीव की पापवासना उदय होती है तब वासना और अङ्गका क्षोभ इकट्ठा होकर उस स्थान में उपद्रव और कष्ट होता है। जैसे वनमें बहुत वृक्ष होतेहैं और उनपर वज्र आनपड़ता है तो उससे सब चूर्ण होजाते हैं तैसेही इकट्ठे पाप से इकट्ठे ही मरजाते हैं और इकट्ठे दुर्भिक्ष से कष्ट पातेहैं। जैसे किसी पुरुष के अङ्गपर मक्खी काटे तो उससे वह अङ्ग कांपताहै और उस अङ्गके कांपनेसे रोमभी कांपने लगजातेहैं और जो सर्पादिक जीव कहीं डंसता है तो सारा शरीर कष्ट पाता है और सब रोम कष्ट पाते हैं; तैसेही यह जगत् विराट् पुरुष का शरीर है जब किसी नगर में पाप उदय होताहै तब एक रोमरूपी नगर जीव कष्ट पातेहैं और जो सारे अङ्गरूपी देशमें पाप उदय होताहै तब सर्व

के काटनेके समान विराट् का सारा शरीर क्षोभवान् होता है और उसके शरीर पर रोमरूपी सबजीव कष्ट पातेहैं। आत्मसत्ता केवल अनुभवरूप है उसके प्रमाद से यह आपदा दृष्टि आतीहै। यह जगत् कारणसे उपजा होता तो सत्य होता सो तो कारण से उपजा नहीं सत्य कैसे हो? इस जगत् में सत्य प्रतीति करनीही अज्ञानता है। हे साधो! इस आकाशका कारण कोई नहीं; पृथ्वी का कारण कोई नहीं और अविद्या का कारण भी कोई नहीं। स्वयंभू अकारण है। स्वयंभू उसका नाम है कि, जो अपने आपसे प्रकट है तो उसका कारण कौन हो? अग्नि, जल, वायु का कारण भी कहीं नहीं। जो तुम कहो कि, सबका कारण आत्मा है तो आत्माको निमित्तकारण कहोगे अथवा समवायकारण कहोगे? यदि प्रथम पक्ष निमित्तकारण कहिये तो नहीं बनता क्योंकि आत्मा अद्वैत है और दूसरी वस्तु कोई नहीं तो निमित्तकारण किसका हो? यदि समवायकारण कहिये तो भी नहीं बनता क्योंकि, समवायकारण आप परिणाम से कार्य होताहै पर आत्मा अच्युत है और अपने स्वरूप को नहीं त्यागता सो समवाय कारण कैसेहो? इससे यदि आत्मा में कारण-कार्यभाव नहीं तो फिर जगत् किसका कार्य हो? हे अङ्ग! जो कारण से रहित दृष्टि आवे उसको जानिये कि, भ्रममात्र भासता है और जो तू कहे कि, कारण विना पिण्डाकार नहीं होते कहीं कारण भी होगा; तो हे अङ्ग! जैसे मनुष्य देह को त्यागता है और परलोक जा देखता है तो कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगता है पर उस शरीर का कारण किसे कहिये? वह तो कारण से नहीं उपजा भ्रममात्र है; तैसे यह भी भ्रममात्र जानो। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के आकार भासि आते हैं सो किसी कारण से नहीं उपजते और आकाश में तरुवरे और रङ्ग भासते हैं सो भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भी भ्रममात्र है। जैसे बालक को अनहोता वैताल भासताहै और उससे वह भयवान् होता है, तैसेही यह जगत् भी अनहोता स्वरूप के प्रमाद से भासता है; वास्तव में परमात्मसत्ता ज्योंकी त्यों है वही संवेदन से जगत्रूप हो भासती है-उसमें वहीरूप है। जैसे वायु चलने और ठहरने में एकही रूप है परन्तु चलने से भासती है और ठहरने से नहीं भासती; तैसेही चित्तसंवित् फुरनेसे जगत् आकार हो भासती है और उसमें नाना प्रकार के शब्द-अर्थ दृष्टि आते हैं और जब फुरनेसे रहित होतीहै तब अपने स्वभावको देखतीहै जब संकल्पकी दृढ़ता होतीहै तब कारण कार्य भासने लगते हैं। जिसको कारण कार्य भासताहै उसको जगत् सत्यभासताहै और जिसको कार्य से रहित भासता है उसको जगत् आत्मरूपहै। जिसको कारण कार्य बुद्धि है उसको वही सत्य है। यह पुण्य करेगा तो स्वर्ग में सुख पावेगा और पाप करेगा तो नरक दुःख भोगेगा-इससे उसको पुण्य ही करना भला है। जब जीव के पाप इकट्ठे होते हैं तब

दुर्भिक्ष पड़ती और मृत्यु आती है। जैसे पत्थर की वर्षा हो तैसेही वे कष्ट पाते हैं और
जो मेरा निश्चय पूछो तो न पाप है, न पुण्य है, न दुःख है, न सुख है और न जगत्
है। जब स्वरूप के प्रमाद से अहन्ता उदय होती है तब नाना प्रकार के विकार भा-
सते हैं और जब प्रमाद निवृत्त होता है तब सब आत्मरूप भासता है—इससे तुम सर्व
कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होरहो तब सर्व संशय मिटजावेंगे॥
इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणेस्वप्नविचारोनामद्विशताधिकसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥२३७॥

मुनीश्वरजी बोले, हे बधिक ! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर ने उपदेश किया
उससे मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ और अकृत्रिमपद को प्राप्त हुआ। उग्रतपा
के साथ मानो विष्णु भगवान् उपदेश करने आन बैठे थे, उन्हीं के उपदेश से मैं
जागा। जैसे कोई रजसे वेष्टित स्नान से उज्ज्वल हो तैसेही मैं हुआ अपनी पूर्वस्मृति
और अवस्था को स्मरणकर और समाधिवाले शरीर और आत्मवपु को भी जान,
यह उग्रतपा तेरे पास बैठा है। अग्नि बोले, हे राजन् ! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने
कहा तब बधिक विस्मय को प्राप्त हुआ और बोला, हे मुनीश्वर ! बड़ा आश्चर्य है
जो तुम कहतेहो कि, स्वप्नमें मुझको उग्रतपाने उपदेश किया था और फिर जाग्रत्में
कहते हो कि, यह बैठा है। यह वार्ता तुम्हारी कैसे मानिये ? जैसे बालक अपनी पर-
छाहीं में वैताल कल्पे और कहे यह प्रत्यक्ष बैठा है तो जैसे वह स्पष्ट नहीं भासता,
तैसेही यह तुम्हारा वचन स्पष्ट नहीं भासता। यह अपूर्व वार्त्ता सुनकर मुझको संशय
उपजा है सो तुम दूर करो। मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! यह बात आश्चर्य के उप-
जानेवाली है परन्तु जैसे यह वृत्तान्त हुआ है सो संक्षेप से तुम से कहता हूं सुनो।
जब उग्रतपा ने मुझको उपदेश किया तब मैंने कहा, हे भगवन् ! तुम यहां विश्राम
करो और जिस प्रकार मैं रहताहूं तैसेही तुम भी रहो। तब मैं वहां रहनेलगा और
उसका उपदेश पाकर विचारा कि, यह जगत् मिथ्या है, मेरा शरीर भी मिथ्या है
और इसके सुख के निमित्त मैं क्या यत्न करता हूं ? इन्द्रियां तो ऐसी हैं जैसे सर्प
होते हैं; इनके सेवनेवाला संसाररूप बन्धन से कदाचित् मुक्त नहीं होता। मेरे जीने
को धिक्कार है। जो इनके सुख की वाञ्छा करते हैं वे मूर्ख हैं और मृग की नाईं
मरुस्थल के जलपान करने के निमित्त दौड़ते हैं और थक पड़ते हैं पर तृप्त कदाचित्
न होंगे। मैं अविद्या से सुख के निमित्त यत्न करता था पर इनसे तृप्ति कदाचित् नहीं
होती। हे बधिक ! ममता के रूप जो बान्धव हैं सोही चरणों में जंजीर हैं और
अन्धकूप में गिरनेका कारणहै इनसे बांधा हुआ मैं इन्द्रियों के विषयरूपी कूप में गिरा
था। अब मैंने विचार किया है कि, बन्धन का कारण कुटुम्बहै उसको मैं त्यागदूं। फिर
विचार किया कि, इनके त्यागमें भी सुख नहीं प्राप्त होता जबतक अविद्या को नष्ट न

करूं। हे बधिक! ऐसे विचार कर मैं गुरु के पास गया और मनमें विचार किया कि, जगत् भ्रममात्र है और गुरुभी स्वप्नमात्र है इनसे क्या प्राप्त होगा? फिर विचार किया कि, नहीं ये ज्ञानवान् पुरुष हैं और इनको 'अहंब्रह्म' का निश्चय है इससे ये ब्रह्मस्वरूपहैं और कल्याणमूर्ति हैं इनसे जाके प्रश्न करूं। तब मैंने जाकर उनको प्रणाम किया और कहा, हे भगवन्! उस अपने शरीर को देख आऊं और इसके शरीरकोभी देखूं कि, कहां है। इस जगत् का विराट् पुरुष है। हे बधिक! जब इस प्रकार मैंने कहा तब ऋषि ने हँसकर मुझसे कहा, हे ब्राह्मण! वह तेरा शरीर कहां है? वह शरीर तो दूर गया है अब उसे कहां देखेगा? तू आपही जानेगा। तब मैंने हाथ जोड़कर ऋषि से कहा, हे ऋषे! अब मैं जाताहूं, मेरे आनेतक तुम यहां बैठे रहना। हे बधिक! ऐसे कहकर मैं आधिभौतिक देहके अभिमान को त्यागकर अन्तवाहक शरीर से उड़ा और आकाशमार्ग में उड़ता उड़ता थकगया परन्तु शरीर कहीं न पाया। तब मैं फिर ऋषि के पास आया और कहा हे पूर्व अपरके वेत्ता और भूत भविष्यत्के जाननेवाले! वे दोनों शरीर कहां गये? न इस सृष्टि के विराट् का शरीर भासता है जिसके मार्ग से हम आयेथे और न अपना शरीर भासता है? हे संशयरूपी अन्धकार के नाशकर्ता सूर्य! आप इसका कारण बताइये। उग्रतपा बोले, हे कमलनयन और तपरूपी कमलकी खानिके सूर्य और ज्ञानरूपी कमलके धारण करनेहारे विष्णुकी नाभि और आनन्दरूपी कमलकी खानि! तू सब कुछ जानता है और आत्मपद में जागा हुआ। तू तो योगीश्वर है, ध्यान करके देख कि, सब वृत्तान्त तुझको दृष्टिआवे। हे मुनीश्वर! यह जगत् असत्यरूपहै इसमें स्थिर कोई वस्तु नहीं। विचारकर देखो कि, शरीर की अवस्था तुमको दृष्टि आवे और जो मुझसे पूछते हौ तो मैं कहताहूं। हे मुनीश्वर! जिस वनमें तुम रहतेथे और जहां तुम्हारे शरीर थे उस वनमें एक काल में अग्नि लगी और सबप्रकार के वृक्ष और बेलि जल गई जलभी अग्नि से क्षोभने लगा और वनचारी पशु पक्षी सब जलगये और महाकष्ट को प्राप्तहुये उसी के साथ तुम्हारा शरीर भी जलगया और कुटीभी जल गई। मुनीश्वर बोले, हे भगवन्! उस अग्नि में जो सम्पूर्ण वन जलगया तो उसका कारण कौन था? उग्रतपा बोले, हे मुनीश्वर! यह जगत् जिसमें हम और तुम बैठे हैं इसी का विराट्है और जिसके शरीर में तुमने प्रवेश किया था और जिसमें उसका और तेरा समाधिवाला शरीर है उसका विराट् और है—वह सृष्टि उस विराट् का शरीर है। हे मुनीश्वर! उस विराट् के शरीरमें जो क्षोभ हुआ इस कारण अग्नि उत्पन्न हुई और शरीर, वृक्ष इत्यादिक सब जलगये। इस सृष्टि के विराट्का नाम ब्रह्मा है; उस ब्रह्माका विराट् और है और उसका विराट् आत्माहै जो सदा अपने आपमें स्थित है। और उसमें कुछ और नहीं बना।

जिस पुरुष को उसका प्रमाद है उसको उपद्रव और कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं उससे वह कर्मोंके अनुसार दुःख सुख भोगताहै और जिसको स्वरूपका साक्षात्कारहै उसको जगत् आत्मसहित भासताहै और सर्व ओर से ब्रह्म भासताहै। हे मुनीश्वर! जब इस प्रकार वन के पशुपक्षी सब जले तब तुम्हारी कुटी में भी आग लगी इससे वह कुटी और तुम्हारा शरीर अग्नि से जलगया और जिसके शरीर में तुमने प्रवेश किया था वह भी जलगया। तुम्हारे शिष्य और उसका ओज भी जलगया। और तुम दोनों की संवित् आकाशरूप होगई। वह अग्नि भी वनको जलाकर अन्तर्धान होगई। जैसे अगस्त्य मुनि समुद्र का आचमन करके अन्तर्धान होगये थे, तैसेही वह अग्निभी वनको जलाकर अन्तर्धान होगई और अब तुम्हारे शरीर की राखभी नहीं रही। जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में नहीं दिखाई देती, तैसेही तुम्हारे शरीर अदृष्ट होगये। हे मुनीश्वर! यह सर्वजगत् स्वप्नमात्रहै। मैं तेरे स्वप्न में हूं और सब जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है सो सबका अपना आप है, जगत् उसीका आभास है। जैसे संकल्पसृष्टि, स्वप्ननगर और गन्धर्बनगर होता है, तैसेही यह जगत् भी है। हे मुनीश्वर! यह जगत् तेरे स्वप्नेमें स्थितहै और तुझको चिरकालकी प्रतीतिसे जाग्रत् रूप कारण कार्य नाना प्रकार का सत्य होकर भासता है। मुनीश्वर बोले, हे भगवन्! जो यह स्वप्ननगर सत्य होगया है तो सबही स्वप्ननगर सत्य होंगे? उग्रतपा बोले, हे मुनीश्वर! प्रथम तू सत्य को जान कि, सत्य क्या वस्तुहै; पर जगत् जो तुझको भासताहै सो सबही स्वप्ननगर है इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं। इस जगत् को तू समाधिवाले शरीर की अपेक्षा से असत्य कहता है और जिसको तू जाग्रतवपु कहता है सो किसकी अपेक्षा से कहेगा? यह तो अदृष्टिरूप है इससे इसको स्वप्ना जान। जिस सत्ता में यह समाधिवाला शरीर भी स्वप्ना है उस सत्ता को जान तब तुझको सत्यपद की प्राप्ति होगी। जैसे यह जगत् आत्मसत्ता में आभास फुराहै, तैसेही वह भी है। तू जागकर देख तो इसमें और उसमें कुछ भेद नहीं और सर्व जगत् जो भासता है सो सब आत्मरूप रत्न का चमत्कारहै। जैसे सूर्यकी किरणों में अनहोताही जल भासता है, तैसेही सब जगत् आत्मा में अनहोता भासता है और आत्मा के प्रमाद से सत्य भासता है। तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! उग्रतपा ऋषीश्वर रात्रि के समय इस प्रकार कहतेहुये शय्या पर सोगया और जब कुछ कालमें जागा तब मैंने कहा कि, हे भगवन्! और वृत्तान्त मैं फिर पूछूंगा परन्तु यह संशय प्रथम दूर करो कि, उस व्याधका गुरु तुमने मुझको किस निमित्त कहा; मैं तो व्याध को जानता भी नहीं? उग्रतपा बोले हे दीर्घतपस्विन्! ध्यान करके देख तूतो सब कुछ जानता है जिस प्रकार वृत्तान्त है उसको जानेगा। जो मुझसे

पूछता है तो मैंभी कहताहूं और यह वृत्तान्त तो बड़ाहै पर मैं तुझको संक्षेप से कहता हूं, हे मुनीश्वर! तुम्हारे देश में राजाके बान्धव और सबलोग अपना धर्म छोड़देंगे तब दुर्भिक्ष पड़ेगा और वर्षा न होगी इससे लोग दुःख पावेंगे और मर मर जावेंगे। तेरे कुटुम्बभी मरेंगे और कुटीभी नष्ट होजावेगी और वृक्ष, फल, फूलसे रहित होवेंगे। केवल तू और मैं दोनों वन में रहजावेंगे क्योंकि; हमको सुख और दुःखकी वासना नहीं हम विदितवेद हैं–विदितवेद को दुःख कैसे हो ? हे मुनीश्वर ! कुछ काल तो इस प्रकार चेष्टा होगी, फिर कुटीके चौफेर फूल, फल, तमालवृक्ष, कल्पतरु, कमल-ताल आदि नाना प्रकार की सामग्री होगी; बड़ी सुगन्ध फैलेगी; मोर और कोकिला विराजेंगे और भँवरे कमलपर गुञ्जार करेंगे निदान ऐसा विलास प्रकट होगा मानो इन्द्र का नन्दनवन आनलगा है और ऐसी दशा फिर होगी॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्रकरणेरात्रिसंवादोनामद्विशताधिकाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ २३८ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! उग्रतपा ऋषीश्वरने मुझसे फिर कहा कि; हे मुनीश्वर! इसप्रकार वह वन होगा तब तू और मैं एक समय तप करने उठेहोंगे और वहां एक व्याध मृग के पीछे दौड़ता तेरी कुटी के निकट आवेगा, उसको तू सुन्दर और पवित्र कथा उपदेश करेगा और उसमें स्वप्ने का प्रसंग चलेगा। उस प्रसंग को पाकर स्वप्न और जाग्रत् का वृत्तान्त वह पूछेगा, उससे तू स्वप्ने का प्रसंग कहेगा और उस स्वप्ने के प्रसंग में उसको तू परमार्थ उपदेश करेगा क्योंकि; सत्य का स्वभाव यह है और मेरे समागम का वृत्तान्त उपदेश करेगा। तेरे वचनों को पाकर वह पुरुष विरक्तचित्त होकर तप करेगा; उससे उसका अन्तःकरण निर्मल होगा और सत्यपद को प्राप्त होगा। हे मुनीश्वर! इस प्रकार होगा सो मैंने तुझे संक्षेप से कहा है, तू भी ध्यान करके देख इस कारण मैंने तुझको व्याध का गुरु कहाहै। हे व्याध! इस प्रकार जब उग्रतपा ने मुझसे कहा तब मैं सुनकर विस्मित हुआ कि; इसने क्या कहा? बड़ा आश्चर्यहै; ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती कि, क्या होनाहै। हे बधिक! इस प्रकार मेरी और उसकी चर्चा हुई तब रात्रि व्यतीत होगई और मैंने स्नान करके प्रीति बढ़ाने के निमित्त भली प्रकार उसकी टहल की तब वह वहां रहने लगा। फिर मैं विचार करने लगा कि, यह जगत् क्या है; इसका कारण कौनहै और मैं क्या हूं। तब मैंने विचार किया कि, यह जगत् अकारण है, किसीका बनाया नहीं और स्वप्नमात्र है। आत्मरूपी चन्द्रमा की जगत्रूपी चांदनी है; उसीका चमत्कार है और वही आत्मसत्ता घट, पट आदिक आकार हो भासतीहै वास्तव में न कोई कर्महै, न क्रिया है; न कर्ता है; न मैं हूं और न जगत् है। जो तू कहै कि, क्यों नहीं सर्व अर्थ और ग्रहण त्याग तो सिद्ध होते हैं तो ग्रहण त्याग पिण्ड से होता है और पिण्डतत्त्व का होता है, सो तो

यह पिण्ड न किसी तत्त्व से बना है और न किसी माता पिता से है; यह तो स्वप्ने में फुर आया है तो इसका कारण किसे कहिये? और जो कहिये कि; भ्रममात्र है तो भ्रम का कारण कौन है और भ्रान्ति का द्रष्टा कौन है? जिस शरीर से दृष्टि आता था उस का द्रष्टारूप मैं तो भस्म होगया इससे जगत् और कुछ वस्तु नहीं; केवल आदि अन्त से रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै सोही मेरा स्वरूप है। वहां यह जगत्रूप होकर भासताहै; पर केवल ब्रह्मसत्ता स्थितहै और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदिक पदार्थ सब आत्मरूपहैं। जैसे समुद्र तरङ्गरूप हो भासताहै परन्तु कुछ और नहीं होता, तैसेही आत्मा नाना प्रकार हो भासता है पर कुछ और नहीं होता ब्रह्मसत्ता ही निराभासहै और आभासभी कुछ हुआ नहीं केवल चेतनसत्ता ऐसे रूप होकर भासती है। हे बधिक! इस प्रकार विचार करके मैं विगतज्वर हुआ और मुनीश्वर के वचनों से पर्वत की नाईं अपने स्वभाव में अचल स्थित हुआ। जो कुछ इष्ट अनिष्ट पदार्थ प्राप्त हो उसमें सम रहूं अभिलाषसे रहित सब अपनी चेष्टा को करूं परन्तु अपने स्वभाव में स्थित रहूं। हे बधिक! सुख भोगने के निमित्त न मुझको जीने की इच्छाहै और न मरने की इच्छा है; न जीने में हर्ष है और न मरने में शोक है; मैं सदा आत्मपद में स्थित हूं कुछ संशय मुझको नहीं। सम्पूर्ण संशय फुरनेमेंहै सो फुरना मेरेमें नहीं रहा इस लिये संसार भी नहीं है॥

इतिश्रीयो० निर्वाणप्र० रात्रिप्रबोधोनामद्विशताधिकैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥२३९॥

मुनीश्वर बोले, हे व्याध! इस प्रकार जब मैंने निर्णय किया तब तीनों ताप मेरे नष्ट होगये और वीतराग होकर निःशङ्क हुआ। तब किसी पदार्थ की मुझको तृष्णा न रही और निरहंकार हुआ और अनात्मा में जो आत्म अभिमान था सो निवृत्त होकर निर्वाण और निराधार और निराधेय हुआ और अपने स्वभाव आत्मत्व में मैं स्थित होकर सर्वात्मा हुआ। हे बधिक! जो कुछ शरीर का प्रारब्ध प्राप्त हो उसमें मैं यथाशास्त्र बिचरूं परन्तु कर्तृत्व का अभिमान निश्चय न हो जगत् मुझको आत्मरूप भासे और तृष्णा करनेवाली मिथ्याबुद्धि आभासमात्र हुई सो आभास कुछ वस्तु नहीं—चिदाकाश आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। हे बधिक! मुनीश्वर का कहा वृत्तान्त होगया। तुम मेरे पास आये हो इस लिये जो कुछ उपदेश मैंने किया है वह परमपावन और सब का सार है। जिस प्रकार जगत् के पदार्थ, तुम और मैं और जाग्रत् वृत्तान्त है सो मैंने तुमसे कहा। व्याध ने पूछा, हे मुनीश्वर! यदि इस प्रकार है तो तुम; मैं और ब्रह्मादिक भी सब स्वप्ने के हुये और असत्य ही सत्य की नाईं भासते हैं? मुनीश्वर बोले, हे व्याध! तुम, मैं और ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सब स्वप्ने के पदार्थ हैं; न यह जगत् सत्य है, न असत्य है और न सत्यासत्य के मध्य है; न अनि-

वचनीय है क्योंकि; अनुभवरूप है। हे व्याध! जो अनुभव से देखिये तो वही रूप है और जो अनुभव से भिन्न कहिये तो हैही नहीं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अनुभव में फुरती है, जो अधिष्ठान की ओर देखिये तो वही रूपहै और उससे भिन्न कहने में नहीं आता। हे वधिक! जैसे कोई नगर देखा है और वह दूर है तो यदि स्मृति करके देखिये तो भासता है परन्तु कुछ बना नहीं स्मृतिमात्र है; तैसेही सबपदार्थ संकल्पमात्र हैं कुछ बने नहीं। अपने स्वभाव में स्थित होकर देख; तू तो बोधवान् है मिथ्याभ्रम में क्यों पड़ा है? हे व्याध! तू मेरे उपदेश से विश्रामवान् हुआ कि, नहीं हुआ? मैं जानता हूं कि, ऐसी परमपद सत्ता में तुमने क्षणभी विश्राम नहीं पाया क्योंकि; दृढ़ भावना नहीं हुई। हे बधिक! परमपद पाने का मार्ग यही है कि, सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों का विचार करे और उनके अभ्यासमें दृढ़ अभ्यास करे। इस मार्ग विना शान्ति नहीं होती। जब दृढ़ अभ्यास हो तब शान्ति हो और चित्त निर्वाणहो तब द्वैत अद्वैत कल्पना मिटे। इसी का नाम निर्वाण कहतेहैं; जबतक चित्त निर्वाण नहीं होता तबतक राग द्वेष नहीं मिटता और जब अभ्यास के बलसे चित्त निर्वाण होजाता है तब अविद्या नष्ट होजाती है और आत्मपद और शान्त शिवपद प्राप्त होता है जो मान और मोह से रहित है। जिसने संग का द्वेष जीता है और किसीके संग से बन्धायमान नहीं होता; जो अध्यात्मविचार नित्य करताहै और जिसकी सर्वकामना निवृत्त हुई है; जो इष्टके राग द्वेष धुन्ध से मुक्त है और जो सुख दुःख में सम है ऐसा ज्ञानवान् पुरुष अविनाशी आत्मपद को पाता है॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्रकरणेयथार्थोपदेशोनामद्विशताधिकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४०॥

अग्नि बोले, हे राजन्, विपश्चित्! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब बधिक बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुआ और मुनीश्वर के वचन सुनकर मूर्तिवत् होगया। जैसे कागज़ पर मूर्ति लिखी होतीहै तैसेही वह आश्चर्यवान् हुआ और संशय के समुद्र में डूबगया जैसे चक्रपर चढ़ा बासन भ्रमता है, तैसेही वह संशय में भ्रमनेलगा; मुनीश्वर का उपदेश उसने सुना परन्तु अभ्यास विना आत्मपद में विश्रान्ति न पाई। हे राजन्! परम वचनों को उसने अङ्गीकार न किया। जैसे राख में डाली आहुति निरर्थक होती है, तैसेही मूर्ख को उपदेश करना निरर्थक होता है। मूर्खतासेही वह संशय में रहा और विचारनेलगा कि यह संसार अविद्यक है तो मैं इसका अन्त लेऊं और जो मुझको आत्मपद भासे इससे तप करूं। हे राजन्, विपश्चित्! इस प्रकार विचारकर वह उठा और उनके पास फिरनेलगा। पवित्रचेष्टा अङ्गीकार करके उसने व्याध का धर्म त्याग किया और जिस प्रकार वह चेष्टाकरें तैसेही वह भी अधिक चेष्टाकरे। निदान सहस्रवर्ष पर्यन्त बड़ा तप किया परन्तु मन में कामना यही

रक्खी कि, मेरा शरीर बड़ा हो और दिन दिन बहुत भोजन बढ़े; मैं अविद्यक संसार का अन्त लेऊं कि, कहांतक चलाजाता है क्योंकि, जब अविद्या का अन्त आवेगा तब आगे आत्मा का दर्शन होगा। सहस्र वर्ष के उपरान्त जब समाधि से उतरा तो गुरु के निकट जाकर प्रणाम किया और बोला, हे भगवन्! मैंने इतने काल तप किया है परन्तु शान्ति मुझको न हुई। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! तुझको जो मैंने उपदेश किया था उसका तूने भली प्रकार अभ्यास न किया इस कारण तुझको शान्ति न हुई। हे बधिक! मैंने तेरे हृदय में ज्ञानरूपी अग्नि की चिनगारी डाली थी परन्तु तूने अभ्यासरूपी पवनसे उसे प्रज्वलित न किया इससे यह ढँप गई—जैसे बड़े काष्ठ के नीचे रञ्चक चिनगारी ढँपजाती है। हे बधिक! तू न मूर्ख है और न पण्डित है क्योंकि; जो तू पण्डित होता तो आत्मपद में स्थिति पाता। यदि यह नष्ट न होगी तो अभ्यास की दृढ़ता होगी तब वह ज्ञान और शान्ति उदय होगी। अब जो मेरी भविष्यत् होगी वह मैं तुझ से कहता हूँ। हे व्याध! यही तूने भलीप्रकार विचारा है कि, संसार अविद्यक है और इसका अन्त लेऊं कि, कहांतक चलाजाता है। अब तेरे चित्त में यही निश्चय है और आगे तू यही करेगा कि, सौ युग पर्यन्त उग्रतप करेगा तब तुझपर परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न होंगे और देवताओं सहित तेरे गृह में आकर तुझ से कहेंगे कि, कुछ वर मांग। तब तू कहेगा, हे देव! ऐसा अविद्यक जगत् है; अविद्या किसी और अणु में है। जैसे दर्पण में किसी ठौर मलीनता होतीहै और उसके नाश हुये दर्पण शुद्ध होता है; तैसेही आत्मा के किसी कोण में अविद्यारूपी मलीनता है; उसके नाश हुये चिदात्मा का साक्षात्कार होगा इसलिये जब अविद्यारूपी जगत् का अन्त देखूंगा तब मुझको आत्मा भासेगा। मेरा शरीर घड़ी घड़ी में योजनपर्यन्त बढ़ताजावे। जैसे गरुड़ का वेग होताहै तैसेही मेरा शरीर बढ़ता जावे और मृत्यु भी मेरे वश हो, शरीर भी अरोग्य रहे और ब्रह्माण्ड खपर को भी मैं लांघ जाऊं। जहां मेरी इच्छा हो वहां चलाजाऊं और मुझको कोई न रोके; जब मैं संसार का अन्त देखूंगा तब आत्मा को प्राप्त होऊंगा। हे देव! इतने वर दो कि, मेरा मनोरथ पूर्ण हो; और कुछ नहीं चाहिये। हे बधिक! जब इस प्रकार तू वर मांगेगा तब ब्रह्माजी कहेंगे कि, ऐसेही हो। तब तेरा तप से दुर्बल हुआ शरीर फिर चन्द्रमा और सूर्य की नाईं प्रकाशवान् होगा और घड़ी घड़ी में योजन पर्यन्त बढ़ता जावेगा। जैसे गरुड़ का तीक्ष्ण वेग से चलना है; तैसेही तेरा शरीर वेग से बढ़ता जावेगा और जैसे प्रातःकाल का सूर्य उदय होता है और प्रकाश बढ़ता जाता है, तैसेही तेरा शरीर बढ़ता जावेगा और चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि की नाईं प्रकाशवान् होगा। ब्रह्माजी वर देकर अन्तर्धान होजावेंगे और अपनी ब्रह्मपुरी में प्राप्त

होंगे और तेरा शरीर प्रलयकालके समुद्र की नाईं बढ़ताजावेगा। जैसे वायु से सूखे तृण उड़ते हैं, तैसेही तुझको ब्रह्माण्ड उड़ते भासेंगे तब तेरा शरीर बढ़ता २ ब्रह्माण्ड खपरको भी लांघ जावेगा और उसके परे आकाश भासेगा, फिर ब्रह्माण्ड भासेगा और आगे फिर ब्रह्माण्ड भासेगा; इसी प्रकार तू कई ब्रह्माण्ड लांघता जावेगा परन्तु तुझ को खेद कुछ न होगा। निदान महाआकाश को भी तू ढांप लेगा और जहां किसी तत्त्व का आवरण आवेगा उसको तू वर प्राप्त देह से सूक्ष्मता सहित लांघता जावेगा। हे बधिक! इसी प्रकार तू कई सृष्टि लांघ जावेगा जो इन्द्रजालवत् हैं। जो दीर्घदर्शी हैं वे इनको असत्य जानते हैं और जो प्राकृतजन हैं उनको जगत् सत्य भासताहै। ज्ञानवान् को मिथ्या भासता है; उस मिथ्या जगत् को तू लांघता जावेगा और तहां जा स्थित होगा जहां अनन्तसृष्टि फुरती भासेगी। जैसे समुद्र में अनेक तरङ्ग उठते हैं, तैसेही तुमको सृष्टि फुरती भासेगी परन्तु जिसमें सृष्टि फुरती है उस अधिष्ठान का तुझको ज्ञान न होगा। वहां तू देखेगा कि, मैं बड़ा उत्कृष्ट हुआ हूं और जब तुझको ऐसा अभिमान उदय होगा तब साथ ही तप का फल वैराग भी उदय होगा। और उसी के साथ यह संस्कार तेरे हृदय में फुरेगा कि, इससे तू उस शरीर का निरादर करेगा और कहेगा कि, हा कष्ट! हा कष्ट! हे देव! क्या शरीर तूने मुझको दिया है। जगत् के अन्त लेनेको जो मैंने शरीर बढ़ायाथा सोतो अन्त कहीं न आया क्योंकि; अविद्या नष्ट न हुई। अविद्या तब नष्ट होतीहै जब ज्ञान होताहै और आत्म-ज्ञान तब होता है जब सत्शास्त्रों का विचार और सन्तों का सङ्ग होताहै। जब सङ्ग और सत्शास्त्र मुझको प्राप्त होवें तब ज्ञान उपजेगा। यह तो मुझको ऐसा शरीर प्राप्त हुआ है कि, बड़ा भार उठाये फिरता हूं और अनेक सुमेरु पर्वत भी इसके पास तृणवत् हैं। ऐसा उत्कृष्ट मेरा शरीरहै; इस शरीर से मैं किसकी संगति करूं और किस प्रकार शास्त्र का श्रवण करूं? यह शरीर मुझको दुःखदायी है इससे इस शरीर का त्याग करूं। हे बधिक! ऐसे विचारकर तू प्राणायाम करेगा और उसकी धा-रणा से शरीर त्याग देगा। जैसे पक्षी फल को खाकर गुठली को त्याग देता है और जैसे इन्द्र के वज्र से खण्डितहुये पर्वत गिरते हैं तैसेही एक सृष्टि भ्रम में तेरा शरीर गिरेगा और उसके नीचे कई पर्वत, नदियां और जीव चूर्ण होंगे और वहां बड़ा खेद होगा; तब सब देवता चण्डिका का आराधन करेंगे और वह चण्डिका भगवती तेरे शरीर को भोजन करजावेगी तब सृष्टि में फिर कल्याण होवेगा। इस वन में जो त-माल वृक्ष हैं उनके नीचे तू तप करेगा। यह मैंने तेरी भविष्य कही; अब जैसी तेरी इच्छा हो तैसे कर। व्याध बोला, हे भगवन्! बड़ा कष्ट है कि, मैं इतने खेदको प्राप्त होऊंगा; इससे कोई ऐसा उपाय करो जिससे यह भावना निवृत्त होजावे। मुनीश्वर

बोले, हे बधिक! जो कुछ वस्तु होनी है सो अन्यथा कदाचित् नहीं होती—जो कुछ शरीर की प्रारब्ध है सो अवश्य होती है। जैसे चिल्ले से छूटा बाण तबतक चला जाताहै जबतक उसमें वेग होताहै और जब वेग पूर्ण होजाता है तब पृथ्वी पर गिर पड़ता है अन्यथा नहीं गिरता; तैसेही जैसा प्रारब्ध का वेग उछलता है तैसेही होगा। जो भावी फिरनेकी शक्ति होतीहै उसमें जीव उपासी बायां चरण दाहने और दाहना बायें नहीं करसक्ता—जो होना है वही होगा। ज्योतिश्शास्त्रवाले जो भविष्यत्दशा आगे कहतेहैं तैसेही होताहै क्योंकि; होनी होती है—जो न हो तो क्या कहों इससे भावी मिटती नहीं। हे बधिक! मैंने तुझको दो मार्ग कहे हैं। जबतक कर्म की कल्पना स्पर्श करतीहै तबतक कर्म के बन्धन से नहीं छूटता और जो कर्म की कल्पना आत्मा को स्पर्श न करे तो कोई कर्म नहीं बन्धन करता क्योंकि; उसकी अद्वैत आत्मा का अनुभव होताहै और द्वैतरूप कर्म नहीं दिखाई देते सर्व सुख दुःख आत्मरूप होजाते हैं। कर्म तबतक बन्धन करतेहैं जबतक आत्मबोध नहीं हुआ; जब आत्मबोध होता है तब सर्वकर्म दग्ध होजाते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभविष्यत्कथावर्णनंनाम
द्विशताधिकैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ २४१॥

व्याध बोला, हे भगवन्! यह जो तुमने मुझको कहा सो मैं सुनके आश्चर्य को प्राप्त हुआ। शरीर गिरनेके उपरान्त मेरी क्या अवस्था होगी जब विस्ताररूप वासना शरीर आकाशरूप होगा। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जब तेरा शरीर गिरेगा तब तेरी संवित् प्राणवासना सहित आकाशरूप महासूक्ष्म अणुवत् होजावेगी और उस संवित्में तुझको फिर नाना प्रकार का जगत् भासेगा और पृथ्वी, देश, काल, पदार्थ सब भासि आवेंगे। जैसे सूक्ष्म संवित्में स्वप्न का जगत् भासि आता है, तैसेही तुझ को जगत् भासि आवेगा। वहां तेरी संवित् में यह फुरेगा कि, मैं अष्टवर्ष का राजाहूं और मेरे पिता का नाम इन्द्र है और माता का नाम प्रद्युम्न की पुत्री बधलेखा है; मेरे पिता मुझको राज्य देकर वनको गये हैं और तप करनेलगे हैं और चारों ओर समुद्र पर्यन्त हमारा राज्य है। हे बधिक! वहां तेरा नाम सिद्ध होगा और कई सौ वर्ष पर्यन्त तू राज्य करेगा और नाना प्रकार के विषयों को भोगेगा। हे बधिक! विदूरथ नाम एक राजा पृथ्वी में होगा जो तेरे साथ शत्रुभाव करेगा और तेरी पृथ्वी और सीमा लेने का यत्न करेगा तब तू मन में विचार करेगा कि; मैं बड़ा सिद्ध हूं और कई सौ वर्ष मैंने निर्विघ्न भोग भोगेहैं परन्तु एक विदूरथनाम शत्रुको नाश करूं हे बधिक! उसके मारने के निमित्त तू सेना लेके चढ़ेगा और वह चारों प्रकार की सेना नाशको प्राप्त होगी अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ और प्यादा दोनों ओर की सेना नष्ट होगी

और तुम रथसे उतर कर परस्पर युद्ध करोगे। तुम्हारे भी बहुत शस्त्र लगेंगे और शरीर काटाजावेगा तौभी तुम उसके सन्मुख जा युद्ध करोगे और उसकी टांग काटकर कुहाड़ेसे उसको मारके फिर अपने गृहमें आवोगे। सब दिक्पाल तुमसे भय पावेंगे और तुम बड़े तेजवान् होगे। बड़ा आश्चर्य है कि, विदूरथ को जीतकर तुम यमपुरी पठावोगे तब तुम कहोगे कि, हे मन्त्रियो! इसमें क्या आश्चर्य है! मेरे भय से तो दिक्पालभी कांपतेहैं और प्रलयकालके समुद्र और मेघवत् मेरी सेना है जिसका किसी ओर से आदि और अन्त नहीं आता। विदूरथ के जीतने में मुझको क्या आश्चर्य है? तब मन्त्री कहेगा; हे राजन्! इतनी सेना तेरे साथ है तो क्या हुआ उस विदूरथ की स्त्री लीला को तुम नहीं जानते; उसने तप करके एक देवी को वश किया है जिसके क्रोध करनेसे सम्पूर्ण विश्व नाश होजाताहै। वह माता सरस्वती ज्ञानशक्ति और सर्व भूतों के हृदयमें स्थितहै जैसा उसमें कोई अभ्यास करताहै वही सरस्वती सिद्ध करती है। हे राजन्! वह राजा और उसकी स्त्री लीला सरस्वतीसे मोक्ष मांगते थे कि; किसी प्रकार हम संसारबन्धन से मुक्त हों; इस कारण वे मोक्ष हुये और तुम्हारी जय हुई। राजा ने पूछा; हे अङ्ग! जो सरस्वती मेरे हृदय में स्थितहै तो मुझको मुक्त क्यों नहीं करती? मैंभी तो सदा सरस्वती की उपासना करताहूं? मन्त्री बोला; हे राजन्! सरस्वती जो चित्तसंवित् है उसमें जैसा निश्चय होता है उसीकी सिद्धता होती है। हे राजन्! तुम सदा अपनी जयही मांगते थे इससे तुम्हारी जय हुई और वह मुक्ति मांगताथा इससे उसकी मुक्ति हुई उसका पिछला संस्कार उज्ज्वल था इससे मुक्त हुआ और तुम्हारा पिछले जन्म का संस्कार तामसी था इसकारण तुमको इच्छा न हुई और शान्ति भी प्राप्त न हुई। आदि परमात्मसत्ता से सब पदार्थ प्रकटहुयेहैं। केवल आत्मसत्ता जो निष्किञ्चन पद है सो सदा अपने स्वभाव में स्थित है उसी में चैतन्यता संवेदन फुरती है। 'अहं अस्मि' अर्थात् 'मैं हूं' इसभावना का नाम चित्त है; इसी चैतन्यता ने देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदिक दृश्य जगत् कल्पा है। उस कल्पना से विश्व चित्तमें स्थित है और चित्तने आत्मासे फुरकर प्रमादसे देहादिक को कल्पा है। राजा ने पूछा, हे साधो! आत्मा तो निष्किञ्चन और केवल निर्विकारपद है उसमें तामसीदेह कहांसे उपजी? मन्त्री बोले, हे राजन्! जैसे स्वप्ने में प्रमाद से तामसी वपु दृष्ट आता है परन्तु है नहीं; तैसेही यह आकार भी दृष्ट आतेहैं परन्तु हैं नहीं अज्ञान से भासते हैं। इससे तुझको प्रमाद हुआहै तब वासना के अनुसार जन्म पाता फिरा है; इस प्रकार तेरे बहुत जन्म बीते हैं परन्तु पिछला शरीर जो तूने भोगाहै वह तामस नामभी था इसकारण तुझको मोक्ष की इच्छा न हुई। हे राजन्! तुम्हारे जो जन्म बीते हैं उनको मैं जानता हूं पर तुम नहीं जानते। राजा ने पूछा, हे निर्मल आत्मन्! तामस

तामसी किसको कहते हैं ? मन्त्री बोले, हे राजन् ! एक सात्त्विक सात्त्विकी है; दूसरा केवल सात्त्विकी है; तीसरा राजस राजसी है; एक तामस तामसी है और एक केवल तामसी है सो भिन्न २ सुनो। हे राजन् ! निर्विकल्प अचैत चिन्मात्र सत्ता से जो संवित् फुरी है और जिसकी अहंप्रतीति अधिष्ठान में रही है निश्चयको नहीं प्राप्त हुये और अनात्मभाव को भी स्पर्श नहीं किया ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं वे सात्त्विक सात्त्विकी हैं। जिनको विभूति सात्त्विकी पदार्थ भासने लगे हैं और स्वरूप का प्रमाद है बुद्धि में स्पर्श हुआ अथवा न हुआ वे केवल सात्त्विकी हैं। जिनकी संवित् का बुद्धि से सम्बन्ध हुआ है और नाना प्रकार के राजसीपदार्थों में सत्य प्रतीति हुई है; जिन्हें राजसकर्मों में दृढ़ अभ्यास है और उसके अनुसार शरीर को धारते चलेगये पर स्वरूप की ओर नहीं आये और चिर पर्यन्त ऐसेही रहे वे राजस राजसी हैं। जिनको बोध में अहंप्रतीति हुई है पर स्वरूप का प्रमाद है और जगत् सत्य भासता है एवम् राजसी पदार्थों में अधिक प्रतीति है और राजसीकर्मों का अभ्यास है उसके अनुसार वे जन्म पाते हैं और फिर शीघ्रही स्वरूप की ओर आते हैं उनका नाम केवल राजसी है, वे राजस राजसी से श्रेष्ठ हैं। जिनको स्वरूप का प्रमाद है और जगत् में सत्य प्रतीति हुई है एवम् उस जगत् के तामस कर्मों में दृढ़ अभ्यास हुआहै वे महामूढ़ उसमें चिरपर्यन्त जन्म पाते चले जातेहैं और यदि दैवसंयोग से कभी मोक्ष की संगति प्राप्त भी होतीहै तो उसे त्याग जाते हैं वे तामस तामसी हैं। जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ है और तामसी कर्मों की रुचि है वे उनकर्मों के अनुसार जन्म पाते जाते हैं और जो हटपड़ा और तामसी कर्मों को त्यागकर मोक्षपरायण होते हैं सो केवल तामसी हैं पर वे तामस तामसी से श्रेष्ठ हैं। हे राजन् ! तुम तामस तामसी थे इस कारण सरस्वती से तुम अपनी जयही मांगते रहे और मोक्ष का अभ्यास तुमने नहीं किया। राजा बोला, हे निर्मलचित्त, मन्त्रिन् ! मैं तामस तामसी था इस कारण मोक्ष इच्छा न की परन्तु अब मुझसे तुम वही उपाय कहो जिससे मेरा अहंभाव निवृत्त हो और आत्मपद की प्राप्ति हो। मन्त्री बोला, हे राजन् ! निश्चय करके जानो जो कोई कैसेही पदार्थकी इच्छा करे अभ्यास ते वह पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है और जिसकी भावना करके वह अभ्यास करता है वह पदार्थ निस्सन्देह प्राप्त होता है; जिसका जो दृढ़ अभ्यास करताहै वह वहीरूप होजाताहै। ऐसा पदार्थ त्रिलोकीमें कोई नहीं जो अभ्यास के वश से न पाइये। जो प्रथम दिन में कोई विकर्म किसीसे हुआ हो और अगले दिन शुभकर्म करे तो वह विकर्म लोप होजाताहै और शुभकर्मही मुख्य होजाता है। जब तुम आत्मपद का अभ्यास करोगे तब तुमको आत्मपद प्राप्त होगा और तुम्हारा जो तामस तामसीभाव है सो निवृत्त होजावेगा। हे राजन् ! जो पुरुष

किसी पदार्थ के पाने की इच्छा करता है और हटकर नहीं फिरता तो वह अवश्य उसको पाता है देह इन्द्रियों का अभ्यास मनुष्य को दृढ़ होरहा है उससे फिर फिर देह इन्द्रियांहीं पाता है, जब उनसे उलटकर आत्मा का अभ्यास करे तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और देह इन्द्रियों का वियोग होजावेगा। इस लिये आपभी सदा आत्मपद का अभ्यास करें तो उससे आत्मपद प्राप्त होगा। इतना कह फिर मुनीश्वर बोले कि, हे बधिक! इस प्रकार तू सिद्ध राजा होगा और मन्त्री तुझको उपदेश करेगा तब तू राज्य को त्यागकर वनमें जावेगा और उपदेश करनेवाला मन्त्री दूसरे मन्त्रियों और सेना संयुक्त तुझसे कहेंगे कि, तू राज्यकर परन्तु तेरा चित्त विरक्त होगा और तू राज्य अङ्गीकार न करेगा। उस वन में किसी सन्त के स्थान में जाकर तू स्थित होगा और परम वैराग्यसंपन्न होगा तब उनकी कथा और प्रसंग तुझको स्पर्श करेगी। यदि सन्तों से कुछ न मांगिये तौभी वे अमृतरूपी वचनों की वर्षा करते हैं—जैसे पुष्पों से बे मांगे सुगन्ध प्राप्त होतीहै तैसेही सन्तजनों से मांगे विना ही अमृत प्राप्त होता है। जब मनुष्य सन्तोंके अमृत वचन सुनताहै तब उसको विचार उत्पन्न होता है कि, मैं कौन हूं; 'यह जगत् क्या है' और 'जगत् किससे उपजा है'। निदान तू उनका उपदेश पाकर इस प्रकार जानेगा कि मैं अचेत चिन्मात्रस्वरूप हूं और जगत् मेरा आभास है। चित्त का फुरनाही जगत् का कारण है सो चित्त ही मेरेमें नहीं है तो जगत् कैसेहो? जगत् तो मेरे में नहीं है मैं अपनेही आप में स्थित हूं। हे बधिक! इस प्रकार जब तू सर्व अर्थों से मन को शून्य करके अपने स्वरूपमें स्थित होगा तब परमानन्द निर्वाणपद को प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसिद्धनिर्वाणवर्णनंनाम
द्विशताधिकद्वाचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ २४२॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! इस प्रकार तेरी भावीहै सो सब मैंने तुझसे कही आगे जो भला जानताहो सो कर। अग्नि बोले, हे राजन्, विपश्चित्! इस प्रकार जब मुनीश्वर ने बधिकसे कहा तब वह आश्चर्यमान हुआ और वहांसे उठकर मुनीश्वर सहित स्नान को गया। निदान दोनों तप करने और शास्त्र को विचारने लगे तब कुछ काल के उपरान्त मुनीश्वर निर्वाण होगया और केवल बधिकही तप करने को समर्थ हुआ कि, किसी प्रकार मेरी अविद्या नष्ट हो। हे राजन्, विपश्चित्! सौ युग पर्यन्त जब बधिक ने तप किया तब ब्रह्माजी देवताओं को साथ लेकर आये और बोले कि, कुछ वर मांग; तब उस बधिकने कहा कि, मेरा शरीर बड़ा हो और मैं अविद्या को देखूं। हे राजन्! यद्यपि बधिक ने जाना कि, इस वरके मांगेसे मेरा भला नहीं है परन्तु दृढ़ भावना के बल से जानकर भी यही वर मांगा कि, घड़ी घड़ी में

मेरा शरीर योजन पर्यन्त बढ़े । ब्रह्माजी ने कहा कि, ऐसेही होगा । इस प्रकार कह-
कर जब ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये तब उसका शरीर बढ़ने लगा और एक घड़ी में
एक योजन बढ़ते २ कल्पपर्यन्त बढ़तागया और कई ब्रह्माण्डों पर्यन्त चलागया पर
जिस ओर को वह देखे उस ओर अविद्यारूपी अनन्तसृष्टियां उसे दीखें । निदान
जब वह चलते २ थका तब उसने बिचारा कि, अविद्या का तो अन्त नहीं आता
इस शरीर को मैं कहांतक उठाये फिरूं अब इसका त्याग करूं तब आत्मपद को प्राप्त
होऊंगा । हे राजन्, विपश्चित् ! तब उसने प्राण को ऊर्ध्व खैंचकर शरीर को त्याग
दिया वही शरीर यहां आनपड़ा है । जिस ब्रह्माण्ड से यह गिरा है वह हमारे स्वप्न
की सृष्टि है अर्थात् यह अन्य सृष्टि का था इसकी इस सृष्टि में स्वप्नवत् प्रतिभा
आनपड़ी थी और यहां जाग्रत् सृष्टि में आनपड़ा है और पृथ्वी, पहाड़ आदि सब
नाश कर डाले हैं जहां से यह गिराहै वहां आकाश में तरुवरेकी नाईं भासताथा और
यहां इस प्रकार गिरा है जैसे इन्द्र का वज्र हो । हे विपश्चितों में श्रेष्ठ ! वही बधिक
का महाशव था । जब उसका शरीर गिरा तब भगवती ने उसका रक्त पान किया इस
लिये उसका नाम रक्ता भगवती हुआ और और जो शरीर की सामग्री रही सो पृथ्वी
हुई । जब चिरकाल व्यतीत हुआ तब मृत्तिका पृथ्वी होगई और उस पृथ्वी का नाम
मेदिनी पड़ा । ब्रह्माजी ने जो नवीन सृष्टि रचीहै उस पृथ्वी पर अब कल्याण हुआ
है इससे अब जहां तेरी इच्छा हो वहां जा और मैं भी अब जाता हूं । इन्द्र को शब-
यज्ञ करना है और उसने मेरा आवाहन किया है वहां मैं जाताहूं । भास बोले,
हे राजन्, दशरथ ! इस प्रकार मुझसे कहकर अग्नि देवता अन्तर्धान होगये । जैसे
महाश्याम मेघ से दामिनी चमत्कार करके अन्तर्धान होजाती है तैसेही अग्नि जब
अन्तर्धान होगया तब मैं यहां से चला और एक सृष्टि में गया तो वहां और प्रकार
के शास्त्र और और ही प्रकार के प्राणी थे । फिर आगे और सृष्टि में गया वहां ऐसे
प्राणी देखे कि, जिनकी टांगें काष्ठ की और आचार मनुष्य का था । आगे और सृष्टि
में गया तो उसमें लोगों के शरीर तो पाषाण के थे पर दौड़ते और व्यवहार करते
थे । उसके उपरान्त और सृष्टि में गया तो वहां शास्त्ररूपी उनकी मूर्ति थी । उसके
आगे गया तो वहां क्या देखा कि, प्राणी बैठेही रहते हैं और बल से वार्ता करते हैं
परन्तु न कुछ खाते हैं और न पीते हैं । हे राजन्, दशरथ ! इस प्रकार जब मैं चिर-
काल पर्यन्त फिरता रहा परन्तु अविद्या का अन्त कहीं न आया तब मैंने विचार
किया कि, आत्मज्ञानी होरहूं तब अन्त आवेगा और किसी प्रकार अन्त न आवेगा ।
इस प्रकार विचार करके मैं एक वन में गया और ज्ञान की सिद्धि के लिये तप करने
लगा । जब कुछकाल तप किया तब चित्त में यह उपजी कि, किसी प्रकार सन्तों के

निकट जाऊं तो उनकी संगति से मुझको शान्तिपद प्राप्त होगा। हे राजन्! ऐसे विचारकर मैं वहांसे चला और कल्पवृक्ष के वन में आया तो वहां एकपुरुष मुझको मिला और उसने कहा, हे साधो! तू कहां चला है; मेरे निकट तो आ? तब मैंने उससे पूछा कि, तू कौन है? तब उसने कहा कि, मैं तेरा तप हूं जो तूने किया है। अब तू कुछ वर मांग सो मैं तुझको देदूं। तब मैंने कहा कि, हे साधो! मेरी इच्छा यही है कि, मैं आत्मपदको प्राप्त होऊं। उसने कहा, हे साधो! अब तुझे एक जन्म और मृग का पाना है। जब वह तेरा शरीर अग्नि में जलेगा तब तू मनुष्य शरीर पावेगा और ज्ञानवानों की सभा में जावेगा। उस सभा में जब तू मनुष्य शरीर धरेगा तब तुझे सब जन्मों और क्रियाओंकी स्मृति हो आवेगी और स्वरूप की प्राप्ति होगी इस लिये तू अब मृग शरीर धारणकर। हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार जब उसने कहा तब मैंने चिन्तना की कि, मृग होऊं और मुझे स्वप्नरूप प्रतिभा फुरी कि, मैं मृग होगया। तुम्हारी सृष्टि में एक पहाड़ की कन्दरा में मैं बिचरता था कि, उसका राजा शिकार खेलने चला और उसने मुझको देख मेरे पीछे घोड़ा उड़ाया। आगे २ मैं दौड़ता जाता था और पीछे घोड़ा था पर उसका वेग ऐसा तीक्ष्ण था कि, उसने मुझको पकड़ लिया और अपने गृह में लेआया। तीनि दिन उसने मुझे गृह में रक्खा परन्तु मेरी बहुत सुन्दर चेष्टा देखी इस कारण प्रसन्नता से यहां ले आया। हे राजन्, दशरथ! अब मैंने मृग के शरीर को त्यागकर मनुष्य का शरीर पाया है और जो कुछ तुमने पूछा था सो सब तुम से कहा। बाल्मीकिजी बोले, हे अङ्ग! जब इस प्रकार विपश्चित् कहचुका तब रामजी ने विपश्चित् से प्रश्न किया कि, हे विपश्चित्! वह मृग तो और सृष्टि का था यहां क्योंकर आया? भास बोले, हे रामजी! जहां वह मिलाथा वहभी और सृष्टिका था। एक कालमें दुर्वासा ऋषीश्वर आकाशमार्ग में ध्यान लगाये बैठाथा कि, उसी मार्ग से इन्द्र पृथ्वी में यज्ञके निमित्त चला और दुर्वासा को शव जानकर चरण लगाया। तब दुर्वासा ने समाधि से उतर कर इन्द्रकी ओर देखा और शाप दिया कि, हे शक्र! तूने मुझे जानकर भी गर्व करके चरण लगाया इस लिये तेरे यज्ञ का एक शवमृतक नाश करेगा और जिस स्थान पर वह पड़ेगा सो पृथ्वी भी नाश होगी। जब ऐसे उस ऋषि ने शापदिया और इन्द्र यज्ञ करनेलगा तब और सृष्टि से वह शव आनपड़ा और पृथ्वी चूर्ण होगई। वह तो उस प्रकार गिरा और मैं तपरूपी मुनीश्वर के वर से मृग होकर तुम्हारी सभा में आया। हे रामजी! जो असत्य होता तो प्रकट न होता और जो सत्य होता तो स्वप्नरूप न होता—जो स्वप्ने की सृष्टि का था। हे रामजी! तुम हमारी स्वप्ने की सृष्टि में हो और हम तुम्हारी सृष्टि के स्वप्ने में हैं। जैसे स्वप्न पदार्थों का होना हुआ है तैसेही

शव का होना भी हुआ है और मृग का भी हुआ है । जैसे यह सृष्टि है तैसेही वह सृष्टि भी है; जो यह सृष्टि सत्य है तो वहभी सत्य है परन्तु वास्तव में न यह सत्य है और न वह सत्य है; यह भी भ्रममात्र है और वहभी भ्रममात्रहै । सत्य वस्तु वही है जो मनसहित षट्इन्द्रियों से अगमहै और वह आत्मसत्ता है जिससे यह सर्व है और जिसमें सर्व है । ऐसी जो परमात्मसत्ताहै सो परमसत्ताहै और उसमें सब कुछ बनता है । हे रामजी ! जगत् संकल्पमात्र है, संकल्पका मिलना क्या आश्चर्यहै ? जैसे छाया और धूप एक नहीं होते और सत्य और झूठ; और ज्ञान-अज्ञान इकट्ठे नहीं होते परन्तु आत्मा में इकट्ठे होते दीखतेहैं । हे रामजी ! जब मनुष्य शयन करता है तब अनुभवरूप होता है; फिर स्वप्ने में स्वप्नेका नगर भासि आताहै; छाया धूप भी भासि आता है और ज्ञान-अज्ञान, सच-झूठ भी भासतेहैं । जैसे आकाश में विरुद्धपदार्थ भासि आते हैं, तैसेही संकल्प से संकल्प मिल जाताहै इसमें क्या आश्चर्य है ? सब जगत् आकाशवत् शून्य निराकार निर्विकार है; निराकार में आकार और निर्विकार में विकार भासते हैं यही आश्चर्य है । सर्व आकार दृष्ट आतेहैं सो वही निराकाररूप हैं; ब्रह्मसत्ताही इस प्रकार होकर भासतीहै । जगत् को असत्य कहना भी नहीं बनता; जो असत्य होता तो प्रलय होकर पृथ्वी, अप, तेज और वायुसे आकाश फिर प्रकट न होता पर प्रलय होकर जो फिर उत्पन्न होतेहैं इससे असत्य नहीं । चैतनरूप आत्मा काही स्वभाव है; आत्मसत्ताही इस प्रकार होकर भासती है । हे रामजी ! जब प्रलय होती है तब सब भूतपदार्थ नष्ट होजाते हैं और फिर उत्पन्न होतेहैं इसीसे यह सृष्टि आत्मा का आभासमात्र है । ब्रह्मसत्ता में अनन्त जगत् फुरतेहैं पर अपनी २ सृष्टिही को जीव जानतेहैं । सब जीव ब्रह्मरूपी समुद्र के कणके हैं सो एक सृष्टि को दूसरा नहीं जानता । जैसे सिद्धों की सृष्टि अपने अपने अनुभव में फुरती है और जैसे स्वप्ने की सृष्टि भिन्न २ होती है, तैसेही यह अपनी २ सृष्टि पृथक् है और मिलभी जाती है । आत्मा में सब कुछ बनता है जोकि; अनादि और आदि; विधि और निषेध और विकार और निर्विकार इकट्ठे नहीं होते सो आकाश में आत्मसत्ता और स्वप्नेमें इकट्ठे दृष्ट आते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं । जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं; आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है । हे रामजी ! चार सत्ता इस जगत्में फुरी हैं—सारधी, गोपती, समानब्रह्मसत्ता और अविद्या—उनमें से सारधी और गोपतीसत्ता तो जिज्ञासु की भावना में भासती है; समानसत्ता ज्ञानी को भासती है और अविद्या अज्ञानी को भासती है । ये चारों भी ब्रह्म से भिन्न नहीं, ब्रह्मही के नाम हैं । ब्रह्मसत्ता स्वभाव चैतननासे ऐसेही भासती है । जैसे वायु फुरने से चलती भासतीहै और ठहरने से अचल भासती है तैसेही चैतनता फुरने से नाना प्रकार के कौतुक उठते हैं और फुरने से

रहित निर्विकल्प होजाता है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, उसमें सत्य नहीं और ऐसा भी पदार्थ कोई नहीं कि, असत्य नहीं—सब समानहैं। जैसे आकाश के फूल हैं, तैसेही घट, पटादिक हैं और जैसे इनके उत्थान का अनुभव होताहै, तैसेही उनका अनुभव होता है। सब पदार्थ सत्ताही से सत्य भासते हैं। सर्व शब्द अर्थ जो फुरे हैं सो सब मिटजाते हैं इसमे असत्य है और आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है कदाचित् अन्यथा नहीं होता। जो मरके न जन्मे तो आनन्द है क्योंकि, मुक्त हुआ और जो मरके जन्म लेता है वह भी अविनाशी हुआ इसलिये शोक करना व्यर्थ है। हे रामजी! जगत् के आदि में भी ब्रह्मसत्ताथी और अन्तमेंभी वही रहेगी; जो आदि और अन्त में वही है तो मध्य में भी उसेही जानिये। इससे सब जगत् आत्मरूपहै और सर्वशब्द अर्थसंयुक्त है और सर्वशब्द और अर्थाकार का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ताही है। जिसको यथार्थ अनुभव होताहै उसको ऐसे भासता है और जिसको यथार्थका अनुभव नहीं होता उसको नाना प्रकार का जगत् भासता है पर आत्मामें जगत् कुछ बना नहीं सब आकाशरूप है और ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। ब्रह्म से भिन्न जो कुछ भासता है सो भ्रम-मात्र और नाशरूप है। सब दृश्यपदार्थ नाशरूपहैं जिसने उन्हें सत्य जाना है उनसे हमको कुछ प्रयोजन नहीं। जो दूसरा कुछ बना नहीं तो मैं क्या कहूं? जिसमें यह सब पदार्थ आभास फुरते हैं उस अधिष्ठान को देखे तो सब वही रूप भासेंगे। जो पुरुष स्वभाव में स्थित है उसको यह वचन शोभावान् होतेहैं। मैंने अनन्त सृष्टियां देखी हैं और उनके भिन्न २ आचारभी देखे हैं। दशो दिशाओं में मैं फिरा हूं और बहुत भोग भोगे हैं; बड़ी बड़ी विभूति पाई और देखी और अनेक प्रकार की चेष्टा की है परन्तु मुझको स्वप्न प्राप्त हुआ क्योंकि; सब भोग पदार्थ और कर्म अविद्या के रचे हुये हैं। उसी अविद्या के अन्त लेने को मैं अनेक युगपर्यन्त फिरा पर अन्त कहीं न पाया। वशिष्ठजी की कृपा से अब मुझको स्वरूप का साक्षात्कार हुआ; अविद्या नष्ट हुई और मैं परमानन्द को प्राप्त हुआ हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चिद्देशान्तरभ्रमवर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ २४३॥

बाल्मीकिजी बोले, हे साधो! जब इस प्रकार विपश्चित् ने कहा तब सायंकाल हुआ और सूर्य अन्तर्धान होगये—मानों विपश्चित् के वृत्तान्त देखने को अन्यसृष्टि में गये—और नौबतनगारे बाजनेलगे -मानों राजा दशरथ की जय जय करते हैं। उस समय राजा दशरथ ने धन, जवाहिर और वस्त्राभूषण से राजा विपश्चित्का यथायोग्य पूजन किया; दशरथ से आदि लेकर सब राजाओं ने वशिष्ठजी को प्रणाम किया और परस्पर प्रणाम करके सर्वसभा ने अपने २ स्थानों को जा स्नान करके यथाक्रम

भोजन किया और नियम करके विचारसहित रात्रि व्यतीतकी और जब सूर्यकी किरणें उदय हुईं तो फिर अपने २ स्थानोंपर परस्पर नमस्कार करके आ बैठे तब वशिष्ठजी पूर्व के प्रसंग को लेकर बोले; हे रामजी ! यह अविद्या अविद्यमानहै और है नहीं पर भासती है यही आश्चर्य है। जो वस्तु सदा विद्यमान है सो नहीं भासती और जो अविद्या हैही नहीं सो सदा भासती है इसीसे इसका नाम अविद्या है। हे रामजी ! आत्मसत्ता अनुभवरूपहै; उसका अनुभव होना निश्चय होरहाहै और अविद्यक जगत् जो कभी कुछ हुआ नहीं सो स्पष्ट होकर भासताहै—यही अविद्याहै। हे रामजी ! सिद्ध राजाके मन्त्रीका उपदेश भी तुमने सुना और विपश्चित्का वृत्तान्त भी विपश्चित् के मुखसेही सुना; अब इस विपश्चित् की अविद्या हमारे आशीर्वाद और यथार्थवचनों से नष्ट होती है। अब यह जीवन्मुक्त होकर विचरेगा। मेरे उपदेशसे इसकी अविद्या अब नष्ट होती है और अब जीवन्मुक्त होकर जहां जहां इसकी इच्छा हो विचरे। जब जीव आत्माकी ओर आताहै तब अविद्या नष्ट हो जाती है। आत्मतत्त्वको यथार्थ न जाननेही का नाम अविद्या है जो आत्मज्ञान से नष्ट होजाती है। जैसे अन्धकार तब तक रहताहै; जबतक सूर्य उदय नहीं हुआ पर जब सूर्य उदय होताहै तब अन्धकार नष्ट होजाताहै; तैसेही अविद्या तबतक अनन्तहै जबतक आत्माकी ओर नहीं आया पर जब आत्माका साक्षात्कार होता है तब अविद्या का अत्यन्त अभाव होजाता है। अविद्या अविद्यमान है पर असम्यक्दर्शी को सत्य भासती है। जैसे मृगतृष्णा का जल अविद्यमानहै और विचार कियेसे उसका अभाव होजाताहै, तैसेही भलीप्रकार विचार किये से अविद्याका अभाव होजाताहै। हे रामजी ! अविद्यारूपी विषकी बेलि देखनेमात्र फूलसहित सुन्दर भासतीहै परन्तु स्पर्श किये से कांटे चुभतेहैं और फल भक्षण कियेसे कष्ट होताहै। यह सब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्द्रियों के विषय देखनेमात्र सुन्दर भासतेहैं यही फूलफल हैं पर जब इनका स्पर्श होता है तब तृष्णा-रूपी कण्टक चुभते हैं और इन्द्रियों के भोगने से राग, द्वेष और कष्ट प्राप्त होता है। हे रामजी ! अविद्या भीतर से शून्यहै और बाहरसे बड़े अर्थसंयुक्त भासती है। जैसे आकाश में इन्द्रधनुष नानाप्रकारके रङ्गसहित दृष्टि आताहै परन्तु अन्तरमे शून्यहै—अनहोताही भासताहै; तैसेही अविद्या अनहोती ही भासती है; और जैसे इन्द्रधनुष जलरूप मेघ के आश्रय रहता है, तैसे ही यह अविद्या जड़ मूर्खों के आश्रय रहती है। अविद्यारूपी धूलि जिसको स्पर्श करती है उसको आवरण करलेती है; जबतक अर्थ नहीं जाना तबतक भासती है और विचार कियेसे कुछ नहीं निकलता। जैसे सीपी में रूपा भासता है पर विचार किये से उसका अभाव होजाता है, तैसेही विचार कियेसे अविद्या का भी अभाव होजाता है। विचार कियेसेही अविद्या नष्ट होजाती है

और वह चञ्चल है और भासती है। हे रामजी! अविद्यारूपी नदी में तृष्णारूपी जल है; इन्द्रियों के अर्थरूपी भँवर हैं और रागरूपी तेंदुये हैं; जो पुरुष इस नदी के प्रवाह में पड़ता है उसको बड़े कष्ट प्राप्त होते हैं। जो तृष्णारूपी प्रवाह में बहते हैं उनको अविद्यारूपी नदीका अन्त नहीं आता और जो किनारे के सन्मुख होकर वैराग्य और अभ्यासरूपी नावपर चढ़के पार हुयेहैं उनको कोई कष्ट नहीं होता। जो पदार्थ अविद्यारूपहैं उनमें जो भावना करतेहैं वे मूर्ख हैं। यह सब अविद्याका विलासहै। एक ऐसी सृष्टिहै जिसमें सैकड़ों चन्द्रमा और सहस्रों सूर्य उदय होतेहैं; कई ऐसी सृष्टियां हैं जिनमें जीव सदा समताभाव को लिये बिचरते हैं और सदा आनन्दी रहते हैं; कई ऐसी सृष्टि हैं कि; जिनमें अन्धकार कभी नहीं होता; कई ऐसी सृष्टि हैं जहां प्रकाश और तम जीवोंके आधीनहै कि; जितना प्रकाश चाहें उतनाही करें और कई ऐसी सृष्टिहैं जहां जीव न मरतेहैं और न बूढ़े होतेहैं सदा एक रस रहतेहैं और प्रलयकालमे सब इकट्ठेही मरतेहैं। कहीं ऐसी सृष्टिहै जहां स्त्री कोई नहीं कहीं और पहाड़ की नाईं जीवों के शरीर हैं। हे रामजी! इनसे लेकर अनन्त ब्रह्माण्ड फुरते हैं सो सब अविद्या का विलास है। जैसे समुद्र में वायुसे तरङ्ग फुरते हैं, वायु विना नहीं फुरते; तैसेही परमात्मरूपी समुद्र में जगत्‌रूपी तरङ्ग अविद्यारूपी वायुके संयोगसे उठतेहैं औ मिटभी जाते हैं। हे रामजी! बड़े बड़े मणि, मोती, सुवर्ण और धातुमय स्थान; भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य चारों प्रकार के तृप्तिकर्ता पदार्थ; घृतरूप स्थान; ऊखके रसके समुद्र; माखन, दही और दूधके समुद्र; अमृतके तालाब; बड़े बड़े कल्प और तमाल वृक्ष से आदि लेकर सुन्दर स्थान और सुन्दर अप्सरा और बड़े दिव्य वस्त्रोंसे आदि लेकर जो पदार्थहैं वे सब संकल्परूप और अविद्याके रचे हुयेहैं; जो इनकी तृष्णा करते हैं वे मूर्ख हैं और उनके जीने को धिक्कार है। हे रामजी! यह अविद्या का विलासहै विचार कियेसे कुछ नहीं निकलता। जैसे मरुस्थलमें अनहोती नदी भासती है और विचार कियेसे उसका अभाव होजाता है, तैसेही आत्मविचार कियेसे अविद्या के विलास जगत् का अभाव होजाता है। जिसको आत्मा का प्रमाद है उसको देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक इष्ट—अनिष्ट अनेक प्रकार के पदार्थ भासते हैं और कारण कार्य भाव से जगत् भी स्पष्ट भासताहै पर जिसको आत्मा का अनुभव हुआ है उसको सर्व आत्माही भासता है। हे रामजी! एक सदृष्ट सृष्टि है और दूसरी अदृष्ट सृष्टि है। यह जो प्रत्यक्ष भासती है सो सदृष्ट सृष्टि है और जो दृष्टि नहीं आती वह अदृष्ट सृष्टिहै पर दोनों तुल्यहैं। जैसे सिद्धलोग आकाश में जो सृष्टि रचलेते हैं सो संकल्पमात्र होतीहै। उनकी सृष्टि परस्पर अदृष्ट है और अनेक प्रकार की रचनाहै। उनकी सुवर्ण की पृथ्वीहै और रत्न और मणियों से जड़ी हुई है; अनेक

प्रकार के विषय हैं और अमृत कुण्डभरे हुये हैं, उनके आधीन तम और प्रकाश हैं और अनेक प्रकारकी रचना बनी हुईहै सो सब संकल्पमात्रहै। इसी प्रकार यह जगत् संकल्पमात्र है जैसा जैसा संकल्प होताहै तैसीही तैसी सृष्टि आत्मा में हो भासती है। हे रामजी! आत्मारूपी डब्बेमें सृष्टिरूपी अनेक रत्नहैं; जिस पुरुषको आत्मदृष्टि हुई है उसको सर्वसृष्टि आत्मरूप है और जिसको आत्मदृष्टि नहीं हुई उसको सर्वजगत् भिन्न २ भासता है। जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही पदार्थ हो भासता है। जो कुछ जगत् भासता है सो सब संकल्पमात्र है; जो तुमको ऐसा तीव्र संवेग हो कि, आकाश में नगर स्थित हो तो वही भासनेलगे। हे रामजी! जिस ओर मनुष्य दृढ़ निश्चय करता है वही सिद्ध होताहै। जो आत्मा की ओर एकत्र होताहै तो वही सिद्ध होता है और जो दोनों ओर होताहै तो भटकताहै। जो जगत् की सत्यताको छोड़कर आत्मपरायण होरहे तो तीव्रभावना से मोक्ष प्राप्त होतीहै और जो संसार की ओर भावना होतीहै तो संसार की प्राप्ति होतीहै निदान जैसा अभ्यास करता है वही सिद्ध होताहै। आदि सृष्टि के कारण में दूसरी वस्तु कछ नहीं वहीरूप है फिर जैसी जैसी भावना होती है उसके अनुसार जगत् भासता है। जिसकी भावना धर्म की ओर होती है और सकाम होता है उसको स्वर्गादिक सुख भासते हैं और जिसकी भावना अधर्म में होती है उसको नरकादिक दुःखपदार्थ भासते हैं। शुभकर्मों से शान्ति की इच्छा नहीं भासती। शुभ भी दो प्रकार के हैं—एकको स्वर्गसुख भासते हैं और दूसरे को सिद्ध की भावनासे सिद्धलोक भासते हैं। जिसको अशुभ भावना होतीहै उसको नाना प्रकार के नरक भासते हैं। हे रामजी! जब यह संवित् अनात्म में आत्मअभिमान करती है और उनके कर्मों में आपको जानतीहै वह पाप करके ऐसे अनेक दुःखों को प्राप्त होती है जो कहे नहीं जाते—जैसे पहाड़ों में पीसने से बड़ा कष्ट होताहै अथवा अङ्गारों की वर्षा और अन्धेकूप में गिरने से कष्ट होताहै। स्त्री के भोगनेसे अङ्गारोंके साथ स्पर्श करना होता है और अग्नितप्त लोहेको कण्ठलगना पड़ता है। जिस स्त्रीने परपुरुष को भोगा है वह अन्धेकूपरूप उखली में खड्गरूपी मूसल से कुटती है और जो देहाभिमानी देवतों, पितरों और अतिथिके दिये बिना भोजन करताहै उसकोभी यमके दूत बड़ा कष्ट देतेहैं और खड्ग और बरछीसे उसके मांसको काटते और प्रहार करते हैं और वे परलोकमें क्षुधा और तृष्णासे कष्टवान् होतेहैं। जिन नेत्रों से व्यभिचारियों ने परस्त्री देखी है उनपर छुरी का प्रहार होताहै। एक वृक्ष है जिसके पत्र खड्ग के प्रहार की नाईं लगतेहैं और शूली के ऊपर चढ़नेसे आदि लेकर उनको कष्ट होतेहैं। जो शुभकर्म करते हैं वे स्वर्ग भोगते हैं। इस से जैसे जैसे कर्म करते हैं उनके अनुसार जगत् देखते हैं और जिस जिस भाव की चिन्तना करते शरीर त्यागते हैं वह उनको

प्राप्त होते हैं। केवल वासनामात्र संसार है जैसा निश्चय होताहै तैसाही भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वर्गनरकप्रारब्धवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४४ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो तुमने मुनीश्वर और बधिक का वृत्तान्त कहा है सो बड़ा आश्चर्यरूप है। यह वृत्तान्त स्वाभाविक हुआ है अथवा किसी कारण कार्य से हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे समुद्रसे तरङ्ग उठतेहैं, तैसेही ब्रह्म में यह प्रतिमा स्वाभाविक उठती है और जैसे पवन में फुरना स्वाभाविक होताहै, तैसेही आत्मा का चमत्कार जगत् रचना स्वाभाविक होतीहै सो वहीरूप है, उससे भिन्न नहीं। चिन्मात्र में जो चेतना फुरीहै वह जैसी फुरी है तैसेही स्थित है; जबतक इससे भिन्न और फुरना नहीं होता तबतक वही रहताहै। जिस प्रतिमा से कार्यकारण भासता है—जैसे शुद्धचिदाकाश में स्वप्ने की सृष्टि भासती है—उसमें साररूप वही है। वही चित्त चमत्कारसे फुरताहै—जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं सो समुद्ररूप हैं उससे भिन्न कुछ वस्तु नहीं तैसेही सर्व शब्दअर्थ जगत् जो भासता है वही चिन्मात्र है भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जिनको ऐसा यथार्थ अनुभव हुआ है उनको जगत् स्वप्नपुर और संकल्पनगरवत् भासता है और पृथ्वी आदिक् पदार्थ पिण्डाकार नहीं भासते सब ब्रह्मरूप हो भासता है। हे रामजी! जो वस्तु व्यभिचारी और नाशवन्त है वह अविद्यारूपहै और जो अव्यभिचारी और अविनाशी है वह ब्रह्मसत्ताहै। वह ब्रह्मसत्ता ज्ञानसंवित्रूपहै और अपने भावको कदाचित् नहीं त्यागती। वह अनुभव से सर्वदा काल प्रकाशती है उसमें अविद्या कैसेहो? जैसे समुद्र में धूलिका अभाव है, तैसेही आत्मा में अविद्या का अभावहै जो सर्व आकार दृष्टि आतेहैं सो सब चिदाकाशरूप हैं—जैसे तुम अपने मन में संकल्प धारकर इन्द्र हो बैठो और चेष्टाभी इन्द्र कीसी करनेलगो अथवा ध्यान में इन्द्र रचो और ध्यान से प्रतिमा सिद्ध हो आवे तो जब तक वह संकल्प रहे तबतक वही भासता है और जब इन्द्रका संकल्प क्षीण होजाता है तब इन्द्रभाव की चेष्टा भी निवृत्त होजाती है सो संकलपसे वही चिन्मात्र इन्द्ररूप हो भासताहै; तैसेही यह सर्वजगत् जो भासताहै सो सब चिन्मात्ररूप है पर संवेदन द्वारा पिण्डाकार हो भासताहै और जब संवेदन फुरना निवृत्त होताहै तब सब जगत् आत्मरूप भासताहै। ब्रह्मसत्ता तो सदा अपने आपमें स्थितहै पर जैसा फुरना होता है, तैसा हो भासता है—सब जगत् उसी का चमत्कारहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग समुद्ररूप होते हैं। तैसेही निराकार परमात्मामें जगत् भी आकाशरूप है, भिन्न कुछनहीं सर्व ब्रह्मस्वरूप है। इसका नाम परमबोध है। जब इस बोध की दृढ़ता होती है तब मोक्ष होताहै। जिस को सम्यक्बोध होताहै उसको सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप और अपना

आप भासताहै और जिसको सम्यक्बोध नहीं हुआ उसको नानाप्रकार का द्वैतरूप जगत् भासताहै। हे रामजी! जिसकी बुद्धि शास्त्रोंसे तीक्ष्ण हुईहै और वैराग्य अभ्यास से संपन्न और निर्मल है उसको आत्मपद प्राप्त होता है और जिसकी बुद्धि शास्त्र के अर्थसे निर्मल नहीं भई उसको अज्ञानसहित जगत् भासताहै। जैसे किसीपुरुषके नेत्रमें दूषण होताहै तो उसको आकाशमें दो चन्द्रमा भासतेहैं और भ्रम से तारे भासते हैं, तैसेही अज्ञानसे जगत् भासताहै यह सर्व जाग्रत् जगत् स्वप्नामात्र है। जब जीव स्वप्ने में होता है तब स्वप्ना भी जाग्रत् भासताहै और जाग्रत् स्वप्ना होजाताहै और जाग्रत्में स्वप्ना स्वप्न होजाताहै और जाग्रत् सत्य भासती है। अल्पकालका नाम स्वप्नाहै और दीर्घकाल का नाम जाग्रत्है पर आत्मा में दोनों के तुल्यभाव होते हैं। जैसे दो भाई जोड़े जन्मते हैं सो नाममात्र दो हैं वास्तवमें एकरूपहैं; तैसेही जाग्रत् स्वप्न तुल्यही हैं। जब पुरुष शरीर को त्यागताहै तब परलोक जाग्रत् होजाताहै और यह जगत् स्वप्न-वत् होजाता है। जैसे स्वप्ने से जाग स्वप्ने के पदार्थों को भ्रममात्र जानता है और जाग्रत् को सत् जानता है, तैसेही जब जीव परलोक को जाता है तब इस जगत् को स्वप्न भ्रममात्र जानताहै और कहताहै कि; स्वप्नासा मैंने देखा था और वह परलोक सत्य हो भासता है। फिर वहां से गिरकर इसलोक में आपड़ता है तब इस लोक को सत्य जानता है और जाग्रत् मानता है और उस परलोक को स्वप्नभ्रम मानता है। हे रामजी! जबतक शरीर से सम्बन्ध है तबतक अनेकबार जाग्रत् देखता है और अनन्तही स्वप्ने देखताहै। हे रामजी! जैसे मृत्युपर्यन्त अनेक स्वप्ने आते हैं, तैसेही मोक्षपर्यन्त अनेक जाग्रत्रूप जगत् भासते हैं और भ्रमान्तरमें इनकी सत्यता और जाग्रत् में स्वप्ने के पदार्थ स्मरण करता है। जैसे सिद्ध प्रबुद्ध होकर अपने जन्म को स्मरण करता है और कहता है कि, सब भ्रममात्र थे, तैसेही यह जब जागेगा तब कहेगा कि, सब भ्रममात्र प्रतिमा मुझको भासी थी, न कोई बन्धहै और न कोई मुक्त है क्योंकि, दृश्य अविद्यक बन्ध मोक्ष ऐसाहै कि, जब चित्त की वृत्ति निर्विकल्प होती है तब मोक्ष भासताहै और जबतक वासना विकल्प सत्यहै तबतक बन्ध भासताहै। हे रामजी! आत्मामें बन्धमोक्ष दोनों नहीं क्योंकि, बन्ध हो तो मोक्षभी हो पर बन्धही नहीं तो मोक्ष कैसे हो? बन्ध और मोक्ष दोनों चित्तसंवेदन में भासते हैं इससे चित्त को निर्वाण करो तब सब कल्पना मिटजावेगी। जितने पदार्थों के प्रतिपादन करने-वाले शब्द हैं उनको त्यागकर निर्मल ज्ञानमात्र जो आत्मसत्ता है उसमें स्थित हो रहो और खाना, पीना, बोलना, चलना आदि सब क्रिया करो परन्तु हृदय मे परम-पद के पाने का यत्न करो। हे रामजी! प्रथम नेति नेति करके सर्वशब्दों का अभाव करो; फिर अभावका भी अभाव करो तब उसके पीछे जो शेष रहेगा वह आत्मसत्ता।

परमनिर्वाणरूपहै उसीमें स्थित होरहो। जो कुछ अपना आचार कर्महै उसे यथाशास्त्र करके हृदयसे सर्वकल्पनाका त्याग करो—इस प्रकार आत्मसत्ता में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणोपदेशोनाम
द्विशताधिकपञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ २४५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्वपदार्थ जो भासतेहैं वे सब चिदाकाश आत्मरूप हैं। ज्ञानवान् को सदा वेही भासते हैं—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। रूप, दृश्य, अवलोक, इन्द्रियां और मनस्कार फुरने का नाम संसारहै सो यह भी आत्मरूप है—आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है। जैसे अपनीही संवित् स्वप्ने में रूप, अवलोक और मनस्कार हो भासतीहै। आत्मा से भिन्न कुछ नहीं परन्तु अज्ञानसे भिन्न२ भासते हैं। जो जागा है उसको अपना आप भासता है। जैसे अपनी चैतन्यताही स्वप्नपुर होकर भासती है; तैसेही जगत् के पूर्व जो चैतन्यसत्ता थी वही जगत्रूप होकर भासती है। जगत् आत्मा से कुछ भिन्न वस्तु नहीं वही स्वरूप है। जैसे जल का स्वभाव द्रवीभूत होताहै इससे तरङ्गरूप हो भासताहै, तैसेही आत्मा का स्वभाव चैतन्यहै। वही आत्मसत्ता चैतन्यतासे जगत् आकार हो भासतीहै इस प्रकार जानकर जो परमशान्ति निर्वाणपद है उसमें स्थित हो रहो। हे रामजी! जगत् कुछ है नहीं और प्रत्यक्ष भासताहै; असत्यही सत्य होकर भासताहै। यही आश्चर्यहै कि, निष्किञ्चन और किञ्चनकी नाईं होकर भासताहै। आत्मसत्ता सदा अद्वैत और निर्विकार है परन्तु अज्ञानदृष्टि से नाना प्रकार के विकार भासते हैं। जब सर्वविकारों को निषेध करके असत्रूप जानिये तब सर्वके अभाव हुये आत्मसत्ता शेष रहती है। जैसे शून्यस्थान में अनहोता वैताल भासिआता है, तैसेही अज्ञानी को अनहोता जगत् आत्मा में भासिआता है। जो पुरुष स्वभाव में स्थित हुये हैं उनको जगत् भी अद्वैतरूप आत्मा भासता है। जब सत्शास्त्रों और सन्तों की संगति होती है और उनके तात्पर्य अर्थ में दृढ़ अभ्यास होता है तब स्वभावसत्ता में स्थिति होती है। जिन पदार्थों के पानेके निमित्त मनुष्य यत्न करताहै वे मायिकपदार्थ बिजलीके चमत्कारवत् उदयभी होते हैं और नष्ट भी होते हैं। ये पदार्थ विचार विना सुन्दर भासते हैं और इनकी इच्छा मूर्ख करते हैं क्योंकि; उनको जगत् सत्य भासता है। ज्ञानवान् को जगत्के पदार्थों की तृष्णा नहीं होती क्योंकि; वह जगत् को मृगतृष्णा की नाईं असत्य जानताहै और ब्रह्मभावना में दृढ़है। अज्ञानीको जगत् की भावना है इससे ज्ञानीके निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता पर अज्ञानीके निश्चय को ज्ञानी जानता है। जैसे सोयेहुये पुरुष को निद्रादोष से स्वप्ना आता है और उसमें जगत् भासता है पर जाग्रत् पुरुष जो उसके निकट बैठा है उसको वह स्वप्नेका जगत् नहीं

भासता। वह असत् है इसलिये उसके निश्चय को स्वप्नवाला नहीं जानता और स्वप्नेवाले के निश्चय को वह जाग्रत्वाला नहीं जानता; तैसेही ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता। मृत्तिका की सेना को बालक सेना करि मानताहै पर जो जाननेवाले बड़े पुरुष हैं उनको वह सब सेना मृत्तिकारूप भासतीहै और जब वह बालक भी भली प्रकार जानता है तब उसको भी सेना और वैताल का अभाव होजाता है मृत्तिकाही भासतीहै; तैसेही ज्ञानवान् को सब जगत् ब्रह्मरूपही भासताहै। हे रामजी! जब पुरुषको आत्मा का अनुभव होताहै तब जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं रहती। जैसे स्वप्न में किसीको मणि प्राप्त होतीहै तो वह प्रीति करके उसको रखताहै पर जब जागता है तब उसे भ्रम जानकर उसकी इच्छा नहीं करता; तैसेही जब जीव आत्मपद में जागेगा तब जगत् के पदार्थों की इच्छा न करेगा। जैसे जो कोई मरुस्थल की नदी को असत्य जानताहै वह उसमें जलपान के निमित्त यत्न नहीं करता तैसेही जो जगत् को असत् जानताहै वह उसके पदार्थों की इच्छा नहीं करता। जिस शरीरके निमित्त मनुष्य यत्न करताहै वह शरीर भी क्षणभंगुर है। जैसे पत्र पर जल की बूंद स्थित होतीहै सो क्षणभंगुर और असार है और पवन लगने से क्षण में गिरजाती है; तैसेही यह शरीर भी नाशवन्त है। जैसे धूप से तपाहुआ मृग मरुस्थलकी नदी को सत्य जानकर जलपान करनेके निमित्त दौड़ताहै और मूर्खताके कारण कष्ट पाता है परन्तु तृप्त नहीं होता; तैसेही मूर्ख मनुष्य विषय पदार्थों को सत्य जानकर उनके निमित्त यत्न करके कष्ट पाता है और कदाचित् तृप्त नहीं होता। हे रामजी! पुरुष अपना आपही मित्र है और अपना आपही शत्रु है। जब सत्यमार्ग में बिचरता है और अपना उद्धार करता है तब पुरुष प्रयत्न से अपना आपही मित्र होता है और जो सत्यमार्ग में नहीं बिचरता और पुरुष प्रयत्न करके अपना उद्धार नहीं करता तो वह जन्ममरण संसार में आपको डालता है और वह अपना आपही शत्रु है। जो अपने आपको यत्न करके उद्धार करताहै वह अपने ऊपर दया करताहै। हे रामजी! जो इन्द्रियों के विषयेरूपी कीचड़ में गिराहुआहै और अपने ऊपर अपने निकालने की दया नहीं करता वह महाअज्ञान तमको प्राप्त होता है और जो पुरुष इन्द्रियोंको जीतके आत्मपद में स्थित नहीं होता उसको शान्ति भी नहीं होती। जब बालक अवस्था होती है तब शून्यबुद्धि होती है; वृद्धअवस्था में अङ्ग क्षीण होजाते हैं और यौवन अवस्था में इन्द्रियों को नहीं जीतसक्ता तो कब होगा? जो तिर्यक् आदिक योनि हैं वे मृतकवत् हैं। यत्न का समय यौवनअवस्था है क्योंकि; बालअवस्था तो जड़गूङ्गरूपहै और वृद्धअवस्था महानिर्बल सी है उसमें अपने अङ्गही उठाने कठिन होजाते हैं तो विचार को क्या सामर्थ्य होगा—वह तो बालकवत् है। इससे कुछ यत्न

यौवन अवस्थामेंही होताहै जो इस अवस्था में लम्पट रहा वह महाअनिष्ट नरक को प्राप्त होगा। हे रामजी! विषयों में प्रसन्न न होना। यह शरीर नाशरूपहै तो विषय कौन भोगे। श्रुति करकेभी जानता है और अनुभव करके भी जानता है कि, यह शरीर नाशरूप है पर उसी शरीर में सत्य भावना करके जो विषयों के सेवने का यत्न करता है उसके सिवा दूसरा मूर्ख कहीं नहीं; वही मूर्ख है। इससे जो इन्द्रियों को जीतेगा वह जन्म जन्मान्तर को न प्राप्त होगा। हे रामजी! तुम जागो और आपको अविनाशी और अच्युत परमानन्दरूप जानो। यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप उदय हुआ है—इसको त्याग दो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्यानाशोपदेशोनाम द्विशताधिकषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ २४६॥

श्रीरामजी बोले, हे भगवन्! तुम सत्य कहते हो कि, इन्द्रियों के जीते विना शान्ति नहीं होती; इससे इन्द्रियों के जीतने का उपाय कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष को बड़े भोग प्राप्त हुये हैं और उसने इन्द्रियों को जीता नहीं तो वह शोभा नहीं पाता जो त्रिलोकी का राज्य प्राप्त हो और इन्द्रियां न जीतीं तो उसकी उपमा भी कुछ नहीं। जो बड़ा शूरवीर है पर उसने इन्द्रियों को नहीं जीता उसकी शोभाभी कुछ नहीं और जिसकी बड़ी आयुर्बल है पर उसने इन्द्रियां नहीं जीतीं तो उसका जीना भी व्यर्थ है। जिस प्रकार इन्द्रियां जीती जाती हैं और आत्मपद प्राप्त होता है सो प्रकार सुनो। हे रामजी! इस पुरुष का स्वरूप अचिन्त्य चिन्मात्रहै; उसमें जो संवित् फुरीहै उस ज्ञानसंवित् को अन्तःकरण और दृश्य जगत् से सम्बन्ध हुआहै—उसीका नाम जीवहै। जहां से चित्त फुरताहै वहांहीं चित्तको स्थित करो तब इन्द्रियों का अभाव होजावेगा। इन्द्रियों का नायक मन है; जब मनरूपी मतवाले हाथी को वैराग्य और अभ्यासरूपी जंजीरसे वश करो तब तुम्हारी जय होगी और इन्द्रियां रोकी जावेंगी। जैसे राजाके वश कियेसे सब सेनाभी वश होजाती है; तैसेही मनको स्थित किये से सब इन्द्रियां वश होजावेंगी। हे रामजी! जब इन्द्रियों को वश करोगे तब शुद्ध आत्मसत्ता तुमको भासिआवेगी। जैसे वर्षाकालके अभाव से शरत्कालमें शुद्ध निर्मल आकाश भासताहै और कुहिरे और बादलका अभाव होजाताहै, तैसेही जब मनरूपी वर्षाकाल और वासनारूपी कुहिरे का अभाव होजावेगा तब पीछे शुद्ध निर्मल आत्मसत्ताही भासेगी। हे रामजी! ये सर्वपदार्थ जो जगत् में दृष्टि आते हैं वे सब असत्यरूप हैं—जैसे मरुस्थल की नदी असत्यरूप होती है—इनमें तृष्णा करना अज्ञानताहै। जो पदार्थ प्रत्यक्ष प्राप्त हों उनको त्यागकर आत्मा की ओर वृत्ति आवे तब जानिये कि, मुझको इन्द्र का पद प्राप्त हुआ है। विषयों में आसक्त होनाही बड़ी

कृपणता है । इनसे उपराम होनाही बड़ी उदारता है; इससे मन को वश करो कि; तुम्हारी जय हो । जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ में पृथ्वी तप्त होती है और जो चरणों में जूता चढ़ातेहै तब तप्त नहीं होती तैसेही अपना मन वश कियेसे जगत् आत्मरूप होजाता है । हे रामजी ! जिस प्रकार जनेन्द्र ने मन को वश किया था तैसेही तुमभी मनको वश करो । जिस २ ओर मन जावे उस उस ओरसे रोको; जब दृश्य जगत् की ओर से मन को रोकोगे तब वृत्तिसंवित् ज्ञान की ओर आवेगी और जब संवित् ज्ञान की ओर आई तब तुमको परम उदारता प्राप्त होगी और शुद्ध आत्मसत्ता का अनुभव होगा । तीर्थ, दान और तप करके संवित् का अनुभव होना कठिन है परन्तु मनके स्थित करने से सुगमही अनुभव की प्राप्ति होनीहै । मन स्थित करने का उपाय यही है कि; सन्तों की संगति करना और रात्रिदिन सत्शास्त्रों का विचारना । सर्वदा काल यही उपाय करने से शीघ्रही मन स्थित होता है और जब मन स्थित होता है तब आत्मपद का अनुभव होताहै । जिसको आत्मपद प्राप्त हुआ है वह संसारसमुद्र में नहीं डूबता । चित्तरूपी समुद्रमें तृष्णारूपी जलहै और कामनारूपी लहरें हैं । जिस पुरुष ने शम और संतोष से इन्द्रियां जीती हैं वह चित्तरूप समुद्र में गोते न खावेगा और जिसने इन्द्रियों को जीतकर आत्मपद पायाहै उसको नानात्व जगत् फिर नहीं भासता । जैसे मरुस्थल की निराकार नदी में लहरें भासतीहैं पर जब निकट जाकर भलीप्रकार देखिये तो वह लहरों संयुक्त बहती दृष्टि नहीं आती; तैसेही यह जगत् आत्मा का आभास है और जब भली प्रकार विचारके देखिये तब नानात्व दृष्टि नहीं आता आत्मसत्ता ही किञ्चन करके जगत्रूप हो भासती है । जैसे जल अपने द्रव स्वभाव से तरङ्गरूप हो भासता है, तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यता से जगत्रूप हो भासती है । हे रामजी ! जब आत्मबोध होताहै तब फिर दृश्यभ्रम नहीं भासता । जैसे साकाररूप नदी का भाव निवृत्त होता है तो फिर बहती है और जो निराकार नदी का सद्भाव निवृत्त होताहै तब फिर नदीका सद्भाव होताहै । निराकार मृगतृष्णा की नदी जब ज्योंकी त्यों जानो तब फिर सत्ता होती है । हे रामजी ! वास्तव में न कर्म हैं; न इन्द्रियांहैं; न कर्ता और न कुछ उपजाहै । जैसे स्वप्नमें नानाप्रकार की क्रिया कर्म दृष्टि आतेहैं परन्तु आकाशरूप हैं कुछ बने नहीं, तैसेही यहभी जानो । आकाशरूप आत्मा में आकाशरूप जगत् स्थित है । जैसे अवयवी और अवयव में भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं और जैसे अवयव अवयवी का रूपहै, तैसेही जगत् आत्मा का रूप है । जब आत्मा में स्थिति होगी तब अहं-त्वं आदिक शब्दों का अभाव होजावेगा और द्वैत अद्वैत शब्द भी न रहेंगे । द्वैत अद्वैत शब्द भी अज्ञानी बालक के समझाने के निमित्त कहे हैं, जो वृद्ध ज्ञानवान् हैं वे इन शब्दों पर

हँसी करते हैं कि, अद्वैतमात्रमें इन शब्दों का प्रवेश कहां है। जिनको यह दशा प्राप्त हुई है उनको न बन्ध है और न मोक्ष है। हे रामजी! सुषुप्ति और तुरीया में कुछ थोड़ाही भेद है कि; सुषुप्ति में अज्ञान और जड़ता रहती है और तुरीया में अज्ञान और जड़ता नहीं रहती वह चैतन्य अनुभव सत्तारूप है और स्वप्न और जाग्रत् में भी भेद नहीं परन्तु इतना भेद है कि, अल्पकाल की अवस्था को स्वप्ना कहते हैं और चिरकाल की अवस्था को जाग्रत् कहते हैं। हे रामजी! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों स्वप्न और सुषुप्तिरूप हैं। जाग्रत् और स्वप्न ये उभय स्वप्नरूप हैं; सुषुप्ति अज्ञानरूप है; जाग्रत् तुरीयारूप है और जाग्रत् कोई नहीं। जिस जागने से फिर भ्रम प्राप्त हो उसको जाग्रत् कैसे कहिये? उसको तो भ्रममात्र जानिये और जिस जागनेसे फिर भ्रमको न प्राप्त हो उसका नाम जाग्रत्है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया चारों अवस्थाओं में चिन्मात्र घनीभूत होरहा है वह चारोंको नहीं देखता। ज्ञानवान् जब प्राण का स्पन्द रोककर आत्मा की ओर चित्त को लगाते हैं; परस्पर ज्ञानमात्र का निर्णय और चर्चा करते हैं और ज्ञानमात्रकीही कथा कीर्तन करते और उससे प्रसन्न होते हैं ऐसे नित्य जाग्रत् पुरुष जो निरन्तर प्रीतिपूर्वक आत्मा को भजतेहैं उनको आत्मविषयिणी बुद्धि उदय होती है और उससे वे शान्ति को प्राप्त होते हैं। जिनको सदा अध्यात्म अभ्यास है और उस अभ्यास में वे उत्तम हुये हैं उनको आत्मपद प्राप्त होता है और वेही हँसा करते हैं क्योंकि; उनको शान्ति पद प्राप्त हुआ है। जो अज्ञानी हैं वे राग द्वेष से जलते हैं और जिनको आत्मा का दृढ़ अभ्यास हुआ है उनको अवेदनसत्ता शान्ति प्राप्त होती है और आत्मस्थिति प्राप्त होती है जिस के आगे—इन्द्र का राज्य भी सूखे तृणवत् भासता है और सर्व जगत् उसको आत्मरूप भासता है। जो अज्ञानीहैं उनको नानाप्रकार के जगत् भासते हैं। जैसे सोये हुये पुरुष को स्वप्ने की सृष्टि सत्य होकर भासती है और जाग्रत् के स्मरणवाले को स्वप्ने की सृष्टिभी अपना आपरूप और सत्यरूप भासती है। ज्ञानवान् को सर्व आत्मरूप भासता है, आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता। जब आत्मअभ्यास का बल हो और अनात्मा के अभावको अभ्यास दृढ़ हो तब जगत्का अभाव होजावे और अद्वैतसत्ता का भान हो। हे रामजी! मैंने तुमको बहुत उपदेश किया है; जब इसका अभ्यास होगा तब इसका फल जो ब्रह्मबोधहै सो प्राप्त होगा अभ्यास विना नहीं प्राप्त होता। जो एक तृण लोप करना होता है तौभी कुछ यत्न करना होता है यह तो त्रिलोकी लोप करनी है। हे रामजी! जैसे बड़ाभार जिसपर पड़ताहै वह बड़े ही बल से उठाता है, विना बड़ेबल नहीं उठता; तैसेही जीवपर दृश्यरूपी बड़ाभार पड़ा है, जब आत्मरूपी अभ्यास का बड़ा बल हो तब वह इसको निवृत्त करे नहीं तो

निवृत्त नहीं होता । यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है इसको बारम्बार विचारो ।
मैंने तो तुमको बहुत प्रकार और बहुत बार कहा है । हे रामजी ! अज्ञानी को ऐसे
बहुत कहने से भी कुछ नहीं होता । तुमको जो मैंने उपदेश किया है वह सर्वशास्त्रों
और वेदों का सिद्धान्तहै । जिस प्रकार वेदको पाठ करते हैं उसी प्रकार इसको पाठ
कीजिये और विचारिये और इसके रहस्यको हृदय में धारिये तब आत्मपदकी प्राप्ति
होगी और और शास्त्र भी इसके अवलोकन से सुगम होजावेंगे । यदि नित्य इस शास्त्र
को श्रद्धासहित सुने और कहे तो अज्ञानी जीवको भी अवश्य ज्ञानकी प्राप्ति होती
है । जिसने एकबार सुनाहै और कहने लगाहै कि, एकबार तो सुना है फिर क्या सु-
नना है उसकी भ्रान्ति निवृत्त न होगी और जो बारम्बार सुने, विचारे और कहे तो
उसकी भ्रान्ति निवृत्त होजावेगी । सब शास्त्रों से उत्तमयुक्ति की संहिता मैंने कही है
जो शीघ्रही मन में आती है । जो पुरुष मेरे शास्त्र के सुनने और कहनेवाले हैं उन
को बोध उदय होता है और दूसरे शास्त्रों का अर्थभी सुन्दरता से खुल आता है ।
जैसे लवण का अधिकारी व्यञ्जन पदार्थ है उसमें डाला लवण स्वादी होताहै और
प्रीति सहित ग्रहण कियाजाता है; तैसेही जो इस शास्त्र के सुनने और कहनेवाले हैं
वे और शास्त्रों का भी सुन्दर अर्थ करेंगे । हे रामजी ! किसी और पक्ष को मानकर
इसका सुनना त्यागना न चाहिये । जैसे किसीके पिता का खारा कुआंथा और उसके
निकट एक मिष्ट जल का कुवां भी था पर वह अपने पिता का कूप मानकर खारीही
जल पीता था और निकटके मिष्ट जलके कुयेंका त्याग करता था, तैसेही अपने पक्ष
को मानकर मेरे शास्त्र का त्याग न करना । जो ऐसे जानकर मेरे शास्त्रको न सुनेगा
उसको ज्ञान प्राप्त न होगा । जो पुरुष इस शास्त्र में दूषण आरोपण करेगा कि; यह
सिद्धान्त यथार्थ नहीं कहा उसको कदाचित् ज्ञान न प्राप्त होगा—वह आत्महन्ता है
उसके वाक्य न सुनना । जो प्रीतिपूर्वक पूजा भाव करके सुने और विचारकर पाठ
करे उसको निर्मल ज्ञान होगा और उसकी क्रिया भी निर्मल होगी इससे यह नित्य-
प्रति विचारने योग्य है । हे रामजी ! तुमको मैंने अपने किसी अर्थ के निमित्त उप-
देश नहीं किया केवल दया करके किया है और तुम जो किसीको कहना तो अर्थ
विना दया करकेही कहना ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइन्द्रिययज्ञवर्णनंनाम
द्विशताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मामें जगत् कुछ हुआ नहीं । जब शुद्ध चिन्मात्र
में अहं फुरता है तब वही संवेदन फुरना जगत्रूप हो भासता है और जब वह
अधिष्ठानकी ओर देखताहै तब वही संवेदन अधिष्ठानरूप होजाताहै और अपने रूप

को त्यागकर अचेत चिन्मात्र होता है। हे रामजी! फुरने और अफुरने दोनोंमें वही है परन्तु फुरने से जगत् भासता है सो जगत् भी कुछ और वस्तु नहीं वही रूपहै। जब संवित् संवेदन फुरनेसे रहित होती है तब अपना चिन्मात्ररूप होजाती है इस कारण ज्ञानवान् को जगत् आत्मरूप भासता है ब्रह्म से भिन्न नहीं भासता। जैसे किसी पुरुष का मन और ठौर गया होताहै तो उसके आगे शब्द होताहै तौभी नहीं सुनाई देता और वह कहता है कि, मैंने देखा सुना कुछ नहीं क्योंकि, जिस ओर चित्त होता है उसीका अनुभव होताहै; तैसेही जिनका मन आत्मा की ओर लगता है उनको सब आत्मा ही भासताहै—आत्मासे भिन्न जगत् कुछ नहीं भासता। जिसको आत्मसत्ताका प्रमाद है और जगत् की ओर चित्त है उसको जगत् ही भासता है। हे रामजी! ज्ञानवान्के निश्चय में ब्रह्मही भासताहै और अज्ञानीके निश्चयमें जगत् भासता है तो ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय एक कैसेहो? जो मनुष्य स्वप्ने में है उसको स्वप्ने का जगत् भासताहै और जाग्रत् को वह जगत् नहीं भासता तो उनको एकही निश्चय कैसेहो? जगत् के आदि और अन्त दोनों में ब्रह्मसत्ताहै और मध्य में भी उसेही जानो—आत्मसत्ता ही चैतन्यता से जगतरूप हो भासतीहै। जैसे स्वप्ने की सृष्टि के आदिभी ब्रह्मसत्ता होती है, अन्त भी ब्रह्मसत्ता होती है और मध्य जो भासता है सोभी वही है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं तैसेही यह जगत् आदि, अन्त और मध्य में भी आत्मा से भिन्न नहीं। ज्ञानवान् को सदा यही निश्चयहै कि, जगत् कुछ उपजा नहीं और न उपजेगा केवल आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै और सर्व ब्रह्मही है अहं त्वं आदिक अज्ञान से भासता है जैसे स्वप्ने में अहं त्वं आदि अनुभव होता है तो अहं त्वं आदिक भी कुछ नहीं सब अनुभवरूप है; तैसेही यह जगत् सर्व अनुभवरूपहै। हे रामजी! जैसे एकही रस फूल, फल, टहनी और वृक्ष होकर भासता है, रस से भिन्न कुछ नहीं होता, तैसेही नानात्वरूप जगत् भासताहै परन्तु आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर अपने २ अनुभव से भिन्न नहीं परन्तु स्वरूपके विस्मरण से आकाररूप भासते हैं, तैसेही यह जगत् आकार भासता है सो ज्ञानरूप से भिन्न नहीं। सब जगत् आत्मरूप है परन्तु अज्ञान से भिन्न २ भासताहै। यह जगत् सब अपना आपरूप है और जो आत्मरूप है तो ग्राह्य ग्रहणभास कैसेहो? यह मिथ्या भ्रम है। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, घट, पट आदिक सब जगत् ब्रह्मरूप है; ज्ञानवान् को सदा यही निश्चय रहता है कि, अचेत चिन्मात्र अपने आपमें स्थित है। ब्रह्मादिक भी कुछ फुरकर उदय नहीं हुये ज्यों के त्यों हैं। उत्थान कुछ नहीं हुआ पर अज्ञानी के निश्चय में नाना प्रकार का जगत् है और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, ब्रह्मादिक सम्पूर्ण हैं। हे रामजी!

यह कुछ उपजा नहीं कारणत्व के अभाव से सदा एकरस आत्मसत्ताही है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनंनाम द्विशताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अब जाग्रत् और स्वप्न का निर्णय सुनो । जब इस जगत्में मनुष्य सो जाताहै तब स्वप्ने की सृष्टि देखताहै; उसमें जाग्रत् होतीहै और जाग्रत् होकर भासती है और जब वहां सो जाताहै तब फिर यह सृष्टि देखता है तो यही जाग्रत् हो भासतीहै। यहां सोकर स्वप्नेमें जाग्रत् होतीहै और वहां सोकर यहां जाग्रत् होतीहै तो स्वप्न जाग्रत् हुआ जाग्रत् का जाग्रत् नहीं होता। जाग्रत् जो वस्तु है सो आत्मसत्ता है, उसमें जागना वही जाग्रत् की जाग्रत्है और सब स्वप्न जाग्रत् है। जब मनुष्य यहां शयन करताहै तब स्वप्ने का जाग्रत् सत्य होकर भासता है और यह असत्य होजाताहै और स्वप्ने में वहां शयन करताहै अर्थात् जब स्वप्ने से निवृत्त होताहै और जाग्रत् में जागता है तब वहां असत्य होजाता है और वह स्वप्ना जाग्रत् में स्मृति को प्राप्त होता है । जब जाग्रत्में सोया और स्वप्नेमें जागा तब जाग्रत् स्वप्नभाव को प्राप्त हुई और जब स्वप्नेसे उठकर जाग्रत्में आया तब स्वप्नरूप जाग्रत् स्मृतिभाव को प्राप्त हुई और जाग्रत् जाग्रत्रूप हुई तो हे रामजी ! स्वप्ना तो कोई न हुआ । इसको सर्व ठौर जाग्रत् हुई और जाग्रत् तो कोई न हुई क्योंकि; जब जाग्रत् से स्वप्ने में गया तब स्वप्ना जाग्रत्रूप होगया और जाग्रत् स्वप्ना होगई और जब स्वप्ने से जाग्रत् में आया तब जाग्रत् जाग्रत्रूप होगई और स्वप्ना जाग्रत् स्वप्नरूप होगई तो क्या हुआ कि; जाग्रत् कोई नहीं सब स्वप्न और असत्यरूपहै। अपने कालमें यह जाग्रत्है और स्वप्नरूपहै और जब यहांसे मृतक होताहै तब यह जगत् स्वप्नरूप होता है और स्वप्नरूप परलोक जाग्रत् होता है और जाग्रत् स्मृति प्रत्यक्ष होजाता है तो उसमें वह नहीं रहता और उसमें वह नहीं रहता और जाग्रत् स्वप्न दोनों में परलोक नहीं रहता । इस जाग्रत् में देखिये तो स्वप्ना और परलोक दोनों नहीं भासते और स्वप्ने में इस जाग्रत् और परलोक दोनों का अभाव होजाता है तो यह सिद्ध हुआ कि, सब स्वप्नमात्र है । हे रामजी ! चिरकाल की प्रतीति को जाग्रत् कहते हैं और अल्पकाल की प्रतीति को स्वप्ना कहते हैं। जो आदिस्वप्ना हुआ और उसमें दृढ़ अभ्यास होगया उससे जाग्रत् हो भासती है; इसलिये जो आकार तुमको सत्य भासते हैं वे सब निराकार आकाशरूप हैं कुछ बने नहीं। जैसे स्वप्नेमें त्रिलोकी जगत् भ्रम उदय होता है परन्तु सब आकाशरूप होता है; तैसेही ये जगत् के पदार्थ अविद्या से साकार भासते हैं सो सब निराकार और आकाशरूपहैं । जब अधिष्ठान आत्मतत्त्व में जागोगे तब सबही आकाशरूप भासेंगे । अद्वैत आत्मतत्त्व में जो

ग्राह्य-ग्राहकभाव भासते हैं सो मिथ्या कल्पना है, वास्तव में कुछ नहीं। सब जगत् मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या है उसमें ग्रहण और त्याग क्या कीजिये? इन दोनों की कल्पना को दूर करो। यह हो और यह न हो इस कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होरहो तब सर्व शान्ति प्राप्त होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनंनाम
द्विशताधिकैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे राजन्! इन अर्थों का जो आश्रयभूत है सो मैं तुमसे कहता हूं। इस जगत् के आदि अचेत चिन्मात्र था और उसमें किसी शब्द की प्रवृत्ति न थी-अशब्द पद था। फिर उसमें जागना फुरा और उसका आभास जगत् हुआ। उस आभास में जिसको अधिष्ठान की अहंप्रतीतिहै उसको जगत् आकाशरूप भासता है और वह संसार में नहीं डूबता क्योंकि, उसको अज्ञान का अभाव है। जो डूबता नहीं वह निकलता भी नहीं; उसे अज्ञाननिवृत्ति और ज्ञानका भी अभाव है क्योंकि, वह स्वतः ज्ञानस्वरूपहै। जिनको अधिष्ठान का प्रमाद हुआहै उनको दोनों अवस्था होती है। जो ज्ञानवान्है उसको जगत् आत्मरूप भासताहै और जो ज्ञान से रहित है उसको भिन्न २ नामरूप जगत् भासताहै हे रामजी! आत्मा निराख्यातहै; वह चारों आख्यातों से रहित निराभाससत्ता है और चारों आख्यात उसमें आभास हैं एक आख्यात, दूसरा विपर्ययाख्यात; तीसरा असत्याख्यात और चौथा आत्माख्यात है। आख्यात ज्ञान को कहते हैं। जिसको यह ज्ञानहै कि; 'मैं आपको नहीं जानता;' इसका नाम आख्यात है। आपको देह इन्द्रियरूप जानने का नाम विपर्ययाख्यातहै। जगत् असत्य जाननेका नाम असत्याख्यातहै और आत्मा को आत्मा जानने का नाम आत्माख्यातहै। ये चारों आख्यात चिन्मात्र आत्मतत्त्व के आभास हैं। आत्मसत्ता निर्विकल्प अचेत चिन्मात्रहै उसमें वाणी की गम नहीं है। हे रामजी! जगत् भी वही स्वरूप है और कुछ बना नहीं और घनशिला की नाईं अचिन्त्यस्वरूप है। इस पर एक आख्यानहै जो श्रवणों का भूषण है इसलिये तुमसे कहता हूं। वह द्वैतदृष्टिको नाश करताहै और ज्ञानरूपी कमलके विकाश करनेवाला सूर्यहै और परमपावन है सो सुनो। हे रामजी! एक बड़ी शिला है जिसका कोटि योजन पर्यन्त विस्तारहै; अनन्तहै किसी ओर उसका अन्त नहीं आता और शुद्ध, निर्मल और निराबाधहै अर्थात् यह कि, अणु अणुसे पुष्ट नहीं हुई अपनी सत्तासे पूर्णहै और बहुत सुन्दरहै। जैसे शालग्राम की प्रतिमा सुन्दर होती है, तैसेही वह सुन्दर है और जैसे शालग्राम पर शंख, चक्र, गदा और पद्मकी रेखा होती हैं तैसेही उसपर रेखाहैं और वही रूप है। वह वज्र सेभी क्रूर, शिला की नाईं निर्विकाश और निराकार अचेतन परमार्थ

है। यह जो कुछ चैतन्यता भासती है सो उस पर रेखाहै और अनन्त कल्प बीतगये हैं
परन्तु उसका नाश नहीं होता। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश; ये सबभी उस
पर रेखा हैं और आप पृथ्वी आदिक भूतों से रहित और शिलावत् है और इन रे-
खाओं की जीवित की नाईं चेतती है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो वह अचेतन है
और शिलाकी नाईं निर्विकाश है तो उसमें चैतन्यता कहांसे आई जिससे जीवितधर्मा
हुई-वह तो अचैतन्य थी? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह तो न चैतन्य है और न
जड़ है शिलारूप है और पत्थर से भी उज्ज्वल है। यह चैतन्यता जो तुम कहते हो
सो चैतन्यता स्वभावसे दृष्ट आती है-जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत है, तैसेही चैत-
न्यता भी उसका स्वभाव है और जैसे जल में तरङ्ग स्वाभाविक भासते हैं, तैसेही
इससे चैतन्यता स्वाभाविक भासती है परन्तु भिन्न कुछ नहीं। वह सदा अपने आपमें
स्थित है और किसीसे जानी नहीं जाती-अबतक किसीने नहीं जाना। रामजी ने
पूछा, हे भगवन्! किसीने उसको देखाभीहै अथवा नहीं देखा और किसीसे वह भङ्ग
भी हुई है कि, नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैंने उस शिला को देखा है और
तुमभी जो उस शिला के देखनेका अभ्यास करोगे तो देखोगे। वह परमशुद्ध है-उस
को मैल कदाचित् नहीं लगता। वह चिह्नों, पोलों और आदि, मध्य अन्त से रहित
है। न उसे कोई तोड़सक्ता है और न वह तोड़ने योग्य है, उससे कोई अन्य हो तो
उसको भेदे। ये जितने पदार्थ पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, अप, तेज, वायु, आकाश, देवता,
दानव, सूर्य और चन्द्रमा हैं वे सब उसीकी रेखा हैं और उसके भीतर स्थित हैं। वह
शिला महासूक्ष्म निराकार आकाशरूप है। रामजी ने पूछा हे भगवन्! जो वह आदि,
मध्य और अन्त से रहितहै तो तुमने कैसे देखी सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी!
वह और किसीसे जानी नहीं जाती अपने आप अनुभव से जानी जाती है। मैंने उसे
अपने स्वभाव में स्थित होकर देखा है। जैसे थम्भेको अनथम्भे में स्थित होकर देखे,
तैसेही मैंने उसमें स्थित होकर देखा। हमभी उस शिलाकी रेखा हैं; इससे मैंने उस
में स्थित होकर देखा है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह कौन शिला है और उसपर
रेखा कौन है सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह परमात्मरूपी शिला है। मैंने
शिलारूप इसलिये कहा कि, वह घन चैतन्यरूपहै उससे इतर कुछ नहीं और अचित्
रूप है उसपर पञ्चतत्त्व रेखा हैं सो वे रेखाभी वही रूप हैं। एक रेखा बड़ी है जिसमें
और रेखा रहती हैं। वह बड़ी रेखा आकाश है जिसमें और तत्त्व रहतेहैं। सब पदार्थ
आकाश में हैं सो सब वहीरूप है; तुमभी वहीरूप हो और मैंभी वहीरूप हूं और कुछ
हुआ नहीं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सर्व
पदार्थ और कर्म जो भासतेहैं सो सब ब्रह्मरूपी शिला की रेखा है और कुछ हुआ नहीं,

सर्वकाल में ब्रह्मसत्ताही स्थित है। नाना प्रकार के व्यवहारभी दृष्ट आते हैं परन्तु वहीरूप हैं और कुछ है नहीं तैसेही वहभी जानो। घट, पट, पहाड़, कन्दरा, स्थावर, जङ्गम, जगत् सब आत्मरूपहै। आत्माही फुरनेसे ऐसे भासता है। जैसे जलही तरङ्ग और लहरें होकर भासता है, तैसेही ब्रह्मसत्ताही जगत्रूप होकर भासती है और सर्व पदार्थ पवित्र, अपवित्र; सत्य, असत्य; विद्या, अविद्या; सब आत्मसत्ताही के नाम हैं इतर वस्तु कुछ नहीं। ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! सर्वही घन ब्रह्मरूप हैं और चिन्मात्र घनही सबमें व्यापरही है वह परमार्थसत्ता घन शान्तरूप है और यह भी सर्वपरमार्थ घनरूप है इसलिये संकलपरूपी कलना को त्यागकर उस में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २५०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष स्वभावसत्ता में स्थित हुये हैं उनको ये चारों आख्यात कहेहैं और इनसे लेकर जितने शब्दार्थ हैं वे शशे के सींगवत् असत्य भासते हैं। जगत् का निश्चय उनमें नहीं रहता और सर्वब्रह्माण्ड उनका आकाशवत् भासता। आख्यात की कल्पना भी उन्हें कुछ नहीं फुरती और सर्व जगत् जो दीखता है वह निराकार परम चिदाकाशरूप है और परमनिर्वाणसत्ता से युक्त भासताहै और उसीसे निर्वाण होजाताहै इसलिये वही स्वरूपहै। हे रामजी! जब इस प्रकार जानकर तुम उस पद में स्थित होगे तब बड़े शब्द को करते भी तुम निश्चय से पाषाण शिलावत् मौन रहोगे और देखोगे, खावोगे, पियोगे, सूंघोगे परन्तु अपने निश्चय में कुछ न फुरेगा। जैसे पाषाण की शिलामें फुरना नहीं फुरता, तैसेही तुम रहोगे--जो चरणों से दौड़ते जावोगे तौभी निश्चय से चलायमान न होगे। जैसे आकाश, सुमेरु, पर्वत अचलहै; तैसेही तुम भी स्थित रहोगे और क्रिया तो सब करोगे परन्तु हृदय में क्रिया का अभिमान तुमको कुछ न होगा केवल स्वभावसत्तामें स्थित होगे। जैसे मूढ़ बालक अपनी परछाहीं में वैताल कलपता है सो अविचार सिद्ध है और विचार कियेसे कुछ नहीं रहता, तैसेही मूर्ख अज्ञानी आत्मा में मिथ्या आकार कलपते हैं विचार कियेसे सब आकाशरूप है कुछ बना नहीं। जैसे मरुस्थल में नदी तबतक भासती है जबतक विचार करके नहीं देखता और विचार कियेसे नदी नहीं रहती; तैसेही यह जगत् विचार किये से नहीं रहता। जगत् चैतन्यरूपी रत्न का चमत्कारहै; चैतन्य आत्मा का किञ्चन फुरने सेही जगत्रूप हो भासता है। रामजी बोले, हे भगवन्! इस जगत् का कारण मैं स्मृति मानता हूं; वह स्मृति अनुभवसे होतीहै और स्मृति से अनुभव होता है। स्मृति और अनुभव परस्पर कारण हैं, जब अनुभव होता है तब उसको स्मृति

भी होती है और वह स्मृति संस्कार फिर स्वप्न में जगत्‌रूप हो क्यों भासती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जगत् किसी संस्कार से नहीं उपजा और किसी स्मृति का संस्कार नहीं काकतालीयवत् अकस्मात् फुर आया है । हे रामजी ! यह जगत् आभासमात्रहै; आभास का अभाव कदाचित् नहीं होता क्योंकि; उसका चमत्कार है । इतर कुछ बना हो तो उसका नाश भी हो पर भिन्न तो कुछ हुआ ही नहीं नाश कैसे हो ? यह जगत् सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं; आत्मसत्ता अपने स्वभाव में स्थितहै और जगत् उसका आभासहै। हे रामजी ! तुम जो स्मृति कारण कहते हो तो कारण कार्यभाव आभास वहां भासते हैं जहां द्वैत है स्वरूप में तो कुछ कारणकार्यभाव नहीं ? जैसे स्वप्न के मरुस्थल में जल भासित हुआ, तो उसमें जल मानागया; इसलिये तुम आगे जाकर उसको देखो तो उस जल की स्मृति हुई अथवा स्वप्न के व्यवहारकर्ता को स्वप्नान्तर हुआ और उस स्वप्नान्तर में फिर व्यवहार किया ? हे रामजी ! तुम देखो कि, उसकी स्मृति भी असत्य हुई और जो उसने अनुभव किया सोभी असत्य है; तैसेही यह संसार भी है कुछ भिन्न नहीं । हे रामजी ! इसलिये न जाग्रत् है, न स्वप्न है; न कोई सुषुप्ति है और न तुरीया है केवल अद्वैतसत्ता सर्वउत्थान से रहित चिन्मात्र स्थित है; इसलिये जगत् भी वहीरूप है और जो क्रिया भी दृष्ट आती है तौभी कुछ हुआ नहीं । जैसे स्वप्न में अङ्गना कण्ठसे आ मिलती है तो उसकी क्रिया कुछ सच नहीं होती; तैसेही यह क्रिया भी सच नहीं । जाग्रत्; स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया शब्दों का अर्थ स्वभाव निश्चय ज्ञानवान् पुरुष को है और शशे के सींग और आकाश के फलवत् असत्य भासते हैं। जैसे बन्ध्या का पुत्र और श्याम चन्द्रमा शब्द कहनेमात्रहैं और इनका अर्थ असत्य है; तैसेही ज्ञानी के निश्चय में पांचों अवस्थाओं का होना असंभव है । वह सर्वदाकाल में जाग्रत् है; जाग्रत् उसका नाम है जहां कुछ अनुभव हो । वह अनुभवसत्ता सदा जाग्रत्‌रूपहै और जैसा पदार्थ आगे आताहै उसीका अनुभव करता है—इससे सर्वदा सर्वकाल जाग्रत् है । अथवा सर्वदाकाल स्वप्न है; स्वप्न उसका नाम है जहां पदार्थ विपर्यय भासते हैं सो सर्वपदार्थ विपर्यय ही भासते हैं। विपर्यय से रहित आत्मा है उसमें जो पदार्थ भासते हैं सो विपर्यय हैं इसलिये सर्वकाल में स्वप्नाही है; अथवा सर्वदाकाल सुषुप्तिही है; सुषुप्ति उसका नाम है जहां अज्ञानवृत्ति हो । मैं आपको भी नहीं जानता इसलिये न जाननेसे सर्वदाकाल सुषुप्तिहै, अथवा सर्वदाकाल तुरीया है; तुरीया उसका नाम जो साक्षीभूत सत्ता हो और जिसमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था का अनुभव होता है । वह सर्वदाकाल सबका अनुभव करता है सो प्रत्यक् चैतन्य है इससे सर्वदाकाल में तुरीयापद है । अथवा सर्वदाकाल तुरीयातीतपद है

तुरीयातीत उसको कहतेहैं कि, जो अद्वैतसत्ताहै, जिसके पास द्वैत कुछ नहीं सो सर्वदा काल अद्वैतसत्ता है और उसमें जगत् का अत्यन्त अभाव है जैसे मरुस्थल में जल का अभाव है—इसलिये सर्वदाकाल में तुरीयातीतपद है और जो मुझसे पूछो तो मुझको तरङ्ग, बुद्बुदे, झाग और आवर्त कुछ नहीं भासते—सर्वदाकाल चित्समुद्रही भासता है। उदय अस्त से रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं सोभी कुछ उपजे नहीं आत्मसत्ता का किञ्चन इस प्रकार भासताहै। जैसे नख और केश उपजतेभीहैं और नाशभी होजातेहैं; तैसेही आत्मा में जगत् उपजता भी है और लीनभी होजाता है। जैसे नख और केश के उपजने और काटनेसे शरीर ज्योंका त्यों रहताहै; तैसेही जगत्के उपजने और लीन होने में आत्मा ज्योंका त्यों रहताहै। हे रामजी! यह जगत् उपजा नहीं तो उसमें सत्य और असत्यकल्पना और स्मृति क्या कहिये और भीतर और बाहर क्या कहिये? अद्वैत-सत्ता में कुछ कल्पना नहीं बनती। जो तुम कहो कि, स्मृति भीतर होती है परन्तु भीतर से बाहर दृष्ट आती है तो भीतर अनुभव की अपेक्षा से हुई है सोभी उत्पन्न नहीं हुई तो मैं भीतर और बाहर क्या कहूं? जैसे स्वप्ने की सृष्टि भासिआती है सो अपनाही अनुभव होता है और वही सृष्टिरूप हो भासताहै वहां तो भीतर बाहर कुछ नहींहै; तैसेही यह जगत् भी भीतर बाहर कुछ नहींहै सब भ्रमरूप है। जिसको इच्छा कहते हैं उसेही स्मृति कहते हैं और विद्या, अविद्या; इष्ट, अनिष्ट आदि शब्द सब आत्मा के नाम हैं—आत्मासे भिन्न और पदार्थ कुछ नहीं। हे रामजी! जागकर देखो कि, सब तुम्हाराही स्वरूपहै। मिथ्याभ्रमको अङ्गीकार करके भिन्न क्यों देखते? सर्वशब्द अर्थ विना कहीं नहीं है और शब्द अर्थ का विचार संकल्प से होता है। संकल्प तब फुरता है जब चित्तमें अहंअभिमान होता है। उस चित्त को आत्मासार में लीनकरो; जब चित्त को निर्वाण करोगे तब सब जगत् शान्त हो जावेगा। जैसे दर्पण में जगत्रूपी प्रतिबिम्ब होता है। जगत् कुछ वस्तु नहीं; जब चित्त निर्वाण होजावेगा तब द्वैतकल्पना सब मिट जावेगी। यह जो मोक्षशास्त्र मैंने तुमसे कहा है इसके अर्थ विचार कर और संकल्प को त्यागकर अपने परमानन्दस्वरूप में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभाववर्णनं नामद्विशताधिकैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २५१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् किसीकारण से नहीं उत्पन्न हुआ। जैसे समुद्र में तरङ्ग स्वाभाविक फुरते हैं तैसेही संवित्सत्ता से आदिसृष्टि फुरी है और जैसे जल स्वाभाविक द्रवता से तरङ्गरूप अपनी सत्ता से बढ़ता जाता है; तैसेही आत्मसत्तासे जगत् विस्तार होताहै सो आत्मासे कुछ भिन्न नहीं; आत्मसत्ता ही इस

प्रकार भासती है जब चिन्मात्र आत्मसत्ता का अभ्यास बहिर्मुख फुरताहै तब अन्तः-करण चतुष्टयाङ्ग होतेहैं और उसमें जो निश्चय होता है उसका नाम नेति है। वह प्रथम अकस्मात् से कारण विना स्वाभाविकही फुरि आया है और आभासमात्र है जब वह दृढ़ होगया तब नेति स्थित हुई और वास्तव में द्वैत कुछ बना नहीं। जो सम्यक्‌दर्शी पुरुष हैं उनको सब आत्माही दृष्ट आताहै-जैसे पत्र, फूल, फल, टहनी सब वृक्ष पर होते हैं भिन्न नहीं होते। हे रामजी! वृक्ष से जो फूल, फल और टहनी होती हैं सो किसकारण बुद्धिपूर्वक नहीं होतीं? तैसेही इसजगत् को भी जानो। जो सम्यक्‌दर्शी हैं उनको भिन्न भिन्नरूप भी पत्र, टास आदिक विस्तार एक वृक्षरूपही भासता है; तैसेही यथार्थ ज्ञानी को सब आत्माही भासता है और मिथ्यादृष्टि को भिन्न २ पदार्थ भासते हैं। हे रामजी! वृक्ष का देखनेवाला भी और होता है और दृष्टान्त में दूसरा कोई नहीं। चैतन्य आत्मा का आभासही चैत है, वही चैतन्यरूप हो भासता है। उस चैतन्य आभास को असम्यक् दृष्टि से भिन्न २ पदार्थ देखते हैं और सम्यक्‌दर्शी सबको आत्मरूप देखताहै। जैसे पत्र, फूल, फल और वृक्ष आपको भिन्न जाने। ज्ञानी और अज्ञानी सब आत्मरूप है-जैसे दीवारपर पुतलियां लिखी होती हैं सो दीवार से भिन्न नहीं होतीं तैसेही सर्वगत आत्मरूपी दीवार के चित्र हैं सो आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे आकाश में शून्यता; फूलों में सुगन्ध; जल में द्रवता; वायु में स्पन्द और अग्नि में उष्णता है तैसेही ब्रह्मसे जगत् है। हे रामजी! जगत् आत्मा का आभास है इसलिये वही रूप है। यह जगत् भी अचैत चिन्मात्र है। जो तू कहे कि, अचैत चिन्मात्र है तो पृथ्वी, पहाड़ आदिक आकार क्यों भासते हैं? तो हे रामजी! जैसे नित्यप्रति जो तुमको स्वप्न आता है और उस अनुभव आकाश में पृथ्वी आदिक तत्त्व भासिआते हैं तो वही चिन्मात्रही आकार होकर भासता है और कुछ नहीं; तैसेही इसेभी जानो। यह सब जगत् जो तुमको भासता है सो अनुभवरूप है। जैसे चिन्मात्र आत्मा में सृष्टि आभासमात्र है; तैसेही कारण कार्यभावभी आभासमात्रहै परन्तु वहीरूपहै-आत्मसत्ताही इस प्रकार होकर भासती है। ये पदार्थ कार्य-कारण अभ्यास की दृढ़ता से उपजे भासते हैं पर आदि सृष्टि किसी कारण से नहीं उपजी-पीछे कारणसे कार्य उत्पन्न दृष्ट आते हैं। यद्यपि कार्य-कारण दृष्ट आते हैं तौभी कुछ उपजे नहीं सदा अद्वैतरूप हैं। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकारके कार्य कारण भासिआते हैं परन्तु कुछ हुये तो नहीं सदा अद्वैतरूप हैं; तैसेही जाग्रत् में भी जानो। पदार्थों की स्मृति भी स्वप्ने में होती है और अनुभवभी स्वप्ने में होताहै; जो स्वप्नाही नहीं फुरा तो मृत्यु कहां है और अनुभव कहां है? न जगत् का अनुभव है और न जगत् है; अनुभवसत्ताही जगत्‌रूप हो भासती है जो जाग्रत्-

रूपहै; जब उसका अनुभव होगा तब न स्मृति रहेगी और न जगत् रहेगा। इसलिये, हे रामजी! जो अनुभवरूप है उसका अनुभव करो। यह जगत् भ्रमरूपहै। जो उपजा नहीं सो स्वतः सिद्ध है और जो उपजा है और जिसमें भासता है उसको उसी का रूप जानो भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में पदार्थ भासते हैं सो उपजे नहीं परन्तु उपजे दृष्ट आते हैं सो अनुभव में उपजे हैं। अनुभव स्वतःसिद्ध है उसमें जो पदार्थ भासते हैं सो अनुभवरूप हैं और अनुभवरूपही इस प्रकार हो भासता है; तैसेही ये सब अनुभवरूप हैं—भिन्न कुछ नहीं। यह सर्व जगत् आत्मरूप है; इसलिये हे रामजी! सर्व जगत् अकारणहै और आत्माका आभासहै—कारणसे कुछ नहीं बना। अनन्त ब्रह्माण्ड ब्रह्मसत्ता में आभास फुरते हैं और अज्ञानी को कार्य—कारण सहित भासते हैं। उसमें नेति हुई है पर जब जागकर देखोगे तब सर्व अद्वैतरूप भासेगा न कोई नेति है और न जगत् है। जबतक अज्ञाननिद्रा में सोया हुआ है तबतक जो पदार्थ उस सृष्टि में है वही भासेगा और जैसा कर्म है सो भासेगा। यह जगत्रूपी स्वप्नाहै जिसमें स्वर्गादिक इष्ट पदार्थ हैं और नरकादिक अनिष्टपदार्थ हैं और उनके प्राप्त होनेका साधनधर्म अधर्म है। धर्म स्वर्गसुख का साधन है और अधर्म नरकदुःख का साधनहै। जबतक अविद्यारूपी निद्रा में सोया हुआ है तबतक इनको यथार्थ जानता है पर जब जागेगा तब सब आत्मरूप होगा और इष्ट अनिष्ट कोई न रहेगा। यह सब जगत् अनुभवरूपहै और अनुभव सदा जाग्रत् ज्योतिहै उसीको जानो। जिन पुरुषों ने इस अनुभवको नहीं जाना वे उन्मत्त पशु हैं क्योंकि; वे आत्मबोध से शून्य हैं और सदा समीप आत्मा को नहीं जानते इससे उन्मत्त है क्योंकि; उन्मत्त को भी अपना आप भूल जाताहै। जैसे किसी को पिशाच लगताहै तब उस को अपना स्वरूप विस्मरण होजाता है और पिशाचही देह में बोलता है; तैसेही जिसको अज्ञानरूपी भूत लगता है वह उन्मत्त होजाता है; अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानता और विपर्यय बुद्धि से देहादिक को आत्मा जानताहै और विपर्यय शब्द करता है। जिनको स्वरूप में अहंप्रतीति है उनको सर्व जगत् आत्मरूप भासता है। हे रामजी! आदिसृष्टि किसीकारण से बनी होती तो उसके पीछे प्रलयादिक में कुछ शेष रहना पर वह तो अत्यन्त अभाव होतीहै, इसलिये सब जगत् अकारणहै। जैसे चिन्तामणि में अकारण पदार्थ दृष्टि आताहै, तैसेही यह अकारणहै। न कहीं संस्कार है और न स्मृति है सब आत्मा के पर्याय हैं आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। इसमे सर्व जगत् को आत्मरूप जानो। रामजीने पूछा; हे भगवन्! जो संस्कार से अनुभव नहीं होता और अनुभव से स्मृति नहीं होती तो इस प्रकार प्रसिद्ध क्यों दृष्ट आते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह संशयभी तुम्हारा दूर करताहूं। जैसे हाथीके बालक

के मारने में सिंह को कुछ यत्न नहीं होता, तैसेही इस संशय के नाशकरने में मुझे कुछ यत्न नहीं है। जैसे सूर्य के उदय हुये तिमिर का अभाव होजाता है; तैसेही मेरे वचनों से तुम्हारा संशय दूर होजावेगा। हे रामजी! यह सर्वजगत् चिन्मात्रस्वरूप है-उससे भिन्न नहीं। जैसे थम्भेमें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै परन्तु पुतलियां कुछ बनी नहीं उसके चित्त में पुतलियों का आकार है; तैसेही आत्मरूपी थम्भे में चित्तरूपी शिल्पी पुतलियां कल्पता है। हे रामजी! थम्भे में पुतलियां निकालते हैं तभी निकलती हैं परन्तु आत्मा तो अद्वैत और निराकार है उसमें और कुछ नहीं निकलता और उसमें वाणी की भी गम नहीं चैतन्यमात्र है अहं के फुरनेसे वह आपको चैतन्य जानता है और फिर आगे शब्दों के अर्थ कल्पता है शुद्धअधिष्ठान चैतन्य आपको जानना यही स्वर्ग है। ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, देश, काल इत्यादिक शब्द और अर्थ फुरनेही में हुये हैं-जैसे एकही समुद्र में द्रवता से आवर्त, तरङ्ग, फेन और बुद्बुदे नाम होते हैं, तैसेही सब ब्रह्महीके नाम हैं ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं; ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और वही फुरनेमें जगत् आकार हो भासता है और फुरनेसे रहित होनेसे जगत् आकार मिटजाता है परन्तु फुरने अफुरने में ब्रह्म ज्यों का त्यों है। जैसे स्पन्द में निस्स्पन्द में वायु ज्यों की त्यों है और सबपदार्थ जो भासते हैं सो ब्रह्मस्वरूप हैं। जैसे स्वप्न में अपनाही अनुभव पहाड़, वृक्ष आदिक नाना प्रकार का जगत् हो भासता है, तैसेही ब्रह्मसत्ता ही जाग्रत् जगत्रूप हो भासतीहै और वही कहीं अन्तवाहक; कहीं अधिभौतिक; कहीं ईश्वर और कहीं जीव आदि हो भासता है इससे आदि लेकर शब्द अर्थसंयुक्त जो जीव फुरता गया है सो ब्रह्मसत्ताही इस प्रकार स्थित हुई है। जैसे थम्भेमें पुतलियां थम्भरूप होती हैं, तैसेही आत्माकाश में जगत् आत्मरूप है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसे उसमें जगत् आभास है, तैसेही स्मृति अनुभव भी आभास है। स्मृति जो संस्कार है उससे जगत् की उत्पत्ति तब कहिये जब स्मृति आभास न हो सो तो स्मृति संस्कार भी आभास है यह जगत् का कारण कैसेहो? स्मृति भी तब होती है जब प्रथम जगत् होता है सो जगत् नहीं तो स्मृति कैसे हो? इससे जगत् आभासमात्र है और इसका कारण कोई नहीं। हे रामजी! स्मृति संस्कार जगत् का कारण तब हो जब कुछ जगत् आगे हुआ हो सो तो कुछ हुआ नहीं और अनुभव उसका होता है जो पदार्थ भासता है सो तो इस जगत् के आदि कुछ जगत् का अंश न था फिर अनुभव कैसे कहूं? जो अनुभवही न हुआ तो स्मृति किसको हो और जब स्मृतिही न हुई तो फिर उससे जगत् कैसे कहूं? इसलिये, हे रामजी! आदि जगत् अकारण अकस्मात् फुरा है। जैसे रत्न की लाट होतीहै तैसेही जगत् है और पीछेसे कारण कार्यरूप भासता

है। इससे हे रामजी! जिसका कारण कोई न हो उसे जानिये कि, उपजा नहीं जिसमें भासता है वही रूप है अधिष्ठान से भिन्न कुछ नहीं। सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है; स्मृति भी भ्रम में आभास फुरा है और अनुभव भी आभास है सो ब्रह्ममे भिन्न कुछ नहीं और आभास भी कुछ फुरा नहीं आभासकी नाई जगत् भासताहै—आत्मसत्ता अद्वैत है जिसमें आभास, स्मृति, अनुभव, जाग्रत् और स्वप्न कल्पना कुछ नहीं तो क्या है? ब्रह्महीं है फुरना जो कुछ कहते हैं सो कुछ वस्तु नहीं। जैसे थम्भे में शिल्पी पुतलियां कल्पता है, तैसेही स्पन्द चैतन्य आत्मा में जगत् कल्पती है। शिल्पी तो आप भिन्न होकर कल्पता है और यह चित्तसत्ता ऐसी है कि, अपनेही स्वरूप में कल्पती है और जगत्रूपी पुतलियां देखती है। आत्मा आकाशरूपी थम्भ है उसमें जगत् भी आकाशरूपी पुतलियां है। जैसे आकाश अपने आकाशभावमें स्थितहै, तैसेही ब्रह्म अपने ब्रह्मत्वभाव में स्थित है। जगत् भिन्न भी दृष्ट आताहै परन्तु अचैत चिन्मात्र-स्वरूप है भेदभाव को नहीं प्राप्त हुआ और विकारवान् भी दृष्ट आता है परन्तु विकार नहीं हुआ। जैसे स्वप्ने में आपही सब स्पष्ट भासतेहैं, तैसेही यह जगत् अपने आप में भासता है परन्तु कुछ नहीं है। हे रामजी! यही आश्चर्य है कि, मैंने अपने अनुभव को प्रकट करके उपदेश किया है; जीव आपभी जानते हैं स्वप्ने में नित्य देखते हैं और सुनते भी हैं परन्तु निश्चय करके जान नहीं सके और स्वप्ने के पदार्थों को मूर्खता से त्याग नहीं सके॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशालभजनकोपदेशोनाम द्विशताधिकद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २५२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियों के इष्ट विषयों को पाकर सुख नहीं मानता और अनिष्ट विषयों को पाकर दुःख नहीं मानता; इनके भ्रम से मुक्त है और बड़े भोग प्राप्त हों तौभी अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता उसको जीवन्मुक्त जानो। हे रामजी! सर्वशब्द अर्थ जिसको द्वैतरूप नहीं भासते उसे तुम जीवन्मुक्त जानो। जिस अविद्यारूपी जाग्रत् में अज्ञानी जागते हैं उसमें ज्ञानवान् सोरहे हैं और परमार्थरूपी जाग्रत् में अज्ञानी सोरहे हैं, वे नहीं जानते कि, यह अर्थ है पर उसमें जीवन्मुक्त स्थितहै इस कारण ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट विषयोंको पाकर सुखी और दुःखी नहीं होते उनका चित्त सदा आत्मपद में स्थित है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो पुरुष सुख पाकर सुखी नहीं होता और दुःख से दुःखी नहीं होता सोतो जड़ हुआ, चैतन्य तो न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सुख दुःख तबतक होता है जबतक चित्त को जगत् का सम्बन्ध होता है। जब चित्त जगत् के सम्बन्ध से रहित चिन्मात्र होता है तब उपाधिक सुखदुःख नहीं रहते और जो अपने स्वभाव में स्थित पुरुष हैं

वे परमविश्राम को प्राप्त होतेहैं और सब कुछ करते हैं परन्तु स्वरूप से उनको कर्तव्य
का उत्थान कुछ नहीं होता और सदा अद्वैत में निश्चय रहता है । नेत्रों से वे देखते
हैं परन्तु द्वैत की भावना उनको कुछ नहीं फुरती। जैसे अत्यन्त उन्मत्त को सर्वपदार्थ
दृष्ट भी आतेहैं परन्तु पदार्थों का ज्ञान नहीं होता, तैसेही जिसकी बुद्धि अद्वैत में
घनीभूत हुई है उसको द्वैतरूप पदार्थ नहीं भासते। जिनको द्वैत नहीं भासता उनको
सुख दुःख कैसे भासे ? उन पुरुषों ने वहां विश्राम किया है जहां न जाग्रत् है, न
स्वप्न है और न सुषुप्ति है। वे सर्व द्वैत से रहित अद्वैतरूपी शय्या में विश्राम कर-
रहे हैं और संसारमार्ग से उल्लंघ गये हैं। आत्मा के प्रमाद से जीव को कष्ट होताहै।
जो अपनी विभूति विद्या को त्यागकर प्रसन्न होता है और फिर संसार के क्रूरमार्ग
में कष्ट पाता है वह मनुष्य नहीं मानों मृग है। वह संसाररूपी जङ्गल में कष्ट पाता
है और जब तृषा से कायर होता है तब जल की ओर दौड़ता है पर जहां जाता है
वहां मरुस्थल की नदी भासती है और जल प्राप्त नहीं होता; तब आगे दौड़ता है
और तृषा अधिक बढ़तीजाती है। इस प्रकार दौड़ता दौड़ता जड़ होजाता है और
दुःखी होकर मरजाता है परन्तु जल प्राप्त नहीं होता। यह जल, दौड़ना, जड़ता
और मरना चारों भिन्न २ सुनो। हे रामजी ! मनरूपी तो मृग है जो संसाररूपी ज-
ङ्गल में आनपड़ा है और इन्द्रियों के विषयरूपी जलाभास को सत्य जानकर शान्ति
के निमित्त तृष्णारूपी मार्ग में दौड़ता है पर वे विषय आभासमात्र हैं और उनमें
शान्तिरूपी जल नहीं है इसलिये वह दौड़ता दौड़ता जब वृद्ध अवस्था में जापड़ता
है तब जड़ होजाताहै और बड़े कष्ट को प्राप्त होताहै पर शान्तिरूपी जल नहीं पाता
इससे तृप्त भी नहीं होता। हे रामजी ! मनुष्य मानों मजदूर है जिसके शिरपर बड़ा
भार है और क्रूरमार्ग में चलाजाता है जहां उसको चोर ने लूटलिया है इससे जलता
है। हे रामजी ! मनुष्यरूपी मजदूर के शीश पर जन्म का बड़ाभार है और संशय-
रूपी क्रूरमार्गमें खड़ाहै। कर्मइन्द्रिय और ज्ञानइन्द्रिय के इष्ट अनिष्ट विषयहैं इससे
राग द्वेषरूपी तस्कर ने विचाररूपी धन हरलिया है इससे वह राग, द्वेष और तृष्णा-
रूपी अग्नि से जलता है। बड़ा आश्चर्य है कि, ऐसे क्रूरमार्ग को त्यागकर उन्हों ने
परमपद में विश्राम पाया है और अन्य आनन्द को त्यागकर परमपद आनन्द को
प्राप्त हुये हैं। उन मुक्त पुरुषों को संसार का दुःख सुख व्याप नहीं सक्ता क्योंकि, वे
परम अद्वैत शुद्धसत्ता को प्राप्त हुये हैं। वे सर्वको देखते हैं और ग्रहण और त्याग-
रूपी अग्नि को त्यागकर उन्हों ने परमपद में विश्राम पायाहै और सदा सोये रहते
हैं। प्रकट में सुखसे जो सोते हैं तो वही सोते हैं और उनके भीतर सदा शान्ति
रहतीहै परन्तु जड़ता से रहित हैं और आकाशसे भी अधिक सूक्ष्मसत्ता को प्राप्त

हुये हैं। जैसे समुद्र में धूलि नहीं होती और सूर्य में तम नहीं होता तैसेही उनमें इन्द्रियों के इष्ट विषयों की तृष्णा नहीं होती। उनसे रहित होकर उन्होंने विश्राम पायाहै। यह आश्चर्यहै कि, अणुसे अणु होकर और महत्‌से महत् होकरभी वे केवल विश्रामवान् हुये हैं। हे रामजी! जो आत्मसत्ता की ओर से सोये पड़ेहैं उनको दुःख होता है और ज्ञानवान् द्वैत जगत् की ओर जड़ हुये हैं और अपने स्वरूप में स्थितहैं इससे चैतन्यको दुःख कुछ नहीं। वे जाग्रत् की ओरसे सोयेहैं और उनको अविद्यक जगत् और दृश्यका सम्बन्ध दूर होगयाहै जब वे इस ओरसे सोयेहैं तो उनको फिर दुःख कैसेहो? वे पुरुष सदा अद्वैतरूपहैं। जो अनन्त जगत् को कर्ता है और आपको सदा अकर्ता जानताहै ऐसे आश्चर्यपद में उन्हों ने विश्राम पायाहै। जगत् के समूहसत्ता समान में स्थिति करके उन्होंने विश्राम पाया है यह आश्चर्य है। वे सम्पूर्णक्रिया को करतेहैं परन्तु सदा अक्रियपदमें स्थित हैं और सम्पूर्ण पदार्थों को स्वप्नवत् जानकर सुषुप्त हुये हैं। वे आकाश से भी अधिक सूक्ष्महैं क्योंकि, आत्मसत्तामें विश्राम पायाहै। वह आत्मसत्ता आकाश को भी व्यापरहीहै; उसीको आत्मवत् जान करके वे स्थित हुये हैं। जो परमस्वच्छपदहै उसमें सर्वशब्द अर्थ आकाशरूप होजाते हैं और आकाश भी आकाश होजाता है; उस पद में उन्होंने विश्राम किया है सोही आश्चर्य है। नेत्र उसके खुलेहुये हैं पर सुषुप्ति में स्थित हैं। क्या सुषुप्ति है कि, दृग और दृश्यभाव उनका दूर होगयाहै और जगत् के प्रकाश से रहित और परम प्रकाशरूप हैं। हे रामजी! बाहर के भोग पदार्थों से वे रहित हैं और आत्मा में स्थित हैं। प्रकट वे सोते हैं पर सुषुप्ति में जागते हैं और जाग्रत् से उनको सुषुप्ति है। उस सुषुप्ति से वे सोये हैं और कर्म करतेहैं परन्तु कर्ता कारणभाव से रहित हैं। क्रोध भी करते हैं परन्तु क्रोध के फुरने से रहित हैं और सर्वओर से प्रकाशवान् निर्भय होकर विश्राम करते हैं। कामना करते भी इष्ट आतेहैं परन्तु तृष्णासे रहित हैं और निस्संकल्पपदमें स्थितहुये हैं। यह आश्चर्य है कि, जिस क्रियाकी ओर वे देखते हैं उसी ओर उनको शान्ति भासती है क्योंकि, एक मित्र उनके साथ रहताहै उससे कोई दुःख उनके निकट नहीं आता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तलक्षणवर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २५३॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! वह मित्र कौन है? ज्ञानी का कोई कर्ममित्रहै अथवा आत्मा में विश्राम का नाम मित्रहै; यह संक्षेपपूर्वक मुझ से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक अकृत्रिम कर्म है अपने सुकर्म उनका नामहै और अपना ही प्रयत्न उनका मित्र है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ये तीनों ताप सदा

अज्ञानी को जलाते हैं पर ज्ञानी को नहीं भासते। जो बड़ा कष्ट प्राप्त हो जिसे लांघना कठिन है और बहुत कोप हो सोभी उसको स्पर्श नहीं करता। जैसे कमल को जल नहीं स्पर्श करता, तैसेही ज्ञानीको कष्ट नहीं स्पर्श करता क्योंकि; वह मित्र उसके साथ रहता है। जैसे बालक का मित्र बालक होताहै सो बड़ेभये भी उसका हितू होता है, तैसेही चिरकाल जो ज्ञानवान्ने अभ्यास किया है सोही अभ्यास उसका मित्र हो रहता है और दुष्ट क्रिया की ओर उसे नहीं बिचरने देता शुभकी ओर बर्ताता है। जैसे पिता पुत्रको अशुभ की ओरसे बर्जकर शुभ की ओर लगाताहै, तैसेही विचाररूपी मित्र उसको तृष्णा से वर्जन करताहै और आत्माकी ओर स्थित करताहै। वह राग द्वेषरूपी अग्निसे निकालकर समतारूपी शीतलता को उसे प्राप्त करताहै। ऐसा विचाररूपी उसका मित्रहै जो सर्व दुःख क्लेशादि से उसे तार लेजाताहै—जैसे मल्लाह नदी से नार लेजाता है। हे रामजी! विचाररूपी मित्र बहुत सुन्दर है; शान्तरूप है और सर्व मैल को जलानेवाली अग्नि है। जैसे सुवर्ण के मैल को अग्नि जलाकर निर्मल करती है, तैसेही विचाररूपी अग्नि राग द्वेषरूपी मल को जलाती है। जब विचाररूपी मित्र आता है तब स्वाभाविक चेष्टा निर्मल होजाती है और वेदोक्त विचरता है। तब सब कोई उसको देखकर प्रसन्न होता है और दया, कोमलता, अमान और अक्रोध आदिक गुण आन प्राप्त होते हैं। जैसे तिलोंमें तेल, फूलमें सुगन्ध और अग्निमें उष्णता रहती है, तैसेही विचार में शुभ आचार रहतेहैं। विचाररूपी मित्र शूरमाहै जो कोई शत्रु होताहै प्रथम वह उसको मारता है और अज्ञानरूपी शत्रु को नाश करताहै—जैसे सूर्य तमको नाश करताहै—और दीपकके प्रकाशवत् साथ होता है एवं विषय भोगरूपी अन्धेकूप में जो मैलहै उसमें गिरने नहीं देता और सर्व ओर से रक्षा करता है। जिस ओर से वह पुरुष जाता है उस ओर सबको प्रसन्नता उपजती है। हे रामजी! उसका वचन कोमल, मधुर और स्निग्ध होता है और वह उदारात्मा क्षोभ से रहित और लोगों पर उपकार और प्रसन्नता के लिये बोलता है और सौहार्दता; शान्तरूप और परमार्थ का कारणहै। हे रामजी! वचन तो उसकी प्रसन्नता के लिये होते हैं और आपभी सदा प्रसन्न रहता है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने भर्तारको सदा प्रसन्न रखती है, तैसेही विचाररूपी मित्र उसको सदा प्रसन्न रखता है और शुभ आचार में चलाता है। दान, तप, यज्ञादिक शुभक्रिया वह आपभी करताहै और लोगों से भी कराताहै। जिसके अन्तःकरण में विवेकरूपी मन्त्री आता है वहां वह अपने परिवार को भी साथ ले आता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उसका परिवार कौन है; उसका स्वरूप क्या है और क्या आचारहै संक्षेप से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्नान, दान, तपस्या और ध्यान ये चारों उसके बेटे हैं।

स्नान तो यह है कि, वह सदा पवित्र रहता है और यथायोग्य और यथाशक्ति दान करता है। बाहर की वृत्ति को भीतर स्थित करने का नाम तपहै और आत्मा की वृत्ति में चित्त को लगाने का नाम ध्यान है। ये चारों उसके बेटे हैं जो आत्मदर्शी हैं परन्तु वृत्ति को सदा स्वाभाविक अन्तर्मुख करके व्यवहार करते हैं। मुदिता उसकी स्त्री है—सदा प्रसन्न रहने का नाम मुदिता है—जो नमस्कार के योग्य है। जैसे द्वितीया के चन्द्रमा की रेखा को देखकर सब कोई प्रसन्न होता है और नमस्कार करता है तैसेही उसको देखकर सब कोई प्रसन्न होताहै और नमस्कार करता है। मुदितारूपी स्त्री के साथ करुणा और दयानामा एक सहेली रहतीहै और समतारूपी द्वारपालनी सन्मुख खड़ी रहती है। जब विवेक राजा अन्तःपुर में आता है तब वह सन्मुख होकर सब स्थान दिखाती है और सदा संगी रहती है। जिस ओर राजा देखता है उस ओर समताही दृष्ट आतीहै जो आनन्दके उपजावनेवालीहै। वह दो पुत्र साथ लेकर पुरी में विचरती है और जिसओर राजा भेजताहै उस ओर धैर्य और धर्म लिये फिरती है। जब राजा सवार होकर चलताहै तब वहभी समतारूपी वाहनपर आरूढ़ होकर राजा के साथ जाती है और जब राजा विषयरूपी पांचों शत्रुओं से लड़ाई करता है तब धैर्य और संतोष मन्त्री मन्त्र देताहै और विचाररूपी बाण से उनको नष्ट करता है। हे रामजी! विचार सदा उसके संग रहता है और सब कार्य को करता है। यह चेष्टा उससे स्वाभाविक होतीहै; आप सदा अमान रहताहै और कर्तृत्व—भोक्तृत्व का अभिमान उसको कोई नहीं फुरता जैसे कागज़ पर मूर्ति लिखी होतीहै जो अभिमान से रहित है, तैसेही वह भी अभिमान से रहित है और परमार्थनिरूपण से रहित निरर्थक वचन नहीं बोलता जैसे पाषाण नहीं सुनता—और जो क्रिया शास्त्रों और लोगों से निषेध कीगई है वह नहीं करता जैसे शव से कुछ क्रिया नहीं होती, तैसेही उसको क्रियाका उत्थान नहीं होता। जहां ज्ञानवान् और जिज्ञासुओंकी सभा होतीहै वहां वह परमार्थके निरूपण को शेषनाग और बृहस्पतिकी नाईं होता है और सावधानता इत्यादिक जो शुद्धक्रियाहै सो उसमें स्वाभाविक होतीहै। जैसे सूर्य, चन्द्रमा, और अग्निमें प्रकाश स्वाभाविक होताहै, तैसेही उसमें शुभक्रिया स्वाभाविक होतीहैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तिवाह्यलक्षणव्यवहारवर्णनंनाम
द्विशताधिकचतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ २५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् वास्तव में ज्ञानस्वरूपहै और आत्मसत्ता का चमत्कार है; और कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ता ही फुरने से इस प्रकार हो भासतीहै। इसका कारण भी कोई नहीं। जब महाप्रलय थी तब शब्द—अर्थ द्वैत कुछ न था उस अद्वैतसत्ता से जगत् फुर आया है। जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है सो बीज भी

जगत् का कोई न था तो किस कारणसे उत्पन्न हुआ और तो कोई कारण न था इससे अब भी जगत् को महाप्रलयरूप जानो। हे रामजी ! न कोई पृथ्वी आदिक तत्त्व है; न जगत् है न आभास है और न फुरना है। जैसे आकाश के फूलों में सुगन्ध नहीं होती तैसेही इनका होना भी नहींहै केवल स्वच्छ ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। रूप, इन्द्रियां और मन भी ब्रह्मस्वरूप है। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभव है और मन ही नाना प्रकार का जगत् आकार और इन्द्रियां होकर भासता है और तो कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् भी वही रूप है। हे रामजी ! सर्व जगत् आत्मरूप है। जैसे कारण विना आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासिआता है सो कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मा का आभास है और जिसमें यह आभास फुरा है सो अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है। ये सर्वपदार्थ जो तुमको भासते हैं उन्हें ब्रह्मस्वरूप जानो। जैसे मनो-राज की सृष्टि होती है सो अपने अनुभव में होती है और उसका स्वरूप अनुभव से भिन्न नहीं होता, तैसेही सृष्टि के आदि जो अनुभव होता है सो अनुभवरूप है और कुछ उपजा नहीं—वही अनुभवसत्ता इस प्रकार भासती है। हे रामजी ! देश से देशान्तर को जो संवित् प्राप्त होती है उसके मध्य में जो अनुभव है सोही तुम्हारा स्वरूपहै और सब आभासमात्रहै। जाग्रत् देश को त्यागकर जो स्वप्न शरीर के साथ नहीं मिली और जाग्रत् स्वप्नदेश के मध्य में ब्रह्मसत्ताहै वही तुम्हारा स्वरूपहै। वह प्रकाशरूप और अपने आपमें स्थित है और जाग्रत् जगत् जो भासता है सोभी उसीका स्वभाव है। जैसे रत्नों का स्वभाव चमत्कार है; अग्नि का स्वभाव उष्ण है, जल का स्वभाव द्रवहै और पवन का स्वभाव फुरनाहै, तैसेही ब्रह्म का स्वभाव जगत् है। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी ! यह आश्चर्य है कि अज्ञानी सत्य को असत्य और असत्य को सत्य जा-नते हैं; जो अनुभवसत्ताहै उसको छिपाते हैं और शशे के सींगवत् जगत् को प्रत्यक्ष जानते हैं। वे मूर्ख हैं, उनको क्या कहिये ? सबका प्रकाशक आत्मसत्ताहै। जिसको तुम सूर्य देखतेहो सो वही परमदेव सूर्य होकर भासता है और चन्द्रमा और अग्नि उसी के प्रकाश से प्रकाशते हैं निदान सबका प्रकाश और तेज सत्ता वही है। जैसे सूर्य की किरणों में सूक्ष्म अणु होते हैं; तैसेही आत्मसत्ता में सूर्यादिक भासते हैं। जिसको साकार और निराकार कहते हो वह सब शशेके सींगवत् हैं। ज्ञानवान् को ऐसेही भासता है कि, जगत् कुछ उपजा नहीं तो मैं क्या कहूं ? जहां सर्वशब्दों का अभाव होजाता है और उसके पीछे चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है वहां शून्य का भी अभाव होजाता है। हे रामजी ! जिनको तुम जीता कहते हो सो जीता भी कोई नहीं और जो जीता नहीं तो मुआ कैसे हो ? जो कहिये जीता है तो जैसे जीता है तैसेही

मृतकहै; मृतक और जीतेमें कुछ भेद नहीं; इसलिये सर्वशब्दोंसे रहित और सबका अधिष्ठान वही सत्ता है। उसमें नानात्व भासता भी है परन्तु हुआ कुछ नहीं। पर्वत जो स्थूल दृष्ट आते हैं सो अणुमात्र भी नहीं–जैसे स्वप्ने में पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परन्तु कुछ हुये नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और उसीमें जगत् भासताहै। हे रामजी! जो परमार्थसत्ता से जगत् भासआया सो तो और कुछ न हुआ; इससे वही सत्ता जगत्रूप हो भासती है। कोई कहते हैं कि, आत्मा में है और कोई कहते हैं कि, आत्मा में कुछ नहीं है पर आत्मा में दोनों शब्दों का अभाव है और अभाव काभी अभाव है। यहभी तुम्हारे जानने के निमित्त कहताहूं; वह तो स्वस्थ और परम शान्तरूपहै और उसमें और तुम्हारे में कुछ भेद नहीं। वह परिपूर्ण अच्युत अनन्त और अद्वैत है और वही जगद्रूप होकर भासता है जैसे कोई पुरुष शयन करता है तो सुषुप्ति में अद्वैतरूप होजाता है; फिर सुषुप्ति से स्वप्ना फुर आता है और फिर सुषुप्तिमें लीन होजाताहै तो उपजा क्या और लीन क्या हुआ? स्वप्ने के आदि भी अद्वैतसत्ता थी; अन्त मेंभी वही रही और मध्य में जो कुछ भासा वह भी वही रूप हुआ, आत्मा से भिन्न तो कुछ न हुआ? इस लिये सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप है–ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! हमको तो सदा अनुभवरूप जगत् भासता है। हम नहीं जानते कि, अज्ञानी को क्या भासताहै। जैसे स्वप्ने की सृष्टि से जो जागा है उसको अद्वैत अपना आप भासता है, तैसेही तुरीया में भासता है। तुरीया और जाग्रतमें भेद कुछ नहीं, जाग्रत्ही तुरीया का नामहै और जाग्रत् तुरीयारूप है बल्कि, यहभी क्या कहना है सबही अवस्था तुरीयारूप है। तुरीया जाग्रत् सत्ता का नाम है। जो अनुभव साक्षी ज्योति है सो जाग्रत् में भी साक्षीरूप है; स्वप्ने में भी साक्षीरूप है और सुषुप्ति मेंभी साक्षीरूप है। इसलिये सब तुरीयारूपहै परन्तु जिसको स्वरूपका अनुभव हुआहै उस ज्ञानवान्को ऐसेही भासताहै और अज्ञानी को भिन्न भिन्न अवस्था भासती हैं। हे रामजी! एक पदार्थ का वृत्ति ने त्याग किया पर दूसरे पदार्थ में नहीं लगी वह जो मध्य में अनुभव ज्योति है उसको तुम आत्मसत्ता जानो और उसमें जो फिर कुछ भासा उसेभी वही रूप जानो। जैसे जाग्रत् को त्यागकर स्वप्नके आदि साक्षी अनुभवमात्र होताहै और उस सत्तामें स्वप्ने का शरीर और पदार्थ भासते हैं वहभी आत्मरूप हैं; तैसेही जो कुछ जाग्रत् शरीर और पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं। जब तुम ऐसे जानोगे तब तुमको कोई दुःख स्पर्श न करेगा। जैसे स्वप्ने की सृष्टि में अपने स्वरूप की स्मृति आने से दुःखभी सुख होताहै और बोलना, चालना, खाना, पीना, देना, लेना आदि शब्द और अर्थ और द्वैतरूप युद्धमें सब अद्वैत अपना आप होजाते हैं और व्यवहार भी सब करताहै परन्तु

अपने निश्चय में कुछ नहीं फुरता, तैसेही जो पुरुष अपने स्वरूप में जागे हैं उनको सब जगत् आत्मरूपही भासता है। जैसे अग्नि में उष्णता और बरफ़ में शीतलता स्वाभाविकहै, तैसेही ज्ञानवान् को आत्मदृष्टि स्वाभाविकहै। और लोगोंको यह दृष्टि यत्नसे प्राप्त होतीहै पर ज्ञानवान् को स्वाभाविक होतीहै। जिसको तुम इच्छा कहतेहो सो ज्ञानवान् को सब भ्रमरूपहै और अनिच्छा भी ब्रह्मरूप भासतीहै। ज्ञानवान् को आत्मानन्द प्राप्त हुआहै और वह अपना जो स्वभावहै उसमें सदा स्थितहै इससे उस को कोई कल्पना नहीं उठती और वह विद्यमान निरावरण दृष्टि लेकर स्थित होताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेद्वैतएकताअभाववर्णनंनाम द्विशताधिकपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २५५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे स्वप्नमें पृथ्वी आदिक पदार्थ भासते हैं सो अविद्यमानहैं—कुछ हैं नहीं; तैसेही पिता माता जो आदिब्रह्माजी हैं उनकोभी आकाशरूप जानो। वहभी कुछ हुये नहीं और आत्मसत्तासे भिन्न कुछ उनका होना नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे उठते हैं सो स्वाभाविक हैं और तरङ्ग शब्द कहना भी उनको नहीं बनता वे तो जलरूप हैं, तैसेही जिनको तुम ब्रह्माजी कहते हो सो और कोई नहीं आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है। ब्रह्माजी इस प्रकार का विराट् है कि, जैसे पत्र, फूल, फल और टास वृक्ष के अङ्ग हैं, तैसेही सब भूत उस विराट् के अङ्ग हैं। जो विराट्ब्रह्माही आकाशरूप है तो उसके अङ्ग जगत् की वार्त्ता क्या कहिये? हे रामजी! विराट् के न प्राण है, न आकार है, न इन्द्रियां हैं; न मन है, न बुद्धिहै, और न इच्छा है केवल अद्वैत चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है। जो विराट्ही नहीं तो जगत् कैसेहो? जो तुम कहौ आकाशरूप के अङ्ग कैसे भासते हैं? तो हे रामजी! जैसे स्वप्न में बड़े पहाड़ और पर्वत प्रत्यक्ष दृष्ट आते हैं परन्तु कुछ बने नहीं आकाशरूप हैं; तैसेही आदि विराट् भी कुछ बना नहीं आकाशरूप है तो उसके अङ्ग मैं आकाररूप कैसे कहूं? सब आकार संकल्पपुर की नाईं कल्पित हैं। एक आत्मसत्ताही सर्वदा काल ज्योंकी त्यों स्थितहै उसमें स्मृति और अनुभव क्या कहिये? अनुभव और स्मृति भी उसीका आभासहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग आभास होते हैं, तैसेही आत्मा में अनुभव और स्मृति भी आभास है। स्मृति भी उसकी होती है जिसका प्रथम अनुभव होता है सो अनुभव भी जगत् में होता है पर जहां जगत्ही उपजा न हो तो अनुभव और स्मृति उसको कैसे हो? इसलिये न अनुभव है और न स्मृति है इस कल्पना को त्याग दो। जहां पृथ्वी होती है तहां धूलि भी होती है पर जहां पृथ्वी से रहित आकाश ही हो वहां धूलि कैसे उड़े? इसी प्रकार जहां पदार्थ होते हैं वहां स्मृति अनुभव भी होताहै और जहां पदार्थही नहीं तो यह

कैसे हो? इससे दोनोंका अभावहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! स्मृतिमानों में इष्ट स्मृति का अनुभव तो प्रत्यक्ष होता है? प्रथम पदार्थ का अनुभव होताहै पीछे उस की स्मृति होती है और उस स्मृति संस्कार से फिर अनुभव होता है तो ऐसेही भ्रमादिक का क्यों नहीं होता ये तो प्रत्यक्ष भासतेहैं? तुम कैसे इनका अभाव कहते हो और अभाव में विशेषता क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्मृतिसे अनुभव वहां होता है जहां कार्य कारण भाव होता है। ब्रह्मा से आदि लेकर काष्ठपर्यन्त सर्व जगत् जो तुमको भासताहै सो सब आकाशरूपहै कुछ बना नहीं और अविद्यमान ही भ्रमसे विद्यमान भासता है। जैसे सूर्य की किरणों में जल आभासहै सो अविद्यमान है पर भ्रम से जल भासता है; तैसेही यह जगत् भ्रम से भासताहै। स्मृति उस की होतीहै जिस पदार्थ का प्रथम अनुभव होताहै। जो कहिये कि, भ्रमादिक स्मृति संस्कार से उपजी है तो ऐसे नहीं बनता क्योंकि; प्रथम तो ज्ञानवान् स्मृति से नहीं होता तो उनका स्मृति कारण कैसे कहिये? और द्वितीय यह है कि, इस जगत् के आदि कोई जगत् न था जिसकी स्मृति मानिये। इस जगत् के आदि केवल अद्वितीय आत्मसत्ता थी उसमें स्मृति क्या और अनुभव क्या? इसलिये ब्रह्मादिक और जगत् किसी कारण कार्यभावसे नहीं उपजे अकारण हैं। हे रामजी! प्रथम तो तुम यह देखो कि; ज्ञानी को जगत् नहीं भासता तो स्मृति किसको कहिये? उसको तो केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है। जैसे सूर्य को रात्रिकी स्मृति नहीं होती; तैसेही ज्ञानी को जगत् की स्मृति नहीं होती हमारे निश्चय में तो यहहै कि; जगत् न हुआहै और न आगे होगा केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै सो अद्वैतहै और उसीका सब आभासहै जो आभासको सत्य जानते हो तो स्मृति को भी सत्य जानो और जो आभास को असत्य जानते हो तो स्मृति को भी असत्य जानो। जैसे स्वप्न में सृष्टि का आभास होता है और उसमें अनुभव और स्मृति होती है पर जागेसे सृष्टि अनुभव स्मृति का अभाव होजाताहै; तैसेही अद्वैत परमात्मसत्ता के जाग्रत् में अनुभव और स्मृतिका अभावहै और उसमें जगत् कुछ बना नहीं। जैसे कोई पुरुष मरुस्थल में भ्रम से नदी देखताहै और सत्य जानकर उसकी स्मृति करताहै पर वह नदी तो कुछ नहींहै जो नदीही असत्यहै तो उसकी स्मृति कैसे सत्य हो; तैसेही अज्ञानीके निश्चयमें जगत् भासित हुआहै सो जगतही असत्य है तो उसकी स्मृति अनुभव कैसे हो? ज्ञानवान् के निश्चय में ऐसेही भासता है। हे रामजी! स्मृति पदार्थ की होतीहै सो पदार्थ कोई नहीं सर्व ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और जैसे जैसे उनमें फुरना होताहै तैसाही होकर भासते हैं परन्तु और कुछ वस्तु नहीं। जैसे वायु चलताभी है और ठहरताभी है पर चलने और ठहरने में वायुको कुछ भेद नहीं; तैसेही ज्ञानवान्को जगत्के फुरने

अफुरनेमें ब्रह्मसत्ता अभेद भासतीहै और कारण कार्य नहीं भासता। जैसे पत्र, टहनी, फूल और फल सब वृक्षके अवयव हैं, तैसेही जगत् आत्माके अवयव हैं; आत्मा में प्रकट होते हैं और फिर आत्मा मेंही लीन भी होजाते हैं भिन्न कुछ नहीं। जब चित्त स्वभाव फुरता है तब जगत् होकर भासताहै कुछ आरम्भ और परिणाम करके नहीं होता—आभासमात्र है। जैसे घट पट आदिक आत्मा का आभासहै, तैसेही स्मृति भी आभास है। स्मृतिभी जगत् में उदय हुई है जो जगत्ही असत्य है तो स्मृति कैसे सत्यहो? जो यथार्थदर्शी हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासताहै। हमको न कुछ मोक्ष उपाय भासता है और न इसका कोई अधिकारी भासता है; हमारे निश्चय में अद्वैत ब्रह्म-सत्ताही भासतीहै। जैसे नट स्वांग धारताहै पर सब स्वांगों को आभासमात्र जानता है किसीको सत्य नहीं जानता पर उससे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही हमको ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता। अज्ञानीके निश्चय को हम नहीं जानते। जिस प्रकार उसको जगत् शब्द है सो उसके निश्चय को कोई नहीं जानता। हमारे निश्चय में सब चिन्मात्रहै। अज्ञानी को जगत् द्वैतरूप भासता है और विपर्यय भावना होती है और ज्ञानवान् को चिन्मात्र से भिन्न कुछ नहीं भासता। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपने अनुभव में स्थित होतीहै और सर्व का अधिष्ठान अनुभवसत्ता है परन्तु निद्रादोष से भिन्न २ भासती है; तैसेही अज्ञानी को जगत् भिन्न २ भासता है और जो जागेहुये ज्ञानवान् हैं उन को भिन्न कुछ नहीं भासता और न उनको अविद्या, न मूर्खता और न मोह भासता है उन्हें सब अपना आपही ब्रह्मस्वरूप भासताहै। जहां कुछ दूसरी वस्तु नहीं बनी वहां स्मृति और अनुभव किसका कहिये? यह कलना सबही मिथ्या है। हे रामजी! सब अर्थों का जो अर्थभूत है सो ब्रह्म है उसीमें सब पदार्थ कल्पितहैं। स्मृति और अनुभव मन में होता है सो मन आत्मा में ऐसे है जैसे सूर्यकी किरणों में जलाभास होता है तो उसमें स्मृति और अनुभव क्या कहिये? सब कल्पितहै। पृथ्वी आदिक तत्त्व आत्मा में कुछ बने नहीं ब्रह्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है—ज्ञानबान् को सदा ऐसेही भासताहै। आभास भी आत्मा में आभास है और कारण कार्यभाव कदाचित् नहीं भासता। जैसे सूर्यको अन्धकार कदाचित् नहीं भासता; तैसेही ज्ञानवान् को कारण कार्यभाव दिखाई नहीं देता। जैसे स्वप्न के आदि अद्वैतसत्ता होतीहै और उस में अकारण स्वप्न की सृष्टि फुर आती है; तैसेही अद्वैतसत्तामें अकारण आदि सृष्टि फुरआई है। न पृथ्वी है और न कोई दूसरा पदार्थहै सब चिदाकाशरूप है और कुछ बना नहीं तो आभासमात्र जगत् में स्मृति की कल्पना कैसेहो?॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्मृत्यभावजगत्परमाकाशवर्णनन्नाम द्विशताधिकषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २५६॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिसमें सर्व अनुभव होताहै उसके देह में अहंप्रत्यय किस प्रकार होतीहै? वह तो सर्वात्माहै उस सर्वात्मा को एक देह में अहंप्रत्यय क्योंकर होतीहै और काष्ठ पाषाण पर्वत और चैतन्यता का अनुभव किस प्रकार होगया है वह तो अद्भुत स्वरूप है उसमें जड़ चैतन्य ये दोनों भेद कैसे हुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे शरीर में हाथ आदिक अपने अङ्ग हैं और उन सर्व अङ्गों में एकशरीर फुरना व्यापा हुआ है पर जो उन अङ्गों में एक अङ्ग को पकड़कर कहे कि, नाम ले कौन है तब वह अपनी नाम संख्या कहता है; तो तुम देखो कि, उस एक अङ्ग में अपना आप कहा परन्तु सर्व अङ्गोंमें उसकी आत्मता तो नाश नहीं होजाती है; तैसेही आत्मा अनुभवरूप है तौभी एक अङ्ग में उसकी आत्मता फुरती है इससे उसकी सर्वात्मता खण्डन तो नहीं होजाती? जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी आदिक सर्व अङ्ग में वृक्ष एकही व्यापा हुआ है परन्तु जो एक टहनी अथवा पत्र को पकड़कर कहता है कि, यह वृक्ष है तो इसके एक अङ्ग में वृक्षभावना कहना वृक्ष का सर्वात्मभाव नष्ट नहीं होता; तैसेही सर्वात्मा एक देह में अहंभाव सिद्ध होता है और जड़ और चैतन्यभी दोनों भाव एकही के धारे हैं और एकही के दोनों स्वरूप हैं। जैसे एकही शरीर में दोनों सिद्ध होते हैं और हाथ, पांव आदिक जड़ हैं और नेत्र इसके द्रष्टा चेतन हैं सो एकही शरीर दोनों धारे हैं और दोनों एकही शरीर के स्वरूप हैं; तैसेही एक आत्मा ने दोनों धारे हैं और एकही के स्वरूप हैं। जैसे वृक्ष अपने अङ्ग को धारता है और वृक्ष स्वभाव कोभी धारताहै, तैसेही सर्वात्मा सर्व को धारता है। जैसे स्वप्न की सृष्टि सर्वको अनुभव धारती है और सर्वक्रियाको भी धारती है; तैसेही आत्मसत्ता सर्वजगत् और जगत् की सर्वक्रिया को धारतीहै क्योंकि; सर्वात्मा है और जो सर्वात्मा है सो क्यों न धारे? जैसे एकही समुद्र में अनेक तरङ्ग उठते हैं परन्तु सबही समुद्र के आश्रय हैं और वही रूप हैं; तैसेही सर्वजीव परमात्मा में फुरते हैं; परमात्मा के आश्रयहैं और वही रूप हैं। जैसे तरङ्ग आपको जाने कि, मैं जलही हूं तो तरङ्ग उसकी संज्ञा जाती रहतीहै जलरूपही दिखताहै; तैसेही जीव जब परमात्मा से आपको अभेद जाने कि, 'मैं आत्माही हूं' तब उसके जीवत्वभाव का अभाव होजाता है, परमात्माही दिखता है। हे रामजी! जैसे जल में द्रवता से तरङ्ग भासते हैं परन्तु तरङ्ग जल से भिन्न कुछ वस्तु नहीं, तैसेही शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से आदि ब्रह्मा फुरा है और उसने यह जगत् मनोराज से कल्पा है सो आकाशरूप निराकार है और कुछ बना नहीं। जो विराट्ही आकाशरूप हुआ तो उसका शरीर कैसे साकार हो—वहभी निराकार है। जैसे अपना अनुभव स्वप्न में पर्वत, नदियां, जड़ और चैतन्य होकर भासता है; तैसेही सर्वजगत् जो भासता है सो आत्मरूपहै। हे रामजी!

जैसे एक निद्रा के दो स्वरूप हैं–स्वप्न और सुषुप्ति; तैसेही एकही आत्मा ने जड़ और चैतन्य दो स्वरूप धारेहैं। जगत् आत्मामें कुछ बना नहीं यह आभासरूपहै और आत्मसत्ता ही अपने वचनद्वारा जगतरूप हो भासती है। जैसे आकाश में घन शून्यता के कारण नीलता भासती है सो अविचार सिद्ध है–नीलता कुछ बनी नहीं; तैसेही आत्मा में घन चैतन्यता से जगत् भासता है परन्तु जगत् आकार कुछ बना नहीं सर्वदाकाल आत्मा अद्वैत निराकार है। अनन्तसृष्टि आत्मा में आभास उपजकर लीन होजाती है और आत्मा ज्यों का त्यों है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर लीन होजाते हैं परन्तु जलरूप हैं; तैसेही परब्रह्म में सृष्टि परब्रह्मरूप है। हे रामजी! यह जगत् विराट् का शरीरहै; महाकाश उसका शीशहै; दशों दिशा उसकी भुजा हैं; पृथ्वी उसके चरण हैं; पातालरूप तली हैं, अन्तरिक्ष मध्यलोक उदर है; सर्व जीव उसकी रोमावली हैं और इनसे लेकर सर्वपदार्थ विराट् के अङ्ग हैं सो विराट् आकाशरूप है। जैसे विराट्ब्रह्माजी आकाशरूप है, तैसेही उसका जगत्भी आकाशरूप है। इस से सर्व जगत् विराट्रूप है सो ब्रह्महो है और कुछ बना नहीं। चन्द्रमा और सूर्य उसके नेत्र हैं; मैं और तुमसे आदि लेकर सर्व शब्दोंका अधिष्ठान ब्रह्मही है सो ब्रह्म मैं हूं। जिसमें दूसरा बना नहीं सदा मैं अपनेही आपमें स्थित हूं। हे रामजी! शून्यवादी, पाँच रात्रिक, शैवी, शक्ति आदि जो शास्त्रहैं उन सबका अधिष्ठान ब्रह्मरूप है और सबका साररूप वही सर्वात्मरूप है। जैसा किसी को निश्चय होता है तैसाही उसको वह सर्वरूप होकर फल देता है और कुछ बना नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनंनाम द्विशताधिकसप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २५७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस जगत् के आदि शुद्ध ब्रह्मसत्ता थी और उसमें जो जगत् आभास फुरा है उसको भी तुम वही स्वरूप जानो। जैसे स्वप्ने के आदि अनुभव आकाश होता है और उसमें स्वप्नेकी सृष्टि फुर आतीहै सो अनुभवरूप है भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है भिन्न नहीं। जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्ग रूप हो भासता है, तैसेही चैतन्य ब्रह्म जगतरूप हो भासता है सो जगत् भी वही रूप है। हे रामजी! वास्तव में कोई दुःख नहीं है; दुःख और सुख अज्ञान से भासते हैं। जैसे एक निद्रा में दो वृत्ति भासती हैं–एक स्वप्नवृत्ति और दूसरी सुषुप्ति वृत्ति; तैसेही अज्ञानी को दो वृत्ति होती हैं–सुख की और दुःख की और ज्ञानवान् को सर्व ब्रह्मरूप है। जैसे कोई पुरुष स्वप्ने से जाग उठताहै तो उसको स्वप्ने की सृष्टि असत्यरूप भासती है, तैसेही ज्ञानवान् को यह सृष्टि असत्य भासती है। जैसे जिसने मरुस्थल की नदी के जल का अत्यन्ताभाव जानाहै वह जलपान की इच्छा नहीं करता,

तैसेही सम्यक्‌दर्शी जगत् को असत्य जानता है, इस लिये वह जगत् के पदार्थों की इच्छा भी नहीं करता । जो असम्यक्‌दर्शी हैं उनको जगत् सत्य भासता है और वह किसी पदार्थ को ग्रहण करता है और किसीका त्याग करता है । हे रामजी ! ईश्वर जो परमात्मा है उसमें जगत् इस प्रकार है जैसे समुद्र में तरङ्ग होते हैं । जैसे समुद्र और तरङ्ग में भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं । जो तुम कहो कि, अविद्याही जगत् का कारण है तो अविद्या जगत् का कारण तब कहाती जो वह जगत् से प्रथम सिद्ध होती पर अविद्या तो अविद्यमान है । जैसे परमात्मा में जगत् आभासमात्रहै, तैसेही अविद्या भी आभासमात्रहै । जो आपही आभासमात्र हो तो उसे जगत् का कारण कैसे कहिये ? जगत् आभास और अविद्याका आभास इकट्ठा हो फुरा है । जैसे स्वप्ने में सृष्टि भास आती है और उसमें घट, पटादिपदार्थ भासते हैं सो किसी कुलाल ने मृत्तिका लेकर तो नहीं बनाये । जैसे घट भासाहै, तैसेही कुलाल और मृत्तिका भी भासि आये हैं । जैसे इन सबका भासना इकट्ठाही होता है, तैसेही जगत् और अविद्या इकट्ठेही फुरे हैं । अविद्या पूर्व में तो सिद्ध नहीं होती तो उस को जगत्का कारण कैसे मानिये ? हे रामजी ! परमात्मासे जगत् और अविद्या इकट्ठेही आभासमात्र फुरे हैं पर वह आभास कुछ वस्तु नहीं; ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है, न कहीं अविद्याहै; न जगत्है आत्मसत्ता सदा ज्योंकी त्यों स्थितहै । हे रामजी ! निर्विकल्प में जगत् का अत्यन्ताभाव होता है सो निर्विकल्प कैसे हो ? जो निर्विकल्प होता है तब जड़ता आतीहै और जब विकल्प उठताहै तब संसार उदय होता । जब ध्यान लगाता है तब ध्याता, ध्यान और ध्येय त्रिपुटी होजाती है । इस प्रकार तो निर्विकल्पना सिद्ध नहीं होती क्योंकि; निर्विकल्प मेंभी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती । निर्विकल्प उसका नाम है जहां चित्त की वृत्ति न फुरे पर तब भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि; वहां भी अभाववृत्ति सुषुप्तिवत् रहती है और जड़ात्मक सुषुप्ति रूप है । सविकल्प सुषुप्ति में भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती इससे सम्यक् बोधका नाम निर्विकल्पहै । जिसको सम्यक्‌बोध निर्विकल्पतासे जगत् का अत्यन्ताभाव हुआ है वह जीवन्मुक्त है, वही निर्विकल्प कहाता है और वही परम जड़ता है जहां जगत् का परम असम्भव है । हे रामजी ! वह जो निर्विकल्प और सविकल्प है उससे स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि; ये दोनों मन की वृत्ति हैं । जैसे एक निद्रा की वृत्ति स्वप्न और सुषुप्तिरूप है, तैसेही यह निर्विकल्प और सविकल्प मन की वृत्ति है । निर्विकल्प सुषुप्तिरूप और पत्थरवत्है और सविकल्प स्वप्नवत् चञ्चलरूपहै । निर्विकल्प में भी अभाववृत्ति रहती है इससे उसमेंभी मुक्ति नहीं होती । मुक्ति तब होती है जब दृश्य का अत्यन्ताभाव होताहै । हे रामजी ! जहां आत्म अनुभव आकाश से

इतर उत्थान नहीं होता—उसका नाम अत्यन्त सुषुप्ति निर्विकल्पता है । हे रामजी ! ऐसे होकर तुम चेष्टा भी करोगे तौभी कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभिमान तुमको न होगा । आत्मा को अद्वैत और जगत् का अत्यन्ताभाव जाननेही का नाम बोध है । जब इस बोध की दृढ़ता और इसके ध्यान की दृढ़ता हो तब उसका नाम परम-पद है; उसी का नाम निर्वाण है और उसी को मोक्ष भी कहते हैं । जो पद किञ्चन और अकिञ्चन है और सर्वदाकाल अपने आपमें स्थित है उसमें न नानात्व कहना है; न अनाना शब्द है; न सविकल्प है; न निर्विकल्प है; न सत्य है; न असत्य है; न एक है और न दो हैं उसमें सर्व शब्दों का अन्त है और किसी शब्द से वाणी नहीं प्रवर्त्तती । उसी सत्ताको प्राप्त होनेका उपाय मैं कहता हूं । हे रामजी ! यह मोक्ष का उपाय ग्रन्थ जो मैंने तुम से कहा है इसको विचारना । जो पुरुष अर्धप्रबुद्ध है और पदपदार्थ जाननेवाला है उसको यदि मोक्ष की इच्छा है तो वह इस ग्रन्थको विचारता है, शुभ आचार करके बुद्धि को निर्मल करता है और अशुभ क्रिया का त्याग करता है तो उसको शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी । हे रामजी ! जो मोक्ष उपाय शास्त्र के विचार से प्राप्त होता है सो तीर्थ, स्नान, तप और दान से नहीं प्राप्त होता । तप, दानादिक करके स्वर्ग प्राप्त होताहै मोक्ष नहीं मिलता । मोक्षपद अध्यात्म शास्त्रके अर्थ अभ्याससेही प्राप्त होता है । यह जगत् आभासमात्र है; वही ब्रह्मसत्ता ज-गत्‌रूप होकर भासतीहै । जैसे जलही तरङ्गरूप होकर भासता और वायुही स्पन्दरूप है, तैसेही ब्रह्म जगत्‌रूप होकर भासताहै । जैसे स्पन्द और निस्स्पन्द में वायु ज्यों की त्योंहै परन्तु स्पन्द होतीहै तब भासतीहै और निस्स्पन्द होती है तो नहीं भासती, तैसे ही ब्रह्म में संवेदन फुरती है तब जगत् हो भासतीहै और जब निर्वेदन होती है और अन्तर्मुख अधिष्ठान की ओर आतीहै तब जगत् समेटाजाताहै परन्तु संवेदनके फुरने में भी वहीहै और न फुरनेमें भी वहीहै । इसलिये, हे रामजी ! सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूपहै, ब्रह्मसे इतर कुछ नहीं बना और जो इतर भासता है सो भ्रममात्रही जानना । जब आत्मपद का आभास हो तब भ्रान्ति शान्त होजातीहै । जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट होजाताहै, तैसेही आत्मपदके अभ्याससे भ्रान्ति निवृत्त होजाती । यद्यपि नाना प्रकार की सृष्टि भासती है परन्तु कुछ हुई नहीं । जैसे स्वप्नमें सृष्टि दृष्टि आतीहै परन्तु कुछ बनी नहीं; वही अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकर भासती है, तैसेही यह जगत् सब अनुभवरूपहै । जैसे रत्न और रत्नके चमत्कारमें कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं । हे रामजी ! तुम स्वभाव निश्चय होकर देखो कि, भ्रम मिटजावे । सृष्टि, स्थिति और प्रलय सब उसीकी संज्ञाहैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं ॥

इतिश्रीयो०नि०ब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णनन्नामद्विशताधिकाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः २५८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ये सब आकार जो तुमको भासते हैं सो संवेदनरूप हैं और कुछ बने नहीं। सृष्टि के आदि भी अद्वैतसत्ता थी; अन्त में भी वही रहती है और मध्यमें जो आकार भासते हैं उसे भी वही रूप जानो। जैसे स्वप्न की सृष्टि के आदि शुद्ध संवित् होतीहै और उसमें आकार भासि आताहै सो भी अनुभवरूप है और कुछ नहीं बना; आत्मसत्ता ही पिण्डाकार हो भासती है और जितने कुछ पदार्थ भासते हैं सो आकाशरूप आभासमात्र हैं। आत्मसत्ता सदा शुद्ध है परन्तु अज्ञान से अशुद्ध की नाईं भासती है; विकार से रहित है परन्तु विकार सहित भासती है; अनाना है परन्तु नाना की नाईं भासती है और आकार से रहित है परन्तु आकारसहित भासतीहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपना अनुभवरूप होतीहै परन्तु स्वरूप के प्रमाद से नाना प्रकार भिन्न भिन्न हो भासती है और जागेसे एक आत्मरूप हो जाती है; तैसेही यह सृष्टि भी अज्ञान से नाना प्रकार भासती है और ज्ञान से एक रूप भासतीहै। विद्यमान भासती है पर उसे असत्यही जानो। आत्मसत्ता सदा शुद्ध रूप, शान्त और अनन्त है और उसमें देश, काल और पदार्थ आभासमात्र हैं। जो तुम कहो कि, आभासमात्र है तो अर्थाकार क्यों होते हैं? तो उसका उत्तर यह है कि; जैसे स्वप्नमें अङ्गना कण्ठसे मिलतीहै और उसमें प्रत्यक्ष राग और विषयरस होता है सो आभासमात्रहै; तैसेही जाग्रत् में अर्थाकार, क्षुधाको अन्न, तृषाको जल और और भी सब ऐसेही होते हैं और सर्वपदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं पर जो इनका कारण विचारिये तो कारण कोई नहीं मिलता। जिसका कोई कारण न मिले उसे जानिये कि, आभासमात्र है। हे रामजी ! यह जगत् बुद्धिपूर्वक नहीं बना; आदि जो आभास फुरा है वह बुद्धिपूर्वक है और उसमें जगत् का संकल्प दृढ़ हुआहै तब कारण करके कार्य भासनेलगा परन्तु जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ है उनको कारण से कार्य भासनेलगे और जो आत्मस्वभाव में स्थित हुयेहैं उनको सर्वजगत् आत्मस्वरूप है। हे रामजी ! कारण से कार्य तब हो जब पदार्थ भी कुछ वस्तु हो। जैसे पिता की संज्ञा तब होतीहै जब पुत्र होताहै और जो पुत्रही न हो तो पिता कैसे कहिये ? तैसेही कारण तब कहिये जब कार्य हो; जो कार्य जगत् ही कुछ नहीं तो कारण कैसे कहिये ? हे रामजी ! कारण और कार्य अज्ञानी के निश्चय में होते हैं। जैसे चरखे पर बालक भ्रमता है तो उसको सब पृथ्वी भ्रमती दृष्टि आती है; तैसेही अज्ञानी को मोहदृष्टि से कारण कार्यभाव दृष्टि आता है और ज्ञानी को कारण कार्य भाव नहीं भासता। स्मृति भी जगत् का कारण तब कहिये जो स्मृति जगत् से पूर्व हो पर स्मृतिभाव अनुभव भी इस जगत् में ही फुरीहै। यह भी आभासमात्रहै परन्तु जिनको भासीहै उनको तसीहीहै हे रामजी ! स्मृति, संस्कार और अनुभव ये तीनों

आभासमात्र हैं। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है तैसेही आत्मा में तीनों भासते हैं। इसलिये इस कलनाको त्यागकर जगत् आभासमात्र जानो। जैसे स्वप्ने में घट भासते हैं पर उनका कारण मृत्तिका कहिये तो नहीं बनता क्योंकि; घट और मृत्तिकाका आभास इकट्ठा फुरा है इस लिये वे आभासमात्र हुये उसमें कारण किसको कहिये और कार्य किसको कहिये; तैसेही स्मृति, संस्कार, अनुभव और जगत् सब इकट्ठे फुरे हैं इनमें कारण किसको कहिये और कार्य किसको कहिये? इस लिये सब जगत् आभासमात्र है। हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो आत्म सत्ता का आभास है; आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है। जैसे नेत्र का खोलना और मूँदना होता है, तैसेही परमात्मा में जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होती है। जब चित्तसंवेदन फुरतीहै तब जगत्रूप हो भासतीहै और जब फुरनेसे रहित होती है तब जगत् आभास मिटजाता है। जगत् की उत्पत्ति और प्रलय में आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है। जैसे खुलना और मूँदना नेत्रों का स्वभाव है, तैसेही फुरना और न फुरना संवेदन के स्वभाव हैं। जैसे चलना और ठहरजाना उभय वायु के स्वभावहैं; जब चलती है तब भासती है और जब नहीं चलती तब नहीं भासती। चलने में वायुकी तीन संज्ञा होती हैं—एक मन्द मन्द चलती है अथवा बहुत चलतीहै; दूसरे शीतल अथवा उष्ण स्पर्श होताहै और तीसरे सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध युक्त होती है। ये तीनों संज्ञा फुरने में होती हैं पर जब फुरने से रहित होती है तब तीनों संज्ञा मिटजाती हैं। जैसे एकही अनुभव में स्वप्ने और सुषुप्ति की कल्पना होती है; स्वप्ने में जगत्ही भासता है और सुषुप्ति में नहीं भासता परन्तु दोनों में अनुभव एकही है, तैसेही संवित् के फुरनेसे जगत् भासता है और ठहरने में अच्युतरूप होजाता है पर आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों एकरूपहै। इस लिये जो कुछ जगत् भासताहै सो आत्मा से भिन्न नहीं वही रूप है और जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तीनों आत्मा के आभास हैं—उनमें आस्था न करना। हे रामजी! यह परमसिद्धान्त तुमको मैंने उपदेश किया है और जिन युक्तियों से कहाहै वैसी कोई नहीं कहेगा। अज्ञानी को संसार रूपी बड़ी भ्रान्ति उदय हुई है परन्तु जो मेरे शास्त्र को बारम्बार विचारेगा उसकी भ्रान्ति निवृत्त होजावेगी। दिनके दो विभाग करे; आधेदिन पर्यन्त मेरा शास्त्र विचारे और आधादिन अपने आचार में व्यतीत करे पर जो आधेदिन इस शास्त्र का विचार न करसके तो एक प्रहरही विचारे। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार निवृत्त होता है, तैसेही उसकी भ्रान्ति निवृत्त होजावेगी। जो मेरे वचनों को वृथा जानकर निन्दा करेगा उसको आत्मपद की प्राप्ति न होगी क्योंकि; उसने शास्त्र के भेदको नहीं जाना। जीव को यह कर्तव्यहै कि, प्रथम और शास्त्रको देखकर विचार ले फिर पीछेसे इसका

विचार कि, उसको इस शास्त्र की महिमा भासे। हे रामजी! यह मोक्षोपाय शास्त्र आत्मबोधका परमकारणहै यदि जीव पदपदार्थोंका जाननेवाला हो और इस शास्त्रको वारम्बार विचारे तो उसकी भ्रान्ति निवृत्त होजावेगी। जो सम्पूर्ण ग्रन्थ के आशय को न जानसके तो थोड़ा थोड़ा बांचे और विचारे तो उसको सब समझ पड़ेगा। हे रामजी! यदि मनुष्य कुछ भी पदार्थ जाने तो इसके विचारने और पढ़नेसे बुद्धिमान् होता है और यह प्रीतिमान् करलेता है। इसके विचारनेवाले की बुद्धि और शास्त्र की ओर नहीं जाती इससे यह विचारने योग्यहै। जो पुरुष आत्मविचारसे रहितहै उसका जीना वृथा है और जिनको यह विचारहै उनको सबपदार्थ आत्मरूप होजातेहैं। जो एक श्वास भी आत्मविचार से रहित होता है सो वृथा जाताहै। एक श्वास के समान सम्पूर्ण पृथ्वी का धन नहीं है। जो सम्पूर्ण पृथ्वीके रत्न न जावें और एक श्वास जाय तो फिर मांगे नहीं मिलता। ऐसे श्वास को जो वृथा गवाँतेहैं उनको तुम पशु जानो। हे रामजी! आयुर्बल बिजली के चमत्कारवत् है। जैसे बिजली का चमत्कार होकर मिटजाता है, तैसेही शरीर आयुर्बल होकर नष्ट होजाता है। ऐसे शरीर को धारकर जो सुख की तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं। हे रामजी! यह सम्पूर्ण जगत् आभास-मात्र है और सत्य भासताहै तौभी इसको असत्य जानो। जैसे स्वप्न की सृष्टि में कोई मृतक होता है और उसके बान्धव रुदन करते हैं और इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है परन्तु हुआ कुछ नहीं सब भ्रान्तिमात्र है तैसेही यह जगत् भ्रममात्र जानो॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्र०परमार्थगीतावर्णनन्नामद्विशताधिकैकोनषष्टितमस्सर्गः २५९॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जगत् तो अनेक और असंख्यरूप हुयेहैं और आगे होंगे पर उन जगतों की कथाओं से आपने मुझे उपदेश करके क्यों न जगाया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये जो जगज्जाल के समूह हैं उनमें जो पदार्थ हैं सो सब शब्द अर्थ से रहितहैं और जो शब्द अर्थ से रहित हुये तो कुछ न हुये; इस लिये व्यर्थ कहनेका क्या प्रयोजन है? हे रामजी! जब तुम विदितवेद और निर्मल त्रिकालदर्शी होगे तब इन जगतों को जानोगे। मैंने आगेभी तुमसे बहुतबार कहाहै और बारम्बार वही वर्णन करने में पुनरुक्ति दूषण होता है परन्तु समझाने के निमित्त कहा है। जैसे एक सृष्टि को जाना तैसेही सम्पूर्ण सृष्टियों को जानो। जैसे अन्न के समूह से एकमुट्ठी भरके देखने से जानलिया जाता है कि, सब ऐसेही हैं; तैसेही एकही सृष्टि को यथार्थ जाना तो सब सृष्टियों को भी जानलिया। हे रामजी! यह सर्वजगत् किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुआ। जिसमें कारण बिन पदार्थ भासे उसे जानिये कि, वहीरूप है। सृष्टि के आदि भी वही सत्ता थी; अन्त भी वही होगी और मध्य में जो कुछ भासता है उसे भी वही रूप जानिये। जैसे स्वप्न के आदि भी अपना निर्मल अनुभव होता है; स्वप्न

के निवृत्त हुये भी वही रहता है और स्वप्ने के मध्य जो पदार्थ भासता है उसे भी वही जानिये और वस्तु कुछ नहीं अनुभवसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है । जब तुम विदितवेद होगे तब सर्वजगत् तुमको अपना आप भासेगा । हे रामजी ! एक एक अणु में अनेक सृष्टि हैं सो सब आकाशरूप हैं कुछ हुई नहीं । इसपर एक आख्यान कहता हूं सो सुनो । एक काल मैंने ब्रह्माजी को एकान्त पाकर प्रश्न किया कि; हे भगवन् ! यह सृष्टि कितनी है और किसमें है ? तब पितामह ने कहा, हे मुनीश्वर ! सर्वजगतों के शब्द अर्थ सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं; जो अज्ञानी हैं उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञानवान् हैं तिनको सब जगत् आत्मरूप भासता है । जिस प्रकार जगत् हुआ है सोभी सुनो । हे रामजी ! ब्रह्मरूपी आकाश के सूक्ष्मअणु में फुरना हुआ कि, 'अहमस्मि'; तब उस अणु ने आपको जीव जाना । जैसे अपने स्वप्ने में आपको जीव जाने और सर्वात्मा हो तैसेही चिद्अणु सर्वात्मा अहंकार को अङ्गीकार करके आपको जीव जाननेलगा और उसमें जो निश्चय होगया वह बुद्धि हुई । जैसे वायु में फुरना हो तैसेही तिसमें संकल्प विकल्परूपी फुरना हुआ उसका नाम मन हुआ । तब मनके साथ मिलकर चिद्अणुने देहको चेता और अपने में देह और इन्द्रियां भासनेलगीं और अपने साथ शरीर देखा कि, यह शरीर मेरा है । जैसे स्वप्ने में अपने साथ कोई शरीर को देखे और बड़ा स्थूल दृष्टि आवे, तैसेही उसने अपने साथ स्थूल शरीर देखा । जैसे स्वप्ने में सूक्ष्म अनुभव से बड़े पर्वत दृष्टि आते हैं, तैसेही सूक्ष्म अणुसे स्थूल विराट् शरीर भासनेलगा । फिर देशकाल की कल्पना की और नाना प्रकार के स्थावर जङ्गम प्राणी विराट् भासनेलगे । जैसे स्वप्ने में देश, काल और पदार्थ भासि आवें सो कुछ नहीं हैं, तैसेही देश काल पदार्थ भासि आये परन्तु हैं कुछ नहीं । जब चित्तसंवित् बहिर्मुख फुरती है तब नाना प्रकार का जगत् भासता है और जब अन्तर्मुख होतीहै तब अवाच्यरूप होजातीहै । जैसे वायु चलने और ठहरने में एकरूप होती है, तैसेही फुरने अफुरने में संवित् एकही अभेद है । हे रामजी ! जितना जगत् है वह आकाश में आकाशरूप अपने आपमें स्थित है और अणु अणु प्रति सर्वदा काल सृष्टि है परन्तु आभासमात्र है जो चैतसम्बन्धी होकर जीव सृष्टि का अन्त ले तो सृष्टि अनन्त है इसका अन्त कहीं नहीं आता । यह सृष्टि अविद्यारूप है सो अविद्याही चैत है । जब अविद्यासम्बन्धी होकर जगत् का अन्त देखेगा तब अन्त कहीं न आवेगा और संसरने का नाम संसार है; जब स्वरूप में स्थित होगे तब सब जगत् ब्रह्मरूप होजावेगा और जगत् की कल्पना कुछ न भासेगी । हे रामजी ! इस जगत् के आदि भी अद्वैतसत्ता थी; अन्त में भी अद्वैतसत्ता रहेगी और मध्यमें जो कुछ भासताहै उसको भी वही रूप जानो और कुछ बना नहीं । यह

जगत् अकारणहै अधिष्ठानसत्ता के अज्ञान से भासता है। इसीका नाम जगत् है और इसीका नाम अविद्या है। अधिष्ठान को जानने का नाम विद्याहै। हे रामजी! न कोई अविद्या है और न जगत् है, ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है। चाहे जगत् कहो और चाहे ब्रह्म कहो दोनों एकही वस्तु के नाम हैं॥

इति श्रीयो॰निर्वाणप्र॰ब्रह्माण्डोपाख्याननंनामद्विशताधिकषष्टितमस्सर्गः ॥२६०॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! यह मैंने जाना कि, जगत् अकारण है। जैसे संकल्प नगर और स्वप्नपुर होताहै, तैसेही यह जगतहै। पर जो अकारणहीहै तो अब यहां पदार्थ अकारणरूप काहेको उपजते दृष्टि आते हैं? कारण विना तो नहीं उत्पन्न होते भासते हैं; यह क्याहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सर्वात्महै, उसमें जैसा निश्चय होता है तैसाही होकर भासता है; पर क्या भासता है; अपना अनुभवही ऐसे होकर भासता है। जैसे स्वप्नेमें अपना अनुभव ही नाना प्रकार के पदार्थ होकर भासता है परन्तु उपजा कुछ नहीं सर्वपदार्थ आकाशरूप हैं; तैसेही यह जगत् कुछ उपजा नहीं कारण से रहित आकाशरूप है। हे रामजी! आदिसृष्टि अकारण हुई है; पीछे से सृष्टि में आभासरूप मननें जैसा जैसा निश्चय कियाहै तैसेहीहै क्योंकि; सर्व शक्तिरूप है। आदिसृष्टि जो उपजती है सो अकारणरूप है और पीछे से सृष्टि-कालमें कारणकार्यरूप हुये हैं। जैसे स्वप्नसृष्टि आदिकारण विना होतीहै और पीछे से कारण कार्य भासते हैं पर वास्तव में न कोई आकाश; न शून्य है, न अशून्य है; न सत्य है, न असत्य है; न असत्य सत्य के मध्य है, न नित्य है, न अनित्य है; न परम है, न अपरम है; न शुद्ध है, न अशुद्धहै; द्वैत कुछ नहीं सब भ्रमहै। हे रामजी! ज्ञानवान् को सर्व शब्द और अर्थ ब्रह्मरूप भासते हैं। हमको तो कारण–कार्यभाव की कल्पना कुछ नहीं। जैसे सूर्य में अन्धकार का अभाव है, तैसेही ज्ञानवान् को कारण कार्यका अभावहै। जो सर्वात्माहीहै तो कारण कार्य किसको कहिये? रामजीने कहा कि; हे भगवन्! मैं ज्ञानी की बात पूछता हूं; उनको कारणकार्यभाव किस निमित्त नहीं भासता? जो कारण कार्य नहीं तो मृत्तिका और कुलालआदि द्वारा घटादिक क्योंकर उत्पन्न होते दृष्टि आते हैं? इससे तुम कहो कि, ज्ञानवान् को अकारण कैसे भासताहै और अज्ञानी को सकारण क्योंकर भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई कारणहै, न कार्यहै और न कोई अज्ञानीहै मैं तुमसे क्या कहूं? जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनके निश्चय में जगत् की कल्पना कोई नहीं फुरती; उनके निश्चय में तो जगत् हैही नहीं तो ज्ञानी और अज्ञानी क्या है? हे रामजी! आकाश का वृक्ष नहीं तो उनका वर्णन क्या कीजिये? जैसे हिमालय पर्वत में अग्नि का कणका नहीं पाया जाता, तैसेही ज्ञानी के निश्चय में जगत् नहीं। ज्ञानी और

अज्ञानी और कारण और कार्य ये शब्द जगत्में होते हैं पर जो जगत् ही नहीं फुरा तो कारण, कार्य, ज्ञानी और अज्ञानी तुमसे क्या कहूं ? जैसे स्वप्न की सृष्टि सुषुप्ति में लीन होजाती है और वहां शब्द और अर्थ कोई नहीं फुरता, तैसेही ज्ञानवान् के निश्चय में जगत् ही नहीं फुरता। हे रामजी ! हमको तो सर्व ब्रह्मही भासता है। मुझको कुछ कहना नहीं आता परन्तु तुमने पूछा है इस निमित्त कुछ कहताहूं और अज्ञानी के निश्चय को अङ्गीकार करके कहता हूं। हे रामजी ! यह जगत् अकारण और आभासमात्र है; किसी आरम्भ और परिणाम से नहीं हुआ। जब पदार्थों का कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान ब्रह्मही निकलता है जो अद्वैत, अच्युत और सर्वइच्छा से रहित है तो उसको कारण कैसे कहिये ? इससे जाना जाता है कि, जगत् आभासमात्र है और कुछ वस्तु नहीं आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासतीहै। जैसे स्वप्न की सृष्टि अकारण होती है और उसमें अनेक पदार्थ भासते हैं पर उसका कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान अनुभवही निकलताहै और उसमें आरम्भ और परिणाम कुछ हुआ नहीं। सृष्टि अनुभवरूप हो भासतीहै जो पुरुष स्वप्नेमें है उसको स्वरूप के प्रमादसे कारण कार्य जगत् और पुण्य पाप सब यथार्थ भासते हैं; तैसेही जाग्रत् जगत् भासता है। हे रामजी ! सृष्टि आदि अकारण हुई है और पीछे सृष्टिकाल में कारण-कार्यरूप हो भासते हैं। जिसको अपना वास्तव स्वरूप स्मरण है उसको अकारण भासता है और जिस अज्ञानी को अपने वास्तव स्वरूप का प्रमाद है उसको कारण कार्यरूप सृष्टि स्वप्नवत् भासती है। हे रामजी ! वास्तव में एकही अनुभव आत्मसत्ता है परन्तु जैसा जैसा अनुभव में संकल्प दृढ़ होता है उसही की सिद्धि होती है और जिसका तीव्र संवेग होताहै वही हो भासताहै। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, कल्पवृक्ष के पदार्थ संकल्प की तीव्रता से प्रत्यक्ष होतेहैं तो उन्हें किसका कार्य कहिये ? यदि जगत् किसी कारण से उत्पन्न होता तो महाप्रलय में भी कुछ शेष रहता-जैसे अग्नि के पीछे राख रहजाती है पर जगत् के पीछे तो कुछ नहीं रहता और जैसे स्वप्नकी सृष्टि जागेहुये पर कुछ नहीं रहती, तैसेही महाप्रलय में जगत् का शेष कुछ नहीं रहता; इससे जाना जाता है कि, यह आभासमात्र है। जैसे ध्यान में ध्याता पुरुष किसी आकार को रचताहै तो उसका कारण कोई नहीं होता वह तो आकाशरूपहै और अनुभवसत्ताही फुरने से इस प्रकार हो भासतीहै-आकार तो कोई नहीं और जैसे गन्धर्वनगर कारणसे रहित भासताहै, तैसेही यह जगत् कारण विना भासिआया है। न कोई पृथ्वी है, न कोई जल है, न तेज, वायु और आकाश है सब आकाशरूप है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से पिण्डाकार भासते हैं। हे रामजी ! जब मनुष्य मरजाता है तब शरीर यहांहीं भस्म होजाता है, फिर परलोक में अपने साथ

शरीर देखताहै और उस शरीरसे स्वर्ग नरकमें सुखदुःख भोगताहै तो उसका कारण कौनहै ? उसका कारण कोई नहीं पायाजाता केवल अपनी चैतनता में संकल्प की वासना जो दृढ़ हुई है उसीके अनुसार शरीर भासताहै और स्वर्ग नरक में दुःख सुख भासते हैं और तो कुछ वस्तु नहीं। सब पदार्थ संकल्पके रचे हुये हैं सो सब आत्मरूप हैं जैसे आकाश व्योम और शून्य एकही वस्तु के नाम हैं, तैसेही कोई जगत् कहो और कोई ब्रह्म कहो इनमें भेद नहीं। फुरने का नाम जगत् कहते हैं और अफुरने का नाम ब्रह्महै। जैसे वायु के चलने और ठहरनेमें भेद नहीं, तैसेही ब्रह्म को संवेदन के फुरने और न फुरने में भेद कुछ नहीं। जो सम्यक्दर्शी हैं उनको सब जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है इस कारण दोष किसी में नहीं रहता और जो बड़ा कष्ट प्राप्त होताहै तौभी वे खेदवान् नहीं होते। जैसे कोई पुरुष स्वप्नमें युद्ध करताहै और उसको अपना जाग्रत्स्वरूप हृदय में आताहै तो स्वप्नको स्वप्न जानता हुआ और युद्ध करता है तो भी दुःख होताहै, तैसेही जो पुरुष परमपद में जागा है उसको सब क्रिया होती हैं परन्तु आपको अक्रिय जानताहै। हे रामजी! ज्ञानवान्को सब चेष्टा होती हैं परन्तु उसके निश्चय में क्रिया का अभिमान नहीं होता। जैसे नटुवा सब स्वांग धारता है परन्तु आपको स्वांग से रहित जानता है और स्वांग की क्रिया को असत्य जानता है क्योंकि; उसको अपना स्वरूप स्मरण रहता है; तैसेही ज्ञानवान् सब क्रिया को असत्य जानता है। हे रामजी! ये सर्वपदार्थ अजातजात हैं–उपजे कुछ नहीं। जैसे स्वप्न में पदार्थ भासते हैं परन्तु उपजे नहीं अपना अनुभवही इस प्रकार भासताहै; तैसेही ये जगत् के पदार्थ भी अनुभवरूप जानो। हे रामजी! बहुत शास्त्र और वेद में तुमको किस निमित्त सुनाऊं और किस निमित्त पढ़ूं;वेदान्तशास्त्रों का सिद्धान्त यही है कि, वासना से रहित हो। इसीका नाम मोक्ष है और वासना सहित का नाम बन्ध है। वासना किसकी कीजिये यह तो सब सृष्टि अकारणरूप भ्रममात्र है। इसमें क्या आस्था बढ़ाइये; ये तो स्वप्न के पर्वत हैं॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्रकरणेब्रह्मगीतावर्णनंनामद्विशताधिकैकषष्टितमस्सर्गः॥२६१॥

श्रीरामजीने पूछा: हे भगवन्! सब जगत्में तीन प्रकारके पदार्थहैं–एक अप्रत्यक्ष पदार्थ; दूसरे प्रत्यक्षपदार्थ और तीसरे मध्यभावी। जैसे वायु अप्रत्यक्ष है क्योंकि; रूप से रहित है परन्तु स्पर्श संयोग से भासती है इस लिये मध्यभावी प्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष जो किसीसे मिले नहीं सो यह संवित् अप्रत्यक्ष है। हे मुनीश्वर! चन्द्रमाके मण्डलमें भी यह संवेदन जाती है और फिर गिरती है और वृत्ति चित्त करके चन्द्रमा को देखती है और फिर आती है इससे जाना कि, निराकारहै; जो साकार होती तो चन्द्रमारूप होजाती फिर संवेदन आती–जैसे जल में जल डाला फिर नहीं निकलता

इस कारण जानता हूं कि, यह अप्रत्यक्ष अर्थात् निराकार है। हे मुनीश्वर! अज्ञानी का आशय लेकर मैं कहता हूं कि; इस शरीर में जो प्राण आते जाते हैं सो कैसे आते जाते हैं? जो तुम कहो कि, संवित् जो ज्ञानशक्ति है सो इस शरीर और प्राणको लिये फिरती है—जैसे मज़दूर भार को लिये फिरता है—तो ऐसे कहना नहीं बनता क्योंकि; संवित् अप्रत्यक्ष निराकारहै। अप्रत्यक्ष साकारसे नहीं मिलती तो वह चेष्टा क्योंकर करे? जो कहो कि, निराकार संवित् ही चेष्टा कराती है तो पुरुष की संवित् चाहती है कि; पर्वत नृत्य करे पर वह तो इसका चलाया नहीं चलता और कहतेहैं कि, ये पदार्थ उठआवें परन्तु वे तो नहीं उठते क्योंकि; पदार्थ साकाररूप हैं और वृत्ति निराकार है; इसका उत्तर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस शरीर में एक नाड़ीहै जब वह अवकाशरूपी होतीहै तब उसमें से प्राणवायु निकलताहै और जब संकोचरूप होती है तब प्राणवायु भीतर आता है जैसे लुहारकी धौंकनी होती है तैसेही इसके भीतर पुरुष बलहै उससे चेष्टा होतीहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! धौंकनी भी तब हलतीहै जब उसके साथ बलका स्पर्श होताहै और स्पर्श तब होता है जब प्रत्यक्ष वस्तु होती है पर चैतन्यता तो निराकार है उसको स्पर्श क्योंकर कहिये? जो तुम कहो कि; उसकी इच्छाही से स्पर्श होताहै तो, हे मुनीश्वर! मैं चाहताहूं कि, मेरे सम्मुख जो वृक्षहै सो गिरपड़े पर वह तो नहीं गिरता क्योंकि, इच्छा निराकार है जो साकार से स्पर्श हो तब उसकी शक्ति से गिरपड़े। यदि इच्छासेही चेष्टा होतीहै तो कर्म इन्द्रियां किस निमित्त हैं इच्छाही से जगत् की चेष्टा हो? यह भी संशय है कि, एकके बहुत क्योंकर होजाते हैं और बहुतका एक क्योंकर होजाता है? एक चैतन है पर जब प्राण निकलजाते हैं तब पाषाण और वृक्ष की नाईं जड़ होजाता है; आत्मा तो सर्वव्यापीहै जड़ कैसे होजाताहै? कोई पाषाण और वृक्षरूप जड़ है और कोई चैतन है यह भेद एक आत्मा में कैसे हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे संशयरूपी वृक्षों को मैं वचनरूपी कुल्हाड़े से काटता हूं। जिनको तुम प्रत्यक्ष साकार कहते हो सो आकार कोई नहीं सब निराकार हैं; वह शुद्ध आत्मा अद्वैतसत्ताही इस प्रकार हो भासतीहै—ये आकार कुछ बने नहीं। जैसे स्वप्ननगर में आकार भासतेहैं सो सब आकाशरूप निराकारहैं; तैसेही ये आकारभी जो तुमको दृष्टि आते हैं सो सब निराकार हैं। स्वप्ने में जो पर्वत भासते हैं सो किसके आश्रय होते हैं और देहादिक भासते हैं सो किसके आश्रय हैं; इस लिये वे कुछ बने नहीं अनुभवसत्ता ही आकाररूप हो भासती है; तैसे इसे भी जानो कि, आकार कोई नहीं हे रामजी! जब इन पदार्थोंका कारण विचारिये तो कारण कोई नहीं निकलता, इसी से जानाजाताहै कि; आभासमात्र हैं बने कुछ नहीं और आत्मसत्ताही इस प्रकार हो

भासती है। आत्मसत्ता अद्वैत और परमशुद्ध है उसमें जगत् कुछ बना नहीं तो मैं आकार क्या कहूं और निराकार क्या कहूं? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश भी द्वैत कुछ नहीं शुद्ध आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है। जैसे संकल्पके रचे पदार्थ होते हैं सो अनुभव हैं; तैसेही ये सब पदार्थ अनुभवरूप हैं- अनुभव से भिन्न कुछ नहीं। इस पर एक आख्यान कहताहूं उसे मन लगाके सुनो। हे रामजी! आगे भी मैंने तुमसे कहा है और अब भी प्रसंग को पाकर कहताहूं। एक समय एक सृष्टि में एक इन्द्र ब्राह्मण था जो मानो ब्रह्माही था। उसके गृह में दश पुत्र हुये जो मानो दशों दिशा थे। कुछ काल में वह ब्राह्मण मृतक हुआ और उसकी स्त्री पतिव्रता थी इस लिये उसके प्राण भी छूटगये-जैसे दिन के पीछे संध्या आजाती है। तब उन पुत्रों ने यथाशास्त्र क्रम से उनकी क्रिया की और फिर एक पहाड़ की कन्दरा में जा स्थित हुये और विचारनेलगे कि; किसी प्रकार हम ऊंचे पद को पावें। हे रामजी! आगे मैंने तुमको सुनाया है कि, प्रथम उन्होंने मण्डलेश्वर; चक्रवर्ती राजा और इन्द्रादिक के पद को विचारा और फिर बड़े भाई ने निर्णय करके यही कहा कि; सबसे ऊंचा ब्रह्माजी का पद है जिनकी यह सब सृष्टि रची हुईहै इस लिये हम दशों ब्रह्मा होवें। ऐसे विचार करके वे दशों पद्मासन बांधके बैठे और यह निश्चय धारा कि हम चतुर्मुख ब्रह्मा हैं और सब सृष्टि हमारी रची है। निदान वे ऐसे होगये मानो पुतलियां लिखी हुई हैं और खान पान से रहित मास, युग और वर्ष व्यतीत होगये पर वे ज्योंके त्यों रहे चलायमान न हुये। जैसे जल नीचे ठौरमें जाता है ऊंचे को नहीं जाता, तैसेही उन्हों ने अपना निश्चय न त्यागा और दृढ़ रहे। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उनके शरीर गिरपड़े और उनको पक्षी खागये पर उनकी जो ब्रह्मा की वासनासंयुक्त संवित् थी उस वासनासे दशों ब्रह्मा होगये और उनकी दशही सृष्टि देश, काल, पदार्थ और नीति सहित होगईं। जैसे हमारी सृष्टि है, तैसेही वे सृष्टि हुईं। हे रामजी! वे सृष्टि क्या रूप हुईं आत्माही वस्तु हुई और तो कुछ नहीं; कुछ और होवे तो कहूं। इससे सृष्टि का और रूप कुछ नहीं अपना अनुभवही सृष्टिरूप भासता है और जो कुछ पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मरूप हैं। हे रामजी! जैसे हम ब्रह्माके संकल्पमें रचे हैं तैसेही उन्होंनेभी रच लिये और वेभी इस प्रकार स्थित होगये; इससे सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप है। जो किसी कारण से जगत् बना होता तो जाना जाता कि, कुछ हुआ है पर इसका कारण कोई नहीं पाया जाता इससे संकल्पमात्र और आभासमात्र है। इससे कहता हूं कि, ब्रह्मही है और वस्तु कुछ नहीं। जो कुछ पदार्थ पाषाण, वृक्ष, जड़-चैतन्य भासते हैं सो सब भ्रमस्वरूप हैं उनसे भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! महाभूत जो वृक्ष, पृथ्वी, आकाश, पहाड़ हैं ये सब चिदाकाशरूप हैं-चिदाकाश से भिन्न कुछ नहीं।

जैसे इन्द्र के पुत्र एकसे अनेक होगये, तैसेही यह सृष्टि भी एकसे अनेक है और प्रलय में अनेक से एक होजाती है। जैसे एक तुम स्वप्ने में अनेक होजाते हो और सुषुप्ति में अनेक से एक होजाते हो तैसेही यह जगत् भी है और अकारणरूप है। यदि इसे सकारण भी मानिये तो आत्मरूपी कुलाल है; संकल्पचक्रहै और अनुभव चैतन्यरूपी घट उससे उपजते हैं और आभास भी वही है कुछ दूसरी वस्तु नहीं। यह सब जगत् वही रूप है। जैसे इन्द्रब्राह्मण के पुत्रों को अपने अनुभवही से सृष्टि फुर आई सो अनुभवरूप ही भासनेलगा इससे और कुछ न भई, तैसेही इस सृष्टि को भी जानो। हे रामजी! घट, वृक्ष, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सब चैतन्यरूप हैं—चैतन्य से भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभवही घट, पहाड़, नदियां और पदार्थ हो भासता है—अनुभव से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभव से भिन्न नहीं—ज्ञानी को सदा यही निश्चय रहता है। अब एक अनेक का उत्तर सुनो। हे रामजी! जैसे मनोराज में एकसे अनेक होजाते हैं और अनेक से एक होजाता है; एवम् चैतन्य से जड़ होजाताहै पर जड़ कोई पदार्थ नहींभासता सर्वपदार्थ चैतन्यरूप है। जहां अन्तःकरण प्रकट होताहै सो चैतन्य भासता है और जहां अन्तःकरण नहीं मिलता सो जड़ भासता है—चैतन्यका आभास अन्तःकरण में मिलता है पर जब पुर्यष्टका निकल जाती है तब जड़ भासता है। यह अज्ञानी की दृष्टि कही है पर मुझसे पूछो तो जिसको जड़ कहतेहैं और जिसको चैतन कहते हैं और पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी कहतेहैं वे सब ब्रह्मरूप हैं—ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में कितने जड़ और कितने चैतन्य पदार्थ भासते हैं और नाना प्रकार के पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं पर सब आत्मरूपहैं; भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् सब आत्मरूपहै और इच्छा अनिच्छा सब ब्रह्मरूप हैं। सब नामरूप आत्मा के हैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं। शून्य, अशून्य, सत्य, असत्य सब आत्मा के नाम हैं—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! जिसको मूर्ख जड़ कहते हैं सो जड़ नहीं सब चैतन्यरूपहैं और सृष्टिकाल में जड़ही हैं। वे संवेदन में जड़रूप होकर रचित हुये हैं; वे चैतन्यही रचे हैं; जिसको अपने वास्तव स्वरूप का प्रमाद होता है उसको ये जड़ चैतन्य भिन्न भिन्न भासते हैं पर जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको एक ब्रह्मसत्ता ही भासती है। हे रामजी! यह मैंने तुमको उपदेश किया है सो बारम्बार विचारने योग्य है। जो कोई इसको नित्य विचारता रहेगा उसके दोष घटते जावेंगे और हृदय शुद्ध होगा और जो ब्रह्मविद्या को त्यागकर जगत् की ओर चित्त लगावेगा उसके दोष बढ़ते जावेंगे। हे रामजी! ज्यों ज्यों जीव को ब्रह्म विचार उदय होता जावेगा त्यों त्यों दुःख नाश होते जावेंगे जैसे ज्यों ज्यों दिन उदय होताहै त्यों त्यों तम नष्ट होजाता है—और विचार के त्यागे दुःख बढ़ै

जाते हैं। जो महापापी हैं उनके पाप मेरे शास्त्र का संग न करनेदेंगे और उनको यह जगत् वज्रसार की नाईं दृष्टि आता है और संसारभ्रम कदाचित् निवृत्त नहीं होता। यह सब जगत् मैं, तुम आदि आकाशरूप हैं और भाव-अभाव आदिक सब शब्द ब्रह्मसत्ता के नामहैं जो परमशुद्ध, निरामय और अद्वैतहै और सदा अपनेही आपमें स्थित है। जितने पदार्थ उसमें भासतेहैं वे ऐसेहैं जैसे शिला में शिल्पी पुतलियां कल्पता है सो सब शिल्पी के चित्त में होती हैं, तैसेही जगत् के पदार्थों की प्रतिभा जो सब मन में है सो उसीका किञ्चनरूप है कुछ भिन्न वस्तु नहीं। वह सदा अपने आपमें स्थित है और परम मौनरूप है उसमें विकल्प कोई नहीं प्रवेश करसक्ता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइन्द्राख्यानवर्णनंनाम
द्विशताधिकद्विषष्टितमस्सर्गः॥ २६२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वलोक चिन्मात्रहै इसीसे शान्त और अद्वैतरूप है। अज्ञानी को भिन्न भिन्न जगत् भासताहै और ज्ञानी को सब निराकार और आकाश रूप है। आकार कुछ बने नहीं, आत्मसत्ता निराकारहै और वही परमशुद्धसत्ता इस प्रकार भासतीहै सो शान्तरूप, अनन्त और चिन्मात्रहै; इन्द्रियां भी ज्ञानरूप हैं और हाड़, मांस, रुधिर, हाथ, पैर, शिर आदिक सम्पूर्ण शरीर भी ज्ञानमात्र है-ज्ञान से भिन्न कुछ नहीं-चिन्मात्रही इस प्रकार हो भासता है। जैसे स्वप्ने में शरीरादिक और पहाड़, नदियां और वृक्ष भासते हैं सो अपनाही अनुभवरूप है कुछ और नहीं बना तैसे और यह जगत् सब अनुभवरूप है और कारण से रहित कार्य भासता है। तुम अपने अनुभव में जागकर देखो कि, सब अनुभवरूप है। आकाश में आकाश भी आकाशरूप है; सत्य में सत्यहै; भावमें भावहै और अभाव में अभाव है सर्व आत्म-रूप है भिन्न कुछ नहीं। जो तुम कहो कि, वस्तु कारणही से उत्पन्न होती है सो सत्य होतीहै परन्तु जगत् का कारण कहीं नहीं मिलता इससे यह मिथ्याहै तो कारण भी इसका तब कहिये जब यह कुछ वस्तु हो और कार्यभी तब कहिये जब इसका कारण सत्य हो। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता तो न किसीका समवायकारण है और न किसीका निमित्त कारण है। वह तो केवल अच्युत है इसीसे समवायकारण नहीं और अद्वैत है इससे निमित्त कारण भी नहीं। वह तो सर्व इच्छा से रहित है उसको किसका कारण कहिये और जो कारण नहीं तो कार्य किसका हो। इससे सर्वजगत् जो भासता है सो आभासमात्र है-उसी ब्रह्मसत्ता का नाम जगत् है। जैसे निद्रा एक है और उसके दो स्वरूप हैं-एक स्वप्न और दूसरा सुषुप्ति फुरनेरूप का नाम स्वप्ना है और न फुरने रूप का नाम सुषुप्ति है; तैसेही चैतन्य के भी दो स्वरूप हैं फुरनेरूप चैतन्य का नाम जगत है और अफुररूप का नाम ब्रह्महै। जैसे एकही वायु के चलना और ठहरना दो

पर्याय हैं—जब चलती है तब लखने में आती है और ठहरतीहै तब अलक्ष्य होजाती है और शब्द का विषय नहीं होती; तैसेही ब्रह्मसत्ता अफुरमें शब्द की प्रवृत्ति नहीं होती। जब फुरतीहै तब द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटीरूप हो भासती है और एकसे अनेकरूप हो भासती है, अनेक से एकरूपहै। जैसे एकही जल नदी, नाला, तालाब आदि भिन्न २ संज्ञा पाता है और जब समुद्र में मिलता है तब एकरूप हो भासता है; एवम् जैसे एकही काल के दिन, मास, वर्ष, युग, कल्प, घटी, मुहूर्त आदिक बहुत नाम होते हैं परन्तु काल तो एकही है; एक मृत्तिका की सेना के हाथी, घोड़े आदिक बहुत नाम होते हैं परन्तु मृत्तिका तो एकहीहै; एक वृक्षके फूल, फल, टास, पत्र भिन्न २ नाम होते हैं परन्तु वृक्ष तो एकही रूप है और एक जल के तरङ्ग, बुद्बुदे, आवर्त, फेन आदिक नाम होते हैं परन्तु जल तो एकही है; तैसे परमात्मा में जगत् अनेक नाम रूप को प्राप्त होता है परन्तु सदा एकहीरसरूप है। जैसे स्वप्न में एकही अद्वैत अनुभवसत्ता होती है और भिन्न २ नामरूप हो भासती है पर जब जागता है तब अद्वैतरूप होता है; तैसेही यह जगत् भी भिन्न २ नामरूप भासता है परन्तु आत्मसत्ता एकही है। हे रामजी! जब तुम उसमें जागोगे तब तुमको सब अपना आप अनुभव हो भासेगा जो केवल आत्मत्वमात्र और अनन्य अनुभवरूपहै। आत्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी जल के कणके हैं। जैसे आकाश में नक्षत्र फुरते हैं, तैसेही आत्मा में जगत् फुरते हैं। तारे तो आकाश से भिन्न हैं परन्तु जगत् आत्मा से भिन्न नहीं—जैसे जल से बूंद अभिन्न है॥

इति श्रीयो० निर्वाणप्र० सर्वब्रह्मप्रतिपादनंनामद्विशताधिकत्रिषष्टितमस्सर्गः॥२६३॥

श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! अन्धकार में जो पदार्थ होता है सो ज्योंका त्यों क्यों नहीं भासता पर जब सूर्य का प्रकाश होता है तब ज्योंका त्यों भासता है। इस निमित्त कहताहूं कि; संशयरूपी तम के कारण जगत् ज्योंका त्यों नहीं भासता। पर तुम्हारे वचनरूपी सूर्यके प्रकाशसे जो पदार्थ सत्यहै उसको सम्यक्ज्ञान से जानूंगा। हे भगवन्! पूर्व में एक इतिहास हुआहै उसमें मुझको संशय है सो दूर कीजिये। एक कालमें मैं अध्ययनशाला में विपश्चित् पण्डित से अध्यन करता था और बहुत ब्राह्मण बैठे थे कि, एक ब्राह्मण विदितवेद; बहुत सुन्दर; वेदान्त; सांख्य आदि शास्त्रों के अर्थ से सम्पन्न; बड़ा तपस्वी और ब्रह्मलक्ष्मी से तेजवान्—मानो दुर्वासा ब्राह्मण है—सभा में आकर परस्पर नमस्कार करके आसन पर बैठा और हम सबने उसको प्रणाम किया। उस समय वेदान्त, सांख्य, पातञ्जलादिक शास्त्रों की चर्चा होती थी परन्तु सब तूष्णीं होगये और मैं उससे बोला कि, हे ब्राह्मण! तुम बड़ी दूर से आये हो; तुमने किस परमार्थ के निमित्त इतना कष्ट उठाया और तुम कहांसे आते हो सो

कहो ? ब्राह्मण बोला, हे भगवन् ! जिस प्रकार वृत्तान्त हुआ है सो मैं कहता हूं। हे रामजी ! विदेह नगर का मैं ब्राह्मण हूं–वहां मैंने जन्म लिया था और कुन्दवृक्ष के श्वेतफूलों के समान मेरे दाँत हैं इस कारण मेरे पिता माता ने मेरा नाम कुन्ददन्त रक्खा है। विदेह राजा जनक का जो नगरहै वहां से मैं आया हूं। वह नगर आकाश में जो स्वर्ग है मानो उसका प्रतिबिम्ब है और वहां के रहनेवाले शान्तिमान् और निर्मल हैं। वहां मैं विद्या पढ़ने लगा और मेरा मन उद्वेगवान् हुआ कि, यह संसार महाक्रूर बन्धन है इस लिये किसीप्रकार इस बन्धन से छूटूं। हे रामजी ! ऐसा वैराग्य मुझको उत्पन्न हुआ कि, किसी प्रकार शान्तिमान् न हुआ। तब मैं वहांसे निकला और जो जो शुभ स्थान थे वहां विचरनेलगा। सन्तों और ऋषियों के स्थान, ठाकुरद्वारे और तीर्थ आदि जो २ पवित्र स्थान थे उनका दर्शन किया। वहां से आते एक पर्वत मिला उस पर मैं चढ़गया और एक उत्तम स्थान पर चिरपर्यन्त तप किया। फिर वहां से एकान्त के निमित्त चला तो आगे एक आश्चर्य देखा सो कहता हूं। हे रामजी ! मैं वहां से चलाजाता था कि, बड़ा श्याम वन दिखलाई दिया जो मानो आकाश की मूर्ति था और शून्य और तमरूप था। उस वनमें एक वृक्ष मुझको दृष्टि आया जिसके कोमल पत्र और सुन्दर टहनियां थीं और उसमें एक पुरुष लटकता था जिसके पांवमें मूंज का रस्सा बँधा था जो वृक्ष से बांधाहुआ था और उसका शीश नीचे, चरण ऊपर और दोनों हाथ छातीपर पड़ेहुये थे। तब मैंने विचार किया कि, यह मृतक होगा इसको देखूं। जब मैं निकट गया तब उसमें श्वास आतेजाते देखे। उसका युवावस्था का शरीर था और वह हृदय से सबका ज्ञाता और शीत, उष्ण, अन्धेरी और मेघ को सह रहा था। हे रामजी ! तब मैंने जाना कि, यह तपस्वी है और इसकी शूरवीरता बड़ी है। निदान मैं उसके निकट बैठगया और उसके चरण जो बांधेहुये थे उनको कुछ ढीला किया। फिर उससे मैंने कहा कि, हे साधो ! ऐसी क्रूर तपस्या तुम किस निमित्त करते हो; अपना वृत्तान्त मुझसे कहो ? उसने नेत्र खोलके कहा, हे साधो ! यह तप मैं अपनी किसी कामना के अर्थ करताहूं पर वह ऐसी कामना है कि, जो तुम उसे सुनोगे तो हँसी करोगे। हे रामजी ! जब इस प्रकार उसने कहा तब मैंने कहा, हे साधो ! मैं हँसी न करूंगा, तू अपना वृत्तान्त कह और जो कुछ तेरा कार्य हो तो कह मैं करदूंगा। जब मैंने इस प्रकार बारम्बार कहा तब उसने कहा कि, मन को उद्वेग से रहित करके सुन मैं कहताहूं। मैं ब्राह्मण हूं और मथुरा में मेरा जन्म हुआ है। वहां जब मेरी बालअवस्था व्यतीत हुई और यौवन अवस्था का प्रारम्भ हुआ तब मैंने वेद और शास्त्रों को भली प्रकार जाना पर एक वासना मुझे उदय हुई कि; सबसे बड़ा सुख राजा भोगता है इस लिये मैं राजा

होकर सुख भोगूं कि; क्या सुखहै क्योंकि और सुख मैंने भोगे हैं। फिर विचार किया कि, राज्य का सुख तो तब भोगसक्ता हूं जब राजा होऊं पर राजा क्योंकर होजाऊं; राजा तब होता है जब तप करता है; इससे तप करूं। हे साधो! ऐसे विचारकर मैं तप करनेलगा हूं। द्वादशवर्ष मुझे तप करते व्यतीत हुये हैं और आगेभी करूंगा। जबतक सप्तद्वीप का राज्य मुझको नहीं प्राप्त होता तबतक मैं तप करूंगा। मैंने यही निश्चय धारा है कि, यातो मेरा शरीर ही नष्ट होगा अथवा सप्तद्वीप का राज्यही मुझको प्राप्त होगा। यही मेरा निश्चयहै सो मैंने तुझसे कहा, अब जहां जानेकी तुझको इच्छा हो वहां जा। हे रामजी! इस प्रकार कहकर उस तपस्वी ने फिर नेत्र मूंदकर चित्त स्थित करने को समाधान किया और इन्द्रियों से विषयों को त्यागकर मन निश्चल किया। तब मैंने उससे कहा कि, हे मुनीश्वर! मैंभी तेरे पास बैठाहूं और जबतक तुझे वर की प्राप्ति नहीं होती तबतक मैं तेरी टहल करूंगा—मुझे तेरे ऊपर दया आई है। हे रामजी! इस प्रकार उससे कहकर मैं उद्वेग से रहित षट्मास पर्यन्त उसके पास बैठारहा; और उसकी रक्षा करता रहा; जब धूप आवे तब छाया करूं और आंधी और मेघ में अपने शरीर को कष्ट देके उसकी रक्षा करूं। निदान छः महीने बीते तब सूर्यके मण्डल से एक पुरुष निकला जो बड़ा प्रकाशवान्—मानों विष्णु भगवान् का तेज था और वह हमारे निकट आया। उसको देखकर मैंने मन, वाणी और शरीर तीनों से उसकी पूजा की; तब उस पुरुष ने कहा; हे तपस्विन्! अब इस तप को त्याग और जो कुछ इच्छा है सो मांग। तेरी इच्छा तो यही है कि, मैं सप्तद्वीप का राजा होऊं सो तू सप्तद्वीप पृथ्वी का राजा और जन्म में होगा और सप्त सहस्रवर्ष पर्यंत राज्य करेगा परन्तु और शरीर से होगा। हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह पुरुष सूर्य के मण्डल में अन्तर्धान होगया जैसे समुद्र से तरङ्ग निकलकर लय होजावे, तैसेही वह लीन हुआ तब मैंने उससे कहा, हे ब्राह्मण! अब तू क्यों संकट लेताहै? जिस निमित्त तू तप करता था सो वर तो तुझको प्राप्त हुआ—अब क्यों संकट करताहै? हे रामजी! जब इस प्रकार मैंने कहा कि, सूर्य के मण्डल से निकलकर एक बड़ा तेजवान् पुरुष तुझको वर देगया है तब उसने नेत्र खोल दिये और मैंने उसके चरणों से रस्सी खोल दी। उसका तेज उस समय बड़ा होगया और उसके शरीरकी कान्ति प्रकाशवान् हुई। उस स्थानके निकट एक जल से रहित तालाबथा सो उसके पुण्य से जल से पूर्ण होगया और उसमें हम दोनों ने स्नान किया और मन्त्र पाठ करके संध्या की। और फिर हम दोनों वृक्षों के नीचे आये और जो वृक्ष फल से रहित थे वे उसकी पुण्यवासना से फल से पूर्ण होगये निदान उन फलोंको हमने भक्षण किया और तीन दिन पर्यन्त वहां रहकर फिर चले

तब वह बोला; हे साधो ! हम देश को चले हैं। जबतक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी हैं। फिर आगे एक वन आया जिसमें बहुत सुन्दर फूल, फल और बूटे लगे हुये थे और उनपर भँवरे बिचरते थे; जलके प्रवाह चलतेथे और कोयल, तोते, बगले आदि पक्षी संयुक्त वृक्ष हमने देखे। आगे फिर ताल वृक्ष बहुत देखे और कन्दरा के स्थान आये उन्हें हम लांघते गये। हे रामजी ! इसी प्रकार हम राजसी, तामसी और सात्त्विकी तीनों गुणों के रचे स्थानों को लांघते २ मथुरानगर के मार्ग आये जो सूधाथा पर उसको छोड़कर वह टेढ़े मार्ग को चला तब मैंने कहा; हे साधो ! सूधे मार्ग को छोड़कर तू टेढ़े मार्ग से क्यों चलता है ? उसने कहा, हे साधो ! चला आ इसमार्ग में गौरी भगवती का स्थान है उनका दर्शन करते चलें और मेरे सात भाई जो गौरी के स्थानपर उसी कामना को लेकर तप करते थे उनकी भी सुधि लें। हे रामजी ! जब हम उस मार्ग के सन्मुख चले तब आगे एक महाशून्य वन आया जो मानो शून्य आकाश था और महातमरूप था। कि, वहां वृक्ष, पशु, पक्षी और मनुष्य कोई दृष्टि न आता था। उस वनमें पहुँचकर उसने मुझसे कहा, हे ब्राह्मण ! इस स्थान में मैं आगे षट्मास रहा हूं और मेरे सात भाई और थे उन्हों ने भी यही कामना धार करके देवीका तप आरम्भ किया था चलो देखें। वह महापवित्र स्थान है जिसके दर्शन कियेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं। तब मैंने कहा चलिये पवित्र स्थान को अवश्य देखा चाहिये। हे रामजी ! ऐसे विचार कर हमचले और जाते२ मरुस्थल की तपी हुई पृथ्वी पर जा निकले तब वह ब्राह्मण देखकर गिरपड़ा और कहने लगा कि, हा कष्ट २ हम कहां आनपड़े ! तब तो मुझको भी भ्रम उदय हुआ कि, यह क्या हुआ। निदान वह फिर उठा और दोनों आगेगये तो एक वृक्ष हमको दृष्ट पड़ा कि; उसके नीचे एक तपस्वी ध्यान में स्थित बैठा था। हम उसके निकट गये और कहा; हे मुनीश्वर ! जाग जाग। जब हमने वहुत बार कहा तब उसने नेत्र खोलकर हमको देखा और कहा तुम कौन हो ? ऐसे कहकर फिर कहा बहुत आश्चर्य है कि, यहां गौरी का स्थानथा वह कहां गया और और वृक्ष, बावलियां, कमल और सुन्दरस्थान और बड़े ऋषीश्वर और मुनीश्वरोंके स्थान थे वह कहां गये ? हे साधो ! यह क्या आश्चर्य हुआ सो तुम कहो ? तब हमने कहा, हे मुनीश्वर ! हम नहीं जानते हम तो अभी आये हैं; इसको तो तुम्हीं जानो। तब उसने कहा बड़ा आश्चर्य है ! हे रामजी ! ऐसे कहकर वह फिर ध्यानमें स्थित होगया और व्यतीत वृत्तान्तका ध्यान करके देखनेलगा। एक मुहूर्त पर्यन्त देखकर उसने फिर नेत्र खोलकर कहा कि, बड़ा आश्चर्य हुआहै। तब हमने कहा, हे भगवन् ! जो कुछ वृत्तान्त हुआ सो कृपा करके हमसे कहो। तब तपस्वीने कहा, हे साधो ! एक समय वागेश्वरी भवानी

इस वन में आई और उसने रहने का एक स्थान बनाया जिसमें वह शिव की अर्ध-शरीर गौरी रही। उस स्थान के निकट बहुत सुन्दर कल्पवृक्ष, तमालवृक्ष, कदम्ब वृक्ष इत्यादिक बहुत वृक्ष लगाये; कमलफूल आदि सर्व ऋतुओं के फूल लगाये और बावलियां और बगीचे अति रमणीय रचे जिन पर कोयल, भँवरे, तोते, मोर, बगले आदि पक्षी विश्राम करने और शब्द करनेलगे। उसके निकट ऋषीश्वरों; मुनीश्वरों और तपस्वियों की कुटियां इन्द्रके नन्दनवन सदृश थीं और निकट व गांवकी बस्ती बहुत हुई। हे साधो! यहां आठ ब्राह्मण तपके निमित्त आयेथे और षट्मास यहांही रहे॥

इति श्रीयो० नि० ब्रह्मगीतागौर्युद्यानवर्णनंनामद्विशताधिकचतुःषष्टितमस्सर्गः॥२६४॥

कदम्ब बोले, हे साधो! मुझसे पूछो तो अपना वृत्तान्त मैं कहताहूं। मैं मालव देश का राजा था और चिरपर्यन्त खेद से रहित मैंने विषयभोग भोगे तब मुझको यह विचार उपजा कि, यह संसार स्वप्नमात्रहै और इसको सत्य जानकर स्थित होना मूर्खता है। इतनी मेरी आयुर्बल बीती पर मैंने सुकृत कुछ न किया। यह विषयभोग आपातरमणीय और नाशवन्तहैं इनको मैं चिरपर्यन्त भोगता रहाहूं और मुझको शान्ति न प्राप्तहुई—तृष्णा बढ़ती गई—इससे वही उपाय करूं जिससे मुझ को शान्ति हो और फिर कदाचित् दुःखी न होऊं। हे साधो! जब यह विचार मुझको उदय हुआ तब मैंने वैराग्य करके राज्य की लक्ष्मी त्याग की और ऋषि और मुनियोंके स्थान देखता इस कदम्बवृक्षके नीचे आया। यहां आठ भाई ब्राह्मण आये थे उनमें से एक यह तो इसी पर्वतपर तप करने लगा था; दूसरा स्वामिकार्त्तिक के पर्वत पर तप करने गया; तीसरा बनारसमें तप करने लगा और चौथा हिमालयपर तप करने गया। चार भाई तो इस प्रकार चारों स्थानों को गये और चार भाई यहां तप करनेलगे। उन सबकी यही कामना थी कि, हम पृथ्वी के सातोंद्वीपों के राजा हों। हे साधो! इसको तो सूर्य ने वर दिया है और बाक़ी जो सात थे उन्होंने बागेश्वरी भवानी का इष्ट करके तप किया। जब वह प्रसन्न हुई और बोली कि, वर मांगो तब उन्होंने कहा कि, हम सप्तद्वीप पृथ्वी के राजा हों। निदान उन सातोंने एकही वर मांगा और उनको वर देकर परमेश्वरी अन्तर्धान होगई। उन्होंने यह भी वर मांगा था कि, यहां के वासियों का स्थान भी हमारे पास हो। हे साधो! इस वर को पाकर वे वहांसे चले और अपने गृह गये और बागेश्वरी वहां बारह वर्ष पर्यन्त रहकर फिर उनकी मर्यादा थापनेके निमित्त यहां से अन्तर्धान होगई और यहां के वासी भी सब जातेरहे। बागेश्वरी के जानेसे यह स्थान शून्य होगया। एक यह कदम्ब का वृक्ष रहगया है और एक मैं ध्यान में स्थितरहा हूं। यह कदम्ब का वृक्ष बागेश्वरीने अपने हाथ से लगाया इस कारण यह नष्ट नहीं हुआ और जर्जरीभाव भी नहीं हुआ। हे साधो! और सब जीव यहां आकर

अदृष्ट होगये इस कारण सब शुभ आचार रहे। उन आठों भाइयों में सात आगे गये हैं और एक यह बैठा है इसको भी घरजाना है; वहां सब इकट्ठे होंगे। जैसे अष्टवसु ब्रह्मपुरी में एकत्र हों। हे साधो! जब वे गृह से तप करनेके निमित्त निकले तब उनकी स्त्रियों ने विचार किया कि; हमारे भर्ता तो तप करनेगयेहैं हमभी जाकर तप करें इस लिये उन आठों ने तप आरम्भ किया और सौ सौ चान्द्रायणव्रत किये तब उनका शरीर जैसे वसन्तऋतु की मञ्जरी जेठ आषाढ़ में कृश होजाती है तैसेही होगया। एकतो भर्ताका वियोग; दूसरे तप से वे कृश होगईं तब पार्वती बागेश्वरी प्रसन्न हुईं और बोलीं कि, कुछ वरमांगो। जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होकर बोलता है, तैसेही वे प्रसन्न होके बोलीं; हे देवताओं की ईश्वरी! हम यह वर मांगतीहैं कि, हमारे भर्ता अमर हों और जैसे तेरा और शिव का संयोगहै तैसेही हमारा उनका हो। तब भवानी ने कहा हे सुभद्रे! इस शरीर से तो कोई अमर नहीं रहता। आदि जो सृष्टि हुई है उसमें नेति हुईहै कि, शरीरसे कोई अमर न रहेगा और जितना कुछ जगत् देखती हो वह सब नाशरूप है; कोई पदार्थ स्थिर नहीं रहता इस लिये और कुछ वर मांगो। तब ब्राह्मणियों ने कहा, हे देवि! भला जो हमारे भर्ता मरें तो उनके जीव हमारे गृह में रहें और उनकी संवित् बाहर न जावे। तब बागेश्वरीने कहा, ऐसेही होगा कि, उनके जीव तुम्हारे ही घर में रहेंगे और उनको जो लोकान्तर भासेगा उसके साथ ही तुम भी उनकी स्त्री होकर स्थित होगी। ऐसे कहकर बागेश्वरी अन्तर्धान होगई। कुन्ददन्त बोले, हे रामजी! इस प्रकार सुनकर मैं आश्चर्यवान् हुआ तब मैंने कहा, हे मुनीश्वर! यह तो तुमने बड़ी आश्चर्य कथा सुनाई कि, आठों भाइयों ने एकही वर पाया। उन को एक पृथ्वी में सात २ द्वीपों का राज्य क्योंकर प्राप्त होगा? हे रामजी! जब इस प्रकार उससे मैंने पूछा; तब कदम्बतप ने कहा, हे साधो! यह क्या आश्चर्य है और आश्चर्य सुनो। हे ब्राह्मण! जब यह आठों भाई तप के लिये घर से निकले थे तब इनके पिता माता ने भी विचार किया कि, हमारे पुत्र तो तप करनेगयेहैं इस लिये हम भी उनके निमित्त जाकर तप करें और उनकी स्त्रियों को अपने साथ लेकर तीर्थ और ठाकुरद्वारे दिखाते फिरें। निदान उन्होंने भी बैठकर तप किया और कुछ चान्द्रायण व्रत करके देवी को प्रसन्न किया। देवीसे वर लेकर जब वे अपने घर को आनेलगे तब एक स्थान में दुर्वासा ऋषीश्वर बैठा था, जिसके दुर्बल अङ्ग और विभूति लगी थी और जटा खुली हुई थी। उसको देखकर वे पास से ही चलेगये पर उसे नमस्कार न किया तब उसने कहा, हे ब्राह्मण! तुम क्यों दुष्ट स्वभाव से हमारे पास से चलेगये और हम को नमस्कार भी न किया? अब तुम्हारा वर निवृत्त होगा। जो वर तुमको प्राप्त हुआ है सो न होगा उसके विपरीत होजावेगा। तब उन्होंने कहा, हे मुनीश्वर!

यह वचन तुम कैसे कहते हो; हमारे ऊपर क्षमा करो। यह ऐसेही कहरहे थे कि, वह अन्तर्धान होगया और ब्राह्मण अपने गृह में आये और शोकवान् हुये हे ब्राह्मण ! देख जबतक आत्मबोध से शून्य है तबतक अनेक दुःख उपजेंगे; कई प्रकार के आश्चर्य भासेंगे और सन्देह दूर न होवेगा। जब आत्मबोध होगा तब कोई संसार आश्चर्य न भासेगा। हे ब्राह्मण ! यह सब चिदाकाश में मायामात्र ही रचना बनती है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्राह्मणकथावर्णनन्नाम द्विशताधिकपञ्चषष्टितमस्सर्गः ॥ २६५ ॥

कुन्ददन्त ने कहा, हे भगवन् ! मैं यह सुनकर आश्चर्यवान् हुआ हूं और मुझे एक संशय उत्पन्न हुआहै सो निवृत्त कीजिये ? तुमने कहा कि, एकद्वीपमें आठों इकट्ठे सप्तद्वीप के राजा होंगे पर सातों द्वीप तो एकही हैं और राज्य करनेवाले आठ हैं, यह कैसे राज्य करेंगे ? और इन्होंने वर और शाप दोनों पायेहैं यह इकट्ठे क्योंकर होंगे ? जैसे धूप और छाया; और दिन और रात्रि इकट्ठे होने कठिन हैं; तैसेही वर और शाप एक होने कठिनहैं। कदम्बतप बोले, हे साधो ! जो कुछ इनकी भविष्यत् होगी सो मैं कहताहूं जब कुछ काल गृहस्थी में व्यतीत होगा तब इनके शरीर छूट जावेंगे और इनको कुटुम्बी जलावेंगे। इनकी पुर्यष्टका अनुभव से मिली हुई है इस कारण एक मुहूर्तपर्यन्त इनको जड़ीभूत सुषुप्ति होगी और उसके अनन्तर चैतन्यता फुर आवेगी। तब शंख, चक्र, गदा, पद्मसहित चतुर्भुज विष्णु का रूप धार के वर आवेंगे और त्रिनेत्र हाथ में त्रिशूल लिये और भृकुटी चढ़ाये क्रोधवान् सदाशिव का रूप धारणकर शाप आवेंगे; तब वर कहेंगे कि, हे शाप ! तुम क्यों आये हो अब तो हमारा समय है ? जैसे एकऋतु के समय दूसरी नहीं आती, तैसेही तुम न आवो। तब शाप कहेंगे, हे वरो ! तुम क्यों आये हो अब तो हमारा समय है ? जैसे एकऋतु के होते दूसरी का आना नहीं बनता, तैसेही तुम्हारा आना नहीं बनता। तब वर कहेंगे हे शाप ! तुम्हारा कर्ता ऋषि मनुष्य है और हमारा कर्ता देवता है। मनुष्य से देवता पूजने योग्य हैं क्योंकि; बड़े हैं, इससे तुम जावो। जब इस प्रकार वर कहेंगे, तब शाप क्रो .वान् होंगे और मारनेके निमित्त त्रिशूल हाथमें उठावेंगे, तब वर कहेंगे, हे शाप ! यदि तुम और हम लड़ेंगे तो पीछे किसी बड़े न्यायकर्ताके पास जावेंगे जो हमारा न्याय चुकादेगा इससे प्रथम ही क्यों न जावें ? तब शाप कहेंगे, हे वर ! जो कोई युक्तिसहित वचन कहता है उसको सब कोई मानतेहैं; तुमने भला कहाहै चलिये। ऐसे चर्चा करके दोनों ब्रह्मपुरी में जावेंगे और ब्रह्माजीको प्रणाम करेंगे और अगला वृत्तान्त कहकर कहेंगे, हे देव ! यह हमारा न्याय करो कि, उनको वर स्पर्श करे अथवा शाप स्पर्श करे ? तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे साधो ! जिसका अभ्यास उनके भीतर दृढ़

हो वह प्रवेश करे। तब वरके स्थान शाप जाकर ढूंढ़ेंगे और शाप के स्थान वर जाय ढूंढ़ेंगे और ढूंढ़कर शाप आयके कहेंगे; हे स्वामिन्! हमारी हानि हुई और वरकी जय हुई है क्योंकि; उनके भीतर वरही स्थितहै। जिसका अभ्यास हृदयमें स्थितहै उसी की जय होती है सो तो इनके भीतर वज्रसार की नाईं वर स्थितहै। हे स्वामिन्! हमारा आधिभौतिक शरीर कोई नहीं; हमतो संकल्परूपहैं। जिस संकल्पकी दृढ़ता होती है वही उदय होताहै वरका कर्ताभी ज्ञानमात्र होताहै; वरको लेताभी वही ज्ञानरूपहै और वरको ग्रहणकरता जानताहै कि; यहहमारा स्वामीहै। उस संकल्पसे वरका कर्ता देवता जानताहै कि, मैंने वर दियाहै और ग्रहण करनेवाला जानताहै कि मैंने वर लिया है। हे ईश्वर! उसका जो वररूप संकल्पहै सो उसके निश्चयमें दृढ़ होजाताहै। जिस संकल्प की संवित्से एकता होती है वही प्रकट होता है। इसी प्रकार शापभी है परन्तु न कोई वरहै, न शापहै दोनों संकल्परूपहैं। जैसा संकल्प अनुभव आकाशमें दृढ़ होताहै वही भासताहै। वर देनेवालाभी अनुभवसत्ताहै और लेनेवाला भी आत्मसत्ताहै। वही सत्ता वररूप होकर स्थित होती है और वही सत्ता शापरूप होकर स्थित होती है। जिस संकल्पकी दृढ़ता होती है उसी का अनुभव होता है। हे स्वामिन्! यह तुमसे सुना हुआ हम कहतेहैं कि; इसको कोई बाहरका कर्म फलदायक नहीं होता जो कुछ भीतर सार होता है वही फल होता है। इनके भीतर तो वर का संकल्प दृढ़ है और हमारा नहीं है तो हमारा तुमको नमस्कार है—अब हम जाते हैं। हे कुन्ददन्त! इस प्रकार से शाप आधिभौतिक शरीर त्यागकर अन्तवाहक शरीर से अन्तर्धान होजावेंगे। जैसे आकाशमें भ्रम से तरुवरे भासें और सम्यक्ज्ञान मे अन्तर्धान होजावें; तैसेही शाप अन्तर्धान होजावेंगे। तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे वर! तुम शीघ्रही उनके पास जावो और वह वर और दूसरा वर जो उनकी स्त्रियोंने लिया था कि, उनकी पुर्यष्टका अन्तः-पुर में रहे फिर पूछेंगे, हे भगवन्! हमको क्या आज्ञा है। हमको तो उनको उसी मन्दिर में रखना है और उनको सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य भी भोगना है और दिग्वि-जय करनाहै यह कैसे होगा? तब ब्रह्माजी कहेंगे हे साधो! यह क्याहै? जो उन्हें सप्त-द्वीप की पृथ्वी का राज्य करना है तो उनका तुम्हारे साथ विरोध कुछ नहीं। तुमको उसी मन्दिर में उनकी पुर्यष्टका रखनीहै और वहांहीं राज्य भुगावना है इसलिये जो कुछ तुम्हारा स्वभाव है सो करना। कुन्ददन्त ने पूछा, हे भगवन्! इससे तो हमको बड़ा संशय उत्पन्न हुआ है कि, उसी मन्दिर में आठो भाई सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य कैसे करेंगे? इतनी पृथ्वी उस मन्दिरमें क्योंकर समावेगी यही आश्चर्यहै? जैसे कमल के फूल की कली में कोई कहे कि, हाथी शयनकरे वा हाथी की पंक्ति है सो आश्चर्य है; तैसेही यह आश्चर्य है। ब्राह्मण बोले, हे साधो! ब्रह्मरूपी आकाश है उसके अण्

का जो सूक्ष्म अणु है उसमें जो स्वप्ना फुरा है सो हमारा जगत् है। यदि स्वप्नेमें यह सृष्टि समारही है तो मन्दिर में समाना क्या आश्चर्य है ? हे साधो ! यह सब जगत् स्वप्नमात्रहै और अहंत्वमादिक सब जगत् स्वप्ननिद्रा में फुरता है। आत्मसत्ता सदा अद्वैत, परमशान्त और अनन्त है और उसमें जगत् आभासमात्र है। जैसे स्वप्नेमें अपना अनुभवही सूक्ष्म से सूक्ष्म होताहै और उसमें त्रिलोकी भासि आतीहै। यदि सूक्ष्म संवित् में त्रिलोकी भासि आती है तो मन्दिर में भासना क्या आश्चर्य है ? हे साधो ! जब यह पुरुष मरजाता है तब इसकी सूक्ष्मपुर्यष्टका जड़ होजाती है और उसमें फिर त्रिलोकी फुर आती है। तुम देखो कि यदि सूक्ष्मही में भासि आई और जो परमसूक्ष्म में सृष्टि बनजाती है तो मन्दिर में होनेका क्या आश्चर्यहै ? हे साधो ! यह सर्व जगत् जो भासता है सो आत्मा में स्थित है और उसका किञ्चन इस प्रकार हो भासता है। अब तुम जावो उनको राज्य भुगावो। हे कुन्ददन्त ! जव इस प्रकार ब्रह्माजी कहेंगे तब वर नमस्कार करके आधिभौतिक शरीर त्याग देंगे और अन्तवाहक शरीर से उनके हृदय में स्थित होंगे। जैसे एक शत्रु को दूर करके दूसरा स्थित हो तैसेही शाप को दूर करके उनके हृदय में वर आन स्थित हुये और उनको त्रिलोकी भासनेलगी और पुर्यष्टका को अन्तःपुर में वर ने रोकछोड़ा। जैसे जल वन को रोकताहै तैसेही उनकी पुर्यष्टका को वरने रोका। हे कुन्ददन्त ! इस प्रकार उनको अपने अन्तःपुर में सृष्टि भासी और उन्होंने जाना कि, हम सातों द्वीप के राजा हुये हैं। इस प्रकार वे आठों उस अन्तःपुर में सातोंद्वीप पृथ्वी के राजा हुये परन्तु परस्पर अज्ञात रहे। एक सप्तद्वीप का राजा हुआ और जम्बूद्वीप में जो उज्जैननगर है उसमें उसकी राजधानी हुई। दूसरा कुशद्वीप में रहनेलगा; तीसरा क्रौंचद्वीप में रहने लगा, चौथा शाकद्वीप का राजा हुआ और उससे हरकारे कहने लगे कि, पाताल के नाग बड़े दुष्ट हैं उनको किसी प्रकार जीतो। तब वह समुद्र के मार्ग से पाताल में नागों को जीतने जावेगा और एक द्वीप में अपनी स्त्री से शान्त होजावेगा। पांचवां शाल्मलिद्वीप में स्थित होगा जहां बड़ी प्रकाशसंयुक्त स्वर्ण की पृथ्वी है। वहां एक पर्वत होगा और उसके ऊपर एक ताल होगा जिसमें वह विद्याधरों से लीला करता फिरेगा। और दिग्विजय करके आवेगा। उसकी प्रजा बड़ी धर्मात्मा और मानसी पीड़ा से रहित होगी। छठा गोमेदकनाम द्वीप में होगा और उसका युद्ध पुष्करद्वीपवाले से होवेगा। सातवां पुष्करद्वीप का राजा होगा जो गोमेदक वाले राजा से युद्ध करेगा और आठवां लोकालोक पर्वत का राजा होगा। हे कुन्ददन्त ! इस प्रकार वे अपने अन्तःपुर में सृष्टि देखेंगे और राज्य भोगेंगे परन्तु परस्पर उनकी सृष्टि अदृश्य होगी। सबकी राजधानी भी मैंने तुमसे कही कि, एक की

जम्बूद्वीपके उज्जैननगर में; दूसरे की कुशद्वीप में; तीसरे की क्रौंचद्वीप में, चौथे की शाकद्वीप में, पांचवें की शाल्मलिद्वीप में; छठे की गोमेदकद्वीप में; सातवें की पुष्कर द्वीपमें और आठवें की लोकालोक पर्वत स्वर्णपृथ्वीमें होगी। हे साधो! इस प्रकार उनकी भविष्यत् होगी सो मैंने सब तुमसे कही। जैसा हृदयमें निश्चय होताहै तैसाही फल होताहै। बाहर कैसीही क्रियाकरो और भीतर सत्ता नहीं तो वह फलदायक नहीं होती। जैसे नट स्वांग बनाकर चेष्टा करताहै परन्तु उसके भीतर उसका सद्भाव नहीं होता इससे वह फलदायक नहीं होती। हे साधो! जैसा हृदयमें निश्चय होता है वही वरदायक होता है, इस लिये परमार्थ का निश्चय करना योग्य है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्राह्मणभविष्यद्राज्यप्राप्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकषट्षष्टितमस्सर्गः॥ २६६॥

कुन्ददन्त बोले, हे मुनीश्वर! मुझको बड़ा संशय हुआ है कि; उसी अन्तःपुर में अपने २ द्वीपों का राज्य वे क्योंकर करेंगे? कदम्बतप बोले, हे साधो! यह सर्व जगत् जो तुझको दृष्टि आता है सो कुछ बना नहीं; शुद्ध चिन्मात्रसत्ता अपने आप में स्थित है। उनको जो अन्तःपुर में अपनी २ सृष्टि भासेगी सो क्या रूप होगी? उनका जो अपना अनुभव है वही सृष्टिरूप हो भासेगा कि; आपही सृष्टिरूप और आपही राजा होंगे। यह जो कुछ जगत् तुझको भासता है सो भी परब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं। जैसे समुद्रमें तरङ्ग स्वाभाविक फुरते हैं सो जलहीरूप हैं और लीन होते हैं तो भी जलहीरूप हैं, जल से भिन्न नहीं और न कुछ उपजता है, न मिटता है; तैसेही ब्रह्म में जगत् न उपजता है और न लीन होता है परब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं इसमें वे ब्राह्मण भी अजरूप अपने आपको फुरने से जगत्रूप देखेंगे। हे साधो! जब सुषुप्ति होती है तब अद्वैत अपनाही अनुभव होताहै और फिर उसमें स्वप्न की सृष्टि फुर आती है पर वही सुषुप्तिरूप है; तैसेही परमसुषुप्तिरूप आत्मा है जहां सुषुप्ति भी लीन होजाती है और उसमें यह जगत् फुरताहै सो वहीरूप है। आधार-आधेय से रहित ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। हे साधो! जैसे एकही मन्दिरमें बहुत पुरुष शयन करें तो उनको अपने २ स्वप्नेकी सृष्टि भासतीहै इसमें कुछ आश्चर्य नहीं. तैसेही उनको अपनी २ सृष्टि भासेगी तो इसमें क्या आश्चर्यहै? जो कुछ जगत् भासता है सो ब्रह्म में है और ब्रह्मरूप ही अपने आप में स्थित है। कुन्ददन्त बोले, हे भगवन्! आत्मसत्ता तो एक और केवल है बल्कि उसको एक भी नहीं कहसक्ते और परम शान्तरूप, शिवपद और अद्वैतरूप है तो नाना प्रकार क्यों भासती है? यह तो स्वभावसिद्ध है सो नानात्व होकर वास्तव क्यों भासतीहै? कदम्बतप बोले, हे साधो! सर्वशान्तरूप और चैतन्य आकाश है और नाना प्रकार की जो भासती

है सो और कोई नहीं आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि भासती है सो कुछ नहीं बनी अपना अनुभवही सृष्टिरूप हो भासता है; तैसेही यह जगत् अनुभवरूपहै। हे साधो ! सृष्टिके आदि अद्वैत आत्मसत्ता थी उसमें जो जगत् भासि आया सो भी तुम वही रूप जानो। जैसे समुद्रही तरङ्गरूप हो भासताहै, तैसेही आत्मसत्ता सृष्टिरूप हो भासती है। जैसे कोई थम्भे से रहित स्थान में सोया हो उसको बहुत थम्भोंसंयुक्त मन्दिर भासि आवे तो वहां बना तो कुछ नहीं अनुभव आकाश ही थम्भरूप हो भासता है; तैसेही जो कुछ जगत् तुमको भासताहै सो अपना अनुभवरूप जानो। जैसे आकाशमें शून्यता; अग्नि में उष्णता और बरफ़ में शीतलता है; तैसेही आत्मा में जगत् है। चाहे कोई जगत् कहो अथवा ब्रह्म कहो पर ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। जैसे वृक्ष और तरु एकही वस्तु है; तैसेही ब्रह्म और जगत् एकही वस्तु के दो नाम हैं। इस जगत्; इन्द्रियों और मन से अतीत आत्मा को जानो और जो इन तीनों का विषय है सोभी आत्मा को जानो दूसरी वस्तु कुछ नहीं। नानारूप जो दृष्टि आता है सो नानात्व नहीं हुआ—दूसरा नहीं भासता है। जैसे स्वप्नेमें बड़े आरम्भ दृष्टि आते हैं और सेना और नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं परन्तु कुछ हुये नहीं, तैसेही यह जगत् नाना प्रकार भासता है परन्तु कुछ हुआ नहीं सर्वचिदाकाशरूप है। जैसे एक निद्रा की दो वृत्ति है—एक स्वप्न और दूसरी सुषुप्तिरूप—स्वप्ने में नानात्व भासती है और सुषुप्ति में एक सत्ता होती है; तैसेही चित् संवित् के फुरने में नानात्व भासता है और न फुरने में एक है। हे साधो ! वह तो सर्वदाकालमें एकरूपहै परन्तु प्रमादसे भेद भासताहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपनाही अनुभवरूपहै परन्तु प्रमादसे भिन्न भिन्न भासतीहै; तैसेही यह जगत् है। हमको तो सर्वदाकाल वही भासताहै। जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी एकही वृक्षके नामहैं; जो वृक्षका ज्ञाताहै उसको सब वृक्षरूपही भासताहै; तैसेही सर्वनामरूपसे हमको आत्माही भासता है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। आदि फुरने में जैसे निश्चय हुआ है सो और निश्चय पर्यन्त तैसेही रहताहै यह सब विश्व संकलपरूप है और संकलपका अधिष्ठान ब्रह्म है—ब्रह्महीं संकलपरूप होकर भासताहै। इससे सब संकलपरूप जगत् भासता है सो ब्रह्मरूप है; ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं—एकही वस्तु के दो नाम हैं। जैसे वृक्ष और तरु दोनों एक वस्तुके नामहैं, तैसेही ब्रह्म और जगत् दोनों एक चैतन्य के नामहैं। हे साधो ! जो वाणी से अकथहै उसको ब्रह्म जानो और जो शब्द वाणी में आताहै उसको भी तुम ब्रह्म जानो—ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं। जो ज्ञानवान् है उसको सब ब्रह्महीं भासताहै पर अज्ञानी को नानात्व भासता है। जब अध्यात्म अभ्यास करोगे तब सब जगत् ब्रह्मरूपही भासेगा—इसका नाम घोष है। हे साधो ! नानाप्रकार

होकर जगत् दिखाई देता है तौभी नानात्व कुछ नहीं। जैसे समुद्र में द्रवता से नाना प्रकार के तरङ्ग, बुद्बुदे और चक्र दृष्टि आतेहैं परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही सर्वपदार्थ जो दृष्टि आतेहैं सो सब आत्मरूप हैं और जितने जीव बोलते दृष्टि आते हैं सोभी महामौनरूपहैं कुछ बने नहीं। चित्तके फुरनेसे नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं परन्तु आत्मासे भिन्न कुछ नहीं—वही चिदाकाश ज्योंका त्यों स्थित है और जो कुछ आत्मा से भिन्न विद्यमान भासता है उसको अविद्यमान जानो। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से आदि जितना जगत् भासता है सो सब स्वप्ने का विलासहै जैसे नेत्रदूषण से आकाश में तरुवरे भासतेहैं, तैसेही भ्रमदृष्टि से आत्मा में जगत् भासता है—कुछ बना नहीं। जैसे सुषुप्ति में पुरुष सोया होताहै उसको फुरना नहीं फुरता और फिर उसी सुषुप्ति से स्वप्ने की सृष्टि फुर आतीहै सो बनी कुछ नहीं वही सुषुप्तिरूप है पर स्वप्ने में स्थित पुरुष को सत्य भासता है और जो अनुभव में जागा है उसको सुषुप्तिरूप है; तैसेही इस जगत् को जानो। आत्मासे भिन्न कुछ नहीं, जब जागकर देखोगे तब सब चिन्मात्र ही भासेगा जो शान्तरूप, अनन्त और सदा अपने आपमें स्थित है। उसमें जो जगत् भासता है सो सत्य भी नहीं और असत्यभी नहीं; सत्य इस कारण से नहीं कि, आभासमात्र और नाशवन्तहै और असत्य इस कारण नहीं कि, प्रकट भासताहै और वास्तव में आत्मसत्ता से भिन्न नहीं। भाव, अभाव, सुख, दुःख, उदय, अस्त वही आत्मसत्ता इस प्रकार हो भासती है जैसे एकही निद्राके स्वप्ना और सुषुप्ति दो पर्याय हैं, तैसेही जगत् और आत्मा दोनों एकही सत्ता के पर्याय हैं। जैसे एकही वायु स्पन्द और निस्स्पन्द दो रूप होतीहै; तैसेही आत्मसत्ताके दोनों रूप हैं। जब संवेदन नहीं फुरता तब अग्निवाचीरूप होतीहै और जब अहंभाव को लेकर फुरतीहै तब संकल्परूपी सृष्टि बनजातीहै। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, तत्त्व, नक्षत्र, चक्र, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी जल का नीचे चलना; अग्नि का ऊर्ध्व चलना; तारागण प्रकाशवान् होना; पृथ्वी स्थित भूतआदि जो स्थावर—जङ्गमरूप सृष्टिहै सो अपने स्वभाव सहित भासती आती है और शुभ—अशुभ कर्म होते हैं उनमें सुख दुःख फल की नीति होती है परन्तु आत्मसत्ताही इस प्रकार भासती है। जैसे तू मनोराज से स्वप्ननगर कल्प ले और उसमें अनेक प्रकार की चेष्टाकरे सो जबतक संकल्प होताहै तबतक वही सृष्टि स्थित होतीहै और जब संकल्प मिटगया तब सृष्टि लय होजाती है तो और वस्तु कुछ न हुई तेरा अनुभवही सृष्टिरूप होकर स्थित हुआ; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है और कुछ नहीं। कुन्ददन्त ने पूछा, हे तपस्विन्! संकल्प तो पूर्वस्मृति को लेकर फुरता है; ब्रह्मा में मनोराज संकल्प की सृष्टि किस संस्कार को लेकर फुरती है यह संशय मेरा निवृत्त करो? कदम्बतप बोले, हे साधो! यह सम्पूर्ण सृष्टि किसी

संस्कारसे नहीं उत्पन्नहुई, भ्रम से भासती है। जैसे स्वप्नेमें मनुष्य आपको मृतक हुआ जानता है सो उसको पूर्व के संस्कार की स्मृति तो नहीं होती अपूर्वही भासि आती है; तैसेही ये पदार्थ जो तुझको भासते हैं सो अपूर्व हैं किसी स्मृति से नहीं हुये। स्मृति और अनुभव तो जगतही में उत्पन्न हुये हैं पर जब जगत् का फुरना न था तब स्मृति और अनुभवभी न थे। जब जगत् फुरा तब येभी फुरेहैं इससे सम्पूर्ण जगत् अपूर्व है और भ्रम से भासता है। जैसे स्वप्न में मुआ किसी कुल में अपना जन्म देखे और उसको ऐसे भासे कि, कुल चिरकाल की चल आतीहै पर जब जाग उठे तब पूर्व किसको कहे। और स्मृति किसकी करे; न कहीं जन्म रहता है और न कुल रहता है; तैसेही ज्ञानवान् को यह जगत् आकाशरूप भासता है तो मैं तुझको पूर्व की स्मृति क्या कहूं? हे ब्राह्मण! और कुछ बना नहीं आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों स्थितहै। जिससे यह सर्वजगत् हुआ है; जिसमें यह सर्व है और जो सर्व है सो सर्वात्मा है। जो वही है तो दूसरा किसको कहूं? इससे ऐसे जानकर तुम विचारो तब सर्वदुःख तुम्हारे नष्ट होंगे। हे साधो! कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक ब्रह्मरूप हैं। कर्ता कर्म के करनेवाले को कहते हैं; कर्म जो है सो करनेकी संज्ञा है; करण क्रिया का साधक है; सम्प्रदान जिस निमित्त हो; अपादान जिससे लय कीजिये और अधिकरण जिसमें कीजिये। हे साधो! ये छः कारक ब्रह्मरूप हैं। विश्व का कर्ता भी ब्रह्म है; विश्वकर्मा भी ब्रह्म है; विश्व का साधक भी ब्रह्महै; जिसमें निमित्त यह विश्व है सोभी ब्रह्म है और जिसमें यह विश्व होता है सो भी ब्रह्म है। हे साधो! ऐसा जो सर्वात्मा है उसको नमस्कार है। हे साधो! उस सर्वात्मा को ऐसे जाननाही उसकी परम पूजा है। ऐसेही तुमभी पूजनकरो। हे साधो! अब तुम जावो और अपने वाञ्छित में बिचरो। तुम्हारे बान्धव तुमको चितवते होंगे उनके पास जावो—जैसे कमलके पास भँवरे जाते हैं—और हमभी समाधि में स्थित होतेहैं। जो कुछ गुह्य बात है सोभी मैं कहता हूं। जिससे कोई सुख पाता है। वही करता है। मुझको तो जगत् दुःखदायक दृष्टि आया है इस कारण मैं समाधि में लगता हूं। हे साधो! यद्यपि मुझे सब अवस्था तुल्य हैं तौभी चित्त की वृत्ति जो संसार के कष्ट से दुःखित होकर आत्मपद में स्थित हुई है उस स्थिति के सुख के संस्कार से फिर उसी ओर धावती है। अब तुम जावो मैं समाधि में स्थित होता हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकुन्ददन्तोपदेशोनाम
द्विशताधिकसप्तषष्टितमस्सर्गः॥ २६७॥

कुन्ददन्त बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह फिर समाधि में लगा और इन्द्रियों और मन की क्रिया से रहित हुआ—मानो कागजपर मूर्ति लिखी हो। तब

फिर हम उसे बहुत जगातेरहे और बड़े शब्द किये परन्तु वह न जागा। निदान हम वहांसे चले और उस ब्राह्मण के घर आये तो उनके घर में बड़ा उत्साह हुआ और समय पाकर क्रमसे वे सातो भाई मरगये पर अष्टम मेरा मित्र जीतारहा था वह भी कुछ दिन में मृतक होगया तब मैं बहुत शोकवान् हुआ कि, मेरा प्रियतम भी मरगया अब मैं क्या करूं। हे रामजी! तब मैंने विचार किया कि, फिर मैं कदम्बतपा के पास जाऊं तो मेरा दुःख नष्ट होगा। निदान मैं वहां गया और तीन मास पर्यन्त उसके पास रहा। उसको मैं जगातारहा परन्तु वह न जागा पर जब तीन मास होचुके तब वह जागा और मैंने उसको प्रणाम करके कहा; हे मुनीश्वर! वे तो अपने २ राज्यको भोगने लगे और मैं अकेला कष्टवान् हूं इस से मेरा दुःख तुम नष्ट करो—मैं तुम्हारी शरण आया हूं। कदम्बतपा बोले, हे साधो! मेरे उपदेश से तुझ को स्वरूप का साक्षात्कार न होगा क्योंकि; तुझको अभ्यास नहीं है। अभ्यास विना स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता इससे मेरा कहना भी व्यर्थ होगा। मैं दुःख नष्ट होने का एक उपाय तुझसे कहताहूं उससे तू मेरे समान और दुःख से रहित होकर अनन्त आत्मा होगा। हे साधो! अयोध्यानगरी के राजा दशरथ के गृहमें रामजी पुत्र हुये हैं जिनको वशिष्ठजी मोक्षोपाय उपदेश करेंगे और बड़ी सभा में कहेंगे वहां तू जा तो तुझको भी स्वरूप की प्राप्ति होगी--संशय मतकर। हे रामजी! जब इस प्रकार उस तपस्वी ने मुझसे कहा, तब मैं वहांसे चलकर तुम्हारे पास आया हूं। जो कुछ तुमने पूछा था सो सब वृत्तान्त मैंने कहा और जो कुछ देखा सुना था वह भी कहा। रामजी बोले, हे वशिष्ठजी! जो वृत्तान्त मैंने उससे सुना था सो प्रभु के आगे कहा और कुन्ददन्त भी तुम्हारे पास बैठाहै अब इससे पूछिये कि; स्वरूप की प्राप्ति हुई अथवा नहीं हुई? वाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज! जब इस प्रकार रामजीने कहा तब मुनियोंमें शार्दूल वशिष्ठजी उसकी ओर कृपादृष्टि करके बोले, हे ब्राह्मण! यह मोक्षोपाय जो मैंने सम्पूर्ण कहा है उसको सुनकर तूने क्या जाना? कुन्ददन्त बोले, हे सर्वसंशयों के निवृत्त करनेवाले! तुम्हारे वचनरूपी प्रकाश से मेरे अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश हुआ है; जो कुछ जानने योग्य पद है सो मैंने जाना है और जो कुछ पाने योग्य था सो मैंने पाया। अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ हूं और मुझको कोई कल्पना नहीं रही। मैं अनन्त आत्मा हूं और नित्य, शुद्ध, अच्युत, परमानन्द स्वरूप हूं—सर्व जगत् मेरा ही स्वरूप है। हे भगवन्! अन्तःपुर में इतनी सृष्टि के सामने का जो संशय था सो तुम्हारे वचनों से दूर हुआ और अब एक एक राई में मुझको ब्रह्माण्ड भासते हैं और आत्मत्वभाव से दिखाई देते हैं। जैसे अनेक दर्पणों में अपना मुख ही भासता है; तैसेही मुझको सर्व ओर अपना आपही भासता है। हे भगवन्!

तुम्हारे वचन मैंने आदि से लेकर अन्त पर्यन्त सम्पूर्ण सुने हैं जो परमपावन; सार के परमसार और आत्मबोध के कारण हैं । उनके विचारे से मेरी भ्रान्ति निवृत्त होगई है और अब मैं अपने आप में स्थित हुआ हूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकुन्ददन्तविश्रामप्राप्तिर्नाम
द्विशताधिकाष्टषष्टितमस्सर्गः ॥ २६८ ॥

वाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार कुन्ददन्तने कहा तब वशिष्ठजी सुनकर परम उचित वचन परमपदपावन का कारण फिर कहनेलगे कि; हे रामजी ! अब कुन्ददन्त ने आत्मअनुभव में विश्राम पाया है। इसको अब हस्तामलकवत् अपना आप अनुभवरूप जगत् भासता है। आत्मा ही निद्रास्वरूप होकर भासता है और आत्मा ही द्रष्टारूप है दूसरी वस्तु कुछ नहीं । अपना अनुभव ही जगत्रूप हो भासता है सो अनुभव आकाश सम शान्तरूप, अनन्त और अखण्ड सदा ज्यों का त्योंहै। हे साधो ! वह नानारूप भासता है परन्तु अनाना है और सदा ज्यों का त्यों अचेत चिन्मात्र परमशून्य है जिसमें शून्यभी शून्य होजाता है और चेत दृश्यरूप फुरने से रहित है इसी कारण परमशून्य है; बोलता दृष्टि आता है परन्तु परममौन है । हे रामजी ! उसमें जगत् कुछ बना नहीं; जैसे स्वप्ने में पहाड़ दृष्टि आते हैं सो न सत्य हैं और न असत्य हैं; तैसेही यह जगत् सत्य असत्य से विलक्षण है क्योंकि; कुछ बना नहीं— जो कुछ भासता है सो आत्मा है । जैसे रत्नों का प्रकाश चमत्कार होता है, तैसेही आत्मा का प्रकाश जगत् है और जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्गरूप हो भासताहै, तैसे ही ब्रह्म संवेदन से जगत्रूप हो भासता है । आदि स्पन्द फुर आई है सो जगत्रूप होकर स्थित है और वह जैसे हुआ है तैसे हुआ है पर आत्मा कार्य कारणभाव से रहित है । जिसको प्रमाद है उसको यह कारणभाव भासता है और उसको तैसाही है पर जो सत्य जानकर पाप करते हैं उनके बड़े पाप उदय होते हैं और स्थावररूप होकर फिर जङ्गम मनुष्य होते हैं। हे रामजी ! इस प्रकार यह ज्ञानसंवित् चैतसम्बन्धी होकर नाना प्रकार के रूप धारती है और प्रमाद से भिन्न २ भासती है परन्तु स्वरूप से कुछ और नहीं होती सदा अखण्डरूप है । जबतक प्रमाद होता है तबतक जगत् का आदि और अन्त नहीं भासता और जब प्रमाद से जागता है तब सर्वकल्पना मिटजाती हैं । हे रामजी ! यह सर्व जगत् जो भासता है सो कुछ बना नहीं वही ब्रह्मसत्ता अपने आपने में स्थितहै । जब जाग्रत् अवस्थाका अभाव होता है और सुषुप्ति आती है तो उसमें न शुभ की कल्पना रहती है और न अशुभ की कल्पना रहती है; उदय—अस्त की कल्पना से रहित केवल अद्वैतसत्ता रहती है और जब फिर उसमें चैतन्यता फुरती है तब फिर स्वप्ने की सृष्टि भासती

है। कहीं स्थावर जङ्गम सृष्टि भासती है जिसमें संवेदन फुरती भासती है सो जङ्गम कहाता है और जिसमें संवेदन फुरना नहीं भासता सो स्थावर कहाता है परन्तु और कुछ नहीं वही अद्वैत अनुभवसत्ता स्थावर जङ्गमरूप हो भासती है; तैसेही आत्मा अनुभव यह जगत् हो भासता है। हे रामजी! सृष्टि के आदि परम सुषुप्ति-सत्ता थी उसमें संवेदन फुरने से जगत् भासि आया सो वही संवेदनरूप जगत् है और जिस आत्मसत्ता में फुरी है वही रूप है भिन्न कुछ नहीं। जैसे शरीर के अङ्ग हाथ, पांव, नख, केशादिक सब शरीररूप हैं; तैसेही परमात्मा के अङ्ग हस्त पादादिक हैं रोम सृष्टि और नख केशादिक स्थावर सृष्टि सब आत्मरूप है और दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अनुभवरूप होतीहै और संकलपपुर की रची सृष्टि संकल्परूप होतीहै; तैसेही यह सृष्टि अनुभवरूप है और किसी कारणसे नहीं उपजी–इससे ब्रह्महीरूप है। ब्रह्म के सूक्ष्म अणु में सृष्टि फुरी है सो क्या रूप है? ब्रह्मही सृष्टि है और सृष्टि ही ब्रह्म है–ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं परन्तु अज्ञाननिद्रा से भिन्न २ भासता है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! निद्रा का कितना प्रमाण है और कितने काल पर्यन्त रहती है? सूक्ष्म अणु में सृष्टि कैसे फुरी है और कैसे स्थित है? अणु उसकी क्यों संज्ञा है और अनन्त क्योंकर है? जो देवता असुरादिकरूप को चित्त प्राप्त हुआ है वह क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञान निद्रा अपने काल में तो अनादि है और नहीं जानीजाती कि, कबकी हुई है और अन्त भी नहीं जाना जाता कि, कबतक रहेगी। अज्ञानकाल में तो इसका आदि अन्त प्रमाण कुछ नहीं भासता और बोधमें इसका अत्यन्ताभाव दिखता है। चित्सत्ता की जो अनन्तता पूछो तो वह तो अद्वैत चिन्मात्र आत्मसमुद्र है और उसमें सूक्ष्मभाव अहमस्मि जो संवित् फुरती है उसका नाम चित्त है। उस चित्त में आगे जगत् होताहै। शुद्धचिन्मात्रमें संवेदन चित्त फुरताहै उसमें जगत्है; वही चित्त देवता, असुर और जङ्गमरूप हो भासता है और नाग, पिशाच, कीटादिक स्थावर–जङ्गमरूप हो भासतीहै। वास्तव में चैतन्यसत्ताही है उससे भिन्न कुछ नहीं और सब चिदाकाशरूप है फुरने से नाना प्रकार है। हे रामजी! परम शुद्ध चिद्अणु से मिलकर चित्त अनेक ब्रह्माण्ड धारता है और उस सूक्ष्म अणु में अनन्त ब्रह्माण्ड फुरते हैं परन्तु उससे भिन्न नहीं। जैसे एक पुरुष शयन करता है तो उसको स्वप्ने में अनेक जीव भासि आते हैं और उन जीवों में अपने २ स्वप्ने की सृष्टि फुरती है सो अनेक सृष्टि होजाती हैं तैसेही सूक्ष्म चिद्अणु में अनन्त सृष्टि फुरती है परन्तु आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं बना। जैसे सूर्य की किरणों में अनन्त सूक्ष्म त्रसरेणु होती हैं; तैसेही परमात्मसूर्य के चिद्अणु सूक्ष्म है। इन त्रसरेणुसे भी सूक्ष्म चिद्अणु में

अनन्त सृष्टि अपनी २ फुरती हैं । हे रामजी ! जबतक चित्त फुरता रहता है तब तक सृष्टि का अन्त नहीं आता । असंख्य जगत् भ्रम आगे देखे हैं और असंख्य ही आगे देखेंगे । जब चित्त फुरने से रहित होताहै तब जगत् कल्पना मिटजातीहै। जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है और बड़े व्यवहार होते हैं पर जब जाग उठताहै तब स्वप्ने की सृष्टि व्यवहार की कल्पना मिट जाती है और अद्वैत अपना आपही भासता है; तैसेही चित्त के ठहरने से सब भ्रम मिटजाता है । हे रामजी ! सूक्ष्मचिद् अणु की भी संज्ञा तब हुई है जब इसको चित् का सम्बन्ध हुआहै। जब चित् को अपने स्वभाव में स्थित करोगे तब द्वैतकल्पना और सूक्ष्म स्थूलभाव मिटजावेंगे। इस की सूक्ष्मसंज्ञा अविद्यकभाव से है जो इन्द्रियों का विषय नहीं इससे अणुताहै; सूक्ष्म अणुमें भी व्यापा हुआहै इससे सूक्ष्म अणु कहाता है और अनन्तता इस कारणहै कि, सबको धाररहा है । हे रामजी ! यह जगत् अभावमात्र है । जैसे मरुस्थल में जलाभास होता है, तैसेही आत्मा में जगत् भासता है । यह जगत् ही नहीं है तो इसका कारण किसे कहिये ? आदि सृष्टि अकारण फुरीहै और फिर उसमें कारण–कार्य भासनेलगे हैं सो आभास की दृढ़ता से हैं । जैसे स्वप्नमें आदि सृष्टि अकारण बीज, वृक्ष, कुलाल, मट्टी और घट इकट्ठे फुर आते हैं । जब उस स्वप्ने की दृढ़ता होजाती है तब कारण कार्य भासते हैं परन्तु जो सोया पड़ा है उसको दृढ़ भासते हैं; तैसेही अज्ञानी को जगत् कार्य कारण दृढ़ भासता है और ज्ञानवान् को सब अपना आपही भासता है । जैसे स्वप्ने से जागे स्वप्ने की सृष्टि अपने आपही भासती है कि, मैं हीं था और कुछ न था; तैसेही ज्ञानवान् को सब जगत् आकाशरूप भासता है पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष, नदी, स्थावर–जङ्गम सर्व जगत् सब आकाशरूप हैं और संवेदन के फुरने से दृष्टि आते हैं वास्तव में भिन्न कुछ नहीं । हे रामजी ! यह जगत् चित्त में स्थितहै । जैसे किसी पुरुष ने थम्भे में पुतलियां कल्पीं तो उन पुतलियों के दो रूप होते हैं एक शिल्पी के चित्त में फुरती है सो आकाशरूप है और एक थम्भे में कल्पी है सो थम्भरूप है और थम्भे में स्थितरूप है पर शिल्पी के चित्त में नृत्य करतीहै । हे रामजी ! और तो कुछ नहीं बना सब थम्भेरूप हैं और शिल्पी के चित्त में कल्पनामात्र है; तैसेही चित्तरूपी शिल्पी की जगद्रूपी पुतलियां कल्पनामात्रहैं पर आत्मरूपी थम्भा ज्यों का त्यों है–आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । जैसे पटके ऊपर मूर्ति लिखी हो तो उस मूर्ति का रूप पटही है–पट से भिन्न कुछ नहीं–वह पटही मूर्तिरूप भासता है; तैसेही यह जगत् आत्मा से भिन्न नहीं–आत्माही जगत्रूप हो भासता है । आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं । जैसे ब्रह्म आकाशरूप है, तैसेही जगत् आकाशरूप है ।

जगत्‌रूप आधारहै और उसमें ब्रह्म बसनेवाला है। ब्रह्मरूप आधार है और उसमें जगत् बसनेवाला है। हे रामजी! जितने समूह जगत् में विद्या और अविद्यारूप हैं सो सब संकल्प से रचित हैं और वास्तव में सब आत्मस्वरूप हैं। समता, सत्ता और निर्विकारता आदि और इनसे विपरीत अविद्यारूप सब एकहीरूप हैं; एक ही में फुरते हैं और एकही रूपहैं। जैसे अनुभवरूप स्वप्न जगत् अनुभव में स्थित होता है सो सर्व आत्मरूप होता है; तैसेही यह जगत् सर्व ब्रह्मरूप है—ब्रह्म से भिन्न न कुछ वर की कल्पना है और न शाप की कल्पना है। ब्रह्मसत्ता निर्विकार अपने आप में स्थित है उसमें न कारण है और न कार्य है। जैसे ताल, नदी और मेघ जल ही होते हैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मरूप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वर और शाप के कर्त्ता तो प्रच्छिन्न हैं और कारण बिना तो कार्य नहीं बनता तुम कैसे कहते हो कि, कारण—कार्य कोई नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता का किञ्चन जगत् होता है जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरतेहैं, तैसेही आत्मसत्ता में जगत् फुरते हैं और जैसे तरङ्ग जलरूप होतेहैं, तैसेही जगत् आत्मरूप है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसे आदि परमात्मा से सृष्टि का फुरना हुआहै तैसेही स्थितहै अन्यथा नहीं होता। सब जगत् संकल्प है। अनेक प्रकार की वासना संवेदन में फुरती है पर जिन को स्वरूप का विस्मरण हुआ है उनको यह जगत् सत्यरूप भासता है। जो उनको विचार उत्पन्न हो तो वही कालहै जिसकालमें विचार उत्पन्न होता है और उसीकाल में अज्ञाननिद्रा का अभाव होताहै। हे रामजी! जब विचार अभ्यास करके मन तद्रूप होता है तब यथाभूत दर्शन होता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपना आपही भासता है क्योंकि; अपने आपमें स्थित है। सबका अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है उसमें अहंप्र-तीति होतीहै इस कारण अपने आपमें सृष्टि भासती है। जैसे स्पन्द फुरतेहैं, तैसेही उनकी सिद्धि होती है; निरावरण दृष्टि होताहै निरावरण दृष्टि करके सर्वसंकल्प सिद्ध होताहै क्योंकि; यह जगत् सब आत्मा में संकल्प का रचा हुआ है और उसमें इस को अहंप्रत्यय हुई है। हे रामजी! जो यह संकल्प उठता है कि, यह कार्य ऐसे हो तो वह तैसेही होताहै। हे रामजी! शुद्ध संवेदन में जैसा संकल्प होताहै वही हो भासता है संकल्परूपही है संकल्प से भिन्न नहीं। इस कारण वर और शाप का और कोई कारण नहीं; वर और शाप भी संकल्परूपहैं और उससे जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे किसी समवायकारण से तो नहीं उत्पन्न हुये संकल्पही से हुये हैं इससे सब अकारण रूप है। ब्रह्मरूपी समुद्र के तरङ्ग उठते हैं तो कारण और कार्य मैं तुमसे क्या कहूं? सब जगत् ब्रह्मरूपहै और द्वैत और एक की कल्पना कुछ नहीं। हे रामजी! हमको सदा ब्रह्मसत्ता ही भासतीहै और कार्य कारण कोई नहीं भासता। जैसे स्वप्ने में किसी

के घर में पुत्र हुआ और वह बड़े उत्साह को प्राप्त हुआ पर जब जाग्रत् का संस्कार चित् आया तब उसका पिता ही उपजा नहीं तो पुत्र कैसे कहिये ? तब तो सब अपना आपही होजाता है, न कोई कारण भासता है और न कार्य भासता है। जो स्वप्ने में सोया है उसको जैसे भासता है तैसेही भासता है । जैसे वर और शाप का आसरा संकल्प है और संकल्पही वर और शाप हो भासता है और अकारणही होता है। जिसको शुद्ध संवेदन से एकता हुईहै वह निरावरणहै और उसमें जैसे फुरना आभास फुरता है, तैसाही सिद्ध होता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! एक ऐसे हैं जिनको आवरण है और उनका संकल्प जैसे फुरता है—वर देवें अथवा शाप देवें—तैसेही होजाता है और स्वरूप का साक्षात्कार उनको नहीं हुआ पर शुभकर्म उनमें प्रत्यक्ष मिलते हैं तो शुभकर्म ही वर और शाप के कारण हुये; तुम कैसे कहते हो कि, निरावरण पुरुष का संकल्प सिद्ध होता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र जो सत्ता है वही चित् धातु कहाती है। उस चित्धातु में जो आभास फुरना है वही संवेदन कहाता है । वह संवेदन जब फुरती है तब जीव जानता है कि, 'मैं ब्रह्मा हूं;' तो संवेदन नेही आपको जगत् का पितामह जाना और उसीने आगे मनोराज कल्पा तब पञ्चभूत का ज्ञान हुआ कि; शून्यरूप आकाश; स्पन्दरूप वायु; उष्णरूप अग्नि; द्रवतारूप जल और कठोररूप पृथ्वीहै, फिर उसीसे देश और काल की कल्पना हुई और स्थावर जङ्गम पदार्थ की कल्पना से वेद, शास्त्र, धर्म, अधर्म का फुरना हुआ जिससे यह निश्चय हुआ कि, यह तपस्वी है और इसने तप किया है इसके कहेसे वर हो पर स्वरूप के साक्षात्कार से रहित है तौभी इसका कहा हो यह तप का फल है। आदि संकल्प ऐसे हुआहै तो वर और शाप का कर्ता तपस्वी नहीं इसका अधिष्ठान वही संवेदन है जिससे आदि संकल्प फुरा है। हे रामजी ! वर और शाप संकल्परूप हैं, संकल्प संवेदन से फुरा है और संवेदन आत्मा का आभास है तो मैं कारण और कार्य क्या कहूं ? और जगत् क्या कहूं ? आत्मा का आभास संवेदन ब्रह्मा है जिसने आगे संकल्पपुर सृष्टि रची है और हम, तुम आदिक सब उसके संकल्प में हैं । वह ब्रह्माजी निराकार, निराधार और निरालम्ब स्थित है कुछ आकार को नहीं प्राप्त हुये, इससे उसका विश्व भी वही रूप जानो। हे रामजी ! जैसे उसका स्पन्द हुआ है तैसेही स्थित है; अन्यथा नहीं होता जो वही विपर्ययकरे तो हो और नहीं होता। अग्नि में उष्णता; वायु में स्पन्दता इत्यादिक जो पदार्थ हैं सो अपने २ स्वभाव में स्थित हैं और हमको सब ब्रह्मरूप हैं। जैसे शरीर में हाड़ मांस से भिन्न नहीं होता तैसेही हम को ब्रह्मसे भिन्न नहीं भासता। जैसे घट में मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं होता और काष्ठ की पुतलीको काष्ठ से भिन्न चेष्टा नहीं होती तैसेही जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं

होता। हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो ब्रह्महीं है। ब्रह्महीं फुरने से नाना प्रकार जगत् हो भासता है। जैसे समुद्र द्रवतासे तरङ्ग बुद्बुदे, फेन हो भासता है; तैसेही ब्रह्मसंवेदन से जगत्रूप हो भासता है पर ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जैसे पर्वत से जल गिरताहै सो कणके कणके हो भासता है और जब गिरकर ठहरजाता है तब समुद्ररूप होता है परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं होता; तैसेही जब चित्त फुरता है तब नाना प्रकार का जगत् हो भासताहै और जब ठहरजाताहै तब सर्व जगत् एक अद्वैतरूप हो भासता है परब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं होता; ब्रह्महीं स्थावर जङ्गमरूप हो भासता है। जहां पुर्यष्टका का सम्बन्ध नहीं भासता सो अजङ्गम कहाता है और जहां पुर्यष्टकाका सम्बन्ध होताहै वह जङ्गमरूप भासताहै परन्तु आत्मा में उभयतुल्य हैं। जैसे एकही हाथकी अंगुलीहै जिसको उष्णता अथवा शीतलताका संयोग होता है सो फुरनेलगती है और जिसको शीत उष्ण का संयोग नहीं होता सो नहीं फुरती; तैसेही जिस आकार को पुर्यष्टका का संयोग है सो फुरताहै और चैतन्यता भासती है और जिसको पुर्यष्टका का संयोग नहीं होता उसमें जड़ता भासती है। जड़भी दो प्रकार के हैं—एक को पुर्यष्टका का संयोग है और जड़है और दूसरे को पुर्यष्टका का संयोग नहीं और जड़है। वृक्ष और पर्वतों को पुर्यष्टका का संयोगहै परन्तु घनसुषुप्ति जड़ता में स्थित हैं इस कारण जड़ भासते हैं और मृत्तिका पुर्यष्टका से रहितहै इस कारण जड़ है परन्तु वास्तव में स्थावर, जङ्गम; इष्ट, अनिष्ट; वर, शाप; देश, काल, पदार्थ; सबही ब्रह्मरूप है और ब्रह्मसत्ताही ऐसे स्थित हुई है जैसे अपने अनुभव में संकल्पनगर नाना प्रकार का भासता है परन्तु संकल्परूप है—संकल्प से भिन्न कुछ नहीं और मृत्तिका की सेना अनेक प्रकार की होती है परन्तु मृत्तिकारूप है—मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही सर्व अर्थ के धारनेवाली चैतन्यधातु नाना प्रकारके आकार को प्राप्त होती है परन्तु चैतन्यता से भिन्न कुछ नहीं होती। हे रामजी! धातु उसको कहते हैं जो अर्थ को धारे। जितने पदार्थ तुमको भासतेहैं सो सब अर्थरूप हैं और वस्तुरूप जो धातु है सो आत्मसत्ता है। उसने दो अर्थ धारे हैं—एक स्वप्न अर्थ और दूसरा बोध अर्थ—स्वप्न अर्थ में तो नानात्व भासती है और बोध अर्थ में एक अद्वैत सत्ता भासती है। जैसे एकही धातु मिलने और बिछुड़ने से दो अर्थ धारती है सो परस्पर प्रतियोगी शब्द हैं परन्तु एकहीने धारे हैं; तैसेही स्वप्न और बोध अर्थ इन दोनों को आत्मसत्ता ने धारा है। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूप हैं; तैसेही जगत् ब्रह्मरूप है। जो ज्ञानवान हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासता है और अज्ञानी को नानात्व भासता है। इससे तुम स्वभाव निश्चय होकर देखो सब ब्रह्मरूप है—भिन्न कुछ नहीं॥

इति श्रीयो० निर्वाणप्र० ब्रह्मप्रतिपादनंनामद्विशताधिकैकोनसप्ततितमस्सर्गः॥२६९॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सर्व ब्रह्मही है तो नेति क्या है और नाना प्रकार के पदार्थ क्यों भासते हैं? तुम कहतेहो कि, जगत् संकल्पसे रचितहै तो हे भगवन्! ये जो पदार्थ असंख्यरूपहैं कि, उनकी संज्ञा की नहीं जाती और इन पदार्थों का स्वभाव एक एक का अचलरूप होकर कैसे स्थित है? सर्व देवताओं में सूर्यका प्रकाश क्यों अधिक है और एकही सूर्य में दिन और रात्रि छोटे बड़े क्यों होते हैं; यह विचित्रता क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रसत्तामें अकस्मात् से जो आभास फुराहै उस आभास का नाम नेतिहै और सृष्टि भी आभासमात्रहै किसी कारण करके नहीं उपजी। जिसके आश्रय आभास फुरता है वही वस्तु अधिष्ठान होती है, इससे जगत् सब ब्रह्मरूप है और चिन्मात्रसत्ता अपने आप में स्थित है, न उदय होतीहै और न अस्त होती है वह परिणाम मे रहित सदा अद्वैतरूप स्थित है और उसमें न जाग्रत् है; न स्वप्ना है और न सुषुप्ति है तीनों अवस्था आभासमात्र हैं पर चैतन्यसत्तामें इनसे द्वैत नहीं बना; यह तीनों इसीका स्वभाव प्रकाशरूपहै—इससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे आकाश और शून्यता; वायु और निस्स्पन्द; अग्नि और उष्णता और कर्पूर और सुगन्धमें भेद नहीं; तैसेही जाग्रदादिक जगत् और ब्रह्म में भेद नहीं। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चित्तभाव हुआहै उसमें चैतन्य आभास फुरा है और उसमें जैसा संकल्प फुरा है तैसेही स्थित हुआ है। कि; यह इस प्रकार हो और इतने काल रहे; उसी संकल्प निश्चय का नाम नेति है। जैसे आदि संकल्प दृढ़ हुआ है, तैसेही अबतक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश अपने अपने भावमें स्थित हैं और अपने स्वभाव को नहीं त्यागते जबतक उनकी नेति है तबतक तैसेही जगत् सत्ता में स्थित हैं। हे रामजी! इसका नाम नेति है। जैसे आदि संकल्प धारा है तैसेही स्थित है और वास्तव में आभासरूपहै। अकस्मात् से यह आभास फुरा है सो किसी सूक्ष्म अणु में फुरा है। जैसे समुद्र के किसी स्थान में तरङ्ग बुद्बुदे फुरते हैं, सम्पूर्ण समुद्र में नहीं फुरते; तैसेही जहां संवेदन में जैसा फुरना होताहै तैसेही स्थित होता है सो नेति है। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे समुद्र से भिन्न नहीं, तैसेही नेति आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे द्रवतासे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं, तैसेही आत्मा में संवेदन करके नेति और जगत् जो फुरते हैं सो वही रूप है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं जैसे किसीने कहा कि, चन्द्रमा का प्रकाश है सो चन्द्रमा और प्रकाशमें भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। यह विश्व आत्मा का स्वभाव है। जैसे एकहीकाल की दिन, पक्ष, वार, मास, वर्ष, युग, कल्प इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं परन्तु काल एकहीहै, तैसेही भिन्न भिन्न जगत् के नाम हैं सो सब ब्रह्मही है। हे रामजी! जब संवेदन चित्त के सन्मुख होतीहै तब प्रथम शब्द तन्मात्रा फुरती है और उससे आकाश उपजता है जिसका स्वभाव

शून्यताहै; फिर जब वह स्पर्शतन्मात्रा को चेता तब उससे इसमें वायु फुरा और वायु का स्पन्दस्वभावहै। फिर रूप तन्मात्रा को चेता तब उससे अग्नि प्रकट हुई जिसका उष्ण स्वभाव है। फिर रसतन्मात्रा को चेता तब उससे जल प्रकट हुआ जिसका द्रव स्वभाव है। फिर गन्ध तन्मात्रा को चेता तब उससे पृथ्वी प्रकट हुई जिसका स्थिर स्वभावहै। इस प्रकार पञ्चभूत फुर आये। हे रामजी! आदि जो शब्द तन्मात्रा फुरी है सो जितने कुछ शब्दसमूह हैं उनका बीज है सब उसीसे उत्पन्न हुये हैं। पदार्थ, वाक्य, वेद, शास्त्र, पुराण सब उसीसे फुरे हैं इसी प्रकार पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इनका जो कार्य स्वभाव है सो सबका बीज आदिक इनकी तन्मात्रा है और उस तन्मात्रा का बीज वह संवित्सत्ता है। हे रामजी! अब इन तत्त्वों की खानि सुनो। पृथ्वी से अणु भी होती है और एकदला भी होती है सो पृथ्वी तो एक है और अणु भी वही है; तैसेही सर्व तत्त्वों को समझ देखना। पृथ्वी की खानि भूपीठ है जो सम्पूर्ण भूतजात को धारती है; जल की खानि समुद्र है जो सर्वपदार्थों में रसरूप होकर स्थित है; अग्नि का तेज जो प्रकाश है उसकी समष्टिता सूर्य है; सर्वस्पन्द समष्टिता पवन है और सम्पूर्ण शून्य पदार्थों की खानि आकाश है। इस प्रकार ये पांचों तत्त्व संकल्प से उपजे हैं। जैसे बीज से अंकुर उपजता है, तैसेही यह भूत संकल्प से उपजे हैं। संकल्प संवेदन से फुराहै और संवेदन आत्मा का आभास है जो अद्वैत, अच्युत, निर्विकल्प और सर्वदा अपने आपमें स्थित है। उसीके आश्रय संवेदन आभास फुरा है, फिर संवेदन से संकल्प फुरा है और संकल्प से जगत् बनगया है। जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरतेहैं और लीन होते हैं; तैसेही संकल्प में जगत् उपजा है और फिर संकल्पहीमें लीन होताहै। जैसे तरङ्ग जलरूप है, तैसेही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश सब चैतन्यरूप हैं। सर्वपदार्थ जो देखने सुनने में आते हैं और नहीं आते सो सब चैतन्यरूप हैं, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं; वही आत्मा इस प्रकार होता है। स्वप्ने में अपना अनुभवही पदार्थ हो भासताहै परन्तु कुछ बना नहीं। नाना प्रकार भासता है तौभी अनाना है तैसेही जगत् नाना प्रकार भासता है तौभी कुछ बना नहीं। जैसे एक निद्रा के दो रूप हैं—एक स्वप्न और दूसरा सुषुप्ति—जब फुरना होता है तब स्वप्ने की सृष्टि भासती है और जब फुरना निवृत्त होजाता है तब सुषुप्ति होती है और जैसे वायु के दो रूप हैं; जब स्पन्द होतीहै तब भासती है और जब निस्स्पन्द होतीहै तब नहीं भासती; तैसेही जब संवेदन फुरतीहै तब जगत् भासताहै और जब नहीं फुरती तब जगत् भी नहीं भासता—इसीका नाम महाप्रलय है—पर दोनों आत्मा के आभास हैं। हे रामजी! संकल्परूप ब्रह्मा बालक ने आत्मा में आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र, चक्र इत्यादि क्रम से रचे हैं जैसे बालक अपने में संकल्प

रचे, तैसेही ब्रह्माने रचा है। उसने एक भूगोल रचा है जिस पर नक्षत्रचक्र रचा है और उस चक्रके दो भाग किये हैं जो अन्योन्य सन्मुख स्थित हैं। जब सूर्य उसके सन्मुख होता है तब सात घड़ी दिन और रात्रि का प्रमाण होता है। जब सूर्य उस नक्षत्रचक्र के ऊर्ध्व ओर उदय होता है तब दिन बड़े होते हैं और जब अध की ओर उदय होता है तब दिन छोटे होजाते हैं निदान ज्यों ज्यों सूर्य क्रम करके ऊर्ध्व से अधकी ओर उदय होताहै त्यों त्यों दिन छोटे होते जाते हैं और रात्रि बढ़तीजाती है और जब षट्मास के उपरान्त पौषत्रयोदशी से सूर्य क्रम करके ऊर्ध्व को उदय होताहै तब दिन बढ़ता जाता है। आषाढ़ की द्वादशी से लेकर पौषत्रयोदशी पर्यन्त रात्रि बढ़ती है और दिन घटता है और फिर रात्रि घटतीजातीहै और दिन बढ़ता जाता है। जब सूर्य उस चक्र के मध्य उदय होता है तब दिन और रात्रि समान होजाता है परन्तु संवेदनरूप ब्रह्मा का सब संकल्प विलास है। जैसे शिल्पी शिला में पुतलियां कल्पताहै और चेष्टा करताहै पर बना कुछ नहीं शिलाही अपने घनस्वभाव में स्थित होती है; तैसेही चित्तरूपी शिल्पी आत्मारूपी शिला में जगत्रूपी पुतलियां कल्पता है परन्तु बना कुछ नहीं ब्रह्मसत्ता ही सदा अपने आपमें स्थित है। संवेदन फुरने से जब उसे रूप देखने की इच्छा होती है तब चक्षुइन्द्रिय बनजाती है जो रूप को ग्रहण करती है; जब स्पर्श की इच्छा होती है तब त्वचा इन्द्रिय बनजाती है जो स्पर्श को ग्रहण करती है; जब गन्ध की इच्छा होती है तब घ्राण इन्द्रिय बनकर गन्ध ग्रहण करती है; जब शब्द सुनने की इच्छा होती है तब श्रवण इन्द्रियां बनजाती हैं जो शब्दविषयों को ग्रहण करती हैं और जब रस की इच्छा होतीहै तब रसना इन्द्रिय प्रकट होकर स्वाद ग्रहण करती है। जब अपने और वायु देखने की ओर चेतती है तब अपने साथ वायु देखती है और उस वायु में प्राण फुरते देखती है। हे रामजी! देखना, सुनना, रसलेना, स्पर्शकरना, बोलना और गन्धलेना जहां जहां इन्द्रियां विषयों को ग्रहण करती गईं सो देश है; जिस विषय को ग्रहण करने लगती हैं सो पदार्थ हैं और जिस समय ग्रहण करनेलगती हैं सो काल है इस प्रकार देश, काल और पदार्थ हुये हैं और फिर क्रम से शुभ अशुभ कर्म भासनेलगे। हे रामजी! इस प्रकार संवेदन ने फुरकर जगत् को रचाहै और शरीर को रचकर इष्ट अनिष्ट को ग्रहण करती है। जो तुम कहो कि, इन्द्रियां तो भिन्न भिन्न हैं और अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं सर्व इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट इस जीवको कैसे होते हैं तो इसका दृष्टान्त सुनो। हे रामजी! जैसे तुम एक हो और माला के दाने बहुत हैं पर सर्वका आश्रयसूत्र है; तैसेही अहंकाररूपी सूत्र में सर्व इन्द्रियरूपी दाने हैं, इस कारण अहंकार जीव आश्रयभूत इन्द्रियों के सुख से सुखी होता है और दुःख

से दुःखी होता है। इन्द्रियां आपही से कार्य करनेको समर्थ नहीं होतीं अहंकार जीव की सत्ता से चेष्टा करती हैं। जैसे शङ्खको आपसे बजनेकी सामर्थ्य नहीं पर जब पुरुष बजाता है तो शब्द करता है; तैसेही इन्द्रियों की चेष्टा अहंकार और जीव से होती है। हे रामजी! वास्तव में न कोई इन्द्रियां हैं, न इनके विषय हैं और न मन का फुरना है सर्व आभासमात्रहै। जब संवेदन फुरतीहै तब इतनी संज्ञा धारतीहै और जब संवेदन निर्वाण होती है तब सर्वकल्पना मिटजाती हैं॥

इति श्रीयोगवा०निर्वाणप्रकरणेजीवसंसारवर्णनेद्विशताधिकसप्ततितमस्सर्गः॥२७०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह सम्पूर्ण कल्पना का क्रम मैंने तुमसे कहा है। जितना कुछ जगत् देखते हो सो संवेदनरूपहै। शुद्ध चिन्मात्र सत्ता का आदि आभास और चैतन्यता का लक्षण चित्त अहं जो अस्मिहै उसका नाम संवेदनहै और उसके इतने पर्याय हुये हैं कि, कोई तो ब्रह्मा कहते हैं; कोई विष्णु कहते हैं; कोई प्रजापति कहते हैं और कोई शिव आदि नाम लेते हैं। उस संवेदनने आगे संकल्प फुरके विश्व रची जो अकारणहै किसी कारणसे नहीं बनी। काकतालीयवत् अकस्मात् आभास फुरा है और आकारसहित दृष्टि आती है परन्तु अन्तवाहक है और व्यवहार सहित दृष्टि आतीहै परन्तु अव्यवहार है। हे रामजी! संवेदन जो अन्तवाहक रूपहै उसने आगे विश्व रचीहै सो भी अन्तवाहकरूपहै परन्तु अज्ञानी को संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिकरूप हो भासती है। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर संकल्प से भिन्न नहीं और संकल्प की दृढ़ता सेही आकाररूप पहाड़, नदियां, घट, पट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं परन्तु बने तो कुछ नहीं शून्यरूप हैं; तैसेही यह जगत् निराकार शून्यरूपहै। हे रामजी! आदि अन्तवाहकरूप संवेदनही बहिर्मुख फुरने से देश, काल, पदार्थरूप होकर स्थित हुईहै। जब बहिर्मुख फुरना मिटजाता है तब जगत् आभास भी मिटजाताहै। जैसे स्वप्नेका आभास जगत् तबतक भासता है जबतक निद्रा में सोया होताहै पर जब जागताहै तब स्वप्ने का जगत् मिटजाताहै और एक अद्वैतरूप अपना आपही भासता है; तैसेही यह जगत् अज्ञानके निवृत्त हुये लीन होजाता है। सब जगत् निराकारहै पर संकल्पकी दृढ़तासे आकार भासते हैं। हे रामजी! संवेदन में जो संकल्प फुरता है वही अन्तःकरण चतुष्टय होके भासता है। पदार्थ के चितवने से इसका नाम चित्त होताहै; संकल्प विकल्प के संसरने से इसका नाम मन होता है; ज्यों का त्यों निश्चय करने से इसका नाम बुद्धि होताहै और वासना के समूह मिलने से पुर्यष्टका कहातीहै पर सब संकल्पमात्र है और उन से जगत उपजा है वह भी संकल्परूप है। जैसे इन्द्रजाल की बाजी और स्वप्ने का नगर संकल्प की दृढ़ता से पिण्डाकार भासते हैं परन्तु सब आकाशरूप हैं; तैसेही

यह जगत् आकाशरूप है–आत्मा से भिन्न कुछ है नहीं। जो तुम कहो कि; भासता क्यों है? तो जिसमें भासता है उसे वही रूप जानो और देश, काल, नदी, पहाड़, पृथ्वी, देवता, मनुष्य, दैत्य, ब्रह्मासे आदि कीटपर्यन्त जो स्थावर–जङ्गमरूप जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूप है और वेद, शास्त्र, जगत्, कर्म, स्वर्ग, तीर्थ इत्यादिक जो पदार्थ हैं वे भी सब ब्रह्मरूप हैं। वही निराकार अद्वैत ब्रह्मसत्ता संवेदन से जगत् रूप हो भासती है। जैसे स्वप्न में अपनाही अनुभव सृष्टिरूप हो भासता है; तैसेही अपनाही अनुभव यह जगत् हो भासताहै और जैसे समुद्र द्रवतासे तरङ्गहो भासता है पर जलही जल है; तैसेही शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से जगत् आभास फुरता है सो ब्रह्मही ब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! जो कुछ तुम को भासता है सो सब अच्युत और अनन्तरूप अपने आप में स्थित है॥

इति श्रीयो०नि०सर्वब्रह्मरूपप्रतिपादनन्नामद्विशताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः॥२७१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब द्रष्टा दृश्यरूप को चेतता है तब विश्व होती है सो विश्व सब अन्तवाहकरूप है। निराकार संकल्प को अन्तवाहक कहते हैं। जब दृश्य में अहंभाव से चैतन्यता रहती है तब अन्तवाहक से आधिभौतिक शरीर हो जाताहै। आदि जो ब्रह्मा संवेदन फुरा है सो अन्तवाहक शरीर हुआ है और जब उसने बारम्बार अपने शरीरको देखा तब वहभी चतुष्टयमुख आधिभौतिक होगया। उसने ओंकार का उच्चारण करके वेद और वेदके क्रम को रचा और संकल्पसे विश्व रचा। जैसे कोई बालक मनोराज से बगीचा रचे और उसमें नाना प्रकार के वृक्ष, फल, फूल, टास और पत्र रचे; तैसेही ब्रह्माजीने रचा और अन्तवाहक जीव उपजे और जब जीवों को शरीरमें दृढ़ अभ्यास हुआ तब वे अन्तवाहकसे आधिभौतिक होगये। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ब्रह्मसत्ता तो निराकार थी उसको शरीर का संयोग कैसे हुआ है और उस से आधिभौतिकता कैसे होगई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई शरीरहै। और न किसीको शरीर का संयोग हुआहै केवल अ-द्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें जो चैतन्य संवेदन फुरी है वही संवेदन दृश्य को चेतती रहती है। वही जगत्‌रूप होकर स्थित हुई है। जब संकल्प की दृढ़ता होई तब अपने साथ शरीर और आकार भासनेलगे परन्तु सब आकाशही रूप हैं–कुछ बने नहीं। जैसे स्वप्न की सृष्टि को उपजी कहिये तो उपजी नहीं और उसका कारण भी कोई नहीं केवल आकाशरूपहै और कोई पदार्थ उपजा नहीं परन्तु स्वरूप के विस्मरण से आकार भासने हैं; तैसेही यह शरीर और जगत् जो भासता है सो केवल आभासमात्र है और असंभावना की दृढ़ता से प्रत्यक्ष भासता है। जब स्वरूप का विचार करके देखोगे तब शान्त हो जावोगे। हे रामजी! अविद्या भी

कुछ वस्तु नहीं। जैसे स्वप्न के पदार्थ अविद्यमान होते हैं और विद्यमान भासते हैं पर जब जागता है तब अविद्यमान होजाते हैं; तैसेही यह जगत् अविचार सिद्ध है विचार किये से शान्त होजाता है। जब विचार करके देखोगे तब सर्वात्माही भासेगा। हे रामजी! आत्मसत्ता अव्यभिचारी है अर्थात् सत्तामात्र है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता और अच्युत है अर्थात् सदा ज्यों का त्यों है अपने भाव को कदाचित् नहीं त्यागता इसलिये जो उससे भिन्न भासे उसे भ्रममात्र जानो। हे रामजी! विचार करके जब दृश्यभ्रम शान्त होता है तब मोक्ष प्राप्त होता है। आत्मसत्ता ज्ञानरूप और निराकार सदा अपने आपमें स्थित है। जब सम्यक्ज्ञान का बोध होताहै तब जगद्भ्रम नष्ट होता है। रामजी ने पूछा हे मुनीश्वर! सम्यक् ज्ञान और बोध किसको कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! केवल जो बोधमात्र है सो बोध कहाताहै और उसको ज्यों का त्यों जानना सम्यक्ज्ञानहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! केवल बोध और केवल ज्ञान किसको कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे राघव! दृश्य से रहित जो चिन्मात्र है उसको तुम केवल बोध जानो—उसमें वाणी की गम नहीं। इसी प्रकार अचेत चिन्मात्र सत्ता को ज्योंका त्यों जाननाही केवल ज्ञान है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! केवल बोध अचेत चिन्मात्र है तो उसमें जगत्भ्रम क्यों भासता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चिन्मात्र जो द्रष्टारूप है उसमें जब संवेदन चेतना फुरती है तब वही चेतना चैतरूप दृश्य हो भासतीहै। जैसे स्पन्दसे रहित वायु निर्लक्षरूप होती है और जब स्पन्दरूप होती है तब स्पर्श से भासती है; तैसेही संवेदन से जो दृश्य भासती है सो वही संवेदन दृश्य हो भासती है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो द्रष्टा दृश्यरूप भासताहै तो दृश्य बाहर क्यों भासताहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसीकारण भ्रम कहा है कि; अपने भीतर है और बाहर भासती है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपनेही अन्तर होतीहै पर वास्तव में न भीतर है और न बाहर है, आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है; तैसेही अबभी ज्यों की त्यों स्थित है, भीतर और बाहर भ्रम से भासती है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और दृश्य भ्रम से भासती है तो शशे के सींग भी भ्रममात्र हैं वे क्यों नहीं भासते और अहं और त्वं क्यों भासते हैं? भूतों की चेष्टा तो प्रत्यक्ष भासती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अहं त्वमादिक जगत् भी कल्पनामात्रहै। जैसे शशे के सींग कल्पनामात्र हैं और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है; तैसेही यह जगत भी भ्रममात्र है। जैसे मृगतृष्णा का जल और संकल्पनगर भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भ्रममात्रहै, किसी कारण से नहीं उपजा। जैसे स्वप्ने में शशे के सींग नहीं भासतेहैं और जगत् भासताहै; तैसेही यह भ्रमहै। रामजीने पूछा; हे मुनीश्वर!

भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में जगत् की स्मृति अनुभव से जानते हैं और कारण-कार्यभाव पाते हैं तो तुम भ्रममात्र कैसे कहते हो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं यह कहताहूं कि; जो कारण से कार्य होता है सो सत्य होताहै । तुम कहो कि, जगत् का कारण क्या है अर्थात् जैसे बीज से बट होता है; तैसेही इसका कारण कौन है ? रामजी बोले; हे भगवन् ! जगत् सूक्ष्म अणु से उपजता है और लीन भी सूक्ष्मतत्त्वके अणु मेंही होताहै । वशिष्ठजी ने पूछा, हे रामजी ! सूक्ष्मअणु किसमें रहते हैं ? रामजी बोले, हे मुनीश्वर ! महाप्रलय में शुद्ध चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है और उसी में अणु रहते हैं । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! महाप्रलय किसको कहते हैं ? जहां सर्व शब्द और अर्थ का अभाव है उसका नाम महाप्रलय है । वहां तो शुद्ध चिन्मात्र सत्ता रहतीहै जिसमें वाणीकी गम नहीं तो उसमें सूक्ष्म अणु कैसेहों और कारण कार्यभाव कैसेहो ? रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर ! जो शुद्ध चिन्मात्रसत्ता ही रहती है तो उसमें जगत् कैसे निकल आता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! विश्व कुछ उपजा हो तो मैं तुमसे कहूं कि, इस प्रकार जगत् की उत्पत्ति होतीहै पर जो जगत् कुछ उपजाही नहीं तो इसकी उत्पत्ति कैसे कहूं ? जब चिन्मात्रमें चैतता फुरतीहै तब जगत् अहं त्वमादिक भासता है सो फुरनाहीरूप है और कुछ उपजा नहीं-वही रूप है । हे रामजी ! ज्ञान का जो दृश्य भ्रम से मिलाप है सोही बन्धन का कारण है और उसका अभाव होना मोक्षहै । रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! ज्ञान के हुये जगत् का अभाव कैसे होताहै ? यह तो दृढ़ हो रहाहै इसको शान्ति कैसे होतीहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! सम्यक्ज्ञान से जो बोध होताहै उस बोध से दृश्य का सम्बन्ध निवृत्त होता है । वह बोध निराकार और निज शीतलरूप है उसीसे मोक्ष में प्रवर्त्तता है । रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! बोध तो केवलरूप है; सम्यक्ज्ञान किसको कहते हैं जिससे यह जीव बन्धन से मुक्त होताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिस ज्ञान से ज्ञेय दृश्य का संयोग नहीं होता उसको केवल ज्ञानी अविनाशीरूप कहतेहैं । जब ज्ञेय का अभाव होताहै तब सम्यक्ज्ञान कहाता है । जगत् ज्ञेय अविचारसिद्ध है । रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! ज्ञानसे ज्ञेय भिन्नहै अथवा अभिन्न है और ज्ञान क्योंकर उत्पन्न होताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बोधमात्र का नाम ज्ञान है और उससे ज्ञान ज्ञेय भिन्न नहीं । जैसे वायुसे वायुका फुरना भिन्न नहीं । रामजीने पूछा कि, हे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के जाननेवाले ! जो शशे के सींग की नाईं ज्ञेय असत्यहै तो भिन्न होकर क्यों भासती है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बाह्य जगत् ज्ञेय भ्रान्ति से भासताहै; उसका सद्भाव नहीं है और न भीतर जगत् है न बाहर जगत् है अर्थसे रहित भासता है । रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! अहं त्वमादिक तो प्रत्यक्ष भासतेहैं और इनका अर्थ सहित अनु-

भव होताहै तुम कैसे अभाव कहतेहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह सर्व जगत् विराट् पुरुषका वपुहै सो आदि विराट्ही उपजा नहीं तो और की उत्पत्ति कैसे कहिये? रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! जगत् का सद्भाव तो तीनों कालों में पायाजाताहै पर तुम कहतेहो कि, उपजाही नहीं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसे स्वप्ने में सब जगत् अर्थ प्रत्यक्ष भासते हैं पर कुछ उपजे नहीं और जैसे मृगतृष्णा का जल; आकाश में द्वितीय चन्द्रमा और संकल्पनगर भ्रमसे भासताहै; तैसेही अहं त्वमादिक जगत् भ्रम से भासता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अहं त्वमादिक जगत् दृढ़ भासता है तो कैसे जानिये कि, उपजा नहीं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पदार्थ कारण से उपजता है वह निश्चय सत्य जाना जाताहै। जब महाप्रलय होतीहै तब कारण कार्य कुछ नहीं रहता सब शान्तरूप होताहै और फिर उस महाप्रलय से जगत् फुरआता है। इसी से जाना जाताहै कि; सब आभासमात्र है। रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! जब महाप्रलय होता है तब अज और अविनाशी सत्ता शेष रहतीहै, इससे जानाजाता है कि; वही जगत् का कारण है। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसा कारण होता है तैसाही उसका कार्य होता है उससे विपर्यय नहीं होता। जो आत्मसत्ता अद्वैत और आकाशरूपहै तो जगत्भी वही रूपहै। घट से पट की नाईं और तो कुछ नहीं उपजता? रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जब महाप्रलय होताहै तब जगत् सूक्ष्मरूप होकर स्थित होता है और उसी से फिर प्रवृत्ति होतीहै। वशिष्ठजी बोले; हे निष्पाप, रामजी! महाप्रलयमें जो तुमने सृष्टिका अनुभव किया सो क्या रूप होतीहै? रामजी बोले; हे भगवन्! ज्ञप्तिरूप सत्ताही वहां स्थित होतीहै और तुम ऐसोंने अनुभवभी कियाहै। कि; आकाशरूपहै। सत्य और असत्य शब्द से नहीं कहा जाता। वशिष्ठजी बोले; हे महाबाहो! जो ऐसे हुआ तौ भी जगत् तो ज्ञप्तिरूप हुआ—इससे जन्म मरण से रहित शुद्धज्ञानरूपहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहतेहो कि, जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ भ्रममात्रहै सो भ्रम कहांसे आयाहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् चित्त के फुरने से भासता है। जैसे जैसे चित्त फुरताहै तैसेही तैसे भासता है इसका और कोई कारण नहीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो यह चित्तके फुरने से भासताहै तो परस्पर विरुद्ध कैसे भासते हैं कि, अग्निको जल नष्ट करताहै और जल को अग्नि नष्ट करतीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो द्रष्टा पुरुषहै सो दृश्यभाव को नहीं प्राप्त होता और ऐसी कुछ वस्तु नहीं। भानरूप आत्मा ही चैतन्यघन स्वरूप हो भासता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! चिन्मात्रतत्त्व आदि अन्त से रहित है और जब यह जगत् को चेतता है तब होताहै पर तौ भी तो कुछ हुआ? जगत् को चेतका असंभव कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसका कारण

कोई नहीं, इससे चैत का असंभवहै। चेतन सदा मुक्ति और अवाच्यपदहै। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो इस प्रकार है तो जगत् और तत्त्व कैसे फुरते हैं और अहं त्वं आदिक द्वैत कहां से आये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कारणके अभावसे यह जगत् कुछ आदि से उपजा नहीं सर्वशान्तरूप है और नाना भासताहै सो भ्रममात्र है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! निर्मलतत्त्व जो सर्वदा प्रकाशरूप है सो निरुल्लेख और अचलरूप है उसमें भ्रान्ति कैसेहै और किसकोहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कारण के अभाव से निश्चय करके जानो कि; भ्रान्ति कुछ वस्तु नहीं। अहं त्वं आदिक सर्व एक अनामय सत्ता स्थित है। रामजीने पूछा; हे ब्राह्मण! मैं भ्रमको प्राप्त हुआ हूं इससे और अधिक पूछना नहीं जानता और अत्यन्त प्रबुद्ध भी नहीं तो अब क्या पूछूँ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह प्रश्न करो कि; कारण बिना जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? जब विचार करके कारण का अभाव जानोगे तब परम स्वभाव अशब्दपद में विश्रान्ति पावोगे। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! मैं यह जानता हूं कि कारण के अभाव से जगत् कुछ उपजा नहीं परन्तु चैत का फुरना भ्रम कैसे हुआ वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कारण के अभाव से सर्वत्र शान्तिरूप है। भ्रम भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं। जबतक आत्मपद में अभ्यास नहीं होता तबतक भ्रम भासता है और शान्ति नहीं होती पर जब अभ्यास करके केवल तत्त्व में विश्रान्ति पावोगे तब भ्रम मिटजावेगा। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अभ्यास और अनभ्यास कैसे होताहै और एक अद्वैत में अभ्यास अनभ्यास भ्रान्ति कैसे होतीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अनन्ततत्त्वमें शान्तिभी कुछ वस्तु नहीं और जो आभास शान्ति भासतीहै सो महाचिद्घन अविनाशरूपहै। रामजीने पूछा; हे ब्राह्मण! उपदेश और उपदेशके अधिकारी ये जो भिन्न २ शब्द हैं सो सर्व आत्मामें कैसे भासते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! उपदेश और उपदेशके योग्य ये शब्दभी ब्रह्महीमें स्थित हैं। शुद्ध बोधमें बन्ध और मोक्ष दोनोंका अभावहै। रामजीने पूछा; हे भगवन्! जो आदिमें कुछ उत्पन्न नहीं हुआ तो देश, काल, क्रिया और द्रव्यके भेद कैसे भासते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देश, काल, क्रिया और द्रव्य के जो भेद हैं सो संवेदनदृश्य में हैं और अज्ञानमात्र भासते हैं—अज्ञानमात्र से कुछ भिन्न नहीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! बोध को दृश्य की प्राप्ति कैसे हुई? जहां द्वैत और एकता कारण का अभाव है वहां दृश्यभ्रम कैसे है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! बोधकी दृश्यप्राप्ति और द्वैत एकका भ्रम मूर्खका विषयहै; हम ऐसों का विषय नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अनन्त तत्त्व जो केवल बोधरूपहै तो अहं त्वं हमारेमें कैसे होताहै? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! शुद्धबोध सत्ता में जो बोधका जाननाहै सो अहं त्वं करके कहाता है। जैसे पवन में

फुरना है तैसेही उस में चेतना फुरती है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जैसे निर्मल अचलसमुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे होतेहैं सो कुछ जल से भिन्न नहीं; तैसेही बोधमें बोधसत्ता से भिन्न कुछ नहीं जो अपने आपमें स्थितहै। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो ऐसे है तो किसका किसको दुःख हो। एक अनन्ततत्त्व अपने आपमें स्थित और पूर्णहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जो वह एक और निर्मलहै तो अहं त्वं आदिक कलना कहांसे आई और दृढ़ हुई कि, भोक्ता की नाईं भोगता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञेय जो दृश्यसत्ता है उसका जानना उसको बन्धन नहीं क्योंकि; ज्ञानही सर्व अर्थरूप होकर स्थित हुआ तो बन्ध और मोक्ष किसको हो? रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञप्ति जो बाह्यअर्थ को देखती है—जैसे आकाश में नीलता और स्वप्ने में पदार्थ सो असत्यरूप सत्य हो भासते हैं; तैसेही यह बाह्य अर्थ भी असत्यही सत्य हो भासते हैं। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कारण से रहित जो बाह्य अर्थ सत्य भी भासते हैं सो भ्रममात्र हैं—भिन्न कुछ नहीं? रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जैसे स्वप्नकाल में स्वप्ने के पदार्थों का दुःख होताहै चाहे वे सत्य हों अथवा असत्य हों तैसेही इस जगत् में सत्य और असत्य का दुःख होता है परन्तु इसकी निवृत्ति का उपाय कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो इस प्रकार है कि; जगत् स्वप्नकी नाईं है तो यह सब पिण्डाकार भ्रममात्र से भासता है और सर्व अर्थ शान्तरूप है नानात्व कुछ नहीं। रामजीने पूछा; हे भगवन्! स्वप्न और जाग्रत् में पिण्डाकार और पर अपररूप कैसे उत्पन्न होतेहैं और कैसे शान्त होते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पूर्व अपर का विचार कीजिये कि; जगत् आदि में क्या रूप था और अन्त में क्या रूप होता है; जब ऐसा विचार होगा तब शान्ति होजावेगी। जैसे स्वप्ने में स्थूल पदार्थ पिण्डरूप भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं; तैसेही जाग्रत्पदार्थ भी आकाशरूप हैं। रामजीने पूछा; हे भगवन्! जब भिन्नभाव की भावना प्राप्त होतीहै तब जगत् को कैसे देखता है और संस्कार भ्रम शान्त कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो निर्वासी पुरुषहै उसके हृदय से जगत् का सद्भाव उठ जाता है। जैसे संकल्पनगर और कागज़ की मूर्ति असत् भासती है, तैसेही उसको जगत् असत् भासता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जब वासना से रहित पिण्डभाव शान्त हुये जगत्को स्वप्नवत् जानताहै तो उसके उपरान्त क्या अवस्था होतीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जगत् को जीव जब संकल्परूप जानता है तब वासना निर्वाण होजातीहै और पञ्चतत्त्वों का क्रम उपजना और विनशना लीन होजाता है। तब केवल परमतत्त्व भासता है और सब आकाशरूप होजाता है। रामजीने पूछा; हे भगवन्! अनेक जन्म की जो वासना दृढ़ होरही है और अनेक शाखा होकर फैली है इसलिये

संसार का कारण घोरवासनाहीहै सो कैसे शान्त होतीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब यथा भूतार्थज्ञान होता है तब आत्मा में भ्रान्तिरूप जगत् स्थित हुआ शान्त होता है। जब पिण्डाकार अर्थ पदार्थ सोजाता है तब कर्मरूप दृश्य चक्र भी शान्त होजाता है जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत् में नष्ट होजाते हैं; तैसेही आत्मतत्त्व के बोधसे सब वासना नष्ट होजाती हैं। रामजी ने पूछा हे मुनीश्वर! जब पिण्डग्रहण निवृत्त हुआ और कर्मरूप दृश्यचक्र निवृत्त हुआ तब फिर क्या प्राप्त होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब पिण्डग्रहण भ्रम शान्त होता है तब जीव निर्मल होकर क्षोभ से रहित होता है; जगत् आस्था दृश्य की शान्ति होजातीहै और चित्त परमात्मतत्त्व को प्राप्त होता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! यह बालक के संकल्पवत् कैसे स्थित है? जो संकल्परूपहै तो इसके जो जड़ में पदार्थ है उसके नष्ट हुये इसको दुःख क्यों प्राप्त होता है और इस जगत् की आस्था कैसे शान्त होती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पदार्थ संकल्प से उत्पन्न हुआ है उसके नष्ट करने में दुःख नहीं होता और जो पूर्व अपर विचार करके चित्त से रचा जानिये तो भ्रम शान्त होजाता है। रामजीने पूछा; हे भगवन्! चित्त कैसा है और उससे कैसे रचा विचारिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चित्तसत्ता जो चैत्योन्मुखत्व फुरती है। उसीको संकल्प रूप चित्त कहतेहैं। उससे रहित विचारने से वासना शान्त होजाती है। रामजी बोले; हे ब्रह्मन्! चैत्य से रहित चित्त कैसे होता है और चित्त से उदय हुआ जगत् निर्वाण कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चित्त कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, अनहोता ही द्वैत भासता है–कुछ है नहीं। रामजी बोले; हे भगवन्! जगत् तो प्रत्यक्ष भासता है; जो उपजाही नहीं तो इसका अनुभव कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अज्ञानी को जो जगत् भासता है सो सत्य नहीं और ज्ञानवान् को जो भासता है सो अवाच्यसत्ता अद्वैतरूप है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अज्ञानी को तीनों जगत् जो सत्य नहीं कैसे भासते हैं और ज्ञानवान् को कैसे भासते हैं जो कहने में नहीं आता? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अज्ञानी को द्वैत सघन दृढ़ भासताहै और ज्ञान-वान् को सघन द्वैत नहीं भासता क्योंकि; आदि तो उपजा नहीं अद्वैत आत्मतत्त्व अवाच्यपद है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो आदि उपजा नहीं तो अनुभव भी न हो पर यह तो प्रत्यक्ष अनुभव होता है, इसे असत्य कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! असत्यही सत्य की नाईं हो भासता है–इसी कारण रहित भासता है। जैसे स्वप्न में पदार्थका अनुभव होताहै परन्तु वास्तव में कुछ नहीं, तैसेही यह अ-सत्यही अनुभव होता है। रामजी बोले; हे भगवन्! स्वप्न में असंकल्प में जो दृश्य शङ्काका अनुभव होताहै सो जाग्रत् के संस्कारसे होता है और कुछ नहीं। वशिष्ठजी

ने पूछा; हे रामजी! स्वप्न और संकल्प उसके संस्कार से होता है सो जाग्रत् के संस्कार से कैसे होता है? वही रूप है अथवा जाग्रत् से अन्य है? रामजी बोले; हे भगवन्! स्वप्ने के पदार्थ और मनोराज जाग्रत् के संस्कार से भ्रम से जाग्रत् की नाईं भासते हैं। वशिष्ठजी ने कहा; हे रामजी! जो स्वप्ने में जाग्रत् संस्कार से जगत् जाग्रत् की नाईं भासता है कि; स्वप्ने में किसीका घर लुटगया अथवा जल के प्रवाह में बहगया–तो जाग्रत् में तो कुछ हुआ नहीं क्योंकि; प्रातःकाल उठकर देखता है तब ज्योंका त्यों भासता है–तो संसार भी कुछ न हुआ सब कल्पनामात्र जानना। रामजी बोले; हे भगवन्! अब मैंने जाना कि; यह सब ब्रह्मही है; न कोई देह है, न जगत् है, न उदय है और न अस्त है; सर्वदाकाल सर्वप्रकार वही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है और उससे भिन्न जो कुछ भासता है सो भ्रममात्र है और भ्रमभी कुछ वस्तु नहीं सर्व चिदाकाश ब्रह्मरूप है। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ भासता है सो सब ब्रह्मही का प्रकाश है। वही अपने आपमें प्रकाशता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! सर्गके आदि में देह चित्तादिक कैसे फुर आयेहैं और आत्माका प्रकाशरूप जगत् कैसे है? प्रकाश भी उसका होताहै जो साकाररूप होता है परब्रह्म तो निराकार है उसका प्रकाश कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्वब्रह्मरूप है। प्रकाश और प्रकाशक का भेद भी कुछ नहीं और दूसरी वस्तु भी कुछ नहीं वही अपने आप में स्थित है--इसीसे स्वप्रकाश कहाहै। सूर्य आदिक का प्रकाश त्रिपुटी से भासता है सोभी उस के आश्रय होकर प्रकाशता है और उसके प्रकाश का आधारभूत कहाता है जिसके आश्रय होकर सूर्य जगत् को प्रकाशताहै। आत्मसत्ता अद्वैत और विज्ञान घन है उस में जो चित्तसंवेदन फुरीहै वही जगत्रूप होकर स्थित हुई है। आत्मसत्ता और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं–वही इस प्रकार हुयेकी नाईं स्थित हुआहै। हे रामजी! निराकारही स्वप्नवत् साकाररूप हो भासता है। इस जगत् के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता थी उसीसे जो नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आया सो वहीरूप हुआ और कारण तो कोई नहीं। जैसे स्वप्ने के आदि अद्वैतसत्ता निराकार है और उससे जो सूर्यादिक पदार्थ भासि आते हैं सोभी वहीरूप हुये पर प्रकट भासते भी हैं; तैसेही इस जगत् कोभी अकारण और निराकार जानो। हे रामजी! न कोई जाग्रत् है; न स्वप्न है और न सुषुप्ति है सब आभासमात्र है–वही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। हम को तो वही सदा विज्ञानघन आत्मसत्ता भासतीहै जैसे दर्पण में अपना मुख भासता है; तैसेही हमको अपना आप भासता है और अज्ञानी को भ्रान्तिरूप जगत् भासता है। जैसे वृक्ष के झुण्ड में दूर से भ्रान्ति करके पुरुष भासता है; तैसेही अज्ञानी को

जगत् भासताहै। हे रामजी ! न कोई द्रष्टा है और न दृश्य है। द्रष्टा तो तब कहिये जो दृश्य हो; और दृश्य तब कहिये जो द्रष्टा हो; जो दृश्य नहीं तो द्रष्टा किसका और जो द्रष्टाही नहीं तो दृश्य किसका ? इससे निर्विकार ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है जो आकार भी भासते हैं तो भी निराकार है—आत्मसत्ताही संवेदन करके आकाररूप हो भासती है और जैसे थम्भे में चितेरा पुतलियां कल्पता है कि; इतनी पुतलियां थम्भे में निकलेंगी तो उसको खोदे विनाही प्रत्यक्ष भासतीहैं; तैसेही खोदे विना ब्रह्मरूपी थम्भे में मनरूपी चितेरा ये पुतलियां देखता है सो हुआ कुछ नहीं । हे रामजी ! इन मेरे वचनों को तुम स्वप्न और संकल्प दृष्टान्त से देखो कि; अनुभवरूपही आकार हो भासता है—अनुभव से भिन्न कुछ नहीं । इस मेरे वचनरूपी उपदेश को हृदय में धारो और अज्ञानियों के वचन को त्याग दो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्यावादबोधोपदेशोनाम
द्विशताधिकद्विसप्ततितमस्सर्गः ॥ २७२ ॥

रामजी बोले; हे भगवन् ! बड़ा आश्चर्य है कि; हम अज्ञान से जगत् को देखतेथे। जगत् तो कुछ वस्तु नहीं सर्वब्रह्मही है और अपने आपमें स्थित है। यह जगत् भ्रम से भासता है । अब मैंने जाना कि; यह जगत् वास्तव में न पीछे था और न आगे होवेगा; सर्वशान्त निरालम्ब विज्ञानघनसत्ता है और भ्रान्ति भी कुछ वस्तु नहीं ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है जो निर्विकार और शान्तरूप है। जैसे स्वर्ग, परलोक, स्वप्न और संकल्पपुर के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता होती है और उसका आभास संवेदन स्पन्द फुरती है तो अनेक पदार्थ सहित जगत् भासि आताहै सो अनुभवरूप होता है भिन्न कुछ वस्तु नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है। हे प्रभो ! अब मैंने तुम्हारी कृपा से ऐसे निश्चय किया है कि; जगत् अविचारसिद्ध है और विचार किये से निवृत्त होजाता है । जैसे शशे के सींग और आकाश के फूल असत्य होते हैं; तैसेही जगत् असत्य है । बड़ा आश्चर्य है कि; असत्यरूप अविद्या ने जगत् को मोहित किया था। अब मैंने जाना कि; अविद्या कुछ वस्तु नहीं अपनी कल्पनाही आपको बन्धन करती है । जैसे अपनी परछाहीं में बालक भूत कल्पताहै और आपही भय पाता है; तैसेही अपनी कल्पना ही अविद्यारूप भासती है पर जबतक विचार प्राप्त नहीं हुआ तभी तक भासती है विचार किये से उसका अत्यन्त अभाव होजाता । जैसे जेवरी में सर्प भासता है और जेवरी के जानेसे सर्पका अत्यन्त अभाव होजाताहै । जैसे किसीस्थान में भ्रम से मनुष्य भासता है; तैसेही आत्मा में भ्रमसे अविद्यारूप जगत् भासता है। जैसे आकाश के फूल और शशे के सींग कुछ वस्तु नहीं; तैसेही अविद्याभी कुछ वस्तु नहीं। जैसे बन्ध्या का पुत्र भासे तोभी भ्रममात्र जानाजाताहै और स्वप्नमें अपने मरने

का अनुभव हो वह भी भ्रममात्र है; तैसेही अविद्यारूप जगत् भासताहै तोभी असत्य है प्रमाणरूप नहीं। प्रमाण उसे कहते हैं जो यथार्थ ज्ञान का साधक हो पर यह जो प्रत्यक्षप्रमाण है सो यथार्थकर्ता नहीं क्योंकि; वस्तुरूप आत्मा है सो ज्योंका त्यों नहीं भासता सीपी में रूपेके समान विपर्य्यय भासता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है तोभी असत्यरूप है–प्रमाण क्योंकर जाने। हे भगवन्! यह जगत् और कुछ वस्तु नहीं केवल कल्पनामात्र है जैसे २ आत्मा में संकल्प दृढ़ होताहै; तैसेही तैसे जगत् भासता है। जैसे जो पुरुष स्वर्ग में बैठा हो उसके हृदय में यदि कोई चिन्ता उपजे तो उसको स्वर्गभी नरकरूप होजाताहै क्योंकि; भावना नरक की होजातीहै। हे भगवन्! यह जगत् केवल वासनामात्र है। आत्मा में जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना केवल यह जगत् चित्त में है। जैसे पत्थर की शिला में शिल्पी पुतलियां कल्पताहै सो जैसी कल्पताहै तैसेही भासती हैं–शिलासे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही आत्मा में चित्त ने जगत् पदार्थ रचे हैं और जैसे २ भावना करता है तैसेही तैसे यह भासता है। आत्मा में जगत् न कुछ हुआहै और न आगे होगा। ब्रह्मसत्ता केवल अपने आपमें स्थित है जो स्वच्छ, अद्वैत, परम मौनरूप और द्वैत और एक कल्पना से रहित है और परम मुनीश्वरों से सेवने योग्य है। ऐसा जो पदहै सो मैंने पायाहै और अपने आपमें स्थित और सर्वदुःखों से रहित हूं॥

इति श्रीयो०नि०रामविश्रान्तिवर्णनन्नामद्विशताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः॥ २७३॥

रामजीने पूछा; हे मुनीश्वर! आदि, अन्त और मध्य से रहित जो पद है और जिसका मुनियों को भी जानना कठिन है वह पद मैंने पाया है और एक और द्वैत की कल्पना जो शास्त्र और वेदों में कही है वह मेरी मिटगई है। अब मैं परमशान्त होकर निश्शङ्क हुआहूं और कोई दुःख मुझको नहीं रहा। सब जगत् मुझको आत्मरूप ही भासता है। हे भगवन्! अब मैंने जाना कि; न कोई अविद्या है; न विद्याहै; न सुख है और न दुःख है मैं सर्वदा अपने आत्मपद में स्थितहूं और पानेयोग्य पद पाया है जो आगेभी प्राप्त था। जो कहते हैं कि, हम उस पदको नहीं जानते उनको भी वह प्राप्तरूप है परन्तु वे अज्ञान से नहीं जानते। वह पद और किसीसे नहीं जानाजाता अपने आपसे जानाजाताहै और ऐसेभी नहीं है कि; किसीसे जनाइये और जानने योग्य और हो; वह तो आपही बोधरूपहै और न कोई भ्रान्ति है; न जगत् है सर्व आत्माही है। हे मुनीश्वर! अज्ञान और ज्ञान भी ऐसे है जैसे स्वप्ने की सृष्टि हो। जैसे उसमें अन्धकार भासता है सो तब नाश होता है जब सूर्य उदय हो। जब स्वप्ने से जाग उठे तब न अन्धकार रहताहै और न प्रकाश ही रहता है; तैसेही आत्मपद में जागेसे ज्ञान और अज्ञान दोनों का अभाव होजाता है और

द्वितीयकल्पना मिटजाती है । जब संवेदन फुरतीहै तब जगत् भासताहै परन्तु जगत् आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं जैसे शिला का अन्तर जड़ीभूत होता है; तैसेही आत्माका रूप जगत् है जैसे जल और तरङ्ग में भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् अभेद-रूप है । हे मुनीश्वर ! जिस पुरुष को ऐसे आत्मामें अहंप्रतीति हुईहै वह कार्यकर्ता दृष्टि आता है तो भी हृदय के निश्चय से कुछ नहीं करता और अशान्तरूप दृष्टि आता है तोभी सदा शान्तरूपहै । हे मुनीश्वर ! अज्ञानरूपी मध्याह्न का सूर्यहै और जगत्की सत्यत्तारूपी दिनहै । जगत्का भाव अभाव पदार्थरूपी उसका प्रकाश है और तृष्णारूपी मरुस्थलहै जिसमें अज्ञानी जीवरूपी मार्गपन्थीहैं उनको दिन और मार्ग निवृत्त नहीं होता । जो ज्ञानवान् स्वभावमें स्थित हैं उनको न संसार की सत्यतारूपी दिन भासताहै और न तृष्णारूपी मरुस्थल भासताहै । वे संसार की ओर से सोरहे हैं । ऐसी अद्वैतसत्ता उनको प्राप्त हुईहै जहां सत्य और असत्य दोनों नहीं इस का-रण उन्हें जगत् कलना नहीं भासती । हे मुनीश्वर ! अब मैं जागा हूं और सब जगत् मुझको अपना आपही दृष्टि आता है । मैं निर्वाणरूप, निराकार, निरिच्छित और स्वभावसत्तारूप हूं । अब कोई दुःख मुझको नहीं । हे मुनीश्वर ! उस पद को मैंने पायाहै जिसके पानेसे तृष्णा कदाचित् नहीं उपजती । जैसे पाषाणकी शिला में प्राण नहीं फुरते, तैसेही मुझ में तृष्णा नहीं फुरती । सर्व आत्मरूप ही मुझको भासताहै । यह जो जीवहै उसमें जीवत्व कुछ नहीं; जीवत्व भ्रान्ति सिद्ध है सब आत्मस्वरूपहै । मुझको तो निरालम्बसत्ता अपनी आपही भासती है ॥

इति श्रीयो०नि०रामविश्रान्तिवर्णनंनामाद्विशताधिकचतुस्सप्ततितमस्सर्गः ॥ २७४॥

रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर ! आत्मामें अनन्तसृष्टि फुरती हैं । जैसे मेघकी बूंदों की गिनती नहीं होती, तैसेही परमात्मामें सृष्टिके अन्तकी गिनती नहीं होती । जैसे एक रत्न की असंख्यात किरणें होती हैं; तैसेही परमात्मा में असंख्यसृष्टि हैं; कई परस्पर मिलतीं और कई नहीं मिलतीं परन्तु स्वरूप से एकरूप हैं । जैसे समुद्र में लहरें उठती हैं तो उनमें कई नूतन भिन्न २ औरही प्रकार की उठती हैं; कई परस्पर ज्ञात होती हैं और कई नहीं होतीं और एकही ज्वाला के बहुत दीपक होते हैं और कोई अन्योन्य और कोई परस्पर मिलते हैं और पर स्वरूप से एकरूप हैं तैसेही आत्मामें अनन्त जगत् फुरते हैं परन्तु परस्पर एकरूप हैं यदि नाना प्रकार का ज-गत्दृष्टि आया तो उसमें वही रूप हुआ और कारण तो कोई नहीं ? जैसे शून्य के आदि निराकार सत्ता होती है और उसी से सूर्यादिक पदार्थ भासि आते हैं सो भी वहीरूप हुये प्रकट भासतेभी हैं परन्तु निराकार होते हैं; तैसेही यह जगत्भी अका-

रण निराकारहै। हे मुनीश्वर! अब मैंने ज्योंका त्यों जानाहै। जैसे स्वप्नेमें मुयेहुये बोलतेहैं, जीते हुये मृतक दृष्ट आतेहैं और सबपदार्थ विपर्यय भासते हैं परन्तु जब जाग उठे तब सब ज्योंके त्यों भासते हैं; तैसेही मैं जागउठाहूं अब मुझको विपर्यय नहीं भासता—यथाभूतार्थ मुझको अब सर्वात्माही भासताहै। हे मुनीश्वर! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे परमसमाधिमें स्थित हैं और उनको उत्थान कदाचित् नहीं होता अर्थात् स्वरूपसे भिन्न नहीं भासता। वे व्यवहार करते दृष्टि आते हैं परन्तु व्यवहार से रहित हैं क्योंकि; उनको अभिलाषा कुछ नहीं रहती विना अभिलाषा चेष्टा करते हैं और उनको हृदय से कुछ कर्तृत्व का अभिमान नहीं फुरता। इसीका नाम परमसमाधि है। जब बोध की प्राप्ति होती है तब तृष्णा कोई नहीं रहती और सबपदार्थ विरस होजाते हैं क्योंकि; आत्मपद परमानन्दरूप है और तृष्णा से रहित है। उसी का नाम मोक्षहै और उसीका नाम निर्वाण है, जिसमें उत्थान कोई नहीं। हे मुनीश्वर! आत्मानन्द ऐसा पद है जिसके आनन्द को ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक और ज्ञानवानों की वृत्ति सदा दौड़ती है और संसार के पदार्थों की ओर नहीं धावती। जिस पुरुष को शीतल स्थान प्राप्त हुआ है वह फिर ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप को नहीं चाहता कि, मरुस्थलमें दौड़े; तैसेही ज्ञानवान्की वृत्ति आनन्दकी ओर नहीं धावती। हे मुनीश्वर! मैंने निश्चय कियाहै कि; तृष्णाका सा ताप कोई नहीं और अतृष्णा कीसी शान्ति कोई नहीं। यदि कोई पुरुष परमैश्वर्य को प्राप्त हुआ हो पर उसको हृदय की तृष्णा जलाती हो तो वह कृपण और दरिद्री है और आपदा का स्थान है और जो निर्धन दृष्टि आता हो परन्तु उसके हृदय में कोई तृष्णा नहीं तो वह परमैश्वर्य से सम्पन्न है और परम सम्पदा की मूर्ति है। जो बड़ा पण्डित हो परन्तु तृष्णासहित हो तो उसे परम मूर्ख जानिये; उसको बोधकी प्राप्ति कदाचित् न होगी। जैसे मूर्तिकी अग्नि शीत को निर्वाण नहीं करती; तैसेही उसकी मूर्खता को पण्डित भी निर्वाण नहीं कर सक्ता। हे मुनीश्वर! सहस्रों में कोई बिरला पुरुष तृष्णा से रहित होता है। जैसे पिंजरे में पड़ा सिंह पिंजरे को तोड़कर निकले, तैसेही कोई बिरला तृष्णा के जाल को तोड़कर निकलता है। जो पण्डित स्वरूप को विचार के वितृष्णा नहीं होता और अतीत होकर वितृष्णा नहीं होता तो वे पण्डित और अतीत दोनों मूर्ख हैं। ज्यों ज्यों तृष्णा को घटावे त्यों त्यों जाग्रत्बोध उदय होगा। जैसे ज्यों ज्यों रात्रि की क्षीणता होती है, त्यों त्यों दिन का प्रकाश होता है और ज्यों ज्यों रात्रि की वृद्धि होती है त्यों त्यों दिन की क्षीणता होती है; तैसेही ज्यों ज्यों तृष्णा बढ़ती जावेगी त्यों त्यों बोध की प्राप्ति कठिन होगी और ज्यों ज्यों तृष्णा घटती जावेगी त्यों त्यों बोध की प्राप्ति सुगम होगी। हे मुनीश्वर! अब मैं उस पद को प्राप्त हुआ हूं जो अच्युत,

निराकार और द्वैत-एक कलनासे रहित है। उस पद को मैंने आत्मासे जाना है और अब मैं निश्शङ्क हुआ हूं। जिस पद के पाये से कोई इच्छा नहीं रही सो परमानन्द आत्मपद है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रान्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकपञ्चसप्ततितमस्सर्गः॥ २७५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! बड़ा कल्याण हुआ है कि; तुम जागे हो। ऐसे परम पावन वचन तुमने कहे हैं कि, जिन के सुनने से पाप का नाश होता है। ये वचन अज्ञानरूपी अन्धकारके नाशकर्ता सूर्यहैं और तन मनके तापको नाशकर्ता चन्द्रमा की किरणें हैं। हे रामजी! जो पुरुष अपने स्वभावमें स्थित हैं उनको व्यवहार और समाधि में एकही दशा है और वे अनेक प्रकार की चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु उनके निश्चय में कर्तृत्व का अभिमान कुछ नहीं फुरता, वे सदा परमध्यान में स्थित हैं। जैसे पत्थर की शिला में स्पन्द कुछ नहीं फुरता; तैसेही उनको कुछ कर्तृत्व बुद्धि नहीं फुरती क्योंकि; उनके दृश्यमें देहाभिमान निवृत्त हुआहै और चिन्मात्र स्वस्वरूप में स्थित हुई है। वह आत्मपद परम शान्तरूप, द्वैत और कलना से रहित एक है। ऐसा जो पद है उसे ज्ञानवान् आत्मता से जानता है; उसको निर्वाण कहते हैं और उसी को मोक्ष कहते हैं। हे रामजी! ऐसा जो पद है उसमें हम सदा स्थित हैं और ब्रह्मा, विष्णुसे आदि लेकर जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे भी उसी पद में स्थित हैं। वे नाना प्रकार की चेष्टा करते भी दृष्टि आतेहैं परन्तु सदा शान्तरूपहैं और उनको क्रिया और समाधि में एकही आत्मपद का निश्चय रहता है। जैसे वायु स्पन्द और निस्स्पन्द में एकही है और जल और तरङ्ग ठहरने में एकही है; तैसेही ज्ञानी दोनों में सम है। जैसे आकाशरूप और शून्यता में भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से मुझको कोई कलना नहीं फुरती। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से आदि लेकर जो कुछ जगत् है सो सब आकाशरूप मुझको भासता है और सर्वदा काल सर्वप्रकार में अपने आपमें स्थित अच्युत और अद्वैतरूप हूं। मेरेमें जगत् की कलना कोई नहीं; चित्संवेदनद्वारा मैं हीं जगत्रूप हो भासता हूं पर स्वरूप से कदाचित् चलायमान नहीं होता। मैं अचैत चिन्मात्रस्वरूप हूं और अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मैं जानता हूं कि, तुम जागे हो परन्तु अपने दृढ़बोध के निमित्त मुझसे फिर प्रश्न करो कि, "यह जगत् है नहीं" तो भासता क्या है? रामजी बोले; हे भगवन्! मैं तुमसे तो तब पूछूं जो मुझको जगत्का आकार भासता हो मुझ को तो जगत् कुछ भासताही नहीं। जैसे संकल्पके अभाव हुये संकल्प की चेष्टा भी नहीं भासती; जैसे

बाजीगर की माया के अभाव हुये बाजी नहीं रहती; स्वप्न के अभाव हुये स्वप्न की सृष्टि नहीं भासती और भविष्यत्कथा के पुरुष नहीं भासते; तैसेही मुझ को जगत् नहीं भासता; तो फिर मैं किसका संशय उठाऊं ? आदि जो संवेदन फुरी है सो विराट्पुरुष होकर स्थित हुई है और उसीने आगे देश, काल, पदार्थ, स्थावर-जङ्गम जगत् रचा है-उसी के समष्टि वपु का नाम विराट् है। जैसे स्वप्न का पर्वत हो; तैसे ही यह विराट्पुरुष है जो आकाशरूप है। जो वह आप ही आकाशरूपहै तो उसका रचा जगत् मैं क्यों पूछूं ? जैसे स्वप्न की मृत्तिका आकाशरूप है अर्थात् जो उपजीही अनउपजी है तो उसके पात्रका मैं क्यों पूछूं ? इसलिये न कोई विराट्है और न उसका जगत् है; मिथ्या ही विराट् है और मिथ्या ही उसकी चेष्टा है। केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है; न कोई जगत् है और न कोई उसका विराट् है। जैसे स्वप्न का पर्वत आभासमात्र होता है; तैसेही यह जगत् आकार भासता है। जैसे बीज से वृक्ष होता है; तैसेही ब्रह्म से जगत् प्रकट हुआ है। बल्कि, यह भी कैसे कहिये ? बीज तो साकार होताहै और उसमें वृक्षका सद्भाव रहताहै जो परिणामसे वृक्ष होता है और आत्मा ऐसे कैसे हो; वह तो निराकार है और उसमें जगत् नहीं है क्योंकि; वह निर्विकार, अद्वैत और निर्वेद है उसको जगत् का कारण कैसे कहिये ? न कोई जाग्रत् है; न स्वप्न है और न सुषुप्ति है; ये अवस्था भी आकाशमात्र हैं। आत्मा परिणामभाव को नहीं प्राप्त होता वह तो सदा अपने आपमें स्थित है। हे मुनीश्वर ! मैं, तुम, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सब आकाशरूप है और अब मुझको सर्व आत्मा ही भासता है। हे मुनीश्वर ! एक सविकल्पज्ञान है और दूसरा निर्विकल्पज्ञान है सो आकाशवत् अचैत चिन्मात्र है। जो दृश्य के सम्बन्ध से रहित है उसे आकाशवत् निर्मल जानो; वही निर्विकल्पज्ञानहै। जिनको यह ज्ञान प्राप्त हुआहै कि, वे महापुरुष हैं उनको मेरा नमस्कार है और जिनको दृश्य का संयोग है वे सविकल्प ज्ञानी हैं। वे संसारी हैं और उनको जगत् भिन्न भिन्न विषमता सहित भासता है परन्तु तो भी भिन्न कुछ नहीं। जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरङ्ग भासते हैं तो भी जल स्वरूप हैं; तैसेही भिन्न भिन्न जीव और उनका ज्ञान है तो भी मुझको अपना आपही भासता है। जैसे अवयवी को सब अङ्ग अपनेही भासते हैं; तैसेही सर्वजगत् मुझको अपना आपही केवल अद्वैतरूप भासता है और जगत् की कलना कोई नहीं फुरती। जैसे स्वप्न से जागेको स्वप्न की सृष्टि नहीं फुरती, कल्पना से रहित अपना आपही अद्वैत भासता है; तैसेही मुझको जगत् कल्पना से रहित अपना आपही भासता है। हे मुनीश्वर ! आगम से लेकर जो शास्त्रहैं उनसे उल्लङ्घन कर मैंने वचन कहे हैं परन्तु जो मेरे हृदय में है वही कहा है। जो कुछ हृदय में होताहै वही बाहर से वाणी से कहा

जाता है । जैसे जो बीज बोया है सोई अंकुर निकलता है, बीज विना अंकुर नहीं निकलता; तैसेही जो कुछ मेरे हृदयमें है सोई वाणी से कहता हूं । यह विद्या सर्वप्रमाण से सिद्ध है । हे मुनीश्वर ! जिसको यह दशा प्राप्त है वही जानता है और कोई नहीं जानसक्ता । जैसे जिसने मद्य पान किया है वही उन्मत्तता को जानताहै और कोई नहीं जानसक्ता; तैसेही जो ज्ञानवान्है वही आत्मरस को जानताहै और कोई नहीं जानता । उस आत्मरस के पानेसे फिर कोई कल्पना नहीं रहती । हे मुनीश्वर ! मैं आत्मा अजन्मा, अविनाशी और परमशान्तरूप हूं; उभय एक की कल्पना से रहित अचेत चिन्मात्र हूं और जगत्रूप हुये की नाईंभी मैं भासताहूं पर निराभास हूं; मेरेमें आभास भी कोई वस्तु नहीं क्योंकि; निराकार हूं । इस प्रकार मैंने अपने आप को यथार्थ चिन्मात्र जाना है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रान्तिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकषट्सप्ततितमस्सर्गः ॥ २७६ ॥

वाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज ! इस प्रकार कहकर रामजी एकमुहूर्तपर्यन्त तूष्णी हो गये अर्थात् उन्होंने परमात्मपदमें विश्रान्ति पाई और इन्द्रियों और मन की वृत्ति आत्मपद में उपशम हुई । उसके उपरान्त जानकर भी कमलनयन रामजी ने लीला के निमित्त प्रश्न किया कि, हे संशयरूपी मेघ के नाशकर्ता शरत्काल ! मुझको एक कोमलसा संशय हुआ है उसको दूर करो ? हे मुनीश्वर ! आत्मपद अव्यक्त और अचिन्त्य है अर्थात् इन्द्रियों और मन का विषय नहीं और मन की चिन्तना में भी नहीं आता और जो बड़े महापुरुष हैं उनके कहनेमें भी नहीं आता तो ऐसा जो अचेत चिन्मात्र आत्मतत्त्व है वह शास्त्र से कैसे जानाजाता है ? शास्त्र तो अविच्छेद प्रतियोगी करके कहते हैं सो सविकल्प है पर सविकल्प से निर्विकल्प पद कैसे जानाजाता है कि; गुरु और शास्त्र से जानिये ? विकल्परूप शास्त्र हैं उनमें भी सार अर्थ मिलता है परन्तु विकल्प परिच्छेद प्रतियोगी जो उसके साथ हैं उनसे सर्वात्मा क्योंकर जानिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वह गुरु और शास्त्र से नहीं जानाजाता और गुरु और शास्त्र विनाभी नहीं जानाजाता । हे रामजी ! नाना प्रकारके जो विकल्परूप शास्त्र हैं उनसे निर्विकल्परूप कैसे जानताहै सो भी सुनो । हे रामजी ! व्यवधान देश के एक किटक थे जो गृहस्थी में रहते थे, निदान उनको आपदा प्राप्त हुई और चिन्ता से दुर्बल होनेलगे और भोजन भी न मिले जैसे वसन्तऋतु की मञ्जरी ज्येष्ठ आषाढ़ के धूप से सूख जाती है और जैसे जलसे निकला कमल सूख जाता है; तैसेही सम्पदारूपी जल से निकलकर आपदारूपी धूपसे किटक सूख गये । तब उन्होंने विचार किया कि; किसी प्रकार हमारा उदर पूर्ण हो इसलिये हम वन में जाकर लकड़ी चुनें कि,

हमारा कष्ट दूरहो। हे रामजी! ऐसे विचार करके वे वनमें गये और लकड़ियां लेआये। इसीप्रकार वे लकड़ियां लेआवें और बाज़ारमें बेंचकर उदर पूर्ण करें। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उनमें से किसी एक ने चन्दन की लकड़ी पहिंचानी और उनसे विशेष मोल पाया। इसी प्रकार एकको ढूँढ़ते ढूँढ़ते रत्न प्राप्त हुये और उनको विशेष ऐश्वर्य प्राप्त हुआ इसलिये उन्होंने लकड़ी उठानी छोड़दी। वे फिर और स्थान ढूँढ़ने लगे कि; रत्न से भी विशेष कुछ पाइये और वन की पृथ्वी को खोदते २ उनको चिन्तामणि मिली, इसलिये उनको बड़ाही ऐश्वर्य प्राप्त हुआ और जैसे ब्रह्मा; इन्द्रादिक हैं तैसेही होगये। हे रामजी! जिन्होंने उद्यम करके वन की सेवना की थी उनको बड़ा सुख प्राप्त हुआ कि; लकड़ियां उठाते २ उनका उदर पूर्ण हुआ और दुःख निवृत्त हुआ; जिनको चन्दन की लकड़ी प्राप्त हुई उनका उदर पूर्ण होनेसे और भी सन्ताप मिटे और जिनको चिन्तामणि प्राप्त हुई उनके सर्वसन्ताप मिटगये और वे परमैश्वर्यवान् हुये परन्तु सबको वन से प्राप्त हुआ और जो वन के निकट उद्यम करने न गये घरही बैठरहे उन्होंने दुःखित होकर प्राणों को त्याग दिया परन्तु सुख न पाया॥

इति श्रीयो॰निर्वाणप्र॰चिन्तामणिप्राप्तिर्नामद्विशताधिकसप्तसप्ततितमस्सर्गः२७७॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! यह जो तुमने किटक का वृत्तान्त कहा उसका तात्पर्य मैंने कुछ न जाना। वे कीट कौन कौन थे; वह वन क्याथा और आपदा क्या थी सो कृपा करके प्रकट कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ये सर्वजीव जो तुम देखते हो सो सब कीट हैं और उनको अज्ञानरूपी आपदा लगी है और आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापों की चिन्ता से वे जलते हैं। आध्यात्मिक काम क्रोधादिक मानसी दुःख हैं; आधिभौतिक देह के वात, पित्त, कफ आदिक दुःख हैं और आधिदैविक वे दुःख हैं जो ग्रहों से अनिच्छित प्राप्त होते हैं। हे रामजी! उनमें प्रयत्न करके जो शास्त्ररूपी वन में गये हैं सो सुखीभये और जो अर्थी सुखके निमित्त शास्त्ररूपी वन को सेवते हैं उनको सत्यकर्मरूपी लकड़ियां प्राप्त होती हैं जिनसे नरकरूपी उदर पूर्ण का जो दुःख था सो निवृत्त होता है और स्वर्गरूपी सुख पाते हैं। फिर शास्त्ररूपी वन को सेवते २ उपासनारूपी चन्दनवृक्ष प्राप्त होता है उससे और दुःख भी निवृत्त होते हैं और विशेष सुख को पाते हैं जब अपने इष्टदेव को सेवताहै तब स्वर्गादिक विशेष सुख पाता है और अपने स्थान को प्राप्त होता है। फिर जब शास्त्ररूपी वन को ढूंढ़ताहै तब विचाररूपी रत्नविशेष पाताहै। जब सत्य असत्य का विचार प्राप्त होता है तब सर्व दुःख नष्ट होजाते हैं। यह जो सुख प्राप्त होता है सो शास्त्र से ही होता है। जैसे चन्दन और लकड़ियां आदि पदार्थ वन में प्रकट थे और चिन्तामणि गुप्त थी; तैसेही और शास्त्रोंमें धर्म, अर्थ और काम प्रकट हैं और ज्ञान-

रूपी चिन्तामणि गुप्त है । जब दूसरे शास्त्ररूपी वन को वैराग्य और अभ्यासरूपी यत्न से खोजे तब आत्मरूपी चिन्तामणि पाता है । हे रामजी ! वनमें ही उसने चिन्तामणि पाई थी क्योंकि; वहां चिन्तामणि का वन था परन्तु जब अभ्यास कियाथा तब पाई थी और उसी वन में पाई थी; तैसेही गुरु और शास्त्र का भी जब मट्टी के खोदने के समान अभ्यास करता है तब आपही चिन्तामणिवत् आत्मप्रकाश होता है । जैसे मट्टी के खोदने से चिन्तामणि का प्रकाश नहीं उपजता क्योंकि, चिन्तामणि तो आगेही प्रकाशरूप थी; खोदने से केवल आवरण दूर हुआ तब आपही भासि आई; तैसेही गुरु और शास्त्रों के वचन के अभ्यास से अन्तःकरण शुद्ध होताहै तब आत्मसत्ता स्वतः प्रकाश आती है । गुरु और शास्त्र हृदयकी मलीनता दूर करते हैं और जब मलीनता दूर होती है तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशती है । इससे गुरु और शास्त्रों से मलीनता दूर होती है परन्तु इनकी कल्पना भी द्वैत में होती है सो कल्पना द्वैतसंसार को नाश करनेवाली है । परमार्थ की अपेक्षा से शास्त्र और गुरुभी द्वैत कल्पना है और अज्ञानी की अपेक्षा से गुरु और शास्त्र कृतार्थ करते हैं और इनके अभ्याससे आत्मपद पाताहै । प्रथम अज्ञानी शास्त्र को भोग के निमित्त सेवते हैं और शास्त्र में भोग का अर्थ जानते हैं । जैसे लकड़ियों के निमित्त वे कीट वनको सेवते थे । शास्त्र में सब कुछ है; जैसे जिसको रुचि से अभ्यास होताहै तैसेही पदार्थ उसको प्राप्त होते हैं । शास्त्र एकही है परन्तु पदार्थों में भेद है । जैसे पौंड़े के रस से गुड़, शक्कर और मिश्री होतीहै; तैसेही शास्त्र एकहै उसमें पदार्थ भिन्न २ हैं । जिस२ अर्थ के पाने के निमित्त कोई यह यत्न करेगा उसीको पावेगा—शास्त्र में भोग भी हैं और मोक्ष भी हैं । अज्ञानी भोगके निमित्त यत्न करतेहैं परन्तु वे भी धन्यहैं क्योंकि; शास्त्र तो सेवने लगे; उन्हें सेवते २ कभी किसी काल में आत्मपदरूपी चिन्तामणि भी प्राप्त होवेगी परन्तु आत्मपद पाने के निमित्त शास्त्र श्रवण करना योग्य है । सुन सुन कर अभ्यासद्वारा आत्मपद प्राप्त होगा आत्मपद पाने से तब सर्व ओरसे समभाव होगा । जैसे सूर्यके उदय हुये सर्व ओर से प्रकाश फैल जाताहै; तैसेही सर्व ओर से समता प्रकाशेगी तब सुषुप्ति की नाईं स्थिति होगी अर्थात् द्वैत और एक कलना भी शान्त होजावेगी और अनुभव अद्वैतमें जाग्रत् होगी परन्तु सन्तोंके संग और शास्त्रों के विचार अभ्यासद्वारा होगी । जो जन परोपकारी संसारसमुद्र से पार करनेवाले हों सोही सन्तजन हैं; उनके संग से आत्मपद प्राप्त होगा । हे रामजी ! गुरु और शास्त्र नेति नेति करके जानते हैं अर्थात् अनात्मधर्म को निषेध करके आत्मतत्त्व शेष रखते हैं । जब अनात्मधर्म को त्याग करोगे तब आत्मतत्त्व शेषरहेगा । उसको जानलोगे तो उसके जाने से और कुछ जानना नहीं रहता और उसके जानने

में यत्न भी कुछ नहीं केवल आवरण दूर करने के निमित्त यत्न है। जैसे सूर्य के आगे बादल आता है तो सूर्य नहीं भासता इसलिये बादलों के दूर करने का यत्न चाहिये सूर्य के प्रकाश के निमित्त यत्न नहीं चाहिये। जब बादल दूरहोते हैं तब स्वाभाविक ही सूर्य प्रकाशता है; तैसेही गुरु और शास्त्रके यत्नसे जब अहंकाररूपी आवरण दूर होते हैं तब सुप्रकाश आत्मा भासि आताहै सात्त्विकगुणी जो गुरु और शास्त्र हैं उन से जब रज और तमगुणों का अभाव होताहै तब परम अनुभव ज्योति आत्मा अकस्मात् प्रकाशि आता है और जब वह प्रकाश हुआ तब उस में उन्मत्त होजाता है और द्वैतरूपी संसार की कल्पना नहीं रहती। जैसे सुन्दर स्त्री को देखकर कामीपुरुष उन्मत्त होजाताहै और संसार की सुरति भूलजाती है; तैसेही ज्ञानी आत्मपदको पाकर उन्मत्त होता है और संसारकी सुरति उसे भूलजातीहै और परमैश्वर्यवान् होता है। उसका साधन केवल शास्त्र का विचार है। वनके सेवने से चिन्तामणि पाने का जो दृष्टान्त कहा है सो जानलेना॥

इति श्रीयो०नि०गुरुशास्त्रोपमावर्णनंनामद्विशताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः॥ २७८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ सिद्धान्त सम्पूर्णहै सो मैंने तुमसे विस्तारपूर्वक कहाहै उसके सुनने और बारम्बार विचारनेसे मूढ़भी निरावरण होंगे तो उत्तम पुरुष को निरावरण होने में क्या आश्चर्य है? हे रामजी! यह मैंभी जानताहूं कि; तुम विदितवेद हुये हो प्रथम मैंनें उत्पत्तिप्रकरण तुम से कहाहै कि; जगत् की उत्पत्ति चित्त संवेदन से हुईहै, फिर स्थितिप्रकरण कहाहै कि; जगत् की स्थिति इस प्रकार हुई है। उत्पत्ति यह कि, चित्तसंवेदन के फुरने से जगत् उपजा है और संवेदन फुरने की दृढ़तासेही उसकी स्थिति हुई है। उसके उपरान्त उपशमप्रकरण कहा है कि; मन इस प्रकार अफुर होता है। जब चित्त उपशम हुआ तब परम कल्याण हुआ। मन के फुरने का नाम संसार है। जब मन उपशम होजाता है तब संसार की कल्पना मिट जाती है। यह सम्पूर्ण विस्तारपूर्वक कहा है परन्तु अब जानता हूं कि; तुम बोधवान् हुयेहो। हे रामजी! मैंने तुमसे प्रथम भी आत्मज्ञान का उपाय कहाहै और जिनको ज्ञान प्राप्त हुआ है उनके लक्षण भी कहे हैं और अब भी संक्षेप से कहताहूं। प्रथम बालअवस्थामें सन्तजनोंका संग करना चाहिये और सच्छास्त्रोंको विचारना चाहिये। इस शुभ आचार में अभ्यासद्वारा जब आत्मपद की प्राप्ति होती है तब समता प्राप्त होतीहै और सबका सुहृद् होजाताहै। सुहृदता परमानन्दरूप जननी है जो सदा संग रहती है। जैसे सुन्दर पुरुष को देखकर उसकी स्त्री प्रसन्न होतीहै और प्राणका त्याग भी अङ्गीकार करती है परन्तु उस पुरुष को नहीं त्यागती; तैसेही जिस ज्ञानवान् पुरुषको ब्रह्म लक्ष्मी से सुन्दर कान्तिहै उसको समता, मुदिता और सुहृदतारूपी स्त्री

नहीं त्यागती; सदा उस के हृदयरूपी कण्ठ में लगी रहती है और वह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है । हे रामजी ! जिसको देवताओं का राज्य प्राप्त होता है वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता और जिस को सुन्दर स्त्रियां प्राप्त होती हैं वहभी ऐसा प्रसन्न नहीं होता जैसा ज्ञानवान् प्रसन्न होताहै । हे रामजी ! समता तो द्विधारूपी अन्धकार का नाशकर्ता सूर्य है और तीनों तापरूपी उष्णताके नाश करनेको पूर्णमासीका चन्द्रमा है सुहृदता और समता सौभाग्यरूपी जलका नीचास्थानहै । जैसे जल नीचे स्थानमें स्वाभाविकही चला जाता है; तैसेही सुहृदतामें सौभाग्यता स्वाभाविक होतीहै । जैसे चन्द्रमा की किरणों के अमृत से चकोर तृप्तवान् होता है; तैसेही आत्मरूपी चन्द्रमा की समता और सुहृतारूपी किरणों को पाकर ब्रतादिक चकोर तृप्त होकर आनन्द-वान् होतेहैं और जीतेहैं । हे रामजी ! वह ज्ञानवान् ऐसी कान्तिसे पूर्ण है जो कदा-चित् क्षीण नहीं होती । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में भी उपाधि दृष्ट आती है परन्तु ज्ञानवान् के मुख में तैसी भी उपाधि नहीं । जैसे उत्तम चिन्तामणिकी कान्ति होतीहै, तैसेही ज्ञानवान् की कान्ति होती है जो राग द्वेष से कदाचित् क्षीण नहीं होती । वह सदा प्रसन्न रहता है । हे रामजी ! समताही मानों सौभाग्यरूपी कमलकी खानि है । समदृष्टि पुरुष ऐसे आनन्दके लिये जगत् में विचरता है और प्राकृत आचार को क-रता है । वह भोजन करता है ग्रहण करता है, वा कुछ लेता देता है सबलोग उसके कर्तृत्व की स्तुति करते हैं । हे रामजी ! ऐसा पुरुष ब्रह्मादिकों से भी पूजने योग्य है; सबही उसका मान करते हैं और सब उसके दर्शन की इच्छा करते हैं और दर्शन करके प्रसन्न होते हैं । जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं और सर्वहुलास को प्राप्त होते हैं; तैसेही उसका दर्शन करके सब हुलास को प्राप्त होते हैं । वह जो करता है सो शुभ आचारही करताहै और जो कुछ और भी कर बैठता है तो भी उसकी निन्दा लोग नहीं करते क्योंकि; जानते हैं कि; यह समदर्शी है । समतासे वह सबका सुहृद होता है और शत्रु भी उसके मित्र होजाते हैं । जिनको समताभाव उदय हुआ है उनको अग्नि जला नहीं सक्ता; जल डुबा नहीं सक्ता और वायु सुखा नहीं सक्ता । वह जैसी इच्छा करे तैसेही सिद्धि होती है । हे रामजी ! जिसको समता प्राप्त हुई है वह पुरुष अतोल होजाताहै और संसार की उपमा उस को कोई दे नहीं सक्ता । जिसको समता नहीं प्राप्त हुई वह सब के संग सुहृदता का अभ्यासकरे तो जो उसका शत्रु हो वहभी मित्र होजाता है क्योंकि; अभ्यास की दृढ़ता से शत्रु भी मित्र भासने लगते हैं । जो सर्व में समता का अभ्यास करता है वही दृढ़ होता है और समताभाव से कदाचित् चलायमान नहीं होता । हे रामजी ! एक राजा था उसने अपने शरीर का मांस काट क्षुधार्थी को दिया परन्तु समता में

चलायमान न हुआ; ज्योंका त्यों रहा। एक पुरुषको उसकी पुत्री अति प्यारी थी और उसने उसे किसी को दिया जिसने शत्रुको दी परन्तु वह ज्योंका त्यों रहा। एक और राजा था जिसको स्त्री अति प्यारी थी पर उसने उसका कुछ व्यभिचार सुना और मारडाला परन्तु समतारूप धर्म को न त्यागा। हे रामजी! जब राजा के गृह में मङ्गल होताहै तब वह अपने नगर को भूषणों और वस्त्रों से सुन्दर करताहै और प्रसन्न होता है सो अवस्था राजा जनक की देखी थी। एक समय उसने सर्वस्थान अति प्रज्वलित अग्निसे जलते देखे पर अपने समताभावसे चलायमान न हुआ। एक और राजा था उसने राज्य भी और को दे दिया और आप राज्य विना बिचरता रहा परन्तु समताभाव से चलायमान न हुआ। हे रामजी! एक दैत्य था उस को देवताओं का राज्य मिला और फिर राज्य नष्ट होगया परन्तु दोनों भावों में वह समही रहा। एकबालक था उसने चन्द्रमाको लड्डू जानकर फूंक मारी परन्तु वह ज्योंका त्यों रहा। हे रामजी! इसी प्रकार मैंने अनेक देखे हैं जिनको सम्यक् आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है और वे सुख दुःख से चलायमान नहीं हुये। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी का प्रारब्धभोग तुल्य है परन्तु अज्ञानी राग द्वेष से तपायमान होता है और ज्ञानी दृढ़ समझ के वश से तपायमान नहीं होता, सर्व अवस्थाओं में उसको समताभाव होताहै। जो फल आत्मपदके साक्षात् होने से प्राप्त होताहै सो तप, तीर्थ, दान और यज्ञसे प्राप्त नहीं होता। जब अपना विचार उत्पन्न होताहै तब सर्वभ्रान्ति निवृत्त होजाती हैं और सर्व जगत् आत्मरूपही भासताहै। इसी दृष्टको लिये ज्ञानी प्राकृत आचारमें बिचरते हैं परन्तु निश्चय में सदा निर्गुण हैं। रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! ऐसी अद्वैतदृष्टिनिष्ठा जिनको प्राप्त हुई है उनको कर्मों के करनेसे क्या प्रयोजनहै; वे त्याग क्यों नहीं करते? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष अद्वैतनिष्ठ हैं उनसे त्याग ग्रहण की भ्रान्ति चली जाती है और उस भ्रम से रहित होकर वे प्रारब्ध के अनुसार चेष्टा करते हैं। हे रामजी! जो कुछ स्वाभाविक क्रिया उनको बनपड़ी है उसका वे त्याग नहीं करते। उसमें उनको ज्ञान प्राप्त हुआ है सो आचार करते हैं—और को ग्रहण नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते। हे रामजी! जिनको गृहस्थीही में ज्ञान प्राप्त हुआ है वे गृहस्थीही में विचरते हैं उनका त्याग नहीं करते—जैसे हम स्थित हैं और जिनको राज्य में ज्ञान प्राप्त हुआ है सो राज्यहीमें रहे हैं—जैसे तुम हो। जो ब्राह्मण को ज्ञान प्राप्त हुआ है वह ब्राह्मण ही के कर्मों में रहे हैं और इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जिस वर्णाश्रम में किसी को ज्ञान प्राप्त हुआ है वही कर्म करताहै। हे रामजी! कई ज्ञानवान् गृहस्थीही में रहे हैं; कई राज्यही करते हैं; कई संन्यासी होरहे हैं; कई वन में विचरते फिरते हैं; कई पर्वत कन्दरा में ध्यान स्थित होरहे हैं; कई नगरों में रहते रहे हैं; कई मथुरा,

केदारनाथ, प्रयाग जगन्नाथ इत्यादिकमें रहेहैं; कई देवताका पूजन; कई कर्म; कई तीर्थ और अग्निहोत्र करते हैं और कई हमारी नाईं जप करते हैं। कई अस्ताचल पर्वत में; कई उदयाचल पर्वत में और कई मन्दराचल, हिमाचल इत्यादिक पर्वत स्थानों में बिचरते रहेहैं। कई शास्त्र विहित कर्म करते रहेहैं; कई अवधूत होरहे हैं; कई भिक्षा मांग मांग भोजन करते रहे हैं; कई कठिन वचन बोलते रहेहैं; कई अज्ञानी हुये बिचरते रहे हैं और कई विद्याध्ययन इत्यादिक नानाप्रकार की चेष्टा करते रहे हैं क्योंकि; उनको चेष्टा स्वाभाविक प्राप्त हुईहै; वे यत्नसे कुछ नहीं करते। हे रामजी! वे शुभकर्म करें अथवा अशुभकर्म करें परन्तु कोई क्रिया उनको बन्धन नहीं करती और जो अज्ञानी हैं सो जैसे कर्म करेंगे तैसेही फल को भोगेंगे। जो पुण्यकर्म करेंगे तो स्वर्गसुख भोगेंगे और पाप से नरकदुःख भोगेंगे। जो कामना से रहित शुभकर्म करेगा उसका अन्तःकरण शुद्ध होगा और सन्तों के संग और सच्छास्त्रों से शुद्धता को प्राप्त होगा। हे रामजी! जो अर्धप्रबुद्ध हैं वे पाप करने लगजावें और आत्मअभ्यास त्यागदें तो वे दोनों मार्गों से भ्रष्ट हैं—न स्वर्ग को प्राप्त होतेहैं और न आत्मपद को प्राप्त होते हैं। तप, दान, तीर्थादिक सेवने सेभी आत्मपद नहीं प्राप्त होता; जब विचार उपजता है और आत्मपद का अभ्यास होता है तभी आत्मपद मिलता है और जब आत्मपद प्राप्त होताहै तब निश्कङ्क होजाताहै और चेष्टाव्यवहार करता भी दृष्ट आता है परन्तु उसका चित्त शान्त होजाताहै। जैसे तांबे को जब पारस का स्पर्श कीजिये तब वह सुवर्ण होजाता है; आकार उसका नष्टही रहता है परन्तु तांबेभाव का अभाव होजाता है; तैसेही जब चित्त को आत्मपद का स्पर्श होताहै तब चित्त शान्त होजाता है परन्तु चेष्टा उसी प्रकार होतीहै और जगत् की सत्यता नष्ट होजातीहै। हे रामजी! अब तुम जागे हो और निश्शङ्क हुये हो। राग द्वेष तुम्हारा नष्ट होगया है और तुम निर्विकार आत्मपद को प्राप्त हुये हो। जन्म, मृत्यु, बढ़ना, घटना, युवा और वृद्ध होना; इन सर्वविकारों से रहित आत्मपद को तुमने पायाहै और सर्वका अधिष्ठान जो परम शुद्ध चैतन्य है सो तुमको प्राप्त हुआ है। हे रामजी! जो कुछ मुझको कहना था सो कहा। यह सार का सार आत्मपद है और जो कुछ जानने योग्य था सो तुमने जाना इसके उपरान्त न कुछ कहना रहाहै और न कुछ जानना रहाहै—यहींतक कहना और जानना है। अब तुम निश्शङ्क होकर बिचरो तुमको संशय कोई नहीं रहा और क्षय और अतिशय से रहित पद तुमने पायाहै अर्थात् तुमने अविनाशी और सर्व से उत्तम पद पाया है। वाल्मीकिजी बोले; हे साधो! जब इस प्रकार मुनियों में शार्दूल वशिष्ठजी कहकर तूष्णी होरहे तब सर्वसभा जो बैठीथी सो परम निर्विकल्पपद में स्थित होगई और जैसे वायु से रहित कमल फूल पर भँवरे अचलहोते हैं, तैसेही चित्तरूपी भँवरे

आत्मपदरूपी कमल के रस को लेते हुये स्थित होरहे। सबके सब ब्रह्म को जानकर ब्रह्मरूप हुये और ब्रह्महीं में स्थित हुये। निकट जितने मृग थे वेभी तृण का खाना छोड़कर अचल होगये; दूसरे पशु; पक्षी भी सुनकर निस्स्पन्द होरहे और स्त्रियां जो बालकोंसंयुक्त चपल थीं वे सुनकर जड़वत् होगईं पूर्व जो मुक्तिमान् सिद्धों के गण मोक्ष के उपाय के श्रवण को आये थे और देवता अरु सिद्धोंने तमाल, कदम्ब, पारिजात, कल्प इत्यादिक दिव्यवृक्षों के फूलों की वर्षा की और नगाड़े, भेरी और शंख, बजने और वशिष्ठजी की स्तुति करनेलगे। निदान बड़े शब्द हुये जिनसे दशों दिशा पूर्ण होगईं और ऊपर से देवताओं और सिद्धोंके नगाड़ोंके शब्द हुये जिनसे पर्वतोंमें शब्द भाव उठे और दिव्यफूलों की ऐसी सुगन्ध फैली—मानों पवन भी रङ्गित हुआ है। तब सिद्धों ने कहा; हे वशिष्ठजी! हमने भी अनेक मोक्ष के उपाय सुने और उच्चार किये परन्तु जैसा तुमने कहा है तैसा न आगे सुना है; न गाया है और न कहा है। जो तुम्हारे मुखारविन्द से श्रवण किया है उससे हम परमसिद्धान्त को जानगये हैं। इसके श्रवण से पशु, पक्षी और मृग भी कृतार्थ हुयेहैं और मनुष्यों की तो क्या वार्ता कहिये वे तो कृतार्थही हुये हैं और निष्पाप ज्ञान को पाकर मुक्त होंगे। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! ऐसे कहकर उन्होंने फिर फूलों की वर्षा की और वशिष्ठजी को चन्दन का लेप किया। जब इस प्रकार वे पूजा करचुके तब और जो निकट बैठे थे सो परम विस्मय को प्राप्त हुये कि; ऐसा परम उपदेश वशिष्ठजी ने किया। तब राजा दशरथ उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर वशिष्ठजी को नमस्कार करके बोला; हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से हम षडैश्वर्यों से सम्पन्न हुये हैं। हे भगवन्! तुमने सम्पूर्ण शास्त्र सुनाया है जिसको सुनकर हम पूजन करने के योग्य हैं; इसलिये हे देव! हम तुम्हारा पूजन किससे करें? ऐसा कोई पदार्थ पृथ्वी आकाश और देवताओं में भी नहीं दृष्ट आता जो तुम्हारी पूजा के योग्य हो—सर्वपदार्थ कल्पित हैं; और जो सत्य पदार्थ से पूजाकरें तो सत्य तुमहीं से पाया है। इससे ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो तुम्हारी पूजाके योग्य हो तथापि अपनी २ शक्ति के अनुसार हम पूजन करते हैं तुम क्रोधवान् न होना और हँसीभी न करना। हे मुनीश्वर! मैं राजा दशरथ; मेरे अन्तःपुर की सम्पूर्ण स्त्रियां; मेरे चारों पुत्र; मेरा सम्पूर्ण राज्य और सम्पूर्ण प्रजासहित जो कुछ मैंने लोक में यश किया है और परलोक के निमित्त पुण्य किया है वह सर्व तुम्हारे चरणों के आगे निवेदन करताहूं। हे साधो! इस प्रकार कहकर राजा दशरथ वशिष्ठजी के चरणों पर गिरे। तब वशिष्ठजी बोले; हे राजन्! तुम धन्य हो, जिनकी ऐसी श्रद्धा है परन्तु हम तो ब्राह्मण हैं हमको राज्य क्या करना है और हम राज्यका व्यवहार क्या जानें! कभी ब्राह्मण ने राज्य किया है; राजा तो क्षत्रियही होते हैं; इस

लिये तुमहीं से राज्य होगा। यह जो तुम्हारा शरीर है उसे मैं अपनाही जानता हूं और ये तेरे चतुष्टय पुत्र मैं आगे से अपने जानताहूं। हम तो तुम्हारे प्रणामसेही संतुष्ट हैं; यह राज्य का प्रसाद हमने तुमको ही दिया। फिर बाल्मीकिजी बोले कि; जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब राजा दशरथ ने फिर कहा कि; हे स्वामिन्! तुम्हारेलायक कोई पदार्थ नहीं। तुम ब्रह्माण्ड के ईश्वर हो बल्कि तुमसे ऐसे वचन कहते भी हमको लज्जा आती है परन्तु योग के निमित्त तुम्हारे आगे विनती की है कि; मोक्ष उपाय शास्त्र श्रवण किया है इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हारा पूजन करें। तब वशिष्ठजीने कहा; बैठो और राजा बैठगया। फिर रामजीने निरभिमान होकर कहा; हे संशयरूपी तिमिरके नाशकर्ता सूर्य! तुम्हारा पूजन हम किससे करें? कोई पदार्थ गृह में अपना नहीं। हे गुरोजी! मेरे पास और कुछ नहीं है केवल एक नमस्कारहीहै। ऐसे कहकर वे चरणोंपर गिरे और नेत्रोंसे जल चलनेलगा। वे बार बार उठें और आत्मानन्द प्राप्ति के उत्साह से फिर गिरपड़ें। निदान जब वशिष्ठजीने कहा बैठजाओ तब रामजी भी बैठगये। फिर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, राजर्षि और ब्रह्मर्षि आदि सब अर्घ्य पाद्यसे पूजनेलगे और फूलोंकी वर्षा की जिससे वशिष्ठजीका शरीर भी ढकगया और जब वशिष्ठजीने भुजा से फूल दूर किये तब मुख दृष्ट आनेलगा। जैसे बादलों के दूर हुये चन्द्रमा दृष्टि आता है; तैसेही मुख दीखनेलगा। फिर वशिष्ठजी ने व्यास, वामदेव, विश्वामित्र, नारद, भृगु, अत्रि इत्यादिक जो बैठे थे उनसे कहा; हे साधो! जो कुछ मैंने सिद्धान्त के वचन कहे हैं इनसे न्यून वा अधिक जो कुछ हो सो अब तुम कहो। जैसे जैसा स्वर्ण होताहै तैसाही अग्नि में दिखाई देता है; तैसेही तुम कहो। तब सबने कहा; हे मुनीश्वर! ये तुमने परमसार वचन कहे हैं; जो तुम्हारे वचन को न्यून वा अधिक जानकर उनकी निन्दा करेगा वह महापतित होगा। ये वचन परमपद पानेके कारण हैं। हे मुनीश्वर! हमारे हृदय में भी जो कुछ जन्म जन्मान्तर का मैल था वह नष्ट होगया। हम तो पूर्ण ज्ञानवान् थे परन्तु पूर्वजन्म जो धरे हैं उनकी स्मृति हमारे चित्त में थी कि; अमुक जन्म हमने इस प्रकार पाया था और अमुक जन्म इस प्रकार पायाथा सो सर्वस्मृति अब नष्ट हुईहै और जैसे अग्नि में डाला सुवर्ण शुद्ध होताहै तैसेही तुम्हारे वचनों से हमारा स्मृतिरूप मल नष्ट हुआ है। अब हम जानतेहैं कि, न कोई जन्म था और न हमने कोई जन्म पाया है—हम अपनेही आपमें स्थित हैं। हे मुनीश्वर! तुम सम्पूर्ण विश्व के गुरु और ज्ञान अवतार हो इसलिये तुमको हमारा नमस्कार है। राजा दशरथ भी धन्य हैं जिनके संयोग से हमने मोक्ष उपाय सुनाहै और ये रामजी विष्णु भगवन् हैं। इतना कह फिर बाल्मीकिजी बोले कि; इसी प्रकार ऋषीश्वर और मुनीश्वर वशिष्ठजी को परमगुरु

जानकर स्तुति करनेलगे, रामजी को विष्णु भगवान् जानकर उनकी भी स्तुति की और राजा दशरथ की भी स्तुति की कि, जिनके गृह में विष्णु भगवान् ने अवतार लिया फिर वशिष्ठजीको अर्घ्य पाद्यसे पूजने लगे। आकाशके सिद्ध बोले; हे वशिष्ठजी! तुम को हमारा नमस्कार है तुम गुरुके भी गुरु हो। हे प्रभो! जो कुछ तुमने उपदेश किया है और जो कुछ उस में युक्ति कही है ऐसे वचन बागीश्वरी भी कहे अथवा न कहे। तुमको बारम्बार नमस्कार है और राजा दशरथ चतुर्द्वीप पृथ्वी के राजा को भी नमस्कारहै जिसके प्रसंगसे हमने ज्ञान और युक्ति सुनी। ये रामजी! विष्णु भगवान् नारायण हैं और चारों आत्मा हैं इनको हमारा प्रणाम है। ये चारों भाई ईश्वर हैं जिनपर विष्णु भगवान् दया करते हैं और जीवन्मुक्त अवस्था को धारकर बैठे हैं। वशिष्ठजी परमगुरु हैं और विश्वामित्र तप की मूर्ति हैं। बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब सिद्ध कहचुके तब वे फूलों की वर्षा करने लगे। जैसे हिमालय पर्वत पर बरफ़ की वर्षा होती है और वह बरफ़ से पूर्ण होजाता है; तैसेही वशिष्ठजी पुष्पों से पूर्ण हुये। आकाशचारी जो ब्रह्मलोक के वासी थे उन्होंने भी उनपर पुष्पोंकी वर्षा की और जो सभा में ब्रह्मर्षि आदि बैठेथे उनका भी यथायोग्य पूजन किया। इस प्रकार जब सिद्ध पूजन करचुके तब कई ध्याननिष्ठ होरहे; सबके चित्त शरत्काल के आकाश-वत् निर्मल होगये और अपने स्वभाव में स्थित हुये। जैसे स्वप्ने की सृष्टिका कौतुक देखकर कोई जाग उठे और हँसे; तैसेही वे हँसनेलगे। तब वशिष्ठजी ने रामजी से कहा; हे रघुवंशी कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा! तुम अब किस दशा में स्थित हो और क्या जानते हो? रामजी बोले; हे भगवन्! सर्व धर्मज्ञान के समुद्र! तुम्हारी कृपा से मैं अब अपने आप में स्थित हूं और कोई कल्पना मुझे नहीं रही। अब मैं परमशान्तिमान् हुआ हूं और मुझ को शेष विशेष कोई नहीं भासता केवल अपना आपही पूर्ण भासताहै—अब मुझको कोई संशय नहीं रहा और इच्छा भी कुछ नहीं रही। मैंने अब परमनिर्विकल्प पद पाया है और कोई कल्पना मुझको नहीं फुरती। जैसे नील, पीतादिक उपाधि से रहित स्फटिक प्रकाशती है; तैसेही मैं निरुपाधि स्थित हूं और संकल्प—विकल्प उपाधि का अभाव होगया है। अब मैं परम शुद्धता को प्राप्त हुआ हूं; मेरा चित्त शान्त होगया है और मेरी चेष्टा पूर्ववत् होगी पर निश्चय में कुछ न फुरेगा। जैसे शिला में प्राण नहीं फुरते; तैसेही मुझको द्वैत कल्पना कुछ नहीं फुरती। हे मुनीश्वर! अब मुझको सब आकाशरूप भासता है। मैं शान्तरूप होकर परम निर्वाण हूं और भिन्नभाव जगत् मुझको कुछ नहीं भासता—सर्व अपना आपही भासता है। अब जो कुछ तुम कहो वही करूं। अब मुझको शोक कोई नहीं रहा और राज्य करना, भोजन, छादन, बैठना, चलना, पान

करना जैसे तुम कहो तैसेही करूं । तुम्हारे प्रसाद से मुझको सर्व समान हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्रामप्रकटीकरणंनाम द्विशताधिकैकोनाशीतितमस्सर्गः ॥ २७९ ॥

वाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज ! जब ऐसे रामजी ने कहा तब वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! बड़ा कल्याण हुआ कि; तुम अपने आपमें स्थित हुये हो । अब तुमने यथार्थ जाना है पर अब जो कुछ सुननेकी इच्छा हो सो कहो । रामजी बोले; हे संशयरूपी अन्धकार के नाशकर्ता सूर्य और संशयरूपी वृक्षोंके नाशकर्ता कुठार ! अब तुम्हारे प्रसाद से मैं परम विश्रान्ति को प्राप्त हुआ हूं और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिकी कलना से रहित हूं । जाग्रत् जगत् भी मुझको सुषुप्तिवत् भासता है और श्रवण करने की इच्छा नहीं रही । अब परमध्यान मुझको प्राप्त हुआ है अर्थात् आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं भासती । मैं आत्मा, अज, अविनाशी, शान्तरूप और अनन्त, सदा अपने आप में स्थित हूं । ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है । अब प्रलयकाल का पवन चले और समुद्र उछलें और नाना क्षोमहों तोभी मेरा चित्त स्वरूपसे चलायमान न होगा और जो त्रिलोकी का राज्य मुझको प्राप्त हो तोभी मेरे चित्त में हर्ष न उपजेगा । मैं सत्तासमान में स्थित हूं । बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज ! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब मध्याह्न का सूर्य शिर पर उदय हुआ और राजा जो रत्न और मणियों के भूषण पहिन कर बैठे थे उन मणियोंकी कान्ति किरणों से अति विशेष हुई और सूर्य के साथ हो एक होगई—मानों ऐसे वचन सुनकर नृत्य करती है । तब वशिष्ठजी ने कहा; हे रामजी ! अब हम जाते हैं क्योंकि, मध्याह्न की उपासना का समय है; जो कुछ तुम्हें पूछना हो सो कल फिर पूछना । तब राजा दशरथ पुत्रों सहित उठ खड़े हुये और वशिष्ठजी का बहुत पूजन किया । जो ऋषीश्वर, मुनीश्वर और ब्राह्मण थे उनका भी यथायोग्य पूजन किया और मोती और हीरों की माला; मोहरें, रुपये, घोड़े, गऊ, वस्त्र, भूषण आदि जो ऐश्वर्य की सामग्री है उस से यथायोग्य पूजन किया । जो विरक्त संन्यासी थे उनको प्रणाम करके प्रसन्न किया और जो राजर्षि थे उनका भी पूजन किया । तब वशिष्ठजी उठखड़े हुये और परस्पर सबने नमस्कार किया और मध्याह्न के नौबत नगाड़े बजने लगे । सब श्रोता उठकर विचरने लगे । कोई चलेजाते थे और कोई शीश हिलाते कोई हाथ की अंगुली हिलाते, नेत्रन की भवें हिलाते परस्पर चर्चा करते जाते थे । इस प्रकार सब अपने स्थानों को गये । वशिष्ठजी सन्ध्या उपासना करने लगे और सर्व श्रोता विचारपूर्वक रात्रि को व्यतीतकर सूर्य की किरणों के निकलतेही आ पहुँचे । गगनचारी; सप्तलोक के रहनेवाले; ऋषि और देवता; भूमिवासी राजर्षि, ब्रह्मर्षि और जो श्रोता थे सो

सब आकर अपने २ स्थान पर बैठगये और सब ने परस्पर नमस्कार किया। तब रामजी हाथ जोड़कर उठ खड़े हुये और बोले, हे भगवन्! अब जो कुछ मुझको सुनना और जानना रहा है सो तुमही कृपा करके कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ सुनने योग्य था सो तुमने सुना है। अब तुम कृत कृत्य हुये हो और सर्व-रघुवंशियों का कुल तुमने ताराहै और जो आगे होंगे सो सब तुमने कृत कृत्य किये हैं। अब तुम परमपद को प्राप्त हुये हो और जो कुछ तुमको पूछने की इच्छा है सो पूछ लो। हे रामजी! जो सत्तासमान में स्थित हुये हो तो विश्वामित्र के साथ जाकर इन का कार्य करो और जो कुछ पूछनेकी इच्छा हो सो पूछलो। रामजीने पूछा; हे भगवन्! आगे मैं अपने आप को इस देहसंयुक्त प्रच्छन्नरूप देखता था और अब अपने आप से भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता–सब अपना आपही भासताहै। हे मुनीश्वर! अब इस शरीर से मुझको कुछ प्रयोजन नहीं रहा। जैसे फूल से सुगन्ध लेकर पवन चला जाता है और फूलसे उसका प्रयोजन नहीं रहता; तैसेही इस देह में जो कुछ सार था सो मैं पाकर अपने आपमें स्थित हूं और शरीर के साथ मुझको प्रयोजन नहीं रहा। अब राज्य भोगने से कुछ सुख दुःख नहीं और इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्ट में मुझ को कुछ हर्ष शोक नहीं। मैं अब सबसे उत्तमपद को प्राप्त हुआहूं और सब कलनासे रहित अविनाशी, अव्यक्तरूप सर्वसे निरन्तर सदा अपने आपमें स्थित और निरा-कार और निर्विकार हूं। जो कुछ पाने योग्यथा सो मैंने पायाहै और जो कुछ सुनने योग्य था सो सुना है और जो कुछ तुम को कहना था सो कहाहै अब तुम्हारी वाणी सफल हुई है। जैसे कोई रोगी को औषध देता है तो उस औषध से उसका रोग जाता है और उसका कल्याण होता है; तैसेही तुम्हारी वाणी से मेरा संशयरूप रोग गयाहै और अपने आपसे तृप्त हुआहूं। अब मैं निःशङ्क होकर अपने आपमें स्थितहूं॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनंनामद्विशताधिकाशीतितमस्सर्गः॥ २८०॥

वशिष्ठजी बोले; हे महाबाहो, रामजी! तुम मेरे परमवचन सुनो दृढ़ अभ्यास के निमित्त मैं फिर कहताहूं। जैसे आदर्श को ज्यों ज्यों मार्जन करतेहैं त्यों त्यों उज्ज्वल होता है; तैसेही बारम्बार सुननेसे अभ्यास दृढ़ होता है। जितना कुछ जगत् भासता है सो सब चिदानन्द स्वरूप है। भासती भी वही वस्तु है जो आगे भानरूप होती है। वह भानरूप चेतन है इससे जो पदार्थ भासते हैं सो सब चेतनरूपहैं और जो भिन्न २ पदार्थ द्वैत की कल्पना से भासते हैं सोभी वास्तवमें भानरूप चेतन हैं। जैसे जो कुछ उच्चार करते हैं सो सब शब्द है पर शब्दरूप एक है और अर्थ से भिन्न २ भासते हैं। जब अर्थ की कल्पना त्यागदीजे तब यही शब्दहै और जो अर्थ कीजिये कि, यह जल है, यह पृथ्वी है; यह अग्निहै इनसे आदिलेकर अनेक शब्द और अर्थ होते हैं और

अर्थसे रहित शब्द एकही है; तैसेही यह सब चेतनहै पर चित्त की कल्पना से भिन्न २ पदार्थ भासते हैं और कुछ वस्तु नहीं और जो भासता है सो उसीका आभास है। हे रामजी! आभास भी अधिष्ठानसत्ता भासती है परन्तु ज्ञानमें भेद होताहै पर ज्ञान में भी भेद नहीं वृत्ति में भेद है जिसमें अर्थ भासते हैं। ज्ञानरूप अनुभव सत्ता है; इसमें जैसे अर्थ की वृत्ति आभास होतीहै उसीको जानताहै। जैसे एकही रस्सी पड़ी होती है और उसमें सर्पका अर्थ वृत्ति न ग्रहण करे तो सर्प तो कुछ नहीं वह रस्सीही है; तैसेही अर्थभेद ग्रहण कीजिये तो भेद है नहीं तो ज्ञानही है और सर्वपदार्थ जो भासते हैं वे सब ज्ञानरूपी हैं और कुछ बना नहीं। हे रामजी! स्वप्ने के दृष्टान्त मैंने तुमको जतानेके निमित्त कहेहैं, वास्तव में स्वप्ना भी कोई नहीं; अद्वैतसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। जैसे समुद्र सदा जलरूप है पर द्रवता से तरङ्ग बुद्बुदे भासते हैं सो नानारूप नहीं और नाना हो भासता है; तैसेही सर्वजगत् अनानारूप है और नाना हो भासता है। तुम अपने स्वप्ने की स्मृति को विचारकर देखो कि; तुम्हारा अनुभव ही नाना प्रकार हो भासताहै परन्तु कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी तुम्हारा अपना आप है और दूसरा कुछ नहीं। सदा निराकार, निर्विकार और आकाशरूप आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो अद्वैतसत्ता निराकार, निर्विकार और सदा अपने आपमें स्थित है तो पृथ्वी कहांसे उपजी है; जल कैसे उपजा है और अग्नि, वायु, आकाश, पुण्य, पाप इत्यादिक कल्पना चिदाकाशमें कैसे उपजे हैं मेरे दृढ़बोधके निमित्त कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह तुम कहो कि; स्वप्ने में पृथ्वी कहां से उपज आती है और जल, वायु, अग्नि, आकाश, पाप, पुण्य, देश, काल, पदार्थ कहांसे उपजते हैं? रामजी बोले; हे मुनीश्वर! स्वप्ने में जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, देश, काल, पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मरूप होते हैं और आत्मसत्ताही ज्यों की त्यों होती है सो तत्त्ववेत्ताओं को ज्यों की त्यों भासती है और जो असम्यक्दर्शी हैं उनको भिन्न २ पदार्थ भासते हैं। भासना दोनों का तुल्य होता है परन्तु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ को ग्रहण करती है उसको ज्यों की त्यों आत्मसत्ता भासती है और जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ ग्रहण नहीं करती उसको वही वस्तु और रूप हो भासती है। हे मुनीश्वर! और जगत् कुछ बना नहीं वही आत्मसत्ता स्थितहै। जब कठोररूप की संवेदन फुरती है तब पृथ्वी और पहाड़ रूप हो भासती है; जब द्रवताका स्पन्द फुरताहै तब जलरूप हो भासतीहै और उष्णरूप की संवेदन फुरतीहै तब अग्नि भासतीहै; इसी प्रकार वायु, आकाशादिक पदार्थों से जैसे फुरना होताहै तैसेही हो भासता है। जैसे जल तरङ्गरूप हो भासता है परन्तु जलसे भिन्न कुछ नहीं, जलहीरूप है; तैसेही आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासतीहै और

वही रूप है जगत् कुछ वस्तु नहीं। यह गुण और क्रिया सब आकाश में है वास्तव में कुछ नहीं क्योंकि; कारणरहित असत्यरूप है। यह अहं त्वं से आदिक लेकर सब जगत् आकाशरूप है कुछ बना नहीं, आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और कोई आधार नहीं है। अद्वैतसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और नानारूप हो भासती है। जब चित्त संवेदन फुरती है तब पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, पदार्थ, देश, काल हो भासता है। कहीं सर्व आत्मा का ज्ञान फुरता है और कहीं परिच्छिन्नता भासती है परन्तु वास्तव में कुछ बना नहीं वही वस्तु है; जैसा उसमें फुरना फुरता है तैसाही हो भासता है। अनुभवसत्ता परम आकाशरूप है जिस में आकाश भी आकाशरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिदाकाशजगदेकताप्रतिपादनं नामद्विशताधिकैकाशीतितमस्सर्गः॥ २८१॥

रामजी बोले; हे भगवन्! अब यह प्रश्नहै कि, जो जाग्रत् और स्वप्नमें कुछ भेद नहीं और परम आकाशरूप हैं तो उस सत्ता को जाग्रत् और स्वप्न के शरीरसे कैसे संयोग है; वह तो निरवयव और निराकार है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह सर्व आकार जो तुमको भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं और आकाश में आकाश ही स्थितहै सर्गके आदिमें आकारका अभाव था सोही अबभी जानो कि; उपजा कोई नहीं परम आकाशसत्ता अपने आपमें स्थित है। जब वह अद्वैतसत्ता चिन्मात्रमें चित्त किञ्चन होता है तब वही सत्ता आकार की नाईं भासती है परन्तु कुछ हुआ नहीं, आकाशही रूप है। जैसे स्वप्न में शरीरों का अनुभव करता है पर वे कुछ आकार तो नहीं होते केवल आकाशरूप होते हैं; तैसेही यह जगत् भी निराकार है परन्तु फुरनेसे आकार हो भासता। जिन तत्त्वों से शरीर होताहै सो तत्त्व ही उपजे नहीं तो शरीर की उत्पत्ति कैसे कहूं? हे रामजी! और जगत् कुछ उपजा नहीं ब्रह्मही किञ्चन से जगत्रूप हो भासता है। जैसे जल और द्रवतामें भेद नहीं और जैसे आकाश और शून्यता में भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। संवेदन से अर्थ संकेत है और जब संवेदना न फुरे तब अर्थसंकेत न हो। भिन्न २ वस्तु से एकही सत्ता के नाम हैं। भिन्न २ नाम तब भासते हैं जब वेदना फुरती है, नहीं तो शब्द जलरव के तुल्य है–वस्तु से भेद नहीं। जैसे वायु और स्पन्दमें भेद नहीं; स्पन्दरूप हो भासती है और निस्स्पन्द नहीं भासती परन्तु दोनोंरूप वायुके ही हैं; तैसेही स्पन्द से ब्रह्म में किञ्चन जगत् भासता है और जब संवेदन नहीं फुरती तब जगत् नहीं भासता परन्तु दोनों रूप ब्रह्म के ही हैं। ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं। जैसे एक निद्रा के दो रूप होते हैं–एक स्वप्न और दूसरी सुषुप्ति–परन्तु दोनों एक, निद्राके ही पर्याय हैं, तैसेही जगत्का होना और न भासना एक ब्रह्म की दोनों संज्ञा हैं, चाहे ब्रह्म कहो

और चाहे जगत् कहो, ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं; ब्रह्मही जगत्रूप हो भासता है। जैसे निर्मल अनुभव से स्वप्ने में शिला भासि आती है पर वह शिला तो स्वप्ने में कुछ उपजी नहीं, अपना अनुभवही शिलारूप हो भासताहै; तैसेही ये सर्व आकार जो भासते हैं सो आकाशरूप हैं और आत्मसत्ता ही आकाशरूप जगत् हो भासती है। जगत् कुछ उपजा नहीं और न सत्य है, न असत्य है, न आताहै, न जाता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आगे तुमने मुझसे अनेक सृष्टि कही हैं कि, कई जल में; कई अग्नि में; कई पृथ्वीमें; कई वायु में; कई पहाड़ और पत्थरों में और कई आकाश में पक्षीवत् इत्यादिक नानाप्रकार की सृष्टि तुमने कही हैं तो अब यह प्रश्न है कि, हमारी सृष्टि किससे उत्पन्नहुई है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तुम तो वही प्रश्न करते हो जो अपूर्व होताहै और जो आगे देखा और सुना न हो और जगत्से जानाभी न हो। इस जगत् की उत्पत्ति वेद पुराण तो योंही कहते हैं और लोकमें भी प्रसिद्धहै कि, ब्रह्मासे हुईहै पर वास्तवमें चिदाकाशरूप है कुछ उपजी नहीं। ये दोनों प्रकार मैंने तुमसे कहे हैं पर उनको तुम जानकर भी प्रश्न करते हो इसलिये तुम्हारा प्रश्न ही नहीं बनता। रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! यह सृष्टि कितनी है; कहांतक चली जाती है और कितने काल पर्यन्त रहेगी? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितनी सृष्टि तुम जानते हो वह है नहीं–ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थितहै–और सृष्टि बहुत हैं परन्तु वास्तवमें कुछ हुई नहीं और आदि, अन्त और मध्यसे रहित हैं। वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और यह जितनी सृष्टिहैं सो आभासमात्र हैं। ब्रह्म जो आदि, अन्त और मध्यसे रहितहै उसका आभास भी तैसाही है। जैसे जितना वृक्ष होताहै उतनीही छाया होतीहै; तैसेही ब्रह्म का आभास सृष्टिहै और वास्तवमें पूछो तो आभास भी कोई नहीं ब्रह्मही अपने आपमें स्थितहै और वही जगत्रूप आपको देखताहै–ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्नेके पुरमें पर्वत, नदी, आयुध आदि नानाप्रकारके व्यवहारके रूप धारकर आत्मसत्ताही स्थित होती है और कुछ नहीं बना और जैसे संकल्पनगर भासता है; तैसेही इस जगत्को भी जानो क्योंकि, और कुछ बना नहीं आत्मसत्ताही जगत्रूप हो भासती है। जगत् यदि किसी कारण से उपजा होता तो सत् होता पर इसका कारण कोई नहीं पाया जाता इसलिये असत् है, इसका न कोई निमित्तकारण पायाजाता है और न समवायकारण पायाजाता है। हे रामजी! जो किसी कारण से न उपजा हो और भासे उसको स्वप्नपुरवत् आकाशमात्र जानो। जिसमें आभास भासतीहै सो अधिष्ठानसत्ता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है सो सर्प कुछ नहीं रस्सीही सर्परूप होकर भासती है; तैसेही जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता सत्यहै और शुद्ध, निर्दुःख, अच्युत, विज्ञान

सदा अपने आप में स्थितहै। वही सत्ता जगत्रूप हो भासतीहै। जैसे जलही तरङ्ग रूप हो भासता है तैसेही ब्रह्मही जगत्रूप हो भासता है। हे रामजी! यह जगत् ब्रह्म का हृदयहै अर्थात् उसीका स्वभावहै ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। ज्ञानी को सर्वदा ऐसेही भासता है। जैसे स्वप्ने से जागकर सब अपना आपही भासताहै; तैसेही यह जगत् अपना आप है॥

इति श्रीयो०नि०जगदभाववर्णनंनामद्विशताधिकद्व्यशीतितमस्सर्गः॥ २८२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस जगत् का कारण कोई नहीं। जो जगत् ही नहीं तो कारण कैसे हो और कारण नहीं तो जगत् कैसे हो? इससे सर्व ब्रह्मही है। इसी पर एक उपाख्यान है सो सुनो। हे रामजी! कुशद्वीपके पूर्व और पश्चिमदिशाके मध्य में सुवर्ण की ऐलवती नगरी महा उज्ज्वलरूप है और उसमें बड़े २ ऊंचे थम्भ बने हैं मानो पृथ्वी और आकाश को उन्होंनेही पूर्ण किया है। उस नगरी का एक प्रगपतीराजाहै। एक काल में मैं आकाशसे शीघ्र वेग से उसके गृहमें आया और उस ने भली प्रकार अर्घ्य पाद्य से प्रीतिपूर्वक मेरा पूजन किया और सिंहासन पर बैठा कर मुझसे एक महाप्रश्न किया कि, जिस प्रश्न से उपरान्त कोई प्रश्न नहीं। राजा बोले; हे भगवन्! तुम संशयरूपी तम के नाशकर्ता सूर्य हो। मुझको एक संशय है सो दूर करो। हे मुनीश्वर! प्रथम तो यह प्रश्न है कि, जब महाप्रलय होता है तब कार्य, कारण और सर्वशब्द की कल्पना का अभाव होजाता है। उसके पीछे महा-आकाशसत्ता शेष रहती है जिसमें वाणी की भी गम नहीं अवाच्यपद है तो उससे फिर सृष्टि कैसे उत्पन्न होतीहै? वहां उपादान कारण और निमित्तकारण तो कोई न रहता तो सृष्टि कैसे होतीहै? श्रुति और पुराणमें सुनताहूं कि, महाप्रलयसे फिर सृष्टि उत्पन्न होतीहै। दूसरा यह प्रश्नहै कि, जम्बूद्वीपमें कोई मृतक हुआ अथवा किसी और ठौर गयाहुआ मृतक हुआ तो उसका वह शरीर तो वहांही भस्म होजाता है और परलोक में पुण्य पाप का फल दुःख सुख भोगता है तो जिस शरीर से भोगता है उस शरीर का कारण तो कोई नहीं? जो तुम कहो कि, पुण्य और पापही उस शरीर का कारणहै तो पुण्य पाप तो आपही निराकार हैं उनसे साररूप शरीर कैसे उपजे? और जो तुम कहो परलोक कोई नहीं और पुण्य पाप भी कोई नहीं तो श्रुति और पुराणके वचनों से विरोध होताहै क्योंकि, सबही वर्णन करतेहैं कि, मरकर परलोक जाताहै और जैसे कर्म कियेहैं तैसे भोगताहै? जिस शरीरसे भोगताहै उसका कारण तो कोई नहीं और न कोई पिता है; न माता है? वह शरीर कैसे उत्पन्न हुआ? तीसरा प्रश्न यह है कि, जब यह परलोक में जाता है तो उसके निमित्त दान पुण्य करते हैं उनका फल उसको कैसे प्राप्त होता है? चतुर्थ प्रश्न यह है कि, महाप्रलय

में जो ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है उसका नाम स्वयंभू कैसे हुआ? जो महाप्रलय में न उपजा हो और अपने आपही से उपजे वह स्वयंभू कहाता है पर महाप्रलय में तो शेष अद्वैत रहा था उससे जो उत्पन्न हुआ उसे स्वयंभू कैसे कहिये ? जो कहो स्वयंभू अपने आपसे उपजताहै तो अपना आप आत्माहै जो सबका अपना आप है; अब क्यों नहीं उससे ब्रह्मा उत्पन्न होता है? पांचवां प्रश्न यह है कि, एक पुरुष था जिसका एक मित्र था और एक शत्रु था और उन दोनों ने प्रयागक्षेत्र में जाकर करवट लिया। जो इसका मित्र था उसने वाञ्छा की कि, मेरा मित्र चिरकाल जीता रहे और चिरंजीवी हो और दूसरे ने यह संकल्प धारा कि, मेरा शत्रु इसी काल में मर जावे। हे मुनीश्वर! एकही काल में दो अवस्था कैसे होवेंगी? छठा प्रश्न यह है कि; सहस्रों मनुष्य ध्यान लगाये बैठे हैं कि; हम इसी आकाश के चन्द्रमा हों सो एकही आकाश में सहस्रों चन्द्रमा कैसे होंगे? सप्तम प्रश्न यह है कि; सहस्रों पुरुष यही ध्यान लगाये बैठे हैं कि, एक सुन्दर स्त्री जो बैठी थी वह हमको मिले पर वह स्त्री पतिव्रताहै उसके सहस्रभर्ता एककाल में कैसे होंगे? अष्टम प्रश्न यह है कि, एक पुरुष था उसको किसी ने वर दिया कि, तुम जाकर मृतक हो और सप्तद्वीप का राज्य करो और किसी ने शाप दिया कि, तेरा जीव अपनेही गृह में रहेगा और मृतक हो बाहर न जावेगा तो ये दोनों एकही कालमें कैसे होंगे? नवम प्रश्न यह है कि, एक काष्ठ का थम्भा था उसको एक ने कहा कि, यह सुवर्ण का होजावेगा और वह सुवर्ण का होगया; तो सुवर्ण कैसे उत्पन्न हुआ? उसका कारण कोई न था—कारण विना कार्य कैसे उत्पन्न हुआ? जैसा अन्नका बीज बोते हैं तैसाही अन्न उत्पन्न होता है और नहीं उगता तो काष्ठ से स्वर्ण कैसे उत्पन्न हुआ? जो कहो संकल्पसे उपजा तो हम भी संकल्प करते हैं कि, अमुक कार्य ऐसे हो पर वह क्यों नहीं होता? इस लिये जानाजाता है कि, संकल्प से भी उत्पन्न नहीं होता। हे मुनीश्वर! जिस प्रकार यह वृत्तान्त है सो कहो। एक कहते हैं कि, आगे असत् ही था तो असत् से जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई? यह मुझ को संशय है उसको दूर करो। जो कोई सन्त के निकट आता है सो निष्फल नहीं जाता इसलिये कृपा करके कहो॥

इति श्रीयो०निर्वाणप्रकरणेप्रश्नवर्णनंनामद्विशताधिकत्र्यशीतितमस्सर्गः॥ २८३॥

वशिष्ठजी बोले कि; हे रामजी! जब इस प्रकार उसने मुझसे अपने संशयों का समूह कहा तब मैंने उससे कहा; हे राजन्! ये सर्वसंशय जो तुझको हैं सो मैं सब दूर करूंगा। जैसे सम्पूर्ण अन्धकारको सूर्य नाश करताहै। हे राजन्! यह सर्वजगत् जो तुझको भासताहै सो ब्रह्मरूप है और सदा अपने आपमें स्थितहै। जब उसमें चित्त फुरता है तब वही चित्त संवेदन जगत्‌रूप हो भासता है, इससे जो कुछ आकार

भासतेहैं सो सब चिन्मात्ररूपहैं; न कोई कार्य है और न कारण है; और जो तुम प्रत्यक्ष प्रमाणसे संशय करो कि; सब चिन्मात्ररूप है तो जब यह शरीर मृतक होजाताहै तब चेतता क्यों नहीं; चाहिये कि, उस कालमें भी उसमें ज्ञान हो। हे राजन्! जब जाग्रत् का अन्त होता है पर स्वप्न नहीं आया तब शुद्ध चिन्मात्र रहताहै। फिर जब उसमें स्वप्ने की सृष्टि भासि आती है तो उस सृष्टि में कई चेतन भासते हैं; कई मृतक भासते हैं; कई जड़ भासते हैं और स्थावर–जङ्गम नाना प्रकार की सृष्टि भासती हैं परन्तु और तो कुछ नहीं वही चिन्मात्र स्वरूपहै जो अनुभवरूप हो भासती है। कहीं चेतन बोलते और चलते भासते हैं परन्तु वही है ? जो चेतनता न होती तो कैसे भासते ? जिससे भासते हैं तिससे सब चेतन हैं। तैसेही इस जगत् में भी कहीं बोलते चलते भासते हैं और कहीं शव भासते हैं परन्तु वही चिन्मात्रसत्ता है; जैसा २ संकल्प उसमें फुरता है तैसा २ हो भासता है। हे राजन्! जैसे प्रथम प्रलयसे सृष्टि उत्पन्न हुई थी तैसेही उत्पन्न होती है। यह सृष्टि किसी का कार्य नहीं और किसीका कारण भी नहीं–विना कारण उपजी भासती है। हे राजन्! जो महाप्रलय में शेष रहता है सो चिन्मात्र है। उस चिन्मात्रसत्ता से जो प्रथम शुद्ध संवेदन फुरी है सो ब्रह्मा विराट्रूप होकर स्थित हुई और उसीने जगत् कल्पना की है। उसमें उसने नेति रची है कि, यह पदार्थ इस प्रकार हो तैसेही चित्त संवेदनमें दृढ़ होकर भासित हुआ है उसका नाम जगत् है। वही आत्मसत्ता किंचनरूप होकर जगत्रूप भासती है। हे राजन्! जैसे तेरे संकल्प और स्वप्नेके सृष्टि की आदि शुद्ध आत्मसत्ता थी और वही फुरने से पदार्थरूप हो भासती है; तैसेही इसे भी जानो; वास्तवमें न कोई कार्य है और न कोई कारण है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अकारण होती है; तैसेही यह जगत् भी अकारण है और आदि अन्तके विचारसे रहित है। जो वर्तमान प्रत्यक्षप्रमाण को मानते हैं उनको कार्य और कारण प्रत्यक्ष भासते हैं और उनके वचन भी निरर्थक हैं। जैसे अन्धेकूप के दर्दुर शब्द करते हैं; तैसेही वे भी निरर्थक प्रत्यक्षप्रमाण से कार्यकारण के वाद करतेहैं। उनको हमारे वचन सुनने का अधिकार नहीं और हमको भी उनके वचन सुनने योग्य नहीं। हे राजन्! जिस शास्त्र के सुनने और जिस गुरु के मिलने से सम्पूर्ण संशय निवृत्त न हों उस शास्त्र और गुरु का कहना भी अन्धकूप के दर्दुरवत् व्यर्थ है। जो परमार्थसत्ता से विमुख हुये हैं उनको यह भ्रम अपने में भासता है और शरीर के मृतक हुये आपको मरता जानताहै और फिर वासना के अनुसार शरीर उपजता और जीता है तब मानतेहैं कि; अब हम उपजे हैं। फिर अपने पुण्य पाप कर्म का अनुभव करतेहैं। जैसे स्वप्ने में कोई अपने साथ शरीर देखता है तैसेही परलोक में जीव को अपने साथ शरीर भासि आता है और तैसेही

यह शरीर भी भासि आयाहै। न कोई इसका कारण है; न पञ्चभौतिक है; न इसका शरीर है और न किसी कारण से भूत उपजेहैं, अपनीही कल्पना आकाररूप होकर भासती है; और आकार कोई नहीं केवल ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है और जैसा संकल्प उसमें दृढ़ होताहै तैसा पदार्थ भासि आता है। हे राजन्! जो तू इस जगत् को सत्य मानता है तो सब कुछ सिद्ध होता है, शरीर भी है; परलोक भी है और नरक स्वर्ग भी है। जैसा यह लोकहै तैसाही परलोकहै; जो यह लोक निश्चय में सत्य है तो वह लोक भी सत्य हो भासेगा। और जैसा कर्म करेगा तैसा फल भोगेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रश्नोत्तरवर्णनंनाम
द्विशताधिकचतुरशीतितमस्सर्गः॥ २८४॥

वशिष्ठजी बोले कि; हे राजन्! यह सर्वजगत् जो तुझको भासता है सो सब संकल्पमात्रहै। जैसे कोई बालक अपने मनमें वृक्ष और उसमें फूल, फल और टास कल्पे सो संकल्पमात्र है; तैसेही यह जगत् भी संवेदनरूपी ब्रह्मा ने कल्पा है और उसके मन में फुरता है सो संकल्परूप है। जैसे उसने संकल्प किया है तैसेही स्थित है और जैसे उसमें क्रम रचा है कि, इस प्रकार यह पदार्थ होगा सो तैसेही स्थित हुआ है और देश, काल, पदार्थ भी तैसेही स्थित हैं। इसका नाम नेति है। हे राजन्! तूने प्रश्न किया था कि, जो पुरुष अरूप है और दूरहै यदि उसके अर्थ किसीने दिया तो उसको कैसे पहुँचता है और स्वरूप और स्वरूप का कैसे संयोग है? जो कोई शुद्ध संवेदन पुरुष है उसको सब पदार्थ निकट भासते हैं और जो कोई पुरुष मनोराज कल्पता है और उसमें बड़ा देश रचता है सो दूर से दूर मार्ग है तो जो उस देश के वासी हैं उनको देश की अपेक्षा से दूसरा देश दूर से दूर है परन्तु जिसका मनोराज है उसको तो सब निकट है और अपना आपही रूप है। इस प्रकार जो शुद्धसंवेदनरूप है उसके अर्थ जो कोई देता है—ईश्वर अर्थ अथवा देवताके अर्थ हो—उसको निकट से निकट सब अपने में भासता है। आदिनेति इसीप्रकार हुई है कि, शुद्धसंवेदन को सब अपने निकटसे निकटही भासताहै क्योंकि; सब संकल्पहै और जैसी रचना संकल्प में रचती है तैसेही होती है—संकल्प में क्या नहीं होता? थम्भे का प्रश्न जो तूने किया है कि, काष्ठ काथा सुवर्ण का कैसे होगया; सोभी सुनो। हे राजन्! आदि जो संवेदनरूप ब्रह्मा है उसने अपने मनोराज में नेति की है कि; तपादिक से वर और शाप सिद्धि होता है। उसके कहेसे जो काष्ठ का थम्भा स्वर्ण होगया तो तू विचारकर देख कि, किस कारण से काष्ठ का सुवर्ण हुआ। वह केवल संकल्पमात्रहै; जो संकल्प से भिन्न कुछ भी होता तो काष्ठ का सुवर्ण न होता। यह सर्व विश्व संकल्परूप है; जैसा संकल्प दृढ़ होता है, तैसाही हो भासता है। जैसे तू अपने मनोराज में संकल्प करेहै कि, यह ऐसे रहे और

जो उससे और प्रकारकरे तोभी होजावे सो होता है; तैसेही वर और शाप भी और प्रकार होजातेहैं। न और कोई जगत् है, न कार्य है और न कारण है वही आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है; जैसा संकल्प जिसमें फुरता है तैसाही भासता है तू पूछताहै कि, असत्य से फिर जगत् कैसे उत्पन्न होताहै जो आपही न हो तो उससे जगत् कैसे प्रकटे? हे राजन्! असत्य इसीका नाम है कि, जो जगत् असत्य था इसलिये श्रुति ने उसे असत्य कहा। जो आदि असत्य था इसलिये असत्यता जगत् की कहीहै पर आत्मा तो असत्य नहीं होता? सबका शेषभूत आत्मा है; जब उसमें संवेदन फुरती है तब ब्रह्म अलक्ष्यरूप होजाता है परन्तु उस संवेदन के फुरने और मिटने में ब्रह्म ज्यों का त्यों है; उसका अभाव नहीं होता। जैसे जल में तरङ्ग उपजताहै और फिर लीन होजाता है परन्तु उसके उपजने और मिटने में जल ज्यों का त्यों है और तरङ्ग उसके आभास फुरते हैं। जैसे तू मनोराज से एक नगर कल्पे और फिर संकल्प छोड़दे तब संकल्परूप नगर का अभाव होजाताहै परन्तु सदा अविनाशी रहता है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि उपजती भी है और लीन भी हो जातीहै परन्तु अधिष्ठान ज्यों का त्योंहै; और जैसे रत्नों का प्रकाश उठता है और लीन भी होजाता है परन्तु रत्न ज्यों का त्यों होता है; तैसेही आत्मा विश्व के भाव अभाव में ज्यों का त्यों रहता है पर उसका आभास जगत् उपजता मिटता भासता है। उपजताहै तब उत्पत्ति भासतीहै और जब मिटता है तब प्रलय होजाती है परन्तु उभय आभास हैं। जैसे वायु फुरती है तब भासतीहै और ठहरजाती है तब नहीं भासती परन्तु वायु एकहै; तैसेही आत्मा एकही है फुरने का नाम उत्पत्ति है और न फुरने का नाम जगत् की प्रलय है सो सर्व किंचनरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रश्नोत्तरद्वितीयोनाम
द्विशताधिकपञ्चाशीतितमस्सर्गः॥ २८५॥

वशिष्ठजी बोले कि; हे राजन्! तूने प्रयाग के जो दो पुरुषों का प्रश्न कियाहै उसका उत्तर सुन। जो उसका शत्रु वनगयाथा सोतो उसका पापथा और जो उसका मित्र बन गया था सो उसका पुण्य था। प्रयागतीर्थ धर्मक्षेत्र था। हे राजन्! पापरूप वासना के अनुसार मृत्यु भासती है पर पुण्यरूपी जो मित्र है सो पापरूपी शत्रुको रोकताहै और पुण्यरूपी तीर्थ के बल से हृदय से अल्परूपी पाप वेग से भासता है। जब मृत्यु आती है तब वह आपको मरता जानता है और भाईजन कुटुम्बी रुदन करते हैं पर जब अपनी ओर देखता है तब जानता है कि, मैं तो मुआ नहीं। जब मृतक मर्गकी ओर देखताहै तब आपको मुआ जानता है और भाईजन रुदन करते हैं। इस प्रकार उसको मरता भासता है और यह देखता है कि; भाईजन जलाने लगे हैं; उन्होंने अग्नि में मुझको डाला है और मैं जलता हूं। जब फिर पुण्य की

ओर देखता है तब जानता है कि, मैं मुआ नहीं जीता हूं और जब फिर पाप की ओर देखता है तब जानता है कि; मैं मुआ हूं और मुझको यमदूत लेचले हैं; यह परलोक है और यहां मैं सुख दुःख भोगता हूं। जब फिर पुण्य की ओर देखता है तब जानता है कि, मैं मुआ नहीं; जीताहूं; यह मेरे भाईजन बैठे हैं और वहां मेरा व्यवहार चेष्टा है। इस प्रकार उभय अवस्था को पुरुष देखताहै। जैसे संकल्पपुर और स्वप्ननगर में उभय अवस्था देखे और एकही पुरुष नाना प्रकार की चेष्टा देखता है। कहीं जीता देखता है, कहीं मृतक देखता है; कहीं व्यवहार देखता है और कहीं निर्व्यापार इत्यादिक नाना प्रकार की चेष्टा एकही पुरुष में होतीहै; तैसेही एकही पुरुष को पुण्य पाप की वासना से जीना मरना भासता है। हे राजन्! यह सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्रहै; जैसा संकल्प दृढ़ होताहै तैसाही रूप हो भासता है। परलोक जानना भी अपने वासना के अनुसार भासता है और जो कुछ उसके निमित्त पुत्र बान्धव देते हैं सो पुत्र बान्धव भी उसकी पुण्य पाप वासना से स्थित हुये हैं। वे जो कुछ इसके निमित्त करते हैं उनसे यह सुख, दुःख, नरक, स्वर्ग भोगता है पर वास्तव में कोई बान्धव और पुत्र नहीं; उसकी वासना ही नाना प्रकार के आकार को धारकर स्थित हुई है। हे राजन्! सहस्र चन्द्रमा का जो तूने प्रश्न किया है उसका उत्तर सुन। सहस्रभी इसी आकाश में स्थित होते हैं और अपनी २ वासना से कलासंयुक्त चन्द्रमा हो विराजते हैं परन्तु एकको दूसरा नहीं जानता परस्पर अज्ञात हैं—जो अन्तवाहक दृष्टि से देखे उसको भासते हैं। हे राजन्! जो कोई ऐसी भावना करे कि, मैं उसके मण्डल को प्राप्त होऊं तो तत्कालही जा प्राप्त होता है। जैसे एकही मन्दिर में बहुत मनुष्य सोये हों तो उनको अपने २ स्वप्ने की सृष्टि भासती है और अन्योन्य विलक्षण है—एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता; तैसेही एक आकाश में सहस्र चन्द्रमा बनते हैं। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के दशपुत्र दशब्रह्मा हो बैठेथे तैसेही जिसकी कोई तीव्र भावना करता है वही होजाता है। जो कोई भावना करे कि; हम इसी मन्दिर में सप्तद्वीप का राज्य करें तो वैसाही होजाता है क्योंकि; अनुभवरूपी कल्पवृक्ष है उसमें जैसी तीव्रभावना होती है, तैसेही हो भासती है। वर के वश से उस पुरुष को सप्तद्वीप का राज्य प्राप्त हुआ और शाप के वश से उसका जीव उसी मन्दिर में रहकर द्वीप का राज्य करतारहा। जैसे स्वप्ने में राज्य करे हैं तैसेही अपने मन्दिर में अपनी संवेदनही सृष्टिरूप होकर भासती है। इसी प्रकार जो एक स्त्री की भावना करके सहस्र पुरुष ध्यान लगाये बैठे थे कि; हम उसके भर्ता हों सोभी होजाते हैं। हे राजन्! उनकी जो तीव्रभावना है वही स्त्रीका रूप धारकर उनको प्राप्त होगी वे जानेंगे कि; वही स्त्री हमको प्राप्त हुई है। यह जगत्

केवल संकल्पमात्र है, संकल्प से भिन्न कुछ वस्तु नहीं; और सब चिदाकाशरूप है अपनेही अनुभव से प्रकाशता है और जैसे उसमें संकल्प फुरता है तैसेही हो भासता है। पृथ्वी, जल, तेज आदिक तत्त्व कोई नहीं आत्मसत्ताही इस प्रकार स्थित है जो परमशान्त, निराकार, निर्विकार और अद्वैतरूपहै। राजा बोले; हे मुनीश्वर! जगत् के आदि जो आत्मसत्ता थी सो किस आकाररूप देहमें स्थित थी; देह विना तो स्थित नहीं होती? जैसे आधार विना दीपक नहीं रहता आधार होताहै तो उसमें जागता है तैसेही आत्मसत्ता किसमें स्थित थी? वशिष्ठजीने कहा, हे राजन्! जितने आकार तुझको भासते हैं और जिनको देखकर तूने प्रश्न उठायाहै सोहै नहीं; ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। जिन भूतों से बना देह भासताहै सो भूत भी मृगतृष्णा के जलवत् हैं। जैसे रस्सी में सर्प; सीपी में रूपा; आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्र है क्योंकि, इनका अत्यन्त अभाव है; तैसेही यह भूताकार ब्रह्म में भ्रम से भासते हैं—ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। तूने पूछा था कि; ज्यों स्वयंभू अपने आपसे उपजते हैं तो अब क्यों नहीं होता सो, हे राजन्! कई उसके सदृश उत्पन्न होते हैं पर वास्तव में कुछ उपजा नहीं और नानाप्रकार भासताहै परन्तु नानाप्रकार नहीं हुआ। जैसे स्वप्ने में सदा तू देखता है कि; अद्वैत अपना आपही नानारूप हो भासता है और पर्वतपर दौड़ता फिरता है सो किस शरीर से दौड़ता है और क्या रूप होताहै? जैसे वह पर्वत और शरीर आकाशरूप होताहै और भ्रमसे पिण्डाकार भासताहै; तैसेही यह जगत् भी आकाशरूपहै भ्रमसे पिण्डाकार भासताहै। हे राजन्! तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख कि, यह सब जगत् तेरा अनुभव आकाश है स्वप्ने का दृष्टान्त भी मैंने तुमसे चेतनेके निमित्त कहाहै। स्वप्ना भी कुछ हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थितहै; जब उसमें आभास संवेदन फुरतीहै तब वही जगत्रूप हो भासती है और जब आभास संकल्प मिटजाताहै तब प्रलयकाल भासता है। वास्तव में न कोई उत्पन्न होता है और न प्रलय होता है ज्यों की त्यों आत्मसत्ता स्थित है। जैसे एक निद्रा के दो रूप होते हैं—एक स्वप्ना और दूसरा सुषुप्ति पर जाग्रत् में यह दोनों आकाशमात्र होती हैं; तैसेही आभासकी दो संज्ञा होती हैं—एक जगत् और दूसरी महाप्रलय पर आत्मरूपी जाग्रत् में दोनों का अभाव हो जाता है। हे राजन्! तू स्वरूप में जाकर और कलना को त्यागकर देख कि, सब आत्मरूप है—और कुछ नहीं। हे रामजी! इस प्रकार मैं राजा को कहकर उठखड़ा हुआ तब उसने भलीप्रकार प्रीतिसंयुक्त मेरा पूजन किया और जब वह पूजन करचुका तब मैं जिस कार्य के लिये आया था सो कार्य करके स्वर्ग को चलागया॥

इतिश्रीयो०नि०राजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनंनामद्विशताधिकषडशीतितमस्सर्गः२८६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् सब चिदाकाशरूपहै और दूसरा कुछ बना नहीं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, सब चिदाकाशहै बना कुछ नहीं तो सिद्ध, साधु, विद्याधर, लोकपाल, देवता इत्यादिक जो भासतेहैं; कुछ बने क्यों नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये जो सिद्ध, साधु, विद्याधर, देवता लोक और लोकपाल हैं सो वास्तव में कुछ उपजे नहीं; ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है और ये जो प्रत्यक्ष भासते हैं सो शुद्ध संकल्पसे रचेहुयेहैं परन्तु वास्तव में कुछ बने नहीं, भ्रम से इन की सत्यता भासती है। जैसे मृगतृष्णा की नदी, रस्सी में सर्प, सीपी में रूपा और संकल्पनगर है; तैसेही आत्मा में यह जगत् है। हे रामजी! जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार की रचना भासती है परन्तु कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जगत् है। जो पुरुष इसको देखकर सत्य मानता है वह असम्यक्दर्शी है और जो आत्मा को देखता है वही देखता है और वही सम्यक्दर्शी है। हे रामजी! ये लोक और लोकपाल जगत्सत्ता में ज्यों के त्यों हैं और जैसे स्थित हैं तैसेही हैं परन्तु परमार्थ से कुछ उपजे नहीं, अनुभवसत्ताही संवेदन से दृश्यरूप हो भासती है और द्रष्टाही दृश्यरूप हो भासता है परन्तु स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं हुआ। जैसे आकाश और शून्यता और अग्नि और उष्णता में भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। हे रामजी! अब एक और वृत्तान्त तुम सुनो। स्वने में जैसे अब हमहैं तैसेही एक आगे भी चित्त प्रतिमा हुई थी। पूर्व एककल्प में तुम और हम हुयेथे। तुम मेरे शिष्यथे और मैं तुम्हारा गुरु था। तूने एक वन में मुझ से प्रश्न किया था कि, हे भगवन्! एक मुझ को संशय है सो नाश करो। महाप्रलय में नाश क्या होताहै और अविनाशी क्या रहताहै? तब मैंने कहा था, हे तात! जितना शेष विशेषरूप जगत् है सो सब नाश होजाता है— जैसे स्वप्ने का नगर सुषुप्ति में लीन होजाताहै और निर्विशेष ब्रह्मसत्ता शेष रहती है। क्रिया, काल, कर्म, आकाश, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, पहाड़, नदियां और इनसे लेकर जो कुछ जगत् क्रिया, काल और द्रव्य संयुक्त है वह सब नाश होजाता है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र ये जो कार्य के कारण हैं उनका नाम भी नहीं रहता। संवेदन शक्ति जो चैतन्य का लक्षणरूप है सोभी नहीं रहती केवल अचेत चिन्मात्र एक चिदाकाशही शेष रहता है। शिष्य बोले; हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत्य होती है उसका नाश नहीं होता और जो असत्य होती है सो आभासरूप है पर यह जगत् तो विद्यमान भासता है सो महाप्रलय में कहां जावेगा? गुरु बोले, हे तात! जो सत्य है उसका नाश कदाचित् नहीं होता और जो असत्यहै उसका भाव नहीं; इस लिये जितना कुछ जगत् तुझको भासता है सो सब भ्रममात्र है इसमें कोई वस्तु भी सत्य नहीं भासती है परन्तु जैसे मृगतृष्णा का जल स्थित नहीं होता और दूसरा चन्द्रमा व आकाश में

नगवरे भ्रममात्र हैं; तैसेही यह जगत् भी जो भासताहै सो भ्रममात्रहै। जैसे स्वप्ने का नगर प्रत्यक्ष भी भासता है परन्तु भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भी भ्रमरूप जानो। हे तात! आत्मसत्ता सर्वदाकाल सर्वत्र अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्ने में जाग्रत् का अभाव होना है और जाग्रत् में स्वप्ने का अभाव होता है तो सृष्टि कहां जाती है? जैसे जाग्रत् में स्वप्ने की सृष्टि का अभाव होजाता है; तैसेही महाप्रलय में इसका अभाव होजाता है। शिष्य बोले; हे भगवन्! यह जो भासताहै सो क्याहै और जो नहीं भासता सो क्या है? इसका रूप क्या है और चिदाकाश से कैसे हुआ है? गुरु बोले; हे शिष्य! जब शुद्ध चिदाकाश में किञ्चन संवेदन फुरतीहै तब जगत्रूप हो भासती है इससे इसका रूप भी चिदाकाशही है–चिदाकाश से भिन्न कुछ नहीं सृष्टि और प्रलय दोनों उसीके रूप हैं; जब संवेदन फुरतीहै तब सृष्टि हो भासतीहै और जब अफुर होती है तब प्रलयरूप हो भासती है पर दोनों उसके रूप हैं। जैसे एकही वपु में दो स्वरूप हैं–दन्तों से शुक्ल लगता है और केशों से कृष्ण लगता है; तैसेही आत्मा में सर्ग और प्रलय दो रूप होते हैं पर दोनों आत्मरूप हैं। जैसे एकही निद्रा की दो अवस्था होती हैं–एक स्वप्ना और दूसरी सुषुप्ति पर जाग्रत् में उभय नहीं; तैसेही निद्रारूप संवेदन में सर्ग और प्रलय भासतीहै पर जाग्रत्रूप आत्मा में दोनों का अभाव है। हे तात! जो कुछ तुझको भासताहै सो सब चिदाकाशरूपहै–और कुछ नहीं ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभवही जगत्रूप हो भासता है; तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। शिष्य बोले; हे भगवन्! जो इसी प्रकार है कि; द्रष्टाही दृश्यरूप हो भासता है तो और जगत् तो कुछ न हुआ सर्व वही है? गुरु बोले; हे तात! इसी प्रकार है। जगत् कुछ वस्तु नहीं चिदाकाशही जगत्रूप हो भासता है और आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है और कुछ नहीं क्योंकि; सब उसीका किञ्चन है और सर्वमें सर्वदाकाल सर्वप्रकार वही सृष्टि होकर फुरती है और किसीमें किसीकाल किसीप्रकार कुछ हुआ नहीं आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है और जो कुछ जगत् भासता है उसे वही रूप जानो। जिसको तू सर्ग और प्रलय कहता है सो सब आत्मसत्ता के नाम हैं वही सर्व में सर्वदाकाल सर्वप्रकार स्थित है। जैसे जो परमपद है वही घट पटरूप हुआ है। पर्वत, पट, जल, तृण, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, स्थावर, जङ्गम, अस्ति, नास्ति, शून्य, अशून्य, क्रिया, काल, मूर्ति, अमूर्ति, बन्ध और मोक्ष आदि सर्व शब्द अर्थ में जो पदार्थ सिद्ध होते हैं सो सब आत्मरूपही और सबमें सर्वदाकाल सर्वप्रकार आत्माही है और जिसमें सर्वदाकाल सर्वप्रकार नहीं वहभी आत्माही है जो सदा ज्योंका त्योंहीहै। जैसे स्वप्ने में जो कुछ भासता है सो सब आत्मसत्ताहीहै और दूसरा कुछ बना नहीं। हे तात! तृणही कर्ता

है; तृणही भोक्ता है और तृणही सर्वेश्वर है। घट कर्ता है, घट भोक्ता है और घटही सर्व का ईश्वर है । पट कर्ता है; पट भोक्ता है और पटही परमेश्वर है । नर कर्ता है; नर भोक्ता है और नरही सर्व का ईश्वर है । इसी प्रकार एक एक वस्तु नाम से जो वस्तु है सो करता भोक्ता सर्व ब्रह्मरूप है । ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ जगत् भासता है सो सर्व आत्मरूप है और क्षय, उदय, भीतर, बाहर, कर्ता, भोक्ता सब ईश्वर है सो विज्ञानमात्र है । कर्ता-भोक्ता वही है और न कर्ता है, न भोक्ता भी वही है । विधिमुख करके भी वही है और निषेध भी वही है । शुद्धदृष्टि से सब चिदात्मा ही भासता है जो सर्वदुःख से रहितहै । जिनको आत्मदृष्टि नहीं प्राप्तहुई उनको भिन्न२ जगत् भासताहै जो अनुभव से भिन्न नहीं है । ऐसे जानकर अपने स्वरूप में स्थित होरहो । हे रामजी ! इस प्रकार मैंने तुम से कहा था परन्तु उससे तुमको अभ्यास की ऊनता से बोध न हुआ इस लिये वही संस्कार अब तुमको प्राप्त हुआ है और इसीकारण से अब तुम जागे हो । हे रामजी ! अब तुम अपने स्वरूप में स्थित होकर कृतकृत्य हुयेहो इसलिये अपनी राजलक्ष्मी को भोगो; प्रजा की पालना करो और हृदय से आकाशवत् निर्लेप रहो ॥

इति श्रीयो०नि०पूर्वरामकथावर्णनंनामद्विशताधिकसप्ताशीतितमस्सर्गः ॥ २८७ ॥

बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज ! जब वशिष्ठजी इस प्रकार रामजीसे कहचुके तब आकाश में जो सिद्ध और देवता स्थित थे वे फूलों की वर्षा करने लगे—मानों मेघ बरफ़ की वर्षा करते हैं अथवा आकाश कम्पायमान हुआ है उससे तारे गिरते हैं—जब वे पुष्पों की वर्षा करचुके तब राजा दशरथ उठखड़े हुये और अर्घ्य पाद्य दे और पूजन कर हाथ जोड़के कहनेलगे कि; हे मुनीश्वर ! बड़ा कल्याण और बड़ा हर्ष हुआ जो तुम्हारे प्रसादसे हम आत्मपदको प्राप्त होकर कृतकृत्य हुये । चित्तका वियोग हुआ है इससे दृश्य फुरने का भी अभाव हुआ है और हम अचित; चिन्मात्र हैं । अब हम परमपद को प्राप्त हुये हैं और हमारे सब सन्ताप मिटगये हैं । संसाररूपी जो अन्धमार्ग था उससे थके हुये अब हम विश्रान्ति को प्राप्त हुये हैं । अब मैं पहाड़की नाईं अचल हुआहूं; सब आपदा से तरगयाहूं और जो कुछ जानना था सो जानरहाहूं । हे मुनीश्वर ! तुमने बहुत युक्ति से दृष्टान्त देकर जगाया है अर्थात् शून्य के दृष्टान्त, सीपी में रूपा; मृगतृष्णा का जल; रस्सी में सर्प; आकाश में दूसरा चन्द्रमा और नावपर नदी के किनारों का चलते भासना; जल में तरङ्ग; स्वर्ण में भूषण; वायु का फुरना; गन्धर्बनगर; संकल्पपुर आदि दृष्टान्त कहे हैं जिनसे हमने तुम्हारी कृपा से जाना है कि; आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं । बाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार दशरथ कहचुके तब रामजी उठे और हाथ जोड़कर इस प्रकार कहनेलगे कि,

हे मुनीश्वर! तुम्हारी कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआहै। अब मैं परमपद को प्राप्तहुआ हूं; किसीमें मुझको न राग है और न द्वेष है और परमशान्ति को प्राप्त हुआ हूँ। न अब मुझे किसी के करने से अर्थ है और न करने में कुछ अनर्थ है-मैं परमशान्त पद को प्राप्त हुआ हूं। हे मुनीश्वर! तुम्हारे वचनों को स्मरण करके मैं आश्चर्य को प्राप्त होकर हर्षित होताहूं। मेरे सब संदेह नष्ट होगयेहैं और अब मुझको और नहीं भासता सर्वब्रह्महीं भासता है। लक्ष्मण बोले, हे भगवन्! मैं सन्तों के वचन इकट्ठे करता रहा था और सम्पूर्ण जो मेरे पुण्य थे सो अब इकट्ठे हुयेथे जिन सबका फल अब उदय हुआ है। तुम्हारी कृपासे अब मैं सर्वसंशयों से रहित होकर परमपद को प्राप्त हुआ हूं। तुम्हारे वचन चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल हैं किन्तु उनसे भी अधिक हैं इससे मैंने परमशान्ति पाई है और मेरे दुःख सन्ताप सर्व नष्ट हुयेहैं। शत्रुघ्न बोले; हे मुनीश्वर! जगत् और मृत्यु का जो भय था वह तुमने दूर किया है और अपने अमृतरूपी वचनों का सुधापान कराया है। अब हमारे संशय सब नष्ट हुये हैं और हम आत्मपद को प्राप्त हुये हैं। हमारे जो चिरकालके पुण्य थे उनका फल आज पाया है। विश्वामित्र बोले; हे मुनीश्वर! सर्वतीर्थों के स्नान करने और दूसरे कर्मों से भी मनुष्य ऐसा पवित्र नहीं होता जैसे तुम्हारे वचनोंसे हम पवित्र हुये हैं। आज हमारे श्रवण पवित्र हुये हैं। नारदजी बोले; हे मुनीश्वर! ऐसा मोक्षउपाय मैंने देवताओं; और सिद्धों के स्थान में भी नहीं सुना और ब्रह्मा के मुखसे भी नहीं सुना जैसा कि तुमने उपदेश कियाहै। इसके श्रवण किये से फिर संशय नहीं रहता। फिर दशरथ बोले; हे मुनीश्वर! आत्मज्ञान ऐसी सम्पदा कोई नहीं; इससे तुमने परमसम्पदा हमको दी है जिसके पायेसे फिर किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रही। अब तो हम अपने स्वभाव में स्थित हुये हैं और सम्पूर्ण कर्म हम को छोड़गये हैं। हमारे बहुत जन्मों के पुण्य इकट्ठे हुये थे उनके फल से ये तुम्हारे पावन वचन सुनेहैं। रामजी बोले; हे मुनीश्वर! बड़ा हर्ष हुआ कि, सर्वसम्पदा का अधिष्ठान प्राप्त हुआहै और सर्व आपदा का अन्त हुआ है। ज्ञान से रहित जो अज्ञानी हैं वे बड़े अभागी हैं। जो आत्मपद को त्यागकर अनात्मपदार्थ की ओर धावते हैं वे भी यत्न करके प्राप्त होते हैं पर उनसे विमुख हो तब आत्मपद प्राप्त होताहै। उसी आत्मपद का पाकर मैं शान्तिमान् होकर हर्षशोक से रहित हुआहूं और मैंने अचलपद पाया है और अजित अविनाशी सदा अपने आपमें स्थित हूं। तुम्हारी कृपासे आपको ऐसा जानता हूं। लक्ष्मण बोले; हे मुनीश्वर! सहस्र सूर्य एकत्र उदय हों तो भी हृदय के तम को दूर नहीं करसक्के पर वह तम तुम ने दूर किया है; और सहस्र चन्द्रमा इकट्ठे उदय हों तो भी हृदय की तपन निवृत्त नहीं करसक्के पर तुमने सम्पूर्ण तपन निवृत्त

क है। हम निःसंताप पद को प्राप्त हुए हैं। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो ! जब इस प्रकार सब कह चुके तब वशिष्ठजीने कहा। हे रामजी ! इस मोक्षउपाय कथाको सुन-कर सर्वब्राह्मणों का यथायोग्य पूजन करो और दान करो और जो इतर जीव हैं वे भी यथायोग्य यथाशक्ति पूजन करते हैं तुम तो राजा हो। जब इस प्रकार वशिष्ठजी नेकहा तब राजा दशरथ ने उठकर दस्त्र मथुरावासी विद्यावान् ब्राह्मणों को भोजन कराया और दक्षिणा, वस्त्र, भूषण घोड़े, गांव आदिक दिये और यथायोग्य पूजन किया। निदान बड़ा उत्साह हुआ; अङ्गना नृत्य करने लगीं और नगाड़े, सहनाई आदि बाजनबजने लगे औ चक्रवर्ती राजा होकर दशरथने उत्साह किया। इस प्रकार सातदिनतक ब्राह्मणों, अतिथियों और निर्धनों को द्रव्य देकर राजा ने पूजन किया और अन्न और वस्त्र आदिक से सबको प्रसन्न किया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेउत्साहवर्णनंनाम द्विशताधिकाष्टाशीतितमस्सर्गः॥ २८८॥

बाल्मीकिजी बोले कि; हे भरद्वाज! इस प्रकार वशिष्ठमुनि के वचन सुनकर सब रघुवंशी कृतकृत्य हुये जैसे रामजी सुनकर संशय रहित जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं; तैसेही तुम भी बिचरो यह मोक्ष उपाय ऐसा है कि, जो अज्ञानी श्रवण करे तो वह भी परमपद को प्राप्त हो। तुम्हारी क्या बात है तुम तो आगे से भी बुद्धिमान् हो। जिस प्रकार मुझसे ब्रह्मजीने कहाथसो मैंने तुमको सुनायाहै। जैसे रामजी आदिक कुमार और दशरथ आदिक राजा जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं; तैसेही तुम भी बिचरो। उनमें मोह भी दृष्टि आता था परन्तु वे स्वरूप से चलायमान नहीं हुये। ज्ञान ऐसा सुख और कोई नहीं और अज्ञान ऐसा दुःखभी कोई नहीं। इससे अधिक कैसे कहिये। यह जो मोक्ष उपाय मैंने तुमसे कहाहै सो परमपावन है; संसारसमुद्र से पार करनेवाला है; दुःखरूप अन्धकार को नाशकर्ता सूर्यरूप है और सुखरूपी कमल की खानि का ताल है। जो पुरुष इसका बारम्बार विचारकरे वह यदि महामूर्ख हो तोभी शान्तपद को प्राप्त हो। जो कोई इस मोक्षउपाय को पढ़ेगा; कहेगा; सुनेगा; लिखेगा अथवा लिखवा पुस्तक देगा उसके हृदय में जो कामना होगी वह पूर्ण होगी ब्रह्मलोक को प्राप्त होगा और वह राजसूय यज्ञ का फल पावेगा और फिर विचारकर ज्ञान पाकर मुक्त होगा। हे अङ्ग ! यह जो मोक्षउपाय है सो बड़ा शास्त्र है; इसमें बड़ी कथा है औ नाना प्रकार की युक्ति हैं जिन कथाओं और युक्तियों से वशिष्ठजी ने रामजी को सुनाया था सो मैंने तुझको सुनाया है। अपने उपदेश से उन्होंने उनको जीवन्मुक्तकिया था और कहाथा कि; तुम राजलक्ष्मी भोगो। वही मैंने भी तुमसे कहा है कि जीवन्मुक्त होकर अपने तपकर्म में सावधान होरहो और

निश्चय आत्मसत्ता में रखना। जिस उपदेश से रघुवंशी कृतकृत्य हुये हैं सो मैं तुमसे ज्योंका त्यों कहा है। इस निश्चय को धरकर कृतकृत्य होरहो। इसमें जितने इतिहास और कथा हैं उनके भिन्न २ नाम सु। वैराग्यप्रकरण में सम्पूर्ण रामजी के प्रश्न हैं; मुमुक्षुप्रकरण में शुकनिर्वाणही कहा है; उत्पत्तिप्रकरण में ये आठ आख्यान कहे हैं; एक आकाशज का; दूसरा लीला का; तीसरा सूची का; चतुर्थ इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र का; पञ्चम कृत्रिम इन्द्र और अल्या का; षष्ठ चितोपाख्यान; सप्तम बाल्मीकि की कथा और अष्टम साम्बर का आख्यान; स्थितिप्रकरण में चार आख्यान हैं; एक भृगु के सुत का; दूसरा दामव्यालकट का; तीसरा भीम, भास, दटका और चतुर्थ दासूर का। उपशमप्रकरण में एकादश आख्यान कहे हैं; एक जनक की सिद्धगीता; दूसरा पुण्यपावन; तीसरा बलि को विज्ञान की प्राप्ति का वृत्तान्त; चतुर्थ प्रह्लादविश्रान्ति; पञ्चम गाधिकवृत्तान्त; षष्ठ उद्दालक निर्वाण; सप्तम स्वर्गनिश्चय; अष्टम परिघनिश्चय; नवम भास दशम विलासंवाद और एकादश वीतह। निर्वाणप्रकरण में सप्तविंशति आख्या कहे हैं; भुशुण्डि और वशिष्ठ का; महेश और वशिष्ठ का; शिलाकोश का; उपदेश अर्जुन; सप्तसत्यरुद्र; वैताल का; भगीरथ का; गङ्गा अवतार; शिखरध्वज का; बृहस्पतिकचबोध; मिथ्यापुरुष का; शृङ्गीगण का; इक्ष्वाकु; निर्वाण; मृगव्याधि दृष्टान्त; बलबृहस्पति; मङ्कीनिर्वाण; विद्याधर का; हरिणोपाख्यान; आख्यानोपाख्यान; विश्चित् की कथा; शिवि का; शिला का; इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों का; कुन्ददन्त का; महाप्रश्न उत्तरवाक्य; शिष्य गुरु; महोत्सव और ग्रन्थप्रशंसाफल चतुष्टयप्रकरणों में सब पचास आख्यान वर्णन किये गये।

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमहारामायणेवशिष्ठरामचन्द्रसंवादेनिर्वाणप्रकरणेमोक्षोपाय वर्णनंनामद्विशताधिकैकोननवतितमस्सर्गः ॥२८९॥

समाप्तोयंश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्ध॥

इति॥